दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ८

(अगस्त)

पृष्ठ १ से २१२४

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

३. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

४. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

५. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

६. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिंकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
४. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
११. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५३. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री डोनादि रमेश
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी

६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इदरिशी
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायन मिश्रा
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद क़मर हसन रिज़वी
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

अंजलि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1143**

अखिलेश पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1616**

अजीत प्रताप सिंह बनाम भारत संघ और अन्य **पृष्ठ-1991**

अनिल किशोर गुप्ता बनाम एसबीआई एवं अन्य **पृष्ठ-1232**

अनिल कुमार तुलसियानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-81**

अनिल कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-9**

अनुराग कुमार गुप्ता बनाम यूपी सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड एवं अन्य **पृष्ठ-1906**

अभिषेक कुकरेती एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-707**

अमर सिंह एवं अन्य बनाम डीडीसी आगरा एवं अन्य **पृष्ठ-1427**

अरविंद सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1726**

अरुण कुमार सिंह उर्फ़ मुन्ना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-28**

अलका रे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ- 882**

अवधेश कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1857**

अशोक कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-405**

आज़ाद अहमद खान बनाम आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण **पृष्ठ-2103**

आफ़ताब खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-968**

आशीष कुँअर यादव बनाम आत्मा नंद सिंह एवं एक अन्य **पृष्ठ-274**

इति त्यागी बनाम प्रिंस त्यागी **पृष्ठ-1017**

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम कृष्ण गोपाल एवं अन्य **पृष्ठ-1343**

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम शिव जग शर्मा एवं अन्य **पृष्ठ-342**

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अनिल कुमार एवं अन्य **पृष्ठ-1123**

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हर दयाल सिंह एवं अन्य **पृष्ठ-1132**

उदय राजगढिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1008**

अनुवादित

एमएस. सुपरटेक रियल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली बनाम अंबर हसन **पृष्ठ-1166**

ओकांश कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1784**

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुरादाबाद बनाम श्रीमती प्रियंका अग्रवाल **पृष्ठ-302**

कंवर पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-934**

कमल शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-750**

कुमारी हसीन बी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1284**

कुलभास्कर आश्रम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1956**

कृष्ण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-643**

खुशनुदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-311**

गया प्रसाद शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1001**

गुड्डन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-120**

गुड्डू चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1719**

गुरमीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-658**

गोरखपुर जिला नेत्र राहत सोसाइटी, नेत्र चिकित्सालय, गोरखपुर एवं अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी एवं चिट्स, गोरखपुर एवं अन्य **पृष्ठ-2058**

चंद्र रेखा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1590**

चंद्रजीत सिंह उर्फ चेहक् एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-891**

चंपी उर्फ सुंदर लाल बनाम अपर जिला न्यायाधीश 9 न्यायालय कक्ष संख्या 13 लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-491**

चौधरी चंद्र वीर सिंह एवं अन्य बनाम अध्यक्ष, आर्क सिटी रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन, मेरठ एवं अन्य **पृष्ठ-721**

छतरपुर क्रैशर एसो. और अन्य बनामउत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1455**

छत्तीसगढ़ रेलवे कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम सूक्ष्म एवं लघु उद्यम सुविधा परिषद एवं अन्य **पृष्ठ-2095**

जग मोहन अग्रवाल बनाम श्रीमती कंचन कुमारी जैन **पृष्ठ-374**

अनुक्रमणिका

जगदंबा प्रसाद दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-443**

जय प्रकाश एसो. लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1582**

जयपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1669**

जीतू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-198**

जीतेन्द्र कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-366**

जुगल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-168**

डॉ. रजनी त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-63**

डॉ. शैल कुमार जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1634**

तहसील बार एसोसिएशन गाजियाबाद बनाम यूपीपीसीएल एवं अन्य **पृष्ठ-1437**

दिगवेंद्र प्रताप सिंह बनाम यू.ओ.आई. और अन्य **पृष्ठ-678**

दिनेश कुमार बनाम विहित प्राधिकारी/एसडीओ सदर, मिर्जापुर एवं अन्य **पृष्ठ-631**

दिनेश पाल सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण, आगरा एवं अन्य **पृष्ठ-2077**

दिलीप कुमार तिवारी उर्फ पप्पू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1769**

दीपक उर्फ़ पिल्ला और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-189**

दीपक कुमार उर्फ दीपक मराठा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-703**

धर्मपाल गौतम उर्फ भिखारी गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-903**

नांगू उर्फ रामबाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-979**

नेहरू जूनियर हाईस्कूल तरयासुजान, कुशीनगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-613**

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्री यामिन एवं अन्य **पृष्ठ-1087**

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती निर्मला देवी एवं अन्य **पृष्ठ-1110**

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एम.जी. मार्ग, इलाहाबाद बनाम रमेश कुमार एवं अन्य **पृष्ठ-266**

पंकजेश बनाम अध्यक्ष/अपीलीय प्राधिकरण एवं अन्य **पृष्ठ-1320**

पंखुड़ी अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-424**

अनुवादित

पदम प्रकाश गुप्ता बनाम छोटे लाल **पृष्ठ-225**

पवन कुमार अग्रवाल बनाम यूपीएसआरटीसी एवं अन्य **पृष्ठ-1068**

पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-971**

पुनीत त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-146**

पुनीत शरण तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1619**

पूजा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-627**

प्रखर नागर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-622**

प्रवीण प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-2033**

प्रशांत त्यागी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1662**

प्रो. रंजना शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1182**

प्रो.विपिन सक्सैना बनाम सीबीआई/एसीबी लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-1598**

फुरहे खान उर्फ फकीर मोहम्मद खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1624**

बद्री नारायण तिवारी बनाम प्रवर्तन निदेशक, लखनऊ **पृष्ठ-938**

बलराम गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1288**

बाटा इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सूक्ष्म एवं लघु उद्यम सुविधा परिषद एवं अन्य **पृष्ठ-1552**

बृजेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-952**

बेचन गिरी बनाम भारत संघ और अन्य **पृष्ठ-1961**

ब्रिजेश बहादुर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1294**

भूपेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1160**

महंत प्रसाद राम त्रिपाठी उर्फ़ एम.पी.आर. त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य **पृष्ठ-213**

महेंद्र पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1945**

अनुवादित

महेंद्र सिंह बनाम प्रबंधन समिति, राष्ट्रीय सभा खैर एवं अन्य **पृष्ठ-293**

महेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य **पृष्ठ-52**

महेश चंद्र शुक्ला बनाम अचल मिश्रा बेसिक शिक्षा अधिकारी लखीमपुर खीरी एवं अन्य **पृष्ठ-1739**

माता दीन सिंह बनाम डी.डी.सी. बस्ती एवं अन्य **पृष्ठ-554**

माता फेर रावत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-931**

मास्टर नमिश गुप्ता @गुड्डू गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1848**

मिर्जा राशिद बेग और अन्य बनाम राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश एवं अन्य **पृष्ठ-529**

मुख्य कार्यकारी अधिकारी, उत्तर प्रदेश खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, लखनऊ एवं अन्य बनाम ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के अंतर्गत नियंत्रण प्राधिकारी/सहायक श्रम आयुक्त, लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-2025**

मेसर्स जेनिथ इलेक्ट्रिकल प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश, लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-653**

मेसर्स बंसल कंस्ट्रक्शन, मुजफ्फरनगर बनाम यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकासप्राधिकरण, जीबी नगर एवं अन्य **पृष्ठ-1677**

मेसर्स संतोष प्रिजर्वेशन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड एवं अन्य **पृष्ठ-1539**

मैसर्स अभय ट्रेडर्स राजमार्ग कुठौंद, जालौन बनाम आयुक्त वाणिज्यिक कर, लखनऊ और अन्य **पृष्ठ-2118**

मैसर्स कृषक भारती को-ऑपरेटिव लिमिटेड कृभको सूरत गुजरात बनाम भारत संघ **पृष्ठ-1020**

मो. अदीब अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-927**

मोहम्मद उबैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-960**

मोहम्मद यूनुस मलिक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य **पृष्ठ-59**

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती सूरज काला एवं अन्य **पृष्ठ-232**

यूपी स्टेट शुगर कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम धीरेन्द्र कुमार सिंह **पृष्ठ-1174**

यूपीएसआरटीसी एवं अन्य बनाम चंद्रभान साहू एवं अन्य. **पृष्ठ-1039**

प्रतिलिपि

यूपीएसआरटीसी बनाम श्रीमती नीरजा भाटिया और अन्य पृष्ठ-1076

रजत यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-331

रमेश चंद्र पांडे बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य पृष्ठ-1329

रवींद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-589

राज कपूर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1704

राजेश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1014

राम किशन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1883

राम किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-101

राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1309

राम कृष्ण @ राम कृष्ण यादव बनाम आईओसी एवं अन्य पृष्ठ-1397

राम केश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-392

रामदीन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य पृष्ठ-206

रामित लाला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1154

राहुल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-636

रियाजुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1698

रीता गुप्ता बनाम सहायक महाप्रबंधक, व्यक्तिगत ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स पृष्ठ-506

रूकामे आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-2068

रूही अरोड़ा एवं अन्य बनाम श्रीमती मोनिका एवं अन्य पृष्ठ-1025

रेणु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-455

लक्ष्य इन्फ्रा. पावर प्रा. लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-1526

लालती देवी एवं अन्य बनाम जगदीश कुमार एवं अन्य पृष्ठ-1035

विजय पाल प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-1692

अनुक्रमणिका

विनय परमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-688**

विनय प्रकाश शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-638**

विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1314**

विनोद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1984**

विवेक कुमार मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1711**

विवेक कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अन्य **पृष्ठ-1354**

विश्वपाल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य **पृष्ठ-138**

शिवनाथ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1531**

शिवांशु मुद्गल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-45**

शीतला बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1645**

शैलेन्द्र यादव ललई बनाम रमेश एवं अन्य **पृष्ठ-1814**

शोभित श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1225**

श्री कृष्ण मिश्रा बनाम भारतीय जीवन बीमा निगम, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई एवं अन्य **पृष्ठ-472**

श्री देवेश कुमार पूर्व वरिष्ठ पर्यवेक्षक मेसर्स टाटा इंजीनियरिंग एंड एल कंपनी लिमिटेड बनाम मेसर्स टाटा इंजीनियरिंग एंड लोकोमोटिव कंपनी लिमिटेड लखनऊ **पृष्ठ-2112**

श्री निवास एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त प्रशासन लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-674**

श्रीमती अकीदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-2036**

श्रीमती गीता एवं अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली और अन्य **पृष्ठ-1064**

श्रीमती जाहिदा अंजुम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-692**

श्रीमती तारा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1928**

श्रीमती पारुल अग्रवाल बनाम एल.आई.सी.ऑफ इंडिया, सोनकपुर, मुरादाबाद एवं अन्य **पृष्ठ-575**

अनुवादित

श्रीमती पुष्पा सिंह एवं अन्य बनाम मनोज कुमार सिंह एवं अन्य **पृष्ठ-1045**

श्रीमती बैजंती देवी एवं अन्य बनाम राजेश सिसौदिया एवं अन्य **पृष्ठ-1071**

श्रीमती मालती देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1733**

श्रीमती श्रस्वती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-87**

श्रीमती सरोजिनी देवी एवं अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मैनपुरी एवं अन्य **पृष्ठ-262**

श्रीमती सुषमा देवी एवं एक अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य **पृष्ठ-268**

संदीप कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-74**

सत्य प्रकाश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1934**

साहब लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1804**

सी/एम अंजुमन इंतजामिया मसाजिद वाराणसी बनाम श्रीमती राखी सिंह एवं अन्य **पृष्ठ-867**

सुख राज सिंह बनाम अपर आयुक्त न्यायिक फैजाबाद एवं अन्य **पृष्ठ-666**

सुनील कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ-1259**

सुनील कुमार श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1275**

सुरेंद्र कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य **पृष्ठ-1199**

सुरेन्द्र प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1809**

सुरेन्द्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1795**

सूरज हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-897**

सूर्य प्रकाश बनाम बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, गोंडा एवं अन्य **पृष्ठ-2011**

सोमदेव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-913**

(2023) 8 ILRA 8
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 28.08.2023
समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5389 वर्ष 2023 के साथ
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5391 वर्ष 2023

अनिल कुमार सिंह ...आवेदक
बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:
पूर्णेंदु चक्रवर्ती, प्रांजल जैन, शिवांशु गोस्वामी

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:
अनुराग कुमार सिंह

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 21 - 'लोक सेवक', भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 120-बी, 7, 8, 9, 10 और 12 - भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम, 1988 - धारा 2(सी) , 27 , 35, 37 - 'लोक सेवक' - परिभाषा - सरकार द्वारा किसी सार्वजनिक कर्तव्य के निष्पादन के लिए शुल्क या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले सभी व्यक्ति 'लोक सेवक' हैं, चाहे वे सरकार द्वारा नियुक्त हों या नहीं - सार्वजनिक कर्तव्य का निष्पादन करने वाला व्यक्ति, जिसे सरकार द्वारा प्रतिधारण शुल्क का भुगतान किया जा रहा है, एक लोक सेवक होगा, भले ही वह किसी निजी कंपनी द्वारा नियोजित किया गया हो, और वह उस स्थिति को धारण करने के अपने अधिकार में किसी भी कानूनी दोष के बावजूद एक लोक सेवक होगा। (प्रस्तर -19)

अवैध परितोषण की मांग - षड्यंत्र - प्र.सू.रि. में आरोप - निवारण अधिनियम के **अंतर्गत** अपराध का किया जाना - नामित अभियुक्तों और अन्य अज्ञात लोक सेवकों और निजी व्यक्तियों द्वारा - सी.बी.आई. के आरोप-पत्र में रेजिडेंट इंजीनियर अनिल कुमार सिंह (आवेदक) पर आरोप लगाया गया है - अपने सार्वजनिक कर्तव्यों के बावजूद अंतरिम बिल भुगतान का अनुमोदन करने के लिए बेईमानी से रिश्वत स्वीकार करना - आवेदक भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम के अंतर्गत 'लोक सेवक' नहीं है - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अभियोजन नहीं चलाया गया। (प्रस्तर - 1 से 18)

अभिनिर्धारित हुआ:-आवेदक (अनिल कुमार सिंह) निवारण अधिनियम, 1988 के प्रयोजन के लिए एक लोक सेवक है। अधिनियम के अंतर्गत अपराध करने के लिए उन्हें उचित रूप से अभियोजित किया गया है। दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत दोनों आवेदन गलत हैं। अंतरिम आदेश को निष्प्रभावी किया जाता है। **(प्रस्तर- 50,53)**

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन खारिजा (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. अशोका मार्केटिंग लिमिटेड बनाम पीएनबी, (1990) 4 एससीसी 406

2. एस्सा उर्फ़ अंजुम अब्दुल रजाक मेमन बनाम महाराष्ट्र राज्य, द्वारा एसटीएफ, सीबीआई मुंबई, 2013 एससीसी ऑनलाइन एससी 255

3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम राम सिंह, (2000) 5 एससीसी 88

4. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम मनमोहन सिंह, (2012) 3 एससीसी 64

5. गुजरात राज्य बनाम मनसुखभाई कांजीभाई शाह, (2020) 20 एससीसी 360

6. गोपीनाथ बनाम पुलिस अधीक्षक एवं अन्य, 2014 (2) कर्नाटका लॉ जौर्नल 216 = 2014 (4) केसीसीआर 3668

7. यूपीएससी बनाम गिरीश जयंती लाल वाघेला, (2006) 2 एससीसी 482

8. रोशन लाल टंडन बनाम भारत संघ, (1968) 1 एससीआर 185

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक अनिल कुमार सिंह द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन संख्या-5389 वर्ष 2023 दायर किया गया है, जिसमें (i) अपराध संख्या-100 से उद्भूत आरोप-पत्र संख्या-6, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, थाना- सी.बी.आई./एसी-I, नई दिल्ली की धारा 120-बी, 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत आर.सी 216 2022 ए 0012 दिनांक 10.09.2022, जहां तक यह उससे संबंधित है (ii) अभियोजन मंजूरी आदेश दिनांक 27.03.2023, (iii) विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित संज्ञान और सम्मन आदेश दिनांक 06.04.2023, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई., पश्चिम, लखनऊ सत्र मामला संख्या-709 वर्ष 2023 में और (iv) विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई., पश्चिम, लखनऊ की अदालत में लंबित सत्र मामला संख्या-709 वर्ष 2023 की परिणामी कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी गई है।

2. धारा 482 द०प्र०स० संख्या-5391 वर्ष 2023 के तहत इन आवेदकों द्वारा आवेदन दायर किया गया है - (1) बेदराम शर्मा, (2) परशुराम शर्मा और (3) आनंद मोहन शर्मा ने (i) अपराध संख्या-2023 से उद्भूत आरोप-पत्र संख्या-6, आर.सी 216 2022 ए 0012 दिनांक 10.09.2022 धारा 120-बी भ०द०वि० और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत, जहां तक यह उनसे संबंधित है, जहां तक यह उनसे संबंधित है (ii) विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई. द्वारा पारित संज्ञान और सम्मन आदेश दिनांक 06.04.2023, (iii) सत्र मामला संख्या-709 वर्ष 2023 में पश्चिम, लखनऊ

और (iii) विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई., पश्चिम, लखनऊ की अदालत में लंबित सत्र मामला संख्या-709 वर्ष 2023 की परिणामी कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी है।

3. चूंकि दोनों आवेदन एक ही आधार पर एक ही कार्यवाही को चुनौती देते हैं, इसलिए दोनों आवेदनों पर एक संयुक्त फ़ैसले द्वारा निर्णीत किया जा रहा है।

4. श्री राजू रामचंद्रन वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती और श्री अनुज टंडन एडवोकेट, आवेदक के अधिवक्ता और श्री अनुराग कुमार सिंह, प्रतिपक्षी के अधिवक्ता - सी.बी.आई. के लिए श्री धर्मेंद्र प्रताप सिंह की सहायता से सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

5. उपरोक्त मामला 10.09.2022 को दर्ज एक प्राथमिकी के आधार पर दर्ज किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि अनिल कुमार सिंह मेसर्स बॉयंट्स सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड के स्थानीय कार्यालय से संचालित होते हैं और मेसर्स एस.आर.एस.सी. इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड के सह-आरोपी बेदराम शर्मा ने लंबित बिलों को मंजूरी देने के लिए अनिल कुमार सिंह से संपर्क किया और अनिल कुमार सिंह ने उन्हें उनके द्वारा मांगे गए अवैध रिश्वत के बदले अनुकूल मंजूरी का आश्वासन दिया और उपरोक्त षड्यंत्र के अनुसरण में, मैसर्स एस.आर.एस.सी. इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड के कुछ बिलों को अनिल कुमार सिंह द्वारा मंजूरी दे दी गई।

6. प्राथमिकी में नामित आरोपी व्यक्तियों और अन्य अज्ञात लोक सेवकों और निजी व्यक्तियों द्वारा अधिनियम, 1988 की रोकथाम अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 सपठित धारा 120- बी भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है।

सी.बी.आई. द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र में कहा गया है कि अनिल कुमार सिंह परियोजना के लिए रेजिडेंट इंजीनियर के रूप में काम करते हुए सार्वजनिक कर्तव्यों का पालन कर रहे थे और उनके पास ठेकेदारों के भुगतान को प्रमाणित करने का अधिकार था। अनिल कुमार सिंह ने बिलों के अंतरिम भुगतान की सिफारिश करने के लिए बेईमानी से रिश्वत मांगी और इसे इनाम के रूप में स्वीकार किया।

8. श्री राजू रामचंद्रन वरिष्ठ अधिवक्ता, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदन संख्या-5389 वर्ष 2023 में आवेदक अनिल कुमार सिंह, भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम (इसके बाद 'एन.एच.ए.आई.' अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 2 (सी) में दी गई अवधि की परिभाषा के अनुसार 'लोक सेवक' नहीं है। इसलिए, उस पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, जिसमें केवल लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के प्रावधान हैं।

9. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि धारा 482 द०प्र०स० संख्या-5391 वर्ष 2023 - (1) बेदराम शर्मा, (2) परशुराम शर्मा और (3) आनंद मोहन शर्मा के तहत आवेदन में आवेदकों पर धारा 120-बी भ०द०वि० और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा

7, 8, 9, 10 और 12 के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है। अनिल कुमार सिंह (आवेदन संख्या-5389 वर्ष 2023 में आवेदक) के साथ आपराधिक साजिश में प्रवेश करने के लिए और क्योंकि अनिल कुमार सिंह लोक सेवक नहीं हैं और उन पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत अपराधों के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, परिणामस्वरूप आवेदक (1) बेदराम शर्मा, (2) परशुराम शर्मा और (3) आनंद मोहन शर्मा पर अनिल कुमार सिंह के साथ आपराधिक साजिश रचने का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

10. एन.एच.ए.आई. और मेसर्स वॉयंट्स सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के बीच योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड और एसोसिएट सदस्य चो एंड किम इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड के साथ संयुक्त उद्यम में "उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राज्य में 254.820 से 329.280 तक एनएच-74 के सितारगंजबरेली खंड के पेव्ड शोल्डर के साथ दो इनिंग के शेष कार्यों के निर्माण के लिए पर्यवेक्षण परामर्श सेवाएं" के लिए दर्ज अनुबंध की एक प्रति संलग्न की गई है। उपर्युक्त परामर्श समझौते के परिशिष्ट में उल्लेख किया गया है कि एन.एच.ए.आई. स्थानीय पेशेवर कर्मचारियों के लिए पारिश्रमिक के लिए 3,47,31,000/- रुपये का भुगतान करेगा और इसमें विशेष रूप से योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड के साथ संयुक्त उद्यम में मेसर्स व्योएंट्स सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के निवासी-सह-राजमार्ग अभियंता को 1,60,000/ भुगतान करेगा।

11. मेसर्स योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड द्वारा जारी दिनांक 10.03.2020 के रिटेनर-शिप पत्र की एक प्रति हलफनामे के साथ संलग्न की गई है, जिसमें कहा गया है कि अनिल कुमार सिंह को मैसर्स योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड द्वारा परियोजना के लिए नियुक्त किया गया है और उनका पदनाम निवासी-सह-राजमार्ग अभियंता है और उपरोक्त पत्र के अनुलग्नक से संकेत मिलता है कि अनिल कुमार सिंह को 131,000/- रुपये के मासिक निश्चित रिटेनर-शिप शुल्क पर नियुक्त किया गया है।

12. प्रतिपक्षी - सी.बी.आई. ने एक जवाबी हलफनामा दायर किया है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है कि अनिल कुमार सिंह ने कंपनी के कुछ बिलों के भुगतान के लिए मेसर्स एस.आर.एस.सी. इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड के एक कर्मचारी आनंद मोहन शर्मा से अनुचित लाभ की मांग की थी। आनंद मोहन शर्मा ने कंपनी के एक निदेशक बेदराम शर्मा को सूचित किया और बेदराम शर्मा ने आनंद मोहन शर्मा को अनिल कुमार सिंह को राशि देने का निर्देश दिया। सी.बी.आई. ने रिश्वत की मांग/वितरण और स्वीकृति की एक विश्वसनीय सूचना प्राप्त की; एक प्राथमिकी दर्ज की और दो स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में जाल बिछाया और अनिल कुमार सिंह और आनंद मोहन शर्मा को गिरफ्तार किया जब उन्होंने रिश्वत की मांग / वितरण और स्वीकृति की एक हजार रुपये लौटा दी। जो अपने हिस्से/कमीशन के रूप में भुगतान करता है। आनंद मोहन शर्मा की एक जेब से 1,00,000/- रुपये बरामद किए गए और उन्हें अनिल कुमार

सिंह के घर ले जाया गया, जहाँ से 14,00,000/- रुपये बरामद किए गए।

13. आवेदकों के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजू रामचंद्रन ने प्रस्तुत किया है कि अनिल कुमार सिंह एक रेजिडेंट इंजीनियर हैं जिन्हें एक निजी कंपनी मैसर्स योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड - प्राधिकरण द्वारा नियुक्त परामर्श एजेंसी, द्वारा एक निश्चित रिटेनरशिप शुल्क पर नियुक्त किया गया है। अनिल कुमार सिंह को सरकार या एन.एच.ए.आई. द्वारा कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सलाहकारों/सलाहकारों को एन.एच.ए.आई. (भर्ती, वरिष्ठता और पदोन्नति) विनियम, 1996 के अध्याय III के तहत आने वाले विनियमन 20 के आधार पर एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 27 में दी गई 'लोक सेवक' की परिभाषा से स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है, जो यह प्रदान करता है कि लोक सेवक से संबंधित धारा 27 का प्रावधान प्राधिकरण द्बारा नियुक्त सलाहकार पर लागू नहीं होगा।

14. आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि एक विशेष वैधानिक प्रावधान सामान्य प्रावधानों को ओवर-राइड करता है। उनका निवेदन यह है कि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और उसके अंतर्गत बनाए गए सांविधिक विनियम विशेष उपबंध हैं और उपर्युक्त अधिनियम के अंतर्गत लोक सेवक की परिभाषा भारतीय दंड संहिता अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 में दी गई लोक सेवक की परिभाषा से अधिक होगी, जो सामान्य कानून हैं।

15. आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि एन.एच.ए.आई. अधिनियम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के बाद अधिनियमित किया गया था और फिर भी इसमें 'लोक सेवक' शब्द की परिभाषा शामिल है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में दी गई परिभाषा से अलग है और इसलिए, बाद वाले विशेष अधिनियम में दी गई परिभाषा पूर्व अधिनियम में दी गई परिभाषा पर प्रबल होगी।

16. प्रतिविपरीत, प्रतिपक्षी - सी.बी.आई. के अधिवक्ता अनुराग कुमार सिंह ने प्रस्तुत किया है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 एक विशेष कानून है जिसमें भ्रष्टाचार की रोकथाम और भ्रष्टाचार के अपराध करने वाले व्यक्तियों के अभियोजन के लिए विशेष प्रावधान शामिल हैं, जबकि एन.एच.ए.आई. अधिनियम में दी गई अवधि की परिभाषा केवल रोजगार की शर्तों के सामान्य उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक होगी। उनका निवेदन यह है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 में दी गई लोक सेवक शब्द की परिभाषा किसी अन्य कानून में दी गई परिभाषाओं के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण से संबंधित कानून की प्रयोज्यता के प्रयोजन के लिए अभिभावी होगी।

17. आगे बढ़ने से पहले, विभिन्न विधियों के प्रासंगिक प्रावधानों पर एक नज़र डालना उचित होगा, जिन्हें पक्षों के अधिवक्ता द्वारा रखा गया है।

18. 'लोक सेवक' शब्द को दंड संहिता की धारा 21 में परिभाषित किया गया है, और धारा 21 का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है: -

"21. "लोक सेवक"--शब्द "लोक सेवक" एतपश्चात् निम्नलिखित विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, अर्थात:-

* * *

बारहवीं – हर व्यक्ति-
सरकार की सेवा या वेतन में या सरकार द्वारा किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए फीस या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक;

* * *

स्पष्टीकरण 1. उपर्युक्त विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति लोक सेवक हैं, चाहे वे सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हों या नहीं।

स्पष्टीकरण 2. जहाँ कहीं भी "लोक सेवक" शब्द होंगे, वे ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में समझे जाएँगे जो किसी लोक सेवक की स्थिति पर वास्तविक अधिकार रखता है, उस स्थिति को धारण करने के उसके अधिकार में चाहे जो भी विधिक दोष हो।

* * *."

19. इस प्रकार सरकार द्वारा किसी लोक कर्तव्य के पालन के लिए फीस या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक दिए गए सभी व्यक्ति 'लोक सेवक' हैं, चाहे सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो या नहीं। सार्वजनिक कर्तव्य निभाने वाला व्यक्ति, जिसे सरकार द्वारा प्रतिधारण शुल्क का भुगतान किया जा रहा है, एक लोक सेवक होगा, भले ही वह किसी निजी कंपनी द्वारा नियोजित किया गया हो, और वह उस स्थिति को धारण करने के अपने अधिकार में किसी भी कानूनी दोष के बावजूद एक लोक सेवक होगा।

20. हालांकि, धारा 5 भ०द०वि० विशेष रूप से बताती है कि: -

"5. कुछ विधियां जिनका इस अधिनियम द्वारा प्रभावित न होना--इस अधिनियम की कोई बात भारत सरकार की सेवा में अधिकारियों, सैनिकों, नाविकों या वायुसैनिकों के विद्रोह और परित्याग के लिए किसी अधिनियम के उपबंधों को या किसी विशेष या स्थानीय विधि के उपबंधों को प्रभावित नहीं करेगी।

21. इसलिए, धारा 21 भ०द०वि० में दी गई परिभाषा किसी भी विशेष कानून में दी गई परिभाषा को रास्ता देगी।

22. एन.एच.ए.आई. अधिनियम, 1988 की धारा 27 में प्रावधान है कि प्राधिकरण के कर्मचारियों को 'लोक सेवक' माना जाएगा। यह इस प्रकार है: -

27. प्राधिकरण के कर्मचारियों का लोक सेवक होना--प्राधिकरण के सभी सदस्य, अधिकारी और कर्मचारी, जब इस अधिनियम के या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या विनियम के उपबंधों के अनुसरण में कार्य करते हैं या कार्य करने के लिए तात्पर्यित हैं, भारतीय दंड संहिता

(45 वर्ष 1860) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझे जाएंगे।

23. 'कर्मचारी' शब्द को एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 2 में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -

"2.-इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, - "कर्मचारी" से प्राधिकरण की पूर्णकालिक सेवा में कार्यरत व्यक्ति अभिप्रेत है;

24. एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 35 प्राधिकरण को अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए विनियम बनाने का अधिकार देती है। विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियम सेवा के निबंधन और शर्तों, भर्ती की विधि और प्राधिकरण द्वारा नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के पारिश्रमिक का उपबंध कर सकेंगे। राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम की धारा 37 में यह प्रावधान है कि इस अधिनियम के अधीन बनाए गए प्रत्येक नियम और विनियम को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा।

25. एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रदत्त पूर्वोक्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, एन.एच.ए.आई. ने भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (भर्ती, वरिष्ठता और पदोन्नति) विनियम, 1996 तैयार किए हैं। उपर्युक्त विनियम का अध्याय II अधिकारियों और कर्मचारियों के नियोजन की निबंधन एवं शर्तों से संबंधित है और उसका अध्याय III सलाहकारों/परामर्शदाताओं के नियोजन की निबंधन एवं शर्तों से संबंधित है। अध्याय III के अंतर्गत आने वाले विनियम 20 और 21 निम्नानुसार प्रदान करते हैं: -

"20. सलाहकारों/परामर्शदाताओं का लोक सेवक न होना प्राधिकरण द्वारा नियुक्त सलाहकार या परामर्शदाता की दशा में लोक सेवकों से संबंधित अधिनियम की धारा 27 का उपबंध लागू नहीं होगा।

21. अध्याय-2 के उपबंध लागू न हों- इन विनियमों के अध्याय-2 का कोई उपबंध इस अध्याय के अधीन प्राधिकरण द्वारा नियुक्त सलाहकार या परामर्शदाता पर लागू नहीं होगा।

26. पूर्वोक्त प्रावधानों के आधार पर, श्री. राजू रामचंद्रन ने प्रस्तुत किया है कि एन.एच.ए.आई. ने राजमार्ग के निर्माण के लिए पर्यवेक्षण और परामर्श सेवाओं के लिए योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड और सहयोगी सदस्य चो एंड किम इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड के साथ संयुक्त उद्यम में मैसर्स वॉयंट्स सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के साथ एक समझौता किया है। परामर्श समझौते में कहा गया है कि एन.एच.ए.आई. स्थानीय पेशेवर कर्मचारियों के लिए पारिश्रमिक के लिए 3,47,31,000/- रुपये का भुगतान करेगा और इसमें विशेष रूप से योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड के साथ संयुक्त उद्यम में मैसर्स व्योएंट्स सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के निवासी-सह-राजमार्ग इंजीनियर को 1,60,000 रुपये के भुगतान का उल्लेख है। और इसमें विशेष रूप से योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड के साथ संयुक्त उद्यम में मेसर्स

व्योएंट्स सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के निवासी-सह-राजमार्ग अभियंता को 1,60,000/- रुपये के भुगतान का उल्लेख है, मेसर्स योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड ने अनिल कुमार सिंह को 1,31,000/- रुपये के मासिक निर्धारित रिटेनर-शिप शुल्क पर परियोजना के लिए रेजिडेंट-सह-राजमार्ग इंजीनियर के रूप में बनाए रखा है। उनका कहना है कि अनिल कुमार सिंह एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 2 (सी) के अनुसार एन.एच.ए.आई. के कर्मचारी नहीं हैं और इसलिए, अनिल कुमार सिंह एन.एच.ए.आई. अधिनियम की धारा 27 के तहत लोक सेवक नहीं हैं। वह प्रस्तुत करता है कि इस स्थिति को पूर्वोक्त विनियमन 20 द्वारा और मजबूत किया गया है जो यह प्रदान करता है कि लोक सेवकों से संबंधित अधिनियम की धारा 27 का प्रावधान, प्राधिकरण द्वारा नियुक्त सलाहकार के मामले में लागू नहीं होगा।

27. ये प्रस्तुत करना प्रथम दृष्टया प्रभावशाली प्रतीत होता है और पूर्वोक्त प्रस्तुतीकरण के आधार पर, 04.07.2023 को दोनों आवेदनों में आवेदकों के पक्ष में अंतरिम आदेश पारित किए गए थे, जिसमें मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई थी। हालांकि, निम्नलिखित चर्चा से परिलक्षित एक करीबी जांच से पता चलता है कि ये सबमिशन गलत है।

28. राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम, 1988 एक ऐसा अधिनियम है "जो राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास, अनुरक्षण और प्रबंधन के लिए एक प्राधिकरण के गठन और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों का उपबंध करता है। अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में कहा गया है कि राष्ट्रीय राजमार्गों का विकास और रखरखाव पूरी तरह से केंद्र सरकार द्वारा वित्तपोषित है क्योंकि यह कार्य संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 23 के भीतर आता है। राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 की धारा 5 में प्रावधान है कि केन्द्र सरकार यह निदेश दे सकती है कि राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास अथवा अनुरक्षण से संबंधित कोई भी कृत्य अन्य बातों के साथ-साथ केन्द्र सरकार के अधीनस्थ किसी अधिकारी अथवा प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा। चूंकि केन्द्र सरकार का कार्यान्वयन एजेंसियों पर कोई प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण नहीं था, इसलिए अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। इस कारण से, राष्ट्रीय राजमार्ग प्रणाली के विकास और रखरखाव को संभालने के लिए राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण बनाया गया था। प्राधिकरण का मुख्य कार्य राष्ट्रीय राजमार्गों का विकास और रखरखाव करना है जिनका प्रबंधन और संचालन केंद्र सरकार में निहित है।

29. दूसरी ओर, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 "भ्रष्टाचार की रोकथाम और उससे जुड़े मामलों से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने के लिए एक अधिनियम" है। संविधि के उद्देश्यों और कारणों के कथन में कहा गया है कि: -

> "उद्देश्यों और कारणों का कथन-1. इस विधेयक का उद्देश्य मौजूदा भ्रष्टाचार-रोधी कानूनों के दायरे को व्यापक बनाकर और उपबंधों को सुदृढ़ बनाकर उन्हें और अधिक प्रभावी बनाना है।

2. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 को संथानम समिति की सिफारिशों के आधार पर 1964 में संशोधित किया गया था। भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX में लोक सेवकों और आपराधिक कदाचार के माध्यम से उन्हें उकसाने वालों से निपटने के लिए उपबंध हैं। आपराधिक कानून संशोधन अध्यादेश, 1944 में भी ऐसे प्रावधान हैं जो भ्रष्ट तरीकों से प्राप्त अवैध धन की कुर्की को सक्षम बनाते हैं, जिसमें ऐसी संपत्ति के हस्तांतरणकर्ताओं से प्राप्त धन भी शामिल है। विधेयक में इन सभी प्रावधानों को संशोधनों के साथ शामिल करने का प्रयास किया गया है ताकि लोक सेवकों में भ्रष्टाचार का मुकाबला करने के लिए प्रावधानों को अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

3. विधेयक में, अन्य बातों के साथ-साथ, "लोक सेवक" अभिव्यक्ति की परिभाषा के दायरे को व्यापक बनाने, भारतीय दंड संहिता की धारा 161 से 165-ए के तहत अपराधों को शामिल करने, इन अपराधों के लिए प्रदान किए गए दंड को बढ़ाने और एक प्रावधान को शामिल करने की परिकल्पना की गई है कि अभियोजन के लिए मंजूरी के अनुदान को बरकरार रखने वाला विचारण न्यायालय का आदेश अंतिम होगा यदि इसे पहले से ही चुनौती नहीं दी गई है और मुकदमा शुरू हो गया है। कार्यवाहियों में तेजी लाने के लिए मामलों के दिन-प्रतिदिन विचारण के प्रावधान और स्थगन प्रदान करने तथा वादकालीन आदेशों पर पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के संबंध में निषेधात्मक उपबंधों को भी शामिल किया गया है।

4. चूंकि धारा 161 से 165-ए के प्रावधानों को एक बढ़ी हुई सजा के साथ प्रस्तावित कानून में शामिल किया गया है, इसलिए भारतीय दंड संहिता में उन धाराओं को बनाए रखना आवश्यक नहीं है। परिणामस्वरूप, आवश्यक बचत उपबंध के साथ उन अनुभागों को हटाने का प्रस्ताव है।

5. खंडों पर टिप्पणियां विधेयक के प्रावधानों की विस्तार से व्याख्या करती हैं। (महत्त्व सन्निविष्ट)

30. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 एक विशेष क़ानून है जिसे भ्रष्टाचार की रोकथाम से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने, मौजूदा भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों को उनके कवरेज को व्यापक बनाकर और प्रावधानों को मजबूत करके अधिक प्रभावी बनाने के विशिष्ट उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया है ताकि लोक सेवकों के बीच भ्रष्टाचार का मुकाबला करने में प्रावधानों को अधिक प्रभावी बनाया जा सके और परिभाषा के दायरे को व्यापक बनाया जा सके अभिव्यक्ति "लोक सेवक" का। एन.एच.ए.आई. अधिनियम भी केवल राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और प्रबंधन को विनियमित करने के उद्देश्य से

अधिनियमित एक विशेष क़ानून है। इसमें किसी अपराध, विशेषकर भ्रष्टाचार के अपराध के लिए कोई दंड देने का कोई उपबंध नहीं है।

31. अशोका मार्केटिंग लिमिटेड बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (1990)4 एस.सी.सी. 406 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने व्याख्या के सिद्धांत को प्रतिपादित किया कि दो अधिनियमों के प्रावधानों के बीच असंगति के मामले में, जिनमें से दोनों को प्रकृति में विशेष माना जा सकता है, संघर्ष को दो अधिनियमों में अंतर्निहित उद्देश्य और नीति और उसमें प्रासंगिक प्रावधानों की भाषा द्वारा व्यक्त स्पष्ट इरादे के संदर्भ में हल किया जाना है।

32. एस्सा @ अंजुम अब्दुल रजाक मेमन बनाम महाराष्ट्र राज्य, एसटीएफ, सी.बी.आई. मुंबई, 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 255 के माध्यम से, सवाल यह था कि क्या किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के साथ-साथ आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 के प्रावधान किसी अन्य कानून पर ओवर-राइडिंग प्रभाव प्रदान करते हैं; और क्या टाडा के मामले में किशोर न्याय अधिनियम के उपबंध लागू होंगे? बेशक, टाडा अधिनियम 1985/1987 और जे.जे अधिनियम, 1986/2000, दोनों में ऐसे प्रावधान शामिल थे जो उस समय लागू किसी अन्य कानून पर ओवर-राइडिंग प्रभाव प्रदान करते थे। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि जहां दो संविधियों के उपबंधों के बीच असंगतता है और दोनों को विशेष प्रकृति का माना जा सकता है वहां विवाद का समाधान दोनों अधिनियमितियों में अंतर्निहित प्रयोजन और नीति तथा उसमें संबंधित उपबंधों की भाषा द्वारा संप्रेषित विधायिका के स्पष्ट आशय के संदर्भ में किया जाना है।

33. मध्य प्रदेश राज्य बनाम राम सिंह, (2000) 5 एस.सी.सी. 88 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के उद्देश्य को इस प्रकार समझाया: -

> "10. इस अधिनियम का उद्देश्य लोक सेवकों के बीच व्याप्त रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए प्रभावी प्रावधान करना था। यह एक सामाजिक विधान है जिसका उद्देश्य लोक सेवकों की अवैध गतिविधियों पर अंकुश लगाना है और इसे उदारतापूर्वक इस प्रकार बनाया गया है कि इसका उद्देश्य आगे बढ़ाया जा सके। अधिनियम में अंतर्निहित उद्देश्य से निपटते हुए, इस न्यायालय ने आर.एस नायक बनाम ए.आर अंतुले [(1984) 2 एस.सी.सी. 183] में अवधारित किया:
>
> "18. 1947 का अधिनियम, जैसा कि इसके लंबे शीर्षक से पता चलता है, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए अधिक प्रभावी प्रावधान बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था। निर्विवाद रूप से, इसलिए, अधिनियम के प्रावधानों को अदालत के हाथों ऐसा निर्माण प्राप्त करना चाहिए जो अधिनियम के

अंतर्निहित उद्देश्य और लक्ष्य को आगे बढ़ाएगा और किसी भी दर पर इसे पराजित नहीं करेगा। यदि क़ानून के शब्द प्रकट और स्पष्ट हैं, तो प्रावधान में प्रयुक्त शब्दों के प्राकृतिक अर्थ को प्रभावी करना अदालत का सबसे स्पष्ट कर्तव्य है। निर्माण का प्रश्न केवल अस्पष्टता की स्थिति में उठता है या क़ानून में प्रयुक्त शब्दों का सादा अर्थ आत्म-पराजय होगा। न्यायालय को यह पता लगाने का अधिकार है कि जब कानून बनाया गया था तब क्या गड़बड़ी थी और जिसे हटाने के लिए विधायिका ने कानून बनाया था, उसे ध्यान में रखते हुए कानून के प्रावधान को समग्र रूप से लागू करके अस्पष्टता को दूर करने के लिए विधायिका का इरादा है। निर्माण का यह नियम इतना सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है कि इसे उदाहरणों द्वारा समर्थित करने की आवश्यकता नहीं है। निर्माण के इस नियम को अपनाते हुए, जब भी निर्माण का कोई प्रश्न अस्पष्टता पर उठता है या जहां किसी प्रावधान के दो विचार संभव हैं, तो अदालत का यह कर्तव्य होगा कि वह उस निर्माण को अपनाए जो अधिनियम में अंतर्निहित उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा, अर्थात्, रिश्वत और भ्रष्टाचार के निवारण के लिए प्रभावी प्रावधान करना और किसी भी दर पर इसे पराजित नहीं करना।

11. प्रक्रियात्मक देरी और कानून की तकनीकी को अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को विफल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करते समय और इसके तहत मामलों का फैसला करते समय समग्र सार्वजनिक हित और सामाजिक उद्देश्य को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

34. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम मनमोहन सिंह, (2012) 3 एस.सी.सी. 64 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: -

"68. आज, हमारे देश में भ्रष्टाचार न केवल संवैधानिक शासन की अवधारणा के लिए एक गंभीर खतरा है, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र की नींव और कानून के शासन के लिए भी खतरा है। हमारे सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार की भयावहता एक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य की अवधारणा के साथ असंगत है। यह विवादित नहीं हो सकता है कि जहां भ्रष्टाचार शुरू होता है, सभी अधिकार समाप्त हो जाते हैं। भ्रष्टाचार मानव अधिकारों का अवमूल्यन करता है, विकास का गला घोंटता है और न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व को कमजोर करता है जो हमारी प्रस्तावना की संकल्पना के मूल मूल्य हैं। इसलिए, न्यायालय का कर्तव्य यह है कि किसी भी भ्रष्टाचार-विरोधी कानून की व्याख्या की जानी चाहिए और इस तरह से काम

किया जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई को मजबूत किया जा सके। यह कहना है कि ऐसी स्थिति में जहां दो निर्माण प्रमुख रूप से उचित हैं, न्यायालय को उस व्यक्ति को स्वीकार करना होगा जो भ्रष्टाचार को खत्म करना चाहता है जो इसे कायम रखना चाहता है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

35. राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण अधिनियम, 1988 राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास, अनुरक्षण और प्रबंधन के लिए एक प्राधिकरण के गठन और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए उपबंध करने के लिए एक अधिनियम है और यह भ्रष्टाचार और उसके दंड से संबंधित है। एन.एच.ए.आई. अधिनियम 1988 की धारा 2 में विशेष रूप से कहा गया है कि उस धारा में दी गई परिभाषाएं केवल एन.एच.ए.आई. के प्रयोजनों के लिए हैं और इसलिए, उन परिभाषाओं को अन्य अधिनियमों में नहीं पढ़ा जाना चाहिए और एन.एच.ए.आई. अधिनियम के तहत परिभाषाएं निश्चित रूप से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं होंगी,

36. दूसरी ओर, निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 में निहित परिभाषाओं का प्रासंगिक भाग प्रदान करता है कि: -

2. परिभाषाएं- इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(ख) "लोक कर्तव्य" से ऐसा कर्तव्य अभिप्रेत है जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या समुदाय का हित है;

स्पष्टीकरण- इस खंड में "राज्य" के अंतर्गत किसी केन्द्रीय, प्रान्तीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित निगम या कोई प्राधिकरण या कोई निकाय जो सरकार या सरकारी कंपनी द्वारा यथा परिभाषित या उसके स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता प्राप्त निकाय के अन्तर्गत है, जैसा कि कंपनी अधिनियम, 1956 (1 वर्ष 1956) की धारा 617 में परिभाषित है;

(ग) "लोक सेवक" का अर्थ है-

(i) सरकार की सेवा या वेतन में कोई व्यक्ति या किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए फीस या कमीशन द्वारा सरकार द्वारा पारिश्रमिक;

* * *

(viii) कोई भी व्यक्ति जो एक पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने के लिए अधिकृत या आवश्यक है;

* * *

स्पष्टीकरण 1. - उपर्युक्त उपखंडों में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति लोक सेवक हैं, चाहे वे सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हों या नहीं।

स्पष्टीकरण 2. जहाँ कहीं भी "लोक सेवक" शब्द होंगे, वे ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में समझे जाएँगे जो

किसी लोक सेवक की स्थिति पर वास्तविक अधिकार रखता है, उस स्थिति को धारण करने के उसके अधिकार में चाहे जो भी विधिक दोष हो।

37. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 (बी) में प्रावधान है कि "सार्वजनिक कर्तव्य" का अर्थ है एक कर्तव्य जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय का हित है;

38. राष्ट्रीय राजमार्गों का विकास और रखरखाव पूरी तरह से केंद्र सरकार द्वारा वित्तपोषित है और यह कार्य संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 23 के दायरे में आता है। राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 की धारा 5 में प्रावधान है कि केंद्र सरकार यह निदेश दे सकती है कि राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास या अनुरक्षण से संबंधित कोई भी कार्य किसी प्राधिकरण द्वारा प्रयोक्तव्य होगा। एन.एच.ए.आई. का गठन एन.एच.ए.आई. अधिनियम, 1988 के तहत राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और रखरखाव के केंद्र सरकार के कर्तव्य के निर्वहन के लिए किया गया है, जो एक सार्वजनिक कर्तव्य है। एन.एच.ए.आई. ने योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड को राजमार्ग के निर्माण के संबंध में पर्यवेक्षण और परामर्श सेवाएं प्रदान करने के लिए नियुक्त किया है और अनिल कुमार सिंह कंपनी के कर्मचारी के रूप में परियोजना में रेजिडेंट इंजीनियर के कर्तव्य का निर्वहन कर रहे हैं। इसलिए, अनिल कुमार सिंह एक सार्वजनिक कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 (बी) के तहत परिभाषित किया गया है।

39. कोई व्यक्ति जिसे सरकार द्वारा किसी लोक कर्तव्य के पालन के लिए फीस या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक दिया जाता है या जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए प्राधिकृत है या अपेक्षित है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 2 (ग) में दिए गए अर्थान्तर्गत 'लोक सेवक' है। अनिल कुमार सिंह एक व्यक्ति है जिसे सरकार द्वारा योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड को भुगतान की गई फीस द्वारा सार्वजनिक कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए पारिश्रमिक दिया गया है - कंपनी, जिसने उसे नियुक्त किया है और वह अधिकृत है और सार्वजनिक कर्तव्य करने के लिए आवश्यक है और इसलिए, वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 2 (सी) में दिए गए शब्द के अर्थ के भीतर एक लोक सेवक है।

40. इस स्थिति को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 (सी) में संलग्न स्पष्टीकरणों द्वारा और स्पष्ट किया गया है, जो यह प्रदान करता है कि यह तय करने के लिए कि व्यक्ति 'लोक सेवक' है या नहीं, यह प्रासंगिक नहीं है कि उसे सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है या नहीं और केवल इतना प्रासंगिक है कि क्या वह लोक सेवक की स्थिति के वास्तविक कब्जे में है। इस प्रकार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(सी) की प्रयोज्यता के उद्देश्य से, यह पूरी तरह से अप्रासंगिक है कि अनिल कुमार सिंह

को योंगमा इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड द्वारा नियुक्त किया गया है, न कि सरकार द्वारा और प्रासंगिक यह है कि अनिल कुमार सिंह एक लोक सेवक की स्थिति के वास्तविक कब्जे में हैं, क्योंकि उसके पास राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण के संबंध में भुगतान के लिए बिलों को मंजूरी देने का अधिकार है।

41. पक्षकारों के अधिवक्ता की दलीलें सुनने के बाद 17.08.2023 को फैसला सुरक्षित रख लिया गया। मामले को निर्णय देने के लिए 22.08.2023 को सूचीबद्ध किया गया था, लेकिन उक्त तिथि पर, निर्णय सुनाए जाने से पहले, आवेदकों के अधिवक्ता ने विधि निर्णयों की फोटोकॉपी के संकलन के साथ अपनी लिखित प्रस्तुतियाँ प्रदान कीं और इसलिए, निर्णय की घोषणा को स्थगित कर दिया गया और बाद में आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत केस कानूनों को भी ध्यान में रखा गया।

42. आवेदकों के अधिवक्ता ने गुजरात राज्य बनाम मनसुखभाई कांजीभाई शाह, (2020) 20 एस.सी.सी. 360 के मामलों में फैसले पर भरोसा किया है। उस मामले का संक्षिप्त तथ्य यह था कि प्रतिपक्षी मनसुखभाई कांजीभाई शाह सहित चार आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उन्होंने शिकायतकर्ता की बेटी को एमबीबीएस परीक्षा देने की अनुमति देने के लिए रिश्वत मांगी थी। प्रतिपक्षी सहित कई व्यक्तियों के खिलाफ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 10 और 13(1)(बी) और 13(2) के तहत अपराधों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया था। प्रतिपक्षी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत एक डिस्चार्ज आवेदन दायर किया, जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया था, लेकिन गुजरात उच्च न्यायालय ने उस आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण की अनुमति दी और प्रतिपक्षी को इस आधार पर अनुमति दी कि धारा 2(सी)(xi) लागू नहीं थी क्योंकि उक्त संस्थान एक "डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी" था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपील की अनुमति दी और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया और अभियुक्त के आरोपमुक्त आवेदन को अस्वीकार करने के आदेश को बहाल कर दिया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि:-

> "44. जैसा कि पहले चर्चा की गई है, पी.सी अधिनियम का उद्देश्य न केवल रिश्वत और भ्रष्टाचार की सामाजिक बुराई को रोकना था, बल्कि इसे उन व्यक्तियों पर भी लागू करना था जिन्हें पारंपरिक रूप से लोक सेवक नहीं माना जा सकता था। पी.सी अधिनियम के तहत उद्देश्य उन लोगों से ध्यान केंद्रित करना था जिन्हें पारंपरिक रूप से सार्वजनिक अधिकारी कहा जाता है, उन व्यक्तियों पर जो सार्वजनिक कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, जैसा कि अपीलकर्ता-राज्य के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा ठीक ही प्रस्तुत किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि एक "डीम्ड

विश्वविद्यालय" और उसमें अधिकारी, विश्वविद्यालय के सरल, और उसमें मौजूद अधिकारियों द्वारा किए गए किसी भी कम या किसी भी अलग सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करते हैं।

45. इसलिए, उपरोक्त सभी कारणों से, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय यह मानने में गलत था कि "डीम्ड यूनिवर्सिटी" को पी.सी अधिनियम की धारा 2 (सी)(xi) के तहत "विश्वविद्यालय" शब्द के दायरे से बाहर रखा गया है।

43. मनसुखभाई कांजीभाई शाह (उपरोक्त) में निर्णय आवेदकों के मामले को कोई समर्थन प्रदान नहीं करता है, बल्कि यह प्रतिपक्षी का समर्थन करता है।

44. आवेदकों के अधिवक्ता ने गोपीनाथ बनाम पुलिस अधीक्षक और अन्य, 2014 (2) कार.एल.जे. 216-2014 (4) केसीआर 3668 का उद्धरण दिया।

46.1 उस मामले में प्रश्न था "याचिकाकर्ता के संबंध में जो निर्मिती केंद्र का एक परियोजना प्रबंधक है, जिसे न तो राज्य सरकार या केंद्र सरकार द्वारा प्रतिपादित किया गया है, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत सोसाइटी को छोड़कर और याचिकाकर्ता का मामला लोकायुक्त अधिनियम की धारा 2(12) की परिभाषा के भीतर नहीं आता है, ताकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ई) के तहत कार्रवाई शुरू की जा सके।

46.2 न्यायालय ने पाया कि "राज्य सरकार या केंद्र सरकार द्वारा धन आदि प्राप्त करने के लिए निर्मिथि केंद्र के उप-कानूनों में किए गए प्रावधान को छोड़कर, राज्य सरकार या केंद्र सरकार से प्राप्त होने वाले किसी भी फंड के अभाव में और बिना शक्ति का कोई दुरुपयोग या समाज के साथ उपलब्ध राशि का दुरुपयोग, विवेचनाधिकारी के पास लोकायुक्त के पास शिकायत दर्ज करने की कोई गुंजाइश नहीं थी और उक्त शिकायत दर्ज होने पर भी यह गैर-स्थागत है।

46.3 एसएलपी (सीआरएल) संख्या-20494 वर्ष 2014 पूर्वोक्त आदेश के खिलाफ दायर निम्नलिखित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था: -

"विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।"

45. कर्नाटक उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश का उपरोक्त निर्णय ऊपर उल्लिखित मामले के अजीबोगरीब तथ्यों पर आधारित है, जहां याचिकाकर्ता एक सहकारी

समिति में कार्यरत था, जिसे सरकार से कोई धन प्राप्त नहीं हुआ था और जहां सरकार ने समाज पर कोई नियंत्रण नहीं रखा था। प्रस्तुत मामला एन.एच.ए.आई. की ओर से एक राष्ट्रीय राजमार्ग के निर्माण के संबंध में कुछ कार्यों के लिए बिलों के अनुमोदन के लिए रिश्वत मांगने और स्वीकार करने के आरोप से उत्पन्न होता है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 में प्रयुक्त शब्द के अर्थ के भीतर राज्य है और इसलिए, गोपीनाथ बनाम पुलिस अधीक्षक और अन्य (उपरोक्त) का प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है।

46. आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा रखा गया अगला निर्णय यू.पी.एस.सी. बनाम गिरीश जयंती लाल वाघेला, (2006) 2 एस.सी.सी. 482 है। उस मामले के तथ्य यह थे कि प्रतिपक्षी-1 गिरीश जयंती लाल वाघेला को 11.03.1996 को अल्पकालिक अनुबंध के आधार पर अल्पकालिक अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया था, जो कि शामिल होने की तारीख से छह महीने की अवधि के लिए या संघ लोक सेवा आयोग (यू.पी.एस.सी.) द्वारा चुने गए उम्मीदवार के नियमित आधार पर ड्यूटी में शामिल होने की तारीख तक, जो भी पहले था। प्रतिपक्षी-1 की नियुक्ति को हर छह महीने के बाद छोटे ब्रेक के साथ नवीनीकृत किया गया था और यह पांच साल से अधिक समय तक जारी रहा। औषध निरीक्षक के पद पर नियमित चयन करने के लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा 24-3-2001 को एक विज्ञापन जारी किया गया था। संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए प्रासंगिक भर्ती नियमों के तहत, सीधी भर्ती करने की ऊपरी आयु-सीमा 30 वर्ष है, जो केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों या आदेशों के अनुसार सरकारी कर्मचारियों के लिए पांच साल तक की छूट है। प्रतिपक्षी-1 विज्ञापन जारी किए जाने के समय दो साल से अधिक उम्र का हो गया था और उसने आयु में छूट के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया और उसके बाद उसने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष एक मूल आवेदन दायर किया। ट्रिब्यूनल ने प्रशासक को प्रतिपक्षी द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया। इस बीच, प्रतिपक्षी-1 को अनंतिम रूप से साक्षात्कार में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी। साक्षात्कार के लगभग 5 महीने बाद, यू.पी.एस.सी. ने प्रतिपक्षी-1 की उम्मीदवारी रद्द कर दी और उसकी अनुबंध नियुक्ति 30-9-2002 को समाप्त हो गई। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने उनकी रिट याचिका की अनुमति दी और प्रतिपक्षी-1 को आयु छूट प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश दिया और यू.पी.एस.सी. को प्रतिपक्षी-1 के दावे पर विचार करने और ड्रग्स इंस्पेक्टर के रूप में उनकी नियुक्ति के लिए सिफारिश करने का निर्देश दिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के खिलाफ दायर अपील को स्वीकार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> "19. इसलिए, यह इस प्रकार है कि सरकार के तहत रोजगार स्थिति का मामला है और अनुबंध नहीं है, भले ही इस तरह की स्थिति का अधिग्रहण एक अनुबंध से पहले हो सकता है, अर्थात्, नियुक्ति का प्रस्ताव कर्मचारी

द्वारा स्वीकार किया जाता है। अधिकारों और दायित्वों का निर्धारण दोनों पक्षों की संविदा द्वारा नहीं किया जाता है बल्कि सांविधिक नियमों द्वारा किया जाता है जो संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए सरकार द्वारा बनाए जाते हैं और नियम बनाने वाले प्राधिकरण, अर्थात् सरकार द्वारा सेवा नियमों को एकतरफा बदला जा सकता है।

20. इसमें कोई विवाद नहीं है कि प्रतिपक्षी-1 को ड्रग्स इंस्पेक्टर के रूप में काम करने के लिए अनुबंध पर नियुक्त किया गया था, जब तक कि शामिल होने की तारीख से छह महीने की अवधि के लिए या यू.पी.एस.सी. द्वारा चयनित उम्मीदवार नियमित आधार पर शामिल नहीं हो जाता, जो भी पहले हो। अनुबंध में आगे यह निर्धारित किया गया है कि भले ही नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार शामिल नहीं हुआ, प्रतिपक्षी-1 छह महीने की समाप्ति पर राहत महसूस करेगा। निदेशक, प्रबंधन विकास संस्थान बनाम पुष्पा श्रीवास्तव (1992)4 एस.सी.सी. 33 में, यह माना गया था कि जहां नियुक्ति विशुद्ध रूप से तदर्थ आधार पर है और संविदात्मक है और नियुक्ति समाप्त होने तक समाप्त हो जाती है, ऐसे पद को धारण करने वाले व्यक्ति को पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है। आगे यह भी कहा गया कि ऐसा तब भी है जब व्यक्ति को समय-समय पर तदर्थ आधार पर एक वर्ष से अधिक समय तक जारी रखा जाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षी-1 को छह महीने की अवधि समाप्त होने के बाद ड्रग्स इंस्पेक्टर के रूप में जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था, जिसके लिए उसे नियुक्त किया गया था।

47. अंत में, आवेदकों के अधिवक्ता ने रोशन लाल टंडन बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। भारत संघ, (1968)1 एस.सी.आर 185, जिसमें यह भी अवधारित किया गया था कि: -

"यह सच है कि सरकारी सेवा की उत्पत्ति संविदात्मक है। हर मामले में एक प्रस्ताव और स्वीकृति है। लेकिन एक बार अपने पद या कार्यालय में नियुक्त होने के बाद सरकारी कर्मचारी एक दर्जा प्राप्त कर लेता है और उसके अधिकार और दायित्व अब दोनों पक्षों की सहमति से निर्धारित नहीं होते हैं, बल्कि क़ानून या वैधानिक नियमों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं जिन्हें सरकार द्वारा एकतरफा रूप से बनाया और बदला जा सकता है। दूसरे शब्दों में, एक सरकारी कर्मचारी की कानूनी स्थिति संविदा की तुलना में स्थिति की अधिक है। स्थिति की पहचान

सार्वजनिक कानून द्वारा लगाए गए अधिकारों और कर्तव्यों के कानूनी संबंध से लगाव है, न कि पक्षों के समझौते से। सरकारी कर्मचारी की परिलब्धि और उसकी सेवा की शर्तें क़ानून या वैधानिक नियमों द्वारा शासित होती हैं, जिन्हें कर्मचारी की सहमति के बिना सरकार द्वारा एकतरफा बदला जा सकता है। यह सच है कि अनुच्छेद 311 अनुच्छेद 310 के तहत राष्ट्रपति और राज्यपाल को पद से हटाने की शक्ति पर संवैधानिक प्रतिबंध लगाता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि सरकार और उसके नौकर के बीच का संबंध एक मालिक और नौकर के बीच सेवा के एक साधारण अनुबंध की तरह नहीं है। कानूनी संबंध कुछ स्थिति की प्रकृति में पूरी तरह से अलग है। यह पक्षों के बीच स्वेच्छा से दर्ज किए गए विशुद्ध रूप से संविदात्मक संबंध से कहीं अधिक है। स्थिति के कर्तव्यों को कानून द्वारा तय किया जाता है और इन कर्तव्यों के प्रवर्तन में समाज का हित होता है। विधिशास्त्र की भाषा में स्थिति एक समूह की सदस्यता की एक शर्त है जिसमें शक्तियां और कर्तव्य विशेष रूप से कानून द्वारा निर्धारित किए जाते हैं न कि संबंधित पक्षों के बीच समझौते द्वारा। इस मामले को सैल्मंड और विलियम्स द्वारा अनुबंधों पर स्पष्ट रूप से निम्नानुसार कहा गया है:

"इसलिए हम एक ही लेनदेन द्वारा उत्पादित अनुबंध और स्थिति-दायित्व दोनों पा सकते हैं। एक लेन-देन के परिणामस्वरूप न केवल पक्षों द्वारा परिभाषित दायित्वों का निर्माण हो सकता है और इसलिए अनुबंध के क्षेत्र से संबंधित है, बल्कि कानून द्वारा परिभाषित दायित्वों के समवर्ती रूप से भी, और इसलिए स्थिति के क्षेत्र से संबंधित है। नियोक्ता और कर्मचारी के बीच सेवा का एक अनुबंध, जबकि अधिकांश भाग के लिए विशेष रूप से अनुबंध के क्षेत्र से संबंधित है, अब तक की स्थिति से भी संबंधित है जहां तक कानून ने इस संबंध में अनिवार्य घटनाओं को संलग्न करने के लिए फिट देखा है, जैसे कि दुर्घटनाओं के लिए मुआवजे का भुगतान करने का दायित्व। जिस हद तक कानून अनुबंध के क्षेत्र के भीतर मामलों को छोड़ने के लिए संतुष्ट है, जिसे स्वयं पक्षों के स्वायत्त प्राधिकरण के प्रयोग द्वारा निर्धारित किया जाता है, या आधिकारिक रूप से अपने लिए निर्धारित करके मामले को संबंध स्थिति के क्षेत्र में लाने के लिए उपयुक्त समझता है, सार्वजनिक नीति के विचारों पर निर्भर मामला है। सेवा के रूप में इस तरह के अनुबंधों में, आधुनिक समय में प्रवृत्ति अनुबंध के क्षेत्र से अधिक से अधिक स्थिति में मामले को वापस लेने की है।

48. कर्मचारियों के सेवा कानून के दावों से संबंधित उपरोक्त दोनों मामले और आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत पूर्वोक्त मामलों में से किसी में भी, यह सवाल कि क्या कर्मचारी धारा 2(सी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 में दिए गए शब्द के अर्थ के भीतर लोक सेवक था, शामिल था और उपरोक्त मामले प्रस्तुत मामले में शामिल बिंदु के लिए बिल्कुल प्रासंगिक नहीं हैं।

49. यह एक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के लिए कानून के आवेदन से घटाया जाने वाला नियम है जो इसके अनुपात का गठन करता है और तथ्यों के आधार पर कुछ निष्कर्ष नहीं है, विशेष रूप से जब तथ्य दूर से समान नहीं होते हैं। प्रस्तुत मामले में, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए मामलों के तथ्यों के बीच अंतर की दुनिया है, जो सेवा विवादों से संबंधित है और जहां भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 (सी) की व्याख्या का सवाल दूर से भी शामिल नहीं था। बिल्कुल अप्रासंगिक मामलों का हवाला देकर आवेदकों के अधिवक्ता ने न्यायालय का कीमती समय बर्बाद किया है।

50. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा विचार है कि अनिल कुमार सिंह निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्य से एक लोक सेवक हैं और उन पर अधिनियम के तहत अपराधों के कमीशन के लिए मुकदमा चलाया जा रहा है।

51. धारा 482 द०प्र०स० संख्या-5391 वर्ष 2023(1) बेदराम शर्मा, (2) परशुराम शर्मा और (3) आनंद मोहन शर्मा, जिनके खिलाफ धारा 120-बी भ०द०वि० और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत अपराधों के आरोप लगाए गए हैं, अनिल कुमार सिंह के साथ आपराधिक साजिश में प्रवेश करने के लिए आवेदन में आवेदकों की दलील के रूप में अनिल कुमार सिंह की याचिका पर आधारित है कि अनिल कुमार सिंह लोक सेवक नहीं हैं, जिसकी याचिका पहले ही ठुकरा दी जा चुकी है, फलस्वरूप आवेदन संख्या-5389 वर्ष 2023 में भी कोई दम नहीं है।

52. अपराध संख्या-100 से उद्भूत आरोप-पत्र संख्या-6 में कोई अवैधता नहीं है। आर.सी 2162022ए0012 दिनांक 10.09.2022 धारा 120-बी भ०द०वि० और निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12, थाना- सी.बी.आई. एसी-1, जिला नई दिल्ली के तहत, या विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई., पश्चिम, लखनऊ द्वारा सत्र मामला संख्या-709 वर्ष 2023 में पारित अभियोजन मंजूरी आदेश या संज्ञान आदेश दिनांक 06.04.2023 जिसमें आवेदकों को धारा 120-बी, भ०द०वि० और अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत एक मामला दर्ज किया था, के तहत अपराधों के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया था तो विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई., पश्चिम, लखनऊ की अदालत में लंबित सत्र वाद संख्या-709 वर्ष 2023 की कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार नहीं है।

53. धारा 482 द०प्र०स० के तहत दोनों आवेदन यथा 5389 वर्ष 2023 और 5391 वर्ष 2023 गलत हैं और उन्हें खारिज किया जाता है और अंतरिम आदेश दिनांक 04.07.2023 को खंडित किया जाता है।

54. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इन आवेदनों में पारित दिनांक 04.07.2023 के अंतरिम आदेशों के कारण मुकदमे की कार्यवाही रुकी हुई है और यह भी कि गलत आवेदनों पर निर्णय लेने और आवेदकों की ओर से उद्धृत भारी-भरकम अप्रासंगिक निर्णयों को देखने में न्यायालय का कीमती समय बर्बाद किया गया है, आवेदक अनिल कुमार सिंह धारा 482 द०प्र०स० संख्या-5389 वर्ष 2023 के तहत आवेदन में आवेदक अनिल कुमार सिंह और आवेदक - (1) बेदरम शर्मा, (2) परशुराम शर्मा और (3) आनंद मोहन शर्मा को धारा 482 द०प्र०स० संख्या-5391 वर्ष 2023 के तहत आवेदन में, मुकदमेबाजी की लागत के रूप में प्रत्येक को 25,000/- रुपये का भुगतान करने का आदेश दिया जाता है, जिसे 30 दिनों की अवधि के भीतर इस न्यायालय की रजिस्ट्री में जमा किया जाएगा, जिसमें विफल होने पर वरिष्ठ रजिस्ट्रार संबंधित कलेक्टर को वसूली प्रमाण पत्र भेजकर राशि की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू करेंगे, जो भूमि राजस्व के बकाया के रूप में राशि की वसूली करेगा और वसूली प्रमाण पत्र जारी करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर इस न्यायालय को प्रेषित करेगा।

(2023) 8 ILRA 22

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.08.2023

सक्षम

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5520 वर्ष 2023

अरुण कुमार सिंह उर्फ़ मुन्ना एवं अन्य

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

आवेदकों के लिए अधिवक्ता:

मीनाक्षी सिंह परिहार, अभ्युदय प्रताप सिंह, चेतना सिंह

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420, 467, 468 और 471 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 195 - लोक सेवकों के वैध प्राधिकार की अवमानना, लोक न्याय के विरुद्ध अपराध और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए अभियोजन - आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में - न्यायालय द्वारा प्र.सू.रि. या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या

अन्यथा के बारे में जांच शुरू करना न्यायोचित नहीं होगा - असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी इच्छा या सनक के अनुसार कार्य करने का मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं। (प्रस्तर - 40)

इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में - उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा राजस्व विभाग के दो पदधारियों और अपराध के अनाम लाभार्थियों के विरुद्ध प्र.सू.रि. दर्ज की गई - आरोप - यह कि न्यायालय में कोई कार्यवाही शुरू और संचालित किए बिना ही - आवेदकों ने न्यायालय द्वारा पारित कथित रूप से फर्जी आदेश को गढ़ा - अन्वेषण के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई - पीड़ित ने विरोध याचिका दायर की - विचारण न्यायालय ने अंतिम रिपोर्ट खारिज कर दी। **(प्रस्तर 3,21,32)**

अभिनिर्धारित हुआ: पीड़ित को अंतिम रिपोर्ट के विरुद्ध विरोध याचिका दायर करने का अधिकार था, और विचारण न्यायालय ने याचिका पर विचार करने और अंतिम रिपोर्ट को खारिज करने में कोई गलती नहीं की। एस.डी.एम. द्वारा यह पता लगाए जाने के बाद कि वाद संख्या 301 की पत्रावली कूटरचना और गढ़ंत के माध्यम से तैयार की गई थी, प्र.सू.रि. दर्ज करवाई गई। आवेदकगण न्यायालय के अभिलेखों की कूटरचना और गढ़ंत कृत्य के लाभार्थी हैं, जो एक अपराध गठित करता है और यह कोई सिविल विवाद नहीं है, इसलिए इस आधार पर कार्यवाही रद्द नहीं की जा सकती। आवेदन में कोई सार नहीं है। **(प्रस्तर -30,38,41)**

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, (1981) 2 एससीसी 185

2. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्प (1) एससीसी 335

3. शीला सेबेस्टियन बनाम आर. जवाहराज, (2018) 7 एससीसी 581,

4. मीर नकवी अस्करी बनाम सी.बी.आई., (2009) 15 एससीसी 643

5. मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य, (2009) 8 एससीसी 751

6. इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह, (2005) 4 एससीसी 370

7. भगवंत सिंह बनाम कॉम. पुलिस का, (1985) 2 एससीसी 537.

8. इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह, (2005) 4 एससीसी 370

9. भगवंत सिंह बनाम पुलिस कमिश्नर, (1985) 2 एससीसी 537

10. सुधा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 4 एससीसी 781

11. जगजीत सिंह बनाम आशीष मिश्रा, (2022) 9 एससीसी 321

12. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, (1981) 2 एससीसी 185

13. मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 976

14. रणधीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 14 एससीसी 626

15. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्पलीमेंट (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. शासकीय अधिवक्ता एच.जे.एस परिहार, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री मीनाक्षी सिंह परिहार द्वारा सहायता प्राप्त, और आवेदक के लिए, श्री मनीष कुमार पांडे, अपर शासकीय अधिवक्ता-1 और श्री राजेंद्र प्रताप सिंह, प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या-7611 वर्ष 2014 - कमलेश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित एक आदेश दिनांक 15.09.2014 के अनुपालन में, विशेष न्यायाधीश (एम.पी., एम.एल.ए.)/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, प्रतापगढ़ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-129 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 12.05.2023 की वैधता और संज्ञान और सम्मन आदेश दिनांक 18.08.2022 और विशेष न्यायाधीश एम.पी. एम.एल.ए./सिविल जज (एस) की अदालत में केस संख्या-129 वर्ष 2015 एफ.टी.सी. द्वितीय, प्रतापगढ़, जो सब-डिवीज़नल मजिस्ट्रेट, कुंडा, प्रतापगढ़ द्वारा 21.03.2015 को थाना-कुंडा, जिला प्रतापगढ़ में राजस्व विभाग के दो अधिकारियों - एक अहलमद और एक रजिस्ट्रार कानूनगो, और अपराध के अनाम लाभार्थियों के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी संख्या-61 वर्ष 2015 से उद्भूत है, की पूरी कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी है।

3. प्राथमिकी संख्या-61 वर्ष 2015 को उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, कुंडा, प्रतापगढ़ द्वारा 21.03.2015 को धारा 419, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० के तहत राजस्व विभाग के दो अधिकारियों - एक अहलमद और एक रजिस्ट्रार कानूनगो, और अपराध के अनाम लाभार्थियों के खिलाफ, रिट याचिका संख्या-7611 वर्ष 2014 - कामेश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश दिनांक 15.09.2014 के अनुपालन में दर्ज किया गया था। प्राथमिकी में कहा गया है कि एस.डी.एम. कुंडा की अदालत में केस संख्या-301 वर्ष 2000 की एक जाली पेपर-बुक और एक आदेश दिनांक 15.05.2001 तैयार किया गया था और 08.05.2012 को खतौनी में उपरोक्त आदेश के आगे म्यूटेशन (दाखिल-खारिज) किया गया था। जब उपरोक्त कार्यवाही

में की गई अनियमितताएं प्रकाश में आईं, तो जिला मजिस्ट्रेट ने एस.डी.एम. द्वारा जांच करवाई, जिन्होंने दो नामजद आरोपी अधिकारियों और अपराध के लाभार्थियों के खिलाफ दिनांक 06.02.2015 को एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की।

4. एस.डी.एम. सदर, प्रतापगढ़ द्वारा प्रस्तुत दिनांक 06.02.2015 की जांच रिपोर्ट में कहा गया है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के तहत केस संख्या-301 की पेपर बुक, जिसका फैसला 15.05.2001 को हुआ था, "अरुण कुमार सिंह उर्फ मुन्ना और अन्य बनाम कमलेश कुमार सिंह" शीर्षक से जालसाजी और मनगढ़ंत करके तैयार किया गया था, जैसा कि केस इंस्टीट्यूशन रजिस्टर में है; मामला शीर्षक "समाई बनाम ग्राम सभा, ग्राम मालवा छजयपुर" जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के तहत केस संख्या-301 के खिलाफ दर्ज किया गया है। पेपर-बुक की पूरी ऑर्डर-शीट हस्तलिखित है और इसमें उल्लेख किया गया है कि दोनों पक्षों की प्रस्तुतियाँ सुनी गईं, जबकि प्रतिपक्षी कमलेश कुमार सिंह ने मामले में उपस्थिति नहीं दी थी। इसके अलावा, अरुण कुमार सिंह ने आदेश पारित होने के 11 साल बाद डिवीजनल कमिश्नर की अदालत में एक कैविएट दायर की, जिससे यह भी स्थापित होता है कि पेपर-बुक गढ़ी गई है।

5. प्रारंभ में विवेचनाधिकारी ने दिनांक 27.03.2016 को एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि पहले जांच उप-निरीक्षकों सर केदार सिंह और श्री घनश्याम निषाद द्वारा की गई थी। और उनके स्थानांतरण के बाद, जांच वरिष्ठ उप निरीक्षक कृपा शंकर राय को सौंपी गई थी। तत्कालीन एस.डी.एम. की मृत्यु हो गई थी और इस कारण से, कोई ठोस सबूत एकत्र नहीं किया जा सकता था जिसके आधार पर किसी भी व्यक्ति पर किसी भी अपराध के कमीशन का आरोप लगाया जा सकता है।

6. प्रतिपक्ष संख्या-3 कमलेश कुमार सिंह ने फाइनल रिपोर्ट के खिलाफ आपत्ति दर्ज करते हुए कहा कि उनकी कीमती जमीन आरोपी व्यक्तियों द्वारा आपराधिक साजिश के तहत हड़पी गई है। पिछले विवेचनाधिकारी ने कई गवाहों के बयान दर्ज किए थे, जिनसे अपराध होने की स्पष्ट रूप से पुष्टि होती है, लेकिन बाद के विवेचनाधिकारी ने आरोपी व्यक्तियों से अनुचित लाभ लेने के बाद, केस डायरी पर उपलब्ध सामग्री को देखे बिना अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

7. दिनांक 01.07.2017 के एक आदेश के माध्यम से, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कुंडा, प्रतापगढ़ ने अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और आरोपी व्यक्तियों अरुण कुमार सिंह उर्फ मुन्ना, किरण कुमार सिंह, सतीश कुमार सिंह, दिनेश कुमार सिंह, सतीश कुमार त्रिपाठी, रमाकांत द्विवेदी और प्रताप बहादुर सिंह के विरुद्ध संज्ञान लिया।

8. आवेदकों ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-171/2017 दायर करके दिनांक 01.07.2017 के उपरोक्त आदेश को चुनौती दी, जिसे

अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, प्रतापगढ़ द्वारा पारित दिनांक 02.06.2018 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर अनुमति दी गई थी कि विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को बुलाने से पहले प्रथम दृष्टया साक्ष्य पर चर्चा नहीं की थी। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिनांक 01.07.2017 के आदेश को रद्द कर दिया गया और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेज दिया गया।

9. रिमांड के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.08.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसमें आरोप पत्र के खिलाफ आवेदकों द्वारा दायर आपत्तियों को फिर से खारिज कर दिया गया। विचारण न्यायालय ने आवेदकों और एक सतीश कुमार त्रिपाठी के खिलाफ अपराधों का संज्ञान लिया और उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया।

10. आवेदकों ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-129 वर्ष 2022 दाखिल कर दिनांक 18.08.2022 के आदेश को चुनौती दी, जिसे विशेष न्यायाधीश एम.पी./एम.एल.ए./अतिरिक्त सत्र, न्यायाधीश न्यायालय संख्या-5, प्रतापगढ़ ने खारिज कर दिया।

11. पुनरीक्षण का मुख्य आधार यह था कि प्राथमिकी एक सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई थी और उन्होंने अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी। जिस व्यक्ति ने आपत्तियां दर्ज की थीं, वह सूचनादाता नहीं था और अंतिम रिपोर्ट के विरुद्ध आपत्ति दर्ज करने का उसका कोई अधिकार नहीं था।

12. पुनरीक्षण को दिनांक 12.05.2023 के एक निर्णय के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि प्राथमिकी इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या-7611 वर्ष 2014 में पारित दिनांक 15.09.2014 के आदेश के आगे दर्ज की गई थी, जिसे कमलेश कुमार सिंह द्वारा दायर किया गया था। पुनरीक्षणकर्ताओं ने स्वयं पुनरीक्षण ज्ञापन के पैरा-8 में कहा है कि विवादित भूमि का विक्रय विलेख कमलेश कुमार सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था। अपनी जांच रिपोर्ट में, उप-जिला मजिस्ट्रेट ने दर्ज किया है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के तहत केस संख्या-301 की पेपर बुक, जिसका शीर्षक "अरुण कुमार सिंह उर्फ मुन्ना और अन्य बनाम कमलेश कुमार सिंह" है, जिसका फैसला 15.05.2001 को हुआ था, जालसाजी द्वारा, मनगढ़ंत तैयार किया गया था, जैसा कि केस इंस्टीट्यूशन रजिस्टर, केस टाइटल "समाई बनाम ग्राम सभा, ग्राम मालवा छजयपुर" मामला संख्या-301 के विरुद्ध जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के तहत दर्ज है। आदेश पत्र में उल्लेख किया गया है कि दोनों पक्षों की दलीलों को सुना गया, जबकि प्रतिपक्षी कमलेश कुमार सिंह मामले में उपस्थित नहीं हुए थे। इसलिए कमलेश कुमार सिंह विवाद के लिए नए/अजनबी नहीं हैं।

13. विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने आगे कहा कि विवेचनाधिकारी श्री का बयान जे.पी. मिश्रा के खिलाफ धारा 161 द०प्र०स० के तहत मामला दर्ज किया गया था। अंतिम रिपोर्ट इस आधार पर दायर की गई थी कि तत्कालीन

एस.डी.एम. की मृत्यु हो गई थी। पुनरीक्षण न्यायालय ने कहा कि इस आधार पर जांच को रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि सूचनादाता एक सरकारी अधिकारी था और उसकी मृत्यु के बाद भी उसके हस्ताक्षर आसानी से साबित किए जा सकते हैं।

14. उपरोक्त संज्ञान और सम्मन आदेश दिनांक 18.05.2022 और पुनरीक्षण आदेश दिनांक 12.05.2023 का उल्लंघन करते हुए, श्री. अपर शासकीय अधिवक्ता, एस परिहार वरिष्ठ अधिवक्ता, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि धारा 195 द०प्र०स० में यह प्रावधान है कि कोई भी न्यायालय धारा 463 में वर्णित किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा या उक्त संहिता की धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के तहत दंडनीय नहीं होगा, जब तक उस न्यायालय की लिखित शिकायत पर या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे वह न्यायालय इस निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत करे, इस तरह के अपराध को किसी भी अदालत में कार्यवाही में साक्ष्य में पेश या दिए गए दस्तावेज के संबंध में किया गया है, या किसी अन्य न्यायालय की, जिसके अधीन वह न्यायालय अधीनस्थ है, को छोड़कर। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि हालांकि प्रस्तुत मामले को जन्म देने वाली प्राथमिकी एस.डी.एम. द्वारा दर्ज की गई थी, सूचनाकर्ता एस.डी.एम. ने अंतिम रिपोर्ट को चुनौती नहीं दी थी। प्रतिपक्षी संख्या-3 कमलेश कुमार सिंह द्वारा दायर की गई आपत्तियां एक शिकायत की प्रकृति में हैं और यह धारा 195 द०प्र०स० द्वारा वर्जित है। इस निवेदन के समर्थन में, श्री. परिहार ने कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ और अन्य (1) हेमारेड्डी, (1981) 2 एस.सी.सी. 185 और हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 335 के निर्णयों पर भरोसा किया है।

15. आवेदकों के अधिवक्ता का दूसरा निवेदन यह है कि ऐसा कोई आरोप नहीं है कि किसी भी आवेदक ने जालसाजी की थी और इसलिए, धारा 415, 420, 463, 464, 468 और 471 भ०द०वि० के तहत अपराध आवेदकों के खिलाफ नहीं बनते हैं। उन्होंने शीला सेबेस्टियन बनाम आर. जवाहराज, (2018) 7 एस.सी.सी. 581, मीर नकवी अस्करी बनाम सी.बी.आई., (2009) 15 एस.सी.सी. 643 और मो. इब्राहिम बनाम बिहार राज्य, (2009) 8 एस.सी.सी. 751 का उद्धरण दिया।

16. आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा दी गई तीसरी दलील यह है कि विवाद विशुद्ध रूप से दीवानी प्रकृति का है और मजिस्ट्रेट ने पर्याप्त सामग्री के बिना यांत्रिक तरीके से केवल एक निजी व्यक्ति द्वारा दायर विरोध आवेदन पर अपराध का संज्ञान लिया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि आवेदकों का संज्ञान लेना और उन्हें तलब करना कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

17. पूर्वोक्त निवेदनों का उत्तर देते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-3 श्री कमलेश कुमार सिंह के अधिवक्ता राजेंद्र प्रताप सिंह ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 किए गए अपराध का शिकार है और प्राथमिकी प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर एक रिट याचिका के आगे दर्ज की गई थी और इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-3

कार्यवाही के लिए नये/अजनबी नहीं है और उसे अंतिम रिपोर्ट को चुनौती देने का अधिकार है। उन्होंने इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह, (2005) 4 एस.सी.सी. 370 और भगवंत सिंह बनाम भारत संघ और अन्य पुलिस आयुक्त, (1985) 2 एस.सी.सी. 537 के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उद्धरण दिया।

18. पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों को रिकॉर्ड करने के बाद, मैं इस मामले में शामिल बिंदुओं पर चर्चा करने के लिए आगे बढ़ता हूं।

19. धारा 195 द०प्र०स० का प्रासंगिक हिस्सा, जो कुछ स्थितियों में कुछ अपराधों का संज्ञान लेने वाले न्यायालयों के खिलाफ रोक लगाता है, नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"195. लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार की अवमान के लिए, लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए अभियोजन--(1) कोई न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा-

(क) ...;

(ख) (i) ...,

(ii) धारा 463 में वर्णित, या उक्त संहिता की धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के तहत दंडनीय किसी अपराध का, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में कार्यवाही में साक्ष्य में प्रस्तुत या दिए गए दस्तावेज के संबंध में कथित रूप से किया गया है, या

(iii) उपखंड (i) या उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध को करने या करने का प्रयास करने या दुष्प्रेरण करने के लिए किसी भी आपराधिक षड्यंत्र का,

उस न्यायालय की लिखित शिकायत पर या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे वह न्यायालय इस निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत करे, या किसी अन्य न्यायालय की, जिसके अधीन वह न्यायालय अधीनस्थ है, को छोड़कर।

* * *

(3) उपधारा (1) के खंड (ख) में, "न्यायालय" शब्द से दीवानी, राजस्व या दांडिक न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत केन्द्रीय, प्रान्तीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन गठित अधिकरण, यदि उस अधिनियम द्वारा इस धारा के प्रयोजनों के लिए न्यायालय घोषित किया गया हो, भी है।

20. इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह, (2005) 4 एस.सी.सी. 370 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> 10. ... इस खंड में उल्लिखित अपराध स्पष्ट रूप से किसी न्यायिक कार्यवाही में न्यायालय के समक्ष या किसी लोक सेवक के समक्ष मिथ्या साक्ष्य देने या गढ़ने या मिथ्या घोषणा करने से संबंधित हैं जो ऐसी घोषणा प्राप्त करने के लिए विधि द्वारा बाध्य या प्राधिकृत है और कुछ अन्य अपराधों से भी जिनका न्यायालय में कार्यवाहियों से सीधा संबंध है (भारतीय दंड संहिता की धारा

205 और 211)। यह धारा 195 के दो प्रावधानों या खंडों की योजना होने के नाते, अर्थात् अपराध ऐसा होना चाहिए जिसका प्रत्यक्ष असर हो या किसी लोक सेवक के विधिपूर्ण कर्तव्यों के कामकाज या निर्वहन को प्रभावित करता हो या न्याय की अदालत में कार्यवाही के साथ सीधा संबंध हो, अभिव्यक्ति "जब इस तरह के अपराध को किसी भी कार्यवाही में साक्ष्य में पेश या दिए गए दस्तावेज के संबंध में कथित रूप से प्रतिबद्ध किया गया है। खंड (बी)(ii) में होने वाले न्यायालय का अर्थ आम तौर पर इस तरह के अपराध के कमीशन से होना चाहिए, जब दस्तावेज वास्तव में अदालत में साक्ष्य में पेश या दिया गया हो। स्थिति या आकस्मिकता जहां इस खंड में उल्लिखित अपराध पहले ही किया जा चुका है और बाद में दस्तावेज पेश किया जाता है या अदालत में साक्ष्य में दिया जाता है, खंड (ए)(i) और (बी)(i) के अनुरूप नहीं लगता है और परिणामस्वरूप धारा 195 द०प्र०स० की योजना के साथ है। यह इंगित करता है कि खंड(बी)(ii) एक ऐसी स्थिति पर विचार करता है जहां उसमें उल्लिखित अपराध किसी दस्तावेज के उत्पादन के बाद या किसी अदालत में कार्यवाही में साक्ष्य देने के बाद प्रतिबद्ध हैं।

11. धारा 195(1) उसके खंड (ख)(i) और (ख)(ii) में उल्लिखित अपराधों का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय को लिखित रूप में शिकायत करने का आदेश देती है। अध्याय XXVI में उल्लिखित द०प्र०स० की धारा 340 और 341 शिकायत दर्ज करने और उससे जुड़े अन्य मामलों की प्रक्रिया देती है। इस अध्याय का शीर्षक है- न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के बारे में उपबंध। यद्यपि, एक सामान्य नियम के रूप में, शीर्षक में नियोजित भाषा का उपयोग धारा के शब्दों को स्पष्ट करने के लिए एक अलग प्रभाव देने के लिए नहीं किया जा सकता है, जहां उनके सामान्य अर्थ के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है, लेकिन उन्हें इस तरह नहीं माना जाना चाहिए जैसे कि वे सीमांत नोट थे या केवल अधिनियमितियों को वर्गीकृत करने के उद्देश्य से अधिनियम में पेश किए गए थे। वे अधिनियम का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, और उन्हें न केवल उन धाराओं की व्याख्या करने के रूप में पढ़ा जा सकता है जो तुरंत उनका अनुसरण करते हैं, एक क़ानून की प्रस्तावना के रूप में इसके अधिनियमों की व्याख्या करने के लिए देखा जा सकता है, बल्कि उन धाराओं के निर्माण के लिए एक बेहतर कुंजी प्रदान करने के रूप में देखा जा सकता है जो केवल प्रस्तावना द्वारा वहन किए जा सकते हैं। (देखें क़ानून कानून पर क्रेज़, 7वां संस्करण, पीपी 207, 209। तथ्य यह है कि

न्यायालय द्वारा शिकायत दर्ज करने की प्रक्रिया अध्याय XXVI में न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों से निपटने के लिए प्रदान की गई है, विधायी इरादे के लिए एक स्पष्ट संकेतक है कि किया गया अपराध इस प्रकार का होना चाहिए जो सीधे न्याय प्रशासन को प्रभावित करता है अर्थात जो दस्तावेज पेश किए जाने या अदालत में साक्ष्य में दिए जाने के बाद किया जाता है। किसी दस्तावेज के संबंध में उसके पेश होने या अदालत में साक्ष्य देने से पहले किए गए किसी भी अपराध को, सख्ती से बोलते हुए, न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाला अपराध नहीं कहा जा सकता है।

* * *

25. धारा 195 (1)(बी)(ii) के लिए एक बढ़ी हुई व्याख्या, जिससे उक्त प्रावधान द्वारा बनाई गई बार भी काम करेगी जहां जालसाजी के एक अधिनियम के कमीशन के बाद दस्तावेज़ बाद में अदालत में पेश किया जाता है, महान दुरुपयोग करने में सक्षम है "...

21. प्रस्तुत मामले में आरोप यह नहीं है कि आवेदकों ने न्यायालय में लंबित कार्यवाही में किसी भी दस्तावेज को गढ़ा। आरोप यह है कि अदालत में कोई कार्यवाही शुरू किए और संचालित किए बिना, आवेदकों ने अदालत द्वारा पारित एक फर्जी आदेश गढ़ा। इन परिस्थितियों में, इकबाल सिंह मारवाह (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किए गए कानून के मद्देनजर, धारा 195 द०प्र०स० में निहित रोक प्रस्तुत मामले के तथ्यों में लागू नहीं होगी।

22. आवेदक के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि प्राथमिकी को आगे बढ़ाने के लिए की गई जांच के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के बाद, अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ आपत्तियां दाखिल करने के लिए भी यही प्रावधान लागू होगा और आपत्तियां केवल न्यायालय द्वारा दायर की जा सकती हैं, न कि प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा।

23. धारा 195 द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द यह हैं कि कोई भी न्यायालय उक्त संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के तहत दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, जब इस तरह के अपराध को किसी न्यायालय में कार्यवाही में साक्ष्य में पेश या दिए गए दस्तावेज के संबंध में कथित रूप से प्रतिबद्ध किया गया है, या उपखंड (i) या उपखंड (ii) में निर्दिष्ट किसी अपराध को करने या करने का प्रयास करने या दुष्प्रेरण करने के लिए कोई आपराधिक षड्यंत्र, उस न्यायालय की लिखित शिकायत को छोड़कर या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे वह न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप में अधिकृत कर सकता है, या किसी अन्य न्यायालय का, जिसके लिए वह न्यायालय अधीनस्थ है। यह प्रावधान न्यायालय द्वारा की गई शिकायत को छोड़कर कुछ अपराधों का संज्ञान लेने के खिलाफ प्रतिबंध लगाता है।

प्रस्तुत मामले में अपराधों के कमीशन के संबंध में प्राथमिकी अदालत द्वारा बनाई गई थी। प्रस्तुत मामले में प्राथमिकी सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की गई थी, जिसकी अदालत में कथित जाली दस्तावेज दायर किया गया था। इसलिए, भले ही धारा 195 द०प्र०स० की रोक प्रस्तुत मामले पर लागू होगी, लेकिन धारा 195 द०प्र०स० में निहित शर्त, कि न्यायालय द्वारा की गई शिकायत पर ही न्यायालय कुछ अपराधों का संज्ञान ले सकता है, संतुष्ट है।

24. भगवंत सिंह बनाम कॉमर में माननीय उच्चतम न्यायालय ने (1985) 2 एस.सी.सी. 537 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में कहा है कि घायल व्यक्ति या मृतक का कोई रिश्तेदार, यद्यपि मजिस्ट्रेट से नोटिस का हकदार नहीं है, उसे रिपोर्ट पर विचार करते समय मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार है, यदि उसे अन्यथा पता चलता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट पर विचार किया जा रहा है और यदि वह रिपोर्ट के संबंध में अपनी प्रस्तुतियां करना चाहता है, मजिस्ट्रेट उसे सुनने के लिए बाध्य है।

25. प्रतिपक्षी संख्या-3 अपराध का शिकार होने के नाते और अपराध के कमीशन के कारण उसे कानूनी चोट लगी थी, उसे अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ विरोध याचिका दायर करने का पूरा अधिकार था और अदालत ने उसकी विरोध याचिका को सही तरीके से स्वीकार किया है और अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया है।

26. धारा 195 द०प्र०स० में इस्तेमाल किए गए शब्द सादे और असंदिग्ध हैं और अलग-अलग व्याख्या किए जाने के लिए खुले नहीं हैं। संविधियों की व्याख्या के मूल सिद्धांतों में से एक यह है कि परिनियमों की व्याख्या करते समय न तो कोई शब्द जोड़ा जाना चाहिए और न ही उसे घटाया जाना चाहिए। शिकायत दर्ज करने के संबंध में प्रयुक्त शब्दों की व्यापक व्याख्या नहीं की जा सकती है ताकि अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ विरोध याचिका दायर करने के संबंध में प्रतिबंध शामिल हो ताकि अपराधों के पीड़ितों के अधिकारों को पराजित किया जा सके।

27. कानून में हाल की प्रवृत्ति अपराधों के पीड़ितों के अधिकारों की बढ़ती मान्यता को इंगित करती है, और कार्यवाही में भाग लेने के उनके अधिकार को स्वीकार किया जाता है, भले ही वे स्वयं सूचनाकर्ता न हों।

28. सुधा सिंह बनाम बनाम उत्तर प्रदेश, (2021)4 एस.सी.सी. 781 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत एक विधेय अपराध के मृतक पीड़ित की पत्नी द्वारा दायर अपील पर विचार किया, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि रोकथाम अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध करने के आरोपी व्यक्ति को जमानत दी गई थी, हालांकि गैंगस्टर एक्ट के तहत मामले में न तो वह और न ही उसका मृत पति सूचनाकर्ता था।

29. जगजीत सिंह बनाम आशीष मिश्रा, (2022)9 एस.सी.सी. 321 में, अपराधों के पीड़ितों के अधिकारों के संबंध में कानून के विकास पर चर्चा करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांतों को प्रतिपादित किया: -

> "15. हाल ही में, आपराधिक कानून को एक आयामी तल पर देखा गया था, जिसमें अदालतों को अभियुक्त और राज्य के बीच निर्णय लेने की आवश्यकता थी। "पीड़ित" - एक अपराध के वास्तविक पीड़ित की न्यायिक प्रक्रिया में कोई भागीदारी नहीं थी और उसे मूकदर्शक के रूप में अदालत के बाहर बैठाया गया था। हालांकि, इस मान्यता के साथ कि "अपराध" को रोकने और दंडित करने के लिए आपराधिक न्याय वितरण के लोकाचार ने "पीड़ित" पर अपनी पीठ बदल दी थी, पीड़ितों के अधिकारों के संबंध में न्यायशास्त्र को सुना जाना चाहिए और आपराधिक कार्यवाही में भाग लेना सकारात्मक रूप से विकसित होना शुरू हो गया।
>
> * * *
>
> 20. यह उल्लेख करना उचित है कि विधायिका ने सोच-समझकर "पीड़ित" अभिव्यक्ति को एक व्यापक और विस्तृत अर्थ दिया है जिसका अर्थ है "एक व्यक्ति जिसे उस कार्य या चूक के कारण कोई नुकसान या चोट लगी है जिसके लिए आरोपी व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है और अभिव्यक्ति "पीड़ित" में उसका अभिभावक या कानूनी उत्तराधिकारी शामिल है।

21. मल्लिकार्जुन कोडागली बनाम भारत संघ के मामले में यह न्यायालय कर्नाटक राज्य (2019) 2 एस.सी.सी. 752, द०प्र०स० की धारा 372 के तहत अपील दायर करने के पीड़ित के अधिकार के संबंध में सवालों से निपटने के दौरान, देखा गया कि आपराधिक कार्यवाही में पीड़ितों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता है। अदालत ने बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने के पीड़ित के अधिकार की पुष्टि की। मल्लिकार्जुन कोडागली [मल्लिकार्जुन कोडागली बनाम कर्नाटक राज्य] में, हालांकि न्यायालय मुख्य रूप से एक अलग कानूनी मुद्दे से संबंधित था, वर्तमान संदर्भ में उसमें की गई कुछ टिप्पणियों पर ध्यान देना फलदायी होगा:

> "3. एक मुकदमे में जो होता है वह अक्सर अदालत कक्ष में शत्रुतापूर्ण या अर्ध-शत्रुतापूर्ण वातावरण में अदालत में बार-बार पेश होने के माध्यम से माध्यमिक उत्पीड़न होता है। कुछ समय पहले तक, द्वितीयक उत्पीड़न आक्रामक और डराने वाली जिरह के रूप में होता था, लेकिन साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधानों की

अधिक मानवीय व्याख्या ने अपराध के पीड़ित, विशेष रूप से यौन अपराध की पीड़िता के लिए मुकदमे को थोड़ा कम असहज बना दिया है। इस संबंध में, न्यायपालिका यह सुनिश्चित करने में सक्रिय रही है कि पीड़ितों के अधिकारों को संबोधित किया जाए, लेकिन बहुत कुछ किया जाना बाकी है। आज, एक अभियुक्त के अधिकार कई मामलों में अपराध के पीड़ित के अधिकारों से कहीं अधिक हैं। चिंताओं में कुछ संतुलन बनाने और उनके अधिकारों को समान करने की आवश्यकता है ताकि आपराधिक कार्यवाही दोनों के लिए निष्पक्ष हो।

***

8. पीड़ितों के अधिकार, और वास्तव में पीड़ित विज्ञान, एक उभरता हुआ न्यायशास्त्र है और एक सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ना उचित से अधिक है, बजाय इसके कि स्थिर या बदतर खड़े रहें, एक कदम पीछे ले जाएं। संसद और न्यायपालिका द्वारा अपराध के पीड़ितों को एक आवाज दी गई है और उस आवाज को सुनने की जरूरत है, और यदि पहले से नहीं सुना गया है, तो इसे एक उच्च डेसिबल तक उठाने की आवश्यकता है ताकि यह स्पष्ट रूप से सुना जा सके।

22. यह नहीं कहा जा सकता है कि संशोधित द०प्र०स० के तहत पीड़ित के अधिकार मौलिक, प्रवर्तनीय और मानव अधिकारों का एक अन्य पहलू हैं। इसलिए, पीड़ित के अधिकार को ब्रूटम फुलमेन की तरह प्रतिबंधात्मक रूप से कहा या समझा नहीं जा सकता है [एड। : लैटिन से शाब्दिक अनुवाद "अर्थहीन वज्र या बिजली" के रूप में अनुमानित है, और इसका उपयोग "खाली खतरे" या कुछ ऐसा करने के विचार को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जो अप्रभावी है। हम दोहराते हैं कि ये अधिकार पूरी तरह से स्वतंत्र, अतुलनीय हैं, और द०प्र०स० के तहत राज्य के अधिकारों के सहायक नहीं हैं। कार्यवाही में "राज्य" की उपस्थिति, इसलिए, अपराध के "पीड़ित" को सुनवाई देने के समान नहीं है।

23. द०प्र०स० के अर्थ के भीतर एक "पीड़ित" को कार्यवाही में भाग लेने के अपने अधिकार का दावा करने के लिए मुकदमे के शुरू होने की प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। उसे कानूनी रूप से निहित अधिकार है कि अपराध की घटना के बाद हर कदम पर सुना जाए। इस तरह के "पीड़ित" के पास जांच के चरण से लेकर अपील या पुनरीक्षण में कार्यवाही की परिणति तक निरंकुश भागीदारी अधिकार हैं। हम यह स्पष्ट करने की जल्दबाजी कर सकते हैं कि "पीड़ित" और "शिकायतकर्ता/ सूचनाकर्ता" आपराधिक न्यायशास्त्र में दो अलग-अलग अर्थ हैं। यह हमेशा

आवश्यक नहीं होता है कि शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता भी "पीड़ित" ही हो, क्योंकि अपराध के कार्य के लिए अजनबी भी "सूचनाकर्ता" हो सकता है, और इसी तरह, "पीड़ित" को शिकायतकर्ता या गुंडागर्दी का सूचनाकर्ता होने की आवश्यकता नहीं है।

24. उपर्युक्त घोषणाओं को कुछ वैधानिक प्रावधानों के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जैसे कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 जैसे विशेष अधिनियमों में मौजूद हैं, जहां जमानत देने के समय पीड़ित को सुनने का कानूनी दायित्व है। इसके बजाय, जिस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए वह यह है कि:

24.1. पहला, भारतीय न्यायशास्त्र लगातार विकसित हो रहा है, जिससे पीड़ितों के सुनवाई के अधिकार, विशेष रूप से जघन्य अपराधों से जुड़े मामलों में, तेजी से स्वीकार किए जा रहे हैं।

24.2. दूसरा, जहां पीड़ित स्वयं आपराधिक कार्यवाही में भाग लेने के लिए आगे आए हैं, उन्हें निष्पक्ष और प्रभावी सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि बरी किए जाने के खिलाफ अपील दायर करने का अधिकार, जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय सुनवाई के अधिकार के साथ नहीं है, तो इसके परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हत्या हो सकती है। पीड़ितों से निश्चित रूप से बाड़ पर बैठने और दूर से कार्यवाही देखने की उम्मीद नहीं की जा सकती है, खासकर जब उनके पास वैध शिकायतें हो सकती हैं। यह एक अदालत का पवित्र कर्तव्य है कि वह अन्याय ग्रहण की स्मृति से पहले न्याय प्रदान करे। (महत्व सन्निविष्ट)

30. इसलिए, मेरा विचार है कि अपराध के पीड़ित को अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ विरोध याचिका दायर करने का अधिकार था और विचारण न्यायालय ने विरोध याचिका पर विचार करने और अंतिम रिपोर्ट को खारिज करने में कोई त्रुटि नहीं की है।

31. आवेदक के अधिवक्ता ने कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने मैसर्स हेमारेड्डी (1981) 2 एस.सी.सी. 185 के मामले में अपने निर्णय में कहा है कि -

"8. ... ऐसे मामलों में जहां एक ही लेनदेन के दौरान एक अपराध जिसके लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(बी) के तहत अदालत द्वारा कोई शिकायत आवश्यक नहीं है और एक अपराध जिसके लिए उस उप-धारा के तहत अदालत की शिकायत आवश्यक है, प्रतिबद्ध हैं, यह विभाजित करना और

धारण करना संभव नहीं है कि धारा 195(1)(बी) में उल्लिखित अपराधों के लिए अभियुक्त का अभियोजन नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता को बरकरार रखा जाना चाहिए।

32. चूंकि मैंने पहले ही माना है कि सभी अपराधों के लिए प्राथमिकी अदालत द्वारा दर्ज की गई थी, न कि पीड़ित द्वारा और कथित अपराध अदालत में दायर किए गए किसी भी दस्तावेज के संबंध में नहीं किए गए थे, लेकिन अपराध अदालत की पूरी कार्यवाही को बिना किसी कार्यवाही के वास्तव में अदालत में शुरू किए बिना किया गया था, धारा 195 का प्रतिबंध प्रस्तुत मामले से आकर्षित नहीं है और पीड़ित ने जांच के बाद प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ विरोध याचिका दायर की थी, मेरा विचार है कि कानून का उपरोक्त सिद्धांत प्रस्तुत मामले के तथ्यों से आकर्षित नहीं होता है।

33. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जालसाजी का अपराध केवल झूठे दस्तावेज के निर्माता के खिलाफ किया गया है और ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदकों ने स्वयं कोई दस्तावेज जाली बनाया था। इस सबमिशन के समर्थन में, उन्होंने शीला सेबेस्टियन बनाम आर जवाहराज, (2018)7 एस.सी.सी. 581 के मामले में निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि "जालसाजी का आरोप उस व्यक्ति पर नहीं लगाया जा सकता है जो इसका निर्माता नहीं है"।

34. प्रस्तुत मामले में, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कुंडा, प्रतापगढ़ ने अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया था और आरोपी व्यक्तियों अरुण कुमार सिंह उर्फ मुन्ना, किरण कुमार सिंह, सतीश कुमार सिंह, दिनेश कुमार सिंह, सतीश कुमार त्रिपाठी, द्वारा धारा 120-बी, 419, 420, 467, 468, 471, 472 और 474 भ०द०वि० के तहत अपराधों के कमीशन का संज्ञान लिया था। रमाकांत द्विवेदी और प्रताप बहादुर सिंह को दिनांक 01.07.2017 के आदेश के माध्यम से, आवेदकों ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-171/2017 दायर करके दिनांक 01.07.2017 के उपरोक्त आदेश को चुनौती दी थी, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, प्रतापगढ़ द्वारा पारित दिनांक 02.06.2018 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर अनुमति दी गई थी कि विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को तलब करने से पहले प्रथम दृष्टया साक्ष्य पर चर्चा नहीं की थी। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिनांक 01.07.2017 के आदेश को रद्द कर दिया गया और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेज दिया गया। रिमांड के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.08.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसमें आरोप पत्र के खिलाफ आवेदकों द्वारा दायर आपत्तियों को फिर से खारिज कर दिया गया। विचारण न्यायालय ने आवेदकों और एक सतीश कुमार त्रिपाठी के खिलाफ धारा 120-बी, 419, 420, 467, 468, 471, 472 और 474 भ०द०वि० के तहत अपराधों का संज्ञान लिया और उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। विचारण न्यायालय ने अपने आदेश में कहा है कि कर्मचारी सतीश कुमार त्रिपाठी को रिकॉर्ड में जालसाजी करने का दोषी ठहराया

गया है और उसे न्यूनतम वेतनमान में कनिष्ठ सहायक के मूल पद पर वापस भेजकर विभागीय कार्यवाही में दंडित किया गया है। विचारण न्यायालय ने आगे कहा है कि कर्मचारी ने आवेदकों के साथ आपराधिक साजिश के तहत अपराध किया था, जो अपराध के लाभार्थी हैं।

35. आपराधिक षड्यंत्र के अपराध के साथ-साथ षड्यंत्र को आगे बढ़ाने के लिए किए गए मूल अपराधों के कमीशन के आरोप के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि आरोपी व्यक्ति को स्वयं भी मूल अपराध करना चाहिए। इसलिए, मैं आवेदक के अधिवक्ता की दूसरी दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

36. आवेदकों के अधिवक्ता ने अंत में प्रस्तुत किया है कि पक्षों के बीच विवाद विशुद्ध रूप से एक दीवानी विवाद है और उसके लिए शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। उन्होंने मितेश कुमार जे. शा बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 976 के मामले में फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि "इस न्यायालय ने असंख्य उदाहरणों में एक दीवानी विवाद को आपराधिक रंग प्रदान करने के लिए अपनी अस्वीकृति व्यक्त की है, जो केवल एक दीवानी विवाद के विपरीत एक आपराधिक मामले में दी गई अपेक्षाकृत त्वरित राहत का लाभ उठाने के लिए किया गया है। इस तरह की कवायद और कुछ नहीं बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, जिसे पूरी तरह से हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

37. इसी प्रकार रणधीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 14 एस.सी.सी. 626 माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से कहा कि: -

> *33. ... यह पुनरावृति की कीमत पर दोहराया गया है कि प्राथमिकी में अपीलकर्ता के संबंध में किसी भी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि कैसे और किस तरीके से, यह अपीलकर्ता किसी आपराधिक अपराध में शामिल है और आरोप-पत्र, जिसका प्रासंगिक हिस्सा ऊपर निकाला गया है, बिल्कुल अस्पष्ट है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से या अन्यथा न्याय के लक्ष्य को सुरक्षित करने के लिए संयम से किया जाना चाहिए। कोई शिकायत आपराधिक अपराध का खुलासा करती है या नहीं, यह आरोप की प्रकृति पर निर्भर करता है और अपराध के आवश्यक तत्व मौजूद हैं या नहीं, इसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दीवानी लेनदेन का खुलासा करने वाली शिकायत में आपराधिक बनावट भी हो सकती है। हालांकि, उच्च न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या नागरिक प्रकृति के विवाद को आपराधिक कृत्य का रंग दिया गया*

है। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में संकोच नहीं करना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय ने परमजीत बत्रा [परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2013) 11 एस.सी.सी. 673: (2012) 4 एस.सी.सी. (सीआरआई) 76] में कहा था।

38. हालांकि, प्रस्तुत मामले में एस.डी.एम. सदर, प्रतापगढ़ द्वारा एक जांच में पाया गया कि केस संख्या-301 की पेपर बुक जालसाजी और मनगढ़ंत करके तैयार की गई थी। आवेदक जालसाजी और न्यायालय के रिकॉर्ड के निर्माण के कमीशन के लाभार्थी हैं। यह आरोप स्पष्ट रूप से अपराध को अंजाम देता है और यह नागरिक प्रकृति का विवाद बिल्कुल नहीं है। इसलिए, इस आधार पर भी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है।

39. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 335 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां दी थीं, जिसमें धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्ति का प्रयोग या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए: -

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को सही ठहराते हुए, संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनते हैं बल्कि केवल एक असंज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां संहिता की धारा 155(2) के अधीन यथा अपेक्षित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी अन्वेषण की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से अनुचित हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति

कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था को एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावोत्पादक निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध बरपाने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

40. मेरा विचार है कि प्रस्तुत मामला पूर्वोक्त श्रेणियों में से किसी में नहीं आता है। इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भजन लाल (उपरोक्त) में निम्नलिखित शब्दों में चेतावनी का एक नोट जोड़ा था:

"103. हम इस आशय की सावधानी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि अदालत प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां अदालत को अपनी सनक या बेतुके ढंग के अनुसार कार्य करने के लिए मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।

41. पूर्वगामी चर्चा के मद्देनजर, मुझे आवेदकों द्वारा दायर धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन में कोई योग्यता नहीं मिलती है। तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है।

42. मामले से अलग होने से पहले, मैं यह कहना उचित समझता हूं कि पुनरीक्षण आदेश में पुनरीक्षण न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा उल्लिखित तिथि 12.05.2022 है जबकि आदेश पर मुद्रित तिथि 12.05.2023 है। आवेदन के साथ दायर प्रमाणित प्रति पर प्रतिलिपि अधिकारी द्वारा की गई प्रविष्टियों से पता चलता है कि आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए आवेदन 15.05.2023 को दायर किया गया था, लेकिन हेड कॉपीस्ट ने प्रमाणित प्रति पर 12.05.2023 को हस्ताक्षर किए हैं, यानी आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने से तीन दिन पहले। इस आदेश की सूचना जिला न्यायाधीश, प्रतापगढ़ को दी जानी चाहिए ताकि वह मामले की जांच कर सकें और ऐसी गलतियों की पुनरावृत्ति से बचने के लिए उचित कदम उठा सकें।

(2023) 8 ILRA 33

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.06.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 15925 वर्ष 2023

शिवांशु मुद्गल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षीगण

आवेदक के लिए अधिवक्ता:
श्री अजय कुमार पांडे, श्री सतीश त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 302, 307 एवं 506 - उत्तर प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974 - धारा 9(1) - वकालतनामा पर कल्याण स्टाम्प - यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कल्याण स्टाम्प वकालतनामा पर नहीं लगाया गया है या किसी अधिवक्ता द्वारा दाखिल नहीं किया गया है, तो न्यायालय ऐसे अधिवक्ता को उस मामले में आगे कार्यवाही करने की अनुमति नहीं देगा। (प्रस्तर - 23)

प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर वकालतनामा - अधिवक्ता कल्याण टिकट, जिसमें आवश्यक स्टाम्प लगा हुआ है, वकालतनामे पर नहीं लगाया गया - अधिवक्ता को कोई भी वाद प्रपत्र उपलब्ध नहीं कराया गया या विचारण के दौरान प्रतिपक्षी की ओर से उपस्थित होने का निर्देश नहीं दिया गया - अभियुक्त की जमानत अर्जी का विरोध नहीं किया या प्रतिपक्षी की ओर से दलीलें पेश नहीं कीं - वकालतनामा वापस लेने के लिए आवेदन - इसे दोषपूर्ण और अपूर्ण बताते हुए - आवेदक ने न्यायालय में आवेदन दायर किया - उसके द्वारा नियुक्त अधिवक्ता ने एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिस पर निर्णय नहीं हुआ था - प्रतिपक्षी ने एक वकालतनामा दायर किया, अधिवक्ता कल्याण टिकट न लगाकर अधिवक्ताओं को गुमराह करते हुए - बिना किसी आदेश के आवेदन को लंबित रखा गया - विचारण न्यायालय उत्तर प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974 को मान्यता देने में विफल रही - जो अधिवक्ताओं को अपने वकालतनामे पर दस रुपये का कल्याण स्टाम्प लगाना अनिवार्य करता है - कोई भी न्यायालय या प्राधिकारी इस स्टाम्प के बिना इसे प्राप्त नहीं कर सकता। **(प्रस्तर -2 से 12)**

अभिनिर्धारित हुआ:- विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत वकालतनामा पर अधिवक्ता कल्याण स्टाम्प न होने के कारण, उस पर हस्ताक्षर करने वाले किसी भी अधिवक्ता को मामले में आगे बढ़ने की अनुमति नहीं है। वकालतनामा वापस लेने के आवेदन के दौरान अधिवक्ता के आचरण पर टिप्पणी करने के लिए विचारण

न्यायालय के पास सीमित समय था, क्योंकि उसी आवेदन को उत्तर प्रदेश विधिज्ञ परिषद द्वारा पहले ही अनुमोदित किया जा चुका था, जिससे यह मामला न्यायाधीश के क्षेत्राधिकार से बाहर हो गया। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश निरस्त एवं अपास्त किया जाता है। **(प्रस्तर-23,27,28)**

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन अनुमत। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:-</u>

एस.सी.बी.ए. बनाम भारत संघ और एक अन्य, रिट याचिका (सिविल) 200 वर्ष 1995

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अजय कुमार पांडेय की सहायता से आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता तथा विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री करूणाकर सिंह को सुना।

2. धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत वर्तमान प्रार्थना पत्र, मुकदमा अपराध सं0 478/2021 अंतर्गत धारा 147, 148, 149, 302, 307, 506 भा.दं.सं. थाना शाहगंज, जनपद आगरा से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 235/2022 (राज्य बनाम शिवांशु मुद्गल व अन्य) में विद्वान सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 05.04.2023 को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

3. आवेदक का मामला यह है कि दिनांक 02.11.2021 की कथित घटना से संबंधित 11 अभियुक्तों के विरुद्ध दिनांक 03.11.2021 को प्रथम सूचनादाता द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 478/2021 की प्रथम सूचना रिपोर्ट अंतर्गत धारा 147, 148, 149, 302, 307 भा.दं.सं. थाना शाहगंज, जनपद आगरा में दर्ज कराई गई है।

4. दिनांक 07.01.2022 को, विपक्षी सं0 2 ने पांच अधिवक्ताओं, जो सभी आगरा में जिला न्यायालय के प्रमुख वरिष्ठ अधिवक्ता हैं, को नियुक्त करके सत्र परीक्षण में बचाव का निजी तौर पर विरोध करने के लिए अपना वकालतनामा दाखिल किया, दो वकालतनामे एक ही तिथि पर दाखिल किए गए, जिसमें विपक्षी सं0 2 द्वारा कुल दस अधिवक्ताओं को नियुक्त किया गया था, पुनः दिनांक 22.04.2022 और 20.05.2022 को विपक्षी सं0 2 की ओर से दो और वकालतनामे दाखिल किए गए, जिसमें श्री अशोक कुमार गुप्ता, श्री शिशुपाल सिंह यादव और श्री नरेश पाल सिंह यादव को उनके अधिवक्ता के रूप में नियुक्त किया गया था, विपक्षी सं0 2 ने वस्तुतः जनपद न्यायालय आगरा की संपूर्ण आपराधिक बार को नियुक्त किया था, उपरोक्त में से अधिकांश अधिवक्ता जनपद न्यायालय आगरा में आपराधिक मामलों के प्रसिद्ध अधिवक्ता है।

5. आवेदक की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया अत्यंत प्रासंगिक पहलू यह है कि उपरोक्त वकालतनामा दिनांकित 07.01.2022 में आवश्यक स्टाम्प सहित अधिवक्ता कल्याण

टिकट नहीं लगाया गया था, जिसमें पांच अधिवक्ताओं में से श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता का नाम भी था।

6. विपक्षी सं0 2 द्वारा दाखिल वकालतनामा पर केवल अधिवक्ता के हस्ताक्षर थे, परन्तु जहां तक श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता का संबंध है, विपक्षी पक्ष सं0 2 द्वारा मामले से संबंधित कोई दस्तावेज उन्हें उपलब्ध नहीं कराए गए तथा न ही उन्हें मुकदमे के दौरान विपक्षी पक्ष सं0 2 की ओर से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया।

7. पूर्ण निर्देशों के अभाव में, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता ने न तो अभियुक्त की जमानत याचिका का विरोध किया तथा न ही उन्होंने विपक्षी सं0 2 की ओर से कोई तर्क प्रस्तुत किए, इसके अलावा, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता को विपक्षी सं0 2 से कभी भी कोई निर्देश नहीं मिला क्योंकि विपक्षी सं0 2 द्वारा न तो मामले के तथ्यों पर उपरोक्त अधिवक्ता के साथ चर्चा की गई तथा न ही विपक्षी सं0 2 द्वारा मामले से संबंधित कोई दस्तावेज दिए गए तथा इस प्रकार, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता, जो वाद की सुनवाई के समय संबंधित विद्वान न्यायालय द्वारा नियत की गई किसी भी तिथि पर विपक्षी सं0 2 की ओर से कभी भी उपस्थित नहीं हुए, उन्हें दिनांक 13.02.2023 को श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता और श्री मनीष पाठक, अधिवक्ता द्वारा आवेदक की ओर से वकालतनामा सं0 47-बी के माध्यम से नियुक्त किया गया था।

8. सह-अभियुक्त सैयद ज़फर रिज़वी उर्फ शानू ने भी श्री मनीष पाठक, अधिवक्ता के साथ-साथ श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता को सत्र परीक्षण सं0 235/2022 के समक्ष दिनांक 03.03.2023 के वकालतनामे के माध्यम से अपने अधिवक्ता के रूप में नियुक्त किया और उक्त वकालतनामा को 56-बी के रूप में क्रमांकित किया गया था।

9. विपक्षी सं0 2 द्वारा दाखिल वकालतनामा दिनांकित 07.01.2021 न केवल दोषपूर्ण था अपितु श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता को विपक्षी सं0 2 द्वारा मामले से संबंधित किसी भी दस्तावेज के माध्यम से पूर्ण निर्देश नहीं दिए जा रहे थे, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता ने दिनांक 06.03.2023 को विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा के समक्ष एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जिसे प्रार्थना पत्र सं0 58-बी के रूप में क्रमांकित किया गया तथा इसमें विपक्षी सं0 2 की ओर से सत्र परीक्षण संख्या 235/2022 में पूर्व में प्रस्तुत किए गए अपने वकालतनामे को वापस लेने की प्रार्थना की गई।

10. उपर्युक्त प्रार्थना पत्र को लंबित रखा गया तथा उस पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, आवेदक द्वारा अपने पैरोकार विनीत शर्मा के माध्यम से दिनांक 01.04.2023 को विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा के न्यायालय में एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया, जिसमें कहा गया कि उसके द्वारा नियुक्त और अधिकृत अधिवक्ता ने दिनांक 06.03.2023 को एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया था, जो अभी तक

निस्तारित नहीं हुआ है, प्रार्थना पत्र दिनांकित 01.04.2023 में यह भी इंगित किया गया था कि विपक्षी सं0 2 ने अधिवक्ताओं को गुमराह करके वकालतनामा दिनांकित 07.01.2022 दाखिल किया था क्योंकि उक्त वकालतनामे में अधिवक्ता कल्याण टिकट नहीं लगाया गया था तथा इसलिए, उक्त वकालतनामा दोषपूर्ण होने के कारण खारिज होने योग्य था।

11. प्रार्थना पत्र सं0 58-बी पर विचार करते हुए, इसे दिनांक 05.04.2023 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसे वर्तमान आवेदन द्वारा चुनौती दी गई है।

12. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अपनाए गए रुख को पुष्ट करने के लिए, यह इंगित किया गया है कि विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है कि यू.पी. अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974, अन्य बातों के साथ-साथ उक्त अधिनियम की धारा 9(1) के तहत प्रावधान करता है कि प्रत्येक अधिवक्ता उसके द्वारा स्वीकार किए गए वकालतनामे पर दस रुपये के मूल्य का कल्याण स्टाम्प लगाएगा और कोई भी न्यायालय, न्यायाधिकरण, प्राधिकरण या व्यक्ति ऐसे अधिवक्ता के पक्ष में कोई वकालतनामा स्वीकार नहीं करेगा, जब तक कि उस पर किसी अन्य विधि के अंतर्गत आवश्यक किसी स्टाम्प के साथ साथ स्टाम्प न लगा हो।

13. श्री सतीश त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया है कि उक्त अधिनियम की धारा 5 में प्रावधान है कि जहां किसी मामले में उप-धारा (1) में निर्दिष्ट कल्याण स्टाम्प वकालतनामे पर नहीं लगाया गया है या किसी अधिवक्ता द्वारा दाखिल नहीं किया गया है, न्यायालय ऐसे अधिवक्ता को उस मामले में आगे की कार्यवाही के लिए अनुमति नहीं देगा।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान अधीनस्थ न्यायालय यह समझने में बुरी तरह विफल रहा कि अधिवक्ता द्वारा प्रभावी और वास्तविक प्रतिनिधित्व के बिना, आवेदक को निष्पक्ष सुनवाई नहीं दी जा सकती।

15. पूर्वोक्त के परिणामस्वरूप, यह कथन किया गया है कि विपक्षी पक्ष सं0 2 द्वारा श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता की नियुक्ति एक दिखावा, धोखा और भ्रामक था तथा विपक्षी सं0 2 द्वारा उनकी नियुक्ति वास्तविक और प्रभावी रूप से नहीं की गई थी।

16. उपर्युक्त प्रश्न के संबंध में, इस मामले पर बार काउंसिल ऑफ यू.पी. द्वारा भी विचार-विमर्श किया गया था और आदेश दिनांकित 05.04.2023 के अनुसार यह निर्णय लिया गया था कि इन परिस्थितियों में, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता को वकालतनामा वापस लेने की अनुमति दी गई थी और उन्हें सत्र परीक्षण सं0 235/2022 में अभियुक्त/आवेदक की ओर से उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी, बार काउंसिल ऑफ यू.पी. द्वारा पारित आदेश दिनांकित 05.04.2023 वर्तमान आवेदन के साथ अनुलग्नक-12 के रूप में पृष्ठ संख्या 139 पर उपलब्ध है।

17. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा कथित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करने के पश्चात भी, विद्वान न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा ने आदेश दिनांकित 05.04.2023 द्वारा आवेदक की प्रार्थना को खारिज कर दिया, जिसमें धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत वर्तमान आवेदन को चुनौती दी गई।

18. इसके विपरीत, श्री करुणाकर सिंह, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता-1 ने इस आधार पर वर्तमान आवेदन में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया कि जब एक बार वकालतनामा विद्वान अधिवक्ता द्वारा निष्पादित किया गया है, तो उसे वापस लेने की प्रार्थना को विद्वान जिला और सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा उचित रूप से निरस्त कर दिया गया था।

19. आवेदन में की गई प्रार्थना पर विचार करते हुए, प्रतिद्वंद्वी पक्षों के विद्वान वकीलों को विस्तार से सुनने के पश्चात, इस मामले से संबंधित इस न्यायालय द्वारा उत्तर दिए जाने वाले कुछ प्रश्न निम्न प्रकार से हैं-

(i) क्या श्री अरविन्द कुमार शर्मा, अधिवक्ता अपना वकालतनामा वापस लेने के हकदार थे, जो पहले ही विपक्षी सं0 2 के पक्ष में निष्पादित किया जा चुका है?

(ii) अधिवक्ता और वादकारी के मध्य संबंध स्थापित करने के लिए आवश्यक तत्व वकालतनामा पर हस्ताक्षर करना मात्र है?

(iii) वर्तमान मामले में उत्तर प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974 की धारा 9 का प्रभाव?

20. जहां तक प्रथम प्रश्न का संबंध है, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अव्यवस्थित तथा दिखावटी तरीके से, विभिन्न वकालतनामों पर बहुत सारे अधिवक्ताओं के हस्ताक्षर लिए गए हैं तथा उन्हें पहले ही सत्र परीक्षण के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, जिसमें से एक अधिवक्ता श्री अरविन्द कुमार शर्मा, अधिवक्ता थे, वकालतनामा के निष्पादन के अनुसरण में विपक्षी सं0 2 द्वारा श्री अरविन्द कुमार शर्मा, अधिवक्ता को प्रासंगिक दस्तावेजों और कागजात के रूप में कभी भी कोई संक्षिप्त विवरण नहीं दिया गया है। इसके अलावा, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता कभी भी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष विपक्षी सं0 2 की ओर से उपस्थित नहीं हुए तथा इस प्रकार से वकालतनामा को मात्र एक कागज का टुकड़ा नहीं माना जा सकता है जो कुछ अधिवक्ताओं को विपक्षी की ओर से उपस्थित होने से रोकने का अधिकार प्रदान करता है, किसी भी विशिष्ट निर्देश के अभाव में, अधिवक्ता को उस वादकारी के साथ बंधुआ एवं हथकड़ी लगा हुआ नहीं माना जा सकता है जिसने वकालतनामा पर हस्ताक्षर मांगे थे, जो कि स्वयं दोषपूर्ण प्रकृति का था क्योंकि उसके पास एडवोकेट वेलफेयर टिकट नहीं था।

21. ऊपर बताए गए दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए, पक्षकार तथा अधिवक्ता के बीच संबंध स्थापित करने के लिए आवश्यक तत्व उस मामले की चर्चा है जिसके लिए अधिवक्ता

प्रासंगिक दस्तावेजों और सही विधिक कथनों के आधार पर न्यायालय की सहायता करके अपने पक्षकार के हितों की रक्षा के लिए किसी भी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने जा रहा है। वर्तमान मामले में, दोनों पक्षों का यह स्वीकृत मामला है कि किसी भी समय, विपक्षी सं0 2 द्वारा श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता को कोई भी विवरण या दस्तावेज नहीं सौंपा गया है तथा इस प्रकार, मात्र दोषपूर्ण कागज पर हस्ताक्षर प्राप्त करके पक्षकार और उसके अधिवक्ता के बीच संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता है।

22. अंततः विधिक प्रश्न जो मामले के सार को शामिल करता है और दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत वर्तमान आवेदन के माध्यम से उठाए गए विवाद के अनुसरण में न्यायनिर्णित किया जाना महत्वपूर्ण है, तत्पर संदर्भ के लिए, यू.पी. अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974 की धारा 9 का उद्धरण नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

> "**9. वकालतनामे पर कल्याण स्टाम्प-** (1) योजना का प्रत्येक सदस्य अपने द्वारा स्वीकार किए गए वकालतनामे पर उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण या किसी अन्य प्राधिकरण या व्यक्ति में दाखिल वकालतनामे के मामले में पाँच रुपए मूल्य का कल्याण स्टाम्प लगाएगा तथा किसी अन्य मामले में दो रुपए मूल्य का स्टाम्प लगाएगा और कोई भी न्यायालय, न्यायाधिकरण, प्राधिकरण या व्यक्ति ऐसे सदस्य के पक्ष में कोई वकालतनामा तब तक स्वीकार नहीं करेगा जब तक कि उस पर किसी अन्य विधि के अंतर्गत आवश्यक स्टाम्प के अतिरिक्त स्टाम्प न लगा हो।
>
> (2) कल्याण स्टाम्प का मूल्य न तो वाद या कार्यवाही में कर योग्य लागत होगा तथा न ही किसी भी स्थिति में ऐसे वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार से वसूला जाएगा।
>
> (3) किसी भी सदस्य द्वारा उप-धारा (2) के प्रावधानों का कोई भी उल्लंघन उसे योजना के लाभों से वंचित कर देगा और उसे कदाचार माना जाएगा और न्यासी समिति उचित कार्रवाई के लिए मामले की रिपोर्ट राज्य बार काउंसिल को देगी।
>
> (4) उप-धारा (1) के अंतर्गत वकालतनामे पर लगाया गया प्रत्येक कल्याण स्टाम्प न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 30 में दिए गए तरीके से रद्द कर दिया जाएगा।
>
> (5) जिसमें किसी भी मामले में उप-धारा (1) में निर्दिष्ट कल्याण स्टाम्प वकालतनामा पर नहीं चिपकाया जाता है या किसी अधिवक्ता द्वारा दाखिल नहीं किया जाता है, न्यायालय ऐसे अधिवक्ता को उस मामले में आगे की कार्यवाही के लिए अनुमति नहीं देगा।"

23. उक्त अधिनियम की धारा 9(5) के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट है कि यदि उप-धारा (1) में निर्दिष्ट कल्याण स्टाम्प वकालतनामा पर नहीं चिपकाया जाता है या किसी अधिवक्ता द्वारा दाखिल नहीं किया जाता है, तो न्यायालय ऐसे अधिवक्ता को उस मामले में अग्रिम कार्यवाही के लिए अनुमति नहीं देगा, जिसका अर्थ यह है कि यदि संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अधिकार/ वकालतनामा में अधिवक्ता कल्याण स्टाम्प नहीं है, तो संबंधित अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित वकालतनामा को मामले में आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और इस प्रकार, विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष विपक्षी सं0 2 द्वारा प्रस्तुत वकालतनामा से अधिवक्ता कल्याण स्टाम्प की अनुपस्थिति में, जिस अधिवक्ता ने उस पर अपने हस्ताक्षर किए हैं, उसे मामले की कार्यवाही आगे बढाने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

24. विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा आदेश दिनांकित 05.04.2023 को पारित करते समय उपर्युक्त तथ्यात्मक और विधिक बिंदुओं पर चर्चा नहीं की गई थी, जिसे तत्काल आवेदन में चुनौती दी गई है।

25. आवेदक की ओर से उपस्थित तर्क प्रस्तुत करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ व अन्य** (रिट याचिका (सिविल) 200/1995, 17.04.1998 को निर्णीत) का भी अवलम्ब लिया गया, जिसमें यह माना गया है कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के साथ अनुच्छेद 129 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न्यायालय की अवमानना करने के लिए किसी अवमाननाकर्ता को दंडित करते समय, उसके वकालत करने के लाइसेंस को निलंबित करने की सजा नहीं दे सकता है, जहाँ अवमाननाकर्ता एक अधिवक्ता हो। न्यायालय की अवमानना के मामले (और व्यवसायिक कदाचार से संबंधित अपील नहीं) के निस्तारण के दौरान अधिनियम की धारा 38 के तहत अपीलीय शक्तियों का सहारा लेकर भी ऐसी सजा नहीं दी जा सकती। उस सीमा तक, विनय चंद्र मिश्रा, (1995) 2 एस.सी.सी. 584 में निर्धारित कानून अच्छा कानून नहीं है और हम इसे खारिज करते हैं।

26. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, कोई अधिवक्ता यदि न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है तो वह किसी दिए गए मामले में व्यावसायिक कदाचार का भी दोषी हो सकता है, परन्तु उस अधिवक्ता को वकालत करने से रोककर या उसका लाइसेंस निलंबित करके दंडित करना राज्य बार काउंसिल या बार काउंसिल ऑफ इंडिया का काम है।

27. वर्तमान मामले में, श्री अरविंद कुमार शर्मा, अधिवक्ता द्वारा वकालतनामा वापस लेने के प्रार्थना पत्र पर निर्णय करते समय विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा के समक्ष अधिवक्ता के आचरण पर टिप्पणी करने का शायद ही कोई अवसर उपलब्ध था, क्योंकि उसी प्रार्थना पत्र को बार काउंसिल ऑफ यू.पी. द्वारा पहले ही अनुमति दी जा चुकी है तथा

इस तरह यह मामला विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा के न्यायिक सीमा से बाहर था।

28. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांकित 05.04.2023 को एतद्द्वारा रद्द कर अपास्त किया जाता है।

29. तदनुसार वर्तमान आवेदन **स्वीकार** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 39

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 24499 वर्ष 2023

महेश एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदकों के लिए अधिवक्ता:
श्री ऐश्वर्य प्रताप सिंह

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - धारा 155(4) - जहां कोई मामला दो या अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामला संज्ञेय माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध असंज्ञेय हों - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 504 और 506 - यदि उत्तर प्रदेश राज्य में भा.दं.सं. **की धारा 506 के अंतर्गत कोई अपराध किया जाता है तो वह संज्ञेय अपराध है। (प्रस्तर-14, 16)**

आरोप पत्र, संज्ञान और समन आदेश को रद्द करना - अभियुक्त-आवेदकगण और सूचनाकर्ता-प्रतिपक्षी संख्या 2, उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा निर्धारित भूमि चिह्न के बावजूद, प्रतिपक्षी संख्या 2 की भूमि के एक हिस्से को अवैध रूप से हड़पने के अभियुक्त हैं - प्रतिपक्षी संख्या 2 के साथ आवेदकों द्वारा कथित रूप से दुर्व्यवहार और मारपीट की गई - जिसके कारण प्र.सू.रि. दर्ज की गई - मामला भा.दं.सं. की धारा 504 और धारा 506 के अंतर्गत अपराध से संबंधित है - धारा 506 शुरू में असंज्ञेय थी - उत्तर प्रदेश सरकार ने 1989 में अधिसूचना संख्या 777/8-9 4(2)-87 जारी की - जिससे भा.दं.सं. की धारा 506 संज्ञेय और गैर-जमानती बन गई - पहली अनुसूची में असंज्ञेय स्थिति के बावजूद। **(प्रस्तर -7)**

अभिनिर्धारित हुआ:- भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के अंतर्गत आरोपित अभियुक्तों पर संज्ञेय अपराधों के लिए निर्धारित तरीके से विचारण किया जाना चाहिए। **(प्रस्तर-17)**

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन अस्वीकृत किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. संतोष कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं एक अन्य, 2019:एएचसी:18156

2. अनुराग यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं एक अन्य, 2020:एएचसी:39811

3. रमा शंकर उपाध्याय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं एक अन्य, 2022:एएचसी:190995

4. वीरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2002आईएलआर इलाहाबाद सीरीज, 653 2002 (2) यूसी 453

5. मेटा सेवक उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1995 सीजे (इलाहाबाद) 1158

6. आयर्स रोड्रिग्स बनाम विश्वजीत पी. राणे, (2017) 11 एससीसी 62

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के लिए विद्वान वकील को सुना और राज्य के उत्तरदाताओं के लिए विद्वान एजीए को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन के माध्यम से आवेदकों ने केस अपराध संख्या 2072022, धारा 504 व 506 आईपीसी, थाना सोरो, जिला कासगंज के अंतर्गत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कासगंज के न्यायालय में विचाराधीन है, से उत्पन्न 2022 के आपराधिक मामले संख्या 24449 (राज्य बनाम महेश और अन्य) में आरोप पत्र दिनांक 05.08.2022 को रद्द करने और संज्ञान के साथ-साथ दिनांक 21.12.2022 को तलब करने के आदेश की प्रार्थना की है।

3. आरोपी-आवेदक और सूचक-विपक्षी पक्ष संख्या 2 की जमीने एक-दूसरे के बगल में हैं। यह आरोप लगाया जा रहा है कि उपरोक्त आवेदकों ने भूमि के उस हिस्से को अवैध रूप से हड़पने की कोशिश की, जो संबंधित उपमंडल मजिस्ट्रेट द्वारा विरोधी पक्ष संख्या 2 की भूमि के क्षेत्र का सीमांकन करते हुए तय किए गए भूमि चिह्न के बावजूद विपरीत पक्ष संख्या 2 से संबंधित है। यह भी आरोप लगाया गया है कि जब विपक्षी नंबर 2 ने हस्तक्षेप करने और उपरोक्त का बचाव करने की कोशिश की तो आवेदकों द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार और मारपीट की गई। इसके अलावा, दिनांक 05.06.2022 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

4. उपरोक्त एफआईआर के अनुसार एक जांच की गई और गवाहों के बयान दर्ज किए गए। जांच पूरी होने के बाद पुलिस ने 05.08.2022 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें कहा गया है कि जांच करने पर, गवाहों के बयानों और घटना स्थल के निरीक्षण से आईपीसी की धारा 434 और 447 के तहत अपराध होना नहीं पाया गया और केवल धारा 504 और 506 आईपीसी के तहत अपराध होना पाया गया। एफआईआर में नामित दो आरोपियों यानी संजय और राधेशम के खिलाफ सबूत की

कमी के कारण जांच के दौरान उनका निहितार्थ नहीं पाया गया और इसलिए उन्हें आरोप पत्र से बरी कर दिया गया। आवेदक के विचारण के लिए आरोप पत्र न्यायालय में भेज दिया गया है।

5. आवेदक के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि हालांकि मूल रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 434, 447, 504, 506 आईपीसी के तहत दर्ज की गई थी लेकिन जांच के दौरान अपराध घटित करने के संबंध में आरोप लेकिन जांच के दौरान आईपीसी की धारा 434 और 447 के तहत अपराध घटित होने का आरोप झूठा पाया गया और आवेदकों के खिलाफ केवल धारा 504 और 506 आईपीसी के तहत मामला बनता पाया गया। ये दोनों गैर-संज्ञेय अपराध हैं और इसलिए, आवेदकों के खिलाफ मामला केवल शिकायत के रूप में आगे बढ़ सकता है। अपने कथन के समर्थन में, उन्होंने न्यायालय का ध्यान सीआरपीसी की धारा 2 (डी) से जुड़े स्पष्टीकरण की ओर आकर्षित किया है। उनके निवेदन की सराहना करने के लिए, सीआरपीसी के प्रासंगिक प्रावधान को नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

-"(डी) 'शिकायत" का अर्थ इस संहिता के तहत कार्रवाई करने की दृष्टि से मजिस्ट्रेट को मौखिक रूप से या लिखित रूप में लगाया गया कोई भी आरोप है, कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह जाल हो या अजात, अपराध किया है, लेकिन इसमें पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है.

स्पष्टीकरण, - किसी मामले में पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट, जो जांच के बाद, गैर-संजेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, शिकायत मानी जाएगी; और जिस पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसी रिपोर्ट की गई है, उसे शिकायतकर्ता माना जाएगा"

6. आवेदकों के विद्वान वकील ने इस न्यायालय के (1) संतोष कुमार और 2 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 2019: AHC: 18156, और (B) अनुराग यादव और 2 अन्य बनाम राज्य यूपी और अन्य 2020:एएचसी: 39811, के निर्णयों पर भरोसा जताया है। इन दो मामलों में मूल रूप से एफआईआर आईपीसी की धारा 323, 504 के तहत दर्ज की गई थी, जबकि (iii) रमा शंकर उपाध्याय और 3 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 2022: एएचसी: 190995 जिसमें आई.पी.सी. की धारा 323, 504 और 427 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी। इस पृष्ठभूमि में इस न्यायालय की एक समन्वित पीठ ने माना कि मजिस्ट्रेट मामले को राज्य के मामले के रूप में आगे नहीं बढ़ाएगा, बल्कि वह इसे एक शिकायत मामले के रूप में आगे बढ़ाएगा जैसा कि सीआरपीसी की धारा 2 (डी) के स्पष्टीकरण में प्रदान किया गया है।

7. हालाँकि, वर्तमान मामले में, धारा 504 के तहत अपराध के अलावा, आईपीसी की धारा 506 के तहत भी एक अपराध किया गया पाया गया है। हालाँकि आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 से जुड़ी पहली अनुसूची में धारा 506 को एक गैर-संज्ञेय अपराध बताया गया है, उत्तर प्रदेश सरकार ने एक अधिसूचना संख्या 777/VIII-9 4(2)-87, दिनांक 31 जुलाई, 1989 जारी की है, जो यूपी राजपत्र, अतिरिक्त

भाग -4, खंड (खा), दिनांक 2 अगस्त, 1989 में प्रकाशित हुई है जिसके द्वारा आईपीसी की धारा 506 को संज्ञेय एवं गैर जमानती बनाया गया।

8. यूपी गजट, अतिरिक्त, भाग-4, खंड (खा) दिनांक 2 अगस्त, 1989 में प्रकाशित उपरोक्त अधिसूचना संख्या 777/VIII 9-4(2)-87 दिनांक 31 जुलाई 1989 इस प्रकार बताती है:

"आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 (1932 का अधिनियम संख्या XXIII) की धारा 10 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (1897 का अधिनियम संख्या 10) की धारा 21 के साथ पठितऔर इस संबंध में जारी अधिसूचनाओं के सुपर सत्र में, राज्यपाल यह घोषणा करते हुए प्रसन्न हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, जब उत्तर प्रदेश के किसी भी जिले में किया जाता है, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या 2) में किसी भी बात के बावजूद संज्ञेय और गैर-जमानती होगा।"

9. उपरोक्त अधिसूचना आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 (1932 का अधिनियम संख्या 23) की धारा 10 के तहत जारी की गई है, जो इस प्रकार प्रदान करती है: "10. कुछ अपराधों को संजेय और गैर-जमानती बनाने की राज्य सरकार की शक्ति । -

(1) राज्य सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, घोषणा कर सकती है कि कोई भी अपराध भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 186, 188, 189, 190, 228, 295ए, 298, 505, 506 या 507 के तहत दंडनीय है। अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी क्षेत्र में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) में किसी भी बात के बावजूद, संज्ञेय होगा, और उसके बाद दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, जब तक ऐसी अधिसूचना लागू रहेगी, तब तक उसे तदनुसार संशोधित माना जाएगा।

(2) राज्य सरकार, समान तरीके से और समान शर्तों के अधीन और समान प्रभाव से, घोषणा कर सकती है कि भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 188 या धारा 506 के तहत दंडनीय अपराध गैर-जमानती होगा। "

10. उपरोक्त अधिसूचना दिनांक 31-07-1989 की वैधता की जांच इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा वीरेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य, 2002 भारतीय कानून रिपोर्ट इलाहाबाद श्रृंखला 653 2002 (2) यूसी 453 में की गई थी और उस मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दियाः -

"6. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 10 राज्य सरकार को आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के किसी भी भाग को अधिसूचना द्वारा संशोधित करने की शक्ति नहीं देती है चूँकि 1898 की दण्ड प्रक्रिया संहिता को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 484 द्वारा निरस्त कर दिया गया है। अधिनियम, 1973 हमारी राय है कि आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 10 निरर्थक और अप्रासंगिक हो गई है। इसलिए हमारी राय में आपराधिक कानून

संशोधन अधिनियम, 1932 की धारा 10 के तहत अब कोई अधिसूचना नहीं की जा सकती है। ऊपर दिए गए कारण से ऐसी कोई भी अधिसूचना अवैध है। इसलिए हम अधिसूचना संख्या 777/VIII-94(2)-87, दिनांक 31 जुलाई, 1989 को यूपी राजपत्र, अतिरिक्त भाग-4, खंड (खा), दिनांक 2 अगस्त, 1989 को प्रकाशित घोषित करते हैं जिसके द्वारा आईपीसी की धारा 506 को संजेय और गैर जमानती बनाकर अवैध बना दिया गया। धारा 506 आई.पी.सी. के अंतर्गत इसे जमानती और गैर संज्ञेय अपराध माना जाना चाहिए।"

11. हालाँकि, मेटा सेवक उपाध्याय बनाम स्टेट ऑफ़ यू पी 1995 सीजे (ऑल) 1158 के मामले में, इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने उपरोक्त अधिसूचना की वैधता की जांच की। यह नोट करना प्रासंगिक हो सकता हैहालांकि फुल बेंच ने कुछ जगहों पर अधिसूचना की तारीख 2 अगस्त 1989 बताई है जो वास्तव में आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख है और कुछ स्थानों पर अधिसूचना की तारीख 31 जुलाई, 1989 बताई गई है लेकिन अधिसूचना की सामग्री वही है जो ऊपर पुनः प्रस्तुत की गई है। पूर्ण पीठ ने इस प्रकार कहा:-

"61. 29 दिसंबर 1932 और 2 अगस्त 1989 की दो अधिसूचनाएँ हैं जो 1932 के अधिनियम की धारा 10 द्वारा प्रदत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी की गई जबकि, पहली अधिसूचना केवल कुछ जिलों पर लागू की गई थी, जिसका उल्लेख उसमें किया गया था, 2 अगस्त 1989 की दूसरी अधिसूचना जो इस संबंध में पहले जारी की गई अधिसूचनाओं के सुपर सत्र में जारी की गई थी, कहती है

राज्यपाल को यह घोषणा करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि उत्तर प्रदेश के किसी भी जिले में भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 506 के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में निहित किसी भी बात के बावजूद, संज्ञेय और गैर-जमानती होगा। इसलिए, दूसरी अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि वह 29 दिसंबर, 1932 की अधिसूचना के सुपर सेशन में जारी की गई थी और इस अधिसूचना का प्रभाव यह है कि आईपीसी की धारा 506 के तहत दंडनीय अपराध, जब उत्तर प्रदेश के बाहर किसी भी स्थान पर किया जाता है, आपराधिक प्रक्रिया संहिता में निहित किसी भी बात के बावजूद, संज्ञेय और गैर-जमानती होगा। आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की पहली अनुसूची में, आईपीसी की धारा 506 के तहत अपराध को गैर-संज्ञेय और जमानती बताया गया है।

लेकिन 2 अगस्त 1989 की अधिसूचना द्वारा 1932 के अधिनियम की धारा 10 के आधार पर इसे संपूर्ण उत्तर प्रदेश के लिए संजेय और गैर-जमानती घोषित किया गया है। 1932 के अधिनियम की धारा 10 राज्य सरकार को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषित करने की शक्ति प्रदान करती है कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी क्षेत्र में किया गया अपराध अन्य बातों के साथ-साथ आईपीसी की धारा 506 के तहत दंडनीय है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में किसी बात के होते हुए भी, संज्ञेय और गैर-जमानती होगी

और इसके बाद दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, जब तक ऐसी अधिसूचना लागू रहेगी, तदनुसार संशोधित मानी जाएगी। प्रस्तुतीकरण यह है कि 1932 के अधिनियम द्वारा, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में एक संशोधन किया गया था, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 484 के आधार पर निरस्त कर दिया गया था, जिसे 1 अप्रैल, 1974 को राष्ट्रपति द्वारा सहमति दी गई थी। 1932 का अधिनियम केवल 1889 की सीआरपीसी में संशोधन करने के लिए पारित किया गया था, श्री मिश्रा का तर्क यह है कि 1898 की सीआरपीसी की अवधि के बाद अधिनियम जीवित नहीं रह सकता था, जो अप्रैल 1974 में निरस्त होने के बाद समाप्त हो गया। संक्षेप में, उनका कहना है कि संशोधन अधिनियम का जीवन मूल अधिनियम से अधिक नहीं हो सकता है और संशोधन अधिनियम सह-विस्तृत है और मूल अधिनियम और 1898 के सीआरपीसी के साथ समाप्त होता है। जिसे 1932 के अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था, अप्रैल 1974 में निरस्त कर दिया गया था, 1932 का अधिनियम उसके बाद जीवित नहीं रह सका। श्री तुलसी का तर्क है कि यह कहना गलत है कि 1932 का अधिनियम केवल एक संशोधन अधिनियम है। उनका कहना है कि 1932 के अधिनियम को "आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1932" नाम दिया गया है। क्योंकि इसने आपराधिक कानून के सामान्य निकाय में कुछ संशोधन किए हैं और वास्तव में, 1932 का अधिनियम न केवल एक संशोधन अधिनियम है, बल्कि मूल कानून के साथ-साथ सीआरपीसी, 1898 और में संशोधन करने वाले प्रावधानों का एक अनूठा मिश्रण है। श्री तुलसी का कहना है कि इसमें ठोस प्रावधान भी शामिल हैं, इसलिए इसे 1898 की सीआरपीसी के साथ समाप्त नहीं कहा जा सकता, जिसमें कुछ संशोधन किए गए थे। 1932 के अधिनियम के अवलोकन से, श्री तुलसी का यह कथन सही प्रतीत होता है कि उक्त अधिनियम केवल एक संशोधन अधिनियम नहीं है, बल्कि यह मूल प्रावधानों के साथ-साथ 1898 के सीआरपीसी में संशोधन करने वाले प्रावधानों का मिश्रण है।

इसलिए सीआरपीसी 1898 के निरस्त होने के बावजूद, 1932 का अधिनियम अभी भी कानून की किताब में है।

62. इसलिए, श्री मिश्रा का यह तर्क कि 2 अगस्त, 1989 की अधिसूचना, जो एक मृत अधिनियम के तहत जारी की गई थी, अमान्य है, इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। तब श्री त्रिवेदी, जिनकी सहायता श्री आर. उनका कहना है कि राज्य सरकार को किसी भी क्षेत्र के लिए अधिसूचना जारी करने के लिए अनिर्देशित, अचैनलाइज्ड और मनमानी शक्ति के साथ खुली छूट दी गई है और इसलिए, धारा 10 अत्यधिक प्रतिनिधिमंडल के दोष से ग्रस्त है। 1932 के अधिनियम की धारा 10 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"10 कुछ अपराधों को संज्ञेय और गैर-जमानती बनाने की स्थानीय सरकार की शक्ति।-

(I) स्थानीय सरकार, स्थानीय आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, घोषित करें कि भारतीय दंड संहिता की धारा 186, 188, 189,

190, 228, 295, 298, 505, 506 या 507 के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, जब अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी क्षेत्र में अपराध किया जाता है, तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 में निहित किसी भी बात के बावजूद, संज्ञेय होगा और उसके बाद आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898, जब तक ऐसी अधिसूचना लागू रहती है, संज्ञेय होगा तदनुसार संशोधित समझा जाएगा।

12. पूर्ण पीठ ने यह माना कि "1932 के अधिनियम की धारा 10 और अधिसूचना संख्या 777/VIII-9-4 (2) (87) दिनांक 31 जुलाई, 1989 वैध हैं।

13. मेटा सेवक उपाध्याय (सुप्रा) में उपरोक्त पूर्ण पीठ के फैसले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एरेस रोड्रिग्स बनाम विश्वजीत पी. राणे (2017) 11 एससीसी 62 में मंजूरी दे दी है।

14. उपरोक्त अधिसूचना दिनांक 31 जुलाई 1989 की वैधता को मेटा सेवक उपाध्याय (सुपा) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा बरकरार रखा गया है और पूर्ण पीठ के फैसले को एयर्स रोड्रिग्स (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 506 आईपीसी के तहत कोई अपराध, यदि यूपी राज्य में किया जाता है, तो एक संजेय अपराध है।

15. इसलिए, आवेदकों/अभियुक्तों के विद्वान वकील की दलील में केवल संतोष कुमार और 2 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य अनुराग यादव और 2 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य और रमा शंकर उपाध्याय और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (सुप्रा), के मामलों में निर्णयों के आधार पर गैर संज्ञेय अपराध करने का आरोप लगाया गया है जैसा कि उपरोक्त मामलों में गलत समझा गया है, आरोपी पर आईपीसी की धारा 323, 504 और 427 के तहत अपराध दर्ज किया गया था जो गैर-संज्ञेय अपराध हैं, जबकि मौजूदा मामले में, आवेदकों पर आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है, जिनमें से एक, यानी धारा 506 के तहत अपराध एक संज्ञेय अपराध है।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 की उपधारा 4 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि

"जहां कोई मामला दो या दो से अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संजेय है, तो मामले को संज्ञेय मामला माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध गैर-संज्ञेय हो।"

17. कानून के उपरोक्त प्रावधानों के मद्देनजर, चूंकि आरोपियों पर आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत आरोप लगाए गए थे, इसलिए उन पर संज्ञेय अपराधों के मुकदमे के लिए निर्धारित तरीके से दोनों अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

18. इसलिए, आवेदन में योग्यता नहीं है और तदनुसार इसे अस्वीकार कर दिया गया है।

(2023) 8 ILRA 44

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 41434 वर्ष 2022

मोहम्मद यूनुस मलिक ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण

आवेदक के लिए अधिवक्ता:
श्री अनवर हुसैन

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, श्री पवन कुमार शुक्ला, श्री मनीष त्रिवेदी

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 - खाते में धनराशि की कमी आदि के कारण चेक का अनादर, धारा 142 - अपराधों का संज्ञान, धारा 146 - बैंक की पर्ची प्रथम दृष्टया कुछ तथ्यों का साक्ष्य - यदि चेक वापसी ज्ञापन पर बैंक के हस्ताक्षर और मुहर नहीं है, लेकिन यह बैंक द्वारा वैध रूप से जारी किया गया है, तो इससे अधिनियम, 1881 की धारा 138 की कार्यवाही अविधिमान्य या अवैध नहीं होगी। (प्रस्तर-13,14)

प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा धारा 142 के अंतर्गत परिवाद प्रकरण दायर किया गया - आधार - चेक बाउंस होना - बैंक का कोई आधिकारिक चिह्न, हस्ताक्षर और मुहर नहीं होना - मुहर या हस्ताक्षर के अभाव में पत्र को विधिमान्य दस्तावेज नहीं माना जा सकता - संज्ञान आदेश पारित - अनुपयुक्त और निरस्त किये जाने योग्य - इसलिए आवेदन। **(प्रस्तर-3)**

अभिनिर्धारित हुआ:- पत्र कूटरचित दस्तावेज़ नहीं है और चेक बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और अपर्याप्त धनराशि के कारण अस्वीकृत हो गया था, इसलिए अधिनियम की धारा 146 की आवश्यकता पूरी होती है। बैंक द्वारा जारी किया गया ऐसा अहस्ताक्षरित पत्र, अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अंतर्गत कार्यवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं बन सकता। **(प्रस्तर-11)**

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

गुनीत भसीन बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र राज्य एवं अन्य, (2023) 296 डीएलटी 401

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान वकील श्री अनवरी हुसैन, राज्य-विरोधी पक्ष संख्या 1 के लिए विद्वान वकील श्री पवन कुमार शुक्ला, विपरीत पक्ष संख्या 2 के लिए विद्वान वकील और

आईसीआईसीआई-बैंक के लिए विद्वान वकील श्री मनीष त्रिवेदी को सुना।

2. वर्तमान 482 सीआरपीसी आवेदन परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (इसके बाद अधिनियम, 1881 के रूप में संदर्भित) की धारा 138 के तहत आपराधिक शिकायत मामले संख्या 36644/ 2022 (अनुज कुमार गुप्ता बनाम मोहम्मद यूनुस मलिक) की पूरी कार्यवाही एवं साथ ही सम्मन आदेश दिनांक 20.6.2022. को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. आवेदक के विद्वान वकील ने कहा कि चेक बाउंस होने के आधार पर विपक्षी संख्या 2 द्वारा अधिनियम, 1881 की धारा 142 के तहत शिकायत मामला दायर किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि शिकायत के साथ बैंक का दिनांक 20.4.2022 का पत्र भी संलग्न किया गया है जिसमें कोई मुहर या हस्ताक्षर नहीं है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि मुहर या हस्ताक्षर के अभाव में पत्र को वैध दस्तावेज नहीं माना जा सकता। उन्होंने आगे कहा कि ऐसे पत्र पर भरोसा करते हुए संज्ञान आदेश पारित किया गया है, जो गलत है और रद्द किये जाने योग्य है।

4. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान वकील श्री पवन कुमार शुक्ला ने विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि उन्हें बैंक से वही पत्र प्राप्त हुआ है और उसी आधार पर उन्होंने उक्त पत्र के साथ शिकायत दर्ज की है, इसलिए, उन्होंने हर स्थिति में गलती नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि यदि चेक और पत्र पर बैंक की कोई आधिकारिक मुहर नहीं है, तो यह उक्त पत्र को अमान्य या अवैध नहीं बनाता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***गुनीत भसीन बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य और अन्य (2023) 296 डीएलटी 401*** में रिपोर्ट किए गए मामले में दिल्ली कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है।

5. इससे पहले इस न्यायालय ने दिनांक 4.7.2023 के आदेश के तहत आईसीआईसीआई बैंक को पक्षकार बनाया था और बैंक को जवाबी हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया था।

6. इसके अनुपालन में, आईसीआईसीआई-बैंक के विद्वान वकील श्री मनीष त्रिवेदी ने जवाबी हलफनामा दायर किया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि यह पत्र बैंक द्वारा जारी किया गया था, लेकिन अनजाने में, उस पर हस्ताक्षर नहीं किया जा सका। इसके अलावा, बैंक ने इस वचन के साथ बिना शर्त माफी मांगी है कि बैंक भविष्य में अधिक सचेत रहेगा और ऐसी गलतियाँ दोबारा नहीं दोहराई जाएंगी।

7. आवेदक के विद्वान वकील श्री अनवर हुसैन ने अपने प्रत्युत्तर तर्क में कहा कि अधिनियम, 1881 की धारा 146 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अनादरित चेक की सूचना पर आधिकारिक चिह्न होना चाहिए और इसके आलोक में आवेदक के खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और बैंक द्वारा जारी पत्र का अवलोकन किया है।

9. इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा अधिनियम, 1881 की धारा 146 की व्याख्या के बारे में है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

<u>"परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 में धारा 146</u>

न्यायालय, इस अध्याय के तहत प्रत्येक कार्यवाही के संबंध में, बैंक की पर्ची या मेमो प्रस्तुत करने पर, जिस पर यह दर्शाने वाला आधिकारिक चिह्न हो कि चेक अनादरित हो गया है, ऐसे चेक के अनादर के तथ्य को मान लेगा, जब तक कि ऐसा तथ्य सिद्ध न हो जाए। "

10. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से, कानून का इरादा बिल्कुल स्पष्ट है यानी इस तथ्य को सत्यापित करना कि क्या चेक बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और कुछ कारणों से अनादरित हो गया था या नहीं। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, बैंक ने सूचित किया है कि चेक 'अपर्याप्त धनराशि' के कारण अनादरित हो गया था, लेकिन दिनांक 20.4.2022 के उक्त पत्र में बैंक का कोई आधिकारिक चिह्न, हस्ताक्षर और मुहर नहीं है। बैंक ने जवाबी हलफनामा दायर किया है और पत्र को स्पष्ट रूप से अनुमोदित किया है और कहा है कि अनजाने में हस्ताक्षरित पत्र छूट गया है। जवाबी हलफनामे का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"3. यह कि अभिसाक्षी बहुत ही निष्पक्षता से प्रस्तुत करता है कि शिकायतकर्ता अनुज कुमार गुप्ता द्वारा प्रस्तुत चेक आईसीआईसीआई बैंक में समाशोधन के लिए प्रस्तुत किया गया था, जिसे समाशोधन बैंक को भेजा गया था और यह "अपर्याप्त निधियों" के कारण बाउंस हो गया और बाउंस मेमो दिनांक 20.4. .2022 आईसीआईसीआई बैंक द्वारा जारी किया गया था और खाताधारक को पीओडी संख्या 5311190k के माध्यम से डीटीडीसी कूरियर द्वारा भेजा गया था, जिस पर अनजाने में हस्ताक्षर होना बाकी रह गया था।

4. यह कि उपरोक्त बाउंसिंग मेमो सीटीएस दिशानिर्देशों के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक रूप से तैयार किया गया था, जहां यह स्पष्ट रूप से "अपर्याप्त निधि" की टिप्पणी को दर्शाता है, हालांकि मेमो जारी करने में हुई असावधानी पर आईसीआईसीआई बैंक को अत्यधिक खेद है और बैंक इसके लिए माफी मांगता है और वचन देता है कि भविष्य में किसी भी लेन-देन में ऐसा कभी नहीं होगा।

5. आईसीआईसीआई बैंक एक जिम्मेदार कानून का पालन करने वाला और विवेकपूर्ण बैंक होने के नाते बांड मेमो जारी करने में अनियमितता को नियमित करने के लिए उसी तारीख का एक और बाउंसिंग मेमो जारी कर रहा है और भविष्य में अपनी अनजाने में हुई गलती को नहीं दोहराने का वचन देता है। डुप्लीकेट बाउंसिंग मेमो की फोटोकॉपी इस संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के अनुबंध-एससीए 1 के रूप में दाखिल की जा रही है। (सुनवाई के समय

मूल नया बाउंसिंग मेमो इस माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा)"

11. अब बैंक द्वारा जवाबी हलफनामे में दिए गए कथनों के आलोक में, यह बहुत स्पष्ट है कि पत्र जाली दस्तावेज नहीं है और चेक बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और अपर्याप्त निधि के कारण अनादरित हो गया था, इसलिए, अधिनियम की धारा 146 की आवश्यकता पूरी हो गई है और बैंक द्वारा जारी किया गया अहस्ताक्षरित पत्र अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत कार्यवाही को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता है।

12. मैंने ***गुनीत भसीन (सुप्रा)*** के मामले में दिल्ली कोर्ट के फैसले का भी अध्ययन किया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"9 चेक रिटर्न मेमो एक मेमो है जो प्राप्तकर्ता के बैंकर और प्राप्तकर्ता को चेक के अनादर के बारे में सूचित करता है। जब चेक अनादरित हो जाता है, तो अदाकर्ता बैंक तुरंत भुगतान न करने के कारण का उल्लेख करते हुए प्राप्तकर्ता के बैंकर को एक चेक रिटर्न मेमो जारी करता है। चेक रिटर्न मेमो का उद्देश्य चेक धारक को यह जानकारी देना है कि प्रस्तुतीकरण पर उसका चेक रिटर्न मेमो में उल्लिखित विभिन्न कारणों से भुनाया नहीं जा सका। एन.आई.एक्ट की धारा 146 के अनुसार, प्रस्तुति पर चेक रिटर्न मेमो चेक के अनादरण के तथ्य को मानता है जब तक कि ऐसा तथ्य अस्वीकृत न हो जाए। न तो धारा 138 और न ही एनआई अधिनियम की धारा 146 में चेक रिटर्न मेमो का कोई विशेष विवरण निर्धारित किया गया है।एनआई अधिनियम की धारा 138 चेक रिटर्न मेमो के किसी विशेष रूप को अनिवार्य नहीं करती है, जो कि चेक के देय धारक के बैंकर द्वारा दी गई एक मात्र सूचना है कि चेक को बिना भुगतान के वापस कर दिया गया है। यदि चेक रिटर्न मेमो पर बैंक की कोई आधिकारिक मुहर नहीं है, तो यह चेक रिटर्न मेमो को अमान्य या अवैध नहीं बनाता है। चेक रिटर्न मेमो कोई दस्तावेज़ नहीं है जिसे बैंकर्स बुक (साक्ष्य) अधिनियम, 1891 की धारा 4 के तहत कवर करने की आवश्यकता नहीं है। यदि चेक रिटर्न मेमो में कोई खामी है, तो यह एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत पूरे मुकदमे को रद्द नहीं करता है।"

13. इसके अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि यदि चेक रिटर्न मेमो पर बैंक की कोई आधिकारिक मुहर नहीं है, तो यह चेक को अमान्य या अवैध नहीं बनाता है। इसके अलावा, यदि चेक या पत्र में कोई खामी है, तो यह अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत पूरे मुकदमे को रद्द नहीं करता है।

14. अधिनियम, 1881 की धारा 146 के प्रावधानों, बैंक की ओर से दायर जवाबी हलफनामे और गुनीत भसीन (सुप्रा) के मामले में दिल्ली कोर्ट के फैसले को देखने के बाद, इस न्यायालय का दृढ़ विचार है कि चेक रिटर्न मेमो के मामले में इस पर बैंक के हस्ताक्षर और मोहर नहीं हैं, लेकिन यह बैंक द्वारा वैध रूप से जारी किया गया है, जिससे अधिनियम, 1881 की धारा 138 की कार्यवाही अमान्य या अवैध नहीं होगी।

15. यहां ऊपर उल्लिखित उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ यहां चर्चा किए गए कानून के मद्देनजर, इस न्यायालय को आवेदन पर विचार करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिला और इसमें योग्यता की कमी है और इसे **खारिज** किया जाता है। मूल्य के हिसाब से कोई आर्डर नहीं।

16. जहां तक बैंक का सवाल है, उसकी ओर से लापरवाही हुई है, इसलिए, यह न्यायालय बैंक के सर्वोच्च प्राधिकारी यानी आईसी आईसीआई के सीईओ/एमडी को निर्देश जारी कर रहा है कि वे सभी शाखा प्रबंधकों को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से अधिकतम दो सप्ताह के भीतर आदेश/पत्र/परिपत्र जारी करें कि ऐसे पत्र जारी करते समय सावधानी बरतें। यदि बैंक के किसी भी अधिकारी द्वारा इस प्रकार की गलती दोहराई जाती है, तो उसे दोषी अधिकारी या कर्मचारी के खिलाफ कानून के अनुसार सख्त कार्रवाई करने का निर्देश दिया जाता है।

17. आईसीआईसीआई-बैंक के विद्वान वकील श्री मनीष त्रिवेदी को निर्देश दिया जाता है कि वे तत्काल अनुपालन के लिए इस आदेश की प्रति आईसीआईसीआई बैंक के सीईओ/एमडी को भेजें।

(2023) 8 ILRA 47

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन अंतर्गत धारा 438 दं.प्र.सं. संख्या 8059 वर्ष 2023

डॉ. रजनी त्रिपाठी ...आवेदिका

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

सुश्री कंचन शर्मा, श्री प्रशांत व्यास, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री वीरेंद्र सिंह

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री प्रकाश द्विवेदी, श्री अमरेंद्र नाथ सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420, 467, 468, 471 और 204 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313, 482, 438 (6) (ए) और (बी) और 439- अग्रिम जमानत आवेदन - आवेदिका, जो एक डिग्री कॉलेज में प्रधानाचार्य है, हिंदी और अर्थशास्त्र पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी के लिए आवंटित धन के दुरुपयोग की अभियुक्त थी - संगोष्ठी का आयोजन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी), नई दिल्ली और अन्य स्रोतों से प्राप्त वित्तीय सहायता का उपयोग करके किया गया था - प्र.सू.रि. - आरोपों के कारण उसे पद से निलंबित कर दिया गया, और आगे की आपराधिक कार्यवाही शुरू हुई - अभियुक्त की जाँच - दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत - अभिकथन दर्ज किए गए - न्यायालय ने निर्धारित किया कि आवेदिका

प्रतिलिपि

को यह कहते हुए एक वचनबद्धता दायर करनी होगी कि जब साक्ष्य और साक्षियों की जाँच निर्धारित हो, तो वह स्थगन की मांग नहीं करेगी - यदि आवेदिका जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना शर्तों का पालन नहीं करती है, तो विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मान सकता है और उचित कार्रवाई कर सकता है - तदनुसार, आवेदिका की जमानत आवेदन को निर्देशों के साथ निपटाया जाता है - आवेदिका साक्ष्य और साक्षियों की जाँच के लिए निर्धारित तिथियों पर न्यायालय में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करेगी - इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय जमानत रद्द कर सकता है और कानून के अनुसार आगे बढ़ सकता है। (प्रस्तर - 24, 25, 26)

आवेदन निस्तारित किया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. अमरावती एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2004 (57) एएलआर 290

2. लाल कमलेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (3) एडीजे 322

3. हुसैन एवं अन्य बनाम भारत संघ, (2017) 5 एससीसी 702

4. ब्रह्म सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15609 वर्ष 2016, दिनांक 08.07.2016

5. अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2014) 8 एससीआर 128

6. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं एक अन्य, (2020) 5 एससीसी 1

7. सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य, 2022 0 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1378

8. सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन राजस्थान 1654

9. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1980 एससी 1632

10. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1980 एससी 1632

11. राजेश कुमार शर्मा बनाम सी.बी.आई., 2022 0 सुप्रीम (इलाहाबाद) 1331

12. नरिंदरजीत सिंह साहनी बनाम भारत संघ, (2002)2 एससीसी 210

13. एमडी असफाक आलम बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य (आपराधिक अपील संख्या 2207 वर्ष 2023, विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 3433 वर्ष 2023 दिनांक 31.07.2023 से उत्पन्न

14. विनोद कुमार शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2022 1 क्राइम्स (एससी) 193

15. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)-2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 98

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव द्वारा प्रदत्त)

1. श्री वीरेंद्र सिंह, अधिवक्ता द्वारा आज अपीलार्थी की ओर से वकालतनामा दाखिल किया गया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. श्री वी. पी. श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ वकील श्री प्रशांत व्यास और श्री सुरेंद्र कुमार की सहायता से, अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील, श्री प्रकाश द्विवेदी और श्री अमरेंद्र नाथ सिंह, मुखबिर के लिए विद्वान वकील और राज्य की ओर से श्री अमृत राज चौरसिया, विद्वान अतिरिक्त सरकारी वकील को सुना गया।

3. आज दाखिल किया गया पूरक हलफनामा रिकॉर्ड में लिया जाता है।

4. यह अग्रिम जमानत आवेदन (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के तहत) मुकदमा अपराध संख्या 676/2013, धारा 419, 420, 467, 468, 471 आईपीसी, थाना सिविल लाइन्स, जिला प्रयागराज में विचारण के दौरान जमानत की मांग करते हुए दायर किया गया है।

5. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष का आरोप है कि अपीलार्थी, जो प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज की प्रधानाचार्या बताई जाती हैं, को फरवरी, 2013 से निलंबित कर दिया गया था। यह आरोप लगाया गया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली और अन्य स्रोतों से प्राप्त धन के साथ 21, 22 और 23 फरवरी 2009 को कॉलेज में हिंदी और अर्थशास्त्र पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। डॉ. मधु टंडन राष्ट्रीय संगोष्ठी की समन्वयक थीं और अपीलार्थी इसकी निदेशक थीं। डॉ. मधु टंडन ने 20.04.2009 की अपनी शिकायत के माध्यम से सूचित किया कि उन्होंने प्रधानाचार्य के कहने पर उक्त अर्थशास्त्र संगोष्ठी में स्मृति चिन्हों की छपाई में 12,500/- खर्च किए थे, लेकिन प्रधानाचार्य/अपीलार्थी द्वारा भुगतान नहीं किया गया है। आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि 16.07.2009 की प्रबंध समिति की बैठक में, प्रधानाचार्य ने डॉ. मधु टंडन द्वारा किए गए खर्च का भुगतान करने और संगोष्ठी की आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करने का आश्वासन दिया था, लेकिन उन्होंने न तो डॉ. मधु टंडन द्वारा किए गए खर्च का भुगतान किया और न ही आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत किया और किसी न किसी बहाने मामले को टालती रहीं, जिसके कारण मामला लंबे समय से लंबित है। इस बीच, डॉ. मधु टंडन को डीएवी कॉलेज, लखनऊ में स्थानांतरित कर दिया गया है और वहां से भी उन्होंने कई अनुरोध भेजे लेकिन प्रधानाचार्य ने कोई जवाब नहीं दिया। यह भी आरोप लगाया गया है कि वर्ष 2008-09 से लेकर वर्ष 2011-12 तक की लेखा परीक्षा में आपत्ति उठाई गई थी कि वर्ष 2008-09 में आयोजित संगोष्ठी में प्रधानाचार्य द्वारा एक नया खाता खोलकर धनराशि निकाली गई थी, लेकिन निरीक्षण/लेखा परीक्षा

के समय न तो व्यय प्रमाण पत्र और न ही कार्यवाही रजिस्टर प्रस्तुत किया गया था और यह कहा गया है कि प्रधानाचार्य ने वार्षिक उत्सव निधि से वर्ष 2009, 2010 और 2011 में धन निकाला था, लेकिन उसका व्यय प्रमाण पत्र लेखा परीक्षा के समय प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसके बाद, प्राचार्या ने 05.10.2012 को हुई अपनी बैठक में प्रबंध समिति को सूचित किया कि उन्हें संगोष्ठी 2009 के बिल / वाउचर / दस्तावेज प्राप्त हो गए हैं और प्रबंध समिति की पिछली बैठक में लिए गए निर्णय के अनुपालन में, वह इसे अध्यक्ष को प्रस्तुत कर रही हैं। यह भी आरोप लगाया गया है कि बैठक समाप्त होने के बाद, प्रबंध समिति ने बिल वाउचर की फोटोकॉपी कॉलेज कार्यालय के क्लर्क को प्रस्तुत की। यह आगे आरोप लगाया गया है कि 24.11.2012 की प्रबंध समिति की बैठक में फिर से प्रधानाचार्य को संगोष्ठी 2009 के मूल बिल वाउचर पेश करने का निर्देश दिया गया था, तब प्रधानाचार्य द्वारा 29.11.2012 को मूल बिल वाउचर पेश किया गया था। संगोष्ठी 2009 और वार्षिक महोत्सव वर्ष 2009 और 2011 कॉलेज कार्यालय में। इसके बाद, यू.जी.सी. नई दिल्ली द्वारा निर्धारित वस्तुओं के अलावा अन्य मदों पर खर्च और 20,000/- रुपये से अधिक के नकद मेमो के कारण, प्रबंध समिति ने प्रबंधक को प्राचार्य द्वारा प्रस्तुत वाउचरों पर प्रारंभिक जांच के बाद एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। प्रारंभिक जांच के बाद, प्रबंधक को विभिन्न वाउचर संदिग्ध लगे, जिसके बाद कॉलेज की प्रबंध समिति द्वारा मामले की जांच के लिए तीन सदस्यीय जांच समिति का गठन किया गया और प्रधानाचार्य को निलंबित कर दिया गया। यह भी आरोप लगाया गया है कि जांच समिति ने 12.03.2013 को प्रधानाचार्य को आरोप पत्र जारी किया था जिसका उत्तर अपीलार्थी/प्रधानाचार्य द्वारा दिया गया था। जांच समिति ने जांच करने के बाद अपनी जांच रिपोर्ट दिनांक 17.08.2013 को प्रस्तुत की। प्रबंध समिति की 05.09.2013 की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुपालन में, जांच रिपोर्ट की एक प्रति अपीलार्थी/प्रधानाचार्य के साथ-साथ कुलपति, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर को सूचना के लिए भेजी गई थी। यह भी आरोप लगाया गया है कि प्रधानाचार्य ने 20.09.2013 को कार्यालय में अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया था और 21.09.2013 की प्रबंध समिति की बैठक में अपना मौखिक बयान भी दर्ज कराया था और अपीलार्थी की प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद जांच रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई थी। यह आरोप लगाया गया है कि जांच समिति द्वारा की गई जांच के बाद, यह विधिवत पाया गया कि कॉलेज का यूजीसी खाता पहले ही यूको बैंक सिविल लाइन में खोला जा चुका है, लेकिन अपीलार्थी/प्रधानाचार्य ने स्वेच्छा से उसी बैंक में एक नया खाता खोला और यूजीसी, नई दिल्ली से प्राप्त 90,000/- रुपये की राशि जमा की और 03.02.2009 को, प्रबंध समिति की सहमति/अनुमोदन के बिना, और बैंक अधिकारियों के साथ मिलीभगत से 90,000/- रुपये की राशि निकालकर उसका दुरुपयोग किया और यूजीसी कैश बुक में प्राप्त भुगतान की प्रविष्टि को भी छिपा दिया। यह भी आरोप लगाया गया है कि अपीलार्थी द्वारा कार्यालय में विभिन्न रकमों के लिए प्रस्तुत किए गए वाउचर जाली और गढ़े हुए पाए गए। इस

प्रकार, यह आरोप लगाया गया है कि अपीलार्थी/प्रधानाचार्य ने अपने पद का दुरुपयोग करके पूरी राशि हड़प ली।

6. अभिलेखों से यह भी पता चलेगा कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद अपीलार्थी ने इस न्यायालय में आपराधिक विविध याचिका (सीएमडब्लूपी संख्या. 9412/2014) दायर कर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जिसमें अपीलार्थी को 2.6.2014 के आदेश के माध्यम से आरोप पत्र दाखिल होने तक अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया था। इसके बाद, मामले में आरोप पत्र 19.01.2015 को प्रस्तुत किया गया, जिसके बाद निचली न्यायालय ने 7.2.2020 को संज्ञान लिया और अपीलार्थी को मुकदमे का सामना करने के लिए सम्मन जारी किया। अपीलार्थी ने आरोप पत्र और समन आदेश को चुनौती देते हुए 2023 की धारा 482 संख्या 10577 के तहत आपराधिक विविध आवेदन दायर करके फिर से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे निम्नलिखित टिप्पणी के साथ दिनांक 6.4.2023 के आदेश के तहत निपटाया गया:-

*"..... हालांकि, इस आवेदन **का निस्तारण** इस निर्देश के साथ किया जाता है कि निचली न्यायालय अंतरिम जमानत का लाभ बढ़ाएगी (यदि संबंधित न्यायालय इसे प्रत्येक मामले की योग्यता के अनुसार उचित समझे) जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **अमरावती और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में निर्धारित कानून में 2004 (57) एएलआर 290** में रिपोर्ट किया गया है, साथ ही माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय **2009 (3) एडीजे 322 (एससी) लाल कमलेंद्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश** राज्य में रिपोर्ट किया गया है। अपीलार्थी दो सप्ताह के भीतर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करता है और यदि उसकी जमानत याचिका दायर की जाती है, तो उसका निपटारा निचली न्यायालयों द्वारा बोलने और तर्कपूर्ण आदेश के साथ किया जाएगा, सख्ती से कानून के अनुसार, माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णय के आलोक में **हुसैन और अन्य बनाम भारत संघ के मामले में (2017) 5 एससीसी पृष्ठ -702,** में रिपोर्ट किया गया, जिसका प्रासंगिक अंश निम्नानुसार है:*

"?.....न्यायिक सेवा के साथ-साथ कानूनी सेवा किसी भी अन्य सेवा की तरह नहीं है। वे समाज की सेवा करने के उद्देश्य से हैं। यदि कतार में प्रतीक्षा कर रहे मुवक्किल को लंबे समय तक अपनी बारी नहीं मिलती तो उद्देश्य पूरा नहीं होता" ..... "हिरासत में विचाराधीन व्यक्तियों के मामलों का फैसला प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में से एक है। त्वरित सुनवाई के अधिकार के प्रवर्तन में हर स्तर पर बाधाएँ हैं; निहित स्वार्थ या बेईमान तत्व कार्यवाही में देरी करने का प्रयास करते हैं" ..... "सभी बाधाओं के बावजूद, उद्देश्य की सफलता के लिए हर स्तर पर दृढ़ प्रयास की आवश्यकता है" ..... "न्यायालय का पीठासीन अधिकारी असहायता की स्थिति में विश्राम नहीं कर सकता है।" यह राज्य की संवैधानिक जिम्मेदारी है कि वह आवश्यक बुनियादी ढांचा प्रदान करे और उच्च न्यायालयों को मामलों के समय पर निपटान सुनिश्चित करने के लिए अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज की निगरानी करे।"

मामलों के शीघ्र निपटान को पूरा करने के लिए, हुसैन और अन्य (उपरोक्त) के मामले में

किए गए अवलोकनों के अनुसार निचली न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:

(i) जमानत आवेदनों का सामान्य रूप से एक सप्ताह के भीतर निपटारा किया जाए:

(ii) मजिस्ट्रेटी मुकदमों, जहां आरोपी हिरासत में हैं, को सामान्य रूप से छह महीने के भीतर समाप्त कर दिया जाएगा और सत्र मुकदमों, जहां आरोपी हिरासत में हैं, को सामान्य रूप से दो साल के भीतर समाप्त कर दिया जाएगा।

(iii).....;

(iv)..... .."

उपरोक्त समयसीमाएं वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में न्यायिक प्रदर्शन के आकलन के लिए कसौटी हो सकती हैं। आज से दो सप्ताह की अवधि के लिए, उक्त मामले में अपीलार्थी के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी। यह स्पष्ट किया जाता है कि दो सप्ताह की अवधि बढ़ाने के लिए किसी भी समय विस्तार आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा। उपर्युक्त अनुपात माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्देशों का पालन करने के लिए प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए अंतिम शब्द है। उपरोक्त परिदृश्य में, ***ब्रह्म सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य(उपरोक्त)*** *के मामले का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जिस पर 08.07.2016 को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15609/2016 में फैसला सुनाया गया था, जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने निचली न्यायालयों के स्तर पर लंबित जमानत आवेदनों के संबंध में अधिकांश वकीलों की चिंताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी व्यथा और चिंता व्यक्त की है।*

उपरोक्त पृष्ठभूमि में, माननीय सत्र न्यायधीश /the संबन्धित विचारणीय न्यायधीश को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि ***हुसैन और अन्य (उपरोक्त)*** *के मामले में और साथ ही* ***ब्रह्म सिंह और अन्य (उपरोक्त)*** *में दिए गए दिशानिर्देशों को उसके पत्र और भावना के अनुसार पूरा किया जाना है, जिसके अभाव में त्रुटिपूर्ण अधिकारियों के खिलाफ प्रतिकूल अनुमान लगाया जाएगा और यह न्यायालय उनके खिलाफ उचित कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगा, यदि यह पाया जाता है कि उपरोक्त निर्देशों का पालन करने में ढिलाई हुई है।*

यदि, जमानत आवेदन का फैसला ऊपर वर्णित सात दिनों के भीतर नहीं किया जाता है, तो माननीय न्यायधीश को उचित कारण बताने होंगे और ऐसे मामलों के आदेश पत्र पर उसी को दर्ज करना होगा।

7. इसके बाद, अपीलार्थी ने कहा कि उसने निचली न्यायालय से अग्रिम जमानत याचिका दायर कर संपर्क किया है, जिसे 31.05.2023 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, इसलिए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन है।

8. अपीलार्थी के लिए माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलार्थी को इस

मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है। वह एक महिला है और उसकी आयु लगभग 61 वर्ष है।यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कथित मामले में संस्थान के प्रबंधन द्वारा एक अनुशासनिक कार्यवाही भी शुरू की गई थी और मामला छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर के कुलपति तक पहुंच गया था, जिसमें अपीलार्थी के संबंध में कुछ अनुकूल टिप्पणियां की गई थीं। आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान झूठे आपराधिक मामले में अपीलार्थी की संलिप्तता अपीलार्थी को उनकी सेवानिवृत्ति के अंतिम चरण में परेशान करने के अलावा और कुछ नहीं है, जबकि प्रथम दृष्टया विवाद की प्रकृति 'सेवा विवाद' प्रतीत होती है। अपीलार्थी के लिए माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह दृढ़ता से प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी जांच अधिकारी द्वारा अपेक्षित समय पर जांच में शामिल हुआ है।उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी के विरुद्ध स्वीकार्य साक्ष्य का एक टुकड़ा भी नहीं है और उसे गलत तरीके से फंसाया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अब आरोप पत्र दाखिल हो चुका है, इसलिए अपीलार्थी को किसी भी प्रकार की हिरासत या कस्टोडियल पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी ने न्यायालय द्वारा उसे प्रदान की गई अंतरिम संरक्षण का दुरुपयोग भी नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में उसे गिरफ्तार किए जाने की निश्चित आशंका है। अपने तर्क के समर्थन में, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने **श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1980 एससी 1632; सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2020) 5 एससीसी 1.**

10. के निर्णयों पर भरोसा किया है। दूसरी ओर, सूचनार्थी के लिए माननीय अधिवक्ता और साथ ही राज्य के लिए माननीय अधिवक्ता ने जमानत के लिए प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया है, यह तर्क देते हुए कि अपीलार्थी को एक अन्य मामले में हिरासत में लिया गया है, जो कि धारा 468, 467, 471, 420, 379 आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 158/2004 और धारा 204, 506 आईपीसी, पीएस सिविल लाइन्स, जिला प्रयागराज के तहत मुकदमाअपराध संख्या 38/2004 है, इसलिए वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं है। इस संबंध में, माननीय अधिवक्तागणो ने **नरिंदरजीत सिंह साहनी बनाम भारत संघ, (2002) 2 एससीसी 210; सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन राज 1654 (राजस्थान उच्च न्यायालय)** के मामले पर भरोसा किया है। यह आगे सूचनार्थी के लिए माननीय अधिवक्ता और राज्य के लिए माननीय एजीए द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन का निपटारा करते समय, अपीलार्थी को आत्मसमर्पण करने और दो सप्ताह के भीतर निचली न्यायालय में जमानत के लिए आवेदन करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन अपीलार्थी द्वारा उक्त आदेश का पालन नहीं किया गया है।

11. उक्त दावे का खंडन करते हुए, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि केवल

इसलिए कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन का निपटारा करते समय इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को आत्मसमर्पण करने और जमानत के लिए आवेदन करने का निर्देश दिया गया था, इससे अपीलार्थी का धारा 438 सीआरपीसी के तहत अग्रिम जमानत दायर करने का अधिकार कम नहीं होता है। अपने तर्क के समर्थन में माननीय अधिवक्ता ने **विनोद कुमार शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 1 अपराध (एससी) 193** के मामले पर भरोसा किया।

12. **विनोद कुमार शर्मा (उपरोक्त)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि "केवल इसलिए कि यह याचिकाकर्ताओं के लिए आरोप पत्र दाखिल करने के बाद आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए खुला रखा गया था, वही याचिकाकर्ताओं आरोप पत्र दाखिल करने के बाद धारा 438 सीआरपीसी के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने से नहीं रोकता है।

13. जहां तक वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन की बनाए रखने के प्रश्न का संबंध है, इस मुद्दे को अभी तक माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा संबोधित नहीं किया गया है, हालांकि इस न्यायालय के एक समन्वय पीठ ने **राजेश कुमार शर्मा बनाम सीबीआई, 2022 0 सर्वोच्च (ऑल) 1331 में,** अग्रिम जमानत को बनाए रखने के मुद्दे की जांच की है, जहां आरोपी को पहले ही दूसरे मामले में गिरफ्तार कर लिया गया था और माना जाता है कि यदि कोई व्यक्ति पहले से ही गिरफ्तार है और किसी अन्य आपराधिक मामले के संबंध में पुलिस या न्यायिक हिरासत में है, जो समान अपराध के लिए या विभिन्न अपराधों के लिए हो सकता है, तो अग्रिम जमानत नहीं होगी और न ही बनाए रखी जाएगी। इसी तरह का विचार राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा **सुनील कल्लानी बनाम राजस्थान राज्य, 2022 0 क्रिम.एल.जे. 1378** के मामले में भी व्यक्त किया गया है।

14.धारा 438 सीआरपीसी किसी व्यक्ति को इस निर्देश के लिए आवेदन करने का अवसर प्रदान करती है कि यदि उसे किसी मामले में गिरफ्तार किया जाना है और उक्त व्यक्ति को यह **विश्वास करने का कारण** है कि उसे गिरफ्तार किया जाएगा तो उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है। यह कानून का प्रमुख सिद्धांत है कि प्रत्येक कानून को न्याय के लक्ष्यों को बढ़ावा देने और आगे बढ़ाने के लिए बनाया गया है। वैधानिक व्याख्या, उद्देश्य और प्रावधान की भावना को इसके इरादे से इकट्ठा किया जाना चाहिए। धारा 438 सीआरपीसी के प्रावधान को उत्तर प्रदेश राज्य में संशोधित रूप में पढ़ने से पता चलता है कि एकमात्र प्रतिबंध धारा 438 (6) सीआरपीसी के तहत प्रदान किया गया है, जो कहता है कि यह प्रावधान धारा 438 (6) (क)) और (ख) & आरोपों पर लागू नहीं होगा। सीआरपीसी और अग्रिम जमानत देने की शक्ति के प्रयोग पर किसी विशिष्ट प्रतिबंध के अभाव में स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि विधायिका ने उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने के लिए एक बहुत विस्तृत विवेक

प्रदान करने का इरादा किया था और वास्तव में प्रदान किया है।

भारत के विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में जमानत से संबंधित सिद्धांतों को दोहराया है। इस संबंध में प्रासंगिक सिद्धांतों में से एक यह है कि "यदि अपराध गैर-जमानती है तो जमानत विवेक का विषय है"। धारा 438 सीआरपीसी में विवेक को मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में तब तक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि न्यायालय उस स्तर पर संतुष्ट न हो जाए कि ऐसा आरोप झूठा या निराधार है।

धारा 438 सीआरपीसी के तहत, अग्रिम जमानत देने के लिए न्यायालय को विवेकाधीन शक्ति प्रदान की गई है। न्यायालय में निहित न्यायिक विवेक के लिए यह आवश्यक है कि वह उचित रूप से मन का प्रयोग करते हुए निर्धारित करे कि कोई मामला अग्रिम जमानत देने का उपयुक्त मामला है या नहीं।

15. यदि अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन की बनाए रखने को सही स्थिति के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, तो न्यायालय के पास जो विवेक उपलब्ध है, वह छीन लिया जाएगा। यहां तक कि अगर आरोपी के खिलाफ कई प्राथमिकियां दर्ज हैं, तो भी न्यायालय मौजूदा वैधानिक ढांचे के भीतर उन कारकों पर विचार करने के लिए अपनी क्षमता के भीतर है। धारा 438(1) सीआरपीसी, अन्य बातों के साथ-साथ, आरोप की प्रकृति और गंभीरता को आरोपी के इतिहास के साथ पढ़कर उन कारकों के रूप में प्रदान करता है जिन्हें अग्रिम जमानत देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने वाले न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। और जैसा कि विवेक के प्रयोग की आवश्यकता वाले किसी भी मामले के लिए सच है, उसे मनमाने ढंग से नहीं बल्कि विवेकपूर्ण ढंग से और अच्छी तरह से स्वीकृत और स्थापित मानकों के भीतर किया जाना चाहिए।

16. **श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर1980 एससी 1632** के मामले में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया है:

"39. पांचवां, आरोपी की गिरफ्तारी के बाद धारा 438 के प्रावधानों का आह्वान नहीं किया जा सकता है। एक आरोपी को "अग्रिम जमानत" देने में जो गिरफ्तार है, उसमें एक विरोधाभास शामिल है, जहां तक उसके द्वारा गिरफ्तार किए गए अपराध या अपराधों का संबंध है। गिरफ्तारी के बाद, आरोपी को धारा 437 या धारा 439 के तहत अपना उपाय तलाशना चाहिए, यदि वह उस अपराध या अपराधों के संबंध में जमानत पर रिहा होना चाहता है जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है।"

17. माननीय शीर्ष न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अनुसार, यह बहुत स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति उसी अपराध में हिरासत में है यदि कोई हो, जिसके लिए अग्रिम जमानत मांगी गई है, तो अग्रिम जमानत बनाए रखने योग्य नहीं होगी, अग्रिम जमानत की बनाए

रखने पर प्रतिबंध तभी होगा जब कोई व्यक्ति उस विशेष अपराध में ही हिरासत में हो।

18. माननीय शीर्ष न्यायालय के विभिन्न उद्घोषणाओं और धारा 438 सीआरपीसी के प्रावधानों के स्पष्ट पठन के माध्यम से सीआरपीसी, या किसी भी क़ानून में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है जो सत्र या उच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत पर विचार करने और निर्णय लेने से रोकता है, जब ऐसा व्यक्ति पहले से किसी अन्य अपराध के लिए न्यायिक या पुलिस हिरासत में हो। प्रतिबंध को किसी अन्य अपराध में की गई गिरफ्तारी को शामिल करने के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह प्रावधान के उद्देश्य और भावना के खिलाफ होगा।

19.वर्तमान मामले में, आवेदिका उपरोक्त अनुसार किसी अन्य मामले के अपराध के संबंध में हिरासत में है और उसे अभी तक पुलिस ने वर्तमान मामले में गिरफ्तार नहीं किया है। माननीय शीर्ष न्यायालय के **श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय के अनुसार, प्रतिबंध तभी है जब अग्रिम जमानत उसी अपराध के लिए मांगी जाती है जिसमें गिरफ्तारी पहले ही कर ली गई है।

20. **नरिंदरजीत सिंह साहनी और अन्य (सुप्रा)** के मामले पर राज्य के विद्वान वकील और सूचनार्थी ने भरोसा किया, जो अनुच्छेद 32 की स्थिरता के संबंध में था, जिसमें धारा 438 की प्रकृति में राहत की मांग की गई थी। यहां तक कि, उक्त निर्णय भी स्पष्ट रूप से यह नहीं कहता है कि एक अपराध में गिरफ्तार व्यक्ति दूसरे अपराध में धारा 438 सीआरपीसी के तहत प्रदान की गई राहत नहीं ले सकता है, केवल इस आधार पर कि उसे दूसरे अपराध में हिरासत में लिया गया है।

21.एक गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तारी की आशंका रखने वाले व्यक्ति को, भले ही उसे कई मामलों में गिरफ्तार किया गया हो, प्रत्येक पंजीकृत अपराध में आगे बढ़ने का पूरा अधिकार है,इस तथ्य के बावजूद कि वह पहले से ही हिरासत में है, लेकिन विभिन्न अपराध के लिए, इस कारण से कि इस तरह के प्रत्येक आवेदन को दूसरे अपराध से स्वतंत्र रूप से योग्यता के आधार पर सुना और निर्णयित किया जाना है, जिसमें वह पहले से ही हिरासत में है। इस प्रकार, आवेदन को बनाए रखने के संबंध में माननीय राज्य अधिवक्ता द्वारा लिया गया तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

22. विद्वान वरिष्ठ वकील ने **मोहम्मद असफाक आलम बनाम झारखंड राज्य और अन्य (आपराधिक अपील संख्या, 2023 की 2207 विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) से उत्पन्न) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है।) 2023 की संख्या 3433 पर 31.07.2023** को निर्णय लिया गया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सर्वोपरि महत्व पर जोर दिया और अग्रिम जमानत के संबंध में ऐतिहासिक दिशानिर्देश जारी किए। उक्त मामले में, अपीलकर्ता, मोहम्मद असफाक आलम ने

भारतीय दंड संहिता और दहेज निषेध अधिनियम की विभिन्न धाराओं के तहत आरोपों का सामना करने के बाद अग्रिम जमानत मांगी थी। हालांकि, उनकी याचिका को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया और आगे उन्हें निर्देश दिया कि वे निचली न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करें और नियमित जमानत की मांग करें। शीर्ष न्यायालय ने माना है कि गिरफ्तारी नियमित रूप से नहीं की जानी चाहिए और इस शक्ति का प्रयोग हिरासत में जांच की आवश्यकता या अभियुक्त को साक्ष्य से छेड़छाड़ या गवाहों को प्रभावित करने से रोकने के लिए निर्देशित होना चाहिए। शीर्ष न्यायालय ने अग्रिम जमानत देने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करने के लिए **अरुनेश कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2014) 8 एससीआर 128** सहित विभिन्न मामलों का हवाला देते हुए जोर दिया है कि जब तक असाधारण परिस्थितियां न हों, तब तक ऐसी जमानत दी जानी चाहिए।

23.पक्षों के माननीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों, माननीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों, और आरोपों की प्रकृति और अपीलार्थी के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, चूंकि आरोप पत्र अपीलार्थी की गिरफ्तारी के बिना दायर किया गया है, सभी भौतिक साक्ष्य और दस्तावेज एकत्र कर लिए गए हैं, अपीलार्थी को भी अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया था और कोई आरोप नहीं है कि अंतरिम संरक्षण की अवधि के दौरान उसने कभी गवाहों को प्रभावित करने या सबूतों से छेड़छाड़ करने का प्रयास किया है, इन परिस्थितियों में जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है। शीर्ष न्यायालय के संविधान पीठ के ***सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) - 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 98*** के मामले में निर्णय के अनुसार उसे अग्रिम जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया है। अपीलार्थी को दी जाने वाली अग्रिम जमानत के संबंध में भविष्य की आकस्मिकताओं को भी शीर्ष न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अनुसार ध्यान रखा जाएगा।

24. गिरफ्तारी की स्थिति में, अपीलार्थी को अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा। उक्त अपराध में शामिल अपीलार्थी डॉ. रजनी त्रिपाठी को निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित निचली न्यायालय की संतुष्टि के लिए 50,000/- रुपये के व्यक्तिगत बांड और प्रत्येक में समान राशि के दो जमानतदार जमा करने पर अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाए:

(1) अपीलार्थी मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोक सके; और

(2) अपीलार्थी संबंधित निचली न्यायालय से पूर्व अनुमति के बिना परीक्षण की अवधि के दौरान देश नहीं छोड़ेगा।

(3) आवेदिका अपने पासपोर्ट को, यदि कोई हो, तत्काल संबंधित न्यायालय में जमा कराएगी। उसका पासपोर्ट संबंधित न्यायालय की अभिरक्षा में रहेगा।

(4) अपीलार्थी इस आशय का एक उपक्रम दाखिल करेगी कि वह साक्ष्य के लिए तय की गई तारीखों पर कोई स्थगन नहीं मांगेगी और गवाह न्यायालय में मौजूद रहेगी इस शर्त के उल्लंघन के मामले में, निचली न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इसे जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माने और अपीलार्थी की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कानून के अनुसार आदेश पारित करे।

(5) यदि अपीलार्थी जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है, तो संबंधित न्यायालय ***सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) - 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 98*** के मामले में शीर्ष न्यायालय के कानून और निर्णय के अनुसार उचित कार्रवाई कर सकता है।

(6) अपीलार्थी निर्धारित तिथियों पर ट्रायल कोर्ट के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा (i) मामले के खूलने, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 सीआरपीसी के तहत बयान दर्ज करने के लिए तय की गई तारीखों पर निचली न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा। यदि निचली न्यायालय की राय में इस शर्त का उल्लंघन जानबूझकर या बिना पर्याप्त कारण के है, तो निचली न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इस तरह के उल्लंघन को जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माने और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही करे।

25. किसी भी शर्त के उल्लंघन या दुरुपयोग के मामले में, लोक अभियोजक/जांच अधिकारी /प्रथम सूचना-अभियोजक को अपीलार्थी को दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने के लिए उपयुक्त आवेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता है।

26.उपरोक्त टिप्पणियों / निर्देशों के साथ, आवेदन **निपटाया जाता है।**

(2023) 8 ILRA 56

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 10246 वर्ष 2022

संदीप कुमार ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

भूमिका बाजपेयी, चंद्रभानु सिंह, प्रशांत सिंह, राहुल कुमार शुक्ला

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, दिलीप कुमार पांडे

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 174-ए, 229-ए, 363, 366, 376 (3) और 504 - यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (पोक्सो) अधिनियम, 2012 - धारा 5 और 6 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 82, 164 और 313 - साक्ष्य अधिनियम,

1872 - धारा 35- जमानत आवेदन - प्र.सू.रि. - व्यपहरण, अपहरण, महिलाओं को विवाह के लिए बाध्य करने के साथ-साथ बलात्संग का अपराध - आरोप पत्र - जमानत आवेदन - न्यायालय ने पाया कि, शिकायतकर्ता ने दलील दी है कि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र के अनुसार, अभियोक्त्री की आयु 16 वर्ष से कम है इसलिए, यह उपधारित किया जाता है कि वह अवयस्क है - अभिनिर्धारित हुआ, मामले के गुणदोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना और इस तर्क पर विचार करने के बाद कि मेडिकल रिपोर्ट के साथ-साथ परिवार रजिस्टर के अनुसार, अभियोक्त्री की आयु 18 वर्ष पाई जाती है और धारा 164 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अभियोक्त्री का अभिकथन इंगित करता है कि यह सहमति का मामला है और तर्क है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और चूँकि जेल में झेल रहा है और ऊपर उद्धृत कानून के बिंदुओं को देखते हुए, न्यायालय की राय है कि आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है - तदनुसार निर्देश जारी किया गया। (प्रस्तर - 7, 8, 9)

जमानत आवेदन निस्तारित किया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. मोनीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 55026 वर्ष 2021

2. पी. युवाप्रकाश बनाम राज्य प्रतिनिधित्व द्वारा पुलिस निरीक्षक, 2023 लाइव लॉ (एससी) 538.

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल कुमार शुक्ला, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.-I श्री राजेश कुमार सिंह तथा वादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पाण्डेय के तर्कों को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान जमानत अर्जी आवेदक संदीप कुमार द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 055/2022, धारा-363, 366, 376(3) आई.पी.सी., और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण (पोक्सो) अधिनियम की धारा 5/6, थाना-शिवरतनगंज, जिला अमेठी में जमानत पर बढ़ाए जाने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियोक्त्री की माँ द्वारा धारा 363, 504 आई.पी.सी. के तहत दिनांक 06.04.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, उसने कहा है कि उसकी बेटी लापता है। उसने आगे कहा कि वह विनय रावत की पत्नी कुसमा के घर गई थी और अपनी बेटी का पता पूछा था, लेकिन उसे उसके और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा डांटा गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोक्त्री को एक महीने 26 दिन बाद बरामद किया गया तथा धारा 164 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में उसने यह बयान दिया है कि वह अपनी मर्जी से आवेदक के साथ हरियाणा गई थी। उसने मंदिर में विवाह किया है तथा आवेदक के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहती थी। उसने यह भी बयान दिया है कि पुलिस ने उसे दिनांक 28.05.2022 को हिरासत में लिया तथा रायबरेली थाने ले गई तथा बयान दिया कि वह वाद नहीं लड़ना चाहती।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोक्त्री ने आंतरिक चिकित्सा परीक्षण से इनकार कर दिया। अस्थिभंग परीक्षण के अनुसार, यह पाया गया कि अभियोक्त्री 18 वर्ष से अधिक की थी और बालिग थी। आगे यह भी कहा गया कि परिवार रजिस्टर के अनुसार, आवेदक की जन्म तिथि 2004 दर्ज है और वह 18 वर्ष से अधिक की है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि हालांकि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र में जन्म तिथि 12.05.2006 दर्शाई गई है और वह नाबालिग प्रतीत होती है, लेकिन अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों यानी परिवार रजिस्टर और अस्थिभंग परीक्षण को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि अभियोक्त्री 18 वर्ष से अधिक की है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यह सहमति का मामला है और अभियोक्त्री के बयान के अनुसार, यह अभिलेख में आया है कि उसने आवेदक के साथ विवाह किया है और वह आवेदक के साथ हरियाणा गई थी।

6. अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **2023 लाइव लॉ (एससी) 538 पी. युवाप्रकाश बनाम राज्य प्रतिनिधि पुलिस निरीक्षक** द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। निर्णय के प्रासंगिक पैरा संख्या 14 और 19 नीचे उद्धृत हैं:

"14. जेजे अधिनियम की धारा 94 (2) (iii) स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड द्वारा मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र को सबसे पहले प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिसके अभाव में निगम या नगर प्राधिकरण या पंचायत द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र और उसके बाद ही इन दस्तावेजों की अनुपस्थिति में संबंधित प्राधिकारी, यानी समिति या बोर्ड या न्यायालय के आदेश पर आयोजित "अस्थि परीक्षण" या "किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण" के माध्यम से आयु निर्धारित की जानी है। वर्तमान मामले में, माना जाता है कि केवल स्थानांतरण प्रमाण पत्र और जन्म तिथि प्रमाण पत्र या मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र पर विचार नहीं किया गया था। उदाहरण सी1, यानी स्कूल स्थानांतरण प्रमाण पत्र में पीड़िता की जन्म तिथि 11.07.1997 दिखाई गई थी। इसलिए, अभियोजन पक्ष उस दस्तावेज़ पर भरोसा नहीं कर सकता था जिस पर उसने कभी भरोसा नहीं किया था। इसके अलावा, डीडब्लू-3, संबंधित राजस्व अधिकारी (उप तहसीलदार) ने शपथ पर कहा था कि जन्म और मृत्यु के संबंध में वर्ष 1997 के अभिलेख गायब थे। चूंकि यह धारा 94 (2) (i) में उल्लिखित दस्तावेजों के किसी भी वर्ग के विवरण का

जवाब नहीं देता था क्योंकि यह केवल एक हस्तांतरण प्रमाण पत्र था, इसलिए ई सी-1, यह मानने के लिए राहत नहीं दे सकता था कि अपराध के समय एम की उम्र 18 वर्ष से कम थी।"

.....

19. उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि मुकदमे के दौरान प्रस्तुत किए गए किसी भी दस्तावेज में "स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र" या संबंधित परीक्षा बोर्ड से "मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र" या किसी निगम, नगर निगम या पंचायत द्वारा प्रमाण पत्र के विवरण का उत्तर नहीं दिया गया। इन परिस्थितियों में, अभियोजन पक्ष के लिए स्वीकार्य चिकित्सा परीक्षणों/परीक्षा के माध्यम से यह साबित करना आवश्यक था कि पीड़िता की आयु जेजे अधिनियम की धारा 94 (2) 9iii) के अनुसार 18 वर्ष से कम थी। पीडब्लू-9, डॉ. थेनमोझी, वेल्लोर के जनरल अस्पताल में मुख्य सिविल डॉक्टर और रेडियोलॉजिस्ट, ने एक्स-रे रिपोर्ट पेश की और गवाही दी कि एम की परीक्षा के संदर्भ में, एक प्रमाण पत्र जारी किया गया था जिसमें कहा गया था कि "उक्त लड़की की आयु 18 वर्ष से अधिक और 20 वर्ष से कम होगी"। जिरह में, उसने स्वीकार किया कि एम की आयु 19 वर्ष मानी जा सकती है। हालांकि, उच्च न्यायालय ने इस साक्ष्य को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि "जब स्कूल के अभिलेख से जन्म की सटीक तारीख उपलब्ध है, तो चिकित्सा विशेषज्ञ द्वारा अनुमानित अनुमानित आयु निर्धारण कारक नहीं हो सकती"। यह निष्कर्ष, इस न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, गलत और त्रुटिपूर्ण है। जैसा कि पहले कहा गया था, प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़, यानी, स्थानांतरण प्रमाणपत्र और प्रवेश रजिस्टर के अंश, धारा 94 (2) (i) के अनुसार नहीं हैं; न ही वे धारा 94 (2) (ii) के अनुरूप हैं क्योंकि डीडब्ल्यू-1 ने स्पष्ट रूप से गवाही दी कि पीड़िता, एम के जन्म से संबंधित कोई अभिलेख नहीं थे। इन परिस्थितियों में, जेजे अधिनियम की धारा 94 के अनुरूप एकमात्र साक्ष्य पीड़िता के कई एक्स-रे के आधार पर चिकित्सा अस्थिभंग परीक्षण था, और जिसके आधार पर पीडब्ल्यू-9 ने अपना बयान दिया। उसने पीड़िता की हड्डियों की जांच, उनके विकास के चरण के बारे में विवरण समझाया और कहा कि वह 18-20 वर्ष के बीच थी; जिरह में उसने कहा कि उम्र 19 वर्ष हो सकती है। इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए, इस न्यायालय की राय है कि अस्थि परीक्षण का परिणाम सबसे प्रामाणिक साक्ष्य था, जिसकी पुष्टि जांच करने वाले डॉक्टर पी-9 द्वारा की गई थी।"

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **मोनीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 55026/2021 में पारित निर्णय पर भी भरोसा जताया है। उन्होंने पैरा संख्या 12, 13, 14, 15, 43, 54 से 67, 59, 60, 91 92, 93, 94 पर भरोसा किया है। संबंधित पैरा संख्या 54 और 93 नीचे उद्धृत हैं:

*"**54.** भले प्राधिकारियों की सहायता से, इस मुद्दे पर चर्चा अब निम्नलिखित निष्कर्ष के साथ समाप्त की जा सकती है:*

1. कानून द्वारा परिकल्पित धारणाएं, उनकी प्रकृति और प्रयोज्यता के तरीके के संबंध में एक कानून से दूसरे कानून में भिन्न हो सकती हैं।

2. कानूनों में परिकल्पित अनुमानों का अनुप्रयोग न्यायालयों को किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने से नहीं रोकता है, न ही वे न्यायालयों को अभियोजन पक्ष के बयान को बिना सोचे-समझे सत्य मानने के लिए बाध्य करते हैं।

3. अनुमान किस चरण और किस तरीके से लागू होगा, यह मामले की वैधानिक योजना, तथ्यों और परिस्थितियों तथा साक्ष्य की प्रकृति पर निर्भर करेगा।

4. सभी धारणाएँ खंडनीय हैं। चुनौती से धारणा कमज़ोर हो सकती है या उसका खंडन हो सकता है।

5. धारणाओं को इस प्रकार लागू किया जाएगा कि वे आपराधिक न्यायशास्त्र में निष्पक्ष सुनवाई के प्रथम सिद्धांतों और संवैधानिक प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र में उचित प्रक्रिया के अनुरूप हों।

6. अनुमान लगाने के लिए पूर्व शर्त यह है कि अभियोजन पक्ष को प्राथमिक या आधारभूत तथ्यों को साक्ष्य के मानक के माध्यम से स्थापित करना होगा जो उचित संदेह से परे हो और कानून के अनुरूप हो।

7. किसी क़ानून में बनाई गई धारणाएँ निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा आकर्षित होंगी। सबसे पहले प्राथमिक या आधारभूत तथ्यों को साक्ष्य के लागू मानकों द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। इस स्तर पर, अभियुक्त को अनुमान पर आक्रमण करने के उसके अधिकार के प्रति सचेत किया जाएगा। अभियुक्त को धारणा का खंडन करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इन पूर्वापेक्षाओं के संतुष्ट होने के बाद, धारणा एक स्थापित तथ्य में परिपक्व हो सकती है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में साक्ष्यों पर विचार करने के बाद न्यायिक निष्कर्ष का आधार बन सकती है।

7. किशोर अपराधी के लिए जेजे अधिनियम की धारा 94 के तहत आयु संबंधी दस्तावेजों के संबंध में अनुमान लगाने का तरीका और चरण, नाबालिग पीड़ित के मामले और पोक्सो अधिनियम के तहत वयस्क आरोपी के मामले से भिन्न होगा।

8. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और पोक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत समय से पहले अनुमान लगाना या जमानत के स्तर पर उन्हें अनुचित तरीके से लागू करना कानून का उल्लंघन होगा और न्याय की विफलता का कारण बनेगा।

93. पूर्वोक्त आख्यान के मद्देनजर, पोक्सो अधिनियम के तहत जमानत आवेदन में पीड़ित

की आयु पर विचार करने का तरीका निम्नानुसार होगा:

I. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में वर्णित पीड़ित की आयु निर्धारण की प्रक्रिया जेजे नियम, 2016 के साथ पढ़ने पर जमानत आवेदनों पर लागू नहीं होगी, हालांकि उसमें दिए गए दस्तावेजों पर विचार किया जा सकता है। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पीड़ित की आयु का निर्धारण केवल मुकदमे में ही निर्णायक रूप से किया जाता है।

II. पोक्सो अधिनियम के तहत अपराध के तहत जमानत आवेदन में पीड़ित की उम्र का आकलन करने के लिए जांच की दिशा और प्रासंगिक कारक ये हैं। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित आयु संबंधी दस्तावेजों पर विचार करना यानी स्कूल प्रमाण पत्र (मैट्रिकुलेशन सहित), स्थानीय निकाय द्वारा जारी जन्म तिथि प्रमाण पत्र और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आयु निर्धारण के लिए मेडिकल रिपोर्ट प्रक्रिया में एक अच्छा प्रारंभिक बिंदु है।

III.अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई पीड़िता की आयु की सत्यता पर सवाल उठाने का आरोपी को अधिकार है।

IV. उक्त जमानत आवेदन पर निर्णय करते समय न्यायालय स्वतंत्र रूप से बाध्य है:

क. अभियुक्त आवेदक द्वारा पीड़िता की आयु को लेकर रखी गई चुनौती की जांच करें।

बी. पीड़ित की उम्र के बारे में विश्वसनीय संदेह का मूल्यांकन करें।

V. जमानत आदेश में उम्र का आकलन अस्थायी प्रकृति का होता है, और यह उन दस्तावेजों के सत्यापन मूल्य पर आधारित होता है जिन्हें अभी साबित किया जाना है या उन गवाहों के बयानों पर आधारित होता है जिनकी अदालत में अभी जांच होनी है। अदालत द्वारा ऐसा निर्धारण निर्णायक नहीं होता है और यह केवल जमानत आवेदन पर निर्णय लेने के सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है।

VI. मुकदमे के विभिन्न चरणों में दायर जमानत आवेदनों पर समान पैरामीटर लागू होंगे। हालाँकि, मुकदमे के प्रत्येक चरण के साथ, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय की संतुष्टि की सीमा बढ़ाई जा सकती है। संतुष्टि की बढ़ी हुई सीमा का अर्थ है कि न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को पूरा महत्व दे, और जमानत देने पर विचार करते समय बचाव पक्ष के मामले को उचित ध्यान दे।

VII. जमानत देने के लिए कोई कठोर या सख्त फॉर्मूला तय करना उचित नहीं है जो सभी मामलों में लागू हो। अभ्यास और मिसालें न्यायालय के लिए जमानत कार्यवाही में अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते समय एक विश्वसनीय मार्गदर्शक हैं और मनमाने फैसलों के खिलाफ एक अच्छा बचाव हैं।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 पर भरोसा किया है तथा प्रस्तुत किया है कि मेडिकल रिपोर्ट तथा परिवार रजिस्टर सार्वजनिक दस्तावेज हैं तथा साक्ष्य अधिनियम के अनुसार वे महत्वपूर्ण तथ्य हैं तथा जहां तक जमानत का प्रश्न है, संदेह का लाभ आवेदक के पक्ष में जाएगा।

5. दूसरी ओर, वादी के विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडे ने दलील दी है कि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र के अनुसार, अभियोक्त्री की उम्र 16 वर्ष से कम है, इसलिए यह माना जाता है कि वह नाबालिग है। उन्होंने आगे दलील दी है कि हालांकि यह सहमति का मामला है, लेकिन अगर लड़की नाबालिग है, तो सहमति का कोई मतलब नहीं है, इसलिए जमानत खारिज की जा सकती है। आगे दलील दी गई है कि किशोर न्याय अधिनियम, 1994 लागू होगा और यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि अभियोक्त्री नाबालिग है।

6. श्री राजेश कुमार सिंह, विद्वान ए.जी.ए.-1 ने भी जमानत प्रार्थना का विरोध किया है तथा न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र के अनुसार लड़की की आयु 16 वर्ष है तथा वह नाबालिग है तथा नाबालिग की सहमति का कोई मूल्य नहीं है, इसलिए आवेदक की जमानत खारिज किये जाने योग्य है।

7. मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना और पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने और इस तर्क पर विचार करने के बाद कि चिकित्सा रिपोर्ट के साथ-साथ परिवार रजिस्टर के अनुसार, अभियोक्त्री की आयु 18 वर्ष पाई गई है और धारा 164 सी.आर.पी.सी. के तहत अभियोक्त्री का बयान इंगित करता है कि यह सहमति का मामला है और यह तर्क कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह दिनांक 01.06.2022 से जेल में बंद है और ऊपर उद्धृत कानूनी बिंदुओं को देखते हुए, मेरा मानना है कि आवेदक जमानत पर रिहा किये जाने का हकदार है।

8. आवेदक **संदीप कुमार** को उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि हेतु व्यक्तिगत बंधपत्र एवं समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) आवेदक को इस आशय का वचन देना होगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी भी प्रकार का स्थगन नहीं मांगेगा, जब गवाह न्यायालय में उपस्थित होंगे। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय को इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानते हुए कानून के अनुसार आदेश पारित करने का अधिकार होगा।

(ii) आवेदक को प्रत्येक निर्धारित तिथि पर व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने अधिवक्ता के माध्यम से विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहना होगा। बिना पर्याप्त कारण के अनुपस्थित रहने की स्थिति में विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के तहत कार्यवाही कर सकता है।

(iii) यदि आवेदक परीक्षण के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए धारा 82 सी.आर.पी.सी. के तहत उद्घोषणा जारी की जाती है और आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि को अदालत के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो विचारण न्यायालय उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के तहत कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू करेगा।

(iv) आवेदक को (i) मामले को शुरू करने, (ii) आरोप तय करने और (iii) धारा 313 सी.आर.पी.सी. के तहत बयान दर्ज करने के लिए तय तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहना होगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानना और कानून के अनुसार उसके खिलाफ आगे बढ़ना खुला होगा।

9. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियाँ इस जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं समझी जाएँगी। विचारण न्यायालय इस आदेश में किसी भी बात से अप्रभावित साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

(2023) 8 ILRA 61

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 14783 वर्ष 2022

अनिल कुमार तुलसियानी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:
वैभव कालिया, अभिनव मिश्रा, विधु भूषण कालिया

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, प्रांजल कृष्णा

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3), 482 और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120बी, 323, 504, 506, 406, 420, 467, 468 और 471- जमानत के लिए आवेदन - प्र.सू.रि. - आपराधिक न्यास-भंग, छल करना, कूटरचना और आपराधिक षड्यंत्र का अपराध - एक भू-सम्पदा परियोजना से संबंधित वित्तीय अनियमिततायें और कपट के आरोप - और अभियुक्त-आवेदक और उसका भाई एक आवास योजना में बुक किए गए फ्लैटों को देने में विफल रहे, संपत्ति को बैंक में गिरवी रख दिया और ऋण पर चूक कर दी, जिसके कारण बैंक ने फ्लैटों को अपने कब्जे में ले लिया -

आवेदक ने निर्दोषता का दावा किया, कहा कि विवाद प्रकृति में सिविल था और उसे झूठा फंसाया गया था - राज्य ने आवेदक के आपराधिक इतिहास का संदर्भ देते हुए जमानत का विरोध किया, जिसमें कई समान मामले शामिल थे - न्यायालय ने पाया कि, कानून प्र.सू.रि. में कथित शिकायतों के निवारण के लिए सिविल उपचार प्रदान करता है - आक्षेपित कार्यवाही शिकायतकर्ता द्वारा प्रतिनिधित्व की जा रही छिपी हुई वाणिज्यिक कॉर्पोरेट इकाई की सिविल शिकायतों का निवारण करने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों को बाध्य करने के एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ शुरू की गई है - अभिनिर्धारित हुआ, (i) अप्रत्यक्ष तरीकों से सिविल अधिकारों के प्रवर्तन का दावा करने और स्टांप शुल्क के भुगतान से बचने के लिए आपराधिक कार्यवाही का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति, पंजीकरण शुल्क और स्टांप शुल्क का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता - और (ii) आवेदक एक वर्ष से अधिक समय से जेल में बंद है और बिना कोई संप्रेक्षण किए, जो मामले के गुणदोष को प्रभावित कर सकता है, - इसलिए, आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है - तदनुसार, जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर - 16, 17, 18)

आवेदन को अनुमति दी जाती है। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, (2006) 6 एससीसी 736

2. जी. सागर सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2000) 2 एससीसी 636

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री वैभव कालिया, राज्य की ओर से विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता श्री ज्ञानेन्द्र सिंह,तथा परिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नंदित श्रीवास्तव तथा उनके सहयोगी अधिवक्ता श्री पंजल कृष्ण को सुना गया।

2. यह आवेदन वाद अपराध संख्या 595/2021, धारा 409, 420, 504, 506, 467, 468, 471 व 120-बी आई.पी.सी.,थाना-विभूति खंड, जिला लखनऊ में आवेदक को जमानत पर रिहा करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

3. उपरोक्त वाद आवेदक और उसके भाई महेश तुलसियानी के विरूद्ध दिनाँक 08.11.2021 को दर्ज एक एफ.आई.आर. के आधार पर दर्ज किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि परिवादी ने वर्ष 2012 में गोल्फ व्यू अपार्टमेंट योजना में अपनी कंपनी के नाम पर तीन भवन पंजीकृत किए थे। भवनों का निर्माण निर्धारित अवधि के भीतर नहीं किया गया था और भवनों का निर्माण ठीक से नहीं किया गया था। भवन सौंपने में देरी के लिए कोई जुर्माना नहीं दिया गया। परिवादी ने वर्ष 2015 में एक भवन बेच दिया था। एफ.आई.आर. में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि परिवादी द्वारा कुछ प्रतिफल का भुगतान किया जाना बाकी है। यह भी आरोप लगाया

गया है कि पूरी इमारत को आरोपी व्यक्तियों ने एक बैंक के पास गिरवी रख दिया था और ऋण खाते को एन.पी.ए. घोषित कर दिया गया था और बैंक ने भवनों पर कब्जा कर लिया था।

4. जमानत आवेदन के समर्थन में दाखिल हलफनामे में कहा गया है कि आवेदक निर्दोष है और उसे इस वाद में झूठा फंसाया गया है। हलफनामे के पैरा 60 में आवेदक के 7अन्य वाद में शामिल होने का खुलासा किया गया है।

5. राज्य और परिवादी ने जमानत आवेदन का विरोध करते हुए जवाबी हलफनामा दायर किया है।

6. आवेदक ने प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है।

7. आपराधिक इतिहास के बारे में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक को इसी तरह के कुल15वादों में फंसाया गया है। हालांकि राज्य ने दावा किया है कि आवेदक17वादों में शामिल है, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि 6 वादों को इस न्यायालय द्वारा पहले ही रद्द कर दिया गया है और आदेशों की प्रतियां आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में संलग्न की गई हैं।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विवाद पूर्णतः दीवानी प्रकृति का है,जिसके संबंध में परिवादी द्वारा कोई दीवानी कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की गई है।

9.परिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नंदित श्रीवास्तव ने जमानत प्रार्थनापत्र का पुरजोर विरोध किया और उन्होंने कहा कि समाचार पत्रों में दिए गए विज्ञापन और आवेदक, जो तुलसियानी कंस्ट्रक्शन एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड का निदेशक है, द्वारा दिए गए प्रलोभनों के आधार पर,परिवादी ने वर्ष 2012 में गोल्फ व्यू अपार्टमेंट योजना में अपनी कंपनी के नाम से तीन भवन पंजीकृत किए थे। परिवादी ने बैंक से ऋण लेने के बाद भवनों के लिए तुलसियानी कंस्ट्रक्शन एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड को 1.25 करोड़ रुपये का भुगतान किया। परिवादी ने वर्ष 2015 में अपना एक भवन बेच दिया था। इसके बाद उन्होंने दो अन्य भवनों के लिए क्रमशः 68 लाख और 1 करोड़ 24 लाख रुपये जमा किए। तुलसियानी बिल्डर्स ने भवनों का आवंटन सुनिश्चित करने के लिए आवंटन पत्र और भवन निर्माता- क्रेता समझौता जारी किया भवनों का निर्माण समय पर नहीं किया गया और लगभग चार वर्षों की देरी के बाद, भवन के अंदर का काम पूरा हुए बिना ही तीन मीनारों में कब्जा दे दिया गया और पंजीयन के समय दी जाने वाली सेवाएं जैसे सभागार,पड़ाव-स्थल,तरण-ताल,खेल-क्षेत्र पूरी नहीं की गईं। वर्ष 2015 में परिवादी द्वारा बेचे गए भवन का जुर्माना परिवादी को नहीं दिया गया। वर्ष 2016 में, इसके बाद आवेदक ने बताया कि उक्त भवनों पर बैंक ऑफ बड़ौदा का ऋण लंबित है, जिसमें सभी भवन बंधक हैं और उन्होंने प्रति भवन10 लाख रुपये यानी 20 लाख रुपये की मांग की और दोनों भवनों पर ब्याज के रूप में 33 लाख रुपये भी मांगे, जिस पर परिवादी ने आपत्ति जताई। आवेदक ने

परिवादी को धमकी दी कि यदि मांग के अनुसार पैसे नहीं दिए गए,तो वह भवन किसी और को बेच देगा और उसका पूरा पैसा हड़प लेगा इस संबंध में आवेदक द्वारा किसी भी भवन खरीदार को कोई जानकारी नहीं दी गई जो कि धोखाधड़ी है। जब परिवादी ने इस बारे में अनिल तुलसियानी और महेश तुलसियानी से बात की तो उन्होंने उसके साथ गंदी भाषा का प्रयोग किया,गाली-गलौज की और धमकी दी कि मांगे गए पैसे दे दो नहीं तो तुम्हारा सारा पैसा बर्बाद हो जाएगा।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि वाद के संपूर्ण तथ्यों पर विचार करने के पश्चात, विद्वान सत्र न्यायाधीश, लखनऊ ने यह दर्ज करने के बाद आवेदक की जमानत याचिका खारिज कर दी है कि अभियुक्त-आवेदक और कुछ अन्य लोगों ने संपत्ति खसरा संख्या 22,35, 38,44, 46,47, 65, 66 के स्वामित्व के संबंध में जाली दस्तावेज तैयार किए हैं और इस प्रकार,उपरोक्त भवनों की बुकिंग के समय,अभियुक्त-आवेदक के पास कोई भूमि नहीं थी और न ही लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा कोई अभिन्यास योजना पारित की गई थी और तदनुसार।

11. एफ.आई.आर. में किए गए दावों से प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि परिवादी की कंपनी ने तुलसियानी कंस्ट्रक्शन एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा शुरू की गई गोल्फ व्यू अपार्टमेंट योजना में तीन भवन खरीदने के लिए एक समझौता किया था, जिसके आवेदक-निदेशक हैं। शिकायत में उस कंपनी का नाम नहीं बताया गया है जिसने भवन बुक किए थे, हालांकि आवंटी कंपनी एक अलग न्यायिक व्यक्ति होगी। इस स्तर पर न्यायालय के समक्ष उपलब्ध सामग्री से प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि भवनों की खरीद के संबंध में पक्षों के बीच कोई पंजीकृत समझौता नहीं किया गया था, जहां 100 रुपये से अधिक मूल्य की अचल संपत्ति की खरीद के लिए कोई भी समझौता केवल निर्धारित मुद्रांक शुल्क और पंजीकरण शुल्क के भुगतान के बाद पंजीकृत समझौते के माध्यम से किया जा सकता है।

12. जिस निगमित इकाई ने तीन भवन खरीदने के लिए समझौता किया था और भवनों की खरीद के लिए समझौते के संबंध में देय मुद्रांक शुल्क और पंजीकरण शुल्क का भुगतान नहीं किया, और जिसने खुद को छुपा रखा है, उसने सरकारी खजाने को देय मुद्रांक शुल्क की चोरी का अपराध किया है, जिससे आम जनता को उस राशि के लाभ से अवैध रूप से वंचित किया जा रहा है, जो देश के हर एक नागरिक को प्रभावित करता है।

13. यद्यपि तीन समझौतों के संबंध में देय मुद्रांक शुल्क और पंजीकरण शुल्क की राशि प्रथम दृष्टया छोटी प्रतीत हो सकती है, न्यायालय स्वयं को यह देखने से रोक नहीं सकता कि आजकल एक प्रवृत्ति बहुत तेजी से विकसित हो रही है कि लोग अचल संपत्तियों में रुचि प्राप्त करते हैं और मुद्रांक शुल्क और पंजीकरण शुल्क का भुगतान करने से बचते हैं और इसका संचयी प्रभाव सरकारी खजाने को काफी नुकसान पहुंचाता है। इसके बाद जब

कुछ विवाद होते हैं,तो खरीदार विक्रेता पर संपत्ति हस्तांतरित करने या अपनी राशि वापस करने के लिए दबाव डालने के लिए आपराधिक वाद शुरू करते हैं,क्योंकि वे इस कारण से दीवानी उपचार का आह्वान नहीं कर सकते हैं कि अपंजीकृत समझौता साक्ष्य में अस्वीकार्य है और दीवानी कार्यवाही में इसके संबंध में कोई अधिकार नहीं मांगा जा सकता है।

14. वर्ष 2006 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एन.ई.पी.सी. इंडिया लिमिटेड, (2006) 6 एस.सी.सी. 736** में यह पाया कि : -

*"13. इस मुद्दे पर, **व्यावसायिक हलकों में विशुद्ध रूप से दीवानी विवादों को आपराधिक वाद में बदलने की बढ़ती प्रवृत्ति पर ध्यान देना आवश्यक है। यह स्पष्ट रूप से एक प्रचलित धारणा के कारण है कि दीवानी कानून के उपाय समय लेने वाले होते हैं और उधारदाताओं/लेनदारों के हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा नहीं करते हैं।** ऐसी प्रवृत्ति कई पारिवारिक विवादों में भी देखी जाती है, जिससे विवाह/परिवार पूरी तरह से टूट जाते हैं। **एक धारणा यह भी है कि अगर कोई व्यक्ति किसी तरह से आपराधिक वाद में उलझ जाता है, तो उसके जल्दी ही समझौते की संभावना होती है। आपराधिक वाद के माध्यम से दबाव डालकर दीवानी विवादों और दावों को निपटाने के किसी भी प्रयास की जिसमें कोई अपराध शामिल नहीं है निंदा की जानी चाहिए और उसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए,**। जी. सागर सूरी बनाम यूपी राज्य (2000) 2 एससीसी 636 में, इस न्यायालय ने यह पाया कि :*

***"यह देखा जाना चाहिए कि क्या किसी वादको,जो अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का है, आपराधिक अपराध का जामा पहनाया गया है। आपराधिक कार्यवाही कानून में उपलब्ध अन्य उपायों का संक्षिप्त रूप नहीं है**। प्रक्रिया जारी करने से पहले एक आपराधिक अदालत को बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। अभियुक्त के लिए यह एक गंभीर वाद है। इस न्यायालय ने कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना है। इस धारा के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए।"*

*14. जबकि वैध कारण या शिकायत वाले किसी भी व्यक्ति को आपराधिक कानून में उपलब्ध उपायों की तलाश करने से नहीं रोका जाना चाहिए, **एक परिवादी जो अभियोजन शुरू करता है या उसके साथ बना रहता है, पूरी तरह से जानता है कि आपराधिक कार्यवाही अनुचित है और उसका उपाय केवल दीवानी कानून में है, उसे खुद को इस तरह की गलत आपराधिक कार्यवाही के अंत में कानून के अनुसार जवाबदेह बनाया जाना चाहिए**। एक सकारात्मक कदम जो अदालतों द्वारा उठाया जा सकता है, अनावश्यक अभियोजन और निर्दोष पक्षों के उत्पीड़न को रोकने के लिए, धारा 250 सी.आर.पी.सी. के तहत अपनी शक्ति का अधिक बार प्रयोग करना है, जहां वे परिवादी की ओर से दुर्भावना या तुच्छता या गुप्त उद्देश्यों को समझते हैं। चाहे जो भी हो।"*

Draft

15. हालांकि, इस पर लगाम लगाने और संयम बरतने के बजाय, विरोधियों को आपराधिक वाद में उलझाने की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है, ताकि नागरिक अधिकारों के उल्लंघन की उनकी शिकायतों के निवारण के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उन पर समझौता करने का दबाव बनाया जा सके। न्यायालयों के न्यायिक समय का एक बहुत बड़ा हिस्सा विवादित संविदात्मक अधिकारों के आरोपों से जुड़े वाद से निपटने में खर्च होता है, जिसके लिए धन की वसूली, समझौते को रद्द करना, अनुबंध का विशिष्ट प्रदर्शन आदि के लिए कोई दीवानी कार्यवाही शुरू नहीं की जाती है, जिसके लिए न्यायालय शुल्क का भुगतान करना पड़ता है। न्यायालय शुल्क के रूप में भुगतान की गई राशि स्पष्ट रूप से सरकारी खजाने में जुड़ जाएगी और इसका उपयोग बड़े पैमाने पर जनता के लाभ के लिए किया जाएगा।

16. नागरिक अधिकारों के प्रवर्तन का दावा करने के लिए अप्रत्यक्ष तरीकों से आपराधिक कार्यवाही का दुरुपयोग करने और मुद्रांक शुल्क, पंजीकरण शुल्क और न्यायालय शुल्क के भुगतान से बचने की इस प्रवृत्ति को न्यायालयों द्वारा सराहा नहीं जा सकता है और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। यह सरकारी खजाने और इससे लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों के साथ की गई धोखाधड़ी के अलावा और कुछ नहीं है।

17. हालांकि एफ.आई.आर. में आरोपित कृत्य आपराधिक कानून के तहत दंडनीय कुछ अपराध के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, लेकिन पक्षकारों के बीच विवाद मुख्य रूप से दीवानी प्रकृति का प्रतीत होता है। कानून एफआईआर में आरोपित शिकायतों के निवारण के लिए दीवानी उपाय प्रदान करता है कि भवनों का कब्ज़ा निर्धारित अवधि के भीतर नहीं दिया गया और भवनों का निर्माण उचित तरीके से पूरा नहीं किया गया। ऐसा नहीं है कि परिवादी ने केवल अभियुक्तों को दंडित करने के लिए आपराधिक कार्यवाही शुरू की है और उसने अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अलग से दीवानी कार्यवाही शुरू की है,परिवादीा ने केवल आपराधिक कार्यवाही शुरू की है जो प्रथम दृष्टया इंगित करती है कि आपराधिक कार्यवाही अभियुक्तों को परिवादी द्वारा प्रतिनिधित्व की जा रही छिपी हुई वाणिज्यिक निगमित इकाइयों की दीवानी शिकायतों का निवारण करने के लिए मजबूर करने के परोक्ष उद्देश्य से शुरू की गई है।

18. वादके उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, साथ ही इस तथ्य पर भी कि आवेदक एक वर्ष से अधिक समय से जेल में बंद है और बिना कोई टिप्पणी किए,जो वाद के गुण-दोष को प्रभावित कर सकती हो, मेरा विचार है कि आवेदक उपरोक्त अपराध में जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार है।

19. तदनुसार,यह जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

20. आवेदक अनिल कुमार तुलसियानी को वाद अपराध संख्या 595/2021 धारा 409,420, 504, 506, 467, 468, 471 व 120-बी आई.पी.सी.,थाना-विभूति खंड,जिला-लखनऊ में संबंधित मजिस्ट्रेट/न्यायालय की संतुष्टि हेतु व्यक्तिगत बंधपत्र एवं समान

धनराशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) आवेदक अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा;

(iii) आवेदक को विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रत्येक तारीख पर उपस्थित होना होगा।

(2023) 8 ILRA 65

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

आपराधिक अपील संख्या 213 वर्ष 2019

श्रीमती श्रस्वती ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:
पीयूष कुमार सिंह

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - स्वापक औषधि एवं मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 8, 17, 20, 35 एवं 54 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 एवं 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अर्थदंड सहित कठोर कारावास - बरामदगी ज्ञाप के अनुसार, तलाशी के दौरान अपीलार्थी के कब्जे से अफीम के साथ नेपाली मुद्रा बरामद हुई। (प्रस्तर 2, 3)

पी.डब्लू.1 से 3 के अभिकथन से पता चलता है कि धारा 50, एनडीपीएस अधिनियम का पालन नहीं किया गया, जबकि अनिवार्य है, अभियोजन पक्ष ने छापा मारने वाली टीम के अन्य सदस्यों को अभियोजन पक्ष के साक्षी के रूप में पेश न करने का कोई कारण नहीं बताया - धारा 57, एनडीपीएस अधिनियम और स्थायी निर्देशों का पालन न करना - संपर्क साक्ष्य पूरा नहीं है क्योंकि मालखाना रजिस्टर पेश नहीं किया गया - कथित बरामदगी का कोई स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं - तलाशी से पहले अपीलार्थी को मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया, न ही पी.डब्लू.1 और पी.डब्लू.2 ने उसे पेश करने का प्रयास किया - अभियोजन पक्ष ने तथ्य के केवल दो साक्षी पेश किए, इस तथ्य के बावजूद कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, घटनास्थल पर तथ्य के अन्य साक्षी मौजूद थे, अभियोजन पक्ष औचित्य देने में विफल रहा - अभियोजन का मामला पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 की एकमात्र परिसाक्ष्य पर आधारित है - प्रतिबंधित पदार्थ के नमूनों को सील करने के लिए उपयोग की गई सील को एफएसएल को नहीं भेजा गया, बल्कि पी.डब्लू.-1 ने स्वयं रख लिया - अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिबंधित पदार्थ की बरामदगी सिद्ध नहीं की गई - आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया। (प्रस्तर 30 से 35)

अपील स्वीकृत।(ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. आरिफ खान उर्फ आगा खान बनाम उत्तराखंड राज्य, एआईआर 2018 एससी 2123, (प्रस्तर 28)

2. विजयसिंह चंदूभा जाडेजा बनाम गुजरात राज्य, 2011 (1) एससीसी 609 में प्रतिवेदित, (प्रस्तर 32)

3. राम पाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (1) जेआईसी 776 में प्रतिवेदित, (प्रस्तर 10, 11)

4. पंजाब राज्य बनाम बलबीर सिंह, (1994) 3 एससीसी 294 में प्रतिवेदित, (प्रस्तर 24)

5. भारत संघ बनाम बाल मुकुंद एवं अन्य, 2009 (12) एससीसी 161, (प्रस्तर 36)

6. वलसाला बनाम केरल राज्य, एआईआर 1994 एससी 117, (प्रस्तर 4)

7. राजस्थान राज्य बनाम गुरमेल सिंह, 2005 (1) जेआईसी 844 (एससी), (प्रस्तर 3)

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा प्रदत्त)

(1) अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री पीयूष कुमार सिंह और प्रतिपक्षी राज्य के लिए सुश्री निकिता मिश्रा, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

(2) यह आपराधिक अपील अपीलकर्ता, श्रीमती सरस्वती द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 (2) के तहत दायर की गई है, जिसमें 2012 के विशेष सत्र परीक्षण संख्या 48: (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्रीमती सरस्वती), जो नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 (इसके बाद "एनडीपीएस अधिनियम, 1985" के रूप में संदर्भित) की धारा 8/17/20 के तहत 2012 के केस अपराध सं-403, थाना-रुपईडीहा, जिला बहराइच, से उद्भूत है, जिसके द्वारा तहत अपीलकर्ता को धारा 8/17/20 एनडीपीएस अधिनियम, 1985 के तहत दोषी ठहराया गया और उसे 12 साल के कठोर कारावास और 1,25,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। और जुर्माने के भुगतान में चूक करने पर अतिरिक्त एक वर्ष का साधारण कारावास भुगतना होगा।

(3) फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-1) के अनुसार अभियोजन का मामला यह है कि 29.7.2012 को 15.00 बजे, विश्वसनीय स्रोतों से सूचना मिली थी कि लाल साड़ी पहने एक नेपाली महिला अफीम के साथ रुपैडीहा मुख्य सड़क के रास्ते नेपाल से भारत पहुंचेगी। इस जानकारी को गंभीरता से लेते हुए सहायक सेनानायक श्री अश्वनी सिंह के निर्देश पर सब इन्स्पेक्टर जनक सिंह ने कांस्टेबल गणेश सिंह, उमेश प्रसाद यादव, नीरज कुमार श्रीवास, सुविता टी., नीतू पाल, सुनीता और श्याम प्रताप सिंह के साथ विशेष खोज दल का गठन किया था। और नेपालगंज-रुपैडीहा मुख्य मार्ग स्थित सशस्त्र सीमा बल की जांच चौकी पर मुखबिर के साथ पहुंचा गया; और वहां उक्त महिला के आने का इंतजार करने लगा। लगभग 17.15 बजे, दिए

गए विवरण के समान, एक नेपाली महिला को रिक्शा पर नेपाल से भारत आते देखा गया। मुखबिर के इशारे पर उक्त नेपाली महिला को महिला कांस्टेबल ने तलाशी के लिए रोका। तलाशी के दौरान उक्त महिला की कमर में कुछ बंधा हुआ लग रहा था। इसके बाद मानवाधिकार व हाईकोर्ट के आदेश के बाद उक्त महिला को बताया गया कि अफीम को कहीं भी लाना और ले जाना एनडीपीएस एक्ट की धारा 8/20/17 के तहत अपराध है। उक्त महिला से पूछा गया कि क्या वह चाहती है कि उसकी तलाशी मजिस्ट्रेट या किसी अन्य स्थान पर हो, तो उक्त महिला ने बताया कि जब यह निश्चित हो जाए कि वह अफीम ले जा रही है तो वे तलाशी ले सकते हैं। इसके बाद मौके पर सहमति पत्र तैयार किया गया। यह उसे पढ़ा गया था; और उस पर उसके हस्ताक्षर/अंगूठे का निशान लगवा लिया। इसके बाद, सहायक कमांडेंट की उपस्थिति में, महिला कांस्टेबल सुविता टी. और सुनीता, जो मौके पर मौजूद थीं, ने एक-दूसरे की तलाशी ली, लेकिन उनके पास से कोई आपत्तिजनक सामग्री नहीं मिली। उसके बाद असिस्टेंट कमांडर सुनीता टी के आदेशानुसार उक्त महिला की तलाशी लेने को कहा गया। तलाशी के दौरान पूछने पर उक्त महिला ने अपना नाम सरस्वती पत्नी होम बहादुर निवासी घोरई न्यू बाजार गविसा गोराई जिला डांग नेपाल बताया और उसकी तलाशी से कमर के पास लाल कपड़े में बंधी अफीम के अलावा 100 और 20 रुपये बरामद हुए। उपलब्ध ड्रग टेस्टिंग किट से बरामद अफीम की जांच करने के बाद प्रथम दृष्टया अफीम पाई गई। इसके बाद उपलब्ध बीम स्केल से तौलने पर बरामद अफीम का कुल वजन 3 किलो 500 ग्राम था। बरामद अफीम से वर्ष 24 x 2 ग्राम का नमूना लिया गया और नमूनों को एसएसबी (सशस्त्र सीमा बल) की मुहर के साथ एक सफेद कपड़े में सील कर दिया गया। पूछताछ करने पर, नेपाली महिला ने कहा कि सुबह प्रवेश बुद्धा नाम का एक आदमी आया और उससे कहा कि अगर वह रुपैडीहा (भारत) बस स्टॉप पर माल (अफीम) पहुंचाती है, तो वह उसे 6000 रुपये की नेपाली मुद्रा देगा और इस आश्वासन पर वह इस काम को करने के लिए सहमत हो गई। इसके बाद, सभी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने पर, उसे एनडीपीएस अधिनियम के तहत आगे की कार्रवाई के लिए थाना-रुपैडीहा को सौंप दिया गया। फ़र्द बरामदगी की प्रति अपीलकर्ता को पढ़कर सुनाई गई और उस पर उसके हस्ताक्षर/अंगूठे का निशान लिया गया। फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-2) की एक प्रति भी उसे सौंप दी गई थी, लेकिन उसने इसे फाड़ दिया और फेंक दिया।

(4) उक्त फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-2) के आधार पर दिनांक 29.07.2012 को सायं लगभग 07:15 बजे अपीलार्थी सरस्वती के विरुद्ध थाना-रुपैडीहा, जिला बहराइच में धारा 8/20/17 एन.डी.पी.एस. थाना रुपाईडीहा की जनरल डायरी के रिपोर्ट संख्या-41 में हेड मोहर्रिर उमेश कुमार भारद्वाज ने चिक प्राथमिकी इसकी कार्बन कॉपी पर 10 दर्ज किया गया है। विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी ने प्राथमिकी के स्क्राइबर कांस्टेबल मोहर्रिर उमेश कुमार भारद्वाज, आरोपी/अपीलकर्ता सरस्वती, शिकायतकर्ता सब इन्स्पेक्टर जनक जनक सिंह, उमेश कुमार

यादव, हेड कांस्टेबल गणेश सिंह रावत, नीरज कुमार श्रीवास, कांस्टेबल सुविता टी, कांस्टेबल नीतू बाला के फ़र्द बरामदगी की प्रति, रिपोर्ट की प्रति और द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दर्ज बयानों का उल्लेख किया था। जनरल डायरी में कॉन्स्टेबल सुनीता, कॉन्स्टेबल श्याम प्रताप सिंह, असवानी कुमार, रसूल, मोइन, कॉन्स्टेबल इंद्रेश कुमार और घटनास्थल का निरीक्षण करने के बाद नक़्शा नज़री तैयार किया गया, जिसे प्रदर्श क-7 बताया गया है। बरामद मद की जांच के लिए डॉकेट संख्या-ए-8/2 तैयार कर सं-5830/12 के तहत विधि विज्ञान प्रयोगशाला, महानगर, लखनऊ में दाखिल किया गया। विवेचना पूरी होने के बाद, आरोपी/अपीलकर्ता सरस्वती के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क-8) दायर किया गया था और विधि विज्ञान प्रयोगशाला, यूपी, लखनऊ से रिपोर्ट प्राप्त होने पर, यानी पेपर संख्या-ए-8/3 दायर किया गया था।

(5) दिनांक 07.08.2014 को अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं-4, बहराइच ने अभियुक्त/अपीलकर्ता सरस्वती के विरूद्ध एनडीपीएस अधिनियम की धारा 8/17/20 के अन्तर्गत आरोप विरचित किये थे। आरोपी/अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाए गए और समझाया गया। आरोपी/अपीलकर्ता ने आरोपों के लिए दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

(6) विचारण के दौरान, कुल मिलाकर, अभियोजन पक्ष ने तीन गवाहों अर्थात् अ.सा.-1-जनक सिंह, जो मामले का शिकायतकर्ता है, की जांच की; अ.सा.-2-सुविता टी., जिन्होंने घटना की तारीख पर आरोपी/अपीलकर्ता की तलाशी ली; और अ.सा.-3-सुभाष यादव, जो मामले के विवेचनाधिकारी हैं। अपने मामले के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए हैं जैसे तलाशी के दौरान उसकी तलाशी के लिए आरोपी सरस्वती का सहमति प्रपत्र (प्रदर्श क-1), चिक फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-2), आरोपी सरस्वती का गिरफ्तारी फॉर्म (प्रदर्श क-3), बरामद अफीम के वजन का मेमो (प्रदर्श क-4), तलाशी मेमो (प्रदर्श क-5), अभियुक्त के बाएं और दाएं हाथ की उंगलियों के निशान का ज्ञापन (प्रदर्श क-6), नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-7), आरोप पत्र (प्रदर्श क-8), चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-9), जीडी की कार्बन कॉपी (प्रदर्श क-10) प्रस्तुत कीं।

(7) अभियोजन साक्ष्य के पूरा होने के बाद, अभियुक्त सरस्वती का धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसका बचाव इनकार का था। उन्होंने कहा कि आरोप झूठे हैं और झूठी बरामदगी की गई है। उसने कहा कि रंजिश के चलते फरियादी उससे बेगार ले लेती थी और मजदूरी मांगने पर उसने मना कर दिया और इसी रंजिश के चलते बरामदगी दिखाकर उसे झूठा फंसाया गया है।

(8) अ.सा.-जनक सिंह, जो मामले के शिकायतकर्ता हैं और बरामदगी के गवाह भी हैं, ने प्राथमिकी में निहित अभिलेख को दोहराया था। हालांकि, फ़र्द बरामदगी से सुधार करते हुए, उन्होंने गवाही दी थी कि मुखबिर के संकेत पर, महिला कांस्टेबल ने उसे रोका और उससे पूछा, फिर, उसने बताया कि वह अपनी कमर में अफीम बांधे हुए है। उन्हें बताया गया

कि उन्हें किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी लेने का अधिकार है। अ.सा.-1 ने गवाही दी थी कि नेपाली महिला ने कहा कि वह कहीं नहीं जाना चाहती और उसकी सहमति पर, सहमति पत्र (प्रदर्श क-1) तैयार किया गया था। उन्होंने महिला कांस्टेबल सुविता टी. (अ.सा.-2) और सुनीता को निर्देश दिया, जिन्होंने एक-दूसरे की तलाशी लेने के बाद और एक-दूसरे को कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिलने के बाद, सुविता टी (अ.सा.-2) ने नेपाली महिला की तलाशी ली और उसकी कमर में बंधी अफीम को लाल कपड़े में लिपटा हुआ पाया और 100/-और 20/-की नेपाली मुद्रा भी मिली। बरामद प्रतिबंधित पदार्थ का ड्रग टेस्टिंग किट द्वारा परीक्षण किया गया और यह पाया गया कि अफीम का वजन बीम स्केल से किया गया था और बरामद अफीम का कुल वजन 3 किलो 500 ग्राम था, जिसमें से बरामद अफीम से एक सफेद कपड़े में नमूना लिया गया था और इसे सील कर दिया गया था और बाकी बरामद अफीम को भी एक सफेद कपड़े में सील कर दिया गया था। उसके बाद एनडीपीएस एक्ट की धारा 8/20 का अपराध बताते हुए महिला को हिरासत में लेकर बरामद की गई नशीले पदार्थों को पुलिस हिरासत में लेकर सैंपल सील तैयार की गई। उन्होंने फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-2) भी तैयार किया। फ़र्द बरामदगी की एक प्रति आरोपी/अपीलकर्ता सरस्वती को भी दी गई। उन्होंने गिरफ्तारी के नोटिस के साथ-साथ तलाशी का ज्ञापन भी तैयार किया। उन्होंने गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श क-3), बरामद अफीम के वजन का ज्ञापन (प्रदर्श क-4), खोज का ज्ञापन (प्रदर्श क-5) साबित किया। वह बरामद हेरोइन, आरोपी व मौके पर तैयार किए गए अन्य दस्तावेजों को थाना रुपियाडीहा ले जाकर थाना रुपियाडीहा में जमा करा दिया। उसने बरामद हेरोइन को भी मालखाना में जमा करा दिया।

जिरह में अ०सा०-1 ने गवाही दी थी कि नेपाली महिला की राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी नहीं ली गई थी, बल्कि सेनानायक की मौजूदगी में उसकी तलाशी ली गई थी। फ़र्द बरामदगी कांस्टेबल श्याम प्रताप की लिखावट में था। फ़र्द बरामदगी पर सर्च टीम के सभी आठ व्यक्तियों ने फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर किए हैं, जो मुख्यालय कार्यालय में सायं 05:15 बजे तैयार किया गया था और फ़र्द बरामदगी में कमांडेंट के हस्ताक्षर नहीं थे क्योंकि वह उस समय मौजूद नहीं थे और स्टेशन से बाहर थे। विवेचनाधिकारी घटनास्थल का निरीक्षण करने नहीं गए।

(9) अ०सा०-2 सुविता टी., जो रुपैडीहा में 7वीं बटालियन एसएसबी, नानपारा कंपनी में कांस्टेबल के रूप में तैनात थीं, ने भी यही अभियोजन कहानी दोहराई थी। उसने विचारण न्यायालय के समक्ष गवाही दी थी कि फ़र्द बरामदगी जनक सिंह (अ.सा.-1) के निर्देश पर श्याम प्रताप सिंह नामक आम व्यक्ति द्वारा तैयार किया गया था। उसने गवाही दी थी कि आरोपी सरस्वती से बरामद किया गया प्रतिबंधित पदार्थ वही है जो उसने आरोपी सरस्वती से बरामद किया था और उस पर उसके हस्ताक्षर की पहचान की थी, जो कि प्रदर्श क-1 है।

जिरह में अ०सा०-2 ने गवाही दी थी कि आरोपियों की तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी, बल्कि उनके (विशेष दल) द्वारा तलाशी ली गई थी। सामान्य तलाशी के दौरान, उन्होंने (विशेष टीम) सरस्वती (अपीलकर्ता) को सीमा पर पकड़ा था। उन्होंने आगे गवाही दी कि पूरे दस्तावेज और कार्यवाही उस स्थान पर की गई थी जहां सरस्वती को पकड़ा गया था यानी रुपैडीहा चेक पोस्ट। फ़र्द बरामदगी पर उनके अलावा सर्च टीम के अन्य सभी सदस्यों ने हस्ताक्षर किए। सहायक कमांडर के हस्ताक्षर फ़र्द बरामदगी पर नहीं हैं क्योंकि वह प्रतिबंधित पदार्थ की बरामदगी के समय मौजूद नहीं थे। सैंपल सील तैयार की गई। उसे याद नहीं था कि कितनी देर बाद बरामद नशीले पदार्थ और आरोपियों को थाने भेजा गया। वह उस व्यक्ति का नाम भी नहीं जानती थी जो आरोपी को थाना ले गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि सरस्वती (अपीलकर्ता) के पास से अफीम बरामद नहीं हुई है।

(10) अ.सा.-3 एस.आई.सुभाष यादव (अ.सा.-3), विवेचनाधिकारी ने अपनी मुख्य परीक्षण में गवाही दी थी कि उन्होंने सीडी-1 में चिक रिपोर्ट की प्रति दर्ज की थी और उसी दिन चिक प्राथमिकी के स्क्राइबर कांस्टेबल मोहर्रिर उमेश कुमार भारद्वाज का बयान दर्ज किया था और आरोपी सरस्वती का बयान दर्ज किया था और 01.08.2012 को सीडी-2 में उल्लेख किया था। उन्होंने अभियोजन पक्ष के गवाह का बयान लिया। उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण कर नक़्शा नज़री तैयार कर कहा कि वही नक़्शा नज़री जिस पर प्रदर्श क-7 लिखा है। दिनांक 9-08-2012 को रिमांड के लिए अनुरोध किया गया था। दिनांक 10.08.2012 को उन्होंने सीडी-4 लिखी थी जिसमें उन्होंने नमूने की रसीदों को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में पंजीकृत किया है और सीडी में कांस्टेबल इंद्रेश का बयान लिया था। जांच पूरी होने के बाद उन्होंने आरोपी सरस्वती के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया और दिनांक 13122012 को एस.सी.डी-1 जारी किया गया था और एस.सी.डी में विधि विज्ञान प्रयोगशाला प्रयोगशाला की रिपोर्ट का उल्लेख किया गया था जिसमें अफीम पाई गई थी।

जिरह में अ०सा०-3 ने बताया है कि उन्होंने स्थल का निरीक्षण कर नक्श नज़री तैयार किया है। उन्होंने गवाही दी कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि आरोपी की मजिस्ट्रेट के सामने तलाशी ली गई थी या नहीं क्योंकि इस तथ्य को एस.एस.बी. कर्मियों द्वारा कहा जा सकता है, हालांकि, वह जांच के दौरान गवाहों से इस तथ्य को जानना चाहता था, फिर, गवाहों ने उसे बताया कि आरोपी ने उसे पकड़ने वाले कर्मचारियों से उसकी तलाशी देने के लिए सहमति दी थी, इसलिए सहमति पत्र तैयार कर तलाशी ली गई। उन्होंने गवाही दी कि घटना वर्ष 29.07.2012 की थी और उन्होंने 01.08.2012 को शिकायतकर्ता और गवाहों का बयान दर्ज किया। उन्होंने नमूने का डॉकेट तैयार किया, जिसे परीक्षण के लिए 8.8.2012 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया था और इसे 9.8.2012 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में प्राप्त किया गया था। उन्होंने यह भी गवाही दी कि एसएसबी के अनुसार बरामद किए गए प्रतिबंधित पदार्थ की

कीमत 35,00,000 रुपये थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने थाना में बैठकर पूरी जांच की थी और वह जांच करने के लिए घटनास्थल पर नहीं गए थे।

(11) अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का कोई अनुपालन नहीं है। गिरफ्तारी और जब्ती की रिपोर्ट 48 घंटे के भीतर तत्काल वरिष्ठ अधिकारी को नहीं भेजी गई है, हालांकि पूर्व सूचना प्राप्त हुई थी, तथापि, इसे लिखित में नहीं किया गया है। उनके अनुसार, मालखाना रजिस्टर का उत्पादन नहीं किया गया है; मालखाना में जमा करने की तारीख ज्ञात नहीं है; मालखाना में जमा प्रतिबंधित पदार्थ का भी पता नहीं चल पाता है; परीक्षण नमूना गायब है; और नमूना सील को विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि प्राप्त गुप्त पूर्व सूचना को लिखित रूप में नहीं किया गया है और न ही एनडीपीएस अधिनियम की धारा 42 (2) के तहत वरिष्ठ अधिकारी को इसकी एक प्रति भेजी गई है।

(12) अपर शासकीय अधिवक्ता. ने अपीलार्थी के अधिवक्ता के तर्क का विरोध किया है। राज्य की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि तलाशी दल द्वारा अभियुक्त/अपीलकर्ता की व्यक्तिगत तलाशी से 3 किलो 500 ग्राम अफीम पाई गई थी। सहमति पत्र तैयार किया गया।

(13) जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के पहले तर्क का संबंध है कि धारा 50 एनडीपीएस अधिनियम का पूरी तरह से पालन नहीं किया गया है, इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि 29.7.2012 के फ़र्द बरामदगी में, अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहले तलाशी ली गई थी और तलाशी दल को यह दिखाई देने के बाद कि उसकी कमर में कुछ बंधा हुआ है, उससे वह मांगा गया और फिर उसने बताया कि इसमें अफीम है। उसके बाद एनडीपीएस अधिनियम के प्रावधान और मानवाधिकारों के साथ-साथ न्यायालयों के आदेशों का हवाला देते हुए, उनसे पूछा गया कि क्या वह मजिस्ट्रेट के सामने या कहीं और तलाशी लेना चाहती हैं, तो उन्होंने कहा कि एक बार यह निश्चित हो जाए कि उनके पास अफीम है, तो वे उसकी तलाशी ले सकते हैं। तथ्य यह है कि फ़र्द बरामदगी के अनुसार, अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहले तलाशी ली गई थी और संदेह पैदा होने पर कि वह अपनी कमर में अफीम ले जा रही है, उसे मजिस्ट्रेट के सामने या कहीं और तलाशी लेने का विकल्प दिया गया था, इस प्रकार, अ.सा.-2 कांस्टेबल सुविता टी के बयान के साथ पुष्टि की गई, जिन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि सीमा पर सामान्य तलाशी के दौरान उन्होंने सरस्वती को पकड़ लिया था। अ०सा०-1-सब इन्स्पेक्टर जनक सिंह और अ.सा.-2-सविता टी दोनों ने कहा था कि अपीलकर्ता को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष उनके मुख्य परीक्षण में तलाशी लेने के उसके अधिकार के बारे में सूचित किया गया था, हालांकि, दोनों ने स्वीकार किया था कि तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के सामने नहीं हुई थी। अ०सा०-1 जनक सिंह ने अपनी जिरह में कहा था कि बंद कमरे में कांस्टेबल सुविता टी

(अ.सा.-2) द्वारा उसकी तलाशी ली गई थी और किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष उसकी तलाशी नहीं ली गई थी, बल्कि उसकी तलाशी सेनानायक के सामने ली गई थी। अ०सा०-2-सुविता टी ने अपनी जिरह में कहा था कि अभियुक्त की तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी, बल्कि उनके द्वारा उसकी तलाशी ली गई थी। फ़र्द बरामदगी के साथ-साथ अ०सा०-1-जनक सिंह और अ.सा.-2-सुविता टी के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी तलाशी नहीं ली गई थी। यह भी स्पष्ट है कि किसी भी स्वतंत्र गवाह के सामने उसकी तलाशी नहीं ली गई।

(14) अ०सा०-1-जनक सिंह और अ०सा०-2-सुविता टी के बयान से यह भी स्पष्ट है कि प्रतिबंधित अफीम बरामद करने वाले पुलिस दल का कोई भी पुलिस अधिकारी राजपत्रित अधिकारी नहीं था। इस प्रकार, उन्हें मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति को छोड़कर एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के तहत आवेदक की तलाशी लेने का अधिकार नहीं था। कथित प्रतिबंधित अफीम की बरामदगी की खोज प्रत्यक्ष प्राधिकरण और पुष्टि में होनी चाहिए जो धारा 50 एनडीपीएस अधिनियम की आवश्यकता है। अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना अनिवार्य है कि मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में आवेदक से तलाशी और बरामदगी की जाए।

(15) माननीय उच्चतम न्यायालय ने आरिफ खान उर्फ आगा खान बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में यह निर्णय दिया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 123 के अंतर्गत भारत उत्तराखंड राज्य: एआईआर 2018 एस.सी. 2123 ने पैरा-28 में निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"28. सबसे पहले, यह मामले के रिकॉर्ड से उभर रहा एक स्वीकृत तथ्य है कि अपीलकर्ता को किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष पेश नहीं किया गया था; दूसरा, यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि उपरोक्त पहले कारण के कारण, अपीलकर्ता से किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में निषिद्ध "चरस" की खोज और बरामदगी नहीं की गई थी; तीसरा, यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि छापा मारने वाले दल का कोई भी पुलिस अधिकारी, जिसने उसके पास से प्रतिबंधित "चरस" बरामद किया था, राजपत्रित अधिकारी नहीं था और न ही वे हो सकते थे और इसलिए, उन्हें मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति को छोड़कर एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के तहत प्रदान किए गए निषिद्ध "चरस" के अपीलकर्ता से खोज और बरामदगी करने का अधिकार नहीं था; चौथा, संदिग्ध के शरीर से प्रतिबंधित वस्तुओं की खोज और बरामदगी करने के लिए, तलाशी और बरामदगी एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। इसलिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना अनिवार्य है कि अपीलकर्ता से तलाशी और बरामदगी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में की गई थी।

(16) वर्ष 2011 में रिपोर्ट किए गए विजयसिंह चंदूभा जडेजा बनाम गुजरात राज्य के मामले

में (1) एस.सी.सी. 609, पैरा-32 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि सर्वप्रथम अभियोजन अभिकरण द्वारा संदिग्ध को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि किसी अन्य अधिकारी की तुलना में आम आदमी का अधिक विश्वास पैदा करना सुनिश्चित किया जा सके क्योंकि इससे तलाशी कार्यवाहियों में वैधता बढ़ेगी और अभियोजन पक्ष का मामला भी।

(१७) यह विवादित नहीं है, बल्कि स्वीकार किया जाता है कि छापा मारने वाले अधिकारी का कोई भी सदस्य राजपत्रित अधिकारी नहीं है। छापेमारी दल द्वारा अभियुक्त को राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का कोई प्रयास नहीं किया गया, इसलिए यह एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का पूरी तरह से पालन न करने का मामला है जो तलाशी को समाप्त करता है।

(18) जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 57 का अनुपालन नहीं किया गया है क्योंकि गिरफ्तारी अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी के 48 घंटे के भीतर संपत्ति की जब्ती की कोई रिपोर्ट उसके तत्काल वरिष्ठ अधिकारी को नहीं भेजी गई है, अ०सा०-1-जनक सिंह, अ०सा०-2-सुविता टी और अ.सा.-3-सब इन्स्पेक्टर सुभाष यादव, अपने बयान में, उन्होंने कहीं भी यह नहीं कहा था कि एनडीपीएस अधिनियम के प्रावधानों के तहत वरिष्ठ अधिकारी को एक रिपोर्ट भेजी गई थी। इस प्रकार अभियोजन पक्ष एनडीपीएस अधिनियम की धारा 57 के अनुपालन को साबित करने में विफल रहा है।

(19) 2008 में रिपोर्ट किए गए राम पाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इस न्यायालय ने माना है कि समय-पूर्व की रिपोर्ट के किसी भी उचित संदेह से बचने के लिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 57 के तहत रिपोर्ट 48 घंटे के भीतर भेजी जानी चाहिए। प्रासंगिक पैराग्राफ 10 और 11 नीचे दिए गए हैं: -

"10. धारा 57 गिरफ्तारी और जब्ती की रिपोर्ट से संबंधित है। यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता भी नियंत्रण और संतुलन की प्रणाली पर आधारित है, उस संहिता में यह प्रावधान किया गया है कि कम से कम किसी गंभीर अपराध के संबंध में जब थाना में कोई रिपोर्ट दर्ज की जाती है तो उच्च अधिकारियों को तत्काल एक विशेष रिपोर्ट भेजी जानी चाहिए। ऐसा प्रावधान पूर्व-समयबद्ध रिपोर्टों की किसी भी संभावना को खारिज करने के लिए डाला गया है। इसी प्रकार एनडीपीएस अधिनियम में भी धारा 57 में यह प्रावधान है कि जब भी कोई व्यक्ति कोई गिरफ्तारी या जब्ती करता है तो वह जब्ती की ऐसी गिरफ्तारी के 48 घंटे के भीतर अपने वरिष्ठ अधिकारी को उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। लेकिन प्रस्तुत मामले में ऐसी कोई रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है जो एक उचित संदेह पैदा करती है।

11. यह सच है कि ये प्रावधान अनिवार्य नहीं हैं और केवल निर्देशिका हैं जैसा कि बाबूभाई ओधवजी पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य 2006 (1) जेआईसी 732 (एस.सी.): (2005) 8 एस.सी.सी. 725, के मामले में अवधारित किया गया था, और अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा

भरोसा किया गया था। लेकिन ये चूकें साक्ष्य के मूल्य को चकनाचूर कर देती हैं और ऐसे मामलों में निषिद्ध पदार्थों के रोपण की संभावनाओं को खारिज नहीं किया जा सकता है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा रोशन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में अवधारित किया गया था, जिसे 2007(2) जेआईसी 650 (एस.सी.): 2007 (58) एसीसी 723 में रिपोर्ट किया गया था। यहां तक कि अगर उपरोक्त प्रावधान निर्देशिका हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें पूरी तरह से छोड़ दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में ये चूक संदेह का एक घेरा पैदा करती हैं और बचाव पक्ष द्वारा सुझाई गई प्रतिबंधित सामग्री के रोपण की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

(20) अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 57 एनडीपीएस अधिनियम का अनुपालन अनिवार्य नहीं है। धारा 57 एनडीपीएस अधिनियम के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (1994) 3 एस.सी.सी. 294 में रिपोर्ट किए गए "पंजाब राज्य बनाम बलबीर सिंह" में पैरा-24 में निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"24. अधिनियम के तहत गिरफ्तारी और जब्ती के बाद धारा 52 और 57 लागू होती है। द०प्र०स० में भी कुछ इसी तरह के प्रावधान हैं। यदि इन प्रावधानों का कोई उल्लंघन होता है, तो न्यायालय को उसके प्रभाव की जांच करनी होगी। उस संदर्भ में यह निर्धारित करते समय कि गिरफ्तारी या तलाशी के बाद पालन किए जाने वाले अधिनियम के प्रावधान निर्देशिका या अनिवार्य हैं, यह ध्यान में रखना होगा कि सार्वजनिक कर्तव्यों का निर्माण करने वाले कानून के प्रावधान आम तौर पर निर्देशिका बोल रहे हैं। इन दोनों धाराओं के प्रावधानों में अधिकारियों द्वारा कड़ाई से अनुपालन के लिए कुछ प्रक्रियात्मक निर्देश दिए गए हैं। लेकिन अगर इनमें से किसी भी निर्देश का कड़ाई से अनुपालन नहीं किया जाता है जो स्वयं इन अधिकारियों द्वारा किए गए कृत्यों को शून्य नहीं बना सकता है और अधिक से अधिक यह गिरफ्तारी या तलाशी के संबंध में साक्ष्य के संभावित मूल्य को प्रभावित कर सकता है और कुछ मामलों में यह ऐसी गिरफ्तारी या तलाशी को अमान्य कर सकता है। लेकिन इस तरह का उल्लंघन, यदि अन्यथा पर्याप्त सामग्री है, अपने आप में मुकदमे या दोषसिद्धि को अमान्य नहीं करता है। इसलिए यह दिखाया जाना चाहिए कि इस तरह के गैर-अनुपालन ने पूर्वाग्रह पैदा किया है और इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है। तथापि, अधिकारी इन उपबंधों की पूरी तरह से अनदेखी नहीं कर सकते हैं और यदि अनुपालन न करने के लिए कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं है या जहां अधिकारी उपबंधों की पूरी तरह से अनदेखी करते हैं तो इसका निश्चित रूप से अभियोजन के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और न्यायालयों को इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए साक्ष्य और मामले के गुण-दोष का मूल्यांकन करना होगी। हालांकि, केवल गैर-अनुपालन या सख्ती से पालन करने में विफलता अभियोजन पक्ष को खराब नहीं करेगी।

(21) इसलिए, यह स्पष्ट है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 57 का गैर-अनुपालन अनिवार्य नहीं है, लेकिन यदि इसका गैर-अनुपालन अभियुक्त को पूर्वाग्रह से ग्रस्त करता है, तो निश्चित रूप से एनडीपीएस अधिनियम के प्रावधानों के तहत कड़ी सजा को ध्यान में रखते हुए अभियोजन मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(22) अपीलकर्ता के अधिवक्ता का अगला निवेदन यह है कि नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो, नई दिल्ली द्वारा जारी किए गए स्थायी निर्देश संख्या 1/88 और 1/89 का अनुपालन नहीं किया गया है। वह प्रस्तुत करता है कि नमूना न तो तैयार किया गया है और न ही उपरोक्त स्थायी निर्देशों के अनुसार भेजा गया है।

(23) अभियोजन मामले के अनुसार, यह घटना 29.7.2012 को शाम 5.15 बजे हुई थी। नमूने मौके पर ही लिए गए थे और इन्हें दिनांक 08.08.2012 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला को भेजा गया था जो विधि विज्ञान प्रयोगशाला में 09.08.2012 को प्राप्त हुआ और विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट 17.11.2012 को प्राप्त हुई।

(24) दिनांक 15.03.1988 के स्थायी अनुदेश संख्या 1/88 के खंड 1.13 के अनुसार, नमूनों को किसी भी कानूनी आपत्ति से बचने के लिए जब्ती के 72 घंटों के भीतर प्रयोगशाला में भेजा जाना चाहिए, जबकि इस मामले में, 29.7.2012 को लिए गए नमूने 72 घंटे के भीतर नहीं भेजे गए थे, लेकिन इसे 72 घंटे से अधिक अर्थात 8.8.2012 को भेजा गया था।

(25) उपर्युक्त स्थायी निर्देश संख्या 1/88 के पैरा-1.21 में आगे प्रावधान है कि जब्त किए गए नशीले पदार्थों और साइकोट्रोपिक पदार्थों के डुप्लिकेट नमूने को संरक्षित किया जाना चाहिए और केस प्रॉपर्टी के साथ विवेचनाधिकारी की हिरासत में सुरक्षित रूप से रखा जाना चाहिए। स्थायी अनुदेश संख्या 1/89 के पैरा-2.9 में प्रावधान है कि प्रतियों में नमूना हीट-सील्ड प्लास्टिक बैग में रखा जाएगा। नमूने वाले डुप्लिकेट लिफाफे में परीक्षण ज्ञापन का संदर्भ होना आवश्यक है और साथ ही सुपाठ्य होना आवश्यक है। हालांकि इस मामले में जब्ती की तारीख से 72 घंटे के भीतर सैंपल नहीं भेजे गए हैं। अभियोजन पक्ष के पास इस बात का कोई सबूत नहीं है कि बरामद प्रतिबंधित पदार्थ किस तारीख और समय को मालखाने में जमा किया गया था, हालांकि अ.सा.-1 जनक सिंह के बयान में यह आया है कि बरामद प्रतिबंधित पदार्थ मालखाने में जमा किया गया था, हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा खुलासा नहीं किया गया है। परीक्षण नमूना तैयार नहीं किया गया है, जो स्थायी निर्देश संख्या 1/88 के पैरा-1.13 के तहत अनिवार्य आवश्यकता है। मालखाना रजिस्टर को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया है ताकि यह दिखाया जा सके कि मालखाने में माल (अफीम) कब जमा किया गया था। स्थायी अनुदेश संख्या 1/88 का खंड 1.13 प्रयोगशाला के नमूने के निर्वहन के लिए मोड और समय सीमा प्रदान करता है और यह प्रदान करता है कि नमूना 72 घंटों के भीतर प्रयोगशाला में भेजा जाना चाहिए। प्रासंगिक पैरा-1.13 नीचे दिया गया है: -

"13. प्रयोगशाला में नमूने भेजने के लिए मोड और समय सीमा: नमूने या तो बीमित डाक द्वारा या इस उद्देश्य के लिए विधिवत अधिकृत विशेष संदेशवाहक के माध्यम से भेजे जाने चाहिए। पंजीकृत डाक या साधारण डाक द्वारा नमूने भेजने का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। किसी भी कानूनी आपत्ति से बचने के लिए नमूने जब्ती के 72 घंटे के भीतर प्रयोगशाला में भेजे जाने चाहिए।

(26) स्थायी अनुदेशों का अनुपालन न करने की गंभीर दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ बनाम बाल मुकुंद एवं अन्य: 2009 (12) एस.सी.सी. 161 में पैरा-36 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है -

"36. इस मामले का एक और पहलू है जिसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। स्थायी अनुदेश 1/88, जो अधिनियम के अंतर्गत जारी किया गया था, नमूने लेने की प्रक्रिया निर्धारित करता है। उच्च न्यायालय ने देखा है कि अ०सा०-7 ने सभी पांच बैगों से 25 ग्राम नमूने लिए थे और फिर उन्हें मिलाकर प्रयोगशाला में भेजा था। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रत्येक बैग से पर्याप्त मात्रा में लिया गया था। यह कानून में एक आवश्यकता थी।

(27) माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में यह निर्णय दिया है कि स्थायी अनुदेशों का अनुपालन कानून के लिए अपेक्षित है और उक्त स्थायी अनुदेशों का अनुपालन न करने से अभियोजन मामले में गंभीर संदेह उत्पन्न होता है। मालखाना रजिस्टर, नमूना मुहरों और मालखाने में जमा उक्त नमूने की तारीख को प्रस्तुत न किए जाने का लिंक साक्ष्य अधूरा है। मालखाना रजिस्टर तैयार नहीं किया गया है। जब्ती स्थल पर सीलिंग के लिए प्रयुक्त मूल मुहर मालखाने में जमा नहीं की गई है और न ही किसी की अभिरक्षा में दी गई है।

(28) लिंक साक्ष्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए, वलसाला बनाम केरल राज्य: एआईआर 1994 एस.सी. 117 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-4 में निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"4. हमने रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट देखी है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह उल्लेख किया गया है कि एक सीलबंद पार्सल प्राप्त हुआ था जिसमें एक पाउडर था और इसका विश्लेषण ब्राउन शुगर के रूप में किया गया था। लेकिन रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है और निचली दोनों अदालतों द्वारा यह भी नोट किया गया है कि जब्त की गई वस्तु को केवल 14.1.88 को अदालत में पेश किया गया था, यानी तीन महीने से अधिक की अवधि के बाद और यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि जब्त की गई वस्तु किसके पास पड़ी थी और यहां तक कि यह मानते हुए कि यह अ.सा.-6 की हिरासत में थी, जिस थाना के प्रभारी अधिकारी ने इसे जब्त किया था, उसके पास भी यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि क्या इसे सील करके वहां रखा गया था। राज्य के अधिवक्ता ने निस्संदेह तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 55 के प्रावधान अनिवार्य नहीं हैं, बल्कि केवल निर्देशिका हैं। हमें इस

मामले में इस कानूनी प्रश्न में जाने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना पर्याप्त है कि जब्त की गई वस्तु को उचित हिरासत और उचित रूप में नहीं रखा गया प्रतीत होता है ताकि अदालत यह सुनिश्चित कर सके कि जो जब्त किया गया था वह केवल रासायनिक परीक्षक को भेजा गया था। एक बड़ा अंतर है और एक महत्वपूर्ण लापता लिंक है। महाजर प्रदर्श पी.2 में, जिसे तुरंत तैयार किया गया है, इस बात का उल्लेख नहीं है कि जब्ती के बाद इसे किसकी हिरासत में रखा गया था। दुर्भाग्य से अभियोजन पक्ष के लिए भी अ.सा.-6 यह नहीं कहता है कि वह इसे तब तक सील के तहत अपनी हिरासत में रखता था जब तक कि इसे 14.1.88 को अदालत में पेश नहीं किया गया। अ.सा.-6 पुलिस सब-इंस्पेक्टर, जिन्होंने लेख को जब्त कर लिया था, द्वारा दिए गए साक्ष्य बिल्कुल चुप हैं कि उन्होंने जब्त किए गए लेख के साथ क्या किया जब तक कि इसे अदालत में पेश नहीं किया गया। तथ्य यह है कि उन्होंने इसे अदालत में पेश नहीं किया। माना जाता है कि अ.सा.-3, ए.एस.आई. इस बारे में कुछ नहीं कहता है। यह केवल अ.सा.-7 सर्किल इंस्पेक्टर है जो बाद की तारीख में तस्वीर में आता है, जिसने जिरह में स्वीकार किया कि जब्त की गई वस्तु अ.सा.-3 (सब इन्स्पेक्टर) द्वारा अदालत में भेजी गई थी और अ.सा.-7 ने अपनी जिरह में आगे स्वीकार किया कि उसने यह भी नहीं देखा कि बरामद सामग्री वस्तु को सील कर दिया गया था या नहीं, लेकिन फिर भी वह दावा करता है कि उसने रासायनिक परीक्षण के लिए सामग्री वस्तु भेजने के लिए आवश्यक आवेदन किया था और यह है केवल अ.सा.-7 के माध्यम से कि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट चिह्नित की गई है। अ.सा.-7 ने आगे स्वीकार किया कि उन्हें यह भी नहीं पता था कि यह अदालत कब पहुंचा, हम यह कहने के लिए विवश हैं कि इस मामले में जांच लापरवाह रही है और महत्वपूर्ण पहलुओं पर संबंधित अधिकारियों के साक्ष्य अत्यधिक विसंगत और असंबद्ध हैं और बहुत प्रकाश नहीं डालते हैं। इसलिए पेश किए गए सबूत यह निष्कर्ष निकालने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त हैं कि अकेले अपीलकर्ता से जो जब्त किया गया था वह रासायनिक परीक्षक को भेजा गया था। हालांकि यह विशुद्ध रूप से तथ्य का सवाल है लेकिन यह एक महत्वपूर्ण कड़ी है। निचली दोनों अदालतों ने इस पहलू की उचित परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मादक पदार्थों की तस्करी समाज के लिए खतरा है, लेकिन संतोषजनक सबूत के अभाव में, अदालतें दोषी नहीं ठहरा सकती हैं।

(29) राजस्थान राज्य बनाम गुरमेल सिंह के मामले में: 2005 (1) जेआईसी 844 (एस.सी.) ने उच्च न्यायालय के बरी करने के आदेश को बरकरार रखा क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा आबकारी प्रयोगशाला में नमूने के साथ अपना मामला साबित करने के लिए मालखाना रजिस्टर पेश नहीं किया गया था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैरा-3 नीचे दिया गया है: -

"3. हमने उच्च न्यायालय के फैसले का अवलोकन किया है। उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए अन्य कारणों के अलावा, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए लिंक साक्ष्य बिल्कुल भी संतोषजनक नहीं थे। पहली

बार में, हालांकि जब्त वस्तुओं को 20 मई, 1995 को मालखाने में रखा गया था, मालखाना रजिस्टर यह साबित करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था कि इसे मालखाने में तब तक रखा गया था जब तक कि इसे 5 जून, 1995 को अ.सा.-6 द्वारा अपने कब्जे में नहीं ले लिया गया था। हम आगे पाते हैं कि नमूना बोतलों पर दिखाई देने वाली सील के साथ तुलना करने के उद्देश्य से नमूने के साथ सील का कोई नमूना आबकारी प्रयोगशाला, जोधपुर को नहीं भेजा गया था। इसलिए, संतोषजनक रूप से साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि पाई गई सील वास्तव में वही सील थीं जो निषिद्ध पदार्थों की जब्ती के तुरंत बाद नमूना बोतलों पर लगाई गई थीं। अभियोजन पक्ष के मामले में इन खामियों ने उच्च न्यायालय को प्रतिपक्षी को बरी करने के लिए प्रेरित किया है।

(30) यहां ऊपर की गई चर्चा और अ.सा.-एस 1, 2 और 3 के बयान के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 का निश्चित रूप से गैर-अनुपालन है, जो अनिवार्य है, इस तथ्य के साथ कि अभियोजन पक्ष ने छापा मारने वाली टीम के अन्य सदस्यों को अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पेश नहीं करने का कोई कारण नहीं बताया है।

(31) धारा 57 एनडीपीएस अधिनियम और स्थायी निर्देश संख्या 1/88 और 1/89 का भी अनुपालन नहीं किया गया है, जिन्हें बाल मुकुंद (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून में आवश्यक माना गया है। लिंक साक्ष्य पूर्ण नहीं है क्योंकि मालखाना रजिस्टर प्रस्तुत नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। कथित बरामदगी का कोई स्वतंत्र चश्मदीद गवाह नहीं है।

(32) माना जाता है कि अपीलकर्ता को उसकी तलाशी से पहले राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया है, और न ही अ.सा.-1 और अ.सा.-2 द्वारा अपीलकर्ता को किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का कोई प्रयास किया गया है, जैसा कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 50 के तहत आवश्यक है और जैसा कि विजयसिंह चंदूभा जडेजा (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है। जिस तरह से अपीलकर्ता की तलाशी ली गई है, वह संदिग्ध है।

(33) एनडीपीएस मामले में प्रदान की गई गंभीर सजा को ध्यान में रखते हुए, अभियोजन एजेंसी ने इस तथ्य के बावजूद तथ्य के केवल दो गवाह पेश किए हैं कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, अ.सा.-1 और अ.सा.-2 के अलावा, तथ्य के अन्य गवाह भी घटनास्थल पर मौजूद थे और अभियोजन पक्ष मुकदमे के दौरान गवाह के कठघरे में अन्य गवाहों को नहीं बुलाने के लिए कोई उचित कारण या औचित्य देने में विफल रहा है।

(34) पूरा अभियोजन मामला अ.सा.-1 और अ.सा.-2 की एकमात्र गवाही पर आधारित है। प्रतिबंधित पदार्थ के नमूनों को सील करने के

लिए इस्तेमाल की गई सील को विधि विज्ञान प्रयोगशाला में नहीं भेजा गया है, बल्कि ऐसा लगता है कि इसे अ.सा.-1 ने खुद रखा था। अगर इसे विधि विज्ञान प्रयोगशाला के लिए भेजा गया होता, तो यह सुनिश्चित होता कि क्या नमूना उसी वर्जित/पदार्थ का है जो अभियुक्त-अपीलकर्ता से मौके से बरामद किया गया था और क्या अ.सा.-1 के बयान को रिकॉर्ड करने के समय संदेह से परे साबित करने के लिए कि निषिद्ध जिसे अदालत के समक्ष पेश किया गया था, वही था, जिसे मौके से आरोपी-अपीलकर्ता से निकाला गया है, शेष प्रतिबंध/पदार्थ को सील कर दिया गया था और नमूना सील अदालत के समक्ष पेश की गई थी या नहीं।

(35) यह भी नोट किया गया है कि चूंकि अभियुक्त/अपीलकर्ता से उचित संदेह से परे अभियोजन पक्ष द्वारा निषिद्ध पदार्थ की बरामदगी साबित नहीं की जा सकी, इसलिए अभियुक्त/अपीलकर्ता पर यह बताने का कोई बोझ नहीं डाला जा सकता है कि वह एनडीपीएस अधिनियम की धारा 35 और 54 के तहत निषिद्ध पदार्थ के कब्जे में कैसे आई। इस प्रकार, मेरी राय है कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है और विचारण न्यायालय सही परिप्रेक्ष्य में सबूतों की ठीक से मूल्यांकन करने में विफल रहा है।

(36) पूर्वोक्त कारणों से, प्रस्तुत अपील की अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, एफटीसी-II, बहराइच द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 27.01.2017 (उपरोक्त) को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा उसके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी किया जाता है।

(37) अभियुक्त-अपीलकर्ता जमानत पर है। उसके जमानत बांड रद्द कर दिए जाते हैं और ज़ामिनान को उन्मोचित किया जाता है।

(38) कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह निर्णय की एक प्रति के साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को तुरंत संबंधित न्यायालय को सूचना और अनुवर्ती कार्रवाई के लिए प्रेषित करे।

(2023) 8 ILRA 77

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक अपील संख्या 259 वर्ष 1982

राम किशोर ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री राजेश कुमार सिंह, श्री राघवेंद्र द्विवेदी, श्री सतीश चंद्र दुबे, श्री चंद्र प्रकाश गर्ग, श्री एन.के. रॉय, श्री बी.पी. सिंह

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
डी.जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 394 - हत्या के लिए दंड- मृत्युपूर्व अभिकथन - प्रासंगिकता - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 232 और 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32(1) - मृतक ने तीन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्र.सू.रि. दर्ज कराई, आरोप लगाया कि अपीलार्थी ने मृतक पर बंदूक चलाई - उपचार के दौरान उसकी हालत गंभीर हो गई - डॉक्टर ने अभिकथन दर्ज करने के लिए तहसीलदार को बुलाया। (प्रस्तर 2, 5, 7) घटना के समय मृतक के साथ मौजूद पी.डब्लू.-12 ने अभियोजन का समर्थन किया, लेकिन अभियुक्तों की पहचान करने को अस्वीकार कर दिया - शेष व्यक्ति, जिन्हें साक्षी के रूप में उद्धृत करने के बजाय मृतक के साथ देखा गया था, अभियुक्त के रूप में आरोपित किए गए - घटना के समय कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था - केवल प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में मृत्युपूर्व दिया गया अभिकथन ही दोषसिद्धि का आधार था - चिकित्सक के अनुसार, सामान्य रूप से किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के लिए पर्याप्त चोटें होती हैं, अतः मृतक की हत्या की गई थी। (प्रस्तर 15)

पी.डब्लू.-8 ने कहा है कि घायल बोलने की स्थिति में था, डॉक्टर ने भी यही राय दी थी, जब अभिकथन दर्ज किया गया, केवल डॉक्टर ही मौजूद था - पी.डब्लू.-8 ने अपनी स्वयं की लिखावट में तैयार किया गया मृत्युपूर्व अभिकथन सिद्ध किया, जिसमें पी.डब्लू.-7 की स्वास्थ्य स्थिति के बारे में राय है - पी.डब्लू.-7 ने कहा कि है रोगी पी.डब्लू.-8 द्वारा अभिकथन दर्ज किए जाने के समय होश में था, प्रविष्टि बेड हेड टिकट पर की गई थी - इस प्रकार अभिकथन विश्वसनीय था, न कि मनगढ़ंत। (प्रस्तर 20)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. खुशाल राव बनाम बॉम्बे राज्य1958 एससीआर 552: एआईआर 1958 एससी 22: 1958 क्रिमिनल लॉ जर्नल 106
2. लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 6 एससीसी 710

3. पूनम बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2019) 6 एससीसी 145

4. जयम्मा एवं एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2021) 6 एससीसी 213

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी
और
माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र दुबे और राज्य-विपक्षीपक्ष के लिए विद्वान एजीए श्री जितेंद्र कुमार को सुना।

2. धारा 374 (2) सीआरपीसी के तहत वर्तमान अपील एकमात्र अपीलकर्ता राम किशोर

द्वारा दायर की गई है, जिसमें 1980 के सत्र परीक्षण संख्या 252 (राज्य बनाम राम किशोर और अन्य) में विद्वान परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांक 07.01.1982 को चुनौती दी गई है, जो वाद अपराध संख्या शून्य 1979 से उत्पन्न हुई, धारा 307, 394 भा.द.वि., पु.था. बबेरू, जिला-बांदा के तहत, जिसके तहत अपीलकर्ता को भा. द.वि. की धारा 302 और 394 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई जो इसप्रकार है:

1. भा.द.वि. की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा भुगतनी होगी।

2. भा.द.वि. की धारा 394 के तहत अपराध के लिए सात साल का कठोर कारावास भुगतना होगा।

3. सभी सज़ाएं एक साथ चलेंगी।

3. तीनों आरोपियों के खिलाफ भा.द.वि. की धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.द.वि., 307 सहपठित धारा 34 भा.द.वि. और धारा 394 भा.द.वि. के तहत मुकदमा चला था।

4. कुल तीन आरोपियों में से केवल राम किशोर को दोषी ठहराया गया है और बाकी दो आरोपियों इकबाल बहादुर और राम गोपाल को 232 सीआर.पी.सी. के स्तर पर बरी कर दिया गया है। बरी करने के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है।

5. अभियोजन मामले के संक्षिप्त तथ्य इसप्रकार हैं:

रामानंद ने 18.07.1979 को शाम 06:15 बजे पुलिस स्टेशन- बबेरू, जिला-बांदा में धारा 307 और 394 भा.द.वि. के तहत तीन आरोपियों राम किशोर, राम गोपाल और इकबाल बहादुर के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई, जिसमें कहा गया था कि घटना सुबह लगभग 07:00 बजे की है, वह अपनी बंदूक लाइसेंस नंबर 1581 और 32 कारतूस लेकर अपनी साइकिल से ग्राम अमवा, थाना-बिसेड़ा, जिला-बांदा स्थित अपने ससुराल के लिए निकला। वह सुबह लगभग 09:30 बजे अगौसी घाट पर पहुंचे, उनकी मुलाकात तीन व्यक्तियों राम किशोर, राज गोपाल भुजवा और इकबाल से हुई। चारों व्यक्ति एकसाथ एक नाव से नदी पार कर के गये। अगौसी पहुंचने के बाद उन्हें बस नहीं मिली, इसलिए उन्हें अगौसी में ही रोक लिया गया। बाकी तीन लोग ग्राम पटवन जाना चाहते थे लेकिन बस नहीं आने पर वे अगौसी बस स्टैंड के पास स्थित फेरन भुजवा के यहां चले गए। वहां उन्होंने भोजन किया और शाम 06:00 बजे पुनः बस स्टैंड पहुंचे, उनकी मुलाकात मलेरिया विभाग में कार्यरत एक व्यक्ति से हुई, जो ग्राम निमोर में रहता था।इसी बीच आरोपी राम किशोर ने उसकी बंदूक और कारतूस ले लिये। राम गोपाल प्रथम सूचनादाता की साइकिल पर बैठे, जबकि आरोपी इकबाल बहादुर सिंह और राम किशोर उस व्यक्ति की साइकिल पर बैठे, जो मलेरिया विभाग में सेवारत थे। जब वे काजी टोला की ओर करीब एक किलोमीटर की दूरी तय कर गये, तो सड़क किनारे पुलिया के पास राम

किशोर ने रामानंद पर बंदूक से गोली चला दी। प्रथम सूचनादाता खेत में लगे महुआ के पेड़ की ओर बढ़ा। तीनों ने उसका पीछा किया तो राम किशोर ने दोबारा उस पर गोली चला दी। शोर सुनकर फेरन भुजवा, देवी दयाल मास्टर सहित कई अन्य लोग वहां पहुंच गये। तीनों आरोपी अपनी बंदूक और कारतूस लेकर मौके से भाग गए। वहां पहुंचे लोग, उसे कुछ दूरी तक तांगा से और बाकी दूरी को बस से तय कर बबेरू ले गए।

6. बबेरू अस्पताल पहुंचने के बाद 18.07.1979 और 19.07.1979 की दर मियानी रात 12:05 बजे सदर अस्पताल, बांदा में डॉ. पी.सी. चंदेल ने रामानंद की चोटों की जांच की। डॉक्टर को रामानंद के शरीर पर जो चोटें मिलीं वे इसप्रकार हैं:

"1. चेहरे के दाहिनी तरफ (गाल पर) 13 सेमी x 2.5 सेमी x मांसपेशियों में गहरा घाव और कान के निचले हिस्से से लेकर गर्दन के पीछे तक फैला हुआ घाव। किनारे पर घाव हो गया। त्वचा नष्ट हो गई और मांसपेशियाँ फट गईं। दाहिने गाल पर कालापन और गोदना मौजूद है। सलाह एक्स-रे घाव नाबदान के आकार का है और इसकी दिशा आगे से पीछे और थोड़ा नीचे की ओर है।

2. कर्णपल्लव सहित बाहरी कान के पार्श्व भाग पर खरोंच 2.5 सेमी x 0.5 सेमी।

3. कर्णपल्लव के पीछे चोट संख्या 1 के घाव के ऊपरी किनारे पर 7 सेमी x 1.5 सेमी क्षेत्र में एकाधिक खरोंचे।

4. दाहिनी छाती के सबसे ऊपरी भाग पर 9 सेमी x 7 सेमी x मांसपेशी गहरा क्षत-विक्षत घाव। चोट संख्या (1) के किनारे से छाती की ओर 2 सेमी नीचे और दाहिनी स्कैपुला की अंसकूट प्रवर्ध (ऊपरी कंधे) से 4 सेमी पार्श्व में। त्वचा नष्ट और ऊतक क्षतिग्रस्त एवं मांसपेशियाँ फट गयीं हैं। सलाह एक्स-रे।

5. बायीं ओर पेट के पार्श्वपहलू पर 5 सेमी x 1.5 सेमी के क्षेत्र में प्रवेश चार की संख्या में बंदूक की गोली के कई घाव, जिनमें से प्रत्येक का आकार 0.5 सेमी x 0.5 सेमी x एक गुहा है, जो श्रोणि-शिखर से 2 सेमी ऊपर और 03 बजे की स्थिति पर नाभि से 16 सेमी दूर है। प्रक्षेप्य के वृत्तनुमा घिसे घाव। कोई कालापन या गोदना या जलना मौजूद नहीं है। सलाह- एक्स-रे पेट, बाएं से दाएं अंदर की ओर, मध्य में और थोड़ा नीचे की ओर।

6. खरोंच 7 सेमी x 1 सेमी तिरछा चोट संख्या 5 से 3 सेमी. ऊपर पाया गया।

7. क्षत-विक्षत घाव (निकास का जीएसडब्ल्यू) 0.6 सेमी x 0.6 सेमी x पेट के सामने दाहिनी ओर गहरी गुहा। नाभि से 3 सेमी दूर चोट संख्या (5) से थोड़ा निचले स्तर पर बहिर्वलित किनारे और इसके पार्श्व में विदेशी शरीर (कठोर) स्पर्शनीय है।

राय: चोट संख्या 1, 4 और 5 को निरीक्षण हेतु (यू. ओ.) रखा गया।

गर्दन के साथ चेहरे का एक्स-रे, ऊपरी छाती का एक्स-रे और पेट का एक्स-रे की सलाह। शेष सब स्पष्ट हैं।

अवधि- नवीन

खरोंच घर्षण द्वारा और शेष आग्नेयास्त्र द्वारा कारित।"

7. इलाज के दौरान रामानंद को सीपी सुजान सिंह नं. 196, थाना-बबेरू, बांदा द्वारा पहचान कर लाया गया। इलाज के दौरान प्रथम सूचक की हालत गंभीर हो गयी। डॉक्टर ने मृत्युपूर्व बयान दर्ज करने के लिए बांदा के तहसीलदार को बुलाया। यह मृत्युपूर्व बयान दिनांक 19.07.1979 को प्रातः 1:20 बजे श्री शिव मूर्ति सिंह, तहसीलदार/मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा दर्ज किया गया था।तहसीलदार, बांदा द्वारा दर्ज किए गए मृत्युपूर्व बयान की सामग्री नीचे उद्धृत की गई है:

"बयान किया कि मुझे रामकिशोर बाप का नाम मुझे नहीं पता है जो औगासी में रहता है जो कि थाना मरका में है ने मेरी बंदूक लेकर औगासी से आगे लगभग एक किलोमीटर पुलिया के आगे मुझ पर फायर कर दिया । पहला फायर मुझे पेट पर लगा फिर मै भागकर महुआ के बाग की ओर गया फिर वही पहुँच कर रामकिशोर ने ही फिर फायर किया। मैं बचने के लिए झुका तो मेरे चेहरे और गर्दन पर फायर से चोट आयी। राम किशोर के साथ राजगोपाल गुप्ता निवासी देवलान थाना गाजीपुर तथा इकबाल निवासी देवलान थाना-गाजीपुर थे। इनके बाप का नाम मुझे नहीं मालूम है। ये लोग मुझे घाट पर मिले थे तथा मेरे साथ ही इन्होने सुर्री नाव से औगासी घाट पार किया उसके बाद भुजवा के पास सबने खाना बनवाकर खाया खाना भुजवा ने बनाया था नाम मुझे यादनहीं आ रहा है। हम सब लोग साइकिल पर थे बन्दूक राम किशोर ने औगासी में ले ली फिर पुलिया के आगे रामकिशोर ने मेरे ऊपर फायर कर दिया। मैंने हाथ पांव जोड़े कहा कि मुझे न मारो फिर भी मार दिया और पश्चिम की ओर भाग गये। मैं गिर पड़ा फिर कुछ देर बाद गांव के लोग आये और मुझे बबेरू अस्पताल ले गये। बबेरू से मुझे यहां लाया गया। बयान सुनकर तस्दीक किया।"

8. मृत्युपूर्व बयान दर्ज करने से पहले, सदर अस्पताल, बांदा के चिकित्सा अधिकारी ने एक प्रमाणपत्र दिया कि रामानंद मृत्युपूर्व बयान की रिकॉर्डिंग के समय पूरी तरह से सचेत थे और मृत्युपूर्व बयान की रिकॉर्डिंग के दौरान पूरी तरह से सचेत रहे। इस दस्तावेज़ को प्रदर्श का-18 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। प्रथम सूचक ने 19.07.1979 को सुबह 11:30 बजे अपनी अंतिम सांस ली। रामानंद का पोस्टमार्टम 20.07.1979 को किया गया था और मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं थीं:

"1. गाल के दाहिनी ओर और गर्दन के दाहिनी ओर के पार्श्वपहलू पर प्रवेश-15 सेमी x 3 सेमी x मांसपेशी में नाबदान के आकार का बंदूक की गोली का घाव। दाहिनी आंख के बाएं कोण से 7.5 सेमी. और मुंह के समकोण से 7.5 सेमी. घाव के चारों ओर गोदना और जलन मौजूद है, किनारे बहिर्वलित और कटे

हुए हैं। दिशा- पीछे की ओर नीचे एवं मध्य की ओर।

2. गटर के आकार का बंदूक की गोली का प्रवेश का घाव -9 सेमी x 4 सेमी x दाहिने कंधे के ऊपरी पहलू पर मांसपेशी की गहराई, दाहिनी स्कैपुला की अंसकूट प्रवर्ध (ऊपरी कंधे) से 3 सेमी पीछे।

चोट संख्या (1) और (2) एक ही बार में उत्पन्न होती हैं और वे एक-दूसरे पर आरोपित हो जाती हैं।

3. खरोंच - बाईं छाती के पार्श्वपहलू पर 3 सेमी x 1 सेमी। बाएं निपल के नीचे 17 सेमी और नाभि से 17 सेमी।

4. बंदूक की 4 गोलियों के प्रवेशी घाव- 5 सेमी x 2 सेमी के क्षेत्र में। पेट के बायीं ओर का पार्श्व भाग। बायीं श्रोणि फलक शिखा से 0.5 सेमी x ऊपर, नाभि से 14 सेमी. कोई गोदना या जलन नहीं, किनारे का कुछ भाग बहिर्वलित, दिशा- मध्य और आगे की ओर।

5. निकास के घाव का गनशॉट -पेट के दाहिनी तरफ अग्र भाग पर 0.6 सेमी x 0.6 सेमी। नाभि से 3 सेमी. घड़ी की 09 बजे स्थिति की दिशा में। किनारे बहिर्वलित।"

9. मृत्यु का कारण और तरीका आघात और रक्तस्राव के कारण था। जांच के दौरान, आपत्तिजनक सामग्री एकत्र की गई और आरोपपत्र दायर किया गया, संज्ञान लिया गया और तीनों आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 302/34 भा.द.वि., 307/34 भा.द.वि. और धारा 394 भा.द.वि. के तहत आरोप तय किए गए।

10. **अभियोजन पक्ष के गवाह:** मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों की जांच इसप्रकार की:

पी.ड ब्ल्यू.	**अभियोजन पक्ष के गवाहों के नाम**	**स्थिति**
पीडब्लू-1	श्री रामपाल	प्रथम सूचना रिपोर्ट के लेखक
पीडब्लू-2	श्री फेरन	मृतक और आरोपी के लिए खाना बनाया
पीडब्लू-3	श्री देवी दयाल सिंह	अस्पताल में भर्ती कराने के लिए रामानंद के साथ बस में गए
पीडब्लू-4	श्री मितन राम उप-निरीक्षक	सदर अस्पताल, बांदा में अपने द्वारा तैयार की गई जांच रिपोर्ट को साबित कर दिया।
पीडब्लू-5	श्री नैपाल सिंह, एस.ओ. मरका	प्रथम जांच अधिकारी जिन्होंने आंशिक रूप से अपराध की जांच की
पीडब्लू-6	डॉ. विकास चंद्र	मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया।
पीडब्लू-7	श्री पी.सी. चंदेल, चिकित्सा अधिकारी, सदर अस्पताल, बांदा	घायल को भर्ती किया, उसकी चोटों की जांच की और जिनकी उपस्थिति में मृतक का मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया
पीडब्लू-8	श्री शिव मूर्ति सिंह, तहसीलदार/ मजिस्ट्रेट-II श्रेणी, बांदा	मृतक का मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया।
पीडब्लू-9	श्री राम बहादुर सिंह, कांस्टेबल, पी.एस.	चिक एफआईआर साबित की जिसे पी.एस. मरका, बांदा को भेजा गया

प्रतिलिपि

	बबेरू, बांदा	
पीडब्लू-10	श्री कप्तान सिंह, हेड कांस्टेबल, पी.एस. मरका	पी.एस. मरका के हेड मुहर्रिर ने जीडी एंट्री साबित हुई।
पीडब्लू-11	श्री देवी दयाल प्रजापति, एस.आई., मरका	दूसरे जांच अधिकारी जिन्होंने आरोप पत्र प्रस्तुत किया
पीडब्लू-12	श्री सुकुरु लाल वर्मा, हाउस विजिटर	मलेरिया विभाग में कार्यरत/घायल प्रत्यक्षदर्शी

11. **प्रदर्शित और साबित किए गए दस्तावेज़:**

दस्तावेज़	**प्रदर्शित करते हैं**
प्रथम सूचना रिपोर्ट	प्रदर्श का-19
रामानंद पूर्व का मृत्युपूर्व बयान	प्रदर्श का-18
तहरीर/रिपोर्ट	प्रदर्श का-1
चोट रिपोर्ट	प्रदर्श का-15
रामानंद की पोस्टमार्टम जांच रिपोर्ट	प्रदर्श का-13
रामानंद की एक्स-रे रिपोर्ट	प्रदर्श का-17
फेरन भुजवा का बयान	प्रदर्श का-2
देवी दयाल मास्टर का बयान	प्रदर्श का-3
रामानंद का बयान धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत	प्रदर्श का-11
साइटप्लान	प्रदर्श का-12
सुकरू लाल पीडब्लू-12 का आवेदन दिया गया पीएस बबेरू	प्रदर्श का-22

12. अब, हम अभियोजन पक्ष के गवाहों और प्रदर्शित अभिलेखों की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं:

पीडब्लू-1 श्री रामपाल ने अपनी गवाही में कहा कि मृतक रामानंद फेरन और देवी दयाल के साथ बस से बबेरू चौराहे पर पहुंचे, फेरन ने मृतक रामानंद का इलाज कराने के लिए उन्हें बुलाया। पीडब्लू-1 मृतक रामानंद और अन्य लोगों के साथ अस्पताल गया, लेकिन चूंकि उसने पहले एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए कहा, इसलिए उसी स्थान पर, रामानंद ने विषय वस्तु लिखवाई और पीडब्लू-1 ने प्रार्थना पत्र लिख लिया और पुलिस स्टेशन गया। जिसके आधार पर एफआईआर दर्ज की गई। पीडब्लू-1, जो कि एफआईआर लिखवाने वाला है, ने प्रार्थना पत्र को प्रदर्श का-1 के रूप में प्रमाणित किया है। उन्होंने आगे बताया कि मृतक रामानंद खुद इलाज के लिए अस्पताल में थे और पीडब्लू-1 अकेले एफआईआर दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन, बबेरू आया था और घायलों की पहचान के लिए एक कांस्टेबल को अस्पताल भेजा गया था।

पीडब्लू-2 फेरन ने गवाही दी कि उसका निवास बस-स्टॉप, अगौसी में है। वह एक *इक्का* भी चलाते हैं। करीब दो साल एक माह पहले राम किशोर और तीन अन्य लोग उसके

यहां आए जो भूखे थे। चारों ने खाना खाया और चले गये, इनमें से एक के पास बंदूक और कारतूस था, खाना खाने के बाद शाम करीब 6:00 से 6:30 बजे चारों चले गए। जब पीडब्लू-2 अपने तांगे पर लगभग डेढ़ मील चला, तो उसने सड़क पर एक घायल व्यक्ति को पड़ा देखा और पहचान लिया कि यह वही व्यक्ति है जो राम किशोर के साथ गया था और उसके निवास पर भोजन किया था। पीडब्लू-2 घायल को अपने तांगे पर लादकर बबेरू की ओर चला गया। उनके साथ देवी दयाल और 4-5 अन्य लोग भी थे। रास्ते में उन्होंने एक बस को गुजरते हुए देखा, घायल बस में बैठ गए, यहां तक कि पीडब्लू-2 और देवी दयाल घायल के साथ बबेरू चौराहा आए जहां उनकी मुलाकात ग्राम- अगौसी के पीडब्लू-1 रामपाल से हुई। घायल को इलाज के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया जहां उसने घटना के बारे में बताया जिसे रामपाल (पीडब्लू-1) ने लिखा था। रामपाल उस रिपोर्ट को लेकर थाना बबेरू पहुंचा, जहां से एक होमगार्ड अस्पताल पहुंचा। रात 12:00 बजे कांस्टेबल, पीडब्लू-2 और पतवन का एक व्यक्ति घायलों को मेडिकल परीक्षण के लिए सदर अस्पताल, बांदा ले गए। अपनी जिरह में, पीडब्लू-2 ने कहा था कि वह राम किशोर को जानता था, जो राम गोपाल और इकबाल बहादुर के साथ भोजन के लिए उसके निवास पर आया था।

पीडब्लू-3 देवी दयाल सिंह ने बताया कि लगभग दो साल पहले, जब वह रात लगभग 09:00 बजे बबेरू चौराहे पर मौजूद थे, जहां रामपाल पीडब्लू-1 भी मौजूद था, एक बस 15-25 यात्रियों को लेकर आई, एक व्यक्ति आया और बताया कि एक घायल आदमी है, जिसे अस्पताल में भर्ती कराना होगा। वह इलाज के लिए अस्पताल गया और फिर से रामपाल के साथ पुलिस स्टेशन पहुंचा। अपनी जिरह में उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह अगौसी में मौजूद थे या वह घटना स्थल पर मौजूद थे और नही उन्होंने राम किशोर को मृतक पर गोली चलाते या बंदूक और कारतूस के साथ भागते देखा था। उन्होंने यह भी कहा कि बस स्टैंड से अस्पताल की दूरी करीब 70-80 कदम है। उन्होंने घायल को दर्द से कराहते और चिकित्सा सहायता मांगते देखा।

पीडब्लू-4 सबइंस्पेक्टर मितन राम ने जांच आख्या तैयार की और पोस्टमार्टम रिपोर्ट एकत्र की। अपनी जिरह में उन्होंने बताया कि घायल रामानंद की मृत्यु दिनांक 19.07.1979 को रात्रि 11:30 बजे जिला-सदर अस्पताल, बांदा में हो गई।

पीडब्लू-5 एस.ओ. नैपाल सिंह ने बताया कि घटना की तारीख पर वह एसएचओ पुलिस स्टेशन, मरका के रूप में तैनात थे। उसी दिन उन्हें थाना-बबेरू से अपराध पंजीकरण के संबंध में प्रासंगिक दस्तावेज यानी एफआईआर, जनरल डायरी प्राप्त हुई। इस जीडी के अनुसार, एफआईआर थाना-बबेरू में दर्ज की गई थी, जो पीएस-मरका में जीडी का हिस्सा है। परचा संख्या 11 में, उक्त गवाह ने मूल जीडी को प्रमाणित कर दिया। 19.08.1979 को ही, धारा 307 और 394 भा.द.वि. के तहत अपराध को धारा 302 और 394 भा.द.वि. के तहत अपराध में बदल दिया गया था, जो केस डायरी का

हिस्सा भी है और प्रदर्श का-10 साबित हुआ है। पीडब्लू-5 ने उसी तारीख को जांच संभाली और हेड कांस्टेबल कप्तान सिंह, कांस्टेबल हरि शंकर तिवारी और घायल रामानंद के बयान सदर अस्पताल, बांदा में धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए। फेरन का बयान दर्ज किया, श्रीपाल ने मौका मुआयना कर साइट प्लान (प्रदर्श का-12) तैयार किया। उन्होंने यह भी बताया कि रामानंद स्वस्थ स्थिति में हैं, जो बयान दर्ज कराते समय कुछ भी बोल सकते हैं। उसने मजिस्ट्रेट के सामने अपना बयान दर्ज करवाने का कोई प्रयास नहीं किया क्योंकि वह यह अनुमान नहीं लगा सका कि उसकी मृत्यु हो सकती है। न तो उसने डॉक्टर से पूछा कि क्या वह मर सकता है, न ही उसने डॉक्टर से अपने स्वास्थ्य की स्थिति के बारे में पूछा। जिरह में उन्होंने इस बात से साफ इनकार कर दिया कि रामानंद बोलने की स्थिति में नहीं थे।

पीडब्लू-6 डॉ. विकास चंद्रा ने मृतक रामानंद की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रमाणित किया और मृतक के शरीर पर पोस्टमार्टम से पहले की चोटें पाईं जो इसप्रकार हैं:

> "मेरी राय में इस मृतक की मौत सदमे तथा उपरोक्त चोटों से उत्पन्न रक्तस्त्राव के कारण हुई थी।
>
> वरवक्त मुआयना मैंने पोस्ट मार्टम की इक्जमीनेशन रिपोर्ट प्रदर्श क-13 जो मेरे लेख व हस्ताक्षर मे तैयार किया था।
>
> मेटैलिक 9 शाट्स व वेड्स कागज के पैकेट मे सील मोहर दुरुस्त आए सिपाही को साथ एस.पी. के यहाँ भेज दिया था।
>
> अकेजन चोट न. 3 गिरने से आ सकती।
>
> मेरी राय मे चोट नं. 1 व दो एक ही शाट से आई थी। चोट नं.-2 खड़े आदमी पर तब आयेगी जब मरने वाला चोटेल से ऊंचे 9 स्थान पर हो। यह चोट लेते हुये आदमी पर मारने से आ सकती है। यदि दो साइकिलों पर हो और मारने वाला पीछे की साइकिल से बन्दूक चलाये तो आगे वाले पर नं-1 व नं-2 चोटे आ सकती है। यदि गर्दन को बेस मानकर नाक पर मेंनडिकुलर मान कर कोड बनाये तो 45 या 60 डिगरी का कोड़ बनेगा। मारने वाले की स्थित ऊंची हर हालत मे होनी चाहिए। यह चोट तो पीछे से आ ही नहीं सकती। चोट नं-4 भी पीछे से नहीं आ सकती।
>
> यदि सड़के के किनारे पड़े हो और उसी सड़क से आदमी साइकिल से जा रहा हो तो साइकिल वाले आदमी को पेड़ से ऊपर से फायर करने पर चोट नं-1 व 2 आ सकती है।
>
> इतनी चोटों के बाद भी आदमी बोलने की स्थिति मे रह सकता है। चोट नं-4 ऐसे थी जिसके कारण ज्यादा दर्द रहा होगा।"

पीडब्लू-7 डॉ. पी. सी. चंदेल ने बताया कि वह चिकित्सा अधिकारी, सदर अस्पताल, बांदा के पद पर तैनात थे और आपातकालीन ड्यूटी

पर थे। 18/19.07.1979 की मध्यरात्रि को 12:05 बजे, उन्होंने रामानंद की चोटों की जांच की, जिन्हें कांस्टेबल सुजान सिंह, सीपी 196 द्वारा लाया गया और पहचाना गया और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, बबेरू के डॉ. खान द्वारा प्रारंभिक उपचार और रेफर किया गया था। उन्होंने डॉ. खान द्वारा लाए गए टिकट को प्रदर्श का-14 को भी प्रमाणित किया। मेडिको-लीगल जांच के बाद डॉक्टर को रामानंद के शरीर पर चोट के निशान मिले।

डॉक्टर ने कहा कि चोट संख्या 1, 4 और 5 को निगरानी में रखा गया है, बाकी अन्य चोटें साधारण हैं। सभी चोटें ताज़ा थीं और लगभग 6:00 बजे लगी होंगी। घर्षण के कारण ही खरोंचे हुआ होंगी। बाकी अन्य चोटें आग्नेयास्त्र के कारण लगीं। ये चोटें 18.07.1979 को शाम लगभग 06:00 बजे लगी हो सकती थीं, उन्होंने चोट को चोट रजिस्टर में दर्ज किया और रामानंद के हस्ताक्षर प्राप्त किए और इसे प्रदर्श का-15 के रूप में प्रमाणित किया। उन्होंने स्वयं रामानंद को अस्पताल में भर्ती कराया और उनके बेड हेडटिकट को प्रदर्श का-15 के रूप में प्रमाणित किया, जो उनकी ही लिखावट में तैयार किया गया था। इसके बाद मरीज को डॉ. डी. एस. राणा ने देखा। 19.07.1979 को प्रातः 11:20-11:30 बजे डॉ. एस.के. गुप्ता ने मरीज़ को देखा डॉ. डी. एस. राणा और डॉ. एस.के. गुप्ता के नाम उल्लिखित थे जो प्रदर्श का-16 के रूप में प्रमाणित हुआ। मरीज की मृत्यु दिनांक 19.07.1979 को प्रातः 11:30 बजे सदर अस्पताल, बांदा में हो गई। भर्ती के समय मरीज की हालत अच्छी नहीं थी। उनका रक्तचाप कम (80/50) था, लेकिन मरीज़ सचेत था। उपचार के दौरान उक्त साक्षी ने अपना मृत्युपूर्व बयान दर्ज कराने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 19.07.1979 को प्रातः 1:20 बजे रामानन्द का मृत्युपूर्व बयान तहसीलदार, बांदा द्वारा दर्ज किया गया, जिसकी प्रविष्टि बेड हेड टिकट पर अंकित है। वह मृत्युपूर्व बयान की रिकॉर्डिंग के साक्षी थे और 19.07.1979 को 1:15 बजे टिकट को इस नोट के साथ प्रमाणित किया कि मरीज बोलने की स्थिति में है।

पीडब्लू-8 शिव मूर्ति सिंह ने बताया कि वह जिला-बांदा में तहसीलदार-सह-मजिस्ट्रेट-II श्रेणी के पद पर तैनात थे। उसी दिन उन्हें बांदा के सदर अस्पताल से एक घायल का मृत्युपूर्व बयान दर्ज कराने की सूचना मिली। वह बांदा के सदर अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में पहुंचे, जहां घायल का इलाज डॉ. चंदेल के यहां चल रहा था। घायल बोलने की स्थिति में था। डॉक्टर ने अपनी राय देते हुए बताया कि घायल बोलने की स्थिति में है। जो कुछ सुनाया, उसे लिख लिया। बयान दर्ज करने के बाद उस पर उनके अंगूठे का निशान लिया गया, बयान दर्ज करते समय डॉक्टर के अलावा कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। उक्त कथन को प्रदर्श का-18 के रूप में प्रमाणित किया गया है जो उनकी स्वयं की हस्तलिपि में तैयार किया गया है और जिसमें डॉ. श्री पी.सी. चंदेल की स्वास्थ्य स्थिति के बारे में जानकारी है। उन्होंने उक्त मृत्युपूर्व बयान पर हस्ताक्षर किए जैसा कि 19.07.1979 को मध्यरात्रि में 1:20 बजे दर्ज किया गया था।

पीडब्लू-9 राम बहादुर सिंह कांस्टेबल सीपी 561 ने बयान दिया कि 18.07.1979 को वह कांस्टेबल के रूप में थाना बबेरू, जिला-बांदा में तैनात थे, उस दिन रात 09:30 बजे ग्राम अगौसी का रामपाल तहरीर रिपोर्ट (प्रदर्श का-1) के साथ आया था, जिसके आधार पर एफआईआर (प्रदर्श का-19) दर्ज की गई। उक्त गवाह ने चिक एफआईआर (प्रदर्श का-19) को प्रमाणित किया। आवश्यक जानकारी जनरल डायरी में दर्ज की गई जिसे मूलरूप में लाकर प्रमाणित किया गया। यह सूचना तत्काल उसी समय रेडियो ट्रांसमीटर से टपर थाना-मरका को दे दी गई। प्राथमिकी दर्ज कराने के समय प्रथम सूचक रामानंद अस्पताल में थे। उन्होंने कांस्टेबल सुजान सिंह और होमगार्ड राम सहाय को पत्र के साथ अस्पताल भेजा ताकि डॉक्टर घायल का तदनुसार इलाज कर सकें। अगले ही दिन मामले से जुड़े सभी जरूरी दस्तावेज पीएस-मरका को भेज दिए गए। उक्त गवाह ने अपनी जिरह में कहा कि उसे यह मालूम नहीं है कि कोई मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया गया है या नहीं? उस समय एसओ राजपाल सिंह मौजूद थे। तहरीर रिपोर्ट लेकर आए रामपाल ने बताया कि घायल की हालत ठीक नहीं थी।

पीडब्लू-10 कप्तान सिंह ने बताया कि 19.07.1979 को वह हेडमुहर्रिर, पीएस-मरका, जिला-बांदा के पद पर तैनात थे और उसी तारीख को उन्होंने चिक एफआईआर (प्रदर्श का-19) दर्ज की, जो पुलिस स्टेशन बबेरु ने 18.07.1979 को अपनी जनरल डायरी में रिपोर्ट नंबर 31 के रूप में दर्ज की थी, और वही 19.07.1979 को दोपहर 12:15 बजे प्राप्त हुई थी। इस मूलडायरी को प्रदर्श का-9 के रूप में प्रमाणित किया गया था। यह मामला एसओ नैपाल सिंह की मौजूदगी में दर्ज किया गया, जिन्होंने जांच का जिम्मा संभाला। अपनी जिरह में, उक्त गवाह ने गवाही दी कि यदि कोई सूचना रेडियो ट्रांसमीटर से टपर प्राप्त हुई होगी, तो उसे आरटी सेटर जिस्टर में दर्ज किया गया होगा।

पीडब्लू-11 देवी दयाल प्रजापति, दूसरे जांच अधिकारी हैं और उन्हें एस एच ओ, पीएस -मरका, जिला-बांदा के पद पर तैनात किया गया था। उन्होंने बताया कि शुरुआत में जांच तत्कालीन एसओ नैपाल सिंह को सौंपी गई थी, उनके स्थानांतरण के बाद उन्होंने 22.10.1979 को जांच संभाली और आरोपियों और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए और आरोप पत्र दाखिल किया और इसे प्रदर्श का-21 के रूप में प्रमाणित किया। जिरह में उन्होंने बताया कि वह मलेरिया विभाग में कार्यरत व्यक्ति का बयान दर्ज करना भूल गये थे। उन्होंने बंदूक का लाइसेंस खोजने की कोशिश भी नहीं की। सुकुरू लाल वर्मा द्वारा दिया गया प्रार्थना पत्र भी उन्हें नहीं मिला।

पीडब्लू-12 सुकुरु लाल वर्मा से एक घायल गवाह के रूप में पूछताछ की गई और बताया गया कि 18.07.1979 यानी घटना की तारीख पर, वह गृह-आगंतुक के रूप में अगौसी क्षेत्र में तैनात थे। वह जांच और विश्लेषण के लिए व्यक्तियों से रक्त एकत्र करते थे और मलेरिया की गोलियाँ भी वितरित करते थे। उन्होंने बताया कि वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन के सिलसिले में 18.07.1979 को अगौसी गये थे। उसने बताया कि वह अपनी

साइकिल अगौसी बस स्टैंड के पास रहने वाले भुजवा के यहां रखता था। शाम करीब छह से साढ़े छह बजे वह अगौसी से लौटे। उक्त भुजवा के यहाँ से उसने अपनी साइकिल उठाई और जब वह मात्र 10 कदम की दूरी पर गया था तो उसे तीन व्यक्ति मिले। वह उन्हें पहले से नहीं जानता था, उसने बताया कि उनमें से एक के पास साइकिल थी और एक के पास बंदूक थी और तीसरा खाली हाथ था। उनका आवासीय घर काजी टोला के निकट निमोर नामक स्थान पर स्थित था। वह निमोर जा रहा था। उन्होंने उससे काजी टोला तक अपने साथ चलने का अनुरोध किया और उनमें से एक को अपनी साइकिल पर बैठाने के लिए कहा। उनमें से एक उसकी साइकिल चलाने लगा और बाकी दोनों दूसरी साइकिल पर सवार हो गये। उक्त बाकी दो व्यक्ति उसकी साइकिल के पीछे चले। जब उन्होंने लगभग 1¼ या 1½ किलोमीटर की दूरी तय की, तो उक्त दो व्यक्तियों में से एक, जो उसके पीछे साइकिल पर थे, ने बंदूक से गोली चला दी, जो उसके बाएं अंगूठे पर लगी। दूसरा व्यक्ति जो साइकिल चला रहा था वह अपनी साइकिल छोड़कर सड़क के पश्चिम की ओर भाग गया। जब वह अगौसी की ओर भाग रहा था, तभी उसे बंदूक की एक और आवाज सुनाई दी। वह अगौसी के दो व्यक्तियों के साथ फिर घटना स्थल पर गया। वहां उसे कोई व्यक्ति नहीं मिला। वह उन दो व्यक्तियों की मदद से, जिनके साथ वह अगौसी से आया था, साइकिल पर सवार होकर अपने निवास स्थान की ओर चल दिया। दिनांक 19.07.1979 को वे बबेरू अस्पताल गये और डॉक्टर के साथ थाने जाकर प्रदर्श का-22 अंकित प्रार्थना पत्र सौंपा। उन्होंने कहा कि ये आरोपी वे नहीं हैं जो घटना के समय उनके और मृतक के साथ थे। उन्होंने उन लोगों के नाम याद करने से इनकार कर दिया जो उनके साथ घटनास्थल पर गए थे और भुजवा का नाम भी।

13. धारा 313 सीआर.पी.सी. के तहत आरोपी का बयान दर्ज किया गया:

अभियोजन साक्ष्य समापन के बाद धारा 313 सीआर.पी.सी. के तहत आरोपी के आगे के बयान दर्ज किए गए। आरोपियों ने खुद को निर्दोष बताया और कहा कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त/अपीलकर्ता राम किशोर ने कहा कि उसने सुना है कि ऐसी घटना घटी है। घटना की जानकारी होने पर वह भी बस स्टैंड पहुंचे लेकिन सुना कि कुछ लोग घायल को बबेरू अस्पताल ले गए हैं। उन्होंने आगे कहा कि राम दास नाम का व्यक्ति उनका दुश्मन है और उसी ने उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया है।

14. *इसके विपरीत,* विद्वान ए.जी.ए. श्री जितेंद्र कुमार ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का कड़ा विरोध किया और तर्क दिया कि परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित फैसले में कोई खामियां नहीं हैं और यह अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य और गवाही पर आधारित है। परीक्षण न्यायालय ने तथ्यों और कानून पर विचार और मूल्यांकन के बाद अपीलकर्ता को सही दोषी ठहराया है। अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध में शामिल होने के संबंध में मृत्युपूर्व बयान दिया गया है। विद्वान ए.जी.ए. ने निर्णय, दोष सिद्धि और सजा का समर्थन किया है।

15. निष्कर्ष और विश्लेषण:

रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों की सूक्ष्मता से निरीक्षण के पश्चात, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों पक्ष इस बात पर सहमत थे कि रामानंद की हत्या की गई थी। आरोपी व्यक्तियों ने घटनास्थल को चुनौती नहीं दी है। घटना के समय या स्थान को लेकर दोनों पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं था और अपने मृत्युपूर्व बयान में, घायल/सूचनाकर्ता ने कहा कि उसे अगौसी से लगभग एक किलोमीटर दूर एक पुलिया के पास गोली मार दी गई थी। आरोपी व्यक्तियों ने इस स्थान को चुनौती नहीं दी है और स्वीकार किया है कि जैसा कि उन्होंने सुना था, उक्त स्थान पर एक घटना हुई थी। घटना का एक चश्मदीद गवाह है। पीडब्लू-2 के रूप में परीक्षित फेरन भुजवा और गांव के कुछ अन्य लोगों ने मृतक को उक्त स्थान पर घायल हालत में पाया। इन सभी साक्ष्यों को मिलाकर स्पष्ट रूप से घटना स्थल अगौसी से एक किलोमीटर की दूरी पर बबेरू रोड, अगौसी पर सड़क के किनारे स्थित है। घटना के समय मृतक के साथ आए घायल/चश्मदीद गवाह सुकुरु लाल वर्मा पीडब्लू-12 ने अभियोजन पक्ष का अब तक इस तथ्य का समर्थन किया है कि घटना कब, कहां और कैसे हुई, लेकिन उन्होंने आरोपी व्यक्तियों की पहचान करने से इनकार कर दिया। बाकी लोगों को, जिन्हें गवाह के रूप में उद्धृत किए जाने के बजाय मृतक के साथ देखा गया था, आरोपी के रूप में पेश किया गया है। घटना के समय वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था। इन परिस्थितियों में, आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ एकमात्र प्रत्यक्ष साक्ष्य रामानंद का मृत्युपूर्व दिया गया बयान ही उपलब्ध है, जिसे सजा का आधार बनाया जा सकता है। दिनांक 18/19.07.1979 की मध्य रात्रि में सदर अस्पताल, बांदा में डॉ. पी.सी. चंदेल ने मृतक की चोटों की जांच की। उन्हें चार स्थानों पर तीन खरोंचें और बंदूक की गोली के घाव मिले, दो प्रवेश के और दो निकास के। मृतक केशव का पोस्टमार्टम करने वाले डॉ. विकास चंद्र को पोस्टमार्टम के समय ये बंदूक की गोली के घाव मिले। उनके मुताबिक मृतक की मौत सदमे और रक्त स्राव के कारण हुई है। सामान्यतौर पर ये चोटें किसी भी आदमी की मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं। इन परिस्थितियों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मृतक रामानंद की हत्या की गई है।

16. यह भी देखा गया है कि एफआईआर रामानंद द्वारा लिखवाई गई थी। जांच अधिकारी द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था और मजिस्ट्रेट द्वारा मृत्युपूर्व बयान भी दर्ज किया गया था। प्रदर्श का-18 मृतक रामानंद का मृत्युपूर्व बयान है जिसे दिनांक 19.07.1979 को अस्पताल परिसर में पीडब्लू-8 शिव मूर्ति सिंह तहसीलदार, बांदा द्वारा दर्ज किया गया था। इसमें डॉक्टर का प्रमाणपत्र है कि घायल रामानंद अपना बयान दर्ज कराने के समय पूरी तरह से होश में था और उक्त रिकार्डिंग की पूरी प्रक्रिया के दौरान भी वह होश में रहा। सिखाने-पढ़ाने का तो कोई मौका ही नहीं था। इसप्रकार, मृतक बयान देने के लिए मानसिक रूप से उपयुक्त स्थिति में था, उसने स्पष्ट रूप से हमलावर की पहचान की और बिना किसी

बाहरी प्रभाव या विद्वेष के, स्वेच्छा से एक सच्चा बयान दिया। उक्त कथन की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य और पीडब्लू-2 और पीडब्लू-12 के बयानों से भी होती है। मृतक की किसी भी आरोपी से कोई दुश्मनी नहीं थी, इसलिए यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि उसने किसी भी आरोपी के खिलाफ कोई गलत तथ्य बताया होगा। मृतक ने बताया कि आरोपी राम किशोर ने ही उस पर हमला किया था और उसके कहने के बावजूद भी नहीं छोड़ा और एक और फायर झोंक दिया। उन्होंने यह भी बताया है कि किस तरह से चोटें आईं। उन्होंने कहा कि पहली गोली में, जब वह साइकिल पर थे, तब वह गिरे और दूसरी बार जब वह झुके हुए थे, तब वह फिर से गिरे। चोट रिपोर्ट, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, चोट के स्थान और डॉक्टर की राय पर ध्यान से विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रामानंद को दो स्थानों पर बंदूक की दो गोली लगी थी, एक तो सीधे साइकिल पर बैठे हुए लगी होगी और दूसरी झुक कर बैठने की स्थिति में हो सकती है। आरोपी राम किशोर द्वारा घायल पर दो फायर करने और बंदूक व 32 कारतूस लेकर भाग जाने की बात भी साबित हो गयी है। उनका बयान आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने वाले चिकित्सीय साक्ष्यों से अच्छी तरह मेल खाता है।

17. उद्धृत विधिक निर्णय और उन पर निर्भरता:

मृत्यु पूर्व दिए गए बयान के विषय पर कानून को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्टरूप से और स्पष्टरूप से प्रतिपादित किया गया है।

1. **खुशाल राव बनाम बॉम्बे राज्य 1958 एससीआर 552: एआईआर 1958 एससी 22: 1958 सीआरआईएलजे 106 में** जो निम्नानुसार आदेशित किया गया था:

> *"साक्ष्य अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों और इस न्यायालय में निर्णयित मामलों की समीक्षा पर, हम मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ की राय से सहमत होकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, पूर्वोक्त, (1) यह कानून के पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि एक मृत्युपूर्व बयान दोष सिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता जब तक कि इसकी पुष्टि न हो; (2) कि प्रत्येक मामले को उसके तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए जिनमें मृत्युपूर्व बयान दिया गया था; (3) यह एक सामान्य प्रस्ताव के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मृत्युपूर्व बयान साक्ष्य के अन्य टुकड़ों की तुलना में एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है; (4) कि एक मृत्युपूर्व बयान उसी स्तर पर स्थित है जिस प्रकार अन्य साक्ष्य है और इसे आस-पास की परिस्थितियों के प्रकाश में और साक्ष्य के भार को निर्देशित करने वाले सिद्धांतों के*

संदर्भ में आंका जाना चाहिए; (5) एक मृत्युपूर्व बयान जो एक सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा उचित तरीके से दर्ज किया गया है, कहने का तात्पर्य, प्रश्नों और उत्तरों के रूप में, और, जहां तक सभव हो, घोषणा के निर्माता के शब्दों में हो, उस मृत्युपूर्व बयान की तुलना में बहुत ऊंचे स्तर पर है, जो मौखिक गवाही पर निर्भर करता है, जो मानवीय स्मृति और मानवीय चरित्र की दुर्बलताओं सभी से पीड़ित हो सकता है, और (6) कि मृत्युपूर्व बयान की विश्वसनीयता का परीक्षण करने के लिए, न्यायालय को मरने वाले व्यक्ति के अवलोकन हेतु अवसर जैसी परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा, उदाहरण के लिए, यदि अपराध रात में किया गया हो तो पर्याप्त रोशनी थी; क्या उस व्यक्ति की बताए गए तथ्यों को याद रखने की क्षमता उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण; उस समय क्षीण नहीं हुई थी, जब वह बयान दे रहा था, यदि उसके पास आधिकारिक रिकॉर्ड के अलावा मृत्युपूर्व बयान देने के कई अवसर थे, तो यह बयान हर जगह सुसंगत रहा है; और यह कि यह बयान जल्द से जल्द दिया गया था और यह इच्छुक पार्टियों द्वारा लिखाए-पढ़ाए जाने का परिणाम नहीं था। इसलिए, विश्वसनीयता की परीक्षा पास करने के लिए, मृत्युपूर्व दिए गए बयान की बहुत बारीकी से जांच की जानी चाहिए, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बयान अभियुक्त की अनुपस्थिति में दिया गया है, जिसके पास जिरह द्वारा बयान सत्यता का परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं था।।"

2. **लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2002) 6 एससीसी 710 में,** यह माना गया है कि:

"जिस स्थिति में एक आदमी मृत्यु शय्या पर है वह बहुत ही गंभीर और शांत है, विधि में यही उसके कथन की सत्यता को स्वीकार करने का कारण है। यही कारण है कि शपथ और जिरह की आवश्यकताओं को समाप्त कर दिया गया है। चूंकि अभियुक्त के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है, इसलिए अदालतें इस बात पर जोर देती हैं कि मृत्युपूर्व दिया गया बयान इस तरह का होना चाहिए कि अदालत को उसकी सत्यता और शुद्धता पर पूरा भरोसा हो। हालाँकि, अदालत को यह देखने के लिए हमेशा सतर्क रहना पड़ता है कि मृतक का बयान पढ़ाया-लिखाया या किसी संकेत या कल्पना का परिणाम नहीं था। अदालत को यह भी तय करना होगा कि मृतक की मानसिक स्थिति ठीक थी और उसे हमलावर को देखने और पहचानने का अवसर मिला था। इसलिए, आमतौर पर, अदालत यह संतुष्ट करने के लिए कि क्या मृतक मृत्युपूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से उपयुक्त स्थिति में था, चिकित्सा राय पर निर्भर करता है। लेकिन जहां प्रत्यक्ष दर्शियों का कहना है कि मृतक घोषणा

करने के लिए फिट और सचेत स्थिति में था, तो चिकित्सा राय मान्य नहीं होगी, न ही यह कहा जा सकता है कि चूंकि मृतक के मानसिक फिटनेस के बारे में डॉक्टर का कोई प्रमाणन नहीं है, अतः मृत्युपूर्व दिया गया बयान स्वीकार्य नहीं है। मृत्युपूर्व बयान मौखिक या लिखित हो सकता है और संचार का कोई भी पर्याप्त तरीका चाहे शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या अन्यथा पर्याप्त होगा, बशर्ते संकेत सकारात्मक और निश्चित हो। कानून की ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि मृत्युपूर्व बयान आवश्यक रूप से मजिस्ट्रेट को दिया जाना चाहिए और जब ऐसा बयान मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया जाता है तो ऐसी रिकॉर्डिंग के लिए निर्दिष्ट वैधानिक प्रपत्र हो। परिणामतः, ऐसे बयान के साथ क्या साक्ष्यात्मक मूल्य या महत्व जोड़ा जाना चाहिए, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अनिवार्य रूप से यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति मृत्युपूर्व बयान दर्ज करता है, उसे इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि मृतक मानसिक स्थिति में ठीक था। जहां मजिस्ट्रेट की गवाही से यह साबित हो जाता है कि घोषणाकर्ता डॉक्टर द्वारा जांच किए बिना भी बयान देने के लिए फिट था, तो घोषणा पर कार्रवाई की जा सकती है, बशर्ते अदालत अंततः इसे स्वैच्छिक और सत्य मान ले। डॉक्टर द्वारा प्रमाणीकरण अनिवार्य रूप से सावधानी का नियम है और इसलिए घोषणा की स्वैच्छिक और सत्य प्रकृति को अन्यथा स्थापित किया जा सकता है।

3. पूनम बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2019) 6 एससीसी 145 में, यह माना गया है कि:

"मृत्युपूर्व बयान आरोपी को दोषी ठहराने का एकमात्र आधार हो सकता है। हालांकि, ऐसा मृत्युपूर्व बयान भरोसे मंद, स्वैच्छिक, दोषरहित और विश्वसनीय होना चाहिए। यदि मृत्युकालीन घोषणा दर्ज करने वाला व्यक्ति इस बात से संतुष्ट है कि घोषणाकर्ता बयान देने के लिए उपयुक्त चिकित्सीय स्थिति में है और यदि कोई संदिग्ध परिस्थितियाँ नहीं हैं, तो मृत्युकालीन घोषणा केवल इस आधार पर अमान्य नहीं हो सकती है कि यह डॉक्टर द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया था।"

4. जयम्मा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2021) 6 एससीसी 213 में, यह माना गया है कि:

"जब मृत्युपूर्व बयान को कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, और यह घटना का एक ठोस और स्वीकार्य स्पष्टीकरण देता है, तो अदालत आरोपी को दोषी ठहराने के लिए साक्ष्य के एकमात्र टुकड़े के रूप में इसपर भरोसा कर सकती है। यही कारण है कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 का यह नियम अनुश्रुत साक्ष्य की स्वीकार्यता के विरुद्ध सामान्य नियम का अपवाद है और इसका खंड (1) मृतक के बयान को स्वीकार्य बनाता है। इस तरह का बयान जो किसी व्यक्ति द्वारा दिया जाता है, उसकी मृत्यु का कारण या उन चोटों के बारे में जिनके कारण उसकी मृत्यु हुई या जिन परिस्थितियों में चोटें पहुंचाई गईं को "मृत्यु पूर्व घोषणा" के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार मृत्युपूर्व बयान को इस आधार पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है कि मृत्यु की आशंका उसी मानवीय भावनाओं को जन्म देती है जो एक शपथबद्ध

कर्तव्य निष्ठ एवं निर्दोष व्यक्ति की होती है। यह एक बयान है जिसमें किसी व्यक्ति की मृत्यु से पहले उसके अंतिम शब्द शामिल होते हैं जिन्हें सत्य माना जाता है, और किसी भी उद्देश्य या द्वेष से संक्रमित नहीं होता है। इसलिए मरने से पहले दिया गया बयान आवश्यकता के सिद्धांत पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है क्योंकि निष्पादक के जीवित रहने की बहुत कम उम्मीद है, और यदि विश्वसनीय पाया जाता है, तो यह निश्चित रूप से दृढ़ विश्वास का एकमात्र आधार बन सकता है।"

18. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 (1) किसी मृत व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान की प्रासंगिकता का प्रावधान करती है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) नीचे पुन: प्रस्तुत की गई है:

*"32. **ऐसे मामले जिनमें मृत या न मिल पाने वाले व्यक्ति आदि द्वारा प्रासंगिक तथ्य का बयान प्रासंगिक हैं-** किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक बयान, जो मर चुके हैं, या जो पाया नहीं जा सकता है, या जो साक्ष्य देने में असमर्थ हो गया है, या जिसकी उपस्थिति बिना किसी देरी या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती है, जिसके तहत मामले की परिस्थितियाँ, जो न्यायालय को अनुचित प्रतीत होती हैं, स्वयं निम्नलिखित मामलों में प्रासंगिक तथ्य हैं: -*

*(1) **जब यह मृत्यु के कारण से संबंधित है-** जब किसी व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के कारण के बारे में या लेन-देन की किसी भी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तो ऐसे मामलों में जहां उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है।*

इस तरह के बयान प्रासंगिक हैं, चाहे जिस व्यक्ति ने उन्हें बनाया है, उस समय जब वे दिए गए थे, वह मृत्यु की प्रत्याशा में था या नहीं था, और कार्यवाही की प्रकृति जो भी हो, जिसमें उसकी मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के "मृत्युपूर्व बयान" पर कानून बनाने वाले निर्णयों की श्रृंखला से पता चलता है कि मृत्युपूर्व बयान दोष सिद्धि का एकमात्र आधार हो सकता है यदि यह भरोसेमंद, स्वैच्छिक, दोषरहित और विश्वसनीय है। मृत्युपूर्व दिया गया बयान किसी अन्य सबूत के समान ही होता है और इसका मूल्यांकन आस-पास की परिस्थितियों के मद्देनजर और सबूतों के वजन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। मृत्युपूर्व बयान की विश्वसनीयता का परीक्षण करने के लिए, न्यायालय को परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा, जैसे कि मरने वाले व्यक्ति को अवलोकन का अवसर, उदाहरण के लिए, यदि अपराध रात में किया गया था तो क्या पर्याप्त रोशनी थी; उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण; क्या उस व्यक्ति की बताए गए तथ्यों को याद रखने की क्षमता उस समय क्षीण नहीं हुई थी,

जब वह बयान दे रहा था, यदि उसके पास आधिकारिक रिकॉर्ड के अलावा मृत्युपूर्व बयान देने के कई अवसर थे, तो यह बयान हर जगह सुसंगत रहा है; और यह कि यह बयान जल्द से जल्द दिया गया था और यह इच्छुक पार्टी द्वारा लिखाए-पढ़ाए जाने का परिणाम नहीं था। जिस स्थिति में कोई व्यक्ति मृत्यु शय्या पर है वह बहुत गंभीर और शांत है, यही उसके कथन की सत्यता को स्वीकार करने का कानून के पास कारण है। चूँकि अभियुक्त के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है, इसलिए न्यायालय इस बात पर जोर देता है कि मृत्युपूर्व दिया गया बयान इसप्रकार का होना चाहिए कि उसकी सत्यता और शुद्धता पर न्यायालय को पूरा भरोसा हो। मृत्युपूर्व बयान मौखिक या लिखित हो सकता है और संचार का कोई भी पर्याप्त तरीका चाहे शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या अन्यथा पर्याप्त होगा, बशर्ते संकेत सकारात्मक और निश्चित हो। कानून की ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि मृत्युपूर्व बयान आवश्यक रूप से मजिस्ट्रेट को दिया जाना चाहिए और जब ऐसा बयान मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया जाता है तो ऐसी रिकॉर्डिंग के लिए निर्दिष्ट वैधानिक प्रपत्र होता है। नतीजतन, ऐसे बयान के साथ क्या साक्ष्यात्मक मूल्य या महत्व जोड़ा जाना चाहिए, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अनिवार्य रूप से यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति मृत्युपूर्व बयान दर्ज करता है, उसे इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि मृतक ठीक मानसिक स्थिति में था। जहां मजिस्ट्रेट की गवाही से यह साबित हो जाता है कि घोषणाकर्ता डॉक्टर द्वारा जांच किए बिना भी बयान देने के लिए फिट था, तो घोषणा पर कार्रवाई की जा सकती है, बशर्ते अदालत अंततः इसे स्वैच्छिक और सत्य मान ले। डॉक्टर द्वारा प्रमाणीकरण अनिवार्य रूप से सावधानी का नियम है और इसलिए घोषणा की स्वैच्छिक और सत्य प्रकृति को अन्यथा स्थापित किया जा सकता है। जब मृत्युपूर्व बयान कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, और यह घटना का एक ठोस और स्वीकार्य स्पष्टीकरण देता है, तो अदालत आरोपी को दोषी ठहराने के लिए सबूत के एकमात्र भाग के रूप में इस पर भरोसा कर सकती है। इस तरह का बयान, जिसे "मृत्युपूर्व बयान" के रूप में वर्गीकृत किया गया है, एक व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के कारण या उन चोटों के बारे में दिया जाता है जिनके कारण उसकी मृत्यु हुई या जिन परिस्थितियों में चोटें लगी थीं। मृत्युपूर्व दिए गए बयान को इस आधार पर साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है कि मौत की आशंका से वही मानवीय भावनाएं पैदा होती हैं जो शपथबद्ध कर्तव्यनिष्ठ और निर्दोष व्यक्ति में होती हैं। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 की उप-धारा (1) के अनुसार, जब किसी व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के कारण के बारे में, या किसी भी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हुई, ऐसे मामलों में जहां उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, तो ऐसे कथन प्रासंगिक होते हैं, चाहे जिस व्यक्ति ने उन्हें बनाया हो, जिस समय वे दिए गए थे, उस समय मृत्यु की आशंका थी या नहीं।

20. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) के प्रावधानों और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के सिद्धांतों को ऊपर संक्षेप में लागू करने पर, हम पाते हैं कि मरने से पहले दिया गया बयान मृतक को एक मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया था जिसने पीडब्लू-8 के रूप में गवाही दी थी। उन्होंने अपनी गवाही में कहा कि घायल बोलने की स्थिति में था और डॉक्टर ने अपनी राय दी है कि घायल बोलने की स्थिति में था और जब मृतक का बयान दर्ज किया गया तो डॉक्टर के अलावा कोई भी मौजूद नहीं था। पीडब्लू-8 ने "मृत्युपूर्व घोषणा" (प्रदर्श का-18) को प्रमाणित कर दिया है, जो पीडब्लू-8 ने अपनी लिखावट में तैयार की थी और जिसमे उसकी स्वास्थ्य स्थिति के बारे में डॉ. पी.सी. चंदेल (पीडब्लू-7) की राय सम्मिलित है। मृतक का बयान 19.07.1979 को 01:20 पूर्वाह्न पर दर्ज किया गया था। पीडब्लू-7 डॉ. पी.सी. चंदेल ने अपने साक्ष्य में कहा है कि मरीज पीडब्लू-8 द्वारा अपना बयान दर्ज किए जाने के समय सचेत था और इस आशय की प्रविष्टि बेड हेड टिकट पर एक नोट के साथ की गई थी कि मरीज बोलने की हालत में था। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने मृत्युपूर्व दिए गए बयान को विश्वसनीय और सिखाया हुआ नहीं पाया है। इन परिस्थितियों में, मृत्युपूर्व बयान (प्रदर्श का-18) को, जैसा कि पी डब्लू-8 द्वारा सिद्ध किया गया है और पी डब्लू-7 के साक्ष्य से पुष्ट किया गया है, उचित महत्व दिया जाना चाहिए। इस निर्णय के अनुच्छेद-12 में उल्लिखित अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विचार करते हुए, हमारा विचार है कि मृतक की "मृत्युपूर्व घोषणा" स्वैच्छिक और विश्वसनीय थी। इसलिए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आरोपी राम किशोर ने भा.द.वि. की धारा 302 और 394 के तहत अपराध किया है, तदनुसार, धारा 302, 394 भा.द.वि. के तहत उसकी दोष सिद्धि और सजा की पुष्टि की जानी चाहिए।

21. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, इस न्यायालय को सत्र परीक्षण संख्या 252/1980 में परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 7.1.1982 में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है, जिसमें एक मात्र अपीलकर्ता राम किशोर को दोषी ठहराया गया और भा.द.वि. की धारा 302 और 394 के तहत अपराध की सजा सुनाई गई। यह न्यायालय परीक्षण न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत है और उसकी पुष्टि करता है। तदनुसार, अपील **खारिज** की जाती है। अभियुक्त/अपीलकर्ता रामकिशोर को पहले ही दिनांक 20.07.2023 को गिरफ्तार कर जेल भेजा जा चुका है। वह परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.01.1982 के संदर्भ में सजा की शेष अवधि पूरी करेगा।

22. कार्यालय को आवश्यक जानकारी और अनुपालन के लिए इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को प्रेषित करने का निर्देश दिया जाता है। आगे यह निर्देश दिया गया है कि मामले का मूल रिकॉर्ड तुरंत लौटा या जाए जिसे परीक्षण न्यायालय द्वारा सुरक्षित रखा जाएगा।

अनुवादित

(2023) 8 ILRA 90

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 563 वर्ष 2000

गुड्डन एवं अन्य ...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:
बलराम यादव, अश्विनी कुमार त्रिपाठी, इंद्र प्रताप सिंह, उमेश कुमार यादव

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376/511, 354 और 506 - बलात्संग के लिए दंड - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अर्थदंड के साथ कठोर कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 164 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 53, 114 (जी) और 155 (4) - पीड़िता पर छेड़छाड़ और बलात्संग करने के प्रयास के अपराध के लिए प्र.सू.रि. दर्ज की गई - अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में कोई भी स्वतंत्र साक्षी आगे नहीं आया, सभी अभियुक्त व्यक्ति एक ही परिवार के थे, जिनके साथ सूचनाकर्ता के साथ सिविल मुकदमेबाजी के कारण दुश्मनी थी - प्र.सू.रि. दर्ज करने में देरी - अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में चिकित्सा साक्ष्य नहीं, पीड़िता के दाहिने हाथ की छोटी उंगली के आधार पर पपड़ी को छोड़कर बाहरी या आंतरिक हिस्से पर कोई चोट नहीं, यह स्थापित किया गया कि वह संभोग की आदी थी - दो सगे भाई एक साथ ऐसा अपराध नहीं कर सकते - घटना का समय और पीड़िता द्वारा शौच के लिए घर से अकेले बाहर जाना मनगढ़ंत लगता है - इसलिए, सभी अपीलार्थियों को कुछ भूमिकाएँ सौंपी गईं - अभियोजन पक्ष कथित अपराध के संबंध में अपीलार्थियों के विरुद्ध अभियोजन का मामला स्थापित करने में विफल रहा - इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया। (प्रस्तर 2, 60)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. अमन कुमार बनाम राज्य, एआईआर 2004 एससी 1497

2. तुकाराम बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1979 एससी 185

3. नीलांबर गौडो बनाम उड़ीसा राज्य, 1982 क्रिमिनल लॉ जर्नल एनओसी 172 (उड़ीसा)

4. जोगिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1974 क्रिमिनल लॉ जर्नल 117

5. राम कली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1947 इलाहाबाद 191

प्रतिलिपि

6. विमल सुरेश कांबले बनाम चालुवेरापिनके, एआईआर 2003 एससी 818

7. राजस्थान राज्य बनाम बिरम लाल, 2005 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2561 (एससी)

8. कर्णाटक राज्य बनाम मंजन्ना, एआईआर 2000 एससी 2231

9. संतोष प्रसाद उर्फ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य, (2020) 3 एससीसी 443

10. लालता प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1979 एससी 1276

11. चरण सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1988) 3 अपराध 85 (पंजाब और हरियाणा)

12. जहूर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,, 1989 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1177 (इलाहाबाद)

13. सकारिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1925 (एमपी)

14. महाराष्ट्र बनाम अब्दुल हफीस फारूकी, 1998 क्रिमिनल लॉ जर्नल 3603 (एससी)

15. जोसेफ बनाम केरल राज्य, 2000 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2467 (एससी)

16. संपद बनाम उड़ीसा राज्य, 2001 क्रिमिनल लॉ जर्नल 793 (उड़ीसा)

17. उड़ीसा बनाम रामा स्वैन एवं अन्य, 2007 क्रिमिनल लॉ जर्नल 714 (उड़ीसा)

18. गोवर्धन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2006 क्रिमिनल लॉ जर्नल 4118

19. मानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 क्रिमिनल लॉ जर्नल 201 (एमपी)

20. महाराष्ट्र राज्य बनाम रामेश्वर श्रीधर जवारे, 2008 क्रिमिनल लॉ जर्नल 675 (बॉम्बे)

21. सुरेश गोविंदा नागदेवे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2943 (बॉम्बे)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री इंद्र प्रताप सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री अनुप्रिया जायसवाल को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. इस अपील को दोषियों गुदुन, सुरेश, जंगेय और हरीश चंद्र द्वारा 1997 के एसटी नंबर 827 (राज्य बनाम गुड्डन और अन्य) में ग्यारहवीं-अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा पारित दिनांक 03.06.2000 के निर्णय और सजा के आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है जो 1997 के केस अपराध संख्या-55 से धारा 376, 354, 506 भ०द०वि०, पुलिस स्टेशन खंडासा, जिला फैजाबाद के तहत उद्भूत हो रहा है, जिसके तहत अभियुक्त

व्यक्तियों को धारा 376/511 भ०द०वि० के तहत पांच साल के कठोर कारावास और 2,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई थी, और जुर्माने का भुगतान न करने की स्थिति में छह महीने की अतिरिक्त कैद से गुजरना होगा; और भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अंतर्गत एक-एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है; और धारा 506(2) भ०द०वि० के तहत प्रत्येक को एक वर्ष के कठोर कारावास की सज़ा सुनाई गई थी और यह भी निर्देश दिया गया था कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता श्रीपाल ने 08.03.1997 को एक प्राथमिकी दर्ज की कि 03.03.1997 की रात लगभग 09:00 बजे उसकी बेटी शौच के लिए घर के बाहर गई थी। राधेश्याम के पुत्र गुदून और मूसे, जागराम के सुरेश पुत्र, शालिक्रम के पुत्र हरीश चंद्र और केशरी के पुत्र जंगेय ने अपनी पुत्री को जमीन पर पटक दिया। गुदून ने उसके स्तन को पकड़ लिया और जब हरीश चंद्र ने बुरी नीयत से उसकी साड़ी खोली तो वह रोने लगी, जिस पर राम दुलारे यादव, रामदेव और चंद्रिका प्रसाद तिवारी व उसके गांव के कुछ अन्य लोग मौके पर पहुंचे और आरोपियों को वहां से भागते देख लिया। चूंकि मामला उनकी बेटी के बारे में था, इसलिए उन्होंने पुलिस से संपर्क नहीं किया, लेकिन जब उन्होंने उन्हें मारने की धमकी देना शुरू कर दिया, तो उन्होंने प्राथमिकी दर्ज करने और उसे बचाने का अनुरोध किया।

4. इस मामले में आरोपी 'मूसे' को किशोर घोषित किया गया था और उसके मामले को विचारण के लिए किशोर न्याय बोर्ड, फैजाबाद को प्रेषित किया गया था। बाकी आरोपियों का मामला दर्ज किया गया और धारा 376/511, 354, 506 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए। आरोपी व्यक्तियों ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

5. अभियोजन पक्ष ने इसके समर्थन में निम्नलिखित गवाहों की जांच की: -

1	अ०सा०-1	श्री पाल सूचनाकर्ता
2	अ०सा०-2	श्रीमती कुसुमा
3	अ०सा०-3	डॉ पी नाथ
4	अ०सा०-4	रमेश चंद तिवारी, कॉन्सटेबल मुहर्रिर
5	अ०सा०-5	एस.आई राम नागिन यादव
6	अ०सा०-6	डॉ सुषमा सिंह

6. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं:-

1	प्रदर्श क-1	तहरीरी रिपोर्ट
2	प्रदर्श क-2	घायल की चोट रिपोर्ट
3	प्रदर्श क-3	चिक प्राथमिकी
4	प्रदर्श क-4	कायमी जी डी के प्रति
5	प्रदर्श क-5	नक़्शा
6	प्रदर्श क-6	आरोप पत्र
7	प्रदर्श क-7	पीड़ित की आयु निर्धारण रिपोर्ट

(i) अपील का आधार

7. अभियुक्तों द्वारा लिए गए आधार इस प्रकार हैं: (i) विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर

साक्ष्य की सही और न्यायिक रूप से जांच और मूल्यांकन करने में विफल रहा और उसने आक्षेपित आदेश पारित करने में गलती की; (ii) विचारण न्यायालय यह नहीं मान सका कि मामले की कहानी मनगढ़ंत थी और अभियोजन पक्ष द्वारा इसे साबित नहीं किया जा सका; (iii) आक्षेपित निर्णय क़यासों और अनुमानों पर पारित किया गया है; (iv) विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका कि यह दुश्मनी के कारण एक दुर्भावनापूर्ण अभियोजन था, सबूत अपने आप में विरोधाभासी हैं और कहानी काल्पनिक है, विचारण न्यायालय मुख्य साक्ष्य का मूल्यांकन करने में विफल रहा जो पूरे मामले को गलत साबित कर रहा है; (v) दंड अधिक है और निर्णय और आदेश अवैध और मनमाना है और कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है। इसलिए, दोषसिद्धि और सजा के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए और अपील की अनुमति दी जाए।

(II) अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों पर संक्षिप्त चर्चा

8. अ०सा०-1 के सूचनाकर्ता श्रीपाल ने गवाही दी है कि घटना के दिन रात करीब 09:00-10:00 बजे जब वह गुड़ बना रहा था, राम दुलारे और चंद्रिका रामपाल के घर पर बैठे थे, उन्होंने अपनी 14-15 साल की बेटी की चीखें सुनीं। वह टॉर्च लेकर वहां भागा। राम दुलारे, चंद्रिका, रामपाल और रामदेव भी उसके पीछे पहुंचे थे और देखा था कि आरोपी मुसी उसकी बेटी के साथ गंदी हरकतें कर रहा था और आरोपी गुदून ने देसी पिस्तौल की नोक पर उसका हाथ और स्तन पकड़ लिया था। हरीश चंद्र ने उसकी साड़ी खोल रखी थी और वो नंगी अवस्था में पड़ी थी। यह घटना राम जियावन के खेत में हुई थी। उसकी बेटी ने बताया कि आरोपी मुसी ने उसके साथ दुष्कर्म किया। बाकी आरोपी उसके साथ बुरा काम कर रहे थे। लड़की ने अपनी मां दशरथ देई, राम दुलारे, चंद्रिका तिवारी और रामदेव के सामने यह कहानी सुनाई। इस गवाह ने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1 पर हस्ताक्षर की गवाही ली।

9. अ०सा०-2, कुसुमा ने गवाही दी है कि यह घटना लगभग एक साल दस महीने पहले हुई थी। रात के 10 बज रहे थे वह राम जीवन के खेत में शौच के लिए घर से बाहर गई हुई थी। उसके गांव के आरोपी हरीश चंद्र, गुदून, चंद्रिका, मूसी व सुरेश पहुंचे और पहले उसे पकड़कर जमीन पर पटक दिया। गुदून देसी पिस्तौल से धमका रहा था। आरोपी मुसी ने उसके मूत्रमार्ग/मूत्र पथ में अपने लिंग से उसके साथ दुष्कर्म किया। जब वह ऐसा कर रहा था, तो बाकी आरोपियों ने उसे पकड़ लिया था। जब उसने शोर मचाया, तो उसके पिता और उसके बाद उसकी माँ और छोटे लाल, राम दुलारे, रामदेव, रामपाल और बाबा की पत्नी वहाँ पहुँचे। सबसे पहले गुदून ने टॉर्च जलाई थी। उसके पिता ने भी टॉर्च जलाई थी। जब वे आरोपी के पास पहुंचे तो वे भाग खड़े हुए। उसके पिता ने उसकी बंधी हुई टांगें खोल दी थीं।

10. अ०सा०-3, डॉ पी नाथ ने पीड़ित की जांच की थी और दाहिने हाथ की छोटी उंगली के पीछे आधार पर 0.5 सेमी x 0.5 सेमी के क्षेत्र

में कठोर परत पाई थी और कहा था कि यह एक कुंद वस्तु से आया होगा। यह तब भी हो सकता है जब किसी को जमीन पर फेंक दिया जाता है।

11. अ०सा०-4, चंद्रिका तिवारी ने प्राथमिकी दर्ज करने के संबंध में चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-3 और कार्बन कॉपी के जीडी प्रदर्श क-4 साबित की है।

12. अ०सा०-5, एस.आई राम नगीना यादव ने गवाही दी है कि उनकी अनुपस्थिति में मामला दर्ज किया गया था। उन्होंने चिक प्राथमिकी और जीडी की नकल की थी, राम दुलारे, रामदेव और पीड़िता की मां के बयान दर्ज किए थे। नक्शा प्रदर्श क-5 तैयार किया और 18.03.1997 को सूचनाकर्ता और पीड़िता का बयान दर्ज किया, मेडिकल रिपोर्ट की नकल की और धारा 376 भ०द०वि० को जोड़ा, आरोपी हरीश चंद्र, मुसे यादव और गुदून को गिरफ्तार किया और उनके बयान दर्ज किए और पर्याप्त सबूत मिलने के बाद धारा 376, 354, 506 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रदर्श क-6 प्रस्तुत किया।

13. अ०सा०-6, डॉ सुषमा सिंह ने गवाही दी है कि उन्होंने 10.03.1997 को लगभग 06:00 बजे पीड़िता की चिकित्सा जांच की थी। पीड़िता अपने दाहिने हाथ पर चोट होने की बात कह रही थी। उसके प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं आई थी। हाइमन बूढ़ा फटा और ठीक हो चुका था। दो उंगलियां आसानी से उसकी योनि में प्रवेश कर रही थीं। योनि स्मीयर एकत्र किया गया और रोगविज्ञानी को भेजा गया. पीड़िता को सीएमओ के पास भेजा गया, जिसने उसकी उम्र 17 साल निर्धारित की। (जीवित या मृत शुक्राणु की उपस्थिति के बारे में कोई रोग संबंधी रिपोर्ट नहीं मिली/पाई गई)।

(III) योग्यता पर चर्चा

14. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिया गया पहला तर्क यह है कि प्राथमिकी दर्ज करने में अनुचित देरी हुई है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपराध 03.03.1997 की रात में हुआ था और प्राथमिकी 08.03.1997 की रात को दर्ज की गई थी। प्राथमिकी के अनुसार यह केवल छेड़छाड़ और बलात्कार करने के प्रयास का मामला था, लेकिन जांच के बाद धारा 376, 354, 506 (2) भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। सूचनाकर्ता ने गवाही दी कि 04.03.1997 को वह संबंधित थानाध्यक्ष के पास गया लेकिन उसने प्राथमिकी दर्ज नहीं की और जब उसने डीआईजी को आवेदन दिया तभी प्राथमिकी दर्ज की जा सकती थी लेकिन इन तथ्यों के समर्थन में कोई स्वतंत्र मौखिक साक्ष्य पेश नहीं किया गया है। जहां तक डीआईजी को लिखित रिपोर्ट सौंपने का सवाल है, तो मुख्य परीक्षा के दौरान ऐसी कोई रिपोर्ट साबित नहीं हुई है। हालांकि, जिरह के दौरान गवाह से डीआईजी को सौंपे गए आवेदन के बारे में पूछा गया जिसमें कुछ अलग तथ्यों का भी उल्लेख किया गया है जो अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है। यह भी पता चला है कि इस गवाह के अनुसार वह पहले ही एक प्राथमिकी दर्ज कर चुका था जिसे थानाध्यक्ष ने फाड़ दिया था और जब उसने एक और प्राथमिकी दर्ज की तो उसकी बेटी को

चिकित्सा जांच के लिए भेजने पर विचार किया गया। हालांकि, कानून के अनुसार डीआईजी को पत्र के सबूत के अभाव में, यह कहा जा सकता है कि जब दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी थी तो मामला अनुचित देरी के बाद दर्ज किया गया था, हालांकि बलात्कार और छेड़छाड़ के मामलों में पांच दिन की देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है, लेकिन जिन परिस्थितियों में संबंधित प्राथमिकी दर्ज की गई है, उन पर भी विचार किया जाएगा कि क्या प्राथमिकी अनुचित देरी के साथ दर्ज किया गया या नहीं।

15. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी विचार किया है कि इस मामले में प्राथमिकी के सभी कथित गवाह (जिनकी अदालत में जांच नहीं की गई है) या तो रिश्तेदार थे या दूरस्थ दूरी के निवासी थे। प्राथमिकी में उल्लिखित गवाहों में से, रामदेव यादव सूचनाकर्ता के बहनोई थे, जिन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा था कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी। उसने सुना था कि आरोपी ने पीड़िता को जमीन पर फेंक दिया था। चंद्रिका प्रसाद तिवारी अपने गांव से 10 किलोमीटर दूर रह रहे थे। राम दुलारे उसी के गांव का रहने वाला था लेकिन कोर्ट में उससे पूछताछ नहीं हुई है। उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है, लेकिन कहा है कि उन्होंने पीड़िता को अपनी मां के साथ खेतों से आते देखा था। उसने मौके से किसी को भागते नहीं देखा। उसने सुना कि आरोपी व्यक्तियों ने पीड़िता को छेड़छाड़ करने के लिए जमीन पर फेंक दिया था।

16. हालांकि, इस तरह के मामले की पीड़िता घायल गवाहों के बराबर है और उसके साक्ष्य पर, यदि वह भरोसेमंद और एक स्टर्लिंग गवाह पाया जाता है, विचार किया जाना चाहिए; लेकिन ऐसा नहीं है और परिस्थितियां और चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में नहीं हैं, इसलिए, अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए स्वतंत्र साक्ष्य से पुष्टि आवश्यक होगी।

17. इस मामले में सभी आरोपी व्यक्ति परिवार के सदस्य हैं और सूचनाकर्ता के साथ एक दीवानी मामले के कारण दुश्मनी थी। उनमें से मूसी और गुड्डन सगे भाई थे। इस न्यायालय के अनुसार, इस तरह का अपराध दो सगे भाइयों द्वारा अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्यों की उपस्थिति में एक साथ नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में बचाव पक्ष ने पक्षों के बीच लंबित दीवानी मामले के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं अर्थात केस संख्या-64 वर्ष 1984 जिसे आरोपी गुदून और मूसी के पिता द्वारा सूचनाकर्ता के परिवार के सदस्यों के खिलाफ स्थापित किया गया था। दुश्मनी दोधारी हथियार है। शत्रुता के कारण एक अपराध हो सकता है और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठे और मनगढ़ंत मामले में झूठा फंसाया जा सकता है। इस मामले में तथ्यों, परिस्थितियों, चिकित्सा और मौखिक साक्ष्य और मूल मामले से सुधार पर विचार करते हुए, परीक्षण के दौरान, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दुश्मनी के कारण आरोपी व्यक्तियों को आरोपी मूसा के पिता के रूप में झूठा फंसाया गया है और गुड्डन ने एक

जमीन खरीदी थी जिसे सूचनाकर्ता ने अपनी सहन भूमि के रूप में दावा किया था।

18. इस न्यायालय के अनुसार, यदि पीड़िता अकेले खेतों में गई थी और आरोपी मूसी उसके साथ बलात्कार और छेड़छाड़ करना चाहता था, तो किसी अन्य व्यक्ति की कोई आवश्यकता नहीं थी। एक युवा लड़का इतना मजबूत होता है कि वह कम उम्र की लड़की को छेड़छाड़ करने और उसके साथ बलात्कार करने के लिए प्रबल कर सकता है। सभी परिवार के सदस्यों को शामिल करते हुए और सभी आरोपी व्यक्तियों को भूमिका सौंपते हुए कि एक ने उसका एक हाथ पकड़ लिया है, दूसरे ने उसका दूसरा हाथ पकड़ लिया है, कुछ अन्य आरोपियों ने उसका बायां पैर, उसका दाहिना पैर पकड़ लिया है और आरोपी मूसी अपने बड़े भाई और उसके अन्य बड़े परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में पीड़िता के साथ बलात्कार कर रहा था। वास्तविकता से दूर एक मनगढ़ंत कहानी प्रतीत होती है।

19. यह भी तर्क दिया गया है कि पीड़िता अच्छे नैतिक चरित्र की लड़की नहीं थी। उसके अपने गांव के एक लड़के से अवैध संबंध थे। घटना के दिन उसे उसके साथ नशे की हालत में देखा गया था, जिसके लिए गांव में एक प्रचार फैलाया गया था, इसलिए, केवल पीड़िता के सम्मान को बचाने के लिए यह झूठी कहानी सूचनाकर्ता द्वारा अपने देवर रामदेव यादव की सहायता से पीड़िता और उसकी मां को विश्वास में लेकर गढ़ी गई थी। इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 53(संक्षेप में 'अधिनियम, 1872') महत्वपूर्ण है। तैयार संदर्भ के लिए अधिनियम, 1872 की धारा 53 निम्नानुसार है: -

"53. आपराधिक मामलों में, पिछले अच्छे चरित्र प्रासंगिक - आपराधिक कार्यवाही में, यह तथ्य कि आरोपी व्यक्ति एक अच्छे चरित्र का है, प्रासंगिक है।

20. यह उल्लेखनीय है कि यह छेड़छाड़ और बलात्कार करने के प्रयास का मामला है क्योंकि आरोप धारा 376/511 भ०द०वि० के तहत तय किया गया था, इसलिए, अधिनियम, 1872 की संशोधित धारा 53 ए जो अधिनियम वर्ष 2013 द्वारा सम्मिलित की गई थी, लागू नहीं होगी।

21. इस आधार पर अधिनियम, 1872 की धारा 155 प्रासंगिक है और इसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"155. साक्षी पर महाभियोग चलाना-साक्षी का साख निम्नलिखित रीतियों से प्रतिकूल पक्षकार द्वारा या न्यायालय की सहमति से उस पक्षकार द्वारा जो उसे पुकारता है- महाभियोग लगाया जा सकेगा-

(1) उन व्यक्तियों के साक्ष्य से जो गवाही देते हैं कि वे, गवाह के अपने ज्ञान से उसे श्रेय के योग्य नहीं मानते हैं;

(2) इस बात के प्रमाण से कि गवाह को रिश्वत दी गई है, या उसने रिश्वत की पेशकश को स्वीकार किया है, या उसे अपना साक्ष्य देने के लिए कोई अन्य भ्रष्ट प्रलोभन प्राप्त हुआ है;

(3) उसके साक्ष्य के किसी भी हिस्से के साथ असंगत पूर्व बयानों के सबूत से, जिसका खंडन किया जा सकता है।

22. चूंकि यह वर्ष 1997 का मामला है, इसलिए, अधिनियम, 1872 की धारा 155 की उपधारा (4) जिसे संशोधन अधिनियम वर्ष 2002 द्वारा हटा दिया गया था, प्रासंगिक और लागू होगी जो निम्नानुसार है: -

"(4) जब किसी व्यक्ति पर बलात्कार या विनाश के प्रयास के लिए मुकदमा चलाया जाता है, तो यह दिखाया जा सकता है कि अभियोक्ता आम तौर पर अनैतिक चरित्र का था।

23. इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि अधिनियम, 1872 की धारा 155 की उप-धारा (4) कथित अपराध के आयोग के समय अस्तित्व में थी, इसलिए, इस मामले को अधिनियम, 1872 की धारा 155 की छोड़ी गई उप-धारा (4) के प्रकाश में भी देखा जाना चाहिए क्योंकि मेडिकल रिपोर्ट और पीडब्ल्यू -3 और पीडब्ल्यू -6 के साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में नहीं हैं।

24. भ०द०वि० की धारा 375 के तहत परिभाषित बलात्कार के संबंध में मानदंडों पर चर्चा करना समीचीन होगा जो धारा 376 भ०द०वि० के तहत दंडनीय है। भ०द०वि० की धारा 375 और 376 इस प्रकार है: -

"375. बलात्कार- एक आदमी को "बलात्कार" करने के लिए कहा जाता है, जो इसके बाद के मामले को छोड़कर, निम्नलिखित छह विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों में एक महिला के साथ संभोग करता है: -

(पहला) - उसकी इच्छा के विरुद्ध।

(दूसरा) - उसकी सहमति के बिना।

(तीसरा) - उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को डालकर प्राप्त की गई है जिसमें वह मृत्यु या चोट के भय में रुचि रखती है।

(चौथा) - उसकी सहमति से, जब आदमी जानता है कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह मानती है कि वह एक और आदमी है जिससे वह है या खुद को कानूनी रूप से विवाहित मानती है।

(पांचवां) - उसकी सहमति से, जब, ऐसी सहमति देने के समय, मन की अस्वस्थता या नशा के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य विचित्र या हानिकारक पदार्थ के माध्यम से प्रशासन के कारण, वह उस की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है जिसके लिए वह सहमति देती है।

(छठा) - उसकी सहमति से या उसके बिना, जब वह सोलह वर्ष से कम आयु की हो। स्पष्टीकरण-बलात्कार के अपराध के लिए आवश्यक संभोग का गठन करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है।

(अपवाद) - किसी पुरुष द्वारा अपनी ही पत्नी के साथ संभोग करना, पत्नी जिसकी आयु पंद्रह वर्ष से कम न हो, बलात्कार नहीं है।

376. बलात्कार-(1) जो कोई, उपधारा (2) द्वारा उपबंधित मामलों के सिवाय, बलात्संग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास

से, जिसकी अवधि सात वर्ष से अन्यून होगी किंतु जो आजीवन या दस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा जब तक कि बलात्कार की गई महिला उसकी अपनी पत्नी न हो और बारह वर्ष से कम आयु की न हो, जिन दशाओं में, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से, दंडित किया जाएगा: परन्तु न्यायालय निर्णय में उल्लिखित पर्याप्त और विशेष कारणों से, सात वर्ष से कम की अवधि के कारावास का दण्डादेश अधिरोपित कर सकेगा।

(2) जो कोई भी, -

(क) पुलिस अधिकारी होने के नाते बलात्कार करता है-

(i) थाना- की सीमाओं के भीतर, जिसमें वह नियुक्त किया गया है; नहीं तो

(ii) किसी स्टेशन हाउस के परिसर में, चाहे वह उस थाना- में स्थित हो या नहीं, जिसके लिए वह नियुक्त किया गया है; नहीं तो

(iii) उसकी अभिरक्षा में या उसके अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी महिला पर; नहीं तो

(ख) लोक सेवक होते हुए, अपने पदीय पद का लाभ उठाता है और अपनी अभिरक्षा में ऐसी लोक सेवक के रूप में या अपने अधीनस्थ किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में किसी महिला के साथ बलात्कार करता है; नहीं तो

(ग) किसी महिला या बालक संस्था द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी जेल, रिमांड होम या अभिरक्षा के अन्य स्थान के प्रबंधन या कर्मचारिवृंद पर होना, अपने शासकीय पद का लाभ उठाता है और ऐसी जेल, रिमांड होम, स्थान या संस्था के किसी कैदी के साथ बलात्कार करता है; नहीं तो

(घ) किसी अस्पताल के प्रबन्ध या कर्मचारिवृंद पर होने के कारण अपने पदीय पद का लाभ उठाता है और उस अस्पताल में किसी महिला का बलात्कार करता है; नहीं तो

(ङ) किसी स्त्री के गर्भवती होने की जानकारी के कारण उसका बलात्कार करता है; नहीं तो

(च) बारह वर्ष से कम आयु की किसी स्त्री का बलात्कार करता है; नहीं तो

(छ) सामूहिक बलात्कार करता है, उसे ऐसी अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो दस वर्ष से कम नहीं होगी लेकिन जो जीवन भर के लिए हो सकती है और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा: परन्तु न्यायालय, निर्णय में उल्लिखित पर्याप्त और विशेष कारणों से, दस वर्ष से कम की अवधि के लिए दोनों में से किसी भांति के कारावास की सजा अधिरोपित कर सकेगा।

स्पष्टीकरण 1. जहां एक महिला को उनके सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह में एक या अधिक द्वारा बलात्कार किया जाता है, वहां प्रत्येक व्यक्ति को इस उप-धारा के अर्थ के भीतर सामूहिक बलात्कार किया गया समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण 2. "महिला या बालकों की संस्था" से ऐसी संस्था अभिप्रेत है चाहे वह अनाथालय या उपेक्षित स्त्री या बालकों के लिए गृह या विधवा गृह या किसी अन्य नाम से हो, जो स्त्री या बालकों के स्वागत और देखरेख के लिए स्थापित और अनुरक्षित है।

स्पष्टीकरण 3- "अस्पताल" से अस्पताल का परिसर अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य लाभ के दौरान व्यक्तियों के या चिकित्सीय देखभाल या पुनर्वास की अपेक्षा वाले व्यक्तियों के दाखिले और उपचार के लिए किसी संस्था का परिसर है।

25. भ०द०वि० की धारा 375 में दो आवश्यक चीजों की आवश्यकता होती है; (i) एक महिला के साथ संभोग; (ii) संभोग पूर्वोक्त धारा के छह खंडों में से किसी के तहत निम्नलिखित परिस्थितियों में होना चाहिए।

26. यह सहमति का मामला नहीं है, हालांकि 1993 में भ०द०वि० की धारा 375 के विवरण छह के अनुसार सहमति की आयु 16 वर्ष से अधिक थी। इसलिए, पीड़िता की उम्र कोई मायने नहीं रखती है, हालांकि अ०सा०-6 के अनुसार, पीड़िता की उम्र लगभग 17 साल थी। किसी महिला पर इरादा या अभिव्यक्ति या यहां तक कि एक अभद्र हमला भी बलात्कार का प्रयास नहीं करता है जब तक कि सभी घटनाओं में और प्रतिरोध के बावजूद अपने जुनून को संतुष्ट करने के लिए अभियुक्त का दृढ़ संकल्प स्थापित नहीं होता है।

27. अमन कुमार बनाम राज्य, एआईआर 2004 एस.सी. 1497 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि बलात्कार करने के इरादे से प्रयास के आरोपी को दोषी ठहराने के लिए, अदालत को संतुष्ट होना होगा कि अभियुक्त, जब उसने अभियोक्ता का नेतृत्व किया, न केवल अपने जुनून को संतुष्ट करना चाहता था, बल्कि वह सभी घटनाओं में ऐसा करने का इरादा रखता था, और उसकी ओर से किसी भी प्रतिरोध के बावजूद। अभद्र हमले अक्सर बलात्कार के प्रयास में परिमाण होते हैं ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि अभियुक्त का आचरण सभी घटनाओं में और प्रतिरोध के बावजूद अपने जुनून को संतुष्ट करने के दृढ़ संकल्प का संकेत था। सामग्री मौजूद होनी चाहिए। आसपास की परिस्थितियों को कई बार बीकॉन लाइट के माध्यम से उस पहलू को प्रकाश में लाया जाता है। भ०द०वि० की धारा 376 के तहत किसी आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अभियोजन पक्ष को साबित करना होगा; (i) कि अभियुक्त ने प्रश्नगत महिला के साथ संभोग किया था; (ii) यह कि वह कार्य भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में विनिर्दिष्ट छह विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों के अंतर्गत किया गया था; (iii) कि ऐसी महिला अभियुक्त की पत्नी नहीं थी या, यदि वह उसकी पत्नी थी, तो उसकी आयु 15 वर्ष से कम थी; (iv) कि पैठ थी (भ०द०वि० की धारा 375 का स्पष्टीकरण-I)।

28. दूसरी व्याख्या के अनुसार वीर्य के उत्सर्जन और हाइमन के उत्साह के साथ लिंग के पूर्ण प्रवेश की कोई आवश्यकता नहीं है। वीर्य के उत्सर्जन के साथ या बिना योनी या

पुडेंडम के लेबिया मेजा के भीतर आंशिक प्रवेश बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए पर्याप्त है।

(IV) सबूत का बोझ

30. तुकाराम बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1979 एस.सी. 185 में यह माना गया है कि बलात्कार के मामले में, अभियोजन पक्ष पर हमेशा यह दायित्व होता है कि वह अपराध के प्रत्येक घटक को सकारात्मक रूप से साबित करे जिसे वह स्थापित करना चाहता है और ऐसा दायित्व कभी नहीं बदलता है।

31. नीलांबर गौडो बनाम उड़ीसा राज्य, 1982 सीआरआई एलजे एनओसी 172 (ओरी) में यह माना गया था कि यह बचाव पक्ष का कर्तव्य है कि वह बताए कि बलात्कार के मामले में पीड़िता और उसकी मां ने आरोपी को झूठा क्यों फंसाया है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को केवल इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि एक अभियुक्त व्यक्ति यह कहने में सक्षम नहीं है कि वे उनके खिलाफ गवाही देने के लिए आगे क्यों आए हैं।

32. जोगिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1974 सीआरएलजे 117 में यह माना जाता है कि हालांकि अभियुक्त के खिलाफ महान संदेह और न्यायाधीश का नैतिक विश्वास और दृढ़ विश्वास कितना भी मजबूत न हो, जब तक कि अभियुक्त का अपराध उचित संदेह से परे या रिकॉर्ड पर कानूनी साक्ष्य और सामग्री के आधार पर उचित संदेह की संभावना से परे स्थापित नहीं किया जाता है, उसे अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अभियुक्त की निर्दोषता की प्रारंभिक धारणा है और अभियोजन पक्ष को विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपराध को अभियुक्त के पास लाना होगा, अभियुक्त हर उचित संदेह के लाभ का हकदार है। इस मामले में, यह संदेह से परे स्थापित नहीं किया जा सका कि आरोपी द्वारा पीड़ित लड़की के साथ उसकी सहमति के बिना या उसकी इच्छा के खिलाफ यौन संबंध बनाए गए थे। नतीजतन, भ०द०वि० की धारा 376 के तहत अपराध स्थापित नहीं किया गया था।

33. यहां अपीलकर्ताओं ने यह बचाव नहीं किया है कि बलात्कार करने के प्रयास का अपराध या बलात्कार का अपराध किसी भी अभियुक्त द्वारा किया गया था।

(v) चिकित्सीय साक्ष्य

34. इस मामले में किसी भी आरोपी की कोई मेडिकल जांच नहीं की गई थी, यहां तक कि मूसी जिसने कथित रूप से अपराध किया था, उसके द्वारा अपराध के कमीशन को स्थापित करने के लिए चिकित्सकीय जांच भी नहीं की गई है। अभियुक्त यह कहने का हकदार है कि यदि उसके शरीर के महत्वपूर्ण या भौतिक हिस्से की चिकित्सा जांच की गई होती, तो वह यह दिखाने की स्थिति में होता कि उन हिस्सों की स्थिति ने उसके अपराध की संभावना को नकार दिया, (राम काली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1947 सभी 191)।

35. यह विश्वास करना मुश्किल है कि लंबे समय तक जबरन संभोग के बाद अभियोक्ता के निजी अंगों या अन्य हिस्सों को कोई चोट नहीं पहुंचाई जा सकती है। हालांकि, अभियुक्त

के व्यक्ति और विशेष रूप से लिंग पर चोट की अनुपस्थिति अभियोजन साक्ष्य को खारिज करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकती है।

36. अभियोक्ता के शरीर पर चोटों की अनुपस्थिति, आम तौर पर, एक अनुमान को जन्म देती है कि वह सहवास के लिए सहमति दे रही थी।

37. तुका राम (उपरोक्त) में यह माना गया था कि पीड़ित के व्यक्ति पर किसी भी चोट के अभाव में यह इंगित करता है कि कथित संभोग एक शांतिपूर्ण मामला था और अभियोक्ता द्वारा लगाए गए कठोर प्रतिरोध की कहानी झूठी या बाद में है।

(VI) अभियोक्ता का साक्ष्य

38. इसमें कोई संदेह नहीं है कि केवल अभियोक्ता की गवाही के आधार पर एक अभियुक्त की दोषसिद्धि में सच्चा कानून स्वीकार्य है, लेकिन यह एक ऐसे मामले में है जहां एक अभियोक्ता का अपराध विश्वास को प्रेरित करता है और स्वाभाविक और सच्चा प्रतीत होता है, (विमल सुरेश कांबले बनाम चालुवेरापिनेक, एआईआर 2003 एस.सी. 818)।

39. इसी तरह का सिद्धांत राजस्थान राज्य बनाम बीरम लाल, 2005 सीआरएलजे 2561 (एस.सी.) में निर्धारित किया गया था, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि कई मामलों में कि एक बार अभियोक्ता का बयान विश्वास को प्रेरित करता है और अदालतों द्वारा इस तरह की उम्मीद की जाती है, दोषसिद्धि केवल अभियोक्ता के एकमात्र साक्ष्य पर आधारित हो सकती है और किसी भी पुष्टि की आवश्यकता नहीं होगी जब तक कि बाध्यकारी कारण न हों जिनके लिए अदालत को उसके बयान की पुष्टि करने की आवश्यकता हो। मामूली विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियां बाहर फेंकने और अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन मामले के लिए एक आधार नहीं होना चाहिए। व्यवहार में, बलात्कार के लिए एक सजा लगभग पूरी तरह से महिला की विश्वसनीयता पर निर्भर करती है। केवल इतना आवश्यक है कि कुछ अतिरिक्त सबूत होने चाहिए जो यह संभावित रूप से प्रस्तुत करते हैं कि शिकायतकर्ता की कहानी सच है और इस पर कार्रवाई करना यथोचित रूप से सुरक्षित है। हालांकि, अगर तथ्यों की अदालत को अपने अंकित मूल्य पर अभियोक्ता के संस्करण को स्वीकार करना मुश्किल हो सकता है, तो वह सबूत, प्रत्यक्ष या पर्याप्त की खोज कर सकता है, जो उसकी गवाही को आश्वासन दे सकता है। अदालत को पहले पेश किए गए और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों की विश्वसनीयता का आकलन करना होता है और अगर अदालत को लगता है कि सबूतों पर भरोसा किया जा सकता है, तो अभियोक्ता की गवाही को स्वीकार करना होगा और उस पर कार्रवाई करनी होगी, हालांकि अन्य गवाह उपलब्ध हो सकते हैं जो जांच कर सकते थे लेकिन उनकी जांच नहीं की गई थी। बलात्कार के अपराध के लिए दोषसिद्धि अभियोक्ता की एकमात्र गवाही पर आधारित हो सकती है, जिसकी पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य और अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य जैसे रासायनिक

परीक्षण की रिपोर्ट आदि द्वारा की जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सबूतों को न केवल यह विश्वास करना सुरक्षित बनाना चाहिए कि अपराध किया गया था, बल्कि किसी तरह से यथोचित रूप से आरोपी को अपराध से जोड़ना चाहिए या जोड़ना चाहिए। पुष्टि तथ्यों और परिस्थितियों से हो सकती है।

40. कर्नाटक राज्य बनाम मंजन्ना, एआईआर 2000 एस.सी. 2231 में यह माना गया था कि घटना के तुरंत बाद बिना किसी विसंगति के इतने सारे स्वतंत्र गवाहों को घटना का वर्णन सही ढंग से अधिनियम, 1872 की धारा 157 के तहत अदालत द्वारा अभियोक्ता की गवाही की पुष्टि के रूप में स्वीकार किया गया था। यहां सूचनाकर्ता और पीड़िता ने समय-समय पर अपना केस बदला है। प्रारंभ में यह छेड़छाड़ और बलात्कार के प्रयास का मामला था जिसे बाद में छेड़छाड़ के साथ बलात्कार के मामले में बदल दिया गया था जिसे संबंधित न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था और भ०द०वि० की धारा 511 सपठित धारा 376 के तहत आरोप तय किया गया था जिसके खिलाफ सूचना देने वाले या राज्य द्वारा कोई पुनरीक्षण नहीं किया गया था और संबंधित न्यायालय द्वारा किए गए संशोधन को स्वीकार करते हुए, सूचनादाता और अभियोक्ता ने निष्कर्ष निकाला है साक्ष्य जो संबंधित न्यायालय द्वारा तय किए गए आरोप के तथ्य के खिलाफ है। यह भी स्थापित किया गया है कि दोनों परिवार के सदस्यों के बीच दीवानी मुकदमे के कारण दुश्मनी थी और अभियोजन पक्ष के बयान के समर्थन में खुद को गवाही देने के लिए दूरदराज के क्षेत्र का कोई स्थानीय गवाह या गवाह आगे नहीं आया।

41. दूसरी ओर, चिकित्सा साक्ष्य भी पीड़ित के दाहिने हाथ की छोटी उंगली के आधार पर एक चंगा चोट को छोड़कर अभियोजन पक्ष के समर्थन में नहीं है, कोई चोट भी इस तरह के घर्षण या संलयन के रूप में प्रकृति में सरल पीड़ित के व्यक्ति पर पाए गए थे. यहां तक कि पीड़िता के निजी अंगों पर भी कोई चोट नहीं पाई गई, लेकिन अ०सा०- 6 ने पाया कि पीड़िता को संभोग की आदत थी और दो उंगलियां आसानी से योनि गुहा के अंदर प्रवेश कर रही थीं। यह भी एक तंग स्थिति में नहीं पाया गया था। अ०सा०-6, डॉ सुषमा सिंह द्वारा की गई टिप्पणी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कथित अपराध की पुष्टि चिकित्सा या स्वतंत्र साक्ष्य के साथ नहीं की गई है, यहां तक कि अभियोजन पक्ष की कहानी भी और सबूतों में समय-समय पर सुधार किया गया है जो संदेह पैदा करता है और अदालत बचाव पक्ष के संस्करण को स्वीकार करने के लिए बाध्य है कि पक्षों के बीच नागरिक मुकदमेबाजी के कारण दुश्मनी के कारण दो सगे भाई अन्य वरिष्ठ परिवार के साथ एक ही परिवार के सदस्यों को बलात्कार या बलात्कार के प्रयास के मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियोजन पक्ष भी स्पष्ट नहीं है कि यह बलात्कार के प्रयास का मामला है या बलात्कार का मामला है।

42. संतोष प्रसाद @ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य, (2020) 3 एस.सी.सी. 443 में

यह आरोप लगाया गया था कि घर में अतिचार का अपराध करने के बाद आरोपी ने एक विवाहित महिला के साथ बलात्कार किया। अभियोक्ता के बयान में भौतिक विरोधाभास थे। न तो अभद्र गवाह और न ही चिकित्सा गवाह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन कर रहे थे। एफएसएल रिपोर्ट भी अभियोजन मामले का समर्थन नहीं कर रही थी। दी गई शिकायत के बारे में अभियोक्ता के संस्करण में भिन्नता थी। अभियोक्ता "स्टर्लिंग गवाह" बनने की परीक्षा पास करने में विफल रहा। प्राथमिकी दर्ज करने में भी देरी हो रही है। जमीन को लेकर दोनों पक्षों के बीच दुश्मनी/विवाद भी था। किसी भी अन्य सहायक साक्ष्य और अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया गया था और दोषसिद्धि को उलट दिया गया था। उपरोक्त मामले के तथ्य और हाथ में मामला लगभग समान है, सिवाय इस तथ्य के कि इस मामले की पीड़िता एक विवाहित महिला नहीं थी, लेकिन अ०सा०-6, डॉ सुषमा सिंह द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वह संभोग की आदत थी, इसलिए, दो उंगलियां आसानी से प्रवेश कर रही थीं और योनि ढीली पाई गई थी।

43. लालता प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1979 एस.सी. 1276 में, यह स्थापित नहीं किया जा सका कि अभियोक्ता को उसकी इच्छा के विरुद्ध अभियुक्त द्वारा कभी भी किसी भी संभोग के अधीन किया गया था। दूसरी ओर, डॉक्टर का सबूत था कि जब घटना के बाद उसकी जांच की गई, तो डॉक्टर को पुराने फटे हाइमन मिले और उसके साथ किसी भी बलात्कार या किसी भी जबरदस्ती संभोग का कोई संकेत नहीं मिला। ऐसा होने पर, भ०द०वि० की धारा 376 के तहत अपीलकर्ता की सजा को रद्द कर दिया गया।

44. चरण सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1988) 3 अपराध 85 (पी एंड एच) में यह 16 साल से ऊपर की लड़की का मामला था जिसके साथ कथित रूप से बलात्कार किया गया था। इस मामले में भी सवाल यह था कि जब उसने घटना के दौरान अपनी पीठ पर कुछ चोटों का सामना करने की बात स्वीकार की और जब वह नहीं मिली तो क्या किया जाना था। हालांकि, महिला डॉक्टर ने उनकी जांच की लेकिन चिकित्सकीय कानूनी जांच के दौरान उनके निजी अंगों या शरीर पर कोई चोट नहीं मिली। योनि में कोई कोमलता, सूजन या रक्त नहीं पाया गया। उसने आगे पाया कि दो उंगलियों को आसानी से योनि में प्रवेश किया जा सकता है। जिरह के दौरान, उसने सही स्वीकार किया कि अगर दो युवा लड़कों द्वारा उसके साथ बलात्कार किया जाता तो अभियोक्ता को योनि की कोमलता और सूजन का सामना करना पड़ता। घटना और उसकी मेडिको कानूनी परीक्षा के बीच के अंतर ने किसी भी घर्षण के ठीक होने की किसी भी संभावना को खारिज कर दिया। संदेह का लाभ देते हुए आरोपियों को बरी कर दिया गया।

45. जहूर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1989 सीआरएलजे 1177 (सभी) में डॉक्टर को लड़की के निजी अंगों पर हाल ही में कोई चोट नहीं मिली। हाइमन पहले से फटा हुआ पाया गया

और ठीक हो गया। इसलिए, आरोप साबित नहीं किया गया था।

46. सकारिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 CrLJ 1925 (मध्य प्रदेश) में एक विवाहित महिला पर बलात्कार का आरोप लगाया गया था, जिस पर आरोप लगाया गया था कि उसे घटना स्थल की ओर घसीटा गया और फिर बलात्कार किया गया, लेकिन चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट अब तक नकारात्मक थी जहां तक योनि में शुक्राणुजोज़ा के वीर्य के दाग और उपस्थिति का संबंध था और यह सब ऊपर करने के लिए उसके शरीर पर एक खरोंच भी नहीं थी और आरोपी को बरी कर दिया गया।

47. महाराष्ट्र बनाम अब्दुल हफीस फारोकी, 1998 सीआरएलजे 3603(एस.सी.) में, आठ लोगों पर एक लड़की के साथ दो बार बारी-बारी से बलात्कार करने और लड़की को चलती ट्रेन से बाहर धकेलने का आरोप लगाया गया था। हालांकि, जब लड़की के व्यक्ति पर कोई गंभीर चोट नहीं पाई गई और सबूत से पता चला कि अभियोक्ता के स्वेच्छा से आरोपी के साथ जाने की संभावना थी, तो आरोपी को बरी करना उचित माना गया।

48. जोसेफ बनाम केरल राज्य, 2000 CrLJ 2467 (SC) में, अभियुक्त की धोती में कोई रक्त या वीर्य के धब्बे नहीं थे और पीड़ित के शरीर के निजी हिस्से पर कोई चोट नहीं आई थी। सजा को इस तथ्य से साबित करने की मांग की गई थी कि योनि स्मीयर की परीक्षा ने वीर्य और शुक्राणुजोज़ा की उपस्थिति की पुष्टि की। यह माना गया कि यह बलात्कार के अपराध के लिए अभियुक्त की सजा का आधार नहीं था और आरोपी संदेह के लाभ के आधार पर बरी होने का हकदार था।

49. संपद बनाम उड़ीसा राज्य, 2001 सीआरएलजे 793(ओरी) में, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सामूहिक बलात्कार का आरोप लगाया गया था, जिन्होंने कथित तौर पर पीड़िता को चाकू की नोक पर जबरन पास के नदी तट पर उठा लिया था और उसके साथ संभोग किया था, लेकिन जबरन संभोग का कोई संकेत या हिंसा का निशान मौके पर या अभियोक्ता की चिकित्सा परीक्षा के दौरान नहीं पाया गया था। यह माना गया कि उचित सबूत के अभाव में उन्हें धारा 376 (2)(जी) के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

50. उड़ीसा राज्य बनाम राम स्वैन और अन्य, 2007 सीआरएलजे 714 (ओरी) में आरोपी व्यक्तियों पर एक के बाद एक अभियोक्ता पर जबरन बलात्कार करने का आरोप लगाया गया था, लेकिन सबूतों से पता चला कि पीड़ित और आरोपी व्यक्तियों के बीच आरोपी व्यक्तियों द्वारा खेती की गई भूमि पर पीड़ित के मवेशियों द्वारा फसल को नुकसान पहुंचाने के संबंध में विवाद था। पीड़िता के कपड़ों पर वीर्य का कोई दाग नहीं मिला है। इस प्रकार अभियोक्ता के साक्ष्य ने विश्वास को प्रेरित नहीं किया और बरी करने के फैसले को बरकरार रखा गया।

51. गोवर्धन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2006 सीआरएलजे 4118 में, पार्टियां अतीत में अच्छे संबंध नहीं रख रही थीं और एक-दूसरे के

खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की थीं। मेडिकल रिपोर्ट में अभियोक्ता द्वारा दिए गए संस्करण की पुष्टि नहीं की गई है। यह माना गया कि अपराध साबित नहीं हुआ था और दोषसिद्धि अनुचित थी।

52. इसी तरह मेडिकल रिपोर्ट का समर्थन न करने के कारण, मानसिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 सीआरएलजे 201 (एमपी) में, अभियुक्त की सजा को रद्द कर दिया गया था क्योंकि अभियोजन पक्ष का मामला मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं था।

53. महाराष्ट्र राज्य बनाम रामेश्वर श्रीधर जावरे, 2008 सीआरएलजे 675 (बीओएम) में, आरोपी व्यक्तियों पर 16 साल की लड़की के साथ बलात्कार करने का आरोप लगाया गया था। मेडिकल रिपोर्ट के साथ-साथ रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के विपरीत थी। यह माना गया कि झूठे आरोप की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है और आरोपी बरी होने का हकदार है।

54. सुरेश गोविंदा नागदेव बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 CrLJ 2943(Bom) में, आरोप यह था कि अभियोक्ता को तीन आरोपी व्यक्तियों द्वारा बलात्कार के अधीन किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि रात में, अपराध एक खुले मैदान में किया गया था, लेकिन निजी भाग पर या अभियोक्ता की पीठ पर कोई चोट नहीं पाई गई थी और डॉक्टर संभोग के सिद्धांत की पुष्टि नहीं कर सके। इसी तरह आरोपी के प्राइवेट पार्ट या बॉडी पर भी कोई चोट नहीं आई थी। संदेह का लाभ देते हुए आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया गया।

55. उपरोक्त सभी न्यायिक निर्णय अपीलकर्ताओं के पक्ष में और अभियोजन पक्ष के खिलाफ लागू हो रहे हैं।

(VII) सामग्री में सुधार और अलंकरण तथा सामग्री और स्वतंत्र गवाहों की जांच न करना

56. पीड़िता के साथ छेड़छाड़ और बलात्कार के प्रयास के अपराध के कमीशन के लिए प्राथमिकी दर्ज की गई थी। गवाह राम दुलारे (जांच नहीं की गई) ने विवेचनाधिकारी (आईओ) को एक सुनी-सुनाई बयान दिया है कि उन्होंने सुना था कि आरोपी व्यक्तियों ने अपमानित करने के लिए पीड़ित को जमीन पर फेंक दिया था। रामदेव (जांच नहीं) ने भी इसी तरह का बयान दिया है। पीड़िता की मां (जांच नहीं की गई) ने भी आईओ को एक सुनी-सुनाई बयान दिया है कि जब वह मौके पर पहुंची तो उसने अपनी बेटी को खेत में पड़ा पाया, जिसने बताया कि गांव के कुछ लोगों ने उसे अपमानित करने के लिए फेंक दिया था। उसकी चीख सुनकर वह वहां पहुंच गई। केवल उसकी बेटी ही आरोपियों के असली नाम का खुलासा कर सकती है। उसने किसी भी व्यक्ति को मौके से भागते हुए देखने से इनकार कर दिया। उसने यह भी कहा कि उसके पति ने सोच-समझकर प्राथमिकी दर्ज कराई है। इस प्रकार, प्राथमिकी दर्ज करने के बाद बयान दर्ज करने के चरण तक यह मामला केवल पीड़िता को अपमानित करने के लिए जमीन पर फेंकने के संबंध में था। यदि आरोपी व्यक्तियों ने

बलात्कार किया होगा या बलात्कार करने का प्रयास किया होगा, तो पीड़िता ने निश्चित रूप से अपनी मां को पहले उसके साथ हुई घटना के बारे में सूचित किया होगा, लेकिन अदालत में अभियोजन पक्ष द्वारा स्वेच्छा से उससे पूछताछ नहीं की गई थी। इस संदर्भ में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 (जी) सामग्री है जो निम्नानुसार है: -

"114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकता है। -एक्स एक्स एक्स एक्स

(छ) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत नहीं किया जाता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है।

57. कुछ दिनों की देरी के बाद पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा है कि 03.03.1997 को रात 10 बजे जब वह शौच के लिए में भाग लेने के लिए घर के बाहर गई थी, हरीश चंद्र पहुंचा और उसका मुंह बंद कर दिया, गुदून ने उसके स्तन पर देशी पिस्तौल रखी और धमकी दी कि अगर वह चिल्लाएगी, तो वह उसे गोली मार देगा, सुरेश ने जूट से उसका पैर बांध दिया। जंगे ने उसका हाथ पकड़ा और जमीन पर पटक दिया। उसकी साड़ी को मुसी ने उठा लिया और वह उसके साथ रेप करने लगा। मौका पाकर उसने मदद के लिए रोया, जिस पर छोटेलाल के पिता और गांव वाले और पत्नी वहां पहुंच गए। उसके चिल्लाते ही आरोपी भाग गए थे। उल्लेखनीय है कि सामान्यतः गाँव में महिलाएँ रात 10:00 बजे शौच के लिए पर जाने के लिए अपने घर से बाहर नहीं जाती हैं। आम तौर पर ग्रामीण शाम को या अधिकतम 07:00 या 08:00 बजे तक शौच के लिए जाते हैं और युवा लड़कियां या महिलाएं आमतौर पर एक समूह में जाती थीं। जब तक पेचिश नहीं होती है, तब तक एक युवा महिला रात 10:00 बजे शौच के लिए नहीं जाती है और आपातकाल के मामले में वह निश्चित रूप से एक अन्य महिला सदस्य के साथ होगी। यह अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि पीड़ित को अपच या पेचिश थी। इसी तरह का बयान पीड़िता ने द०प्र०स० की धारा 161 के तहत दिया है।

58. पीड़िता के पिता या उसकी मां के मौके पर पहुंचने के बारे में विरोधाभास है। उसकी मां दशरथ देई के अनुसार, वह मौके पर पहुंच गई थी और पीड़िता को खुद ही वापस ले गई थी। प्राथमिकी में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि सूचनाकर्ता के हाथ में एक टॉर्च थी और न तो ऐसी टॉर्च सूचनाकर्ता द्वारा आईओ को पेश की गई थी और न ही आईओ ने ऐसी टॉर्च को कब्जे में लिया था। पीड़िता ने गवाही दी है कि अपने पिता तक पहुंचने से पहले, आरोपी व्यक्ति सुधार करते हुए भाग गए थे, सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने गवाही दी है कि उसने देखा कि आरोपी मूसी अपनी बेटी के साथ बलात्कार कर रहा था और सभी आरोपी व्यक्ति अपना आवंटित कार्य कर रहे थे जैसा कि प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है। अ०सा०-1 सूचनाकर्ता ने स्वीकार किया कि उसने शिकायत में यह नहीं लिखा था कि उसने मौके पर पहुंचने के बाद घटना देखी थी। इसके अलावा, उन्होंने स्वीकार किया कि आईओ ने अपने बयान में यह नहीं लिखा है कि घटना के समय उनके पास टॉर्च थी। प्राथमिकी में यह

भी नहीं लिखा गया है कि पीड़िता के पैर जूट से बांधे गए थे। यहां तक कि इस तथ्य को सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने अपनी परीक्षा-इन-चीफ में पेश नहीं किया है। घटना को देखने के संबंध में पहले से ही गवाही दिए गए तथ्य के विपरीत, सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने पृष्ठ -9 पर गवाही दी है कि जब वह घटना स्थल के पास पहुंचा, तो आरोपी तब भाग गया था जब वह उनसे 15 कदम दूर था। उन्होंने स्वीकार किया कि सभी आरोपी व्यक्ति एक ही परिवार के हैं।

59. अ०सा०-2, पीड़िता ने गवाही दी थी कि सबसे पहले आरोपी व्यक्तियों ने उसे पकड़ा और जमीन पर फेंक दिया। गुदून ने उसके चिल्लाने पर देसी पिस्तौल से जान से मारने की धमकी दी। आरोपी मूसा ने उसके साथ दुष्कर्म किया था। दुष्कर्म के समय आरोपी हरीश चंद्र, सुरेश और जंगेय ने उसे पकड़ लिया था। पीड़िता ने कथित अपराध करने से पहले किसी भी संभोग से इनकार किया है, लेकिन यह तथ्य अ०सा०-6 के साक्ष्य से गलत है, जिसने गवाही दी है कि उसकी योनि ढीली पाई गई थी, हाइमन पुरानी फटी हुई और पहले से ही ठीक हो गई थी और दो उंगलियां आसानी से योनि में प्रवेश कर रही थीं और वह संभोग करने की आदत थी, (उस समय टू फिंगर टेस्ट प्रचलित था लेकिन अब नहीं)। इस प्रकार, यह स्थापित किया गया है कि पीड़ित झूठ बोल रहा था।

60. उपरोक्त चर्चा के आधार पर और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में कोई भी स्वतंत्र गवाह आगे नहीं आया; कि सभी आरोपी व्यक्ति एक ही परिवार के थे, जिसके साथ सूचनाकर्ता के साथ दीवानी मुकदमेबाजी के कारण दुश्मनी थी; कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी हुई; कि चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में नहीं था और पीड़ित के बाहरी या आंतरिक हिस्से पर कोई चोट नहीं थी, सिवाय दाहिने हाथ की छोटी उंगली के आधार पर एक पपड़ी को छोड़कर, बल्कि यह स्थापित किया गया है कि वह संभोग की आदत थी जैसा कि पैराग्राफ -59 में निष्कर्ष निकाला गया था; कि आम तौर पर दो सगे भाई एक साथ ऐसा अपराध नहीं कर सकते; कि पीड़ित द्वारा रात 10:00 बजे शौच के लिए घर से बाहर जाने और अकेले जाने का समय अपीलकर्ताओं के झूठे फंसाने के उद्देश्यों के लिए मनगढ़ंत और तय किया गया प्रतीत होता है। इसलिए, सभी अपीलकर्ताओं को कुछ भूमिकाएं सौंपी गई हैं। इस प्रकार, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष कथित अपराध के कमीशन के संबंध में अपीलकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन पक्ष के मामले को स्थापित करने और साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। सत्र न्यायाधीश अभियोजन की कहानी और साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने और कानून के सही प्रस्ताव को लागू करने में बुरी तरह विफल रहे हैं। इस प्रकार, इस अपील में बल है और यह अनुमति देने योग्य है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है।

61. तदनुसार, इस अपील की अनुमति दी जाती है।

62. धारा 376/511, 354, 506 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 55 वर्ष 1997 से उत्पन्न एसटी संख्या 827 वर्ष 1997 (राज्य बनाम गुड्डन और अन्य) में ग्यारहवीं-अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांक 03.06.2000 को रद्द किया जाता है।

63. अपीलकर्ताओं को मुक्त कर दिया जाएगा, यदि वे जेल में हैं और यदि वे किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित नहीं हैं।

64. इस निर्णय की एक प्रति के साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को इसकी खेप के लिए संबंधित अदालत को वापस भेजा जाए।

(2023) 8 ILRA 104

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक अपील संख्या 657 वर्ष 2021

विश्वपाल सिंह एवं अन्य ...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

प्रदीप कुमार सिंह, सुशील कुमार सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, अनिल कुमार शुक्ला

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 452, 323, 427, 504 और 506 -अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(1)(घ) - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - समन आदेश - निरस्तीकरण - शिकायतकर्ता द्वारा उपरोक्त धाराओं के अंतर्गत वर्तमान अपीलार्थियों सहित पांच व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज कराई गई आक्षेपित प्र.सू.रि., तत्पश्चात मामले की विवेचना की गई, उनके विरुद्ध कुछ नहीं मिला। (प्रस्तर 2)

अभिलेख के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया, शिकायतकर्ता द्वारा विचारण न्यायालय में दिए गए आवेदन पर उन्हें बुलाया गया, उनके बीच सिविल वाद लंबित था, अभियोजन पक्ष ने सिविल विवाद को आपराधिक प्रकृति का रंग देने का प्रयास किया - आवेदन के साथ कोई शपथ-पत्र नहीं दिया गया और न ही कोई ठोस कारण दिया गया जिससे अपीलार्थियों को बुलाया जाए - विवेचना के दौरान अपीलार्थियों के नाम हटा दिए गए, शिकायतकर्ता ने विरोध याचिका दाखिल नहीं की, तथापि, लंबे अंतराल के बाद, बिना कोई कारण बताए आवेदन दाखिल किया गया - आवेदन और प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप एक जैसे हैं, विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर

विचार नहीं किया - इस प्रकार, न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना पारित किया गया आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। (प्रस्तर 11, 12, 13, 20)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 92, (प्रस्तर 105, 106)

2. लाभुजी अम्रतजी ठाकोर और अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, 2018 (0) सुप्रीम (एससी) 1147, (प्रस्तर 9)

3. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एससीसी 706, (प्रस्तर 13, 15)

4. पेरियासामी और अन्य बनाम एस. नल्लासामी, (2019) 4 एससीसी 342, (प्रस्तर 14, 15)

5. बृंदाबन दास एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2009 (66) एसीसी 273

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सिंह, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार शुक्ला तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री भास्कर मल को सुना गया।

2. यह वर्तमान अपील विश्वपाल सिंह, आदर्श सिंह और विपिन सिंह द्वारा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 04.03.2020 के समन आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्तागण को विशेष परीक्षण संख्या 181/2017 (राज्य बनाम शिवपाल सिंह और अन्य) में धारा 452, 323, 427, 504, 506 भा0दं0सं0 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम , 1989 की धारा 3 (1) (घ) के तहत, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला सीतापुर में दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत तलब किया गया है।

3. दलीलें शुरू करने से पहले, अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि अपीलकर्ता संख्या 1, विश्वपाल सिंह की मृत्यु हो गई है, इसलिए अपीलकर्ता संख्या 1 विश्वपाल सिंह के संबंध में अपील **समाप्त** हो गई है। यह न्यायालय अपीलकर्ता संख्या 2, आदर्श सिंह और अपीलकर्ता संख्या 3, विपिन सिंह के संबंध में कार्यवाही कर रहा है।

4. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि शुरू में प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता द्वारा 29.02.2016 को केस क्राइम संख्या 0143/2016 में धारा 323, 147, 452, 504, 506, 427 भा0दं0सं0 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(xi) के तहत वर्तमान अपीलकर्तागण सहित पांच व्यक्तियों के खिलाफ एक संदिग्ध एफआईआर दर्ज की गई थी। इसके बाद, प्रकरण की गहन जांच की गई और वर्तमान अपीलकर्तागण के

खिलाफ कुछ भी नहीं पाया गया और उन्हें जांच अधिकारी द्वारा हटा दिया गया।

5. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 16.09.2019 को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत अवर न्यायालय में अपीलकर्तागण को ट्रायल का सामना करने के लिए बुलाने के लिए एक आवेदन पेश किया। उन्होंने आगे कहा कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन के खिलाफ अपीलकर्तागण द्वारा 04.10.2019 को आपत्ति दर्ज की गई थी।

6. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग), सीतापुर के समक्ष पक्षों के बीच एक सिविल विवाद लंबित है, जिसका ओ.ए. संख्या 602/2015 (शिवपाल सिंह एवं अन्य बनाम राम स्वरूप एवं अन्य) है, ऐसे में अभियोजन पक्ष ने एक सिविल विवाद को आपराधिक प्रकृति का रंग देने का प्रयास किया है।

7. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अपीलकर्तागण ने शिकायतकर्ता द्वारा आरोपित कोई अपराध नहीं किया है तथा जांच अधिकारी द्वारा एकत्र साक्ष्य के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्तागण ने कथित अपराध में भाग नहीं लिया है।

8. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता द्वारा धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत दिनांक 16.09.2019 को प्रस्तुत आवेदन किसी शपथ पत्र के साथ समर्थित नहीं है और न ही कोई ठोस कारण दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लंबे समय बाद अपीलकर्तागण को क्यों बुलाया जाए, इस प्रकार, यह अपीलकर्तागण को परेशान करने के लिए शिकायतकर्ता के दुर्भावनापूर्ण मनमाने इरादे को दर्शाता है।

9. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि दिनांक 04.03.2020 को विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, सीतापुर द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा अपीलकर्तागण को बुलाया गया था, भी निरर्थक है क्योंकि मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्तागण को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाते समय उनके समक्ष उपलब्ध किसी भी सामग्री पर विचार नहीं किया है। इस प्रकार, दिनांक 04.03.2020 का आक्षेपित आदेश रिकॉर्ड के आधार पर अनुचित प्रतीत होता है और न्यायिक दिमाग के उपयोग के बिना पारित किया गया है, इसलिए, यह इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है और वर्तमान अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए।

10. राज्य के लिए विद्वान एजीए और साथ ही प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलकर्तागण के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का विरोध किया है और संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत अपीलकर्तागण को बुलाने के लिए दिनांक 04.03.2020 का आरोपित आदेश सही ढंग से पारित किया गया था, इस तरह, इसे रद्द करने योग्य नहीं है और तत्काल अपील खारिज करने योग्य है।

11. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की सुनवाई और अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात, यह पता चलता है कि वर्तमान अपीलकर्तागण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है। अपीलकर्तागण को केवल प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता द्वारा धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत दिए गए आवेदन पर बुलाया गया है। यह भी पता चलता है कि पक्षों के बीच ओए संख्या 602/2015 (शिवपाल सिंह एवं अन्य बनाम राम स्वरूप एवं अन्य) वाला एक सिविल मुकदमा लंबित है, ऐसे में अभियोजन पक्ष ने सिविल विवाद को आपराधिक प्रकृति का रंग देने की कोशिश की है।

12. इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता द्वारा धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत दिनांक 16.09.2019 को विद्वान न्यायालय के समक्ष दायर आवेदन किसी हलफनामे के साथ समर्थित नहीं है और न ही कोई ठोस कारण दिया गया है ताकि अपीलकर्तागण को अवर न्यायालय द्वारा बुलाया जा सके। भले ही जब जांच के दौरान अपीलकर्तागण के नाम हटा दिए गए थे, तब प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता ने इसके खिलाफ कोई विरोध याचिका दायर नहीं की थी, हालांकि, लंबे अंतराल के बाद, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन दायर किया गया था, वह भी बिना कोई ठोस कारण बताए।

13. इस न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया है कि प्रतिवादी संख्या 2, शिकायतकर्ता द्वारा धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत दायर आवेदन दिनांक 16.09.2019 में वही आरोप लगाए गए हैं जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए थे और आगे यह कि विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 04.03.2020 को आरोपित आदेश पारित करते समय इस पहलू पर विचार नहीं किया कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है, जिसका संयम से उपयोग किया जाना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं, ने न्यायिक दिमाग के आवेदन के बिना और सरसरी तौर पर आदेश पारित कर दिया है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 92** के प्रकरण में उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 105 और 106 में निम्नानुसार टिप्पणी की थी : -

"105. *धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत सामने आते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और लापरवाही और लापरवाही से नहीं।*

106. *इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से केवल प्रथम दृष्टया प्रकरण स्थापित किया जाना है, जिसे आवश्यक रूप से जिरह के आधार पर परखा नहीं जा सकता, इसके लिए उसके सहभागिता की मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है। जो परीक्षण लागू किया जाना है , वह आरोप-पत्र तैयार करते समय किए गए प्रथम दृष्टया प्रकरण से कहीं अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि अखंडित हो जाता है, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएगा। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 दं0प्र0सं0 में यह प्रावधान करने का उद्देश्य कि यदि "साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होते हुए भी किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है" तो "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है" शब्दों से स्पष्ट है। प्रयुक्त शब्द "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है" नहीं हैं। इसलिए, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"*

15. इसके अतिरिक्त, **लाभूजी अमतजी ठाकोर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 2018 (0) सर्वोच्च (एससी) 1147** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान पीठ के निर्णय पर विधिवत विचार किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 में निम्नानुसार अवलोकन किया था: -

"9. *संविधान पीठ ने चेतावनी दी है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है, जिसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां ऐसा करने की मांग करती हैं। महत्वपूर्ण परीक्षण, जिसे ऊपर उल्लेख किया गया है, "जो परीक्षण लागू किया जाना है वह एक ऐसा है जो आरोप तय करने के समय किए गए प्रथम दृष्टया प्रकरण से अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, अगर बिना खंडन किए जाते हैं, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएंगे।" वर्तमान प्रकरण है, जहां विचारण न्यायालय ने धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत अभियोजन पक्ष द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया था। इसके अलावा, वर्तमान प्रकरण में, एफआईआर में शिकायतकर्ता ने अपीलकर्तागण के नाम नहीं लिए हैं और जांच के बाद जिसमें पीड़िता का बयान भी दर्ज किया गया था, अपीलकर्तागण के नाम सामने नहीं आए। जांच करने के बाद, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया जिसमें अपीलकर्तागण के नाम भी आरोपी के रूप में उल्लेखित नहीं थे। पुलिस के समक्ष दर्ज बयान में, पीड़िता ने केवल नटूजी का नाम लिया है जिसके साथ उसने शारीरिक संबंध बनाने की बात स्वीकार की है। और उसे कौन ले गया और किसके साथ वह रात में घर से बाहर जाती थी और उसके साथ कई जगहों पर रहती थी। पीड़िता की मां ने खुद न्यायालय के समक्ष अपने बयान में कहा है कि पीड़ित लड़की डेढ़ महीने बाद घर लौट आई। न्यायालय के समक्ष दिए बयान में पीड़िता ने पूरे घटनाक्रम का ब्यौरा दिया है। उसने अपने बयान में कहा है कि आरोपी नटूजी उसके चाचा विष्णुजी के घर*

आता-जाता था , जहां उसकी मुलाकात नटूजी से हुई । हालांकि उसने कहा कि नटूजी ने ही उसे मोबाइल फोन दिया था। उसके माता-पिता को जब पता चला कि नटूजी ने उसे मोबाइल फोन दिया है , तो वे नटूजी के घर गए और नटूजी को धमकाया ।

16. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एससीसी 706** के प्रकरण में पैरा 13 और 15 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"13. प्रश्न का उत्तर देने के लिए , हरदीप सिंह के प्रकरण में प्रतिपादित कुछ सिद्धांतों को पुनः दोहराया जा सकता है:

धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग विचारण न्यायालय द्वारा ट्रायल के दौरान किसी भी स्तर पर किया जा सकता है, यानी ट्रायल के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे प्रकरण में ट्रायल का सामना करने के लिए, एक बार जब विचारण न्यायालय को पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'साक्ष्य' हैं जिनके आधार पर यह इकट्ठा किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है। यहां सबूत का मतलब उस सामग्री से है जो ट्रायल के दौरान न्यायालय के सामने लाई जाती है। जहां तक जांच के चरण में आईओ द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए सबूतों की पुष्टि और समर्थन के लिए किया जा सकता है । निस्संदेह, ऐसे सबूत जो मुख्य परीक्षा में, गवाहों की जिरह के बिना सामने आए हैं, पर भी विचार किया जा सकता है और यह एक असाधारण भी है, इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां प्रकरण की परिस्थितियां इसकी मांग करती हैं। संतुष्टि की डिग्री उस डिग्री से अधिक है जो उन अन्य लोगों के खिलाफ आरोप तय करने के समय वारंट की जाती है जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था। केवल तभी जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग लापरवाही या लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया जो राय बनाई जानी है, उसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है।

xx xx xx

15. यह रिकॉर्ड विचारण न्यायालय के समक्ष था। इसके बावजूद, विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के मुख्य परीक्षण में दिए गए बयानों को ही आधार बनाया, जबकि उनके तथाकथित मौखिक/नेत्रिक बयान का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं थी। इस प्रकार, ट्रायल के दौरान दर्ज किए गए 'साक्ष्य ' प्रकरण की जांच के समय धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत पहले से मौजूद बयानों से अधिक कुछ नहीं थे । निस्संदेह, विचारण न्यायालय मुख्य परीक्षण में उसके समक्ष दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगा। हालांकि, वर्तमान जैसे प्रकरण

प्रतिलिपि

में जहां जांच के दौरान आईओ द्वारा बहुत सारे सबूत एकत्र किए गए थे, जो अन्यथा सुझाव देते थे, विचारण न्यायालय का कम से कम यह कर्तव्य था कि वह प्रथम दृष्टया राय बनाते समय उन पर गौर करे और यह देखे कि क्या उनकी (यानी अपीलकर्तागण की) मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर आए हैं। इस तरह की कोई संतुष्टि नहीं है। अगर हम यह भी मान लें कि विचारण न्यायालय को आदेश पारित करते समय इसकी जानकारी नहीं थी (क्योंकि उस समय अपीलकर्ता घटनास्थल पर नहीं थे), तो इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि जब अपीलकर्तागण द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में रिकॉर्ड पर मौजूद इस सामग्री को विशेष रूप से उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया, तब भी उच्च न्यायालय ने उक्त सामग्री को अनदेखा कर दिया। विचारण न्यायालय के आदेश में निहित चर्चा को फिर से प्रस्तुत करने और उससे सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया। ऐसे आदेश न्यायिक जांच के दायरे में नहीं आ सकते।"

17. इसके अलावा, **पेरियासामी और अन्य बनाम एस. नल्लासामी, (2019) 4 एससीसी 342** के मामले में और पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 14 और 15 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया था:

"14. *प्रथम सूचना रिपोर्ट में या धारा 161 के तहत दर्ज बयानों में अपीलकर्तागण के नाम या कोई अन्य विवरण नहीं दिया गया है जिससे उनकी पहचान हो सके। एफआईआर में लगाए गए आरोप अस्पष्ट हैं और किसी भी व्यक्ति को प्रथम सूचना रिपोर्ट में विवरण के अभाव में शामिल करने के लिए किसी भी समय इस्तेमाल किया जा सकता है ताकि ऐसे व्यक्ति की पहचान की जा सके। अतिरिक्त आरोपी किस गांव से संबंधित हैं, इस बारे में कोई दावा नहीं किया गया है। इसलिए, हरदीप सिंह प्रकरण (पूर्वोक्त) में दिए गए फैसले के मद्देनजर भा0दं0सं0 की धारा 147, 448, 294 (बी) और 506 के तहत अपराधों के लिए अपीलकर्तागण को मुकदमे में खड़ा करने के लिए कोई मजबूत या ठोस सबूत नहीं है। संहिता की धारा 319 के तहत, अतिरिक्त अभियुक्त को केवल तभी तलब किया जा सकता है जब प्रथम दृष्टया से अधिक मामला हो, जैसा कि आरोप तय करने के समय आवश्यक है, लेकिन जो अभियुक्त को दोषी ठहराने वाले मुकदमे के समापन के समय आवश्यक संतुष्टि से कम है।*

15. *उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता द्वारा परीक्षित कुछ गवाहों के बयानों के आधार पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया है। अपीलकर्तागण के नामों का खुलासा करने मात्र को संहिता की धारा 319 के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाने के लिए मजबूत और ठोस सबूत नहीं कहा जा सकता है, खासकर जब शिकायतकर्ता एक पति है और उसने अपने ससुराल वालों के परिवार के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू की है और जब उनके नाम या अन्य पहचान का खुलासा नहीं किया गया था।"*

18. वर्तमान प्रकरण में, यह स्पष्ट है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत आदेश प्रासंगिक तथ्यों

पर विचार किए बिना और इस बात की संतुष्टि दर्ज किए बिना पीडब्लू 1 के बयान पर आधारित है कि कुछ ठोस सबूत हैं जो उनकी सजा का कारण बन सकते हैं, भले ही अपीलकर्तागण को पहले से ही जांच अधिकारी द्वारा हटा दिया गया हो और उनके खिलाफ अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई हो। **हरदीप सिंह और बिजेंद्र सिंह (पूर्वोक्त)** और अन्य निर्णयों के प्रकरण में , सर्वोच्च न्यायालय का स्पष्ट रूप से यह विचार है कि सबूतों को और अधिक प्रथम दृष्टया होना चाहिए, अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो सजा होगी, यहां अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, सीतापुर द्वारा दिनांक 04.03.2020 को समन आदेश पारित करते समय ऐसी कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है।

19. **वृंदावन दास एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2009 (66) एसीसी 273** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत शक्तियों के आह्वान से संबंधित मामलों में , न्यायालय को न केवल इस तथ्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि एफआईआर में आरोपी के रूप में नामित नहीं किए गए व्यक्ति का नाम मुकदमे के दौरान सामने आया है, बल्कि न्यायालय को यह भी विचार करना आवश्यक है कि क्या ऐसा सबूत समन किए जा रहे व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि जिस आधार पर धारा 319 दं0प्र0सं0 का आह्वान किया जाता है वह यह है कि क्या नामित आरोपी के अलावा अन्य व्यक्तियों को समन करने से अभियोजन पक्ष के लिए ऐसा अंतर आएगा जो उसे न केवल अपना प्रकरण साबित करने में सक्षम करेगा बल्कि समन किए गए व्यक्तियों की दोषसिद्धि भी सुनिश्चित करेगा।

20. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, जैसा कि ऊपर वर्णित है और रिकॉर्ड के अवलोकन से, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 04.03.2020 का समन आदेश, जिसमें धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत अपीलकर्तागण को बुलाया गया है , माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई भावना और निर्देशों के खिलाफ है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

21. तदनुसार, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 04.03.2020 का आदेश, जिसके तहत अपीलकर्तागण को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत विशेष परीक्षण संख्या 181/2017 (राज्य बनाम शिवपाल सिंह और अन्य) में, धारा 452, 323, 427, 504, 506 भा0दं0सं0 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (1) (घ) के तहत, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला सीतापुर में तलब किया गया है, को **अपास्त** किया जाता है तथा **पलटा** जाता है।

22. उपरोक्त कारणों से अपीलकर्ता संख्या 2, आदर्श सिंह और अपीलकर्ता संख्या 3, विपिन सिंह के संबंध में अपील **स्वीकृत** की जाती है।

23. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 110

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 1045 वर्ष 2016

साथ में

आपराधिक अपील संख्या 1044 वर्ष 2016

पुनीत त्रिपाठी ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री राधे श्याम शुक्ला, श्री राजेश कुमार मिश्रा, श्री नूर मोहम्मद, श्री रूद्र प्रताप पांडे, श्री विधु भूषण सिंह, श्री कमल कृष्ण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री प्रशांत कुमार सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए और 304-बी - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - निरस्तीकरण - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 73, 106, 113-ए, 113-बी और 114(जी) - अभियुक्त के विरुद्ध दहेज की मांग पूरी न होने पर गाली-गलौज, प्रताड़ित करने और विवाह के सात वर्ष के भीतर मृतका की हत्या करने का आरोप - अभिनिर्धारित हुआ, मृतका और अभियुक्त के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं, दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए वाद प्रस्तुत करना यह दर्शाता है कि अभियुक्त संबंध को अक्षुण्ण रखना चाहता था - जब अभियुक्त चिकित्सा प्रतिनिधि था, जिसे क्षेत्र प्रबंधक के रूप में पदोन्नत किया गया, तो दहेज के रूप में ऐसी कोई मामूली राशि और साधारण वस्तुएं नहीं मांगी गईं - विचारण न्यायालय द्वारा किसी भी स्वतंत्र साक्षी की जांच नहीं की गई, मृतका को अस्पताल ले जाने वाले वास्तविक साक्षियों को मौके पर बुलाए बिना ही विचारण समाप्त कर दिया गया - इस बात पर विचार नहीं किया गया कि विवाह-विच्छेद की याचिका प्रतिरूपण का परिणाम थी अथवा नहीं और मृतका के स्वीकृत हस्ताक्षर उपलब्ध होने पर कथित आत्महत्या नोट को विशेषज्ञ की राय के लिए भेजने का प्रयास न करना - पी.डब्लू.2 और पी.डब्लू.4 के साक्ष्य के अलावा, अभियुक्तों को दोषी ठहराने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है - घटना की तारीख, समय और स्थान पर, अभियुक्त वहां था, मृतका के साथ झगड़ा करने की स्वीकृति, मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया गया था लेकिन बाकी अभियुक्तों की उपस्थिति उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं हुई। (प्रस्तर 21 से 25)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. बबल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर 2012 एससी 2621

2. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537

3. जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719

4. नागराज बनाम राज्य, (2015) 4 एससीसी 739, (प्रस्तर 13)

5. बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीसी 189

6. नथुनी यादव बनाम बिहार राज्य (1998) 9 एससीसी 238

7. जी.पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2010 एससी 2914

8. जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (9) एससीसी 495

9. संजीव बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 4 एससीसी 387, (प्रस्तर 16)

10. राधा मोहन सिंह उर्फ लाल साहब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (2) एससीसी 450

11. ब्रह्म स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 280

12. जॉर्ज बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 1376

13. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद इकराम, (2011) 3 एससीसी (क्रि.) 354

14. वी.के. मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 9 एससीसी 588 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)

15. पंचानंद मंडल बनाम झारखंड राज्य, (2013) 9 एससीसी 800

16. संजय कुमार जैन बनाम दिल्ली राज्य, (2011) 11 एससीसी 733

17. हरीश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2015 (88) एसीसी 640 एससी

18. सुरिंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 4 एससीसी 129

19. मनोहर लाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 9 एससीसी 645

20. सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2005 एससी 3546

21. ईश्वरैया बनाम कर्नाटक राज्य, (1994) 2 एससीसी 677

22. हिमांचल प्रदेश राज्य बनाम राज कुमार, (2018) 2 एससीसी 69

अनुवादित

23. बलराम प्रसाद अग्रवाल बनाम बिहार राज्य, (1997) 9 एससीसी 338

24. कैलाश चंद बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 11 एससीसी 268

25. धारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2013 एससी 308

26. श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2013 एससी 3539

27. पृथी बनाम हरियाणा राज्य, (2010) 8 एससीसी 536

28. सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 643

29. मुकेश बनाम दिल्ली राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)

30. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) एसीसी 972 एससी

31. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759

32. दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य, (1976) 4 एससीसी 158

33. नंद कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2015) 1 एससीसी 776

34. भारत संघ बनाम महादेवलाल प्रभुदयाल, एआईआर 1965 एससी 1755

35. मोइनुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2004 (50) एसीसी 244

36. गीता मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, एआईआर 2013 सुप्रीम कोर्ट 181 में प्रतिवेदित

37. कहकशां कौसर उर्फ़ सोनम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117 में प्रतिवेदित, (प्रस्तर 18)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान एजीए को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. अपीलकर्ताओं द्वारा एसटी संख्या 34/2012, अपराध संख्या 440/2011 में धारा 498-ए, 304 बी आईपीसी और धारा 3/4 डीपी एक्ट, थाना-बांदा, जिला-शाहजहांपुर एवं एसटी क्रमांक 216/2013 (राज्य बनाम शिवकुमार त्रिपाठी एवं अन्य) की धारा के तहत दिनांक 3.2.2016 के फैसले और दोषसिद्धि और सजा के आदेश के खिलाफ अपील की गई है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय सं. VII, शाहजहाँपुर ने आरोपी पति को आईपीसी की धारा 304-बी के तहत अपराध करने के लिए आजीवन कारावास, धारा 498-ए के तहत तीन साल की कैद और दहेज निषेध

अधिनियम की धारा 4 के तहत दो साल की कैद और 10,000/- रुपये का जुर्माना और डिफ़ॉल्ट शर्त की सजा सुनाई है। संबद्ध एस.टी. में आरोपी सुजीत त्रिपाठी, शिवकुमार त्रिपाठी, श्रीमती बिनेश्वरी और आशा त्रिपाठी को धारा 304-बी के तहत सात-सात साल की सजा, धारा 498-ए आईपीसी के तहत दो साल की सजा और प्रत्येक को 5,000 रुपये का जुर्माना, और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत, डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ प्रत्येक को 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने की सजा दोषी ठहराया गया। यह भी निर्देश दिया गया कि उपरोक्त राशि में से 75,000/- रुपये सीआरपीसी की धारा 357 के तहत सूचक के पिता और मृतका को मुआवजे के रूप में भुगतान किया जाएगा।

3. अपील के आधार:

दोनों अपीलों में अपीलकर्ताओं ने यह आधार लिया है कि अपीलकर्ताओं की सजा रिकॉर्ड पर सबूतों के वजन के खिलाफ है और कानून की दृष्टि से खराब है; तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई अपराध साबित नहीं होता है; विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 3.2.2016 को पारित आदेश पूरी तरह से अवैध, मनमाना और कानून की नजर में पोषणीय नहीं है और इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है; विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में कानूनी गलती की है, और अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूत एक-दूसरे के विपरीत हैं; आक्षेपित निर्णय और आदेश बिना विवेक का प्रयोग किए यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है; आक्षेपित निर्णय और आदेश बिना दिमाग लगाए यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है; किसी भी मामले में मामले के रिकॉर्ड के आधार पर, अपीलकर्ता बरी किये जाने योग्य हैं और अपील स्वीकार किये जाने योग्य है क्योंकि अभियोजन उचित संदेह से परे उनके मामले को साबित करने में विफल रहा है; और यह कि दी गई सज़ा और जुर्माना बहुत ज़्यादा और गंभीर है।

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचक कुमारी पूजा वाजपेई ने दिनांक 23.8.2022 को एक लिखित शिकायत प्रदर्श का-1 प्रस्तुत की थी कि उनकी बहन श्रीमती वंदना वाजपेई (मृतका ा) की शादी लगभग दो साल पहले पुनीत त्रिपाठी से हुई थी। शादी में उसके माता-पिता ने अपनी क्षमता के अनुसार दहेज दिया था, लेकिन आरोपी संतुष्ट नहीं थे और वैगन आर कार की मांग कर रहे थे। जब उक्त मांग पूरी नहीं हो सकी तो वे लोग उसकी बहन को मारने-पीटने व प्रताड़ित करने लगे। उसकी बहन बाँदा जिला शाहजहाँपुर में प्राथमिक शिक्षिका के पद पर तैनात थी और अपने लगभग डेढ़ साल के बेटे अचिंत्य के साथ अनिल जयसवाल के मकान में किराए पर रहती थी। वंदना के साथ उनकी मां श्रीमती शशि वाजपेई भी रहती थीं।दिनांक 22.08.2011 को सुबह लगभग 10:30 बजे आरोपी पुनीत और उसके परिवार के सदस्य वंदना के घर आए और लगभग 4:00 बजे उसकी मां को यह कहकर घर से बाहर निकाल दिया कि उन्होंने कार नहीं दी, आज तुम मज़ा चखो। उसकी मां मकान मालिक के घर पर ही

रह गई और शाम करीब 7:00 बजे अपनी बेटी की चीखने की आवाज सुनकर वह वहां गई और देखा कि पुनीत और उसके परिवार के सदस्यों ने मृतका को पकड़ लिया था और उसे बोतल से कुछ पदार्थ पिलाया था। शराब पीने के बाद वंदना को उल्टियां होने लगीं तो जहर पिलाने के बाद सभी आरोपी भाग गये। घटना से काफी पहले से उसके पिता बीमार चल रहे थे। पुनीत और उसके परिवार वाले धमकी देते थे कि अगर कार नहीं दी गई तो वे वंदना को जान से मार देंगे और साथ ही यह भी कहते थे कि पुनीत किसी और से शादी कर लेगा।

5. उपरोक्त आवेदन पर, एफआईआर दर्ज की गई और चिक एफआईआर, प्रदर्श क -10 और जीडी, प्रदर्श क -11 तैयार की गई। आईओ ने साइट प्लान, प्रदर्श क-3 तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज किए और आरोपी को गिरफ्तार कर लिया और पुनीत के खिलाफ धारा 498ए, 304 बी आईपीसी और 3/4 डीपी एक्ट के तहत आरोप पत्र संख्या 32/2011, प्रदर्श क-4 प्रस्तुत किया। बाकी आरोपियों के खिलाफ जांच लंबित रखी गई। इसके बाद जांच श्री विकास कुमार वैध, सी.ओ. को सौंपी गई, जिन्होंने गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद बाकी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र संख्या 32ए/2011 दिनांकित 01.08.2012, प्रदर्श क -5 प्रस्तुत किया।

6. सी.जे.एम. शाहजहाँपुर ने संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 6, शाहजहाँपुर ने दिनांक 14.5.2012 को अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी के विरुद्ध धारा 498-ए, 304-बी आईपीसी और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप तय किए। आरोपी ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाने की मांग की।

7. आरोप को सही साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने 9 गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं:

1	कुमारी पूजा वाजपेई	अभि. सा. 1
2	श्रीमती शाहसी वाजपेई	अभि. सा. 2
3	राज नारायण	अभि. सा. 3
4	पिंकी श्रीवास्तव	अभि. सा. 4
5	डॉ.मनोज कुमार श्रीवास्तव	अभि. सा. 5
6	आई.ओ./सी.ओ. राजेश कुमार सोनकर	अभि. सा. 6
7	आई.ओ./सी.ओ. विकास कुमार वैध्य	अभि. सा. 7
8	नायब तहसीलदार गजेंद्र सिंह	अभि. सा. 8
9	कांस्टेबल वीरेंद्र सिंह	अभि. सा. 9

8. इन मौखिक गवाही को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा घर लाने के लिए निम्नलिखित दस्तावेज़ भी दायर किए गए थे:

1	लिखित शिकायत	प्रदर्श क 1
2	मृतका वंदना	प्रदर्श क 2

	की पोस्टमार्टम रिपोर्ट	
3	नक्शा नज़री	प्रदर्श क 3
4	आरोप पत्र क्रमांक 32 /2011	प्रदर्श क 4
5	आरोप पत्र क्रमांक 32ए/11	प्रदर्श क 5
6	पंचनामा	प्रदर्श क 6
7	फोटो लाश	प्रदर्श क 7
8	पोस्टमार्टम प्रपत्र	प्रदर्श क 8
9	पोस्टमार्टम पत्र	प्रदर्श क 9
10	चिक एफ.आई.आर	प्रदर्श क 10
11	कयामी जी.डी.	प्रदर्श क 11
12	विवाह कार्ड	वस्तु प्रदर्श 1

9. संक्षेप में, गवाहों के साक्ष्य यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

(ए) **अभि.सा.-1**, कुमारी पूजा, सूचक ने बताया कि, उसकी बहन श्रीमती वंदना वाजपेई (मृतका) की शादी लगभग दो साल पहले पुनीत त्रिपाठी से हुई थी। शादी में उसके माता-पिता ने अपनी क्षमता के अनुसार दहेज दिया था, लेकिन आरोपी संतुष्ट नहीं थे और वैगन आर कार की मांग कर रहे थे। जब उक्त मांग पूरी नहीं हो सकी तो वे लोग उसकी बहन को मारने-पीटने व प्रताड़ित करने लगे। दिनांक 22.8.2011 को, पुनीत और परिवार के अन्य सदस्य वंदना के घर आए और लगभग 4:00 बजे उन्होंने उसकी मां को वंदना के घर से यह कहकर बाहर निकाल दिया कि वह वैगन आर कार नहीं दे सकती, अब मज़ा चखे। उसकी मां कमरे से निकल कर मकान मालिक के घर में रुक गयी। शाम करीब सात बजे चीखने की आवाज सुनाई दी, जिस पर उसकी मां दौड़कर बाहर आई तो देखा कि उसकी बहन को पुनीत के परिवार वालों ने पकड़ लिया है। सभी आरोपित उसकी मां को धक्का देकर भाग गये और पुनीत ने एक शीशी में कुछ पदार्थ लेकर वंदना को दे दिया। उसकी बहन को उल्टी होने लगी। उसकी मां वंदना को बांदा अस्पताल ले गई, वहां पुनीत भी पहुंच गया, जहां से उसे जिला अस्पताल शाहजहांपुर रेफर कर दिया गया, जहां उसकी मौत हो गई। दोपहर में पंचायतनामा भरा गया। उसने थाने में एसओ को पूरी घटना बताई, फिर एक टाइपिस्ट से कहकर उसे टाइप कराया। सीओ ने मामले की ठीक से जांच नहीं की थी, उन्होंने उसकी मां, पिता और नौकरानी पिंकी का बयान दर्ज नहीं किया था. उसने पुलिस महानिदेशक और आईजी से शिकायत की। गवाह अनिल जयसवाल, गीता जयसवाल और अपूर्वा मिश्रा आरोपियों से मिले हुए थे। इस घटना से पहले आरोपी उसकी बहन को जान से मारने और पुनीत की दोबारा शादी कराने की धमकी देते थे। उसकी बहन ने 2011 में कानपुर नगर में तलाक की याचिका संख्या 544 दायर की थी। विवाह 01.12.2008 को संपन्न हुआ। यह गवाह मुख्य घटना का प्रत्यक्षदर्शी नहीं है.

(बी) **अभि.सा.2**, श्रीमती शशि वाजपेई ने भी अभि.सा.-1 के समान बयान दिया है, इसके अलावा उन्होंने गवाही दी है कि उनका दामाद सिप्ला कंपनी में एम.आर. था। उसने देखा कि आरोपी उसकी बेटी के मुंह में कुछ डाल रहे थे, तभी आरोपियों ने उसे धक्का दिया, जिससे वह गिर गई और वे भाग गए। जैसे वह रोने लगी, अनिल कुमार आए और अपनी बेटी को अस्पताल ले गए और वहां से जिला अस्पताल,

शाहजहाँपुर ले गए जहाँ सुबह उसकी मृत्यु हो गई। उसने इसकी सूचना अपनी बेटी पूजा और उसके पति को दी थी, जो सुबह पहुंचे और शव देखने के बाद पूजा ने एफ.आई.आर. दर्ज करायी।

(सी) **अभि.सा.-3**, मृतका के पिता राज नारायण ने भी अभि.सा.1 के समान बयान दिया है। वह चश्मदीद गवाह नहीं है।

(डी) **अभि.सा.-4**, पिंकी श्रीवास्तव ने बताया कि वह घटना के एक साल पहले से मृतका के घर पर काम कर रही थी। वह प्रति माह 1500 रुपये के भुगतान पर मृतका के बेटे की देखभाल करती थी। आरोपी पुनीत वहां 8-10 दिन पर आता था और 2-4 दिन रुकता था। वे अक्सर झगड़ते रहते थे। पुनीत उससे वैगन आर कार और पैसों की मांग करता था। इसी बात को लेकर दोनों में झगड़ा हो जाता है। उसने अपनी आँखों से उन्हें झगड़ते देखा और सुना है। जब पुनीत वहां आकर रहता था तो वह अपने घर चली जाती थी। कार की मांग पूरी न करने पर पुनीत अपनी सास से झगड़ा भी करता था। घटना वाले दिन सुबह करीब साढ़े दस बजे पुनीत, उसकी मां, पिता, भाई और भाभी वंदना के घर आये थे। वह बाकी आरोपियों का नाम नहीं जानती। शाम करीब साढ़े चार बजे उपरोक्त लोगों ने मृतका को मारपीट कर उसकी मां को भगा दिया, वह मकान मालिक के हिस्से में चली गयी और साढ़े पांच बजे तक वहीं बैठी रही। मृतका ने उसे अपने बेटे अच्छू के साथ बाजार जाने के लिए कहा था और उसे 20 रुपये दिए थे, इसलिए वह बाजार गई और शाम 5:30 बजे वापस लौट आई। जब वह वापस आई तो मृतका की मां वहां मिली और अच्छू को उससे ले गई। रात करीब आठ बजे उसे पता चला कि वंदना सरकारी अस्पताल बांदा में है तो वह वहां गयी। नीलू, अनिल और मिंकू ने उसे वंदना से मिलने नहीं दिया।

(ई) **अभि.सा.-5**, डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव ने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट, प्रदर्श क-2 को प्रमाणित किया और कहा कि उन्होंने मृतका के शरीर का पोस्टमॉर्टम किया था। मृतका की मौत से पहले कोई चोट नहीं पाई गई। मौत का कारण स्पष्ट नहीं हो सका और विसरा सुरक्षित रखा गया है।

(एफ) **अभि.सा.-6**, राजेश कुमार सोनकर, सी.ओ., ने साइट प्लान और चार्ज-शीट, प्रदर्श क-3 और प्रदर्श क-4 को प्रमाणित कर दिया है और बताया है कि उन्होंने मामले की जांच की थी और आरोपपत्र के पृष्ठ संख्या 7 में विसरा रिपोर्ट दर्ज की थी और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद आरोपी पुनीत के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया।

(जी) **अभि.सा.-7**, आई.ओ. विकास कुमार वैध्य ने सामग्री प्रदर्श-1 और आरोप-पत्र प्रदर्श क-5 को प्रमाणित किया और गवाही दी कि उनके पास गवाहों के लिखित बयान थे। उन्होंने आरोपी नीलम को दोषमुक्त कर दिया था।

(एच) **अभि.सा.-8**, एस.आई. गजेंद्र सिंह ने जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-6, फोटोलाश, प्रदर्श क-7, चालानलाश, प्रदर्श क-8, सीएमओ को पत्र प्रदर्श क-9 को साबित कर दिया है।

(आई) **अभि.सा.-9**, कांस्टेबल, वीरेंद्र सिंह ने अपनी लिखावट और हस्ताक्षर में एफ.आई.आर., प्रदर्श क-10 और कयामी जी.डी., प्रदर्श क -11 को साबित किया।

10. बचाव पक्ष से डी.डब्ल्यू.-1, श्रीमती कल्पना सिंह, सहायक अध्यापिका, प्राथमिक विद्यालय, धर्मपुर, ब्लॉक- बाँदा, शाहजहाँपुर की जाँच की गई है। वह प्रदर्श ख-1 और ख-2 साबित कर चुकी है।

11. इस मामले का निर्णय निम्नानुसार किया गया है:

एफ.आई.आर.: अभियोजन पक्ष के कथन के अनुसार घटना 22.8.2011 को लगभग शाम 7:00 बजे घटी, घटना के तुरंत बाद मृतका को बांदा अस्पताल ले जाया गया जहां से उसे जिला अस्पताल शाहजहाँपुर में भर्ती कराया गया और 23.8.2011 की सुबह उसकी मृत्यु हो गई। मृतका वंदना की बहन, सूचक किमी पूजा वाजपेई ने एफआईआर दर्ज करने के लिए लिखित शिकायत, प्रदर्श क-1 दी, जो दोपहर 3:45 बजे दर्ज की गई और चिक एफआईआर, प्रदर्श क-10 तैयार की गई। इस कोर्ट के अनुसार एफ.आई.आर. दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई है। एफ.आई.आर. में सभी आवश्यक तथ्य सम्मिलित कर लिये गये हैं। कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि एफआईआर कोई विश्वकोश नहीं है, यह कोई ठोस सबूत नहीं है, इसका इस्तेमाल केवल सूचना देने वाले के विरोधाभास के लिए किया जा सकता है। साक्ष्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि गवाही के समय केवल माता अभि. सा.-2 श्रीमती शशि वाजपेई एवं अभि. सा.-4 पिंकी श्रीवास्तव ही उपस्थित थीं। जब श्रीमती शशि वाजपेई ने इसकी सूचना अपनी बेटी और पति को कानपुर में दी तो वे शाहजहाँपुर पहुँचे और मृतका का शव देखा, इसके बाद सूचक ने शिकायत लिखी और एफआईआर दर्ज करने और कार्रवाई करने के लिए संबंधित पुलिस स्टेशन में पेश किया।

बबल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर, 2012 एससी 2621; भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537; जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9 एससीसी 719 ; में, यह निर्धारित किया गया है कि सीआरपीसी की धारा 154 के तहत दर्ज एफआईआर कोई ठोस सबूत नहीं है, यह अपराध से संबंधित सभी तथ्यों का विश्वकोश नहीं है। एकमात्र आवश्यकता यह है कि एफआईआर दर्ज करते समय, मुखबिर को उन सभी तथ्यों को बताना चाहिए जो आम तौर पर दिमाग में आते हैं और अपराध की गंभीरता या अपराधी की पहचान का संक्षेप में आकलन करने में मदद करते हैं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी या विसंगति नहीं है।

12. उद्देश्य:

एफ.आई.आर. के अनुसार और अभियोजन पक्ष के अनुसार, मृतका और आरोपी के बीच लगभग ढाई साल पहले शादी हुई थी, उसके माता-पिता ने अपनी क्षमता के अनुसार दहेज दिया था, लेकिन आरोपी शादी में दिए गए

दहेज से संतुष्ट नहीं थे और शादी की पहली विदाई के बाद सभी आरोपी दहेज में मारुति वैगन आर कार की मांग करने लगे। मांग पूरी न होने पर वंदना का पति पुनीत और उसके परिवार वाले उसे मारने-पीटने लगे और तरह-तरह से प्रताड़ित करने लगे। मृतका बांदा बेसिक प्राइमरी स्कूल शाहजहाँपुर में अध्यापिका के पद पर कार्यरत थी और अपने लगभग डेढ़ वर्ष के पुत्र अचिंत्य के साथ सहकारी बैंक बाँदा शाहजहाँपुर के पास अनिल जयसवाल के किराये के मकान में रहती थी। लगभग एक माह से मृतका की मां श्रीमती शशि वाजपेई उसके साथ रह रही थी। मृतका का आरोपी पति पुनीत कानपुर नगर में काम करता है और अपनी पत्नी के पास जनपद शाहजहाँपुर आता रहता है। सूचक अभि. सा. 1 ने दहेज की मांग, मांग के संबंध में दुर्व्यवहार और यातना के बारे में गवाही दी है। उसने यह भी बताया कि चौथ विदाई में पुनीत ने मृतका से एक वैगन आर कार और एक लाख नकद मांगा था, जिसे उसने परिवार वालों को बता दिया था। अभियुक्तों ने स्वीकार किया कि मृतका ने पारिवारिक न्यायालय कानपुर नगर में तलाक की याचिका संख्या 544/2011 दायर की थी और अभियुक्त पुनीत ने लखनऊ में वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक मुकदमा भी दायर किया था।

अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी के अनुसार, तलाक की अर्जी मृतका के हस्ताक्षर पर ओवर राइटिंग करके लगाई गई थी, क्योंकि तारीख 25.04.2011 को वह शाहजहाँपुर में ड्यूटी पर थी। विचारण न्यायालय ने तलाक याचिका पर ओवरराइटिंग पर विचार नहीं किया जैसे कि 2010 को सही करके 2011 कर दिया गया है, पुनीत त्रिपाठी की उम्र 35 से 32 कर दी गई है, पैरा 3 में कटिंग है और तारीख, महीने और साल पर भी ओवरराइटिंग है। इसे 25.4.2011 के रूप में ओवरराइट करके सही किया गया है, जिस तारीख को वह शाहजहाँपुर में अपने स्कूल में पढ़ा रही थी। इन तथ्यों से यह साबित होता है कि वंदना के रूप में कोई और सामने आया और उसने छद्मवेश के जरिए तलाक की याचिका दायर की थी।

आरोपी व्यक्तियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि दाम्पत्य अधिकारों की बहाली का मुकदमा खारिज कर दिया गया है। आरोपी के अनुसार, इसे मृतका के आश्वासन पर खारिज कर दिया गया था क्योंकि वह अपने परिवार के सदस्यों के हस्तक्षेप के कारण भी निराश थी। यद्यपि यह सिद्ध नहीं हुआ है कि दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना का मामला अभियुक्त द्वारा मृतका के आश्वासन पर नहीं दबाया गया था। हालाँकि, यह दिखाने के लिए मृतका द्वारा कोई सबूत या लेखन नहीं छोड़ा गया है कि उसे उपरोक्त तलाक याचिका की लंबितता के बारे में जानकारी नहीं थी। पारिवारिक न्यायालयों में यह सामान्य और अनिवार्य प्रथा है कि किसी भी याचिका के स्थापित होने के बाद, विरोधी पक्षों को नोटिस भेजे जाते हैं और शीर्ष अदालत के फैसले को ध्यान में रखते हुए और सीपीसी की धारा 89 के अनुसार, सबसे पहले सभी पक्षों को सुलह केंद्र में भेजा जाता है और यदि मामला सुलझ नहीं पाता है तो पारिवारिक न्यायालय मामले की योग्यता के आधार पर फैसला करने के लिए आगे बढ़ता है। इस मामले में किसी भी पक्ष द्वारा यह

साबित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया गया है कि कथित तलाक की याचिका दायर करने के बाद आरोपी पुनीत को कोई नोटिस दिया गया था और उसे किसी विशेष तारीख पर पारिवारिक न्यायालय, कानपुर नगर के सुलह केंद्र द्वारा बुलाया गया था। हालाँकि, जब दोनों पक्षों ने यह स्वीकार कर लिया कि आरोपी पुनीत द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत मुकदमा दायर किया गया था, इससे पता चलता है कि निश्चित रूप से उन दोनों के बीच कुछ मतभेद थे और मृतका या तो स्वेच्छा से या अपनी सेवा शर्तों के कारण अपने पति के साथ नहीं रह रही थी। लेकिन यदि आरोपी के आरोप के अनुसार दोनों पक्षों के बीच समझौता हो गया होता, तो मृतका के आवेदन पर तलाक की याचिका भी खारिज कर दी जाती। इस प्रकार इस न्यायालय का मानना है कि आरोपी व्यक्तियों और मृतका के बीच वैवाहिक विवाद अभी भी मौजूद था।

नागराज बनाम राज्य में, (2015) 4 एससीसी 739 (पैरा 13); बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीसी 189; नथुनी यादव बनाम बिहार राज्य (1998) 9एससीसी 238, यह निर्धारित किया गया है कि यदि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है तो अभियोजन पक्ष को अभियुक्त का मकसद साबित करना चाहिए, न कि उन मामलों में जो प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित हैं।

जी.पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, एआईआर 2010 एससी 2914; जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (9) एससीसी 495, में यह निर्धारित किया गया है कि यदि परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी है, तो मकसद की अनुपस्थिति ज्यादा मायने नहीं रखती है।

संजीव बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 4 एससीसी 387 (पैरा 16) में, यह निर्धारित किया गया है कि यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि किसी आरोपी द्वारा हत्या का अपराध स्थापित करने के लिए, उद्देश्य को साबित करना आवश्यक नहीं है, उद्देश्य वह चीज़ है जो मनुष्य को इरादा बनाने के लिए प्रेरित करती है। अपराध घटित करते समय घटना स्थल पर भी इरादा बनाया जा सकता है। गैर इरादतन हत्या के अपराध के संबंध में केवल अभियुक्त का इरादा या ज्ञान ही देखा जाना आवश्यक है। इरादे या ज्ञान को पढ़ने के लिए, अदालतों को परिस्थितियों की जांच करनी होगी, क्योंकि अभियुक्त की मानसिक स्थिति के बारे में कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं हो सकता है।

इस मामले में यह साबित हुआ कि मृतका अपनी नौकरी के कारण शाहजहापुर में अलग रह रही थी और उसने कानपुर नगर में आरोपी पुनीत त्रिपाठी के खिलाफ तलाक की डिक्री के लिए मुकदमा भी दायर किया था और शायद आरोपी व्यक्तियों को कोई मौद्रिक लाभ नहीं दिया गया था और वैगन आर कार प्रदान करने की मांग पूरी नहीं की गई थी। आरोपी पुनीत त्रिपाठी ने अपनी जमानत अर्जी में स्वीकार किया है कि घटना वाले दिन वह मृतका के घर गया था, जहां झगड़ा हुआ था। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि कथित अपराध को अंजाम देने के पीछे कोई मकसद नहीं था।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि अपराध करने के पीछे एक मकसद था और यह मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से भी साबित हो चुका है। हालाँकि यह अभि.सा.2 और अभि.सा.4 के साक्ष्यों के आधार पर प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए अभियोजन पक्ष अपराध के पीछे किसी भी मकसद को साबित करने के लिए बाध्य नहीं है।

13. तहकीकात

पंचायतनामा प्रदर्श क-6 से पता चलता है कि अपराध घटित होने और मृतका की मृत्यु के बारे में रिपोर्ट 23.8.2011 को सुबह 7:30 बजे पुलिस स्टेशन बांदा को दी गई थी। सुबह 11:30 बजे शव को जिला अस्पताल की मोर्चरी में भेजा गया और आईओ ने दोपहर 1:00 बजे जांच की कार्यवाही शुरू की। उन्होंने एफआईआर की प्रति संलग्न की, लेकिन चिक एफ.आई.आर. के अनुसार, एफआईआर दोपहर 3:45 बजे लिखित रूप में दर्ज की गई। यदि यह सत्य है तो या तो संबंधित एस.आई. को सूचना की केवल एक प्रति ही उपलब्ध कराई गई होगी या संबंधित कांस्टेबल मोहर्रिर ने लड़की की एफ.आई.आर. तैयार करने का समय गलती से 3:45 अपराह्न अंकित कर दिया था। हालाँकि, यह इस मामले के प्रयोजनों के लिए अप्रासंगिक है क्योंकि यह मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं कर रहा है। यह स्थापित कानून है कि पूछताछ कोई ठोस सबूत नहीं है और इसमें केवल पुष्टि करने वाला सबूत है। हालांकि पंचों और आईओ व नायब तहसीलदार सदर की राय में मृतका की मौत जहर से हुई होगी।

राधा मोहन सिंह @ लाल साहेब बनाम यूपी राज्य, 2006 (2) एससीसी 450, तीन न्यायाधीशों की बेंच में, यह माना गया है कि पंचायतनामा में चूक, विसंगतियों, ओवरराइटिंग, विरोधाभास के संबंध में दिए गए तर्क पर तब तक विचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उसके लेखक का ध्यान उक्त तथ्य की ओर न आकर्षित किया जाए और जब गवाह के रूप में उससे पूछताछ की जाए तो उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर न दिया जाए। कानून में पंचायतनामा में एफ.आई.आर. के विवरण, अभियुक्तों के नाम या चश्मदीदों के नाम या उनके बयानों के सार का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है, न ही उक्त रिपोर्ट पर किसी भी प्रत्यक्षदर्शी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने की आवश्यकता है।

ब्रह्म स्वरूप बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2011 एससी 280 में, यह निर्धारित किया गया है कि जांच करने का मूल उद्देश्य मौत के स्पष्ट कारण के बारे में रिपोर्ट करना है, चाहे वह आत्महत्या हो, मानव वध हो, आकस्मिक हो या किसी यांत्रिकी आदि द्वारा। इसलिए जांच रिपोर्ट में प्रकट कृत्यों के सभी विवरण दर्ज करना आवश्यक नहीं है।

जॉर्ज बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 1376 में, यह निर्धारित किया गया है कि मृतका पर कैसे हमला किया गया या किसने उस पर हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया,

इसका विवरण ऐसी कार्यवाही के दायरे और दायरे से बाहर है।

उपरोक्त निर्णयों के मद्देनजर, इस अदालत को जांच रिपोर्ट में कोई अवैधता या ठोस अनियमितता नहीं मिली।

14. पोस्टमार्टम:-

इस मामले में पूछताछ के बाद, शव को पोस्टमार्टम के लिए संबंधित डॉक्टर को दे दिया गया, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया और मौत का कारण पता नहीं चल सका, इसलिए विसरा को संरक्षित किया गया जिसे रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया था। रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मृतका के आंतरिक अंगों में कीटनाशक थे, जिससे उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार, आईओ पंचान, नायब तहसीलदार की राय को एफएसएल रिपोर्ट से समर्थन मिलता है। पोस्टमॉर्टम शाम 4:00 बजे किया गया, पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉक्टर की राय है कि मृतका की मौत पोस्टमॉर्टम से लगभग आधे दिन पहले हुई होगी। गवाह ने यह भी कहा कि लगभग छह घंटे का बदलाव हो सकता है। इस मामले में मृतका की मृत्यु का समय प्रश्न में नहीं है, इसलिए, मृतका की मृत्यु के समय में कोई भी बदलाव अप्रासंगिक है। कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि डॉक्टर की राय और डॉक्टर की रिपोर्ट महज एक राय है और अदालत की जांच के अधीन है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद इकराम, (2011) 3 एससीसी (क्रि.) 354 में, यह निर्धारित किया गया है कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट कोई ठोस सबूत नहीं है, यदि यह साबित हो गया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि इसकी प्रत्येक सामग्री भी साबित हो गई है या स्वीकार्य मानी जा सकती है।

15. सबूत का भार:-

यह स्वीकार किया गया है और यह भी साबित किया गया है कि मृतका की शादी के तीन साल के भीतर अप्राकृतिक मृत्यु हो गई थी, इसलिए, इस संबंध में **भारतीय साक्ष्य अधिनियम** की धारा 113-ए और धारा 113-बी प्रासंगिक हो जाती है जो इस प्रकार हैं:-

*"**धारा 113-ए**: एक विवाहित महिला द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाने का अनुमान। -जब सवाल यह है कि क्या किसी महिला द्वारा आत्महत्या के लिए उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार ने उकसाया था और यह दिखाया गया है कि उसने अपनी शादी की तारीख से सात साल की अवधि के भीतर आत्महत्या कर ली थी और यह कि उसके पति या उसके पति के ऐसे रिश्तेदार ने उसके साथ क्रूरता की थी, अदालत मामले की अन्य सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह मान सकती है कि ऐसी आत्महत्या को उसके पति या उसके पति के ऐसे रिश्तेदार द्वारा उकसाया गया था।*

***स्पष्टीकरण** - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "क्रूरता" का वही अर्थ होगा*

जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 498-ए में है।

***धारा 113-बी**. दहेज हत्या के संबंध में उपधारणा. ----जब सवाल यह है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी महिला की दहेज हत्या की है और यह दिखाया गया है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले उस महिला को दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में उस व्यक्ति द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न का शिकार बनाया गया था, न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज हत्या कारित की है।*

***स्पष्टीकरण** - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "दहेज मृत्यु" का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304बी में है।"*

इस मामले में दहेज की मांग पूरी नहीं होने पर प्रताड़ित करने, शादी के सात साल के अंदर जान से मारने की धमकी देने का आरोप है इस तरह, धारा 113-बी लागू होगी और आरोपी व्यक्तियों पर यह बोझ होगा कि मृतका की अप्राकृतिक मृत्यु कैसे हुई क्योंकि यह स्थापित हो चुका है कि घटना की तारीख और समय पर आरोपी और मृतका एक साथ थे और मृतका अभियुक्तों के संरक्षण में था।

वी के मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 9 एससीसी 588 (तीन जजों की बेंच), पंचानंद मंडल बनाम झारखंड राज्य, (2013) 9 एससीसी 800, संजय कुमार जैन बनाम दिल्ली राज्य, 2011, (11) एससीसी 733, में शीर्ष अदालत ने माना है कि धारा 304-बी, आई.पी.सी. के तहत किसी आरोपी की दोषसिद्धि दर्ज करने से पहले निम्नलिखित स्थितियाँ सिद्ध होनी चाहिए;-

(i) महिला की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों के अलावा जलने या शारीरिक चोट के कारण हुई थी;

(ii) ऐसी मृत्यु विवाह के सात वर्ष के भीतर होनी चाहिए;

(iii) कि महिला को उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा होगा।

(iv) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में होना चाहिए।

(v) यह दर्शाया गया है कि ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न महिला के साथ उसकी मृत्यु से ठीक पहले किया गया था।

हरीश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2015 (88) एसीसी 640 एससी में, यह माना गया है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत अनुमान की स्थिति में, इसका खंडन करने का बोझ आरोपी पर आ जाता है।

सुरिंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य में, (2014) 4 एससीसी 129; मनोहर लाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 9 एससीसी 645, में यह निर्धारित किया गया है कि आईपीसी की धारा 304-बी और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत विचार की गई धारणाओं को कार्रवाई में लाने के लिए, यह दिखाना आवश्यक है कि क्रूरता पीड़ित की मृत्यु से तुरंत पहले हुई थी। सवाल यह है कि कितना

'पहले' जो कि स्पष्ट रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, **एआईआर 2005 एससी 3546** में, यह निर्धारित किया गया है कि जहां अभियोजन पक्ष ने धारा 304-बी आईपीसी के तहत दहेज हत्या की सामग्री स्थापित की है। यह निर्धारित किया गया कि धारा 113-बी के तहत अनुमान का खंडन करने का दायित्व अभियुक्त पर था।

चूंकि, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि अपराध के समय आरोपी व्यक्ति उसके साथ मृतका के घर में थे, इसलिए, वास्तव में क्या हुआ और किन परिस्थितियों में और किस तरीके से एक स्वस्थ महिला की मृत्यु हुई, यह आरोपी व्यक्तियों को स्पष्ट करना होगा, इसलिए, इस न्यायालय के अनुसार अभियुक्त व्यक्ति भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत मृतका की मृत्यु का कारण स्पष्ट करने के दायित्व और बोझ के अधीन हैं।

धारा 106 भारतीय साक्ष्य अधिनियम इस प्रकार है:

"धारा 106: विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य को साबित करने का बोझ।

जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति की जानकारी में हो तो उस तथ्य को साबित करने का भार उसी पर होता है।"

इस धारा के अनुसार जहां कोई तथ्य विशेष रूप से किसी पक्ष की जानकारी में है, उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है।

ईश्वरैया बनाम कर्नाटक राज्य, **(1994) 2 एससीसी 677** में, तथ्य यह थे कि एक पुरुष और एक महिला उस व्यक्ति के शयनकक्ष में बिस्तर के नीचे छिपे हुए पाए गए थे जो चोटों से मृत पड़ा था, यह माना गया कि उन पर अपनी उपस्थिति और उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने का दायित्व था जिनमें मृतका की मृत्यु हुई।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम राज कुमार, **(2018) 2 एससीसी 69** में, यह माना गया है कि यदि कोई अभियुक्त किसी ऐसे तथ्य पर प्रकाश नहीं डालता है जो उसकी जानकारी में है, तो कोई भी स्पष्टीकरण देने में उसकी विफलता उसके खिलाफ एक मजबूत अपमानजनक स्थिति बन जाएगी।

बलराम प्रसाद अग्रवाल बनाम बिहार राज्य में, **(1997) 9 एससीसी 338**, एक गृहिणी अपने ससुराल के आंगन में बने कुएं में डूबकर मर गई, उस समय घर में केवल वही मौजूद थे। ससुराल वालों द्वारा वर्षों तक क्रूरता भी एक स्थापित तथ्य थी। तदनुसार उच्चतम न्यायालय ने माना कि आरोपी ससुराल वालों पर यह दिखाने का दायित्व है कि रात के दौरान ऐसा क्या हुआ जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

हालाँकि यह न्यायालय अच्छी तरह से जानता है कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामला साबित करने का प्रारंभिक बोझ अभियोजन पक्ष पर होता है और यदि प्रारंभिक बोझ से मुक्ति

मिल जाती है, तभी धारा 106 या धारा 113-बी के तहत देनदारियां शुरू होती हैं।

यद्यपि कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि यह घिसी-पिटी बात है कि अभियोजन पक्ष को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा और आरोप को साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत पेश किए जाने चाहिए, लेकिन ट्रायल कोर्ट द्वारा धारा 106 की कोई सहायता नहीं ली जा सकती है।

कैलाश चंद बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 11 एससीसी 268।

16. घटना का स्थान:

इस मामले में आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि घटना का स्थान वैसा नहीं है जैसा अभियोजन पक्ष ने बताया है। मामले के इस पहलू को लेकर आरोपी व्यक्तियों की ओर से कोई आपत्ति नहीं है।

17. कथित स्वतंत्र चश्मदीदों की जांच न करना और इच्छुक और संबंधित गवाहों की जांच न करना:

इस मामले में अभि.सा.-1 से अभि.सा.-3 मृतका की बहन, मां और पिता हैं और अभि.सा.-4 मृतका की नौकरानी है। यह तर्क दिया गया है स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी जैसे कि मृतका के पास रहने वाले शिक्षक, अनिल जयसवाल, गीता जयसवाल, रिंकू, मनीषा और ममता और मृतका को अस्पताल ले जाने वाले अपूर्वा मिश्रा उर्फ नीलू से पूछताछ नहीं की गई है। पी.डब्ल्यू-2 के अनुसार वे पक्षद्रोहि हो गए थे और अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने के लिए तैयार नहीं थे। यह भी आरोप लगाया गया है कि मौत से पहले जब उनकी बेटी को बांदा अस्पताल में भर्ती कराया गया था तो नीलू ने उन्हें अंदर जाने की इजाजत नहीं दी थी।

भगवान जगन्नाथ मरकड (उपरोक्त) में, धारी और अन्य बनाम यूपी राज्य एआईआर 2013 एससी 308, श्यामल घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2013 एससी 3539, पृथ्वी बनाम हरियाणा राज्य, (2010) 8 एससीसी 536, सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 643, में यह निर्धारित किया गया है कि किसी आपराधिक मुकदमे में किसी गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है, ऐसे मामले में न्यायालय को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है। पक्षद्रोहि के संबंध में भी इसी तरह के सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं।

भगवान जगन्नात मरकड (उपरोक्त), मुकेश बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन जजों की बेंच), अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) एसीसी 972 एससी में, यह निर्धारित किया गया है कि स्वतंत्र गवाह की जांच न करना रिकॉर्ड पर उपलब्ध गवाही के महत्व को खारिज करने का गणितीय सूत्र नहीं है, चाहे वह कितनी भी स्वाभाविक, विश्वसनीय और ठोस क्यों न हो। यह स्थापित कानून है

कि प्रत्यक्षदर्शी से पूछताछ न करने को आसानी से अभियोजन मामले को खारिज करने के अनुष्ठानिक सूत्र की तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। अदालत किसी आरोपी को एकमात्र गवाह के बयान पर दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतका का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह से पूछताछ न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759; दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य, (1976) 4 एससीसी 158, में यह माना गया है कि यदि गवाह को अभियुक्तों द्वारा जीत लिया गया था या आतंकित किया गया था, तो स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों की गैर-परीक्षा अप्रासंगिक है।

भगवान जगन्नाथ (उपरोक्त) और नंद कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2015) 1 एससीसी 776 में, यह माना गया है कि अभियोजन पक्ष अपने सभी गवाहों की जांच करने के लिए बाध्य नहीं है। अपने मामले को साबित करने के लिए गवाही देनी है या नहीं, इसका विवेक अभियोजन पर निर्भर करता है। अभियोजन के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष केवल तभी निकाला जा सकता है जब गवाही को रोकना अप्रत्यक्ष उद्देश्य से हो।

इस मामले में अभियुक्त द्वारा विचारण के दौरान यह स्वीकार किया गया कि मृतका की मां अभि. सा.-2 थी। यह निर्विवाद तथ्य है कि मृतका सेवा के सिलसिले में अपने नवजात शिशु के साथ घटनास्थल के निकट सेवा स्थल पर रह रही थी। यह भी सिद्ध हो चुका है कि उसकी माता अभि.सा.-2 कभी-कभार अपनी बेटी से मिलने जाती थीं और वहीं रुकती थीं। चूंकि मृतका सेवा में था, इसलिए मृतका ने अपने घरेलू मामलों और शिशु की देखभाल के लिए एक नौकरानी अभि.सा.-4 पिंकी को सेवा में रखा था। उपरोक्त परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि घटना दिनांक व समय पर अभि.सा.-4 पिंकी वहां नहीं थी। अभि.सा.1 की गवाही में आया है कि पिंकी मृतका की मृत्यु के बाद उसके परिजनों की सेवा कानपुर में कर रही थी।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि उपर्युक्त स्वतंत्र गवाहों की जांच नहीं की गई है और यह साबित नहीं हुआ है कि वे आरोपी व्यक्तियों के साथ किसी भी तरह से जुड़े हुए थे, इसलिए इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा कोई न्यायोचित और निष्पक्ष सुनवाई नहीं की गई है। विचारण न्यायालय ने इच्छुक और आंशिक गवाहों के बयानों पर विचार किया है जिन्होंने सच्चे सबूत पेश नहीं किए हैं। अभि.सा.4, पिंकी को मुखबिर और उसके परिवार के सदस्यों ने अपने वश में कर लिया था और जब उसने अदालत में गवाही दी, तब वह कानपुर नगर में उनके घर में काम कर रही थी। विद्वान अधिवक्ता ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (जी) पर जोर दिया, जो इस प्रकार है:

> *"**धारा 114 (जी)** - वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है"*

भारत संघ बनाम महादेवलाल प्रभुदयाल, एआईआर 1965 एससी 1755 में, यह माना

गया है कि कानून न्यायालय को ऐसी धारणा बनाने की अनुमति देता है जब सर्वोत्तम साक्ष्य को न्यायालय से दूर रखा जाएगा।

18. नेत्र संबंधी एवं चिकित्सकीय साक्ष्य:-

यहां अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अभियुक्तों ने मृतका को जहर दिया जिसके कारण इलाज के दौरान अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई। हालाँकि जाँच रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट से यह पुष्टि नहीं हुई थी कि मृतका की मृत्यु जहर के कारण हुई थी, लेकिन एफ.एस.एल. से प्राप्त विसरा रिपोर्ट से यह स्थापित हो गया है कि यह कीटनाशक था जिसके कारण मृतका की मृत्यु हुई थी। इस प्रकार, इस मामले में अभियोजन पक्ष का बयान, नेत्र साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य एक दूसरे के अनुरूप हैं।

मोइनुद्दीन बनाम यूपी राज्य, 2004 (50) एसीसी 244 में, यह माना गया है कि जहर से मौत के मामले में अभियोजन पक्ष को आरोपी के खिलाफ निम्नलिखित सामग्री साबित करना आवश्यक है;

(i) यह कि मृत्यु जहर देने से हुई है
(ii) कि अभियुक्तों के पास ज़हर था
(iii) कि अभियुक्त को ज़हर देने का अवसर मिला;
एफ.एस.एल. के अनुसार. रिपोर्ट भाग-डी, 000592 दिनांक 23.11.2013, विसरा में कीटनाशक जहर था।

19. बचाव पक्ष की ओर से सुसाइड नोट थ्योरी

आरोपी का कहना था कि मृतका ने मरने से पहले एक सुसाइड नोट लिखा था। इस संबंध में उन्होंने निचली अदालत में आवेदन 99ए दायर किया था और एक सुसाइड नोट भी उपलब्ध कराया था। सुसाइड नोट में निम्नलिखित शब्द हिंदी में लिखे गए हैं, जो कथित तौर पर मृतका वंदना वाजपेई त्रिपाठी द्वारा लिखे गए हैं, जो इस प्रकार हैं:

"मैं बन्दना बाजपेयी त्रिपाठी अपने पूरे होश में यह कहती हूँ कि मैं गृह कलह की वजह से आत्महत्या करने जा रही हूँ। इसके लिए न ही पुनीत त्रिपाठी जी न ही मेरे माता पिता जिम्मेदार हैं।
यह मेरा स्वैच्छिक कदम है।"

इस सुसाइड नोट के बारे में आरोपी पति की ओर से बयान दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि पत्नी की मौत की जानकारी होने पर जब वह बांदा आया तो मकान मालिक ने उसे यह सुसाइड नोट दिया था.
इसकी फोटोकॉपी उन्होंने पुलिस के उच्च अधिकारियों को भेजी थी, लेकिन इस संबंध में दोनों आईओ अभि.सा.-6 और अभि.सा.-7 ने इस बात से इनकार किया है कि उन्हें ऐसा कोई सुसाइड नोट उपलब्ध कराया गया था। गौरतलब है कि जमानत अर्जी में पुनीत त्रिपाठी ने कथित तिथि व समय तथा बेड हेड टिकट के अनुसार मृतका के घर में अपनी उपस्थिति व झगड़ा करना स्वीकार किया है। मृतका को उनके द्वारा अस्पताल लाया गया था, लेकिन परीक्षण के दौरान उन्होंने घटना की तारीख, समय और स्थान पर अपने और अपने परिवार

के सदस्यों से मिलने और उपस्थिति से इनकार कर दिया। हालाँकि, मकान मालिक से पूछताछ नहीं की गई है और सीआरपीसी की धारा 233 के तहत आरोपी कथित सुसाइड नोट को आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में साबित कर सकता है।

20. प्रमाण की मूल्यांकन:-

इस मामले में अभि.सा.-1 चश्मदीद गवाह नहीं है, वह 22.8.2011 की शाम को अपनी मां अभि.सा.-2 से सूचना पाकर 23.8.2011 की सुबह पहुंची थी। बड़ी बहन का शव देखने के बाद उसने एफ.आई.आर. दर्ज करायी। उसने एफ.आई.आर. की सामग्री को साबित कर दिया है और अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दी है। उसने यह भी बताया है कि प्रथम सीओ आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में था और वह मामले की ठीक से जांच नहीं कर रहा था, यहां तक कि उसने अभि.सा.2, खुद और अभि.सा.4 के बयान भी दर्ज नहीं किए। उसने गवाही दी है कि मकान मालिक अनिल जयसवाल, गीता जयसवाल और अपूर्वा मिश्रा उर्फ नीलू आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में हो गए, इसलिए अभियोजन द्वारा उनसे पूछताछ नहीं की गई। इस साक्षी ने लिखित शिकायत एक्स.के.ए.-1, वैगन आर कार की मांग तथा कई तरीकों से गाली-गलौज व प्रताड़ित करने तथा आरोपी पुनीत द्वारा उसकी बहन की हत्या कर दूसरी शादी करने की धमकी देने की बात को भी प्रमाणित किया है।

इस न्यायालय के अनुसार अभियुक्तों की ओर से इस गवाह को जिरह के दौरान एक बेतुका सुझाव दिया गया है कि जब मृतका सेवा में शामिल हुई तो मृतका और अभियुक्त पुनीत के बीच संबंध खत्म हो गए थे, जैसा कि साक्ष्यों से सिद्ध हो चुका है कि मृतका सरकारी अध्यापिका थी तथा विवाह के पूर्व से ही प्रशिक्षणरत थी। वह अप्रैल 2008 के महीने में सरकारी शिक्षा विभाग, शाहजहाँपुर में तैनात थी, जबकि उसकी शादी 01.12.2008 को आरोपी के साथ हुई थी और बाद में उसे धर्मपुर प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में तैनात किया गया था। यह भी उल्लेखनीय है कि इस गवाह को कोई स्पष्ट सुझाव नहीं दिया गया था कि आरोपी व्यक्ति घटना की कथित तारीख और समय पर घटना स्थल, मृतका के घर नहीं गए थे।

अभि.सा.-2, मृतका की मां ने स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष का समर्थन किया था और उन्होंने जिरह के दौरान अक्षुण्ण साक्ष्य भी दिए थे। इस गवाह को आरोपी व्यक्तियों द्वारा पूर्व में की गई यातनाओं और अत्याचारों के संबंध में कोई सुझाव नहीं दिया गया है। इसी प्रकार इस गवाह को कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि आरोपी व्यक्ति घटना की तारीख और समय पर मृतका से मिलने नहीं गए थे लेकिन एक सुझाव दिया गया है कि मृतका शाहजहाँपुर में शिक्षा विभाग में शामिल होने से पहले डॉ. अवध दुबे के एक नेत्र चिकित्सालय में कंप्यूटर क्लर्क के रूप में कार्यरत थी और उसके साथ अवैध संबंध थे। इस न्यायालय के अनुसार यदि ऐसा था, तो आरोपी पुनीत ने उसके साथ विवाह क्यों किया, यह एक विचारणीय मुद्दा है क्योंकि आरोपी व्यक्तियों द्वारा बचाव भी स्थापित किया गया है कि

आरोपी पुनीत त्रिपाठी उक्त क्लिनिक में एमआर के रूप में आता-जाता था और दोनों के बीच प्रेम संबंध बन गये थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा.4 को ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है। चिंता की बात यह भी है कि यदि आरोपी पुनीत त्रिपाठी को इस तरह के अवैध संबंध के बारे में पता था, तो तलाक की याचिका दायर करने के बजाय, उसके द्वारा लखनऊ में वैवाहिक अधिकारों की बहाली का मामला क्यों दायर किया गया था।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर है कि या तो डॉक्टर दुबे के साथ अवैध संबंध के संबंध में प्रश्न/सुझाव गलत तथ्य पर आधारित है या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत मामला केवल दिखावा करने के लिए था।

मृतका के पिता अभि.सा.-3 ने भी अभियोजन पक्ष में गवाही दी और अभियोजन पक्ष को साबित किया। जिरह में भी उन्होंने पुख्ता सबूत दिए हैं। उन्होंने दहेज की मांग, क्रूरता, प्रताड़ित करना और मृतका की हत्या कर दूसरी शादी करने की धमकी देना साबित किया है। इस गवाह को डॉ. दुबे एवं मृतका के साथ दहेज की मांग, प्रताड़ना, क्रूरता अथवा अवैध संबंधों के संबंध में कोई सुझाव नहीं दिया गया है। इस प्रकार इस अभियुक्त द्वारा मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान, जिस पर गवाह से जिरह नहीं की गई है, पूर्ण हो जाता है।

अभि.सा.-4, पिंकी श्रीवास्तव, नौकरानी ने घटना की तारीख और समय पर आरोपी व्यक्तियों के आने के बारे में बयान दिया है और इस तथ्य को भी साबित किया है कि आरोपी पुनीत त्रिपाठी अक्सर मृतका से मिलने आता था और दोनों के बीच अक्सर झगड़ा होता था। इस गवाह को कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि घटना की तारीख और समय पर मृतका की मां वहां नहीं थी और मृतका से वैगन आर कार के संबंध में दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी।

जिरह के पेज 4 पर इस गवाह को एक विरोधाभासी सुझाव दिया गया है जहां अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने गवाह को सुझाव दिया कि वंदना की मृत्यु के बाद, पूजा वाजपेयी और उसके पिता राज नारायण उसका खर्च वहन कर रहे थे।

इस न्यायालय के अनुसार ऐसा सुझाव देकर अभियुक्तों ने स्वीकार किया है कि अभि. सा.4, पिंकी, मृतका के जीवनकाल के दौरान उसकी नौकरानी थी और इसलिए कथित तिथि और समय पर घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त उल्लेखित सुझाव के विपरीत एक अन्य प्रश्न के ठीक बाद, अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक सुझाव दिया गया है जिसके लिए उसने जवाब दिया कि यह कहना गलत है कि उसने कभी भी मृतका वंदना वाजपेई के घर में सेवा नहीं की थी।

21. समग्र चर्चा से यह सिद्ध हो गया है कि मृतका और उसके पति के बीच संबंध मधुर नहीं थे, तथापि, दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए वाद दायर करने से यह पता चलता है कि अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी इस संबंध को बरकरार रखना चाहता था। बचाव पक्ष का तर्क यह है कि यह एक प्रेम विवाह था और जब मृतका कानपुर नगर में डॉ. अवध दुबे के नेत्र चिकित्सालय में कंप्यूटर क्लर्क के

रूप में काम कर रही था, तब दोनों के बीच प्रेम संबंध पैदा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप एक तय शादी हुई। इस संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के मामले को बताया कि जब आरोपी चिकित्सा प्रतिनिधि (एमआर) था और उसे क्षेत्रीय प्रबंधक के रूप में पदोन्नत किया गया था, तो दहेज के रूप में इतनी कम राशि और सामान्य सामान की मांग नहीं की गई थी। यह भी तर्क दिया गया है कि एक प्रसिद्ध दवा फार्मा कंपनी के एरिया मैनेजर के लिए वैगन आर कार खरीदना कोई बड़ा काम नहीं है, जब ऐसी कारें मामूली डाउन पेमेंट पर उपलब्ध हों।

22. यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त उल्लिखित स्वतंत्र गवाहों में से किसी की भी विचारण न्यायालय द्वारा जांच नहीं की गई थी और जमानत आवेदन पर पारित उच्च न्यायालय के आदेश की आड़ में, विद्वान विचारण न्यायालय ने मौके पर मौजूद वास्तविक गवाहों को बुलाए बिना, जो मृतका को बांदा अस्पताल और जिला अस्पताल शाहजहाँपुर ले गए थे, मुकदमे को जल्दबाजी में समाप्त कर दिया।

विद्वान विचारण न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि तलाक की याचिका प्रतिरूपण का परिणाम थी या नहीं और विद्वान विचारण न्यायालय ने कथित सुसाइड नोट को विशेषज्ञ की राय के लिए भेजने का प्रयास भी नहीं किया, जबकि मृतका के स्वीकृत हस्ताक्षर अभिलेखों में बहुत उपलब्ध थे। यहां तक कि विद्वान विचारण न्यायालय ने भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के तहत कथित सुसाइड नोट के हस्ताक्षर और लिखावट की तुलना मृतका की उपलब्ध लिखावट और हस्ताक्षर से करने की कोशिश नहीं की।

23. यह आगे बताया गया है कि कथित प्रत्यक्षदर्शी अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य को छोड़कर, दहेज हत्या, क्रूरता और दहेज की मांग के कथित आरोप के तहत आरोपी व्यक्तियों की सजा को दर्ज करने के लिए कोई सबूत नहीं है।

24. यह भी बताया गया है कि अभि.सा.-2 के प्रतिपरीक्षण के पहले पृष्ठ में, मृतका की माँ ने स्वीकार किया है कि उसकी मुलाकात अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी की बहन नीलम शुक्ला से उसकी शादी में हुई थी और उसके बाद उनके भाई अजीत त्रिपाठी की मृत्यु के समय जिनकी 17.12.2010 को एक सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। यह तर्क दिया गया है कि नीलम शुक्ला, जिनकी शादी घटना से 25 साल पहले हुई थी, को भी इस मामले में बाकी आरोपियों के साथ घटना की तारीख और समय और स्थान पर उपस्थित होने के लिए झूठा फंसाया गया था। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अगर यह महिला नीलम शुक्ला के खिलाफ झूठी गवाही दे सकती है, जिसे आईओ ने दोषमुक्त कर दिया था और जिसके खिलाफ कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था, तो यह महिला पुनीत त्रिपाठी के अलावा परिवार के बाकी सदस्यों को भी गलत तरीके से फंसा सकती है।

25. इस समय, विद्वान अधिवक्ता ने **एआईआर 2013 सुप्रीम कोर्ट 181** में रिपोर्ट किया गया **गीता मेहरोत्रा और अन्य बनाम**

यूपी राज्य और अन्य और **2022 0 सुप्रीम (एससी) 117 में** रिपोर्ट किया गया "**कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य**" में न्यायिक मिसालों पर भरोसा किया जिसमें शीर्ष अदालत ने यह माना है कि वैवाहिक विवादों और दहेज हत्या के मामलों में पति के पूरे परिवार के सदस्यों को झूठा फंसाना आम प्रवृत्ति है। त्वरित संदर्भ के लिए इन दो उदाहरणों के प्रासंगिक भागों को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है;

गीता मेहरोत्रा (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि;

"एफ.आई.आर. में आवेदकों की सक्रिय भागीदारी के आरोप अनुपस्थित हैं, केवल एफ.आई.आर. में उनके नामों का आकस्मिक संदर्भ संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त नहीं है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि एफ.आई.आर., आरोप-पत्र और गवाहों के बयान में, आवेदक संख्या 1 और आवेदक संख्या 2 के खिलाफ कोई विशिष्ट और अलग आरोप नहीं लगाए गए हैं। आरोप सामान्य और सर्वव्यापी हैं और कहा जा सकता है कि ये छोटी-मोटी झड़पों के कारण लगाए गए हैं। उपरोक्त परिस्थितियों में आरोप पत्र पर संज्ञान लेने का आदेश, आरोप पत्र, तथा निचली अदालत की कार्यवाही निरस्त किये जाने योग्य है।"

कहकशां कौसर @सोनम (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय लेते हुए प्रसन्नता व्यक्त की है:

"18. उपर्युक्त निर्णय यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि इस अदालत ने कई मौकों पर शिकायतकर्ता के साथ-साथ आरोपी पर मुकदमे के दीर्घकालिक प्रभाव का विश्लेषण किए बिना आईपीसी की धारा 498 ए के दुरुपयोग और वैवाहिक विवादों में पति के रिश्तेदारों को फंसाने की बढ़ती प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त की है। उक्त निर्णयों से यह और भी स्पष्ट है कि वैवाहिक विवाद के दौरान लगाए गए सामान्य सर्वव्यापी आरोपों के माध्यम से गलत निहितार्थ, यदि अनियंत्रित छोड़ दिया गया तो कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। इसलिए, इस अदालत ने अपने फैसले के माध्यम से अदालतों को पति के रिश्तेदारों और ससुराल वालों के खिलाफ कार्रवाई करने की चेतावनी दी है, जब उनके खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है।"

यह भी तर्क दिया गया है कि मृतका के पिता अभि. सा.-4 किसी भी तरह से अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे और शिक्षक के रूप में सेवा प्राप्त करने के बाद वह मृतका पर निर्भर हो गए थे। इस संबंध में कई सुझाव दिए गए हैं तथा कई बिंदुओं पर बचाव पक्ष द्वारा गवाहों से जिरह भी की गई है कि जब मृतका को कई माह तक संचयी रूप से वेतन राशि प्राप्त हुई थी तो इसका उसके परिवार के सदस्यों द्वारा दुरुपयोग किया गया था और यहां तक कि मृतका द्वारा कथित तौर पर उसके मकान संख्या एल 849 आवास विकास कॉलोनी कानपुर नगर के बारे में उसके पिता के पक्ष में दिनांक 17.4.2009 की एक जाली वसीयत भी जालसाजी करते हुए बनाई गई थी।

यह सच है कि आम तौर पर वसीयत जीवन के बाद के चरण में मृत्यु की प्रत्याशा में निष्पादित की जाती है और शायद ही कभी इतनी कम उम्र के व्यक्ति द्वारा निष्पादित की जाती है।

यह भी तर्क दिया गया है कि यदि सभी आरोपी व्यक्ति मृतका को जहर देने के उद्देश्य से घटना की कथित, तारीख और समय पर मृतका से मिलने गए थे, तो उनके द्वारा दरवाजा खुला क्यों छोड़ा गया था। इस आधार पर, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष द्वारा कथित तौर पर जहर देने का तरीका और ढंग काफी अप्राकृतिक है और एक जीवंत व्यक्ति होने के नाते अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी स्वयं मृतका को जहर देने में सक्षम था यदि उसका ऐसा इरादा था या जब भी वह मृतका से मिलने जाता था तो वह मृतका को जहरीला भोजन दे सकता था।

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर न्यायालय का सुविचारित मत एवं निष्कर्ष है कि घटना की तिथि, समय एवं स्थान पर केवल अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी ही था जिसने मृतका से झगड़ा करना स्वीकार किया है तथा जिसने मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया था। परंतु दिनांक 22.08.2011 की घटना के संबंध में शेष अभियुक्तगणों की उपस्थिति एवं सहभागिता उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं हुई है। हालाँकि, उनके खिलाफ धारा 498-ए और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ है, लेकिन उन्हें आईपीसी की धारा 304-बी के तहत अपराध करने के लिए दोषी नहीं पाया गया है।

26. जहां तक धारा 304-बी, 498-ए आईपीसी और डीपी अधिनियम की धारा 4 के संबंध में अपराध का सवाल है, पुनीत त्रिपाठी और मृतका के बीच मौजूद विवाद के आधार पर, दोनों पक्षों के मामलों का लंबित रहना, घटना की तारीख, समय और स्थान पर उनकी उपस्थिति और आत्महत्या के मामले में पुलिस को सूचित करने से परहेज करना, उनके खिलाफ जाता है और इसलिए, धारा 304 बी, 498-ए आईपीसी और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप फिर से उचित संदेह से परे साबित होते हैं।

27. सज़ा की अवधि पर सुनवाई हुई। इस न्यायालय के अनुसार अब तक अभियुक्त पुनीत त्रिपाठी 11 वर्ष 9 माह 28 दिन जेल में रह चुका है तथा लगभग 13 वर्ष 5 माह की सजा काट चुका है, इसलिए, यदि आरोपी पुनीत त्रिपाठी को धारा 304-बी के तहत पहले ही भुगते गए कारावास की सजा दी जाती है, तो न्याय के उद्देश्य पूरे होंगे।

28. जहां तक धारा 498-ए का सवाल है, वह पहले ही दो साल की सजा काट चुका है और डी.पी.एक्ट की धारा 4 के तहत छह महीने की सजा भी काट चुका है।

29. जहां तक आरोपी शिवकुमार त्रिपाठी और बिंदेश्वरी त्रिपाठी का सवाल है, वे वरिष्ठ नागरिक हैं और अभियुक्त बड़े भाई सुजीत त्रिपाठी और उनकी पत्नी श्रीमती आशा त्रिपाठी का संबंध है, वे भी कई महीनों की सजा काट चुके हैं, घटना की वास्तविक तिथि पर उनकी उपस्थिति स्थापित नहीं की गई है, इसलिए,

किसी पूर्व या बाद की आपराधिक पृष्ठभूमि या किसी अन्य मामले में दोषसिद्धि के अभाव में जेल में उनके कारावास की अवधि पर्याप्त प्रतीत होती है।

30. जहां तक जुर्माना लगाने का सवाल है, सभी आरोपी व्यक्तियों पर धारा 498-ए आईपीसी और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत प्रत्येक पर 5,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है।

31. सभी आरोपी व्यक्तियों को धारा 357 सीआरपीसी के तहत कुल मिलाकर 75,000/- रुपये का मुआवजा भी दिया गया है। इस न्यायालय के अनुसार, विचारण न्यायालय द्वारा लगाया गया जुर्माना और उसके द्वारा दिए गए मुआवजे में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। अत: यह अपील तदनुसार निर्णय योग्य है।

आदेश

(i) फौजदारी अपील संख्या 1045/2016 (पुनीत त्रिपाठी बनाम राज्य) को दोषसिद्धि के संबंध में आंशिक रूप से खारिज किया जाता है और निम्नानुसार सजा के संबंध में **अनुमति** दी जाती है:

आरोपी-अपीलकर्ता पुनीत त्रिपाठी को आईपीसी की धारा 498-ए और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत दी गई सजा बरकरार रखी जाती है। आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दी गई सजा को इस हद तक संशोधित किया जाता है कि उसे आजीवन कारावास के बजाय पहले ही पूरी की जा चुकी अवधि तक की सजा सुनाई जाती है।

(ii) आपराधिक अपील संख्या 1044/2016 (शिव कुमार त्रिपाठी एवं 3 अन्य बनाम राज्य) को धारा 304-बी आईपीसी के तहत दोषसिद्धि और सजा के संबंध में अनुमति दी जाती है और धारा 498-ए आईपीसी और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत दोषसिद्धि बरकरार रखी जाती है। हालाँकि, सज़ा को इस हद तक **संशोधित** किया जाता है कि उन्हें पहले से ही बिताई गई अवधि तक सज़ा सुनाई जाती है।

(iii) विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने और मुआवजे का भुगतान न करने की स्थिति में, आरोपी व्यक्तियों को विचारण न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट अवधि के लिए दंडित किया जाएगा, यदि वह आज से तीस दिनों के भीतर जमा नहीं किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 127

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी

मृत्युदंड प्रकरण संख्या 3809 वर्ष 2015

साथ में

संदर्भ संख्या 10 वर्ष 2015

जुगल ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:
जेल से, श्री ए.के. द्विवेदी (न्याय मित्र), श्री राजर्षि गुप्ता (सहायक अधिवक्ता)

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 504 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 313 - मृत्यु पूर्व अभिकथन - प्रासंगिकता - मृतका और उसके बेटे दोनों को अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा जिंदा जला दिया गया - घटना दिन में हुई जब अभियुक्त मृतका के घर आया, अपनी पत्नी (पी.डब्लू.-4) और बेटी के बारे में पूछताछ की - बताया गया कि वे मृतका के घर नहीं आए हैं, उसने गालियां दीं और रात का फायदा उठाकर अपराध किया - अभियोजन पक्ष द्वारा न तो उत्पत्ति सिद्ध की गई और न ही अभिलेख पर विवाद का सटीक कारण दर्ज किया गया - अभियुक्त को शाम 6 बजे गिरफ्तार किया गया, पी.डब्लू.-1 से लेकर पी.डब्लू.-3 द्वारा सिद्ध नहीं किया गया, सभी ने कहा प्र.सू.रि. दर्ज होने से पहले गिरफ्तारी की गई - रात की घटना के संबंध में, अभियोजन पक्ष ने पी.डब्लू.-1 से पी.डब्लू.-3 की परिसाक्ष्य पर भरोसा किया, जो अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता, इसके अलावा मृतका के बेटे का मृत्यु पूर्व अभिकथन भी था - मजिस्ट्रेट को किया गया मृत्यु पूर्व अभिकथन,कि अपनी माँ के कमरे में टीवी देखने गया हुआ था के संबंध में तथ्यात्मक कथन भरोसेमंद नहीं है, अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों से अन्य तथ्यों का खंडन होता है, साथ ही अभियुक्त ने इस बात से भी अनभिज्ञता प्रकट की कि किस कारण से उसने पेट्रोल डालकर उसे और उसकी माँ को आग लगा दी - इस प्रकार, मृत्युपूर्व कथन का सही मूल्यांकन नहीं किया गया। (प्रस्तर 2, 27, 31, 32, 34, 35, 39, 44, 45)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. मोतीलाल एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2009 (8) एससीआर 303, (प्रस्तर 6)

2. सुरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2019 1 इलाहाबाद लॉ जर्नल 290

3. शारदा बनाम राजस्थान राज्य, 2010 (68) एसीसी 274 (एससी)

4. गुजरात राज्य बनाम जयराजभाई पुनियाभाई वरू, एआईआर 2016 एससी 3218 (प्रस्तर 10 और 11)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र
और
माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी द्वारा प्रदत्त)

1. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय, ललितपुर ने 13.08.2015 को दं.प्र.सं. की धारा 366 के अंतर्गत इस न्यायालय को संदर्भित किया है, जो कि अभियुक्त जुगल द्वारा पेट्रोल डालकर उसकी

सास और साले को जलाने के आरोप में मृत्यु दंड की सजा सुनाने के परिणामस्वरूप है। संदर्भ को संदर्भ सं0 10/2015 के रूप में पंजीकृत किया गया है। अभियुक्त द्वारा कैपिटल क्रिमिनल अपील सं0 3809/2015 भी दायर की गई है। अपील और संदर्भ को एक साथ सुना गया और इसका निस्तारण इस समान निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

2. दिनेश (पी.डब्लू.-1) वर्तमान मामले में प्रथम सूचनादाता है, जो कि मृतका चमेली बाई पत्नी उदया का बेटा और दीपचंद का भाई है, जिसकी भी मृत्यु हो चुकी है, यह बताते हुए कि 17.06.2013 को दोपहर लगभग 4.00 बजे दोपहर को उसका जीजा चमार जाति का जुगल पुत्र काशी घर पर आया और अपनी पत्नी मीना और बेटी सीमा के बारे में पूछा। परिजनों ने बताया कि वे दोनों घर नहीं आये हैं। इसी कारणवश अभियुक्त उन्हें गाली देने लगा और गांव में घूमता रहा और रात करीब एक बजे उसने मृतक पर पेट्रोल डालकर आग लगा दी। ग्रामीणों का शोर सुनकर तिजू (पी.डब्लू.-2) और करण सिंह (पेश नहीं हुए) मौके पर आए और आग बुझाने का प्रयास किया। मृतका चमेली बाई और दीपचंद दल्लान (घर से लगा हुआ एक प्रकार का बरामदा) में सो रहे थे। दोनों व्यक्तियों को इलाज के लिए अस्पताल ले जाया गया जहां सूचनादाता की मां की मृत्यु हो गई और भाई घायल अवस्था में था। मामले में उचित कार्रवाई करने का अनुरोध किया गया था। इस तहरीर (प्रदर्श क-1) के आधार पर दिनांक 18.06.2013 को दोपहर लगभग 12.30 बजे थाना बानपुर, जिला ललितपुर में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। घटनास्थल और थाने के बीच की दूरी पांच किलोमीटर है.

3. अभिलेखों से पता चलता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पूर्व, पंचायतनामा कार्यवाही 18.06.2013 को प्रातः लगभग 10.30 बजे शुरू की गई और प्रातः लगभग 11.30 बजे जिला अस्पताल स्थित शवगृह में समाप्त हुई। पंचायतनामा के अनुसार, वार्ड-बॉय द्वारा सूचना दी गई थी और उपचार के दौरान मृतक की मृत्यु हो गई। पंचायतनामा में विशेष रूप से दर्ज किया गया है कि मृत्यु के संबंध में सूचना प्रातः 6.20 बजे ही प्राप्त हो गई थी। पंचायतनामा के साक्षीगणों में प्रथम सूचनादाता भी शामिल था। पंचायतनामा के साक्षीगणों की राय में, मृतक की मृत्यु जलने की चोटों के कारण हुई और मृत्यु का सही कारण सुनिश्चित करने के लिए पोस्टमॉर्टम आवश्यक था। अंततः शव को सील किया गया और 18.06.2013 को शाम 4.30 बजे पोस्टमॉर्टम किया गया। शव परीक्षण करने वाले चिकित्सक की राय के अनुसार, मृतका 44 वर्षीय महिला थी, उसकी शारीरिक बनावट औसत थी और मृत्यु पूर्व की अकड़न गर्दन से निकलकर निचले अंगों में चली गई थी। पोस्टमॉर्टम के अनुसार मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व की जलने की चोटों के परिणामस्वरूप शॉक है। पोस्टमॉर्टम में निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें देखी गई-

"बाईं जांघ के पिछले भाग को छोड़कर पूरे शरीर में मिश्रित जलन मौजूद है।"

4. मामले की विवेचना की गई और विवेचना अधिकारी द्वारा घटनास्थल का निरीक्षण किया गया, जिन्होंने दो लीटर का प्लास्टिक का एक

डिब्बा एकत्र किया, जिसमें पेट्रोल की गंध थी। घटनास्थल के पास एक लैंप भी मिला। विवेचना अधिकारी द्वारा राख और सादी मिट्टी आदि को भी प्रदर्श क-2 के रूप में एक अलग थैले में एकत्र किया गया। इस बरामदगी को पी.डब्लू.-3 के रूप में पेश हुए स्वतंत्र साक्षी शंकर सिंह ने साबित किया है।

5. दीपचंद, जो कथित रूप से अपनी मां के नजदीक सो रहा था और जिसे भी जलने की चोटें आई थी, उसको जिला अस्पताल, ललितपुर में भर्ती कराया गया था, जहां उसका मृत्यु पूर्व बयान संबंधित नायब तहसीलदार अवधेश कुमार निगम द्वारा दर्ज किया गया था, जो पी.डब्लू.-5 के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस मृत्युपूर्व बयान दर्ज करने से पूर्व आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी डा. पवन सूद (पी.डब्लू.-9) ने प्रमाणित किया कि घायल अपना बयान देने के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ है। मृत्युपूर्व बयान प्रश्न उत्तर के रूप में है और इसका उद्धरण निम्न प्रकार से है-

"बयान दीपचन्द पुत्र श्री ऊदई, उम्र लगभग 15 साल

निवासी-ग्राम अजनौरा, थाना-बानपुर, ललितपुर

दि० 18.06.2013, समय 16.55 पी०एम०

प्रश्न- क्या नाम है, कहाँ के हो

उत्तर- दीपचन्द, अजनौरा के

प्रश्न- कैसे जल गये?

उत्तर- रात को मै अपनी माँ के साथ सो रहे थे। जुगले जो मेरे जीजा लगता है उसने हम दोनो के ऊपर पेट्रोल फेंक कर आग लगा दी।

प्रश्न- जीजा ने क्यो जलाया।

उत्तर- क्या पता सहाब, जुगला ने जलाया।

प्रश्न- जुगला कहाँ रहता है।

उत्तर- खोंखरा रहता है।

प्रश्न- जुगला से झगड़ा हुआ था?

उत्तर- मैं खेल रहा था उसने एक बार मेरे गले मे लात रखी थी।

प्रश्न- तुम्हारी माँ से उसकी लड़ाई हुयी थी

उत्तर- क्या पता सहाब

प्रश्न- तुम्हें किसने बचाया?

उत्तर- जब आग लगी तो मैं उठकर आंगन मे भागा, पानी बरसा था इसलिये आंगन मे पानी भरा था, मैं उसमे कूद गया खुद बचा।

प्रश्न- जब जलाया उस समय घर मे कौन-कौन था।

उत्तर- हम, दिनेश मेरा भाई, डबला जो मेरा भइया लगता है, तथा मेरी माँ तथा मेरे बड़े भाई आशा का? लड़का नीलेश

प्रश्न- जलते हुये किसने देखा

उत्तर- मै टी०वी० देखने माँ के कमरे मे गया था वही उनके पास लेट गया था, जब वह मेरी माँ के ऊपर पेट्रोल डाल रहा था तो मैने देख लिया, मैने कहा तू यह क्या कर रहा तो उसने मेरे ऊपर भी पेट्रोल डालकर आग लगा दी।

प्रश्न- ओर कुछ कहना है?

उत्तर- नही क्या करे? उसने मेरी माँ को मार डाला साहब, उसे सजा दो।"

6. मामले में जांच आगे बढ़ी और धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दीपचंद का बयान दर्ज किया गया। उस संबंध में बयान प्रस्तुत नहीं किया गया है, परन्तु इसकी अर्न्तवस्तु का खुलासा विवेचना अधिकारी द्वारा किया गया है, जो मुकदमे के दौरान पी.डब्लू.-13 के रूप में उपस्थित हुए हैं। उन्होंने बताया कि दीपचंद ने उन्हें सूचित किया था कि वह अभियुक्त को उसकी आवाज से पहचान सकता है।

7. अन्य मृतक दीपचंद चेहरे पर 60 प्रतिशत तक सतही और गहरी जलन के कारण अस्पताल में भर्ती रहा। बाद में दिनांक 30.06.2013 को दीपचंद की भी मृत्यु हो गई, जिसके संबंध में पंचायतनामा तैयार किया गया तथा पोस्टमॉर्टम भी कराया गया, जिसमें उसकी उम्र 17 वर्ष अनुमानित की गई। शव-परीक्षक सर्जन ने पाया है कि मौत का कारण मृत्यु-पूर्व जलने की चोटों के कारण सेप्टिसीमिक शॉक है और मृतक पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं-

"चेहरे, गर्दन, पूरी पीठ पर, पेट के अगले और पिछले हिस्से पर जलने की चोटें है। दोनों हाथ, कूल्हे और दाहिने पैर का भाग पर सतही से गहरा, पपड़ी मौजूद। फुफुस गुहा में मवाद मौजूद है और बाएं फेफड़े और पेट की गुहा में मवाद मौजूद है।"

8. अभियुक्त की पत्नी मीना पी.डब्लू.-4 का भी बयान दर्ज किया गया, जिसके पश्चात अभियुक्त के विरूद्ध धारा 302, 504 भा.दं.सं. के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया। मजिस्ट्रेट ने उसका संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय के सुपुर्द किया, जहां इसे सत्र परीक्षण संख्या 109/2013 के रूप में पंजीकृत किया गया। भा.दं.सं. की धारा 302 और 504 के तहत आरोप विरचित किए गए और अभियुक्त को हिन्दी में पढ़कर सुनाया और समझाया गया। अभियुक्त ने स्वंय को निर्दोष बताया और परीक्षण की मांग की। न्यायालय द्वारा विरचित किए गए आरोप इस प्रकार है-

" **<u>आरोप</u>**

मैं, श्याम सुंदर, सेशन जज, ललितपुर आपः जुगल पुत्र काशी निवासी ग्राम खोखरा, थाना कोतवाली ललितपुर, जनपद ललितपुर को निम्नानुसार आरोपित करता हूं:-

प्रथम- यह कि दिनांक 17.06.2013 को दोपहर लगभग 4.00 बजे, वादी दिनेश के घर, ग्राम अजनौरा, थाना बानपुर, जिला ललितपुर पर, आपने जानबूझकर दिनेश को अपमानित किया और इस प्रकार उसे उकसाया, यह जानते हुए कि इस तरह के उकसावे से उसके द्वारा लोक शांति भंग होगी या कोई अन्य अपराध कारित किया जाएगा और इस प्रकार आपने भा.दं.सं. की धारा 504 के तहत दंडनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के संज्ञान में है।

द्वितीय- यह कि दिनांक 17/18.06.2013 के मध्य रात्रि करीब 1.00 बजे उपरोक्त स्थान पर आपने जानबूझकर या जानते हुए श्रीमती चमेली बाई तथा दीपचंद्र की मृत्यु कारित कर हत्या की है और इस प्रकार भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध किया है, जो इस न्यायालय के संज्ञान में है।

और मैं एतदद्वारा आपको निर्देशित करता हूं कि इस न्यायालय द्वारा आप पर उक्त आरोपों में मुकदमा चलाया जाएगा।"

9. मामले में मुकदमा आगे चला, जिसमें अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत किए गए-

" 1. तहरीर प्रदर्श क-1

2. फर्द कब्जे में लेने प्लास्टिक कटटी, राख, खाट और सादी मिटटी प्रदर्श क-2

3. दीपचंद का मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-3
4. चमेली बाई की पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-4
5. दीपचंद की पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-5
6. दीपचंद की डाक्टरी परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-12
7. चमेली बाई का पंचायतनामा तथा शव परीक्षण से सबंधित कागजात प्रदर्श क-13 से क-18
8. चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-19
9. जी.डी. की प्रति प्रदर्श क-20
10. दीपचंद का पंचायतनामा तथा शव परीक्षण से सबंधित कागजात प्रदर्श क-21 से क-25
11. नक्शा नजरी प्रदर्श क-26
12. आरोप पत्र प्रदर्श क-27"

10. इसके अतिरिक्त, सूचनादाता दिनेश पी.डब्लू.-1 के रूप में उपस्थित हुआ है, जिसमें उसने बताया है कि अभियुक्त 17.06.2013 को लगभग 4.00 बजे उसके घर आया और उससे और उसकी मां से अपनी पत्नी और बेटी के बारे में पूछताछ की। अभियुक्त को बताया गया कि वे नहीं आए हैं, जिस पर अभियुक्त उनसे गाली-गलौज करते हुए चला गया। उसी रात जब दोनों मृतक बरामदे में सो रहे थे, जबकि सूचनादाता, रवि और नीलेश के साथ कुछ दूरी पर एक कमरे में सो रहा था। साक्षी ने अपनी माँ और भाई की चीखें सुनीं। अभियुक्त ने दोनों मृतकों पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी और घटनास्थल से भाग गया। इस घटना को तीजू और करण सिंह ने देखा है। पी.डब्लू.-1 ने अभियुक्त को उसके द्वारा लगाई गई आग के कारण हुई रोशनी में भागते हुए भी देखा। ग्रामीणों की मदद से आग पर काबू पाया गया और साक्षी अपनी मां और भाई को अस्पताल ले गया, जहां सुबह करीब चार बजे उसकी मां की मृत्यु हो गई। भाई को इलाज के लिए ग्वालियर भेजा गया। 10-12 दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। इस साक्षी ने तहरीर को प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया है। पी.डब्लू.-1 से प्रतिपरीक्षा की गई, जिसमें उसने स्वीकार किया कि उसने 9वीं कक्षा तक पढ़ाई की है। उसने कथन किया कि तहरीर उसके द्वारा नहीं लिखी गई थी, बल्कि किसी और से लिखवाई गई थी। उसने घबराहट होने के कारण रिपोर्ट नहीं लिखी थी। वह दोपहर करीब 12-1 बजे थाने पहुंचा था और उसके साथ तीजू और करण सिंह भी थे। उसने स्वीकार किया कि तहरीर में उसने यह नहीं बताया है कि तीजू और करण सिंह ने अभियुक्त को आग की रोशनी में भागते हुए देखा था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि उसका बयान बाद में मिली सलाह पर आधारित है। उसके अनुसार, अभियुक्त का विवाह बहुत पहले उसकी बहन से हुआ था और इस शादी से तीन बच्चे पैदा हुए। अभियुक्त उसकी बहन को परेशान करता था, हालांकि इस तरह के उत्पीड़न की शिकायत कभी पुलिस से नहीं की गई। एक विशिष्ट प्रश्न के उत्तर में, पी.डब्लू.-1 ने कहा है कि वह आज तक यह नहीं जान पाया है कि घटना के दिन अभियुक्त की पत्नी और बेटी कहाँ थीं। उसने इस बात से भी अनभिज्ञता जताई कि उस दिन उसकी भानजी (बहन की बेटी) की शादी थी। जिस समय अभियुक्त घर पर आया, उस समय मृतक मां और दीपचंद (मृतक भाई) घर पर थे और अभियुक्त उसके सामने ही घर पर आया। इस साक्षी ने विशेष रूप से कथन किया कि घर में

दो कमरे हैं और घर में कोई टेलीविजन नहीं है। आगे की प्रतिपरीक्षा में, इस साक्षी ने कहा कि उसकी मां और भाई एक ही खाट पर सो रहे थे और दरवाजे पर कोई ताला नहीं लगा था, जिससे कोई भी घर के अंदर आ सकता था, खासकर जब दीवार की ऊंचाई केवल 4 फीट है। उसने यह भी बताया कि जब यह घटना घटी तब बारिश हो रही थी। उसने यह भी कथन किया कि उसने अपनी मां और भाई पर कपड़ा डालकर आग बुझाने की कोशिश की थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि आग पानी से नहीं बुझाई गई थी। तीजू और करण सिंह का घर उसके घर के सामने है। उसने यह भी कहा है कि जब वह घटनास्थल पर पहुंचा, तब तक तीजू और करण सिंह पहले से ही दल्लान में उपस्थित थे। उसने यह भी कहा है कि उसके भाई का मृत्यु पूर्व बयान उसकी उपस्थिति में दर्ज किया गया था। उन्होंने यह भी कहा है कि अभियुक्त को सुबह करीब 8-9 बजे ही गिरफ्तार कर लिया गया था। उसने यह भी कहा है कि वह अस्पताल से करीब 8-9 बजे सीधे थाने गया था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने अभियुक्त को पेट्रोल कैन के साथ आते नहीं देखा था। उसने इस बात से इनकार किया है कि क्योंकि उसकी बहन और अभियुक्त के बीच वैवाहिक विवाद था, जिसके कारण उसके खिलाफ झूठी रिपोर्ट दर्ज की जा रही है।

11. तीजू पुत्र गोरेलाल पी.डब्लू.-2 है और उसने अभियोजन केस का समर्थन किया है। इस साक्षी के अनुसार, अभियुक्त की बेटी की शादी पिछले साल गर्मियों के दौरान अमझरा मंदिर में हुई थी। उसी दिन लगभग 4.00 बजे अभियुक्त अपने ससुराल आया और यह देखकर कि उसकी पत्नी और बेटी वहां नहीं थीं, अभियुक्त ने गालियां दीं और मृतक को धमकियां भी दीं। इसके बाद अभियुक्त गांव में घूमता रहा। इस साक्षी के अनुसार, रात करीब 12 बजे वह लघुशंका के लिए घर से बाहर आया, तभी उसने अभियुक्त को मृतक के घर से बाहर निकलते देखा। साक्षी को चीखें सुनाई दीं और उसने व करण सिंह ने अभियुक्त को घर से बाहर आते देखा। जब साक्षी घर में घुसा तो देखा कि चमेली बाई आग में घिरी हुई है और उसका बेटा दीपचंद भी आग में झुलस रहा है। पी.डब्लू.-2 और करण ने आग बुझाई। उनका कहना है कि चमेली बाई और दीपचंद ने उन्हें बताया था कि जुगल ने घर में घुसकर उन पर पेट्रोल डाला है। घटनास्थल पर एक जली हुई कुप्पी थी और उसमें से उसे पेट्रोल की गंध आ रही थी। प्रतिपरीक्षा में पी.डब्लू.-2 ने कहा है कि विवेचना अधिकारी ने अगली सुबह उसका बयान दर्ज किया। पुलिस करीब 10.00 बजे आई थी और तब तक अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया था। दं.प्र.सं.. की धारा 161 के तहत दिए गए उसके बयान को उसे सुनाया गया, जिसमें उसने विवेचना अधिकारी को यह नहीं बताया है कि अभियुक्त कुएं के आसपास घूम रहा था या वह लघुशंका के लिए 12.00 बजे घर से बाहर आया था। उसके पिछले बयान को भी उसे सुनाया गया, जिसमें अभियुक्त के घर से बाहर निकलने का कोई जिक्र नहीं है। घटना के दिन अभियुक्त की पत्नी और पुत्री घर पर थी और केवल आशा राम (मृतका चमेली बाई का दूसरा पुत्र) ही शादी में अमझरा मंदिर गया था। मृतक भी शादी में शामिल नहीं हुए थे। पी.डब्लू.-2 ने

कथन किया है कि शाम 4.00 बजे घर पर कोई नहीं था क्योंकि चमेली बाई कुएं पर गई थी जो उसके घर से लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर है। अभियुक्त पहले घर आया और जब उसे कोई नहीं मिला तो वह कुएं की ओर गया और उसके बाद उसने अभियुक्त को नहीं देखा। उसने कथन किया कि घटना के समय सूचनादाता घर में सो रहा था और वह पी.डब्लू.-2 के घटना स्थल पर पहुंचने के बाद पहुंचा। उसने यह भी बताया कि चमेली बाई के घर के चारों ओर कोई दीवार नहीं है। उसने दृढतापूर्वक कथन किया कि सूचनादाता के घर में कोई टेलीविजन नहीं है। उसने यह भी कहा कि बारिश हो रही थी और बिजली नहीं थी।

12. पी.डब्लू.-3 शंकर सिंह हैं, जिन्होंने भी अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। उनका कहना है कि अभियुक्त शाम चार बजे गांव आया था, जब उसकी पत्नी अपनी बेटी के विवाह के लिए अमझरा मंदिर गयी थी। अभियुक्त ने मृतका चमेली बाई से घटना के बारे में पूछताछ की और जब वह कोई जवाब नहीं दे सका तो उसने अपनी सास को गाली देना शुरू कर दिया। कई लोग मौके पर आ गए और अभियुक्त को घर से भागने पर मजबूर होना पड़ा। इस साक्षी के अनुसार अभियुक्त रात करीब एक बजे बानपुर से एक कुप्पी में पेट्रोल लेकर आया। उनका कहना है कि घटनास्थल के पास एक जली हुई कुप्पी थी जिसमें पेट्रोल की गंध आ रही थी। उसने यह भी कहा कि उसने अभियुक्त को घटनास्थल से भागते हुए देखा है। इस साक्षी के अनुसार भी, वह घर के अंदर पहुंचा और दोनों मृतकों को जली हुई अवस्था में देखा। इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में फर्द बरामदगी प्रदर्श क-2 को भी साबित किया है। प्रतिपरीक्षा में, पी.डब्लू.-3 ने कहा है कि उसका बयान अगली सुबह लगभग 7.00-8.00 बजे दर्ज किया गया था। इस साक्षी को दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दिया गया उसका पिछला बयान सुनाया गया, जिसमें इस तथ्य का कोई संदर्भ नहीं है कि अभियुक्त की बेटी का विवाह अमझरा मंदिर में हो रहा था या अभियुक्त को घर से भागने के लिए मजबूर किया गया था या वह चमेली बाई के घर के आसपास घूमता रहा; या कि उसने अभियुक्त को मृतका के घर से भागते देखा था। इस साक्षी के अनुसार, उसका घर चमेली बाई के घर से 50-60 कदम की दूरी पर है। अपनी आगे की प्रतिपरीक्षा में, पी.डब्लू.-3 ने कहा है कि उसने अभियुक्त को अपने घर से पार जाते देखा था और चूंकि वह घायलों को बचाने की कोशिश कर रहा था, इसलिए वह अभियुक्त को पकड़ नहीं सका। उसका कहना है कि अभियुक्त उसके घर के सामने से भाग गया। उसके अनुसार, उन्होंने अभियुक्त को बिजली की रोशनी के साथ-साथ आग की रोशनी में भी देखा था। उसने कथन किया कि सूचनादाता चीख-पुकार/शोर सुनकर घटनास्थल पर आया था। इस साक्षी के अनुसार भी, अभियुक्त को सुबह लगभग 10.00-11.00 बजे गिरफ्तार किया गया था। साक्षी ने आगे बताया कि घटनास्थल से पांच लीटर का प्लास्टिक का डिब्बा बरामद हुआ, जिसमें से पेट्रोल की गंध आ रही थी।

13. पी.डब्लू.-4 श्रीमती मीना हैं, जो अभियुक्त की पत्नी है। उसने कथन किया कि उसकी बड़ी बेटी की शादी हो चुकी है। उनका कहना है कि

अभियुक्त कहता था कि वह अपनी बेटी को अपने पास रखेगा और अक्सर उसे पीटता था, जिसके कारण वह ललितपुर शहर में रहने लगी। उसने अपनी बेटी की शादी भी ललितपुर में की थी। उनका कथन है कि उनकी बेटी की शादी अमझरा मंदिर में हुई थी और विवाह के दिन वह मौजूद थी। उसी दिन अभियुक्त उसकी मां के घर आया और उसके वहां नहीं मिलने पर उनके साथ दुर्व्यवहार किया। उसने अभियुक्त द्वारा दोनों मृतकों पर पेट्रोल डालने के अभियोजन केस का भी समर्थन किया है। इस साक्षी से प्रतिपरीक्षा की गई है जिसके अनुसार घटना के दो दिन बाद अस्पताल में उसका बयान दर्ज किया गया था। साक्षी को उसका पिछला बयान सुनाया गया, जिसमें उसने विवेचना अधिकारी को यह नहीं बताया है कि अभियुक्त उसकी बेटी को रखना चाहता था। उनका पिछला बयान भी उन्हें सुनाया गया, जिसमें उन्होंने यह आरोप नहीं लगाया था कि प्रताड़ना के कारण वह ललितपुर में रहने लगी थी। बाद में उसने बताया कि घटना से दो दिन पहले अभियुक्त ने उसके साथ मारपीट की थी, जिसके बाद वह ललितपुर आ गई। उसने यह भी आरोप लगाया है कि अभियुक्त ने घटना से करीब दो दिन पहले बताया था कि वह अपनी बेटी को अपने पास रखेगा। साक्षी अपने दामाद का नाम भी सही से नहीं बता सकी।

14. पी.डब्लू.-5 के रूप में अवधेश कुमार निगम (नायब तहसीलदार) उपस्थित हुए हैं, जिन्होंने दीपचंद के मृत्यु पूर्व दिये गये बयान को साबित किया है। उनक कहना है कि उन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने से पहले परिवार के सदस्यों को अस्पताल में उस जगह से हटा दिया था, जहां मृतक को रखा गया था। उन्होंने इस बात से भी अनभिज्ञता जाहिर की कि जब वह अस्पताल आये थे तो परिजन मृतक से बात कर रहे थे। इस साक्षी ने मृत्यु पूर्व बयान (प्रदर्श क-3) को साबित किया है।

15. पी.डब्लू.-6 डा. डी.के. राज हैं, जिन्होंने चमेली बाई के पोस्टमॉर्टम को साबित किया है। इस साक्षी ने मृतक पर थर्मल बर्न का कथन नहीं किया है और उनके अनुसार मृतक लगभग 93 प्रतिशत जल गया था। साक्षी ने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट साबित की है।

16. पी.डब्लू.-7 डा. राजेश त्रिपाठी हैं, जिन्होंने मृतक दीपचंद की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को साबित किया है। दीपचंद 70 प्रतिशत जला हुआ था।

17. डॉ. शैलेश रंजन पी.डब्लू.-8 के रूप में प्रस्तुत हुए, जिन्होंने अस्पताल लाए जाने पर दीपचंद की जांच की थी। उनके अनुसार, घायल की हालत गंभीर थी और दर्द कम करने के लिए उसे वोवरान दिया गया। उन्होंने दीपचंद की इंजरी रिपोर्ट को भी साबित किया है। इंजरी रिपोर्ट प्रदर्श क-12 के अनुसार दीपचंद को दिनेश (भाई) द्वारा अस्पताल लाया गया और 18.06.2013 को सुबह 3.05 बजे उसकी जांच की गई। चेहरे पर सतही से लेकर गहरी जलन लगभग 60 प्रतिशत थी।

18. पी.डब्लू.-9 डॉ. पवन सूद हैं, जिन्होंने प्रमाणित किया है कि दीपचंद बयान देने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ था।

19. पी.डब्लू.-10 मान सिंह पाल हैं, जो सब-इंस्पेक्टर के पद पर तैनात थे और उन्होंने श्रीमती चमेली बाई के पंचायतनामा को साबित किया है। उन्होंने अन्य पुलिस कागजातों को भी प्रमाणित किया है। इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में कहा है कि पंचायतनामा सुबह 10.30 से 11.30 के बीच तैयार किया गया था और सूचनादाता ने इस तथ्य का खुलासा नहीं किया था कि अभियुक्त ने मृतक पर पेट्रोल डाला था या उसने ऐसी कोई घटना देखी थी।

20. पी.डब्लू.-11 भी एक पुलिस कर्मी है, जिसने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट साबित की है। उनके अनुसार, सूचनादाता ने रात साढ़े 12 बजे थाने पर अकेले आकर तहरीर दी थी, जिसे जी.डी. में दर्ज कर लिया गया। इस साक्षी ने इसका खंडन किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट थानाध्यक्ष के बोलने पर लिखी गई थी या कि प्रथम सूचना रिपोर्ट थानाध्यक्ष के परामर्श और सलाह से लिखी गई थी।

21. पी.डब्लू.-12 उपनिरीक्षक गजराज प्रसाद है, जिसने दीपचंद का पंचायतनामा सिद्ध किया है।

22. पी.डब्लू.-13 विवेचना अधिकारी है। उनके अनुसार दिनांक 18.06.2013 को उनकी उपस्थिति में पुलिस थाने में वादी दिनेश की तहरीर पर मामला दर्ज कराया गया था कि उसकी मां व भाई को उसके जीजा जुगल ने आग लगा दी है तथा उसकी मां की मृत्यु हो गयी है। उन्होंने अभिकथन किया कि शाम करीब छह बजे अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया। दीपचंद का बयान उनके द्वारा 19.06.2013 को दर्ज किया गया था, जबकि पी.डब्लू.-4 का बयान 20.06.2013 को दर्ज किया गया था। दिनांक 29.06.2013 को करण सिंह एवं तीजू कुशवाह का बयान दर्ज किया गया। प्रतिपरीक्षा में पी.डब्लू.-13 ने कहा है कि सूचनादाता चश्मदीद साक्षी नहीं है और उसका बयान पुलिस स्टेशन में दर्ज किया गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि करन सिंह और तीजू कुशवाह ने अभियुक्त को आग लगने के बाद घटनास्थल से भागते हुए देखने का कथन किया था। उन्होंने इस कथन से इनकार किया है कि साक्षीगणों के बयान अगले दिन दर्ज किए गए थे और पुनः कथन किया कि पी.डब्लू.-2 का बयान 29.06.2013 को दर्ज किया गया था। विवेचना अधिकारी ने नक्शा नजरी को प्रमाणित किया है और स्वीकार किया है कि उसमें कोई बिजली का खंभा नहीं दिखाया गया है। यह भी माना गया है कि साक्षीगणों के बयान से प्रकाश का कोई स्रोत सामने नहीं आया है। उन्होंने आगे कथन किया कि पी.डब्लू.-13 की प्रतिपरीक्षा में कुट्टी के रूप में उल्लिखित कुप्पी एक कैन को दर्शाता है। उनके अनुसार, कैन पांच लीटर का नहीं बल्कि दो लीटर का था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि पी.डब्लू.-4 ने उन्हें कभी नहीं बताया कि अभियुक्त ने उनकी बेटी को अपने साथ रखने का दावा किया था।

23. अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के दौरान प्रस्तुत किये गये साक्ष्यों को अभियुक्त के समक्ष धारा 313 दं.प्र.सं. के तहत अपना बयान दर्ज कराने हेतु प्रस्तुत किया गया है। अभियुक्त ने अपने आरोप से इनकार किया है और कहा है कि ससुराल वालों के कहने पर

उसे झूठा फंसाया गया है. हालाँकि, बचाव पक्ष का कोई साक्षी पेश नहीं किया गया है।

24. मामले में पेश साक्ष्यों के आधार पर परीक्षण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अभियुक्त ने मृतकों पर मिट्टी का तेल डाला और उनकी हत्या कर दी। इस तरह के घिनौने कृत्य का मकसद अभियुक्त का अपनी बेटी को साथ रखने की इच्छा बताई जाती है, जिस पर उसके ससुराल वाले और पत्नी को आपत्ति थी। घटना के दिन अभियुक्त की पत्नी ने अपनी बेटी की शादी की थी और जाहिर तौर पर अभियुक्त इस कृत्य से क्रोधित था, जिसके कारण उसने यह घिनौना कृत्य किया जिसके परिणामस्वरूप दो व्यक्तियों की नृशंस मृत्यु हो गई। इसलिए, परीक्षण न्यायालय ने पाया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 302, 504 के तहत आरोप साबित हुए हैं। अभियुक्त को मृत्युदंड की सजा सुनाते समय अपराध की गंभीरता पर विचार किया गया है। इसी संदर्भ में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मौत की सजा की पुष्टि के लिए निर्देश दिया गया है। इस प्रकार अभियुक्त द्वारा की गई अपील पर पुष्टिकरण कार्यवाही के साथ विचार किया जा रहा है।

25. श्री राजर्षि गुप्ता, अधिवक्ता को वर्तमान मामले में अभियुक्त-अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया गया है। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि अधीनस्थ न्यायालय ने अभियुक्त के खिलाफ दोषसिद्धि का निष्कर्ष देकर बहुत बड़ी गलती की है, जबकि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य ऐसे निष्कर्ष और उसके परिणामस्वरूप अभियुक्त के दंड को उचित नहीं ठहराते हैं। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया है कि मृतक दीपचंद का मृत्यु पूर्व बयान पढ़ाया हुआ है और विश्वसनीय नहीं है, विशेषकर क्योंकि उसमें बताए गए तथ्य अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री के विरोधाभासी हैं। उन्होंने आगे कथन किया कि विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अन्य मृत्यु पूर्व बयान अंतर्गत धारा 161 दं.प्र.सं. में विरोधाभास है। साक्षीगण के बयानों में विभिन्न विरोधाभासों को उजागर किया गया है, जिन्हें अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण करते समय निस्तारित किया जाएगा। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरूद्ध अभिलेखों पर उपलब्ध एकमात्र सामग्री उसके खिलाफ संदेह को न्यायोचित ठहरा सकती है और सुस्थापित विधि के दृष्टिगत, संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो, अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता है, दोषसिद्धि और दंड बरकरार नहीं रखे जा सकते हैं। अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **मोतीलाल और अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2009 (8) एस.सी.आर. 303** पर विश्वास व्यक्त किया गया है ताकि कथन किया जा सके कि श्रीमती चमेली बाई के पंचायतनामे से स्पष्ट होता है कि पुलिस को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से बहुत पहले घटना के बारे में अवगत कराया गया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में हुई देरी के बारे में कोई

स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अभियोजन मामले को खंडित करने के लिए पैरा 6 में निहित न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख किया गया है। जहां तक अपराध कारित करने के हेतुक का प्रश्न है, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि अभियुक्त के विरूद्ध अपनी बेटी को रखने की इच्छा का आरोप, एक स्पष्ट सुधार है और बाद के विचार का परिणाम है, क्योंकि किसी भी साक्षी ने अपने बयान अंतर्गत धारा 161 दं.प्र.सं. के दौरान पुलिस को ऐसा कोई भी खुलासा नहीं किया है और ऐसा तभी हुआ जब साक्षी पी.डब्लू.-4 कटघरे में उपस्थित हुआ, कि ऐसा मामला स्थापित किया गया है। साथ ही यह तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने के लिए उस संबंध में हेतुक को उसके सम्मुख नहीं रखा गया है और इसलिए, इस परिस्थिति को अभियुक्त के विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता। इस न्यायालय की खण्डपीठ के निर्णय **सुरेंद्र सिंह बनाम उ0प्र0 राज्य; 2019 1 इलाहाबाद लॉ जर्नल 290** पर विश्वास व्यक्त किया गया, यह प्रस्तुत करने के लिए कि वर्तमान मामले के तथ्यों में मृत्यु पूर्व बयान विश्वसनीय नहीं है। जहां तक चश्मदीद साक्षीगण की साक्ष्य का प्रश्न है, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुरजोर आग्रह किया कि घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति या अभियुक्त को घटना स्थल से भागते हुए देखने का उनका बयान, विश्वसनीय नहीं है। अंत में यह आग्रह किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को दस साल तक एकांत कारावास में रखे जाने के कारण पहले ही काफी पीड़ा झेलनी पड़ी है और वह संदेह का लाभ पाकर मुक्त होने का हकदार है।

26. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित सुश्री अर्चना सिंह का कहना है कि यह एक महिला और उसके बेटे की उसके दामाद द्वारा निमर्म हत्या का मामला है, जो अपनी बेटी को अपनी रखैल के रूप में रखना चाहता था। यह कथन किया गया है कि यह उन दुर्लभतम मामलों में से एक है जहां पिता ने अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी बेटी की शादी से क्रोधित होकर अंततः अपनी सास और साले की हत्या कर दी है और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों से सामने आया है। इसलिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का कथन है कि यह दुर्लभतम से भी दुर्लभ प्रकृति का मामला होने के कारण अभियुक्त को मृत्युदंड देना न्यायोचित है और इस तरह की सजा की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त की अपील को खारिज करके की जा सकती है।

27. हमने उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और परीक्षण न्यायालय के अभिलेखों सहित अभिलेखों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। अभियोजन का मामला हमारे संज्ञान में पहले ही आ चुका है, जिसके अनुसार, मृतका चमेली बाई और उसके बेटे दीपचंद दोनों को अभियुक्त-अपीलकर्ता ने जिंदा जला दिया था, क्योंकि वह उनसे नाराज था। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, एक घटना दिन में शाम 4.00 बजे घटी, जब अभियुक्त मृतका चमेली बाई के घर आया और अपनी पत्नी (पी.डब्लू.-4) और बेटी के बारे में

पूछताछ की। अभियुक्त को बताया गया कि वे मृतका के घर नहीं आए हैं, इसके पश्चात अभियुक्त ने गाली-गलौज की और रात्रि का लाभ उठाकर अन्ततः दोनों मृतकों पर पेट्रोल डालकर आग लगा दी।

28. अभियोजन का मामला स्पष्टतः दो भागों में है। पहला भाग शाम 4 बजे की घटना से संबंधित है, जब अभियुक्त अपनी पत्नी और बेटी को ढूंढते हुए घर आया और उन्हें नहीं पाकर नाराज हो गया और अपनी सास और परिवार के अन्य सदस्यों को गालियां दीं। दूसरा भाग दोंनो मृतकों पर मिट्टी का तेल छिड़कने और उन्हें आग लगाने के वास्तविक अपराध से संबंधित है। हम अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्य के संदर्भ में अभियोजन मामले के दो अलग-अलग हिस्सों से निपटने का प्रस्ताव करते हैं।

29. जहां तक घटना उस दिन शाम 4 बजे घटने का संबंध है, पी.डब्लू.-1 की तहरीर में कहा गया है कि अभियुक्त अपने गांव खोखरा से आया और अपनी पत्नी मीना और बेटी सीमा के बारे में पूछताछ की। परिजनों ने बताया कि ये दोनों वहां नहीं हैं, जिसके बाद अभियुक्त ने परिजनों के साथ गाली-गलौज शुरू कर दी। अभियोजन पक्ष के मामले का यह हिस्सा पी.डब्लू.-1 की साक्ष्य से समर्थित है, जिसमें मात्र यह कहा गया है कि अभियुक्त मृतक के घर आया और अपनी पत्नी और बच्चों के पता ठिकाने के बारे में पूछताछ की। यह बताने पर कि वे लोग मृतक के घर नहीं आये हैं, अभियुक्त ने उनके साथ गाली-गलौज की और चला गया। इसी तरह के बयान पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 द्वारा भी दिए गए हैं। पी.डब्लू.-4 ने भी उस संबंध में अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। हमने यह समझने के लिए इन साक्षीगण की साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच की है कि अभियुक्त द्वारा की गई बातचीत वास्तव में क्या थी, जिसने अंततः अभियुक्त को इस हद तक क्रोधित कर दिया कि वह अपराध के दूसरे भाग को अंजाम देने के लिए आगे बढ़ गया।

30. साक्षीगण की साक्ष्य अभियुक्त के मृतक के घर आने और अपनी पत्नी और बेटी के बारे में पूछताछ करने के तथ्य के बयान तक सीमित है। इस स्तर पर वास्तव में क्या हुआ या साक्षीगण और अभियुक्त के बीच क्या बातचीत हुई, यह सविस्तार नहीं दिया गया है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों से इतना तो स्पष्ट है कि अभियुक्त की पत्नी और बेटी का अभियुक्त को कोई पता नहीं चल सका। यह सुनिश्चित करने के लिए कि वास्तव में क्या हुआ होगा, हमने साक्षीगण की साक्ष्य की जांच की है। पी.डब्ल्यू.-1 जो प्रथम सूचनादाता है और मृतका का पुत्र है, ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसे आज तक नहीं पता कि अभियुक्त की पत्नी और बेटी कहाँ थी। यह साक्षी उस दिन पी.डब्ल्यू.-4 की बेटी की शादी के बारे में कुछ नहीं कहता है। प्रतिपरीक्षा में, उसने अभियुक्त और पी.डब्ल्यू.-4 की बेटी की शादी के बारे में किसी भी जानकारी से दृढतापूर्वक इनकार किया। हमें पी.डब्लू.-1 की उस साक्ष्य को स्वीकार करना थोड़ा मुश्किल लगता है जिसमें उसने अपनी बहन या उसकी बेटी के बारे में नहीं जानने की बात कही है। इसे विशेष रूप से दिखाया गया है, क्योंकि

पी.डब्ल्यू.-2 जो मृतक का पड़ोसी है, ने विशेष रूप से कथन किया है कि घटना की तिथि पर पी.डब्ल्यू.-4 की बेटी की शादी अमझरा मंदिर में हुई थी। यदि पी.डब्ल्यू.-2 जो कि पड़ोसी है, को पता है कि घटना के दिन अभियुक्त की बेटी की शादी हो रही थी, तो यह स्वीकार करना मुश्किल है कि यह तथ्य पी.डब्ल्यू.-1 की जानकारी में नहीं था। पी.डब्ल्यू.-2 ने आगे कहा है कि अभियुक्त की बेटी के विवाह में केवल आशाराम ही सम्मिलित हुआ था। आशाराम पी.डब्ल्यू.-1 का भाई है परन्तु अभियोजन पक्ष द्वारा उसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। आशाराम पी.डब्लू.-1 से बड़ा है और पी.डब्लू.-1 के अनुसार वह वानपुर गया था। पी.डब्ल्यू.-3 ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है, परन्तु उसका नाम न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में है और न ही अभियोजन पक्ष के अन्य दो साक्षीगण अर्थात पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 द्वारा उसकी उपस्थिति का कथन किया गया है। पी.डब्लू.-3 घटना स्थल से कब्जे में लिये गये सामान की बरामदगी का मुख्य साक्षी है। अभियुक्त की बेटी की शादी से जुड़े पहलू पर पी.डब्ल्यू.-3 ने ज्यादा खुलासा नहीं किया है। एकमात्र अन्य व्यक्ति जिसने अभियुक्त की झुंझलाहट के कारण पर कुछ प्रकाश डाला है या घटना के हेतुक या घटना के कारण के पहलू पर साक्ष्य प्रस्तुत किया है, वह पी.डब्ल्यू.-4 है। पी.डब्ल्यू.-4 ने पहली बार न्यायालय में अपने बयान के दौरान कहा कि अभियुक्त अपनी बेटी को रखना चाहता था। उसने दं.प्र.सं.. की धारा 161 के तहत अपने बयान में भी इस तरह के तथ्य का खुलासा नहीं किया है। विवेचना अधिकारी ने यह भी स्वीकार किया है कि ऐसे तथ्य पी.डब्लू.4 द्वारा उसे नहीं बताए गए हैं।

31. घटना के प्रथम भाग के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा न तो उत्पत्ति साबित की गई है और न ही कलह का सटीक कारण अभिलेखों पर प्रस्तुत किया गया है। हमें हेतुक के बिंदु पर साक्ष्य की स्वीकार्यता के संबंध में श्री राजर्षि गुप्ता के तर्क में भी दम नजर आता है, क्योंकि अभियुक्त को अपनी बेटी को रखने की इच्छा के बारे में पी.डब्लू.-4 के बयान का सामना नहीं करना पड़ा है। हमें श्री गुप्ता के इस तर्क में भी दम नजर आता है कि साक्ष्य के इस हिस्से को बाद में अभियुक्त की एक भयावह तस्वीर पेश करने के लिए पेश किया गया था, जो एक ऐसे व्यक्ति के रूप में था जो अपनी बेटी को रखना चाहता था और फिर यह कहने के लिए कि वह एक निर्मम और बर्बर कृत्य करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। हालाँकि, मामले के इस पहलू पर साक्ष्य बिल्कुल अपर्याप्त है और न्यायालय के विश्वास को प्रेरित नहीं करता है। पी.डब्लू.-4 को छोड़कर किसी भी साक्षी ने अभियुक्त की अपनी बेटी को रखने की इच्छा का खुलासा नहीं किया है। यहां तक कि उस संबंध में पी.डब्लू.-4 का बयान भी पहली बार तब सामने आया जब वह कटघरे में आई। धारा 313 दं.प्र.सं. के तहत बयान दर्ज करने के लिए पी.डब्ल्यू.-4 के बयान का भी अभियुक्त से सामना नहीं कराया गया है। इसलिए, हम इस आधार पर स्थापित अभियोजन पक्ष के मामले पर विश्वास नहीं करते हैं कि अभियुक्त अपनी

बेटी को रखना चाहता था और चूंकि बेटी की शादी कहीं और हो गई थी, इसलिए उसने मृतक की हत्या करने का निर्मम कृत्य किया।

32. अभियोजन पक्ष ने अन्यथा यह खुलासा नहीं किया है कि जब अभियुक्त 4 बजे अपनी ससुराल गया तो वास्तव में क्या हुआ था। किसी भी साक्षी द्वारा बातचीत का सार नहीं बताया गया है। भले ही हम अभियोजन पक्ष के मामले को स्वीकार कर लें कि अभियुक्त की पत्नी और बेटी गायब थीं और उसे उन पर मृतक के घर में मौजूद होने का संदेह था और उन्हें वहां नहीं पाकर उसे गुस्सा आ गया, फिर भी साक्ष्य के इस भाग से यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि अभियुक्त को इतना गुस्सा आया कि उसने उस तरह का कृत्य किया जैसा कि घटना के दूसरे भाग में उसको कारित करने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है।

33. घटना के दूसरे भाग के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से, दूसरे भाग पर आगे बढ़ने से पहले, हम वर्तमान मामले की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करना चाहेंगे, जिनका इसके परिणाम पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह कोई मुद्दा नहीं है कि घटना 17/18 जून, 2021 की मध्यरात्रि लगभग 12.30-1.00 बजे हुई। घायल को उसी रात जिला अस्पताल ले जाया गया। इससे यह भी पता चलता है कि श्रीमती चमेली देवी की मृत्यु करीब चार बजे हो गयी। श्रीमती चमेली देवी की मृत्यु के संबंध में सूचना सुबह 6.30 बजे वार्डबॉय के माध्यम से पुलिस के पास पहुंची। उप-निरीक्षक मान सिंह पाल (पी.डब्लू.-10) ने अपने बयान में कहा है कि उन्होंने सुबह लगभग 6.20 बजे पंचायतनामा तैयार किया। जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क-23) इस गवाह द्वारा साबित की गई है। जिरह में, गवाह का दावा है कि पूछताछ 10:30 बजे शुरू हुई और 11:30 बजे समाप्त हुई। इसलिए, अभिलेखों पर लाए गए साक्ष्यों से यह सुस्पष्ट है कि पुलिस को घटना के संबंध में उस समय से बहुत पहले जानकारी मिल गई थी जब स्वंय प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

34. अभियोजन के अनुसार, अभियुक्त को शाम 6 बजे गिरफ्तार किया गया था। हालाँकि, अभियोजन पक्ष के साक्षीगण द्वारा न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने बयान में एक अलग रुख अपनाया गया है। पी.डब्लू.-1 ने कथन किया है कि वह सुबह 8-9 बजे अस्पताल से थाने आया था। उसने यह भी कहा है कि अभियुक्त को सुबह 8-9 बजे गिरफ्तार किया गया था। इसी प्रकार, पी.डब्ल्यू.-2 ने जोर देकर कहा है कि विवेचना अधिकारी करीब 10 बजे अभियुक्त के साथ आया। पी.डब्ल्यू.-3 ने भी कहा है कि विवेचना अधिकारी ने अभियुक्त को सुबह गिरफ्तार कर लिया था। अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि अभियुक्त को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले ही सुबह गिरफ्तार कर लिया गया था। एक और पहलू है जिसका इस स्तर पर विशेष उल्लेख आवश्यक है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, पी.डब्लू.-1 द्वारा तहरीर 18.06.2013 को दोपहर 12.30 बजे दी गई थी। पी.डब्ल्यू.-1 का कहना है कि उसने तहरीर नहीं लिखी थी और इसे किसी और के माध्यम से लिखवाया गया था। हालाँकि पी.डब्ल्यू.-11 ने कहा है कि प्रथम सूचना

रिपोर्ट पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा दी गई तहरीर के आधार पर दर्ज की गई थी। उन्होंने यह भी कहा है कि पी.डब्ल्यू.-1 अकेले ही तहरीर लेकर आया था। पी.डब्लू.-11 को एक विशेष सुझाव दिया गया है कि वास्तव में तहरीर थानाध्यक्ष के निर्देश पर थाने में लिखवाई गई थी। कथित तौर पर तहरीर पर पी.डब्लू.-1 द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। हालाँकि, पी.डब्ल्यू.-1 ने स्वीकार किया है कि रिपोर्ट उसने नहीं लिखी है। इसलिए, यह स्पष्ट नहीं है कि तहरीर का लेखक कौन है। यह तथ्य इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि अभिलेखों से स्पष्ट है कि पुलिस को श्रीमती चमेली देवी की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के संबंध में सुबह-सुबह सूचना मिली थी। अभियुक्त को भी सुबह गिरफ्तार कर लिया गया था। एक बार ऐसी स्थिति होने पर, उत्तरगामी प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह अपेक्षित था कि इसमें पहले से उठाए गए ऐसे कदमों के संबंध में विवरण शामिल होगा जो कि पंचायतनामा बनाने या अभियुक्त की गिरफ्तारी आदि है। हालांकि, विवेचना अधिकारी को पी.डब्लू.-13 के रूप में पेश किया गया है और उनके बयान के अनुसार केस डायरी में पहली प्रविष्टि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद की है। सूचना प्राप्त होने; पूछताछ के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा उठाए गए कदम; अभियुक्तों की गिरफ्तारी आदि के संबंध में पुलिस को कोई विवरण/अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया है। यदि ये तथ्य अभियोजन पक्ष द्वारा रखे गए होते, तो यह पता लगाया जा सकता था कि पुलिस को घटना के बारे में किस तरह से जानकारी मिली और किस तरह से पूछताछ और बाद की जांच आगे बढ़ी। यह तथ्य कि अभियोजन द्वारा ऐसे तथ्यों को दबाया और छुपाया गया है, अभियोजन मामले की प्रामाणिकता पर ही संदेह पैदा करता है। अभियोजन पक्ष का कथन कि अभियुक्त को शाम 6 बजे गिरफ्तार किया गया था, अभियोजन पक्ष के साक्षी पी.डब्ल्यू.-1 से पी.डब्ल्यू.-3 तक के लगातार मामले को देखते हुए विश्वसनीय नहीं है, जिनमें से सभी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण से पहले अभियुक्त की गिरफ्तारी के बारे में साक्ष्य दी है। इसलिए, यह न्यायालय अभियोजन पक्ष के संस्करण को कुछ सावधानी के साथ देखता है।

35. जहां तक रात की घटना का सवाल है, अभियोजन पक्ष ने दीपचंद के दर्ज मृत्यु पूर्व बयान के अलावा पी.डब्ल्यू.-1 से पी.डब्ल्यू.-3 की मौखिक साक्ष्य पर विश्वास व्यक्त किया है।

36. पी.डब्ल्यू.-1 ने अपनी लिखित रिपोर्ट में घटना के तुरंत बाद घटना स्थल पर पी.डब्ल्यू.-2 और करण सिंह की उपस्थिति का उल्लेख किया है। तहरीर में पी.डब्ल्यू.-1 ने अपनी उपस्थिति नहीं दर्शायी है। उन्होंने घटना के संबंध में दीपचंद या श्रीमती चमेली देवी से कोई जानकारी मिलने की बात भी नहीं कही है। विवेचना अधिकारी ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि पी.डब्लू.-1 ने उन्हें सूचित नहीं किया था कि वह घटना का साक्षी था। पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3, जो तथ्य के साक्षी हैं, ने लगातार दावा किया है कि उन्होंने अभियुक्त को घटना स्थल से भागते हुए आग की रोशनी में देखा था। पी.डब्लू.-1 ने अपने बयान धारा 161 दं.प्र.सं.. यह आरोप नहीं लगाया है कि उसने तीजू और

करण सिंह के साथ अभियुक्त को घटनास्थल से आग की रोशनी में भागते देखा था। उसने दं.प्र.सं.. की धारा 161 के तहत जो कहा है वह यह है कि शोर सुनकर वह कमरे से बाहर आया तो देखा कि उसकी मां और भाई जल रहे हैं। पी.डब्ल्यू.-1 ने यह भी स्वीकार किया है कि जब वह घटनास्थल पर आया तो पी.डब्ल्यू.-2 पहले से ही मौजूद था। पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने प्रारंभिक बयान में यह कथन नहीं किया है कि उसने अभियुक्त को मृतका पर पेट्रोल डालते देखा था। पी.डब्लू.-1 मृतका का पुत्र है और घर में उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि घटना के समय पी.डब्लू.-1 अलग स्थान पर सो रहा था। इसलिए, पी.डब्लू.-1, शोर सुनने के काफी देर बाद में आया और बाद का उसका बयान कि उसने अभियुक्त को घटना स्थल से भागते हुए देखा था, उसके द्वारा पुलिस को पहले बताई गई बातों में स्पष्ट सुधार है। पी.डब्ल्यू.-1 यद्यपि अपनी मां और भाई को अस्पताल ले गया था लेकिन उसने यह कथन नहीं किया है कि उसे अपराध के अपराधी के बारे में अपनी मां या भाई से कोई जानकारी मिली थी। इसलिए, हम पी.डब्लू-1 की साक्ष्य को अधिक महत्व देने के इच्छुक नहीं हैं क्योंकि न तो वह चश्मदीद साक्षी है और न ही अभियुक्त को घटना स्थल से भागते हुए देखने का उसका बयान सुसंगत है और उस संबंध में साक्ष्य एक स्पष्ट सुधार है।

37. जहां तक पी.डब्लू.-2 का सवाल है, वह एक पड़ोसी है और दावा करता है कि वह केवल लघुशंका के लिए घर से बाहर आया था, जब उसने अभियुक्त को घर से बाहर आते देखा था और वह घर के अंदर से चीखें सुन सकता था। इसलिए, पी.डब्ल्यू.-2 का कहना है कि वह घर के अंदर आया और आग बुझाने का प्रयास किया। पी.डब्ल्यू.-2 स्वीकार करता है कि पी.डब्ल्यू.-1 घटनास्थल पर उसके पहुंचने के बाद आया था। जहां तक पी.डब्ल्यू.-2 के बयान का सवाल है, हम पाते हैं कि घटना के पहले भाग के संबंध में उसका बयान अन्य साक्षीगणों के बयान से भिन्न है। वह घर से बाहर लघुशंका के लिए आया था, यह बात उसके द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 161 के बयान में पुलिस को दिए गए बयान में संशोधन है। विवेचना अधिकारी ने भी माना है कि ऐसा कोई खुलासा उसने नहीं किया है। पी.डब्लू.-2 ने धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत अपने बयान में यह भी खुलासा नहीं किया है कि उसने अभियुक्त को आग की रोशनी में घर से बाहर निकलते देखा। बयान का यह भाग भी उनके द्वारा पहले दिए गए बयान में संशोधन है। पी.डब्ल्यू.-2 का बयान विवेचना अधिकारी द्वारा पहली बार 29 जून 2013 को यानी घटना के 11 दिन बाद दर्ज किया गया है। पी.डब्ल्यू.-2 का बयान देरी से दर्ज किए जाने का कोई भी कारण नहीं बताया गया है। विवेचना अधिकारी द्वारा पी.डब्लू.-2 के बयान दर्ज करने में हुई देरी के लिए भी कोई सत्याभासी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, जो यह जानने वाला पहला व्यक्ति है। पी.डब्लू.-2 द्वारा किए गए विभिन्न संशोधनों और संवर्द्धनों के संदर्भ में, उसके बयान दर्ज करने में हुई 11 दिनों की देरी बचाव पक्ष के तर्क को बल देती है कि उसकी साक्षी पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं है। पी.डब्लू.-2 ने यह भी कहा है कि चमेली बाई के परिवार का कोई भी

सदस्य उसके साथ अस्पताल नहीं गया था और तीन अन्य व्यक्ति करण सिंह, राजा बाबू और बाल किशन थे जो घायल को अस्पताल ले गए थे। पी.डब्ल्यू.-2 का यह बयान भी अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के दृष्टिगत गलत पाया गया है, जिससे यह दर्शित है कि वह प्रथम सूचनादाता था जो अपने घायल भाई को अस्पताल ले गया था। उपरोक्त चर्चाओं के संदर्भ में देखें तो हम पी.डब्लू.-2 की साक्ष्य को अधिक महत्व देना उचित नहीं समझते हैं। हमने **मोतीलाल (सुप्रा)** में फैसले के पैरा 6 में निहित सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी से इस तरह के दृष्टिकोण को सशक्त किया है, जो निम्नानुसार उद्धृत किया गया है-

"6. यह सही है जैसा कि उच्च न्यायालय ने कहा है कि यदि किसी मामले में समय पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाती है और तुरंत जांच प्रारम्भ कर दी जाती है, तो इलाका मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट की देरी से प्राप्ति अभियोजन के लिए हानिकारक नहीं होगी। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। कोई सामान्यीकरण नहीं हो सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में संहिता) की धारा 157 को लागू करने के पीछे एक उद्देश्य है। रिपोर्ट को तुरंत भेजे जाने की वैधानिक आवश्यकता, स्वयं ही दर्शाता है कि रिपोर्ट भेजने की तात्कालिकता जुड़ी हुई है। किसी मामले में विलंबित प्रेषण या विलंबित प्राप्ति के कारणों को इंगित करना अभियोजन पक्ष के लिए स्वतंत्र है। इसे साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, पंचायतनामा और प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज समय में अस्पष्ट विसंगति को भी ध्यान में रखना होगा। अभियोजन पक्ष का कहना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सुबह 10.50 बजे दर्ज की गई थी। यदि ऐसा था, तो विवेचना अधिकारी द्वारा अभिलेखों पर उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्यों के द्वारा यह बताना आवश्यक था कि उस समय सुबह 10.30 बजे कैसे पंचायतनामा कार्यवाही की गई, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट ही अस्तित्व में नहीं थी। उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ताओं की इस दलील को हल्के में खारिज कर दिया गया कि यह विवेचना अधिकारी की ओर से चूक हो सकती है। यह सच है कि एक दोषपूर्ण जांच एक निर्धारक कारक नहीं हो सकती है और एक विश्वसनीय अभियोजन संस्करण को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। परन्तु वर्तमान मामले में विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, ऊपर दर्शाए गए कारकों का संचयी प्रभाव यह दर्शित करेगा कि अभियोजन पक्ष आरोपों को स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा है। अपील सफल होती है। दिनांक 12.07.2004 के जमानत आदेश को प्रभावी करने के लिए निष्पादित जमानत बांड उन्मोचित माने जाएंगे।"

38. जहाँ तक पी.डब्ल्यू.-3 का सवाल है, उसकी उपस्थिति का न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख है तथा न ही उसकी उपस्थिति का उल्लेख पी.डब्ल्यू.-1 या पी.डब्ल्यू.-2 की साक्ष्य में किया गया है। वह मात्र बरामदगी अर्थात प्रदर्श क-2 व क-3 का एक साक्षी है। केस डायरी में दर्ज पी.डब्ल्यू.-3 के बयान में, पी.डब्ल्यू.-3 को केवल बरामदगी के साक्षी के रूप में वर्णित किया गया है और उसे चश्मदीद साक्षी के रूप में नहीं दिखाया गया है। आरोप

पत्र में भी पी.डब्लू.-3 को बरामदगी का साक्षी बताया गया है। पी.डब्ल्यू.-3 का यह बयान कि उसने अभियुक्त को घटना स्थल से भागते हुए देखा था, कुछ ऐसा है जो कि न्यायालय के समक्ष बयान दर्ज करने के चरण में ही सामने आया है। विवेचना अधिकारी ने यह भी स्वीकार किया है कि पी.डब्ल्यू.-3 महज बरामदगी का साक्षी है, घटना का नहीं।

39. जहां तक पी.डब्लू.-4 का प्रश्न है, हमने पहले ही देखा है कि वह तथ्य की साक्षी होने का दावा नहीं कर रही है, परन्तु उसकी साक्ष्य केवल हेतुक के बिन्दु पर है जिसे पढ़ा या भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियुक्त का सामना मामले के उस पहलू पर नहीं कराया गया है। हेतुक के बिन्दु पर, पी.डब्ल्यू.-4 का बयान, विवेचना अधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज करते समय विवेचना अधिकारी को पहले बताई गई बातों में स्पष्ट संशोधन है। इसलिए, तथ्य के साक्षीगण का साक्ष्य अभियोजन मामले को अधिक समर्थन नहीं देता है। हम यह भी देख सकते हैं कि पी.डब्ल्यू.-1 ने बरामदगी के बिन्दु पर अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए निर्दिष्ट किया है कि पेट्रोल युक्त प्लास्टिक कैन 5 लीटर का है जबकि अभियोजन पक्ष का दावा है कि प्लास्टिक कैन 2 लीटर का है। जिस प्लास्टिक कैन में कथित तौर पर पेट्रोल रखा गया था, उसकी बरामदगी के बिन्दु पर पी.डब्ल्यू.-3 की साक्ष्य भी ज्यादा प्रेरक नहीं है।

40. यह हमें मृतक दीपचंद के मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की ओर ले जाता है। मृत्यु पूर्व बयान की सामग्री पहले ही ऊपर उद्धरित जा चुकी है। चिकित्सक द्वारा उसके बयान को दर्ज कराने के लिए उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया गया है। तथा उक्त बयान नायब तहसीलदार द्वारा दर्ज किया गया है, जिसके पास मजिस्ट्रियल शक्तियां निहित थी। इस प्रकार, प्रक्रियात्मक बिन्दु पर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने में कोई कमी नहीं है। यह अन्यथा तय है कि यदि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान विश्वसनीय पाया जाता है तो हम उचित तरीके से अभियुक्त की सजा दर्ज करने के एकमात्र आधार पर विचार कर सकते हैं। शीर्ष अदालत ने **शारदा बनाम राजस्थान राज्य, 2010 (68) ए.सी.सी. 274 (एस.सी.)** के मामले में माना है कि "किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कगार पर होने पर दिया गया मृत्यु पूर्व बयान एक विशेष शुचिता रखता है क्योंकि उस गंभीर क्षण में एक व्यक्ति द्वारा कोई भी असत्य बयान देने की संभावना नहीं है। आसन्न मृत्यु की छाया स्वयं उसकी मृत्यु की परिस्थितियों के बारे में मृतक के बयान की सत्यता की गारंटी है। लेकिन साथ ही, किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह मृत्यु पूर्व बयान को भी स्वीकार्य होने के लिए विश्वसनीयता की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। यह और भी अधिक है, क्योंकि अभियुक्त को प्रतिपरीक्षा द्वारा बयान की सत्यता पर सवाल उठाने का अवसर नहीं मिलता है।

41. मृत्युपूर्व बयान की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करने के लिए, हमने उपस्थित परिस्थितियों और अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के साथ इसकी सामग्री का परिशीलन किया है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण

बात यह है कि मृतक दीपचंद ने उल्लेख किया था कि वह टीवी देखने के लिए अपनी मां के कमरे में गया और वहां उनके बगल में चारपाई पर लेट गया। विवेचना अधिकारी को घटना स्थल पर कोई टेलीविजन सेट नहीं मिला है। पी.डब्ल्यू.-1 जो कि मृतक का बेटा है, ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसके घर में कोई टेलीविजन नहीं था। पी.डब्ल्यू.-2 जो कि पड़ोसी है, ने भी स्वीकार किया है कि घर में कोई टेलीविजन नहीं था। हमने नक्शा नजरी भी देखा है जिसमें कोई टेलीविजन मौजूद नहीं दिखाया गया है। वास्तव में घटना स्थल कोई कमरा नहीं बल्कि बरामदा है। मामले के मूल अभिलेखों में घटना स्थल की तस्वीर उपलब्ध है जिसमें भी यह दर्शाया गया है कि घटना स्थल कोई कमरा नहीं अपितु बरामदा है। दीपचंद ने अपने मृत्यु पूर्व बयान में जो अंतिम जवाब दिया था कि वह टीवी देखने के लिए अपनी मां के कमरे में गया था, वह अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर विरोधाभासी है।

42. मृतक दीपचंद से विशेष रूप से पूछा गया कि क्या अभियुक्त के साथ कोई झगड़ा हुआ था, जिसके उत्तर में उसने बताया कि एक बार खेलते समय अभियुक्त ने उसकी गर्दन पर अपना पैर रख दिया था। कथित तौर पर घटित घटना के प्रथम भाग के बारे में मृतक ने कुछ नहीं बताया है। यह इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि जब अभियुक्त अपने ससुराल आया तो दीप चंद भी उपस्थित था। फिर दीप चंद से एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि क्या उसकी मां के साथ कोई झगड़ा हुआ था, जिस पर उसने उत्तर दिया कि उसे नहीं पता। मृतक दीप चंद ने यह भी कहा है कि आग लगने के बाद वह आंगन की ओर भागा और पानी के कुंड में कूद गया। मृत्यु पूर्व बयान में दिए गए बयान के इस भाग का अभियोजन पक्ष के साक्षी पी.डब्ल्यू.-1 व 2 ने खंडन किया है, जिसके अनुसार आग मृतक व घायल पर कपड़ा डालकर बुझाई गई थी, न कि पानी डालकर। किसी भी साक्षी ने यह नहीं कहा कि दीप चंद पानी के कुंड में कूदा था। अतः दीपचंद का कथन इस भाग पर भी विरोधाभासी है। जहां तक प्रथम प्रश्न के उत्तर में दीप चंद के बयान का सवाल है, मृतक ने स्वीकार किया है कि वह अपनी मां के साथ सो रहा था। उसने कहा है कि अभियुक्त उसका जीजा लगता है जिसने उन पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी। अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि घर में कोई रोशनी या बिजली थी। अंतिम प्रश्न में भी दीप चंद ने दावा किया है कि जब अभियुक्त उसकी मां पर पेट्रोल डाल रहा था तब उसने उसे देख लिया था। हम दीप चंद के बयान को कुछ संदेह की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि यह स्पष्ट नहीं है कि उसे कैसे पता चला कि उस पर या उसकी मां पर डाला गया तरल पदार्थ पेट्रोल था। अभिलेखों में इस बात का लेशमात्र भी साक्ष्य नहीं है कि मृतकों को पेट्रोल डालकर जलाया गया है। यह सोचना जटिल है कि दीपचंद को ज्वलनशील पदार्थ की पहचान कैसे पता चल गयी। यह उस संदर्भ में है कि हम बचाव पक्ष के उक्त तर्क को कुछ महत्व देते हैं कि असल में मृत्यु पूर्व दिया गया बयान पढ़ाए जाने का परिणाम था क्योंकि पी.डब्ल्यू.-1 ने स्वीकार किया है कि जब उसके भाई का बयान दर्ज किया जा रहा था तो वह मौजूद था। हालाँकि पी.डब्लू.-5 ने कहा है कि उन्होंने दीप

चंद के पास मौजूद सभी परिजनों को हटा दिया था, फिर भी सिखाए जाने के अनुमान को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि बयान दर्ज करने से पहले परिवार के सदस्यों की उपस्थिति को स्वीकार किया गया है। पी.डब्लू.-1 ने अन्यथा कहा है कि जब उसके भाई का बयान दर्ज किया गया था तब वह उपस्थित था। पी.डब्ल्यू.-5 ने यह भी कहा है कि उसे याद नहीं है कि जब वह बयान दर्ज कराने अस्पताल पहुंचा था तो दीपचंद के परिवार के सदस्य उससे बात कर रहे थे या नहीं। मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए मृत्यु पूर्व बयान तथा विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए बयान में भी एक ठोस विरोधाभास है, क्योंकि विवेचना अधिकारी ने कहा है कि दीप चंद ने उन्हें बताया था कि अभियुक्त की आवाज से वह उसे पहचान सकता है, जबकि मजिस्ट्रेट को दिए गए मृत्यु पूर्व बयान में ऐसा कोई कथन नहीं किया गया है।

43. **गुजरात राज्य बनाम जयराजभाई पुनियाभाई वरू ए.आई.आर. 2016 एस.सी. 3218 (पैरा 10 और 11)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्थापित किया है कि ''मृत्यु पूर्व के बयान के परिशीलन के समय न्यायालयों को बेहद सतर्क रहना होगा क्योंकि उसको देने वाला प्रतिपरीक्षा के लिए उपलब्ध नहीं है, जिससे अभियुक्त व्यक्ति को बड़ी कठिनाई होती है। न्यायालय को यह पता लगाने के लिए मृत्यु पूर्व दिए गए बयान का ईमानदारी से अतिसूक्ष्मता से जांच करनी होती है कि क्या मृत्यु पूर्व दिया गया बयान स्वैच्छिक है, सत्य है, सचेत अवस्था में दिया गया है और उपस्थित संबंधियों या जांच एजेंसी, जो भी इसमें रुचि रखता है, से प्रभावित हुए बिना दिया गया है या नहीं या जिनके द्वारा मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करते समय लापरवाही की जा सकती है। इस न्यायालय को सभी संबंधित परिस्थितियों का मूल्यांकन करना होगा और स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्या मृत्यु पूर्व बयान ठीक से दर्ज किया गया था और क्या यह स्वैच्छिक और सत्य था। एक बार जब न्यायालय आश्वस्त हो जाए कि मृत्यु पूर्व बयान इस प्रकार दर्ज किया गया है, तो उस पर कार्यवाही की जा सकती है और उसे सजा का आधार बनाया जा सकता है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक आपराधिक मुकदमा एक व्यक्तिगत पहलू है। यह कुछ या अन्य प्रकार से अन्य परीक्षणों से भिन्न हो सकता है और इसलिए मृत्यु पूर्व बयान के कानून के लिए एक यांत्रिक दृष्टिकोण से बचना होगा। मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर मात्र उसके होने के कारण भरोसा करने का यांत्रिक तरीका बेहद खतरनाक है।''

44. इसलिए, मजिस्ट्रेट को दिया गया मृत्यु पूर्व बयान हमें पूर्णतः विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि उसमें दीपचंद के टीवी देखने के लिए अपनी मां के कमरे में जाने और अन्य तथ्यों के संबंध में दिए गए तथ्यात्मक अभिकथनों का अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों द्वारा खंडन किया जा रहा है। अन्यथा दीप चंद ने उस कारण के बारे में अनभिज्ञता जताई है जिसके कारण अभियुक्त ने उस पर और उसकी मां पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी थी। तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में, हम अभियुक्त अपीलकर्ता की सजा को दर्ज करने के लिए मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर विश्वास करने के इच्छुक नहीं हैं।

45. हम मामले के तथ्यों से पाते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने साक्षीगण की साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन नहीं किया है और उसके आधार पर अभियोजन मामले को स्वीकार कर लिया है। वर्तमान मामले के तथ्यों में मृत्यु पूर्व बयान के मूल्यांकन के संबंध में विधि का भी सही ढंग से पालन नहीं किया गया है।

46. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त अपीलकर्ता पहले ही 10 वर्ष से अधिक की सजा काट चुका है, हमारा विचार है कि वह संदेह का लाभ पाने का हकदार है। इसलिए, अधीनस्थ न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियुक्त अपीलकर्ता का अपराध युक्ति युक्त संदेह से परे साबित हो गया है, खंडित किया जाता है। निर्देश का तदनुसार उत्तर दिया जाता है। अभियुक्त अपीलकर्ता को रिहा किया जाए, जब तक कि वह दं.प्र.सं. की धारा 437ए के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

47. अभिलेखों से अलग होने से पूर्व, मामले के तथ्यों को उजागर करने में न्यायमित्र श्री राजर्षि गुप्ता द्वारा किए गए ईमानदार प्रयास के लिए हमारी सराहना, जिसने हमें अपने उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ बनाया है। हम किसी भी शुल्क को स्वीकार न करने के विद्वान न्याय मित्र द्वारा दिखाए गए भाव के लिए भी सराहना करते हैं।

(2023) 8 ILRA 144

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या 5169 वर्ष 2003

साथ में

आपराधिक अपील संख्या 5259 वर्ष 2003

दीपक उर्फ़ पिल्ला और एक अन्य

...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्री मनीष टंडन

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए और 304-बी - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3 और 4 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अर्थदंड सहित आजीवन कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दहेज मृत्यु - मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हो गई - मृतका के पति और उसके ससुराल वालों ने उसे अस्पताल ले जाने में उचित देखभाल की, उसके परिवार वालों को घटना की जानकारी दी - मृतका के माता-पिता के अस्पताल पहुंचने तक मृतका के परिवार वाले वहां मौजूद रहे - पति और देवर द्वारा दहेज की मांग के आरोप

के संबंध में, कोई विशिष्ट दिनांक, समय या स्थान नहीं बताया गया। (प्रस्तर 2, 22 से 24)

मृतका के वैवाहिक जीवन में उसके देवर की भूमिका के कारण कलह उत्पन्न हुई - कलह शिकायत दर्ज कराने तक पहुंच गई, समझौता होने के बाद मामला सुलझ गया - मृतका के ससुराल वालों द्वारा देवर के घर आने-जाने पर आपत्ति के कारण उसने आत्महत्या कर ली - मृतका के ससुराल वालों द्वारा शारीरिक उत्पीड़न या यातना का कोई विशेष आरोप नहीं - मृतका के शरीर पर कोई चोट के निशान नहीं - विसरा रिपोर्ट में जहर पाया गया, जो बचाव पक्ष के अभिकथन को पुष्ट करता है - मृतका की मां द्वारा ससुराल वालों की आपत्ति को स्वीकार करने संबंधी परिसाक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई - आक्षेपित आदेश, रद्द किया गया। (प्रस्तर 26, 27)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र और माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी द्वारा प्रदत्त)

1. कार्यालय आख्या के अनुसार, आपराधिक अपील संख्या 5169 सन् 2003 में अपीलकर्ता संख्या- 2, गंगा सागर तिवारी जिन्हें धारा 498-ए, 304-बी भा॰ द॰ वि॰ सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत, थाना चकेरी, जनपद कानपुर नगर आपराधिक वाद संख्या 150/2000 से जनित सत्र परीक्षण संख्या 1453 सन् 2000, राज्य बनाम उदय नारायण और अन्य में दोषी ठहराया तथा आजीवन कारावास से दण्डित किया गया, की मृत्यु दिनांक 04.10.2009 को हो गयी थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता भी इस कथन का समर्थन करते हैं। उक्त के आलोक में, अपीलकर्ता संख्या 2-गंगा सागर तिवारी के विरुद्ध आपराधिक अपील संख्या 5169/2003 समाप्त हो जाती है।

2. कार्यालय आख्या के अनुसार, आपराधिक अपील संख्या 5259 सन् 2003 में अपीलकर्ता संख्या 1-लखन @ सत्य नारायण, जिन्हें धारा 498-ए, 304-बी भा॰ द॰ वि॰ सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत, थाना चकेरी, जनपद कानपुर नगर आपराधिक वाद संख्या 150/2000 से जनित सत्र परीक्षण संख्या 1453 सन् 2000, राज्य बनाम उदय नारायण और अन्य में दोषी ठहराया तथा आजीवन कारावास से दण्डित किया गया, की मृत्यु दिनांक 03.12.2021 को हो गयी थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता भी इस कथन का समर्थन करते हैं। मामले को ध्यान में रखते हुए, 2003 की आपराधिक अपील संख्या 5259 अपीलकर्ता संख्या 1-लखन @ सत्य नारायण के खिलाफ समाप्त हो जाती है।

3. ये दो अपीलें निचली अदालत द्वारा धारा 498-ए, 304- बी भा॰ द॰ वि॰ सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत, थाना चकेरी, जनपद कानपुर नगर आपराधिक वाद संख्या 150/2000 से जनित सत्र परीक्षण संख्या 1453 सन् 2000, राज्य बनाम उदय नारायण और अन्य में दिनांक 17.09.2003 को पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के फैसले को चुनौती देते हुए दायर

की गई हैं।, आक्षेपित निर्णय के द्वारा परीक्षण न्यायालय ने चार आरोपियों, दीपक उर्फ पिल्ला (देवर), गंगा सागर तिवारी (ससुर), लखन @ सत्य नारायण (देवर) और उदय नारायण उर्फ कल्लू (पति) को दोषी ठहराया और सजा सुनाई।

4. गंगा सागर तिवारी और लाखन उर्फ सत्य नारायण की याचिकाओं को उनकी मृत्यु के कारण निरस्त कर दिया गया है। इस प्रकार, ये दो अपीलें दीपक उर्फ पिल्ला (देवर) और उदय नारायण उर्फ कल्लू (मृतका के पति) के आग्रह पर अस्तित्वमान हैं।

5. आक्षेपित निर्णय द्वारा, अभियुक्त-अपीलकर्ता, दीपक उर्फ पिल्ला (देवर) और उदय नारायण उर्फ कल्लू (पति) को दोषी ठहराया गया और धारा 304-बी भा॰ द॰ वि॰ के तहत कठोर आजीवन कारावास, भा॰ द॰ वि॰ की धारा 498-ए के तहत तीन साल के कठोर कारावास के साथ प्रत्येक को 2,000/- रु. अर्थदंड अदा करने की सजा सुनाई गई तथा अर्थदंड जमा न करने पर तीन-तीन माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा; दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के तहत दो वर्ष का साधारण कारावास और प्रत्येक को 2,000/- रुपये का अर्थदंड और अर्थदंड जमा न करने पर प्रत्येक को दो-दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा; और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत दो वर्ष का साधारण कारावास तथा प्रत्येक को 2,000/- रुपये का अर्थदंड और अर्थदंड जमा नहीं करने पर दो-दो माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा।

6. सूचक, जो मृतका का पिता है, ने 10 मार्च, 2000 को एक लिखित प्रतिवेदन दिया (प्रदर्श क 1), जिसमें कहा गया कि अपनी क्षमता के अनुसार पर्याप्त दहेज देने के साथ हिंदू परंपराओं के अनुसार उसने अपनी बेटी का विवाह 12.06.1995 को उदय नारायण @ कल्लू के साथ किया था । शादी के बाद आरोपियों ने दहेज में रुपये 10,000/- और एक सोने की चेन की मांग की। जिसके कारण मृतका को परेशान और प्रताड़ित किया गया। इस तरह के तथ्यों का खुलासा मृतका ने तब किया जब वह अपने घर आई। सूचक ने आरोपी से अनुरोध किया कि वह उसकी बेटी को परेशान न करे क्योंकि उसके पास इस तरह के दहेज की व्यवस्था करने का कोई साधन नहीं है। 17.08.1998 को प्रभारी एस.एच.ओ., सिविल लाइन्स को भी एक शिकायत दी गई थी। दिनांक 07.03.2000 को मृतिका के ससुराल वालों ने प्रथम सूचक को सूचित किया कि उनकी बेटी अस्वस्थ है और के.पी. गंज अस्पताल अस्पताल में भर्ती है। ऐसी सूचना मिलने पर वह अपनी पत्नी के साथ अस्पताल आये और अपनी बेटी को मृत पाया। आशंका व्यक्त की गई कि दहेज के कारण आरोपियों ने मृतका को जहर खिलाकर मार डाला है। इसी लिखित प्रतिवेदन के आधार पर धारा 498-ए, 304-बी भा॰ द॰ वि॰ सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत मामला अपराध संख्या 150/2000 के रूप में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। मृतका को दिनांक 07.03.2000 को प्रातः 09:10 बजे मृतका

के पति द्वारा अस्पताल में भर्ती कराया गया था। अंततः शाम 04:55 बजे मृतका की मृत्यु हो गई। 07.03.2000 को. हालाँकि, पूछताछ 09.03.2000 को दोपहर 12:30 बजे की गई। विधिक जांच में दर्ज है कि मृतक की मृत्यु के संबंध में जानकारी 07.03.2000 को शाम 06:05 बजे प्राप्त हुई थी। मृतक के पिता हरि शंकर और भाई विधिक जांच के गवाह थे। मौत के कारण का पता लगाने के लिए जांच गवाहों ने पोस्टमॉर्टम कराने की राय दी। मृतका के शव को सील कर पुलिस दस्तावेजों के साथ पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया, जो 09.03.2000 को दोपहर 02:30 बजे किया गया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में मृतका 24 साल की महिला थी । मौत का कारण पता नहीं चल सका और विसरा सुरक्षित रखा गया। हालांकि मृतका के शरीर पर कोई चोट के निशान नहीं मिले। 03.08.2000 की विसरा रिपोर्ट को रिकॉर्ड में लाया गया है, जिसके अनुसार विसरा में बेगॉन कीटनाशक पाया गया था और इसलिए, मौत का कारण विषाक्तता निर्धारित किया गया है। गवाहों के बयान दर्ज किए गए, जिसके बाद 08.07.2000 को चारों आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया। मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया, जहां इसे 2000 के सत्र परीक्षण संख्या 1453 के रूप में पंजीकृत किया गया।

7. सत्र न्यायालय द्वारा दिनांक 06.01.2001 को चारों अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 498-ए, 304- बी भा॰ द॰ वि॰ सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम तहत आरोप तय किये। अभियुक्तों ने आरोपों से इनकार किया और परीक्षण की मांग की।

8. परीक्षण के प्रक्रम में अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए हैं: (i) एफ.आई.आर. दिनांक 10.03.2000 (प्रदर्श क-4), (ii) लिखित रिपोर्ट दिनांक 10.03.2000 (प्रदर्श क-1), (iii) पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट दिनांक 09.03.2000 (प्रदर्श क-3), (iv) जांच रिपोर्ट दिनांक 09.03.2000 (प्रदर्श क-2), (v) आरोपपत्र दिनांक 08.07.2000 (प्रदर्श क- 10) और (vi) सूचकांक के साथ साइट योजना दिनांक 14.03.2000 (प्रदर्श क -11)।

9. उपरोक्त के अलावा, मृतका के परिवार के सदस्यों द्वारा मौखिक गवाही भी रिकॉर्ड पर लाई गई।

10. पी.डब्लू.1 के अनुसार मृतका के पिता से पूछताछ की गई है और अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने 12.06.1995 को हुई शादी के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, साथ ही दहेज की मांग के दावे का भी समर्थन किया है। मृत्य। यह भी आरोप है कि आरोपी व्यक्तियों को वांछित वस्तुएं नहीं दिए जाने के कारण मृतक को परेशान किया गया था। पी॰ डब्लू॰ 1 ने विधिक पूछताछ को प्रमाणित किया और दावा किया कि अंतिम संस्कार उसके द्वारा किया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उनकी बेटी की बीमारी के संबंध में जानकारी मृतक के ससुराल वालों से मिली थी. अपनी जिरह में, पी.डब्ल्यू.1

ने स्वीकार किया कि ससुराल वालों को कोई दहेज दिए बिना ही शादी संपन्न हुई थी, मृतका खुशी-खुशी अपने ससुराल गई थी, हालांकि, मृतका के ससुर ने सोने की चेन की मांग की थी क्योंकि यह विवाह तथा अन्य किसी समारोह के दौरान दिया जाना चाहिए था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि मृतका की ओर से अपने ससुराल वालों के खिलाफ कोई शिकायत नहीं की गयी थी. अपनी आगे की जिरह में, पी॰ डब्लू॰ 1 ने कहा है कि शादी के एक साल बाद सोने की चेन की मांग की गई थी और इसके अलावा कोई अन्य मांग नहीं की गई थी। हालाँकि, ससुर पर दुर्व्यवहार का आरोप लगाया गया है। मृतका अपने पीछे ढाई साल की बेटी छोड़ गयी है जो अपने पिता और दादा के साथ रहती है। इस गवाह ने इस सुझाव से इनकार किया कि मृतका के उसके जीजा (जीजा) के साथ अवैध संबंध थे, जिसके घर शुक्लागंज में वह पहले काफी समय तक रहती आयी थी और ऐसे विवाद के कारण ही मृतका ने वास्तव में ज़हर खाकर आत्महत्या की थी। पी॰ डब्लू॰ 1 ने 1998 की एक घटना का उल्लेख किया है जब चकेरी पुलिस स्टेशन में मृतका और उसके पति (उदय नारायण @ कल्लू) के बीच विवाद सुलझाया गया था।

11. मृतका की माता श्रीमती मनोरमा, पी.डब्लू. 2 के रूप में प्रस्तुत हुयी । अपने मुख्य परीक्षण में उसने आरोप लगाया है कि शादी 5-6 साल पहले हुई थी जिसमें दहेज का सामान दिया गया था और उसकी छोटी बेटी भी मृतका के साथ अपने ससुराल गई थी। पी.डब्लू. 2 की छोटी बेटी लगभग डेढ़ माह तक मृतका के ससुराल में रही। छोटी बेटी ने ससुर की बुरी आदतों के बारे में शिकायत की, जो अक्सर मृतका के खिलाफ फब्तियाँ कसता था। अपनी जिरह में पी.डब्ल्यू.2 ने दहेज में रुपये 10,000/- और एक सोने की चेन की मांग दोहराई है। पी.डब्ल्यू.2 ने जिरह के दौरान आगे कहा कि मृतका की शादी सुनील चंद्र बाजपेयी ने तय की थी, जो बड़ा दामाद था और शुक्लागंज में रहता था। उसने कहा है कि शादी के समय कोई दहेज नहीं दिया गया था और मृतका ने दहेज के संबंध में कोई शिकायत नहीं की । पी.डब्लू. 2 ने शादी के दो साल बाद हुई किसी घटना का भी उल्लेख किया है जिसमें पुलिस स्टेशन चकेरी में रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जहां समझौता हुआ था। इस गवाह ने इस सुझाव का खंडन किया है कि मृतका के ससुराल वालों ने मृतिका के शुक्लागंज आने-जाने पर आपत्ति जताई थी अथवा मृतका अपने ससुराल वालों की इच्छा के विरुद्ध नियमित रूप से शुक्लागंज आती थी। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि मृतका के ससुराल वालों ने उसके शुक्लागंज आने-जाने पर आपत्ति जताई थी तथा उसी संदर्भ में विवाद हुआ था और पुलिस स्टेशन चकेरी में इसका निपटारा किया गया था। उस संबंध में पी.डब्लू. 2 का बयान का उद्धरण निम्न है:

> *यह सही है कि प्राची के ससुराल वालों ने प्राची को शुक्ला गंज जाने से मना किया था । इसका समझौता प्राची की शादी के दो साल बाद हुआ था चकेरी थाने मे हुआ था समझौते के बाद प्राची शुक्ला गंज नहीं जाती थी प्राची के*

पति ही शुक्ला गंज लेकर जाते थे / मेरे सामने प्राची अपने पति के साथ शुक्ला गंज कभी नहीं गई /

12. मृतका की छोटी बहन श्रीमती प्रीति @ बिनती पी.डब्लू. 3 के रूप में प्रस्तुत हुयी, जिसने मृतका के ससुर के खिलाफ आरोप लगाए हैं। इस गवाह ने मृतका के बहनोई की संलिप्तता का भी उल्लेख किया है, जो शुक्लागंज में रहता था और मृतका के साथ संबंधों में था।

13. पी॰ डब्लू. 4 डॉ. पी. वी. एस. चौहान हैं, जिन्होंने पोस्टमॉर्टम किया और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को प्रमाणित किया है। पी॰ डब्लू. 5 एक औपचारिक गवाह है, जो पुलिस विभाग का कर्मचारी है और उसने पुलिस कागजात को प्रमाणित कर दिया है। पी.डब्लू. 6 भी एक औपचारिक गवाह है, जिसने विधिक पूछताछ कार्यवाही को प्रमाणित किया है।

14. पी.डब्लू.7 मृतका का भाई है और उसने मृतका के ससुराल वालों द्वारा दहेज की मांग के संबंध में आरोप लगाया है। अपनी जिरह में उन्होंने स्वीकार किया कि मृतका की शादी शुक्लागंज में रहने वाले उनके बहनोई ने कराई थी और यह भी स्वीकार किया कि मृतका अक्सर शुक्लागंज आती रहती थी। इस गवाह को भी मृतका की मौत की जानकारी शुक्लागंज स्थित उसके बहनोई से मिली है। हालाँकि कथित तौर पर पिछली शिकायत की गई थी लेकिन उसके संबंध में विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया ।

15. पी.डब्ल्यू. 8 जांच अधिकारी है, जिसने एफ.एस.एल. को प्रमाणित किया है। रिपोर्ट के अनुसार, मृतका के विसरा में बेगॉन कीटनाशक था। उन्होंने जांच के दौरान उठाए गए विभिन्न कदमों के बारे में भी बताया।

16. अभियोजन द्वारा एकत्रित साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त का बयान धारा 313 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया है। आरोपियों ने अपनी संलिप्तता से इनकार किया है और कहा है कि उन्हें झूठा फंसाया गया है। एक विशिष्ट मामला मृतका और शुक्लागंज में रहने वाले उसके जीजा के बीच अवैध संबंधों का स्थापित किया गया है, जिसके कारण उसने कथित तौर पर आत्महत्या कर ली। अभियुक्त दीपक @ पिल्ला का यह भी आरोप है कि मृतका के अपने जीजा के साथ संबंधों पर आपत्ति जताने पर उसने आत्महत्या कर ली।

17. अपीलकर्ताओं की ओर से डी.डब्ल्यू. 1- शिव कुमार की गवाही के रूप में एक बचाव साक्ष्य पेश किया गया है, जिन्होंने आरोप लगाया है कि शादी के समय कोई दहेज नहीं दिया गया था। बचाव पक्ष का यह गवाह पड़ोसी है और पिछले 15 वर्षों से आरोपी के परिवार के सदस्यों को जानने का दावा करता है। उन्होंने आरोप लगाया है कि मृतका ने जहर खाया था और जब यह बात परिवार के सदस्यों को पता चली तो उसके ससुराल वाले उसे अस्पताल ले गए। यही बयान डी.डब्लू. 2 नाम से पेश हुए समर सिंह ने भी दिया है।

18. मामले में दिए गए साक्ष्यों के आधार पर परीक्षण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि

आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हुए हैं क्योंकि शादी, अप्राकृतिक परिस्थितियों में हुई मृत्यु की तारीख से सात साल के भीतर की गई है और दहेज की मांग की गयी थी। अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया और उपरोक्त के अनुसार सजा सुनाई गई।

19. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री मनीष टंडन ने कहा कि यह मृतका द्वारा अपने जीजा के साथ उसके संबंधों पर ससुराल वालों द्वारा उठाई गई आपत्ति के कारण आत्महत्या का मामला है।

20. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि, वास्तव में, न तो कभी दहेज की मांग की गई थी और न ही भुगतान किया गया था और ऐसे सभी आरोप, मृतका द्वारा आत्महत्या करने के बाद, केवल परिवार के सदस्यों को फंसाने के लिए, बाद में लगाए गए हैं।

21. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. का तर्क है कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य अपराध के घटित होने को साबित कर सकते हैं, जिसके लिए अभियुक्त-अपीलकर्ताओं पर निचली अदालत द्वारा आरोप लगाया गया है और उन्हें दोषी ठहराया गया है तथा अपील में कोई योग्यता नहीं है।

22. हमने दोनों पक्षों को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अनुशीलन किया। इसमें कोई विवाद नहीं है कि मृतका का विवाह आरोपी उदय नारायण @ कल्लू के साथ 12.06.1995 को हुआ था। मृतका की मृत्यु 07.03.2000 को हुई है, अतः मृतका की मृत्यु सात वर्ष के भीतर हुई है। विसरा रिपोर्ट में भी माना गया कि मौत की वजह जहर है. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने यह भी आरोप लगाया है कि दहेज की मांग की गई थी जिसके कारण मृतका की हत्या कर दी गई। हालाँकि, बचाव पक्ष ने घटना का एक अलग संस्करण सामने रखा है, जिसके अनुसार, मृतका शुक्लागंज में अपने बहनोई से मिलने जाती थी, जिसके कारण मृतका और उसके पति के बीच मतभेद थे। अंततः उसने आत्महत्या कर ली। इसलिए, पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर, इस न्यायालय को मुख्य रूप से यह निर्धारित करना आवश्यक है कि क्या यह मानव वध अथवा आत्महत्या का मामला है?

23. हमने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट का अध्ययन किया जिससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जब पोस्टमॉर्टम किया गया था तो मृतका के शरीर पर कोई चोट नहीं थी। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि 7 मार्च, 2000 को सुबह लगभग 09:10 बजे मृतका के पति द्वारा मृतका को अस्पताल ले जाया गया था। यह उपचार कार्ड से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है जिसे आई.ओ., यानी पी.डब्ल्यू.-8 द्वारा विधिवत प्रमाणित किया गया। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि मृतका की बीमारी की सूचना उसके पिता और परिवार के अन्य सदस्यों को 7 मार्च को ही दे दी गई थी और वे भी उसी शाम अस्पताल पहुंचे। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतका के परिवार के सदस्य अस्पताल में थे, जबकि मृतका को चिकित्सा सहायता मिल रही थी, यह पी.डब्ल्यू.-7 जो मृतका का भाई है ,

के बयान से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । ऐसा ही बयान पी.डब्ल्यू.-1 ने भी दिया है। संचयी रूप से लिए गए इन तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि मृतका के पति के साथ-साथ उसके ससुराल वालों ने भी उसे अस्पताल ले जाने में पूरी सावधानी बरती और घटना के बारे में मृतका के परिवार के सदस्यों को भी सूचित किया। यह भी स्वीकार किया गया कि मृतक के माता-पिता के अस्पताल पहुंचने तक उसके परिवार के सदस्य मौजूद थे। इसके बाद मृतक के शव को उसके माता-पिता ने अपने पास रख लिया, जिन्होंने बाद में रिपोर्ट दर्ज कराई।

24. जहां तक ससुर और पति द्वारा दहेज की मांग का सवाल है, अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा लगाए गए आरोप विरोधाभासी और अस्पष्ट हैं। पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2, जो कि मृतका के माता-पिता हैं, ने एक समय पर उनसे दहेज की मांग का आरोप लगाया है, लेकिन उसी बयान में यह भी कहा है कि शादी बिना किसी दहेज के संपन्न हुई थी और मृतका उसके ससुराल वालों के साथ खुशी से रह रही थी । सोने की चेन की मांग मृतका के ससुर की बताई गयी और ऐसी मांग शादी के एक साल बाद की गई बताई गयी है। जहां तक ससुर की बात है तो उनकी पहले ही मौत हो चुकी है। अधिकांश आरोप अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों द्वारा मृतका के ससुर के खिलाफ लगाए गए हैं और चूंकि उनकी पहले ही मृत्यु हो चुकी है, अतः हमें ऐसे किसी भी आरोपों की अधिक विस्तार से जांच करने की आवश्यकता नहीं है। जहां तक पति और देवर द्वारा दहेज की मांग का सवाल है, आरोप बिल्कुल अस्पष्ट और विरोधाभासी है। पति से दहेज की ऐसी मांग के लिए कोई विशिष्ट तारीख, समय या स्थान के लिए पति या देवर को उत्तरदायी नहीं ठहराया। इसलिए, हम पति और देवर द्वारा दहेज की मांग के संबंध में रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से प्रभावित नहीं हैं। जहां तक देवर दीपक @ पिल्ला का सवाल है, किसी भी गवाह ने उनके द्वारा दहेज की मांग के किसी विशेष आरोप के लिए उनके नाम का उल्लेख नहीं किया है।

25. हमने अभिलेखों की भी जांच की है और हमने पाया है कि मृतका के बहनोई की भूमिका मृतका के विवाह के चरण से ही प्रमुखता से सामने आती है। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने स्वीकार किया कि यह शादी शुक्लागंज में रहने वाले मृतका के बहनोई ने तय की थी। यह भी माना जा रहा है कि मृतका कई साल तक शुक्लागंज स्थित अपने जीजा के घर पर रही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतका का अपने जीजा के घर शुक्लागंज में बार-बार आने-जाने को लेकर विवाद था। मृतका की मां ने स्वीकार किया है कि मृतका का बार-बार शुक्लागंज आना-जाना वैवाहिक कलह का कारण था, जिसके संबंध में थाना चकेरी में शिकायत की गई थी और एक समझौता किया गया था जिसके अनुसार मृतका को शुक्लागंज अकेली नहीं जाने दिया गया और जब भी वह अपने जीजा से मिलने गयी तो उसके साथ उसका पति भी होता है। मृतका की मां ने भी स्वीकार किया है कि मृतका का अपने जीजा के पास बार-बार शुक्लागंज आना जाना उसके ससुराल वालों को पसंद नहीं था। यह तथ्य कमोबेश अभियोजन पक्ष के सभी गवाहों ने स्वीकार

किया है। अभियुक्त द्वारा विशेष बचाव में दलील दी गई कि मृतका के अपने जीजा के साथ संबंध थे और चूंकि उसके ससुराल वालों ने जीजा के पास उसके बार-बार आने पर आपत्ति जताई थी, इसलिए उसने गुस्से में आकर आत्महत्या कर ली। बचाव पक्ष के गवाहों ने भी इस तरह के दावे का समर्थन करते हुए कहा है कि विवाह, अन्यथा, दहेज की मांग के बिना दोनों पक्षों के बीच संपन्न हुआ था।

26. हमने उन दो संस्करणों की सावधानीपूर्वक जांच की है जो हमारे सामने रिकॉर्ड पर सामने आए हैं और अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति के मद्देनजर, हम बचाव पक्ष के संस्करण को स्वीकार करने के इच्छुक हैं कि मृतका के वैवाहिक जीवन में कलह थी। इसमें शुक्लागंज में रहने वाले उसके जीजा ने भूमिका निभाई। यह भी माना जाता है कि कलह पुलिस में शिकायत दर्ज कराने तक पहुंच गई थी और पुलिस स्टेशन में समझौता होने के बाद ही आखिरकार मामला सुलझ सका। बचाव पक्ष की दलील है कि मृतका के अपने जीजा के घर जाने पर ससुराल वालों की आपत्ति के कारण ही उसने आत्महत्या की, यह बचाव पक्ष के साक्ष्यों के आधार पर संभावित है। अन्यथा भी, हमने पाया कि मृतका के ससुराल वालों द्वारा शारीरिक उत्पीड़न या यातना का कोई विशेष आरोप नहीं है, जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई हो। यह तथ्य कि मृतका के शरीर पर कोई चोट के निशान नहीं हैं, हमारे इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इसलिए, यह तथ्य कि विसरा रिपोर्ट में जहर पाया गया है, स्पष्ट रूप से बचाव पक्ष की उस बात का समर्थन करता है जिसके अनुसार मृतका ने आत्महत्या की थी।

27. परीक्षण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषी ठहराते और सजा सुनाते समय, रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की और मृतका की मां की शुक्लागंज में अक्सर आने-जाने वाली ससुराल वालों की आपत्ति को स्वीकार करने की गवाही को नजरअंदाज कर दिया गया है। तथ्य यह है कि पहले कोई शिकायत नहीं थी और मृतका पर शारीरिक चोट के कोई निशान नहीं थे, । इसलिए, परीक्षण न्यायालय ने गवाहों की गवाही का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किए बिना अभियोजन मामले को स्वीकार करने में गलती की। मामले को ध्यान में रखते हुए, हम निचली अदालत के निष्कर्ष को रद्द करते हैं, जिसके अनुसार, अभियोजन उचित संदेह से परे आरोपी के अपराध को स्थापित करने में सफल रहा।

28. परिणामस्वरूप, ये अपीलें सफल होती हैं और **स्वीकार की जाती हैं**। धारा 498-ए, 304-बी भा.द.वि. सपठित धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत, थाना चकेरी, जनपद कानपुर नगर आपराधिक वाद संख्या 150/2000 से जनित सत्र परीक्षण संख्या 1453 सन् 2000, राज्य बनाम उदय नारायण और अन्य में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 5, कानपुर नगर द्वारा दिनांक 17.09.2003 को पारित निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाता है। अपीलकर्ताओं को अपराध के आरोपों से बरी किया जाता है। चूंकि अपीलकर्ता, दीपक @ पिल्ला और उदय नारायण @ कल्लू को पहले

ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है, इसलिए उनकी जमानतें और बांड धारा 437ए सीआरपीसी के अनुपालन के अधीन उन्मोचित माने जाएंगे।

(2023) 8 ILRA 151

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 5220 वर्ष 2021

साथ में

आपराधिक अपील संख्या 5221 वर्ष 2021

जीतू ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार मिश्रा, श्री अश्विनी कुमार श्रीवास्तव, श्री बीरेंद्र सिंह खोखर, श्री सुनील कुमार यादव, श्री योगेश कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 - हत्या के लिए दंड - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अर्थदंड के साथ आजीवन कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - शिकायत के अनुसार, मृतका को अपीलार्थियों ने विवाद निपटाने के लिए बुलाया था, अपीलार्थियों ने मृतका के उस घर में आग लगा दी, जिसे अपीलार्थियों ने मृतका को बेचा था, लेकिन उसे कब्जा नहीं दिया गया था। (प्रस्तर 2, 3, 4)

अभियुक्त द्वारा कारित मृत्यु पूर्वनियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था, सामान्य प्रकृति में चोटें मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं - घटना क्षणिक आवेश में घटित हुई जब मृतका ने घर के लिए पैसे मांगे - पी.डब्लू.-1 के साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते - पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-4 ने अभियोजन का समर्थन नहीं किया - पी.डब्लू.-4 ने सह-अभियुक्त को जानने के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की - चिकित्सा साक्ष्य से गहरे जलने के घाव सिद्ध हुए जो शरीर पर 40% थे, दोनों हाथ, छाती, पेट और वक्ष क्षेत्र में जलने के घाव थे - मानव वध से हुई मृत्यु, जो हत्या के बराबर नहीं है - घटना सह-अभियुक्त के घर में घटित हुई, मृत्यु पूर्व कथन सत्य है, परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला नहीं है - मृतका को पी.डब्लू.-2 द्वारा अस्पताल में उपचार के लिए ले जाया गया था, तथ्यों के कारण दंडादेश में परिवर्तन किया गया। (प्रस्तर 13, 15)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. मणिबेन बनाम गुजरात राज्य, 2009 लॉ सूट (एससी) 1380

2. बेंगई मंडल उर्फ़ बेगई मंडल बनाम बिहार राज्य, 2010 (1) सुप्रीम 49

3. चिर्रा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2010 लॉ सूट (एससी) 843

4. श्रीमती रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1438 वर्ष 2010), निर्णीत दिनांक 7.10.2017

5. बनवारी एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 26 वर्ष 2007) निर्णीत दिनांक 20.8.2015

6. प्रमोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 318 वर्ष 2015) निर्णीत दिनांक 28.2.2019

7. तुकाराम एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250 में प्रतिवेदित

8. बी.एन. कवाटकर और एक अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्लीमेंट (1) एससीसी 304 में प्रतिवेदित

9. वीरन एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, निर्णीत, (2011) 5 एससीआर 300

10. गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 83 वर्ष 2008) निर्णीत दिनांक 11.9.2013, (प्रस्तर 12 से 17)

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार मिश्रा और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. इन दोनों अपीलों में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 15, मेरठ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 713/2015 में पारित दिनांक 17.1.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें दोनों अपीलों में अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे आगे आईपीसी कहा जाएगा) की धारा 302 सहपठित धारा 34 के तहत दोषी ठहराया गया और 20,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माना न चुकाने की स्थिति में छह महीने के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई।

3. अभिलेख से संक्षिप्त तथ्य यह है कि मृतका को अपीलकर्ताओं द्वारा 20.11.2014 को उस मकान में आग लगा दी गई थी, जिसे अपीलकर्ताओं ने मृतका को बेचा था, लेकिन मृतका को कब्जा नहीं दिया गया था। विवाद को निस्तारित करने के लिए मृतका को अपीलकर्ताओं द्वारा बुलाया गया था। अपीलकर्ताओं ने मृतका को आग लगा दी, जिसके परिणामस्वरूप वह गंभीर रूप से जल गई और लगभग आठ दिनों के बाद 28.11.2014 को अस्पताल में उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। इस संबंध में एक शिकायत दर्ज की गई थी, जिसे आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रकरण अपराध संख्या 595/2014 के रूप में पंजीकृत किया गया था। मृतका का मृत्यु पूर्व बयान घटना के दिन ही अस्पताल में दर्ज किया गया था।

4. जांच आगे बढ़ाई गई और विभिन्न व्यक्तियों के बयान दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी ने राजा और जीतू (दोनों आरोपी) के खिलाफ सक्षम न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. अभियुक्तगण पर ऐसे आरोप थे, जिनकी सुनवाई विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा की जा सकती थी, इसलिए प्रकरण सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया।

6. सम्मन किए जाने पर आरोपी ने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाना चाहा, इसलिए मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने लगभग 9 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	रवि का बयान	पीडब्ल्यू 1
2	रानी का बयान	पीडब्ल्यू 2
3	उषा का बयान	पीडब्ल्यू 3
4	शीला का बयान	पीडब्ल्यू 4
5	रवीन्द्र सिंह का बयान	पीडब्ल्यू 5
6	राजीव कुमार मलिक का बयान	पीडब्ल्यू 6
7	डॉ0 सचिन गुप्ता का बयान	पीडब्ल्यू 7
8	देवराज सिंह का बयान	पीडब्ल्यू 8
9	जितेन्द्र सिंह का बयान	पीडब्ल्यू 9
10	तिलक चन्द का बयान	पीडब्ल्यू 10
11	गजेन्द्र पाल सिंह का बयान	पीडब्ल्यू 11
12	डॉ0 सुनील गुप्ता का बयान	पीडब्ल्यू 12
13	डॉ0 यशवीर सिंह का बयान	पीडब्ल्यू 13
14	राकेश कुमार का बयान	पीडब्ल्यू 14
15	रंजीत का बयान	पीडब्ल्यू 15
16	डॉ0 राजकुमार का बयान	पीडब्ल्यू 16

नेत्र संबंधी संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किए गए:

1	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 1
2	प्राथमिकी	प्रदर्श क 2
3	मृत्यु पूर्व घोषणा	प्रदर्श क 5
4	पोस्ट मॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 4
5	पंचायतनामा	प्रदर्श क 7
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क 15
7	विषय सूची के साथ साइट प्लान	प्रदर्श क 6
8	मेडिकल सर्टिफिकेट	प्रदर्श क 17
9	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श क 18
10	मेडिकल रिपोर्ट	प्रदर्श क 19

7. मुकदमे के अंत में और धारा 313 सी.आर.पी.सी. के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज करने तथा अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को उपर्युक्त रूप से दोषी ठहराया। सत्र न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलकर्ताओं ने वर्तमान अपील पेश की है।

8. अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने **मनीबेन बनाम गुजराज राज्य, 2009 लॉसूट (एससी) 1380, बेंगई मंडल @ बेगई मंडल बनाम बिहार राज्य, 2010 (1) सुप्रीम 49, चिर्रा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2010 मुकदमा (एससी) 843,** और इस उच्च न्यायालय के **आपराधिक अपील संख्या 1438/2010 (श्रीमती रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में 7.10.2017** को निर्णीत किए गए फैसले, **आपराधिक अपील संख्या 26/2007 (बनवारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) 20.8.2015** को निर्णीत किए गए और **आपराधिक अपील संख्या 318/2015 (प्रमोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)**

रिपोर्टेड

28.2.2019 को निर्णीत किए गए फैसले में निर्णयों पर भरोसा किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि जीवन अंतिम सांस तक नहीं हो सकता। यह प्रस्तुत किया गया है कि आईपीसी की धारा 302 के तहत सजा कायम नहीं रह सकती और खराब है क्योंकि घटना बिना किसी सामान्य उद्देश्य के हुई और चूंकि अपराध क्षण भर में हुआ, इसलिए यह इतना जघन्य नहीं है । वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिकतम सजा भारतीय दंड संहिता की धारा 304 II या धारा 304 I के तहत दी जा सकती है। यदि न्यायालय यह मानता है कि अभियुक्त ने हत्या की है, क्योंकि अभियुक्त बिना किसी छूट के 10 वर्ष से अधिक समय तक जेल में रहे हैं, तो उन्हें कारावास की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है।

9. राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने इस पर कड़ी आपत्ति जताई है। उन्होंने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों और अपीलकर्ताओं तथा उनके भाई द्वारा विवादित घर में मृतक को जलाने के तरीके के बारे में हमें बताया है।

10. गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्य पर विचार करते हुए, वर्तमान अपीलकर्ताओं के अपराध के बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं है। हालाँकि, हमारे विचारणीय प्रश्न यह है कि प्रकरण के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखा जाना चाहिए या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II के तहत सजा को परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का संदर्भ देना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

> **"299. सदोष मानव वध:** जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना है, या यह जानते हुए कि ऐसे कार्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह सदोष मानव वध का अपराध करता है।"

11. 'हत्या' और 'हत्या के बराबर न होने वाली गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। यदि न्यायालय इन धाराओं में विधानमंडल द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को भूल जाते हैं, तो वे खुद को सूक्ष्म अमूर्तताओं में उलझा लेते हैं, तो भ्रम की स्थिति पैदा होती है। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए सबसे सुरक्षित तरीका आईपी कोड की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त कीवर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है । निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं की सराहना करने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति सदोष मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके कारण मृत्यु हुई है, निम्नलिखित प्रकार से किया गया हो-	कुछ अपवादों के अधीन, सदोष मानव वध हत्या है, वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की जाती है।

इरादा

(ए) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसकी संभावना हो मृत्यु का कारण बनना; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि ऐसा होने की संभावना है। उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनना जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) यह जानते हुए कि कृत्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) यह जानते हुए कि यह कृत्य इतना खतरनाक है कि इससे सभी सम्भावनाओं में मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचनी चाहिए जिससे मृत्यु होने की सम्भावना हो, तथा मृत्यु या ऊपर वर्णित ऐसी चोट पहुँचने का जोखिम उठाने के लिए कोई बहाना नहीं होना चाहिए।

12. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **(2011) 4 एससीसी 250 में रिपोर्ट किए गए तुकाराम एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के प्रकरण में और **1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304** में रिपोर्ट किए गए **बी.एन. कवताकर एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के प्रकरण में निर्धारित सिद्धांतों पर विचार करते हुए, हम इस राय पर पहुंचे हैं कि यह अपराध आईपीसी की धारा 304 भाग-I के तहत दंडनीय होगा।

13. उपर्युक्त चर्चाओं के परिणाम से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई इरादा नहीं था, यद्यपि सामान्य प्रकृति के अनुसार चोटें मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं, अभियुक्त का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था, इसलिए यह प्रकरण IPC की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय, जैसा कि यहाँ पुनरुत्पादित किया गया है, किया गया अपराध धारा 304 भाग-I के अंतर्गत आएगा, जैसा कि **वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य निर्णय, (2011) 5 एससीआर 300** में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार है, जिसे भी ध्यान में रखना होगा ।

14. हम गुजरात उच्च न्यायालय के **आपराधिक अपील संख्या 83/2008 (गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य)** के दिनांक 11.9.2013 को दिए गए निर्णय पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया था:

> "12. वास्तव में, **कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य के प्रकरण में (2013) 3 एससीसी 280** में रिपोर्ट की गई, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्यु पूर्व कथन किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता। जहां मृत्यु पूर्व कथन सत्य और सही है, परिस्थितियों से पता चलता है कि यह विश्वसनीय है और इसे कानून के

अनुसार दर्ज किया गया है, मृतक ने अपनी मर्जी से और डॉक्टर द्वारा मानसिक और शारीरिक स्थिति के संबंध में उचित प्रमाणीकरण के बाद मृत्यु पूर्व कथन किया है, तो न्यायालय के लिए पुष्टिकरण की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे प्रकरण में, केवल मृत्यु पूर्व कथन ही अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। लेकिन जहां मृत्यु पूर्व कथन स्वयं संदिग्ध परिस्थितियों में है, कानून और स्थापित प्रक्रियाओं और प्रथाओं के अनुसार दर्ज नहीं किया गया है, तो न्यायालय के लिए इसकी पुष्टिकरण की तलाश करना आवश्यक हो सकता है।

13. हालांकि, मृतक द्वारा दी गई शिकायत और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया मृत्युपूर्व कथन तथा डॉक्टर के समक्ष प्रस्तुत इतिहास सुसंगत है तथा विश्वसनीय प्रतीत होता है। गवाहों के साक्ष्य तथा मेडिकल रिपोर्ट और पंचनामा से भी इसकी पुष्टि होती है तथा यह स्पष्ट है कि मृतक की मृत्यु अपीलकर्ताओं द्वारा केरोसिन डालकर आग लगाने के कारण हुई। हम पाते हैं कि मृत्युपूर्व कथन विश्वसनीय है ।

14. हालाँकि, हमने इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया है कि मृतक की मौत एक महीने के इलाज के बाद हुई थी। मेडिकल रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि मृतक सेप्टीसीमिया से पीड़ित था जो बहुत ज़्यादा जलने के कारण हुआ था।

15. बी.एन. कवाटकर एवं अन्य (पूर्वोक्त) के प्रकरण में, सर्वोच्च न्यायालय ने सेप्टीसीमिया के एक ऐसे ही प्रकरण में , जिसमें मृतक की, प्रश्नगत घटना के पांच दिन बाद अस्पताल में मृत्यु हो गई थी, धारा 302 के तहत दोषसिद्धि को धारा 326 में परिवर्तित कर दिया तथा सजा को तदनुसार संशोधित कर दिया।

15.1 इसी प्रकार, **मणिबेन (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"18. मृतक को लगभग 60% जलने की चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान उसे सेप्टीसीमिया हो गया , जो मृतक की मृत्यु का मुख्य कारण था। इसलिए, यह स्थापित है कि 8 दिनों की उक्त अवधि के दौरान चोटें इतनी बढ़ गईं और इतनी खराब हो गईं कि चोटें पक गईं और चोटों के जहरीले प्रभाव के कारण मृतक की मृत्यु हो गई।

19. मृतका के मृत्युपूर्व कथन से यह सिद्ध होता है कि वह अपनी सास, यहाँ अपीलकर्ता से कई वर्षों से अलग रह रही थी और जिस दिन वह घटना घटी, उस दिन उसका अपीलकर्ता से उसके

घर पर झगड़ा हुआ था। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि झगड़े के तुरंत बाद वह अपनी बेटी के साथ पानी लेने आई थी और जब वह वापस लौट रही थी, तो अपीलकर्ता आया और उसने मृतका के कपड़ों पर जलता हुआ टॉन्सिल फेंक दिया। चूँकि मृतका ने उस समय टेरीलीन कपड़ा पहना हुआ था, इसलिए इससे आग और भड़क गई और जलने के कारण उसे चोटें आईं।

20. यह साबित करने और स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर सबूत भी हैं कि जलते हुए टॉन्सिल को फेंकने की अपीलकर्ता की कार्रवाई से पहले मृतक और अपीलकर्ता के बीच झगड़ा हुआ था। रिकॉर्ड पर मौजूद उपरोक्त सबूतों से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता का इरादा था कि उसकी ओर से इस तरह की कार्रवाई से मृतक की मृत्यु हो जाएगी या उसे ऐसी शारीरिक चोट लगेगी, जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृतक की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। इसलिए, हमारी राय में, इस प्रकरण को आईपीसी की धारा 300 के खंड (4) के तहत कवर नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, हम इस राय के हैं कि अपीलकर्ता का प्रकरण आईपीसी की धारा 304 भाग II के तहत कवर किया गया है।

16. वर्तमान प्रकरण में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपीलकर्ताओं की भूमिका मृत्युपूर्व बयान और अन्य अभिलेखों से स्पष्ट है। हालाँकि, इस न्यायालय ने इस बात पर भी विचार किया है कि मृतक अस्पताल में लगभग 30 दिनों तक जीवित रहा और लगभग 5 दिनों के बाद उसकी हालत बिगड़ गई और अंततः सेप्टीसीमिया से उसकी मृत्यु हो गई। वास्तव में वह लगभग 35% जल गया था। प्रकरण के इस दृष्टिकोण से, हमारा मत है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं की सजा को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) के तहत परिवर्तित किया जाना आवश्यक है और इसी के मद्देनजर अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

17. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 6, अहमदाबाद द्वारा पारित सत्र प्रकरण संख्या 149/2007 से उत्पन्न दिनांक 19.12.2007 के निर्णय और आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं - मूल आरोपी की सजा को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के

तहत सजा में बदल दिया गया है। हालांकि, भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत अपीलकर्ताओं - मूल आरोपी की सजा बरकरार रखी गई है। अपीलकर्ताओं - मूल आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के तहत छह महीने के कठोर कारावास की बजाय दस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और प्रत्येक को 5000/- रुपये का जुर्माना भुगतने का आदेश दिया जाता है, जैसा कि धारा 302 आईपीसी के तहत अवर न्यायालय द्वारा दिए गए आजीवन कारावास और जुर्माना न चुकाने की सजा के रूप में दिया गया था। तदनुसार, अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 304(आई) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दस वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास और 5000/- रुपये का जुर्माना, चूक होने पर छह महीने का कठोर कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत दंडनीय अपराध के लिए पांच वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास और 2,000/- रुपये का जुर्माना, चूक होने पर दो महीने का कठोर कारावास भुगतने का आदेश दिया जाता है। दोनों सजाएँ एक साथ चलेंगी। 19.12.2007 के निर्णय और आदेश को तदनुसार संशोधित किया जाता है। पहले से ही काटी गई सजा की अवधि को अपीलकर्ताओं - मूल अभियुक्त के रूप में सजा में छूट के लिए माना जाएगा। आर एंड पी को तुरंत विचारण न्यायालय में वापस भेजा जाए।"

15. ऊपर वर्णित तथ्यों पर विचार करते हुए मृतका की आयु 30 वर्ष थी, जैसा कि 20.11.2014 को दिए गए उसके मृत्युपूर्व कथन में कहा गया है कि जब उसने आरोपी राजा और उसके भाई जीतू से 1,30,000/- रुपए की मांग की, तो जीतू ने केरोसिन डाला और वह जल गई, इसलिए मृत्युपूर्व कथन ऐसा नहीं कहा जा सकता जिस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती और हमारे अनुसार इस पर कार्रवाई सही है। दुर्भाग्य से, घटना उस समय हुई जब मृतका ने घर के लिए पैसे मांगे, हालांकि, यह कृत्य मृतका को खत्म करने के सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए नहीं कहा जा सकता। यहां तक कि पीडब्लू-1 का साक्ष्य भी इस तथ्य की गवाही नहीं देता। मृतका की मृत्यु 28.11.2014 को हुई, सभी गवाहों के सुसंगत कथन हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करने की अनुमति नहीं देंगे कि आरोपी निर्दोष हैं। पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 ने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया, हालांकि, पीडब्लू-4 ने आरोपी राजा को जानने के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की। इसके अलावा, चिकित्सा साक्ष्य हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील को स्वीकार करने की अनुमति नहीं देंगे कि आरोपी दोषी नहीं हैं, शरीर पर गहरे जलने के घाव थे जो 40% थे, दोनों हाथ, छाती, पेट और वक्ष क्षेत्र में जलने के घाव थे। मृतक की मृत्यु सेप्टीसीमिया से हुई थी। मृत्यु, उपरोक्त निर्णय हमें विद्वान न्यायाधीश से सहमत होने की अनुमति देगा क्योंकि यह हत्या नहीं बल्कि

हत्या थी। परिस्थितियाँ यह भी दिखाएँगी कि घटना घर में हुई थी, मृत्यु पूर्व कथन सत्य मृत्यु पूर्व कथन है, हालाँकि, यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का प्रकरण नहीं था, जिसके विद्वान न्यायाधीश ने उसी के सिद्धांतों पर चर्चा की है। घटना राजा के घर पर हुई जहाँ उन्होंने मृतक को बुलाया था। मृतक को पीडब्लू-2 द्वारा अस्पताल में इलाज के लिए ले जाया गया था, ये सभी तथ्य हमें सजा में बदलाव करने की अनुमति देंगे। भले ही हम तथ्यों पर विचार करें और यह मान लें कि यह अवैध नहीं था बल्कि अनियमितता थी जो किसी भी परिस्थिति में नहीं हुई थी; आरोपी को आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था

16. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा विचार है कि इन दोनों अपीलों को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए, इसलिए इन्हें आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

17. भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के साथ धारा 34 के तहत अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के तहत दोषसिद्धि में परिवर्तित किया जाता है और अपीलकर्ताओं को 10 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई जाती है, साथ ही जुर्माना भी लगाया जाता है, जिसे घटाकर प्रत्येक अपीलकर्ता-अभियुक्त के लिए 1,000/- रुपये कर दिया गया है।

18. यदि कारावास की अवधि पूरी हो गई है, तो अभियुक्त को तत्काल रिहा कर दिया जाएगा, यदि किसी अन्य प्रकरण में इसकी आवश्यकता नहीं है। विचारण न्यायालय के दिनांक 17.1.2018 के निर्णय और आदेश को तदनुसार संशोधित किया जाएगा।

19. इस निर्णय की एक प्रति, विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ, अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय और जेल प्राधिकारियों को भेजी जाए।

20. यह न्यायालय विद्वान अधिवक्ताओं के प्रति आभारी है जिन्होंने न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता की।

(2023) 8 ILRA 157

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आपराधिक पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 308 वर्ष 2023

रामदीन यादव ...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य...प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:
शशांक शुक्ला, प्राची शुक्ला

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - पुनरीक्षण - दोषपूर्ण - परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 5 - विलंब क्षमा - "पर्याप्त कारण" - एक उदार व्याख्या

प्राप्त करना ताकि पर्याप्त न्याय का संवर्धन हो सके और सामान्यतः अपील/पुनरीक्षण में विलंब को न्याय के हित में क्षमा किया जा सकता है, जहां पक्षकारों पर कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना की कमी आरोपित न हो, विलंब क्षमा की मांग करना - यदि विलंब ऐसे कारणों से हुआ है जो दुर्भावना से प्रेरित नहीं हैं, तो न्यायालय को क्षमा को अस्वीकार करने में संकोच करना चाहिए - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 25 - भरण-पोषण। (प्रस्तर - 6,16)

(ख) शब्द/वाक्यांश/सूत्र - 'इंटरेस्ट रिपब्लिका अप सिट फिनिस लिटियम' - यह सामान्य कल्याण के लिए है कि वादकारिता के लिए एक अवधि निर्धारित की जाए - जब कोई कार्रवाई समय से वर्जित हो जाती है - न्यायालय को विलंब को अनदेखा करने में धीमा होना चाहिए क्योंकि एक बार परिसीमा समाप्त हो जाने पर, दूसरा पक्ष अंतिम रूप प्राप्त करने के साथ विषय पर अपने अधिकारों को परिपक्व कर लेता है। (प्रस्तर -8)

1088 दिनों के विलंब से पुनरीक्षण दायर किया गया - पुनरीक्षणवादी/आवेदक अवर न्यायालय में थे - अवर न्यायालय में कार्यवाही के बारे में जानते थे - पुनरीक्षणवादी/आवेदक की ओर से पूरी तरह से लापरवाही और लापरवाही से किया गया लंबा विलंब - वस्तुतः बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है। **(प्रस्तर-16)**

अभिनिर्धारित हुआ:- शपथपत्र में दिए गए कारण न्यायोचित और ठोस नहीं हैं। वर्तमान मामले में विलंब क्षमा को उचित ठहराने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग करने का कोई कारण नहीं है। विलंब क्षमा हेतु आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। **(प्रस्तर -16)**

विलंब क्षमा आवेदन खारिज कर दिया गया।

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम कातिजी, 1987(2) एससीसी 107

2. पी.के. रामचंद्रन बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 2276

3. शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, एआईआर 1969 एससी 575

4. बृज इंदर सिंह बनाम कांशीराम आईएलआर (1918) 45 कलकटा 94 में प्रिवी काउंसिल

5. वेदाबाई उर्फ वैजयानताबाई बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल और अन्य, जेटी 2001(5) एससी 608

6. पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम अधिशाषी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना एवं अन्य (2008) 17 एससीसी 448

7. मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन् मुंबई नगर निगम, 2012 (5) एससीसी 157

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा प्रदत्त)

(आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 1/ 2023 पर आदेश)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शुक्ला, राज्य-विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता -1 श्री एस.पी. तिवारी को सुना गया तथा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया। विपक्षी संख्या 2 की ओर से कोई अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुआ।

2. इस न्यायालय के स्टाम्प रिपोर्टर की रिपोर्ट के अनुसार, यह पुनरीक्षण समय-सीमा से वर्जित है तथा 1088 दिनों के विलम्ब से दायर किया गया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान आवेदन वर्तमान पुनरीक्षण दायर करने में हुई देरी को माफ करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि पुनरीक्षणकर्ता ने तुरंत आपत्ति दायर की लेकिन वह बीमार हो गया और अपने वकील के संपर्क में नहीं था और उसके बाद, जब उसे पता चला कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा एकपक्षीय आदेश पारित किया गया है, तुरंत एक रिकॉल प्रार्थना पत्र दायर किया गया और फिर कोविड-19 का प्रकोप हुआ, उसके बाद, उसे सूचित किया गया कि उसका प्रकरण खारिज कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि जब पुनरीक्षणकर्ता को एक वसूली प्रमाण पत्र मिला, तब उसने एक नए वकील से संपर्क किया और उसे आरोपित आदेश के बारे में पता चला। उन्होंने आगे कहा कि उपर्युक्त कारणों से, इस पुनरीक्षण को दायर करने में देरी इरादतन या जानबूझकर नहीं है, इस प्रकार, वर्तमान आवेदन की अनुमति दी जा सकती है । उन्होंने आगे कहा कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दिनांक 15.06.2018 को विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/पारिवारिक न्यायाधीश एफटीसी न्यू, गोंडा द्वारा विपक्षी संख्या 2 द्वारा दाखिल आवेदन की तिथि से 2000 रुपये प्रतिमाह भरण-पोषण राशि देने का पारित आदेश अवैधानिक है और बिना विचार किए पारित किया गया है, अत: इसे पलटाऔर रद्द किया जाना चाहिए।

4. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता -1 ने पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की दलील का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि वर्तमान पुनरीक्षण दायर करने में देरी के लिए विलंब क्षमा आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में कोई उचित कारण नहीं दिए गए हैं और उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि इस पुनरीक्षण में आरोपित आदेश वर्ष 2018 में पारित किया गया था, तब से पांच वर्ष से अधिक समय बीत चुका है लेकिन पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आरोपित आदेश को चुनौती देने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया और अब यह पुनरीक्षण केवल विपरीत पक्ष संख्या 2 को परेशान करने और परिवार न्यायालय अधिनियम के तहत प्रदान किए गए भरण-पोषण के उसके सही दावे को अस्वीकार करने के इरादे से दायर किया गया है। भरण-पोषण के लिए तय की गई राशि विपरीत पक्ष

संख्या 2 के लिए 2000/- रुपये प्रति माह थी, जिसे वर्तमान समय में उच्च मूल्य वृद्धि के कारण अत्यधिक या अनुपातहीन नहीं कहा जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के प्रावधान लाभकारी प्रावधान हैं, जो निराश्रित पत्नी की अवारागर्दी को रोकने तथा उसे कुछ सहायता प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं, जो भरण-पोषण पाने की हकदार है, जिसे गलत तरीके से अस्वीकार किया गया है, इस प्रकार, विलम्ब की माफी के लिए वर्तमान आवेदन को खारिज किया जा सकता है।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करने के बाद उन छड़ों में, यह पता चलता है कि वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल करने में विलंब माफी आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में दिया गया स्पष्टीकरण न तो स्वीकार्य है और न ही विश्वसनीय है क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक पहले से ही अवर न्यायालय में था, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उसे अवर न्यायालय में कार्यवाही के बारे में पता नहीं था। मेरे विचार में, इस बात का कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है कि प्रकरण को उचित गंभीरता और उचित तत्परता के साथ क्यों नहीं लिया गया और वर्तमान प्रकरण इस न्यायालय के समक्ष 1088 दिनों की देरी के बाद दायर किया गया।

6. अधिनियम, 1963 की धारा 5 में "पर्याप्त कारण" की अभिव्यक्ति को उदार अर्थ में लिया गया है, ताकि पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके और आम तौर पर अपील/पुनरीक्षण में देरी को न्याय के हित में माफ किया जा सकता है, जहां देरी के लिए माफी मांगने वाले पक्षों पर कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना की कमी आरोपित नहीं की जा सकती है। **कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम काटिजी , 1987(2) एससीसी 107** में, न्यायालय ने कहा, कि, जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक दूसरे के खिलाफ लिए जाते हैं, तो पर्याप्त न्याय के कारण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि दूसरा पक्ष जानबूझकर देरी न करने के कारण किए जा रहे अन्याय में निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता। न्यायालय ने आगे कहा कि न्यायपालिका का सम्मान तकनीकी आधार पर अन्याय को वैध बनाने की उसकी शक्ति के कारण नहीं, बल्कि इसलिए किया जाता है क्योंकि वह अन्याय को दूर करने में सक्षम है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है।

7. **पीके रामचंद्रन बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 2276** में न्यायालय ने कहा:

> *"सीमा अवधि का कानून किसी विशेष पक्ष को कठोरता से प्रभावित कर सकता है, लेकिन जब कानून ऐसा निर्धारित करता है तो इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए और न्यायालयों को न्यायसंगत आधार पर सीमा अवधि बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है।"*

8. सीमा के नियम पक्षों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। वे वस्तुतः उपाय को छीन लेते हैं। उनका उद्देश्य यह है कि पक्षकार अपने अधिकारों को लेकर टालमटोल करने की रणनीति न अपनाएं और न ही सोएं। उन्हें

तुरंत उपाय तलाशना चाहिए। कानूनी उपाय प्रदान करने का उद्देश्य कानूनी चोट के कारण हुई क्षति की भरपाई करना है। सीमा से संबंधित क़ानून कानूनी चोट के निवारण के लिए ऐसे कानूनी उपाय के लिए एक जीवन अवधि निर्धारित करता है, जिसे किसी ने झेला है। समय कीमती है और बर्बाद हुआ समय कभी वापस नहीं आता। समय बीतने के साथ, नए कारण सामने आएंगे, जिससे नए लोगों को अदालतों का दरवाजा खटखटाकर कानूनी उपाय तलाशने की ज़रूरत होगी। इसलिए प्रत्येक उपाय के लिए एक जीवन अवधि तय की जानी चाहिए। उपाय शुरू करने के लिए अंतहीन अवधि अंतहीन अनिश्चितता और परिणामी अराजकता का कारण बन सकती है। सीमा प्रदान करने वाला क़ानून सार्वजनिक नीति पर आधारित है। यह कहावत में निहित है कि रिपब्लिका के हित में सिट फ़िनिस लिटियम (यह सामान्य कल्याण के लिए है कि मुकदमेबाजी के लिए एक अवधि निर्धारित की जाए)। यही कारण है कि जब कोई कार्रवाई समय से बाधित हो जाती है, तो न्यायालय को देरी को अनदेखा करने में धीमा होना चाहिए क्योंकि एक बार सीमा समाप्त हो जाने पर, दूसरा पक्ष अंतिम रूप प्राप्त करने के साथ विषय पर अपने अधिकारों को परिपक्व कर लेता है। हालांकि इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि देरी को माफ करने से इनकार करने से मुकदमा करने वाले को अपना प्रकरण आगे बढ़ाने से रोक दिया जाएगा, लेकिन साथ ही दूसरी ओर पक्ष भी एक निश्चित अवधि के बाद बैठकर चिंतामुक्त महसूस करने का हकदार है, जिससे उसे लगातार और निरंतर मुकदमेबाजी से राहत मिलती है।

9. ऐसी कोई धारणा नहीं है कि न्यायालय में जाने में देरी हमेशा जानबूझकर की जाती है। किसी भी व्यक्ति को समय रहते उचित कानूनी उपाय न करके जानबूझकर प्रकरण में देरी करने से कोई लाभ नहीं होता, लेकिन फिर "पर्याप्त कारण" शब्द दर्शाते हैं कि यदि कोई देरी हुई है, तो वह जानबूझकर, लापरवाही से और संबंधित वादी के लापरवाही भरे रवैये के कारण नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह सद्भावनापूर्ण होनी चाहिए और उसके नियंत्रण से परे कारणों से होनी चाहिए और किसी भी प्रकरण में सद्भावना की कमी नहीं होनी चाहिए। यदि स्पष्टीकरण सद्भावना की कमी की ओर इशारा नहीं करता है, तो न्यायालय को वादी के प्रति उचित विचार दिखाना चाहिए, लेकिन जब वादी की ओर से लापरवाही स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो न्यायालय का दृष्टिकोण भी बदलना तय है। समय रहते न्यायालय में जाने में वादी की ओर से चूक समझ में आती है, लेकिन बिना किसी स्पष्टीकरण के लंबे समय तक पूरी तरह से निष्क्रिय रहना और वह भी वादी की ओर से कोई ईमानदार प्रयास न दिखाना, उसकी लापरवाही को बढ़ाएगा और उसके खिलाफ जाने वाला प्रासंगिक कारक होगा।

10. मुझे इस निर्णय को अनेक निर्णयों से बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत "पर्याप्त कारण" की व्याख्या करने के संबंध में न्यायालय का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए, तथा पहले से संदर्भित के अतिरिक्त उनमें से कुछ का उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

11. **शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, एआईआर 1969 एससी 575** में न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि, जब तक सद्भावना की कमी या ऐसी निष्क्रियता या लापरवाही साबित नहीं हो जाती जो किसी पक्ष को धारा 5 के संरक्षण से वंचित करती हो, तब तक आवेदन को खारिज नहीं किया जाना चाहिए या किसी भी देरी को माफ करने से इनकार नहीं किया जा सकता है।

12. **प्रिवी काउंसिल ने ब्रिज इंदर सिंह बनाम कांशी राम आईएलआर (1918) 45 कैल 94** में कहा कि धारा 5 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए न्यायालय के लिए सही मार्गदर्शक यह है कि अपीलकर्ता ने अपील पर मुकदमा चलाने में उचित परिश्रम किया है या नहीं। यह सिद्धांत अभी भी सही है क्योंकि प्रिवी काउंसिल के उपरोक्त निर्णय का बार-बार उल्लेख किया गया है, और हाल ही में **नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ और अन्य, एआईआर 2005 एससी 2191** में भी यही बात कही गई है।

13. **वेदबाई @ वैजयानताबाई में बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल और अन्य, जे.टी. 2001(5) एस.सी. 608** में न्यायालय ने कहा कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत उसे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। ऐसे प्रकरण में अंतर किया जाना चाहिए जहां देरी अत्यधिक है और ऐसे प्रकरण में जहां देरी कुछ दिनों की है । पहले प्रकरण में दूसरे पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह का विचार एक प्रासंगिक कारक होगा, इसलिए प्रकरण में अधिक सतर्क दृष्टिकोण की आवश्यकता है, लेकिन दूसरे प्रकरण में ऐसा कोई विचार नहीं उठ सकता है और ऐसा प्रकरण एक उदार दृष्टिकोण का हकदार है। नहीं इस संबंध में कठोर नियम बनाए जा सकते हैं और इसका मूल मार्गदर्शक तत्व है पर्याप्त न्याय की उन्नति।

14. **पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) एलआरएस बनाम कार्यकारी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना और अन्य (2008) 17 एससीसी 448** में, फैसले के पैरा 17 में, न्यायालय ने कहा:

> *"...रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से पता चलता है कि अपील दायर करने में लंबे समय तक अपने ही अधिकारों की अनदेखी की गई। न्यायालय न्याय के आधार पर विलंबित और राज्य के दावों की जांच नहीं कर सकता। देरी न्याय को पराजित करती है। न्यायालय उन लोगों की मदद करता है जो सतर्क रहते हैं और "अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह नहीं रहते।"*

15. **मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन मुंबई नगर निगम, 2012 (5) एससीसी 157,** निर्णय के पैरा 18 में न्यायालय ने निम्नलिखित कहा: "इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि भले ही सीमा अधिनियम की धारा 5 और अन्य समान विधियों के तहत शक्ति के प्रयोग में एक उदार और न्यायोन्मुखी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, लेकिन न्यायालय इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हो सकते हैं कि सफल वादी ने चुनौती के तहत निर्णय के आधार पर

कुछ अधिकार प्राप्त किए हैं और लागत के अलावा मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों में बहुत समय व्यतीत होता है। किसी दिए गए प्रकरण के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में 'पर्याप्त कारण' अभिव्यक्ति को क्या रंग मिलेगा, यह काफी हद तक स्पष्टीकरण की सद्भावनापूर्ण प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि न्यायालय पाता है कि आवेदक की ओर से कोई लापरवाही नहीं हुई है और देरी के लिए दिखाए गए कारण में सद्भावना की कमी नहीं है, तो वह देरी को माफ कर सकता है। यदि, दूसरी ओर, आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या वह अपने प्रकरण को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से लापरवाह है, तो देरी को माफ न करना विवेक का एक वैध प्रयोग होगा। राज्य और उसकी एजेंसियों/साधनों से जुड़े मामलों में, न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान दे सकता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में पर्याप्त समय लिया जाता है, लेकिन राज्य के अधिकारियों और/या इसकी एजेंसियों/संस्थाओं की ओर से पूर्ण सुस्ती या घोर लापरवाही को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता है और विलम्ब के लिए क्षमा के लिए उनके द्वारा दायर आवेदनों को स्वाभाविक रूप से इस तर्क को स्वीकार करके अनुमति नहीं दी जा सकती है कि सीमा के बंधन के आधार पर प्रकरण को खारिज करने से जनहित को क्षति पहुंचेगी।"

16. मेरे विचार में, यहाँ जिस तरह का स्पष्टीकरण दिया गया है, वह सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी को संतुष्ट नहीं करता है कि यदि देरी ऐसे कारणों से हुई है, जो दुर्भावना से प्रेरित नहीं हैं, तो न्यायालय को क्षमादान से इनकार करने में संकोच करना चाहिए। इसके विपरीत, मुझे लगता है कि यह एक ऐसा प्रकरण है जो पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक की ओर से 1088 दिनों की पूरी तरह से लापरवाही और लापरवाही से की गई लंबी देरी को दर्शाता है, जो लगभग पूरी तरह से अस्पष्ट है और हलफनामे में दिए गए कारण उचित और ठोस नहीं हैं। इसलिए, मुझे वर्तमान प्रकरण में देरी की क्षमा को उचित ठहराने के लिए अपने न्यायिक विवेक का विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग करने का कोई कारण नहीं दिखता।

17. परिणामस्वरूप, विलम्ब क्षमा हेतु आवेदन खारिज किये जाने योग्य है।

18. तदनुसार, विलम्ब क्षमा हेतु वर्तमान आवेदन ***खारिज*** किया जाता है।

(पुनरीक्षण ज्ञापन पर आदेश)

1. वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल करने में देरी के लिए माफी मांगने वाला आवेदन दिनांक के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, इस पुनरीक्षण पर समय सीमा का प्रतिबंध है, इसलिए तदनुसार ***खारिज*** किया जाता है।

2. अवर न्यायालय को इस प्रकरण में कानून के अनुसार कार्यवाही करने की स्वतंत्रता है।

3. इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति संबंधित अवर न्यायालय को अनुपालन हेतु भेजें।

4. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 162

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 935 वर्ष 2023

महंत प्रसाद राम त्रिपाठी उर्फ़ एम.पी.आर. त्रिपाठी ...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ...प्रतिपक्षीगण

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:
प्रतीक तिवारी

प्रतिपक्षियों के लिए अधिवक्ता:
शिव पी. शुक्ला

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण, धारा 27 - उन्मोचन, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 7 - लोक सेवक को रिश्वत दिए जाने से संबंधित अपराध, भारतीय तार अधिनियम, 1885 - धारा 5 - सरकार को लाइसेंस प्राप्त तार को अपने कब्जे में लेने और संदेशों को रोकने का आदेश देने की शक्ति, भारतीय तार नियमावली, 1951 - नियम 419 - न्यायालय द्वारा किसी साक्ष्य को इस आधार पर स्वीकार करने को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह अवैध रूप से प्राप्त किया गया है। (प्रस्तर - 25)

(बी) शब्द और वाक्यांश -'इंटरसेप्ट' - 'किसी चीज या व्यक्ति को किसी विशेष स्थान पर पहुंचने से पहले रोकना और पकड़ना' - 'प्रगति में या पहुंचने से पहले रोकना, जब्त करना या बाधा डालना, (किसी अन्य स्थान पर निर्देशित संचार या संकेत) आमतौर पर गुप्त रूप से प्राप्त करना' - 'एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के रास्ते में रोकना, विक्षेपित करना या जब्त करना, पहुंचने या आगे बढ़ने से रोकना। (प्रस्तर -19)

मोबाइल फोन के माध्यम से अभियुक्त व्यक्तियों के बीच बातचीत हुई - सीबीआई अधिकारियों ने सह-अभियुक्त को आवेदक को फोन करने का निर्देश दिया - रिश्वत के भुगतान के संबंध में उससे बातचीत की - सह-अभियुक्त के मोबाइल फोन को स्पीकर मोड पर रखकर प्राप्त बातचीत - 'डिजिटल वॉयस रिकॉर्डर' नामक एक अन्य उपकरण में दर्ज की गई - आवेदक ने दं.प्र.सं. की धारा 227 के अंतर्गत उन्मोचन की मांग की - डिजिटल वॉयस रिकॉर्डर बातचीत साक्ष्य में अस्वीकार्य थी - विचारण न्यायालय ने आवेदन खारिज कर दिया - इसलिए पुनरीक्षण। **(प्रस्तर-17)**

अभिनिर्धारित हुआ:- पुनरीक्षणवादी द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन को खारिज करने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं है। दोनों अभियुक्तों के बीच टेलीफोन पर हुई बातचीत को बाधित किया गया था या नहीं और यह कानूनी रूप से किया गया था या नहीं, इससे आवेदक के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में दर्ज की गई बातचीत की स्वीकार्यता प्रभावित नहीं होगी। **(प्रस्तर - 21,29)**

पुनरीक्षण खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) बनाम भारत संघ एवं एक अन्य, (1997) 1 एससीसी 301

2. संजय पांडे बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2022 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 4299

3. रायला एम. भुवनेश्वरी बनाम नागफनेंद्र रायला,एआईआर 2008 आंध्र प्रदेश 98

4. राज्य बनाम एन.एम.टी. जॉय इमैक्युलेट, (2004) 5 एससीसी 729

5. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम नवजोत संधू, (2005) 11 एससीसी 600

6. संजय पांडे बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2022 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 4299

7. रायला एम. भुवनेश्वरी बनाम नागफनेंद्र रायला, एआईआर 2008 आंध्र प्रदेश 98

8. गायत्री प्रसाद प्रजापति बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2023 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 376

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक तिवारी और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. धारा 397/401 सी.आर.पी.सी. के तहत यह पुनरीक्षण पुनरीक्षणकर्ता द्वारा विद्वान विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय संख्या-4, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 25.05.2023 के आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए दायर किया गया है, जिसके तहत आवेदक को उन्मोचित करने की प्रार्थना करने वाली धारा 227 सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. संक्षेप में कहा जाए तो मामले के तथ्य यह हैं कि हैदर अली उर्फ मंटू ने फतेहगढ़ छावनी समिति के सदस्य शशि मोहन के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई थी,जिसके आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988की धारा 7 के तहत दिनांक 09.05.2015 को केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा वाद संख्या RC0062015A0009 दर्ज किया गया था। शिकायतकर्ता ने आरोप लगाया था कि शशि मोहन ने आवेदक महंत प्रसाद त्रिपाठी, जो छावनी समिति फतेहगढ़ के सी.ई.ओ. थे, की ओर से कुछ हुंडियों के भुगतान के लिए हुंडी राशि के 6% की दर से 1,56,000/- रुपये की रिश्वत मांगी थी।

4. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने दो आरोपियों के बीच टेलीफोन पर हुई बातचीत को डिजिटलध्वनि अभिलेख पर रिकॉर्ड किया है,

जिसमें सह-आरोपी ने आवेदक को फोन पर बताया कि 'हैदर आया था और उसने 6प्रतिशत की राशि का भुगतान कर दिया है', जिसे आवेदक ने केवल 'हां' कहकर स्वीकार कर लिया और जब सह-आरोपी शशि मोहन ने बातचीत को आगे बढ़ाने की कोशिश की, तो आवेदक ने उसे इस मुद्दे पर बात करने से मना कर दिया और कार्यालय में बात करने के लिए कहा।

5. आवेदक ने सी.आर.पी.सी. की धारा 227 के तहत इस आधार पर अपने आरोपमुक्ति की मांग की थी कि डिजिटल ध्वनि अभिलेख पर दर्ज की गई दूरसंचारिक बातचीत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं थी, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने आवेदन को खारिज कर दिया है।

6. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक तिवारी ने न्यायालय का ध्यान भारतीय दूरसंचार अधिनियम की धारा 5 में निहित प्रावधानों की ओर आकर्षित किया है, जो इस प्रकार हैं: -

*"5. सरकार को अनुज्ञप्ति प्राप्त दूरसंचार को अपने कब्जे में लेने और **संदेशों को रोकने** का आदेश देने की शक्ति।–*

(1) किसी लोक आपात स्थिति के घटित होने पर या लोक सुरक्षा के हित में, यदि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विशेष रूप से प्राधिकृत कोई अधिकारी संतुष्ट हो जाए कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त किसी व्यक्ति द्वारा स्थापित, अनुरक्षित या संचालित किसी दूरसंचार को (जब तक लोक आपातस्थिति विद्यमान है या लोक सुरक्षा के हित में ऐसी कार्रवाई किया जाना अपेक्षित है) अस्थायी रूप से अपने कब्जे में ले सकेगा।

(2) किसी लोक आपात स्थिति के घटित होने पर, या लोक सुरक्षा के हित में, यदि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विशेष रूप से प्राधिकृत कोई अधिकारी यह समाधान कर ले कि भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों या लोक व्यवस्था के हित में या किसी अपराध के किए जाने के लिए उकसावे को रोकने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो कारणों को लेखबद्ध करके, आदेश द्वारा निर्देश दे सकेगा कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को या

उससे या किसी विशेष विषय से संबंधित कोई संदेश या संदेशों का वर्ग, जो किसी दूरसंचार द्वारा प्रसारण के लिए लाया गया हो या प्रेषित या प्राप्त किया गया हो, प्रसारित नहीं किया जाएगा, या अवरोधन या रोका नहीं जाएगा, या आदेश देने वाली सरकार या आदेश में वर्णित उसके अधिकारी को प्रकट नहीं किया जाएगा:

बशर्ते कि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त संवाददाताओं द्वारा भारत में प्रकाशित किए जाने वाले मुद्रण संदेशों को तब तक अवरोधन या रोका नहीं जाएगा, जब तक कि उनका प्रसारण इस

उपधारा के अधीन प्रतिषिद्ध न कर दिया गया हो।

7. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान भारतीय दूरसंचार नियम, 1951 के नियम 419 की ओर आकर्षित किया, जिसमें निम्नलिखित प्रावधान है: -

"419. दूरसंचार संदेशों का अवरोधन या निगरानी।- दूरसंचार प्राधिकरण के लिए इन नियमों के किसी उल्लंघन के सत्यापन के लिए या उपकरण के रखरखाव के लिए दूरसंचार के माध्यम से प्रेषित संदेश की निगरानी या अवरोधन करना वैध होगा।"

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि दूरसंचार अधिनियम की धारा 5 केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही दूरसंचार संदेशों को अवरोधन करने की अनुमति देती है, और वह भी सरकार के आदेश के तहत। उन्होंने दलील दी है कि वर्तमान मामले में ऐसा कोई आदेश नहीं था और इसलिए अभियुक्त व्यक्तियों के बीच दूरसंचार पर बातचीत को अवरोधन करना पूरी तरह से अवैध था और अवैध तरीके से दर्ज की गई दूरसंचार बातचीत को अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

9. अपने तर्क के समर्थन में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) बनाम भारत संघ और अन्य** (1997) 1 एससीसी 301 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

10. **पीयूसीएल** (उपरोक्त) केंद्रीय जांच ब्यूरो (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) द्वारा "राजनेताओं के फोन टैपिंग" पर एक आख्या के मद्देनजर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर एक जनहित रिट याचिका थी। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की आख्या में उल्लेख किया गया था कि निदेशक खुफिया ब्यूरो, महानिदेशक मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो, राजस्व खुफिया और केंद्रीय आर्थिक खुफिया ब्यूरो और निदेशक प्रवर्तन निदेशालय को केंद्र सरकार द्वारा दूरसंचार अधिनियम की धारा 5 में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए अवरोधन करने के लिए अधिकृत किया गया था। इसके अलावा, राज्य सरकारें आम तौर पर पुलिस/खुफिया एजेंसियों को अधिनियम के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करती है। याचिकाकर्ता ने भारतीय दूरसंचार अधिनियम,1885 (अधिनियम) की धारा 5(2) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी थी, इसके अलावा यह तर्क दिया गया था कि मनमानी को खत्म करने और अंधाधुंध टेलीफोन-टैपिंग को रोकने के लिए प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को शामिल करने के लिए उक्त प्रावधानों को उचित रूप से पढ़ा जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दूरसंचार अधिनियम की धारा 7 (2) (बी) पर ध्यान दिया, जो केंद्र सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, जो इस प्रकार है: -

"7. तार के संचालन के लिए नियम बनाने की शक्ति।--(1) केन्द्रीय सरकार, समय-

समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, सरकार द्वारा या इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त व्यक्तियों द्वारा स्थापित, अनुरक्षित या संचालित सभी या किन्हीं तार के संचालन के लिए इस अधिनियम के अनुरूप नियम बना सकेगी।

(2) इस धारा के अधीन नियम अन्य विषयों के साथ-साथ निम्नलिखित सभी या किसी के लिए भी उपबंध कर सकेंगे, अर्थात्:

*(ए) * * **

(बी) संदेशों के अनुचित अवरोधन या प्रकटीकरण को रोकने के लिए बरती जाने वाली सावधानियां।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि: -

*"अधिनियम की धारा 7 के तहत नियम बनाना केंद्र सरकार का काम है। धारा 7(2)(बी) में विशेष रूप से प्रावधान है कि केंद्र सरकार संदेशों के अनुचित अवरोधन या प्रकटीकरण को रोकने के लिए बरती जाने वाली सावधानियों को निर्धारित करने वाले नियम बना सकती है। यह अधिनियम वर्ष 1885 में अधिनियमित किया गया था। अधिनियम की धारा 7 के तहत नियम बनाने की शक्ति एक सदी से भी अधिक समय से मौजूद है, लेकिन केंद्र सरकार ने धारा 5(2) के तहत शक्ति के प्रयोग के तरीके की कड़ी आलोचना के बावजूद आवश्यक नियम बनाना उचित नहीं समझा। इस विषय पर नियम बनाना पूरी तरह से केंद्र सरकार का काम है, लेकिन जब तक ऐसा नहीं किया जाता, तब तक किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए। अधिनियम की धारा 5(2) के तहत शक्ति के प्रयोग में मनमानी को खारिज करने के लिए और **जब तक केंद्र सरकार अधिनियम की धारा 7(2)(बी) के तहत न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया निर्धारित नहीं करती है, तब तक अधिनियम की धारा 5(2) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय निर्धारित करना आवश्यक है ताकि किसी व्यक्ति की गोपनीयता के अधिकार की रक्षा की जा सके।***

12. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए: -

"1. अधिनियम की धारा 5 (2) के अनुसार टेलीफोन टैपिंग का आदेश भारत सरकार (केंद्र सरकार) के गृह सचिव और राज्य सरकारों के गृह सचिवों के अलावा किसी और द्वारा जारी नहीं किया जाएगा। किसी अत्यावश्यक मामले में यह शक्ति भारत सरकार और राज्य सरकारों के गृह विभाग के किसी अधिकारी को सौंपी जा सकती है, जो संयुक्त सचिव के पद से नीचे का न हो। आदेश की प्रति आदेश पारित होने के एक सप्ताह के भीतर संबंधित समीक्षा समिति को भेजी जाएगी।

2. आदेश में उस व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह सार्वजनिक दूरसंचार प्रणाली के माध्यम से उनके प्रसारण के दौरान ऐसे संचारों को रोके, जैसा कि आदेश में वर्णित है। आदेश में उस व्यक्ति से यह भी अपेक्षा की जा सकती है कि वह रोकी गई सामग्री को ऐसे

व्यक्तियों को बताए और ऐसे तरीके से बताए जैसा कि आदेश में वर्णित है।

3. अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत आदेश आवश्यक है या नहीं, इस पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले विषयों में यह भी शामिल होगा कि क्या वह सूचना, जिसे प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता है, अन्य साधनों से भी प्राप्त की जा सकती है।

4. अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत अपेक्षित अवरोधन ऐसे संचारों का अवरोधन होगा जो आदेश में विनिर्दिष्ट एक या एक से अधिक पतों पर भेजे जाते हैं, जो ऐसा पता या पते हैं जिनका उपयोग आदेश में विनिर्दिष्ट या वर्णित किसी विशेष व्यक्ति से या आदेश में विनिर्दिष्ट या वर्णित किसी विशेष परिसर समूह से संचार के संचरण के लिए किया जा सकता है।

5. अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत आदेश, जब तक कि नवीनीकृत न किया जाए, जारी होने की तारीख से दो महीने की अवधि के अंत में प्रभावी नहीं होगा। आदेश जारी करने वाला प्राधिकारी, दो महीने की अवधि समाप्त होने से पहले किसी भी समय आदेश को नवीनीकृत कर सकता है यदि वह समझता है कि अधिनियम की धारा 5 (2) के अनुसार आदेश को जारी रखना आवश्यक है। आदेश के संचालन की कुल अवधि छह महीने से अधिक नहीं होगी।

6. आदेश जारी करने वाला प्राधिकारी निम्नलिखित अभिलेख बनाए रखेगा:

(ए) अवरोधन संचार,

(बी) सामग्री का खुलासा किस सीमा तक किया गया है,

(सी) उन व्यक्तियों की संख्या तथा उनकी पहचान जिनके समक्ष कोई सामग्री प्रकट की गई है।

(डी) सामग्री की नकल किस सीमा तक की गई है और

(ई) किसी भी सामग्री की बनाई गई प्रतियों की संख्या।

7. अवरोधन सामग्री का उपयोग अधिनियम की धारा 5(2) के अनुसार आवश्यक न्यूनतम तक सीमित होगा।

8. किसी भी अवरोधन सामग्री की बनाई गई प्रत्येक प्रतिलिपि को अधिनियम की धारा 5(2) के अनुसार जैसे ही उसे रखना आवश्यक न हो, नष्ट कर दिया जाएगा।

9.केंद्र सरकार के स्तर पर मंत्रिमंडल सचिव, विधि सचिव और दूरसंचार सचिव से मिलकर एक समीक्षा समिति होगी। राज्य स्तर पर समीक्षा समिति में मुख्य सचिव, विधि सचिव और गृह सचिव के अलावा राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक अन्य सदस्य शामिल होंगे।

(ए) समिति संबंधित प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किए जाने के दो महीने के भीतर स्वयं जांच करेगी कि क्या अधिनियम की

धारा 5 (2) के तहत कोई प्रासंगिक आदेश है या रहा है। जहां कोई आदेश है या रहा है, वहां क्या अधिनियम की धारा 5 (2) के प्रावधानों का कोई उल्लंघन हुआ है।

(बी) यदि जांच के बाद समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अधिनियम की धारा 5 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है, तो वह समिति की जांच के तहत आदेश को रद्द कर देगी। साथ ही, वह अवरोधन की गई सामग्री की प्रतियों को नष्ट करने का निर्देश देगी।

(सी) यदि जांच के बाद समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अधिनियम की धारा 5(2) के प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है, तो वह इस आशय का निष्कर्ष दर्ज करेगी।"

13. हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अवरोधन की गई टेलीफोन बातचीत की साक्ष्य के रूप में स्वीकार्यता का प्रश्न नहीं उठाया गया था और इस प्रश्न पर पी.यू.सी.एल. मामले में निर्णय नहीं लिया गया था। इसलिए, पी.यू.सी.एल. मामला (उपरोक्त) कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना कथित रूप से अवरोधन की गई टेलीफोन बातचीत की स्वीकार्यता पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है।

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **संजय पांडे बनाम प्रवर्तन निदेशालय,** 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 4299 के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें जमानत याचिका पर फैसला करते समय, दिल्ली उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने *प्रथम दृष्टया अपना दृष्टिकोण दर्ज किया था कि "बिना सहमति के फोन लाइनों को टैप करना या कॉल रिकॉर्ड करना निजता का उल्लंघन है। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निजता के अधिकार की मांग है कि फोन कॉल रिकॉर्ड न की जाए। केवल संबंधित व्यक्तियों की सहमति से ही ऐसी गतिविधि की जा सकती है, अन्यथा यह निजता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।"*

15. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **रायला एम. भुवनेश्वरी बनाम नागफनेंद्र रायला**, ए.आई.आर. 2008 एपी 98 के मामले में फैसले से निम्नलिखित अंश पर भरोसा किया है, जिसमें आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित विश्वास व्यक्त किया था: -

"13. इन सभी कारणों से, मेरा मानना है कि पति द्वारा अपनी पत्नी की दूसरों के साथ बातचीत को टैप करने का कार्य अवैध था और इसने पत्नी की निजता के अधिकार का उल्लंघन किया। इसलिए, ये टेप, भले ही सत्य हों, साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हो सकते। इसलिए, प्रदर्श,पी-18 स्वयं साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है और पत्नी को आवाज़ परीक्षण से गुजरने के लिए मजबूर करने और फिर विशेषज्ञ से उसके द्वारा अस्वीकार किए गए अंशों की तुलना उसकी स्वीकार की गई आवाज़ से करने के लिए कहने का कोई प्रश्न ही नहीं है।"

16. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला ने पुनरीक्षण का विरोध किया है और उन्होंने कहा है कि संचार प्रणाली में हस्तक्षेप किए बिना दो व्यक्तियों के बीच बातचीत की रिकॉर्डिंग संदेशों को रोकना नहीं माना जाएगा। उन्होंने आगे कहा है कि दो अभियुक्त व्यक्तियों के बीच टेलीफोन पर बातचीत की रिकॉर्डिंग ही एकमात्र सबूत नहीं है जिस पर अभियोजन पक्ष आवेदक के खिलाफ़ भरोसा करता है और सह-अभियुक्त व्यक्ति और कुछ स्वतंत्र व्यक्तियों के बयान सहित कुछ अन्य सबूत भी हैं।

17. आरोपी व्यक्तियों के बीच बातचीत उनके मोबाइल फोन के माध्यम से की गई थी। सह-आरोपी शशि मोहन को केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारियों द्वारा आवेदक को फोन करने और रिश्वत के भुगतान के संबंध में उससे बातचीत करने का निर्देश दिया गया था। सह-आरोपी के मोबाइल फोन को स्पीकर मोड पर रखकर दोनों आरोपियों के मोबाइल फोन उपकरणों के बीच संचार प्राप्त किया गया और इसे 'डिजिटल ध्वनि अभिलेख ' नामक एक अन्य उपकरण में रिकॉर्ड किया गया।

18. ऐसा प्रतीत होता है कि एक आरोपी व्यक्ति द्वारा दूसरे से किया गया संवाद उसके पास पहुंचा और उसके बाद उसे डिजिटल ध्वनि अभिलेख नामक एक अन्य उपकरण द्वारा रिकॉर्ड किया गया। क्या इन परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि दो आरोपियों के बीच संवाद को 'अवरुद्ध' किया गया था?

19. कैम्ब्रिज डिक्शनरी में 'अवरोधन' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है *'किसी चीज़ या व्यक्ति को **किसी विशेष स्थान पर पहुँचने से पहले रोकना और पकड़ना**'*। मेरियम-वेबस्टर शब्दकोश 'अवरोधन' को इस प्रकार परिभाषित करती है '***प्रगति में या पहुँचने से पहले रोकना***, पकड़ना या बाधा डालना, (*किसी अन्य स्थान पर निर्देशित संचार या संकेत*) *को आमतौर पर गुप्त रूप से प्राप्त करना'। कोलिन्स शब्दकोश 'अवरोधन' को इस प्रकार परिभाषित करती है **'एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के रास्ते में रोकना,** विक्षेपित करना या पकड़ना, पहुँचने या आगे बढ़ने से रोकना।*

20. उपर्युक्त तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि दो अभियुक्त व्यक्तियों के बीच संचार अपने गंतव्य तक पहुंच गया था और दूसरे व्यक्ति तक पहुंचने से पहले इसे रोका नहीं गया था। इसलिए, 'अवरोधन' शब्द के सामान्य अर्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि संचार को 'अवरुद्ध' नहीं किया गया था।

21. इसलिए, मेरा विचार है कि दूरसंचारिक संचार के अवरोधन से संबंधित कानून के प्रावधान वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे।

22. तथापि, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रिकार्ड की गई बातचीत की स्वीकार्यता के मुद्दे पर विस्तृत दलीलें दी गई हैं, मैं उनकी जांच करने जा रहा हूं।

23. **राज्य बनाम एन.एम.टी. जॉय इमैकुलेट**, (2004) 5 एससीसी 729 के वाद में, माननीय

न्यायालय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक अपील पर निर्णय कर रहा था, जिसमें कहा गया था कि अभियुक्त को पुलिस को हिरासत में देने का आदेश अवैध था और अवैध हिरासत के दौरान किए गए कबूलनामे के परिणामस्वरूप की गई बरामदगी का कोई साक्षीय मूल्य नहीं है। एक प्रश्न यह उठा कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त टिप्पणियां करना सही था, भले ही यह मान लिया जाए कि पुलिस हिरासत देने वाला दिनांक 6-11-2001 का आदेश अवैध था। उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"किसी साक्ष्य की स्वीकार्यता या अन्यथा का निर्णय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। साक्ष्य अधिनियम या दंड प्रक्रिया संहिता या भारत में कोई भी अन्य कानून प्रासंगिक साक्ष्य को इस आधार पर बाहर नहीं करता है कि उसे अवैध तलाशी और जब्ती के तहत प्राप्त किया गया था।

15. *हमारे देश में साक्ष्य का कानून अंग्रेजी कानून में प्रचलित साक्ष्य के नियमों पर आधारित है। कुरुमा बनाम आर., 1955 एसी 197 के वाद में, एक आरोपी को दो पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई तलाशी में कुछ गोला-बारूद के अवैध कब्जे में पाया गया, जो कानून के तहत तलाशी लेने के लिए अधिकृत नहीं थे। सवाल यह था कि क्या गोला-बारूद के अवैध कब्जे के संबंध में सबूतों को इस आधार पर बाहर रखा जा सकता है कि सबूत एक अवैध तलाशी में प्राप्त किए गए थे। प्रिवी काउंसिल ने सिद्धांत को इस प्रकार बताया: दीवानी और आपराधिक दोनों मामलों में, साक्ष्य स्वीकार्य है या नहीं, इस पर विचार करने के लिए लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या यह मुद्दे के मामलों से प्रासंगिक है। अगर यह प्रासंगिक है, तो यह स्वीकार्य है और अदालत को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि इसे कैसे प्राप्त किया गया।*

15.1. *इस प्रश्न की जांच संविधान पीठ द्वारा पूरण मल बनाम निरीक्षण निदेशक (जांच), (1974) 1 एससीसी 345 में की गई है, और इसमें प्रतिपादित सिद्धांत इस प्रकार है:*

यदि साक्ष्य अधिनियम, 1872 प्रासंगिकता को साक्ष्य की स्वीकार्यता के एकमात्र परीक्षण के रूप में अनुमति देता है, और दूसरी बात, वह अधिनियम या लागू कोई अन्य समान कानून प्रासंगिक साक्ष्य को इस आधार पर बाहर नहीं करता है कि उसे अवैध तलाशी या जब्ती के तहत प्राप्त किया गया था, तो ऐसे साक्ष्य को बाहर करने के लिए हमारे संविधान की कथित भावना का आह्वान करना गलत होगा। *न ही हम संविधान की भाषा को तनाव में डाल सकते हैं, क्योंकि अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के कुछ अमेरिकी न्यायाधीशों ने अमेरिकी संविधान के प्रावधानों से कुछ संवैधानिक सुरक्षाओं को स्पष्ट किया है। इसलिए, न तो हमारे संविधान की भावना का आह्वान करके और न ही किसी भी मौलिक अधिकार के तनावपूर्ण निर्माण से हम अवैध तलाशी में प्राप्त साक्ष्य के बहिष्कार को स्पष्ट कर सकते हैं।*

जहाँ तक भारत का सवाल है, इसका साक्ष्य कानून अंग्रेजी कानून में प्रचलित साक्ष्य के

नियमों पर आधारित है, और भारत और इंग्लैंड की अदालतों ने लगातार प्रासंगिक साक्ष्य को केवल इस आधार पर बाहर करने से इनकार कर दिया है कि यह अवैध तलाशी या जब्ती द्वारा प्राप्त किया गया है। जहाँ साक्ष्य की स्वीकार्यता का परीक्षण प्रासंगिकता पर आधारित है, जब तक कि संविधान या अन्य कानून में कोई स्पष्ट या अनिवार्य रूप से निहित निषेध न हो, अवैध तलाशी या जब्ती के परिणामस्वरूप प्राप्त साक्ष्य को बाहर नहीं किया जा सकता है।

15.2. *चूंकि यह कानून है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश (बी) कि स्वीकारोक्ति और कथित बरामदगी का कोई साक्षीय मूल्य नहीं है, स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। स्वीकारोक्ति के प्रभाव और अभियुक्त की ओर से दोषी वस्तु की बरामदगी की भी साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार सख्ती से जांच की जानी चाहिए।"*

24. **राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) बनाम नवजोत संधू,** (2005) 11 एससीसी 600 में, आरोपी शौकत और उसकी पत्नी अफसान गुरु के बीच टेलीफोन बातचीत और आरोपी गिलानी और उसके भाई शाह फैजल के बीच बातचीत के संदर्भ में अवरोधन किए गए टेलीफोन कॉल की वैधता और स्वीकार्यता के बारे में एक सवाल उठा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सवाल पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया: -

"**153.** ... *प्रासंगिक दिन पर, संदेशों का अवरोधन दूरसंचार अधिनियम, 1885 की धारा 5(2) के साथ दूरसंचार नियम, 1951 के नियम 419-ए द्वारा शासित था। सरकार या अधिकृत अधिकारी द्वारा अवरोधन की मूल शक्ति धारा 5 द्वारा प्रदत्त की जाती है। अवरोधन के तौर-तरीके और प्रक्रिया उक्त नियमों द्वारा शासित होती है। दोनों आरोपियों शौकत और गिलानी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि इस मामले में नियम 419-ए का भी अनुपालन नहीं किया गया है, और इसलिए, इस तरह के अवरोधन द्वारा प्राप्त टेप-रिकॉर्ड की गई बातचीत का उपयोग अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त आरोपियों को दोषी ठहराने के लिए नहीं किया जा सकता है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल सुब्रमण्यम का तर्क है कि नियम 419-ए का पर्याप्त अनुपालन किया गया था और किसी भी मामले में, भले ही अवरोधन नियम के सख्त अनुपालन में न हुआ हो, लेकिन इससे रिकॉर्ड किए गए संचार की स्वीकार्यता प्रभावित नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, उनका कहना है कि अवरोधन में अवैधता या अनियमितता साक्ष्य में इसकी स्वीकार्यता को प्रभावित नहीं करती है क्योंकि दूरसंचार अधिनियम या नियमों में स्वीकार्यता के खिलाफ कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है। श्री गोपाल सुब्रमण्यम के पहले तर्क में योग्यता के बावजूद, हम उनके द्वारा प्रस्तुत वैकल्पिक तर्क में बल पाते हैं।*

154. *पहले पहलू के संबंध में, निर्दिष्ट टेलीफोन नंबरों के संबंध में अवरोधन को अधिकृत करने और पुष्टि करने वाले प्रासंगिक आदेशों में दो कमियाँ बताई गई हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा यह नहीं दिखाया गया है कि*

अवरोधन को अधिकृत करने वाले खूफिया ब्यूरो के संयुक्त निदेशक, भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद पर हैं। दूसरे, गृह सचिव द्वारा पारित पुष्टि आदेश (निचली अदालत के रिकॉर्ड के खंड 7, पृष्ठ 447, आदि में निहित) यह संकेत देते हैं कि पुष्टि भावी थी। हमें यह देखकर दुख हुआ कि पुष्टि आदेश भारत सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा इस तरह के लापरवाह तरीके से पारित किए जाने चाहिए, वह भी इस तरह के एक महत्वपूर्ण मामले में। ***हालाँकि, ये कमियाँ या अपर्याप्तताएँ, हमारे विचार में, साक्ष्य में अवरोधन टेलीफोन संचार की स्वीकृति को नहीं रोकती हैं।*** *यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पोटा की धारा 45 के प्रावधान के विपरीत, दूरसंचार अधिनियम की* ***धारा 5(2) या नियम 419-ए साक्ष्य के किसी भी नियम से संबंधित नहीं है। दूरसंचार अधिनियम के प्रावधानों का गैर-अनुपालन या अपर्याप्त अनुपालन अपने आप में स्वीकार्यता को प्रभावित नहीं करता है।*** *अवैध रूप से एकत्रित या प्राप्त की गई टेप-रिकॉर्डेड बातचीत की स्वीकार्यता के प्रश्न के बारे में कानूनी स्थिति अब आर.एम. मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 1 एससीसी 471 में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर अनिर्णित विषय (रेस इंटीग्रा) नहीं है। उस मामले में, न्यायालय ने स्पष्ट किया कि किसी प्रासंगिक बातचीत का समसामयिक टेप रिकॉर्ड एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 7 के तहत किये गए कार्य (रेस गेस्टे) के रूप में स्वीकार्य है। इस तर्क पर विचार करते हुए कि दूरसंचार अधिनियम, 1885 की धारा 25 का उल्लंघन किया गया था, विद्वान न्यायाधीशों ने माना कि कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। उसी समय, अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की स्वीकार्यता के प्रश्न पर चर्चा की गई। कानून इस प्रकार निर्धारित किया गया था: (एससीसी पृष्ठ 477, पैरा 24)*

"***यह प्रस्ताव समर्थित है कि भले ही साक्ष्य अवैध रूप से प्राप्त किया गया हो, यह स्वीकार्य है।*** *एक शताब्दी से भी अधिक समय पहले एक अंग्रेजी मामले में कहा गया था जहां एक आरक्षी ने अपीलकर्ता की अवैध रूप से तलाशी ली और उसकी जेब से कुछ आपत्तिजनक सामग्री मिली थी कि अगर इसे आयोजित किया गया तो यह न्याय प्रशासन के लिए एक खतरनाक बाधा होगी, क्योंकि साक्ष्य अवैध तरीकों से प्राप्त किया गया था, इसका इस्तेमाल किसी ऐसे पक्ष के खिलाफ नहीं किया जा सकता है जिस पर अपराध का आरोप है। जोन्स बनाम ओवेन्स [(1870) 34 जे.पी. 759] देखें। कुरुमा बनाम आर [(1955) 1ऑल ई.आर. 236 : 1955 एसी 197: (1955) 2 डब्लू.एल.आर. 223 (पी.सी.)] में न्यायिक समिति ने एक अभियुक्त की दोषसिद्धि से निपटा,जिसके पास गोला-बारूद अवैध रूप से था, जो उस व्यक्ति की तलाशी के परिणामस्वरूप पाया गया था, जो उन लोगों के पद से नीचे था जिन्हें ऐसी तलाशी लेने की अनुमति थी। कारण यह दिया गया कि यदि साक्ष्य स्वीकार्य है तो यह मायने नहीं रखता कि इसे कैसे प्राप्त किया गया। बेशक हमेशा सावधानी बरतने की बात होती है। यह है कि न्यायाधीश के पास आपराधिक मामले में साक्ष्य को अस्वीकार करने का विवेकाधिकार है यदि स्वीकार्यता के सख्त नियम अभियुक्त के खिलाफ अनुचित तरीके से काम करते हैं। यह*

सावधानी आपराधिक न्यायशास्त्र में सुनहरा नियम है।"

155. *हम इस न्यायालय की संविधान पीठ के पूरन मल बनाम निरीक्षण निदेशक (जांच), (1974) 1 एस.सी.सी. 345 के निर्णय का भी संदर्भ दे सकते हैं, जिसमें कुरुमा के वाद , (1955) 1 ऑल ई.आर. 236 में प्रिवी काउंसिल द्वारा बताए गए सिद्धांत को अवैध रूप से प्राप्त साक्ष्य की साक्ष्य स्थिति का परीक्षण करते समय अनुमोदनपूर्वक संदर्भित किया गया था। एक अन्य निर्णय जिसमें समान दृष्टिकोण अपनाया गया था, वह राज्य बनाम एन.एम.टी. जॉय इमैकुलेट, (2004) 5 एस.सी.सी. 729 में हाल ही का फैसला है। यह उल्लेख किया जा सकता है कि पूरन मल मामले को इस न्यायालय ने अली मुस्तफा अब्दुल रहमान मूसा बनाम केरल राज्य, (1994) 6 एस.सी.सी. 569 में अलग किया था, जो कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत इस आधार पर उत्पन्न होने वाला मामला है कि वर्तमान मामले में, टेप-रिकॉर्ड की गई बातचीत जो विधिवत साबित हो चुकी है और राम सिंह बनाम कर्नल राम सिंह, 1985 एसयूपीपी. एस.सी.सी. 611 में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं के अनुरूप है, को संबंधित अभियुक्तों के खिलाफ दंड संहिता के साथ-साथ पोटा के तहत अपराधों के लिए संयुक्त मुकदमे में इस्तेमाल किया जा सकता है। धारा 45 में निहित प्रतिबंध को लागू करके ऐसे साक्ष्य को बंद नहीं किया जा सकता है, जब अवरोधन की तिथि पर, पोटा के अध्याय V के तहत प्रक्रिया का अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं थी। प्रासंगिक तिथि पर पोटा तस्वीर में नहीं था और जांच विशेष रूप से पोटा के तहत अपराधों से संबंधित नहीं थी। इसलिए, पोटा की धारा 45 में प्रावधान को लागू करने का सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि प्रावधान केवल उस स्थिति में लागू होता है जब संचार को पोटा के प्रावधानों के तहत कानूनी रूप से अवरोधन किया जाना आवश्यक हो। धारा 45 के प्रावधान को इस तरह से नहीं पढ़ा जा सकता है कि पोटा अपराधों के संबंध में ऐसी सामग्री को बाहर रखा जाए, अगर यह साक्ष्य के सामान्य कानून के तहत अन्यथा स्वीकार्य है।*

25. कानून स्पष्ट है कि किसी भी साक्ष्य को न्यायालय द्वारा इस आधार पर स्वीकार करने से इनकार नहीं किया जा सकता कि उसे अवैध रूप से प्राप्त किया गया है। **संजय पांडे बनाम प्रवर्तन निदेशालय**, 2022 एससीसी ऑनलाइन डेल 4299 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले और **रायला एम. भुवनेश्वरी बनाम नागफनेंद्र रायला,** ए.आई.आर. 2008 एपी 98 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपर्युक्त कानून को ध्यान में नहीं रखा गया है और इसलिए, वे पर-इनक्युरियम निर्णय हैं और वे बाध्यकारी मिसाल नहीं हैं।

26. इसलिए, चाहे दोनों अभियुक्तों के बीच टेलीफोन पर हुई बातचीत को रोका गया हो या नहीं और यह कानूनी रूप से किया गया हो या नहीं, इससे आवेदक के खिलाफ साक्ष्य में रिकॉर्ड की गई बातचीत की स्वीकार्यता प्रभावित नहीं होगी।

27. इसके अलावा, डिजिटल ध्वनि अभिलेख में दर्ज टेलीफोन पर बातचीत ही अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किया जाने वाला एकमात्र साक्ष्य नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष परीक्षण के दौरान अन्य साक्ष्य भी प्रस्तुत करने का प्रस्ताव रखता है।

28. **गायत्री प्रसाद प्रजापति बनाम प्रवर्तन निदेशालय** 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 376 में, इस न्यायालय ने माना कि: -

"धारा 227 के तहत अभियुक्तों को बरी करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय और धारा 228 के तहत आरोप तय करते समय न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के बारे में कानून यह है कि धारा 227 के तहत अभियुक्तों को बरी करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद एक निश्चित राय बनानी होती है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। हालांकि,आरोप तय करते समय न्यायालय को यह निश्चित राय बनाने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। मामले की सच्चाई तब सामने आएगी जब मुकदमे के दौरान साक्ष्य पेश किए जाएंगे। एक बार जब धारा के तथ्य और तत्व मौजूद हो जाते हैं, तो न्यायालय यह मान लेगा कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने और तदनुसार आरोप तय करने का आधार है और न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह नहीं करेगा।"

29. वर्तमान मामले में, ऐसी कोई सामग्री या आधार मौजूद नहीं है जिससे न्यायालय यह निश्चित राय बना सके कि आवेदक के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है। इसलिए, मुझे संशोधनकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन आवेदन को खारिज करने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखती।

30. पुनरीक्षण में कोई आधार नहीं है,अतः उसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 171

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

द्वितीय अपील संख्या 1555 वर्ष 1983

पदम प्रकाश गुप्ता ...अपीलार्थी

बनाम

छोटे लाल ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री एम.पी. बाजपेयी, श्री ए.के. राय, श्री अमित शर्मा, श्री पी.एन. सक्सेना, श्री पी.एन. सक्सेना, श्री पद्माकर पांडे, श्री सुरेश चंद्र वर्मा, श्री वी.के. सिंह, श्री विष्णु कुमार सिंह

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:

श्री आर.सी. शुक्ला, श्री लालजी सिन्हा, श्री पंकज भाटिया, श्री पंकज भाटिया, श्री आर.के. मिश्रा

(ए) सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - द्वितीय अपील -वादी-प्रतिवादी द्वारा दायर मूल वाद - अपने ही भाई के विरुद्ध - वादपत्र में आरोप - वादी-प्रतिवादी और प्रतिवादी सगे भाई - संयुक्त रूप से भूखंड खरीदने का प्रस्ताव - वादी ने मालिक के साथ विक्रय के लिए बातचीत की - 20,000 रुपये के प्रतिफल पर संबंधित भूखंड बेचने पर सहमति - वादी और मालिक के बीच विक्रय के लिए समझौता भी किया गया - वादी-प्रतिवादी ने समय-समय पर भुगतान किया - राशि की रसीदें प्राप्त कीं - जो प्रस्तावित विक्रेता को भुगतान की गईं - रसीदों का वाद में उल्लेख है - वादी ने सारा पैसा चुका दिया था - विक्रय विलेख निष्पादित होने से पहले भुगतान किया गया - 24.61972 को रुपये 4,000/- का भुगतान प्रतिवादी/अपीलार्थी द्वारा किसी भी तरह से अस्वीकार नहीं किया गया - प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पाया कि ये रसीदें मौजूद थीं - भुगतान पर अविश्वास करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारण को प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पूरी तरह से अविश्वास किया - प्रतिवादी ने अपने लिखित अभिकथन में किए गए भुगतान का उल्लेख नहीं किया - वाद दायर करने से पहले उनके नोटिस का जवाब दिया। **(प्रस्तर - 2,3,17)**

अभिनिर्धारित हुआ:- वादी ने वादपत्र में लगाए गए आरोपों को पूरी तरह सिद्ध कर दिया। प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष अकाट्य हैं। प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों के कारण विधि के किसी सारवान प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक नहीं है। द्वितीय अपील तथ्यों के निष्कर्षों के आधार पर समाप्त होती है। **(प्रस्तर-17,18)**

द्वितीय अपील खारिज कर दी गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. बंस नारायण बनाम चंद्राणी कुएर, 1944 0 एआईआर इलाहाबाद 130

2. पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम आंध्रप्रदेश राज्य, जेटी 1992 (4) 454

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. प्रतिवादी द्वारा 1981 की सिविल अपील संख्या 477 में पारित प्रथम अपीलीय न्यायालय के दिनांक 18.3.1983 के फैसले को रद्द करने के लिए वर्तमान द्वितीय अपील दायर की गई है।

2. वादी-प्रतिवादी छोटेलाल गुप्ता ने अपने ही भाई श्री पदम प्रकाश गुप्ता के खिलाफ मूल वाद संख्या 249 वर्ष 1978 दायर किया था। वादपत्र में आरोप लगाया गया था कि वादी-प्रतिवादी और प्रतिवादी सगे भाई थे और उनमें एक-दूसरे के लिए बहुत स्नेह था। दोनों ने मिलकर प्लॉट नं. 290 ब्लॉक - के स्कीम-II, किदवई नगर, को संयुक्त रूप से खरीदने का प्रस्ताव रखा। वादपत्र में यह भी आरोप लगाया गया है कि वादी ने मालकिन श्रीमती अहमदी

बेगम के साथ बिक्री के लिए बातचीत की, जो 20,000/- रुपये के बदले विचाराधीन प्लॉट को बेचने के लिए सहमत हो गई थीं और इस उद्देश्य के लिए, 15/17 जून 1971 को वादी और श्रीमती अहमदी बेगम के बीच एक विक्रय पत्र भी निष्पादित किया गया था।

3. वादी-प्रतिवादी का आगे का मामला यह था कि वादी-प्रतिवादी ने समय-समय पर 11,000/- रुपये का भुगतान किया था और प्रस्तावित विक्रेता को भुगतान की गई राशि की रसीदें प्राप्त की थीं। वादी के आरोपों के अनुसार, 17.6.1971 को 1,000 / 14.7.1971 को 4,000/-; दिनांक 24.10.1971 को रु. 300/-; दिनांक 3.6.1972 को 200/- रूपये तथा दिनांक 14.6.1972 को 5,500/- रूपये का भुगतान किया गया।

4. वादी-प्रतिवादी का यह भी तर्क था कि वादी-प्रतिवादी की आर्थिक स्थिति को देखते हुए, प्रतिवादी, जो कि उसका भाई है, ने यह निष्कर्ष निकाला कि भूखंड पर निर्माण करना मुश्किल होगा, जब तक कि प्रतिवादी, जो एक सरकारी कर्मचारी था, ऋण के लिए आवेदन नहीं करता, इसलिए, विक्रय विलेख (बैनामा) 24.6.1972 को प्रतिवादी के नाम पर निष्पादित किया गया था। वादी-प्रतिवादी ने आगे कहा था कि उसने विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि पर विक्रेता को ₹4,000/- की राशि का पुनः भुगतान किया था। यह राशि शेष प्रतिफल की थी जिसका भुगतान किया जाना था। इसलिए वादपत्र का आरोप है कि विक्रय विलेख प्रतिवादी के नाम पर, बेनामी में निष्पादित किया गया था।

5. यहाँ दिए गए मामले में, प्रतिवादी याचिकाकर्ता ने एक लिखित बयान दायर किया और हालांकि उसने वादी-प्रतिवादी के साथ अपने संबंध को स्वीकार किया, उसने वाद पत्र के अन्य आरोपों से इनकार किया। उसने कहा था कि वादी ने पहले श्रीमती अहमदी बेगम के साथ एक समझौता किया था, लेकिन जब वह भुगतान नहीं कर सका तो प्रतिवादी श्रीमती अहमदी बेगम से संपत्ति खरीदने के लिए सहमत हो गया था। उसने आगे दावा किया कि उसने बिक्री विलेख के निष्पादन से पहले 12.6.1972 को श्रीमती अहमदी बेगम को 6,000 रुपये का भुगतान किया था और उसने बिक्री विलेख के निष्पादन के समय 9,000 रुपये का भुगतान किया था और इसलिए, उसने दावा किया कि वह विचाराधीन भूखंड का एकमात्र मालिक था। उसने दावा किया कि वह 15,000 रुपये में जमीन खरीद रहा था जो पहले भाई को 20,000 रुपये में बेची जा रही थी।

ट्रायल कोर्ट ने तीन मुद्दे तैयार किए जो इस प्रकार थे: -

1. क्या वादी किदवई नगर के ब्लॉक के, स्कीम II में स्थित विवादित प्लॉट नंबर 290 का सह-मालिक है, जैसा कि वादी में आरोप लगाया गया है?

2. क्या प्रतिवादी विवादित भूखंड का अनन्य मालिक है जैसा कि लिखित बयान में तर्क दिया गया है।

3. वादी किस राहत का हकदार है, यदि कोई हो?

6. विषय संख्या 1 और 2 के संबंध में, परीक्षण न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी ब्लॉक के, योजना II, किदवई नगर में स्थित प्लॉट नं. 290 का वास्तविक मालिक था, और उसने वादी के खिलाफ और प्रतिवादी के पक्ष में मुद्दों का फैसला सुनाया। दिए गए निष्कर्ष के मद्देनजर, वाद को 28.4.1981 को खारिज कर दिया गया।

7. वादी ने अपील दायर की जिसे सिविल अपील संख्या 477 of 1981 के रूप में क्रमांकित किया गया था। अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य की नए सिरे से जांच की और निष्कर्ष निकाला कि वादी का दावा सही है, इसलिए अपील को स्वीकार कर लिया और वाद को स्वीकृत कर दिया। वाद को स्वीकार करते समय उसने यह निर्धारण किया कि क्या वादी विवादित भूखंड का सह-स्वामी है या नहीं। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विभिन्न दस्तावेजी साक्ष्यों और अभिलेख में मौजूद मौखिक साक्ष्यों का भी उल्लेख किया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रदर्श -1 को देखने के बाद जो कि श्रीमती अहमदी बेगम और वादी के बीच किया गया बिक्री का समझौता था, पाया कि समझौता था और यह आगे दिखाता है कि अग्रिम में 5,000 रुपये का भुगतान किया गया था, जिसमें से 17.6.1971 को विलेख के निष्पादन के समय ही श्रीमती अहमदी बेगम को 1,000 रुपये का भुगतान किया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने आगे प्रदर्श-11 पर भरोसा किया जो 4,000 रुपये की रसीद थी और निष्कर्ष निकाला कि 4.7.1971 को श्रीमती अहमदी बेगम को फिर से 4,000 रुपये का भुगतान किया गया था। यह रसीद स्वयं समझौता विलेख के पीछे थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रदर्श - 4 पर भरोसा करते हुए, जो कि दिनांक 24.10.1971 का श्रीमती अहमदी बेगम द्वारा वादी को लिखा गया पत्र है, माना कि, वास्तव में, वादी द्वारा श्रीमती अहमदी बेगम को 300 रुपये का अधिक भुगतान किया गया था। प्रदर्श - 8 का उल्लेख करते हुए, अपीलीय न्यायालय ने पाया कि विक्रेता श्रीमती अहमदी बेगम ने 3.6.1972 को नगर पालिका से अनुमति प्राप्त करने के लिए समय मांगा था और उन्होंने वादी से भी छोटे खर्चों को पूरा करने के लिए 200 रुपये देने का अनुरोध किया था और उस पत्र द्वारा उन्होंने बिक्री मूल्य में उस राशि को समायोजित करने की इच्छा भी व्यक्त की थी। वास्तव में, 3.6.1972 को प्रदर्श - 9 के अनुसार, श्रीमती अहमदी बेगम ने वादी के पक्ष में एक रसीद भी निष्पादित की थी। प्रदर्श - 10 का उपयोग प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने के लिए किया था कि 13.6.1972 को विक्रेता ने वादी को उससे 5,500 रुपये का अग्रिम भुगतान करने के लिए कहा था। प्रदर्श - 11 उनके द्वारा 5,500 रुपये प्राप्त होने पर जारी की गई रसीद थी। इसके बाद, बिक्री विलेख 24.6.1972 को निष्पादित किया गया था, यानी वादी द्वारा श्रीमती अहमदी बेगम को 5,500 रुपये के भुगतान के 10 दिन बाद।

8. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी- पीडब्लू -1 और पीडब्लू 2 श्री रूप नारायण बाजपेयी के बयानों पर भी भरोसा किया कि भूखंड दोनों

भाइयों द्वारा खरीदा गया था और वादी ने भूखंड की खरीद के लिए 15,000/- रुपये का भुगतान किया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी और प्रतिवादी द्वारा दायर दस्तावेजी साक्ष्य को देखने के बाद निष्कर्ष निकाला कि वादी और श्रीमती अहमदी बेगम के बीच भूखंड की बिक्री के लिए समझौता किया गया था। रसीदों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वादी समय-समय पर बिक्री विलेख को निष्पादित करने के उद्देश्य से धन का निवेश कर रहा था और चूंकि रसीदों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता था, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया था कि बिक्री निष्पादित होने से पहले वादी द्वारा श्रीमती अहमदी बेगम को 11,000 रुपये का भुगतान किया गया था।

9. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी के बयान पर अविश्वास किया जिसमें कहा गया था कि वादी भूखंड खरीदने के लिए पर्याप्त संसाधन जुटाने में सक्षम नहीं था और इसलिए, उसने श्रीमती अहमदी बेगम के साथ बिक्री पर बातचीत करने के लिए उसे सन्देश भेजे थे। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पाया कि 14.6.1972 को 5,500 रुपये का भुगतान किया गया था और यदि वादी लेनदेन के साथ आगे बढ़ने में असमर्थ था तो प्रतिवादी को धन एकत्र करने और लेनदेन में प्रवेश करने में कुछ समय लगेगा। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी के इस कथन पर भी अविश्वास किया कि उसने बिक्री की तारीख से पहले श्रीमती अहमदी बेगम को 6,000 रुपये का भुगतान किया था और यह राशि उसकी पत्नी द्वारा हरदोई में अपनी मां से लेने के बाद लाई गई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी के इस कथन पर विश्वास करने से इनकार कर दिया क्योंकि 14.6.1972 को 5,500/- रुपये की रसीद वादी के पक्ष में थी और यदि प्रतिवादी की पत्नी श्रीमती अहमदी बेगम को भुगतान करने के लिए वह राशि लाई होती तो वह वादी के पक्ष में रसीद के निष्पादन से नाराज होती (प्रदर्श-12)। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी की पत्नी द्वारा 5,500/- रुपये के भुगतान पर भी अविश्वास किया क्योंकि यह तथ्य बिक्री विलेख में भी उल्लिखित नहीं था।

10. इसके अलावा, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी के बयान पर यह कहते हुए अविश्वास किया कि उसने अपनी पत्नी के माध्यम से 6,000 रुपये का भुगतान किया था क्योंकि जब वादी ने मुकदमा दायर करने से पहले प्रतिवादी को एक नोटिस भेजा था और जब प्रतिवादी ने 5.8.1977 को इसका जवाब दिया था, तो उसने अपनी पत्नी द्वारा श्रीमती अहमदी बेगम को 6,000 रुपये देने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया था। नोटिस के जवाब में हालांकि आरोप यह था कि दोनों भाइयों के बीच संबंध तनावपूर्ण थे, इस तथ्य के बारे में कोई उल्लेख नहीं था कि प्रतिवादी की पत्नी ने श्रीमती अहमदी बेगम को 6,000 रुपये का भुगतान किया था।

11. ट्रायल के समाप्त करने का एक अन्य कारण यह है कि छोटेलाल के हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक के खाते के विवरण से पता चलता है कि वादी ने पैसे का भुगतान नहीं किया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और इस तथ्य का

निष्कर्ष दिया कि जिस बैंक खाते पर ट्रायल कोर्ट ने भरोसा किया था, वह वादी से अलग किसी अन्य छोटेलाल का था और इसलिए उस छोटेलाल के बैंक खाते पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी की सास श्रीमती फूलमती देवी के बयान पर भी अविश्वास किया। इसने पीडब्ल्यूडी के ठेकेदार डीडब्ल्यू -5 के बयान पर भी अविश्वास किया, जिसने कहा था कि उसने प्रतिवादी को 5,000 रुपये उधार दिए थे और इसलिए प्रथम अपीलीय अदालत ने यह पता लगाने पर कि निश्चित रूप से वादी द्वारा बड़ी राशि का भुगतान किया गया था, निष्कर्ष निकाला कि वादी ने बिक्री के विचार के लिए भी योगदान दिया था और वाद की डिक्री की और वादी को विवादित भूखंड का सह-मालिक घोषित किया। जब द्वितीय अपील दायर की गई थी, तो इस न्यायालय ने कानून का एक प्रश्न तैयार किया था जिसका आशय निम्नलिखित था:

"इस मामले में शामिल कानून का मूल प्रश्न यह है कि क्या निचली अपीलीय अदालत का यह निष्कर्ष, कि वादी वाद भूमि के हिस्से का सह-स्वामी है, हालांकि इसे केवल प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के नाम पर खरीदा गया था, क्या यह कानूनी रूप से अमान्य है।"

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एससी वर्मा ने, श्री पद्माकर पांडे की सहायता से, तर्क दिया कि एक लेनदेन आंशिक रूप से बेनामी और आंशिक रूप से वास्तविक नहीं हो सकता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि प्रथम अपीलीय अदालत ने **1944 0 एआईआर इलाहाबाद 130 (बंस नारायण बनाम चंद्राणी कुएर)** में दिए गए निर्णय की गलत व्याख्या की थी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वादी के ऊपर वाद के आरोपों को सिद्ध करने दायित्व निश्चित रूप से था कि लेनदेन एक बेनामी था और इस संबंध में, उसने **जेटी 1992 (4) 454 (पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम आंध्र प्रदेश राज्य)** में रिपोर्ट किए गए सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले पर भरोसा किया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह संभव नहीं हो सकता था कि वादी और प्रतिवादी इस बात पर सहमत हों कि विवादित भूखंड पर भवन निर्माण के उद्देश्य से भूखंड को प्रतिवादी के नाम से खरीदा जाएगा। वह प्रस्तुत करते है कि प्रतिवादी अभी भी एक अस्थायी कर्मचारी था और एक अस्थायी कर्मचारी को कभी ऋण नहीं मिलता है। प्रतिवादी/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वादी ने अपनी आय के स्रोत का कोई प्रमाण नहीं दिया था।

13. वादी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. मिश्रा ने प्रस्तुत किया कि जो रसीदें दिनांक 17.6.1971 के रिकॉर्ड में 1,000/- रुपये, 4.7.1971 की 4,000/- रुपये, 24.10.1971 की 300/- रुपये, 3.6.1972 की 200/- रुपये और 14.6.1972 की 5,500/- रुपये की थीं, वे निश्चित रूप से रिकॉर्ड में थीं। इन रसीदों को चुनौती नहीं दी गई थी। उन्होंने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि किसी भी रसीद से इनकार नहीं किया गया था और श्रीमती अहमदी बेगम की रसीदों के हस्ताक्षर से भी इनकार नहीं किया गया था।

14. वादी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि ऋण के लिए आवेदन तब किया गया था जब प्रतिवादी स्थायी कर्मचारी बन चुके थे, और इसलिए, वादी ने जो मामला उठाया था कि प्रतिवादी का नाम बिक्री विलेख पर केवल ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से था, उसे विश्वसनीयता मिलती है।

15. वादी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी ने यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था कि उसने विक्रय प्रतिफल में योगदान दिया था। वह प्रस्तुत करते हैं कि प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह निष्कर्ष कि पत्नी द्वारा कुछ धन लाने की कहानी अविश्वसनीय थी, एक तथ्यात्मक निष्कर्ष था जिसे इस न्यायालय द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता। वह प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष को अविश्वसनीय मानने के लिए दिए गए कारणों को भी दोहराते हैं और उन्होंने इस तथ्य पर बहुत बल दिया कि जब प्रतिवादी ने वाद दायर करने से पहले वादी द्वारा दिए गए नोटिस का उत्तर दिया था, तो उसने रुपये 6,000/- के भुगतान का उल्लेख नहीं किया था, जो कथित तौर पर उसकी सास द्वारा उधार दिया गया था।

16. प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और वादी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, इस न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि उसकी द्वितीय अपील में योग्यता का अभाव है और वह खारिज किए जाने योग्य है।

17. वादी ने वादी के आरोप को पूरी तरह से साबित कर दिया है। रसीदें जिनका उल्लेख वाद में मिलता है; वादी ने 17.6.1971, 4.7.1971, 24.10.1971, 3.6.1972 और 14.6.1972 को कुल 11,000/- रुपये का भुगतान किया था, जो बिक्री विलेख निष्पादित होने से पहले भुगतान किया गया था और 24.6.1972 को 4,000/- रुपये के भुगतान से प्रतिवादी/याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी तरह से इनकार नहीं किया गया है। वास्तव में, प्रथम अपीलीय ने पाया है कि ये रसीदें वहां थीं और ट्रायल कोर्ट द्वारा भुगतान पर अविश्वास करने के लिए दिए गए कारण पर प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पूरी तरह से अस्वीकृत किया गया है। वादी के पक्ष में आगे जो बात कही गई है वह यह है कि प्रतिवादी ने वाद दायर करने से पहले दिनांक 17.6.1977 के अपने नोटिस का जवाब देते हुए प्रतिवादी द्वारा किए गए भुगतान के बारे में उल्लेख नहीं किया था, जैसा कि लिखित बयान में आरोप लगाया गया है, और इसलिए, यह न्यायालय भी इस विचार का है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अकाट्य हैं। वास्तव में, इस न्यायालय द्वारा 3.8.1983 को तैयार किए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों के मद्देनजर देने की आवश्यकता नहीं है।

18. द्वितीय अपील का निपटारा तथ्यों के निष्कर्षों के आधार पर किया जाता है। किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार अपील खारिज की जाती है।

(2023) 8 ILRA 176

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

आदेश से प्रथम अपील संख्या 551 वर्ष 2019

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती सूरज काला एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:
अनिल कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
रवींद्र प्रताप सिंह

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173--चुनौती-इस मामले में, यह पाया गया है कि प्रश्नगत पॉलिसी एक अधिनियम पॉलिसी है-मृतक मालिक का कर्मचारी था-उक्त कर्मचारी ऐसा नहीं था कि वह एक आकस्मिक कर्मचारी था बल्कि एक नियमित चालक था और इसलिए, वह अधिनियम में उल्लिखित धारा 147 (1) परंतुक (ए) के अनुसार आच्छादित किया जाएगा- अधिनियम की धारा 167 के अनुसार किसी पक्ष के पास या तो 1923 के अधिनियम के अंतर्गत दावा आयुक्त के समक्ष या एम.ए.सी.टी. के समक्ष दावा याचिका दायर करने का विकल्प उपलब्ध है-हालांकि, अंतर यह होगा कि यदि कोई पक्ष मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष अपना दावा दायर करना चुनता है और न्यायाधिकरण एक ऐसी राशि प्रदान करता है जो क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के अंतर्गत गणना की गई राशि से अधिक है, तो बीमा कंपनी की देयता केवल उस राशि की सीमा तक होगी जो 1923 के अधिनियम के अनुसार देय है और अतिरिक्त राशि मालिक द्वारा देय होगी।-हालांकि, यदि देयता को आच्छादित करने या बढ़ाने के लिए अतिरिक्त राशि या प्रीमियम का भुगतान किया जाता है, तो संपूर्ण अधिनिर्णय बीमा कंपनी द्वारा देय होगा - वर्तमान मामले में, चूँकि यह एक अधिनियम पॉलिसी थी और न्यायाधिकरण ने भी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के संदर्भ में गणना करते हुए राशि का अधिनिर्णय दिया है, जैसा कि अधिनिर्णय से ही स्पष्ट है। तदनुसार, 3,36,000/- रुपये की यह देयता बीमा कंपनी द्वारा क्षतिपूर्ति योग्य है - इस प्रकार, न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है जिससे इस न्यायालय को किसी अन्य निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए प्रेरित किया जा सके - तदनुसार, अधिनिर्णय की पुष्टि की जाती है। (प्रस्तर 1 से 35)

बी. धारा 147 और उससे जुड़े प्रावधान का वास्तविक तात्पर्य यह है कि अधिनियम पॉलिसी तीसरे पक्ष के जोखिमों को आच्छादित करेगी, लेकिन यह ऐसे व्यक्तियों के संबंध में मृत्यु या शारीरिक चोट से उत्पन्न देयता को भी कवर करेगी, जिन्हें प्रावधान में (ए), (बी), (सी) के रूप में इंगित किया गया है और वह भी कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के अनुसार निर्धारित सीमित सीमा तक। इसलिए,

मृत्यु या शारीरिक चोट के कारण प्रावधान में उल्लिखित और वर्णित ऐसे निर्दिष्ट व्यक्तियों से संबंधित कोई देयता, उनके दावों को केवल उस सीमा तक सीमित किया जा सकता है जो 1923 के क्षतिपूर्ति अधिनियम के अनुसार निर्धारित है, लेकिन जिस क्षण ऐसे व्यक्तियों की श्रेणी के लिए कोई अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान किया जाता है, देयता को बढ़ाया जा सकता है और इसे असीमित बनाया जाएगा। (प्रस्तर 33)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम देवीरेड्डी कोंडा रेड्डी (2003) 2 एससीसी 339: 2003 एससीसी (क्रिमिनल) 540

2. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमबाई पटेल (2005) 6 एससीसी 172: 2005 एससीसी (लेबर एंड सर्विस) 819

3. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम चोलेटी भारतम्मा (2008) 1 एससीसी 423 : (2008) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 224 : (2008) 1 एससीसी (सिविल) 280

4. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम वेदवती (2007) 9 एससीसी 486], (एससीसी पृष्ठ 490

5. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी (2003) 2 एससीसी 223: 2003 एससीसी (क्रिमिनल) 493

6. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी बनाम सतपाल सिंह (2000) 1 एससीसी 237: 2000 एससीसी (क्रिमिनल) 130

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत अपील बीमा कंपनी द्वारा दायर की गई है, जिसमें 2013 के सी.पी. संख्या-646 में पारित दिनांक 10.07.2019 के पंचाट का विरोध किया गया है, जिसके तहत मृत्यु के मामले में, ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने दावेदारों के पक्ष में 7% ब्याज के साथ 3,36,000/ अवॉर्ड किया है।

2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि ट्रिब्यूनल/ प्राधिकरण ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 147 के संदर्भ में, मृतक को आच्छादित नहीं किया गया था क्योंकि विचाराधीन पॉलिसी केवल एक 'अधिनियम नीति' थी और जिसके संदर्भ में केवल तीसरे पक्ष के दावों की क्षतिपूर्ति की जा सकती थी। चूंकि प्रस्तुत मामले में, ड्राइवर को आच्छादित नहीं किया गया था और उसने अपनी लापरवाही से दुर्घटना का कारण बना, इसलिए, थर्ड पक्ष नहीं होने के कारण, इंश्योरेंस कंपनी पंचाट के लिए उत्तरदायी नहीं थी। केवल वाहन के मालिक को ही जिम्मेदार बनाया जा सकता है और इस पहलू पर अधिकरण द्वारा समुचित

रूप से विचार नहीं किया गया है जिसने बीमा कंपनी पर देयता निर्धारित की है।

3. आगे यह आग्रह किया गया है कि ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमबाई पटेल और अन्य ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2337 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को गलत समझा है और बीमा कंपनी के इस तर्क पर विचार किए बिना कि 'एक्ट पॉलिसी' के तहत, यह केवल एक थर्ड पक्ष क्लेम/दावा था जिसे आच्छादित किया जा सकता था न कि ड्राइवर का दावा, इसलिए, पंचाट खराब/त्रुटिपूर्ण है।

4. अपनी प्रस्तुतियों को और विस्तृत करते हुए, यह भी आग्रह किया जाता है कि पॉलिसी में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि ड्राइवर के लिए कोई प्रीमियम नहीं लिया गया था। तदनुसार, बीमा कंपनी की देयता सीमित थी और इसे ऐसे जोखिमों को आच्छादित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता था जो पॉलिसी द्वारा आच्छादित नहीं किए गए थे और इस पहलू की अनदेखी करते हुए, पंचाट दिया गया है, अपीलकर्ता-कंपनी पर देयता को बन्धन, जो कानून के अनुरूप नहीं है, तदनुसार, पंचाट को अपास्त किया जाना चाहिए।

5. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मीना वरियाल और अन्य (2007)5 एस.सी.सी. 428 और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बालकृष्णन और अन्य (2013)1 एस.सी.सी.731 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

6. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री रविन्द्र प्रताप सिंह ने पंचाट का बचाव करते हुए कहा कि प्रस्तुत मामले में मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163-ए के तहत दावा याचिका दायर की गई थी।

7. आगे यह आग्रह किया जाता है कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 किसी व्यक्ति को कामगार मुआवजा अधिनियम, 1923 या मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत दावा याचिका दायर करने के लिए मंच का विकल्प, (लेकिन दोनों को नहीं), चुनने की अनुमति देती है।

8. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्तुत मामले में, दावेदारों ने मोटर वाहन अधिनियम के तहत दावा याचिका दायर करने का विकल्प चुना और चूंकि, मृतक वाहन के मालिक का चालक था और उसे चोटें आईं, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई और मोटर वाहन अधिनियम की धारा 163-ए के तहत याचिका दायर की गई, यह दावेदारों पर लापरवाही साबित करने के लिए अनिवार्य नहीं था और एक बार यह साबित हो गया कि दुर्घटना मोटर वाहन के उपयोग के कारण हुई थी, तो 1988 के अधिनियम की धारा 163-ए के संदर्भ में, दावेदार मुआवजे के हकदार थे।

9. दावेदारों-उत्तरदाताओं के अधिवक्ता द्वारा आगे यह आग्रह किया गया है कि अधिनियम की धारा 147 के संदर्भ में, बीमा कंपनी चालक

को आच्छादित करने के लिए 'अधिनियम नीति' के तहत उत्तरदायी है और प्रस्तुत मामले में, यह विवादित नहीं है कि मृतक एक चालक था, इसलिए, दावेदार मुआवजे के हकदार थे और बीमा कंपनी मोटर वाहनों की धारा 149 के संदर्भ में पंचाट की क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य थी।

10. यह आगे बताया गया है कि मामले के इस पहलू पर प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण द्वारा इस पर सही भरोसा किया गया है और इस तरह यह नहीं कहा जा सकता है कि ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण द्वारा पारित पंचाट गलत है।

11. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मीना वरियाल (उपरोक्त) और बालकृष्णन (उपरोक्त) में अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों का हवाला दिया गया है, उन पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न अन्य निर्णयों में विचार किया गया था, जिसमें गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय शामिल है वलीबेन लक्ष्मणभाई ठाकुर (कोली) और अन्य बनाम कांडला डॉक लेबर बोर्ड और अन्य 2021 ए.सी.जे. 2262 और पूर्वोक्त निर्णय भी स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि यह दायित्व, पंचाट को पूरा करने के लिए बीमा कंपनी का है। इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण द्वारा मुद्दा संख्या-6 सही ढंग से तय किया गया था और पंचाट बीमा कंपनी द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है। तदनुसार, अपील में योग्यता का अभाव है और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।

12. न्यायालय ने पक्षकारों के अधिवक्ता को सुना है और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन भी किया है।

13. पक्षों के लिए अधिवक्ता के संबंधित प्रस्तुतियाँ करने के लिए विज्ञापन करने से पहले, यह प्रस्तुत अपील को जन्म देने घटनाओं पर एक नज़र रखना उचित होगा।

14. दावेदारों-प्रतिवादी संख्या-1 और 2 ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163-ए के तहत एमएसीटी/एडीजे, न्यायमूर्ति संख्या-6, बाराबंकी के समक्ष 2013 के सी.पी. संख्या-646 के रूप में पंजीकृत एक दावा याचिका दायर की।

15. यह दलील दी गई कि मृतक- लव कुश कुमार प्रतिवादी संख्या-3 के साथ ड्राइवर के रूप में काम कर रहा था। दुर्भाग्यपूर्ण दिन अर्थात 28.11.2013 को, वह प्रतिवादी संख्या-3 से संबंधित मिनी ट्रक चला रहा था, जिसका संख्या उ०प्र० 41 टी 9561 था। और लगभग ११.३० बजे, जब वह कोल्डस्टोर, प्रतापगंज थाना-सफदरगंज, जिला बाराबंकी में पहुँचा था, एक ट्रक जो लव कुश द्वारा चलाए जा रहे मिनी ट्रक से आगे बढ़ रहा था, अचानक अपने ब्रेक पटक दिए और परिणामस्वरूप, लव कुश द्वारा चलाया जा रहा मिनी ट्रक धराशायी हो गया और उसका अगला हिस्सा बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया और उक्त दुर्घटना के

कारण, मृतक को चोटें आईं और बाद में उसने दम तोड़ दिया।

16. यह पूर्वोक्त दुर्घटना के संबंध में है कि दावा याचिका दायर की गई थी जिसे मालिक के साथ-साथ बीमा कंपनी दोनों ने चुनौती दी थी। मालिक ने अपना लिखित बयान दर्ज करते हुए स्वीकार किया कि विचाराधीन वाहन एक नया वाहन था जिसका यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के साथ विधिवत बीमा किया गया था। यह भी स्वीकार किया गया कि विचाराधीन ट्रक के पास सभी वैध दस्तावेज थे और उसके चालक लव कुश के पास परिवहन वाहन चलाने के पृष्ठांकन के साथ वैध ड्राइविंग लाइसेंस भी था। विचाराधीन मिनी ट्रक के पास अपेक्षित परमिट, फिटनेस प्रमाण पत्र था और इस तरह, यदि किसी दायित्व का आकलन किया जाता है, तो इसे बीमा कंपनी द्वारा क्षतिपूर्ति की जानी थी।

17. बीमा कंपनी ने दावा याचिका का विरोध करते हुए यह दलील दी कि विचाराधीन पॉलिसी केवल एक 'एक्ट पॉलिसी' थी। चूंकि ड्राइवर को आच्छादित नहीं किया गया था और उपरोक्त उद्देश्य के लिए कोई अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए, केवल तीसरे पक्ष के दावों को आच्छादित किया जा सकता है। चूंकि, ड्राइवर को तीसरे पक्ष के रूप में नहीं माना जा सकता है और वह स्वयं दुर्घटना के लिए जिम्मेदार था, तदनुसार, बीमा कंपनी उत्तरदायी नहीं थी।

18. ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने संबंधित तर्कों पर विचार करते हुए सात मुद्दों को तैयार किया और पक्षों को मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति देने के बाद, इसने अपना निष्कर्ष दर्ज किया और निष्कर्ष निकाला कि लव कुश की मृत्यु ट्रक सं- यूपी 41 टी 9561 चलाते समय दुर्घटना के कारण हुई थी। यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि चालक के पास वैध और निर्वाह लाइसेंस था और ट्रक का बीमा कंपनी के साथ विधिवत बीमा किया गया था। बीमा कंपनी की देयता के मुद्दे से निपटने के दौरान, इसने मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147 पर विचार किया और प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर भरोसा करते हुए, इसने 3,36,000/- रुपये के मुआवजे की गणना की और 10.07.2019 के अपने पंचाट के माध्यम से प्रति वर्ष 7% ब्याज के साथ इसे प्रदान किया।

19. यह पंचाट बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए आधार पर चुनौती के अधीन है और जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है।

20. संबंधित पक्षों के तर्कों की मूल्यांकन किया करने के लिए, पूर्वोक्त विषय पर सर्वोच्च न्यायालय के प्रासंगिक मामलों की सहायता से वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देना सबसे पहले प्रासंगिक होगा।

21. मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय 11 में निहित धारा 145 परिभाषाओं और परिभाषित किए गए कुछ प्रासंगिक शब्दों/शर्तों से संबंधित है, जिन्हें इसके बाद देखा जा रहा है: -

अध्याय XI

तीसरे पक्ष के जोखिमों के खिलाफ मोटर वाहनों का बीमा

"145. परिभाषाएँ--इस अध्याय में, -

(क) .....

(ख) "बीमा का प्रमाण पत्र" का अर्थ है धारा 147 की उप-धारा (3) के अनुसरण में एक अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा जारी प्रमाण पत्र और इसमें ऐसी आवश्यकताओं का अनुपालन करने वाला एक कवरिंग नोट शामिल है जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, और जहां एक से अधिक प्रमाण पत्र जारी किए गए हैं एक पॉलिसी के संबंध में, या जहां एक प्रमाण पत्र की एक प्रति जारी की गई है, वे सभी प्रमाण पत्र या वह प्रतिलिपि, जैसा भी मामला हो;

(ग) "दायित्व", जहां भी किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में उपयोग किया जाता है, धारा 140 के तहत उसके संबंध में देयता शामिल है;

(घ) "बीमा पॉलिसी" में "बीमा का प्रमाण पत्र" शामिल है;

(ङ) .....

(च) .....

(छ) "तीसरे पक्ष" में सरकार भी शामिल है।

22. अधिनियम, 1988 की धारा 146 स्पष्ट रूप से किसी भी व्यक्ति को, यात्री के रूप को छोड़कर, या किसी अन्य व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग करने की अनुमति देने के लिए निषिद्ध करती है, जब तक कि उस व्यक्ति या उस अन्य व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने वाली बीमा पॉलिसी, द्वारा वाहन के उपयोग के संबंध में लागू न हो। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है कि प्रभावी बीमा पॉलिसी के बिना कोई भी वाहन सड़क पर न चलाया जाए।

23. पॉलिसी की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं 1988 के अधिनियम की धारा 147 में निहित हैं, जो प्रस्तुत विवाद के अधिनिर्णय के लिए प्रासंगिक है और इस तरह इसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"147. नीतियों की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं। (1) इस अध्याय की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए, बीमा पॉलिसी एक ऐसी पॉलिसी होनी चाहिए जो-

(ए) एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया जाता है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है; और

(बी) उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों का बीमा करता है -

(i) किसी भी दायित्व के खिलाफ जो उसके द्वारा मृत्यु या शारीरिक रूप से 27 [माल के मालिक या वाहन में ले जाए गए उसके अधिकृत

प्रतिनिधि सहित किसी भी व्यक्ति को चोट] या किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के संबंध में उसके द्वारा किया जा सकता है;

(ii) सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ:

बशर्ते कि एक नीति की आवश्यकता नहीं होगी-

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न दायित्व के अलावा उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में या ऐसे कर्मचारी द्वारा बनाए गए शारीरिक चोट के संबंध में दायित्व को आच्छादित करने के लिए, 1923 (1923 का 8) ऐसे किसी कर्मचारी की मृत्यु, या शारीरिक चोट के संबंध में-

(ए) वाहन चलाने में लगे हुए, या

(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के कंडक्टर के रूप में या वाहन पर टिकटों की जांच में लगा हुआ है, या

(ग) यदि यह माल गाड़ी है, वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करना।

स्पष्टीकरण - संदेह को दूर करने के लिए, यह एतद्द्वारा घोषित किया जाता है कि किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न हुआ माना जाएगा, इस बात के बावजूद कि वह व्यक्ति जो मृत या घायल है या जो संपत्ति क्षतिग्रस्त है, उस समय सार्वजनिक स्थान पर नहीं थी, यदि वह कार्य या चूक जिसके कारण दुर्घटना हुई, सार्वजनिक स्थान पर हुई।

(2) उप-धारा (1) के परंतुक के अधीन, उप-धारा (1) में निर्दिष्ट बीमा की पॉलिसी, किसी भी दुर्घटना के संबंध में किए गए किसी भी दायित्व को निम्नलिखित सीमाओं तक आच्छादित करेगी, अर्थात्: -

(ए) खंड (बी) में प्रदान किए गए के रूप में छोड़कर, दायित्व की राशि;

(ख) किसी तृतीय पक्ष की किसी संपत्ति को क्षति के संबंध में, छह हजार रुपए की सीमा: परन्तु इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पहले

किसी सीमित दायित्व और प्रवृत्त के साथ जारी बीमा की कोई पालिसी, ऐसे प्रारंभ के पश्चात् चार मास की अवधि के लिए या ऐसी पालिसी की समाप्ति की तारीख तक, जो भी पहले हो, प्रभावी बनी रहेगी।

(3) इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए एक पॉलिसी तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति के पक्ष में जारी नहीं किया जाता है जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावित होती है, निर्धारित प्रपत्र में बीमा का प्रमाण पत्र और किसी भी शर्त के निर्धारित विवरण शामिल होते हैं जिसके अधीन पॉलिसी जारी की जाती है और किसी भी अन्य निर्धारित मामलों की; और विभिन्न मामलों में विभिन्न रूपों, विवरणों और मामलों को निर्धारित किया जा सकता है।

(4) जहां इस अध्याय या उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन बीमाकर्ता द्वारा जारी की गई आच्छादित नोट का विहित समय के भीतर बीमा पॉलिसी द्वारा पालन नहीं किया जाता है, वहां बीमाकर्ता, आच्छादित नोट की वैधता की अवधि की समाप्ति के सात दिनों के भीतर, उस रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी को इस तथ्य की सूचना देगा जिसके अभिलेखों में वह वाहन जिससे आच्छादित नोट संबंधित है, रजिस्ट्रीकृत किया गया है या ऐसे अन्य प्राधिकरण जो राज्य सरकार निर्धारित कर सकती है।

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन बीमा पॉलिसी जारी करने वाला बीमाकर्ता पॉलिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को किसी ऐसे दायित्व के संबंध में क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे पॉलिसी उस व्यक्ति या व्यक्तियों के उन वर्गों के मामले में आच्छादित करने का अभिप्राय रखती है।

(नोट: पूर्वोक्त प्रावधान में रेखांकित इस न्यायालय द्वारा कुछ पहलुओं पर जोर देने के लिए किया गया है जिन्हें इस निर्णय में निपटाया जाएगा।

24. धारा 149 बीमाकर्ता पर यह कर्तव्य डालती है कि वह तीसरे पक्ष के जोखिमों के संबंध में बीमित व्यक्तियों के खिलाफ निर्णय और पंचाट को पूरा करे। उपर्युक्त धाराओं के अवलोकन से यह पता चलता है कि प्रत्येक वाहन मालिक के लिए यह अनिवार्य है कि वह सड़क पर वाहन चलाने से पहले उसका बीमा करवाए।

25. धारा 147 स्पष्ट रूप से बीमा पॉलिसी की न्यूनतम आवश्यकताओं को प्रदान करती है। अधिकृत बीमाकर्ता द्वारा जारी की जाने वाली

पॉलिसी को न्यूनतम मानकों का पालन करना चाहिए जिसे 'एक्ट पॉलिसी' कहा जाता है। हालांकि, चूंकि बीमा का अनुबंध किसी भी अन्य अनुबंध की तरह है, इसलिए पक्षगण उच्च प्रीमियम का भुगतान करने और सीमा बढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं। यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है, यह हमेशा एक पक्ष के लिए उच्च प्रीमियम का भुगतान करने और विभिन्न अन्य जोखिमों को आच्छादित करने के लिए खुला है। आम तौर पर, जब विभिन्न अन्य जोखिमों को आच्छादित किया जाता है और देयता बीमा कंपनी की असीमित होती है, तो ऐसी नीतियों को 'व्यापक' या 'पैकेज पॉलिसी' कहा जाता है।

26. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत मामले में जो विवाद उभरता है वह यह है कि क्या 'अधिनियम नीति' चालक को आच्छादित करेगी या नहीं? यह इस संदर्भ में है कि अधिनियम की धारा 147 महत्व रखती है और उक्त प्रावधान को बेहतर ढंग से समझने के लिए, न्यायालय ने प्रावधान और स्पष्टीकरण को रेखांकित किया है जो उक्त धारा में जोड़ा गया है।

27. इस स्तर पर, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा और मीना वरियाल (उपरोक्त) में, 1988 के अधिनियम की धारा 166 के तहत एक दावा याचिका को दायर की दी गई थी और मृतक की कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी और वह उक्त कार में सवार था। कार का चालक महमूद हसन चला रहा था। कार का इस्तेमाल अपने कर्मचारी के लाभ के लिए किया जा रहा था। बीमा कंपनी का पक्ष यह था कि चूंकि मृतक खुद वाहन चला रहा था, इसलिए वह अपनी लापरवाही के कारण किसी भी दावे का हकदार नहीं था। ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने 7,20,000/- रुपये की राशि का आदेश दिया था और कहा था कि चूंकि वाहन मृतक द्वारा स्वयं चलाया जा रहा था और वह कार के मालिक का कर्मचारी था और बीमा ऐसे कर्मचारी को आच्छादित नहीं करता था, इसलिए उसे राशि का भुगतान करने के लिए कहा गया था। दावेदारों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की है जहां उच्च न्यायालय ने बीमा कंपनी को अधिकरण द्वारा दी गई राशि का भुगतान करने का निदेश दिया है और बीमा कंपनी के लिए मालिक से उपर्युक्त राशि की वसूली करने के लिए इसे खुला छोड़ दिया है। यह मामला सर्वोच्च न्यायालय तक गया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों पर विचार करते हुए पाया कि ऐसा कोई पता नहीं चला कि मालिक का एक अन्य कर्मचारी महमूद हसन वाहन चला रहा था। इसने आगे कहा कि पीड़ित उस कंपनी का क्षेत्रीय प्रबंधक था जिसके पास कार थी और चूंकि वह कंपनी द्वारा अपने स्वयं के उपयोग के लिए दी गई कार का उपयोग कर रहा था, इसलिए, विचाराधीन बीमा पॉलिसी जिसमें कामगार मुआवजा अधिनियम के तहत पंचाट को पूरा करने सहित कोई विशेष जोखिम शामिल नहीं था, इसलिए, बीमा कंपनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया गया था। पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ तैयार संदर्भ के लिए इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं: -

"13. जैसा कि हम अधिनियम की धारा 147(1) को समझते हैं, इसके तहत एक बीमा पॉलिसी को पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी के रोजगार के दौरान मृत्यु या चोट के संबंध में देयता को आच्छादित करने की आवश्यकता नहीं है, जब तक कि यह कामगार मुआवजा अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता न हो; एक चालक, कंडक्टर के संबंध में, एक सार्वजनिक सेवा वाहन के मामले में, और माल के मालिक या उसके प्रतिनिधि के रूप में वाहन में ले जाया गया, यदि यह एक माल वाहन है; यह प्रावधान किया गया है कि पॉलिसी को किसी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करने की भी आवश्यकता नहीं होगी। अधिकारियों से प्रभावित हुए बिना, हमें इस प्रावधान को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है, क्योंकि यह प्रावधान है कि पॉलिसी को किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होने वाले किसी तीसरे पक्ष के प्रति किसी भी दायित्व के खिलाफ और सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ बीमा करना चाहिए। परंतुक स्पष्ट करता है कि पॉलिसी को बीमित व्यक्ति के किसी कर्मचारी को उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट या मृत्यु के संबंध में आच्छादित करने की आवश्यकता नहीं होगी। तत्पश्चात्, इस आशय के अंतिम पूर्वगामी को एक अपवाद प्रदान किया जाता है कि पॉलिसी में कामगार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अंतर्गत किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु अथवा शारीरिक क्षति के संबंध में उद्भूत देयता को शामिल किया जाना चाहिए जो वाहन चलाने में लगा हुआ है या जो लोक सेवा वाहन में कंडक्टर के रूप में कार्य करता है या कोई कर्मचारी जो, यदि माल ढोना है, माल ढोने वाले नियोक्ता के वाहन में यात्रा करता है। धारा 149(1), जो एक पंचाट को संतुष्ट करने के लिए एक बीमाकर्ता पर एक दायित्व डालती है, केवल ऐसी देयता के संबंध में पंचाट की बात करती है जिसे धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किया जाना आवश्यक है (पॉलिसी की शर्तों द्वारा आच्छादित किया गया दायित्व होने के नाते), इसलिए, यदि यह अधिनियम की धारा 147 के संदर्भ में मौजूद नहीं है, इस प्रावधान का उपयोग दायित्व को बढ़ाने के लिए नहीं किया जा सकता है।

14. इस प्रकार अधिनियम के अध्याय XI के तहत बीमा पर जोर देने का उद्देश्य अनिवार्य रूप से उनके व्यक्ति या तीसरे पक्ष की संपत्तियों से संबंधित देयता को आच्छादित करना प्रतीत होता है और बीमित नियोक्ता के

कर्मचारियों के संबंध में, चालक के संबंध में कर्मकार मुआवजा अधिनियम, 1923 के तहत उत्पन्न होने वाली देयता, कंडक्टर और माल ले जाने वाले माल वाहन में ले जाने वाला; धारा 147 की इस सादे समझ पर, हमें यह धारण करना मुश्किल लगता है कि बीमा कंपनी, इस मामले में, मालिक, नियोक्ता कंपनी, अपने कर्मचारियों में से एक की मृत्यु के संबंध में, जो दावे के अनुसार, चालक नहीं था, बीमाधारक को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी थी। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि दायित्व कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के तहत उत्पन्न नहीं होता है और दावेदार द्वारा सामने रखे गए मामले पर यह संदिग्ध है कि क्या मृतक को कामगार मुआवजा अधिनियम, 1923 के भीतर आने वाले कामगार के रूप में समझा जा सकता है। इसलिए, अधिनियम की धारा 147 को पढ़ने पर, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बीमा कंपनी मामले में बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

15. यह तर्क कि परंतुक कर्मचारियों को कवरेज से बाहर नहीं रखता है, हालांकि कर्मकार मुआवजा अधिनियम के तहत दावे निर्दिष्ट हैं, परंतुक की सरल भाषा पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परंतुक एक छूट को लागू करता है और उस छूट के लिए एक अपवाद बनाता है। सुझाई गई व्याख्या के परिणामस्वरूप परंतुक द्वारा नियोजित भाषा के प्रभाव की अनदेखी की जाएगी, मालिक को अपने कर्मचारियों को बीमा के तहत आच्छादित करने से छूट दी जाएगी, सिवाय उन मामलों को छोड़कर जहां उनके संबंध में देयता है, जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न होती है, जाहिर है, जैसा कि उस ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किया गया है।

23. हम इस प्रकार संतुष्ट हैं कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य [(2004)3 एस.सी.सी. 297: 2004 एस.सी.सी. (क्रि) 733] में अनुपात के आधार पर बीमा कंपनी को पहले मुआवजे का भुगतान करने और बीमाधारक से इसे वसूलने के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। मृतक कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अंतर्गत आच्छादित न किया गया कर्मचारी होने के कारण, बीमित व्यक्ति का, वाहन का स्वामी अनिवार्य रूप से अधिनियम के अंतर्गत आच्छादित नहीं किया जाना चाहिए और केवल बीमाधारक द्वारा बीमाकर्ता के साथ विशेष संविदा करके ही ऐसे व्यक्ति को कवरेज के अंतर्गत लाया जा सकता है। ऐसा कोई मामला नहीं है कि इस मामले में

इस संबंध में कोई विशेष संविदा है।

24. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि चूंकि दुर्घटना के समय मृतक स्वयं वाहन चला रहा था, इसलिए दुर्घटना स्वयं मृतक की लापरवाही के कारण हुई और इसलिए बीमाकर्ता मुआवजे के लिए उत्तरदायी नहीं है। यहां तक कि अगर दावेदार का मामला कि कार महमूद हसन द्वारा चलाई गई थी, सच थी, तो भी, दावेदार को बीमाधारक (एसआईसी बीमाकर्ता) को बीमाधारक को क्षतिपूर्ति करने के लिए कहने से पहले चालक की लापरवाही को स्थापित करना था। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के मीनू बी. मेहता बनाम बालकृष्ण रामचंद्र नयन [(1977)2 एस.सी.सी. 441: (1977)2 एस.सी.आर 886] के फैसले के समर्थन में भरोसा किया गया था।

25. उस निर्णय में, इस न्यायालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत मुआवजे के दावे में, मुआवजे के दावे का समर्थन करने के लिए लापरवाही का प्रमाण आवश्यक था। उस मामले के तथ्यों पर, माननीय न्यायमूर्ति ने पाया कि अपील को उसमें जारी किए गए कुछ निर्देशों के अधीन खारिज कर दिया जाना चाहिए। लेकिन माननीय न्यायमूर्ति, इस तथ्य के प्रकाश में कि उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर कानून पर चर्चा की थी और यह कुछ महत्व का था, महसूस किया कि कानून में स्थिति बताना आवश्यक था। यह देखते हुए कि कार के मालिक की जिम्मेदारी अपने नौकर की लापरवाही से ड्राइविंग के कारण कार दुर्घटना में पीड़ित को मुआवजा देने के लिए है, यातना के कानून पर आधारित है, न्यायालय ने 1939 के अधिनियम की योजना और प्रश्न पर कानून पर चर्चा की। उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के बारे में कि लापरवाही साबित करना आवश्यक नहीं था, न्यायालय ने कहा: (मीनू बी. मेहता मामला [(1977)2 एस.सी.सी. 441: (1977)2 एस.सी.आर 886], एस.सी.सी. पीपी 455-56, पैरा-33)

"33. दो न्यायाधीशों का तर्क अस्वीकार्य है क्योंकि यह अपने नौकर की लापरवाही के लिए मालिक की देयता के बुनियादी सिद्धांतों के विपरीत है और अधिनियम के अध्याय VIII के प्रावधानों के पूर्ण गलत अर्थ पर आधारित है। उच्च न्यायालय के सार्वजनिक भलाई के संरक्षण के

लिए उत्साह ने इसे एक ऐसा रास्ता अपनाने में गुमराह किया है जो कानून से कम नहीं है।

माननीय न्यायमूर्ति ने यह भी देखा कि लापरवाही का सबूत मुआवजे की वसूली के लिए लिंचपिन बना रहा। उनकी लॉर्डशिप ने यह कहकर निष्कर्ष निकाला: (मीनू बी. मेहता केस [(1977)2 एस.सी.सी. 441: (1977)2 एस.सी.आर 886], एस.सी.सी. पीपी 456-57, पैरा-37)

"37. हम यह कहते हुए निष्कर्ष निकालते हैं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के दृष्टिकोण का कानून में कोई समर्थन नहीं है और मोटर दुर्घटना दावा मामले में मुआवजे के भुगतान के लिए मालिक या बीमा कंपनी को उत्तरदायी ठहराए जाने से पहले लापरवाही का सबूत आवश्यक है।

29. इस मामले के तथ्यों पर, कोई नहीं पता है कि मालिक का एक अन्य कर्मचारी महमूद हसन वाहन चला रहा था। अगर वह था भी तो उसकी लापरवाही का कोई पता नहीं चल रहा है। पीड़ित कार के मालिक कंपनी का क्षेत्रीय प्रबंधक था। वह कंपनी द्वारा दी गई कार का उपयोग उपयोग के लिए कर रहा था। चाहे उसे वाहन का मालिक माना जाए या कर्मचारी के रूप में, वह अधिनियम के अनुसार ली गई बीमा पॉलिसी द्वारा आच्छादित नहीं किया जाता है - बिना किसी विशेष अनुबंध के - क्योंकि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत कोई अधिनिर्णय नहीं है जिसे बीमाकर्ता द्वारा संतुष्ट किया जाना आवश्यक है। इन परिस्थितियों में, हम मानते हैं कि अपीलकर्ता बीमा कंपनी बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं है और ट्रिब्यूनल/ प्राधिकरण / न्यायमूर्ति के पंचाट को संतुष्ट करने के लिए भी बाध्य नहीं है और फिर बीमित व्यक्ति, वाहन के मालिक का सहारा लेती है। उच्च न्यायालय ने इस संबंध में न्यायाधिकरण के फैसले को संशोधित करने में गलती की थी।

28. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने बालकृष्णन (उपरोक्त) के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें 'अधिनियम नीति' के मुद्दे और धारा 147 के संदर्भ में आवश्यकताओं पर विचार किया गया है, जिसमें मीना वरियाल (उपरोक्त) के पहले के निर्णय पर भी विचार किया गया है। शीर्ष न्यायालय ने कतिपय टैरिफ परिपत्रों सहित उपर्युक्त बिन्दु पर शीर्ष न्यायालय के पूर्व के विभिन्न निर्णयों को ध्यान में रखते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया -

"26. उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह

नहीं है कि एक "व्यापक/पैकेज पॉलिसी" कार में रहने वाले के लिए मुआवजे के भुगतान के लिए बीमाकर्ता की देयता को आच्छादित करेगी। ऐसा कोई कैविल नहीं है कि "अधिनियम नीति" "व्यापक/पैकेज नीति" से अलग पायदान पर है। चूंकि परिपत्रों ने स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर दी है और आईआरडीए, जो वर्तमान में सांविधिक प्राधिकरण है, ने यह कहते हुए बीमा कंपनियों को आदेश दिया है कि व्यापक/पैकेज पॉलिसी देयता को आच्छादित करती है, इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता। हम यह स्पष्ट करने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि पहले की घोषणाएं "अधिनियम नीति" के संबंध में प्रदान की गई थीं, जो कि कार में रहने वाले के तीसरे पक्ष के जोखिम को आच्छादित नहीं कर सकती हैं। लेकिन, यदि पॉलिसी एक "व्यापक/पैकेज नीति" है, तो देयता को आच्छादित किया जाएगा। भाग्यलक्ष्मी [(2009)7 एस.सी.सी. 148 (2009)3 एस.सी.सी. (सी.आई.वी)87(2009)3 एस.सी.सी. (क्रि) 321] में इन पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया गया था और इसलिए मामले को एक बड़ी पीठ को भेजा गया था। हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि प्रस्तुत मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि आई.आर.डी.ए, जो वर्तमान में वैधानिक प्राधिकरण है, ने परिपत्र जारी करके स्थिति स्पष्ट की है जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय में पुन: प्रस्तुत किया गया है और हमने भी इसे पुन: प्रस्तुत किया है।

चूंकि यह मुद्दा कि क्या प्रश्नगत नीति एक 'अधिनियम नीति' थी या एक व्यापक नीति थी, ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था, शीर्ष न्यायालय ने मामले को आगे रिमांड पर ले लिया जैसा कि पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-27 और 28 से स्पष्ट होगा जो निम्नानुसार है: -

"27. पूर्वोक्त कानूनी स्थिति के मद्देनजर, विचार के लिए जो प्रश्न उभरता है: क्या मामले में, नीति एक "अधिनियम नीति" या "व्यापक/पैकेज नीति" है? इस संबंध में अधिकरण या उच्च न्यायालय द्वारा कोई चर्चा नहीं की गई है। यह सच है कि हमारे समक्ष अनुबंध पी-1 दायर किया गया है जो बीमाकर्ता द्वारा जारी की गई पॉलिसी है। इसमें केवल नीति को एक व्यापक नीति होने का उल्लेख किया गया है, लेकिन हम यह सोचने के इच्छुक हैं कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी नीति की शर्तों की स्कैनिंग होनी चाहिए कि क्या यह वास्तव में कार में रहने वाले की देयता को आच्छादित करने के लिए पैकेज नीति है।

28. पूर्वोक्त विश्लेषण के मद्देनजर, हम सोचते हैं कि बीमाकर्ता की देयता के संबंध में उच्च न्यायालय और

ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण के निष्कर्ष को अलग रखना उचित है और मामले को उचित परिप्रेक्ष्य में पॉलिसी की जांच करने के लिए ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण को भेजना और यदि आवश्यक हो, तो अतिरिक्त साक्ष्य लेकर और यदि यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रश्न में पॉलिसी एक "व्यापक/पैकेज नीति" है, यह दायित्व बीमाकर्ता पर लगाया जाएगा। जहां तक ट्रिब्यूनल/ प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए अन्य निष्कर्षों का संबंध है, वे अबाधित रहते हैं।

29. ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण के साथ-साथ दावेदारों के अधिवक्ता ने प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें एक ट्रक को सुंदर सिंह द्वारा चलाया जा रहा था। इस ट्रक का बीमा नेशनल इंश्योरेंस कंपनी के साथ किया गया था और चूंकि ट्रक पलट गया था जिसके परिणामस्वरूप इसके चालक की मृत्यु हो गई थी, इसलिए एक दावा याचिका दायर की गई। इसका मुख्य रूप से इस आधार पर विरोध किया गया था कि दुर्घटना चालक की गलती के कारण हुई थी, इसलिए, दायित्व से इनकार किया गया था। दावा अधिकरण ने साक्ष्यों पर विचार करते हुए बीमा कंपनी को अधिनिर्णय को पूरा करने का निदेश देते हुए 12% ब्याज सहित 2,10,000/- रुपये की राशि प्रदान की। उच्च न्यायालय ने भी ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण के फैसले की पुष्टि की। उच्चतम न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय के निर्णय का केवल इस आधार पर विरोध किया गया था कि चूंकि बीमा पॉलिसी प्रतिबंधित थी, इसलिए बीमा कंपनी द्वारा संपूर्ण देयता को पूरा नहीं किया जा सकता था लेकिन इसका दायित्व केवल कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अंतर्गत देयता को आच्छादित करने तक ही सीमित था। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दे को पैराग्राफ 8 में स्पष्ट किया गया था और उसके बाद धारा 147 के प्रावधानों पर विचार करते हुए, परंतुक के प्रभाव को बाद के पैराग्राफ में देखा गया है और 'अधिनियम पॉलिसी' से संबंधित देयता में अंतर को ध्यान में रखते हुए और बीमा कंपनी किस हद तक उत्तरदायी होगी, बाद के पैराग्राफ में निपटाया गया है जिन्हें इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"8. मुख्य प्रश्न जिस पर इस अपील में विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या अपीलकर्ता बीमा कंपनी दावेदारों को दिए गए मुआवजे की पूरी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है या इसकी देयता उस तक सीमित है जो कर्मकार अधिनियम के तहत निर्धारित है। इस संबंध में अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने बीमा पॉलिसी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसे संबंधित वाहन के लिए मालिक द्वारा लिया गया था, और विशेष रूप से उसमें किए गए निम्नलिखित अनुमोदनों के लिए:

1. पॉलिसी संख्या-320801/31/–92-93/21/01753 एक्ट लायबिलिटी के लिए पॉलिसी

2. प्रीमियम (अधिनियम देयता) रु.1245/-

3. अधिनियम के लिए उपयोग करने की सीमा केवल आच्छादित

पॉलिसी के अंत में निम्नलिखित लिखा गया है:

"महत्वपूर्ण सूचना

बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति नहीं की जाती है यदि वाहन का उपयोग या ड्राइव इस अनुसूची के अनुसार अन्यथा किया जाता है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 का अनुपालन करने के लिए प्रमाण पत्र में दिखाई देने वाली व्यापक शर्तों के कारण कंपनी द्वारा किया गया कोई भी भुगतान बीमाधारक से वसूली योग्य है। पॉलिसी में 'कुछ शर्तों और वसूली के अधिकार से बचना' शीर्षक वाला खंड देखें।

टिप्पणी - यह अनुसूची, संलग्न नीति और ऊपर उल्लिखित पृष्ठांकन एक साथ पढ़े जाएंगे और कोई भी शब्द या अभिव्यक्ति जिसके लिए इस नीति या अनुसूची के किसी भाग में एक विशिष्ट अर्थ संलग्न किया गया है, वही अर्थ धारण करेगा, जहां भी यह प्रतीत हो सकता है।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि ट्रक के मालिक ने प्रीमियम की केवल उतनी ही राशि का भुगतान करके अपने वाहन का बीमा करवाया था, जहां तक उसके कर्मचारियों का संबंध था, उस सीमा तक देयता को आच्छादित किया गया था जो कि कामगार अधिनियम के तहत प्रदान की गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि शब्द "अधिनियम देयता के लिए एक पॉलिसी" या "अधिनियम दायित्व" स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि बीमा कंपनी की देयता असीमित नहीं थी, बल्कि वह थी जो अधिनियम के तहत अनिवार्य रूप से आवश्यक थी ताकि कर्मकार अधिनियम के तहत देयता को आच्छादित किया जा सके और आगे नहीं। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि असीमित देयता को आच्छादित करने के लिए मालिक को प्रीमियम की अधिक राशि का भुगतान करना पड़ता है और ऐसे मामले में "अधिनियम देयता के लिए एक पॉलिसी" या "अधिनियम दायित्व" शब्द नहीं लिखे जाते हैं। बीमा पॉलिसी एक अनुबंध की प्रकृति में होने के कारण, पक्षगण इसके द्वारा बाध्य हैं और इसलिए, अपीलकर्ता को मुआवजे की पूरी राशि, जो दावेदारों को दी गई है, का भुगतान करने के लिए किसी भी

अतिरिक्त दायित्व के साथ पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

11. उठाए गए विवाद अधिनियम की धारा 147 और 149 की उपधारा (1) की व्याख्या पर मुड़ते हैं और इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"147. नीतियों की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं- (1) इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के लिए, बीमा की पॉलिसी एक ऐसी पॉलिसी होनी चाहिए जो-

(ए) एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया जाता है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है; और

(बी) उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों का बीमा करता है -

(i) किसी भी दायित्व के खिलाफ जो किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में उसके द्वारा किया जा सकता है या किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान पहुंचा सकता है;

(ii) सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ:

बशर्ते कि एक नीति की आवश्यकता नहीं होगी-

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न दायित्व के अलावा उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में या ऐसे कर्मचारी द्वारा बनाए गए शारीरिक चोट के संबंध में दायित्व को आच्छादित करने के लिए, 1923 (1923 का 8), ऐसे किसी कर्मचारी की मृत्यु, या शारीरिक चोट के संबंध में-

(ए) वाहन चलाने में लगे हुए, या

(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के कंडक्टर के रूप में या वाहन पर टिकटों की जांच में लगा हुआ है, या

(ग) यदि यह माल गाड़ी है, वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करना।

*स्पष्टीकरण.- *** (प्रासंगिक नहीं होने के कारण लोप किया गया)*

149. तृतीय पक्ष जोखिमों के संबंध में बीमित व्यक्तियों के विरुद्ध निर्णयों और अधिनिर्णयों को संतुष्ट

करने के लिए बीमाकर्ताओं का कर्तव्य- (1) यदि, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा प्रमाणपत्र जारी किए जाने के पश्चात् उस व्यक्ति के पक्ष में जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावित की गई है, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पॉलिसी द्वारा आच्छादित किया जाना अपेक्षित है (दायित्व होने के नाते) पॉलिसी की शर्तों द्वारा आच्छादित किया गया) पॉलिसी द्वारा बीमित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ प्राप्त किया जाता है, इस बात के बावजूद कि बीमाकर्ता पॉलिसी से बचने या रद्द करने का हकदार हो सकता है या पॉलिसी से बचा या रद्द कर सकता है, बीमाकर्ता, इस खंड के प्रावधानों के अधीन, डिक्री के लाभ के हकदार व्यक्ति को भुगतान करेगा जो इसके तहत देय बीमा राशि से अधिक नहीं है, जैसे कि वह दायित्व के संबंध में निर्णय-देनदार थे, लागत के संबंध में देय किसी भी राशि के साथ और निर्णय पर ब्याज से संबंधित किसी भी अधिनियम के आधार पर उस राशि पर ब्याज के संबंध में देय कोई राशि।

12. अधिनियम के अध्याय XI का शीर्षक तृतीय पक्ष जोखिमों के विरुद्ध मोटर वाहनों का बीमा है और इसमें धारा 145 से धारा 164 शामिल हैं। अधिनियम की धारा 146(1) में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति, यात्री के रूप को छोड़कर, या किसी अन्य व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग करने की अनुमति नहीं देगा, जब तक कि उस व्यक्ति या उस अन्य व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, द्वारा वाहन के उपयोग के संबंध में लागू न हो, बीमा की ऐसी पॉलिसी जो अध्याय 11 की आवश्यकताओं का अनुपालन करती हो । धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) में प्रावधान है कि बीमा पॉलिसी एक ऐसी पॉलिसी होनी चाहिए जो पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक किसी भी दायित्व के खिलाफ बीमा करती है जो उसके द्वारा किसी व्यक्ति या यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के संबंध में या उससे उत्पन्न होने वाली किसी भी देयता के संबंध में हो सकती है। सार्वजनिक स्थान पर वाहन का उपयोग। खंड (बी) के उप-खंड (i) और (ii) इस अर्थ में व्यापक हैं कि वे "किसी भी व्यक्ति" या "यात्री" दोनों को आच्छादित करते हैं। वाहन के मालिक का एक कर्मचारी जैसे ड्राइवर या कंडक्टर भी उप-खंड (i) में आने वाले "किसी भी व्यक्ति" शब्दों के दायरे में आ

सकते हैं। हालांकि, धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) के परंतुक (i) में कहा गया है कि पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में देयता को आच्छादित करने की आवश्यकता नहीं होगी, या ऐसे कर्मचारी द्वारा उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में और उसके रोजगार के दौरान उत्पन्न होने वाली देयता के अलावा अन्य देयता के अलावा उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली देयता के अलावा अन्य कर्मकार अधिनियम यदि कर्मचारी उप-खंड (ए) या (बी) या (सी) में वर्णित है। इस परंतुक का प्रभाव यह है कि यदि कोई बीमा पॉलिसी ऐसे किसी कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में कर्मकार अधिनियम के तहत देयता को आच्छादित करती है, जैसा कि धारा 147(1)(बी) के प्रावधान (i) के उप-खंड (ए) या (बी) या (सी) में वर्णित है, तो यह एक वैध पॉलिसी होगी और अधिनियम के अध्याय XI की आवश्यकताओं का अनुपालन करेगी। अधिनियम की धारा 149 निम्नलिखित पर शुल्क लगाती है। बीमाकर्ता (बीमा कंपनी) तीसरे पक्ष के जोखिमों के संबंध में बीमित व्यक्तियों के खिलाफ निर्णय और पंचाट को संतुष्ट करने के लिए। स्पष्टीकरण - "ऐसी देयता जो धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किया जाना आवश्यक है, पॉलिसी की शर्तों द्वारा आच्छादित किया गया दायित्व है" - धारा 149 की उप-धारा (1) महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि ऐसी कोई भी देयता, जिसे अनिवार्य रूप से धारा 147(1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किया जाना आवश्यक है, बीमा कंपनी द्वारा पूरा किया जाना चाहिए। इस प्रावधान का प्रभाव यह है कि एक बीमा पॉलिसी, जो केवल ऐसे किसी भी कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में कर्मकार अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता को आच्छादित करती है, जैसा कि अधिनियम की धारा 147(1)(बी) के उप-खंड (ए) या (बी) या (सी) में वर्णित है, अधिनियम के तहत पूरी तरह से वैध और अनुमेय है। इसलिए, जहां वाहन के मालिक द्वारा ऐसी कोई पॉलिसी ली गई है, बीमा कंपनी की देयता कर्मकार अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली पॉलिसी तक ही सीमित होगी।

13. बीमा पॉलिसी एक अनुबंध की प्रकृति में होने के नाते, यह एक मालिक के लिए ऐसी पॉलिसी लेने की अनुमति है जिसके तहत किसी भी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में संपूर्ण देयता जैसा कि उप-खंड (ए) या

(बी) या (सी) में वर्णित है धारा 147(1)(बी) के प्रावधान (i) बीमा कंपनी पर बांधा जा सकता है और बीमा कंपनी पूरे पंचाट को पूरा करने के लिए उत्तरदायी हो सकती है। तथापि, इस प्रयोजन के लिए मालिक को उस विशेष प्रकार की पॉलिसी लेनी चाहिए जिसके लिए उसे अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करना पड़ सकता है और पॉलिसी में स्पष्ट रूप से यह दर्शाया जाना चाहिए कि उपर्युक्त प्रकार के कर्मचारियों की मृत्यु या शारीरिक चोट के मामले में बीमा कंपनी का दायित्व कर्मकार अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित पॉलिसी तक ही सीमित नहीं है और भुगतान किए गए प्रीमियम की मात्रा के आधार पर या तो अधिक या असीमित है और भुगतान किए गए प्रीमियम की मात्रा के आधार पर या तो अधिक या असीमित है और नीति की शर्तें.

14. मामले में लागू प्रासंगिक प्रावधानों की उपरोक्त व्याख्या न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सीएम जया [(2002)2 एस.सी.सी. 278: 2002 एस.सी.सी. (क्रि) 325] में एक संविधान पीठ द्वारा व्यक्त दृष्टिकोण के अनुरूप है, जहां, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 95 (2) के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, 1939 के मामले में, न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा-10 में निम्नानुसार अवधारित किया: - (एस.सी.सी. पृष्ठ 285)

"..... दायित्व वैधानिक या संविदात्मक हो सकता है। कोई सांविधिक दायित्व संविधि के अंतर्गत अपेक्षित दायित्व से अधिक नहीं हो सकता। हालांकि, अधिनियम की धारा 95 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पक्षों को व्यापक जोखिम को आच्छादित करने के लिए असीमित या उच्च देयता बनाने के लिए अनुबंध करने से रोकता है। ऐसी स्थिति में, बीमाकर्ता असीमित या उच्च देयता के संबंध में पॉलिसी में निर्दिष्ट अनुबंध की शर्तों से बाध्य होता है। पॉलिसी में इस तरह के नियम या खंड की अनुपस्थिति में, बीमा के अनुबंध के अनुसार, इसे असीमित या उच्चतर बनाने के लिए एक सीमित वैधानिक देयता का विस्तार नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है, तो यह क़ानून या बीमा के अनुबंध को फिर से लिखने के बराबर है जिसकी अनुमति नहीं है।

बेंच ने न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम शांति बाई [(1995) 2 एस.सी.सी. 539] और अमृत लाल सूद बनाम कौशल्या देवी थापर [(1998) 3 एस.सी.सी. 744] में दिए गए पहले के फैसलों का भी उल्लेख किया और कहा कि बीमा पॉलिसी के मामले में उच्च प्रीमियम स्वीकार करके कोई उच्च देयता नहीं

लेने के मामले में, बीमा कंपनी की देयता न तो असीमित है और न ही मोटर की धारा 95(2) के तहत निर्धारित वैधानिक देयता से अधिक है (वाहन अधिनियम, 1939) यह भी देखा गया कि बीमित व्यक्ति अतिरिक्त उच्चतर प्रीमियम का भुगतान कर सकता है और तृतीय पक्ष के संबंध में भी उच्चतर जोखिम आच्छादित प्राप्त कर सकता है। लेकिन बीमा पॉलिसी में ऐसे किसी खंड की अनुपस्थिति में, तीसरे पक्ष के संबंध में बीमाकर्ता की देयता असीमित नहीं हो सकती है और यह केवल वैधानिक देयता तक सीमित है।

15. यद्यपि पूर्वोक्त निर्णय मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 95(2) पर दिया गया है, परंतु उसमें निहित सिद्धांत यहां भी पूरी तरह से लागू होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि वाहन का मालिक किसी भी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में बीमा कंपनी की देयता चाहता है, जैसा कि धारा 147(1)(बी) के प्रावधान (i) के उप-खंड (ए) या (बी) या (सी) में वर्णित है, तो कामगार अधिनियम के तहत प्रतिबंधित नहीं होना चाहिए, लेकिन अधिक या असीमित होना चाहिए, उसे अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करके ऐसी पॉलिसी लेनी चाहिए और पॉलिसी में इस आशय का एक खंड भी होना चाहिए। हालांकि, जहां पॉलिसी में "एक्ट लायबिलिटी के लिए पॉलिसी" या "एक्ट लायबिलिटी" का उल्लेख किया गया है, वहां पूर्वोक्त कर्मचारियों की तुलना में बीमा कंपनी की देयता असीमित नहीं होगी, बल्कि वर्कमैन एक्ट के तहत उत्पन्न होने वाली देयता तक सीमित होगी।

16. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में माना है कि यदि मृत कर्मचारी के कानूनी प्रतिनिधि अधिनियम की धारा 166 के तहत याचिका दायर करके उन्हें मुआवजे के भुगतान के लिए मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करते हैं, तो बीमा कंपनी की देयता कामगार अधिनियम के तहत प्रदान की गई सीमा तक सीमित नहीं है और इसके आधार पर अपीलकर्ता बीमा कंपनी को मुआवजे की पूरी राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया दावेदार। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, मालिक द्वारा ली गई बीमा पॉलिसी में एक खंड था कि यह केवल "अधिनियम देयता" के लिए एक पॉलिसी थी। यह नीति की प्रकृति होने के कारण, अपीलकर्ता की देयता कर्मकार अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता तक ही सीमित होगी। इसलिए, उच्च न्यायालय के निर्णय

को तदनुसार संशोधित करने की आवश्यकता है।

17. उच्च न्यायालय का निर्णय, जहां तक यह मुआवजे और ब्याज की मात्रा से संबंधित है, जिसका भुगतान दावेदारों (प्रतिवादी 3 से 6 यहां) को किया जाना है, की पुष्टि की जाती है। पंचाट को संतुष्ट करने के लिए अपीलकर्ता बीमा कंपनी की देयता कर्मकार अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता तक ही सीमित होगी। प्रतिवादी 1 और 2 (वाहन के मालिक) पंचाट के शेष हिस्से को संतुष्ट करने के लिए उत्तरदायी होंगे।

18. रिकॉर्ड से पता चलता है कि अपीलकर्ता के पक्ष में कोई स्थगन आदेश पारित नहीं किया गया था। यदि अपीलकर्ता बीमा कंपनी ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के पास उच्च न्यायालय द्वारा दी गई पूरी राशि जमा कर दी है या दावेदारों को उक्त राशि का भुगतान कर दिया है, तो वह कानून के अनुसार वाहन के मालिक से उस राशि की वसूली करने के लिए (विकल्प) खुली होगी, जो कामगार अधिनियम के तहत उसकी देयता से अधिक है।

30. यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि यह प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय पर निर्भर है, ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने कर्मकार मुआवजा अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता के संदर्भ में राशि प्रदान की है और बीमा कंपनी पर इसे बांधा है।

31. आगे बढ़ने से पहले, सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा जो पूर्वोक्त विषय पर प्रकाश डालता है और संजीव कुमार सम्राट बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2014)14 एस.सी.सी. 243 है, जिसमें धारा 146, 147 और इसके प्रावधान के दायरे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया है। उक्त मामले में अंतर्विष्ट तथ्यों से पता चलता है कि श्री दुर्गा सिंह ने अपने दो मजदूरों के साथ यात्रा करते हुए एक ट्रक किराए पर लिया था। उक्त ट्रक दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक घायल हो गए और उनकी मृत्यु हो गई। मुद्दा यह था कि क्या बीमाकर्ता कानून के तहत माल के मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है, जब वाहन के किरायेदार, चालक द्वारा माल के मालिक के साथ इस आधार पर काम किया जाता है कि उन्हें मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147 के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार जारी की गई पॉलिसी के तहत आच्छादित किए गए कर्मचारियों के रूप में माना जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 147 के प्रावधानों और पैराग्राफ 11, 13, 15, 16, 17, 18, 19, 21 और 23 में पूर्वोक्त बिंदु पर पहले के फैसलों को देखते हुए कहा कि धारा 147(1)(बी) परंतुक (I) के संदर्भ में, यह उन कर्मचारियों को संदर्भित करता है जिन्हें पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए गए वाहन में ले जाया जा रहा है। आगे यह बताया गया कि

विधायिका ने माल के मालिक या वाहन में ले जाने वाले उसके अधिकृत प्रतिनिधि और उक्त वाहन में ले जाने वाले कर्मचारी सहित किसी भी व्यक्ति को चोट को आच्छादित करने का इरादा किया था। यह भी माना गया कि 1923 के अधिनियम के तहत आच्छादित किए गए कर्मचारी को छोड़कर कर्मचारी की देयता को आच्छादित करने के लिए एक पॉलिसी की आवश्यकता नहीं है और वह भी वाहन में ले जाने वाले कर्मचारी के संबंध में। इसने स्पष्ट किया कि एक प्रासंगिक पठन और अधिनियम की योजना पर, वैधानिक नीति यानी 'अधिनियम नीति' बीमित व्यक्ति के, या तो कर्मचारी या माल ढुलाई में उसके द्वारा लगे हुए कर्मचारियों को आच्छादित करती है। संबंधित पैराग्राफ इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

> *"11. यह ध्यान दिया जाना चाहिए, धारा 147(1)(बी)(आई) के प्रस्तुत अवतार में अस्तित्व में आने से पहले, यह निर्धारित किया गया था कि बीमा की पॉलिसी एक ऐसी पॉलिसी होनी चाहिए जो व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक बीमा करती है, किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी भी संपत्ति या तीसरे पक्ष को नुकसान के संबंध में उसके द्वारा किए गए दायित्व के खिलाफ या उससे उत्पन्न होने वाली सार्वजनिक स्थान पर वाहन का उपयोग।*

13. सतपाल सिंह मामले में उक्त निर्णय की शुद्धता [(2000)1 एस.सी.सी.237: 2000 एस.सी.सी. (क्रि) 130] न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी [न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी, (2003)2 एस.सी.सी.223: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 493] में तीन न्यायाधीश पीठ के समक्ष विचार के लिए आया था। मुख्य न्यायाधीश ने अपनी और एचके सेमा की ओर से बोलते हुए संशोधन से पहले धारा 147(1) और संशोधित प्रावधान और उक्त प्रावधान के पीछे के उद्देश्यों और कारणों पर ध्यान दिया और निम्नानुसार निर्णय दिया: (आशा रानी मामला [न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी, (2003) 2 एस.सी.सी. 223: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 493], एस.सी.सी. पी. 232, पैरा-9)

"9. ... खंड 46 के उद्देश्यों और कारणों में यह भी कहा गया है कि यह बीमा पॉलिसी के तहत देयता के प्रयोजनों के लिए वाहन में ले जाने वाले माल के मालिक या उसके अधिकृत प्रतिनिधि को शामिल करने के लिए धारा 147 में संशोधन करना चाहता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कभी-कभी विधायिका कानून में निहित स्थिति के प्रवर्धन और स्पष्टीकरण के माध्यम से कानून में

संशोधन करती है, लेकिन क़ानून में प्रयुक्त शब्दों को एक स्पष्ट अर्थ दिया जा रहा है, जैसा कि यह 1994 के अपने संशोधन से पहले था, और जैसा कि यह 1994 में इसके संशोधन के बाद खड़ा है और संशोधित प्रावधानों में उल्लिखित उद्देश्यों और कारणों को ध्यान में रखते हुए इससे पहले, हमारे लिए यह समझना मुश्किल है कि अभिव्यक्ति 'माल के मालिक या वाहन में ले जाने वाले उसके अधिकृत प्रतिनिधि सहित' जिसे पहले से मौजूद अभिव्यक्ति 'किसी व्यक्ति को चोट' में जोड़ा गया था, या तो स्पष्टीकरण है या पहले से मौजूद क़ानून का प्रवर्धन है। दूसरी ओर, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विधायिका धारा 147 के दायरे में लाना चाहती थी और बीमाकर्ता के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया था कि माल वाहन के मामले में भी बीमा किया जाए, माल के मालिक या उसके अधिकृत प्रतिनिधि को माल वाहन में ले जाया जा रहा हो, जब वह वाहन दुर्घटना का शिकार हो जाता है और माल का मालिक या उसका प्रतिनिधि या तो मर जाता है या शारीरिक चोट से पीड़ित होता है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

एस.बी. सिन्हा ने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा: (आशा रानी मामला [न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी, (2003) 2 एस.सी.सी. 223: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 493], एस.सी.सी. पी. 235, पैरा-27-28)

"27. इसके अलावा, धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) के उप-खंड (i) देयता की बात करता है जो किसी वाहन के मालिक द्वारा किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में किया जा सकता है या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के कारण या सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग से उत्पन्न होता है, जबकि उपखंड (ii) उस दायित्व से संबंधित है जो किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ वाहन के मालिक द्वारा किया जा सकता है।

28. यात्री ले जाने वाले वाहन के मालिक को यात्रियों के जोखिमों को आच्छादित करने के लिए प्रीमियम का भुगतान करना होगा। यदि अधिनियम के अंतर्गत उपबंधित सीमित देयता के अलावा किसी अन्य देयता को बीमा पॉलिसी के अंतर्गत बढ़ाया जाना है तो अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करना अपेक्षित है। लेकिन अगर न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी बनाम सतपाल सिंह [(2000)1 एस.सी.सी.237: 2000 एस.सी.सी.

(क्रि)130] में इस न्यायालय के फैसले के अनुपात को उसके तार्किक निष्कर्ष पर ले जाया जाता है, हालांकि ऐसे यात्रियों के लिए, माल गाड़ी के मालिक को बीमा पॉलिसी लेने की आवश्यकता नहीं है, तो उन्हें पॉलिसी के तहत आच्छादित किया गया माना जाएगा, जिसके लिए भी कोई प्रीमियम का भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है।

(महत्व सन्निविष्ट)

पूर्वोक्त दृष्टिकोण के होने के नाते, तीन न्यायाधीशों की पीठ [न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम आशा रानी, (2003) 2 एस.सी.सी. 223: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 493] ने सतपाल सिंह [(2000) 1 एस.सी.सी. 237: 2000 एस.सी.सी. (क्रि) 130] में निर्णय को खारिज कर दिया।

15. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम वेदवती [(2007) 9 एस.सी.सी. 486], (एस.सी.सी. पृष्ठ 490, पैरा-6), अधिनियम की योजना और पहले की घोषणाओं का उल्लेख करने के बाद, यह माना गया है कि अधिनियम के प्रावधान माल वाहक में यात्रा करने वाले किसी भी यात्री के लिए अपने वाहन का बीमा कराने के लिए वाहन के मालिक पर कोई वैधानिक दायित्व नहीं देते हैं और बीमाकर्ता का इसके लिए कोई दायित्व नहीं होगा।

16. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम चोलेटी भारतम्मा [(2008)1 एस.सी.सी. 423: (2008)1 एस.सी.सी. (क्रि) 224: (2008)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 280] में न्यायालय ने निर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 147 के तहत लगाए गए प्रावधान माल वाहन में यात्रा करने वाले किसी भी यात्री के लिए अपने वाहन का बीमा कराने के लिए वाहन के मालिक पर कोई वैधानिक दायित्व नहीं देते हैं और इसलिए, धारा 147(1)(बी) में किसी भी व्यक्ति को किसी भी चोट का मतलब केवल एक तीसरा पक्ष होगा, न कि माल गाड़ी में यात्रा करने वाला यात्री, चाहे वह अनावश्यक हो या फिर अन्यथा।

17. इस समय, हम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेमबाई पटेल [(2005)6 एस.सी.सी. 172: 2005 एस.सी.सी. (एल एंड एस)819] में तीन न्यायाधीश पीठ के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें ट्रक के चालक के कानूनी प्रतिनिधि उच्च न्यायालय के समक्ष सफल हुए थे और उन्हें 210,000 रुपये रुपये का मुआवजा दिया गया था; बीमाकर्ता के इस तर्क को खारिज करते हुए कि देयता को कर्मकार मुआवजा अधिनियम, 1923 (संक्षेप में "1923 अधिनियम") के तहत प्रदान किया गया था। प्रावधान के

योजनाबद्ध सिद्धांतों पर चर्चा करने के बाद, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि जहां माल वाहन के मालिक द्वारा पॉलिसी ली जाती है, बीमा कंपनी की देयता नियोक्ता के मामले में 1923 अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता तक ही सीमित होगी। यह आगे कहा गया कि बीमा पॉलिसी एक अनुबंध की प्रकृति में है, एक मालिक के लिए ऐसी पॉलिसी लेने की अनुमति है, जिसके तहत किसी भी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में संपूर्ण देयता बीमा कंपनी पर लगाई जा सकती है जैसा कि अधिनियम की धारा 147(1)(बी) के खंड (ए), (बी) या (सी) के खंड (ए), (बी) या (सी) में वर्णित है पूरे पंचाट को संतुष्ट करने के लिए। लेकिन उक्त उद्देश्य के लिए, उसे अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करने की आवश्यकता हो सकती है और पॉलिसी को स्पष्ट रूप से दिखाना चाहिए कि बीमा कंपनी की देयता असीमित है।

18. कानून के पूर्वोक्त प्रतिपादन को ध्यान में रखते हुए, यह देखा जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 147 में प्रयुक्त "कर्मचारी" शब्द को कैसे समझा जाना आवश्यक है। इससे पहले, यह बताना आवश्यक है कि धारा 147(1)(बी)(आई) के अनुसार, पॉलिसी को किसी व्यक्ति को आच्छादित करना आवश्यक है, जिसमें माल के मालिक या वाहन में ले जाने वाले उसके अधिकृत प्रतिनिधि शामिल हैं। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है, माल का मालिक या उसका अधिकृत एजेंट पॉलिसी के तहत आच्छादित किया गया है। यह वैधानिक आवश्यकता है। यह किसी भी यात्री को आच्छादित नहीं करता है। हम इस बात से पूरी तरह अवगत हैं कि जिन प्राधिकरणों का हमने यहां उल्लेख किया है, वे यात्रियों को शामिल न किए जाने के संबंध में सिद्धांत निर्धारित करते हैं। दूसरा सिद्धांत जो कहा गया है वह यह है कि कर्मचारी के संबंध में बीमाकर्ता की देयता 1923 अधिनियम के तहत देय मुआवजे तक ही सीमित है। इस संदर्भ में, इस आशय के प्रश्न का उत्तर दिया जाना चाहिए कि क्या माल के मालिक के कर्मचारी धारा 147(1) में प्रयुक्त "कर्मचारी" शब्द के दायरे में आएंगे और व्यापक रूप से आएंगे। इस संदर्भ में, धारा 147(1)(बी) का प्रावधान महत्व रखता है। कर्मचारियों की श्रेणियां जिन्हें धारा 147(1) के परंतुक (i) के खंड (a), (b) और (c) में परिगणित किया गया है, वे वाहन के चालक हैं, या वाहन का कंडक्टर यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है या वाहन पर टिकटों की जांच करने में, यदि यह माल ढुलाई है, वाहन में ले जाया

जा रहा है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रावधान (i) का खंड (c) व्यापक महत्व का है क्योंकि यह एक वाहन में ले जाए जा रहे माल गाड़ी में कर्मचारियों को आच्छादित करता है। बीमाकर्ता के अधिवक्ता यह प्रस्तुत करेंगे कि इसे पूरे प्रावधान के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, 1923 अधिनियम की योजनाबद्ध अवधारणा और बीमाकर्ता की प्रतिबंधित देयता के संबंध में। आगे यह आग्रह किया जाता है कि संदर्भ में पढ़ने पर, अर्थ बिल्कुल सादा और स्पष्ट हो जाता है कि कर्मचारी जिसे वैधानिक रूप से बीमित व्यक्ति द्वारा लेने के लिए अनिवार्य है, केवल पॉलिसी के अनुसार नियोक्ता द्वारा नियोजित या लगे कर्मचारियों को आच्छादित करता है।

19. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि मुआवजे के भुगतान के लिए बीमाकर्ता की देयता या तो वैधानिक या संविदात्मक हो सकती है। अधिनियम की धारा 147 की उप-धारा (1) के परंतुक को पढ़ने पर, यह प्रदर्शित होता है कि बीमाकर्ता को उसमें उल्लिखित बीमित व्यक्ति के कर्मचारियों की कुछ श्रेणियों के जोखिम को आच्छादित करना आवश्यक है। बीमा कंपनी बीमाकर्ता के सभी प्रकार के कर्मचारियों को आच्छादित करने के लिए वैधानिक दायित्व के तहत नहीं है क्योंकि क़ानून आदेश नहीं दिखाता है। इसके अलावा, कर्मचारियों की उक्त आच्छादित की गई श्रेणी के संबंध में बीमाकर्ता की देयता 1923 अधिनियम के तहत उत्पन्न देयता की सीमा तक सीमित है। धारा 147 में एक शर्त यह भी है कि वाहन का मालिक व्यापक कवरेज प्रदान करने वाली बीमा पॉलिसी को सुरक्षित करने के लिए स्वतंत्र है। उस घटना में, कहने की जरूरत नहीं है, दायित्व अधिनियम की धारा 147 की आवश्यकता से परे होगा, इसकी संविदात्मक प्रकृति के संबंध में; लेकिन, एक प्रीमियम की राशि अलग होगी।

21. 1923 अधिनियम की योजना पर आते हुए, यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त अधिनियम की धारा 3 के तहत, नियोक्ता अपने रोजगार के दौरान या उसके दौरान उत्पन्न दुर्घटना के कारण व्यक्तिगत चोट या मृत्यु के संबंध में कामगार को मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। धारा 4 प्रक्रिया प्रदान करती है कि मुआवजे की राशि कैसे निर्धारित की जानी है। इस संदर्भ में, हम उपयोगी रूप से ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम देवीरेड्डी कोंडा रेड्डी [(2003) 2 एस.सी.सी. 339: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 540] से एक मार्ग उद्धृत कर

सकते हैं: (एस.सी.सी. पीपी 342-43, पैरा-9) उद्धरत करते हैं।

"9. ... अधिनियम की धारा 147 'सार्वजनिक सेवा वाहन' के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ अनिवार्य कवरेज को अनिवार्य करती है। यह परंतुक यह भी स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक सेवा वाहन के चालकों और कंडक्टरों और माल वाहन में ले जाए गए कर्मचारियों के संबंध में अनिवार्य कवरेज कामगार मुआवजा अधिनियम, 1923 (संक्षेप में 'डब्ल्यूसी अधिनियम') के तहत देयता तक सीमित होगा। 'माल गाड़ी' में किसी यात्री का कोई संदर्भ नहीं है।

(महत्व सन्निविष्ट)

23. यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 147(1)(बी) परंतुक (i)(सी) एक कर्मचारी को संदर्भित करता है जिसे पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए गए वाहन में ले जाया जा रहा है। ऐसा वाहन माल ढोने वाला होने के कारण, एक कर्मचारी को वैधानिक नीति द्वारा आच्छादित किया जाना चाहिए। धारा 147 और 167 के उचित पठन पर, विधायिका का इरादा, जैसा कि हमें प्रतीत होता है, माल के मालिक या उसके अधिकृत प्रतिनिधि और उक्त वाहन में ले जाए जाने वाले कर्मचारी सहित किसी भी व्यक्ति को चोट को आच्छादित करना है। यहां यह बताना उपयुक्त है कि परंतुक एक अलग तरीके से शुरू होता है। अधिनियम 1923 के तहत आच्छादित किए गए कर्मचारी को छोड़कर कर्मचारी की देयता को आच्छादित करने के लिए एक पॉलिसी की आवश्यकता नहीं है और वह भी वाहन में ले जाए गए कर्मचारी के संबंध में। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो यह सभी प्रकार के कर्मचारियों को आच्छादित नहीं करता है। इस प्रकार, प्रावधान के एक प्रासंगिक पढ़ने पर, अधिनियम और 1923 अधिनियम का योजनाबद्ध विश्लेषण, यह काफी कमजोर है कि वैधानिक नीति केवल, या तो माल ढुलाई में उसके द्वारा नियोजित या लगे हुए, बीमित व्यक्ति के कर्मचारियों को आच्छादित करती है। यह किसी अन्य प्रकार के कर्मचारी को आच्छादित नहीं करता है और इसलिए, कोई व्यक्ति जो माल के मालिक के स्थान पर अधिकृत एजेंट नहीं होने के नाते यात्रा करता है, और माल के मालिक का कर्मचारी होने का दावा करता है, उसे वैधानिक नीति द्वारा आच्छादित नहीं किया जा सकता है और अन्यथा धारण करना कानून में नियोजित भाषा के लिए हिंसा पैदा करने के समान होगा। इसलिए, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि बीमाकर्ता बीमाधारक को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

32. वलीबेन लक्ष्मणभाई ठाकोर (उपरोक्त) में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले में, जिस मुद्दे को पूर्ण पीठ को संदर्भित किया गया था, वह यह था कि क्या बीमित व्यक्ति द्वारा भुगतान किए गए चालक की देयता के लिए अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करने के मद्देनजर, बीमा कंपनी मोटर वाहन अधिनियम के तहत मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, जिसकी गणना चालक की लापरवाही से, खुद की लापरवाही, चालक की मृत्यु या चोट के कारण हुई है। मीना वरियाल (उपरोक्त), प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों सहित अधिनियम के संबंधित सबमिशन पर विचार करने के बाद, यह निष्कर्ष निकाला गया कि जहां पॉलिसी केवल एक 'अधिनियम नीति' है और अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान नहीं किया जाता है, देयता केवल उस सीमा तक सीमित होगी जैसा कि कर्मचारी मुआवजा अधिनियम 1923 के तहत आच्छादित किया गया है, हालांकि, बीमा कंपनी एक बार जब अतिरिक्त प्रीमियम स्वीकार कर लेती है तो उसकी देयता असीमित हो जाती है। संबंधित पैरा इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

"13. इस प्रकार, जब किसी वाहन का मालिक अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करता है और बीमा कंपनी द्वारा स्वीकार किया जाता है, तो बीमा कंपनी की देयता मोटर वाहन अधिनियम के तहत बढ़ा दी जाती है। मालिक द्वारा इस तरह के अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करने पर, मालिक की देयता बीमा कंपनी पर स्थानांतरित हो जाती है। इस प्रकार, भुगतान किए गए ड्राइवर और कंडक्टर के जोखिम को बीमा पॉलिसी के तहत आच्छादित किया जाएगा। केवल जब अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान नहीं किया जाता है, तो देयता कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 के अनुसार होगी और ऐसे मामलों में, अधिनियम के तहत निर्धारित अनुसार मुआवजे की गणना की जाएगी जो अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रदान की गई सीमा तक सीमित है। हालांकि, जब मालिक बीमा कंपनी को अपने भुगतान किए गए ड्राइवर और कंडक्टर की कानूनी देयता को आच्छादित करने के लिए अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करता है, तो बीमा कंपनी मुआवजे के भुगतान के लिए, जब अतिरिक्त प्रीमियम स्वीकार किया जाता है, असीमित देयता के दायरे को बढ़ा रही है। बीमा कंपनी की देयता बढ़ जाती है और उसे बीमित वाहन के चालक के ऐसे वर्ग की आत्म-लापरवाही या अन्यथा के मुद्दे को उठाने का कोई अधिकार नहीं है। आईएमटी 28 के अनुसार अतिरिक्त प्रीमियम स्वीकार करके, बीमा कंपनी ने अधिनियम की धारा 147 के तहत परिकल्पित भुगतान किए गए ड्राइवर और कंडक्टर को कानूनी दायित्व के खंड के तहत अपनी देयता का विस्तार करने की इच्छा व्यक्त की। इस प्रकार, हमारी राय में, बीमा कंपनी को वाहनों के ऐसे वर्गों के बीमाकृत-मालिक के प्रति बीमा के अनुबंध से उत्पन्न क्षतिपूर्ति खंड के तहत अपनी कानूनी देयता से बचने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है।

33. पूर्वोक्त निर्णयों और वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यह है कि धारा 147(1) के संदर्भ में, उसके साथ संलग्न परंतुक को एक

बार फिर स्पष्टता के लिए इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"बशर्ते कि एक नीति की आवश्यकता नहीं होगी-

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न दायित्व के अलावा उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में या ऐसे कर्मचारी द्वारा बनाए गए शारीरिक चोट के संबंध में दायित्व को आच्छादित करने के लिए, 1923 (8 वर्ष 1923) ऐसे किसी कर्मचारी की मृत्यु, या शारीरिक चोट के संबंध में-

(ए) वाहन चलाने में लगे हुए, या
(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के कंडक्टर के रूप में या वाहन पर टिकटों की जांच में लगा हुआ है, या
(ग) यदि यह माल गाड़ी है, वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करने के लिए।

और यह प्रेमबाई पटेल (उपरोक्त) के साथ-साथ संजीव कुमार सम्राट (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और वलीबेन लक्ष्मणभाई ठाकोर (उपरोक्त) में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा भी स्पष्ट रूप से देखा गया है। पूर्वोक्त निर्णयों और पिछले पैराग्राफों में ऊपर बताए गए और पुन: प्रस्तुत किए गए सार को पढ़ने से, इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 147 और उसके साथ संलग्न परंतुक का सही अर्थ यह है कि अधिनियम नीति तीसरे पक्ष के जोखिमों को आच्छादित करेगी, लेकिन यह ऐसे व्यक्तियों के संबंध में मृत्यु या शारीरिक चोट से उत्पन्न देयता को भी आच्छादित करेगी जिन्हें परंतुक (ए), (बी), (सी) के रूप में में इंगित किया गया है और वह भी, कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 के संदर्भ में निर्धारित सीमित सीमा तक। इसलिए, ऐसे निर्दिष्ट व्यक्तियों से संबंधित कोई भी दायित्व जैसा कि मृत्यु या शारीरिक चोट के कारण परंतुक में उल्लिखित और वर्णित है, उनके दावों को केवल उस सीमा तक सीमित किया जा सकता है जो 1923 के मुआवजा अधिनियम के संदर्भ में निर्धारित किया गया है, लेकिन जिस क्षण किसी अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान ऐसे श्रेणी के व्यक्तियों के लिए किया जाता है, दायित्व को बढ़ाया जा सकता है और असीमित बनाया जाएगा।

34. अब, पूर्वोक्त उक्ति और प्रस्तुत मामले के तथ्यों के अनुपात को लागू करते हुए, यह पाया जाएगा कि प्रश्न में नीति एक अधिनियम नीति है। यह भी साफ है कि लवकुश मालिक सुल्तान का कर्मचारी था। उक्त कर्मचारी ऐसा नहीं था, वह एक आकस्मिक कर्मचारी था, लेकिन एक नियमित चालक था और इसलिए, उसे अधिनियम में उल्लिखित धारा 147(1) परंतुक (ए) के संदर्भ में आच्छादित किया जाएगा। अधिनियम की धारा 167 के अनुसार, पक्षकार के पास या तो 1923 के अधिनियम के अंतर्गत दावा आयुक्त के समक्ष अथवा एमएसीटी के समक्ष दावा याचिका दायर करने

का विकल्प उपलब्ध है। तथापि, अंतर यह होगा कि यदि कोई पक्ष मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष अपना दावा दायर करने का विकल्प चुनता है और अधिकरण एक ऐसी राशि प्रदान करता है जो उस राशि से अधिक है जिसकी गणना 1923 के मुआवजा अधिनियम के तहत की जाती है, तो बीमा कंपनी की देयता केवल उस राशि की सीमा तक होगी जो 1923 के अधिनियम के संदर्भ में देय है और अतिरिक्त राशि मालिक द्वारा द्वारा देय होगी, हालांकि, यदि देयता को आच्छादित करने या बढ़ाने के लिए अतिरिक्त राशि या प्रीमियम का भुगतान किया जाता है, तो संपूर्ण पंचाट बीमा कंपनी द्वारा देय होगा। प्रस्तुत मामले में, चूंकि यह एक अधिनियम नीति थी और ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण ने 1923 के मुआवजा अधिनियम के संदर्भ में इसकी गणना करने वाली राशि को भी देय किया है जैसा कि पंचाट से ही स्पष्ट होगा। तदनुसार, 3,36,000/- रुपये की यह देयता बीमा कंपनी द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है।

35. पूर्वोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण द्वारा प्रदान किया गया निर्णय इस न्यायालय को किसी अन्य निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए राजी करने में मदद नहीं कर्ता एवं ये किसी भी त्रुटि से ग्रस्त नहीं है। इस न्यायालय के समक्ष कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया गया था, तदनुसार, सी.पी. सं-646 वर्ष 2013 में पारित दिनांक 10.07.2019 के पंचाट की पुष्टि की जाती है और अपील योग्यता से रहित होने के कारण **खारिज** की जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं। अधिकरण का अभिलेख संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

(2023) 8 ILRA 196

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 636 वर्ष 1998

श्रीमती सरोजिनी देवी एवं अन्य ...अपीलार्थी

बनाम

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मैनपुरी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:
श्री बी.आर. सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
श्री अरुण कुमार सिन्हा

ए. सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे की राशि-उसकी आय 1500/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है - दुर्घटना के समय मृतक की आयु 36 वर्ष थी, मृतक को भविष्य में होने वाली आय की हानि के रूप में आय का 40% जोड़ना होगा, कटौती 1/3 होगी क्योंकि दो नाबालिग बच्चे, एक माँ और एक विधवा हैं, 16 का गुणक होगा क्योंकि मृतक की आयु 36 वर्ष थी और 70,000/-

रुपये + दो नाबालिग बच्चों के लिए 50,000/- रुपये प्रत्येक - इस प्रकार, दावा याचिका दायर करने की तिथि से दावा याचिका के निर्णय तक 7% की दर से और उसके बाद 6% की दर से कुल मुआवजा 4,38,800/- रुपये दिया जाता है। (प्रस्तर 1 से 16)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीएलएच एससी 442

2. श्रीमती. हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2007) 2 जीएलएच 291

3. श्रीमती सुडेस्ना एवं अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य, एफएएफओ संख्या 23 वर्ष 2001

4. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

5. गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के.वेलुस्वामी एवं अन्य (1962) एस.सी.आर.(1) 929

6. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) लॉ सूट एससी 1093

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर. सिंह और प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला को सुना गया।

2. यह अपील, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.टी./विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट), मैनपुरी (जिसे आगे "ट्रिब्यूनल" कहा जाएगा) द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 167/1996 में पारित दिनांक 7.11.1997 के निर्णय और डिक्री को चुनौती देती है। दुर्घटना विवाद में नहीं है। दुर्घटना में उनकी मृत्यु विवाद का विषय नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय की गई लापरवाही का मुद्दा विवाद का विषय नहीं है। तय किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि मुआवजा कितना दिया जाए।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह प्राप्त हुए कि दिनांक 05.03.1996 को मृतक जगदीश सिंह टैम्पो संख्या यू.टी.एम. 9478 में यात्रा कर रहे थे। लगभग 10:00 बजे जी.टी. रोड पर शंकर कोल्ड स्टोरेज बेवर के सामने उक्त टैम्पो ट्रक संख्या एच.आर. 26/6368 से टकरा गया, जिससे जगदीश सिंह सहित कई व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। आरोप है कि ट्रक संख्या एच.आर. 26/6368 को उसके चालक द्वारा बहुत तेजी व लापरवाही से चलाया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप यह दुर्घटना घटित हुई।

4. मृतक जगदीश सिंह की आयु 36 वर्ष थी तथा वह कृषि एवं पशुपालन से 2000 रुपये प्रतिमाह कमाता था तथा उसके

कानूनी उत्तराधिकारियों में उसके पिता, माता, विधवा और दो नाबालिग पुत्र शामिल हैं। न्यायाधिकरण ने मृतक की आय 1500 रुपये प्रतिमाह मानी, जिसमें से कटौती एक तिहाई थी, एकमुश्त मुआवजा के रूप में 20% की कटौती की गई तथा अंत में 12 का गुणक लागू किया गया तथा 12% ब्याज सहित 1,19,200 रुपये दिए गए।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.आर. सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया कि मृतक की विधवा के मौखिक कथन के अनुसार मृतक की आय 2000 रुपये प्रतिमाह थी, इसलिए **गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी एवं अन्य, 1962, एससीआर (1) 929** के निर्णय के अनुसार 40% जोड़ा जाए, जो उन दिनों में भी उतकृष्ट मूल्य था, 20% एकमुश्त कटौती को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बार-बार अस्वीकार किया गया है, 1/3 की कटौती पर आपत्ति नहीं की गई है, 15 का गुणक और गैर आर्थिक क्षति सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, 2017 लॉसूट (एससी) 1093** के अनुसार या उत्तर प्रदेश में लागू नियमों के अनुसार दी जाए और 12% का ब्याज बरकरार रखा जाए। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर.सिंह द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर.सिंह द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि भविष्य में आय की हानि के शीर्षक के अंतर्गत कोई राशि स्वीकृत नहीं की गई है।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रमाण पत्र के अलावा किसी भी सबूत के अभाव में कोई त्रुटि नहीं है जो किसी भी हस्तक्षेप की मांग करती है, हालांकि, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला भविष्य की संभावनाओं को और 15 का गुणक लागू किया जाने के बारे में कुछ इंगित नहीं कर सके ।

7. पक्षों के वकीलों की सुनवाई करने तथा निर्णय और आदेश का अवलोकन करने के पश्चात, इस न्यायालय को लगता है कि उसकी आय 1500/- रुपए प्रतिमाह मानी जा सकती है। चूंकि दुर्घटना के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी, इसलिए मृतक को भविष्य में होने वाली आय की हानि के रूप में आय का 40% जोड़ा जाना चाहिए, कटौती 1/3 होनी चाहिए क्योंकि मृतक के दो नाबालिग बच्चे, एक माँ और एक विधवा है, 16 का गुणक होना चाहिए क्योंकि मृतक की आयु 36 वर्ष थी और 70,000/- रुपए + दो नाबालिग बच्चों के लिए 50,000/- रुपए प्रत्येक। विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के. शुक्ला की मौखिक आपत्ति स्वीकार की जाती है।

8. इसके अलावा, इस न्यायालय को लगता है कि राशि/ मुआवजे की पुनर्गणना की आवश्यकता है। इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवज़ा नीचे गणना की गई है:

i. आय : 1500/- रु.

ii. भावी संभावनाओं का प्रतिशत : 40% अर्थात 600/- रु.

iii. कुल आय : 1500 + 600 = 2100/- रु.
iv. 1/3 कटौती के बाद आय : 1400/- रु.
v. वार्षिक हानि : 3266 x 12 = 16,800/- रु.
vi. लागू गुणक : 16
vii. कुल हानि : 16,800 x 16 = 2,68,800/- रु.
xii. गैर-आर्थिक मद के अंतर्गत राशि : 70,000/- + 50,000/- + 50,000/- रु.
xiii. कुल मुआवजा : 4,38,800/- रु.

9. जहां तक ब्याज दर का सवाल है, दावा याचिका दायर करने की तारीख से दावा याचिका के निर्णय तक 7% तथा उसके बाद 6% ब्याज दर लागू होगी।

10. मामले की सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं बताया गया।

11. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पारितोषिक पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर पुनर्गणना की गई राशि को ऊपर बताए अनुसार ब्याज सहित जमा करेगी।

12. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक / दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

13. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा **श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, 2007(2) जीएलएच 291** में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित की जानी है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23/2001 **(श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य)** के विरुद्ध प्रथम अपील में समीक्षा आवेदन संख्या 1/2020 में राशि वितरित करते समय दोहराया गया है।

14. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार नए सिरे से निर्णय लिया जाना चाहिए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का

पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना चाहिए।

15. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के अनुसार जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवज़ा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। दुर्घटना वर्ष 1991 की है, इसलिए कोई राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

16. रिकॉर्ड न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए।

17. यह न्यायालय अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.आर.सिंह और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के.शुक्ला को इस न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता करने के लिए धन्यवाद देता है।

(2023) 8 ILRA 199

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 1063 वर्ष 1998

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एम.जी. मार्ग, इलाहाबाद ...अपीलार्थी

बनाम

रमेश कुमार एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री अवनीश मिश्रा, श्री आदित्य सिंह परिहार, सुश्री पूनम श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री एम.आर. जायसवाल, श्री बी.एन. पांडे

ए. सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा173-मुआवजे के अधिनिर्णय को चुनौती- न्यायाधिकरण ने विकलांगता प्रमाण पत्र पर विचार करने में गलती की है - दावेदार पेशे से ड्राइवर था - जांघ के नीचे का अंग विच्छेदन है - दुर्घटना के कारण हुई शारीरिक विकलांगता का आकलन घायल द्वारा किए जा रहे कार्य की प्रकृति के संदर्भ में किया जाना चाहिए ताकि मुआवजे का निर्धारण किया जा सके जो *मोहन सोनी* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक दशक पुराने निर्णय में दिया गया है - वर्तमान मामले में दुर्घटना के कारण हुई शारीरिक विकलांगता का आकलन व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्य के आधार पर किया जाना आवश्यक है - वर्तमान मामले में प्रतिवादी के दाहिने निचले अंग में चोट लगी थी जिसे दुर्घटना के कारण काटना पड़ा था और दाहिने निचले अंग के विच्छेदन के कारण वह ड्राइवर का अपना नियमित कार्य करने की स्थिति में नहीं होगा - दी गई राशि के अनुसार वह 1,000 रुपये कमा रहा था और इस प्रकार 12000 रुपये की गणना की गई है और 13

का गुणक दिया गया है जो 2,00,000 रुपये आता है। वर्ष 1998 का निर्णय और ब्याज की दर सामान्यतः 9% थी लेकिन चूंकि भविष्य में हानि की अनुमति नहीं दी जाती है, इसलिए अन्य राशियों को देखते हुए, जो निम्न स्तर पर हैं, 10% की दर से ब्याज को उच्च स्तर पर नहीं कहा जा सकता। (प्रस्तर 1 से 10)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

मोहन सोनी बनाम राम अवतार तोमर एवं अन्य (2012) 2 एससीसी 267

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा प्रदत्त)

1. इस अपील के माध्यम से, दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने एमएसीपी संख्या 317/1993 में IXवें अपर और सत्र न्यायाधीश, कानपुर देहात द्वारा पारित दिनांक 29.8.1998 के निर्णय और पुरस्कार को चुनौती दी है, जिसमें प्रतिवादी-दावेदारों को 10% की दर से ब्याज के साथ 2,00,000/- रुपये का मुआवजा देने का आदेश दिया गया था।

2. अभिलेख से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह है कि दावेदार रमेश चन्द्र ट्रक संख्या यू.पी.-78/9655 पर चालक के रूप में कार्यरत था और दिनांक 19.12.1992 को प्रातः लगभग 6:00 बजे जब वह हमीरपुर की ओर जा रहा था, तो उसका ट्रक एक अन्य ट्रक संख्या यू.ए.एन.-8577 से दुर्घटनाग्रस्त हो गया। दावेदार रमेश चन्द्र को गम्भीर चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप उसका पैर काटना पड़ा।

3. दुर्घटना विवाद में नहीं है और इसलिए, उक्त पहलू का कारण नहीं है। पॉलिसी का प्रचलन में होना भी विवाद में नहीं है और उनकी देयता भी विवाद में नहीं है। एकमात्र विवाद विकलांगता के प्रतिशत और ब्याज के बारे में है। इन दो आधारों के अलावा कोई अन्य आधार नहीं उठाया गया है।

4. अपीलकर्ता के वकील के अनुसार न्यायाधिकरण ने विकलांगता प्रमाण पत्र पर विचार करने में गलती की है, जिसमें दिखाया गया है कि विकलांगता 50% है, इसके बावजूद न्यायाधिकरण ने घायल की विकलांगता को 100% माना है जो कानून की नजर में गलत है।

5. अभिलेखों को देखने पर यह स्पष्ट है कि दावेदार पेशे से ड्राइवर था। जांघ के नीचे का निचला अंग कटा हुआ है। यह तथ्य का प्रश्न है कि दुर्घटना के कारण हुई शारीरिक अक्षमता का आकलन, घायल व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्य की प्रकृति के संदर्भ में किया जाना चाहिए, ताकि मुआवजा निर्धारित किया जा सके, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के ***मोहन सोनी बनाम राम अवतार तोमर एवं अन्य (2012) 2 एससीसी 267*** में एक दशक पुराने निर्णय में दिया गया है। हमारे मामले में दुर्घटना के कारण हुई शारीरिक अक्षमता का आकलन व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्य के आधार पर किया जाना चाहिए। इस मामले में प्रतिवादी के दाहिने निचले अंग में चोट लगी थी, जिसे दुर्घटना के कारण काटना पड़ा था,

तथा दाहिने निचले अंग के कट जाने के कारण वह ड्राइवर का अपना नियमित कार्य करने की स्थिति में नहीं था।

6. दी गई राशि के अनुसार वह 1,000 रुपये कमा रहा था और इस प्रकार 12000 रुपये की गणना की गई और 13 का गुणक प्रदान किया गया जो 2,00,000 रुपये बनता है। इस न्यायालय ने अपीलकर्ता की ओर से मौखिक प्रस्तुति पर विचार किया है। दी गई राशि को अधिक नहीं कहा जा सकता।

7. इस मामले को देखते हुए घायल व्यक्ति ड्राइवर के रूप में अपना पेशा जारी रखने की स्थिति में नहीं है, इस निष्कर्ष को गलत नहीं कहा जा सकता।

8. 13 का गुणक लागू किया गया है। न्यायाधिकरण ने भविष्य में आय की हानि के मद में कोई राशि मंजूर नहीं की है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायाधिकरण ने उचित मुआवजा न देकर गलती की है।

9. वर्ष 1998 का पुरस्कार और ब्याज की दर सामान्य रूप से 9% थी, लेकिन चूंकि भविष्य में नुकसान नहीं दिया जाता है, अन्य राशि को देखते हुए, जो कि निचले स्तर पर है, 10% की दर से ब्याज को उच्चतर नहीं कहा जा सकता है।

10. उपरोक्त के मद्देनजर, यह अपील योग्यताहीन है और खारिज की जाती है।

11. रिकॉर्ड और कार्यवाही को तुरंत न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाएगा जो दावेदार की पहचान सुनिश्चित करने के बाद तुरंत राशि का भुगतान करेगा।

(2023) 8 ILRA 200

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 1287 वर्ष 1998

और

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 1178 वर्ष 1998

श्रीमती सुषमा देवी एवं एक अन्य ...अपीलार्थी

बनाम

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य

...प्रतिवादीगण

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्री राकेश कुमार पोरवाल

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री आनंद कुमार सिन्हा

ए. सिविल कानून-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे के अधिनिर्णय को चुनौती-मृतक एक प्रशिक्षित कनिष्ठ अभियंता था, इसलिए दुर्घटना के वर्ष में उसकी आय 1500/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है, जिसमें से 40% भविष्य में होने वाली आय की हानि के लिए जोड़ा जाना चाहिए-मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती एक-तिहाई

होगी क्योंकि मृतक की विधवा और एक अन्य कानूनी उत्तराधिकारी जीवित थे-मृतक की आयु 25 वर्ष थी, इसलिए लागू गुणक 18 होगा-जहाँ तक गैर-आर्थिक क्षति के मद में राशि का संबंध है, 70,000/- रुपये दिए जाते हैं- इस प्रकार, कुल 3,72,400/- रुपये का मुआवजा दिया जाता है। न्यायाधिकरण ने 12% ब्याज दर निर्धारित की है, जिसे घटाकर 9% प्रति वर्ष कर दिया गया है। अतिरिक्त राशि दावा याचिका दायर करने की तिथि से लेकर निर्णय की तिथि तक और उसके बाद 6% होगी। (प्रस्तर1 से 24)

बी. यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि यदि यह साझा लापरवाही का मामला है, तो केवल दोनों वाहनों के मालिक और चालक ही उत्तरदायी होंगे। हमारे मामले में, निष्कर्ष बिल्कुल स्पष्ट है कि बस चालक की पूरी तरह से लापरवाही थी और मोटरसाइकिल चालक की ओर से कोई लापरवाही नहीं है। एक बार यह मान लिया जाए कि मोटरसाइकिल चालक लापरवाह नहीं है, तो मोटरसाइकिल के बीमाकर्ता को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। (प्रस्तर 13)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुसामी (1962) एससीआर 1 929

2. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बिस्मिल्लाह बाई (2009) 5 एससीसी 112

3. समुंद्रा देवी बनाम नरेंद्र कौर (2008) 9 एससीसी 100

4. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुधाकरन के.वी. (2008) 7 एससीसी 428

5. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीएलएच एससी 442

6. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2007) 2 जीएलएच 291

7. श्रीमती सुडेस्ना एवं अन्य बनाम हरि सिंह और एक अन्य एफएएफओ संख्या 23 वर्ष 2001

8. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार पोरवाल, प्रतिवादी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद कुमार सिन्हा को सुना गया तथा आक्षेपित निर्णय एवं आदेश का अवलोकन किया गया।

2. इन दोनों अपीलों में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/सप्तम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इटावा द्वारा एम.ए.सी. संख्या 353/1994 (सुषमा देवी एवं अन्य बनाम ओम प्रकाश गुप्ता एवं अन्य) एवं 354/1994 (रामेश्वरी

देवी एवं अन्य बनाम ओम प्रकाश गुप्ता एवं अन्य) में पारित दिनांक 31.8.1998 के निर्णय एवं पारितोषिक को चुनौती दी गई है।

3. एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1287/1998 को दावा याचिका संख्या 353/1998 के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके अंतर्गत न्यायाधिकरण ने प्रतिवादी-दावेदारों को 12% की दर से ब्याज सहित 1,35,000/- रुपए का मुआवजा प्रदान किया है। एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1178/1998 को दावा याचिका संख्या 354/1993 के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसे दोष रहित दायित्व के अंतर्गत प्रदान की गई राशि के संदर्भ में खारिज कर दिया गया था।

4. श्री आर.के. पोरवाल ने अपने जवाब में एक बहुत ही मनगढ़ंत तर्क दिया है जिसे पूरी तरह से खारिज किया जाना चाहिए। दावा याचिका मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 और 166 के तहत थी। श्री पोरवाल ने दलील दी है कि इस न्यायालय द्वारा दावा याचिका पर मोटर वाहन अधिनियम की धारा 163 ए के तहत विचार किया जाना चाहिए और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड पर दायित्व तय किया जाना चाहिए, जो कि उस मोटरसाइकिल का बीमाकर्ता है जिस पर मृतक यात्रा कर रहे थे, हालांकि मोटरसाइकिल के चालक को दुर्घटना में योगदान नहीं देने वाला माना जाता है।

5. यह काल्पनिक तर्क इसलिए दिया गया है क्योंकि अपीलकर्ता श्री सिन्हा के विद्वान वकील और बीमा कंपनी के विद्वान वकील ने न्यायाधिकरण के फैसले का समर्थन किया। न्यायाधिकरण ने माना है कि बस चालक की लापरवाही थी और बस के मालिक तथा चालक से वसूली का अधिकार दिया है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि वाहन का बीमा नहीं था या फिर मालिक तथा चालक ने बस की बीमा पॉलिसी का विवरण नहीं दिया था।

6. यह न्यायालय को मुआवजे के पहलू की ओर ले जाता है क्योंकि यह एकमात्र पहलू है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है। श्री पोरवाल द्वारा यह तर्क दिया गया कि न्यायाधिकरण ने मृतक की विधवा द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका संख्या 354/1993 को खारिज कर दिया। न्यायाधिकरण ने श्री पोरवाल के प्रति उचित सम्मान के साथ दावा याचिका को खारिज नहीं किया, बल्कि मृतक की विधवा को बिना किसी दोष के दायित्व की राशि प्रदान की, जो पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार 75 वर्ष की थी। बीमा कंपनी के विद्वान वकील श्री सिन्हा का तर्क है कि बिना किसी दोष के दायित्व के तहत जो राशि पहले ही चुकाई जा चुकी है, वह उचित मुआवजे के रूप में सही है। श्री सिन्हा ने दलील दी है कि मृतक की उम्र 70 वर्ष से अधिक होने के कारण, उक्त आदेश में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है, न्यायाधिकरण ने उसकी आय 10,000/- रुपये प्रति वर्ष मानी है तथा 5 का गुणक लागू किया है। यह दलील दी गई है कि दोष रहित देयता के लिए बीमा कंपनी ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 140 के तहत दायर दावा याचिका में पहले ही राशि जमा कर दी है।

7. हालांकि, विधवा रामेश्वरी देवी को गैर-आर्थिक क्षति के मद में 20,000/- रुपए नीचे

दिए गए निर्देशानुसार ब्याज सहित देय होंगे। दावेदार गैर-अपकारक होने के कारण किसी भी अपकारक से राशि वसूल सकता है।

8. यह न्यायालय दावा याचिका संख्या 353/1993 के विरुद्ध आदेश से प्रथम अपील संख्या 1287/1998 की ओर ले जाता है। 25 वर्षीय एक युवा ने उस समय अंतिम सांस ली जब वह एक प्रशिक्षित जूनियर इंजीनियर था। न्यायाधिकरण ने उनकी आय 15,000/- रुपये प्रति वर्ष मानी है और 750/- रुपये को आधार मान कर 18 का गुणक प्रदान किया है। न्यायाधिकरण ने गैर-आर्थिक क्षति के लिए केवल 7000/- रुपये दिए हैं और भविष्य में आय की हानि के तहत कोई राशि नहीं दी है, यह अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील का कथन है और यह तथ्य विवादित निर्णय से उभरे हैं।

9. इस राशि की पुनर्गणना की आवश्यकता है क्योंकि दुर्घटना के वर्ष यानी 1993 में भी, **गोबल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड और अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुसामी, 1962 एस.सी.आर. (1) 929** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय बहुत महत्वपूर्ण था और भविष्य की संभावनाएँ प्रदान की गई थीं। इस मामले में, एक जूनियर इंजीनियर को भविष्य की संभावनाएँ प्रदान की जानी थीं, जिसने अपनी विधवा और बच्चों को पीछे छोड़ते हुए अपनी जान गंवा दी।

10. मृतक प्रशिक्षित जूनियर इंजीनियर था, इसलिए दुर्घटना के वर्ष में उसकी आय 1500/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है, जिसमें 40% भविष्य की आय हानि के लिए जोड़ा जाना चाहिए। मृतक के व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती 1/3 होगी क्योंकि मृतक की विधवा और एक अन्य कानूनी उत्तराधिकारी जीवित था। मृतक की आयु 25 वर्ष थी, इसलिए लागू गुणक 18 होगा। जहां तक गैर-आर्थिक क्षति के मद में राशि का संबंध है, 70,000/- रुपये दिए जाते हैं।

11. इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजा नीचे गणना की गई है:

i. आय: 1500/- रुपये प्रति माह अर्थात 18000/- रुपये प्रति वर्ष।
ii. भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशत: 40% अर्थात 7200/- रुपये
iii. कुल आय: 18000 + 7200 = 25,200/- रुपये
iv. व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/3 की कटौती के बाद आय: 16,800/- रुपये
v. लागू गुणक: 18
vi. निर्भरता की हानि: 16,800 x 18 = 3,02,400/- रुपये
vii. गैर-आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि: 70,000/- रुपये
viii. कुल मुआवजा: 3,72,400/- रुपये

12. जहां तक ब्याज के मुद्दे का सवाल है, न्यायाधिकरण ने 12% ब्याज दर तय की है जिसे घटाकर 9% प्रति वर्ष कर दिया गया है। अतिरिक्त राशि पर दावा याचिका दायर करने की तिथि से लेकर पारितोषिक की तिथि तक 9% की दर से ब्याज लगेगा और उसके बाद राशि जमा होने तक 6% की दर से ब्याज लगेगा।

दायित्व

13. यह एक प्रमुख सिद्धांत है कि यदि यह समग्र लापरवाही का प्रश्न है तो केवल दोनों वाहनों के मालिक और चालक ही उत्तरदायी होंगे। हमारे मामले में, निष्कर्ष बहुत स्पष्ट है कि बस का चालक पूरी तरह से लापरवाह था और मोटरसाइकिल चालक की ओर से कोई लापरवाही नहीं है। एक बार जब यह माना जाता है कि मोटरसाइकिल का चालक लापरवाह नहीं है, तो मोटरसाइकिल के बीमाकर्ता को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

14. **"न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बिस्मिल्लाह बाई, (2009) 5 एससीसी 112"** के मामले में निर्धारित अनुपात के अनुसार, वाहन का बीमा करने वाली बीमा कंपनी की जिम्मेदारी दुर्घटना के लिए जिम्मेदार नहीं है या दुर्घटना में योगदान नहीं दे रही है। उक्त मामले में, एक जीप एक ट्रक से टकरा गई। दुर्घटना में शामिल ट्रक का बीमा नहीं था। न्यायाधिकरण ने दर्ज किया कि जीप के चालक ने जीप चलाने में लापरवाही नहीं बरती और दुर्घटना में योगदान नहीं दिया। उच्च न्यायालय ने जीप के बीमाकर्ता पर जिम्मेदारी तय की। असंधारणीयता। माना कि केवल इसलिए कि ट्रक का बीमा नहीं था, अपीलकर्ता को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है, जबकि दायित्व ट्रक के चालक और मालिक द्वारा वहन किया जा रहा था, न कि जीप के चालक और मालिक द्वारा।

15. **"समुंद्रा देवी बनाम नरेंद्र कौर, (2008) 9 एससीसी 100"** के मामले में निर्धारित अनुपात के अनुसार, बीमा अनुबंध, जैसा कि सर्वविदित है, क्षतिपूर्ति का अनुबंध है। दुर्घटना के मामले में, क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए कानून के तहत प्राथमिक दायित्व चालक का होता है। वाहन का मालिक भी इसके लिए उत्तरदायी होता है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा-147 के अनुसार बीमा अनुबंध में किसी तीसरे पक्ष को शामिल करने वाले मामले में, अनिवार्य बीमा प्रदान करते हुए, बीमाकर्ता मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी होता है। निस्संदेह, बीमा कंपनी तीसरे पक्ष को हुए नुकसान या क्षति या संपत्ति के संबंध में बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगी। इसलिए, ऐसे मामले में, जहां दायित्व बीमाकर्ता पर लगाया गया है, बीमाकर्ता को बीमाकृत व्यक्ति को क्षतिपूर्ति देने के लिए बाध्य होगा, जब तक कि अधिनियम की धारा-149 में निहित अपवाद संलग्न न हों। (पैरा-15)। कुछ स्थितियों में जब बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगी, बीमा कंपनी को तीसरे पक्ष को मुआवजे की राशि का भुगतान करने और वाहन के मालिक से इसे वसूलने का निर्देश दिया जा सकता है। ऐसे निर्देश को चुनौती नहीं दी गई थी। (पैरा-16)।

16. **"ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुधाकरन के.वी. (2008) 7 एससीसी 428"** के मामले में निर्धारित अनुपात के अनुसार, तीसरे पक्ष और वाहन के मालिक या चालक के संबंध में बीमा अनुबंध के बीच अंतर किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा-147

के अनुसार, बीमा अनुबंध वाहन के मालिकों द्वारा केवल तीसरे पक्ष को दावे की प्रतिपूर्ति के संबंध में ही लिया जाना चाहिए। धारा-147 अनिवार्य प्रकृति की है। हालांकि, जब वाहन का मालिक खुद को अन्य जोखिमों से बचाने का इरादा रखता है, तो बीमा अनुबंध में प्रवेश करना अनुमेय है, जिसमें बीमाकर्ता वाहन के मालिक को उसके नियमों के अनुसार प्रतिपूर्ति करने के लिए बाध्य होगा। इस प्रकार, तीसरे पक्ष द्वारा किए गए दावे के संबंध में मालिक को प्रतिपूर्ति करने के लिए बीमाकर्ता का दायित्व वैधानिक है, जबकि अन्य दावे वैधानिक नहीं हैं। (पैरा-16, 13 और 14)। अधिनियम के प्रावधान और विशेष रूप से अधिनियम की धारा-147 सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करने के उद्देश्य से अधिनियमित की गई थी। हालाँकि, इसे तीसरे पक्ष के जोखिम तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। बीमा का एक अनुबंध जो प्रकृति में वैधानिक नहीं है, उसे किसी अन्य अनुबंध की तरह ही समझा जाना चाहिए।

17. उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि मोटरसाइकिल की बीमा कंपनी को किसी भी देयता से जोड़ने के लिए कोई और आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। देयता बस के मालिक और चालक पर डाली जानी चाहिए। यह न्यायाधिकरण के समक्ष या इस न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था कि बस का बीमा किया गया था या नहीं। जैसा भी हो, मोटरसाइकिल की बीमा कंपनी द्वारा भुगतान किए जाने वाले उक्त निष्कर्ष को शेष राशि के लिए आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह स्पष्ट निष्कर्ष है कि बस का चालक पूरी तरह से लापरवाह था। बस के चालक और मालिक इस अपील को दायर करने के बाद से 25 साल की अवधि के लिए अनुपस्थित रहे हैं।

18. हालाँकि, बिना किसी गलती के दायित्व के तहत राशि पहले ही जमा कर दी गई है, इसलिए मोटरसाइकिल के बीमाकर्ता को कोई राशि जमा करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। यह राशि बस के चालक और मालिक से वसूल की जानी चाहिए, जो 23 साल से अनुपस्थित हैं और इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए हैं।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, दोनों अपीलों को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित मानी जाएगी। प्रतिवादी को आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित राशि जमा करनी होगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा। रिकॉर्ड और कार्यवाही को न्यायाधिकरण को तुरंत वापस भेजा जाए।

20. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का

आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही ग्रामीण हैं।

21. **श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड , 2007(2) जीएलएच 291** में रिपोर्ट किया गये मामले में, माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित की जानी है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23/ 2001 **(श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य)** के विरुद्ध प्रथम अपील के पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/ 2020 में राशि वितरित करते समय दोहराया गया है।

22. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार नए सिरे से निर्णय लिया जाना चाहिए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना चाहिए।

23. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के अनुसार जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवज़ा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। दुर्घटना वर्ष 1991 की है, इसलिए कोई राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

24. यह न्यायालय इस मामले का निर्णय करवाने के लिए दोनों वकीलों का आभारी है।

(2023) 8 ILRA 205

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील संख्या 3826 वर्ष 2009

आशीष कुँअर यादव ...अपीलार्थी

बनाम

आत्मा नंद सिंह एवं एक अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

श्री राम सिंह, श्री अमित कुमार सिन्हा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
श्री अमित मनोहर

ए. सिविल कानून-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे में वृद्धि-दुर्घटना के समय, दावेदार 22 वर्ष का एक युवा और छात्र था। चोटों के कारण, दावेदार एक स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति से स्थायी रूप से विकलांग हो गया- उपचार के दौरान, दावेदार का दाहिना निचला अंग घुटने के ऊपर से काटना पड़ा, जिससे उसे स्थायी विकलांगता हो गई, जिसका आकलन मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने 50% स्थायी विकलांगता के रूप में किया- दावेदार ने द्वितीय श्रेणी में हाई स्कूल और इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के लिए निजी छात्र के रूप में अध्ययन कर रहा था- न्यायाधिकरण ने उसे रु0 9,52,000/- का अधिनिर्णय दिया- घायल व्यक्ति 21-25 वर्ष की आयु वर्ग में आता है, जिसके लिए 18 का गुणक परिकल्पित किया गया है- न्यायाधिकरण 17 का गुणक अपनाने में त्रुटि कर गया है- भविष्य की संभावनाओं के लिए 40% जोड़ने पर, यह 6784.40 रुपये प्रति माह यानी 81,412.80 प्रति वर्ष होता है- 18 का गुणक लागू करने पर, यह 14,65,430 रुपये होता है और चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए क्षतिपूर्ति 2,00,000/- रुपये और जीवन की सुविधाओं का नुकसान और भविष्य में जीवन या दर्द की उम्मीद का नुकसान 2000/- रुपये। इस प्रकार, दावेदार को 7% प्रति वर्ष की दर से कुल 16,79,000/- रुपये की राशि स्वीकृत किया गया। (प्रस्तर 1 से 32)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. आर.डी. हट्टंगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) (पी) लिमिटेड (1995) 1 एससीसी 551: 1995 एससीसी (क्रिमिनल) 250

2. गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड (2011) 10 एससीसी 683 : (2012) 3 एससीसी (सिविल) 1082 : (2012) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 82 : (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 422

3. ओरिएंटल इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड, गाज़ियाबाद बनाम लोकेश उर्फ लवेश और एक अन्य

4. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंश कंपनी लिमिटेड (2012) 12 एससीसी 274 : (2013) 2 एससीसी (सिविल) 279 : (2013) 4 एससीसी (क्रिमिनल) 638 : एआईआर ऑनलाइन 2012 एससी 633

5. राज कुमार बनाम अजय कुमार (2011) 1 एससीसी 343 : (2011) 1 एससीसी (सिविल) 164 : (2011) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 1161 : एआईआर ऑनलाइन 2010 एससी 125

6. इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी (1979) 4 एससीसी 365: 1979 एससीसी (क्रिमिनल) 996: 1980 एसीजे 55: एआईआर 1979 एससी 1666

रोहतक

7. उ.प्र. एसआरटीसी बनाम श्रीमती मधु शर्मा एवं अन्य (2003) 4 एडब्ल्यूसी 2620

8. लक्ष्मी नारायण गुईन एवं अन्य बनाम निरंजन मोदक (1985) एआईआर एससी 111

9. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह (1974) एआईआर एससी 2068

10. दयावती बनाम इंद्रजीत (1966) एआईआर एससी 1423

11. मुला बनाम गोधू (1971) एआईआर एससी 89

12. राम सरूप बनाम मुंशी (1963) एआईआर एससी 553

13. सुशील कुमार एवं अन्य बनाम मेसर्स संपर्क लॉजिस्टिक प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य

14. सुशील के. जगदीश बनाम मोहन एवं अन्य

15. नेशनल इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी

16. न्यू इंडिया एश्योरेंश कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह एक दावेदार की अपील है, जो मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 1, इलाहाबाद द्वारा 2005 की दावा याचिका संख्या 638 में दिनांक 09.04.2009 को पारित निर्णय और पुरस्कार से उत्पन्न होती है, जिसमें दिए गए मुआवजे को बढ़ाने की मांग की गई है।

2. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य, जैसा कि दावा याचिका में निर्धारित किया गया है, हैं:

1 जून, 2005 को, आशीष कुमार यादव, दावेदार-अपीलकर्ता मोटरसाइकिल यूपी 70 एएफ 6420 पर पीछे की सवारी कर रहा था, जिसमें सवार की सीट पर राजेश कुमार यादव था। लगभग 06:30 बजे जब दोनों पुलिस स्टेशन सोरांव, जिला इलाहाबाद (अब प्रयागराज) की स्थानीय सीमा के अंतर्गत आने वाले गांव रंगपुरा पहुंचे, तो एक डम्पर ट्रक का पंजीकरण संख्या UP 70 AT 1665 था, तेज गति से और लापरवाही से, विपरीत दिशा से समीप आया। इसने बिना हॉर्न की आवाज दिए मोटरसाइकिल को टक्कर मार दी। दुर्घटना के कारण दावेदार को गंभीर चोटें आईं। परिणामस्वरूप, दावेदार स्थायी रूप से विकलांग हो गया है। दुर्घटना के समय, दावेदार 22 साल का एक युवक और एक छात्र था। चोटों के परिणामस्वरूप, दावेदार एक सक्षम व्यक्ति से स्थायी रूप से विकलांग और विकलांग व्यक्ति में बदल गया। उपचार के दौरान, दावेदार के दाहिने निचले अंग को घुटने के ऊपर काटना पड़ा, जिससे उसे एक स्थायी विकलांगता विकसित हुई, जिसका मूल्यांकन मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने 50% स्थायी विकलांगता के रूप में किया था। दावेदार ने अपनी स्नातक की डिग्री अर्जित की थी और

अपनी प्रतियोगी परीक्षा लिखने और नौकरी की तलाश करने की तैयारी कर रहा था। दुर्घटना ने उन्हें स्थायी रूप से इस हद तक अपंग बना दिया है कि वह अब अपनी आजीविका कमाने के लिए नौकरी या व्यवसाय करने की स्थिति में नहीं हैं। उनका भविष्य दर्दनाक और अंधकारमय हो गया है। दावेदार गंभीर चोट के स्थान पर लगातार दर्द से पीड़ित होता है, जो उसे स्थायी रूप से दर्द और पीड़ा देता है। इसका अभी भी इलाज किया जा रहा है और भविष्य में, सभी संभावनाओं में उपचार और दवाओं पर व्यय की भी आवश्यकता होगी। दावेदार को एक विशेष आहार पर निर्भर रहना पड़ता है और पौष्टिक भोजन, जैसे रस, फल और टॉनिक लेना पड़ता है। आवश्यक पौष्टिक भोजन खरीदने के लिए उसे अतिरिक्त खर्च वहन करना पड़ता है। असुविधा, कठिनाई, निराशावाद है, जो दावेदार के जीवन का हिस्सा बन गया है। दुर्घटना में लगी चोटें और उसके बाद के प्रभाव ऐसे हैं कि अपीलकर्ता जीवन को उस तरह से नहीं जी सकता है जिस तरह से वह चाहता है और वह अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता है। उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। संभावना यह है कि यह कठिनाई और निर्भरता उसके शेष जीवन के लिए जारी रहेगी। चोटों ने इस तरह की दुर्बलता पैदा कर दी है कि दावेदार उस तरह से आगे नहीं बढ़ सकता है जिस तरह से उसने पहले किया था, या खुद के लिए वाहन का उपयोग पहले जैसा नहीं कर सकता है। दावेदार द्वारा स्थायी चोटों के लिए खुद को मुआवजा देने के लिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत ₹ 30 लाख की और उक्त अधिनियम की धारा 140 के तहत 25,000 / मुआवजे में दावा की गई राशि को दावा याचिका दायर किए जाने की तारीख से वसूली तक 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

3. आत्मानंद सिंह डंपर ट्रक नंबर UP 70 AT 1665 के मालिक हैं। वह दावा याचिका के प्रतिपक्ष नंबर 1 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर 1 के है। इसके बाद उसे 'मालिक' कहा जाएगा। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, क्षेत्रीय कार्यालय, 9 वीं मंजिल, इंदिरा भवन, सिविल लाइंस, प्रयागराज उल्लंघन करने वाले डंपर के बीमाकर्ता हैं। उन्हें दावा याचिका के विपरीत पार्टी नंबर 2 और इस अपील के प्रतिवादी नंबर 2 के रूप में पेश किया गया है। उपरोक्त बीमा कंपनी को इसके बाद 'बीमाकर्ता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

4. मालिक ने एक लिखित बयान दिया है, आम तौर पर दावा याचिका में आरोपों से इनकार करते हुए, इस तथ्य को छोड़कर कि वह उल्लंघन करने वाले वाहन का मालिक है। यह दावा किया जाता है कि यह बीमाकर्ताओं के साथ बीमा किया गया था। यह बीमा पॉलिसी दिनांक 24.01.2005 से 23.01.2006 तक वैध थी। यह भी दावा किया गया है कि चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, जो 18.09.2004 से 17.09.2007 तक प्रभावी था। यह माना जाता है कि मोटरसाइकिल सवार और उसके मालिक को पक्षकारों के रूप में नहीं रखा गया है, जिससे आवश्यक पक्षों के नॉन-जॉइंडर के लिए दावा याचिका खराब हो गई है। आगे यह दलील दी गई है कि दुर्घटना मोटरसाइकिल सवार द्वारा तेज और लापरवाही

से सवारी करने के कारण हुई थी, और यह दुर्घटना डंपर ट्रक के दुर्घटना स्थल पर पहुंचने से एक घंटे पहले हुई थी। स्थानीय राजनीतिक दबाव के कारण दुर्घटना में आपत्तिजनक वाहन को फंसाया गया था।

5. बीमा कंपनियों ने एक अलग लिखित बयान दिया है, जिसमें दावा याचिका में लगाए गए आरोपों से भी इनकार किया गया है। यह माना जाता है कि उन्हें दुर्घटना के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यह भी दलील दी गई है कि आपत्तिजनक डंपर एक चालक चला रहा था, जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। उल्लंघन करने वाले वाहन के पास पंजीकरण प्रमाण पत्र या फिटनेस प्रमाण पत्र नहीं था। यह बीमा पॉलिसी के नियमों और शर्तों के उल्लंघन में संचालित किया जा रहा था और बीमाकर्ता बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64VB के लाभ का दावा करने के हकदार हैं। बीमाकर्ताओं का अगला मामला यह था कि दुर्घटना कथित तरीके से नहीं बल्कि मोटरसाइकिल सवार की गलती के कारण हुई थी।

6. पक्षकारों की दलीलों पर, ट्रिब्यूनल द्वारा निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए गए थे:

1. क्या 1.6.2005 को जब दावेदार मोटरसाइकिल नं. यू.पी. 70 एएफ 6420 और जब वह सुबह 6-30 बजे गांव रंगपुरा पीएस सोरांव में पहुंचा तो एक ट्रक नं. यू.पी. 70 AT 1665 (डम्पर) जो विपरीत दिशा से आ रहा था, उसे तेज और लापरवाही से चलाया जा रहा था, मोटर साइकिल से टकरा गया, जिससे दावेदार को गंभीर चोटें आईं?

2. क्या उक्त ट्रक का ओ.पी कंपनी से बीमा नहीं किया गया था?

3. क्या दुर्घटना के दिन ट्रक चालक के पास वैध डीएल नहीं था?

4. क्या ट्रक को बीमा पॉलिसी की शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था?

5. क्या बीमा कंपनी बीमा अधिनियम की धारा 64VB का लाभ प्राप्त करने की हकदार है?

6. क्या उक्त दुर्घटना मोटर साइकिल चालक के तेज और लापरवाही से वाहन चलाने के कारण हुई थी?

7. क्या याचिका दोषपूर्ण है क्योंकि मोटरसाइकिल के मालिक और चालक को पक्ष के रूप में नहीं रखा गया है जैसा कि डब्ल्यूएस 12 ए के पैरा 16-17 में आरोप लगाया गया है?

8. क्या दावेदार किसी राहत का हकदार है? यदि हाँ, तो कितना और किससे?

7. दावेदार ने 14 दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रतियां दायर की हैं, जिसमें एक चेक एफआईआर, दो डिस्चार्ज कार्ड, शारीरिक विकलांग प्रमाण पत्र, उसका शैक्षिक प्रमाण पत्र, उल्लंघन करने वाले वाहन का पंजीकरण प्रमाण पत्र और उसका फिटनेस प्रमाण पत्र शामिल है। बीमाकर्ताओं ने दो दस्तावेज दायर किए हैं, जिसमें एआरटीओ, पलामू, झारखंड का प्रमाण पत्र उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक के ड्राइविंग लाइसेंस और उनके द्वारा जारी बीमा के प्रमाण पत्र के बारे में है।

8. ट्रिब्यूनल ने दावेदार के पक्ष में मुद्दा नंबर 1 का जवाब दिया, जिसमें कहा गया था कि दुर्घटना आंशिक रूप से उल्लंघन करने वाले वाहन, डम्पर ट्रक के चालक द्वारा तेज और लापरवाही से ड्राइविंग के कारण हुई थी। मुद्दा नंबर 2 बीमाकर्ताओं के खिलाफ और दावेदार और मालिक के पक्ष में तय किया गया था। मुद्दा नंबर 3 भी दावेदार और मालिक के पक्ष में और बीमाकर्ताओं के खिलाफ तय किया गया था, जिसमें कहा गया था कि यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि डम्पर ट्रक के चालक का ड्राइविंग लाइसेंस नकली या जाली है। मुद्दा नंबर 4 भी बीमाकर्ताओं के खिलाफ और दावेदार और मालिक के पक्ष में तय किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उल्लंघन करने वाले वाहन को बीमा पॉलिसी की शर्तों के खिलाफ नहीं रखा जा रहा था। मुद्दा नंबर 5 बीमाकर्ताओं के खिलाफ और दावेदार और मालिकों के पक्ष में तय किया गया था। मुद्दा नंबर 6 मालिक और बीमाकर्ताओं के खिलाफ तय किया गया था, जिसमें कहा गया था कि दुर्घटना मोटरसाइकिल चालक द्वारा तेज और लापरवाही से ड्राइविंग के कारण नहीं हुई थी। मुद्दा नंबर 7 मालिक के खिलाफ तय किया गया था, जिसके कहने पर, इसे दावेदार के पक्ष में तैयार किया गया था। यह माना गया कि अन्य मुद्दों पर निष्कर्षों को देखते हुए, दावा याचिका के पक्षकारों के रूप में मोटरसाइकिल के मालिक, सवार और बीमाकर्ताओं को पक्षकार बनाना आवश्यक नहीं था। मुद्दा संख्या 8 देय मुआवजे की मात्रा से संबंधित है और पार्टी पुरस्कार को संतुष्ट करने के लिए बाध्य है।

9. यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि यह दावेदार द्वारा एक अपील है, और जैसा कि पहले ही देखा गया है, प्रभावी रूप से यह अकेले मुद्दे संख्या 8 पर निष्कर्ष है जो इस अपील में विचार के लिए है। चूंकि अधिनिर्णय को संतुष्ट करने की देयता बीमाकर्ताओं पर कर दी गई है, अपील को प्रभावी ढंग से सुना गया है, दावेदार ने वृद्धि के अपने मामले का समर्थन किया है, और, बीमाकर्ता, इसका विरोध कर रहे हैं। मालिक ने इस अदालत के समक्ष प्रतिवाद नहीं किया है।

10. श्री अमित कुमार सिन्हा, दावेदार के विद्वान वकील, श्री अमित मनोहर, बीमाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुना। मालिकों के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ है।

11. ट्रिब्यूनल ने इस तथ्य पर विचार किया है दावेदार द्वितीय श्रेणी में अपने हाई स्कूल और इंटरमीडिएट प्रमाण पत्र अर्जित किया है और अपनी स्नातक की डिग्री हासिल करने के लिए एक निजी उम्मीदवार के रूप में पढ़ रहा था। ट्रिब्यूनल ने घायल की समकालीन संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, 5,000/मासिक आय का आकलन किया है। उस आधार पर, 60,000/- वाषक आय आंकी गई है। 50% शारीरिक विकलांग प्रमाण पत्र को आय का 50% स्थायी नुकसान माना गया है। ट्रिब्यूनल ने यह भी टिप्पणी की है कि भविष्य में, दावेदार नौकरी सुरक्षित कर सकता है या व्यवसाय कर सकता है और शारीरिक रूप से विकलांग कोटा के तहत रोजगार का लाभ प्राप्त कर सकता है।

12. गुणक को अपनाने के लिए, ट्रिब्यूनल अधिनियम की दूसरी अनुसूची पर वापस आ गया है और घायल की उम्र को देखते हुए, '17' का गुणक चुना गया है। इस प्रकार, वार्षिक आय को 17 के चुने हुए गुणक से गुणा करने पर, आय की हानि के कारण मूल पात्रता ₹ 5,10,000/- के आंकड़े पर निर्धारित की गई है। अधिकरण द्वारा वाउचर और रिकार्ड पर प्राप्तियों के संदर्भ में उपचार और चिकित्सा प्रक्रियाओं पर व्यय 4,11,64876 रुपए पाया गया है जिसे अधिकरण ने पूर्णांकित कर 4,12,000/- रुपए कर दिया है। विशेष आहार के शीर्ष के तहत, जिसे दावेदार को उपभोग करना था, ट्रिब्यूनल ने ₹ 25,000 / दिया है। मानसिक सदमे और सिर के दर्द के तहत, यह ध्यान में रखते हुए कि दावेदार का दाहिना निचला अंग काट दिया गया है, उसे ₹5,000/- की राशि से सम्मानित किया गया है। इस प्रकार दावेदार को मुआवजे के रूप में कुल 9,52,000/- रुपये की राशि प्रदान की गई है।

13. दावेदार के विद्वान वकील श्री अमित कुमार सिन्हा ने तर्क दिया है कि दिया गया मुआवजा पात्रता से बहुत कम है। वह ट्रिब्यूनल द्वारा मूल्यांकन की गई मासिक आय और दुर्घटना के कारण कमाई की क्षमता के नुकसान की सीमा पर विवाद नहीं करता है। वह प्रस्तुत करता है कि दावेदार की उम्र के अनुसार, '18' के गुणक को अपनाया जाना चाहिए था। यह भी तर्क दिया जाता है कि ट्रिब्यूनल ने छह महीने के लिए आय के कुल नुकसान की दिशा में कुछ भी नहीं देने में गलती की है कि घायल का इलाज चल रहा था और वह बिस्तर पर पड़ा था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ट्रिब्यूनल ने भविष्य की संभावनाओं के साथ-साथ छह महीने के उपचार के लिए परिचर शुल्क के लिए कुछ भी नहीं देने में गलती की है। चिकित्सा व्यय, विशेष आहार और पौष्टिक भोजन पर खर्च किए गए धन के तहत राशि पर कोई आपत्ति नहीं है। हालांकि, विद्वान वकील का दावा है कि ₹2,50,000/- की राशि स्थायी विकलांगता के मुआवजे में और 2 लाख की राशि दर्द और पीड़ा के लिए दी जानी चाहिए। इस संबंध में, विद्वान वकील द्वारा **के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। और जहां तक दर्द और पीड़ा के शीर्ष के तहत मुआवजे का संबंध है, **वी. मेकाला बनाम एम मालती और अन्य** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर। 2 लाख की की राशि का दावा सुविधाओं के नुकसान के शीर्ष के तहत किया गया है, और शादी की धूमिल संभावनाओं के आधार पर 3 लाख की राशि का दावा किया गया है। दावे के अंतिम उल्लिखित दोनों प्रमुखों के समर्थन में, दावेदार के विद्वान वकील ने **वी. मेकला (सुप्रा)** पर भरोसा किया है। जहां तक भविष्य के चिकित्सा खर्चों और कृत्रिम अंग की कीमत का संबंध है, 2 लाख की राशि का दावा किया गया है। इस संबंध में, दावेदार के विद्वान वकील ने **सुबुलक्ष्मी बनाम प्रबंध निदेशक, तमिलनाडु राज्य परिवहन निगम और अन्य में** सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है। दावेदार का कहना है कि राशि को उचित रूप से बढ़ाया जाना चाहिए.

14. दूसरी ओर, श्री अमित मनोहर का कहना है कि आक्षेपित अधिनिर्णय एक न्यायसंगत और निष्पक्ष अधिनिर्णय है, जिसे अस्तव्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है। यह विशेष रूप से तर्क दिया जाता है कि घायल एक छात्र है और वर्तमान में उसकी कोई आय नहीं थी। ट्रिब्यूनल द्वारा आय का निर्धारण शिक्षा और घायलों की अन्य परिस्थितियों के आधार पर किया गया है, जो प्रति माह 5000/- का उदार आंकड़ा है।

15. पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने पर, यह न्यायालय पाता है कि जहां तक घायल की मासिक आय का संबंध है, पक्षकार आदर्श हैं। इस प्रकार, देय मुआवजे की गणना करने के लिए, यह न्यायालय इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि दावेदार की प्रति माह 5,000/-की आय या काल्पनिक आय थी। यह भी संदेह के दायरे में ज्यादा नहीं है कि 50% चिकित्सा विकलांगता, जिसे ट्रिब्यूनल द्वारा 50% कार्यात्मक विकलांगता का अनुमान लगाने के लिए आधार बनाया गया है, सही मूल्यांकन है। कारण यह है कि विकलांगता निस्संदेह स्थायी है। यह एक जवान आदमी के लिए एक अंग का नुकसान है, जिसने अभी-अभी अपनी स्नातक की डिग्री अर्जित की है। ट्रिब्यूनल की टिप्पणी कि दावेदार को विकलांग कोटा के तहत रोजगार मिल सकता है, केवल एक संभावना है, और इससे ज्यादा कुछ नहीं। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक युवा व्यक्ति के लिए, या उस मामले के लिए, किसी भी उम्र के व्यक्ति के लिए, उसका स्वास्थ्य और शारीरिक फिटनेस उसकी कमाई करने की क्षमता की सबसे बुनियादी विशेषताएं हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है, कुछ प्रकार के रोजगार में, जैसे कि लिपिक नौकरी, एक अंग के नुकसान से मैकेनिक या ड्राइवर जैसे शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता वाले व्यक्ति की तुलना में कार्यात्मक विकलांगता के कम प्रतिशत के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। चालक के मामले में, एक अंग के नुकसान के परिणामस्वरूप 100% शारीरिक विकलांगता हो सकती है। लेकिन, इन चरम सीमाओं के बीच, एक आदमी के लिए अभी तक अपने जीवन के उद्यम को शुरू करने के लिए, सबसे रूढ़िवादी अनुमान पर निचले अंगों में से एक को खोना, 50% शारीरिक विकलांगता होगी। हम इस मुद्दे पर ट्रिब्यूनल की राय से सहमत हैं। इस संबंध में, **राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है जहां यह आयोजित किया गया है:

12. इसलिए, ट्रिब्यूनल को पहले यह तय करना होगा कि क्या कोई स्थायी विकलांगता है और यदि हां, तो ऐसी स्थायी विकलांगता की सीमा क्या है। इसका मतलब यह है कि ट्रिब्यूनल को सबूतों के संदर्भ में विचार करना चाहिए और निर्णय लेना चाहिए:

(i) क्या विकलांगता स्थायी या अस्थायी है;

(ii) यदि विकलांगता स्थायी है, तो क्या यह स्थायी पूर्ण विकलांगता है या स्थायी आंशिक विकलांगता है;

(iii) यदि विकलांगता प्रतिशत किसी विशिष्ट अंग के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है, तो अंग की ऐसी विकलांगता का प्रभाव पूरे शरीर के कामकाज पर पड़ता है,

प्रतिलिपि

अर्थात, व्यक्ति द्वारा सामना की गई स्थायी विकलांगता।

यदि ट्रिब्यूनल यह निष्कर्ष निकालता है कि कोई स्थायी विकलांगता नहीं है तो आगे बढ़ने और भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान का निर्धारण करने का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन अगर ट्रिब्यूनल यह निष्कर्ष निकालता है कि स्थायी विकलांगता है तो यह इसकी सीमा का पता लगाने के लिए आगे बढ़ेगा। ट्रिब्यूनल चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर दावेदार की स्थायी विकलांगता की वास्तविक सीमा का पता लगाता है, उसे यह निर्धारित करना होगा कि क्या ऐसी स्थायी विकलांगता उसकी कमाई क्षमता को प्रभावित किया है या प्रभावित करेगा।

13. वास्तविक कमाई क्षमता पर स्थायी विकलांगता के प्रभाव का पता लगाने में तीन चरण शामिल हैं। ट्रिब्यूनल को पहले यह पता लगाना होगा कि स्थायी विकलांगता के बावजूद दावेदार क्या गतिविधियां कर सकता है और स्थायी विकलांगता के परिणामस्वरूप वह क्या नहीं कर सका (यह जीवन की सुविधाओं के नुकसान के शीर्ष के तहत मुआवजा देने के लिए भी प्रासंगिक है). दूसरा कदम दुर्घटना से पहले उसके व्यवसाय, पेशे और काम की प्रकृति का पता लगाना है, साथ ही उसकी उम्र भी। तीसरा कदम यह पता लगाना है कि क्या (i) दावेदार किसी भी प्रकार की आजीविका अर्जित करने से पूरी तरह से अक्षम है, या (ii) क्या स्थायी विकलांगता के बावजूद, दावेदार अभी भी उन गतिविधियों और कार्यों को प्रभावी ढंग से कर सकता है, जिन्हें वह पहले कर रहा था, या (iii) क्या उसे अपनी पिछली गतिविधियों और कार्यों का निर्वहन करने से रोका गया था या प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन कुछ अन्य या कम पैमाने की गतिविधियों और कार्यों को कर सकता है ताकि वह कमाई करना जारी रखे या अपनी आजीविका अर्जित करना जारी रख सके।

14. उदाहरण के लिए, यदि किसी दावेदार का बायां हाथ विच्छेदित है, तो स्थायी शारीरिक या कार्यात्मक विकलांगता का मूल्यांकन लगभग 60% किया जा सकता है। यदि दावेदार ड्राइवर या बढ़ई था, तो कमाई क्षमता का वास्तविक नुकसान वस्तुतः सौ प्रतिशत हो सकता है, यदि वह न तो ड्राइव करने में सक्षम है और न ही बढ़ईगीरी करने में सक्षम है। दूसरी ओर, यदि दावेदार सरकारी सेवा में क्लर्क था, तो उसके बाएं हाथ के नुकसान से रोजगार का नुकसान नहीं हो सकता है और उसे अभी भी एक क्लर्क के रूप में जारी रखा जा सकता है क्योंकि वह अपने लिपिक कार्यों को कर सकता है; और उस स्थिति में कमाई क्षमता का नुकसान ड्राइवर या बढ़ई के मामले में 100% नहीं होगा, न ही 60% जो वास्तविक शारीरिक विकलांगता है, लेकिन बहुत कम है। वास्तव में, "भविष्य की कमाई के नुकसान" के शीर्ष के तहत कोई मुआवजा देने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, यदि दावेदार सरकारी सेवा में जारी रहता है, हालांकि उसे अपना हाथ खोने के परिणामस्वरूप सुविधाओं के नुकसान के शीर्ष के तहत मुआवजा दिया जा सकता है। कभी-कभी घायल दावेदार को सेवा में जारी रखा जा सकता है, लेकिन उसकी विकलांगता के कारण उस पद या नौकरी से जुड़े कर्तव्यों के निर्वहन

के लिए उपयुक्त नहीं पाया जा सकता है, जिसे वह पहले धारण कर रहा था, और इसलिए उसे कम परिलब्धियों के साथ किसी अन्य उपयुक्त लेकिन कम पद पर स्थानांतरित किया जा सकता है, जिस स्थिति में भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान के शीर्ष के तहत एक सीमित पुरस्कार होना चाहिए, कम कमाई क्षमता पर ध्यान देते हुए ।

16. यहां प्राप्त परिस्थितियों में, **राज कुमार (सुप्रा)** में सिद्धांत 50% विकलांगता का अनुमान लगाने के लिए लागू होगा, यह देखते हुए कि मृतक अभी तक नियोजित नहीं था, लेकिन इसके कगार पर, केवल 22 वर्ष की आयु का था। संभावित भविष्य के रोजगार के बारे में किसी प्रकार की परिकल्पना के आधार पर कार्यात्मक विकलांगता के संख्यात्मक मूल्य में कोई और कमी बहुत अनुमानित होगी। इसलिए, यह न्यायालय 50% स्थायी कार्यात्मक विकलांगता और आय के संबंधित स्थायी नुकसान के बारे में ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष की पुष्टि करता है।

17. अब, जहां तक अपनाए जाने वाले गुणक का संबंध है, इस न्यायालय की राय है कि ट्रिब्यूनल ने अधिनियम की दूसरी अनुसूची पर वापस आने में गलती की है। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है और यह है, कि अपनाया जाने वाला गुणक **सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य** में निर्णय की रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 40 में तालिका में दर्शाया गया है। उपर्युक्त तालिका के अनुसार, घायल 21-25 वर्ष के ब्रैकेट में आता है, जिसके लिए, '18' के गुणक की परिकल्पना की गई है। इसलिए, यह न्यायालय मानता है कि ट्रिब्यूनल 17 के गुणक को अपनाने में त्रुटि में किया है। यह 18 होना चाहिए।

18. जहां तक भविष्य की संभावनाओं का संबंध है, यह संदेह पैदा करने के लिए बहुत अच्छी तरह से तय है कि दावेदार को भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए मुआवजे का हकदार होना चाहिए, चाहे उसने नौकरी हासिल की हो या स्वरोजगार किया हो। एक स्व-नियोजित व्यक्ति के मामले में, जो एक बढ़ई था, सुप्रीम कोर्ट ने **जगदीश बनाम मोहन और अन्य** में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी में संविधान पीठ के फैसले के बाद आय के 40% की भविष्य की संभावनाओं को मंजूरी दी। उत्तर प्रदेश राज्य में, **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य** में निर्णय के अनुसार भविष्य की संभावनाओं को उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 के नियम 220 ए (3) के अनुसार अधिनिर्णीत किया जाना है, न कि **प्रणय सेठी (सुप्रा**) में सिद्धांत के अनुसार। **उर्मिला शुक्ल (सुप्रा) में** यह अवधारित किया गया था:

9. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियमों की वैधता पर किसी भी तरह से तत्काल मामले में सवाल नहीं उठाया गया था और इस प्रकार एकमात्र प्रश्न जिस पर हमें विचार करने के लिए कहा जाता है, वह यह है कि क्या इसके आवेदन में, नियमों के नियम 220A के उप-नियम 3 (iii) को प्रतिबंधित

गुंजाइश दी जानी चाहिए या इसे पूरी तरह से संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि एक संकेतक एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। जिन मामलों में मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, उनमें 15% का निर्धारण अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि एक सांविधिक साधन ने एक ऐसा फार्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे सांविधिक साधन को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि सांविधिक साधन अन्यथा अमान्य न पाई जाए।

12. इसलिए, हम अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण को अस्वीकार करते हैं और ट्रिब्यूनल के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं और लागत के रूप में किसी भी आदेश के बिना इस अपील को खारिज करते हैं।

19. यहां दुर्घटना वर्ष 2005 में हुई थी, और 1998 के नियम 26.09.2011 को लागू हुए। इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय की खंडपीठ ने **सुशील कुमार और अन्य बनाम मैसर्स संपर्क लोजेस्टिक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** के मामले में दिया है। **सुशील कुमार (सुप्रा) में** यह आयोजित किया गया था:

31. घायल/मृतक की भविष्य की संभावनाओं के आधार पर लाभ प्रदान करने के लिए विधि न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों के दृष्टिगत उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 में नियम 220-ए अंतःस्थापित किया गया था। इसमें मुआवजा के निर्धारण के प्रयोजनार्थ घायल/मृतक की आयु के आधार पर उसकी वास्तविक आय में घायल/मृतक की आय के कुछ प्रतिशत को जोड़ने का प्रावधान है। उपर्युक्त नियम दावा याचिका के निर्णय के बाद लेकिन अपील दायर करने से पहले दिनांक 26-09-2011 को प्रभावी हुआ, यद्यपि दुर्घटना उपर्युक्त नियम के लागू होने से काफी पहले 08-05-2010 को हुई थी।

32. यह उपरोक्त के मद्देनजर है कि एक तर्क उठाया जा रहा है कि नियमों का नियम 220-ए जो 26.09.2011 को लागू हुआ, 08.05.2010 को हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा।

33. राम सरूप बनाम मुंशी एआईआर 1963 एससी 553 में यह निर्धारित किया गया

था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों के अधिकार शामिल होंगे।

34. ऊपर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का सुप्रीम कोर्ट ने मुला बनाम गोधू एआईआर 1971 एससी 89 में पालन किया।

35. दयावती बनाम इंद्रजीत एआईआर 1966 एससी 1423 में न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया था: - यदि नया कानून ऐसी भाषा में बोलता है, जो स्पष्ट रूप से या स्पष्ट इरादे से, यहां तक कि लंबित मामलों में भी लेता है, तो ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपील की अदालत को इस तरह व्यक्त किए गए इरादे के संबंध में होना चाहिए, और अपील की अदालत पहले उदाहरण के न्यायालय के फैसले के बाद भी इस तरह के कानून को प्रभावी कर सकती है।

36. अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह एआईआर 1974 एससी 2068 में अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को प्रभाव दिया गया था क्योंकि इस देश के प्रक्रियात्मक कानून के तहत अपील की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा वाद की पुनर्सुनवाई की प्रकृति में है।

37. यह उपरोक्त निर्णयों के आलोक में था कि लक्ष्मी नारायण गुइन और अन्य बनाम निरंजन मोडक एआईआर 1985 एससी 111 में यह माना गया था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसमें पक्षकारों का अधिकार शामिल होगा।

38. उपरोक्त निर्णय के बाद उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती मधु शर्मा और अन्य, 2003 (4) एडब्ल्यूसी 2620 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा निर्णय किया गया था जो मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में एक मामला था और यह देखा गया था कि यह स्पष्ट है कि मूल कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कानून में बदलाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पार्टियों की अधिकारों को कवर किया जा सके ।

39. उपरोक्त निर्णय के मद्देनजर, आईसीआईसीआई लोम्बार्ड (सुप्रा) में इस अदालत की डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त किया गया विचार अच्छा कानून नहीं है क्योंकि यह ऊपर संदर्भित निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है कि नियमों का नियम 220-ए जो 26.09.2011 को लागू हुआ, केवल इस कारण से उक्त तिथि से पहले हुई दुर्घटना पर लागू नहीं होगा क्योंकि नियम को विशेष रूप से पूर्वव्यापी प्रकृति का नहीं बताया गया था।

20. **सुशील कुमार** में निर्धारित कानून के मद्देनजर**,** भविष्य की संभावनाओं का अधिनिर्णय 1998 के नियमों के नियम 220-ए (3) के अनुसार किया जाना है, भले ही दुर्घटना संशोधन से पहले हुई हो। उक्त नियम भविष्य की संभावनाओं के लिए आय का 50% अतिरिक्त प्रदान करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह नियम मृतक के भविष्य की

संभावनाओं के बारे में बोलता है, लेकिन कोई कारण नहीं है कि इसे केवल एक मृत व्यक्ति के आश्रितों तक ही सीमित रखा जाए,जीवित व्यक्ति तक क्यू नहीं, जो अपने पूरे जीवन के लिए अपनी आय के एक प्रतिशत का नुकसान उठाता है। यह देखते हुए कि यहां घायल की आयु 22 वर्ष थी, अर्थात 40 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को उसकी खोई हुई आय में भविष्य की संभावनाओं में 50% की वृद्धि करनी होगी।

21. मुआवजे का अगला शीर्ष परिचर शुल्क के संबंध में है। दावेदार को 01.06.2005 से 19.07.2005 और 01.08.2005 से 09.08.2005 तक अस्पताल में भर्ती किया गया था, यानी कुल 1 महीने और 27 दिनों की अवधि। दावेदार द्वारा अपने मुख्य परिक्षण के बदले हलफनामे पर अपने बयान में पी.डब्ल्यू.1 के रूप में गवाही देते हुए कहा गया है कि उसे स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है और वह दैनिक गतिविधियों को करने में असमर्थ है। उसके लिए चलना-फिरना मुश्किल है। उसे हमेशा दूसरे के सहारे की जरूरत होती है। यह भी कहा गया है कि यदि उसे कहीं बाहर जाना है, जिसमें व्यय शामिल है, तो उसे विशेष व्यवस्था करनी होगी। यह कहा गया है कि दावेदार दूसरे के समर्थन के बिना नहीं चल सकता। बीमाकर्ताओं के कहने पर प्रतिपरीक्षण में, कुछ भी सामग्री प्राप्त नहीं की गई है, जो उपरोक्त दावों को गलत कह सकती है। इस न्यायालय के समक्ष दावेदार ने दुर्घटना के बाद छह महीने की अवधि के लिए 5,000/- प्रति माह की दर से परिचर शुल्क की मांग की है। चोट की प्रकृति को देखते हुए और इस तथ्य को देखते हुए कि घायल के दाहिने निचले अंग को काटना पड़ा, इस न्यायालय की राय है कि 5,000/- प्रति माह की दर से छह महीने के लिए परिचर शुल्क दिया जाना चाहिए। चिकित्सा बिल, जिन्हें ट्रिब्यूनल द्वारा 4,12,000/- के आंकड़े के लिए स्वीकार किया गया है, दावेदार द्वारा विवादित नहीं किया गया है, साथ ही विशेष और अतिरिक्त पोषण आहार के लिए 25,000/- की राशि भी विवादित नहीं है। इसलिए, इन दो आधारों पर अधिकरण के अधिनिर्णय में व्यवधान डालने की आवश्यकता नहीं है।

22. दावेदार के विद्वान वकील ने स्थायी विकलांगता के शीर्ष के तहत 25,000/- की राशि, दर्द और पीड़ा के लिए 2 लाख राशि की, सुविधाओं के नुकसान के लिए ₹2 लाख, विवाह की अंधकारमय संभावनाओं के लिए 3 लाख रुपये और भविष्य के चिकित्सा खर्चों और कृत्रिम अंग की लागत के लिए 2 लाख की राशि का दावा किया है। जहां तक स्थायी विकलांगता के मामले में हर्जाना देने की बात है, जिसमें चोट के मामले में भविष्य की संभावनाओं का पुरस्कार भी शामिल है, यह सवाल **पप्पू देव यादव बनाम नरेश कुमार** में विचार के लिए आया। पिछले प्राधिकारी के एक सर्वेक्षण के बाद, यह पप्पू देव यादव (सुप्रा) में उनके लॉर्डशिप द्वारा अवधारित किया गया था:

11. फिर भी बाद में और हाल ही में एक दुर्घटना के मामले में, जिसने दुखद रूप से एक युवा लड़की को जीवन भर के लकवे की स्थिति में छोड़ दिया, इस अदालत ने काजल बनाम जगदीश चंद में दोहराया कि कमाई के

नुकसान के अलावा, भविष्य की संभावनाओं के लिए मुआवजे को भी ध्यान में रखा जा सकता है, और कहा कि:

"14. कॉनकॉर्ड ऑफ इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी [कॉनकॉर्ड ऑफ इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी, (1979) 4 एससीसी 365: 1979 एससीसी (सीआरआई) 996: 1980 एसीजे 55: (एआईआर 1979 एससी 1666)], इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी पी. 366, पैरा 2)

"2. ... क्वांटम का निर्धारण उदार होना चाहिए, न कि मामूली रूप से क्योंकि कानून उदार पैमाना में एक स्वतंत्र देश में जीवन और अंग को महत्व देता है।

15. आरडी हट्टंगड़ी बनाम कीट नियंत्रण (इंडिया) (पी) लिमिटेड [आरडी हट्टंगड़ी बनाम कीट नियंत्रण (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (1995) 1 एससीसी 551: 1995 एससीसी (सीआरआई) 250: (एआईआर 1995 एससी 755)], चोट के मामलों में मुआवजे के विभिन्न प्रमुखों से निपटने के लिए इस न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया: (एससीसी पी. 556, पैरा 9)

"9. मोटे तौर पर किसी दुर्घटना के शिकार को देय मुआवजे की राशि तय करते समय, नुकसान का आकलन आर्थिक नुकसान और विशेष नुकसान के रूप में अलग से किया जाना चाहिए। आर्थिक नुकसान वे हैं जो पीड़ित ने वास्तव में किए हैं और जो पैसे के संदर्भ में गणना करने में सक्षम हैं; जबकि गैर-आर्थिक नुकसान वे हैं जो अंकगणितीय गणनाओं द्वारा मूल्यांकन किए जाने में असमर्थ हैं।

दो अवधारणाओं की सराहना करने के लिए आर्थिक नुकसान में दावेदार द्वारा किए गए खर्च शामिल हो सकते हैं: (i) चिकित्सा उपस्थिति; (ii) परीक्षण की तारीख तक लाभ अर्जित करने की हानि; (iii) अन्य सामग्री हानि। जहां तक गैर-आर्थिक क्षतियों का संबंध है, उनमें निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं: (i) मानसिक और शारीरिक सदमे, दर्द और पीड़ा के लिए नुकसान, जो पहले से ही पीड़ित हैं या भविष्य में होने की संभावना है; (ii) जीवन की सुविधाओं के नुकसान की भरपाई के लिए नुकसान, जिसमें विभिन्न मामले शामिल हो सकते हैं अर्थात चोट के कारण दावेदार चलने, दौड़ने या बैठने में सक्षम नहीं हो सकता है; (iii) जीवन की प्रत्याशा की हानि के लिए नुकसान अर्थात चोट के कारण संबंधित व्यक्ति की सामान्य दीर्घायु कम हो जाती है; (iv) जीवन में असुविधा, कठिनाई, निराशा, हताशा और मानसिक तनाव।

16. राज कुमार बनाम अजय कुमार [राज कुमार बनाम अजय कुमार, (2011) 1 एससीसी 343: (2011) 1 एससीसी (सीआईवी) 164: (2011) 1 एससीसी (सीआरआई) 1161: (एआईआरओलाइन 2010 एससी 125)] में, इस न्यायालय ने उन शीर्षकों को निर्धारित किया जिनके तहत व्यक्तिगत चोटों के लिए मुआवजा दिया जाना है: (एससीसी पी. 348, पैरा 6)

"6. व्यक्तिगत चोट के मामलों में जिन शीर्षकों के तहत मुआवजा दिया जाता है, वे निम्नलिखित हैं:

आर्थिक क्षति (विशेष क्षति)

(i) उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाओं, परिवहन, पौष्टिक भोजन और विविध व्यय से संबंधित व्यय।

(ii) कमाई का नुकसान (और अन्य लाभ) जो घायल घायल नहीं हुआ होता, जिसमें शामिल हैं: (ए) उपचार की अवधि के दौरान कमाई का नुकसान; (ख) स्थायी विकलांगता के कारण भावी आय की हानि।

(iii) भविष्य के चिकित्सा व्यय।

गैर-आर्थिक क्षति (सामान्य क्षति)

(iv) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए नुकसान।

(v) सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि)।

नियमित व्यक्तिगत चोट के मामलों में, मुआवजा केवल शीर्ष (i), (ii) (a) और (iv) के तहत दिया जाएगा। यह केवल चोट के गंभीर मामलों में है, जहां दावेदार के साक्ष्य की पुष्टि करने वाले विशिष्ट चिकित्सा साक्ष्य हैं, कि मुआवजा किसी भी शीर्षक (ii) (b), (iii), (v) और (vi) के तहत दिया जाएगा, जो स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई के नुकसान से संबंधित है, भविष्य में चिकित्सा व्यय, सुविधाओं की हानि (और / या शादी की संभावनाओं की हानि) और जीवन की उम्मीद की हानि।

17. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [के. सुरेश वी. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2012) 12 एससीसी 274: (2013) 2 एससीसी (सीआईवी) 279: (2013) 4 एससीसी (सीआरआई) 638: (एआईआरओऑनलाइन 2012 एससी 633)], में इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: (एससीसी पी. 276, पैरा 2)

"2. ... दिल की पीड़ा या मानसिक क्लेशों के लिए वास्तविक मुआवजा नहीं हो सकता है। सर्वोत्कृष्टता निरंतर हानि की व्यावहारिक गणना में निहित है जिसे यथार्थवादी सन्निकटन के दायरे में होना चाहिए। इसलिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 (संक्षिप्तता के लिए "अधिनियम") में कहा गया है कि "उचित मुआवजा" दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, यह कानून की अदालत के लिए "न्यायपूर्ण मुआवजा" निर्धारित करने के लिए एक चुनौती बन जाता है जो न तो एक बोनस है और न ही एक अप्रत्याशित लाभ है, और साथ ही, मामूली नहीं होना चाहिए। ********** ********** **********

<u>कमाई का नुकसान</u>

20. नीचे की दोनों अदालतों ने माना है कि चूंकि लड़की 12 साल की छोटी बच्ची थी, इसलिए केवल 15,000 रुपये प्रति वर्ष की अनुमानित आय को ध्यान में रखा जा सकता है। हमें नहीं लगता कि यह भविष्य में आय के नुकसान का आकलन करने का एक उचित तरीका है। यह युवा लड़की पढ़ाई के बाद काम कर सकती थी और प्रति वर्ष 15,000 रुपये से अधिक कमा सकती थी। हर मामले का फैसला

अपने साक्ष्य के आधार पर किया जाना चाहिए, लेकिन अनुमानित आय को 15,000 रुपये प्रति वर्ष मानना बिल्कुल भी उचित नहीं है। अपीलकर्ता ने हमारे सामने यह दिखाने के लिए सामग्री रखी है कि एक कुशल कामगार को देय न्यूनतम मजदूरी 4846 रुपये प्रति माह है। हमारी राय में, यह न्यूनतम राशि होगी जो उसने एक कुशल बनने पर अर्जित की होगी। भविष्य की संभावनाओं के लिए 40% जोड़ने पर, यह प्रति माह 6784.40 रुपये यानी 81,412.80 रुपये प्रति वर्ष काम करता है। 18 के गुणक को लागू करने पर, यह 14,65,430.40 रुपये तक काम करता है, जिसे 14,66,000 रुपये तक पूर्णांकित किया जाता है।

(न्यायालय द्वारा जोर)

23. अब, **राज कुमार** में निर्धारित और **पप्पू देव यादव** में समर्थित शीर्षको की गणना करते हुए, इस न्यायालय ने भविष्य के चिकित्सा खर्चों को छोड़कर आर्थिक क्षति (विशेष क्षति) के तहत दावेदार के लिए पात्रता के सभी शीर्षको से निपटा है। इस न्यायालय के समक्ष दावेदार ने भविष्य में चिकित्सा व्यय और कृत्रिम अंग की कीमत के लिए 2 लाख की राशि की मांग की है। कृत्रिम अंग के उपयोग के बारे में घायल के साक्ष्य में कुछ भी नहीं कहा गया है, लेकिन यह न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने से नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि स्थायी विकलांगता प्रमाण पत्र और पैरोल साक्ष्य बताते हैं कि दुर्घटना के परिणामस्वरूप दावेदार का दाहिना निचला अंग विच्छेदित हो गया है। यहां तक कि अगर उसने अभी तक कृत्रिम अंग का सहारा नहीं लिया है, तो उसे निश्चित रूप से इसकी आवश्यकता है और भविष्य में जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए कभी इसका उपयोग करेगा। इस तरह के अंग को सुरक्षित रखने का खर्च कोई दूरस्थ कारण नहीं है, बल्कि उस दुर्घटना का सीधा प्रभाव है जो उसे झेलनी पड़ी है। इस आशय की गवाही है कि जब भी दर्द होता है, अपीलकर्ता को इसके लिए इलाज करना पड़ता है। दावेदार की स्थिति से पता चलता है कि वह भविष्य में भी दुर्घटना के कारण उत्पन्न स्थिति की देखभाल के लिए चिकित्सा व्यय वहन करेगा। एक कृत्रिम अंग के प्रतिस्थापन की लागत के बारे में, जो पहली बार एक के अधिग्रहण को भी अपने फोल्ड में ले जाएगा, मैंने **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, गाजियाबाद बनाम लोकेश उर्फ लवेश और एक अन्य** में अवधारित किया है :

25. इस न्यायालय के समक्ष यह संदेह या विवाद नहीं किया गया है कि दावेदार को वास्तव में हर दो साल में अपने कृत्रिम अंग को बदलने की आवश्यकता होगी। ट्रिब्यूनल ने जिस समय मामले की सुनवाई की उस समय प्रतिस्थापन की लागत 11,000/- रुपये थी। यह बहुत समय पहले था और इस सुविधा के प्रतिस्थापन पर भविष्य के खर्च का अनुमान लगाते समय बढ़ते मूल्य सूचकांक को ध्यान में रखना होगा। न्यायालय की राय में, कृत्रिम अंग के भविष्य और वर्तमान प्रतिस्थापन के लिए खर्च के मुआवजे को 35,000 रुपये से बढ़ाकर 2 लाख रुपये किया जाना चाहिए। दुर्घटना के कारण मानसिक और शारीरिक पीड़ा के लिए दी गई 50,000/- रुपये की राशि, ट्रिब्यूनल द्वारा

अनुमानित दावेदार द्वारा अपनी नौकरी की हानि, भी साधारण है।

24. किसी भी समय कृत्रिम अंग की आवश्यकता वाले घायल व्यक्ति की प्रबल संभावना और भविष्य के चिकित्सा व्यय, जो बार-बार प्रतीत होते हैं, को ध्यान में रखते हुए, भविष्य के चिकित्सा खर्चों और कृत्रिम अंग की लागत के लिए 2 लाख की राशि प्रदान करना उचित होगा, जिसमें भविष्य के प्रतिस्थापन भी शामिल हैं, यदि आवश्यक हो। न्यायालय ऐसे मामलों में, दलीलों और सबूतों के आधार पर बहुत ही पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण नहीं ले सकता है, जैसा कि बीमाकर्ताओं के विद्वान वकील चाहते हैं।

25. इस प्रकार, इस न्यायालय को भविष्य में किसी भी समय घायल व्यक्ति को कृत्रिम अंग की आवश्यकता की आसन्न संभावना और भविष्य में शामिल चिकित्सा खर्चों के बारे में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा, यह देखते हुए कि उसने दुर्घटना में अपना दाहिना निचला अंग खो दिया है, घुटने के ऊपर विच्छेदित है।

26. यह गैर-आर्थिक नुकसान/सामान्य नुकसान को ध्यान में रखेगा। अपीलकर्ता ने दुर्घटना के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए 2 लाख की राशि की मांग की है। दावेदार के विद्वान वकील ने **वी. मेकाला** में निर्णय पर भरोसा करते हुए कहा है कि इस शीर्ष के तहत मुआवजे को 2 लाख रुपये तक बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने रिपोर्ट के पैराग्राफ नंबर 21 पर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है, जहां यह अवधारित किया गया है:

21. सिर दर्द और पीड़ा और मानसिक पीड़ा के तहत मुआवजा ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय के साथ समवर्ती निष्कर्षों को दर्ज करने के बाद उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया था। हालांकि, नीचे की अदालतों ने अपीलकर्ता द्वारा बनाए गए स्थायी विकलांगता की प्रकृति को दर्ज नहीं किया है, जबकि इस शीर्ष के तहत 1,00,000 रुपये का पुरस्कार दिया है जो बहुत कम राशि है और आरडी हट्टंगड़ी [आरडी हट्टंगड़ी बनाम कीट नियंत्रण (इंडिया) (पी) लिमिटेड, (1995) 1 एससीसी 551: 1995 एससीसी (सीआरआई) 250] और गोविंद यादव [गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 683: (2012) 3 एससीसी (सीआईवी) 1082: (2012) 1 एससीसी (सीआरआई) 82: (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 422] के फैसले के विपरीत है। (क) 2012 के अनुसार 1 एससीसी (सीआरआई) 82 (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 422] मामले 10 एससीसी (एल एंड एस) 422 मामले हैं। गोविंद यादव मामले के प्रासंगिक पैराग्राफ [गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 683: (2012) 3 एससीसी (सीआईवी) 1082: (2012) 1 एससीसी (सीआरआई) 82: (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 422]] निम्नानुसार है:
(एससीसी पी. 695, पैरा 25-26)

"25. पैर के विच्छेदन के कारण होने वाले दर्द, पीड़ा और आघात के लिए ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया मुआवजा अल्प था। यह विवाद में नहीं है कि अपीलकर्ता तीन महीने से अधिक समय तक अस्पताल में रहा

था। न्यायाधिकरणों और अदालतों के लिए यह संभव नहीं है कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को हुए दर्द और आघात का सटीक आकलन करें, जिसका अंग दुर्घटना के परिणामस्वरूप विच्छेदित हो गया है। यदि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को कृत्रिम अंग मिल भी जाए तो वह जीवन भर विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं और सामाजिक कलंक से पीड़ित रहेगा। इसलिए, ऐसे सभी मामलों में, अधिकरणों और न्यायालयों को मुआवजे की राशि निर्धारित करने के उद्देश्य से एक व्यापक अनुमान लगाना चाहिए।

26. बेशक, दुर्घटना के समय, अपीलकर्ता 24 साल का युवक था। शेष जीवन के लिए, वह अपने सामान्य काम करने में सक्षम नहीं होने के आघात को भुगतेगा। इसलिए हमें लगता है कि पैर काटने के कारण होने वाले दर्द, पीड़ा और आघात के बदले 1,50,000 रुपये की राशि देकर न्याय का लक्ष्य पूरा किया जाएगा।

इसलिए, इस मद के तहत दी गई राशि को बढ़ाकर 2,00,000 रुपये किया जाना चाहिए क्योंकि डॉक्टर पीडब्ल्यू 2 ने कहा है कि बैसाखी के सहारे चलने के समय, अपीलकर्ता दावेदार को स्थायी रूप से दर्द होगा। इसलिए, इस मद के तहत इसे 1,00,000 रुपये से बढ़ाकर 2,00,000 रुपये किया जाना है।

27. वी. मेकाला **के सिद्धांत के अनुसार**, दुर्घटना के परिणामस्वरूप होने वाले दर्द, पीड़ा और आघात के सिर के तहत 2 लाख की राशि देने में कोई बाधा नहीं है। जहां तक सुख-सुविधाओं की हानि और जीवन की प्रत्याशा में कमी (जीवन की कमी) का संबंध है, जिसमें विवाह की धूमिल संभावनाएं शामिल हैं, मैंने **लोकेश (सुप्रा)** में इस मुद्दे पर विचार किया था, जहां यह **राज कुमार** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद अवधारित किया गया था, इस प्रकार है:

25. ..... हालांकि, भविष्य की सुविधाओं और मानसिक दर्द के नुकसान के लिए दिया गया मुआवजा अभी तक आने वाला है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार्य नहीं होगा कि दावेदार अब भविष्य की संभावनाओं के शीर्ष के तहत आय के वास्तविक नुकसान के लिए कुछ अतिरिक्त चाहता है।

26. राज कुमार (सुप्रा) में, यह आयोजित किया गया है:

"15. यह ध्यान दिया जा सकता है कि जब भविष्य की कमाई क्षमता के नुकसान को 100% (या यहां तक कि 50% से अधिक कुछ भी) के रूप में मानकर मुआवजा दिया जाता है, तो सुविधाओं के नुकसान या जीवन की उम्मीद की हानि के शीर्ष के तहत अलग से मुआवजा देने की आवश्यकता गायब हो सकती है और परिणामस्वरूप, सुविधाओं के नुकसान या जीवन की उम्मीद की हानि के शीर्ष के तहत केवल एक टोकन या नाममात्र राशि प्रदान की जा सकती है, अन्यथा मुआवजे के पुरस्कार में दोहराव हो सकता है। जैसा हो सकता है वैसा रहने दें।

27. इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि भविष्य में सुख-सुविधाओं के नुकसान या जीवन की प्रत्याशा या दर्द की हानि के लिए, 50,000/- रुपये के बजाय 2,000/- रुपये की टोकन राशि प्रदान की जानी चाहिए।

28. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, जहां तक सुविधाओं की हानि या भविष्य में जीवन की प्रत्याशा की हानि या दर्द का संबंध है, इस मामले में ₹2,000 की टोकन राशि प्रदान की जानी चाहिए।

29. इसलिये, ट्रिब्यूनल द्वारा पारित पुरस्कार को संशोधित और निम्नानुसार निर्धारित किया जाना आवश्यक है:

(ए) आर्थिक क्षति (विशेष क्षति):

(1) इलाज, अस्पताल में भर्ती और दवाओं से संबंधित खर्च = ₹4,12,000/-

(2) विशेष आहार और पौष्टिक भोजन पर किया गया व्यय = ₹25,000/-

(3) परिचर प्रभार = ₹30,000/-

(4) कृत्रिम अंग के भविष्य और वर्तमान प्रतिस्थापन के खर्चों के लिए मुआवजा = ₹2,00,000/-

(5) दुर्घटना के कारण घायल लोगों को हुई कमाई की हानि :

(i) मासिक आय का नुकसान (दावेदार को) = ₹2500/-

(ii) खोई हुई मासिक आय + भविष्य की संभावनाएं (खोई हुई मासिक आय x 50%) = ₹2500 + 1250 = ₹3750/-

(iii) दावेदार को खोई हुई वार्षिक आय = ₹3750x12 = ₹45,000/-

(iv) कुल खोई हुई आय = ₹45,000 x 18 = ₹8,10,000/-

(बी) गैर-आर्थिक क्षति (सामान्य नुकसान):

(1) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए नुकसान = ₹2,00,000/-

(2) जीवन की सुविधाओं की हानि और भविष्य में जीवन की प्रत्याशा या दर्द की हानि = ₹2000/-

कुल देय मुआवजा = ₹ 4,12,000 + 25,000 + 30,000 + 2,00,000 + 8,10,000 + 2,00,000 + 2,000 = ₹ 16,79,000/-

(रुपये सोलह लाख उन्यासी हजार मात्र)

30. आक्षेपित अधिनिर्णय को **संशोधित** किया गया है और यह आदेश दिया गया है कि बीमाकर्ता दावेदार को 16,79,000/- की राशि का भुगतान करेगा। उपर्युक्त धनराशि पर दावा याचिका दायर किए जाने की तारीख से वसूली होने तक 7% प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज देय होगा।

31. पहले से ही आक्षेपित अधिनिर्णय के अनुसार ट्रिब्यूनल के साथ जमा धन की राशि, या इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश, अवार्ड के खिलाफ

समायोजित किया जाएगा. ट्रिब्यूनल का दूसरा निर्देश बरकरार रहेगा।

32. परिणाम में, इस अपील को **आंशिक रूप से अनुमति दी** गई है।

33. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 219

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

मामले अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 6926 वर्ष 2023

अन्य संबंधित मामलों के साथ

महेंद्र सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

प्रबंधन समिति, राष्ट्रीय सभा खैर एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
श्री पंकज अग्रवाल, श्री शेखर गंगल, सुश्री उत्कर्षनी सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
श्री अंकित कुमार राय

अभिनिर्धारित हुआ:

भले ही किसी पंजीकृत सोसाइटी के पदाधिकारियों को वाद की तिथि पर औपचारिक रूप से अनुमोदित न किया गया हो, फिर भी जहाँ कोई प्रतिद्वंदी दावा न हो और संस्था पर उनका प्रभावी एवं वास्तविक नियंत्रण हो, वे बेदखली का वाद वैध रूप से चला सकते हैं। *वास्तविकता* का सिद्धांत लागू होता है और ऐसे पदाधिकारियों के कार्यों को वैधता प्रदान करता है। जहाँ भवन किसी मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्था का भाग है, वहाँ उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 वर्ष 1972 की धारा 2(1)(बी) के अंतर्गत छूट लागू होती है। सोसाइटी द्वारा दायर बेदखली का वाद कानूनन वैध रूप से पोषणीय था।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u>:

1. प्रबंधन समिति दयानंद आर्य कन्या डिग्री कॉलेज बनाम उच्च शिक्षा निदेशक, (1998) 4 एससीसी 104

2. मेहंदी हसन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 (3) एडीजे 437 (डीबी)

3. प्रबंधन समिति गंगादीन राम कुमार इंटर कॉलेज बनाम उप शिक्षा निदेशक, 2006 (4) एडीजे 381 (डीबी)

4. प्रबंधन समिति, पं. जवाहरलाल नेहरू इंटर कॉलेज बनाम उप शिक्षा निदेशक, एआईआर 2005 इलाहाबाद 101 (पूर्ण पीठ)

<u>लागू कानून</u>:

1. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860, धारा 5, 6 2. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, आदेश 7 नियम 1(बी), 4

अनुवादित

3. संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882, धारा 105

4. उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किरायेदारी, किराया और बेदखली विनियमनन) अधिनियम, 1972, धारा 2(1)(बी)

5. प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887, धारा 15, 16 (उत्तर प्रदेश में यथासंशोधित)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत फाइल हुई इन याचिकाओं के इस समूह में तथ्य और कानून के सामान्य प्रश्न शामिल हैं इसलिए इन सभी याचिकाओं का निर्णय एक सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है। निर्णय के प्रयोजन लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या 6926 ऑफ 2023(महेंद्र सिंह बनाम प्रबंधन समिति राष्ट्रीय सभा खैर और 2 अन्य) को प्रमुख मामला माना जा रहा है।

2. याचिका और प्रस्तुत सामग्री में निहित दलीलों के अनुसार याचिकाकर्ता दुकान क्रमांक 36 में किरायेदार था जो खैर कन्या महाविद्यालय खैर, जिला अलीगढ की इमारत का हिस्सा है। एक वाद जिसका नंबर 38 ऑफ 2014 S C C (राष्ट्रीय सभा प्रबंधन समिति खैर एवं अन्य वनाम महेंद्र सिंह) बेदखली के लिए एक डिक्री का दावा किया गया है जिसे प्रबंधन समिति, राष्ट्रीय सभा खैर अलीगढ द्वारा, इसके प्रबंधक/सचिव डा. विशाल शर्मा के माध्यम से, और विशाल शर्मा द्वारा एक व्यक्ति के रूप में तथा प्रबंधन समिति कन्या महाविद्यालय, खैर, अलीगढ, द्वारा दायर किया गया है जो क्रमशः वादी संख्या 1, 2 और 3 हैं । राष्ट्रीय सभा खैर अलीगढ ने बताया है कि यह एक सोसायटी है जो सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (इसके बाद 'अधिनियम, 1860' कहा जाएगा)के प्रावधानों के तहत पंजीकृत है।

3. उपरोक्त मुकदमा इस कथन के साथ दायर किया गया था कि विवादित संपत्ति एक शैक्षणिक संस्थान की है जो उत्तर प्रदेश राज्य के विश्वविद्यालय अधिनियम,1973 (इसके बाद इसे 'अधिनियम1973' कहा जाएगा) प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त है और उक्त संस्थान अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत एक सोसायटी द्वारा चलाया जाता है। यह आरोप लगाया गया था कि उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराए तथा बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (इसके बाद इसे 'यू.पी. अधिनियम क्रमांक 13 ऑफ 1972 के रूप में लिखा जाएगा) के प्रावधान विवादग्रस्त दुकान पर लागू नहीं थे और चूंकि संस्थान को इसके भवन निर्माण के लिए काफी जगह की जरूरत महसूस हुई इसलिए विवादित दुकान सहित विभिन्न दुकानों (जुड़ी हुई याचिकाओं में मुकदमेबाजी का विषय) की आवश्यकता हुई। आगे यह आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता की किरायेदारी निर्धारित करके एक पंजीकृत नोटिस दिनांक 13.06.2014 को तामील किया गया था लेकिन दुकान खाली नहीं होने के कारण बेदखल करने का वाद

बेदखली की डिक्री के दावे के लिए दायर किया गया था।

4. याचिकाकर्ता ने लिखित बयान दाखिल किया और याचिकाकर्ता और सोसाइटी के बीच मकान मालिक -किरायेदार संबंध स्वीकार किया लेकिन कन्या महाविद्यालय, खैर, अलीगढ के संबंध में उक्त रिश्ते को नकार दिया। कार्यवाही के दौरान लिखित बयान में संशोधन किया गया और कहा गया कि वादी-समिति/सोसाइटी अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत नहीं थी । वाद पत्र में वर्णित व्यक्तियों के पदाधिकार विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित नहीं थे। नोटिस जारी होने की तिथि पर किराया देय नहीं था। नोटिस अमान्य है और मुकदमा अनाधिकृत व्यक्तियों द्वारा दायर किए जाने के कारण अवैध है

5. पार्टियों ने अपने-अपने मामलों के समर्थन में सबूत पेश किए और मुझे रिकॉर्ड से पता चला है कि यह दूसरे दस्तावेज़ से अलग वादी ने संस्थान के प्रशासन की योजना, वर्ष 2014-2015 से संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित पदाधिकारियों की सूची; इस संबंध में अधिकारियों द्वारा जारी किए गए कुछ पत्र; उपनियम और सोसायटी के पंजीकरण के नवीनीकरण का प्रमाण पत्र भी दायर किए है,मौखिक साक्ष्य में, विशाल शर्मा प्रबंधक/सचिव की हैसियत से सोसायटी की प्रबंधन समिति की ओर से पीडब्लू-1 के रूप में उपस्थित हुए और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता की ओर से जिरह की गई।

6. पक्षों के मामले का विश्लेषण करने के बाद, न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय, द्वारा आक्षेपित निर्णय और डिक्री दिनांकित 06.09.2022 में मुकदमे का फैसला सुनाया और प्रतिवादी याचिकाकर्ता को दो महीने की अवधि के भीतर विवादित दुकान खाली करने का निर्देश दिया।

प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने उपरोक्त डिक्री को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (इसके बाद इसे 'अधिनियम'1887' के रूप में लिखा जाएगा) की धारा 25 के तहत एक पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती दी। हालाँकि, जिला जज, अलीगढ ने चुनौती को ठुकरा दिया और आक्षेपित आदेश दिनांकित 01.04.2023 द्वारा पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

7. मैंने सुश्री उत्कर्षनी सिंह को याचिकाकर्ता के लिए सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।श्री अंकित कुमार रायकेवियट के माध्यम से उत्तरदाताओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने मुख्य रूप से यह तर्क दिया है कि विशाल शर्मा ने खुद को वादी नंबर 1 का मैनेजर होना बताया है वो एक विधिवत निर्वाचित प्रबंधक नहीं थे क्योकि सोसाइटी उप रजिस्ट्रार, फर्म,चिट्स, अलीगढ़ द्वारा विधिवत मान्यता प्राप्त नहीं है इसलिए सोसायटी की ओर से उक्त प्रबंधक के माध्यम से दायर किया गया मुकदमा पोषणीय नहीं था।

आगे यह तर्क दिया गया कि यद्यपि मकान मालिक-किरायेदार का रिश्ता प्रतिवादी-याचिकाकर्ता, द्वारा इनकार नहीं किया

गया,अतः नीचे की अदालतों ने इस आशय की स्वीकृति की उपधारणा करते हुए वाद को पोषणीय मानकर त्रुटि की है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद इसे 'द कोड 1908" कहा जाएगा) के आदेश XI नियम 12 और 14 व धारा 151 के तहत आवेदन 29- सी दायर किया था जिसमें वादी को सोसायटी के पंजीकरण और संविधान के दस्तावेज और यू.पी. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के तहत वादी क्रमांक 3 का मान्यता पत्र दाखिल करने के लिए निर्देश की मांग की गई थी और यद्यपि न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय आदेश दिनांक 03.10.2015 द्वारा आवेदन को स्वीकृत किया गया था लेकिन वादी-उत्तरदाता द्वारादस्तावेज दाखिल नहीं किये गये और इसलिए न्यायालय द्वारा प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था लेकिन निकाला नहीं गया है। यह आगे तर्क दिया गया कि निचली अदालतें अभिवचनो के संशोधित पैराग्राफ पर विचार करने में विफल रही हैं जिसके द्वारा वादी के मुकदमा करने के अधिकार पर प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से आपत्ति जताई गई।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के निवेदनों पर मैं अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत सोसायटी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही और अन्य कानूनों के वैधानिक प्रावधानों के आलोक में विचार करूगा।

10. चूंकि इस बात को लेकर कोई विवाद नहीं है कि विवादित दुकान उस भवन का अभिन्न अंग है जो मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थान में निहित है और उत्तर प्रदेश अधिनियम 1972 की संख्या 13 के प्रावधान उक्त की धारा 2(1)(बी) के आधार पर लागू नहीं होंगे। मुकदमेबाजी की

पार्टियों के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध को लेकर कम से कम वादी संख्या 1 और 2 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के बीच कोई विवाद नहीं है। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता की किरायेदारी के निर्धारण का नोटिस उस पर विधिवत तामील किया गया। वर्तमान मामले में विवाद यह है कि क्या नीचे की अदालतों के समक्ष रखी गई सामग्री के आलोक में यह कहा जा सकता है कि वादी को मुकदमा करने का कोई अधिकार नहीं था। और यह कि उनके द्वारा दायर किया गया मुकदमा चलने योग्य नहीं है।

11. मैंने पाया कि रिकॉर्ड में संस्थान के प्रशासन की योजना का प्रपत्र, वर्ष 2014-2015 से संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित पदाधिकारियों की सूची; इस संबंध में अधिकारियों द्वारा जारी किए गए कुछ पत्र; उपनियम और सोसायटी के पंजीकरण के नवीनीकरण का प्रमाण पत्र भी सोसायटी का पंजीकरण, पेपर नंबर 27-Ga14 (कार्यालय के पदाधिकारों की 2014-15 की सूची)और पेपर नंबर 27-Ga/15 (रजिस्ट्रार ऑफ सोसाइटीज, उ.प्र. द्वारा जारी किया गया सोसायटी के पंजीकरण के पांच वर्ष की अवधि के लिए 28.01.2015 से लागू नवीनीकरण का प्रमाण पत्र)यह स्थापित करने के लिए कि सोसायटी अधिनियम, 1860 के प्रावधानों के तहत

विधिवत पंजीकृत थी। भले ही किसी भी हद तक कल्पना करने पर यह माना जाए कि सोसायटी मुक़दमे के संस्थित होने की तिथि पर पंजीकृत नहीं थी (हालाँकि मुझे इस आशय की सामग्री नहीं मिली) तो यह प्रश्न उठेगा कि क्या सोसायटी के पदाधिकारी, सोसायटी के मामलों पर वास्तविक और प्रभावी नियंत्रण रखते हुए किसी मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थान की इमारत का हिस्सा बनने वाली सोसायटी द्वारा संचालित अचल संपत्ति से किरायेदार की बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए सक्षम होते हैं।

12. अधिनियम, 1860 की धारा 5 एवं 6 का इस संबंध में उल्लेख होना आवश्यक है जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"5. समाज की संपत्ति किस प्रकार निहित होगी.–इस अधिनियम के तहत, पंजीकृत सोसायटी से संबंधित चल और अचल संपत्ति यदि ट्रस्टियों में निहित नहीं है, तो माना जाएगा कि सम्पत्ति उस समय के लिए ऐसी सोसायटी, के गवर्निंग बाडी में निहित होगी, और सभी दीवानी और फौजदारी कार्यवाहियों में उनके उचित शीर्षक के लिए गवर्निंग बाडी की संपत्ति के रूप में वर्णित की जा सकती है।

6. सोसाइटी द्वारा और उनके विरुद्ध वाद - इस अधिनियम के तहत पंजीकृत प्रत्येक सोसाइटी द्वारा या उसके विरुद्ध मुकदमा प्रेसिडेंट, चेयरमैन, मुख्य सचिव या ट्रस्टी के नाम पर चलाया जा सकता है जैसा कि सोसाइटी के नियम और विनियम में निर्धारित किया जाएगा और ऐसे प्रावधान के न होने पर ऐसे व्यक्तियों के नाम पर मुकदमा चलाया जा सकता है जिन्हें उस अवसर के लिए गवर्निंग बाडी द्वारा नियुक्त किया जाए।साथ ही कोई व्यक्ति सोसायटी के विरुद्ध कोई दावा या मांग करने के लिए उसके प्रेसिडेंट या चेयरमैन या मुख्य सचिव या ट्रस्टी के पर मुकदमा करने में सक्षम होगा यदि गवर्निंग बाडी द्वारा उस व्यक्ति के आवेदन पर किसी अन्य अधिकारी या व्यक्ति को प्रतिवादी बनने के लिए नामांकित नहीं किया जाता है।

13. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि किसी सोसायटी से संबंधित अचल संपत्ति को उस समय के लिए गवर्निंग बाॅडी में निहित माना जाएगा और इस अधिनियम के तहत पंजीकृत सोसायटी से संबंधित चल और अचल संपत्ति को यदि वह ट्रस्टियों में निहित नहीं है तो सभी कार्यवाहियों में उस समय के लिए ऐसी सोसायटी की गवर्निंग बाॅडी में निहित माना जाएगा और सभी सिविल और आपराधिक कार्यवाहियों में उसके उचित स्वामित्व शीर्षक के लिए गवर्निंग बाॅडी की सम्पत्ति के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह भी स्पष्ट है कि ऐसी सोसायटी उसके प्रेसिडेंट या चेयरमैन या मुख्य सचिव या ट्रस्टियों के नाम से मुकदमा कर सकती है या इन नामों से सोसाइटी पर मुकदमा किया जा सकता है यदि कोई सोसायटी के विरुद्ध कोई दावा या मांग करता है तो वह सोसायटी के पदाधिकारी के विरुद्ध उचित कार्यवाही शुरू करके मुकदमा कर सकता है।

14. जहां तक ऐसे वादी द्वारा संस्थित मुकदमे की आवश्यकता का संबंध है सिविल प्रक्रिया

संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 1(बी) और नियम 4 को नीचे उद्धृत किया गया है-

"आदेश VII नियम 1(बी)- वादी का नाम, विवरण और निवास स्थान;

नियम 4- जब वादी प्रतिनिधि के रूप में मुकदमा करता है.-

जहां वादी प्रतिनिधि स्वरूप में मुकदमा करता है वहाँ वाद पत्र न सिर्फ यह दर्शाता है कि विषय-वस्तु में उसका वास्तविक मौजूदा हित है वल्कि यह भी दर्शाता है कि उसने इसके संबंध में एक मुकदमा दायर करने के लिए खुद को सक्षम बनाने हेतु आवश्यक कदम (यदि कोई हो) उठा लिए हैं।"

15. उपरोक्त प्रावधानों को पार्टियों की सारणी के साथ अवलोकन करने पर मुझे लगता है कि वादी का विवरण संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 1 (बी) के अनुरूप है और सोसायटियों के पदाधिकारियों के दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य से यह स्थापित हुआ कि उनका विषय वस्तु में वास्तविक और मौजूदा हित (अर्थात दुकान के विवाद में) है और, इसलिए, चूँकि पदाधिकारी सोसायटी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे इसलिए संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 4 की आवश्यकता की भी पूर्ति हुई।

16. स्वीकृत है कि मुकदमा अधिनियम, 1887 की धारा 15 और 16 के तहत दायर किया गया था और यूपी राज्य में संशोधित धारा 15 जो अधिनियम की दूसरी अनुसूची में निहित है स्पष्ट रूप से पट्टेदार की बेदखली के लिए उसके पट्टे के निर्धारण के बाद भवन से पट्टा करने वाले द्वारा मुकदमा दायर करने का प्रावधान करती है। चूँकि अधिनियम क्रमांक 13 ऑफ 1972 के प्रावधान यहाँ लागू नहीं है जैसा कि पहले से ही देखा जा चुका है इसलिए "पट्टेदार" और "पट्टेकर्ता" की परिभाषा को संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 105 के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए जो इस प्रकार है:-

105. पट्टे की परिभाषा - अचल संपत्ति का पट्टा किसी निश्चित समय या शाश्वतता में ऐसे उपभोग करने के अधिकार का व्यक्त या निहित हस्तांतरण है जो भुगतान की गई , वायदा की गई, रुपयो की, फसलों के हिस्से की, सेवा या समय-समय पर अंतरणकर्ता को अंतरिती द्वारा दी जाने वाली कोई अन्य मूल्यवान वस्तु या निर्दिष्ट अवसरों पर जैसा कि दोनो के मध्य शर्तों में स्वीकार्य हो के प्रतिफल में होता है।

पट्टादाता, पट्टेदार, प्रीमियम और किराया परिभाषित।–

अंतरणकर्ता को पट्टादाता कहा जाता है, अंतरिती को पट्टेदार कहा जाता है, कीमत को प्रीमियम कहा जाता है, और इस प्रकार प्रदान किया जाने वाला धन, शेयर, सेवा या अन्य वस्तु किराया कहा जाता है।

17. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मुझे यह लगता है कि अपने कार्यालय द्वारा प्रतिनिधित्व पाने वाली सोसायटी द्वारा मुकदमा संस्थित करने में कोई त्रुटि नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का सोसायटी के अधिनियम 1860 के प्रावधानों के तहत विधिवत पंजीकृत नहीं होने की बात पर जोर देना कार्यवाही के रिकार्ड के विपरीत है।

18. अब न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय, द्वारा आवेदन 29-सी पर पारित आदेश दिनांकित 03.10.2015 पर आते हैं। न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय ने अपने आदेश दिनांकित 03.10.2015 में इसका उल्लेख नहीं किया कि वादी द्वारा कौन-कौन से दस्तावेज दाखिल नहीं किये गये और कौन से दस्तावेजों का दायर किया जाना आवश्यक था। उक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि वादी द्वारा विशिष्ट आपत्तियाँ दायर की गई थीं जिनमें उसका कहना है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के अनुसार, जिन दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाने की मांग की गई है वे वादी द्वारा पहले ही दायर कर दिए गए थे और वादीगण के पास कोई अन्य दस्तावेज नहीं था। जज लघुवाद न्यायालय ने कहा कि जो भी दस्तावेज वादी के पास उपलब्ध हैं उनके द्वारा दायर किये जा सकते हैं और जो दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं, वादी उन्हें दायर करने के लिए बाध्य नहीं हैं। मैं पहले ही फैसले में यह देख चुका हूं कि यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त दस्तावेज़ मौजूद थे कि सोसाइटी का कानून के प्रावधानों के तहत नवीनीकरण किया गया था और पदाधिकारियों की सूची का विधिवत अनुमोदन भी किया गया।

19. इस संबंध में मौखिक साक्ष्य का विश्लेषण भी काफी सार्थक है। पीडब्लू-1 विशाल शर्मा ने जो वादी संख्या 1 के प्रबंधक/सचिव की क्षमता में उपस्थित हुए स्पष्ट रूप से अपनी जिरह में बताया कि पदाधिकारियों की सूची और सोसायटी से संबंधित अन्य दस्तावेज दाखिल किए गए थे और वादी का यह आरोप लगाना गलत था कि वह सोसायटी के पदाधिकारी नहीं थे या सचिव पद पर नहीं थे।

याचिकाकर्ता जो DW-1 के रूप में उपस्थित हुए, ने अपनी जिरह में इस प्रकार कहा:-

मुझे नहीं मालूम कि राष्ट्रीय सभा खैर क्या है, मै राष्ट्रीय सभा कासंविधान नहीं पढ़ा। मै डा० निशान शर्मा नहीं जानता, सोसाइटी का रजिजस्ट्रेशन कब तक वैधाकिन है, हमे नहीं मालूम है, मै डिप्टी रजिस्ट्रार सोसाइटी आगरा नहीं गया हूँ, सोसाइटी की तरफ से दावा दायर करने का किसे अधिधार है मुझे नहीं मालूम हैं। मैने किरायेदारी कानून को नहीं पढ़ा, सोसाइटी का नवीनीकरण कब हुआ मुझे नहीं मालूम है। सोसाइटी का कार्यालय कहाँ है नहीं मालूम है।

20. न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय ने फाइनल निर्णय में याचिकाकर्ता डीडब्ल्यू-1 की जिरह का भी हवाला देते हुए कहा है कि वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1, एक न्यायिक व्यक्ति है और वादीगण द्वारा रिकार्ड पर पर्याप्त सामग्री रखी गई है जिससे स्पष्ट है कि मुकदमा पोषणीय था। यह भी अवधारित किया गया कि शिक्षण संस्थान वादी नंबर 1, सोसाइटी द्वारा चलाया जा रहा है और सोसाइटी के पदाधिकारी या इसके किसी अन्य पहलू के संबंध में किसी ने कोई आपत्ति नहीं जताई। न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय ने यह

भी अवधारित किया कि यह विवाद न तो स्वामित्व का विवाद था और न ही सोसायटी के पदाधिकारीत्व के संबंध में था और इसलिए प्रतिवादी को इस के संबंध में कोई आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं था।

21. भले ही केवल चरम सीमा तक बहस के लिए यह मान लिया जाए कि मुकदमा संस्थित करने की तिथि पर सोसाइटी या उसके पदाधिकारियों में कुछ दोष था (हालाँकि मैं पूरे रिकॉर्ड को देखने के बाद ऐसी कोई खामी नहीं पाता हूँ)। तब सोसायटी और शिक्षण संस्थान के मामलों के प्रभावी और वास्तविक प्रबंधन के नियंत्रण के प्रश्न को विस्तार से समझने की जरूरत है।

22. 'डि फैक्टो सिद्धांत'का शाब्दिक अर्थ "वास्तव में" होता है। डि फैक्टो का सिद्धांत सार्वजनिक नीति के ठोस सिद्धांत पर आधारित है और इसका उद्देश्य लोगों में किसी भी तरह की असुरक्षा और भ्रम की स्थिति को भी हटाना है जिनके अधिकारों पर उस व्यक्ति द्वारा की गई कार्रवाई या उसके द्वारा आदेश पारित होने की स्थिति में प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जिसने वास्तव में कार्यालय पर कब्ज़ा कर लिया है या उसके पद पर आसीन होने के को वाद में शून्य या अवैध अवधारित किया जा रहा है। यह ठीक ही कहा गया है कि यह सिद्धांत आवश्यकता से उत्पन्न होता है और यदि कोई शरारत हो तो उसे रोकने से कानूननमें कार्यालय मौजूद है और एक प्राधिकारी इस पर नियुक्ति या चुनाव या नामांकन के आधार पर कब्जा कर लेता है। ऐसा व्यक्ति या निकाय कार्यालय के प्रतीक चिन्ह से सुसज्जित है और इसी तरह से कार्य करता है या शक्तियों का प्रयोग करता है और ऐसी शक्ति का प्रयोग करने का प्राधिकार वास्तविक सिद्धांत (डि फेक्टो डाक्ट्रिन) के आधार पर कायम रखा गया।

23. दयानंद प्रबंधन समिति आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, मुरादाबाद और अन्य बनाम उच्च शिक्षा निदेशक, इलाहाबाद एवं अन्य रिपोर्टिड(1998) 4 एससीसी 104 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कार्यालय में डि फैक्टो प्रबंधन समिति द्वारा एक शिक्षक के स्वैच्छिक त्यागपत्र की स्वीकृति को सही माना। फैसले के पैराग्राफ 3 में न्यायालय ने माना कि प्रबंधन समिति जो उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेश के आधार पर कार्यालय में बनी हुई थी इसे वैधानिक रूप (डि ज्यूरे) से भी वास्तविक(डि फैक्टो) माना जाएगा।

24. उपरोक्त निर्णय के बाद, इस न्यायालय की एक खंडपीठ को मेहंदी हसन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिपोर्टड 2014 एडीजे 437 (डीबी) में उस स्थिति से निपटने का अवसर पड़ा जहां प्रबंधन समिति इस न्यायालय द्वारा पारित किये गए स्थगन आदेश के आधार पर पद पर बनी रही थी और बाद में हुए चुनाव में उसे अमान्य माना गया। उस मामले में प्रबंधन समिति ने जिसे एक अंतरिम आदेश के आधार पर जारी रखा गया था एक विज्ञापन जारी किया। जिन याचिकाकर्ताओं ने इस विज्ञापन के आधार पर आवेदन किया था और उनका चयन हुआ था उनके चयन पर इस आधार पर सवाल उठाया गया कि उनकी नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य थी

क्योंकि उस समय समिति केवल अंतरिम आदेश के बल पर बनी हुई थी। इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा प्रबंधन समिति गंगादीन राम कुमार इंटर कॉलेज, रामगढ़ बरवां जिला जौनपुर बनाम उप शिक्षा निदेशक, पंचम क्षेत्र, वाराणसी और अन्य, 2006(4) एडीजे 381 (डीबी) के मामले में अपनाया गया। एक शैक्षणिक संस्था के प्रबंधकीय मामलों पर प्रभावी नियंत्रण का प्रश्न पर इस न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ द्वारा 'प्रबंधन समिति पंडित जवाहरलाल नेहरू इंटर कॉलेज,बांसगांव और अन्य वनाम उप शिक्षा निदेशक,गोरखपुर एवं अन्य रिपोर्टिड इन एआईआर 2005 इलाहाबाद 101 (एफबी) में भी बल दिया गया है।

25. कानून की उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मैं ऐसा पाता हूं कि चूंकि कोई प्रतिद्वंद्वी समिति या समाज वादीगण की पदाधिकारी पद के संबंध में आपत्ति नहीं जता रहा है,अधिनियम, 1860 की धारा 6 से जुड़े परंतुक के तहत कोई मुकदमा या कार्यवाही नहीं है, इसे स्थापित करने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है कि वादी पक्ष का सोसाइटी के मामलो पर प्रभावी एवं वास्तविक नियंत्रण था और सिद्धांततः उनके वास्तविक और कानूनी प्रबंधन दोनों को बचाने के लिए मुझे यह उपयुक्त लगता है कि किरायेदार-याचिकाकर्ता को अचल संपत्ति से बेदखल करना सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860 की धारा 5 और 6 के प्रावधानों, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 1(बी) और 4, तथा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 105 और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 15 में निहित दूसरी अनुसूची उत्तर प्रदेश(संशोधित) के आलोक में स्पष्टतः पोषणीय था।

26. किसी अन्य बिंदु पर बहस नहीं की गई.

27. न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय द्वारा दर्ज किये गये निष्कर्ष जिनकी पुष्टि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा की गई है तथ्यपरक एवं शुद्ध निष्कर्ष हैं जिनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करके किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और वर्तमान याचिका नौ अन्य याचिकाओं के साथ (जैसा कि ऊपर बताया गया है) विफल होती हैं और तदनुसार, उन्हें खारिज किया जाता है।

28. याचिकाकर्ताओं को दुकान खाली करने के लिए 30.04.2024 तक या उससे पहले तक का समय दिया जाता है।बशर्ते वे न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय के समक्ष स्वीकृत किराया महीने-दर-महीने जमा करें जो वादी/उत्तरदाता के पक्ष में बिना कोई सिक्योरिटी के जारी किया किया जाएगा । ये भी निर्देश दिया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता ऊपर दिये गए निर्देश के अनुसार विवादित दुकानें खाली करने में विफल रहते हैं तो निष्पादन न्यायालय बेदखली के आदेश को 31.05.2024 से पहले यानी इस कोर्ट द्वारा निर्धारित अंतिम तिथि के एक माह के भीतर बल प्रयोग करके अविलंब निष्पादित करेगा ।

(2023) 8 ILRA 225

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

विशेष अपील संख्या 309 वर्ष 2019

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुरादाबाद ...अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती प्रियंका अग्रवाल ...प्रतिवादी

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:
श्री अमरेश सिन्हा, श्री अनुभव सिन्हा

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
श्री विजय प्रकाश जायसवाल

अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर प्रचलित योजना के अनुसार विचार किया जाना चाहिए, नीति में किसी भी परवर्ती या पूर्वव्यापी परिवर्तन आधारित नहीं। वर्तमान मामले में, अनुकंपा नियुक्ति योजना को पुनः लागू करने के पहले ही, मृतक कर्मचारी की मृत्यु 06.09.2014 को हो गई, जो दिनांक 07.08.2014 को अधिसूचित योजना के खंड 8 के अनुसार 01.11.2014 को भविष्यलक्षी रूप से प्रभावी हुआ। विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्देश निर्दिष्ट तिथि की अनदेखी करते हुए प्रतिवादी के आवेदन पर विचार करने के आदेश को रद्द कर दिया गया, क्योंकि रिट याचिका में निर्दिष्ट तिथि (खंड 8) की वैधता को कोई चुनौती नहीं दी गई। अनुकंपा नियुक्ति मौलिक अधिकार नहीं है लेकिन यह अनुच्छेद 14 और 16 का अपवाद है; इसकी व्याख्या योजना के अनुसार कठोरता से की जानी चाहिए। सार्वजनिक सेवायोजन में समानता का सिद्धांत कानूनी प्रावधान या संवैधानिक चुनौती के अभाव में पूर्वव्यापी अधिकार के किसी भी दावे को अधिभावी करता है। अपील स्वीकार की गई। एकल न्यायाधीश का आदेश रद्द किया गया।

अपील स्वीकृत।

<u>संदर्भ:</u>

1. गज़ुला दशरथ रामा राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1961 एससी 5377

2. उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138

3. अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी, (1981) 1 एससीसी 722 -

4. आर.के. गर्ग बनाम भारत संघ, (1981) 4 एससीसी 675 -

5. एस.बी.आई. बनाम जसपाल कौर, (2007) 9 एससीसी 571

6. भवानी प्रसाद सोनकर बनाम भारत संघ, (2011) 4 एससीसी 209

7.एस.बी.आई. बनाम राज कुमार, (2010) 11 एससीसी 661 -

8. एमजीबी ग्रामीण बैंक बनाम चक्रवर्ती सिंह, (2014) 13 एससीसी 583

9. केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार, (2015) 7 एससीसी 412 -

10. इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला, (2020) 2 एससीसी 729 -

11. एन.सी. संतोष बनाम कर्नाटक राज्य, (2020) 7 एससीसी 617

12. मध्य प्रदेश राज्य बनाम अमित श्रीवास, (2020) 10 एससीसी 496

13. मध्य प्रदेश राज्य बनाम आशीष अवस्थी, (2022) 2 एससीसी 157

14. सचिव, शासकीय शिक्षा विभाग (प्राथमिक) बनाम भीमेश उर्फ भीमप्पा, 2021 एससीसी ऑनलाइन 1264

15. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हिमांशु यादव, विशेष अपील संख्या 126 वर्ष 2023

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह
और
माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा
प्रदत्त)

1. विपक्षी-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेश सिन्हा की ओर से वकालत कर रहे श्री अनुभव सिन्हा, अधिवक्ता, और आवेदक-विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय प्रकाश जायसवाल को सुना।

2. वर्तमान इंट्रा-कोर्ट अपील ***प्रियंका अग्रवाल बनाम भारत संघ और2 अन्य (रिट-ए नंबर 51712/2017)*** में पारित विद्वान एकल-न्यायाधीश के आदेश दिनांक 22.2.2019 के विरुद्ध दायर की गई है। उस आदेश के द्वारा, विद्वान एकल-न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकृत किया और अपीलार्थी-विपक्षी को, निदेशक, वित्तीय सेवा विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी संचार दिनांक 7 अगस्त, 2014 के माध्यम से शुरू की गई सार्वजनिक क्षेत्र और सामान्य बीमा कंपनियों में अनुकंपा नियुक्ति योजना के तहत आने वाली कट-ऑफ तिथि यानी 1.11.2014 को नजरअंदाज करते हुए, अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के लिए विपक्षी-आवेदक के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया।

3. आवेदक के पति श्री सुरेंद्र कुमार अग्रवाल की ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुरादाबाद में सहायक के पद पर काम करते समय 6.9.2014 को मृत्यु हो गई। निर्विवाद रूप से, उनकी मृत्यु की तिथि पर, उनके परिवार के सदस्यों को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने हेतु कोई योजना अस्तित्व में नहीं थी। बल्कि, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मृत कर्मचारियों के परिवार को अनुग्रह भुगतान प्रदान करने हेतु एक योजना अस्तित्व में थी और लागू थी।

4. बाद में, 7.8.2014 को, निदेशक, वित्तीय सेवा विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी संचार द्वारा अनुकंपा नियुक्ति अनुदान योजना प्रकाशित की गई थी। त्वरित संदर्भ के लिए, अनुकंपा नियुक्ति अनुदान योजना का खंड 8 नीचे दिया गया है:

"8. यह योजना 01 नवंबर 2014 से भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू हुई है। पात्र आश्रित से, योजना के तहत रोजगार हेतु आवेदन पर सामान्यतः 01 नवंबर, 2014 को या उसके बाद होने वाली मृत्यु अथवा चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्ति की तारीख से पांच साल तक, विचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले में योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए।"

5. 12.12.2014 को, वर्तमान आवेदक-विपक्षी ने अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने हेतु अपना आवेदन दायर किया। उसे संचार दिनांक 5.3.2015 द्वारा इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया कि मृत्यु कट-ऑफ तिथि से पहले हुई थी। यहां, यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि बहुत पहले अनुकंपा नियुक्ति देने हेतु एक योजना अस्तित्व में थी। यद्यपि, इसे 1.6.2002 से बंद कर दिया गया और इसके स्थान पर अनुग्रह भुगतान प्रदान करने वाली योजना लागू हो गयी।

6. रिट याचिका में, एकमात्र की गई प्रार्थना इस प्रकार है:

"(क) आवेदक को जितनी जल्दी हो सके, अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करने हेतु विपक्षी संख्या 1 व् 2 को निर्देशित करते हुए परमादेश की रिट, आदेश या निर्देश जारी करें और इस संबंध में विपक्षियों द्वारा प्रयास किए जाएँ।

(ख) विपक्षी संख्या 2 को उसके समक्ष लंबित आवेदक के प्रत्यावेदनों का निपटान करने का निर्देश देते हुए परमादेश की रिट, आदेश या निर्देश जारी करें|

(ग) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थिति में उपयुक्त और उचित समझे, जारी करें ।"

7. रिट याचिका को स्वीकार करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने निम्नानुसार कहा:

"मैंने पक्षकारों की दलीलों पर विचार किया है।

कोई कर्मचारी या आश्रित अपनी मृत्यु की तारीख तय नहीं कर सकता। यह किसी कर्मचारी के आश्रित या स्वयं कर्मचारी के हाथ में नहीं है कि उसकी मृत्यु कब होगी। 01.11.2014 के पूर्व भी 2002 की पुरानी योजना थी और इसमें कोई विवाद नहीं है कि पुरानी योजना के तहत, आवेदक अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने की हकदार थी। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदक के दावे को नई योजना जिसमें किसी कर्मचारी की मृत्यु की कृत्रिम तारीख अर्थात 1.11.2014 तय की गई है, के कारण से अस्वीकार किया जा रहा है, जिसका कोई आधार नहीं है। अन्यथा भी, जब आवेदक के पति की मृत्यु 6.9.2014 को हुई थी, आवेदक पुरानी योजना के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पर विचार किये जाने की अधिकारी थी|

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक कर्मचारी की मृत्यु की तारीख कृत्रिम तरीके से तय की गई है, इसे अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदक के वैध दावे को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

तदनुसार, वर्तमान रिट याचिका स्वीकृत की जाती है और विपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे कट ऑफ डेट अर्थात 1.11.2014 को नजरअंदाज करते हुए अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदक के दावे पर विचार करें और विधि अनुसार निर्णय लें और यदि वह अन्यथा पात्र और योग्य पाई जाती है, तो आज से एक महीने की अवधि के भीतर आवेदक को अनुकंपा आधार पर नियुक्त करें।"

8. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और पत्रावली का अवलोकन करने के पश्चात्, हमने पाया कि, श्री सुरेंद्र कुमार अग्रवाल की मृत्यु की तारीख पर, अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने की कोई योजना अस्तित्व में नहीं थी। उस तिथि पर, मृत कर्मचारी के परिवार को अनुग्रह भुगतान प्रदान किये जाने की एक योजना अस्तित्व में थी। अनुकंपा नियुक्ति की योजना जिसे पूर्व में 1.6.2002 से बंद कर दिया गया था, उसे निदेशक, वित्तीय सेवा विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा लिखित पत्र दिनांक 7 अगस्त, 2014 द्वारा फिर से शुरू किया गया था। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस योजना को और अधिक स्पष्टीकरण के साथ 1.11.2014 से भविष्यलक्षी प्रभाव से लागु किया गया था, यह मात्र उन मामलों पर लागू होगी जहां मृत्यु 1.11.2014 को या उसके बाद हुई हो।

9. उस योजना के खंड 8 पर उठाई गई किसी भी आपत्ति के अभाव में, यह कानून में सुस्थापित है कि अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किया जाना एक मौलिक अधिकार नहीं है। बल्कि, वह रियायत रोजगार में समानता के मौलिक अधिकार के अपवाद के रूप में मौजूद है। एक अपवाद होने के नाते, इसे उस योजना के संदर्भ में सख्ती से समझा जाना चाहिए जिसके तहत वह अपवाद बनाया गया है। यहां, यह उल्लेखनीय है कि, प्रारंभिक समय से, हमारी संवैधानिक योजना के तहत, केवल वंश के आधार पर सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के दावों को, सार्वजनिक रोजगार में समानता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होने के नाते, निम्न दृष्टि से देखा जाता था, जैसा कि, ***गज़ुला दशरथ रामा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1961 एससी 5377*** में सुप्रीम कोर्ट के पांच न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में देखा गया था, उसी समय, एक कर्मचारी जिसकी नौकरी के दौरान मृत्यु हो सकती है जिससे उसके असहाय परिवार पर अचानक गरीबी की स्थिति आ सकती है, के पारिवारिक सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत उत्पन्न होने वाले समानता के सामान्य नियम के एक स्वीकार्य अपवाद के रूप में मान्यता दी गई थी। अतः, ***उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138*** में, यह निर्धारित किया गया था:-

"2. प्रश्न उन विचारों से संबंधित है, जो सार्वजनिक सेवाओं में अनुकंपा आधार पर नियुक्ति देते समय पथ प्रदर्शन करें| ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे पर काफी हंगामा हुआ है। नियम के रूप में, सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ पूर्ण रूप से आवेदनों के आमंत्रण और इसकी पूर्ति के आधार पर की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका या कोई अन्य विचारणीय तथ्य नहीं है, न तो सरकारें और न ही सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या पद के नियमों द्वारा निर्धारित योग्यता में छूट देने के लिए स्वतंत्र हैं। यद्यपि, न्यायहित में और कुछ आकस्मिकताओं को पूरा करने के लिए, इस सामान्य नियम, जिसका हर मामले में सख्ती से पालन किया जाना चाहिए, के कुछ अपवाद बनाए गए हैं। ऐसा एक अपवाद उस कर्मचारी के आश्रितों के पक्ष में है जो नौकरी के दौरान मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी में और आजीविका के किसी भी साधन के बिना छोड़ देता है। ऐसे मामलों में, शुद्ध मानवीय कारण से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, तब तक परिवार गुजारा करने में सक्षम नहीं होगा, नियमों में मृतक के किसी एक आश्रित को, जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो, लाभकारी रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया जाता है। इस प्रकार अनुकंपा रोजगार देने का पूर्ण उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से निपटने में सक्षम बनाना है। इसका उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को मृतक द्वारा धारित पद के बदले उससे बहुत नीचे का कोई पद देना नहीं है। इसके अलावा, कार्य के दौरान किसी कर्मचारी की मृत्यु मात्र से उसका परिवार आजीविका के ऐसे स्रोत का हक़दार नहीं हो जाता है। सरकार या संबंधित सार्वजनिक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की वित्तीय स्थिति की जांच करनी होती है, और यदि वह संतुष्ट हो कि रोजगार के प्रावधान के बिना परिवार संकट का सामना नहीं कर पाएगा, केवल तभी परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी का प्रस्ताव दिया जाता है। समूह III और IV के पद गैर-मैनुअल और मैनुअल श्रेणियों में सबसे निचले पद हैं और इसलिए, परिवार को वित्तीय गरीबी से राहत देने और आपातकाल से उबरने में मदद करने का उद्देश्य होने के नाते, अनुकंपा के आधार पर केवल उन्हीं को प्रदान किया जा सकता है। नियम में अपवाद बनाकर ऐसे सर्वाधिक निचले स्तर के पदों पर रोजगार का प्रावधान न्यायोचित एवं वैध है, क्योंकि यह भेदभावपूर्ण नहीं है। ऐसे पदों पर मृत कर्मचारी के ऐसे आश्रित को दिए जाने वाले अनुकूल व्यवहार का, इच्छित उद्देश्य, अर्थात निराश्रयता से राहत, के साथ तर्कसंगत संबंध है। सार्वजनिक प्राधिकारियों द्वारा, इस उद्देश्य हेतु कोई अन्य पद दिए जाने की अपेक्षा या आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के मुकाबले यहाँ लाखों अन्य परिवार हैं जो यदि अधिक नहीं तो समान रूप से, निराश्रित हैं। मृत कर्मचारी के परिवार के पक्ष में बनाया गया नियम का अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और वैध अपेक्षाओं और परिवार की स्थिति और मामलों में बदलाव, जो पूर्व रोजगार द्वारा उत्पन्न हुआ था जो अचानक से उलट गया, को ध्यान में रखते हुए है।"

10. वर्तमान तथ्यों में, अनुकंपा नियुक्ति योजना में स्पष्ट प्रावधान है कि रोजगार में समानता के नियम का अपवाद केवल योग्य मामलों में ही प्रदान किया जा सकता है, जहां मृत्यु 1.11.2014 को या उसके बाद हुई हो। इसलिए, अव्वल तो, विद्वान एकल-न्यायाधीश के पास कभी भी यह विकल्प नहीं रहा कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का अधिकार प्रदान करे जो कट-ऑफ तिथि की शर्त के कारण पात्र नहीं है।

11. तब, 01.11.2014 से पहली बार लागू की गयी अनुकंपा नियुक्ति योजना के खंड -8 की वैधता को लेकर उठायी गयी किसी भी चुनौती के अभाव में, विद्वान एकल-न्यायाधीश के लिए यह विकल्प भी कभी खुला नहीं रहा कि कट-ऑफ तारीख को मनमाना समझे या पढ़ें। इससे पहले कि ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सके, अनुकंपा नियुक्ति अनुदान योजना द्वारा निर्धारित कट-ऑफ तिथि पर उठायी गयी सीधी चुनौती अस्तित्व में होनी चाहिए। क्योंकि, आवेदक ने अनुकंपा नियुक्ति अनुदान योजना के तहत निर्धारित कट-ऑफ तिथि को चुनौती दिए बिना केवल अपने आवेदन को निर्णीत करने हेतु निर्देश मांगना चुना, इसलिए विद्वान एकल-न्यायाधीश की यह टिप्पणी कि खंड 8 मनमाना है, तथ्यों या विधि के आधार पर प्रमाणित नहीं है, क्योंकि उस आधार पर न तो किसी तथ्य की वकालत की गई थी और न ही उस प्रकृति की कोई राहत मांगी गई थी।

12. उस आलोक में, ***अजय हसिया बनाम खौइद मुजीब सेहरावर्दी (1981) 1 एससीसी 722*** *और* ***आर.के. गर्ग बनाम भारत संघ और अन्य (1981) 4 एससीसी 675*** में सुप्रीम कोर्ट की पांच-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णयों के आधार पर विपक्षी -आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर किसी गंभीरता से विचार नहीं किया जा सकता।

13. संवैधानिक वैधता के मामलों पर केवल योग्य मामलों में ही विचार किया जाना चाहिए, जहां पहले आवश्यक तथ्यों की दलील दी जाती है और ऐसी दलीलों पर विशिष्ट चुनौती उठाई जाती है। रिट कोर्ट कभी भी, ऐसी चुनौती पर विचार या उस अभ्यास में प्रवेश, लापरवाही से नहीं कर सकता है। कानून की वैधता के बारे में धारणा हमारे न्यायशास्त्र के तहत पहले से मौजूद है। विशिष्ट चुनौती के अभाव में, प्रस्तुत की गयी दलील पर आवेदक-विपक्षी के पक्ष में निर्णय तो क्या, विचारण भी नहीं किया जा सकता था|

14. सामान्य बीमा व्यवसाय (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1972 की धारा 17 (ए) के आधार पर भी जो दलीलें प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया वह भी स्वीकार योग्य नहीं है, क्योंकि उसका खंड 1 निगम के अधिकारियों और कर्मचारियों की सेवा के नियमों और शर्तों पर लागू होता है | इसका किसी मृत कर्मचारी के परिवार के सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के दावे से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए, अधिनियम की धारा 17(ए)(6) की भाषा से कोई लाभ नहीं लिया जा सकता है।

15. हालाँकि, पक्षकारों में मतभेद है कि कानून, मृत्यु की तारीख से या दावा दायर

करने की तारीख से या विचार किए जाने की तारीख से लागू होगा, हम मात्र यह गौर कर सकते हैं कि **भारतीय स्टेट बैंक व अन्य बनाम जसपाल कौर (2007) 9 एससीसी 571** में, कर्मचारी की 01.8.1999 को नौकरी के दौरान मृत्यु हो गई। उनकी पत्नी द्वारा 05.2.2000 को किया गया अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन, 07.1.2002 को खारिज कर दिया गया। बाद में, 04.8.2005 को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने हेतु एक योजना शुरू की गई। हाईकोर्ट ने बैंक को, पूर्व में दायर आवेदन को नई योजना के तहत विचार करने का निर्देश जारी किया। हाई कोर्ट के उस फैसले को सुप्रीम कोर्ट ने पलट दिया| **भवानी प्रसाद सोनकर बनाम भारतीय संघ और अन्य (2011) 4 एससीसी 209** में यही सिद्धांत दोहराया गया। **भारतीय स्टेट बैंक बनाम राज कुमार (2010)11 एससीसी 661** में, यह राय दी गयी थी कि निर्णय की तारीख पर मौजूद अनुकंपा नियुक्ति अनुदान योजना सभी लंबित आवेदनों के भाग्य को निर्धारित करेगी। **एमजीबी ग्रामीण बैंक बनाम चक्रवर्ती सिंह (2014) 13 एससीसी 583** में उस दृष्टिकोण को दोहराया गया।

16. फिर, **केनरा बैंक और अन्य बनाम एम. महेश कुमार (2015) 7 एससीसी 412** में , मृत्यु 10.10.1998 को हुई जबकि अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने हेतु आवेदन 30.11.1998 को दायर किया गया। जबकि वह आवेदन लंबित था, वर्ष 2005 में अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने की योजना को वापस ले लिया गया और उसके स्थान पर अनुग्रह भुगतान प्रदान करने वाली एक अन्य योजना लागू कर दी गयी। स्वयं द्वारा निर्धारित पूर्व कानून पर विचार करने के उपरांत, सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायाधीशों की पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि दावेदार का मामला (उस मामले में) बाद की योजना के अनुसार नहीं निपटाया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक था कि दावे पर उस योजना के अनुसार पुनर्विचार किया जाए जो मृत्यु की तारीख पर अस्तित्व में थी और दावा किए जाने की तारीख पर भी अस्तित्व में थी।

17. फिर, **इंडियन बैंक और अन्य बनाम प्रोमिला और अन्य (2020) 2 एससीसी 729** में, मृत्यु 15.1.2004 को हुई जबकि अनुकंपा नियुक्ति देने के लिए आवेदन 24.1.2004 को किया गया। अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किए जाने की योजना 27.4.2004 को शुरू की गई, यानी मृत्यु की घटना और दावा याचिका दायर होने के बाद। **केनरा बैंक** (उपरोक्त) का उदाहरण लेते हुए, सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायाधीशों की पीठ ने निर्णित किया कि, दावा उस योजना के अनुसार निर्धारित किया जाएगा जो मृत्यु की घटना और दावा याचिका दायर करने की तारीख पर अस्तित्व में थी।

18. बाद में, **एनसी संतोष बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य (2020) 7 एससीसी 617** में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने, अन्य में से, **भारतीय स्टेट बैंक बनाम राज कुमार** (उपरोक्त)**, एमजीबी ग्रामीण बैंक बनाम चक्रवर्ती सिंह** (उपरोक्त) और साथ ही **केनरा बैंक और अन्य बनाम एम. महेश कुमार** (उपरोक्त) में उस न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर विचार किया। उस मामले में, मृत्यु 25.1.1998

को हुई थी, अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किए जाने हेतु आवेदन 29.6.2000 को किया गया था, जबकि अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने वाला नियम 01.4.1999 से संशोधित हो गया था, जिससे अनुकंपा नियुक्ति देने का सक्षम प्रावधान खत्म हो गया। फिर भी 25.8.2000 को नियुक्ति दे दी गई। बाद में इसे 04.11.2003 को वापस ले लिया गया। यह गौर किया गया:

"19. उपरोक्त उद्धृत निर्णयों से निकाले गए अनुकंपा नियुक्ति को निर्धारित करने वाले कानून को लागू करते हुए, विषय पर हमारी राय यह है कि अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का आधार, आवेदन पर विचार करने की तारीख पर प्रचलित मानदंड, होना चाहिए। एक सरकारी कर्मचारी का आश्रित, सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर प्राप्त होने वाले किसी निहित अधिकार के अभाव में, केवल अपने आवेदन पर विचार करने की मांग कर सकता है। यद्यपि, वह सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के दिन लागू मानदंडों के अनुसार विचारण की मांग करने का हकदार नहीं है।"

19. बाद में, **मध्य प्रदेश राज्य बनाम अमित श्रीवास (2020) 10 एससीसी 496** में, सुप्रीम कोर्ट की एक अन्य तीन न्यायाधीशों की पीठ को अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का फिर से अवसर मिला। उस मामले में, मृत्यु 11.12.2009 को हुई जबकि अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने की योजना दिनांक 18.8.2008 की नीति के तहत बनाई गई थी। इसे 19.8.2010 को ख़ारिज कर दिया गया। यह पाया गया कि नीति में कार्य प्रभार/आकस्मिक निधि वाले दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने का प्रावधान नहीं था। **इंडियन बैंक और अन्य बनाम प्रोमिला और अन्य** (उपरोक्त) के अनुगामी, यह देखा गया कि मृत्यु की तारीख पर लागू योजना दावे के लिए निर्णायक होगी। बाद में, **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम आशीष अवस्थी और संबंधित मामले (2022)2 एससीसी 157** में, उस दृष्टिकोण को सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय द्वारा दोहराया गया।

20. फिर भी बाद में, **सचिव, सरकारी शिक्षा विभाग (प्राथमिक) और अन्य बनाम भीमेश उर्फ भीमप्पा 2021 एससीसी ऑनलाइन 1264** में, सुप्रीम कोर्ट की दो जजों की बेंच ने सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के संपूर्ण दायरे पर विचार करने का फैसला किया और उसके बाद, **एन.सी. संतोष बनाम कर्नाटक राज्य** (उपरोक्त) में अपने पूर्व के, तीन जजों की बेंच के निर्णय, और अन्य मौजूदा कानून का केवल यह अर्थ निकाला कि अनुकंपा नियुक्ति रोजगार में समानता के नियम का अपवाद बनी रहेगी और जहां भी, या तो असंशोधित योजना या किसी संशोधित कानून के तहत, अनुकम्पा नियुक्ति प्रदान किये जाने के अधिकार को छीनकर समानता बहाल करने की मांग की गई हो, न्यायालय समानता के पक्ष में और बनाये गए अपवाद के विरुद्ध कानून लागू करेंगे, चाहे कर्मचारी की मृत्यु से पहले या बाद में। रिपोर्ट का पैराग्राफ-17 इस प्रकार है:

"17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यदि हम, कर्मचारी की मृत्यु के बाद प्रभावी होने वाली नई या संशोधित योजना की प्रयोज्यता, की व्याख्या करने में यह न्यायालय जिस तरीके से आगे बढ़ा है, का आलोचनात्मक विश्लेषण करें, तो हम एक दिलचस्प विशेषता देख सकते हैं। ऐसे मामलों में जहां मौजूदा योजना के तहत लाभ छीन लिया गया था या उसके स्थान पर कमतर लाभ दिया गया था, इस न्यायालय ने नई योजना पर अमल करने का निर्देश दिया। लेकिन ऐसे मामलों में जहां किसी मौजूदा योजना के तहत लाभ, कर्मचारी की मृत्यु के बाद, एक संशोधित योजना द्वारा बढ़ा दिए गए थे, इस न्यायालय ने केवल वही योजना लागू की जो कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पर प्रभावी थी। यह मूल रूप से इस तथ्य के कारण है कि अनुकंपा नियुक्ति को सदैव भर्ती की सामान्य प्रक्रिया का अपवाद माना जाता था और कदाचित इसे व्यक्ति के प्रति कमतर संवेदना और विधि शासन के लिए अधिक चिंता रखते हुए, हीन दृष्टि से देखा जाता था।"

21. एक बार जब सर्वोच्च न्यायालय, चाहे न्यायालय के दो न्यायाधीशों या तीन न्यायाधीशों की पीठ के माध्यम से बोलकर, स्वयं द्वारा निर्धारित कानून को स्पष्ट कर देता है, तो यह उच्च न्यायालय को बहुत कम या फिर बिल्कुल भी गुंजाइश नहीं छोड़ता कि वह स्वयं तर्क द्वारा सही कानून का अन्वेषण करे। उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सही/वास्तविक कानून के बारे में उच्च न्यायालय जो भी तर्क व्यक्त कर सकता है, वह अकादमिक ही रहेगा क्योंकि वह, संविधान की योजना के अनुसार, **अजय हसिया बनाम खौइद मुजीब सेहरावर्दी (1981) 1 एससीसी 722** और **आरके गर्ग बनाम भारत संघ और अन्य (1981) 4 एससीसी 675** में सुप्रीम कोर्ट की बड़ी बेंच को संदर्भित रहने के दौरान, लागू होने वाले कानून के बारे में उच्चतम न्यायालय की राय के साथ टकराव नहीं करेगा। यह **भीमेश उर्फ भीमप्पा (उपरोक्त)** में उच्चतम न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ का प्रभाव है।

22. हाल ही में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ को **उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य बनाम हिमांशु यादव (07.7.2023 को निर्णीत विशेष अपील संख्या 126/2023)** में इसी तरह की दुविधा का सामना करना पड़ा, तब पीठ ने **सचिव, सरकारी शिक्षा विभाग (प्राथमिक) और अन्य बनाम भीमेश उर्फ भीमप्पा** (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के आदेश का पालन किया। उक्त निर्णय का पैराग्राफ-43 इस प्रकार है:

*"43. **एनसी संतोष** (उपरोक्त) में निर्धारित सिद्धांतों और **भीमेश उर्फ भीमप्पा** (उपरोक्त) में की गई चर्चा, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि अनुकंपा नियुक्ति योजना में मौजूदा लाभ, यदि संशोधित योजना द्वारा काम कर दिए गए या छीन लिए गए हैं तो योजना में संशोधन के बाद किसी भी लंबित आवेदन पर इसे लागू नहीं किया जा सकता। हालाँकि, यदि संशोधित योजना के तहत लाभ, कर्मचारी की मृत्यु की तारीख या*

आवेदन किये जाने की तारीख पर प्रचलित मौजूदा योजना, से अधिक है, तो ऐसे लाभ मृत कर्मचारी के आश्रित को नहीं प्रदान किये जा सकते हैं, क्योंकि अनुकंपा नियुक्ति की योजना परिप्रेक्ष्य तरीके से लागू की जाती है और कोई भूतलक्षी प्रभाव, किसी मृतक आश्रित के लंबित दावे पर भी विचार के उद्देश्य के लिए, नहीं दिया जा सकता।"

23. हम यह भी जानते हैं कि **भारतीय स्टेट बैंक बनाम शिव शंकर तिवारी** मामले में सुप्रीम कोर्ट की बड़ी बेंच का संदर्भ अभी भी उस न्यायालय के समक्ष लंबित है। हालाँकि, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किये गए कानून के बारे में ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत, दिनांक 08.02.2012 के आदेश के द्वारा उस संदर्भ के घटित होने के बाद से, हमें नहीं लगता कि इस बीच, अनुकंपा नियुक्ति के मामलों में लागू होने वाले कानून के सम्बन्ध में कोई संदेह है। इस कारण से भी, चूँकि श्री सुरेंद्र कुमार अग्रवाल की मृत्यु की तिथि, 06.9.2014 को, अनुकंपा नियुक्ति प्रदान किये जाने की कोई योजना अस्तित्व में नहीं थी, आवेदक द्वारा किया गया दावा विफल हो जाएगा।

24. विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश निरस्त किया जाता है। फलस्वरूप,अपील **स्वीकार** की जाती है।

25. चूंकि कोई अन्य विवाद नहीं बचा है, इसलिए **रिट याचिका** इस अवलोकन के साथ **निस्तारित की जाती है** कि अपीलार्थी-विपक्षी आज से 30 दिनों के भीतर विपक्षी - आवेदक को अनुग्रह भुगतान की राशि का भुगतान करेगा।

(2023) 8 ILRA 233

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 589 वर्ष 2018

अन्य संबंधित मामलों के साथ

खुशनुदा परवीन ...अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता:

वीरेन्द्र सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, मीनाक्षी परिहार सिंह, प्रशांत कुमार सिंह, राज कुमार सिंह सूर्यवंशी

नियुक्ति-अनुसूचित जाति श्रेणी के अंतर्गत दावा-अनुसूचित जाति के पुरुष से विवाह-क्या अनुसूचित जाति की प्रस्थिति प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है-अभिनिर्धारित हुआ-नहीं

प्रवक्ता (उर्दू) के पद पर अपीलार्थी की नियुक्ति को अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र के आधार पर प्राप्त होने के कारण चुनौती दी गई है। मूल रूप से सामान्य वर्ग से संबंधित अपीलार्थी ने अनुसूचित जाति के पुरुष से विवाह करके

अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त किया। अभिनिर्धारित किया गया कि विवाह द्वारा आरक्षित वर्ग में इस प्रकार की स्वैच्छिक गतिशीलता कानून के अंतर्गत स्वीकार्य नहीं है। एक बार नियुक्ति को प्रारंभ से ही शून्य घोषित कर दिए जाने पर, वरिष्ठता या परिणामी अनुतोष का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अपीलार्थी केवल अपने विवाह के आधार पर अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकती। अनुसूचित जाति कोटे के अंतर्गत प्रवक्ता के रूप में उसकी नियुक्ति दुर्व्यपदेशन के माध्यम से प्राप्त होने के कारण शून्य है। परिणामस्वरूप, वरिष्ठता और तदर्थ प्रधानाचार्य के पद पर उसका दावा उचित रूप से अस्वीकार किया गया।

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. वलसम्मा पॉल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय, (1996) 3 एससीसी 545

2. शोभा ह्यमावती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी, (2005) 2 एससीसी 244

3. एन.ई. होरो बनाम जहां आरा जयपाल सिंह, एआईआर 1972 एससी 1840

4. डॉ. आशा सक्सेना बनाम श्रीमती एस.के. चौधरी, (1991) 17 एएलआर 267

5. एम.ए. मूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य, (2003) 7 एससीसी 517

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

<u>देरी की माफी के लिए आवेदन</u>:

(1) अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित सुश्री पुष्पिला बिष्ट, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र), राज्य/प्रतिपक्षी संख्या-1, 2, 3 और 5 का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी नाग, प्रतिपक्षी संख्या-4/उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री आर.के सिंह सूर्यवंशी, प्रतिपक्षी संख्या-6/प्रबंधन समिति का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार सिंह, श्रीमती मीनाक्षी परिहार, प्रतिपक्षी संख्या-7/रिट याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सुना।

(2) देरी की माफी मांगने वाले आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में किए गए कथनों को देखने के बाद और उत्तरदाताओं द्वारा किसी भी आपत्ति के अभाव में, यह न्यायालय संतुष्ट है कि देरी को पर्याप्त रूप से समझाया गया है।

(3) उपरोक्त अपीलों में दायर विलंब के लिए क्षमा के लिए आवेदन, तदनुसार, अनुमति दी जाती है और उपरोक्त विशेष अपील दायर करने में विलंब को एतद्द्वारा क्षमा किया जाता है।

(अपील पर आदेश)

A. <u>प्रस्तावना</u>

(4)(i) 2016 की रिट याचिका संख्या-23409 (एस/एस): राम उजागर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश

राज्य और अन्य, (ii) 2014 की रिट याचिका संख्या-13 (एस/एस): राम उजागर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (ii) 2014 की रिट याचिका संख्या-13 (एस/एस): राम उजागर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (iii) 2014 की रिट याचिका संख्या-7415(एस/एस): राम उजागर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (iv) 2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस): श्रीमती खुशनुदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य और (v) 2013 की रिट याचिका संख्या-3969 (एस/एस): श्रीमती खुशनुदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, अपीलकर्ता, श्रीमती खुशनुदा प्रवीण द्वारा प्रश्न में कहा जाता है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के तहत उपरोक्त शीर्षक वाले नियम भी लागू होंगे।

B. **<u>तथ्य</u>**

(5) संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सआदत इंटर कॉलेज, नानपारा, जिला बहराइच (इसके बाद 'इंस्टीट्यूशन' के रूप में संदर्भित), सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के प्रावधानों के तहत पंजीकृत सोसायटी के तत्वावधान में चलाया जा रहा है। उक्त संस्थान उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा, 1921 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त है और राज्य सरकार से अनुदान सहायता भी प्राप्त कर रहा है। अतः उ0प्र0 हाईस्कूल एवं इंटरमीडिएट महाविद्यालय (शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों को वेतन का भुगतान) अधिनियम, 1971 के प्रावधान एवं उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के प्रावधान एवं उसके अधीन बनाए गए नियम भी उक्त संस्था पर लागू होते हैं।

(6) अपीलार्थी श्रीमती खुशनूदा परवीन का चयन उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड द्वारा सीधी भर्ती के माध्यम से किया गया था और संस्थान में 07.06.1996 को व्याख्याता (उर्दू) के पद पर नियुक्त किया गया था। उनका चयन उनके द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र के आधार पर सुरक्षित कोटे यानी अनुसूचित जाति के तहत किया गया था।

(7) श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) को प्रारंभ में वर्ष 1981 में तदर्थ आधार पर सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर संस्थान में नियुक्त किया गया था, हालांकि, उनकी सेवाओं को 02.08.1992 के आदेश के तहत संस्थान में 06.04.1991 से नियमित किया गया था।

(8) श्री बिस्मिल्लाह खान, जो संस्थान में गणित के व्याख्याता थे, अधिवषता की आयु प्राप्त करने पर 30-06-1991 को सेवानिवृत्त हुए और इस प्रकार दिनांक 02-08-1992 के संकल्प द्वारा प्रबंधन समिति ने 50% पदोन्नति कोटा के अंतर्गत तदर्थ आधार पर संस्थान में गणित में लेक्चरर के रिक्त पद पर श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) को पदोन्नति प्रदान करने का संकल्प लिया। जिला विद्यालय निरीक्षक (इसके बाद 'डी.आई. ओ.एस.' के रूप में संदर्भित) ने दिनांक 15.12.1992 के आदेश के माध्यम से श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) को तदर्थ पदोन्नति देने के लिए प्रबंधन समिति

के उपरोक्त संकल्प को मंजूरी दे दी थी। इसके बाद, दिनांक 20.04.1998 के पत्र के माध्यम से, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (इसके बाद 'बोर्ड' के रूप में संदर्भित) ने संस्थान में गणित में व्याख्याता के पद पर श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) की नियमित पदोन्नति के संबंध में डी.आई.ओ.एस. को बोर्ड के निर्णय से अवगत कराया।

(9) जाहिरा तौर पर, अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-7 के बीच संस्थान में वरिष्ठता के संबंध में एक विवाद उत्पन्न हुआ क्योंकि जाहिर तौर पर उक्त वरिष्ठता उक्त संस्थान में प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्ति का कारण बनेगी। अपीलकर्ता ने वरिष्ठता का दावा करते हुए दिनांक 13.09.2010 के एक अभ्यावेदन को दायर की दी और सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर श्री राम उजागर मिश्रा को वापस करके प्रधानाचार्य के पद पर स्थानापन्न प्रभार सौंपने की मांग की। क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक, देवीपाटन मंडल, फैजाबाद ने दिनांक 02.06.2011 के आदेश के तहत अपीलकर्ता के उपरोक्त अभ्यावेदन पर विचार किया था और दिनांक 02.06.2011 के आदेश (इसके बाद 'प्रथम आदेश' के रूप में संदर्भित) के तहत इसे खारिज कर दिया था।

(10) तत्पश्चात्, श्री श्याम दास मौर्य, जो संस्था के प्रधानाचार्य थे, दिनांक 30-06-2011 को अधिवषता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत हुए और उनकी सेवानिवृत्ति से पूर्व, प्रबंधन समिति ने दिनांक 29-06-2011 को एक संकल्प पारित किया जिसमें श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) को संस्था के तदर्थ/स्थानापन्न प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त करने का संकल्प लिया गया। उक्त संकल्प दिनांक 29.06.2011 (इसके बाद 'द्वितीय आदेश' के रूप में संदर्भित) को श्री राम उजागर मिश्रा के प्रधानाचार्य के रूप में हस्ताक्षर के सत्यापन और वेतन के भुगतान के लिए डी.आई.ओ.एस. को भेजा गया था।

(11) इस बीच, अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष 2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस) को दायर की दी, जिसमें दिनांक 02.06.2011 ('प्रथम आदेश') के आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसके द्वारा वरिष्ठता का दावा करने वाले उसके अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया था। एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका पर विचार करते हुए क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक, देवीपाटन मंडल, फैजाबाद द्वारा पारित दिनांक 02-06-2011 के आदेश को न्यायालय के अगले आदेश दिनांक 14-07-2011 तक आस्थगित रखा। इसके बाद, दिनांक 14.07.2011 के इस अंतरिम आदेश के आधार पर, अपीलकर्ता ने तदर्थ/स्थानापन्न आधार पर प्रधानाचार्य के पद पर शामिल होने का दावा किया था, लेकिन इसकी अनुमति नहीं दी गई थी और इस तरह, उसने 2011 की अवमानना याचिका संख्या-3144 को दायर की दी, जिसे अपीलकर्ता को अपनी रिट याचिका में इस मुद्दे को उठाने की स्वतंत्रता के साथ दिनांक 14.02.2013 के आदेश के तहत निपटाया गया था।

(12) पूर्वोक्त स्वतंत्रता के अनुसरण में, अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट

याचिका संख्या- (एस/एस) 41 वर्ष 2013 वाली एक और रिट याचिका दायर की। एकल न्यायाधीश ने दिनांक 27.05.2013 के आदेश के तहत अपीलकर्ता के अभ्यावेदन को निपटाने के निर्देश के साथ उक्त रिट याचिका का अंतिम रूप से निपटारा किया।

(13) दिनांक 27.05.2013 के पूर्वोक्त आदेश के अनुपालन में, डी.आई.ओ.एस. ने अपीलकर्ता द्वारा स्थापित दावे पर विचार किया और दिनांक 28.06.2013 के आदेश (इसके बाद 'तृतीय आदेश' के रूप में संदर्भित) के माध्यम से इसे खारिज कर दिया, जिसमें कहा गया था कि चूंकि वरिष्ठता से संबंधित मामला माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए इस स्तर पर किसी भी कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है। दिनांक 28.06.2013 के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने 2013 की रिट याचिका संख्या-3969 (एस/एस) को दायर की दी।

(14) ऐसा लगता है कि उपरोक्त दो रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, अर्थात, 'प्रथम आदेश' के खिलाफ 2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस) और 2013 की रिट याचिका संख्या-3969, 'तीसरे आदेश' के खिलाफ अपीलकर्ता द्वारा दायर की की गई, शिक्षा के संयुक्त निदेशक, देवीपाटन मंडल, फैजाबाद, 2013 की रिट याचिका संख्या-41 (एस/एस) में पारित आदेश दिनांक 27.05.2013 के अनुपालन में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दिनांक 01.11.2012 के अभ्यावेदन पर भी विचार किया था और दिनांक 17.12.2013 (इसके बाद 'चौथे आदेश' के रूप में संदर्भित) के आदेश के तहत यह निर्णय लिया था कि अपीलकर्ता प्रतिपक्षी संख्या-7 (राम उजागर मिश्रा) से 07.06.1996 से वरिष्ठ था और इस तरह, अपीलकर्ता को संस्थान के तदर्थ/स्थानापन्न प्रधानाचार्य के पद पर पदोन्नति देना उचित होगा। दिनांक 17.12.2013 के इस आदेश ('चौथा आदेश') से व्यथित होकर प्रतिपक्षी संख्या-7 (राम उजागर मिश्रा) ने 2014 की रिट याचिका संख्या-13 (एस/एस) दायर की।

(15) उपरोक्त रिट याचिकाओं यानी 2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस), 2011 की 3969 (एस/एस) और 2014 की रिट याचिका संख्या-13 (एस/एस) के लंबित रहने के दौरान, प्रतिपक्षी संख्या-7 (राम उजागर मिश्रा) ने एक और रिट याचिका को भी दायर की दी, जिसमें 2014 की रिट याचिका संख्या-7415(एस/एस) थी, जिसमें दिनांक 05.04.1996 और 30.05.1996(एक साथ 'पांचवां आदेश' कहा जाता है) के आदेशों की वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसके द्वारा अपीलार्थी का चयन कर उर्दू में व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया।

(16) इसके बाद शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) ने दिनांक 17.08.2016 को डी.आई.ओ.एस. द्वारा भेजे गए पत्र के आधार पर दिनांक 19.09.2016(इसके बाद 'छठा आदेश' कहा गया है) का आदेश पारित किया था, जिसके द्वारा डी.आई.ओ.एस. को निर्देश दिया गया था कि वे उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 18(2) के

तहत शक्ति का प्रयोग करके संस्था के तदर्थ/स्थानापन्न प्रधानाचार्य के पद पर अपीलकर्ता के शामिल होने को सुनिश्चित करें। शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) के दिनांक 19.09.2016 के पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में, डी.आई.ओ.एस. ने दिनांक 20.09.2016 (इसके बाद 'सातवें आदेश' के रूप में संदर्भित) का आदेश पारित किया था, जिसके तहत उन्होंने अपीलकर्ता को तदर्थ/कार्यवाहक प्रधानाचार्य का प्रभार सौंपने का निर्देश दिया था।

(17) दिनांक 19.09.2016 और 20.09.2016 के पूर्वोक्त आदेशों से व्यथित, प्रतिपक्षी संख्या-7 (श्री राम उजागर मिश्रा) ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-23409 (एस/एस) 2016 को दायर की दी। एकल न्यायाधीश ने दिनांक 28.12.2016 के आदेश के तहत उक्त रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 19.09.2016 और 20.09.2016 के पूर्वोक्त आदेशों के संचालन पर रोक लगा दी।

(18) अंततः, एकल न्यायाधीश ने सभी पांच रिट याचिकाओं अर्थात 2016 की रिट याचिका संख्या-23409 (एस/एस), 13 वर्ष 2014 (एस/एस), 7415(एस/एस) वर्ष 2014, 4016(एस/एस) वर्ष 2014 और 3969 (एस/एस) वर्ष 2013 को एक साथ मिला दिया और एक साथ सुनवाई की और एक संयुक्त निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2018 (इसके बाद 'आक्षेपित आदेश' के रूप में संदर्भित) के तहत इसे निपटाया गया। एकल न्यायाधीश ने उपर्युक्त रिट याचिकाओं पर निम्नानुसार निर्णय दिया है -

क्रमांक स	रिट याचिका संख्या	निर्णय	विशेष अपील में चुनौती
1	23409 वर्ष 2016(एस/एस) : *राम उजागर मिश्रा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य*	रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। दिनांक 19.09.2016 और 20.09.2016 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है।	2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-590: *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दूसरों*
2	13 वर्ष 2014 की रिट याचिका (एस/एस) : *राम उजागर मिश्रा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य*	रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। दिनांक 17.12.2013 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है	2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-592: *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दूसरों।*
3	2014 की रिट याचिका संख्या-7415(एस/एस): राम उजागर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	रिट याचिका की अनुमति दी जाती है और दिनांक 05.04.1996 और	2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-

	और अन्य	30.05.1996 के आक्षेपित आदेश	589: *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*
4	2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस): *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*	रिट याचिका खारिज की जाती है।	2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-591: *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।*
5	2013 की रिट याचिका संख्या-3969 (एस/एस): श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	रिट याचिका खारिज की जाती है।	2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-593: *श्रीमती खुसनूदा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*

(19) एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश के तहत पूर्वोक्त रिट याचिकाओं पर निर्णय करते समय प्रतिवादियों को यह भी निर्देश दिया है कि वे श्री राम उजागर मिश्रा (प्रतिपक्षी संख्या-7) को संस्था के तदर्थ प्रधानाचार्य के पद पर तब तक बने रहने की अनुमति दें जब तक कि नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार आकर कार्यभार ग्रहण न कर लें और तदनुसार उन्हें मासिक मासिक वेतन का भुगतान करें। जहां तक वेतन की बकाया, यदि देय पाई जाती है, का आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से तीन महीने के भीतर भुगतान किया जाए।

(20) अपीलकर्ता ने व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष उपरोक्त विशेष अपीलों को दायर किया है।

(21) चूंकि उपर्युक्त विशेष अपीलें एक सामान्य तथ्यात्मक मैट्रिक्स और आक्षेपित निर्णय से उत्पन्न होती हैं, इसलिए हम इस सामान्य निर्णय के तहत उनका निपटान कर रहे हैं।

C. <u>प्रस्तुतियाँ</u>

(22) अपीलकर्ता की ओर से पेश सुश्री पुष्पिला बिष्ट, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने प्रस्तुत किया है कि 19.07.2018 के आक्षेपित सामान्य निर्णय/आदेश के माध्यम से, एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-7 द्वारा अपनी संबंधित रिट याचिकाओं में उठाए गए विभिन्न मुद्दों का फैसला किया था। अपीलकर्ता द्वारा दायर 2011 की रिट याचिका संख्या-4016(एस/एस) में, उसने दिनांक

02.06.2011 ('प्रथम आदेश') के आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत वरिष्ठता का दावा करने वाले उसके अभ्यावेदन और सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के पद पर श्री राम उजागर मिश्रा को वापस करके प्रधानाचार्य के पद पर प्रभार सौंपने की प्रार्थना को खारिज कर दिया गया था और पहले निर्धारित वरिष्ठता को वैध माना गया था; अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट वर्ष 2013 याचिका संख्या-3969 (एस/एस) में, उसने 28.06.2013 ('तीसरा आदेश') के डी.आई.ओ.एस. के आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा वरिष्ठता का दावा करने वाले उसके प्रतिनिधित्व को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चूंकि वरिष्ठता से संबंधित मामला माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए इस स्तर पर किसी भी कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है; प्रतिपक्षी संख्या-7 (राम उजागर मिश्रा) द्वारा दायर 2014 की रिट याचिका 13 (एस/एस) में, उन्होंने क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के 17.12.2013 ('चौथा आदेश') के आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा वरिष्ठता फिर से निर्धारित की गई थी; प्रतिपक्षी संख्या-7 द्वारा दायर 2014 की रिट याचिका संख्या-7415(एस /एस) में, उन्होंने दिनांक 05.04.1996 और 30.05.1996 ('पांचवां आदेश') के आदेशों की वैधता को चुनौती दी, जिसके तहत अपीलकर्ता को उर्दू में व्याख्याता के रूप में चुना और नियुक्त किया गया; और प्रतिपक्षी संख्या-7 द्वारा दायर 2016 की रिट याचिका संख्या-23409 में, उन्होंने दिनांक 19.09.2016('छठा आदेश') के आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा डी.आई.ओ.एस. को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 18(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करके संस्थान के तदर्थ/कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद पर अपीलकर्ता के शामिल होने को सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था। साथ ही डी.आई.ओ. द्वारा पारित परिणामी आदेश दिनांक 20.09.2016('सातवां आदेश'), जिसके द्वारा उन्होंने अपीलकर्ता को तदर्थ प्रधानाचार्य का प्रभार सौंपने का निर्देश दिया था। इस प्रकार, उनका निवेदन यह है कि सभी रिट याचिकाओं में, कमोबेश अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-7 के बीच का मुद्दा प्रतिपक्षी संख्या-7 की तदर्थ/कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति और अपीलकर्ता की नियुक्ति और उनकी वरिष्ठता के संबंध में था।

(23) जहां तक अपीलकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-7 के बीच वरिष्ठता के मुद्दे का संबंध है, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा बोर्ड द्वारा 07.06.1996 को सीधी भर्ती के माध्यम से व्याख्याता (उर्दू) के पद पर नियुक्त किया गया था, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-7 को सहायक शिक्षक (एलटी ग्रेड) के रूप में संस्था के प्रबंधक द्वारा 20.10.1981 को अल्पकालिक रिक्ति पर और उसके बाद सहायक के पद पर उसकी सेवाओं पर नियुक्त किया गया था अध्यापक (एल.टी. ग्रेड) को दिनांक 02.08.1992 के आदेश द्वारा दिनांक 06.04.1991 से नियमित किया गया था। इसके बाद, प्रतिपक्षी संख्या-7 को 50% कोटा के तहत 16.12.1992 को लेक्चरर (गणित) के पद पर तदर्थ/अस्थायी पदोन्नति दी गई और लेक्चरर (गणित) के पद पर उनकी सेवाओं को

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड की सिफारिश पर 20.04.1997 को नियमित किया गया। इस प्रकार, मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, अपीलकर्ता प्रतिपक्षी संख्या-7 से वरिष्ठ है और 2018 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-589 में अंतरिम राहत आवेदन के निपटान के लिए आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-1 में निहित संस्था की प्रबंधन समिति द्वारा जारी की गई अंतिम वरिष्ठता सूची दिनांक 05.08.2007 से भी स्पष्ट है, जिसमें अपीलकर्ता का नाम क्रम संख्या-3 पर दिखाया गया था, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-7 का नाम क्रम संख्या-5 पर दिखाया गया था, जिसका अर्थ है अर्थात 05.08.2007 को, संस्था की प्रबंधन समिति ने अपीलकर्ता को प्रतिपक्षी संख्या-7 से वरिष्ठ घोषित किया था। हालांकि, एकल न्यायाधीश ने वरिष्ठता के पुन: निर्धारण के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, मामले के पूर्वोक्त पहलू पर विचार नहीं करने की दृष्टि खो दी है और इस निष्कर्ष को दर्ज करने में गलती की है कि प्रतिपक्षी संख्या-7, 1996 से संस्थान में वरिष्ठ बना हुआ है, जिसे श्रीमती खुशनुदा परवीन (यहां अपीलकर्ता) सहित संस्थान में काम करने वाले शिक्षकों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। इसलिए, डॉ. आशा सक्सेना बनाम श्रीमती एसके चौधरी: (1991) 17 एएलआर 267 के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले का अनुपात, जिस पर रिट याचिकाकर्ता (प्रतिपक्षी संख्या-7 यहां) के अधिवक्ता ने भरोसा किया है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होता है और इस तरह प्रतिपक्षी संख्या-6(अपीलकर्ता) को लगभग 15 साल बीत जाने के बाद रिट याचिकाकर्ता (प्रतिपक्षी संख्या-7) की वरिष्ठता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(24) जहां तक कथित जाली जाति प्रमाण पत्र के आधार पर अपीलकर्ता की नियुक्ति के मुद्दे का संबंध है, अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता, जो जन्म से अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं था, लेकिन जन्म से सामान्य श्रेणी से संबंधित था, ने श्री हरीश चंद्र सुंदरम के साथ शादी की, जो अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित था और इस प्रकार अपीलकर्ता संगत समय पर प्रचलित कानून के आधार पर जाति प्रमाण-पत्र का हकदार था। एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने एन.ई होरो बनाम श्रीमती जहान आरा जयपाल सिंह: ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1840 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि एन.ई होरो (उपरोक्त) के मद्देनजर, अपीलकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित था। इसी आधार पर उप्र माध्यमिक शिक्षा चयन बोर्ड द्वारा दिनांक 07.06.1996 को सीधी भर्ती के माध्यम से संस्थान में व्याख्याता (उर्दू) के रूप में नियुक्ति की गई। इस प्रकार, उसका तर्क यह है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां अपीलकर्ता ने झूठे बयानों के आधार पर या धोखाधड़ी करके, झूठा जाति प्रमाण पत्र मांगा था और उसे दिया गया था। हालांकि, एकल न्यायाधीश ने इस मुद्दे पर निर्णय लेते समय, मामले के पूर्वोक्त पहलू पर विचार नहीं करने की दृष्टि खो दी है और यह घोषित करने में गलती की है कि अपीलकर्ता को धोखाधड़ी करके पद पर नियुक्ति मिली है।

(25) अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने आगे प्रस्तुत किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-7-राम उजागर मिश्रा के पास अपीलकर्ता के खिलाफ रिट याचिका संख्या-7415 वर्ष 2014 (एस/एस) दायर करने का कोई कारण नहीं था, वह भी वर्ष 2014 में यानी अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति से लगभग दस साल पहले। वह प्रस्तुत करती है कि प्रतिपक्षी संख्या-7 संस्थान में व्याख्याता (गणित) के रूप में काम कर रहा है और जाहिर तौर पर वह अपीलकर्ता से जूनियर है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-7 के पास अपीलकर्ता के खिलाफ इस तरह की याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं था। इस आधार पर भी एकल न्यायाधीश द्वारा पारित विवादित निर्णय/आदेश रद्द किया जा सकता है।

(26) प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने एकल न्यायाधीश के निर्णय/आदेश का समर्थन किया और प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता सामान्य श्रेणी का था और जन्म से अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं था। इसलिए, वह इस आशय का जाति प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं कर सकती थी कि वह अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित है। वे प्रस्तुत करते हैं कि अपीलकर्ता को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा बोर्ड द्वारा अनुसूचित जाति श्रेणी के तहत व्याख्याता (उर्दू) के पद पर नियुक्त किया गया था, जबकि वह वास्तव में सामान्य श्रेणी से संबंधित है। अपीलार्थी की सर्विस बुक में भी अपीलार्थी की जाति 'चमार' दिखाई गई थी, जो अनुसूचित जाति की श्रेणी में आती है। उन्होंने बताया कि अपीलार्थी के चयन के समय उप्र0 माध्यमिक शिक्षा चयन बोर्ड ने सामान्य, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की तरह श्रेणीवार मेरिट सूची तैयार की जिसमें अपीलार्थी का नाम अनुसूचित जाति की श्रेणी में आता है और अपीलार्थी ने केवल 19 अंक प्राप्त कर वर्ग-1 में व्याख्याता (उर्दू) के पद पर चयनित हो गया। जबकि सामान्य श्रेणी की अंतिम उम्मीदवार, अर्थात् ज़ीनत ज़हरा रिज़वी ने 58 अंक प्राप्त किए, लेकिन उनका चयन नहीं किया जा सका, जिसका अर्थ है कि अपीलकर्ता को अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र के तहत चुना गया था, न कि सामान्य श्रेणी में।

(27) प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि चूंकि अपीलकर्ता ने उसे अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित दिखाकर व्याख्याता (उर्दू) की नियुक्ति प्राप्त की, इस तथ्य को जानते हुए भी कि वह जन्म से सामान्य श्रेणी से संबंधित है, इसलिए, एकल न्यायाधीश ने सही कहा है कि अपीलकर्ता द्वारा धोखाधड़ी करके नियुक्ति प्राप्त की गई थी। इस प्रकार, इस संबंध में एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज निष्कर्ष न्यायसंगत और उचित है और आक्षेपित आदेश में अवैधता की कोई अवैधता नहीं है।

(28) प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि चूंकि अपीलकर्ता की नियुक्ति स्वयं शून्य थी, इसलिए अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए बिन्दु वरिष्ठता या अन्य सेवा लाभ के मुद्दे पर इस स्तर पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है। इसके अलावा, भारत के संविधान के

अनुच्छेद 141 के तहत भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा हमेशा पूर्वव्यापी होती है जब तक कि विशेष रूप से भावी नहीं बनाया जाता है और चूंकि बाद के फैसले में इस आशय का कुछ भी संकेत नहीं दिया गया है, इसलिए यह आवश्यक रूप से पालन करेगा कि अपीलकर्ता खारिज किए गए निर्णय के आधार पर रोजगार में बने रहने के लिए किसी भी लाभ का दावा नहीं कर सकता है।

D. <u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>

(29) पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सुनने और इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड को देखने के बाद, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने विभिन्न आधारों पर एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश पर हमला किया है, हालांकि, हम पहले अनुसूचित जाति समुदाय प्रमाण पत्र के आधार पर उसके द्वारा प्राप्त व्याख्याता (उर्दू) के पद पर अपीलकर्ता की नियुक्ति के मुद्दे से निपटना उचित समझते हैं। यह मुद्दा महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यदि अपीलकर्ता अपनी नियुक्ति के पुल को पार करने में सक्षम नहीं है, तो वरिष्ठता के परिणामी लाभ, स्पष्ट रूप से उसके पक्ष में अर्जित नहीं होंगे।

(30) स्पष्ट रूप से, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अनुसूचित जाति समुदाय प्रमाण पत्र प्राप्त करने में अपीलकर्ता की ओर से कोई गलत बयानी नहीं की गई है, क्योंकि उसने विशिष्ट तथ्य का खुलासा करने के बाद उक्त प्रमाण पत्र प्राप्त किया है कि उसने केवल श्री हरीश चंद्र सुंदरम के साथ अपने विवाह के आधार पर अनुसूचित जाति के दर्जे का दावा किया है, सरकार ने चमार समुदाय से संबंध रखने वाले व्यक्ति को अनुसूचित जाति समुदाय के रूप में अधिसूचित किया है।

(31) इस दावे को पुष्ट करने के लिए कि यद्यपि अपीलकर्ता जन्म से अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं थी, वह अनुसूचित जाति के व्यक्ति के साथ विवाह पर अनुसूचित जाति समुदाय के रूप में व्यवहार करने की हकदार थी, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने एन.ई होरो (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

> *'23. हम संविधान के अनुच्छेद 330 का भी उल्लेख कर सकते हैं जिसके अनुसार अनुसूचित जनजातियों के लिए सुरक्षित स्थान लोक सभा में, अन्य बातों के साथ-साथ, इन जनजातियों के सदस्यों के लिए सुरक्षित किए जाने हैं। अधिनियम की धारा 33(2) के तहत सुरक्षित सीट के लिए एक उम्मीदवार को एक विशेष जाति या जनजाति को निर्दिष्ट करते हुए एक घोषणा पत्र दाखिल करना होता है, जिसका वह सदस्य है। अनुच्छेद 342(1) राष्ट्रपति को 'जनजातियों या जनजाति समुदायों या जनजातियों या जनजाति*

समुदायों के भागों या उनके भीतर के समूहों को निर्दिष्ट करने की शक्ति देता है, जिन्हें संविधान के प्रयोजनों के लिए, राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में, जैसा भी मामला हो, अनुसूचित जनजाति माना जाएगा। संविधान (अनुसूचित जनजातियां) आदेश, 1952 की अनुसूची के भाग 1 से 12 में जनजातियों या जनजातीय समुदायों या जनजातियों या जनजातीय समुदायों के कुछ हिस्सों या समूहों को निर्दिष्ट किया गया है जिन्हें अनुसूचित जनजाति माना जाना है। मुंडा ऐसी निर्दिष्ट जनजातियों या आदिवासी समुदायों में से एक है। यह अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि 'आदिवासी समुदाय' शब्द का अर्थ 'जनजाति' अभिव्यक्ति की तुलना में व्यापक है। एक व्यक्ति, जिसे किसी जनजाति के सख्त रिवाज के अनुसार उस जनजाति का सदस्य नहीं माना जा सकता है, उसे उस जनजाति के सदस्य के रूप में माना जा सकता है। जहां एक गैर-मुंडा महिला का विवाह मुंडा पुरुष से किया जाता है और विवाह को उस जनजाति की परहा पंचायत द्वारा अनुमोदित और स्वीकृत किया जाता है और विवाह वैध होता है, तो वह इस धारणा पर कि एंडोगैमी का नियम प्रचलित है, जनजाति में पैदा नहीं होने के रूप में सख्त अर्थों में मुंडा जनजाति का सदस्य नहीं बन सकता है। तथापि, उसे बडे समूह अर्थात् जनजातीय समुदाय से बाहर नहीं रखा जा सकता। उच्च न्यायालय ने यह विचार किया है कि अनुच्छेद 342 में 'जनजाति' शब्द के अलावा 'आदिवासी समुदाय' शब्द का उपयोग दर्शाता है कि इन शब्दों को व्यापक महत्व और अर्थ दिया जाना चाहिए और भले ही प्रतिपक्षी जन्म के आधार पर मुंडा जनजाति का सदस्य न हो, उसने सभी औपचारिकताओं के उचित पालन के बाद और बड़ों की मंजूरी प्राप्त करने के बाद एक मुंडा से शादी की है गोत्रों में से आदिवासी समुदाय से संबंधित होगा, जिसमें उसका पति, पति के निवास स्थान लेने वाली पत्नी के विलेख पर है। यहां तक कि अधिवास के सिद्धांत को लागू किए बिना, स्वर्गीय श्री जयपाल सिंह, जो मुंडा थे, के साथ प्रतिपक्षी के विवाह को मुंडा जनजाति की पारा पंचायत द्वारा अनुमोदित और स्वीकृत किया गया था, यह कहा जा सकता है कि वह मुंडा आदिवासी समुदाय की सदस्य बन गई। हमें इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय के तर्क में कोई कमी नहीं दिखाई गई है। जब किसी व्यक्ति को समय के साथ समुदाय में आत्मसात कर लिया जाता है, तो यह समझना कुछ मुश्किल

होता है कि उस व्यक्ति को उन अधिकारों और विशेषाधिकारों से कैसे वंचित किया जा सकता है जो संवैधानिक प्रावधानों द्वारा आदिवासी होने के बावजूद उस समुदाय को दिए जा सकते हैं।

(32) हालांकि, अपीलकर्ता की ओर से पेश हुए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने इस बात को याद किया कि हालांकि अपीलकर्ता को 07.06.1996 को नियुक्त किया गया था, लेकिन निर्णय, जिसने क्षेत्र को धारण किया था, वास्तव में एन.ई होरो (उपरोक्त) नहीं था, बल्कि बाद में 04.01.1996 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक और निर्णय था। तिथियों का बहुत महत्व है क्योंकि यह तर्क कि एन.ई होरो (उपरोक्त) का निर्णय लागू होगा, अपने स्वयं के वजन पर सपाट हो जाता है क्योंकि जब तक अपीलकर्ता की नियुक्ति की जा रही थी, तब तक वलसम्मा पॉल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय और अन्य में निर्णय: [(1996) 3 एस.सी.सी. 545] क्षेत्र को नियंत्रित कर रहा था। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एन.ई होरा के मामले में उपरोक्त निर्णय और अन्य बाद के निर्णयों पर विचार करने के बाद, वलसम्मा (उपरोक्त) में निम्नानुसार अवधारित किया था: -

'34. ... ... जब एक सदस्य को दलितों, जनजातियों और ओबीसी में प्रत्यारोपित किया जाता है। उसे भी आवश्यक रूप से समान विकलांगता से गुजरना होगा, और उम्मीदवार को आरक्षण की सुविधा का लाभ उठाने का हकदार बनाने के लिए समान विकलांगता, नुकसान, अपमान या पीड़ा के अधीन होना चाहिए। एक उम्मीदवार जिसने अगड़ी जाति में पैदा होने के कारण जीवन में लाभप्रद शुरुआत की थी और लाभप्रद जीवन जीता था, लेकिन गोद लेने या विवाह या धर्मांतरण द्वारा पिछड़ी जाति में प्रत्यारोपित किया जाता है, वह अनुच्छेद 15(4) या 16(4) के तहत आरक्षण के लाभ के लिए, जैसा भी मामला हो, पात्र नहीं हो जाता है। इन श्रेणियों में स्वैच्छिक गतिशीलता द्वारा अनुसूचित जाति आदि की स्थिति का अधिग्रहण संविधान के साथ धोखाधड़ी करेगा, और संविधान के अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत सौम्य संवैधानिक नीति को विफल करेगा।

(33) अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) का प्रस्तुतीकरण यह है कि अपीलकर्ता का अनुसूचित जाति समुदाय प्रमाण पत्र एन.ई होरा के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले के आधार पर जारी किया गया था, जो तब क्षेत्र धारण कर रहा था और अपीलकर्ता को 07.06.1996 को रोजगार सुरक्षित करने में सक्षम बनाया था, सही नहीं है और इस तरह एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) का तर्क कि अपीलकर्ता की नियुक्ति नहीं होगी, .. वर्ष 1996 के उच्चतम न्यायालय के बाद के निर्णय के आधार पर उसे

अनुसूचित जाति समुदाय के दर्जे से वंचित करना भी सही नहीं है।

(34) यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि शोभा हिमावती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी और अन्य: (2005) 2 एस.सी.सी. 244 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो डिवीजन बेंचों के निर्णयों में विरोधाभासों को ध्यान में रखते हुए एन.ई होरा बनाम श्रीमती जहान आरा जयपाल सिंह (उपरोक्त) और वलसम्मा पॉल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय और अन्य (उपरोक्त), यह मानते हुए कि संवैधानिक आरक्षण का उद्देश्य वास्तव में वंचितों को लाभ पहुंचाना है, न कि उन लोगों को जो विवाह के माध्यम से जाति में आते हैं, और उस सीमा तक, एन.ई होरो के मामले में निर्णय, जो उस दृष्टिकोण के विपरीत है, को सही के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, और स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि एक महिला की विवाह के मद्देनजर पिछड़े वर्ग समुदाय के सदस्य के रूप में मान्यता इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं होगी भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अधीन आरक्षण की पात्रता का प्रावधान इस कारण से किया गया है कि अगड़ी जाति के सदस्य के रूप में उसके जीवन की शुरुआत लाभप्रद रही है और पिछड़े वर्ग के पुरुष के साथ विवाह करने पर वह पिछड़े वर्ग समुदाय को दिए गए आरक्षण की सुविधा की हकदार नहीं होगी। उस बाध्यकारी निर्णय में ऐसा कुछ भी इंगित नहीं किया गया है कि यह केवल प्रचालन में भावी होगा। शोभा हिमावती देवी (उपरोक्त) का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

'फिर जो तथ्य रह गया है वह यह है कि अपीलकर्ता ने अपने पिता मुराहरि राव की जाति को निर्दिष्ट किया, अर्थात् सिस्टु कर्णम समुदाय, ने भागवत समुदाय से संबंधित एक आदिवासी से शादी की थी। इस विवाह के आधार पर, यह तर्क दिया जाता है कि उसे अपने पति के समुदाय में सदस्यता प्राप्त करने के लिए लिया जाना चाहिए और परिणामस्वरूप उस समुदाय के सदस्य के रूप में माना जाना चाहिए। यह उस संदर्भ में है कि होरो (उपरोक्त) में निर्णय पर भरोसा किया गया था। यह भी तर्क दिया जाता है कि होरो (उपरोक्त) में निर्णय एक चुनावी विवाद से संबंधित है और इसके परिणामस्वरूप, उस निर्णय का अनुपात प्रस्तुत मामले को नियंत्रित करना चाहिए। हमने पहले ही संकेत दिया है कि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अप्पला राजू के साथ अपीलकर्ता का विवाह भगथ समुदाय या संबंधित पंचायत के बुजुर्गों द्वारा स्वीकृत या अनुमोदित किया गया था या आदिवासी रूप में था या इस तरह के आदिवासी विवाह में भाग लेने की औपचारिकताओं का पालन किया गया था और जनजाति के बुजुर्गों की मंजूरी प्राप्त करने के बाद विवाह किया गया था। अन्यथा भी, हमें इस स्थिति को स्वीकार करने में कठिनाई होती है कि एक गैर-आदिवासी जो किसी आदिवासी से शादी करता है, वह आदिवासियों के लिए सुरक्षित सीट पर चुनाव लड़ने का

दावा कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 332 विधान सभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण की बात करता है। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को विधायिका में प्रतिनिधित्व देना है, जिन्हें इस तरह के विशेष संरक्षण के योग्य माना जाता है। एक गैर-आदिवासी को शादी की आड़ में ऐसी सीट पर चुनाव लड़ने की अनुमति देना इस तरह के आरक्षण के उद्देश्य को ही पराजित करेगा। वलसम्मा पॉल (श्रीमती) बनाम कोचीन विश्वविद्यालय और अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय का निर्णय, इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है। न तो यह तथ्य कि एक गैर-पिछड़ी महिला ने एक पिछड़े पुरुष से शादी की और न ही यह तथ्य कि उसे उसके बाद समुदाय द्वारा पिछड़े समुदाय के सदस्य के रूप में मान्यता दी गई थी, एक गैर-पिछड़े को संविधान के अनुच्छेद 15(4) या 16(4) के संदर्भ में आरक्षण का दावा करने में सक्षम बनाने के लिए अवधारित किया गया था। भूबुन मोयी बनाम राम किशोर, (1865)10 एमआईए 279, और लुल्लूभोय बप्पूभोय कैसिदास मूलचंद बनाम कैसीबाई, (1879-80)7 आईए 212, ने माना कि शादी पर एक महिला अपने पति के परिवार की सदस्य बन जाती है और इस तरह वह उस जाति की सदस्य बन जाती है जिसमें वह चली गई है। जातिगत कठोरता टूट जाती है और उसके उस परिवार का सदस्य बनने में कोई बाधा नहीं बनेगी जिससे पति संबंधित है और जिससे वह खुद को प्रत्यारोपित करती है। इसके बाद, इस न्यायालय ने देखा कि समुदाय द्वारा मान्यता भी महत्वपूर्ण थी। फिर भी, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया कि एक महिला की विवाह के मद्देनजर पिछड़े समुदाय के सदस्य के रूप में मान्यता संविधान के अनुच्छेद 16(4) के तहत आरक्षण के अधिकार के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं होगी क्योंकि वह अगड़ी जाति के सदस्य के रूप में जीवन में एक लाभप्रद शुरुआत थी और पिछड़े वर्ग के पुरुष के साथ विवाह का अधिकार नहीं होगा उसे पिछड़े समुदाय को दी गई आरक्षण की सुविधा के लिए। उच्च न्यायालय ने यह फैसला संविधान के अनुच्छेद 332 के संदर्भ में चुनाव में सुरक्षित सीट पर लागू किया है। हमें कोई कारण नहीं दिखता कि इस न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत आरक्षण से संबंधित सिद्धांत को लोकसभा में या अनुच्छेद 332 के तहत अनुसूचित जनजाति के लिए सीट के संवैधानिक आरक्षण तक क्यों नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। उक्त आरक्षण भी संवैधानिक आरक्षण है जिसका उद्देश्य वास्तव में वंचितों को लाभ पहुंचाना है न कि उन लोगों को जो विवाह के माध्यम से इस वर्ग में आते हैं। जिस हद तक होरो (उपरोक्त) में निर्णय को

उपरोक्त दृष्टिकोण के विपरीत कहा जा सकता है, इसे सही नहीं माना जा सकता है। अन्यथा भी, आदिवासी रूप में विवाह और समुदाय द्वारा स्वीकृति के संबंध में प्रासंगिक पहलुओं पर साक्ष्य के अभाव में, होरो (उपरोक्त) में निर्णय अपीलकर्ता के बचाव में नहीं आ सकता है। प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करने पर, हमारा विचार है कि चाहे वह अनुच्छेद 15(4) या 16(4) या 330 और 332 के तहत आरक्षण हो, उक्त आरक्षण केवल उन लोगों को लाभान्वित करेगा जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित हैं, न कि उन्हें जो इस मामले में अपीलकर्ता की तरह विवाह द्वारा स्थिति प्राप्त करने का दावा करते हैं। इस प्रकार, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में पूरी तरह से न्यायसंगत था कि अपीलकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 332 के संदर्भ में अनुसूचित जनजाति के लिए सुरक्षित सीट पर चुनाव लड़ने के अधिकार का दावा नहीं कर सकती थी, केवल इसलिए कि उसकी शादी अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति से हुई है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

(35) उपर्युक्त संदर्भ में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय द्वारा कानून की घोषणा के पूर्वव्यापी प्रभाव से अभेद्य कानूनी स्थिति को फिर से दोहराना आवश्यक होगा, जैसा कि एमए बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में कहा गया है। कर्नाटक राज्य: (2003) 7 एस.सी.सी. 517, जो निम्नानुसार है: -

'8. ... इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून को हर समय कानून माना जाता है। सामान्यत विधि के सिद्धांत प्रतिपादित करने वाला इस न्यायालय का निर्णय सभी मामलों पर लागू होता है, चाहे उसके लंबित होने की अवस्था कुछ भी हो, क्योंकि यह माना जाता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया निर्णय वास्तव में प्रारंभ से ही कानून है। भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत जो अमेरिकी न्यायशास्त्र की एक विशेषता है, कानून के सामान्य सिद्धांत का अपवाद है, जिसे पहली बार आयात किया गया था और एलसी गोलक नाथ बनाम भारत संघ में लागू किया गया था। पंजाब राज्य [ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1643]। प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर [(1993) 4 एस.सी. सी.727: 1993 एस.सी.सी. (एल&एस) 1184: (1993) 25 एटीसी704] में दृष्टिकोण अपनाया गया था। भावी अधिनिर्णय व्याख्या के संवैधानिक सिद्धांत के सिद्धांतों का एक हिस्सा है और इस न्यायालय द्वारा पहले घोषित कानून का अधिक्रमण करते हुए इसका सहारा लिया जा सकता है। यह एक ऐसा उपकरण है जिसे सुलझाए गए मुद्दों को फिर से खोलने, कार्यवाहियों की

बहुलता को रोकने और अनिश्चितता और परिहार्य मुकदमेबाजी से बचने के लिए नवीकृत किया गया है। दूसरे शब्दों में, घोषणा की तारीख से पहले घोषित कानून के विपरीत की गई कार्रवाइयों को व्यापक जनहित में मान्य किया जाता है। घोषित कानून भविष्य के मामलों पर लागू होता है। (देखें अशोक कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1997) 5 एस.सी.सी. 201: 1997 एस.सी.सी. (एल&एस) 1299] और बाबूराम बनाम सीसी जैकब [(1999)3 एस.सी.सी. 362: 1999 एस.सी.सी. (एल&एस)682: 1999 एस.सी.सी. (सीआरआई)433]। यह इस न्यायालय को इंगित करना है कि क्या विचाराधीन निर्णय भावी रूप से संचालित होगा। दूसरे शब्दों में, कोई संभावित ओवररूलिंग नहीं होगी, जब तक कि यह विशेष निर्णय में इंगित नहीं किया जाता है। यह अवधारित करने के लिए खुला नहीं है कि किसी विशेष मामले में निर्णय संभावित ओवररूलिंग के सिद्धांत के आवेदन द्वारा अपने आवेदन में भावी होगा। बाध्यकारी मिसाल का सिद्धांत न्यायिक निर्णयों में निश्चितता और स्थिरता को बढ़ावा देने में मदद करता है और दैनिक मामलों का हिस्सा बनने वाले लेनदेन के परिणामों के रूप में व्यक्ति को आश्वासन प्रदान करने के अलावा कानून के जैविक विकास को सक्षम बनाता है। ...' (महत्त्व सन्निविष्ट)

(36) कानून के पूर्वोक्त विधिक प्रतिपादन को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता, जो जन्म से अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित नहीं है और जिसने अनुसूचित जाति समुदाय के व्यक्ति के साथ विवाह के कारण ही ऐसी स्थिति का दावा किया था, द्वारा प्राप्त अनुसूचित जाति समुदाय प्रमाणपत्र को बनाए रखने के लिए न्यायसंगत विचार अपनाना संभव नहीं होगा।

(37) अन्यथा भी, माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने आर विश्वनाथ पिल्लई बनाम केरल राज्य (2004) 2 एस.सी.सी. 105 में निर्णय दिया है कि सत्यापन के पश्चात् दावा की गई जाति अथवा जनजाति के अविधिमान्य होने के परिणामस्वरूप नियुक्ति अथवा प्रवेश, जैसा भी मामला हो, प्रारंभ से ही अघोषित अथवा शून्य हो जाएगा।

(38) अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, भारतीय खाद्य निगम बनाम जगदीश बलराम बहिरा: (2017)8 एस.सी.सी. 670 में उसी कानूनी स्थिति को दोहराते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक अन्य पीठ ने माना है कि उपरोक्त सिद्धांत का अपवाद उन मामलों में था जहां उस न्यायालय ने पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग किया था। जगदीश बलराम बहिरा (उपरोक्त) का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

'48... जहां एक उम्मीदवार को इस दावे के आधार पर सुरक्षित पद पर

नियुक्त किया गया था कि वह उस समूह का सदस्य था जिसके लिए आरक्षण का इरादा है, उस समूह से संबंधित दावे का अमान्यकरण, एक आवश्यक परिणाम के रूप में, नियुक्ति को शुरू से ही शून्य बना देगा। इसके लिए तर्क यह है कि एक उम्मीदवार जिसे अन्यथा अनारक्षित सीटों के सामान्य पूल में एक पद के लिए प्रतिस्पर्धा करनी होगी, ने सुरक्षित वर्ग तक सीमित एक अधिक प्रतिबंधित प्रतियोगिता में नियुक्ति हासिल की थी और एक नामित जाति, जनजाति या वर्ग के लिए लाभ हड़प लिया था। एक बार जब यह पाया गया कि उम्मीदवार ने सुरक्षित वर्ग से संबंधित होने के लिए गलत अभ्यावेदन पर प्रवेश प्राप्त किया था, तो नियुक्ति धोखाधड़ी से दूषित हो जाएगी और शुरू से ही शून्य हो जाएगी। दावे की मिथ्याता इस अभ्यावेदन में निहित है कि उम्मीदवार उन व्यक्तियों की श्रेणी से संबंधित है जिनके लिए आरक्षण का इरादा है, जबकि वास्तव में उम्मीदवार ऐसा नहीं है। उम्मीदवार को उस लाभ से वंचित करने का कारण जो उसने इस तरह के दावे के बल पर प्राप्त किया है, यह है कि एक व्यक्ति झूठे दावे के फल को बरकरार नहीं रख सकता है जिसके आधार पर एक दुर्लभ सार्वजनिक संसाधन प्राप्त होता है ... एक उम्मीदवार जो ऐसा करता है वह एक वास्तविक उम्मीदवार के लिए हानिकारक होता है जो वास्तव में सुरक्षित वर्ग से संबंधित है जो सीट से वंचित है। उस मामले के लिए, उन व्यक्तियों के पूरे वर्ग के लिए एक नुकसान होता है जिनके लिए आरक्षण का इरादा है, जिसके सदस्यों को एक धोखेबाज को दिए गए प्रवेश के परिणामस्वरूप बाहर रखा जाता है जो वर्ग से संबंधित नहीं है। लाभ की वापसी, या तो रोजगार के निरसन या प्रवेश की समाप्ति के संदर्भ में इसलिए दावे के अमान्य होने का एक आवश्यक परिणाम था जिसके आधार पर नियुक्ति या प्रवेश प्राप्त किया गया था। लाभ की वापसी मेन्स रिया या झूठे दावे के अंतर्निहित इरादे पर आधारित नहीं थी। आपराधिक अभियोजन के मामले में, इरादा आवश्यक होगा। दूसरी ओर, नागरिक लाभों की वापसी एक समूह या श्रेणी से संबंधित दावे के अमान्य होने के तार्किक परिणाम के रूप में प्रवाहित हुई, जिसके लिए आरक्षण का इरादा है।

'59. अरुण [अरुण बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 4595: (2015)1 माह एलजे 457] में बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले ने अनिवार्य रूप से कविता सोलुंके [कविता सोलुंके बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012)8 एस.सी.सी.430: (2012)2 एस.सी.सी. (एल&एस) 609] और शालिनी [शालिनी बनाम शालिनी बनाम

महाराष्ट्र राज्य] में निर्णयों को अनिवार्य रूप से समझा है। न्यू इंग्लिश हाई स्कूल एसोसिएशन, (2013) 16 एस.सी.सी. 526: (2014) 3 एस.सी.सी. (एल&एस) 265] ने गणेश रामभाऊ खलाले [गणेश रामभाऊ खलाले बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 20: (2009) 2 माह एलजे 788] और रमेश सुरेश कांबले [रमेश सुरेश कांबले बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2006 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 1078: (2007) 1 माह एलजे 423]। कविता सोलुंके [कविता सोलुंके बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 8 एस.सी.सी. 430: (2012) 2 एस.सी.सी. (एल&एस) 609] और शालिनी [शालिनी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 8 एस.सी.सी. 430] और शालिनी [शालिनी बनाम महाराष्ट्र राज्य] में दो-न्यायाधीशों की पीठों द्वारा दिए गए पहले के निर्णयों के संबंध में हम जो निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, उसके मद्देनजर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। न्यू इंग्लिश हाई स्कूल (2013) 16 एस.सी.सी. 526: (2014) 3 एस.सी.सी. (L&S) 265], हम अरुण [अरुण बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 4595: (2015) 1 Mah LJ 457] में पूर्ण पीठ द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण की सदस्यता लेने में असमर्थ हैं। अरुण [अरुण बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 एस.सी.सी. ऑनलाइन बम 4595: (2015) 1 Mah LJ 457] में बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय है कि: (एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम पैरा-75)

(i) संवीक्षा समिति द्वारा जातिगत दावे को मात्र अमान्य करने से लाभ वापस लेने या रोजगार से मुक्ति या नियुक्तियों को रद्द करने के परिणाम नहीं होंगे जो 28-11-2000 को मिलिंद [महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद, (2001)1 एस.सी.सी. 4: 2001 एस.सी.सी. (एल&एस)117] में निर्णय से पहले अंतिम हो गए हैं;

(ii) जाति दावे के अमान्य होने पर सेवा में सुरक्षा का लाभ न केवल कोश्ती और हल्बा कोष्टी से संबंधित व्यक्तियों को उपलब्ध है बल्कि विशेष पिछड़ा वर्ग से संबंधित व्यक्तियों को भी समान शर्तों पर उपलब्ध है।

उच्च न्यायालय ने यहां तक कहा है कि मिलिंद [महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद, (2001)1 एस.सी.सी. 4: 2001 एस.सी.सी. (एल&एस) 117] में निर्णय बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के भावी फैसले की प्रकृति में था। बंबई उच्च न्यायालय का उपरोक्त दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अस्थिर है। न तो मिलिंद [महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद, (2001)1 एस.सी.सी.4: 2001 एस.सी.सी. (एल&एस)117] में निर्णय और न ही इस न्यायालय के किसी भी निर्णय ने, जिसने इसे माना है, ने माना है कि

मिलिंद [महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद, (2001)1 एस.सी.सी.4: 2001 एस.सी.सी. (एल&एस) 117] भावी ओवररूलिंग में एक अभ्यास था। उच्च न्यायालय ने ऐसा मानने में गलती की थी। अरुण [अरुण बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 एस.सी.सी. ऑनलाइन बम 4595: (2015)1 एमएएच एलजे 457] में पूर्ण पीठ का निर्णय अस्थिर है। पूर्ण पीठ स्पष्ट रूप से यह नोटिस करने में विफल रही थी कि जिन मामलों में जाति के दावे को अमान्य करने के बाद इस न्यायालय द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया था, वे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 142 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर रहे थे। अनुच्छेद 142 के तहत क्षेत्राधिकार स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उच्च न्यायालय के लिए उपलब्ध नहीं है। उच्च न्यायालय ने उस अधिकार क्षेत्र को अपने पास रखकर गलती की।

(39) पंजाब राज्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइटवॉशर):(2014)8 एस.सी.सी. 883 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य तीन न्यायाधीश पीठ ने माना है कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत उस न्यायालय के निर्देश, राहत को ढालते समय, जो कानून के आवेदन में ढील देते हैं या विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कानून की कठोरता से मामले को छूट देते हैं, अनुपात निर्णय में शामिल नहीं हैं और इसलिए इसे एक बाध्यकारी मिसाल बनाने का आधार, इसका मूल खो देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता का कोई फायदा नहीं हो सकता है।

E. <u>निष्कर्ष</u>

(40) प्रस्तुत मामले के तथ्य के साथ युग्मित पूर्वोक्त अकाट्य कानूनी स्थिति के आलोक में, हम आक्षेपित निर्णय/आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता की नियुक्ति के मुद्दे पर एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से पूर्ण सहमत हैं। एकल न्यायाधीश ने उन सभी मुद्दों पर निर्णय लेने में बहुत कष्ट उठाया है जिन पर पक्षकारों ने आपत्ति जताई थी। कोई नया आधार नहीं बनाया गया है, जो इस न्यायालय को एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाने में सक्षम बनाता जैसा कि एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया है।

(41) पूर्वोक्त कारणों से, चूंकि अपीलकर्ता ने सुरक्षित वर्ग से संबंधित होने के लिए झूठे अभ्यावेदन पर नियुक्ति प्राप्त की और व्याख्याता (उर्दू) के पद पर उसकी नियुक्ति ही समाप्त हो गई है, इसलिए हम इसे अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य मुद्दों से निपटने के लिए नहीं मानते हैं, उपरोक्त विशेष अपीलों में और बिना किसी कार्रवाई या प्रतिदावे के 'लिस' को आराम करने की अनुमति दें।

(42) उपर्युक्त इंट्रा-कोर्ट अपीलें, गुण-दोष से रहित हैं, तदनुसार, खारिज की जाती हैं।

हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के लिए लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(43) मामले से अलग होने से पहले, इस न्यायालय को सुश्री पुष्पिला बिष्ट, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा प्रदान की गई सहायता के लिए निसंकोच और निर्विवाद प्रशंसा व्यक्त की जानी चाहिए, जो उपरोक्त अपीलों में अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए, उन्हें उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति द्वारा उसके पारिश्रमिक के लिए 5,000 रुपये की राशि का भुगतान किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 247

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट ए संख्या 779 वर्ष 2023

रजत यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
श्री यशपाल यादव, श्री लालजी यादव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा कानून- भर्ती - ओबीसी आरक्षण - जाति प्रमाण पत्र प्रारूप - सकारात्मक कार्रवाई - एक ओबीसी प्रत्याशी ने सिविल पुलिस में उप निरीक्षक के पद के लिए आवेदन किया था। आवश्यक अवधि के लिए राज्य सरकार के प्रारूप के बजाय केंद्र सरकार के पदों के लिए निर्धारित प्रारूप में जाति प्रमाण पत्र जमा करने के कारण उसे ओबीसी आरक्षण से वंचित कर दिया गया था। प्रतिवादियों ने उन्हें एक सामान्य श्रेणी के प्रत्याशी के रूप में माना, और उच्च निर्दिष्ट अंकों के कारण उन्हें योग्य नहीं ठहराया गया। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि एक ही राज्य प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए दोनों प्रमाण पत्रों ने उसकी ओबीसी स्थिति की पुष्टि की है, और प्रारूप के अंतर को उसे अयोग्य नहीं ठहराया जाना चाहिए। एकमात्र विचारबिन्दु यह है कि क्या किसी प्रत्याशी को केवल इस आधार पर ओबीसी आरक्षण लाभ से वंचित किया जा सकता है कि उसने उसी राज्य प्राधिकारी द्वारा जारी एक वैध प्रमाण पत्र (केंद्रीय प्रारूप पर) प्रस्तुत करने के बावजूद, संबंधित अवधि के दौरान निर्धारित "राज्य सरकार" प्रारूप में जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया है। प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को ओबीसी श्रेणी के अंतर्गत विचार करने और उसे ओबीसी श्रेष्ठता सूची में शामिल करने का निर्देश दिया।

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>उद्धरण:</u>

1. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अपर मुख्य सचिव (गृह) बनाम रिंकी यादव विशेष अपील

(दोषपूर्ण) संख्या 274 वर्ष 2022, दिनांक 11.02.2022 को निर्णीत

2. गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य- 2017 (2) ईएससी 877 (इलाहाबाद) (पूर्ण पीठ)

3. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य - (2015) 1 एससीसी 347

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री यशपाल यादव और राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता विज्ञापन संख्या पीआरपीबी-एनएसके-2 (3 एफओ/2020) दिनांक 25.2.2021 के अनुसार सिविल पुलिस में उप निरीक्षक के पद के लिए अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की श्रेणी में आवेदक था, हालांकि अपने ऑनलाइन आवेदन पत्र जमा करने के समय, उसने केंद्र सरकार के तहत पद के लिए राज्य के सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी पिछड़ी जाति का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया। उसे लिखित परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गई और इस तरह सफल होने और अन्य शारीरिक मानक और दक्षता परीक्षण उत्तीर्ण करने के बाद, वह ओबीसी श्रेणी की मेरिट सूची में विचार करने का हकदार था। 17 मई, 2022 को दस्तावेज़ सत्यापन के समय, उसने ओबीसी जाति के सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी प्रमाण पत्र के साथ एक नोटरी हलफनामा प्रस्तुत किया, लेकिन इस बार राज्य सरकार के तहत पद के लिए निर्धारित प्रारूप पर जारी किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र 26.11.2018 को जारी किया गया था, जो फॉर्म भरने के समय उसके पास उपलब्ध था, लेकिन आवश्यक अवधि के दौरान यानी 01.4.2021 से 30 अप्रैल, 2021 के बीच जारी नहीं किया गया था।

3. इस तथ्य के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता ने संबंधित अवधि के राज्य सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर जारी अपेक्षित प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था और केंद्र सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था, प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता को ओबीसी के बजाय ओपन कैटेगरी में माना और इस तरह याचिकाकर्ता ओपन कैटेगरी में योग्यता प्राप्त न करने के कारण मेरिट सूची में स्थान पाने में सफल नहीं हो सका। यह प्रस्तुत किया गया है कि सब इंस्पेक्टर के पद के लिए ओबीसी में चयनित उम्मीदवार के लिए अंतिम कटऑफ अंक 305.54 है, जबकि याचिकाकर्ता के अंक 305.84 हैं।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दो तर्क प्रस्तुत किए गए:

(a) केन्द्र सरकार के अधीन पदों के लिए जाति प्रमाण-पत्र जारी करने के लिए निर्धारित मानदण्डों तथा राज्य सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित मानदण्डों के बीच असंगति के बारे में विवाद अब नहीं

रहा, क्योंकि दोनों प्रयोजनों के लिए एक ही राज्य सरकार द्वारा न्यायालय के लिए प्रारूप जारी किया गया है, जिसने राज्य में ओबीसी को मान्यता दी है तथा दोनों प्रमाण-पत्र राज्य सरकार द्वारा ऐसे प्रयोजनों के लिए नियुक्त सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए हैं; तथा

(b) जाति प्रमाण-पत्र का उद्देश्य यह स्वीकार करना है कि व्यक्ति (अभ्यर्थी) किसी विशेष जाति से संबंधित है और यह इस तथ्य का साक्ष्य है और जब तक कि गैर-क्रीमी लेयर के अंतर्गत आने वाले अभ्यर्थियों के संबंध में कोई विवाद न हो, राज्य सरकार द्वारा जारी और मान्यता प्राप्त प्रमाण-पत्र को चयन निकाय द्वारा केवल भिन्न प्रारूप पर होने के कारण अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

5. *इसके विपरीत,* विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क यह है कि अपेक्षित दस्तावेज को अंतिम तिथि तक ऑनलाइन भरे गए आवेदन पत्र के साथ दाखिल किया जाना आवश्यक है और यदि किसी के पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि तक अपेक्षित दस्तावेज नहीं है, तो उम्मीदवार को बाद में कमियों को सुधारने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

6. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अन्य तर्क यह है कि विज्ञापन के खण्ड 5.4(4) के अनुसार राज्य सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर जाति प्रमाण पत्र जारी किया जाना अपेक्षित था तथा इस आशय की विशिष्ट शर्त थी कि यदि अपेक्षित प्रारूप पर जारी जाति प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया जाता है या केन्द्र सरकार के अधीन पदों के लिए जाति प्रमाण पत्र दाखिल किया जाता है तो आरक्षित श्रेणी के ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द कर दी जाएगी।

7. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने यह भी आग्रह किया है कि **गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (2) ईएससी 877 (सभी) (एफबी)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा तैयार तीसरे मुद्दे पर दिए गए उत्तर के मद्देनजर, पैराग्राफ 28 के अनुसार, संघ और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों में कोई विरोधाभास न होने के बावजूद, यह किसी अभ्यर्थी को राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और पहचाने गए किसी विशेष आरक्षित वर्ग में अपनी जाति की स्थिति को प्रमाणित करने वाले अपेक्षित दस्तावेज प्रस्तुत करने के दायित्व से मुक्त नहीं करेगा।

8. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिवाद के प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलील दोहराई और आगे कहा कि इससे पहले भी याचिकाकर्ता को वर्ष 2018 में जारी प्रमाण पत्र के आधार पर पुलिस विभाग द्वारा कांस्टेबल के रूप में चुना गया था, और इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि याचिकाकर्ता ओबीसी श्रेणी से संबंधित था और गैर क्रीमी लेयर के अंतर्गत आता था।

9. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि **यूपी राज्य के माध्यम से अपर मुख्य सचिव गृह (पुलिस) सिविल सचिवालय लखनऊ एवं अन्य बनाम रिंकी यादव के विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 274/2022 में 11.02.2009** को पारित मामले में, एक खंडपीठ ने इन सभी मुद्दों को संबोधित किया है और गौरव शर्मा (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले का भी उल्लेख किया है और इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ राज्य सरकार की अपील को खारिज कर दिया है, जिसने उसी भर्ती परीक्षा के खिलाफ उस याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार करने की अनुमति दी थी, इस तथ्य के बावजूद कि उस मामले में भी राज्य के सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी केंद्र सरकार के तहत पदों के लिए प्रारूप पर जारी जाति प्रमाण पत्र शुरू में दायर किया गया था।

10. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं और बार में उठाए गए उनके तर्कों को सुनने के बाद, मुझे लगता है कि केवल यही एक मुद्दा है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता को प्रासंगिक अवधि के राज्य सरकार के प्रारूप पर प्रमाण पत्र के रूप में अपेक्षित दस्तावेज नहीं मिला, इससे कोई फर्क पड़ेगा, भले ही उसने विज्ञापन के तहत निर्धारित अवधि के दौरान सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी केंद्र सरकार के तहत पद के लिए निर्धारित प्रारूप पर जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया हो।

11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रिंकी यादव (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पैराग्राफ 15 और 16 के अनुसार दिए गए निष्कर्षों के मद्देनजर, मैं इस विवाद में फिर से जाना उचित नहीं समझता कि क्या उम्मीदवार द्वारा केंद्र सरकार के अधीन पद के लिए निर्धारित प्रारूप पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी अपेक्षित अवधि का प्रमाण पत्र दाखिल करना विचारणीय होगा या नहीं।

12. खंडपीठ के निर्णय के पैराग्राफ 15 और 16 नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

15. गौरव शर्मा (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा विचार किए गए मुद्दों में से एक यह था कि क्या क्रीमी लेयर के प्रमाणीकरण के संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित मानदंडों के बीच कोई असंगत अंतर या विरोधाभास मौजूद है? यदि नहीं, तो इसका प्रभाव। यह इंगित करना भी प्रासंगिक है कि गौरव शर्मा मामले में याचिकाकर्ता ने भी उसी प्रारूप में प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें यह प्रमाणित किया गया था कि वह ओबीसी श्रेणी से संबंधित है, जिस प्रारूप में प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने जाति प्रमाण पत्र प्राप्त किया था और ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध आरक्षण का लाभ लेने के लिए इसे प्रस्तुत किया था। जिस प्रारूप में प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने प्रमाण पत्र प्राप्त किया है, वह उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा निर्धारित है। यह तथ्य विवादित नहीं है, तथापि, जैसा कि अपीलकर्ता-राज्य प्राधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया है, उक्त प्रारूप भारत सरकार के अधीन रोजगार के संबंध में ओ.बी.सी. श्रेणी के

*अभ्यर्थियों को उपलब्ध आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के लिए है, न कि उत्तर प्रदेश राज्य के अधीन रोजगार के संबंध में। गौरव शर्मा के मामले में उम्मीदवार द्वारा जिस जाति प्रमाण-पत्र पर भरोसा किया गया है, उसे उक्त निर्णय के पैरा-5 में उद्धृत किया गया है, जो वही है जिसमें प्रतिवादी-याचिकाकर्ता को तहसीलदार द्वारा प्रमाण-पत्र जारी किया गया था। गौरव शर्मा (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ ने कहा है कि, "**जबकि यह सच है कि जाति प्रमाण-पत्र केवल मौजूदा स्थिति की मान्यता है, एक ओ.बी.सी. उम्मीदवार को अनिवार्य रूप से दो शर्तें स्थापित करनी चाहिए कि वह राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त ओ.बी.सी. समूह से संबंधित है और यह भी कि वह क्रीमी लेयर में नहीं आता है।** गौरव शर्मा के मामले में फैसले के पैराग्राफ-26 में पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि, "**हालांकि यह सच है कि एक ओ.बी.सी. उम्मीदवार भले ही एक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करता है जो यह प्रमाणित करता है कि वह 14 अक्टूबर, 2008 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार आरक्षण के लाभ से वंचित नहीं है, लेकिन यह मुद्दा अभी भी बना हुआ है कि क्या वह ओ.बी.सी. है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा निर्दिष्ट और पहचाना गया है।** पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि, "**हालांकि ओ.बी.सी. उम्मीदवारों द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया प्रमाण पत्र 14 अक्टूबर, 2008 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर बहिष्कृत नहीं था, लेकिन प्रमाण पत्र यह साबित नहीं करता कि वे उत्तर प्रदेश राज्य में पहचाने गए ओ.बी.सी. से संबंधित हैं"। न्यायालय ने आगे कहा कि, "आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी उम्मीदवार के लिए यह स्थापित करना अनिवार्य है कि वह संबंधित राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और पहचाने गए ओ.बी.सी. से संबंधित है और इसके अलावा वह बहिष्करण के दायरे में नहीं आता है।"**

16. अंततः मुद्दे (सी) का उत्तर देते हुए, पूर्ण पीठ द्वारा रिपोर्ट के पैरा-27 में कहा गया है कि:

"27. तदनुसार हम प्रश्न संख्या 1 का उत्तर नकारात्मक में देते हैं और मानते हैं कि ओबीसी उम्मीदवार को विज्ञापन या भर्ती सूचना में निर्धारित कट ऑफ या अंतिम तिथि की कठोरता से छूट नहीं है। हम आगे घोषणा करते हैं कि अरविंद कुमार यादव ने इस मुद्दे पर कानून को सही ढंग से व्यक्त किया है और प्रवेश कुमार और शुभम गुप्ता के फैसले को खारिज करते हैं। जहां तक प्रश्न संख्या 3 का संबंध है, हम मानते हैं कि यद्यपि संघ और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों में कोई विरोधाभास नहीं है, लेकिन इसका किसी उम्मीदवार की पात्रता पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक कि वह राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और पहचाने गए ओबीसी वर्ग से संबंधित होने का प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत नहीं करता है।"

(जोर दिया गया)

13. न्यायालय ने पैरा 20 के तहत ओबीसी जाति अहीर पर चर्चा की जो ओबीसी श्रेणी से संबंधित है जो 1994 के आरक्षण अधिनियम के साथ संलग्न अनुसूची-1 में दी गई है और इस संबंध में भारत के असाधारण राजपत्र में 13 सितंबर, 1993 को जारी अधिसूचना पर भी

चर्चा की और उसका भी हवाला दिया। निर्णय के पैरा 20, 21 और 22 को नीचे पुन: उद्धृत किया गया है:

"20. आरक्षण अधिनियम 1994 से जुड़ी अनुसूची-1 उक्त अधिनियम की धारा-2 (बी) के अंतर्गत आती है। आरक्षण अधिनियम की धारा 2 (बी) में नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्गों को अनुसूची-1 में निर्दिष्ट नागरिकों के पिछड़े वर्गों के रूप में परिभाषित किया गया है। आरक्षण अधिनियम 1994 से जुड़ी अनुसूची-1 का सारांश नीचे दिया गया है:-

[अनुसूची-I]
[धारा 2(बी) देखें]
1. अहीर, यादव, ग्वाला, यदुवंशीय
41. भुर्जी, भरभूंजा, भुज, कंदु, कशौधन
2. सोनार, सुनार, स्वर्णकार
42. भठियारा
3. जाट
43. माली, सैनी
4. कुर्मी, चनाऊ, पटेल, पाटनवार, कुर्मी-मल्ल, कुर्मी-सेंथवार
44. सफाईकर्मी (जो अनुसूचित जाति वर्ग में शामिल नहीं हैं), हलालखोर
5. गिरी
45. लोहार, लोहार-सैफी
6. गुजर
46. लोनिया, नोनिया, गोले-ठाकुर, लोनिया-चौहान
7. गोसाईं
47. रंगरेज़, रंगवा
8. लोध, लोधा, लोधी, लोट, लोधी-राजपूत
48. मार्चचा
9. कम्बोज
49. हलवाई, मोदनवाल
10.अरख, अरकवंशीय
50. हज्जाम, नई, सलमानी, सविता, श्रीवास
11.कच्ची, कच्ची-कुशवाहा, शाक्य
51. राय सिख
12.[xxx]
52. सक्का-भिस्ती, भिस्ती- अब्बासी
13.[xxx]
53 धोबी (जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति श्रेणी में शामिल नहीं हैं
14.किसान
54. कसेरा, ठठेरा, ताम्रकार
15.कोइरी 55. नानबाई
16[xxx]
56. मिरशिकार
17.कसगर
57. शेख सरवारी (पिरई), पीरही
18 .कुंजड़ा या राईन
58. मेव, मेवाती
19. गरेरिया, पाल, वाघेल
59. कोष्टा/कोष्टी
20.गद्दी, घोषी
60. रोर
21.चिकवा, कसाब कुरेशी, चक
61. खुमरा, संगतराश, हंसेरी
22.छिप्पी, छिपा
62 मोची
23.जोगी
63. खागी
24.झोजा
64. तंवर सिंघारिया
25.ढफाली

65. कटुवा
26 .तारौली, बरई, चौरसिया
66. माहीगीर
27.तेली, समानी, रोगांगर, साहू, रौनियार, गुआंधी, अररक
67. डांगी
28.दारजी, इदरीसी, काकुत्स्थ
68. धाकड़
29. [x x x]
69. गाड़ा
30. नक्कल
70. तंतावा
31. नट (जो अनुसूचित जाति वर्ग में शामिल नहीं हैं)
71.जोरिया
32. नायक
72. पटवा, पटेहरा, पटेहरा, देववंशी
33. फकीर
73. कलाल, कलवार, कलार
34. बंजारा, रंकी, मुकेरी, मुकेरानी
74. मनिहार, कचेर लखारा
35. बरहई, सैफी, विश्वकर्मा पांचाल, रामगढ़िया, जांगिड़, धीमान
75 मुराव, मुराई, मौर्य
36.बारी
76. मोमिन (अंसार)
37. बेरागी
77. मुस्लिम कायस्थ
38.[x x x]
78. मिरासी
39.बियार
79. नद्दाफ (धुनिया), मंसूरी, कंडेरे, कदेरा, करन (कर्ण)।].
40.[x x x]

21. 1994 आरक्षण अधिनियम में संलग्न पूर्वोक्त अनुसूची-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि इसमें प्रविष्टि-1 में "अहीर" समुदाय का उल्लेख है। तदनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित किसी विशेष समुदाय के लिए की गई पहचान और मान्यता के अनुसार, अनुसूची-1 की प्रविष्टियाँ ऐसे मुद्दे के निर्धारण के लिए एकमात्र स्रोत हैं। बेशक "अहीर" समुदाय को अनुसूची-1 में प्रविष्टि-1 में शामिल किया गया है और इसलिए ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा की गई पहचान के संदर्भ में, "अहीर" समुदाय से संबंधित व्यक्तियों की पहचान की जाती है और उन्हें उक्त उद्देश्य के लिए मान्यता दी जाती है।

22. यदि हम भारत के असाधारण राजपत्र दिनांक 13 सितम्बर, 1993 में प्रकाशित अधिसूचना की जांच करें, जिसमें भारत सरकार के दिनांक 10 सितम्बर, 1993 के संकल्प को प्रकाशित किया गया है, तो हम पाते हैं कि उत्तर प्रदेश राज्य में अहीर समुदाय क्रम संख्या 1 पर सूचीबद्ध है। तदनुसार, किसी विशेष समूह या समुदाय को अन्य पिछड़ा वर्ग या नागरिकों के बीच शामिल करने के प्रयोजनों के लिए भारत सरकार और उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा की गई पहचान की जांच करने पर, जो उन्हें उपलब्ध आरक्षण का लाभ लेने के हकदार हैं, हम पाते हैं कि जहां तक "अहीर" समुदाय का संबंध है, इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। हमारे लिए यह मानना कि ऐसी कोई आपत्ति नहीं है, इसका कारण यह है कि "अहीर" समुदाय का उल्लेख भारत सरकार की

अधिसूचना दिनांक 13 सितम्बर 1993 में मिलता है, जिसमें भारत सरकार का दिनांक 10 सितम्बर 1993 का संकल्प प्रकाशित हुआ है तथा इसे उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल द्वारा पारित 1994 आरक्षण अधिनियम की अनुसूची-1 की प्रविष्टि-1 में भी शामिल किया गया है।

14. न्यायालय ने राज्य सरकार द्वारा निर्णय के पैराग्राफ 7 और 8 के अनुसार तैयार किए गए दोनों प्रारूपों का भी उल्लेख किया, जो इस प्रकार हैं:

(3) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम-1994 (समय-समय पर यथा संशोधित) की अनुसूची-दो के अनुसार क्रीमीलेयर के अन्तर्गत आने वाले उत्तर प्रदेश के अन्य पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों को आरक्षण का लाभ अनुमन्य नहीं है। अन्य पिछड़े वर्ग के लिए जाति प्रमाण-पत्र (प्रारूप-1) 01 अप्रैल, 2020 या उसके बाद का हो परन्तु अभ्यर्थी द्वारा इस भर्ती हेतु आवेदन करने की तिथि तक निर्गत होना चाहिए (अभ्यर्थी द्वारा आवेदन करने की अन्तिम तिथि 30-04-2021 को आवेदन करने की स्थिति में जाति प्रमाण- पत्र दिनांक: 30-04-2021 तक निर्गत होना चाहिये)

"7. अपीलकर्ता-राज्य प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से तर्क दिया है कि विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट के अनुसार, उन अभ्यर्थियों को आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा जो अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हैं, लेकिन क्रीमी लेयर में आते हैं। विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट 3 की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि विज्ञापन में उक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम 1994 (जिसे आगे आरक्षण अधिनियम 1994 कहा जाएगा) की अनुसूची-I में उल्लिखित अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित अभ्यर्थी आरक्षण के लाभ के हकदार नहीं होंगे यदि वे क्रीमी लेयर श्रेणी में आते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि नोट 3 में की गई शर्त के अनुसार, अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए उपलब्ध आरक्षण का लाभ लेने वाले उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला जाति प्रमाण पत्र प्रारूप (प्ररूप-1) में होगा और 01 अप्रैल, 2020 को या उसके बाद लेकिन आवेदन करने की अंतिम तिथि तक जारी किया जाना चाहिए। यानी, संबंधित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला जाति प्रमाण पत्र 01 अप्रैल, 2020 और 30 अप्रैल, 2021 के बीच जारी किया जाना चाहिए क्योंकि 30 अप्रैल, 2021 विज्ञापन के अनुसार आवेदन करने की अंतिम तिथि थी। विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट 3 नीचे उद्धृत है:-

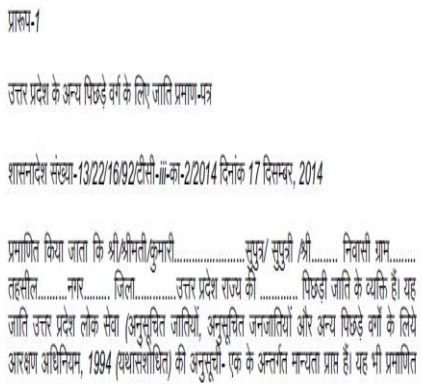
किया जाता है कि श्री/श्रीमती/कुमारी .....पूर्वोक्त अधिनियम 1994 (यथासंशोधित) की अनुसूची-दो (जैसा कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा) (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण) (संशोधन) अधिनियम 2001 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है एवं जो उ०प्र० लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण) (संशोधन) अधिनियम 2002 द्वारा संशोधित की गयी है, से आच्छादित नहीं हैं। इनके माता पिता की निरन्तर तीन वर्ष की अवधि के लिये सकल वार्षिक आय आठ लाख रूपये या इससे अधिक नहीं है तथा इनके पास धनकर अधिनियम 1957 में यथा विहित छूट सीमा से अधिक सम्पत्ति भी नहीं है। श्री/श्रीमती/कुमारी..... तथा/अथवा उनका परिवार उत्तर प्रदेश के ग्राम.....तहसील.....नगर.. .....जिला.....में सामान्यतः रहता है।

स्थान.....
दिनांक.....
मुहर..... हस्ताक्षर..
पूरा नाम.
पदनाम...

जिलाधिकारी/अतिरिक्त जिलाधिकारी/

सिटी मजिस्ट्रेट/परगना मजिस्ट्रेट/ तहसीलदार "

8. विज्ञापन के अनुसार प्रारूप-1 भी नीचे उद्धृत है:-



प्रारूप-1

उत्तर प्रदेश के अन्य पिछड़े वर्ग के लिए जाति प्रमाण-पत्र

शासनादेश संख्या-13/22/16/92/टीसी-III-का-2/2014 दिनांक 17 दिसम्बर, 2014

प्रमाणित किया जाता कि श्री/श्रीमती/कुमारी.....सुत/ सुता/ श्री..... निवासी ग्राम..... तहसील.....नगर..... जिला.....उत्तर प्रदेश राज्य की..... पिछड़ी जाति के व्यक्ति हैं। यह जाति उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण अधिनियम, 1994 (यथासंशोधित) की अनुसूची- एक के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है। यह भी प्रमाणित

15. मैंने याचिकाकर्ता के जाति प्रमाण पत्र का अवलोकन किया है, जो केंद्र सरकार के पद के लिए निर्धारित प्रारूप पर जारी किया गया है, जो अनुलग्नक 1 के रूप में दायर किया गया है, पृष्ठ 25-बी पर और पाया है कि याचिकाकर्ता को 'अहीर' समुदाय से संबंधित होने के लिए प्रमाणित किया गया है और वह 'क्रीमी लेयर' की श्रेणी और व्यक्तियों में नहीं आता है और जो प्रमाण पत्र याचिकाकर्ता को 26.11.2018 को पहले जारी किया गया था, याचिकाकर्ता को 'अहीर' समुदाय से संबंधित होने के लिए प्रमाणित किया गया है और वित्तीय स्थिति भी 'क्रीमी लेयर' से बाहर है।

16. उपर्युक्त के मद्देनजर, इसलिए, मेरे विचार से याचिकाकर्ता उसी चयन और भर्ती से संबंधित है जिसके संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य और रिंकी यादव (सुप्रा) के मामले में निर्णय पारित किया गया था, याचिकाकर्ता उसी राहत का हकदार है।

17. **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य (2015) 1 एससीसी 347** के मामले में, पैराग्राफ 22.1 के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:

> *"सामान्य नियम यह है कि जब कर्मचारियों के किसी विशेष समूह को न्यायालय द्वारा राहत दी जाती है, तो सभी समान स्थिति वाले अन्य व्यक्तियों को उस लाभ को बढ़ाकर समान व्यवहार किया जाना चाहिए। ऐसा न करना भेदभाव के बराबर होगा और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। इस सिद्धांत को सेवा मामलों में अधिक दृढ़ता से लागू करने की आवश्यकता है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर विकसित सेवा न्यायशास्त्र यह मानता है कि सभी समान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। इसलिए, सामान्य नियम यह होगा कि केवल इसलिए कि अन्य समान स्थिति वाले व्यक्ति पहले न्यायालय में नहीं आए, उनके साथ अलग व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए"*

18. अब, जैसा कि विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है, यहां दो मामलों के बीच तथ्यों में अंतर करने के बारे में एक प्रश्न हो सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रिंकी यादव (सुप्रा) के मामले में, राज्य सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर प्रमाण पत्र बाद में प्रस्तुत किया गया था, जबकि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित

Straight

प्रारूप पर प्रमाण पत्र कभी प्रस्तुत नहीं किया है। हालांकि यह तर्क विज्ञापन के तहत निर्धारित शर्तों को देखते हुए काफी प्रभावशाली प्रतीत होता है, लेकिन किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि एक ही सरकारी प्राधिकारी द्वारा दो प्रमाण पत्र जारी किए जा रहे हैं, और दो अलग-अलग प्रारूपों में उद्देश्य/उद्देश्य एक ही है, तो अपेक्षित जानकारी प्रस्तुत करते हुए, परिस्थितियों के तहत राज्य चयन निकाय केवल इस आधार पर उम्मीदवारी को अस्वीकार नहीं कर सकता है कि अपेक्षित अवधि के विज्ञापन के तहत आवश्यक विशेष प्रारूप पर प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, भले ही अपेक्षित अवधि का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया हो।

19. इस स्तर पर भी दिनांक 25.2.2021 के विज्ञापन के खंड 5.4(4) को पढ़ना आवश्यक है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> *" अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा निर्धारित प्रारूप–1 निर्धारित अवधि का प्रमाण पत्र प्रस्तुत न किये जाने अथवा भारत सरकार की सेवाओं हेतु मान्य अन्य पछड़ा वर्ग श्रेणी को प्रमाण–पत्र प्रस्तुत किये जाने पर उसको अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में व्यवहृत किया जायेगा ।"*

20. यद्यपि खंड 5.4(4) की भाषा में बहुत सारे शब्दों में यह निर्धारित किया गया है कि प्रमाण पत्र भारत सरकार के अधीन पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर नहीं होना चाहिए, लेकिन जिस उद्देश्य से खंड तैयार किया गया है, उसे देखते हुए उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश राज्य में आरक्षण के तहत विशेष श्रेणी के लिए पात्र होने के लिए जाति को प्रमाणित करने वाला प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होगा।

21. ऐसे मामले हो सकते हैं, जहां किसी जाति को केंद्र सरकार की अधिसूचना के अनुसार विशेष आरक्षित श्रेणी में माना जाता है, लेकिन राज्य में नहीं और इसके विपरीत, क्योंकि केंद्र सरकार के तहत पदों के लिए देश के विभिन्न राज्यों से आवेदन आते हैं और इसलिए भारत संघ/केंद्र सरकार ने सभी राज्यों के लिए एक समान प्रारूप निर्धारित किया है। इसलिए, हमें एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। प्रारूप, चाहे केंद्र सरकार का हो या राज्य सरकार का, यदि उसमें किसी व्यक्ति को किसी विशेष जाति से संबंधित पहचानने के लिए सभी अपेक्षित चीजें हैं, ताकि आरक्षण के लिए उसकी पात्रता का पता लगाया जा सके, तो इसे स्वीकार्य होना चाहिए, बशर्ते कि दोनों प्रमाण पत्र एक ही प्राधिकारी और एक ही राज्य द्वारा जारी किए गए हों, जहां पद राज्य सरकार के अधीन हैं और चयन और भर्ती के अधीन हैं।

22. यहां मैं खंडपीठ के फैसले के पैराग्राफ 29 का संदर्भ देना चाहूंगा, जिसमें आरक्षण को राज्य सरकार की ओर से समाज के सबसे परिभाषित वर्ग तक पहुंचने के लिए सरकारी सेवा में उचित प्रतिनिधित्व देने के उद्देश्य से उन्हें देश की मुख्य धारा में लाने के लिए एक सकारात्मक कार्रवाई माना गया है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रिंकी यादव (सुप्रा) के खंडपीठ के फैसले के पैराग्राफ 29 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"29. इस मामले से अलग होने से पहले, हम यह देख सकते हैं कि समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण का लाभ भारत के संविधान के तहत एक सकारात्मक कार्रवाई के रूप में स्वीकार्य है। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता को नियुक्ति दी गई थी, जबकि उसने कांस्टेबल (सिविल पुलिस) के पद पर चयन में ओ.बी.सी. उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण का लाभ मांगा था। केवल इसलिए कि उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र प्रारूप-1 में नहीं था, हालांकि उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि वह उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा पहचाने गए ओबीसी समूह से संबंधित हैं और यह भी कि वह उक्त उद्देश्य के लिए उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा निर्धारित मानदंडों के संदर्भ में क्रीमी लेयर से संबंधित व्यक्ति के रूप में बाहर नहीं आती हैं, राज्य प्राधिकारियों द्वारा उनके अन्यथा संवैधानिक रूप से गारंटीकृत सकारात्मक कार्रवाई के अधिकार को अस्वीकार करने के लिए इसका सहारा नहीं लिया जाना चाहिए।

23. यहां गौरव शर्मा (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले के अंतिम पैराग्राफ 5 का संदर्भ लेना भी आवश्यक है जिसमें प्रश्न संख्या 3 का उत्तर दिया गया है और जिस पर अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील ने अपने तर्क के समर्थन में बहुत अधिक भरोसा किया था। पैराग्राफ 28 में प्रश्न संख्या 3 में पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया उत्तर नीचे पुन: प्रस्तुत है:

"28. गौरव शर्मा (सुप्रा) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए तर्क को लागू करते हुए, हम तदनुसार इस राय पर पहुंचे हैं कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत और भरोसा किया गया प्रमाण पत्र, दिनांक 15 अप्रैल 2021, जो तहसीलदार, उन्नाव द्वारा जारी किया गया था, पर्याप्त रूप से प्रमाणित और साक्ष्य देता है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा पहचाने गए और मान्यता प्राप्त ओ.बी.सी. समूह से संबंधित है और आगे यह कि वह उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा क्रीमी लेयर के तहत बहिष्कार के लिए निर्धारित मानदंडों के अनुसार क्रीमी लेयर में नहीं आती है और इसलिए वह ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवार के लिए उपलब्ध आरक्षण का दावा करने के लिए पात्र और हकदार है।"

24. निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि अभ्यर्थी को प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है, जो यह प्रमाणित करता हो कि वह राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और पहचानी गई ओबीसी श्रेणी से संबंधित है, इसलिए पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए उत्तर के पीछे का तर्क बहुत स्पष्ट प्रतीत होता है कि अभ्यर्थी को प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है, जो यह प्रमाणित करता हो कि वह उस विशेष श्रेणी की जाति से संबंधित है, जिसके अंतर्गत वह आरक्षण लाभ का दावा करता है।

25. मैं यहां यह भी कहना चाहूंगा कि आरक्षण का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक रूप से सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाना है और राज्य और राष्ट्र

स्तर पर जातियों की पहचान की जाती है और उन्हें सरकारी सेवा में आरक्षण देने के लिए ऐसी श्रेणी में अधिसूचित किया जाता है, इसलिए यदि राज्य द्वारा अधिसूचित किसी व्यक्ति की जाति के बारे में कोई विवाद नहीं है, तो उस राज्य में नियमितीकरण का लाभ पाने के लिए यह मायने नहीं रखता कि किस प्रारूप पर प्रमाण पत्र जारी किया गया है। भारत संघ और राज्य दोनों के तहत पद ऐसी श्रेणी के लिए आरक्षित हैं और राज्य प्रमाण पत्र जारी कर रहा है, एक केंद्र सरकार के तहत पदों के लिए और दूसरा राज्य सरकार के तहत पदों के लिए, यदि अपेक्षित जानकारी उपलब्ध है, तो केंद्र सरकार के तहत पदों के लिए निर्धारित प्रारूप पर होने के कारण किसी प्रमाण पत्र को अस्वीकार करना काल्पनिक दृष्टिकोण होगा। इस सीमा तक विज्ञापन में प्रासंगिक खंड को उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिए।

26. वर्तमान मामले में चाहे वह भारत सरकार के अधीन पदों के लिए प्रारूप हो या राज्य सरकार के पदों के लिए प्रारूप हो, दोनों ही प्रमाण पत्र राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि याचिकाकर्ता अहीर जाति, ओबीसी जाति से संबंधित है और क्रीमी लेयर से संबंधित नहीं है, जहां तक ओबीसी श्रेणी के लिए उसकी पात्रता का संबंध है, प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को खारिज करना उचित नहीं है।

27. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे विज्ञापन पीआरपीबी- एनएसके-2 (3 एफओ/2020) दिनांक 25.2.2021 के तहत उप निरीक्षक के पद पर भर्ती के लिए आयोजित चयन में याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अन्य पिछड़ी जाति के उम्मीदवार के रूप में विचार करें। याचिकाकर्ता को प्राप्त अंकों के अनुसार ओबीसी श्रेणी की मेरिट सूची में रखा जाएगा और यदि वह अंतिम कट ऑफ के बराबर या उससे ऊपर है, तो उसे नियुक्ति की पेशकश की जाएगी।

(2023) 8 ILRA 256

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

विशेष अपील संख्या 1013 वर्ष 2018

अन्य संबंधित मामलों के साथ

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...अपीलार्थी

बनाम

शिव जग शर्मा एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता:

श्री योगेंद्र कुमार सिंह

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

अपर महाधिवक्ता, ए.एस.जी.आई., श्री योगेश कुमार सक्सेना, श्री योगेश कुमार सक्सेना

सिविल कानून - सिविल सेवा विनियमन, 1986 - विनियमन 361 - औद्योगिक सेवायोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 -

उ.प्र. छंटनीग्रस्त कर्मचारियों का आमेलन नियमावली, 1991 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 - अनुच्छेद 226 - परिसमापन के बाद उ.प्र. सीसीएल कर्मचारियों का अन्य सरकारी विभागों में शासित आमेलन राज्य ने सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 के अंतर्गत राज्य के स्वामित्व वाली चुर्क और डाला सीमेंट कारखानों के कामगारों को 31.03.1981 तक की सेवा के लिए पेंशन लाभ देने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश (12.03.2018) के विरुद्ध अपील की। मूल प्रश्न यह था कि औद्योगिक सेवायोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 द्वारा शासित इन कामगारों को औद्योगिक कर्मचारियों के रूप में उनकी स्थिति और 01.04.1981 से उ.प्र. सीमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड में बाद में आमेलन को देखते हुए, पेंशन के लिए पात्र सिविल सेवकों के रूप में माना जा सकता है या नहीं। न्यायालय ने प्रतिवादियों के पेंशन लाभ के हक की पुष्टि की और राज्य के इस तर्क को खारिज कर दिया कि कामगार सिविल सेवक नहीं थे। निर्णय राज्य की अपनी नीति (02.08.2005 आदेश), अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समान व्यवहार के न्यायसंगत सिद्धांत और गोरख नाथ पांडे के साथ तथ्यात्मक पहचान पर आधारित था।

अपील खारिज कर दी गई।

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. अजीत कुमार नाग बनाम महाप्रबंधक (पीजे), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (2005) 7 एससीसी 764:

2. गोरख नाथ पांडे बनाम उ.प्र. राज्य (विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 773 वर्ष 2016)

3. उ.प्र. राज्य बनाम गोरख नाथ पांडे (एसएलपी (सिविल) डायरी संख्या 11199 वर्ष 2018, 01.05.2018)

4. कमला नेटी बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (2023) 3 एससीसी 528; बी. प्रेमानंद बनाम मोहन कोइकल (2011) 4 एससीसी 266; पी.एम. लता बनाम केरल राज्य (2003) 3 एससीसी 541:

5. उ.प्र. राज्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव (2015) 1 एससीसी 347:

6. आजम जाही मिल वर्कर्स एसोसिएशन बनाम नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [2021 (4) ईएससी 880 (एससी)]:

7. वीएसएम. सालगावकर एंड ब्रदर्स बनाम सीआईटी (2000) 5 एससीसी 373;

8. कुन्हयाम्मेड बनाम केरल राज्य (2000) 6 एससीसी 359:

9. वांडर लिमिटेड बनाम एंटोक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (1990 (सप्पलिमेंट) एससीसी 727);

10. रोमा सोनकर बनाम म.प्र. राज्य लोक सेवा आयोग (2018) 17 एससीसी 106

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

और

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह के सहायक विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज कुमार राय एवं प्रत्यर्थियों-अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अमित वर्मा एवं प्रत्यर्थियों-याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री योगेश कुमार सक्सेना को सुना।

2. वर्तमान इंट्रा-कोर्ट अपील रिट ए संख्या 33526/2016 (शिव जग शर्मा और 9 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 12.03.2018 के विरुद्ध दायर की गई है।

3. उस आदेश के द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस न्यायालय के **रिट-ए संख्या 61107/2013 (गोरख नाथ पांडे और 15 अन्य बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य)** के मामले में एकल न्यायाधीश के फैसले दिनांकित 12.04.2016 से उत्पन्न **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 773/2016 (उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य बनाम गोरख नाथ पांडे एवं 15 अन्य),** मामले में एक खण्ड पीठ के पहले के फैसले का पालन करते हुए रिट याचिका को अनुमति दी है।

4. संक्षेप में, याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी जो यूपी सरकार द्वारा स्थापित चुर्क और डाला सीमेंट कारखानों में कामगार के रूप में कार्यरत थे, उन्हें राज्य सरकार के उन सीमेंट कारखानों में प्रदान की गई सेवा के वर्षों के अनुरूप अंतिम तिथि यानि 31.03.1981 तक पेंशन का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। उस तारीख को 10 साल की अर्हक सेवा प्रदान करने के बाद, उन्हें सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 के तहत उस लाभ के लिए पात्र पाया गया।

5. विद्वान अपर महाधिवक्ता की दलीलें हैं, सभी याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों को राज्य सरकार द्वारा स्थापित चुर्क और डाला सीमेंट कारखानों में कामगार के रूप में नियुक्त किया गया था। हालाँकि, उन्होंने उस क्षमता में 10 वर्षों की अवधि तक लगातार सेवा की हो सकती है, वे कभी भी सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 के अर्थ के तहत सिविल सेवक होने का दावा नहीं कर सकते हैं। याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों को केवल औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 (इसके बाद "अधिनियम, 1946" के रूप में संदर्भित) के तहत कामगार के रूप में नियुक्त किया गया था और स्थायी आदेश जारी किया गया था उसके तहत. सरकारी आदेश संख्या 1355, दिनांक 18.04.1972 का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि ऊपर वर्णित सीमेंट कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों और राज्य सरकार के अन्य कर्मचारियों और अधिकारियों के बीच अंतर, जिन्होंने सरकार की स्थापना काम किया हो सकता है और जो औद्योगिक स्थायी आदेशों द्वारा शासित थे, उनकी बराबरी कभी नहीं की गई होगी।

6. दिनांक 01.07.1989 के एक अन्य सरकारी आदेश का भी संदर्भ दिया गया है, यह प्रस्तुत करने के लिए कि यह केवल अस्थायी सरकारी

सेवकों पर लागू होता है, लेकिन उन श्रमिकों पर नहीं, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो।

7. एक अन्य कार्यालय आदेश संख्या 3047-51, दिनांक 02.08.2005 का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि पेंशन योजना का लाभ केवल ऊपर वर्णित सीमेंट कारखानों के अधिकारियों और अस्थायी सरकारी कर्मचारियों पर लागू था, जो कि शासित नहीं थे। औद्योगिक स्थायी आदेश, उन कामगारों को छोड़कर जो मौजूदा औद्योगिक स्थायी आदेशों की शर्तों से शासित होते हैं।

8. सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले **अजीत कुमार नाग बनाम महाप्रबंधक (पीजे), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड; (2005) 7 एससीसी 764** पर भरोसा करते हुए यह ज़ोर देकर आग्रह किया गया है कि राज्य सरकार के स्वामित्व वाले औद्योगिक प्रतिष्ठान में कार्यरत कर्मचारी कभी भी सरकारी कर्मचारी का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। चूँकि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी उत्तर प्रदेश में राज्य सरकार द्वारा दिनांक 1.4.1981 से निगमित सीमेंट निगम में अपने समायोजन की तिथि तक राज्य सरकार के कर्मचारी बने रहे। उन्होंने कभी भी, या तो राज्य सरकार के स्वामित्व वाले किसी कारखाने में या राज्य सरकार के स्वामित्व वाले निगम के कारखाने में श्रमिक के रूप में काम करते हुए सरकारी/सिविल सेवक का दर्जा हासिल नहीं किया।

9. सरकारी कर्मचारी का दर्जा कुछ याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों ने हासिल किया होगा, जो बाद में यू.पी. छंटनी कर्मचारियों के समायोजन नियम, 1991 के तहत अन्य सरकारी विभागों में समायेाजित हो गए, जो कि विद्वान कंपनी न्यायाधीश के दिनांक 8.12.1989 के आदेश के अनुसार यू.पी. सीमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड के समापन के कारण हुआ। याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों में से किसी ने भी सरकारी कर्मचारी के रूप में ऐसे समायोजन की तारीख के बाद अर्हक सेवा पूरी करने का दावा नहीं किया है।

10. उस तथ्यात्मक आधार में, विद्वान एकल न्यायाधीश के पहले के आदेश को प्रस्तुत किया गया है गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त) के मामले में कानून की गलत धारणा पर आधारित था। इसने उस मामले में याचिकाकर्ताओं की सही स्थिति पर ध्यान नहीं दिया और राज्य सरकार के कर्मचारियों को सरकारी कर्मचारी/सिविल सेवक मान लिया। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई उस गलती को इंट्रा कोर्ट अपील विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 773/2016 (उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य बनाम गोरख नाथ पांडे एवं 15 अन्य) (इसके बाद इसे "के रूप में संदर्भित किया गया है)गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त) में ठीक नहीं किया गया".

11. सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष राज्य द्वारा आगे उठाई गई चुनौती पर, इस न्यायालय की समन्वय पीठ के उस दृष्टिकोण की पुष्टि नहीं की गई। इस प्रकार, विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 11199/2018 (उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम गोरख नाथ पांडे एवं अन्य) निम्नलिखित आदेश दिनांक 01.05.2018 द्वारा निर्णय लिया गया:

"विलंब क्षमा किया गया।

आधिकारिक अनुवाद दाखिल करने से छूट के लिए आवेदन की अनुमति है।

इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के इच्छुक नहीं हैं। इसलिए, इस विशेष अनुमति याचिका को खारिज किया जाता है, जिससे कानून का प्रश्न खुला रह जाता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आक्षेपित निर्णय को उदाहरण के रूप में नहीं माना जा सकता है।"

12. इस प्रकार, सुप्रीम कोर्ट द्वारा पाए गए उस मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर ही एसएलपी खारिज कर दी गई। साथ ही, उस अपील में उठाए गए कानून के सवाल को विशेष रूप से खुला छोड़ दिया गया था कि क्या सरकारी कारखाने के एक कर्मचारी को सरकारी कर्मचारी के बराबर माना जा सकता है और वह पेंशन के लिए पात्र हो सकता है। इस संबंध में किसी भी संदेह को सुप्रीम कोर्ट ने यह कहते हुए स्पष्ट कर दिया कि इस न्यायालय की खंडपीठ के उक्त निर्णय को एक मिसाल के रूप में नहीं माना जाएगा।

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश के मद्देनजर, विद्वान अपर महाधिवक्ता आगे तर्क देते हे कि, इस मुद्दे की जांच दोबारा की जानी है और, किसी भी मामले में, न्यायालय की एक बड़ी पीठ को भेजा गया।

14. चूँकि इक्विटी सीधे तौर पर कानून के विरुद्ध हैं, इसलिए इस न्यायालय का काम इक्विटी के पक्ष में फैसला देना नहीं है। यहां सुप्रीम कोर्ट के फैसलों **कमला नेति बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी और अन्य; (2023) 3 एससीसी 528, बी. प्रेमानंद एवं अन्य बनाम. मोहन कोइकल और अन्य; (2011) 4 एससीसी 266 और पी.एम. लता और अन्य बनाम. केरल राज्य और अन्य; (2003) 3 एससीसी 541** पर भरोसा जताया गया है।

15. अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने समय के भीतर इस न्यायालय से संपर्क नहीं किया और इसलिए वे कोई भी राहत पाने के हकदार हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उनकी रिट याचिकाओं को स्वीकार करने में गलती की है। यहां, इस न्यायालय की तीन समन्वय पीठ के फैसलों **यूपी राज्य और 3 अन्य बनाम मो. इसरार खान और 40 अन्य; तटस्थ उद्धरण संख्या 2023:एएचसी:105865-डीबी, उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य बनाम गौतम दास और 46 अन्य; तटस्थ उद्धरण संख्या 2023:एएचसी: 105868-डीबी और यूपी राज्य और 2 अन्य बनाम. संत लाल विश्वकर्मा और 50 अन्य; तटस्थ उद्धरण संख्या 2023:एएचसी:116438-डीबी** पर भरोसा किया गया है।

16. दूसरी ओर, श्री योगेश कुमार सक्सेना ने कहा कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों को 1.4.1981 से यू.पी. सीमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड को उनके द्वारा दी गई सेवाओं का कोई लाभ नहीं दिया गया है। निस्संदेह, उन सेवाओं को राज्य सरकार द्वारा स्थापित निगम को दी गई सेवा माना जाना चाहिए। वह निगम राज्य सरकार से अलग और भिन्न इकाई थी। इसलिए, **अजीत कुमार नाग (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय का कथन वर्तमान तथ्यों पर पूरी तरह से लागू नहीं होता है, क्योंकि वह अनुपात केवल राज्य के स्वामित्व वाले निगम के कर्मचारियों के संदर्भ में उत्पन्न हुआ था। उस मामले में, यह कभी विवाद में नहीं था कि क्या राज्य सरकार के स्वामित्व वाले औद्योगिक प्रतिष्ठान के तहत एक कर्मचारी सरकारी कर्मचारी या सिविल सेवक के समान स्तर पर खड़ा हो सकता है।

17. वर्तमान मामले में जो सटीक मुद्दा उत्पन्न हुआ था, उसे राज्य सरकार ने सबसे पहले राज्य सरकार के कर्मचारियों के नामकरण से संबंधित सरकारी आदेश संख्या 1355, दिनांक 18.04.1972 जारी करके निस्तारित किया था। फिर, आगे के सरकारी आदेश दिनांक 01.07.1989 द्वारा, यह विशेष रूप से प्रदान किया गया था कि सरकारी सेवकों को मिलने वाले सेवानिवृत्ति लाभ अस्थायी सरकारी सेवकों तक भी विस्तारित होंगे। किसी भी मामले में, 02.08.2005 को, राज्य सरकार को वर्तमान मामले पर लागू तथ्यात्मक स्थिति का संज्ञान था, अर्थात उसके स्वामित्व वाले औद्योगिक प्रतिष्ठान के श्रमिकों को 1.4.1981 से उसके द्वारा स्थापित निगम द्वारा स्थायी रूप से अवशोषित कर लिया गया था। उस संदर्भ में, राज्य सरकार के कर्मचारियों को ऐसे कर्मचारियों के रूप में वर्णित किया गया था जिनके संदर्भ में उक्त कार्यालय आदेश के माध्यम से प्रावधान किया जा रहा था। उक्त आदेश के क्रम संख्या-3 में स्पष्ट रूप से राज्य सरकार की सीमेंट फैक्ट्री चुर्क एवं डाला के कर्मियों का उल्लेख है। राज्य सरकार ने तब ऐसे कर्मियों को अस्थायी सरकारी सेवक मानते हुए/समान मानते हुए पेंशन लाभ बढ़ाने के अपने निर्णय की घोषणा की, जिन्हें ऐसा लाभ पिछले सरकारी आदेश दिनांक 01.07.1989 द्वारा बढ़ाया गया था।

18. यह निर्णय राज्य सरकार द्वारा स्वयं लिया गया और लागू किया गया, याचिकाकर्ता स्पष्ट रूप से इसके लाभ के हकदार थे। यदि कोई भेद किया जा रहा था, तो उसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में निस्तारित किया गया था इसके बाद, यह पाया गया कि, राज्य सरकार द्वारा स्थापित सीमेंट फैक्ट्री में 10 वर्षों से अधिक समय तक काम करने के बाद, वे कर्मचारी स्वयं-समान सरकारी आदेश (ऊपर चर्चा) के तहत पेंशन लाभ के हकदार थे।

19. विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त आदेश को दी गई चुनौती पर, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने स्वयं-समान मुद्दे से निपटा और उस प्रस्तुतीकरण को निरस्त कर दिया जो अब राज्य सरकार की ओर से आगे बढ़ाया जा रहा है। सिविल सेवा विनियमन के प्रावधानों की विस्तृत चर्चा के बाद, समन्वय पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि राज्य सरकार के

स्वामित्व वाले औद्योगिक प्रतिष्ठान के कर्मचारी सरकारी सेवक के रूप में पेंशन लाभ के हकदार रहेंगे।

20. हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने समन्वय पीठ के आदेश को पूरी तरह से मंजूरी नहीं दी है और इस प्रकार इसकी पुष्टि नहीं की है, लेकिन उसने इसे उलटा नहीं किया है और किसी भी मामले में, इसने कोई विपरीत कानून नहीं बनाया है। उस आदेश में की गई बाद की टिप्पणी ने कानून के प्रश्न को खुला छोड़ दिया और इस कारण से समन्वय पीठ के निर्णय को मिसाल बनाने की अनुमति नहीं दी, केवल यह इंगित करता है कि यदि तथ्य भिन्न हैं तो इसे तर्क के माध्यम से लागू नहीं किया जाना चाहिए। .

21. जहां तक वर्तमान मामले में वही तथ्य मौजूद हैं जो गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त) में मौजूद हैं 1.5.2018 के अपने आदेश के तीसरे पैराग्राफ में सुप्रीम कोर्ट द्वारा नोट किए गए तथ्यों की विशिष्टता वर्तमान मामले में भी प्राप्त होती है। यह राज्य-प्रतिवादियों का मामला नहीं है कि प्रत्यर्थियों का वर्तमान समूह **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में याचिकाकर्ताओं की तुलना में एक अलग स्तर पर खड़ा है। इसलिए, जबकि ऐसा कोई कानून उत्पन्न नहीं हुआ है जो न्यायालय को बाध्य कर सके भविष्य के निर्णयों में, एक ही समय में, स्थिरता का नियम और समानता के सिद्धांत निर्देशित होंगे, न्यायालय कोई भेदभाव नहीं कर सकता है क्योंकि इससे समान लोगों के साथ असमान व्यवहार किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के **आज़म जाही मिल वर्कर्स एसोसिएशन बनाम की संशोधित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना 2002, नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य; [2021 (4) ईएससी 880 (एससी),** के फैसले पर भरोसा करते हुए यह दृढ़तापूर्वक आग्रह किया गया है कि न्यायालय स्वयं कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है जिसके परिणामस्वरूप समान लोगों के साथ असमान व्यवहार किया जा सकता है। देरी के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है, न तो ऐसा कोई आधार विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उठाया गया था और न ही वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता की ओर से कोई अत्यधिक देरी हुई है। ये याचिकाएँ विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में फैसला सुनाए जाने के तुरंत बाद दायर की गईं।

22. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, हम समन्वय पीठ को पाते हैं **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** वर्तमान अपील में पेश की जा रही बिल्कुल उन्हीं दलीलों से निपटने का अवसर मिला। वहां भी, एक मुद्दा उठाया गया था कि राज्य सरकार द्वारा स्थापित एक सीमेंट फैक्ट्री के ठीक इसी तरह स्थित श्रमिकों को सिविल सेवकों के बराबर नहीं माना जा सकता है और इसलिए, उन्हें सिविल सेवा के विनियमन 361 के तहत पेंशन लाभ विनियम के हकदार नहीं पाया जा सकता है। हमारे सामने मौजूद विवाद के संबंध में, समन्वय पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की थी:

"विद्वान महाधिवक्ता की दलील का सार यह है कि एक बार जब याचिकाकर्ताओं को स्थायी

आदेश अधिनियम के तहत सौंपे जाने वाले अर्थ के भीतर कामगारों/ औद्योगिक कर्मचारियों के विवरण का उत्तर देते हुए पाया जाता है, तो उन्हें एक व्यक्ति की परिभाषा से बाहर रखा जाता है। यूपी मौलिक नियमों/ सिविल सेवा विनियमों के तहत किसी सिविल पद पर या सिविल सेवा में नियुक्त किया गया है और इसलिए वे पेंशन के हकदार नहीं हैं।

> हमने विद्वान महाधिवक्ता से विशेष रूप से पूछताछ की कि यू.पी. मौलिक नियम/सिविल सेवा विनियम/स्थायी आदेश अधिनियम के किस प्रावधान के तहत, उन व्यक्तियों के संबंध में ऐसा कोई भी बहिष्करण जो कामगार हैं और सिविल पद पर नियुक्त व्यक्ति नहीं हैं। कोई प्रतिक्रिया नहीं दी जा सकी यह कमोबेश एक है।
>
> यह स्वीकार किया गया कि पेंशन/ सेवानिवृत्ति बकाया के भुगतान के मामले में कामगारों/औद्योगिक कर्मचारियों को बाहर करने का कोई विशेष प्रावधान नहीं है, जो अन्यथा सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 के अनुसार सभी शर्तों को पूरा करते हैं।

स्थायी आदेश अधिनियम को अनुशासनात्मक कार्रवाई, छुट्टी, भत्ते आदि जैसी सेवा की शर्तों को कम करने के उद्देश्य से लागू किया गया है ताकि औद्योगिक उपक्रम में श्रमिकों और नियोक्ता के बीच अंतर को कम किया जा सके। ऐसे औद्योगिक उपक्रम निजी उपक्रम या सरकारी उपक्रम या सार्वजनिक निजी उपक्रम हो सकते हैं। अधिनियम, 1946 की धारा 2 (डी) (ii) में निहित नियोक्ता की परिभाषा का संदर्भ लेना उपयोगी है, जो इस प्रकार है:

"2. व्याख्या.

(डी) "नियोक्ता".....

(ii) भारत में किसी भी सरकार के किसी भी विभाग के नियंत्रण में किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान में, इस संबंध में ऐसी सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी, या जब फिर कोई प्राधिकारी विभाग का प्रमुख नियुक्त नहीं किया जाता है,;"

> इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि एक सरकार औद्योगिक उपक्रम की मालिक हो सकती है और उस परिस्थिति में, ऐसे औद्योगिक उपक्रम में काम करने वाले कर्मचारी को सरकार की सेवा में माना जाना चाहिए और यदि नियुक्ति वास्तविक है और उसकी सेवा का भुगतान किया जाना है सरकार, वह सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 के प्रावधानों द्वारा कवर किया गया है, जो उसे पेंशन का हकदार बनाता है।

त्वरित संदर्भ के लिए, सिविल सेवा विनियमों का विनियम 361 इस प्रकार है:

"361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होती जब तक वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:---

पहला- सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा-रोजगार ठोस और स्थायी होना चाहिए।

तीसरा- सेवा का भुगतान सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।"

हम यह समझा सकते हैं कि सिविल सेवा विनियमों के तहत "सिविल सेवा" शब्द का उपयोग सरकार में सभी प्रकार के रोजगार को शामिल करने के लिए पढ़ा जाना चाहिए, सिवाय उन लोगों को छोड़कर जो रक्षा सेवा या रक्षा से जुड़ी सेवा से संबंधित हैं।

हॉटन मिफ्लिन कंपनी द्वारा द न्यू डिक्शनरी ऑफ कल्चरल लिटरेसी, तीसरे संस्करण में परिभाषित सिविल सेवा इस प्रकार है:

"गैर-सैन्य कर्मी जो सरकार के लिए काम करते हैं, उसके कानूनों और विनियमों को लागू करते हैं।"

हमारी राय में प्रमाणित स्थायी आदेश, अधिनियम, 1946 के अनुसार निर्धारित सेवा शर्तें किसी भी तरह से सरकारी औद्योगिक उपक्रम में काम करने वाले कर्मचारी के विनियम 361 के तहत पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय के हकदार होने के अधिकार का उल्लंघन नहीं करती हैं। सिविल सेवा विनियम. सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 के प्रावधान एक लाभकारी कानून हैं और हमें ऐसा कोई कारण नहीं मिलता है कि प्रमाणित स्थायी आदेशों के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 के लाभों से बाहर रखा जाए, यदि वे सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करें।

हमारी राय में सरकारी औद्योगिक उपक्रम के एक श्रमिक/औद्योगिक कर्मचारी को भी सरकार के अधीन एक सिविल सेवक/सिविल पद का धारक माना जाना चाहिए ताकि सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 361 के अर्थ में कवर किया जा सके।

चुर्क स्थित फैक्ट्री में नियुक्त और बाद में निगम में समाहित किए गए अन्य कर्मचारियों को 2 अगस्त, 2005 के सरकारी आदेश के अनुसार पेंशन का भुगतान करने के संबंध में कोई समस्या नहीं है।

ऊपर दर्ज कारणों से हमें इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि समान रूप से नियुक्त और समायोजित श्रमिकों/ औद्योगिक कर्मचारियों को समान लाभ से वंचित क्यों किया जाए। यह माना जाता है कि जो याचिकाकर्ता औद्योगिक कर्मचारियों/कामगारों के विवरण का उत्तर देते हैं, वे भी 2 अगस्त, 2005 के सरकारी आदेश के दायरे में आएंगे और उसके बाद सभी लाभों के हकदार होंगे।

रिकॉर्ड पर मौजूद परिस्थितियों की समग्रता में हमें 12 अप्रैल, 2016 के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले और आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों में कोई तथ्य नहीं मिलता है।

इन सभी अपीलों में योग्यता नहीं है और इसलिए इन्हें खारिज किया जाता है।"

23. इस प्रकार, हम पाते हैं, ठीक वही दलील समन्वय पीठ के समक्ष उठाई गई थी। इसे इस तर्क के साथ निपटाया गया और खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ताओं (उस मामले में) को राज्य सरकार द्वारा दिनांक 02.08.2005 को लिए गए निर्णय पर पेंशन लाभ देने के उद्देश्य से विशेष रूप से शामिल किया गया था। आज भी यह मामला किसी का नहीं है कि आयुक्त एवं निदेशक, उद्योग, उ.प्र. सरकार द्वारा जारी उपरोक्त कार्यालय आदेश को बाद में किसी आगामी तिथि पर वापस ले लिया गया या संशोधित कर दिया गया। राज्य सरकार का वह निर्णय न केवल अस्तित्व में रहा, बल्कि उसे **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में राज्य सरकार के विरुद्ध लागू भी कर दिया गया।

24. इसलिए, केवल स्थायी आदेश का संदर्भ (11) याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों को कामगार के रूप में नियुक्त करने के नियम और शर्तें यह स्थापित करती हैं कि तकनीकी रूप से यह सच है कि औद्योगिक प्रतिष्ठान के कामगार राज्य सरकार के एक कर्मचारी की तुलना में अलग स्तर पर खड़े हो सकते हैं, जो अलग-अलग नियमों के तहत नियुक्त कर्मचारी का दर्जा प्राप्त कर रहे हैं। हालांकि स्थिति की तकनीकी कमी को हमेशा न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जा सकती है, फिर भी, राज्य-सरकार/नियोक्ता के लिए यह हमेशा खुला है कि वह पेंशन लाभ देने के लिए अपने कर्मचारियों के साथ एक कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में अपने अन्य कर्मचारियों के समान व्यवहार करे। यह सटीक निर्णय राज्य सरकार द्वारा वर्तमान याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों के पक्ष में 02.08.2005 को लिया गया प्रतीत होता है, जब उसने याचिकाकर्ताओं-प्रत्यर्थियों को अन्य सरकारी कर्मचारियों के बराबर कर पेंशन लाभ देने की मांग की स्थिति के उपरोक्त अंतर के प्रति सचेत होने के बावजूद निर्णय लिया था। कार्यालय आदेश दिनांक 02.08.2005 का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:

"कार्यालय आदेश

उत्तर प्रदेश राज्य सीमेण्ट निगम लिमिटेड की चुर्क / चुनार एवं अन्य ईकाईयों से सेवानिवृत्त कुछ कर्मचारियों द्वारा माननीय उच्च न्यायालय में पेन्शन एवं अन्य परिणामी लाभ दिये जाने हेतु याचिकाये योजित की गई। इन याचिकाओं में मा० उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के परिप्रेष्य में समय समय पर शासन द्वारा याचीगणों को पेन्शन उच्चीकृत किये जाने हेतु कतिपय शर्तों के अंतर्गत अनुमन्यता प्रदान की गई। याचीगणों को पेन्शन अनुमन्य किये जाने पर अन्य अधिकारियों / कर्मचारियों द्वारा भी पेन्शन स्वीकृत किये जाने हेतु शासन से मांग की गई। अधिकारियों / कर्मचारियों की मांगों पर सम्यक रूप से विचारोपरान्त शासन स्तर पर दिनांक 24-7-2003 को विशेष सचिव, औद्योगिक विकास अनुभाग - 1 की अध्यक्षता में हुई बैठक में निर्णय लिया गया कि मा० उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुश्रवण में याचीगण अथवा अन्य पूर्व कर्मचारियों के पेन्शन की

स्वीकृति संबंधी जो आवेदन पत्र प्राप्त हुए उकने संबंध में उद्योग निदेशालय द्वारा कार्यवाही की जायेगी, पेन्शनरी लाभ दिये जाने हेतु निगम के पूर्व कर्मचारियों के सेल अभिलेख शासकीय समापक इलाहाबाद से व्यक्तिगत प्रयास करके प्राप्त कर लिये जाये इसके लिये उद्योग निदेशालय के स्थानीय अधिकारियों का सहायोग लिया जाये एवं जो अभिलेख पर्याप्त प्रयासों के बावजूद उपलब्ध नहीं हो पतो है उनके संबंध में नियमानुसार शपथपत्र प्राप्त करके कार्यवाही की जाये।

शासन के उपरोक्त आदेशानुसार उक्त अधिकारियों / कर्मचारियों से प्राप्त पेंन्शन प्रपत्रों पर कार्यवाही करते हुए महालेखाकार के माध्यम से पेन्शन अनुमन्य कराई जाती है उक्त सीमेण्ट फैक्ट्रिया उद्योग विभाग के अन्तर्गत संचालित थी एवं इन फैक्ट्रियों में जो कर्मचारी थे वे राजकीय सेवक थे कालान्तर में उ० प्र० राज्य सीमेण्ट निगम लि० की स्थापना होने पर उक्त फैक्ट्रियां निगम के नियंत्रणाधीन चली गई एवं उनमें कार्यरत कर्मचारियों की सेवायें 1.4.1972 से सीमेण्ट निगम में स्थानान्तरित हो गई। इन कर्मचारियों की यह सेवायें निगम में 1.4.1972 से प्रतिनियुक्ति पर मानी गई एवं यह प्रतिनियुक्ति अवधि दिनांक 31.3.1981 तक बढ़ाई गई एवं 1.4.1981 से इन अधिकारियों / कर्मचारियों की सेवायें उ० प्र० राज्य सीमेण्ट निगम लि० में संविहीन हो गई इस प्रकार उ० प्र० राजय सीमेण्ट निगम लि० की सेवाओं आमेलन की तिथि (1.4.1981) से ठीक पूर्व इन कर्मचारियों द्वारा की गई सेवायें राजकीय सेवायें हैं।

उक्त कर्मचारियों के अस्थाई होने के कारण उन्हें सेवा नैवृत्तिक लाभो की स्वीकृति प्रदान नहीं की जा सकी थी चूंकि तत्समय राज्य सरकार के अस्थाई कर्मचारियों को पेन्शन सुविधा अनुमन्य नहीं थी । कालान्तर में वित्त विभाग (सामान्य अनुभाग - 3) के कार्यालय ज्ञाप संख्या सा० - 3 - 1152 / 89 दिनांक 1.7.1989 द्वारा अस्थाई कर्मचारियों को भी सेवा नैवृतकि लाभों की सुविधा अनुमन्य कर दी गई। तदनुसर सीमेण्ट निगम के उक्त कर्मचारी निगम की सेवा में आमेलन की तिथि से पूर्व की राजकीय सूचनाओं के लिये पेन्शनरी सुविधा हेतु अर्ह हो गये।

चूंकि उ०प्र० राज्य सीमेण्ट निगम लि० के लिक्वीडेशन की प्रक्रिया चल रही है यहां पर कोई भी अधिकारी शेष नहीं बचा है जो इन अधिकारियों / कर्मचारियों के पेन्शन प्रपत्रों का परीक्षा करके पेन्शन स्वीकृति हेतु उद्योग निदेशालय अग्रसारित कर सकें अतः इस संबंध में शासन स्तर पर सम्यक विचारोपरान्त लिये गये निर्णय के अनुसार उपरोक्त तीनों ईकाईयां जिकने अधिकारियों 2 कर्मचारियों के व्यक्तिगत अभिलेख सीमेण्ट निगम के चुर्क स्थिति कार्यालय में शासकीय सहायक की अभिरक्षा में उपलब्ध है को प्राप्त करके तदनुसार पेन्शन प्रपत्रों व जांच करके उन्हें उद्योग निदेशालय अग्रसारित किये जाने हेतु महा प्रबन्धक जिला उद्योग केनद्र सोनभद्र को अधिकृत किया जाता है। महाप्रबन्धक, जिला उद्योग केन्द्र सोनभद्र शासकीय समापक से प्राप्त कर्मचारियों के अभिलेखों के आधार पर उकने पेन्शन प्रपत्रों की जांच करके पेन्शन स्वीकृति हेतु निदेशालय को अग्रसारित करें

ताकि तदनुसार पेन्शन स्वीकृति हेतु नदेिशालय स्तर पर वांछित औपचारिकतायें पूर्ण कराने के उपरान्त उन्हें महा लेखाकार कार्यालय को भेजा जा सके। महा प्रबन्धक जिला उद्योग केन्द्र तत्काल कार्यवाही सुनिश्चित करेंगे।"

25. इस न्यायालय के लिए कभी भी उस प्रशासनिक निर्णय लेने में राज्य सरकार की बुद्धिमत्ता पर सवाल उठाना उचित नहीं था। जहाँ तक वह निर्णय राज्य सरकार द्वारा लेने की अनुमति थी, जाहिरा तौर पर भारत के संविधान के तहत कल्याणवादी उद्देश्यों को आगे बढ़ाते हुए, हमें वह निर्णय स्वयं उसके लिए अवैध या कानून के विपरीत उचित नहीं लगता। श्रमिकों को उस आदेश के आवेदन के दायरे से विशेष रूप से बाहर करने में विफल रहने के बाद, प्रत्यर्थी -अपीलकर्ता/राज्य के लिए अब यह याचिका दायर करना उचित नहीं था।

26. तर्क के संबंध में, हम पाते हैं कि **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश को समन्वय पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का कोई अवसर नहीं मिला। विद्वान एकल न्यायाधीश ने **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करने की इच्छा महसूस की। वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों में, अर्थात्, राज्य सरकार ने चुर्क और डाला में अपने पूर्ववर्ती सीमेंट कारखानों में नियुक्त औद्योगिक श्रमिकों को पेंशन लाभ का हकदार मानने के लिए खुद को चुना है और बीच के तथ्यों की सटीक पहचान को ध्यान में रखते हुए वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी और में **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)**, और इसके अलावा, राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए कार्यालय आदेश दिनांक 02.08.2005 की निरंतर प्रयोज्यता पर किसी भी विवाद की अनुपस्थिति में, ऐसे औद्योगिक कामगारों के लिए, जो 18.04.1972 और 01.07.1989 के सरकारी आदेशों के साथ पढ़े जाते हैं। कटऑफ तिथि यानी 31.3.1981 को 10 साल की अर्हक सेवा की आवश्यकता को पूरा किया, हमें नहीं लगता कि इस मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा कोई गलत सिद्धांत लागू किया गया था।

27. **वांडर लिमिटेड बनाम एंटॉक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड 1990 (सप्लीमेंट) एससीसी 727**, में एक अंतर्वर्ती निषेधाज्ञा से उत्पन्न अपील में, सुप्रीम कोर्ट ने विद्वान एकल न्यायाधीश के अंतरिम आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय की खंडपीठ के दृष्टिकोण को अस्वीकार कर दिया। उसमें, यह निर्धारित किया गया था:

> "14. डिवीजन बेंच के समक्ष अपीलें एकल न्यायाधीश द्वारा विवेक के प्रयोग के खिलाफ थीं। ऐसी अपीलों में, अपीलीय अदालत प्रथम दृष्टया अदालत के विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेगी और अपने विवेक को प्रतिस्थापित नहीं करेगी, सिवाय इसके कि जहां विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से, या मनमाने ढंग से या विकृत तरीके से किया गया हो या जहां अदालत ने अंतर्वर्ती निषेधाज्ञा के

अनुदान या इनकार को विनियमित करने वाले कानून के स्थापित सिद्धांत नजरअंदाज कर दिया हो। विवेक के प्रयोग के विरुद्ध अपील को सैद्धांतिक रूप से अपील कहा जाता है। अपीलीय अदालत सामग्री का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगी और नीचे की अदालत द्वारा पहुंचाए गए निष्कर्ष से भिन्न किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश नहीं करेगी यदि उस अदालत द्वारा पहुंचा गया निष्कर्ष सामग्री पर उचित रूप से संभव हो। अपीलीय अदालत को आम तौर पर केवल इस आधार पर अपील के तहत विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा कि यदि उसने मुकदमे के चरण में मामले पर विचार किया होता तो यह एक विपरीत निष्कर्ष पर आता। यदि ट्रायल कोर्ट द्वारा विवेक का प्रयोग उचित रूप से और न्यायिक तरीके से किया गया है, तो यह तथ्य कि अपीलीय अदालत ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया होगा, ट्रायल कोर्ट के विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराया जा सकता है। **गजेंद्रगडकर, जे. प्रिंटर्स (मैसूर) प्राइवेट लिमिटेड बनाम पोथन जोसेफ में [(1960) 3 एससीआर 713: एआईआर 1960 एससी 1156]: (एससीआर 721)** के मामलों में इन सिद्धांतों का उल्लेख करने के बाद।

"... ये सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित हैं, लेकिन जैसा कि **चार्ल्स ओसेंटन एंड कंपनी बनाम झानाटन [1942 एसी 130]** में विस्काउंट साइमन द्वारा देखा गया है '... किसी आदेश की अपील की अदालत द्वारा उलटफेर के संबंध में कानून नीचे दिए गए न्यायाधीश द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए किया गया निर्णय अच्छी तरह से स्थापित है, और जो भी कठिनाई उत्पन्न होती है वह केवल एक व्यक्तिगत मामले में अच्छी तरह से तय सिद्धांतों के आवेदन के कारण होती है।"

अपीलीय निर्णय इस सिद्धांत को स्थगित नहीं करता है।"

28. उस सिद्धांत को तब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार में उत्पन्न होने वाली इंट्रा कोर्ट अपीलों पर लागू किया गया था **रोमा सोनकर बनाम मध्य प्रदेशराज्य लोक सेवा आयोग, (2018) 17 एससीसी 106** के मामले में अवधारित किया गया था:

"3. हमारे पास बहुत गंभीर आपत्तियां हैं कि क्या डिवीजन बेंच एक इंट्रा-कोर्ट अपील में राहत देने के मामले में एक रिट याचिका को खारिज कर सकती थी। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग है। विद्वान एकल

न्यायाधीश के साथ-साथ डिवीजन बेंच ने समान क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया। केवल वादियों को असुविधा से बचाने के लिए, उच्च न्यायालय की शक्ति के संदर्भ में डिवीजन बेंच द्वारा स्क्रीनिंग का एक और स्तर प्रदान किया जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एकल न्यायाधीश डिवीजन बेंच के अधीनस्थ है। रिट याचिका में कार्यवाही करते हुए, डिवीजन बेंच को, इंट्रा-कोर्ट अपील में, मुख्य रूप से और अधिकतर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता या अन्यथा पर विचार करने के लिए बुलाया गया था। इसलिए, हमारे विचार में, डिवीजन बेंच को मामले को विद्वान एकल न्यायाधीश के पास भेजने के बजाय, विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले की शुद्धता पर निर्णय लेते हुए गुण-दोष के आधार पर अपील पर विचार करने की आवश्यकता है।

29. इस प्रकार हम निर्विवाद बल्कि स्वीकृत तथ्यों पर लागू होने वाले सिद्धांत के फिल्टर को देखना इस सीमा तक पसंद करते हैं कि हम बिल्कुल समान नागरिकों के साथ समान व्यवहार किए जाने में कोई गलती नहीं पाते हैं (इस न्यायालय की पिछली खंडपीठ के फैसले के आधार पर, जिसे सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठाई गई चुनौती में उलट नहीं किया गया था), इसकी कीमत पर प्रत्यर्थी -राज्य, जिसने अन्यथा कल्याणवाद की संवैधानिक विचारधारा को आगे बढ़ाने की शपथ ली है। उस समानता के लाभार्थियों को न्यायसंगत राहत की एजेंसी के माध्यम से पुष्टि की जा रही है, वे व्यक्तिगत कर्मचारी हैं जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए गए थे, हमें पहले के फैसले के बाद उन्हें राहत देने में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लागू किए गए सिद्धांत में **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में समन्वय पीठ को कोई त्रुटि नहीं मिली।

30. इस प्रकार, वर्तमान तथ्यों में, हम यह जांचने से इनकार करते हैं कि क्या एक औद्योगिक कामगार (राज्य सरकार द्वारा उस स्थिति के साथ नियुक्त) एक सरकारी कर्मचारी या सिविल सेवक के बराबर स्थिति रखेगा। हम विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय की पुष्टि करने के इच्छुक हैं जो कि **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले की समन्वय पीठ के निर्णय के आधार पर पाया गया है वर्तमान मामले के ऊपर उल्लिखित विशिष्ट तथ्यों में हमें रिट याचिका की अनुमति देने में **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लागू सिद्धांत की कोई त्रुटि नहीं मिलती है।

31. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राज्य सरकार द्वारा वह सचेत और लाभकारी निर्णय लिया गया था। राज्य सरकार का यह मामला नहीं है कि उक्त कार्यकारी आदेश किसी वैधानिक या अन्य कानून के साथ संघर्ष में था, उस कार्यकारी आदेश ने कानून की ताकत पैदा की, इस सीमा तक राज्य सरकार को इसे अनदेखा करने या अपनी मनमानी करने या बिल्कुल समान स्थिति वाले व्यक्तियों के बीच चयन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है - कुछ को इसका लाभ देने और दूसरों को इससे वंचित करने के लिए। उस सीमा तक कार्यकारी

आदेश लागू करने योग्य रहता है, और किसी भी मामले में एक प्रशासनिक सिद्धांत निर्धारित करता है जिसे सार्वभौमिक रूप से, इसके दायरे में आने वाले सभी व्यक्तियों पर, बिना किसी मनमानी के लागू किया जा सकता है।

32. उच्चतम न्यायालय के आदेश पर आते हुए, हम पाते हैं, उस आदेश में वाक्यांश विज्ञान के उपयोग से कोई अतिरंजित इरादा नहीं निकाला जा सकता है, या तो "इस मामले में विशिष्ट तथ्य" या "कानून के प्रश्न को खुला छोड़ना" शब्दों के लिए या "आक्षेपित निर्णय को मिसाल के तौर पर नहीं माना जा सकता"। यह स्थापित कानून है कि विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने का उच्चतम न्यायालय का आदेश अपने आप में कोई कानून नहीं बनाता जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **वी.एम. सालगांवकर एंड ब्रदर्स (पी) लिमिटेड बनाम सीआईटी, (2000) 5 एससीसी 373**, के मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया:

> *"8. अलग-अलग विचार तब लागू होते हैं जब संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत एक विशेष अनुमति याचिका को केवल "खारिज" कहकर खारिज कर दिया जाता है और अनुच्छेद 133 के तहत प्रदान की गई अपील को "अपील खारिज कर दी जाती है" शब्दों के साथ भी खारिज कर दिया जाता है। पूर्व मामले में इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि जब एक विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी जाती है तो यह न्यायालय उस आदेश की शुद्धता या अन्यथा पर टिप्पणी नहीं करता है जिससे अपील की अनुमति मांगी जाती है। लेकिन न्यायालय का तात्पर्य यह है कि वह इसे संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता है। यह निश्चित रूप से तब नहीं हो सकता जब किसी अपील को अनाख्यापक आदेश द्वारा खारिज कर दिया जाता है। यहाँ विलय का सिद्धांत लागू होता है। उस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण के फैसले को बरकरार रखता है जहां से अनुच्छेद 133 के खंड (3) के तहत अपील प्रदान की जाती है। विलय का यह सिद्धांत अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने के मामले में लागू नहीं होता है। जब कोई अपील खारिज कर दी जाती है तो उच्च न्यायालय का आदेश उच्चतम न्यायालय के आदेश के साथ विलय हो जाता है। हम सुप्रीम कोर्ट के **कर्मचारी कल्याण एसोसिएशन बनाम भारत संघ [(1989) 4 एससीसी 187: 1989 एससीसी (एल एंड एस) 569]: (एससीसी पीपी. 206-07, पैरा 22)** के मामले में इस*

न्यायालय के फैसले से निम्नलिखित पैराग्राफ उद्धृत करते हैं।

*"22. यह पहले ही देखा जा चुका है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के उक्त निर्णयों के खिलाफ भारत संघ की ओर से दायर विशेष अनुमति याचिकाओं को इस न्यायालय द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था। यह अब कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि जब एक विशेष अनुमति याचिका को संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाता है, तो ऐसी बर्खास्तगी से यह न्यायालय कोई कानून नहीं बनाता है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 141 द्वारा परिकल्पित है, जैसा कि विद्वान महान्यायवादी द्वारा तर्क दिया गया है। **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन में लिमिटेड बनाम बिहार राज्य [(1986) 4 एससीसी 146: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 740]** के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि एक अनाख्यापक आदेश द्वारा सीमा में एक विशेष अनुमति याचिका को खारिज करना किसी भी निष्कर्ष को उचित नहीं ठहराता है कि, आवश्यक निहितार्थ से, मामले के गुण-दोष के आधार पर विशेष अनुमति याचिका में उठाए गए तर्कों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है। आगे यह माना गया है कि किसी विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने के आधार या कारणों को बताए बिना खारिज करने के एक अनाख्यापक आदेश का प्रभाव, आवश्यक निहितार्थ से, यह माना जाना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट ने केवल यह निर्णय लिया था कि यह यह उपयुक्त मामला नहीं था जहां विशेष अनुमति याचिका मंजूर की जानी चाहिए। **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम ऑल इंडिया सर्विसेज पेंशनर्स एसोसिएशन [(1988) 2 एससीसी 580: 1988 एससीसी (एल एंड एस) 651: (1988) 7 एटीसी 449]** में इस न्यायालय ने विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने के कारण बताए हैं। जब ऐसे कारण दिए जाते हैं, तो निर्णय वह हो जाता है जो संविधान के अनुच्छेद 141 को आकर्षित करता है जो यह प्रावधान करता है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत के क्षेत्र के भीतर सभी अदालतों पर बाध्यकारी होगा। इसलिए, इसका मतलब यह है कि जब कोई कारण नहीं दिया जाता है, लेकिन एक विशेष अनुमति याचिका को आसानी से खारिज कर दिया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 141 के*

तहत इस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा की गई है।

33. फिर, **कुन्हायमद बनाम केरल राज्य, (2000) 6 एससीसी 359**, के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने आगे एक की बर्खास्तगी के प्रभाव को अपील याचिका के लिए विशेष अनुमति के बारे में समझाया जो इस प्रकार:

"27. इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति की याचिका को अनाख्यापक आदेश या ख्यापक आदेश द्वारा खारिज किया जा सकता है। बर्खास्तगी के आदेश में जो भी वाक्यांश प्रयोग किया जाता है, यदि यह एक अनाख्यापक आदेश है, यानी, यह विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने का कारण नहीं बताता है, तो यह न तो विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा ताकि इसके स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सके। इसके समक्ष जारी किया गया आदेश न ही संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा होगी क्योंकि ऐसा कोई कानून नहीं है जिसे घोषित किया गया हो। यदि बर्खास्तगी के आदेश को कारणों से समर्थित किया जाता है तो भी विलय का सिद्धांत आकर्षित नहीं होगा क्योंकि प्रयोग किया गया क्षेत्राधिकार अपीलीय क्षेत्राधिकार नहीं था बल्कि केवल एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार था जो अपील करने की अनुमति देने से इनकार कर रहा था। हम पहले ही इस पहलू से निपट चुके हैं। फिर भी न्यायालय द्वारा बताए गए कारण संविधान के अनुच्छेद 141 की प्रयोज्यता को आकर्षित करेंगे यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कोई कानून है जो स्पष्ट रूप से भारत में सभी अदालतों और न्यायाधिकरणों और निश्चित रूप से इसके पक्षों पर बाध्यकारी होगा। कानून के बिंदुओं के अलावा आदेश में शामिल बयान पार्टियों और अदालत या न्यायाधिकरण पर बाध्यकारी होगा, जिसके आदेश को न्यायिक अनुशासन के सिद्धांत पर चुनौती दी गई थी, यह न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है। किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण या पार्टियों को इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार के विपरीत कोई भी विचार अपनाने या उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता नहीं होगी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश का मतलब होगा कि उसने कानून घोषित कर दिया है और उस आलोक में मामले को छुट्टी देने के लिए उपयुक्त नहीं माना गया है। कानून की घोषणा अनुच्छेद 141 द्वारा शासित होगी लेकिन एसजब तक, मामला ऐसा नहीं है जहां छुट्टी दी गई हो, विलय का सिद्धांत लागू नहीं होता है। न्यायालय कभी-कभी

कानून के प्रश्न को खुला छोड़ देता है। या यह कभी-कभी संक्षेप में सिद्धांत प्रस्तुत करता है, हो सकता है, उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के विपरीत हो और फिर भी विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दे। दिए गए कारण अनुच्छेद 141 के उद्देश्यों के लिए हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि केवल विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने की स्थिति में, यह संभावना है कि उच्च न्यायालय में एक तर्क दिया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालय के साथ कानून में मतभेद होने पर नहीं समझा जाना चाहिए।

40. अपील के लिए विशेष अनुमति देने की मांग वाली याचिका कई कारणों से खारिज की जा सकती है। उदाहरण के लिए, इसे अस्वीकार किया जा सकता है (i) समय से बाधित होने के कारण, या (ii) दोषपूर्ण प्रस्तुति होने के कारण, (iii) याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, (iv) याचिकाकर्ता का आचरण उसे किसी भी अधिकार से वंचित करता है न्यायालय द्वारा अनुग्रह, (iv) इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया प्रश्न विचार के लिए उपयुक्त नहीं है या देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निपटाए जाने योग्य नहीं है, इत्यादि। इस तरह की याचिकाओं का निपटारा करते समय इस न्यायालय द्वारा अक्सर इस्तेमाल की जाने वाली अभिव्यक्तियाँ हैं - "सुनाई और खारिज", "खारिज", "समय से बाधित के रूप में खारिज" इत्यादि। हो सकता है कि स्वीकारोक्ति चरण में ही विरोधी पक्ष कैविएट या नोटिस पर उपस्थित हो और याचिका की विचारणीयता पर प्रतिवाद प्रस्तुत करे। न्यायालय अपील दायर करने की अनुमति मांगने वाले याचिकाकर्ता की प्रार्थना की योग्यता पर अपना दिमाग लगा सकता है और एक राय बनाने के बाद "गुण-दोष के आधार पर खारिज" काहा जा सकता है। ऐसा आदेश एक पक्षीय अर्थात विरोधी पक्ष की अनुपस्थिति में भी पारित किया जा सकता है। किसी भी मामले में, बर्खास्तगी एक अनाख्यापक आदेश द्वारा बर्खास्तगी रहेगी जहां कोई कारण नहीं बताया गया है और सुप्रीम कोर्ट द्वारा कोई कानून घोषित नहीं किया गया है। बर्खास्तगी अपील की नहीं बल्कि विशेष अनुमति याचिका की है। यदि योग्यताओं पर विचार किया भी गया है तो वह विशेष अनुमति

याचिका की ही योग्यताएं हैं। हमारी राय में न तो विलय का सिद्धांत और न ही संविधान का अनुच्छेद 141 ऐसे आदेश की ओर आकर्षित होता है। आदेश 47 नियम 1 सीपीसी या किसी अन्य वैधानिक प्रावधान द्वारा प्रदत्त समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने या उच्च न्यायालय के रिट या पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित आदेश की समीक्षा की अनुमति देने वाले आधार (जहां आदेश 47 नियम 1 सीपीसी से अंतर्निहित या उभरने वाले सिद्धांत भी हैं दिशानिर्देश के रूप में कार्य करें) आवश्यक रूप से वही नहीं हैं जिस पर यह न्यायालय इस उद्देश्य के लिए याचिका का निस्तारण करते समय अपील करने के लिए विशेष अनुमति देने या न देने के विवेक का प्रयोग करता है। किसी विशेष अनुमति याचिका को अस्वीकार करने मात्र से उस अदालत, न्यायाधिकरण या फोरम का अधिकार क्षेत्र खत्म नहीं हो जाता है, जिसका आदेश अपने आदेश की समीक्षा के लिए विशेष अनुमति के लिए याचिका का विषय बनता है, यदि समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए आधार मौजूद हैं। जहां एसएलपी को खारिज करने का आदेश एक ख्यापक वाला आदेश है, यानी, जहां विशेष अनुमति के लिए याचिका को खारिज करने के लिए इस न्यायालय द्वारा कारण बताए गए हैं और आदेश में कहा गया है, फिर भी आदेश अपील की अनुमति देने की प्रार्थना को खारिज करने वाला आदेश बना हुआ है। याचिकाकर्ता को इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार में प्रवेश की अनुमति दिए बिना ही दरवाजे से लौटा दिया गया है। यहां भी विलय का सिद्धांत लागू नहीं होगा लेकिन इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश में कहा गया या घोषित किया गया कानून होगा संविधान के अनुच्छेद 141 की प्रयोज्यता को आकर्षित करें। इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश में तथ्य या कानून के बिंदु पर अपने निर्णय (स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा) व्यक्त करने के लिए दिए गए कारण किसी भी अन्य न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण के विरोध में या उससे हटकर कोई राय व्यक्त करने के अधिकार क्षेत्र को छीन लेंगे। इस न्यायालय द्वारा लिया गया विचार क्योंकि ऐसा करने की अनुमति देना न्यायिक अनुशासन के विरुद्ध होगा और इस न्यायालय के आदेश का अपमान होगा। हालाँकि विलय के सिद्धांत के संदर्भ में ऐसा नहीं होगा।

44. संक्षेप में, हमारे निष्कर्ष हैं:

(iv) अपील करने के लिए विशेष अनुमति देने से इनकार करने वाला आदेश अनाख्यापक या ख्यापक आदेश हो सकता है। किसी भी स्थिति में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। अपील के लिए विशेष अनुमति से इनकार करने वाला आदेश चुनौती के तहत आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं किया जाएगा। इसका मतलब यह है कि न्यायालय अपील दायर करने की अनुमति देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं था।

(v) यदि अपील करने की अनुमति देने से इनकार करने वाला आदेश एक बोलने वाला आदेश है, यानी, अनुमति देने से इनकार करने का कारण बताता है, तो आदेश के दो निहितार्थ हैं। सबसे पहले, आदेश में निहित कानून का विवरण संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा है। दूसरे, कानून की घोषणा के अलावा, आदेश में जो कुछ भी कहा गया है वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष हैं जो संबंधित पक्षों और अदालत, न्यायाधिकरण या प्राधिकारी को न्यायिक अनुशासन के माध्यम से उसके बाद की किसी भी कार्यवाही में बाध्य करेंगे। न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि निचली अदालत, न्यायाधिकरण या प्राधिकारी का आदेश विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने वाले सुप्रीम कोर्ट के आदेश में विलय हो गया है या सुप्रीम कोर्ट का आदेश पक्षकारों के बीच बाद की कार्यवाही में न्यायिक के रूप में बाध्यकारी एकमात्र आदेश है।

(प्रभाव वर्धित)

34. जहां तक सुप्रीम कोर्ट के दिनांक 1.5.2018 के आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत कोई विलय और कोई कानून घोषित नहीं किया गया है। फिर, सुप्रीम कोर्ट की आगे की टिप्पणी, कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा घोषित कानून का पूर्ववर्ती मूल्य नहीं होगा, केवल इस न्यायालय को किसी भी अन्य मामले में विपरीत दृष्टिकोण लेने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र छोड़ने के समान है, यदि तथ्य ऐसा है साथ ही, सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए किसी भी कारण के अभाव में, अपील के लिए विशेष अनुमति का निर्णय लेते समय, उसने ऐसे अन्य मामले में लागू होने वाले कानून के किसी भी सिद्धांत को निर्धारित नहीं किया। इसलिए, इस न्यायालय का निर्णय विद्वान एकल न्यायाधीश ने **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में पिछली समन्वय पीठ का अनुसरण करते हुए

सैद्धांतिक रूप से गलती नहीं की होगी।

35. इसलिए, हमारे लिए, सुप्रीम कोर्ट के आदेश ने समन्वय पीठ द्वारा पहुंचाए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को बनाए रखा, जिससे उन तथ्यों में राहत मिली। उस हद तक, सुप्रीम कोर्ट का आदेश समन्वय पीठ द्वारा दिए गए तथ्यात्मक तर्क को नकारने या अस्वीकार करने वाला आदेश नहीं है। बल्कि, यह उस निर्णय को अंतिमता प्रदान करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समन्वय पीठ का उक्त निर्णय अंतिम रूप ले चुका है। उस मामले में राज्य द्वारा सर्वोच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष कोई समीक्षा आवेदन या अन्य कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी।

36. जिन विशिष्ट तथ्यों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त आदेश पारित किया है, हम याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करने के इच्छुक हैं कि तथ्यों की सटीक विशिष्टता मौजूद है और कार्यवाही के वर्तमान सेट में प्राप्त होती है, जैसा कि कुंआ। यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों को शुरू में राज्य सरकार ने अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान - चुर्क और डाला सीमेंट कारखानों में काम करने के लिए कामगार के रूप में नियुक्त किया था। यह भी विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी 10 साल या उससे अधिक की अवधि तक उस क्षमता में काम करते रहे, जिससे उन्हें खुद को ऐसे व्यक्ति के रूप में वर्णित करने की अनुमति मिली, जिन्होंने पेंशन का दावा करने की पात्रता के प्रयोजनों के लिए अर्हक सेवा प्रदान की थी। यह भी विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों ने यूपी सीमेंट निगम के कर्मचारियों के रूप में की गई किसी भी अवधि की सेवा के लिए किसी पेंशन का दावा नहीं किया है। **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में वे सटीक तथ्य मौजूद थे कार्यवाही के इन दोनों सेटों में आवश्यक तथ्यों में रत्ती भर भी अंतर नहीं है।

37. यह उन तथ्यों पर है कि मामलों के पहले सेट में विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय आया, अर्थात्, **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त),** जिसकी पुष्टि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने की थी। जब तक कोई विशिष्ट तथ्य मौजूद न दिखाया जाए, रिट न्यायालय जो समानता का न्यायालय एक अलग तथ्य निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है और इस प्रकार खुद को समान, असमान व्यवहार करने के लिए प्रेरित कर सकता है। **आज़म जाही मिल वर्कर्स एसोसिएशन (उपरोक्त)** के मामले में उक्त मिल के श्रमिकों के एक समूह को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति दी गई थी। उस समूह में से, श्रमिकों के एक समूह ने स्वेच्छा से अपना आधिकारिक क्वार्टर पहले ही खाली कर दिया। श्रमिकों का एक और समूह व्यवसाय में लगा रहा। बाद में, अपने सेवानिवृत्त कर्मचारियों द्वारा अवैध रूप से कब्जा किए गए परिसर के कब्जे को सुरक्षित करने के लिए, प्रबंधन ने अपने परिसर के खाली कब्जे को सुरक्षित करने के लिए, वैकल्पिक भूमि के आवंटन के लिए एक योजना शुरू की। सेवानिवृत्त कर्मचारियों का पहला समूह, जिन्होंने स्वेच्छा से परिसर खाली कर दिया था, उन्हें उस लाभ से वंचित कर दिया गया था। उस संदर्भ में, कार्यवाही शुरू हुई और सर्वोच्च न्यायालय ने उस संबंध में

निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियाँ कीं:

> *"9.3 कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की अवधारणा संविधान के अनुच्छेद 14 में व्यक्त मौलिक अधिकार से उभरती है। समानता एक निश्चित अवधारणा है।*
>
> *समानता की अवधारणा में संवैधानिक गारंटी की प्रकृति से उत्पन्न एक अंतर्निहित सीमा है। जो लोग समान परिस्थिति वाले हैं वे समान व्यवहार के हकदार हैं। समानता समान लोगों के बीच है. इसलिए वर्गीकरण को पर्याप्त अंतरों पर स्थापित किया जाना चाहिए जो एक साथ समूहित व्यक्तियों को समूहों से बाहर छोड़े गए लोगों से अलग करते हैं और इस तरह के विभेदक गुण प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के लिए उचित और तर्कसंगत संबंध में होने चाहिए।*

किसी दिए गए मामले में संविधान का अनुच्छेद 14 वैध वर्गीकरण की अनुमति दे सकता है। हालाँकि, पालन किए जाने वाले वर्गीकरण को आवश्यक रूप से दो परीक्षणों को पूरा करना होगा। सबसे पहले, विभेदक तर्क उचित उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए और दूसरा, व्यक्तियों के एक समूह को दूसरे से अलग करने का विकल्प प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों के साथ उचित संबंध होना चाहिए। वर्तमान मामले में 200 वर्ग गज का आवंटन निःशुल्क है 134 कर्मचारियों की लागत पूर्व कर्मचारियों को अनुचित कठिनाई से बचाने और एक कल्याणकारी उपाय के रूप में थी। जैसा कि ऊपर देखा गया है कि 318 पूर्व कर्मचारियों को 200 वर्ग गज के भूखंडों के मुफ्त आवंटन के लाभ से वंचित कर दिया गया है, इसी तरह 134 कर्मचारियों के साथ ऐसे व्यक्ति रखे गए हैं जिन्हें 200 वर्ग गज के भूखंडों को मुफ्त में आवंटित किया गया है। पूर्व-कर्मचारियों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के पूर्व-कर्मचारियों, जिन्हें भूखंड आवंटित किए गए हैं, के साथ समान रूप से अलग व्यवहार प्रदान करने का कोई तर्कसंगत औचित्य नहीं है।"

38. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा संदर्भित और भरोसा किए गए निर्णय सिद्धांत, कानून के पक्ष में निर्णय देते हैं चाहेंगे साधारण इक्विटी पर प्रबल होना, वर्तमान तथ्यों के अनुरूप नहीं है। उस सिद्धांत को लागू किया जा सकता था, यदि दिनांक 18.04.1972 और 01.07.1989 और आगे कोई सरकारी आदेश मौजूद नहीं था, यदि राज्य सरकार द्वारा 02.08.1985 को अपने सभी को पेंशन लाभ देने के लिए सचेत निर्णय नहीं लिया गया होता। पूर्ववर्ती कर्मचारी जिन्हें सीमेंट फैक्टरियों, डाला और चुर्क में नियुक्त किया गया था, विशेष रूप से कामगारों को बाहर किए बिना। अधिक गंभीर रूप से, कानून में उस सिद्धांत को लागू किया जा सकता था यदि इस न्यायालय ने गोरख नाथ पांडे और अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों को पेंशन लाभ

की राहत के हकदार नहीं पाया होता। डाला और चुर्क में राज्य सरकार की सीमेंट फैक्ट्रियों के औद्योगिक कामगारों को दी गई सिविल/सरकारी सेवकों के साथ बराबरी, भले ही उस मामले में पाए गए विशिष्ट तथ्यों पर दी गई हो, दृढ़ता से सराहना करती है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों को अपनी ताकत और समानता के बल पर राहत देने में कोई गलती नहीं की।

39. समन्वय पीठ के समक्ष कोई भेद स्थापित करने में असफल होना गोरख नाथ पांडे (ऊपरोक्त)और उस फैसले को सुप्रीम कोर्ट ने नहीं पलटा है, इसलिए हमें यह मामला विद्वान अपर महाधिवक्ता की इस दलील पर हस्तक्षेप करने के लिए उपयुक्त नहीं लगता कि एक सिविल सेवक और एक औद्योगिक कामगार के बीच की स्थिति में बुनियादी अंतर हमेशा होना चाहिए। इन कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी -अपीलकर्ता/राज्य को उस मुद्दे को फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि अनुमति दी जाती है, तो उस अभ्यास से रिट न्यायालय द्वारा पूर्णतः समान लोगों के साथ असमान व्यवहार किया जा सकता है। इस प्रकार, हम इक्विटी को कानून के विरुद्ध खड़ा नहीं पाते हैं; बल्कि, हम पाते हैं, वर्तमान तथ्यों में, इक्विटी कानून में उत्पन्न परिणाम के समानांतर चल रही है, यानी, **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में विशेष अनुमति याचिका के खारिज होने पर।

40. चूंकि समानता का दावा एक समन्वय पीठ के अंतिम आदेश के लिए था जो अंतिम रूप ले चुका है, यह वह 'कानून' है जिसका याचिकाकर्ताओं-अपीलकर्ताओं के वर्तमान समूह ने न्यायसंगत सिद्धांत पर लाभ मांगा है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय के असाधारण विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रदान किया गया है।

41. सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में, सामान्य नियम बना हुआ है यानी जब कर्मचारियों के एक विशेष समूह को न्यायालय द्वारा राहत दी जाती है, तो उस लाभ को बढ़ाकर अन्य सभी समान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। उस लाभ को न देना अपने आप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए भेदभाव होगा। यूपी राज्य और अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य (2015) 1 एससीसी 347 में उस सिद्धांत को मान्यता दी गई. हालाँकि, अत्यधिक देरी और लापरवाही से उत्पन्न होने वाले उस नियम के अपवाद को भी उस निर्णय में मान्यता दी गई और लागू किया गया। चूँकि अस्पष्ट देरी और रुकावटें थीं, ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई ऐसी राहत, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय ने की थी, उच्च न्यायालय द्वारा उलट दी गई थी। हालाँकि, जहां तक यह प्रासंगिक मामला है, नियम और इसके अपवाद के बारे में चर्चा, अनुच्छेद-22 में निहित है, यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"22.1. सामान्य नियम यह है कि जब कर्मचारियों के एक विशेष समूह को न्यायालय द्वारा राहत दी जाती है, तो उस लाभ को बढ़ाकर अन्य सभी समान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना

चाहिए। ऐसा न करना भेदभाव के समान होगा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। इस सिद्धांत को सेवा मामलों में अधिक सशक्त रूप से लागू करने की आवश्यकता है क्योंकि समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा विकसित सेवा न्यायशास्त्र यह मानता है कि समान स्थिति वाले सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। इसलिए, सामान्य नियम यह होगा कि केवल इसलिए कि समान स्थिति वाले अन्य व्यक्ति पहले अदालत में नहीं आए, उनके साथ अलग व्यवहार नहीं किया जाएगा।

22.2. हालाँकि, यह सिद्धांत लापरवाही और देरी के साथ-साथ स्वीकृति के रूप में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवादों के अधीन है। वे व्यक्ति जिन्होंने अपने मामलों में गलत कार्रवाई को चुनौती नहीं दी और उसे स्वीकार कर लिया और लंबी देरी के बाद केवल इस कारण से जागे कि उनके समकक्ष जिन्होंने समय से पहले अदालत का दरवाजा खटखटाया था, वे अपने प्रयासों में सफल हुए, तो ऐसे कर्मचारी यह दावा नहीं कर सकते हैं समान स्थिति वाले व्यक्तियों के मामले में दिए गए निर्णय का लाभ उन तक पहुंचाया जाए। उन्हें बाड़-बैठक और लापरवाही बरतने वाला माना जाएगा और देरी, और/या स्वीकृति, उनके दावे को खारिज करने के लिए एक वैध आधार होगा।

22.3. हालाँकि, यह अपवाद उन मामलों में लागू नहीं हो सकता है न्यायालय द्वारा सुनाया गया निर्णय सभी समान स्थिति वाले व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने के इरादे से दिया गया निर्णय था, चाहे उन्होंने न्यायालय से संपर्क किया हो या नहीं। इस तरह की घोषणा के साथ अधिकारियों पर इसका लाभ समान रूप से स्थित सभी व्यक्तियों तक पहुंचाने का दायित्व आ जाता है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न हो सकती है जब निर्णय का विषय नीतिगत मामलों, जैसे नियमितीकरण की योजना और इसी तरह से जुड़ा हो **(सन्दर्भ) के.सी. शर्मा एवं अन्य बनाम भारत संघ (1997) 6 एससीसी 721: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 226**. दूसरी ओर, यदि न्यायालय का निर्णय व्यक्तिगत रूप से यह मानता है कि उक्त निर्णय का लाभ न्यायालय के समक्ष पक्षकारों को मिलेगा और ऐसा इरादा निर्णय में स्पष्ट रूप से बताया गया है या इसे निहितार्थ से पता लगाया जा सकता है और निर्णय 27 की भाषा में, जो लोग उक्त निर्णय का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें संतुष्ट होना होगा कि उनकी याचिका किसी देरी या देरी या स्वीकृति से ग्रस्त नहीं है।

42. वर्तमान मामले में, कोई गंभीर या अस्पष्ट देरी और लापरवाही नहीं है। गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त) में निर्णय वर्ष 2013 में दायर रिट याचिका पर उत्पन्न दिनांक 12.04.2016 का है, जबकि अपील के वर्तमान समूह को जन्म देने वाली याचिकाएं इसके तुरंत बाद, वर्ष 2016 में ही दायर की गई थीं। वर्तमान अपील को जन्म देने वाली याचिका **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले में कानून की घोषणा के तुरंत बाद दायर की गई है, हमें नहीं लगता कि रिट याचिका अत्यधिक या अस्पष्ट देरी और कमियों के साथ दायर की गई है।

43. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, इंट्रा-कोर्ट अपील क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, हम उसी क्षेत्राधिकार के दायरे में रहते हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों के पक्ष में न्यायालय में निहित विवेक का प्रयोग विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सिद्धांत के किसी भी गलत अनुप्रयोग के अभाव में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, हम एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाने के लिए अनिच्छुक रहते हैं क्योंकि यह प्रयोग किए गए विवेक को नकारने का प्रयास कर सकता है, क्योंकि हम मौजूदा तथ्यों के भौतिक अंतर को देखने में असमर्थ हैं, क्योंकि हमें कानून या इक्विटी पर किसी भी अलग दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता हो सकती है या मजबूर होना पड़ सकता है। हमें एक बड़ी पीठ का संदर्भ देने के लिए विवश होना पडता है।

44. इस प्रकार, हम राज्य सरकार को दिनांकित 02.08.2005 कार्यालय आदेश का लाभ देने के उद्देश्य से बिल्कुल समान स्थिति वाले व्यक्तियों को चुनने और उनके बीच अंतर करने से रोकते हैं। उस सीमा तक हम **आज़म जाही मिल वर्कर्स एसोसिएशनटियोन (उपरोक्त)** के मामले में निर्धारित सिद्धांत को लागू करते हैं ।

45. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें याचिकाकर्ताओं के साथ **गोरख नाथ पांडे (उपरोक्त)** के मामले के याचिकाकर्ताओं से अलग व्यवहार करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

46. तदनुसार, अपील विफल हो जाती है और ख़ारिज की जाती है।

47. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 273

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट ए संख्या 1330 वर्ष 2010

से जुड़ा हुआ

रिट ए संख्या 5897 वर्ष 2010

से जुड़ा हुआ

रिट ए संख्या 1413 वर्ष 2010

जीतेन्द्र कुमार तिवारी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

डॉ. एल.पी. मिश्रा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, महेंद्र प्रताप

सेवा कानून - नियुक्ति - आदर्श आचार संहिता के दौरान नियुक्तियों को रद्द करना - भेदभाव - समान स्थिति वाले उम्मीदवारों को कार्यभार ग्रहण की अनुमति - समान व्यवहार का अधिकार - कार्यभार ग्रहण की अनुमति देने के लिए परमादेश जारी किया गया।

जहां याचिकाकर्ताओं को विधिवत रूप से चयनित किया गया और एक सामान्य चयन प्रक्रिया और विज्ञापन के अंतर्गत सरकारी मेडिकल कॉलेजों में विभिन्न पदों (फार्मासिस्ट, स्टेनोग्राफर, क्लर्क, स्टोर कीपर) के लिए नियुक्ति पत्र जारी किए गए, और हालांकि उन्होंने कार्यभार के लिए प्रतिवेदन किया, उन्हें केवल आदर्श आचार संहिता लागू होने के कारण कार्यभार ग्रहण से मना कर दिया गया। बाद में, बिना किसी सूचना के उनकी नियुक्तियां रद्द कर दी गईं। हालांकि, उसी चयन सूची के समान उम्मीदवारों को निरस्तीकरण को रद्द करने के न्यायालयी आदेशों के बाद कार्यभार ग्रहण की अनुमति दी गई। याचिकाकर्ताओं के कार्यभार ग्रहण को अस्वीकार करना भेदभाव के बराबर था, विशेषकर जब उनके विरुद्ध कदाचार या कपट का कोई आरोप नहीं लगाया गया था, और समान रूप से रखे गए अन्य लोगों को पुनर्स्थापित कर दिया गया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भारतीय चिकित्सा परिषद् (एमसीआई) के निरीक्षण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उम्मीदवारों की नियुक्ति के बाद राज्य यू-टर्न नहीं ले सकता। प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं को कार्यभार ग्रहण की अनुमति छह सप्ताह के भीतर सम्बंधित पद पर देने के लिए **परमादेश जारी किया गया।**

रिट की अनुमति दी गई।

<u>उद्धरण:</u>

1. प्रबंध समिति, वैदिक कन्या इंटर कॉलेज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के राज्य एवं अन्य (2023) 7 आईएलआरए

2. कुल भूषण मिश्रा एवं एक अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य (2023) 7 आईएलआरए

3. दिनेश चंद्र वर्मा बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य (2023) 7 आईएलआरए

4. रजत यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2023) 8 आईएलआरए

5. उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम शिव जग शर्मा और अन्य (2023) 8 आईएलआरए

6. जितेंद्र कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य एवं संबंधित मामले (2023) 8 आईएलआरए

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं केविद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा के सहायक विद्वान अधिवक्ता सुश्री आरती बाली और प्रत्यर्थी - राज्य के लिए विद्वान अपर सीएससी श्री पंकज पटेल को सुना गया।

2. सबसे पहले, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिकाओं में प्रार्थना (ए) को वापस लेने का अनुरोध किया, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

(ए) दिनांक 02.05.2009, 07.05.2009 और 22.05.2009 के आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसकी सत्य प्रतिलिपिया क्रमशः अनुलग्नक संख्या 8, 9 और 10 के रूप में शामिल हैं। रिट याचिका, यदि इसके लिए कोई कानूनी आवश्यकता उत्पन्न होती है क्योंकि नियुक्ति रद्द करने के आदेश राज्य सरकार द्वारा पहले ही वापस ले लिए गए हैं।"

3. तदनुसार, रिट याचिकाओं की प्रार्थना (ए) को वापस ले लिया गया मानते हुए खारिज किया जाता है।

4. **<u>रिट-ए संख्या 1330/2010</u>** के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रत्यर्थियों को आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 को फार्मासिस्ट के पद पर, याचिकाकर्ता संख्या 5 को स्टेनोग्राफर के पद पर, याची संख्या 6 को क्लर्क के पद पर और याची संख्या 7 को मान्यवर कांशीरामजी राजकीय एलोपैथिक मेडिकल कॉलेज, जालौन में स्टोर कीपर के पद पर ज्वाइन करने के लिए अनुमति दें। जिन पदों पर उन्हें उसी तरह से नियुक्त किया गया था, जिस पर अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों को नियुक्त किया गया था। चयन सूची में उनके नीचे रखे गए व्यक्तियों को आगे बने रहने की अनुमति दी जा रही है।

<u>रिट-ए संख्या - 5897/2010</u> में याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रत्यर्थियों को आदेश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को सरकारी मेडिकल कॉलेज, आज़मगढ़ में फार्मासिस्ट के पद पर शामिल होने की अनुमति दी जाए, जिस पद पर उसे उसी तरह नियुक्त किया गया था। चयन सूची में उसके नीचे रखे गए व्यक्तियों सहित अन्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों को भी जारी रखने की अनुमति दी जा रही है।

<u>रिट-ए संख्या 1413/2010</u> में याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रत्यर्थियों को यह आदेश दिया जाए कि याचिकाकर्ता को मान्यवर कांशीरामजी राजकीय एलोपैथिक मेडिकल कॉलेज, जालौन में स्टोर कीपर के पद पर शामिल होने की अनुमति दी जाए, जिस पद पर उसे नियुक्त किया गया था। उसी तरह अन्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों, जिनमें चयन सूची में उसके नीचे रखे गए व्यक्ति भी शामिल हैं, को जारी रखने की अनुमति दी जा रही है।

5. चूंकि सभी रिट याचिकाएं एक समान विवाद को जन्म देती हैं, इसलिए इन्हें एक सामान्य निर्णय और आदेश के माध्यम से तय किया जा रहा है, जिसमें रिट-ए संख्या 1330/ 2010 को प्रमुख रिट याचिका माना जाएगा और निर्णय और उस पर पारित निर्णय और आदेश को मान्य किया जाएगा। संबंधित मामलों पर समान रूप से लागू हो।

5. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

क्रमांक	मामले के प्रासंगिक तथ्य
ए.	राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश राज्य में सरकारी मेडिकल कॉलेज, कन्नौज, सरकारी मेडिकल कॉलेज, जालौन और सरकारी मेडिकल कॉलेज, आज़मगढ़ सहित कई मेडिकल कॉलेजों की स्थापना की।
बी.	चिकित्सा शिक्षा और प्रशिक्षण महानिदेशक (संक्षेप में, "डीजीएमई"), लखनऊ द्वारा 29.08.2008 को एक विज्ञापन जारी किया गया था - - राजकीय मेडिकल कॉलेज, कन्नौज के लिए लैब अटेंडेंट, फार्मासिस्ट, ड्राइवर, स्टोर कीपर, स्टेनोग्राफर, टाइपिस्ट और क्लर्क के पदों के लिए प्रत्यर्थी नंबर 2। उपरोक्त विज्ञापन के जवाब में, याचिकाकर्ताओं ने फार्मासिस्ट, स्टेनोग्राफर, क्लर्क और स्टोर कीपर के पदों पर नियुक्ति के लिए अपनी उम्मीदवारी प्रस्तुत की।
सी.	कहा गया कि मेडिकल कॉलेज शैक्षिक सत्र, 2009 से शुरू होने थे और उससे पहले मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया (एमसीआई) से मान्यता मांगी गई थी और जल्द ही सरकारी मेडिकल कॉलेज जालौन के लिए मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से एमसीआई का एक पैनल निरीक्षण करने की संभावना थी।
डी	शिक्षण स्टाफ, पैरा मेडिकल स्टाफ और अन्य स्टाफ की नियुक्ति एमसीआई द्वारा संतोषजनक निरीक्षण रिपोर्ट बनाने के लिए एक शर्त है, जो मान्यता प्रदान करने का आधार था और, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4 ने प्रतिवादी संख्या 2 को संबोधित 20.02.2009 को एक पत्र जारी किया जिसमें अनुरोध किया गया था कि चूंकि शैक्षिक सत्र शुरू होना था और एमसीआई द्वारा निरीक्षण प्रस्तावित था, यह उचित होगा कि दिनांक 29.08.2008 के विज्ञापन के अनुसरण में तैयार की गई चयन सूची के उम्मीदवारों को राजकीय मेडिकल कॉलेज, जालौन में नियुक्ति के लिए उपलब्ध कराया जाए, जिसमें फार्मासिस्ट, स्टेनोग्राफर, क्लर्क और स्टोर कीपर के पद भी इंगित किए गए थे।
ई.	प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी निर्देशों के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचिकाकर्ताओं को सरकारी मेडिकल कॉलेज, जालौन के लिए दिनांक 24.02.2009 को नियुक्ति पत्र जारी किया।
एफ.	पत्र दिनांक 26.02.2009 के माध्यम से, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को सूचित किया कि नियुक्ति पत्र में उल्लिखित व्यक्तियों को ले लिया गया है।
जी.	26.02.2009 को, याचिकाकर्ताओं ने प्रत्यर्थी नंबर 4 से संपर्क किया और अपने संबंधित पदों पर ज्वाइनिंग देने का अनुरोध किया, लेकिन चूंकि उनके पास शारीरिक फिटनेस प्रमाण पत्र और शपथ पत्र नहीं थे, इसलिए उनसे उनकी वास्तविकता के बारे में पूछा गया और संबंधित मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा चिकित्सकीय जांच कराने के लिए कहा गया। .
एच.	04.03.2009 को, याचिकाकर्ता शारीरिक फिटनेस प्रमाण पत्र और शपथ पत्र के साथ प्रत्यर्थी नंबर 4 के पास पहुंचे और उन्हें उनके संबंधित पदों पर ज्वाइनिंग देने का अनुरोध किया, लेकिन प्रत्यर्थी नंबर 4 ने याचिकाकर्ताओं को अवगत कराया कि चूंकि चुनाव आचार संहिता लागू हो गई है, इसलिए वे को उनके

अनुवादित

	संबंधित पदों पर शामिल होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।
आई.	02.05.2009 को, मंत्री, संसदीय कार्य, वित्त एवं चिकित्सा शिक्षा, उ.प्र. ने याचिकाकर्ताओं सहित अन्य व्यक्तियों को कोई नोटिस दिये बिना। एक आदेश जारी किया जिसमें प्रत्यर्थी नंबर 1 से संलग्न सूची में उल्लिखित व्यक्तियों की नियुक्तियों को रद्द करने की आवश्यकता थी।
जे.	07.05.2009 को, विशेष सचिव, चिकित्सा शिक्षा एवं प्रशिक्षण, उ.प्र. सरकार। जारी किया गया और आदेश दिया गया कि प्रत्यर्थी नंबर 2 को नियुक्तियों को रद्द करने और इस संबंध में सरकार को एक रिपोर्ट सौंपने की आवश्यकता है।
के.	22.05.2009 को, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने सरकारी मेडिकल कॉलेज, जालौन में की गई नियुक्तियों को रद्द करने का आदेश पारित किया।
एल.	25.05.2009 को, याचिकाकर्ताओं ने अपने संबंधित पदों पर शामिल होने के लिए प्रत्यर्थी नंबर 4 से संपर्क किया, लेकिन उन्हें बताया गया कि मेडिकल कॉलेज, जालौन में की गई सभी नियुक्तियाँ रद्द कर दी गई हैं, इसलिए, याचिकाकर्ताओं को उनके संबंधित पदों पर शामिल होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।
एम.	कई व्यक्तियों ने इस न्यायालय से संपर्क किया नियुक्तियों को रद्द करने के आदेश को चुनौती देने वाली विभिन्न रिट याचिकाएँ और यह न्यायालय उनकी नियुक्तियों को रद्द करने पर रोक लगाते हुए अंतरिम आदेश पारित करने में प्रसन्न था।
एन.	13.09.2009 को, राज्य सरकार ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेशों के खिलाफ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कई विशेष अपील याचिकाएं दायर की, जिन्हें 18.09.2009 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया और उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के माध्यम से राज्य सरकार को विशेष याचिका दायर करने की छूट दी गई।।
द.	राज्य सरकार ने विशेष अपील संख्या 743/ 2009 सहित दो विशेष अपीलें दायर कीं, जिन्हें इस न्यायालय की खंडपीठ ने 28.10.2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया।
पी	राज्य सरकार ने 07.11.2009 को एक आदेश जारी कर दिनांक 22.05.2009 के उस आदेश को रद्द कर दिया जिसके माध्यम से नियुक्तियाँ की गई थीं।
क्यू.	जब प्रत्यर्थियों ने इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का पालन नहीं किया, तो इस न्यायालय के समक्ष अवमानना याचिकाएं दायर की गईं, जिसमें आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 2906 (सी)/ 2009 - अजय कुमार यादव और अन्य बनाम हर भजन सिंह और अन्य में दिनांक 11.02.2010 और 22.02.2010 के आदेश पारित किए गए।
आर.	दिनांक 26.02.2010 के आदेश के तहत, प्रत्यर्थियों ने उन व्यक्तियों को, जिन्होंने रिट याचिकाएँ दायर की थीं, अपने संबंधित पदों पर शामिल होने की अनुमति दी।

उद्धरण

एस.	याचिकाकर्ताओं ने 20.02.2010 को प्रत्यर्थी नंबर 2 को अपने संबंधित पदों पर शामिल होने का दावा करते हुए एक अभ्यावेदन दिया, जो विचाराधीन पड़ा हुआ है और आज तक कोई भी आदेश पारित नहीं किया गया है।
टी.	इसलिए, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद की गई थी और याचिकाकर्ताओं ने चयन समिति का सामना किया था और उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किया गया था उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किया गया था और प्रत्यर्थियों के किसी भी चूक/तकनीकी आपत्ति के आधार पर उनको वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

5. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ छिपाने या धोखाधड़ी का कोई आरोप नहीं था, इसलिए उन्हें पद पर शामिल होने की अनुमति न देकर उन्हें परेशान नहीं किया जाना चाहिए।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उसी नियुक्ति आदेश के अनुसार व्यक्तियों को शामिल होने की अनुमति दी गई है जिसके तहत याचिकाकर्ताओं को समान शर्तों के साथ नियुक्त किया गया था, हालांकि, याचिकाकर्ताओं को चुनाव आचार संहिता के कार्यान्वयन और उसके बाद के आदेश के कारण शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई है। नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा रद्द कर दी गई है, जिस पर इस न्यायालय ने विभिन्न रिट याचिकाओं में रोक लगा दी है। उन्होंने कहा कि उसी चयन सूची में याचिकाकर्ताओं से नीचे रखे गए व्यक्तियों को भी नियुक्त किया गया है, हालांकि, याचिकाकर्ताओं के दावे को नजरअंदाज कर दिया गया है।

7. उन्होंने अंत में कहा कि याचिकाकर्ता अजनबी नहीं हैं और न ही वे बाहरी हैं। ये वे व्यक्ति हैं, जिन्हें नियमित चयन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। एमसीआई से मान्यता प्रदान करने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियों के तहत प्रत्यर्थियों ने एमसीआई की यात्रा के दौरान मान्यता प्रदान करने के मानदंडों को पूरा करने के लिए याचिकाकर्ताओं को नियमित पदाधिकारी के रूप में नियुक्त किया और बाद में उन्हें याचिकाकर्ताओं के दावे को अस्वीकार करने के लिए यू-टर्न लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

8. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त सी.एस.सी. इस न्यायालय के समक्ष 2010 की रिट ए संख्या 5435 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.07.2023 का एक आदेश रखा गया; शिवेंद्र वशिष्ठ बनाम. यूपी राज्य और अन्य ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं का मामला उपरोक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता के समान है और वे भी समान राहत पाने के हकदार हैं।

9. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के साथ-साथ विद्वान अतिरिक्त

सी.एस.सी. द्वारा दिए गए आदेश का अवलोकन किया है।

10. आदेश दिनांक 04.07.2023 द्वारा, 2010 की रिट-ए संख्या 5435 में निम्नलिखित अवलोकन और निर्देश जारी किए गए थे:

"13. अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था और याचिकाकर्ता को छह अन्य व्यक्तियों के साथ जारी किए गए नियुक्ति पत्र के आधार पर, उपरोक्त चार व्यक्तियों को मेडिकल कॉलेज, आज़मगढ़ में ज्वाइनिंग दी गई थी। बाद में, उनकी नियुक्ति की गई है दिनांक 22.05.2009 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया। इसके बाद, कई रिट याचिकाओं में इस न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप, दिनांक 22.05.2009 के आदेश को प्रत्यर्थियों द्वारा वापस ले लिया गया और उपरोक्त चार व्यक्तियों को उनके संबंधित पद पर फिर से शामिल होने की अनुमति दी गई। हालाँकि, याचिकाकर्ता, जिसका नाम उपरोक्त सूची में क्रम संख्या 4 पर है, को तकनीकी कारणों से इसमें शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई है प्रति शपथपत्र में यह तथ्य स्वयं स्वीकार किया गया है कि उच्च अधिकारियों के निर्देश पर शुरू में चार लोगों को शामिल होने की अनुमति दी गई थी। इसलिए, इस तरह के भेदभाव को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

14. यदि उपरोक्त चार व्यक्ति एक ही विज्ञापन के तहत एक ही चयन का हिस्सा थे और उन्हें एक ही नियुक्ति पत्र के तहत पद पर शामिल होने की अनुमति दी गई थी, तो याचिकाकर्ता को अपने संबंधित पद पर शामिल होने की अनुमति नहीं देने का कोई अवसर नहीं है।

15. ऊपर दर्ज कारणों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका अनुमति के योग्य है और इसके द्वारा अनुमती दी जाती है।

16. परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाती है जिसमें प्रत्यर्थी नंबर 2 को मामले को देखने का आदेश दिया जाता है और यदि याचिकाकर्ता का मामला उपरोक्त व्यक्तियों, अर्थात् संतोष कुमार उपाध्याय, नीरज गुप्ता, संदीप कुमार सिंह और सुश्री सीमा वर्मा के समान है। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उन्हें ज्वाइनिंग भी दे दी जाएगी।

17. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

11. उपरोक्त निर्णय और आदेश के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता एक ही विज्ञापन के चयनित व्यक्ति थे और उन्हें एक ही नियुक्ति पत्र के माध्यम से नियुक्त किया गया था। हालाँकि, चार व्यक्ति, जो एक ही चयन कार्यवाही का हिस्सा थे, को शामिल होने की अनुमति दी गई थी, लेकिन उस रिट याचिका के याचिकाकर्ता को अपने संबंधित पद पर शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई थी। रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया और प्रत्यर्थी नंबर 2 को निर्देश जारी किया गया कि आदेश की

प्रमाणित प्रति पेश करने की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उसे ज्वाइनिंग दी जाए, यदि उसका मामला समान स्थिति वाले व्यक्तियों के समान पाया जाता है, जो को पहले ही नियुक्ति दे दी गई थी।

12. यहां, वर्तमान मामले में, उचित चयन प्रक्रिया का सामना करने और नियुक्ति पत्र जारी करने के याचिकाकर्ताओं के दावे को प्रत्यर्थियों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। प्रत्यर्थियों द्वारा इस बात से भी इनकार नहीं किया गया है कि उन्हें जारी किए गए नियुक्ति पत्र के अनुसरण में उन्होंने अपनी ज्वाइनिंग प्रस्तुत नहीं की है।

13. रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं ने 26.02.2009 को प्रत्यर्थी संख्या 4 के समक्ष अपनी नियुक्ति की पेशकश की थी, लेकिन चूंकि उनके पास शारीरिक फिटनेस प्रमाण पत्र और शपथ पत्र नहीं थे, इसलिए उनसे उनकी साख के बारे में पूछा गया और मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा चिकित्सकीय जांच कराने के लिए कहा गया। अधिकारी. इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने 04.03.2009 को शारीरिक फिटनेस प्रमाण पत्र और शपथ पत्र के साथ प्रत्यर्थी नंबर 4 से संपर्क किया और अपने संबंधित पदों पर शामिल होने का अनुरोध किया, लेकिन प्रत्यर्थी नंबर 4 ने याचिकाकर्ताओं को अवगत कराया कि चूंकि चुनाव आचार संहिता लागू हो गई है, इसलिए उन्हें अपने संबंधित पदों पर शामिल होने के लिए अनुमति नहीं दी जा सकती है।

14. बाद में, दिनांक 22.05.2009 के आदेश के तहत, प्रत्यर्थी नंबर 2 ने सरकारी मेडिकल कॉलेज, जालौन में की गई नियुक्तियों को रद्द कर दिया, जिसके खिलाफ, इस न्यायालय के समक्ष कई रिट याचिकाएं दायर की गईं और नियुक्ति रद्द करने के आदेश पर रोक लगा दी गई। राज्य सरकार ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अपील याचिका दायर की, जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अपील दायर करने की छूट के साथ खारिज कर दिया गया है। इसके अनुसरण में, राज्य सरकार ने 2009 की विशेष अपील संख्या 743 सहित इस न्यायालय के समक्ष दो विशेष अपीलें दायर कीं, जिन्हें इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने दिनांक 28.10.2009 के आदेश के तहत खारिज कर दिया है।

15. इसके बाद, राज्य सरकार ने 07.11.2009 को एक आदेश पारित कर दिनांक 22.05.2009 के उस आदेश को रद्द कर दिया जिसके माध्यम से नियुक्तियाँ की गई थीं। जब रिट अदालत के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, तो कई अवमानना याचिकाएं भी दायर की गईं और 26.02.2010 के आदेश के तहत, प्रत्यर्थियों ने रिट याचिका दायर करने वाले व्यक्तियों को उनके संबंधित पदों पर शामिल होने की अनुमति दी।

16. मामले की इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ताओं, जो उसी चयन प्रक्रिया के चयनित भी हैं, को खारिज नहीं किया जा सकता है और उनके संबंधित पदों पर शामिल होने के उनके दावे को तकनीकी

पहलुओं पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

17. ऊपर दर्ज किए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और इसके द्वारा अनुमति दी जाती है।

18. परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाती है जिसमें प्रत्यर्थियों को आदेश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर अपने संबंधित पदों पर शामिल होने की अनुमति दें।

19. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 278

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट ए संख्या 7428 वर्ष 2023

जग मोहन अग्रवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती कंचन कुमारी जैन ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
श्री पंकज अग्रवाल

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
श्री सुदीप हरकौली

अधिनियम संख्या 16 वर्ष 2021 की प्रयोज्यता- किरायेदारी विवाद, किरायेदारी अनुबंध का पंजीकरण न होना, अंतरिम किराया निर्धारण, वापसी आवेदन की पोषणीयता, किरायेदारी उत्तराधिकार: गैर-आवासीय किरायेदारी (धारा 6(3)) के लिए, किरायेदार के उत्तराधिकारी को यह सिद्ध करना होगा कि उन्हें व्यवसाय विरासत में मिला है, अन्यथा मौजूदा किरायेदार उत्तरदायी रहता है। किरायेदारी का अनुबंध पंजीकरण: यदि मकान मालिक विवरण दाखिल करके धारा 4(3) का अनुपालन करता है, तो किरायेदार द्वारा पंजीकरण न कराने से कार्यवाही अविधिमान्य नहीं होती है। अंतरिम किराया निर्धारण: किराया प्राधिकारी धारा 10(4) के अंतर्गत बाजार दरों के आधार पर अनंतिम किराया तय कर सकता है, और ऐसे निर्णयों को साक्ष्य (जैसे, तुलनीय किराए) द्वारा समर्थित होना चाहिए। वापसी की सीमाएँ: धारा 34(8) वापसी के आवेदनों को सेवार्पित न होने या उपस्थित होने में असमर्थता जैसे प्रक्रियात्मक मुद्दों तक सीमित रखती है, न कि नई मूल आपत्तियों तक। न्यायालय ने धारा 34(8) के अंतर्गत वापसी आवेदन को खारिज करने का निर्णय बरकरार रखा, क्योंकि यह केवल नोटिस न मिलने या उपस्थित न हो पाने की स्थिति में ही वापसी की अनुमति देता है, और इनमें से कोई भी बात लागू नहीं होती। वापसी आवेदन में उठाई गई नई आपत्तियाँ स्वीकार्य नहीं थीं।

<u>उद्धरण:</u>

1. सना उल्लाह बनाम अशोक कपिल, 1979 एआरसी 138

2. नीना जैन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं एक अन्य, सिविल अपील संख्या 1082-2083 वर्ष 2017

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री पंकज अग्रवाल और प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री सुदीप हरकौली को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत के लिए दायर की गई है:-

"i) अपर जिला मजिस्ट्रेट (सिविल आपूर्ति)/किराया प्राधिकरण, आगरा द्वारा पारित दिनांक 05.04.2023 के आदेश के साथ-साथ अपर जिला मजिस्ट्रेट (सिविल आपूर्ति)/किराया प्राधिकारी, आगरा द्वारा पारित दिनांक 06.07.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

ii) यूपी शहरी परिसर किरायेदारी अधिनियम, 2021 की धारा 10 (1) के तहत केस नंबर 696/2022, श्रीमती कंचन कुमार जैन बनाम जगमोहन अग्रवाल की पूरी कार्यवाही को रद्द करते हुए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।"

3. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन परिसर राज्य सरकार/नगर निगम द्वारा दी गई एक नजूल/पट्टे की भूमि है, इसलिए, उत्तर प्रदेश शहरी परिसर किरायेदारी अधिनियम, 2021 के विनियमन की धारा 3 के अपवाद के तहत (इसके बाद '2021 का अधिनियम संख्या 16' के रूप में संदर्भित), 2021 का अधिनियम संख्या 16 इस मामले में लागू नहीं होगा। हालांकि अंतरिम किराए के निर्धारण के लिए प्रतिवादी-वादी द्वारा दायर आवेदन के खिलाफ यह आपत्ति नहीं ली गई थी, लेकिन याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने रिकॉल आवेदन दाखिल करते समय इसे उठाया है और उस पर विचार किए बिना, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) के प्रावधानों के तहत रिकॉल आवेदन को खारिज कर दिया गया है। उन्होंने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि एक बार 2021 का अधिनियम संख्या 16 लागू नहीं होता है, तो 2021 के अधिनियम संख्या 16 के प्रावधान के तहत सभी कार्यवाही शुरू से ही शून्य हैं। वर्तमान मामले में, मकान मालिक के समक्ष उपाय प्रांतीय लघु कारण न्यायालय अधिनियम, 1887 (इसके बाद, '1887 के अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के तहत एससीसी मुकदमा दायर करना है।

4. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पहले दिन से, याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह कभी भी दुकान का किरायेदार नहीं है और वास्तव में उसके पिता किरायेदार थे। उनकी मृत्यु के बाद, वह अपने पिता के व्यवसाय में सफल नहीं हुए हैं और 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 (3) के अनुसार, वह किरायेदार नहीं है और किरायेदारी शेष अवधि के लिए उस व्यक्ति/परिवार के सदस्य को हस्तांतरित

होती है, जिसने मृतक किरायेदार के व्यवसाय को सफल बनाया था। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने अपनी आपत्ति में यह विशिष्ट आधार लिया है, लेकिन इसे खारिज करते हुए, किराया आवेदन का निर्णय 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 (2) के संदर्भ में 06.07.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से किया गया था, जो आवासीय किरायेदारी के उद्देश्य से है, जहां किरायेदारी का अधिकार शेष अवधि के लिए उसके उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित होगा, इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को किरायेदार मानते हुए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 (3) के आलोक में आदेश खराब है।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 किरायेदारी समझौते के लिए प्रदान करती है और केवल किरायेदारी समझौते के मामले में, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 के तहत कोई भी कार्यवाही शुरू की जा सकती है। किरायेदारी को मकान मालिक या किरायेदार द्वारा संयुक्त आवेदन या व्यक्तिगत आवेदन जमा करके पंजीकृत किया जाना आवश्यक है और उसके बाद, किराया प्राधिकरण एक विशिष्ट पहचान संख्या प्रदान करेगा। वर्तमान मामले में, किरायेदारी समझौते को कभी भी संयुक्त रूप से या अलग से पंजीकृत नहीं किया गया है और कोई विशिष्ट पहचान संख्या आवंटित नहीं की गई है, इसलिए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

6. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 10 मकान मालिक और किरायेदार के बीच किसी भी विवाद के मामले में संशोधित किराए का निर्धारण करने के लिए किराया प्राधिकरण का प्रावधान करती है और उस उद्देश्य के लिए, किराया प्राधिकरण की ओर से यह आवश्यक है कि वह बिना दिमाग लगाए किराए का निर्धारण करे, लेकिन वर्तमान मामले में, कुछ राशि काटने के बाद, प्रस्तावित किराए को बिना दिमाग लगाए और किराया निर्धारित करने के लिए किसी भी अभ्यास के बिना अनुमोदित किया गया है।

7. अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि यहां तर्क दिए गए तथ्यों के प्रकाश में, न तो कार्यवाही कानून के तहत बनाए रखने योग्य है और न ही तथ्यों पर। यहां तक कि अगर यह मान लिया जाए कि 2021 का अधिनियम संख्या 16 लागू है, भले ही, आदेश तथ्यों के आलोक में खराब है कि यह भी नहीं माना गया है कि याचिकाकर्ता किरायेदार नहीं है और 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 10 के तहत कोई किराया संशोधित नहीं किया जा सकता है।

8. श्री सुदीप हरकौली, प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई और प्रस्तुत किया कि यह एक तथ्यात्मक मुद्दा है, इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से किराया प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 35 के तहत किराया न्यायाधिकरण के समक्ष इस तरह के आदेश के पारित होने से 30 दिनों

के भीतर अपील दायर करना आवश्यक है, किराया प्राधिकरण के आदेश के तहत निर्धारित पूरी देय राशि का 50 प्रतिशत जमा करने के बाद।

9. उन्होंने यह भी बताया कि रिट याचिका में, यह उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन पट्टे की अवधि समाप्त हो गई है, जो गलत है, लेकिन वास्तव में, पट्टे को अंतिम बार 06.04.2010 को नवीनीकृत किया गया था और यह वर्ष 2037 तक वैध है। इसलिए, यह आधार अकेले रिट याचिका को खारिज करने के लिए पर्याप्त है।

10. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 3 में यह प्रावधान है कि इस अधिनियम में कुछ भी केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या सरकारी उपक्रम या उद्यमों या एक वैधानिक निकाय या छावनी बोर्ड के स्वामित्व वाले किसी भी परिसर पर लागू नहीं होगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि परिसर की परिभाषा 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी) में दी गई है, जिसका अर्थ है व्यवसाय या निवास उपयोग के उद्देश्य से भवन और उसके आसपास की भूमि। वर्तमान मामले में, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि केवल भूमि पट्टे पर दी गई थी और जहां तक भूमि पर निर्माण का संबंध है, जो परिसर का गठन करता है, निर्विवाद रूप से निर्मित और वादी-प्रतिवादी के स्वामित्व में है। वर्तमान याचिका में यह विवादित नहीं है कि इमारत याचिकाकर्ता के स्वामित्व में नहीं है, बल्कि राज्य सरकार या राज्य प्राधिकरणों के स्वामित्व में है, जैसा कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 3 के तहत परिभाषित किया गया है। उन्होंने 06.04.2010 को लीज डीड के नवीनीकरण की ओर भी इशारा किया और लीज डीड के पैराग्राफ नंबर 5 और 6 पर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि लीज डीड की समाप्ति के मामले में, पट्टे की भूमि पर निर्मित भवन पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए और भवन मालिक को दिया जाना चाहिए। मूल्यांकन के विवाद के संबंध में भी कुछ प्रावधान हैं, जो वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं हैं। उन्होंने आगे कहा कि परिसर की परिभाषा संपूर्ण है, इसलिए, इससे परे कुछ भी कानून की किसी भी अदालत द्वारा यात्रा नहीं की जा सकती है। वर्तमान मामले में, केवल भूमि पट्टे पर दी गई है और यह 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी) के तहत प्रदान की गई 'परिसर' की परिभाषा के भीतर नहीं आती है। इसलिए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 के प्रावधान वर्तमान मामले में बहुत अच्छी तरह से लागू होंगे। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **सना उल्लाह बनाम अशोक कपिल: 1979 एआरसी 138** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

11. प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक किरायेदारी से इनकार करने का संबंध है, यह तथ्य भी बिल्कुल गलत है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दायर लिखित बयान के अनुसार, किरायेदारी से इनकार नहीं किया गया था और यहां तक कि लिखित

बयान में भी यह उल्लेख किया गया है कि वह 10 साल से अधिक की अवधि के लिए विचाराधीन परिसर के कब्जे में नहीं है, जिसका अर्थ है कि इससे पहले, वह विचाराधीन परिसर पर कब्जा कर रहा था। उन्होंने आगे कहा कि 2014 तक, किराए की रसीद पर याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए थे, जो जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न है। इतना ही नहीं, 23.8.2012 को एक अदालती समझौता भी हुआ था, जिस पर याचिकाकर्ता प्रतिवादी ने किरायेदार की हैसियत से अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं। इस प्रकार, किरायेदारी से इनकार अस्पष्ट है, ऊपर उल्लिखित तथ्यों के प्रकाश में किसी भी दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं है। किरायेदारी के स्थानांतरण के बारे में किसी पारिवारिक निपटान या किसी अन्य कारण के मामले में, किरायेदार द्वारा किराया प्राधिकरण के समक्ष रिकॉर्ड पर लाया जाना चाहिए, जो वर्तमान मामले में गायब है। इसलिए, मामले के ऐसे तथ्यों के तहत, याचिकाकर्ता को किरायेदार के रूप में सही माना गया है।

12. उन्होंने यह भी बताया कि रिकॉल आवेदन दाखिल करते समय कई दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाया गया है। 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) के तहत आदेश को वापस लेने के बारे में प्रावधान है और उसके अनुसार, रिकॉल आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं है। इसलिए, रिकॉल आवेदन के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाया गया कोई भी नया दस्तावेज इस स्तर पर नहीं देखा जा सकता है और केवल अधिक से अधिक, इसे किराए के आवेदन पर निर्णय लेते समय देखा जा सकता है क्योंकि यह केवल किराए का अंतरिम निर्धारण है और अंतिम नहीं है। इसलिए, उन्होंने दोहराया कि रिकॉल आवेदन के साथ दायर किए गए किसी भी दस्तावेज को इस तथ्य के प्रकाश में नहीं पढ़ा जा सकता है कि रिकॉल आवेदन 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) के तहत प्रदान किए गए एक एक्सपार्टे ऑर्डर के अलावा बनाए रखने योग्य नहीं है, जो याचिकाकर्ता-प्रतिवादी का मामला नहीं है।

13. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 के तहत किराया समझौते के पंजीकरण का संबंध है, प्रतिवादी-वादी ने किराया प्राधिकरण के समक्ष 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (1) के तहत प्रदान की गई पहली अनुसूची के अनुसार जानकारी प्रस्तुत की है और पंजीकरण नहीं हुआ था क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने कोई प्रासंगिक जानकारी प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (1) की पहली अनुसूची के बारे में यह विशिष्ट कथन किया है, जिसका उल्लेख जवाबी हलफनामे के पैरा 18 में किया गया है। पहली अनुसूची को भवन के विवरण के साथ भी संलग्न किया गया है और साथ ही किरायेदार का नाम, यानी जगमोहन अग्रवाल, जो याचिकाकर्ता है। इसलिए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 में उल्लिखित शर्तों का प्रतिवादी-वादी द्वारा

बहुत अच्छी तरह से पालन किया गया है। इसलिए किराए की बकाया कार्यवाही बहुत अच्छी तरह से बनाए रखने योग्य है।

14. उन्होंने आगे इस न्यायालय का ध्यान 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (3) की ओर आकर्षित किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (3) का पहला परंतुक, यानी 4 (3) (ए) वर्तमान मामले में लागू होता है, जो इस अधिनियम के शुरू होने से पहले बनाई गई किरायेदारी का प्रावधान करता है और आगे यह प्रदान करता है कि यदि मकान मालिक और किरायेदार संयुक्त रूप से समझौते की एक प्रति प्रस्तुत करने में विफल रहते हैं या निर्दिष्ट अवधि के भीतर एक समझौते पर पहुंचने में विफल रहते हैं, ऐसे मकान मालिक और किरायेदार खंड 4 (2) में उल्लिखित अवधि की समाप्ति की तारीख से एक महीने के भीतर किराया प्राधिकरण के समक्ष इस तरह के किरायेदारी के बारे में अलग से विवरण दर्ज करेंगे। यदि मकान मालिक ने निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने विवरण प्रस्तुत किए हैं, लेकिन किरायेदार इसे जमा करने में विफल रहा है, तो मकान मालिक अकेले इस आधार पर बेदखली के लिए आवेदन दायर कर सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि अगला प्रावधान यह है कि इस तरह की बेदखली कार्यवाही के दौरान, किराया प्राधिकरण इस तरह के निर्णय के दौरान किरायेदार द्वारा देय अंतरिम किराए का भी फैसला करेगा। वर्तमान मामले में, यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 का अनुपालन नहीं किया है, इसलिए, यह याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के लिए अनुकूल आधार नहीं हो सकता है। ऐसा कोई अपवाद नहीं है कि मकान मालिक या किरायेदार की ओर से विफलता के मामले में, कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है, बल्कि उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (2) और 4 (3) का पालन करने में विफल रहता है और मकान मालिक द्वारा समझौता प्रस्तुत करने के बाद, वह बेदखली के लिए आगे बढ़ सकता है। इसलिए, 4 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2021 के आलोक में, वर्तमान कार्यवाही बहुत अच्छी तरह से बनाए रखने योग्य है।

15. इसके बाद उन्होंने प्रस्तुत किया कि जहां तक कार्यवाही की स्थिरता का संबंध है, उसी बाजार यानी लाभ चंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपीलों का एक समूह लंबित था। बाजार प्रतिवादी-वादी के संयुक्त परिवार के स्वामित्व में है और सिविल अपीलों का फैसला करते समय, सर्वोच्च न्यायालय ने एक टिप्पणी की थी कि नए अधिनियम का प्रावधान, यानी 2021 का अधिनियम संख्या 16 किरायेदारी के मौजूदा धारकों के लिए किराए के संशोधन के सिद्धांत पर भी लागू होगा और इस प्रकार, इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। जहां तक प्रतिवादी-वादी के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत बकाया के दावे का संबंध है, उसे भी 2021 के अधिनियम संख्या 16 के प्रावधानों के तहत निपटाया जाना है।

16. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने उसी बाजार में समान रूप से स्थित दुकान के संबंध में प्रतिवादी वादी के परिवार के सदस्यों द्वारा दायर सिविल अपीलों पर अलग से विचार किया है और पुनरीक्षण न्यायालय और ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया है, आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत मुकदमों को खारिज कर दिया और 2021 के अधिनियम संख्या 16 के आधार पर पुनर्विचार के लिए मुकदमा बहाल कर दिया।

17. उन्होंने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि सुप्रीम कोर्ट ने खुद माना है कि 2021 का अधिनियम संख्या 16 उस दुकान पर लागू होगा जो उसी बाजार में स्थित है। इसलिए 2021 के अधिनियम संख्या 16 की प्रयोज्यता का मुद्दा उठाया नहीं जा सकता है, एक बार सुप्रीम कोर्ट द्वारा इसे बरकरार रखा जाता है।

18. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उन्होंने किराए के आवेदन के पैरा 4, 5, 6 और 7 में एक ही क्षेत्र में एक ही बाजार, यानी लाभ चंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा में चार दुकानों के किराए का उल्लेख करते हुए 2004 से 2012 के बीच की अवधि के लिए एडीएम (एफआर) द्वारा किए गए क्षेत्र के आकलन का उल्लेख किया है और उसके अनुसार, वार्षिक किराये का मूल्य 10,000/- रुपये है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि पैरा 6 में, उन्होंने दुकान नंबर 29/296/24 के साथ किरायेदार का नाम वीरेंद्र कुमार शर्मा दिया है, जो उसी बाजार में दुकान के लिए प्रति माह 22,000 रुपये का भुगतान कर रहा है। इतना ही नहीं, पैरा 7 में, विशिष्ट कथन है कि किराया प्राधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 22.12.2021 के माध्यम से दुकान संख्या 29/296ए/29 (नया नंबर 29/296/ए/5), लाभ चंद मार्केट, रजकी मंडी, आगरा के किराए को 750 प्रति वर्ग फीट के रूप में संशोधित किया है और वर्तमान मामले में किराया प्राधिकरण द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए तय किया गया है कि यह दुकान भी उसी क्षेत्र और उसी बाजार में स्थित है, यानी लाभ चंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा।

19. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी द्वारा किराया प्राधिकरण के समक्ष दायर आपत्ति में, प्रतिवादी-वादी द्वारा दायर किराया आवेदन के पैरा 4, 5, 6 और 7 में उल्लिखित तथ्यों से इनकार नहीं किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता प्रतिवादी का तर्क है कि किराए का कोई निर्धारण नहीं है, बिल्कुल गलत है क्योंकि उसी बाजार में, किराया प्राधिकरण द्वारा किराए का निर्धारण किराए के आवेदन के पैरा 4, 5, 6 और 7 में उल्लिखित अन्य तथ्यों के साथ जोड़ा गया है। इसलिए यह तर्क भी पोषणीय नहीं है।

20. प्रत्युत्तर तर्क में, याचिकाकर्ता प्रतिवादी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि 'परिसर' शब्द का उपयोग करते समय, कानून का इरादा कुछ अलग है। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल भूमि का स्वामित्व राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा अथवा उसका स्वामित्व होगा, जबकि भवन का स्वामित्व पट्टेदार के पास होगा। वास्तव में, 'परिसर' शब्द के अर्थ में प्रश्न में भूमि के साथ-साथ उस पर उठाया

गया भवन भी शामिल है, हालांकि इसका निर्माण पट्टेदार द्वारा किया गया है।

21. उन्होंने यह भी दोहराया कि अंतरिम किराया तय करते समय, किराया आवेदन के पैरा 4, 5, 6 और 7 में उल्लिखित तथ्यों के संबंध में भी किराया प्राधिकरण द्वारा कोई चर्चा नहीं की गई है, लेकिन किराया प्राधिकरण ने सीधे किराया तय किया है, जो गलत है।

22. मैंने पार्टियों के लिए विद्वान वकीलों द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है, रिकॉर्ड का अवलोकन किया है, 2021 के अधिनियम संख्या 16 के प्रासंगिक प्रावधानों के साथ-साथ उन निर्णयों पर भी भरोसा किया है।

23. 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 35 के तहत अपील का प्रावधान है और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की ओर से पहले उपलब्ध वैकल्पिक उपाय को समाप्त करना आवश्यक है, लेकिन वर्तमान याचिका में, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की प्रयोज्यता का मुद्दा शामिल है, जो बिल्कुल एक कानूनी प्रश्न है, इसलिए, वर्तमान याचिका पर विचार किया जाता है और अदालत याचिका का फैसला करने के लिए आगे बढ़ती है।

24. इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया गया पहला मुद्दा नए अधिनियम, यानी 2021 के अधिनियम संख्या 16 की प्रयोज्यता के बारे में है। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील ने 3 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2021 पर निर्भरता रखी है, जो वर्तमान विवाद में प्रासंगिक है। इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"3. कुछ परिसरों को लागू नहीं करने के लिए अधिनियम-*(1) इस अधिनियम में कुछ भी किसी को लागू नहीं होगा-*

(i) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र प्रशासन या सरकारी उपक्रम या उद्यमों या सांविधिक निकाय या छावनी बोर्ड के स्वामित्व वाले परिसर;

(ii) किसी कंपनी, विश्वविद्यालय या संगठन के स्वामित्व वाले परिसर को सेवा संविदा के भाग के रूप में उसके कर्मचारियों को किराए पर दिया गया है;

(iii) धामक या धर्मार्थ संस्था के स्वामित्व वाले परिसर, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा विनिदष्ट किया जाए;

(iv) वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का अधिनियम संख्या 43) के तहत पंजीकृत औकाफ के स्वामित्व वाले परिसर या लागू कानून के तहत पंजीकृत किसी भी सार्वजनिक ट्रस्ट द्वारा;

(v) राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा जनहित में विशेष रूप से छूट प्राप्त अन्य भवन अथवा भवन की श्रेणी।

(2) उप-धारा (1) में निहित किसी बात के बावजूद, यदि उक्त उप-धारा के खंड (i) से खंड (v) में निर्दिष्ट परिसर के मालिक और किरायेदार इस बात से सहमत है कि ऐसे मकान मालिक और किरायेदार के बीच किए गए किरायेदारी करार को इस अधिनियम के उपबंधों के तहत विनियमित किया जाए, तो ऐसे मकान मालिक धारा 4 के तहत किरायेदारी करार की सूचना के समय ऐसा करने के लिए करार के किराया प्राधिकारी को सूचित कर सकते हैं।"

25. उपर्युक्त प्रावधान के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यह अधिनियम उस स्थिति में लागू नहीं होगा जब परिसर केंद्र सरकार या राज्य सरकार या संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन या एक सरकारी उपक्रम या उद्यमों या एक सांविधिक निकाय या छावनी बोर्ड के स्वामित्व में है।

26. अब, प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क का विरोध करते हुए- 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी) पर निर्भरता रखी है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

***"2. परिभाषा-** इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-*

(ग) "परिसर" का अर्थ है कोई भी भवन या भवन का हिस्सा जो औद्योगिक उपयोग को छोड़कर, निवास के प्रयोजन के लिए या वाणिज्यिक या शैक्षिक उपयोग के लिए किराए पर दिया गया है या होने के लिए आशयित है और इसमें शामिल हैं-

(i) उद्यान, गैरेज या बंद पार्किंग क्षेत्र, खाली भूमि, मैदान और आउट-हाउस, यदि कोई ऐसी इमारत या भवन के हिस्से से संबंधित हो; और

(ii) इस तरह के भवन या भवन के हिस्से के लिए अधिक लाभकारी आनंद के लिए कोई फिटिंग, जैसे होटल, लॉजिंग हाउस, धर्मशाला या सराय जैसे परिसर शामिल नहीं हैं;"

27. धारा 2 (ग) परिसर को परिभाषित करता है। 'परिसर' शब्द का अर्थ है व्यवसाय या आवासीय उपयोग के उद्देश्य से इसके चारों ओर भूमि के साथ भवन। जहां तक वर्तमान विवाद का संबंध है, क्या परिसर या केवल भूमि राज्य प्राधिकरणों या किसी अन्य नगरपालिका प्राधिकरण द्वारा पट्टे पर दी गई थी। वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि केवल भूमि पट्टे पर थी, उस पर कोई इमारत नहीं थी और निर्विवाद रूप से इमारत का निर्माण प्रतिवादी द्वारा किया गया था। इसलिए, परिसर शब्द को केवल भूमि के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है, लेकिन इसमें भवन भी शामिल है, जिसे वर्तमान मामले में कभी पट्टे पर नहीं दिया गया है। 'परिसर' शब्द की परिभाषा बहुत

विस्तृत है और इससे परे कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है और निश्चित रूप से वर्तमान मामले में, केवल भूमि का स्वामित्व और पट्टे पर राज्य के अधिकारियों द्वारा किया जाता है, जैसा कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 3 (i) में उल्लेख किया गया है, न कि भवन, इसलिए, विवादित संपत्ति में भूमि और भवन दोनों शामिल हैं और यह धारा 3 (i) के अपवाद के साथ कवर नहीं है 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी)। **सना उल्लाह (उपरोक्त)** के मामले में न्यायालय द्वारा कानून के उसी अनुपात का पालन किया गया है।

28. 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी) के तहत परिसर की परिभाषा भी 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 3 (i) में दी गई भवन की परिभाषा के अनुरूप है और यह **सना उल्लाह (उपरोक्त)** में इस न्यायालय के निर्णय का विषय था और उक्त निर्णय में न्यायालय का विचार है कि यदि परिभाषा बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण है, इसे कुछ और के रूप में पढ़ना संभव नहीं है, जो इसमें नहीं कहा गया है। पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"14. अभिव्यक्ति "भवन" को धारा 3 (1) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -
'भवन' का अर्थ है आवासीय या गैर-आवासीय छत वाली संरचना और इसमें शामिल हैं-

(i) कोई भी भूमि (किसी भी बगीचे सहित), गैरेज और आउट-हाउस, ऐसी इमारत से संबंधित;

(ii) ऐसे भवन में उपयोग के लिए मकान मालिक द्वारा आपूर्ति किया गया कोई भी फर्नीचर;

(iii) अधिक लाभकारी आनंद के लिए ऐसी इमारत से जुड़ी कोई भी फिटिंग और जुड़नार।

15. चूंकि उपरोक्त परिभाषा में "साधन" शब्द का उपयोग किया गया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि परिभाषा संपूर्ण है, और इसमें कुछ ऐसा पढ़ना संभव नहीं है जो उसमें नहीं कहा गया है। परिभाषा स्पष्ट रूप से दिखाती है कि इसके भीतर गिरने के लिए, एक छत वाली संरचना होनी चाहिए। इसलिए, यदि कोई छत वाली संरचना नहीं है, तो परिसर एक इमारत नहीं हो सकता है। अधिनियम में दिए गए अर्थ के अलावा, एक 'भवन' हमेशा ईंट या पत्थर के काम का एक खंड होना चाहिए, जो छत से ढका हो। छत को लिंटेल या अन्य समान निर्माणों के साथ बिछाने की आवश्यकता नहीं है। "इमारत" शब्द के सामान्य और प्राकृतिक अर्थ में कपड़े और जमीन शामिल है जिस पर यह खड़ा है। यह एक संरचना है जो छत पर है और सुरक्षा और आश्रय को बनाए रखने में सक्षम है। इसलिए, इसी तरह की छत रहित अहाता जो केवल जमीन के एक टुकड़े को घेरती है, हालांकि एक साथ रहती है और बंधी हुई है, ऊपर दी गई परिभाषा के भीतर एक इमारत नहीं है। इस मामले में निर्णय के लिए अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई निर्माण आवंटन की तारीख को भी एक इमारत होना चाहिए या यदि यह खाली होने की तारीख को एक इमारत के रूप में पाया जाता है, तो

आवंटन आदेश पारित करने के लिए अकेले ही पर्याप्त होना चाहिए।"

29. अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 3 (i) में 'भवन' की परिभाषा और 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 2 (सी) में परिसर की परिभाषा समान और बहुत विस्तृत है, जिसमें भूमि भी शामिल है। इसलिए केवल भूमि को ही 'परिसर' नहीं कहा जा सकता है। वर्तमान मामले में, राज्य के अधिकारियों द्वारा केवल भूमि को पट्टे पर दिया गया था और इसे परिसर नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, 1973 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 3 (i) का अपवाद वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

30. वादी-प्रतिवादी ने 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 10 के तहत किराए में वृद्धि के लिए आवेदन दिया है। 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 10 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> *"10. **किराए के संशोधन के संबंध में मकान मालिक और किरायेदार के बीच किसी विवाद के मामले में-**(1) किराया प्राधिकरण, मकान मालिक या किरायेदार द्वारा किए गए आवेदन पर, किरायेदार द्वारा देय संशोधित किराया और अन्य शुल्क निर्धारित कर सकता है और उस तारीख को भी तय कर सकता है जिससे ऐसा संशोधित किराया देय हो जाता है।*
>
> *(2) पुनरीक्षित किए जाने वाले किराए का अवधारण करने में, किराया प्राधिकारी को किराए पर छोड़े गए आस-पास के क्षेत्रों में प्रचलित बाजार किराए से निर्देशित किया जा सकेगा।*
>
> *(3) एक बार इस धारा के तहत एक निर्धारण किया गया है, नए निर्धारण के लिए कोई आवेदन उक्त निर्धारण के बाद एक वर्ष की अवधि के लिए झूठ नहीं होगा।*
>
> *(4) किराया प्राधिकारी किराए के पुनरीक्षण के लिए कार्यवाही के दौरान अनंतिम किराया निर्धारित कर सकता है जो अंतिम निर्धारण के अधीन होगा।"*

31. 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 10 (4) के तहत, किराया प्राधिकरण के लिए किराए के संशोधन की कार्यवाही के दौरान अनंतिम किराया तय करने का प्रावधान है, इसलिए, किराया प्राधिकरण का आदेश 2021 के अधिनियम संख्या 16 के 10 (4) के प्रावधान के तहत इसे दिए गए अधिकार के भीतर है।

32. याचिकाकर्ता प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील का अगला तर्क यह है कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 (3) के तहत, जो कहता है कि किरायेदारी शेष अवधि के लिए उस व्यक्ति पर निर्भर करती है जिसने मृतक किरायेदार के

व्यवसाय को सफल किया है और वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी किसी भी व्यवसाय में सफल नहीं हुआ था, इसलिए, वह किरायेदार नहीं है जैसा कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 (3) के तहत प्रदान किया गया है।

33. याचिकाकर्ता प्रतिवादी के विद्वान वकील का यह तर्क 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 6 की व्याख्या से उत्पन्न होता है और उसी का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> *"6. **मकान मालिक और किरायेदार के बीच निष्पादित समझौते की शर्तें**-(1) मकान मालिक या किरायेदार की मृत्यु की स्थिति में उनके उत्तराधिकारियों पर बाध्यकारी होंगी, जैसा कि वे मामला हो सकते हैं, और ऐसे मामले में, मृत मकान मालिक या किरायेदार के उत्तराधिकारी के पास ऐसे किरायेदारी की शेष अवधि के लिए किरायेदारी समझौते में सहमत समान अधिकार और दायित्व होंगे।*
>
> *(2) आवासीय किरायेदारी के किरायेदार की मृत्यु की स्थिति में, किरायेदारी का अधिकार उसके उत्तराधिकारी पर किरायेदारी की अवधि के लिए हस्तांतरित होगा, अर्थात्: पति -पत्नी; बेटा या बेटी या जहां बेटा और बेटी दोनों हैं, तो दोनों; माता-पिता; बहू, उनके दिवंगत पुत्र की विधवा होने के नाते या तलाकशुदा बहन: बशर्ते कि उत्तराधिकारी आमतौर पर मृतक किरायेदार के साथ उसकी मृत्यु की तारीख तक परिसर में रह रहा हो।*
>
> *(3) गैर-आवासीय किरायेदारी के किरायेदार की मृत्यु की स्थिति में, किरायेदारी का अधिकार उस व्यक्ति को किरायेदारी की शेष अवधि के लिए हस्तांतरित होगा मृतक किरायेदार के व्यवसाय का उत्तराधिकारी हो।"*

34. प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि लिखित बयान में, यह उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी 2014 तक 10 से अधिक वर्षों की अवधि के लिए विचाराधीन परिसर के कब्जे में था। किराया रसीद पर याचिकाकर्ता प्रतिवादी द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए थे, जो जवाबी हलफनामे का हिस्सा है और 23.08.2012 के अदालत समझौते पर भी याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा किरायेदार की क्षमता में हस्ताक्षर किए गए हैं। **ये तथ्य निर्विवाद हैं।**

35. एक बार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी 10 से अधिक वर्षों से विचाराधीन दुकान के कब्जे में था, 2014 तक किराए की रसीद पर हस्ताक्षर किए और अदालत के समझौते में किरायेदार की क्षमता में अपना हस्ताक्षर भी किया, तो वह किरायेदारी से इनकार नहीं कर सकता।

36. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेज नहीं ला सके कि किसी भी समय, पारिवारिक

निपटान या किसी अन्य कारण से, किरायेदारी को परिवार के अन्य सदस्यों में स्थानांतरित कर दिया गया था, जो व्यवसाय में सफल रहे। इसलिए याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा किरायेदारी से इनकार को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसे किरायेदार माना जाना चाहिए।

37. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी का यह भी मामला है कि हालांकि उसने प्रतिवादी-वादी द्वारा किराया निर्धारण के लिए दायर किराए के आवेदन के खिलाफ आपत्ति नहीं ली है, लेकिन उसने रिकॉल आवेदन दायर करके वही आपत्ति उठाई है, जिसे 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) के आलोक में खारिज कर दिया गया था। यह उनका मामला है कि एक बार 2021 का अधिनियम संख्या 16 उनके मामले में लागू नहीं होता है, तो सभी कार्यवाही खराब होती हैं और इसलिए रिकॉल आवेदन में, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की प्रयोज्यता के मुद्दे पर विचार किया जाना चाहिए।

38. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील का यह तर्क 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) की व्याख्या पर आधारित है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> *"34. **किराया प्राधिकरण और किराया अधिकरण की शक्तियां-** (1) किराया प्राधिकारी और किराया अधिकरण, इस अधिनियम के तहत अपने कृत्यों का निर्वहन करने के लिए, वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम संख्या 5) के तहत सिविल कोर्ट में निहित हैं:*
>
> *(8) किराया प्राधिकारी किसी आदेश को रद्द कर सकता है या वापस ले सकता है यदि पीड़ित पक्ष एक आवेदन दायर करता है और इसे संतुष्ट करता है कि नोटिस विधिवत तामील नहीं किया गया था या उसे किसी भी पर्याप्त कारण से पेश होने से रोका गया था जब मामले को सुनवाई के लिए लिया गया था।"*

39. पूर्वोक्त प्रावधान के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि किराया प्राधिकरण इस आधार पर रिकॉल आवेदन को रद्द कर सकता है कि नोटिस नहीं दिया गया है या जब मामला उठाया गया था तो उसे उपस्थित होने से रोका गया था। यह याचिकाकर्ता प्रतिवादी का मामला नहीं है। उन्होंने विधिवत नोटिस प्राप्त किया है, आपत्ति दर्ज की है, इसलिए 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) के आलोक में, किराया प्राधिकरण इससे आगे नहीं बढ़ सकता है और 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 34 (8) में निर्दिष्ट गैर-उपस्थिति के लिए नोटिस की तामील को छोड़कर कोई नया तथ्य या आपत्ति या कागज स्वीकार नहीं किया जा सकता है। रेंट अथॉरिटी ने याचिकाकर्ता प्रतिवादी द्वारा दायर रिकॉल आवेदन को खारिज कर दिया है।

40. 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 के प्रावधान की व्याख्या के बारे में याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील का एक और तर्क था। प्रासंगिक पैराग्राफ, यानी 4

(1), 4 (2) और 4 (3) नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

*"4, **किरायेदारी करार-** (1) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति, इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात्, लिखित में करार के सिवाय, जिसे मकान मालिक और किरायेदार द्वारा संयुक्त रूप से किराया प्राधिकारी को सूचित किया जाएगा, किराए पर नहीं लेगा या किराए पर नहीं लेगा, किरायेदारी समझौते की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर पहली अनुसूची में निर्दिष्ट रूप में।*

बशर्ते कि बारह महीने से कम की अवधि के लिए मामलों या आवासीय किरायेदारों में, मकान मालिक और किरायेदार को ऐसी किरायेदारी के बारे में किराया प्राधिकारी को सूचित करने की आवश्यकता नहीं होगी।

(2) जहां मकान मालिक और किरायेदार संयुक्त रूप से उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किरायेदारी समझौते के निष्पादन को सूचित करने में विफल रहते हैं, मकान मालिक और किरायेदार अलग-अलग किरायेदारी समझौते के निष्पादन को किराया प्राधिकरण को एक महीने की अवधि के भीतर सूचित करेंगे उपधारा (1) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति की तारीख से

(3) जहां, इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले सृजित किरायेदारी के संबंध में, -

(ए) यदि मकान मालिक और किरायेदार के बीच लिखित में एक समझौता किया गया था, तो वे संयुक्त रूप से इस अधिनियम के शुरू होने के तीन महीने के भीतर किराया प्राधिकारी को उसकी एक प्रति प्रस्तुत करेंगे।

(ख) यदि लिखित रूप में कोई करार नहीं किया गया था तो मकान मालिक और किरायेदार उस किरायेदारी के संबंध में लिखित रूप में करार करेंगे और उसे इस अधिनियम के प्रारंभ होने के तीन मास के भीतर किराया प्राधिकारी को प्रस्तुत करेंगे: परन्तु जहां मकान मालिक या किरायेदार संयुक्त रूप से किरायेदारी करार की एक प्रति प्रस्तुत करने में विफल रहता है या विनिदष्ट अवधि के भीतर किसी करार पर पहुंचने में विफल रहता है, ऐसे मकान मालिक और किरायेदार पहली अनुसूची में निर्दिष्ट फॉर्म में उपरोक्त खंड (बी) में उल्लिखित अवधि की समाप्ति की तारीख से एक महीने के भीतर किराया प्राधिकारी के साथ इस तरह के किरायेदारी के बारे में विवरण अलग से दर्ज करेंगे। यदि मकान मालिक ने निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपना विवरण प्रस्तुत किया है, लेकिन किरायेदार ऐसे विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहता है, तो मकान मालिक अकेले इस आधार पर बेदखली के लिए आवेदन दायर कर

सकता है; परंतु यह और कि ऐसी बेदखली कार्यवाहियों के दौरान, किराया प्राधिकारी, इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अधिनिर्णय के दौरान किरायेदार द्वारा संदेय अंतरिम किराया विनिश्चित करेगा।"

41. 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4 (2) और 4 (3) के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि यदि मकान मालिक और किरायेदार द्वारा संयुक्त किरायेदारी समझौता दायर नहीं किया गया है, तो यह मकान मालिक और किरायेदार के लिए खुला है कि वे पहली अनुसूची में निर्धारित फॉर्म में किराया प्राधिकरण के समक्ष एक महीने के भीतर इस तरह के किरायेदारी के अलग-अलग विवरण दर्ज करें। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-वादी ने पहली अनुसूची में निर्धारित रूप में किरायेदारी का विवरण प्रस्तुत किया है और किराया प्राधिकरण या इस न्यायालय के समक्ष इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है। इसलिए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4(2) और 4(3) के आलोक में, 2021 के अधिनियम संख्या 16 के तहत कार्यवाही बहुत अच्छी तरह से बनाए रखने योग्य है।

42. इतना ही नहीं, प्रतिवादी-वादी के परिवार के सदस्यों के स्वामित्व वाले एक ही बाजार के समान विवाद से उत्पन्न होकर, मामला 2017 की सिविल अपील संख्या 1082-2083 **(नीना जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में सर्वोच्च न्यायालय में चला गया और उक्त मामले के लंबित रहने के दौरान, 2021 का नया अधिनियम संख्या 16 बनाया गया और लागू किया गया। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले की कार्यवाही को इस अवलोकन के साथ बंद कर दिया है कि नया अधिनियम, यानी 2021 का अधिनियम संख्या 16 मौजूदा किरायेदारों के किराए के संशोधन को नियंत्रित करेगा। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"अधिनियम के प्रावधान मौजूदा धारक किरायेदारों पर भी किराए के संशोधन के सिद्धांत को लागू करते हैं और इस प्रकार, इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। जहां तक अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किसी भी बकाया के दावे का संबंध है, उसे भी नए अधिनियम के प्रावधानों के तहत निपटाना होगा और इस प्रकार, उस पहलू पर भी कोई आशंका नहीं है।

हम देख सकते हैं कि अपील के इन बैच में कुछ ऐसे मामले हैं जहां मकान मालिकों द्वारा दायर मुकदमा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश VII नियम 11 के तहत खारिज कर दिया गया था। उसी के खिलाफ दायर पुनरीक्षण को भी उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के औचित्य पर आधारित करते हुए खारिज कर दिया था। इस प्रकार, इन मामलों में विद्वान वकीलों का यह कहना है कि वाद को अस्वीकार करने वाले इन आदेशों को वापस लेना होगा और नए

कानून के मद्देनजर नए विचार के लिए वाद को वापस लेना होगा, जैसा कि पूर्वोक्त चर्चा की गई है।

तदनुसार, हम पुनरीक्षण में पारित आदेश(ओं) को रद्द करते हैं और ट्रायल कोर्ट द्वारा आदेश VII नियम 11, सीपीसी के तहत मुकदमों को खारिज कर दिया जाता है और नए कानून और आज हमारे द्वारा पारित आदेश के आधार पर पुनर्विचार के लिए मुकदमों को बहाल करते हैं।"

43. सर्वोच्च न्यायालय ने कई सिविल अपीलों से निपटने के लिए दिनांक 23.08.2021 का आदेश पारित करते हुए, जिसमें से एक सिविल अपील नंबर 1089/2017 प्रतिवादी वादी के परिवार के सदस्यों द्वारा उसी बाजार में स्थित दुकान के संबंध में दायर की गई थी। उन मामलों में, मकान मालिकों द्वारा दायर मुकदमे को ट्रायल कोर्ट द्वारा आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत खारिज कर दिया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया था। अंततः, सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए सिविल अपील की अनुमति दी और नए अधिनियम, यानी 2021 के अधिनियम संख्या 16 के आधार पर निर्णय लेने के लिए मामले को ट्रायल कोर्ट में भेज दिया।

44. इसलिए, 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 4(2) और 4(3) के अवलोकन के साथ-साथ **नीना जैन और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष से, कोई विवाद नहीं है कि नए अधिनियम के तहत कार्यवाही बनाए रखने योग्य है।

45. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी का यह भी मामला है कि बिना किसी अभ्यास और दिमाग के आवेदन के प्रतिवादी-वादी द्वारा प्रस्तावित किराया स्वीकार किया जाता है।

46. प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि किराया आवेदन के पैराग्राफ 4, 5, 6 और 7 में, उसी बाजार, यानी लाभचंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा में दुकानों के बारे में किराए के निर्धारण के बारे में कथन है, जिसे याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दायर आपत्ति में अस्वीकार नहीं किया गया है।

47. मैंने किराए के आवेदन का अवलोकन किया है और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की आपत्ति भी की है। निश्चित रूप से 20.01.2022 के किराए के आवेदन के पैराग्राफ 4, 5, 6 और 7 में उल्लिखित तथ्यों से इनकार नहीं किया गया है कि यह उसी बाजार में नहीं है, यानी लाभचंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा। किराया आवेदन के पैराग्राफ 4, 5, 6 और 7 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

*"4. यह दुकान आगरा शहर के सबसे प्रमुख महत्वपूर्ण बाजार में स्थित है। प्रश्नगत क्षेत्र में 4 दुकानों का मूल्यांकन एडीएम (एफआर), आगरा द्वारा **दुकान संख्या 29/296ए/31, 29/296ए/37, 29/296/11 और***

29/296/14 के संबंध में विभिन्न तिथियों में किया गया था।
<u>सभी आदेशों की प्रतियां शपथ पत्र के अनुलग्नक बी, सी, डी और ई के रूप में भी दायर की जा रही हैं।</u>

5. एडीएम (एफआर), आगरा द्वारा 2004 और 2012 के बीच चार दुकानों के लिए किए गए उपरोक्त अनुमान के अनुसार 2021 में लाभ चंद मार्केट में दुकानों का वर्तमान मूल्य लगभग आता है। रु. 1,00,000/- प्रति वर्ग। फीट वार्षिक किराया मूल्य (बाजार मूल्य के 10% पर) रु. 10,000/- प्रति वर्ग-फीट और मासिक किराया रु. 833/- प्रति वर्ग-फीट नीचे दी गई तालिका के अनुसार आता है:-

		134+134=268				
29/296ए/37	26/296/बी/5-6	340 जीएफ + 310 बेसमेंट = 340 + 155 = 495	05/12/2007	184	488	98,586/-
29/296/11		71.22	14/05/2004	19.50	63.87	89,958/-
29/296/14		79.50	30/04/2005	21.45	65.54	82,440/-

शॉप नं. पुराना	शॉप नं. नया	वर्ग फुट में क्षेत्रफल (लगभग)	मूल्यांकन की तिथि	मूल्य d रु. (लाख में)	2021 में मूल्य (लाख रुपये में) @ 7% वार्षिक वृद्धि	मूल्य रुपये प्रति वर्ग में। पैर 2021 में
29/296ए/31	29/296/ए/7	जीएफ में 134 और बेसमेंट में 268=	17/05/2012	165	309.23	1,15,384/-

6. कि बाजार में भी एक किरायेदार ***श्री वीरेंद्र कुमार शर्मा, जिसकी दुकान संख्या 29/296/24 है, जिसका क्षेत्रफल 20 वर्ग फीट है, अपने मकान मालिक श्रीमती कंचन कुमारी जैन, स्वर्गीय श्री मिलाप चंद्र जैन की पत्नी को 22,000 रुपये प्रति माह के हिसाब से किराया दे रहा है। <u>लीज एग्रीमेंट और उसकी भुगतान रसीदों की प्रति शपथ पत्र के अनुलग्नक एफ, जी एंड एच के रूप में दाखिल की जा रही है।</u>***

7. कि हाल ही में किराया प्राधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 22/12/2021 द्वारा दुकान संख्या 29/296ए/29 (नया नंबर 29/296ए/5) लाभ चंद मार्केट, राजा की मंडी, आगरा के

अनुवाद

किराए को संशोधित करके 750/- रुपये प्रति वर्ग फीट कर दिया है। ***<u>आदेश दिनांक 22/12/2021 की प्रति शपथ पत्र के अनुलग्नक I के रूप में दाखिल की जा रही है।"</u>***

48. याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने प्रतिवादी-वादी द्वारा दायर किराया आवेदन दिनांक 20.01.2022 के पैराग्राफ 4, 5, 6 और 7 का उत्तर दिनांक 18.05.2022 को आपत्ति दर्ज करके दिया है। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दायर आपत्ति के प्रासंगिक पैराग्राफ को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"3. आवेदन का पैरा नंबर 3 और 4 कानूनी है इसलिए किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है। अधिक इसलिए कि विपरीत पक्ष दिवंगत परिसर का किरायेदार नहीं है।

4. वह पैरा नंबर 5, चूंकि किसी भी तरह से विपरीत पार्टी से संबंधित नहीं है, इसलिए किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, यह प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी मकान मालिक कानूनी रूप से अपने कानूनी उत्तराधिकारियों / उत्तराधिकारियों को छोड़कर अपने भाइयों या रक्त संबंधी व्यक्ति के कंधों पर किरायेदार से प्राप्त किए जाने वाले फलों को स्थानांतरित नहीं कर सकता है।

5. आवेदन का पैरा नंबर 6 संबंध का विषय है और प्रकृति में कानूनी होने के लिए किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है।

6. चूंकि आवेदन का पैरा नंबर 7 विपरीत पक्ष से संबंधित नहीं है, इसलिए किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है।

49. आपत्ति के पैराग्राफ 3, 4, 5 और 6 में, वादी प्रतिवादी द्वारा दायर किराया आवेदन के पैराग्राफ 4, 5, 6 और 7 में इस तथ्य का कोई खंडन नहीं है।

50. किराया आवेदन के पैरा 4 में यह उल्लेख किया गया है कि विचाराधीन दुकान भी उसी बाजार में स्थित है, अर्थात लाभ चंद मार्केट, रजकी मंडी, आगरा। पैरा 4 में, एडीएम (एफआर) के मूल्यांकन आदेश का संदर्भ है और उसके अनुसार मासिक किराया उसी बाजार में स्थित अन्य दुकानों के लिए 833 रुपये प्रति वर्ग फुट की दर से तय किया गया है।

51. इतना ही नहीं, किराया प्राधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 22.12.2021 द्वारा दुकान संख्या 29/296ए/29 (नया नंबर 29/296/ए/5), लाभ चंद मार्केट, रजकी मंडी, आगरा के किराए को 750 रुपये की दर से संशोधित किया है। वर्तमान मामले में, उसी बाजार में दुकान संख्या 29/296/20, आक्षेपित अंतरिम किराया आदेश दिनांक 06.07.2022 दिनांक 22.12.2021 के आदेश पर भरोसा करते हुए पारित किया गया है,

जिसमें किराया 750/- रुपये प्रति वर्ग फुट तय किया गया है। इसलिए आपत्ति में विशिष्ट इनकार के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि किराया प्राधिकरण ने बिना दिमाग लगाए अंतरिम किराया तय किया है। वास्तव में, किराया प्राधिकरण ने अंतरिम किराया तय करते समय उसी बाजार के लिए किराया 750/- रुपये प्रति वर्ग फुट तय करने के आदेश दिनांक 22.12.2021 पर भरोसा किया है। आक्षेपित अंतरिम किराया आदेश दिनांक 22.12.2021 के पहले के आदेश से लगभग 8 महीने बाद 06.07.2022 को पारित किया गया है। अतः सभी प्रकार की स्थिति में अंतरिम किराया 750/- रुपये प्रति वर्ग फुट की राशि से कम निर्धारित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दुकानें एक ही बाजार अर्थात लाभ चंद मार्केट, राजकी मंडी, आगरा में स्थित हैं। मामले के ऐसे तथ्यों के तहत, यह नहीं कहा जा सकता है कि 06.07.2022 का आक्षेपित आदेश बिना किसी अभ्यास या दिमाग के आवेदन के पारित किया गया है। किराया प्राधिकरण ने दिनांक 22.12.2021 के पूर्व आदेश से 8 महीने बाद भी 750/- प्रति वर्ग फीट की दर से अंतरिम किराया तय करते समय एक उदार दृष्टिकोण अपनाया है, अन्यथा, यह कुछ उच्च पक्ष के लिए तय किया जा सकता था।

52. इसलिए, तथ्यों, कानून के प्रावधान और ऊपर चर्चा किए गए निर्णयों के प्रकाश में, मुझे 06.07.2022 के आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं मिलती है। याचिका में योग्यता का अभाव है और तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

53. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 290

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट ए संख्या 7471 वर्ष 2016

राम केश यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री अमित कुमार श्रीवास्तव, श्री अर्पण श्रीवास्तव, श्री अनिल भूषण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सेवा कानून- उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1982 - धारा 33-सी - नियमितीकरण - राधा रायजादा के निर्णय से पहले की नियुक्ति - नियुक्ति की वैधता और नियमितीकरण की पात्रता - सहायक अध्यापक की प्रधानाध्यापक के पद पर पदोन्नति के कारण मौलिक रिक्तियां थीं - जिला विद्यालय निरीक्षक ने वित्तीय स्वीकृति प्रदान की - रिक्ति रिपोर्ट को खारिज करने वाली समिति के निष्कर्ष को विकृत अभिनिर्धारित किया गया - रिट की अनुमति

दी गई - परिणामी लाभों के साथ नियमितीकरण के लिए निर्देश। याचिकाकर्ता को एक मौलिक रिक्ति के विरुद्ध एक सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। हालाँकि शुरू में 1998 तक वेतन का भुगतान किया गया था, लेकिन बिना किसी औचित्य के आगे का वेतन रोक दिया गया, जिससे मुकदमेबाजी के कई दौर हुए। जिला विद्यालय निरीक्षक ने 1997 में वित्तीय स्वीकृति प्रदान की थी, मौलिक रिक्ति के अस्तित्व की अभिपुष्टि की और प्रबंधन द्वारा उचित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया। बाद में, क्षेत्रीय समिति ने रिक्ति और चयन प्रक्रिया में स्पष्टता के आभाव को उद्धृत करते हुए याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे को निरस्त कर दिया। याचिकाकर्ता की नियुक्ति राधा रायज़ादा निर्णय (1994) से पहले हुई थी, इसलिए विज्ञापन और पूर्व अनुमति की आवश्यकता लागू नहीं थी। न्यायालय ने आगे स्पष्ट किया कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1982 के लागू होने के कारण विनियमन 20 के अंतर्गत रिक्ति की समाप्ति आकर्षित नहीं हुई। रिट स्वीकृत। उच्च न्यायालय ने 18.11.2015 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया, और याचिकाकर्ता को एक मौलिक रिक्ति के विरुद्ध विधिसम्मत रूप से नियुक्त अभिनिर्धारित किया, और प्राधिकारियों को निर्देश दिया कि वे 1982 के अधिनियम की धारा 33-सी के अंतर्गत उसकी सेवा को वेतन निर्धारण, वेतन वृद्धि और पेंशन संबंधी लाभों सहित सभी परिणामी लाभों के साथ नियमित करें। एक माह के भीतर अनुपालन हेतु निर्देश भी जारी किया गया।

रिट की अनुमति दी गई।

<u>प्रमुख उद्धरण</u>:

1. राधा रायज़ादा बनाम प्रबंधन समिति, 1994 (3) यूपीएलबीईसी 1551

2. आशिका प्रसाद शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, 1998 (3) यूपीएलबीईसी 1722

3. योगेंद्र नाथ सिंह बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, 1991 (1) एडब्ल्यूसी 562

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार श्रीवास्तव की सहायता से, श्री अनिल भूषण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को और राज्य प्रतिवादीगण के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. कार्यालय प्रतिवेदन दिनांक 9 अप्रैल 2016 के अनुसार प्रतिवादी क्रमांक-5 को न तो पंजीकृत लिफाफा और न ही पंजीकृत डाक से भेजी गई पावती वापस प्राप्त हुई है।

3. इसलिए, इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी संख्या-5 को नोटिस की तामील पर्याप्त मानी जाती है और न्यायालय अब वाद का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ती है।

4. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता को 26 अप्रैल, 1992 को प्रबंधन समिति

द्वारा एलटी ग्रेड में सहायक अध्यापक के पद पर एक मूल रिक्ति के सापेक्ष चयनित और नियुक्त किया गया था, जो संस्था के तत्कालीन प्राचार्य अर्थात्, वर्ष 1986 में जगत पाल सिंह, के चयन और नियुक्ति के कारण रिक्त हो गई थी। चयन के बाद कागजात जिला विद्यालय निरीक्षक को भेज दिए गए थे, हालांकि उन्होंने कोई वित्तीय स्वीकृति नहीं दी, जिसने याचिकाकर्ता को रिट याचिका संख्या- 6623 वर्ष 1993 के साथ इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करने के लिए मजबूर किया जिसमें 15 अप्रैल, 1993 को कुछ निर्देश जारी किए गए थे। जबकि वाद इस न्यायालय के समक्ष लंबित था, जिला विद्यालय निरीक्षक ने 5 जुलाई, 1995 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति को वित्तीय स्वीकृति दे दी और इस तरह याचिकाकर्ता के अनुसार, रिट याचिका निरर्थक हो गई थी और इसलिए 20 जुलाई, 2010 को खारिज कर दी गई थी।

5. अभिवचनों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के वेतन का भुगतान केवल 1998 तक किया गया था और परिणामस्वरूप एक और रिट याचिका, रिट याचिका संख्या - 50664 वर्ष 2000 दायर की गई थी जिसमें 24 नवंबर, 2000 को निर्देश जारी किया गया था जिसमें प्राधिकारियों को याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर विचार करने का आदेश दिया गया था और कि उस पर उचित आदेश पारित करें। वित्त एवं लेखा अधिकारी ने 18 जून, 2003 को एक आदेश पारित कर वेतन भुगतान के उद्देश्य से दायर याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन को खारिज कर दिया, जिसमें विशेष रूप से ऐसी संस्था में नियुक्तियों पर प्रतिबंध के आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर प्रश्न उठाया गया था। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या - 3657 वर्ष 2003 के माध्यम से फिर से इस न्यायालय की पहुँच की, जिसे अनुमति दी गई तथा वित्त और लेखा अधिकारी द्वारा 8 जून, 2003 को पारित आदेश को रद्द कर दिया गया और मामला प्रतिवादी संख्या - 2, अर्थात् शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उ.प्र.,लखनऊ को भेज दिया गया जिसे याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देकर, कानून के अनुसार उचित विस्तृत आदेश पारित करने को कहा गया है।

6. शिक्षा निदेशक ने 31 दिसंबर, 2008 के विस्तृत आदेश के जरिए याचिकाकर्ता के दावे को फिर से इस आधार पर खारिज कर दिया कि **राधा रायजादा और अन्य बनाम प्रबंधन समिति, विद्यावती दरबारी गर्ल्स इंटर कॉलेज और अन्य: 1994 (3) यूपीएलबीईसी 1551** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में सक्षम प्राधिकारी से पूर्व अनुमति नहीं ली गई थी और यह कि पद को धोखाधड़ी से रिक्त मान लिया गया था।

7. इसलिए, मूल आधार यह लिया गया कि अस्तित्व में कोई पद ही नहीं था जिस पर याचिकाकर्ता को नियुक्त किया जा सकता था। 31 दिसंबर, 2008 के इस आदेश को रिट याचिका के माध्यम से फिर से चुनौती दी गई,देखें, रिट - ए संख्या - 22809 वर्ष 2009, जिसमें इन दोनों आधारों को अस्थिर माना गया, सबसे पहले इस कारण से कि

राधा रायज़ादा मामले में पूर्ण पीठ के निर्णय में इसे लागू होने में केवल भविष्यलक्षी बनाया गया था और इसलिए प्रबंधन समिति को नियुक्ति करने का पूरा अधिकार था; और दूसरी बात यह कि रिक्ति को भरने के लिए किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। उक्त निर्णय 15 जुलाई, 1994 को दिया गया था और याचिकाकर्ता की नियुक्ति वर्ष 1992 में हुई थी, और इसलिए इसे पूर्ण पीठ द्वारा स्वतः जारी निर्देशों के आलोक में लागू नहीं माना गया था। आगे और भी, **आशिका प्रसाद शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद और अन्य : 1998 1998 (3) यूपीएलबीईसी 1722,** के निर्णय पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रचारित बात यह थी कि रिक्ति की नोटिस बोर्ड अधिसूचना भी पर्याप्त थी, न्यायालय द्वारा इसे बरकरार रखा गया था। न्यायालय ने यह भी पाया कि इस न्यायालय के 28 जुलाई, 2006 के निर्णय में अपनाए गए दृष्टिकोण पर आदेश पारित करते समय प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था। इस प्रकार, न्यायालय का अंतिम विचार था कि नियुक्ति की वैधता पर जाँचविचार नहीं किया जा सकता था। जहां तक मामले के प्रक्रियात्मक पहलू का संबंध है,सब कुछ यह देखना आवश्यक था कि क्या कोई रिक्ति थी या नहीं, जिस पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति की सुविधा दी जा सकती थी।

8. न्यायालय ने अपने अंतिम विश्लेषण में आदेश के प्रवर्ती अंश को पुनः प्रस्तुत किया जो कि सत्यवान यादव द्वारा दायर रिट याचिका संख्या - 44818 वर्ष 2002 में पारित किया गया था, जिसने प्रश्नगत पद का दावा भी स्थापित किया था और न्यायालय ने दर्ज किया कि राम केश यादव अर्थात् वर्तमान याचिकाकर्ता, जो उक्त याचिका में प्रतिवादी संख्या-4 था, को रिक्ति पर नियुक्त किया गया था और इस तरह वह कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था।

9. इसलिए, इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने निर्देश दिया कि "समिति द्वारा केवल तत्कालीन मौजूद मूल रिक्ति के विरुद्ध याचिकाकर्ता की के नियुक्ति के पहलू की जांच करने के प्रश्न पर विचार किया जाना है"। इस न्यायालय के आदेश दिनांक 19 फरवरी, 2015 के प्रवर्ती अंश का निष्कर्ष भाग यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> *"उनका कहना है कि प्रबंधन के प्रस्ताव, पारित संकल्पों आदि सहित सभी अपेक्षित कागजात प्रतिवादी नंबर 2 के विचार के लिए प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन दुर्भाग्य से उन्हें उनका समर्थन नहीं मिला। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पहले भी एक अवसर पर प्रतिवादियों द्वारा एक विवाद उठाया गया था जब यह तर्क दिया गया था कि दो व्यक्तियों, अर्थात् याचिकाकर्ता और एक श्री सत्यवान यादव को श्री जगतपाल सिंह की पदोन्नति के कारण हुई रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किया गया था। उसी को संबोधित करते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि श्री सत्यवान यादव ने इस न्यायालय में रिट याचिका संख्या*

44818 /2002 (सत्यवान यादव बनाम शिक्षा निदेशक और अन्य) के रूप में एक रिट याचिका दायर की है, जिसे 20.04.2004 को खारिज कर दिया गया। रिट याचिका को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित दर्ज करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की: -

"निदेशक ने पाया कि इस बीच श्री राम केश यादव प्रतिवादी नंबर 4 को कॉलेज के प्राचार्य के रूप में सहायक शिक्षक श्री जगतपाल सिंह की नियुक्ति के कारण हुई रिक्ति पर नियुक्त किया गया था और श्री राम केश यादव अप्रैल 1992 से काम कर रहे हैं और मई 1997 से अक्टूबर 1998 तक वेतन लिया था। श्री राम केश यादव ने रिट याचिका संख्या 50664/2000 भी दायर की थी जिसे शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) को प्रत्यावेदन तय करने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था।

न्यायालय को सूचित किया जाता है कि उपरोक्त निर्णय अंतिम रूप ले चुका है। यदि यह उपरोक्त स्थिति है, तो यह ज्ञात नहीं है कि किस आधार पर, प्रतिवादी संख्या 2 विपरीत निर्णय ले सकता है या आक्षेपित आदेश पारित करते समय विरोधाभासी बयान दर्ज कर सकता है।

उपरोक्त बहस के आलोक में, यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है और दिनांक 31.12.2008 का आदेश रद्द किया जाता है। हालाँकि, मामले की सभी परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय क्षेत्रीय स्तर की समिति को केवल तत्कालीन मौजूद स्थायी रिक्ति के विरुद्ध याचिकाकर्ता की नियुक्ति के पहलू की जांच करने और प्रावधानों के तहत नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने का निर्देश देना उचित समझता है। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा चयन एवं सेवा बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 33-बी के तहत यह कार्यवाही समिति द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर पूरी की जायेगी। याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई परिणामी अनुतोष उपरोक्त समिति द्वारा लिए गए निर्णय का अनुपालन करेगी। रिट याचिका को उपरोक्त शर्तों के साथ स्वीकार किया जाता है।"

10. अब रिक्तियों के अस्तित्व के तथ्य पर विचार करने के लिए मामला भेजे जाने के बाद, जिसके प्रकृति में मौलिक होने का दावा किया गया था और यदि ऐसा पाया गया तो याचिकाकर्ता को सेवा में नियमित करने के लिए परिणामी कार्रवाई की जाएगी, क्षेत्रीय समिति ने जिला विद्यालय निरीक्षक से एक रिपोर्ट मांगी है,जिसे उसने 20 जून 2015 को प्रस्तुत किया। रिपोर्ट में, जिला विद्यालय निरीक्षक ने इस तथ्य को बहुत ही स्पष्ट रूप से दर्ज किया है कि संस्था में तत्कालीन सहायक अध्यापक जगत पाल सिंह का चयन एवं नियुक्ति प्राचार्य पद पर की गई है। परिणामस्वरूप,प्रश्नगत एलटी ग्रेड का पद रिक्त हो गया था और प्रबंधक ने 26 जून, 1992 को याचिकाकर्ता राम केश यादव को

नियुक्त करके रिक्ति को भरने के लिए उचित कदम उठाए और राम केश यादव को समिति द्वारा 28 अप्रैल,1992 को कार्यभार ग्रहण कराया। इसके बाद इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई विभिन्न याचिकाओं और समय-समय पर जारी किए गए निर्देशों से संबंधित विस्तृत विवरण रिपोर्ट में शामिल है, जिसमें वेतन आदि के भुगतान के निर्देश भी शामिल हैं। लेकिन रिपोर्ट का प्रासंगिक हिस्सा जिसका यहां ऊपर उल्लेख किया गया है जो कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति और उसके कार्यभार ग्रहण करने के संबंध में है, यहां नीचे दी गई है:

"*बहुधन्धी इण्टर कालेज, सोनहिता जौनपुर एक मान्यता प्राप्त एवं हाईस्कूल स्तर पर सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था है। संस्था पर वेतन अधिनियम 1971 एवं माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नियमावली 1982 प्रभावी है। विद्यालय के सहायक अध्यापक श्री जगतपाल सिंह की पदोन्नति प्राचार्य पद पर हो जाने के फलस्वरूप एल०टी० ग्रेड का एक पद मौलिक रूप से रिक्त हो गया। प्रबंधक द्वारा रिक्त पद पर ही नियुक्ति सम्बन्धी कार्यवाही करते हुए श्री रामकेश यादव की नियुक्ति स०अ० के पद पर दिनांक 26.4.1992 को की गई थी। श्री रामकेश यादव को विद्यालय में दिनांक 28.04.1992 को कार्यभार ग्रहण करा दिया गया। वेतन भुगतान न होने के कारण श्री यादव द्वारा माननीय उच्च न्यायालय में याचिका संख्या-6623/1993 योजित की गयी। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.04.1993 के अनुपालन में श्री रामकेश यादव की नियुक्ति का अनुमोदन इस कार्यालय के पत्रांक /1915-16/1997-98 दिनांक 03.06.1997 द्वारा किया गया।*"

"Bahudhandhi Inter College, Sonhita Jaunpur is a recognized educational institution that receives aid up to the High School. The payment of Salary Act,1971 and U.P. Secondary Education Service Selection Board Rules, 1982 are applicable to the institution. In view of promotion of Assistant Teacher Sri Jagat Pal Singh on the post of Principal, the post of L.T. grade had fallen vacant substantively. Sri Ram Kesh Yadav was appointed on the post of Assistant Teacher on 26th April, 1992 by the Manager after conducting proceedings qua selection and appointment. Sri Ram Kesh Yadav has joined the institution on 28th April, 1992. In view of the payment not being made, Sri Ram Kesh Yadav filed writ petition before this Court being Writ Petition No.- 6623 of 1993. In compliance of the order passed by the High Court dated 15th April, 1993, the approval order of appointment of Sri Ram Kesh Yadav was issued by this office vide letter No.1915-16/1997-98 dated 3rd June, 1997."

(न्यायालय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

11. रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद धारा 33-सी(2) के अधीन उक्त उद्देश्य के लिए गठित समिति

ने याचिकाकर्ता के मामले की दोनों कोणों से जांच की: (i). मौलिक रिक्ति का अस्तित्व; और (ii). 1992 के अधिनियम संख्या-5 की धारा 33-सी के अधीन नियमितीकरण का दावा।

12. संबंधित समिति ने जिला विद्यालय निरीक्षक की रिपोर्ट और याचिकाकर्ता द्वारा उसके समक्ष दिए गए बयान और दलीलों पर भी विचार किया है। प्रबंधन समिति को भी सुना गया और अपने विश्लेषण और जाँच निष्कर्ष भाग में उसने दर्ज किया कि इस बात का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था कि याचिकाकर्ता को किस रिक्ति पर नियुक्ति दी गई थी और फिर प्रबंधन समिति द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि किन परिस्थितियों में यह 1992 में उस रिक्ति को भरने के लिए आगे बढ़ी जो 1996 में ही रिक्त हुयी थी और फिर समिति ने यह माना कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय II के विनियम 22 के अधीन निहित प्रावधानों के आलोक में रिक्ति वस्तुतः समाप्त हो गई थी।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने समिति द्वारा दिए गए निष्कर्षों को विकृत बताते हुए प्रश्न उठाए हैं। सबसे पहले, उनका तर्क है कि रिकॉर्ड पर पर्याप्त दस्तावेज उपलब्ध थे, क्योंकि जिला विद्यालय निरीक्षक की रिपोर्ट में ही स्वीकार किया गया था कि बोर्ड द्वारा प्राचार्य पद पर जगत पाल सिंह के चयन और नियुक्ति के कारण जो रिक्ति खाली हुई थी, उसी को प्रबंधन समिति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का सहारा लेते हुए याचिकाकर्ता की नियुक्ति कर पद भरने की मांग की गई थी। उनका कहना है कि जिला विद्यालय निरीक्षक ने यह भी दर्ज कर लिया है कि अनुमोदन जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिया गया था । वह न्यायालय में एक दस्तावेज भी लेकर गए हैं, जिसे 23 जनवरी, 1992 को जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजे गए कागजात के अनुलग्नक - 1 के रूप में दायर किया गया था। रिक्ति के अस्तित्व के संबंध में यह दस्तावेज़ पूरी तरह से दर्शाता है कि रिक्ति,तत्कालीन सहायक अध्यापक जगत पाल सिंह को यूपी माध्यमिक विनियमन सेवा चयन बोर्ड द्वारा प्रधानाचार्य के रूप में चयन होने के कारण से रिक्त हुई थी।

14. उनकी दलील है कि वित्तीय अनुमोदन जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा उन्हीं दस्तावेजों पर दी गई थी, जिन्हें तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा विधिवत सत्यापित किया गया था और वे दस्तावेज रिकॉर्ड पर बहुतायत उपलब्ध थे, जिन पर रिपोर्ट जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत की गई है। उनका कहना है कि उन्हीं दस्तावेजों को रिट याचिका के प्रस्तर 7, 8 और 9 में संदर्भित किया गया है और जिन प्रस्तरों का बहुत अस्पष्ट रूप से उत्तर दिया गया है, यहाँ तक कि उनकी सामग्री से बिल्कुल भी इनकार नहीं किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि रिक्तियों के अस्तित्व के संबंध में, रिट याचिका के प्रस्तर 37 में भी विशिष्ट दृढ़कथन दिए गए हैं, जिन्हें भी अस्वीकार नहीं किया गया है और केवल समिति के आदेश का उल्लेख किया गया है, जिसे इस याचिका में

चुनौती दी गई है। दूसरे बिंदु के संबंध में जिसे गुप्त तरीके से या ऐसी भाषा में लिया गया है जिसे एक छद्म रूप कहा जा सकता है, ताकि इसे इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय II के विनियम 20 के संदर्भ में संदर्भित किया जा सके। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **योगेन्द्र नाथ सिंह बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक और अन्य : 1991 (1) एडब्ल्यूसी 562.** के मामले में, इस प्राधिकार पर भरोसा किया है।

15. उपरोक्त दो तर्कों का सामना करते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील प्रस्तुत किया कि सत्यवान सिंह और याचिकाकर्ता नामक दो व्यक्ति प्रश्नगत पद पर शामिल होने के लिए आए थे और इसलिए, नियुक्ति की वैधता के संबंध में एक मुद्दा था। हालाँकि, वह जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट और रिट याचिका के साथ दायर कागजात से इनकार नहीं कर सके, जो मूल पत्रावली में जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय में भी उपलब्ध हैं, जिस पर अनुमोदन दिया गया था। उन्होंने समिति द्वारा पारित आदेश को उसमें बताए गए कारणों से उचित ठहराने की मांग की है।

16. याचिकाकर्ता की निरंतरता के प्रश्न पर, उसने संस्था के प्राचार्य के कुछ प्रमाण पत्र दाखिल किए हैं जिनमें दर्ज है कि वह संस्था में काम कर रहा है। प्रमाणपत्र, रिट याचिका दायर करने से ठीक पहले, वर्ष 2015 के हैं, विशेष रूप से अंतिम एक जो संस्थान के प्रबंधक द्वारा दिनांक 5 मई, 2015 को लिखे गए और संस्थान के प्राचार्य द्वारा 12 फरवरी, 2014 को लिखे गए हैं। इस न्यायालय से नोटिस मिलने के बावजूद प्रबंधन ने अपना प्रतिनिधित्व नहीं किया है और इसलिए, यह माना जाएगा कि उसने याचिकाकर्ता के मामले को स्वीकार कर लिया है।

17. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अध्ययन करने और मुकदमेबाजी के पहले दौर में इस न्यायालय द्वारा पारित तथ्यों और पिछले आदेश पर चर्चा करने के बाद, मैं 18 नवंबर, 2015 की नियमितीकरण/क्षेत्रीय स्तर समिति द्वारा लौटाए गए तथ्यों की जांच करने के लिए आगे बढ़ता हूं। निर्णय का अवलोकन करने पर मुझे पता चला कि रिट याचिका संख्या-22809/2009 में पारित इस न्यायालय के 19 फरवरी, 2015 के पहले के आदेश और याचिकाकर्ता, प्रबंधन समिति के प्रबंधक और जिला विद्यालय निरीक्षक की दलीलों का हवाला देने के बाद, निम्नलिखित निष्कर्ष लौटाए गए हैं:

(i). सहायक अध्यापक जगत पाल सिंह का चयन संस्था के प्राचार्य के रूप में हो गया है जिसने 26 दिसंबर, 1986 को प्राचार्य का कार्यभार संभाला और इस तरह परिणामस्वरूप 26 दिसंबर, 1986 को सहायक अध्यापक का पद मौलिक रूप से रिक्त हो गया।

(ii). याचिकाकर्ता द्वारा दायर दस्तावेजों से यह स्पष्ट था कि 26 अप्रैल, 1992 को प्रबंधन समिति द्वारा एक संकल्प अपनाया गया था और उसके संकल्प संख्या - 2 के

तहत याचिकाकर्ता की नियुक्ति का प्रस्ताव एक रिक्ति के विरुद्ध पारित किया गया था।

(iii). दस्तावेज़ों से यह स्पष्ट नहीं था कि याचिकाकर्ता को किस रिक्ति के सापेक्ष नियुक्त किया गया था और यह प्रदर्शित करने के लिए कोई दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं था कि प्रबंधन ने मौलिक रिक्ति के छह साल बाद उसे भरने का प्रस्ताव दिया था।

(iv). पद सृजन, मूल रिक्ति, जिला विद्यालय निरीक्षक की पूर्व अनुमति, चयन समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले अन्य अभ्यर्थियों के विज्ञापन विवरण के संबंध में कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं थे।

18. पहले दो निष्कर्ष (i) और (ii) संस्थान में रिक्ति और याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रबंधन समिति के प्रस्ताव के संबंध में याचिकाकर्ता के दावे का पूरी तरह से समर्थन करते हैं। संबंधित जिला विद्यालय निरीक्षक की रिपोर्ट भी बहुत स्पष्ट रूप से दर्ज करती है: विद्यालय के सहायक अध्यापक श्री जगतपाल सिंह की पदोन्नति प्राचार्य पद पर हो जाने के फलस्वरूप एल0टी0 ग्रेड का पद मौलिक रूप से रिक्त हो गया। प्रबंधक द्वारा रिक्त पद पर नियुक्ति संबंधी कार्यवाही करते हुए श्री राम केश यादव की नियुक्ति स०अ० के पद पर दिनांक 26.4.1992 को कार्यभार ग्रहण करा दिया गया। (An Assistant Teacher of the institution, Sri Jagat Pal Singh having been promoted as a Principal, the post of Assistant Teacher in L.T. Grade fell substantively vacant. The Manager initiated proceeding for making appointment against the substantive vacancy and accordingly, appointed Sri Ramkesh Yadav as Assistant Teacher who joined duties as such on 26th April, 1992.)

(न्यायालय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

19. संकल्प से संबंधित दस्तावेज़ भी उपलब्ध थे और ऐसा उन्हें समिति के आदेश/निर्णय के आंतरिक पृष्ठ 3 के नीचे दर्ज किया गया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि सहायक अध्यापक जगत पाल सिंह को प्राचार्य के पद पर प्रोन्नति का आदेश पारित किया जा चुका है, लेकिन तथ्य यह है कि रिक्ति के विरुद्ध उनका चयन एवं नियुक्ति कर ली गयी है, लेकिन प्रोन्नति हो या चयन, यह शायद ही कोई अंतर हो पायेगा क्योंकि संस्था के नियमित प्राचार्य के रूप में जगत पाल सिंह की मौलिक नियुक्ति के लिए रिक्त स्थान खाली हो गया था।

20. उपरोक्त तथ्य स्थिति होने के कारण, समिति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष संख्या (iii) तर्क के अनुरूप नहीं है। समिति उन कारणों को दर्ज करने में पूरी तरह विफल रही कि वह जिला विद्यालय निरीक्षक (ऊपर) की रिपोर्ट पर विवाद क्यों कर रही थी। याचिकाकर्ता द्वारा रखे गए रिकॉर्ड और जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा भी रखे गए रिकॉर्ड थे और बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाया है कि नियुक्ति करने के लिए प्रबंधन समिति का प्रस्ताव चयन बोर्ड द्वारा सहायक अध्यापक जगत पाल सिंह को

प्राचार्य बनाये जाने के मौलिक और स्थायी चयन और नियुक्ति के कारण हुई रिक्ति के संबंध में था।

21. अभी और आगे, समिति 20 अप्रैल, 2004 के अपने फैसले में सत्यवान यादव की रिट याचिका जो रिट याचिका संख्या 44818/2002 है, को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज करते हुए दिए गए निष्कर्षों की सराहना करने में विफल रही।

22. यह मेरे लिए अत्यंत आश्चर्य की बात है कि भले ही इस उपरोक्त निष्कर्ष को इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया था, जबकि रिट याचिका संख्या 50664/2000 को अनुमति दी गई जहाँ 31 दिसंबर, 2008 का आदेश प्रश्नगत था, देखें आदेश दिनांक 19 फरवरी, 2015, जिसके अनुसार यह आक्षेपित फैसला लिया गया था और फिर भी समिति ने माना कि यह स्पष्ट नहीं है कि याचिकाकर्ता को जगत पाल सिंह की रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किया गया था या नहीं। इस प्रकार, समिति द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष संख्या (iii) को विकृत और इसलिए अस्थिर माना जाता है।

23. समिति के (iv) निष्कर्ष पर आते हुए, न्यायालय ने पाया कि यह कोई मुद्दा ही नहीं था। किसी भी व्यक्ति ने प्रक्रियात्मक दोषों या अनियमितताओं के लिए आक्षेपण की सीमा तक याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर प्रश्न नहीं उठाया था। सत्यवान यादव एकमात्र प्रतिद्वंदी उम्मीदवार हो सकते थे लेकिन उनकी रिट याचिका पर 20 अप्रैल, 2004 के आदेश में याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष निकालते हुए चर्चा की गई थी। सत्यवान यादव का दावा वहीं समाप्त हो गया और याचिकाकर्ता के पक्ष में आया निष्कर्ष बरकरार रहा। एकमात्र मुद्दा 20 अप्रैल, 2004 के आदेश में दिए गए निष्कर्षों के आलोक में याचिकाकर्ता के दावे पर पुनर्विचार करना था, जिसके आधार पर 31 दिसंबर, 2008 के आदेश को इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था। इसलिए, समिति का 20 अप्रैल, 2004 और 19 दिसंबर, 2015 के आदेशों के पीछे जाना उचित नहीं था। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा रखे गए दस्तावेजों, उनकी रिपोर्ट और इस न्यायालय के आदेशों की सराहना करने के बजाय समिति ने चयन प्रक्रिया के विवरण की मांग करके याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे को खारिज कर दिया। इसलिए, निष्कर्ष संख्या (iv) को पूरी तरह से अनावश्यक माना जाता है, यहाँ तक कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति और संस्था में बने रहने पर अब चयन के संबंध में पुराने दस्तावेजों की कथित अनुपस्थिति के लिए प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है,विशेषकर तब, जब कोई प्रतिद्वंदी चुनौती नहीं थी। इससे भी आगे, जब **राधा रायज़ादा** के मामले में **पूर्ण पीठ** के पहले ही, जहाँ विज्ञापन आदि का कानून निर्धारित किया गया था, प्रचलित पूर्व शर्त के अनुसार नियुक्ति की गई थी, याचिकाकर्ता की चयन और नियुक्ति प्रक्रिया जो **आशिका प्रसाद** के मामले में निर्णय के अनुसार प्रचलित रही।

24. मैं यहां क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा अपने आदेश दिनांक 31 दिसंबर 2008

में विज्ञापन आदि के संबंध में चयन प्रक्रिया पर प्रश्न उठाते हुए लौटाए गए पहले के निष्कर्षों का उल्लेख करना चाहूँगा:

"उपर्युक्त सभी नियुक्तियाँ 1989 और 1993 के मध्य की गयी हैं। ज्ञातव्य है कि श्री राम केश द्वारा पूर्व में योजित याचिका संख्या-6623/1993 में जिस पद पर नियुक्ति किये जाने का उल्लेख है वह पद 19-1-92 को दिखाया गया है किन्तु वह पद किस प्रकार रिक्त हुआ तथा पूर्व पदधारी कौन था,स्पष्ट नहीं है। बाद में उनकी नियुक्ति प्रबंधतन्त्र द्वारा श्री जगतपाल सिंह ,सहायक अध्यापक के प्राचार्य पद पर नियुक्त होने से रिक्त पद पर दर्शायी जा रही है जबकि उक्त पद दिनांक 26-12-86 से रिक्त हुआ। उक्त पद पर अधियाचन जिला विद्यालय निरीक्षक जौनपुर या माध्यमिक शिक्षा चयन बोर्ड इलाहाबाद को नहीं भेजा गया और न ही उसका विज्ञापन व्यापक प्रसार वाले समाचार-पत्र में कराया गया,मात्र नोटिस बोर्ड पर विज्ञापन किया जाना दर्शाया गया है।... ... ... "

"All the aforesaid appointments were made between 1989 and 1993. It is noticeable that in the earlier writ petition No.- 6623 of 1993 that was filed by Sri Ramkesh Yadav, he had been shown to have been appointed on 9th January, 1992 but it would not made clear as to how that post had fallen vacant and who had lien against the said post. Later on it shows appointment of the petitioner against the post that had fallen vacant on account of the then Assistant Teacher Jagat Pal Singh being appointed as Headmaster whereas the said post was vacant since 26th December, 1986. No requisition was made in respect of the said vacancy either to District Inspector of Schools for U.P. Secondary Education Service Selection Board, Allahabad nor, the said post ever came to be advertised in newspaper and only advertisement on notice board has been shown ...

(न्यायालय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

25. मैं शिक्षा निदेशक के दिनांक 31 दिसंबर, 2008 के आदेश का ठीक अंतिम प्रस्तर में निम्नलिखित निष्कर्षों पर आ रहा हूँ:

"जहां तक श्रीमती रामदुलारी देवी व अन्य बनाम संयुक्त शिक्षा निदेशक, वाराणसी व अन्य तथा श्री आशिका प्रसाद शुक्ला बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक,इलाहाबाद में पारित आदेश का प्रश्न है याची का प्रकरण उस आदेश से आच्छादित नहीं है क्यूंकि सक्षम प्राधिकारी द्वारा याची कि नियुक्ति का अनुमोदन राधा रायजादा (1994) 3 यू0पी0एल0बी0ई0सी0 मामले में दिए गए निर्णय के पूर्व का नहीं था। संदर्भगत प्रकरण में नियुक्ति प्रबंधक द्वारा कूटरचित ढंग से दिनांक 19-1-92 को पद रिक्त दिखाकर कि गयी है जबकि वास्तव में उस दिनांक को कोई पद रिक्त हुआ ही नहीं है। माँगे जाने के बावजूद भी,प्रबंधक द्वारा प्रबंध समिति कि कार्यवाही पंजिका आदि

पत्रजात प्रस्तुत नहीं किया गया I इस प्रकार याची कि नियुक्ति बिना पद व विहित प्रक्रिया का पालन किये होने के कारण अवैध है। जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में वेतन भुगतान का आदेश दिनांक 3.6.97. पारित किया गया है जबकि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित ही नहीं है।याची कि नियुक्ति राधा रायजादा मामले में प्रतिपादित दिशा निर्देशों और सिद्धांतों के अनुसरण बिना होने और बिना ऐसा पद अस्तित्व में होने और समाचारपत्र में विज्ञापन के अभाव होने, अधियाचन न भेजे जाने के कारण जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा चयन और नियुक्ति का अनुमोदन किया जाना अवैध है और इसी कारण से याची को वेतन भुगतान किये जाने का दायित्व विभाग/शासन का नहीं है I"

"Insofar as the judgment in the case of Smt. Ramdulari Devi and others v. Joint Director of Education, Varanasi and others and the judgment of Aashik Prasad Shukla v. District Inspector of Schools, Allahabad are concerned, the case of the petitioner is not covered by the said judgments because the appointment of the petitioner was not approved by the competent authority prior to the judgment in the case of Radha Raizada (1994) 3 UPLBEC. In this matter Manager had made appointment in fraudulent manner on 19th January, 1992 showing the post to be vacant whereas on that date no such post had fallen vacant. Despite being asked, the Manager did not submit the minutes register and other papers of the Committee of Management. Thus, petitioner having been appointed without their being any post and without following the procedure prescribed for, his appoint is illegal. District Inspector of Schools vide his order dated 3rd June, 1997 had passed the order for payment of salary in compliance of the order of High Court whereas there was no such order passed by the High Court. The appointment of the petitioner having been made without following the guidelines and principles laid down in the case of Radha Raizada and without there being any post as such and also in the absence of any advertisement in the newspaper and requisition being not sent, the approval of the selection and appointment by the District Inspector of Schools was illegal and for that reason the department/ Government cannot be held liable to make payment of salary to the petitioner."

(न्यायालय द्वारा अंग्रेजी अनुवाद)

26. इन उपरोक्त निष्कर्षों और परिणामी आदेश को इस न्यायालय ने अपने आदेश

दिनांक 19 फरवरी, 2015 के अधीन उसकी रिट याचिका संख्या - 22809/2009 को इस प्रकार अवधारित कर अनुमति करते हुए खारिज कर दिया था:

"रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में भी इस न्यायालय के समक्ष इस दलील और विशेष पहलू का आग्रह किया गया था। 28.07.2006 को दिया गया इस न्यायालय का निर्णय विशेष रूप से न्यायालय के समक्ष इस संबंध में प्रस्तुत दलील को संदर्भित करता है। हालाँकि, आश्चर्यजनक रूप से, आक्षेपित आदेश पारित करते समय प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा उस पर कोई विचार या नोटिस नहीं किया गया।

आशिका प्रसाद शुक्ला (ऊपर) में निर्धारित कानून का पालन करते हुए, इस न्यायालय की राय है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि जिस रिक्ति के विरुद्ध नियुक्ति की गई थी, उसका विज्ञापन नहीं किया गया था या नियुक्ति को जिला विद्यालय निरीक्षक की पूर्वानुमति प्राप्त नहीं थी। ऐसा इसलिए क्योंकि नियुक्ति इस न्यायालय द्वारा 15.07.1994 को राधा रायज़ादा (ऊपर) मामले में सुनाए गए निर्णय से पहले की गई थी।

इससे केवल एक अन्य मुद्दा बचता है, वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता की नियुक्ति संगत समय में मौजूद एक मौलिक रिक्ति के विरुद्ध की गई थी।

27. इस प्रकार उपरोक्त अवधारित करते हुए न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए मामले को पुनरप्रेषित कर दिया कि क्या 'याचिकाकर्ता को तत्कालीन रही मौलिक रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किया गया था'। इन परिस्थितियों में, समिति को केवल रिक्ति की उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता थी और समिति ने निष्कर्ष संख्या (i) के माध्यम से ऐसा किया है। परिणामस्वरूप, समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष संख्या (iv) को एतद्द्वारा विकृत और तदनुसार अस्थिर माना जाता है।

28. मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए एक और मुद्दे को संबोधित करने की आवश्यकता है और वह मुद्दा रिक्ति होने के छह साल बाद नियुक्ति करने के प्रबंधन के अधिकार का है। यह स्थापित कानून है कि यूपी माध्यमिक विनियमन सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 के लागू होने के साथ, ऐसी सभी रिक्तियां अधिनियम के अधीन गठित बोर्ड के क्षेत्र में आती हैं और अधियाचन किया जाना है। वर्तमान मामले में 23 जनवरी, 1992 को प्रबंधन समिति द्वारा अधियाचन किया गया था और इसलिए अप्रैल, 1992 में प्रबंधन तदर्थ आधार पर नियुक्ति करने के लिए पूरी तरह से सक्षम था, और पद को व्यपगत नहीं माना जाएगा। **योगेन्द्र नाथ सिंह** (ऊपर) के मामले में प्रस्तर 8 के तहत इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"8. एक दूसरी आपत्ति यह है कि यह रिक्ति यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अधीन बनाए गए विनियमों के अध्याय II के विनियम 20 के अर्थ में व्यपगत हो गई है। विनियम 20 में कहा गया है कि जहां प्रबंधन समिति किसी भी स्वीकृत पद का विज्ञापन

करने में विफल रही है, जो रिक्त हो गया है रिक्ति होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर विनियमों के अनुसार, ऐसे पदों को समर्पण कर दिया गया माना जाएगा और तब तक नहीं भरा जाएगा, जब तक कि इसके सृजन को निदेशक द्वारा नए सिरे से स्वीकृति नहीं दी जाती है। निदेशक से कोई स्वीकृति प्राप्त नहीं होने पर, प्रतिवादी संख्या 1 ने आक्षेपित आदेश में कहा कि पद को समर्पण किया हुआ माना जाएगा। अधिनियम, 1982 के लागू होने से पहले यही स्थिति थी। लेकिन अधिनियम, 1982 के लागू होने के बाद, प्रत्येक रिक्ति केवल आयोग द्वारा भरी जानी है और तदर्थ नियुक्ति प्रबंधन समिति द्वारा केवल धारा 18(1)(बी) में निहित परिस्थितियों में ही की जा सकती है। याचिकाकर्ता की नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।"

29. मैं यहां देख सकता हूं कि जब भी किसी मामले को किसी ऐसे प्रश्न पर वापस भेजा जाता है जिस पर न्यायालय तथ्य की एक निश्चित खोज चाहता है, तो प्राधिकारी को केवल उसी मुद्दे को संबोधित करना होगा और दावे को खारिज करने के लिए मुद्दे से परे किसी अन्य विचार को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए लेकिन पुनरप्रेषिती के अधीन मुद्दे पर एक निश्चित निष्कर्ष के लिए, जो अन्यथा वैध होगा। मेरे सुविचार में याचिकाकर्ता के पक्ष में मुद्दा संख्या 2 रखने वाले प्राधिकारी को केवल मुकदमेबाजी के पहले दौर में उच्च न्यायालय के दस्तावेजों और निष्कर्षों पर ही ध्यान करना आवश्यक था और इसके परे कुछ भी नहीं करना था।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। जगत पाल सिंह की रिक्ति के विरुद्ध नियुक्ति पर प्रश्न करने वाली रिट याचिका में आक्षेपित, समिति द्वारा लिए गए निर्णय दिनांक 18 नवंबर, 2015 को रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता को तब रिक्त पड़ी सहायक अध्यापक की एक मौलिक रिक्ति के विरुद्ध कानूनी रूप से नियुक्त किया गया माना जाता है। उसे 1982 के अधिनियम संख्या-5 की धारा 33-सी के अधीन संगत प्रावधानों और खंड के तहत नियमितीकरण का हकदार माना जाता है और इसी तरह पेंशन के लिए अर्हकरी सेवा में गिनी जाने वाली सेवा अवधि सहित वेतन वृद्धि आदि के संदर्भ में अन्य सभी परिणामी लाभ भी शामिल हैं।

31. सक्षम प्राधिकारी को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के दिनांक से एक महीने के भीतर परिणामी आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 300

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट ए संख्या 8770 वर्ष 2022

अशोक कुमार सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
समीर कालिया

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

अभिनिर्धारित हुआ: अनुच्छेद 226 के अंतर्गत राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण के आदेश दिनांक 22.09.2022 को चुनौती देने वाली रिट याचिका, जिसमें दिनांक 22.12.2021 के दंड आदेश (परिनिंदा करना और एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि रोकना) के विरुद्ध दावा याचिका को खारिज कर दिया गया था, स्वीकार की जाती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के कारण न्यायाधिकरण के आदेश और दंड आदेश को रद्द किया जाता है, जिसमें भरोसा किए गए दस्तावेजों (श्री शिव अवतार सिंह और एनसीआरबी की दिनांक 05.05.2021 की रिपोर्ट/तहरीर) की आपूर्ति न करना शामिल है, जो आरोप-पत्र का हिस्सा नहीं थे, जो उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन करते हैं, और दंड अधिरोपित करने से पहले याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराने में विफलता, नियम 9(4) का उल्लंघन है। न्यायाधिकरण इन आधारों पर ध्यान देने में विफल रहा और अनुशासनात्मक जाँच बिना किसी विस्तार के न्यायालय द्वारा निर्धारित तीन महीने की समय-सीमा पार कर गई, जिससे कार्यवाही असंतुलित हो गई। याचिकाकर्ता नियमावली के अनुसार सभी परिणामी राहतों का हकदार है। मामले के विशिष्ट तथ्यों के कारण इस आदेश को दृष्टान्त नहीं माना जाना चाहिए। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2013 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 14267

2. वित्त मंत्रालय एवं एक अन्य बनाम एस.बी. रमेश, एआईआर 1998 एससी 853

3. सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य, (2003) 6 एससीसी 675

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

A. प्रस्तावना

(1) अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री समीर कालिया और राज्य/प्रतिवादियों के स्थायी अधिवक्ता श्री अनिल कुमार सिंह 'विसेन' को सुना।

(2) अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत रिट याचिका राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ (इसके बाद "ट्रिब्यूनल" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.09.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत दावेदार/याचिकाकर्ता द्वारा 22.12.2021 के दंड के आदेश के खिलाफ दायर दावा याचिका संख्या-370 वर्ष 2022, जिसके द्वारा उसे दो मामूली दंड दिए गए थे

यानी (1) निंदा; और (2) एक वर्ष के लिए एक वेतनवृद्धि को रोकने के लिए खारिज कर दिया गया है।

B. तथ्यात्मक मैट्रिक्स

(3) वर्तमान प्रकरण की फाइल पर उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार उ0प्र0 लोक सेवा आयोग द्वारा उक्त पद के लिए चयनित होने के पश्चात् दिनांक 29.9.1998 को प्रारम्भ में आयुक्त, वाणिज्यिक कर (प्रतिपक्षी सं.2) के अधीन सहायक आयुक्त विक्रय कर के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति की गई थी। इसके बाद, उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के कारण, याचिकाकर्ता को वर्ष 2009 में उपायुक्त के पद पर पदोन्नत किया गया और उसके बाद वर्ष 2015 में फिर से उन्हें संयुक्त आयुक्त वाणिज्यिक कर के पद पर पदोन्नत किया गया। इसके बाद, जुलाई 2019 के महीने में, याचिकाकर्ता को लखनऊ के मुख्यालय से जिला - बुलंदशहर में स्थानांतरित कर दिया गया, जहां वह शामिल हो गया और संयुक्त आयुक्त, वाणिज्यिक कर (एसआईबी), बुलंदशहर के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया।

(4) 26.3.2021 को, राज्य निर्वाचन आयोग ने उत्तर प्रदेश राज्य में अवधारित त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव - 2021 को अधिसूचित किया। जाहिर है, उपरोक्त अधिसूचना से पहले यानी 25.3.2021 को, जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत)/जिला मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर ने याचिकाकर्ता को विकास ब्लॉक सिकंदराबाद, जिला- बुलंदशहर के लिए रिटर्निंग अधिकारी नियुक्त किया था। हालांकि, बाद में, जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत)/जिला मजिस्ट्रेट बुलंदशहर ने दिनांक 03.04.2021 के आदेश के माध्यम से अपने पहले के आदेश दिनांक 25.3.2021 में संशोधन किया और याचिकाकर्ता को विकास खंड - सिकंदराबाद के स्थान पर विकास खंड - खुर्जा के लिए रिटर्निंग अधिकारी नियुक्त किया।

(5) जिला मजिस्ट्रेट बुलंदशहर के दिनांक 03.04.2021 के उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने रिटर्निंग अधिकारी, विकास खंड - खुर्जा के पद का कार्यभार संभाला और अधिसूचित चुनाव कार्यक्रम के अनुसार नामांकन पत्र जमा करने से लेकर वोटों की गिनती और परिणामों की घोषणा (सदस्य जिला पंचायत को छोड़कर) तक पूरी चुनाव प्रक्रिया का संचालन किया। ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ। मतदान 29.4.2021 को विकास खंड खुर्जा के सभी मतदान केंद्रों पर हुआ और इस दौरान कथित तौर पर कोई अप्रिय घटना नहीं हुई और मतदान शांतिपूर्ण और संगठित तरीके से अवधारित किया गया।

(6) याचिकाकर्ता के अनुसार, 02.5.2021 को सुबह 08:00 बजे, उनके निर्देशन और पर्यवेक्षण के तहत वोटों की गिनती जटिया बाल विहार इंटर कॉलेज, खुर्जा में शुरू हुई जो उक्त विकास खंड खुर्जा में स्थित है। निम्नलिखित तिथि यानी 03.5.2021 को शाम लगभग 05:00 बजे, मतों की गिनती समाप्त हो गई और बाद में, याचिकाकर्ता ने ग्राम प्रधान, सदस्य ग्राम पंचायत और सदस्य क्षेत्र पंचायत के संबंधित पदों का परिणाम घोषित किया और

वापसी/निर्वाचित उम्मीदवारों को निर्धारित प्रमाण पत्र भी सौंपा।

(7) शाम 05:00 बजे मतगणना समाप्त होने और उपरोक्त तीन पदों के परिणाम की घोषणा के बाद, याचिकाकर्ता और मतदान दल ने सभी आवश्यक दस्तावेज प्राप्त किए और सभी औपचारिकताएं पूरी कीं, जिसमें कुछ समय लगा और इस तरह यह केवल लगभग 06:30 बजे था, याचिकाकर्ता अपनी टीम के साथ जिला मुख्यालय जाने में सक्षम था। जाहिर है, इससे पहले कि याचिकाकर्ता अपनी टीम के साथ जिला मुख्यालय पहुंच पाता, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन)/उप निर्वाचन अधिकारी पंचायत, बुलंदशहर ने याचिकाकर्ता से उसके मोबाइल संख्या-7235001008 पर संपर्क किया और याचिकाकर्ता को उस स्थान पर लौटने का निर्देश दिया जहां मतगणना हुई थी क्योंकि कथित तौर पर कुछ विवाद को हल किया जाना था। उप निर्वाचन अधिकारी पंचायत/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) के निर्देशानुसार याचिकाकर्ता मतगणना स्थल पर पहुंचा, जहां उप जिला निर्वाचन अधिकारी, पंचायत भी पहुंचे, जिसके बाद उक्त अधिकारी ने याचिकाकर्ता को सदस्य जिला पंचायत (वार्ड संख्या-25) के पद के लिए एक उम्मीदवार की शिकायत से अवगत कराया, जिसने फिर से मतगणना के लिए अनुरोध किया था। कथित शिकायतकर्ता/उम्मीदवार द्वारा अनुरोध किए जाने पर, याचिकाकर्ता ने अन्य मतगणना कर्मचारियों को मतगणना के स्थान पर उपस्थित होने की आवश्यकता की और सहायक कर्मचारियों को वार्ड संख्या-25 के अन्य उम्मीदवारों को भी बुलाने का निर्देश दिया, जब तक कि सहायक कर्मचारी और अन्य उम्मीदवार मतगणना के स्थान पर नहीं पहुंच रहे थे। याचिकाकर्ता ने उप निर्वाचन अधिकारी पंचायत/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) की उपस्थिति में अपनी टीम के साथ उपरोक्त उम्मीदवार की आपत्तियों को सुलझाने की कोशिश की और याचिकाकर्ता और उप चुनाव अधिकारी पंचायत/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) और अन्य जिला स्तर के अधिकारी के प्रयासों के कारण, उम्मीदवार की आपत्तियों को हल किया गया और जिस पर उक्त उम्मीदवार ने बिना परिणाम घोषित करने का अनुरोध किया दोबारा मतगणना की जिद की।

(8) इसके बाद ही जिला स्तरीय निर्वाचन अधिकारियों ने अपेक्षित मतगणना पत्रक छोड़ा ताकि वे परिणाम घोषित कर सकें। परीक्षार्थी (वार्ड संख्या-25) की शिकायत/आपत्ति के समाधान/समाधान की इस पूरी प्रक्रिया में काफी समय लगा, जिसके कारण अंततः कुछ देरी हुई। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि देरी न तो जानबूझकर की गई थी और न ही जानबूझकर की गई थी और किसी भी मामले में पूरी प्रक्रिया और देरी जिला स्तर के चुनाव अधिकारियों के ज्ञान के भीतर थी।

(9) जाहिर है, उप निर्वाचन अधिकारी (पंचायत)/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) ने 04.5.2021 को जिला निर्वाचन अधिकारी पंचायत/जिला मजिस्ट्रेट को एक पत्र सौंपा, जिसमें बताया गया कि याचिकाकर्ता ने मतगणना अधिकारी को दोपहर 12:00 बजे तक नहीं सौंपी थी, इस तथ्य के बावजूद कि मतगणना लगभग 05:00 बजे समाप्त हो गई

थी और कथित तौर पर जिसके कारण वार्ड संख्या-24 के कुछ उम्मीदवार, संख्या-25 और 26 ने खुर्जा में मतगणना स्थल के साथ-साथ कलेक्ट्रेट परिसर में भी हंगामा किया कि परिणाम में कथित रूप से छेड़छाड़ की जा रही है और जिसके कारण उक्त स्थानों पर अशांति फैल गई। यह पत्र दिनांक 04.05.2021 को जिला निर्वाचन अधिकारी पंचायत/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उनके पत्र दिनांक 04.5.2021 द्वारा राज्य निर्वाचन आयोग को भेजा गया था।

(10) इसके बाद, राज्य निर्वाचन आयोग ने जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 04.5.2021 के उपरोक्त पत्र के आधार पर प्रतिपक्षी संख्या-2- आयुक्त, वाणिज्यिक कर, लखनऊ को याचिकाकर्ता के खिलाफ निलंबन और अनुशासनात्मक जांच शुरू करने के लिए एक सिफारिश अग्रेषित की, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता ने उदासीनता दिखाई थी और विकास खंड- खुर्जा के रिटर्निंग अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाही बरती थी।

(11) इसके बाद, 13.05.2021 को, आयुक्त, वाणिज्यिक कर, लखनऊ (प्रतिपक्षी संख्या-2) ने राज्य निर्वाचन आयोग के दिनांक 12.5.2021 के उपरोक्त पत्र के आधार पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ निलंबन और अनुशासनात्मक जांच शुरू करने के लिए राज्य सरकार (प्रतिपक्षी संख्या-1) को एक सिफारिश अग्रेषित की। इसके बाद, राज्य सरकार (प्रतिपक्षी संख्या-1) ने याचिकाकर्ता को दिनांक 21.05.2021 को निलंबन का आदेश जारी किया और याचिकाकर्ता की रिटर्निंग अधिकारी, विकास खंड - खुर्जा के रूप में भूमिका के संबंध में अनुशासनात्मक जांच शुरू करने का भी निर्देश दिया गया।

(12) दिनांक 21.05.2021 के निलंबन के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने मुकदमेबाजी के पहले दौर में इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-12120 वर्ष 2021 को दायर दी थी। एकल न्यायाधीश, पक्षकारों की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों की मूल्यांकन करने पर, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि निलंबन का आदेश पारित करते समय प्रतिपक्षी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के कारणों को रिकॉर्ड करने में विफल रहे हैं कि आरोप बड़े दंड लगाने के लिए पर्याप्त गंभीर हैं। इस पृष्ठभूमि में, एकल न्यायाधीश ने दिनांक 19.07.2021 के निर्णय और आदेश के तहत, दिनांक 21.05.2021 के निलंबन के आदेश को रद्द करते हुए, उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे याचिकाकर्ता को संयुक्त आयुक्त (एसआईबी), बुलंदशहर के पद पर कार्य करने की अनुमति दें और जब भी देय हो, उसे महीने दर महीने नियमित वेतन का भुगतान करें, हालांकि, याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने का निर्देश दिया गया था और इसे तीन महीने के भीतर पूरा किया जाना था। उक्त आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 09.07.2021 के आदेश के तहत एकल न्यायाधीश द्वारा अंतिम टिप्पणी पर जोर दिया गया है, जिसे यहां नीचे निकाला जा रहा है:

"..... उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को संयुक्त आयुक्त (एसआईबी), बुलंदशहर के पद पर काम करने की अनुमति दें और जब भी देय हो, उसे मासिक वेतन का भुगतान करें।

हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रहेगी और इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से तीन महीने के भीतर पूरी की जाएगी।

(13) याचिकाकर्ता के अनुसार, उन्होंने 06.08.2021 को राज्य सरकार को उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2021 की प्रमाणित प्रति दी। हालांकि, इससे पहले, दिनांक 20.07.2021 के पत्र के माध्यम से, राज्य सरकार द्वारा 07.06.2021 को नियुक्त जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ दो आरोप लगाते हुए दिनांक 13.07.2021 को आरोप पत्र दिया। दोनों आरोपों के समर्थन में, दो रिपोर्टें यानी एक अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन) और दूसरी जिला मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर की दिनांक 04.05.2021 को सबूत के रूप में उद्धृत की गई थी। दिनांक 29.07.2021 को उपरोक्त आरोप-पत्र प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 29.07.2021 के आवेदन/अभ्यावेदन के माध्यम से, जांच अधिकारी से प्रश्नगत आरोपों से संबंधित कुछ दस्तावेज मांगे, ताकि वह उचित उत्तर दे सके। हालांकि, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के दिनांक 29.07.2021 के आवेदन की प्राप्ति पर, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन)/उप निर्वाचन अधिकारी (पंचायत) को एक पत्र लिखा, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 29.07.2021 के पत्र द्वारा मांगे गए दस्तावेजों को एक सप्ताह के भीतर आपूर्ति करने का अनुरोध किया गया था, हालांकि, कथित तौर पर उपरोक्त अधिकारियों द्वारा कोई ध्यान नहीं दिया गया और याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 29.07.2021 के पत्र के माध्यम से मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति उसे कभी नहीं की गई। इसके बाद, मांगे गए दस्तावेजों के अभाव में, याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए 08.10.2021 को आरोप-पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत किया।

(14) याचिकाकर्ता का उपरोक्त उत्तर प्राप्त होने पर, 11.01.2021 को, जांच अधिकारी ने फिर से अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन)/उप निर्वाचन अधिकारी (पंचायत) से याचिकाकर्ता को आवश्यक दस्तावेज प्रदान करने का अनुरोध किया। हालांकि, 20.10.2021 को, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन)/उप निर्वाचन अधिकारी (पंचायत) ने याचिकाकर्ता को कुछ दस्तावेज प्रदान किए, हालांकि, याचिकाकर्ता के अनुसार, ये दस्तावेज वे दस्तावेज नहीं थे, जिनकी याचिकाकर्ता द्वारा मांग की गई थी। किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता ने अपने पहले के जवाब को जारी रखते हुए, 29.10.2021 को फिर से आरोप पत्र का पूरक उत्तर प्रस्तुत किया, आरोपों से इनकार किया और अनुरोध किया कि उसे उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त किया जाए।

(15) जाहिर है, जांच अधिकारी ने 17.12.2021 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ दोनों आरोप साबित किए गए थे।

(16) अनुशासनात्मक प्राधिकारी यानी राज्य सरकार (प्रतिपक्षी संख्या-1) ने दिनांक 17.12.2021 की जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, दिनांक 22.12.2021 को आक्षेपित दंड आदेश पारित किया, जिससे याचिकाकर्ता पर दो छोटे दंड लगाए गए, अर्थात्, (1) निंदा; और (2) एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि को रोकना।

(17) दिनांक 22.12.2021 के आक्षेपित दंड आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ के समक्ष दावा याचिका संख्या-370 वर्ष 2022 को दायर दी। ट्रिब्यूनल ने दिनांक 22.09.2022 के निर्णय और आदेश के तहत, अनुशासनात्मक अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता को दिए गए/लगाए गए दंड को बरकरार रखते हुए दावा याचिका को खारिज कर दिया। ट्रिब्यूनल द्वारा दिनांक 22.09.2022 को पारित यह निर्णय और आदेश है, जिस पर प्रस्तुत रिट याचिका में हमला किया गया है।

C. प्रस्तुतियाँ

(18) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को लागू करने के लिए कई गुना आधार प्रस्तुत किए हैं और अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य: 2013 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 14267 में दिए गए इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर बहुत अधिक भरोसा किया है और प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश, याचिकाकर्ता द्वारा अपने निलंबन के आदेश दिनांक 21.05.2021 के खिलाफ दायर रिट याचिका संख्या-12120 (एस/एस) वर्ष 2021 को अन्य निर्देशों के अलावा निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2021 के माध्यम से अनुमति देते हुए, यह भी निर्देश दिया था कि आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने के भीतर अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी की जानी चाहिए। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह कहना है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2021 की प्रमाणित प्रति राज्य सरकार को 06.08.2021 को दी थी, इसलिए तीन महीने की अवधि 05.12.2021 को समाप्त हो गई। इस प्रकार, उनके अनुसार, चूंकि आरोप पत्र 13.07.2021 को तैयार किया गया था और याचिकाकर्ता को केवल 20.07.2021 के जांच अधिकारी के पत्र के माध्यम से दिया गया था, इसलिए, विभागीय जांच शुरू करने की तारीख को याचिकाकर्ता पर आरोप पत्र तैयार/तामील किए जाने की तारीख के रूप में, विभागीय जांच 13.07.2021 या 20.07.2021 से तीन महीने की अवधि के भीतर समाप्त हो जानी चाहिए थी। हालांकि, जांच केवल 19.12.2021 को समाप्त हुई। इसलिए, उनके अनुसार, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए संबंधित प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच को तीन महीने के भीतर समाप्त नहीं किया है, जैसा कि एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19.07.2021 के आदेश के माध्यम से निर्धारित किया गया था और न ही इस माननीय न्यायमूर्ति श्री न्यायालय से समय के

विस्तार की मांग की थी, वही कानून में गलत है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के मद्देनजर, निर्धारित अवधि समाप्त होने के बाद, कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच नहीं की जानी चाहिए थी और निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था। इसलिए, उनके द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि अकेले इस आधार पर, आक्षेपित दंड आदेश गिरता है और टिकाऊ नहीं है।

(19) अपनी प्रस्तुतियों को विस्तृत करते हुए, अधिवक्ता ने दावा याचिका के पैरा-4.10 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि हालांकि मामले के पूर्वोक्त पहलू के लिए विशिष्ट दलील याचिकाकर्ता द्वारा दावा याचिका के पैरा-4.10 में ली गई है, लेकिन ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता की उपरोक्त दलील पर विचार नहीं किया है और न ही 22.09.2022 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को पारित करते समय चर्चा की है।

(20) याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 के नियम 9 (4) के घोर उल्लंघन में दिनांक 22.11.2021 का आक्षेपित दंड आदेश पारित किया गया है, इस कारण से कि (ए) जांच के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए दस्तावेज उसे कभी नहीं दिए गए; (ख) दिनांक 17.12.2021 की जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को कभी नहीं दी गई; और (ग) दिनांक 17.12.2021 की जांच रिपोर्ट तैयार करते समय, हालांकि श्री शिव अवतार सिंह, तहसीलदार/मतगणना मजिस्ट्रेट, तहसील खुर्जा और एनसीआरबी की दिनांक 05.05.2021 की रिपोर्ट/तहरीर आरोप पत्र का हिस्सा नहीं थे, लेकिन फिर भी जांच अधिकारी द्वारा आरोपों को साबित करने के लिए भरोसा किया गया था, इसलिए, जांच रिपोर्ट के साथ-साथ आक्षेपित दंड आदेश अपने आप में अवैध हैं। उनके अनुसार, उपरोक्त याचिका उनके द्वारा दावा याचिका के पैरा -4.5 में ली गई है, लेकिन आक्षेपित निर्णय/आदेश पारित करते समय, ट्रिब्यूनल ने मामले के पूर्वोक्त पहलू पर विचार नहीं किया था और आक्षेपित आदेश के माध्यम से दावा याचिका को खारिज करने में गलती की थी। इस प्रकार, ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के साथ-साथ आक्षेपित दंड आदेश को अलग रखा जा सकता था।

(21) प्रतिवाद के अनुसार, राज्य/उत्तरदाताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थायी अधिवक्ता ने ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि हालांकि पहले की कार्यवाही में जब इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19.07.2021 (उपरोक्त) के आदेश के तहत निलंबन आदेश को रद्द कर दिया गया था, समय अवधि दी गई थी जिसके भीतर याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी होनी थी, जो नहीं किया जा सकता था, लेकिन यह अपने आप में अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य

(उपरोक्त) में दिए गए इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के आदेश को देखते हुए सजा के आदेश को रद्द करने का आधार नहीं होगा। इस प्रकार, प्रतिपक्षी के अधिवक्ता के अनुसार, इस संबंध में याचिकाकर्ता की दलील की पुष्टि नहीं हुई थी।

(22) स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप गंभीर प्रकृति के हैं, जिसके लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई है। जांच अधिकारी, रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री की मूल्यांकन करने और आरोप-पत्र के लिए याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि याचिकाकर्ता उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के लिए दोषी है। विभागीय प्राधिकारी यानी राज्य सरकार ने संबंधित रिकॉर्ड के साथ-साथ जांच रिपोर्ट की जांच करने पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ सजा का आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की गंभीरता के अनुरूप है। ट्रिब्यूनल ने आरोपों की गंभीरता और उसके सामने रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री पर विचार करने के बाद, आक्षेपित आदेश के माध्यम से दावा याचिका को खारिज कर दिया है। इस प्रकार, स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, दंड के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश किसी भी दुर्बलता या अवैधता से ग्रस्त नहीं है। इसलिए, रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

D. विश्लेषण और निष्कर्ष

(23) पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए और उपलब्ध अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, इस न्यायालय ने तथ्यों के पूरे सरगम और दोनों प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा संदर्भित कानून पर एक उत्सुक विचार किया है।

(24) जाहिरा तौर पर, उत्तर प्रदेश राज्य में सरकारी सेवकों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के संबंध में प्रक्रिया उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील), नियम 1999 (इसके बाद 'नियम, 1999' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के अनुसार शासित होती है। नियम, 1999 के अंतर्गत शास्ति लगाने की प्रक्रिया, जिस तरीके से आरोप-पत्र दिया जाना अपेक्षित है, उक्त प्रयोजन के लिए नामित जांच अधिकारी द्वारा जांच करना, गवाहों को बुलाने और उनके मौखिक साक्ष्य को रिकार्ड करने का अवसर प्रदान करना भी नियम 1999 के अंतर्गत प्रदान किया गया है।

(25) अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित दंड आदेश के साथ-साथ अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने नियम, 1999 के नियम 7 और नियम 9 (iv) पर बहुत जोर दिया है, इसलिए, हम नियम, 1999 के नियम 7 और 9 को पुन: प्रस्तुत करना उपयुक्त समझते हैं, जो निम्नानुसार हैं: -

"7. बड़ी शास्ति अधिरोपित करने की प्रक्रिया- किसी सरकारी सेवक पर कोई बड़ी शास्ति

अधिरोपित करने से पहले, निम्नलिखित रीति से जांच की जाएगी-

(i) अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं आरोपों की जांच कर सकता है अथवा आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में अपने अधीनस्थ प्राधिकारी को नियुक्त कर सकता है।

(ii) कदाचार का गठन करने वाले तथ्य, जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में कम किए जाएंगे जिन्हें आरोप-पत्र कहा जाएगा। परंतु जहां नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है, वहां आरोप-पत्र का अनुमोदन संबंधित विभाग के प्रधान सचिव या सचिव, यथास्थिति, द्वारा किया जा सकेगा।

(iii) लगाए गए आरोप इतने सुस्पष्ट और स्पष्ट होने चाहिए कि आरोपित सरकारी सेवक को उसके विरुद्ध तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में पर्याप्त संकेत मिल सके। प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य, यदि कोई हो, के साथ इसे साबित करने के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम का उल्लेख आरोप-पत्र में किया जाएगा।

(iv) आरोपित सरकारी सेवक से अपेक्षा की जाएगी कि वह एक विनिदष्ट तारीख को अपने बचाव का लिखित बयान व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत करे जो आरोप-पत्र जारी होने की तारीख से 15 दिनों से कम नहीं होगी और यह बताए कि क्या वह आरोप-पत्र में उल्लिखित किसी गवाह से प्रतिपरीक्षा करना चाहता है और क्या वह अपने बचाव में साक्ष्य देना या प्रस्तुत करना चाहता है। उसे यह भी सूचित किया जाएगा कि यदि वह विनिर्दिष्ट तिथि पर उपस्थित नहीं होता है अथवा लिखित बयान दाखिल नहीं करता है तो यह माना जाएगा कि उसके पास प्रस्तुत करने के लिए कुछ नहीं है और जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच पूरी करने की कार्यवाही करेगा।

(v) आरोप-पत्र, उसमें उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्य की प्रति और गवाहों की सूची और उनके बयानों, यदि कोई हों, के साथ आरोपित सरकारी सेवक को व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक द्वारा सरकारी अभिलेखों में उल्लिखित पते पर तामील किया जाएगा, यदि आरोप पत्र उपर्युक्त रीति से तामील नहीं किया जा सका, तो आरोप-पत्र व्यापक परिचालन वाले दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा तामील किया जाएगा: परन्तु जहां दस्तावेजी साक्ष्य भरमार है वहां आरोपित सरकारी सेवक को उसकी प्रति आरोप-पत्र के साथ प्रस्तुत करने के स्थान पर जांच अधिकारी के समक्ष उसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

(vi) जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी उपस्थित होता है और आरोपों को स्वीकार करता है, जांच अधिकारी ऐसी स्वीकारोक्ति के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(vii) जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी आरोपों से इंकार करता है वहां जांच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाने और आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य को रिकार्ड करने की

कार्यवाही करेगा जिसे ऐसे गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा। पूर्वोक्त साक्ष्य को अभिलिखित करने के पश्चात्, जांच अधिकारी उस मौखिक साक्ष्य को मंगाएगा और अभिलिखित करेगा जो आरोपित सरकारी सेवक अपने लिखित वक्तव्य में अपने बचाव में प्रस्तुत करना चाहता है;

बशर्ते कि जांच अधिकारी लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से गवाह को बुलाने से इनकार कर सकता है।

(viii) जांच अधिकारी, उत्तर प्रदेश विभागीय जांच (साक्षी की उपस्थिति का प्रवर्तन और दस्तावेजों को प्रस्तुत करना) अधिनियम, 1976 के उपबंधों के अनुसार साक्ष्य देने के लिए किसी गवाह को बुला सकेगा या किसी व्यक्ति से अपने समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा।

(ix) जांच अधिकारी सच्चाई का पता लगाने या आरोपों से सुसंगत तथ्यों का समुचित प्रमाण प्राप्त करने की दृष्टि से आरोपित किसी गवाह या आरोपित व्यक्ति से किसी भी समय अपनी इच्छानुसार कोई प्रश्न पूछ सकेगा।

(x) जहां आरोपित सरकारी सेवक जांच में नियत तारीख को या कार्यवाही के किसी भी चरण में नोटिस की तामील के बावजूद या तारीख की जानकारी होने के बावजूद उपस्थित नहीं होता है, वहां जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच करेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी कर्मचारी की अनुपस्थिति में आरोप पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

(xi) अनुशासनिक प्राधिकारी, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, किसी आदेश द्वारा किसी सरकारी सेवक या विधिक व्यवसायी को, जिसे प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में जाना जाता है, अपनी ओर से आरोप के समर्थन में मामला प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त कर सकेगा।

(xii) सरकारी सेवक अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता ले सकता है लेकिन इस प्रयोजन के लिए कोई विधिक व्यवसायी नियुक्त नहीं कर सकता जब तक कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विधिक व्यवसायी या अनुशासनिक प्राधिकारी न हो।

बशर्ते कि यह नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

(i) जहां किसी व्यक्ति पर आचरण के आधार पर कोई बड़ी शास्ति अधिरोपित की जाती है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषसिद्धि हुई है; नहीं तो

(ii) जहां अनुशासनिक प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि उसके द्वारा लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने वाले कारण के लिए कि इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच करना

युक्तियुक्त रूप से अव्यवहारिक नहीं है; नहीं तो

(iii) जहां राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में, इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच कराना समीचीन नहीं है।

8. XXXXXXXXXX

"9. जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई- (1) अनुशासनिक प्राधिकारी, लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, मामले को पुनः जांच के लिए उसी को या किसी अन्य जांच अधिकारी को आरोपित सरकारी सेवक को सूचित कर सकेगा। जांच अधिकारी नियम 7 के प्रावधानों के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्देशित ऐसे चरण से जांच करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(2) अनुशासनिक प्राधिकारी, यदि वह किसी आरोप पर जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, तो अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए उस पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित करेगा।

(3) यदि आरोप सिद्ध नहीं होते हैं तो आरोपित सरकारी सेवक को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा आरोपों से दोषमुक्त कर दिया जाएगा और उसे तदनुसार सूचित किया जाएगा।

(4) यदि अनुशासनिक प्राधिकारी की सभी या किन्हीं या प्रभारों पर उसके निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए यह राय है कि नियम 3 में विनिर्दिष्ट कोई शास्ति प्रभार सरकारी सेवक पर अधिरोपित की जानी चाहिए तो वह आरोपित सरकारी सेवक को जांच रिपोर्ट और उपनियम (2) के अधीन अभिलिखित उसके निष्कर्षों की एक प्रति देगा और यदि वह चाहे तो उससे अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की अपेक्षा करेगा, एक उचित निर्दिष्ट समय के भीतर। अनुशासनिक प्राधिकारी, आरोपित सरकारी सेवक की जांच और प्रतिनिधित्व से संबंधित सभी सुसंगत रिकार्डों को ध्यान में रखते हुए, यदि कोई हो, और इन नियमों के नियम 16 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इन नियमों के नियम 3 में उल्लिखित एक या अधिक शास्तियों को अधिरोपित करते हुए एक युक्तियुक्त आदेश पारित करेगा और आरोपित सरकारी सेवक को इसकी सूचना देगा।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

(26) नियमावली, 1999 के पूर्वोक्त उपबंधों का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि उपर्युक्त नियम स्वत निहित नियम हैं और विभागीय जांच करने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई है। यह याचिकाकर्ता का सुसंगत रुख रहा है कि अनुशासनात्मक द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विभिन्न कारणों से दूषित है, जिसमें उक्त कार्यवाही के दौरान संबंधित दस्तावेज प्रदान नहीं किए गए थे। हालांकि, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दावा किया है कि याचिकाकर्ता को प्रासंगिक दस्तावेज प्रदान नहीं किए गए थे, हालांकि वह दलील से यह बताने में असमर्थ था कि उसे कौन से दस्तावेज नहीं दिए जा सकते हैं और न ही यह तर्क दिया गया है कि वे दस्तावेज अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए कैसे

प्रासंगिक हो सकते हैं। इस प्रकार, उक्त मुद्दा अप्रासंगिक प्रतीत होता है।

(27) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला बिंदु यह है कि दिनांक 17.12.2021 की जांच रिपोर्ट तैयार करते समय, हालांकि श्री शिव अवतार सिंह, तहसीलदार/मतगणना मजिस्ट्रेट, तहसील खुर्जा और एनसीआरबी की रिपोर्ट/तहरीर दिनांक 05.05.2021 चार्जशीट का हिस्सा नहीं थे, लेकिन फिर भी याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया था और इसलिए, उनके अनुसार, जांच रिपोर्ट के साथ-साथ आक्षेपित सजा आदेश अपने आप में अवैध हैं।

(28) इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के उक्त तर्क में पर्याप्त बल मिलता है, यहां तक कि न्यायाधिकरण ने भी उक्त पहलू से नहीं निपटा, हालांकि उक्त आधार को याचिकाकर्ता द्वारा दावा याचिका में उत्तेजित किया गया था। चूंकि, ट्रिब्यूनल ने मामले के उक्त पहलू से नहीं निपटा, इसलिए यह न्यायालय प्रस्तुत रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिपादित उक्त आधार की जांच करने के लिए बाध्य है।

(29) नियम 1999 के नियम 7 (iii) और (v) के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट होता है कि न केवल प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य का उल्लेख आरोप-पत्र में किया जाएगा, बल्कि आरोपित अधिकारी को भी दिया जाएगा। उक्त प्रक्रिया विभागीय कार्यवाही का एक अनिवार्य पहलू है क्योंकि यह न केवल दोषी लोक सेवक के खिलाफ लगाए गए आरोपों को एक निश्चितता देता है बल्कि विभाग को एक रोविंग जांच से भी रोकता है। उक्त प्रक्रिया निष्पक्षता के नियम की सेवा करने के लिए है और अनुच्छेद 14 और सार्वजनिक नीति की सच्ची भावना में बहती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उक्त प्रक्रिया विभागीय जांच के समय एक आश्चर्य को खींचने से रोकती है और अपराधी लोक सेवक को अग्रिम में अपने बचाव के लिए अच्छी तरह से तैयार करने में सक्षम बनाती है। किसी भी मामले में, एक जांच में विभाग द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया है, उनकी आपूर्ति आरोपित अधिकारी का एक अपरिहार्य अधिकार है और यह समानता के अधिकार का विस्तार है क्योंकि स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रक्रिया भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का एक हिस्सा है, जो बदले में सम्मान के साथ जीने के उद्देश्य को पूरा करती है।

(30) यह न्यायालय अपने दिमाग में स्पष्ट है कि आरोपित अधिकारी को दस्तावेजों की आपूर्ति से संबंधित नियम, 1999 के नियम 7 के प्रावधानों की प्रयोज्यता अनिवार्य है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के आवश्यक तोप बनाती है अर्थात "ऑडी अल्टरम पार्टम" अर्थात किसी भी व्यक्ति को बिना सुने निंदा नहीं की जाएगी। जाहिर है, लेयरेंड ट्रिब्यूनल का आक्षेपित निर्णय याचिकाकर्ता को श्री शिव अवतार सिंह, तहसीलदार/मतगणना मजिस्ट्रेट, तहसील खुर्जा और एनसीआरबी की रिपोर्ट/तहरीर दिनांक 05.05.2021 की आपूर्ति न करने के उक्त पहलू पर किसी भी निष्कर्ष को वापस करने से कम हो गया है, जो स्वीकार्य रूप से आरोप-पत्र का हिस्सा नहीं थे,

लेकिन याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया था। इन दस्तावेजों की गैर-आपूर्ति जांच और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के साथ दायर परिणामी रिपोर्ट को दूषित करती है और इस तरह कानून की नजर में इसे बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(31) इस न्यायालय ने पाया कि दूसरे चरण में भी, जिसमें नियम 1999 के नियम 9 (4) के अनुसार, याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट दी जानी थी और उक्त अभ्यावेदन के खिलाफ अभ्यावेदन के लिए बुलाया गया था, उस संबंध में याचिकाकर्ता को स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था। स्पष्टतया, नियमावली, 1999 के नियम 9(4) में दोषी अधिकारी को पर्याप्त आत्मरक्षोपाय का प्रावधान है, यदि अनुशासनिक प्राधिकारी का यह विचार है कि प्रस्तुत की गई जांच रिपोर्ट उक्त दोषी अधिकारी के विरुद्ध है, क्योंकि इसमें यह उपबंध है कि अनुशासनिक प्राधिकारी जांच रिपोर्ट और उसके निष्कर्षों की एक प्रति आरोपित सरकारी कर्मचारी को देगा और उससे युक्तियुक्त विनिदष्ट समय के भीतर अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की अपेक्षा करेगा। जाहिरा तौर पर इस तरह का प्रतिनिधित्व देना एक अपराधी अधिकारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपने कुकर्मों को सही ठहराने का आखिरी मौका है और फिर से अनुशासनात्मक कार्यवाही और सार्वजनिक नीति के संदर्भ में एक अनिवार्य पहलू है। इसके अतिरिक्त, आरोपित अधिकारी से अभ्यावेदन प्राप्त होने के बाद ही अनुशासनिक प्राधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की जांच और अभ्यावेदन से संबंधित सभी संगत रिकार्डों को ध्यान में रखते हुए एक या अधिक शास्तियां अधिरोपित करते हुए तर्कसंगत आदेश पारित करता है।

(32) प्रस्तुत मामले में, जांच अधिकारी द्वारा 17.12.2021 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और उक्त रिपोर्ट की एक प्रति की आपूर्ति किए बिना और उसके प्रतिनिधित्व की प्रतीक्षा किए बिना, याचिकाकर्ता को 22.12.2021 को सजा का आदेश दिया गया था। फिर, हालांकि इन आधारों को याचिकाकर्ता द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष अच्छा बनाया गया था, हालांकि, दुर्भाग्य से इसे बहुत ही सरसरी तरीके से निपटाया गया है और इस तरह इस न्यायालय पर विभागीय जांच के ऐसे मूलभूत पहलू से निपटने का बोझ है।

(33) माननीय न्यायमूर्ति श्री उच्चतम न्यायालय ने वित्त मंत्रालय के मामले में और ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 853 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य बनाम एसबी रमेश के मामले में इस बात पर जोर दिया है कि अनुशासनिक कार्यवाही के मामले में यदि जांच अधिकारी दस्तावेजों पर भरोसा करता है, तो उन दस्तावेजों को कानून के अनुसार साबित किया जाना चाहिए और उन दस्तावेजों से निकाला गया कोई निष्कर्ष जो कानून के अनुसार साबित नहीं हुए थे, अवैध होगा और कानून के खिलाफ होगा।

(34) इसके अलावा, मामले का एक और पहलू है, जिसे याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उत्तेजित किया गया है। इस न्यायालय ने पाया कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में इस माननीय

न्यायमूर्ति श्री न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता के मामले में पारित दिनांक 21.07.2021 के आदेश के तीन महीने के भीतर विभागीय जांच के निष्कर्ष से संबंधित उक्त मुद्दे को आसानी से फिर से ट्रिब्यूनल से नहीं निपटाया गया है। हालांकि प्रस्तुत रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष स्थायी अधिवक्ता द्वारा एक प्रयास किया गया है, यह प्रस्तुत करके कि अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय की माननीय न्यायमूर्ति श्री पूर्ण पीठ का निर्णय अपने आप में याचिकाकर्ता पर लगाए गए दंड को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। हालांकि, तर्क बहुत आकर्षक प्रतीत होता है, हालांकि, इस न्यायालय ने पाया कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित प्रश्न तैयार करके पूर्वोक्त संदर्भित निर्णय के पैराग्राफ -2 के संदर्भ में प्रश्नों का उत्तर दिया है: -

"(ए) क्या यदि किसी अदालत द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर जांच की कार्यवाही समाप्त नहीं की जाती है और उसके बाद अदालत से विस्तार की मांग किए बिना समाप्त हो जाती है, तो उक्त आधार पर पूरी जांच कार्यवाही के साथ-साथ पारित सजा के आदेश, पीएन श्रीवास्तव के मामले में निर्णय के मद्देनजर समाप्त हो जाते हैं; और

(ख) क्या पी एन श्रीवास्तव के मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा यथा निर्धारित यह कानून कि यदि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर जांच की कार्यवाही पूरी नहीं की जाती है तो वह त्रुटिपूर्ण मानी जाती है रिट याचिका संख्या-1056 (एसबी) वर्ष 2009 (भारत संघ और अन्य बनाम सतेंद्र कुमार सहाय और अन्य) में।

(35) यद्यपि, पूर्वोक्त संदर्भ का उत्तर पूर्ण पीठ द्वारा निर्णय के पैराग्राफ -19 में दिया गया था, तथापि, यह नोट करना महत्वपूर्ण होगा कि पूर्ण पीठ ने उसी निर्णय में पैराग्राफ -6 में उक्त निर्णय की प्रस्तावना भी दर्ज की थी, जो एक ज्ञानवर्धक पठन के लिए बनाता है। यह उल्लेख करने के लिए पर्याप्त है कि उस पैराग्राफ में पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार देखा: -

"6. अनुशासनात्मक कार्यवाही के संदर्भ में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उपयुक्त मामलों में एक निर्धारित अवधि के भीतर जांच के निष्कर्ष के संबंध में एक शर्त तय कर सकता है। ऐसा आदेश कई स्थितियों में पारित किया जा सकता है, जैसे कि जब कोई कर्मचारी निलंबन के आदेश को चुनौती देने वाली याचिका दायर करता है और न्यायालय न्याय के हित में यह निर्देश देना उचित समझता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही का शीघ्रता से निपटारा किया जाना चाहिए। अनुशासनिक कार्यवाहियों के निपटान में विलंब को रोकने के लिए अन्य उपयुक्त मामलों में ऐसे निदेश जारी किए जाते हैं। इन आदेशों का आधार और औचित्य यह सुनिश्चित करना है कि एक कर्मचारी अनुशासनात्मक कार्यवाही के समापन में अनुचित देरी से पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं है। जहां न्यायालय समय की अवधि निर्धारित करता है जिसके दौरान एक जांच पूरी की जानी चाहिए, इस तरह की शर्त का पालन

किया जाना चाहिए। स्पष्ट रूप से, यह नियोक्ता के लिए न्यायालय के आदेशों की अवहेलना करने के लिए खुला नहीं है और संभवतः यह दावा नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के बावजूद, नियोक्ता समय की शर्त की अवहेलना करते हुए अपनी मर्जी से जांच समाप्त करने के लिए स्वतंत्र है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

(36) पूर्ण पीठ ने निर्णय के पैरा-6 में की गई पूर्वोक्त टिप्पणी की पृष्ठभूमि में, निर्णय के पैरा-19 के माध्यम से तैयार किए गए पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहा, जिसे यहां-नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"19. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, अब हम उन सवालों के जवाब देने के लिए आगे बढ़ते हैं जिन्हें पूर्ण पीठ को भेजा गया है।

(क) प्रश्न संख्या-221। (ए): हम मानते हैं कि यदि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर जांच पूरी नहीं की जाती है, तो नियोक्ता के लिए यह खुला है कि वह जांच के निष्कर्ष में देरी के कारणों को निर्धारित करते हुए अदालत को एक उचित आवेदन करके समय का विस्तार मांग सकता है। ऐसी स्थिति में, यह अदालत को विचार करना है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर समय बढ़ाया जाना चाहिए या नहीं। हालांकि, जहां न्यायालय द्वारा समय की शर्त है, यह नियोक्ता के लिए उस शर्त की अवहेलना करने के लिए खुला नहीं होगा और समय का विस्तार मांगा जाना चाहिए;

(ख) प्रश्न संख्या-221। (ख): सुरेश चंद्र (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ सत्येन्द्र कुमार सहाय (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि अनुशासनात्मक जांच समाप्त करने में नियोक्ता की ओर से केवल देरी से प्रत्येक मामले में पूरी कार्यवाही स्वतः ही समाप्त नहीं हो जाएगी। जिस न्यायालय ने समय की शर्त निर्धारित की है, उसके पास समय बढ़ाने का क्षेत्राधिकार है और उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय यह न्यायालय के लिए खुला है कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या विलंब को संतोषजनक ढंग से स्पष्ट किया गया है। अदालत जांच के निष्कर्ष के लिए उपयुक्त रूप से समय बढ़ा सकती है, या तो कर्मचारी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में इस आधार पर जांच को चुनौती दी गई कि यह निर्धारित अवधि के भीतर पूरी नहीं हुई थी या नियोक्ता द्वारा दायर एक स्वतंत्र आवेदन पर भी। न्यायालय के पास समय का विस्तार देने का अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र है, समय की मूल शर्त अदालत द्वारा ही तय की गई है। न्याय के हित में समय के इस तरह के विस्तार पर विचार किया जाना चाहिए, निष्पक्षता और एक ईमानदार प्रशासन के हित में जांच के शीघ्र निष्कर्ष की आवश्यकता दोनों को संतुलित करना। एक उपयुक्त मामले में, यह न्यायालय के लिए खुला होगा कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए समय का विस्तार करे कि कदाचार का एक गंभीर आरोप सार्वजनिक

हित के लिए गंभीर नुकसान के लिए अदंडित न हो। अदालत के पास अदालत द्वारा निर्धारित अवधि समाप्त होने से पहले और बाद में समय का विस्तार देने के लिए पर्याप्त शक्तियां हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

(32) ऐसा कहने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि सभी निष्पक्षता में और पूर्ण पीठ के निर्णय के अनुसार, नियोक्ता/अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही को पूरा करने के लिए प्रदान की गई समय की शर्त की अवहेलना करने का कोई तरीका नहीं है। हालांकि, जैसा कि पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित किया गया है, क्योंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए जांच के निष्कर्ष में देरी के कारणों को बताते हुए इस अदालत से समय बढ़ाने की मांग करना हमेशा खुला है। इसके अलावा, इस न्यायालय को न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि से पहले या बाद में समय का विस्तार देने के लिए स्व-प्रेरणा शक्ति भी दी गई है।

(33) इस न्यायालय ने पाया कि जांच समाप्त करने के लिए समय के विस्तार की मांग करने वाले अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कोई अनुरोध नहीं किया गया है और न ही कोई आवेदन किया गया है। इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान कार्यवाही के दौरान भी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा ऐसा कोई अनुरोध नहीं किया गया था। इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दिनांक 19.07.2021 के आदेश के माध्यम से जांच समाप्त करने के लिए तीन महीने का समय दिया गया था, हालांकि, जाहिर तौर पर सजा का आदेश दिनांक 22.12.2021 के आदेश के माध्यम से पारित किया गया था, जो इस न्यायालय द्वारा दिए गए समय से काफी अधिक था। हालांकि, संदर्भ के मुद्दे 'बी' के जवाब में, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का विचार था कि यह न्यायालय स्वतः विस्तार दे सकता है, यदि आरोप इतने गंभीर हैं, लेकिन प्रश्न में मुद्दे के अजीब तथ्यों और परिस्थितियों में, समय का ऐसा स्वतः संज्ञान विस्तार विभिन्न कारणों से नहीं दिया जा सकता है, जिसमें (i) याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप अनिवार्य रूप से सदस्यों के परिणाम की देरी से घोषणा के लिए है। जिला पंचायत, (ii) हालांकि याचिकाकर्ता को तुरंत निलंबित कर दिया गया था, हालांकि इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने निलंबन के उक्त आदेश को रद्द कर दिया है और याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति दी है और एकल न्यायाधीश के उक्त आदेश को अंतिम रूप दिया गया है क्योंकि इसे विभाग द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई थी, (iii) लगाया गया जुर्माना प्रकृति में मामूली है और (iv) सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अदालत ने जांच के संचालन में कई प्रक्रियात्मक कमजोरियां पाई हैं नियम 1999 के नियम 4 और 9 के तहत तैयार किया गया।

(34) यह न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकता है कि जांच रिपोर्ट, जिसके अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने सजा का आदेश पारित किया है, याचिकाकर्ता को कभी नहीं रखा गया था, ताकि वह प्रतिनिधित्व दायर कर सके। इस प्रकार, नियमावली, 1999 के तहत

निर्धारित उक्त अनिवार्य प्रक्रिया और जांच के संचालन में कई अन्य प्रक्रियात्मक कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए, सजा के आदेश को कानूनी रूप से अस्थिर नहीं ठहराया जा सकता है, खासकर जब इस बिंदु पर प्राधिकरण की एक सुसंगत श्रृंखला है कि सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच को एक आकस्मिक अभ्यास के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित करने के लिए कि न केवल न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है; उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कार्यवाही में अपराधी के साथ उचित व्यवहार किया जाता है जो उसके खिलाफ जुर्माना लगाने में परिणत हो सकता है।

(35). अगला प्रश्न जो विचारणीय है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर प्रस्तुत याचिका के तहत याचिकाकर्ता को किस तरह की राहत दी जा सकती है, जो अनिवार्य रूप से न्यायिक समीक्षा की प्रकृति में है। निर्णयों की एक श्रृंखला में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के बीच अंतर को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को चुना है। सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का हवाला देकर इस फैसले पर बोझ डाले बिना, सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय और अन्य (2003) 6 एस.सी.सी. 675 के फैसले का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 24 और 25 में नीचे दिए गए अनुसार टिप्पणी की है:

"24. संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच के अंतर को उमाजी केशव मेश्राम बनाम भारत संघ मामले में अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया था। राधिकाबाई [1986 सप्प एस.सी.सी. 401]। अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही उच्च न्यायालय के मूल अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत कार्यवाही मूल नहीं है, बल्कि केवल पर्यवेक्षी है। अनुच्छेद 227 भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के प्रावधानों को काफी हद तक पुन: प्रस्तुत करता है, सिवाय इसके कि इस अनुच्छेद द्वारा अधीक्षण की शक्ति को न्यायाधिकरणों तक भी बढ़ा दिया गया है। यद्यपि यह शक्ति अपील की एक साधारण अदालत के समान है, फिर भी अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का उपयोग संयम से और केवल उपयुक्त मामलों में अधीनस्थ अदालतों और न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर रखने के उद्देश्य से किया जाना है, न कि केवल त्रुटियों को सुधारने के लिए। इस शक्ति का प्रयोग उन मामलों में किया जा सकता है जिनमें गंभीर अन्याय या न्याय की विफलता का सामना करना पड़ता है जैसे कि (i) न्यायालय या न्यायाधिकरण ने ऐसा क्षेत्राधिकार ग्रहण कर लिया है जो उसके पास नहीं है, (ii) वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है, ऐसी विफलता जो न्याय की विफलता के कारण होती है, और (iii) क्षेत्राधिकार उपलब्ध होने पर उसका प्रयोग इस तरीके से किया जा रहा है जो अधिकार क्षेत्र की सीमाओं का अतिक्रमण करने के समान है।

25. निर्णय किए गए मामलों की समीक्षा और अवसरों के सर्वेक्षण पर, जिसमें उच्च न्यायालयों ने विभिन्न मामलों में दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में अनुच्छेद 227 के तहत उत्प्रेषण रिट का आदेश देने या पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है, ऐसा लगता है कि दोनों न्यायालयों के बीच का अंतर व्यवहार में लगभग समाप्त हो गया है। संभवतः यही कारण है कि अधिवक्ताओं द्वारा अपनी याचिकाओं को संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत एक आम के रूप में लेबल करने की प्रथा बन गई है, हालांकि इस तरह की प्रथा को कुछ न्यायिक निर्णयों में बहिष्कृत किया गया है। विषय की बारीकियों और तकनीकीता में प्रवेश किए बिना, हम दो न्यायालयों के बीच व्यापक सामान्य अंतर को बताने का उद्यम करते हैं। सबसे पहले, उत्प्रेषण रिट उच्च न्यायालय द्वारा अपने मूल अधिकार क्षेत्र का एक अभ्यास है; पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग एक मूल क्षेत्राधिकार नहीं है और इस अर्थ में यह अपील, पुनरीक्षण या सुधारात्मक क्षेत्राधिकार के समान है। दूसरे, उत्प्रेषण रिट में, कार्यवाही का रिकॉर्ड प्रमाणित किया गया है और उच्च न्यायालय को निचली अदालत या न्यायाधिकरण द्वारा भेजा गया है, उच्च न्यायालय यदि अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए इच्छुक है, तो कार्यवाही को रद्द या रद्द कर सकता है और फिर और नहीं कर सकता है। पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय न केवल आक्षेपित कार्यवाही, निर्णय या आदेश को रद्द या रद्द कर सकता है, बल्कि यह ऐसे निर्देश भी दे सकता है जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार हो सकते हैं, हो सकता है, अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण को मार्गदर्शन करने के माध्यम से कि वह अब उच्च न्यायालय द्वारा अनुशंसित या निर्देशित तरीके से आगे या नए सिरे से आगे बढ़ेगा। उपयुक्त मामलों में उच्च न्यायालय, पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, आक्षेपित निर्णय के स्थान पर अपने स्वयं के ऐसे निर्णय को प्रतिस्थापित कर सकता है, जैसा कि अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण को करना चाहिए था। अंत में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार पीड़ित पक्ष द्वारा या उसकी ओर से की गई प्रार्थना पर प्रयोग करने में सक्षम है; पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का भी स्वत: संज्ञान लेने में सक्षम है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

E. निष्कर्ष

(36) पूर्वोक्त उक्ति को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए विभिन्न कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम प्रस्तुत याचिका को अनुमति देने और न्यायाधिकरण के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के इच्छुक हैं। चूंकि ट्रिब्यूनल ने मामले को अपने सही परिप्रेक्ष्य में स्थगित करने का आह्वान किया है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विभिन्न आधारों और मुद्दों पर किसी भी निष्कर्ष को निर्धारित करने और वापस करने में विफल रहा है, जैसा कि ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर दावा याचिका से ही पैदा हो सकता है, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के अनुरोध को स्वीकार करता है कि गंभीर अन्याय होगा, यदि प्रस्तुत मामले

को फिर से सुनवाई के लिए ट्रिब्यूनल में भेज दिया जाता है।

(37) हम, तदनुसार, दावा याचिका संख्या-370 वर्ष 2022 में ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 22.09.2022 और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड के परिणामी आदेश दिनांक 22.12.2021 को रद्द करके इस रिट याचिका की अनुमति देते हैं। याचिकाकर्ता नियमों के अनुसार सभी परिणामी राहत का हकदार होगा।

(38) यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आदेश को मिसाल के रूप में नहीं माना जाएगा क्योंकि यह प्रस्तुत मामले के विशिष्ट तथ्यों में प्रदान किया गया है।

(39) लागत के अनुसार कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 315

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

रिट ए संख्या 8882 वर्ष 2023

पंखुड़ी अग्रवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री प्रभाव श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री एम.एन. सिंह, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

भर्ती कानून - आवेदन की अंतिम तिथि के बाद आरक्षण श्रेणी में परिवर्तन - 'गलत या भ्रामक जानकारी' की व्याख्या - चयन मानदंड में मध्य-प्रक्रिया संशोधन - विचार का निहित अधिकार

याचिकाकर्ता, जिसने शुरू में उ.प्र. लोक सेवा आयोग द्वारा जारी विज्ञापन संख्या ए-5/ई-1/2022 के जवाब में डीएफएफ (स्वतंत्रता सेनानी के आश्रित) और ईडब्ल्यूएस (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग) श्रेणियों के अंतर्गत सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद के लिए आवेदन किया था, ने बाद में अपनी अनर्हता की अनुभूति होने पर डीएफएफ दावा वापस लेने की मांग की। उसने प्रारंभिक परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद केवल ईडब्ल्यूएस श्रेणी के अंतर्गत सुधार का अनुरोध किया। उ.प्र. लोक सेवा आयोग ने 'आवश्यक जानकारी' के खंड 2 और 11(18) का संदर्भ देते हुए इस अनुरोध को खारिज कर दिया, क्योंकि यह किसी भी श्रेणी के दावों में समय सीमा के बाद बदलाव को रोकता है। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि हालांकि याचिकाकर्ता खंड 11(18) के अंतर्गत समय सीमा के बाद अपनी आरक्षण श्रेणी में संशोधन नहीं कर सकती, लेकिन उसके डीएफएफ दावे को प्रमाणित करने में विफलता उक्त खंड के अंतर्गत 'गलत' या 'भ्रामक' दावा नहीं बनाती। "झूठे" और "भ्रामक" शब्दों की शब्दकोश और न्यायिक व्याख्या पर भरोसा करते हुए,

न्यायालय ने अधूरे/गलत दावों और कपटपूर्ण प्रस्तुतियों के बीच अंतर किया। चूँकि याचिकाकर्ता ने डीएफएफ श्रेणी के समर्थन में कोई दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं किया था, और वह ईडब्ल्यूएस निर्दिष्ट तिथि के अंतर्गत योग्य थी, इसलिए उसकी उम्मीदवारी पूरी तरह से रद्द नहीं की जा सकती थी। अधूरे या निराधार दावे स्वतः ही 'झूठे' या 'भ्रामक' नहीं होते। प्रमाणपत्रों द्वारा समर्थित न होने वाले आरक्षण दावों को अस्वीकार किया जा सकता है, लेकिन उम्मीदवारी रद्द नहीं की जा सकती।

<u>वादविधि उद्धरण:</u>

1. संघ लोक सेवा आयोग बनाम विभू प्रसाद सारंगी एवं एक अन्य - (2021) 4 एससीसी 516

2. एन.टी. डेविन कट्टी एवं अन्य बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग एवं अन्य - (1990) 3 एससीसी 15

3. के. मंजूश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं एक अन्य - (2008) 3 एससीसी 512

4. राजेंद्र भीमराव मांडवे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य - (2001) 10 एससीसी 111

5. कुमारी श्रद्धा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - रिट ए संख्या 8825 वर्ष 2023

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह)
और
माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाव श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी संख्या 2 एवं 3 के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.के. सिंह, के सहायक अधिवक्ता श्री एम.एन. सिंह और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री मुकुल त्रिपाठी को सुना।

2. वर्तमान याचिका अवर सचिव, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (संक्षेप में 'यूपीपीएससी') द्वारा जारी पत्र दिनांक 29.4.2023 और यूपीपीएससी के अपील प्राधिकरण की ओर से जारी पत्र दिनांक 10.5.2023 को खारिज करते हुए दायर की गई है। याचिकाकर्ता का अनुरोध है कि उसे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (संक्षेप में 'ईडब्ल्यूएस') श्रेणी से संबंधित उम्मीदवार के रूप में माना जाए, जबकि उसने अपना दावा, स्वतंत्रता सेनानी के आश्रित (संक्षेप में 'डीएफएफ') छोड़ दिया है।

3. वर्तमान विवाद को तय करने के लिए प्रासंगिक तथ्य हैं, यूपीपीएससी ने विज्ञापन संख्या ए-5/ई-1/2022 (इसके बाद 'विज्ञापन' के रूप में संदर्भित), दिनांक 10.12.2022 निकाला, जिसमें भाग लेने के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए। सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद पर चयन के लिए यूपीपीएससी द्वारा एक खुली परीक्षा आयोजित की जाएगी। कुल मिलाकर, 303 रिक्तियों का विज्ञापन किया गया था। उसमें से 123 रिक्तियां अनारक्षित (सामान्य) श्रेणी के अंतर्गत थीं, जबकि ऊर्ध्वाधर आरक्षण के माध्यम से,

81 रिक्तियां आरक्षित थीं अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) श्रेणी के लिए, 63 रिक्तियां अनुसूचित जाति (एससी) श्रेणी के लिए आरक्षित थीं, 6 रिक्तियां अनुसूचित जनजाति (एसटी) श्रेणी के लिए आरक्षित थीं। इसके अलावा, प्रदान किए गए क्षैतिज आरक्षण के माध्यम से, 30 रिक्तियां ईडब्ल्यूएस श्रेणी के लिए आरक्षित थीं, 15 रिक्तियां पूर्व सैनिक श्रेणी के लिए आरक्षित थीं, 6 रिक्तियां डीएफएफ श्रेणी के लिए आरक्षित थीं, 60 रिक्तियां महिला श्रेणी के लिए आरक्षित थीं और 12 रिक्तियां विकलांगता श्रेणी के विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षित थीं। याचिकाकर्ता ने यह बताते हुए फॉर्म भरा कि वह डीएफएफ और ईडब्ल्यूएस श्रेणियों से संबंधित है।

4. परिणामस्वरूप, उसे एक प्रवेश पत्र जारी किया गया और वह 12.2.2023 को प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित हुई। 16.3.2023 को उस परीक्षा का परिणाम घोषित होने पर उन्हें सफल घोषित उम्मीदवारों की सूची में शामिल किया गया। फिर उसे एक और फॉर्म भरना था (मुख्य (लिखित) परीक्षा में उपस्थित होने के लिए), और अपनी पात्रता और दावा किए गए आरक्षण के बारे में दस्तावेजी प्रमाण प्रस्तुत करना था।

5. उस स्तर पर, याचिकाकर्ता को एहसास हुआ कि वह डीएफएफ श्रेणी के तहत आरक्षण का दावा करने के लिए पात्र नहीं थी। इस प्रकार, उन्होंने 29.3.2023 को यूपीपीएससी को गैर-डीएफएफ श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में व्यवहार करने के लिए पत्र लिखा। यह याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया वह आवेदन है जिसे अवर सचिव, यूपीपीएससी द्वारा दिनांक 29.4.2023 को जारी किए गए संचार द्वारा खारिज कर दिया गया था, जैसा कि आगे के संचार दिनांक 10.5.2023 द्वारा अपील में पुष्टि की गई थी। उस चरण में और लिखित परीक्षा आयोजित होने से पहले, याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका के माध्यम से इस न्यायालय से संपर्क किया। सुनवाई के बाद दिनांक 22.5.2023 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाव श्रीवास्तव को सुना; आयोग के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एम.एन. सिंह को और राज्य-प्रत्यर्थी के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक परीक्षा के लिए फॉर्म भरते समय गलती से 'स्वतंत्रता सेनानी के आश्रित' (संक्षेप में "डीएफएफ") के रूप में आवेदन किया था, जबकि वह आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (संक्षेप में "ईडब्ल्यूएस") श्रेणी से संबंधित है। प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण करने पर, उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और उसने ईडब्ल्यूएस श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में फॉर्म भरने का प्रयास किया। जहां तक डीएफएफ की बात है तो उन्होंने आवेदन में सुधार की मांग की थी, जिसे खारिज कर दिया गया है।

3. विज्ञापन संख्या ए-5/ई-1/2022, दिनांक 10.12.2022 के तहत आरक्षण से संबंधित खंड 7 के नोट 6 पर भरोसा करते हुए, आयोग ने याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी रद्द नहीं की होगी

क्योंकि उसने कोई गलत या भ्रामक दावा नहीं किया था। उपरोक्त विज्ञापन के खंड 11 के उप खंड 18 के तहत कार्रवाई की जा सकती है।

4. प्रथम दृष्टया इस मामले पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है.

5. दोपहर के भोजन के पूर्व सत्र में मामले की सुनवाई होने पर, श्री एम.एन. सिंह को वर्तमान याचिकाकर्ता से संबंधित प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत करना आवश्यक था। दोपहर के भोजन के बाद वह परिणाम सामने आया है। याचिकाकर्ता ने ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत कट ऑफ अंक से अधिक अंक प्राप्त किए हैं।

6. चूंकि परीक्षा कल से आयोजित की जानी है, इसलिए एक अंतरिम उपाय के रूप में, यह प्रदान किया जाता है कि आयोग याचिकाकर्ता को वर्तमान रिट याचिका के अंतिम परिणाम के अधीन अनंतिम रूप से परीक्षा में बैठने की अनुमति देगा। हालाँकि याचिकाकर्ता का अंतिम परिणाम न्यायालय की अनुमति के बिना घोषित नहीं किया जा सकता है।

7. चूंकि इसमें शामिल मुद्दा पूरी तरह से कानूनी है, इसलिए आयोग के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की और उन्हें प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता एक सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल कर सकता है। इस प्रकार हमें उम्मीद है कि जुलाई 2023 के पहले सप्ताह में दलीलें पूरी हो जाएंगी।

8. शीर्ष दस मामलों में दिनांक 10.07.2023 को प्रस्तुत करें।

9. परिणाम श्री एम.एन. सिंह को सीलबंद लिफाफे में लौटा दिया गया है। ।

10. आदेश की प्रति याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को आज ही उपलब्ध कराई जाए।"

6. उपरोक्त आदेश के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता मुख्य (लिखित) परीक्षा में उपस्थित हुआ। इसके नतीजे का इंतजार है. इस बीच, दलीलें पूरी हो गई हैं और तदनुसार मामले की सुनवाई की गई है।

7. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलें दो गुना हैं। सबसे पहले, 'आवेदकों को ऑनलाइन आवेदन भरने के लिए आवश्यक जानकारी' के खंड 11(14) के साथ पढ़े गए विज्ञापन के खंड 2 पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा ऑनलाइन मोड में आवेदन करते समय भरी गई जानकारी प्रस्तुत की गई है।, जो अपरिवर्तनीय नहीं था. इसे संसोधति किया जा सकता है, और इसमें किसी भी अशुद्धि को उम्मीदवार द्वारा बिना किसी प्रतिकूल परिणाम के ऑनलाइन मोड के माध्यम से ठीक किया जा सकता है। चूंकि, ऑनलाइन सुधार करने की अंतिम तिथि 10.1.2023 को समाप्त हो गई थी, क्लॉज 11(14) के आधार पर, याचिकाकर्ता को ऑफ-लाइन मोड यानी डाक संचार के माध्यम से ऐसे परिवर्तन को संप्रेषित करने की अनुमति दी गई थी। यूपीपीएससी ने 29.3.2023 को यानी प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम की घोषणा के

तुरंत बाद याचिकाकर्ता द्वारा किए गए सुधार के लिए ऐसे आवेदन पर विचार नहीं करके गलती की है।

8. दूसरा, 'आवेदकों को ऑनलाइन आवेदन भरने के लिए आवश्यक जानकारी' के खंड 11(30) के साथ पढ़े गए 'आरक्षण' से संबंधित खंड 7(6) पर भरोसा करते हुए, आरक्षण के संबंध में, यह अधूरा प्रस्तुत किया गया है याचिकाकर्ता द्वारा (आरक्षण का दावा करने के उद्देश्य से) किए गए तथ्यों के खुलासे से उसकी उम्मीदवारी रद्द करने के कठोर परिणाम को आमंत्रित नहीं किया गया, बल्कि, इसने केवल (डीएफएफ) आरक्षण का दावा करने के लिए अयोग्यता के परिणाम को आमंत्रित किया। इस प्रकार, उदाहरण के तौर पर, यह प्रस्तुत किया गया है, यदि कोई उम्मीदवार प्रारंभिक परीक्षा के चरण में आरक्षित श्रेणी से संबंधित होने का दावा करता है और वह फॉर्म भरने के चरण में उस आरक्षण के बारे में अपनी पहचान स्थापित करने में विफल रहता है। लिखित (मुख्य) परीक्षा के लिए, बिना कोई 'झूठा' या 'भ्रामक' बयान दिए, वह अनारक्षित (सामान्य) श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में विचार किए जाने का हकदार रहेगा, लेकिन वह अपनी उम्मीदवारी पूरी तरह से नहीं खो सकता है।

9. अपनी दलील को मजबूत करने के लिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने खंड 7(7) और 7(23) का हवाला देते हुए कहा कि अलग-अलग निर्दिष्ट परिस्थितियों में आरक्षण और यहां तक कि उम्मीदवारी की अस्वीकृति सहित अलग-अलग परिणाम उत्पन्न होंगे। इस प्रकार, एक उम्मीदवार जिसने अपने पात्रता प्रमाण पत्र संलग्न नहीं किए होंगे अपनी 'शैक्षिक योग्यताएं' स्थापित करें, या जो उम्मीदवार निर्धारित प्रपत्र पर अपना आवेदन जमा करने में असफल रहा हो या अपनी जन्मतिथि का खुलासा करने में विफल रहा हो या नहीं बताया हो या गलत जन्मतिथि आदि का खुलासा किया हो, उसे कठोर दंड भुगतना होगा परिणाम स्वरूप उसकी उम्मीदवारी पूरी तरह से रद्द कर दी जायेगी।

10. अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है, सामान्य निर्देश संख्या 3 के तहत, जो कि विज्ञापन का भी एक हिस्सा है, यह एक उम्मीदवार के लिए एक से अधिक श्रेणी के तहत आरक्षण मांगने के लिए खुला था। हालाँकि, ऐसे सभी आरक्षणों का दावा करने के लिए उचित दस्तावेज तैयार करने की स्थिति में भी, ऐसा उम्मीदवार केवल एक आरक्षण का हकदार होगा - जो उसके तथ्यों में अधिक फायदेमंद हो सकता है।

11. वर्तमान मामले के तथ्यों का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता, अधिक से अधिक, डीएफएफ उम्मीदवार के रूप में आरक्षण के लिए अपना दावा स्थापित करने में विफल रही है। जहाँ तक उसने ऐसे दावे के समर्थन में कोई दस्तावेज़ दाखिल नहीं किया था, उसके दावे को कभी भी 'झूठा' और/या 'भ्रामक' दावा नहीं कहा जा सकता। उस निष्कर्ष के उत्पन्न होने के लिए, याचिकाकर्ता द्वारा 'झूठा' या 'भ्रामक' दावा करने में सकारात्मक कार्रवाई या छुपाने का मामला पहले से मौजूद होना चाहिए। ग़लत प्रकटीकरण या अधूरे प्रकटीकरण के एक साधारण मामले

को कभी भी झूठे या भ्रामक दावे के बराबर नहीं माना जा सकता है, क्योंकि कानून के अनुसार ऐसा कठोर परिणाम हो सकता है। जहां तक यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता ने ईडब्ल्यूएस श्रेणी के उम्मीदवार के लिए कट ऑफ अंक से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, उसने ईडब्ल्यूएस उम्मीदवार के रूप में लिखित परीक्षा में प्रतिस्पर्धा करने का अपना अधिकार नहीं खोया है।

12. प्रारंभिक परीक्षा (उसके खंड 4) के परिणाम की घोषणा के बाद जारी दिनांक 24.3.2023 की अधिसूचना के अनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि यूपीपीएससी द्वारा जारी अधिसूचना के तहत चयन प्रक्रिया मुख्य (लिखित) परीक्षा के लिए पात्रता में बदलाव को सबसे पहले लागू करने की मांग की गई थी। इसका बुनियादी सिद्धांत पर विरोध किया गया है, यूपीपीएससी चल रही चयन प्रक्रिया के दौरान अपनी प्रक्रिया (चयन करने के लिए) नहीं बदल सकता है। परिवर्तन, यदि होगा भी, तो केवल नए चयनों पर ही संभावित रूप से लागू होगा।

13. अपनी दलीलों के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा किया है **विशेष अपील संख्या 156/2017 (गौरव शर्मा बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य)** और संबंधित मामले, 4.5.2017 को निर्णय लिया गया। उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के फैसलों **टी. नाडु कंप्यूटर एससी बी.एड. जी.टी. वेल्फ़. समाज बनाम उच्च माध्यमिक एससीएल. कंप्यूटर टेक. सहायक एवं अन्य, (2009) 14 एससीसी 517 और सुरेशकुमार ललितकुमार पटेल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 167** पर भी भरोसा किया है।

14. दूसरी ओर, श्री जी.के.सिंह यूपीपीएससी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि विज्ञापन के नियम और शर्तें अपवर्तनीय हैं। दिनांक 24.3.2023 की अधिसूचना के खंड 4 के अलावा, मूल विज्ञापन के तहत भी, सभी उम्मीदवारों को अनिवार्य रूप से कट ऑफ तारीख 10.1.2023 तक अपना ऑनलाइन फॉर्म जमा करना आवश्यक था, जिसमें स्पष्ट रूप से उस श्रेणी का खुलासा करना था जिसके तहत वे अपनी पात्रता का दावा कर रहे थे। याचिकाकर्ता ने डीएफएफ श्रेणी से संबंधित व्यक्ति होने का दावा किया है, हो सकता है कि उसने बाद में कभी अपनी श्रेणी नहीं बदली हो। इसलिए, यूपीपीएससी ने याचिकाकर्ता की श्रेणी परिवर्तन की मांग करने वाले उसके आवेदन दिनांक 29.3.2023 से उत्पन्न उम्मीदवारी को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

15. दूसरा, यह प्रस्तुत किया गया है कि श्रेणी में बदलाव की अनुमति देने का एकमात्र प्रावधान, 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 2 के तहत मौजूद है। इसकी तिथि 10.1.2023 को समाप्त हो गई। याचिकाकर्ता इसका लाभ लेने में असफल रहा। फिर, मुख्य (लिखित) परीक्षा के लिए फॉर्म भरने के लिए प्रस्तुत किया गया, याचिकाकर्ता को अपने मूल आवेदन (ऑनलाइन मोड के माध्यम से प्रस्तुत) में दी गई जानकारी के

समर्थन में दस्तावेज दाखिल करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। उस स्तर पर, याचिकाकर्ता आवश्यक प्रमाणपत्र दाखिल न करने का विकल्प नहीं चुन सकता था। 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 11(7) का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसे दस्तावेजों को दाखिल न करने का परिणाम पूरी तरह से उम्मीदवारी को रद्द करने के रूप में प्रदान किया जाता है। चूंकि याचिकाकर्ता ने यह स्थापित करने के लिए प्रमाण पत्र/दस्तावेज दाखिल नहीं किए कि वह डीएफएफ श्रेणी से संबंधित है, इसलिए वह अपनी उम्मीदवारी रद्द होने के परिणाम से नहीं बच सकता।

16. उपरोक्त के समर्थन में, 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 7(18) के प्रावधान का भी संदर्भ दिया गया है, प्रस्तुत करने के लिए, श्रेणी या उप-श्रेणी में परिवर्तन नहीं किया गया था याचिकाकर्ता को 10.1.2023 के बाद यानी कट-ऑफ तारीख के बाद अनुमति दी जाएगी। चूंकि यह याचिकाकर्ता का अपना मामला है कि वह डीएफएफ श्रेणी से संबंधित नहीं थी, इसलिए उसने 'झूठी' और/या 'भ्रामक' जानकारी दी थी। इसलिए, उनकी उम्मीदवारी को खारिज कर दिया गया।

17. अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, यूपीपीएससी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के दो निर्णयों पर भरोसा किया है **वैशाली द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य, रिट ए नंबर 15413/2022** का 27.9.2022 को निर्णय लिया गया और **सत्येन्द्र कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य, रिट ए नंबर 3841/2023 का**, दिनांक 17.3.2023 को निर्णय लिया गया। उन्होंने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के **राजेंद्र पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2015) 8 एडीजे 219 (एफबी)** के फैसले पर भी भरोसा किया है।

18. पार्टियों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, ऊपर बताए गए निर्विवाद तथ्यों के अलावा, 'आवेदकों को ऑनलाइन आवेदन भरने के लिए आवश्यक जानकारी' की धारा 2, 7(6), 11(7), 11(14), 11(18), 11(23), 11(30) को प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा। ये धाराएँ इस प्रकार हैं:

"2. सबमिट किए गए आवेदन को संशोधित करें: यदि किसी उम्मीदवार को परीक्षा के नाम और भर्ती के प्रकार को छोड़कर सबमिट किए गए आवेदन पत्र में किसी भी त्रुटि/त्रुटि के बारे में पता चलता है। पंजीकृत मोबाइल नंबर, ई-मेल आईडी, आधार नंबर और ऐसे मामले जहां निर्धारित हैं संशोधित श्रेणी के लिए शुल्क अधिक है (इन प्रविष्टियों में त्रुटि के मामले में, उम्मीदवार केवल निर्धारित शुल्क के साथ नया ऑनलाइन आवेदन जमा कर सकता है क्योंकि पहले जमा किया गया शुल्क न तो समायोजित किया जाएगा और न ही वापस किया जाएगा) उसे इसे संशोधित करने का आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पहले निम्नलिखित प्रक्रिया के अनुसार केवल एक अवसर दिया जाएगा।

7(6): उम्मीदवारों को पात्रता और श्रेणी के संबंध में प्रारंभिक परीक्षा के आवेदन पत्र में उनके द्वारा किए गए दावों के समर्थन में मुख्य (लिखित) परीक्षा के आवेदन पत्र के साथ सभी मार्कशीट और प्रमाण पत्र की स्वप्रमाणित प्रतियां संलग्न करना अनिवार्य है। आरक्षण के लाभ के लिए /उप-श्रेणी, ऐसा न करने पर आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में उनके दावे पर विचार नहीं किया जाएगा।

11(7): उम्मीदवारों को शैक्षिक योग्यता के अपने दावों के समर्थन में मुख्य परीक्षा के आवेदन पत्र के साथ मार्कशीट, प्रमाण पत्र और डिग्री की स्वप्रमाणित प्रतियां संलग्न करनी होंगी। यदि वे अपने दावों के समर्थन में स्वप्रमाणित प्रमाण पत्र/दस्तावेज संलग्न नहीं करते हैं, तो आवेदन अस्वीकार कर दिए जाएंगे।

11(14): आयोग के साथ प्रत्येक पत्राचार में, परीक्षा का नाम, विज्ञापन संख्या, पंजीकरण संख्या, उम्मीदवार का नाम, जन्म तिथि और रोल नंबर (यदि सूचित किया गया हो) का उल्लेख किया जाना चाहिए।

11(18): श्रेणी, उपश्रेणी, अधिवास, लिंग, जन्मतिथि, नाम और पते का दावा केवल ऑनलाइन आवेदन करने की अंतिम तिथि तक मान्य होगा। इसके बाद कोई परिवर्तन स्वीकार्य नहीं होगा. गलत/भ्रामक जानकारी प्रस्तुत करने पर उम्मीदवारी रद्द कर दी जायेगी। इस संबंध में त्रुटि सुधार/संशोधन हेतु कोई भी आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा। अपूर्ण आवेदन पत्र को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाएगा और इस संबंध में किसी भी पत्राचार पर विचार नहीं किया जाएगा।

11(23): यदि आवेदन निर्धारित प्रपत्र पर प्रस्तुत नहीं किया गया है, जन्मतिथि का उल्लेख नहीं किया गया है या गलत जन्मतिथि का उल्लेख किया गया है, अधिक उम्र, कम उम्र, न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता पूरी नहीं करने पर आवेदन/उम्मीदवारी खारिज/रद्द कर दी जाएगी। अंतिम तिथि के बाद आवेदन प्राप्त हुए और प्रारूप में घोषणा के तहत कोई हस्ताक्षर नहीं होने पर आवेदन खारिज कर दिये जायेंगें।

11(30): आरक्षित श्रेणियों के उम्मीदवारों को अंतिम चयन में अनारक्षित श्रेणी के विरुद्ध समायोजित कि जाएगा, यदि वह प्रारंभिक/मुख्य/स्क्रीनिंग परीक्षा के राज्य में योग्यता मानक में कोई लाभ/रियायत नहीं लेंगे।"

19. इसके अलावा, मौजूदा विवाद के लिए प्रासंगिक, सामान्य निर्देश संख्या 3 के प्रावधान पर भी ध्यान दिया जा सकता है, जैसा कि नीचे दिया गया है:

"3. आरक्षण/आयु में छूट का लाभ लेने के इच्छुक अभ्यर्थियों को इस विस्तृत विज्ञापन (परिशिष्ट-3) में मुद्रित निर्धारित प्रारूप में आरक्षित वर्ग के समर्थन में सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी प्रमाण पत्र प्राप्त करना होगा। जब भी आवश्यक हो, इसे आयोग को प्रस्तुत करें। एक से अधिक आरक्षण/आयु में छूट का दावा करने वालों को केवल एक ऐसी रियायत

दी जाएगी, जो मूल रूप से एससी, एसटी से संबंधित नहीं है। ओ.बी.सी. स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित, पूर्व सैनिक, कुशल खिलाड़ी और विकलांग व्यक्ति (पीडब्ल्यूडीएस) आरक्षण/आयु में छूट के हकदार नहीं हैं, ऐसे उम्मीदवारों को महिला उम्मीदवारों के मामले में अनारक्षित (सामान्य) उम्मीदवारों के रूप में माना जाएगा। पिता की ओर से जारी जाति प्रमाण पत्र वैध माना जाएगा।"

20. वर्जन के लिए दी गई प्रस्तुतियों पर उत्सुकतापूर्वक विचार करने के बाद, हमने पाया कि विज्ञापन के नियमों और शर्तों के तहत, याचिकाकर्ता के पास उपस्थित होने के लिए ऑनलाइन मोड के माध्यम से अपना मूल/पहला आवेदन जमा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। प्रारंभिक परीक्षा में. 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 2 की भाषा को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता को 10.1.2023 के बाद अपने आवेदन पत्र में किसी भी बदलाव की मांग करने से प्रभावी रूप से रोका गया था। उसके आवेदन पत्र को भरने की आखिरी तारीख होने के कारण, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की धारा 11(14) के आधार पर प्रस्तुति हमें प्रभावित नहीं करती है। हालांकि यूपीपीएससी ने ऑफ़लाइन मोड के माध्यम से भौतिक पत्राचार के लिए अनुमति दे दी है, लेकिन इससे यह अनुमान कभी नहीं लगाया जा सकता है कि मूल आवेदन पत्र में संशोधन और सुधार के संबंध में अनिवार्य शर्त और समयसीमा आवश्यक निहितार्थ से बढ़ा दी गई है।

21. डाक पत्राचार की अनुमति देना, किसी भी तरह से आवेदक को इलेक्ट्रॉनिक रूप से उसके मूल/पहले आवेदन पर जमा किए गए विवरणों को सही/बदलने का कोई अधिकार नहीं दिया या बनाया। कट-ऑफ तिथि के बाद मौजूद किसी भी अंतर्निहित या मान्यता प्राप्त अधिकार के अभाव में, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया पहला सबमिशन हमारी स्वीकृति के योग्य नहीं है। इसे खारिज कर दिया गया है.

22. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दूसरी दलील का संबंध है, चयन की योजना, जैसा कि विज्ञापन में निहित है, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता और अन्य उम्मीदवारों को ताकत के आधार पर प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी। उस स्तर पर यूपीपीएससी द्वारा सत्यापन किए बिना, उनके द्वारा किए गए स्व-प्रकटीकरण (ऑनलाइन जमा किए गए उनके आवेदनों में) को स्वीकार किया। यह सार्वजनिक परीक्षाओं में व्यापक रूप से स्वीकृत तरीका भी प्रतीत होता है। इन दिनों, बहुत कम पदों के लिए बड़ी संख्या में उम्मीदवार सार्वजनिक परीक्षाओं में उपस्थित होते हैं। इसलिए, चयन प्रक्रिया के पहले चरण में, चयन निकायों के लिए सभी उम्मीदवारों का उचित सत्यापन करना अत्यधिक असंभव और समय लेने वाला प्रतीत होता है। यह चयन निकायों को उच्च शुल्क संग्रह तक पहुंच की भी अनुमति देता है। इस प्रकार, प्रारंभिक परीक्षा की प्रक्रिया के दौरान अधिकांश उम्मीदवारों की स्क्रीनिंग हो जाने के बाद ही, यूपीपीएससी द्वारा मुख्य (लिखित) परीक्षा और

साक्षात्कार/मौखिक परीक्षा के माध्यम से चयन और सत्यापन का अधिक गंभीर चरण शुरू किया जाता है। पूछे जाने पर, यूपीपीएससी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता इस धारणा पर विवाद नहीं करते हैं।

23. उस आलोक में देखें, तो हम सबसे पहले 'आवेदकों को ऑनलाइन आवेदन भरने के लिए आवश्यक जानकारी' के खंड 7(6) पर ध्यान देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी श्रेणी/उप-श्रेणी के अंतर्गत आरक्षण का लाभ विफल हो जाएगा यदि स्वयं-ऐसे दावे का आधार बनने वाला सत्यापित प्रमाणपत्र मुख्य (लिखित) परीक्षा से पहले प्रस्तुत किए जाने वाले ऑफ़लाइन/दूसरे आवेदन पत्र के साथ संलग्न नहीं था। यहां, यह निर्विवाद है, ऑफ़लाइन आवेदन केवल प्रारंभिक परीक्षा में अर्हता प्राप्त करने के बाद ही जमा किया जाना था, यानी मुख्य (लिखित) परीक्षा के चरण में।

24. इस प्रकार, सबसे पहले, एक उम्मीदवार जिसने पहली बार किसी भी श्रेणी के तहत आरक्षण का दावा किया हो (ऑनलाइन जमा किए गए फॉर्म में) और अपने स्व-सत्यापित श्रेणी प्रमाणपत्र (अपने ऑफ़लाइन आवेदन के साथ) संलग्न करने में विफल रहा हो, वह अपनी पात्रता खो देगा। आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में दावा करें। पार्टियों के बीच कोई झगड़ा नहीं है, याचिकाकर्ता ने डीएफएफ श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में अपना दावा खो दिया है, क्योंकि उसने अपने ऑफ़लाइन आवेदन पत्र के साथ आरक्षण की उस श्रेणी के तहत लाभ का दावा करने के लिए स्व-सत्यापित प्रमाण पत्र संलग्न नहीं किया था।

25. जहां तक 'आवेदकों को ऑनलाइन आवेदन भरने के लिए आवश्यक जानकारी' के खंड 11(7) का संबंध है, यह केवल 'शैक्षिक योग्यता' पर लागू होता प्रतीत होता है। यद्यपि उक्त खंड 'मार्कशीट और डिग्री' शब्दों के साथ 'प्रमाणपत्र' शब्द का भी उपयोग करता है, साथ ही, यह उस खंड की प्रयोज्यता को 'शैक्षिक योग्यता' के लिए योग्य बनाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है - उस खंड के तहत, 'ऐसे' स्व-सत्यापित प्रमाणपत्र/दस्तावेज संलग्न करने में विफलता के परिणामस्वरूप आवेदन स्वयं खारिज कर दिया जाएगा। यद्यपि बिना किसी अपवाद के अनिवार्य रूप से उक्त खंड 'शैक्षिक योग्यताएँ' के जरिए केवल लागू होता है। किसी भी तर्क प्रक्रिया से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि यह आरक्षण पर भी लागू होगा या लागू होगा।

26. फिर, खंड 11(18) पर आते हुए, सबसे पहले, यह स्पष्ट रूप से प्रदान करता है, नहीं ऑनलाइन मोड के माध्यम से प्रस्तुत मूल (प्रथम) आवेदन दाखिल करने की अंतिम तिथि के बाद उम्मीदवार द्वारा श्रेणी/उप-श्रेणी में परिवर्तन किया जा सकता है। उस पर भी पार्टियों के बीच कोई विवाद या झगड़ा नहीं है. इसलिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित होने के लिए आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि के बाद अपनी श्रेणी बदलने का अधिकार खो दिया है। हालाँकि, परिणाम के रूप में, केवल 'झूठी/भ्रामक जानकारी' प्रदान किए जाने की स्थिति में, ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी

रद्द की जा सकती है। अत: 'झूठा' और 'भ्रामक' शब्दों का अर्थ बताना होगा।

27. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, नौवां संस्करण 'गलत' और 'भ्रामक' शब्दों को इस प्रकार परिभाषित करता है:

"असत्य, विशेषण. (12सी) 1. असत्य 2. कपटपूर्ण; झूठ बोलना 3. सच्चा न होना; अप्रामाणिक. जो झूठ है वह इरादे से, दुर्घटना से या गलती से हो सकता है।"

गुमराह करने वाले, विशेषण. (16सी) (किसी निर्देश, दिशा आदि का) भ्रामक; गलत समझे जाने की गणना की गई। [मामले: धोखाधड़ी- 13(1).}"

28. स्पष्ट रूप से, संयोजन के रूप में उपयोग किया जाता है - एक खुली/सार्वजनिक प्रतिस्पर्धी परीक्षा में अयोग्यता का कानूनी प्रभाव पैदा करने के लिए, अन्यथा ऐसी परीक्षा में भाग लेने के लिए योग्य व्यक्ति पर। चूंकि 'झूठी/भ्रामक जानकारी' स्वयं अयोग्यता का कारण होनी चाहिए, इसलिए यह ऐसी होनी चाहिए जिसका उद्देश्य परिणाम/लाभ प्राप्त करना हो, जिसका सूचना देने वाले यानी उम्मीदवार को पहले से पता होना चाहिए कि वह इसका हकदार नहीं है। जब तक यूपीपीएससी द्वारा उस मिथ्यात्व का पता नहीं लगाया जाता है और, जब तक कि परीक्षण लागू नहीं किया जाता है, तब तक इसमें किसी की स्थिति के बारे में अधूरे खुलासे और धारणा की निर्दोष त्रुटियां शामिल होंगी, बिना किसी लाभ लेने के इरादे के। एक आकांक्षी/उम्मीदवार यानी याचिकाकर्ता के खिलाफ अयोग्यता स्थापित किए जाने के संदर्भ में, चूंकि उसने डीएफएफ आरक्षण का दावा करने के लिए कोई प्रमाण पत्र या दस्तावेज दाखिल नहीं किया है, इसलिए हम इसे अप्रमाणित या अधूरे या गलत खुलासे को शामिल करने के लिए 'झूठा' और 'भ्रामक' शब्द का व्यापक अर्थ देने के लिए अनिच्छुक हैं।

29. जिसे 'झूठा' माना जा सकता है, उस पर आपराधिक क्षेत्राधिकार के तहत उत्पन्न होने वाले एक अलग संदर्भ **रविंदर सिंह बनाम सुखबीर सिंह और अन्य, (2013) 9 एससीसी 245** के मामले में विचार किया जाने लगा। फिर भी, यह हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है क्योंकि हम केवल 'झूठा' शब्द का शब्दकोश अर्थ सुनिश्चित करना चाहते हैं। यह अभ्यास सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय में किया गया है। 'मिथ्या' शब्द के अर्थ पर विचार करते हुए इसे इस प्रकार देखा गया:

"18. "झूठा" शब्द का शब्दकोश अर्थ वह है, जो मूलतः गलत है, या जानबूझकर असत्य, धोखेबाज, आदि है। इस प्रकार, "झूठा" शब्द का प्रयोग केवल गैरकानूनी झूठ को कवर करने के लिए किया जाता है। इसका मतलब कुछ ऐसा है जो बेईमान, असत्य और धोखेबाज है, और कुछ विश्वासघात या धोखाधड़ी करने का इरादा दर्शाता है। न्यायशास्त्र में, "झूठा" शब्द का उपयोग किसी गलत या आपराधिक कृत्य को चिह्नित करने के लिए किया जाता है, जो जानबूझकर और वास्तविक या रचनात्मक ज्ञान के साथ किया जाता है। "झूठा" शब्द का प्रयोग व्यापक या संकीर्ण अर्थ में भी किया जा सकता है। जब इसके व्यापक अर्थ में उपयोग किया जाता है, तो इसका अर्थ कुछ ऐसा होता है जो जानबूझकर कहा गया हो या नहीं, असत्य है,

लेकिन जब इसके संकीर्ण अर्थ में उपयोग किया जाता है, तो यह केवल ऐसे झूठ को कवर कर सकता है, जो जानबूझकर किया गया हो। यह प्रश्न कि किसी विशेष अधिनियम में "झूठा" शब्द का प्रयोग प्रतिबंधित अर्थ में किया गया है या व्यापक अर्थ में, यह उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें इसका उपयोग किया गया है।

19. सीएसटी बनाम संजीव फैब्रिक्स [(2010) 9 एससीसी 630: (2010) 3 एससीसी (सीआरआई) 1439] में, इस न्यायालय ने, कुछ कानूनी शब्दकोशों पर भरोसा करने के बाद, समझाया कि गलत शब्द एक असत्य का वर्णन करता है, जो गलत इरादे से जुड़ा हुआ है या धोखा देने का इरादा से किया गया हो। न्यायालय ने आगे कहा कि आपराधिक अभियोजन के मामले में, जहां परिणाम गंभीर हैं, किसी भी सजा को लागू करने के लिए एक शर्त के रूप में झूठ के मामले में मनःस्थिति के संबंध में तथ्य के निष्कर्षों को दर्ज किया जाना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

30. फिर से 'गुमराह' शब्द के संबंध में, आपराधिक क्षेत्राधिकार के तहत उत्पन्न होने वाले **राम चंद्र भगत बनाम झारखंड राज्य, (2013) 1 एससीसी 562 के** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पास 'छल' शब्द को दिए जाने वाले अर्थ पर विचार करने का अवसर था। अपने सहमति वाले निर्णय में, न्यायमूर्ति आर.एम. लोढ़ा (तात्कालीन) इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि किसी भी उपकरण या गलत प्रतिनिधित्व द्वारा जिससे एक आदमी दूसरे को गुमराह करके अपनी चोट पहुंचा सकता है और कपटपूर्ण गलतबयानी करके धोखे का अभ्यास कर सकता है। रिपोर्ट के पैराग्राफ 17 और 18 इस प्रकार हैं:

"17. स्ट्राउड्स ज्यूडिशियल डिक्शनरी (5वां संस्करण) "छल" की व्याख्या इस प्रकार करता है:

"छल.-'"छल", छल, धोखाधड़ी, डोलस, एक सूक्ष्म, चालाक बदलाव या उपकरण है, जिसका कोई अन्य नाम नहीं है; इसमें सभी प्रकार की चालाकी, चालाकी, चालाक, धोखाधड़ी, धूर्तता, मामूली, धूर्तता शामिल हो सकती है। किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी तरह से धोखा देने के लिए कोविन, मिलीभगत, अभ्यास और अपराध का उपयोग किया जाता है, जिसका अपराध के अलावा कोई अन्य उचित या विशेष नाम नहीं है।"

ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (8वां संस्करण) "छल" की व्याख्या इस प्रकार करता है:

"छल, एन.-(1) जानबूझकर गलत धारणा देने का कार्य

पी. रामनाथ अय्यर (द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण 2000) द्वारा द लॉ लेक्सिकन में, "छल" का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"छल.-धोखाधड़ी; धोखा देने के इरादे से किया गया झूठा प्रतिनिधित्व; 'धोखाधड़ी, "धोखाधड़ी का धोखा" एक सूक्ष्म, चालाक बदलाव या युक्ति है, जिसका कोई अन्य नाम नहीं है। इसमें सभी प्रकार की चालाकी, सूक्ष्मता, चालाकी शामिल हो सकती है। दूसरे को धोखा देने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली

धोखाधड़ी, चालाकी, मामूली, चालाक, कोविन, मिलीभगत, अभ्यास और अपराध किसी भी माध्यम से हो सकता है, जिसका अपराध के अलावा कोई अन्य उचित या विशेष नाम नहीं है।"

18. कानून में "छल" का व्यापक महत्व है। कोई भी युक्ति या मिथ्या निरूपण जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे को अपनी हानि के लिए गुमराह करता है और कपटपूर्ण मिथ्या निरूपण जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे को धोखा देकर उसे हानि पहुँचाता है, धोखे हैं। धोखा किसी व्यक्ति द्वारा जानबूझकर या लापरवाही से इस इरादे से किया गया तथ्य का गलत बयान है कि उस पर कोई अन्य व्यक्ति कार्रवाई करेगा और इस तरह उसे चोट लगेगी। यह हमेशा एक व्यक्तिगत कार्य होता है और धोखाधड़ी से तुलना करने पर मध्यवर्ती होता है। छल दूसरे को धोखा देने की एक चाल या युक्ति है। यह धोखा देने का एक प्रयास है और इसमें कोई भी घोषणा शामिल है जो दूसरे को गुमराह करती है या उसे झूठ पर विश्वास करने के लिए प्रेरित करती है।"

31. स्पष्ट रूप से, और बिना किसी संदेह के, हमारे संदर्भ में, 'झूठी' और/या 'भ्रामक' जानकारी याचिकाकर्ता द्वारा डीएफएफ उम्मीदवार के रूप में लाभ का दावा करने के लिए जानबूझकर गलत बयान दिया जाएगा। बिना कोई प्रमाणपत्र या आधार भरे केवल उस लाभ का दावा करके, किए गए दावे को अधूरा या अप्रमाणित छोड़ दिया। इस तरह के दावे को अधिक से अधिक गलत कहा जा सकता है, फिर भी यह झूठा या भ्रामक नहीं है।

32. अपने दावे के लिए आधार उपलब्ध न कराने या पुष्टि न करने से डीएफएफ आरक्षण (पहले/मूल आवेदन में), याचिकाकर्ता ने कोई सकारात्मक और/या पूर्ण कार्य नहीं किया है, जिससे किसी भी विवेकशील व्यक्ति को मूल्यांकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचने की अनुमति मिल सके कि वह अधूरी जानकारी स्वयं स्पष्ट रूप से 'झूठी/भ्रामक' थी। उस अप्रमाणित दावे का अंतर्निहित या आंतरिक मूल्य। स्वयं उसके लिए, अधूरे या अप्रमाणित दावे में 'झूठी/भ्रामक जानकारी' का तत्व शामिल नहीं हो सकता है। यह प्रथम दृष्टया की गई घोषणा को 'झूठा' और/या 'भ्रामक' नहीं बनाएगा।

32. फिर, यूपीपीएससी ने याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अन्यथा अधूरे और/या गलत दावे को झूठा या भ्रामक घोषित करने के लिए कोई जांच या सत्यापन अभ्यास नहीं किया। जब तक याचिकाकर्ता (डीएफएफ श्रेणी के तहत आरक्षण का दावा करने के लिए) द्वारा कोई गलत/भ्रामक जानकारी नहीं दी गई है, और जब तक यूपीपीएससी अपनी जांच पर संतुष्ट नहीं हो जाता, तब तक उस तक पहुंचना संभव नहीं है और/या स्वीकार्य नहीं है। कोई और निष्कर्ष कि याचिकाकर्ता द्वारा की गई घोषणा या तो 'झूठी' और/या 'भ्रामक' थी, केवल इसलिए क्योंकि याचिकाकर्ता ने अपना दूसरा आवेदन (ऑफ़लाइन मोड के माध्यम से) जमा करने के चरण में इसे प्रमाणित नहीं करने का विकल्प चुना।

33. इस प्रकार, यूपीपीएससी ने याचिकाकर्ता की ओर से न तो कोई अंतर्निहित झूठ, न ही

बेईमानी, न ही धोखेबाज या भ्रामक आचरण की खोज की है, जिससे उसे 'आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 11(18) के तहत उनके आवेदन पत्र ऑन-लाइन भरने के लिए अपने उम्मीदवारी को रद्द करने के कठोर परिणाम का सामना करना पड़ सकता है।

34. फिर, 'ऑनलाइन आवेदन पत्र भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' का खंड 11(23) कुछ शर्तों को भी निर्दिष्ट करता है, जिन पर उम्मीदवारी को अस्वीकार/रद्द किया जा सकता है। वे हैं:

"(i) निर्धारित फॉर्म के अलावा किसी अन्य फॉर्म पर आवेदन जमा करना;
(ii) आवेदन में जन्मतिथि का उल्लेख नहीं किया जाना;
(iii) गलत जन्मतिथि का उल्लेख;
(iv) उम्मीदवार अधिक उम्र का हो;
(v) उम्मीदवार का कम उम्र होना;
(vi) न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता पूरी न करना;
(viii) अंतिम तिथि के बाद प्राप्त आवेदन और;
(ix) विज्ञापन प्रपत्र पर कोई हस्ताक्षर नहीं है।"

36. इस प्रकार, 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' के खंड 11(18) के अलावा, यूपीपीएससी ने अन्य आकस्मिकताओं और परिस्थितियों को निर्दिष्ट करने के लिए चुना था जिसमें उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द/अस्वीकृत की जा सकती है जो कि बिल्कुल सही है। आरक्षण के संबंध में फॉर्म में अपूर्णता की स्थिति उन शर्तों में से एक नहीं थी, इसका विरोध करना यूपीपीएससी के लिए विकल्प नहीं था, ऐसी स्थिति मूल विज्ञापन का एक हिस्सा था। विज्ञापन की शर्तों को उसमें प्रयुक्त सरल भाषा में देखा जाना चाहिए। विज्ञापन की शर्तें विस्तृत होने के कारण - अलग-अलग परिणामों के लिए विभिन्न आकस्मिकताओं को शामिल करते हुए, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी उस घटना के लिए रद्द कर दी गई है जो निर्दिष्ट या निर्धारित नहीं है जिसके परिणामस्वरूप उसे रद्द किया जा सकता है। विज्ञापन की भाषा, जो पार्टियों के बीच का कानून है, स्पष्ट रूप से दूसरे तरीके से काम करती है, यानी, विभिन्न घटनाओं के लिए अलग-अलग परिणामों का अनुमान लगाने के लिए, उम्मीदवारी रद्द करने के कठोर परिणाम केवल पूर्व-निर्दिष्ट आकस्मिकताओं तक ही सीमित रहते हैं।

37. उस आलोक में, यह भी नोट किया जा सकता है, 'ऑन-लाइन के माध्यम से अपने आवेदन भरने के लिए आवेदकों को आवश्यक जानकारी' और सामान्य निर्देश संख्या 3, यूपीपीएससी के खंड 11(30) के तहत विचार करता है, आरक्षण का दावा करने वाले उम्मीदवार को अंतिम चयन में अनारक्षित (सामान्य) श्रेणी में तभी समायोजित किया जा सकता है, जब ऐसे उम्मीदवार ने प्रारंभिक/मुख्य (लिखित) परीक्षा/स्क्रीनिंग परीक्षा के चरण में आरक्षण का लाभ नहीं उठाया हो। इस प्रकार, हालांकि याचिकाकर्ता ने श्रेणी में बदलाव की मांग करने का अपना अधिकार खो दिया था, फिर भी, यूपीपीएससी ने उचित श्रेणी के तहत उसकी उम्मीदवारी पर विचार करने का अधिकार अपने पास रखा। वर्तमान मामले

में, याचिकाकर्ता ने प्रारंभिक परीक्षा के चरण में डीएफएफ श्रेणी का लाभ नहीं उठाया है। जैसा कि अंतरिम आदेश में ही कहा गया है, वह ईडब्ल्यूएस श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में मुख्य (लिखित) परीक्षा के लिए योग्य थी, लेकिन डीएफएफ उम्मीदवार के रूप में नहीं। इसलिए, यूपीपीएससी उन्हें ईडब्ल्यूएस उम्मीदवार के रूप में आगे प्रतिस्पर्धा करने की अनुमति दे सकता है।

38. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय में, पक्षों के लिए संबंधित विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिए गए निर्णयों **गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य (उपरोक्त)** पर भरोसा किया गया, एक प्रश्न तैयार किया गया था:

"ए. क्या ओबीसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि के बाद प्रस्तुत किए गए जाति प्रमाण पत्र के आधार पर खारिज की जा सकती है?"

39. उस प्रश्न का उत्तर देते समय, पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"यह निर्णय करना कि क्या कोई विशेष उम्मीदवार आरक्षण के लाभ का हकदार है या उसने उक्त श्रेणी में आने का सही दावा किया है, एक आवश्यक कार्य है। इस अभ्यास को करने के प्रयोजनों के लिए चयन निकाय को निर्णय लेने की स्थिति में होना चाहिए स्वयं, क्या कोई विशेष उम्मीदवार दावे के अनुसार लाभ और छूट का हकदार है। यदि इसे चयन निकाय में अंतर्निहित शक्ति के रूप में नहीं पढ़ा जाता है, तो चयन की प्रक्रिया पूरी तरह से पटरी से उतर सकती है, जबकि यह सच है कि जाति प्रमाण पत्र है केवल मौजूदा स्थिति की मान्यता, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, एक ओबीसी उम्मीदवार को आवश्यक रूप से राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त ओबीसी समूह से संबंधित होने की दोहरी शर्तें स्थापित करनी होंगी और यह भी कि वह क्रीमी लेयर के अंतर्गत नहीं आता है एक विज्ञापन में निर्धारित तिथि के संदर्भ में ओबीसी (नॉन क्रीमी लेयर) का प्रमाण पत्र धारक या उसके माता-पिता की तीन साल की अवधि में मूल्यांकन की गई वित्तीय स्थिति के संदर्भ में जारी किया जाता है। किसी धारक की वित्तीय स्थिति समय के साथ बदलने या उतार-चढ़ाव के लिए उत्तरदायी होती है। इस प्रकाश में देखने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी विशेष तिथि तक ऐसा प्रमाण पत्र जमा करने की आवश्यकता ओबीसी उम्मीदवार के मामले में लागू नहीं होती है।"

40. हमें नहीं लगता कि पूर्ण पीठ का आदेश वर्तमान मामले में शामिल प्रश्न का उत्तर दे रहा है।

41. जहां तक यूपीएसएससी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए विद्वान एकल-न्यायाधीश के निर्णयों का संबंध है, स्पष्ट रूप से, वे वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए दूसरे सबमिशन पर ध्यान नहीं देते हैं। जिस पर हमने ऊपर विचार किया है। हालाँकि विज्ञापन के नियम और शर्तें और यहाँ तक कि तथ्य भी समान हो सकते हैं, वर्तमान मामले में उस तर्क को अपनाना खतरनाक होगा। वर्तमान याचिका में प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष परीक्षणहीन रह गई

हैं। इस प्रकार, विद्वान एकल न्यायाधीश के वे निर्णय हमें आश्वस्त नहीं कर सकते।

42. विद्वान एकल न्यायाधीश के उन निर्णयों की शुद्धता या अन्यथा के बारे में कोई अवलोकन किए बिना, अलग-अलग तर्कों के कारण और, वर्तमान मामले में दिए गए उन पर विचार करने पर, हम पाते हैं, याचिकाकर्ता ने अपनी पात्रता नहीं खोई है डीएफएफ आरक्षण का दावा करने के लिए निर्धारित प्रमाण पत्र दाखिल नहीं करने के परिणामस्वरूप, विज्ञापन के अनुसार आगे भाग लें।

43. आरक्षण के अधूरे दावे की स्थिति में उम्मीदवारी को अस्वीकार करने की अनुमति देने वाली शर्त पहली बार दिनांक 24.3.2023 की अधिसूचना के माध्यम से पेश की गई थी। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

अभ्यर्थी द्वारा प्रश्नगत यचन हेतु प्रारम्भिक परीक्षा के आनलाइन आवेदन में श्रेणी/उपश्रेणी/अर्हता आदि के सम्बन्ध में किए गये दावे के समर्थन में अपने समस्त अभिलेख मुख्य परीक्षा के आवेदन के साथ अवश्य संलग्न करें अन्यथा उनका अभ्यर्थन स्वत: निरस्त कर दिया जायेगा।"

44. निर्विवाद रूप से, उस स्थिति को न केवल बीच में बल्कि प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम घोषित होने के बाद बदल दिया गया था।

45. हम दिनांक 24.3.2023 की अधिसूचना के आधार पर यूपीपीएससी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाई गई आपत्ति को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अधिसूचना का प्रभाव चयन के मानक में सुधार करना नहीं है। इसका मतलब योग्यता के आधार पर छोटे से बेहतर को चुनना नहीं है। यह याचिकाकर्ता को चयन प्रक्रिया के बीच में ही विचार क्षेत्र से पूरी तरह बाहर करने का प्रयास करता है।

46. **एन.टी. डेविन कट्टी बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग, (1990) 3 एससीसी 157** में जब चयन चल रहा था, तब सुप्रीम कोर्ट ने चयन के नियमों में बदलाव के खिलाफ एक नियम बनाया था। यह आयोजित किया गया:

"11. प्रश्न का एक और पहलू भी है। जहां किसी श्रेणी के पदों पर सीधी भर्ती के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए विज्ञापन जारी किया जाता है, और विज्ञापन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चयन मौजूदा नियमों या सरकारी आदेशों के अनुसार किया जाएगा, और यदि ऐसा होता है आगे विभिन्न श्रेणियों के पक्ष में आरक्षण की सीमा को इंगित करता है, ऐसे मामले में उम्मीदवारों का चयन तत्कालीन मौजूदा नियमों और सरकारी आदेशों के अनुसार किया जाना चाहिए, जो उम्मीदवार आवेदन करते हैं, और लिखित या मौखिक परीक्षा से गुजरते हैं, उन्हें निहित अधिकार प्राप्त होता है विज्ञापन में निहित नियमों और शर्तों के अनुसार चयन के लिए विचार किया जाता है, जब तक कि विज्ञापन स्वयं एक विपरीत इरादे का संकेत नहीं देता है, आम तौर पर, एक उम्मीदवार को विज्ञापन में निर्धारित नियमों और शर्तों के अनुसार विचार किए जाने का अधिकार होता है विज्ञापन के प्रकाशन की

तारीख, हालाँकि इस मामले में उनका कोई पूर्ण अधिकार नहीं है। यदि चयन के लंबित रहने के दौरान भर्ती नियमों में पूर्वव्यापी संशोधन किया जाता है, तो उस स्थिति में चयन संशोधित नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए। नियमों का पूर्वव्यापी प्रभाव है या नहीं, यह मुख्य रूप से विधायी इरादे को सुनिश्चित करने के लिए नियमों की भाषा और उसके निर्माण पर निर्भर करता है। विधायी मंशा या तो स्पष्ट प्रावधान या आवश्यक निहितार्थ द्वारा सुनिश्चित की जाती है; यदि संशोधित नियम पूर्वव्यापी प्रकृति के नहीं हैं तो चयन को उन नियमों और आदेशों के अनुसार विनियमित किया जाना चाहिए जो विज्ञापन की तिथि पर लागू थे। इस प्रश्न का निर्धारण काफी हद तक विज्ञापन में निर्धारित नियमों और शर्तों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

प्रासंगिक नियम और आदेश. कोई भ्रम न हो, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि किसी विज्ञापन के अनुसार किसी पद के लिए आवेदन करने पर कोई उम्मीदवार चयन का कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं करता है, लेकिन यदि वह पात्र है और प्रासंगिक नियमों के अनुसार अन्यथा योग्य है और विज्ञापन में निहित शर्तों के अनुसार, वह चयन के लिए विचार किए जाने का निहित अधिकार प्राप्त करता है, जो नियमों के अनुसार है क्योंकि वे विज्ञापन की तारीख पर मौजूद थे। चयन के लंबित रहने के दौरान नियमों में संशोधन के उस सीमित अधिकार से उसे तब तक वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि संशोधित नियम पूर्वव्यापी प्रकृति के न हों।".

(प्रभाव वर्धित)

47. फिर, **महाराष्ट्र राज्य क्षेत्रीय परिवहन निगम एवं अन्य बनाम राजेंद्र भीमराव मांडवे और अन्य, (2001) 10 एससीसी 51,** में सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा:

"खेल के नियम, इसका मतलब यह है कि चयन के मानदंड को संबंधित अधिकारियों द्वारा बीच में या चयन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद नहीं बदला जा सकता है।"

48. उस अनुपात को सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के ***के. मंजुश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य (2008) 3 एससीसी 512*** फैसले द्वारा लागू किया गया था। उस रिपोर्ट की पैरा संख्या 32 और 33 इस प्रकार हैं:

"32. महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम राजेंद्र भीमराव मांडवे [(2001) 10 एससीसी 51: 2002 एससीसी (एल एंड एस) 720] में इस न्यायालय ने कहा कि "खेल के नियम, जिसका अर्थ है कि खेल प्रारम्भ होने के बाद संबंधित अधिकारी द्वारा खेल के बीच में या चयन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद चयन के मानदंड को बदला नहीं जा सकता है। जो कि अस्वीकार्य और अस्वीकार्य है।

33. दिनांक 30-11-2004 के संकल्प में केवल पूर्व निर्धारित प्रक्रिया को अपनाया गया। पिछली प्रक्रिया में साक्षात्कार के लिए कोई न्यूनतम अंक नहीं थे। इसलिए, चयन प्रक्रिया में लिखित परीक्षा के लिए निर्धारित न्यूनतम अंकों को साक्षात्कार तक बढ़ाना अनुचित है। हम स्पष्ट कर सकते हैं कि किसी भी साक्षात्कार के लिए न्यूनतम अंक निर्धारित करना अवैध नहीं है। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि चयन को विनियमित करने वाले नियम

बनाने वाला प्राधिकारी नियमों के अनुसार लिखित परीक्षा और साक्षात्कार दोनों के लिए न्यूनतम अंक निर्धारित कर सकता है, या लिखित परीक्षा के लिए न्यूनतम अंक निर्धारित कर सकता है, लेकिन साक्षात्कार के लिए नहीं, परीक्षा या साक्षात्कार या लिखित परीक्षा के लिए कोई न्यूनतम अंक निर्धारित नहीं कर सकता है।. जहां नियम कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं करते हैं, वहां चयन समिति न्यूनतम अंक भी निर्धारित कर सकती है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। लेकिन यदि चयन समिति निर्धारित करना चाहती है

साक्षात्कार के लिए न्यूनतम अंक, चयन प्रक्रिया शुरू होने से पहले ऐसा किया जाना चाहिए। यदि चयन समिति ने चयन प्रक्रिया शुरू होने से पहले केवल लिखित परीक्षा के लिए न्यूनतम अंक निर्धारित किए हैं, तो वह चयन प्रक्रिया के दौरान या चयन प्रक्रिया के बाद एक अतिरिक्त आवश्यकता नहीं जोड़ सकती है कि उम्मीदवारों को साक्षात्कार में भी न्यूनतम अंक प्राप्त करने चाहिए। हमने जो अवैध पाया है, वह चयन प्रक्रिया पूरी होने के बाद मानदंड बदलना है, जब पूरा चयन इस आधार पर आगे बढ़ता है कि साक्षात्कार के लिए कोई न्यूनतम अंक नहीं होंगे।"

49. बाद में, **टी.एन. कंप्यूटर एससी बी.एड. सरकार. वेलफेयर सोसाइटी (1) बनाम हायर सेकेंडरी स्कूल कंप्यूटर टीचर्स एसोसिएशन, (2009) 14 एससीसी 517** में, सर्वोच्च न्यायालय की एक और तीन-न्यायाधीशों की पीठ को फिर से उस मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला। तब यह देखा गया:

"33. हालाँकि, हम यह नहीं मान सकते कि सरकार के बाद के निर्णय ने परीक्षा आयोजित होने के बाद और उस समय जब परीक्षा का परिणाम आना था, न्यूनतम योग्यता अंकों को 50% से घटाकर 35% करके योग्यता मानदंडों को बदल दिया। घोषित किया जाए और इस प्रकार खेल के अंत में और उसके बाद उक्त मानदंडों को बदलना मनमाना और अनुचित मानते हैं, क्योंकि हम हेमनी मल्होत्रा बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय [(2008) 7 एससीसी 11: (2008) 2 एससीसी (एल एंड एस) 203] के मामले में न्यायालय का मनना है कि भर्ती प्रक्रिया में चयन प्रक्रिया के दौरान या जब यह समाप्त हो जाए तो खेल के नियमों को बदलना स्वीकार्य नहीं है।

50. बाद में सुप्रीम कोर्ट की एक और तीन जजों की बेंच के सामने **तेज प्रकाश पाठक एवं अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य, (2013) 4 एससीसी 540** के मामले में एक संदेह उठा, कि क्या "खेल के नियमों" में किसी भी बदलाव पर रोक लगाने वाले उपरोक्त सिद्धांत को चल रहे चयन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में बदलाव के लिए लागू किया जा सकता है। उस मामले में, प्रतियोगी परीक्षा में 75% अंक प्राप्त करने की आवश्यकता विज्ञापन के बाद शुरू की गई थी और मूल विज्ञापन के तहत प्रक्रियात्मक आवश्यकता उम्मीदवारों को ज्ञात नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह संदर्भ अभी भी सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ के समक्ष लंबित है।

51. वह संदर्भ लंबित है, हाल ही में, **रामजीत सिंह करदम बनाम संजीव कुमार, (2020) 20**

SCC 209, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ को फिर से विचार करने का अवसर मिला जिसमें चयन प्रक्रिया में संशोधन की प्रवर्तनीयता, चयन के बीच में परिवर्तन किया गया। संदर्भ के दायरे और लंबितता पर विचार करने के बाद **तेज प्रकाश पाठक (उपरोक्त)**, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नप्रकार से टिपण्णी की:

"53. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चयन के लिए मानदंड निर्धारित करने वाले इस न्यायालय के फैसले को चयन के दौरान बदला नहीं जा सकता है, तेज प्रकाश पाठक बनाम उच्च में इस न्यायालय के एक फैसले द्वारा इसे एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया गया है। राजस्थान न्यायालय [तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, (2013) 4 एससीसी 540: (2013) 2 एससीसी (एल एंड एस) 353], इसलिए मानदंड निर्धारित करने वाले इस न्यायालय के फैसले को दौरान नहीं बदला जा सकता है। चयन का परीक्षण किया जाना बाकी है। वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए हम इस धारणा पर आगे बढ़ते हैं कि भले ही समय-समय पर निकाय का चयन करके मानदंड बदले जा सकते हैं, लेकिन उक्त परिवर्तन को मनमाने ढंग से प्रभावित नहीं किया जा सकता है चयन के मानकों को अपग्रेड करने और अपग्रेड न करने के उद्देश्य से मानदंड को प्रभावित किया गया है और मनमाने ढंग से बदलाव किया गया है। उच्च न्यायालय ने चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद किए गए मानदंड में बदलाव को बरकरार नहीं रखने में कोई त्रुटि नहीं की है, जिससे हम पूरी तरह सहमत हैं।"

52. यह तर्क और भेद की वह पंक्ति है जिसे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सुप्रीम कोर्ट के सबसे हालिया के सुरेश कुमार ललित कुमार पटेल (उपरोक्त) के फैसले में फिर से अपनाया और लागू किया गया है।

53. यहां भी चयन प्रक्रिया में न केवल अचानक बल्कि मनमाने ढंग से बदलाव किया गया है। अभ्यर्थियों को पहले (विज्ञापन के माध्यम से) यह बता देने के बाद कि आरक्षण के संबंध में अधूरे दावे के कारण उनकी उम्मीदवारी रद्द नहीं की जाएगी, यूपीपीएससी याचिकाकर्ता की ऐसी उम्मीदवारी को अस्वीकार नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसने विज्ञापन की शर्तें के अनुसार कार्य किया था। स्पष्टतः, किया गया परिवर्तन कोई उद्देश्य पूरा नहीं करता। याचिकाकर्ता ईडब्ल्यूएस उम्मीदवार के रूप में योग्य होने के कारण, चयन प्रक्रिया में आगे भी भाग लेने के लिए पात्र बनी रहेगी। चयन प्रक्रिया में किए गए बदलाव का पात्र लोगों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने के उद्देश्य से कोई आंतरिक उद्देश्य या संबंध नहीं दिखाया गया है।

54. इसके अलावा, चूँकि वर्तमान परिवर्तन प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का मामला नहीं है लेकिन चयन की मूल आवश्यकताओं में से एक परिवर्तन, चयन प्रक्रिया के बीच में ही शुरू किया गया, हमें सर्वोच्च न्यायालय में लंबित संदर्भ (बड़ी पीठ के पास) के आधार पर कोई बाधा नहीं दिखती।

55. तदनुसार, वर्तमान याचिका को अनुमति है दिनांक 29.04.2023 और 10.05.2023 के विवादित संचार कानून के विपरीत जारी किए गए पाए गए हैं। उन्हें रद्द कर दिया गया है. याचिकाकर्ता ईडब्ल्यूएस उम्मीदवार के रूप में चल रही चयन प्रक्रिया में भाग लेने का हकदार है। याचिकाकर्ता का मुख्य (लिखित) परीक्षा का परिणाम अन्य अभ्यर्थियों के साथ घोषित किया जाए। वादव्यय के हिसाब से कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 329

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट ए संख्या 17237 वर्ष 2016

जगदंबा प्रसाद दुबे ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
जगदीश प्रसाद पांडे, ललित शुक्ला

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 9(4) - उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल - प्रस्तर 1033, 1105, 1111, 1114 एवं 1118(10) - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 - नियम 3(1) एवं (2)- अनधिकृत अनुपस्थिति - अनुशासनात्मक कार्यवाही - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - दंड की आनुपातिकता - चिकित्सा अवकाश की कार्योत्तर स्वीकृति - याचिकाकर्ता, एक डिप्टी जेलर, ने अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए वेतनमान में प्रत्यावर्तन के दंड के विरुद्ध अपने दावे को खारिज करने के न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती दी - चिकित्सा कारणों (दस्त) के कारण अनुपस्थिति, बाद में चिकित्सा अवकाश स्वीकृत - सुनवाई की कमी, दस्तावेजों की आपूर्ति न करने और आशयित अनुपस्थिति स्थापित करने में विफलता के कारण जांच त्रुटिपूर्ण - न्यायाधिकरण स्वीकृत छुट्टी और अनुपस्थिति की गैर-आशयित प्रकृति पर विचार करने में विफल रहा - दंड अनुपातहीन - न्यायाधिकरण, अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारियों के आदेश रद्द - याचिकाकर्ता परिणामी राहत का हकदार - रिट याचिका की अनुमति - कोई लागत नहीं - एक पूर्वदृष्टान्त नहीं होगा।

रिट याचिका स्वीकृत.

<u>संदर्भित मामले:</u>

पंजाब राज्य बनाम डॉ. पी.एल. सिंगला, (2008) 8 एससीसी 469 - प्रस्तर 24, बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995) 6 एससीसी 749 - प्रस्तर 26

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा प्रदत्त)

(1) याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ललित शुक्ला और प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

(2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह रिट याचिका याचिकाकर्ता जगदंबा प्रसाद दुबे द्वारा दायर की गई है, जिसमें उ.प्र. राज्य लोक सेवा अधिकरण, (एतस्मिनपश्चात 'अधिकरण' के रूप में संदर्भित) लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 09.10.2015 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर दावा याचिका संख्या 754/2014 को खारिज कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता दिनांक 27.06.2008 के दण्ड आदेश की वैधता को भी चुनौती दे रहा है, जिसके द्वारा उसे वर्तमान वेतनमान में दो स्तर नीचे वापस कर दिया गया था, साथ ही दिनांक 28.06.2013 के अपीलीय आदेश को भी चुनौती दे रहा है, जिसके द्वारा उक्त दण्ड आदेश के विरुद्ध उसकी अपील खारिज कर दी गई थी।

(3) संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 9300-34500/- रुपये (ग्रेड पे-5400/- रुपये) के वेतनमान में डिप्टी जेलर के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक 14.07.1997 को केंद्रीय जेल, नैनी, इलाहाबाद में समान पद पर तैनात किया गया था। वे विभिन्न स्थानों पर तैनात रहे और अपनी सेवा के दौरान पूर्ण निष्ठा एवं उच्च अधिकारियों की संतुष्टि के साथ कार्य किया।

(4) स्पष्टतः, जब याचिकाकर्ता वर्ष 2007 में जिला कारागार, लखनऊ में डिप्टी जेलर के पद पर तैनात था, तब उसने 04.04.2007 को एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें उसने दस्त रोग से पीड़ित होने के कारण दो दिन का आकस्मिक अवकाश स्वीकृत करने का अनुरोध किया था, तथापि, उक्त आकस्मिक अवकाश स्वीकृत कराए बिना ही वह स्टेशन से चला गया और इसके बाद वह अनाधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित रहा और इस प्रकार, दिनांक 26.04.2007 के आदेश के तहत उसे विभागीय जांच के मद्देनजर निलंबित कर दिया गया।

(5) विभागीय जांच के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने 01.05.2007 को अपनी नियुक्ति के स्थान पर सेवाएं ग्रहण कर लीं तथा इस संबंध में एक आवेदन प्रस्तुत करके दिनांक 06.04.2007 से 30.04.2007 तक के लिए पूर्वव्यापी चिकित्सा अवकाश की मांग की। इसके बाद, दिनांक 20.06.2007 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएं बहाल कर दी गईं और उसे केंद्रीय कारागार, आगरा में तैनात कर दिया गया, तथापि, यह निर्देश दिया गया कि उसके विरुद्ध शुरू की गई जांच सामान्य रूप से जारी रहेगी।

(6) दिनांक 20.06.2007 के आदेश के अनुसरण में, जांच अधिकारी ने याची को दिनांक 20.06.2007 को आरोप-पत्र दिया, जिसमें तीन आरोप थे: (1) याची सक्षम प्राधिकारी से अवकाश स्वीकृत कराए बिना आकस्मिक अवकाश पर चला गया था; (2) यद्यपि जिलाधिकारी, लखनऊ ने विधानसभा

चुनाव, 2007 को ध्यान में रखते हुए अधिकारी/कर्मचारी को अवकाश पर न जाने या मुख्यालय न छोड़ने का निर्देश जारी किया था, परन्तु इसके बाद भी याची अवकाश स्वीकृत कराए बिना ही स्टेशन से चला गया; और (3) याची ने जेलर को अपनी बीमारी के बारे में तत्काल कोई सूचना मेडिकल प्रमाण-पत्र के साथ नहीं दी थी।

(7) ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त आरोप-पत्र प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 23.07.2007 को एक आवेदन/अभ्यावेदन दिया था, जिसमें उसे कुछ दस्तावेजों की आपूर्ति की मांग की गई थी, लेकिन दिनांक 12.08.2007 के पत्र द्वारा, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को मांगे गए दस्तावेज उपलब्ध कराने से इनकार कर दिया। हालांकि, याचिकाकर्ता को किसी भी कार्य दिवस में अधीक्षक, जिला जेल, लखनऊ के कार्यालय में आने और मांगे गए दस्तावेजों का अध्ययन करने और फिर दस दिनों के भीतर अपना जवाब प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था। हालांकि, उक्त अवसर का लाभ उठाने के बजाय, याचिकाकर्ता ने 22.08.2007 को एक और आवेदन/पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें 12.08.2007 के पत्र के तहत मांगे गए दस्तावेजों को फिर से उपलब्ध कराने की मांग की गई और इस बार भी उसका अनुरोध अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.09.2007 को पत्र/अभ्यावेदन के माध्यम से जांच अधिकारी बदलने का अनुरोध किया था, जिसे भी दिनांक 08.10.2007 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। अंततः याचिकाकर्ता ने 01.11.2007 को आरोप-पत्र पर अपना जवाब दाखिल किया, जिसमें उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया गया।

(8) याचिकाकर्ता के अनुसार, दिनांक 01.11.2007 को आरोप-पत्र का जवाब देने के पश्चात्, जांच अधिकारी ने न तो दिनांक, समय और स्थान निर्धारित करके जांच की, न ही उसकी उपस्थिति में आरोप सिद्ध किए गए, न ही विभाग की ओर से आरोपों को सिद्ध करने के लिए कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किया गया, न ही साक्ष्य के रूप में आरोप-पत्र के साथ दिए गए दस्तावेजों की प्रामाणिकता की कभी भी जांच की गई, न ही उसके विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए उसे या किसी गवाह को शामिल करके जांच की गई और जांच अधिकारी ने सीधे दिनांक 29.11.2007 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी, जिसमें कहा गया कि उसके विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

(9) अनुशासनिक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट दिनांक 29.11.2007 प्राप्त होने पर उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 9(4) के प्रावधानों के अंतर्गत याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट के साथ दिनांक 14.02.2008 को कारण बताओ नोटिस जारी कर पंद्रह दिन के भीतर स्पष्टीकरण मांगा था। इसके जवाब में याचिकाकर्ता ने 03.03.2008 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। इसके बाद अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 27.06.2008 को दंड आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को वर्तमान वेतनमान में दो स्तर नीचे पदावनत कर दिया गया।

(10) दिनांक 27.06.2008 के उपरोक्त दण्ड आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.10.2008 को अपील प्रस्तुत की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 28.06.2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया। उल्लेखनीय है कि इस बीच दिनांक 03.09.2008 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई दिनांक 06.04.2007 से 30.04.2007 तक की चिकित्सा अवकाश सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत कर दी गई थी।

(11) परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.06.2008 के उपरोक्त दण्ड आदेश तथा दिनांक 28.06.2013 के अपीलीय आदेश से असंतुष्ट होकर न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 754/2014 प्रस्तुत की। विद्वान न्यायाधिकरण ने पक्षों की सुनवाई के बाद दिनांक 09.10.2015 के आदेश के तहत दावा याचिका को खारिज कर दिया। दिनांक 09.10.2015 के इसी आदेश को इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

(12) विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश पर आपत्ति जताते हुए याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 04.04.2007 को, जब याचिकाकर्ता जिला जेल, लखनऊ में डिप्टी जेलर के रूप में ड्यूटी पर था, वह डायरिया के कारण गंभीर रूप से बीमार हो गया और इस तरह, उसने तुरंत एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें उसे दो दिन का आकस्मिक अवकाश देने की मांग की गई। चूंकि उनका स्वास्थ्य खराब हो रहा था तथा उन्हें तीव्र अस्वस्थता महसूस हो रही थी, इसलिए उन्होंने जिला कारागार, लखनऊ में तैनात चिकित्साधिकारी से उपचार कराया, लेकिन इसके बावजूद भी उनके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो रहा था, इसलिए उस विषम परिस्थिति में तथा यह मानकर कि विभाग द्वारा उनका आकस्मिक अवकाश स्वीकृत हो गया होगा, वे सर्वप्रथम अपने बेहतर उपचार के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सरोजनी नगर, लखनऊ गये, लेकिन जब वहां भी उनके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ, तो वे अपने गृह नगर अर्थात जनपद प्रतापगढ़ चले गये, जहां से उन्होंने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, रामगंज, सुल्तानपुर में अपना उपचार कराया। तत्पश्चात, स्वस्थ होने के पश्चात, उन्होंने तुरन्त दिनांक 01.05.2007 को चिकित्सा अवकाश के लिए आवेदन के साथ अर्थात् 06.04.2007 से 30.07.2007 तक ड्यूटी पर रिपोर्ट किया, तथापि, बीच की अवधि में, उन्हें जांच के मद्देनजर दिनांक 26.04.2007 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया था।

(13) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि दिनांक 06.04.2007 से 30.04.2007 तक ड्यूटी से अनुपस्थिति जानबूझकर नहीं थी, बल्कि उपरोक्त अवधि के लिए ड्यूटी से अनुपस्थिति याचिकाकर्ता की चिकित्सा समस्या के कारण थी और विभाग को उसकी गंभीर बीमारी के बारे में पूरी जानकारी थी। 06.04.2007 से 30.04.2007 तक की उक्त चिकित्सा अवकाश बाद में सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 03.09.2008 के आदेश के तहत स्वीकृत की गई थी। इस प्रकार, उनके अनुसार, यदि 24 दिनों की चिकित्सा अवकाश सक्षम प्राधिकारी द्वारा ही

स्वीकृत की गई थी, तो आरोपित दंड का लगाया जाना अनुचित और अवैध था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि किसी भी मामले में, उक्त सजा याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना ही दी गई है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार नहीं किया, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि जांच कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया था, क्योंकि न तो कोई तारीख, समय और स्थान तय किया गया था और न ही उसके द्वारा मांगे गए कोई दस्तावेज उसे उपलब्ध कराए गए थे, इसलिए जांच स्वयं ही दोषपूर्ण हो गई, और यह केवल यांत्रिक तरीके से था, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आपत्तिजनक दंड आदेश पारित कर दिया था, जो साबित अपराध के अनुपात में असंगत था।

(14) विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अपीलीय प्राधिकारी ने सजा के आदेश की पुष्टि करते समय याचिकाकर्ता की इस दलील पर भी विचार नहीं किया कि याचिकाकर्ता को दिया गया सजा आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का घोर उल्लंघन है। उनके अनुसार, यद्यपि विद्वान न्यायाधिकरण ने, आक्षेपित निर्णय/आदेश पारित करते समय, इस तथ्य को ध्यान में रखा कि 06.04.2007 से 30.04.2007 तक का चिकित्सा अवकाश सक्षम प्राधिकारी द्वारा 03.09.2008 के आदेश के तहत स्वीकृत किया गया था, परन्तु न्यायाधिकरण मामले के इस पहलू पर कोई निष्कर्ष देने में विफल रहा है। विद्वान न्यायाधिकरण ने 19.04.1996 के परिपत्र पर विचार न करके भी गलती की है, जिसमें कहा गया है कि जेल के कर्मचारियों को चुनाव ड्यूटी से छूट दी गई थी, एक तथ्य जिसे प्रतिवादी द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को खारिज करने में गलती की है और इस प्रकार रिट याचिका को अनुमति दी जानी चाहिए।

(15) इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध करते हुए तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता एक अनुशासित बल का सदस्य रहा है। इसमें अनुशासनहीनता बहुत गंभीर कदाचार के बराबर है। इसलिए, यह असहनीय है। एक बार अनुपस्थिति का आरोप साबित हो जाने के बाद, यह मामला इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने योग्य नहीं है। रिट याचिका में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

(16) पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी दलीलों को ध्यान में रखते हुए तथा इस रिट याचिका में न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि जब याचिकाकर्ता जिला जेल, लखनऊ में डिप्टी जेलर के पद पर तैनात था, तो उसे ड्यूटी से अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के आरोप में अनुशासनात्मक कार्यवाही के मद्देनजर दिनांक 26.04.2007 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया था। हालांकि, जांच लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता 01.05.2007 को सेवा में शामिल हो गया और

उसके बाद उसे सेवा में बहाल कर दिया गया और 20.06.2007 के आदेश के तहत जिला जेल, आगरा में तैनात कर दिया गया, लेकिन जांच को सामान्य रूप से जारी रखने का आदेश दिया गया। उपरोक्त आदेश दिनांक 20.06.2007 के अनुसरण में याचिकाकर्ता ने जिला कारागार, आगरा में अपनी उपस्थिति प्रस्तुत की तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिनांक 20.06.2007 को आरोप पत्र प्रस्तुत कर जांच की गई, जिसमें तीन आरोप शामिल थे, जो नीचे पुन: उद्धृत हैं:-

"आरोप संख्या - 1

उ०प्र० जेल मैनुअल के प्रस्तर-1111 में प्राविधान है कि जेल अधिकारी अपनी अनुपस्थिति की सूचना कारापाल को तुरन्त देंगे। जिला कारागार, लखनऊ की तैनाती के दौरान आप द्वारा दिनांक 04.04.2007 को एक प्रार्थना-पत्र कारापाल को दिया गया, जिसमें डायरिया होने के कारण दो दिन का आकस्मिक अवकास दिए जाने का अनुरोध किया गया था। जेल मैनुअल के प्रस्तर-1033 के अनुसार उस पर कारागार चिकित्सक द्वारा चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट एवं विश्राम की संस्तुति अंकित नहीं थी। आप द्वारा किसी अन्य सक्षम प्राधिकारी का चिकित्सा प्रमाण-पत्र भी उपलब्ध नहीं कराया गया जबकि जेल लाइन में रहने की दशा में कारागार चिकित्सक से परीक्षण कराना एवं उनकी रिपोर्ट प्राप्त करना आवश्यक था और जेल मैनुअल प्रस्तर - 1114 के अनुसार अवकाश स्वीकार कराकर तथा स्टेशन छोड़ने की अनुमति प्राप्त कर ही कारागार परिसर छोड़ना चाहिए था। आप जेल लाइन से बाहर चले गए, जो गम्भीर अनियमितता है। अतः आप बिना कारागार चिकित्सक से परीक्षण कराए और उनकी संस्तुति प्राप्त किए बिना तथा अवकाश स्वीकृत किए जाने से पूर्व ही जेल लाइन छोड़कर अनाधिकृत रूप से प्रस्थान कर गए, जो गम्भीर अनुशासनहीनता है। इस प्रकार आप उ०प्र० जेल मैनुअल के प्रस्तर-1111, 1114, 1033 व उ०प्र० सरकारी कर्मचारियों की आचरण नियमावली, 1956 के नियम- 3(1) व (2) के उल्लंघन, कर्तव्यविमुखता, बीमारी का फर्जी बहाना कर जेल लाइन छोड़कर अनुशासनहीनता का परिचय देने के दोषी ठहराते हैं।

साक्ष्य जो उपरोक्त आरोप के समर्थन में प्रस्तुत किए जायेंगेः-

1- आपके स्वंय के प्रार्थना-पत्र दिनांक 04.04.07 की प्रति।

2- जेलर रिपोर्ट बुक दिनांक 06.04.07 के क्रमांक-130 की प्रति।

3- अधीक्षक, जिला कारागार, लखनऊ के पत्र संख्या-1534/अधि०अनु० (व्यय०पत्रा०)/07 दिनांक 26.04.07 की प्रति।

4- उ०प्र० सरकारी कर्मचारियों की आचरण नियमावली, 1956 के नियम-3(1) व (2) की प्रति।

<u>आरोप संख्या-2</u>

जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा विधान सभा निर्वाचन, 2007 के दृष्टिगत किसी भी अधिकारी/कर्मचारी को अवकाश/मुख्यालय न छोड़ने के आदेश दिए गए थे। इन सबके बावजूद आचार संहिता लागू होने पर भी आप द्वारा बिना अवकाश स्वीकृत कराए स्टेशन छोड़कर बाहर चले जाना वैध आदेशों की अवहेलना व अनुशासनहीनता है। इस प्रकार आप उ०प्र० जेल मैनुअल के प्रस्तर-1105 व 1118 (10) व उ०प्र० सरकारी कर्मचारियों के आचरण नियमावली 1956 के नियम-3(1) व 2 के उल्लंघन कर्तव्यविमुखता एवं उच्चाधिकारी के वैध आदेशों की अवहेलना करने के दोषी ठहरते हैं।

साक्ष्य जो उपरोक्त आरोप के समर्थन में प्रस्तुत किए जायेंगेः-

(1) जिलाधिकारी, लखनऊ के पत्र 681/निर्वाचन, दिनांक 08.03.07 की प्रति।

<u>आरोप संख्या-3</u>

आपने अपनी बीमारी की सूचना तत्काल करागार पर चिकित्सा प्रमाण-पत्र सहित नहीं उपलब्ध कराई। आपका यह कहना है कि बीमारी की दशा में कोई देखभाल करने वाला नहीं है जबकि दिनांक 10.4.2007 को आपकी पत्नी कारागार लाइन स्थित आवास पर उपलब्ध थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि आप गम्भीर रूप से बीमार नहीं थे वरन् अनाधिकृत रूप से कारागार लाइन छोड़कर अनुपस्थित हो गए तथा लखनऊ शहर में, जहां पर्याप्त चिकित्सा सुविधा करता है कि आप वास्तव में बीमार नहं थे वरन् अनाधिकृत रूप से जेल लाइन छोड़कर बाहर चले गए। इस प्रकार आप उ०प्र० सरकारी कर्मचारियों के आचरण नियमावली 1956 के नियम-3(1) व (2) के उल्लंघन व असत्य बयान देने के दोषी ठहरते हैं।

साक्ष्य जो उपरोक्त आरोप के समर्थन में प्रस्तुत किए जायेंगेः-

1. अधीक्षक, जिला कारागार, लखनऊ के पत्र संख्या - 1299/अधि०अनु० (अवकाश)/07 दिनांक 10.4.07 की प्रति"

(17) इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेख से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने बीमारी के आधार पर दो दिन के आकस्मिक अवकाश के लिए दिनांक 04.04.2007 को आवेदन प्रस्तुत करने के बाद सक्षम प्राधिकारी

से इसे स्वीकृत कराए बिना ही अवकाश पर चला गया। इसके बाद, वह 06.04.2007 से 30.04.2007 तक अनाधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित रहे। तथापि, यह पता चला है कि याचिकाकर्ता का 06.04.2007 से 30.04.2007 तक का चिकित्सा अवकाश सक्षम प्राधिकारी द्वारा 03.09.2008 के आदेश के तहत ही स्वीकृत किया गया था।

(18) कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि मात्र ड्यूटी से अनुपस्थित रहना अपने आप में गंभीर कदाचार नहीं माना जाता, जब तक कि इसे जानबूझकर और स्वेच्छापूर्वक अनुपस्थिति न माना जाए, विशेषकर लंबी अवधि के लिए या बार-बार अनुपस्थित रहने के कारण। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को इन पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है कि कर्मचारी क्यों और किन परिस्थितियों में अनुपस्थित था, क्या दोषी कर्मचारी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण संतोषजनक था या नहीं, या क्या दोषी कर्मचारी को बार-बार ड्यूटी से अनुपस्थित रहने की आदत है, या क्या उसकी अनुपस्थिति कम अवधि के लिए है या अधिक अवधि के लिए। अनुपस्थिति की प्रकृति और अवधि के संबंध में विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्ष के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को निंदा से लेकर सेवा से बर्खास्तगी तक की उचित सजा देने का अधिकार है। विभागीय कार्यवाही में दण्ड देने के लिए कोई निश्चित फार्मूला नहीं है तथा दण्ड का अधिरोपण स्वाभाविक रूप से उस विशेष मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इसलिए, उचित दंड लगाने के लिए अंतिम निर्णय लेने हेतु अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए मूलभूत आवश्यकता अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप पर तथ्य का पता लगाना है।

(19) वर्तमान मामले में, जांच अधिकारी द्वारा जारी आरोप-पत्र के जवाब में, याचिकाकर्ता ने शुरू में दस्तावेज उपलब्ध कराने का अनुरोध किया तथा विस्तृत स्पष्टीकरण दाखिल करने के लिए कुछ और समय प्रदान करने का भी अनुरोध किया और जब उसका अनुरोध दो बार ठुकरा दिया गया, तब याचिकाकर्ता ने अनुपस्थिति के कारणों को संक्षेप में बताते हुए अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने यह भी बताया कि दिनांक 04.04.2007 के बाद उनकी अनुपस्थिति स्वास्थ्य कारणों से थी, उन्होंने अवकाश के लिए आवेदन किया था और दो दिन की आकस्मिक अवकाश के लिए उनके आवेदन को अस्वीकार नहीं किया गया था। इसलिए, उनके द्वारा प्रस्तुत यह विशेष स्पष्टीकरण यह आकलन करने के लिए महत्वपूर्ण था कि क्या 04.04.2007 के बाद कर्मचारी की अनुपस्थिति जानबूझकर और स्वेच्छाचारिता से थी।

(20) रिकार्ड से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर या स्वेच्छा से थी, यह स्थापित नहीं हो सका। याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति को जानबूझकर और स्वेच्छाचारी कहा जा सकता था यदि विभाग का मामला यह होता कि ड्यूटी पर आते समय याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई भी मेडिकल पर्चा जाली था, हालांकि, विभाग का मामला यह नहीं है कि उन्होंने जांच के दौरान इन मेडिकल रिकार्डों की जांच की थी

और ऐसी जांच के दौरान पाया था कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया मेडिकल पर्चा जाली था। विभाग का यह भी मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा शिकायत की गई बीमारी झूठी थी या वह कभी किसी गंभीर बीमारी से पीड़ित नहीं था। यह ध्यान देने वाली बात है कि सजा के आदेश में याचिकाकर्ता द्वारा आकस्मिक अवकाश के लिए किए गए आवेदनों पर चर्चा की गई है।

(21) अपीलीय प्राधिकारी के आदेश से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि याचिकाकर्ता ने अपनी अपील में कई आधार उठाए थे, अपीलीय प्राधिकारी किसी भी आधार पर विचार करने में विफल रहा तथा उसने केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निर्णय की पुष्टि कर दी। जाहिर है, अपीलीय प्राधिकारी ने बिना किसी विवेक के और बिना किसी बुद्धि के काम किया।

(22) यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि कोई भी कर्मचारी बिना अनुमति के ड्यूटी से अनुपस्थित नहीं रह सकता। वह केवल अवकाश का आवेदन प्रस्तुत करके तथा अवकाश स्वीकृत होने के बाद ही ड्यूटी से अनुपस्थित हो सकता है। बिना पूर्व सूचना और अवकाश की मंजूरी के, यदि कर्मचारी ड्यूटी पर उपस्थित नहीं होता है, तो ऐसी अनुपस्थिति को अनधिकृत माना जा सकता है, जो कदाचार के बराबर हो सकता है और अनुशासनात्मक कार्रवाई का कारण बन सकता है। हालाँकि, कदाचार की गंभीरता अनुपस्थिति की अवधि और कर्मचारी के आचरण पर निर्भर करती है। यदि स्वीकृत अवकाश के दौरान अनुपस्थिति रही हो तो अलग-अलग मापदंड लागू हो सकते हैं। इस प्रकार, केवल ड्यूटी से अनुपस्थित रहना स्वतः ही गंभीर कदाचार नहीं माना जाता है। केवल तभी जब अनुपस्थिति जानबूझकर और बिना किसी औचित्य के हो, तो यह गंभीर कदाचार माना जाएगा। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह पहले यह पता लगाए कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर और जानबूझकर की गई थी। इसके लिए जांच जरूरी है। यदि यह साबित हो जाए कि अनुपस्थिति जानबूझकर और स्वेच्छा से की गई थी, तो अगला प्रश्न यह है कि क्या दंड दिया जा सकता है। अनधिकृत अनुपस्थिति के सिद्ध आरोप पर सजा मामले दर मामले तथा विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करते हुए अलग-अलग हो सकती है।

(23) वर्तमान मामले में, दंड आदेश में याचिकाकर्ता के आचरण के बारे में कोई चर्चा नहीं की गई है, जिसके परिणामस्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, जिसके परिणामस्वरूप आपत्तिजनक दंड लगाया गया, न ही कर्मचारी की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए किए गए प्रयासों पर कोई चर्चा की गई है और न ही यह विभाग का मामला है कि ड्यूटी पर उपस्थित होने के बार-बार निर्देशों के बावजूद, कर्मचारी ने अपना काम फिर से शुरू करने से इनकार कर दिया। यह आरोप नहीं लगाया गया है कि याचिकाकर्ता को ड्यूटी से अनुपस्थित रहने की आदत थी। यह भी रिकॉर्ड में नहीं रखा गया है कि वह पहले भी कदाचार में लिप्त था और उसे दंडित किया गया था। इसलिए, इस मुद्दे पर दिमाग लगाना और सचेत निर्णय लेना सर्वोपरि है। यह बात स्पष्ट

रूप से गायब है। पूरी प्रक्रिया प्रतिशोधात्मक प्रतीत होती है।

(24) उपर्युक्त बातों पर गौर करने के बाद, न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए गए निर्णय/आदेश से हम पाते हैं कि न्यायाधिकरण ने सक्षम प्राधिकारी द्वारा 06.04.2007 से 30.04.2007 तक याचिकाकर्ता के स्वीकृत चिकित्सा अवकाश के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है और न ही इस बात पर कोई चर्चा की गई है कि क्या याचिकाकर्ता की ड्यूटी से अनुपस्थिति जानबूझकर या सोच-विचारकर थी। यह न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी को उद्धृत करना लाभदायक समझेगा, जैसा कि **पंजाब राज्य बनाम डॉ. पीएल सिंगला: (2008) 8 एससीसी 469** के मामले में की गई थी, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था:

> *"8. अनाधिकृत अनुपस्थिति (या अवकाश से अधिक समय तक रुकना) अनुशासनहीनता का कार्य है। जब भी कोई कर्मचारी अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है, तो नियोक्ता के पास दो विकल्प होते हैं। पहला यह है कि स्पष्टीकरण स्वीकार करके अनाधिकृत अनुपस्थिति को माफ कर दिया जाए तथा अनाधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के लिए अवकाश स्वीकृत कर दिया जाए, जिससे कदाचार को माफ कर दिया जाएगा। दूसरा यह है कि अनधिकृत अनुपस्थिति को कदाचार माना जाए, जांच की जाए और कदाचार के लिए दंड लगाया जाए।*
>
> *9. कोई कर्मचारी जो कुछ अवधि के लिए अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है (या जो अवकाश की अवधि से अधिक समय तक रुकता है), ड्यूटी पर वापस आने पर, ऐसी अनाधिकृत अनुपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण देकर अनुपस्थिति को माफ करने के लिए आवेदन कर सकता है तथा उस अवधि के लिए अवकाश की अनुमति मांग सकता है। यदि नियोक्ता इस बात से संतुष्ट है कि अनधिकृत अनुपस्थिति (या अवकाश की समाप्ति के बाद अधिक समय तक रुकने) के लिए पर्याप्त कारण या औचित्य था, तो नियोक्ता अनुशासनहीनता के कृत्य को माफ कर सकता है और कार्योत्तर अवकाश स्वीकृत कर सकता है। यदि अवकाश स्वीकृत कर दी जाती है और अनधिकृत अनुपस्थिति को माफ कर दिया जाता है, तो नियोक्ता को उसके बाद उक्त कदाचार के संबंध में*

अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि उसने अवकाश स्वीकृत करते समय अनुशासनहीनता के कृत्य के संबंध में अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अधिकार सुरक्षित न रखा हो। हम यहाँ यह नोट कर सकते हैं कि अनुपस्थिति को माफ़ करने के अनुरोध पर अनुकूल रूप से विचार किया जा सकता है, जहाँ अनधिकृत अनुपस्थिति कुछ दिनों या कुछ महीनों की हो और अनुपस्थिति का कारण परिवार में अचानक, गंभीर बीमारी या अप्रत्याशित शोक बताया गया हो। लेकिन लंबे समय तक अनधिकृत अनुपस्थिति को आमतौर पर माफ़ नहीं किया जाता है। दरअसल सुरक्षा सेवाओं में अनुशासन का बहुत महत्व है, यहां तक कि कुछ दिन अधिक रुकने को भी बहुत गंभीरता से लिया जाता है। चाहे जो भी हो"

(25) जाहिर है, वर्तमान मामले में विभाग ने अवकाश की स्वीकृति बाद में देकर अनुपस्थिति के कृत्य को माफ कर दिया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभाग इसके बाद भी अपने अधिकारों के आरक्षण के अधीन याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है, हालांकि, ध्यान देने वाली बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले में यह भी कहा है कि यदि अनधिकृत अनुपस्थिति कुछ दिनों या कुछ महीनों के लिए है और अनुपस्थिति का कारण गंभीर बीमारी बताया गया है, तो विभाग द्वारा उक्त अनुरोध पर अनुकूल रूप से विचार किया जा सकता है। इस न्यायालय ने पाया कि यद्यपि याचिकाकर्ता ने 26 दिनों की अनुपस्थिति के लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया था, तथापि विभाग द्वारा बहुत ही दक्षता से उस पर विचार नहीं किया गया। जैसा कि रिकॉर्ड से देखा जा सकता है, 26 दिनों तक ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के लिए याचिकाकर्ता का स्पष्टीकरण उसके मामले को उचित ठहराता है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण के आलोक में, उस पर लगाई गई सजा उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के अनुपात में असंगत प्रतीत होती है।

(26) वर्तमान मामले में इस न्यायालय द्वारा किस प्रकार की राहत दी जा सकती है, इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने **बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ: (1995) 6 एससीसी 749** में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 18 में अवधारित किया है कि-

"18. उपरोक्त कानूनी स्थिति की समीक्षा से यह स्थापित हो जाएगा कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, तथा अपील पर अपीलीय प्राधिकारी, तथ्यान्वेषी प्राधिकारी होने के नाते अनुशासन बनाए रखने के उद्देश्य से साक्ष्य पर विचार

करने का विशेष अधिकार रखते हैं। उन्हें कदाचार की गंभीरता या परिमाण को ध्यान में रखते हुए उचित दंड लगाने का विवेकाधिकार दिया गया है। उच्च न्यायालय/ अधिकरण न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय सामान्यतः दंड पर अपने निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते हैं तथा कोई अन्य दंड नहीं लगा सकते हैं। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाया गया दंड उच्च न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोरता है, तो वह उचित रूप से राहत प्रदान कर सकता है, या तो अनुशासनात्मक/अपीलीय प्राधिकारी को लगाए गए दंड पर पुनर्विचार करने का निर्देश दे सकता है, या मुकदमे की अवधि को छोटा कर सकता है, और वह स्वयं, असाधारण और दुर्लभ मामलों में, इसके समर्थन में ठोस कारणों के साथ उचित दंड लगा सकता है।"

(27) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय और वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकता है कि वर्तमान मुकदमा 15 वर्ष से अधिक पुराना है और ऐसे में याचिकाकर्ता को दी गई सजा पर पुनर्विचार करने के लिए अनुशासनात्मक/ अपीलीय प्राधिकारी को कोई भी निर्देश देना न्याय का उपहास होगा। इस प्रकार, ऊपर बताए गए ठोस कारणों से, हमारा मानना है कि लगाया गया दंड पूरी तरह से निराधार है और यह गंभीर विधिक त्रुटि है, इसलिए, वित्तीय लाभ की प्रतिपूर्ति, जिससे याचिकाकर्ता को वंचित किया गया था, बहाल किए जाने योग्य है। विद्वान न्यायाधिकरण से मामले को सही परिप्रेक्ष्य में विचार करने के लिए संपर्क किया गया, लेकिन वह याचिकाकर्ता को कोई राहत देने में विफल रहा। इसलिए, अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारी के आदेशों की पुष्टि करने वाले न्यायाधिकरण के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

(28) तदनुसार, हम दावा याचिका संख्या 754/2014 में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 09.10.2015 तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दण्ड आदेश दिनांकित 27.06.2008 तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दण्ड आदेश दिनांकित 28.06.2013 को निरस्त करते हुए इस रिट याचिका को अनुमति देते हैं। याचिकाकर्ता नियमानुसार सभी परिणामी राहतों का हकदार होगा।

(29) यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आदेश को उदाहरण नहीं माना जाएगा क्योंकि यह वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर दिया गया है।

(30) लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 337

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट ए संख्या 21430 वर्ष 2022

रेणु ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री शांतनु खरे, श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री एम.एन. सिंह, श्री निशीथ यादव, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अभिनिर्धारित हुआ:

याचिकाकर्ता ने 23.08.2022 के संशोधित परिणाम को चुनौती दी, जिसमें उसे स्टाफ नर्स/सिस्टर ग्रेड-दो के पद के लिए चयन से बाहर रखा गया था और 16.11.2022 के आदेश से उसके अभ्यावेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि प्रस्तुत अनुभव प्रमाण पत्र में जारीकर्ता प्राधिकारी की त्रुटि के कारण 'स्टाफ नर्स' के बजाय 'नर्स मेंटर' का गलत उल्लेख किया गया था।

आवेदन की अंतिम तिथि तक आवश्यक योग्यताएँ पूरी करना अनिवार्य है, लेकिन प्रमाण प्रस्तुत करना प्रक्रियात्मक और सहायक है। *भारतीय खाद्य निगम बनाम रिमझिम* (2019) 5 एससीसी 793, *डॉली छंदा बनाम चेयरमैन जेईई* (2005) 9 एससीसी 779, और *चार्ल्स के. स्कारिया बनाम डॉ. सी. मैथ्यू* (1980) 2 एससीसी 752 के मामलों पर भरोसा करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहाँ न्याय दांव पर हो, तकनीकी पहलुओं को साम्या पर अधिभावी नहीं होना चाहिए।

मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा जारी अनुभव प्रमाण पत्र दिनांक 09.11.2021 में त्रुटि को दिनांक 24.08.2022 और 30.08.2022 के प्रमाण पत्रों द्वारा ठीक किया गया, जिससे याचिकाकर्ता की 01.04.2015 से 18.10.2019 तक स्टाफ नर्स के रूप में संविदा सेवा की पुष्टि हुई। संशोधित प्रमाण पत्र देर से प्रस्तुत करने के कारण आयोग द्वारा उम्मीदवारी को अस्वीकार करना मनमाना था।

विज्ञापन के खंड 10, जो आयोग को उम्मीदवारी रद्द करने का अधिकार देता है, का न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी नकारात्मक शर्त का न होना, *गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* (2017 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1286) के विपरीत, इस मामले को विशिष्ट बनाता है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 16.11.2022 को रद्द कर दिया गया और आयोग को अनुभव प्रमाण पत्र का लाभ प्रदान करने और अन्य शर्तों के अधीन, गुणदोष के आधार पर नियुक्ति के

लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार करने का निर्देश दिया गया।

<u>चर्चा की गई वादविधि:</u>

1. एफ.सी.आई. बनाम रिमझिम (2019) 5 एससीसी 793

2. डॉली छंदा बनाम चेयरमैन जेईई (2005) 9 एससीसी 779

3. चार्ल्स के. स्केरिया बनाम डॉ. सी. मैथ्यू (1980) 2 एससीसी 752

4. गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1286)

5. राजेंद्र पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 8 एडीजे 219 (पूर्ण पीठ)

6. राम कुमार गिजरोया बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड (2016) 4 एससीसी 754

7. करण सिंह यादव बनाम दिल्ली सरकार,राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1341)

परिणाम: रिट याचिका स्वीकार की गई। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. श्री सिद्धार्थ खरे, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से सहायता प्राप्त श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री निशीथ यादव, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त श्री जीके सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से स्टाफ नर्स/सिस्टर ग्रेड- II के पद के लिए दिनांक 23.08.2022 के संशोधित परिणाम, जहां तक कि यह याचिकाकर्ता को इससे बाहर करता है, और याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन दिनांक 27.08.2022 को खारिज करने वाले सचिव, लोक सेवा आयोग, यूपी प्रयागराज (इसके बाद 'आयोग' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.11.2022, को रद्द करने वाली एक उत्प्रेषण रिट के लिए प्रार्थना की है। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को स्टाफ नर्स/सिस्टर ग्रेड- II के रूप में नियुक्ति देने और उक्त पद पर नियमित मासिक वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने वाली एक परमादेश रिट के लिए भी प्रार्थना की है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि, स्टाफ नर्स/सिस्टर ग्रेड- II (पुरुष/महिला) के पद के लिए चयन को अधिसूचित करते हुए आयोग द्वारा जारी विज्ञापन संख्या ए-4/ई-1/2021 के तहत, याचिकाकर्ता ने उपरोक्त चयन में विचार के लिए आवेदन किया। उक्त चयन कुल 100 अंकों का था, जिसमें से 85 अंक लिखित परीक्षा के लिए और 15 अंक संविदा के आधार पर स्टाफ नर्स के रूप में कार्य करने के अनुभव के लिए आवंटित किए गए थे। अनुभव के लिए अंक इस प्रकार दिए

जाने थे कि संविदा के आधार पर सेवा के पहले पूर्ण वर्ष के लिए तीन अंक आवंटित किए जाने थे, उसके बाद प्रत्येक वर्ष के लिए तीन अतिरिक्त अंक दिए जाने थे, जो अधिकतम 15 अंकों के अधीन थे। अनुभव के समर्थन में याचिकाकर्ता ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा जारी अनुभव प्रमाण पत्र दिनांक 09.11.2021 दाखिल किया।

4. याचिकाकर्ता 01.10.2021 को आयोजित लिखित परीक्षा में उपस्थित हुई। उसका परिणाम 04.01.2022 को प्रकाशित हुआ। इस प्रकार प्रकाशित परिणाम में याचिकाकर्ता को उपरोक्त परीक्षा में चयनित दिखाया गया था। याचिकाकर्ता ने आयोग की आधिकारिक वेबसाइट से अंक पत्र डाउनलोड किया, जिसमें याचिकाकर्ता को लिखित परीक्षा में 28.50 अंक, अनुभव के आधार पर 12 अंक प्राप्त होना दिखाया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को कुल मिलाकर 40.50 अंक प्राप्त हुए।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि परिणाम घोषित होने के बाद, रिट-ए संख्या 1815/2022 (प्रीति पटेल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर की गई थी, जिसमें इस आधार पर परिणाम को चुनौती दी गई थी कि उम्मीदवारों के अनुभव प्रमाण पत्रों की जांच में कुछ विसंगतियां थीं। उक्त याचिका में आयोग के अधिवक्ता ने बयान दिया कि आयोग ने 814 चयनित उम्मीदवारों जिनकी सिफारिशें आज तक राज्य सरकार को नहीं भेजी गई थीं और साथ-साथ अन्य उम्मीदवारों के अनुभव प्रमाण पत्रों की फिर से जांच करने का फैसला किया था।

6. इसके बाद, आयोग ने अनुभव प्रमाण पत्रों की फिर से जांच की और संशोधित परिणाम घोषित करते हुए एक अधिसूचना दिनाँक 23.08.2022 जारी की, जिसमें याचिकाकर्ता का नाम नहीं था।

7. अपने चयन न होने से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने 05.09.2022 को आयोग को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसके साथ मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र दिनांक 24.08.2022 संलग्न किया गया था, जिसमें यह प्रमाणित किया गया था कि याचिकाकर्ता ने 01.04.2015 से 18.10.2019 तक अनुबंध के आधार पर 'स्टाफ नर्स' के रूप में काम किया था। याचिकाकर्ता ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी एक अन्य प्रमाण पत्र दिनांक 30.08.2022 भी संलग्न किया, जिसमें यह प्रमाणित किया गया था कि दिनांक 09.11.2021 के प्रमाण पत्र में अनजाने में 'नर्स मेंटर' का उल्लेख किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता ने 01.04.2015 से 18.10.2019 तक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, टांडा, रामपुर में 'स्टाफ नर्स (संविदा)' के रूप में काम किया है।

8. आयोग ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया जिसके कारण याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 15147/2022 दायर की, जिसका इस न्यायालय ने 18.10.2022 के आदेश द्वारा निस्तारण किया जिसमें आयोग को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन

पर विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

9. रिट-ए संख्या 15147/2022 में इस न्यायालय के दिनांक 18.10.2022 के निर्देश के अनुसरण में, आयोग ने आदेश दिनांक 16.11.2022 द्वारा याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता ने 'स्टाफ मेंटर' का कार्य अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था न कि 'स्टाफ नर्स' का, इसलिए उसका चयन नहीं किया गया।

10. प्रतिवादी-आयोग ने एक निर्देश रिकॉर्ड पर रखा है। निर्देशों के अनुसार, विज्ञापन में चयन के लिए एक पूरी प्रक्रिया निर्दिष्ट की गई थी। निर्देश में आगे कहा गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य अधीनस्थ नर्सिंग (अराजपत्रित) सेवा (चतुर्थ संशोधन), नियमावली, 2016 (इसके बाद 'नियम, 2016' के रूप में संदर्भित) का नियम 15(3) (निर्देश में गलती से 'नियम 10(3)' टाइप किया गया प्रतीत होता है) चयन की प्रक्रिया प्रदान करता है। नियम 15(3) नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

> *"चयन एक सौ अंकों का होगा। अभ्यर्थियों की योग्यता सूची निम्नलिखित रीति में तैयार की जायेगीः -*
>
> *(क) लिखित परीक्षा **<u>पच्चीस अंकों</u>** की होगी।*
>
> *(ख) चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं विभाग उत्तर प्रदेश में संविदा के आधार पर कार्यरत किसी व्यक्ति को **<u>अधिकतम पन्द्रह अंकों</u>** के अध्यधीन निम्नलिखित रीति में अंक प्रदान किये जायेगेः-*
>
> *(एक) संविदा के आधार पर सेवा में प्रथम पूर्ण वर्ष के लिए... तीन अंक।*
>
> *(दो) संविदा के आधार पर सेवा के अगले एवं प्रत्येक पूर्ण वर्ष के लिए.... तीन अंक प्रति वर्ष के लिए।*
>
> *(ग) खण्ड (क) के अधीन प्रत्येक अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंकों को, जहाँ लागू हो, खण्ड (ख) के अधीन प्राप्त अंकों के साथ जोड़ दिया जायेगा। तद्नुसार उपरोक्त संगत सेवा नियमावली के अधीन संविदा के अनुभव के लिए अधिकतम 15 अंक निर्धारित हैं।"*

11. निर्देश में आगे कहा गया है कि लिखित परीक्षा के बाद 20,181 अभ्यर्थियों से अभ्यर्थी की वरीयता के संबंध में ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित करते हुए एक अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 प्रकाशित की गई थी। सामान्य, ईडब्ल्यूएस और ओबीसी श्रेणी के लिए कट-ऑफ अंक 85 अंकों में से 25 अंक थे, जबकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए कट-ऑफ अंक 85 अंकों में से 20 अंक थे। उक्त आवेदन पत्र अभ्यर्थी द्वारा समस्त सुसंगत दस्तावेजों की छायाप्रति के साथ दिनांक 18.11.2021 तक आयोग की वेबसाइट पर अपलोड किया जाना था।

12. आयोग ने आगे बताया कि विज्ञापन संख्या 807/07/एस-6/2019-20 टीसी दिनांकित 03.11.2021 में उल्लिखित ऑनलाइन आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि 18.11.2021 थी जो कि अधिसूचना संख्या 815/एस-6/2019-20 टीसी दिनांकित 15.11.2021 द्वारा दिनांक 22.11.2021 तक बढ़ा दी गई थी।

13. उक्त अधिसूचना के प्रत्युत्तर में, 18693 अभ्यर्थियों ने ऑनलाइन आवेदन अपलोड करने के लिए आयोग की वेबसाइट पर लॉग इन किया, जिनमें से केवल 15830 अभ्यर्थियों ने अधिसूचना में निर्धारित समय के भीतर शैक्षिक प्रमाण-पत्रों एवं अनुभव प्रमाण-पत्रों के साथ अपलोड करने के सभी चरणों को पूरा किया।

14. निर्देशों में आगे कहा गया कि याचिकाकर्ता ने संविदा कर्मचारी के रूप में 'नर्स मेंटर' के अनुभव प्रमाण पत्र (परिशिष्ट-6) की प्रति(हार्ड कॉपी) प्रस्तुत की, जिसके कारण याचिकाकर्ता को अनुभव का लाभ नहीं दिया गया। तथापि, परिणाम दिनांक 23.08.2022 की घोषणा के बाद, याचिकाकर्ता ने यह जानकारी देते हुए अभ्यावेदन दिनांक 27.08.2022 प्रस्तुत किया कि मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर ने अनजाने में अनुभव प्रमाण पत्र में 'स्टाफ नर्स' के स्थान पर 'नर्स मेंटर' का उल्लेख कर दिया, लेकिन चूंकि उक्त अभ्यावेदन याचिकाकर्ता द्वारा परिणाम दिनांक 23.08.2022 घोषित होने के बाद प्रस्तुत किया गया, इसलिए याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन दिनांक 27.08.2022 विचारणीय नहीं होने के कारण खारिज कर दिया गया।

15. यह कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 और संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 में निर्धारित समय के भीतर अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए उसे अनुभव प्रमाण पत्र का लाभ नहीं दिया जा सकता है।

16. उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने इस न्यायालय का ध्यान विज्ञापन के सामान्य निर्देश के खंड 4 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें कहा गया है कि उम्मीदवार के पास आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि तक सभी अपेक्षित योग्यताएं होनी चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी आयोग इस तथ्य से इनकार नहीं कर रहा है कि याचिकाकर्ता के पास आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि तक आवश्यक योग्यताएं थीं, लेकिन उसने याचिकाकर्ता को संविदा के आधार पर 'स्टाफ नर्स' के रूप में कार्य अनुभव का लाभ देने से इस आधार पर इनकार कर दिया है कि उक्त अनुभव प्रमाण पत्र अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 और संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 में निर्धारित समय के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया था।

17. उन्होंने प्रस्तुत किया कि आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पूर्व आवश्यक योग्यता का होना और उसका प्रमाण/प्रमाण का तरीका दो अलग-अलग चीजें हैं। तदनुसार, उनका कहना है कि यदि यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पूर्व आवश्यक योग्यताएं थीं, तो याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी

अपेक्षित अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत न करने, जिसे मात्र एक अनियमितता कहा जा सकता है, के आधार पर रद्द नहीं की जा सकती। उनका कहना है कि अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 और संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 में उल्लिखित अंतिम तिथि/कट-ऑफ तिथि से पहले आवश्यक योग्यताएं होना एक अनिवार्य आवश्यकता है, जबकि इसके समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत करना याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अमान्य करने के लिए अनिवार्य नहीं माना जा सकता है। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को खारिज करने की प्रतिवादी आयोग की कार्रवाई मनमानी है और इसे कानून में कायम नहीं रखा जा सकता है।

18. उपर्युक्त तर्क के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **भारतीय खाद्य निगम बनाम रिमझिम (2019) 5 एससीसी 793; डॉली छंदा बनाम चेयरमैन जेईई एवं अन्य (2005) 9 एससीसी 779** और **चार्ल्स के. स्कारिया एवं अन्य बनाम डॉ. सी. मैथ्यू एवं अन्य (1980) 2 एससीसी 752** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का आश्रय लिया है।

19. उपरोक्त दलील का विरोध करते हुए, प्रतिवादी-आयोग के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 के अनुसार सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 22.11.2021 थी, और यदि उम्मीदवार का आवेदन सभी तरह से पूरा नहीं था, तो आयोग ने उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है। उन्होंने विज्ञापन के महत्वपूर्ण निर्देशों के खंड 10 को रखा और तर्क दिया कि उम्मीदवारी रद्द करने का आयोग का अधिकार उक्त खंड से निकलता है, जो यह निर्धारित करता है कि आयोग आवेदनों की संक्षिप्त जांच के बाद उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से स्वीकार कर सकता है, लेकिन यदि किसी भी स्तर पर यह पाया जाता है कि उम्मीदवार योग्य नहीं था या उसका आवेदन अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए था या शुरू में विचारणीय नहीं था, तो उसकी उम्मीदवारी खारिज कर दी जाएगी, और यदि उम्मीदवार का चयन किया जाता है, तो नियुक्ति के लिए आयोग की सिफारिश वापस ले ली जाएगी। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि स्वीकार्य रूप से, याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पूर्व अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए, उसे 'स्टाफ नर्स' के रूप में अनुभव का लाभ नहीं दिया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता न्यूनतम कट-ऑफ अंक हासिल नहीं कर सकी, इसलिए, आयोग द्वारा उसकी उम्मीदवारी को उचित रूप से खारिज कर दिया गया है।

20. अपने पूर्वोक्त प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, उन्होंने **गौरव शर्मा बनाम यूपी राज्य और अन्य 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल, 1286** और **राजेंद्र पटेल बनाम यूपी राज्य और अन्य 2015(8) एडीजे 219 (पूर्ण पीठ)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले का आश्रय लिया है।

21. मैंने पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

22. रिकॉर्ड से जो निर्विवाद तथ्य सामने आए हैं, वे हैं कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.07.2021 के विज्ञापन के तहत 'स्टाफ नर्स/सिस्टर ग्रेड II' के पद पर नियुक्ति के लिए विचार करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता ने अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 और संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 में निर्धारित समय के भीतर सभी आवश्यक दस्तावेजों के साथ अपना आवेदन पत्र अपलोड किया। याचिकाकर्ता 01.10.2021 को आयोजित लिखित परीक्षा में सम्मिलित हुई और 04.01.2022 को प्रकाशित परिणाम में सफल घोषित की गई। हालाँकि, रिट-ए संख्या 1815/2022 में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांक 26.04.2022 के अनुपालन में उम्मीदवारों के अनुभव प्रमाण पत्र की पुनः जांच के बाद प्रकाशित संशोधित परिणाम दिनांक 23.08.2022 से याचिकाकर्ता का नाम बाहर था।

23. याचिकाकर्ता का दावा है कि चयन सूची से उसका नाम हटाना मनमाना है क्योंकि उसके पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि पर 'स्टाफ नर्स' के पद के लिए आवश्यक योग्यताएं थीं और वह 'स्टाफ नर्स' के रूप में अनुभव के लिए अंक पाने की हकदार है, क्योंकि मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा जारी अनुभव प्रमाण पत्र दिनांक 09.11.2021 में विसंगति मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर की ओर से एक अनजाने में हुई त्रुटि थी, जिसे उनके द्वारा अन्य प्रमाण पत्र दिनांक 24.08.2022 और 30.08.2022 जारी करके ठीक कर दिया गया था, और याचिकाकर्ता को मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर की गलती के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है।

24. याचिकाकर्ता के अनुसार मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा अनुभव प्रमाण पत्र दिनांक 09.11.2021 जारी करने में जो गलती हुई है वह केवल एक अनियमितता है, और इसलिए, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करना आयोग द्वारा शक्ति का मनमाना प्रयोग है।

25. अब, यह न्यायालय विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या याचिकाकर्ता का नाम चयन सूची से बाहर करने की आयोग की कार्रवाई मनमानी है और क्या याचिकाकर्ता अनुबंध के आधार पर 'स्टाफ नर्स' के रूप में अनुभव प्रमाण पत्र के लिए अंकों की हकदार है।

26. **भारतीय खाद्य निगम (सुप्रा)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐसे मामले पर विचार किया जहां प्रतिवादी (रिमझिम) का चयन नहीं किया गया था क्योंकि उसने यह दिखाने के लिए कोई अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था कि उसके पास अंग्रेजी से हिंदी और इसके विपरीत अनुवाद में एक वर्ष का अनुभव था। उक्त मामले में बताए गए तथ्यों से पता चलता है कि मूल रिट याचिकाकर्ता (सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी) ने अपने पूर्व नियोक्ता द्वारा जारी अनुभव प्रमाण

पत्र जिसमें प्रमाणित किया गया था कि उसके पास अंग्रेजी से हिंदी और इसके विपरीत अनुवाद में एक वर्ष का अनुभव है, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया। हालांकि, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि मूल रिट याचिकाकर्ता के पास अंग्रेजी से हिंदी और इसके विपरीत अनुवाद में एक वर्ष का अपेक्षित अनुभव प्रमाण पत्र नहीं था, इसलिए भारतीय खाद्य निगम द्वारा उसे रोजगार देने से इनकार करना उचित था। मूल रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर लेटर्स पेटेंट अपील को खंड पीठ ने, मूल रिट याचिकाकर्ता द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत प्रमाण पत्र दिनांक 14.01.2015 और 18.07.2016 के आधार यह कहते हुए अनुमति दी थी कि चूंकि मूल रिट याचिकाकर्ता के पास विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि से पहले अपेक्षित अनुभव था, इसलिए उसके पास विज्ञापन में निर्धारित आवश्यक योग्यता थी। परिणामस्वरूप, खंड पीठ ने माना कि मूल रिट याचिकाकर्ता को नियुक्ति देने से इनकार करने में भारतीय खाद्य निगम सही नहीं था।

27. खंड पीठ के फैसले के खिलाफ भारतीय खाद्य निगम द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका में, यह तर्क दिया गया कि विज्ञापन के अनुसार, आवश्यक योग्यताओं में से एक यह थी कि उम्मीदवार के पास अंग्रेजी से हिंदी और इसके विपरीत अनुवाद में एक वर्ष का अनुभव होना चाहिए, जिसे उम्मीदवार को आवेदन पत्र जमा करते समय प्रस्तुत करना आवश्यक था। यह तर्क दिया गया कि स्वीकार्य रूप से, मूल रिट याचिकाकर्ता ने कोई अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था, और इसलिए, मूल रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को सही तरीके से खारिज कर दिया गया है। उक्त विवाद का निस्तारण सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ 13 में किया है जो इस प्रकार है:-

"13. अब जहां तक एफसीआई की ओर से प्रस्तुत दलील कि एक उम्मीदवार को आवेदन के साथ अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना चाहिए और/या करना चाहिए था, का सवाल है, इस चरण पर, चार्ल्स के स्कारिया बनाम डॉ. सी. मैथ्यू (1980) 2 एससीसी 752 में इस न्यायालय का निर्णय और डॉली छंदा बनाम चेयरमैन, जे ई ई एवं अन्य (2005) 9 एससीसी 779 में इस न्यायालय के बाद के निर्णय का संदर्भ लेना आवश्यक है। चार्ल्स के. स्कारिया में इस न्यायालय को जरूरी आवश्यकताओं और प्रमाण/प्रमाण के तरीके के बीच अंतर पर विचार करने का अवसर मिला था। उपरोक्त मामले में इस न्यायालय को एक तथ्य और उसके प्रमाण के बीच अंतर पर विचार करने का अवसर मिला था। इस न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले में, एक उम्मीदवार/छात्र डिप्लोमा धारकों के लिए अतिरिक्त 10% अंकों का हकदार था और डिप्लोमा आवेदन की अंतिम तिथि को या उससे पहले प्राप्त किया जाना चाहिए, बाद में नहीं। उपरोक्त मामले में एक

उम्मीदवार ने आवेदन की अंतिम तिथि से पहले डिप्लोमा हासिल किया, लेकिन आवेदन के साथ डिप्लोमा का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। अतः उसे अतिरिक्त 10% अंक नहीं दिये गए और इसलिए, प्रवेश से इनकार कर दिया गया। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए, इस न्यायालय ने यह देखा और माना कि अनिवार्य आवश्यकता यह है कि उम्मीदवार ने आवेदन की अंतिम तिथि को या उससे पहले डिप्लोमा प्राप्त कर लिया हो, लेकिन बाद में नहीं, और यह प्राथमिक आवश्यकता है और यह प्रमाण प्रस्तुत करना कि डिप्लोमा आवश्यक अर्हता के अनुसार किसी विशेष तिथि को या उससे पहले प्राप्त किया गया है, गौण है। इस न्यायालय ने विशेष रूप से यह देखा और माना कि "जो आवश्यक है वह दी गई तिथि से पहले डिप्लोमा का होना है; जो सहायक है वह योग्यता के प्रमाण का सुरक्षित तरीका है"। इस न्यायालय ने विशेष रूप से यह देखा और माना कि "तथ्य और उसके प्रमाण के बीच भ्रमित होना अस्पष्टत सूक्ष्मदर्शिता है"। इस न्यायालय ने आगे कहा..."

28. उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने दो पूर्व निर्णयों अर्थात् **चार्ल्स के. स्कारिया (सुप्रा)** और **डॉली छंदा (सुप्रा)** में प्रतिपादित अनुपात का अनुसरण किया और माना कि मूल रिट याचिकाकर्ता ने विज्ञापन में निर्धारित कट-ऑफ तिथि से पहले अंग्रेजी से हिंदी और इसके विपरीत अनुवाद में एक वर्ष का अनुभव प्राप्त कर लिया था, इसलिए खंडपीठ ने मूल रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अस्वीकृत करने की भारतीय खाद्य निगम की कार्यवायी को उचित रूप से खारिज कर दिया और भारतीय खाद्य निगम को निर्देश दिया कि यदि अन्य शर्तें पूरी होती हैं तो वह योग्यता के आधार पर नियुक्ति के लिए मूल रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करे।

29. **डॉली छंदा (सुप्रा)** के मामले में अपीलकर्ता-डॉली छंदा ने भूतपूर्व सैनिक, जिन्हें स्थायी विकलांगता के आधार पर सशस्त्र बलों से सेवा मुक्त कर दिया गया था, की पुत्री होने के नाते एमआई श्रेणी के आरक्षण के अंतर्गत संयुक्त प्रवेश परीक्षा-2003 (इसके बाद 'जेईई-2003' के रूप में संदर्भित) में बैठने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया। जेईई-2003 की सूचना विवरणिका के खंड 2.1.4 के अंतर्गत युद्ध या शांतिकालीन ऑपरेशन के दौरान कार्रवाई में मारे गए/विकलांग हुए उड़ीसा के सशस्त्र/अर्धसैनिक बलों के कर्मियों के बच्चों या विधवाओं के लिए कुछ प्रतिशत सीटें आरक्षित थीं। मेडिकल स्ट्रीम में आरक्षित एमआई श्रेणी में अपीलार्थी की रैंक 20 थी, और उसे एक मेडिकल कॉलेज में प्रवेश के लिए काउंसलिंग हेतु बुलाया गया था। जांच के दौरान पाया गया कि जिला सैनिक बोर्ड द्वारा उसके पिता को दिए गए प्रमाण पत्र के कॉलम क्रमांक 3, जो "युद्ध/शत्रुता में विकलांग/मारे गए" से संबंधित था, में "योग्य नहीं" शब्द लिखे थे। चूंकि उक्त प्रमाण पत्र एमआई श्रेणी की आवश्यकता को पूरा नहीं करता था, इसलिए अपीलार्थी की उम्मीदवारी खारिज कर दी गई। बाद में

अपीलकर्ता के पिता के अनुरोध पर, जिला सैनिक बोर्ड द्वारा प्रमाण पत्र दिनाँकित 29.06.2003 की गलती को सही करते हुए एक नया प्रमाण पत्र दिनाँकित 16.07.2003 जारी किया गया। अपीलकर्ता को जब पता चला कि सीट बढ़ने के कारण काउंसलिंग का दूसरा चरण तय किया गया है, तो उसने संबंधित केंद्र से संपर्क किया और जिला सैनिक बोर्ड द्वारा जारी नए प्रमाण पत्र के आधार पर प्रवेश देने का अनुरोध किया। हालांकि, उसे प्रवेश देने से मना कर दिया गया। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले के पैराग्राफ 3 में उल्लेख किया, अपीलकर्ता का मामला यह था कि सही प्रमाण पत्र जारी न करना जिला सैनिक बोर्ड की गलती थी और 16.07.2003 को जारी दूसरे प्रमाण पत्र में उक्त गलती को सुधार लिया गया था, इसलिए वह मेडिकल कॉलेज में प्रवेश की हकदार थी। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैराग्राफ 7 में निम्न टिप्पणी की है:-

> *"7. सामान्य नियम यह है कि किसी भी अध्ययन पाठ्यक्रम या पद के लिए आवेदन करते समय, किसी व्यक्ति के पास प्रवेश विवरणिका या आवेदन पत्र, यथास्थिति, में ऐसे उद्देश्य के लिए निर्धारित अंतिम तिथि पर अर्ह योग्यता होनी चाहिए, जब तक कि इसके विपरीत कोई स्पष्ट प्रावधान न हो। इस संबंध में, अर्थात निर्धारित तिथि तक अपेक्षित अर्ह योग्यता रखने के मामले में, कोई छूट नहीं दी जा सकती है। इसे आवश्यक प्रमाण पत्र, डिग्री या मार्कशीट प्रस्तुत करके स्थापित किया जाना चाहिए। इसी तरह, आरक्षण या महत्व आदि का लाभ उठाने के लिए आवश्यक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने होंगे। ये विशेष योग्यता या प्राप्त अंकों के प्रतिशत या आरक्षण के लाभ के लिए पात्रता के प्रमाण की प्रकृति के दस्तावेज हैं। किसी मामले के तथ्यों के आधार पर, प्रमाण प्रस्तुत करने के मामले में कुछ छूट दी जा सकती है और प्रक्रिया के क्षेत्र में किसी भी कठोर सिद्धांत को लागू करना उचित नहीं होगा। प्रमाण प्रस्तुत करने से संबंधित नियम के हर उल्लंघन के परिणामस्वरूप उम्मीदवारी को अस्वीकार करना आवश्यक नहीं है।"*

30. उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 9 में उल्लेख किया कि चूंकि अपीलकर्ता बहुत ही साधारण पृष्ठभूमि से आई है, क्योंकि उसके पिता सशस्त्र बलों में केवल एक नायक थे, इसलिए उन्होंने 29.06.2003 को पहला प्रमाण पत्र जारी करते समय जिला सैनिक बोर्ड द्वारा की गई गलती को नहीं देखा होगा। तदनुसार, उसने माना कि यह अपीलकर्ता को प्रवेश देने से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता है, खासकर तब जब अपीलकर्ता की तुलना में कम अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को प्रवेश दिया गया हो।

31. **चार्ल्स के. स्कारिया (सुप्रा)** के मामले में, नेत्र विज्ञान सहित विभिन्न धाराओं में स्नातकोत्तर में प्रवेश के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाली एक अधिसूचना प्रकाशित की गई

थी। विज्ञापन के तहत, एमएस और एमडी पाठ्यक्रमों में उम्मीदवारों के चयन में, संबंधित स्ट्रीम में 'डिप्लोमा' रखने वाले उम्मीदवारों को 10% अंकों का वेटेज दिया जाना था। अपीलकर्ताओं के पास नेत्र विज्ञान में डिप्लोमा था, लेकिन उन्हें इस आधार पर 10% अंकों के लाभ से वंचित कर दिया गया कि उन्होंने आवेदन पत्र के साथ डिप्लोमा प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को राहत देने से इनकार कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय की राय से सहमत नहीं था और उसने माना कि आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि पर या उससे पहले आवश्यक योग्यता का होना अनिवार्य है, लेकिन इसका प्रमाण गौण है, क्योंकि ऐसा प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का उद्देश्य योग्यता का तत्काल प्रमाण प्राप्त होना है। पैराग्राफ 20 से 23 नीचे प्रस्तुत किए गए हैं: -

"20. डिप्लोमा धारकों के लिए 10 अंक जोड़ना अनुचित या मनमाना नहीं है। लेकिन इन अतिरिक्त 10 अंकों को अर्जित करने के लिए, डिप्लोमा कम से कम आवेदन की अंतिम तिथि को या उससे पहले प्राप्त किया जाना चाहिए, बाद में नहीं। डिप्लोमा प्राप्त करने का प्रमाण इसे प्राप्त करने के तथ्य से अलग है। क्या उम्मीदवार ने वास्तव में डिग्री कोर्स में प्रवेश के लिए आवेदन की अंतिम तिथि से पहले डिप्लोमा प्राप्त किया है? यह प्राथमिक प्रश्न है। आवेदन के साथ डिप्लोमा का प्रमाण प्रस्तुत करना समझदारी है, लेकिन यह गौण है। पहले पर तिथि की छूट अवैध है, दूसरे पर नहीं। डिप्लोमा के माध्यम से शैक्षणिक उत्कृष्टता, जिसके लिए अतिरिक्त अंक दिए जाते हैं, को नकारा नहीं जा सकता केवल इसलिए कि प्रमाण बाद में, लेकिन वास्तविक चयन की तिथि से पहले, प्रस्तुत किया गया है। जोर डिप्लोमा पर है; इसका प्रमाण डिप्लोमा होने के तथ्य का सहायक है और यह एक स्वतंत्र कारक नहीं है। प्रॉस्पेक्टस में कहा गया है:

(4) (बी) संबंधित विषयों या उप-विशेषताओं में एमएस और एमडी पाठ्यक्रमों के लिए उम्मीदवारों के चयन में डिप्लोमा धारकों को 10%।

13. प्रमाण पत्र जो प्रस्तुत करना होगा:- सभी मामलों में निम्नलिखित दस्तावेजों की सत्य प्रतियां प्रस्तुत करनी होंगी:-

(के) आवेदन के साथ आवश्यक कोई अन्य प्रमाण पत्र।

इस संयुक्त कथन को औपचारिक रूप से नहीं पढ़ा जा सकता। प्रमाण का तरीका प्रश्नगत योग्यता के लक्ष्य के अनुरूप है। दोनों को दूरबीन से देखना और समय के संदर्भ में दोनों को अनिवार्य बनाना, निर्धारण की सही व्याख्या और यथार्थवादी व्याख्या को बाधित करता है। जो आवश्यक है वह है दी गई तिथि से पहले डिप्लोमा का होना; जो सहायक है वह है योग्यता के प्रमाण का सुरक्षित तरीका। तथ्य और उसके प्रमाण के बीच भ्रमित होना

अस्पष्टत सूक्ष्मदर्शिता है। आवेदन की अंतिम तिथि से पहले अतिरिक्त योग्यता प्राप्त करने की तिथि को अनिवार्य बनाना समझ में आता है। लेकिन यदि यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि योग्यता प्रासंगिक तिथि से पहले अर्जित की गई है, जैसा कि यहां मामला है, तो इस योग्यता कारक को अमान्य करना, क्योंकि सबूत, हालांकि निस्संदेह, कुछ दिनों बाद लेकिन चयन से पहले या प्रॉस्पेक्टस में उल्लिखित तरीके से नहीं, लेकिन फिर भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया था, प्रक्रिया को सेवक नहीं बल्कि स्वामिनी बनाना है और रूप को पदार्थ के अधीन नहीं बल्कि सार से बेहतर बनाना है।

21. चयन समिति किसी उम्मीदवार को निर्धारित आधार पर विशेष अंक देने से पहले खुद से यह प्राथमिक प्रश्न पूछती है: क्या उसके पास अपेक्षित योग्यता है? यदि है, तो अंक अवश्य जोड़े जाने चाहिए। योग्यता साबित करने का तरीका बताया गया है और उसे सामान्य रूप से अपनाया जाना चाहिए। लेकिन, यदि उम्मीदवार दृढ़तापूर्वक आधार स्थापित करता है, भले ही निर्दिष्ट तरीके से भिन्न तरीके से, तो उसे लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता। साधन द्वारा साध्य को कमतर नहीं किया जा सकता। निर्विवाद लेकिन अपरंपरागत जांच प्रक्रिया के चयन से वास्तविक उत्कृष्टता को नष्ट नहीं किया जा सकता। जहां मानवीय न्याय दांव पर है, वहां समानता को बारीकियों पर हावी होना चाहिए।

22. वर्तमान मामला न्यायिक सफलता के लिए यथार्थवाद से जूझ रहे नामवाद का एक बेहतरीन उदाहरण है। दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं कि हमारे समक्ष आये अपीलकर्ताओं ने डिप्लोमा प्राप्त किया था। वे आगे स्वीकार करते हैं (बाहरी लोगों के लिए 2% की दलील को एक पल के लिए अनदेखा करते हुए) कि यदि डिप्लोमा अंक जोड़े जाते हैं, तो आवेदक, अंकों के माप से, चयनित होने के हकदार हैं, बशर्ते कि 1979 में आयोजित परीक्षा में प्राप्त डिप्लोमा समय के भीतर हो। फिर, उच्च न्यायालय ने उनके चयन को क्यों रद्द कर दिया? क्योंकि डिप्लोमा के प्रमाण पत्र आवेदनों के साथ संलग्न नहीं किए गए थे और विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा चयन समिति को किया गया संचार प्रमाण का एक अनधिकृत तरीका था, जो विवरणिका से इतर था, हालांकि तथ्य में प्रामाणिक था। दो दोष इस मौखिक रूप से नेक दृष्टिकोण को खराब करते हैं। सच है, विवरणिका निर्देश देती है कि प्रवेश के लिए आवेदन के साथ प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए जाने चाहिए। उद्देश्य स्पष्ट रूप से योग्यता का तत्काल प्रमाण होना है।

23. हम जानते हैं कि जब कोई कानून सार्वजनिक शक्ति प्रदान करता है और उस शक्ति के प्रयोग के तरीके को

निर्धारित करता है तो कानून केवल उसी प्रयोग के तरीके पर जोर देता है। हम यहां उस नियम से बेपरवाह हैं। किसी योग्यता के होने को साबित करने के लिए सुविधा का एक तरीका मात्र निर्देशिका है। इसके अलावा, विवरणिका स्वयं सरकार को विधि को संशोधित करने की अनुमति देती है, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इंगित किया है। इस दृष्टिकोण से, हम न तो चयन समिति को दिए गए सरकारी निर्देश, न ही विश्वविद्यालय द्वारा चयन समिति को किये गए संचार, और यहां तक कि डिप्लोमा पर विचार करने और डिप्लोमा का श्रेय देने, हालांकि डिप्लोमा की प्रामाणिक प्रतियां प्रवेश के आवेदन के साथ संलग्न नहीं की गई थीं, में भी कुछ भी आपत्तिजनक नहीं देखते हैं। यदि मामले के सार को मात्र औपचारिकता और प्रक्रियाओं संबंधी निर्देशों के लिए बलिदान कर दिया जाए तो बेतुके परिणामों के सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं।"

32. उपरोक्त मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि या ब्रोशर या विज्ञापन में दी गई कट-ऑफ तिथि को या उससे पहले उम्मीदवार के पास आवश्यक योग्यता का होना अनिवार्य है, और इसमें कोई विचलन नहीं हो सकता है। हालांकि, न्याय के उद्देश्यों के लिए, विज्ञापन में कट-ऑफ तिथि से पहले योग्यता रखने का प्रमाण प्रस्तुत करने के मामले में कठोर सिद्धांतों को लागू करना उचित नहीं होगा क्योंकि यह प्रक्रिया के क्षेत्र से संबंधित है और जहां मानवीय न्याय दांव पर है, वहां समानता तकनीकी बारीकियों पर हावी हो जाएगी।

33. अब वर्तमान मामले में, आयोग इस तथ्य पर विवाद नहीं करता है कि याचिकाकर्ता के पास अनुभव के लिए अतिरिक्त अंक प्राप्त करने के लिए अपेक्षित अनुभव था, हालांकि, उसे केवल इस आधार पर उक्त लाभ से वंचित किया गया है कि उसने आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पहले आवेदन पत्र के साथ सही अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। दिनांक 09.11.2021 का अनुभव प्रमाण पत्र मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा जारी किया गया था। दिनांक 09.11.2021 के प्रमाण पत्र में जो गलती हुई थी, वह पूरी तरह से मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर की गलती के कारण थी, जिसे बाद में उनके द्वारा दिनांक 30.08.2022 को एक नया प्रमाण पत्र जारी करके ठीक किया गया था।

34. आयोग ने भी दिनांक 04.01.2022 को पहली चयन सूची घोषित करते समय उक्त गलती पर ध्यान नहीं दिया, जिसमें याचिकाकर्ता को चयनित दिखाया गया था। रिट-ए संख्या 1815/2022 में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांक 26.04.2022 के अनुपालन में अनुभव प्रमाण पत्र की पुनः जांच करने पर ही याचिकाकर्ता का अनुभव प्रमाण पत्र दोषपूर्ण पाया गया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को 23.08.2022 को प्रकाशित चयन सूची से बाहर कर दिया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, रामपुर द्वारा जारी सही अनुभव प्रमाण पत्र

अभ्यावेदन के साथ प्रस्तुत किया, लेकिन समय पर अनुभव प्रमाण पत्र प्रस्तुत न करने के आधार पर उसका अभ्यावेदन खारिज कर दिया गया।

35. इस स्तर पर, सामान्य निर्देशों की शर्त संख्या 4 का संदर्भ देना भी उचित होगा, जो इस प्रकार है:-

> *"4. आयोग उम्मीदवारों को उनकी पात्रता के बारे में सलाह नहीं देता है। इसलिए,उन्हें विज्ञापन को ध्यान से पढ़ना चाहिए और जब वे विज्ञापन की शर्तों के अनुसार अपनी पात्रता के बारे में संतुष्ट हों, तभी आवेदन करें। <u>उम्मीदवारों के पास आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि तक सभी अपेक्षित योग्यताएँ होनी चाहिए।</u>"*

36. इस प्रकार, सामान्य निर्देशों की शर्त संख्या 4 के अनुसार, उम्मीदवार के पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि तक आवश्यक योग्यताएँ होनी चाहिए। वर्तमान मामले में, यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि से पहले आवश्यक अनिवार्य योग्यताएँ थीं।

37. आयोग के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि विज्ञापन के महत्वपूर्ण निर्देशों के खंड 10 के तहत आयोग ने चयन के किसी भी चरण में किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द करने का अधिकार सुरक्षित रखा है, यदि यह पाया जाता है कि उम्मीदवार योग्य नहीं है। विज्ञापन के महत्वपूर्ण निर्देशों के खंड 10 में इस प्रकार लिखा है:-

> *"10. आयोग आवेदनों की संक्षिप्त जांच के बाद उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से स्वीकार कर सकता है, लेकिन यदि किसी भी चरण में यह पाया जाता है कि आवेदक योग्य नहीं था या उसका आवेदन अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए था या शुरू में विचारणीय था, तो उसकी उम्मीदवारी अस्वीकार कर दी जाएगी और यदि उम्मीदवार का चयन हो जाता है, तो नियुक्ति के लिए आयोग की सिफारिश वापस ले ली जाएगी।"*

38. इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के चयन को रद्द करने में कोई अवैधता नहीं है।

39. इसमें कोई संदेह नहीं है कि विज्ञापन के महत्वपूर्ण निर्देशों के खंड 10 के अंतर्गत आयोग के पास चयन के किसी भी स्तर पर किसी अभ्यर्थी की उम्मीदवारी या चयन को रद्द या अस्वीकृत करने की शक्ति है और यदि अभ्यर्थी का चयन हो गया है और उसकी नियुक्ति हो गई है तो आयोग सिफारिश वापस ले सकता है, लेकिन आयोग को ऐसी शक्ति का प्रयोग न्यायिक, उचित और कानून के ठोस

सिद्धांतों के आधार पर करना चाहिए न कि मनमाने तरीके से।

40. अब **गौरव शर्मा (सुप्रा)** के मामले जिसका आश्रय प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने लिया है, में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर आते हुए, यह न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जिसमें याचिकाकर्ता (गौरव शर्मा) ने विज्ञापन के तहत आवश्यक जाति प्रमाण पत्र से बिल्कुल अलग जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था। इसके बाद, उन्होंने विज्ञापन के तहत आवश्यकता के अनुसार प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया। उनकी उम्मीदवारी इस आधार पर खारिज कर दी गई कि उन्होंने आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि के बाद जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विज्ञापन के पैराग्राफ 5.4(10) पर गौर किया और पाया कि विज्ञापन में एक नकारात्मक प्रावधान है, जो स्पष्ट रूप से आरक्षण का लाभ चाहने वाले सभी उम्मीदवारों को यह नोटिस देता है कि यदि मूल जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो यह माना जाएगा कि वे आरक्षण का लाभ नहीं मांगते हैं और परिणामस्वरूप आरक्षण के लिए उनका दावा खारिज कर दिया जाएगा। उक्त खंड में यह भी प्रावधान था कि किसी भी उम्मीदवार को किसी भी संशोधन या बदलाव की मांग करने का कोई और अवसर नहीं दिया जाएगा। पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि यदि कोई उम्मीदवार ओबीसी कोटे के तहत आरक्षण का लाभ ले रहा है तो ऐसे प्रमाण पत्र जारी करने की तारीख महत्वपूर्ण है क्योंकि ओबीसी उम्मीदवार को आवश्यक रूप से दो शर्तें स्थापित करनी होंगी; कि वह राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त ओबीसी समूह से संबंधित है और यह भी कि वह क्रीमी लेयर में नहीं आता है। इन आवश्यकताओं को विज्ञापन में निर्धारित तिथि के संदर्भ में आंका जा सकता है।

41. उपर्युक्त के अलावा, ***राम कुमार गिजरोया बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड और अन्य 2016 (4) एससीसी 754*** के मामले में पूर्ण पीठ ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को इस आधार पर अलग किया कि उक्त मामले में विज्ञापन में कट-ऑफ तारीख निर्धारित ही नहीं की गई थी। ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में और विज्ञापन में खंड 5.4 (10) में निहित नकारात्मक शर्त की व्याख्या करने के बाद, इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि विज्ञापन में निर्धारित तिथि के बाद प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र स्वीकार नहीं किया जा सकता है और उम्मीदवार की उम्मीदवारी खारिज किये जाने योग्य है।

42. **गौरव शर्मा (सुप्रा)** के मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से मेल नहीं खाते हैं। एक और तथ्य जो **गौरव शर्मा (सुप्रा)** के मामले को वर्तमान मामले से अलग करता है, वह यह है कि वर्तमान मामले में, एक अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 प्रकाशित की गई थी, जिसमें सामान्य, ईडब्ल्यूएस, ओबीसी कोटे से संबंधित उम्मीदवार जिन्होंने लिखित परीक्षा में 25 अंक प्राप्त किए हैं और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित उम्मीदवार, जिन्होंने लिखित परीक्षा में 20 अंक प्राप्त किए हैं, से कहा गया था कि उन्हें अपना पूरा आवेदन पत्र 18.11.2021 को शाम 5:00

बजे तक जमा करना है। अधिसूचना दिनांक 03.11.2021 इस प्रकार है:-

"कार्यालय उ०प्र० लोक सेवा आयोग

संख्या-807(1)/07/एस-6/2019-20 टी०सी०

प्रयागराज, दिनांक-03 नवम्बर, 2021

विज्ञप्ति

उ०प्र० लोक सेवा आयोग, प्रयागराज द्वारा विज्ञापन संख्या-ए-4/ई-1/2021 के अन्तर्गत दिनांक-03.10.2021 को आयोजित स्टाफ नर्स / सिस्टर ग्रेड-2 (पुरुष / महिला) परीक्षा- 2021 में सम्मिलित सामान्य, ई०डब्लू०एस० व अन्य पिछड़ा वर्ग के ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने उक्त लिखित परीक्षा (कुल-85 अंक) में 25 अंक व उससे अधिक एवं अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति श्रेणी के ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने 20 अंक व उससे अधिक अंक प्राप्त किए है की सूची आयोग के वेबसाइट https://uppsc.up.nic.in पर उपलब्ध है।

2-सूची में सम्मिलित समस्त अभ्यर्थियों को निर्देशित किया जाता है कि वे आवेदन पत्र पूर्णरूप से भरकर समस्त अभिलेखों सहित अंतिम तिथि दिनांक 18 नवम्बर, 2021 अपराह्नन 5.00 बजे तक आयोग कार्यालय में जमा करना सुनिश्चित करें। अंतिम तिथि के बाद प्राप्त आवेदन पत्र किसी भी दशा में स्वीकार नहीं किये जायेगें। इस संबंध में कोई प्रत्यावेदन विचारणीय नहीं होगा।"

43. बाद में, एक संशोधित अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 जारी कर आवेदन पत्र जमा करने की अवधि को 22.11.2021 तक बढ़ा दिया गया। अधिसूचना दिनांक 15.11.2021 का प्रासंगिक उद्धरण, जैसा कि निर्देश में उल्लेख किया गया है, यहां नीचे प्रस्तुत किया गया है:-

"ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने प्रथम चरण (ऑनलाइन प्रक्रिया) पूर्ण किये बिना केवल समस्त अभिलेख आयोग कार्यालय में प्रेषित किये है, ऐसे प्रकरणों पर कोई भी कार्यवाही नहीं की जायेगी। उपरोक्त वर्णित संशोधित तिथियां अन्तिम रूप से बढ़ाई जा रही है। संशोधित अन्तिम तिथि के पश्चात प्राप्त किसी भी आवेदन पर कोई भी कार्यवाही नहीं की जाएगी।"

44. उपर्युक्त दोनों अधिसूचनाओं को पढ़ने से पता चलता है कि एक उम्मीदवार को अपना पूरा आवेदन पत्र उपरोक्त अधिसूचनाओं दिनांक 03.11.2021 और 15.11.2021 में निर्धारित समय के भीतर जमा करना होगा। आयोग के विद्वान अधिवक्ता विज्ञापन में कोई नकारात्मक शर्त नहीं रख सके, जैसा कि **गौरव शर्मा** के मामले में था, जिससे याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को खारिज करने का औचित्य सिद्ध हो सके। इस प्रकार, उक्त निर्णय प्रतिवादी- आयोग के लिए किसी प्रकार से मददगार नहीं है।

45. यह भी ध्यान देने योग्य है कि **राम कुमार गिजरोया (सुप्रा)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में स्पष्ट किया गया कानून का सिद्धांत, जिसे **गौरव शर्मा (सुप्रा)** के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा प्रतिष्ठित किया गया था, उसे **करण सिंह यादव बनाम दिल्ली एन सी टी सरकार और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1341** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों द्वारा फिर से दोहराया गया है।

46. इसी तरह, **राजेंद्र पटेल (सुप्रा)** का मामला भी प्रतिवादियों के लिए मददगार नहीं है क्योंकि यह ऐसा मामला था जिसमें विवाद यह था कि ऑनलाइन आवेदन पत्र की हार्ड कॉपी जमा करना अनिवार्य था या नहीं। पूर्ण पीठ ने विज्ञापन में दी गई शर्तों और इस तथ्य पर गौर करने के बाद कि अगर किसी उम्मीदवार को किसी भी समय हार्ड कॉपी जमा करने की अनुमति दी जाती है, तो इससे चयन प्रक्रिया बाधित होगी और आयोग द्वारा संचालित प्रक्रिया अनिश्चितता के परिधीय चरण में आ जाएगी। नतीजतन, यह माना गया कि ऐसी आवश्यकता अनिवार्य है।

47. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निर्णय में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों को लागू करते हुए, कि विज्ञापन में निर्धारित अंतिम तिथि के पूर्व आवश्यक योग्यता रखना अनिवार्य है, और योग्यता का प्रमाण सहायक है, और यह कि वर्तमान मामले के तथ्य **भारतीय खाद्य निगम (सुप्रा)** के मामले के तथ्यों के लगभग समान हैं, जहां मूल रिट याचिकाकर्ता ने आवेदन के साथ अनुभव प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया था, किंतु उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया था, और खंडपीठ ने पाया कि मूल रिट याचिकाकर्ता के पास आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि के पूर्व आवश्यक योग्यता थी, इस प्रकार मूल रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को खारिज करने के भारतीय खाद्य निगम के कदम को खारिज कर दिया गया, उपरोक्त कारणों से यह न्यायालय इस विचार का है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को खारिज करना वर्तमान मामले के तथ्यों में प्रतिवादी द्वारा शक्ति का मनमाना प्रयोग है। परिणामस्वरूप, विज्ञापन के महत्वपूर्ण निर्देशों के खंड 10 पर आधारित आयोग के विद्वान अधिवक्ता की दलील, जो आयोग को किसी उम्मीदवार की उम्मीदवारी रद्द करने या नियुक्ति के लिए सिफारिश वापस लेने की शक्ति देती है, वर्तमान मामले के तथ्यों में टिकने योग्य नहीं है क्योंकि इस न्यायालय ने माना है कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज करने में आयोग की कार्रवाई शक्ति का मनमाना प्रयोग है।

48. इस प्रकार, ऊपर दिए गए कारणों से, यह न्यायालय इस विचार का है कि सचिव, लोक सेवा आयोग, प्रयागराज द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 16.11.2022 को कानून की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा

सकता है और इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। इसके अलावा, प्रतिवादी संख्या 4 को अनुभव प्रमाण पत्र का लाभ देने और अन्य सभी शर्तें पूरी होने पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार करने का निर्देश जारी किया जाता है।

49. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **स्वीकार की जाती है**। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 350

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट ए संख्या 44003 वर्ष 2016

श्री कृष्ण मिश्रा ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारतीय जीवन बीमा निगम, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

श्री पी.के. सिंघल, श्री विनय कुमार मिश्रा, श्री विशेष राजवंशी

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

श्री मनीष गोयल, श्री प्रमोद कुमार दुबे, श्री संजीत सिंह, श्री संजीव सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून - भारतीय जीवन बीमा निगम (कर्मचारी) विनियमन, 1960 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 और 226 - याचिकाकर्ता, जो एलआईसी में प्रथम श्रेणी का अधिकारी है, को कथित तौर पर बिना उचित सत्यापन के दो पॉलिसियों के अंतर्गत परिपक्वता दावों को स्वीकृति देने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ा। आरोपों में विभिन्न शाखाओं के अभिकर्ताओं द्वारा ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांधपत्रों का अनुचित निष्पादन, पॉलिसीधारकों के हस्ताक्षरों में अंतर और समय से पहले दावा वितरण शामिल था, जिससे कथित तौर पर एलआईसी को वित्तीय नुकसान हुआ। जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को अधिकांश आरोपों से मुक्त कर दिया, कपट या हानि का साक्ष्य नहीं पाया, लेकिन मूल पॉलिसी बंधपत्र की अनुपस्थिति के कारण आरोप 1-ए को आंशिक रूप से वैध माना। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने असहमति जताई, दंड लगाया (वेतनमान में कमी और 50,508 रुपये की वसूली), और अपीलीय प्राधिकारी ने इसे समर्थित रखा। याचिकाकर्ता ने इन आदेशों को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत चुनौती दी।

अभिनिर्धारित हुआ: एलआईसी के साथ कपट या वित्तीय हानि का कोई साक्ष्य नहीं। ज़मानतदारों या साक्षियों का उसी शाखा से होना अनिवार्य करने का कोई नियम नहीं। पॉलिसीधारकों की ओर से शिकायतों का अभाव। अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी के निष्कर्षों का खंडन करने के लिए ठोस कारण या साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहे। मूल पॉलिसी बंधपत्र के आभाव का आरोप

अप्रासंगिक था क्योंकि यह आरोपपत्र का हिस्सा नहीं था। चूँकि याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुका था, इसलिए प्रतिप्रेषण अनावश्यक माना गया। याचिकाकर्ता समान वेतन ग्रेड में पुनर्स्थापना, बकाया राशि और वसूली गई राशि की वापसी का हकदार था। रिट याचिका स्वीकार की गई; आदेश रद्द किए गए; परिणामी लाभ प्रदान किए गए।

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>वादविधि जिनकी चर्चा की गई:</u>

1. बी.सी.चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995) 6 एससीसी 749

2. भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल, एआईआर 1964 एससी 364

3. प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर, (1993) 4 एससीसी 727

4. भारत संघ बनाम सुब्रत नाथ, विशेष अनुमति अपील संख्या 3524-25 वर्ष 2022 (23.11.2022 को निर्णीत)

5. राम कृष्ण उर्फ राम कृष्ण यादव बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन और अन्य (2023) 8 आईएलआरए 61055

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विशेष राजवंशी और प्रतिवादी संख्या 1,2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री पी. के. दुबे को सुना।

2. याचिकाकर्ता जो प्रतिवादी जीवन बीमा निगम (बाद में "निगम" के रूप में संदर्भित) के साथ प्रथम श्रेणी अधिकारी के रूप में काम कर रहा था और जिला शाखा कार्यालय, कानपुर में वरिष्ठ शाखा प्रबंधक के पद पर तैनात था, जो जगदीप कुमार आनंद के पक्ष में पुलिस संख्या 058472150 के तहत परिपक्वता दावे के भुगतान और प्रदीप कुमार अग्रवाल के पक्ष में योजना संख्या 058472329 के तहत परिपक्वता दावे के भुगतान के मामले में अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन था।

3. जगदीप कुमार आनंद को किए गए भुगतान के संबंध में याचिकाकर्ता को जारी आरोप पत्र इस आशय का था कि जमानत प्रपत्र जिसके अधीन भुगतान समझौता किया गया था, किसी अन्य शाखा के अभिकर्ता श्री पी. के. गौतम द्वारा हस्ताक्षरित थे और क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर किसी अन्य शाखा के अभिकर्ता श्री एस.सी. तिवारी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। इसके अलावा इन दोनों दस्तावेजों के गवाह कानपुर के पशु चिकित्सा अधिकारी डॉ. आर. के. गुप्ता थे। चूंकि भुगतान सी.बी.ओ. 4 (निगम का कानपुर शाखा कार्यालय) द्वारा जारी किया गया था, इसलिए यह मुद्दा उठाया गया कि परिपक्वता के लाभार्थी का प्रतिरूपण किया गया।

4. आरोप का एक और नतीजा यह था कि रसीद पर जगदीप कुमार आनंद के हस्ताक्षर

प्रस्ताव प्रपत्र पर किए गए हस्ताक्षरों से भिन्न थे।

5. दूसरा आरोप यह था कि वरिष्ठ शाखा प्रबंधक के रूप में काम करते समय याचिकाकर्ता श्री जगदीप कुमार आनंद के पक्ष में दिनांक 6.3.2006 के चेक के माध्यम से 64,975/- रुपये की परिपक्वता राशि के भुगतान को मंजूरी देने से पहले योजना धारक के दावे की प्रामाणिकता को सत्यापित करने में विफल रहा और इस प्रकार उक्त राशि के नकदीकरण से निगम को वित्तीय हानि हुई।

6. तीसरा आरोप भी श्री पी. के. अग्रवाल के पक्ष में दिनांक 1.6.2006 को चेक जारी करके 57,700/- रुपये के परिपक्वता दावे के भुगतान के संबंध में समान प्रकृति का था। यहां इस आरोप में मुद्दा यह था कि योजना धारक द्वारा योजना बांड और डिस्चार्ज वाउचर 16.06.2006 को ही जमा किए गए थे, जबकि क्लेम वाउचर 28 मार्च 2006 को जारी किया गया था, जो भुनाया गया था। चेक 31 मार्च, 2006 को जारी किया गया था, जिसे 2 मई, 2006 को भुनाया गया था। इस प्रकार, वास्तव में, आरोप प्रतिरूपित हो गया और निगम को धोखाधड़ी हुई और 57,700/- रुपये की वित्तीय हानि हुई।

7. याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत किया। आरोप संख्या 1 के संबंध में, उन्होंने कहा कि ज़मानत पर श्री पी. के. गौतम द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जो सीबीओ 9 में पंजीकृत अधिकृत एजेंसी कोड संख्या 67/23एस के साथ सीएम क्लब के सदस्य थे और एक अभिकर्ता के रूप में 30,000/- मासिक आय की मजबूत वितीय सहायता प्राप्त थी, मात्र 64,975/- रुपये के दावे पर उनके पास 20,00,00/- रुपये मूल्य का स्वतंत्र घर और कार थी। जमानतदारों की गवाही एक सम्मानित नागरिक आर. के गुप्ता, जो कि कानपुर में पशु चिकित्सा अधिकारी हैं, ने की थी। अधिकारी ने स्वीकार किया कि क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर श्री एस.सी. तिवारी, एक अन्य सीएम क्लब सदस्य द्वारा देखे गए थे, जिसका अधिकृत एजेंसी कोड संख्या 05901/232 सीबीओ 1 में पंजीकृत था और आरोप यह था कि ये दोनों अभिकर्ता सीबीओ-4 से संबंधित नहीं थे, यह कायम रखने योग्य नहीं था क्योंकि ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी कि ऐसी ज़मानत दाखिल की जाए और इसलिए क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर भी उसी शाखा के अभिकर्ता द्वारा देखे जाएं। उन्होंने उस संबंध में दावा नियमावली और निगम के अन्य निर्देशों का हवाला दिया, और इसलिए, दलील दी कि आरोप बिल्कुल गलत था। उन्होंने दावा दस्तावेज और प्रस्ताव प्रपत्र पर जगदीप कुमार आनंद के हस्ताक्षरों में अंतर के संबंध में सुरक्षा को मंजूरी देते समय सुरक्षा लेने का दावा किया था। उन्होंने दावा किया कि उनकी आंखों के अनुसार हस्ताक्षर एक जैसे प्रतीत होते हैं और नग्न आंखों से भी ऐसे ही दिखाई देंगे। उन्होंने दलील दी कि 2006 के महीने में, जैसा कि उनका दावा है, उन्होंने 800 से अधिक परिपक्वताओं का निपटान किया था, और इसलिए, शाखा से संबंधित नहीं होने वाले दो सीएम क्लब सदस्यों की भागीदारी ने उन्हें दावे की शुद्धता के बारे में संदेह करने का कोई कारण नहीं दिया।

8. उन्होंने दूसरे आरोप को उसी कारण से खारिज कर दिया क्योंकि दूसरा आरोप पहले आरोप की अगली कड़ी था और इस प्रकार प्रस्तुत किया गया कि निगम को कोई वित्तीय हानि होने का कोई सवाल ही नहीं है। उन्होंने अपने जवाब में कहा कि दस्तावेजों में योजना धारक का सही पता था क्योंकि बांड और दावा प्रपत्र दोनों एक ही थे और दावे का चेक भी उसी पते पर भेजा गया था। उन्होंने यह भी खुलासा किया कि बाद में उन्हें पता चला कि चेक सीबीओ-4 के ही एक उप कर्मचारी श्री वी. के. पांडेय द्वारा प्राप्त किया गया था, और इसलिए, चेक के दुरुपयोग या दुरुपयोग की कोई भी जिम्मेदारी वी. के. पांडेय की होगी, न कि याचिकाकर्ता की।.

9. आरोप संख्या 3 के संबंध में, याचिकाकर्ता ने दावा किया कि पूरे कागजात पहले अधिकारी द्वारा सत्यापित किए गए थे और फिर श्री पी. के. अग्रवाल के दावे के संबंध में उनके सामने रखे गए थे। उन्होंने कहा कि यह दावा विभाग का प्राथमिक कर्तव्य था कि वह उन सभी कागजात की जांच करे और फिर उसे पारित करने के लिए वरिष्ठ शाखा प्रबंधक को अग्रेषित करे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वास्तव में सभी दस्तावेजों के साथ कागजात उनके सामने रखे गए थे और इसके बाद ही उन्होंने भुगतान को मंजूरी दी थी। 57,700/- रूपये का चेक अनुमोदन उपरांत लेखा विभाग द्वारा तैयार कर प्रेषण हेतु भेजा गया। उन्होंने दावा किया कि यह चेक सीबीओ-4 के कोड 9025 वाले विकास अधिकारी श्री उदय नारायण सिंह चौहान, एक तीसरे पक्ष द्वारा प्राप्त किया गया था और उन्होंने प्रेषण रजिस्टर पर रसीद के समर्थन में अपने हस्ताक्षर किए थे। भुगतान के लिए चेक के दुरुपयोग का कोई भी उपयोग यदि किसी तीसरे पक्ष द्वारा किया जाता है तो वह वास्तविक दावेदार केवल श्री उदय नारायण सिंह चौहान से जांच का प्रश्न होगा, न कि याचिकाकर्ता से। जांच अधिकारी श्री अनुप कुमार अग्रवाल ने जांच की और जो जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, उसमें उन्होंने याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 1-बी, 2 और 3 से बरी कर दिया था, क्योंकि उन्हें साबित नहीं किया गया था, इसलिए वास्तविक दावेदार श्री जगदीप कुमार आनंद और श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के भुगतान के संबंध में आरोप साबित नहीं हुआ था और इसलिए निगम को कोई वित्तीय हानि नहीं हुई।

10. आरोप संख्या 1-ए के संबंध में, जो इस तथ्य के संबंध में था कि जमानतदार उसी शाखा का नहीं था और इसलिए गवाह भी उसी शाखा का अभिकर्ता नहीं था जहां से योजना दावा वितरित किया जाना था, हालांकि जांच अधिकारी विभाग के इस रुख से सहमत नहीं थे कि अभिकर्ता उसी शाखा का होना चाहिए जहां से भुगतान जारी किया गया था लेकिन उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि, यदि मूल योजना बांड वहां होता, तो ज़मानत पत्र जमा करने की आवश्यकता नहीं होती, और इसलिए, उन्होंने दावा किया कि मूल योजना बांड के बिना परिपक्वता दावे पर भुगतान किया गया था। कुछ हद तक निष्कर्षों ने योजना बांड की अनुपस्थिति में भी दावे के वितरण पर सवाल उठाया।

11. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप संख्या 1-ए के संबंध में जांच अधिकारी की रिपोर्ट से सहमति व्यक्त करते हुए, यह आरोप संख्या 1-बी, 2 और 3 के संबंध में जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत था और माना कि दस्तावेजों और रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों के अवलोकन से, आरोप स्थापित हो गए। और तदनुसार, याचिकाकर्ता को विनियम 39 (1) (डी) विनियम 39 (1)) (सी) भारतीय जीवन बीमा निगम कर्मचारी विनियमन, 1960 के संदर्भ में उसके कैडर पर लागू समयमान वेतनमान में एक चरण की कमी करने और 50,508/- रुपये की वसूली के प्रस्तावित दंड के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस पर अपना जवाब प्रस्तुत किया और आरोप पत्र के जवाब में पहले ही अपनाए गए रुख को दोहराया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जवाब से खुद को संतुष्ट नहीं पाया और 25 जनवरी, 2016 के आदेश के तहत प्रस्तावित जुर्माना लगाया। याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष उक्त आदेश के खिलाफ असफल अपील की क्योंकि उसकी अपील भी 2 अगस्त, 2016 के आदेश के तहत खारिज कर दी गई थी और इसलिए यह याचिका दायर की गई।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील यह है कि एक बार जांच अधिकारी ने एक निष्कर्ष दिया था कि आरोप 1-बी, 2 और 3 साबित नहीं हुए थे, लेकिन उन सामग्रियों और दस्तावेजों पर भरोसा करना और उन पर चर्चा करना जरूरी था जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होने के लिए मजबूर करते थे लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने ऐसा नहीं किया और केवल तथ्यों का हवाला देकर याचिकाकर्ता को उन आरोपों के लिए दोषी ठहराते हुए आरोप स्थापित कर दिया, इसलिए, यह निष्कर्ष विकृत होने के लिए उत्तरदायी है।

13. अपने उपरोक्त तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आरोप पत्र में जिन सभी दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है वे जांच अधिकारी से बहुत पहले के थे और विभागीय अभिकर्ता/अधिकारी जिन्होंने आरोप के समर्थन में जांच अधिकारी के समक्ष गवाही दी थी, वे पहले तो यह स्थापित नहीं कर सके कि जमानत और क्षतिपूर्ति बांड नकली जमानत थे और नोटरीकृत क्षतिपूर्ति बांड नकली थे या अधिकृत अभिकर्ता उन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाली एक अलग शाखा के हो सकते हैं क्योंकि ज़मानत गवाह अधिकृत अभिकर्ता नहीं थे, न ही यह किसी विशेष श्रेणी के व्यक्ति को क्षतिपूर्ति बांड का ज़मानत और गवाह बनाने के लिए किसी नियम या मैनुअल का हवाला दे सकता है और उन्हें उसी शाखा से संबंधित होना भी आवश्यक है। उन्होंने तर्क दिया कि सीएम क्लब की सदस्यता सभी के लिए समान है और केवल पंजीकृत और अधिकृत अभिकर्ता ही सदस्य हैं। उन्होंने आगे कहा कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 1-ए के लिए दोषी ठहराते हुए केवल यह कारण बताया कि मूल रूप से योजना बांड उपलब्ध नहीं था और यदि ऐसा होता, तो क्षतिपूर्ति बांड की आवश्यकता नहीं होती।

14.14. उन्होंने तर्क दिया कि आरोप यह नहीं था कि मूल योजना बांड उपलब्ध नहीं था, बल्कि आरोप यह था कि क्षतिपूर्ति बांड पर उन गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे जो दूसरी शाखा से संबंधित थे इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब योजना का कोई दस्तावेज़ जारी नहीं किया गया था, जांच अधिकारी उसके खिलाफ कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था, और ज़मानत, क्षतिपूर्ति बांड के सवाल पर, ऐसे किसी नियम का हवाला नहीं दिया गया था कि ऐसे अभिकर्ता को एक ही शाखा से संबंधित होना चाहिए और इसे जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में ध्यान से देखा है, और इसलिए, वह विभाग के पक्ष में विचार नहीं कर सकते थे।

15. आरोप संख्या 1-बी के संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जांच अधिकारी ने अपने ही विभागीय गवाहों के हस्ताक्षर और स्वीकारोक्ति का मिलान किया था और इस आशय का निष्कर्ष निकाला था कि दो हस्ताक्षरों के हस्ताक्षर की शैली और प्रवाह समान था। जांच अधिकारी ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि योजना बांड और क्षतिपूर्ति बांड के निष्पादन के बीच 21 साल का अंतर था, इसलिए, थोड़ा सा अंतर बाद के हस्ताक्षर को संदिग्ध नहीं बनाएगा। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जहां तक आरोप संख्या 2 का संबंध है, योजना धारक की प्रामाणिकता के संबंध में सत्यापन पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह दावा विभाग था जिसे कागजात अग्रेषित करना था यदि सत्यापन आदि की यह औपचारिकता दावा विभाग द्वारा नहीं की गई होती, तो उसने निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के समक्ष अनुमोदन के लिए फ़ाइल संस्तुति नहीं की होती। तीसरे आरोप के संबंध में यह तर्क दिया गया कि जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि परिपक्वता दावे का भुगतान दस्तावेज़ पी-16 पर किया गया थाजिस पर परिपक्वता भुगतान टिकट लगा हुआ था और विभाग के अधिकारी डिस्पैच फॉर्म उपलब्ध कराने में विफल रहे, जो बैंकों के मामले के अनुसार 16.06.2006 को प्राप्त हुआ थाइसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया, जब बैंक द्वारा जिन महत्वपूर्ण साक्ष्यों पर भरोसा किया गया था, उन्हें जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था, तो जांच अधिकारी याचिकाकर्ता को आरोप के लिए दोषी ठहराने के लिए प्रस्तुत नहीं किए गए ऐसे किसी भी दस्तावेज पर भरोसा नहीं कर सकता था।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इन सभी पहलुओं को प्रथम दृष्टया अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निपटाया जाना आवश्यक था, जबकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट से असहमत होने और याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के प्रथमदृष्टया निष्कर्षों पर नए सिरे से जवाब प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। उन्होंने कहा कि पूरे कारण बताओ नोटिस में आरोप पत्र में कही गई सभी बातों को दोहराया गया है और याचिकाकर्ता को भी लापरवाही का दोषी माना गया है, लेकिन किसी भी दस्तावेज पर चर्चा नहीं की गई है। जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वह जांच अधिकारी की निगाहों से बच गया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी के निष्कर्षों को टालने के लिए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को केवल कार्यवाही के ब्योरे का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि प्रथम दृष्टया

कारणों के साथ विचार करना था कि वह निष्कर्षों को क्यों टाल रहा है।

17. इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह कहकर अपनी दलीलें दी कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी भी विभागीय जीवन बीमा निगम नियमावली या नियमों पर भरोसा नहीं करता है। जिसमें विभिन्न शाखा के अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित जमानत या विभिन्न शाखा के अभिकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति बांड स्वीकार्य नहीं होगा ताकि परिपक्वता दावों को पूरा किया जा सके। हस्ताक्षरों में अंतर के सवाल पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होने के लिए कोई ठोस तर्क नहीं दे सका, विशेष रूप से शैली और प्रवाह से संबंधित जो पहले से ही दोनों हस्ताक्षरों के संबंध में अपने स्वयं के गवाहों द्वारा स्वीकार किया गया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी विभाग के पास उपलब्ध ऐसे किसी दस्तावेज़ का उल्लेख नहीं कर सका जिससे हस्ताक्षर और यदि कोई हो, के बारे में संदेह पैदा हो। यह याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस के साथ उसकी प्रति उपलब्ध कराने में विफल रहा ताकि जहां तक आरोप संख्या 3 का संबंध है, वह निष्कर्षों का बचाव करने में सक्षम हो सके।

18. अपीलीय प्राधिकारी के आदेश की आलोचना करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने दस्तावेजों और रिपोर्ट के बारे में कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज किए बिना अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय की पुष्टि की है, जिसे याचिकाकर्ता को दंडित करने के लिए आरोपों को वापस लाने के लिए पर्याप्त कहा जा सकता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक और तर्क दिया गया है कि, यदि यह योजना धारकों या उनके उत्तराधिकारियों या उत्तराधिकारियों की ओर से शिकायत का मामला था कि परिपक्वता राशि को किसी तीसरे पक्ष द्वारा धोखाधड़ी से भुनाया गया था, निगम के लिए दावे के वितरण पर स्वतः संज्ञान लेते हुए इसे याचिकाकर्ता की ओर से कपटपूर्ण कृत्य मानने का अवसर आया होगा, लेकिन ऐसा नहीं था।

19. उन्होंने आगे तर्क दिया कि अगर परिपक्वता दावा याचिकाकर्ता के पक्ष में जाता, जो शायद इसका हकदार नहीं होता या देय राशि से अधिक राशि का भुगतान किया गया होता तो निगम को नुकसान होता। ऐसी कोई भी स्थिति होने के बावजूद, विभाग याचिकाकर्ता द्वारा धोखाधड़ी वाले भुगतान का मामला बनाने में विफल रहा इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस तथ्य के अलावा कि आरोप साबित नहीं किए जा सके, यहां तक कि सजा भी लगाए गए आरोपों के अनुपात से अधिक थी, निगम को कोई नुकसान नहीं हुआ क्योंकि ऐसी कोई शिकायत नहीं थी इसलिए निगम के लिए घाटा मानना और तदनुसार याचिकाकर्ता को वसूली का दंड देना उचित नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के पूरे सेवा कैरियर में उन्होंने सैकड़ों परिपक्वता दावों को मंजूरी दी है और कभी भी कोई उंगली नहीं उठाई गई। यहां भी परिपक्वता दावा जारी किया गया था, लेकिन तकनीकी कारण से उंगली उठाई गई थी कि ज़मानत बांड पर एक

ऐसे अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे जो शाखा से संबंधित नहीं था और इसलिए क्षतिपूर्ति बांड का गवाह अभिकर्ता शाखा से संबंधित नहीं था। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि अधिक से अधिक, याचिकाकर्ता को निंदा और चेतावनी का दंड दिया जा सकता था और भविष्य में अधिक जिम्मेदार और सावधान रहना चाहिए था। समयमान में एक चरण की कमी की सज़ा बहुत अधिक थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि लापरवाही हुई थी, तो यह जानबूझकर नहीं की गई थी और यदि, उस स्थिति में निगम यह साबित कर सकता था कि विभिन्न शाखा के अभिकर्ता ज़मानत नहीं दे सकते थे, न ही गवाह के रूप में क्षतिपूर्ति बांड पर हस्ताक्षर कर सकते थे, यह अधिक से अधिक अनियमितता और अवैधता पर होता न कि दंडमुक्ति की सीमा तकक्योंकि जिन व्यक्तियों ने ज़मानत के निष्पादक के रूप में और फिर क्षतिपूर्ति बांड के गवाह के रूप में इस पर हस्ताक्षर किए थे, उन्हें निगम के अधिकृत अभिकर्ता होने से इनकार नहीं किया गया था, हालांकि वे उसी शहर में किसी अन्य शाखा से संबंधित थे।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है और लगाए गए आदेश के अनुसार वसूली पहले ही की जा चुकी है।

21. प्रथम दृष्टया प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजीव सिंह का कहना है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच अधिकारी की जांच रिपोर्ट में दिए गए निष्कर्षों से असहमत होने का पूरा अधिकार है और तदनुसार कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है। उनका कहना है कि आरोप संख्या 1-ए,-2 और 3 पर जांच अधिकारी के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध पर्याप्त सामग्री के लिए भी सही नहीं थे। उन्होंने तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जुर्माना लगाने के अपने अंतिम आदेश में उन सभी दस्तावेजों पर चर्चा की और फिर कारण बताए कि वह जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत क्यों थे और याचिकाकर्ता को आरोपों के लिए दोषी ठहराया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही में किसी भी प्रक्रियात्मक दोष का दावा नहीं किया गया हैक्योंकि यह न्यायालय अपने समक्ष उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष पर पहुंच सकता है, इसलिए यह न्यायालय लौटाए गए निष्कर्षों के अलावा अपील में नहीं बैठेगा। उन्होंने तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने मामले के हर पहलू पर विस्तार से विचार किया है और याचिकाकर्ता को आरोपों के लिए सही ढंग से दोषी ठहराया है।

22. याचिकाकर्ता पर लगाए गए जुर्माने के सवाल पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जुर्माना प्रासंगिक नियमों के अनुसार लगाया गया है जो प्राधिकरण को जुर्माना लगाने के लिए अधिकृत करता है और याचिकाकर्ता द्वारा की गई लापरवाही की प्रकृति को काफी गंभीर चूक माना जा सकता है

क्योंकि इसमें योजना के खिलाफ परिपक्वता दावे का वितरण शामिल था। यह सदैव उस श्रेणी के अधिकारी जो याचिकाकर्ता था, का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना था कि योजना बांड की अनुपस्थिति में, क्षतिपूर्ति बांड पर परिपक्वता दावा प्रपत्र के साथ उसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जा रहे थे जिसने योजना बांड पर हस्ताक्षर किए थे और अभिकर्ता द्वारा दायर की गई जमानत की बहुत सावधानीपूर्वक जांच और सत्यापन किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, उन्होंने प्रस्तुत किया कि लगाया गया जुर्माना लगाए गए आरोप और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर लौटाए गए निष्कर्षों के अनुरूप है। उन्होंने आगे तर्क दिया, वैकल्पिक रूप से, यदि अदालत का विचार है कि लगाया गया जुर्माना साबित किए गए आरोपों के अनुपात में नहीं है, तो वह मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को फिर से निर्णय लेने के लिए भेज सकता है, जहां तक दंड भाग का संबंध है।

23. पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने और रिकॉर्ड पर लाए गए अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित रिकॉर्ड और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश और बार में उठाए गए संबंधित तर्कों का अध्ययन करने के बाद, मेरा विचार है कि यह न्यायालय निश्चित रूप से ऐसे मामले में हस्तक्षेप करेगा जहां जांच अधिकारी या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष विकृत पाए जाते हैं क्योंकि दस्तावेज़ अन्यथा बोलते हैं या निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए कोई दस्तावेज़ नहीं होता है।

24. आम तौर पर नियम यह है कि मामले को अवस्था से नये सिरे से तय करने के लिए भेज दिया जाता है। यह पाया गया है कि प्रक्रियात्मक कदम गलत हो गए हैं जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है या यहां तक कि उन मामलों में भी जहां न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि मामले की अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा और लगाए गए और सिद्ध किए गए आरोप पर विचार करते हुए लगाए गए दंड के आनुपातिकता के मामलों में भी नए सिरे से जांच की जानी आवश्यक है।

25. मेरे पास निगम की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क से असहमत होने का कोई कारण नहीं है कि अनुशासनात्मक प्राधिकार के मामलों में, न्यायालय एक नियम के रूप में हस्तक्षेप नहीं करेगा, लेकिन कोई सामान्य नियम भी नहीं हैयदि जांच अधिकारी के निष्कर्ष विकृत पाए जाते हैं और अनुशासनात्मक प्राधिकारी उससे सहमत या एकमत हैं, और परिणामी सजा/दंड ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से न्याय के किसी भी दुरुपयोग को रोकने के लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी।

26. सेवा न्यायशास्त्र में प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा किसी आदेश को कायम रखने की कोई गुंजाइश नहीं है, भले ही वह अच्छी तरह से सूचित न हो। एक कर्मचारी कभी भी नियोक्ता के साथ सौदेबाजी की स्थिति में नहीं होता है, इसका सीधा सा कारण यह है कि उसका नियोक्ता नियुक्ति की पेशकश करता है, वही शर्तें तय करता है, वही नियम बनाता है और

वही क्रिया, सेवा की अवधि को भी नियंत्रित करता है। एक बार नियुक्त किया गया कर्मचारी वस्तुतः पिंजरे में बंद हो जाता है, और इसलिए, नियोक्ता की प्रत्येक कार्रवाई न केवल नियमों के चार कोनों के भीतर होती है, बल्कि प्रशासनिक प्राधिकरण की कार्रवाई का परीक्षण करने के लिए प्रशासनिक कानून में निर्धारित मापदंडों के भीतर होती है। जब राज्य, उसके साधन, उसकी एजेंसी की बात आती है, तो एक आदेश को संविधान के अनुच्छेद 14 के परीक्षण से गुजरना होगा, और यदि यह विफल रहता है, तो यह मनमानी कार्रवाई होगी, जिसे न्याय में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी से बचने के लिए गिरफ्तार करना आवश्यक होगा।

27. वर्तमान मामले में चूंकि याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका है, इसलिए मैं इस मामले पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ रहा हूं कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसे इस स्तर पर रिमांड पर लिया जाना चाहिए।

28. अनुशासनात्मक कार्यवाही के संपूर्ण तथ्यो से, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है

(अ) भारतीय जीवन निगम के साथ सुरक्षित जगीश कुमार आनंद को एक अलग शाखा के एलआईसी अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित और पशु चिकित्सक द्वारा देखे गए ज़मानत फॉर्म के आधार पर योजना के तहत परिपक्वता दावे का भुगतान किया गया था और फिर क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर के आधार पर एक अलग शाखा के किसी अन्य अभिकर्ता द्वारा देखा गया और इसी तरह पशु चिकित्सक द्वारा भी देखा गया। भुगतान पर तीन आधारों पर सवाल उठाए गए:

(ए) कि ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड ठीक से निष्पादित नहीं किए गए थे और मूल योजना प्रस्ताव फॉर्म पर सुनिश्चित किए गए हस्ताक्षर क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर से भिन्न थे;

(बी) उपरोक्त के परिणामस्वरूप, यह दावा किया गया था कि याचिकाकर्ता की ओर से योजना धारक की प्रामाणिकता के उचित सत्यापन के संबंध में सत्यापन की कमी थी, जिसे राशि का भुगतान किया गया था और परिणामस्वरूप निगम को परिपक्वता राशि 64,965/- रुपये का नुकसान हुआ; और

(सी) पी. के. अग्रवाल के पक्ष में परिपक्वता राशि का दावा 2.5.2006 को मंजूरी दे दी गई और भुनाया गया, जबकि योजना बांड और डिस्चार्ज वाउचर का दावा योजना धारक द्वारा 16.06.2006 को बाद में जमा किया गया था और इसलिए यह एक ऐसा मामला था जहां जीवन बीमा निगम को फिर से दावा राशि 57,700/- रुपये का नुकसान होने का दावा किया गया था।

29.उपरोक्त आरोपों को स्थापित करने के लिए, निगम के पास आरोपों में उल्लिखित दस्तावेजों के अलावा कोई अन्य दस्तावेज नहीं था, लेकिन तीसरे आरोप से संबंधित एक महत्वपूर्ण

दस्तावेज, डिस्चार्ज वाउचर दिनांक 16.06.2006 प्रस्तुत नहीं किया गया था।

30. यहां ध्यान देने योग्य एक और पहलू भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि निगम यह दिखाने के लिए सामने नहीं आया कि इससे पहले किए गए किसी भी दावे की शिकायत बीमाकृत व्यक्तियों या उनके उत्तराधिकारियों द्वारा की गई थी। उस परिपक्वता दावे को किसी तीसरे पक्ष ने भुना लिया और उनके साथ धोखाधड़ी हुई। यह भी समान रूप से ध्यान देने योग्य है कि अनुशासनात्मक जांच के दौरान, निगम के प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने कोई मैनुअल या नियम प्रस्तुत नहीं किया जो इस आरोप का समर्थन करता कि एक अभिकर्ता को जमानत पर हस्ताक्षर करने या गवाह के रूप में क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर हस्ताक्षर करने के लिए उसी शाखा से संबंधित होना चाहिए जहां से परिपक्वता दावा जारी किया जाना था। निगम की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता पूछे गए सवाल पर ऐसा कोई मैनुअल या नियम प्रस्तुत नहीं कर सके।

31. अब यह उपरोक्त की पृष्ठभूमि में है, मैं मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ रहा हूं, विशेष रूप से जांच अधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा व्यक्त की गई असहमति से संबंधित है ताकि सजा के आदेश को पारित करने में अपने रुख को उचित ठहराया जा सके।

32. यह स्थापित करने के लिए कि ज़मानत बांड पर उस अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया जा सकता था जो उस शाखा से संबंधित नहीं था जहां से परिपक्वता दावा वितरित किया जाना था और/या क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर किसी ऐसे अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया जा सकता था जो उक्त शाखा से संबंधित नहीं था, यह प्राथमिक रूप से निगम का कर्तव्य था कि वह मैनुअल या निगम के नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों को प्रस्तुत करता और उसके अभाव में या यदि कोई नियम और मैनुअल नहीं था, निगम को यह साबित करना था कि ये अभिकर्ता धोखेबाज व्यक्ति थे। मामले के इस पहलू के संबंध में जांच रिपोर्ट में, एक निष्कर्ष यह आया कि प्रस्तुति अधिकारी ने भी पुष्टि की है कि ऐसा कोई परिपत्र नहीं है जो कहता हो कि अभिकर्ता एक ही शाखा का होना चाहिए"। दूसरे शब्दों में, ऐसा कोई दिशानिर्देश/परिपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जो अन्य शाखा के अभिकर्ता को ज़मानत देने से रोकता हो। जांच अधिकारी ने दर्ज किया कि पी.ओ. (प्रस्तुति अधिकारी) ने जमानतदार द्वारा क्षतिपूर्ति बांड का एक नया आरोप तय करने की मांग की। जांच अधिकारी ने ऐसे नए आरोप को कोई भी स्वीकृति देने से इनकार कर दिया, क्योंकि यह आरोप-पत्र का हिस्सा नहीं था

33. क्षतिपूर्ति बांड के प्रश्न पर, याचिकाकर्ता का जवाब था, "पी.ओ. द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ पी-1 (यानी निगम के पास पहले से उपलब्ध मूल योजना बांड की प्रति) को ध्यान में रखते हुए, क्षतिपूर्ति बांड के निष्पादन में चूक का कोई मतलब नहीं है। " जांच अधिकारी ने कहा "अगर योजना बांड होता तो ज़मानत के कागजात जमा ही नहीं किए जाते" लेकिन

उन्होंने पाया कि यह स्पष्ट नहीं है कि योजना बांड कब जमा किया गया था और इसलिए इसका अवलोकन किया गया "मैं यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हूं कि परिपक्वता दावे के निपटान के समय योजना बांड उपलब्ध था"।

34. यह उपरोक्त निष्कर्ष बीमा स्टाम्प वाले योजना बांड के दस्तावेज़ को खराब नहीं मानता है। इससे याचिकाकर्ता का मामला मजबूत होता है कि वास्तविक बांड के संबंध में परिपक्वता का दावा किया गया था। इसके अलावा, जांच अधिकारी ने क्षतिपूर्ति बांड और ज़मानत को जाली या नकली दस्तावेज़ नहीं माना है और इसलिए आरोप 1-ए को बिल्कुल भी साबित नहीं किया जा सकता है। जांच अधिकारी द्वारा इस आरोप के संबंध में एकमात्र निष्कर्ष यह है कि यह स्वीकार्य नहीं है कि परिपक्वता दावे के निपटान के समय योजना बांड उपलब्ध था।

35. आरोप 1-बी के संबंध में, जांच अधिकारी ने माना कि "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी (बैंक का) विशेष रूप से 'के' अक्षर की शैली और एक हस्ताक्षर से दूसरे हस्ताक्षर तक प्रवाह में कोई अंतर नहीं ढूंढ़ सका" इसके अलावा, उन्होंने कहा कि "यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि पी.ओ. ने स्वयं स्वीकार किया है कि हस्ताक्षर की शैली समान प्रतीत होती है" इसके अलावा पहले हस्ताक्षर (प्रस्ताव प्रपत्र पर) और दूसरे हस्ताक्षर की तारीख से 21 वर्ष की अवधि बीत चुकी है और स्वाभाविक रूप से दोनों हस्ताक्षर आपस में मेल नहीं खा सकते हैं, समान हो सकते हैं (शैली में समानता) पी.ओ. द्वारा स्वीकार किया गया है लेकिन हस्ताक्षर का सटीक मिलान संभव नहीं था। इस प्रकार, आरोप 1-बी को भी सिद्ध नहीं माना गया

36. आरोप संख्या 2 के संबंध में, जांच अधिकारी ने माना कि "चेक योजना धारक के पक्ष में लेखा विभाग द्वारा तैयार किया गया था और अग्रेषित पत्र में योजना बांड/डिस्चार्ज चेक में दिया गया पता होता है और फिर संचलन रजिस्टर के माध्यम से प्रेषण भेजा जाता है।" यह श्री वी. के. पांडेय (उप कर्मचारी) थे जिन्होंने यह चेक (दस्तावेज़ को डी-5 के रूप में संदर्भित) बिना किसी प्राधिकार या सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन के प्राप्त किया था कि अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इससे धोखाधड़ीपूर्ण हेराफेरी हुई जिसके लिए याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार, आरोप 2 को भी सिद्ध नहीं माना गया।

37. आरोप संख्या 3 के संबंध में जांच अधिकारी ने माना कि मार्च, 2006 में, दावा संस्तुति किया गया था जबकि डिस्चार्ज फॉर्म नंबर 3825, और योजना बांड केवल 16.06.2016 को प्राप्त हुआ था, लेकिन निगम का प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ऐसा कोई भी डिस्चार्ज फॉर्म प्रस्तुत करने में विफल रहा, जिसके बारे में दावा किया गया था कि इसे 16.06.2006 को प्रस्तुत किया गया था। जांच अधिकारी ने आगे कहा कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के स्वयं के दस्तावेज़, पी-16 के अनुसार, इस पर परिपक्वता भुगतान स्टाम्प लगा हुआ था। इस प्रकार, आरोप संख्या 3 को भी 'साबित नहीं' माना गया।

38. अनुशासनात्मक प्राधिकारी आरोप 1-ए पर जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत थे, जबकि अन्य आरोपों पर निष्कर्षों से असहमत थे और देखा कि हस्ताक्षरों में कुछ अंतर था जो आरोप 1-बी को साबित करने के लिए ध्यान देने योग्य था और फिर आरोप 2 को केवल इस आधार पर साबित करने के लिए आगे बढ़े कि याचिकाकर्ता द्वारा ज़मानत फॉर्म संख्या 3507 को मंजूरी दे दी गई थी और क्षतिपूर्ति बांड भी योजना धारक की साख को सत्यापित किए बिना था। इस प्रकार याचिकाकर्ता को धोखाधड़ी के अपराध को सुविधाजनक बनाने और उसके परिणामस्वरूप चेक की धोखाधड़ीपूर्ण पावती देने का दोषी माना गया।

39. आरोप संख्या 3 के संबंध में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपना विचार व्यक्त किया है कि योजना बांड और डिस्चार्ज वाउचर 16.6.2006 को प्राप्त होने के बाद परिपक्वता दावा मार्च, 2006 में जारी नहीं किया जा सका और याचिकाकर्ता की ओर से फिर से लापरवाही का हवाला दिया गया।

40. ये उपरोक्त कारण बताओ नोटिस में मात्र निष्कर्षों को टालने के लिए दिए गए बयान हैं। याचिकाकर्ता के जवाब को कारण बताओ नोटिस में देखा गया है और फिर निम्नलिखित आशय के लिए जांच अधिकारी के आरोप संख्या 1-ए के निष्कर्षों का संदर्भ दिया गया है:

"1. अभिकर्ता श्री पी. के. गौतम इस मामले में जमानतदार की वित्तीय स्थिति का कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है,

2. क्षतिपूर्ति बांड हालांकि नोटरीकृत है, लेकिन जमानतकर्ता द्वारा निष्पादित नहीं किया गया है।

41. आरोप संख्या 2 और 3 के संबंध में, किसी और दस्तावेज़ का उल्लेख नहीं किया गया है ताकि यह उचित ठहराया जा सके कि जांच अधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष विचार करने योग्य नहीं थे। याचिकाकर्ता का जवाब हमेशा की तरह कारण बताओ नोटिस के लिए संतोषजनक नहीं माना गया है। याचिकाकर्ता द्वारा अपने जवाब में दिए गए बयान के बावजूद कि दोनों चेक निगम के उन व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किए गए थे जिनकी पहचान अच्छी तरह से स्थापित थी और फिर भी उनसे पूछताछ नहीं की गई।

42. जमानत के निष्पादन और क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर हस्ताक्षर करने के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा समान कानूनी दलील दी गई थी। हालांकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपने अंतिम अंतिम आदेश में याचिकाकर्ता के आरोप पत्र के जवाब का उल्लेख किया है लेकिन उन गवाहों द्वारा जमानत के निष्पादन और क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर हस्ताक्षर करने के मुद्दे पर जांच अधिकारी के निष्कर्षों को उलटने में विफल रहा, जो निगम के अधिकृत अभिकर्ता थे, हालांकि अन्य शाखा से संबंधित थे, जबकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की ओर से यह उचित स्वीकारोक्ति थी कि ऐसा कोई नियम या मैनुअल उपलब्ध नहीं था कि ऐसे अभिकर्ता को उसी शाखा का होना चाहिए।

43. अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी दस्तावेज़ का उल्लेख नहीं कर सका जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि ज़मानत को अधिकृत व्यक्ति द्वारा विधिवत निष्पादित और हस्ताक्षरित नहीं किया गया था या क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर पर योजना धारक द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे और अधिकृत व्यक्तियों द्वारा गवाह नहीं थे। इस प्रकार याचिकाकर्ता के उत्तर को बिना किसी उचित कारण के निरस्त कर दिया गया है। केवल यह कहने से कि अधिकारी को अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी बहुत सचेत रूप से निभानी चाहिए, आरोप वापस नहीं आएगा। इसके बजाय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को इस नियम पर भरोसा करने की आवश्यकता थी कि इस तरह के ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड पर किसी अन्य शाखा के अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जा सकते थे और यह मानना चाहिए था कि ऐसे ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर जाली दस्तावेज़ थे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को इस प्रश्न को संबोधित करते हुए खोज का परीक्षण करने की भी आवश्यकता थी कि क्या केवल क्षतिपूर्ति बांड के लिए जो दायर किया गया था, उसने योजना धारक को परिपक्वता दावे से वंचित कर दिया होगा। ऐसा न मानने पर, न तो आरोप संख्या 1- ए पर जांच अधिकारी के निष्कर्ष और न ही ऐसे आरोप पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों को कारणों के साथ अच्छी तरह से सूचित किया गया है और दस्तावेजों और नियमों द्वारा समर्थित किया गया है।

44. आरोप संख्या 2 और 3 के संबंध में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी हस्ताक्षरों में अंतर के बारे में जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण बताने में सक्षम नहीं है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह स्थापित करने में सक्षम नहीं है कि उसने कैसे पाया कि योजना दावेदार श्री जे. के. आनंद के डिस्चार्ज वाउचर पर हस्ताक्षर जाली थे। इसी प्रकार, इसलिए, क्षतिपूर्ति बांड और ज़मानत के सत्यापन का प्रश्न तब आएगा जब बीमाधारक योजना धारक या उसके कानूनी उत्तराधिकारी और उत्तराधिकारी शिकायत दर्ज कराने आएंगे कि उन्हें भुगतान नहीं मिला है और उन्होंने ऐसे बांड निष्पादित नहीं किए हैं और एजेंटों ने वस्तुतः धोखाधड़ी की है ऐसी किसी भी खोज के अभाव में, याचिकाकर्ता ने सही उत्तर दिया है कि एक अलग विभाग, अर्थात् दावा विभाग के माध्यम से संस्तुति किए गए पूरे कागजात अंतिम अनुमोदन के लिए उनके समक्ष रखे गए थे। वह रखे गए दस्तावेज़ों को देखेगा और उसे स्वीकृत करने के लिए दावा विभाग द्वारा की गई नोटिंग पर विश्वास करेगा। एक बार मंजूरी मिल जाने के बाद, भुगतान का कर्तव्य लेखा विभाग का है और यदि चेक किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्राप्त किया गया था, तो याचिकाकर्ता को इसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था।

45. इसी प्रकार, आरोप संख्या 3 के संबंध में भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह निष्कर्ष दर्ज करने में विफल रहे कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट विकृत थी और वह डिस्चार्ज वाउचर और योजना बांड 16.6.2006 को प्राप्त हुए थे और उन्होंने उसका अवलोकन किया था और वह जांच अधिकारी इस दस्तावेज़ पर ध्यान देने में विफल रहे। इस पहलू पर, आरोप संख्या 3 के

संबंध में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया है। इस प्रकार, मेरे सुविचारित विचार में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने किसी भी ऐसी सामग्री पर भरोसा करते हुए तथ्य के किसी भी स्वतंत्र निष्कर्ष को दर्ज किए बिना जांच अधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों से असहमति जताई थी, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि जांच अधिकारी द्वारा उस पर ध्यान नहीं दिया गया था या देखा गया था लेकिन जांच अधिकारी. द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया था। ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं होने के कारण, अनुशासनात्मक प्राधिकारी का जांच अधिकारी से अलग दृष्टिकोण रखना उचित नहीं था।

46. अपीलीय प्राधिकारी के आदेश पर आते हुए, मुझे लगता है कि अपीलीय प्राधिकारी ने यह मान लिया है कि जांच अधिकारी ने माना था कि योजना बांड उपलब्ध नहीं था, इसलिए, योजना बांड की अनुपस्थिति में, क्षतिपूर्ति बांड की शुद्धता को सत्यापित किया जाना था। अपीलीय प्राधिकारी कोई भी कारण दर्ज करने में विफल रहा है कि किस कारण से उसे यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ा कि ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड जाली दस्तावेज़ थे और उन्हें विधिवत निष्पादित नहीं किया गया था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि न तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी और न ही अपीलीय प्राधिकारी ने उन दस्तावेजों को जाली दस्तावेज माना है। हस्ताक्षरों में अंतर के संबंध में भी अपीलीय प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उन्हें पता चला है कि हस्ताक्षरों में अंतर था और चाहे मामूली या बड़ा अंतर था, यह काफी ध्यान देने योग्य था जिसे याचिकाकर्ता द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए था और यदि वह सतर्क रहता तो, उसने धोखाधड़ी को गिरफ्तार कर लिया होगा।

47. मेरे सुविचारित विचार में, यह उपरोक्त निष्कर्ष इस साधारण कारण से मान्य नहीं है कि बैंक के प्रस्तुतिकरण अधिकारी ने स्वयं हस्ताक्षरों की शैली और प्रवाह को समान पाया है। इसके विपरीत निष्कर्षों को रिकॉर्ड करने में क्या अंतर पाया गया/ध्यान दिया गया, इसका उल्लेख न तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश में किया गया है और न ही अपीलीय प्राधिकारी के निर्णय में, जिसने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों की पुष्टि की है।

44. प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 45 के माध्यम से हस्ताक्षरों में अंतर की दलील का समर्थन करते हुए, इसे निम्नानुसार कहा गया है:

"रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 51 की सामग्री का सख्ती से खंडन किया जाता है। आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ योजना नंबर 058472150 के तहत 64,975 रुपये के दावे के भुगतान वीआर नंबर 998 दिनांक 06.03.2006 की जांच करने के आरोप लगाए गए थे जहां क्षतिपूर्ति बांड और डिस्चार्ज वाउचर में योजना धारक श्री जगदीप कुमार आनंद के हस्ताक्षर प्रस्ताव प्रपत्र पर हस्ताक्षर से भिन्न थे। जांच कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर यह पाया गया कि प्रश्नांकित हस्ताक्षरों में भिन्नता थी। अंतर मामूली हो या बड़ा, सच तो यह है कि हस्ताक्षर में अंतर ध्यान देने योग्य था, जिसे

याचिकाकर्ता ने वाउचर की जांच के समय नजरअंदाज कर दिया। ऊपर बताए गए तथ्यों के विपरीत सभी आरोपों का सख्ती से खंडन किया जाता है।

48. प्राधिकारी का रुख यह है कि दो हस्ताक्षरों के बीच मामूली या बड़े अंतर का अधिक महत्व नहीं होगा यदि अंतर नग्न आंखों से स्पष्ट हो। मेरे विचार में एक बार जब निगम के प्रस्तुतिकरण अधिकारी ने स्वयं जांच अधिकारी के समक्ष इन हस्ताक्षरों के प्रवाह और शैली को समान पाया और निष्कर्ष को तदनुसार वापस कर दिया गया, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी केवल इसलिए इसे स्थगित नहीं कर सकता था क्योंकि यह उसे विशेषज्ञ की राय के बिना ऐसा प्रतीत हुआ था। भले ही प्राधिकारी को इसका विश्वास था, उसने इस तथ्य की पृष्ठभूमि में अंतर दर्ज किया होगा कि दो हस्ताक्षर 21 साल के अंतर के साथ थे और बीमाधारक द्वारा कोई शिकायत नहीं की गई थी।

इस प्रकार पैराग्राफ 23 के माध्यम से, इसे प्रत्युत्तर हलफनामे में दोहराया गया है अंतर्गतः

"जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 45 की सामग्री पूरी तरह से गलत है और इसे नकारा जाता है और रिट याचिका के पैराग्राफ 51 की सामग्री को दोहराया जाता है और इसकी पुष्टि की जाती है। जगदीप कुमार आनंद के हस्ताक्षर बिल्कुल समान थे। हस्ताक्षर का प्रवाह और शैली नग्न आंखों के लिए समान थी। अंतर, यदि कोई है, तो 21 वर्षों के अंतराल के कारण था और इन सभी पहलुओं पर जांच अधिकारी द्वारा विचार किया गया था, जिसने आरोप संख्या 1 (बी) को साबित नहीं माना था।

49. अन्य आरोपों के संबंध में, मैंने पाया कि अपीलीय प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की है, जिसमें याचिकाकर्ता को अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही का दोषी माना गया है लेकिन अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों पर हमला करने के लिए उठाए गए अच्छे आधारों के बावजूद इस तरह के तर्क को उचित ठहराने के लिए एक स्वतंत्र कारण देने में विफल रहा।

50. श्री अग्रवाल के परिपक्वता दावे के संबंध में किए गए भुगतान के संबंध में, अपीलीय प्राधिकारी यह भी खुलासा नहीं कर सका कि 16.6.2006 को कथित रूप से प्राप्त डिस्चार्ज वाउचर और योजना बांड कहां गए थे। रिकॉर्ड पर कोई सबूत न होने पर यह तथ्य का एकमात्र बयान होगा कि ऐसा बांड परिपक्वता दावे के संवितरण के बाद 16.06.2006 को प्राप्त हुआ था। उपरोक्त के अतिरिक्त अपीलीय प्राधिकारी ने भी कहीं चर्चा नहीं की है क्यों वे दो कर्मचारी, वी. के. पांडेय और उदय नारायण सिंह चौहान जो निगम के कर्मचारी थे और उनकी पहचान जात थी, चेक प्राप्त करने के लिए निगम द्वारा उनसे पूछताछ नहीं की गई और उनके खिलाफ कोई जाँच शुरू नहीं की गई।

51. उपरोक्त के मद्देनजर, इसलिए, मुझे लगता है कि अपीलीय प्राधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश

कानून में टिके नहीं रह सकते। हालाँकि, जहाँ तक जाँच अधिकारी का सवाल है, मैं जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्षों से संतुष्ट नहीं हूं कि, यदि मूल योजना बांड दाखिल किया गया होता, तो क्षतिपूर्ति बांड दाखिल करने का कोई अवसर नहीं होता क्योंकि यह अपने आप में परिपक्वता दावे के वितरण पर सवाल उठाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। जहां तक आरोप संख्या 1 और 2 का संबंध है, यह कभी कोई मुद्दा नहीं था कि मूल योजना बांड के बिना भुगतान किया गया था। भुगतान क्षतिपूर्ति बांड पर किया गया था क्योंकि मूल योजना बांड प्रस्तुत नहीं किया गया था और आरोप केवल यह था कि ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड ठीक से निष्पादित नहीं किया गया था क्योंकि अभिकर्ता एक अलग शाखा से थे। चूंकि निगम मैनुअल के तहत किसी भी नियम या प्रावधान को जांच अधिकारी के समक्ष या यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष रखने में विफल रहा, जिससे ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड और परिणामी डिस्चार्ज वाउचर के निष्पादन में धोखाधड़ी के एक कृत्य का खुलासा हो सकता था, मेरा मानना है कि वहां जांच अधिकारी का कोई निष्कर्ष नहीं था कि क्षतिपूर्ति बांड और ज़मानत ठीक से निष्पादित नहीं किए गए थे। जांच रिपोर्ट में याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष है न कि याचिकाकर्ता के खिलाफ। इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को आरोप वापस लाने के लिए एक ठोस और ठोस निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता थी। अब, इस मामले में, मुझे लगता है कि निगम द्वारा आरोप स्थापित नहीं किए जा सके और अपीलीय प्राधिकारी और साथ ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष ठोस साक्ष्य के अभाव में विकृत हैं। जवाबी हलफनामे में, लौटाए गए निष्कर्षों के समर्थन में अतिरिक्त रूप से कुछ भी खुलासा नहीं किया गया है ताकि इस अदालत को मामले को वापस लेने के लिए मजबूर किया जा सके। जवाबी हलफनामे का सबसे प्रासंगिक पैराग्राफ पैराग्राफ संख्या 44 है जो इस प्रकार है:

"रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 49 और 50 की सामग्री का सख्ती से खंडन किया जाता है। आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप लगाया गया था कि उचित सत्यापन और पहचान के बिना उसने योजना नंबर 058472150 के तहत परिपक्वता दावे के भुगतान के लिए श्री जगदीप कुमार अनाद के नाम पर भरे गए जमानत फॉर्म 3807 और क्षतिपूर्ति बांड को अनुमति दी और मंजूरी दे दी। ज़मानत फॉर्म नंबर 3807 और क्षतिपूर्ति बांड की अनुमति और अनुमोदन करते समय याचिकाकर्ता ने उस गवाह का सत्यापन किया था जो संबंधित शाखा से संबंधित नहीं था। उन्हें सतर्क रहना चाहिए था और संदेह जताना चाहिए था. उनके द्वारा उठाए गए तर्क इस तथ्य को नहीं बदलते हैं कि उनकी मंजूरी के आधार पर परिपक्वता दावा पारित किया गया था और योजना धारक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा धोखाधड़ी से भुनाया गया था। इसके अलावा जांच कार्यवाही के दौरान पेश किए गए दस्तावेजों के अनुसार पी-15 (योजना खो जाने की स्थिति में परिपक्वता दावा भुगतान के लिए दिशानिर्देश) क्षतिपूर्ति बांड भी ज़मानतदार द्वारा निष्पादित नहीं किया गया

था। ऊपर बताए गए तथ्यों के विपरीत सभी आरोपों का सख्ती से खंडन किया जाता है।

52. यह पैराग्राफ रिकार्ड के अवलोकन के आधार पर शपथ लिया गया है लेकिन कोई रिकार्ड संलग्न नहीं किया गया है। बार-बार पूछे जाने पर, निगम की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता लगाए गए आरोपों के समर्थन में क्षतिपूर्ति/ज़मानत बांड निष्पादित करने के लिए कोई नियम/विनियम या मैनुअल पेश नहीं कर सके। जहां तक नीति के तथ्य प्रस्तुत न किए जाने के आरोपों का सवाल है, मेरे विचार में जब यह आरोप नहीं था, तो यह पहलू जांच के लिए खुला नहीं था। अन्यथा भी, निगम यह मामला बनाने में विफल रहा कि मूल योजना बांड उपलब्ध होने के बावजूद, जमानत बांड और क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिए यह आधार भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उपलब्ध नहीं था। ऐसा कोई आरोप नहीं था कि जो व्यक्ति ज़मानत और क्षतिपूर्ति बांड निष्पादित कर रहे हों, वो फर्जी व्यक्ति है। प्रत्युत्तर हलफनामे में अनुच्छेद 25 के तहत एक बहुत ही सही उत्तर प्रस्तुत किया गया है जो निम्नानुसार है:

"25- कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 47 की सामग्री पूरी तरह से गलत है और इसका खंडन किया जाता है और रिट याचिका के पैराग्राफ 53 की सामग्री को दोहराया और पुनः पुष्टि की जाती है। सत्यापन और पहचान उचित थी और इसमें कुछ भी गलत नहीं था। इसके अलावा, जब मूल योजना बांड स्वयं 6.3.2006 को जमा किया गया था, तो ज़मानत फॉर्म और क्षतिपूर्ति बांड जमा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। परिपक्वता दावे की उचित प्रक्रिया के बाद चेक तैयार किया गया था और बाद में यदि चेक को धोखाधड़ी से भुनाया गया है तो याचिकाकर्ता को ज़मानत फॉर्म और क्षतिपूर्ति बांड के अनुमोदन में गलती खोजकर दंडित नहीं किया जा सकता है।

53. इस प्रकार यह मामला एक ऐसा मामला है जहां मुझे लगता है कि जांच अधिकारी को आरोपों का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं मिला, जिसने याचिकाकर्ता को सभी आरोपों से बरी कर दिया, सिवाय एक आरोप के 1-ए होने के। हालाँकि यह बात भी साक्ष्यों से सिद्ध नहीं हुई लेकिन जाँच अधिकारी ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि मूल बीमा योजना होती तो क्षतिपूर्ति एवं ज़मानत बांड की आवश्यकता नहीं होती। मेरे विचार में आरोप को सही साबित करने के लिए कोई निष्कर्ष नहीं है क्योंकि एक सामान्य विवेक वाला व्यक्ति भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाएगा कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आरोप संख्या 1-ए साबित हो गया है। अन्य आरोपों के संबंध में, यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्षों के विपरीत विचार कर रहा था, तो उसे उसी सबूत को पर्याप्त सबूत के रूप में सराहना करने की आवश्यकता थी, लेकिन इसे इस तरह कहने लायक कोई सराहना नहीं की गई है। मैंने निष्कर्षों की सराहना या पुनः सराहना करने के लिए विस्तार से चर्चा नहीं की है, बल्कि यह पता लगाने के लिए कि क्या निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए कोई सबूत था या आरोप

के समर्थन में कानूनी प्रावधान था क्योंकि क्षतिपूर्ति/ज़मानत बांड के गवाहों को उसी शाखा से संबंधित होना आवश्यक था जिसने बीमा योजना जारी की थी और मुझे वहां कोई नहीं मिला। इन परिस्थितियों में यदि निष्कर्ष कायम रहे तो इससे न्याय का गर्भपात ही होगा।

54. जब किसी प्रशासनिक या कार्यकारी कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की बात आती है तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति के प्रयोग में बाधाएं और आत्म-अनुशासन अपरिहार्य सिद्धांत हैं। यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा एक कानूनी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अदालतें यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई या निर्णय की जांच करती हैं कि वे वैध और संवैधानिक हैं। यह प्रक्रिया न्यायपालिका को सरकार और उसकी संस्थाओं द्वारा की गई कार्रवाइयों की वैधता का आकलन करने और यह निर्धारित करने की अनुमति देती है कि क्या वे संविधान या अन्य कानूनों का अनुपालन करते हैं। इसलिए न्यायिक समीक्षा एक मौलिक सिद्धांत है जो जांच और संतुलन की एक प्रणाली प्रदान करता है। यह न्यायपालिका को व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करने, कानून के शासन को बनाए रखने और कार्यकारी/सरकार या उसके सहायकों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग को रोकने में सक्षम बनाता है। जब कोई व्यक्ति या संगठन, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विशिष्ट रूप से, न्यायिक समीक्षा के माध्यम से किसी कार्रवाई को चुनौती देता है, तो न्यायालय यह मूल्यांकन करने के लिए बाध्य है कि कार्रवाई कानून और संविधान के अनुरूप है या नहीं। यदि न्यायालय को लगता है कि कार्रवाई असंवैधानिक या गैरकानूनी है, तो वह कार्रवाई को अमान्य घोषित कर सकती है या स्थिति को सुधारने के लिए उचित आदेश पारित कर सकती है।

55. यह सच है कि न्यायिक की शक्ति अपील की शक्ति के समान नहीं है और शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक कार्यवाही में जांच अधिकारी के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करने के लिए अपने स्वयं के निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए साक्ष्य की सराहना नहीं कर सकता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्य का एकमात्र न्यायाधीश है, लेकिन ऐसी स्थिति में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा खोज के निष्कर्ष पर रोक लगा दी जाती है क्योंकि कोई भी साक्ष्य या निष्कर्ष ऐसा नहीं है जिस तक कोई उचित व्यक्ति पहुंच पाता, यह न्यायालय निष्कर्ष या खोज में हस्तक्षेप कर सकता है **(बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और अन्य (1995) 6 एससीसी 749)** ।

56. उच्च न्यायालय ने भारत संघ और अन्य बनाम सुब्रत नाथ (विशेष अपील संख्या 3524-25/ 2022 पर 23.11.2022 को निर्णय लिया) के मामले में अपने हालिया फैसले में भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल एआईआर 1964 एससी 364, के फैसले का उल्लेख किया जिसमें यह माना गया था कि "यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विकृत है या रिकॉर्ड के आधार पर त्रुटि से ग्रस्त है या कोई सबूत नहीं होने के कारण वर्जित है, तो सर्टिओरीरी की रिट जारी की जाएगी।"

57. उपरोक्त के मद्देनजर, मैं अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई को कायम रखने में सक्षम नहीं हूं। तदनुसार, चूंकि मैं अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों और दंड के परिणामी आदेशों को बरकरार रखने में सक्षम नहीं हूं। न्यायालय ने सामान्य परिस्थितियों में मामले को जांच अधिकारियों या अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास भेज दिया होगा जैसा कि संविधान पीठ ने कहा था कि "जहां उपरोक्त प्रक्रिया का पालन करने के बाद न्यायालय/न्यायाधिकरण सजा के आदेश को रद्द कर देते हैं, जो उचित राहत दी जानी चाहिए वह यह है कि कर्मचारी को निलंबित करके और उसे रिपोर्ट सौंपने के चरण से जांच जारी रखते हुए, प्राधिकरण, प्रबंधन को जांच आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता के साथ कर्मचारी की बहाली का निर्देश दिया जाए। प्रश्न यह है कि क्या कर्मचारी अपनी बर्खास्तगी की तारीख से अपनी बहाली की तारीख तक बकाया वेतन और अन्य लाभों का हकदार होगा? यदि अंततः आदेश दिया जाता है तो कार्यवाही की समाप्ति के बाद और अंतिम परिणाम के आधार पर कानून के अनुसार संबंधित प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए **(प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य बनाम बी. करुणाकर और अन्य (1993) 4 एससीसी 727),"** लेकिन चूंकि याचिकाकर्ता पहले ही सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है, इसलिए अब मामले को नए सिरे से जांचने के लिए भेजने का कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

58. मेरे विचार में, ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी जो आरोप स्थापित करती, न ही सुनिश्चित व्यक्तियों द्वारा कोई शिकायत थी कि दावा उनके नुकसान के लिए किसी तीसरे पक्ष को वितरित किया गया था और उनके साथ धोखाधड़ी की गई थी।

59. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और **अनुज्ञप्त** की जाती है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 25 जनवरी, 2016 और 2 अगस्त, 2016 को पारित आदेश को रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता को समान वेतन ग्रेड और वेतनमान में सेवा में मानते हुए सभी परिणामी लाभों का हकदार माना जाता है जिसमें वह 25 जनवरी, 2016 के आदेश के पारित होने के समय वेतन निर्धारण आदि और वेतन के बकाया के संदर्भ में सभी परिणामी लाभ थे। इसके अलावा 25 जनवरी, 2016 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता से पहले ही वसूल की गई राशि भी उसे वापस कर दी जाएगी।

(2023) 8 ILRA 365

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट ए संख्या 1000017 वर्ष 2012

चंपी उर्फ सुंदर लाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर जिला न्यायाधीश 9 न्यायालय कक्ष संख्या 13 लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

प्रतिलिपि

ब्रिजेश कुमार सक्सेना, अंकित श्रीवास्तव, शफ़ीज़ मिर्ज़ा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

सुजाता श्रीवास्तव, अपोली श्रीवास्तव, दीपिका श्रीवास्तव, ममता सिंह, प्रशांत जयसवाल, सुजाता श्रीवास्तव

ए. सिविल कानून - भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 - धारा - 73 - निजी न्यास बनाम सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास - निर्धारण

अभिनिर्धारित हुआ: न्यास की प्रकृति न्यास विलेख और *राधाकांत देब बनाम आयुक्त, हिंदू धार्मिक विन्यास, उड़ीसा, (1981) 2 एससीसी 226* में निर्धारित परीक्षणों द्वारा निर्धारित होती है। जहाँ न्यास विलेख संस्थापक, उसके परिवार या नामित न्यासियों के पास नियंत्रण बनाए रखता है, सार्वजनिक प्रबंधन को बाहर करता है, और सार्वजनिक योगदान के लिए प्रावधान नहीं करता है, वह एक निजी न्यास है। प्रतिवादी न्यास के विलेख में संस्थापक, उसकी पत्नी और नामित न्यासियों को नियंत्रण निहित था, जिसमें कोई सार्वजनिक भागीदारी नहीं थी। भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 73 के अंतर्गत न्यासी नियुक्ति के लिए एक आवेदन ने इसकी निजी प्रकृति की और पुष्टि की। अवर न्यायालयों ने केवल इसकी धर्मार्थ अस्पताल गतिविधियों के आधार पर इसे गलती से एक सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास माना, जिससे उनके निष्कर्ष विकृत हो गए। [प्रस्तर 9-14, 19-27]

बी. मकान मालिक और किरायेदार - बेदखली - उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किरायेदारी, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार

अभिनिर्धारित हुआ: चूँकि प्रतिवादी न्यास एक निजी न्यास है, इसलिए उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किरायेदारी, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 लागू होता है। लघु वाद न्यायालय में दायर बेदखली का वाद पोषणीय नहीं था, क्योंकि बेदखली की कार्यवाही अधिनियम के अंतर्गत विहित प्राधिकारी के समक्ष शुरू की जानी चाहिए थी। अवर न्यायालयों ने क्षेत्राधिकार ग्रहण करने में त्रुटि की, और उनके आदेश टिकने योग्य नहीं थे। [प्रस्तर 5, 38, 40]

सी. मकान मालिक और किरायेदार - किरायेदार द्वारा गृह कर भुगतान - किराए के विरुद्ध समायोजन

अभिनिर्धारित हुआ: संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 108(जी) और उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 149 और 177 के अंतर्गत, गृहकर का भुगतान करने वाला किरायेदार, जो मुख्यतः मकान मालिक का दायित्व है, पट्टे पर दी गई संपत्ति से वसूली योग्य होने पर, किराए से इसे घटा सकता है। याचिकाकर्ता ने लखनऊ नगर निगम द्वारा मांगे गए गृहकर के रूप में 1500 रुपये का भुगतान किया, जो कथित किराए के बकाया 1260 रुपये से अधिक था। अवर न्यायालयों ने गलत तरीके से यह माना कि इस भुगतान को समायोजित

नहीं किया जा सकता और याचिकाकर्ता चूककर्ता नहीं है। [प्रस्तर 4, 28-37]

परिणाम: रिट याचिका स्वीकार की गई। आदेश दिनांक 09.02.2012 (अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष संख्या 13, लखनऊ द्वारा एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 39 वर्ष 2011) और 05.05.2011 (द्वितीय अपर न्यायाधीश, लघुवाद, लखनऊ द्वारा एस.सी.सी. वाद संख्या 222 वर्ष 2001) अपास्त किए गए। [प्रस्तर 41]

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>संदर्भित मामले</u>:

1. राधाकांत देब बनाम आयुक्त, हिंदू धार्मिक विन्यास, उड़ीसा, (1981) 2 एससीसी 226 [प्रस्तर 10, 22-27]

2. कुलदीप चंद बनाम महाधिवक्ता, हिमाचल प्रदेश सरकार, (2003) 5 एससीसी 46 [प्रस्तर 11]

3. देवकी नंदन बनाम मुरलीधर, एआईआर 1957 एससी 133 [प्रस्तर 21, 38]

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री बृजेश कुमार सक्सेना, प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत जायसवाल को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने द्वितीय अपर न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 05.05.2011 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर बेदखली के मुकदमे पर निर्णय दिया गया था।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता 253/103 नादान महल रोड, यहियागंज, लखनऊ स्थित परिसर में 45.00 रुपये प्रति माह के किराए पर किरायेदार था। उक्त परिसर श्रीमन ठाकुरजी महाराज विराजमान ठाकुरद्वारा लाल शंकर लाला दोसर वैश्य ट्रस्ट के स्वामित्व में है। याचिकाकर्ता ने जुलाई 1999 से अक्टूबर 2001 तक 1260.00 रुपये का किराया नहीं दिया और परिणामस्वरूप इस संबंध में प्रत्यर्थीगण द्वारा 24.09.2001 को नोटिस भी दिया गया था, लेकिन नोटिस के बावजूद किराए का भुगतान नहीं किया गया और, इसलिए, बेदखली के लिए उक्त मुकदमा दायर किया गया था।

4. याचिकाकर्ता ने विचारण न्यायालय में पेश होकर कहा कि उसने लखनऊ नगर निगम द्वारा जारी किए गए वसूली नोटिस के अनुपालन में मकान मालिक के लाभ के लिए उक्त संपत्ति पर गृहकर के रूप में 1500.00 रुपये की राशि जमा की थी। आगे कहा गया कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 108 (जी) के अनुसार गृहकर के रूप में भुगतान की गई उक्त राशि को किरायेदार द्वारा बकाया

किराए की राशि के रूप में विनियोजित किया जा सकता था और तदनुसार पूरा किराया चुकाया गया था और इसलिए वह डिफॉल्टर नहीं था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उक्त वाद न्यायाधीश, लघु वाद के समक्ष विचारणीय नहीं था, क्योंकि वादी/प्रत्यर्थी एक निजी ट्रस्ट है और उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने और बेदखली का विनियमन) अधिनियम 1972 (जिसे आगे '1972 का अधिनियम संख्या 13, ' कहा जाएगा) की धारा 2(बीबी) के प्रावधानों के अनुसार उक्त अधिनियम का प्रभाव किसी निजी धर्मार्थ ट्रस्ट से संबंधित/निहित किसी भवन से संबंधित किसी विवाद पर रोक नहीं लगाता है। दोनों अवर न्यायालयों का यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी एक 'सार्वजनिक धर्मार्थ ट्रस्ट' है, विकृत और अभिलेखों के विपरीत है और इसलिए इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता है। तदनुसार यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी के लिए उचित उपाय निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम संख्या 13, 1972 के तहत बेदखली के लिए प्रार्थना पत्र दायर करना था और चूंकि कार्यवाही अधिनियम संख्या 13, 1972 के तहत शुरू नहीं की गई थी, इसलिए यह क्षेत्राधिकार के बाहर थी।

6. विचारण न्यायालय ने उक्त मुकदमे का फैसला करते हुए सात विवाद्यक तय किए थे। अन्य मुद्दों के अलावा, विवाद्यक संख्या 3 और 4 ट्रस्ट की प्रकृति से संबंधित थे और इस बात से संबंधित थे कि क्या 1972 के अधिनियम 13 के प्रावधान वर्तमान प्रकरण में लागू होंगे। यह अभिनिर्धारित किया गया कि उक्त ट्रस्ट गरीब बच्चों के लाभ के लिए काम कर रहा था, ऐसे छात्रों को शिक्षा और छात्रवृत्ति प्रदान कर रहा था, गरीब व्यक्तियों की शादी और अन्य कल्याण संबंधी गतिविधियों का प्रबंध कर रहा था और यह राज्य सरकार से कोई दान भी नहीं लेता है। यह भी कहा गया कि उक्त ट्रस्ट एक होम्योपैथिक अस्पताल चला रहा है और मरीजों से पंजीकरण के लिए लिए जाने वाले 1/- रुपये को छोड़कर कोई पैसा नहीं लिया जाता है और तदनुसार न्यायालय का विचार था कि प्रत्यर्थी एक सार्वजनिक धर्मार्थ ट्रस्ट था। विवाद्यक संख्या 5 याचिकाकर्ता द्वारा गृहकर के रूप में भुगतान की गई राशि से संबंधित था, जो प्रत्यर्थीगण पर देय था और विचारण न्यायालय का विचार था कि उक्त राशि का भुगतान किराए की बकाया राशि के लिए विनियोजित नहीं किया जा सकता है और इस विवाद्यक को प्रत्यर्थीगण के पक्ष में तय किया।

7. याचिकाकर्ता ने अपनी दलीलें विवाद्यक संख्या 3, 4 और 5 तक सीमित रखी हैं, जिन पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया जा चुका है।

8. श्री बी.के. सक्सेना, विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया है कि ट्रस्ट डीड के अवलोकन से पता चलता है कि उक्त ट्रस्ट की प्रकृति सार्वजनिक ट्रस्ट के बजाय एक निजी ट्रस्ट है।

9. ट्रस्ट-डीड, जिसे संक्षिप्त प्रति शपथ-पत्र के साथ संलग्न किया गया है, तथा मूल उर्दू संस्करण के हिंदी अनुवाद के अध्ययन से पता चलता है कि ट्रस्ट के निर्माता शंकर लाल पुत्र नारायण दास थे, जिन्होंने निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ उक्त ट्रस्ट का निर्माण किया था-

(1) शंकर लाल संपूर्ण ट्रस्ट और उसकी संपत्तियों के पूर्ण मालिक और नियंत्रण में बने रहेंगे।

(2) उनकी मृत्यु के बाद, ट्रस्ट की संपूर्ण संपत्ति उनकी पत्नी के पास निहित हो जाएगी, जो मूल ट्रस्टी के समान ही उन्हीं शर्तों और नियमों पर उनकी मालिक होंगी।

(3) पत्नी को निर्देश दिए गए कि जो भी रकम मिले, उसे पहले अपने ऊपर खर्च करे, जो भी पैसा बचेगा, उससे ठाकुरद्वारा का रख-रखाव होगा, और उसके बाद अगर कुछ बचेगा, तो उसे ठाकुरद्वारा के नाम जमा कर दिया जाएगा

(4) यह चिन्हित किया गया था कि उसकी मृत्यु के बाद, ठाकुरद्वारा के विकास के लिए इसकी देखभाल करना उनकी पत्नी का कर्तव्य होगा ;

(5) उसकी पत्नी को अपनी इच्छानुसार ट्रस्ट चलाने का अधिकार होगा। वह किराये की आय का एक हिस्सा दान -पुण्य के लिए इस्तेमाल कर सकती है, और किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी;

(6) उनकी मृत्यु के बाद, उनका अंतिम संस्कार ठाकुरद्वारे से अर्जित आय से किया जाएगा ।

(7) अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, पूरी संपत्ति का स्वामित्व और कब्जा ठाकुर जी महाराज का होगा और उन्होंने ट्रस्टियों को क्रमांक 3 से 7 तक निर्देश दिए कि वे संपत्तियों की देखभाल उनकी इच्छानुसार करें और आय-व्यय का हिसाब रखें; तथा

(8) यह भी प्रावधान किया गया कि यदि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी इस ट्रस्ट-डीड की शर्तों को लागू नहीं करती है, तो उस स्थिति में ट्रस्टी संख्या 3 से 7 को कब्जा रखने, उसके द्वारा बताए गए उद्देश्यों के लिए आय का उपयोग करने का अधिकार होगा, अर्थात यदि उसकी पत्नी इस ट्रस्ट डीड की शर्तों को लागू नहीं करती है, जिसका उसने प्रावधान किया है और उसकी इच्छाओं से सहमत नहीं है, तो ट्रस्टी संख्या 3 से 7 को नियंत्रण अपने हाथ में लेने का अधिकार होगा।

10. यह प्रस्तुत किया गया कि ट्रस्ट-डीड के मात्र अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि ट्रस्ट के निर्माता का इरादा ठाकुर जी महाराज विराजमान के लाभ के लिए इसे बनाना था और अपने जीवनकाल के दौरान उन्हें उक्त ट्रस्ट का संपूर्ण नियंत्रण बनाए रखना था। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी पत्नी के पास भी इसी तरह का नियंत्रण होता और उनकी मृत्यु के बाद उन्होंने कुछ व्यक्तियों को नामित किया था, जिन्हें उक्त ट्रस्ट पर पूर्ण नियंत्रण रखना था। यदि किसी ट्रस्टी की मृत्यु हो जाती है, तो अन्य ट्रस्टियों को उनके स्थान पर एक ट्रस्टी को नामित करने का अधिकार होगा। यह आग्रह किया गया कि उपरोक्त परिस्थितियों में ट्रस्ट-डीड इस तथ्य का निर्धारक होगा कि उक्त ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट के बजाय एक निजी ट्रस्ट था। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने ***राधाकांत देब और अन्य बनाम हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती आयुक्त, उड़ीसा, (1981) 2 एससीसी***

226 के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उक्त निर्णय के पैरा-14 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिशानिर्देश तैयार किए गए हैं, जिनसे यह निर्धारित किया जाएगा कि किसी ट्रस्ट को सार्वजनिक ट्रस्ट या निजी ट्रस्ट के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा या नहीं।

11. यह भी कहा गया कि उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-14 के खंड 2 और 3 वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू होते हैं। यह कहा गया कि न तो प्रबंधन किसी बड़े समूह के पास है और न ही संस्थापक और ट्रस्टियों ने प्रबंधन पर नियंत्रण बनाए रखा है और इसलिए, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है, उपरोक्त तथ्य यह दिखाने के लिए निर्णायक सबूत होंगे कि बंदोबस्ती निजी प्रकृति की थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि इस सवाल का जवाब देने के लिए कि क्या उक्त ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट होगा या एक निजी ट्रस्ट, यह प्रदर्शित करना होगा कि संस्थापक ने उक्त ट्रस्ट पर पूरी तरह से नियंत्रण समाप्त कर दिया है और केवल तभी ऐसे ट्रस्ट को सार्वजनिक ट्रस्ट कहा जा सकता है। उन्होंने आगे ***कुलदीप चंद और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश सरकार के महाधिवक्ता और अन्य , (2003) 5 एससीसी 46*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसके प्रासंगिक पैराग्राफ 37 और 38 इस प्रकार हैं-

> "37. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं: (1) कि दुकानें अन्य लोगों को किराए पर दी गई थीं। (2) लोग धर्मशाला में आकर रह सकते थे, लेकिन तीन दिनों से अधिक समय के लिए, केवल इसके लिए अनुमति लेने पर। (3) दुकानों से प्राप्त किराए का उपयोग मालिकों द्वारा अपने उद्देश्य के लिए किया जा रहा था। (4) धर्मशाला का प्रबंधन/रखरखाव मालिक के व्यक्तिगत धन से किया जा रहा था। (5) धर्मशाला का प्रबंधन और नियंत्रण पूरी तरह से मालिकों के पास था। (6) धर्मशाला में एक स्कूल खोला गया था। (7) रणजोर सिंह ने धर्मशाला की देखभाल के लिए एक चौकीदार नियुक्त किया था और उसका वेतन मालिक द्वारा अपनी जेब से दिया जाता था। (8) धर्मशाला का उपयोग विवाह के उद्देश्य से किया जा सकता था, लेकिन केवल मालिकों की अनुमति से। (9) पहली मंजिल के कमरों का उपयोग केवल अधिकारियों या मालिक की अनुमति से अन्य लोगों द्वारा किया जा सकता था। (10) धर्मशाला का उपयोग आम तौर पर केवल मेले के दौरान तीर्थयात्रियों द्वारा किया जाता था। (11) जनता ने धर्मशाला के रखरखाव के लिए कभी कुछ नहीं दिया। (12) जनता के किसी भी सदस्य को धर्मशाला के प्रबंधन के संबंध में कोई कहने का अधिकार नहीं था और उसे इसका उपयोग करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था। (13) जनता के किसी भी सदस्य ने कभी धर्मशाला के प्रबंधन में भाग नहीं

लिया। (14) संपत्ति की देखभाल और प्रबंधन के लिए कभी कोई प्रबंधक नियुक्त नहीं किया गया। (15) धर्मशाला सराय अधिनियम के तहत पंजीकृत नहीं थी । (16) यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि मालिकों ने शबेट या ट्रस्टी के रूप में काम किया।

38. **सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए और आम जनता के लाभ के लिए एक समर्पण में संस्थापक की ओर से स्वामित्व की पूर्ण समाप्ति और धार्मिक वस्तु के लिए संपत्ति का निहित होना शामिल** होगा। **औपचारिक और स्पष्ट बंदोबस्ती के अभाव में, समर्पण की प्रकृति संस्था के इतिहास और संस्थापक और उसके उत्तराधिकारियों के आचरण के आधार पर निर्धारित की जा सकती है।** ऐसा समर्पण या तो पूर्ण या आंशिक हो सकता है। समुदाय या समुदाय के किसी भाग के पक्ष में सुखभोग का अधिकार ऐसा समर्पण नहीं अभिनिर्धारित किया जाएगा, जहां स्वामी ने संपत्ति को अपने पास रखा हो। हो सकता है कि संपत्ति के स्वामी का अधिकार उपयोग के सार्वजनिक अधिकार द्वारा योग्य हो, लेकिन इस प्रकरण में ऐसा अधिकार, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पूरी तरह से अप्रतिबंधित नहीं है। इस तथ्य के अलावा कि आम जनता और/या किसी विशेष समुदाय को संपत्ति के प्रबंधन में भागीदारी का कोई अधिकार नहीं था और न ही इसके रखरखाव के लिए कोई योगदान दिया गया था, यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। समर्पण, यह कहना दुहराया जा सकता है, का अर्थ होगा स्वामित्व और स्वामित्व के अपने अधिकार का पूर्ण त्याग। राज्य के शासक की ओर से आम जनता के लाभ के लिए किया गया परोपकारी कार्य धर्मार्थ उद्देश्य के लिए समर्पण के बराबर हो भी सकता है और नहीं भी।"

12. उपर्युक्त परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि ट्रस्ट-डीड के अवलोकन से पता चलता है कि उक्त ट्रस्ट निजी प्रकृति का था क्योंकि उक्त ट्रस्ट के निर्माता ने सभी चरणों में नियंत्रण अपने पास बनाए रखा था और बाद में, ट्रस्टी मूल ट्रस्टी के उत्तराधिकारी मात्र थे और, इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि उक्त ट्रस्ट डीड एक निजी ट्रस्ट से संबंधित है।

13. ट्रस्ट के निजी ट्रस्ट होने की प्रकृति इस तथ्य से भी प्रदर्शित होती है कि ट्रस्टी होरी लाल की नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी-ट्रस्ट द्वारा भारतीय ट्रस्ट अधिनियम 1882 की धारा 73 के प्रावधानों का हवाला देते हुए आवेदन किया गया था। उन्होंने कहा कि यदि प्रत्यर्थी एक सार्वजनिक ट्रस्ट होता, तो वे सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) की धारा 92 के तहत आवेदन दायर करते और उक्त आवेदन न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के बाद महाधिवक्ता या ट्रस्ट में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा दायर किया जा सकता था।

उन्होंने प्रस्तुत किया कि भारतीय ट्रस्ट अधिनियम केवल निजी ट्रस्ट पर लागू होता है और ट्रस्टी की नियुक्ति के लिए आवेदन भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की धारा 73 के तहत पेश किया गया था, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्रत्यर्थी ने खुद को एक निजी ट्रस्ट अभिनिर्धारित किया है और उन्हें उक्त रुख से पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उक्त आवेदन ट्रस्टियों द्वारा अपने बीच उत्पन्न होने वाली रिक्ति को भरने के लिए दायर किया गया था और वर्तमान आवेदन ट्रस्ट के ट्रस्टियों में से एक गया प्रसाद गुप्ता द्वारा दायर किया गया था। उन्होंने दलील दी कि प्रत्यर्थीगण ने हमेशा से स्वयं को एक निजी ट्रस्ट अभिनिर्धारित किया है और तदनुसार, ट्रस्टी की नियुक्ति के लिए ट्रस्ट अधिनियम की धारा 73 के प्रावधानों को लागू किया है।

14. यह भी प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि उक्त ट्रस्ट-डीड के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि यह एक निजी ट्रस्ट है, लेकिन अब ट्रस्ट का संचालन ट्रस्टियों द्वारा किया जा रहा है, जो सार्वजनिक संबंधित गतिविधियों में शामिल हैं और इसलिए अब उक्त ट्रस्ट को एक निजी ट्रस्ट के बजाय एक सार्वजनिक ट्रस्ट कहा जा सकता है।

15. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जायसवाल ने रिट याचिका का विरोध किया है। उन्होंने कहा है कि प्रत्यर्थी ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट है और आम जनता के कल्याण के लिए काम कर रहा है। उन्होंने कहा है कि ट्रस्ट एक अस्पताल चला रहा है और मरीजों से कोई पैसा नहीं लिया जाता है और विचारण न्यायालय ने अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर पर्याप्त रूप से विचार किया है और सही ढंग से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि ट्रस्ट एक सार्वजनिक ट्रस्ट है। उन्होंने आगे कहा कि ऐसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी की प्रकृति पर विचार नहीं किया जा सकता है। अंत में इस प्रश्न के संबंध में कि क्या याचिकाकर्ता ने लखनऊ नगर निगम द्वारा गृह-कर वसूली के लिए बकाया राशि जमा करते समय किराया दिया था, उन्होंने कहा कि उक्त राशि का भुगतान किराए के लिए विनियोजित नहीं किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि गृहकर का भुगतान करना मकान मालिक का कर्तव्य था और यदि किरायेदार ने स्वेच्छा से उक्त राशि का भुगतान किया है, तो उसे उसके किराए में समायोजित नहीं किया जा सकता है, और रिट याचिका को खारिज करने का अनुरोध किया।

16. इस रिट याचिका में, पहला महत्वपूर्ण प्रश्न जो विचारणीय है, वह यह है कि क्या प्रत्यर्थी एक निजी धर्मार्थ ट्रस्ट है जैसा कि याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया है या एक सार्वजनिक ट्रस्ट है जैसा कि प्रत्यर्थीगण ने आरोप लगाया है।

17. मूल रूप से, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि विचाराधीन ट्रस्ट का रखरखाव ट्रस्ट के पैसे से होता है, जो उसमें "ठाकुर जी महाराज विराजमान " रखता है और उस पैसे का इस्तेमाल "अस्पताल" को बनाए रखने में किया जाता है, जो जनता के लिए है। पंजीकरण के लिए मरीजों से केवल 1/- रुपये लिए जाते हैं और यह आम जनता

के कल्याण के लिए सक्रिय रूप से काम कर रहा है और इसलिए, उक्त ट्रस्ट "सार्वजनिक धर्मार्थ ट्रस्ट" के रूप में योग्य होगा।

18. यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि निजी बंदोबस्ती या निजी ट्रस्ट की अवधारणा अंग्रेजी कानून में अज्ञात है, जहां सभी ट्रस्ट विशुद्ध रूप से धर्मार्थ और धार्मिक प्रकृति के सार्वजनिक ट्रस्ट होते हैं, लेकिन भारत में ट्रस्टों को निजी ट्रस्ट या सार्वजनिक ट्रस्ट में विभाजित किया जाता है, जैसा कि डॉ मुखर्जी ने टैगोर लॉ लेक्चर्स ऑन द हिंदू लॉ ऑफ रिलीजियस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स (1952 संस्करण) पृष्ठ 12 में कहा है कि-

> "यह प्रश्न कि क्या धार्मिक निधि निजी प्रकृति की है या सार्वजनिक प्रकृति की है, प्रत्येक प्रकरण में साबित तथ्यों के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए और कोई भी परीक्षण या परीक्षण निर्धारित करना कठिन है जो सार्वभौमिक रूप से लागू हो सके। यह स्पष्ट है कि जहां निधि प्राचीनता में खो गई है या रहस्य में लिपटी हुई है, इसकी उत्पत्ति को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज या राजस्व प्रविष्टि नहीं है, वहां न्यायालय का कार्य कठिन हो जाता है और उसे मंदिर के उपयोगकर्ता की प्रकृति के बारे में केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर रहना पड़ता है।

19. तदनुसार, निजी और सार्वजनिक बंदोबस्ती के बीच आवश्यक अंतर यह है कि जहाँ पहले वाले में लाभार्थी निर्दिष्ट व्यक्ति होते हैं, वहीं दूसरे वाले में वे आम जनता या अनिश्चित लोगों का वर्ग होते हैं। सार्वजनिक या निजी बंदोबस्ती की प्रकृति के बीच यह आवश्यक अंतर होने के कारण, यह निष्कर्ष निकलता है कि बंदोबस्ती की प्रकृति निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण परीक्षणों में से एक यह पता लगाना होगा कि समर्पित संपत्ति का प्रबंधन अजनबियों या आम जनता के हाथों में है या संस्थापकों या उनके वंशजों के हाथों में है।

20. आखिरकार, एक मूर्ति एक कानूनी व्यक्ति है जो संपत्ति रखने में सक्षम है और मंदिर को समर्पित संपत्ति देवता में निहित है। यदि मुख्य उपासक जनता के सदस्य हैं जो अधिकार के रूप में पूजा करते हैं तो वास्तविक उद्देश्य भगवान को लाभ पहुंचाना है। कुछ परिस्थितियाँ जिनसे सार्वजनिक बंदोबस्ती का अनुमान लगाया जा सकता है, वे हो सकती हैं कि क्या बंदोबस्ती किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई है जिसकी कोई संतान नहीं है और जो देवता को स्थापित करने के बाद प्रबंधन को जनता के सदस्यों या अजनबियों को सौंपता है जो मंदिर को परिवार के सदस्यों को नहीं बल्कि जनता को समर्पित करने के इरादे का स्पष्ट प्रमाण है। हालाँकि, जहाँ यह साबित हो जाता है कि वसीयतकर्ता या संस्थापक का इरादा मंदिर को केवल परिवार के सदस्यों या उनके वंशजों के लाभ के लिए समर्पित करना था, बंदोबस्ती एक निजी प्रकृति की होगी।

21. केवल यह तथ्य कि आम लोगों को पूजा करने की अनुमति है, अपने आप में किसी बंदोबस्ती को सार्वजनिक नहीं बनाता जब तक

कि यह साबित न हो जाए कि आम लोगों को मंदिर में पूजा करने का अधिकार है। ***देवकी नंदन बनाम मुरलीधर, एआईआर 1957 एससी 133*** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "निजी और सार्वजनिक ट्रस्ट के बीच अंतर यह है कि जहां पहले वाले में लाभार्थी विशिष्ट व्यक्ति होते हैं, वहीं दूसरे वाले में वे आम जनता या उनका एक वर्ग होते हैं। पहले वाले में लाभार्थी वे व्यक्ति होते हैं जिन्हें निश्चित किया जा सकता है या जिन्हें निश्चित किया जा सकता है, वहीं दूसरे वाले में वे एक ऐसी संस्था का गठन करते हैं जिसे निश्चित नहीं किया जा सकता।"

22. याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता ***राधाकांत देब एवं अन्य (पूर्वोक्त)*** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें प्रकरण के तथ्यों के आधार पर यह निर्धारित करने के लिए पर्याप्त दिशा-निर्देश प्रदान करने के रूप में परीक्षण निर्धारित किया गया है कि कोई बंदोबस्ती निजी या सार्वजनिक प्रकृति की है। परीक्षण को वर्तमान प्रकरण के संदर्भ में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

उक्त निर्णय के पैरा 14 में तैयार किए गए दिशानिर्देश नीचे उद्धृत हैं:

> "(1) जहां दान की उत्पत्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, वहां यह प्रश्न कि क्या जनता द्वारा मंदिर का उपयोग अधिकार के रूप में किया जा सकता है।
>
> (2) तथ्य यह है कि नियंत्रण और प्रबंधन या तो व्यक्तियों के एक बड़े समूह में या जनता के सदस्यों में निहित है और संस्थापक के पास प्रबंधन पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसके साथ ही ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है जहां साक्ष्य से पता चलता है कि आम जनता के सदस्यों को शामिल करके योजना तैयार करने का प्रावधान है।
>
> (3) तथापि, जहां दान की प्रकृति और उत्पत्ति को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज उपलब्ध है और दस्तावेज के विवरण से पता चलता है कि मंदिर का नियंत्रण और प्रबंधन संस्थापक या उसके वंशजों के पास है, और संस्थापक से संबंधित व्यापक संपत्ति मंदिर के रखरखाव के लिए समर्पित है, तो यह दिखाने के लिए एक निर्णायक सबूत होगा कि दान निजी प्रकृति का था।
>
> (4) जहां साक्ष्य से पता चलता है कि बंदोबस्ती के संस्थापक ने मंदिर में जनता द्वारा दिए जाने वाले चढ़ावे या योगदान के लिए कोई शर्त नहीं रखी थी, यह बंदोबस्ती की निजी प्रकृति को इंगित करने के लिए एक महत्वपूर्ण आंतरिक परिस्थिति होगी।"

23. के लिए पहले परीक्षण में यह पता लगाना है कि क्या जनता द्वारा मंदिर का उपयोग

अधिकार के रूप में किया जा रहा है। जिस ट्रस्ट डीड के द्वारा संबंधित ट्रस्ट अस्तित्व में आया, उसमें कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि जनता द्वारा मंदिर का उपयोग अधिकार के रूप में किया जाएगा। अन्यथा भी संबंधित मंदिर के उपयोग में जनता का कोई अधिकार नहीं है।

24. दूसरे परीक्षण में, यह पता लगाना होगा कि क्या नियंत्रण और प्रबंधन बड़ी संख्या में लोगों के हाथों में है जो जनता के सदस्य हैं या संस्थापक ने प्रबंधन पर कोई नियंत्रण नहीं रखा। ट्रस्ट डीड के अवलोकन से पता चलेगा कि नियंत्रण और प्रबंधन संस्थापक ने अपने और अपने परिवार तथा बाद में नामित ट्रस्टियों के हाथों में रखा था। इस प्रकार दूसरे परीक्षण के मद्देनजर विचाराधीन ट्रस्ट केवल एक निजी ट्रस्ट है।

25. निर्धारित तीसरा परीक्षण यह है कि दस्तावेज़ से ट्रस्ट की प्रकृति और उत्पत्ति को देखा जाए और क्या मंदिर का नियंत्रण और प्रबंधन संस्थापक और उसके वंशजों के पास है, और क्या मंदिर के रखरखाव के लिए संस्थापक की खुद की व्यापक संपत्ति समर्पित है। यह निर्धारित करने के लिए एक निर्णायक सबूत होगा कि ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट है। वर्तमान प्रकरण में, ट्रस्ट डीड के अवलोकन से पता चलता है कि मंदिर का नियंत्रण और प्रबंधन संस्थापक द्वारा खुद के पास और उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी और बाद में नामित ट्रस्टियों के पास रखा गया था।

26. चौथा परीक्षण वह है जहाँ ट्रस्ट के संस्थापक ने जनता के सदस्यों द्वारा किए जाने वाले योगदान के लिए कोई शर्त नहीं रखी। ट्रस्ट की निजी प्रकृति को इंगित करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण परिस्थिति होगी। जिस ट्रस्ट डीड के माध्यम से संबंधित ट्रस्ट अस्तित्व में आया, उसका अवलोकन करने से पता चलता है कि संस्थापक द्वारा डीड में जनता के सदस्यों द्वारा किए जाने वाले चढ़ावे या योगदान के लिए कोई शर्त नहीं रखी गई थी।

27. इस प्रकार, उपर्युक्त परीक्षणों को लागू करके ट्रस्ट की प्रकृति की जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि विचाराधीन ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट है। ट्रस्ट डीड के अनुसार, ट्रस्ट का नियंत्रण हमेशा ट्रस्ट के निर्माता/संस्थापक के पास होता है, और उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी और उसके बाद ट्रस्टियों के पास। तदनुसार, ट्रस्ट का प्रबंधन संस्थापक के पास और बाद में ट्रस्टियों के पास होता है। किसी भी आम व्यक्ति को ट्रस्टी के रूप में संबद्ध या नियुक्त नहीं किया जा सकता है, और इस तथ्य के साथ कि ट्रस्ट के सदस्य हमेशा से इसे निजी ट्रस्ट के रूप में चलाते रहे हैं, जिसके कारण ट्रस्टियों की नियुक्ति के लिए उन्होंने भारतीय ट्रस्ट अधिनियम की धारा 73 के तहत जिला न्यायाधीश की न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और खुद को एक निजी ट्रस्ट अभिनिर्धारित किया और तदनुसार, यह न्यायालय इस विचार पर पहुँची है कि उपरोक्त कारणों से ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए सभी योग्यताएँ पूरी करता है। दोनों निचली अदालतें माननीय

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में ट्रस्ट की प्रकृति की जांच करने में विफल रही हैं और इसलिए, उक्त विवाद्यक से सही तरीके से नहीं निपटा है और केवल इस आधार पर कि उक्त ट्रस्ट एक धर्मार्थ अस्पताल चला रहा था, ट्रस्ट को एक सार्वजनिक ट्रस्ट अभिनिर्धारित किया है। जैसा कि ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है, उक्त निष्कर्ष विकृत है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

28. इस रिट याचिका में हम जिस दूसरे प्रश्न से चिंतित हैं, वह यह है कि क्या प्रत्यर्थी अपीलकर्ता नगरपालिका बोर्ड द्वारा प्रत्यर्थी पर करों के लिए की गई मांगों के अनुसरण में नगरपालिका बोर्ड को उसके द्वारा भुगतान की गई राशियों में कटौती का दावा करने का हकदार था। अवर न्यायालयों ने यह विचार किया कि प्रत्यर्थी अपीलकर्ता उन राशियों में कटौती करने का हकदार नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी को बेदखल करके कब्जे के लिए वादी का मुकदमा इस निष्कर्ष पर तय होता है कि प्रत्यर्थी अपीलकर्ता वादी द्वारा उसे दी गई मांग के नोटिस का पालन करने में विफल रहा था।

29. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों के अनुसार, प्रत्यर्थी-अपीलार्थी का यह दावा कि वह नगरपालिका बोर्ड को उसके द्वारा भुगतान की गई राशि में कटौती करने का हकदार था, बकाया किराये की राशि में समायोजित किए जाने योग्य नहीं था, लेकिन अवर न्यायालय ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाने में गलती की।

30. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता एक बड़ी इमारत के केवल एक हिस्से का किरायेदार है। अवर न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता द्वारा नगर निगम बोर्ड को कुल 1500/- रुपये का भुगतान किया गया था और अपीलकर्ता द्वारा मांग के नोटिस के अनुसरण में नगर निगम बोर्ड को भुगतान के सबूत के रूप में रसीद दी गई थी। निष्कर्षों से यह भी स्पष्ट है कि नगर निगम बोर्ड ने अपीलकर्ता को उस हिस्से के संबंध में करों के भुगतान की मांग की थी जिसका अपीलकर्ता किरायेदार था।

31. विद्वान अधिवक्ता ने मुकदमे में अपना तर्क इस आधार पर प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता/प्रत्यर्थी संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 108 के खंड (जी) के प्रावधानों के अनुसार वादी-प्रत्यर्थीगण को देय किराए से प्राप्तियों द्वारा कवर की गई राशि को काटने का हकदार था, जिसे उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 177 में निहित प्रावधान के साथ पढ़ा जाए। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 108 दो भागों में है अर्थात पट्टाकर्ता के अधिकार और दायित्व, तथा पट्टेदार के अधिकार और दायित्व। खंड (जी) पट्टेदार के अधिकारों और दायित्वों को समाहित करते हुए उत्तरार्द्ध भाग में आता है, तथा इस प्रकार चलता है : -

> "यदि पट्टाकर्ता कोई ऐसा भुगतान करने में लापरवाही करता है, जिसे करने के लिए वह बाध्य है, और जो, यदि उसके द्वारा नहीं किया जाता है, तो पट्टेदार से या संपत्ति

> के विरुद्ध वसूल किया जा सकता है, तो पट्टेदार ऐसा भुगतान स्वयं कर सकता है, और उसे किराए से ब्याज सहित काट सकता है, या अन्यथा पट्टाकर्ता से वसूल कर सकता है।"

उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 177 इस प्रकार है:- -

> "भवन या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर लगाए गए कर के कारण देय सभी राशियां, सरकार को देय भूमि राजस्व (यदि कोई हो) के पूर्व भुगतान के अधीन, ऐसे भवन या भूमि पर प्रथम भार होंगी।"

32. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 177 में निहित प्रावधान के तहत, नगर पालिका बोर्ड को करों के बकाये को पूरी संपत्ति पर भार के रूप में मानने का अधिकार दिया गया है, जिसमें वह हिस्सा भी शामिल है जो किरायेदार के रूप में प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता के कब्जे में था, जिसके परिणामस्वरूप करों के वे बकाये संपत्ति के विरुद्ध वसूल किए जा सकते हैं जो प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता के कब्जे में पट्टेदार के रूप में है, जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 108 के खंड (जी) द्वारा परिकल्पित है। उनका तर्क है कि इन परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता ने स्वयं भुगतान किया है, इसलिए वह किराए से इसे काटने का हकदार है।

33. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यूपी नगर पालिका अधिनियम की धारा 149 में निहित प्रावधान पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत एक अधिभोगी जो कर का भुगतान करता है जिसके लिए पट्टाकर्ता मुख्य रूप से उत्तरदायी है, किसी भी विपरीत अनुबंध की अनुपस्थिति में, पट्टाकर्ता द्वारा प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है, जो कि धारा 149 में निहित प्रावधानों के अनुसार, करों का भुगतान करने के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी व्यक्ति है। मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। मेरी राय में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क दोनों आधारों पर मान्य है।

34. उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 177 में निहित प्रावधान यह स्पष्ट करते हैं कि नगर पालिका परिषद को नगर पालिका बकाया वसूलने के उद्देश्य से जो शक्तियाँ दी गई हैं, उनमें वह संपत्ति बेचने की शक्ति भी शामिल है जिसके लिए कर देय हो सकते हैं, और उस उद्देश्य के लिए देय कर भवन पर पहला भार होता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि नगर पालिका परिषद, यदि चाहे, तो प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता के कब्जे वाली संपत्ति सहित संपत्ति की बिक्री करके देय कर वसूल कर सकती है। ऐसा होने पर, और इस बात पर कोई विवाद नहीं होने पर कि पट्टाकर्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा नगर पालिका परिषद को भुगतान की गई कुल राशि 1500/- रुपये का भुगतान करने में लापरवाही की है, वह राशि प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता के कब्जे वाली संपत्ति के विरुद्ध वसूल की जा सकती है। इसलिए, प्रत्यर्थी-अपीलकर्ता संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 108 के खंड (जी) के तहत अपने

अधिकारों का प्रयोग करते हुए, स्वयं भुगतान करने और किराए से उसे काटने का हकदार था।

35. उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम की धारा 149 निम्न प्रकार है : -

(1) जब तक नियम द्वारा अन्यथा प्रावधान न किया गया हो, सफाई कर या शौचालयों और शौचालयों की सफाई के लिए कर के अलावा प्रत्येक कर, भवनों या भूमियों या दोनों के वार्षिक मूल्य पर, मुख्य रूप से उस संपत्ति के वास्तविक अधिभोगी से लगाया जाएगा, जिस पर उक्त कर निर्धारित किए गए हैं, यदि वह भवनों या भूमियों का स्वामी है या उन्हें सरकार या बोर्ड से भवन या अन्य पट्टे पर रखता है, या किसी व्यक्ति से भवन पट्टे पर रखता है।

(2) किसी अन्य प्रकरण में कर प्राथमिक रूप से निम्नानुसार लगाया जाएगा, अर्थात्: -

(ए) यदि संपत्ति किराये पर है, तो पट्टाकर्ता से;

(बी) यदि संपत्ति उप-किराए पर है, तो वरिष्ठ पट्टादाता से

(सी) यदि सम्पत्ति किराये पर नहीं दी गई है, तो उस व्यक्ति से, जिसके पास उसे किराये पर देने का अधिकार निहित है।

(3) ऐसे कर के कारण मुख्यतः उत्तरदायी व्यक्ति से देय किसी राशि को वसूल करने में असफल रहने पर, बोर्ड, ऐसे भवनों या भूमियों के किसी भाग के अधिभोगी से, जिसके संबंध में वह देय है, वह भाग वसूल कर सकेगा जो संपूर्ण देय राशि के साथ उसी अनुपात में होगा जैसा कि ऐसे अधिभोगी द्वारा वार्षिक रूप से देय किराया उक्त संपूर्ण भवनों या भूमियों के संबंध में देय किराए की कुल राशि से, या प्रमाणीकृत मूल्यांकन सूची में उनके किराये के मूल्य की कुल राशि से है। (4) कोई अधिभोगी, जो कोई ऐसा भुगतान करता है जिसके लिए वह पूर्वगामी उपबंधों के अधीन मुख्यतः उत्तरदायी नहीं है, किसी विपरीत संविदा के अभाव में, मुख्यतः उत्तरदायी व्यक्ति द्वारा प्रतिपूर्ति की जाने वाली संस्थाएं होंगी।"

36. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मांगे गए करों में सफाई कर या शौचालयों और शौचालयों की सफाई के लिए कर शामिल नहीं था। उपरोक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि जहां तक याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत दायित्व का सवाल है, यह धारा 149 के खंड (3) के तहत केवल उस हिस्से के संबंध में देय कर की आनुपातिक राशि तक सीमित था जो किराएदार के रूप में याचिकाकर्ता के कब्जे में था। हालांकि, खंड (4) के तहत, इसमें निहित प्रतिपूर्ति का अधिकार अधिभोगी के व्यक्तिगत दायित्व की सीमा तक सीमित नहीं है , बल्कि उसके द्वारा किए गए किसी भी भुगतान तक

विस्तारित है, जब तक कि यह उस राशि का भुगतान है जिसके लिए वादी प्रत्यर्थी मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। मेरे विचार से, इस तरह के धन की प्रतिपूर्ति के अधिकार का सार, उस राशि को उस धन से काटने के अधिकार को दर्शाता है जिसे प्रतिपूर्ति के हकदार व्यक्ति को प्रतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को देना पड़ सकता है। यह विचार कि खंड (4) में 'किसी भी भुगतान' की व्याख्या किसी भी कर के भुगतान को शामिल करने के लिए की जानी चाहिए, जिसके लिए पट्टाकर्ता मुख्य रूप से उत्तरदायी था, भले ही खंड (3) के तहत बोर्ड को अधिभोगी से केवल उसका हिस्सा वसूलने का अधिकार हो, न्यायसंगत निर्माण के नियम के अनुरूप भी प्रतीत होता है, क्योंकि, यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अधिभोगी अपने कब्जे वाले हिस्से के संबंध में आनुपातिक देयता की सीमा तक ही भुगतान करने और प्रतिपूर्ति पाने का हकदार है, तो इससे अधिभोगी पर विसंगतियां और कठिनाई पैदा होगी। नगरपालिका बोर्ड आंशिक भुगतान स्वीकार करने से इनकार कर सकता है और अधिभोगी को अन्य अधिभोगियों के साथ साझा रूप से प्राप्त नगरपालिका सुविधाओं से वंचित कर सकता है।

37. इसलिए, नगर पालिका अधिनियम की धारा 149 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता को किराये के किसी भी बकाया के भुगतान में चूक करने वाला नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है, जब अपीलकर्ता ने यह साबित कर दिया है कि उसने 1500/- रुपये की राशि का भुगतान किया था, जो कि 1260/- रुपये से अधिक थी, जिसके संबंध में उस पर चूक करने का आरोप लगाया गया था, जिसे उसने उस संपत्ति के विरुद्ध देय करों के संबंध में मांग के नोटिस के तहत नगरपालिका बोर्ड को भुगतान किया था, जिसमें वह हिस्सा भी शामिल है जिसका वह किरायेदार था।

38. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *देवकी नंदन (पूर्वोक्त)* के प्रकरण में पहले ही यह अभिनिर्धारित किया है कि केवल इस तथ्य से कि जनता के सदस्यों को पूजा करने की अनुमति है, किसी बंदोबस्ती को सार्वजनिक नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान ट्रस्ट एक निजी ट्रस्ट है और अवर न्यायालयों द्वारा दर्ज समवर्ती निष्कर्ष गलत हैं और हस्तक्षेप करने योग्य हैं। नतीजतन, विचाराधीन ट्रस्ट को छूट नहीं दी गई है और अधिनियम, 1972 की धारा 13 के प्रावधान और वही इस पर लागू होते हैं।

39. इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने खुद स्वीकार किया है कि उसके और विपक्षी संख्या 3 के बीच किराएदार और मकान मालिक का रिश्ता है। याचिकाकर्ता नियमित रूप से किराया दे रहा है। इस प्रकार, उनके बीच मकान मालिक और किराएदार का निर्विवाद रिश्ता है।

40. उपरोक्त के मद्देनजर अवर न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष गलत हैं और अधिनियम 1972 की धारा 13 के प्रावधान इस प्रकरण में लागू होते हैं। इसलिए, इस संबंध में अवर न्यायालयों के आदेशों को अपास्त किया जाता है।

अनुवादित

41. इन परिस्थितियों में, रिट याचिका **स्वीकृत** की जाती है और एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 39/2011 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष संख्या 13, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 9.2.2012 के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ एस.सी.सी. वाद संख्या 222/2001 में द्वितीय अपर न्यायाधीश, लघु वाद, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 5.5.2011 के निर्णय को अपास्त किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 375

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट ए संख्या 2000700 वर्ष 2003

और

रिट ए संख्या 2000699 वर्ष 2003

रीता गुप्ता ...याचिकाकर्ता

बनाम

सहायक महाप्रबंधक, व्यक्तिगत ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:
राजीव श्रीवास्तव, श्रीमती नलिनी जैन

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता:
बी. बी. सक्सेना, गौस बेग, विनय शंकर

सिविल कानून - ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स - विनियमन 4(i) - अनुच्छेद 14, 16 और 21- सेवा से निष्कासन, अनुशासनात्मक प्राधिकारी, प्राकृतिक न्याय, अस्पष्ट आदेश, अपीलीय प्राधिकारी, दंड की आनुपातिकता।

रीता गुप्ता को 12.07.1995 को उप महाप्रबंधक, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स (ओबीसी) द्वारा प्रबंधक (एमएमजी स्केल-II) के रूप में नियुक्त/पदोन्नत किया गया था। 25.09.2000 को उन्हें उप महाप्रबंधक, लखनऊ से एक पत्र मिला, जिसमें श्री दुष्यंत सिंह द्वारा वित्तीय अनियमितताओं का आरोप लगाने वाली शिकायत थी।याचिकाकर्ता ने 09.10.2000 को जवाब दिया। याचिकाकर्ता को उप महाप्रबंधक, लखनऊ द्वारा एक अधिकारी (जेएमजीएस-I) के रूप में नियुक्त किया गया था, और 15.04.1999 को पुष्टि की गई थी। 10.10.2000 को उन्हें गोरखनाथ, गोरखपुर में उनकी तैनाती के दौरान अनियमितताओं का आरोप लगाते हुए एक पत्र जारी किया गया, जिस पर उन्होंने चूक स्वीकार की और सलाह के अनुसार राशि जमा करके अनुपालन किया। दोनों मामलों में, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली ने कारण बताओ नोटिस और आरोप-पत्र जारी किया। सहायक महाप्रबंधक ने दोनों मामलों में बिना कारण बताए (अस्पष्ट आदेश) ओबीसी (अनुशासन एवं अपील) विनियमन, 1982 के विनियमन 4(i) के अंतर्गत "सेवा से निष्कासन जो भविष्य में सेवायोजन के लिए अयोग्यता नहीं होगी" का दीर्घ दंड लगाया।

- सहायक महाप्रबंधक के पास शास्ति लगाने की क्षेत्राधिकार नहीं थी, क्योंकि केवल नियुक्ति प्राधिकारी (उप महाप्रबंधक)

• से अन्यून प्राधिकारी ही निष्कासन जैसी दीर्घ शास्ति लगा सकता था।

• अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश अस्पष्ट थे तथा जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमति के कारण बताने में विफल रहे, जिससे प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन हुआ।

• अपीलीय प्राधिकारी के आदेश मनमाने थे, उनमें तर्कपूर्ण विश्लेषण का अभाव था तथा याचिकाकर्ता को प्रतिकूल निष्कर्षों का खंडन करने का अवसर भी नहीं दिया गया था।

• दंड अनुपातहीन था, तथा इस प्रक्रिया में अनुच्छेद 14, 16 और 21 के अंतर्गत संवैधानिक संरक्षण का उल्लंघन किया गया।

<u>दिए गए अनुतोष:</u>

• दोनों रिट याचिकाओं में निष्कासन के आदेश रद्द कर दिए गए।

• न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश दिया कि वह याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में निरंतरता के समान रखे।

सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.09.2002, जिनमें ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स (अनुशासन एवं अपील) विनियमन, 1982 के विनियमन 4(i) के अंतर्गत "सेवा से निष्कासन जो भविष्य में सेवायोजन के लिए अयोग्यता नहीं होगी" का दंड लगाया गया था, दोनों रिट-ए संख्या 2000700 वर्ष 2003 और रिट-ए संख्या 2000699 वर्ष 2003 में निरस्त कर दिए गए थे, क्योंकि वे अस्पष्ट आदेश थे और जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होने के कारण बताने में विफल रहे थे, जिससे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ।

अनुशासनात्मक प्राधिकारी, नियुक्ति प्राधिकारी (उप महाप्रबंधक) से निम्न पद पर होने के कारण, एस.बी.आई. अधिकारी सेवा नियमावली के विनियमन 68(II) के अनुरूप, सेवा से हटाने जैसे दीर्घ दंड को अधिरोपित करने में सक्षम नहीं थे, जिससे आदेश प्रारम्भ से ही शून्य हो गए।

अपीलीय प्राधिकारी के दिनांक 03/04.02.2003 के आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता की अपील को बिना किसी तर्कपूर्ण निष्कर्ष या प्रतिकूल संप्रेक्षणों का खंडन करने का अवसर दिए खारिज कर दिया गया था, को मनमाना और बिना सोचे-समझे पारित किया गया माना गया।

निष्कासन का दंड अनुपातिक नहीं पाया गया तथा यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का उल्लंघन है, क्योंकि कथित अनियमितताओं के बावजूद याचिकाकर्ता को निलंबित नहीं किया गया तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रक्रियागत निष्पक्षता का पालन करने में विफल रहा।

याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बने रहने का हकदार माना गया।

<u>वादविधि जिनकी चर्चा की गई:</u>

1. एस.बी.आई. बनाम एस. विजय कुमार (1990)

2. सिरसिल्क लिमिटेड बनाम टेक्सटाइल कमेटी (1989)

3. कृष्ण कुमार बनाम मंडल सहायक, विद्युत अभियंता (1979)

4. पी.एन.बी. बनाम कुंज बिहारी मिश्रा (1998)

5. डॉ. हर किशन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1971)

6. भारत संघ बनाम जे.ए. मुनाफ (1967) -

<u>दिए गए अनुतोष:</u>

निष्कासन आदेश दिनांक 21.09.2002 और अपीलीय आदेश दिनांक 03/04.02.2003 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण रिट जारी की गई।

परमादेश रिट जारी कर प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश दिया गया कि वह याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में निरंतरता के रूप में व्यवहृत करे।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव श्रीवास्तव और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री विनय शंकर को सुना गया।

2. चूंकि दोनों रिट याचिकाओं में समान विवाद शामिल है, इसलिए उन्हें इस सामान्य निर्णय द्वारा सामूहिक रूप से तय किया जा रहा है और रिट-ए संख्या 2000700/2003 को अग्रणी मामला माना जा रहा है।

3. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

(i) जैसा कि सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली द्वारा दिनांक 21 सितम्बर, 2002 को पारित पत्र संख्या एचओ:पीईआर(डीएडी): 2291 (अनुलग्नक-1) में निहित है, एक उत्प्रेषण रिट या उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट या निर्देश "सेवा से हटाने का आदेश जो भविष्य के रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगा", जारी किया जाए।

(ii) जैसा कि पत्र संख्या एचओ:पीईआर (डीएडी) 620 दिनांक 3/4 फरवरी 2003 (अनुलग्नक 2) में निहित है, जिसमें विपक्षी पक्ष संख्या 1

द्वारा उनके पत्र दिनांक 21/9/2002 के तहत लगाए गए दंड को बरकरार रखा गया है, अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्षकार संख्या 3 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट या उत्प्रेषण लेख की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

(iii) परमादेश रिट या परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसमें विपक्षी पक्ष संख्या 4 को आदेश दिया जाए कि वह विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा पारित आदेश को (अनुलग्नक-1) के तहत याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने और अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्ष संख्या 3 द्वारा पत्र एचओ: पीईआर (डीएडी) 620, (अनुलग्नक-2) के तहत विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा पारित याचिकाकर्ता के खिलाफ हटाने के आदेश को शून्य मानते हुए परिणामी लाभों के साथ याचिकाकर्ता को सेवा में बनाए रखे।

(iv) बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अधिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1980 की धारा 19 के तहत प्रदान किए गए परामर्श के अनिवार्य वैधानिक प्रावधान को उस सीमा तक लागू नहीं करने के लिए प्रतिपक्षी संख्या 5 को आदेश देने के लिए परमादेश रिट या रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जहां तक किसी अधिकारी (याचिकाकर्ता) के बारे में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है, जो कि ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स अनुशासन और अपील विनियम, 1982 के विनियम 3 (जी) में नियुक्ति प्राधिकारी से निचले रैंक और ग्रेड के अधिकारी द्वारा सेवा से हटाने जैसे प्रमुख दंड के अधिरोपण के अधीन नहीं होगा, जैसा कि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी सेवा विनियमन के 68 (II) में प्रावधान किया गया है।

(v) परमादेश की रिट या परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश, जिसमें प्रतिपक्षी संख्या 6 को यह आदेश दिया गया है कि वह पूर्व मंजूरी के अनिवार्य प्रावधान को ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स के अनुशासन और अपील विनियमों को तैयार करने में प्रदान नहीं किया गया है, जहां तक उक्त

विनियमों के विनियम 3(जी) में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान नहीं है कि याचिकाकर्ता पर लगाया गया सेवा से निष्कासन जैसा बड़ा दंड याचिकाकर्ता के नियुक्ति प्राधिकारी के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं लगाया जा सकता है, जैसा कि भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारियों पर लागू सेवा विनियमन के विनियम 68(II) में प्रावधान है।

(vi) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उचित और ठीक समझे।

(vii) याचिकाकर्ता के पक्ष में लागत के साथ रिट याचिका को स्वीकार किया जाए।

4. रिट-ए संख्या 2000699/2003 के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

(i) जैसा कि सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली द्वारा 21 सितंबर, 2002 को पारित पत्र संख्या एचओ: पीईआर (डीएडी): 2292 (अनुलग्नक-1) में निहित है, उत्प्रेषण रिट या उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश "सेवा से हटाने के आदेश को रद्द करना जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगी", जारी किया जाए।

(ii) अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्ष संख्या 3 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट या उत्प्रेषण लेख की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जैसा कि पत्र संख्या एच.ओ.: पीईआर (डीएडी): 620 दिनांक 3/4 फरवरी, 2003 (अनुलग्नक-2) में निहित है, जिसमें विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा उनके पत्र दिनांक 21.9.2002 के तहत लगाए गए दंड को बरकरार रखा गया है।

(iii) परमादेश रिट या परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसमें विपक्षी पक्ष संख्या 4 को आदेश दिया जाए कि वह विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा पारित आदेश को (अनुलग्नक-1) के अनुसार याचिकाकर्ता को सेवा

से हटाने और अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्ष संख्या 3 द्वारा पत्र एच.ओ.: पीईआर (डीएडी) 620, अनुलग्नक-2 के अनुसार विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा पारित याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने के आदेश को शून्य मानते हुए परिणामी लाभों के साथ याचिकाकर्ता को सेवा में बनाए रखे।

(iv) परमादेश रिट या परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें विपक्षी पक्षकार संख्या 5 को यह आदेश दिया जाए कि वह बैंकिंग कंपनी (उपक्रम का अर्जन और अंतरण) अधिनियम, 1980 की धारा 19 के अंतर्गत दिए गए परामर्श के अनिवार्य वैधानिक प्रावधान को उस सीमा तक लागू न होने के रूप में देखे, जहां तक विनियमन 3(जी) में स्पष्ट रूप से नियुक्ति प्राधिकारी से निम्न रैंक और ग्रेड वाले प्राधिकारी द्वारा सेवा से हटाने जैसे बड़े दंड को लागू करने का प्रावधान नहीं है, जैसा कि भारतीय स्टेट बैंक, अधिकारी सेवा नियमावली, 68(II) के प्रावधान में प्रावधान किया गया है।

(v) परमादेश की रिट या परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश, जो विपक्षी पक्षकार संख्या 6 को यह मानने का आदेश देता है कि ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स, अधिकारी कर्मचारी अनुशासन और अपील विनियम, 1982 के निर्माण के लिए पूर्व मंजूरी नहीं दी गई है, क्योंकि उक्त विनियमों के विनियम 3(जी) में स्पष्ट रूप से भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियमावली के नियम 68(II) का प्रावधान नहीं है, जो यह प्रदान करता है कि, "जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी, याचिकाकर्ता के अधिकारियों की श्रेणी के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी से निम्न श्रेणी का है, वहां नियम 67 के खंड (ई), (एफ), (जी) और (एच) में निर्दिष्ट किसी भी प्रमुख दंड को लगाने का आदेश, अनुशासनात्मक प्राधिकारी की सिफारिशों पर उससे उच्चतर किसी प्राधिकारी या नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा ही दिया जाएगा।"

(vi) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उचित और उपयुक्त समझे।

(vii) याचिकाकर्ता के पक्ष में लागत सहित रिट याचिका को स्वीकार किया जाए।"

5. रिट-ए संख्या 2000700/2013 के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को बैंक के निदेशक मंडल द्वारा याचिकाकर्ता के रैंक और ग्रेड में एक अधिकारी की नियुक्ति के उद्देश्य से डिजाइन किए गए "सक्षम प्राधिकारी" के संदर्भ में उप महाप्रबंधक द्वारा एमएमजी II में प्रबंधक के रूप में 12.7.1995 को नियुक्त / पदोन्नत किया गया था। दिनांक 25.9.2000 को याचिकाकर्ता को उप महाप्रबंधक, लखनऊ द्वारा एक पत्र दिया गया, जिसमें श्री दुष्यंत सिंह द्वारा की गई शिकायत के संदर्भ में याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ वित्तीय अनियमितताओं का आरोप लगाया गया था।

दिनांक 9.10.2000 को याचिकाकर्ता ने उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ को अपना जवाब प्रस्तुत किया। दिनांक 27.1.2001 को विपक्षी संख्या 1- सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली ने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिया, जिस पर शिकायत का विषय पहले ही उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ द्वारा संज्ञान लिया जा चुका है।

दिनांक 27.6.2001 को याचिकाकर्ता को विपक्षी पक्ष संख्या 1, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), मुख्य कार्यालय, नई दिल्ली द्वारा आरोप-पत्र दिया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने 11.7.2001 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। दिनांक 8.8.2001 को विपक्षी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच शुरू की। 6.5.2002 को, शिकायतकर्ता (श्री दुष्यंत सिंह) ने याचिकाकर्ता को 25.1.2000 को लिखे अपने पत्र में इस बात की पुष्टि की कि उन्होंने याचिकाकर्ता को अपनी मां के नाम पर या ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स में अपनी मां के साथ संयुक्त रूप से अपने नाम पर तथा साथ ही उपरोक्त पत्र में उल्लिखित बैंकों में रखे गए किसी भी खाते के संबंध में किसी भी जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया है।

दिनांक 1.7.2002 को विपक्षी संख्या 1, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), मुख्य कार्यालय, नई दिल्ली ने याचिकाकर्ता से कहा कि वह विपक्षी संख्या 1 के पत्र के साथ संलग्न जांच अधिकारी की रिपोर्ट, जो याचिकाकर्ता को प्राप्त हुई थी, के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करें। दिनांक 23.7.2002 को याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर विपक्षी पक्ष संख्या 1 के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया।

दिनांक 21.9.2002 को, विपक्षी पक्ष संख्या 1 ने एक अनाख्यापक आदेश द्वारा याचिकाकर्ता पर (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1982 के नियम 4(i) के अनुसार "सेवा से निष्कासन जो भविष्य में रोजगार के

लिए अयोग्यता नहीं होगी" का एक बड़ा दंड लगाया।

विपक्षी संख्या 1, किसी भी समय, न तो जब उसने याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दिया, और न ही जब उसने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने का दंड लगाया, वह याचिकाकर्ता के संबंध में सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी था, और न ही वह सेवा से हटाने का प्रमुख दंड लगाने में सक्षम था।

दिनांक30.06.2002 तक संशोधित अनुशासन एवं अपील विनियम, 1982 में संलग्न याचिकाकर्ता के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए अनुसूची के अनुसार, अनुसूची में निर्दिष्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी जो विनियम 4 में किसी भी दंड को लगाने के लिए सक्षम है, उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ है। लेकिन, विपक्षी संख्या 1 द्वारा जुर्माना लगाए जाने की तिथि को संशोधित अनुसूची दिनांक 8.2.2002 लागू हो गई थी।

पुनः, उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ अनुसूची में निर्दिष्ट प्राधिकारी है जो विनियमन 5(3) सपठित विनियमन 4 के अनुसार याचिकाकर्ता पर कोई भी दंड लगाने के लिए सक्षम है। इसके अलावा, ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स अनुशासन एवं अपील विनियम, 1982 का विनियम 3(जी) भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम के विनियम 68 के समतुल्य है। इसलिए, नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा सेवा से हटाए जाने जैसे बड़े दंड के अधीन न किए जाने का संरक्षण, जैसा कि भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारियों को उपलब्ध है, याचिकाकर्ता को भी उपलब्ध है।

विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा पारित चुनौती आदेश में सेवा से हटाने का आदेश, जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं माना जाएगा तथा अपील को अस्वीकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16, 19 और 21 का उल्लंघन है।

दिनांक 7.1.2003 को, सेवा से हटाने के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 1/2003 (एसबी) को इस माननीय न्यायालय द्वारा वैधानिक अपीलीय प्राधिकरण को वापस भेज दिया गया था, साथ ही अपीलीय प्राधिकरण को निर्देश दिया गया था कि वह अपील को गुण-दोष के आधार पर और कानून के अनुसार तय करे।

दिनांक 15.1.2003 को याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्ष संख्या 3, महाप्रबंधक (कार्मिक) मुख्यालय, नई दिल्ली के समक्ष अपनी व्यापक अपील दायर की, जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखते हुए खारिज कर दिया गया।

6. रिट-ए संख्या 2000699/2003 में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय लखनऊ द्वारा जेएमजीएस-I में अधिकारी के रूप में नियुक्त/पदोन्नत किया गया था। दिनांक 15.4.1999 को, याचिकाकर्ता को उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय लखनऊ द्वारा 20.3.1999

से जेएमजीएस- I में अधिकारी के रूप में पुष्टि की गई थी।

दिनांक 10.10.2000 को उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय लखनऊ, विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने पत्र संख्या ROL/I&C/4163 दिनांक 10.10.2000 जारी किया जिसका शीर्षक था "गोरखनाथ, गोरखपुर में आपकी तैनाती के दौरान आपके द्वारा की गई अनियमितताएं" तथा याचिकाकर्ता को उसके द्वारा धोखाधड़ी से निकाली गई धनराशि जमा करने की सलाह।

दिनांक 23.10.2000 को, याचिकाकर्ता ने विपक्षी पक्ष संख्या 2, उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय लखनऊ को संबोधित करते हुए 23.10.2000 का अनुपालन पत्र भेजा, जिसमें उसने अपनी चूक स्वीकार की। ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स अनुशासन एवं अपील विनियम, 1982 के विनियम 3(जी) के अनुसार सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी, क्षेत्रीय उप महाप्रबंधक, लखनऊ ने कथित चूकों और उन चूकों के संबंध में दोष स्वीकार करने के संबंध में अपना निर्णय लेते हुए यह सलाह दी कि वह धनराशि जमा करें और यह प्रमाणित करें कि याचिकाकर्ता द्वारा उसके द्वारा कार्य किए गए किसी भी कार्यालय में ऐसी कोई चूक नहीं की गई है।

दिनांक 27.6.2001 को, याचिकाकर्ता को विपक्षी संख्या 1, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), मुख्यालय, नई दिल्ली द्वारा आरोप पत्र दिया गया। दिनांक 8.8.2001 को, विपक्षी संख्या 1, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), मुख्यालय, नई दिल्ली ने जांच कार्यवाही शुरू की। दिनांक 1.7.2002 को विपक्षी संख्या 1, सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) मुख्यालय, नई दिल्ली ने याचिकाकर्ता से कहा कि वह विपक्षी संख्या 1 के पत्र के साथ संलग्न जांच अधिकारी की रिपोर्ट, जो याचिकाकर्ता को प्राप्त हुई थी, के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करें।

दिनांक 23.7.2002 को याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर विपक्षी पक्ष संख्या 1 के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। दिनांक 21.9.2002 को, विपक्षी संख्या 1 ने एक अनाख्यापक आदेश द्वारा याचिकाकर्ता पर (अनुशासन और अपील) विनियम, 1982 के विनियम 4(i) के अनुसार "सेवा से निष्कासन जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगी" का एक बड़ा दंड लगाया।

विपक्षी पक्ष संख्या 1 किसी भी समय, न तो जब उसने याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र दिया, और न ही जब उसने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने का दंड लगाया, वह याचिकाकर्ता के संबंध में सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी था, और न ही वह सेवा से हटाने का प्रमुख दंड लगाने में सक्षम था।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली द्वारा 21.9.2002 को पारित आदेश, जिसमें अनुशासन और अपील विनियमन, 1982 के विनियमन 4(i) के तहत पारित "सेवा से हटाने, जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं

होगी" का एक बड़ा दंड लगाया गया था, वह कारणों से समर्थित आदेश नहीं है और इस प्रकार यह आख्यापक आदेश नहीं है। आरोप संख्या 1 के संबंध में जांच प्राधिकारी के निष्कर्ष को अनधिकृत और अत्यधिक अनियमित कृत्य मानते हुए विपक्षी पक्ष संख्या 1 ने माना है कि याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी से अंतरण भुगतान आदेश की राशि को अपने खाते में जमा करवा लिया है। जहां तक विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने जांच प्राधिकारी के निष्कर्ष से असहमति व्यक्त की है, वह याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 1 के संबंध में उसके आचरण को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि आरोप-2 के संबंध में जांच अधिकारी का निष्कर्ष अनुचित है, क्योंकि उक्त निष्कर्ष, आरोप के संबंध में कार्यवाही में दिए गए साक्ष्य की अवहेलना पर आधारित है। यह आरोप अनुशासन एवं अपील विनियमन, 1982 के विनियमन 15 के प्रावधान की पूर्ण अवहेलना एवं उल्लंघन में सिद्ध हुआ है। विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने अपने आदेश दिनांक 21.9.2002 के द्वारा आरोप संख्या 2 के संबंध में विनियमन 15 के प्रावधान के बावजूद बिना कोई कारण बताए अपना आदेश पारित कर दिया। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 1 ने आरोप संख्या 2 के संबंध में भी अनाख्यापक आदेश पारित किया है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अपीलीय प्राधिकारी (विपक्षी पक्ष संख्या 3) ने कोई तर्कसंगत आदेश पारित नहीं किया है और रिट याचिका संख्या 1 (एसबी) 2003 में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया है, जबकि इस माननीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को गुण-दोष के आधार पर तय करने का निर्देश दिया था, लेकिन विपक्षी पक्ष संख्या 3 ऐसा करने में विफल रहा है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि विपक्षी पक्ष संख्या 1 का सेवा से हटाने का बड़ा दंड लगाने का आदेश, जो विनियम 4(i) के अनुसार भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगा, पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर था, क्योंकि बैंक में उप महाप्रबंधक के पद से नीचे का अधिकारी कभी भी सेवा से हटाने का बड़ा दंड लगाने के लिए सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं था, जो विनियम 4(i) के अनुसार भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता होगा।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता पर विनियमन 4(i) के अनुसार सेवा से हटाने का दंड अत्यधिक है, क्योंकि प्रथम दृष्टया यह स्थापित हो जाने के बाद भी कि याचिकाकर्ता एक अनियमित कार्य के लिए जिम्मेदार हो सकती है, उसे सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विनियमन 12(1) ए के तहत निलंबित नहीं किया गया।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भारतीय स्टेट बैंक और

ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के लिए उनके संबंधित बोर्डों द्वारा तैयार किए गए अनुशासन और अपील विनियम समान हैं, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के अनुशासन और अपील विनियमों के विनियमन 3(जी) के अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी की परिभाषा में आने वाले शब्द "लगाने में सक्षम" को भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम के विनियमन 68(ii) के प्रावधान के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि विनियमन 3(जी) के अनुसार सक्षम प्राधिकारी की परिभाषा केवल अनुसूची में निर्दिष्ट प्राधिकारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में परिभाषित नहीं करती है। इसमें यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास अनुशासन एवं अपील विनियमन के विनियम 4 में निर्दिष्ट कोई भी दंड लगाने की क्षमता होनी चाहिए। याचिकाकर्ता पर सेवा से हटाने जैसा बड़ा दंड लगाने की क्षमता केवल तभी प्रदान की जाती है जब ऐसा प्राधिकारी नियुक्ति प्राधिकारी के पद से नीचे का न हो, जैसा कि भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारियों के मामले में लागू होता है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता को बैंक की सेवा में कार्यकाल की सुरक्षा के संबंध में न्याय पाने का निहित अधिकार प्राप्त है, जो कि राज्य का एक साधन है, तथा उसके नियुक्ति प्राधिकारी के पद से नीचे का न हो ऐसे प्राधिकारी/अधिकारी द्वारा न्याय किया जा सकता है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के अनुशासन और अपील विनियमन के प्रयोजन के लिए विनियमन 3(1)(iii) के अनुसार भारतीय स्टेट बैंक एक सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक है, विनियमन 3(जी) के अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी की परिभाषा में दिए गए शब्द 'लगाने में सक्षम' को इस तरह से समझा जाना चाहिए कि वे निरर्थक न हो जाएं। भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम के विनियमन 68 (II) के प्रावधान को पढ़कर, जो यह प्रावधान करता है कि एक बड़ा जुर्माना केवल उस प्राधिकारी द्वारा लगाया जा सकता है जो ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के विनियमन 3 (जी) में नियुक्ति प्राधिकारी से रैंक और ग्रेड में कम नहीं है, शब्दों 'लगाने में सक्षम' को अर्थ और सार दिया जा सकता है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भारतीय स्टेट बैंक और ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स में अनुशासन एवं अपील विनियम भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से और केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति से तैयार किए गए हैं, भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम के विनियम 68(II) के परन्तुक के अनुसार नियुक्ति प्राधिकारी से निम्न रैंक के प्राधिकारी द्वारा भारतीय स्टेट बैंक में अधिकारियों को लागू बड़े दण्ड के अधिरोपण के अधीन न होने के संरक्षण को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16, 19 और 21 में निहित याचिकाकर्ता के अधिकारों की रक्षा के लिए ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन एवं अपील) विनियम, 1982 के विनियम 3(जी) में प्रदत्त

अनुशासनात्मक प्राधिकारी की परिभाषा में पढ़ा जाना चाहिए।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता पर सेवा से हटाने का लगाया गया दंड पूरी तरह अनुचित है और जांच प्राधिकारी के निष्कर्ष के अनुपात से असंगत है।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि निष्कासन का आक्षेपित आदेश, जो कि विपक्षी पक्ष संख्या 1 द्वारा विनियम 4 (i) के अनुसार याचिकाकर्ता पर अधिरोपित भावी रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगा, प्रारंभ से ही अमान्य है तथा अपीलीय प्राधिकारी के दिनांक 3/4 फरवरी, 2003 के आदेश के तहत उसकी अपील को अस्वीकार करके इसे ठीक नहीं किया जा सकता है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता को उसके नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा बैंक की सेवा से हटाया जाना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का स्पष्ट उल्लंघन है।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे दलील दी कि अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्ष संख्या 3 का आदेश, जो विपक्षी पक्षकारों की ओर से दायर प्रति शपथपत्र के अनुलग्नक सीए-9 में निहित है, परिपत्र संख्या पीईआर/12/02/347 दिनांक 8.2.2002 (रिट याचिका का पृष्ठ 95) के अनुसार याचिकाकर्ता के संबंध में सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में परिवर्तन की पूर्ण अवहेलना करते हुए पारित किया गया है, जिसने विपक्षी पक्षकार संख्या 1 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को पूर्णतः अधिकारिता के बिना प्रस्तुत किया, जिससे उक्त आक्षेपित आदेश प्रारम्भ से ही शून्य हो गया।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अपीलीय प्राधिकारी, विपक्षी पक्षकार संख्या 3 का आदेश, जो विपक्षी पक्षों की ओर से दायर प्रति शपथपत्र के अनुलग्नक सी.ए.-9 में निहित है, याचिकाकर्ता की अपील में लिए गए सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधारों पर विचार किए बिना पारित किया गया है, जिससे उपरोक्त आदेश स्पष्ट रूप से अवैध, मनमाना और भेदभावपूर्ण हो गया है।

22. अपने तर्कों के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर अवलम्ब लिया है:

(i) स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम एस विजय कुमार, दिनांक 18.7.1990 को सिविल अपील संख्या 3392-3394/1990 में पारित

(ii) सिरसिल्क लिमिटेड बनाम टेक्सटाइल कमेटी और अन्य, 1989 सप (1) एससीसी 168

(iii) कृष्ण कुमार बनाम मंडल सहायक, विद्युत अभियंता, मध्य रेलवे और

अन्य (1979) 4 एससीसी 289

(iv) पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम कुंज बिहारी मिश्रा (1998) 7 एससीसी 84

(v) डॉ. हर किशन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, दिनांक 25.3.1971 को सिविल अपील संख्या 430/1970 में पारित

(vi) भारत संघ और अन्य तथा जेए मुनाफ, दिनांक 7.12.1967 को सिविल अपील संख्या 995/1967 में पारित

23. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री विनय शंकर ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी बैंक की पदोन्नति नीति के प्रावधानों के अनुसार उप महाप्रबंधक द्वारा नहीं बल्कि साक्षात्कार द्वारा पदोन्नत किया गया था और पदोन्नति पत्र दिनांक 17.7.1995 को सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) द्वारा जारी किया गया था। स्केल-II अधिकारियों के लिए सक्षम प्राधिकारी क्षेत्रीय प्रमुख/मुख्य प्रबंधक हैं। इस प्रकार, स्केल-IV अधिकारी, स्केल-II अधिकारियों के लिए नियुक्ति प्राधिकारी है।

24. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि वास्तव में याचिकाकर्ता को एमएमजीएस-II में नियुक्त नहीं किया गया था, बल्कि उसे क्लर्क/टाइपिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था और उक्त पद के लिए उसकी नियुक्ति प्राधिकारी सहायक क्षेत्रीय प्रबंधक यानी एमएमजीएस-III में एक अधिकारी है। प्रतिवादी बैंक की पदोन्नति नीति के अनुसार उसे प्रबंधक के पद पर पदोन्नत किया गया।

25. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि प्रासंगिक समय पर, उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ प्रशासनिक रूप से लखनऊ क्षेत्र को नियंत्रित कर रहे थे, लेकिन प्रतिवादी बैंक के सभी कर्मचारियों के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रधान कार्यालय में थे और सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) जेएमजी स्केल-I और एमएमजी स्केल-II के अधिकारियों के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी थे। चूंकि याचिकाकर्ता एमएमजी स्केल-II का अधिकारी था, इसलिए मुख्यालय में सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) ओबीसी अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन एवं अपील) विनियम, 1982 के तहत उसका अनुशासनात्मक प्राधिकारी था।

26. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यहां तक कि दिनांक 8.2.2002 के परिपत्र में भी यह स्पष्ट किया गया है कि जिन मामलों में जेएमजी स्केल-I और एमएमजी स्केल-II में पुरस्कार स्टाफ/अधिकारियों को 8.2.2002 से पहले निलंबित/चार्जशीट किया गया है, ऐसे सभी मामलों में सक्षम प्राधिकारी मुख्यालय होगा। चूंकि याचिकाकर्ता को दिनांक 27.6.2002 को आरोप पत्र दिया गया था, इसलिए उसका अनुशासनात्मक प्राधिकारी मुख्यालय में सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) था।

27. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) याचिकाकर्ता के लिए सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी थे/हैं और यह प्रासंगिक समय पर ओबीसी अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम, 1982 की अनुसूची के अनुसार है। उपरोक्त विनियमों में दिनांक 30.06.2002 तक संशोधित अनुसूची को दिनांक 8.2.2002 के परिपत्र द्वारा सम्मिलित किया गया था, जबकि याचिकाकर्ता को 27.6.2001 को आरोप पत्र दिया गया था और 27.06.2001 तक विद्यमान उक्त विनियमों की अनुसूची के अनुसार, विपक्षी संख्या 1 सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक) याचिकाकर्ता के लिए सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी था।

28. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उद्धृत विधि-रिपोर्टों पर विचार किया है।

29. रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को 12.7.1995 को उप महाप्रबंधक द्वारा एमएमजी II में प्रबंधक के रूप में नियुक्त/पदोन्नत किया गया था। दिनांक 25.9.2000 को याचिकाकर्ता को उप महाप्रबंधक द्वारा श्री दुष्यंत सिंह द्वारा की गई शिकायत के संदर्भ में एक पत्र दिया गया, जिसमें कुछ आरोप लगाए गए थे, जिस पर याचिकाकर्ता ने 9.10.2000 को जवाब प्रस्तुत किया। प्रतिवादी संख्या 1 (सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली) ने 27.1.2001 को याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिया कि शिकायत का संज्ञान उप महाप्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ द्वारा पहले ही लिया जा चुका है।

इससे यह भी पता चलता है कि 27.6.2001 को याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा आरोप पत्र दिया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने 11.7.2001 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। दिनांक 8.8.2001 को प्रतिवादी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच शुरू की। दिनांक 1.7.2002 को प्रतिवादी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता से अनुरोध किया कि वह याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त जांच अधिकारी की रिपोर्ट के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करें, जिस पर याचिकाकर्ता ने दिनांक 23.7.2002 को अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। दिनांक 21.9.2002 को प्रतिवादी संख्या 1 ने "सेवा से निष्कासन" का एक बड़ा दंड लगाया, जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगी। जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 1/2003 (एसबी) के तहत एक रिट याचिका दायर की, जिसका निपटारा अपीलीय प्राधिकारी को निर्देश देते हुए किया गया कि वह अपील का निर्णय गुण-दोष के आधार पर तथा कानून के अनुसार करें। दिनांक 15.1.2003 को याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 अर्थात महाप्रबंधक (कार्मिक) मुख्यालय, नई दिल्ली के समक्ष व्यापक अपील दायर की, जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखते हुए खारिज कर दिया गया।

30. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में कई निर्णयों का

उदाहरण दिया, जिनके प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

(i) भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त):-

20. हमारे समक्ष आए मामलों में बैंक के सभी कर्मचारियों की नियुक्ति कार्यकारी समिति द्वारा की गई थी। उनके मामलों में बर्खास्तगी का आदेश मुख्य महाप्रबंधक द्वारा पारित किया गया है। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि बर्खास्तगी का आदेश पारित करने की तिथि पर मुख्य महाप्रबंधक नियुक्ति प्राधिकारी थे। बैंक के अनुसार यद्यपि कर्मचारियों की नियुक्ति कार्यकारी समिति द्वारा की गई थी, लेकिन जिस समय जांच हुई और बर्खास्तगी का आदेश पारित हुआ, उस समय मुख्य महाप्रबंधक ही नियुक्ति प्राधिकारी बन गए थे। दूसरी ओर कर्मचारियों की ओर से तर्क यह है कि कार्यकारी समिति नियुक्ति प्राधिकारी है, अतः कार्यकारी समिति से नीचे का कोई भी प्राधिकारी उनके मामले में बर्खास्तगी का आदेश पारित नहीं कर सकता। उनकी दलील के अनुसार मुख्य महाप्रबंधक कार्यकारी समिति से निचले स्तर के अधिकारी हैं, इसलिए उनके पास बर्खास्तगी का आदेश पारित करने का अधिकार नहीं है। इस संबंध में कर्मचारियों के विद्वान अधिवक्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 का हवाला दिया तथा संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत दी गई गारंटी के आधार पर तय किए गए अनेक मामलों पर अवलम्ब लिया।

22. अब जहां तक विनियमन 55(2)(ए) में निहित स्टेट बैंक के कर्मचारियों को प्रदान किए गए अधिकार का संबंध है, वह यह है कि ऐसे अधिकारियों या कर्मचारियों को नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा स्टेट बैंक की सेवा से बर्खास्त नहीं किया जाएगा। इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 311(1) में निहित प्रावधानों और विनियमन 55(2)(ए) के तहत स्टेट बैंक के कर्मचारियों को गारंटीकृत अधिकार की तुलना से पता चलता है कि दोनों प्रावधानों में प्रयुक्त भाषा में भौतिक अंतर है। अनुच्छेद 311(1) के अंतर्गत प्रयुक्त शब्द हैं "जिसके द्वारा उसे

नियुक्त किया गया था" विनियमन 55(2)(ए) में ऐसे कोई शब्द नहीं हैं "जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया था" और इसके स्थान पर एकमात्र गारंटीकृत अधिकार यह है कि कर्मचारी को नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, स्टेट बैंक के अधिकारियों या कर्मचारियों के मामले में सही गारंटी यह है कि बर्खास्तगी का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया जा सकता है। उपर्युक्त प्रासंगिक विनियमों और नियमों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मुख्य महाप्रबंधक दिनांक 1.724.2014 से विनियमन 55(2)(ए) के अंतर्गत संबंधित कर्मचारियों के नियुक्ति प्राधिकारी बन गए थे। यह सच है कि बर्खास्तगी के आदेश इन संशोधनों के काफी समय बाद पारित किए गए, जबकि मुख्य महाप्रबंधक पहले ही विनियमों और नियमों के तहत उनकी नियुक्ति प्राधिकारी बन चुके थे। भारतीय स्टेट बैंक के किसी अधिकारी या कर्मचारी को नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता, यह अधिकार वैधानिक नियमों और विनियमों का निर्माण है। जहां तक संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत गारंटीकृत अधिकार या संरक्षण का संबंध है, यह संघ की सिविल सेवा या अखिल भारतीय सेवा या संघ की सिविल सेवा या अखिल भारतीय सेवा या किसी राज्य की सिविल सेवा के सदस्यों पर लागू होता है या जो संघ या राज्य के अधीन सिविल पद धारण करता हो। यह सच है कि स्टेट बैंक के कर्मचारी इनमें से किसी भी श्रेणी में नहीं आते हैं और वे संविधान के अनुच्छेद 311(1) के तहत किसी भी प्रकार की सुरक्षा की मांग नहीं कर सकते हैं। स्टेट बैंक के कर्मचारी केवल उन्हीं अधिकारों का दावा कर सकते हैं जो सामान्य विनियमन के विनियमन 55(2)(ए) के तहत प्रदान किए गए हैं। उक्त प्रावधान के तहत प्रदत्त एकमात्र अधिकार यह है कि स्टेट बैंक के अधिकारियों या कर्मचारियों को नियुक्ति

प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त नहीं किया जा सकता। पुनरावृत्ति के जोखिम के साथ यह कहा जा सकता है कि जिस तारीख को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है, उस दिन मुख्य महाप्रबंधक पहले ही नियुक्ति प्राधिकारी बन चुके थे और इस प्रकार बर्खास्तगी का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी से निचले प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया है।

(ii) सिरसिल्क लिमिटेड (उपरोक्त):-

28. उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 और वस्त्र समिति अधिनियम, जिनसे हमारा संबंध है, को उचित रूप से समान कानून माना जा सकता है। सदरलैंड के अनुसार:

"जब क़ानून एक ही व्यक्ति या चीज़ों से, या एक ही वर्ग के व्यक्तियों या चीज़ों से संबंधित हों, या उनका उद्देश्य या लक्ष्य एक ही हो, तो उन्हें एक ही विषय-वस्तु से संबंधित माना जाता है। (क़ानून और वैधानिक निर्माण, खंड 2, पृष्ठ 535, तीसरा संस्करण)"

इन दोनों अधिनियमों का उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ वस्त्र उद्योग का संरक्षण तथा विकास में सहायता करना है। "किसी अधिनियम का अर्थ जानने में सहायता, उसकी भाषा की तुलना उसी विषय से संबंधित पहले के क़ानूनों में प्रयुक्त भाषा से करके प्राप्त की जा सकती है" (क्रेज़ ऑन स्टैच्युट लॉ, पृष्ठ 140, 1971 संस्करण)। मैक्सवेल ने द इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स (1976 संस्करण, पृष्ठ 66) में भी कहा है कि: "किसी क़ानून में किसी वाक्यांश के अर्थ पर उसी विषय-वस्तु से संबंधित किसी पूर्ववर्ती क़ानून में किसी विशिष्ट वाक्यांश के संदर्भ द्वारा प्रकाश डाला जा सकता है।"

उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 समय की दृष्टि से एक पूर्ववर्ती अधिनियम है और हम कोई कारण नहीं देखते कि यदि उसी विधानमंडल द्वारा पारित किसी परवर्ती कानून को किसी पूर्ववर्ती कानून के उपबंधों के अर्थ लगाने के लिए सहायता के रूप में

प्रयोग किया जा सकता है, तो किसी बाद के कानून के उपबंधों के अर्थ लगाने के लिए, अस्पष्टता की स्थिति में, पूर्ववर्ती कानून का प्रयोग क्यों नहीं किया जा सकता।

(iii) कृष्ण कुमार (उपरोक्त):-

4. संविधान के अनुच्छेद 311(1) में यह प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को, जो संघ की सिविल सेवा या अखिल भारतीय सेवा या किसी राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है या संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उस प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत या हटाया नहीं जाएगा, जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया है। निर्धारण हेतु सरल प्रश्न यह है कि क्या, जैसा कि अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है, उसे उस प्राधिकारी के अधीनस्थ द्वारा सेवा से हटाया गया था जिसने उसे नियुक्त किया था। प्रासंगिक तथ्य केवल ये हैं: अपीलकर्ता को मुख्य विद्युत इंजीनियर द्वारा जारी आदेश के तहत ट्रेन प्रकाश निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और मध्य रेलवे, नागपुर के मंडल सहायक विद्युत इंजीनियर द्वारा पारित आदेश के तहत सेवा से हटा दिया गया था। इसलिए, विचारणीय संकीर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रभागीय सहायक विद्युत अभियंता, मुख्य विद्युत अभियंता के अधीनस्थ है। हटाने का आदेश पारित करने वाले श्री सारथी द्वारा दायर किसी भी हलफनामे में यह नहीं कहा गया है कि विभागीय सहायक विद्युत अभियंता का पद आधिकारिक पदानुक्रम में मुख्य विद्युत अभियंता के समकक्ष है। यह बात स्वयंसिद्ध है कि पूर्व का पद बाद वाले से उच्चतर नहीं है। इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता को उस प्राधिकारी द्वारा सेवा से हटाया गया था जो उस प्राधिकारी से अधीनस्थ है जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया था।

(iv) पंजाब नेशनल बैंक (उपरोक्त):-

18. विनियमन 6 के अंतर्गत, जांच कार्यवाही या तो जांच अधिकारी द्वारा या स्वयं अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा संचालित की जा सकती है। जब जांच

अधिकारी द्वारा जांच की जाती है, तो उसकी रिपोर्ट अंतिम या निर्णायक नहीं होती है और अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त नहीं होती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निर्णय के साथ समाप्त हो जाती है। दंड अनुशासनात्मक प्राधिकारी ही लगा सकता है, जांच अधिकारी नहीं। जहां अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं जांच करता है, वहां उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करना होगा। जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के विचार से भिन्न राय रखता है तथा भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रस्ताव करता है, तो कोई कारण नहीं है कि सुनवाई का अवसर क्यों न दिया जाए। यह अत्यधिक अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा कि जहां आरोपित अधिकारी जांच अधिकारी के समक्ष आरोप सिद्ध हो जाते हैं, वहां उन्हें अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष अपना पक्ष रखने से वंचित कर दिया जाता है, इससे पहले कि वह प्राधिकारी जांच अधिकारी की रिपोर्ट से भिन्न राय व्यक्त कर दे और दोषी पाए जाने का निष्कर्ष दर्ज करते हुए अधिकारी को दंड दे। हमारी राय में, ऐसी किसी भी स्थिति में, आरोपित अधिकारी को आरोपों पर अंतिम निष्कर्ष दर्ज करने और दंड लगाने से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष प्रतिनिधित्व करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यह जांच के प्रथम चरण के भाग के रूप में किया जाना आवश्यक है जैसा कि करुणाकर मामले [(1993) 4 एससीसी 727: 1993 एससीसी (एल एंड एस) 1184: (1993) 25 एटीसी 704] में स्पष्ट किया गया है।

19. उपर्युक्त चर्चा का परिणाम यह होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को विनियमन 7(2) में पढ़ा जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, जब भी अनुशासनिक प्राधिकारी किसी आरोप के विषय पर जांच प्राधिकारी से असहमत होता है, तो ऐसे आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले, उसे असहमति के लिए अपने अनंतिम कारणों को दर्ज करना होगा और अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले

दोषी अधिकारी को प्रतिनिधित्व करने का अवसर देना होगा। जांच अधिकारी की रिपोर्ट जिसमें उसके निष्कर्ष शामिल हैं, उसे अवगत कराना होगा और दोषी अधिकारी को जांच अधिकारी के अनुकूल निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी को मनाने का अवसर मिलेगा। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार, जिस प्राधिकारी को अंतिम निर्णय लेना होता है तथा जो दंड लगा सकता है, उसे कदाचार के आरोपी अधिकारी को, उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले, अभ्यावेदन दाखिल करने का अवसर देना चाहिए।

(v) डॉ. हरकिशन सिंह (उपरोक्त):-

11. नियम 9(2) में ऐसा कोई प्रतिबंधात्मक शब्द नहीं है कि केवल सेवा के सदस्य ही चयन ग्रेड में पदोन्नति के लिए पात्र होंगे। नियम 9(2) के परन्तुक में एक सीमा-पत्र है और वह यह है कि सेवा का कोई भी सदस्य ऐसी पदोन्नति का हकदार नहीं होगा। चयन ग्रेड में नियुक्ति को बाहर करना नियम 5 के साथ-साथ नियम 9(2) और 9(3) की विषय-वस्तु के विरुद्ध होगा, क्योंकि नियम 5 में सेवा में नियुक्ति को पदोन्नति या सीधी भर्ती द्वारा किए जाने की बात कही गई है। नियम 9(2) चयन ग्रेड में पदोन्नति के लिए सेवा के सदस्यों की पात्रता के बारे में बात करता है, नियम 9(3) चयन ग्रेड में नियुक्तियों की संख्या के बारे में बात करता है और नियम 9(3) चयन ग्रेड में नियुक्तियों की संख्या के बारे में बात करता है जो सेवा में नियुक्तियों के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी; नियम 2(सी) में परिभाषित सेवा से पंजाब सिविल मेडिकल सेवा वर्ग-I, पंजाब सिविल मेडिकल सेवा वर्ग-I में चयन ग्रेड अभिप्रेत है। यह विवादित नहीं है। इसलिए, नियम 5, जो विशिष्ट रूप से सीधी भर्ती द्वारा सेवा में नियुक्ति की बात करता है, वर्ग-I और चयन ग्रेड को सम्मिलित करता है, जो वर्ग-I का अभिन्न अंग है। चयन ग्रेड के संबंध में नियम 9(3) में

'नियुक्ति' शब्द, जो सेवा में कुल नियुक्तियों की संख्या के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है, उस सेवा में पदोन्नति और सीधी नियुक्ति दोनों पर विचार करता है, जो चयन ग्रेड में सेवा में पदोन्नति और सीधी नियुक्तियों दोनों को दर्शाता है। 'नियुक्ति' शब्द का अर्थ केवल पदोन्नति नहीं हो सकता। इसका अर्थ पदोन्नति तथा सीधी भर्ती दोनों द्वारा नियुक्ति है; इसीलिए 'नियुक्ति' शब्द का प्रयोग एक बार चयन ग्रेड के संबंध में तथा दूसरी बार सेवा में नियुक्तियों की कुल संख्या के संबंध में किया जाता है। चयन ग्रेड में सीधी नियुक्ति न केवल नियमों, विशेषकर नियम 5, 9(2) और 9(3) में परिकल्पित है, बल्कि चयन ग्रेड सहित सेवा में योग्य और मेधावी व्यक्तियों को आकर्षित करने के उद्देश्य से नियम 5 में 'सीधी भर्ती और सीधी नियुक्ति' शब्द में भी अंतर्निहित विचार है। अपीलार्थी के तर्क में भ्रांति यह है कि यद्यपि चयन ग्रेड नियम 2(सी) में सेवा की परिभाषा के अंतर्गत होगा, तथापि नियम 5 और 9 में जहां भी 'सेवा' शब्द आता है, वहां 'सेवा' शब्द का अर्थ सेवा के उन सदस्यों से है जो समयमान नियुक्ति पर वर्ग-I में हैं और जिन्हें ही चयन ग्रेड में पदोन्नत किया जा सकता है और चयन ग्रेड में कोई सीधी नियुक्ति नहीं हो सकती।

(vi) भारत संघ (उपरोक्त):-

10. यहां स्थिति अलग प्रतीत होती है। 'अनुशासनात्मक प्राधिकारी' शब्द के दो अर्थ हैं। अनिवार्य सेवानिवृत्ति, हटाने या बर्खास्तगी का दंड लगाने के प्रयोजन के लिए केवल नियुक्ति प्राधिकारी ही सक्षम हो सकता है, जबकि आरोप-पत्र जारी करने आदि के संबंध में नियम 1709 से 1712 और 1716 के अंतर्गत कोई भी प्राधिकारी सक्षम हो सकता है जो नियम 1707 में विनिर्दिष्ट कोई भी दंड लगाने में सक्षम हो। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, नियम 1707 में विभिन्न दंडों का उल्लेख है जो रेलवे कर्मचारी पर लगाए जा सकते हैं, जिनमें ऊपर वर्णित दंड भी शामिल हैं। नियम 1705 को अनुसूची II के साथ पढ़ने पर (इस मामले के प्रयोजन के लिए)

पता चलता है कि विभागाध्यक्ष चतुर्थ श्रेणी के कारीगरों और तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों पर कुछ दंड लगाने के लिए सक्षम है। इसलिए, यदि इस मामले में प्रतिवादी को जारी किया गया आरोप-पत्र अनुसूची II के साथ पठित नियम 1705 के अनुरूप था, तो जांच में कोई अनियमितता नहीं थी और नियुक्ति प्राधिकारी अर्थात् महाप्रबंधक को प्रतिवादी पर सेवा से बर्खास्तगी का दंड लगाने की स्वतंत्रता थी। सभी उपलब्ध सामग्रियों के अभाव में, हम इस मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। इसलिए हम अपील किए गए निर्णय को अपास्त करते हैं और मामले को उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः विचारार्थ भेजते हैं, ताकि यदि आवश्यक हो तो पक्षकारों को शपथपत्र द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जा सके कि क्या प्रतिवादी चतुर्थ श्रेणी या तृतीय श्रेणी का कर्मचारी था या कारीगर था और क्या आरोप पत्र उस विभागाध्यक्ष द्वारा जारी किया गया था जिससे प्रतिवादी संबंधित है।

31. उपर्युक्त उद्धृत निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि स्टेट बैंक के अधिकारियों या कर्मचारियों के मामले में यह अधिकार सुनिश्चित है कि बर्खास्तगी का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी से निम्न प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 311(1) में यह प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को, जो संघ की सिविल सेवा या अखिल भारतीय सेवा या किसी राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है या संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उस प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत या हटाया नहीं जाएगा, जिसके द्वारा उसकी नियुक्ति की गई है।

यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमत होता है और उसे ऐसी असहमति के लिए अपने स्वयं के कारणों को दर्ज करने तथा ऐसे आरोपों पर अपने स्वयं के निष्कर्ष को दर्ज करने की आवश्यकता होती है, तो उसे दोषी अधिकारी को सुनने का अवसर प्रदान करना आवश्यक होता है।

32. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानूनी रिपोर्टों के आलोक में रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की है।

33. दिनांक 21.9.2002 को "सेवा से हटाने, जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगी" का प्रमुख दंड लगाते हुए आदेश पारित करते समय, प्रतिवादी संख्या 1 [सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक),

मुख्य कार्यालय, नई दिल्ली] ने आरोप संख्या 1 के संबंध में जांच अधिकारी के निष्कर्ष से मतभेद व्यक्त किया है कि याचिकाकर्ता को एक अनधिकृत और अत्यधिक अनियमित कार्य करते हुए पाया गया है, और यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता को धोखाधड़ी करने का दोषी पाया गया है। आदेश में अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कोई कारण नहीं बताया है कि उन्होंने जांच अधिकारी के निष्कर्ष को क्यों स्वीकार नहीं किया। इस मामले के परिप्रेक्ष्य में, इस न्यायालय की राय है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी के निष्कर्ष से असहमत है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था कि उसका कार्य धोखाधड़ी क्यों नहीं था और केवल एक अनियमितता थी, तथा आरोप संख्या 1 के संबंध में अपने आचरण को स्पष्ट करने का अवसर देना चाहिए था, जो कि नहीं किया गया है।

34. प्रतिवादी संख्या 3 अर्थात अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील को खारिज करते हुए पारित आदेश में, अपीलीय प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्ष से अनुशासनात्मक प्राधिकारी की असहमति के संबंध में कोई कारण बताए बिना, बिना विवेक का प्रयोग किए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखते हुए आदेश पारित कर दिया। अपीलीय प्राधिकारी ने भी याचिकाकर्ता को प्रतिकूल टिप्पणियों का खंडन करने का अवसर नहीं दिया। इस मामले को देखते हुए, न्यायालय का यह मत है कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा बिना किसी विवेक का प्रयोग किए आदेश पारित किया गया है।

35. यह सुस्थापित कानून है कि जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच प्राधिकारी के निष्कर्ष से असहमत होता है, और उससे ऐसी असहमति के लिए अपने स्वयं के कारण दर्ज करने तथा ऐसे आरोप पर अपना स्वयं का निष्कर्ष दर्ज करने की अपेक्षा की जाती है, तो उसे दोषी अधिकारी को सुनने का अवसर प्रदान करना अपेक्षित होता है।

36. यह याद रखना चाहिए कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए आरोपों पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्यकारी नहीं है। यह जांच अधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष अपील की प्रकृति का नहीं है। यह एक ही कार्यवाही है। अनुशासनात्मक अधिकारी को यह अधिकार है कि वह स्वयं जांच करे। उसे यह भी अधिकार है कि वह जांच अधिकारी नियुक्त करे जो जांच करे और अपने निष्कर्षों के साथ या उसके बिना पूरा रिकॉर्ड उसके सामने रखे।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने भी अपने निर्णयों की श्रृंखला में बार-बार यह टिप्पणी की है कि जब कभी अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जांच प्राधिकारी से आरोप के किसी अनुच्छेद पर असहमत होता है, तो ऐसे आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले, उसे ऐसे असहमति के लिए अपने अनंतिम कारणों को दर्ज करना चाहिए तथा अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले दोषी

अधिकारी को अपना पक्ष रखने का अवसर देना चाहिए। जांच अधिकारी की रिपोर्ट जिसमें उसके निष्कर्ष शामिल होंगे, को अवगत कराना होगा तथा दोषी अधिकारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच अधिकारी के अनुकूल निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए राजी करने का अवसर दिया जाएगा। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार, जिस प्राधिकारी को अंतिम निर्णय लेना होता है तथा जो दंड लगा सकता है, उसे आरोपित अधिकारी को अपना अभिवेदन दाखिल करने का अवसर देना चाहिए, इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर अपना निष्कर्ष दर्ज करे।

38. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को समग्रता में ध्यान में रखते हुए, दोनों रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं। "सेवा से हटाने का आदेश जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगा", जैसा कि एजीएम (कार्मिक), प्रधान अधिकारी, नई दिल्ली द्वारा दिनांक 21 सितंबर, 2002 को पारित पत्र संख्या एचओ: पीईआर (डीएडी): 22991 (अनुलग्नक-1) साथ ही अपीलीय प्राधिकारी (विपक्षी पक्ष संख्या 3) का आदेश में निहित है, जैसा कि पत्र संख्या एचओ: पीईआर (डीएडी) 620 दिनांक 3/4 फरवरी, 2003 (अनुलग्नक संख्या 2) [दोनों आदेशों को रिट-ए संख्या 2000700/2003 में चुनौती दी गई है] और "सेवा से हटाने का आदेश जो भविष्य में रोजगार के लिए अयोग्यता नहीं होगी", में निहित है, जैसा कि सहायक महाप्रबंधक (कार्मिक), प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली द्वारा दिनांक 21 सितंबर, 2002 को पारित पत्र संख्या एचओ: पीईआर (डीएडी): 2292 (अनुलग्नक-1) साथ ही अपीलीय प्राधिकारी (विपक्षी पक्ष संख्या 3) का आदेश जो दिनांक 3/4 फरवरी, 2003 के पत्र संख्या एचओ: पीईआर (डीएडी) 620 (अनुलग्नक-2) [दोनों आदेशों को रिट-ए संख्या 2000699/2003 में चुनौती दी गई है] में निहित है, को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है। तथापि, प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बनाए रखे।

(2023) 8 ILRA 390

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट बी संख्या 613 वर्ष 2023

मिर्ज़ा राशिद बेग और अन्य ....याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

प्रदीप कुमार तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., मोहन सिंह, पंकज कुमार पांडे

सिविल कानून- उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम, 1950-धारा 331- सिविल प्रक्रिया संहिता-1908-धारा 100 -

आदेश 41 और 42- सी.पी.सी. के आदेश 42 के तहत अपीलीय डिक्री से अपील का निर्णय करने के लिए स्थापित कानून और निर्धारित तरीके के अनुसार, जैसा कि यू.पी. राज्य में लागू है, जो कहता है कि आदेश 41 और 41-ए के नियम, जहां तक हो सके, अपीलीय डिक्री से अपील पर लागू होंगे और तदनुसार दूसरी अपील, यदि आदेश 41 के नियम 11 के तहत इन लिमनी खारिज नहीं की जाती है, तो विधि के सारवान प्रश्न को बनाने/तैयार करने के बाद और उसके बाद उस पर सुनवाई के लिए एक दिन नियत करने के बाद निर्णीत किया जाना चाहिए, जैसा कि धारा 100, आदेश 41 के नियम 11 और 12 और आदेश 42 सीपीसी के नियम 2 के संयुक्त पढ़ने से दिखाई देगा-राजस्व बोर्ड दूसरी अपील पर निर्णय लेने के लिए निर्धारित अनिवार्य प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहा-आक्षेपित आदेश रद्द कर दिया गया।

याचिका स्वीकृत. (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. उत्तराखंड राज्य (पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य) बनाम मोहन सिंह एवं अन्य, (2012) 13 एससीसी 281

2. सूरत सिंह (मृत) बनाम सिरी भगवान एवं अन्य [2018 (141) आरडी 300]

3. अरुलमिघु नेल्लुकादाई मरियम्मन तरुक्कोइल बनाम तमिलारासी (मृत) एआईआर 2019 एससी 3027

4. चंद्रभान (मृतक) एलआर. के माध्यम से एवं अन्य बनाम सरस्वती एवं अन्य एआईआर 2022 एससी 4601

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार तिवारी, प्रतिवादी संख्या 1 से 3 और 13 के लिए उपस्थित राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे, प्रतिवादी संख्या 12/गांव सभा की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री मोहन सिंह और प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री पंकज कुमार पांडेय, को सुना। जिन्होंने आज न्यायालय में प्रतिवादी संख्या 5 से 11 की ओर से अपना वकालतनामा भी प्रस्तुत किया है, जिसे पत्रावली में लिया गया है।

इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 1/ राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश द्वारा लखनऊ में वाद संख्या 1 के रूप में प्रस्तुत द्वितीय अपील में पारित दिनांक 15.05.2023 के आदेश का विरोध किया है। एसए/205/ 2022/अयोध्या, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या आर202204 2300205 (मिर्जा खालिद वेग और अन्य बनाम मिर्जा शाहिद बेग) निजी प्रतिवादी संख्या 4 से 11 द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "1950 का अधिनियम") की धारा 331 के अंतर्गत योजित किया गया।

दिनांक 15.05.2023 के आदेश द्वारा, द्वितीय अपील को प्रवेश चरण में अनुमति दी गई है और संबंधित मुद्दों को तैयार करने के बाद गुण-दोष के आधार पर मामले पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को संबंधित विचारण न्यायालय में वापस भेज दिया गया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य, जो इस याचिका के निस्तारण के लिए आवश्यक हैं, इस आशय के हैं कि खुर्शीदा बेगम द्वारा वाद संख्या 68/192/22/44/61 (खुर्शीदा बेगम और अन्य बनाम मिर्जा जुल्फिकार बेग और अन्य) के रूप में पंजीकृत खुर्शीदा बेगम द्वारा कुछ भूखंडों/गेटों पर अधिकारों की घोषणा के लिए एक वाद शुरु किया गया था, जिसे 199 की धारा 49 से संबंधित याचिका के आधार पर दिनांक 05.09.2007 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था। उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "1953 का अधिनियम"), जो 1953 के अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत प्रकाशित अधिसूचना के बाद संस्थित वाद के संबंध में रोक बनाता है।

दिनांक 05.09.2007 के आदेश का मूल वादी खुर्शीदा बेगम और सईदा बेगम द्वारा विरोध किया गया था, जिनकी अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनके स्थान पर, विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित किया गया था, जो इस याचिका में निजी प्रतिवादी संख्या 4 से 11 हैं। यह प्रथम अपील 1950 के अधिनियम की धारा 331 (3) के अंतर्गत वाद संख्या 1248/2007-2008, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या सी2007040000615 (खुर्शीदा बेगम बनाम मिर्जा जुल्फिकार बेग) के रूप में पंजीकृत की गई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 05-09-2007 के आदेश द्वारा इसकी पुष्टि की।

दिनांक 05.09.2007 और 18.12.2021 के आदेशों को चुनौती देते हुए, मामला संख्या 18.12.2021 के रूप में दर्ज द्वितीय अपील को चुनौती दी गई। एसए/205/ 2022/अयोध्या, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या आर202204 2300205 (मिर्जा खालिद बेग और अन्य बनाम मिर्जा शाहिद बेग) को निजी प्रतिवादी संख्या 4 से 11 द्वारा प्राथमिकता दी गई थी, जिसे दिनांक 15.05.2023 के आक्षेपित आदेश के अंतर्गत अनुमति दी गई है और मामले को द्वितीय अपीलीय न्यायालय/प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा विचारण न्यायालय को मुद्दों को तैयार करने के बाद गुणावगुण के आधार पर मामले का निर्णय करने के निर्देश के साथ वापस भेज दिया गया है।

दिनांक 15.05.2023 के आदेश को कई आधारों पर चुनौती दी गई है। मुख्य आधार इस आशय का है कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने विधि के अंतर्गत अपेक्षित मामले में कार्यवाही नहीं की है।

मामले के इस दृष्टिकोण को विस्तार से बताते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि 1950 के अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत द्वितीय अपील का निर्णय आदेश 41 और आदेश 42 सीपीसी के साथ पठित धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत

निर्धारित मोड और तरीके से सख्ती से किया जाना चाहिए। इन प्रावधानों के अनुसार, सारभूत प्रश्न विधि (कानूनों) को तैयार करने/तैयार करने और उसके बाद उस पर सुनवाई के लिए एक दिन निर्धारित करने के बाद 1950 के अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत द्वितीय अपील की अनुमति दी जा सकती है। 1. Not

वर्तमान मामले में,विधि (विधिय) के, पर्याप्त प्रश्न को तैयार किए बिना, दवित्तीय अपील पर 17.04.2023 को सुनवाई की गई और उसी दिन निर्णय सुरक्षित रख लिया गया और उसके बाद निर्णय सुनाया गया। इस प्रकार, द्वितीय अपीलीय न्यायालय निर्धारित प्रणाली और रीतियों के अनुसार इसमें निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा। इन परिस्थितियों में, इस मामले में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

उन्होंने आगे कहा कि 1953 के अधिनियम की धारा 49 से संबंधित मुद्दे पर निजी प्रतिवादीगण के विरुद्ध तथ्यों का समवर्ती निष्कर्ष है और जिस रीति से अपील पर निर्णय किया गया है, वह याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने एआईआर ऑनलाइन 2022 इला. में प्रकाशित माता शिरोमणि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर और साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा [2018 (141) आरडी 300] प्रकाशित किए गए निर्णय के साथ-साथ सूरत सिंह (मृत) बनाम सिरी भगवान और अन्य, एआईआर 2019 एससी 3027 में प्रकाशित अरुलमिधु नेलुकदाई मरियम्मन तिरुक्कोइल बनाम तमिलारसी (मृत) और एआईआर 2022 एससी 4601 में प्रकाशित चंद्रभान (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी और अन्य बनाम सरस्वती और अन्य पर भरोसा व्यक्त किया है।

वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए, निजी विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि दिनांक 15.05.2023 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि 17.04.2023 को इस मुद्दे पर द्वितीय अपील पर सुनवाई की गई थी अर्थात 1953 के अधिनियम की धारा 49 से संबंधित मुद्दा और उसी पर निर्धारित विधियों पर विचार करने के बाद, द्वितीय अपील की अनुमति दी गई है और ऐसा होने के नाते, दिनांक 15.05.2023 के आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया और पत्रावली का अवलोकन किया।

वर्तमान याचिका में सम्मिलित मुद्दे पर विचार करने के लिए, जो इस आशय का है कि क्या 1950 के अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत द्वितीय अपील को विधि के सारवान प्रश्न को तैयार किए बिना/विरचित किए बिना और उस पर सुनवाई की तिथि निर्धारित किए बिना अनुमति दी जा सकती है,

उत्तराखंड राज्य (पूर्व में उत्तर प्रदेश राज्य) बनाम मोहन सिंह एवं अन्य (2012) 13 एससीसी 281 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.09.2012 के निर्णय को संदर्भित करना उचित होगा। न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी कीः-

"11. दोनों पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों की जांच करने के लिए, पहले उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 331 (3) और 331 (4) के सीमा की जांच करना आवश्यक है और उन प्रावधानों को हमारे आसान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:

"331. इस अधिनियम के अधीन वाद आदि का संज्ञान- (1)-(2) ***

(3) या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 104 में उल्लिखित प्रकृति के आदेश से या उस संहिता की प्रथम अनुसूची के आदेश 43 नियम 1 में इस अधिनियम की अनुसूची ॥ के कॉलम 4 में उल्लिखित किसी न्यायालय द्वारा उसके कॉलम 3 में उल्लिखित कार्यवाहियों में उल्लिखित न्यायालय या कॉलम 5 में उल्लिखित प्राधिकारी किसी डिक्री से या धारा 47 के अधीन पारित आदेश के प्रति अपील की जा सकेगी।

(4) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 100 में विनिर्दिष्ट किसी भी आधार पर उपधारा (3) के अधीन अपील में पारित अंतिम आदेश या डिक्री से उपधारा (3) के अधीन अपील में पारित प्राधिकारी को, यदि कोई हो, पूर्वोक्त अनुसूची के कॉलम 6 में इसके विरुद्ध उल्लिखित द्वितीय अपील की जाएगी।

12. के कॉलम उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 331 की उपधारा (4) भी अनुसूची ।। 6 को संदर्भित करती है।: इसलिए, अनुसूची का प्रासंगिक भाग भी यहां उद्धृत किया गया है:

"अनुसूची ।।
(धारा 331)

क्र. सं.	धारा	कार्यवाही का विवरण	मूल क्षेत्राधिकार का न्यायालय	न्यायालय	
				प्रथम अपील	द्वितीय अपील
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
34.	229,229- ख, 229-ग	अधिकारों की घोषणा के लिए वाद	सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी	आयुक्त बोर्ड"	

13. <u>उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 331 की उप-धारा (4) में कहा गया है कि द्वितीय अपील धारा 100 सीपीसी 1908 में निर्दिष्ट "किसी भी आधार" पर होगी।</u> धारा 100 सीपीसी के रूप में यह 1-2-1977 से पहले उपस्थित था, इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"100 (1) इस संहिता के मुख्य भाग में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा

अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय, निम्नलिखित आधारों में से किसी एक पर उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री से उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी, अर्थात् - (क) विनिश्चय विधि के विपरीत हो या विधि का बल रखने वाले किसी उपयोग के लिए;

(ख) विधि के बल वाले विधि या उपयोग के कुछ भौतिक मुद्दे को निर्धारित करने में विफल रहने का निर्णय;

(ग) इस संहिता द्वारा या किसी अन्य विधि द्वारा प्रदान की गई प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण त्रुटि या दोष, जो संभवतः योग्यता के आधार पर मामले के निर्णय में त्रुटि या दोष उत्पन्न कर सकता है।

(2) इस धारा के अधीन एकपक्षीय पारित अपीलीय डिक्री से अपील की जा सकेगी।

14. धारा 100 के पश्चात /01/02/1977 से प्रभावी 1976 का अधिनियम 104 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, यह निम्नानुसार पढ़ता है:

"100 **द्वितीय अपील** (1) इस संहिता के मुख्य भाग में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का सारवान प्रश्न अंतर्वलित है, तो उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

(2) इस धारा के अधीन एकपक्षीय पारित अपीलीय डिक्री से सकती है। अपील की जा

(3) इस धारा के अंतर्गत एक अपील में, अपील का ज्ञापन अपील में सम्मिलित विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को ठीक से बताएगा।

(4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान जाता है कि किसी मामले में विधि का सारवान प्रश्न अंतर्वलित है वहां वह उस प्रश्न को प्रतिपादित करेगा।

(5) अपील को इस प्रकार तैयार किए गए प्रश्न पर सुना जाएगा और प्रतिवादी को, अपील की सुनवाई में, यह तर्क देने की अनुमति दी जाएगी कि मामले में ऐसा प्रश्न सम्मिलित नहीं है:

परन्तु इस उपधारा की कोई बात विधि के किसी अन्य सारवान प्रश्न पर, जो उसके द्वारा प्रतिपादित नहीं की गई है, विधि के किसी अन्य सारवान प्रश्न पर अपील, जो उसके द्वारा प्रतिपादित नहीं की गई है, सुनने की न्यायालय की शक्ति को छीनने या कम करने वाली नहीं समझी जाएगी, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है।

15. उत्तर प्रदेश अधिनियम को 24-1-1951 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई। यह उत्तर प्रदेश राजपत्र (असाधारण) दिनांक 26-1-1951 में प्रकाशित हुआ था। धारा 331 की उप-धारा (4) में असंशोधित धारा 100 सीपीसी को सम्मिलित किया गया है।

16. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या धारा 331 की उपधारा (4) अपने साथ संशोधित धारा 100 सीपीसी भी रखती है, जिसके परिणामस्वरूप, राजस्व परिषद के लिए विधि के पर्याप्त प्रश्नों को तैयार करना अनिवार्य हो जाता है? इसलिए, प्रश्न विचारणीय है कि क्या धारा 331 की उपधारा (4) में धारा 100 का संदर्भ संदर्भात्मक विधान के रूप में है या निगमन दद्वारा विधान के रूप में है?

17. बाद की विधि अक्सर पहले के विधि का संदर्भ देता है ताकि पहले के विधि के प्रावधानों को बाद के विधि द्वारा आच्छादित मामलों पर लागू किया जा सके। ऐसा विधान या तो हो सकता है (1) एक संदर्भात्मक विधान जिसमें मात्र पूर्व के विधिओं के प्रावधानों का संदर्भ या उद्धरण सम्मिलित हो; या (i) निगमन द्वारा एक विधि जिसके अंतर्गत पहले के विधि के प्रावधानों को संदर्भ द्वारा बाद के विधि में सम्मिलित किया गया है।

18. उपरोक्त दोनों सिद्धांत कैसे संचालित होते हैं, यह प्रश्न उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद बनाम जैनुल इस्लाम ((1998) 2 एससीसी 467] मामले में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचारार्थ आया था। और यह निम्नानुसार आयोजित किया गया थाः (एससीसी पृष्ठ 480-81, पैरा 17)

"17. बाद के विधि में अक्सर पहले के विधि का संदर्भ दिया जाता है ताकि बाद के विधि द्वारा आच्छादित मामलों पर पहले विधि के प्रावधानों को लागू किया जा सके। ऐसा विधान या तो हो सकता है (i) एक संदर्भात्मक विधान जिसमें पूर्व के विधि के प्रावधानों का संदर्भ या उद्धरण सम्मिलित हो; या (ii) निगमन द्वारा एक विधि जिसके अंतर्गत पहले के विधि के प्रावधानों को संदर्भ द्वारा बाद के विधि में सम्मिलित किया गया है। यदि यह एक संदर्भात्मक विधान है तो पूर्ववर्ती विधान के उपबंध, जिनका उत्तरवर्ती विधान में संदर्भ दिया गया है, उसी रूप में लागू होंगे जैसे कि यह पूर्ववर्ती विधान में निर्दिष्ट मामलों के लिए ऐसे पूर्ववर्ती विधान के लागू होने की तिथि को होता है। दूसरे शब्दों में, पूर्ववर्ती विधान के अधिनियमन की तिथि के बाद पूर्ववर्ती विधान में किया गया कोई भी संशोधन भी लागू होगा। किन्तु यदि यह निगमन द्वारा विधान है तो निर्माण का नियम यह है कि निगमित पूर्ववर्ती संविधि के निरसन से परवर्ती संविधि के प्रचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जिसमें इसे समाविष्ट किया गया है। इसी प्रकार, संविधि में इस प्रकार समाविष्ट किया गया कोई भी संशोधन, जो ऐसी संविधि के निगमन की तिथि के पश्चात् किया गया है, पूर्ववर्ती संविधि को प्रभावित नहीं करता है जिसमें इसे समाविष्ट किया गया है और संविधि के जो उपबंध समाविष्ट किए गए हैं वे वही रहेंगे जो निगमन के समय थे और बाद के संशोधनों को बाद के विधान में नहीं पढ़ा जाना है। लॉर्ड ईशर, एमआर के शब्दों में, संदर्भ द्वारा इस तरह के निगमन का विधिक प्रभाव 'उन धाराओं को नए अधिनियम में लिखना है जैसे कि वे वास्तव में इसमें कलम से लिखे गए थे या इसमें मुद्रित किए गए थे, और, जिस क्षण आपके पास बाद के अधिनियम में वे खंड हैं,

आपके पास पूर्व अधिनियम का उल्लेख करने का कोई अवसर नहीं है। (देखें वुड्स एस्टेट, इन री / (1886) 31 सीएच डी 607 (सीए)], सीएच डी 615 पर। जैसा कि कोई विशेष विधि संदर्भात्मक विधि या निगमन द्वारा विधि की श्रेणी में आता है, यह उस विधि में प्रयुक्त भाषा पर निर्भर करता है जिसमें पहले के विधि और अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों का संदर्भ दिया गया है। इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम एम.वी. नरसिम्हन [(1975) 2 एससीसी 377: 1975 एससीसी (सीआरआई) 589]: के मामले में विधिक स्थिति का सारांश दिया गया है। (एससीसी पी. 385, पैरा 15: एससीआर पृष्ठ 14): -

'15.... जहां बाद के अधिनियम में पिछले अधिनियम के प्रावधान सम्मिलित होते हैं, वहां उधार लिए गए प्रावधान बाद के अधिनियम का एक अभिन्न और स्वतंत्र भाग बन जाते हैं और पिछले अधिनियम में किसी भी निरसन या संशोधन से पूरी तरह से अप्रभावित होते हैं। हालाँकि, यह सिद्धांत निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगाः

(क) जहां परवर्ती अधिनियम और पिछला अधिनियम एक दूसरे के पूरक हैं;

(ख) जहां दो अधिनियम समरूप तत्व

(ग) जहां पिछले अधिनियम में संशोधन, यदि बाद के अधिनियम में भी आयात नहीं किया जाता है, तो बाद के अधिनियम को पूरी तरह से अव्यावहारिक और अप्रभावी बना देगा; और

(घ) जहां पिछले अधिनियम का संशोधन, या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक आशय से, उक्त प्रावधानों को बाद के अधिनियम पर लागू करता है।

19. इसलिए, विधि स्पष्ट है कि एक विधि के मात्र संदर्भ या उद्धरण के मध्य दूसरे में अंतर किया जाना चाहिए और निगमन किया जाना चाहिए। उद्धरण के संदर्भ के मामले में, संदर्भित विधि का संशोधन, निरसन या पुनः अधिनियमन उस विधि के लिए भी प्रभावी होगा जिसमें इसे संदर्भित किया गया है; किन्तु पश्चातवर्ती मामले में संशोधन या निरसन के माध्यम से निगमित विधि में किसी भी बदलाव का निगमन विधि पर कोई असर नहीं पड़ता है।

20. हमें इस बिंदु को और स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1979) 2 एससीसी 529 में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए लगभग समान प्रश्न आया था जिसमें इस न्यायालय ने सीपीसी की धारा 100 के साथ पठित एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 55 की सीमा से निपटा, जो इस प्रकार है:

"55. अपीलें- धारा 2-क के खंड (क), खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी प्रश्न पर या अध्याय 3 या अध्याय 4 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा किए गए किसी आदेश या यथास्थिति, या धारा 12-क या धारा 13 या धारा 36-घ या धारा 37 के अधीन आयोग

द्वारा किए गए किसी विनिश्चय से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की तिथि से साठ दिनों के भीतर, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 100 में निर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

21. उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय ने धारा 100 सीपीसी के साथ पठित धारा 55 के सीमा की जांच की, दोनों संशोधित और असंशोधित। धारा 55 अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रदान करती है कि धारा 13 के अंतर्गत आयुक्त द्वारा दिए गए आदेश से पीड़ित कोई भी व्यक्ति धारा 100 सीपीसी, 1908 में निर्दिष्ट "एक या अधिक आधारों" पर इस न्यायालय में अपील कर सकता है। जब धारा 55 अधिनियमित की गई थी, अर्थात्, 27-12-1969, अधिनियम के लागू होने का दिन होने के नाते, धारा 100 सीपीसी ने तीन आधार निर्दिष्ट किए, जिन पर उन आधारों में से एक पर उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील लाई जा सकती थी कि अपील किया गया निर्णय विधि के विपरीत था। इसलिए, यदि धारा 55 में संदर्भ सामयिक उपलब्ध धारा 100 में निर्धारित आधारों के लिए था, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विधि के प्रश्न पर धारा 55 के अंतर्गत इस न्यायालय में अपील की जाएगी। उपरोक्त दृष्टिकोणों को महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड [(1979) 2 एससीसी 529] में विस्तृत रूप से निपटाया गया है। निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है: (एससीसी पीपी. 547-48, पैरा 8)

"8. ... धारा 100 के अंतर्गत यह पर्याप्त था क्योंकि यह तब उपलब्ध था कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को आकर्षित करने के लिए विधि का प्रश्न होना चाहिए और इसलिए, यदि धारा 55 में संदर्भ तत्समय उपलब्ध धारा 100 में निर्धारित आधारों के लिए था, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विधि के प्रश्न पर धारा 55 के अंतर्गत इस न्यायालय में अपील की जाएगी। किन्तु धारा 55 के अधिनियमन के पश्चात, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 को 1-2-1977 से सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 37 द्वारा एक नई धारा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और नई धारा 100 में यह प्रावधान किया गया था कि उच्च न्यायालय में दवितीय अपील मात्र तभी होगी जब उच्च न्यायालय संतुष्ट हो कि मामले में विधि का पर्याप्त प्रश्न अंतर्वलित है। जिन तीन आधारों पर पूर्व धारा 100 के अंतर्गत द्वितीय अपील की जा सकती थी, उन्हें निरस्त कर दिया गया और उनके स्थान पर मात्र एक आधार प्रतिस्थापित किया गया जो एक अत्यधिक कठोर आधार था, अर्थात्, विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न होना चाहिए। यह नई धारा 100 थी जो उस तिथि को लागू थी जब अपीलकर्ता द्वारा वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी गई थी और प्रतिवादीगण का तर्क यह था कि अपील की विचारणीयता को नई धारा 100 में निर्दिष्ट आधार के संदर्भ में आंका जाना आवश्यक था और अपील पर तभी विचार किया जा सकता था जब विधि का पर्याप्त प्रश्न हो। प्रतिवादीगण ने सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 8 (1) पर बहुत अधिक झुकाव किया जो प्रदान करता है:

'8. ***निरसित अधिनियमितियों के प्रति संदर्भों का निर्माण-*** (1) जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् बनाया गया कोई केन्द्रीय अधिनियम या विनियम, पूर्व अधिनियमन के किसी उपबंध को उपांतरण सहित या उसके बिना निरसित करता है और पुनः अधिनियमित करता है, तब तक किसी अन्य अधिनियमन में या इस प्रकार निरसित उपबंध के किसी लिखत में निर्देश तब तक निरसित और पुनः अधिनियमित करेगा, जब तक तक कि कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, और तर्क दिया कि नई धारा 100 का प्रतिस्थापन पूर्व धारा 100 के निरसन और पुनः अधिनियमन पर आ आधारित है और इसलिए, धारा 8 (1) में अधिनियमित व्याख्या के नियम के आवेदन पर, धारा 55 से धारा 100 में संदर्भ को नई धारा 100 के संदर्भ के रूप में माना जाना चाहिए और अपील मात्र नई धारा संख्या 100 में निर्दिष्ट आधार पर ही बनाए रखा जा सकता है, अर्थात् विधि के सारभूत प्रश्न पर। हमें प्रतीत नहीं होता कि की तरह से स्थापित है। यह एक विधि के दूसरे में मार संदर्भ यह विवाद अच्छी तरह से या उद्धरण और एक निगमन के बीच अंतर की उपेक्षा करता है जिसका अर्थ है कि एक अधिनियमन के प्रावधान को शारीरिक रूप से उठाना और इसे दूसरे का भाग बनाना। जहां निगमन के बिना किसी अन्य अधिनियमन में मात्र संदर्भ या उद्धरण है, धारा 8 (1) लागू होती है और निर्दिष्ट या उद्धृत प्रावधान के निरसन और पुनः अधिनियमन का प्रभाव उस धारा में निर्धारित किया गया है और निरसित प्रावधान के संदर्भ को पुनः अधिनियमित प्रावधान के संदर्भ के रूप में माना जाना आवश्यक है। कलेक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम मैसर्स नथेला सम्पाथु चेट्टी (एआईआर 1962 एससी 316 (1962) 1 सीआरआई एलजे 364: (1962) 3 एससीआर 786] और न्यू सेंट्रल जूट मिल्स कंपनी लि बनाम सीसीई [(1970) 2 एससीसी 820] मामले में भी ऐसा ही था। किन्तु जहां एक विधि का प्रावधान दूसरे में सम्मिलित किया जाता है, वहां पूर्व का निरसन या संशोधन बाद वाले को प्रभावित नहीं करता है। निगमन का प्रभाव ऐसा है जैसे सम्मिलित प्रावधान सम्मिलित करने वाले विधि में लिखे गए थे और इसका एक भाग थे। निगमन द्वारा विधान विधायिका द्वारा नियोजित एक सामान्य विधायी युक्ति है, जहां विधायिका प्रारूपण की सुविधा के लिए किसी विद्यमान संविधि के उपबंधों को उस संविधि के संदर्भ में समाविष्ट करती है, न कि स्वयं उन उपबंधों को विस्तार से निर्धारित करती है जिन्हें वह अपनाना चाहती है। एक बार निगमन हो जाने के पश्चात, निगमित प्रावधान उस विधि का एक अभिन्न अंग बन जाता है जिसमें इसे स्थानांतरित किया जाता है और उसके बाद उस विधि को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है जिससे निगमन किया जाता है और इसमें किए गए किसी भी बाद के संशोधन का निगमन विधि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लॉर्ड एशर ने एमआर, वुड्स एस्टेट इन रीः [(1886) 31 सीएच डी 607 (सीए)] में निगमन द्वारा विधि से निपटने के दौरान, ने पृष्ठ 615 पर बतायाः

... यदि कोई पश्चातवर्ती अधिनियम किसी पूर्व अधिनियम के कुछ खंडों का संदर्भ देकर अपने आप में लाता है, तो उसका विधिक प्रभाव,

जैसा कि अक्सर कहा गया है, उन धाराओं को नए अधिनियम में इस भाँति लिखना है जैसे कि वे वास्तव में इसमें कलम से लिखे गए थे, या इसमें मुद्रित किए गए थे, और, जिस क्षण आपके पास बाद के अधिनियम में वे खंड होंगे, आपके पास पूर्व अधिनियम का उल्लेख करने का कोई अवसर नहीं है।

लॉर्ड जस्टिस ब्रेट ने भी इसी आशय का अवलोकन किया क्लार्क बनाम ब्रैडलॉफ [(1881) 8 क्यूबीडी 63: (1881-85) इला. ईआर रिप 1002 (सीए)): (क्यूबीडी पृष्ठ 69) पर कियाः -

'... निर्माण का एक नियम है कि, जहां एक विधि को दूसरे विधि में संदर्भ द्वारा सम्मिलित किया जाता है, तीसरे [विधि] द्वारा पहली विधि का निरसन दूसरे को प्रभावित नहीं करता है।

22. प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति ने भारतीय काउंसिल में राज्य के सचिव बनाम हिंदुस्तान कोऑप इंश्योरेंस सोसाइटी लिमिटेड [(1930-31) 58 आईए 259] ने भी यही नियम लागू किया। न्यायिक समिति ने बताया कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधानों को कलकत्ता सुधार ट्रस्ट अधिनियम, 1911 में सम्मिलित किया गया था, जो इसका एक अभिन्न अंग बन गया था, धारा 26 में उप-धारा (2) को जोड़कर भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के बाद के संशोधन का कलकता भूमि सुधार ट्रस्ट अधिनियम, 1911 पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, और इसे पढ़ा नहीं जा सका। सर जॉर्ज लोन्डेस ने न्यायिक समिति की राय देते हुए कहाः (आईए पृष्ठ 267)

"... इस देश में यह स्वीकार किया जाता है कि जहां एक विधि को दूसरे विधि में संदर्भ द्वारा सम्मिलित किया जाता है, पहले विधि का निरसन दूसरे को प्रभावित नहीं करता है: क्रेज ऑन स्टेट्यूट लॉ, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 349 और 350 में विधि पर एकत्र किए गए मामलों को देखें..... इसलिए दो अधिनियमों के स्वतंत्र अस्तित्व को मान्यता दी गई है; मूल अधिनियम की मृत्यु के बावजूद, इसकी संतान निगमन अधिनियम में जीवित रहती है।

यह धारण करना कम तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है कि जहां किसी उपस्थित अधिनियम के कुछ प्रावधानों को बाद के अधिनियम में सम्मिलित किया गया है, वहां पूर्व अधिनियम के अतिरिक्त कोई भी जोड़, जिसे स्पष्ट रूप से बाद के अधिनियम पर लागू नहीं किया गया है, को इसमें सम्मिलित किया जाना माना जा सकता है, सभी घटनाओं में यदि बाद के अधिनियम के लिए अतिरिक्त के बिना प्रभावी रूप से कार्य करना संभव है।

23. राम सरूप बनाम मुंशी [एआईआर 1963 एससी 553: (1963) 3 मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि पंजाब भूमि हस्तांतरण अधिनियम, 1900 में "कृषि भूमि" की परिभाषा पंजाब पूर्व-क्रयाधिकार अधिनियम, 1913 में शारीरिक रूप से सम्मिलित की गई थी, इसलिए पूर्व अधिनियम के निरसन का बाद के निरंतर संचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। न्यायमूर्ति

राजगोपाल आयंगर, न्यायालय के लिए बोलते हुए रिपोर्ट के पृष्ठ 868-69 पर टिप्पणी कीः (एआईआर पृष्ठ 558, पैरा 11)

"11. ... जहां किसी अधिनियम के प्रावधानों को बाद के अधिनियम में संदर्भ द्वारा सम्मिलित किया जाता है, वहां पहले अधिनियम के निरसन का सामान्य रूप से, उस अधिनियम के निर्माण या प्रभाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जिसमें इसके प्रावधान सम्मिलित किए गए हैं।

***

इसलिए, इन परिस्थितियों मेंn 1900 के भूमि अंतरण अधिनियम के निरसन का पूर्व क्रयाधिकार अधिनियम के निरंतर संचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और बाद के अधिनियम में अभिव्यक्ति 'कृषि भूमि' को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए जैसे कि भूमि अंतरण अधिनियम के परिभाषा को शारीरिक रूप से इसमें स्थानांतरित कर दिया गया था।

24. बोलानी ओरेस लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य [(1974) 2 एससीसी 777] के मामले में इस न्यायालय ने उसी सिद्धांत पर कार्यवाही की। वहां बिहार और उड़ीसा मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1930 (इसके बाद "कराधान अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 2 (ग) की व्याख्या के संबंध में प्रश्न उठा। अधिनियमित होने पर इस धारा ने मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 2 (18) में निहित मोटर वाहन की परिभाषा को अपनाया। इसके बाद, धारा 2 (18) को 1956 के अधिनियम 100 द्वारा संशोधित किया गया था, किन्तु कराधान अधिनियम की धारा 2 (ग) में निहित परिभाषा में कोई संशोधन नहीं किया गया था। न्यायालय के समक्ष दिया गया तर्क यह था कि कराधान अधिनियम की धारा 2 (ग) में परिभाषा निगमन द्वारा परिभाषा नहीं थी, अपितु मात्र संदर्भ द्वारा एक परिभाषा थी और धारा 2 (ग) में "मोटर वाहन" का अर्थ था, इसलिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 2 (18) में समय-समय पर परिभाषित किया जाना चाहिए, इस तर्क को न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया और यह माना गया कि यह निगमन का मामला था और संदर्भ नहीं था और मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 2 (18) में परिभाषा के रूप में तब तात्कालिक कराधान अधिनियम की धारा 2 (ग) में सम्मिलित किया गया था और न ही मोटर वाहन अधिनियम का निरसन, 1939 और न ही इसमें कोई संशोधन कराधान अधिनियम की धारा 2 (ग) में "मोटर वाहन" की परिभाषा को प्रभावित करेगा। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि निगमन के बिना किसी अन्य संविधि में एक संविधि के उपबंध का मात्र संदर्भ है, तो, जब तक कि कोई भिन्न आशय स्पष्ट रूप से प्रकट न हो, धारा 8 (1) लागू होगी और संदर्भ को प्रावधान के संदर्भ के रूप में माना जाएगा जो पूर्व संविधि में समय-समय पर लागू हो सकता है। किन्तु यदि एक संविधि का उपबंध दूसरे संविधि में समाविष्ट किया जाता है तो पूर्व संविधि में कोई अनुवर्ती संशोधन या उसका पूर्ण निरसन भी बाद वाले संविधि में समाविष्ट उपबंध को प्रभावित नहीं करेगा। प्रश्न यह है कि वर्तमान मामला किस श्रेणी का है।

25. महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड [(1979) 2 एससीसी 529] में उपर्युक्त निर्णय का उल्लेख

करने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित कियाः (एससीसी पृष्ठ 550-51, पैरा 9)

"9. हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 55 निगमन द्वारा विधि का एक उदाहरण है न कि संदर्भ द्वारा विधि। धारा 55 में 'धारा 100 में निर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर इस न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है। यह स्पष्ट है कि विधायिका अपील का असीमित अधिकार प्रदान नहीं करना चाहती थी, किन्तु इसे प्रतिबंधित करना चाहती थी और धारा 100 की ओर मुड़ते हुए, उसने पाया कि वहां निर्धारित आधार अपील के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए उपयुक्त थे और इसलिए इसने उन्हें धारा 55 को इसमें निगमित किया। अपील का अधिकार स्पष्ट रूप से तत्कालीन मौजूदा धारा 100 में निर्धारित आधारों तक सीमित होने का आशय था। वे आधार थे जो विधायिका के समक्ष थे और जिनके लिए विधायिका अपना मस्तिष्क प्रयोग सकती थी और यह मानना उचित है कि यह उन विशिष्ट और ज्ञात आधारों के संदर्भ में था कि विधायिका अपील के अधिकार को प्रतिबंधित करने का आशय रखती थी। विधायिका कभी भी अपील के अधिकार को किसी भी आधार या आधारों तक सीमित करने का आशय नहीं कर सकती थी जो समय-समय पर धारा 100 में स्थान ले सकती थी, बिना यह जाने कि वे आधार क्या थे। धारा 100 में निर्दिष्ट आधारों को समय-समय पर द्वितीय अपील से संबंधित विधायी नीति के संबंध में बदला जा सकता है और यह देखना कठिन है कि विधायिका को यह आवश्यक क्यों समझना चाहिए कि इन परिवर्तनों को धारा 55 में भी परिलक्षित किया जाना चाहिए जो पूर्ण रूप से भिन्न संदर्भ में अपील के अधिकार से संबंधित है। हम इस बात को समझने में विफल रहते हैं कि द्वितीय अपील के संबंध में विधायी नीति का धारा 55 के अंतर्गत अपील के अधिकार से क्या संबंध है ताकि धारा 55 को धारा 100 से अविभाज्य रूप से जोड़ा जाए और धारा 100 में जो भी परिवर्तन होते हैं उन्हें स्वचालित रूप से धारा 55 में पढ़ा जाना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि अधिनियम एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं से निपटने वाला एक स्व-निहित विधि है और यह विश्वास करना संभव नहीं है कि विधायिका ऐसी संहिता के अंतर्गत अपील के अधिकार को उन उलटफेरों पर निर्भर कर सकती थी जिनके माध्यम से किसी अन्य विधि में एक धारा समय-समय पर पारित हो सकती है। अपील के सीमा और विस्तार में धारा 100 में निर्धारित आधारों में प्रत्येक परिवर्तन के साथ उतार-चढ़ाव या परिवर्तन का आशय नहीं हो सकता था। ऐसा करने के लिए किसी भी तर्कसंगत औचित्य की अनुपस्थिति के अतिरिक्त, धारा 55 को धारा 100 के साथ इस तरह के एक अघुलनशील लिंक से संभवतः एक बेतुका और चौंकाने वाला परिणाम हो सकता है। उदाहरण के लिए एक ऐसी स्थिति को लें जहां धारा 100 को विधायिका द्वारा पूरी तरह से निरस्त किया जा सकता है एक ऐसी स्थिति जिसे पूरी तरह से अकल्पनीय नहीं माना जा सकता है। यदि प्रतिवादीगण की ओर से तर्क दिए गए निर्माण को स्वीकार कर लिया गया था, तो ऐसे मामले में धारा 55 निरर्थक हो जाएगी और अपील का अधिकार पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा, क्योंकि तब कोई आधार नहीं होगा

जिस पर अपील झूठी हो सकती है। क्या विधायिका द्वारा कभी इस तरह के परिणाम पर विचार किया जा सकता था? विधायिका का स्पष्ट रूप से आशय था कि अपील का अधिकार होना चाहिए, हालांकि सीमित आधार पर, और धारा 55 की भाषा पर एक व्याख्या रखना बेतुका होगा, जिसके परिणामस्वरूप किसी दिए गए स्थिति में, अपील के अधिकार को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया जा सकता है और इस प्रकार धारा के सादे उद्देश्य और आशय को हरा दिया जा सकता है। इसलिए, हमें यह मानना चाहिए कि एक उचित व्याख्या के आधार पर तत्कालीन मौजूदा धारा 100 में निर्दिष्ट आधारों को धारा 55 में सम्मिलित किया गया था और नई धारा 100 के प्रतिस्थापन ने सम्मिलित किए गए आधारों को प्रभावित या प्रतिबंधित नहीं किया था और चूंकि वर्तमान अपील विधि के प्रश्नों को स्वीकार करती है, इसलिए यह धारा 55 के अंतर्गत स्पष्ट रूप से बनाए रखने योग्य है। हम यह बता सकते हैं कि भले ही धारा 55 के अंतर्गत अपील का अधिकार नई धारा 100 में निर्दिष्ट आधार तक ही सीमित हो, फिर भी वर्तमान अपील बनाए रखने योग्य होगी, क्योंकि इसमें धारा 13 (2) की व्याख्या से संबंधित विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है।

26. हमारा विचार है कि महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड में [(1979) 2 एससीसी 529] निर्धारित सिद्धांत और पहले संदर्भित निर्णय स्पष्ट रूप से लागू होते हैं जब हम उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 331 की उप-धारा (4) की व्याख्या करते हैं। उप-धारा (4), जैसा कि हमने पहले ही संकेत दिया है, ने धारा 100 सीपीसी में निर्दिष्ट "किसी भी आधार पर" अभिव्यक्ति का उपयोग किया है। परिणामतः, तत्कालीन मौजूदा धारा 100 (अर्थात धारा 100, जैसा कि यह 1908 में असंशोधित रूप से अस्तित्व में थी) को धारा 331 की उप- धारा (4) में सम्मिलित किया गया था और नई धारा 100 का प्रतिस्थापन सम्मिलित किए गए आधारों को प्रभावित या प्रतिबंधित नहीं करता है। धारा 331 की उप-धारा (4) के अंतर्गत राजस्व परिषद को अपील का अधिकार स्पष्ट रूप से तत्कालीन मौजूदा धारा 100 में निर्धारित आधारों तक सीमित होने का आशय था, क्योंकि वे आधार थे जो विधायिका के समक्ष थे और जिनके लिए विधायिका अपना मस्तिष्क प्रयोग कर सकती थी और यह मानना उचित है कि यह उन विशिष्ट और ज्ञात आधारों के संदर्भ में था जिन्हें विधायिका ने अपील का अधिकार सीमित करने का आशय किया था

27. अत राजस्व परिषद के समक्ष अपील विधि के प्रश्न पर आधारित होगी। इस विधिक दृष्टिकोण पर न तो राजस्व परिषद और न ही उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से विचार किया गया। इसके अतिरिक्त, हम यह भी देखते हैं कि राजस्व परिषद ने भूमि अभिलेख और लेखपाल डायरी संख्या, तिथि और पी.ए. 10 के प्रावधानों की जांच नहीं की है। अपर आयुक्त ने विशेष रूप से देखा था कि पी.ए. 10 जो वर्ष 1976 से संबंधित प्रस्तुत किया गया था, उस पर कोई हस्ताक्षर नहीं था और यह संदिग्ध पाया गया था कि क्या विवादित भूमि का मूल "काश्तकार " (जोतने वाला) थारु

जनजाति का था, की भी ठीक से जांच नहीं की गई थी। इसके अतिरिक्त, राजस्व परिषद को यह भी जांच करनी चाहिए थी कि क्या भूमि थारू जनजाति की थी और वादी उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 210 के लाभ का दावा कर सकता था। विवाद के उचित और न्यायपूर्ण निर्णय के लिए ये सभी पहलू बहुत महत्वपूर्ण हैं, जो नहीं किया गया है।

28. ऐसी परिस्थितियों में, हम अपीलों को अनुमति देने और उच्च न्यायालय के साथ-साथ राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के इच्छुक हैं और मामले को विधि के अनुसार नए सिरे से विचार के लिए राजस्व परिषद को भेज दिया जाता है। हालांकि, हम मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं, क्योंकि हम मामले को राजस्व परिषद को भेज रहे हैं। राजस्व परिषद इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर अंतिम आदेश पारित करेगा।

पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट है कि राजस्व परिषद के समक्ष द्वितीय अपील विधि के एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर होगी। अपील का निर्णय करने के लिए विधि (ओं) के सारभूत प्रश्न तैयार करने/तैयार करने की आवश्यकता को अनिवार्य माना गया है, जैसा कि सूरत सिंह (उक्त) के मामले में पारित निर्णय से प्रकट होगा, जिसके बाद अरुलमिघु नेलुकदाई मरियम्मन तिरुक्कोइल (उक्त) के मामले में पारित निर्णय में अनुसरण किया गया था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की हैः-

"19. हमारी सुविचारित राय में, द्वितीय अपील की अनुमति देते समय उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया धारा 100 में निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत है। संहिता की धारा 100 निम्नानुसार है:

"100 द्वितीय अपील (1) इस संहिता के मुख्य भाग में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का सारवान प्रश्न अंतर्वलित है, तो उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

(2) इस धारा के अधीन एकपक्षीय पारित अपीलीय डिक्री से अपील की जा सकती है।

(3) इस धारा के अंतर्गत एक अपील में, अपील का ज्ञापन अपील में सम्मिलित विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को ठीक से बताएगा।

(4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में विधि का सारवान प्रश्न अंतर्वलित है वहां वह उस प्रश्न को प्रतिपादित करेगा।

(5) अपील को इस प्रकार तैयार किए गए प्रश्न पर सुना जाएगा और प्रतिवादी को, अपील की सुनवाई में, यह तर्क देने की अनुमति दी जाएगी कि मामले में ऐसा प्रश्न सम्मिलित नहीं है:

परन्तु इस उपधारा की कोई बात विधि के किसी अन्य सारवान प्रश्न पर, जो उसके द्वारा

प्रतिपादित नहीं की गई है, विधि के किसी अन्य सारवान प्रश्न पर अपील, जो उसके द्वारा प्रतिपादित नहीं की गई है, सुनने की न्यायालय की शक्ति को छीनने या कम करने वाली नहीं समझी जाएगी, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है।

20. धारा 100 की उप-धारा (1) कहती है कि उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील पर तभी विचार किया जाएगा जब उच्च न्यायालय "संतुष्ट" हो कि मामले में "विधि का पर्याप्त प्रश्न" सम्मिलित है। उप-धारा (3) अपीलकर्ता पर अपील के ज्ञापन में अपील में सम्मिलित "विधि का पर्याप्त प्रश्न" को ठीक से बताने के लिए अनिवार्य बनाता है। उपधारा (4) में यह प्रावधान है कि जहां उच्च न्यायालय संतुष्ट है कि मामले में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है, वह उस प्रश्न को तैयार करेगा। दूसरे शब्दों में, एक बार जब उच्च न्यायालय अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुनने के बाद संतुष्ट हो जाता है, जैसा भी मामला हो, कि अपील में विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है, तो उसे उस प्रश्न को तैयार करना चाहिए और फिर उच्च न्यायालय द्वारा तैयार विधि के प्रश्न के साथ अपील के ज्ञापन के प्रतिवादी को नोटिस जारी करने का निर्देश देना चाहिए।

21. उप-धारा (5) में यह प्रावधान है कि अपील की सुनवाई मात्र उप- धारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए प्रश्न पर की जाएगी। दूसरे शब्दों में, द्वितीय अपील पर निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र मात्र उपधारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय दुद्वारा तैयार किए गए प्रश्न तक ही सीमित है। हालांकि, अपील की सुनवाई के समय प्रतिवादी को उप-धारा (5) के अंतर्गत यह आपत्ति उठाने का अधिकार दिया जाता है कि उप-धारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया प्रश्न अपील में सम्मिलित नहीं है। सुनवाई के समय इस तरह की आपत्ति उठाने के लिए प्रतिवादी को यह अधिकार देने का कारण यह है कि उच्च न्यायालय प्रवेश चरण में प्रश्न को विरचित करता है जो प्रतिवादी को अपील की सूचना जारी करने से पहले होता है। दूसरे शब्दों में, प्रश्न प्रतिवादी की पीठ के पीछे तैयार किया गया है और इसलिए, उप-धारा (5) उसे सुनवाई के समय ऐसी आपत्ति उठाने में सक्षम बनाती है कि अपील में उठाया गया प्रश्न नहीं उठता है। हालांकि, उप-धारा (5) का परंतुक, विधि के किसी अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपील सुनने के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति को भी मान्यता देता है, जिसे शुरू में उप-धारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा तैयार नहीं किया गया था। हालांकि, इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई के समय विधि के ऐसे अतिरिक्त प्रश्न को तैयार करने के कारणों को निर्दिष्ट करने के बाद ही किया जा सकता है।

22. इस मामले के तथ्यों को देखते हुए, हम यह समझने के लिए नुकसान में हैं कि उच्च न्यायालय ने अपने समापन पैरा में अंतिम निर्णय पारित करते समय पहली बार विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को कैसे तैयार किया और साथ ही अपीलकर्ता के पक्ष में उक्त प्रश्न का उत्तर

दिया। स्पष्टतया, विद्वान न्यायाधीश ने संहिता की धारा 100 की उपधारा (4) का सहारा लेकर ऐसा किया होगा।

23. यहां वह मामला है जहां उच्च न्यायालय संहिता की धारा 100 की उप-धारा (4) के अंतर्गत अपीलकर्ता या/और उसके अधिवक्ता को सुनने के बाद अपील के प्रवेश के समय पर्याप्त प्रश्न तैयार करने के लिए विधिक दायित्व के अंतर्गत था, किन्तु उच्च न्यायालय ने अपने समापन पैरा में अंतिम निर्णय पारित करते समय ऐसा किया।

24. उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई इस तरह की नई प्रक्रिया, हमारी सुविचारित राय में, संहिता की धारा 100 की योजना के पूरी तरह से विपरीत है और आक्षेपित निर्णय को विधिक रूप से अस्थिर बनाती है।

25. हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय के पास उपधारा (5) के अंतर्गत अनुमत सीमा को छोड़कर अपील में अपने अंतिम निर्णय के लेखन के समय पर्याप्त प्रश्न तैयार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया, संहिता की धारा 100 की योजना के विपरीत होने के अतिरिक्त, प्रतिवादीगण के लिए पूर्वाग्रह उत्पन्न करने के परिणामस्वरूप भी हुई क्योंकि प्रतिवादी विधि के पर्याप्त प्रश्न के निर्धारण पर आपति नहीं कर सकते थे। वास्तव में, प्रतिवादी यह नहीं जान सके कि विधि के किस प्रश्न पर अपील अंतिम सुनवाई के लिए स्वीकार की गई थी।

26. दूसरे शब्दों में, चूंकि उच्च न्यायालय अपील के प्रवेश के समय धारा 100 की उप-धारा (4) के अंतर्गत विधि के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न को तैयार करने में विफल रहा, इसलिए प्रतिवादी यह नहीं जान सके कि विधि के किस प्रश्न पर अपील सुनवाई के लिए स्वीकार की गई थी।

27. यह विवादित नहीं हो सकता है कि उप-धारा (5) प्रतिवादीगण को यह जानने का अधिकार देती है कि विधि के किस महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपील अंतिम सुनवाई के लिए स्वीकार की गई थी। उप-ध उप-धारा (5) प्रतिवादीगण को अंतिम सुनवाई के समय आपत्ति उठाने में सक्षम बनाती है कि अपीलकर्ता के उदाहरण पर बनाए गए विधि का प्रश्न वास्तव में मामले में नहीं उठता है। विधि का

28. फिर भी, दूसरा कारण यह है कि प्रतिवादीगण को मात्र उप-धारा (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए प्रश्न की द्वितीय अपील का विरोध करते हुए उत्तर देने की आवश्यकता है, न कि उससे आगे। यदि प्रवेश के समय या अपील की अंतिम सुनवाई से पहले उप-धारा (4) के अंतर्गत विधि का प्रश्न तैयार नहीं किया गया है, तो सुनवाई के समय प्रतिवादी के लिए द्वितीय अपील का विरोध करने के लिए कुछ भी नहीं बचता है। इस स्थिति में, उच्च न्यायालय के पास विधि के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न (प्रश्नों) के अभाव में अंतिम रूप से ऐसी द्वितीय अपील पर निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

29. धारा 100 की योजना यह है कि एक बार जब उच्च न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि अपील में विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है, तो ऐसे प्रश्न को धारा 100 की उप-धारा (4) के अंतर्गत तैयार करना होगा। यह प्रश्न का निर्धारण है जो उच्च न्यायालय को उप-धारा (5) के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अपील पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार देता है। इसलिए, उप-धारा (4) और (5) में निर्धारित दोनों आवश्यकताएं अनिवार्य हैं और उनमें निर्धारित तरीके से पालन किया जाना चाहिए। वास्तव में, जैसा कि उपरोक्त उल्लेख किया गया है, द्वितीय अपील पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र अंततः उप-धारा (4) के अंतर्गत विधि के पर्याप्त प्रश्न के तैयार होने के बाद ही उत्पन्न होता है। एक मामला हो सकता है और वास्तव में ऐसे मामले हैं जहां विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने के बाद भी, अपीलकर्ता के प्रति इसका उत्तर दिया जा सकता है। हालांकि, यह उप-धारा (5) के अंतर्गत प्रतिवादीगण को सुनने के बाद ही किया जाता है।

30. यदि, हालांकि, उच्च न्यायालय प्रवेश के समय अपीलकर्ता को सुनने के बाद संतुष्ट हो जाता है कि अपील में विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित नहीं है, तो इस तरह की अपील को निरस्त करने के आदेश में एक निष्कर्ष दर्ज करने के बाद प्रतिवादीगण को बिना किसी नोटिस के निरस्त कर दिया जा सकता है कि अपील में उप-धारा (4) के अर्थ के भीतर विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरह के आदेश को लाइमिन में पारित करने के लिए, उच्च न्यायालय को अपने निष्कर्ष के समर्थन में कारण निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है।

31. हालांकि, इसका कोई महत्व नहीं है कि प्रतिवादी अपील की अंतिम सुनवाई के समय उपस्थित हुआ है या नहीं। उच्च न्यायालय को, किसी भी मामले में, अपील का निस्तारण करते समय धारा 100 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार आगे बढना चाहिए, चाहे वह सीमित हो या अंतिम सुनवाई के चरण में।

32. यह निर्वचन के नियम का एक स्थापित सिद्धांत है कि जब भी किसी विधि में किसी विशेष कार्य को किसी विशेष रीति से किए जाने की आवश्यकता होती है, तो ऐसा कार्य मात्र उसी रीति से किया जाना चाहिए और किसी अन्य रीति से नहीं। (देखें विधियों का निर्वचन जीपी सिंह, 9वां संस्करण, पृष्ठ 347 और बारु राम बनाम प्रसन्नी [बरु राम बनाम प्रसन्नी, जी, एआईआर 1959 एससी 93]।

33. उपरोक्त सिद्धांत मामले पर लागू होता है, क्योंकि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उच्च न्यायालय द्वितीय अपील की अनुमति देते समय संहिता की धारा 100 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहा और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए एक क्षेत्राधिकार त्रुटि की।

34 [एड.: पैरा 34 आधिकारिक शुद्धिपत्र संख्या एफ-3/ईडी.बी.जे./14/2018 दिनांक 8-5-2018 के माध्यम से सही किया गया। धारा 100 का निर्माण करते हुए, इस न्र हुए, इस

न्यायालय ने संतोष हजारी बनाम पुरुषोतम तिवारी (संतोष हजारी बनाम पुरुषोतम तिवारी, (2001) 3 एससीसी 179] के मामले में यह निर्णय लिया है। ने संहिता की धारा 100 के अंतर्गत विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न के सीमा, क्षेत्राधिकार और क्या गठित होता है, इसकी संक्षेप में व्याख्या की।

35 इसलिए, उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह प्रश्न तैयार करते समय और द्वितीय अपील का निर्णय करते समय संतोष हजारी बनाम पुरुषोतम तिवारी [संतोष हजारी बनाम पुरुषोतम तिवारी) में प्रतिपादित सिद्धांतों का पालन करें।

2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1273 में प्रकाशित चंद्रभान (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम सरस्वती और अन्य के मामले में द्वितीय अपील पर निर्णय लेने के लिए अपनाई जाने वाली पद्धति और रीति को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समझाया गया है। प्रासंगिक पैरा निम्नानुसार हैं: -

"23. यह बहाली प्रकार से निर्धारित है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) की धारा 100 के अंतर्गत द्वितीय अपील मात्र विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न पर ही विचार की जा सकती है। एच.पी. प्यारेजन (मृत) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी (2006) 2 एससीसी 496, में इस न्यायालय ने आयोजित कियाः

"16. इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय का निर्णय गंभीर कमजोरियों से ग्रस्त है। यह अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के दोष से ग्रस्त है। जो विधि के अंतर्गत उच्च न्यायालय में निहित नहीं था। संहिता की धारा 100 (1976 में यथासंशोधित) के अंतर्गत अवर न्यायालयों के निर्णयों में हस्तक्षेप करने का उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सुनवाई तक सीमित है। उच्च न्यायालय द्वारा तथ्य की खोज में हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है यदि इसमें साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन सम्मिलित है (देखें पंचूगोपाल बरुआ बनाम उमेश चंद्र गोस्वामी [(1997) 4 एससीसी 713] और क्षितिश चंद्र पुरकैत बनाम संतोष कुमार पुरकैत [(1997) 5 एससीसी 438]). उच्च न्यायालय ने किसी साक्ष्य पर चर्चा तक नहीं की है। अवर न्यायालयों द्वारा प्रविष्ट किए गए तथ्यों के किसी भी मूलभूत निष्कर्ष को उलट नहीं दिया गया है, अवर न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत दृष्टिकोण लेने के लिए बहुत कम कोई कारण दिया गया है। अनुबंध को पूरा करने की तत्परता और इच्छा के प्रश्न पर निष्कर्ष जो विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है, परेशान हो गया है। यह अधिनियम की धारा 16 (1) (ग) द्वारा वैधानिक रूप से प्रदान किया गया है कि एक अनुबंध के विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए एक वाद मैं सफल होने के लिए वादी कहना और साबित करना होगा कि उसने प्रदर्शन किया है और हमेशा तैयार है और अनुबंध की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के लिए इच्छा रखता है तैयार है जो उसके द्वारा उन शर्तों के अतिरिक्त अन्य किए जाने थे, जिनके प्रदर्शन को प्रतिवादी द्वारा रोका या क्षमा कर दिया गया है।

24. राम प्रसाद रजक बनाम नंद कुमार एण्ड ब्रदर्स (1998) 6 एससीसी 748, इस न्यायालय ने कहा कि, "एक बार जब उच्च न्यायालय में कार्यवाही को धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत द्वितीय अपील के रूप में माना जाता है, तो उक्त धारा में निर्धारित प्रतिबंध लागू होंगे। उच्च न्यायालय इस मामले को द्वितीय अपील के रूप में देख सकता था और पता लगाना चाहिए था कि क्या विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न विचार के लिए उठा है। जब तक विधि का कोई सारवान प्रश्न नहीं था, उच्च न्यायालय के पास द्वितीय अपील पर विचार करने और योग्यता पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

25. क्षितेश चंद्र पुरकैत बनाम संतोष कुमार पुरकैत (1997) 5 एससीसी 438 के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि सीपीसी की धारा 100 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न का अस्तित्व अनिवार्य था।

26. क्षितेश चंद्र पुरकैत (उक्त) में, इस न्यायालय ने कहा:-

"10. हम मात्र यह जोड़ेंगे कि (क) प्रारंभिक चरण में भी मामले में सम्मिलित विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को तैयार करना उच्च न्यायालय पर डाला गया कर्तव्य है; और (ख) (असाधारण) मामलों में, बाद के समय में, जब न्यायालय विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को तैयार करने में धारा 100 सीपीसी की उप-धारा (5) के प्रावधान के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, विपक्षी को उस पर नोटिस दिया जाना चाहिए और बिंदु को पूरा करने के लिए निष्पक्ष व उचित अवसर दिया जाना चाहिए। अपील में सम्मिलित विधि के पर्याप्त प्रश्न को तैयार किए बिना अपील सुनने के लिए कार्यवाही अवैध है और न्यायालय पर अधिरोपित कर्तव्य का त्याग है, और विधि के सारभूत प्रश्न के निर्माण के बाद भी, यदि विपक्षी को निष्पक्ष या उचित अवसर नहीं दिया जाता है, तो यह प्राकृतिक न्याय से इनकार करने के समान होगा। उपरोक्त पैरामीटर जिनके भीतर उच्च न्यायालय को धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए, हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए। हमें यह बताते हुए खेद है कि उपरोक्त पहलुओं को कई मामलों में शायद ही कभी ध्यान में रखा जाता है और उपरोक्त अनुशासन के अनुरूप किए बिना द्वितीय अपील पर विचार किया जाता है और/या निस्तारित जाता है।

27. धारा 100 सीपीसी के अर्थ के भीतर विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न क्या है, यह निर्धारित करने के लिए दिशानिर्देश इस न्यायालय द्वारा सर चुन्नीलाल वी. लाल मेहता एंड संस सं और अन्य बनाम सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड और अन्य एआईआर 1962 एससी 1314 के मामले में निर्धारित किए गए हैं। निर्धारित किए।

28. सर चुन्नीलाल वी. मेहता एंड संस (उक्त) में, इस न्यायालय ने रिम्मालापुडी सुब्बा राव बनाम नूनी विराजू एआईआर 1951 मद्रास 969 मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय से सहमति व्यक्त की और उसे

स्वीकृति दी और यह निर्धारित करने लिए सिद्धांत अभिनिर्धारित किए कि विधि का प्रश्न कब विधि का सारवान प्रश्न बन जाता है।

29. हीरो विनोथ बनाम शेषम्मल (2006) 5 एससीसी 545, इस न्यायालय ने सर चुन्नीलाल वी. मेहता एंड संस (उक्त) के मामले का अनुसरण किया। मेहता एंड संस (उक्त) और अन्य निर्णयों और यह पता लगाने के लिए परीक्षणों को संक्षेप में प्रस्तुत किया कि क्या विधि के प्रश्नों का दिया गया संग्रह मात्र विधि के प्रश्न थे या विधि के पर्याप्त प्रश्न थे।

30. हीरो विनोथ (उक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे दिए गए हैं:

"21. संशोधित सीपीसी की धारा 100 में वर्णित वाक्यांश "विधि का सारभूत प्रश्न" संहिता में परिभाषित नहीं है। शब्द पर्याप्त, "विधि के प्रश्न" के रूप में योग्य होने का अर्थ है पदार्थ, आवश्यक, वास्तविक, ध्वनि मूल्य, महत्वपूर्ण, या विचारणीय होना। इसे तकनीकी के विपरीत कुछ के रूप में समझा जाना चाहिए, जिसमें कोई सार या परिणाम नहीं है, या मात्र अकादमिक है। हालांकि, यह स्पष्ट है कि विधायिका ने "सामान्य महत्व के" शब्दों को जोड़कर "विधि के पर्याप्त प्रश्न" के सीमा को अर्हता प्राप्त नहीं करने का विकल्प चुना है, जैसा कि संहिता की धारा 109 या संविधान के अनुच्छेद 133 (1) (क) जैसे कई अन्य प्रावधानों में किया गया है। विधि का सारभूत प्रश्न जिस पर द्वितीय अपील सुनी जाएगी, यह आवश्यक नहीं है कि वह सामान्य महत्व के विधि का सारभूत प्रश्न हो। गुरन दित्ता बनाम राम दित्ता (1927-28) 55 आईए 235: एआईआर 1928 पीसी 172] वाक्यांश "विधि का पर्याप्त प्रश्न" जैसा कि तत्कालीन मौजूदा धारा 100 सीपीसी (संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा छोड़े जाने के बाद) के अंतिम खंड में नियोजित किया गया था, विचार के लिए आया और माननीय ने माना कि इसका मतलब सामान्य महत्व का पर्याप्त प्रश्न नहीं था, अपितु विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न था जो मामले में सम्मिलित था। सर चुन्नीलाल मामले [1962 अनुपूरक (3) एससीआर 549: एआईआर 1962 एससी 1314] में संविधान पीठ ने रिम्मलापुडी सुब्बा राव बनाम नूनी वीराजू (एआईआर 1951 मद्रास 969: (1951) 2 मद्रास एलजे 222 (एफबी)]: (सर चुनीलाल मामला [1962 सप्प (3) एससीआर 549: एआईआर 1962 एससी 1314], एससीआर पी। में लिए गए दृष्टिकोण के साथ सहमति व्यक्त की है।

"जब विधि का प्रश्न निष्पक्ष रूप से बहस योग्य है, जहां उस पर मतभेद की संभावना है या जहां न्यायालय ने उस प्रश्न से कुछ विस्तार से निपटना और वैकल्पिक विचारों पर चर्चा करना आवश्यक समझा, तो प्रश्न विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न होगा। दूसरी ओर, यदि प्रश्न व्यावहारिक रूप से उच्चतम न्यायालय के निर्णय द्वारा आच्छादित था या यदि प्रश्न का निर्धारण करने में निर्धारण व लागू किए जाने वाले सामान्य सिद्धांत भलीभाँति निर्धारित हैं. और एकमात्र परित हैं और प्रश्न उन सिद्धांतों को मामले के विशेष

तथ्य पर लागू करने का था, तो यह विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं होगा।

31. यह निर्धारित करने के लिए उचित परीक्षा 10 होगा कि क्या मामले में उठाया गया विधि का प्रश्न पर्याप्त है, क्या यह सामान्य सार्वजनिक महत्व का है या क्या यह सीधे और पर्याप्त रूप से पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है और यदि हां, ही तो क्या यह या तो इस अर्थ में एक खुला प्रश्न है कि यह इस न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निर्धारित नहीं किया गया है। यदि प्रश्न का निस्तारण उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है या प्रश्न का निर्धारण करने में लागू किए जाने वाले सामान्य सिद्धांत भली-भांति सुलझ जाते हैं और उन सिद्धांतों को लागू करने का मात्र प्रश्न है या उठाया गया प्रश्न स्पष्ट रूप से बेतुका है, तो प्रश्न विधि का सारभूत प्रश्न नहीं होगा।

32. 'पर्याप्त' होने के लिए, विधि का एक प्रश्न बहस योग्य होना चाहिए, पहले देश के विधि या बाध्यकारी मिसाल द्वारा निर्धारित नहीं किया गया था, और मामले के निर्णय पर एक भौतिक असर होना चाहिए, यदि किसी भी भाँति से उत्तर दिया गया हो, जहां तक इससे पहले पक्षकारों के अधिकारों का संबंध है। "मामले में सम्मिलित" विधि का प्रश्न होने के लिए सबसे पहले, तर्कों में इसके लिए एक नींव रखी जानी चाहिए और प्रश्न तथ्यों की न्यायालय द्वारा पहुंचे गए तथ्यों के स्थायी निष्कर्षों से उभरना चाहिए और मामले के न्यायसंगत और उचित निर्णय के लिए विधि के उस प्रश्न को निर्धारित करना आवश्यक होना चाहिए। उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाया गया एक पूरी तरह से नया मुद्दा मामले में सम्मिलित प्रश्न नहीं है जब तक कि यह मामले की जड़ तक नहीं जाता है। इसलिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि क्या विधि का प्रश्न महत्वपूर्ण है और मामले में सम्मिलित है या नहीं, सर्वोपरि समग्र विचार सभी चरणों में न्याय करने के लिए अपरिहार्य दायित्व और किसी भी मामले में लम्बाई से बचने की आवश्यकता के बीच एक विवेकपूर्ण संतुलन बनाने की आवश्यकता है। (देखें संतोष हजारी बनाम पुरुषोतम तिवारी (2001) 3 एससीसी 179)।

33. इस मामले के लिए प्रासंगिक सीपीसी की धारा 100 से संबंधित सिद्धांतों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(i) किसी पत्रावली के अभिलेखों या सामग्री से तथ्य का अनुमान तथ्य का प्रश्न है। किन्तु एक पत्रावली की शर्तों का विधिक प्रभाव विधि का प्रश्न है। विधि के किसी भी सिद्धांत के आवेदन को सम्मिलित करने वाले अभिलेख का निर्माण भी विधि का प्रश्न है। इसलिए, जब किसी अभिलेख का त्रुटिपूर्ण निर्माण होता है या किसी अभिलेख के निर्माण में विधि के सिद्धांत का त्रुटिपूर्ण अनुप्रयोग होता है, तो यह विधि के प्रश्न को जन्म देता है।

(ii) उच्च न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि मामले में विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न सम्मिलित है, न कि मात्र विधि का प्रश्न। मामले के निर्णय पर भौतिक असर रखने वाले

विधि का एक प्रश्न (अर्थात, एक प्रश्न, जिसका उत्तर वाद के पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है) विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न होगा, यदि यह विधि के किसी विशिष्ट प्रावधान या बाध्यकारी मिसालों से उभरने वाले विधिक सिद्धांत द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है और इसमें एक बहस योग्य विधिक मुद्दा सम्मिलित है। विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न विपरीत स्थिति में भी उठेगा, जहां विधिक स्थिति स्पष्ट है, या तो विधि के स्पष्ट प्रावधानों या बाध्यकारी उदाहरणों के कारण, किन्तु अवर न्यायालय ने इस मामले का निर्णय किया है, या तो इस भाँति के विधिक सिद्धांत की अनदेखी या इसके विपरीत कार्य कर रहा है। दूसरे प्रकार के मामलों में, विधि का सारभूत प्रश्न इसलिए नहीं उठता है क्योंकि विधि अभी भी बहस योग्य है, अपितु इसलिए कि एक भौतिक प्रश्न पर दिया गया निर्णय, विधि की स्थापित स्थिति का उल्लंघन करता है।

(iii) सामान्य नियम यह है कि उच्च न्यायालय अवर न्यायालयों द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। किन्तु यह एक निरपेक्ष नियम नहीं है। कुछ अच्छी अच्छी ६ भाँति से मान्यता प्राप्त अपवाद हैं जहां (i) अवर न्यायालयों ने भौतिक साक्ष्य को उपेक्षित कर दिया है या बिना किसी साक्ष्य के कार्रवाई की है; (ii) न्यायालयों ने विधि को त्रुटिपूर्ण रूप से लागू करके सिद्ध तथ्यों से गलत निष्कर्ष निकाले हैं; या (iii) न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण रीति से साक्ष्य का बोझ डाला है। जब हम "बिना किसी साक्ष्य के आधार पर निर्णय" का उल्लेख करते हैं, तो यह न मात्र उन मामलों को संदर्भित करता है जहां साक्ष्यों की कुल कमी है, अपितु किसी भी मामले को भी संदर्भित करता है, जहां साक्ष्य, समग्र रूप से लिया जाता है, खोज का समर्थन करने में यथोचित रूप से सक्षम नहीं है।

34. इस मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने बिना किसी साक्ष्य के काम किया। उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी द्वितीय अपील में प्रतिवादीगण ने किसी भी भौतिक साक्ष्य का विज्ञापन नहीं किया जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया था। प्रतिवादी यह भी नहीं दिखा सके कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विधि को त्रुटिपूर्ण रीति से लागू करके साबित तथ्यों से कोई गलत निष्कर्ष निकाला गया था।

35. इस मामले में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, मूल वादी के साथ-साथ प्रतिवादियों की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया और प्रभावी रूप से पाया कि विचारण न्यायालय ने साक्ष्य के अपने विश्लेषण में गलती की थी और कमियों और विसंगतियों को अनुचित महत्व दिया था, जो वास्तव में भौतिक नहीं थे, अंगीकरण की तिथि से 34 वर्ष के समय अंतराल की अपीलीय न्यायालय के तर्क में ऐसी कोई दुर्बलता नहीं थी अनदेखी करते हुए। प्रथम जो हस्तक्षेप की मांग करती हो।

36. अपील का अधिकार स्वचालित नहीं है। अपील का अधिकार विधि द्वारा प्रदत्त है। जब विधि मात्र उन मामलों तक सीमित अपील का

सीमित अधिकार प्रदान करता है जिनमें विधि के पर्याप्त प्रश्न सम्मिलित होते हैं, तो यह इस न्यायालय के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्राप्त तथ्यात्मक निष्कर्षों पर अपील में बैठने के लिए खुला नहीं है।"

अब आक्षेपित आदेश दिनांक 15.05.2023 पर आते हैं। यह जांचने के लिए कि क्या राजस्व परिषद द्वारा विपक्षी द्वारा पसंद की गई द्वितीय अपील में पारित आक्षेपित आदेश स्थिर रहने योग्य है, उसी के प्रासंगिक भाग को निकालना उचित होगा, जो निम्नानुसार है: -

"2. सुनवाई तिथि 17.04.2023 को अपीलकर्ता एवं प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्तागण को सुनकर निम्नलिखित रूप से अन्तरिम आदेश पारित किया गया था-

"1. पुकार करायी गयी। पत्रावली प्रस्तुत हुई। उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए। मा० उच्च न्यायालय के द्वारा याचिका संख्या एमयूए- 141/2023 में पारित आदेश दिनांक 13.01.2023 के अनुपालन में विपक्षी के स्थगन खारिज किये जाने विषयक प्रार्थना पत्र पर सुना।

2. अपीलकर्ता का तर्क है कि उसके द्वारा निर्मित किये गये बिन्दुओं को स्वीकार किया जाये। विपक्षी का तर्क है कि अपीलकर्ता द्वारा निर्मित किये गये विधि के सारवान बिन्दु के स्थान पर मुकदमे के तथ्य को लिखा गया है।

3. उभयपक्ष द्वारा की गयी बहस के परिप्रेक्ष्य में पत्रावली पर उपलब्ध कागजातों के अवलोकन से यह विदित है कि प्रकरण में धारा 49 उ०प्र० जोत चकबन्दी अधिनियम का बिन्दु विधिक रुप से इस द्वितीय अपील में विचारणीय है।

4. परिषद न्यायालय के पर्व पारित अन्तरिम 18.04.2022 परिषद अनुतोष विषयक आदेश दिनांक न्यायालय द्वारा सारवान विधिक बिन्दु का विनिश्चय किये जाने से पूर्व पारित किया गया था। अतएव विपक्षी का यह तर्क कि विधि के सारवान बिन्दु के विनिश्चय से पूर्व अन्तरिम अनुतोष विषयक आदेश दिनांक 18.04.2022 प्रथमदृष्टया त्रुटिपूर्ण होने के कारण निरस्त किया जाता है।

5. उ०प्र० जोत चकबन्दी अधिनियम की धारा 49 का बिन्दु इस द्वितीय अपील में विचारणीय होने के दृष्टिगत उभयपक्ष को सुनकर पत्रावली दिनांक 15.05.2023 को आदेश हेतु सुरक्षित की जाती है।"

इसके उपरोक्त उद्धृत भाग सहित दिनांक 15.05.2023 के आक्षेपित आदेश का अवलोकन दर्शाता है कि विधि के पर्याप्त प्रश्न को तैयार किए बिना, 1953 के अधिनियम की धारा 49 से संबंधित मुद्दे पर 17.04.2023 को द्वितीय अपील पर सुनवाई की गई और उसके बाद, उसी दिन, निर्णय सुरक्षित रखा गया और बाद में, द्वितीय अपील की अनुमति दी गई।

जबकि, सीपीसी के आदेश 42 के अंतर्गत अपीलीय डिक्री से अपील का निर्णय करने के लिए निर्धारित विधि और रीति के अनुसार, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, जो कहता है कि आदेश 41 और 41-क के नियम लागू होंगे, जहां तक हो सकता है, अपीलीय डिक्री से अपील और तदनुसार द्वितीय अपील, यदि आदेश 41 के नियम 11 के अंतर्गत सीमा में निरस्त नहीं किया जाता है, तो विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को विरचित करने/तैयार करने के बाद निर्णय लिया करना तयार करन जाना चाहिए और उसके बाद उस पर सुनवाई के लिए एक दिन तय किया जाना चाहिए, जैसा एक दिन कि धारा 100, आदेश 41 के नियम 11 और 12 और आदेश 42 सीपीसी के नियम 2 के संयुक्त पढ़ने से प्रकट होगा।

इस प्रकार, राजस्व परिषद/प्रतिवादी संख्या 1 को पहले विधि (ओं) के महत्वपूर्ण प्रश्न को विरचित/तैयार करना चाहिए था और उसके बाद, उसी पर सुनवाई के लिए एक दिन /तिथि निर्धारित करनी चाहिए थी। तदनुसार, वर्तमान मामले में, राजस्व परिषद/प्रतिवादी संख्या 1 द्वितीय अपील पर निर्णय लेने के लिए निर्धारित अनिवार्य प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहा।

उपरोक्त कारणों के लिए, इस न्यायालय का विचार है कि इस मामले में हस्तक्षेप की आवश्यकता है। तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। दिनांक 15.05.2023 के आदेश को रद्द किया जाता है। मामले को प्रतिवादी संख्या 1/ राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश लखनऊ को वापस भेज दिया जाता है ताकि द्वितीय अपील को आदेश 41 और आदेश 42 सीपीसी के साथ पठित धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत निर्धारित प्रणाली और रीति के अनुसार कठोरता से नए सिरे से निर्धारित किया जा सके, क्योंकि द्वितीय अपील से निस्तारण के समय 1950 के अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए इसका पालन किया जाना है। वाद के पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद, अधिमानतः 28.08.2023 से चार माह की अवधि के भीतर, यदि संभव हो और यदि इस संबंध में कोई अन्य विधिक बाधा नहीं है। कार्यवाही का संचालन करते समय, संबंधित प्राधिकरण को किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन से बचने का निर्देश दिया जाता है। यह इस आदेश में निर्दिष्ट समय के भीतर अपील पर निर्णय लेने के लिए है। इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित पक्षों को 28.08.2023 को राजस्व परिषद के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

यह अपीलकर्ताओं के लिए अवसर है, जो इस याचिका में निजी प्रतिवादी हैं, 28.08.2023 से एक सप्ताह के भीतर अंतरिम संरक्षण के लिए एक आवेदन को प्राथमिकता दें, जिस पर विचार किया जाएगा और शीघ्रता से निर्णय लिया जाएगा।

यह प्रावधान किया जाता है कि अंतरिम संरक्षण की मांग करने वाले आवेदन के निस्तारण तक, पक्षकारों को प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है। यह पक्षकारों के मध्य पर्याप्त

न्याय के आलोक में है। हालांकि, यह संरक्षण तभी उपलब्ध होगा जब अंतरिम संरक्षण की क्षण की मांग करने वाला आवेदन इस आदेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया हो।

उपरोक्त शर्तों में याचिका की **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 408

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट बी संख्या 2067 वर्ष 1983

माता दीन सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

डी.डी.सी. बस्ती एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री वी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री संतोष कुमार, श्री कृष्ण मोहन, श्री एम.एन. सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री ए.सी. निषाद (स्थायी अधिवक्ता), श्री अनिल शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री पी.के. सिंह, श्री एस.एल. यादव, श्री बी.के. श्रीवास्तव, डॉ. विनोद कुमार राय, श्री गुलाब शंकर सिंह, श्री राजेश जी वर्मा, एस.सी. **सिविल कानून-यू.पी. जोत चकबंदी अधिनियम, 1953 - यू.पी. भूमि अभिलेख मैनुअल-पैरा ए-124 के भाग-II का खंड (9) - सिविल प्रक्रिया संहिता-1908-आदेश 3 नियम 1 और 2**- मुख्तारनामा धारक केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता में उपस्थित हो सकता है और मामले के बारे में जो भी जानकारी उसके पास है, वह अभिसाक्ष्य दे सकता है, लेकिन पक्षकार की ओर से साक्षी के रूप में अभिसाक्ष्य नहीं दे सकता है और प्रधान द्वारा किए गए कृत्यों के लिए अभिसाक्ष्य नहीं दे सकता है-ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया कि पीए-10 को दर्ज खातेदारों को दिया गया था और दावेदार प्रतिवादी इस तथ्य को साबित करने में विफल रहे हैं और यह भी नहीं दिखा पाए हैं कि राजस्व प्रविष्टियों में पीए-10 का संदर्भ था और चकबंदी अधिनियम के तहत सभी न्यायालयों ने पीए-10 की तैयारी के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और क्या कब्जे की प्रविष्टियां 'मैनुअल' में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार और उसका पालन करते हुए तथा संदर्भ के लिए की गई थीं-प्राधिकारी

याचिका स्वीकृत (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जानकी वाशदेव भोजवानी और अन्य बनाम इंडसइंड बैंक लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2005 एससी 439

2. गुरमुख सिंह और अन्य बनाम डीडीसी/एडीएम (एफ एंड आर), 1996 एससीसी ऑनलाइन इला 823: (1997) 88 आरडी 276

3. भगवती दीन बनाम शीतलादीन एवं अन्य, (2022) 156 आरडी 602 : 2022 एससीसी ऑनलाइन इला 349

4. हेमाजी वाघाजी जाट बनाम भीखाभाई खेंगारभाई हरिजन और अन्य, एआईआर 2009 एससी 103

5. पीटी मुनिचिकन्ना रेड्डी एवं अन्य बनाम रेवम्मा एवं अन्य, 2007 (6) एससीसी 59

6. उत्तम चंद (मृत) विधिक प्रतिनधि के माध्यम से बनाम नाथ राम (मृत) विधिक प्रतिनधि के माध्यम से और अन्य, 2020 (11) एससीसी 263

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत)

1. यह मामला ग्राम रतनपुर राय, टप्पा पुरैना, तहसील हरैया, जिला बस्ती की चकबंदी कार्यवाही से उत्पन्न हो रहा है।

2. मूल याचिकाकर्ता माता दीन सिंह (अब जीवित नही)का मामला यह था कि मूल वर्ष में जयराज सिंह (उनके पिता) और राम निहाल सिंह का नाम खातेदारों के रूप में दर्ज किया गया था, जबकि रामबदन सिंह (अब जीवित नही) और मूल प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के पूर्ववर्तियों को राजस्व अभिलेखों के खंड (9) में दर्ज किया गया था।

3. वादी उत्तरदाताओं के पूर्ववर्तियों ने 25 वर्षों से अधिक के कथित निरंतर कब्जे के आधार पर सिरदार अधिकारों का दावा किया है।

4. कार्यवाही के दौरान दोनों पक्षों के गवाहों से पूछताछ की गई। याचिकाकर्ता के पक्ष से, आपत्तिकर्ता ने स्वयं गवाही दी है जबकि प्रतिवादी प्राधिकरण के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और एक रामजनम सिंह प्रतिवादी रामबदन सिंह के *मुख्तार-ए-खास* के रूप में उपस्थित हुए और एक अन्य गवाह अंशुमान सिंह भी प्रतिवादी के लिए उपस्थित हुए। दोनों पक्षों की ओर से कुछ राजस्व रिकार्ड भी रखे थे।

5. चकबंदी अधिकारी ने आदेश दिनांक 24.01.1978 द्वारा याचिकाकर्ता की आपत्तियों को खारिज कर दिया और प्रतिवादी उत्तरदाताओं की ओर से दायर आपत्तियों को स्वीकार कर लिया और उनके नाम राजस्व रिकॉर्ड में सिरदारो के रूप में दर्ज करने का निर्देश दिया। चकबंदी अधिकारी के प्रासंगिक निष्कर्ष इस प्रकार हैं:-

"प्रतिवादी गण की ओर से जो भी कागजी प्रमाण दाखिल है वे दौरान चकबन्दी के है अतः वे प्रतिवादी गण के पक्ष में अधिक सहायक नहीं हो सकता और चकबन्दी के पूर्व का कोई ऐसा प्रमाण कागजी या कोई निष्पक्ष गवाह नहीं प्रस्तुत किया गया है जिससे वादी के बयान पर अविश्वास किया जाय <u>यद्यपि कि वादी का कब्जा प्रमाणों के आधार पर केवल 10 साल का ही साबित होता है किंतु निष्पक्ष गवाह के बयान से यह साबित है कि कब्जा 12 साल से अधिक का है और किसी निष्पक्ष गवाह द्वारा उसमें विरूद्ध बयान नहीं हुआ है</u> और जैराम सिंह के विरूद्ध दिनांक 29.1.76 प्रभावी है अतः वादी के कागजी प्रमाणों व साक्ष्यों के आधार पर वादी को सिरदार घोषित करने का अवचित्य प्रमाणित है तदनुसार वाद

विन्दु सकारात्मक निर्णीत किया जाता है वादी मृतक है उसके वारिश विश्वनाथ सिंह दर्शन नाथ सिंह, अजय कुमार आयु 13 वर्ष विजय कुमार सिंह अवस्था आयु 8 वर्ष संरक्षिका सोमारी माता है जो निर्विवाद है।"

6. याचिकाकर्ता और अन्य ने चकबंदी के निपटान अधिकारी के समक्ष अपील दायर की, हालांकि, दिनांक 18.02.1982 के एक आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया गया। आदेश का प्रासंगिक भाग आगे उल्लिखित है:-

"जहाँ तक अपील कर्ता के विद्वान अभिभाषक के इस तर्क का प्रश्न है कि 1369 फ० के एस०के० के आदेश का अमल दरामद है। एस०के० ने स्वयं आदेश खतौनी में अंकित नहीं किया है। इसलिये यह आदेश सही नहीं है। मैं उनके इस तर्क में (अस्पष्ट) एस०के० के आदेश प०क० 10 पर पारित होता है तथा अमल दरामद भी उस समय खतौनी पर किया जाता था। इसलिये इस अमल दरामद में कोई संदिग्ध होने की बात नहीं हैं। अपीलकर्ता के विद्वान अभिभाषक ने यह तर्क रखा कि ए०आर०के० के बयान में यह बात आई है कि खसरे के इन्द्राजों में भिन्नता है परन्तु उन्होंने अपने मूल बयान तथा जिरह दोनों में यह बात कही है कि भिन्नता स्याही के कारण है इसलिये केवल इस आधार पर इतने लम्बे इन्द्राजों को संदिग्ध या गलत नहीं माना जा सकता। "

"जहाँ तक रामबदन सिंह के अदालत में हाजिर होकर स्वयं बयान न देने का सवाल है, रामबदन सिंह उस समय पुलिस विभाग में नौकरी करते थे तथा उन्हें छुट्टी न मिलने के कारण यह बयान देने नहीं आ सके। उनके स्थान पर उनके मुख्तार तथा भाई राम जन्म सिंह बयान देने के लिये अदालतम में हाजिर हुये, इसलिये रामबदन सिंह के अदालत में हाजिर न आने के कारण उनके अधिकारों पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। उत्तर वादी की ओर से यह बहस की गयी कि यह मोकदमा 26.9.78 को एक तरफ हुआ था तथा 18.3.81 के बाद यह आदेश 10/- रूपये हरजा अदा करने पर रेस्टोर हुआ था और यह हरजा अभी तक अदा नहीं किया गया है उनका यह तर्क भी सही है कि इस आधार पर यह अपील खारिज होने योग्य है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि विवादित भूमि 1369 फ० से लगातार राम बदन सिंह का आधार वर्ष तक विरोधात्मक अध्यासन व और अपने इस कब्जे के आधार उन्होंने विवादित भूमि पर सीरदारी अधिकारी अर्जित कर लिये थे और उने लडके व वारिस इन गाटों पर बतौर सीरदार दर्ज होने के अधिकारी थे चकबन्दी अधिकारी ने विवादित गाटों पर लिखित खातेदारों का नाम खारिज करके उत्तर वादीगण का नाम बतौर सीरदार दर्ज करने में कोई भूल नहीं की है। अपील में कोई बल नहीं है।"

7. उपरोक्त दोनों आदेशों को याचिकाकर्ता द्वारा एक पुनरीक्षण याचिका दायर करके उप निदेशक चकबंदी के समक्ष चुनौती दी गई थी, हालांकि, इसे भी दिनांक 09.02.1983 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और

आदेश का प्रासंगिक भाग इसके बाद उल्लिखित है: -

"इसके अतिरिक्त निगरानी कर्ता के विद्वान अधिवक्ता की तरफ से यह तर्क किया गया कि खाता नं० 48 के नम्बरान 236, 244 पर कोई हक नहीं मांगा गया है जिस पर उन्हें कोई अधिकार बिना उज्रदारी नहीं दिया जाना चाहिये तथा 236,244 नम्बरान विवादित खाते के नहीं है और न ही विवादित खातेदारों का पारीक मुकदमा ही बनाया गया है अतः उस पर अधिकार नहीं मिलना चाहिये। पत्रावली के अवलोकन से स्पष्ट है कि गाटा सं० 236,244 पर हक नहीं मांगा गया है किन्तु कार्यवाही चकबन्दी प्रक्रियाओं में धारा 9 के प्रकाशन के बाद की गयी है। अतः निगरानीकर्ता को इससे कोई लाभ नहीं मिल सकता। यह भी तर्क किया गया कि कब्जा गासबाना बिना किसी आधार के है किन्तु निगरानी कर्ता द्वारा स्वयं रंजिश की बात स्वीकार की गयी है। निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क किया कि कोई प०क० 24 नहीं बना है आरन जारी हुआ है किन्तु प०क० 24 जारी करने का प्राविधान 1965 के संशोधन से लागू हुआ है अतः 1373 प० में जारी होने का कोई औचित्य नहीं था तथा उस समय नियमानुसार प०क० 10 जारी होता था जो 1369 प० में जारी है इसके अतिरिक्त यह भी तर्क किया गया कि निगरानीकर्ता पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जो हर्जाना लगाया गया था उसे अदा भी नहीं किया गया। निगरानीकर्ता द्वारा हर्जाना न अदा करने का कोई कारण नहीं दर्शाया गया और न हर्जाना अदा करने का प्रयास किया गया इस प्रकार सम्पूर्ण वाद पर गौर करने से यह स्पष्ट है कि विवादित आराजी पर विपक्षीगण का अनाधिकार कब्जा सबित है जो काफी लम्बे अरसे से तथा अधिकार पाने के मियाद से भी अधिक समय से है। निगरानीकर्ता की तरफ से केवल जैराज सिंह के वारिसों द्वारा आपत्ति की गयी है। आधार वर्ष में दर्ज राम निहाल की तरफ से कोई आपत्ति नहीं दाखिल की गयी है। जो इन्द्राज है वह नियमानुकूल है जिसके आधार पर विद्वान चकबन्दी अधिकारी एवं विद्वान सहायक बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने विपक्षी गण का नाम विवादित आराजी में बतौर सीरदार अंकित होने के आदेश किये हैं जो न्यायोचित है अतः निगरानी में कोई बल नहीं है। निगरानी निरस्त होने योग्यहै।

8. उपरोक्त संदर्भित आदेश दिनांक 24.01.1978, 18.02.1982 और 09.02.1983 को इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

9. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री वी.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने , अधिवक्ता श्री संतोष कुमार की सहायता से प्रस्तुत किया है कि निर्विवाद रूप से मूल

याचिकाकर्ता खातेदार था और प्रतिवादी उत्तरदाताओं के पास विवाद में भूमि का अनधिकृत कब्जा था और कब्जे की ऐसी प्रकृति के आधार पर उनके पक्ष में नामांतरण कोई ठोस अधिकार नही सृजित करेगा। चकबंदी अधिकारी की जांच का निष्कर्ष था कि राजस्व अभिलेखों के अनुसार, कुछ वर्ष, उत्तरदाताओं का विवादित भूमि पर कब्जा नहीं था, साथ ही चकबंदी अधिकारी ने यह निष्कर्ष भी दर्ज किया है कि उत्तरदाताओं का कब्जा 10 वर्षों तक साबित हुआ था और केवल अनुमानों पर ही यह माना गया कि वे 12 वर्षों से कब्जे में थे, इसलिए, तीनों प्राधिकरणों ने उत्तरदाताओं के इस तर्क को गलती से स्वीकार कर लिया कि उन्होंने विवाद में भूमि पर बारह वर्षों के कथित निर्विरोध कब्जे के आधार पर अपना अधिकार मजबूत कर लिया है।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि *मुख्तार-खास* द्वारा दिए गए साक्ष्य स्वीकार्य नहीं थे और प्रविष्टियाँ यू.पी. के भूमि अभिलेख मैनुअल (संक्षेप में "मैनुअल") प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई थीं। ।

11. तर्कों को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने सुप्रीम कोर्ट और इस न्यायालय के, हेमाजी वाघाजी जाट बनाम भीखाभाई खेंगारभाई हरिजन और अन्य, एआईआर 2009 एससी 103; विद्याधर बनाम माणिक राव और अन्य, (1999) 3 एससीसी 573; श्रीमती बिटिया बानो बनाम डीडीसी, 1979 एससीसी ऑनलाइन सभी 502, 1980 आरडी 190; जानकी वशदेव भोजवानी और अन्य बनाम इंडसइंड बैंक लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2005 एससी 439: (2005) 2 एससीसी 217; गया प्रसाद बनाम नाथू सिंह एवं अन्य, 2019 (4) AWC 3600; सुनहरी लाल बनाम श्रीमती प्रेमवती, 2015 सभी। सी.जे. 738 और गंगा राम और अन्य बनाम डीडीसी और अन्य, 1982 आरडी पेज 1, निर्णयो की दलील दी है|

12. इसके विपरीत,उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित श्री अनिल शर्मा, विद्वान वरिष्ठ अधिबक्ता, अधिवक्ता श्री पी.के. सिंह की सहायता से, ने मैनुअल के पैरा ए-124 के भाग- II के खंड (9) के प्रावधानों का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि: -

" खसरे के कॉलम 4 में दर्ज व्यक्ति की सहमति के बिना भूमि पर कब्जा करने वाले।"

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि प्रतिवादियों के पास भूमि का कब्ज़ा था और यह याचिकाकर्ताओं के जानकारी में था लेकिन उनके खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी, इसलिए, उन्होंने बारह वर्षों तक अपने निर्बाध कब्जे के बल पर अपना स्वामित्व पूरा कर लिया है।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया कि प्रतिवादी रामबदन सिंह के मुख्तार-खास होने के नाते रामजनम सिंह द्वारा रखे गए राजस्व रिकॉर्ड के आधार पर प्रतिद्वंद्वी पक्षकारों के दावे का फैसला किया गया था, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य है। ऐसा नहीं था कि मुख्तार-खास ने किसी ऐसे तथ्य का साक्ष्य दिया था जो प्रतिवादी रामबदन सिंह की

जानकारी में विशिष्ट था। राजस्व रिकॉर्ड के अनुसार, प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं को खंड 9 की श्रेणी के तहत दिखाया गया था, जो इस बात का एक ठोस सबूत था कि वे उन व्यक्तियों की सहमति के बिना भूमि पर कब्ज़ा कर रहे थे, जिनका नाम खसरा के कॉलम 4 में दर्ज किया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **रामदुलार बनाम उप निदेशक चकबंदी, जौनपुर, 1994 सप्लिमेंट 2 एससीसी 198: 1994 1 एससीआर 735** के मामले में पारित सुप्रीम कोर्ट के फैसले की दलील दी है।

15. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष पहली बार बिल्कुल नया मामला बनाया है।

16. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उत्तरदाता बाहरी हैं और आम तौर पर दूसरे गाँव में रहते हैं और विवाद वाली भूमि पर उनका कभी भी कब्ज़ा नहीं रहा है और साथ ही विवाद में भूमि पर उनका खेतिहर कब्ज़ा साबित नहीं हुआ है।

18. उपरोक्त संदर्भित तथ्यों, प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियों और जिन निर्णयों की दलील दी गई है, उनके आधार पर इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मुद्दे इस प्रकार हैं:-

(A) क्या मुख्तार-खास द्वारा गवाह के रूप में दिया गया बयान स्वीकार्य है या नहीं, यदि हां, तो किस हद तक?

(B) क्या 'मैनुअल' के पैरा ए-124 के भाग-2 के खंड-9 के तहत प्रविष्टि और संबंधित अवधि का खसरा प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए पर्याप्त होगा, और यदि नहीं?

(C) क्या प्रतिवादी उत्तरदाताओं ने विवादित भूमि पर बारह वर्षों के कब्जे के आधार पर अपने अधिकारों को पूरा किया है, अर्थात क्या उनका कब्जा *nec vi, nec clam, nec precario* था, यानी निरंतरता में पर्याप्त, प्रचार में पर्याप्त और उपाधि और उसके ज्ञान का खंडन प्रतिस्पर्धी के लिए प्रतिकूल था?

19. उपरोक्त संदर्भित **मुद्दा (A)** के संदर्भ में, यानी *मुख्तार-खास* के साक्ष्य की प्रकृति, **जानकी वशदेव भोजवानी *(सुप्रा)*** के निर्णय में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित फैसले के कुछ पैराग्राफ को संदर्भित करना प्रासंगिक होगा -:

"13. आदेश 3 नियम 1 और 2 सीपीसी मुख्तारनामा धारक को व्यक्ति की ओर से "कार्य" करने का अधिकार देता है। हमारे विचार में आदेश 3 नियम 1 और 2 सीपीसी में प्रयुक्त "कार्य" शब्द मुख्तरनामा धारक द्वारा केवल इंस्ट्रूमेंट द्वारा दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्य तक ही सीमित है। "कार्य" शब्द में मुख्य व्यक्ति के स्थान पर गवाही देना शामिल नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, यदि पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा पावर ऑफ अटॉर्नी के अनुसरण में कुछ "कार्य" किए हैं, वह ऐसे कार्यों के संबंध में प्रिंसिपल के लिए गवाही दे सकता है, लेकिन वह मुख्य व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यों के लिए गवाही नहीं दे सकता है। इसी तरह, अटॉर्नी धारक उस मामले में भी

गवाही नहीं दे सकता है जिसके बारे में केवल मुख्य व्यक्ति को ही व्यक्तिगत जानकारी हो सकती है और जिसके संबंध में प्रिंसिपल प्रतिपरीक्षा का हकदार है।

14. xxxxxx

15. xxxxxx

16. xxxxxx

17. पावर ऑफ अटॉर्नी के प्रश्न पर, उच्च न्यायालयों के विचार भिन्न हैं। *शंभू दत्त शास्त्री बनाम राजस्थान राज्य [(1986) 2 डब्लूएलएन 713 (राजस्थान)]* के मामले में यह माना गया था कि एक सामान्य पावर-ऑफ-अटॉर्नी धारक पार्टी की ओर से उपस्थित हो सकता है, दलील दे सकता है और कार्य कर सकता है लेकिन वह पक्षकार की ओर से एक गवाह नहीं बन सकता. वह केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता से ही प्रकट हो सकता है। कोई भी किसी को अपनी ओर से गवाह बॉक्स में उपस्थित होने की शक्ति नहीं सौंप सकता। गवाह बॉक्स में उपस्थित होना पूरी तरह से एक अलग कार्य है। एक सामान्य पावर-ऑफ-अटॉर्नी धारक को वादी की ओर से वादी की क्षमता में गवाह के रूप में उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

18. उपरोक्त निर्णय *राम प्रसाद बनाम हरि नारायण* [एआईआर 1998 राज 185: (1998) 3 क्यू सीसी 183] के मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था । यह माना गया कि आदेश 3 सीपीसी के नियम 2 में प्रयुक्त शब्द "कार्य" में किसी पक्षकार की ओर से गवाह के रूप में पेश होने के लिए पावर-ऑफ-अटॉर्नी धारक का कार्य शामिल नहीं है। किसी पक्ष का पावर-ऑफ-अटॉर्नी धारक केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता में गवाह के रूप में उपस्थित हो सकता है और वाद के बारे में उसके पास जो भी जानकारी है वह शपथ लेकर बता सकता है लेकिन वह उस पक्ष की ओर से गवाह के रूप में उपस्थित नहीं हो सकता है| यदि वादी अदालत में उपस्थित होने में असमर्थ है, तो सीपीसी के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत उसके साक्ष्य को दर्ज करने के लिए एक कमीशन जारी किया जा सकता है।

19. *प्रदीप मोहनबे (डॉ.) बनाम मिंगुएल कार्लोस डायस* [(2000) 1 बॉम एलआर 908] के मामले में बॉम्बे हाई कोर्ट की गोवा बेंच ने माना कि पावर ऑफ अटॉर्नी धारक धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज कर सकता है लेकिन शिकायतकर्ता की ओर से गवाह नहीं बन सकता। वह सिर्फ गवाह के तौर पर पेश हो सकता हैं.

20. हालाँकि, *हम्बर्टो लुइस बनाम फ्लोरियानो अरमांडो लुइस* [(2002) 2 बॉम सीआर 754] के मामले में, जिस पर वर्तमान मामले में न्याधीकरण द्वारा भरोसा किया गया है, उच्च न्यायालय ने असहमतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया और माना कि आदेश 3 नियम 2 सीपीसी के प्रावधान में यह निहित नही माना जा सकता है कि पावर-ऑफ-अटॉर्नी धारक को उसके प्रिंसिपल की ओर से गवाही देने का अधिकार नहीं है। उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि सीपीसी के आदेश 3 नियम 2 में आने वाला

शब्द "गवाही" "कार्य" शब्द के दायरे में आता है। हम *फ्लोरियानो अरमांडो* [(2002) 2 बॉम सीआर 754] में बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा लिए गए इस दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हैं।

21. हमारा मानना है कि *शंभु दत्त शास्त्री* [(1986) 2 डब्लूएलएन 713 (राजस्थान)] के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने जो दृष्टिकोण अपनाया था, उसका *राम प्रसाद* [एआईआर 1998 राज 185: (1998) 3 क्यूर सीसी 183] के मामले में भी पालन किया गया जो कि सही है। *फ्लोरिआनो अरमांडो* लुइस [(2002) 2 बॉम सीआर 754] के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को सही कानून निर्धारित नहीं किया जा सकता है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया गया है।"

(जोर दिया गया)

20. वर्तमान मामले में, मूल प्रतिवादी रामबदन सिंह चकबंदी अधिकारी के समक्ष गवाही देने के लिए उपस्थित नहीं हुए हैं और उनकी ओर से उनके *मुख्तार-खास*, रामजनम सिंह उपस्थित हुए हैं और अपना बयान दर्ज कराया है और प्रासंगिक राजस्व अभिलेख भी प्रस्तुत किए हैं।

21. जैसा कि **जानकी वशदेव भोजवानी *(सुप्रा)*** में बताया गया है, पावर ऑफ अटॉर्नी धारक (*मुख्तार-खास*) केवल अपनी व्यक्तिगत क्षमता में ही उपस्थित हो सकता है और मामले के बारे में उसके पास जो भी ज्ञान है, उसे ही पेश कर सकता है, लेकिन, प्रिंसिपल ओर से प्रिंसिपल द्वारा किए गए कृत्यों के लिए गवाह के रूप में गवाही नहीं दे सकता है। इसलिए, मुख्तार-खास का साक्ष्य केवल उसी सीमा तक स्वीकार्य होगा, जिस सीमा तक उसे व्यक्तिगत ज्ञान है। हालाँकि, चूंकि केवल मूल प्रतिवादी को ही उसके खेती के कब्जे के बारे में व्यक्तिगत जानकारी थी, इसलिए, उसके *मुख्तार-खास* द्वारा दिए गए इस संबंध में कोई भी सबूत स्वीकार्य नहीं होगा और इसके अलावा मुख्तार-खास द्वारा रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेज राजस्व से प्राप्त दस्तावेज हैं। इसलिए वे कानून के अनुसार स्वीकार्य होंगे।

22. **मुद्दा (B)** के संदर्भ में यानी राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों के बारे में, **गुरमुख सिंह और अन्य बनाम डीडीसी/एडीएम (एफ एंड आर), 1996 एससीसी ऑनलाइन ऑल 823: (1997) 88 आरडी 276** में समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। और उसके प्रासंगिक पैराग्राफ 7, 8 और 9 नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं-:

"7. इसी तरह का विचार इस न्यायालय द्वारा *गंगा राम बनाम डीडीसी* , 1982 आरडी 1 में व्यक्त किया गया था, जिसमें यह देखा गया था कि जो व्यक्ति आरोप लगाता है कि पी.ए. 10 तैयार किया गया था और रिकॉर्ड किए गए खातेदार को तामील किया गया था, उसे उस तथ्य को साबित करना होगा। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने *रणवीर सिंह बनाम (श्रीमती) सत्यवती*, 1990 आरडी 435 में राजस्व बोर्ड के फैसले का हवाला दिया है, जिसमें राजस्व बोर्ड ने

जमुना प्रसाद (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के मामले को अलग कर दिया था। इसमें यह माना गया था कि सार्वजनिक दस्तावेज़ की सत्यता और वार्षिक रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों की सत्यता के संबंध में तब अनुमान लगाया गया था जब भूमि रिकॉर्ड मैनुअल के पैरा 80-ए और ए-81 के अनुपालन से संबंधित कागजात अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा साबित हुए थे। और यह साबित हो गया था कि पीए 10 जारी किया गया था, इसकी तामिला दर्ज खातेदार पर मानी जाएगी। उस मामले के तथ्यों पर, यह पाया गया कि प्रतिकूल कब्जा साबित हुआ था। राजस्व बोर्ड द्वारा *जमुना प्रसाद* (सुप्रा) के मामले में न्यायालय द्वारा पहले ही व्यक्त किए गए विपरीत दृष्टिकोण को नहीं अपनाया जा सकता था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने *हजारी बनाम मथुरा*, 1992 आरडी 79 में राजस्व बोर्ड के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह माना गया था कि जहां कोई व्यक्ति रैंक अतिचारी नहीं है,दर्ज खातेदार की जानकारी में लगातार कब्जा धारक है वहां पीए 10 जारी करना आवश्यक नहीं है। यह निर्णय इस प्रश्न पर अधिकरण नहीं है कि जहां व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे का दावा कर रहा है और दर्ज की गई प्रविष्टियों पर भरोसा करता है, उसे यह स्थापित नहीं करना है कि प्रविष्टियां कानून के अनुसार की गई थीं।

9. याचिकाकर्ताओं ने प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए सबूत पेश किए। उन्होंने खतौनी 1375-1377 एफ और बारह साला खसरा, 1386-1397 एफ पर भरोसा किया। याचिकाकर्ताओं के पिता सुरजन सिंह ने भी मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए। खतौनी 1375 एफ में दर्शाया गया है कि प्रतिवादी संख्या 3 मंगल सिंह, प्रतिवादी संख्या 4 के पिता को विवाद में भूमि के सिरदार के रूप में दर्ज किया गया था। कॉलम नंबर 9 में प्लॉट नंबर 150 के संबंध में प्रविष्टि है कि जगतार सिंह का कब्जा है। यह प्रविष्टि सुपरवाइजर कानूनगो द्वारा की गई बताई गई है। याचिकाकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया कि ऐसी प्रविष्टि करने से पहले पर्यवेक्षक कानूनगो ने अभिलिखित किए गए खातेदार को कोई नोटिस जारी किया था। याचिकाकर्ता ने खसरे की कोई प्रति दाखिल नहीं की जिससे यह पता चल सके कि टिप्पणी कॉलम में पड़ताल की तारीख और पीए 10 जारी करने की तारीख बताई गई थी। लेखपाल की डायरी भी तलब नहीं की गई। याचिकाकर्ता अपने प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए इन प्रविष्टियों पर भरोसा कर रहा था। खसरे में दर्ज

किए गए खातेदार के खिलाफ कब्जे के संबंध में जब कोई प्राधिकारी किसी दूसरे व्यक्ति के पक्ष में एक प्रविष्टि करता है तो खातेदार नोटिस का अधिकारी है| दूसरे, प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रतिवादी 3 और 4 की ओर से पेश किए गए मौखिक साक्ष्यों पर विश्वास किया है कि जगतार सिंह उनसे संबंधित था। प्रतिवादी संख्या 3 जगतार सिंह का साला है और प्रतिवादी संख्या 4 उसका भतीजा है। उत्तरदाताओं द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अवैध नहीं हैं।"

(जोर दिया गया)

23. **भगवती दीन बनाम शीतलादीन और अन्य , (2022) 156 आरडी 602: 2022 एससीसी ऑनलाइन सभी 349** में एक समन्वय पीठ द्वारा हाल ही में पारित फैसले में , मौजूदा मुद्दे पर विचार किया गया था और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 28 में यह देखा गया था कि -:

"28. हाल ही में, इस न्यायालय को *चित बहाल सिंह बनाम चकबंदी के संयुक्त निदेशक* के मामले में प्रतिकूल कब्जे के उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला, जिसका फैसला 29.04.2022 को हुआ और *बाबू अली बनाम डीडीसी* (सुप्रा) के फैसले पर भरोसा करते हुए प्रतिकूल कब्जे की दलील खारिज कर दी गई। कानून और प्रविष्टियों की तैयारी और किन सामग्रियों को पूरा करना है, इसकी व्याख्या करने वाले प्रासंगिक पैराग्राफ यहां दिए जा रहे हैं:--

"11. इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक भूमि अभिलेख मैनुअल (यहां इसके बाद "मैनुअल' के रूप में संदर्भित) के पैरा-89-ए, 89-बी और 102-बी नीचे दिए गए हैं:--

"89-ए. परिवर्तनों की सूची.-किसी गांव के प्रत्येक ख़रीफ़ और रबी पड़ताल के बाद, लेखपाल निम्नलिखित रूप में खसरे में नई और संशोधित प्रविष्टियों की एक समेकित सूची तीन प्रतियों में तैयार करेगा:

फॉर्म नंबर पी-10

खसरा नंबर प्लॉट एरिया

पिछले वर्ष में की गई प्रविष्टि का विवरण

चालू वर्ष में की गई प्रविष्टि का विवरण

राजस्व निरीक्षक द्वारा सत्यापन रिपोर्ट

टिप्पणी

1

2

3

4

5

6

(ii) लेखपाल पहले चार कॉलमों को भरेगा और सूची की एक प्रति भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष को सौंपेगा। वह सूची से उद्धरण भी तैयार करेगा और कॉलम 3 और 4 में दर्ज संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को उनके उत्तराधिकारियों को जारी करेगा, यदि संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु हो गई है, तो उनके द्वारा रखी गई सूची की प्रति में उनके हस्ताक्षर प्राप्त करेगा। दूसरी प्रति राजस्व निरीक्षक को भेजी जाएगी।

(iii) राजस्व निरीक्षक यह सुनिश्चित करेगा कि उसके गांव की पड़ताल के समय सभी मामलों में उद्धरण जारी कर दिए गए हैं और प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए गए हैं।

89-बी. परिवर्तन की रिपोर्ट.-लेखपाल के पास सूची की प्रति जिसमें उद्धरण प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर हों, संबंधित खसरे के साथ संलग्न की जाएगी और अगले वर्ष के 31 जुलाई को या उससे पहले इसके साथ रजिस्ट्रार (राजस्व निरीक्षक) के पास दाखिल किया जाएगा (पैराग्राफ 60 का उप-पैराग्राफ (iv))।

102-बी. कब्जे की प्रविष्टि (कॉलम 22) (टिप्पणी कॉलम) - (1) लेखपाल खसरा के टिप्पणी कॉलम में कब्जे के तथ्य को दर्ज करते समय, उसी दिन कब्जे वाले व्यक्ति के नाम के साथ कब्जे के तथ्य को लिखेगा और संबंधित प्रविष्टि के सामने खसरा के टिप्पणी कॉलम में तारीख और डायरी का क्रम संख्या भी लिखेगा।

(2) चूंकि प्रपत्र पी-10 में परिवर्तन की सूची गांव के पड़ताल के पूरा होने के बाद तैयार की जाती है, इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसी सभी प्रविष्टियों को सूची में लाया गया है परिवर्तन की सूची की क्रम संख्या खसरा के टिप्पणी कॉलम में संबंधित प्रविष्टि के नीचे लाल स्याही से नोट की जाएगी।

(3) यदि लेखपाल अनुच्छेद 89-ए में निहित किसी भी प्रावधान का अनुपालन करने में विफल रहता है, तो खसरा के टिप्पणी कॉलम में प्रविष्टि को उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में नहीं माना जाएगा।

12. उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि पीए-10 में कोई प्रविष्टि की जाती है, तो कॉलम 3 और 4 में दर्ज संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों या उनके उत्तराधिकारियों को सूचित किया जाएगा और उनके हस्ताक्षर प्राप्त किए जाएंगे। अभिलेखों को राजस्व निरीक्षक के पास जमा करने पर वह पड़ताल अर्थात गांव के सत्यापन के

समय यह सुनिश्चित करेगा कि यह सभी मामलों में जारी किया गया है तथा प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर प्राप्त किये गये हैं। इसलिए, यदि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर कोई प्रविष्टि की गई है तो संबंधित व्यक्ति को सूचित किया जाना चाहिए और दावा करने वाले व्यक्ति को यह साबित करना होगा कि यह मैनुअल के अनुसार था और कब्जे की प्रकृति क्या थी और यह किरायेदार की जानकारी में कब शुरू हुआ और कब्जा निरंतर था और कब तक जारी रहा।

13. इस न्यायालय ने *मोहम्मद रज़ा बनाम उप निदेशक चकबंदी* , 1997 आरडी 276 के मामले में इस मुद्दे पर विचार किया और यह माना गया कि राजस्व पत्रों में प्रविष्टियाँ उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख मैनुअल के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके तैयार नहीं की गईं और मुख्य जोरदार को पीए -10 नोटिस नहीं दिया गया, ऐसी प्रविष्टियों का कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं है और यह कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी।

14. इस न्यायालय ने *गुरुमुख सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी, नैनीताल*, (1997) 80 आरडी 276 के मामले में यह भी माना है कि यदि प्रविष्टियाँ भूमि अभिलेखों के मैनुअल के प्रावधानों के अनुरूप नहीं हैं तो उनका कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं होगा। और साबित करने का भार उस व्यक्ति पर है जो प्रतिकूल कब्जे के आधार पर कब्जे का दावा कर रहा है। प्रासंगिक अनुच्छेद 6 और 7 नीचे दिए गए हैं:--

"6. भूमि अभिलेख मैनुअल के पैरा ए-102सी से यह स्पष्ट है कि प्रविष्टियों का कोई साक्ष्य मूल्य नहीं होगा यदि वे भूमि रिकॉर्ड मैनुअल के प्रावधानों के अनुसार नहीं बनाई गई हैं। प्रविष्टियों की शुद्धता की धारणा है बशर्ते कि यह भूमि रिकॉर्ड मैनुअल के प्रासंगिक प्रावधान के अनुसार बनाई गई हो और दूसरे, ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति रिकॉर्ड किए गए खातेदार के खिलाफ प्रतिकूल कब्जे का दावा कर रहा है और वह इस बात से इनकार करता है कि उसे कोई पीए 10 प्राप्त नहीं हुआ है या उसे की गई प्रविष्टियों के बारे में कोई जानकारी नहीं है। यह साबित करने के लिए कि खातेदार को निर्धारित फॉर्म पीए 10 में विधिवत नोटिस दिया गया था, सबूत का बोझ प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा| पैरा ए-81 में ही

प्रावधान है कि नोटिस लेखपाल द्वारा दिया जाएगा और वह अध्यक्ष, भूमि प्रबंधन समिति के साथ-साथ रिकॉर्ड किए गए खातेदार से हस्ताक्षर प्राप्त करेगा। अन्यथा प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा इसे प्रदान किया जाना आवश्यक है। प्रतिकूल कब्जे का कानून इस बात पर विचार करता है कि न केवल कब्जे की निरंतरता है असली मालिक के ख़िलाफ़, लेकिन यह भी कि ऐसे व्यक्ति को पूरी जानकारी थी कि कब्ज़ा करने वाला व्यक्ति असली मालिक के प्रति शत्रुतापूर्ण स्वामित्व और कब्ज़े का दावा कर रहा है। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर कब्ज़ा कर लेता है, तो वह प्रतिकूल कब्ज़े से अपना स्वामित्व स्थापित नहीं कर सकता है जब तक कि उसके द्वारा यह साबित न कर दिया जाए कि खातेदार को ऐसे प्रतिकूल कब्ज़े की जानकारी थी।

7. जमुना प्रसाद बनाम उप निदेशक चकबंदी, आगरा में , इस न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि सबूत का बोझ उस व्यक्ति पर था जो प्रविष्टियों की शुद्धता को चुनौती देता है। ऐसा देखा गया:

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियों के बारे में शुद्धता का अनुमान था और यह साबित करने की जिम्मेदारी प्रतिवादी पर है कि याचिकाकर्ता के कब्जे को दर्शाने वाली प्रविष्टियाँ कानून के अनुसार नहीं थीं। यह तर्क सबसे पहले अरक्षणीय है। किसी पक्ष के लिए नकारात्मक तथ्य साबित करना संभव नहीं है। दूसरे, यह सवाल कि क्या फॉर्म पीए 10 में नोटिस जारी किया गया था और याचिकाकर्ता को तामील किया गया था, यह भी एक तथ्य है जो उनकी विशेष जानकारी में था।"

"याचिकाकर्ता का दावा है कि उत्तरदाताओं पर प्रामाणिकता को खारिज करने और कब्जे के प्रवेश के संभावित मूल्य को नष्ट करने का बोझ स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मेरी राय में, जहां कब्जे का दावा एक ऐसे पक्ष द्वारा किया जाता है जो मुख्य रूप से अपने प्रतिकूल कब्जे के प्रवेश पर निर्भर करता है और इस तरह के कब्जे को दर्ज खातेदार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, तो यह स्थापित करने का बोझ पहले पक्ष पर है कि उसके कब्जे के संबंध में

प्रविष्टियां कानून के अनुसार की गई थीं।"

15. *साधु सरन बनाम सहायक निदेशक चकबंदी, गोरखपुर,* (2003) 94 आरडी 535 के मामले में इस न्यायालय ने माना है कि यह कानून में अच्छी तरह से स्थापित है कि अवैध प्रविष्टि स्वामित्व प्रदान नहीं करती है। इसलिए भले ही प्रविष्टि कर दी गई हो, लेकिन यह कानून और निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं होने पर सही स्वामित्व या हित प्रदान नहीं करती है। इस न्यायालय और पक्षकारों के अधिवक्ता को भी यह बात लेखपाल की डायरी में नहीं मिल सकी। पीए-24 का प्रावधान दिनांक 03.07.1965 की अधिसूचना के माध्यम से आया है, इसलिए इसका भी कोई फायदा नहीं है क्योंकि 1373 फसली की खतौनी में पीए-24 के आधार पर प्रविष्टि नहीं की जा सकती थी और यह बिना संख्या और वर्ष के भी है। "

(जोर दिया गया)

24. वर्तमान मामले में, कोई निष्कर्ष नहीं है कि पीए -10 दर्ज खातेदारो पर तामील किया गया था और प्रतिस्पर्धी उत्तरदाता उस तथ्य को साबित करने में असफल रहे हैं और यह भी दिखाने में सक्षम नहीं हैं कि राजस्व प्रविष्टियों में पीए -10 का संदर्भ था और समेकन अधिनियम के तहत सभी न्यायालयों ने पीए-10 की तैयारी के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और क्या कब्जे की प्रविष्टियाँ 'मैनुअल' में निर्धारित प्रक्रिया के आधार पर बनाई गई थी| संदर्भ के लिए मैनुअल की प्रासंगिक प्रक्रिया और पैराग्राफ को नीचे उद्धृत किया गया है-:

"ए80. परिवर्तनों की सूची:- किसी गांव के प्रत्येक ख़रीफ़ और रबी पड़ताल के बाद, लेखपाल पैराग्राफ ए71 से ए73 और ए84 में उल्लिखित प्रविष्टियों की एक समेकित सूची निम्नलिखित रूप में तीन प्रतियों में तैयार करेगा .....

ए81. सूची का उपयोग कैसे किया जाए:- (1) लेखपाल पहले पांच कॉलम भरेगा और सूची की एक प्रति भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष को सौंपेगा। वह सूची से उद्धरण भी तैयार करेगा और उसके कॉलम 3, 4 और 5 में दर्ज व्यक्ति या व्यक्तियों या उनके उत्तराधिकारियों को जारी करेगा, यदि संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु हो गई है, तो उसके द्वारा रखी गई सूची की प्रति में उनके हस्ताक्षर प्राप्त होंगे। दूसरी प्रति पर्यवेक्षक कानूनगो को भेजी जाएगी।

(2) पर्यवेक्षक कानूनगो अनुच्छेद 423 के उप अनुच्छेद (iv) में निर्धारित तरीके से सूची से निपटेंगे। वह यह भी सुनिश्चित करेंगे कि सभी मामलों में उद्धरण जारी किए गए हैं, और प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए हैं। यदि

उसे पता चलता है कि किसी भी मामले में उद्धरण जारी नहीं किया गया है, तो वह इसे अपनी उपस्थिति में जारी करवाएगा। यह महत्वपूर्ण है क्युकी प्रभावित व्यक्ति, यदि वह व्यथित है, तो कागजात में सुधार के लिए तहसीलदार या उपमंडल अधिकारी, जैसा भी मामला हो, को आवेदन कर सकेगा|

ए82. परिवर्तन की रिपोर्ट:-लेखपाल के पास सूची की प्रति जिसमें उद्धरण प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर शामिल हैं, संबंधित खसरे के साथ संलग्न किया जायेगी और अगले वर्ष के 31 जुलाई को या उससे पहले इसके साथ रजिस्ट्रार कानूनगो के पास दाखिल किया जाएगा [पैराग्राफ A60 का सब-पैराग्राफ (iv)]।

ए83. ख़रीफ़ पड़ताल के तुरंत बाद, लेखपाल पर्यवेक्षक कानूनगो को दो प्रतियों में एक विवरण प्रस्तुत करेगा जिसमें गाँव समाज के भूमिधर, सिरदार या आसामी के अपने हलके में सभी जोतों को दर्शाया जाएगा, जिसका खेती योग्य क्षेत्र जलोढ़ीकरण के कारण कम या बढ़ गया है। पर्यवेक्षक कानूनगो व्यक्तिगत निरीक्षण द्वारा विवरण में सभी प्रविष्टियों की जांच करेगा और आवश्यक सुधार करने के बाद, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम नियम, 1952 के 205-बी के तहत कार्रवाई करने के लिए तहसीलदार को दो प्रतियों में विवरण प्रस्तुत करेगा।

102सी. कब्जे की प्रविष्टि कॉलम 21 (टिप्पणी कॉलम) :-

(1)लेखपाल, खसरे से संबंधित प्रविष्टि के टिप्पणी कॉलम में व अपनी डायरी में कब्जे के तथ्य को कब्जे वाले व्यक्ति के नाम के साथ लिखेगा,प्रविष्टि वाले दिन ही खसरे से संबंधित प्रविष्टि के टिप्पणी कॉलम में तारीख और डायरी क्रम संख्या को भी नोट करेगा।

(2) चूंकि प्रपत्र पीए-10 में परिवर्तनों की सूची किसी गांव के पड़ताल के पूरा होने के बाद तैयार की जाती है, इसलिए परिवर्तनों की सूची की क्रम संख्या खसरे के टिप्पणी कॉलम में संबंधित प्रविष्टि के नीचे लाल स्याही से नोट की जाएगी; यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसी सभी प्रविष्टियों को सूची में लाया गया है।

(3) यदि लेखपाल पैराग्राफ ए80 और ए81 में निहित किसी भी प्रावधान का अनुपालन करने में विफल रहता है, तो खसरा के टिप्पणी कॉलम में प्रविष्टि को उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में नहीं माना जाएगा।

25. इस संबंध में, **गुरमुख सिंह (सुप्रा)** में की गई टिप्पणियों को दोहराना प्रासंगिक होगा

कि प्रविष्टियों का कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं होगा, यदि उन्हें 'मैनुअल' के प्रावधानों के अनुसार दर्ज नहीं किया गया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में, नीचे के न्यायालयों द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया कि 'मैनुअल' में निर्धारित प्रक्रिया का विधिवत पालन किया गया था। यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष यह मानने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि प्रविष्टियां करते समय, 'मैनुअल' के तहत निर्धारित प्रक्रिया, जैसे कि क्या लेखपाल ने तीन प्रतियों में परिवर्तन तैयार किया है, उसकी एक प्रति अध्यक्ष, भूमि प्रबंधन समिति को सौंपी गई थी, परिवर्तनों की सूचना दी गई, पर्यवेक्षक कानूनगो को विवरण प्रस्तुत किया गया, गांव की पड़ताल की गई, पैरा 102-सी के तहत निर्धारित प्रक्रिया आदि का विधिवत पालन किया गया। इसलिए, केवल 'मैनुअल' के पैरा ए-124 के भाग II के खंड (9) के तहत प्रविष्टियों के आधार पर, यह नहीं माना जा सकता है कि प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं का 12 वर्षों की अवधि के लिए विवादित भूमि पर लगातार कब्जा था। और इस प्रकार प्रतिकूल कब्जे के बल पर अपना अधिकार सिद्ध किया।

26. उपरोक्त चर्चा और निष्कर्ष के मद्देनजर, इस न्यायालय को तीसरे मुद्दे पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, चूँकि इस संबंध में कुछ तर्क उठाए गए थे, इसलिए, अब यह न्यायालय मुद्दे (सी) यानी कब्जे की प्रकृति पर भी विचार करने के लिए आगे बढ़ता है।

27. इस संबंध में, **हेमाजी वाघाजी जाट (सुप्रा)** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लेख करना उचित होगा जिसमें **पीटी म्यूनिचिक्कन्ना रेड्डी और अन्य बनाम रेवम्मा और अन्य, 2007 (6) एससीसी** 59 के प्रासंगिक पैराग्राफ को अनुमोदन के साथ दोहराया गया कि -:

> "24. पीटी म्यूनिचिक्कन्ना रेड्डी बनाम रेवम्मा [(2007) 6 एससीसी 59] के एक अपेक्षाकृत हालिया मामले में इस न्यायालय के पास फिर से प्रतिकूल कब्जे की अवधारणा से विस्तार से निपटने का अवसर था। न्यायालय ने विभिन्न देशों में कानूनी स्थिति की भी जांच की। विशेष रूप से अंग्रेजी और अमेरिकी प्रणालियों में। हम विस्तार में प्रासंगिक अनुच्छेदों को पुन: प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। पैरा 5 और 6 में प्रतिकूल कब्जे से निपटने वाले न्यायालय ने निम्नानुसार कहा: (एससीसी पीपी. 66-67)
>
> "5. *एक अर्थ में प्रतिकूल कब्जा इस सिद्धांत या धारणा पर आधारित है कि मालिक ने कब्जे वाले व्यक्ति के शत्रुतापूर्ण कृत्यों और दावों के लिए अपनी सहमति से संपत्ति को प्रतिकूल धारक के लिए छोड़ दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि एक प्रतिकूल कब्जे के विशिष्ट गुण उसके खुले, निरंतर और शत्रुतापूर्ण होने में निहित हैं। (देखें डाउनिंग बनाम बर्ड* [100 सो 2डी 57 (फ्ला 1958)]; अरकंसास

स्मारक आयोग बनाम सिटी ऑफ़ लिटिल रॉक [227 आर्क 1085: 303 एसडब्ल्यू 2डी 569 (1957)]; मोनॉट बनाम मर्फी [207 एनवाई 240: 100 एनई 742 (1913)]; सिटी ऑफ़ रॉक स्प्रिंग्स बनाम स्टर्म [39 व्यो 494: 273 पी 908: 97 एएलआर 1 (1929)]।)

6. अधिकांश न्यायक्षेत्रों में प्रतिकूल कब्ज़ा कानून की प्रभावशीलता मजबूत सीमा क़ानून पर निर्भर करती है जिसके संचालन से अदालत तक पहुंचने का अधिकार समय के साथ समाप्त हो जाता है। कागज-मालिक के अधिकारों के विपरीत, प्रतिकूल कब्जे के संदर्भ में, प्रतिकूल मालिक, जिसने लंबे समय तक भूमि की देखभाल की है, इसे विकसित किया है, के पक्ष में, संपत्ति के मालिक के विरुद्ध जिसने संपत्ति की उपेक्षा की है, प्रतिस्पर्धी अधिकारों का एक सेट विकसित होता है, । परिसीमा के आधुनिक क़ानून, एक नियम के रूप में, न केवल एक निर्दिष्ट समय के लिए दूसरे के प्रतिकूल कब्जे में रही संपत्ति की वसूली के लिए कार्रवाई करने के किसी व्यक्ति के अधिकार में कटौती करते हैं, बल्कि मालिक को स्वामित्व भी प्रदान करते हैं। ऐसे क़ानूनों का इरादा उन लोगों को दंडित करना नहीं है जो अधिकारों का दावा करने में उपेक्षा करते हैं, बल्कि उन लोगों की रक्षा करना है जिन्होंने अधिकार या दावे के तहत क़ानून द्वारा निर्दिष्ट समय के लिए संपत्ति पर कब्ज़ा बनाए रखा है। (*अमेरिकी न्यायशास्त्र, खंड 3, 2डी, पृष्ठ 81 देखें।*) *प्रतिकूल कब्जे की अमेरिकी धारणा का अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से सीमा क़ानून की पृष्ठभूमि में, कि बेदखल करने के इरादे को पूर्ण रूप से नहीं दिया जा सकता है। किसी प्रतिकूल कब्जे के दावे की सफलता के लिए परिसीमा का साधारण अनुप्रयोग अपने आप में पर्याप्त नहीं होगा।*"

(मूल भाग में इटैलिक और इस न्यायालय द्वारा रेखांकित भाग पर जोर दिया गया है)

28. हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने एलआर के माध्यम से उत्तम चंद (मृत) एलआर के माध्यम से और नाथ राम (मृत) एलआर के माध्यम से व अन्य, 2020 (11) एससीसी 263 में पहले के फैसले दोहराए हैं और कहा है कि -:

"15. इस मामले की जांच एम. सिद्दीक (राम जन्मभूमि मंदिर-5 जे.) बनाम सुरेश दास [एम. सिद्दीक (राम जन्मभूमि मंदिर-5 जे.) बनाम सुरेश दास, (2020) 1 एससीसी 1] के मामले में एक संविधान पीठ द्वारा की गई है। जिसमें, यह माना गया है कि प्रतिकूल कब्जे की याचिका इस स्वीकृति पर आधारित है कि संपत्ति का स्वामित्व दूसरे में निहित है, जिसके खिलाफ दावेदार दूसरे के

स्वामित्व के प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है। न्यायालय ने निम्नानुसार माना: (एससीसी पृ. 703-706, पैरा 1142-1143 एवं 1147-1150)

"1142. प्रतिकूल कब्जे की दलील इस स्वीकृति पर आधारित है कि संपत्ति का स्वामित्व दूसरे में निहित है, जिसके खिलाफ दावेदार दूसरे के स्वामित्व के प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है। कब्ज़ा इस अर्थ में प्रतिकूल है कि यह उस व्यक्ति के स्वीकृत स्वामित्व के विपरीत है जिसके विरुद्ध इसका दावा किया गया है।

xxxxxxxxxxx

1143. एक व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे की दलील पेश करता है, उसे साबित करना होगा कि कब्जा शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर है जो *nec vi nec claim* और nec precario होने की आवश्यकता को पूरा करता है। प्रतिकूल कब्जे की दलील को प्रमाणित करने के लिए, कब्जे का चरित्र निरंतर और सार्वजनिक रूप से पर्याप्त होना चाहिए क्योंकि प्रतिकूल होने के लिए कब्जे को वास्तविक मालिक की जानकारी में होना चाहिए। इन आवश्यकताओं को पहले पर्याप्त दलीलों द्वारा और दूसरा पर्याप्त सबूत पेश करके विधिवत स्थापित किया जाना चाहिए। यह अच्छी तरह से तय है कि साक्ष्य केवल उन मामलों के संदर्भ में ही पेश किया जा सकता है, जो किसी सिविल मुकदमे में पेश किए जाते हैं और पर्याप्त दलील के अभाव में, सबूत अपने आप में किसी दलील वाले मामले की कमी को पूरा नहीं कर सकता है। पैरा 11(ए) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बताने के अलावा कि मस्जिद के निर्माण के समय से लेकर इसे अपवित्र किए जाने तक मुसलमानों का लंबे, विशेष और निरंतर कब्ज़ा रहा है, कोई तथ्यात्मक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह केवल विवरण या साक्ष्य का मामला नहीं है। प्रतिकूल कब्जे की दलील वास्तविक मालिक के अधिकारों को पराजित करने का प्रयास करती है और कानून ऐसे मामले को आसानी से स्वीकार नहीं कर रहा है जब तक कि दलीलों में स्पष्ट और ठोस आधार नहीं बनाया गया हो और साक्ष्य में स्थापित नहीं किया गया हो।

***

1147. *अधीक्षक एवं कानूनी मामलों के स्मरणकर्ता बनाम अनिल कुमार भुंजा* [अधीक्षक और कानूनी मामलों के स्मरणकर्ता बनाम अनिल कुमार भुंजा , (1979) 4 एससीसी 274: 1979 एससीसी (सीआरआई) 1038] में आरएस सरकारिया, जे., ने इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि कब्जे की अवधारणा "बहुरूपी" है एक

अधिकार (आनंद लेने का अधिकार) और एक तथ्य (वास्तविक इरादा) दोनों को समाहित करती है। विद्वान न्यायाधीश ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 278, पैरा 13)

'13... सभी क़ानूनों के संदर्भ में सभी स्थितियों पर समान रूप से लागू होने वाली "कब्जे" की पूरी तरह से तार्किक और सटीक परिभाषा पर काम करना असंभव है। डायस और ह्यूजेस ने न्यायशास्त्र पर अपनी पुस्तक में कहा है कि बहुत अधिक सिद्धांतबद्ध यदि कोई विषय है तो वह "कब्जे" का है। इसके अधिकांश कठिनाई और भ्रम (जैसा कि सैल्मंड के न्यायशास्त्र, 12वें संस्करण, 1966 में बताया गया है) इस तथ्य के कारण है कि कब्ज़ा पूरी तरह से एक कानूनी अवधारणा नहीं है। "कब्जा" का तात्पर्य है एक अधिकार और एक तथ्य; संपत्ति के अधिकार और वास्तविक इरादे के तथ्य से जुड़ा आनंद लेने का अधिकार। इसमें नियंत्रण की शक्ति और नियंत्रण करने का इरादा शामिल है। (डायस और ह्यूजेस देखें, ibid.)'

ये टिप्पणियां शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 29(बी) में कब्जे के संदर्भ में की गई थीं।

1148. *पी. लक्ष्मी रेड्डी बनाम एल. लक्ष्मी रेड्डी* में [*पी. लक्ष्मी रेड्डी बनाम एल. लक्ष्मी रेड्डी*, 1957 एससीआर 195: एआईआर 1957 एससी 314], जगन्नाधदास, जे. ने इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए प्रतिकूल कब्जे की "शास्त्रीय आवश्यकता" पर चर्चा की: (एआईआर पीपी 317-18, पैरा 4)

'

4. अब, प्रतिकूल कब्जे की सामान्य शास्त्रीय आवश्यकता यह है कि यह *nec vi nec clam nec precario* होना चाहिए। (*काउंसिल में भारत के राज्य सचिव बनाम देबेंद्र लाल खान* में देखें *[काउंसिल में भारत के राज्य सचिव बनाम देबेंद्र लाल खान* ,1933 एससीसी ऑनलाइन पीसी 65: (1933-34) 61 आईए 78] आई ए पृष्ठ 82 पर) आवश्यक कब्ज़ा निरंतरता में, प्रचार में और यह दिखाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए कि यह कब्ज़ा प्रतिस्पर्धी के लिए प्रतिकूल है।' न्यायालय ने सीमा और नुस्खे के कानून पर यूएन मित्रा के टैगोर लॉ व्याख्यान से निम्नलिखित उद्धरण का हवाला दिया: (एआईआर पृष्ठ 319, पैरा7)

'7.... "प्रतिकूल कब्जा भूमि का एक वास्तविक और विशेष विनियोग है जो अधिकार के दावे के तहत शुरू और जारी रखा जाता है, या तो खुले तौर पर घोषित दावे के तहत, या एक रचनात्मक दावे के तहत (विनियोग में शामिल कार्यों और परिस्थितियों से उत्पन्न), भूमि पर धारक के विरुद्ध कब्जा करना । (एंजेल, धारा 390 और 398)। यह विपरीत पक्ष के

अधिकारों के इस तरह के हस्तक्षेप के साथ प्रतिकूल दावा करने का इरादा है जो उसे कार्रवाई का कारण देता है जिसमे प्रतिकूल कब्ज़ा निहित है।" ' [छठा संस्करण, वॉल्यूम 1, व्याख्यान VI, पृष्ठ 159]

इस न्यायालय ने कहा: (एआईआर पृष्ठ 319, पैरा 7)

'7....इस सिद्धांत के अनुरूप, किसी व्यक्ति के पक्ष में प्रतिकूल कब्जे की शुरुआत का तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति उस समय वास्तविक कब्जे में है, विशेष स्वामित्व के कुख्यात शत्रुतापूर्ण दावे के साथ, जिसे निरस्त करने के लिए, असली मालिक किसी कार्रवाई को करने की स्थिति में होगा| इसका मतलब यह होगा कि प्रतिकूल कब्जे से स्वामित्व प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति की शत्रुता या इरादा कुछ भी हो, उसका प्रतिकूल कब्जा तब तक शुरू नहीं हो सकता जब तक कि वह अपेक्षित द्वेष के साथ वास्तविक कब्जा प्राप्त नहीं कर लेता।'

1149. *कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत संघ* में [*कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत संघ*, (2004) 10 एससीसी 779], एस. राजेंद्र बाबू, जे. ने दो-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि: (एससीसी पृष्ठ 785, पैरा 11)

'11... *विशेष कब्जे के भौतिक तथ्य और वास्तविक मालिक को छोड़कर मालिक के रूप में कब्जे का आशय सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें इस प्रकृति के मामलों में ध्यान में रखा जाना चाहिए।* प्रतिकूल कब्जे की दलील कानून का शुद्ध प्रश्न नहीं है बल्कि तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न है। इसलिए, जो व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है, उसे यह दिखाना चाहिए: (ए) किस तारीख को उसे कब्जा मिला, (बी) उसके कब्जे की प्रकृति क्या थी, (सी) क्या कब्जे के तथ्य की जानकारी दूसरे पक्ष को थी, (डी)) उसका कब्ज़ा कब तक जारी रहा, और (ई) उसका कब्ज़ा खुला और अबाधित था।'

सामग्री को दलीलों में स्थापित किया जाना चाहिए और साक्ष्य में साबित किया जाना चाहिए। दलीलों के बिना कोई सबूत नहीं हो सकता और सबूतों के बिना दलीलें कानून में मामला स्थापित नहीं करेंगी।

1150. अन्नाकिली बनाम ए वेदनायगम [अन्नाकिली बनाम ए वेदनायगम, (2007) 14 एससीसी 308] में, इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि केवल भूमि पर कब्ज़ा करने से कब्जा स्वामित्व नहीं बन जाएगा। मालिक के प्रति शत्रुता होनी चाहिए और भूमि को वास्तविक मालिक के स्वामित्व के प्रतिकूल रखना चाहिए। इसके अलावा, उसे परिसीमा अधिनियम के तहत

निर्धारित अवधि तक उस क्षमता पर बने रहना होगा ।"

(इटैलिक भाग द्वारा मूल पर और रेखांकित भाग पर इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

29. वर्तमान मामले में, चकबंदी अधिकारी ने प्रतिकूल कब्जे के मुद्दे पर एक निष्कर्ष दिया है कि उत्तरदाताओं का नाम खसरा संख्या 1366एफ-1377 एफ में खंड 9 के तहत दर्ज किया गया था। और ऐसे राजस्व रिकॉर्ड के आधार पर, यह माना गया कि वे कम से कम 10 वर्षों से कब्जे में थे। हालाँकि, चकबंदी अधिकारी ने मौखिक साक्ष्य को स्वीकार कर लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि भूमि पर उनका 12 वर्षों से अधिक समय से कब्जा था।

30. प्रथम दृष्टया चकबंदी अधिकारी का उपरोक्त दृष्टिकोण कानून की स्थापित स्थिति के विपरीत प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, स्पष्ट और स्पष्ट साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि कब्ज़ा वास्तविक मालिक के प्रति शत्रुतापूर्ण था और दावा की गई संपत्ति पर उसे उसके स्वामित्व और जानकारी से वंचित किया गया था। उन कृत्यों को करने वाले व्यक्ति के प्रति शत्रुता होनी चाहिए जिसे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से सुनिश्चित किया जाना चाहिए। हालाँकि, चकबंदी अधिकारी ने उपरोक्त आवश्यक दलीलों और साक्ष्य की प्रकृति को रिकॉर्ड में रखे बिना, बहुत ही सरसरी तौर पर प्रतिकूल कब्जे के मुद्दे का फैसला किया है।

31. चकबन्दी के बन्दोबस्त अधिकारी ने अपीलों पर निर्णय करते समय राजस्व अभिलेखों की प्रविष्टियों पर भी भरोसा किया है, इसके लिए ऊपर बताया जा चुका है कि वे प्रविष्टियाँ 'मैनुअल' में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार तैयार नहीं की गई थीं। अपीलीय न्यायालय ने प्रतिकूल कब्जे के उपरोक्त आवश्यक कारकों के संबंध में कोई निष्कर्ष भी नहीं दिया है। इसलिए, चकबंदी अधिकारी द्वारा की गई त्रुटि चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित आदेश में जारी रही।

32. चकबंदी के उप निदेशक ने केवल राजस्व अभिलेखों में की गई प्रविष्टियों पर फिर से भारी निर्भरता रखी है और प्रतिकूल कब्जे के संबंध में निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक कारकों पर विचार नहीं किया है कि कब्जा निरंतरता, प्रचार और प्रतिस्पर्धी के लिए प्रतिकूल था। प्रतिकूल कब्जे के लिए आवश्यक है कि सभी तीन आवश्यक आवश्यकताएं एक ही समय में सह-अस्तित्व में हों, अर्थात, यह निरंतरता में पर्याप्त होना चाहिए, प्रचार में पर्याप्त होना चाहिए और शीर्षक और उसके ज्ञान से इनकार करने वाले प्रतिद्वंद्वियों के लिए प्रतिकूल होना चाहिए। वास्तविक मालिक को छोड़कर मालिक के रूप में रखने के लिए विशेष कब्जे और दुश्मनी का भौतिक तथ्य होना चाहिए। हालाँकि, ये महत्वपूर्ण कारक चकबंदी के उप निदेशक के साथ-साथ नीचे के दो न्यायालयों के विचार से भी छूट गए।

33. मैंने उत्तरदाताओं द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के ज्ञापन की सामग्री का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, हालांकि, उन्होंने ऊपर उल्लिखित किसी भी कारक के संबंध में कोई

कथन नहीं बताया है। बहस के दौरान भी, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिकॉर्ड पर कोई प्रासंगिक विवरण या कारक नहीं बताया है कि उपरोक्त संदर्भित कारकों के संदर्भ में प्रतिकूल कब्जे का दावा सकारात्मक रूप से साबित हुआ था। प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया रामदुलार (सुप्रा) मददगार नहीं होगा क्योंकि यह यूपी कंसॉलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट, 1953 की धारा 48 के तहत शक्ति के मुद्दे पर है, और रिविजनल अथॉरिटी के पास इस मुद्दे की फिर से जांच करने की शक्ति है, लेकिन वर्तमान मामले में, उप निदेशक चकबंदी ने उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है।

34. उपरोक्त संदर्भित मुद्दों पर चर्चा और निष्कर्षों के मद्देनजर, मेरी सुविचारित राय है कि चकबंदी अधिनियम के तहत सभी प्राधिकरणों ने गलती की है और यह निष्कर्ष देने में बुरी तरह विफल रहे हैं कि क्या 'मैनुअल' के तहत राजस्व प्रविष्टियों को दर्ज करने के लिए अनिवार्य प्रक्रिया का पालन किया गया था। और केवल राजस्व प्रविष्टियों के आधार पर प्रतिकूल कब्जे के बारे में एक निष्कर्ष देने में गलती की है जो केवल उत्तरदाताओं के 12 साल से कम के कब्जे को इंगित करता है और साथ ही पीए -10 को 'मैनुअल' के तहत निर्धारित प्रक्रिया के संदर्भ में तैयार नहीं किया गया था। मुख्तार-खास के साक्ष्य पर भरोसा करने में और भी गलती हुई, जो उन तथ्यों के संबंध में साक्ष्य देने में सक्षम नहीं था जो प्रतिकूल कब्जे के संबंध में मूल प्रतिवादी के विशेष ज्ञान में थे। अंत में, अधिकारी यह पता लगाने में भी विफल रहे हैं कि प्रतिवादी का कब्ज़ा nec vi, nec clam, nec precario था।

36. उत्तरदाता मामले के रिकॉर्ड से या आक्षेपित आदेशों से उपरोक्त संदर्भित कारकों को इंगित करने में विफल रहे हैं। इसलिए, तीनों प्राधिकरणों ने तथ्यों के साथ-साथ कानून की भी गंभीर त्रुटि की है। इसलिए, विवादित आदेश अवैध हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं। सभी मुद्दों का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

36. तदनुसार, ऊपर उल्लिखित सभी विवादित आदेशों को रद्द कर दिया जाता है और लागत के संबंध में कोई आदेश दिए बिना रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

37. इसके कानूनी परिणाम होंगे।

38. इस निर्णय के द्वारा, इस न्यायालय ने चालीस वर्षों के बाद एक रिट का निर्णय किया है।

(2023) 8 ILRA 422

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट सी संख्या 3149 वर्ष 2016

श्रीमती पारुल अग्रवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

एल.आई.सी.ऑफ इंडिया, सोनकपुर, मुरादाबाद एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

श्री नीरज त्रिपाठी, श्री अभिनव ओझा, श्री आशुतोष श्रीवास्तव, श्री राजेंद्र प्रताप सिंह, श्री राकेश चंद्र पाठक, सुश्री ऋत्विका त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

श्री मनीष गोयल, श्री पी. मिश्रा, श्री उदय शंकर मिश्रा

अभिनिर्धारित:

एल.आई.सी. द्वारा पिछली पॉलिसी का खुलासा न करने के आधार पर जीवन बीमा दावे को अस्वीकार करना बरकरार रखा गया - पिछली पॉलिसी संख्या 224492798 के बारे में खुलासा जानबूझकर एक प्रस्ताव फॉर्म में छोड़ दिया गया था और दूसरे में गलत तरीके से "कोई नहीं" उल्लेख करके अस्वीकार कर दिया गया था - बीमा अनुबंध परम सद्भावना पर आअभिनिर्धारित है - बीमित व्यक्ति का कर्तव्य है - वह अपनी जानकारी के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करने के लिए बाध्य है - बीमा कंपनी ने कानून और दिशानिर्देशों के अनुसार दावे को सही रूप से अस्वीकार कर दिया - *मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी* (2022) 4 एससीसी 582 में निर्णय तथ्यात्मक आधार के अभाव में लागू नहीं होता है कि अभिकर्ता कर्तव्य में विफल रहा - प्रीमियम का भुगतान मात्र निगम के विरुद्ध बिबन्ध नहीं बनाता है जहां महत्वपूर्ण छिपाव साबित होता है - न्यायालय ने धारा 114 (जी) साक्ष्य अधिनियम के तहत प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला और धारा 115 के तहत के बिबन्ध सिद्धांत को लागू किया।

रिट याचिका खारिज।

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि:</u>

1. मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2022) 4 एससीसी 582

2. सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2009) 8 एससीसी 316

3. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एम.के.जे. कॉर्प. (1996) 6 एससीसी 428

4. मॉडर्न इंसुलेटर लिमिटेड बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2002) 2 एससीसी 734

5. कार्टर बनाम बोहम (1766) 3 बूर 1905

<u>संदर्भित कानून और प्रावधान</u>:

1. धारा 106, 114(जी), 115 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

2. धारा 37 - भारतीय संविदा अधिनियम, 1872

3. आईआरडीए (पॉलिसीधारकों के हितों का संरक्षण) विनियम, 2002

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत)

अनुवादित

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेंद्र प्रताप सिंह और प्रत्यर्थी-जीवन बीमा निगम के विद्वान अधिवक्ता श्री उदय शंकर मिश्रा को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका स्वर्गीय विशाल अग्रवाल की पत्नी श्रीमती पारुल अग्रवाल द्वारा दायर की गई है, जिसमें दिनांक 10.09.2015 के आदेश (रिट याचिका में "अनुलग्नक संख्या 6" के रूप में संलग्न) को चुनौती दी गई है, जिसके तहत बीमा लोकपाल, (पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) ने जीवन बीमा निगम (जिसे आगे "निगम" कहा जाएगा) के वरिष्ठ मंडल प्रबंधक द्वारा बीमा पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के संबंध में उनके दावे को खारिज करने के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई शिकायत को दिनांक 14.03.2014 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया है, जिसे भी चुनौती दी गई है। आगे की प्रार्थना प्रत्यर्थी संख्या 1 को निर्देश जारी करने की है कि वह याचिकाकर्ता को पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के तहत देय राशि का भुगतान करे।

<u>मामले के तथ्य</u>

3. रिट याचिका में निहित दलीलों से निकाले गए तथ्य यह हैं कि विशाल अग्रवाल, यानी याचिकाकर्ता के पति, निगम द्वारा जारी की गई तीन बीमा पॉलिसी संख्या 224492798, 256487214 और 256487400 के धारक थे और 11.11.2013 को उनकी मृत्यु हो गई, जिसके बाद याचिकाकर्ता ने उनकी विधवा के रूप में उपरोक्त तीन पॉलिसी के खिलाफ दावा पेश किया। यह दलील दी गई है कि पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के संबंध में याचिकाकर्ता के दावे को निगम ने 14.03.2014 के विवादित आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया था कि याचिकाकर्ता के पति ने प्रस्ताव फॉर्म में पिछली पॉलिसी संख्या 224492798 का खुलासा नहीं किया था। उपरोक्त दो बीमा पॉलिसी से संबंधित उसके दावे की अस्वीकृति के बाद, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी-निगम के क्षेत्रीय प्रबंधक के समक्ष एक समीक्षा प्रार्थना पत्र दायर किया और उसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 4 यानी बीमा लोकपाल के समक्ष 01.11.2014 को एक प्रार्थना पत्र दायर किया, हालांकि, याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र/शिकायत को दिनांक 10.09.2015 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. रिट याचिका इस आधार पर स्थापित है कि दिनांक 14.03.2014 का विवादित आदेश पूर्व-निर्धारित मन से पारित किया गया था और इसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ गहरी पूर्वाग्रह की बू आती है; कि निगम ने मृतक के व्यक्तिगत बयान को सही मानते हुए बिना किसी विरोध के पॉलिसियां जारी कर दीं और ऐसा कोई भी रिकॉर्ड नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि बीमाधारक ने बीमा पॉलिसी शुरू करते समय कभी कोई जानकारी छिपाई या गलत बयान दिया था और, इसलिए निगम के साथ-साथ बीमा लोकपाल के विवादित आदेश टिकने योग्य नहीं हैं।

5. बीमा कंपनी की ओर से दिनांक 18.04.2016 को एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के तहत दावा पिछली पॉलिसी संख्या 224492798 का खुलासा न करने के कारण अस्वीकार कर दिया गया था। जवाबी हलफनामे में आगे दलील दी गई है कि चूंकि निगम प्रस्ताव फॉर्म में बीमाधारक के बयान पर भरोसा करके अत्यंत सद्भाव के आधार पर काम करता है, इसलिए प्रस्ताव फॉर्म में पिछली पॉलिसी का खुलासा न करने के कारण नियमों के अनुसार दावे को अस्वीकार कर दिया गया।

6. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में अपना पक्ष दोहराते हुए प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है।

7. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 17.04.2022 को एक पूरक हलफनामा भी दायर किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से **सिविल अपील संख्या 8386/2015 (मनमोहन नंदा बनाम यूनाइटेड इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है, जिसे **(2022) 4 एससीसी 582** में रिपोर्ट किया गया है और बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (पॉलिसीधारकों के हितों का संरक्षण) विनियम-2002 (संक्षेप में "विनियम-2002") के प्रावधानों का हवाला देते हुए, यह दलील दी गई है कि प्रस्ताव फॉर्म प्रत्यर्थी-निगम की पूर्ण संतुष्टि के साथ बीमाधारक द्वारा सही तरीके से भरा गया था।

8. पूरक हलफनामे के विरुद्ध निगम की ओर से पूरक जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है, जिसमें मुख्य जवाबी हलफनामे में अपनाई गई बातों को ही दोहराया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा **मनमोहन नंदा (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को दोहराते हुए एक और जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है।

9. आदेश पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि इस न्यायालय ने 16.11.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

> "आज दायर किए गए पूरक जवाबी हलफनामे और प्रत्युत्तर हलफनामे को रिकॉर्ड में ले लिया गया है।
>
> श्री यू.एस. मिश्रा ने कहा कि इस मामले पर निर्णय लेने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत् भरे गए और हस्ताक्षरित मूल बीमा प्रार्थना पत्र पत्र की मूल बीमा पॉलिसी कवर के साथ जांच की जानी आवश्यक है।
>
> तदनुसार, उन्हें मूल बीमा प्रार्थना पत्र पत्र और बीमा पॉलिसी कवर प्रस्तुत करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया जाता है।
>
> इस मामले को 7 दिसंबर, 2022 को शीर्ष 10 मामलों में फिर से सूचीबद्ध करें।"

10. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के दावे से संबंधित मूल फाइल 14.03.2023 को प्रत्यर्थी-निगम के विद्वान अधिवक्ता श्री उदय शंकर मिश्रा द्वारा बहस के

दौरान पेश की गई थी, जिसे अंतिम निर्णय सुनाने के प्रयोजन के लिए रिकॉर्ड पर रखा गया था, जिसे उक्त तिथि को सुरक्षित रखा गया था।

11. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा फाइल पर उपलब्ध अभिलेखों के साथ-साथ श्री मिश्रा द्वारा प्रस्तुत मूल अभिलेख का भी अवलोकन किया है।

<u>याचिकाकर्ता का तर्क</u>

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक पॉलिसी से संबंधित दावे को निगम द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, जबकि दो पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के संबंध में दावे को अस्वीकार करना पूरी तरह से असंतुलित था और 14.03.2014 का विवादित आदेश गलत और असंतुलित आधार पर पारित किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि बीमाधारक द्वारा कोई धोखाधड़ी/गलत बयान/छिपाव नहीं किया गया था और इसके अलावा, प्रस्ताव फॉर्म बीमा कंपनी के एजेंटों द्वारा खुद भरा गया था और यदि "कॉलम संख्या 9" में कुछ खाली छोड़ दिया गया था, तो याचिकाकर्ता को इस आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है, बल्कि, यह बीमा कंपनी के कारण होगा जिसके एजेंट ने फॉर्म भरा था और कुछ खाली छोड़ दिया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि **मनमोहन नंदा (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, निगम के एजेंट का यह कर्तव्य था कि वह फॉर्म भरते समय बीमाधारक से विशिष्ट प्रश्न पूछे और यदि ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया और फॉर्म में कुछ रिक्त स्थान छोड़ दिया गया, तो प्रस्ताव फॉर्म भरते समय जो भी चूक हुई, वह याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनेगी।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 34, 35, 36, 40 और 55 पर दृढ़ता से भरोसा किया है , जिन्हें नीचे पुन: उद्धृत किया गया है:-

> **"34.** बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (पॉलिसीधारकों के हितों का संरक्षण) विनियम, 2002 के प्रावधानों के तहत धारा 2(घ) में "प्रस्ताव प्रपत्र" को परिभाषित करने के स्पष्टीकरण से "सामग्री" के अर्थ और विषय-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है। आसान संदर्भ के लिए उपरोक्त विनियमों के तहत स्पष्टीकरण के साथ "प्रस्ताव प्रपत्र" की परिभाषा निम्नानुसार उद्धृत की गई है:
>
> **"2. परिभाषाएं**.- इन विनियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :
>
> **(डी) "प्रस्ताव प्रपत्र"** से तात्पर्य बीमा के लिए प्रस्तावक द्वारा भरा जाने वाला प्रपत्र है, जिसमें जोखिम के संबंध में बीमाकर्ता द्वारा अपेक्षित सभी महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं, ताकि बीमाकर्ता यह निर्णय ले सके कि जोखिम को स्वीकार किया जाए या अस्वीकार किया जाए, तथा जोखिम को स्वीकार करने की स्थिति में प्रदान किए

जाने वाले कवर की दरें, निबंधन और शर्तें निर्धारित की जा सकें।

स्पष्टीकरण:- इन विनियमों के प्रयोजन के लिए "सामग्री" का अर्थ बीमाकर्ता द्वारा कवर किए जाने वाले जोखिम के बीमा के संदर्भ में सभी महत्वपूर्ण, आवश्यक और प्रासंगिक जानकारी से होगा और इसमें शामिल होगा।"

इस प्रकार, विनियमन में "महत्वपूर्ण" शब्द को परिभाषित करते हुए इसमें सभी "महत्वपूर्ण", "आवश्यक" और "प्रासंगिक" सूचनाएं शामिल की गई हैं, जो बीमाकर्ता को यह निर्णय लेने में मार्गदर्शन प्रदान करती हैं कि जोखिम उठाया जाए या नहीं।

35. जिस तरह बीमाधारक का कर्तव्य है कि वह सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करे, उसी तरह बीमाकर्ता को भी बीमाधारक को उस पॉलिसी की शर्तों और नियमों के बारे में सूचित करना चाहिए जो उसे जारी की जाने वाली है और उसे प्रस्ताव फॉर्म या प्रॉस्पेक्टस में दिए गए कथनों या उसके एजेंटों के माध्यम से दिए गए कथनों के अनुरूप होना चाहिए। इस प्रकार, सर्वोच्च सद्भावना का सिद्धांत बीमाधारक द्वारा बीमाकर्ता के प्रति और इसके विपरीत सार्थक पारस्परिक कर्तव्यों को लागू करता है। प्रकटीकरण का यह अंतर्निहित कर्तव्य सद्भावना का एक सामान्य कानूनी कर्तव्य था जो मूल रूप से इक्विटी में स्थापित था लेकिन बाद में इसे ऊपर बताए अनुसार वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। अनुबंध में प्रवेश करने वाले पक्षों के लिए कर्तव्य को विस्तारित करना या अनुबंध की शर्तों द्वारा इसे प्रतिबंधित करना भी खुला है।

36. बीमाधारक का सर्वोच्च सद्भावना का पालन करने का कर्तव्य, उसे प्रस्ताव फॉर्म का जवाब देने की अपेक्षा करके लागू किया जाता है, जो पॉलिसी में शामिल की जाने वाली सभी प्रासंगिक जानकारी प्राप्त करने और इसे अनुबंध का आधार बनाने के लिए तैयार किया जाता है। इस प्रकार लगाया गया संविदात्मक कर्तव्य यह है कि प्रस्ताव फॉर्म में कथनों में कोई भी दमन या झूठापन सद्भावना के कर्तव्य का उल्लंघन होगा और पॉलिसी को शून्य कर देगा और परिणामस्वरूप बीमाकर्ता के कहने पर इसे अस्वीकार कर दिया जाएगा।

40. यदि कोई तथ्य, यद्यपि महत्वपूर्ण है, किन्तु ऐसा है जिसे प्रस्तावक ने नहीं जाना था और विशेष परिस्थितियों में जानने की उससे अपेक्षा नहीं की जा सकती थी, या यदि उसकी महत्वपूर्णता किसी विवेकशील व्यक्ति को स्पष्ट नहीं होती, तो उसे प्रकट करने में उसकी असफलता उसके कर्तव्य का उल्लंघन नहीं है।

55. उपर्युक्त निर्णयों पर विचार करने पर निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर सामने आएंगे:

55.1. प्रस्ताव बनाते समय किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य के बारे में बीमाधारक द्वारा खुलासा करना उसका कर्तव्य या दायित्व है। महत्वपूर्ण तथ्य क्या है, यह ली जाने वाली बीमा पॉलिसी की प्रकृति, कवर किए जाने वाले जोखिम और प्रस्ताव फॉर्म में उठाए गए प्रश्नों पर निर्भर करेगा।

55.2 किसी मामले में महत्वपूर्ण तथ्य क्या होगा यह प्रस्तावक के स्वास्थ्य और चिकित्सा स्थिति पर भी निर्भर करेगा।

55. 3. यदि प्रस्ताव प्रपत्र में विशिष्ट प्रश्न पूछे गए हैं तो यह अपेक्षित है कि बीमाधारक द्वारा विशिष्ट उत्तर दिए जाएं, क्योंकि बीमाधारक सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करने के कर्तव्य से बंधा हुआ है।

55.4. यदि प्रस्ताव प्रपत्र में कोई प्रश्न या कॉलम खाली छोड़ दिया जाता है तो बीमा कंपनी को बीमाधारक से उसे भरने के लिए कहना चाहिए। यदि कोई कॉलम खाली छोड़े जाने के बावजूद बीमा कंपनी प्रीमियम स्वीकार करती है और पॉलिसी जारी करती है, तो वह बाद में, जब पॉलिसी के तहत कोई दावा किया जाता है, यह नहीं कह सकती कि किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाया गया है या उसका खुलासा नहीं किया गया है, और दावे को अस्वीकार करने की मांग नहीं कर सकती।

55.5 प्रस्तावक की चिकित्सा स्थिति, यदि कोई हो, के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है, इसके लिए वह अपने पैनल में शामिल किसी डॉक्टर से प्रस्तावक की जांच करवा सकती है। यदि, चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार करने के बाद, बीमा कंपनी प्रस्तावक की चिकित्सा स्थिति के बारे में संतुष्ट हो जाती है और उसे पहले से मौजूद बीमारी का कोई जोखिम नहीं है, और इस तरह की संतुष्टि के आधार पर उसने पॉलिसी जारी कर दी है, तो वह उसके बाद यह तर्क नहीं दे सकती कि उसे पहले से मौजूद कोई बीमारी या रोग था जिसके कारण बीमाधारक ने दावा किया है और इस कारण से दावे को अस्वीकार कर सकती है।

55.6 बीमाकर्ता को बीमा पॉलिसी जारी करने से पहले प्रस्ताव फॉर्म में बीमित व्यक्ति द्वारा बताई गई स्वास्थ्य स्थिति और मौजूदा बीमारी (यदि कोई हो) से उत्पन्न होने वाले संभावित जोखिमों का आकलन करने में सक्षम होना चाहिए। एक बार जब बीमाधारक की चिकित्सा स्थिति का आकलन करने के बाद पॉलिसी जारी कर दी जाती है, तो बीमाकर्ता किसी मौजूदा चिकित्सा स्थिति का हवाला देकर दावे को अस्वीकार नहीं कर सकता है, जिसका खुलासा प्रस्ताव फॉर्म में बीमाधारक द्वारा किया गया था, जिस स्थिति के कारण कोई विशेष जोखिम उत्पन्न हुआ है जिसके संबंध में बीमाधारक द्वारा दावा किया गया है।

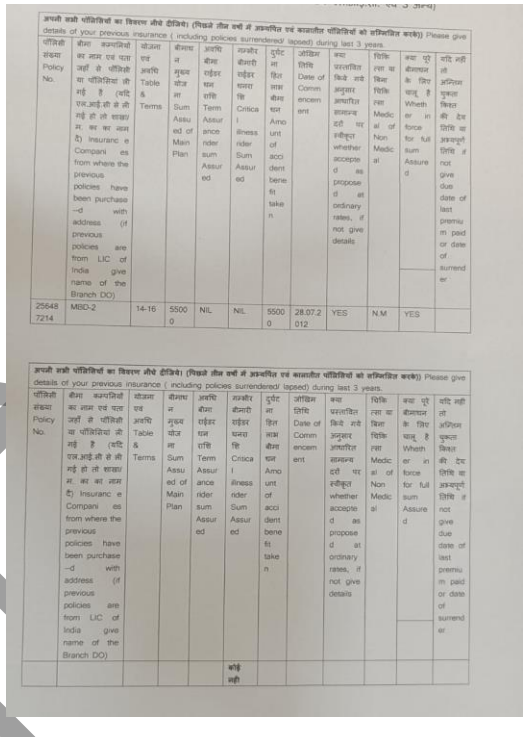
55.7. दूसरे शब्दों में, एक विवेकशील बीमाकर्ता को उस संभावित जोखिम का आकलन करना होगा जिसे पॉलिसी को कवर करना होगा और तदनुसार प्रस्ताव फॉर्म को स्वीकार करने और पॉलिसी जारी करने या ऐसा करने से इनकार करने का निर्णय लेना होगा। ऐसा अभ्यास प्रस्ताव फॉर्म में किए गए प्रश्नों और प्रस्तावक द्वारा दिए गए उक्त प्रश्नों के उत्तर पर निर्भर करता है।"

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि एक पॉलिसी से संबंधित दावे को निगम द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, लेकिन पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 के संबंध में दावे को इस आधार पर खारिज करना पूरी तरह से अस्वीकार्य था कि चूंकि बीमाधारक ने प्रस्ताव फॉर्म के कॉलम संख्या 9 में पॉलिसी संख्या 224492798 का खुलासा नहीं किया था, इसलिए दावे को छिपाने के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

<u>प्रत्यर्थी-एलआईसी का तर्क</u>

15. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी निगम के विद्वान अधिवक्ता श्री उदय शंकर मिश्रा ने, विवादित आदेशों के समर्थन में प्रति-शपथपत्र में दिए गए बचाव के अलावा, दो विवादित पॉलिसी के प्रस्ताव प्रपत्रों, अर्थात् पॉलिसी संख्या 256487214 और 256487400 का विशेष रूप से उल्लेख किया है, जिसमें प्रस्ताव प्रपत्रों के "कॉलम 9" का विशेष संदर्भ दिया गया है। आसान संदर्भ के लिए, दोनों पॉलिसी के "कॉलम संख्या 9" को नीचे उद्धृत किया गया है:-

कॉलम 9



अपनी सभी पॉलिसियों का विवरण जैसे दीजिये। (पिछले तीन वर्षों में अवमोचित एवं समाप्तित पॉलिसियों को सम्मिलित करके)) Please give details of your previous insurance (including policies surrendered/ lapsed) during last 3 years.

पॉलिसी संख्या Policy No.	बीमा कम्पनियों का नाम एवं पता जहाँ से पॉलिसियां ली गई है (यदि एल.आई.सी से ली गई हो तो शाखा सं. का नाम दें) Insurance Companies from where the previous policies have been purchased with address (if previous policies are from LIC of India give name of the Branch DO)	योजना एवं अवधि Table & Terms	बीमाधन मुख्य योजना Sum Assured of Main Plan	अवधि बीमा राईडर धन राशि Term Assurance rider sum Assured	गम्भीर बीमारी राईडर धनराशि Critical Illness rider Sum Assured	दुर्घटना हित लाभ बीमा धन Amount of accident benefit taken	अंतिम तिथि Date of Commencement	क्या प्रस्तावित किये गये अनुसार आंशिक सामान्य दरों पर स्वीकृत whether accepted as proposed at ordinary rates, if not give details	चिकित्सा का विवरण चिकित्सा Medical of Non Medical	क्या पूरे बीमाधन के लिए चालू है Whether in force for full sum Assured	यदि नहीं तो अन्तिम चुकता किस्त की देय तिथि या अवकाशपूर्ण तिथि If not give due date of last premium paid or date of surrender
25648 7214	MBD-2	14-16	55000	NIL	NIL	55000	28.07.2012	YES	N.M	YES	

अपनी सभी पॉलिसियों का विवरण जैसे दीजिये। (पिछले तीन वर्षों में अवमोचित एवं समाप्तित पॉलिसियों को सम्मिलित करके)) Please give details of your previous insurance (including policies surrendered/ lapsed) during last 3 years.

पॉलिसी संख्या Policy No.	बीमा कम्पनियों का नाम एवं पता जहाँ से पॉलिसियां ली गई है (यदि एल.आई.सी से ली गई हो तो शाखा सं. का नाम दें) Insurance Companies from where the previous policies have been purchased with address (if previous policies are from LIC of India give name of the Branch DO)	योजना एवं अवधि Table & Terms	बीमाधन मुख्य योजना Sum Assured of Main Plan	अवधि बीमा राईडर धन राशि Term Assurance rider sum Assured	गम्भीर बीमारी राईडर धनराशि Critical Illness rider Sum Assured	दुर्घटना हित लाभ बीमा धन Amount of accident benefit taken	अंतिम तिथि Date of Commencement	क्या प्रस्तावित किये गये अनुसार आंशिक सामान्य दरों पर स्वीकृत whether accepted as proposed at ordinary rates, if not give details	चिकित्सा का विवरण चिकित्सा Medical of Non Medical	क्या पूरे बीमाधन के लिए चालू है Whether in force for full sum Assured	यदि नहीं तो अन्तिम चुकता किस्त की देय तिथि या अवकाशपूर्ण तिथि If not give due date of last premium paid or date of surrender
				कोई नहीं							

16. उपर्युक्त दो पॉलिसी का अस्तित्व बीमाधारक के ज्ञान में था, लेकिन एक फॉर्म में केवल एक पॉलिसी संख्या 256487214 का खुलासा किया गया था, जबकि दूसरे फॉर्म में " कोई नहीं" शब्द का उल्लेख किया गया था। इसलिए, यह तर्क दिया जाता है कि बीमा लोकपाल ने सही रूप से यह विचार किया है कि पॉलिसीधारक बीमा पॉलिसी लेते समय विशेष चिकित्सा जांच नहीं करवाना चाहता था। इस तरह के गैर-प्रकटीकरण ने निगम को विशेष रूप से बीमाधारक की चिकित्सा स्थिति के संबंध में कुछ अतिरिक्त जांच और सावधानियां बरतने से रोका, जैसे कि ईसीजी, एफबीएस, आरयूए, एचबी% और एलिसा आदि।

17. (2009) 8 सुप्रीम कोर्ट केस 316 में प्रतिवेदित **सतवंत कौर संधू बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है, और तर्क दिया है कि बीमा के मामले में, पक्षों को अत्यंत सद्भाव में कार्य करना चाहिए और बीमाधारक उस विषय पर जानकारी का सही और पूर्ण खुलासा करने के लिए एक गंभीर दायित्व के तहत है जो उसके ज्ञान के भीतर है।

<u>प्रतिद्वंदी विवादों का विश्लेषण</u>

18. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि स्वर्गीय विशाल अग्रवाल (याचिकाकर्ता के पति) के पक्ष में तीन बीमा पॉलिसियाँ जारी की गईं, जिनकी संख्या 224492798, 256487214 और 256487400 है। पक्षों के बीच इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि पॉलिसी संख्या 224492798 के लिए दावा स्वीकार किया गया था, जबकि शेष पॉलिसी के लिए दावा विवादित आदेशों के तहत खारिज कर दिया गया था।

19. पक्षों के बीच विवाद यह है कि क्या दो प्रस्ताव प्रपत्रों के "कॉलम 9" में दो पॉलिसी का खुलासा न करना याचिकाकर्ता द्वारा किए गए दावे के लिए घातक था।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मनमोहन नंदा (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है, जो उपरोक्त विनियम-2002 के अंतर्गत प्रस्ताव प्रपत्र की परिभाषा से संबंधित है और "पैराग्राफ 34" में परिभाषा इस आशय से स्पष्ट है कि "प्रस्ताव प्रपत्र" का अर्थ बीमा के लिए प्रस्तावक द्वारा भरा जाने वाला प्रपत्र है, जिसमें जोखिम के संबंध में बीमाकर्ता द्वारा अपेक्षित सभी महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं, ताकि बीमाकर्ता यह निर्णय ले सके कि जोखिम को स्वीकार करना है या अस्वीकार करना है, जोखिम उठाना है, और जोखिम को स्वीकार करने की स्थिति में प्रदान किए जाने वाले कवर की दरें, नियम और शर्तें निर्धारित करना है।

21. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि निगम द्वारा भेजा गया बीमा एजेंट, जिसने कथित रूप से प्रस्ताव फॉर्म भरा था, ने बीमाधारक को पॉलिसी की शर्तों व नियमों के बारे में सूचित किया होगा और संबंधित कॉलमों (वर्तमान मामले में कॉलम सं. 9) में प्रविष्टियों के संबंध में बीमाधारक से विशिष्ट प्रश्न भी उठाए होंगे, यह न्यायालय पाता है कि पूरी रिट याचिका या पूरक हलफनामे में ऐसा कोई तर्क नहीं है कि प्रत्यर्थी निगम के बीमा एजेंट या अधिकारी ने कॉलम 9 में भरे जाने वाले पॉलिसी नंबरों के संबंध में बीमाधारक से कोई प्रश्न नहीं उठाया। इसके अलावा, ऐसा कोई तर्क नहीं है कि बीमाधारक ने वास्तव में निगम के एजेंट/अधिकारी को पॉलिसी सं. 224492798 के अस्तित्व के बारे में सूचित किया था, बल्कि याचिकाकर्ता का यह तर्क है कि यह एजेंट/अधिकारी था जिसने प्रस्ताव फॉर्म में इसे नहीं भरा। न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता की ओर से **मनमोहन नंदा (पूर्वोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में निर्धारित कानून के सिद्धांत को बिना किसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर तर्क दिया गया है। इसके अलावा, **मनमोहन नंदा (पूर्वोक्त)** में

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के "पैराग्राफ 55" के अवलोकन से भी यह स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस बारे में सिद्धांत निर्धारित किया है कि "महत्वपूर्ण तथ्य" क्या हो सकता है।

22. वर्तमान मामला वह नहीं है जिसमें कॉलम संख्या 9 को खाली छोड़ा गया था। बल्कि, यह ऐसा मामला है जिसमें, जैसा कि पूर्वोक्त है, एक फॉर्म में पॉलिसी संख्या 256487214 का खुलासा किया गया था, पॉलिसी संख्या 224492798 के बारे में कुछ भी खुलासा किए बिना और दूसरे फॉर्म में " कोई नहीं" शब्दों का उल्लेख किया गया था। दोनों प्रस्ताव फॉर्म में कॉलम 9 को खाली नहीं छोड़ा गया था।

23. इस मामले को दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है। इस न्यायालय ने प्रस्ताव फॉर्म के अवलोकन से पाया कि फॉर्म के अंत में बीमाधारक विशाल अग्रवाल द्वारा निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट घोषणा की गई है:-

<u>प्रस्तावक द्वारा घोषणा</u>

" मैं विशाल अग्रवाल को इसमें जीवन बीमा के लिए प्रस्तावित किया गया है, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि उपरोक्त प्रकथन एवं उत्तर मेरे द्वारा प्रश्न को पूरी तरह समझने के बाद गया है और वह सही है तथा प्रत्येक विवरण पूर्ण है और **<u>मैंने कोई सूचना छिपी नहीं है।</u>** मैं एतद् द्वारा इस बात से सहमत हूं और घोषणा करता/करती हूं कि ये प्रकथन और घोषणा मेरे एवं भारतीय जीवन बीमा निगम के अनुबंध के आधार पर होगे और **<u>यदि इसमें कोई असत्य कथन पाया जाएगा तो वह पूर्ण रूप से रद्द हो जाएगा</u>** तथा इस संबंध में चुकाई गई समस्त बीमा निगम द्वारा सुरक्षा कर ली जाएगी।

मैं..... वह व्यक्ति हूं, जिसके जीवन बीमा का यहां बीमा किया जाना प्रस्तावित है, यह घोषणा करता हूं कि उपरोक्त कथन और उत्तर मैंने प्रश्नों को पूरी तरह समझने के बाद दिए हैं और वे प्रत्येक विवरण में सत्य और पूर्ण हैं तथा **<u>मैंने कोई जानकारी नहीं छिपाई है</u>** और मैं इस बात से सहमत हूं तथा घोषणा करता हूं कि ये कथन और यह घोषणा मेरे और भारतीय जीवन बीमा निगम के बीच बीमा अनुबंध का आधार होंगे तथा **<u>यदि इसमें कोई असत्य कथन निहित है तो उक्त अनुबंध पूर्णतः शून्य और निरर्थक हो जाएगा</u>** तथा इसके संबंध में जो धनराशियां अदा की गई हैं, वे निगम को जब्त हो जाएंगी।"

24. उपर्युक्त घोषणा पर बीमाधारक विशाल अग्रवाल ने हस्ताक्षर किए हैं। इसलिए, इस न्यायालय के पास बीमा निगम के इस तर्क को खारिज करने का कोई कारण नहीं है कि एक फॉर्म में पॉलिसी संख्या 224492798 के अस्तित्व को जानबूझकर छिपाया गया था, जबकि दूसरे फॉर्म में " कोई नहीं" शब्द लिखकर दोनों पॉलिसी को छिपाया गया था।

25. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं भारतीय साक्ष्य अधिनियम-1872 के तीन महत्वपूर्ण प्रावधानों का उल्लेख करना उचित समझता हूँ, जो वर्तमान विवाद का निर्णय करने के लिए उपयोगी होंगे।

26. साक्ष्य अधिनियम-1872 की धारा 106 में किसी तथ्य को साबित करने के भार के प्रावधान से संबंधित है, विशेष रूप से ज्ञान के भीतर। इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

> **"106. तथ्य को साबित करने का भार, विशेषकर ज्ञान में आने वाले तथ्य को साबित करने का भार.--** जब कोई तथ्य किसी व्यक्ति के ज्ञान में विशेष रूप से हो, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है।"

27. साक्ष्य अधिनियम-1872 की धारा 114 एक ऐसा प्रावधान है जिसके तहत न्यायालय किसी भी कार्यवाही में निष्कर्ष निकाल सकता है जिसमें किसी भी पक्ष के लिए अनुकूल या प्रतिकूल (प्रतिकूल) निष्कर्ष शामिल हैं। धारा 114 के साथ प्रासंगिक दृष्टांत (जी) नीचे उद्धृत किया गया है :-

> **"114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है-** न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व की उपधारणा कर सकता है, जिसके बारे में वह सोचता है कि वह घटित हुआ है, विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण तथा सार्वजनिक और निजी कार्य के सामान्य क्रम को ध्यान में रखते हुए ।
>
> रेखांकन
>
> न्यायालय यह मान सकता है-
>
> (ए)....
> (बी)....
> (सी)...
> (डी)..
> (इ)....
> (एफ)...
>
> **(जी). वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता था और प्रस्तुत नहीं किया गया, यदि प्रस्तुत किया गया तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो उसे रोके रखता है;"**
>
> (एच).....
> (आई).....

28. साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 में "एस्टोपल" का सिद्धांत निहित है जो इस प्रकार है:-

> **"115 विबंधन.** - जब एक व्यक्ति ने **अपनी घोषणा**, कार्य या लोप द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को किसी बात को सत्य मानने और ऐसे विश्वास पर कार्य करने के लिए जानबूझकर प्रेरित किया है या अनुमति दी है, तो **न तो उसे और न ही उसके प्रतिनिधि को**, उसके और ऐसे व्यक्ति या उसके

ऑनलाइन प्रति

प्रतिनिधि के बीच किसी वाद या कार्यवाही में, उस बात की सच्चाई से **इनकार** करने की अनुमति दी जाएगी।"

29. उपर्युक्त के अलावा, भारतीय संविदा अधिनियम-1872 के अध्याय IV में निहित धारा 37 का संदर्भ भी लिया जा सकता है। यह अध्याय संविदाओं के निष्पादन से संबंधित है और धारा 37 संविदा के लिए पक्षों के दायित्व का प्रावधान करती है और इस प्रकार है:-

संविदाओं के पक्षकारों की बाध्यता .-- किसी संविदा के पक्षकारों को अपने-अपने वचनों को या तो पूरा करना होगा या पूरा करने की पेशकश करनी होगी, जब तक कि इस अधिनियम या किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन ऐसे पालन से छूट न दी गई हो या उसे माफ न किया गया हो।

वचनों के निष्पादन से पहले वचनदाता की मृत्यु हो जाने की स्थिति में वचन, वचनदाताओं के प्रतिनिधियों को बाध्य करते हैं, जब तक कि अनुबंध से विपरीत आशय प्रकट न हो।"

30. वर्तमान मामले में, विशाल अग्रवाल और निगम के बीच बीमा का अनुबंध निश्चित रूप से स्वर्गीय विशाल अग्रवाल के कानूनी प्रतिनिधि, अर्थात् याचिकाकर्ता को बाध्य करेगा, और ऊपर वर्णित प्रस्ताव प्रपत्र निश्चित रूप से "**बीमा अनुबंध**" की श्रेणी में आएंगे और, इसलिए, यदि मृतक द्वारा की गई किसी झूठी घोषणा या छिपाव के कारण , दावा खारिज कर दिया गया है, तो याचिकाकर्ता, अपने पति की उत्तराधिकारी/प्रतिनिधि होने के नाते, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में कोई राहत नहीं मिलेगी।

<u>निष्कर्ष-I</u>

31. रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री, विशेष रूप से प्रस्ताव फॉर्म के प्रकाश में उपरोक्त प्रावधानों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूं कि दो पॉलिसी संख्या 256487214 और 224492798 का अस्तित्व बीमाधारक विशाल अग्रवाल के विशेष ज्ञान में था, लेकिन केवल पॉलिसी संख्या 256487214 का अस्तित्व एक फॉर्म में प्रकट किया गया था और पॉलिसी संख्या 224492798 का किसी भी प्रस्ताव फॉर्म में खुलासा नहीं किया गया था और, इसलिए, **अधिनियम-1872 की धारा 114(जी) और धारा 115** में क्रमशः निहित प्रतिकूल अनुमान और एस्टोपल के सिद्धांत को लागू करके, जो मृतक विशाल अग्रवाल के प्रतिनिधि, यानी यहां याचिकाकर्ता पर लागू होगा, गैर-प्रकटीकरण का कोई लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता है ताकि आपत्तिजनक आदेशों के तहत अस्वीकृत दो पॉलिसी के संबंध में कोई राहत का दावा किया जा सके।

32. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि बीमा कंपनी ने प्रीमियम स्वीकार कर लिया है और इसलिए दावे को खारिज करना अनुचित था, इस तथ्य के मद्देनजर कोई महत्व नहीं रखता कि प्रस्ताव फॉर्म वर्ष 2012 में भरे गए थे और विशाल अग्रवाल की मृत्यु वर्ष 2013 में हृदय -श्वसन विफलता के

कारण हुई थी और इस अवधि के दौरान भुगतान केवल एक बार किया गया हो सकता है। अन्यथा भी, प्रीमियम का भुगतान मात्र बीमा कंपनी को दावे को अस्वीकार करने से नहीं रोकेगा क्योंकि किसी भी नई पॉलिसी को लेते समय पिछली पॉलिसी के अस्तित्व के बारे में खुलासा न करने के आधार पर दावे को अस्वीकार या खारिज करना उसके अधिकारों के भीतर है क्योंकि ऐसे कई कारक हैं, प्रशासनिक, चिकित्सा और वित्तीय जिनका विश्लेषण निगम द्वारा किसी व्यक्ति को कोई भी नई बीमा पॉलिसी जारी करते समय किया जाना चाहिए जो पहले से ही बीमित है।

33. सद्भावनापूर्ण कार्रवाई के संबंध में बीमा कानून के सिद्धांतों के बारे में, **सतवंत कौर संधू (पूर्वोक्त**) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने, जिस पर निगम के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया था, यह माना है कि बीमा पॉलिसी एक बीमा अनुबंध है जो उबेरिमाई फिदेई अनुबंध की श्रेणी में आता है, जिसका अर्थ है बीमित व्यक्ति की ओर से अत्यंत सद्भावनापूर्ण अनुबंध। इस प्रकार, इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि जब प्रस्ताव फॉर्म में किसी विशिष्ट पहलू पर जानकारी मांगी जाती है, तो बीमित व्यक्ति उस विषय पर जानकारी का सही और पूर्ण खुलासा करने के लिए गंभीर दायित्व के अधीन होता है जो उसके ज्ञान में है। यह निर्धारित करना प्रस्तावक के लिए नहीं है कि मांगी गई जानकारी पॉलिसी के उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण है या नहीं। बेशक, खुलासा करने का दायित्व केवल उन तथ्यों तक ही सीमित है जो आवेदक को ज्ञात हैं और उन तक नहीं जो उसे पता होना चाहिए था। खुलासा करने का दायित्व अनिवार्य रूप से उस ज्ञान पर निर्भर करता है जो उसके पास है। उस ज्ञान की भौतिकता के बारे में उसकी राय कोई मायने नहीं रखती। {देखें: **जोएल बनाम लॉ यूनियन और क्राउन इंश्योरेंस कंपनी (1908) 2केबी 863 (सीए)}.**

34. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एमकेजे कॉरपोरेशन, (1996) 6 एससीसी 428 में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यह बीमा कानून का एक मूलभूत सिद्धांत है कि अनुबंध करने वाले पक्षों द्वारा अत्यंत विश्वास का पालन किया जाना चाहिए। सद्भावना किसी भी पक्ष को उन तथ्यों का खुलासा न करने से रोकती है जो पक्ष निजी तौर पर जानता है, ताकि दूसरे पक्ष को सौदेबाजी में शामिल किया जा सके, क्योंकि वह उस तथ्य के बारे में नहीं जानता और उसके विपरीत विश्वास करता है। (यह भी देखें: **मॉडर्न इंसुलेटर लिमिटेड बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2002) 2 एससीसी 734).**

35. मैकगिलिव्रे ऑन इंश्योरेंस लॉ (10वां संस्करण) ने बीमाधारक के प्रकटीकरण के कर्तव्य का सारांश देते हुए कहा है कि बीमाधारक को बीमाकर्ता को जोखिम के मूल्यांकन के लिए सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा करना चाहिए जो बीमाधारक को ज्ञात हैं या ज्ञात माने जाते हैं लेकिन बीमाकर्ता को न तो ज्ञात हैं और न ही ज्ञात माने जाते हैं। बीमाधारक द्वारा इस कर्तव्य का उल्लंघन बीमाकर्ता को बीमा अनुबंध से बचने का अधिकार देता है, जब तक कि वह यह दिखा

सके कि गैर-प्रकटीकरण ने प्रासंगिक शर्तों पर अनुबंध बनाने को प्रेरित किया।

36. कार्टर बनाम बोहम (1558-1774) ऑल ईआर रेप 183: (1766) 3 बर 1905 में, लॉर्ड मैन्सफील्ड ने बीमाधारक द्वारा प्रकटीकरण के कर्तव्य को आवश्यक बनाने वाले सिद्धांतों को संक्षेप में यह कहते हुए संक्षेपित किया था कि बीमा एक सट्टेबाजी का अनुबंध है। विशेष तथ्य जिन पर आकस्मिक संभावना की गणना की जानी है, वे आमतौर पर केवल बीमाधारक के ज्ञान में होते हैं; अंडरराइटर अपने प्रतिनिधित्व पर भरोसा करता है, और इस विश्वास के साथ आगे बढ़ता है कि वह अपने ज्ञान में किसी भी परिस्थिति को नहीं छिपाता है जिससे अंडरराइटर को यह विश्वास हो जाए कि परिस्थिति मौजूद नहीं है। ऐसी परिस्थिति को छिपाना एक धोखाधड़ी है, और इसलिए पॉलिसी शून्य है। हालाँकि, बिना किसी धोखाधड़ी के इरादे के, गलती से दमन होना चाहिए, फिर भी अंडरराइटर को धोखा दिया जाता है, और पॉलिसी शून्य हो जाती है; क्योंकि जोखिम भरा कारोबार वास्तव में उस जोखिम भरे कारोबार से भिन्न है जिसे समझौते के समय समझा गया था और जिसे चलाने का इरादा था... पॉलिसी अंडरराइटर के खिलाफ भी समान रूप से निरर्थक होगी यदि उसने छुपाया... सद्भावना किसी भी पक्ष को, जो वह निजी तौर पर जानता है उसे छुपाकर, तथ्य की अपनी अज्ञानता और इसके विपरीत विश्वास करने से दूसरे को सौदेबाजी में शामिल करने से रोकती है।

37. अधिनियम में "महत्वपूर्ण तथ्य" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए न्यायालयों द्वारा इसे सामान्य शब्दों में इस प्रकार समझा और समझाया गया है कि इसका अर्थ है कोई भी तथ्य जो किसी विवेकशील बीमाकर्ता के प्रीमियम तय करने या यह निर्धारित करने में निर्णय को प्रभावित करेगा कि वह जोखिम स्वीकार करना चाहेगा या नहीं। कोई भी तथ्य जो बीमा अनुबंध की जड़ तक जाता है और इसमें शामिल जोखिम पर असर डालता है, वह "महत्वपूर्ण" होगा। पोलक और मुल्ला के भारतीय अनुबंध और विशिष्ट राहत अधिनियमों में कहा गया है कि कोई भी तथ्य जिसके ज्ञान या अज्ञानता से बीमाकर्ता को अनुबंध करने या प्रीमियम की दर तय करने में जोखिमों की डिग्री और प्रकृति का अनुमान लगाने में महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया जा सकता है, वह महत्वपूर्ण तथ्य है।

<u>निष्कर्ष-II</u>

38. वर्तमान मामले में, प्रस्ताव प्रपत्र के नीचे बीमाधारक द्वारा की गई घोषणा और उसके द्वारा हस्ताक्षरित घोषणा में इस आशय का स्पष्ट प्रावधान है कि उसने कोई जानकारी नहीं छिपाई है और उक्त घोषणा में उसके द्वारा दिए गए कथन उसके और निगम के बीच "बीमा अनुबंध" का आधार होंगे और यदि कोई भी असत्य कथन इसमें शामिल है, तो अनुबंध पूरी तरह से शून्य और अमान्य होगा और इसके लिए जो भी राशि चुकाई गई है, वह जब्त हो जाएगी। उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता का यह तर्क कि चूंकि फॉर्म

निगम के एजेंटों/अधिकारियों द्वारा भरे जाते हैं, इसलिए कोई भी छूटी हुई बात दावे को अस्वीकार करने/अस्वीकार करने का आधार नहीं बनती , स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत, निगम द्वारा दिए गए आदेशों को उचित ठहराने के लिए उठाए गए रुख में रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री के प्रकाश में दम है।

39. उपरोक्त के मद्देनजर, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं है। रिट याचिका में गुण-दोष का अभाव है और इसे **खारिज** किया जाता है। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

40. प्रत्यर्थी-कार्पोरेशन के विद्वान अधिवक्ता श्री उदय शंकर मिश्रा द्वारा प्रस्तुत मूल अभिलेख कार्यालय द्वारा तत्काल उन्हें वापस लौटाने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 432

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट सी संख्या 3818 वर्ष 2023

रवींद्र कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

संजय कुमार श्रीवास्तव, अक्षत कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, मोहन सिंह

दीवानी कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 30, 38 एवं 210-उत्तर प्रदेश राजस्व नियमावली, 2016 - नियम 25 एवं 36 - राजस्व मानचित्र की शुद्धि - कलेक्टर का कर्तव्य - राजस्व अभिलेखों में त्रुटि या चूक - चकबंदी मैनुअल - प्रयोज्यता।

अभिनिर्धारित:

1. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 30 के तहत कलेक्टर का वैधानिक दायित्व है कि वह किसी गांव के राजस्व मानचित्र और फील्ड बुक (खसरा) को बनाए रखे तथा उसमे त्रुटियों या चूक को ठीक करे, चाहे आवेदन दायर किया गया हो या नहीं, जब ऐसी त्रुटियां राजस्व अधिकारियों के ध्यान में आती हैं।

2. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 और उत्तर प्रदेश राजस्व नियमावली, 2016 के प्रावधान चकबंदी मैनुअल पर अभिभावी होंगे और चकबंदी मैनुअल का पैरा 101 केवल इस आधार पर राजस्व मानचित्र में त्रुटियों को ठीक करने से इनकार करने की अनुमति नहीं देता है कि अंतर तीन बिस्वा से कम है।

3. नायब तहसीलदार और तहसीलदार की रिपोर्ट में सुधार की आवश्यकता की पुष्टि के बावजूद, कलेक्टर द्वारा राजस्व मानचित्र में सुधार के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार करना, वैधानिक कर्तव्य के निर्वहन में विफलता थी।

4. पुनरीक्षण प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को खारिज करते समय उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 और नियम, 2016 के वैधानिक प्रावधानों पर विचार करने में विफल रहने के कारण कानूनी त्रुटि की।

5. दिनांक 05.12.2022 और 06.03.2023 के आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया गया और मामले को राजस्व अभिलेखों में त्रुटियों को ठीक करने के वैधानिक कर्तव्य पर विचार करते हुए, एक तर्कसंगत और स्पष्ट आदेश के साथ नए सिरे से निर्णय के लिए कलेक्टर, अंबेडकर नगर को वापस भेज दिया गया।

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि</u>:

1. गफूर बनाम अपर आयुक्त, एमएएनयू/यूपी/0670/1978

2. अली खान बनाम राम प्रसाद, एमएएनयू/यूपी/0589/1980

3. सुरजी देवी बनाम अपर आयुक्त, एमएएनयू/यूपी/1594/2012

4. गया प्रसाद बनाम यदुनाथ, एमएएनयू /यूपी/1457/2017

5. श्रीमती श्याम राजी बनाम राजस्व मंडल, विविध एकल संख्या 7638 वर्ष 2015

रिट याचिका स्वीकार की गई; आक्षेपित आदेश अपास्त कर दिए गए; मामला नए निर्णय के लिए कलेक्टर, अंबेडकर नगर को वापस भेज दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा प्रदत)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव को श्री अक्षत कुमार, एडवोकेट और श्री हेमंत कुमार पांडे, राज्य-उत्तरदाताओं के स्थायी अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान की गई।

2. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 30 (इसके बाद 'कोड, 2006' के रूप में संदर्भित) के तहत केस संख्या-189 वर्ष 2022, कम्प्यूटरीकृत केस संख्या-D202204040000189 (रवींद्र कुमार बनाम कृष्ण मुरारी) के रूप में पंजीकृत मानचित्र के सुधार के लिए शुरू किए गए मामले में पारित दिनांक 05.12.2022 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत मानचित्र के सुधार के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए आवेदन को प्रतिवादी संख्या-3 यानि कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट अम्बेडकर नगर द्वारा खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या-2 यानि अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), अयोध्या मंडल, अयोध्या द्वारा पारित दिनांक 06.03.2023 के आदेश, प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.12.2022 से व्यथित होकर, पर भी आपत्ति जताई है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या-2 ने संहिता, 2006 की 2 धारा 210 के

तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर केस संख्या-2544 वर्ष 2022, कम्प्यूटरीकृत संख्या-C202204000002544 (रवींद्र कुमार बनाम कृष्ण मुरारी और अन्य) को खारिज कर दिया है।

4. ग्राम-जयउद्दीनपुर, परगना-बीड़ाहर, तहसील- टांडा, जिला-अम्बेडकर नगर में स्थित राजस्व अभिलेखों में तालाब के रूप में दर्ज गाटा संख्या-408 के क्षेत्र और मानचित्र और खतौनी अर्थात 0.477 हेक्टेयर और 0.455 हेक्टेयर के बीच अंतर से संबंधित विवाद को देखते हुए, इस न्यायालय ने दिनांक 12.05.2023 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा की और स्थायी अधिवक्ता को मामले में निर्देश लेने का निर्देश दिया।

5. यह स्पष्ट करना उचित होगा कि गाटा संख्या-408 के खतौनी में दर्शाया गया क्षेत्र 0.455 हेक्टेयर है और राजस्व मानचित्र में, इसे 0.477 हेक्टेयर के रूप में दर्शाया गया है और उसी के मद्देनजर, इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.05.2023 के आदेश में अनजाने में अंकित क्षेत्र को तदनुसार पढ़ा जाए।

6. आज जब प्रकरण की कार्यवाही की गई तो निर्देशों के आधार पर स्थायी अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पाण्डेय ने कहा कि खतौनी में उल्लिखित क्षेत्रफल अर्थात 0.455 हेक्टेयर एवं राजस्व मानचित्र अर्थात 0.477 हेक्टेयर में अंतर है।

7. यह भी विवाद में नहीं है कि मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन करने पर संबंधित राजस्व अधिकारी (अधिकारियों) से रिपोर्ट(ओं) को तलब किया गया था और इसके प्रत्युत्तर में नायब तहसीलदार, टांडा एवं तहसीलदार, टांडा द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और इन रिपोर्टों के अनुसार खतौनी में उल्लिखित गाटा संख्या-408 क्षेत्र 0.455 हेक्टेयर से संबंधित राजस्व मानचित्र में सुधार की आवश्यकता है। रिपोर्टों को प्रस्तुत याचिका के साथ क्रमशः अनुलग्नक संख्या-5 और 4 के रूप में संलग्न किया गया है और इन रिपोर्टों की सामग्री को प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा नोट किया गया था, जैसा कि 05.12.2022 के आक्षेपित आदेश से प्रकट होता है। हालांकि, दिनांक 05.12.2022 के आक्षेपित आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी संख्या-3 ने यह देखने के बाद आवेदन को खारिज कर दिया कि खतौनी और राजस्व मानचित्र के बीच क्षेत्र के अंतर के कारण किसी सुधार की आवश्यकता नहीं है।

8. पुनरीक्षण प्राधिकरण ने भी क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के संशोधन को खारिज कर दिया। पुनरीक्षण प्राधिकरण के दिनांक 06.03.2023 के आक्षेपित आदेश से यह भी पता चलता है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी नायब तहसीलदार, टांडा और तहसीलदार, टांडा द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों पर ध्यान देने में विफल रहा।

9. आक्षेपित आदेशों पर आपत्ति जताते हुए मामले की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, अधिवक्ता और श्री अक्षत कुमार, अधिवक्ता ने कहा कि आक्षेपित आदेश

इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं क्योंकि उत्तर प्रदेश राजस्व नियम, 2016 (इसके बाद 'नियम, 2016' के रूप में संदर्भित) सपठित संहिता, 2006 की धारा 30 को प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए था और प्रस्तुत मामले में, प्रतिवादी संख्या-3 ने 'चकबंदी मैनुअल' के प्रावधानों पर विचार किया है, जो संहिता, 2006 और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रख्यापन के बाद लागू नहीं होगा।

10. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि संहिता, 2006 और नियम, 2016 के प्रावधानों पर भी प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा विचार नहीं किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 05.12.2022 के आदेश को चुनौती देने वाले संशोधन से निपटा गया है।

11. आगे प्रस्तुत किया गया कि स्वीकृत स्थिति यह है कि खतौनी में इंगित क्षेत्र और राजस्व मानचित्र के बीच अंतर है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, जिले के राजस्व प्रमुख होने के नाते, राजस्व मानचित्र को सही करने के लिए बाध्य हैं ताकि राजस्व रिकॉर्ड और मानचित्र में क्षेत्र से संबंधित विवाद को हल किया जा सके।

12. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि राजस्व प्रविष्टियों को सही करना जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर का कर्तव्य है और इस उद्देश्य के लिए किसी आवेदन की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन को याचिकाकर्ता द्वारा बेदखली के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत शुरू की गई कार्यवाही के कारण दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता तालाब के रूप में दर्ज भूमि का अतिक्रमणकर्ता है, हालांकि याचिकाकर्ता का घर आबादी भूमि पर स्थित है, जैसा कि राजस्व मानचित्र में दर्शाया गया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन को दायर करने के लिए मजबूर किया गया था।

13. यह भी उल्लेख किया गया है कि संहिता, 2006 की धारा 67 के अंतर्गत मानचित्र में सुधार के लिए आवेदन लंबित रहने के दौरान एक आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है और नायब तहसीलदार, टांडा और तहसीलदार, टांडा की रिपोर्ट (रिपोर्टों) के अनुसार, राजस्व अभिलेखों में मानचित्र का सुधार अपेक्षित है और इसे संहिता, 2006 के तहत प्राधिकारियों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

14. राज्य उत्तरदाताओं के स्थायी अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे ने कहा कि आक्षेपित आदेश दिनांक 05.12.2022 और दिनांक 06.03.2023 का आदेश मूल रूप से 'चकबंदी मैनुअल' के प्रावधानों पर आधारित है, विशेष रूप से पैरा 101 के साथ-साथ याचिकाकर्ता के पास तालाब के रूप में दर्ज भूमि के संबंध में मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं था। क्षेत्र का अंतर नगण्य है अर्थात तीन बिस्वा से कम तदनुसार, 'चकबंदी मैनुअल' के पैरा 101 के अनुसार मानचित्र में कोई सुधार आवश्यक नहीं है।

15. लेकिन वह इस बात पर विवाद नहीं कर सके कि राजस्व अधिकारी मानचित्र से संबंधित प्रविष्टियों सहित राजस्व प्रविष्टियों को सही करने के लिए बाध्य हैं और प्रस्तुत मामले में, 'खतौनी' में इंगित क्षेत्र और राजस्व मानचित्र में भी अंतर है।

16. चुनाव लड़ने वाले पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया और आक्षेपित आदेशों सहित रिकॉर्ड का अवलोकन किया, साथ ही जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर द्वारा प्रदान किए गए दिनांक 15.05.2023 के निर्देशों को इस न्यायालय के समक्ष रखा, जिसकी एक प्रति रिकॉर्ड पर ली गई है।

17. राजस्व मानचित्र और खतौनी में दर्शाए गए गाटा संख्या-408 के क्षेत्र के बीच का अंतर निर्विवाद है जो मानचित्र के अनुसार 0.477 हेक्टेयर और खतौनी के अनुसार 0.455 हेक्टेयर है। इस प्रकार, मुद्दा यह है कि क्या संबंधित कलेक्टर राजस्व मानचित्र में त्रुटि या चूक को ठीक करने से इनकार करके अपने वैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहा है।

18. आक्षेपित आदेश दिनांक 05.12.2022 से, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या-3 यानि कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर ने नायब तहसीलदार, टांडा और तहसीलदार, टांडा की रिपोर्टों को खारिज करने के कारण/निष्कर्ष दर्ज नहीं किए हैं, जबकि इन रिपोर्टों के अनुसार, मानचित्र में सुधार की आवश्यकता है। इन रिपोर्टों को कारणों को दर्ज करके निपटाया नहीं गया है।

19. कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर ने केवल 'चकबंदी मैनुअल' के मुद्दे में क्षेत्र में अंतर यानि 0.022 (1.73 बिस्वा) और पैरा 101 को ध्यान में रखते हुए नायब तहसीलदार, टांडा की दिनांक 18.01.2022 और तहसीलदार, टांडा की दिनांक 01.12.2021 की रिपोर्ट को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि रिपोर्ट साक्ष्य पर आधारित नहीं है, हालांकि तथ्य अन्यथा हैं।

20. 'चकबंदी मैनुअल' का पैरा 101, जिसके आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, विशिष्ट शब्दों में यह नहीं कहता है कि यदि क्षेत्र तीन बिस्वा से कम है तो राजस्व मानचित्र को सही नहीं किया जाएगा और यह पहलू उसी में लिखी गई भाषा से स्पष्ट है और प्रासंगिक होने के कारण, यह निम्नानुसार है:

"101. **भुजाओं की नाप से निकाला हुआ क्षेत्रफल आधार**...

> ..खसरे में दिए गए क्षेत्रफल से मिलाया जाए। इन दोनों क्षेत्रफलों में अन्तर का प्रतिशत हर गाटे के लिए निकालकर गट्ठा बुक' के स्तम्भ 14 में दर्ज किया जाये। आधे एकड़ या उसे कम के खेतों में दस प्रतिशत तक का अन्तर नगण्य होगा। आधे एकड़ से अधिक वाले खेतों में पाँच प्रतिशत तक का अन्तर नहीं माना जायेगा।

परन्तु कोई भी अन्तर जिसे नगण्य माना जाये. तीन बिस्वा से अधिक न होना चाहिए। जिन खेतों में अन्तर ऊपर दी गई सीमाओं से कम है, उनका आधार वर्ष के खसरे में दिया गया क्षेत्रफल सही माना जायेगा और उसे गट्ठाबुक के स्तम्भ 15 में अंकित किया जायेगा। अन्य दशाओं में, मौके पर भुजाओं की नाप में पाया गया क्षेत्रफल सही माना जायेगा और उसे गट्ठा- बुक के स्तम्भ 15 में लाल स्याही से लिखा जायेगा । चकबन्दी कर्ता मौके पर शत प्रतिशत गाटों की जांच करेंगे। चकबन्दी क्ता की जांच के बाद, गट्ठा -बुक के स्तम्भ 15 का क्षेत्रफल, खसरा चकबन्दी (जी-च-आकार-पत्र 2-क स्तम्भ 4 में हर गाटे के सामने, लिखा जायेगा जो क्षेत्रफल जोत चकबन्दी आकार-पत्र के स्तम्भ 2 में दिए गए क्षेत्रफल से भिन्न हों, उन्हें लाल स्याही से दिखाया जायेगा ।) ऐसे गाटों के पुराने और नये क्षेत्रफल का अन्तर गलती माना जायेगा और उसे जोत चकबन्दी आकार - पत्र 4 में गलती मानकर लिखा जायेगा। पड़ताल की जांच के समय, चकबन्दी अधिकारी ऐसे सभी गाटों की मौके पर जांच आवश्यक करें। चकबन्दी अधिकारी भी अपने क्षेत्र के गांवों में इनमें से कुछ गाटों की मौके पर पैमाइश कर लें। "

21. संहिता, 2006 में प्रासंगिक प्रावधान धारा 30 है जो कलेक्टर पर एक कर्तव्य डालता है। इसमें प्रावधान है कि कलेक्टर ऐसे प्रत्येक गांव के लिए एक नक्शा और एक फील्ड बुक (खसरा) रखेगा और उसमें दर्ज करेगा, गांव की सीमाओं या सर्वेक्षण संख्याओं में सभी परिवर्तनों को दर्ज करेगा, और ऐसे किसी भी त्रुटि या चूक को ठीक करने के लिए भी करेगा, जो समय-समय पर ऐसे मानचित्र या फील्ड बुक (खसरा) में पाई जाती है। यह खंड निम्नानुसार पढ़ता है:

"धारा 30 - मानचित्र और फील्ड बुक का रखरखाव: (1) कलेक्टर, ऐसे प्रत्येक गांव के लिए, निर्धारित तरीके से, एक नक्शा और एक फील्ड बुक (खसरा) रखेगा और उसमें दर्ज किया जाएगा, वार्षिक रूप से, या ऐसे लंबे अंतराल पर जो निर्धारित किया जा सकता है, गांव की सीमाओं या सर्वेक्षण संख्याओं में सभी परिवर्तन, और समय-समय पर ऐसे मानचित्र या फील्ड बुक (खसरा) में पाई जाने वाली किन्हीं त्रुटियों या चूकों को भी ठीक किया जाएगा।

(2) न्यूनतम संख्या को विहित रीति से भौतिक रूप से विभाजित किया जाएगा और राजस्व अभिलेखों में, जिनके अंतर्गत मानचित्र और खसरा भी हैं, तदनुसार सही किए जाएंगे।

22. अन्य प्रासंगिक प्रावधान धारा 32 और 38 हैं, ये दोनों धाराएं भी भाषा के अनुसार मानचित्र और एक फील्ड बुक (खसरा) सहित राजस्व रिकॉर्ड के सुधार से संबंधित हैं। वही निम्नानुसार हैं:

"धारा 32: (1) कलेक्टर के नियंत्रण के अधीन, उप-विभागीय अधिकारी, तहसीलदार, या राजस्व निरीक्षक, इस अध्याय में इसके बाद प्रदान की गई रीति में, अधिकारों के रिकॉर्ड (खतौनी), फील्ड बुक (खसरा) और नक्शा जो हो सकता है, और सभी लेनदेन जो दर्ज किए गए किसी भी अधिकार या हितों को प्रभावित कर सकते हैं, में सभी परिवर्तन दर्ज करेगा, बशर्ते कि मानचित्र में सुधार के लिए आदेश कलेक्टर द्वारा पारित किया जाएगा।

(2) उप-धारा (1) के तहत त्रुटि के सुधार के लिए कोई आवेदन नहीं जहां दावा पूरी तरह से कब्जे पर आधारित है और साथ ही स्वामित्व / हक़्के मिल्कियत के जटिल प्रश्न को शामिल करता है, बनाए रखने योग्य होगा।

"धारा 38: (1) नक्शे, फील्ड-बुक (खसरा) या अधिकारों के रिकॉर्ड (खतौनी) में किसी भी त्रुटि या चूक के सुधार के लिए एक आवेदन तहसीलदार को निर्धारित तरीके से किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर या किसी त्रुटि या लोप पर, जो अन्यथा उसकी जानकारी में आ रही है, तहसीलदार ऐसी जांच करेगा जो उसे आवश्यक प्रतीत हो, और मानचित्र सुधार की दशा में अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को कलेक्टर को और अन्य सुधार के मामले में उपखण्ड अधिकारी को निर्दिष्ट करेगा।

(3) मामले का विनिश्चय यथास्थिति, कलेक्टर या उपखण्ड अधिकारी द्वारा उसके समक्ष या तहसीलदार के समक्ष प्रस्तुत की गई किसी आपत्ति और साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् किया जाएगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन यथास्थिति, कलेक्टर या उपखण्ड अधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर आयुक्त को अपील कर सकेगा और आयुक्त का विनिश्चय, 1 [धारा 210 के उपबंधों के अधीन रहते हुए] होगा, अंतिम हो।

(5) इस धारा के अधीन नक्शे, खसरा या अधिकारों के अभिलेख (खतौनी) में कोई भी जाली या हेरफेर की गई प्रविष्टि को हटा दिया जा सकेगा।

(6) इस संहिता के अन्य उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, राजस्व निरीक्षक अधिकारों के अभिलेख (खतौनी) या खसरा में किसी अविवादित त्रुटि या लोप को ऐसी रीति से और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो विहित की जाए, सुधार सकेगा। स्पष्टीकरण: इस धारा के अधीन किसी त्रुटि या लोप को ठीक करने की शक्ति का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत स्वत्वाधिकार के प्रश्न से अंतर्वलित विवाद का विनिश्चय करने की शक्ति सम्मिलित है।

23. नियम, 2016 में मानचित्र के सुधार की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। नियम 25 और नियम 36 प्रासंगिक होने के कारण, इन्हें यहां उद्धृत किया जा रहा है:

"नियम 25 - नक्शा और फील्ड बुक [धारा 30 (1)]। - प्रत्येक गांव के लिए, कलेक्टर आरसी फॉर्म-4 में एक फील्ड बुक (खसरा) तैयार और बनाए रखेगा और एक नक्शा (सर्वेक्षण संख्या-की सीमाओं को दर्शाता है) जिसमें धारा 30 में निर्दिष्ट परिवर्तन दर्ज किए जाएंगे।

[(1) कलेक्टर प्रत्येक गांव के लिए आरसी फॉर्म-4 में एक फील्ड बुक (खसरा) तैयार और अनुरक्षित करेगा, और एक नक्शा (खसरा संख्या-या गाटा संख्या-की सीमाओं को दिखाते हुए) रखेगा जिसमें धारा 30 में निर्दिष्ट परिवर्तन दर्ज किए जाएंगे।

(2) फसली वर्ष 1428 से पूर्व के वर्षों की फील्ड बुक (खसरा) आरसी फार्म-4 में रखी जाएगी और समय-समय पर जारी सरकारी आदेशों और बोर्ड आदेशों के अनुसार इसका रखरखाव और परिरक्षण किया जाएगा।

(3) जिन क्षेत्रों में उ.प्र.जमींदारी उत्सादन एवं भूमि प्रबन्धन अधिनियम, 1950 प्रवृत्त था, वहाँ फासली वर्ष 1428 और तत्पश्चात की फील्ड बुक (खसरा) कम्प्यूटरीकृत (डिजिटल) प्रारूपमा आरसी फार्म-4-क में रखी जायेगी।

(4) फसली वर्ष के अंत में, खसरा प्रविष्टियों को अपरिवर्तनीय (फ्रीज किया जाएगा) बनाया जाएगा और पीडीएफ या किसी अन्य अपरिवर्तनीय प्रारूप में फील्ड बुक (खसरा) की प्रति बोर्ड स्तर पर राज्य डाटा सेंटर में या सरकारी इलेक्ट्रॉनिक क्लाउड जैसे मेघराज आदि पर हमेशा के लिए संरक्षित की जाएगी।

(5) प्रपत्र-4-क में प्रविष्टियां समय-समय पर जारी किए गए शासनादेशों एवं बोर्ड आदेशों के अनुसार कम्प्यूटरीकृत (डिजिटल) प्रपत्र में दर्ज की जाएंगी।

"नियम 36: त्रुटि या चूक का सुधार (धारा 38)। (1) धारा 38(1) में निर्दिष्ट मानचित्र, फील्ड-बुक (खसरा) या अभिलेख अधिकार (खतौनी) में किसी त्रुटि या चूक के सुधार के लिए प्रत्येक आवेदन में निम्नलिखित विवरण होंगे:-

(ए) आवेदक का नाम, माता-पिता और पता।

(बी) सुधार के लिए दस्तावेज जिसमें आवेदन किया जा रहा है।

(सी) उस भूमि का विवरण जिससे त्रुटि या चूक संबंधित है।

(डी) त्रुटि या चूक की सटीक प्रकृति।

(ई) आवेदन के साथ नक्शा, खसरा या खतौनी की प्रमाणित प्रति होगी, जिससे कथित त्रुटि या चूक संबंधित है।

(2) मानचित्र, फील्ड बुक या अधिकारों के अभिलेख के सुधार के लिए कार्यवाही उपनियम (1) के अधीन, यदि त्रुटि या चूक अन्यथा तहसीलदार की जानकारी में आती है, किसी आवेदन के बिना भी शुरू की जा सकती है।

(3) यदि नई खतौनी, आंशिक, मौके का सत्यापन और स्थानीय दौरा या पूछताछ की तैयारी के दौरान, लेखपाल, नायब तहसीलदार, राजस्व निरीक्षक या किसी अन्य राजस्व अधिकारी के पास यह मानने के कारण हैं कि कोई त्रुटि या चूक (किसी भी नकली या

कपटपूर्ण प्रविष्टि सहित लेकिन धारा 38 के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट त्रुटियों या चूक को छोड़कर) मानचित्र में आ गई है, फील्ड बुक या अधिकारों के रिकॉर्ड के मामले में, वह मामले को तहसीलदार को संदर्भित करेगा जो इस नियम के तहत आवश्यक कार्यवाही शुरू करेगा।

(4) इस नियम के अधीन त्रुटियों और लोप के सुधार की कार्यवाहियों में, तहसीलदार राजस्व निरीक्षक या लेखपाल से रिपोर्ट मंगाएगा और संबंधित पक्षों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने और संक्षिप्त जांच करने के पश्चात्, मानचित्र सुधार की दशा में कलेक्टर को और अन्य सुधार की दशा में उपखण्ड अधिकारी को उसकी रिपोर्ट के साथ आवेदन के पंजीकरण की तारीख के तीस दिन की अवधि के भीतर मामले को निर्देशित करेगा।

(5) कलेक्टर या उपखण्ड अधिकारी, यथास्थिति, पक्षकारों को उपनियम (4) के अधीन प्रस्तुत तहसीलदार की रिपोर्ट के विरुद्ध आपत्ति, यदि कोई हो, दर्ज करने की अनुमति देगा और तब विवाद का विनिश्चय करेगा। यदि कलेक्टर या उपखण्ड अधिकारी, यथास्थिति, की राय है कि मानचित्र, फील्ड बुक या अधिकारों के अभिलेख में कोई त्रुटि या लोप है, तो वह उसके सुधार के लिए निर्देश देगा।

(6) धारा 38 के अधीन सुधार के लिए कार्यवाही को प्रतिवेदन के साथ आवेदन प्राप्त करने की तारीख से 45 दिन की अवधि के भीतर समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के भीतर समाप्त नहीं की जाती है तो उसके कारण अभिलिखित किए जाएंगे।

(7) राजस्व निरीक्षक भूमि अभिलेख नियमावली में अंतर्विष्ट रीति से ऐसी जांच करने के पश्चात् अधिकारों के अभिलेख (खतौनी) या खसरा में किसी अविवादित त्रुटि या चूक को ठीक कर सकेगा।

24. इसी तरह के प्रावधान अर्थात उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 (अब निरस्त) की धारा 28, इस न्यायालय के दृष्टिकोण के लिए प्रासंगिक होने के कारण यहां भी निकाली गई है:

"धारा 28: मानचित्र और फील्ड-बुक का रखरखाव- कलेक्टर धारा 234 के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अपने जिले के प्रत्येक गांव का नक्शा और क्षेत्र पुस्तिका रखेगा और वार्षिक रूप से या ऐसे लंबे अंतरालों पर जो राज्य सरकार विहित करे, प्रत्येक ग्राम या क्षेत्र की सीमाओं में सभी परिवर्तनों को उसमें अभिलिखित करेगा और ऐसी किन्हीं त्रुटियों को, जो ऐसे मानचित्र या फील्ड-बुक में दर्शाई गई हैं, ठीक करेगा।

25. इस न्यायालय ने, ऊपर उद्धृत धारा 28 पर विचार करने के बाद, साथ ही उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 (इसके बाद "अधिनियम, 1953" के रूप में संदर्भित) की धारा 52 पर विचार करने के बाद, निम्नलिखित निर्णयों में विशेष रूप से देखा कि राजस्व मानचित्र, फील्ड बुक या अधिकारों के

रिकॉर्ड में किसी भी त्रुटि को ठीक करना कलेक्टर का कर्तव्य है:

1- गफूर बनाम अदल सिंह के मामले में पारित निर्णय में। 0670/1978 में रिपोर्ट किए गए आयुक्त और अन्य, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

2. अतः चकबंदी का कार्य समाप्त होने और उ.प्र. जोत चकबन्दी अधिनियम की धारा 52 के अन्तर्गत अधिसूचना प्रकाशित होने के पश्चात् जिलाधिकारी को नक्शा, क्षेत्र-पुस्तिका आदि का रख-रखाव करना है और ऐसी परिस्थितियों में उ.प्र. जोत समेकन अधिनियम उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम के प्रावधानों को निरर्थक करने की सीमा तक नहीं जाता है, जहां तक चकबंदी प्रचालनों के दौरान तैयार किए गए मानचित्र के सुधार का संबंध है।

3. हमारा ध्यान एक अन्य मामले मोहम्मद रज़ा बनाम भारत संघ की ओर आकर्षित किया गया है। राजस्व बोर्ड 1973 एडब्ल्यूआर 621 जिसमें यह माना गया था कि चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा तैयार किया गया नक्शा आवश्यक रूप से अंतिम और निर्णायक नहीं है और गलत तरीके से तैयार किए गए नक्शे को अंतिम और निर्णायक नहीं माना जा सकता है और इसे भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत सही किया जा सकता है।

4. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम और भू-राजस्व अधिनियम के प्रावधानों को देखते हुए, हम मोहम्मद रज़ा बनाम भारत संघ में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं। राजस्व बोर्ड (उपरोक्त) और हम मानते हैं कि यदि कोई नक्शा बाद में गलत पाया जाता है और यह चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज के अनुरूप नहीं है, तो उपयुक्त मामलों में इसे भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए कलेक्टर द्वारा यू.पी. चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद ठीक किया जा सकता है। इस प्रकार हमारा विचार है कि गंगा ग्लास वर्क्स (प्राइवेट) लिमिटेड, बालावाली बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में निर्धारित कानून में यह निर्णय लिया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) एक अच्छा कानून नहीं है।

5. इस प्रकार उपयुक्त मामलों में मानचित्र को सही करने के लिए उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत कलेक्टर की शक्तियां बरकरार हैं, इसके बावजूद नक्शा चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किया गया है जिन्होंने पक्षों के अधिकारों और स्वामित्व / हक़्के मिल्कियत का निर्णय किया है। यदि मानचित्र में कोई विसंगति है और चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा अंतिम दस्तावेज तैयार किया गया है तो उसे भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के अंतर्गत कार्यवाहियों में ठीक किया जा सकता है बशर्ते कि पक्षकार का अधिकार, हित और स्वत्वाधिकार जो अंतिम रूप से अधिनिर्णीत हो चुके हैं या अंतिम हो गए हैं, शामिल नहीं हैं।

6. प्रस्तुत मामले में उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा

मानचित्र के सुधार के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और याचिकाकर्ता ने साक्ष्य प्रस्तुत किया था कि नक्शा सी.एच. फॉर्म-45 में की गई प्रविष्टियों के अनुरूप नहीं था। अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे मानचित्र को सही करें यदि वे संतुष्ट थे कि मानचित्र और सी.एच. फॉर्म-45 में प्रविष्टियों के बीच कुछ विसंगति थी और यह कानून के गलत दृष्टिकोण पर है कि उन्होंने याचिकाकर्ता को यह राहत देने से इनकार कर दिया है।

ब- एमएएनयू/यू.पी./0589/1980 में रिपोर्ट किए गए अली खान बनाम राम प्रसाद और अन्य के मामले में पारित फैसले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"6. इस अपील में विचार के लिए एकमात्र बिंदु यह है कि क्या दीवानी न्यायालय के पास चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए नक्शे में सुधार करने का अधिकार क्षेत्र है।

7. यदि उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के तहत गांव को विमुक्त नहीं किया गया होता तो उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 42क के तहत आवेदन देकर मानचित्र में स्पष्ट गलती को सुधारा जा सकता था। हालांकि, यह सभी ओर से स्वीकार किया गया है कि गांव को पहले ही यू.पी. चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के तहत विमुक्त कर दिया गया था। इस स्थिति में, अपीलकर्ता के पास आवश्यक सुधार करने के लिए कोई उपाय खुला नहीं था। उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 27 में अंतिम समेकन योजना लागू होने के बाद राजस्व अभिलेख तैयार करने का प्रावधान है। धारा 27 पढ़ता है:

27. अंतिम चकबंदी स्कीम प्रवृत्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र जिला चकबंदी उप संचालक चकबंदी क्षेत्र के संबंध में प्रत्येक ग्राम के लिए धारा 7 के अधीन यथा सही मानचित्र में प्रविष्टियों के आधार पर चकबंदी क्षेत्र के संबंध में एक नया नक्शा, फील्ड बुक और अधिकारों का अभिलेख तैयार करवाएगा। खसरा चकबंदी, धारा 10 के तहत तैयार किया गया वार्षिक रजिस्टर और इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अंतिम रूप से किए गए और जारी किए गए आवंटन आदेश। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के उपबन्ध ऐसे उपांतरणों और परिवर्तनों के अधीन रहते हुए जो उक्त मानचित्र और अभिलेखों को तैयार करते समय विहित किये जाएँ, पालन किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार तैयार किए गए अधिकारों के अभिलेख में सभी प्रविष्टियाँ तब तक सत्य मानी जाएँगी जब तक कि वे विरोधाभास सिद्ध न हो जाएँ।

(3) धारा 52 के अधीन अधिसूचना जारी किये जाने के पश्चात् कलेक्टर, उसके द्वारा पूर्व में अनुरक्षित अधिकारों के अभिलेख के स्थान पर उपधारा (1) के उपबन्धों और उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम 1901 की धारा 28 और 33 के उपबन्धों के अनुसार तैयार किए गए मानचित्र, क्षेत्र-पुस्तिका और अधिकारों का अभिलेख रखेगा। ऐसे मानचित्र, फील्ड बुक और अधिकारों के रिकॉर्ड के रखरखाव पर लागू होगा, जैसा भी मामला हो।

8. उ.प्र. जोत चकबन्दी अधिनियम की धारा 27 की उपधारा (3) के दृष्टिगत धारा 52 के अन्तर्गत ग्राम की अधिसूचना निरस्त होने के पश्चात् कलेक्टर को धारा 27 की उपधारा (1) के प्रावधानों के अनुसार तैयार किए गए नक्शा, फील्ड-बुक एवं अधिकारों के अभिलेख का रख-रखाव करने का आदेश दिया गया है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 और 33 के प्रावधान ऐसे नक्शे, फील्ड बुक और अधिकारों के रिकॉर्ड के रखरखाव के लिए लागू किए गए हैं।

9. फलतः अपीलार्थी ने उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत मानचित्र में सुधार करने के लिए आवेदन दिया ताकि उसे अधिकारों के अभिलेख के अनुरूप लाया जा सके। हालांकि, राजस्व न्यायालय ने यह विचार किया कि इसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई थी। इन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता को प्रतिवादी को प्लॉट संख्या-320 के विवादित क्षेत्र पर अपने कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने और नक्शे के सुधार के लिए निषेधाज्ञा के लिए दीवानी न्यायालय में एक नियमित मुकदमा दायर करने के लिए मजबूर किया गया था। जैसा कि पहले कहा गया है कि विचारण न्यायालय ने मुकदमे की डिक्री की, लेकिन अपीलीय अदालत ने यह विचार किया कि दीवानी न्यायालय के पास मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

10. यह बताया जा सकता है कि यदि अपीलकर्ता के पास उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम के तहत उपाय था, तो धारा 49 वाद को रोक देगी। लेकिन अपीलकर्ता के पास यू.पी. चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के तहत गांव की अधिसूचना रद्द होने के कारण चकबंदी अधिकारियों के समक्ष कोई उपाय नहीं था। इसके अलावा, पक्षों का स्वामित्व / हक़के मिल्कियत पहले से ही समेकन अधिकारियों द्वारा निर्धारित किया गया था। लेकिन रिकॉर्ड तैयार करते समय नक्शे में दिखाया गया क्षेत्र वार्षिक रजिस्टर में दिखाए गए क्षेत्र के अनुरूप नहीं था। यह एक स्पष्ट गलती थी जिसे सुधारा जाना था। अपीलकर्ता ने राजस्व न्यायालय द्वारा इसे ठीक करने की कोशिश की, आगे असफल रहा। इसके बाद उन्होंने दीवानी न्यायालय में भी वही राहत पाने का प्रयास किया, लेकिन वहां भी वे असफल रहे। इस प्रकार, वह एक स्पष्ट गलती को सुधारने के लिए दर-दर भटक रहा है, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

11. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने श्रीमती रेखा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)। उस मामले में, न्यायमूर्ति ओ.पी त्रिवेदी (जैसा कि वह तब थे) ने विचार किया:

धारा 28 के तहत, कलेक्टर को वार्षिक रूप से या ऐसे अंतराल के रूप में दर्ज करने का अधिकार है जो प्रत्येक गांव और खेत की सीमाओं के बारे में नक्शे में सभी परिवर्तन सरकार द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं। उसे ऐसे मानचित्र अथवा फील्ड बुक में दिखाई गई किसी भी त्रुटि को ठीक करने का भी अधिकार दिया गया है। यह स्पष्ट है कि धारा 28 कलेक्टर को 'खतौनी' की प्रविष्टियों में कोई परिवर्तन या संशोधन करने का अधिकार नहीं

देती है। वह केवल निर्दिष्ट शर्तों के तहत फील्ड बुक या खसरा और नक्शे में बदलाव कर सकता है।

उन्होंने यह भी पाया कि कलेक्टर द्वारा धारा 28 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति एक गैर-न्यायिक शक्ति है, जिसे इस न्यायालय की पूर्ण पीठ (2006 के दौरान) द्वारा अच्छी तरह से सुलझाया गया है। राजस्व बोर्ड राज कुमार बनाम भागवत सिंह, 1956 एडब्ल्यूआर 202 में, उन्होंने आगे पाया:

इसका तात्पर्य यह है कि धारा 28 के तहत प्रशासनिक रूप से प्रयोग की जाने वाली शक्ति को किसी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालना चाहिए। जिस क्षण एक निश्चित त्रुटि विवादित होती है, कलेक्टर स्पष्ट रूप से विवादित के अधिकारों को प्रभावित किए बिना धारा 28 के तहत निर्णय नहीं ले सकता है। एक कार्यकारी आदेश द्वारा एकतरफा तरीके से धारा 28 के तहत फील्ड-बुक और मानचित्र में त्रुटियों को सुधारने की शक्ति प्रदान करने में, विधायिका ने स्पष्ट रूप से कलेक्टर को फील्ड बुक और विवादित प्रविष्टियों के संबंध में मानचित्र में सुधार करने की शक्ति प्रदान करने का इरादा नहीं किया था। जहां मानचित्र या खसरा में कोई विवादित त्रुटि है, वहां केवल दीवानी न्यायालय ही उस पर निर्णय देने के लिए सक्षम है। अधिनियम की धारा 57 के तहत, अधिनियम के अध्याय IV के प्रावधानों के अनुसार तैयार किए गए अधिकारों के रिकॉर्ड में सभी प्रविष्टियों को तब तक सही माना जाता है जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए और सभी राजस्व न्यायालयों पर बाध्यकारी प्रविष्टियों को केवल दीवानी न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। इन प्रविष्टियों के बारे में शुद्धता की धारणा तब तक होनी चाहिए जब तक कि दीवानी न्यायालय के समक्ष इसके विपरीत साबित न हो जाए। इसलिए, अधिनियम की धारा 57 से यह स्पष्ट है कि फील्ड बुक में विवादित त्रुटि के मामले में और अधिनियम के अध्याय IV के अनुसार तैयार किए गए नक्शे या अधिकारों के रिकॉर्ड के मामले में कलेक्टर के पास यह तय करने की कोई शक्ति नहीं है कि क्या कोई त्रुटि है या कोई त्रुटि नहीं है और यह अकेले दीवानी न्यायालय है जो विवादित त्रुटि पर निर्णय दे सकता है ..... वार्षिक रजिस्टरों और अधिकारों के रिकॉर्ड के बारे में सभी विवादों को धारा 41 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अधिनियम की धारा 51 के तहत रिकॉर्ड अधिकारी द्वारा निपटाया और तय किया जाना चाहिए और इन कार्यों के बंद होने के बाद खसरा, खतौनी और इन गांवों के नक्शे अंतिम हो गए। प्रस्तुत मामले में, पहली बार में, त्रुटि केवल उस नक्शे में हुई है जो वार्षिक रजिस्टर के अनुरूप नहीं थी। इसलिए, मामला पूरी तरह से यू.पी. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत आता है और गलती को सुधारा जा सकता था। उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 49 भी एक बाधा के रूप में नहीं खड़ी होगी क्योंकि विवादित भूखंड के संबंध में चकबंदी अधिकारियों द्वारा पक्षकारों के अधिकार और स्वामित्व / हक़के मिल्कियत पहले ही तय किए जा चुके थे। विवाद केवल यह था कि चकबंदी योजना के अंत में चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किया गया नक्शा अधिकारों के रिकॉर्ड के अनुसार नहीं था।

12. गंगा ग्लास वर्क्स (प्राइवेट) लिमिटेड में बलवाली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, मनु/यू.पी./0040/1972 एमएएनयू/यू.पी./0040/1972: ए.आई.आर. 1972 इला 158 न्यायमूर्ति बीएन लोकुर (जैसा कि वह तब थे) ने विचार किया कि चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए नक्शे को अकेले उन अधिकारियों द्वारा सही किया जा सकता है और राजस्व अधिकारी उस नक्शे में सुधार करने के लिए उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 28 का सहारा नहीं ले सकते। उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 42-क संबंधित प्राधिकारियों को अधिकारों के अभिलेख में दर्ज आकार के साथ तैयार मानचित्र में भूखंडों के आकार एवं आकार को सही करने में समर्थ बनाती है। इसी प्रकार, आकार भी एक त्रुटि होगी जो अधिनियम की धारा 42क के दायरे में आएगी और चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा इसे ठीक किया जा सकता है।

13. यह मामला इसलिए भी अलग है कि, प्रस्तुत मामले में, उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 52 के तहत पहले ही एक अधिसूचना रद्द कर दी गई थी और इसलिए, मानचित्र के सुधार के लिए धारा 42-ए के तहत आवेदन करने का कोई सवाल ही नहीं था और इस स्थिति में, अपीलकर्ता के लिए यह खुला था कि वह उत्तर प्रदेश भू-राजस्व की धारा 28 के तहत एक आवेदन दायर करके मानचित्र को सही करवा सकता था।

14. जग्गू बनाम पाटन दिन 1960 आरडी 63 में चकबंदी अधिकारियों द्वारा उनके द्वारा तैयार किए गए नक्शे में चक संख्या-287 और 272 की सीमाएं उनके द्वारा तैयार किए गए अधिकारों के रिकॉर्ड के अनुरूप नहीं थीं। इस गलती का फायदा उठाते हुए, प्रतिवादियों ने वादी के कब्जे में हस्तक्षेप किया। इसलिए वादी ने चकबंदी प्रक्रिया समाप्त होने के बाद मानचित्र में सुधार के लिए संबंधित कलेक्टर को आवेदन दिया। अतिरिक्त कलेक्टर ने वादी के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि नक्शा यू.पी. कंसोलिडेंस ऑफ होल्डिंग्स एक्ट की धारा 28 के तहत अंतिम और निर्णायक हो गया था और इसे सही करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इसके बाद वादी ने वर्तमान द्वितीय अपील को जन्म देते हुए मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी ने यह दलील दी कि वाद को उत्तर प्रदेश समेकन होल्डिंग्स अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित किया गया था। तर्क को निरस्त कर दिया गया था। उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 27 का संदर्भ दिया गया था। यह विचार करता है कि उप-धारा (1) के प्रावधानों के अनुसार तैयार किए गए अधिकारों के रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को तब तक सत्य माना जाएगा जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए। इस प्रकार, शुद्धता की धारणा केवल खंडन योग्य है। मानचित्र के संबंध में शुद्धता की ऐसी कोई धारणा नहीं है। यू.पी. टेनेंसी एक्ट की धारा 49 भी किरायेदारों के भूमि के अधिकारों की बात करती है। यदि नक्शा अधिकारों के रिकॉर्ड के अनुरूप नहीं है, तो निश्चित रूप से समेकन कार्यों के बंद होने के बाद राजस्व अधिकारियों द्वारा त्रुटि को ठीक किया जा सकता है।

15. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और हमारे सामने उद्धृत मामलों के विश्लेषण पर,

हम संतुष्ट हैं कि गलती को राजस्व न्यायालय द्वारा सुधारा जा सकता था और अपीलकर्ता की ओर से इस विवाद के समर्थन में उद्धृत मामले कि दीवानी न्यायालय का अधिकार क्षेत्र, अलग-अलग हैं।

16. हालांकि, इस मामले का एक और पहलू है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। राजस्व न्यायालय, जो धारा 28 के तहत आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम था, ने गलती से माना कि धारा 28 के तहत आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इस आदेश की पुष्टि अपर आयुक्त, बरेली द्वारा उनके दिनांक 2 मार्च, 1977 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण में भी की गई थी।

17. अब यह अच्छी तरह से तय है कि पक्षों के बीच एक सक्षम न्यायालय द्वारा एक गलत निर्णय भी पुनर्निर्णय संचालित कर सकता है। अवतार सिंह बनाम जगजीत सिंह 1979 एडब्ल्यूसी 635 (एससी) में, अपीलकर्ता ने इस आधार पर एक चौथाई हिस्से का दावा करते हुए एक दीवानी मुकदमा दायर किया कि वह अपने पिता का चौथा पुत्र है। उत्तरदाताओं द्वारा आपत्ति उठाई गई थी कि दीवानी न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। एक प्रारंभिक मुद्दा तैयार किया गया था और अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा यह माना गया था कि दीवानी न्यायालय के पास मुकदमे की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और उचित राजस्व न्यायालय में प्रस्तुति के लिए वाद की वापसी का निर्देश दिया। जब अपीलकर्ता ने राजस्व न्यायालय में मुकदमा दायर किया, तो याचिका यह कहते हुए वापस कर दी गई कि राजस्व न्यायालय के पास मुकदमे की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इसके बाद, अपीलकर्ता ने फिर से दीवानी न्यायधीश की अदालत में वाद संख्या-13 वर्ष 1960 की स्थापना की। वह मुकदमा पूरे समय न्याय के आधार पर विफल रहा। उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि अपीलकर्ताओं को उनकी शिकायतों के निवारण के लिए स्तंभ से पोस्ट तक ले जाया गया था। जब उन्होंने दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर किया, तो न्यायालय ने माना कि उसके पास कोशिश करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। जब राजस्व न्यायालय में वाद दायर किया गया तो उक्त न्यायालय ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। तब अपीलकर्ता कहां जा सकता था? उच्चतम न्यायालय ने तर्क को खारिज कर दिया और निम्नानुसार टिप्पणी की:

हम अपीलकर्ता की दुविधा के साथ सहानुभूति रखते हैं लेकिन उन्हें गलत तरीके से ऐसा करने की सलाह दी गई थी। या तो उन्हें प्रथम दीवानी वाद में मामले का अनुसरण करना चाहिए था और अंत तक जोर देकर कहा था कि मुकदमा दीवानी न्यायालय द्वारा विचारणीय था, या वे राजस्व न्यायालय के आदेश से उच्च अधिकारियों और न्यायालय के समक्ष मामले को आगे ले जाते और इस बात पर कायम रहते कि यह मामला कि क्या दीवानी न्यायालय के पास पक्षकारों के बीच विवाद का फैसला करने का अधिकार क्षेत्र था या नहीं, यह निर्णय था, राजस्व न्यायालय के पास दीवानी न्यायालय के निर्णय के पीछे जाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। अपीलकर्ताओं

ने भी ऐसा नहीं किया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि गलत सलाह के तहत उन्होंने जो गलत रास्ते अपनाए, उसके कारण उन्हें अंततः न्यायिक निर्णय के तकनीकी आधार पर गिरना पड़ा लेकिन कोई रास्ता नहीं है।

फिर से, उपेंद्र नाथ बोस बनाम प्रिवी काउंसिल ने निर्धारित किया था कि मामले का विचारण करने के लिए दीवानी न्यायालय के क्षेत्राधिकार की कमी के प्रश्न के संबंध में पुन निर्णय होगा। यदि प्रतिवादी प्रकट होता है और एक मुद्दा उठाया जाता है और निर्णय लिया जाता है तो अधिकार क्षेत्र के प्रश्न पर निर्णय पुन: न्यायिक के रूप में काम करेगा।

18. उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के इस दृष्टिकोण में, राजस्व न्यायालय का निर्णय कि उसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, पक्षों के बीच पुनर्-न्यायिक के रूप में काम करेगा और यह दीवानी न्यायालय के लिए खुला नहीं था कि वह विपरीत दृष्टिकोण ले और यह धारण करे कि दीवानी न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। आखिरकार, समेकन अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए नक्शे में त्रुटि स्पष्ट है। मानचित्र में दर्शाया गया प्लॉट संख्या-320 का क्षेत्रफल चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार अधिकारों के अभिलेख में दर्शाए गए क्षेत्र के अनुरूप नहीं है। इस तरह की स्पष्ट त्रुटि को सुधारा जाना चाहिए और न्यायिक कार्यवाही में यह एक दुखद टिप्पणी होगी कि इस तथ्य के बावजूद कि नक्शे में स्पष्ट गलती है लेकिन न्यायालय इसे सुधारने में असहाय है। इसलिए, हम मानते हैं कि क्षेत्राधिकार के सवाल पर राजस्व न्यायालय के निर्णय की अंतिमता को देखते हुए, दीवानी न्यायालय के पास इसके विपरीत निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और उसे गुण-दोष के आधार पर अपील का फैसला करना चाहिए था।

C. सुरजी देवी बनाम अपर आयुक्त (प्रथम) और अन्य के मामले में पारित निर्णय में, जो मनु/यूपी/1594/2012 में रिपोर्ट किया गया था, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"10. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा सी.एच. अधिनियम की धारा 27(3) सपठित एल.आर. अधिनियम की धारा 28 के तहत दायर आवेदन चकबंदी अभियान के बाद तैयार किए गए नक्शे के सुधार के लिए था। एल.आर. अधिनियम की धारा 28 और सी.एच. अधिनियम कला की धारा 27(3) के प्रावधान निम्नानुसार हैं:

28. मानचित्र और फील्ड-बुक का रखरखाव-कलेक्टर धारा 234 के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अपने जिले के प्रत्येक गांव का नक्शा और क्षेत्र पुस्तिका रखेगा और वार्षिक रूप से या ऐसे लंबे अंतरालों पर जो राज्य सरकार विहित करे, प्रत्येक गांव या क्षेत्र की सीमाओं में सभी परिवर्तनों को उसमें दर्ज करवाएगा और ऐसी किसी त्रुटि को ठीक करेगा जो ऐसे मानचित्र या फील्ड-बुक में दिखाई गई है।

27(3) धारा 52 के अधीन अधिसूचना जारी होने के पश्चात् कलेक्टर, उसके द्वारा पूर्व में अनुरक्षित मानचित्र, फील्ड-बुक और अभिलेख के स्थान पर ऐसे मानचित्र के अनुरक्षण और

सुधार से सम्बन्धित उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के उपबन्धों के अनुसार तैयार किए गए मानचित्र, फ़ील्ड-बुक और अधिकारों के अभिलेख का रख-रखाव करेगा, फील्ड-बुक और रिकॉर्ड-ऑफ-राइट्स उत्परिवर्ती लागू होंगे)।

11. पूर्वोक्त प्रावधानों के संयुक्त पठन से पता चलता है कि कलेक्टर धारा 234 के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार अपने जिले के प्रत्येक गांव के नक्शा, फील्ड बुक और अधिकारों के रिकॉर्ड को बनाए रखने के लिए बाध्य है। धारा 27(3) में कहा गया है कि मानचित्र और फील्ड बुक के रखरखाव में, एल.आर. अधिनियम में निहित प्रावधान ऐसे मानचित्र, फील्ड बुक और अधिकारों के रिकॉर्ड के रखरखाव और सुधार से संबंधित है। एल.आर. अधिनियम की धारा 28 में कहा गया है कि कलेक्टर किसी भी त्रुटि को ठीक करेगा जो उसके द्वारा बनाए गए ऐसे मानचित्र या फील्ड बुक में की गई है।

12. यह अच्छी तरह से तय है कि नक्शे के सुधार को इस आधार पर मना नहीं किया जा सकता है कि चकबंदी का काम पहले ही खत्म हो चुका था। कलेक्टर के पास एल.आर. अधिनियम की धारा 28 के तहत मौजूदा मानचित्र में लिपिकीय त्रुटि या लिपिकीय त्रुटि की चूक को ठीक करने की शक्ति है। एल.आर. अधिनियम की धारा 28 के तहत कार्यवाही प्रकृति में न्यायिक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका की मंशा मानचित्र और उसकी अनुक्रमणिका के रखरखाव को निर्धारित करती है, जो मौके पर अवलोकन द्वारा फील्ड बुक है। धारा 28 के तहत इस्तेमाल किया गया शब्द "दिखाया गया" है और "साबित" नहीं है। इस प्रकार, उक्त कानूनी स्थिति को देखते हुए, केवल मौके पर दिखाई गई पिछली त्रुटि को सारांश कार्यवाही में ठीक किया जाना है। इसके मद्देनजर, यह कलेक्टर का कर्त्तव्य है कि यदि मानचित्र में कोई त्रुटि पाई जाती है तो उसे ठीक किया जाए।

13. प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा 3.2.1999 को नक्शे के सुधार के लिए इस आधार पर आवेदन दायर किया गया था कि प्लॉट की स्थिति यानि 240(ई) क्षेत्र 12 दशमलव को चकबंदी ऑपरेशन के बाद तैयार किए गए नक्शे में गलत तरीके से दिखाया गया है। याचिकाकर्ता के आवेदन को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि चक मानचित्र के अभाव में याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर तैयार नक्शे में कोई सुधार नहीं किया जा सकता है। उक्त आवेदन को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर खारिज कर दिया है कि याचिकाकर्ता चक मानचित्र की प्रति प्रस्तुत करने में विफल रहा है। मानचित्र के सुधार के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन को अस्वीकार करने में अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया दृष्टिकोण गलत है क्योंकि चक नक्शा अधिकारियों द्वारा बनाए गए राजस्व रिकॉर्ड का हिस्सा है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा चक नक्शा दायर नहीं किया गया था, तो यह अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट पर निर्भर है कि वह रिकॉर्ड यानि चक मानचित्र के लिए कॉल करें और याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन की

योग्यता को देखने के बाद एक उचित आदेश पारित करें। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में दर्ज किया कि चकबंदी अभियान के बाद तैयार किए गए अंतिम नक्शे के सुधार का आधार चक नक्शा है और तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। इसने आगे इस निष्कर्ष को दर्ज किया कि याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित दस्तावेज यानि चक मानचित्र को छिपाकर सुधार करने का प्रयास किया गया है। अपर जिला मजिस्ट्रेट के उक्त निष्कर्ष पूर्णत विकृत हैं और इन्हें कायम नहीं रखा जा सकता। जहां तक चक मानचित्र के अभाव में अंतिम मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन को अस्वीकार करने के आधार का संबंध है, यह कहना पर्याप्त है कि अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया आधार प्रकृति में तकनीकी है और अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट स्वयं रिकॉर्ड नहीं मंगवाने और याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन के गुण-दोष पर उचित आदेश पारित करने में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा है। इसके मद्देनजर, अपर जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 15.6.2002 के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है। .....

21. जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 28 के तहत गांव में चकबंदी का काम खत्म होने के बाद नक्शे में सुधार के लिए दायर आवेदन की विचारणीयता के संबंध में उठाया गया प्रश्न और 10.8.1985 को जारी धारा 52 के तहत इसकी अधिसूचना का संबंध है, यह अच्छी तरह से तय है कि अधिनियम की धारा 28 के तहत कलेक्टर की शक्ति और दायरे में नक्शे में सुधार करने के लिए मौके पर निरीक्षण के बाद विद्यमान मानचित्र में लिपिकीय त्रुटियों तक ही सीमित है। एल.आर. अधिनियम की धारा 28 और सी.एच. अधिनियम की धारा 27(3) के प्रावधानों के संयुक्त पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि नक्शा तैयार करने और कलेक्टर द्वारा बनाए रखने के बाद, यदि कोई त्रुटि इंगित की जाती है जो मौके पर दिखाई गई त्रुटि है, तो उसे ठीक किया जा सकता है और कलेक्टर अधिनियम की धारा 28 के तहत सारांश कार्यवाही में आवश्यक सुधार करने के लिए बाध्य है। गलती/सुधार का सुधार किसी भी स्तर पर किया जा सकता है, और इसके मद्देनजर, उत्तरदाताओं की आपत्ति कि याचिकाकर्ता द्वारा स्थानांतरित नक्शे के सुधार के लिए सी.एच. अधिनियम की धारा 27(3) सपठित एल.आर. अधिनियम की धारा 28 के तहत आवेदन चकबंदी अभियान समाप्त होने के बाद सुनवाई योग्य नहीं है, टिकाऊ नहीं है। D. गया प्रसाद और अन्य बनाम यदुनाथ और अन्य के मामले में पारित निर्णय में मनु/यूपी/1457/2017 में रिपोर्ट किया गया, न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"13. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा है कि चूंकि नक्शा चकबंदी की कार्यवाही के बाद तैयार किया गया था, इसलिए इसे यू.पी. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत शक्तियों का प्रयोग करके बिल्कुल भी ठीक नहीं किया जा सकता है। मो. रज़ा और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उ.प्र. इलाहाबाद एवं अन्य, मनु/यू.पी./0414/1971एमएएनयू/यू.पी./0414/1971: 1973 (8) एडब्ल्यूआर 621 यह देखा गया है कि यह मानना गलत है कि उ.प्र. जोत

समेकन अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत तैयार मानचित्र को आवश्यक रूप से अंतिम एवं निश्चायक माना जाना चाहिए। बाद में, नानबुड्डा बनाम लतीफ अहमद, 1982 आरडी170 में इसी फैसले पर भरोसा करते हुए पैरा-6 में आगे इस प्रकार देखा गया है: -

"यह भी जोड़ा जाए कि यू.पी. सी.एच. अधिनियम की धारा 27(2) भी शुद्धता की धारणा के बारे में बताती है, जो इसके विपरीत साबित होती है। खंडन का अधिकार स्वीकार्य होना चाहिए। दूसरे, यह अनुमान केवल 'अधिकारों के रिकॉर्ड में सभी प्रविष्टियों' पर लागू होता है, न कि शजरा के लिए। बेशक, शजरा अधिकारों का रिकॉर्ड नहीं है। उत्तर प्रदेश केन्द्रीय स्वास्थ्य अधिनियम की धारा 27(3) में ही यह प्रावधान है कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 और 33 के प्रावधान ऐसे मानचित्र, फील्ड-बुक आदि के रख-रखाव पर लागू होंगे। इन प्रावधानों के तहत, ऐसे मानचित्र या फील्ड-बुक में की गई किसी भी त्रुटि को ठीक किया जाएगा। इस प्रकार यू.पी. सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जना लगाने की कोई गुंजाइश नहीं बची है।

14. राजस्व बोर्ड द्वारा व्यक्त किया गया यह विचार अली खान बनाम राम प्रसाद और अन्य, मनु/यूपी/0589/1980मनु/यूपी/0589/1980:198 1(1) इला के मामले में एक डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए निर्णय के अनुरूप है। लॉ जर्नल 271 जिसमें इस न्यायालय ने इसी तरह के एक प्रश्न पर विचार किया है कि क्या उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के तहत गांव की अधिसूचना रद्द करने के बाद, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत आवेदन देकर त्रुटियों का सुधार किया जा सकता है। इस न्यायालय ने देखा है कि राजस्व न्यायालय धारा 28 के तहत आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम था और उसने गलती से माना था कि उसके पास इस पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। यह आगे कहा गया कि यदि चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए नक्शे में त्रुटि स्पष्ट है और नक्शे में दिखाए गए प्रश्न में प्लॉट का क्षेत्र चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाए गए क्षेत्र के अनुरूप नहीं है, तो "इस तरह की एक स्पष्ट त्रुटि को ठीक किया जाना चाहिए" और यह न्यायिक कार्यवाही में एक दुखद टिप्पणी होगी कि इस तथ्य के बावजूद कि स्पष्ट गलती है नक्शे में लेकिन न्यायालय इसे सुधारने में असहाय है..... "

15. इसी तरह का दृष्टिकोण गफूर बनाम अतिरिक्त आयुक्त, लखनऊ, मनु/यूपी/0670 /1978मनु/ यूपी/0670/1978: 1978 AWC, 836 (माननीय यू. सी. श्रीवास्तव और माननीय के. एन. गोयल द्वारा) में इस न्यायालय की एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा लिया गया है, जिसमें माननीय डिवीजन बेंच ने पैरा- 3, 4, 5 और 6 में इस प्रकार अवलोकन किया है: -

"3. हमारा ध्यान मोहम्मद रजा बनाम राजस्व बोर्ड,
मनु/यूपी/0414/1971मनु/यूपी/0414/1971:
1973 AWR 621 के एक अन्य मामले की ओर आकर्षित किया गया है जिसमें यह माना गया था कि चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किया गया नक्शा आवश्यक रूप से अंतिम और

निर्णायक नहीं है और गलत तरीके से तैयार किए गए नक्शे को अंतिम और निर्णायक नहीं माना जा सकता है और इसे भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत ठीक किया जा सकता है।

4. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम और भू-राजस्व अधिनियम के प्रावधानों को देखते हुए, हम मोहम्मद रज़ा बनाम भारत संघ में व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं। राजस्व बोर्ड (उपरोक्त) और हम मानते हैं कि यदि कोई नक्शा बाद में गलत पाया जाता है और यह चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज के अनुरूप नहीं है, तो उपयुक्त मामलों में इसे धारा 52 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद ठीक किया जा सकता है जोत अधिनियम की धारा 52 कलेक्टर द्वारा भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए। इस प्रकार हमारा विचार है कि गंगा ग्लास वर्क्स (प्राइवेट) लिमिटेड, बालावाली बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में निर्धारित कानून में यह निर्णय लिया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) एक अच्छा कानून नहीं है।

5. इस प्रकार उपयुक्त मामलों में मानचित्र को सही करने के लिए उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत कलेक्टर की शक्तियां बरकरार हैं, इसके बावजूद नक्शा चकबंदी अधिकारियों द्वारा तैयार किया गया है जिन्होंने पक्षों के अधिकारों और स्वामित्व / हक़्के मिल्कियत का निर्णय किया है। यदि मानचित्र में कोई विसंगति है और चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा अंतिम दस्तावेज तैयार कर लिया गया है तो उसे भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के अंतर्गत कार्यवाहियों में ठीक किया जा सकता है बशर्ते कि अंतिम रूप से प्राप्त पक्षकार के अधिकार, हित और स्वामित्व / हक़्के मिल्कियत शामिल न हों।

6. प्रस्तुत मामले में उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा मानचित्र के सुधार के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और याचिकाकर्ता ने साक्ष्य प्रस्तुत किया था कि नक्शा सी.एच. फॉर्म-45 में की गई प्रविष्टियों के अनुरूप नहीं था। अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे नक्शे को सही करें यदि वे संतुष्ट थे कि सी.एच. फॉर्म-45 में नक्शे और प्रविष्टियों के बीच कुछ विसंगति थी और यह कानून के गलत दृष्टिकोण पर है कि उन्होंने याचिकाकर्ता को यह राहत देने से इनकार कर दिया है।

16. राजस्व मंडल की पूर्ण पीठ (पांच सदस्यों) ने भी सूरज नारायण एवं अन्य बनाम भवानी प्रसाद एवं अन्य, 1977 आरडी 234 में उत्तर प्रदेश अधिनियम सं0 24 वर्ष 1956 एवं उ.प्र. अधिनियम सं0 38 वर्ष 1958 द्वारा उत्तर प्रदेश समेकन जोत अधिनियम में किए गए संशोधनों तथा उत्तर प्रदेश अधिनियम सं0 12 वर्ष 1965 द्वारा किए गए संशोधन को ध्यान में रखते हुए गंगा ग्लास वर्क्स प्रा लिमि बलीवाली के मामले में निर्णय दिया है। उत्तर प्रदेश राज्य मनु/यू.पी. /0040/1972 एमएएनयू/ यू.पी./0040/1972: 1972 (इला) उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 27(3) के प्रभाव पर विचार नहीं किया गया था और इसलिए, यह निर्णय इसे संदर्भित प्रश्नों के

संबंध में सही निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद नहीं कर सकता है। पूर्ण पीठ को संदर्भित प्रश्न इस प्रकार थे:

• क्या उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 27 की उप-धारा (3) के प्रावधान कलेक्टर को चकबंदी अभियान के दौरान होने वाली ऐसी गलतियों को सुधारने के लिए सशक्त बनाते हैं और अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना रद्द करने के बाद ध्यान में आते हैं?

• क्या उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 सपठित उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 27(3) में उल्लिखित 'कलेक्टर' शब्द में 'सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी' भी शामिल है? और

• क्या ऐसे मामलों में कार्यवाही उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है?

17. राजस्व मंडल ने माना कि उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम में किए गए संशोधनों के बाद, धारा 27 अब कलेक्टर को उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत चकबंदी प्रक्रिया के दौरान मानचित्र और फील्ड बुक में बाद में पाई गई किसी भी त्रुटि को सही करने का अधिकार देती है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 सपठित ऊ.प्र. चकबंदी अधिनियम की धारा 27(3) के अन्तर्गत मानचित्र के सुधार की कार्यवाही उ.प्र. जोत समेकन अधिनियम की धारा 49 के प्रावधानों द्वारा वर्जित नहीं है।

18. इस प्रकार, राजस्व मंडल की पूर्ण पीठ और इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा तय कानून से यह स्पष्ट है कि चकबंदी कार्य समाप्त होने और उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम की धारा 52 के तहत अंतिम अधिसूचना जारी होने के बाद भी उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत गांव के नक्शे में स्पष्ट गलतियों का सुधार किया जा सकता है।

19. आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा प्रश्नगत तीन भूखंडों की भूमि के समायोजन द्वारा मानचित्र में प्रस्तावित संशोधन को सत्यापित मानचित्र के अनुरूप लाने के लिए और कलेक्टर और अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेशों को तथ्यों या कानून के आधार पर गलत नहीं कहा जा सकता है।

e- श्रीमती श्याम रजी और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड लखनऊ, द्वारा अध्यक्ष और अन्य के मामले में सुनाए गए निर्णय में, विविध एकल संख्या-7638 वर्ष 2015 में 20.2.2019 को पारित किया गया, न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 यहां निकाली गई है: -

28. मानचित्र और क्षेत्र-पुस्तक का रखरखाव: कलेक्टर धारा 234 के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अपने जिले के प्रत्येक गांव का नक्शा और फील्ड-बुक रखेगा और वार्षिक रूप से या ऐसे लंबे अंतरालों पर जो [राज्य

सरकार] विहित करे, प्रत्येक ग्राम या क्षेत्र की सीमाओं में सभी परिवर्तनों को उसमें अभिलिखित करवाएगा और ऐसी किसी त्रुटि को, जो ऐसे मानचित्र या फील्ड-बुक में की गई दिखाई गई है, ठीक करेगा।

उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के उपरोक्त उद्धृत प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि कलेक्टर को अपने जिले के गांवों के मानचित्र और दायर पुस्तक को बनाए रखने के लिए वैधानिक कर्तव्य के साथ कास्ट किया गया है। उसे वार्षिक रूप से या ऐसे लंबे अंतराल पर कारित करने का एक और वैधानिक कर्तव्य भी सौंपा जाता है जो निर्धारित किया जा सकता है, प्रत्येक गांव की सीमाओं में सभी परिवर्तनों को रिकॉर्ड करना या दायर करना और किसी भी त्रुटि को ठीक करना जो इस तरह के नक्शे या फील्ड बुक में दिखाया गया है।

वास्तव में, मानचित्र या फील्ड-बुक में कोई सुधार करने के लिए, किसी भी आवेदन को अनिवार्य रूप से स्थानांतरित करने की आवश्यकता नहीं है। कलेक्टर द्वारा ऐसा सुधार आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए जहां किसी व्यक्ति द्वारा दायर किए गए आवेदन पर उसके द्वारा कोई गलती या विसंगति देखी जाती है या यदि किसी अन्य माध्यम या माध्यम से कोई गलती उसके ज्ञान में आती है। यदि किसी आवेदन पर या अन्यथा कलेक्टर के ध्यान में कोई गलती आती है, तो वह मानचित्र में सुधार करने के लिए बाध्य है। पदावधि धारक, यदि वह मौजूद है, मानचित्र में सुधार करने के लिए कोई आवेदन करने के लिए भी बाध्य नहीं है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के तहत कलेक्टर द्वारा निर्वहन किए गए कर्तव्य के संबंध में दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में प्रतिपादित पुन: न्यायिक सिद्धांतों की प्रयोज्यता बहुत संदिग्ध है। उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत प्राधिकार/क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय कलेक्टर पक्षकारों के बीच किसी भी मुद्दे का निर्णय नहीं करता है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के प्रावधान को कुछ शक्ति या अधिकार या अधिकार क्षेत्र के रूप में कहना एक मिथ्या नाम होगा। वास्तव में, यदि ऐसी कोई गलती या विसंगति उसके ध्यान में आती है, तो मानचित्र या फील्ड बुक में सुधार को शामिल करना कर्तव्य है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के प्रावधान को शब्द के पारंपरिक अर्थों में किसी व्यक्ति के लिए उपलब्ध उपाय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, बल्कि यह एक कर्तव्य है कि कलेक्टर द्वारा उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 को अधिनियमित करके विधानमंडल द्वारा उसे दिए गए जनादेश के अनुसार अनिवार्य रूप से किया जाए।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की दलीलें इस प्रकार वजन रखती हैं। प्रतिवादी संख्या-3 और 4 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता द्वारा यह सुझाव देने के लिए आधार लिया गया कि 6 मार्च, 2013 के दूसरे आवेदन को पुन:

न्यायिक सिद्धांतों के लिए वर्जित किया गया था, एतद्द्वारा खारिज कर दिया गया है।

अतः अपर आयुक्त उ.प्र. भू-राजस्व अधिनियम की धारा 28 के वास्तविक उद्देश्य और राज्य विधानमंडल द्वारा कलेक्टर को दिए गए शासनादेश को ठीक से समझने में विफल रहे हैं।

26. इस प्रकार, उपर्युक्त उद्धृत प्रावधानों से, विशेष रूप से संहिता, 2006 की धारा 30 और नियम, 2016 के नियम 36 (5) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'कोई त्रुटि या चूक' और साथ ही संहिता, 2006 की धारा 32 और ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों में इंगित 'पहले से तैयार किए गए रिकॉर्ड में कोई त्रुटि साबित हुई है' यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि कलेक्टर या उप-विभागीय अधिकारी, जैसा भी मामला हो, की राय है कि नक्शा, फील्ड बुक (खसरा) या अधिकारों के रिकॉर्ड (खतौनी) में 'कोई त्रुटि या चूक' है, तो वह उसके सुधार के लिए निर्देश देगा। कलेक्टर या उपखण्ड अधिकारी, जैसा भी मामला हो, नक्शा, फील्ड बुक (खसरा) या अधिकारों के रिकॉर्ड (खतौनी) के संबंध में 'किसी भी त्रुटि या चूक' को ठीक करने के लिए बाध्य है। ऊपर उद्धृत प्रावधानों के अनुसार, मानचित्र के सुधार का आदेश कलेक्टर द्वारा और अन्य सुधार के मामले में उप-विभागीय अधिकारी द्वारा पारित किया जाएगा। ऊपर उल्लिखित सांविधिक प्रावधानों में यह नहीं कहा गया है कि मानचित्र में कोई त्रुटि या चूक यदि तीन बिस्वा या उससे कम की है तो कलेक्टर मानचित्र को सही करने से मना कर सकता है।

27. संहिता, 2006 की धारा 30 के अधीन कलेक्टर से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने जिले के प्रत्येक गाँव का मानचित्र रखे। गाँव के मानचित्रों के सही रखरखाव के महत्व पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता है क्योंकि नक्शा गाँव के भूमि अभिलेखों का प्रारंभिक बिंदु है और इसमें त्रुटि से गाँव के सभी अभिलेखों के गलत होने की संभावना है। यह गांव की सीमाओं को परिभाषित करता है और गांव में प्रत्येक क्षेत्र की भी।

28. यह पूर्वोक्त से यह भी दर्शाता है कि राजस्व अभिलेख अर्थात मानचित्र, फील्ड बुक (खसरा) या अधिकारों का रिकॉर्ड (खतौनी) कलेक्टर या उप-विभागीय अधिकारी, जैसा भी मामला हो, द्वारा अधिनियम, 1953 की धारा 52 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद भी सही किया जा सकता है।

29. पूर्वोक्त के आलोक में, इस न्यायालय का विचार है कि यदि 'कोई त्रुटि या चूक' स्पष्ट है और संहिता, 2006 या नियम, 2016 कलेक्टर को 'चकबंदी मैनुअल' के पैरा 101 के आधार पर उक्त सुधार से इनकार करने के लिए कोई विवेक प्रदान नहीं करते हैं, तो मानचित्र को सही करना कलेक्टर का कर्तव्य है।

30. उपर्युक्त सांविधिक प्रावधानों के अनुसार, विशेष रूप से संहिता, 2006 की धारा 38 को ध्यान में रखते हुए, मानचित्र सहित राजस्व अभिलेखों के सुधार के संबंध में कार्यवाही इस संबंध में अधिमान्य आवेदन पर या 'किसी त्रुटि या चूक' पर शुरू की जानी चाहिए, अन्यथा संबंधित

तहसीलदार के संज्ञान में आ जाती है। इसके अतिरिक्त, सांविधिक प्रावधानों में यह इंगित नहीं किया गया है कि मानचित्र में सुधार के आवेदन सहित राजस्व अभिलेखों में सुधार के लिए आवेदन पत्र को कौन दायर करने दे सकता है। इस प्रकार, राजस्व अभिलेखों में विसंगति का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति इस संबंध में संबंधित तहसीलदार को जानकारी प्रदान कर सकता है जो उसके बाद ऐसी जांच करेगा जो उसे आवश्यक प्रतीत हो सकती है, और मानचित्र सुधार के मामले में कलेक्टर को अपनी रिपोर्ट के साथ मामले को संदर्भित कर सकता है और अन्य सुधार के मामले में उपखंड अधिकारी को संदर्भित कर सकता है।

31. उपरोक्त कारणों से और ऊपर संदर्भित निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता द्वारा मानचित्र के सुधार के लिए दायर किया गया आवेदन बनाए रखने योग्य था क्योंकि उसने आसपास के निवासी होने के नाते, राजस्व मानचित्र में त्रुटि को इंगित किया था।

32. इस प्रकार, उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का विचार है कि कलेक्टर, अम्बेडकर नगर/प्रतिवादी संख्या-3, दिनांक 05.12.2022 के आदेश के तहत मानचित्र के सुधार के लिए आवेदन को खारिज करके, अपने वैधानिक कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहे, जो प्रस्तुत मामले में नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में त्रुटि के संबंध में मानचित्र के सुधार से संबंधित है, टांडा और तहसीलदार, टांडा और प्रतिवादी संख्या-2, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2023 के आदेश के तहत दायर पुनरीक्षण को खारिज करते हुए, कानून में इतनी त्रुटि होने के कारण प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देने में विफल रहे।

33. तदनुसार, दिनांक 06.03.2023 और 05.12.2022 (याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 और 2) के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है। मामले को तर्कपूर्ण और आख्यापक आदेश पारित करके मामले पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर को वापस भेज दिया जाता है।

34. मामले का निर्णय करते समय, कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर से अपेक्षा की जाती है कि वे वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान दें, जिसके अनुसार मानचित्र सहित राजस्व रिकॉर्ड बनाए रखना और उसमें 'किसी भी त्रुटि या चूक' को ठीक करना कलेक्टर का कर्तव्य है और तहसीलदार, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या कलेक्टर के ध्यान में आने पर किसी भी आवेदन के बिना भी मानचित्र सहित राजस्व रिकॉर्ड के सुधार की कार्यवाही शुरू की जा सकती है।

35. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 450

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट सी संख्या 12362 वर्ष 2023

नेहरू जूनियर हाईस्कूल तरयासुजान, कुशीनगर ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अशोक कुमार पांडे, श्री रितुवेंद्र सिंह नागवंशी, श्री आर.सी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री अनुराग त्रिपाठी, श्री सुधीर भारती, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

दीवानी कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VII नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 144- धारा 49 उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम - घोषणात्मक वाद - पोषणीयता - विचारण चरण - वाद का कारण - शैक्षिक संस्थान - राजस्व न्यायालय का क्षेत्राधिकार

अभिनिर्धारित: उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत लंबित मुकदमे में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत आवेदन को अस्वीकार किया गया - चुनौती दी गई - प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा विवादित भूमि पर अधिकारों की घोषणा का दावा करते हुए वाद दायर किया गया - याचिकाकर्ता, एक शैक्षणिक संस्थान, ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत रोक लगाई - विचारण न्यायालय ने आवेदन को अस्वीकार कर दिया; पुनरीक्षण खारिज - अभिनिर्धारित किया गया, वादपत्र में किए गये कथन कार्रवाई का कारण बताते हैं - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 144 के अंतर्गत घोषणात्मक मुकदमे विशेष प्रकृति के हैं -विचारण के दौरान उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत रोक के मुद्दे की जांच की जाएगी - प्रारंभिक स्तर पर अस्वीकृति के लिए उपयुक्त मामला नहीं - याचिका खारिज।

<u>संदर्भित मामले</u>

1. चर्च ऑफ क्राइस्ट चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम पोन्नियम्मन एजुकेशनल ट्रस्ट, दीवानी अपील संख्या 4841/2012

2. मदनूरी श्री राम चंद्र मूर्ति बनाम सैयद जलाल, सिविल अपील संख्या 5368, 2017

3. के. अकबर अली बनाम के. उमर खान एवं अन्य, एआईआर 2021 एससी 1114

4. चारु किशोर मेहता बनाम प्रकाश पटेल एवं अन्य, एसएलपी (सी) संख्या 11030 ऑफ़ 2022

5. पान कुमारी बनाम राजस्व बोर्ड, यूपी, 2005 (99) आरडी 529

प्रतिलिपि

6. रोशन सिंह उर्फ बंटी बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2019 (145) आरडी 411

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह, जिनकी सहायता याची के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.एस. नागवंशी ने की, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी, जिनकी सहायता प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग त्रिपाठी ने की, राज्य-प्रत्यर्थियो के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला और गाँव सभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुधीर को सुना गया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि नैपाल और रघुनाथ पुत्रगण देव नारायण भूमिधर थे तथा पुराने प्लाट संख्या 43/1.93, 44/1.64, 54/.50, 55/.48, और 56/.48 नए प्लाट संख्या 514, 515, 529 पर उनका कब्जा था। ऊपर वर्णित दर्ज खातेदारों ने उक्त प्लाटों को जूनियर हाई स्कूल तरया सुजान, जिला देवरिया (वर्तमान जिला कुशीनगर) को पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 09-08-1965 के तहत हस्तांतरित कर दिया।

3. दिनांक 09-08-1965 के उपर्युक्त विक्रय विलेख के आधार पर महाविद्यालय का नाम राजस्व अभिलेखों में तदनुसार दर्ज किया गया। जिस गांव में उपर्युक्त भूखंड स्थित थे, उसे उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम (जिसे आगे यू.पी.सी.एच. अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना के माध्यम से चकबंदी कार्रवाई के तहत लाया गया था। याची के अनुसार मूल वर्ष की प्रविष्टि याची के नाम पर थी और यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा-9ए (2) के तहत किसी ने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 5 के अनुसार उसके पति का नाम चकबंदी के मूल वर्ष में दर्ज किया गया था, लेकिन याची ने बिना किसी आधार के सी.एच. फॉर्म 23 चरण के बाद धोखाधड़ी से अपना नाम दर्ज करवा लिया।

4. याची के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 5 या उसके पूर्ववर्ती हितधारक का नाम विवादित भूखंडों पर किसी भी समय राजस्व अभिलेखों में दर्ज नहीं किया गया था।

5. प्रत्यर्थी संख्या 5 ने विवादित भूखंडों के संबंध में घोषणा के लिए उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद दायर किया, जिसे मुकदमा संख्या टी201905440303976 के रूप में क्रमांकित किया गया, जिसमें कहा गया कि विवादित भूखंड उसके पति (राज किशोर) की स्व-अर्जित संपत्ति थी और वर्ष 2011 में उसके पति की मृत्यु के बाद विवादित भूखंडों पर उसका कब्जा हो गया।

6. विचारण न्यायालय ने दिनांक 26-07-2019 को एकपक्षीय निर्णय के तहत यू.पी. राजस्व संहिता 2006 की धारा 144 के तहत वादी के मुकदमे को खारिज कर दिया।

7. याची ने एकपक्षीय निर्णय और दिनांक 26-07-2019 के डिक्री के खिलाफ सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद सी.पी.सी. के रूप में संदर्भित) के आदेश IX नियम 13 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 16-12-2019 के आदेश के तहत अनुमति दी गई और मुकदमे को नए सिरे से निर्णय के लिए फिर से अपने मूल संख्या पर बहाल कर दिया गया।

8. दिनांक 16-12-2019 के आदेश के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 5 ने अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपील दायर की, जिसे दिनांक 05-04-2021 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया।

9. याची ने दिनांक 01-07-2022 को विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें मुकदमे को खारिज करने की मांग की गई क्योंकि चकबंदी संचालन के दौरान कोई कार्यवाही नहीं की गई है, इसलिए यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत मुकदमा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित है।

10. उप मण्डल अधिकारी, तमकुहीराज, कुशीनगर ने दिनांक 26-08-2022 के आदेश द्वारा याची द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया।

11. विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 26-08-2022 के विरुद्ध याची ने आयुक्त गोरखपुर मंडल, गोरखपुर के समक्ष पुनरीक्षण संख्या C202205000001466 दाखिल किया।

12. उपर्युक्त पुनरीक्षण को आयुक्त/प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 24-03-2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, इसलिए, यह रिट याचिका।

13. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि लंबित मुकदमे में याची द्वारा सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत दायर आवेदन को मनमाने तरीके से खारिज कर दिया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत एक आवेदन पर निर्णय लेने के लिए लिखित बयान दाखिल करना और मुद्दे को तैयार करना कोई शर्त नहीं है, बल्कि वाद-पत्र का आरोप प्रासंगिक है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यदि वाद तुच्छ है और कानून के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, तो इस पर शुरुआती चरण में ही विचार किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 9 के तहत कोई आपत्ति दायर नहीं की गई थी, इस प्रकार यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याची जो एक शैक्षणिक संस्थान है, को अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी में घसीटा गया है, इसलिए याची द्वारा सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत दायर आवेदन को सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर अनुमति दी जानी चाहिए।

14. याची के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **चर्च ऑफ क्राइस्ट चैरिटेबल ट्रस्ट एंड**

एजुकेशनल चैरिटेबल सोसाइटी, जिसका प्रतिनिधित्व इसके अध्यक्ष द्वारा किया गया बनाम मेसर्स पोन्नियम्मन एजुकेशनल ट्रस्ट जिसका प्रतिनिधित्व इसके अध्यक्ष/प्रबंध ट्रस्टी द्वारा किया गया, सिविल अपील संख्या 4841/2012 में (एसएलपी (सी) संख्या 30632/2011 से उत्पन्न) दिनांकित 03-07-0212: मदनुरी श्री राम चंद्र मूर्ति बनाम सैयद जलाल सिविल अपील संख्या 5368/2017 (एसएलपी (सिविल) संख्या 35352 दिनांकित 19-04-2017 से उत्पन्न; के अकबर अली बनाम के. उमर खान और अन्य, एआईआर 2021 एससी 1114 और चारु किशोर मेहता बनाम प्रकाश पटेल और अन्य विशेष अनुमति याचिका © संख्या 11030/2022 दिनांकित 22-06-2022 में सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के दायरे पर दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

15. दूसरी ओर प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी ने कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत दायर किया गया वाद उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत दायर किया गया वाद विशेष प्रकृति का वाद है, इसलिए इसे मुद्दा बनाए बिना और पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना खारिज नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 5 का नाम सीएच-फॉर्म 23 की तैयारी तक राजस्व अभिलेखों में दर्ज था, लेकिन याची का नाम धोखाधड़ी से सीएच-फॉर्म 45 में दर्ज हो गया। उन्होंने आगे कहा कि याची बिक्री विलेख के आधार पर अधिकारों का दावा कर रहा है, हालांकि, याची के पक्ष में बिक्री विलेख के कथित निष्पादन से पहले याची के विक्रेता की मृत्यु हो गई है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याची विवादित भूखंडों का सही मालिक नहीं है, ऐसे में प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा दाखिल घोषणा के वाद को पोषणीय न मानते हुए खारिज नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याची के दावे की योग्यता के आधार पर बहुत अच्छी तरह से जांच की जा सकती है कि वाद में मुद्दे तय करने के बाद यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वाद वर्जित है या नहीं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वाद में मुद्दे तय करने के बाद मामले का फैसला यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 से संबंधित मुद्दे सहित कानून के अनुसार किया जाएगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत याची के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील गलत है क्योंकि वाद में लगाए गए आरोप यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद दायर करने की कार्रवाई का कारण बताते हैं।

16. मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेख का अवलोकन किया है।

17. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत दायर वाद विचारण न्यायालय/प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष लंबित है। इस तथ्य पर भी कोई विवाद

नहीं है कि याची द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित होने के कारण वाद को खारिज करने के लिए दायर आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है और आदेश को पुनरीक्षण में बनाए रखा गया है।

18. विवाद को समझने के लिए उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 का अवलोकन आवश्यक है, जो निम्न प्रकार है:

> **144. खातेदारों द्वारा घोषणात्मक वाद।--(1) कोई व्यक्ति जो किसी खाते या उसके भाग का भूमिधर या असामी होने का दावा करता है, चाहे अनन्य रूप से या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, ऐसे खाते या भाग में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद दायर कर सकता है।**
>
> **(2) उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित द्वारा या उनकी ओर से संस्थित प्रत्येक वाद में-**
>
> **(क) भूमिधर, राज्य और ग्राम पंचायत आवश्यक पक्षकार होंगे;**
>
> **(ख) असामी होने पर, भू-स्वामी आवश्यक पक्षकार होगा।**

19. यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144/यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के दायरे पर, इस न्यायालय ने **पान कुमारी बनाम राजस्व बोर्ड, यू.पी. इलाहाबाद और अन्य के मामले में, [2005 (99) आरडी 529** में रिपोर्ट किया है कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमा विशेष प्रकृति का मुकदमा है और राजस्व न्यायालय के समक्ष घोषणात्मक मुकदमा दायर करने के लिए कोई सीमा भी प्रदान नहीं की गई है। निर्णय का पैराग्राफ संख्या 6 प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:-

> **"6. श्री आर.सी. सिंह ने प्रस्तुत किया है कि धारा 229-बी के तहत मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था। इस तर्क के समर्थन में वे उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 पर निर्भर करते हैं, जो यह प्रावधान करती है कि सीमा अधिनियम उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होगा और घोषणा के लिए मुकदमे में सीमा सीमा अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होगी क्योंकि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के तहत ऐसे मुकदमे के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। धारा 341 में ही प्रावधान है कि सीमा अधिनियम सहित कुछ अधिनियमों के प्रावधान यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के तहत कार्यवाही पर तब तक लागू रहेंगे जब तक कि यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम में अन्यथा प्रावधान न किया गया हो। यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. नियम के नियम 338 में प्रावधान है कि परिशिष्ट III में निर्दिष्ट मुकदमे, आवेदन और अन्य कार्यवाही क्रमशः उनके लिए निर्दिष्ट समय के भीतर**

शुरू की जाएगी। सीमा अधिनियम के प्रावधानों का सहारा तभी लिया जा सकता है जब नियमों के अंतर्गत विभिन्न वर्गों के वादों या कार्यवाहियों के लिए सीमा अवधि के संबंध में कोई प्रावधान न हो। परिशिष्ट III में विभिन्न वर्गों के वादों के लिए प्रदान की गई सीमा अवधि दी गई है। सीमा अधिनियम के अंतर्गत वादों के संबंध में स्तंभ 4, जो विभिन्न वर्गों के वादों के लिए सीमा अवधि निर्धारित करता है, कहता है "कोई नहीं"। इसलिए यह माना जाएगा कि सीमा अधिनियम के अंतर्गत वाद दायर करने के लिए कोई सीमा नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल प्रकृति के सभी वाद सिविल न्यायालय में संस्थित किए जाएंगे, सिवाय उन वादों के, जिन्हें स्वीकार कर लिया गया है। धारा 229-बी के अंतर्गत वाद अपवादित श्रेणी में आता है और ऐसे वाद भले ही उनमें घोषणा शामिल हो, विशेष प्रकृति के वाद होते हैं। श्री सिंह द्वारा किसी भी मामले में सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 पर निर्भर किया गया है, जो केवल आवेदनों पर लागू होता है, वादों पर नहीं और इसलिए इसका कोई महत्व नहीं है। जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने विभिन्न श्रेणियों के मुकदमों के लिए अलग-अलग समय सीमा प्रदान की है तो यह माना जाएगा कि सीमा अधिनियम में समय सीमा निर्धारित करने वाले प्रावधान यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम के तहत मुकदमों पर लागू नहीं होंगे। यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 189 उन परिस्थितियों को निर्धारित करती है जिनमें भूमिदार का हित समाप्त हो जाता है। खंड (ए) (एए) और (बी) उन मामलों से संबंधित हैं जहां भूमिदर कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़कर मर जाता है, या जहां उसने अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में अपनी जोत को किराए पर दे दिया है या जहां भूमि अर्जित की गई है। धारा 189 की उप-धारा (सी) में प्रावधान है कि जहां भूमिदर ने कब्जा खो दिया है, कब्जा वापस पाने का अधिकार खो जाने पर भूमिदारी अधिकार समाप्त हो जाएगा। राम नरेश बनाम राजस्व बोर्ड, 1985 आरडी 444 में श्री आरसी सिंह द्वारा भरोसा करते हुए यह माना गया था कि सीमा अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान धारा 229-बी के तहत शुरू किए गए मुकदमों पर लागू होंगे। धारा 27 में प्रावधान है कि कब्जे के लिए वाद संस्थित करने के लिए सीमित अवधि के निर्धारण पर ऐसी संपत्ति पर अधिकार समाप्त हो जाएगा। यह नियम सामान्य नियम का अपवाद है कि सीमा उपचार को रोकती है लेकिन अधिकार को समाप्त नहीं करती है। हालांकि यदि कोई व्यक्ति कब्जे में है तो उसका अधिकार समाप्त नहीं हो सकता जब तक कि मामला धारा 189 के खंड

(ए) (एए) और (बी) के अंतर्गत न आ जाए। इसलिए वह किसी भी समय अपने अधिकार की घोषणा की मांग कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को बेदखल कर दिया गया है तो उसे यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 209 के तहत वाद संस्थित करना होगा। परिशिष्ट III धारा 209 के तहत वाद दायर करने के लिए सीमा अवधि प्रदान करता है। इसलिए यह अनुसरण करेगा कि धारा 229-बी के तहत एक वाद सीमा द्वारा वर्जित होगा क्योंकि भूमिदार कब्जे से बाहर है और धारा 209 के तहत वाद दायर करने का उसका अधिकार सीमा द्वारा वर्जित है। कब्जे के प्रश्न पर दर्ज तथ्य यह है कि वादी ने विवादित भूमि पर अपना निरंतर कब्जा स्थापित किया है। निष्कर्ष में किसी भी त्रुटि से कोई कमी नहीं दिखाई गई है। चूंकि वादी के अधिकारों का कभी हनन नहीं हुआ, इसलिए सीमा का कोई सवाल ही नहीं उठता। ऊपर दिए गए कारणों से रिट याचिका में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।"

20. यू.पी.जेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे के संबंध में सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग, इस न्यायालय ने 2019(145) आरडी 411 रोशन सिंह @ बंटी बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य में रिपोर्ट किए गए मामले में माना है कि सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग मुकदमे से पहले मुकदमे के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। निर्णय का पैराग्राफ सं. 6 अवलोकन के लिए प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:-

"6. इस न्यायालय ने वादपत्र का अवलोकन किया है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-3 के रूप में संलग्न है। शिकायत के पैराग्राफ 5, 6, 7 और 8 के अवलोकन से पता चलता है कि वादी ने खसरा संख्या 213, जिसका माप 1 बीघा, 9 बिस्वा और 6 बिसवांसी है, जो गांव खेड़ा, परगना डासना, जिला हापुड़, (तत्कालीन गाजियाबाद) में स्थित है, पर अपने अधिकारों की घोषणा करने और दिनांक 06.06.1977 की वसीयत को शून्य घोषित करने की मांग की है। कार्रवाई का कारण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि याची ने प्रत्यर्थियो द्वारा उसके साथ धोखाधड़ी का आरोप लगाया है। शिकायत के पैराग्राफ-6 में यह दावा किया गया है कि विवादित संपत्ति पर प्रत्यर्थियो के नाम दर्ज होने का तथ्य वादी से मई, 2006 तक छिपाया गया था। वादी द्वारा दावा किया गया है कि वह मृतक बलबीर सिंह के साथ सह-हिस्सेदार है, जिसके माध्यम से प्रत्यर्थी वसीयत के आधार पर दावा करते हैं। पैराग्राफ-8 में यह भी कहा गया है कि संपूर्ण म्यूटेशन कार्यवाही, जिसमें दिनांक 18.11.1998 का आदेश प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित

किया गया है, सभी उसकी पीठ पीछे की गई थी। ये ऐसे तर्क हैं जिनकी प्रथम दृष्टया साक्ष्य के आधार पर जांच की जानी चाहिए, भले ही कार्रवाई का कारण अंततः सीमा द्वारा वर्जित माना जाता हो। यह ऐसा मामला नहीं है जहां वादपत्र को पढ़ने पर, कार्रवाई का कारण सीमा द्वारा पूर्व दृष्टया वर्जित हो। आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के बारे में कानून थोड़े से भी संदेह से परे तय है। यह है कि, आदेश VII नियम 11 सीपीसी में उल्लिखित किसी भी आधार पर वादपत्र को खारिज किया जाना है या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए केवल वादपत्र में आरोपों को देखा जाना चाहिए। प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत बचाव या साक्ष्य पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जाना चाहिए। <u>आदेश VII नियम 11 सीपीसी के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग विचारण से पहले विचारण के रूप में नहीं किया जाना है।</u>

21. वर्तमान मामले में उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अन्तर्गत वाद की परिवेदना के पैरा संख्या 3 से 7 अवलोकनार्थ सुसंगत हैं, जो निम्नानुसार हैं:-

"न्यायालय श्रीमान उपजिलाधिकारी महोदय, तमकुहीराज, जनपद-कुशीनगर।

वाद संख्या- T201905440303976

श्रीमती ज्ञान्ती देवी पत्नी स्व० राजकिशोर निवासिनी मौजा- गड़हिया पाठक, तप्पा हवेली,
परगना सि० जो० तहसील-तमकुहीराज जनपद-कुशीनगर।

…….

(वादिनी)

3- यह कि वास्तविक तथ्य यह है कि विवादित भूखया मूलरूप से हम वादिनी के पति राज किशोर पुने राधाकिशुन की तनहा पैदाकरदगी भूमि है। जिस पर वे अपने जीवनकाल तक बहैसियत तनहा भूमि धर काबिज दाखिल एवं अध्यासित थे तथा उनके मृत्युपरान्त उनका तनहा वारिस होने के नाते वादिनी बहैसियत वारिस पत्नी वरासतन काबिज दाखिल एवं अध्यासित चली आ रही है, जो कभी भी खण्डित नही हुआ।

4- यह कि पूर्व चकबन्दी विवादित भूखण्ड की पुरानी भूखण्ड सं० 43/1.93 एकड़, 44/1.64 एकड़, 54/0.59 एकड़, 55/0.48 एकड़, अराजी सं० 56/0.48 एकड़ व 611/0.62 एकड़ था जो दौरान चकबन्दी जोत चकबन्दी आकार पत्र 11 व जोत चकबन्दी आकार पत्र 23 भाग मे भखण्ड सं० 43/1/1.20 एकड. 43/2/0.02 एकड 43/3/0.01 एकड़, 44/1/0.314 एकड़, 44/2/0.47, 54/3/.08 एकड़, 55/1/0.25 एकड़, 55/3/0.05 एकड़, 56/1/0.5 एकड़,

56/3/0.25 एकड़, व 56/4/0.02 एकड़ बना है। जिसकी नई वर्तमान भूखण्ड सं० 514/0.190 हे०. 515/0.942 हे० व 529/0.174 हे० बना है, जिसे विवादित भूखण्ड कहा जा रहा है।

5- यह कि उक्त ग्राम की चकबन्दी की कार्यवाही बीत जाने के काफी दिनों बाद वर्ष 2011 में हम वादिनी के पति राजकिशोर की मृत्यु हो गई तथा उनके मृत्युपरान्त वादिनी विवादित भूखण्ड पर बहैसियत तनहा भूमिधर मुतवारित वरासतन काबिज दाखिल एवं अध्यासित चली आ रही है।

6- यह कि विवादित भूखण्ड पर चकबन्दी पूर्व के खतौनी में तथा दौरान चकबन्दी आधार वर्ष की खतौनी, जोत चकबन्दी आकार पत्र-1, जोत चकबन्दी आकार पत्र-23 भाग (प) एवं उसके बाद के अन्य अभिलेखों मे वादिनी के पति राजकिशोर का नाम बहैसियत तनहा भूमिधर अंकित चला आया तथा अपने जीवनकाल तक काबिज दाखिल एवं अध्यासित रहें।

7- यह कि चूंकि प्रतिवादी प्रथम पक्ष काफी चालाक एवं मुकदमेबाज किस्म के व्यक्ति है, जिन्होने विवादित भूखण्ड को हड़पने की नियत से चकबन्दी अहलकारान को अपने साजिश में करके जोत चकबन्दी आकार अधिकारी के आदेश के अपना नाम अंकित करा लिया तथा वादिनी के पति राजकिशोर का नाम अभिलेखों से हटवा दिया। जिसकी कतई कोई विधिक पाबन्दी वादिनी पर नही है एवं उसकी कतई कोई जानकारी हम वादिनी के पति राजकिशोर व वादिनी को नही हो पाई। इस प्रकार विवादित भूखण्ड पर प्रितवादी प्रथम पक्ष का नाम खतौनी में ऋटिपूर्ण तरीके से अंकित चला आ रहा है।"

22. वादपत्र के उपर्युक्त पैरा संख्या 3,4,5 और 6 में वादिनी को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत अपने अधिकार की घोषणा के लिए वाद दायर करने के लिए कार्रवाई का कारण बताया गया है, जिसके अनुसार उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के अंतर्गत वादपत्र को प्रारंभिक स्तर पर अस्वीकार करना या खारिज करना अवैध होगा।

23. जहां तक याची के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क का प्रश्न है कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत मुकदमा वर्जित है, इस पर उचित चरण में सुनवाई के दौरान विचार किया जाएगा। याची को यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के बिंदु पर मुद्दा तैयार करने और कानून के अनुसार मुद्दे पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया जाएगा।

24. याची के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय विधि, मामले की उपरोक्त परिस्थितियों में लागू नहीं होगा।

26. इस न्यायालय द्वारा **पान कुमारी (उपरोक्त) और रोशन सिंह उर्फ बंटी (उपरोक्त)** में निर्धारित किए गए अनुपात के साथ-साथ संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, आरोपित आदेशों के विरुद्ध किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। रिट याचिका खारिज की जाती है। हालांकि, विचारण न्यायालय यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के मुद्दे सहित कानून के अनुसार मामले में मुद्दे तय करेगा और पक्षों को कानून के अनुसार साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद मुकदमे का फैसला करेगा।

(2023) 8 ILRA 456

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट सी संख्या 21339 वर्ष 2020

प्रखर नागर ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सिद्धार्थ खरे, श्री जिगर खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री राहुल चौधरी, श्री राहुल चौबे, श्री रिजवान अली अख्तर

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 याचिकाकर्ता ने प्रतिवादियों- विश्वविद्यालय द्वारा लगाए गए निष्कासन के दंड का विरोध किया है- याचिकाकर्ता को कभी भी आरोप-पत्र नहीं दिया गया जिसमें आरोपों का विवरण तथा प्रतिकूल सामग्री शामिल थी, जिस पर प्रतिवादियों- प्राधिकारियों ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय भरोसा किया था- याचिकाकर्ता के विरुद्ध ऐसी प्रक्रिया के तहत जांच के पश्चात आक्षेपित आदेश पारित किए गए, जो कानून में ज्ञात नहीं थी- जांच रिपोर्ट में विवरणों की प्रकृति और जिस तरीके से उन्होंने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया, उस पर चर्चा नहीं की गई है- आक्षेपित दंड के आदेश विकृत और अवैध हैं।

प्रतिवादी विश्वविद्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को नियमित छात्र मानते हुए उसे एक नई अंकतालिका जारी करे। इस नई अंकतालिका में आवेदक का मूल्यांकन 100 अंकों में से किया जाएगा। प्रतिवादी विश्वविद्यालय बी कैप हटा दे और याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई का कोई भी उल्लेख करने से भी बचेगा तथा नई अंकतालिका में "सितंबर, 2020 में पुनः उपस्थिति" का समर्थन हटा दे। विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई को किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष प्रकट नहीं किया जाएगा। (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत)

1. याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थियों- विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 25.02.2020 के आदेश द्वारा छह महीने की अवधि के लिए निष्कासन के दण्ड को और इसकी अपील में दिनांक 16.03.2020 के आदेश से न्यूनीकृत करते हुए इसे तीन महीने की अवधि के लिए निष्कासन के दण्ड को अधिरोपित किए जाने का तीव्र विरोध किया है। याचिकाकर्ता ने 100 अंकों में से याचिकाकर्ता के प्रदर्शन के मूल्यांकन को दर्शाते हुए नए अंक-पत्र जारी करने और "सितंबर, 2020 में पुन: उपस्थिति" के पृष्ठांकित चिह्न को हटाने और याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंकों पर बी कैप को हटाने की भी प्रार्थना की है। इसके अलावा, प्रार्थना यह है कि अंक-पत्र में याचिकाकर्ता के निष्कासन का उल्लेख नहीं होना चाहिए।

2. याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी- विश्वविद्यालय में बी.टेक (सीएसई) का छात्र है। याचिकाकर्ता पर विश्वविद्यालय द्वारा अनुशासनहीनता के विभिन्न कृत्यों का आरोप लगाया गया था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध 25.02.2020 के आदेश में अनावृत्त आरोपों का सार यहां दिया गया है:

> "छात्र अनुशासन समिति (एसडीसी) ने 11 फरवरी, 2020 को आयोजित अपनी बैठक में बी.टेक (सीएसई), सत्र 2016-20, नामांकन संख्या ए 2305216644, इंस्टीट्यूट-एमिटी स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी के छात्र श्री प्रखर नागर के मामले पर चर्चा की, जिस पर आरोप लगाया गया था कि उसने पहले और वर्तमान शैक्षणिक वर्षों के दौरान अनुशासनहीनता का कार्य किया था।
>
> एसडीसी ने मामले के संबंध में सभी उपलब्ध सूचनाओं की जांच की और उचित विचार-विमर्श के बाद निष्कर्ष निकाला कि उसने अनुशासनहीनता का निम्नलिखित कार्य किया है-
>
> छात्र आचार संहिता का उल्लंघन - पैरा ii, xiv, xviii.
>
> आर4/3/6/(जी) ऐसे आचरण में शामिल होना या प्रोत्साहित करना जो इसमें नैतिक अधमता सम्मिलित है।
>
> आर4/3/6/(एम) किसी भी तरीके या विवरण के लिए रिश्वत या भ्रष्टाचार का कोई भी प्रयास।
>
> आर4/3/6/(क्यू) विश्वविद्यालय प्रणाली के शैक्षणिक कामकाज में किसी भी तरह से व्यवधान पैदा करना।
>
> आर4/ 3/6(आर) परीक्षणों, परीक्षाओं या विश्वविद्यालय या कॉलेज या संस्थान की किसी भी अन्य गतिविधि से जुड़ी किसी भी प्रकार की विघटनकारी गतिविधि में शामिल होना या प्रोत्साहित करना, जैसा भी मामला हो।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे, श्री जिगर खरे की सहायता से, निम्नलिखित निवेदित करते हैं:

I. याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभियोग अस्पष्ट और सामान्य प्रकृति के हैं।

II. आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किए गए थे।

III. उपरोक्त सज़ा देने को उचित ठहराने के लिए रिकॉर्ड में कोई सामग्री नहीं है।

IV. सज़ा असंगत है।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के विद्वान वकील श्री राहुल चौधरी का कहना है कि अभियोग अनुशासनहीनता का गंभीर कृत्य हैं। मामले की विधिवत जांच करायी गयी, सज़ा आनुपातिक है और दूसरों को ग़लत काम करने से रोकने के उद्देश्य से दी गई है।अभियोग रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री से समर्थित हैं।

5. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

6. याचिकाकर्ता ने विशेषरूप से दावा किया है कि याचिकाकर्ता को कभी भी आरोप-पत्र नहीं दिया गया था जिसमें प्रतिकूल सामग्री के साथ-साथ अभियोगों का विवरण भी सम्मिलित था, जिस पर प्रत्यर्थी-अधिकारियों ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय विश्वास जताया था।

7. इस संबंध में रिटयाचिका में विशिष्ट दलीलों का प्रत्यर्थियों द्वारा अपने जवाबी हलफनामों में उल्लेख नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को भौतिक विवरण के साथ अभियोगों का खुलासा करने वाले आरोप-पत्र देने में विफलता ने उसे अपने मामले की प्रभावी रक्षा करने से अक्षम कर दिया। यह चूक प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का गंभीर उल्लंघन है। आरोपों की अस्पष्ट प्रकृति अनुशासनात्मक कार्यवाही को दूषित करती है।

8. आक्षेपित आदेशों में दूसरी गलती यह है कि उन्हें एकपक्षीय जांच के आधार पर पारित किया गया था। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में की जा रही जांच के संबंध में रिट याचिका में दी गई दलीलों को भी जवाबी हलफनामे में नहीं दर्शाया गया है। याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच एक ऐसी प्रक्रिया अपना कर की गई जो कानून को ज्ञात नहीं थी, जिसकी परिणति पारित आक्षेपित आदेशों के रूप में हुई।

9. प्रत्यर्थियों द्वारा जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न कुछ कार्यवाही चार्ट पर ध्यान आकर्षित करने के लिए कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने जांच कार्यवाही में भाग लिया था।

10. हालाँकि, जांच कार्यवाही में याचिकाकर्ता की भागीदारी के संबंध में जवाबी हलफनामे में दलीलों के अभाव में, दस्तावेज़ का प्रत्यर्थियों के लिए कोई लाभ नहीं है।

11. भले ही उपरोक्त दस्तावेजों को सार्थक रूप में लिया गया हो, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय की दलीलों से यह उद्घाटित नहीं होता है कि उक्त दस्तावेज याचिकाकर्ता को दिए गए थे या याचिकाकर्ता को किसी भी समय उपरोक्त प्रतिकूल सामग्री पर सूचित किया गया था। रिट याचिका के साथ संलग्न रिपोर्ट सहित उक्त प्रतिकूल सामग्री याचिकाकर्ता के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई का आधार बन गई। प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई उक्त प्रक्रिया से याचिकाकर्ता को जो पूर्वाग्रह हुआ, वह स्मरणीय नहीं है।

12. यह दलील कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट भी नहीं दी गई थी, जिससे उसे इसका खंडन करने से रोका जा सके, अब उस पर विचार किया जाएगा। जवाबी हलफनामे में स्पष्टरूप से दावा किया गया है कि उक्त जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को निलंबन आदेश के साथ भेजी गई थी। याचिकाकर्ता के पास इसे प्रेषित किए जाने का कोई साक्ष्य नहीं है। हालाँकि, न्याय के हित में, न्यायालय ने रिपोर्ट का अवलोकन किया है। उक्त रिपोर्ट में केवल कुछ छात्रों का संदर्भ दिया गया है जिन्होंने याचिकाकर्ता के नाम का उल्लेख किया था। यह उल्लेखनीय है कि जांच रिपोर्ट में बयानों की प्रकृति और जिस तरीके से उन्होंने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया, उस पर चर्चा नहीं की गई है। जांच रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता पर आरोप लगाना गलत है।

13. इस दृष्टि से इस तरह के विचार के अभाव में जांच रिपोर्ट प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन और विवेक का उपयोग न किए जाने के कारण दूषित हो गई है।

14. उक्त जांच रिपोर्ट के आधार पर पारित दंड के आदेश परिणामस्वरूप विकृत और अवैध हैं।

15. इस मामले का एक अन्य पक्ष भी है।

16. उच्च शिक्षा संस्थान में दंडात्मक कार्रवाई की योजना उसके प्रशासन की एक अनिवार्य विशेषता है। एक प्रणाली में दंड व्यवस्था को विश्वविद्यालय में अनुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक तत्वों को समाहित करना होगा जो इसके शैक्षणिक माहौल और एक सुधारात्मक दृष्टिकोण के लिए अनुकूल हो जो छात्रों के परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण है। अनुशासनात्मक कार्रवाई की प्रभावी प्रणाली की कुंजी निवारक प्रभाव और सुधारात्मक संभावनाओं के बीच संतुलन है।

17. **अनंत नारायण मिश्रा बनाम भारत संघ और 4 अन्य**[1] मामले में इस न्यायालय ने सुधारवादी दृष्टिकोण को पूरी तरह से छोड़कर छात्रों द्वारा अनुशासनहीनता या अपमानजनक व्यवहार से निपटने के लिए एकमात्र दंडात्मक व्यवस्था अपनाने के खिलाफ अपना रुख अपनाया। **अनंत नारायण मिश्रा (सुप्रा)** ने युवा विद्वानों द्वारा

1 2020(3)ADJ 466

अनुशासनहीनता या अपमानजनक व्यवहार से संबंधित मामलों से निपटने के लिए एक समग्र योजना का निर्देशन

किया, जिसमें एकदंड प्रणाली को सुधारात्मक दृष्टिकोण के साथ विधिवत एकीकृत किया गया है। इस न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में यूजीसी ने कदाचार के आरोपी छात्रों के लिए सुधार और आत्म-विकास की एक योजना बनाने के लिए 13.04.2023 को सभी विश्वविद्यालयों को उचित दिशानिर्देश जारी किए, ताकि कदाचार को सुधारने के लिए दंडात्मक व्यवस्था को पूर्ण किया जा सके।

18. न्यायालय को सूचित किया गया है कि विश्वविद्यालय यूजीसी के दिनांक 13.04.2023 के दिशानिर्देशों को लागू कर रहा है। विश्वविद्यालय यूजीसी दिशानिर्देशों दिनांक 13.04.2023 के अनुपालन में ऐसे मामलों से निपटने के लिए एक व्यापक सुधार और आत्मविकास कार्यक्रम विकसित कर रहा है।

19. याचिकाकर्ता ने वर्ष 2020 में बी.टेक पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया। उसे जारी की गये अंक पत्र में बी कैप लागू करते समय अन्य सभी छात्रों की भांति 100 अंकों के बजाय 70 अंकों में से उसके प्रदर्शन का मूल्यांकन किया गया। दूसरे, अंक पत्र में याचिकाकर्ता के निष्कासन का भी उल्लेख है।

20. उक्त कार्रवाई से याचिकाकर्ता को स्थायी दंडात्मक परिणाम भुगतने होंगे और उसका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। याचिकाकर्ता को निष्कासन की सजा भुगतनी पड़ी। बी कैप फॉर्मूले को लागू करते समय अंक पत्र में 100 के बजाय 70 अंक अंकित करके उसे हमेशा के लिए अक्षम करने का कोई कारण नहीं था।

21. याचिकाकर्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता एक उज्ज्वल भविष्य वाला युवा वयस्क व्यक्ति है। विश्वविद्यालय-अधिकारी एक सुधारात्मक कार्यक्रम के साथ दंडात्मक कार्रवाई को खत्म करने में विफल रहे, जो याचिकाकर्ता को सकारात्मक व्यवहार परिवर्तन के लिए और अपनी त्रुटियों के लिए, यदि कोई हो तो, संशोधन करने में सक्षम बनाता।

22. विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध उसके आचरण में सुधार करने, उत्कृष्टता की संभावनाओं का पता लगाने और उसकी प्रतिष्ठा को बचाने के अवसरों को छोड़कर, पूरी तरह से दंडात्मक कार्रवाई की गई थी। छात्रों द्वारा गलत व्यवहार से संबंधित मामलों में इसतरह का दृष्टिकोण असंगतता के आधार पर कार्रवाई को न्यायिक समीक्षा के लिए शक्तिहीन बना सकता है।

23. असंगतता दंडात्मक कार्रवाई को निष्प्रभावी कर देती है। **[देखें: रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ और अन्य[2]]**

24. दण्ड असंगत है और इस आधार पर भी निरस्त किया जा सकता है।

25. आक्षेपित आदेश दिनांक 25.02.2020 के साथ-साथ आक्षेपित अपीलीय आदेश दिनांक 16.03.2020 को विभिन्न अवधियों के लिए निष्कासित करना मनमाना और अवैध है। दिनांक 25.02.2020 और 16.03.2020 के

26. आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि से अस्थिर हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं।

27. इस दृष्टि से, बी कैप का प्रयोग कानून की दृष्टि से स्थिर नहीं है और इसे निरस्त किया जाता है।

28. प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को याचिकाकर्ता को नियमित छात्र मानते हुए नया अंकपत्र जारी करने का निर्देश दिया जाता है। नए अंक पत्र में आवेदक का मूल्यांकन 100 अंकों में से किया जाएगा। प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय बी कैप को हटा देगा और याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई का कोई संदर्भ देने से भी परहेज करेगा और नए अंकपत्र में "सितंबर, 2020 में पुन: उपस्थिति" के पृष्ठांकन को हटा देगा। विश्वविद्यालय द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई का प्रकटीकरण किसी अन्य प्राधिकारी को नहीं किया जाएगा।

29. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 8 ILRA 460

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट सी संख्या 21402 वर्ष 2023

पूजा यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता

श्री कृष्णम पांडे, श्री अमन तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

सी.एस.सी., श्री भरत प्रताप सिंह, श्री हृदय नारायण पांडे

अभिनिर्धारित-

शैक्षिक अभिलेखों में नाम परिवर्तन का अनुरोध, जब अपनी पसंद के स्व-अर्जित नाम पर आअभिनिर्धारित हो, तो उसे सक्षम सिविल न्यायालय से घोषणा और आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन से समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *जिज्ञासा यादव बनाम सीबीएसई (2021) 7 एससीसी 535* में दिशानिर्देश निर्धारित किया गया है। न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैरा 171 पर भरोसा करते हुए अभिनिर्धारित किया कि सीबीएसई ऐसे नाम परिवर्तनों के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकारी नहीं है और प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को दरकिनार नहीं कर सकता। किसी व्यक्ति की कानूनी स्थिति, जिसमें नाम भी शामिल है, के संबंध में घोषणात्मक अनुतोष प्रदान करने का अधिकार विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के अंतर्गत विशेष रूप से सिविल न्यायालयों में निहित है।

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि :</u>

1. जिज्ञासा यादव (नाबालिग) अभिभावक/पिता हरि सिंह बनाम केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं अन्य, (2021) 7 एससीसी 535

2. रश्मि श्रीवास्तव बनाम सेंट ऑफ यूपी एवं अन्य, रिट - सी संख्या 16056 वर्ष 2021

याचिका का निपटारा सक्षम सिविल न्यायालय से घोषणा प्राप्त करने की स्वतंत्रता के साथ किया जाता है। अनुपालन होने पर, बोर्ड सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के आलोक में मामले पर विचार करेगा

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत)

1. श्री कृष्णम पांडे, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री एच.एन. पांडे, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता, श्री भरत प्रताप सिंह, प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. रिट याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई शिकायत यह है कि कक्षा 10वीं और 12वीं की अंकतालिका के साथ ही प्रमाणपत्र में उसका नाम पूजा देवी से बदलकर पूजा यादव कर दिया जाए।

3. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता अब पूजा देवी के स्थान पर पूजा यादव के नाम से जाना जाना चाहती है।

4. रिट याचिका का सभी प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया है और यह तर्क दिया गया है कि इसी तरह के विवाद को उच्चतम न्यायालय ने (2021) 7 एससीसी 535 में प्रतिवेदित दीवानी अपील संख्या 3905/2011 (अभिभावक/पिता हरि सिंह के माध्यम से जिज्ञा यादव (नाबालिग) बनाम केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 03.06.2021 में निपटाया है। दरअसल, दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों ने एक ही निर्णय पर भरोसा जताया है और यह तर्क दिया गया है कि भले ही शीर्ष न्यायालय ने नाम बदलने की अनुमति दे दी हो, लेकिन जिज्ञा यादव (सुप्रा) के निर्णय में विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। पैराग्राफ संख्या 171 का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

*"171. जहां तक सीबीएसई द्वारा जारी प्रमाण पत्र में विवरण के "परिवर्तन" के अनुरोध का संबंध है, यह माना जाता है कि सीबीएसई प्रमाण पत्र में दर्ज किए जाने वाले विवरण स्कूल के अभिलेख के अनुरूप नहीं हैं। ऐसा अनुरोध दो अलग-अलग स्थितियों में किया जा सकता है।पहला सार्वजनिक दस्तावेजों जैसे जन्म प्रमाण पत्र, आधार कार्ड/निर्वाचन कार्ड आदि के आधार पर और उसके अनुरूप सीबीएसई प्रमाणपत्र में बदलाव को शामिल करना है। **दूसरी संभावना तब होती है जब परिवर्तन का अनुरोध बाद के समय में पसंद से प्राप्त नाम के कारण होता है।** उस परिवर्तन को उम्मीदवार से संबंधित सार्वजनिक दस्तावेजों द्वारा समर्थित होने की आवश्यकता नहीं है।*

(क) पहली श्रेणी पर लौटते हुए, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, 1872 के अधिनियम में परिकल्पित सार्वजनिक दस्तावेजों के संबंध में एक कानूनी धारणा है। इसलिए, ऐसे

सार्वजनिक दस्तावेजों को सीबीएसई द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। उन दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, सीबीएसई अपने द्वारा जारी प्रमाणपत्र में परिवर्तन दर्ज करने के अनुरोध पर विचार कर सकता है। हालाँकि, यह बिना शर्त होने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन आवेदक द्वारा सीबीएसई द्वारा निर्धारित कुछ उचित शर्तों को पूरा करने के अधीन है, जैसे, घोषणा युक्त शपथ पत्र प्रस्तुत करना और सीबीएसई को क्षतिपूर्ति देना और प्रशासनिक खर्चों के बदले निर्धारित शुल्क का भुगतान करना। सीबीएसई आवेदक द्वारा मूल प्रमाणपत्र (या प्रतिलिपि मूल प्रमाणपत्र, जैसा भी मामला हो) के समर्पण/वापसी पर उसके द्वारा जारी किए जाने वाले नए प्रमाणपत्र में परिवर्तन दर्ज करने से पहले आधिकारिक राजपत्र में सार्वजनिक सूचना और प्रकाशन जारी करने पर भी जोर दे सकता है। नए प्रमाणपत्र में मूल प्रविष्टि के सामने अस्वीकरण और शीर्षक/टिप्पणी हो सकती है (भूल जाने के अधिकार के प्रयोग में किए गए नाम परिवर्तन के संबंध में छोड़कर) जिसमें परिवर्तन दर्ज किए जाने की तारीख और उसके आधार का संकेत हो। दूसरे शब्दों में, नया प्रमाणपत्र ऊपर उल्लिखित शीर्षक/टिप्पणी के साथ परिवर्तन को अभिलेखित करते समय मूल विवरणों को बरकरार रख सकता है (भूलने के अधिकार के प्रयोग में किए गए नाम के परिवर्तन के संबंध में)।

*(ख) हालाँकि, **<u>बाद की स्थिति में जहां परिवर्तन किसी भी सहायक स्कूल अभिलेख या सार्वजनिक दस्तावेज़ के</u>** बिना नए अर्जित नाम के आधार पर किया जाना है, उस अनुरोध पर उस संबंध में **<u>कानून की अदालत द्वारा पूर्व अनुमति/घोषणा</u>** के लिए जोर देने और सीबीएसई द्वारा जारी मूल प्रमाणपत्र (या प्रतिलिपि मूल प्रमाणपत्र, जैसा भी मामला हो) के समर्पण/वापसी सहित आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन और निर्धारित शुल्क के भुगतान पर विचार किया जा सकता है। नए प्रमाणपत्र जैसा कि ऊपर उल्लिखित अन्य स्थितियों में है, में मूल प्रविष्टि (भूलने के अधिकार के प्रयोग में किए गए नाम के परिवर्तन के संबंध में छोड़कर) को बरकरार रखा जाता है और सीबीएसई के अस्वीकरण सहित अन्य विवरण तथा उस तारीख को इंगित करने वाला शीर्षक/टिप्पणी सम्मिलित किया जाता है जिस दिन इसे दर्ज किया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सीबीएसई को निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है और न ही आवेदक के दावे की सत्यता को सत्यापित करने के लिए उसके पास कोई तंत्र है।"*

5. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि उच्चतम न्यायालय ने **दो श्रेणियों** की स्थितियों पर विचार किया था जिसके तहत नाम बदलने की मांग की जा सकती थी। पहली श्रेणी उन मामलों से संबंधित है, जहां सार्वजनिक दस्तावेजों जैसे जन्म प्रमाण पत्र/आधार कार्ड/चुनाव कार्ड आदि के आधार पर उक्त अभिलेख के अनुरूप सीबीएसई प्रमाणपत्र में नाम परिवर्तन की मांग की जाती है और **दूसरी श्रेणी** उन स्थितियों से संबंधित है जहां कोई व्यक्ति बाद के समय में **अपनी पसंद** से नाम हासिल करना चाहता है। शीर्ष न्यायालय ने माना है कि इस तरह के बदलाव को उम्मीदवार से संबंधित सार्वजनिक दस्तावेजों

द्वारा समर्थित होने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इस संबंध में अनुरोध पर कानून की अदालत द्वारा पूर्व अनुमति/घोषणा के लिए जोर देने और सीबीएसई द्वारा जारी मूल प्रमाण पत्र के समर्पण/वापसी और निर्धारित शुल्क के भुगतान सहित आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन पर विचार किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सीबीएसई को निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है और न ही आवेदक के दावे की सत्यता को सत्यापित करने के लिए उसके पास कोई तंत्र है।

6. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उसी निर्णय के पैराग्राफ संख्या 156 और 157 का भी उल्लेख किया है और तर्क दिया है कि शीर्ष न्यायालय ने दीवानी न्यायालय द्वारा एक घोषणा प्राप्त करने पर जोर दिया है।

7. यद्यपि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-सी संख्या 16056/2021 (रश्मि श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 18.07.2022 के आदेश में निहित इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भरोसा किया है, मुझे लगता है इस न्यायालय ने, उक्त निर्णय में भी, जिज्ञा यादव (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया है और उक्त निर्णय के अनुरूप बोर्ड के समक्ष आवेदन करने का निर्देश जारी किया है।

8. जहां तक किसी व्यक्ति की स्थिति के संबंध में घोषणा देने की दीवानी न्यायालय की शक्ति का संबंध है, **विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34** को यहां संदर्भित करने की आवश्यकता है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है:-

"34: प्रास्थिति या अधिकार की घोषणा के संबंध में न्यायालय का विवेकाधिकार *- कोई व्यक्ति, जो किसी* ***विधिक हैसियत*** *का या किसी संपत्ति के बारे में किसी अधिकार का हकदार हो, ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध, जो ऐसी हैसियत का या* ***ऐसे अधिकार के हक का प्रत्याख्यान*** *करता हो या प्रत्याख्यान करने में हितबद्ध हो, वाद संस्थित कर सकेगा और न्यायालय स्वविवेक में उस वाद में यह घोषणा कर सकेगा की वह ऐसा हकदार है और वादी के लिये आवश्यक नहीं है कि वह उस वाद में किसी अतिरिक्त अनुतोष की मांग करे: परन्तु कोई भी न्यायालय वहाँ ऐसी घोषणा नहीं करेगा जहाँ कि वादी हक की घोषणा मात्र के अतिरिक्त कोई अनुतोष मांगने के योग्य होते हुए भी वैसा करने में लोप करे।*

9. अधिनियम, 1963 की धारा 34 से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की इच्छानुसार दर्जा देने या घोषित करने की शक्ति विशेष रूप से दीवानी न्यायालय में निहित है जो इस तरह की डिक्री देने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है।

10. एक बार जब जिग्या यादव (सुप्रा) मामले में शीर्ष न्यायालय ने उस नाम के संबंध में जिसे कोई व्यक्ति पसंद से अपनाना चाहता है, दीवानी न्यायालय से घोषणा प्राप्त करने पर जोर दिया है, यह न्यायालय एक अलग दृष्टिकोण नहीं रख सकता है और इसलिए इस मामले को उसी तर्ज पर तय करते हुए, याचिकाकर्ता को अपने दावे के संबंध में दीवानी

न्यायालय से एक घोषणा प्राप्त करने की अनुमति देते हुए रिट याचिका का **निपटारा** किया जाता है और एक बार ऐसी घोषणा प्राप्त हो जाने के बाद, वह उचित दस्तावेजों के साथ बोर्ड से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र है।

11. यदि याचिकाकर्ता की ओर से ऐसी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं और बोर्ड के समक्ष उचित माध्यम यानी कॉलेज के प्रधानाचार्य के माध्यम से आवश्यक दस्तावेजों के साथ प्रत्यावेदन किया जाता है, तो बोर्ड जिग्या यादव (सुप्रा) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के आलोक में उस पर विचार करेगा।

(2023) 8 ILRA 463

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट सी संख्या 23513 वर्ष 2022

दिनेश कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

विहित प्राधिकारी/एसडीओ सदर, मिर्जापुर एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अभिषेक कुमार यादव, श्री भोला नाथ यादव, श्री प्रेम प्रकाश

प्रतिवादियों के अधिवक्त:

सी.एस.सी., कंचन केशरी, श्री कुलदीप मिश्रा

अभिनिर्धारित:

उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 के अंतर्गत चुनाव याचिकाओं में, सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुप्रयोग उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनाव विवादों का निपटारा) नियम, 1994 के नियम 4 द्वारा सीमित है। उप-मंडल अधिकारी को पूर्ण साक्ष्य दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है और वह केवल प्रासंगिक समझे जाने वाले साक्ष्य तक ही सीमित रह सकता है। आदेश 18, नियम 4, सीपीसी और साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 पर भरोसा करना अनुचित है, क्योंकि नियम 4 (परंतु ii और iv) एक पूर्ण विशेष प्रक्रिया का निर्माण करता है जो सीपीसी के सामान्य प्रावधानों को अधिरोहित करता है।

अरुणेश बनाम विहित प्राधिकारी/एस.डी.ओ. गोंडा और राम अधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश में पूर्व में दिए गए निर्णय लागू नहीं होते क्योंकि उनमें उक्त विशिष्ट प्रावधानों पर विचार नहीं किया

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि</u>:

1. अरुणेश बनाम विहित प्राधिकारी/एस.डी.ओ. गोंडा, रिट सी संख्या 2904 वर्ष 2004

2. राम अधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश, 1985 इला डब्ल्यूसी 246

याचिका खारिज साथ ही निर्धारित प्राधिकारी को निर्देश दिया गया कि वह लंबित चुनाव याचिका पर शीघ्रता से, अधिमानतः दो महीने के भीतर निर्णय ले।

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत)

1. श्री भोला नाथ यादव, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और डॉ. कुलदीप मिश्रा, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और श्री सूर्यभान सिंह, प्रतिवादी संख्या 1, 9, 10, 11 और 12 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता **उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1947** की धारा 12-ग के तहत मुकदमा संख्या 7424/2021, सुरता नाथ @ सूरत नाथ बनाम दिनेश कुमार एवं अन्य में उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 08.06.2022 से व्यथित है, जिसके तहत गवाहों से जिरह की मांग करने वाले याचिकाकर्ता के एक आवेदन दिनांकित 27.04.2022 को **उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनावी विवादों का निपटान) नियम, 1994** (इसके बाद '1994 नियम' के रूप में संदर्भित) के नियम 4 प्रावधान (ii) और (iv) के मद्देनजर खारिज कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रिट याचिका संख्या 2904/2004 (अरुणेश बनाम विहित प्राधिकारी/एस.डी.ओ. गोंडा)** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि 1994 के नियमों के नियम 4 के अनुसार साक्ष्य दर्ज करते समय, जिरह का अवसर दिया जाना आवश्यक है।

4. उन्होंने आगे यह तर्क देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 18 नियम 4 के प्रावधान पर भरोसा किया है कि हलफनामे के माध्यम से प्रस्तुत साक्ष्य को जिरह का अवसर दिए बिना अभिलेख पर नहीं लिया जा सकता है।

5. उन्होंने आगे 14.03.1985 को निर्णीत 1985 ऑल.डब्ल्यू.सी 246 में रिपोर्ट किये गये **सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 11079/1983, राम आधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश और अन्य** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय और साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 के प्रावधानों पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि साक्ष्य को जिरह का अवसर दिए बिना अभिलेख पर नहीं लिया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने नियम 1994 के नियम 4 के परंतुक (ii) और (iv) पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1947 के तहत चुनाव याचिका में, सिविल प्रक्रिया संहिता को सीमित सीमा तक लागू करने की अनुमति है। जहां तक साक्ष्य दर्ज करने का सवाल है, सि.प्र.सं. के आदेश 18 नियम 4 में निहित सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। उन्होंने आगे कहा कि सि.प्र.सं. के प्रावधान प्रकृति में सामान्य हैं और 1994 के नियमों के प्रावधान विशेष क़ानून हैं जो सामान्य कानून पर लागू होंगे।

7. राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कोई भी निर्णय **1994 के नियमों के नियम 4 के परंतुक (ii) और**

(iv) से संबंधित नहीं है और 1994 के नियम विशेष कानून होने के कारण सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों पर प्रबल होते हैं।

8. उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनावी विवादों का निपटारा) नियमावली, 1994 का नियम 4 इस प्रकार है:-

*"**4. याचिका की सुनवाई.** -(1) अधिनियम और इन नियमों के प्रावधानों के अधीन, मुकदमों के परीक्षण के लिए प्रत्येक चुनावी याचिका की सुनवाई यथासंभव उप-विभागीय अधिकारी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत लागू प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी।*

परंतु-

(i) उप-विभागीय अधिकारी याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुन सकता है और यदि उसे पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पास कोई तथ्य नहीं है, तो विरोधी पक्षों को कोई नोटिस जारी किए बिना उसे अस्वीकार कर सकता है;

(ii) उप-विभागीय अधिकारी के लिए साक्ष्य को पूर्ण रूप से पुनः दर्ज करना आवश्यक नहीं होगा और वह अपने समक्ष पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का केवल एक ज्ञापन ही रख सकता है;

(iii) यदि कोई एकमात्र याचिकाकर्ता है और उसकी मृत्यु हो जाती है, या कोई एकमात्र प्रतिवादी है और उसकी मृत्यु हो जाती है, तो याचिका निरस्त कर दी जाएगी;

(iv) उप-विभागीय केवल ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है जो वह याचिका पर निर्णय लेने के उद्देश्य से प्रासंगिक समझे,

(v) जिला मजिस्ट्रेट किसी भी स्तर पर पर्याप्त कारण बताए जाने पर धारा 12-सी की उप-धारा (1) के तहत किए गए आवेदन को सुनवाई के लिए किसी अन्य उप-विभागीय अधिकारी को स्थानांतरित कर सकता है;

(vi) नियम 3 के उप-नियम (1) के तहत आवश्यक समय के भीतर प्रस्तुत नहीं किए गए या कोष चालान के बिना आवेदन को, किसी भी समय, उप-विभागीय अधिकारी द्वारा खारिज किया जा सकता है; और

(vii) उप-विभागीय अधिकारी अपने निर्णय की तारीख के पांच दिनों के भीतर दिए गए किसी भी पक्ष के आवेदन पर अपने आदेश की समीक्षा कर सकता है।

(2) यदि सुनवाई के बाद उप-विभागीय किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में पाता है जिसके चुनाव पर याचिका द्वारा सवाल उठाया गया है, कि उसका चुनाव वैध

था, तो वह ऐसे व्यक्ति के खिलाफ याचिका को खारिज कर देगा और अपने विवेक पर जुर्माना लगा सकता है और यदि वह पाता है आवेदन को पूरी तरह से निरर्थक मानते हुए वह यह भी आदेश दे सकता है कि सुरक्षा जमा राशि आंशिक या पूरी संबंधित ग्राम पंचायत को जब्त कर ली जाएगी।

(3) यदि उपखण्ड अधिकारी को पता चलता है कि किसी व्यक्ति का चुनाव अवैध था तो वह-

(क) एक आकस्मिक रिक्ति सृजित होने की घोषणा करेगा; या

(ख) किसी अन्य उम्मीदवार को विधिवत निर्वाचित घोषित कर सकता है, मामले की विशेष परिस्थितियों में जो भी रास्ता उचित प्रतीत होता है, और किसी भी मामले में अपने विवेक पर जुर्माना लगा सकता है:

परंतु ऐसी कोई घोषणा तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदन में इसके लिए दावा नहीं किया गया हो।

(4) सुरक्षा जमा या उसका भाग, जैसा भी मामला हो, उप-नियम (2) के तहत जब्त नहीं किया जाएगा और किसी भी विपक्षी को दी गई किसी भी लागत के भुगतान के लिए आवश्यक नहीं होगा, जिला पंचायत अधिकारी द्वारा जमा करने वाले व्यक्ति को या उसकी मृत्यु के मामले में, उसके कानूनी प्रतिनिधि को वापस कर दिया जाएगा।"

9. 1994 नियम के नियम 4 में पंचायत चुनाव से उत्पन्न होने वाली चुनाव याचिका की सुनवाई का प्रावधान है।

10. 1994 के नियमों के उपरोक्त प्रावधान को पढ़ने से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रयोग एक सीमित सीमा तक ही किया गया है और जहां तक साक्ष्य दर्ज करने का सवाल है, 1994 के नियमों के नियम 4 के परंतुक (ii) और (iv) अपने आप में पूर्ण संहिता हैं।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सि.प्र.सं. के आदेश 18 नियम 4 और सि.प्र.सं. की धारा 137 पर भरोसा करना गलत है। उपरोक्त प्रावधान सामान्य प्रकृति का होने के कारण वहां लागू नहीं होगा जहां विशेष कानून विशिष्ट प्रक्रिया प्रदान करता है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अरुणेश बनाम विहित प्राधिकारी/एस.डी.ओ. गोंडा (सुप्रा)** के निर्णय पर बहुत अधिक भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए हैं;

"5. मैं बता सकता हूं कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनावी विवादों का निपटान) नियम, 1994 उत्तर प्रदेश पंचायत राज

अधिनियम की धारा 110 के साथ पठित धारा 12-सी, 12-डी के तहत बनाए गए हैं। इन नियमों के नियम 4 में प्रावधान है कि चुनाव याचिकाओं की सुनवाई में सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रक्रिया इन नियमों के तहत बनाए गए नियमों के अधीन लागू की जाएगी। नियम 4 यह स्पष्ट करता है कि सि.प्र.सं. की प्रक्रिया लागू की जाएगी। अतः, विपक्षी संख्या 1 को निर्देशित किया जाता है कि लिखित विवरण में संशोधन एवं दस्तावेज तलब करने हेतु लम्बित प्रार्थना पत्रों का निस्तारण करें तथा इन आवेदनों के निपटान के बाद विपक्षी संख्या 1 को वाद का निर्धारण करने के लिए निर्देशित किया जाता है और वाद निर्धारण के बाद वह चुनाव याचिकाकर्ता के गवाहों के बयान दर्ज करेंगे और विपक्षी दलों को जिरह का अवसर दिया जाएगा। इसके बाद विपक्षीगणों को मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जायेगा। दोनों पक्षों के सभी दस्तावेज वाद निर्धारण की तिथि पर लिए जाएंगे। दोनों में से कोई भी पक्ष पीठासीन अधिकारी से उन विशिष्ट दस्तावेजों को बुलाने का अनुरोध करने के लिए स्वतंत्र होगा, जिन्हें चुनाव याचिका में साबित करने की आवश्यकता है और पीठासीन अधिकारी उन दस्तावेजों को बुलाने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है, यदि उन दस्तावेजों को यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि क्या कोई प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। यदि प्रथम दृष्टया यह पाया जाए कि मतपत्र मंगाने या पुनर्मतगणना का मामला बनता है तो दोनों पक्षों को सुनने के बाद मतपत्र मंगाने या पुनर्मतगणना के प्रश्न का निस्तारण किया जाए। जहां तक आक्षेपित आदेश का सवाल है, इस आदेश को तब तक लागू नहीं किया जाएगा जब तक कि ऊपर निर्देशित उचित प्रक्रिया का विपक्षी संख्या 1 द्वारा पालन नहीं किया जाता है और यदि इस आदेश को लागू किया जाना है, तो दोनों पक्षों को सुनने के बाद विशेष दस्तावेजों को इंगित करने वाला एक विशिष्ट आदेश होगा।"

13. उपरोक्त निर्देशों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने गवाहों से जिरह के संबंध में निर्देश पारित करते समय 1994 के नियमों के नियम 4 के परंतुक (ii) और (iv) के विशिष्ट प्रावधान पर विचार नहीं किया है। इसलिए, मेरे सुविचारित विचार में, उपरोक्त निर्णय में सावधानी का

अभाव है, इसी तरह **राम आधार सिंह (सुप्रा)** मामले में भी निर्णय 1994 के नियमों के नियम 4 के प्रावधान (ii) से संबंधित नहीं था, इसलिए, यह मौजूदा मामले में लागू नहीं हो सकता है।

14. उपरोक्त के मद्देनजर, मौजूदा रिट याचिका को गुण रहित होने के कारण **खारिज** किया जाता है।

15. इसके मद्देनजर, यह निर्देशित किया जाता है कि उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, सदर, मिर्ज़ापुर मौजूदा चुनावी याचिका पर कानून की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद यथाशीघ्र अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर निर्णय लेंगे।

(2023) 8 ILRA 466

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

रिट सी संख्या 26718 वर्ष 2023

राहुल कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

श्री राजेश यादव, श्री मुकुल यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

सी.एस.सी.

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950-पैरा **226-शपथपत्र दाखिल करना-**यह असामान्य है कि याचिकाकर्ता, राहुल कुमार ने अपना पता, अर्थात ग्राम-मुजफ्फरनगर केशोन, ब्लॉक मोहम्मदपुर देवमल, तहसील व जिला-बिजनौर का निवासी दर्शाया है, जबकि अभिसाक्षी का निवास स्थान अलग है, अर्थात ग्राम-भमौरापट्टी, भमोरी पट्टी, जिला-संभल। इस प्रकार अभिसाक्षी द्वारा याचिकाकर्ताओं के परिवार के सदस्य के रूप में उल्लिखित संबंध संदिग्ध प्रतीत होता है- वास्तविक तथ्य को प्रकट करने के लिए अभिसाक्षी; कमस सिंह का शपथपत्र आवश्यक है। तदनुसार, उसे दो सप्ताह के भीतर, विशेष रूप से, उपर्युक्त रिट याचिकाओं में दोनों याचिकाकर्ताओं के साथ अपने संबंधों को स्पष्ट करते हुए एक शपथपत्र दाखिल करना आवश्यक है, जिसे कार्यालय द्वारा अभिलेख में रखा जाएगा- स्टांप रिपोर्टर इस तथ्य का ध्यान रखेगा कि ऐसे मामलों में शपथपत्र याचिकाकर्ता स्वयं या उसके परिवार के सदस्य द्वारा दाखिल किया जाए। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. विवेकानन्द यादव बनाम सेंट ऑफ यूपी एवं अन्य 2010 (10) एडीजे 1 (एफबी)

2. नरेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य 2013 (1) एडीजे 228

3. राहुल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य- रिट-सी संख्या 26718 वर्ष 2023

4. जयदव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 26639 वर्ष 2023

5. श्रीमती शबिस्ता प्रवीन बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य रिट-सी संख्या 22385 वर्ष 2023, 09.08.2023 को निर्णीत

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा प्रदत)

1. सूची पुनरीक्षित की गई है। याची के पक्ष में कोई उपस्थित नहीं हुआ है।

2. श्री अनुराधा सुंदरम, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हैं।

3. शुरुआत मे ही, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि यह शिकायतकर्ता की याचिका है और शिकायतकर्ता होने के नाते याची को ऐसी याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, इसलिए यह याचिका बनाए रखने योग्य नहीं है। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए, उन्होंने ***विवेकानंद यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 1 अन्य***[1] के मामले में इस न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के फैसले पर और ***नरेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य***[2] के मामले में इस न्यायालय की को-ओरडीनटेड न्यायपीठ के फैसले पर भरोसा किया है।

4. उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता जो शिकायतकर्ता है, के पास याचिका दायर करने का कोई आधार नहीं है।

5. अतः, याचिका को अयोग्य ठहराया जाता है और ***खारिज किया जाता है।***

1 2010(10) एडीजे 1 (एफबी)

2 2013 (1) एडीजे 228

6. आदेश देने से पहले, यह न्यायालय इस तरह की याचिकाओं में हलफनामे दाखिल करने की प्रथा से निपटान करना आवश्यक समझता है, आज दो याचिकाएं, यानी रिट-सी संख्या 26718/2023[3] और 26639/2023[4] सूचीबद्ध हैं। दोनों मामलों में हलफनामे कमस सिंह द्वारा किए गए हैं, जो एक याचिका में, अर्थात् रिट-सी संख्या 26718 2023 में, उन्होंने खुद को याचिकाकर्ता अर्थात् राहुल कुमार के परिवार का सदस्य बताया है, और रिट-सी संख्या 26639 में 2023, जिसे अप्रभावी होने के कारण खारिज कर दिया गया है, याचिकाकर्ता अर्थात् जयदेव के मित्र बताया है। यह आश्चर्यजनक है कि याचिकाकर्ता, राहुल कुमार ने अपना पता विलेज-मुजफ्फरनगर केशन, ब्लॉक मोहम्मदपुर देवमल, तहसील और जिला-बिजनौर दिखाया है, जबकि अभिसाक्षी का निवास विलेज-भामौरापट्टी, भमोरी पट्टी, जिला-सम्भल भिन्न स्थान का है। इस प्रकार अभिसाक्षी द्वारा याचिकाकर्ताओं के परिवार के सदस्य के रूप में उल्लिखित संबंध संदिग्ध प्रतीत होता है।

7. याचिकाकर्ताओं के साथ उनके संबंध के संबंध में दोनों मामलों में उल्लिखित प्रतिवादी का पता वास्तविकता पर खरा नहीं उतरता। वास्तविक तथ्य को प्रकट करने के लिए,

अभिसाक्षी कमस सिंह का हलफनामे आवश्यक है। तदनुसार, उन्हें दो सप्ताह के भीतर उक्त रिट याचिकाओं में दोनों याचिकाकर्ताओं के साथ, विशेष रूप से, उनके संबंध की व्याख्या करते हुए एक हलफनामा दाखिल करने की आवश्यकता है, जिसे कार्यालय द्वारा रिकॉर्ड पर रखा जाएगा।

8. स्टांप रिपोर्टर यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे मामलों में हलफनामा स्वयं या उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा दाखिल किया जाए।

9. यहां, यह भी प्रासंगिक है कि स्टांप रिपोर्टर भी इस न्यायालय द्वारा ***श्रीमती शाबिस्ता प्रवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य***[5] के मामले में जारी निर्देशों के मद्देनजर हलफनामे दाखिल करने के संबंध में निर्देशों का पालन करेगा।

---

3 राहुल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश और 2 अन्य

4 जयदेव बनाम उत्तर प्रदेश और 2 अन्य

5 रिट-सी संख्या 22385/2023, 09.08.2023 को निर्णायित

10. श्री राजेश यादव, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से ऐसे मामलों में हलफनामे की पुष्टि करते समय सचेत रहने की अपेक्षा है।

11. रजिस्ट्रार कम्प्लायंस (अनुपालन) को तुरंत प्रभाव से इस आदेश का पालन करने के लिए सभी संबंधितों को सूचित करने के लिए निर्देशित किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 468

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज

रिट सी संख्या 27340 वर्ष 2019

विनय प्रकाश शुक्ल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आरुषि खरे, श्री सर्वेश कुमार पांडे, श्री विनय कुमार खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950-पैरा **226-खान एवं खनिज-** आक्षेपित आदेश बिना विचार किये पारित किया गया - केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता ने 28.9.2017 को 5 लाख रुपये जमा किए थे, यह निष्कर्ष निकाला गया था कि याचिकाकर्ता ने अवैध खनन किया था- नोटिस में कहा गया था कि 5436 घन मीटर रेत का उत्खनन किया गया था जबकि आदेश में कहा गया था कि 4302 घन मीटर अवैध रूप से उत्खनन किया गया था- यहां न तो कोई निरीक्षण किया गया था और न ही कोई रिपोर्ट मौजूद थी जिसके आधार पर आदेश पारित किया

गया था- याचिकाकर्ता से 5 लाख रुपये बिना किसी निर्णय के और जुर्माना आदि की मात्रा निर्धारित किए बिना स्वीकार किए गए थे, जो याचिकाकर्ता द्वारा मौखिक आश्वासन पर भुगतान किया गया था कि समझौता किया जाएगा और प्रति शपथपत्र में कोई विशिष्ट इनकार नहीं किया गया है- याचिकाकर्ता से ली गई 5 लाख रुपये की राशि उसे वापस की जाए और उस राशि पर जमा की तारीख से 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान किया जाए।

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत. (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अनंत नारायण मिश्रा बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य 2020 (3) एडीजे 466

2. रंजीत ठाकुर बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य 1987(4) एससीसी 611

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा
और
माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज द्वारा प्रदत)

1. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा आज दायर किए गए निर्देशों को अभिलेख में रखा जाए।

2. दिनांक 9.6.2017 के ई-टेंडर नोटिस के अनुसरण में, याची ने आवेदन किया और जब उसे जोन-10 के प्लॉट संख्या 6, क्षेत्रफल 10 एकड़ में 30,351 घन मीटर मोरम के खनन के लिए सर्वोच्च बोलीदाता पाया गया, तो उसे दिनांक 9.6.2017 से दिनांक 8.12.2017 तक छह महीने का परमिट दिया गया। जब याची मोरम का उत्खनन कर रहा था, तो उसे दिनांक 25.6.2017 को एक नोटिस मिला, जिसे पत्र संख्या 356 के रूप में क्रमांकित किया गया था, और उसे पर्यावरण मंजूरी प्रमाण पत्र प्रस्तुत न करने और सीसीटीवी कैमरा आदि न लगाने के संबंध में स्पष्टीकरण देना था। इसके साथ ही, याची को दिनांक 5.7.2017 को एक और नोटिस दिया गया, जिसमें वही नोटिस संख्या पत्र संख्या 356 दी गई थी और उसे कारण बताने की आवश्यकता थी कि 5436 घन मीटर के अवैध खनन के लिए रॉयल्टी और जुर्माना उससे क्यों न लिया जाए।

3. दिनांक 12.7.2017 को अवैध खनन के संबंध में नोटिस पर याची का जवाब प्रस्तुत किया गया जिसमें कहा गया कि याची ने कोई अवैध खनन नहीं किया है बल्कि वास्तव में खनन स्थल तक पहुँचने के लिए एक निश्चित रास्ता बनाया है। जब याची के जवाब पर विचार नहीं किया गया तो उसने रिट-सी संख्या 55531/2017 के तहत रिट याचिका दायर की और दिनांक 25.6.2017 के नोटिस को चुनौती दी। हालांकि, इस न्यायालय ने दिनांक 22.11.2017 को आदेश पारित किया कि याची के जवाब पर दिनांक 22.11.2017 के आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर विचार किया जाए।

4. रिट-सी संख्या 55531/2017 में पारित आदेश दिनांक 22.11.2017 के अनुसरण में दिनांक 25.1.2018 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें आरोप लगाया गया कि

चूंकि याची ने 5 लाख रुपये का जुर्माना जमा करके स्वीकार किया था कि उसने अवैध खनन किया है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जाना था कि याची ने अवैध खनन किया था। दिनांक 25.1.2018 के आदेश के पारित होने और रॉयल्टी के रूप में 38,88,000/- रुपये जमा करने के लिए दिनांक 31.5.2018 और दिनांक 18.8.2018 को नोटिस/आदेश जारी करने के बीच, याची ने दिनांक 6.2.2018 को एक आवेदन भी दायर किया था जिसमें कहा गया था कि आदेश गैर-बोलने वाला था और यह किसी निरीक्षण रिपोर्ट आदि पर आधारित नहीं था।

5. दिनांक 25.1.2018 के आदेश और दिनांक 31.5.2018 को जुर्माना आदि जमा करने के नोटिस से व्यथित होकर, तत्काल रिट याचिका दायर की गई है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रत्यर्थियों ने बहुत ही दुर्भावनापूर्ण तरीके से काम किया है। दिनांक 25.6.2017 और दिनांक 5.7.2017 को दो नोटिस जारी किए गए थे और दोनों को पत्र संख्या 356 के रूप में क्रमांकित किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि बिना किसी निरीक्षण और बिना किसी विचार के नोटिस भेजे गए थे। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि नोटिस भेजे जाने के बाद, याची को आश्वासन दिया गया था कि यदि वह 5 लाख रुपये जमा करता है, तो मामला सुलझा लिया जाएगा और आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी और इसलिए, याची ने प्रत्यर्थियों द्वारा दिए गए मौखिक आश्वासन के आधार पर दिनांक 28.9.2017 को 5 लाख रुपये जमा कर दिए थे।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मौखिक आश्वासन पर याची ने पैसा जमा कर दिया था और इसलिए, वास्तव में 5 लाख रुपये की ठगी की गई थी क्योंकि दिनांक 25.1.2018 के आपत्तिजनक आदेश को पारित करते समय इस पर ध्यान ही नहीं दिया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दिनांक 25.6.2017 के नोटिस में कहा गया था कि अवैध खनन 5436 क्यूबिक मीटर तक था, लेकिन आदेश में कहा गया था कि अवैध खनन 4320 क्यूबिक मीटर तक था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अवैध खनन के संबंध में दिनांक 25.6.2017 के नोटिस के अनुसरण में याची ने जो जवाब दिया था, उसमें स्पष्ट रूप से उन्होंने कहा था कि उन्होंने केवल उस भूखंड से एक रास्ता बनाया था जिसमें कथित तौर पर अवैध खनन हुआ था, लेकिन मामले के इस पहलू पर दूर से भी विचार नहीं किया गया।

8. प्रत्यर्थियों के मौखिक आश्वासन पर 5 लाख रुपए जमा करने के संबंध में याची द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 30 से 32 में उल्लेख किया गया है। उन्हें इस प्रकार यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"30. याची ने प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिए गए आश्वासन पर 5 लाख रुपये जमा कर दिए हैं कि मामले को नियम 75 के तहत समझौता

किया जाएगा और दिनांक 19.6.2017 और दिनांक 25.6.2017 के नोटिस वापस ले लिए जाएंगे।

31. याची ने खनिज की कीमत पहले ही अदा कर दी है और उसने अनुमत मात्रा से अधिक खनिज नहीं निकाला है तथा अनुमत मात्रा से कम मात्रा में खनिज निकाला है, इसलिए मांग अवैध है।

32. याची के अभ्यावेदन पर विचार करने के बजाय, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 18.3.2019 को एक नोटिस भेजा गया। दिनांक 18.3.2019 के नोटिस की एक प्रति इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 14 के रूप में दायर की जा रही है।"

9. जवाब में, श्री संदीप कुमार सिंह, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामे और निर्देशों पर भरोसा किया है, जो आज उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं।

10. श्री संदीप कुमार सिंह, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने कहा कि जब याची ने स्वीकार किया था कि अवैध खनन किया गया था और उसने 5 लाख रुपये जमा कर दिए थे, तो यह निष्कर्ष निकालने के अलावा कोई विकल्प नहीं था कि अवैध खनन हुआ था। पर्यावरण मंजूरी प्रमाण पत्र जमा न करने और सीसीटीवी कैमरा आदि न लगाने के संबंध में दिनांक 25.6.2017 को जारी किए गए दूसरे नोटिस के बारे में विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने खनन अधिकारी से प्राप्त निर्देशों के आधार पर बयान दिया है कि नोटिस हटा दिया गया था और कोई कार्रवाई नहीं की गई थी।

11. यह पूछे जाने पर कि रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 30 से 32 के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा क्या उत्तर दिया गया है, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 12 की ओर आकर्षित किया। सुविधा हेतु, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 12 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"12. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 30, 31, 32, 33 की विषय-वस्तु को जैसा कहा गया है, वैसा स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है। इसके उत्तर में यह प्रस्तुत किया गया है कि याची ने अवैध खनन के आरोप को स्वीकार किया है और चालान संख्या एम.ओ.10080 दिनांक 28.9.2017 के माध्यम से 5,00,000/- रुपए जमा किए हैं। याची ने दिनांक 19.6.2017 तक 5436 घन मीटर बालू के परिवहन के लिए जिला मजिस्ट्रेट, कौशाम्बी के कार्यालय से एम.एम.-11 प्राप्त किया। याची को नोटिस जारी करना सही था।"

12. जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 12 के अध्ययन से पता चलता है कि पैराग्राफ 30, 31, 32 और 33 में लगाए गए आरोपों का इतने शब्दों में खंडन नहीं किया गया है और केवल अस्पष्ट खंडन किया गया है। वास्तव में, यह स्वीकार किया गया है कि नोटिस भेजे

जाने से पहले ही याची से 5,00,000/- रुपये जमा करवाए गए थे।

13. तथापि, न्यायालय में खनन अधिकारी श्री अजीत कुमार पाण्डेय निर्देशों के साथ उपस्थित थे और उन्होंने कहा कि 5 लाख रूपये कम्पाउंडिंग के लिए नहीं लिये गये थे, बल्कि वास्तव में वे अवैध खनन के लिए रॉयल्टी और जुर्माने के लिए लिये गये थे।

14. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमारा मानना है कि दिनांक 25.1.2018 का आक्षेपित आदेश बिना किसी विवेक के पारित किया गया था। केवल इसलिए कि याची ने दिनांक 28.9.2017 को 5 लाख रुपये जमा किए थे, यह निष्कर्ष निकाला गया कि याची ने अवैध खनन किया था। इसके अलावा, हम पाते हैं कि नोटिस में कहा गया था कि 5436 क्यूबिक मीटर रेत का उत्खनन किया गया था, जबकि आदेश में कहा गया है कि 4302 क्यूबिक मीटर रेत का अवैध उत्खनन किया गया था। यह सब दिखाता है कि इसमें कोई विवेक नहीं लगाया गया था। इसके अलावा हम पाते हैं कि न तो कोई निरीक्षण किया गया था और न ही कोई रिपोर्ट मौजूद थी जिसके आधार पर आदेश पारित किया गया था। इस तथ्य के अलावा कि आदेश बिना किसी साक्ष्य पर आधारित है, हमें यह जानकर भी दुख हुआ कि याची से 5 लाख रुपये बिना किसी निर्णय के और जुर्माने आदि की मात्रा निर्धारित किए बिना स्वीकार कर लिए गए। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार यह राशि याची द्वारा मौखिक आश्वासन पर भुगतान की गई थी कि समझौता किया जाएगा, लेकिन जवाबी हलफनामे में कोई विशेष इनकार नहीं किया गया है।

15. यह तथ्य कि यह पैसा निर्णय से पहले लिया गया था, निश्चित रूप से याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई इस दलील को पुष्ट करता है कि विभाग द्वारा 5 लाख रुपए इस आश्वासन पर लिए गए थे कि समझौता किया जाएगा। यह खनन विभाग में एक दयनीय स्थिति को दर्शाता है।

16. ऊपर बताए गए कारणों से, हम मानते हैं कि दिनांक 25.1.2018 का आक्षेपित आदेश, जिसके बाद आक्षेपित 31.5.2018 का आदेश आया था, कानून की नज़र में कायम नहीं रह सकता और इसलिए, उन्हें रद्द किया जाना चाहिए। दिनांक 18.8.2018 का बाद का नोटिस भी रद्द किया जा रहा है। न्यायनिर्णयन से पहले, हम यह भी निर्देश देते हैं कि याची से ली गई 5 लाख रुपये की राशि उसे वापस की जाए और उस राशि पर जमा की तारीख से 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज दिया जाए।

17. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थीगण इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर याची द्वारा दिए गए उत्तर के आधार पर मामले पर पुनः निर्णय ले सकते हैं, जिसमें दिनांक 25.6.2017 को नोटिस जारी किए जाने से पहले किए गए स्थानीय निरीक्षण आदि को भी ध्यान में रखा जाएगा।

18. उपर्युक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2023) 8 ILRA 471

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

रिट सी संख्या 35884 वर्ष 2019

कृष्ण कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
अमोल कुमार, शिवांशु मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी., पीयूष पाठक, आरपी शुक्ला, शरद पाठक, सुखदेव सिंह, विद्या भूषण पांडे

अभिनिर्धारित -

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 - धारा 4(3) और 16 - माता-पिता के घर से बेटे को बेदखल करना - न्यायाधिकरण और जिला मजिस्ट्रेट का अधिकार क्षेत्र - दायरा - पिता के स्वामित्व वाली संपत्ति - याचिकाकर्ता, पुत्र, पत्नी के साथ एक कमरे में रहता है - घर के बाकी हिस्से में माता-पिता के शांतिपूर्ण रहने में कोई बाधा नहीं - पिता अब दिवंगत हो चुके हैं, मां के पास कब्जा है - याचिकाकर्ता के भरण-पोषण के दायित्वों को समक्ष से ही पूरा किए जाने पर विचार किए बिना बेदखली का आदेश पारित किया गया - आदेश अवैध है और इसमें न्यायिक दिमाग का प्रयोग नहीं किया गया है - जब तक अधिनियम के तहत वरिष्ठ नागरिक की "आवश्यकता" में बाधा न डाली जाए, तब तक बेदखली सरल नहीं हो सकती - अपीलीय आदेश रद्द - वास्तविक बाधा के मामले में मां को नए सिरे से आवेदन करने की स्वतंत्रता।

अभिनिर्धारित: अधिनियम, 2007 के अध्याय-II के अंतर्गत न्यायाधिकरण केवल बेदखली का निर्देश नहीं दे सकता। अपीलीय प्राधिकारी के रूप में, जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना होगा कि वरिष्ठ नागरिकों के अपनी संपत्ति में शांतिपूर्ण आनंद में कोई बाधा न आए, और बेदखली केवल अंतिम उपाय के रूप में ही उचित है जब वरिष्ठ नागरिक की "आवश्यकताओं" में बाधा उत्पन्न हो। वर्तमान मामले में, जहाँ याचिकाकर्ता - पुत्र एक कमरे में शांतिपूर्वक रह रहा है और माँ के कब्जे में हस्तक्षेप नहीं कर रहा है, बेदखली का निर्देश देने वाला अपीलीय आदेश टिकने योग्य नहीं था।

<u>उद्धरण</u>:

1. रणधीर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, फैजाबाद एवं अन्य,एमएएनयू /यूपी/1742/2019

2. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम, 2007 - धारा 2(बी), 4(3), 5, 7(1), 16

3. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125

4. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 - धारा 6

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा प्रदत)

1 - याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिवांशु मिश्रा की सहायता में श्री अमोल कुमार, अधिवक्ता , विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री विद्याभूषण पांडे, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री एस.पी. सिंह को सुना गया।

2 - वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण- पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 की धारा 16 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपील संख्या 1333/2019 और कंप्यूटर केस संख्या डी 2019046800133, जिसका शीर्षक 'कल्लूमल और अन्य बनाम कृष्ण कुमार' है, के माध्यम से विद्वान जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 22-11-2019 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है।

3 - मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि 16-07-1971 को याची के दादा स्व. रामधनी ने जगरूप के दोनों पुत्रों राम दुलारे और शिव दुलारे से विपक्षीगण संख्या 4 के पक्ष में गाटा संख्या 179, क्षेत्रफल 2 बिस्वा भूमि का एक हिस्सा विक्रय विलेख के माध्यम से क्रय किया तथा इसके बाद उसी गाटा का शेष भाग 2 बिस्वा याची के पिता ने 17-07-1971 को हिन्दू अविभाजित परिवार (एचयूएफ) की आय से अपने छोटे पुत्र के पक्ष में क्रय किया, जो उस समय नाबालिग था और इस प्रकार यह भूमि उसके पिता की संरक्षकता में क्रय की गई थी। उक्त भूमि क्रय करने के पश्चात याची के दादा ने एचयूएफ की कमाई से उक्त भूमि पर मकान बनवाया और उसी मकान में रह रहे थे। इसी बीच विपक्षीगण संख्या 4 की मृत्यु हो गई और इस प्रकार, स्वर्गीय ओम प्रकाश के स्वामित्व वाली संपत्ति विपक्षी पक्ष संख्या 4 और विपक्षी पक्ष संख्या 4 के बच्चों को बराबर हिस्सों में दे दी गई। निजी विपक्षी पक्षों के तीन बेटे और दो बेटियाँ हैं जिनके नाम राजेंद्र प्रसाद, कृष्ण कुमार, जनार्दन, सुशीला और अंजलि हैं। राजेंद्र प्रसाद की विधवा ने राजेंद्र प्रसाद की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह कर लिया और अपने पति के साथ रह रही है, जबकि राजेंद्र प्रसाद और सविता देवी के विवाह से पैदा हुआ नाबालिग बेटा याचिकाकर्ता के साथ रह रहा है।

4 - दिनांक 16-08-2018 को याचिकाकर्ता ने राजपति के साथ आर्य समाज मंदिर में विवाह कर लिया जो अनुसूचित जाति समुदाय से है और इस प्रकार याचिकाकर्ता के पिता नाराज थे और उन्होंने उपरोक्त विवाह को कभी स्वीकार नहीं किया। झुंझलाहट के कारण, विवाह को भंग करने के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ एक एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी, जिसके बाद, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 25345 (एम/ बी)/ 2018, (श्रीमती राजपति और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य) नाम से एक मामला दायर किया, जिसमें उनके पक्ष में एक अंतरिम राहत दी गई थी, हालांकि बाद में, इसका निपटारा कर दिया गया था।

5 - निजी- विपरीत पक्षों ने विद्वान प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, सुल्तानपुर के समक्ष धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अंतर्गत याचिकाकर्ता और उसके भाई के विरुद्ध भरण-पोषण अनुदान के लिए आवेदन प्रस्तुत किया और अंतरिम भरण- पोषण की राशि 8,000/- रुपये प्रतिमाह निर्धारित की गई तथा आधी राशि वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा दी जानी थी।

6 - विचाराधीन मकान में एक दुकान थी जिसे याचिकाकर्ता के पिता ने सादाब और इजहार को 26,500/- रुपये मासिक किराए पर दे रखा था, लेकिन सीआरपीसी की धारा 125 के तहत आवेदन करते समय इस बात को छिपा लिया गया। इसके बाद, निजी विपक्षी दलों ने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण- पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 (जिसे आगे अधिनियम 2007 कहा जाएगा) की धारा 7(1) के तहत भरण- पोषण के लिए आवेदन भी दायर किया, जिसमें उप- विभागीय मजिस्ट्रेट ने निजी विपक्षी दलों के पक्ष में आदेश पारित किया, हालांकि याचिकाकर्ता ने इसे चुनौती नहीं दी और याचिकाकर्ता अपने माता- पिता को हर महीने भरण- पोषण की राशि दे रहा है।

7 - तत्पश्चात, 14-12-2017 को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अपील दायर की गई, जिसके तहत याचिकाकर्ता को मकान खाली करने का निर्देश दिया गया। निजी विपक्षीगणों ने दिनांक 14-12-2017 के विक्रय पत्र के माध्यम से गाटा संख्या 179 की सम्पत्ति का एक भाग बेच दिया, जिससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने प्रश्नगत भूमि में 1/6 हिस्से का सह- हिस्सेदार घोषित करने के लिए सिविल वाद दायर किया, जो कि नियमित वाद संख्या 140/2019 (कृष्ण कुमार एवं अन्य बनाम कल्लू मल एवं अन्य) के रूप में पंजीकृत है।

8 - 13-03-2019 को, याचिकाकर्ता के पिता ने सुशीला और अंजलि को संपत्ति का उपहार विलेख निष्पादित किया, जो निष्पादक की बेटियां और याचिकाकर्ता की बहनें हैं और शेष संपत्ति सुरेश नरोत्तम दास नामक व्यक्ति के पक्ष में बेच दी गई और व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपने नाबालिग बेटे के साथ, 08-02-2019 के उपहार विलेख और 13-03-2019 के बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए नियमित वाद संख्या 944/2019 के तहत एक और वाद दायर किया। वर्तमान याचिकाकर्ता अभी भी घर के एक हिस्से में रह रहा है, लेकिन सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट और अपीलीय प्राधिकारी ने न्यायिक बुद्धि के प्रयोग के बिना और सबूतों पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किए बिना आपत्तिजनक आदेश पारित कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रश्नगत घर से बेदखल करने का निर्देश दिया गया । इस प्रकार, याचिकाकर्ता ने व्यथित होकर, यह प्रस्तुत याचिका दायर की है।

9 - याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है कि निस्संदेह, वर्तमान याचिकाकर्ता निजी विरोधी पक्षों का पुत्र है और यहां तक कि यह मानते हुए कि प्रश्नगत संपत्ति निजी विपक्षी पक्षों की संपत्ति है, वर्तमान याचिकाकर्ता पुत्र होने के नाते संपत्ति के 1/6 भाग का हकदार है और इसलिए, इन सभी तथ्यों पर विचार किए बिना, अधिनियम 2007 के तहत शक्ति का

प्रयोग करते हुए बेदखली का आदेश पारित किया गया है।

10 - उन्होंने तर्क दिया कि विद्वान जिला मजिस्ट्रेट ने अपील पर निर्णय लेते समय अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, जिससे निष्कासन और बेदखली का आदेश पारित किया गया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अधिनियम, 2007 की धारा 2(बी), जिसमें भोजन, कपड़े, आवास और चिकित्सा देखभाल और उपचार का प्रावधान शामिल है, याचिकाकर्ता द्वारा अपने माता- पिता को कभी भी देने से इनकार नहीं किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलीय अदालत यह समझने में भी विफल रही है कि याचिकाकर्ता के पिता के स्वामित्व वाली संपत्ति एक पैतृक संपत्ति है।

11 - आगे तर्क यह है कि सीआरपीसी की धारा 125 की कार्यवाही के तहत, भरण- पोषण की राशि पहले ही अदालत द्वारा 8,000 रुपये प्रति माह तय की गई है, जिसमें से 4,000 रुपये प्रति माह याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किया जाना है और याचिकाकर्ता के पिता द्वारा किराए पर दी गई एक दुकान से विपक्षी पक्षों को 26,500 रुपये प्रति माह की आय भी होती है।

12 - निवेदन यह है कि वास्तव में कहानी कुछ और है क्योंकि याचिकाकर्ता के पिता याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी के विवाह से नाराज थे, क्योंकि पत्नी अनुसूचित जाति समुदाय से है, वास्तव में याचिकाकर्ता के खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू करने का मूल कारण उसे संबंधित घर से बेदखल करना और याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी के बीच विवाह को खत्म करना है। उन्होंने दलील दी कि याचिकाकर्ता शादी से पहले हर मौके पर अपने माता- पिता का पूरा ख्याल रखता है और उसके पिता की नाराजगी के कारण उसके खिलाफ कई मामले दर्ज किए गए हैं और वह पैरवी करने के लिए दर- दर भटक रहा है।

13 - अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **मनु/यूपी/1742/2019, रणधीर सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, फैजाबाद और अन्य** में दर्ज मामले पर भरोसा रखा है और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 24,28 और 29 का उल्लेख किया है, जो नीचे उद्धृत हैं :-

"**24**. प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी संख्या 3, जो कि याचिकाकर्ता की पुत्रवधू है, को उक्त 2017 अधिनियम के उपबंधों तथा उत्तर प्रदेश माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण- पोषण तथा कल्याण नियम, 2014 (जिसे आगे "नियम 2014" कहा जाएगा) के मद्देनजर, याचिकाकर्ता की इच्छा के विरुद्ध उस मकान में निवास करने का अधिकार है, जो कि याचिकाकर्ता की स्व- अर्जित संपत्ति है।

28. विवादित आदेश पारित करते समय, जिला मजिस्ट्रेट ने उप- विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट का अध्ययन किया और पाया कि याचिकाकर्ता घर में पाँच कमरे होने के बावजूद अपनी बड़ी बहू के साथ अपनी मर्जी से रह रहा है; याचिकाकर्ता के बेटे और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच वैवाहिक विवाद लंबित है; और याचिकाकर्ता ने कोई ऐसा सबूत पेश नहीं किया है जिससे यह साबित हो सके

कि प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता को घर के अन्य पाँच कमरों में रहने से रोका है। उपरोक्त तथ्य की पृष्ठभूमि में, जिला मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड पर मौजूद ठोस सामग्री के आधार पर तथ्यों के विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किए हैं और याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिया गया निर्णय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत लागू नहीं होता है।

29. आरोपित आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट ने उप- मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के आधार पर विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि रिकॉर्ड पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, जो यह स्थापित करता हो कि प्रतिवादी संख्या 3 याचिकाकर्ता को संबंधित घर के अन्य पांच कमरों में रहने से रोकने की कोशिश कर रहा है। वास्तव में याचिकाकर्ता अपनी बड़ी बहू के साथ अपनी मर्जी से फैजाबाद में रह रहा है। वरिष्ठ नागरिक होने के नाते याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा के लिए, जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में विशेष रूप से संबंधित पुलिस स्टेशन को समय- समय पर दोनों पक्षों को देखने का निर्देश दिया है और पक्षों से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे एक- दूसरे के शांतिपूर्ण जीवन में हस्तक्षेप किए बिना सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहें।"

14 - उपर्युक्त का हवाला देते हुए, उन्होंने कहा कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि चूंकि वरिष्ठ नागरिक अपना घर छोड़कर कहीं और रह रहे थे, जबकि वहां रहने के लिए जगह थी और किसी ने उन्हें घर में रहने से नहीं रोका था, इसलिए कोई हस्तक्षेप उचित नहीं है। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता का मामला भी उपरोक्त निर्णय के अनुपात के अंतर्गत आता है क्योंकि वह घर के एक कमरे में रह रहा है और उसने अपने माता- पिता को वहां रहने से कभी नहीं रोका।

15 - अपनी दलीलों को समाप्त करते हुए, उन्होंने कहा कि यह एक अजीबोगरीब मामला है, जहां माता- पिता वास्तव में पीड़ित नहीं हैं, लेकिन बेटे को उसकी कोई गलती न होने के बावजूद परेशान किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता के पिता कल्लू मल की मृत्यु हो गई है और अब लालची बहनें और उनके पति संपत्ति को बेचने की कोशिश कर रहे हैं और इसीलिए, वे इस मामले में पैरवी कर रहे हैं, फिर भी याचिकाकर्ता और उनकी पत्नी घर के एक हिस्से में रह रहे हैं, जो पहली मंजिल पर है और एक दुकान, उनके कमरे के नीचे है, जो उनके कब्जे में है और घर का बाकी हिस्सा निजी विपक्षी पक्षों के कब्जे में है। उन्होंने कहा कि इस कृत्य का उद्देश्य बेटे को बेदखल करना या परेशान करना नहीं है, बल्कि यह वृद्ध माता- पिता के हितों की रक्षा के लिए है, जो वास्तव में, वर्तमान मामले में यह लागू नहीं होता। इस प्रकार, उन्होंने दलील दी कि निजी विपक्षी पक्ष अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ उप- विभागीय मजिस्ट्रेट के समक्ष साफ नीयत से नहीं आए और इस प्रकार, विवादित आदेश अवैधता और दुर्बलता पर हमला करते हैं।

16 - इसके विपरीत, विपक्षी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्कों का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई ठोस या कानूनी आधार नहीं बताया गया है और केवल तथ्यात्मक विवाद उठाया गया है। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता के पिता, कल्लू मल्ल की आयु लगभग 75 वर्ष थी और उनकी माता, समतुला देवी, कथित घटना के समय लगभग 68 वर्ष की थीं और अब, कल्लू मल्ल इस दुनिया में नहीं हैं। आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी ने अपने माता-पिता को बेरहमी से पीटा और उनके साथ दुर्व्यवहार किया और याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी द्वारा किए गए असहनीय उत्पीड़न के कारण, पिता और माता, जो वृद्ध और बीमार और अशक्त थे, असहाय और पीड़ा महसूस करते थे। उन्होंने कहा कि हर समय परेशानी का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता के पिता और माता ने उप के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। डिवीजनल मजिस्ट्रेट, जिस पर दिनांक 08-07-2019 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया और उसके बाद, एक अपील संस्थित की गई जिसमें 22-11-2019 को एक आदेश पारित किया गया: दिनांक 22-11-2019 के आदेश का प्रभावी भाग नीचे उद्धृत है :-

<u>आदेश</u>

"उपरोक्त विवेचना के आधार पर प्रस्तुत अपील स्वीकार की जाती है। न्यायालय माता पिता एवं वरिष्ठ नागरिक भरण पोषण एवं कल्याण अधिकरण/उपजिलाधिकारी सदर सुलतानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.07.2019 खण्डित किया जाता है तथा विपक्षी कृष्ण कुमार को उपरोक्त सम्पत्ति (मकान व दुकान) से निष्कासित किया जाता है। विपक्षी आदेश प्राप्ति से 45 दिवस के भीतर उक्त सम्पत्ति से अपना कब्जा हटा लें यदि उनके द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर अपना कब्जा नहीं हटाया जाता है तो स्थानीय पुलिस बल की सहायता से उन्हें उक्त सम्पत्ति से निष्कासित करने की कार्यवाही की जाय। आदेश की एक प्रति पुलिस अधीक्षक सुलतानपुर, उप जिला मजिस्ट्रेट सदर सुलतानपुर व संबंधित पक्षों को आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित की जाय। प्रभारी निरीक्षक कोतवाली नगर, सुलतानपुर उभयपक्षों पर आदेश का तामीला कराकर एक प्रति तामीला रिपोर्ट के साथ वापस करें। आदेश की प्रति के साथ अवर न्यायालय की पत्रावली वापस भेजी जाय। बाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली संचित अभिलेखागार हो। दिनांक-22.11.19"

17 - उपर्युक्त का संदर्भ देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा उस पर प्रचलित कानून पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता को बेदखल करने के संबंध में आदेश सही रूप से पारित किया गया है।

18 - उन्होंने आगे कहा कि जहां तक याचिकाकर्ता का दावा है कि वह मकान संख्या 778 का सह- हिस्सेदार है, जिससे विद्वान जिला मजिस्ट्रेट ने बेदखली का आदेश दिया है, वास्तव में यह सही नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के अनुसार सह- हिस्सेदार की श्रेणी में नहीं आता है। सह- हिस्सेदार के रूप में अपने अधिकार का दावा करने के इरादे से, याचिकाकर्ता ने कई

तरह की जालसाजी की और जब वह सफल नहीं हो सका, तो उसने वर्ष 1992 में स्वर्गीय ओम प्रकाश द्वारा निष्पादित एक जाली वसीयत तैयार की। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता के घर में बने रहने के लिए सभी तरह की जालसाजी की, लेकिन वह इसे साबित नहीं कर सका। यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता आपराधिक चरित्र का व्यक्ति है और अपने माता- पिता का बिल्कुल भी सम्मान नहीं करता है और इससे भी बढ़कर, उसने संपत्ति हड़पने के लिए उनके साथ दुर्व्यवहार किया और एक बार, याचिकाकर्ता कृष्ण कुमार और उसकी पत्नी के साथ रहना असंभव हो गया, जिसके बाद विपक्षी दलों ने अधिनियम, 2007 के तहत कार्यवाही शुरू की, जिसके बाद विपक्षी दलों ने सही तरीके से आदेश पारित किए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता और माता के साथ कई बार मारपीट की है और उन्हें चोटें भी आई हैं, जो कि सीसीटीवी कैमरे से भी स्पष्ट है।

19 - आगे दलील यह है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर गहनता से विचार करने के बाद और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि विपक्षी पक्ष संख्या 4 और 5, उनके बेटे यानी याचिकाकर्ता और उनकी पत्नी द्वारा दुर्व्यवहार किया जा रहा है और माता- पिता के लिए उनके साथ एक ही घर में रहना असंभव हो गया है, आदेश पारित किया है। उन्होंने कहा कि उप मंडल मजिस्ट्रेट या अपीलीय अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई गैरकानूनी और त्रुटिपूर्णता नहीं है। इसलिए, उन्होंने दलील दी कि वर्तमान याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

20 - पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करने और अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह सामने आया है कि वर्तमान याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी अपने माता- पिता के घर में रह रहे हैं। विपक्षी पक्षकार संख्या 4 और 5 द्वारा प्रस्तुत आवेदन से यह स्पष्ट है कि वर्तमान याचिकाकर्ता अपने पिता और माता को पीटता था, जो वृद्ध थे और वह उनका उचित भरण- पोषण भी नहीं कर रहा था। इसके अलावा, यह घटना आमतौर पर विपक्षी पक्षकार संख्या 4 और 5 के साथ होती है और इसलिए, व्यथित होकर, उन्होंने माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (जिसे आगे 'अधिनियम, 2007' कहा जाएगा) की धारा 5 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन प्रस्तुत किए जाने के बाद, संबंधित उप मंडल मजिस्ट्रेट ने 08-07-2019 को निम्नलिखित निर्देशों के साथ आदेश पारित किया :-

<u>आदेश</u>

"आदेश किया जाता है किः-

(1) प्रतिवादी कृष्ण कुमार सुत कल्लूमल को निम्न शर्तों के साथ प्रतिबंधित किया जाता है कि कृष्ण कुमार सुत कल्लूमल जिस दुकान में बर्तन का कारोबार करते हैं एवं जिस कमरे में रहते हैं एवं कमरे से लगे बाथरूम के अतिरिक्त घर के दूसरे हिस्से में बिना माता पिता की

अनुमति के प्रवेश नहीं करेंगे। यह प्रतिबन्ध इनकी पत्नी एवं बच्चों पर भी प्रभावी होगा।

(2) प्रभारी निरीक्षक कोतवाली नगर को आदेशित किया जाता है कि प्रत्येक 15 दिन में स्वयं अथवा क्षेत्रीय उपनिरीक्षक इनके घर पर जाकर सी०सी०टी०वी० में लगी हार्ड डिस्क /डी०वी०आर० का परीक्षण करेंगे एवं पड़ोसियों से पूँछ ताँछ करेंगे कि इनके पुत्र कृष्ण कुमार के द्वारा अपने माता पिता को प्रताड़ित तो नहीं किया जा रहा है। यदि कोई ऐसा साक्ष्य प्राप्त होता है तो न्यायालय के संज्ञान में लाते हुए आवश्यक कार्यवाही करेंगे।

(3) कृष्ण कुमार द्वारा अपने माता पिता को प्रताड़ित किया गया तो इन्हें घर से बेदखल करने की कार्यवाही की जायेगी। जैसा कि विपक्षी कृष्ण कुमार ने अपने बयान में स्वयं अंकित कराया है।

(4) माननीय प्रधान न्यायाधीश कुटुम्ब न्यायालय सुल्तानपुर के आदेश का अनुपालन करते हुए कृष्ण कुमार व जनार्दन कुमार सुतगण कल्लूमल प्रत्येक माह अपने माता पिता को भरण पोषण हेतु माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित भरण पोषण की धनराशि देते रहेंगे।

(5) कृष्ण कुमार एवं इनकी पत्नी एवं बच्चों के द्वारा माता पिता का पूर्णरूपेण आदर एवं सम्मान किया जायेगा।

(6) प्रभारी निरीक्षक कोतवाली नगर सुलतानपुर को इस निर्देश के साथ कि श्री कृष्ण कुमार सुत कल्लूमल पर सतर्क दृष्टि बनाये रखेंगे कि वह अपने माता पिता को प्रताडित न करें। आदेश की एक प्रति प्रभारी निरीक्षक कोतवाली नगर सुलतानपुर को अनुपालनार्थ भेजी जाय।

बाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल दफ्तर हो।"

21 - दिनांक 08-07-2019 के आदेश से व्यथित होकर, विपक्षीगण संख्या 4 एवं 5 द्वारा अपील प्रस्तुत की गई, जिसमें अपीलीय न्यायालय ने अपील स्वीकार कर ली तथा उप- विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता को विपक्षीगण संख्या 4 एवं 5 के मकान को आदेश प्राप्त होने की तिथि से 45 दिनों की अवधि के भीतर खाली करने का निर्देश दिया गया तथा खाली न करने की स्थिति में, स्थानीय पुलिस की सहायता से जबरन खाली कराने का भी निर्देश दिया गया।

22 - याचिकाकर्ता द्वारा स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि वह एक कमरे में रह रहा है तथा उसके कब्जे में एक दुकान है तथा मकान का शेष भाग उसकी मां और बहन के कब्जे में है। यह भी कहा गया कि चूंकि याचिकाकर्ता ने अनुसूचित जाति की महिला से विवाह किया था तथा नाराज होकर माता- पिता ने विपक्षी पक्ष संख्या 4 और 5 के मकान को खाली करवाने की कार्यवाही शुरू कर दी थी तथा याचिकाकर्ता या उसकी पत्नी द्वारा कभी भी कोई क्रूरता या चोट नहीं पहुंचाई गई।

23 - इस मामले में किसी भी चर्चा या निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, अधिनियम, 2007 को लागू करने के उद्देश्य पर गौर करना आवश्यक है। अधिनियम, 2007, अर्थात् माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण- पोषण और कल्याण विधेयक, 2007 जो कि 20-03-2007 को लोक सभा में पेश किया गया था और इस विधेयक का उद्देश्य भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण- पोषण और कल्याण तथा उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए अधिक प्रभावी प्रावधान करना था। यह माता- पिता के भरण- पोषण और उचित तंत्र प्रदान करने के लिए है, जो माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों को आवश्यकता आधारित भरण- पोषण प्रदान करता है, जिसमें वरिष्ठ नागरिकों को चिकित्सा सुविधाएं और वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए एक उपयुक्त तंत्र को संस्थागत बनाना और प्रत्येक जिले में वृद्धाश्रम स्थापित करना शामिल है। आजकल, जनसंख्या में लगातार वृद्धि के कारण, भारत में वृद्ध व्यक्तियों को कुपोषण और दवाओं और उपचार की अनुपलब्धता से पीड़ित देखा जाता है, जिससे जीवन प्रत्याशा में कमी आने की आशंका है। भारतीय समाज के पारंपरिक मानदंड और मूल्य परिवार के वृद्ध सदस्यों के प्रति सम्मान दिखाने और उनकी देखभाल करने पर जोर देते हैं, जिनकी देखभाल आमतौर पर परिवार द्वारा ही की जाती थी, लेकिन हाल के समय में समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली धीरे- धीरे कम होती जा रही है और इसलिए बड़ी संख्या में माता- पिता अपने बच्चों द्वारा अपना भरण- पोषण नहीं कर पा रहे हैं।

24 - यह एक स्थापित तथ्य है कि वरिष्ठ नागरिकों/ माता- पिता के लिए सुरक्षा, देखभाल और सम्मान का जीवन जीने के लिए परिवार सबसे वांछित वातावरण है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बच्चों को अपने माता- पिता के प्रति अपने नैतिक दायित्व को निभाने के लिए यह सुनिश्चित करना है , अधिनियम, 2007 का उद्देश्य वृद्ध व्यक्तियों के लिए 'अपने बच्चों से भरण- पोषण का दावा करने' के लिए एक सक्षम तंत्र बनाना है।

25 - जहां तक भरण- पोषण की परिभाषा का सवाल है, वह अधिनियम, 2007 की धारा 2(बी) के तहत परिकल्पित की गई है। इसमें कहा गया है कि भरण- पोषण में भोजन, कपड़े, निवास और चिकित्सा परिचर्या और उपचार के प्रावधान शामिल हैं। यदि इसे वर्तमान मामले के संदर्भ में देखा जाए, तो यह स्पष्ट है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 4 और 5 मकान के मालिक हैं, जिसमें उनके बेटे और बहू एक कमरे में रह रहे हैं और एक दुकान भी उनके कब्जे में है, जो उनकी आजीविका का स्रोत है। हालांकि, यह एक तथ्यात्मक मामले के रूप में आरोपित किया गया है कि याचिकाकर्ता की बहनों और बहनोईयों की शह पर, प्रश्नगत मकान को बेच दिया गया है, लेकिन, इस तथ्यात्मक विवाद में जाए बिना, यह निर्विवाद है कि वर्तमान याचिकाकर्ता एक कमरे में रह रहा है। यह भी एक तथ्य है कि इस स्तर पर, विपक्षी पक्षकार संख्या 4 यानी वर्तमान याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु हो गई है और केवल विपक्षी पक्षकार संख्या 5 यानी याचिकाकर्ता की मां जीवित है। अधिनियम,

2007 की धारा 4(3) को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि बच्चों का अपने माता- पिता का भरण- पोषण करने का दायित्व ऐसे माता- पिता (पिता या माता या दोनों) की जरूरतों तक विस्तारित होता है, ताकि वे सामान्य जीवन जी सकें। अधिनियम, 2007 की धारा 4(3) को नीचे उद्धृत किया गया है :-

"4. (3) बच्चों का अपने माता- पिता का भरण- पोषण करने का दायित्व ऐसे माता- पिता, चाहे पिता हो या माता या दोनों, जैसा भी मामला हो, की आवश्यकताओं तक विस्तारित होता है, ताकि ऐसे माता- पिता सामान्य जीवन जी सकें।"

26 - अधिनियम, 2007 की धारा 4(3) की व्याख्या और अर्थ, विशेष रूप से 'माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण- पोषण' शीर्षक से प्राप्त किया जा सकता है, जिसका अर्थ है कि माता- पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण- पोषण, जब तक वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामान्य जीवन जी सकें। माता- पिता का ऐसा भरण- पोषण इस अधिनियम का उद्देश्य है। वर्तमान याचिकाकर्ता एक कमरे में रह रहा है और एक और दुकान उसके कब्जे में है और घर का बाकी हिस्सा उसके दिवंगत पिता, अब माता , के कब्जे में है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान याचिकाकर्ता के माता- पिता को निवास/ घर के संबंध में कोई और आवश्यकता है और विशेष रूप से, जब पिता नहीं रहे और बेटा होने के नाते, वह एक कमरे में रह रहे हैं और मां अपनी बेटियों के साथ रह रही हैं।

27 - इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि समाज की सामाजिक संरचना के अनुसार, कभी- कभी, एक बेटा माता- पिता का भरण- पोषण करने की स्थिति में नहीं हो सकता है, विशेष रूप से, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता एक कमरे में रह रहा है और अन्य कमरे हैं, जहां दूसरा रह सकता है, इसलिए, पूरे परिदृश्य पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है कि क्या वर्तमान याचिकाकर्ता वास्तव में माता- पिता का भरण- पोषण करने से बच रहा है।

28 - इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी गौर किया है, जैसा कि बहस के दौरान कहा गया था कि याचिकाकर्ता की बहन उसकी मां के साथ मिली हुई है और वह संबंधित संपत्ति को बेचने की कोशिश कर रही है, क्योंकि वह मूल्यवान संपत्ति है और इसलिए उन्होंने वर्तमान याचिकाकर्ता को बेदखल करने की कोशिश की और बाधा यह है कि एक बार वह उक्त घर के एक कमरे में रहेगा, तो कोई भी उसे नहीं खरीदेगा।

29 - इसके अलावा, इस न्यायालय की यह राय है कि अधिनियम, 2007 के अध्याय- II के तहत न्यायाधिकरण वरिष्ठ नागरिकों के कहने पर संपत्ति से बेदखल करने का निर्देश नहीं दे सकता है, हालांकि न्यायाधिकरण बच्चों और रिश्तेदारों को उपरोक्त अध्याय के तहत दायर आवेदन के अनुसरण में ऐसे वरिष्ठ नागरिकों को आवास उपलब्ध कराने का निर्देश दे सकता है। यह भी सामने आता है कि अधिनियम, 2007 के तहत अपीलीय प्राधिकारी के रूप में जिला मजिस्ट्रेट यह सुनिश्चित कर सकता है कि कोई भी व्यक्ति किसी वरिष्ठ

नागरिक को उसकी 'आवश्यकता' के अनुसार संपत्ति का आनंद लेने में कोई बाधा न डाले और बेदखली का अधिकार अंतिम चरण है, जहां ऐसा प्राधिकारी पाता है कि किसी वरिष्ठ नागरिक की आवश्यकता पूरी नहीं हो रही है। मामला यह है कि वर्तमान याचिकाकर्ता अपनी पत्नी के साथ एक कमरे में रह रहा है और वह घर के दूसरे हिस्से में माता- पिता के शांतिपूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं डाल रहा है और इसलिए, जहां तक अधिनियम, 2007 के उद्देश्य का संबंध है, याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी तरह से बाधा नहीं डाली जा रही है।

30 - इसके अलावा बेदखली की प्रक्रिया सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित प्रक्रिया के समतुल्य नहीं है, जहां अधिकार और हक निर्धारित किए जाते हैं, अधिनियम, 2007 के प्रावधान वरिष्ठ नागरिकों की आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के लिए है और इसे सावधानीपूर्वक संभाला जाना चाहिए, ताकि परिवार की संरचना में व्यवधान न आए।

31 - उपर्युक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, जहां तक वर्तमान याचिकाकर्ता की बेदखली का संबंध है, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है।

32 - परिणामस्वरूप, अपील संख्या 1333/2019 में पारित दिनांक 22-11-2019 का आदेश निरस्त किया जाता है।

33 - विरोधी पक्ष संख्या 5 (याचिकाकर्ता की मां) को स्वतंत्रता दी जाती है कि यदि उसके निवास की आवश्यकता को आगे बढ़ाने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न की जाती है तो वह उचित आवेदन प्रस्तुत कर सकती है।

34 - याचिकाकर्ता को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह विरोधी संख्या 5 को प्रश्नगत मकान में रहने में कोई असुविधा न पहुंचाए।

35 - उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान याचिका का **निपटारा** किया जाता है।

36 - लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 479

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट सी संख्या 1001013 वर्ष 1996

मेसर्स जेनिथ इलेक्ट्रिकल प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड उत्तर प्रदेश, लखनऊ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

एस.के. कालिया, अजय प्रताप सिंह वत्स, शोभित मोहन शुक्ला

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., एस.एम.के. चौधरी

(ए) भूमि कानून -उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार नियमावली, 1952 - नियम 283ए, नियम 285-ए, नियम 285-आई एवं नियम 285-जे, परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा-5 - विलम्ब क्षमा - नियमावली, 1952 के नियम 285-आई के अन्तर्गत आयुक्त के समक्ष कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है - अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अन्तर्गत आपत्ति दाखिल करने में विलम्ब क्षमा करने हेतु आवेदन पोषणीय है - यदि नियमावली, 1952 की धारा-285-आई के अन्तर्गत कोई आपत्ति आयुक्त के समक्ष दाखिल की जाती है तो अधिनियम, 1963 की धारा-5 के अन्तर्गत आवेदन पूर्णतः लागू होता है तथा आयुक्त को आपत्ति दाखिल करने में विलम्ब क्षमा करने का अधिकार है -नीलामी कार्यवाही/बिक्री के संचालन में नियम, 1952 के प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में याचिकाकर्ता की आपत्ति पर विचार करने के लिए आयुक्त को अधिकृत किया गया है -न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करते समय कारण दर्ज किया जाना चाहिए। (पैरा - 11,14,15,16)

याचिकाकर्ता ने कंपनी की परिसंपत्तियों की नीलामी कार्यवाही को चुनौती दी है - जिसमें उप-खण्ड मजिस्ट्रेट का बिक्री पुष्टिकरण आदेश और आयुक्त का आदेश भी शामिल है -विलम्ब क्षमा आवेदन - पोषणीयता - 30 दिन के पश्चात आपत्ति दाखिल करने में विलम्ब को क्षमा करने की आयुक्त की शक्ति - उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार नियमावली, 1952 के नियम 285-आई के अंतर्गत नीलामी विक्रय के विरुद्ध याचिकाकर्ता की आपत्ति अस्वीकृत कर दी गई - राजस्व परिषद द्वारा आयुक्त के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण अस्वीकृत - अतः याचिका। **(पैरा-3,10)**

अभिनिर्धारित:-पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते समय राजस्व मंडल द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया। आयुक्त और राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेश निरस्त। आपत्ति दर्ज करने में विलंब के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर निर्णय लेने हेतु आयुक्त को निर्देश जारी। यथास्थिति बनाए रखें। **(पैरा 16,17,18)**

याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

पृथ्वीपत बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 5212 वर्ष 1987

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत)

1. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय प्रताप सिंह वत्स और राज्य-विपक्षी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आर.के. मौर्य को सुना गया।

2. विपक्षी संख्या 6 से 11 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याची ने कंपनी की परिसंपत्तियों की 13.06.1992 को हुई नीलामी कार्यवाही को चुनौती दी है, साथ ही उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के दिनांक 17.07.1992 के बिक्री पुष्टि आदेश और आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के दिनांक 23.03.1993 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 (जिसे आगे 'नियम, 1952' कहा जाएगा) के नियम 285-I के अंतर्गत दिनांक 13.06.1992 की नीलामी बिक्री के विरुद्ध आपत्ति खारिज कर दी गई थी और साथ ही राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के दिनांक 06.11.1995 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के आदेश के विरुद्ध याची का पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था।

4. मामले का तथ्यात्मक सार इस प्रकार है:-

5. याची कंपनी एक पंजीकृत कंपनी है जो ट्रांसफार्मर, बल्ब और अन्य बिजली के सामान का उत्पादन करती है और कारखाने में श्रमिक अशांति के कारण कंपनी में उत्पादन बंद हो गया और कंपनी को भारी नुकसान हुआ। इसलिए कंपनी बिक्री कर, बिजली बकाया और लघु उद्योग निगम के बकाया का भुगतान नहीं कर सकी।

6. बिजली के बकाये के साथ-साथ लघु उद्योग निगम का बकाया चुकाने में विफल रहने पर, कलेक्टर, गाजियाबाद द्वारा बिजली के बकाये के साथ-साथ लघु उद्योग का बकाया वसूलने के लिए 1,39,663.58/- रुपये की राशि का वसूली प्रमाण पत्र जारी किया गया। तत्पश्चात तहसीलदार, गाजियाबाद द्वारा जारी वसूली प्रमाण पत्र के अनुसरण में याची-कंपनी की संपत्ति कुर्क की गई और तत्पश्चात 13.06.1992 को उसकी नीलामी की गई, जिसे बाद में उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 17.07.1992 को विलम्ब-क्षम्य आवेदन के साथ पुष्टि की गई। उक्त नीलामी कार्यवाही के विरुद्ध याची कम्पनी ने नियम 285-आई के अन्तर्गत दिनांक 19.08.1992 को आपत्ति दाखिल की थी, जिसमें भौतिक अनियमितता तथा वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के आधार पर बिक्री को निरस्त करने की मांग की गई थी, लेकिन आयुक्त, मेरठ मण्डल, मेरठ ने याची की आपत्ति को दिनांक 23.03.1993 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया था कि याची द्वारा दाखिल दिनांक 19.08.1992 की आपत्ति समयबाधित है, क्योंकि नियम 285-आई के अनुसार इसे बिक्री की तिथि से 30 दिन के अन्दर दाखिल किया जा सकता था।

7. आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के दिनांक 23.03.1993 के आदेश से व्यथित होकर याची ने राजस्व परिषद, उ.प्र. लखनऊ के समक्ष पुनरीक्षण संख्या 15-92-93, जेनिथ इलेक्ट्रिकल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य को प्रस्तुत किया।

8. याची के अधिवक्ता का तर्क है कि याची की आपत्ति को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याची की आपत्ति समय सीमा से बाहर है या इसे बिक्री के 30 दिनों के बाद दायर किया गया था और याची के विलम्ब-

क्षम्य आवेदन पर विचार नहीं किया गया। यह भी कहा गया है कि यदि विलंब को क्षम्य करने पर कोई रोक नहीं है तो सीमा अधिनियम लागू होता है और विलंब को क्षम्य किया जा सकता है यदि आवेदन के साथ विलंब के पर्याप्त स्पष्टीकरण देने वाला हलफनामा दायर किया जाता है।

9. याची के अधिवक्ता ने आगे कहा कि राजस्व परिषद् का आदेश पूरी तरह से रहस्यमय है और इसमें कोई तर्क नहीं दिया गया। अंत में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि पूरी नीलामी कार्यवाही नियम 283ए, नियम 285-ए और नियम 285-जे, 1952 के उल्लंघन में संचालित होने के कारण रद्द किए जाने योग्य है।

10. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी है कि नियम 1952 के नियम 285-I में विलम्ब को क्षम्य करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए सीमा अधिनियम लागू नहीं होता। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि नीलामी की कार्यवाही नियम 1952 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी, इसलिए वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

11. पक्षकारों को सुनने और अभिलेख के अवलोकन के पश्चात् इस न्यायालय के विचारार्थ दो प्रश्न उठते हैं:

(I) क्या सीमा अधिनियम, 1963 (जिसे आगे अधिनियम, 1963 कहा जाएगा) की धारा-5 के अंतर्गत विलम्ब-क्षम्य आवेदन, आयुक्त के समक्ष नियम 285-I के अंतर्गत कार्यवाही में पोषणीय है और आयुक्त को तीस दिन की अवधि के बाद आपत्ति दाखिल करने में हुए विलम्ब-क्षम्य करने का अधिकार है?

(II) क्या प्रश्नगत नीलामी कार्यवाही नियम, 1952 के नियम 285-II और 285-H का उल्लंघन करके संचालित की गई है?

12. ऊपर उल्लिखित पहला प्रश्न **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 5212/1987 (पृथ्वीपत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)** में इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विचारार्थ आया। उस खंडपीठ ने दिनांक 04.09.1997 के निर्णय में पैराग्राफ संख्या 3 में स्पष्ट रूप से कहा कि नियम 285-I के तहत आयुक्त के समक्ष कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है और आपत्ति दाखिल करने में हुई विलम्ब-क्षम्य के लिए अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत आवेदन स्वीकार्य है। **पृथ्वीपत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (उपरोक्त)** के पैराग्राफ संख्या 3 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"3. चूंकि आयुक्त द्वारा सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन को खारिज करने और याची की आपत्ति को दिनांक 19.2.1987 के आदेश द्वारा पूर्ण पीठ द्वारा पलट दिए जाने के लिए इंदु इंजीनियरिंग (उपरोक्त) में खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया गया था, इसलिए इस आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता। उ.प्र. जेड.ए. और एल.आर. नियमों के नियम 285-आई के तहत दायर आपत्ति पर शुरू की गई कार्यवाही को न्यायिक कार्यवाही माना गया

है। इसलिए हम मानते हैं कि सीमा अधिनियम की धारा 5 नियम 285-आई के तहत कार्यवाही पर लागू होगी और विलम्ब-क्षम्य के लिए दायर याचीओं के आवेदन पर योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए था, जो आयुक्त द्वारा नहीं किया गया है।"

13. नियम 1952 के नियम 285-I में यह उल्लेख किया गया है कि बिक्री की तिथि से तीस दिनों के भीतर, नियम 1952 में उल्लिखित आधार पर बिक्री को रद्द करने के लिए आयुक्त को आवेदन/आपत्ति की जा सकती है। लेकिन यह नियम स्वयं आयुक्त को विलम्ब-क्षम्य से नहीं रोकता है यदि बिक्री के खिलाफ उपरोक्त आवेदन/आपत्ति तीस दिनों से अधिक समय के बाद दायर की जाती है, इसलिए, प्रावधान में ही, तीस दिनों से अधिक की आपत्ति दर्ज करने में विलम्ब-क्षम्य के लिए कोई निषेध नहीं है। नियम 1952 के नियम 285-I को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

***"285-I.** (i) बिक्री की तारीख से तीस दिन के भीतर किसी भी समय, आयुक्त को बिक्री को उसके प्रकाशन या संचालन में किसी तात्विक अनियमितता या गलती के आधार पर रद्द करने के लिए आवेदन किया जा सकता है; किन्तु कोई भी बिक्री ऐसे आधार पर तब तक रद्द नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदक आयुक्त को संतुष्टिप्रद रूप से यह साबित नहीं कर देता कि ऐसी अनियमितता या गलती के कारण उसे पर्याप्त क्षति हुई है।"*

14. उपरोक्त कानूनी स्थिति पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस विचार पर है कि **यदि नियम, 1952 की धारा-285-आई के तहत कोई आपत्ति आयुक्त के समक्ष दायर की जाती है, तो अधिनियम, 1963 की धारा-5 के तहत आवेदन बहुत अच्छी तरह से लागू होता है और आयुक्त को आपत्ति दर्ज करने में विलम्ब-क्षम्य करने का अधिकार है।**

15. जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, जो कि नीलामी कार्यवाही/बिक्री के संचालन में नियम, 1952 के प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित है, इसे याची की आपत्ति पर विचार करते समय आयुक्त द्वारा बहुत अच्छी तरह से निपटाया जा सकता है, इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि इस स्तर पर कोई निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता नहीं है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही कई निर्णयों में यह माना है कि न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित करते समय कारण दर्ज किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने राजस्व परिषद् द्वारा पुनरीक्षण में पारित आदेश के बारे में भी अपनी कड़ी नाराजगी व्यक्त की क्योंकि पुनरीक्षण को खारिज करते समय कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था, इसे केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि इसमें कोई बल नहीं है इसलिए पुनरीक्षण में पारित राजस्व परिषद् का आदेश भी रद्द करने योग्य है।

17. उपरोक्त कानूनी स्थिति के मद्देनजर, इस न्यायालय का विचार है कि आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ द्वारा पारित दिनांक 23.03.1993

का आदेश और राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 06.11.1995 का आदेश रद्द किए जाने योग्य है और इसलिए इसे रद्द किया जाता है और आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ को निर्देश जारी किया जाता है कि वे उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर उनके समक्ष दिनांक 19.08.1992 को आपत्ति दाखिल करने में विलम्ब-क्षम्य हेतु याची के आवेदन पर निर्णय लें।

18. यह भी निर्देश दिया जाता है कि नियम, 1952 की धारा 285-आई के तहत याची की आपत्ति के निपटारे तक याची की संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखी जानी चाहिए, जो कि नीलामी कार्यवाही का विषय थी।

19. उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 483

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट सी संख्या 3000008 वर्ष 1995

और

रिट सी संख्या 3000066 वर्ष 1995

गुरमीत सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

डॉ. आर.के. श्रीवास्तव, श्याम मोहन प्रधान

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

(ए) भूमि कानून -उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम 1960 - धारा 10(2) - विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहने वाले या अपूर्ण या गलत विवरण प्रस्तुत करने वाले खातेदारों को सूचना - अधिनियम की धारा 5(6) के अंतर्गत बिक्री-विलेख की वैधता के संबंध में कोई जांच 24.1.1971 से पूर्व निष्पादित बिक्री-विलेख की वास्तविकता के संबंध में नहीं की जा सकती। (पैरा-19)

अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत नोटिस - मूल खातेदार को जारी - 83.57 एकड़ भूमि को 'अतिरिक्त' घोषित करने का प्रस्ताव - विवाद - क्या 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत उसी खाते के संबंध में पुनः नोटिस जारी किया जा सकता है - मूल खातेदार को विक्रय-विलेख पर आपत्ति थी - विहित प्राधिकारी द्वारा खारिज - पंजीकृत विक्रय-विलेख निष्पादित करके भूमि का बड़ा भाग बेचा गया - सभी विक्रय-पत्र निर्दिष्ट तिथि अर्थात 24.01.1971 से पूर्व निष्पादित - 1960 के अधिनियम में निर्धारित। **(पैरा - 4,5,17)**

अभिनिर्धारित:-न्यायालय ने पाया कि विहित प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इस मामले में विक्रय-पत्रों पर विवाद करना अनुचित है। प्रांगन्याय के सिद्धांत के अनुसार, वही

भूमि 1975 में 1960 के अधिनियम के अधीन थी और मूल काश्तकार की जोत से बाहर कर दी गई थी, और इसलिए उसे पुनः 1960 के अधिनियम के अधीन नहीं किया जा सकता। यह विहित प्राधिकारी के भिन्न दृष्टिकोण का खंडन करता है। विहित प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाते हैं। **(पैरा 22, 23)**

याचिकाएं स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. देवेंद्र नाथ सिंह (मृत), कानूनी उत्तराधिकारियों एवं अन्य के माध्यम से बनाम सिविल जज एवं अन्य, एआईआर 1999 एससी 2264

2. प्यारे व अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, कैंप, फैजाबाद व अन्य, रिट याचिका संख्या 423 वर्ष 1977

3. रामाधार सिंह बनाम निर्धारित प्राधिकारी एवं अन्य, 1994 अनुपूरक (3) एससीसी 702

4. इंद्रपाल सिंह एवं अन्य बनाम विहित प्राधिकारी, मेरठ एवं अन्य, 2007(103) आरडी 102

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा प्रदत)

1. उपर्युक्त दोनों मामलों पर एक साथ सुनवाई की जा रही है, क्योंकि वे सामान्य कार्यवाही से उत्पन्न हुए हैं।

2. श्री श्याम मोहन प्रधान, अधिवक्ता तथा याचिकाकर्ता के अधिवक्ता डॉ . आर.के. श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हैं।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा निर्धारण अधिनियम 1960 (जिसे आगे '1960 का अधिनियम' कहा जाएगा) के प्रावधानों के तहत कार्यवाही और पारित आदेशों को चुनौती दी है।

4. यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम 1960 की धारा 10(2) के तहत मूल खातेदार श्री लाभ सिंह पुत्र मेहताब सिंह को एक नोटिस जारी किया गया था, जो 03.12.1974 को उन्हें दिया गया था। उक्त नोटिस के अनुसार, 83.57 एकड़ भूमि को 'अतिरिक्त' घोषित करने का प्रस्ताव था।

5. मूल खातेदार ने उक्त नोटिस पर अपनी आपत्तियां दर्ज कीं और कहा कि उसने उक्त भूमि का बड़ा हिस्सा पंजीकृत विक्रय-विलेख निष्पादित करके बेच दिया है। 03.06.1970 को 12.05 एकड़ - गुर बचन कौर के पक्ष में ; 08.04.1970 को 12.05 एकड़ - जितेंद्र सिंह के पक्ष में; 08.04.1970 को 12.05 एकड़ - बिंदर कौर के पक्ष में; 03.06.1970 को 12.05 एकड़ - गुरमीत सिंह के पक्ष में; 03.06.1970 को 12.05 एकड़ - बेयंत सिंह कौर के पक्ष में; 03.06.1970 को 12.30 एकड़ - इंद्रपाल सिंह के पक्ष में ; 18.04.1970 को 11.24 एकड़ - अरविंद कौर के पक्ष में; और उन्होंने आगे कहा कि ये सभी बिक्री-कार्य 1960 के अधिनियम में

निर्धारित कट-ऑफ-डेट, यानी 24.01.1971 से पहले निष्पादित किए गए हैं और इसलिए उक्त भूमि को मूल धारक की जोत से बाहर रखा जाना चाहिए। यह भी कहा गया कि उक्त भूमि को बाहर करने के बाद कोई भी भूमि नहीं बची है, जो उक्त अधिनियम में निर्धारित सीलिंग-सीमा से अधिक हो, और तदनुसार उन्हें जारी किए गए नोटिस के निर्वहन के लिए प्रार्थना की। मूल काश्तकार ने निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष सभी बिक्री-कार्यों का साक्ष्य दाखिल किया था और उनके द्वारा उठाई गई आपत्तियों के समर्थन में खुद की जांच भी की थी।

6. विहित प्राधिकारी ने अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री पर विचार करने तथा विक्रय-पत्रों का अध्ययन करने के पश्चात् मूल पट्टेदार द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों से सहमति व्यक्त की तथा उन सभी भूमियों को बाहर कर दिया, जो उक्त विक्रय-पत्रों के आधार पर हस्तांतरित की गई थीं तथा मूल पट्टेदार को जारी किए गए नोटिसों को निरस्त कर दिया।

7. वर्तमान प्रकरण में विवाद 08.07.1991 को 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के तहत धीरज सिंह को एक और नोटिस जारी करने पर शुरू हुआ, जो मूल पट्टेदार का बेटा है। आपत्तियाँ इस दलील के साथ दायर की गई थीं कि प्रकरण के इस पहलू पर पहले से ही निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विचार किया जा चुका है, जब उन्होंने उसी होल्डिंग के संबंध में तत्कालीन मूल पट्टेदार लाभ सिंह को नोटिस जारी किया था और बिक्री-पत्रों के आधार पर उन्होंने नोटिसों का निर्वहन किया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार नोटिस जारी होने के बाद, 1960 के अधिनियम के तहत कार्यवाही समाप्त हो गई और निर्धारित प्राधिकारी ने रिकॉर्ड पर सभी साक्ष्यों, विशेष रूप से बिक्री-पत्रों पर उचित विचार करने के बाद नोटिसों का निर्वहन किया, जहाँ उनकी होल्डिंग को कट-ऑफ-डेट से पहले सात व्यक्तियों को बेचा गया था।

8. दूसरी ओर, राज्य ने दलील दी कि लाभ सिंह द्वारा निष्पादित बिक्री-पत्र दिखावटी और काल्पनिक थे और उन्हें केवल 1960 के अधिनियम के तहत सीलिंग कार्यवाही से बचने के लिए दर्ज किया गया था। यह भी कहा गया है कि सभी विक्रेता नाबालिग थे, जब बिक्री-पत्र निष्पादित किए गए थे और वे उक्त अधिनियम के प्रभावी होने की तिथि पर भी नाबालिग थे और वास्तव में, भूमि हमेशा मूल किरायेदार धारक और बाद में याचिकाकर्ता, जो उसका बेटा है, के पास निहित थी। इस तरह, यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता के पास 1960 के अधिनियम के तहत निर्धारित भूमि से अधिक भूमि थी और परिणामस्वरूप, उसे उक्त अधिनियम के तहत कार्यवाही के अधीन करने में कोई कमी नहीं थी ।

9. निर्धारित प्राधिकारी ने 22.06.1993 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई सभी आपत्तियों को खारिज कर दिया और 59.182 एकड़ भूमि को 'अतिरिक्त भूमि' घोषित कर दिया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि बिक्री-पत्र निष्पादित किए जाने की तिथि पर सभी विक्रेता नाबालिग थे और लाभ सिंह ने भूमि अपने पोते-पोतियों को बेच दी थी, जबकि बिक्री-पत्र के अनुसार भी वह उक्त भूमि

पर काबिज था। इस तर्क के संबंध में कि धारा 10(2), अधिनियम 1960 के तहत कार्यवाही अंतिम रूप से समाप्त हो गई थी, निर्धारित प्राधिकारी के पास इसे फिर से खोलने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि कार्यवाही रिस-ज्यूडिकाटा के सिद्धांत पर विचार करते हुए खराब थी, उन्होंने मुद्दा संख्या 5 पर निर्णय देते हुए याचिकाकर्ता की इस दलील को खारिज कर दिया कि पक्ष अलग-अलग हैं और भूमि भी अलग-अलग है।

10. विहित प्राधिकारी के दिनांक 22.06.1993 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता द्वारा दो अपीलें प्रस्तुत की गईं तथा अपर आयुक्त (न्यायिक)-I, लखनऊ मंडल, लखनऊ द्वारा दिनांक 22.06.1994 के आदेश द्वारा साझा निर्णय द्वारा उनका निर्णय किया गया। उक्त अपीलों को खारिज कर दिया गया तथा विहित प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि की गई। उक्त अपीलों को खारिज करते हुए अपीलीय प्राधिकारी ने पाया कि राज्य ने उन विक्रेताओं की आयु के बारे में कोई विवरण नहीं दिया है, जिनके लिए लाभ सिंह द्वारा बिक्री-पत्र निष्पादित किए गए थे तथा आगे स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि धारा 10(2) के अंतर्गत जारी किए गए नोटिस त्रुटिपूर्ण थे, क्योंकि परिवार का विवरण ठीक से नहीं दिखाया गया था तथा यह भी नहीं दर्शाया गया था कि वे नाबालिग थे या नहीं।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निर्धारित प्राधिकारी तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर आपत्ति जताते हुए कहा कि कार्यवाही की शुरुआत अवैध, मनमाना तथा वैधानिक प्रावधान के विपरीत थी। उन्होंने आगे कहा कि एक बार जब मूल पट्टेदार लाभ सिंह के खिलाफ धारा 10(2), अधिनियम 1960 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी तथा उनकी आपत्तियों को बरकरार रखा गया था, क्योंकि ये सभी बिक्री-पत्र वास्तविक तथा सही पाए गए थे तथा लाभ सिंह की मूल जोत से बाहर रखे गए थे, तो उसी भूमि को फिर से 1960 के अधिनियम के प्रावधानों के अधीन नहीं किया जा सकता था तथा एक बार बिक्री-पत्र बिना किसी आपत्ति के निष्पादित हो जाने के बाद, उन्हें 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के तहत नई कार्यवाही के तहत चुनौती नहीं दी जा सकती थी। उन्होंने यह भी कहा कि रिस-ज्युडिकेटा का सिद्धांत 1960 के अधिनियम के तहत सीलिंग कार्यवाही पर भी पूरी ताकत से लागू होता है तथा निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया कोई भी निष्कर्ष उन्हें बाद की कार्यवाही में बाध्य करता है। उन्होंने दलील दी कि एक बार जब लाभ सिंह द्वारा उठाई गई आपत्तियां वास्तविक और सही पाई गईं तथा बिक्री-पत्रों के आधार पर हस्तांतरित की गई भूमि को उनकी जोत से बाहर कर दिया गया, तो उन्हें पुनः याचिकाकर्ता की जोत का हिस्सा नहीं माना जा सकता ।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न निर्णयों पर भरोसा किया है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है:

(1) **देवेन्द्र नाथ सिंह (मृत), कानूनी उत्तराधिकारियों व अन्य के माध्यम से बनाम सिविल जज व अन्य , एआईआर 1999 एससी 2264**, जिसका पैरा 3 इस प्रकार है:

"3. अधिनियम की धारा 13-ए और धारा 38-बी के प्रावधानों की जांच करने के बाद, हम इस विचार पर पहुंचे हैं कि धारा 13-ए के तहत निर्धारित प्राधिकारी को धारा 14 की उप-धारा (4) के तहत अधिसूचना की तारीख से दो साल के भीतर प्रकरण को फिर से खोलने की शक्ति है, ताकि रिकॉर्ड में दिखाई देने वाली किसी भी स्पष्ट गलती को सुधारा जा सके। उस शक्ति में निश्चित रूप से नए साक्ष्य को ग्रहण करने और इस सवाल की फिर से जांच करने की शक्ति शामिल नहीं होगी कि दोनों बेटे, अर्थात् हेमेंद्र और शैलेंद्र वयस्क थे या नहीं। धारा 38-बी के तहत शक्ति केवल यह इंगित करती है कि यदि सीलिंग अधिनियम द्वारा शासित किसी प्रकरण के संबंध में उक्त धारा के प्रारंभ से पहले किसी सहायक मंच द्वारा कोई निष्कर्ष या निर्णय लिया गया था, तो ऐसे निष्कर्ष अधिनियम के तहत कार्यवाही में न्यायिक निर्णय के रूप में काम नहीं करेंगे। यह उस प्रकरण को कवर नहीं करेगा जहां निष्कर्ष अधिनियम के तहत प्रकरण में पहले से ही अंतिम रूप ले चुके हैं। प्रकरण के इस दृष्टिकोण से हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि निर्धारित प्राधिकारी के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। धारा 13-ए के तहत शक्ति के कथित प्रयोग में दो बेटों के बहुमत के सवाल को फिर से खोलना। यदि प्राधिकरण के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, तो अधिकार क्षेत्र की छूट का सवाल ही नहीं उठता, जैसा कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है।

(2) **प्यारे एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, कैंप, फैजाबाद व अन्य, रिट याचिका संख्या 423/1977** के प्रकरण में निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि रिस जुडिकाटा का नियम एक तकनीकी नियम है और कानून की तकनीकी बातों को न्याय के हित पर हावी नहीं होने दिया जाना चाहिए। रिस जुडिकाटा का नियम तकनीकी हो सकता है, लेकिन जिस आधार पर उक्त नियम आधारित है, वह आम जनता के विचार पर आधारित है कि सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालयों द्वारा सुनाए गए बाध्यकारी निर्णयों को अंतिमता मिलनी चाहिए और व्यक्तियों को एक ही तरह के मुकदमे से दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए। रचनात्मक रिस जुडिकाटा के सिद्धांत रिट कार्यवाही पर भी लागू होते हैं। पहले की याचिका में एक बिंदु को उठाने में चूक, जिसे उठाया जा सकता था, मुकदमेबाज को बाद की याचिका में उस बिंदु को उठाने से वंचित कर देगी। (देवीलाल मोदी बनाम बिक्री कर अधिकारी और अन्य, एआईआर 1965 एससी 1150 देखें); (टी. गोविंदराजा मुदलियार बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, एआईआर 1973 एससी 974)।"

13. उन्होंने दलील दी कि एक बार जब निर्धारित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज कर लिया कि बिक्री-पत्रों के माध्यम से मूल पट्टेदार द्वारा बेची गई भूमि को बाहर रखा जाना चाहिए था, तो वही भूमि याचिकाकर्ता के हाथों एक साथ नहीं जोड़ी जा सकती थी, जो कि मूल पट्टेदार का कानूनी उत्तराधिकारी है,

अब उक्त भूमि को 1960 के अधिनियम के दायरे में आने वाली घोषित करने के लिए।

14. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है। उन्होंने कहा कि 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के तहत कार्यवाही को फिर से शुरू करने में कोई कमी नहीं है। राज्य को बाद में पता चला कि याचिकाकर्ता उस समय नाबालिग थे, जब बिक्री-पत्र दर्ज किए गए थे और 1960 के अधिनियम के लागू होने की तिथि पर भी, और परिणामस्वरूप, यह स्पष्ट है कि उक्त बिक्री-पत्र धोखाधड़ी और छल थे, जो 1960 के अधिनियम के शिकंजे से बचने के उद्देश्य से किए गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि एक बार यह दिखा दिया गया कि मूल भूमि धारक के सभी पोते-पोतियां , जिन्हें भूमि हस्तांतरित की गई थी, नाबालिग थे, तो यह माना जाएगा कि वे याचिकाकर्ता के परिवार में आते हैं और परिणामस्वरूप, 1960 के अधिनियम की धारा 2(7) के प्रावधानों के अनुसार उनकी सभी जोतों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाना चाहिए।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त तर्क का यह कहते हुए विरोध किया है कि इस पहलू पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उचित परिप्रेक्ष्य में आंशिक रूप से विचार किया गया था और केवल इंद्र पाल, जो 1949 में पैदा हुआ था, को वयस्क माना गया है और 2.00 हेक्टेयर भूमि को इस रूप में बाहर रखा गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि इस संबंध में अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष भी मनमाने और अवैध हैं। अपने लिखित बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि हालांकि इंद्र पाल का जन्म 1949 में हुआ था, जबकि देवेंद्र/ दिल बिंदर कौर का जन्म 1952 में हुआ था, गुर बचन कौर का जन्म 1954 में हुआ था; गुरमीत सिंह का जन्म 1955 में हुआ था और, इसलिए उक्त सभी व्यक्ति एक ही अधिनियम के लागू होने की तिथि अर्थात 08.06.1973 को वयस्क थे और यहां तक कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में दर्ज किए गए निष्कर्ष भी स्पष्ट रूप से अवैध और मनमाने और रिकॉर्ड के विपरीत हैं।

16. मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

17. मुख्य विवाद, जिसने इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, वह यह है कि क्या उसी होल्डिंग के संबंध में 1960 के अधिनियम की धारा 10(2) के तहत दोबारा नोटिस जारी किया जा सकता है , जबकि पहले मूल खातेदार की आपत्तियां प्राप्त करने के बाद नोटिस जारी किए जा चुके हैं और भूमि 1960 के अधिनियम के दायरे में नहीं पाई गई है। वर्तमान प्रकरण में, निस्संदेह मूल खातेदार लाभ सिंह को पहले नोटिस जारी किए गए थे और उनके द्वारा यह कहते हुए आपत्ति प्रस्तुत करने पर कि उक्त भूमि को कट-ऑफ-डेट से पहले सात पंजीकृत बिक्री-पत्रों के माध्यम से बेचा गया था और मूल खातेदार के पास शेष भूमि 1960 के अधिनियम के अंतर्गत नहीं आती है, विहित प्राधिकारी ने उक्त आपत्तियों की विधिवत जांच की और कार्यवाही बंद कर

दी। पहला नोटिस जारी करने के बाद से एकमात्र अंतर यह हुआ है कि इस बीच लाभ सिंह की मृत्यु हो गई है और अब उसी होल्डिंग के लिए उनके बेटे, वर्तमान याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया गया है। अब प्रत्यर्थीगण का रुख नाटकीय रूप से बदल गया है और जबकि पहले अवसर पर उन्होंने बिक्री-पत्रों की वैधता को चुनौती नहीं दी थी या उस पर हमला नहीं किया था, अब उन्होंने कहा है कि उक्त बिक्री-पत्र केवल 1960 के अधिनियम के प्रावधानों से बचने के लिए दर्ज किए गए हैं। यह कहा गया है कि बिक्री-पत्रों के निष्पादन के समय विक्रेता नाबालिग थे और विलेख केवल मूल काश्तकार की मूल जोत को कम करने के उद्देश्य से दर्ज किए गए हैं। राज्य द्वारा उठाए गए उक्त आधारों को दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया है।

18. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि इस तथ्य के अलावा कि उसी होल्डिंग के लिए दोबारा नोटिस जारी नहीं किया जा सकता है, यह भी कहा गया है कि एक बार निष्कर्ष वापस आ जाने के बाद, कट-ऑफ-डेट से पहले दर्ज किए गए बिक्री-पत्रों की वैधता की जांच निर्धारित प्राधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है। अपनी दलीलों के समर्थन में उन्होंने **रामाधार सिंह बनाम निर्धारित प्राधिकारी और अन्य, 1994 पूरक (3) एससीसी 702** के प्रकरण में दिए गए फैसले पर भरोसा किया है , जिसमें निम्नलिखित निर्णय दिया गया है:

"..... बिक्री विलेख का अस्तित्व विवादित नहीं है और यह, जैसा कि पहले कहा गया है, 24 फरवरी, 1969 को नियत दिन यानी 24 जनवरी, 1971 से पहले हुआ था, धारा 5 की उपधारा (6) के तहत बिक्री विलेख की वैधता के बारे में जांच पूरी तरह से गलत थी। इसके तहत, जैसा कि हमें लगता है, उचित प्राधिकारी के पास बिक्री विलेख की वैधता का परीक्षण करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि उसका अधिकार केवल तभी उत्पन्न हुआ जब हस्तांतरण विलेख नियत दिन या उसके बाद प्रभावी हुआ था। न केवल अधिनियम के तहत प्रथम और अपीलीय प्राधिकारी उस दृष्टिकोण पर कायम रहे, बल्कि उच्च न्यायालय ने भी उसी आधार पर कार्यवाही की। अपीलकर्ता का यह घोषित करने का प्रयास कि अधिकारियों के पास धारा 5 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण II के साथ धारा 5 की उपधारा (6) के तहत बिक्री को अमान्य करने का कोई अधिकार नहीं था, भी एक निरर्थक प्रयास था क्योंकि उच्च न्यायालय ने अधिनियम के तहत अधिकारियों की तरह ही मार्ग का अनुसरण किया और रिट याचिका को खारिज कर दिया। हमारा विचार है यह पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण था। धारा 5 की उपधारा (6) ने बिक्री की वैधता निर्धारित करने के लिए अधिकारियों को अधिकार क्षेत्र नहीं दिया और यदि ऐसा है, तो बिक्री की सामग्री के बारे में उनका कोई भी निष्कर्ष सहायक नहीं है। परिणामस्वरूप अपील सफल होनी चाहिए। तदनुसार, इसे स्वीकार करते हुए हम नीचे के अधिकारियों और उच्च न्यायालय के सभी आदेशों को रद्द कर देते हैं। कोई लागत नहीं।"

19. उन्होंने आगे **इंद्रपाल सिंह एवं अन्य बनाम निर्धारित प्राधिकारी, मेरठ एवं अन्य , 2007(103) आरडी 102** के प्रकरण में इस

न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हैं , जिसमें निम्नलिखित कहा गया है:

"8. राम अधार सिंह बनाम विहित प्राधिकारी एवं अन्य' प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अधिनियम की धारा 5(6) के अंतर्गत विक्रय-विलेख की वैधता के बारे में कोई जांच 24.1.1971 से पहले निष्पादित विक्रय-विलेख की वास्तविकता के संबंध में नहीं की जा सकती। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अपीलीय प्राधिकारी के पास विक्रय-विलेख की वैधता का परीक्षण करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, क्योंकि उसका अधिकार क्षेत्र तभी उत्पन्न होता है, जब हस्तांतरण विलेख नियत दिन यानी 24.1.1971 को या उसके बाद प्रभावी हुआ हो। परिणामस्वरूप, यह न्यायालय मानता है कि विहित प्राधिकारी 9.1.1970 की विक्रय-विलेख की वास्तविकता पर विचार नहीं कर सकता है और विक्रय-विलेख के माध्यम से हस्तांतरित भूमि याचिकाकर्ता की जोत से बाहर रखी जाने योग्य है।"

20. याचिकाकर्ता के तर्कों का खंडन करते हुए विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा कहा गया है कि वर्तमान कार्यवाही में बिक्री-विलेखों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई बातों के अनुसार नहीं पढ़ा जा सकता है और सभी भूमि, जो उक्त बिक्री-विलेखों द्वारा हस्तांतरित की गई हैं, वास्तव में याचिकाकर्ता की मूल जोत के भाग के रूप में ली जानी चाहिए और उन्हें 1960 के अधिनियम के प्रावधानों के अधीन किया जाना चाहिए।

21. इस न्यायालय ने उक्त तर्क की भी जांच की है। इस तथ्य के अलावा कि विक्रय-पत्र विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे, जिसमें उन्होंने 1970 में मूल भूमिधारक श्री लाभ सिंह को नोटिस जारी किया था और उन्होंने कार्यवाही बंद कर दी थी, विक्रय-पत्रों को स्वीकार कर लिया था और भूमि को लाभ सिंह की मूल भूमि से बाहर कर दिया था। 1960 के अधिनियम के लागू होने से पहले किए गए विक्रय-पत्रों की वैधता पर विचार नहीं किया जा सकता था। **रामाधार सिंह (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में इस संबंध में कानून निर्धारित किया गया है और उससे कोई विचलन नहीं हो सकता है।

22. उपरोक्त के आलोक में, यह न्यायालय भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त प्रावधान का पालन करने के लिए स्वयं को बाध्य पाता है और तदनुसार विहित प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के लिए वर्तमान प्रकरण में उक्त बिक्री-पत्रों पर विवाद करना अनुचित था। उपरोक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय इस बात पर विचार करता है कि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि कार्यवाही रिस-ज्युडिकेटा के सिद्धांत से प्रभावित हुई थी, क्योंकि उन्हीं भूमियों पर वर्ष 1975 में अधिनियम 1960 के तहत कार्यवाही की गई थी और उन्हें मूल काश्तकार की जोतों से बाहर रखा गया था , उसी भूमि को फिर से अधिनियम 1960 के अधीन नहीं किया जा सकता है, और विहित प्राधिकारी द्वारा एक अलग दृष्टिकोण अपनाया गया है।

23. उपर्युक्त के आलोक में, रिट याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं। विहित प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 22.06.1993 और 22.06.1994 के आदेश अपास्त किए जाते हैं।

(2023) 8 ILRA 489

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट सी संख्या 3000057 वर्ष 2001

सुख राज सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त न्यायिक फैजाबाद एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
विनोद के. सिंह, अंकित पांडे, आशुतोष सिंह, एस.एन. गोस्वामी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
सी.एस.सी.

(ए) भूमि कानून -उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960 - धारा 10(2) - विवरण प्रस्तुत करने में विफल रहने वाले अथवा अपूर्ण या गलत विवरण प्रस्तुत करने वाले खातेदारों को सूचना - एक बार आदेश पारित हो जाने पर, उसका अनुपालन हो जाने पर, दूसरे पक्ष द्वारा उसे स्वीकार कर लेने पर तथा उससे लाभ प्राप्त कर लेने पर, वह किसी भी आधार पर उसे चुनौती नहीं दे सकता। (पैरा -15)

(बी) वाक्यांशों का शब्द - मौन स्वीकृति - मौन या निष्क्रिय स्वीकृति, अनुमोदित और निरनुमोदित - गर्म और ठंडा - तेज और ढीला - चुनाव का सिद्धांत - विबन्ध का सिद्धांत - कोई अनुमोदन और निरनुमोदन एक साथ नहीं कर सकता यह इसमें अंतर्निहित है - चुनाव द्वारा विबन्ध का सिद्धांत विबन्ध की प्रजातियों (या न्यायसंगत विबन्ध) में से एक है - इक्विटी का नियम। (पैरा -15)

(*सी*) वाक्यांशों का शब्द - चुनाव का सिद्धांत - कोई भी पक्ष एक ही दस्तावेज़ को स्वीकार और अस्वीकार नहीं कर सकता - कोई व्यक्ति एक बार में यह नहीं कह सकता कि कोई लेन-देन वैध है और इस प्रकार कोई लाभ प्राप्त कर सकता है, जिसका वह केवल इस आधार पर हकदार हो सकता है कि यह वैध है, और फिर पलटकर कोई अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कह सकता है कि यह अमान्य है। (पैरा -15)

अपर आयुक्त (न्यायिक) का आदेश - चुनौती दी गई - याचिकाकर्ता की अपील खारिज कर दी गई - न्यायालय ने 9.702 एकड़ सिंचित भूमि को अधिशेष भूमि घोषित किया - याचिकाकर्ता के गांव से संपूर्ण अधिशेष भूमि हटाने का आदेश दिया - याचिकाकर्ता को आदेश को चुनौती देने से रोका गया - आधार - अनुमोदन और निरनुमोदन दोनों की अनुमति नहीं दी जा सकती - आदेश की मौन स्वीकृति के बाद - याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई - याचिकाकर्ता की शिकायत - बनकटी गांव की कोई भी भूमि अधिशेष नहीं मानी जानी चाहिए - निर्धारित प्राधिकारी द्वारा चुने गए

विकल्प का सम्मान किया जाना चाहिए। (पैरा -2,3,6,15,17)

अभिनिर्धारित:-प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे बनकटी गाँव से कोई भी भूमि न काटें। यदि कोई अतिरिक्त भूमि बची है, तो उसे याचिकाकर्ता को वापस कर दिया जाए। याचिकाकर्ता की इच्छानुसार अन्य गाँवों में स्थित भूमि को अतिरिक्त भूमि के रूप में लिया जा सकता है। याचिकाकर्ता चार सप्ताह के भीतर विहित प्राधिकारी को आवेदन कर सकता है, और दो माह के भीतर आदेश जारी किए जाएँगे। (पैरा-20)

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

यू.ओ.आई बनाम एन. मुरुगेसन, (2022) 2 एससीसी 25

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा प्रदत)

1. याचिककर्ता के विद्वान अधिवक्ता अंकित पांडे साथ ही प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने अपर आयुक्त (न्यायिक) फैजाबाद मंडल, फैजाबाद द्वारा पारित आदेश 09.04.2001 को चुनौती दी है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज करते हुए सिंचित भूमि 9.702 को अतिरिक्त भूमि घोषित कर दिया गया।

3. न्यायालय द्वारा वर्तमान मामले के निर्णय हेतु आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिनियम, 1960 की धारा 10(2) के अंतर्गत एक सूचना याचिकाकर्ता को जारी की गयी थी, जिसने 22.11.1974 को अपनी आपत्ति दर्ज कराई थी, जिसमें उसने कहा था कि लगभग 20 वर्ष पूर्व उसके पिता और उसके अन्य भाइयों के बीच पैतृक भूमि के संबंध में एक पारिवारिक समझौता हुआ था। उक्त विभाजन के अनुसरण में, उसके पिता को गाँव मराइला, रानीपुर और शुद्ध चकपिहानी में स्थित भूमि का कोई हिस्सा आवंटित नहीं किया गया था और समस्त चार गाँवों की भूमि उनके चाचागण को आवंटित कर दी गई थी।

4. धारा 10(2) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी के समक्ष लंबित कार्यवाही के दौरान, श्री दुख हरन सिंह, याचिकाकर्ता के सगे चाचागण में से एक ने पक्षकार बनने हेतु एक आवेदन दिया और विहित प्राधिकारी के समक्ष लिखित आपत्ति भी दर्ज की। उन्होंने आगे यह भी कहा था कि उनके तीन अन्य सगे भाइयों के बीच एक पारिवारिक विभाजन हुआ था, तब से संबंधित भूमि पर उनका विशेष कब्जा हैं। उन्होंने आगे कहा कि राजस्व न्यायालय में 20.03.1970 को गाँव रानीपुर, मराइला और शुद्धप्रसाद के संबंध में एक विभाजन वाद भी दायर किया गया, जिसमें 21.08.1971 को प्रारंभिक डिक्री पारित की गई और वर्ष 1972 में अंतिम डिक्री भी पारित कर दी गई थी।

5. उन्होंने स्वीकार किया कि उक्त विभाजन के अनुसार, राजस्व अभिलेख में दाखिल

खारिज नहीं किया गया है। यह भी कहा गया कि उक्त अवधि के दौरान कलेक्ट्रेट, बहराइच के राजस्व अभिलेख कक्ष में आग लग गई थी और समस्त कागज जल गए थे, अतः उन्होंने वर्ष 1974 में एक और विभाजन वाद दायर किया और 31.01.1976 को विभाजन की अंतिम डिक्री भी पारित कर दी गयी और उक्त विभाजन के अनुसार, भूमि ग्राम बेनीपुर, जिला गोंडा और ग्राम बनकटी की 20 एकड़ जमीन श्री सुखराज सिंह को आवंटित कर दी गई थी, जबकि ग्राम मरैला, पुरा परसाद और रानीपुर की पूरी जमीन उन्हें और उनके दूसरे भाई बैजनाथ सिंह को आवंटित की गई थी, श्री सुखराज सिंह को तीनों गाँवों की जमीन में कोई हिस्सा नहीं दिया गया था।

6. विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश दिनांक 22.03.1979 को लागू करने हेतु उक्त आवेदन की अनुमति दी गई और याचिकाकर्ता के साथ-साथ दुख हरन सिंह सहित भूमि धारकों द्वारा भी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। आदेश दिनांक 31.03.1979 के माध्यम से विहित प्राधिकारी ने समस्त आपत्तियों को खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि उक्त विभाजन वास्तविक नहीं था, अपितु मात्र भूमि को सीमा प्रक्रियाओं से बचाने के उद्देश्य से किया गया था और आगे यह पाया गया कि उक्त विभाजन सीमा तिथि के पश्चात हुआ था, परिणामस्वरूप किसी खातेदर धारक को कोई सहायता नहीं मिलेगी। तदनुसार, उन्होंने सिंचित भूमि के संदर्भ में 9.702 एकड़ भूमि को याचिकाकर्ता के खातेदार की अतिरिक्त भूमि के रूप में घोषित किया और निर्देश दिया कि संपूर्ण अतिरिक्त भूमि को याचिकाकर्ता की बनकटी गाँव की भूमि से ले लिया जाए।

7. उपरोक्त आदेश दिनांक 31.03.1979 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने किराया अपील संख्या 130/1979 दायर की और दुख हरण सिंह ने किराया अपील संख्या 123/1979 दायर की। जिला न्यायाधीश द्वारा इन दोनों अपीलों को दिनांक 27.11.1979 के निर्णय के माध्यम से सुना और निर्णीत किया गया। जिला न्यायाधीश ने दुख हरन सिंह की किराया अपील संख्या 123/1979 को स्वीकार किया और याचिकाकर्ता की किराया अपील संख्या 130/1979 को आंशिक रूप से स्वीकार किया, मात्र इस सीमा तक उनकी अपील को स्वीकार किया गया कि कोई भी अतिरिक्त भूमि सुखराज सिंह की गाँव बनकटी से नहीं ली जाएगी जैसा कि मूल रूप से निर्धारित किया गया है। जैसा कि विहित प्राधिकारी ने अपने मूल आदेश दिनांक 31.03.1979 में यह आदेशित किया है।

8. जिला न्यायाधीश के आदेश दिनांक 27.11.1979 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष कोई रिट याचिका दायर नहीं की। उनके चाचा, दुख हरन सिंह ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 145/1980 दायर की। उक्त रिट याचिका को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.01.1984 के निर्णय द्वारा अनुमति दी गई, जिसमें आदेश दिनांक 27.11.1979 को रद्द कर दिया गया और दुख हरन सिंह की अपील को उसके मूल संख्या पर बहाल कर दिया गया, अपीलीय

प्राधिकारी को न्यायालय के आदेशानुसार निर्णय लेने हेतु निर्देश दिया गया।

9. श्री दुख हरन सिंह की किराया अपील संख्या 123/1979 को जिला न्यायाधीश द्वारा सुना गया और इसे आदेश दिनांक 28.11.1984 के माध्यम से अनुमति दी गई। उक्त अपील की अनुमति देते समय विहित प्राधिकारी के आदेश दिनांक 31.03.1979 को मात्र इस सीमा तक बरकरार रखा गया कि 9.702 एकड़ भूमि को सिंचित भूमि के रूप में याचिकाकर्ता की अतिरिक्त भूमि घोषित की गयी और विहित प्राधिकारी को या तो गाँव बेनीपुर की उसकी विशेष भूमि से या गाँव बनकटी की विशेष 28 एकड़ भूमि से याचिकाकर्ता की अतिरिक्त भूमि को लेने का निर्देश दिया गया था।

10. याचिकाकर्ता ने 5 वर्ष की अवधि के पश्चात इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, इस तथ्य से व्यथित होकर कि गाँव बेनीपुर का क्षेत्रफल मात्र 20 एकड़ है, 28 एकड़ नहीं, जबकि जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता की अपील को अनुमति देते हुए उसी अतिरिक्त क्षेत्र को बनाए रखा। इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता की रिट याचिका संख्या 2167/1985 को खारिज करते हुए, याचिकाकर्ता को मात्र आदेश के परिचालन भाग के संबंध में यह विचार करने हेतु कि बेनीपुर में याचिकाकर्ता की भूमि का क्षेत्रफल 20 एकड़ था या 28 एकड़, जिला न्यायाधीश से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी।

11. इस न्यायालय के दिनांक 16.10.1985 के निर्देश के अनुसरण में, अपीलीय प्राधिकारी ने अपने पिछले निष्कर्षों को बरकरार रखते हुए यह पाया है कि याचिकाकर्ता के दावे को दिनांक 09.04.2001 के आक्षेपित निर्णय के माध्यम से खारिज करते समय इसमें किसी हस्तक्षेप आवश्यकता नहीं है।

12. याचिकाकर्ता ने जोर देकर आग्रह किया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपील संख्या 123/197 पर फैसला करते समय इस तथ्य को स्वीकार किया है कि संपत्ति का विभाजन किया गया था और सीमा द्वारा किया गया था, सीमा विशिष्ट भूमि समस्त भाइयों के पक्ष में आवंटित की गई और तदनुसार भूमि को 1960 के अधिनियम के संचालन से छूट दी गई थी। वह प्रस्तुत करते है कि एक बार जिला न्यायाधीश द्वारा उक्त निष्कर्ष वापस कर दिए जाने के पश्चात, याचिकाकर्ता भी उसी का हकदार होगा।

13. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया। वह प्रस्तुत करते है कि इस न्यायालय के समक्ष जो मुद्दा प्रस्तुत किया गया है, उस पर जिला न्यायाधीश ने भी याचिकाकर्ता की अपील का निर्णय लेते समय विचार किया था। वह प्रस्तुत करते है कि अपीलीय आदेश दिनांक 27.11.1979 के विरुद्ध, जो अपील संख्या 123/1979 और 130/1970 हेतु समान था, मात्र दुख हरन सिंह ने व्यथित होकर इस न्यायालय में रिट याचिका संख्या 450/1980 को दायर किया था। यह मात्र दुख हरन सिंह के कहने पर है, इस न्यायालय ने अपीलीय आदेश में हस्तक्षेप किया

और मामले को अपीलीय प्राधिकारी के पास वापस भेज दिया ताकि रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत विभाजन के पहलू पर वही विचार किया जा सके।

14. याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 27.11.1979 को चुनौती नहीं दी, तदनुसार याचिकाकर्ता पर उनकी अपील संख्या 123/1979 में पारित आदेश अंतिम और बाध्यकारी हो गया। आगे, याचिकाकर्ता के पास रिट याचिका संख्या 2167/1985 दायर करके इस न्यायालय के समक्ष फिर से आने का अवसर था, जो जिला न्यायाधीश द्वारा पारित अपीलीय आदेश को चुनौती दे रहा था। इतने लंबे समय के पश्चात इस न्यायालय से संपर्क करके भी याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपने निर्णय दिनांक 27.11.1979 में अभिलिखित किए गए निष्कर्षों को चुनौती नहीं दी। किन्तु बेनीपुर में अतिरिक्त घोषित किए जाने वाले क्षेत्र के संबंध में मात्र सीमित निष्कर्षों को चुनौती दी। यह याचिकाकर्ता हेतु खुला था कि वह दिनांक 27.11.1979 के अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों पर हमला करे किन्तु वह वहाँ अभिलिखित किए गए निष्कर्षों से संतुष्ट था अतः उक्त निर्णय अंतिम और बाध्यकारी हो गया। अपने आदेश दिनांक 27.11.1979 में याचिकाकर्ता को एकमात्र लाभ यह दिया गया कि उसकी पसंद के अनुसार बनकटी के अतिरिक्त अन्य भूमि को अतिरिक्त भूमि के रूप में लिया जा सकता है।

15. मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता को इस आधार पर एक आदेश को चुनौती देने से रोका गया कि आदेश की स्वीकृति के पश्चात उसे अनुमोदन और निरनुमोदन दोनों की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। वर्तमान मामले की परिस्थितियाँ स्वीकृति के सिद्धांत, अनुमोदन और निरनुमोदन के सिद्धांत को आकर्षित करती हैं। स्वीकृति, अनुमोदन और निरनुमोदन की अवधारणा को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ बनाम एन. मुरुगेसन, (2022) 2 SCC 25** नामक मामले में उपयुक्त रूप से समझाया है। प्रासंगिक प्रस्तर इस प्रकार हैं:

"25. सहमति का अर्थ मौन या निष्क्रिय स्वीकृति होगा यह एक अधिनियम हेतु निहित और अनिच्छुक सहमति है। दूसरे शब्दों में, ऐसा कार्य एक निष्क्रिय सहमति को योग्य बनाएगा। इस प्रकार, जब अनुमोदन होता है, तो यह एक विशेष अधिनियम के विरुद्ध ज्ञान का पूर्वानुमान करता है। ज्ञान से निष्क्रिय स्वीकृति आती है, अतः किसी भी कथित अस्वीकृति के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने के बजाय मूल अनुबंध को पूरा करने हेतु, इसके नियमों के पर्याप्त ज्ञान के बावजूद, और इसके बजाय इसे जानबूझकर अनदेखा करने और उसके बाद आगे बढ़ने की अनुमति देकर, अनुमोदन हो जाता है। परिणामानुसार, यह पक्षकारों के बीच एक नए निहित समझौते को पुनः पेश करता है। एक बार ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो यह अनुमोदन करने वाले पक्ष हेतु मूल नियमों के अनुपालन पर जोर देने हेतु खुला नहीं है। इसलिए, जो आवश्यक है, वह पक्षकारों का आचरण है। हम मात्र एक मात्र अनुमोदन से जुड़े अंतर को संबोधित करते हैं।

अनुमोदन और निरनुमोदन

26. ये वाक्यांश स्कॉट्स विधि से उधार लिए गए हैं। वे मात्र यही अर्थ देंगे कि किसी भी पक्ष को एक ही चीज़ को स्वीकार करने और अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, इस प्रकार कोई भी गर्म और ठंडा नहीं रह सकता। चुनाव के सिद्धांत के पीछे अनुमोदन और निरनुमोदन की अवधारणा अंतर्निहित है।

एक बार फिर, यह एक सामान्य विधि के आकार के अंतर्गत आने वाला साम्या का सिद्धांत है।

इस प्रकार वह जो जानता है कि यदि वह किसी उपकरण का विरोध करता है, तो उसे वह लाभ नहीं मिलेगा जो वह चाहता है उसे फल का आनंद लेते हुए ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। कोई भी एक भाग का लाभ उठाते हुए शेष को अस्वीकार नहीं कर सकता। किसी व्यक्ति को एक उपकरण का लाभ उठाते हुए उसी पर सवाल उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसे पक्ष को या तो पुष्टि करनी होगी या लेनदेन को अस्वीकार करना होगा। इस सिद्धांत को एक सामान विधिक सिद्धांत के रूप में अधिक जोर से लागू किया जाता है, यदि ऐसा कोई पक्ष वास्तव में एक भाग का पूरी तरह से आनंद लेता है और उक्त आनंद के लगभग पूरा होने पर, उसके पश्चात दूसरे भाग पर सवाल उठाता है। इस सिद्धांत में निष्पक्ष एक खेल का तत्व अंतर्निहित है। यह एक पक्ष के आचरण से संबंधित विबन्ध का भी एक प्रकार है।

27. हम उक्त सिद्धांत की बेहतर सराहना और समझ हेतु निम्नलिखित निर्णयों का उद्धरण देना चाहेंगे:

27.2. पंजाब राज्य बनाम धनजीत सिंह संधू [पंजाब राज्य बनाम धनजीत सिंह संधू, (2014) 15 SCC 144] : (SCC पृष्ठ 153-54, प्रस्तर 22-23 और 25-26)

"22. सिद्धांत " अनुमोदन और निरनुमोदन" मात्र विबन्ध का एक प्रकार है, यह मात्र पक्षकारों के आचरण पर लागू होता है। जैसा कि विबन्ध के मामले में, यह एक अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध काम नहीं कर सकता है। (सीआईटी बनाम श्री पी. फर्म मुअर [सीआईटी बनाम श्री पी. फर्म मुअर, एआईआर 1965 एससी 1216] ।)

23. यह विधि का स्थापित प्रस्ताव है कि एक बार आदेश पारित हो जाने के पश्चात, इसका पालन किया जाता है, दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाता है और इससे लाभ प्राप्त किया जाता है, वह किसी भी आधार पर इसे चुनौती नहीं दे सकता। (महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस [महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस, एआईआर 1969 एससी 329] ।) इस न्यायालय ने आर.एन. गोसैन बनाम यशपाल धीर [आर.एन. गोसैन बनाम यशपाल धीर, (1992) 4 SCC 683] में निम्नानुसार अवलोकन किया है: (आर.एन. गोसैन मामला [आर.एन. गोसैन बनाम यशपाल धीर, (1992) 4 SCC 683], एससीसी पृष्ठ 687-88, प्रस्तर 10)

2 STATE

'10. विधि किसी व्यक्ति को दोनों का अनुमोदन और निरनुमोदन करने की अनुमति नहीं देता है।' यह सिद्धांत चुनाव के सिद्धांत पर आधारित है जो यह मानता है कि कोई भी पक्ष एक ही दस्तावेज़ को स्वीकार और अस्वीकार नहीं कर सकता और यह कि कोई व्यक्ति एक समय में यह नहीं कह सकता कि लेन-देन वैध है और इस प्रकार कोई लाभ प्राप्त कर सकता है

जिसका वह मात्र इस आधार पर हकदार हो सकता है कि यह वैध है, और फिर मुकर जाता है कि यह किसी अन्य लाभ को सुरक्षित करने के उद्देश्य से अमान्य है।'

25. उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड [राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2013) 5 एससीसी 470: (2013) 3 SCC (सिविल) 153] में एक टिप्पणी की कि एक पक्ष को "गर्म और ठंडा ", "तेज़ और ढीला" या "अनुमोदन और निरनुमोदन" करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जहाँ कोई जानबूझकर किसी अनुबंध या हस्तांतरण या आदेश के लाभों को स्वीकार करता है, वह ऐसे अनुबंध या हस्तांतरण या आदेश की वैधता या बंधनकारी प्रभाव को अस्वीकार करने हेतु विबन्धित है।

यह नियम समानता हेतु लागू किया जाता है, यद्यपि, इसे इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए कि इससे सही और उचित विवेक के सिद्धांतों का उल्लंघन हो।

26. यह स्पष्ट है कि चुनाव का सिद्धांत विबन्ध के नियम पर आधारित है, जिसका सिद्धांत यह है कि कोई व्यक्ति अनुमोदन और निरनुमोदन दोनों नहीं कर सकता है। चुनाव द्वारा विबन्ध का सिद्धांत न्यायसंगत विबन्ध (या साम्या विबन्ध) की प्रजातियों में से एक है, जो साम्या का ही एक नियम है। इस विधि के अनुसार, एक व्यक्ति को अपने कार्यों या आचरण या मौन के माध्यम से, जहाँ बोलना उसका कर्तव्य है, उसे अधिकार का दावा करने से रोका जा सकता है जो अन्यथा उसके पास होता।"

27.3. राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड [राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2013) 5 SCC 470: (2013) 3 SCC (सिव) 153] : (SCC पृष्ठ 480-81, प्रस्तर 15-16)

"I. अनुमोदन और निरनुमोदन

15. एक पक्ष को "गर्म-ठंडा ", "तेज और ढीला" या "अनुमोदन और निरनुमोदन" करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जहाँ कोई जानबूझकर किसी अनुबंध, या हस्तांतरण, या किसी आदेश के लाभों को स्वीकार करता है, तो उसे उस अनुबंध, या हस्तांतरण, या आदेश

की वैधता या उसके ऊपर बाध्यकारी प्रभाव से इनकार करने से रोका जा सकता है।

यह नियम न्याय सुनिश्चित करने हेतु लागू किया जाता है, यद्यपि, यह नियम समानता सुनिश्चित करने हेतु है, यद्यपि, इसे इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि सही और उचित विवेक के सिद्धांतों का उल्लंघन हो। [नागुबाई अम्मल बनाम बी. शमा राव [नागुबाई अम्मल बनाम बी. शमा राव, 1956 एससीआर 451: एआईआर 1956 एससी 593], सीआईटी बनाम वी. एमआर. पी. फर्म मुअर [सीआईटी बनाम वी. एमआर. पी. फर्म मुअर, एआईआर 1965 SCC 1216], रमेश चंद्र संकला बनाम विक्रम सीमेंट [रमेश चंद्र संकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एससीसी 58: (2009) 1 SCC (एल&एस) 706], प्रदीप ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एमसीडी [प्रदीप ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एमसीडी, (2011) 5 SCC 270: (2011) 2 एससीसी (सिव) 712], कावेरी कॉफी ट्रेडर्स बनाम हॉर्नर रिसोर्सेज (इंटरनेशनल) कं. लिमिटेड [कावेरी कॉफी ट्रेडर्स बनाम हॉर्नर रिसोर्सेज (इंटरनेशनल) कं. लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 420: (2012) 3 एससीसी (सिव) 685] और वी. चंद्रशेखरन बनाम प्रशासनिक अधिकारी [वी. चंद्रशेखरन बनाम प्रशासनिक अधिकारी, (2012) 12 एससीसी 133: (2013) 2 एससीसी (सिव) 136: (2013) 4 एससीसी (क्रि) 587: (2013) 3 एससीसी (एल&एस) 416]।]

16. अतः यह स्पष्ट है कि चुनाव का सिद्धांत विबन्ध के नियम पर आधारित है–इसमें निहित सिद्धांत है कि कोई व्यक्ति अनुमोदन और निरनुमोदन दोनों नहीं कर सकता है। चुनाव द्वारा विबन्ध का सिद्धांत न्यायसंगन्त विबन्ध (या साम्या विबन्ध) की प्रजातियों में से एक है, जो साम्या का एक नियम है। इस विधि के अनुसार, एक व्यक्ति को अपने कार्यों या आचरण या मौन के माध्यम से, जब बोलना उसका कर्तव्य है, उसे अधिकार का दावा करने से रोका जा सकता है जो अन्यथा उसके पास होता।

16. प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 28.11.1984 के अनुसरण में, इस मामले को अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद मंडल, फैजाबाद द्वारा सुना गया, जिन्होंने फिर से मामले और उक्त कार्यवाही में पारित समस्त आदेशों की जांच की और पाया कि आदेश दिनांक 27.11.1979 याचिकाकर्ता के विरुद्ध अंतिम हो गया है और 9.702 एकड़ को अतिरिक्त घोषित करते हुए याचिकाकर्ता की जोत से कटौती किया जाना और इसलिए उक्त निष्कर्षों में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है और याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया।

17. याचिकाकर्ता की एकमात्र शिकायत यह है कि गाँव बनकटी से कोई भी भूमि अतिरिक्त के रूप में नहीं ली जानी चाहिए और उसके द्वारा दिया गया विकल्प विहित प्राधिकरण द्वारा पालन किया जाना चाहिए एवं उसका सम्मान किया जाना चाहिए।

18. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता ने प्रति शपथ पत्र में किए गए दावों पर विश्वास किया, जहाँ विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश

दिनांक 14.05.1980 को संलग्न किया गया है, जहाँ अतिरिक्त भूमि का विवरण भी दिखाया गया, जिसमें से गाँव बनकटी की कुछ भूमि भी अतिरिक्त घोषित की गई है।

19. दिनांक 27.11.1979 के निर्णय द्वारा याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करते हुए जिला न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि ग्राम बनकटी की कोई भी भूमि याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए विकल्प के अनुसार अतिरुक्त के रूप में नहीं ली जाएगी।

20. तदनुसार, प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाता है कि वे ग्राम बनकटी से किसी भी भूमि की कटौती न करें और यदि ग्राम बनकटी से कुछ भूमि अतिरिक्त के रूप में ली गई है तो उसे वापस कर दिया जाए । याचिकाकर्ता और उसकी पसंद के अनुसार अन्य गाँवों में याचिकाकर्ता की भूमि को अतिरिक्त के रूप में लिया जा सकता है। । इस संबंध में याचिकाकर्ता को आज से अगले चार सप्ताह के भीतर विहित प्राधिकारी को उचित आवेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी जाती है। यदि ऐसा कोई आवेदन किया जाता है, तो विहित प्राधिकारी उसके पश्चात इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार दो महीने के भीतर सख्ती से उचित आदेश पारित करेगा।

21. उपर्युक्त टिप्पणियों के अधीन, याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका गुणविहीन है, जिसे तदनुसार **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 495

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट सी संख्या 3000154 वर्ष 2003

श्री निवास एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त प्रशासन लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

वी.के. पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

(ए) भूमि कानून -उत्तर प्रदेश अधिरोपण सीलिंग **(संशोधन)** अधिनियम **-** धारा 5 (6) (बी) **-** भू-धारक द्वारा हस्तान्तरण, यदि 27.01.1971 के पश्चात किया गया हो, तो उसका वास्तविक प्रतिफल बाजार मूल्य के अनुसार एवं सद्भावनापूर्वक होगा, धारा (8) **-** अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (8) के अन्तर्गत आने वाले विक्रय विलेखों को शून्य माना जाएगा। **-** 24.1.1971 के पश्चात निष्पादित विक्रय विलेखों को तब तक अनदेखा किया जाएगा, जब तक कि वे धारा 5 की उपधारा (6) के खण्ड **(बी)** के अन्तर्गत सुरक्षित न हों। **-** विहित प्राधिकारी न केवल 24.1.1971 के पश्चात निष्पादित विक्रय विलेखों की वैधता की जांच कर सकेगा, बल्कि इससे पूर्व निष्पादित विक्रय विलेखों की भी जांच कर सकेगा। **(पैरा-6,7,8,9)**

विवादित भूखण्ड पर याचिकाकर्ताओं का कब्जा - बिक्री के लिए अनुबंध 14.12.1970 को निष्पादित किया गया - याचिकाकर्ता के पक्ष में 10.06.1975 को बिक्री विलेख पंजीकृत - अपीलीय प्राधिकारी ने डेढ़ वर्ष की देरी का कारण दर्ज किया - बिक्री विलेख सद्भावनापूर्वक निष्पादित नहीं किया गया - सीलिंग अधिनियम के प्रावधानों को विफल करने का इरादा। - उत्तर प्रदेश अधिरोपण सीलिंग (संशोधन) अधिनियम के तहत अपीलीय प्राधिकारी - निर्धारित प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखा - विवादित भूखंडों को अधिशेष घोषित किया - याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख को अमान्य कर दिया - इसलिए याचिका। **(पैरा - 2,4,5,7)**

अभिनिर्धारित:-दोनों प्राधिकारियों ने विक्रय विलेख के निष्पादन में विलंब के कारणों पर विचार करने में लापरवाही बरती। अभिलेखों में ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिससे दोनों प्राधिकारियों को यह निष्कर्ष निकालने में सहायता मिले कि विक्रय विलेख में वास्तविकता का अभाव था या उसे सद्भावपूर्वक निष्पादित नहीं किया गया था। विवादित आदेश तथ्यों और विधिक त्रुटियों से युक्त थे। अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश भी अपास्त किए जाते हैं। **(पैरा -11,13,14)**

याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. प्रमोद कुमार एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) गोरखपुर मंडल एवं अन्य, 1999 (1) एडब्ल्यूसी 875

2. सतनाम कौर बनाम कमिश्नर लखनऊ मंडल, रिट सी संख्या 1000541 वर्ष 1992

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वी.के. पाण्डेय एवं राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

रिट याचिका उत्तर प्रदेश अधिरोपण सीमा (संशोधन) अधिनियम (एतस्मिनपश्चात "सीलिंग अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के तहत अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिए गए दिनांक 10.04.2003 के एक निर्णय से उत्पन्न होती है, जिसमें निर्धारित प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखा गया था जिसमें विवादित भूमि को अधिशेष घोषित किया गया था और याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख को खारिज कर दिया गया था।

याचिकाकर्ताओं के पास भूमि के विवादित पार्सल हैं।

प्रश्नगत आदेश में वर्णित तथ्य यह है कि पूर्ण प्रतिफल के भुगतान के पश्चात मूल कार्यकाल धारक द्वारा दिनांक14.12.1970 को याचिकाकर्ता के पक्ष में बिक्री के लिए एक समझौता निष्पादित किया गया था। बिक्री विलेख पश्चात याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 10.06.1975 को पंजीकृत किया गया।

अपीलीय प्राधिकारी ने दर्ज किया है कि बिक्री के लिए समझौते के निष्पादन के बाद बिक्री विलेख को निष्पादित करने में डेढ़ साल की देरी के कारण का खुलासा नहीं किया गया है। इस आधार पर, प्रश्नगत आदेशों से पता चलता है कि बिक्री विलेख को विश्वास में निष्पादित नहीं किया गया था, बल्कि केवल सीलिंग अधिनियम के प्रावधानों को परास्त करने के नियत से किया गया था।

विक्रय विलेख जो विवाद का विषय है, की जांच उ0प्र0 अधिरोपण अधिकतम सीमा (संशोधन) अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (6) और (8) के खण्ड (ख) के आलोक में की जानी है। प्रासंगिक प्रावधान यहां निकाला गया है।

"5. अधिकतम सीमा का अधिरोपण ....
(6).....
(a).....

(ख) कोई अंतरण जो नियत प्राधिकारी के संतोषानुसार सदभावना से और पर्याप्त प्रतिफल के लिये किया गया सिध्द हो तथा ऐसे अप्रतिसंहरणीय संलेख के अधीन हो, जो बेनामी अंतरण न हो या खातेदार अथवा उसके परिवार के सदस्यों के तात्कालिक या आस्थगित लाभ के लिये न हो।

8) उप-धारा (6) तथा (7) में किसी बात के होते हुए भी, कोई खातेदार अपने विषय मे अतिरिक्त भूमि का अवधारण करने के लिये कार्यवाही पर्यन्त अपने खाते की किसी भूमि का अन्तरण नही करेगा और इस उपधारा के उल्लघंन मे किया गया प्रत्येक अन्तरण शून्य होगा।"

ये बिक्री विलेखों की दो श्रेणियां हैं जो उत्तर प्रदेश अधिरोपण सीमा (संशोधन) अधिनियम के तहत कार्यवाही में विचार के लिए उत्पन्न होती हैं। दिनांक 24.01.1971 से पहले और बाद में निष्पादित बिक्री विलेखों की वैधता (विवादित बिक्री विलेख श्रेणी में आता है) और दिनांक 10.10.1975 के बाद **प्रमोद कुमार और अन्य बनाम अपर आयुक्त (प्रशासन) गोरखपुर डिवीजन और अन्य** में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए **1999 (1) एडब्ल्यूसी 875,** में रिपोर्ट किया गया, जिसमें यह आयोजित किया गया था

"8. यह ध्यान दिया जा सकता है कि निर्धारित प्राधिकारी न केवल दिनांक 24.1.1971 के बाद निष्पादित बिक्री विलेखों की वैधता को देख सकता है, बल्कि इससे पहले निष्पादित बिक्री विलेखों की भी जांच कर सकता है। अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (8) द्वारा कवर किए गए बिक्री विलेखों को शून्य माना जाएगा।

9. दिनांक 24.1.1971 के बाद निष्पादित बिक्री विलेखों को तब तक अनदेखा किया जाना चाहिए जब तक कि उन्हें धारा 5 की उपधारा (6) के खंड (बी) के तहत बचाया न जाए। इस संबंध में रघुवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, और अन्य, 1996 एडब्ल्यूसी 1380 और रघुवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1979 एएम 767 के मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है।

10. धारा 6 की उपधारा (8) को उत्तर प्रदेश सेलिंग अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का अधिनियम संख्या XX) द्वारा संविधि में जोड़ा गया है जो दिनांक 10.10.1975 से प्रभावी हुआ। इस प्रकार याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए सभी बिक्री विलेख, अर्थात, दिनांक 13.4.1973, 5.11.1974 और 20.9.1975 को धारा 5 की उपधारा (8) के अधिनियमन और प्रवर्तन से पहले निष्पादित किया गया था। इसलिए, उक्त बिक्री विलेख को धारा 5 की उप-धारा (8) के संदर्भ में शून्य नहीं कहा जा सकता है। नीचे के अधिकारियों द्वारा इसके विपरीत लिया गया दृष्टिकोण इस प्रकार, प्रकट रूप से गलत व अवैध है। इस संबंध में ओम प्रकाश अग्रवाल बनाम ए.डी.जे. और अन्य, 1981 एडब्ल्यूसी 775 के मामले में एक खंड पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। इस प्रकार नीचे के प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य था कि वह बिक्री विलेखों को त्यागने से पहले प्रश्नगत बिक्री विलेखों की वैधता या अन्यथा की जांच करे। नीचे के अधिकारियों ने एक त्रुटि की जो अभिलेख पर स्पष्ट है कि उपरोक्त बिक्री विलेख शून्य थे और धारा 5 की उप-धारा (8) द्वारा किए गए थे।

प्रमोद (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय ने विवादित बिक्री विलेखों की जांच करते हुए अपीलीय प्राधिकरण के वैधानिक कर्तव्य को निम्नानुसार चित्रित किया :

"11. निर्धारित प्राधिकारी ने अभिलेख पर साक्ष्य के माध्यम से जाने के बाद, दिनांक 5.11.1974 और 29.9.1975 के बिक्री विलेखों से निपटने के दौरान याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामले में तैयार किए गए मुद्दों पर निष्कर्ष दर्ज किए। यह विचार किया गया है कि उक्त बिक्री विलेख धारा 5 की उपधारा (8) के आधार पर शून्य थे, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्तमान मामले में कोई आवेदन नहीं था। अपीलीय प्राधिकारी ने इस प्रश्न पर अपना विवेक नहीं लगाया कि क्या उक्त बिक्री विलेख अच्छे विश्वास में निष्पादित किए गए थे और पर्याप्त विचार के लिए, अपरिवर्तनीय लिखत के तहत और क्या वे बेनामी थे या कार्यकाल धारक और उसके परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल और आस्थगित लाभ के लिए निष्पादित किए गए थे। विधि के अनुसार, उसे उक्त बिक्री विलेखों को खारिज करने और याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज करने से पहले उक्त प्रश्नों पर अपना विवेक लगाना था। इसी तरह, **सतनाम कौर बनाम आयुक्त लखनऊ पीठ में इस न्यायालय ने वर्ष 1992 की रिट सी संख्या 1000541** में सीलिंग एक्ट के संदर्भ में एक बिक्री विलेख की प्रामाणिकता के संबंध में एक समान मुद्दे का निर्धारण करते हुए इस प्रकार कहा है कि -

"8. याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ विद्वान स्थायी अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करते हुए और दलीलों की सामग्री के साथ-साथ प्रश्नगत आदेशों के माध्यम से जाने पर, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 5 (6) (बी), स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि यदि कार्यकाल धारक द्वारा हस्तांतरण, दिनांक 27.01.1971 के बाद किया जाता है, तो इसका वास्तविक मूल्य बाजार मूल्य के अनुसार और सद्भावनापूर्वक माना जाएगा। यह विवादित

नहीं है कि प्रश्नगत संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते को दिनांक 31.03.1970 से 01.01.1971 के मध्य निष्पादित किया गया था क्योंकि समझौते के समय सभी प्रतिफल का भुगतान किया गया था और समझौते के अनुसरण में कब्जा भी दिया गया था, और उसके पश्चात प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में बिक्री विलेख दिनांक 26.07.1971 से 17.10.1973 के मध्य निष्पादित किया गया था। कब्जे के साथ बिक्री के समझौते विवादित नहीं हैं और इन सभी तथ्यों पर निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था। अतः याचिका को स्वीकार किया जाता है और प्रश्नगत आदेशों को अपास्त किया जाता है।

बिक्री विलेख में अभिलेखों से पता चलता है कि बिक्री के लिए समझौते के निष्पादन के बाद बिक्री विलेख को निष्पादित करने में देरी विक्रेता के निरंतर बीमार स्वास्थ्य के कारण हुई थी। बिक्री विलेख अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष अभिलेख में स्वीकार्य था। हालांकि, दोनों अधिकारियों ने उक्त दस्तावेज में उल्लिखित बिक्री विलेख के निष्पादन में देरी के कारणों पर विचार करने की उपेक्षा की।

इस दृष्टि से, प्रश्नगत आदेश विवेक न लगाने के कारण दूषित हो जाते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि बिक्री विलेख अच्छी नीयत से नहीं किया गया था। बिक्री विलेख में शामिल भूमि के संबंध में पर्याप्तता के साथ-साथ प्रतिफल का भुगतान विवादित नहीं है। दोनों अधिकारियों के लिए अभिलेख में कोई सामग्री नहीं है कि विक्रय विलेख में सद्भावना का अभाव था या उसे सद्भावनापूर्वक निष्पादित नहीं किया गया था।

पूर्ववर्ती चर्चा और ऊपर दिए गए तथ्यों के निष्कर्षों के प्रकाश में, **प्रमोद (उपरोक्त) और सतनाम कौर (उपरोक्त)** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में भी इस मामले के तथ्यों को शामिल किया गया है।

अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ विहित प्राधिकारी ने दिनांक 10-04-2003 और 31-03-1999 के प्रश्नगत आदेश पारित करते समय तथ्यों और विधि की त्रुटियों का सामना किया।

अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 10.04.2003 को पारित प्रश्नगत आदेश के साथ-साथ विहित प्राधिकारी द्वारा दिनांक 31.03.1999 को पारित आदेश अपास्त किये जाने योग्य हैं तथा इन्हें अपास्त किया जाता है।

रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 498

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट टैक्स संख्या 1510 वर्ष 2022

दिगवेंद्र प्रताप सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अमी टंडन, श्री अभिनव गौड़, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री विभु राय, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
ए.एस.जी.आई., श्री नवीन चंद्र गुप्ता

(ए) कर कानून -प्रत्यक्ष कर विवाद से विश्वास अधिनियम, 2020 - धारा 2(1), 3, 4 और 5 **-** यदि समाधान योजना में कर के बकाया जमा करने में देरी असाधारण परिस्थिति के कारण होती है**,** तो न्यायालय अपनी आँखें बंद नहीं कर सकती है और घोषणाकर्ता को इसे जमा करने की अनुमति देगी **-** समाधान योजना में कर के बकाया जमा करने में असाधारण परिस्थितियों के कारण हुई देरी को माफ करते हुए**,** न्यायालय योजना का विस्तार नहीं करेगी**,** लेकिन यह घोषणाकर्ता की असाधारण परिस्थितियों को देखते हुए एक सुधारात्मक उपाय है। **(**पैरा **-**12)

याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 3 के तहत घोषणा दायर की **-** उनके द्वारा भुगतान किए गए कर को समायोजित करते हुए प्रमाण पत्र जारी किया गया **-** बकाया जमा करने की अंतिम तिथि 31.10.2021 तक बढ़ा दी गई **-** 31.10.2021 को**,** उन्होंने एक चेक जमा किया**,** लेकिन एक दुर्घटना और घुटने की चोट के कारण भुगतान में देरी हुई **-** आयकर विभाग ने **"**विवाद विश्वास है**"** योजना के तहत जमा की गई राशि को अस्वीकार कर दिया **-** प्रश्न यह है कि क्या देरी को माफ किया जा सकता है **-** सर्वोच्च न्यायालय ने असाधारण परिस्थितियों में विलंब को माफ करने के मुद्दे पर विचार नहीं किया - केवल यह टिप्पणी की कि योजना के तहत निर्धारित समय से योजना का लाभ नहीं बढ़ाया जा सकता। **(पैरा - 10,13)**

अभिनिर्धारित:-8,67,137/- रुपये के बकाया कर को जमा करने में तीन दिन की देरी को क्षमा किया जाना चाहिए, और याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई शेष कर राशि को अधिनियम, 2020 की योजना के अनुसार समय के भीतर मानते हुए प्रतिवादियों द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए। केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा पारित आदेश/पत्र रद्द किया जाता है। **(पैरा - 14)**

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. *आई.ए. हाउसिंग सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रिंसिपल सी.आई.टी.* - 4, *रिट याचिका* **(***सी***)** *संख्या* 3560 वर्ष 2022

2. *शेखर रिसॉर्ट्स लिमिटेड बनाम यू.ओआ.ई. एवं अन्य***,** (2023) 3 *एससीसी* 220

3. *मेसर्स केन कंप्यूटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम नामित समिति* **(***एसवीएलडीआरएस***)** *एवं अन्य***,** *एसएलपी* **(***सी***)** *संख्या* 2116/2023

4. *एम.सी.डी. बनाम गुरनाम कौर*, (1989) 1 एससीसी 101,

5. *अर्नित दास बनाम बिहार राज्य*, (2000) 5 एससीसी 488

6. *तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. और अन्य*, (2000) 5 एससीसी 501

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री अमी टंडन और श्री अभिनव गौड़ तथा प्रतिवादी विभाग के विद्वान वकील श्री नवीन चंद्र गुप्ता की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.8.2022 को चुनौती दी है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष कर विवाद से विश्वास अधिनियम, 2020 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 2020" कहा जाएगा) के तहत उसके द्वारा देय शेष राशि जमा करने में तीन दिन की देरी को माफ करने के याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का तर्क यह है कि संसद ने विवादित कर के समाधान के लिए अधिनियम 2020 बनाया है। उपरोक्त अधिनियम, 2020 के अनुसार, घोषणाकर्ता को नामित प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम, 2020 की धारा 4 के तहत अपनी घोषणा प्रस्तुत करनी चाहिए, और उसके बाद नामित प्राधिकारी, घोषणाकर्ता द्वारा प्रस्तुत घोषणा प्राप्त करने के बाद, घोषणाकर्ता को एक प्रमाण पत्र प्रदान करेगा जिसमें कर बकाया और ऐसे निर्धारण के बाद देय राशि का विवरण होगा। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त अधिनियम 2020 की योजना के अनुसरण में, आकलन वर्ष 2010-11 के लिए कर के समाधान के लिए, याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 2020 की धारा 4 के तहत आवश्यक अपनी घोषणा को 5.6.2020 को प्रस्तुत की। उपरोक्त घोषणा प्रस्तुत करने के बाद, अधिनियम, 2020 की धारा 5 के अनुसार फॉर्म-III में नामित प्राधिकारी का प्रमाण पत्र भी 9.11.2020 को पोर्टल पर अपलोड किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा उसी दिन डाउनलोड भी किया गया था। इस प्रमाणपत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता को 31.12.2020 को या उससे पहले 18,67,137/- रुपये का भुगतान करना था। अंतिम तिथि समाप्त होने से पहले, वित्त मंत्रालय ने दिनांक 27.10.2020 को एक अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा शेष राशि जमा करने की अंतिम तिथि 31.3.2021 तक बढ़ा दी गई। इसके बाद, उपरोक्त अधिसूचना दिनांक 27.10.2020 को केंद्र सरकार द्वारा एक और अधिसूचना जारी करके संशोधित किया गया, जिसमें शेष कर के भुगतान की अंतिम तिथि को बढ़ा दिया गया और अंततः, अधिसूचना दिनांक 25.6.2021 द्वारा, शेष कर के भुगतान की अंतिम तिथि को 31.10.2021 तक बढ़ा दिया गया। 31.10.2021 को रविवार था. इसलिए, अधिनियम, 2020 की धारा 5 के तहत नामित प्राधिकारी द्वारा जारी प्रमाण पत्र में उल्लिखित शेष कर जमा करने के लिए, याचिकाकर्ता ने 8,67,137/- रुपये (फॉर्म - III जारी करने से पहले उसके द्वारा जमा किए गए 10 लाख रुपये को समायोजित करने के बाद) की राशि का एक चेक रविवार को ही बैंक

के ड्रॉप बॉक्स में डाला, लेकिन उपरोक्त चेक के नकदीकरण पर भुगतान की रसीद (चालान) बैंक द्वारा 3.11.2021 को जारी की गई थी।

4. याचिकाकर्ता के वकील ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता भी 1.11.2021 को एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना का शिकार हो गया, जिसमें उसके दाहिने घुटने में गंभीर चोटें आईं और उसे 1.11.2021 से तीन दिनों की अवधि यानी 1.11.2021 से 3.11.2021 तक के लिए पूर्ण आराम की सलाह दी गई और अपने दावे के समर्थन में, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में अनुबंध-8 के रूप में डॉक्टर द्वारा जारी चिकित्सा प्रमाण पत्र भी संलग्न किया है। हालाँकि, आयकर विभाग के खाते में पैसा जमा करने के बावजूद, उन्हें अधिनियम 2020 के तहत योजना का लाभ पूरी तरह से प्राप्त करने के लिए फॉर्म-IV जमा करने/फाइल करने की अनुमति नहीं दी गई, क्योंकि इसमें तीन दिन की देरी हुई। बैंक द्वारा चालान का सृजन. हालाँकि, आयकर विभाग के खाते में पैसा जमा करने के बावजूद, उन्हें अधिनियम 2020 के तहत योजना का लाभ पूरी तरह से प्राप्त करने के लिए फॉर्म-IV जमा करने/फाइल करने की अनुमति नहीं दी गई, क्योंकि बैंक द्वारा चालान का सृजन करने में तीन दिन की देरी हुई। आयकर विभाग की उपरोक्त कार्रवाई से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 15.11.2021 को केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष के समक्ष एक आवेदन दायर किया और प्रार्थना की कि उसकी कर देनदारी की शेष राशि जमा करने में तीन दिन की देरी को माफ करने के लिए उचित आदेश जारी किया जाए लेकिन उपरोक्त आवेदन को आक्षेपित आदेश दिनांक 25.8.2022 द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अधिसूचना में शेष कर देनदारी जमा करने की अंतिम तिथि का उल्लेख किया गया है; इसलिए, इसे बढ़ाया नहीं जा सकता।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने दिनांक 25.8.2022 के आक्षेपित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि कर की शेष राशि जमा करने में तीन दिन की देरी हुई, सबसे पहले इस कारण से कि शेष कर जमा करने की अंतिम तिथि रविवार को थी । दूसरे, घुटने में चोट के कारण वह 1.11.2021 से 3.11.2021 तक बैंक से संपर्क नहीं कर सके। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने 2.11.2022 को ***रिट याचिका (सी) संख्या 3560/2022 (आई.ए. हाउसिंग सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रधान आयकर आयुक्त-4)*** में पारित दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर काफी भरोसा किया जिसमें अधिनियम 2020 के तहत जारी वर्तमान योजना की तिथि बढ़ाने के संबंध में विचाराधीन था। इस याचिका को स्वीकार करते हुए, दिल्ली उच्च न्यायालय ने कर की शेष राशि जमा करने में देरी को माफ कर दिया और आयकर विभाग को अप्रत्याशित और असंगत परिस्थितियों के आधार पर फॉर्म-III में निर्धारित शेष राशि को स्वीकार करने का निर्देश दिया जो याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे थे और जिसके परिणामस्वरूप शेष कर जमा करने में देरी हुई, उसे 25.3.2020 से कोविड-19 के कारण लॉकडाउन अवधि पर विचार करते हुए माफ किया जा सकता है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने (2023) 3 एससीसी 220 में रिपोर्ट किए गए शेखर रिसॉर्ट्स लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। उपरोक्त फैसले में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने देरी को माफ करने के बाद, याचिकाकर्ता को इस आधार पर बकाया राशि जमा करने की अनुमति दी कि याचिकाकर्ता ने पहले ही अपनी घोषणा जमा कर दी थी, लेकिन कानूनी बाधा के कारण वह भुगतान नहीं कर सका, इसलिए, शेष राशि जमा करने में उक्त देरी को माफ करना योजना का विस्तार नहीं है, बल्कि यह एक उपचारात्मक उपाय है।

7. इसके विपरीत, आयकर विभाग के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया था कि याचिकाकर्ता की घोषणा प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता को फॉर्म-III में अधिनियम 2020 की धारा 5 के तहत प्रमाण पत्र 9.11.2020 को जारी किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता बकाया राशि जमा करने की तारीखों को छोड़ कर तारीख बढ़ने का इंतजार करता रहा और यहां तक कि अंतिम विस्तारित तिथि तक बकाया कर जमा नहीं कर सका । अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वकील ने एसएलपी (सी) नंबर 2116/2023 (मैसर्स केन कंप्यूटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम नामित समिति (एसवीएलडीआरएस) और अन्य) में सुप्रीम कोर्ट के 6.2.2023 के फैसले पर बहुत भरोसा किया, जिसमें शीर्ष अदालत ने पाया कि अधिनियम, 2020 के तहत योजना के तहत निर्धारित कर की शेष राशि जमा करने की अंतिम तिथि को बढ़ाया नहीं जा सकता है और उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि की और याचिकाकर्ता की रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि एसवीएलडीआर योजना के तहत निर्धारित अंतिम तिथि को बढ़ाया नहीं जा सकता है।

8. विद्वान स्थायी वकील के कथनों के उत्तर में, याचिकाकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान स्थायी वकील द्वारा जिस फैसले पर भरोसा किया गया है, उसे नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दे के संबंध में उपरोक्त फैसले में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने (1989) 1 एससीसी 101 में रिपोर्ट किए गए दिल्ली नगर निगम बनाम गुरनाम कौर, (2000) 5 एससीसी 488 में रिपोर्ट किए गए अर्नित दास बनाम बिहार राज्य, साथ ही (2000) 5 एससीसी 501 में रिपोर्ट किया गए तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के निर्णय पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उपरोक्त उद्धृत निर्णयों में, शीर्ष अदालत ने कहा कि जब किसी विशेष बिंदु को अदालत द्वारा लगातार निर्धारित नहीं किया जाता है, तो वह अनुपात निर्णय का हिस्सा नहीं बनता है और बाध्यकारी नहीं है।

9. पक्षकारों की दलीलों और अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार के वित्त मंत्रालय ने अधिनियम 2020 के अनुसरण में "विवाद से विश्वास" योजना जारी की है। धारा 2(एल) में, अंतिम तिथि का मतलब ऐसी तारीख से है जिसे केंद्र सरकार

द्वारा आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचित किया जा सकता है। अधिनियम 2020 की धारा 3 के अनुसार, यदि विवादित कर के समाधान के लिए घोषणाकर्ता अंतिम तिथि से पहले चार्ट में उल्लिखित कर बकाया के संबंध में धारा 4 के प्रावधान के अनुसार नामित प्राधिकारी को घोषणा दाखिल करता है। फिर घोषणा की प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर नामित प्राधिकारी घोषणाकर्ता द्वारा देय राशि का निर्धारण करेगा और घोषणाकर्ता को कर बकाया का विवरण और फॉर्म-III के अनुसार ऐसी घोषणा के बाद देय राशि का प्रमाण पत्र प्रदान करेगा तो घोषणाकर्ता को प्रमाण पत्र प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों के भीतर निर्धारित राशि का भुगतान करना होगा। अधिनियम 2020 के पैराग्राफ संख्या 3 और 5 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

"3. इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, जहां एक घोषणाकर्ता इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत अधिसूचित तिथि पर या उससे पहले कर बकाया के संबंध में धारा 4 के प्रावधानों के अनुसार नामित प्राधिकारी को एक घोषणा दाखिल करता है, तो, आयकर अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, इस अधिनियम के तहत घोषणाकर्ता द्वारा देय राशि निम्नानुसार होगी, अर्थात्: -

क्रमांक	*कर बकाया की प्रकृति.*	*इस अधिनियम के तहत 31 दिसंबर, 2020 को या उससे पहले*	*इस अधिनियम के तहत 1 जनवरी, 2021 को या उसके बाद या*
		या उसके बाद की तारीख जो अधिसूचित की जाए, देय राशि	*बाद की किसी तारीख को, जो अधिसूचित किया जाए, देय राशि, लेकिन अंतिम तारीख को या उससे पहले*
(ए)	*जहां कर बकाया विवादित कर की कुल राशि है, ऐसे विवादित कर पर ब्याज प्रभार्य या लगाया गया है और ऐसे विवादित कर पर लगाया या लगाया जाने वाला जुर्माना है।*	*विवादित कर की राशि*	*विवादित कर की राशि और विवादित कर का दस प्रतिशत का योग: बशर्ते कि जहां विवादित कर का दस प्रतिशत ऐसे विवादित कर पर लगने योग्य या लगाए गए ब्याज की कुल राशि और ऐसे विवादित कर पर लगाए जाने योग्य या लगाए गए जुर्माने की कुल राशि से अधिक हो, तो इस अधिनियम के तहत देय राशि की गणना के उद्देश्य से अतिरिक्त राशि को नजरअंदाज*

			कर दिया जाएगा।
(बी)	जहां कर बकाया में आयकर अधिनियम की धारा 132 या धारा 132ए के तहत खोज के आधार पर किसी भी मूल्यांकन में निर्धारित कर, ब्याज या जुर्माना शामिल है।	विवादित कर की राशि और विवादित कर का पच्चीस प्रतिशत का योग: बशर्ते कि जहां विवादित कर का पच्चीस प्रतिशत ऐसे विवादित कर पर लगाए जाने वाले या लगाए गए ब्याज की कुल राशि और ऐसे विवादित कर पर लगाए जाने योग्य या लगाए गए जुर्माने से अधिक हो, इस अधिनियम के तहत देय राशि की गणना के प्रयोजन के लिए अतिरिक्त राशि को नजरअंदाज कर दिया जाएगा।	विवादित कर की राशि और विवादित कर का पैंतीस प्रतिशत का योग: बशर्ते कि जहां विवादित कर का पैंतीस प्रतिशत ऐसे विवादित कर पर लगाए जाने वाले या लगाए गए ब्याज की कुल राशि और ऐसे विवादित कर पर लगाए जाने योग्य या लगाए गए जुर्माने से अधिक हो, देय राशि की गणना के प्रयोजन के लिए अतिरिक्त राशि को नजरअंदाज कर दिया जाएगा।
(सी)	जहां कर बकाया विवाद ब्याज या विवादित जुर्माना या विवादित शुल्क से संबंधित है।	विवादित ब्याज या विवादित जुर्माना या विवादित शुल्क का पच्चीस प्रतिशत।	विवादित ब्याज या विवादित जुर्माना या विवादित शुल्क का तीस प्रतिशत:

बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां अपीलीय फोरम के समक्ष किसी मुद्दे पर आयकर प्राधिकरण द्वारा अपील या रिट याचिका या विशेष अनुमति याचिका दायर की जाती है, देय राशि ऐसे मुद्दे पर गणना की गई उपरोक्त तालिका में राशि का आधा होगा , ऐसे तरीके से जो निर्धारित किया जा सकता है:

बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील दायर की जाती है या अपीलकर्ता द्वारा किसी भी मुद्दे पर विवाद समाधान पैनल के समक्ष आपत्तियां दायर की जाती हैं, जिस पर उसे पहले ही आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण (जहां ऐसे मुद्दे पर निर्णय उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा उलट नहीं किया गया है) या उच्च न्यायालय (जहां ऐसे मुद्दे पर निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उलट नहीं किया गया है) द्वारा उसके पक्ष में निर्णय मिल चुका है, तो देय राशि ऐसे मुद्दे पर गणना की गई ऊपर दी गई तालिका में दी गई राशि का आधा होगा, इस तरह से निर्धारित किया जा सकता है:-

बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां अपीलकर्ता द्वारा आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष किसी मुद्दे पर अपील दायर की गई हो, जिस पर उसे पहले ही उच्च न्यायालय से उसके पक्ष में निर्णय मिल चुका हो (जहां ऐसे मुद्दे पर निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उलट नहीं

अनुवाद

किया गया है), देय राशि उपरोक्त तालिका में दी गई राशि का आधा होगी, जिसकी गणना ऐसे मुद्दे पर निर्धारित तरीके से की जाएगी।

5. (1) नामित प्राधिकारी, घोषणा की प्राप्ति की तारीख से पंद्रह दिनों की अवधि के भीतर, आदेश द्वारा, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार घोषणाकर्ता द्वारा देय राशि का निर्धारण करेगा और घोषणाकर्ता को एक प्रमाण पत्र प्रदान करें जिसमें कर बकाया और ऐसे निर्धारण के बाद देय राशि का विवरण शामिल हो, ऐसे प्रारूप में जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(2) घोषणाकर्ता को प्रमाण पत्र प्राप्त होने की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर उप-धारा (1) के तहत निर्धारित राशि का भुगतान करना होगा और निर्धारित प्रपत्र में नामित प्राधिकारी को ऐसे भुगतान का विवरण सूचित करना होगा और उसके बाद नामित प्राधिकारी एक आदेश पारित करेगा जिसमें कहा जाएगा कि घोषणाकर्ता ने राशि का भुगतान कर दिया है।

(3) इस अधिनियम के तहत देय राशि का निर्धारण करने वाली उप-धारा (1) के तहत पारित प्रत्येक आदेश, उसमें बताए गए मामलों के संबंध में निर्णायक होगा और ऐसे आदेश के अंतर्गत आने वाले किसी भी मामले को आयकर अधिनियम के तहत किसी अन्य कार्यवाही में फिर से नहीं खोला जाएगा या उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत या किसी समझौते के तहत, चाहे वह निवेश की सुरक्षा के लिए हो या अन्यथा, भारत द्वारा भारत के बाहर किसी अन्य देश या क्षेत्र के साथ किया गया हो।

स्पष्टीकरण.-शंकाओं को दूर करने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस अधिनियम के तहत घोषणा करना कर स्थिति को स्वीकार करने के समान नहीं होगा और आयकर प्राधिकारी या घोषणाकर्ता के लिए अपील या रिट याचिका या विशेष अनुमति याचिका में एक पक्ष होने के नाते यह दावा करना वैध नहीं होगा कि घोषणाकर्ता या आयकर प्राधिकारी, जैसी स्थिति हो, ने विवाद का निपटारा करके विवादित मुद्दे पर निर्णय को स्वीकार कर लिया है। ।"

10. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने अंतिम तिथि, यानी 5.6.2020 से पहले नामित प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम 2020 की धारा 3 के तहत आवश्यक अपनी घोषणा दायर की थी और याचिकाकर्ता की घोषणा प्राप्त होने पर, नामित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किए गए कर को समायोजित करने के बाद 9.11.2020 को अधिनियम, 2020 की धारा 5 के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र भी जारी किया था और उन्हें 31.12.2020 से पहले उनके द्वारा देय कर लगभग 18,67,137/- रुपये की भी जानकारी दी और उपरोक्त प्रमाण पत्र में यह भी उल्लेख किया गया था कि 31.12.2020 के बाद याचिकाकर्ता 20,84,351/- रुपये के बकाया कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। रिकॉर्ड से यह भी पता चला कि बकाया कर जमा करने की अंतिम तिथि समय-समय पर और अंततः अधिसूचना दिनांक 25.6.2021 द्वारा

31.10.2021 तक बढ़ाई गई थी। लेकिन आखिरी तारीख यानी 31.10.2021 को रविवार था; इसलिए, याचिकाकर्ता के तर्क के अनुसार, उसने 4.2.2019 को पहले से जमा किए गए 10 लाख रुपये को समायोजित करने के बाद, 8,67,137/- रुपये का चेक बैंक के ड्रॉप बॉक्स में डाल दिया जिसे 3.11.2021 को मंजूरी दे दी गई और आयकर विभाग के खाते में विधिवत जमा कर दिया गया। और तीन दिन की देरी इसलिए हुई क्योंकि 1.11.2021 को याचिकाकर्ता एक दुर्घटना का शिकार हो गया और उसके घुटने में चोट लग गई, और इसलिए, वह 1.11.2021 को चेक क्लियर करने या राशि जमा करने के लिए बैंक से संपर्क नहीं कर सका। तीन दिन की इस देरी के लिए आयकर विभाग ने याचिकाकर्ता द्वारा "विवाद से विश्वास" योजना के तहत जमा की गई राशि को स्वीकार नहीं किया। इसके बाद याचिकाकर्ता के तीन दिन की देरी माफ करने के आवेदन को भी केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष ने दिनांक 25.8.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया। ड्रॉप बॉक्स में चेक छोड़ने के तथ्य के साथ-साथ याचिकाकर्ता की दुर्घटना के तथ्य पर प्रतिवादी द्वारा जवाबी हलफनामे में विवाद नहीं किया गया था। अब तथ्य यह है कि क्या अप्रत्याशित परिस्थितियों के तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जो याचिकाकर्ता के नियंत्रण से बाहर थे, बकाया कर जमा करने में तीन दिन की देरी को माफ किया जा सकता है।

11. रिट याचिका (सी) संख्या 3560/2022 में पारित दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले में, एक समान मुद्दा विचाराधीन था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने के बाद, दिनांक 2.11.2022 के निर्णय द्वारा निर्णय लिया और पाया कि कर के बकाया भुगतान में देरी अप्रत्याशित और असंगत परिस्थितियों के कारण है जो याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे थी; इसलिए, यह माफ किए जाने योग्य है । और आयकर विभाग को याचिकाकर्ता की घोषणा स्वीकार करने का निर्देश दिया जाता है उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 12 और 22 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"12. इस न्यायालय की यह भी राय है कि वर्तमान मामलों में राशि के भुगतान में देरी अप्रत्याशित और असंगत परिस्थितियों के कारण है जो याचिकाकर्ताओं के नियंत्रण से परे थी। दरअसल, 25 मार्च, 2020 से देश में COVID-19 महामारी के कारण बीच-बीच में लॉकडाउन लगा रहा, जैसा कि ऊपर बताया गया है, इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, भुगतान की समय सीमा बढ़ाने के लिए योजना में कई बार संशोधन किया गया। इसके अलावा, कंपनियों के प्रबंध निदेशक की मृत्यु एक असाधारण और विलक्षण घटना थी जो न्यायसंगत विचार पर राहत न देना तर्कहीन बना देगी।

22 यह भी एक उपयुक्त मामला है जहां याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना स्वीकार करने से प्रतिवादियों पर कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा। बल्कि, उत्तरदाताओं को लाभ होता है और योजना के उद्देश्य को प्राप्त किया जाता है, अर्थात्, मामलों की पेंडेंसी को कम करना, सरकार के लिए समय पर राजस्व उत्पन्न करना और

संसाधनों की निश्चितता और बचत प्रदान करना जो लंबे समय से चलने वाली मुकदमेबाजी प्रक्रिया पर खर्च किए जाएंगे।

12. इसी प्रकार, शेखर रिसॉर्ट्स लिमिटेड (सुप्रा) में याचिकाकर्ता के वकील द्वारा एक अन्य निर्णय पर भरोसा किया गया। शीर्ष अदालत ने उपरोक्त फैसले के पैराग्राफ 25 में कहा कि यदि योजना के समाधान में बकाया कर जमा करने में देरी घोषणाकर्ता की बीमारी जैसी असाधारण परिस्थितियों के कारण होती है, और उसके मामलों की देखभाल करने वाला कोई नहीं था, तो अदालत अपनी आंखें बंद नहीं कर सकती और घोषणाकर्ता को इसे जमा करने की अनुमति देगी। शीर्ष अदालत ने यह भी कहा कि समाधान योजना में बकाया कर जमा करने में असाधारण परिस्थितियों के कारण हुई देरी को माफ करते हुए, अदालत इस योजना का विस्तार नहीं करेगी, लेकिन घोषणाकर्ता की असाधारण परिस्थितियों को देखते हुए यह एक उपचारात्मक उपाय है। पैराग्राफ संख्या 23, 24 और 25 नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"23. इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून को मामले के मौजूदा तथ्यों पर लागू करते हुए, अपीलकर्ता को कुछ ऐसा न करने के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है जिसे करना उसके लिए असंभव था। स्थगन के दौरान कोई भी भुगतान करने में अपीलकर्ता के रास्ते में कानूनी बाधा थी। भले ही अपीलकर्ता निर्धारित अवधि के भीतर निपटान राशि जमा करना चाहता था, लेकिन आईबीसी के तहत रोक को देखते हुए वह ऐसा नहीं कर सका, क्योंकि स्थगन के दौरान कोई भुगतान नहीं किया जा सकता था। मामले के उस दृष्टिकोण में, अपीलकर्ता को उपचार से वंचित नहीं किया जा सकता है और उसे कानूनी बाधा के कारण पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए जो इसका कारण था और/या निर्धारित समय के भीतर कार्य नहीं करने पर।

24. अब जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा इस आशय की टिप्पणी की गई है कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए योजना 2019 के तहत अवधि का विस्तार नहीं कर सकता है, कुछ हद तक उच्च न्यायालय सही है । उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस योजना का विस्तार नहीं कर सकता है। हालाँकि, वर्तमान मामले में यह उच्च न्यायालय द्वारा योजना के विस्तार का मामला नहीं है; यह सुधारात्मक कदम उठाने का मामला है. यह ऐसा मामला नहीं है जहां अपीलकर्ता ने योजना के तहत निर्धारित समय के भीतर कोई आवेदन नहीं किया। यह ऐसा मामला नहीं है जहां निपटान राशि का निर्धारण करने वाला फॉर्म नंबर 3 योजना की वैधता के दौरान जारी नहीं किया गया था। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अपीलकर्ता ने जानबूझकर निपटान राशि जमा नहीं की और/या निर्धारित समय के भीतर निपटान राशि जमा नहीं करने में अपीलकर्ता की ओर से कोई लापरवाही हुई। जैसा कि ऊपर देखा गया है, यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलकर्ता कानूनी बाधा के कारण भुगतान करने में असमर्थ था और आईबीसी के प्रावधानों के मद्देनजर अधिस्थगन अवधि के दौरान भुगतान करने में

बाधा थी। 25. किसी दिए गए मामले में ऐसा हो सकता है कि एक व्यक्ति जिसने योजना के तहत आवेदन किया है और जिसे 30.06.2020 को या उससे पहले भुगतान करना था, 29.06.2020 को गंभीर रूप से बीमार हो गया और उसके मामलों की देखभाल करने वाला कोई नहीं था और इसलिए वह रकम जमा नहीं कर सका; ऐसी असमर्थता उसके नियंत्रण से बाहर थी और उसके बाद, बीमारी से बाहर निकलने पर तुरंत उसने राशि जमा करने का प्रयास किया और/या न्यायालय का दरवाजा खटखटाया - क्या न्यायालय अपनी आँखें बंद कर सकता है और कह सकता है कि यद्यपि उस व्यक्ति के भुगतान करने में असमर्थता के वैध कारण और/या कारण हो सकते हैं, फिर भी उसे कोई राहत नहीं दी जा सकती है? ऐसे असाधारण मामले भी हो सकते हैं जिन पर प्रत्येक मामले के तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है। अदालतें न्याय करने के लिए हैं और किसी व्यक्ति को ऐसा कुछ करने के लिए बाध्य नहीं कर सकतीं जिसे करना उसके लिए असंभव हो। "

13. जबकि एसएलपी (सी) संख्या 2116/2023 में पारित मेसर्स केन कंप्यूटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम नामित समिति (एसवीएलडीआरएस) और अन्य के फैसले में, शीर्ष अदालत ने असाधारण परिस्थितियों में देरी को माफ करने के मुद्दे पर विचार नहीं किया, लेकिन केवल यह देखा गया कि योजना का लाभ योजना के तहत निर्धारित समय से नहीं बढ़ाया जा सकता है ।

14. ऊपर उल्लिखित कानून के मद्देनजर, साथ ही दलीलों और रिकॉर्ड के अवलोकन पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि 8,67,137/- रुपये का बकाया कर जमा करने में तीन दिन की देरी माफ करने योग्य है और याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई शेष कर राशि को उत्तरदाताओं द्वारा अधिनियम, 2020 की योजना के अनुसार समय के भीतर स्वीकार किया जाएगा और केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा पारित आक्षेपित आदेश/पत्र दिनांक 25.8.2022 को भी रद्द किया जाता है ।

15. तद्नुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 8 ILRA 505

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री. नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 6174 वर्ष 2023

अन्य संबंधित मामलों के साथ

विनय परमार एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सदरुल इस्लाम जाफरी, श्री दिलीप कुमार गोस्वामी, श्री एन.आई. जाफरी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए.जी.ए.

क. आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 154-उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3(1)-प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करना- उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 के नियम 16(3) का उल्लंघन है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट ने तथ्यों का समुचित अवलोकन किए बिना ही लापरवाही से गैंग चार्ट को मंजूरी दे दी है और इस तरह का उल्लंघन आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को अमान्य करता है- अभिनिर्धारित किया गया कि, मूल वाद में आरोप खनिजों के परिवहन का है और यह आवश्यक रूप से आर्थिक लाभ के लिए है- इसलिए याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 2(बी) में चार्ट शब्द की परिभाषा के अंतर्गत पूरी तरह से आते हैं-इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द नहीं किया जा सकता। (पैरा 1 से 17)

ख. धारा 2(बी) के तहत गिरोह की परिभाषा, जिसमें ऐसे व्यक्ति शामिल हैं, जो हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, अभित्रास, जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या कोई अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। (पैरा 9 से 12)

याचिका खारिज की जाती है।(ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा
और माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
द्वारा प्रदत)

1. उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में एक समान प्रश्न शामिल है, अतः उन्हें एक साथ सुना गया है और एक सामान्य आदेश द्वारा निर्णयित किया जा रहा है।

2. याचियों के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एन.आई. जाफरी और राज्य प्रतिवादियों के लिए शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

3. रिट याचिका संख्या 6174 वर्ष 2023 के द्वारा प्राथमिकी रिपोर्ट दिनांक 28.03.2023 को रद्द करने की मांग की गई है जिससे मुक़दमा अपराध संख्या 76 वर्ष 2023 उत्पन्न हुई है। उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली - 2021, की धारा 2/3 के तहत थाना सयांन, जिला आगरा में दर्ज प्राथमिकी रिपोर्ट दिनांक 25.03.2023 को रद्द करने की मांग की गई है। रिट याचिका संख्या 5725 वर्ष 2023, 5373 वर्ष 2023, 5502 वर्ष 2023 और 5947 वर्ष 2923 उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द तथा समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम-1986 की धारा 2/3(1) के तहत, थाना कोतवाली, जिला बलिया में दर्ज दिनांक 25.03.2023 की प्राथमिकी रिपोर्ट को रद्द करने की मांग करती है।

4. याचियों के अधिवक्ता का तर्क है कि उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द तथा समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम-1986 के

नियम 16(3) का उल्लंघन हुआ है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट ने तथ्यों का ठीक से अध्ययन किए बिना गैंग चार्ट को मंजूरी दे दी है। ऐसा उल्लंघन विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट को क्षीण करता है।

5. अगला तर्क यह है कि याचिकाकर्ता एक गिरोह का गठन नहीं करते क्योंकि वे अधिनियम की धारा 2(ख) के तहत दिए गए गिरोह की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं।

6. इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 3 से संबंधित एक डम्पर को सयांन टोल प्लाजा पर टोल बैरियर स्टाफ और पुलिस द्वारा चेकिंग के दौरान, जैसा कि आधार मामले की प्राथमिकी रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है, जब्त कर लिया गया था। डम्पर में क्षमता से अधिक खनिज धूल भरा हुआ था। इसे अचल सिंह चला रहा था और उसका सह-चालक बी.एस. परमार था। ट्रक अमित मित्तल का था और बलुआ पत्थर की धूल के परिवहन के संबंध में कोई दस्तावेज नहीं है। नंबर प्लेट को रजिस्ट्रेशन नंबर छिपाने के लिए काला कर दिया गया था। यह भी आरोप लगाया गया था कि चालक व्हाट्सएप ग्रुप के माध्यम से डम्पर के मालिक के लगातार संपर्क में था, जिसके एडमिन याचिकाकर्ता संख्या 1 और 3 हैं।

7. आगे यह तर्क दिया गया है कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत विवादित प्राथमिकी रिपोर्ट दुर्भावनापूर्ण अभियोजन है क्योंकि पुलिस आधार मामले की जांच के दौरान गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के औचित्य को साबित करने के लिए कोई सामग्री(साक्ष्य) एकत्र नहीं कर सकी है। कथित जब्ती का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। बहर हाल वाहन को याचिकाकर्ता संख्या 3 के पक्ष में रिहा कर दिया गया है। डम्पर में लोड किए जा रहे खनिजों को उसके वैध पास के साथ ले जाया जा रहा था और इन खनिजों का रॉयल्टी का यथोचित भुगतान किया गया था।

8. अंत में यह तर्क दिया गया है कि चूंकि खनिज और रेत को डम्पर पर लोड किया गया था, इसलिए उसी के बहने से नंबर प्लेट धुंधली हो गई थी और इसे जानबूझकर नहीं छिपाया गया था।

9. माननीय अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता (एजीए) ने याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन किया है और यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(ख) के तहत दिए गए गिरोह की परिभाषा में आते हैं, जिसमें वे व्यक्ति शामिल हैं, जो अकेले या सामूहिक रूप से, हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकाना, या दबाव डालना या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था बाधित करने या किसी भी अनुचित अस्थायी, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं।

10. यह तर्क दिया गया है कि आधार मामले में आरोप खनिजों के परिवहन का है और यह आवश्यक रूप से आर्थिक लाभ के लिए है। इसलिए, याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 2(ख) में शब्द गिरोह की परिभाषा के अंतर्गत

पूर्ण रूप से आते हैं। इसलिए, प्राथमिकी रिपोर्ट को रद्द नहीं किया जा सकता।

11. हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अध्ययन किया है।

12. हम विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता के इस तर्क में दम पाते हैं कि खनिजों के किसी भी अवैध परिवहन में परिवहन के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों को अनुचित आर्थिक या भौतिक या अन्य लाभ होगा और इसलिए, याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 2(ख) में गिरोह शब्द की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि "गिरोह" शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो अकेले या सामूहिक रूप से, हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकाना, या दबाव डालकर कार्य करते हैं। ये शब्द परस्पर अनन्य नहीं हैं। इस रिट याचिका के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक शब्द धारा 2(ख) में आने वाला शब्द 'अन्यथा' है। इसलिए, यदि आर्थिक या भौतिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, तो यह आवश्यक रूप से हिंसा, या धमकी या हिंसा के प्रदर्शन, या धमकाने, या दबाव डालने से ही प्राप्त नहीं होता है। उपरोक्त शब्दों को 'अन्यथा' शब्द से गुण-संपन्न बनाया गया है और इसलिए हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, धमकाना और दबाव डालना, अकेले या सामूहिक रूप से, एकमात्र आवश्यक तत्व हैं। सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करने या अनुचित आर्थिक या भौतिक लाभ प्राप्त करने का कोई अन्य तरीका भी अधिनियम की धारा 2(ख) में शब्द 'अन्यथा' के उपयोग के कारण इसे 'गिरोह' की परिभाषा के अंतर्गत ले आएगा। इसलिए, इस संबंध में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क स्वीकार करने योग्य नहीं है।

13. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा किए गए अन्य तर्कों का संबंध है, हमारे विचार में वे याचिकाकर्ताओं का बचाव हैं, जिन्हें प्राथमिकी रिपोर्ट को रद्द करने के लिए दायर रिट याचिका की सुनवाई के दौरान नहीं देखा जा सकता है।

14. इस प्रस्तुतीकरण को, कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गिरोह चार्ट को बिना सोचे समझे और उसके साथ के दस्तावेजों का ठीक से अध्ययन किए बिना अनुमोदित कर दिया गया है, यह न्यायालय प्रभावी नहीं मानता है।

15. गिरोह चार्ट के अवलोकन से पता चलता है कि इसे आगरा कमिश्नरी के पुलिस आयुक्त द्वारा अनुमोदित किया गया है, जो इसे अनुमोदित करने के लिए अधिकृत हैं। यह तर्क कि आवश्यक दस्तावेजों के अवलोकन के बिना ऐसी स्वीकृति प्रदान की गई है, केवल एक आरोप है और इसका कोई आधार नहीं है, इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

16. चूंकि, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं के तर्क इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं हैं और चूंकि प्राथमिक सूचना रिपोर्ट में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, इसलिए इसे रद्द नहीं किया जा सकता है।

Reportable

17. तदनुसार, ये रिट याचिकाएं विफल होती हैं और उन्हें खारिज कर किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 508

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.07.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7948 वर्ष 2005

श्रीमती जाहिदा अंजुम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री ऋषिकेश त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सरकारी अधिवक्ता, श्री ए.आर. द्विवेदी, श्री मनीष द्विवेदी, श्री प्रभाकर त्रिपाठी

आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 141, 142, 226 और 227 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 और 482 - मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019 - धारा 3 - याचिका पत्नी द्वारा दायर - पुनरीक्षण में पारित आदेश को चुनौती देने के साथ-साथ धारा 125 सीआर.पी.सी. के तहत भरण-पोषण बढ़ाने के लिए - याचिकाकर्ता-पत्नी का कभी तलाक नहीं हुआ था - अपने पति से भरण-पोषण की मांग - धारा 125 सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन दायर किया - विचारण न्यायालय ने रुपये 1500/- प्रति माह का भुगतान करने के लिए आवेदन को अनुमति दी। - दो पुनरीक्षण याचिकाएं दायर की गईं - एक पति द्वारा अपास्त करने के लिए और दूसरी पत्नी द्वारा भरण-पोषण की राशि बढ़ाने के लिए - दोनों पुनरीक्षण पर एक ही निर्णय हुआ - पुनरीक्षण न्यायालय ने पति द्वारा दायर पुनरीक्षण को स्वीकार किया और पत्नी द्वारा दायर पुनरीक्षण को अस्वीकार कर दिया - पति द्वारा तलाक की याचिका दायर की गई - न्यायालय ने पाया कि पति का तीन तलाक देने का दावा सिद्ध होना चाहिए और दावे के बावजूद, पत्नी को पुनर्विवाह होने तक भरण-पोषण का अधिकार है - पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय त्रुटिपूर्ण है और न्याय सुनिश्चित करते हुए पत्नी के भरण-पोषण के दावे का शीघ्र पुनर्मूल्यांकन करने का निर्देश दिया गया - अभिनिर्धारित किया गया, - (i) न्यायालय का दृढ़ मत है कि पति द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय कानून की दृष्टि से गलत है और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य है - (ii) और आपराधिक पुनरीक्षण में पत्नी द्वारा दावा की गई भरण-पोषण राशि में वृद्धि का मुद्दा उठता है - इसलिए, संबंधित न्यायालय को

निर्देश दिया जाता है कि वह इस निर्णय की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार निर्णय ले - याचिका स्वीकार की गई। (पैरा - 23, 24, 25)

रिट याचिका स्वीकृत । (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. शमीम आरा बनाम स्टेट ऑफ यूपी, 2002 क्रि.एलजे. 4726

2. शबाना बानो बनाम इमरान खान, 2009 एआईआर एससीडब्ल्यू 7490

3. शायरा बानो बनाम यू.ओ.आई., रिट याचिका संख्या 118 वर्ष 2016

4. राधे श्याम और अन्य बनाम छवि नाथ और अन्य, (2015) 5 एससीसी 423

5. पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायाधीश मजिस्ट्रेट एवं अन्य, (1998) 5 एससीसी 749

6. साहेदा खातून बनाम घोलम सरवर, 2002 क्रि.एलजे. 4150

7. डेनियल लतीफी और अन्य बनाम यू.ओ.आई., 2001 एआईआर एससीडब्ल्यू 3932

8. मेजर जनरल ए.एस. गौरया और अन्य बनाम एस.एन. ठाकुर और अन्य, (1986) 2 एससीसी 709

9. शेनॉय एंड कंपनी बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी, [1985] (2) एससीसी 512

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषिकेष त्रिपाठी, प्रत्यर्थी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष द्विवेदी, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ओ.पी. मिश्रा को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता- श्रीमती जाहिदा अंजुम ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 173 वर्ष 2004 (आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 212 वर्ष 2004 से संबंधित) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 06.05.2005 को रद्द करने के लिए उत्प्रेरण-लेख रिट जारी करने की प्रार्थना की है और साथ ही प्रत्यर्थी संख्या 2 को दं.प्र.सं. की धारा 125 के तहत आवेदन की तारीख से याचिकाकर्ता को 5000/- रुपये प्रतिमाह की

भरण-पोषण राशि का भुगतान करने का आदेश देने का परमादेश जारी करने की भी मांग की गई है।

3. इस याचिका से उत्पन्न प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

याचिकाकर्ता ने वर्ष 2001 में संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने पति-प्रत्यर्थी संख्या-2, अतीकुर्रहमान से भरण-पोषण की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया। विचारण न्यायालय ने दिनांक 30.06.2004 को एक आदेश पारित किया और भरण-पोषण के रूप में उसके पक्ष में 1500/- रुपये प्रति माह का भुगतान करने को कहा, जो कि आदेश की तारीख से देय होगा। उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या-2 ने अलग-अलग आपराधिक पुनरीक्षण दायर किए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 212 वर्ष 2004 में भरण पोषण की राशि बढ़ाने की मांग की जा रही थी और उसके पति द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 173 वर्ष 2004 में भरण-पोषण को रद्द करने की मांग की जा रही थी। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया और दिनांक 06.05.2005 को एक सामान्य आदेश पारित करके भरण-पोषण आदेश को रद्द करते हुए प्रत्यर्थी संख्या-2 के पुनरीक्षण की अनुमति दी।

4. याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित तर्क उठाए गए हैं: -

याचिकाकर्ता का कभी तलाक नहीं हुआ था और भरण-पोषण के अनुदान को रोकने के उद्देश्य से उसके पति द्वारा लिखित बयान में तलाक की झूठी दलील दी गई थी। प्रत्यर्थी संख्या-2 ने तलाक की अपनी याचिका पर जोर देने के लिए केवल तलाकनामा की फोटोप्रति ही दाखिल कर सका, वह भी विचारण के लंबित रहने के चरण में, इसलिए तलाक की याचिका काफी संदिग्ध थी; विद्वान विचारण न्यायालय ने सही विचार किया कि याचिकाकर्ता भरण-पोषण का हकदार था; याचिकाकर्ता को "इद्दत" अवधि के दौरान भरण-पोषण के लिए न तो कभी मेहर की राशि का भुगतान किया गया और न ही किसी अन्य राशि का; विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने धारणाओं और संयोजनों के आधार पर मजिस्ट्रेट के आदेश को गलत तरीके से रद्द कर दिया; पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं था।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या-2 ने कहा है कि उसने दिनांक 20.04.2004 को आयोजित एक पंचायत में तीन बार तलाक (तीन तलाक) कहकर अपनी पत्नी को तलाक दे दिया; पंचायत में उसकी पत्नी के पिता और रिश्तेदार भी शामिल थे; विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किए गए उनके लिखित बयान में तीन तलाक की दलील का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था; उपरोक्त कथन का खंडन करने के लिए उनकी पत्नी द्वारा कभी कोई प्रतिकृति/अतिरिक्त उत्तर नहीं दिया गया; उन्होंने "इद्दत" अवधि के लिए मेहर की राशि और भरण-पोषण का भुगतान किया; क्योंकि वह तलाकशुदा है, इसलिए, वह दं.प्र.सं. की धारा-125 के प्रावधानों के तहत किसी भी राहत की हकदार नहीं है; मुस्लिम महिला (विवाह पर

अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 की धारा-3 ऐसी परिस्थितियों में लागू होगी।

6. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष "लिखित दलीलें" दायर की हैं। प्रस्तर-4 में उल्लिखित तर्कों के अलावा, यह तर्क दिया जाता है कि:-

(i) तलाक की याचिका स्वीकार्य नहीं है और ऐसी याचिका दं.प्र.सं. की धारा 125 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***शमीम आरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2002 सी.आर.एल.एल.जे. 4726*** *के आलोक में गुजारा भत्ता प्राप्त करने के उसके अधिकार पर अतिक्रमण नहीं कर सकती है।*

(ii) पक्षों के बीच सुलह का प्रयास करना अनिवार्य था, इसलिए, ऐसे प्रयास के बिना कोई भी तलाक अवैध है।

(iii) पुनरीक्षण न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित कानून के दोनों बिंदुओं को नजरअंदाज करते हुए निष्कर्ष दिया।

(iv) यदि तर्क के लिए, याचिकाकर्ता को तलाकशुदा माना जाता है, तो उसने अभी तक दोबारा शादी नहीं की है। और इसलिए, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय ***शबाना बानो बनाम इमरान खान, 2009 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 7490*** *के आलोक में जब तक उसने पुनर्विवाह नहीं किया तब तक वह भरण-पोषण की हकदार है।*

(v) रिट याचिका संख्या 118 वर्ष 2016 में ***शायरा बानो बनाम भारत संघ*** *मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर तीन तलाक कहकर तलाक देना अवैध है। इसलिए, तीन तलाक दं. प्र. सं. की धारा 125 के तहत भरण-पोषण से इनकार का आधार नहीं हो सकता।*

7. पहली और सबसे महत्वपूर्ण आपत्ति विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उठाई गई है। और प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि एक न्यायिक आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के मूल रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं है। राज्य द्वारा यह बताया गया है कि इस मामले में पुनरीक्षण में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 06.05.2005 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

8. उपरोक्त बिंदु पर जोर देने के लिए राधे श्याम और अन्य बनाम छबि नाथ और अन्य ***(2015) 5 एस.सी.सी. 423*** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलम्ब लिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में अवधारित किया है कि उत्प्रेरण-लेख का रिट "निचली अदालत", न्यायाधिकरण, सार्वजनिक प्राधिकरण या व्यक्तियों के किसी अन्य निकाय के निर्णयों को समीक्षा के लिए लाने के लिए है ताकि अदालत यह निर्धारित कर सके कि उन्हें रद्द किया जाना चाहिए अथवा नहीं। हालाँकि, अभिव्यक्ति "हस्तक्षेप" अदालत न्यायिक अदालतों के लिए संदर्भित नहीं है। उत्प्रेरण-लेख का रिट न्यायिक अदालतों के अलावा न्यायाधिकरणों या प्राधिकरणों या अदालतों के स्पष्ट रूप से गलत या क्षेत्राधिकार के बिना आदेशों के खिलाफ है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 25 में आगे

कहा:-

"25. उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आने वाली सभी अदालतें इसके अधीनस्थ होती हैं और अनुच्छेद 227 के तहत इसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन होती हैं। रिट क्षेत्राधिकार संवैधानिक रूप से सभी उच्च न्यायालयों को प्रदान किया जाता है। इंग्लैंड में अपनाए जाने वाले रिट क्षेत्राधिकार के व्यापक सिद्धांत भारत पर लागू होते हैं और उत्प्रेरण-लेख रिट न्यायिक अदालतों के अलावा न्यायाधिकरणों या प्राधिकरणों या अदालतों के स्पष्ट रूप से गलत या बिना अधिकार क्षेत्र के आदेशों के विरुद्ध होती है। भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को रिट जारी करने की कोई उदाहरण नहीं है। अपने न्यायिक आदेशों पर विचार करने में अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज पर नियंत्रण अनुच्छेद 227 के तहत अपीलीय या पुनरीक्षण शक्तियों या अधीक्षण की शक्ति के माध्यम से किया जाता है। सिविल न्यायालय के आदेश न्यायिक/सिविल न्यायालयों के अलावा प्राधिकरणों या न्यायाधिकरणों या अदालतों के आदेशों से भिन्न आधार पर होते हैं। जबकि अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार क़ानूनों द्वारा विनियमित होता है और अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति संवैधानिक है। अभिव्यक्ति "निचली अदालत" न्यायिक अदालतों के लिए संदर्भित नहीं है।"

9. इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि सिविल न्यायालय के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी जा सकती है, न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मूल रिट क्षेत्राधिकार के तहत।

10. साथ ही, यह माना जाता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक रिट याचिका ऐसे आदेश के खिलाफ बरकरार रह सकती है और न्याय के हित की पूर्ति के लिए परिस्थितियों की विशिष्टता को देखते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत परिवर्तित करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है।

11. मैंने इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखा। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं वे हैं; याचिकाकर्ता जाहिदा ने वर्ष 2001 में भरण-पोषण देने की प्रार्थना के साथ, दं. प्र. सं. की धारा-125 के तहत एक आवेदन दायर किया,

वर्ष 2004 में उस पर निर्णय लिया गया; विपक्षी पक्षकार संख्या-2 (उनके पति) ने वर्ष 2004 में एक पुनरीक्षण दायर किया जिसका निर्णय दिनांक 06.05.2005 को हुआ; पत्नी (वर्तमान याचिकाकर्ता) ने दिनांक 14.07.2005 को उस आदेश को चुनौती दी और मामला तब से यानी पिछले 17 वर्षों से इस न्यायालय के समक्ष लंबित है। इस पूरे समय के दौरान, न तो यह कानूनी मुद्दा उठाया गया और न ही यह महसूस किया गया कि यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के बजाय अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों को लागू करने का प्रयास करती है। यह सुस्थापित कानून है कि यदि वादी अन्यथा इसके लिए हकदार है तो कानून के प्रावधानों का गैर-उल्लिखित या गलत उल्लेख उचित राहत देने की राह में नहीं आना चाहिए। मेरे विचार में, एक सामान्य वादी से कानून के प्रावधानों की बहुत सूक्ष्म जानकारी रखने की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह सवाल हमेशा मेरी न्यायिक चेतना को परेशान करता रहा है कि एक आम आदमी या सामान्य वादी को कानून के उस प्रावधान से क्या लेना-देना है जिसके तहत वह राहत का हकदार हो सकता है। यह कानून की अदालत या न्याय की अदालत या उसके अधिवक्ता की चिंता होनी चाहिए। जहां कानून का उल्लेख न करने या गलत उल्लेख करने के अलावा कोई अन्य निवारक न्याय के घुमावदार रास्ते में बाधा नहीं बनता है, वहां न्यायाधीश को अपनी अपेक्षित भूमिका निभानी चाहिए। न्यायाधीश या न्यायालय समाधान की तलाश न करके और तकनीकी आधार पर रिट को खारिज करके एक सामान्य व्यक्ति/वादी के प्रति अपने कर्तव्य में विफल हो रहे होंगे। इस मामले को देखते हुए, मैं इस याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई याचिका के रूप में मानना उचित समझता हूं।

12. इस संबंध में मैं सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय **पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायाधीश मजिस्ट्रेट और अन्य, (1998) 5 एस.सी.सी. 749,** का अवलम्ब लेता हूं जिसमें यह अवधारित किया गया है कि:-

> ***"जिस नामकरण के तहत याचिका दायर की गई है वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह अदालत को अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है जब तक कि कोई विशेष प्रक्रिया निर्धारित न हो जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि मौजूदा मामले जैसे मामले में अदालत को पता चलता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग नहीं कर सकते हैं, तो अदालत निश्चित रूप से याचिका को अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत मान सकती है, हालांकि, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। संशोधन***

और अपील संहिता में प्रावधान मौजूद हैं लेकिन कभी-कभी तत्काल राहत के लिए अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की गई कुछ गंभीर त्रुटियों को सुधारने के लिए संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का सहारा लेना पड़ सकता है। हालाँकि उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर वर्तमान याचिका को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत माना जा सकता है।"

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं इस याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में मान रहा हूं।

13. इस मामले में दो कानूनी सवाल शामिल हैं। सबसे पहले, क्या पुनरीक्षणकर्ता (यहां वर्तमान याचिकाकर्ता) को तलाकशुदा माना जा सकता था और यदि ऐसा दावा स्वीकार्य पाया जाता है, तो क्या वह द.प्र.सं. की धारा-125 के तहत भरण-पोषण पाने की हकदार होगी? मैंने दोनों पक्षों की दलीलों और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए कानूनों **शमीम आरा (उपरोक्त), शबाना बानो (उपरोक्त) और शायरा बानो (उपरोक्त)** का परिशीलन किया ।

14. मैं कानून को कालानुक्रमिक रूप से देखना चुनता हूं; वर्ष 2000 में दिये गए **शमीम आरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय को "तलाक" की घोषणा/उद्घोषणा, इसके सबूत और उसके समक्ष एक मामले में इसके असर के सवाल पर विचार करना था। गौरतलब है कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उस मामले में, तर्क यह था कि पति ने दिनांक 11.07.1987 को "तलाक" कहा था; दिनांक 05.12.1990 को उनकी ओर से दायर लिखित बयान में याचिका का उल्लेख किया गया था; दूसरे पक्ष द्वारा यह तर्क दिया गया कि एक लिखित बयान दाखिल करने से जिसमें "तलाक" के तथ्य का उल्लेख किया गया है, "तलाक" की घोषणा के बारे में संचार उसी तारीख को पूरा हो गया है, इसलिए उसे लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से तलाकशुदा माना जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया कि:-

"16. हमारी यह भी राय है कि तलाक को प्रभावी बनाने के लिए उसका उच्चारण आवश्यक है। 'उच्चारण' शब्द का अर्थ है उद्घोषणा करना, औपचारिक रूप से बोलना, आलंकारिक रूप से बोलना, घोषित करना, उच्चारण करना, स्पष्ट करना (देखें चेम्बर्स 20वीं सेंचुरी डिक्शनरी, नया संस्करण, पृष्ठ 1030)। दिनांक 11.7.1987 को तलाक होने का कोई साक्ष्य नहीं है। उच्च न्यायालय ने तलाक के रूप में जिसे बरकरार रखा है वह लिखित बयान में ली गई दलील है और दिनांक

5.12.1990 को लिखित बयान की एक प्रति देकर पत्नी को सूचित किया गया है। हमारा स्पष्ट विचार है कि तलाक के लिखित बयान में की गई एक दलील, जिसे कुछ समय पहले सुनाया गया था, को पत्नी को लिखित बयान की प्रति देने की तारीख पर तलाक के प्रभाव के रूप में नहीं माना जा सकता है। प्रत्यर्थी संख्या-2 को साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए था और दिनांक 11.7.1987 को तलाक की घोषणा को साबित करना चाहिए था और यदि वह लिखित बयान में उठाई गई दलील को साबित करने में विफल रहा, तो याचिका को विफल माना जाना चाहिए। हम मुल्ला और डॉ. ताहिर महमूद द्वारा अपनी-अपनी टिप्पणियों में संदर्भित निर्णयित मामलों में प्रतिपादित दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं, जिसमें लिखित बयान में लिए गए पिछले तलाक की एक दलील, हालांकि अप्रमाणित है, को तलाक लाने के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से वैवाहिक संबंध समाप्त हो जाएगा। लिखित बयान में ली गई पिछले तलाक की दलील को अदालत में लिखित बयान दाखिल करने की तारीख पर पति द्वारा पत्नी को तलाक की घोषणा और उसके बाद पत्नी को उसकी एक प्रति सौंपने के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसी तरह, कुछ पिछली न्यायिक कार्यवाहियों में दायर दिनांक 31.8.1988 का हलफनामा भी, जो अंतरपक्षीय नहीं है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या-2 का स्व-सेवारत बयान शामिल है, साक्ष्य में प्रासंगिक और किसी भी मूल्य के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता था।"

15. **सहेदा खातून बनाम घोलम सरवर, 2002 क्रि.एल.जे. 4150** मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने "तलाक" के उच्चारण के प्रमाण के संबंध में एक समान दृष्टिकोण अपनाया। निर्णय के प्रस्तर-6 में उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:-

" यह कहना खतरनाक होगा कि अब जब ओ.पी. ने अपनी लिखित आपत्ति में इस आशय का बयान दिया है कि उसने अपनी पत्नी को किसी विशेष तारीख पर तलाक दे दिया है, तो उस कथन को यह इंगित करने के लिए लिया जाना चाहिए कि तलाक के कथित तथ्य के बारे में पत्नी को सूचित किया जा रहा है। दलीलों में दिए गए कथनों के माध्यम से ऐसे संप्रेषण का

प्रश्न तभी उठ सकता है जब यह माना जाए कि पति द्वारा कथित तौर पर तलाक देने की बात साबित हो गई है। लेकिन चूंकि इस मामले में उनका मानना है कि तलाक के तथ्य विश्वस्त साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं हुई है, इसलिए इसके संप्रेषण का प्रश्न महत्व खो देता है।"

16. मैंने पुनरीक्षण न्यायालय के फैसले का परिशीलन किया; विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने दो पुनरीक्षण तय किए; एक पत्नी द्वारा दायर किया गया और दूसरा पति द्वारा दायर किया गया। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय पर सरसरी निगाह डालने से भी यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा-125 के तहत कार्यवाही में पक्षकारों द्वारा दिये गये साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्निर्धारण किया, और स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि पति ने अपनी पत्नी को तीन बार "तलाक" कहकर तलाक दिया था, इसलिए पत्नी दं.प्र.सं. की धारा-125 के प्रावधानों के तहत किसी भी भरण-पोषण लेने की हकदार नहीं होगी, और उस समय से मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा-3 के प्रावधान लागू होंगे। साक्ष्यों का नए सिरे से मूल्यांकन करने के बाद, पुनरीक्षण न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया और पति द्वारा दायर पुनरीक्षण की अनुमति दी और पत्नी द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

17. मेरे विचार में, एक कानूनी प्रश्न स्पष्ट रूप से उठता है कि क्या पुनरीक्षण न्यायालय के लिए साक्ष्यों का नए सिरे से पुनर्मूल्यांकन करना और विचारण न्यायालय के निर्णय को रद्द करना और निष्कर्ष को बदलना कानूनी रूप से स्वीकार्य था? ध्यातव्य है कि मामले में शामिल मुख्य मुद्दे सबसे पहले यह थे कि क्या पत्नी को तलाकशुदा माना जाना चाहिए, दूसरे शब्दों में क्या पति द्वारा ली गई तलाक की दलील साबित हुई थी? दूसरे, भले ही उसे तलाकशुदा मान लिया जाए, तो क्या दं.प्र.सं. की धारा-125 के तहत भरण-पोषण प्राप्त करने का उसका अधिकार समाप्त हो गया?

18. मेरे विचार में दोनों मुद्दों पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष पूर्ववर्ती कानून के विरूद्ध और कानून के सुस्थापित सिद्धांतों के विरूद्ध थे। यह निर्णय पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा 2005 में सुनाया गया था, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय ***2002 में शमीम आरा (उपरोक्त)*** का पालन करना अनिवार्य था। ***डैनियल लतीफी और अन्य बनाम भारत संघ, 2001 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 3932*** मामले में यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि संविधान पीठ ने तब तक अवधारित किया था कि एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला भी अपने पूर्व पति से गुजारा भत्ता का दावा करने की हकदार होगी, जब तक कि वह दोबारा विवाह नहीं करती। संविधान पीठ ने कहा कि कानून का एक लाभकारी हिस्सा होने के नाते, इसका लाभ तलाकशुदा मुस्लिम महिला को मिलना चाहिए। बाद के कई मामलों

में उस निर्णय का पालन किया गया और कानून अभी भी लागू है। इसके बजाय पुनरीक्षण न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की अवहेलना करते हुए तलाक की याचिका के संबंध में फैसला सुनाया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए कानून भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सभी न्यायिक अधिकारियों पर बाध्यकारी हैं। इसलिए आक्षेपित निर्णय कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

19. इस रिट याचिका में अगला प्रश्न जो देखा जाना बाकी है वह यह है कि इस मामले से जुड़े मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***शायरा बानो बनाम भारत संघ (उपरोक्त)*** का क्या प्रभाव होगा? उपरोक्त मामले में यह फिर से ध्यान दिया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालय ने 3:2 के बहुमत से "तलाक-ए-बिद्दत" यानी तीन तलाक की प्रथा को रद्द कर दिया था।

20. सामान्यतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून को प्रारम्भ से ही कानून माना जाएगा जब तक कि स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा अन्यथा इंगित न किया गया हो।

21. **मेजर जनरल ए.एस. गौरया और अन्य बनाम एस.एन. ठाकुर और अन्य (1986) 2 एस.सी.सी. 709** प्रस्तर-13 में यह अवधारित किया गया है कि:-

> **"जहां तक इस न्यायालय के निर्णयों का प्रश्न है, संविधान के अनुच्छेद 141 के दायरे में हाल ही में शेनॉय एंड कंपनी बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी, [1985] (2) एस.सी.सी. 512 मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था, जिसमें हम में से एक पक्षकार था। उस मामले के तथ्यों का विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि यह तर्क कि राज्य द्वारा दायर अपील में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून उन अन्य पक्षों को बाध्य नहीं करेगा जिनके विरूद्ध कर्नाटक राज्य ने एक सामान्य निर्णय से अपील दायर नहीं की थी, इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों के साथ निरसित कर दी गई थी:**
>
> **"...इसलिए, यह तर्क देना निरर्थक है कि इस न्यायालय द्वारा उस निर्णय में प्रतिपादित कानून केवल हंसा कॉर्पोरेशन को बाध्य करेगा, न कि अन्य याचिकाकर्ताओं को, जिनके विरूद्ध कर्नाटक राज्य ने कोई अपील दायर नहीं की थी। ऐसा करने के लिए संविधान के अनुच्छेद**

141 के तहत इस न्यायालय के निर्णय की बाध्यकारी प्रकृति की अनदेखी करना है। अनुच्छेद 141 इस प्रकार है:

"उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होगी।" इस अनुच्छेद को पढ़ने मात्र से ही इसके विस्तार और इसकी व्यापक प्रकृति पर स्पष्ट ध्यान आ जाता है।"

22. ***शायरा बानो बनाम भारत संघ (उपरोक्त)*** में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि तीन तलाक की ऐसी प्रथा हालांकि मुस्लिम समुदाय के कुछ संप्रदायों में बड़े पैमाने पर प्रचलित है, परन्तु यह कभी भी कानूनी या शरिया द्वारा समर्थित नहीं थी।

23. इसलिए, ऐसे मामलों में जहां पक्षकारों के अधिकारों के मुद्दे पर निर्णय दिया जाना अपेक्षित है, उच्चतम न्यायलय द्वारा सुनाया गया कानून लागू होगा। इस मामले में, यहां शामिल मुद्दों को पहले से ही तय नहीं माना जा सकता है, इसलिए उच्चतम न्यायलय द्वारा निर्धारित कानून लागू होगा।

24. इस मामले को अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है; **पहला**, यह कि केवल एक लिखित बयान में यह कहना कि पति ने अमुक तारीख को तीन तलाक कहा था, को अंकित मूल्य पर नहीं लिया जा सकता था और पति पर इसे साबित करने का बोझ था। **दूसरा,** भले ही तर्कों के लिए, यह मान लिया जाए कि पति यह साबित करने में सक्षम था कि उसने वास्तव में तीन तलाक कहकर अपनी पत्नी को तलाक दे दिया है, पत्नी का भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार तब तक जारी रहेगा जब तक कि वह दोबारा विवाह नहीं कर लेती। ऐसी परिस्थितियों में, मामला चाहे जिस भी दृष्टिकोण से उठाया जाए, पत्नी को भरण-पोषण और गुजारे के लिए उचित राशि प्राप्त करने का अधिकार था, जिसका भुगतान उसे निर्धारित समय के भीतर किया जाना चाहिए था, लेकिन इसे केवल उस अवधि तक सीमित नहीं किया जा सकता था। उसे "इद्दत" अवधि के बाद की अवधि के लिए भी भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार था।

25. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, मेरा दृढ़ मत है कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 173 वर्ष 2004 में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय 06.05.2005 दिनांकित कानून की दृष्टि से गलत था और इसलिए इसे अपास्त किया जाना चाहिए। एहतियात के तौर पर यह ध्यान दिया जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय के निर्णय को अपास्त करने के परिणामस्वरूप, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 217 वर्ष 2004 में पत्नी द्वारा दावा किए गए भरण-पोषण राशि में वृद्धि का मुद्दा खुलता है। चूंकि यह मामला शायद सबसे पुराने मामलों में से एक है, इसलिए संबंधित न्यायालय को इस निर्णय की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर

विधिसम्मत निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है।

26. तदनुसार, इस याचिका को अनुमति दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 515

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 10919 वर्ष 2023

दीपक कुमार उर्फ दीपक मराठा एवं अन्य

....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सैयद इमरान इब्राहिम, श्री प्रवीण कुमार सिंह, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 226 - यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986 - धारा 2, 2 (बी), 2 (बी) (iv) और 3 - सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 - धाराएं 3 और 4 -याचिका - गैंगस्टर्स अधिनियम के तहत दर्ज की गई आक्षेपित एफआईआर को चुनौती देते हुए - धारा 3/4 सार्वजनिक जुआ अधिनियम के तहत लंबित एकल मामले के आधार पर, - जिसमें आरोपी-याचिकाकर्ता जमानत पर था - शब्द "गैंग" की परिभाषा - न्यायालय ने पाया कि, याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध आधार मामले में आरोप पत्र 29.04.2023 को दायर किया गया था और उनके विरुद्ध 30.06.2023 को आक्षेपित एफआईआर दर्ज की गई है - न्यायालय को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के तरीके में कोई अवैधता नहीं मिली - इसके अलावा, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों में, विचारित राय में, एक संज्ञेय अपराध के तत्व शामिल हैं - अभिनिर्धारित, गैंगस्टर्स अधिनियम के प्रावधानों को एक व्यक्ति के विरुद्ध एक ही मामले के आधार पर अधिरोपित किया जा सकता है - इसलिए रिट याचिका खारिज कर दी गई।

(पैरा - 10, 11, 13)

रिट याचिका खारिज।(ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा
और
माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा प्रदत)

याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी और राज्य के लिए विद्वान एजीए श्री पंकज सक्सेना को सुना गया।

रिट याचिका में चुनौती दिनांक 30.6.2023 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को दी गई है, जो यूपी गैंगस्टर्स और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3, पुलिस स्टेशन-कासगंज जिला-कासगंज, के तहत केस अपराध संख्या 441/2023 को जन्म देती है।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की दलील यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में कथित अपराध 1986 के अधिनियम में निर्दिष्ट अपराधों की श्रेणी में नहीं आते हैं। किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता 'गिरोह' शब्द की परिभाषा में नहीं आता है 'जैसा कि अधिनियम की धारा 2(बी) में है। रिट याचिका में एक और आधार यह लिया गया है कि गैंगस्टर एक्ट के तहत कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाये गये आरोपों से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है।

रिट याचिका में याचिकाकर्ता दीपक कुमार उर्फ दीपक मराठा और मोनू माहेश्वरी उर्फ मनोज कुमार हैं। सार्वजनिक जुआ अधिनियम की धारा 3/4 के तहत केस अपराध संख्या 256 सन् 2023 के एकल मामले के आधार पर उनके खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधान लगाए गए हैं, जिसमें याचिकाकर्ताओं को जमानत पर बताया गया है।

शब्द "गिरोह" को अधिनियम की धारा 2(बी) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:-

"2(बी) "गिरोह" का अर्थ व्यक्तियों का एक समूह है, जो हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को परेशान करने या कोई अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करता है। स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ, असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होना, अर्थात्-

(i) भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम संख्या 45) के अध्याय XVI या अध्याय XVII या अध्याय XXII के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम के किसी भी प्रावधान के उल्लंघन में किसी भी शराब, या नशीली या खतरनाक दवाओं, या अन्य मादक पदार्थों या नशीले पदार्थों या किसी भी पौधे की खेती या खेती करना, या विनिर्माण या भंडारण या परिवहन या आयात या निर्यात या बिक्री या वितरण, 1910 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4, 1910), या स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (अधिनियम संख्या 61, 1985), या उस समय लागू कोई अन्य कानून, या

(iii) कानून के अनुसार अन्यथा अचल संपत्ति पर कब्ज़ा करना या कब्ज़ा करना, या अचल संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के लिए झूठे दावे स्थापित करना, चाहे वह खुद का हो या किसी अन्य व्यक्ति का, या

(iv) किसी लोक सेवक या किसी गवाह को उसके वैध कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना या रोकने का प्रयास करना, या

(v) महिलाओं और लड़कियों के अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम संख्या 104) के तहत दंडनीय अपराध, या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 (1867 का अधिनियम संख्या 3) की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vii) किसी भी व्यक्ति को किसी भी पट्टे या अधिकार या माल की आपूर्ति या काम के लिए किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से कानूनी रूप से आयोजित नीलामी में बोली लगाने, या कानूनी रूप से आमंत्रित निविदा की पेशकश करने से रोकना या

(viii) किसी व्यक्ति द्वारा उसके वैध व्यवसाय, पेशे, व्यापार या रोजगार या उससे जुड़ी किसी अन्य वैध गतिविधि को सुचारू रूप से चलाने से रोकना या परेशान करना, या

(ix) भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम संख्या 45) की धारा 171-ई के तहत दंडनीय अपराध, या मतदाता को उसके चुनावी अधिकारों का प्रयोग करने से शारीरिक रूप से रोककर, वैध रूप से आयोजित होने वाले किसी भी सार्वजनिक चुनाव को रोकने या बाधित करने में, या

(x) सांप्रदायिक सद्भाव बिगाड़ने के लिए दूसरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाना, या

(xi) जनता में दहशत, अलार्म या आतंक पैदा करना, या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या मालिकों या कब्जाधारियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी संपत्तियों के संबंध में शरारत करना, या

(xiii) किसी व्यक्ति को गलत प्रतिनिधित्व पर विदेश जाने के लिए प्रेरित करना या प्रेरित करने का प्रयास करना कि उसे ऐसे विदेशी देश में कोई रोजगार, व्यापार या पेशा प्रदान किया जाएगा, या

(xiv) फिरौती वसूलने के इरादे से किसी व्यक्ति का अपहरण या अपहरण करना, या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन वाहन को उसके निर्धारित मार्ग पर चलने से रोकना या अन्यथा रोकना;

[(xvi) धन उधार विनियमन अधिनियम, 1976 के तहत दंडनीय अपराध;

(xvii) मवेशियों का अवैध रूप से परिवहन और/या तस्करी करना और गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 के प्रावधानों के उल्लंघन में कार्यों में लिप्त होना;

(xviii) व्यावसायिक शोषण, बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम, यौन शोषण, अंग निकालना और

तस्करी, भिक्षावृत्ति और इसी तरह की गतिविधियों के लिए मानव तस्करी।

(xix) गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1966 के तहत दंडनीय अपराध:

(xx) नकली भारतीय मुद्रा नोटों की छपाई, परिवहन और प्रसार;

(xxii) शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 5, 7 और 12 के उल्लंघन में हथियारों और गोला-बारूद के निर्माण, बिक्री और परिवहन में शामिल होना;

(xxiii) आर्थिक लाभ के लिए कटाई या हत्या, भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के उल्लंघन में उत्पादों की तस्करी;

(xxiv) मनोरंजन और सट्टेबाजी कर अधिनियम, 1979 के तहत दंडनीय अपराध;

(xvv) ऐसे अपराधों में लिप्त होना जो राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था और यहां तक कि जीवन की गति को भी प्रभावित करते हों।"

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का तर्क यह है कि कोई व्यक्ति अकेले या सामूहिक रूप से केवल तभी एक गिरोह का गठन कर सकता है जब (i) हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक लाभ स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए सामग्री या अन्य लाभ हासिल करने की कोशिश करता है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का जोर "हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी या जबरदस्ती" शब्दों पर है।

हमारी सुविचारित राय में, प्रावधान को मात्र पढ़ने से ही पता चलेगा कि हिंसा, धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी या जबरदस्ती अधिनियम की धारा 2 (बी) के तहत निर्दिष्ट एकमात्र शर्तें नहीं हैं। कम से कम मौजूदा मामले के लिए जो महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण है, वह है "अन्यथा" शब्द। हमारी राय में "अन्यथा" शब्द का अर्थ यह है कि धारा 2(बी) में इसके पहले आने वाले शब्द अर्थात् हिंसा, या इसकी धमकी, धमकी और जबरदस्ती संपूर्ण नहीं हैं, बल्कि केवल संकेतात्मक या उदाहरणात्मक हैं। "अन्यथा" शब्द के दायरे में कोई भी कार्य शामिल होगा जो सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ता है या जिसका उद्देश्य अस्थायी, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करना है और ऐसा कार्य असामाजिक है। इस प्रकार, "अन्यथा" शब्द को ध्यान में रखते हुए, कोई व्यक्ति जो सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ता है या किसी असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अपने लिए अनुचित अस्थायी, आर्थिक या भौतिक लाभ प्राप्त करता है, वह गैंगस्टर एक्ट के धारा 2 (b) में आने वाले "गिरोह" शब्द के दायरे में आएगा।

गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी)(vi) में प्रावधान है कि सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध भी "गिरोह" शब्द की परिभाषा में आता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के

खिलाफ आधार मामला सार्वजनिक जुआ अधिनियम की धारा 3/4 के तहत है।

इसलिए, इन परिस्थितियों में, यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती कि याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 2(बी) में दी गई "गिरोह" शब्द की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। यह भी विवाद में नहीं है कि किसी एक मामले के आधार पर किसी व्यक्ति के खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के प्रावधान लगाए जा सकते हैं।

याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मूल मामले में आरोप पत्र 29.04.2023 को दायर किया गया था और उनके खिलाफ 30.06.2023 को एफआईआर दर्ज की गई है।

इन परिस्थितियों में, जिस तरीके से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, उसमें हमें कोई अवैधता नहीं मिली। इसके अलावा, हमारी सुविचारित राय में प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों में संज्ञेय अपराध के तत्व शामिल हैं।

उपरोक्त के मद्देनजर, हमें विवादित प्रथम सूचना रिपोर्ट में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है। रिट याचिका निराधार है और **खारिज** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 518

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 11966 वर्ष 2023

अभिषेक कुकरेती एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री महिपाल सिंह, श्री कृपा शंकर सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 48(ए) और 226, - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3), 173 और 190(1)(डी) - खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 - धारा 4, 21, 22, 23(ए)(1) और 23(ए)(2) - खान और खनिज विकास और विनियमन नियमावली, 1957 - नियम 18 और 53 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 378, 379, 411 और 414 -याचिका - वाहनों को जब्त करने की आक्षेपित कार्यवाही को चुनौती देना - साथ ही एफआईआर को रद्द करना - चोरी के लिए सजा - बेईमानी से चोरी की संपत्ति प्राप्त करना - न्यायालय ने पाया कि, हर रोज अखबार देश के हर कोने से अवैध खनन की खबरों से भरे होते हैं, छापा मारने वाले दल / अधिकारी / यहां तक कि अधिकारी भी संलग्न होते हैं और अवैध खनन के कारण - इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है कि राज्य के

खजाने को, सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाने के अलावा, भारी राजस्व का नुकसान हो रहा होगा - अभिनिर्धारित किया गया, (i) याचिकाकर्ता उन वाहनों के मालिक हैं जो वर्तमान मामले में शामिल पाए गए थे, इसलिए एक संज्ञेय अपराध बनाया गया है, और (ii) यह सही समय है कि सरकार बड़े मुद्दे पर फैसला ले और आवश्यक कार्रवाई करे क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आवश्यक कार्रवाई करने के लिए विधायिका के विवेक पर छोड़ दिया है और संबंधित राज्य एक निर्वाचित सरकार होने के नाते अपने सार्वजनिक कर्तव्य / दायित्व को पूरा करे - तदनुसार, रिट याचिका खारिज कर दी गई। (पैरा - 16, 17, 18)

रिट याचिका खारिज। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जयंत बनाम स्टेट ऑफ एम.पी. (2021) 2 एससीसी 670,

2. स्टेट (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला
और
माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV द्वारा
प्रदत)

1. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कृपा शंकर सिंह, उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री महिपाल सिंह और राज्य के विद्वान एजीए श्री रतन सिंह के साथ श्री विभव ओझा को सुना ।

2. वर्तमान याचिका धारा 379, 411 आईपीसी और धारा 4/21 खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम 1957 थाना नगीना देहात, जिला बिजनौर के तहत मामला अपराध संख्या 85/2023 से जनित प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.04.2023 को रद्द करने की मांग करते हुए दायर की गई है । इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने प्रत्यर्थियों को उत्तरदायी प्रत्यर्थियों के विरुद्ध उचित कार्रवाई/ विभागीय जांच करने हेतु परमादेश की प्रकृति का निर्देश देने की मांग की है, जो वाहनों को जब्त करने की कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुपालन में उक्त वाहन चालकों की झूठी गिरफ्तारी में भी शामिल थे ।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का एकमात्र निवेदन यह है कि खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (इसके बाद 'एमएमडीआर अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 22 के के आलोक में एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती जैसा की यह प्रावधान करता है कि केवल अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही शिकायत दर्ज की जा सकती है ।

4. समर्थन में, यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने इसी आधार पर 2023 के अपराध संख्या 85 में आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7806 सन 2023 (कल्याण सिंह और 8 अन्य बनाम

यूपी राज्य और 18 अन्य) में पारित आदेश दिनांक 29.05.2023 के तहत अंतरिम आदेश दिया है । उक्त अंतरिम आदेश इस प्रकार है:-

"1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुना और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना ।

2. इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न करने की प्रार्थना के साथ ही खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957, की धारा 379, 411 और 4/21 के तहत केस अपराध संख्या 85/2023 पुलिस थाना नगीना, जिला बिजनौर के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.4.2023 को रद्द करने की मांग की गई है ।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 पर विश्वश जताते हुए कहा है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट स्वयं दर्ज नहीं की जा सकती थी ।

4. मामले पर विचार की आवश्यकता है ।

5. विद्वान स्थायी परामर्शदाता प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के लिए प्रस्तुत हुए। प्रतिवादी संख्या 4 को पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस जारी करें। दस दिनों के भीतर कार्यवाही की जा सकती है। इस स्तर पर, हम प्रतिवादी संख्या 5 से 19 तक नोटिस जारी नहीं कर रहे हैं ।

6. प्रतिवादी संख्या 1 से 4 तीन सप्ताह की अवधि के भीतर अपना जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं। प्रत्युत्तर हलफनामा, यदि कोई हो, उसके बाद दो सप्ताह के भीतर दाखिल किया जा सकता है ।

7. उसके बाद सूची बनाएं ।

8. अग्रिम आदेशों तक याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी ।"

(महत्वपूर्ण)

5. आगे यह प्रस्तुत किया गया कि **जयंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 2 एससीसी 670** में दिए गए निर्णय के अनुच्छेद 21 के खंड 21(4) के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है ।

6. इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की प्रार्थना का विरोध किया और कहा कि वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट **जयंत (उपरोक्त)** के फैसले के मद्देनजर स्पष्ट रूप से बनाए रखने योग्य है

7. हमने प्रतिस्पर्धी प्रस्तुतियों पर विचार किया और अभिलेखों का अवलोकन किया । दिलचस्प बात यह है कि दोनों पक्षों ने **जयंत (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून पर विश्वास जताया है ।

8. संक्षेप मे एफआईआर में शामिल विवरण के तथ्य यह हैं कि 28.04.2023 को रात 11:35 बजे, प्रतिवादी नंबर 4 ने अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई । प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता अवैध खनन की रोकथाम के लिए थाना-नगीना देहात आया था । वह संबंधित पुलिस स्टेशन के थाना प्रभारी सहित अन्य पुलिस कर्मियों के साथ दिनांक 28.04.2023 को रात्रि 08:15 बजे खो नदी पर पहुंचे । शिकायतकर्ता ने पाया कि लगातार अवैध खनन किया जा रहा है । मौके पर कुछ जेसीबी, डंपर और ट्रैक्टर मिले, जिनके चालक पुलिस टीम को देखकर मौके से भाग गए । मौके पर 11 डंपर मिले जिनमें से 8 डंपर खनिज से भरे हुए थे और 3 डंपर खाली थे और 6 ट्रैक्टर ट्रॉली खनिज लेने के लिए खड़े थे । आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट में सभी डंपरों एवं ट्रैक्टर ट्रॉली का विवरण भी अंकित है । अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई क्योंकि कथित आरोपी मौके से भाग गए ।

9. स्वीकारित है, याचिकाकर्ता मौके पर मिले और पुलिस द्वारा जब्त किए गए संबंधित वाहनों/डंपरों के मालिक हैं । यह आरोप लगाया गया है कि पुलिस द्वारा परेशान किए जाने पर याचिकाकर्ताओं ने अदालत के समक्ष आवेदन दायर किया और पुलिस द्वारा वांछित रिपोर्ट प्रस्तुत की गई । याचिका में कहा गया है कि सभी याचिकाकर्ता वैध ट्रांजिट पास (रवन्ना) रखते हुए वैध खनिज परिवहन में संबद्ध हैं ।

10. आगे बढ़ने से पहले, एमएमडीआर अधिनियम, 1952 की धारा 22 और 23-ए पर ध्यान देना उचित होगा, जो निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

> *"22. **अपराधों का संज्ञान -** कोई भी अदालत इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत व्यक्ति द्वारा की गई लिखित शिकायत के अलावा नहीं लेगी ।*
>
> ***23-ए. अपराधों का शमन.-***
>
> *इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, अभियोजन शुरू होने से पहले या बाद में, उस अपराध के संबंध में अदालत में शिकायत करने के लिए धारा 22 के तहत अधिकृत व्यक्ति द्वारा सरकार को क्रेडिट के लिए, ऐसी राशि जो वह व्यक्ति निर्दिष्ट कर सकता है: उस व्यक्ति को भुगतान करने पर शमन किया जा सकता है, बशर्ते कि केवल जुर्माने से दंडनीय अपराध के मामले में, ऐसी कोई भी राशि उस अपराध के लिए लगाए जाने वाले जुर्माने की अधिकतम राशि से अधिक नहीं होगी । (2) जहां उप-धारा (1) के तहत किसी अपराध का शमन किया जाता है, वहां इस प्रकार शमन किए*

गए अपराध के संबंध में अपराधी के खिलाफ कोई कार्यवाही या आगे की कार्यवाही, जैसा भी मामला हो, नहीं की जाएगी, और अपराधी, यदि हिरासत में है, तुरंत रिहा कर दिया जाएगा ।"

11. हम पाते हैं कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता जिस अंतरिम आदेश पर विश्वास जता रहे हैं, वह कहीं भी यह नहीं दर्शाता है कि **जयंत (उपरोक्त)** का निर्णय समन्वय पीठ के समक्ष रखा गया था, इसलिए, पूर्व उद्धृत अंतरिम आदेश दिनांक 29.05.2023 पर निर्भरता रखने वाला एकमात्र तर्क कि एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के आलोक में एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती है, इसमें कोई बल नहीं है । स्वीकारित है, समन्वय पीठ का उक्त आदेश केवल अंतरिम आदेश है, अंतिम निर्णय/आदेश नहीं है

12. इसलिए, हम समन्वय पीठ द्वारा पारित अंतरिम आदेश पर निर्भर न होकर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क पर विचार करते हुए आगे बढ़ते हैं ।

13. **राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय, (2014) 9 एससीसी 772** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 60, 69, 72 और 73 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है : -

"60. इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि प्राकृतिक संसाधन राष्ट्र और उसके नागरिकों की संपत्ति हैं । केंद्र और राज्य सरकारों सहित सभी संबंधित पक्षों का यह दायित्व है कि वे ऐसे मूल्यवान संसाधनों का संरक्षण करें और उन्हें बर्बाद न करें । <u>संविधान के अनुच्छेद 48-ए में कहा गया है कि राज्य पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने और देश के वनों और वन्य जीवन की रक्षा करने का प्रयास करेगा।</u> इसी प्रकार, अनुच्छेद 51-ए प्रत्येक नागरिक को जंगलों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने और सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया रखने का कर्तव्य बताता है । संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में लोक विश्वास का सिद्धांत देश का कानून बन गया है। उक्त सिद्धांत, इस सिद्धांत पर आधारित है कि वायु, समुद्र, जल और वन जैसे कुछ संसाधन समग्र रूप से लोगों के लिए इतने महत्वपूर्ण हैं कि उन्हें निजी स्वामित्व का विषय बनाना अत्यधिक अनुचित होगा ।

69. <u>धारा 22 में प्रयुक्त शब्दों और व्याख्या के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय में, बेईमानी से नदी तल से रेत सहित खनिजों की अवैध चोरी के लिए पुलिस</u>

द्वारा कार्रवाई करने पर पूर्ण और निरपेक्ष रोक नहीं है । न्यायालय इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लेगा कि वर्षों से भारत में नदियाँ अप्रतिबंधित रेत खनन की खतरनाक दर से प्रभावित हुई हैं, जो नदियों के पारिस्थितिकी तंत्र और पुलों की सुरक्षा को नुकसान पहुँचा रही है । यह नदी तल, मछली प्रजनन को भी कमजोर करता है और कई जीवों के प्राकृतिक आवास को नष्ट कर देता है । जैसा कि ऊपर बताया गया है, यदि इन अवैध गतिविधियों को राज्य और राज्य के पुलिस अधिकारियों द्वारा नहीं रोका गया, तो इसके गंभीर परिणाम होंगे । यह न केवल नदी जल विज्ञान को बदल देगा बल्कि भूजल स्तर को भी कम कर देगा ।

72. एमएमडीआर अधिनियम के प्रावधानों और आईपीसी की धारा 378 के तहत परिभाषित अपराध को बारीकी से पढने से यह स्पष्ट है कि इनमे अपराध गठन के तत्व अलग-अलग हैं । खनन पट्टे के नियमों और शर्तों का उल्लंघन या अधिनियम की धारा 4 का उल्लंघन करके खनन गतिविधि करना एमएमडीआर अधिनियम की धारा 21 के तहत दंडनीय अपराध है, जबकि राज्य के अधिकार क्षेत्र से राज्य की सहमति के बिना, बेईमानी से नदी से रेत, बजरी और अन्य खनिज निकालना, जो कि राज्य की संपत्ति है, चोरी का अपराध बनता है । इसलिए, केवल शिकायत के आधार पर एमएमडीआर अधिनियम के तहत अपराध करने की कार्यवाही शुरू करने से पुलिस को रेत और खनिजों की चोरी करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ ऊपर उल्लिखित तरीके से कार्रवाई करने से नहीं रोका जा सकता है । ऐसे व्यक्ति के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता में प्रदत्त सकतियों के प्रयोग से संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत करें । दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले में जहां सरकारी भूमि से रेत और बजरी की चोरी होती है, पुलिस मामला दर्ज कर सकती है, उसकी जांच कर सकती है और सीआरपीसी की धारा 173 के तहत आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 190 (1) (डी) में दिए गए प्रावधानो के अनुसार संज्ञान लेने के उद्देश्य से क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती है ।

<u>73. इस मामले पर हमारे ध्येयपूर्ण विचारोपरान्त अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के साथ-साथ आपराधिक प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता के प्रकाश में, हमारी निश्चित राय है कि अपराध का गठन करने वाले तत्व एमएमडीआर अधिनियम और बिना सहमति के नदी तल से बेईमानी से रेत और बजरी निकालना, जो राज्य की संपत्ति है, आईपीसी के तहत एक अलग अपराध है । इसलिए, धारा 378 सीआरपीसी के तहत अपराध करने के लिए, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है, जिसे एमएमआरडी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में अधिकृत अधिकारी द्वारा संज्ञान लेने के लिए दायर किया जा सकता है । नतीजतन, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए विपरीत दृष्टिकोणों को कानून में बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, खारिज कर दिया गया है । फलस्वरूप, इन आपराधिक अपीलों का निपटारा संबंधित मजिस्ट्रेटों को तदनुसार किए जाने के निर्देश के साथ किया जाता है ।"</u>

(महत्वपूर्ण)

14. अवैध खनन के अपराध को सुप्रीम कोर्ट ने **जयंत (उपरोक्त)** के मामले में भी स्पष्ट रूप से देखा था और इसके बाद ही यह निष्कर्ष निकाला गया कि एमएमडीआर अधिनियम के तहत अपराधों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों से जुड़ी प्रथम सूचना रिपोर्ट बनाए रखने योग्य है । उक्त निर्णय के अनुच्छेद 17, 18, 19, 20 और 21 इस प्रकार हैं:

17. अब जहां तक उल्लंघन करने वाले निजी अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उल्लंघनकर्ताओं को 1996 के नियमों के नियम 53 या 2006 के नियमों के नियम 18 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उल्लंघन को कम करने की अनुमति दी गई थी और उल्लंघनकर्ताओं ने इसे स्वीकार कर लिया । निर्णय और अपराधों/उल्लंघनों के शमन के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित दंड की राशि जमा कर दी गई है, धारा 379 और 414 आईपीसी और एमएमडीआर अधिनियम की धारा 4/21 के तहत अपराधों के लिए कोई और

आपराधिक कार्यवाही नहीं हो सकती है और जहाँ तक एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23 ए पर निर्भरता का संबंध है, यह सच है कि वर्तमान मामले में सक्षम प्राधिकारी ने 1996 के नियमों के नियम 53/2006 के नियमों के नियम 18 के तहत जुर्माना निर्धारित किया, जिसका भुगतान निजी अपीलकर्ताओं उल्लंघनकर्ताओं ने किया और इसलिए एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23ए की उपधारा 2 में निहित रोक लागू होगी ।

17.1 धारा 23ए, जो आज मौजूद है, खनिज सलाहकार बोर्ड की सिफारिशों पर वर्ष 1972 में क़ानून में लाई गई है, जिसमें प्रावधान है कि एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, या तो इसकी स्थापना से पहले या बाद में हो सकता है । अभियोजन, उस अपराध के संबंध में अदालत में शिकायत करने के लिए धारा 22 के तहत अधिकृत व्यक्ति द्वारा, उस व्यक्ति को सरकार को क्रेडिट करने के लिए, उस व्यक्ति द्वारा निर्दिष्ट राशि का भुगतान किया जाएगा । धारा 23ए की उपधारा 2 में यह प्रावधान है कि जहां उपधारा (1) के तहत किसी अपराध का शमन किया जाता है, तो इस प्रकार शमन किए गए अपराध के संबंध में अपराधी के खिलाफ कोई कार्यवाही या आगे की कार्यवाही नहीं की जाएगी, जैसा भी मामला हो, और अपराधी, यदि हिरासत में, तुरंत रिहा कर दिया जाएगा । इस प्रकार, धारा 23ए की उपधारा 2 के तहत रोक एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत अपराधों के संबंध में लागू होगी ।

17.2 हालाँकि, धारा 23ए की उपधारा 2 में निहित रोक आईपीसी के तहत अपराधों, जैसे धारा 379 और धारा 414 आईपीसी के लिए लागू नहीं होगी । वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर देखा और माना गया है, एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी नियम के तहत अपराध और आईपीसी के तहत अपराध अलग और विशिष्ट अपराध हैं ।

17.3. इसलिए, वर्तमान मामले की तरह, खनन निरीक्षकों ने 1996 के नियमों के नियम 53 के तहत मामले तैयार किए और उन्हें संबंधित नियमों के अनुसार गणना की गई राशि के लिए

शमन के प्रस्तावों के साथ खनन अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत किया और कलेक्टर ने उक्त को मंजूरी दे दी । प्रस्ताव और उसके बाद निजी अपीलकर्ताओं उल्लंघनकर्ताओं ने निर्णय को स्वीकार कर लिया और एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23 ए की उपधारा 2 के मद्देनजर मामलों के शमन के लिए कलेक्टर द्वारा निर्धारित दंड की राशि जमा कर दी । एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 अधीन प्रदत्त शक्तियों के तहत 1996 के नियमों और यहां तक कि 2006 के नियमों, एमएमडीआर अधिनियम की धारा 4/21 के तहत अपराधों के लिए आपराधिक शिकायतें/कार्यवाही की अनुमति नहीं है और एमएमडीआर अधिनियम धारा 23ए की उपधारा 2 में निहित रोक के मद्देनजर आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है । <u>साथ ही, जैसा कि पूर्व उल्लिखित, आईपीसी की धारा 379/414 - आईपीसी के तहत अपराधों के लिए आपराधिक शिकायतों/ कार्यवाही को आगे बढ़ाया जा सकता है, जिन्हें अलग -अलग माना जाता है, पूर्व उल्लिखित टिप्पणियों के अधीन आगे बढ़ाया जा सकता है ।</u>

18. हालाँकि, हमारे उपरोक्त निष्कर्ष एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23ए के प्रावधानों पर विचार कर रहे हैं, जैसा कि यह आज भी है । यह सच हो सकता है कि उल्लंघनकर्ताओं को एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों का शमन करने की अनुमति देकर, राज्य को राजस्व मिल सकता है और यह उस व्यक्ति के सिद्धांत पर होगा जो क्षति का कारण बनता है, उसे ही क्षति की भरपाई करनी होगी और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने पर प्रदूषकों को जुर्माना अदा करने के सिद्धांत की तरह जुर्माना अदा करना होगा । <u>हालाँकि, बड़े पैमाने पर प्रकृति को होने वाले नुकसान को देखते हुए और जैसा कि संजय (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने देखा और माना, एमएमडीआर अधिनियम और नियमों की नीति और उद्देश्य बाध्यकारी आवश्यकताओं के बारे में बढती जागरूकता का परिणाम हैं । गंभीर पारिस्थितिक असंतुलन को बहाल करने और प्रकृति को होने वाले नुकसान को रोकने की आवश्यकता है और उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार किया जाना चाहिए, और</u>

जब इस तरह के उल्लंघन बढ़ रहे हैं और प्रकृति को गंभीर नुकसान हो रहा है और यह पृथ्वी और भूजल स्तर आदि को भी प्रभावित करता है तथा इससे गंभीर क्षति होती है जैसा कि इस न्यायालय ने संजय (उपरोक्त) के मामले में देखा है, जिसे पुनः प्रस्तुत किया गया, हमारी राय है कि उल्लंघनकर्ताओं को केवल जुर्माने के भुगतान कर देने मात्र पर छूट जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । कुछ कड़े प्रावधान होने चाहिए जिनका निवारक प्रभाव हो ताकि उल्लंघनकर्ता ऐसे अपराध करने से पहले और पृथ्वी और प्रकृति को नुकसान पहुंचाने से पहले दो बार सोच सकें ।

19. पारिस्थितिक असंतुलन को बहाल करना और प्रकृति को होने वाले नुकसान को रोकना राज्य का कर्तव्य है । जैसा कि संजय (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने देखा था, नदी की धारा में नदी तल से अत्यधिक रेत और बजरी, अन्य संसाधनों का खनन नदियों के क्षरण का कारण बनता है । यह भी देखा गया है कि पुलों को खतरा होने के अलावा, रेत खनन नदी के तल को बड़े और गहरे गड्ढों में बदल देता है, जिसके परिणामस्वरूप भूजल स्तर गिर जाता है और इन नदियों के तटबंधों पर पीने के पानी के कुएं सूख जाते हैं । अन्यथा भी, रेत/खदान एक सार्वजनिक संपति है और राज्य उक्त सार्वजनिक संपति का संरक्षक है और इसलिए राज्य को पर्यावरण और पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा के लिए अधिक संवेदनशील होना चाहिए और सार्वजनिक संपति की रक्षा के लिए राज्य को हमेशा उन उल्लंघनकर्ताओं के खिलाफ बहुत कड़ी कार्रवाई करने के पक्ष में रहना चाहिए जो गंभीर पारिस्थितिक असंतुलन पैदा कर रहे हैं और किसी भी रूप में प्रकृति को नुकसान पहुंचा रहे हैं । चूंकि धारा 23ए के प्रावधान चुनौती के अधीन नहीं हैं और एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23ए जब तक मौजूद है, हम मामले को वहीं छोड़ देते हैं और इसे विधायिकाओं और संबंधित राज्यों के विवेक पर छोड़ देते हैं ।

20. अब जहां तक राज्य द्वारा इस आधार पर अपील की गई है कि उच्च न्यायालय द्वारा संपुष्ट विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश, अपराध को कम करने के लिए अधिकृत व्यक्ति

की शक्तियों को प्रभावित करता है । जहां तक 1996 के नियमों के नियम 53 और 2006 के नियमों के नियम 18 मे प्रदत्त शक्तियों का संबंध है, यह बिल्कुल गलत धारणा है । उच्च न्यायालय द्वारा संपुष्ट विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश, के आधार पर कल्पना से परे पर्याप्त रूप से यह कहा जा सकता है कि आईपीसी के तहत अपराधों के लिए और यहां तक कि एमएमडीआर के तहत अपराधों के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट/अपराध मामला दर्ज करने का निर्देश दिया जा सकता है । अधिनियम और उसके तहत बनाए गए ये नियम, अपराध के शमन के लिए अधिकृत व्यक्ति की किसी भी शक्ति को प्रभावित करते हैं । वास्तव में, संजय (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, जिसमें इस न्यायालय ने विशेष रूप से देखा और माना कि जहां तक आईपीसी के तहत अपराध का सवाल है, एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत कोई रोक नहीं होगी और जब उच्च न्यायालय के समक्ष राज्य ने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया और यह सही भी है और जब उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश राज्य के पक्ष में है, तो राज्य को विशेष अनुमति याचिका/अपील दायर नहीं करना चाहिए ।

"21. मामले पर हमारे ध्येयपूर्ण विचारोपरान्त, एमएमडीआर अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और आपराधिक प्रक्रिया संहिता और दंड संहिता के तहत बनाए गए नियमों और मामलों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित पूर्वोक्त कानून के आलोक में और पूर्वोक्त कारणों से, हमारे निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

21.1. विद्वान मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए एमएमडीआर अधिनियम और नियमों के तहत अपराधों के लिए भी अपराध मामला/एफआईआर दर्ज करने/दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन के संबंधित प्रभारी/एसएचओ को आदेश/निर्देश दे सकते हैं तथा इस स्तर पर एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत रोक लागू नहीं होगी;

21.2. एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत रोक तभी

लगाई जाएगी जब विद्वान मजिस्ट्रेट एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों का संज्ञान लेता है और एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों के लिए प्रक्रिया/समन जारी करने का आदेश देता है;

21.3 आईपीसी के तहत अपराध के करित होने पर, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है जिसे एमएमडीआर अधिनियम के विभिन्न प्रावधान और उसके तहत बनाए गए नियम; और उल्लंघन के संबंध में संज्ञान लेने के लिए अधिकृत अधिकारी द्वारा दायर किया जा सकता है; और

21.4 यह कि एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में, जब एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के तहत एक आदेश पारित करता है और पुलिस स्टेशन के संबंधित प्रभारी/एसएचओ को मामला दर्ज करने/दर्ज करने का निर्देश देता है । अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के उल्लंघन के संबंध में अपराध का मामला/एफआईआर और उसकी जांच के बाद संबंधित पुलिस स्टेशन के प्रभारी/जांच अधिकारी एक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं, इसे संबंधित मजिस्ट्रेट के साथ-साथ एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 में उल्लिखित संबंधित अधिकृत अधिकारी को भी भेजा जा सकता है और उसके बाद संबंधित अधिकृत अधिकारी संबंधित जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के साथ विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कर सकता है और उसके बाद यह विद्वान मजिस्ट्रेट के लिए संज्ञान लेने के लिए खुला होगा की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में प्रक्रिया/समन जारी करें और उस स्तर पर यह कहा जा सकता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया है ।

अनुवादित

21.5. ऐसे मामले में, एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत शमित दंडनीय अपराध जहां उल्लंघनकर्ता को एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23ए की उपधारा 2 पर विचार करते हुए धारा 23ए की उपधारा 1 के अनुसार अर्थ दंड के भुगतान पर अपराध के शमन की अनुमति दी गई है, वहां अपराधी के खिलाफ कोई कार्यवाही या आगे की कार्यवाही नहीं होगी । हालाँकि, धारा 23ए की उपधारा 2 के तहत रोक आईपीसी के तहत अपराधों के लिए किसी भी कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगी, इस प्रकार धारा 379 और 414 आईपीसी के ततत इसे आगे बढ़ाया जाएगा।"

(महत्वपूर्ण)

11. यहां ऊपर दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि:

(i) आईपीसी के तहत अपराधों के लिए और यहां तक कि एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों के लिए एफआईआर दर्ज/पंजीकृत होने की स्थिति में एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत रोक लागू नहीं होती है, सक्षम मजिस्ट्रेट सीआर.पी.सी. की धारा 156(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुएएफआईआर दर्ज करने का आदेश/निर्देश दे सकता है;

(ii) एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत रोक तभी लगाई जाएगी जब विद्वान मजिस्ट्रेट एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों का संज्ञान लेगा;

(iii) आईपीसी के तहत अपराध करने के लिए, पुलिस रिपोर्ट पर, सक्षम मजिस्ट्रेट एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों के संबंध में अधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की जा सकने वाली शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराधों का संज्ञान ले सकता है;

(iv) ऐसे मामले में जहां उल्लंघनकर्ता को एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23ए(2) के मद्देनजर धारा 23ए(1) के अनुसार अर्थदंड के भुगतान पर

अपराध के शमन की अनुमति है, वहां एमएमडीआर अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराध के संबंध में उसके खिलाफ कोई कार्यवाही या आगे की कार्यवाही नहीं होगी;

(v) हालांकि, महत्वपूर्ण बात यह है कि एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23-ए की उप-धारा (2) के तहत रोक आईपीसी की धारा 379, 411, 414 जैसे अपराधों के लिए कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगी और आगे भी आगे बढ़ाई जाएगी;

(vi) उपरोक्त निर्णयों में संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार, एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराध और आईपीसी के तहत अपराध अलग-अलग स्तर पर हैं और प्रक्रियात्मक रूप से अलग-अलग हैं और इन्हें अलग किया जा सकता है। इन्हें अलग-अलग शुरू किया और आगे बढ़ाया जा सकता है;

(vii) अंततः, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आईपीसी के तहत अपराधों के साथ-साथ एमएमडीआर अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत अपराधों से जुड़ी एफआईआर, जैसा कि वर्तमान मामले में है, स्पष्ट रूप से बनाए रखने योग्य है और इसे वैध रूप से पंजीकृत किया जा सकता है और एमएमडीआर अधिनियम की धारा 22 के तहत प्रतिबंध लागू नहीं होते ।

16. इस मामले को देखते हुए, हम **संजय (उपरोक्त) और जयंत (उपरोक्त)** में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश पर विश्वास जताने के इच्छुक नहीं हैं । याचिकाकर्ता उन वाहनों के मालिक हैं जो वर्तमान मामले में शामिल पाए गए थे, इसलिए, एक संज्ञेय अपराध बनता है ।

17. कोई भी इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान ले सकता है कि देश के कोने-कोने से अवैध खनन की खबरों से हर रोज अखबार भरे रहते हैं, छापा मारने वाली पार्टियों/कर्मचारियों/यहाँ तक कि अधिकारियों पर भी हमले होते हैं और अवैध खनन के कारण इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता की इससे सरकारी खजाने को भारी राजस्व का नुकसान होने के साथ-साथ सार्वजनिक संपत्ति को भी नुकसान हो रहा होगा । इस तरह के नुकसान के पारिस्थितिक भाग पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है और **संजय (उपरोक्त) और जयंत**

(उपरोक्त) के मामले में उपरोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस पर ध्यान दिया है । **जयंत (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले द्वारा की गई टिप्पणियों से यह भी आभास होता है कि एमएमडीआर अधिनियम के मौजूदा प्रावधान अवैध खनन की मात्रा को देखते हुए अपेक्षानुसार आशानुरूप कम हैं । इसलिए, अलग होने से पहले, हम विशेष रूप से **जयंत (उपरोक्त)** के अनुच्छेद 18 और 19 में व्यक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय की चिंता पर प्रकाश डालते हुए अपनी चिंता व्यक्त करते हैं और मानते हैं कि सरकार के लिए बड़े पैमाने पर निर्णय लेने का और मुद्दे पर आवश्यक कार्रवाई करने समय आ गया है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार विधायिका के विवेक पर छोड़ दिया है और संबंधित राज्य को एक निर्वाचित सरकार होने के नाते अपने सार्वजनिक कर्तव्य/दायित्व को पूरा करने का अधिकार दिया है ।

18. राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित करने और व्यापक जनहित में अपने विवेक से आवश्यक कार्य करने के लिए, विद्वान एजीए को इस आदेश की एक प्रति एक सप्ताह के भीतर मुख्य सचिव, उ.प्र शासन, लखनऊ के साथ-साथ अपने सचिव, गृह विभाग, उ.प्र. शासन, लखनऊ के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 1-उत्तर प्रदेश राज्य को भेजने का निर्देश दिया जाता है ।

19. समान कारणों से, कार्यालय को इस न्यायालय में भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल को इस आदेश की एक प्रति एक सप्ताह के भीतर संबंधित विभाग/मंत्रालय, भारत संघ के सचिव को भेजने के लिए निर्देशित किया जाता है ।

20. उपरोक्त विमर्शों से, हम पाते हैं कि रिट याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ **खारिज** कर दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 526

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 4923 वर्ष 2023

चौधरी चंद्र वीर सिंह एवं अन्य ....याचिकाकर्ता

बनाम

अध्यक्ष, आर्क सिटी रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन, मेरठ एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री कुणाल शाह, श्री सुवंसित कुमार जयसवाल, श्री विपुल राज गौतम, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार सिंह, श्री आशीष कुमार सिंह

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (संवर्धन, स्वामित्व और रखरखाव) अधिनियम, 2010 -

भारतीय सुखाधिकार अधिनियम, 1882- सुखाधिकार - अस्थायी निषेधाज्ञा - सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं - अनापत्ति प्रमाण पत्र (एनओसी) - अपीलीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार।

अभिनिर्धारित:

1. आर्क सिटी हाउसिंग सोसाइटी के भीतर 40 फुट की सड़क पर सुखाधिकार का दावा करने वाले याचिकाकर्ता, दिनांक 11.12.2016 के एक कथित अनापत्ति प्रमाण पत्र (एनओसी) के आधार पर, प्रथम दृष्टया अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए मामला स्थापित करने में विफल रहे। एनओसी का अस्तित्व और वैधता विवादित थी, जिसके कारण सुखाधिकार के अनुदान को साबित करने के लिए साक्ष्य की आवश्यकता थी।

2. अस्थायी निषेधाज्ञा देने संबंधी विचारण न्यायालय के आदेश को अपीलीय न्यायालय ने रद्द कर दिया, क्योंकि इसमें अमीन कमिश्नर की रिपोर्ट पर चुनिंदा रूप से भरोसा किया गया था और याचिकाकर्ताओं की भूमि तक पहुंचने के वैकल्पिक मार्गों को नजरअंदाज किया गया था, जैसा कि रिपोर्ट और साइट मैप में दर्शाया गया है।

3. उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट अधिनियम, 2010 के प्रावधान, धारा 31 के तहत इसके अधिभावी प्रभाव के कारण, भारतीय सुखाधिकार अधिनियम, 1882 पर प्रभावी होंगे। अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, 40 फीट सड़क, जो आर्क सिटी के सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं का हिस्सा है, का उपयोग सभी अपार्टमेंट मालिकों की सहमति और सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन के बिना नहीं किया जा सकता है।

4. अपीलीय न्यायालय के दिनांक 28.02.2023 के आदेश को बरकरार रखा गया, जिसमें अस्थायी निषेधाज्ञा को रद्द कर दिया गया था, क्योंकि यह ठोस कारणों पर आअभिनिर्धारित था, जिसमें याचिकाकर्ताओं के सुखाधिकार के दावे का समर्थन करने वाले साक्ष्य का अभाव और वैकल्पिक पहुंच मार्गों की उपस्थिति शामिल थी।

5. प्लॉट संख्या 291 के विकास के लिए स्वीकृत लेआउट योजना प्राप्त करने में याचिकाकर्ताओं की विफलता और कानूनी आधार के बिना आर्क सिटी की सुविधाओं तक पहुंच का दावा करने का उनका प्रयास उन्हें अनुच्छेद 227 के तहत न्यायसंगत अनुतोष के लिए अयोग्य बनाता है।

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि</u> :

1. वांडर लिमिटेड बनाम एंटॉक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 1990 पूरक एससीसी 727

2. दलपत कुमार बनाम प्रहलाद सिंह, 1992 (1) एससीसी 719

3. आनंद प्रसाद अग्रवाल बनाम तारकेश्वर प्रसाद, 2001 (5) एससीसी 56

4. जेनिट मैटाप्लास्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, 2009 (10) एससीसी 388

5. मिश्रीलाल रामरतन बनाम एएस शेख फातिमल, एआईआर 1995 मद्रास 375

6. संतोष दुबे बनाम लाला राम पाल, 2006 (2) एएलएल एलजे 512

7. लेवी स्ट्रॉस एंड कंपनी बनाम राजेश अग्रवाल, एआईआर 2002 दिल्ली 344

8. एमएल ब्रदर एलएलपी बनाम महेशकुमार भूरालाल तन्ना, 2019 एससीसी ऑन लाइन बॉम्बे 1084

9 हीरो विनोथ (अवयस्क) बनाम सेशम्मल, 2006 (5) एससीसी 545

10. मथाई बनाम जोर्डी पॉलोज़, 2013 (2) केएलटी 102

11. भगवान सहाय बनाम नरसिंह सहाय, एआईआर 2006 राज 125

12. वासुदेव बनाम श्री अशोक, 2010 (4) एमएचएलजे 103

13. राम स्वरूप गुप्ता बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज, 1987 (2) एससीसी 555

14. प्रतापराय एन. कोठारी बनाम जॉन ब्रैगेंज़ा, 1999 (4) एससीसी 403

15. तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड बनाम ए. विश्वम, 1996 (8) एससीसी 259

16. मेसर्स डिजाइनार्च इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम उपाध्यक्ष, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण, 2013 (9) एडीजे 598

17. प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 (8) एडीजे 1

याचिका खारिज.

(माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत)

1. उपरोक्त याचिका में, पक्षकार का समूह निम्न है: -

"1. चौधरी चन्द्र वीर सिंह, उम्र लगभग 70 वर्ष पुत्र सुमीर सिंह, निवासी वार्ड नं0, दौराला (ग्रामीण), जिला मेरठ।

2. चौधरी विवेक अहलावत, पुत्र चौधरी चन्द्र वीर सिंह, निवासी वार्ड नं0, दौराला (ग्रामीण), मेरठ, जिला मेरठ

..... याचिकाकर्ता/वादी

बनाम

1. अध्यक्ष आर्क सिटी रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन, आर्क सिटी, एन.एच. 58, कंकरखेड़ा, मेरठ, जिला मेरठ।

2. सचिव आर्क सिटी रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन, आर्क सिटी, एन.एच. 58, कंकरखेड़ा, मेरठ, जिला मेरठ।

.....प्रत्यर्थी/प्रतिवादी"

2. यह याचिका अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 5, मेरठ द्वारा प्रकीर्ण अपील संख्या 27/2020 (प्रेसिडेंट आर्क सोसाइटी बनाम चंद्र वीर सिंह), में पारित दिनांक 09.03.2023 को संशोधित आदेश द्वारा दिनांक 28.02.2023 को चुनौती देती है। जिसके तहत अपील की अनुमति दी गई है और अस्थायी आदेश दिया गया है 15.01.2020 को विचारण न्यायालय द्वारा दी गई निषेधाज्ञा को रद्द कर दिया गया है। प्रारंभ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि यद्यपि दिनांक 09.03.2023 के संसोधन आदेश को 28.02.2023 के आक्षेपित आदेश के साथ दायर करने का उल्लेख किया गया है, तथापि, वह संलग्न नहीं है। मामले के किसी भी दृष्टिकोण से, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संसोधन के आदेश का उल्लेख नहीं किया गया है।

3. याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे भूमिधर हैं और प्लॉट संख्या 291 पर हस्तांतरणीय अधिकार रखते हैं, जिसकी माप ग्राम-दायमपुर, जिला मेरठ में लगभग 0.6070 हेक्टेयर भूमि है, जिसके बारे में कहा जाता है कि यह भूमि उनके द्वारा दिनांक 11.08.2016 को एक पंजीकृत विक्रय-पत्र के माध्यम से खरीदी गई थी। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता उपरोक्त प्लॉट नंबर 291 के मालिक हैं और याचिकाकर्ताओं की भूमि के उत्तर में आर्क सोसाइटी के नाम से एक हाउसिंग सोसाइटी स्थित है। यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी उक्त हाउसिंग सोसायटी के सदस्य हैं। यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ताओं की भूमि के उत्तर में 12 मीटर (40 फीट) चौड़ा एक सामान्य रास्ता/सड़क है1 जो सोसायटी से होकर याचिकाकर्ताओं की भूमि में जाता है। यह कि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारक और याचिकाकर्ता उपरोक्त प्लॉट नंबर 291 में अपने प्रवेश के लिए प्रश्नगत 40 फीट सड़क का उपयोग कर रहे हैं और कोई अन्य पहुंच सड़क नहीं है। प्रश्नगत भूमि में पथ के उपयोग के संबंध में याचिकाकर्ताओं और प्रत्यर्थी सोसायटी के निवासियों के बीच विवाद को देखते हुए, इसे आर्क सिटी वेलफेयर एसोसिएशन के हस्तक्षेप से हल किया गया था। सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत विधिवत पंजीकृत एक सोसायटी और जो, उत्तर प्रदेश अपार्टमेंट (संवर्धन, स्वामित्व और रखरखाव) अधिनियम, 2010 के प्रावधानों के अनुसार, याचिकाकर्ताओं द्वारा 40 फीट सड़क के उपयोग की अनुमति देने के लिए, अपार्टमेंट और उनसे जुड़ी संपत्तियों और सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के संबंध में मामलों का प्रबंधन करने के लिए अधिकृत है। आरोप है कि इस संबंध में 11.12.2016 को वेलफेयर एसोसिएशन ने अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी कर दिया. जिससे याचिकाकर्ताओं के पक्ष में याचिकाकर्ताओं को सोसायटी की 40 फीट सड़क, सीवरेज एवं विद्युत लाइनें का उपयोग करने की भी अनुमति दी गई थी ।

4. आरोप है कि जब 04.07.2019 को आपत्तियां उठाई गईं और बाधाएं पैदा की गईं, तो याचिकाकर्ताओं ने सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ की अदालत के समक्ष स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक सिविल मुकदमा दायर किया, जो मूल मुकदमा संख्या 73/2019 था।

अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया था। 06.09.2019 को विचारण न्यायालय ने ए इस बीच एकपक्षीय याचिकाकर्ताओं को अस्थायी निषेधाज्ञा. इसके बाद, प्रर्यर्थी, जो उपरोक्त मुकदमे में प्रत्यर्थी थे, ने अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन पर आपत्ति दर्ज की। याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर एक आवेदन पर, विचारण न्यायालय ने निरीक्षण करने के लिए एक अमीन आयुक्त नियुक्त किया। अमीन आयुक्त ने अपना निरीक्षण किया और 11.11.2019 को एक साइट मैप संलग्न करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। याचिकाकर्ताओं ने अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन पर प्रर्यर्थी द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर भी अपना जवाब दाखिल किया। याचिकाकर्ताओं ने यह साबित करने के लिए 18.12.2019 को तस्वीरें प्रस्तुत कीं कि प्लॉट नंबर 291 के गेट के उत्तर में आर्क सिटी की कोई सीमा दीवार मौजूद नहीं है, जो याचिकाकर्ताओं की भूमि है। उन्होंने 16.12.2019 को एक सुधीर वर्मा का हलफनामा भी दायर किया, जिस पर कथित तौर पर कल्याण संघ का पूर्व अध्यक्ष बताया गया था, जिसमें कहा गया था कि एनओसी कल्याण संघ के तत्कालीन पदाधिकारियों द्वारा जारी की गई थी और उस पर उनके द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। एनओसी पर अध्यक्ष की हैसियत से दरअसल उनके हस्ताक्षर होते हैं। दिनांक 15.01.2020 के एक आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में अस्थायी निषेधाज्ञा दी। अस्थायी निषेधाज्ञा के उस आदेश के विरुद्ध, प्रर्यर्थी ने एक स्टे आवेदन के साथ प्रकीर्ण वाद संख्या 27/2020 के नाम से अपील दायर की। याचिकाकर्ताओं ने अस्थायी निषेधाज्ञा पर रोक लगाने की मांग करने वाले प्रत्यर्थी के आवेदन के खिलाफ आपत्तियां दायर कीं।

5. आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि जब प्रत्यर्थी ने अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश का उल्लंघन किया, तो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXXIX नियम 2-ए के तहत एक आवेदन दायर किया गया। दायर किया गया था और एक अमीन आयुक्त नियुक्त किया गया था, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने अपनी 14.12.2020 दिनाकित स्पॉट निरीक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत की थी. दिनांक 17.12.2021 के एक आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने सीपीसी के आदेश XXXIX, नियम 2-ए के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया। उस अस्वीकृति के खिलाफ, याचिकाकर्ताओं ने जिला न्यायाधीश के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जो लंबित बताया गया है।

6. दिनांक 28.02.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा, प्रत्यर्थी द्वारा दायर उपरोक्त अपील की अनुमति दी गई और विचारण न्यायालय द्वारा पारित अस्थायी निषेधाज्ञा दिनांक 15.01.2020 के आदेश को रद्द कर दिया गया।

7. वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कुणाल शाह का तर्क यह है कि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती के पास 40 फीट सड़क के उपयोग का अनुमेय अधिकार था और याचिकाकर्ताओं को इसके उपयोग का सुगम अधिकार प्राप्त हुआ था। 40 फीट सड़क, वेलफेयर एसोसिएशन द्वारा दिनांक

11.12.2016 को दिए गए एक्सप्रेस अनुदान के माध्यम से बनी थी जिसमे यह कहा गया है कि मेरठ विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत आर्क सिटी के लेआउट प्लान पर अपीलीय अदालत द्वारा भरोसा जताया गया है। याचिकाकर्ताओं की भूमि के उत्तरी हिस्से पर एक सीमा दीवार की उपस्थिति का खुलासा करना, किसी भी तरह से वास्तविक तथ्यात्मक स्थिति नहीं है जैसा कि मौके पर मौजूद होगा। विद्वान अधिवक्ता ने अमीन कमिश्नर की दिनांक 11.11.2019 की रिपोर्ट का हवाला दिया है जिसमें कहा गया था कि प्लॉट नंबर 291 के उत्तर में, आर्क सिटी और 40 फीट रोड दोनों स्थित हैं, और वह साइट पर पहुंचे थे निरीक्षण के लिए उसी पथ का उपयोग किया और लौटते समय भी उसी पथ का उपयोग किया था। यह कहा गया है कि 40 फीट सड़क एक सार्वजनिक सड़क या चक रोड नहीं है, बल्कि एक आंतरिक पथ है, जिस पर याचिकाकर्ताओं के पास उपयोग का सहज अधिकार है, जिसे उन्होंने 11.12.2016 के एक्सप्रेस अनुदान के माध्यम से हासिल किया है। आरोप है कि जो लेआउट प्लान 29.01.2010 को स्वीकृत किया गया था, उसमें तार्किक रूप से 40 फीट सड़क का विवरण नहीं हो सकता।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा अगली दलील दी गई कि अपीलीय अदालत ने अमीन आयुक्त की दिनांक 11.11.2019 की रिपोर्ट पर इस आधार पर विचार नहीं किया कि उक्त रिपोर्ट विचारण न्यायालय के समक्ष साबित और पुष्टि नहीं की गई थी, जो कि कानून में एक त्रुटि है। सीपीसी के आदेश XXVI, नियम 9 और 10 के तहत आयोग की रिपोर्ट की आवश्यकता नहीं है विभाजन करने के प्रयोजनों के लिए सीपीसी के आदेश XXVI, नियम 14 के तहत तैयार की गई आयुक्त की रिपोर्ट के अनुरूप साक्ष्य के रूप में माने जाने के लिए इसे साबित या पुष्टि की जानी चाहिए। यह कहा गया है कि अमीन आयुक्त की रिपोर्ट के संबंध में अपीलीय अदालत की टिप्पणियों के मद्देनजर, अपीलीय अदालत को उस रिपोर्ट पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो दर्शाती है कि याचिकाकर्ताओं के पास प्लॉट नंबर 291 तक इसके पश्चिम और दक्षिणी में दो वैकल्पिक पहुंच हैं। और यह कहा गया है कि प्लॉट नंबर 291 के लिए वैकल्पिक मार्गों के संबंध में अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज निष्कर्ष स्पष्ट रूप से विकृत है क्योंकि याचिकाकर्ताओं की भूमि के पश्चिमी हिस्से में उल्लिखित कच्ची सड़क कहीं नहीं जाती है। यह कहा गया है कि अपीलीय अदालत इस तथ्य से प्रभावित हुई है कि मुकदमे में 40 फीट सड़क के संबंध में सुखभोग अधिकार का स्पष्ट रूप से दावा नहीं किया गया है, जबकि स्थापित कानून के मद्देनजर, स्पष्ट अनुदान के माध्यम से सुखभोग जोड़ा जा सकता है। निहितार्थ से. यह तर्क दिया गया है कि अपीलीय अदालत के लिए अस्थायी निषेधाज्ञा देने के चरण में लघु सुनवाई आयोजित करना उचित नहीं है, जबकि तथ्य यह है कि प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ताओं के सुखभोग अधिकार के संबंध में मामला स्थापित किया गया। यह कहा गया है कि अपीलीय अदालत के लिए यह खुला नहीं है कि वह सामग्री का पुनर्मूल्यांकन करे और विचारण न्यायालय द्वारा पहुंचाए गए निष्कर्ष से अलग किसी निष्कर्ष पर पहुंचे, यदि विचारण न्यायालय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री

के आधार पर उचित रूप से संभव था। अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

1. वांडर लिमिटेड और अन्य बनाम एंटॉक्स इंडिया प्रा. लिमिटेड

2. दलपत कुमार एवं अन्य बनाम प्रहलाद सिंह और अन्य।

3. आनंद प्रसाद अग्रवाल बनाम तारकेश्वर प्रसाद एवं अन्य।

4. जेनिट मैटाप्लास्ट प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य।

5. मिश्रीलाल रामरतन एवं अन्य, मनसुखलाल एवं अन्य बनाम ए;एस; शेख फातिमल एवं अन्य।

6. संतोष दुबे एवं अन्य बनाम लाला राम पाल @ लल्लू पाल

7. लेवी स्ट्रॉस एंड कंपनी बनाम राजेश अग्रवाल

8. एमएल ब्रदर एलएलपी बनाम महेशकुमार भूरालाल तन्ना

9. हीरो विनोथ (माइनर) बनाम शेषम्मल

10. मथाई बनाम जोर्डी पॉलोज़ @ जोर्डी

11. भगवान सहाय बनाम नरसिंह सहाय

12. वासुदेव एवं अन्य बनाम श्री अशोक

13. राम स्वरूप गुप्ता बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज एवं अन्य

8. प्रत्यर्थी-कल्याण सोसायटी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह ने कहा है कि अमीन आयुक्त की 11.11.2019 की रिपोर्ट स्वयं प्लॉट नंबर 291 के पश्चिमी और दक्षिणी किनारों पर दो वैकल्पिक पहुंच सड़कों की उपस्थिति को दर्शाती है। ऐसा कहा गया है कि विचारण न्यायालय ने मामले के इस पहलू को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया और केवल प्लॉट नंबर 291 के उत्तर में मौजूद 40 फीट की सड़क के बारे में रिपोर्ट में दिए गए बयान पर भरोसा किया, जिसका इस्तेमाल अमीन आयुक्त ने प्लॉट नंबर 291 तक पहुंचने और जाने के लिए किया था। यह जोरदार ढंग से कहा गया है कि अमीन आयुक्त की रिपोर्ट सीपीसी के आदेश XXVI, नियम 9 के तहत एक रिपोर्ट नहीं है, बल्कि आदेश XXXIX, नियम 7 के तहत निरीक्षण करने के लिए अमीन आयुक्त, जो अदालत का एक कर्मचारी है, अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए उपरोक्त आवेदन पर विचार करने के उद्देश्य द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट है। विद्वान अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के दिनांक 07.12.2021 के आदेश पर भरोसा जताया है, जो अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए सीपीसी के आदेश XXXIX, नियम 2-ए के तहत दायर याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर पारित किया

गया था। विचारण न्यायालय ने उसमें देखा है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा अनिवार्य निषेधाज्ञा की मांग करते हुए अपनी याचिका में संशोधन करने के लिए कोई संशोधन आवेदन दायर नहीं किया गया था, जो याचिकाकर्ताओं के बयान को संदेहास्पद बनाता है कि प्रत्यर्थी दीवार बनाकर याचिकाकर्ताओं के रास्ते में बाधा डाल रहे हैं और इसलिए, मुकदमा नहीं चल रहा है। अदालत ने कहा कि दीवार हटाने में पुलिस सहायता के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता। तर्क दिया गया है कि ऐसा किया भी गया है आदेश में पाया गया कि अमीन आयुक्त की रिपोर्ट दिनांक 11.11.2019 को अनुमोदित नहीं किया गया है। यह कहा गया है कि सुखभोग अधिकार का दावा करने वाले याचिकाकर्ताओं का मामला पूरी तरह से गलत है और यह केवल आर्क सिटी की चौड़ी सड़क का उपयोग करके प्लॉट नंबर 291 तक अनधिकृत पहुंच प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया है। कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं के इस फर्जी दावे के कारण आर्क सिटी के निवासियों के हित और सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

1. आनंद प्रसाद अग्रवाल (उपरोक्त)

2. प्रतापराय एन. कोठारी बनाम जॉन ब्रैगेंज़ा

3. तमिलनाडु हाउसिंग बोर्ड बनाम ए विश्वम

9. वादी याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर दिनांक 06.09.2019 के वादपत्र, जो याचिका के अनुबंध-3 के रूप में संलग्न है, के अवलोकन से पता चलता है कि प्लॉट संख्या 291 एक कृषि भूमि है जिसे 11.08.2016 के विक्रय-पत्र के माध्यम से खरीदा गया था। इसमें वादी-याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्तियों द्वारा 40 फीट सड़क के उपयोग के संबंध में आरोप लगाए गए हैं, और जब प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा सड़क के उपयोग के संबंध में आपत्ति उठाई गई, तो वादी-याचिकाकर्ताओं के अनुरोध पर, प्रत्यर्थी- प्रत्यर्थीओं ने एनओसी जारी की। इसमें कहा गया है कि प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी पढ़े-लिखे और अमीर लोग हैं जो वादी-याचिकाकर्ताओं को धमकी देते रहते हैं। 40 फीट रोड के अलावा प्लॉट नंबर 291 में आने-जाने का कोई साधन नहीं है। यह कहा गया है कि यदि वादी-याचिकाकर्ताओं को 40 फीट सड़क का उपयोग करने से रोका गया, तो उन्हें अपूरणीय क्षति होगी और वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा अपने भरण-पोषण के लिए उगाई गई फसलें नष्ट हो जाएंगी, जिसकी भरपाई भविष्य में नहीं की जा सकती।

10. कथित एनओसी की सामग्री एक प्रदान करती है कि वादी-याचिकाकर्ताओं को न केवल सड़क का उपयोग करना है, बल्कि आर्क सिटी की नाली, सीवर और बिजली का भी उपयोग करना है और स्वीकृत उद्देश्य यह है कि वादी-याचिकाकर्ता प्लॉट संख्या 291 पर भूखंडों का सीमांकन करेंगे और इसे तीसरे पक्ष को बेचेंगे। लेकिन इसके विपरीत, वादी के पैराग्राफ संख्या 4 में एनओसी के संदर्भ के बावजूद, वादी मामला यह है कि वादी-याचिकाकर्ता अपने भरण-पोषण के लिए फसलें उगा रहे हैं। अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन के समर्थन में

दायर हलफनामे में वादी मामले को दोहराया गया है।

11. दिनांक 06.09.2019 को एक अंतरिम विज्ञापन पक्षपातवाला वादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निषेधाज्ञा आदेश दिया गया था और विचारण न्यायालय के समक्ष वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर एक आवेदन (कागज संख्या 16 जीए-2) पर, कोर्ट अमीन को इस संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश जारी किया गया था। आवेदन 16-जीए-2 के आलोक में विवादित संपत्ति के संबंध में मौके पर स्थिति की जानकारी ली गयी.

12. प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन पर आपत्ति 30.10.2019 को दायर की गई थी जिसमें इस बात से इनकार किया गया था कि वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई भी कृषि गतिविधि की जा रही है और यह कहा गया था कि प्रतिवादियों के पास उपलब्ध जानकारी के अनुसार प्रत्यर्थीओं, वादी-याचिकाकर्ता उपरोक्त भूखंड पर साजिश रचने की गतिविधियां जारी रख सकता है। उक्त प्लॉट संख्या 291 तक पहुंचने के लिए, वे प्लॉट के पश्चिमी तरफ मौजूदा सड़क को पक्का कर रहे हैं। इस बात से इनकार किया गया कि वादी-याचिकाकर्ताओं को 40 फीट सड़क से कोई सरोकार है और वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा इसके उपयोग से इनकार किया गया। एनओसी जारी करने से इनकार कर दिया गया था और यह आरोप लगाया गया था कि एनओसी भ्रामक है और फर्जी तरीके से तैयार की गई है और न तो प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों और न ही कल्याण संघ के किसी पूर्व अध्यक्ष या सचिव ने ऐसी कोई एनओसी जारी की थी। यह कहा गया कि वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1 विधान सभा का पूर्व सदस्य है और कल्याण संघ द्वारा प्रबंधित कॉलोनी के निवासियों को धमकी देता रहता है। यह कहा गया था कि वादी याचिकाकर्ताओं ने प्रवेश और निकास के लिए इसकी खरीद से पहले प्लॉट नंबर 291 के पश्चिमी तरफ एक सड़क के अस्तित्व के संबंध में खुद को संतुष्ट किया था, लेकिन केवल प्रत्यर्थियों - प्रतिवादियों को परेशान करने के लिए, वे आर्क सिटी की चहारदीवारी को तोड़कर 40 फीट की सड़क उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं। कहा गया कि आर्क सिटी विकास प्राधिकरण की अनुमोदित कॉलोनी है और वादी-याचिकाकर्ता यह कहकर गुमराह करने की कोशिश कर रहे हैं वह प्लॉट नंबर 291 भी आर्क सिटी का हिस्सा है और इस प्रकार, दुष्ट इरादा, आर्क सिटी के अस्तित्व को खतरे में डालने की कोशिश कर रहा है। कहा गया कि वादी-याचिकाकर्ताओं ने जान-बूझकर प्लाट संख्या 291 के साइट मैप में पश्चिमी तरफ का रास्ता नहीं दिखाया है। अगस्त 2019 के महीने में, 40 फीट रोड के पास रहने वाले आर्क सिटी के निवासियों के साथ वादी-याचिकाकर्ताओं के साथ विवाद हुआ था, जिसके संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/116 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी। इसमें कहा गया था कि आर्क शहर की चारदीवारी मौजूद है और वादी-याचिकाकर्ता 40 फीट सड़क का उपयोग करने के लिए इसे ध्वस्त करने की कोशिश कर रहे हैं।

13. इस बात से इनकार किया गया कि 40 फीट सड़क का उपयोग कभी भी वादी याचिकाकर्ताओं या उनके पूर्ववर्तियों द्वारा किया गया था और यदि सड़क पर सीमा दीवार मौजूद नहीं है, तो आर्क सिटी के निवासियों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। इसमें कहा गया था कि आर्क सिटी एक स्वीकृत कॉलोनी है और वादी-याचिकाकर्ता प्लॉट संख्या 291 में एक अवैध कॉलोनी स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसकी सड़क वे आर्क सिटी के माध्यम से बनाना चाहते हैं। कहा गया कि जब वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा जबरन चहारदीवारी को गिराने का प्रयास किया गया, तो प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने वादी-याचिकाकर्ताओं के खिलाफ शिकायत दर्ज की और धारा 147, 427, 506 आईपीसी के प्रावधानों के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। कहा गया कि प्रत्यर्थी के अध्यक्ष व सचिव का नाम, जो समय-समय पर बदलता रहता है, वाद पत्र में नहीं बताया गया है.

14. दिनांक 11.11.2019 को कोर्ट अमीन ने मानचित्र सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो इस प्रकार है:-

"माननीय न्यायालय सिविल जज (सी०डि०),

मेरठ।

मूलवाद सं0- 735 सन् 2019

चौ० चन्द्रवीर सिंह आदि बनाम अध्यक्ष आर्क

सिटीरैजीडेन्स आदि

रिपोर्ट अमीन कमीशन

श्रीमान जी.

माननीय न्यायालय के आदेश का पालन करने के लिए दिनांक 11.11.2019 नियत की गयी थी जिसकी सूचना वादी अधिवक्ता महोदय को व्यक्तिगत रूप से तथा प्रतिवादीगण को रजि० डाक द्वारा पूर्व में दे दी गयी थी । नियत दिनांक पर वादी अधिवक्ता महोदय उपस्थित हुए किन्तु प्रतिवादी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ, तो मैं न्यायालय अमीन वादी अधिवक्ता महोदय के साथ ग्राम दायमपुर जिला मेरठ पहुंचा। जहां पहुंचकर प्रतिवादीगण के बारे में मालूमात की, तो वहां उपस्थित व्यक्तियों ने अपना परिचय श्री सोमपाल, सुनील कुमार, अमरीश त्यागी तथा इलम सिंह कोषाध्यक्ष आर्क सिटी के रूप में दिया। मैंने पक्षकारों को अपना परिचय देते हुए माननीय न्यायालय के आदेश से अवगत कराया तथा विवादित स्थल तथा उसके आस-पास का निरीक्षण कराने का अनुरोध किया, तो पक्षकारों ने मुझे विवादित स्थल व उसके आस-पास का निरीक्षण कराया। मैंने निरीक्षण करते हुए उसका नक्शा नजरी ए. बी. सी. डी. तैयार किया जो इस रिपोर्ट का अंग है।

श्रीमान जी निरीक्षण के दौरान पाया कि वादी की सम्पत्ति खसरा नं० - 291 जिसे नक्शा नजरी में अक्षर ए. बी. सी. डी से दिखाया गया है। इस सम्पत्ति के उत्तर में आर्क सिटी तथा सडक, पश्चिम में रास्ता (खड़ंजा) व सम्पत्ति अन्य दक्षिण में रास्ता (खडंजा), पूरब में सम्पत्ति अन्य की स्थिति बतायी गयी। वादी की सम्पत्ति में उत्तर की तरफ एक लोहे का गेट लगा हुआ है। गेट के उत्तर में ईंटों का मलबा पड़ा है। मलबे के बाद एक सड़क उत्तर की तरफ को गयी है जो आर्क सीटी से होते

हुए बाहर चली जाती है। ईटों के मलबे के पश्चिम व पूरब में बिना पलास्तर की दीवार बनी है। इसी सड़क से होकर मैं विवादित स्थल तक पहुंचा तथा वापिस आया जिस स्थान पर ईटों का मलबा पड़ा है वह स्थान नक्शा नजरी में लाल रंग से दिखाया गया है।

श्रीमान जी वादी अधिवक्ता महोदय ने बताया कि हमारी सम्पत्ति खसरा नं० - 291 स्थित दायमपुर, मेरठ के हम मालिक व काबिज है जिसका एक मात्र रास्ता उत्तर की तरफ बनी सड़क जो आर्क सिटी से होकर बाहर निकल जाती है किन्तु प्रतिवादीगण हमारे लोहे के गेट के आगे दीवार लगा कर हमारा रास्ता बन्द करने की धमकी दे रहे हैं, जबकि उन्हें हमारा रास्ता बन्द करने का कोई अधिकार नहीं है जबकि मौके पर मौजूद प्रतिवादी के लोगों ने बताया कि यह सड़क आर्क सिटी की है तथा वादी का कोई वास्ता इस रास्ते से नहीं है तथा बताया कि वादी के गेट के आगे दीवार बनी थी जिसे वादी ने आज ही गिराया है जिसकी शिकायत हमने 100 नम्बर पर की थी। मौके पर पड़ी ईटें उसी दीवार का मलबा बताया गया । अन्य कोई बात मौके पर नहीं बतायी गयी।

श्रीमान जी परवाना कमीशन रिपोर्ट अमीन मय नक्शा नजरी के उचित आदेश हेतु दाखिल माननीय न्यायालय किया जाता है।

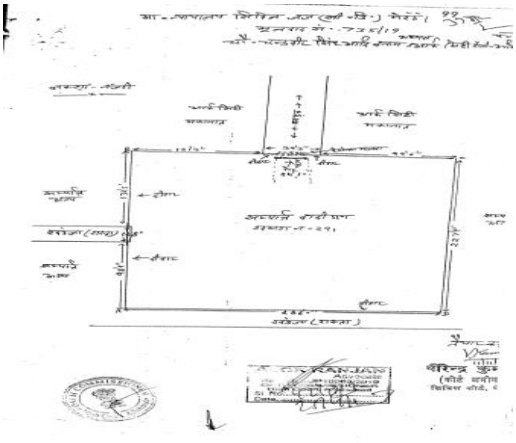
तैयारकर्ता

ह० अप०

11/11/2019

वीरेन्द्र कुमार

(कोर्ट अमीन) सिविल कोर्ट, मेरठ "



12

15. वादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा 18.12.2019 को एक प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर किया गया था, जिसमें यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी तथाकथित सोसायटी के वैध अध्यक्ष और सचिव नहीं हैं और न ही प्रबंधन समिति विधिवत पंजीकृत है और, इसलिए, वे मुकदमे पर आपत्ति या विरोध करने के पात्र नहीं हैं। प्रत्युत्तर हलफनामे के पैराग्राफ 4 में, वादी-याचिकाकर्ताओं ने अपना रुख बदल दिया जो उन्होंने अपनी याचिका और हलफनामे में व्यक्त किया था। बताया गया कि सबसे पहले प्लॉट नंबर 291 की खरीद के बाद खेती शुरू की गयी. इसके बाद, वादी याचिकाकर्ताओं ने खेती की गतिविधियों को बंद कर दिया और एक चारदीवारी बना ली और वे प्रवेश और निकास के लिए 40 फीट सड़क का उपयोग कर रहे हैं और प्लॉट नंबर के पश्चिमी तरफ कोई सड़क नहीं है। 291 और न ही वादी-याचिकाकर्ता पश्चिमी तरफ सड़क पक्की कर रहे हैं। कहा गया कि वेलफेयर एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष व सचिव ने एनओसी दी थी, जो रद्द नहीं हुई है और अब भी प्रभावी है.

16. कहा गया कि अमीन की रिपोर्ट में वादी-याचिकाकर्ताओं की कृषि भूमि और प्लॉट संख्या 291 पर आने-जाने का रास्ता दिखाया गया है और अमीन द्वारा स्थल तक पहुंचने के लिए 40 फीट सड़क का उपयोग किया गया था। उस समय प्लॉट नंबर 291 के लोहे के गेट के सामने कोई दीवार नहीं थी। यह कहा गया था कि आर्क सिटी में पांच अन्य स्थानों पर, सड़कें बिना किसी सीमा दीवार के खुली थीं, जहां से आसपास के गांवों के लोग गुजरते हैं। प्रत्युत्तर शपथ पत्र के साथ, वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, मेरठ डिवीजन, मेरठ से सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत उनके द्वारा दायर एक आवेदन के अनुसार प्राप्त जानकारी दिनांक 30.10.2019 भी संलग्न किया गया था जिसमें कहा गया था कि वेलफेयर एसोसिएशन का वर्तमान बोर्ड सोसायटी अधिनियम की धारा 4(1) के तहत पंजीकृत नहीं है। वेलफेयर एसोसिएशन के एक पूर्व अध्यक्ष द्वारा कथित तौर पर शपथ लिया गया दिनांक 16.12.2019 का एक शपथ पत्र भी संलग्न किया गया था जिसमें उन्होंने एनओसी के निष्पादन की पुष्टि की थी।

17. अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए आवेदन की अनुमति देते समय, विचारण न्यायालय वादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में जारी एनओसी का उल्लेख करता है और कल्याण संघ के पूर्व कथित अध्यक्ष द्वारा निष्पादित शपथ पत्र विचारण न्यायालय द्वारा कल्याण संघ के बोर्ड के विभिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा दायर किए गए कई दस्तावेजों का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें इस बात से इनकार किया गया था कि वादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में आर्क सिटी से संबंधित सड़क के उपयोग के संबंध में 2016 में कोई एनओसी जारी की गई थी। विचारण न्यायालय का मानना है कि यदि गलत एनओसी जारी की गई थी, तो बचाव पक्ष ने यह प्रदर्शित नहीं किया कि कल्याण संघ के पूर्व अध्यक्ष के खिलाफ क्या कार्यवाही शुरू की गई थी। यह देखा गया है कि सड़क के उपयोग से संबंधित एनओसी के संबंध में परस्पर विरोधी शपथपत्र दायर किए गए हैं और इसलिए, साक्ष्य के बाद तथ्यों को निर्धारित किया जा सकता है। तब यह देखा गया कि वर्तमान में एनओसी वादी-याचिकाकर्ताओं के मामले का समर्थन करती है। विचारण न्यायालय का कहना है कि आर्क सिटी के संबंध में कोई सोसायटी काम नहीं कर रही है और कॉलोनी के कुछ लोग अपने स्वार्थ के कारण सड़क के उपयोग का विरोध कर रहे हैं। उप रजिस्ट्रार द्वारा दी गई जानकारी का हवाला दिया गया है। विचारण न्यायालय का मानना है कि पंजीकरण के बिना, वर्तमान बोर्ड के पास कल्याण संघ के पूर्व अध्यक्ष द्वारा एनओसी जारी करने पर सवाल उठाने का कोई अधिकार नहीं है। विचारण न्यायालय ने नोटिस किया कि दोनों पक्षों ने तस्वीरें दाखिल की थीं और कुछ तस्वीरों में 40 फीट सड़क पर एक दीवार दिखाई देती है और कुछ तस्वीरों में इसे खुला दिखाया गया है और बिना सबूत के यह नहीं माना जा सकता है कि कौन सी तस्वीरें सही हैं।

18. अमीन रिपोर्ट के संबंध में, विचारण न्यायालय का मानना है कि किसी भी पक्ष ने उस रिपोर्ट पर कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी।

बताया जाता है कि अमीन रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि प्लॉट नंबर 291 के उत्तर दिशा में आर्क सिटी से होकर जाने वाली एक सड़क है और 40 फीट सड़क पर एक गेट भी दिखाया गया है, जिससे इसका अंदाजा लगाया जा सकता है. कि वादी-याचिकाकर्ता आर्क सिटी से अपने प्लॉट पर आने के लिए उस सड़क का उपयोग करते हैं। बताया जाता है कि अमीन ने अपनी रिपोर्ट में गेट के उत्तर में ईंट का मलबा (मलबा) दिखाया है और 40 फीट सड़क होने की बात भी कही है. विचारण न्यायालय का मानना है कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने कहा है कि वादी-याचिकाकर्ताओं की जमीन चारदीवारी से घिरी हुई है और यह भी कहा कि निश्चित रूप से वेलफेयर एसोसिएशन से आश्वासन मिलने के बाद, वादी-याचिकाकर्ताओं ने अपनी जमीन पर एक चारदीवारी का निर्माण कराया और पर एक गेट बनवाया उस भूखंड के उत्तर की ओर 40 फीट सड़क के उपयोग के लिए लेकिन वर्तमान में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी इसके उपयोग का विरोध कर रहे हैं, भले ही उन्होंने अपना बोर्ड पंजीकृत नहीं कराया है। यह कहा गया है कि इसके विपरीत, वादी याचिकाकर्ताओं को 40 फीट सड़क का उपयोग करने के लिए कल्याण संघ की सहमति मिली थी, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने 40 फीट सड़क पर एक गेट का निर्माण करवाया और अपने सम्पत्ति से आने-जाने के लिए उस रास्ते का उपयोग कर रहे हैं। यह कहा गया है कि चूंकि कल्याण संघ के पूर्व बोर्ड ने एक एनओसी जारी की थी जिसे किसी अन्य बोर्ड द्वारा रद्द नहीं किया गया है, इसलिए, प्रथम दृष्टया वादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में मामला बनता है। आगे यह माना गया है कि यदि वादी-याचिकाकर्ताओं को 40 फीट सड़क का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी गई तो उन्हें अपूरणीय क्षति होगी। तदनुसार, अस्थायी निषेधाज्ञा दी गई थी कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, न तो प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी और न ही कोई प्रतिनिधि, कर्मचारी, सहयोगी, पर्यवेक्षक या असामाजिक तत्व वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा 40 फीट सड़क के उपयोग में हस्तक्षेप करेंगे।

19. अस्थायी निषेधाज्ञा के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने अपील दायर की। वादी-याचिकाकर्ताओं के जवाब पर विचार करने के बाद, अपीलीय अदालत ने अपील की अनुमति दी और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.01.2020 को रद्द कर दिया। अपीलीय अदालत ने देखा कि प्लॉट क्रमांक 291 दिनांक 11.08.2016 के विक्रय-पत्र के आधार पर वादीगण द्वारा स्वामित्व एवं कब्जा किया जाना बताया गया है तथा उक्त भूखण्ड को वाद-पत्र के साथ संलग्न साइट-मैप में दर्शाया गया है। इस भूमि के उत्तर में प्लॉट नंबर 291 और आर्क सिटी, अलग-अलग प्लॉट हैं। वादीगणों ने अपने आवेदन में यह नहीं बताया है कि आर्क सिटी की संपत्ति पर उनका कोई अधिकार/स्वामित्व है, बल्कि केवल वादपत्र के अंत में प्रदर्शित मानचित्रों में यह कहा गया है कि वे आर्क सिटी स्थित 40 फीट रोड का उपयोग करते हैं। यह पाया गया कि वादी के अनुसार, प्लॉट संख्या 291 का पूर्व मालिक भी 40 फीट सड़क का उपयोग कर रहा था। दिनांक 11.08.2016 के विक्रय-पत्र की प्रमाणित प्रति के अवलोकन से, जो वादी द्वारा विचारण न्यायालय में दायर की गई थी, अपीलीय अदालत ने पाया कि

उक्त विक्रय-पत्र का विषय प्लॉट नंबर 291 है, जिसकी माप 0.6070 हेक्टेयर है, जो कि कृषि भूमि जिसका विवरण पृष्ठ क्रमांक पर अंकित है। विलेख के 14, और उक्त भूमि के उत्तर में कोई रास्ता नहीं दिखाया गया है और न ही ऐसा कोई रास्ता है का उल्लेख सम्पूर्ण विक्रय-पत्र में कहीं भी किया गया है। यह देखा गया है कि राजस्व मानचित्र के साथ विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर उपलब्ध विक्रय-पत्र भी प्लॉट संख्या 291 के उत्तर की ओर ऐसा कोई रास्ता नहीं दिखाता है। इसके विपरीत, प्रतिवादियों का कहना है कि आर्क सिटी विकास प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित कॉलोनी है और आर्क सिटी की दीवार विवादित स्थल पर बनाई गई है, जिसका मानचित्र विकास प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित है। प्रतिवादियों की ओर से कहा गया कि चारदीवारी आर्क सिटी के निवासियों की सुविधा के लिए है। अपीलीय अदालत ने आगे कहा कि विकास प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित मानचित्र की एक प्रति विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर प्रत्युत्तर शपथपत्र के साथ दायर की गई थी जिसमें आर्क सिटी की पार्श्व सीमा को मानचित्र में दिखाया गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि 40 फीट की सड़क आर्क सिटी की पार्श्व सीमा पर समाप्त होती है, अर्थात यह आर्क सिटी के निवासियों के उपयोग के लिए प्रतिबंधित प्रतीत होती है। ज्ञातव्य है कि मानचित्र सहित अमीन प्रतिवेदन में प्लॉट संख्या 291 के दक्षिण में पश्चिम से पूरब की ओर ईंट पक्की पथ दर्शाया गया है। अपीलीय अदालत द्वारा यह पाया गया कि यद्यपि, अमीन रिपोर्ट विचारण न्यायालय की फ़ाइल में उपलब्ध थी, लेकिन इसकी पुष्टि नहीं की गई थी, लेकिन अमीन रिपोर्ट और मानचित्र से यह स्पष्ट है कि ईंट पथ दक्षिण और पश्चिम में स्थित हैं प्लॉट नं.291. अतः अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन के तालिका संख्या 5 में वादीगण द्वारा दिये गये कथन कि विवादित मार्ग के अतिरिक्त भूखण्ड संख्या 291 तक पहुंचने का कोई अन्य मार्ग नहीं है, प्रथम दृष्टया स्वीकार्य नहीं। अपीलीय न्यायालय द्वारा यह पाया गया कि विचारण न्यायालय की फाइल के अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि आवेदन में अधिकारों/आधार का कोई उल्लेख नहीं है कि वादी किस आधार पर रास्ते के अधिकार की मांग कर रहे हैं। प्रतिवादियों की भूमि पर, जो वादी की नहीं है, प्लॉट संख्या 291 में उनके स्वामित्व वाली भूमि के लाभकारी उपयोग के लिए। जबकि, प्रतिवादियों की कॉलोनी में स्थित पथ पर सुखभोग का अधिकार था। वादी द्वारा दावा नहीं किया गया। केवल इस आधार पर कि 40 फीट सड़क का उपयोग पूर्व मालिक द्वारा किया गया है या कहा गया है और यह भी कहा गया है कि 40 फीट सड़क का उपयोग स्वयं वादी द्वारा किया गया है, यह साक्ष्य और प्रथम दृष्टया का प्रश्न है ऐसी किसी भी 40 फीट सड़क का साक्ष्य विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं रखा गया था। अपीलीय अदालत ने पाया कि जहां तक एनओसी का सवाल है, इस संबंध में प्रतिवादियों ने ऐसी कोई भी एनओसी देने से साफ इनकार कर दिया है। फिर ऐसे में उक्त एनओसी के संबंध में पक्षों की गवाही आना अभी बाकी है। महज लेटर पैड पर जारी की गई एनओसी के आधार पर प्रथम दृष्टया वादीगण के पक्ष में कोई मामला अस्तित्व में नहीं पाया गया तथा सुविधा का संतुलन भी वादीगण के पक्ष में नहीं था। वादी

पक्ष के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करायी गयी थी। अपीलीय अदालत ने पाया कि विचारण न्यायालय का आक्षेपति आदेश मुख्य रूप से एनओसी और अमीन की रिपोर्ट के आधार पर पारित किया गया है, जबकि एनओसी के संबंध में संबंधित पक्षों के साक्ष्य अभी विचारण न्यायालय के सामने आने बाकी हैं। अपीलीय अदालत द्वारा यह माना गया कि विचारण न्यायालय का आदेश विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के विपरीत संभावनाओं के आधार पर पारित किया गया था, जो पोषणीय नहीं है। तद्नुसार अपील स्वीकार की गई।

20. एनओसी की तथ्य इस प्रकार है:-

"अनापत्ति प्रमाण पत्र

समिति द्वारा 'आर्कसिटी' कालोनी स्थित ग्राम नंगलाताशी व दायमपुर, दिल्ली - रूढकी बाईपास रोड़, मेरठ का रख रखाव / मैन्टीनेन्स किया जा रहा है। उक्त कालोनी आर्कसिटी मेरठ विकास प्राधिकरण, मेरठ द्वारा स्वीकृत कालोनी है, जिसका स्वीकृत मानचित्र नम्बर 12/09 दिनांक 29.01.2010 है। कालोनी आर्कसिटी के दक्षिण में खसरा नम्बर 291 ग्राम दायमपुर, परगना व तहसील व जिला मेरठ की भूमि है, जिसके स्वामी श्री चन्द्रवीर सिंह पुत्र श्री सुमेर सिंह व श्री विवके अहलावत पुत्र श्री चन्द्रवीर सिंह निवासीगण डी-137, साकेत, मेरठ शहर है आर्कसिटी के दक्षिण में स्थित में स्थित उक्त खसरा नम्बर 291 की भूमि को उसके स्वामी विकसित करना चाहते है तथा उसमें प्लाट्स बनाना चाहते है। आर्कसिटी कालोनी का 12 मीटर चौडा मुख्य रास्ता कालोनी के दक्षिण में स्थित अन्तिम प्लाट्स संख्या ए-85 व बी-41 के बीच जाकर समाप्त हो जाता है, जहां पर आर्कसिटी कालोनी की बाउण्ड्रीवाल और उसके उपरान्त दक्षिण में उक्त श्री चन्द्रवीर सिंह आदि की खसरा नम्बर 291 की भूमि है। आर्कसिटी स्थित उक्त 12 मीटर चौड़े रास्ते व उसके साथ बनी नालियों व सीवर लाईन को उक्त चन्द्रवीर सिंह अपनी भूमि से जोड़ना चाहते है जिसके लिए उन्होंने आर्कसिटी के डवलपर्स से अनुरोध किया है। तो उन्होने कहाँ कि तुम लोग स्वयं इस का निर्णय करेंगे इस आधार पर हमने सभी की सहमति से रास्ता प्रदान कर दिया यदि आर्कसिटी कालोनी का 12 मीटर चौडा रास्ता दक्षिण स्थित श्री चन्द्रवीर सिंह आदि की भूमि खसरा नम्बर 291 से जोड़ा जाता है जो कभी किसी भी अन्य आदेश पर रास्ता बन्द नहीं किया जायेगा क्योंकि उनका कोई अन्य आने जाने का रास्ता नहीं हैं तथा उन्हें उक्त रास्ते से आने जाने की सुविधा प्रदान की जाती है तथा रास्ते के साथ लगे सीवर व नाली व बिजली के प्रयोग की अनुमति चन्द्रवीर सिंह आदि को दी जाती है, तो इसमें समिति को कोई आपत्ति नहीं हो और न ही भविष्य में होगी।

चन्द्रवीर सिंह विवके अहलावत द्वारा जो प्लाट्स जिन लोगों को विक्रय किये जायेंगे वह कोई अन्य सोसाईटी नहीं बनायेंगे इसी सोसाईटी से अपना रजिस्ट्रेशन करायेंगे।

दिनांक :- 11.12.2016
हस्ताक्षर अध्यक्ष समितिः
हस्ताक्षर सचिव समितिः

21. एनओसी में कहा गया है कि वादी-याचिकाकर्ता प्लॉट नंबर 291 को विकसित करना और उस पर कुछ प्लॉट का निर्माण करना चाहते हैं; कि वादी-याचिकाकर्ता अपनी जमीन को आर्क सिटी में स्थित 12 मीटर चौड़ी सड़क और नालियों और सीवर लाइनों के साथ जोड़ना चाहते हैं, जिसके लिए उन्होंने आर्क सिटी के डेवलपर से अनुरोध किया, जिन्होंने तब कहा कि निर्णय उनके द्वारा लिया जा सकता है; उसी आधार पर सभी की सहमति से 40 फीट का रास्ता दिया गया है और 40 फीट का रास्ता किसी अन्य आदेश से बंद नहीं किया जाएगा क्योंकि वादी-याचिकाकर्ताओं के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है और उन्हें इसका लाभ दिया जा रहा है। 40 फीट सड़क का उपयोग करने और सीवर, नालियों और बिजली का उपयोग करने की अनुमति दी गई है, और इस संबंध में, कल्याण एसोसिएशन को वर्तमान या भविष्य में कोई आपत्ति नहीं होगी। एनओसी में आगे उल्लेख किया गया है कि वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा जो भूखंड बेचे जाएंगे, उनके संबंध में वे तृतीय पक्ष कोई अन्य सोसायटी नहीं बनाएंगे, बल्कि वेलफेयर एसोसिएशन में ही पंजीकृत होंगे।

22. इसमें कोई विवाद नहीं है कि 40 फीट की सड़क आर्क सिटी के संबंध में विकास प्राधिकरण की स्वीकृत योजना का हिस्सा है। वादी याचिकाकर्ता एनओसी से मिलने वाले कथित अनुदान के आधार पर इसके उपयोग के अपने अधिकार का दावा कर रहे हैं। प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा उठाए जा रहे विवाद को देखते हुए, अनुदान को साक्ष्य द्वारा साबित करना होगा, इससे पहले कि अदालत अनुदान द्वारा कथित सुखाचार के अस्तित्व पर अपनी मुहर लगा सके।

23. वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हीरो विनोथ (उपरोक्त) मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है, यह तर्क देने के लिए कि अनुदान के माध्यम से एक सुख सुविधा समाप्त नहीं होती है, भले ही प्रमुख मालिक के लिए एक और मार्ग उपलब्ध हो। हालाँकि, उस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय एक सिविल अपील पर विचार कर रहा था जो कि दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के फैसले से उत्पन्न हुई थी। मान लीजिए, परीक्षण और नियमित प्रथम और द्वितीय अपील समाप्त होने के बाद, और अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए आवेदन से उत्पन्न मामला नहीं बनता तो माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

> "25. मौजूदा मामले में उच्च न्यायालय ने पाया कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय अदालत का दृष्टिकोण गलत था क्योंकि वे इस आधार पर आगे बढ़े जैसे कि यह आवश्यकता की सुविधा का मामला हो। **यदि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय अदालत ने पक्षों के संबंधित रुख के आलोक में सबूतों पर विचार किया होता और फिर किसी न किसी तरह निष्कर्ष निकाला होता, तो स्थिति अलग होती।** जब दृष्टिकोण मौलिक रूप से गलत था तो उच्च न्यायालय को इस सवाल पर विचार करने के

लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि विभाजन विलेख से पता चला कि पार्टी का सिद्ध इरादा क्या था। प्रासंगिक (अनुवादित) भाग इस प्रकार है:

"अरावमुथा चेट्टियार आमतौर पर कुएं का उपयोग करते जो कि पुरूषोत्तम चेट्टियार की सम्पत्ति है एवं इसी प्रकार पुरूषोत्तम चेट्टियार आमतौर पर रास्ता का उपयोग करते है जो अरावमुथा चेट्टियार की सम्पत्ति है कुआ जो अरावमुथा चेट्टियार के लिए उपयोगी है इसी पुरूषोत्तम चेट्टियार और इसीप्रकार रास्ता अरावमुथा चेट्टियार के लिए उपयोगी है।"

26. यद्यपि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क देने का प्रयास किया गया था कि उद्धृत भाग केवल प्रस्तावना था और पार्टियों का इरादा नहीं था, यह स्पष्ट रूप से अस्थिर है। उद्धृत भाग से पहले इसे इस प्रकार नोट किया गया है:

"उपरोक्त व्यवस्था के अनुसार हमने इसमें प्रवेश करने का निर्णय लिया विभाजन विलेख और इसलिए हम यह विभाजन विलेख लिख रहे हैं। हम हमारे संबंधित शेयरों पर कब्ज़ा कर लेना चाहिए और निर्बाध रूप से हमेशा के लिए इसका आनंद लेना चाहिए।"

27. इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इरादा स्पष्ट था कि यह एक अनुदान था न कि कोई आवश्यकता की सुविधा जिसे समाप्त किया जा सके।

28. यह प्रश्न कि क्या सुखभोग अनुदान द्वारा प्राप्त किया गया है (आवश्यकता के सुखभोग से विपरीत) इसकी पूर्ण आवश्यकता पर निर्भर नहीं करता है। यह अधिग्रहण की प्रकृति है जो प्रासंगिक है। अनुदान द्वारा प्राप्त कई सुख-सुविधाएँ प्रमुख किरायेदारी के आनंद के लिए इस अर्थ में नितांत आवश्यक हो सकती हैं कि इसके बिना इसका बिल्कुल भी आनंद नहीं लिया जा सकता है। अनुदान का कारण भी यही हो सकता है। लेकिन अनुदान की सुगमता पार्टियों के बीच अनुबंध का मामला है। अनुदान के मामले में पार्टियाँ अनुदान की शर्तों से शासित होती हैं, किसी अन्य चीज़ से नहीं। अधिनियम की धारा 13 में आवश्यकता की सुख-सुविधा और अर्ध सुख-सुविधा का वर्णन किया गया है। अनुदान व्यक्त या आवश्यक निहितार्थ द्वारा भी हो सकता है। किसी भी मामले में यह अधिनियम की धारा 13 के तहत आवश्यकता की सुविधा नहीं होगी, भले ही यह उस व्यक्ति के लिए एक परम आवश्यकता भी हो सकती है जिसके पक्ष में अनुदान दिया गया है। अनुदान द्वारा प्राप्त सुख सुविधा की सीमा केवल अनुबंध की शर्तों द्वारा नियंत्रित होती है। यदि अनुदान की शर्तें इसके उपयोगकर्ता को किसी भी

शर्त के अधीन प्रतिबंधित करती हैं तो पार्टियां उन शर्तों द्वारा शासित होंगी। किसी भी तरह अनुदान का दायरा केवल पार्टियों के बीच अनुदान की शर्तों से निर्धारित किया जा सकता है। जबकि इस मामले में अनुदान की अवधि में ऐसा कुछ नहीं है कि इसे केवल जारी रखा जाए जब तक आवश्यकता पूर्ण न हो; वास्तव में जिस समय इसे प्रदान किया गया था, उस समय भी यह आवश्यक नहीं था। यदि यह किसी भी स्थिति से अनियंत्रित एक स्थायी व्यवस्था है, तो उपयोगकर्ता में उस स्थायित्व को पहचाना जाना चाहिए और सर्वेंट टेनमेंट को मान्यता दी जाएगी और सर्वेंट टेनमेंट पर स्थायी रूप से उस विकलांगता का बोझ डाला जाएगा। ऐसा अधिकार धारा 13 के कानूनी निहितार्थ के तहत उत्पन्न नहीं होता है और न ही यह अधिनियम की धारा 41 के तहत वैधानिक प्रावधान द्वारा समाप्त होता है जो केवल धारा 13 के तहत उत्पन्न होने वाली आवश्यकता की सुविधा के लिए लागू होता है।

29. अनुदान द्वारा सुख सुविधा अधिनियम की धारा 41 के तहत समाप्त नहीं होती है जो आवश्यकता की सुख सुविधा से संबंधित है। आवश्यकता का सुखभोग वह है जो न केवल प्रमुख किरायेदारी के उचित आनंद के लिए आवश्यक है, बल्कि वह है जहां प्रमुख किरायेदारी का उपयोग सुखभोग के बिना बिल्कुल भी नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामले में अनुसेवी मालिक का बोझ उसके द्वारा प्रतिफल या अन्यथा दी गई किसी रियायत या अनुदान के आधार पर नहीं है, बल्कि यह एक कानूनी दायित्व के माध्यम से है जो प्रमुख मालिक को अपनी भूमि का उपयोग करने में सक्षम बनाता है। यह न्यूनतम आवश्यकता तक ही सीमित है, भले ही यह कितना भी असुविधाजनक क्यों न हो, इस सवाल पर ध्यान दिए बिना कि क्या सेवाधारी मालिक द्वारा बेहतर पहुंच दी जा सकती है या नहीं। जब एक वैकल्पिक पहुंच उपलब्ध हो जाती है, तो अनुसेवी मालिक पर बोझ डालने की कानूनी आवश्यकता समाप्त हो जाती है और कानून के निहितार्थ द्वारा आवश्यकता की सुख सुविधा को कानूनी रूप से वापस ले लिया जाता है या समाप्त कर दिया जाता है, जैसा कि धारा 41 में वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है। ऐसी सुख सुविधा केवल तब तक रहेगी जब तक पूर्ण आवश्यकता मौजूद है . इस तरह की कानूनी समाप्ति अनुदान द्वारा अधिग्रहण पर लागू नहीं हो सकती है और धारा 41 ऐसे मामले में लागू नहीं होती है।"

(प्रभाव वर्धित)

24. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थी प्रत्यर्थीओं द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन पर दायर की गई आपत्तियों को देखते

हुए, एनओसी का अस्तित्व, जिस दस्तावेज़ में वादी-याचिकाकर्ता सुखभोग अधिकार का अनुदान होने का दावा कर रहे हैं, संदेह के घेरे में है। और यह साक्ष्य का विषय है कि क्या कोई वैध अनुदान था। अत: उस निर्णय का कोई लाभ वादी-याचिकाकर्ताओं को नहीं मिल सकेगा।

कथित एनओसी 40 फीट सड़क, सीवर, नाली और बिजली लाइनों के उपयोग की अनुमति को दर्शाती है, लेकिन वादी मामला यह है कि प्लॉट नंबर 291 का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है वादपत्र में एनओसी का उल्लेख होने के बावजूद और इसमें किसी भी प्रस्तावित या मौजूदा प्लॉटिंग गतिविधि का कोई उल्लेख नहीं है।

25. वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देने के लिए कई निर्णयों पर भरोसा किया है कि विपरीत पक्षों द्वारा अमीन आयुक्त की रिपोर्ट पर किसी भी आपत्ति के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि अदालतों ने अमीन आयुक्त की रिपोर्ट पर भरोसा करके गलती की है। यह है नोट किया गया कि अमीन एक अदालत अमीन था जिसे वादी याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए उद्देश्य के लिए एक आवेदन के अनुसार अदालत द्वारा नियुक्त किया गया था। इसके अलावा, अमीन आयुक्त की रिपोर्ट अभी भी साबित नहीं हुई है। पार्टियों के लिए अमीन आयुक्त की रिपोर्ट पर आपत्ति दर्ज करना हमेशा खुला हो सकता है, जब तक कि यह विलंबित चरण में न हो और विचारण न्यायालय के किसी भी आदेश के अधीन हो। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा कोई लिखित बयान दायर किया गया है। यह मुकदमे का प्रारंभिक चरण है।

26. जो भी हो, वादी-याचिकाकर्ता अमीन आयुक्त की रिपोर्ट पर भरोसा कर रहे हैं। मौजूदा मामले में, जैसा कि विचारण न्यायालय के आदेश से स्पष्ट है, विचारण न्यायालय ने अमीन आयुक्त की रिपोर्ट के एक हिस्से को चुनिंदा रूप से संदर्भित किया है, यानी उत्तर की ओर मौजूद 40 फीट सड़क के संबंध मे प्लॉट नंबर 291 का और, अजीब बात है, इसमें प्लॉट नंबर 291 के पश्चिम और दक्षिण की ओर मौजूद दिखाए गए रास्तों का उल्लेख नहीं किया गया है। अमीन आयुक्त की रिपोर्ट के साथ संलग्न नक्शा प्लॉट संख्या 291 के पश्चिमी तरफ से एक पथ और पहुंच को दर्शाता है जिसे ए, बी के रूप में चिह्नित प्लॉट संख्या 291 की सीमा दीवार के लंबवत दिखाया गया है। यह मौजूदा पथ को भी दर्शाता है। प्लॉट संख्या 291 के दक्षिण की ओर जो कि प्लॉट संख्या 291 की चारदीवारी के साथ है, जिसे ए, डी के रूप में चिह्नित किया गया है। वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क के संबंध में कि प्लॉट संख्या 291 के पश्चिमी तरफ दिखाया गया रास्ता है। यह कहीं नहीं जाता है, यह नोट किया गया है कि न तो वादी में और न ही वादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर शपथपत्र में ऐसा कोई कथन है। वादी किसी भी वैकल्पिक मार्ग के अस्तित्व के बारे में पूरी तरह से चुप है जो अमीन आयुक्त की रिपोर्ट में परिलक्षित होता है। उपरोक्त रिपोर्ट में वादी-याचिकाकर्ताओं के लोहे के गेट के सामने प्लॉट संख्या 291 के उत्तर की ओर ईंट का मलबा पड़ा हुआ भी दिखाया गया है।

27. वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अपार्टमेंट अधिनियम के प्रावधान आर्क सिटी पर लागू होते हैं, जिसका प्रबंधन एक कल्याण संघ द्वारा किया जाता है, और आर्क सिटी की योजनाएं विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। अपार्टमेंट अधिनियम में, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित शर्तों को धारा 3 में परिभाषित किया गया है, जो हैं: -"....

(बी) "अपार्टमेंट" किसी भी संपत्ति का एक हिस्सा, जो किसी भी प्रकार के स्वतंत्र उपयोग के लिए अभिप्रेत है, जिसमें आवासीय या आधिकारिक उद्देश्यों के लिए या किसी पेशे का अभ्यास करने के उद्देश्य से उपयोग की जाने वाली इमारत में एक या अधिक मंजिलों या उसके किसी हिस्से या हिस्सों पर स्थित संलग्न स्थान शामिल हैं। या किसी भी व्यवसाय, व्यापार या व्यवसाय को चलाने के लिए (शॉपिंग मॉल, मल्टीप्लेक्स और वाणिज्यिक परिसरों को छोड़कर, जिन्हें प्रमोटर या रखरखाव एजेंसी द्वारा एकल इकाई के रूप में बनाए रखा जाता है) या ऐसे अन्य उपयोग के लिए जो निर्धारित किया जा सकता है, और सीधे निकास के साथ एक सार्वजनिक सड़क, सड़क या ऐसी सड़क, सड़क की ओर जाने वाला एक आम क्षेत्र और इसमें मालिक द्वारा उपयोग के लिए प्रमोटर द्वारा प्रदान किया गया कोई भी पार्किंग स्थान, या कमरा (चाहे वह इमारत के निकट हो या नहीं, जिसमें ऐसा अपार्टमेंट स्थित है) शामिल है। पार्किंग के लिए अपार्टमेंट या, जैसा भी मामला हो, ऐसे अपार्टमेंट में नियोजित किसी घरेलू सहायक के निवास के लिए;

(डी) "अपार्टमेंट का मालिक"का अर्थ है किसी अपार्टमेंट का मालिक व्यक्ति या बिना बिके अपार्टमेंट के मामले में प्रमोटर या उसका नामांकित व्यक्ति और अपार्टमेंट के विलेख में निर्दिष्ट प्रतिशत में ऐसे अपार्टमेंट से जुड़े सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में अविभाजित हित और इसमें भूमि का पट्टाधारी भी शामिल है। जिस पर ऐसे अपार्टमेंट वाली इमारत का निर्माण किया गया है, जहां ऐसी भूमि का पट्टा तीस साल या उससे अधिक की अवधि के लिए है;

(ई) "अपार्टमेंट मालिकों का संघ" का अर्थ है वहां मौजूद अपार्टमेंट के सभी मालिक, उपनियमों के अनुसार एक समूह के रूप में कार्य करना;

(एफ) " संघ " का अर्थ है उपनियमों के तहत अपने सदस्यों द्वारा चुने गए अपार्टमेंट मालिकों के एक संघ का प्रबंधन बोर्ड;

(जी) "इमारत"का अर्थ है किसी भी भूमि पर निर्मित एक इमारत, जिसमें चार या अधिक अपार्टमेंट हों, या एक ब्लॉक के रूप में नामित किसी भी क्षेत्र में दो या अधिक इमारतें हों, प्रत्येक में दो या अधिक अपार्टमेंट हों और ऐसी सभी इमारतों में कुल चार या अधिक अपार्टमेंट हों;

बशर्ते कि स्वतंत्र प्रवेश और निकास के साथ एक पंक्ति में निर्मित एक स्वतंत्र घर, चाहे वह अन्य स्वतंत्र घरों से

सटा हुआ हो या नहीं, एक इमारत नहीं बनेगा।

(एच) "उपनियमों"इस अधिनियम के तहत बनाए गए उपनियम का मतलब है;

(i)"सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं" मतलब-

(i) वह भूमि जिस पर भवन स्थित है और भूमि तथा भवन से संबंधित सभी सुख-सुविधाएँ, अधिकार और अनुलग्नक;

(ii) इमारत की नींव, स्तंभ, गर्डर, बीम, समर्थन, मुख्य दीवारें, छतें/छतें और सामान्य उपयोग के हॉल, गलियारे, लॉबी, सीढ़ियां, सीढ़ियां, आग से बचने के मार्ग और प्रवेश द्वार और निकास।

(iii) बेसमेंट (केवल सामान्य उपयोग का क्षेत्र), तहखाने, यार्ड, पार्क, उद्यान, सामुदायिक केंद्र और सामान्य पार्किंग क्षेत्र;

(iv) चौकीदारों या संपत्ति के प्रबंधन के लिए नियुक्त व्यक्तियों के रहने के लिए परिसर;

(v) केंद्रीय सेवाओं की स्थापना, जैसे बिजली, प्रकाश, गैस, गर्म और ठंडा पानी, हीटिंग, प्रशीतन, एयर कंडीशनिंग, भस्मीकरण और सीवरेज;

vi) लिफ्ट, टैंक, पंप, मोटर, पंखे, केबल पाइप लाइन (टीवी, गैस, बिजली आदि) वर्षा जल संचयन प्रणाली, कंप्रेसर, डक्ट और आम तौर पर आम उपयोग के लिए मौजूद सभी उपकरण और प्रतिष्ठान;

(vii) ऐसे अन्य सामान्य क्षेत्र और सामुदायिक सुविधाएं जो उपनियमों में निर्दिष्ट की जा सकती हैं; और;

(viii) संपत्ति के अस्तित्व, रखरखाव और सुरक्षा के लिए या सामान्य रूप से सामान्य उपयोग के लिए आवश्यक या सुविधाजनक संपत्ति के सभी अन्य हिस्से;

.....

(एल) "सक्षम प्राधिकारी"अधिसूचना द्वारा सरकार द्वारा अधिकृत किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को इस अधिनियम के तहत ऐसे क्षेत्रों के लिए सक्षम प्राधिकारी के कार्यों को करने के लिए अधिकृत किया गया है जो अधिसूचना में निर्दिष्ट किए जा सकते हैं;

.....

(एक्स) "संपत्ति" का अर्थ है भूमि, भवन, और उस पर सभी सुधार और संरचनाएं, और उससे संबंधित सभी सुख-सुविधाएं, अधिकार और साज-सज्जा, और उसके संबंध में उपयोग के लिए निजी संपत्ति के सभी लेख, जो कि प्रस्तुत किए गए हैं या प्रस्तुत किए जाने का इरादा है इस अधिनियम के प्रावधान;"

28. अपार्टमेंट अधिनियम का अध्याय III अपार्टमेंट मालिकों के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है। धारा 5 और 6 इस प्रकार पढ़ें:-

"5. अपार्टमेंट मालिकों के अधिकार.-

(1) प्रत्येक व्यक्ति जिसे प्रमोटर

द्वारा कोई अपार्टमेंट बेचा जाता है या अन्यथा हस्तांतरित किया जाता है, वह इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन इस प्रकार बेचे गए या अन्यथा उसे हस्तांतरित किए गए अपार्टमेंट के विशेष स्वामित्व और कब्जे का हकदार होगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो सभी अपार्टमेंट के विशेष स्वामित्व और कब्जे का हकदार हो जाता है, वह सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में अविभाजित ब्याज के ऐसे प्रतिशत का हकदार होगा जैसा कि अपार्टमेंट के विलेख में निर्दिष्ट किया जा सकता है और ऐसे प्रतिशत की गणना, आधार के रूप में, भवन के सभी अपार्टमेंटों के कुल क्षेत्रफल के संबंध में अपार्टमेंट का क्षेत्रफल ले कर की जाएगी।

(3)(ए) सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक के अविभाजित हित का प्रतिशत एक स्थायी चरित्र होगा, और सभी अपार्टमेंट मालिकों की लिखित सहमति और सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी के बिना बदला नहीं जाएगा।

(बी) सामान्य में अविभाजित ब्याज का प्रतिशत क्षेत्रों और सुविधाओं को उस अपार्टमेंट से अलग नहीं किया जाएगा जिससे वे संबंधित हैं और उन्हें अपार्टमेंट के साथ हस्तांतरित या भारग्रस्त माना जाएगा, भले ही इस तरह के हित का परिवहन या अन्य साधन में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया हो।

(4) सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं स्थानांतरित नहीं की जाएंगी और अविभाजित रहेंगी और कोई भी अपार्टमेंट मालिक या कोई अन्य व्यक्ति उसके किसी भी हिस्से के विभाजन या विभाजन के लिए कोई कार्रवाई नहीं करेगा, और इसके विपरीत कोई भी अनुबंध शून्य होगा।

(5) प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं का उपयोग उन उद्देश्यों के अनुसार कर सकता है जिनके लिए उनका हित है, अन्य अपार्टमेंट मालिकों के वैध अधिकारों में बाधा या अतिक्रमण किए बिना।

(6) सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के रखरखाव, मरम्मत और संशोधन या स्थानांतरण और उनमें कोई भी परिवर्धन या सुधार करने से संबंधित आवश्यक कार्य केवल इस अधिनियम और उपनियमों के प्रावधानों के अनुसार किए जाएंगे।

(7) अपार्टमेंट मालिकों के संघ के पास अपरिवर्तनीय अधिकार होगा, जिसका प्रयोग बोर्ड या प्रबंधक द्वारा किसी भी सामान्य क्षेत्र के रखरखाव, मरम्मत या प्रतिस्थापन के लिए उचित घंटों के दौरान समय-समय पर प्रत्येक अपार्टमेंट तक पहुंच प्राप्त करने के लिए किया जाएगा। सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं या किसी अन्य अपार्टमेंट

या अपार्टमेंट को होने वाले नुकसान को रोकने के लिए वहां सुविधाएं, या वहां से पहुंच योग्य, या आवश्यक आपातकालीन मरम्मत करने के लिए वह योग्य होगा।

6. अपार्टमेंट मालिकों का दायित्व- (1) प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक उपनियमों और अपार्टमेंट के विलेख में निर्धारित अनुबंधों, शर्तों और प्रतिबंधों का सख्ती से पालन करेगा, अपार्टमेंट मालिकों के संघ की ओर से प्रबंधक या बोर्ड द्वारा या किसी उचित मामले में, पीड़ित अपार्टमेंट मालिक द्वारा क्षति, या निषेधाज्ञा राहत, या दोनों के लिए और उनमें से किसी का अनुपालन करने में विफलता देय राशि की वसूली के लिए कार्रवाई का आधार होगी।

2) कोई भी अपार्टमेंट मालिक ऐसा कोई काम नहीं करेगा जो संपत्ति की सुदृढ़ता या सुरक्षा के लिए प्रतिकूल हो या उसके मूल्य को कम कर दे या किसी सुख सुविधा या वंशानुगत को ख़राब कर दे या कोई भौतिक संरचना नहीं जोड़ेगा या कोई अतिरिक्त बेसमेंट या तहखाने की खुदाई नहीं करेगा या पहले सभी अपार्टमेंट मालिकों की सहमति प्राप्त किए बिना बाहरी पहलू को नही बदलेगा।

स्पष्टीकरण: इस अनुभाग में, किसी भी ब्लॉक, पॉकेट या अन्य निर्दिष्ट क्षेत्र में एक इमारत के संबंध में अपार्टमेंट मालिकों के संदर्भ का अर्थ ऐसे ब्लॉक, पॉकेट या अन्य निर्दिष्ट क्षेत्र में संबंधित इमारत के अपार्टमेंट मालिकों से लिया जाएगा।

29. अपार्टमेंट अधिनियम का अध्याय VI अपार्टमेंट मालिकों के एक संघ और ऐसे संघ के मामलों के पंजीकरण के लिए उपनियमों से संबंधित है। धारा 14 इस प्रकार है:-

"14. अपार्टमेंट मालिकों का संघ और उससे संबंधित उपनियम - (1) अपार्टमेंट मालिकों का एक संघ होगा अपार्टमेंट और उससे जुड़ी संपत्ति के संबंध में मामलों के प्रशासन के लिए और सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के प्रबंधन के लिए होगा:

बशर्ते कि जहां किसी क्षेत्र को भवनों के निर्माण के लिए सीमांकित किया गया है, चाहे ऐसे क्षेत्र को ब्लॉक या पॉकेट या किसी अन्य नाम से कहा जाए, ऐसे सीमांकित क्षेत्र में अपार्टमेंट मालिकों का एक एकल संघ होगा।

(2) एसोसिएशन बनाने की जिम्मेदारी प्रमोटर और अपार्टमेंट मालिकों की संयुक्त होगी। प्रमोटर एसोसिएशन को तब पंजीकृत कराएगा जब इतनी संख्या में अपार्टमेंट मालिकों को सौंप दिए गए हों जो एसोसिएशन बनाने के लिए आवश्यक हों या 60% अपार्टमेंट, जो भी अधिक हो, बिक्री, हस्तांतरण या कब्जे के माध्यम से, बशर्ते कि इमारत हो। सभी बुनियादी ढांचा सेवाओं और संबंधित स्थानीय प्राधिकारी से प्राप्त पूर्णता प्रमाण पत्र के साथ पूरा किया गया:

बशर्ते कि एक स्वतंत्र क्षेत्र या स्वतंत्र वाणिज्यिक क्षेत्र के मामले में प्रमोटर आवश्यकता पड़ने पर इसके प्रबंधन के लिए एक अलग एसोसिएशन बना सकता है।

(3) ऐसे मामले में, जहां किसी भवन के अपार्टमेंट मालिकों का एक संघ नहीं बनाया गया है, संभावित अपार्टमेंट मालिक के पक्ष में अपार्टमेंट के विलेख के निष्पादन की इच्छित तिथि पर, संभावित अपार्टमेंट मालिक के लिए यह अनिवार्य होगा। ऐसे संघ के गठन के बारे में लिखित सूचना प्राप्त होने पर 4 सप्ताह की अवधि के भीतर संघ का सदस्य बनें।

(4) जहां किसी अपार्टमेंट के हस्तांतरण की इच्छित तिथि पर अपार्टमेंट मालिकों का एक संघ मौजूद है, संभावित अपार्टमेंट मालिक के लिए अपने पक्ष में एक अपार्टमेंट के विलेख के निष्पादन से पहले ऐसे संघ का सदस्य बनना अनिवार्य होगा।

(5) उपरोक्त उप-धारा (2) के तहत अपार्टमेंट मालिकों के संघ के गठन पर, उनके सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के संबंध में अपार्टमेंट के मामलों का प्रबंधन प्रमोटर से एसोसिएशन को हस्तांतरित माना जाएगा, जो उसके बाद उन्हें बनाए रखें:

बशर्ते कि, जब तक सभी अपार्टमेंट बेचे या हस्तांतरित नहीं हो जाते, प्रमोटर सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं की रखरखाव लागत को आनुपातिक रूप से साझा करेगा:

बशर्ते कि ब्याज मुक्त रखरखाव सुरक्षा के लिए प्रमोटर द्वारा एकत्र की गई राशि सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं को सौंपने के समय एसोसिएशन को हस्तांतरित कर दी जाएगी।

(6) सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा मॉडल उपनियम तैयार कर सकती है, जिसके अनुसार उपधारा (1) में निर्दिष्ट संपत्ति का प्रबंधन अपार्टमेंट मालिकों के संघ द्वारा किया जाएगा और एसोसिएशन, अपनी पहली बैठक में, अपने उपनियम बनाएगी। इस प्रकार बनाए गए मॉडल उप-कानूनों के अनुसार, और इसके उप-कानून बनाने में, अपार्टमेंट मालिकों का संघ किसी भी बदलाव, परिवर्तन, परिवर्धन से कोई बदलाव नहीं करेगा। सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना उपरोक्त मॉडल उपनियमों का पालन करना या उनमें से चूक करना।

(7) उपधारा (6) के तहत बनाए गए मॉडल उपनियम अन्य मामलों के अलावा निम्नलिखित के लिए प्रावधान करेंगे, अर्थात्:

(ए) जिस तरीके से अपार्टमेंट मालिकों की एसोसिएशन का गठन किया जाना है;

(बी) अपार्टमेंट मालिकों के संघ के सदस्यों द्वारा प्रबंधन बोर्ड के अपार्टमेंट मालिकों में से चुनाव;

(सी) बोर्ड का गठन करने वाले अपार्टमेंट मालिकों की संख्या, बोर्ड की संरचना और बोर्ड के एक तिहाई सदस्य सालाना सेवानिवृत्त होंगे;

(डी) बोर्ड की शक्तियां और कर्तव्य;

(ई) बोर्ड के सदस्यों का मानदेय, यदि कोई हो;

(च) बोर्ड के सदस्यों को पद से हटाने की विधि;

(छ) प्रबंधक की सेवाएं लेने की बोर्ड की शक्तियां;

(ज) ऐसे प्रबंधक को बोर्ड की शक्तियों और कर्तव्यों का प्रत्यायोजन;

(i) अपार्टमेंट मालिकों के संघ की बैठकें बुलाने की विधि और ऐसे अपार्टमेंट मालिकों के संघ के सदस्यों की संख्या;

(जे) अपार्टमेंट मालिकों के बीच से अपार्टमेंट मालिकों के संघ के अध्यक्ष का चुनाव, जो बोर्ड और अपार्टमेंट मालिकों के संघ की बैठक की अध्यक्षता करेगा;

(के) अपार्टमेंट मालिकों के बीच से अपार्टमेंट मालिकों के संघ के सचिव का चुनाव, जो एक होगा पद के अनुसार बोर्ड के सदस्य और दो अलग-अलग मिनट बुक रखेंगे, एक अपार्टमेंट मालिकों के संघ के लिए और दूसरी बोर्ड के लिए, जिनमें से प्रत्येक के पृष्ठों को अपार्टमेंट मालिकों के संघ के अध्यक्ष द्वारा लगातार क्रमांकित और प्रमाणित किया जाएगा, और संबंधित मिनट बुक में, जैसा भी मामला हो, अपार्टमेंट मालिकों के संघ या बोर्ड द्वारा अपनाए गए संकल्पों को रिकॉर्ड करेगा;

(एल) अपार्टमेंट मालिकों में से एक कोषाध्यक्ष का चुनाव, जो अपार्टमेंट मालिकों के संघ के साथ-साथ बोर्ड के वित्तीय रिकॉर्ड भी रखेगा;

(एम) सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं का रखरखाव, रम्मत और प्रतिस्थापन और उनके लिए भुगतान करेगा;

(एन) अपार्टमेंट मालिकों या अपार्टमेंट के किसी अन्य रहने वाले से आम खर्चों का हिस्सा इकट्ठा करने का तरीका तय करेगा;

(ओ) सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के रखरखाव, मरम्मत और प्रतिस्थापन के लिए नियोजित व्यक्तियों का इस्तीफा और निष्कासन;

(पी) अपार्टमेंट के उपयोग और रखरखाव और सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं के उपयोग के संबंध में प्रतिबंध, जैसा कि प्रत्येक अपार्टमेंट के उपयोग में कई अपार्टमेंट मालिको

द्वारा सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं के अनुचित हस्तक्षेप को रोकने के लिए आवश्यक हो सकता है।

(क्यू) कोई भी मामला जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा संपत्ति के उचित या बेहतर प्रशासन के लिए उपनियमों में प्रदान करने की आवश्यकता हो सकती है;

(आर) ऐसे अन्य मामले जो उपनियमों में प्रदान किए जाने आवश्यक हैं, या किए जा सकते हैं।

(8) उपधारा (6) के तहत बनाए गए उपनियमों में ऐसे प्रावधान भी हो सकते हैं, जो इस अधिनियम से असंगत नहीं हैं:

(ए) बोर्ड को व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए भवन के कुछ क्षेत्र को बनाए रखने और इस प्रकार बनाए गए क्षेत्रों के पट्टे देने और भवन, सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं को बनाए रखने के लिए सामान्य खर्चों में कमी के लिए ऐसे पट्टे की आय को लागू करने में सक्षम बनाना और यदि ऐसे खर्चों को पूरा करने के बाद कोई अधिशेष बचता है, तो ऐसे अधिशेष को अपार्टमेंट मालिकों को आय के रूप में वितरित करना;

(बी) अपार्टमेंट मालिकों के संघ और बोर्ड के खातों की लेखापरीक्षा और संपत्ति के प्रशासन से संबंधित;

(सी) उस समय को निर्दिष्ट करना जिस पर और जिस तरीके से अपार्टमेंट मालिकों के संघ की वार्षिक आम बैठकें और विशेष आम बैठकें आयोजित की जाएंगी और आयोजित की जाएंगी;

(डी) उस समय और तरीके को निर्दिष्ट करना जिसमें अपार्टमेंट मालिकों के संघ की गतिविधियों से संबंधित वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी;

(ई) उस तरीके को निर्दिष्ट करना जिसमें अपार्टमेंट मालिकों के संघ द्वारा प्राप्त आय और किए गए व्यय से निपटा जाएगा या जैसा भी मामला हो, उसका हिसाब लगाया जाएगा।

30. अपार्टमेंट अधिनियम का अध्याय VIII विविध मामलों से संबंधित है और धारा 24 इस प्रकार है: -

"24. अधिनियम अपार्टमेंट मालिकों, किरायेदारों आदि पर बाध्यकारी होगा - (1) सभी अपार्टमेंट मालिक, मालिकों के किरायेदार, मालिकों और किरायेदारों के कर्मचारी, या कोई अन्य व्यक्ति, जो किसी भी तरीके से, संपत्ति या उसके किसी हिस्से का उपयोग कर सकता है, जिस पर यह अधिनियम लागू होता है, अधिनियम और उपनियम और उसके तहत बनाए गए नियम प्रावधान के अधीन होगा।:

बशर्ते कि, इस उपधारा में कुछ भी शामिल नहीं होगा इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख पर या उससे पहले किसी भी प्रमोटर से सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में किसी भी

आवंटी या अन्य व्यक्ति द्वारा अर्जित अधिकार, शीर्षक या हित पर प्रभाव पड़ेगा।

(2) इस अधिनियम और उपनियमों के प्रावधानों के अनुसार अपार्टमेंट मालिकों के संघ द्वारा कानूनी रूप से किए गए सभी समझौते, निर्णय और निर्धारण सभी अपार्टमेंट मालिकों के लिए बाध्यकारी माने जाएंगे।

31. अपार्टमेंट अधिनियम के कुशल प्रशासन के लिए राज्य सरकार का नियंत्रण इसकी धारा 27 में प्रदान किया गया है। अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 31 इस प्रकार है:-

"31.इस अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव.- (1) इस अधिनियम के प्रावधान प्रभावी होंगे, भले ही उस समय लागू किसी भी अन्य कानून में कुछ भी असंगत हो।

(2) अन्यथा को छोड़कर, उप-धारा (1) में स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है, इस अधिनियम के प्रावधान, उस समय लागू किसी भी अन्य कानून के अतिरिक्त होंगे, न कि उसके निरादर में।"

32. इस प्रकार, अपार्टमेंट अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपार्टमेंट मालिकों का एक संघ गठित किया जाना आवश्यक है और यह अपार्टमेंट अधिनियम के प्रावधानों के अधीन रहेगा। हालाँकि, अपार्टमेंट मालिकों के संघ का पंजीकरण सोसायटी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होता है जैसा कि इस अदालत की दो खंडपीठ के फैसलों में दिया गया है: - **(i) एमएस डिज़ाइनार्च इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड और अन्य बनाम उपाध्यक्ष, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण और अन्य, और, (ii) प्रबंधन बोर्ड, विंडसर पार्क रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन बनाम यूपी राज्य और अन्य।**

33. जैसा कि धारा 3 के खंड (i) में मौजूद 'सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं' की परिभाषा से स्पष्ट है, यह परिभाषा 40 फीट सड़क को कवर करने के लिए पर्याप्त व्यापक है। अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (2) सभी समझौतों, निर्णयों और निर्धारणों का प्रावधान करती है विधिपूर्वक बनाया गया अपार्टमेंट मालिकों के संघ द्वारा अपार्टमेंट अधिनियम और उपनियमों के प्रावधानों के अनुसार सभी अपार्टमेंट मालिकों पर बाध्यकारी माना जाएगा।

34. अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 5 में निर्दिष्ट अपार्टमेंट मालिकों के विभिन्न अधिकारों में सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में अविभाजित ब्याज के ऐसे प्रतिशत का अधिकार शामिल है जो अपार्टमेंट के विलेख में निर्दिष्ट किया जा सकता है। सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक के अविभाजित हित का प्रतिशत होगा स्थायी चरित्र, और सभी अपार्टमेंट मालिकों की लिखित सहमति और सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन के बिना बदला नहीं जाएगा। सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में अविभाजित ब्याज का प्रतिशत उस अपार्टमेंट से अलग नहीं किया जाएगा जिससे यह जुड़ा हुआ है और इसे अपार्टमेंट के साथ संप्रेषित या भारग्रस्त माना जाएगा, भले

ही इस तरह के ब्याज का स्पष्ट रूप से परिवहन या अन्य साधन में उल्लेख नहीं किया गया हो। सामान्य क्षेत्र और सुविधाएं स्थानांतरित नहीं की जाएंगी और अविभाजित रहेंगी और कोई भी अपार्टमेंट मालिक या कोई अन्य व्यक्ति उसके किसी भी हिस्से के विभाजन या विभाजन के लिए कोई कार्रवाई नहीं करेगा, और इसके विपरीत कोई भी अनुबंध शून्य होगा। प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं का उपयोग, अन्य अपार्टमेंट मालिकों के वैध अधिकारों में बाधा या अतिक्रमण किए बिना उन उद्देश्यों के अनुसार कर सकता है जिनके लिए उनका इरादा है ।

35. वर्तमान मामले में, वादी-याचिकाकर्ता अनुदान के माध्यम से 40 फीट सड़क के अनुमेय उपयोग के अधिकार का दावा कर रहे हैं। इसलिए, इस तरह के निर्णय को सभी अपार्टमेंट मालिकों के लिए बाध्यकारी बनाने के लिए, यह प्रदर्शित करना होगा कि यह निर्णय अपार्टमेंट मालिकों के संघ द्वारा अपार्टमेंट अधिनियम और उपनियमों के अनुसार नियमित रूप से बुलाई गई बैठक में और उचित विचार-विमर्श के बाद लिया गया था। संकल्प पूरा हो चुका है। अस्थायी निषेधाज्ञा पर दायर अपनी आपत्तियों में प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा किए गए मजबूत खंडन को देखते हुए यह महत्वपूर्ण होगा। और, विशेष रूप से, सामान्य क्षेत्रों और सुविधाओं में प्रत्येक अपार्टमेंट मालिक के अविभाजित हित के आलोक में, जिनका एक स्थायी चरित्र होना अनिवार्य है, और जिन्हें सभी अपार्टमेंट मालिकों की लिखित सहमति और सक्षम प्राधिकारी अनुमोदन के बिना नहीं बदला जाएगा।

36. इस स्तर पर, भारतीय सुख सुविधा अधिनियम, 1882 की धारा 2 के प्रावधानों को उद्धृत करना प्रासंगिक है26, जो इस प्रकार हैं:-

"2. बचत.- इसमें शामिल किसी भी बात को इसके अलावा किसी भी कानून को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा स्पष्ट रूप से निरस्त माना जायेगा; या इसका हनन करना माना जायेगा–

(ए) नदियों के पानी के संग्रहण, प्रतिधारण और वितरण को विनियमित करने के सरकार के किसी भी अधिकार को और प्राकृतिक चैनलों में बहने वाली धाराएँ, और प्राकृतिक झीलों और तालाबों, या बहते, एकत्रित पानी, सिंचाई के लिए सार्वजनिक व्यय पर निर्मित किसी भी चैनल या अन्य कार्य को बनाए रखना या वितरित करना;

(बी) अचल संपत्ति में या उस पर कोई भी प्रथागत या अन्य अधिकार (लाइसेंस नहीं) जो सरकार, जनता या किसी अन्य व्यक्ति के पास हो सकता है, चाहे वह किसी अचल संपत्ति या अन्य की परवाह किए बिना हो; या

(सी) कोई अधिकार अर्जित किया गया है, या उत्पन्न हुआ हैइस अधिनियम के लागू होने से पहले बनाए गए संबंध से एनजी।"

(प्रभाव वर्धित)

37. सुख सुविधा अधिनियम की उपरोक्त धारा 2 की प्रारंभिक पंक्ति को देखते हुए, इसके प्रावधान लागू किसी भी कानून को प्रभावित नहीं करेंगे। इसलिए, अपार्टमेंट अधिनियम सुख सुविधा अधिनियम से प्रभावित नहीं होगा। इस प्रकार, सुख सुविधा अधिनियम के प्रावधानों का अपार्टमेंट अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों और उपनियमों के तहत अपार्टमेंट मालिकों के वैधानिक अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 31 के प्रावधान को देखते हुए, जो इसके अधिभावी प्रभाव का प्रावधान करता है, अपार्टमेंट अधिनियम के साथ सुख सुविधा अधिनियम में कोई भी विसंगति, अपार्टमेंट अधिनियम के प्रावधानों द्वारा अधिरोहित मानी जाएगी। अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (2) के प्रावधानों से वादी-याचिकाकर्ताओं को सुख सुविधा अधिनियम के तहत किए गए किसी भी दावे के संबंध में लाभ नहीं होगा, जो अपार्टमेंट अधिनियम के साथ असंगत है।

38. विचारण न्यायालय का ऊपर उल्लिखित निर्णय अवैधताओं और मनमानेपन से भरा है। उदाहरणों में यह तथ्य शामिल है कि निषेधाज्ञा देने के उद्देश्य से अमीन आयुक्त की रिपोर्ट के एक हिस्से पर भरोसा किया गया है और अन्य हिस्सों को नजरअंदाज कर दिया गया है। इसके अलावा, विचारण न्यायालय ने कथित पूर्व अध्यक्ष, सुधीर वर्मा द्वारा दायर शपथपत्र का उल्लेख किया है, और कहा है कि यदि पूर्व अध्यक्ष द्वारा गलत एनओसी जारी की गई थी, तो उनके खिलाफ क्या कार्रवाई की गई, यह प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा निर्दिष्ट नहीं किया गया है। विचारण न्यायालय स्पष्ट रूप से आवेदन में स्थापित वादी-याचिकाकर्ताओं के स्वयं के मामले पर विचार करने के बजाय, वादी-याचिकाकर्ताओं को अस्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के मामले में कमजोरियों की तलाश कर रहा था। अस्थायी निषेधाज्ञा. ऐसा लगता है कि विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि आर्क सिटी की संपत्ति अलग स्वामित्व वाले प्लॉट नंबर 291 से अलग है।

39. इसके अलावा, विचारण न्यायालय ने वादी-याचिकाकर्ताओं द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स के कार्यालय से प्राप्त दस्तावेजों का हवाला दिया है, जो कथित तौर पर दिखाते हैं कि कल्याण संघ का बोर्ड पंजीकृत नहीं है और इसलिए, वर्तमान बोर्ड को वादी-याचिकाकर्ताओं के पक्ष में जारी एनओसी पर सवाल उठाने का कोई अधिकार नहीं है। मेरी राय में, इस तरह का अवलोकन पूरी तरह से मनमाना और गैरकानूनी है, क्योंकि इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने पर, पहला सवाल यह उठना चाहिए था कि क्या आवश्यक पक्षों के गैर-शामिल होने पर मुकदमा हार जाएगा।

40. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि, जाहिरा तौर पर, वादी याचिकाकर्ताओं ने तीसरे पक्ष को बेचने के लिए प्लॉट संख्या 291 पर प्लॉट बनाने के लिए विकास प्राधिकरण से कोई स्वीकृत ले-आउट योजना प्राप्त नहीं की है। लेकिन, वे कथित एनओसी के आधार पर वेलफेयर एसोसिएशन में तीसरे पक्ष की सदस्यता सहित आर्क सोसाइटी की सुविधाओं और सुविधाओं तक पहुंच की मांग कर रहे हैं, जिसका उद्देश्य प्लॉट नं.291 की प्लॉटिंग और बिक्री में सहायता के लिए वादी-याचिकाकर्ताओं को सभी सुविधाएं और सुविधाएं प्रदान करना है। इस तरह का आचरण वादी-याचिकाकर्ता को इक्विटी क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस अदालत के किसी भी अनुग्रह का अधिकार नहीं दे सकता है।

41. अपार्टमेंट अधिनियम और सुखभोग अधिनियम पर उपरोक्त चर्चा, और इन अधिनियमों की परस्पर क्रिया वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक हो गई है।

42. अपीलीय अदालत द्वारा दिनांक 28.02.2023 को पारित किया गया आदेश ठोस कारणों पर आधारित है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत किसी हस्तक्षेप का हकदार नहीं है। प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार आर्क सिटी की सीमा दीवार को बनाए रखने के हकदार हैं।

43. ऊपर उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, अपीलीय अदालत के दिनांक 28.02.2023 के आक्षेपित आदेश में इस याचिका में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

44. यह याचिका तदनुसार ख़ारिज की जाती है

(2023) 8 ILRA 548

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित

रिट - सी संख्या 26767 वर्ष 2010

अन्य संबंधित मामलों के साथ

कमल शर्मा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री के.एम. मिश्रा, श्री पी.के. चौरसिया, श्री अनिल कुमार शुक्ला, श्री प्रेम चंद्र सरोज, सुश्री सरिता झिंगन शुक्ला, श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा, श्री पंकज दुबे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री प्रांजल मेहरोत्रा, श्री रामेंद्र प्रताप सिंह, श्री सुरेश सिंह, श्री कमलजीत सिंह, श्री आदित्य भूषण सिंघल, श्री शशि प्रकाश राय, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) सिविल कानून - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 4, 6, 5-ए और 17

(1), भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 - धारा 24 (1) (ए), भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 13 (3) (ए), 14, 19, 21, 31, 31-ए, 31-सी, 39 (बी) और (सी), 300-ए, अनुच्छेद 226 - न्यायिक समीक्षा की शक्ति - वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन - व्यक्तिपरक विचार - ऐसे मामले जहां आदेश व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आअभिनिर्धारित है, अप्रासंगिक या अस्तित्वहीन सामग्री पर विचार घातक हो जाता है और आदेश को ही दूषित कर देता है। (पैरा - 148,149)

भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत नौ गांवों की भूमि का अधिग्रहण - राज्य सरकार द्वारा शुरू किया गया - अधिनियम की धारा 4 और 6 के साथ पठित धारा 17(1) और (4) के तहत अधिसूचनाएं प्रकाशित की गईं - अधिग्रहण अधिसूचनाओं को रद्द किया गया - अधिग्रहण का उद्देश्य - 'यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से नियोजित विकास' - चुनौती का आधार - अधिनियम की धारा 5-ए के तहत जांच से छूट देने के लिए तात्कालिकता खंड का आह्वान - पट्टेधारकों/भूमि धारकों को सुनवाई का अवसर देने से इनकार - जिसके परिणामस्वरूप पट्टेधारकों/भूमि धारकों के मूल्यवान अधिकारों का हनन हुआ - अधिग्रहण की प्रक्रिया मनमाना और अवैध है। **(पैरा -2,3,4)**

अभिनिर्धारित:-अधिग्रहण प्रक्रिया में कोई कमी नहीं है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 5-ए के अंतर्गत जाँच से छूट के लिए धारा 17(4) के अंतर्गत तात्कालिकता का आह्वान, संबंधित अधिग्रहणों के लिए घातक नहीं है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 17(1) और (4) के साथ पठित, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के अंतर्गत अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देने वाली याचिका को ठुकरा दिया गया। **(पैरा-229)**

याचिकाएं खारिज कर दी गईं।(ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. राधेश्याम **(**मृत**)** विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**,** 2011(5) एससीसी 553

2**.** देव शरण एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (4) एससीसी 769

3. एच.पी.सी.एल. बनाम डेरियस शाहपुर चेन्नई एवं अन्य, 2005 (7) एससीसी 627

4. देवेंद्र कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 9 एससीसी 164

5. देवेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2011 (9) एससीसी 551

6. दर्शन लाल नागपाल एवं अन्य बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार एवं अन्य**,** 2012 (2) एससीसी 327

7. नारायण गोविंद गवते बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, 1977 (1) एससीसी 133

8. आनंद सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 (11) एससीसी 242

9. हामिद अली खान (मृत) विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से बनाम सेंट ऑफ यूपी एंड अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1115

10. राम सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2012 (3) एडीजे 588

11. श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2017 (पूरक) एडीजे 558

12. ग्रेटर नोएडा बनाम देवेंद्र कुमार एवं अन्य, 2011(6) एडीजे 480

13. राजीव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (9) एडीजे 621

14. मुंशी सिंह बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, एआईआर 1973 एससी 1150

15. नंद किशोर गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 31314 वर्ष 2009

16. बलबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 48978 वर्ष 2008

17. नंद किशोर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2010 (10) एससीसी 282

18. *नरेंद्र रोड लाइन्स लिमिटेड बनाम* उत्तर प्रदेश राज्य *एवं अन्य*, 2010 (7) *एडीजे* 329

19. केदारनाथ यादव मामला, 2017 (11) SCC 601

20. धर्मेंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, जनहित याचिका संख्या 40484 वर्ष 201

21. एम.डी.जे.एम.आई.आर.सी. बनाम उपराज्यपाल, दिल्ली एवं अन्य, 2017 (13) एससीसी 458

22. श्रीमती मंजू लता अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2007 (9) एडीजे 447

23. श्रीमती. वर्षा लखमानी बनाम हितेश वाधवा, 2008 एससीसी ऑनलाइन इला 249

24. आई.डी.ए. बनाम मनोहरलाल एवं अन्य, एआईआर 2020 एससी 1496

25. कर्नाटक राज्य एवं अन्य आदि बनाम रंगनाथ रेड्डी एवं अन्य आदि, एआईआर 1978 एससी 215

26. एस.सी.एम.सी. बनाम मेसर्स बी.सी.सी.एल. एवं अन्य, (1983) 1 एससीसी 147

27. तमिलनाडु राज्य एवं अन्य बनाम एल. अबू कावुर बाई एवं अन्य, (1984) 1 एससीसी 515

28. महाराष्ट्र राज्य और अन्य. बनाम बसंतीबाई मोहनलाल खेतान और अन्य, (1986) 2 एससीसी 516

29. आनंद सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2010) 11 एससीसी 242

30. दिल्ली प्रशासन बनाम गुरदीप सिंह उबान एवं अन्य, (2000) 7 एससीसी 296

31. नंदेश्वर प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1964 एससी 1217

32. मुंशी सिंह एवं अन्य बनाम यू.ओ.आई., (1973) 2 एससीसी 337

33. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम मुकेश हंस, आदि, 2004 (8) एससीसी 14

34. एच.पी.सी.एल. बनाम डेरियस शापुर चेनाई एवं अन्य, एआईआर 2005 एससी 3520

35. पी.टी. मुनिचिकन्ना रेड्डी बनाम रेवम्मा, (2007) 6 एससीसी 59

36. हरियाणा राज्य बनाम मुकेश कुमार एवं अन्य, (2011) 10 एससीसी 404

37. बाबू राम एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2009) 10 एससीसी 115

38. ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1998) 6 एससीसी 1

39. पंजाब राज्य और अन्य. बनाम गुरदयाल सिंह और अन्य।, (1980) 2 एससीसी 471

40. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम प्रवीण गुप्ता एवं अन्य, एआईआर 1997 एससी 170

41. राजस्थान हाउसिंग बोर्ड एवं अन्य बनाम श्री किशन एवं अन्य, (1993) 2 एससीसी 84

42. ए.पी. सरीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1997) 9 एससीसी 359

43. श्रीमती मंजू लता अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2007 (9) एडीजे 447 (डीबी)

44. सुधीर चंद्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 246

45. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम कृष्ण लाल अरनेजा और अन्य, एआईआर 2004 एससी 3582

46. प्रथम भूमि अधिग्रहण कलेक्टर एवं अन्य बनाम निरोधि प्रकाश गंगोली एवं अन्य, एआईआर 2002 एससी 1314

47. दीपक पाहवा बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल एवं अन्य, एआईआर 1984 एससी 1721

48. राधेश्याम (मृत) एलआरएस एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2011) 5 एससीसी 553

49. टीका राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2009) 10 एससीसी 689

50. एम. डी. जे. एम. आई. आर. सी. बनाम उपराज्यपाल, दिल्ली एवं अन्य, (2017) 13 एससीसी 458

51. श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 30747 वर्ष 2010

52. एस.आई.सी.सी.एल. एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2017) 11 एससीसी 339

53. एच.एस.आई.आई.डी.सी.एल. एवं अन्य बनाम श्री दीपक अग्रवाल एवं अन्य, [एसएलपी(सी) संख्या 16631-16632/2018]

54. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम मोहिउद्दीन मसूद एवं अन्य , (2020) 14 एससीसी 760

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल द्वारा प्रदत)

1- श्री पी के चौरसिया, श्री अनिल कुमार शुक्ला, श्री प्रेम चंद्र सरोज, सुश्री सरिता झिंगन शुक्ला, श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा, श्री पंकज दुबे को सुना। इस बंच में याचिकाकर्ताओं की ओर से कोई अन्य अधिवक्ता बहस करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ है। यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण की ओर से श्री मनीष गोयल, श्री कमलजीत सिंह, श्री सुरेश सिंह, श्री आदित्य भूषण सिंघल, श्री शशि प्रकाश राय द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियाँ दी हैं। श्री अजीत कुमार सिंह, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अमित वर्मा, श्री अपूर्वा हजेला और श्री डीके मिश्रा, राज्य प्रतिपक्षियों के लिए स्थायी अधिवक्ता ने यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल के तर्कों को अपनाया है।

2. रिट याचिकाओं का वर्तमान बंच भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (इसके बाद अधिनियम, 1894 के रूप में संदर्भित) के तहत नौ गांवों की भूमि के अधिग्रहण के लिए राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई अधिग्रहण कार्यवाही से उत्पन्न हो रहा है, जो अधिनियम 1894 की धारा-17(1) और (4) के साथ धारा-4 और 6 के तहत प्रकाशित अधिग्रहण अधिसूचनाओं के माध्यम से प्रकाशित है। सारणीकरण रूप में नौ गांवों की भूमि के अधिग्रहण की स्थिति का विहंगम दृश्य निम्नानुसार है: -

क्र. सं.	गाँव	अधिसूचना की तिथि		कुल कार्य-क्षेत्र अधिग्रहण (के अनुसार यू/एस6 पंचाट) (हेक्टे)	कार्य-क्षेत्र नीचे लिटिगेटियो n (हेक्टे)	अवार्ड की तिथि	
		यू/एस4				धारा-11(1) के तहत	धारा-11(2) के अंतर्गत
1	उस्मानपुर	04.11.2009	18.3.2010	149.516	31.3521	31.12.201	23.02.2012

						3	
2	धनोरी	16.11.2010	22.3.2011	414.2312	59.8231	31.12.2013	09.05.2012 13.12.2013
3	कादरपुर	02.12.2010	22.3.2011	113.8074	6.0284	30.03.2014	11.04.2012 30.03.2014
4	रुस्तमपुर	26.02.2009	26.2.2010	336.1968	53.7582	31.12.2013	20.03.2012 13.12.2013
5	डूंगरपुर रीलका	02.12.2010	24.3.2011	172.6197	38.6439	31.12.2013	14.03.2012 31.12.2013
6	रौनिजा	02.11.2010	07.1.2011	236.686	56.2388	31.12.2013	09.05.2012 21.12.2013
7	रामपुर बांगर	26.02.2009	01.2.2010	19.9990	1.1016	15.06.2013	09.02.2012 05.06.2013
		19.04.2010	28.07.2010	100.8183	20.6686	31.12.2013	20.12.2013 25.07.2013 13.03.2012
8	पचोकरा	26.02.2009	19.2.2010	41.6525	16.8728	29.06.2013	22.02.2012 29.06.2013
9	अचेजा बुजुर्ग	19.04.2010	28.7.2010	197.2842	46.9867	20.12.2013	30.06.2013 20.12.201

I. चुनौती:-

3. रिट याचिकाएं अधिनियम '1894 की धारा-17(1) और (4) सपठित धारा-4 और 6 के तहत जारी अधिग्रहण अधिसूचनाओं को रद्द करने की मुख्य राहत के साथ दायर की गई हैं और चुनौती का मुख्य आधार अधिनियम '1894 की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए तात्कालिकता खंड का आह्वान है।

4. रिट याचिकाओं में उठाए गए विभिन्न आधारों के बीच, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा हमारे सामने केवल यह मुद्दा उठाया गया था कि राज्य सरकार के पास तात्कालिकता खंड को लागू करने का कोई औचित्य नहीं था और कार्यकाल धारकों को सुनवाई के अवसर से वंचित करने के परिणामस्वरूप कार्यकाल धारकों के मूल्यवान अधिकारों से वंचित हो गया था, जो अधिग्रहण की पूरी कवायद को मनमाना और अवैध बनाता है। चुनौती के तहत अधिसूचनाओं में कहा गया अधिग्रहण का उद्देश्य 'यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से नियोजित विकास' था, जिसके लिए राधेश्याम तृतीय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर तत्काल खंड को लागू नहीं किया जा सकता है।

5. इस प्रकार, प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका के तथ्यों और परिस्थितियों में तात्कालिकता खंड का आह्वान एक अवैध अभ्यास था। इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास में, हमने ग्राम-वार सुनवाई की है और प्रत्येक गांव के अधिग्रहण के तथ्यों पर पक्षकारों के लिए परामर्शों को सुना है और प्रत्येक अधिग्रहण अधिसूचना के लिए राज्य द्वारा प्रस्तुत मूल रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया है, ताकि यह जांच की जा सके कि क्या राज्य सरकार की ओर से शक्ति का प्रयोग ऐसा था जिसके लिए न्यायिक शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत समीक्षा।

अदालत

6. शुरुआत में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अधिग्रहित भूमि से याचिकाकर्ताओं की बेदखली पर इस न्यायालय द्वारा प्रतिशपथ पत्र के लिए कॉल करते समय प्रवेश के समय रोक लगा दी गई थी। इस बंच में रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न अंतरिम आदेशों के तहत, पार्टियों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था। ऐसा ही एक आदेश दिनांक 12.05.2010 रिट सी संख्या-26767 वर्ष 2010 में नीचे नोट किया गया है:

"प्रतिपक्षी संख्या-1, 2 और 3 की ओर से नोटिस स्थायी अधिवक्ता द्वारा और प्रतिपक्षी संख्या-4 की ओर से प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री आरपी सिंह द्वारा स्वीकार किए गए हैं।
दो सप्ताह की अवधि के भीतर जवाबी हलफनामा दायर किया जाए।
इसके बाद सूची।
इस बीच पक्षगण यथास्थिति बनाए रखेंगी।

7. रिट सी संख्या-56629 वर्ष 2011 में दिनांक 28.09.2011 के अंतरिम आदेश को भी यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -
"प्रवेश लंबित नोटिस जारी करें।

प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 की ओर से नोटिस स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है। प्रतिपक्षी संख्या-3 की ओर से नोटिस को उक्त प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री सुरेश सिंह ने स्वीकार कर लिया है। इसलिए, उत्तरदाताओं को कोई नोटिस भेजने की आवश्यकता नहीं है।

उत्तरदाताओं की ओर से जवाबी हलफनामा चार सप्ताह के भीतर दायर किया जा सकता है। उसके बाद तीन सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर किया जा सकता है।
उपर्युक्त अवधि की समाप्ति के बाद उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करें।
अंतरिम राहत प्रदान करने के प्रश्न पर सुनवाई हुई।
मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए, हम निर्देश देते हैं कि लिस्टिंग की अगली तारीख तक, पक्षगण प्रकृति और कब्जे के संबंध में यथास्थिति बनाए रखेंगे।
II. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं की दलीलें:-

8. ग्राम पचोकरा की अधिग्रहण अधिसूचना से संबंधित रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री पी. के. चौरसिया और श्री पंकज दुबे ने रिट याचिकाकर्ताओं की ओर से दलीलें दी हैं।

9. याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया था कि राज्य सरकार के लिए अधिनियम की धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि अधिनियम '1894 की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए, ग्राम पचोकरा के लिए अधिग्रहण अधिसूचनाएं दिनांक 26.02.2009 और 19.02.2010 को अधिनियम 1894 की धारा-4 और 6 के तहत थीं। उपर्युक्त तिथियां स्वयं दर्शाती हैं कि अधिनियम की धारा-4 के अंतर्गत प्रस्ताव प्रकाशित होने के बाद घोषणा अधिसूचना जारी करने में लगभग एक वर्ष का समय लिया गया

था। अधिसूचना से पूर्व और पश्चात दोनों प्रकार का विलंब हुआ था जिसे इस बात की जांच करने के लिए ध्यान में रखा जाना है कि क्या काश्तकार धारकों को उनकी भूमि के अधिग्रहण के विरुद्ध आपत्ति दर्ज करने के उनके अधिकार से वंचित करने का कोई औचित्य था। अधिग्रहण पर आपत्ति दर्ज करने के लिए अधिनियम 1894 के अंतर्गत धारा-4 अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से केवल 30 दिन का समय प्रदान किया गया है और जब राज्य सरकार ने स्वयं धारा-6 के अंतर्गत घोषणा अधिसूचना को अधिसूचित करने के लिए एक वर्ष का समय लिया था, तो तात्कालिकता के अनुरोध पर आपत्ति दर्ज करने के लिए केवल 30 दिनों के समय की छूट का कोई औचित्य नहीं हो सकता है। यह तथ्य किसी भी तात्कालिकता के अस्तित्व पर अविश्वास करने के लिए पर्याप्त है।

10. इसके अलावा, राज्य सरकार के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जो भूमि धारकों को आपत्तियां दर्ज करने के अधिकारों से वंचित करने के लिए अधिनियम की धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए किसी भी अप्रत्याशित तात्कालिकता के अस्तित्व को दर्शाती हो। ग्राम पचोकरा के अधिग्रहण से केवल 198 जोत धारक प्रभावित हुए थे जिसके लिए धारा-4 और 6 के अंतर्गत दिनांक 26-02-2009 और 09-02-2010 को अधिग्रहण अधिसूचनाएं प्रकाशित की गई थीं; क्रमानुसार। इसके अलावा, धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचना में बताए गए अधिग्रहण का उद्देश्य यह था कि गौतम बुद्ध नगर जिले में यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण {संक्षेप में वाई.ई.आई.डी.ए. (यीडा)} के तहत नियोजित विकास के लिए भूमि की आवश्यकता थी। धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता खंड केवल उन घटनाओं में लागू किया जा सकता है जो धारा-17 की उप-धारा-(2) में उल्लिखित हैं, अर्थात यदि सिंचाई, जल आपूर्ति, जल निकासी, सड़क संचार या बिजली से संबंधित किसी भी संरचना या प्रणाली को बनाए रखने के उद्देश्य से भूमि का तत्काल कब्जा आवश्यक है, या संदर्भ के लिए, या किसी अन्य अप्रत्याशित आपात स्थिति जैसे कि किसी नौगम्य नदी के चैनल में अचानक परिवर्तन। धारा-17 की उपधारा-(1) के अधीन तात्कालिकता खंड का उपयोग करते हुए सूचना के प्रकाशन के लिए राज्य सरकार की पूर्व राय अपेक्षित है। तात्कालिकता खंड के आह्वान के साथ, हालांकि कोई निर्णय नहीं दिया गया है, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवश्यक भूमि का कब्जा धारा-9 के तहत नोटिस के प्रकाशन से 15 दिनों के बाद लिया जा सकता है, और इस तरह के कब्जे पर लिया जा रहा है, भूमि पूरी तरह से राज्य सरकार में निहित है जो सभी ऋणभारों से मुक्त है। तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा अधिग्रहण का परिणाम बहुत कठोर होने के कारण, इस तरह की शक्ति का प्रयोग करने के लिए बहुत सावधानी और सावधानी की आवश्यकता थी।

11. इस मामले में, ग्राम पचोकरा की भूमि का उपयोग वाणिज्यिक और आवासीय उद्देश्यों के लिए किया जाना था और परियोजना की यमुना एक्सप्रेसवे के निर्माण की परियोजना के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। ऐसे विकास कार्य के लिए, जो स्पष्ट रूप से योजना और निष्पादन

में पर्याप्त समय लेगा, तात्कालिकता के आह्वान के लिए कोई औचित्य नहीं हो सकता है, हालांकि जिस उद्देश्य के लिए अधिग्रहण किया गया था, उसे अभी भी धारा-4 के अर्थ के भीतर सार्वजनिक उद्देश्य के रूप में माना जा सकता है।

क. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए निर्णय:-

(आई) राधे श्याम (उपरोक्त)

12. राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भारी भरोसा किया गया है कि यह तर्क देने के लिए कि यह माना गया था कि धारा-17(4) सपठित धारा-17(1) धारा-5-ए के जनादेश का अनुपालन किए बिना निजी संपत्ति का अधिग्रहण करने के लिए राज्य को असाधारण शक्ति प्रदान करती है। इन प्रावधानों को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब अधिग्रहण का उद्देश्य कुछ हफ्तों या महीनों की देरी को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता है। इसलिए, धारा-5-क के आवेदन को बाहर रखने से पहले, संबंधित प्राधिकारी को इस बात से पूरी तरह संतुष्ट होना चाहिए कि धारा-5-क के अंतर्गत जांच करने में लगने वाला कुछ सप्ताह या महीनों का संभावित समय पूरी संभावना है कि वह सार्वजनिक प्रयोजन निष्फल हो जाएगा जिसके लिए भूमि का अधिग्रहण किए जाने का प्रस्ताव है। उसमें यह व्यवस्था दी गई थी कि आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत प्रयोजनों के लिए भूमि के अधिग्रहण को धारा-4 के अर्थ के भीतर सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अधिग्रहण के रूप में माना जा सकता है, लेकिन यह अपने आप में धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत सरकार द्वारा शक्ति के प्रयोग को न्यायोचित नहीं ठहराता है। शीर्ष न्यायालय ने इस तथ्य पर न्यायिक ध्यान दिया था कि आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत क्षेत्रों के विकास से संबंधित योजनाओं की योजना, निष्पादन और कार्यान्वयन में आमतौर पर कुछ साल लगते हैं। यह माना गया कि निजी संपत्ति, इसलिए, धारा-17(1) में निहित तात्कालिकता प्रावधान को लागू करके ऐसे उद्देश्यों के लिए अधिग्रहित नहीं की जा सकती है। किसी भी मामले में, धारा-5-ए (1) और (2) में सन्निहित ऑडी अल्टरम पार्टेम के नियम का बहिष्करण ऐसे मामलों में बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है।

13. सर्वोच्च न्यायालय ने धारा-17(1) और 17(4) सपठित धारा-4 के तहत प्रस्ताव जारी करने के लिए राज्य सरकार द्वारा एक वर्ष से अधिक समय की पूर्व-अधिसूचना देरी को ध्यान में रखते हुए कहा है कि इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं था कि चार से पांच सप्ताह के भीतर धारा-5-ए की उप-धारा-(1) के तहत आपत्तियां दर्ज की जा सकती हैं और कलेक्टर द्वारा बनाने में बिताया गया समय धारा-5-ए की उप-धारा-(2) के तहत जांच ने अधिग्रहण के उद्देश्य को पराजित कर दिया होगा। प्रतिपक्षी द्वारा उठाई गई आशंका कि भूमि के अधिग्रहण में देरी से भारी अतिक्रमण होगा, पूरी तरह से निराधार था, यह देखते हुए कि यह सोचना सामान्य विवेक के किसी भी व्यक्ति की समझ से परे था कि भूमि मालिक जिले के नियोजित औद्योगिक विकास की

परियोजना को विफल करने के उद्देश्य से अपनी ही भूमि का अतिक्रमण करेंगे।

14. अधिसूचना में लगभग एक वर्ष की देरी के बाद, अधिसूचना धारा-4 और 6 के जारी होने के बीच लगने वाले समय को यह देखने के लिए नोट किया गया था कि उक्त विलंब यह प्रदर्शित करेगा कि राज्य सरकार धारा-5-ए और धारा-6 दोनों के तहत कम अवधि में अभ्यास पूरा कर सकती है।

15. रिकॉर्ड पर सामग्री से नोट किए गए उपरोक्त तथ्यों के साथ, यह उसमें अवधारित किया गया था कि एकमात्र संभावित निष्कर्ष जो निकाला जा सकता था वह यह था कि कोई वास्तविक और वास्तविक तात्कालिकता नहीं थी जो धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता प्रावधान को लागू करने का औचित्य साबित कर सके और, किसी भी मामले में, धारा-5-ए के आवेदन को बाहर करने के लिए कोई वारंट नहीं था।

(ii) देव शरण और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

16. देव शरण और अन्य (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया था कि इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या उस मामले के तथ्यों में, धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करना उचित था, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिसूचना के बाद की देरी, धारा-4 (1) और 17 अधिसूचनाओं के प्रकाशन और धारा-6 की घोषणा के बीच लगभग एक वर्ष का समय व्यतीत होने पर ध्यान दिया था, (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि अधिग्रहण की प्रक्रिया में सरकारी तंत्र ने जिस धीमी गति से कार्य किया था, उससे स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि भूमि अधिग्रहण की कोई तात्कालिकता नहीं थी ताकि अधिनियम की धारा-17(4) को लागू किया जा सके। इसमें यह माना गया था कि अधिनियम की धारा-5- ए के तहत कार्यकाल धारक के मूल्यवान अधिकारों को अधिग्रहण अधिसूचना को रद्द करते समय कार्यकारी प्राधिकरण के 'आईपीएसआई दीक्षित' पर चपटा और भाप नहीं दिया जा सकता है। हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम डेरियस शाहपुर चेन्नई और अन्य 3 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उसमें [देव शरण (उपरोक्त)] में नोट किया गया था कि धारा-5 ए के तहत प्रदान किए गए अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 300-ए के प्रावधानों पर विचार करते हुए पढ़ा जाना चाहिए और इस तरह के अधिकार को मौलिक अधिकार के समान माना जाना चाहिए। यह माना गया कि कानूनी स्थिति होने के नाते, किसी व्यक्ति को उक्त अधिकार से वंचित करने के लिए जो प्रक्रियाएं निर्धारित की गई हैं, उनका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

(iii) देवेन्द्र कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,

17. अधिसूचना में देरी के बाद देवेंद्र कुमार त्यागी (उपरोक्त) में, अधिनियम, 1894 की धारा-4 के तहत प्रस्ताव जारी करने के बाद, धारा-6 के तहत घोषणा में लगभग दो साल का

समय गंभीरता से लिया गया था ताकि यह माना जा सके कि राज्य सरकार अधिनियम '1894 की धारा-17(4) के तत्काल प्रावधान को लागू करने के लिए उचित नहीं थी। यह पाया गया कि राज्य सरकार का उदासीन रवैया अथवा अधिकारी की ओर से सुस्ती किसी प्रकार की तात्कालिकता को प्रदर्शित या दर्शाती नहीं है। राज्य सरकार की ओर से उत्तरदायित्व की उपेक्षा की तुलना अधिनियम, 1894 में विचारित तात्कालिकता से नहीं की जा सकती। यह तर्क दिया गया था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम '1894 जैसे ज़ब्त कानून पर सख्ती से विचार किया जाना चाहिए। धारा-5-ए एक पर्याप्त अधिकार है और मौलिक अधिकार के समान है जो भूमि खोने वाले को अपनी भूमि के अधिग्रहण के खिलाफ अधिकारियों को मनाने के लिए एक उचित और उचित अवसर देने के सिद्धांत का प्रतीक है, जिसे केवल वास्तविक तात्कालिकता के असाधारण मामलों में ही समाप्त किया जा सकता है न कि साइड-विंड द्वारा। राधेश्याम (उपरोक्त) और देव शरण (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए भरोसा किया गया था।

(iv) देवेंद्र सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;

18. देवेंद्र सिंह (उपरोक्त) मामले में एक अन्य निर्णय में यह माना गया था कि यह अच्छी तरह से तय है कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि का अधिग्रहण, अधिनियम की धारा-17(1) और धारा-17(4) के संदर्भ में धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने की शक्ति के प्रयोग को उचित नहीं ठहराएगा। राधे श्याम (उपरोक्त) और देव शरण (उपरोक्त) और देवेंद्र कुमार त्यागी (उपरोक्त) के फैसलों पर भरोसा किया गया था कि पूर्व-अधिसूचना में देरी अपने आप में अधिग्रहण के लिए तात्कालिकता खंड के आह्वान को सही नहीं ठहरा सकती है, लेकिन यह केवल अधिग्रहण की आवश्यकता की तात्कालिकता को तेज या बढ़ाती है, केवल तभी जब यह पहले से ही सार्वजनिक उद्देश्य की प्रकृति में मौजूद हो। यह माना गया कि राज्य सरकार उक्त मामले के तथ्यों में, अधिनियम की धारा-17(4) के आपातकालीन प्रावधान को लागू करने के लिए उचित नहीं थी। भूमि धारकों को अधिनियम की धारा-5-ए के तहत उनके मूल्यवान अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था।

(v) दर्शन लाल नागपाल एवं अन्य बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार एवं अन्य 6

19. दर्शन लाल नागपाल (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने नारायण गोविंद गावटे बनाम महाराष्ट्र राज्य से लेकर देवेंद्र कुमार त्यागी (उपरोक्त) तक के फैसलों की एक श्रृंखला को ध्यान में रखते हुए कहा है कि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए तत्काल प्रावधानों को लागू करके भूमि का अधिग्रहण जैसे, नियोजित आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत विकास को विभिन्न निर्णयों में अस्वीकार कर दिया गया है, जो 1977 से 2011 तक के हैं। आनंद सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के

निर्णय पर विचार किया गया है ताकि यह नोट किया जा सके कि अधिसूचना पूर्व और पश्चात विलंब का तात्कालिकता शक्ति के आह्वान के प्रश्न पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां उपयुक्त सरकार द्वारा न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं रखी गई है जो यह न्यायोचित ठहराती हो कि तात्कालिकता ऐसी प्रकृति की थी जिसके कारण धारा-5-क के तहत जांच को समाप्त करना आवश्यक हो गया था। उसमें यह तर्क दिया गया था कि तात्कालिकता के मुद्दे पर सरकार का निर्णय धारा-17(1) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है और राज्य को इस शक्ति का प्रयोग अधिक सावधानी और सावधानी के साथ करना चाहिए क्योंकि भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण से मालिकों को भूमिहीन बनाने की संभावना है। एक निजी व्यक्ति से संबंधित संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण एक गंभीर मामला है और कानून, अनुच्छेद 300 ए और कानूनी अधिकारों की मंजूरी के बिना अपनी संपत्ति से वंचित नहीं होने के उनके संवैधानिक अधिकार पर गंभीर नतीजे हैं। राज्य द्वारा की जाने वाली देखभाल की मात्रा तब अधिक होती है जब निजी भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण की शक्ति का प्रयोग अधिनियम की धारा-17 के तहत तात्कालिकता के प्रावधानों को लागू करके किया जाता है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप मालिक को सुनवाई का अवसर दिए बिना उसकी संपत्ति से वंचित किया जाता है। पूर्व-अधिसूचना देरी को तात्कालिकता प्रावधान को लागू करने के लिए घातक माना गया था। राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया था कि धारा-5-ए के आवेदन को समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं था, जो सुनवाई के नियम के दो पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात भूमि के प्रस्तावित अधिग्रहण के खिलाफ आपत्ति दर्ज करने का भूमि मालिक का अधिकार और कलेक्टर द्वारा की जाने वाली आवश्यक जांच में सुनवाई की जा रही है। सुनवाई के नियम का दायरा यानी ऑडी अल्टरम पार्टेम को यह मानने के लिए नोट किया गया था कि यह स्थापित नहीं किया जा सकता है कि तात्कालिकता ऐसी थी कि कुछ महीनों का समय भी, जो धारा-5 ए (1) के तहत भूमि मालिकों द्वारा आपत्तियां दर्ज करने और धारा-5 ए (2) के तहत कलेक्टर द्वारा जांच करने में खर्च किया जा सकता था, परियोजना को निराश किया होगा।

(vi) हामिद अली खान (डी) तृतीय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;

20. हामिद अली खान (डी) (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के एक हालिया निर्णय को हमारे सामने रखा गया है ताकि यह दावा किया जा सके कि उपरोक्त संदर्भित निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने उसमें माना है कि राज्य द्वारा तात्कालिकता के आह्वान के लिए विचार किए गए तथ्य, विशेष रूप से राज्य के अनन्य ज्ञान के भीतर होने के कारण, साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 में सिद्धांत के आधार पर न्यायालय के समक्ष रखे जाने चाहिए। धारा-17(4) के तहत अधिसूचना को चुनौती देने के लिए सबूत के बोझ के निर्वहन के मामले में संपर्क किया जाना चाहिए। धारा-17(4) को लागू करने को न्यायोचित ठहराने वाली असाधारण

परिस्थितियों का अस्तित्व सभी पक्षों द्वारा उपलब्ध कराए गए साक्ष्य की मूल्यांकन पर एक चुनौती के मद्देनजर स्थापित किया जाना चाहिए, यह न्यायालय के लिए खुला है कि धारा-17(4) के तहत शक्ति का सहारा लेने का कोई अवसर उत्पन्न नहीं हुआ, जिसे वास्तव में सामान्य नियम के अपवाद के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। पैरा-1 में की गई टिप्पणी में कहा गया है। उक्त निर्णय का '22' हमारे समक्ष रखा गया है, जो यहां उद्धृत किए जाने के लिए प्रासंगिक है: -

"हम खेल में सिद्धांतों को हटा सकते हैं। प्राधिकरण के लिए जो आवश्यक है वह एक व्यक्तिपरक राय बनाना है। इसका मतलब यह नहीं है कि राय सनकी या मनमौजी हो सकती है। प्राधिकरण के समक्ष सामग्री होनी चाहिए। सामग्री प्रासंगिक होनी चाहिए। प्राधिकरण को सामग्री पर अपना दिमाग लगाना चाहिए। यह इस आवश्यकता से अलग है कि कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण नहीं होनी चाहिए। निस्संदेह उद्देश्य एक सार्वजनिक उद्देश्य होना चाहिए। लेकिन केवल इसलिए कि अधिग्रहण का उद्देश्य सार्वजनिक उद्देश्य पाया जाता है, प्राधिकरण का कर्तव्य समाप्त नहीं होता है। उसे इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि वास्तविक एजेंसी ऐसी है कि अधिग्रहण के खिलाफ अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए किसी व्यक्ति को दिए गए अमूल्य अधिकार को अनुचित रूप से समाप्त नहीं किया जाता है। अधिनियम की धारा-5 ए संपत्ति में रुचि रखने वाले व्यक्ति को एक अधिकार की गारंटी देती है जो उसकी संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण को रोकने के लिए एकमात्र वैधानिक सुरक्षा थी। धारा-17(4) के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति विवेकाधीन है। एक विवेक होने के नाते इसे उचित देखभाल के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए। यह सच है कि यदि कोई प्रासंगिक सामग्री है, हालांकि यह अल्प हो सकती है और प्राधिकरण ने बाहरी विचारों से निर्देशित हुए बिना अपने दिमाग का इस्तेमाल किया है और निर्णय लिया है, तो अदालत एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाएगी। अंतिम विश्लेषण में, किसी भी अन्य निर्णय के साथ, परस्पर विरोधी हितों का संतुलन अपरिहार्य है। अधिकारियों को नागरिकों के पक्ष में बनाए गए अनमोल अधिकार के प्रति जीवित और सतर्क रहना चाहिए, जो केवल एक खाली अनुष्ठान नहीं है।

(vii) नारायण गोविंद गावटे बनाम महाराष्ट्र राज्य;

21. नारायण गोविंद गावटे (उपरोक्त) के निर्णय को जोरदार तर्क देने के लिए पढ़ा गया है कि परिस्थितियों के अस्तित्व को साबित करने का बोझ जो तात्कालिकता खंड के आह्वान को सही ठहरा सकता है, राज्य पर था। उसमें यह माना गया था कि तथ्यों और परिस्थितियों को साबित करने का विशेष दायित्व, विशेष रूप से उस अधिकारी के ज्ञान में निहित है जिसने राय बनाई थी, जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा-17(4) के तहत अधिसूचना जारी की गई थी। आदेश या अधिसूचना में पाठ, यदि दोषपूर्ण नहीं है, तो आगे रिकॉर्ड करने की आवश्यकता को कम कर सकता है। मामले में ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जो न्यायालय को इससे परे देखने के

लिए मजबूर करती हैं। और, उस स्तर पर, किसी आदेश या अधिसूचना को चुनौती देने वाले पक्ष द्वारा धारा-106 साक्ष्य अधिनियम को लागू किया जा सकता है। ऐसे मामलों में संबंधित अधिकारी या प्राधिकारी के लिए यह सबसे असुरक्षित है कि वह तथ्यों के गैर-प्रकटीकरण के साथ सामग्री को आराम देता है, विशेष रूप से उसके ज्ञान के भीतर, एक पाठ की पर्याप्तता पर भरोसा करके। इस तरह का रवैया अपने आप में आगे की जांच को सही ठहरा सकता है। यह माना गया कि यदि, याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए नंगे दावों के अलावा, कि धारा-17(4) द्वारा चिंतन की गई तात्कालिकता मौजूद नहीं थी, तो तथ्यों और परिस्थितियों को इंगित करने में राज्य की विफलता सहित अन्य तथ्य और परिस्थितियां थीं, जिन्हें यह आसानी से प्रकट कर सकता था यदि वे मौजूद थे, तो याचिकाकर्ताओं को उनके सामान्य दायित्व का निर्वहन करने के लिए कहा जा सकता था। वास्तव में, भले ही किसी अधिसूचना में एक पाठ दोषपूर्ण हो या इसमें आवश्यक कथन न हो कि आवश्यक शर्तें पूरी हो गई हैं, साक्ष्य को यह दिखाने के लिए नेतृत्व किया जा सकता है कि एक शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्तें वास्तव में पूरी हो गई हैं। यह साबित किया जाना चाहिए कि संबंधित अधिकारी या प्राधिकारी का दिमाग इस सवाल पर लागू किया गया था कि क्या इस तरह की तात्कालिकता थी कि अधिनियम की धारा-5 ए के तहत सारांश कार्यवाही को भी समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह केवल तात्कालिकता का अस्तित्व नहीं है बल्कि धारा-5क के अंतर्गत जांच को समाप्त करने की आवश्यकता है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। यह देखा गया कि यह सार्वजनिक हित में धारा-17(4) को लागू करने में कोई कठिनाई प्रदान नहीं करता है और सार्वजनिक हित में स्पष्ट रूप से क्या किया जाना है, इसके विवरण को छिपाने की आवश्यकता नहीं है जब इसकी वैधता को न्याय की अदालत में सवाल उठाया जाता है। ऐसे प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं जिनमें तथ्यों पर विचार किया जाना शामिल है जो विशेष रूप से संबंधित प्राधिकारियों की जानकारी में हैं और यदि वे प्रकटीकरण से अनुपस्थित रहने के पर्याप्त कारण का खुलासा किए बिना भी साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 द्वारा अधिरोपित किए गए अपने विशेष भार का निर्वहन नहीं करते हैं तो उन्हें उन परिणामों को भुगतना होगा जो राज्य की ओर से प्रस्तुत किए जा सकने वाले सर्वोत्तम साक्ष्य को प्रस्तुत न करने के कारण उत्पन्न होते हैं, यदि इसका रुख सही था।

22. इस प्रकार, यह माना गया था कि साक्ष्य अधिनियम की धारा-106 के प्रावधान को उन विशेष परिस्थितियों को साबित करने के लिए राज्य पर बोझ डालने के लिए लागू किया जाना है, परिचर तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकटीकरण के बोझ का निर्वहन करने के लिए यह दिखाने के लिए कि कुछ असाधारण परिस्थितियां जिनके लिए अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने की आवश्यकता थी, मौजूद थीं और सक्षम प्राधिकारी/राज्य का दिमाग था इस आवश्यक प्रश्न पर लागू होता है।

(viii) राम सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;

23. राम सिंह (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय पर आगे भरोसा किया गया है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-4 और 6 के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाओं को रद्द कर दिया गया था, यह ध्यान में रखते हुए कि पूर्व-अधिसूचना देरी का तात्कालिकता शक्तियों के आह्वान के सवाल पर एक भौतिक असर होगा, खासकर जब धारा-5-ए के तहत परिकल्पित जांच के उन्मूलन को सही ठहराने के लिए उपयुक्त सरकार द्वारा कोई सामग्री पेश नहीं की गई थी। अधिनियम।

B. इसी तरह के विवाद पर निर्भरता का फैसला किया गया: -

(ix) श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य;

24. इस प्रश्न की जांच करने के लिए लागू कानूनी सिद्धांतों पर उपर्युक्त प्रस्तुतियाँ करने के बाद कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में तात्कालिकता खंड का आह्वान उचित है, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा आग्रह किया गया था कि तात्कालिक मामले के समान तथ्यों और परिस्थितियों में, धारा-4 और 6 के तहत 26.02.2009 और 19.02.2010 को जारी ग्राम चांदपुर की अधिग्रहण अधिसूचनाएं; क्रमशः भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-17(1) और 17(4) की सहायता से तात्कालिकता खंड को लागू करके खराब माना गया है।

(क) उक्त मामले में, 'यीडा द्वारा क्षेत्र के नियोजित विकास' के लिए चांदपुर गांव की अधिग्रहण अधिसूचनाओं में अधिग्रहण का उद्देश्य, इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिनांक 24.04.2017 के निर्णय और आदेश में नोट किया गया था, यह मानने के लिए कि अधिसूचना में दिखाया गया उद्देश्य, राधे श्याम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर तात्कालिकता खंड के आह्वान को सही नहीं ठहरा सकता है। इसके अलावा, न्यायालय ने प्रश्नगत अधिसूचना से संबंधित मूल अभिलेखों का अध्ययन करने के बाद उसमें यह माना था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-17 के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए संतुष्टि दर्ज करने के लिए रिकॉर्ड पर रखे गए अधिकारियों की रिपोर्टों में उल्लिखित आधार, उक्त अधिनियम की धारा-5-ए के तहत अपेक्षित जांच को समाप्त करने के लिए कि:

(क). भूमि पर अनधिकृत कब्जे/अतिक्रमण की संभावना थी;

(ख). अधिग्रहण से बड़ी संख्या में किसान प्रभावित होंगे और इतनी बड़ी संख्या में किसानों की सुनवाई से परियोजना में विलंब होगा, असमर्थनीय था।

आगे यह नोट किया गया कि धारा-4 के तहत प्रस्ताव प्रकाशित होने के बाद धारा-6 अधिसूचना के प्रकाशन में ली गई लगभग एक वर्ष की अवधि स्वयं एक निष्कर्ष देने के लिए पर्याप्त थी कि कोई तात्कालिकता नहीं थी जो अधिनियम '1894 की धारा-17 के तहत शक्ति के आह्वान को उचित ठहरा सकती थी, ताकि

किसानों को धारा-5 ए के तहत सुनवाई के अवसर से वंचित किया जा सके।

इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया है कि धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण के लिए राज्य द्वारा दिए गए औचित्य को खारिज करने के लिए पूर्वोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष, इस न्यायालय पर उसी न्यायालय की समन्वय पीठ होने के नाते बाध्यकारी हैं। जैसा कि समान तथ्यों और परिस्थितियों में, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं को बुरा मानते हुए एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा पहले ही निर्णय दिया जा चुका है, यह न्यायालय किसी भी विपरीत राय पर नहीं पहुंच सकता है। इस न्यायालय की समन्वय पीठ की बाध्यकारी मिसाल के बाद, नवंबर 2009 से मार्च 2011 के बीच प्रकाशित नौ गांवों से संबंधित तत्काल बंच में अधिग्रहण अधिसूचनाओं को अधिनियम, 1894 की धारा-17(1) और 17(4) के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए बुरा नहीं माना जा सकता है, बिना किसी सामग्री के भूमि धारकों को सुनवाई से इनकार करने का औचित्य साबित करने के लिए।

इसके अलावा, श्योराज सिंह (उपरोक्त) में आदेश के ऑपरेटिव हिस्से पर, जिसमें न्यायालय ने अधिग्रहण अधिसूचनाओं को रद्द करने से परहेज किया, यह तर्क दिया गया कि भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता के अधिकार के प्रावधान के तहत उच्च मुआवजा प्रदान करने की अंतिम राहत अधिनियम, 2013, रिट न्यायालय के निर्णय की तारीख को अधिग्रहण की तारीख के रूप में मानते हुए, हमारे सामने अधिग्रहण के संबंध में, अधिग्रहण अधिसूचनाओं के बाद वाई.ई.आई.डी.ए. (यीडा) द्वारा बहुत अधिक विकास नहीं किया गया है। यह जोरदार तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता अधिक मुआवजा लेने में रुचि नहीं रखते हैं, बल्कि वे अपनी जमीन / संपत्ति वापस चाहते हैं, क्योंकि उनमें से अधिकांश की अपनी आवास इकाइयां हैं, जिसमें वे अपने परिवारों के साथ रह रहे हैं।

(ख) इस न्यायालय के दिनांक 29.05.2017 के इसी प्रकार के निर्णय, रबूपुरा गांव से संबंधित अधिनियम '1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 26.02.2009 और 01.02.2010 की अधिग्रहण अधिसूचनाओं के संबंध में रिट-सी संख्या-46776 वर्ष 2010 का निर्णय लेते हुए; ग्राम मिर्जापुर से संबंधित अधिनियम 1894 की धारा-4 और 6 के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाओं दिनांक 13.5.2010 और 28.07.2010 को चुनौती देने वाली अन्य 68 याचिकाओं से संबंधित रिट सी संख्या-56451 वर्ष 2011 (कुंवर शिलवाहन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में निर्णय और आदेश दिनांक 22.12.2016; रिट-सी संख्या-44741 वर्ष 2010 (हरपाल सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 22.11.2016 का निर्णय और आदेश। निलोनी शाहपुर गांव से संबंधित अधिनियम 1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 26.2.2009 और 01.02.2010 की अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देने वाले अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देने के लिए हमारे सामने रखा गया

है कि एक बार इस न्यायालय ने निर्णय लिया कि अधिनियम '1894 की धारा-17(1) और 17(4) की मदद से प्रस्तुत मामलों के समान तथ्यों और परिस्थितियों में, यह कानून की दृष्टि से गलत था, इस मामले में आगे किसी विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के आलोक में सभी रिट याचिकाओं को अनुमति दी जानी चाहिए और चुनौती के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाएं रद्द की जा सकती हैं।

ग. बंच में अन्य अधिवक्ताओं द्वारा उपरोक्त तर्कों के लिए सहायता: -

26.

(i) रिट याचिकाकर्ताओं के लिए उपस्थित होने वाले कुछ अधिवक्ताओं ने हालांकि, याचिकाकर्ताओं की इच्छा व्यक्त की, जिनके लिए वे प्रतिनिधित्व करते हैं कि उनके मामलों में चुनौती के तहत अधिसूचनाओं को इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के आलोक में खराब ठहराया जाए, जो कि वाई.ई.आई.डी.ए. (यीडा) द्वारा किए गए समान अधिग्रहण में हैं, तात्कालिकता खंड की मदद से, लेकिन यदि याचिकाकर्ताओं को श्योराज सिंह (उपरोक्त) के मामले में उच्च मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए, वे संतुष्ट से अधिक होंगे।

कानूनी सिद्धांतों पर, विभिन्न गांवों के लिए बंच में उपस्थित अन्य अधिवक्ताओं ने उपरोक्त तर्कों को अपनाया है।

(ii) याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं में से एक श्री पंकज दुबे ने ग्रेटर नोएडा बनाम देवेंद्र कुमार और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को यह दावा करने के लिए रखा है कि राज्य सरकार और अधिग्रहण प्राधिकारी की ओर से सदाशयता की कमी थी, जो इस तथ्य से साबित होता है कि धारा-17(1) और (4) को बिना किसी ठोस आपातकाल के लागू किया गया था, जो धारा-17(1) के तहत शक्ति के प्रयोग को सही ठहरा सकता है और धारा-5-ए के तहत परिकल्पित जांच के बहिष्करण को वारंट कर सकता है। राम सिंह (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय को यह दावा करने के लिए रखा गया है कि उसमें तात्कालिकता खंड का आह्वान खराब पाया गया था।

(iii) राजीव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच को यह दावा करने के लिए रखा गया है कि जब इस न्यायालय ने पाया कि अधिग्रहण की चुनौती भूमि के एक छोटे टुकड़े के लिए थी, तब भी न्यायालय ने तात्कालिकता के आह्वान के लिए राज्य के निर्णय की वैधता की जांच की थी। उसमें यह माना गया था कि केवल पट्टेदार धारकों द्वारा उनकी भूमि के मुआवजे या हस्तांतरण को स्वीकार करना, ऐसे व्यक्ति द्वारा अधिग्रहण की कार्यवाही को चुनौती देने के अधिकारों की माफी नहीं होगी। निहित सहमति या सहमति का कोई निष्कर्ष तब तक नहीं निकाला जा सकता जब तक कि व्यक्तिगत मामले के तथ्यों की जांच नहीं की जाती। छूट का गठन करने के लिए, अधिग्रहण को चुनौती देने के अधिकार का जानबूझकर त्याग होना चाहिए। हालांकि, इक्विटी को संतुलित करने के लिए यह देखते हुए कि भूमि के प्रमुख हिस्से को विकसित किया गया था

और अधिग्रहण प्राधिकारी को भूमि के कब्जे के बाद तीसरे पक्ष को आवंटित किया गया था, कार्यकाल धारकों के वैधानिक अधिकारों और आवंटियों के अधिकारों को संतुलित करते हुए, न्यायालय ने उसमें निष्कर्ष निकाला था कि उन कुछ याचिकाकर्ताओं के इशारे पर पूरे अधिग्रहण को गिराना जनहित में नहीं होगा। अधिग्रहण को रद्द किए बिना, उसमें यह निदेश दिया गया था कि इच्छुक कोई भी व्यक्ति जिसने करार नियमवाली के अनुसार मुआवजा स्वीकार नहीं किया था और याचिकाओं के उस बैच में न्यायालय के समक्ष था, इस तथ्य के बावजूद कि अधिनियम की धारा-6 के तहत की गई घोषणा को गलत माना गया था, अधिनियम 1894 के प्रावधानों के अनुसार तारीख को प्रचलित दर के अनुसार मुआवजे का हकदार होगा (ग) भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदशता का अधिकार अधिनियम, 2013 के प्रवर्तन से पूर्व अधिनियम 1894 के अंतर्गत अधिग्रहण के संबंध में अधिनिर्णय दिए गए थे।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री पंकज दुबे अंत में प्रस्तुत करेंगे कि जिन याचिकाकर्ताओं का वह प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, वे संतुष्ट होंगे यदि उन्हें उन मामलों में निर्णय की तारीख पर निर्धारित भूमि के बाजार मूल्य पर मुआवजा दिया जाता है जहां अधिनियम के प्रवर्तन से पहले इस मुकदमे के लंबित रहने के दौरान अवार्ड दिया गया था, 2013. हालांकि, ऐसे मामलों में जहां कोई पंचाट नहीं दिया गया है, अधिनियम, 2013 के तहत मुआवजा निर्धारित किया जा सकता है। यह हमारे सामने रखा गया था कि राजीव (उपरोक्त) में उपरोक्त निर्णय की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय ने 9.5.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से की है, जिसमें नोएडा द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया है, सिविल अपील संख्या-3762 वर्ष 2022 में विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या-5863 वर्ष 2020 से उत्पन्न हुई है।

ग्राम उस्मानपुर की अधिग्रहित भूमि से संबंधित रिट याचिका, संख्या-20716 वर्ष 2010 में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनिल कुमार शुक्ला प्रस्तुत करेंगे कि प्रस्तुत मामले में धारा-5-ए के तहत जांच के साथ तात्कालिकता खंड का आह्वान उचित नहीं हो सकता है क्योंकि अधिग्रहण का उद्देश्य नियोजित विकास के लिए था, जिसके लिए कोई तात्कालिकता नहीं हो सकती है।

मुंशी सिंह बनाम भारत संघ और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है कि धारा-5-ए एक बहुत ही न्यायसंगत और संपूर्ण सिद्धांत का प्रतीक है कि जिस व्यक्ति की संपत्ति अर्जित की जा रही है या अर्जित करने का इरादा है, उसे संबंधित अधिकारियों को यह समझाने का उचित और उचित अवसर होना चाहिए कि उस व्यक्ति से संबंधित संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, विधायिका ने प्रस्तावित अधिग्रहण के खिलाफ आपत्ति दर्ज करने और इसके खिलाफ अपनी आपत्ति के निपटान के लिए इच्छुक व्यक्तियों के लिए पूर्ण प्रावधान किए हैं। यह केवल तात्कालिकता के मामले में है कि धारा-5-क के प्रावधान को समाप्त करने के लिए समुचित सरकार को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं। प्रस्तुत करना यह है कि

प्रतिपक्षी द्वारा तात्कालिकता खंड के आह्वान को सही ठहराते हुए तात्कालिकता का ऐसा कोई मामला नहीं दिखाया जा सकता है/स्थापित नहीं किया जा सकता है।

(iv) श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा, ग्राम रामपुर बांगर की रिट सी संख्या-18539 वर्ष 2013 और ग्राम उस्मानपुर की रिट याचिका संख्या-20716 वर्ष 2010 में उपस्थित याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता, जिन्होंने अधिनियम 1894 के तहत तात्कालिकता प्रावधान लागू करने के लिए राज्य सरकार के निर्णय का विरोध किया था, यह प्रस्तुत करेंगे कि पूर्व-अधिसूचना विलंब हुआ था, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि विकास प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहण का प्रस्ताव वर्ष 2006 में भेजा गया था। प्रस्ताव को अंतिम रूप देने में तीन वर्ष का समय लिया गया था। गांव रामपुर बांगर की जमीन का अधिग्रहण दो चरणों में किया गया था, पहली अधिसूचना फरवरी-2009 में जारी की गई थी और दूसरी अधिसूचना वर्ष 2010 में जारी की गई थी। यह तर्क दिया गया था कि देवेंद्र सिंह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, तीन साल की पूर्व-अधिसूचना देरी से पता चलता है कि कोई वास्तविक तात्कालिकता नहीं थी। अधिनियम के अंतर्गत प्रदान की गई आपत्ति और सुनवाई दायर करने के पट्टेदारी धारकों के अधिकार को समाप्त नहीं किया जा सकता है। आनंद सिंह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है कि अधिसूचना से पहले और बाद में देरी का राज्य के दावे पर एक सामग्री प्रभाव पड़ेगा जो तात्कालिकता खंड के आह्वान को सही ठहराता है।

देव शरण (उपरोक्त) में पैरा-'15' में टिप्पणी करने के निर्णय का संदर्भ दिया गया है ताकि यह आग्रह किया जा सके कि भूमि अधिग्रहण में हाल के रुझानों के संदर्भ में, सार्वजनिक उद्देश्य की अवधारणा को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए जो एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के अनुरूप हो। राज्य द्वारा तात्कालिकता को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई तात्विक विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। गरीब ग्रामीणों की भूमि जोत भारत के संविधान के अनुच्छेद 300- ए का उल्लंघन करते हुए ली गई थी। राज्य पर तात्कालिकता साबित करने के भार का निर्वहन नहीं किया गया है। अन्य मामलों में राज्य द्वारा रखी गई सामग्री समान थी और डिवीजन बेंच द्वारा इसे गैर-मौजूद के रूप में खारिज कर दिया गया था ताकि तात्कालिकता के आह्वान को सही ठहराया जा सके।

यह आग्रह किया गया था कि धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण के मामले में, राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून क्षेत्र को लागू करता है और पैरा-2 में उसमें निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए। तथापि, 77, 78, 79 के मामले में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि आवासीय प्रयोजन के लिए अधिग्रहण में तात्कालिकता खंड को लागू करने की अनुमति नहीं है। यह तर्क दिया गया था कि यह प्रति-हलफनामे में उत्तरदाताओं का एक स्वीकृत मामला है कि अधिग्रहित भूमि का उपयोग आवासीय उद्देश्यों के लिए किया जाएगा।

न्यायालय का ध्यान अपीलकर्ता द्वारा 15.10.2022 को दायर हलफनामे के साथ

संलग्न मानचित्र की ओर आकर्षित किया जाता है। यह दावा करने के लिए कि प्रति-शपथ पत्र में प्रतिपक्षी का यह तर्क कि एकीकृत विकास के लिए प्रश्नगत भूमि की आवश्यकता है, भ्रामक है, जहां तक प्लॉट संख्या-12 है। (क) क्या यह सच है कि परिधीय सड़क के समीप पृष्ठ सं-152 पर मानचित्र में दर्शाए गए अनुसार 152 किमी का परिधीय सड़क का निर्माण किया गया है। 48 उन जोत धारकों को आबंटित किया गया है जिनकी भूमि यीडा के अधिग्रहण के अंतर्गत अधिगृहीत की गई है। यदि भूमि ग्रामीणों को पट्टे पर दी जा रही है तो एकीकृत योजना को निष्पादित नहीं किया जा सकता है। अन्य काश्तकारों की भूमि इस आधार पर जारी की गई थी कि ग्रामीण आबादी साइटों के नियमितीकरण के लिए यीडा द्वारा बनाए गए ग्रेटर नोएडा औद्योगिक विकास ग्रामीण आबादी साइट (प्रबंधन और नियमितीकरण) विनियम, 2011 के मद्देनजर ग्रामीण आबादी साइट मौजूद है। कुछ ग्रामीणों की आबादी को नियमित करने की लीज़-बैक नीति अधिकारियों की मनमर्जी से अपनाई जा रही है। विकास प्राधिकरण वाई.ई.आई.डी.ए. (यीडा) ने एक ओर विभिन्न ग्रामीणों की भूमि का अधिग्रहण इस आधार पर किया था कि प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र के एकीकृत विकास के लिए भूमि की आवश्यकता है और दूसरी ओर, लीज़-बैक नीति की अनुमति देकर, कुछ ग्रामीणों की भूमि को इस आधार पर जारी करने के लिए चयन और चयन पद्धति अपनाई गई है कि वे ग्रामीण आबादी स्थल थे। गरीब किसानों/ग्रामीणों की कृषि भूमि और मौजूदा आबादी को हड़पने के लिए प्राधिकरण वाई.ई.आई.डी.ए. / ('यीडा') का दुर्भावनापूर्ण इरादा रिकॉर्ड के चेहरे पर बड़े पैमाने पर स्पष्ट है।

अधिनियम, 1894 की धारा-5-ए के तहत जांच के दायरे के बारे में, श्री मेहरोत्रा द्वारा यह तर्क दिया गया था कि धारा-5-ए के तहत जांच की कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है, जिसमें कार्यकाल धारकों की प्रत्येक आपत्ति पर दिमाग लगाने की आवश्यकता होती है, जिसमें यह भी शामिल है कि अधिग्रहण अधिसूचना में बताए गए उद्देश्य के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं है। आबादी के अस्तित्व का पता लगाने के लिए निरीक्षण का निर्देश दिया जा सकता है। जोत धारक यह तर्क दे सकता है कि अधिनियम '1894 के तहत उसे दी गई आपत्ति दर्ज करने का एकमात्र अधिकार, एक मूल्यवान अधिकार होने के नाते, उक्त अधिकार से इनकार करने से उसे होने वाली कठिनाई की भरपाई किसी भी संदर्भ में नहीं की जा सकती है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की तर्ज पर आपत्ति और सुनवाई का प्रावधान अनिवार्य है। इस प्रकार, अधिग्रहण में तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा इस तरह के अवसर से कोई आकस्मिक इनकार नहीं किया जा सकता है जहां बताया गया उद्देश्य आवासीय है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता अधिग्रहित भूमि के कब्जे में हैं और आबादी स्थल होने के नाते इसे जारी करने के उनके दावे पर विचार किया जाना चाहिए। यह पुरजोर ढंग से दोहराया जाता है कि यमुना एक्सप्रेसवे से परे भूमि का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण आबादी साइट के रूप में पट्टे पर दिया गया है

और अवार्ड से बाहर रखा गया है। 'यीडा' द्वारा स्थापित कहानी कि क्षेत्र के एकीकृत विकास के लिए विचाराधीन भूमि की आवश्यकता है, पूरी तरह से अविश्वसनीय है। अधिग्रहण केवल मुनाफाखोरी के उद्देश्य से है।

III. तथ्यात्मक पहलुओं पर, पक्षकारों के लिए अधिवक्ताओं के तर्क:-

27. श्री प्रेम चंद सरोज दो संबंधित रिट याचिका संख्या-19406 वर्ष 2011 और रिट याचिका संख्या-19408 वर्ष 2007 में याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे कि दोनों रिट याचिकाएं ग्राम धनौरी, परगना दनकौर में स्थित प्लॉट संख्या-484 क्षेत्र 0.2930 हेक्टेयर और प्लॉट संख्या-486 क्षेत्र 0.3030 हेक्टेयर, तहसील और जिला गौतमबुद्ध नगर के अधिग्रहण से संबंधित हैं। यहां याचिकाकर्ता दर्ज किरायेदार हैं और वे आबादी के रूप में विचाराधीन भूखंडों का उपयोग कर रहे हैं। दावा यह है कि 'यीडा' की स्थापना से पहले राजस्व रिकॉर्ड में विचाराधीन भूमि का भूमि उपयोग विचाराधीन दोनों भूखंडों के संबंध में आबादी है। याचिकाकर्ताओं ने उनके घरों का निर्माण किया है और उन्हें लंबे समय से आबादी के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। विकास प्राधिकरण ने याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर देने से इनकार करते हुए तात्कालिकता खंड को लागू करके अवैध रूप से विचाराधीन भूखंडों का अधिग्रहण किया है। यह दावा किया गया था कि विचाराधीन भूमि से सटे समान रूप से स्थित भूखंडों को अधिग्रहण अधिसूचनाओं में शामिल नहीं किया गया था। इस प्रकार, विचाराधीन भूखंडों के संबंध में अधिग्रहण को रद्द करने के लिए प्रार्थना की गई है।

28. इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण यह है कि उपरोक्त संदर्भित तथ्यों से संकेत मिलता है कि संपूर्ण अधिग्रहण प्रकृति में दुर्भावनापूर्ण था और आबादी भूखंडों के अधिग्रहण का कोई औचित्य नहीं था।

29. उपरोक्त रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री प्रेम चंद सरोज द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया था कि याचिकाकर्ता राहत के हकदार हैं क्योंकि उनकी भूमि के संबंध में न तो कब्जा लिया गया था और न ही अवार्ड किया गया था।

30. उपरोक्त प्रस्तुतियों का खंडन करते हुए, श्री मनीष गोयल द्वारा 'यीडा' के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा राज्य के जवाबी हलफनामे पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए आग्रह किया गया था कि अधिग्रहित भूमि का कब्जा 28.06.2011 को अधिग्रहण निकाय को सौंप दिया गया है। कुल प्रभावित किरायेदारों में से 86% को मुआवजा मिल चुका था। 442.3016 की कुल अधिग्रहित भूमि में से 414.2312 हेक्टेयर भूमि का कब्जा विकास प्राधिकरण को सौंप दिया गया था। धारा-11(2) के अंतर्गत प्राधिकार 952012 को 2825438 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए घोषित किया गया था, 862005 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए धारा-11(2) के अंतर्गत दिनांक 20122012 को एक अन्य अधिनिर्णय घोषित किया गया था। धारा-11(1) दिनांक 31.12.2013 के तहत 45.3834 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए अवार्ड घोषित किया गया

है। जिन किरायेदार को यह राशि प्राप्त नहीं हुई है, उनकी अवार्ड की गई राशि भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा न्यायालय में जमा करा दी गई है।

31. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अधिग्रहण से पहले प्रश्नगत भूखंडों पर उनके मौजूदा आबादी के संबंध में दावे का संबंध है, न्यायालय का ध्यान पैरा-2 की ओर आकर्षित किया जाता है। राज्य के जवाबी हलफनामे के '11' में यह दावा करने के लिए कि अधिग्रहण के प्रस्ताव की तैयारी के समय एक सर्वेक्षण किया गया था और प्रपत्र-16 में, अधिग्रहण के प्रस्ताव में भूमि पर परिसंपत्तियों के विवरण के लिए प्रपत्र-16 में, प्रश्न में भूखंडों पर आबादी, निर्माण या पेड़ों का कोई विवरण नहीं था। हालांकि याचिकाकर्ताओं का दावा है कि विचाराधीन भूखंडों पर आबादी मौजूद है, लेकिन रिट याचिकाओं के साथ आबादी के प्रवेश का कोई खतौनी या रिकॉर्ड संलग्न नहीं किया गया है। गाटा संख्या-484 के संबंध में, यह बताया गया है कि रिट याचिका के पृष्ठ '25' पर संलग्न खतौनी से पता चलता है कि विचाराधीन भूमि कृषि भूमि है और इसे याचिकाकर्ता द्वारा ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स से ऋण प्राप्त करने के लिए गिरवी रखा गया था। उपर्युक्त भूखंडों के संबंध में, दोनों रिट याचिकाओं में प्राधिकरण ('यीडा') के जवाबी हलफनामे में एक स्पष्ट बयान दिया गया है कि 20.10.2010 को किए गए संयुक्त सर्वेक्षण में, विचाराधीन भूखंडों पर जीवित प्रयोजनों के लिए कोई निर्माण नहीं पाया गया था। आसन्न प्लॉट संख्या-483, 485, 487 के संबंध में, जिसे अधिग्रहित नहीं किया गया था, राज्य के जवाबी हलफनामे में स्पष्टीकरण दिया गया है कि राजस्व रिकॉर्ड में, प्लॉट संख्या-483, क्षेत्रफल 0.0180 हेक्टेयर और प्लॉट संख्या-485 क्षेत्र 0.0270 हेक्टेयर नाली के रूप में दर्ज किया गया था, प्लॉट संख्या-487 क्षेत्र 0.1764 हेक्टेयर रास्ता के रूप में दर्ज किया गया था और, अत इन भूखंडों का अधिग्रहण नहीं किया जा सका।

IV. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता का तर्क:-

32. श्री मनीष गोयल वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कमलजीत सिंह, श्री सुरेश सिंह, श्री आदित्य भूषण सिंघल, श्री शशि प्रकाश राय प्रतिपक्षी प्राधिकरण के लिए पेश अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे कि प्रश्न में अधिग्रहण अधिसूचित क्षेत्र के एकीकृत विकास के लिए किया गया था जो यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ('यीडा') के अधिकार क्षेत्र में आया था, दिनांक 11-07-2008 की अधिसूचना और उत्तरवर्ती अधिसूचनाओं के तहत जिला आगरा, गौतम बुद्ध नगर, अलीगढ़, मथुरा, महामाया नगर (हाथरस) के गांवों को यीडा के क्षेत्राधिकार में शामिल करने के लिए अधिसूचना सं-11-07-2008 के तहत अधिसूचित की गई थी। 'यीडा' को क्षेत्र के नियोजित विकास को सुरक्षित करने के लिए विभिन्न कार्यों को करने के लिए अधिकृत किया गया था, जिसमें बिक्री या पट्टे के माध्यम से आवंटन और हस्तांतरण या अन्यथा औद्योगिक, वाणिज्यिक, आवासीय और अन्य उद्देश्यों के लिए भूमि के भूखंड शामिल थे। प्राधिकरण को उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम 1976 की धारा-7 के तहत भूमि बेचने, पट्टे पर देने या

स्थानांतरित करने की शक्तियां प्राप्त हैं। अधिसूचित क्षेत्र के एकीकृत विकास के लिए, गौतम बुद्ध नगर और बुलंदशहर जिलों के अधिसूचित क्षेत्र के लिए एक मास्टर प्लान (चरण-1-2031) तैयार किया गया था। मास्टर प्लान के तहत क्षेत्र के समग्र विकास के लिए, 16 गांवों के लिए कुल 22 अधिग्रहण अधिसूचनाएं 22.6.2009 से 7.12.2010 के बीच, वर्ष 22 महीने, यानी एक वर्ष दस महीने की अवधि के भीतर प्रकाशित की गई थीं।

33. मास्टर प्लान-2031 के तहत क्षेत्र का एकीकृत विकास यमुना एक्सप्रेसवे के साथ-साथ है, जिसके निर्माण के लिए गौतम बुद्ध नगर, मथुरा, अलीगढ़, महामाया नगर (हाथरस) और आगरा जिलों में भूमि अधिग्रहण के लिए विभिन्न अधिसूचनाएं जारी की गई थीं। मास्टर प्लान चरण-1-2031 की प्रति हमारे समक्ष रखी गई है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि प्रश्नाधीन गांवों की अधिग्रहित भूमि यमुना एक्सप्रेसवे के दोनों ओर स्थित है। रिट सी संख्या-26767 वर्ष 2010 में अग्रणी मामले में विकास प्राधिकरण के जवाबी हलफनामे को रखते हुए, यह प्रस्तुत किया गया था कि प्राधिकरण द्वारा तैयार की गई विकास योजना स्पष्ट रूप से भूमि उपयोग को निर्धारित करती है। औद्योगिक विकास क्षेत्र के भीतर भूमि उपयोग केवल औद्योगिक नहीं है जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है, लेकिन विकास योजना के अनुसार, भूमि उपयोग में आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक, संस्थागत, साग, सुविधाएं और ऐसे अन्य उपयोग शामिल हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है। क्षेत्र को औद्योगिक विकास क्षेत्र घोषित करने वाली अधिसूचना जारी होने के साथ, यह आसन्न हो गया कि अधिग्रहित भूमि को ऐसे उपयोग के लिए रखा जाएगा जैसा कि प्राधिकरण ('यीडा') द्वारा तैयार की गई योजना में निर्धारित किया गया है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि अधिग्रहण मौजूदा या पुराने शहर के आगे विकास के लिए नहीं किया जा रहा है। मास्टर प्लान के तहत अधिग्रहण के साथ, एक एकीकृत नव नियोजित शहर विकसित किया जा रहा है। विकास प्राधिकरण द्वारा तैयार की गई विकास योजना के अनुसार इस तरह का विकास भूमि मालिकों द्वारा बेतरतीब विकास और/या गैर-पुष्टि उपयोग को रोकता है।

34. अधिग्रहण का गांववार विवरण, करार नियामवाली '1997 के तहत दिया गया पंचाट और विवादित पंचाट, पंचाट की तारीख को मुकदमेबाजी के तहत भूमि का विवरण, अधिग्रहित भूमि के लिए मुआवजे, विकास और भूमि उपयोग का विवरण जैसा कि प्राधिकरण ('यीडा') और राज्य द्वारा इस बंच में रिट याचिकाओं में दायर जवाबी हलफनामे में कहा गया है, अधिग्रहण और विकास के बारे में सांख्यिकीय आंकड़े देते हुए सारणीबद्ध रूप में तर्कों के दौरान हमारे समक्ष रखा गया है। उक्त ग्रामवार चार्ट को इस निर्णय के साथ परिशिष्ट 'ए' के रूप में संलग्न किया जा रहा है।

35. रिकॉर्ड पर रखा गया मास्टर प्लान, नियोजित विकास क्षेत्रवार की स्थिति को दर्शाता है, को भी इस निर्णय का हिस्सा परिशिष्ट-'बी' के रूप में बनाया गया है।

36. हम इस समय, रिट याचिका संख्या-26767 वर्ष 2010 में राज्य के उत्तरदाताओं द्वारा दायर दिनांक 04.10.2021 के हलफनामे का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के तहत, स्थिति को इंगित करने के लिए एक चार्ट दिया गया है कि कितने मामलों में राज्य ने भूमि का कब्जा लिया है और अधिनियम '1894 की धारा-17 के अनुपालन में 80% का अनुमानित मुआवजा जमा किया है। अधिग्रहीत भूमि का चार्ट वर्ष 26710871 हेक्टेयर की 21 अधिसूचनाओं द्वारा अधिग्रहीत 14 गांव, धारा-17 के अंतर्गत जमा 80% के अनुमानित मुआवजे की जमा राशि और साथ ही 'यीडा' को हस्तांतरित भूमि के कब्जे की स्थिति को उसमें संलग्न किया गया है जिसे परिशिष्ट ग के रूप में निर्णय का हिस्सा बनाया गया है।

37. उपरोक्त तथ्यों को रिकॉर्ड पर रखते हुए, यह 'यीडा' के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि प्रश्न में अधिग्रहण की प्रकृति और उद्देश्य को इस बात की जांच करने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या धारा-6 के तहत भूमि के अधिग्रहण की घोषणा अवधि धारकों को धारा-5-A के तहत अधिग्रहण के उद्देश्य पर आपत्ति उठाने का अवसर दिए बिना, उचित था।

38. मास्टर प्लान-2031 फेज-1, जिला गौतम बुद्ध नगर और बुलंदशहर के तहत प्रत्येक क्षेत्र के भूमि उपयोग को दर्शाने के लिए क्षेत्रवार विवरण दिनांक 14.5.2018 को उपरोक्त पूरक प्रतिशपथ पत्र में दिया गया है, यह प्रदर्शित करने के लिए हमारे सामने रखा गया है कि मास्टर प्लान वर्ष के तहत कुल अधिग्रहित क्षेत्र में से 18450.43 हेक्टेयर, (ख) गांव आबादी को छोड़कर शहरी क्षेत्र में परिवहन के लिए 2480.24 हैक्टेयर क्षेत्र आबंटित किया गया है। मिश्रित उपयोग की श्रेणी के तहत "75% क्षेत्र मुख्य गतिविधि के रूप में औद्योगिक/संस्थागत/मनोरंजक होगा और शेष क्षेत्र का उपयोग अन्य सहायक गतिविधियों जैसे आवासीय/वाणिज्यिक और सुविधाओं के लिए किया जा सकता है"।

39. यह आग्रह किया गया था कि यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण को भारत के संविधान के अनुच्छेद 243-क्यू के अर्थ के भीतर एक नगर पालिका घोषित किया गया है और इसे टाउनशिप के विकास और रखरखाव के लिए सौंपा गया है। 'यीडा' द्वारा गांव आबादी का विकास अनिवार्य कर दिया गया है। मास्टर प्लान-2031 के चरण-1 के तहत एकीकृत परियोजना के रूप में परिकल्पित टाउनशिप एक नवनियोजित शहर होगा। राज्य सभी निवासियों को नियोजित विकास और अन्य सुविधाएं सुनिश्चित करने और सुनिश्चित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है और यह केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब योजना को इसकी पूर्ण सीमा में अनुमति दी जाए।

40. 'यीडा' फेज-1, मास्टर प्लान-2021 के तहत प्रत्येक क्षेत्र के भूमि उपयोग को दर्शाने के लिए क्षेत्रवार विवरण नीचे दिया जा रहा है।

41. यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण मास्टर प्लान (फेज-1) जिला गौतम

बुद्ध नगर और बुलंदशहर के लिए क्षेत्र का ब्रेकअप।

संख्या		भूमि उपयोग श्रेणी	2021	
			क्षेत्र (हेक्टेयर)	%
1.		निवास योग्य	4569.52	24.8
2.		वाणिज्यिक	1275.12	6.9
3.		उद्योग-प्रधान	2394.15	13
4.		संस्थागत	1617.02	8.8
5.		सब्ज़ी	3751.59	20.3
6.		परिवहन	2480.34	13.4
7.		मिश्रित उपयोग	1219.82	6.6
8.		एसडीजेड	1142.87	6.2
	कुल (शहरी क्षेत्र को छोड़कर गांव आबादी)		18450.43	100
	गांव आबादी क्षेत्र		1124.69	
	शहरीकरण योग्य क्षेत्र		19575.12	

42. यह तर्क दिया गया था कि यमुना एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए भूमि के अधिग्रहण और एक्सप्रेसवे के इंटरचेंज के लिए चुनौती के संबंध में, मुख्य रूप से इस आधार पर कि उपजाऊ कृषि भूमि का अधिग्रहण करने के लिए सड़क के निर्माण के लिए कोई विशेष तात्कालिकता कम नहीं थी, इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने नंद किशोर गुप्ता और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 15 में परियोजना के सभी पहलुओं की जांच करने पर विचार किया था के रूप में क्या तात्कालिकता के आह्वान के लिए औचित्य था।

43. यह बताया गया कि वर्ष 2001 में राज्य सरकार द्वारा परिकल्पित ताज एक्सप्रेसवे परियोजना एक एकीकृत परियोजना थी जिसमें नोएडा से आगरा तक 160 किलोमीटर से अधिक तक फैले अतिरिक्त नियंत्रण एक्सप्रेसवे का निर्माण शामिल था और एक्सप्रेसवे के साथ 25 मिलियन वर्ग मीटर भूमि का विकास किया गया था। परियोजना की वैधता को एक जनहित याचिका में चुनौती दी गई थी। राज्य सरकार ने जांच आयुक्त अधिनियम के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए जांच शुरू की। उक्त परियोजना जिसे राज्य द्वारा निर्माण, संचालन और हस्तांतरण (बीओटी योजना) के तहत अधिसूचित किया गया था, बलबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य16 में जांच के दायरे में आई, जिसमें अधिग्रहण को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह कंपनी के प्रयोजनों के लिए था और इस प्रकार, अधिनियम के अध्याय VII के प्रावधानों का पालन किया जाना आवश्यक था। धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने में दुर्भावना के आरोप लगाए गए थे। मथुरा में एक गांव में स्थित भूमि की अधिनियम, 1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 15-10-2007 और 04-01-2008 की अधिसूचनाएं विचारार्थ विषय थीं। दिनांक 05-10-2009 के निर्णय और आदेश के तहत रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि संपूर्ण यमुना पट्टी में विकासशील उद्योगों के लिए अवसंरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय महत्व की परियोजना उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों को राष्ट्रीय राजधानी से जोड़ने के लिए शुरू की गई थी।

44. यह तर्क दिया गया था कि परियोजना के विशाल पैमाने पर विचार करते हुए, राज्य सरकार द्वारा यह विचार किया गया था कि एकीकृत परियोजना जो भूमि के एक बड़े क्षेत्र को कवर करने वाली थी, को रोक दिया जाएगा, यदि राज्य ने अधिनियम की धारा-5-ए के तहत विचार के अनुसार व्यक्तिगत आपत्ति के निपटान की जांच की थी। अधिनियम की धारा-17(1) और (4) के तहत शक्ति के प्रयोग के संबंध में राज्य द्वारा गठित संतुष्टि को यह देखते हुए न्यायोचित पाया गया था कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग सामग्री की पर्याप्तता से संबंधित नहीं है, बल्कि इस मुद्दे से है कि क्या राज्य के समक्ष धारा-5-ए के तहत अपेक्षित जांच के वितरण में राय के गठन को सही ठहराने वाली सामग्री थी। ढोंग। यह पाया गया कि अधिनियम के तहत जांच को समाप्त करने में राज्य की कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त बाध्यकारी कारण मौजूद थे। उक्त राय राज्य के साथ-साथ विकास प्राधिकरण के जवाबी हलफनामे में बयानों पर विचार करते हुए बनाई गई थी। दिनांक 11-07-2008 की अधिसूचना द्वारा ताज एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के नाम को संशोधित करके यमुना एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ('यीडा') में परिवतत कर दिया गया था।

45. प्रस्तुत करना यह है कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों में, जहां एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए भूमि के अधिग्रहण को चुनौती दी गई थी, न्यायालय ने राज्य के रिकॉर्ड की जांच की, तात्कालिकता के आह्वान को सही ठहराने वाले प्रस्ताव ने कहा था कि रिकॉर्ड ने स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया था कि परियोजना पर विचार करने और राजस्व रिकॉर्ड के सर्वेक्षण सहित पूछताछ और स्पॉट निरीक्षण करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट ने सिफारिश की थी कि अधिग्रहण के उद्देश्य और इसमें शामिल बड़े क्षेत्र को देखते हुए, और आगे इस तथ्य को देखते हुए कि सड़क और इंटरचेंज के निर्माण और नियोजित विकास के लिए भूमि की आवश्यकता थी, साथ ही, इस तथ्य को देखते हुए कि भविष्य में, संबंधित भूमि पर अतिक्रमण की प्रबल संभावना थी, जांच के लिए धारा-17(4) को लागू करने की आवश्यकता थी। अधिनियम, 1894 की धारा-4 के तहत रियायत समझौते की तारीख से प्रस्ताव के प्रकाशन तक पांच साल की पूर्व-अधिसूचना देरी को कार्यवाही के हर चरण में हस्तक्षेप के कारण स्पष्ट किया गया था। यह नोट किया गया कि जनहित याचिका खारिज होने के बाद, प्राधिकरण के बोर्ड ने सर्वेक्षण करना शुरू कर दिया और उसके बाद अधिग्रहण का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए राज्य की संतुष्टि को यह देखते हुए उचित पाया गया था कि पर्याप्त सामग्री थी और परियोजना सार्वजनिक हित में थी। केवल एक छोटे से भूमि का प्रतिनिधित्व करने वाले रिट याचिकाकर्ताओं की एक छोटी संख्या अधिग्रहण को चुनौती दे रही थी, जिससे तेजी से चलने वाली सड़क के निर्माण की परियोजना रुक गई थी।

46. यह हमारे सामने रखा गया था कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले को नंद किशोर गुप्ता

बनाम यूपी राज्य और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, जिसमें उच्च न्यायालय के उपरोक्त उल्लिखित निष्कर्षों को देखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्ण सहमति व्यक्त की थी कि उक्त परियोजना में आवश्यकता थी, परियोजना की विशालता, अतिक्रमण की संभावना, किरायेदार धारकों की संख्या, जिन्हें सुनवाई की आवश्यकता होगी और उस उद्देश्य के लिए लिए लिया गया समय और साथ ही उपर्युक्त कारणों के कारण पूर्व-अधिसूचना में देरी को देखते हुए, जहां परियोजना 2001 से 2008 तक सुस्त थी, यह माना गया कि उच्च न्यायालय द्वारा जो लिया गया था, उससे अलग दृष्टिकोण लेने का कोई कारण नहीं था। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए तात्कालिकता के आह्वान का कारण कि देरी के परिणामस्वरूप अतिक्रमण हो सकता है, को तात्कालिकता के आह्वान के लिए एक प्रासंगिक कारक माना गया था। यह नोट किया गया था कि पांच भूमि पार्सल के विकास के उद्देश्य से 25 मिलियन वर्ग मीटर भूमि का एक बड़ा हिस्सा अधिग्रहित किया जाना था। राजमार्ग के लिए भूमि अधिग्रहण और पांच टाउनशिप स्थापित करने के लिए भूमि अधिग्रहण के बीच परस्पर संबंध था।

47. 'यीडा' के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि राधे श्याम (उपरोक्त) के मामले में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा भारी भरोसा किया गया था, अधिनियम '1894 की धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान के मुद्दे का जवाब देते हुए, आवासीय/वाणिज्यिक/या औद्योगिक उद्देश्य के लिए भूमि के अधिग्रहण के लिए, नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में उपरोक्त निर्णय को यह देखते हुए प्रतिष्ठित किया गया था कि उक्त मामले में अधिग्रहण को बरकरार रखा गया था क्योंकि यमुना एक्स्प्रेस वे के निर्माण के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता थी और जब तक उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले पर निर्णय लिया जाता, परियोजना पर भारी धनराशि खर्च की जा चुकी थी।

48. राधे श्याम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को हमारे सामने प्रस्तुत करने के लिए विस्तार से पढ़ा गया है कि पूरे निर्णय को उस मामले के तथ्यों के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए ताकि अनुपात को कम किया जा सके और जब नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के साथ इस पर विचार किया जाए, उस मामले और उस मामले के तथ्यों के आलोक में, परियोजना की विशालता, एकीकृत परियोजना के निष्पादन के लिए अधिग्रहण के परिणामस्वरूप प्रभावित कार्यकाल धारकों की बड़ी संख्या, आपत्तियों को दायर करने और निपटान में लगने वाले उचित समय के बाद मुकदमेबाजी जो इस तरह के निर्णयों से उत्पन्न हो सकती है, को अप्रासंगिक कारक नहीं माना जा सकता है। इस मामले में विचाराधीन भूमि क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए तत्काल आवश्यक थी, जिसके संबंध में एक्सप्रेसवे के दोनों ओर के गांवों के भूमि पार्सल एक्सप्रेसवे के साथ क्षेत्र के विकास के उद्देश्यों के लिए अधिग्रहित किए जा रहे थे।

49. नरेंद्र रोड लाइन्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य18 में इस न्यायालय के

निर्णय को हमारे सामने यह प्रस्तुत करने के लिए रखा गया है कि इसमें यह नोट किया गया था कि राज्य ने 2500 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया था वर्ष 25 मिलियन वर्ग मीटर (एक्सप्रेसवे के साथ पांच स्थानों पर विकास के लिए) अर्थात् साइट- I: नोएडा (सुल्तानपुर) (500 हेक्टेयर); साइट- II: ग्रेटर नोएडा और दनकौर के बीच (500 हेक्टेयर); साइट-III: दानकौर और प्रस्तावित TEZ (500 हेक्टेयर) के बीच; साइट IV: प्रस्तावित हवाई अड्डे और टप्पल (500 हेक्टेयर) और साइट-V के बीच: आगरा के पास (500 एकड़)

50. उक्त मामले में चुनौती सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अधिसूचित भूमि के अधिग्रहण के लिए थी, अर्थात् "यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना के तहत विकास के लिए"। अधिसूचनाएं राज्यपाल की राय दर्ज करते हुए जारी की गई थीं कि अधिनियम की धारा-(17) की उपधारा-(1) के प्रावधान भूमि पर लागू होते हैं, जहां तक भूमि विकास के लिए तत्काल आवश्यक थी। उक्त मामले में, मामले के तथ्यात्मक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, तात्कालिकता को लागू करने के लिए, पैरा-'96' में निम्नानुसार नोट किया गया था: -

"96. प्रस्तुत मामले में, हम पाते हैं कि 'यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण' के माध्यम से 'यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना' के लिए विकास के लिए भूमि एक एकीकृत परियोजना है। प्रारंभ में एक्स्प्रेस वे के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था और तत्पश्चात् भूमि का अधिग्रहण विकास की एकीकृत योजना के रूप में टाउनशिप के रूप में पांच पार्सलों के विकास के लिए किया गया है, ताकि एक्स्प्रेस वे की लागत के साथ-साथ क्षेत्र के विकास के लिए रियायतग्राही को मुआवजा दिया जा सके। समझौते में प्रावधान है कि पार्सल को 'यीडा' द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार सख्ती से विकसित किया जाएगा, 'यीडा' के उप-नियमों और विकास के लिए लागू अन्य कानूनों का पालन करके। जेपी इंफ्राटेक लिमिटेड इन पांच पार्सलों को सख्ती से रियायतग्राही समझौते के अनुसार विकसित करेगा। इसलिए, राज्य सरकार को यमुना एक्स्प्रेस वे परियोजना के लिए अधिगृहीत भूमि के प्रत्येक भूखंड पर विकास की प्रकृति का उल्लेख करते हुए सार्वजनिक प्रयोजन का विवरण देना अथवा विनिदष्ट करना अपेक्षित नहीं था।

51. तात्कालिकता खंड के आह्वान को चुनौती देने वाली रिट याचिका को यह देखते हुए खारिज कर दिया गया था कि अधिकांश कार्यकाल धारकों ने समझौते पर हस्ताक्षर किए थे और मुआवजे को स्वीकार कर लिया था। यह माना गया कि अधिकांश कार्यकाल धारकों द्वारा मुआवजे की स्वीकृति भी एक आधार था जिस पर अधिग्रहण की चुनौती में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था।

52. रिट सी संख्या-20585 वर्ष 2010 (नत्थी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में इस न्यायालय द्वारा 12.11.2010 को अधिनियम, 1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 16.10.2009 और 01.12.2009 की अधिसूचनाओं को चुनौती दी गई थी; क्रमशः,

इस दलील पर कि राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता के आह्वान के लिए कोई सामग्री नहीं थी, इस न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया था कि अधिग्रहित भूमि यमुना एक्सप्रेसवे के सन्निहित हिस्से के लिए थी। यमुना एक्सप्रेस-वे को आवासीय क्षेत्रों से जोड़ने के लिए सड़क के लिए आवश्यक भूमि की तत्काल आवश्यकता थी। नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को रिकॉर्ड करने के लिए नोट किया गया था कि यह भूमि के एक बड़े क्षेत्र को कवर करने वाली एक एकीकृत परियोजना का हिस्सा था और एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए पूरक होने के कारण, चुनौती को उलट दिया गया था। उसमें विशेष रूप से यह नोट किया गया था कि यद्यपि विचाराधीन भूमि यमुना एक्सप्रेसवे या पांच भूमि पार्सल के प्रयोजनों के लिए नहीं थी, जैसा कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में उल्लेख किया गया है, लेकिन अधिग्रहण नियोजित विकास के लिए था जिसमें यमुना एक्सप्रेसवे को भूमि पार्सल से जोड़ने के लिए पहुंच मार्ग का निर्माण शामिल था। अधिनियम '1894 की धारा-4 के तहत अधिसूचना में उल्लिखित सार्वजनिक उद्देश्य को निम्नानुसार नोट किया जाए: -

"यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से जिला गौतम बुद्ध नगर में नियोजित विकास", रिकॉर्ड करने के लिए कि: -

अधिनियम की धारा-4 के तहत अधिसूचना में सार्वजनिक उद्देश्य को यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से गौतम बुद्ध नगर जिले में नियोजित विकास के रूप में उल्लेख किया गया था। क्षेत्र का नियोजित विकास वह उद्देश्य है जिसके लिए यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण का गठन किया गया है। नियोजित विकास में सुविधाएं प्रदान करना प्राधिकरण के कार्यों में से एक है और अधिनियम की धारा-4 के अंतर्गत अधिसूचना में नियोजित विकास के ब्यौरे का उल्लेख करना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार अधिनियम की धारा-4 के तहत अधिसूचना में एप्रोच रोड के निर्माण का उल्लेख न करना अनिवार्य नहीं था।

53. उक्त निर्णय को रखते हुए, 'यीडा' के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि प्रस्तुत मामले में अधिसूचनाओं की भाषा, विचाराधीन है, एक ही है, इस मामले में यह भी विचार किया जाना है कि भूमि का अधिग्रहण यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ('यीडा') के माध्यम से एक्सप्रेसवे के साथ अधिसूचित क्षेत्र के विकास की एक एकीकृत परियोजना का हिस्सा है, तात्कालिकता को न्यायोचित ठहराते हुए प्रपत्र-10 के प्रमाणपत्र में दिए गए कारण राज्य सरकार द्वारा यह राय बनाने के लिए पर्याप्त थे कि प्रस्तावित भूमि की तत्काल आवश्यकता थी और अधिनियम की धारा-5-क के तहत जांच की व्यवस्था आवश्यक थी।

54. केदारनाथ यादव में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को यह प्रस्तुत करने के लिए रखा गया है कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में अधिग्रहण का उद्देश्य उसमें नोट किया गया था और यह माना गया था कि एक्सप्रेसवे के

निर्माण के साथ इस अन्यथा औद्योगिक पिछड़े क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण एक दूसरे के पूरक होगा और इसे एकीकृत योजना के हिस्से के रूप में देखा जा सकता है और, इस प्रकार, एक सार्वजनिक उद्देश्य माना जाता है।

55. धर्मेंद्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 20 दिनांक 04.08.2021 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले को हमारे सामने यह प्रस्तुत करने के लिए रखा गया था कि समान तथ्यों और परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने लंबे समय से लंबित रिट याचिकाओं में भूमि के अधिग्रहण में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था, जिसमें मुआवजे की निविदा के साथ पंचाट पारित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया था कि उक्त निर्णय के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका 27.9.2021 को खारिज कर दी गई है।

56. मीना देवी जिंदल मेडिकल इंस्टीट्यूट एंड रिसर्च सेंटर बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, दिल्ली और अन्य21 में निर्णय पर आगे भरोसा किया गया है कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में निर्णय को ध्यान में रखते हुए, कि अधिग्रहण का उद्देश्य "यमुना एक्सप्रेसवे के माध्यम से नियोजित विकास के लिए" उक्त मामले में एक्सप्रेसवे के निर्माण और एकीकृत परियोजना का एक हिस्सा होने के लिए पूरक था। मुंशी सिंह (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को इस बात पर ध्यान देते हुए प्रतिष्ठित किया गया है कि उक्त मामले में क्षेत्र में कोई मास्टर प्लेट/जोनल प्लेट प्रचलन में नहीं था। इस प्रकार, जब क्षेत्र के लिए कोई योजना नहीं थी, उस संदर्भ में, न्यायालय ने देखा है कि अधिसूचना में उल्लेख है कि यह क्षेत्र के नियोजित विकास के उद्देश्य से अधिग्रहण किया गया था, अस्पष्ट था। जबकि उक्त मामले में मास्टर प्लान अस्तित्व में था और विकास मास्टर प्लान के अनुसार हुआ था, इस प्रकार, अधिनियम '1894 की धारा-4 के तहत अधिसूचना में अस्पष्टता का कोई परिणाम नहीं माना गया था।

57. यह जोरदार वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया था कि न्यायालय उद्देश्य के प्रति सचेत होना है कि जब भूमि का विशाल हिस्सा अधिग्रहण किया गया था, समय की पहचान और भूमि की उपयुक्तता जो पूर्व अधिसूचना देरी के कारण निर्णय लेने पर विचार किया जाना चाहिए पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या एक ही तात्कालिकता के आह्वान के बयान को प्रभावित करेगा. यह तर्क दिया गया था कि मास्टर प्लान की सावधानीपूर्वक योजना और तैयारी ने परियोजना के निष्पादन में समय लिया था। तथापि, प्रस्तुत मामले में, दिनांक 11-07-2008 की अधिसूचना द्वारा यमुना एक्स्प्रेस वे प्राधिकरण के गठन के साथ, मास्टर प्लान को 24-07-2009 को अनुमोदित किया गया था, इस बीच अधिग्रहण प्रस्ताव में उल्लिखित प्रयोजन के लिए भूमि की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए सर्वेक्षण के बाद अधिग्रहण का प्रस्ताव तैयार किया गया था। अधिग्रहण की कार्यवाहियां 26-02-2009 को पहली अधिसूचना के प्रकाशन के साथ यथाशीघ्र शुरू की गई थी। यह एक एकीकृत परियोजना के लिए अधिग्रहण था जहां प्रत्येक मामले में अलग-अलग प्रस्तावों के साथ

विभिन्न गांवों की भूमि का अधिग्रहण किया गया था, जहां प्रत्येक अधिग्रहण प्रस्ताव के लिए तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए राज्य सरकार द्वारा संतुष्टि दर्ज की गई है।

58. यह तर्क दिया जाता है कि अधिग्रहण का उद्देश्य काफी हद तक हासिल किया गया है, जितना मास्टर प्लान के तहत प्रमुख क्षेत्र पहले ही विकसित किया जा चुका है। लगभग 95% भूमि मालिक संतुष्ट हैं और उन्हें मुआवजा मिला है, 90% ने संतुष्ट होकर इस न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया। तात्कालिकता खंड के आह्वान के कारणों को प्रत्येक मामले में, अपेक्षित प्रपत्र, प्रपत्र-10 में बताया गया था। चूंकि चूंकि यमुना एक्स्प्रेस वे का निर्माण कार्य उस समय तक पूरा हो चुका था, जब तक एक्स्प्रेस वे के साथ-साथ आस-पास के क्षेत्र के विकास के लिए अधिग्रहण अधिसूचनाएं जारी की गई थीं, कारणों में दिए गए विवरण को असंगत विचार नहीं कहा जा सकता। यह सर्वविदित है कि राजमार्गों के आस-पास अतिक्रमण होता है। परियोजना के निष्पादन के लिए आवश्यक भूमि की व्यापकता धारा-5-ए के वितरण का एक वैध कारण था क्योंकि इतनी बड़ी संख्या में जोत धारकों के लिए सुनवाई एक व्यवहार्य विकल्प नहीं था।

59. यह आग्रह किया गया था कि पर्याप्त सामग्री रिकॉर्ड पर थी और प्रत्येक गांव के लिए राज्य द्वारा मूल रिकॉर्ड के रूप में पहले से ही अदालत के समक्ष रखी गई है, जिससे पता चलता है कि राज्य सरकार के स्तर पर दिमाग का उचित अनुप्रयोग हुआ है और यह एक यांत्रिक अभ्यास नहीं था। सरकार ने कारणों को नोट कर लिया है, जांच करने के कारणों का उल्लेख किया है, उसका औचित्य बताया है और तत्पश्चात् अनुमोदन/स्वीकृति प्रदान कर दी है। पूर्वसूचना देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है और नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में नोट किया गया है। व्यावहारिक रूप से अधिसूचना के बाद कोई देरी नहीं हुई थी, क्योंकि कई मामलों में, धारा-6 के तहत घोषणा अधिसूचना 3-4 महीने की अवधि में जारी की गई थी। इस बंच में केवल एक या दो मामलों में अधिग्रहण की अधिसूचना लगभग एक वर्ष के अंतराल में जारी की गई थी और उन मामलों में राज्य सरकार ने विलंब पर स्पष्टीकरण मांगते हुए गंभीरता से विचार किया था। इससे पता चलता है कि राज्य विचाराधीन परियोजना के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता के प्रति सचेत था।

60. अधिसूचना के बाद की देरी, हालांकि, रिकॉर्ड पर लाने के द्वारा समझाया गया था कि अनुमानित मुआवजे का 80% जमा करने के लिए ऋण की व्यवस्था करने में लगने वाला समय लग गया था। एक बड़ी परियोजना होने के नाते, 'यीडा' को मुआवजे का 80% जमा करने के लिए हजारों करोड़ रुपये की आवश्यकता थी और विभिन्न बैंकों से संपर्क किया। नोएडा और ग्रेटर नोएडा प्राधिकरणों की भूमि को संपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में गिरवी रखा गया था क्योंकि बैंक बिना प्रतिभूति के ऋण देने के लिए तैयार नहीं थे। इस संबंध में स्पष्टीकरण, विकास प्राधिकरण की ओर से दायर हलफनामे में पाया जा सकता है और रिट याचिका संख्या-23542 वर्ष 2010 में ऐसा ही एक हलफनामा उक्त प्रस्तुतियों को

प्रमाणित करने के लिए हमारे समक्ष रखा गया था।

61. यह तर्क दिया गया था कि याचिकाकर्ता यह स्थापित करने में विफल रहे हैं कि;- (i) विचाराधीन भूमि परियोजना के लिए उपयुक्त नहीं थी; (ii). सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं थी; (iii) अधिग्रहण में दुर्भावना, या; (iv) सार्वजनिक प्रयोजन किसी अन्य भूमि से पूरा होगा।

62. धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण से याचिकाकर्ताओं के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जा सकता था। पूर्वाग्रह के अभाव में, याचिकाकर्ता के किसी भी मूल्यवान अधिकार का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

63. यह आगे तर्क दिया गया था कि अनुच्छेद 300-ए का प्रस्तुत मामले में कोई आवेदन नहीं होगा, जितना कि, अधिग्रहण का पूरा अभ्यास अनुच्छेद 39 (बी) के प्रावधानों के अनुसार बड़े पैमाने पर जनता के लिए सार्वजनिक नीति को आगे बढ़ाने में है।

64. यह तर्क दिया गया था कि अनुच्छेद 31-ए के दूसरे परंतुक के तहत प्रदान किए गए मुआवजे का अधिकार 64.7% का नो-लिटिगेशन प्रोत्साहन, आबादी भूमि (विकसित भूमि) के 7% का अनुदान और साथ ही 2011 में संशोधित 10.10.2011 की लीज़-बैक नीति के तहत कार्यकाल धारकों को दी गई राहत देकर विधिवत संतुलित था, जिन्होंने पंचाट के तहत गणना की गई भूमि और अधिरचना के मुआवजे के अलावा इसका विकल्प चुना था। राधे श्याम (उपरोक्त), आनंद सिंह (उपरोक्त) का निर्णय, तथ्यों के विभिन्न सेटों में दिया गया है, उसमें बताए गए कानूनी सिद्धांत, यदि प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर विचार किया जाता है, तो इसका कोई अनुप्रयोग नहीं होगा। प्रस्तुत मामले के तथ्य, नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले के समान हैं, इसमें बताए गए सिद्धांत का पालन राधे श्याम (उपरोक्त) में भी किया गया है क्योंकि राधे श्याम (उपरोक्त) के तथ्य पर, नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) को प्रतिष्ठित किया गया था।

65. श्रीमती मंजू लता अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और श्रीमती वर्षा लखमणि बनाम हितेश वाधवा में इस न्यायालय के निर्णयों पर यह दावा करने के लिए भरोसा किया गया है कि धारा-5-ए के तहत तात्कालिकता के आह्वान के मामले में पूर्वाग्रह का सिद्धांत, इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में लागू होगा।

66. यह आग्रह किया गया था कि ऊपर उल्लिखित प्रमुख रिट याचिका में दायर हलफनामे में एक स्पष्ट बयान दिया गया है, यह स्थापित करने के लिए कि प्रत्येक मामले (प्रत्येक गांव से संबंधित) में धारा-6 अधिसूचना के प्रकाशन से पहले, अधिग्रहित भूमि के अनुमानित मुआवजे का 80% जमा किया गया था। प्रश्नाधीन भूमि के अधिग्रहण के लिए भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 में निर्धारित प्रक्रिया का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है।

67. याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ताओं के प्रस्तुतीकरण के संबंध में कि विवाद, प्रस्तुत मामले में, श्योराज सिंह (उपरोक्त) में इस

न्यायालय के निर्णय द्वारा कवर किया गया है, जितना कि, इसमें यह माना गया है कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अधिग्रहण के लिए तात्कालिकता का आह्वान "क्षेत्र का नियोजित विकास" राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखते हुए बुरा था, प्राधिकरण के वरिष्ठ अधिवक्ता ('यीडा') द्वारा यह तर्क दिया गया था कि उक्त मामले में निर्णय को जवाबी हलफनामे और प्रत्युत्तर हलफनामे के रूप में रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री की अनदेखी करते हुए प्रदान किया गया था। इसके अलावा इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया था कि यह एक नई टाउनशिप के निर्माण के लिए एक एकीकृत विकास था और मौजूदा या पुराने शहर का विकास नहीं था, हालांकि उक्त तथ्य न्यायालय के समक्ष रखे गए रिकॉर्ड से स्थापित किया गया था। राधे श्याम (उपरोक्त) में बताए गए कानूनी सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा श्योराज सिंह (उपरोक्त) में निर्णय देते समय लागू किया गया था कि राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता को लागू करने के लिए कोई तथ्य मौजूद नहीं था। यहां तक कि राधे श्याम (उपरोक्त) में आवासीय, वाणिज्यिक या औद्योगिक उद्देश्य के लिए भूमि के अधिग्रहण के लिए धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत शक्ति के प्रयोग की अवैधता और/या औचित्य की जांच करने के लिए सिद्धांत निर्धारित करते समय, यह माना गया था कि न्यायालय को इस तरह के अधिग्रहण की वैधता पर निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक रिकॉर्ड की जांच करनी होगी। इस प्रकार, किसी दिए गए मामले के तथ्यों में, रिकॉर्ड और सभी प्रासंगिक सामग्री पर विचार किया जाना चाहिए ताकि यह जांच की जा सके कि क्या तात्कालिकता खंड का आह्वान उचित था और संबंधित अधिकारियों ने इस तरह के निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक कारकों पर अपना दिमाग लगाया। राधे श्याम (उपरोक्त) में बताई गई कानूनी स्थिति को श्योराज सिंह (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच द्वारा यांत्रिक रूप से लागू किया गया है और इसलिए, उक्त निर्णय हमारे समक्ष विवाद पर लागू नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया था कि यह नहीं कहा जा सकता है कि श्योराज सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय हमारे सामने विवाद को कवर करेगा। यह जोरदार तर्क दिया गया था कि उक्त मामले में बताई गई स्थिति अलग-अलग है, क्योंकि मास्टर प्लान के तहत क्षेत्र के एकीकृत विकास के पहलू को नहीं रखा गया था और परियोजना की पूर्णता को अदालत के समक्ष नहीं लाया गया था।

68. सहारा इंडिया (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के मद्देनजर कार्यकाल धारकों को अधिक मुआवजा प्रदान करने के लिए श्योराज सिंह (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई राय को इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल और अन्य24 में सर्वोच्च न्यायालय के बाद के फैसले के मद्देनजर अनुपयुक्त करार दिया गया था, जिसमें अधिनियम '2013 की धारा-24 की प्रयोज्यता पर विचार किया गया है। यह आग्रह किया गया था कि विचाराधीन अधिग्रहण में, पूरी भूमि के लिए अवार्ड घोषित किया गया था, जिसका कब्जा विकास प्राधिकरण को सौंप दिया गया था। जिन जोत धारक को अवार्ड के तहत मुआवजा नहीं मिला, उनकी मुआवजा

राशि न्यायालय में जमा कर दी गई थी। तथापि, प्रश्नगत भूमि के लिए, चुनौती का विषय, इस न्यायालय द्वारा पारित यथास्थिति के अंतरिम आदेश के कारण अधिनिर्णय घोषित नहीं किया जा सका। यथास्थिति आदेश, जैसा कि ऊपर बताया गया है, केवल कब्जे तक ही सीमित नहीं था। प्राधिकरण इस न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण विचाराधीन भूमि के संबंध में अधिग्रहण के साथ आगे नहीं बढ़ सका। इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के कारण पंचाट देने में किसी भी देरी को अधिकारियों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है. रिट याचिकाएं दायर करने की तारीखों पर अधिग्रहण की कार्यवाही चल रही थी और इस न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण पूरी नहीं हुई थी, अधिनियम '2013 की धारा-24 का कोई आवेदन नहीं होगा। वर्ष 2013 का प्रावधान अधिनियम मुआवजे के निर्धारण के मामले में इन मामलों में लागू नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, नो-लिटिगेशन प्रोत्साहन केवल उन व्यक्तियों को दिया जा सकता है जिन्होंने बिना किसी विरोध के मुआवजा स्वीकार कर लिया है या दिनांक 29.08.2014 और 04.11.2015 के सरकारी आदेश के तहत नीति में दिए गए विवरण के अनुसार अपनी रिट याचिका वापस ले ली है।

69. रिट याचिका 18539 वर्ष 2013 में याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता श्री अनिल मेहरोत्रा की प्रस्तुतियों का मुकाबला करने के लिए, विकास प्राधिकरण की ओर से दायर जवाबी हलफनामे को हमारे सामने रखा गया है ताकि यह दावा किया जा सके कि प्रस्ताव प्रस्तुत करने के समय अधिग्रहण और मुआवजे की लागत का 10% 17.2.2010 को जमा किया गया था, जिसके बाद अधिनियम, 1894 की धारा-17(4) सपठित धारा-4(1) के अंतर्गत दिनांक 19-4-2010 को अधिसूचना जारी की गई थी। अनुमानित मुआवजे की शेष 70% राशि दिनांक 28-07-2010 को अधिनियम, 1894 की धारा-17(1) सपठित धारा-6(1) के अंतर्गत घोषणा जारी किए जाने से पहले दिनांक 24-06-2010 को जमा करा दी गई थी। राष्ट्रीय पुनर्वास नीति के अंतर्गत भी राशि दिनांक 08-07-2010 को जमा करा दी गई थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि रामपुर बांगर गांव की भूमि यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना जैसे विभिन्न उपयोगों के लिए विभिन्न अधिसूचनाओं के माध्यम से अधिग्रहित की गई थी, जिसके अधिग्रहण को सर्वोच्च न्यायालय ने बरकरार रखा है और आवासीय योजना 2009(1) के लिए भी।

70. जहां तक याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में है, अर्थात् नरेंद्र कुमार ने पैरा-2 में कहा है। रिट याचिका के '5' और '6' कि याचिकाकर्ता द्वारा उपरोक्त भूमि पर निर्मित आवास इकाइयां/घर मौजूद हैं और इस तरह, याचिकाकर्ता अपनी संपत्ति को अधिग्रहण से छूट देने का हकदार है, प्रतिपक्षी संख्या-3 के जवाबी हलफनामे में, उक्त बयान का पैरा-वाइज जवाब देते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि लीज़-बैक नीति के तहत, याचिकाकर्ता को प्लॉट संख्या-152 (क्षेत्रफल 0.8950 हेक्टेयर) की 0.2100 हेक्टेयर भूमि का एक क्षेत्र दिनांक 04.06.2011 के पत्र द्वारा पेश किया गया था, जिसमें उसे सूचित किया गया था कि उक्त क्षेत्र को लीज़-बैक नीति के तहत

बाहर रखा जा सकता है और शेष क्षेत्र को अधिग्रहित और प्राधिकरण के कब्जे में माना जाएगा।

71. प्रत्युत्तर शपथ पत्र में, उपर्युक्त पैरा सं-2 का उत्तर देते हुए। 'यीडा' के जवाबी हलफनामे के 33' में, यह कहा गया है कि 'यीडा' के हलफनामे के पैरा-'33' में कथन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की आवासीय इकाई मौके पर पाई गई थी और प्रतिपक्षी स्वयं याचिकाकर्ता की भूमि की अधिग्रहण कार्यवाही को वापस लेने के लिए सहमत हो गए हैं।

72. 'यीडा' के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है दिनांक 4.8.2021 पी.आई.एल. संख्या-40484 वर्ष 2012 में, तात्कालिकता प्रावधान के गलत आह्वान के आधार पर समान अधिसूचनाओं को रद्द करने की मांग करने वाली याचिकाओं को खारिज कर दिया गया है। प्रस्तुत रिट याचिका में दायर दिनांक 26082012 के शपथ-पत्र से यह हमारे समक्ष रखा गया था कि उक्त जनहित याचिका को निरर्थक मानते हुए खारिज कर दिया गया है क्योंकि यह अधिनिर्णय मुआवजे की निविदा के साथ भूमि अधिग्रहण के साथ बहुत पहले पारित किया गया था। जनहित याचिका में इस न्यायालय के निर्णय से उत्पन्न विशेष अनुमति याचिका संख्या-14753 वर्ष 2020 को 27.09.2021 को खारिज कर दी गई है। जनहित याचिका के आदेश को चुनौती देने वाली एक अन्य विशेष अनुमति याचिका संख्या-20352 वर्ष 2021 को भी 17.12.2021 को खारिज कर दी गई है।

73. हम इस मोड़ पर, प्रत्येक अधिसूचना के अधिग्रहण के प्रस्ताव से संबंधित मूल रिकॉर्ड, धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण के संबंध में यहां चुनौती की विषय वस्तु, सुनवाई के दौरान हमारे सामने रखा गया है कि और हमारे द्वारा ध्यान से देखा गया है।

V. राज्य का रिकॉर्ड और जवाबी हलफनामा:-

74. हमें इस समय राज्य के रिकॉर्ड से हमारे द्वारा नोट की गई धारा-5-ए के वितरण के तथ्यात्मक पहलुओं को दर्ज करना आवश्यक है, जो प्रतिपक्षी के जवाबी हलफनामे में बयान के साथ मेल खाते हैं, गांववार।

(i) ग्राम पचोकरा:-

75. ग्राम पचोकरा के लिए भूमि अधिग्रहण के संबंध में रिट याचिका संख्या-26767 वर्ष 2010 में प्रतिशपथ पत्र में यह रिकॉर्ड पर लाया गया था कि राजस्व ग्राम पचोकरा, तहसील जेवर, जिला गौतम बुद्ध नगर में 50.9390 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण का प्रस्ताव प्राधिकरण/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), गौतम बुद्ध नगर, कार्यालय आदेश संख्या-1383 दिनांक 28.01.2009 द्वारा। उक्त प्रस्ताव में, अधिग्रहण निकाय ने "अधिनियम '1894 की धारा-5-ए के तहत आपत्तियों के निपटान में बड़े समय लगने की संभावना और जनहित परियोजना के कार्यान्वयन में देरी की संभावना को ध्यान में रखते हुए" तात्कालिकता खंड को लागू करने की सिफारिश की। पत्र संख्या-21 दिनांक 13.2.2009 के माध्यम से, उक्त प्रस्ताव को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (भूमि

अधिग्रहण)/विशेष कार्यकारी अधिकारी, यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण द्वारा निदेशक भूमि अधिग्रहण निदेशालय, राजस्व बोर्ड, यूपी कैंप ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर को भूमि के अधिग्रहण और आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए भूमि उपयोग समिति की बैठक में आवश्यक अनुमोदन प्राप्त करने के बाद भेजा गया था। निदेशक, भू-अर्जन निदेशालय, राजस्व मण्डल, उ0प्र0 ने दिनांक 14.2.2009 के पत्र संख्या-219 द्वारा उक्त प्रस्ताव राज्य सरकार को अपनी संस्तुति के साथ भूमि अधिग्रहण हेतु प्रेषित कर दिया। अधिनियम, 1894 की धारा-17 के तहत तात्कालिकता के आह्वान के औचित्य के लिए अपेक्षित प्रारूप प्रपत्र 10 में कलेक्टर की रिपोर्ट निम्नानुसार पढ़ी जाती है: -

<u>धारा 4/17 औचित्य की टिप्पणी</u>

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण का गठन उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम 1976 के अन्तर्गत का उद्देश्य राज्य के निर्दिष्ट क्षेत्रों मे से औद्योगिक विकास तथा उससे सम्बद्ध मामलो हेतु प्राधिकरण की संरचना करना है। उक्त अधिनियम के अन्तर्गत यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण को अपने अधिसूचित क्षेत्र मे भूमि अधिग्रहित करने, योजना बनाने, औद्योगिक इकाईयों हेतु भूमि चिन्हित करने, आधारभूत सुविधाएं विकसित करने, विक्रय द्वारा अथवा पट्टे पर अथवा अन्य प्रकार से औद्योगिक भू उपयोग हेतु भूमि का निस्तारण क्पेचवेंसद्ध करने, भवनों एवं औद्योगिक ईकाईयों की स्थापना को नियमित करने भू उपयोग निर्धारित करने का अधिकार दिया गया है। ग्राम पचोकरा परगना-जेवर तहसील - जेवर जिला गौतमबुद्धनगर यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण के अधिसूचित क्षेत्र मे स्थित है। यमुना औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से जनपद गौतमबुद्धनगर में सुनियोजित विकास हेतु तत्काल आवश्यकता है। अर्जन मे विलम्ब की दशा में प्रस्तावित भूमि पर अतिक्रमण बढ़ने की प्रबल सम्भावना है जिस कारण यमुना एक्सप्रेसवे की लोक हित की परियोजना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

ग्राम पचोकरा की 50.9390 है० भूमि सुनियोजित विकास हेतु अर्जन प्रस्तावित है। लिखित/मौखिक आपत्ति सुने जाने तथा निस्तारण में निश्चित रूप से वर्षों लगेगें तथा अप्रत्याशित विलम्ब होगा जिससे सुनियोजित विकास ठप हो जायेगा। विधि द्वारा धारा 4(1)/17 की अधिसूचना तथा धारा-6/17 की अधिसूचना मे मध्य एक वर्ष का समय निर्धारित है।

अत: जनपद गौतमबुद्धनगर मे यमुना औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से सुनियोजित विकास हेतु भूमि का अर्जन किया जाना अपरिहार्य है । अत: राजस्व ग्राम पचोकरा परगना - जेवर, तहसील-जेवर जनपद गौतमबुद्धनगर की 50.9390 हैक्टेयर भूमि तत्काल अधिग्रहित किया जाना है। अधिग्रहण हेतु अनुमानित प्रतिकर की 10 प्रतिशत धनराशि अर्जन निकाय से प्राप्त करके अपर जिलाधिकारी (भू० अ०), गौतमबुद्धनगर द्वारा निर्धारित लेखा शीर्षक मे जमा की जा चुकी है। प्रस्तावित भूमि मे कोई धार्मिक स्थल/समारक आदि नही बताया गया है। इस ग्राम मे अर्जन से कुल 63 परिवार प्रभावित होगें । अर्जन के फलस्वरूप 46 कृषक भूमिहीन बताये गये है। प्रस्तावित भूमि में अनुसूचित जाति / जनजाति के खातेदारो की संख्या 40 है। छोटे खातेदारो की संख्या 40 है। प्राधिकरण पर कोई प्रतिकर / डिक्रीटल की धनराशि बकाया न होने का प्रमाण पत्र अपरा जिलाधिकारी (भू० अ०), गौतमबुद्धनगर द्वारा दिया गया है। उक्त को दृष्टिगत रखते हुए चयनित भूमि के अधिग्रहण हेतु भूमि अर्जन अधिनियम 1894 के अंतर्गत धारा -40 (1) के साथ पठित धारा-17 की अधिसूचना निर्गत कराये जाने का पूर्ण औचित्य है तदानुसार संस्तुति की जाती है ।

76. राज्य सरकार ने तात्कालिकता के संबंध में औचित्य पाया और संतोष दर्ज किया कि उसे अधिनियम '1894 की धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए पर्याप्त आधार मिला। इस प्रकार, अधिग्रहण का प्रस्ताव 26-02-2009 को प्रकाशित किया गया था। उल्लेखनीय है कि पचोकरा गांव तत्कालीन ताज एक्सप्रेस-वे प्राधिकरण के विनियमित क्षेत्र में आता है, जिसका नाम बदलकर यमुना एक्सप्रेस-वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण रखा गया है।

77. मुकदमेबाजी के लंबित रहने के दौरान जोत धारक को भुगतान किए गए मुआवजे और 'यीडा' द्वारा किए गए विकास के विवरण के संबंध में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि कुल 198 प्रभावित जोत धारकों में से 151 को मुआवजा मिला था। कुल संख्या-18 याचिकाकर्ता हमारे समक्ष हैं, जो तात्कालिकता खंड के आह्वान में राज्य सरकार के निर्णय की शुद्धता के लिए आंदोलन कर रहे हैं। कुल 41.6525 हेक्टेयर क्षेत्र जिसका कब्जा विकास प्राधिकरण को सौंपा जा चुका है, में से मुकदमेबाजी में भूमि का प्रतिशत 40.50% है।

(ई) गाँव अछेजा बुजुर्ग:-

78. दिनांक 24.4.2001 को अधिसूचित क्षेत्र में शामिल ग्राम अछेजा बुजुर्ग की भूमि के अधिग्रहण के संबंध में रिट-सी संख्या-10785 वर्ष 2012 में दायर राज्य के जवाबी हलफनामे से यह नोट किया जा सकता है कि राज्य सरकार ने दिनांक 29.12.2007 के शासनादेश द्वारा विशेष विकास क्षेत्र के रूप में चिन्हित क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए नीतिगत निर्णय लिया था। उक्त विकास के लिए दिनांक 24-4-2001 की अधिसूचना द्वारा ताज एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण का सृजन किया गया था। उक्त सरकारी आदेश के खंड 3.0 में विशेष विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के विकास के लिए निर्धारित किया गया है। विशेष विकास जोन का भूमि उपयोग जैसा कि उसमें प्रावधान किया गया है, यह है कि कोर गतिविधि, सड़कें और खुले स्थान 35% से कम नहीं होंगे। संस्थागत, वाणिज्यिक, आवासीय (बंच आवास आदि) जैसी पूरक गतिविधियां कोर गतिविधि के पूरक थे जो विकास के लिए नियोजित कुल क्षेत्र के 35% में शामिल थीं।

79. उक्त उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए, प्राधिकरण (यीडा) ने आवासीय भूखंड योजना के लिए ग्राम अच्छेजा बुजुर्ग, परगना दनकौर, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर में स्थित वर्ष 217.6342 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण के लिए 30.12.2009 को एक प्रस्ताव भेजा। अनुमानित अधिग्रहण लागत और अनुमानित मुआवजे का 10% 24-02-2010 को जमा करा दिया गया था। अधिनियम '1894 की धारा-17(4) के प्रावधानों को लागू करने के लिए, धारा-5-ए के तहत जांच का वितरण, कलेक्टर, गौतम बुद्ध नगर के प्रमाण पत्र के साथ प्रपत्र-10 में निहित औचित्य, रिकॉर्ड पर निम्नानुसार है: -

4. **आत्मिकता का औचित्य-** यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा आवासीय भूखण्ड योजना 2009 का ड्रा किया जा चुका है। योजना के अंतर्गत पड़ रही भूमि में से 13 ग्रामो की लगभग 2042 हे० भूमि के संबंध में धारा 4/17 भूमि अध्याप्ति अधिनियम 1894 के अंतर्गत विज्ञप्ति उ०प्र० शासन द्वारा जारी की जा चुकी है। ग्राम अच्छेजा बुजुर्ग की यह प्रस्तावित भूमि धारा

<u>4/17 से विज्ञप्ति भूमि से लगी हुयी (contiguous) तथा आवासीय भूखण्ड योजना हेतु विस्तारित सैक्टर प्लान के अंतर्गत पड़ रही है। अतः इस भूमि का आवासीय भूखण्ड योजना के विकास हेतु अधिग्रहण किया जाना अपरिहार्य है</u>

आवासीय भूखण्ड योजना 2009 प्राधिकरण द्वारा जनसामान्य को वाजिब दरों पर ड्रा द्वारा आवासीय भूखण्ड सुलभ कराने हेतु प्रारंभ की गई है। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न आकार के आवासीय भूखण्ड

नियोजित किये गये है जिसका उद्देश्य समाज के प्रत्येक वर्ग को उसकी आकांशा एवं आर्थिक क्षमता के अनुरूप आवासीय भूखण्ड उपलब्ध कराया जाना है। इस योजना के विकास से आस पास के क्षेत्र का सुनियोजित विकास होने के साथ साथ विकास से संबंधित अन्य गतिविधियों को भी प्रोत्साहन मिलेगा जिससे क्षेत्र का समग्र एवं सुनियोजित विकास हो सकेगा। प्रकारान्तर में क्षेत्र के विकास से प्रदेश के विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार परियोजना के विकाश से प्रदेश में विकास एवं पूंजी निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा।

आवासीय भूखण्ड योजना 2009 एक समयबद्ध परियोजना है। अतः इस योजना के लिए भूमि अधिग्रहण की तत्काल आवश्यकता है। यदि निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार धारा 5 के अंतर्गत कृषकों की आपत्तियों को सुना जाता है तो उससे भूमि अधिग्रहण में विलंब होना संभावित है। इसके अतिरिक्त परियोजना की लागत मेंवृद्धि होने तथा विकास एवं पूंजीनिवेश की प्रक्रिया बाधित होने की आशंका है। इसके अतिरिक्त कृषकों की आपत्तियां सुने जाने के क्रम में विधिक जटिलताएँ उत्पन्न होने तथा आवासीय भूखण्ड योजना हेतु contiguous भूमि प्राप्त न हो पाने की आशंका है। अतः भूमि का तत्काल अधिग्रहण किये जाने हेतु धारा 17 (4), भू अध्याप्ति अधिनियम के अंतर्गत आत्ययिकता संबंधी प्रावधान (urgency clause) लागू करते हुये तथा धारा 5ए भूमि अध्याप्ति अधिनियम के प्रावधानो को विवर्जित रखा जाकर भूमि अधिग्रहण कराया जाना अपरिहार्य है।

80. अनुमानित मुआवजे का 70% 17.7.2010 को जमा किया गया था और सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, धारा-17 सपठित धारा-6 के तहत अधिसूचना जारी करने का प्रस्ताव 14.7.2010 को निदेशक, भूमि अधिग्रहण द्वारा राज्य सरकार को भेजा गया था। वर्ष 2097736 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए धारा-17 सपठित धारा-6 के अंतर्गत अधिसूचना 28-7-2010 को जारी की गई थी।

81. ग्राम अच्छेजा बुजुर्ग की भूमि का अधिग्रहण सेक्टर-16 के विस्तार के लिए किया गया था, जो एक आवासीय क्षेत्र था, जो उसी परियोजना का हिस्सा था। एक परियोजना के लिए विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा अधिग्रहण किया गया था, जो औद्योगिक टाउनशिप के व्यापक विकास के लिए था, जैसा कि तत्कालीन ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से दिनांक 29.12.2007

की विकास नीति के तहत राज्य द्वारा परिकल्पित किया गया था। धारा-6 के तहत अधिसूचित कुल क्षेत्र में से, एक क्षेत्र वर्ष 197.2842 हेक्टेयर का कब्जा प्राधिकरण को सौंप दिया गया था और करार नियामवाली के तहत मुआवजा वर्ष 178.4222 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए वितरित किया गया था। जवाबी हलफनामा दायर करने की तारीख को ग्राम अछेजा बुजुर्ग के अधिग्रहण से संबंधित रिट याचिकाओं में शामिल कुल क्षेत्र लगभग 17.2210 हेक्टेयर था। यह हमारे सामने रखा गया था कि ग्राम छेजा बुजर्ग के एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित भूमि के पार्सल के लिए सन्निहित भूमि को नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था। हम इस समय दर्ज कर सकते हैं कि हमने तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए संतुष्टि के संबंध में राज्य के मूल रिकॉर्ड का अवलोकन किया है, और ऊपर दिए गए तर्क उसमें पाए गए थे।

(iii) गांव रामपुर बांगर:-

82. रिट सी संख्या-23542 वर्ष 2010 में ग्राम रामपुर बांगर के अधिग्रहण के संबंध में प्राधिकरण का जवाबी हलफनामा दर्शाता है कि प्रश्नगत अधिग्रहण ग्राम रामपुर बांगर का दूसरा अधिग्रहण था। अधिनियम, 1894 की धारा-17 सपठित धारा-4(1) के अंतर्गत दिनांक 26-02-2009 की अधिसूचना द्वारा प्रस्तावित रामपुर बांगर गांव की कुल लगभग 20 हेक्टेयर भूमि का उपयोग यमुना एक्स्प्रेस वे को जोड़ने के लिए ग्राम रामपुर बांगर से गुजरने वाली संपर्क सड़कों के निर्माण के लिए किया जाना था। अनुमानित मुआवजे का 80% अधिनियम, 1894 की धारा-17 सपठित धारा-6 के तहत जारी दिनांक 01.02.2010 की घोषणा अधिसूचना से पहले जमा किया गया था। धारा-6 अधिसूचना की घोषणा में देरी का कारण जवाबी हलफनामे में बताया गया है कि प्राधिकरण को राज्य से कोई वित्तीय अनुदान नहीं मिलता है और उसे अपने वित्त की व्यवस्था स्वयं करनी होती है। परियोजना के लिए 1000 करोड़ रुपये से अधिक की आवश्यकता थी जो एक एकीकृत परियोजना थी और इस तरह, इसने विभिन्न बैंकों से संपर्क किया था जिन्होंने अनुरोध को संसाधित करने में समय लिया था। इन बैंकों ने भूमि के संदर्भ में संपार्श्विक सुरक्षा की मांग की और चूंकि प्राधिकरण ('यीडा') के पास गिरवी रखने के लिए कोई भूमि नहीं थी, इसलिए इसने पड़ोसी प्राधिकरण अर्थात् ग्रेटर नोएडा से संपर्क किया जो सुरक्षा के लिए अपनी भूमि को गिरवी रखने के लिए सहमत हो गया था। 500 करोड़ रुपए की अग्रिम राशि तब ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स द्वारा 24-04-2009 को जारी की गई थी, लेकिन फिर भी यह कम थी। विभिन्न प्रस्तावों के बीच, नोएडा ने सेक्टर 94 में स्थित अपनी भूमि के बंधक बनाने के लिए भी सहमति व्यक्त की थी, जिसका मूल्य 600 करोड़ रुपये था। ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स तब शेष 500 करोड़ जारी करने के लिए सहमत हो गया। वित्त की व्यवस्था करने में लगने वाला समय धारा-6 अधिसूचना की घोषणा में देरी का कारण था, क्योंकि अनुमानित मुआवजे का 80% जमा किए बिना, राज्य सरकार के लिए घोषणा अधिसूचना प्रकाशित करना संभव नहीं था। हमारे समक्ष यह प्रदशत किया गया है कि प्रश्नगत

अधिसूचना के अंतर्गत अधिगृहीत भूमि का एक भाग परियोजना के केवल एक भाग के लिए था जो एक एकीकृत परियोजना थी और चूंकि परियोजना को पूरा करने के लिए निकटस्थ भूमि की आवश्यकता थी, इसलिए ग्रामीणों को सुनवाई का अवसर देना संभव नहीं था क्योंकि उस स्थिति में निकटवर्ती भूमि का अधिग्रहण संभव नहीं था।

83. प्रश्न में अधिग्रहण से संबंधित ग्राम रामपुर बांगर का मूल रिकॉर्ड हमारे समक्ष रखा गया था और अवलोकन किया गया था। ग्राम रामपुर बांगर की 104.9705 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण रिट सी संख्या-11839 वर्ष 2012 में चुनौती का विषय है।

(iv) ग्राम उस्मानपुर:-

84. ग्राम उस्मानपुर के लिए रिट सी संख्या-20716 वर्ष 2010 में दायर राज्य के शपथ पत्र में तात्कालिकता खंड को लागू कर अधिग्रहण का औचित्य दिया गया है। मूल रिकॉर्ड भी हमारे द्वारा तैयार और पढ़ा गया है। उस्मानपुर गांव का 1613900 हेक्टेयर क्षेत्र अधिनियम, 1894 की धारा-17(4) सपठित धारा-4 दिनांक 4-11-2009 के अंतर्गत अधिसूचना द्वारा अधिगृहीत किए जाने का प्रस्ताव था। अनुमानित मुआवजे का 80% दिनांक 18.3.2010 की धारा-17(1) सपठित धारा-6 के तहत घोषणा अधिसूचना से पहले जमा किया गया था। दिनांक 17-7-2010 के कब्जे ज्ञापन द्वारा वर्ष 141580 हेक्टेयर क्षेत्र का कब्जा और 72630 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए दिनांक 22-12-2010 का कब्जा ज्ञापन तैयार किया गया था और कब्जा प्राधिकरण (यीडा ('यीडा') को सौंप दिया गया था। विकास प्राधिकरण को सौंपे गए कुल क्षेत्र वर्ष 149.5160 हेक्टेयर में से 86 प्रतिशत भूमि अर्थात 128.2950 हेक्टेयर का मुआवजा प्रभावित किरायेदारों को 19.5.2011 तक वितरित किया जा चुका है। सेक्टर प्लानिंग में आने वाली अधिग्रहण अधिसूचना के तहत भूमि की तत्काल आवश्यकता थी, जिसके लिए कलेक्टर के प्रमाण पत्र के साथ प्रपत्र 10 में औचित्य दिया गया है जो राज्य के रिकॉर्ड में निम्नानुसार पाया गया था: -

"आत्मिकता का औचित्य"

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्धनगर में लोक हित की परियोजनाओं के विकास हेतु अर्जुन की कार्यवाही की जा रही है जिसके अंतर्गत राजस्व ग्राम उस्मानपुर की वांछित भूमि के अर्जन की कार्यवाही की जानी है।

यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण के डवलपमेंट प्लान के अनुसार एक्सप्रेसवे के साथ- साथ यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्धनगर में लोकहित की ढांचागत एवं आधारभूत परियोजनाओं का सुनियोजित विकास किया जाना है जिसके लिए भूमि अधिग्रहण की तत्काल आवश्यकता है। उल्लेखनीय है

कि आर्थिक रूप से सीमित संसाधनो के दृष्टिगत राज्य सरकार का मूल उद्देशय प्रदेश में औद्योगिक एवं संगठनात्मक संरचना को अधिक मजबूत बनाना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य में बाह्य पूंजी निवेश एवं क्रियाशील पूंजी के निवेश को बढावा देकर राज्य में आर्थिक विकास को अपरिहार्य मानते हुये विकास परियोजनाओं का स्वरूप सरकार के उद्देश्यानुसार प्राधिकरण द्वारा महायोजना निर्मित करते हुये निर्धारित किया जाता है। पूंजी निवेश के फलस्वरूप आर्थिक रूप से रोजगार उन्मूलक संस्थाओ की स्थापना से क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के साथ-साथ समाजिक रूप से मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं यथा आवास, सामाजिक सुविधाएं, व्यापार, शिक्षा, चिकित्सा व जनस्वाथ्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। इसी विस्तृत लोकहित को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण हेतु निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार धारा 5 के अंतर्गत कृषकों की आपत्तियों को सुना जाता है तो उससे भूमि अधिग्रहण में विलंब होना संभावित है। इसके अतिरिक्त परियोजना की लागत में वृद्धि होने तथा विकास एवं पूंजीनिवेश की प्रक्रिया बाधित होने की आशंका है। इसके अतिरिक्त कृषकों की आपत्तियां सुने जाने के क्रम में विधिक जटिलताएं उत्पन्न होने तथा प्रस्तावित योजना हेतु contiguous' भूमि प्राप्त न हो पाने की आशंका है। अतः भूमि का तत्काल अधिग्रहण किये जाने हेतु भू-अध्याप्ति अधिनियम की धारा 17 उपधारा 4 के अंतर्गत आत्ययिकता संबंधी प्रावधान (urgency clause) लागू करते हुये तथा धारा 5ए भूमि अध्याप्ति अधिनियम के प्रावधानों को विवर्जित रखा जाकर भूमि अधिग्रहण कराया जाना अपरिहार्य है।"

85. राज्य के जवाबी हलफनामे में बयान यह है कि सभी प्रासंगिक कारकों और प्रपत्र 10 में जारी कलेक्टर के प्रमाण पत्र सहित दस्तावेजों पर विचार करने पर, राज्य सरकार ने 'यीडा' के माध्यम से जिला गौतम बुद्ध नगर में 'नियोजित विकास के लिए सन्निहित भूमि' की तत्काल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तत्काल खंड को लागू करके अधिसूचना जारी करने के अनुमोदन के अनुसार संतोष दर्ज किया।

(v) ग्राम रौनिया:-

86. ग्राम रौनिजा की भूमि के अधिग्रहण के लिए रिट सी संख्या-60651 वर्ष 2011 में राज्य और 'यीडा' प्राधिकरण का जवाबी हलफनामा दर्शाता है कि उक्त गांव की आक्षेपित अधिसूचनाओं के तहत भूमि मास्टर प्लान में सेक्टर 22-डी और 22-ई के तहत आवासीय, संस्थागत, ग्रीन्स और मनोरंजन आदि जैसे मिश्रित उपयोग के लिए आवश्यक थी। दिनांक 29-12-2007 के सरकारी आदेश द्वारा एसडीजेड के विकास के लिए राज्य के नीतिगत निर्णय को ध्यान में रखते हुए, प्राधिकरण द्वारा ग्राम रौनिजा की भूमि के अधिग्रहण के लिए 31-8-2010 को सक्षम प्राधिकारी को एक प्रस्ताव भेजा गया था। उक्त गांव की 2554975 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण के लिए 16-9-2010 को एक संशोधित प्रस्ताव भेजा गया था। अनुमानित मुआवजे और अधिग्रहण लागत का 10% 13-10-2010 को जमा करा दिया गया था। प्राधिकरण के जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि क्षेत्र को औद्योगिक विकास क्षेत्र के रूप में स्थापित करने के साथ ही मौजूदा गांव आबादी और उसकी आबादी के भौतिक, सामाजिक और आर्थिक एकीकरण का आश्वासन दिया जाना है। राज्य सरकार के पास अधिनियम, 1894 की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए पर्याप्त सामग्री थी। इसमें दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है और न ही अधिग्रहण की कार्यवाही के लिए दुर्भावना को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। भूमि का अधिग्रहण नियोजित विकास के उद्देश्य से किया गया है जिसके लिए इसका उपयोग किया जा रहा है। धारा-17(1) और 17(4) सपठित धारा-4(1) के अंतर्गत अधिसूचना आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद दिनांक 02-11-2010 को जारी की गई थी। अनुमानित मुआवजे का 70% और राष्ट्रीय पुनर्वास नीति के लिए मुआवजा दिनांक 6-12-2010 को जमा कराने के बाद, निदेशक, भूमि अधिग्रहण द्वारा दिनांक 13-12-2010 के पत्र द्वारा धारा-17 सपठित धारा-6 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने का प्रस्ताव राज्य सरकार को भेजा गया था और अंतत धारा-17 सपठित धारा-6 के अंतर्गत घोषणा अधिसूचना दिनांक 07-01-2011 को प्रकाशित की गई थी।

87. यह हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया था कि प्राधिकरण द्वारा पूरी की गई संपूर्ण प्रक्रिया के लिए अधिसूचना से पहले या बाद में किसी भी देरी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। जवाबी हलफनामे में यह आग्रह किया गया कि उद्योगों, आवास, मनोरंजन आदि के विकास के लिए भूमि के विभिन्न पार्सल का अधिग्रहण यमुना एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए पूरक था। वर्तमान योजना भी एक्सप्रेसवे के आसपास मिश्रित उपयोग की है और इसे अलग से नहीं देखा जा सकता है। एक्सप्रेसवे के साथ एक क्षेत्र का विकास एक दूसरे के पूरक होगा। ग्राम रौनिजा की अधिसूचनाओं के माध्यम से अधिग्रहीत कुल क्षेत्रफल वर्ष 2551185 हेक्टेयर में से कब्जा वर्ष 2366860 हेक्टेयर 'यीडा' प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया था। प्रश्नाधीन अधिसूचनाओं के तहत अधिग्रहण से प्रभावित 492 व्यक्तियों/पट्टेदारों में से 476 पट्टेदाकार धारकों ने करार नियमवाली/करार नियमावली, 1997 के अंतर्गत मुआवजा प्राप्त

किया था, जिसका अवार्ड 09052012 को किया गया था। शेष क्षेत्र, जिसका कब्जा धारा-11(1) के तहत लिया गया था, के लिए पंचाट 31.12.2013 को घोषित किया गया था। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया था कि अधिग्रहण के लिए चुनौती, टुकड़ों में, मनोरंजन नहीं किया जा सकता है और तात्कालिकता के सवाल को तय करने के लिए व्यापक योजना को देखा जाना चाहिए। प्रश्न में अधिग्रहण के माध्यम से अधिग्रहित ग्राम रौनिजा की भूमि सेक्टर 22-ई और सेक्टर 22-डी का हिस्सा है जो यमुना एक्सप्रेसवे से सटी हुई है। इस गांव का एक छोटा सा हिस्सा सेक्टर 22-डी की योजना में आता है और इसका उपयोग एक्सप्रेसवे के संपर्क सड़कों के निर्माण के लिए किया गया है। रणनीतिक रूप से स्थित होने के नाते, रौनिज़ा गांव की भूमि का अधिग्रहण यमुना एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए मानार्थ, 'यीडा' द्वारा कल्पना की गई टाउनशिप के विकास की एकीकृत योजना का हिस्सा होने के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

(vi) गांव डूंगरपुर रीलका

88. अधिनियम 1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 01.12.2010 और 24.03.2011 की अधिसूचनाओं के माध्यम से डूंगरपुर रीलका गांव की भूमि के अधिग्रहण के लिए रिट सी संख्या-6666 वर्ष 2011 में राज्य के जवाबी हलफनामे में; क्रमानुसार। यह उल्लेखनीय है कि विशेष विकास क्षेत्र के विकास के उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए उक्त गांव की 1986320 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण का प्रस्ताव, जिसकी परिकल्पना राज्य सरकार द्वारा दिनांक 29-12-2007 के सरकारी आदेश के तहत की गई थी, दिनांक 04-11-2010 को सक्षम प्राधिकारी को भेज दी गई थी। अधिग्रहण और मुआवजे की अनुमानित लागत का 10% 30-10-2010 को जमा करा दिया गया था। कलेक्टर, गौतम बुद्ध नगर द्वारा प्रस्तुत दिनांक 04-11-2010 के प्रमाण-पत्र प्रपत्र-10 में यथा प्रकट तात्कालिकता का औचित्य अनुपत्र सं-10 में पाया जा सकता है। सीए-4 प्रतिशपथ पत्र के लिए, जो हमारे समक्ष रखे गए राज्य के मूल रिकॉर्ड से संबंधित था। प्रपत्र-10 में औचित्य निम्नानुसार है: -

"आत्यिकता का औचित्य

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्धनगर में लोक हित की परियोजनाओं के विकास हेतु अर्जुन की कार्यवाही की जा रही है जिसके अंतर्गत राजस्व ग्राम **डूंगरपुर रीलका** की वांछित भूमि के अर्जन की कार्यवाही की जानी है।

यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण के डवलपमेंट प्लान के अनुसार एक्सप्रेस के साथ-साथ यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्धनगर में लोकहित की ढांचागत एवं आधारभूत परियोजनाओं का सुनियोजित विकास किया जाना है जिसके लिए भूमि अधिग्रहण की

तत्काल आवश्यकता है। उल्लेखनीय है कि आर्थिक रूप से सीमित संसाधनो के दृष्टिगत राज्य सरकार का मूल उद्देशय प्रदेश में औद्योगिक एवं संगठनात्मक संरचना को अधिक मजबूत बनाना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य में बाह्य पूंजी निवेश एवं क्रियाशील पूंजी के निवेश को बढावा देकर राज्य में आर्थिक विकास को अपरिहार्य मानते हुये विकास परियोजनाओं का स्वरूप सरकार के उद्देश्यानुसार प्राधिकरण द्वारा महायोजना निर्मित करते हुये निर्धारित किया जाता है। पूंजी निवेश के फलस्वरूप आर्थिक रूप से रोजगार उन्मूलक संस्थाओ की स्थापना से क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के साथ-साथ समाजिक रूप से मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं यथा आवास, सामाजिक सुविधाएं, व्यापार, शिक्षा, चिकित्सा व जनस्वाथ्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। इसी विस्तृत लोकहित को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण हेतु निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार धारा 5 के अंतर्गत कृषकों की आपत्तियों को सुना जाता है तो उससे भूमि अधिग्रहण में विलंब होना संभावित है। इसके अतिरिक्त परियोजना की लागत में वृद्धि होने तथा विकास एवं पूंजीनिवेश की प्रक्रिया बाधित होने की आशंका है। इसके अतिरिक्त कृषकों की आपत्तियां सुने जाने के क्रम में विधिक जटिलताएं उत्पन्न होने तथा प्रस्तावित योजना हेतु contiguous भूमि प्राप्त न हो पाने की आशंका है। अत: भूमि का तत्काल अधिग्रहण किये जाने हेतु भू-अध्याप्ति अधिनियम की धारा 17 उपधारा 4 के अंतर्गत आत्ययिकता संबंधी प्रावधान (urgency clause) लागू करते हुये तथा धारा 5ए भूमि अध्याप्ति अधिनियम के प्रावधानों को विवर्जित रखा जाकर भूमि अधिग्रहण कराया जाना अपरिहार्य है।"

89. प्रपत्र 10 में कथन के अवलोकन से, यह देखा जा सकता है कि अधिग्रहण एकीकृत परियोजना के लिए प्रस्तावित किया गया था, बुनियादी ढांचागत सुविधाएं प्रदान करने के लिए और सन्निहित भूमि की आवश्यकता को इस दावे के साथ दबाया गया था कि भूमि

धारकों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के मामले में, प्रस्तावित परियोजना के लिए सन्निहित भूमि की अनुपलब्धता की संभावना थी जो परियोजना को ही निराश कर सकती है। कुल 612 प्रभावित जोत धारकों में से 961808 हेक्टेयर के कुल क्षेत्र के लिए 437 जोत धारकों को करार नियमवाली/करार नियमावली, 1997 के तहत मुआवजा प्राप्त हुआ था और अधिनियम, 1894 की धारा-11(2) के तहत उक्त क्षेत्र के लिए अवार्ड 14032012 को घोषित किया गया था। जिसकी प्रति उक्त शपथ पत्र के संलग्नक सं.6 के रूप में संलग्न है।

(vii) ग्राम रुस्तमपुर -

90. अधिनियम 1894 की धारा-4 और 6 के तहत दिनांक 26.02.2009 और 26.02.2010 की अधिसूचनाओं द्वारा ग्राम रुस्तमपुर की भूमि के अधिग्रहण के लिए रिट सी संख्या-61244 वर्ष 2011 में राज्य का जवाबी शपथपत्र; क्रमशः, यह दर्शाता है कि यह 360.6642 हेक्टेयर भूमि के एक बड़े क्षेत्र के लिए अधिग्रहण था। जिलाधीश, गौतम बुद्ध नगर के प्रमाणपत्र-10 की प्रति दर्शाती है कि उसमें यह उल्लेख किया गया था कि प्रश्न में गांव यमुना एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के अधिसूचित क्षेत्र में होने के कारण मास्टर प्लान के अनुसार योजनाबद्ध तरीके से इसका विकास किया जाना था। भूमि की उपयुक्तता के बारे में उसमें विशेष रूप से कहा गया था कि अधिग्रहण के प्रयोजनार्थ कोई अन्य भूमि उपलब्ध नहीं थी। ग्राम रुस्तमपुर की तात्कालिकता के आह्वान के मामले में राज्य के मूल रिकॉर्ड से, यह नोट किया जा सकता है कि तत्काल अधिग्रहण में राज्य सरकार के समक्ष धारा-6 के तहत घोषणा जारी करने के लिए कागजात भेजने में देरी को राज्य द्वारा गंभीरता से लिया गया था और संबंधित अधिकारी की जवाबदेही तय करने का निर्देश दिया गया था। यह आग्रह किया गया था कि रिकॉर्ड से प्रदर्शित यह तथ्य राज्य सरकार की इस तथ्य के प्रति संवेदनशीलता को दर्शाता है कि कार्यवाही के प्रभारी अधिकारी की लापरवाही के कारण, इतने बड़े क्षेत्र के अधिग्रहण में चूक पूरी परियोजना के विकास में बाधा उत्पन्न करेगी।

(viii) गांव कादरपुरः-

91. ग्राम कादरपुर के लिए, राज्य का काउंटर और राज्य द्वारा संतुष्टि दर्ज करने से संबंधित रिकॉर्ड से पता चलता है कि यह एक बड़े क्षेत्र वर्ष 120.8221 हेक्टेयर के लिए अधिग्रहण था। कलेक्टर के प्रमाण-पत्र के साथ राज्य के समक्ष दिनांक 29-10-2010 को प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर कार्यालय टिप्पणियां, जिस पर अत्यावश्यकता खंड लागू करने के लिए राज्य सरकार का अनुमोदन दिया गया था, की प्रति प्रति शपथ-पत्र के साथ अनुपत्र सं-10/2010-2010 के रूप में संलग्न की गई है। '10'. राज्य के समक्ष लाई गई सामग्री अर्थात् भूमि के अधिग्रहण के लिए सहमति प्रदान करने के संबंध में जिला स्तरीय समिति का प्रमाण पत्र, यह प्रमाण पत्र कि प्रस्तावित अधिग्रहण से कुल 175 परिवार प्रभावित होंगे और अनुमानित मुआवजे का 10% और साथ ही प्रस्ताव के साथ प्रस्तुत अधिग्रहण लागत का

10%, और एक विवरण कि प्रस्तावित कृषि भूमि को छोड़कर कोई भी भूमि, जो क्षेत्र के मास्टर प्लान के अनुसार विकास के लिए आवश्यक थी, उपलब्ध नहीं थी, पाया जा सका। काउंटर में कहा गया कि एक्सप्रेस-वे के दोनों ओर संधारित किए जाने वाले ग्रीन बेल्ट क्षेत्र के लिए विकास योजना को पूरा करने के लिए तत्काल भूमि की आवश्यकता थी। राज्य के समक्ष यह लाया गया था कि, किसानों/काश्तकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के मामले में, अधिग्रहण के मुकदमेबाजी में उलझने की संभावना थी और आशंका यह थी कि प्राधिकरण क्षेत्र के एकीकृत विकास के लिए आवश्यक 'सन्निहित भूमि' की खरीद करने में सक्षम नहीं हो सकता है। उक्त हलफनामे के पैरा-'19' में बयान यहां उद्धृत किए जाने के लिए प्रासंगिक हैं: -

"19. यहां यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि राज्य सरकार जोत धारकों की संख्या की विशालता को देखकर संतुष्ट थी, आपत्तियों के निपटान में वर्षों की देरी होगी। इसलिए, भूमि कब्जे का अधिग्रहण सर्वोपरि महत्व का था। तदनुसार यह संतुष्ट हो गया कि धारा-5-ए के प्रावधानों को समाप्त करने की आवश्यकता है। राज्य सरकार द्वारा दिमाग के आवेदन को प्रमाणित करने वाली राज्य सरकार की नोटिंग की एक सच्ची प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-सीए-10 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

92. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि अधिग्रहित भूमि के लिए अनुमानित मुआवजे का 80% धारा-6 अधिसूचना के प्रकाशन से पहले जमा किया गया था। कुल 120.8221 हेक्टेयर में से, कब्जा वर्ष 113.8074 हेक्टेयर 'यीडा' को दिया गया था। कुल 561 प्रभावित जोत धारकों में से 503 जोत धारकों को करार नियमों के तहत मुआवजा मिला था। जवाबी हलफनामे में आगे यह कहा गया है कि कादरपुर गांव की भूमि के अधिग्रहण के संबंध में जोत धारक द्वारा दायर तीन रिट याचिकाओं के तहत, कुल छह याचिकाकर्ताओं में से तीन को मुआवजा मिला था। मुकदमेबाजी के अधीन प्रभावित क्षेत्र केवल 5592 हेक्टेयर है जो कुल अधिग्रहीत और कब्जे वाले क्षेत्र का लगभग 491% बनता है। हम आगे नोट कर सकते हैं कि इस बंच की सुनवाई के समय, तीन याचिकाकर्ताओं वाले ग्राम कादिरपुर की केवल दो रिट याचिकाएं विचार के लिए बनी हुई थीं और ऐसा लगता है कि मुआवजा पाने वाले अन्य तीन याचिकाकर्ताओं ने अपनी याचिका वापस ले ली थी।

(ix) ग्राम धनौरी:-

93. अधिनियम 1894 की धारा-4 एवं 6 के अंतर्गत दिनांक 16.11.2010 एवं 22.3.2011 की अधिसूचना द्वारा ग्राम धनौरी के अर्जन के लिए; क्रमशः, राज्य के जवाबी हलफनामे में यह रिकॉर्ड में लाया गया था कि विकास प्राधिकरण द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव में प्रपत्र-10 में तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा अधिग्रहण का औचित्य दिया गया था, जिस पर राज्य द्वारा संतुष्टि दर्ज की गई थी। राज्य के रिकॉर्ड और प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न प्रपत्र-10

की प्रति से अनुबंध संख्या-सी.ए.-'3' के रूप में, हम निम्नानुसार औचित्य पाते हैं: -

आत्मिकता का औचित्य-

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्धनगर में लोक हित की परियोजनाओं के विकास हेतु अर्जुन की कार्यवाही की जा रही है जिसके अंतर्गत राजस्व ग्राम **धनौरी** की वांछित भूमि के अर्जन की कार्यवाही की जानी है।

यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण के डवलपमेंट प्लान के अनुसार एक्सप्रेसवे के साथ-साथ यमुना एक्सप्रेसवे प्राधिकरण द्वारा जनपद गौतमबुद्ध नगर में लोकहित की ढांचागत एवं आधारभूत परियोजनाओं का सुनियोजित विकास किया जाना है जिसके लिए भूमि अधिग्रहण की तत्काल आवश्यकता है । उल्लेखनीय है कि आर्थिक रूप से सीमित संसाधनो के दृष्टिगत राज्य सरकार का मूल उद्देशय प्रदेश में औद्योगिक एवं संगठनात्मक संरचना को अधिक मजबूत बनाना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य में बाह्य पूंजी निवेश एवं क्रियाशील पूंजी के निवेश को बढावा देकर राज्य में आर्थिक विकास को अपरिहार्य मानते हुये विकास परियोजनाओं का स्वरूप सरकार के उद्देश्यानुसार प्राधिकरण द्वारा महायोजना निर्मित करते हुये निर्धारित किया जाता है। पूंजी निवेश के फलस्वरूप आर्थिक रूप से रोजगार उन्मूलक संस्थाओ की स्थापना से क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के साथ-साथ समाजिक रूप से मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं यथा आवास, सामाजिक सुविधाएं, व्यापार, शिक्षा, चिकित्सा व जनस्वाथ्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। इसी विस्तृत लोकहित को दृष्टिगत रखते हुये प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण हेतु निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार धारा 5 के अंतर्गत कृषकों की आपत्तियों को सुना जाता है तो उससे भूमि अधिग्रहण में विलंब होना संभावित है। इसके अतिरिक्त परियोजना की लागत में वृद्धि होने तथा विकास एवं पूंजीनिवेश की प्रक्रिया बाधित होने की आशंका है। इसके अतिरिक्त कृषकों की आपत्तियां सुने जाने के **क्रम में विधिक जटिलताएं उत्पन्न होने तथा प्रस्तावित योजना हेतु**

contiguous **भूमि प्राप्त न हो पाने की आशंका है।** अतः भूमि का तत्काल अधिग्रहण किये जाने हेतु भू-अध्याप्ति अधिनियम की धारा 17 उपधारा 4 के अंतर्गत आत्ययिकता संबंधी प्रावधान (urgency clause) लागू करते हुये तथा धारा 5ए भूमि अध्याप्ति अधिनियम के प्रावधानों को विवर्जित रखा जाकर भूमि अधिग्रहण कराया जाना अपरिहार्य है।

94. उसमें यह कहा गया है कि विचाराधीन भूमि विकास के उद्देश्य के लिए, एक्सप्रेसवे के लिए मानार्थ, नियोजित विकास के संरचनात्मक और मूलभूत उद्देश्यों के लिए आवश्यक थी, जिसे तात्कालिकता के आह्वान की अवधारणा के लिए विदेशी नहीं कहा जा सकता है। आक्षेपित अधिसूचनाओं के तहत कुल 1983 प्रभावित जोत धारकों में से, 232.1773 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 618 जोत धारकों ने करार नियामवाली के तहत मुआवजा प्राप्त किया था, जिसका अवार्ड धारा-11(2) के तहत किया गया था।

(VI) विश्लेषण:-

95. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और हमारे समक्ष उठाए गए मुद्दों पर रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, इस मामले में जांच करने के लिए हमारे सामने प्रश्न यह है कि (i) क्या मास्टर प्लान-2031 (चरण-1) के तहत 'यीडा' द्वारा टाउनशिप के एकीकृत विकास के लिए 26.02.2009 से 02.12.2010 के बीच किए गए नौ गांवों की भूमि के अधिग्रहण के लिए, जैसा कि यहां आरोप लगाया गया है, राज्य सरकार के समक्ष अधिनियम 1894 की धारा-17(4) सपठित धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए कोई औचित्य था, ताकि अधिनियम '1894 की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त किया जा सके, जिसमें किरायेदारों/भूमि धारकों को सुनवाई के अवसर से वंचित किया गया हो। (ii) क्या पट्टेदार को सुनवाई का अवसर देने से इंकार करना राज्य की ओर से एक गैर-कानूनी प्रक्रिया होगी जिससे अधिग्रहण की संपूर्ण कार्यवाही कानून की नजर में खराब हो जाएगी।

96. इन सवालों के जवाब देने के लिए, पार्टियों के लिए अधिवक्ता के प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ के गुण में प्रवेश करते समय, शुरुआत में, हम दायरे और धारा-5-ए के उद्देश्य से संबंधित कानूनी पहलुओं की जांच करने के लिए आवश्यक होगा.

(क) अधिनियम, 1894 की धारा-5-क की प्रकृति, कार्यक्षेत्र और दायरा:-

(क) संवैधानिक योजना:-

97. प्रतिपक्षी-'यीडा' के लिए पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल द्वारा यह तर्क दिया गया था कि धारा-5-A के दायरे और उद्देश्य को समझने के लिए, हमें संवैधानिक योजना, अनुच्छेद 300-A में निहित संपत्ति के अधिकार को देखना चाहिए जो प्रदान करता है कि "किसी भी व्यक्ति को कानून के अधिकार

से बचाने के लिए उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा"। शब्द "कानून" को अनुच्छेद 13 (3) (ए) में परिभाषित किया गया है जिसमें कोई भी अध्यादेश, आदेश, उप-कानून, नियम, विनियमन, अधिसूचना, कस्टम या उपयोग शामिल है जिसमें भारत के क्षेत्र में कानून का बल है।

98. अनुच्छेद 31-A किसी भी संपत्ति या उसमें किसी भी अधिकार के राज्य द्वारा अधिग्रहण के लिए प्रदान करने वाले कानून को बचाता है। अनुच्छेद 31- ए (1) एक गैर-बाधा खंड से शुरू होता है और यह प्रदान करता है कि ऐसा कोई कानून इस आधार पर शून्य नहीं माना जाएगा कि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के साथ असंगत है, या छीन लेता है या कम करता है। तथापि, अनुच्छेद 31-क का दूसरा परंतुक यह उपबंध करता है कि जहां कोई विधि किसी सम्पदा के राज्य द्वारा अर्जन के लिए कोई उपबंध करती है और जहां उसमें समाविष्ट कोई भूमि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी व्यक्तिगत खेती के अधीन धारित की जाती है वहां राज्य के लिए ऐसी भूमि के किसी भाग का अर्जन करना विधिपूर्ण नहीं होगा जो उस पर लागू अधिकतम सीमा के भीतर है, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि या उस पर विद्यमान किसी भवन या संरचना या उससे संबंधित किसी भवन या संरचना के अधीन जब तक कि ऐसी भूमि, भवन या संरचना के अर्जन से संबंधित विधि में ऐसी दर पर प्रतिपूत के संदाय का उपबंध नहीं है जो उसके बाजार मूल्य से कम नहीं होगी।

99. अनुच्छेद 31-ग संविधान के भाग IV में अधिकथित सभी या किन्हीं सिद्धांतों को प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली विधि को बचाता है और कहता है कि इसे इस आधार पर शून्य नहीं माना जाएगा कि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार से असंगत है या छीन लेता है या कम करता है। इसमें यह भी प्रावधान है कि ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए घोषणा करने वाली किसी विधि को किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता है।

100. अनुच्छेद 39 (ख), जिसमें भाग IV में "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत" शामिल हैं, राज्य को अपनी नीति को, विशेष रूप से, यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित करने के लिए अधिदेशित करता है कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार वितरित किया जाए कि आम भलाई के लिए सर्वोत्तम रूप से वितरित किया जाए। इस प्रकार, दिनांक 29-12-2007 के सरकारी आदेश द्वारा विशेष आथक जोन के विकास हेतु नीति तैयार करने के लिए राज्य द्वारा राज्य के प्रख्यात अधिकार क्षेत्र की संप्रभु शक्ति का प्रयोग किया गया है।

101. कर्नाटक राज्य और अन्य आदि बनाम रंगनाथ रेड्डी और अन्य आदि 25 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को हमारे सामने यह प्रस्तुत करने के लिए रखा गया है कि राज्य अधिनियम अर्थात् कर्नाटक अनुबंध कैरिज (अधिग्रहण) अधिनियम, 1976 को चुनौती देते

हुए, यह माना गया था कि अधिनियम को अनुच्छेद 39 (बी) में निहित निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए लागू किया गया था, इस प्रकार, अनुच्छेद 14 का उल्लंघन अनुच्छेद 31-सी द्वारा ठीक किया जाता है। यह नोट किया गया था कि अनुच्छेद 39 (बी) और (सी) राज्य को यह देखने के लिए आदेश देता है कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण आम अच्छे के लिए सबसे अच्छा वितरित किया जाता है और आर्थिक प्रणाली के संचालन के परिणामस्वरूप धन का एकाग्रता नहीं होता है।

102. संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी बनाम मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और अन्य26 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों का संदर्भ हमारे सामने लाने के लिए किया गया है कि प्रख्यात डोमेन का वैध अभ्यास क्या होगा। उसमें यह देखा गया था कि अनुच्छेद 31-सी द्वारा प्रदत्त प्रतिरक्षा की मांग करने वाला कानून एक ऐसा कानून होना चाहिए जो राज्य की नीति को एक निर्देशक सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में निर्देशित करता है, जहां अनुच्छेद 31-सी अनुच्छेद 14 में आता है। अनुच्छेद 14 को एक तरफ हवा से लाने की कोई गुंजाइश नहीं है, अर्थात, अनुच्छेद 14 के कानून के समक्ष समानता के नियम को अनुच्छेद 39 (बी) के व्यापक समतावाद के साथ समानता के नियम के साथ या अनुच्छेद 39 (बी) के सिद्धांत में शामिल अनुच्छेद 14 के सिद्धांत के रूप में मानकर। जिस कानून के लिए संरक्षण का दावा किया गया है और अनुच्छेद 39 (बी) के सिद्धांत के बीच सांठगांठ पर जोर देना अनुच्छेद 14 की आवश्यकता को पूरा करने पर जोर देना नहीं है। वे अलग-अलग अवधारणाएं हैं और कुछ परिस्थितियों में, एक-दूसरे के विपरीत भी चल सकती हैं। यही कारण है कि अनुच्छेद 31-सी द्वारा प्रदान की गई प्रतिरक्षा की आवश्यकता है। इसमें यह तर्क ठुकरा दिया गया था कि अनुच्छेद 31-सी के संरक्षण की मांग करने वाला कोई भी कानून भेदभाव पर आधारित कानून नहीं होना चाहिए। यह प्रस्तुत करना कि मनमानेपन और भेदभाव पर स्थापित कानून को कभी भी अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्देशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिए कानून नहीं कहा जा सकता है, को अस्थिर माना गया था। यह माना गया कि अनुच्छेद 39 (बी) में अभिव्यक्ति 'समुदाय के भौतिक संसाधन' प्राकृतिक संसाधनों तक ही सीमित नहीं है; यह जनता के स्वामित्व वाले संसाधनों तक ही सीमित नहीं है; इसका मतलब है और इसमें सभी संसाधन, प्राकृतिक और मानव निर्मित, सार्वजनिक और निजी स्वामित्व वाले शामिल हैं।

103. अनुच्छेद 31-सी के उद्देश्य, महत्व, कार्यक्षेत्र, दायरे और औचित्य पर तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एल अबू कवुर बाई और अन्य 27 में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा चर्चा की गई है, यह पैरा-'19, '20' और '21' में निम्नानुसार देखा गया था: -

"19. इस प्रकार, भारती और मिनर्वा मिल्स मामलों के साथ-साथ बाद के निर्णयों के संयुक्त पठन से यह प्रतीत होता है कि

निर्विवाद स्थिति यह है कि अनुच्छेद 31C, जैसा कि पच्चीसवें संशोधन द्वारा पेश किया गया है, संवैधानिक रूप से सभी मामलों में वैध है और भारती के मामले के तूफानी निर्णय से बच गया है।

20. इसी तरह की टिप्पणियां वामन राव और अन्य आदि में की गई थीं। भारत संघ और अन्य, जहां हम में से एक (चंद्रचूड़, सीजे) ने इस प्रकार देखा:

"... अनुच्छेद 31 अब नुकसान के रास्ते से बाहर है। वास्तव में, संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुंचाने की बात तो दूर, अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निहित निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए पारित कानून सही मायने में पारित किए गए कानून उस संरचना को मजबूत करेंगे।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

21. संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी बनाम मैसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और अन्य में इस न्यायालय के नवीनतम संविधान पीठ के फैसले में, इस बात पर जोर दिया गया है कि अनुच्छेद 31 सी की संवैधानिक वैधता अब चुनौती से परे है और इस संबंध में हम में से एक (रेड्डी) ने न्यायालय के लिए बोलते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद 31सी की संवैधानिक वैधता का सवाल केशवानंद भारती मामले में न्यायालय के फैसले से ही समाप्त होता प्रतीत होता है।

104. उसमें आगे यह देखा गया कि अनुच्छेद 31-ग का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू, जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने बल दिया है, यह है कि विधायिका द्वारा पारित क़ानून और अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में उल्लिखित दोहरे उद्देश्यों के बीच घनिष्ठ संबंध होना चाहिए, ताकि अनुच्छेद 31-सी के संरक्षण को पूर्ण और अपरिवर्तनीय बनाया जा सके। करीबी सांठगांठ से, इसका मतलब यह है कि अनुच्छेद 31-सी लागू होने से पहले पारित अधिनियम और अनुच्छेद 39 (बी) और (सी) में उल्लिखित उद्देश्यों के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए। उक्त निर्णय के पैरा-'26' में अवलोकन, संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (उपरोक्त) में पहले के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, अनुच्छेद 31-सी और अनुच्छेद 14 के संघर्ष का विज्ञापन यहां निकाले जाने के लिए प्रासंगिक है: -

"संजय कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (उपरोक्त) के मामले में बाद के फैसले में, इस बिंदु पर विज्ञापित, हम में से एक (रेड्डी) ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

उन्होंने कहा, 'हमारा दृढ़ मत है कि जहां अनुच्छेद 31 सी अनुच्छेद 14 के दायरे में आता है, वहां से बाहर हो जाता है. अनुच्छेद 14 को हवा के बल पर लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है, यानी अनुच्छेद 14 के कानून के समक्ष समानता के नियम को अनुच्छेद 39 (बी) के व्यापक समतावाद के बराबर या अनुच्छेद 39 (बी) के सिद्धांत में शामिल अनुच्छेद 14 के सिद्धांत के रूप में मानकर।

105. महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम बसंतीबाई मोहनलाल खेतान और अन्य28 में, उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, अनुच्छेद 300-ए और अनुच्छेद 31-सी की परस्पर क्रिया देखी गई थी। संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (उपरोक्त) में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए, यह माना गया था कि अधिनियम को अनुच्छेद 39 (बी) में निहित निर्देशक सिद्धांत को लागू करने के लिए लाया गया था और इसलिए यदि अनुच्छेद 14 का कोई उल्लंघन भी है, तो यह अनुच्छेद 31-सी द्वारा ठीक हो जाता है जो अधिनियम को सुरक्षा प्रदान करता है, भले ही यह संविधान के तत्कालीन अनुच्छेद 31 (1) द्वारा दिए गए संरक्षण को सुनिश्चित करता हो, जिसे अनुच्छेद 300-ए के समान भाषा में रखा गया था, जो अधिनियम के अधिनियमन के बाद लागू हुआ था। यह देखा गया कि भले ही निजी संपत्तियों को प्राप्त करने की कार्रवाई को नए अनुच्छेद 300-ए को संतुष्ट करना चाहिए क्योंकि अनुच्छेद 300-ए लागू होने के बाद भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू हुई थी, कानून को अनुच्छेद 14 में निहित निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांतों के मानकों पर परीक्षण नहीं किया जा सकता है। यह माना गया कि जिस उद्देश्य के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था वह सार्वजनिक उद्देश्य था। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह निर्णय देने में त्रुटि की कि अधिनियम के आक्षेपित प्रावधानों को रद्द करने की आवश्यकता थी क्योंकि वे न तो न्यायसंगत थे और न ही उचित थे और न ही उचित थे, हालांकि वे अनुच्छेद 14 के तहत चुनौती से संरक्षित हैं, (ग) संविधान के अनुच्छेद 31-ग की प्रयोज्यता के कारण संविधान के अनुच्छेद 19 और 31 में संशोधन किया गया है।

106. प्रतिपक्षी के संविधान के अनुच्छेद 21 पर आधारित तर्कों पर, यह देखा गया कि इसका संपत्ति के स्वामित्व के अधिकार से बहुत कम लेना-देना है। भूमि की अधिकतम सीमा कानून, आवास आवास प्रदान करने के लिए भूमि अधिग्रहण से संबंधित कानून, शहरी संपत्ति पर अधिकतम सीमा लगाने वाले कानून आदि को संविधान के अनुच्छेद 21 को लागू करके रद्द नहीं किया जा सकता है।

107. इस मामले में 'यीडा' के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण, इस प्रकार, यह है कि अधिनियम, 1894 की धारा-17 और धारा-6/17 सपठित धारा-4 के तहत अधिसूचनाओं द्वारा प्रश्नगत भूमि का अधिग्रहण सार्वजनिक नीति का विषय है और यह विधायी विवेक पर छोड़ दिया जाना है, राज्य को यह तय करने के लिए कि विकास नीति कैसे बनाई जाती है और क्या विकास की एक विशेष योजना, भूमि का अधिग्रहण करने का कार्य किया जाना चाहिए। 'राज्य नीति निर्देशक सिद्धांतों' के अध्याय IV में निहित अनुच्छेद 39 (बी) द्वारा शासित क्षेत्र के विकास के लिए राज्य द्वारा मास्टर प्लान तैयार करना, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के निर्माण द्वारा क्षेत्र के विकास के लिए राज्य का निर्णय और संवैधानिक जनादेश के तहत राज्य का एक अधिनियम होने के नाते मास्टर प्लान तैयार करना अनुच्छेद 31-सी द्वारा बचाया जाएगा। भेदभाव या सार्वजनिक उद्देश्य के अभाव में या सार्वजनिक नीति के खिलाफ भूमि

अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत राज्य द्वारा जारी अधिसूचनाओं को कायम नहीं रखा जा सकता है।

108. एक बार राज्य के प्रख्यात डोमेन की शक्ति का प्रयोग करते हुए भूमि का अधिग्रहण किया जाता है, अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होगा। राज्य के कानून द्वारा किए जा रहे अधिग्रहण पर हमला करने के लिए व्यक्तिगत शिकायतों को नहीं उठाया जा सकता है जिसे संविधान के अनुच्छेद 31-सी द्वारा बचाया गया है। धारा-5-ए के तहत आपत्ति का दायरा और इसके वंचन को चुनौती वैधानिक योजना के तहत कवर किया गया है।

(ख) सांविधिक योजना:-

109. जहां तक भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा-5-क के अत्यावश्यकता खंड के आह्वान का संबंध है, यह आग्रह किया गया था कि अधिनियम, 1894 की विधायी योजना पर विचार किया जाना चाहिए। धारा-16 में यह प्रावधान है कि कलेक्टर द्वारा धारा-11 के तहत अधिनिर्णय दिए जाने के बाद, वह भूमि का कब्जा ले सकता है, जो इसके बाद सभी ऋणभारों से मुक्त होकर राज्य में निहित होगी। धारा-17 अपवाद की प्रकृति में है। धारा-17(1) में यह प्रावधान है कि तात्कालिकता के मामले में, यद्यपि कोई अधिनिर्णय नहीं दिया गया है, धारा-9(1) के अंतर्गत सूचना के प्रकाशन से पंद्रह दिनों की समाप्ति पर यह सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अपेक्षित किसी भूमि का कब्जा ले सकता है। इस तरह की भूमि पूरी तरह से राज्य में निहित होगी, सभी ऋणभारों से मुक्त। धारा-17(2) कलेक्टर को ऐसी भूमि में प्रवेश करने और कब्जा करने का अधिकार भी देती है, जिसका तत्काल कब्जा उसमें विहित प्रयोजनों के लिए आवश्यक है, राज्य सरकार की राय में और राज्य की पूर्व मंजूरी के साथ कलेक्टर की ऐसी कार्रवाई पर, भूमि पूरी तरह से राज्य में निहित होगी, सभी ऋणभारों से मुक्त। धारा-17 की उप-धारा-(3) में वह क्षति प्रदान की गई है जो कलेक्टर द्वारा इच्छुक व्यक्तियों को खड़ी फसलों और पेड़ों या अचानक बेदखली के कारण उनके द्वारा किए गए किसी अन्य नुकसान के मुआवजे के रूप में पेश की जानी है। यदि प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जाता है, तो ऐसी फसलों और पेड़ों का मूल्य और इस तरह के नुकसान को अधिनियम के प्रावधानों के तहत किए गए पंचाट में शामिल किया जाएगा। उप-धारा-(3 ए) आगे जोत धारकों के हितों की इस सीमा तक रक्षा करती है कि धारा-17 की उप-धारा-(1) या उप-धारा-(2) के तहत कब्जा लेने से पहले, कलेक्टर को अनुमानित मुआवजे का 80% इच्छुक व्यक्तियों को देना होगा। इनकार के मामले में, या इच्छुक व्यक्ति की पात्रता से संबंधित किसी भी विवाद में, मुआवजा अधिनियम, 1894 की धारा-31 के प्रावधानों के अनुसार जमा किया जाना है।

110. धारा-17 की उपधारा-(4), हालांकि, यह प्रदान करती है कि जहां राज्य सरकार ने राय बनाई है कि उप-धारा-(1) या उप-धारा-(2) के प्रावधान लागू हैं, वह धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण के लिए निर्देश दे सकती है और यदि ऐसा करती है, तो किसी भी समय भूमि के संबंध में धारा-6 के तहत घोषणा की जा

सकती है, अधिनियम, 1894 की धारा-4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद। धारा-5-ए किसी भी भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति द्वारा आपत्ति करने का चरण है, जब भूमि अधिग्रहण करने के राज्य के इरादे को धारा-4 (1) के तहत अधिसूचित किया गया है। कलेक्टर लिखित रूप में उसे की गई आपत्तियों पर जांच करने और राज्य सरकार के निर्णय के लिए उसके द्वारा अवधारित कार्यवाही के रिकॉर्ड के साथ आपत्तियों पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है, जिसका अनुमोदन इच्छुक व्यक्ति/कार्यकाल धारकों की आपत्तियों पर अंतिम होगा।

111. भूमि अर्जन अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है। एक स्वामित्व कानून होने के नाते, यह तय है कि इसके प्रावधानों का सख्ती से पालन किया जाना है। भूमि अर्जन अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित की गई प्रक्रिया न्यायालय द्वारा इसकी कड़ी व्याख्या के अध्यधीन होगी, जब कभी इसके अंतर्गत की गई किसी कार्यवाही को चुनौती दी जाती है। अधिनियम की धारा-17(1) और 17(4) स्वतंत्र हैं। धारा-17(1) के तहत जारी अधिसूचना के मामले में, धारा-17(4) के तहत भी अधिसूचना जारी करना आवश्यक नहीं है। धारा-5-क के अंतर्गत जांच तभी समाप्त की जाती है जब धारा-17(1) और 17(4) दोनों के अंतर्गत अधिसूचना जारी की जाती है। धारा-17(1) और 17(4) सपठित धारा-4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने के साथ, अधिनिर्णय दिए बिना भूमि का कब्जा लेने के लिए राज्य सरकार के इरादे की अभिव्यक्ति अधिसूचित की जाती है। विधायी योजना में, राज्य सरकार को यह अधिसूचित करने के लिए अधिसूचना जारी करने का अधिकार है कि धारा-17(1) को ध्यान में रखते हुए, उसकी राय में, धारा-17(4) को लागू करने की आवश्यकता है, जिसके परिणामस्वरूप धारा-5-क के तहत जांच या उक्त प्रावधान के तहत कार्यकाल धारक को सुनवाई का अवसर समाप्त हो जाता है।

112. संवैधानिक योजना में, संपत्ति का अधिकार अनुच्छेद 300-ए के तहत इस हद तक संरक्षित है कि किसी को भी कानून के अधिकार द्वारा बचाई गई अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। संविधान के भाग III में निहित अनुच्छेद 31-A और 31-C अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के अपवाद की प्रकृति के हैं। अधिनियम, 1894 की सांविधिक स्कीम के अंतर्गत होने के कारण धारा-17(1) और 17(4) के अंतर्गत अर्जन अधिसूचनाएं, तात्कालिकता का आह्वान और जांच का वितरण, संविधान द्वारा सुरक्षित हैं, यदि वे संविधान के भाग-III में अंतवष्ट अनुच्छेद 31-क और 31-ग की अपेक्षाओं की पुष्टि करती हैं। अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19 को अनुच्छेद 31-A और 31-C के दायरे से बाहर रखने के साथ, अधिनियम, 1894 की धारा-5-A के तहत प्रदान किए गए अधिग्रहण पर आपत्ति करने के लिए काश्तकार धारक के अधिकार को मौलिक अधिकार या संविधान द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार के समान अधिकार नहीं कहा जा सकता है। धारा-5-ए एक वैधानिक अधिकार है जो किरायेदार धारकों/व्यक्ति को प्रदान किए गए समय के भीतर भूमि के अधिग्रहण के लिए लिखित रूप में आपत्ति करने के इच्छुक व्यक्ति को प्रदान

किया गया है। धारा-17(1) और 17(4) के तहत अधिसूचनाओं के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा इसका वंचन, इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 300-ए से प्रभावित नहीं होता है। तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा भूमि का ज़ब्त करना, अपने आप में, अनुच्छेद 300-ए का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। धारा-17(4) के तहत जारी अधिसूचना के दौरान सुनवाई के वैधानिक अधिकार से वंचित करने में सरकार के कार्य को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि अनुच्छेद 14 और 19 के तहत पट्टेदार धारकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है या यह संविधान के अनुच्छेद 300-ए का उल्लंघन है, धारा-17(4) के तहत अधिसूचना जारी करने में राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को कोई चुनौती दिए बिना। वास्तव में, इस बात पर झगड़ा नहीं हो सकता है कि अधिनियम, 1894 की धारा-17(4) सपठित धारा-17(1) के तहत अधिसूचनाओं को चुनौती दी जा सकती है और वैधता का परीक्षण सभी कानूनी मापदंडों पर किया जा सकता है जैसा कि कानून के तहत उपलब्ध है, इस आधार पर कि यह वैधानिक योजना का उल्लंघन है या इसके विपरीत है।

113. "प्रख्यात डोमेन" एक संप्रभु राज्य का अधिकार या शक्ति है जो सार्वजनिक उपयोग या उद्देश्यों के लिए क्षेत्रीय संप्रभुता के भीतर निजी संपत्ति को विनियोजित करने के लिए है। यह मालिक की सहमति के बिना सार्वजनिक उपयोग के लिए संपत्ति लेने के लिए सरकार के मजबूत हाथ का प्रयोग है। इसे किसी संवैधानिक मान्यता की आवश्यकता नहीं है; यह संप्रभुता का एक गुण है और संप्रभु सरकार के लिए आवश्यक है। प्रख्यात डोमेन की शक्ति, सरकार में निहित होने के कारण, सार्वजनिक हित, सामान्य कल्याण और सार्वजनिक उद्देश्य के लिए प्रयोग योग्य है। सार्वजनिक हित में या सार्वजनिक उद्देश्य के लिए राज्य द्वारा निजी संपत्ति का अधिग्रहण प्रख्यात डोमेन के अधिकार के प्रवर्तन के अलावा और कुछ नहीं है। अधिनियम, 1894 में सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी विशेष संपत्ति के अधिग्रहण का प्रत्यक्ष प्रावधान है। हालांकि संपत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 300-ए में कहा गया है कि कानून के अधिकार के बिना किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। [आनंद सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य29 के संदर्भ पैरा-'40' और '41']

114. जैसा कि दिल्ली प्रशासन बनाम गुरदीप सिंह उबन और अन्य30 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था, इच्छुक व्यक्ति धारा-5-ए के तहत निम्नलिखित आधारों पर आपत्तियां दर्ज कर सकता है: -

(i) जिस प्रयोजन के लिए भूमि अधिगृहीत की गई है वह सार्वजनिक प्रयोजन नहीं है;

(ii) भले ही प्रयोजन लोक प्रयोजन है, आपत्तिकर्ता की भूमि को लिया जाना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रयोजन की पूर्ति पहले से प्रस्तावित अन्य भूमि या किसी अन्य भूमि द्वारा की जा सकती है जिसे आपत्तिकर्ता संदर्भित कर सकता है; नहीं तो

(iii) किसी भी स्थिति में, भले ही भूमि सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आवश्यक हो, विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में, जिसमें आपत्तिकर्ता को रखा गया है, यह अधिग्रहण से उसकी भूमि को हटाने के लिए एक उपयुक्त मामला है।

(ग) पूर्ववर्ती:- कानूनी स्थिति:-

115. राज्य के प्रतिष्ठित डोमेन की शक्ति के प्रयोग में अपनी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए धारा-5-ए के तहत आपत्ति दर्ज करने के लिए भूमि धारकों को प्रदत्त अधिकार की प्रकृति पर एक लंबी बहस हुई है। वर्ष 1964 से शुरू होने वाले सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों की चर्चा, उसी पर कुछ प्रकाश डालेगी।

116. नंदेश्वर प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 31 में, यह देखा गया था कि धारा-5-ए के तहत आपत्ति दर्ज करने का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है जब किसी व्यक्ति की संपत्ति को अधिग्रहण की धमकी दी जा रही है और उस अधिकार को एक साइड-विंड द्वारा छीना नहीं जा सकता है।

117. नंदेश्वर प्रसाद (उपरोक्त) में उपरोक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह मुंशी सिंह और अन्य बनाम भारत संघ32 में पैरा-'7' में अवधारित किया गया था कि:

"7. धारा-5-ए एक बहुत ही न्यायसंगत और संपूर्ण सिद्धांत का प्रतीक है कि जिस व्यक्ति की संपत्ति अर्जित की जा रही है या अर्जित की जाने वाली है, उसे संबंधित अधिकारियों को यह समझाने का उचित और उचित अवसर होना चाहिए कि उस व्यक्ति से संबंधित संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। .....xxxxxxx....."

118. अधिनियम की धारा-5-क की उपधारा-(2) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए मुंशी सिंह में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:-

"7. .....xxxxxxxxxxxxx..... इसलिए, विधायिका ने प्रस्तावित अधिग्रहण के खिलाफ आपत्तियां दर्ज करने और उनकी आपत्तियों के निपटान के लिए इच्छुक व्यक्तियों के लिए पूर्ण प्रावधान किए हैं। यह केवल तात्कालिकता के मामलों में है कि धारा-5-ए के प्रावधानों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त सरकार को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं।

119. भारत संघ और अन्य बनाम मुकेश हंस आदि 33 में, सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया था कि: -

"36. ..... अधिनियम की धारा-5-क के अंतर्गत विचारित प्रतिनिधित्व और सुनवाई का अधिकार उस व्यक्ति का बहुत मूल्यवान अधिकार है जिसकी संपत्ति का अधिग्रहण किया जाना है और उसे संबंधित प्राधिकारियों को यह समझाने का उचित और उचित अवसर मिलना चाहिए कि उस व्यक्ति की संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, हमारी राय में, यदि उपयुक्त सरकार इस न्यूनतम अधिकार को वापस लेने का निर्णय लेती है, तो ऐसा करने का उसका निर्णय इसका समर्थन करने के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री पर

आधारित होना चाहिए और धारा-5-ए के उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए।

120. हिंदुस्तान पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम डेरियस शापुर चेनाई और अन्य34 में, धारा-5-ए के तहत अधिकार की प्रकृति से निपटने के दौरान, उपर्युक्त निर्णयों में टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह पैरा-'7' और '10' में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार देखा गया था: -

"7. यह विवाद में नहीं है कि अधिनियम की धारा-5-ए उस व्यक्ति के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार प्रदान करती है जिसकी भूमि अधिग्रहित की जानी है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 300A में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, राज्य 'प्रतिष्ठित क्षेत्र' की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति की संपत्ति के अधिकार को प्राप्त करके हस्तक्षेप कर सकता है, लेकिन यह सार्वजनिक उद्देश्य के लिए होना चाहिए और इसके लिए उचित मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए।

10. यह ट्राइट है कि किसी व्यक्ति को दी गई सुनवाई एक प्रभावी होनी चाहिए और केवल औपचारिकता नहीं होनी चाहिए। सार्वजनिक प्रयोजन के संबंध में राय बनाने के साथ-साथ उसकी उपयुक्तता को प्रासंगिक कारकों पर विचार करने और अप्रासंगिक कारकों की अस्वीकृति के संबंध में दिमाग के आवेदन से पहले किया जाना चाहिए। राज्य को अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया में कानून में कोई गलत दिशा नहीं होनी चाहिए। यह भी विवाद में नहीं है कि अधिनियम की धारा-5-ए एक मूल्यवान महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करती है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 300 ए में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए एक मौलिक अधिकार के समान माना गया है। "

121. आनंद सिंह (उपरोक्त) में, यह देखा गया था कि:-

"42. जब सरकार सार्वजनिक उद्देश्य के लिए विशेष संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के लिए कार्यवाही करती है, तो एकमात्र अधिकार जो मालिक या संपत्ति में रुचि रखने वाले व्यक्ति के पास है, वह अधिनियम की धारा-5 ए के तहत निर्धारित समय के भीतर अपनी आपत्तियां प्रस्तुत करना है और राज्य अधिकारियों को उस विशेष भूमि के अधिग्रहण को छोड़ने के लिए राजी करना है जैसे कि कथित सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि की अनुपयुक्तता; इस तरह के ज़ब्त, सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक भूमि की उपलब्धता आदि के कारण उसे होने वाली गंभीर कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। इसके अलावा, प्रस्तावित अधिग्रहण पर आपत्तियां दर्ज करने के इच्छुक मालिक या व्यक्ति को प्रदत्त अधिकार न केवल एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकार है, बल्कि अनिवार्य अधिग्रहण के लिए उचित और प्राकृतिक न्याय के मौलिक सिद्धांतों के अनुरूप प्रावधान भी करता है।

43. ऐसे मामले में धारा-5A के तहत जांच को दूर करने की असाधारण और असाधारण शक्ति जहां भूमि का कब्जा प्रस्तुत या अप्रत्याशित आपातकाल में आवश्यक है,

अधिनियम की धारा-17 में प्रदान किया गया है। ऐसी शक्ति एक नियमित शक्ति नहीं है और तत्काल कब्जे की आवश्यकता वाली परिस्थितियों को बचाने के लिए इसे हल्के ढंग से लागू नहीं किया जाना चाहिए। धारा-5क के अंतर्गत जांच समाप्त करने में असाधारण शक्ति का प्रयोग करने के लिए दिशा-निर्देश धारा-17 में ही अंतनहित हैं। शक्ति जितनी असाधारण होगी, सरकार को अपने प्रयोग में उतना ही अधिक चौकस होना चाहिए। इसलिए, सरकार को स्पष्ट रूप से धारा-5 ए के तहत जांच करने से पहले अपने दिमाग का उपयोग करना होगा कि क्या तात्कालिकता ऐसी प्रकृति की है जो धारा-5 ए के तहत सारांश जांच को समाप्त करने को उचित ठहराती है।

122. संपत्ति का अधिकार अब न केवल संवैधानिक या वैधानिक अधिकार माना जाता है, बल्कि मानव अधिकार भी माना जाता है। [संदर्भ पीटी मुनिचिक्कन्ना रेड्डी बनाम रेवम्मा 35 और हरियाणा राज्य बनाम मुकेश कुमार और अन्य36

123. बाबू राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य37 में, ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य38 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर जोर दिया गया था कि धारा-5-ए के तहत एक अधिकार केवल वैधानिक नहीं है, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 के तहत मौलिक अधिकारों का स्वाद भी है। उसमें यह नोट किया गया था कि ओम प्रकाश (उपरोक्त) में इस तरह की टिप्पणी पंजाब राज्य और अन्य बनाम गुरदयाल सिंह और अन्य39 में पहले के फैसले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के आलोक में की गई थी।

124. ओम प्रकाश (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारा-5-ए के तहत अधिकार की प्रकृति के बारे में पंजाब राज्य बनाम गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) में टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए कहा कि संपत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं रह गया है और संविधान के अनुच्छेद 300-ए द्वारा बचाया गया है। हालांकि, यह नोट किया गया था कि अधिनियम की धारा-5-ए की तुलना में अनुच्छेद 14 के संबंध में पंजाब राज्य बनाम गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) में अवलोकन उचित रहेगा।

125. ओम प्रकाश (उपरोक्त) में पैरा-'21' में प्रासंगिक टिप्पणियों को पंजाब राज्य बनाम गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) के पैरा-'16' में बयान के संदर्भ में यहां नोट किया गया है: -

"21. अपीलकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शांति भूषण द्वारा पंजाब राज्य और एक अन्य बनाम गुरदयाल सिंह और अन्य [(1980) 2 एस.सी.सी. 471] के मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था, जिसमें कृष्णा अय्यर ने अधिनियम की धारा-17 के तहत आपातकालीन शक्तियों के प्रयोग के सवाल से निपटने के लिए रिपोर्ट के पैरा 16 में देखा था कि वास्तविक तात्कालिकता को छोड़कर जहां जनहित में सुनवाई के लिए आवश्यक न्यूनतम समय भी बर्दाश्त नहीं किया गया, भूमि अधिग्रहण अधिकारियों को

अधिनियम की धारा-17 के तहत जांच नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार, इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के अनुसार, धारा-5-ए के तहत जांच न केवल वैधानिक है, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 के तहत मौलिक अधिकारों का भी स्वाद है, हालांकि संपत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं रह गया है, कम से कम अनुच्छेद 14 के संबंध में अवलोकन भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-5-ए के बारे में उचित रहेगा।

126. इसके साथ ही, पंजाब राज्य बनाम गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) में पैरा-'16' में टिप्पणियों को भी यहां नोट किया गया है: -

"सहायक केस-लॉ का उल्लेख किए बिना, यह मौलिक है कि किसी व्यक्ति की संपत्ति को अनिवार्य रूप से लेना एक गंभीर मामला है और आदमी जितना छोटा होता है, मामला उतना ही गंभीर होता है। उसे वंचित करने से पहले उसे सुनना उचित और मनमानी का पूर्वव्यापी है, और इस प्रशासनिक निष्पक्षता से इनकार करना अच्छे कारणों को छोड़कर संवैधानिक अभिशाप है। वास्तविक तात्कालिकता को छोड़कर जहां जनहित सुनवाई देने के लिए आवश्यक न्यूनतम समय भी बर्दाश्त नहीं करता है, भूमि अधिग्रहण अधिकारियों को अनुच्छेद 14 (और 19) को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा-17 के तहत जांच नहीं करनी चाहिए। यहां एक नींद की प्रक्रिया, जो वर्षों से लंबित है और अचानक खुद को तत्काल जबरन लेने में उत्तेजित करती है, आपातकालीन शक्ति का उपहास करती है।

127. सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त दोनों टिप्पणियों का सावधानीपूर्वक और संयुक्त पठन यह स्पष्ट करता है कि अनुच्छेद 14 और 19 की समानता पंजाब राज्य बनाम गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) के मामले में अधिग्रहण की कार्यवाही में तर्कसंगतता और प्रशासनिक निष्पक्षता के सिद्धांतों को उधार लेने के लिए तैयार की गई थी, यह देखने के लिए कि वास्तविक तात्कालिकता को बचाने के लिए जहां सार्वजनिक हित सुनवाई देने के लिए आवश्यक न्यूनतम समय भी बर्दाश्त नहीं करता है, भूमि अधिग्रहण प्राधिकारियों को अनुच्छेद 14 (और 19) को ध्यान में रखते हुए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा-17 के अंतर्गत जांच नहीं करनी चाहिए।

128. गुरदयाल सिंह (उपरोक्त) में उपर्युक्त टिप्पणियों का अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि एक कार्यकाल धारक की धारा-5-ए के तहत सुनवाई के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 के तहत मौलिक अधिकारों में बढ़ा दिया गया है, जैसा कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा तर्क दिया जाना है।

129. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा-5-ए के तहत आपत्तियां, यदि दायर की जाती हैं, तो प्रत्येक आपत्तिकर्ता को प्रभावी सुनवाई का अवसर प्रदान करके कानून के अनुसार निपटाया जाना चाहिए, क्योंकि इसे खाली औपचारिकता नहीं कहा जा सकता है और, मामले में, ऐसी सुनवाई प्रदान नहीं की जाती है, बाद की कार्यवाही दूषित हो जाएगी।

अधिनियम की धारा-5-ए के तहत आवश्यक जांच को अधिनियम की धारा-17(4) के तहत शक्ति के प्रयोग में, केवल गंभीर तात्कालिकता और असाधारण परिस्थितियों में ही समाप्त किया जा सकता है, और राज्य का निर्णय इसके समर्थन में रिकॉर्ड पर सामग्री पर आधारित होना चाहिए, अन्यथा, यह शक्ति का मनमाना प्रयोग होगा और प्रशासनिक निष्पक्षता से इनकार करना एक संवैधानिक अभिशाप होगा। 'प्रख्यात डोमेन' की शक्ति का प्रयोग किसी व्यक्ति की संपत्ति के अधिकार को प्राप्त करके हस्तक्षेप कर सकता है, लेकिन इसे केवल सार्वजनिक उद्देश्य के लिए बनाया जाना चाहिए और भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। बिना किसी न्यायोचित कारण के अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकता है, क्योंकि यह प्रशासनिक प्रक्रिया में आवश्यक निष्पक्षता और तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता है। वास्तविक और वास्तविक तात्कालिकता के अभाव में, किसी भू-धारक (व्यथित व्यक्ति) को संबंधित प्राधिकारी के उचित विचार के लिए अपनी आपत्ति रखने के उचित और न्यायसंगत अवसर से वंचित करना उचित नहीं होगा। [उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर जोर दिया जाए]

जन्म। धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान की प्रक्रिया: -

130. अब प्रश्न यह होगा कि अधिनियम की धारा-5-क के अधीन अपेक्षित जांच को समाप्त करने के लिए धारा-17(4) के अधीन अत्यावश्यकता खंड को लागू करने के लिए राज्य द्वारा किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना अपेक्षित है।

131. भारत संघ और अन्य बनाम मुकेश हंस (उपरोक्त) में, उस प्रक्रिया के संबंध में चर्चा की गई है जिसका पालन राज्य द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा-17(1) और 17(4) के प्रावधानों को लागू करते समय किया जाना आवश्यक है।

132. यह देखा गया कि धारा-17(1) केवल यह मानती है कि अधिकारी धारा-9(1) नोटिस के प्रकाशन के 15 दिनों की समाप्ति के बाद एक पंचाट पारित करने से पहले भी भूमि पर कब्जा कर सकते हैं। धारा-17 की उप-धारा-(2) एक अलग प्रकार की तात्कालिकता पर विचार करती है, जो एक अप्रत्याशित आपातकाल होना चाहिए। इस धारा-के तहत, यदि उपयुक्त सरकार संतुष्ट है कि ऐसी अप्रत्याशित आपात स्थिति है, तो वह धारा-9 (1) के तहत विचारित 15 दिनों की अवधि की प्रतीक्षा किए बिना भी भूमि का कब्जा ले सकती है, जैसा कि धारा-17 की उप-धारा-(1) के प्रावधानों के खिलाफ है। धारा-17(4), हालांकि, उन मामलों में लागू की जा सकती है, जहां उपयुक्त सरकार इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि धारा-17 की उप-धारा-(1) और (2) के तहत आवश्यक तात्कालिकता या अप्रत्याशित तात्कालिकता मौजूद है; और इस प्रकार, यह निदेश दे सकता है कि धारा-5-क के उपबंध लागू नहीं

होंगे। ऐसा निदेश जारी होने पर, धारा-5-क के अंतर्गत जांच को समाप्त किया जा सकता है। यह माना जाता है कि धारा-17(4) अधिनियम के तहत अपेक्षित अधिग्रहण के सामान्य तरीके का अपवाद है और केवल तात्कालिकता या अप्रत्याशित तात्कालिकता का अस्तित्व हालांकि धारा-17(4) को लागू करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है, लेकिन यह अपने आप में 5-ए जांच के वितरण को निर्देशित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह देखा गया है कि धारा-17(1) के तहत एक तात्कालिकता या धारा-17(2) के तहत अप्रत्याशित आपातकाल का अस्तित्व ही 5-ए जांच को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। धारा-17(1) और (2) में तात्कालिकता या अप्रत्याशित आपातकालीन प्रावधान का अस्तित्व धारा-5-ए के तहत जांच से स्वतः ही समाप्त नहीं होगा।

133. परिणाम यह है कि 5-ए जांच को समाप्त करते समय उपयुक्त सरकार द्वारा दिमाग के आवेदन की आवश्यकता होगी और यह संभव है कि किसी दिए गए मामले में धारा-17(1) के तहत उपयुक्त सरकार द्वारा ध्यान दी गई तात्कालिकता या धारा-17(2) के तहत अप्रत्याशित आपातकाल, स्वयं ऐसी डिक्री का हो सकता है कि उसे उसी आधार पर धारा-17(2) के तहत जांच से मुक्त करने के लिए उपयुक्त सरकार की आवश्यकता हो सकती है 5-ए. लेकिन उपयुक्त सरकार द्वारा दिमाग लगाने की आवश्यकता है कि 5-ए जांच के वितरण के लिए इस तरह की तात्कालिकता अधिनियम की धारा-17(1) और (2) के तहत दो प्रकार की तात्कालिकताओं में निहित है।

इस प्रकार, धारा-5-ए के तहत प्रकृति और अधिकार को पैरा-'34' और '35' में निम्नानुसार समझाया गया है: -

"34. उपरोक्त निर्णय को सावधानीपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि नंदेश्वर प्रसाद के मामले (उपरोक्त) के उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह भी माना है कि अधिनियम के तहत 5 ए जांच की इस रियायत के विशेष संदर्भ में मामले के तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए।

35. इस स्तर पर, यह ध्यान देना प्रासंगिक है कि अधिग्रहण की कार्यवाही पर आपत्ति करने के लिए अधिनियम की धारा-5 ए के तहत इच्छुक मालिक/व्यक्ति को दिया गया सीमित अधिकार एक खाली औपचारिकता नहीं है और यह एक मौलिक अधिकार है, जिसे अच्छे और वैध कारण के लिए और अधिनियम की धारा-17(4) के तहत निर्धारित सीमाओं के भीतर छीना जा सकता है। 5A जांच का उद्देश्य और महत्व इस न्यायालय द्वारा मुंशी सिंह और अन्य बनाम भारत संघ {(1973) 2 SCC 337 के मामले में देखा गया था, जहां इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा था: -

"धारा-5-ए एक बहुत ही न्यायसंगत और संपूर्ण सिद्धांत का प्रतीक है कि एक व्यक्ति जिसकी संपत्ति अर्जित की जा रही है या अर्जित की जाने वाली है, उसे संबंधित अधिकारियों को यह समझाने का उचित और उचित अवसर होना चाहिए कि उस व्यक्ति से संबंधित संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। विधायिका ने प्रस्तावित अर्जन के विरुद्ध आपत्तियां दर्ज करने के इच्छुक व्यक्तियों के

लिए और उनकी आपत्तियों के निपटान के लिए पूर्ण उपबंध किए हैं . यह केवल तात्कालिकता के मामलों में है कि धारा-5-ए के प्रावधानों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त सरकार को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं।

134. यह आगे अवधारित किया गया था कि तात्कालिकता के आह्वान पर राय के गठन और दिमाग के आवेदन का आकलन कार्यवाही को देखने के अलावा नहीं किया जा सकता है जो आक्षेपित आदेश में समाप्त हुआ। इस प्रकार, राज्य के अभिलेखों की जांच किए जाने की आवश्यकता है।

135. आनंद सिंह (उपरोक्त) में उल्लिखित भारत संघ बनाम मुकेश हंस (उपरोक्त) के पैरा-'32' का उद्धरण निम्नानुसार है: -

"34.....xxxxxxx 32. इस प्रावधान का सावधानीपूर्वक अवलोकन जो अधिनियम के तहत अपेक्षित अधिग्रहण के सामान्य तरीके का अपवाद है, यह दर्शाता है कि केवल तात्कालिकता या अप्रत्याशित आपातकाल का अस्तित्व धारा-17(4) को लागू करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है, जो अपने आप में धारा-5-ए जांच के वितरण को निर्देशित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए संबंधित सरकार द्वारा एक राय बनाने की आवश्यकता है कि ऐसी तात्कालिकता या अप्रत्याशित आपात स्थिति के अस्तित्व के साथ-साथ (2004) 8 एस.सी.सी. 14 की धारा-5-क जांच को समाप्त करने की भी आवश्यकता है जो यह इंगित करती है कि विधायिका का इरादा धारा-5-क जांच को समाप्त करने से पहले समुचित सरकार द्वारा अपने दिमाग का प्रयोग करने का था। यह भी इंगित करता है कि धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता या धारा-17(2) के तहत अप्रत्याशित आपातकाल का अस्तित्व ही धारा-5-ए जांच को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। यदि विधायिका का यह इरादा नहीं होता, तो धारा-17 की उपधारा-(4) का उत्तरार्द्ध आवश्यक नहीं होता और विधायिका ने धारा-17(1) और (2) में स्वयं यह शामिल किया होता कि तात्कालिकता या अप्रत्याशित आपातकाल की ऐसी स्थिति में स्वतः ही धारा-5-ए जांच समाप्त हो जाएगी। लेकिन हमारी राय में समुचित सरकार द्वारा अप्रत्याशित आपातकाल के अस्तित्व के बावजूद धारा-5-क जांच को समाप्त करने की आवश्यकता पर आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है। धारा-5-क जांच को समाप्त करते समय समुचित सरकार द्वारा दिमाग लगाने की आवश्यकता के संबंध में हमारी इस समझ का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक मामले में जब धारा-17(1) के अंतर्गत अत्यावश्यकता पर विचार किया जाता है और धारा-17(2) के अंतर्गत अपेक्षित अप्रत्याशित आपातकाल विद्यमान होता है तो इसमें स्वयं धारा-5-क जांच को समाप्त करने की आवश्यकता शामिल नहीं होगी। किसी दिए गए मामले में यह संभव है कि धारा-17(1) के अंतर्गत समुचित सरकार द्वारा ध्यान में लाई गई तात्कालिकता अथवा धारा-17(2) के अंतर्गत अप्रत्याशित आपात स्थिति स्वयं इस स्तर की हो कि उसे उसी आधार पर समुचित सरकार से धारा-5-क के अंतर्गत जांच को समाप्त करने की आवश्यकता हो लेकिन तब समुचित

सरकार द्वारा इस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है कि धारा-17(1) के अंतर्गत ऐसी अत्यावश्यकता 5-अधिनियम की धारा-17(1) और (2) के तहत दो प्रकार की तात्कालिकता में एक जांच निहित है।

ग. न्यायिक पुनरावलोकन का दायरा:-

136. न्यायिक समीक्षा के दायरे के रूप में, हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्प लिमिटेड (उपरोक्त) में यह माना जाता है कि अधिनियम की धारा-6 में निहित निर्णायकता निर्विवाद रूप से एक आवश्यकता के साथ-साथ उद्देश्य से भी जुड़ी हुई है और इस संबंध में आमतौर पर, न्यायालय का अधिकार क्षेत्र सीमित है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि जब सुनवाई का अवसर स्पष्ट रूप से एक क़ानून द्वारा प्रदान किया गया है, इसका निष्ठापूर्वक अनुपालन किया जाना चाहिए। उक्त उद्देश्य के लिए, "ऐसे मामले में न्यायालय, जहां अधिनियम की धारा-5-ए के प्रावधानों का पूरी तरह से गैर-अनुपालन या पर्याप्त गैर-अनुपालन किया गया है, अपने हाथ नहीं जोड़ सकता है और रिट याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार नहीं कर सकता है। अधिनियम की धारा-6 की उपधारा-(3) एक घोषणा को एक निर्णायक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करती है। लेकिन जब निर्णय लेने की प्रक्रिया स्वयं सवालों के घेरे में हो, तो न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग उस स्थिति में किया जा सकता है जब आक्षेपित आदेश प्रसिद्ध सिद्धांतों, जैसे अवैधता, तर्कहीनता और प्रक्रियात्मक अनौचित्य से ग्रस्त हो। इसके अलावा, जब एक वैधानिक प्राधिकरण इतनी बड़ी शक्ति का प्रयोग करता है तो इसे निष्पक्ष और उचित तरीके से किया जाना चाहिए।

137. आनंद सिंह (उपरोक्त) से, पैरा-'45', '46' और '47' में प्रासंगिक चर्चा यहां नीचे नोट की जानी है: -

"45. यह सच है कि धारा-17 के तहत सरकार को दी गई शक्ति प्रशासनिक है और उसकी राय उचित वजन की हकदार है, लेकिन ऐसे मामले में जहां तात्कालिकता के बारे में राय बनाई जाती है, जो उद्देश्य के अनुरूप नहीं है, ऐसे प्रशासनिक निर्णय की न्यायिक समीक्षा आवश्यक हो सकती है।

46. किन परिस्थितियों में आपातकाल की शक्ति को लागू किया जा सकता है, यह धारा-17(2) में निर्दिष्ट किया गया है, लेकिन धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता के आह्वान की आवश्यकता वाली परिस्थितियों को प्रावधान में ही नहीं बताया गया है। सामान्यतया, किसी क्षेत्र (आवासीय उद्देश्यों के लिए) या शहर के नियोजित विकास में दशकों नहीं तो कई साल लगते हैं और इसलिए, कोई कारण नहीं है कि धारा-5 ए के तहत अपेक्षित सारांश जांच नहीं की जा सकती है और भूमि मालिकों / इच्छुक व्यक्तियों की आपत्तियों पर विचार नहीं किया जा सकता है। कई मामलों में, सामान्य धारणा के आधार पर, धारा-5क के तहत जांच पूरी होने में संभावित विलंब को जांच को समाप्त करने में असाधारण शक्ति के आह्वान के कारण के रूप में स्थापित किया जाता है, यह महसूस करते हुए कि भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति का एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान

अधिकार छीना जा रहा है और कुछ प्रयासों से जांच हमेशा शीघ्रता से पूरी की जा सकती है।

47. धारा-17 में विशेष प्रावधान किया गया है कि धारा-5 ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए योग्य और वास्तविक तात्कालिकता के मामलों में। सरकार को इस पहलू पर अपना दिमाग लगाना होगा कि तात्कालिकता ऐसी प्रकृति की है जिसके लिए धारा-5 ए के तहत जांच की आवश्यकता है। हमने पहले ही इस न्यायालय के कुछ निर्णयों पर ध्यान दिया है। इस न्यायालय के दो निर्णयों में विचारों का टकराव है; नारायण गोविंद गावटे3 और पिस्ता देवी6. ओम प्रकाश 10 में इस न्यायालय ने कहा कि पिस्ता देवी6 में निर्णय उन दिनों की तथ्य स्थिति तक ही सीमित होना चाहिए जब यह प्रदान किया गया था और दो-न्यायाधीशों की पीठ नारायण गोविंद गावटे के फैसले के विपरीत प्रस्ताव नहीं रख सकती थी। हम सहमत हैं।

138. भारत संघ और अन्य बनाम प्रवीण गुप्ता और अन्य40 में सर्वोच्च न्यायालय के पहले के फैसले में, यह माना जाता है कि अधिसूचना की "भाषा" निर्णायक नहीं है, लेकिन न्यायालय को इस सामग्री पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या अधिनियम की धारा-17(4) के तहत शक्ति का प्रयोग करने की कोई तात्कालिकता है। यह स्थापित विधिक स्थिति है कि तात्कालिकता पर निर्णय एक प्रशासनिक निर्णय है और यह अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के आधार पर समुचित सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि का मामला है। इसलिए, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई तर्कसंगत आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं थी कि धारा-17(4) के तहत शक्ति के प्रयोग में धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने की तात्कालिकता है।

139. राजस्थान हाउसिंग बोर्ड और अन्य बनाम श्री किशन और अन्य41 में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि तात्कालिकता शक्तियों को लागू करने के लिए एक राय बनाने के लिए किस तरह की सामग्री की आवश्यकता थी। उसमें यह नोट किया गया था कि उसमें उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच इस तथ्य से अधिक प्रभावित थी कि अधिसूचना में यह नहीं कहा गया था कि सरकार की राय थी कि यह एक ऐसा मामला था जहां धारा-5-ए के तहत जांच को धारा-17(4) के तहत छोड़ दिया जाना चाहिए। हालांकि, उक्त मामले में अदालत के समक्ष रखी गई सामग्री ने तात्कालिकता खंड को लागू करने के कारणों का खुलासा किया कि सरकार ने उचित सत्यापन पर पाया कि धारा-5-ए के तहत जांच करने से हाउसिंग बोर्ड की पूरी योजना और समय अनुसूची को खतरे में डालने में अनावश्यक देरी होगी। न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री के संदर्भ में, यह देखा गया था कि: -

"यह याद रखना चाहिए कि धारा-17(4) के तहत संतुष्टि एक व्यक्तिपरक है और जब तक ऐसी सामग्री है जिस पर सरकार उक्त संतुष्टि का निष्पक्ष रूप से गठन कर सकती है, न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही अपीलीय प्राधिकरण के रूप में सामग्री की जांच करेगा। यह न केवल धारा-17(4) के तहत बल्कि आम तौर पर व्यक्तिपरक संतुष्टि के

संबंध में भी इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा पुष्टि की गई सिद्धांत है।

140. ओम प्रकाश (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने समक्ष रखी गई सामग्री का उल्लेख किया है, जैसा कि अधिनियम की धारा-5-ए के तहत राय बनाने के लिए सरकार को उपलब्ध थी और फिर निष्कर्ष निकाला कि उक्त मामले में धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने की कार्रवाई किसी वास्तविक और वास्तविक व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित नहीं थी, (ख) राज्य प्राधिकारियों को उपलब्ध किसी संगत डाटा के आधार पर जब उन्होंने अधिनियम की धारा-4(1) के अंतर्गत आक्षेपित अधिसूचना जारी की और धारा-17(4) का सहारा लेकर धारा-5-क जांच को समाप्त कर दिया।

141. ओम प्रकाश (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एपी सरीन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य42 में पहले के एक फैसले का उल्लेख किया है कि शहर या कस्बे आदि के नियोजित विकास के लिए अधिग्रहण के मामले में तात्कालिकता के अस्तित्व के संबंध में अवलोकन [एपी सरीन (उपरोक्त)], उस विशेष मामले के तथ्यों पर किया गया था। आगे यह देखा गया कि इसका मतलब केवल यह है कि, उपयुक्त मामलों में, जब किसी शहर या कस्बे के नियोजित विकास के लिए अधिग्रहण की आवश्यकता होती है, तो तात्कालिकता प्रावधान को लागू किया जा सकता है, जिसे उत्तर प्रदेश विधानमंडल द्वारा धारा-17(1-ए) के अधिनियमन द्वारा विधायी रूप से मान्यता प्राप्त है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता है कि शहर या कस्बे के नियोजित विकास के हर मामले में, आवश्यक रूप से और लगभग स्वचालित रूप से तात्कालिकता खंड को लागू करना होगा और धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करना होगा।

142. इस प्रकार यह अवधारित किया गया था:-

"23. .....xxxxxxxx.....यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। उपर्युक्त टिप्पणियों को कोई पूर्ण प्रस्ताव निर्धारित करने के लिए नहीं माना जा सकता है कि जब भी शहर या कस्बे के नियोजित विकास के लिए कोई अधिग्रहण किया जाना है, तो धारा-5-ए को लगभग निष्क्रिय या निष्क्रिय माना जाना चाहिए। पूर्वोक्त निर्णय का अनुपात ऐसा नहीं है और उस प्रभाव के लिए कुछ भी निहित रूप से पूर्वोक्त अवलोकन में नहीं पढ़ा जा सकता है जो एक सामान्य प्रकृति का है। यह केवल यह सुझाव देता है कि उपयुक्त मामलों में, तात्कालिकता खंड को तब लागू किया जा सकता है जब शहर या कस्बे के नियोजित विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जाना प्रस्तावित हो।

143. श्रीमती मंजू लता अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य43 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून पर विचार करते हुए कहा है कि: -

"39. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक सीमित है और प्राधिकरण के निर्णय के खिलाफ नहीं है न्यायालय कानून की त्रुटियों या मौलिक प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं को ठीक करने के लिए समीक्षा कर सकता है, जिससे प्रकट अन्याय हो सकता है और असाधारण परिस्थितियों में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप हो सकता है। न्यायिक समीक्षा में, न्यायालय सबूतों की मूल्यांकन करने और अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के अधिकार क्षेत्र पर जोर नहीं दे सकता क्योंकि यह किसी निर्णय की अपील नहीं है। निर्णय की समीक्षा की अनुमति नहीं है जहां निष्कर्ष कानूनी साक्ष्य के आधार पर एक प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए जाते हैं और उक्त निष्कर्ष आईपीएसआई दीक्षित या अनुमानों या अनुमानों पर आधारित नहीं हैं। न्यायालय इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं कर सकता कि मामले में साक्ष्य के मूल्यांकन की आवश्यकता है। "साक्ष्य के मूल्यांकन और सबूतों की कुल कमी के बीच, एक सराहनीय अंतर है जिसे कभी भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

144. उसमें यह देखा गया था कि रिट न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति सीमित है, लेकिन उसके पास यह जांचने की क्षमता है कि क्या कानून द्वारा अपेक्षित ऐसी राय बनाने के लिए सामग्री थी या संबंधित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत हैं। यह स्थापित कानून है कि प्रासंगिक सामग्री पर विचार न करने से आदेश विकृत हो जाता है। एक निष्कर्ष को विकृत कहा जाता है जब इसे रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं किया जाता है या वे कानून के खिलाफ होते हैं या जहां वे प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के दोष से पीड़ित होते हैं।

145. अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच के सवाल पर, श्रीमती मंजू लता अग्रवाल (उपरोक्त) में यह देखा गया था कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के गुणों पर समीक्षा न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए मौलिक है। समीक्षा की शक्ति तथ्य के प्रश्न पर निर्णय तक भी विस्तारित हो सकती है। जिस त्रुटि को ठीक करने की मांग की गई है, वह निर्विवाद रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कारक होना चाहिए। यह भी देखा गया कि :-

"43. यह प्रश्न कि अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच आवश्यक है या नहीं, तथ्य का प्रश्न है और इसे सरकार द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस कारण से निर्धारित करने की आवश्यकता है कि कोई सीधा जैकेट फॉर्मूला विकसित नहीं किया जा सकता है कि किन परिस्थितियों में तात्कालिकता खंड को लागू किया जाना चाहिए। न्यायालय की भूमिका बहुत सीमित है और यह केवल यह देख सकता है कि क्या तात्कालिकता खंड को लागू करने के बारे में राय बनाने के लिए कोई सामग्री थी या क्या सरकार ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से शक्ति का प्रयोग किया था। यह प्रश्न कि क्या तात्कालिकता मौजूद है या नहीं, मुख्य रूप से सरकार के अवधारण का मामला है जो न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा के दायरे के अध्यधीन है। "

146. एक ऐसे मामले में न्यायिक समीक्षा के दायरे के रूप में जहां निर्णय सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, राजस्थान हाउसिंग बोर्ड (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को श्रीमती मंजू लता अग्रवाल (उपरोक्त) में निम्नानुसार नोट किया गया था: -

"44. राजस्थान हाउसिंग बोर्ड (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यहां शामिल मुद्दे से निपटने के दौरान, निम्नानुसार अवधारित किया:

"यह याद रखना चाहिए कि धारा-17(4) के तहत संतुष्टि एक व्यक्तिपरक है और जब तक ऐसी सामग्री है जिस पर सरकार उक्त संतुष्टि का निष्पक्ष रूप से गठन कर सकती है, न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही अपीलीय प्राधिकरण के रूप में सामग्री की जांच करेगा। यह इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा धारा-17(4) के तहत नहीं, बल्कि आम तौर पर व्यक्तिपरक संतुष्टि के संबंध में भी पुष्टि की गई है।

147. पैरा-'45' में इसे आगे निम्नानुसार नोट किया गया था: -

"45. बेसक पर सामग्री की पर्याप्तता और विश्वसनीयता, जिसके निष्कर्ष पर पहुंचा गया है, को रिट क्षेत्राधिकार में न्यायालय के समक्ष प्रचारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (1984) 4 एस.सी.सी. 635; जनरल न्यायालय मार्शल और अन्य बनाम कर्नल अनिलतेज सिंह धालीवाल, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 983 और आरएस सैनी बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (1999) 8 एस.सी.सी. 90"

148. पैरा-'47', '48', '49', '50', '51', '53', '55', '56' और '57' में, यह नोट किया गया था कि: -

"47. बॉम्बे डाइंग एंड एमएफजी कंपनी लिमिटेड (3) बनाम बॉम्बे एनवायरनमेंटल एक्शन ग्रुप और अन्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1489 में, सर्वोच्च न्यायालय ने शहरी विकास के एक मामले में न्यायिक समीक्षा के दायरे पर विचार किया, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखा और नगर नियोजन के सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि कार्यकारी कार्रवाई के मामले में, न्यायालय कई कारकों पर गौर कर सकता है और उन पर विचार कर सकता है, अर्थात्:

(i) क्या सांविधिक प्राधिकरण को प्रदत्त विवेकाधिकार का समुचित रूप से प्रयोग किया गया था;

(ii) क्या ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप है;

(iii) क्या ऐसी कार्रवाई करते समय कार्यकारी सरकार ने अधिनियम के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखा था;

(iv) क्या इससे अन्य संगत कारक उप-सिद्ध होते हैं जो जनता को व्यापक रूप से प्रभावित करेंगे;

(v) क्या सतत् विकास के सिद्धांतों, जो हमारे संवैधानिक कानून के भाग बन गए हैं, पर विचार किया गया है; और

(vi) क्या ऐसे निर्णय पर पहुंचने में वास्तविक सम्यक प्रक्रिया और प्रक्रियात्मक सम्यक प्रक्रिया दोनों का अनुपालन किया गया था;

48. सवर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 232 इस तरह के मुद्दे से निपटने के दौरान, न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"इसे देखते हुए, आयुक्त के आदेश में कुछ अप्रासंगिक मामलों की कमी या संदर्भ ने अपीलीय या पुनरीक्षण चरण में योग्यता के आधार पर मामले के निर्णय को पूर्वाग्रह नहीं किया था। प्रस्ताव के लिए अधिकार है कि जहां एक घरेलू न्यायाधिकरण का आदेश कई आधारों का संदर्भ देता है, कुछ प्रासंगिक और अस्तित्वमान, और अन्य अप्रासंगिक और अस्तित्वहीन, आदेश को बनाए रखा जाएगा यदि अदालत संतुष्ट है कि प्राधिकरण ने प्रासंगिक और मौजूदा आधार के आधार पर आदेश पारित किया होगा, और अप्रासंगिक या गैर-मौजूदा आधार का बहिष्करण अंतिम निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता था।

(एम फासिस जोड़ा गया)

49. इसी तरह के विचार को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने द्वारका दास भाटिया बनाम भारत संघ मामले में दोहराया है। जम्मू और कश्मीर राज्य, ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 164; उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम विद्याभूषण महापात्र, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 779; महाराष्ट्र राज्य बनाम बाबूलाल कृपाराम टक्कामोर और अन्य, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1353; बिन्नी लिमिटेड वी। उनके कामगार और अन्य, ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1975 और पीडी अग्रवाल बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2064

50. उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि यदि किसी प्राधिकरण द्वारा प्राप्त आदेश कुछ प्रासंगिक सामग्री और कुछ अन्य अप्रासंगिक और गैर-विद्यमान सामग्री के विचार पर आधारित है, तो आदेश को बनाए रखा जा सकता है, बशर्ते प्रासंगिक मौजूदा सामग्री ऐसी राय के गठन के लिए पर्याप्त थी। इस प्रकार, यदि आदेश प्रासंगिक और मौजूदा आधारों पर पारित किया जा सकता है, तो अप्रासंगिक या गैर-मौजूद सामग्री का विचार सारहीन हो जाता है।

51. हालांकि, पूर्वोक्त कानूनी प्रस्ताव केवल उस मामले में लागू होता है जहां प्राधिकरण को वस्तुनिष्ठ संतुष्टि पर आदेश पारित करना होता है। यह एक अपवाद बनाता है कि ऐसा प्रस्ताव लागू नहीं होगा जहां प्राधिकरण द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि पर निर्णय लिया जाना है।

53. ज़ोरा सिंह बनाम जेएम टंडन, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1537 में, न्यायालय ने एक समान मुद्दे पर विचार किया और निम्नानुसार अवधारित किया:

"सिद्धांत है कि यदि ट्रिब्यूनल द्वारा इसके निष्कर्ष के लिए भरोसा किए गए कुछ कारण

बाहरी या अन्यथा अस्थिर हो जाते हैं, तो इसका निर्णय दूषित हो जाएगा, उन मामलों पर लागू होता है जिनमें निष्कर्ष उद्देश्य संतुष्टि के आकलन पर नहीं पहुंचा जाता है। इसका कारण यह है कि जबकि ऐसे मामलों में जहां निर्णय व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित होता है, यदि कुछ कारण अप्रासंगिक या अमान्य हो जाते हैं, तो एक उच्चतर न्यायालय के लिए यह पता लगाना असंभव होगा कि कौन से कारण, प्रासंगिक या अप्रासंगिक, वैध या अमान्य, इस तरह की संतुष्टि के बारे में लाए थे। लेकिन ऐसे मामले में जहां निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ तथ्यों और सबूतों पर आधारित है, ऐसी कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी। यदि यह पाया जाता है कि ट्रिब्यूनल के समक्ष कानूनी सबूत थे, भले ही उनमें से कुछ अप्रासंगिक थे, तो एक उच्चतर न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा यदि निष्कर्ष बाकी सबूतों पर कायम रह सकता है। इसका कारण यह है कि उत्प्रेषण के लिए एक रिट याचिका में, उच्चतर न्यायालय अपील में नहीं बैठता है, बल्कि केवल पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, और इसलिए, साक्ष्य की पर्याप्तता के सवाल में प्रवेश नहीं करता है।

(एम फासिस जोड़ा गया)

55. इस प्रकार, ऐसे मामले में जहां आदेश व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, अप्रासंगिक या गैर-मौजूद सामग्री का विचार घातक हो जाता है और आदेश को ही खराब कर देता है। ऐसा दृष्टिकोण केशव तलपड़े बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से पुष्ट होता है। सम्राट, ए.आई.आर. 1943 एफसी 1; शिब्बन लाल वि. उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 179; रामेश्वर लाल वि. बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1303; पुष्पदेवी बनाम एम. एल. वधावन आकाशवाणी, 1987 एस.सी. 1748; और वशिष्ठ नारायण वी। उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 1272।

56. यही स्थिति बनी रहती है जहां प्राधिकरण महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करने में विफल रहता है, इस कारण से कि यदि सामग्री या महत्वपूर्ण तथ्य जो प्राधिकरण के दिमाग को एक या दूसरे तरीके से प्रभावित करेंगे, उन्हें नहीं रखा जाता है या प्राधिकरण द्वारा विचार नहीं किया जाता है, तो यह व्यक्तिपरक संतुष्टि को समाप्त कर देगा। प्राधिकरण को उचित सावधानी और सावधानी बरतनी चाहिए और अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए निष्पक्ष और न्यायपूर्ण कार्य करना चाहिए। हालांकि, एक महत्वपूर्ण तथ्य क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। इसलिए, केवल उन मामलों को ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए जो प्राधिकरण के निर्णय को प्रभावित करने की यथोचित संभावना रखते हैं। महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार न करने से प्राधिकरण की संतुष्टि धूमिल हो सकती है। (तुषार गोविंदजी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 511; सीताराम वी. राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 1072; और अहमद निसार वी। तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 3897)।

57. स्वदेशी कॉटन हिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम राज्य औद्योगिक न्यायाधिकरण, उत्तर

प्रदेश और अन्य, ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1381 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने एक ऐसे मामले पर विचार किया जहां सामग्री पर विचार करने के बाद राय बनाने का आदेश में नहीं सुनाया गया था और निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"... इसलिए आदेश की वैधता आदेश में राय के गठन के पाठ पर निर्भर नहीं करती है, बल्कि राय के वास्तविक गठन और परिणाम में आदेश बनाने पर निर्भर करती है। इसलिए यह अनुसरण करेगा कि यदि अनजाने में या अन्यथा राय के आधार पर प्रारूप के पाठ का उल्लेख आदेश की प्रस्तावना में नहीं किया गया है, तो कार्यवाही में अन्य साक्ष्य द्वारा दिखाकर दोष को दूर किया जा सकता है जहां चुनौती दी जाती है आदेश की वैधता, कि वास्तव में आदेश इस तरह की राय बनने के बाद किया गया था और इस प्रकार द्वारा प्रदत्त शक्ति का एक वैध अभ्यास था नियम। इस पाठ्यक्रम का एकमात्र अपवाद वह होगा जहां क़ानून के लिए आवश्यक है कि आदेश में ही एक पाठ होना चाहिए, इससे पहले कि इसे वैध रूप से बनाया जा सके।

... सार्वजनिक कृत्यों की नियमितता के रूप में अनुमान ऐसे मामले में लागू होगा; लेकिन जैसा कि आदेश को चुनौती दी गई है और यह कहा जाता है कि यह पूर्ववर्ती शर्तों को संतुष्ट किए बिना पारित किया गया था, बोझ अन्य माध्यमों से संतुष्ट करने के अधिकार पर होगा (आदेश में ही पाठ की अनुपस्थिति में) कि पूर्ववर्ती शर्तों का पालन किया गया था ...।

(महत्व दिया)।

149. वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के आधार पर किसी आदेश की न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में अंतर और व्यक्तिपरक विचार के आधार पर एक अन्य आदेश पर विचार किया गया था, जिसमें यह नोट किया गया था कि सिद्धांत, यदि कोई आदेश जिसमें उसके निष्कर्ष के लिए कुछ कारण निर्भर हैं, असंगत या अन्यथा अस्थिर हो जाते हैं, तो उसका निर्णय दूषित हो जाएगा, उन मामलों पर लागू होता है जिनमें निष्कर्ष व्यक्तिपरक संतुष्टि के आकलन पर नहीं पहुंचा जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसे मामलों में जहां निर्णय व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, यदि कुछ कारण अप्रासंगिक या अमान्य हो जाते हैं, तो सुपीरियर न्यायालय के लिए यह पता लगाना असंभव होगा कि प्रासंगिक या अप्रासंगिक, वैध या अमान्य, कारणों में से कौन सा कारण इस तरह की संतुष्टि लाया था। इस प्रकार, ऐसे मामलों में जहां आदेश व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित होता है, अप्रासंगिक या गैर-मौजूद सामग्री पर विचार घातक हो जाता है और आदेश को ही खराब कर देता है। हालांकि, ऐसे मामले में, जहां निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ तथ्यों और सबूतों पर आधारित है, ऐसी कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी, क्योंकि यदि न्यायालय या ट्रिब्यूनल का आदेश कुछ कानूनी सबूतों पर आधारित है, भले ही इसमें से कुछ अप्रासंगिक हो, तो एक उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा यदि निष्कर्ष बाकी सबूतों पर कायम रह सकता है। इसका कारण यह है कि उत्प्रेषण के लिए एक रिट याचिका में, उच्चतर न्यायालय अपील में नहीं बैठता है, बल्कि केवल पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है और इसलिए, साक्ष्य की पर्याप्तता के सवाल में प्रवेश नहीं करता है।

150. सुधीर चंद्र अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य44 में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने और न्यायिक समीक्षा के दायरे के मामले में श्रीमती मंजू लता अग्रवाल (उपरोक्त) में निर्धारित कानून पर विचार किया कि: -

25. सामग्री की पर्याप्तता या अपर्याप्तता, और उद्योगों के नाम, जिन्होंने औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए ठोस प्रस्तावों के साथ आवेदन किया हो, राज्य सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि की न्यायिक समीक्षा के प्रयोजनों के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। जब राज्य सरकार के समक्ष सिफारिशों के रूप में कोई सामग्री मौजूद हो और वह सामग्री भूमि के अधिग्रहण के लिए तात्कालिकता खंड को लागू करने की व्यक्तिपरक संतुष्टि को रिकॉर्ड करने के लिए दिमाग लगाने के लिए प्रासंगिक हो, तो कानून न्यायालय को सामग्री पर विचार करने की अनुमति नहीं देता है क्योंकि यह भूमि के अधिग्रहण के लिए तात्कालिकता खंड को लागू करने की व्यक्तिपरक संतुष्टि को रिकॉर्ड करने के प्रयोजनों के लिए साक्ष्य का वजन कर रहा था। यदि सामग्री प्रासंगिक है, जिस पर सक्षम प्राधिकारी, उचित व्यक्ति के रूप में भूमि के अधिग्रहण के लिए तात्कालिकता खंड का आह्वान कर सकता है, तो न्यायालय ऐसी सामग्री को तराजू पर नहीं रखेगा, ताकि इस तरह की तात्कालिकता को तौला या मापा जा सके। न्यायालय अपने समक्ष रखी गई सामग्री की पर्याप्तता या अपर्याप्तता की न्यायिक समीक्षा करने के लिए सक्षम नहीं है। न्यायालय को यह देखने की आवश्यकता है; (ख) यदि हां, तो क्या ऐसी सामग्री प्रासंगिक है और यह कि राज्य सरकार में सक्षम प्राधिकारी तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए बिना किसी उद्देश्य या दुर्भावना के एक राय बना सकता था। प्रस्तुत मामले में राज्य ने जवाबी हलफनामे में वह सामग्री दी है जिस पर उसने भरोसा किया था और हमारे सामने सामग्री पेश की है, जिसे हम तात्कालिकता खंड को लागू करने के उद्देश्य से प्रासंगिक पाते हैं। यदि हम अभिलेख का अवलोकन करने के बाद भिन्न निष्कर्षों पर भी पहुंच सकते हैं तो हम स्वयं को हस्तक्षेप करने से रोकेंगे, क्योंकि ऐसी स्थिति में हम राज्य सरकार में सक्षम प्राधिकारी की राय के स्थान पर अपनी राय प्रतिस्थापित करेंगे। यदि हम ऐसा करते हैं, तो हम राज्य सरकार द्वारा दर्ज की गई व्यक्तिपरक संतुष्टि पर अपील करेंगे। न्यायिक उदाहरणों से प्राप्त कानूनी स्थिति हमें ऐसा करने से रोकती है।

151. अधिनियम, 1894 की धारा-5-क के अधीन जांच के वितरण के मामले में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करने के सिद्धांत को, संविधान के अनुच्छेद 226 के दायरे में, इस प्रकार, निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:-

(i) सांविधिक प्राधिकरण को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, धारा-5-क के तहत निर्णय लेते समय वास्तविक सम्यक प्रक्रिया और प्रक्रियात्मक सम्यक प्रक्रिया दोनों का अनुपालन करना होता है।

(ii) यह प्रश्न कि अधिनियम की धारा-5-क के अंतर्गत जांच आवश्यक है या नहीं, तथ्य का

प्रश्न है जिसकी राज्य सरकार द्वारा अधिनियम की धारा-17(4) के अंतर्गत तात्कालिकता खंड लागू करने से पहले प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जांच की जानी अपेक्षित होगी। इस प्रकार, यह विकसित किया जा सकता है कि किन परिस्थितियों में, तात्कालिकता खंड को लागू किया जाना चाहिए।

(iii) न्यायालय की भूमिका सीमित है और यह केवल यह देख सकता है कि क्या तात्कालिकता खंड को लागू करने के बारे में राय बनाने के लिए कोई सामग्री थी या क्या सरकार ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से शक्ति का प्रयोग किया था।

(iv) यह प्रश्न कि क्या तात्कालिकता विद्यमान है अथवा नहीं, मुख्यत सरकार के अवधारण का मामला है जो न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के दायरे के अध्यधीन है।

(v) धारा-17(4) के तहत संतुष्टि व्यक्तिपरक है और जब तक ऐसी सामग्री है जिस पर सरकार उक्त संतुष्टि को निष्पक्ष रूप से गठित कर सकती है, न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही अपीलीय प्राधिकरण के रूप में सामग्री की जांच करेगा।

(vi) सामग्री की पर्याप्तता और विश्वसनीयता जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है, को रिट क्षेत्राधिकार में न्यायालय के समक्ष प्रचारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। सामग्री की सच्चाई या शुद्धता पर न्यायालय द्वारा सवाल नहीं उठाया जाएगा।

(vii) ऐसे मामले में जहां आदेश व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, अप्रासंगिक या गैर-मौजूद सामग्री का विचार घातक हो जाता है और आदेश को ही दूषित कर देता है।

(viii) यही स्थिति बनी हुई है जहां प्राधिकरण महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करने में विफल रहता है, इस कारण से कि यदि सामग्री या महत्वपूर्ण तथ्य जो प्राधिकरण के दिमाग को प्रभावित करेंगे, एक तरफ या दूसरे तरीके से, प्राधिकरण द्वारा नहीं रखा गया था या उन पर विचार नहीं किया गया था, तो यह व्यक्तिपरक संतुष्टि को समाप्त कर देगा।

(ix) महत्वपूर्ण तथ्य क्या है यह प्रत्येक मामले के तथ्य पर निर्भर करेगा।

(x) प्राधिकरण को उचित सावधानी और सावधानी बरतनी चाहिए तथा अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए निष्पक्ष और न्यायपूर्ण कार्य करना चाहिए।

(xi) महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार न करने से प्राधिकरण की संतुष्टि दूषित हो सकती है।

(xii) आदेश की वैधता आदेश में राय के गठन के पाठ पर निर्भर नहीं करती है, बल्कि राय के वास्तविक गठन और परिणामस्वरूप आदेश बनाने पर निर्भर करती है।

152. जैसा कि व्यक्तिपरक संतुष्टि के मामले में, प्राधिकरण को एक तर्कसंगत आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई तर्कसंगत आदेश पारित

करने की आवश्यकता नहीं है कि धारा-17(4) के तहत शक्ति के प्रयोग में धारा-5 ए के तहत जांच को समाप्त करने की तात्कालिकता है। धारा-5-क के अधीन जांच को समाप्त करने में धारा-17(4) के अधीन अत्यावश्यकता के आह्वान के मामले में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति इस सीमा तक सीमित है कि क्या निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई दोष है, यह जांचने के लिए कि राज्य की राय किसी अप्रासंगिक या अस्तित्वहीन सामग्री द्वारा निर्देशित नहीं है, बल्कि इसकी संतुष्टि को रिकॉर्ड करने के लिए प्रासंगिक सामग्री पर आधारित है। न्यायालय ऐसे मामले में हस्तक्षेप कर सकता है, जहां कोई सामग्री नहीं थी या जिस सामग्री पर भरोसा किया गया था वह अप्रासंगिक या अस्तित्वहीन थी। सामग्री की पर्याप्तता और विश्वसनीयता जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है, न्यायिक समीक्षा की शक्ति के दायरे से परे है। न्यायालय यह भी देख सकता है कि क्या राय के गठन में, सरकार ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से शक्ति का प्रयोग किया है। यह प्रश्न कि क्या तात्कालिकता मौजूद है या नहीं, मुख्य रूप से सरकार के निर्धारण का मामला है, जो न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के दायरे के अधीन है।

D. प्री-पोस्ट नोटिफिकेशन देरी पर: -

153. इस मुद्दे पर कि क्या अधिसूचना से पहले या बाद में देरी राज्य द्वारा तात्कालिकता खंड के आह्वान में शक्ति के प्रयोग के लिए घातक होगी, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में कोई संगति नहीं है।

154. भारत संघ और अन्य बनाम कृष्ण लाल अरनेजा और अन्य45 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि तात्कालिकता खंड को लागू करते समय, राज्य को वास्तव में उचित देखभाल और जिम्मेदारी के साथ कार्य करना चाहिए। तात्कालिकता खंड को लागू करना राज्य प्रशासन की ओर से शिथिलता, सुस्ती या देखभाल की कमी का विकल्प या समर्थन नहीं हो सकता है।

155. प्रथम भूमि अधिग्रहण कलेक्टर और अन्य बनाम निरोधी प्रकाश गंगोली और अन्य46 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अधिसूचना के बाद की देरी, यानी धारा-5-ए के तहत जांच के साथ तात्कालिकता खंड के आह्वान के बाद धारा-6 के तहत घोषणा करने में देरी घातक नहीं होगी, खासकर जब सरकार या उसके अधिकारियों की ओर से कोई दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया जाता है। राज्य सरकार की राय को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है यदि यह दर्शाया जा सके कि राज्य सरकार ने इस मामले पर कभी भी अपना दिमाग नहीं लगाया या राज्य सरकार की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण है।

156. दीपक पाहवा बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल और अन्य 47 में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया था कि पूर्व-अधिसूचना में देरी से तात्कालिकता प्रावधानों का आह्वान शून्य हो जाएगा।

157. यह माना गया कि:-

"हमले का दूसरा आधार यह है कि यदि अधिसूचना और धारा-4 (1) प्रकाशित होने से

पहले अंतर-विभागीय चर्चा पर खर्च किए गए समय की काफी लंबाई के संबंध में है, तो यह स्पष्ट होगा कि धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करने और धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं था। हमें डर है, हम इस तर्क से सहमत नहीं हो सकते। अधिगृहीत की जाने वाली प्रस्तावित भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति प्राय प्रस्तावित अधिग्रहण के विरुद्ध संबंधित प्राधिकारियों को विभिन्न अभ्यावेदन देते हैं। इसके परिणामस्वरूप पूछताछ, संचार और चर्चाओं की बहुलता होगी जिससे तत्काल परियोजनाओं के निष्पादन में भी निरपवाद रूप से विलंब होगा। बहुत बार देरी समस्या को अधिक से अधिक तीव्र बनाती है और अधिग्रहण की आवश्यकता की तात्कालिकता को बढ़ाती है। इसलिए, इस निवेदन से सहमत होना संभव नहीं है कि केवल पूर्व-अधिसूचना में देरी से तात्कालिकता प्रावधानों का आह्वान शून्य हो जाएगा। हालांकि हम पीओएस अधिसूचना में देरी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहते हैं। में जागे राम वी। हरियाणा राज्य के मामले में, इस न्यायालय ने इस तथ्य की ओर इशारा किया कि राज्य सरकार या संबंधित पक्ष पहले चरण में सुस्त थी, इस सवाल को तय करने के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं है कि अधिसूचना जारी करने की तारीख क्या तात्कालिकता थी या नहीं। में कासीरेड्डी पापैया वी। आन्ध्र प्रदेश सरकार के मामले में यह निर्णय दिया गया था, "... अधिग्रहण के मामले में आगे की कार्रवाई करने के लिए मंद अधिकारियों की ओर से विलंब अधिसूचना जारी होने के समय बाहर निकलने वाली तात्कालिकता को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं है और यह मानने के लिए कि कभी कोई तात्कालिकता नहीं थी। (महत्व दिया)"

158. धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान के संबंध में कानूनी स्थिति पर चर्चा करने के बाद, धारा-5-ए के तहत जांच का वितरण और इस न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार की शक्ति के प्रयोग में न्यायिक समीक्षा के दायरे के संबंध में, अब हमें रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों में कानूनी स्थिति पर चर्चा करने की आवश्यकता है।

ई। प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा भरोसा किए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर: -

(आई) राध्य श्याम (उपरोक्त) :-

159. एलआर के माध्यम से राधे श्याम (मृत) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भारी भरोसा किया गया है। और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य48 ने जोरदार तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, नियोजित विकास के लिए किए गए अधिग्रहण में तात्कालिकता खंड को लागू नहीं किया जा सकता है। प्रश्नाधीन गांवों से संबंधित धारा-4 के अंतर्गत अधिग्रहण अधिसूचनाओं में दिए गए विवरण को पढ़ा गया है और पुन पढ़ा गया है ताकि यह दावा किया जा सके कि उसमें दिए गए विवरण से ही यह स्पष्ट है कि भूमि की आवश्यकता यमुना एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए थी। इस मुद्दे के रूप में कि क्या आवासीय, वाणिज्यिक या औद्योगिक उद्देश्य के लिए

भूमि के अधिग्रहण के लिए धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत शक्ति का प्रयोग कानूनी और न्यायसंगत था, राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर दिया गया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से पैरा-77(viii) में अवधारित किया गया है कि: -

"77(viii)। आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत प्रयोजनों के लिए भूमि के अधिग्रहण को धारा-4 के अर्थ के भीतर सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अधिग्रहण के रूप में माना जा सकता है, लेकिन यह अपने आप में धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत सरकार द्वारा शक्ति के प्रयोग को न्यायोचित नहीं ठहराता है। न्यायालय इस तथ्य का न्यायिक नोटिस ले सकता है कि आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत क्षेत्रों के विकास से संबंधित योजनाओं की योजना, निष्पादन और कार्यान्वयन में आमतौर पर कुछ साल लगते हैं। इसलिए, धारा-17(1) में निहित तात्कालिकता प्रावधान को लागू करके इस तरह के उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है। किसी भी मामले में, धारा-5-ए (1) और (2) में सन्निहित ऑडी अल्टरम पार्टेम के नियम का बहिष्करण ऐसे मामलों में बिल्कुल भी जरूरी नहीं है।

160. यह जोरदार तर्क दिया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय के जनादेश के मद्देनजर, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से नियोजित विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण, प्रस्तुत मामले में, आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक या संस्थागत उद्देश्य के लिए तत्काल नहीं कहा जा सकता है। भूमि के प्रस्तावित उपयोग की प्रकृति में कोई वास्तविक या गंभीर तात्कालिकता नहीं हो सकती है, इस प्रकार, जांच का वितरण, भूमि धारकों को सुनवाई का बहिष्करण इस मामले में अनुचित था। इस प्रकार, प्रस्तुत करना यह है कि इस आधार पर ही, अधिग्रहण अधिसूचनाएं रद्द की जा सकती हैं।

161. हम याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की दलील को स्वीकार करने से डरते हैं, जो राधे श्याम (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों से गुजरे हैं, जिसमें तात्कालिकता खंड के आह्वान द्वारा अधिग्रहण के मामले में उपरोक्त सभी नोट किए गए बिंदु, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से निकाले गए हैं, इस निर्णय के पूर्वगामी पैरा-में, दोहराया गया है।

162. पैरा '77' के उपपैरा (viii) को पढ़ते समय, हमें पैरा '77' के उप-पैरा (iii), (vi) और (ix) में उल्लिखित सिद्धांतों को निम्नानुसार नोट करना आवश्यक है: -

"(iii) हालांकि, प्रख्यात डोमेन की शक्ति के प्रयोग में, सरकार सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति का अधिग्रहण कर सकती है, यह याद रखना चाहिए कि किसी की संपत्ति का अनिवार्य लेना एक गंभीर मामला है। यदि संपत्ति समाज के आर्थिक रूप से वंचित वर्ग या अन्य विकलांगों से पीड़ित लोगों की है, तो न्यायालय न केवल हकदार है, बल्कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अधिक सतर्कता, देखभाल और सावधानी के साथ राज्य की

कार्रवाई/निर्णय की जांच करने के लिए बाध्य है कि भूमि मालिक भूमिहीन हो जाएगा और अपनी आजीविका और/या आश्रय के एकमात्र स्रोत से वंचित हो जाएगा।

(vi) तात्कालिकता के मुद्दे पर सरकार का संतुष्टिकरण व्यक्तिपरक है लेकिन धारा-17(1) के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग से पहले की शर्त है और इसे इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि जिस प्रयोजन के लिए निजी संपत्ति का अधिग्रहण किया जाना है वह सार्वजनिक प्रयोजन नहीं है अथवा यह कि दुर्भावना के कारण शक्ति का प्रयोग दूषित हुआ है या संबंधित प्राधिकारियों ने ऐसा नहीं किया प्रासंगिक कारकों और अभिलेखों पर ध्यान दें।

(ix) यदि भूमि निजी व्यक्तियों के लाभ के लिए अधिगृहीत की जाती है तो न्यायालय को धारा-17(1) और/या 17(4) को लागू करने को संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए और ऐसे अधिग्रहण की वैधता पर निर्णय देने से पहले संबंधित अभिलेख की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए।

163. उपपैरा (viii) में कथन को पैरा '77' के उपपैरा (vi) और (ix) में कथनों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

164. राधे श्याम (उपरोक्त) में विधि की चर्चा से जो विधिक स्थिति समझी जा सकती है, वह यह है कि:-

(i) तात्कालिकता के मुद्दे पर सरकार का समाधान व्यक्तिपरक है, लेकिन धारा-17(1) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है;

(ii) इसे इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि (क) जिस प्रयोजन के लिए निजी संपत्ति का अधिग्रहण किया जाना है, वह सार्वजनिक प्रयोजन नहीं है; (ख) कि दुर्भावना के कारण शक्ति का प्रयोग दूषित हो गया है; (ग) संबंधित प्राधिकारियों ने संगत कारकों और अभिलेखों पर अपना ध्यान नहीं दिया;

(iii) यदि भूमि निजी व्यक्तियों के लाभ के लिए अधिगृहीत की जाती है तो न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह तात्कालिकता खंड के आह्वान को संदेह की दृष्टि से देखे और ऐसे अधिग्रहण की वैधता पर निर्णय लेने से पहले संगत अभिलेख की सावधानीपूर्वक जांच करे।

165. पैरा '77' के उपपैरा (viii) में बताए गए सिद्धांत में, इस प्रकार, न्यायालय को उस रिकॉर्ड की सख्त जांच करने की आवश्यकता है जिस पर राज्य ने धारा-5-ए के जनादेश का अनुपालन किए बिना निजी संपत्ति का अधिग्रहण करने के लिए कार्यवाही की है। इस प्रकार, विशेष मामले के तथ्यों में जांच की जानी चाहिए। न्यायालय को अधिग्रहण की वैधता पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक रिकॉर्ड की सावधानीपूर्वक जांच करके न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना होगा।

166. प्रतिपक्षी-'यीडा' के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत मामले पर तथ्यात्मक पहलुओं पर राधे श्याम (उपरोक्त) के मामले से

एक अंतर आकर्षित करने की कोशिश करता है। यह तर्क दिया गया था कि राधेश्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के पूरे फैसले को मामले के अनुपात को कम करने के लिए सावधानीपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए। यह (राधे श्याम) एक ऐसा मामला था जहां ग्रेटर नोएडा के अधिसूचित क्षेत्र में स्थित एक गांव का केवल 2050288 हेक्टेयर क्षेत्र ही ग्रेटर नोएडा के माध्यम से गौतम बुद्ध नगर जिले में नियोजित औद्योगिक विकास के लिए अधिग्रहण किया गया था।

167. उसमें अपीलकर्ताओं (राधे श्याम) ने अधिग्रहण को कई आधारों पर चुनौती दी थी, जिसमें पैरा-'4' में उल्लेख किया गया था, जो निम्नानुसार निकाला गया था: -

"4. अपीलकर्ताओं ने निम्नलिखित सहित कई आधारों पर अपनी भूमि के अधिग्रहण को चुनौती दी:

(i) भूमि का उपयोग औद्योगिक प्रयोजनों के लिए नहीं किया जा सकता क्योंकि ग्रेटर नोएडा के मास्टर प्लान (2021) के मसौदे में इसे आवासीय जोन के भाग के रूप में दर्शाया गया है।

(ii) कि उन्होंने पहले से ही रिहायशी मकानों का निर्माण कर लिया था और राज्य सरकार की नीति के अनुसार, रिहायशी भवनों को अधिग्रहण से छूट प्राप्त है।

(iii) कि राज्य सरकार ने मनमाने ढंग से अधिनियम की धारा-17(4) सपठित धारा-17(1) का उपयोग किया और उन्हें धारा-5-क के अंतर्गत आपत्तियां उठाने के उनके बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया।

(iv) भूमि का अधिग्रहण मनमानेपन, दुर्भावना और संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन से दूषित होता है क्योंकि विधान सभा सदस्य और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों की भूमि इस तथ्य के बावजूद अधिग्रहण से बाहर रखी गई थी कि वे आबादी में नहीं थीं, लेकिन इस तथ्य के बावजूद कि उनकी भूमि आबादी का हिस्सा थी और उन्होंने आवासीय इकाइयों का निर्माण किया था, उनके साथ समान व्यवहार नहीं किया गया।

168. हमें यह नोट करना आवश्यक है कि धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए अधिनियम की धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड को लागू करने में राज्य सरकार की मनमानी की दलील, जोत धारकों को उनके मूल्यवान अधिकारों से वंचित करना, उसमें उल्लिखित जोत धारकों की आपत्तियों पर जांच की गई थी, जो थे (i) प्रश्न में भूमि ग्रेटर के ड्राफ्ट मास्टर प्लान में एक आवासीय क्षेत्र के हिस्से में आती है नोएडा और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है; (ii) आवासीय मकान मौजूद थे और राज्य की नीति के अनुसार, आवासीय भवनों को अधिग्रहण से छूट दी गई थी।

169. उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं की चुनौती को मुख्य रूप से इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि रिट याचिका में निहित कथन उचित हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं थे।

याचिकाकर्ताओं ने न तो यह दलील दी थी कि राज्य सरकार के समक्ष इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई सामग्री मौजूद नहीं थी कि धारा-5-ए के तहत जांच को अधिनियम की धारा-17(4) को लागू करके समाप्त कर दिया जाना चाहिए और न ही याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता रिट याचिका में इस तरह के किसी भी कथन को अदालत के समक्ष रख सकते हैं। यहां तक कि उत्तरदाताओं के जवाबी हलफनामे को यह देखने के लिए नहीं बुलाया गया था कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा-17(1) और (4) के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए कोई सामग्री मौजूद है, यह कहते हुए कि मूल रिकॉर्ड पेश करने के लिए उत्तरदाताओं की आवश्यकता का सवाल रिट याचिका में दिए गए बयानों के मद्देनजर उत्पन्न नहीं हुआ था, जिन्हें हलफनामे में शपथ नहीं दिलाई गई थी।

170. हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तरदाताओं को काउंटर फाइल करने के लिए समय दिया और राज्य के रिकॉर्ड की जांच की और उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उन कारकों को नोट किया जो उसमें तात्कालिकता प्रावधान को लागू करने के औचित्य में उद्धृत किए गए थे, पैरा-'79' में यह देखा गया है कि उसमें उल्लिखित कारकों में से कोई भी धारा-17(1) क्योंकि अधिग्रहण मुख्य रूप से जिले के औद्योगिक विकास के नाम पर निजी हित को पूरा करने के लिए किया गया था। यहां तक कि अगर जिले के नियोजित विकास को धारा-4 के अर्थ के भीतर सार्वजनिक उद्देश्य के रूप में माना जाता था, तो ऐसी कोई तात्कालिकता नहीं थी जो धारा-17(1) और 17(4) के तहत राज्य सरकार द्वारा शक्ति के प्रयोग को उचित ठहरा सके। उसमें यह निष्कर्ष निकला कि कोई वास्तविक और वास्तविक तात्कालिकता नहीं थी जो धारा-17(1) के तहत तात्कालिकता के प्रावधानों को लागू करने का औचित्य साबित कर सके और किसी भी मामले में, धारा-5-ए के आवेदन को बाहर करने के लिए कोई वारंट नहीं था, भूमि धारकों को सुनवाई के अवसर से वंचित करने के लिए, उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में था।

171. राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान से पढ़ने पर, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि धारा-17(1) और (4) सपठित धारा-4 (1) के तहत अधिसूचना में दिए गए बयान पर कि प्रश्न में भूमि की आवश्यकता है "'यीडा' के माध्यम से क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए", यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई तात्कालिकता नहीं थी, धारा-17(1) और 17(4) के प्रावधानों को लागू करने की वास्तविक और वास्तविक तात्कालिकता तो बिल्कुल कम है।

172. हम ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को याद दिला सकते हैं कि अधिसूचना में दिया गया कथन निर्धारक कारक नहीं है, अधिसूचना की भाषा निर्णायक नहीं है, और न ही तात्कालिकता के आह्वान के लिए अधिसूचना में ही कोई कारण देने की आवश्यकता है। न्यायालय को रिकॉर्ड देखना होगा, यह जांचने के लिए कि क्या रिकॉर्ड पर ऐसी सामग्री मौजूद है, जिस पर राज्य सरकार

ने व्यक्तिपरक संतुष्टि का गठन किया था, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि तात्कालिकता खंड को लागू किया जाए और धारा-5-ए के तहत जांच को हटा दिया जाए। हम राज्य के अभिलेख और संगत सामग्री को देखे बिना केवल उसमें दिए गए विवरण के आधार पर अधिसूचनाओं को रद्द नहीं कर सकते, जिसने प्रश्नगत भूमि का अधिग्रहण करने के लिए प्रख्यात डोमेन की अपनी अंतनहित शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य के दिमाग को प्रभावित किया है, भूमि धारकों को सुनवाई के अवसर से वंचित कर दिया है। [भारत संघ और अन्य बनाम प्रवीण गुप्ता (उपरोक्त)]

(ii) नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त): -

173. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अधिग्रहण-इन-प्रश्न एक एकीकृत परियोजना का हिस्सा है। यमुना एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित भूमि के पार्सल के लिए सन्निहित भूमि के लिए, नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिग्रहण को बरकरार रखा गया है। राज्य द्वारा वर्ष 2001 में एक्स्प्रेस वे के निर्माण की परियोजना की परिकल्पना की गई थी। यह एक एकीकृत परियोजना थी जिसमें नोएडा से आगरा तक 160 किलोमीटर तक फैले अतिरिक्त नियंत्रित एक्सप्रेसवे का निर्माण शामिल था और विकास वर्ष 25 मिलियन वर्ग मीटर था। (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और बोलियां आमंत्रित की गई थीं लेकिन निर्माण शुरू होने से पहले, परियोजना की वैधता को एक जनहित याचिका में चुनौती दी गई थी। जांच आयोग अधिनियम, 1956 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने न्यायमूर्ति सिद्धेश्वर नारायण आयोग के नाम से एक आयोग नियुक्त किया। सिविल विविध रिट याचिका (पी.आई.एल.) संख्या-30322 वर्ष 2007(आशुतोष श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) को निर्णय और आदेश 14 मार्च, 2008 द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसे 2008 (3) एडीजे 427(डीबी) में रिपोर्ट किया गया था।

174. इसके बाद, राज्य सरकार ने एक्सप्रेसवे के प्रयोजनों के लिए गौतम बुद्ध नगर, मथुरा, अलीगढ़, महामाया नगर (हाथरस) और आगरा जिलों में भूमि अधिग्रहण करने के लिए विभिन्न अधिसूचनाएं जारी कीं। जिला मथुरा के एक गांव में स्थित भूमि अधिग्रहण करने वाले अधिनियम दिनांक 15.10.2007 और 4.1.2008 की धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचनाएं बलबीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट याचिका संख्या-48978 वर्ष 2008) में विचार के लिए आईं, इस आधार पर कि अधिग्रहण का वास्तविक उद्देश्य कंपनी के लाभ के लिए था और, इसलिए, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-5-ए की धारा-17(4) के तहत प्रावधान का आह्वान अवैध था। दिनांक 5-10-2009 के निर्णय और आदेश द्वारा न्यायालय ने रिट याचिका को इस निष्कर्ष के साथ खारिज कर दिया था कि एक्स्प्रेस वे के निर्माण के लिए अधिग्रहण अन्यथा आम जनता के लाभ के लिए किया गया था। उसमें यह नोट किया गया था कि जनसंख्या में जबरदस्त वृद्धि हुई है और जनता के लिए उपलब्ध सड़कों और अन्य सुविधाओं की गंभीर कमी है। पूरे यमुना

बेल्ट में उद्योगों के विकास के लिए बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने के लिए, उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों को राष्ट्रीय राजधानी से जोड़ने के लिए राष्ट्रीय महत्व की परियोजना शुरू की गई थी। इस प्रकार, अधिग्रहण को सार्वजनिक उद्देश्य के लिए माना गया था।

175. नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में इस न्यायालय के समक्ष मुकदमेबाजी के तीसरे दौर में, मथुरा और आगरा के भूमि धारकों ने एक्सप्रेसवे के निर्माण और एक्सप्रेसवे के इंटरचेंज के लिए भूमि के अधिग्रहण को चुनौती दी थी, मुख्य रूप से इस आधार पर कि उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण करने के लिए सड़क के निर्माण के लिए कोई तात्कालिकता कम नहीं थी। रिट याचिकाएं दायर की गई थीं कि याचिकाकर्ता लंबे समय से भूमि के मालिक थे और उन्होंने निर्माण किया था और आबादी के रूप में घोषित होने के बाद व्यापार और आबादी उद्देश्यों के लिए भूमि का उपयोग कर रहे थे। अधिनियम की धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं को शक्ति के प्रयोग में जारी किए जाने के कारण चुनौती दी गई थी, कि कोई तात्कालिकता नहीं थी और चूंकि कोई परियोजना निर्दिष्ट नहीं की गई थी, इसलिए अधिसूचनाएं अस्पष्ट थीं, धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने में राज्य की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण थी। इसे नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में न्यायालय के समक्ष लाया गया था और उसमें नोट किया गया था कि 2001 में राज्य सरकार द्वारा कल्पना की गई "ताज एक्सप्रेसवे" परियोजना एक एकीकृत परियोजना है जिसमें नोएडा से आगरा तक 160 किलोमीटर तक फैली अतिरिक्त नियंत्रित एक्सप्रेसवे परियोजना का निर्माण शामिल है। (ग) सरकार ने एक्स्प्रेस वे के साथ भूमि का 1000 वर्ग किमी का विस्तार किया है।

176. इस न्यायालय ने उसमें नोट किया है कि रिकॉर्ड पर सामग्री से यह परिलक्षित होता है कि संपूर्ण विकास राज्य सरकार द्वारा यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ('यीडा') के माध्यम से किया जा रहा था जो राज्य का एक साधन है। याचिकाकर्ताओं द्वारा इस आधार पर अधिग्रहण को चुनौती दी गई कि दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या--2 द्वारा आगरा से जुड़ी हुई थी और दो महान शहरों को थोड़ी तेज गति से जोड़ने वाली एक और सड़क की आवश्यकता सार्वजनिक उद्देश्य नहीं है। विकास वर्ष 25 मिलियन वर्ग मीटर (ख) एक्स्प्रेस वे के साथ-साथ चयनित स्थलों पर कंपनी द्वारा 500 किमी भूमि का आबंटन पब्लिक लिमिटेड कंपनी के लाभ के प्रयोजनार्थ किया गया है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि भूमि की आवश्यकता सार्वजनिक प्रयोजन के लिए थी। किसी भी मामले में, भूमि अधिग्रहण करने, जांच को समाप्त करने और अधिग्रहण पर आपत्ति करने के याचिकाकर्ताओं और किसानों के मूल्यवान अधिकार को छीनने की ऐसी कोई तात्कालिकता नहीं थी। यह तर्क दिया गया था कि संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं हो सकता है, यह एक संवैधानिक अधिकार है और अब इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है, इसे अदालत द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। जहां वैकल्पिक सड़क बनाने के लिए व्यावसायिक उद्देश्य और नागरिकों की आजीविका के साधन के रूप में

कृषि के लिए उपयोग की जाने वाली उपजाऊ भूमि के बड़े हिस्से का अधिग्रहण किया जा रहा है, वहां उद्देश्य की तात्कालिकता को नहीं माना जा सकता है। इस परियोजना में वर्ष 2001 से 2008 तक पहले ही विलंब हो चुका था और इसलिए भूमि अधिग्रहण के लिए धारा-17 की उपधारा-(4) को लागू करने की कोई तात्कालिकता नहीं थी, जिससे नागरिकों को इस मामले में अपनी बात रखने का बहुमूल्य अधिकार मिल सके।

177. यह सत्यापित करने के लिए कि क्या अधिनियम की धारा-17(1) और 17(4) के तहत राज्य सरकार के पास राय बनाने और अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई सामग्री थी, अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच के साथ छूट दी गई थी, और राज्य सरकार ने ऐसी सामग्री पर अपना दिमाग लगाया था, चुनौती के तहत तीन अधिसूचनाओं के रिकॉर्ड न्यायालय द्वारा तलब किए गए थे।

178. अभिलेख से मिली राज्य की सामग्री को अभिलिखित करने के पश्चात् उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:-

"रिकॉर्ड स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि परियोजना पर विचार करने और राजस्व रिकॉर्ड के सर्वेक्षण सहित पूछताछ और स्पॉट निरीक्षण करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट ने सिफारिश की थी कि अधिग्रहण के उद्देश्य और इसमें शामिल बड़े क्षेत्र को देखते हुए, और इस तथ्य को आगे बढ़ाने के लिए कि सड़क और इंटरचेंज और नियोजित विकास के निर्माण के लिए भूमि की आवश्यकता है, साथ ही यह तथ्य कि भविष्य में विषय भूमि पर अतिक्रमण की प्रबल संभावना है, जांच के लिए धारा-17(4) को लागू करने की आवश्यकता थी।

179. लगभग पांच वर्ष की पूर्व-अधिसूचना विलंब की दलील के संबंध में, उसमें यह नोट किया गया था कि: -

"समझौते की तारीख यानी 7.2.2003 से 28.2.2009 के अधिनियम की धारा-4 के तहत अधिसूचना की तारीख तक लगभग पांच साल की पूर्व-अधिसूचना देरी को राज्य सरकार और 'यीडा' के देश के हलफनामे में पर्याप्त रूप से समझाया गया है। राज्य सरकार अपनी जवाबदेही के प्रति सचेत थी और वर्ष 2003 में पटना/कलकत्ता उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूत सिद्धेश्वरी नारायण की नियुक्ति करते हुए मामले को जांच आयोग अधिनियम, 1956 के अधीन जांच के लिए भेज दिया। यह रिपोर्ट 12-10-2006 को प्रस्तुत की गई थी और तत्पश्चात् यह जनहित याचिका दायर की गई थी। आशुतोष श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में रिट याचिका को न्यायालय ने 14 मार्च, 2008 को खारिज कर दिया था। तत्पश्चात्, राज्य सरकार ने सर्वेक्षण करना शुरू कर दिया और यह कि जिला मजिस्ट्रेट ने अधिनियम की धारा-5क के अंतर्गत जांच को समाप्त करते हुए परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण के प्रस्ताव प्रस्तुत किए।

180. आगे यह नोट किया गया कि:-

"राज्य सरकार द्वारा हमारे सामने पेश किए गए रिकॉर्ड में तत्काल खंड को लागू करने की

सामग्री और उक्त सामग्री पर राज्य सरकार की संतुष्टि संलग्न है, जिससे हमें संतुष्टि मिली है कि राज्य सरकार के पास पर्याप्त सामग्री थी और उसने अपनी राय दर्ज करने के लिए अपना दिमाग लगाया था कि भूमि अधिग्रहण करने और अधिनियम की धारा-5 ए के तहत जांच को समाप्त करने की तात्कालिकता थी। जनहित में दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था और अदालत ने इस आधार पर चुनौती को भी खारिज कर दिया था कि कंपनी के लिए अधिग्रहण किया गया था। करार के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण की अपेक्षित लागत का 80% वर्ष 2007 में जमा करा दिया गया था। वर्ष 12282 क्षेत्र के भू-स्वामियों वर्ष 1604 हेक्टेयर, 11397 ने मुआवजा स्वीकार कर लिया है। इन 9 रिट याचिकाओं में केवल 21.03 हेक्टेयर का प्रतिनिधित्व करने वाले 35 याचिकाकर्ता हैं। श्री नवीन सिन्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार परियोजना की लागत वर्ष 2001 में शुरू में 1700 करोड़ से बढ़कर 9700 करोड़ हो गई है और प्रतिदिन बढ़ रही है। नोएडा से ग्रेटर नोएडा तक सड़क बिछाई गई है और एक छोटे से हिस्से को छोड़कर जिस पर न्यायालय ने यथास्थिति बनाए रखने के आदेश पारित किए थे, पूरी सड़क पर काम चल रहा है। श्री नवीन सिन्हा के अनुसार प्रतिदिन दुनिया भर से आगरा आने वाले हजारों पर्यटकों के अलावा राष्ट्रमंडल खेलों के समय भारत में आने वाले खेल पर्यटकों की बड़ी आमद होने की संभावना है। यात्रा के समय में कटौती करने के लिए आगरा तक पहुंचने के लिए सभी को तेजी से चलने वाले सड़क कनेक्शन की आवश्यकता है। यमुना के पश्चिमी तट पर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-2 हरियाणा और राजस्थान के व्यस्त क्षेत्रों से फरीदाबाद, बल्लभगढ़ और पलवल शहरों से होकर गुजरता है। यमुना के पूर्वी किनारे पर आधुनिक सुविधाओं से युक्त केवल उत्तर प्रदेश राज्य के क्षेत्रों से होकर गुजरने वाली तेज गति वाली सड़क सार्वजनिक प्रयोजन में महसूस की गई आवश्यकता है। निर्माण पूरा होने की कगार पर है। यह विडंबना होगी कि पर्यटन क्षेत्र और विकास और रोजगार के अवसर की तलाश कर रहे क्षेत्र के निवासियों को इस तरह के अग्रिम चरण में परियोजना से वंचित किया जाए।

181. अधिसूचना पूर्व विलंब पर, यह निष्कर्ष निकाला गया था कि: -

"उत्तरदाताओं ने पूर्व-अधिसूचना देरी को पूरी तरह से समझाया है। जांच करने वाले आयोग की कार्यवाहियों और जनहित याचिका का लंबित होना, समझौते पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद अधिसूचना जारी करने में हुए विलंब का पर्याप्त स्पष्टीकरण है। आज जो तथ्य स्थिति मौजूद है, वह भी हमें विवेक का प्रयोग करने के लिए कोई विकल्प नहीं छोड़ती है। वर्ष 12282 भू-स्वामियों में से 11397 को करार के तहत मुआवजा मिला है और वर्ष 1604 हेक्टेयर में से केवल 2103 हेक्टेयर भूमि के भूस्वामी अपनी भूमि के अधिग्रहण से व्यथित हैं। न्याय का तराजू उन लाखों लोगों के विकास के अधिकार की ओर झुकना चाहिए, जिन्हें सड़क और क्षेत्र के विकास से लाभ होगा, जबकि 35 याचिकाकर्ताओं के मानवाधिकारों के खिलाफ, जिन्होंने यह शिकायत करते हुए अदालत का दरवाजा खटखटाया है कि अधिनियम की धारा-6 के तहत भूमि

अधिग्रहण की घोषणा 15.6.2009 को जारी किए जाने से पहले उनकी बात नहीं सुनी गई थी।

182. इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को चुनौती देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर विशेष अनुमति याचिका में, पूर्व-अधिसूचना देरी पर इस न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस तथ्य के लिए अपनी मंजूरी दर्ज करने के लिए नोट किया गया था कि परियोजना 2001 से 2008 तक सुस्त थी और अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए राज्य सरकार के समक्ष सामग्री थी उच्च न्यायालय द्वारा यांत्रिक रूप से जांच की गई और एक अलग दृष्टिकोण लेने का कोई कारण नहीं था।

183. उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ नोट किए गए राज्य के दिमाग में अत्यावश्यकता खंड के आह्वान के कारक थे: - (i) परियोजना की विशालता; (ii) अतिक्रमण की संभावना; (iii) बड़ी संख्या में अपीलकर्ता जिन्हें सुनवाई की आवश्यकता होगी; (iv) इस प्रयोजनार्थ कितना समय लगा; और (v) यह तथ्य कि परियोजना 2001 से 2008 तक पहले से ही लंबित थी।

184. टीका राम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य49 में बताई गई कानूनी स्थिति पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार टिप्पणी करने के लिए चर्चा की गई थी: -

"94. इस स्थिति पर विचार किया गया था, सबसे पहले, सतेंद्र प्रसाद जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1993 में रिपोर्ट किया गया (4) एस.सी.सी. 369। उसमें यह माना गया था कि एक बार कब्जा तथ्य की बात के रूप में लिया जाता है, तो मालिक को भूमि के शीर्षक से वंचित कर दिया जाता है। धारा-11-ए पर टिप्पणी करते हुए, यह माना गया कि उस धारा-को इतना नहीं समझा जा सकता है कि सरकार को मुआवजे का निर्धारण करने, एक पंचाट देने और मालिक को पंचाट की राशि और अनुमानित मुआवजे के 80% की राशि के बीच अंतर का भुगतान करने के दायित्व के बिना भूमि का शीर्षक रखने के लिए छोड़ दिया जाए। न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने यह विचार किया कि जहां भूमि मालिकों को अनुमानित मुआवजे का 80% भुगतान नहीं किया गया था, इसका मतलब यह नहीं है कि कब्जा अवैध रूप से लिया गया था या भूमि सरकार में निहित नहीं थी। संक्षेप में, इस न्यायालय ने माना कि मुआवजे का भुगतान न करने से अधिग्रहण की कार्यवाही प्रभावित नहीं होती है। उस मामले में, कृषि उत्पादन मंडी समिति, जिसके लिए कब्जा किया गया था, ने भुगतान करने के दायित्व से बचने की मांग की। इसकी अनुमति नहीं दी गई। न्यायालय ने पैरा 17 में निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"17. प्रस्तुत मामले में, यहां तक कि अनुमानित मुआवजे का 80% अपीलकर्ताओं को भुगतान नहीं किया गया था, हालांकि धारा-17(3-ए) की आवश्यकता थी कि उक्त भूमि का कब्जा लेने से पहले इसका भुगतान किया

जाना चाहिए था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कब्जा अवैध रूप से लिया गया था या उक्त भूमि पहले प्रतिपक्षी में निहित नहीं थी। यह किसी भी दर पर, तीसरे प्रतिपक्षी के लिए खुला नहीं है, जैसा कि 27 जून, 1990 के विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पत्र से पता चलता है, आवश्यक धन उपलब्ध कराने में विफल रहा और जो इसके कब्जे के बाद से उक्त भूमि के कब्जे में रहा है, यह आग्रह करने के लिए कि कब्जा अवैध रूप से लिया गया था और कि, इसलिए, उक्त भूमि पहले प्रतिपक्षी में निहित नहीं है और पहला प्रतिपक्षी पंचाट देने के लिए बाध्य नहीं है।

95. इसके अलावा, प्रताप और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य आदि में इस न्यायालय के एक फैसले में 1996 (3) एस.सी.सी. 1 में रिपोर्ट किया गया था, इसी तरह का दृष्टिकोण बताया गया था। यह राजस्थान शहरी सुधार अधिनियम, 1987 के तहत एक मामला था, जिसके तहत अधिनियम की धारा-17 का उपयोग करके अधिग्रहण किया गया था। न्यायालय ने यह विचार किया कि एक बार अधिनियम की धारा-17 के तहत कब्जा लेने के बाद, सरकार धारा-18 के तहत उस स्थिति से पीछे नहीं हट सकती है और यहां तक कि धारा-11-ए के प्रावधान भी लागू नहीं होते हैं। यह निश्चित रूप से एक ऐसा मामला था जहां कब्जा लेने के बाद धारा-11-ए के तहत पंचाट पारित नहीं किया गया था। पैरा 12 में इस संबंध में स्पष्ट टिप्पणी की गई है कि जहां तक मुआवजे के भुगतान का संबंध है, अधिनियम की धारा-17 का अनुपालन न करने से भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त नहीं हुई। सतेंद्र प्रसाद जैन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उद्धृत उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को मंजूरी दी गई थी। न्यायालय ने 1994 (5) एस.सी.सी. 486 और अवध बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य 1995 (6) एस.सी.सी. 31 में रिपोर्ट किए गए पी चिन्ना बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के निर्णय पर भी भरोसा किया, जहां भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त नहीं होने के संबंध में समान दृष्टिकोण लिया गया था। भुगतान न करने से होने वाला एकमात्र परिणाम ब्याज का भुगतान होगा, जैसा कि धारा-34 में विचार किया गया है और 1984 के अधिनियम द्वारा उसमें जोड़ा गया परंतुक है। उस दृष्टिकोण में, हम इस मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहते हैं, जैसा कि श्री त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री कमर अहमद, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा सुझाया गया है। इसलिए, छठे प्रश्न पर भी, किसी संदर्भ की आवश्यकता नहीं है।

185. पैरा-'96' में आगे यह नोट किया गया था कि ओम प्रकाश (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर आधारित तर्क कि अतिक्रमण का मुद्दा तात्कालिकता के आह्वान के लिए एक प्रासंगिक कारक नहीं था, आश्वस्त नहीं था, क्योंकि उस मामले में वास्तविक परिदृश्य [ओम प्रकाश (उपरोक्त)] अलग था।

186. यह नोट किया गया था कि ओम प्रकाश (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय 437 भूखंडों वाले लगभग 500 एकड़ क्षेत्र के अधिग्रहण पर विचार कर रहा था, जबकि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में, अकेले

एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित किया जाने वाला क्षेत्र 1600 हेक्टेयर से अधिक था, इसके अलावा 25 मिलियन वर्ग मीटर भूमि जो 5 भूमि पार्सल के विकास के प्रयोजनों के लिए अधिग्रहित की जाने वाली थी। यह माना गया कि "राजमार्ग के लिए भूमि के अधिग्रहण और पांच टाउनशिप स्थापित करने के लिए भूमि के अधिग्रहण के बीच इंटरलिंकिंग थी। ओम प्रकाश (उपरोक्त) में अधिसूचना के बाद की देरी को तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए राज्य के निर्णय के लिए एक प्रासंगिक कारक माना जाता है, जिसमें निम्नलिखित तरीके से प्रतिष्ठित किया गया था: -

"96. हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि अतिक्रमण का मुद्दा एक प्रासंगिक कारक नहीं था। यह तर्क ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उद्धृत उपरोक्त) में कथित निर्णय पर आधारित था। यह कहा जाना चाहिए कि उस मामले में वास्तविक परिदृश्य अलग था। उस मामले में, न्यायालय 437 भूखंडों वाले लगभग 500 एकड़ क्षेत्र के अधिग्रहण पर विचार कर रहा था, जबकि, प्रस्तुत मामले में, अकेले एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित किया जाने वाला क्षेत्र 1, 600 हेक्टेयर से अधिक था। यह 25 मिलियन वर्ग मीटर भूमि के अलावा है जिसे 5 भूमि पार्सल के विकास के प्रयोजनों के लिए अधिग्रहित किया जाना था। राजमार्ग के लिए भूमि अधिग्रहण और 5 टाउनशिप स्थापित करने के लिए भूमि अधिग्रहण के बीच परस्पर संबंध था। "

"97. ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उद्धृत उपरोक्त) में, धारा-4 अधिसूचना जारी होने के बाद अस्पष्ट देरी हुई, जो कि यहां मामला नहीं है। इसलिए, हमें नहीं लगता कि ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उद्धृत उपरोक्त) में जो कहा गया है, वह यहां उचित होगा। हर मामले का फैसला उसके तथ्यों के आधार पर होना चाहिए। यह इस तथ्य से अलग है कि ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उद्धृत उपरोक्त) में यह विशेष रूप से निर्धारित नहीं किया गया है कि धारा-5 ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए अतिक्रमण कभी भी एक प्रासंगिक कारक नहीं था। हम फिर से यह जोड़ना चाहते हैं कि यह राज्य सरकार द्वारा विचार किया गया एकमात्र कारक नहीं था और यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी इसे जांच से दूर करने का एकमात्र कारक नहीं माना है।

187. टीका राम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, इस आधार पर अधिग्रहण को चुनौती दी गई कि कोई तात्कालिकता नहीं थी और इसलिए, अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए था, ठुकरा दिया गया है।

188. मीना देवी जिंदल मेडिकल इंस्टीट्यूट एंड रिसर्च सेंटर बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, दिल्ली और अन्य50 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम, 1894 की धारा-3 (एफ) के तहत सार्वजनिक उद्देश्य की अवधारणा के संदर्भ में नंद किशोर गुप्ता

(उपरोक्त) में अधिग्रहण की प्रकृति को नोट किया है और कहा है कि: -

"14. नंद किशोर गुप्ता बनाम भारत संघ मामले में यह न्यायालय। (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 282 में भी अधिनियम की धारा-3 (च) के अंतर्गत लोक प्रयोजन की अवधारणा पर विचार किया है और यह चर्चा की गई है कि लोक प्रयोजन का पूरक उद्देश्य भी सार्वजनिक प्रयोजन है। जब यमुना एक्स्प्रेस वे, जो स्वयं लोक महत्व का था, के निर्माण के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था तो यमुना एक्स्प्रेस वे के वाणिज्यिक, मनोरंजन, औद्योगिक, संस्थागत और आवासीय प्रयोजनों के लिए भूमि के अधिग्रहण को एक्स्प्रेस वे के निर्माण का पूरक माना गया था, इसलिए इसे सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अधिग्रहण माना गया। ....xx....."

च. तात्कालिक मामले के तथ्यों पर सामग्री की मूल्यांकन:-

189. प्रतिपक्षी के वरिष्ठ अधिवक्ता 'यीडा' ने हमें नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में निर्णय पर व्यापक रूप से जोर देकर आग्रह किया है कि विचाराधीन परियोजना, "यमुना एक्सप्रेसवे के साथ विभिन्न गांवों की भूमि के पार्सल के नियोजित विकास के लिए", मास्टर प्लान, चरण -1, 2031 के तहत एक एकीकृत परियोजना का हिस्सा है। वर्ष 2 किमी परिधि में सन्निहित भूमि। (ग) इस परियोजना को पूरा करने के लिए एक्स्प्रेस वे के दोनों ओर 1000 किमी के 100 किमी के खंड का अधिग्रहण किया गया है जो कि एक्स्प्रेस वे के निर्माण और टाउनशिप की स्थापना के लिए भूमि के खंडों के विकास की एक परियोजना थी। नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया है कि राजमार्ग के लिए भूमि अधिग्रहण और पांच टाउनशिप स्थापित करने के लिए भूमि के अधिग्रहण के बीच अंतर था। अधिग्रहण हालांकि अलग-अलग अधिसूचनाओं द्वारा किया गया था, गांव-वार और यह न तो एक्सप्रेसवे के लिए था और न ही नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में पांच भूमि पार्सल के लिए, लेकिन एक ही एकीकृत परियोजना का हिस्सा हैं। गांव अचेजा बुजुर्ग और रामपुर बांगर आदि के भूमि पार्सल पहले से ही ताज एक्सप्रेसवे के विकास की परियोजना में शामिल थे, जिसका नाम बदलकर यमुना एक्सप्रेसवे रखा गया था। इस निर्णय के पूर्वगामी पैरा-में नोट किए गए जवाबी हलफनामों में दिए गए बयान को दोहराया गया था कि एकीकृत टाउनशिप के लिए क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए प्रश्नगत गांवों के भूमि पार्सल का अधिग्रहण अपरिहार्य था। यीडा के अधिसूचित क्षेत्र में आने वाले गांवों को बुनियादी ढांचागत सुविधाएं प्रदान करने की भी आवश्यकता थी और विकास के लिए सन्निहित भूमि की आवश्यकता थी, जो देरी से निराश होने की संभावना थी, यदि नौ गांवों की इतनी बड़ी संख्या में भूमि के ग्रामीणों को सुनवाई का अवसर दिया गया था। परियोजना की विशालता उन कारकों में से एक है जिसने राज्य के दिमाग में तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए जोर दिया है।

(VII). खोज:-

एक।

190. प्रश्नगत परियोजना की प्रकृति के बारे में, हमें यह नोट करना आवश्यक है कि मास्टर प्लान और हमारे सामने लाए गए तथ्यों का अवलोकन करने से यह स्थापित होता है कि यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना के विकास के लिए भूमि, 'यमुना एक्सप्रेसवे के माध्यम से नियोजित विकास' एक एकीकृत परियोजना है, भूमि को शुरू में एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित किया गया था और उसके बाद, एक्सप्रेसवे के साथ-साथ भूमि पार्सल को टाउनशिप के रूप में विकसित करने के लिए। 'यीडा' द्वारा तैयार किए गए मास्टर प्लान के अनुसार सख्ती से विकास किया जा रहा है। क्षेत्र का नियोजित विकास वह उद्देश्य है जिसके लिए 'यीडा' का गठन किया गया है। यहां अधिग्रहण की विषय-वस्तु के रूप में नौ गांवों की भूमि का अधिग्रहण दिनांक 26-02-2009 से 22-3-2011 के बीच दो वर्षों की अवधि में जारी विभिन्न अधिसूचनाओं के माध्यम से किया गया था। अधिकांश घोषणा अधिसूचनाएं 3 से 4 महीने के अंतराल में जारी की गई थीं, सिवाय गांव रुस्तमपुर, गांव रामपुर बांगर और गांव पचोकारा की तीन घोषणा अधिसूचनाओं को छोड़कर, जहां धारा-4 और धारा-6 अधिसूचनाओं के बीच लगभग एक वर्ष का समय व्यतीत किया गया था। प्रपत्र-10 में कलेक्टर के प्रमाण-पत्र में यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि भूमि के विभिन्न खंडों के अधिग्रहण को परियोजना के समीपस्थ भाग के रूप में प्रस्तावित किया जा रहा था और धारा-5-ए के तहत सुनवाई का अवसर प्रदान करने के मामले में, जिसके परिणामस्वरूप अंततः कानूनी कार्यवाही हो सकती है, समीपस्थ भूमि की अनुपलब्धता की संभावना थी जो एक एकीकृत समयबद्ध परियोजना के रूप में परियोजना के निष्पादन में बाधा उत्पन्न करेगी। राज्य के मूल रिकार्ड और इस बंच के प्रत्येक गांव के संबंध में प्रति-शपथपत्र के साथ अभिलेख पर रखी गई सामग्री में राज्य का स्पष्ट विवरण निहित है कि राज्य सरकार ने रिकार्ड की जांच करने के बाद इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था कि अधिनियम की धारा-5-क के अंतर्गत आपत्तियां यदि माननीय उच्चतम न्यायालय ने 1894 में प्रस्ताव आमंत्रित किए थे तो इससे जनहित परियोजना, जो एक एकीकृत परियोजना है, के निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा और विलंब होगा। उक्त निर्णय लगभग 18 हजार और सैकड़ों एकड़ भूमि के बड़े क्षेत्र में फैली भूमि के अधिग्रहण के लिए परियोजना की विशालता को देखते हुए लिया गया था, जिसमें वर्ष 16 गांव शामिल थे। 'यीडा' द्वारा गांव और गांव आबादी का विकास एक्सप्रेसवे के साथ भूमि के विकास से भी जुड़ा हुआ है। अधिग्रहीत भूमि 2 किमी के भीतर स्थित है। (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और

191. हम ग्राम रामपुर बांगर की भूमि के अधिग्रहण के संबंध में रिट याचिका संख्या-11839 वर्ष 2012 में राज्य के प्रतिशपथ पत्र से नोट कर सकते हैं कि यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के विचाराधीन क्षेत्र के चरण -1 का मास्टर प्लान विधिवत अनुमोदित मास्टर प्लान है। एनसीआर प्लानिंग बोर्ड ने क्षेत्रीय योजना 2021 को संशोधित

किया है और यूपी उप-क्षेत्रीय योजना-2031 के एक भाग के रूप में 'यीडा' चरण -1 मास्टर प्लान वर्ष 2031 को स्वीकार कर लिया है। प्रति-शपथ पत्र के अनुबंध सीए-3 के रूप में संलग्न अधिग्रहण के दिनांक 26-12-2009 के प्रस्ताव पत्र में दिनांक 21-12-2006 के सरकारी आदेश के अंतर्गत जारी प्रमाण-पत्र शामिल है जिसमें राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति वर्ष 2003 को कार्यान्वित करने के लिए यीडा द्वारा दिए गए 14 बिन्दुओं और वचनबद्धता पर रिपोर्ट शामिल है। मूल रिकॉर्ड से पता चलता है कि प्रपत्र-1 भूमि अधिग्रहण मैनुअल के पैरा '14' के परिशिष्ट '1' के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए किया गया आवेदन है। प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में प्रस्तावित क्षेत्र में ग्राम सभा की किसी भूमि को शामिल न किए जाने के संबंध में एक विवरण दिया गया है और यह घोषणा की गई है कि परियोजना के लिए प्रस्तावित क्षेत्र के समतुल्य कोई बंजार अथवा गैर-कृषि भूमि उपलब्ध नहीं है। प्रपत्र-5 में उस समय प्रचलित दर पर समझौते पर देय अनुमानित मुआवजे की गणना, उक्त भूमि के अधिग्रहण के लिए सहमति प्रदान करने के संबंध में जिला भूमि उपयोग समिति का प्रमाण पत्र, प्रस्तावित अधिग्रहण से कुल 285 परिवार प्रभावित होंगे, इसका प्रमाण पत्र संलग्न किया गया है, 16 रुपये का ट्रेजरी जमा (ख) वर्ष के संबंध में 79,52,800/- रुपए की अनुमानित क्षतिपूत का 10% और अधिग्रहण प्रभारों का 10% रिकार्ड में है। दिनांक 12-01-2009 के शासनादेश के तहत जारी किए गए प्रमाण-पत्र प्रपत्र-7 को प्रस्ताव के साथ संलग्न किया गया था कि प्रश्नाधीन परियोजना के लिए प्रस्तावित कृषि भूमि के अलावा कोई भूमि उपलब्ध नहीं है। प्रपत्र9 में अधिसूचना के प्रकाशन से पहले उत्तर प्रदेश लखनऊ के भूमि उपयोग बोर्ड द्वारा सहमति प्रदान करने के लिए आवश्यक 7 बिंदुओं पर जानकारी दी गई है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि क्षेत्र के मास्टर प्लान के अनुसार तैयार की गई विकास योजना के लिए भूमि की आवश्यकता है और उक्त परियोजना के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता है। प्रपत्र-9 में इस आशय का विवरण पाया गया है कि प्रस्तावित भूमि के संबंध में कोई वाद लंबित नहीं है, कुल 285 काश्तकार धारक प्रभावित होंगे, प्रस्तावित भूमि को मास्टर प्लान के अनुसार विकसित किया जाएगा और सड़क के दोनों ओर वृक्षारोपण किया जाएगा, हरित पट्टी क्षेत्र का रख-रखाव प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा। प्रपत्र-10 कलेक्टर द्वारा शासनादेश दिनांक 6.8.2004 के प्रावधानों के अनुसार जारी किया गया प्रमाण पत्र है कि अधिग्रहण के लिए प्रस्तावित भूमि की तत्काल आवश्यकता है और इसलिए, परियोजना को तत्काल पूरा करने के लिए तात्कालिकता खंड, अर्थात अधिनियम, 1894 की धारा-17(4) को लागू करने की आवश्यकता थी। धारा-5-क के प्रावधानों को समाप्त करके प्रस्तावित भूमि के कब्जे की तत्काल आवश्यकता है। जिला कलक्टर प्रभावित किरायेदारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए पूरी तरह सहमत थे।

192. उक्त प्रमाण पत्र के बाद अधिनियम, 1894 की धारा-17(4) को लागू करने के औचित्य पर नोट है, जिनमें से कुछ को

विभिन्न गांवों के संबंध में ऊपर निकाला गया है। रामपुर बांगर गांव के संबंध में औचित्य से पता चलता है कि इसमें यह नोट किया गया था कि यीडा की आवासीय भूखंड योजना में, उचित रूप से 2042 हेक्टेयर वर्ष 13 गांवों की भूमि पहले ही अधिसूचित की जा चुकी है। वर्ष 1049705 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए रामपुर बांगर गांव की भूमि पहले से अधिसूचित उक्त गांव के भूमि पार्सल से सटी हुई थी और सेक्टर योजना के विस्तार के लिए अपेक्षित थी। एकीकृत परियोजना का भाग होने के कारण, काश्तकारियों को अवसर दिए जाने की स्थिति में परियोजना को समयबद्ध तरीके से पूरा करने के लिए निकटस्थ भूमि की अनुपलब्धता होने की संभावना थी।

193. प्रपत्र-13 में इस आशय का प्रमाण पत्र है कि प्राधिकरण पर कोई बकाया नहीं था, प्रपत्र-14 एक प्रमाण पत्र है जो प्रस्तावित क्षेत्र पर किसी मंदिर, मस्जिद और कब्रिस्तान के अस्तित्व के बारे में जारी किया गया था। प्रपत्र-15 एक प्रमाण पत्र है जिसमें प्रमाणित किया गया है कि अधिग्रहण के लिए प्रस्तावित भूमि के कुल अनुमानित मुआवजे में से 83, 97, 64, 000 / - प्राधिकरण ने पहले ही 16, 79, 52, 800 / प्रमाण-पत्र में आगे यह उल्लेख किया गया है कि प्रस्तावित क्षेत्र को निजी वार्ताओं द्वारा नहीं खरीदा जा सका और क्षेत्र के 1/2 मील के दायरे के भीतर प्रस्तावित क्षेत्र के समतुल्य कोई बंजार/गैर-कृषि भूमि उपलब्ध नहीं है। अधिग्रहण के लिए प्रस्तावित भूमि नियोजित विकास के लिए अपरिहार्य है। प्रपत्र-16 विकास प्राधिकरण के अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए प्रस्तावित भूखंडों पर पाई गई संपत्तियों की एक सूची है और प्रस्तावित क्षेत्र का मौके पर निरीक्षण करने के बाद राजस्व अधिकारियों द्वारा सत्यापित किया गया है।

194. प्रस्ताव के साथ 23 बिंदुओं पर एक रिपोर्ट संलग्न की गई थी, जिसमें एक घोषणा शामिल है कि प्रस्तावित भूमि पर पाई गई संपत्ति का मुआवजा संबंधित विभाग द्वारा उक्त संपत्ति का मूल्यांकन प्राप्त करने के बाद संबंधित किरायेदार धारकों को भुगतान किया जाएगा, और यह कि, यदि मुआवजे का भुगतान समझौता नियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है, 1997 के मामले में किसी आपत्ति की कोई संभावना नहीं थी। इसमें कहा गया है कि अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण) ने राजस्व अभिलेखों से दस्तावेजों का मिलान करने और आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, नियोजित विकास की तत्काल आवश्यकता के संबंध में प्रपत्र-10 में प्रमाण पत्र संलग्न करते हुए, उक्त प्रस्ताव को दिनांक 11.3.2010 के पत्र द्वारा निदेशक, भूमि अर्जन, निदेशालय को राज्य सरकार और निदेशालय को अग्रेषित करने के अनुरोध के साथ भेजा। तत्पश्चात्, अधिनियम की धारा-4(1) के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने और जिला कलेक्टर को निदेश जारी करके निर्धारित अवधि के भीतर राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति-2003 का अनुपालन सुनिश्चित करने के अनुरोध के साथ इसे राज्य सरकार को अग्रेषित कर दिया। अपर जिला कलक्टर (भूमि अधिग्रहण) का पत्र प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न है।

195. राज्य के प्रतिशपथ पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य सरकार ने प्रपत्र-10 में जारी जिला कलेक्टर के प्रमाण पत्र सहित सभी दस्तावेजों पर विचार किया है और धारा-4 (1) के तहत प्रस्ताव के साथ धारा-17(4) को लागू करने के औचित्य पर टिप्पणी की है और विषयगत रूप से संतुष्ट होने के बाद, धारा-4 (1) के साथ धारा-17(4) के प्रावधानों को लागू करके अधिसूचना जारी करने की मंजूरी दी है, 'यीडा' के माध्यम से गौतम बुद्ध नगर जिले में नियोजित विकास के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए।

196. इसमें आगे कहा गया है कि राज्य सरकार किरायेदार धारकों की संख्या की विशालता को देखकर संतुष्ट थी कि आपत्तियों के निपटान से वर्षों की देरी होगी। भूमि का अधिग्रहण और कब्जा सर्वोपरि पाया गया। तदनुसार, राज्य संतुष्ट था कि धारा-5-ए के प्रावधानों को समाप्त करने की आवश्यकता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य सरकार की संतुष्टि बाहरी या अप्रासंगिक विचारों पर आधारित थी। राज्य के निर्णय को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि जांच के साथ कोई सामग्री नहीं थी या यह कि आदेश दुर्भावना से ग्रस्त था। राज्य द्वारा यह भी स्पष्ट करने की मांग की गई है कि चीजों को समग्र रूप से देखा जाना चाहिए। प्रत्येक अधिसूचना को एकांत में नहीं देखा जा सकता है। प्राधिकरण द्वारा तैयार की गई एकीकृत योजना को लागू करने के लिए कई अधिसूचनाओं के माध्यम से भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा है। इसे धीरे-धीरे और चरणों में निष्पादित किया जा रहा है।

ख. राज्य के अभिलेख से टिप्पण:-

197. हमने भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-4 के तहत अधिग्रहण प्रस्ताव को मंजूरी देते समय धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता खंड के आह्वान के निर्णय से संबंधित राज्य-उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मूल रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

198. रिकॉर्ड से, हमने नोट किया है कि प्रस्ताव प्राप्त होने पर, प्रस्ताव के साथ संलग्न दस्तावेजों में निहित जानकारी के संबंध में प्रश्न किए गए थे। रामपुर बांगर गांव के संबंध में संबंधित सचिवालय की दिनांक 26-3-2010 की टिप्पण में वर्ष 1049705 हेक्टेयर क्षेत्र के अधिग्रहण के लिए यह दर्शाया गया है कि प्रस्ताव के साथ खसरा और खतौनी प्रदान करने का निदेश जारी किया गया था। इसके प्राप्त होने पर, प्रस्ताव से संबंधित सभी बिंदुओं को नोट-शीट में सावधानीपूर्वक निकाला गया था, जिसमें यह दर्शाया गया था कि अधिग्रहण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने की आवश्यकताएं, जैसा कि मामले के सभी पहलुओं पर विभिन्न स्वरूपों में निर्धारित किया गया है, पूरी की गई हैं। अत्यावश्यकता खंड के आह्वान के संबंध में, निर्धारित प्रपत्र में धारा-17 के तहत अधिसूचना जारी करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया औचित्य और औचित्य नोट नोटशीट में निकाला गया था। नोट शीट से यथा परिलक्षित तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए दिए गए कारणों का राज्य के विभिन्न स्तरों पर निरीक्षण किया गया था और अंत में, विशेष सचिव, मुख्यमंत्री, उत्तर

प्रदेश सरकार के हस्ताक्षर से राज्य सरकार का अनुमोदन प्रदान किया गया था।

199. इसी प्रकार, 50.9390 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए ग्राम पचोकरा की भूमि के अधिग्रहण के रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में जिला भूमि उपयोग समिति की बैठक दिनांक 11.2.2009 के कार्यवृत्त उसमें संलग्न किए गए हैं, जो दर्शाता है कि यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण का अधिग्रहण प्रस्ताव, गौतम बुद्ध नगर जिले की सीमा के भीतर 10 गांवों नामत निलोनी शाहपुर, मिर्जापुर, पारसौल, अच्छेयपुर चांदपुर, रामपुर बांगर, रौनिजा, पचोकारा, रुस्तमपुर और रघुपुरा के संबंध में क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए गौतम बुद्ध नगर पर विचार किया गया था। इन गांवों की भूमि अधिग्रहण के लिए अपर जिला मजिस्ट्रेट, भूमि अधिग्रहण द्वारा प्रस्तुत कार्यसूची पर भूमि उपयोग समिति ने विचार-विमर्श किया और संकल्प में उल्लिखित शर्तों के अधीन सहमति दी, जो जिला मजिस्ट्रेट, गौतम बुद्ध नगर के हस्ताक्षर के अधीन है। जिला मजिस्ट्रेट/अध्यक्ष, जिला भूमि उपयोग समिति, गौतमबुद्ध नगर के हस्ताक्षर के साथ प्रमाण पत्र उस प्रस्ताव के साथ संलग्न किया गया है जिसमें यमुना एक्स्प्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए ग्राम पचोकरा की 50939 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण के लिए अनुमोदन दिया गया था। इसमें यह नोट किया गया है कि अधिग्रहण से 63 किसान/भूधारक प्रभावित होंगे। निर्धारित प्रपत्र में तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्तुत औचित्य और नोट शीट में प्रस्ताव के साथ संलग्न नोट, अधिग्रहण के लिए प्रस्ताव की आवश्यकताओं की पूत से संबंधित सभी प्रासंगिक बिंदुओं को निकालते हुए, प्रस्ताव को विभिन्न स्तरों पर विभिन्न तारीखों पर विधिवत रूप से पढ़ा गया था और अंत में 26-2-2009 को राज्य सरकार का अनुमोदन विशेष सचिव, मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दर्ज किया गया था।

200. 198.6320 हेक्टेयर क्षेत्र के डूंगरपुर रीलका गांव की भूमि के अधिग्रहण के रिकॉर्ड के अवलोकन पर, अधिनियम, 1894 की धारा-4/17 के तहत अधिसूचना जारी करते समय तात्कालिकता के आह्वान के प्रस्ताव पर, हम पाते हैं कि निदेशालय द्वारा राज्य को अग्रेषित प्रस्ताव की प्राप्ति पर, 11.11.2010 को प्रश्न किए गए थे कि कलेक्टर द्वारा प्रस्तुत तात्कालिकता खंड के आह्वान के औचित्य में विवरण नहीं दिया गया था (ग) प्रस्ताव में संशोधन किया गया है और जिला भूमि उपयोग समिति का अनुमोदन संलग्न नहीं किया गया है। दिनांक 11-11-2010 के नोट-शीट में की गई नोटिंग से पता चलता है कि आवश्यक अपेक्षाओं को पूरा करके प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए मामले को आस्थगित कर दिया गया था। तत्पश्चात्, नोट-शीट पर नई टिप्पणियां तैयार की गई थीं जब सभी अपेक्षाओं को पूरा कर लिया गया था और उसमें टिप्पण का अवलोकन इंगित करता है कि अत्यावश्यकता खंड को लागू करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए औचित्य को विधिवत रूप से निकाला गया था और उसमें दिए गए तर्क को नोट कर लिया गया था। उसमें यह नोट किया

गया था कि यदि ग्रामीणों को सुनवाई का अवसर दिया गया था, तो भूमि के अधिग्रहण में देरी की संभावना थी, जो परियोजना के निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में निकटवर्ती भूमि उपलब्ध नहीं हो सकती है। उक्त प्रस्ताव का राज्य के विभिन्न स्तरों पर विधिवत निरीक्षण/पूछताछ की गई और अंत में 28.11.2010 को विशेष सचिव, मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार के माध्यम से राज्य का अनुमोदन दर्ज किया गया।

201. अन्य गाँवों की भूमि के अधिग्रहण के सम्बन्ध में राज्य के मूल अभिलेख के निरीक्षण पर भी यही स्थिति हमें मिली, यहाँ विचारणीय विषय-वस्तु।

(VIII). निष्कर्ष:-

202. इस प्रकार, रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए संपूर्ण अभ्यास यांत्रिक था या राज्य की व्यक्तिपरक संतुष्टि को रिकॉर्ड करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा अभ्यास था जो बिना दिमाग लगाए अवधारित किया गया था।

203. अभिलेख का अवलोकन करने और राज्य के प्रति-शपथपत्र में दिए गए विवरण को ध्यान में रखते हुए, मास्टर प्लान और प्रश्नगत अधिसूचनाओं के अधीन अधिगृहीत भूमि के क्षेत्र को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य सरकार ने धारा-5-क के अधीन जांच के वितरण के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने समक्ष अभिलेख पर उपलब्ध संगत कारकों पर विधिवत ध्यान दिया था। (i) विकास के लिए एकीकृत योजना; (ii) भूमि की महँगी या परियोजना की विशालता; (iii) एकीकृत परियोजना के लिए समीपस्थ भूमि की आवश्यकता; (iv) एक्स्प्रेस वे से सटे बाहरी व्यक्तियों द्वारा भूमि के अतिक्रमण की संभावना; (v) विकास परियोजना का यमुना एक्स्प्रेस वे के विकास के लिए पूरक होने के कारण प्रपत्र-10 में बताए गए कारण थे जिन्होंने अधिनियम, 1894 की धारा-4 के साथ-साथ धारा-17(4) के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकरण के प्रस्ताव को अनुमोदित करने के लिए राज्य के दिमाग में दबाव डाला।

204. राज्य के जवाबी हलफनामे के साथ लाए गए रिकॉर्ड और सामग्री का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने से पता चलता है कि राज्य सरकार के स्तर पर दिमाग का उचित उपयोग किया गया है और यह एक यांत्रिक अभ्यास नहीं था। सरकार ने प्रत्येक अधिसूचना के संबंध में इसके औचित्य में जांच प्रदान करने के लिए बताए गए कारणों को नोट किया था और 9 गांवों के अधिग्रहण-इन-प्रश्न से संबंधित प्रत्येक फाइल पर अनुमोदन प्रदान किया था, जो इसमें चुनौती का विषय है। यह रिकार्ड में लाया जाता है कि लगभग 20 हेक्टेयर की रामपुर बांगर की भूमि, दिनांक 26-2-2009 की अधिसूचना द्वारा अधिग्रहण की विषय, ग्राम उस्मानपुर क्षेत्र की वर्ष 1613900 हेक्टेयर, सेक्टर 22-ई और 22-डी के भाग के अंतर्गत आने वाले रौनिजा गांव को एक्स्प्रेस वे और

सेक्टर रोड को जोड़ने के लिए गांवों से गुजरने वाली संपर्क सड़कों के निर्माण के लिए आवश्यक था और, इस प्रकार, क्षेत्र योजना का अभिन्न अंग थे।

205. हम इस स्थिति के प्रति सजग हो सकते हैं कि यह पहले से मौजूद शहर या विकसित क्षेत्र के विस्तार के लिए अधिग्रहण नहीं था। ताज एक्स्प्रेस वे प्राधिकरण के सृजन के साथ, वर्ष 2001 में ताज एक्स्प्रेस वे के निर्माण की परियोजना की परिकल्पना की गई थी जिसे न्यायालय में चल रहे मुकदमों के कारण कार्यान्वित नहीं किया जा सका। नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया था कि: -

57. एक्सप्रेसवे अत्यधिक सार्वजनिक महत्व का काम है। एक्सप्रेसवे के निर्माण से राज्य को लाभ होता है और आम जनता को भी। तीव्र गति वाले यातायात के लिए एक गलियारे का निर्माण जिसके परिणामस्वरूप यात्रा समय में कटौती होगी, साथ ही माल का परिवहन भी कुछ ऐसे कारक होंगे जो परियोजना के सार्वजनिक प्रयोजन के पक्ष में हैं। भूमि के पांच पार्सल के लिए अधिग्रहित की जा रही 25 मिलियन वर्ग मीटर भूमि के बारे में बहुत कुछ कहा गया था। वास्तव में, हमारी राय में, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही टिप्पणी की गई है, उद्योग, आवास, मनोरंजन आदि के लिए पांच जोनों का निर्माण, एक्स्प्रेस वे के निर्माण के लिए पूरक होगा।

58. यह नहीं भुलाया जा सकता है कि भूमि पार्सल के निर्माण से राज्य के औद्योगिक विकास को गति मिलेगी, अधिक नौकरियां पैदा होंगी और अर्थव्यवस्था की मदद होगी और इस तरह आम जनता की मदद होगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि परियोजना के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप नागरिकों के उपयोग के लिए राज्य में पांच विकसित पार्सल/केंद्र अस्तित्व में आएंगे। इस प्रकार, इस अन्यथा औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्र का योजनाबद्ध विकास होगा। इन पांच पार्सलों के निर्माण से निश्चित रूप से एक्सप्रेसवे के अधिकतम उपयोग में मदद मिलेगी और तेजी से चलने वाले यातायात के लिए एक्सप्रेसवे के अस्तित्व से पांच पार्सलों में बनाई गई औद्योगिक संस्कृति में मदद मिलेगी। इस प्रकार, दोनों एक-दूसरे के पूरक होंगे और इसे एक अभिन्न योजना के हिस्से के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह सार्वजनिक उद्देश्य नहीं है।

206. इसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया था कि क्षेत्र की विशालता को देखते हुए, अकेले एक्सप्रेसवे के लिए अधिग्रहित भूमि, 25 मिलियन मीटर भूमि के अलावा, जो पांच भूमि पार्सल के विकास के प्रयोजनों के लिए अधिग्रहित की जाने योग्य थी, यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि अतिक्रमण मुद्दा एक प्रासंगिक कारक नहीं था। राजमार्ग के लिए भूमि अधिग्रहण और पांच टाउनशिप स्थापित करने के लिए भूमि के अधिग्रहण के बीच परस्पर संबंध को उच्चतम न्यायालय के अनुमोदन से नोट कर लिया गया है।

207. रिट याचिकाओं के एक बंच में [नाथी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)] इस

न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा 12.11.2010 को फैसला किया गया, जिसमें अधिनियम, 1894 के 17(1) और 17(4) सपठित भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा-4 और 6 के तहत जारी दिनांक 16.10.2009 और 1.12.2009 की अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती दी गई थी; क्रमश खंडपीठ द्वारा यह नोट किया गया था कि यमुना एक्स्प्रेस वे के माध्यम से क्षेत्र का नियोजित विकास एक एकीकृत परियोजना का हिस्सा है जो भूमि के बडे क्षेत्र को कवर करेगा। अधिग्रहण में भूमि पार्सल के साथ यमुना एक्सप्रेसवे को जोड़ने के लिए संपर्क सड़क का निर्माण भी शामिल होगा।

208. उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम 1976 की धारा-2 (क) के अंतर्गत सड़क, जल आपूर्ति, स्ट्रीट लाइटिंग एवं विद्युत आपूर्ति, सीवरेज, जल निकासी, औद्योगिक अपशिष्ट एवं नगर अपशिष्ट का संग्रहण, उपचार एवं निपटान एवं अन्य सामुदायिक सुविधाएं, सेवाएं अथवा सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए यमुना एक्सप्रेस-वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण की योजना पर विचार किया जाना है ताकि अभिलेख से यह कथन नोट किया जा सके कि (ख) यदि हां, तो अधिनियम की धारा-17(4) को लागू करने के लिए राज्य सरकार की संतुष्टि को मनमानेपन अथवा दिमाग का प्रयोग न किए जाने के कारण दूषित नहीं कहा जा सकता।

209. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मास्टर प्लान, चरण-1-2031 के तहत जिला गौतम बुद्ध नगर और बुलंदशहर के यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से एकीकृत विकास योजना, विशेष विकास क्षेत्र, कोर गतिविधि क्षेत्र के विकास के लिए प्रदान करने वाले राज्य के नीतिगत निर्णय का हिस्सा है। विशेष विकास जोन की कोर गतिविधियों की पूरक गतिविधियों में से, 35% से अधिक भूमि का उपयोग कोर गतिविधि, पहुंच मार्ग और खुली जगह के लिए किया जाना था। मास्टर प्लान (चरण-I), गौतम बुद्ध नगर और बुलंदशहर के अंतर्गत विकास के लिए लक्षित कुल क्षेत्र (शहरी क्षेत्र में आबादी गांव को छोड़कर) 1845043 हेक्टेयर है। गांव आबादी क्षेत्रों को छोड़कर वर्ष 1124.69 हेक्टेयर, शहरीकरण योग्य क्षेत्र 19575.12 हेक्टेयर है जिसमें ग्रीन्स, परिवहन और मिश्रित उपयोग के अलावा आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक, संस्थागत उपयोग के लिए निर्धारित क्षेत्र शामिल है।

210. अधिसूचना के बाद कोई देरी नहीं हुई है, क्योंकि 2 या 3 अधिग्रहण अधिसूचनाओं में, हमारे समक्ष चुनौती का विषय, जिसमें धारा-6 अधिसूचना जारी करने में लगभग 1 (एक) वर्ष का समय लग गया है, प्रतिशपथ पत्र में एक स्पष्ट बयान देकर देरी को समझाया गया है कि अनुमानित मुआवजे का 80% जमा करने के लिए लगभग एक हजार करोड़ रुपये की आवश्यकता थी, जिसके लिए यमुना एक्सप्रेसवे द्वारा संपार्श्विक सुरक्षा की व्यवस्था की गई थी (ग) सरकार ने नोएडा और ग्रेटर नोएडा जैसे प्राधिकरणों के माध्यम से औद्योगिक विकास प्राधिकरण, जिन्होंने ऋण की मंजूरी के लिए अपनी भूमि गिरवी रखी थी, को भी सूचित किया है। धारा-6 अधिसूचना जारी करने

के लिए 80% अनुमानित मुआवजे की जमा करना पूर्व-अपेक्षित शर्त है और केवल अनुमानित मुआवजे के 80% के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास धन जमा कराने पर धारा-6 के तहत घोषणा जारी करने की प्रक्रिया शुरू की गई थी। धारा-4 अधिसूचना की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति से ठीक पहले, वर्ष की अंतिम तिथि की पूर्व संध्या पर धारा-6 अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकरण ('यीडा') द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण, एक वैध औचित्य पाया जाता है। इसके अलावा, चुनौती के तहत अन्य सभी अधिग्रहण अधिसूचनाओं में, कोई देरी नहीं हुई है क्योंकि धारा-4 अधिसूचना से 3 से 4 महीने के समय अंतराल में धारा-6 अधिसूचना जारी की गई थी।

211. इसलिए, हम याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्कों से प्रभावित नहीं हैं कि चुनौती के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाएं अस्पष्टीकृत पोस्ट-नोटिफिकेशन देरी से पीड़ित हैं और इसे निष्कर्ष निकालने के लिए एक कारक के रूप में माना जाना चाहिए कि कोई तात्कालिकता नहीं थी।

212. हमारे समक्ष यह रखा गया कि मास्टर प्लान '2031 का प्रथम चरण वर्ष 2021 तक पूरा किया जाना था। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि अधिग्रहण का उद्देश्य प्राप्त किया गया है क्योंकि प्रमुख अधिग्रहित क्षेत्र पहले ही विकसित किया जा चुका है। लगभग 95% भूमि मालिकों को पहले ही मुआवजा मिल चुका है और उनमें से 90% ने किसी न्यायालय में दरवाजा नहीं खटखटाया है। जिन कारकों को यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना के लिए नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में प्रासंगिक माना जाना था, वे प्रश्न में अधिग्रहण में भी प्रासंगिक पाए गए हैं।

213. राधे श्याम (उपरोक्त) में, अपीलकर्ता के अधिवक्ताओं द्वारा भारी भरोसा किया गया, नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में निर्णय पैरा-'72' और '76' में निम्नलिखित तरीके से नोट किया गया था: -

"72. नंद किशोर गुप्ता बनाम (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 282 के मामले में यमुना एक्स्प्रेस वे के निर्माण के लिए भूमि के अधिग्रहण को सही ठहराया था और जांच समाप्त करने के राज्य सरकार के निर्णय को निम्नलिखित टिप्पणियां करके अस्वीकृत कर दिया गया था

पीठ ने कहा, "हमने जानबूझकर उच्च न्यायालय के फैसले के उपरोक्त हिस्से को केवल यह दिखाने के लिए उद्धृत किया है कि उच्च न्यायालय ने इस बात की जांच करने में सावधानी बरती है कि क्या अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने के लिए राज्य सरकार के समक्ष सामग्री थी। हम पूरी तरह से आश्वस्त हैं कि परियोजना की विशालता, अतिक्रमण की संभावना, अपीलकर्ताओं की संख्या-जिन्हें सुनवाई की आवश्यकता होगी और उस उद्देश्य के लिए लिया गया समय, और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि परियोजना 2001 से 2008 तक पहले से ही लंबित थी, इस परियोजना में आवश्यकता थी। हमें कोई कारण नहीं दिखता

कि हमें उच्च न्यायालय द्वारा जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उससे अलग दृष्टिकोण क्यों अपनाना चाहिए।

76. नंद किशोर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले में, अधिग्रहण को बरकरार रखा गया था क्योंकि यमुना एक्सप्रेसवे के निर्माण के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता थी और जब तक इस न्यायालय द्वारा मामले का निर्णय लिया गया, तब तक परियोजना पर भारी राशि खर्च की जा चुकी थी। इसके विपरीत, आवासीय, औद्योगिक और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए भूमि के अधिग्रहण, सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट और जिला जेलों के निर्माण के लिए धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत शक्ति का प्रयोग राजा आनंद ब्रह्म शाह बनाम भारत संघ और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त), नारायण गोविंद गावटे वि. महाराष्ट्र राज्य (उपरोक्त), ओम प्रकाश वी। उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त), भारत संघ बनाम कृष्ण लाल अरनेजा (उपरोक्त), एसो फैब्स प्राइवेट लिमिटेड v. हरियाणा राज्य (उपरोक्त), बाबू राम वी। हरियाणा राज्य (उपरोक्त) और आनंद सिंह वी। उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)।

214. नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में पैरा-'93' में टिप्पणियों ने राधे श्याम (उपरोक्त) में उल्लेख किया है कि परियोजना की विशालता, अतिक्रमण की संभावना, अपीलकर्ताओं की संख्या-जिन्हें सुनने की आवश्यकता होगी और उस उद्देश्य के लिए लिया गया समय, जैसे विभिन्न कारणों पर विचार करते हुए अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त करने की आवश्यकता थी, राज्य सरकार के समक्ष सामग्री से नोट किए गए तात्कालिकता खंड के आह्वान के कारणों को न तो छुआ गया था और न ही अप्रासंगिक माना गया था, बल्कि नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में तात्कालिकता खंड का आह्वान, उपर्युक्त कारणों पर, पैरा-'73' में कार्यवाही करते समय आवासीय के लिए भूमि के अधिग्रहण के लिए धारा-17(1) और/या 17(4) के तहत प्रयोग करने की वैधता और/या औचित्य की जांच करने के लिए, वाणिज्यिक या औद्योगिक उद्देश्य।

215. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर निर्भरता केवल इस आधार पर रखी गई है कि चुनौती के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाओं में बयान से "एक क्षेत्र के नियोजित विकास के लिए" परियोजना में तात्कालिकता खंड को लागू नहीं किया जा सकता है, याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं है, चूंकि यह न्यायालय विचाराधीन परियोजना की प्रकृति की अनदेखी नहीं कर सकता है, इसलिए राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता को लागू करने के लिए उपलब्ध रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री। यह ऐसा मामला नहीं है जहां यह कहा जा सकता है कि राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता खंड के आह्वान को न्यायोचित ठहराने वाली कोई सामग्री नहीं थी या इसके समक्ष लाई गई सामग्री पर राज्य का कोई दिमाग नहीं लगाया गया है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई गलती नहीं दिखाई जा सकी। यह दिमाग न लगाने का मामला नहीं है। सरकार द्वारा अपने निर्णय

में मत तैयार करना आवश्यक नहीं था और न ही इस आधार पर आदेश को दूषित करेगा कि कारणों को अभिलिखित नहीं किया गया है।

216. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि का मामला है और एक बार जब सरकार राय बनाती है और अधिनियम की धारा-5-ए के तहत जांच को समाप्त कर देती है, तो न्यायालय, न्यायिक समीक्षा के अपने सीमित अधिकार क्षेत्र में, अधिग्रहण की कार्यवाही को खराब घोषित नहीं कर सकता है। ऊपर की गई विस्तृत चर्चा के लिए, प्रस्तुत मामले में, हमें निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई त्रुटि या दुर्बलता नहीं मिलती है और इसलिए अधिग्रहण के लिए अधिसूचनाओं को रद्द करने के लिए न्यायिक समीक्षा की शक्तियों को लागू करने का कोई मामला नहीं बनता है।

(IX). पूर्वाग्रह का कारण:-

217. यहां यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि रिट याचिकाओं के बंच में याचिकाकर्ता अधिग्रहण के उद्देश्य के लिए अपनी आपत्ति दर्ज करने के लिए सुनवाई के अवसर से इनकार करने से व्यथित हैं, जो सार्वजनिक उद्देश्य पाया जाता है। हमारे समक्ष कई रिट याचिकाओं में, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं की भूमि लेने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह या तो आबादी थी या कृषि के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा रही थी। रिट याचिका में बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, जिसमें याचिकाकर्ता को रखा गया है, यह अधिग्रहण से उसकी भूमि को हटाने के लिए उपयुक्त मामला है।

218. रिट याचिका संख्या-11839 वर्ष 2012 में से एक में, पांच याचिकाकर्ताओं बाने सिंह, श्रीमती शीला देवी, श्रीमती सुमन देवी, खून चंद और नरेंद्र कुमार ने ग्राम रामपुर बांगर, परगना दनकौर, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर, के गाटा संख्या-228, 144, 459 और 452 में अपने भूखंडों के अधिग्रहण के संबंध में विवाद उठाया है। (ख) उक्त भूखंडों को आबादी के रूप में दर्ज किया गया था और इसके अतिरिक्त अधिग्रहण के प्रस्ताव की तैयारी के समय तैयार की गई सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया था कि उपर्युक्त भूखंडों का उपयोग आबादी के रूप में किया जा रहा था। रिट याचिका में बयान यह है कि याचिकाकर्ता केवल अपनी भूमि की छूट के लिए इच्छुक हैं, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, क्षेत्र के लिए मौजूदा आबादी की सीमा तक और कानून के अनुसार शेष अधिग्रहित क्षेत्र के लिए मुआवजा चाहते हैं। बयान इस आशय का भी है कि याचिकाकर्ता प्राधिकरण अर्थात् यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा प्रभार्य विकास शुल्क और अन्य खर्चों का भुगतान करने के लिए तैयार थे, लेकिन सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और भूमि की छूट के लिए अपने प्रतिनिधित्व पर निर्णय किए बिना, प्रतिपक्षी निर्मित घर/विवादित भूमि पर कब्जा लेने के लिए आमादा थे। विचाराधीन भूखंडों के क्षेत्र को आबादी के रूप में दर्ज किया गया है और इस तरह उपयोग किया जा रहा है, चुनौती के तहत अधिग्रहण में

शामिल नहीं किया जा सकता था। रिट याचिका में प्रार्थना की गई है कि याचिकाकर्ताओं की भूमि के संबंध में अधिग्रहण अधिसूचना को रद्द किया जाए, आबादी साइट को नियमित करने के लिए उनके आवेदन पर फैसला किया जाए और आगे उनकी संबंधित भूमि से बेदखल न किया जाए। याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती को इस तर्क के साथ जवाबी हलफनामे में विवादित किया गया है कि विचाराधीन भूमि के सर्वेक्षण के समय कोई आबादी मौजूद नहीं थी। प्लॉट संख्या-228, 144, 452 के संबंध में अवार्ड करार नियामवाली, 1997 के तहत धारा-11 (2) के तहत घोषित किया गया था क्योंकि उक्त भूखंडों के रिकॉर्ड किए गए किरायेदारों ने अधिग्रहण निकाय के साथ एक समझौता किया था और करार नियामवाली के तहत मुआवजा स्वीकार किया था। प्लॉट संख्या-459 के संबंध में अवार्ड धारा-11 (1) के तहत घोषित किया गया है और चूंकि दर्ज जोत धारकों को यह प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए इसे जिला न्यायालय में जमा किया गया है। राज्य के जवाबी हलफनामे में एक स्पष्ट बयान दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं सहित प्रभावित किरायेदार धारकों ने बिना किसी विरोध या विवाद के समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद समझौता नियमों के तहत मुआवजा प्राप्त किया था। जवाबी हलफनामे में यह भी कहा गया है कि प्लॉट संख्या-452 राजस्व रिकॉर्ड में किसी भी याचिकाकर्ता के नाम दर्ज नहीं है। प्लॉट संख्या-452 के दर्ज किरायेदार को पहले ही मुआवजा मिल चुका था। उक्त प्रति शपथ-पत्र का कोई प्रत्युत्तर दायर नहीं किया गया है।

219. अन्य रिट याचिकाओं में दिए गए बयानों से इसी तरह के तथ्य देखे गए हैं, जहां याचिकाकर्ताओं ने अपने भूखंडों को इस आधार पर बाहर करने की मांग की थी कि प्रस्ताव तैयार करने के समय अधिग्रहित भूखंडों पर आबादी मौजूद थी और उक्त तथ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट में इंगित किया गया था।

220. हम व्यक्तिगत मामलों में अपनी आबादी को बाहर रखने के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे के गुणों में प्रवेश नहीं कर रहे हैं। हालांकि, तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता इस आधार पर अपने भूखंडों के अधिग्रहण को चुनौती दे रहे हैं कि, अगर उन्हें सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया होता, तो वे रिकॉर्ड पर सामग्री रखकर अपनी भूमि को अधिग्रहण से बाहर रखने के लिए प्रार्थना कर सकते थे कि यह अधिग्रहण से उनकी भूमि को छोड़ने के लिए एक उपयुक्त मामला था। जांच को समाप्त करने के राज्य सरकार के निर्णय के कारण याचिकाकर्ताओं को हुए पूर्वाग्रह को केवल उपरोक्त सीमा तक ही उत्तेजित किया गया है।

221. इस संबंध में, यह 'यीडा' के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ग्रामीण आबादी साइट (प्रबंधन और नियमितीकरण) विनियमन 2011 नामक एक विनियमन मौजूद है, जिसे नोएडा की लीज़-बैक पॉलिसी के तहत प्रभावित किरायेदार धारकों को आबादी भूखंडों का पट्टा वापस प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है, 7% आबादी भूमि उन लोगों को आवंटित की जा रही है जिनकी भूमि अधिग्रहित की गई थी। दिनांक

29.08.2014 और 04.11.2015 के शासनादेश द्वारा यह निर्णय लिया गया था कि प्रभावित काश्तकार धारकों को 64.7% अतिरिक्त मुआवजे का भुगतान मुकदमा न करने के लिए प्रोत्साहन के रूप में किया जाएगा। प्राधिकरण के बोर्ड ने भी उसी नीति को अनुमोदित कर दिया है और इस प्रकार इसमें उल्लिखित निबंधन एवं शर्तों के अनुसार प्रभावित पट्टेदारों को मुकदमा निषेध प्रोत्साहन के रूप में अतिरिक्त मुआवजा दिया जा रहा है। दिनांक 4.11.2015 के सरकारी आदेश द्वारा, "कोई मुकदमा प्रोत्साहन" के रूप में 64.7% अतिरिक्त मुआवजे के भुगतान की शर्त में ढील दी गई है, जिसमें रिट याचिका को वापस लेने की प्रारंभिक शर्त को इस हद तक शिथिल कर दिया गया है कि उन गांवों की अधिग्रहण अधिसूचनाओं में जहां 80% रिट याचिकाएं वापस ले ली गई हैं, "कोई मुकदमा प्रोत्साहन" के रूप में अतिरिक्त मुआवजे का भुगतान नहीं किया जाएगा।

222. दिनांक 29.08.2014 के शासनादेश की योजना से यह स्पष्ट है कि वे किरायेदार धारक जिन्होंने सहमति से अपनी भूमि बेची है, वे भी "कोई मुकदमा प्रोत्साहन" के रूप में अतिरिक्त मुआवजे के हकदार हैं।

223. हम यह भी नोट कर सकते हैं कि ग्राम रामपुर बांगर, परगना दनकौर, तहसील सदर, जिला गौतमबुद्ध नगर से संबंधित रिट याचिका संख्या-18539 वर्ष 2013 में से एक में, गाटा संख्या-152 क्षेत्र 0.8950 हेक्टेयर के अधिग्रहण को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि याचिकाकर्ता का भूखंड पूरी तरह से चारों तरफ आबादी से घिरा हुआ है, जिस पर याचिकाकर्ता का आवासीय घर बनाया गया था और याचिकाकर्ता उसमें अपने परिवार के साथ रहते हैं। याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के लिए कोई अन्य आवासीय घर नहीं है। इसके जवाब में, विकास प्राधिकरण के जवाबी हलफनामे में, एक स्पष्ट बयान दिया गया है कि प्राधिकरण ने प्लॉट संख्या-152 को 0.2100 हेक्टेयर की सीमा तक वापस पट्टे पर देने का फैसला किया है और उक्त निर्णय पहले ही याचिकाकर्ता को दिनांक 4.6.2011 के पत्र द्वारा सूचित किया गया था। उसमें कथन यह है कि प्लॉट संख्या-152 क्षेत्र 0.7950 हेक्टेयर का कब्जा 3.11.2010 को प्राधिकरण को सौंप दिया गया था और 0.1000 हेक्टेयर क्षेत्र का कब्जा प्राधिकरण को नहीं दिया गया है।

224. याचिकाकर्ताओं को कथित रूप से उनके आबादी भूखंडों के अधिग्रहण के कारण पूर्वाग्रह और अधिनियम, 1894 की धारा-4 के तहत अधिग्रहण के प्रस्ताव की तैयारी के समय दर्ज किए जाने वाले छूट को छूट देने की प्रार्थना के कारण कहा गया है, इस प्रकार, प्राधिकरण द्वारा उपर्युक्त योजना के नियमों और शर्तों के अनुसार बहुत अच्छी तरह से संबोधित किया जा सकता है।

225. हालांकि, विचाराधीन गांव की भूमि के विशाल क्षेत्र के अधिग्रहण के मद्देनजर, अधिग्रहण अधिसूचनाओं को रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्य के समक्ष तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए सामग्री थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सामग्री पर व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज करने

वाले राज्य के निर्णय को उस सामग्री की पर्याप्तता और विश्वसनीयता के आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है। सामग्री की सच्चाई या शुद्धता पर न्यायालय द्वारा सवाल नहीं उठाया जा सकता है और न ही उस संदर्भ में हमारे सामने सवाल उठाया गया है। राज्य के समक्ष रखी गई किसी भी सामग्री को अप्रासंगिक या अस्तित्वहीन सामग्री नहीं कहा जा सकता है जिसे घातक कहा जा सकता है ताकि आदेश को ही दूषित किया जा सके।

226. याचिकाकर्ता यह स्थापित करने में विफल रहे हैं कि उनकी भूमि परियोजना के लिए उपयुक्त नहीं थी; किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं थी। प्रश्नगत अधिग्रहण में दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है। यह प्रदर्शित नहीं किया जा सका और न ही यह तर्क दिया जा सकता है कि अधिग्रहण के पीछे सार्वजनिक उद्देश्य किसी अन्य भूमि द्वारा पूरा किया जाएगा। तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए औचित्य देने वाले प्राधिकरण का रुख कि अधिग्रहण के तहत भूमि सन्निहित थी, और अपरिहार्य थी, याचिकाकर्ताओं द्वारा विवादित या इनकार नहीं किया जा सकता था।

227. इसलिए, हम पाते हैं कि इस विवाद के अलावा कि कुछ याचिकाकर्ता अपनी आबादी भूमि की छूट के हकदार हैं, याचिकाकर्ताओं द्वारा विचाराधीन अधिग्रहण के लिए कोई अन्य प्रशंसनीय आपत्ति नहीं की जा सकती है। धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण से याचिकाकर्ताओं को हुए पूर्वाग्रह को दिखाया या प्रदर्शित नहीं किया जा सका।

228. अनुच्छेद 300-ए के तहत संवैधानिक योजना के अनुरूप याचिकाकर्ताओं की भूमि का अधिग्रहण और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 39 (बी) के तहत बड़े पैमाने पर जनता के लिए क्षेत्र के विकास के लिए बनाई गई नीति को आगे बढ़ाने में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 31-सी के प्रावधानों द्वारा बचाया गया है। संविधान के अनुच्छेद 31-ए के दूसरे परंतुक के तहत प्रदान किए गए मुआवजे का अधिकार, अधिनियम, 1894 के तहत गणना किए गए मुआवजे के अलावा 64.7% का "कोई मुकदमा प्रोत्साहन" देकर विधिवत संतुलित है; आबादी भूमि (विकसित भूमि) का 7% अनुदान और 'यीडा' द्वारा दिनांक 10.10.2011 (2014 में संशोधित) द्वारा तैयार की गई लीज़-बैक नीति।

229. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर, राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए कानूनी सिद्धांतों के प्रकाश में, हम पाते हैं कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा-5-ए के तहत जांच के वितरण के लिए धारा-17(4) के तहत तात्कालिकता का आह्वान अधिग्रहण के लिए घातक नहीं है।

(X) श्रोज सिंह पर निर्भरता (उपरोक्त)

230. जहां तक श्योराज सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 51 और ऊपर उल्लिखित अन्य समान निर्णयों में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता का संबंध है, हम 51रिट-सी संख्या-30747 वर्ष 2010 की राय में हैं कि मामले का प्रासंगिक पहलू, जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रतिद्वंद्वी पक्षों के तर्कों के गुणों का परीक्षण करने के लिए, प्रश्न में अधिग्रहण को चुनौती देने के लिए प्रासंगिक, उसमें डिवीजन बेंच द्वारा नोट नहीं किया गया था और न ही जांच की गई थी। खण्ड न्यायपीठ ने विकास प्राधिकरण के अधिवक्ता की इस दलील पर विचार नहीं किया कि बड़ी संख्या में किसानों को देखते हुए सुनवाई से परियोजना में विलंब होता। यह केवल राज्य के अभिलेख में चला गया है, भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा-17 के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए उसमें उल्लिखित कारणों को दर्ज करने के लिए प्रपत्र-10 में औचित्य को ध्यान में रखते हुए, केवल इस आधार पर निपटा और खारिज कर दिया गया कि अधिसूचना के बाद एक वर्ष की देरी यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त थी कि ऐसी कोई तात्कालिकता नहीं थी जो भूमि की धारा-17 के तहत शक्तियों के आह्वान को उचित ठहरा सकती थी (ग) सरकार ने अर्जन अधिनियम, 1894 के तहत एक नया संशोधन किया है ताकि धारा-5-क के अंतर्गत सुनवाई के अवसर से किसानों को वंचित किया जा सके।

231. राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, यह उसमें अवधारित किया गया था कि विकास प्राधिकरणों के लिए नियोजित विकास के लिए अधिग्रहित की जाने वाली भूमि के मामले में तात्कालिकता खंड के आह्वान पर विचार किया गया है, और नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) में विकास प्राधिकरण के अधिवक्ता द्वारा निर्णय पर बहुत अधिक भरोसा किया गया है, प्रतिष्ठित किया गया था।

232. श्योराज सिंह (उपरोक्त) में न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि यह एक एकीकृत परियोजना थी, जिसके एक हिस्से के लिए अधिग्रहण नंद किशोर गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही बरकरार रखा जा चुका है। तात्कालिकता खंड के आह्वान में औचित्य के लिए दिए गए कारणों की जांच उस संदर्भ में नहीं की गई थी, जिसमें वे किए गए थे। उक्त मामले में अधिवक्ताओं द्वारा बहस के समय अदालत के समक्ष रखी गई सामग्री पर निर्णय लिया गया है, याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ताओं के एकमात्र तर्क को बनाए रखने के लिए एक मार्गदर्शक कारक नहीं हो सकता है कि राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, "यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के माध्यम से नियोजित विकास के लिए अधिग्रहण, बरकरार नहीं रखा जा सकता। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं के तर्कों की जड़ केवल राधे श्याम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, इससे परे कुछ भी किए बिना, यहां ऊपर निपटाया गया है।

233. श्योराज सिंह (उपरोक्त) के मामले में यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के लिए ग्राम चांदपुर, परगना दनकौर, तहसील और जिला गौतम बुद्ध नगर की भूमि के अधिग्रहण में इस न्यायालय की

डिवीजन बेंच के निर्णय पर रखी गई निर्भरता इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं है।

(xi) राहत पुन क्षतिपूर्ति:-

234. अंत में, हमें याचिकाकर्ताओं के लिए कुछ अधिवक्ताओं के तर्कों से निपटने की आवश्यकता है कि याचिकाकर्ता संतुष्ट होंगे, यदि अधिग्रहण को रद्द करने के बजाय, उन्हें भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 में उचित मुआवजा और पारदर्शिता के अधिकार के प्रावधानों के तहत मुआवजा प्रदान किया जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं द्वारा दी गई चुनौती पर, इस बंच में, प्रवेश के चरण में, अंतरिम आदेश पारित किए गए हैं जिसमें पक्षकारों को प्रश्नगत भूमि के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि भूमि का कब्जा, यहां अधिग्रहण की विषय-वस्तु विकास प्राधिकरण को नहीं सौंपी गई है। तात्कालिक बंच में अधिग्रहण की विषय-वस्तु भूमि के संबंध में कोई अधिनिर्णय नहीं दिया गया है। प्रश्न यह है कि क्या सहारा इंडिया कॉमर्शियल कॉरपोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य52 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करके, हम भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 के तहत याचिकाकर्ताओं को मुआवजा दे सकते हैं।

235. सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने ओम प्रकाश (उपरोक्त) में पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए माना है कि अधिग्रहण के इसी उद्देश्य के साथ, ओम प्रकाश (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने तात्कालिकता खंड का आह्वान बुरा पाया था और माना था कि धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचनाएं, अधिनियम, 1894 की धारा-5-क के तहत आपत्ति की जांच/सुनवाई किए बिना कोई समझौता औचित्यपूर्ण नहीं था और समग्र रूप से अधिग्रहण की कार्यवाही हस्तक्षेप के लिए खुली होगी। तथापि, राहत प्रदान करते हुए न्यायालय ने उसमें यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि योजना, जिसके लिए प्रश्नगत भूमि का अधिग्रहण किया गया था, कार्यान्वित कर दी गई थी और विभिन्न स्कीमों के अंतर्गत भूमि निर्माण के कुछ हिस्सों पर निर्माण किया गया था, यद्यपि अधिग्रहण कानूनी रूप से कमजोर पाया गया था, जिसके लिए अधिग्रहण प्राधिकारी को भूमि स्वामियों को भूमि वापस करने की आवश्यकता थी, उस स्तर पर, आवास और अन्य परियोजनाओं को खतरे में डालने का प्रभाव होगा, जो या तो पूरा हो चुका था या पूरा हो गया था। राहत को ढालते समय, इस प्रकार, यह माना गया था कि अधिग्रहण प्राधिकारी की ओर से भूमि के किसी भी हिस्से को किसी भी भूमि स्वामी को वापस करने का कोई दायित्व नहीं होगा। यदि अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी ने प्रश्नगत अधिसूचनाओं द्वारा अधिग्रहित पूरी भूमि को केवल सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं की भूमि के संबंध में अपने पास रखने का निर्णय लिया है, तो सर्वोच्च

न्यायालय के आदेश की तारीख को अपीलकर्ता की भूमि के अधिग्रहण के लिए नई अधिसूचना की तारीख माना जाएगा। उसमें आगे यह कहा गया था कि भूमि मालिकों के संबंध में जिन्हें मुआवजे का कोई हिस्सा मिल सकता है, पूर्वोक्त निर्देशों का कोई आवेदन नहीं होगा। डीम्ड अधिसूचना की तारीख के संदर्भ में अपीलकर्ताओं के संबंध में निर्धारित किए जाने वाले मुआवजे की गणना भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 में उचित मुआवजा और पारदर्शिता के अधिकार के प्रावधानों के अनुसार की जानी थी।

236. जिन सिद्धांतों पर सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) में अपीलकर्ताओं को राहत दी गई थी, हालांकि, प्रस्तुत मामले के तथ्यों में आकर्षित नहीं होते हैं। सबसे पहले, क्योंकि हमें अधिग्रहण प्रक्रिया में कोई कमजोरी नहीं मिली। और दूसरी बात, इस कारण से कि प्रस्तुत मामले में, अधिकारियों को रिट याचिका के प्रवेश पर दी गई यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने वाले अंतरिम आदेश लागू हो रहे हैं। अधिग्रहण प्राधिकारी की ओर से, यह प्रस्तुत किया गया था कि अंतरिम स्थगन या निषेधाज्ञा के दौरान बिताई गई अवधि, जिसके द्वारा प्राधिकरण कब्जा लेने या मुआवजे का भुगतान करने के लिए अवार्ड की घोषणा करने में सक्षम नहीं है, को भूमि अधिग्रहण में उचित मुआवजा और पारदर्शिता के अधिकार की धारा-24 (2) में निर्धारित अवधि से बाहर रखा जाना चाहिए, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 धारा-24 (1) (ए) निर्धारित करती है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत शुरू की गई भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के मामले में, जहां अधिनियम, 1894 की धारा-11 के तहत कोई निर्णय नहीं दिया गया है, तो, मुआवजे के निर्धारण से संबंधित अधिनियम, 2013 के सभी प्रावधान लागू होंगे।

237. अधिनियम, 2013 की धारा-24(2) में यह भी प्रावधान है कि अधिनियम, 1894 के अधीन भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू होने की दशा में, जहां धारा-11 के अधीन अधिनिर्णय अधिनियम के प्रारंभ होने से पांच वर्ष या उससे अधिक पूर्व दिया गया है, किन्तु भूमि का भौतिक कब्जा नहीं लिया गया है या प्रतिकर का भुगतान नहीं किया गया है, उक्त कार्यवाही को व्यपगत माना जाएगा।

238. 2013 अधिनियम की धारा-24 (1) के प्रभाव से निपटने के दौरान, एक मामले में, जहां भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-4 की उप-धारा-(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन द्वारा प्रवर्तन वर्ष 2013 अधिनियम से पहले भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू की गई थी, हरियाणा राज्य औद्योगिक और अवसंरचना डेडेलोपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम श्री दीपक अग्रवाल और अन्य 53 में सर्वोच्च न्यायालय, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि 2013 अधिनियम की धारा-24 की उपधारा-(1) के प्रयोजनों के लिए, भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत कार्यवाही को अधिनियम की धारा-4 की उप-धारा-(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन पर शुरू की गई कार्रवाई माना जाएगा और 2013 अधिनियम की धारा-24 की उप-धारा-(1) का खंड (ए) ऐसे मामले में केवल

मुआवजे की राशि के निर्धारण के लिए लागू होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त मामले में, 2013 के अधिनियम के लागू होने से पहले अकेले भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा-4 (1) के तहत प्रस्ताव के लिए अधिसूचना जारी की गई थी।

239. इंदौर विकास प्राधिकरण (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारा-24 (2) वर्ष 2013 अधिनियम के प्रभाव और निहितार्थ से निपटा है। अंतरिम आदेश या निषेधाज्ञा के दौरान बिताए गए समय को बाहर रखने के लिए अधिग्रहण प्राधिकारी के तर्कों पर विचार करते हुए, जिसके द्वारा प्राधिकरण कब्जा लेने या मुआवजे का भुगतान करने में सक्षम नहीं है, पैरा-'289' में यह निष्कर्ष निकाला गया था कि यह 2013 के अधिनियम का इरादा नहीं है कि जिन लोगों ने मुकदमा किया है, उन्हें अधिनियम की धारा-24 के तहत यथा अपेक्षित उच्च मुआवजे का लाभ मिलना चाहिए, 2013.

240. यह देखा गया कि "यह प्रावधानों का इरादा नहीं है कि जिन व्यक्तियों ने मुकदमा दायर किया है और अंतरिम आदेश प्राप्त किया है, उन्हें 2013 अधिनियम के प्रावधानों का लाभ मिलना चाहिए"। "यह कानून का इरादा अथक वादियों को लाभ पहुंचाने का नहीं है"।

241. भारत संघ और अन्य बनाम मोहिउद्दीन मसूद और अन्य54 में, सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) और राधे श्याम (उपरोक्त) में निर्णयों पर विचार किया गया और यह माना गया कि उन मामलों का निर्णय तथ्यों और परिस्थितियों में किया गया था। उसमें आगे यह देखा गया था कि उसमें तात्कालिकता खंड के आह्वान को रिकॉर्ड पर सामग्री की मूल्यांकन पर बुरा नहीं कहा जा सकता है और इस तरह, अधिनियम, 1894 की धारा-4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं था। इसके अलावा, रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत करने पर कि उन्हें कोई मुआवजा नहीं दिया गया है, यह नोट किया गया कि अधिग्रहण प्राधिकारी ने अनुमानित मुआवजे का 80% बहुत पहले जमा कर दिया था, लेकिन भूमि धारकों ने इसे लेने से इनकार कर दिया था। यह आगे कहा गया कि मूल रिट याचिकाकर्ताओं के लिए यह शिकायत करना खुला नहीं था कि उन्हें कोई मुआवजा नहीं दिया गया था, क्योंकि यह अभी भी उनके लिए मुआवजा वापस लेने के लिए खुला था। रिट याचिकाएं दायर होने से पहले ही अंतिम निर्णय प्रकाशित किया जा चुका था और भूमि धारकों ने स्वयं मुआवजा स्वीकार नहीं किया था।

242. उपरोक्त चर्चा के लिए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रार्थना कि सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) को लागू करके, धारा-24 (1) (ए) के प्रावधानों के मद्देनजर, याचिकाकर्ता अधिनियम, 2013 के तहत निर्धारित किए जाने वाले उच्च मुआवजे के हकदार हैं, को खारिज कर दिया जाता है।

243. हालांकि, यह निर्देश दिया जाता है कि नौ गांवों से संबंधित अधिग्रहित भूमि के लिए अधिनिर्णय, यहां विचार की विषय-वस्तु, यदि

इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के मद्देनजर तैयार नहीं किया गया है, तो इसे कानून के अनुसार सख्ती से घोषित किया जाएगा, जितनी जल्दी हो सके, अधिमानतः आज से दो महीने की अवधि के भीतर और मुआवजे का भुगतान या उसके तुरंत बाद जमा किया जाएगा।

244. प्राधिकरण (यीडा) द्वारा बनाई गई अन्य लाभकारी योजनाओं के संबंध में जैसे:- (1) "यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण ग्रामीण आबादी स्थल (प्रबंधन और नियमितीकरण) विनियम 2011" के रूप में ज्ञात ग्रामीण आबादी स्थलों का नियमितीकरण, (प्रथम संशोधन विनियम 2014 द्वारा संशोधित); (ii) अधिग्रहण के बदले प्रभावित काश्तकार धारकों को 7% आबादी भूमि के आबंटन की योजना; (iii) दिनांक 29 अगस्त, 2014 के सरकारी आदेश के तहत अतिरिक्त मुआवजे का 64.7%, दिनांक 4 नवंबर, 2015 के सरकारी आदेश द्वारा छूट दी गई, यह प्रदान किया गया है कि यहां रिट याचिकाकर्ता 'यीडा' की पूर्वोक्त योजनाओं के लाभों के लिए अपने दावों पर विचार करने के हकदार होंगे, जो 'यीडा' के अधिसूचित क्षेत्र के प्रभावित कार्यकाल धारकों पर लागू होते हैं; यानी जिनकी जमीन यीडा के विकास प्रोजेक्ट के लिए अधिग्रहित की गई है। इसलिए, यह निर्देश दिया जाता है कि इस बंच में प्रत्येक रिट याचिकाकर्ता के दावे पर योजना के नियमों और शर्तों के अनुसार विचार किया जाएगा।

245. हम आगे नोट कर सकते हैं कि याचिकाकर्ताओं को 64.7% के अतिरिक्त मुआवजे के अनुदान के संबंध में, जिसे शुरू में उन कार्यकाल धारकों को "नो लिटिगेशन बोनस" के रूप में पेश किया गया था, जिन्होंने या तो अधिग्रहण को चुनौती नहीं दी थी या किसी भी स्तर पर अपनी रिट याचिकाओं को वापस ले लिया था, 4 नवंबर, 2015 के सरकारी आदेश की भाषा पर विचार किया जाना है। उक्त सरकारी आदेश में 64.7% अतिरिक्त मुआवजा देने की शर्त में छूट का प्रावधान है। इसमें यह प्रावधान किया गया है कि गांवों या अधिग्रहण प्रस्तावों के संबंध में मामलों में, जहां 80% रिट याचिकाओं को वापस ले लिया गया है, "नो लिटिगेशन बोनस" के रूप में अतिरिक्त मुआवजे का भुगतान किया जाएगा।

246. 4 नवंबर, 2015 के उक्त सरकारी आदेश से संकेत लेते हुए, हम प्रदान करते हैं कि यहां सभी रिट याचिकाकर्ता, जिन्होंने अंतिम चरण तक इस न्यायालय के समक्ष मामले को लड़ा है, अतिरिक्त मुआवजे के 64.7% के हकदार हैं, जो अन्यथा अधिग्रहण से प्रभावित कार्यकाल धारकों को विकास प्राधिकरण/'यीडा' के साथ मुकदमा नहीं करने के प्रोत्साहन के रूप में दिया गया था। हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि हमें प्रभावित किसानों को 64.7% के अतिरिक्त मुआवजे के लाभ से वंचित करने का कोई औचित्य नहीं मिला, जिन्होंने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और प्राधिकरण ('यीडा') के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया है। उन्हें केवल राज्य या प्राधिकरण की कार्रवाई को चुनौती देने के लिए उनके कानूनी अधिकारों के प्रयोग के कारण दंडित या भेदभाव नहीं किया जा सकता है। किसी भी मामले में, सभी प्रभावित कार्यकाल धारकों को 64.7%

अतिरिक्त मुआवजा दिया गया है, यहां तक कि जिन्होंने सुनवाई के दौरान अपनी रिट याचिकाओं को वापस ले लिया था, इससे पहले कि इस बंच में निर्णय सुरक्षित रखा गया था। 64.7% अतिरिक्त मुआवजे के अनुदान के मामले में सभी प्रभावित पट्टेदारों के लिए समानता लागू की जाए। इसके अलावा, पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह प्रावधान किया गया है कि अन्य सभी प्रोत्साहन, जैसे कि संबंधित विनियमों के तहत ग्रामीण आबादी साइटों का नियमितीकरण और यीडा की योजना के तहत 7% विकसित आबादी भूखंड रिट याचिकाकर्ताओं को योजना के नियमों और शर्तों के अनुसार, उचित प्रक्रिया अपनाकर उनके दावों के गुण-दोष पर विचार करने के बाद प्रदान किए जाएंगे।

(XII) आदेश

247. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के अधीन, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा-17(1) और (4) सपठित भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा-4 और 6 के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देते हुए, हम इस बंच में सभी रिट याचिकाओं को **खारिज** करते हैं।

लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

परिशिष्ट-'A'

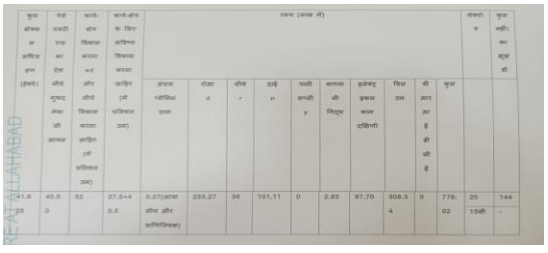
गांव पचोकरा के लिए गांववार विवरण

धारा-4 के तहत	26.02.2009
अधिसूचना की तिथि	
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	19.02.2010
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	29.06.2013 (15.0287168 हेक्टेयर)
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	22.02.2012 (25.2840831हेक्टेयर) 29.06.2013 (1.3397001 हेक्टेयर)
खरीद क्षेत्र	30.7533 हेक्टेयर।

I. मुआवजे का विवरण

कुल कार्य-क्षेत्र अधिग्रहण (हेक्टे।)	कुल के लिए क्षेत्र जो कॉम्पेक्सation है गया स्वीकृत (हेक्टे।)	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद (हेक्टे।)	क्षेत्र जहां याचिकाकर्ताओं रखना स्वीकृत कॉम्पेंसैटियोn	के तहत क्षेत्र मुकदमेबाजी जहां मुआवजा नहीं स्वीकृत	वास्तविक का प्रतिशत क्षेत्र जहां मुआवज़ा स्वीकार नहीं किए जाते	कुल संख्या - का कृत्रिम जमींदार	कुल संख्या - कृत्रिम जमींदार स्वीकृत मुआवज़ा	कुल संख्या - रिट की संख्या - प्रार्थी (पर के रूप में तारीख)
41.6525	26.6238	16.8728	1.3936	15.4792	37.16	198	151	18

II. विकास का विवरण



III. अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

सेक्टरों का प्रारंभिक सीमांकन (प्रारंभिक मास्टर प्लान के मसौदे के अनुसार 2031)	भूमि उपयोग (प्रारंभिक मसौदे मास्टर के अनुसार योजना, 2031)	का वर्तमान सीमांकन क्षेत्रों (अंतिम मास्टर प्लान के अनुसार, 2031)	भूमि उपयोग (अंतिम मास्टर के अनुसार योजना, 2031)
20	निवास योग्य	20	निवास योग्य
15ख	निवास योग्य	15सी	वाणिज्यिक

(26.6237832 हेक्ट)

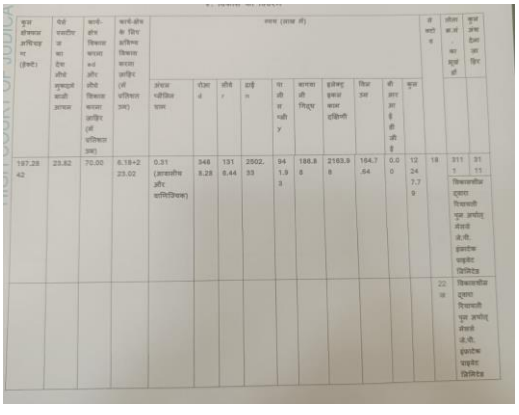
अचेजा बुजुर्ग गांव के लिए गांववार विवरण

धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	19.04.2010
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	28.07.2010 (209.7736 हेक्टेयर)
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	31.12.2013 (7.0821 हेक्टेयर)
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	30.06.2013 (184.6591 हे.) 20.12.2013 (5.3023 हेक्टे.)
खरीद क्षेत्र	21.0678 हे.

IV. मुआवजे का विवरण

कुल कार्य-क्षेत्र अधिग्रहण (हेक्टे।)	के लिए कुल क्षेत्र फल जो मुआवज़ा किया गया है स्वीकृत (हेक्टे।)	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद (हेक्टे।)	क्षेत्र जहां याचिकाकर्ताओं रखना स्वीकृत कॉम्पेंसेटियो n	के तहत क्षेत्र मुकदमेबाजी जहां कार्रवाई नहीं करता है स्वीकृत	वास्तविक प्रतिशता क्षेत्र फलाचे नीचे वाद कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या - का कृत्रिम जमींदार	कुल संख्या - कृत्रिम जमींदार स्वीकृत मुआवज़ा	कुल संख्या - रिट की संख्या - प्रार्थी (पर के रूप में तारीख)
197.2842	189.9616	46.9867	22.4955	24.4912	12.41	521	418	38

V. विकास का विवरण



सत्यापित

VI. अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

सेक्टरों का प्रारंभिक सीमांकन (प्रारंभिक मसौदा मास्टर प्लान 2031 के अनुसार)	भूमि उपयोग (प्रारंभिक मसौदा मास्टर प्लान, 2031 के अनुसार)	सेक्टरों का वर्तमान सीमांकन (अंतिम मास्टर प्लान, 2031 के अनुसार)	अंतिम के अनुसार भूमि उपयोग मास्टर प्लान, 2031
18	निवास योग्य	18	निवास योग्य
19	एलएफडी	19	एलएफडी
22ख	एलएफडी	22ख	एलएफडी

अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टे।	जिसके लिए क्षतिपूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टेा	वाद (हेक्टे। 57	याचिका आरएस है स्वीकृत कॉम्पेक्स atio n	वाद कहां कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	प्रतिशतता क्षेत्र फळाचे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	ख्या-का कृत्रिम लैंडोवेनरु स्वीकृत क्षतिपूर्ति करता है tio n	-कृत्रिम लैंडोवेनरु स्वीकृत क्षतिपूर्ति करता है tio n	का रिट प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
149 .51 6	139. 370 7	31. 352 1	21. 206 8	10. 145 3	6.78	49 0	426	51

56 इसमें वे याचिकाकर्ता शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन बने हुए हैं

याचिकाकर्ताओं।

उस्मानपुर गांव के लिए गांववार विवरण

धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	04.11.2009
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	18.03.2010
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	31.12.2013 (10.1451 हे.)
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	23.02.2012 (131.8583 हेक्टेयर) और 31.12.2013 (7.5124 हेक्टेयर)
भूमि का विवरण आपसी के माध्यम से समझौता	4.577 हेक्टर।
के तहत भूमि का विवरण आज की तारीख में मुकदमेबाजी पुरस्कारों की संख्या	7.2960 हेक्टेयर।

X. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्र फल	कुल क्षेत्रफल	के तहत क्षेत्र	कार्य-क्षेत्र कहां	कार्य-क्षेत्र नीचे	वास्तविक	कुल संख्या	कुल संख्या-

XI. विकास का विवरण

XII. अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

प्रारंभिक का सीमांकन क्षेत्रों (प्रारंभिक के अनुसार मास्टर प्लान 2031)	भूमि उपयोग के रूप में प्रति प्रारंभिक मास्टर योजना	प्रवाह का सीमांकन क्षेत्रों (अंतिम मास्टर के अनुसार योजना, 2031)	भूमि उपयोग के अनुसार अंतिम मास्टर प्लान, 2031
18	निवास योग्य	18	निवास योग्य

57 सहित 7.2960 हेक्टेयर।

58 इसमें वे याचिकाकर्ता भी शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन याचिकाकर्ता बने रहेंगे।

रौनिजा गांव के लिए गांववार विवरण

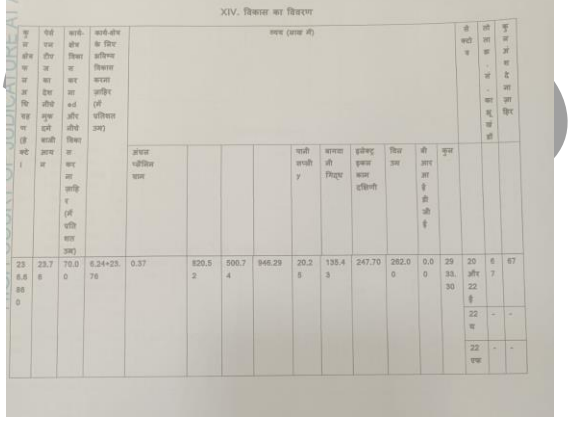
धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	02.11.2010
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	07.01.2011 (255.1185 हेक्टेयर के लिए) 59

दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	**31.12.2013 (34.2362 हेक्टेयर)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	**09.05.2012 (179.8275 हेक्टेयर) और 21.12.2013 (22.1403 हेक्टेयर)**

XIII. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्र फल अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टे।	कुल क्षेत्रफल जिसके लिए क्षति पूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टे।	के तहत क्षेत्र वाद (हेक्टे।	कार्य-क्षेत्र कहां याचिका आर एस है स्वीकृत कॉम्पेक्सation	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद कहां कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	वास्तविक प्रतिशतता क्षेत्र फळाचे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या-कृत्रिम लैंडोवेन रु	कुल संख्या-कृत्रिम लैंडोवेन रु स्वीकृत क्षतिपूर्ति करता है tion	कुल संख्या-कारिट प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
236.686	201.9676	56.2388	51.8344	4.4044	1.86	946	742	48

XIV. विकास का विवरण



XV. अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

प्रारंभिक सीमांकन सेक्टरों की संख्या-(प्रारंभिक के अनुसार मास्टर प्लान 2031)	प्रारंभिक के अनुसार भूमि उपयोग मास्टर प्लान	का वर्तमान सीमांकन क्षेत्रों (अंतिम मास्टर प्लान के अनुसार,	भूमि उपयोग के अनुसार अंतिम मास्टर प्लान, 2031
20	**निवास योग्य**	**20**	**निवास योग्य**
22ई	**संस्थागत**	**22ई**	**संस्थागत**
22घ	**निवास योग्य**	**22घ**	**निवास योग्य**
22एफ	**आवासीय हरा**	**22एफ**	**आवासीय हरा**

59 - वर्ष में से 255.1185 हेक्टेयर। धारा-6 के तहत उल्लेख किया गया है- (i) अवार्ड 236.204 हेक्टेयर के लिए किया गया था; (ii) निपटान अंतर-029405 हेक्टेयर; (iii) मातृभूमि 00190 हेक्टेयर ; (iv) आपसी करारों के माध्यम से खरीदी गई भूमि-01690 हेक्टेयर; (v) पुनर्बहाली के माध्यम से प्राप्त भूमि-60052 हेक्टेयर (vi) राज्य द्वारा अधिगृहीत न की गई भूमि (अवार्ड से पूर्व मुकदमेबाजी के कारण) - 124273 हेक्टेयर भूमि

60- इसमें वे याचिकाकर्ता भी शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन याचिकाकर्ता बने हुए हैं

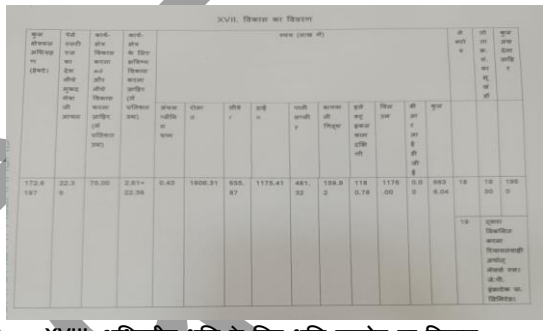
डूंगरपुर रीलका गांव का गांववार विवरण

धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	**02.12.2010**
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	**24.03.2011 (के लिए 198.6320 हेक्ट.)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	**31.12.2013 (43.03038 हेक्टेयर।**
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	**14.03.2012 (96.1886294 हेक्टेयर। और 31.12.3013 (33.40515360 हेक्टेयर।**
भूमि का विवरण आपसी के माध्यम से समझौता	**5.7203**

XVI. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्रफल अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टेI	कुल क्षेत्र फल जिसके लिए क्षति पूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टे।	के तहत क्षेत्र वाद (हेक्टेI 57	कार्य-क्षेत्र कहां याचिका आर एस है स्वीकृत कॉम्पेक्स ation	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद कहां कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	वास्तविक प्रतिशतता क्षेत्र फळा चे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या-का कृत्रिम लैंडो वे न रु	कुल संख्या-कृत्रिम लैंडो वेन रु स्वीकृत क्षति पूर्ति करता	कुल संख्या-कारिट प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
172.619762	129.5859	38.6439	22.3148	16.3291	9.46	612	437	55

XVII. विकास का विवरण



XVIII. अधिग्रहीत भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

प्रारंभिक सीमांकन सेक्टरों की संख्या- (प्रारंभिक के अनुसार मास्टर प्लान 2031)	देश उपयोग के अनुसार प्रारंभिक गुरू योजना	प्रवाह सीमांकन सेक्टरों की संख्या- (फाइनल के अनुसार) मास्टर प्लान 2031)	भूमि उपयोग के रूप में प्रति अंतिम मास्टर प्लान 2031
18	निवास योग्य	18	निवास योग्य
19	एल.एफ.डी	19	एल.एफ.डी

61- इसमें वे याचिकाकर्ता भी शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन वे याचिकाकर्ता बने हुए हैं।

62 वर्ष में से 198.632 हेक्टेयर, एस.6 अधिसूचना के तहत उल्लिखित- (क) अवार्ड 172.6197 हेक्टेयर के लिए किया गया था; (ii) पट्टेदार से सीधे खरीदी गई भूमि -

57203 हेक्टेयर ; (iii) मंडी का भाग बनना- 30850 हेक्टेयर; (iv) आबादी भूमि और पहले से निमत क्षेत्र के बीच की भूमि (अधिग्रहण से छोड़ी गई) - 17207 हेक्टेयर भूमि

रुस्तमपुर गांव के लिए गांववार विवरण

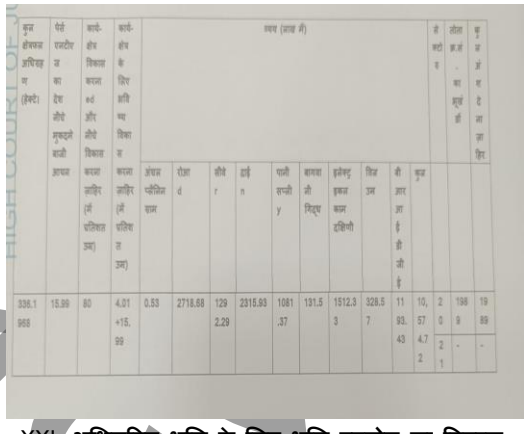
धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	**26.02.2009**
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	**26-02-2010 (3606642 हेक्टेयर हेक्टेयर के लिए)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	**31.12.2013 (24.1139 हेक्टेयर)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	**20032012 (3050529 हेक्टेयर) और 13122013 (70155 हेक्टेयर)**
भूमि का विवरण आपसी के माध्यम से समझौता	**19.9554 हेक्ट।**

XIX. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्र फल अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टे।	कुल क्षेत्र फल जिस के लिए क्षति पूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टे।	के तहत क्षेत्र वाद (हेक्टे। 57	कार्य-क्षेत्र कहां याचिका आर एस है स्वीकृत कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद कहां कॉम्पेक्स ation	वास्तविक प्रतिशतता क्षेत्र फळाचे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या-का कृत्रिम लैंडो वेनरु	कुल संख्या-कृत्रिम लैंडो वेनरु स्वीकृत क्षति पूर्ति करता है tion	कुल संख्या-कारिट प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
336.1968	312.0868	53.7582	32.9293	20.8289	6.2	902	737	76

64								

XX. विकास का विवरण



XXI. **अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण**

प्रारंभिक सीमांकन सेक्टरों की संख्या-(प्रारंभिक के अनुसार मास्टर प्लान 2031)	भूमि उपयोग के रूप में प्रति प्रारंभिक मास्टर योजना	प्रवाह का सीमांकन क्षेत्रों (फाइनल के अनुसार) मास्टर प्लान 2031)	भूमि उपयोग के अनुसार अंतिम मास्टर प्लान, 2031
20	**निवास योग्य**	**20**	**निवास योग्य**
21	**वाणिज्यिक**	**21**	**वाणिज्यिक**

63 - इसमें वे याचिकाकर्ता भी शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन वे याचिकाकर्ता बने हुए हैं।

64 - 360.6642 हेक्टेयर में से 64। धारा-6 के तहत अधिसूचित- (i) 336.1823 हेक्टेयर के लिए अवार्ड दिया गया था; (ii) सीएच 41 और 45- 0.0145 हेक्टेयर के 64 - तहत खरीदा गया; (iii) रिकार्ड की तुलना में अतिरिक्त भूमि-04300 हेक्टेयर; (iv) अवार्ड

की तारीख की स्थिति के अनुसार मुकदमेबाजी के अधीन भूमि-40820 हेक्टेयर; (v) काश्तकार धारक से सीधे खरीदी गई भूमि - 199554 हेक्टेयर

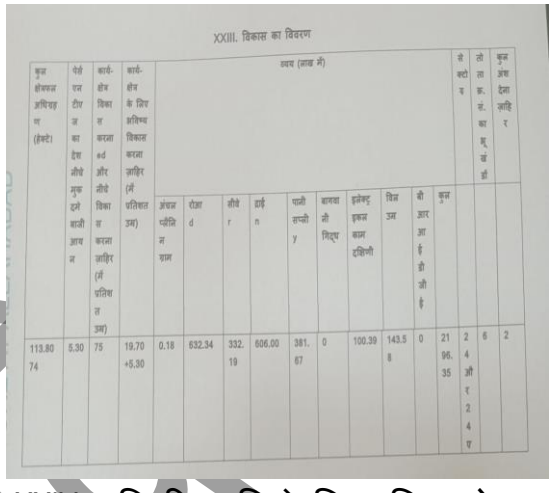
कादरपुर गांव के लिए गांववार विवरण

धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	**02.12.2010**
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	**22.03.2011 (120.8221 हेक्टेयर के लिए)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	**30.03.2014 (8.0953 हेक्टेयर)**
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	**11.04.2012 (75.1489 हेक्टेयर,) और 30.03.2014 (30.4420 हेक्टेयर)**
भूमि का विवरण आपसी के माध्यम से समझौता	**7.0417 हेक्ट।**

XXII. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्र फल अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टे।	कुल क्षेत्र फल जिसके लिए क्षति पूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टे।	के तहत क्षेत्र वाद (हेक्टे। 57	कार्य-क्षेत्र कहां याचिका आरएस है स्वीकृत कॉम्पेक्सation	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद कहां कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	वास्तविक प्रतिशतता क्षेत्र फलाचे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या - कृत्रिम लैंडो वेनरु	कुल संख्या - कृत्रिम लैंडो वेनरु स्वीकृत क्षति पूर्ति करता है tion	कुल संख्या -कारिट प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
113.80 74	105.59 09	6.02 84	1.4529	4.5755	4.02	561	503	3

XXIII. विकास का विवरण



XXIII. विकास का विवरण

कुल होल्डिंग अधिग्रहण (हेक्टे।	पेड़ों एवं टीन का देय सीधे मुआवजे वाली आय	कार्य-क्षेत्र विकास करना ed और सीधे विकास करना जारिर (में प्रतिशत उम)	कार्य-क्षेत्र के लिए प्रतिरूप विकास करना जारिर (में प्रतिशत उम)	व्यय (लाख में)							से घटाव	तो ता क. सं. का द् वं हो	कुल अंश देना जारि र
				अंचल पंचायत राज	रोड	सीधे र	ड्रेन	पानी सप्लाय	बागवा नी निएए	इलेक्ट्र इकल काम दबिलनी	विद्य उत	वी डार आ ई डी जी है	कुल
113.80 74	5.30	75	19.70 +5.30	0.18	632.34	332. 19	606.00	361. 67	0	100.39	143.5 8	0	21 96. 35	2 4 औ र 2 4 ए	6	2

XXIV. **अधिग्रहित भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण**

सेक्टरों का प्रारंभिक सीमांकन (प्रारंभिक मास्टर प्लान 2031 के अनुसार)	भूमि उपयोग के अनुसार प्रारंभिक मास्टर प्लान	सेक्टरों का वर्तमान सीमांकन (अंतिम मास्टर प्लान, 2031 के अनुसार)	अंतिम के अनुसार भूमि उपयोग मास्टर प्लान, 2031
24	**मिश्रित उपयोग**	**24**	**मिश्रित उपयोग**
24क	**मिश्रित उपयोग**	**24क**	**मिश्रित उपयोग**

65 - आउट वर्ष 120.8221 हेक्ट। धारा-6 के तहत उल्लेखित- (ए) पंचाट के लिए पारित किए गए थे- 113.6863; (ख) सरकारी भूमि-010 हेक्टेयर; (ग) निपटान रिकार्ड में अतिरिक्त भूमि-0009 हेक्टेयर; (घ) खसरा में अतिरिक्त भूमि-00121 हेक्टेयर; 70417 हेक्टेयर भूमि के माध्यम से खरीदी गई भूमि।

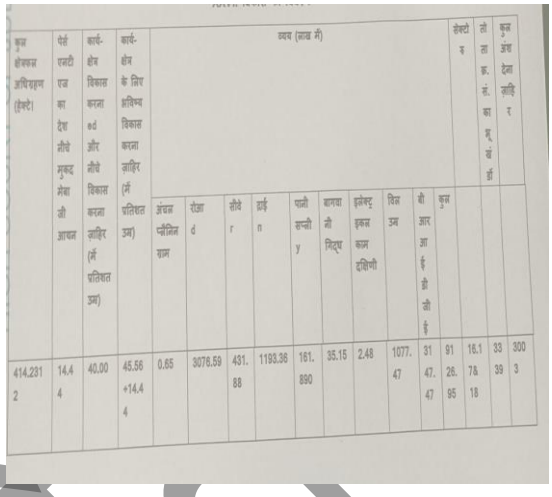
धनौरी गांव का गांववार विवरण

धारा-4 के तहत अधिसूचना की तिथि	16.11.2010
धारा-6 के तहत अधिसूचना की तिथि	22.03.2011 (442.3016 हेक्टेयर के लिए) 66
दिनांक अवार्ड धारा-11(1) के अंतर्गत	31.12.2013 (45.3834 हेक्टेयर)
दिनांक अवार्ड धारा-11(2) के अंतर्गत	09.05.2012 (282.5438 हेक्टेयर) और 13.12.2013 (86.2005 हेक्टेयर)
भूमि का विवरण आपसी के माध्यम से समझौता	2.6109 हेक्ट।

XXV. मुआवजे का विवरण

कुल क्षेत्र फल अधिग्रहण (के अनुसार पंचाट) (हेक्टे।	कुल क्षेत्र फल जिस के लिए क्षति पूर्ति करता है tion में है गया स्वीकृत (हेक्टे।	के तहत क्षेत्र वाद (हेक्टे। 57	कार्य-क्षेत्र कहां याचिका आर एस है स्वीकृत कॉम्पेक्सation	कार्य-क्षेत्र नीचे वाद कहां कॉम्पेक्स नहीं स्वीकृत	वास्तविक प्रतिशतता क्षेत्र फळाचे कहां मुआवजा पर नहीं स्वीकृत	कुल संख्या-का कृत्रिम लैंडो वनरु	कुल संख्या-कृत्रिम लैंडोवनरु स्वीकृत क्षतिपूर्ति करता है tion	कुल संख्या-काRIT प्रार्थी (पर के रूप में दिनांक)58
414.2312	368.7443	59.8231	22.643	37.1801	8.998	1417	1222	77

XXVI. विकास का विवरण



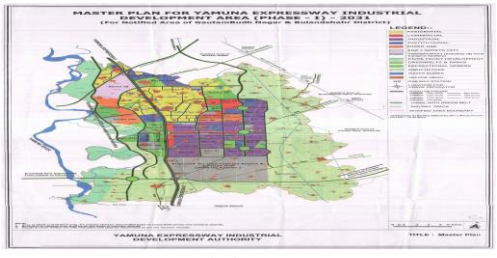
XXVII. अधिग्रहीत भूमि के लिए भूमि उपयोग का विवरण

प्रारंभिक सीमांकन सेक्टरों की संख्या- (प्रारंभिक के अनुसार मास्टर प्लान 2031)	भूमि उपयोग के रूप में प्रति प्रारंभिक मास्टर प्लान 2031	वर्तमान सीमांकन सेक्टरों की संख्या- (अंतिम मास्टर के अनुसार योजना, 2031)	अंतिम के अनुसार भूमि उपयोग मास्टर प्लान, 2031
16	निवास योग्य	16	निवास योग्य
17	निवास योग्य	17	निवास योग्य
18	निवास योग्य	18	निवास योग्य

66 - 442.3016 हेक्टेयर में से 66। धारा-6 अधिसूचना के तहत उल्लेखित- (क) पंचाट के लिए किए गए थे- 414.1277; (बी) सीएच 41 और 45- 0.1034 हेक्टेयर के तहत खरीदा गया; (ग) टेनरटेन धारक से सीधे खरीदी गई भूमि- 26109 हेक्टेयर; (घ) बाजार भूमि-02620 हेक्टेयर; (ङ) आबादी भूमि-25-1975 हेक्टेयर भूमि

67 - इसमें वे याचिकाकर्ता भी शामिल हैं जिन्होंने मुआवजा स्वीकार कर लिया है लेकिन वे याचिकाकर्ता बने हुए हैं।

परिशिष्ट बी



परिशिष्ट-'C'

दक्षिणी। नहीं	गाँव नाम	धारा-4(1)17/ खजूर	धारा-6/17 के तहत अधिसूचना खजूर	धारा-30 के तहत जमा किया गया मुआवजा 17(10%)	धारा-30 के तहत जमा किया गया मुआवजा 17(70%)						
								खजूर	कुल धन राशि	खजूर	कुल धन राशि
1.	डूंगरपआपकारीलका	3080-77-3-10-38 अर्जुन/10 दाता 02-12-2010	495-77-3-11-38 अर्जुन/10 दाता 24.03.2011	22.10.10	35,12,96,000.00	02.02.11	1,24,74,98,120.00				
2.	रुस्टैम्प तुम्हारा	605-77-3-2009-30 अर्जुन/09 दाता 20.02.2009	596-77-3-2010-30 अर्जुन/09 दाता 26.02.2010	10.02.09	57,70,62,720.00	01.02.10	2,04,44,60,145.00				
3.	अचेजा बुजुर्ग	940-77-3-2010-02 वाईए/10 दिनांक 19.04.2010	2038-77-3-2010-02 वाईए/10 दिनांक 28.07.2010	07.02.10	34,82,14,720.00	13.07.10	1,33,09,89,912.00				
4.	रामपुर बागर	928-77-3-10-3/YA दिनांक 19.04.2010	2016-77-3-10-3YA 10 दिनांक 28.07.2010	17.02.10	16,79,52,800.00	24.06.10	61,92,10,000.00				
		601-77-3-2009/26 अर्जुन/09 दाता	202-77-3-2009/26 अर्जन/09 दिनांक	04.02.09	32,00,16,000.00	08.01.10	11,60,55,56				

प्रतिलिपि

		26.02.2009	01.02.2010				00.000
5.	उस्मानपुर	3483-77-3-2009-242 अर्जुन/09 दाता 04.11.2009	782-77-3-2009-242 अर्जुन/09 दाता 18.03.2010	16.09.09	25,82,24,000.00	24.02.10	92,90,96,500.000
6.	रौंजिया	**2951-77-10-33वाईए/10 दिनांक 02.11.2010**	3402-77-10-33वाईए/10 दिनांक 07.01.2011	13.10.10	44,96,75,600.00	06.12.10	1,61,07,64,600.000
7.	कादरपुर	3079/77-3-10-37वाईए-10 दिनांक 02.12.2010	458/77-3-11-37YA-10 दिनांक 22.03.2011	20.10.10	23,93,60,000.00	28.01.11	75,02,61,136.000
8.	पचकोरा	607-77-3-2009/32/	425-77-3-2009/32/	10.02.09	8,15,02,400	18.01.10	28,52,
		अर्जुन/09 दाता 26.02.2009	अर्जुन/09 दाता 19.02.2010		.00		58,40,00.000
9.	पारसोल	604-77-3-2009-29 अर्जुन/09 दाता 26-02-2009	423-77-3-2009/29 अर्जन/09 दिनांक 19.02.2010	04.02.09	39,39,77,600.00	25.01.10	1,49,18,71,600.000
		3484-77-03-2009/243 अर्जुन/09 दाता 04.11.2009	781-77-03-2010/243 अर्जुन/09 दाता 26.03.2010	16.09.09	6,99,08,000.00	24.02.10	48,93,56,000.000
10.	भट्ट	3485-77-03-2009/244 अर्जुन/09 दाता 04.11.2009	779-77-03-2010-244 अर्जुन/09 दाता 26.03.2010	16.09.09	22,35,45,600.00	24.02.10	79,85,34,600.000
1	मिर्जा	608/7	428/77	04	2,	18.0	1,

रिपोर्ट

1.	पुर	7-3-2009-28 अर्जुन/09 दाता 26.02.2009	-3-2010-28 अर्जुन/08 दाता 19.02.2010	.02.09	81,93,52,000.00	1.10	21,25,23,200.00
		1338-77-03-2010-01वाई ए/10 दिनांक 13.05.2010	2041-77-03-2010/01वाईए/10 दिनांक28.07.2010	04.03.10	9,32,91,380.00	06.07.10	35,83,28,502.00
		2763-77-3-2010-28वर्ष दिनांक 15.10.2010	3305-77-3-2010-28 अर्जुन 10 दानदाता 27.12.2010	25.08.10	18,14,67,792.00	25.11.10	65,47,90,368.00
12.	निलोनी शाहपुर	609/77-3-2009-34 Arjan 09 तिथि 07.10.2009	200/77-3-2009-34अर्जुन/08 दाता 19.02.2010	04.02.10	55,55,00,960.00	08.01.10	2,05,74,93,360.00
		3144/77-3-2009-234अर्जन 09 दाता 07.10.2009	3797/77-3-2009-234अर्जन 09 दाता 07.12.2009	14.07.09	15,15,06,320.00	10.11.09	61,37,52,801.00
		3155/77-3-201042 Arjan 09 तिथि 07.10.2009	456/77-3-2010-42 Arjan09 तिथि 17.03.2011	12.11.10	2,17,94,080.00	22.12.10	7,93,52,576.00
		2037-77-3-2010/08 अर्जुन/10 दाता 28.07.2010	2641/77-3-2010/08 अर्जुन/10 दाता 15.10.2010	10.07.10	4,08,81,104.00	27.08.10	28,77,93,681.00
13.	रबूपुरा	602/77-3-2009-27अर्जुन/09 दाता 26.02.2009	203/77-3-2009-27 अर्जुन/08 दाता 19.02.2010	13.02.09	37,71,63,200.00	08.01.10	
14.	अचीपुर	610/77-3-2009-35 अर्जुन/09 दाता 26.02.2009	427/77-3-2010-35अर्जुन/08 दाता 19.02.2010	04.02.09	13,10,59,200.00	22.01.10	49,07,32,200.00

प्रतिलिपि

(2023) 8 ILRA 642

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.08.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 7955 वर्ष 2023

सी/एम अंजुमन इंतजामिया मसाजिद वाराणसी ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती राखी सिंह एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री एसएफए नकवी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री पुनीत कुमार गुप्ता, श्री सैयद अहमद फैजान, श्री जहीर असगर, सुश्री फातमा अंजुम, श्री मुन्नौर हुसैन, श्री मुमताज अहमद, श्री अखलाक अहमद, श्री महमूद आलम, श्री पूर्व अग्रवाल, श्री विपुल दुबे और श्री देवेन्द्र मिश्रा।

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अजय मिश्रा, महाधिवक्ता, श्री अशोक मेहता, एएजी, श्री एमसी चतुर्वेदी, एएजी, श्री कुणाल रवि सिंह, सीएससी, श्री विजय शंकर मिश्रा, सीएससी, श्री ईशान मेहता, अतिरिक्त सीएससी, श्री अंकित गौड़, स्थायी अधिवक्ता , श्री हरे राम त्रिपाठी, स्थायी अधिवक्ता , श्री मनोज कुमार मिश्रा, स्थायी अधिवक्ता , राज्य के लिए श्री ईशान देव गिरि, श्री शशि प्रकाश सिंह, एएसजीआई, श्री मनोज कुमार सिंह और श्री पूर्णेंदु कुमार सिंह, भारत संघ के लिए, श्री विष्णु शंकर जैन, श्री प्रभाष पांडे और श्री सौरभ तिवारी, वादी/विपक्षी पक्ष 1 से 5 के लिए और श्री विनीत संकल्प, विपक्षी पक्ष संख्या 9 के लिए।

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 75 (ई), आदेश 26 नियम 10 - ए - एएसआई द्वारा धार्मिक स्थल की वैज्ञानिक जांच और सर्वेक्षण के लिए आवेदन - वादी जीपीआर सर्वेक्षण, उत्खनन और तिथि निर्धारण के लिए निर्देश मांग रहे हैं ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या वर्तमान मस्जिद संरचना पहले से मौजूद हिंदू मंदिर के ऊपर खड़ी है - जिला न्यायाधीश ने आवेदन को अनुमति दी - आदेश को चुनौती खारिज - अभिनिर्धारित: बेहतर निर्णय के लिए मुकदमे से पहले भी आयोग नियुक्त करने पर कानून में कोई रोक नहीं है - क्षेत्राधिकार के भीतर विचारण न्यायालय का आदेश - विवादित तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए वैज्ञानिक जांच आवश्यक - एएसआई का शपथपत्र जिसमें स्पष्ट किया गया है कि संरचना को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाएगा - अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग दुराग्रह या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि के अभाव में नहीं किया जाएगा - याचिका खारिज।

अभिनिर्धारित :

विचारण-पूर्व चरण में वैज्ञानिक जाँच के लिए आयोग की नियुक्ति पर कोई कानूनी रोक नहीं है। ज्ञानवापी मस्जिद के नीचे पहले से मौजूद संरचना के अस्तित्व से संबंधित विवाद की गंभीरता और जटिलता को देखते हुए, निचली न्यायालय ने धारा 75(ई) और आदेश 26 नियम 10-ए सीपीसी के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का सही प्रयोग किया। एएसआई ने

शपथपत्र के माध्यम से आश्वासन दिया है कि मौजूदा संरचना को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा और जाँच गैर-आक्रामक होगी। याचिकाकर्ता की चुनौती में दम नहीं है, और उच्च न्यायालय, अनुच्छेद 227 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र में, तथ्यों के निष्कर्षों की पुनर्मूल्यांकन करने या अपनी राय बदलने के लिए अपीलीय निकाय के रूप में कार्य नहीं कर सकता, जब तक कि कोई स्पष्ट त्रुटि न हो। शीघ्र सुनवाई के निर्देशों के साथ याचिका खारिज की जाती है।

<u>चर्चा की गई निर्णयज विधि :</u>

1. मो. यूनुस बनाम मो. मुस्तकीम, एआईआर 1984 एससी 38

2. डी.एन. बनर्जी बनाम पी.आर. मुखर्जी, एआईआर 1953 एससी 58

3. नागेंद्र नाथ बोरा बनाम हिल्स उपखंड के आयुक्त, एआईआर 1958 एससी 398

4. एम. सिद्दीक (राम जन्मभूमि मंदिर मामला) बनाम महंत सुरेश दास और अन्य, (2020) 1 SCC1

5. राम अवतार सोनी बनाम महंत लक्ष्मीधर दास, 2018 लीगल ईगल (एससी) 933

6. राजीब बरूआ बनाम पूर्णिमाति प्लांटेशन (पी) लिमिटेड, 2018 (2) जीएयू एलआर 204

7. शांता देवी बनाम पुष्पा देवी, 2022 लीगल ईगल (राजस्थान) 1594

8. फूलचंद आसरा बनाम नगर पालिका निगम रायपुर, रिट याचिका (227) क्रमांक 821/2019 (छत्तीसगढ़ एचसी)

9. श्रीमती. सुमन पंडाग्रे बनाम मधु पंडाग्रे, रिट याचिका संख्या 110376/2017 (एमपी एचसी)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर, सीजे द्वारा प्रदत)

1. वर्तमान याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई है, जिसमें जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा 2022 के मूल वाद संख्या 18 (693/2021) (राखी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 21.7.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है। यह प्रार्थना की गई है कि यह न्यायालय अधीनस्थ अदालत को निर्देश दे सकता है कि वह 21.7.2023 के आदेश के अनुपालन में आगे कोई कार्यवाही न करे।

2. दिनांक 21.7.2023 के आदेश से, अधीनस्थ अदालत ने वादी के आवेदनों 327सी और 330सी की अनुमति दी और निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

> "(क) एएसआई के निदेशक को निर्देश दिया जाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.05.2022, 20.05.2022 के आदेशों के साथ-साथ एसएलपी (सी) संख्या 9388/2022 प्रबंधन समिति अंजुमन इंतेजामिया मस्जिद वाराणसी बनाम राखी सिंह और

अन्य में पारित आदेश दिनांक 11.11.2022 द्वारा सील किए गए क्षेत्रों को छोड़कर; वह विचाराधीन संपत्ति यानी सेटलमेंट प्लॉट नंबर 9130 पर वैज्ञानिक जांच/सर्वेक्षण/उत्खनन करें;

(ख) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह जीपीआर सर्वेक्षण, उत्खनन, डेटिंग पद्धति और वर्तमान संरचना की अन्य आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके एक विस्तृत वैज्ञानिक जांच करें ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या इसका निर्माण हिंदू मंदिर की पहले से मौजूद संरचना पर किया गया है;

(ग) एएसआई के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे वादी, प्रतिवादी और उनके संबंधित अधिवक्ताओं को संबद्ध करने के बाद इस आवेदन में किए गए कथन के आलोक में वैज्ञानिक जांच करें और 04-08-2023 तक इस माननीय न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करें और पूरी सर्वेक्षण कार्यवाही की फोटोग्राफ और वीडियो-ग्राफ भी करें;

(घ) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे वैज्ञानिक पद्धति (पद्धतियों) के माध्यम से प्रश्नगत भवन की पश्चिमी दीवार के निर्माण की आयु और प्रकृति की जांच करें;

(ङ) एएसआई के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे विचाराधीन इमारत के तीन गुंबदों के ठीक नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर) सर्वेक्षण करें और यदि आवश्यक हो तो खुदाई करें;

(च) एएसआई के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि भवन की पश्चिमी दीवार के नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर) सर्वेक्षण करें और यदि आवश्यक हो तो खुदाई करें;

(छ) एएसआई के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि सभी तहखानों के नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर) सर्वेक्षण करें और यदि आवश्यक हो तो खुदाई करें;

(ज) एएसआई के निदेशक को भी निर्देश दिया जाता है कि वे इमारत में पाई जाने वाली सभी कलाकृतियों की एक सूची तैयार करें, उनकी सामग्री को निर्दिष्ट करें और वैज्ञानिक जांच करें और ऐसी कलाकृतियों की उम्र और प्रकृति का पता लगाने के लिए डेटिंग की प्रक्रिया करें;

(झ) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे भवन की आयु और प्रकृति का पता लगाने के लिए भवन के स्तंभों और प्लिंथ की डेटिंग की प्रक्रिया करें;

(ञ) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे प्रश्नगत स्थल पर विद्यमान निर्माण की आयु और प्रकृति का निर्धारण करने के लिए जीपीआर सर्वेक्षण, उत्खनन, जहां कहीं आवश्यक हो, डेटिंग की प्रक्रिया और अन्य वैज्ञानिक तरीकों का संचालन करें;

(ट) एएसआई के निदेशक को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे इमारत के विभिन्न हिस्सों में मौजूद कलाकृतियों और ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व की अन्य वस्तुओं, और संरचना के नीचे भी जो इस तरह के की प्रक्रिया के दौरान पाई जाए, की जांच करें ;

एएसआई के निदेशक को यह सुनिश्चित करने के लिए भी निर्देशित किया जाता है कि विवादित भूमि पर खड़े ढांचे को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए और यह बरकरार और अप्रभावित रहे। रिपोर्ट 04-08-2023 तक जमा की जाएगी। आगे की कार्यवाही के लिए 04-08-2023 को प्रस्तुत करें।"

3. वादी द्वारा दायर 2022 के ओ.एस. संख्या. 18 (पुराना नियमित दीवानी वाद संख्या 693 वर्ष 2021) वाले उपरोक्त मुकदमे में यह निवेदन किया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्रदत्त उनके धर्म के अधिकार की रक्षा की जाए। उन्होंने प्रतिवादियों को एक अनिवार्य और स्थायी निषेधाज्ञा जारी करने का अनुरोध इस आशय के साथ किया है कि वार्ड और पुलिस स्टेशन दशाश्वमेध के क्षेत्र में बस्ती प्लॉट नंबर 9130 पर स्थित पुराने मंदिर परिसर के भीतर मौजूद दर्शन, देवी मां श्रृंगार गौरी, भगवान गणेश, भगवान हनुमान, नंदीजी, दृश्य और अदृश्य देवताओं, मंडपों और मंदिरों के प्रदर्शन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाए। जिला वाराणसी और देवताओं की छवियों को क्षतिग्रस्त, विकृति, नष्ट नहीं किया जाना चाहिए और उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाना चाहिए।

वाद में यह कहा गया है कि वाराणसी शहर के केंद्र में दशाश्वमेध घाट के पास आदिविशेश्वर ज्योतिर्लिंग में एक शानदार उदात्त मंदिर मौजूद था। गैर-मुस्लिमों और मूर्ति पूजकों के प्रति घृणा रखने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों ने 1193-94 ईस्वी से ही हिंदू मंदिरों को नुकसान पहुंचाना/नष्ट करना और अपवित्र करना शुरू कर दिया, जब मोहम्मद गोरी ने हमारी मातृभूमि पर हमला किया और काशी (अब वाराणसी) में शिव मंदिर को ध्वस्त कर डाका डाला और लूट लिया। इसके बाद, कई मुस्लिम आक्रमणकारियों ने काशी पर हमला किया, मोहम्मद गोरी के बर्बर कृत्य को दोहराया। हिंदुओं ने इस तरह के हमलों का बचाव किया और उसी स्थान पर मंदिर का पुनर्निर्माण/जीर्णोद्धार किया गया। आगे यह कहा गया है कि यह इतिहास की बात है कि वर्ष 1585 में, जौनपुर के तत्कालीन शासक ने अपने गुरु नारायण भट्ट के कहने पर, उसी स्थान पर भगवान शिव के एक शानदार मंदिर का पुनर्निर्माण किया, जहां मंदिर मूल रूप से मौजूद था यानी बंदोबस्त प्लॉट नंबर 9130 पर

बड़े पैमाने पर केंद्रीय गर्भगृह आठ मंडपों से घिरा हुआ था।

वाद में यह कहा गया है कि बंदोबस्त प्लॉट संख्या 9130 के साथ पांच कोष भूमि लाखों वर्ष पहले से ही देवता आदिवेशेश्वर में निहित थी, और देवता कानूनी मालिक हैं, लेकिन इस तथ्य के बावजूद, मुसलमानों ने बिना किसी वक्फ का निर्माण किए या भूमि का स्वामित्व रखते हुए, जबरन कानून के किसी भी अधिकार के बिना, एक निर्माण किया और इसे ज्ञानवापी मस्जिद करार दिया।

4. वादियों के अनुसार, मस्जिद की संरचना (ज्ञानवापी) एक मंदिर थी लेकिन कभी किसी समय 1193-94 ईस्वी के युग में मुस्लिम शासकों द्वारा मंदिर को ध्वस्त कर दिया गया था। वादियों ने कई तथ्यों की ओर इशारा करते हुए अपने दावे पेश किए हैं, जो उनके अनुसार, यह स्पष्ट करते हैं कि संरचना (ज्ञानवापी) एक मंदिर के अलावा और कुछ नहीं थी।

5. वादी द्वारा 16.8.2021 को दायर उपरोक्त वाद में, घोषणा, स्थायी और अनिवार्य निषेधाज्ञा के लिए, वादी द्वारा धारा 75 (ई) और सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सीपीसी') की धारा 151 के साथ पठित आदेश XXVI नियम 10ए के तहत निम्नलिखित निर्देश जारी करने के लिए एक आवेदन (आवेदन पत्र संख्या 327सी और 330सी के रूप में) दायर किया गया था:

- माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.05.2022, 20.05.2022 के आदेशों के साथ-साथ एसएलपी (सी) संख्या 9388/2022 प्रबंधन समिति अंजुमन इंतेजामिया मस्जिद वाराणसी बनाम राखी सिंह और अन्य में पारित आदेश दिनांक 11.11.2022 द्वारा सील किए गए क्षेत्रों को छोड़कर, विचाराधीन संपत्ति पर वैज्ञानिक जांच/सर्वेक्षण/उत्खनन करना;
- जीपीआर सर्वेक्षण, उत्खनन, डेटिंग पद्धति और वर्तमान संरचना की अन्य आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके एक विस्तृत वैज्ञानिक जांच करना ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या इसका निर्माण हिंदू मंदिर की पहले से मौजूद संरचना पर किया गया है;
- वादी, प्रतिवादी और उनके संबंधित अधिवक्ताओं को संबद्ध करने के बाद इस आवेदन में किए गए कथन के आलोक में वैज्ञानिक जांच करना और माननीय न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए निर्धारित समय के भीतर इस माननीय न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करना और संपूर्ण सर्वेक्षण कार्यवाही का वीडियो-ग्राफ भी करना;
- वैज्ञानिक पद्धति (ओं) के माध्यम से प्रश्न में इमारत की पश्चिमी दीवार के निर्माण की उम्र और प्रकृति की जांच करने के लिए;
- विचाराधीन भवन के तीन गुंबदों के ठीक नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर) सर्वेक्षण करना और यदि आवश्यक हो तो खुदाई करना;
- भवन की पश्चिमी दीवार के नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर)

सर्वेक्षण करना और यदि आवश्यक हो तो खुदाई करना;

• सभी तहखानों के नीचे ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (जीपीआर) सर्वेक्षण करना और यदि आवश्यक हो तो उत्खनन करना;

• इमारत में पाई जाने वाली सभी कलाकृतियों की एक सूची तैयार करना, उनकी सामग्री को निर्दिष्ट करना, और वैज्ञानिक जांच करना और ऐसी कलाकृतियों की आयु और प्रकृति का पता लगाने के लिए डेटिंग की प्रक्रिया करना;

• निर्माण की उम्र और प्रकृति का पता लगाने के लिए इमारत के स्तंभों और प्लिंथ के डेटिंग की प्रक्रिया का संचालन करना;

• जीपीआर सर्वेक्षण, उत्खनन, जहां भी आवश्यक हो, डेटिंग की प्रक्रिया और प्रश्नगत स्थल पर मौजूदा निर्माण की आयु और प्रकृति का निर्धारण करने के लिए अन्य वैज्ञानिक तरीकों का संचालन करना;

• इमारत के विभिन्न हिस्सों में मौजूद कलाकृतियों और ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व की अन्य वस्तुओं, और संरचना के नीचे भी जो इस तरह के की प्रक्रिया के दौरान पाई जाए, की जांच करना;

• ऐसा अन्य आदेश पारित करें जिसे माननीय न्यायालय न्याय के हित में उपयुक्त और उचित समझे।"

6. आवेदन में, वादी द्वारा यह तर्क दिया गया था कि अधीनस्थ अदालत द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में एक कोर्ट कमिश्नर नियुक्त किया गया था, जिसने 6.5.2022 और 7.5.2022 को की गई कार्यवाही के संबंध में 18.5.2022 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और रिपोर्ट से, यह विभिन्न व्यक्तियों के ज्ञान में आया कि वादी, प्रतिवादी और विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ताओं की उपस्थिति में 16.5.2022 को किए गए सर्वेक्षण के दौरान प्रश्नगत संपत्ति के भीतर 'शिवलिंग' पाया गया था।

7. एडवोकेट कमिश्नर की नियुक्ति के लिए अधीनस्थ अदालत द्वारा पारित आदेश का विरोध करते हुए, प्रबंधन समिति अंजुमन इंतेजामिया मसाजिद ने एक रिट याचिका अनुच्छेद 227 के तहत वाद संख्या 2946 वर्ष 2022 के रूप में दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 21.4.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। प्रबंधन समिति अंजुमन इंतेजामिया मस्जिद ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.4.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए और विद्वान सिविल जज (सीनियर डिवीजन), वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 8.4.2022 के आदेश को बरकरार रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष 2022 की एसएलपी संख्या 9388 दायर किया। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 20.5.2022 के आदेश के तहत दीवानी मुकदमा नंबर 693/2021 को सिविल जज (सीनियर डिवीजन), वाराणसी के न्यायालय से जिला न्यायाधीश, वाराणसी के न्यायालय में स्थानांतरित करने का आदेश भी पारित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि:

"(प्रथम) सीपीसी के आदेश VII नियम 11 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन पर प्राथमिकता के आधार पर निर्णय लिया जाए;

(द्वितीय) वाद में सभी वादकालीन और सहायक कार्यवाहियों को जिला न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा संबोधित और विनिश्चय किया जाएगा;

(तृतीय) चूंकि पक्षकार नोटिस पर उपस्थित हो रहे हैं, इसलिए वाद में सभी आदेश पक्षों को सुनने के बाद पारित किए जाएंगे।

8. इसके अलावा, वादी के अनुसार, एडवोकेट कमिश्नर द्वारा 16.5.2022 को एक प्राचीन 'शिवलिंग' मिला/खोजा गया। पाया/खोजा गया 'शिवलिंग' हिंदू भक्तों द्वारा पूजा की गई वस्तु है। ऐसा माना जाता है कि 'शिवलिंग' प्राचीन काल से विचाराधीन स्थान के भीतर मौजूद है। वादी आगे प्रस्तुत करते हैं कि मामले के उचित निर्णय के लिए, वैज्ञानिक जांच आवश्यक है जिसके आधार पर 'शिवलिंग' की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, आयु, श्रृंगार और घटकों का पता लगाया जा सकता है।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता (प्रतिवादी संख्या 4) प्रस्तुत करते हैं कि एक बार सभी पक्षों को विचाराधीन संपत्ति की यथास्थिति बनाए रखने के लिए कहा गया है, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (इसके बाद 'एएसआई' के रूप में संदर्भित) द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि मुद्दों को अभी तक तैयार नहीं किया गया है और गवाहों की सूची का खुलासा या आदान-प्रदान नहीं किया गया है, फिर भी केवल सबूत बनाने के लिए, आवेदन पत्र संख्या 327 सी और 330 सी दायर किए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि वादी को आश्वासन दिया जाता है कि उनके पास कोई स्वीकार्य सबूत नहीं है, इसलिए झूठी रणनीति लागू की जा रही है। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि अयोध्या मामला, यानी **एम सिद्दीक (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से (राम जन्मभूमि मंदिर मामला) बनाम महंत सुरेश दास और अन्य, 2020 (1) एससीसी 1** में रिपोर्ट किया गया, ने एक सबक सिखाया है, ऐसे किसी भी व्यक्ति या सार्वजनिक एजेंसी को इस तरह से सबूत बनाने की अनुमति नहीं देना। यह तर्क दिया गया है कि आवेदनों पर निर्णय लेते समय, अधीनस्थ अदालत ने कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि मौजूदा संरचनाओं को नुकसान पहुंचाए बिना इस तरह की वैज्ञानिक जांच क्यों आवश्यक है? यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त सभी कार्यों को संरचनाओं को नुकसान पहुंचाए बिना नहीं किया जा सकता है। वह प्रस्तुत करता है कि यदि वैज्ञानिक जांच के दौरान, कोई खुदाई की जाती है, तो यह विचाराधीन संरचना को नुकसान पहुंचाएगा। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते है कि वैज्ञानिक जांच केवल तभी की जा सकती है, जब साक्ष्य पेश करने के बाद, न्यायालय विवाद का फैसला करने में असमर्थ हो। वह आगे प्रस्तुत करता है कि मुकदमा उपासना स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1991 द्वारा वर्जित है, क्योंकि विवादित ढांचा 1947 से पहले से विद्यमान है। विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते है कि पहले वादी ने एडवोकेट कमिश्नर की नियुक्ति के लिए आदेश

XXIV नियम 9 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया है; उक्त आवेदन को अनुमति दी गई और एडवोकेट कमिश्नर नियुक्त किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उक्त रिपोर्ट अभी भी निपटान के लिए लंबित है। आगे यह तर्क दिया गया है कि एएसआई वाद का पक्षकार नहीं है और इसलिए, विचाराधीन संपत्ति की वैज्ञानिक जांच करने के लिए एएसआई को कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। हालांकि मुकदमा वर्ष 2021 में दायर किया गया था, लेकिन आवेदन केवल 2023 में दायर किया गया है और दो साल तक वादी चुप रहे।

10. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, आवेदक (प्रतिवादी संख्या 4) के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी है:

(प्रथम)- **राम अवतार सोनी बनाम महंता लक्ष्मीधर दास एवं अन्य** 2018 लीगल ईगल (एससी) 933, (पैरा 4, 5, 8 और 9)

(द्वितीय) - **राजीव बरुआ बनाम पूर्णामिती प्लांटेशन (प्रा.) लिमिटेड,** 2018 (2) गुवाहाटी लॉ रिपोर्ट, 204, (पैरा 11 और 12);

(तृतीय) - **शांता देवी बनाम पुष्पा देवी एवं अन्य**, 2022 लीगल ईगल (राज) 1594, (पारा 9)।

(चतुर्थ) - **मो. असलम उर्फ भूरे बनाम भारत संघ और अन्य**, (1994) 2 एससीसी 48;

(पंचम) - **श्री कांत बनाम मूल चंद (मृत) एवं अन्य**, 2019 (2) सीएआर 758 (इलाहाबाद)।

(षष्टम) - **कु० चंदना मुखर्जी (मृत) द्वारा श्रीमती सरला बनाम अपर जिला न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश, पीसी अधिनियम लखनऊ & एक अन्य** (अनुच्छेद 227 के तहत मामला संख्या 6654 वर्ष 2020);

(सप्तम)- **नसीब दीन और एक अन्य बनाम हार्नेक सिंह**, एआईआर 2019 हिमाचल प्रदेश 173.

11. **श्रीकांत (उपरोक्त)** के मामले में फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अदालत द्वारा स्थानीय निरीक्षण या कमीशन केवल उन मामलों में किया जाता है, जहां पार्टियों के नेतृत्व में साक्ष्य पर, अदालत किसी भी तरह से उचित निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम नहीं है या जहां अदालत को लगता है कि साक्ष्य में कुछ अस्पष्टता है जिसे स्थानीय निरीक्षण या कमीशन करके स्पष्ट किया जा सकता है।

नसीब दीन (उपरोक्त) के मामले में यह प्रस्तुत करने के लिए एक भरोसा भी रखा गया है कि वादी इस स्तर पर अपने पक्ष में सबूत बनाने की कोशिश कर रहे हैं, जो कानून में स्वीकार्य नहीं है और यहां तक कि मुद्दों को तैयार करने से पहले आयुक्त की नियुक्ति भी गलत है।

इसके अलावा, **कुमारी चंदना मुखर्जी (उपरोक्त)** और **राजीब बरुआ (उपरोक्त)** के

मामलों में निर्णयों पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदनों को केवल एक या दूसरे पक्ष के मामले को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्यों के लिए अनुमति नहीं दी जा सकती है और किसी भी पक्ष के साक्ष्य के बोझ का निर्वहन करना अदालतों का व्यवसाय नहीं है। वादी पर यह जिम्मेदारी है कि वे विचारण के दौरान मौखिक और/या दस्तावेजी साक्ष्य जोड़कर अपने मामले को साबित करने के लिए जो भी तथ्य साबित करना चाहते हैं उन्हें प्रस्तुत करें और आयोग की नियुक्ति के माध्यम से इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।

राम अवतार सोनी (उपरोक्त) के मामले में भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि विचाराधीन दस्तावेज की वैज्ञानिक जांच न्याय के हित में सच्चाई का पता लगाने की सुविधा प्रदान करती है, तो स्वाभाविक रूप से इसका आदेश दिया जाना चाहिए।

शांता देवी (उपरोक्त) के मामले में फैसले पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि सीपीसी के आदेश XXVI, नियम 10-ए के प्रावधानों को संबंधित पक्षों द्वारा अपने पक्ष में साक्ष्य बनाने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

12. इसके विपरीत, वादी के लिए पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वादी द्वारा प्रार्थना की गई वैज्ञानिक जांच से किसी भी पक्ष को कोई नुकसान नहीं होने वाला है, बल्कि यह प्रत्येक मुद्दे को सुविधाजनक और क्रिस्टलाइज करेगा, ताकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य की मदद से निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पास किसी भी स्मारक, अवशेष, कलाकृतियों आदि से संबंधित उम्र, संरचना, प्रकृति और अन्य प्रासंगिक चीजों का पता लगाने के लिए तंत्र और सभी सुविधाएं हैं। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि एएसआई प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 में निहित प्रावधानों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिकृत है। उक्त अधिनियम की धारा 22 के तहत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पास संरक्षित क्षेत्रों के अलावा किसी भी क्षेत्र को उत्खनन करने की शक्ति है, यदि उसके पास यह मानने का कारण है कि उस क्षेत्र में ऐतिहासिक और पुरातत्वीय महत्व के अवशेष शामिल हैं।

अयोध्या मामले (उपरोक्त) पर भरोसा करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पूरी तरह से लागू होता है। उन्होंने उक्त निर्णय के निम्नलिखित पैराग्राफ का उल्लेख किया:

> "679. एक विज्ञान के रूप में पुरातत्व बहु-अनुशासनात्मक या ट्रांस-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। पुरातात्विक साक्ष्य की प्रकृति पर विचार करते हुए, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ज्ञान की एक शाखा के रूप में पुरातत्व सीखने के विज्ञान, अनुभव के ज्ञान और दृष्टि से जीविका प्राप्त करता है जो व्याख्या की प्रक्रिया को रेखांकित करता है। एक अध्ययन का विषय के रूप में, यह

एक प्रशिक्षित दिमाग का पोषण करता है। यह इतिहास, समाजशास्त्र और नृविज्ञान जैसे अन्य विषयों के साथ एक क्रॉस-निषेचन पर निर्भर करता है। यह कमजोरी नहीं बल्कि ताकत है। पुरातत्व विज्ञान और कला दोनों को जोड़ती है। एक विज्ञान के रूप में, यह उद्देश्य मूल्यांकन के सिद्धांत पर आधारित है। एक कला के रूप में, यह एक दृष्टि पर निर्भर करता है जिसे युगों के इतिहास के आधार पर ज्ञान की खोज के लिए प्रतिबद्धता के वर्षों के माध्यम से महसूस किया जाता है। पुरातत्व को एक विषय के रूप में अविश्वसनीय बताकर कम नहीं आंका जा सकता। पुरातत्व के मूल्य को उस तरीके से कम नहीं किया जा सकता है जो साक्ष्य के कमजोर रूप होने का दावा करके सुझाया गया है।

682. अपनी पुस्तक *"द लॉजिक ऑफ साइंटिफिक डिस्कवरी"* में, कार्ल पॉपर ने एक वैज्ञानिक के काम को एक दार्शनिक के साथ अलग किया। पॉपर लॉर्ड एक्टन को उद्धृत करता है जब वह कहता है:

"विज्ञान के आदमी के लिए उसके इतिहास और खोज के तर्क से ज्यादा आवश्यक कुछ भी नहीं है . . . . . त्रुटि का पता लगाने का तरीका, परिकल्पना का उपयोग, कल्पना का उपयोग, परीक्षण का तरीका।

683. विज्ञान को पूर्ण सत्य के रूप में और पुरातत्व को बिना दिशा के व्यक्तिपरकता के रूप में देखने के बीच का अंतर अलग ब्रह्मांडों का नहीं, बल्कि उनकी गहराई का है। यद्यपि अन्य विषयों की तरह, पुरातत्व भी तथ्यों के निष्कर्ष से अधिक इसकी प्रक्रिया से संबंधित है। पुरातत्वविद् को खुदाई से प्राप्त वस्तुओं के साथ-साथ उनकी पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया पर भी उतना ही ध्यान देना चाहिए। व्याख्या अगर इसकी आत्मा नहीं है तो इसका दिल है। व्याख्याएं अलग-अलग होती हैं और विशेषज्ञ असहमत होते हैं। जब कानून किसी व्याख्या को देखता है, तो उसे गलती की गुंजाइश और मतभेदों को स्वीकार करना चाहिए। पुरातात्विक खोजें कई तरह की व्याख्याओं के लिए अतिसंवेदनशील होती हैं। यह कुछ हद तक पुरातत्वविद् के अतीत के बारे में दृष्टिकोण और पुरातत्वविद् अतीत के बारे में क्या जानना चाहता है, का परिणाम हो सकता है। परंपरा आधारित पुरातत्व अतीत के बारे में तथ्यों की खोज कर सकता है। दूसरी ओर, एक पुरातत्वविद् अतीत के बारे में किसी विश्वास को प्रमाणित करने के लिए काम कर सकता है। एक पुरातत्वविद् उन विशेषताओं को जानने के लिए एक खुले दिमाग के साथ काम कर सकता है जो अज्ञात हैं। विषय के मूल दृष्टिकोण द्वारा निर्देशित, पुरातत्वविद् अपने काम के उद्देश्य को ध्यान में रखेगा। जब तक हम विषय की सीमाओं को समझते हैं, हम अतिवादी स्थितियों से बच सकते

हैं और अक्सर मायावी मध्य मार्ग की खोज कर सकते हैं।

13. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, वादी के विद्वान अधिवक्ता ने भी निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

i. **श्री षडक्षरप्पा बनाम कुमारी विजयलक्ष्मी,** रिट याचिका संख्या 201274/2022 (जीएम-सीपीसी) (कर्नाटक उच्च न्यायालय) (पैरा 9-14);

ii. **फूलचंद आसरा बनाम नगर पालिका निगम**, रायपुर, रिट याचिका (227) संख्या 821/2019 (छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय) (पैरा 10);

iii. **अनुराग जैसवाल बनाम कलेक्टर, खंडवा एवं अन्य,** 2018 एससीसी ऑनलाइन (एमपी) 699 (पैरा 7 और 12);

iv. **राजेश कुमार गौतम बनाम महा मंडलेश्वर वेदबैसनद गीता आश्रम**, 2003 एससीसी ऑनलाइन उत्तराखंड9; (पैरा 6)

v. **नरसिम्हैया बनाम श्रीमती सकम्मनम्मा और एक अन्य**, 2000 एससीसी ऑनलाइन कर्नाटक 564 (पैरा 5 और 7)

vi. **श्रीमती सुमन पंडागरे बनाम मधु पंडागरे** रिट याचिका संख्या 110376 वर्ष 2017 (मध्य प्रदेश) (पैरा 8)।

vii. **फिल्मिस्तान प्राइवेट लिमिटेड बॉम्बे बनाम भगवानदास संतप्रकाश**, एआईआर 1971 एससी 61.

14. **फूलचंद आसरा (उपरोक्त)** के फैसले पर भरोसा करते हुए, वादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि निर्णय के पैराग्राफ 10 में, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि किसी भी वाद में जिसमें न्यायालय किसी स्थानीय जांच को किसी विवादित मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से या किसी संपत्ति के अंकित मूल्य, या किसी माध्य लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ का पता लगाने के लिए आवश्यक या उचित समझता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति को आयोग जारी कर सकता है, जैसा वह उचित समझता है, उसे ऐसा करने का निर्देश देते हुए जांच करें और उस पर न्यायालय को रिपोर्ट करें।

इसके अलावा, **श्रीमती सुमन पंडागरे (उपरोक्त)** के फैसले पर भरोसा करते हुए, जिसमें **मारोली अच्युतन (उपरोक्त)** सहित उसमें उल्लिखित कई मामलों का समर्थन मिलता है, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी के उपस्थित होने से पहले ही जांच के लिए आयोग जारी करने के लिए एक पक्षीय आदेश पारित करना न्यायालय के लिए खुला है।

15. बहस के दौरान, अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दे की गंभीरता पर विचार करते हुए, न्यायालय ने इस तरह के क्षेत्र में विशेषज्ञता रखने वाली सरकारी एजेंसियों से इस मामले में विशेषज्ञ की राय लेना आवश्यक समझा। इसलिए, एएसआई के एक जिम्मेदार अधिकारी को न्यायालय की सहायता के लिए बुलाया गया था और तदनुसार, श्री आलोक त्रिपाठी, अतिरिक्त महानिदेशक, एएसआई, नई दिल्ली अदालत की सहायता के लिए उपस्थित हुए और एक हलफनामे के माध्यम से, उन्होंने प्रस्तुत किया कि एएसआई कानून के अनुसार एक विस्तृत सर्वेक्षण करेगा और भवन में पाए जाने वाले पुरावशेषों की एक सूची तैयार करेगा। संरचना की उम्र और प्रकृति का पता लगाने के लिए विस्तृत सर्वेक्षण करेगा और की प्रक्रिया करेगा। उन्होंने आगे कहा कि एएसआई मौजूदा संरचनाओं को नुकसान पहुंचाए बिना सर्वेक्षण, प्रलेखन, फोटोग्राफी, विस्तार विवरण, जीपीआर सर्वेक्षण और पूर्ण अध्ययन करेगा। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि उपरोक्त सभी कार्यों को संरचनाओं को बिना किसी नुकसान के किया जाएगा। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि वैज्ञानिक जांच संरचना से परे और केवल खुले क्षेत्रों में की जाएगी; सर्वेक्षण और अध्ययन करते समय मौजूदा संरचना से कोई ड्रिलिंग, कोई कटाई, ईंट या पत्थरों को नहीं हटाया जाएगा। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पुरातात्विक स्थल खुले स्थान के फर्श क्षेत्र में होंगे जो संरचना को बिल्कुल भी प्रभावित नहीं करेंगे, और कोई भी दीवार/संरचना क्षतिग्रस्त नहीं होगी और जीपीआर सर्वेक्षण, जीपीएस सर्वेक्षण, अन्य वैज्ञानिक तरीकों और अन्य आधुनिक तकनीकों जैसी तकनीकों का उपयोग करके अविध्वंसक विधि द्वारा पूरा सर्वेक्षण किया जाएगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यदि किसी और जांच/उत्खनन की आवश्यकता होती है, तो माननीय न्यायालय की अनुमति मांगी जाएगी।

16. मुझे आवेदक/प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतिकरण में कोई सार नहीं मिलता है कि न्यायालय द्वारा स्थानीय निरीक्षण या कमीशन केवल उन मामलों में किया जाता है, जहां पक्षों के नेतृत्व में साक्ष्य पर, न्यायालय किसी भी तरह से उचित निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम नहीं है या जहां न्यायालय को लगता है कि साक्ष्य में कुछ अस्पष्टता है, जिसे स्थानीय निरीक्षण या आयोग बनाकर स्पष्ट किया जा सकता है। यह कानून की स्थापित स्थिति है कि संहिता के आदेश XXVI का उद्देश्य विवाद में साक्ष्य को सुरक्षित करना है और आयोग की रिपोर्ट और आयोग द्वारा लिया गया साक्ष्य स्वीकार्य साक्ष्य बन जाता है। इस प्रकार, विवाद के बेहतर न्यायनिर्णयन के लिए आयोग नियुक्त करने के लिए कानून में कोई रोक नहीं है। इसलिए, यदि आवश्यक हो तो परीक्षण से पहले भी एक आयोग नियुक्त किया जा सकता है। न्यायालय स्वयं विवादित तथ्य को स्पष्ट करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। प्रावधान को पढ़ने में कहा गया है कि शक्ति का प्रयोग किसी भी स्तर पर किया जा सकता है और प्रक्रियात्मक कानून न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए है न कि अति तकनीकी आधार पर वादी का गला

घोंटने के लिए। इस प्रकार, **श्रीकांत (उपरोक्त)** के मामले में आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय से उन्हें कोई मदद नहीं मिलती।

17. मुझे इन तर्कों में कोई सार नहीं मिलता है कि किसी भी पक्ष के साक्ष्य के भार का निर्वहन करना न्यायालयों का कार्य नहीं है या आदेश XXVI नियम 10-क के प्रावधानों को संबंधित पक्षों द्वारा अपने पक्ष में साक्ष्य सृजित करने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जहां किसी वाद में उठने वाले किसी प्रश्न में कोई वैज्ञानिक अन्वेषण अंतर्वलित है जो, न्यायालय की राय में, न्यायालय के समक्ष सुविधापूर्वक संचालित नहीं किया जा सकता है, वहां न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, ऐसे व्यक्ति को, जो वह ठीक समझे, आयोग जारी कर सकेगा, उसे ऐसे प्रश्न की जांच करने और उस पर न्यायालय को रिपोर्ट करने का निदेश दे सकेगा। ऐसी जांच के लिए, नियम 10-ए के उप-नियम (2) में निर्धारित किया गया है कि नियम 10 के प्रावधान लागू होंगे, जहां तक हो सके, जैसा कि वे नियम 9 के तहत नियुक्त आयुक्त के संबंध में लागू होते हैं। यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय मूकदर्शक के रूप में नहीं बैठेगा और किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए ऐसे मामलों में हमेशा हस्तक्षेप कर सकता है। इस प्रकार, **नसीब दीन (उपरोक्त), कुमारी चंदना मुखर्जी (उपरोक्त), राम अवतार सोनी (उपरोक्त)** और **शांता देवी (उपरोक्त)** के मामलों में जिन फैसलों पर भरोसा किया गया है, वे आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 के लिए कोई मदद नहीं करते हैं।

18. जहां तक आवेदक/प्रतिवादी संख्या 4 की इस दलील का संबंध है कि वाद उपासना स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 द्वारा वर्जित है, यह प्रश्न फिलहाल विषय वस्तु नहीं है, क्योंकि किसी भी पक्ष ने अपने आवेदनों के समर्थन में अपना निवेदन करते समय अधीनस्थ अदालत के समक्ष कोई शिकायत नहीं की है।

19. मुझे आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 के तर्क में कोई दम नहीं मिलता है कि यदि वैज्ञानिक जांच के दौरान, कोई खुदाई की जाती है, तो वह संरचना को नुकसान पहुंचाएगा और वैज्ञानिक जांच केवल तभी की जा सकती है, जब सबूत पेश करने के बाद, अदालत विवाद का फैसला करने में असमर्थ हो। सुनवाई के दौरान, एएसआई की ओर से एक हलफनामा दायर किया गया है जिसमें उल्लेख किया गया है कि वे कोई खुदाई नहीं करेंगे। एएसआई की ओर से न्यायालय में उपस्थित अधिकारी ने भी स्पष्ट रूप से यह बताया है कि विचाराधीन संपत्ति की दीवार के अंदर मामले की वास्तविकता का पता लगाने के प्रयास के लिए किस प्रकार के आक्रामक परीक्षण किए जाने हैं। इस न्यायालय ने बार-बार अदालत में उपस्थित अधिकारी और एएसआई के लिए उपस्थित अधिवक्ता से पूछा है कि वैज्ञानिक जांच के समय क्या प्रक्रिया अपनाई जाएगी, और उन्होंने दोहराया है कि किसी के द्वारा संपत्ति का कोई विध्वंस नहीं किया जाएगा, न ही किसी मौजूदा संरचना को बदला जाएगा।

20. मुझे आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 के तर्क में कोई दम नहीं मिलता है कि क्योंकि एएसआई को मुकदमे में एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए उसे कोई तकनीकी जांच करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। जब कभी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट का पक्षकारों द्वारा उपयोग किया जाएगा, वे अपना प्रस्ताव/आपत्ति, यदि कोई हो, प्रस्तुत कर सकते हैं।

21. मुझे आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 के तर्क में भी कोई दम नहीं मिलता है कि बिना दीवार खोदे एएसआई द्वारा चीजों को अंतिम रूप नहीं दिया जा सकता है। समय के इस आधुनिक चरण में, कई नई चीजें विकसित की गई हैं और अब नई तकनीक की मदद से और एएसआई के जिम्मेदार अधिकारियों के सक्षम मार्गदर्शन के साथ, वैज्ञानिक जांच की जा सकती है। भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के साथ न्यायालय में उपस्थित अधिकारी ने एक शपथ पत्र के रूप में प्रस्तुत किया है कि कोई भी उत्खनन नहीं होगा।

22. इसके अलावा, आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा दिए गए तर्क में कोई दम नहीं है कि वादी द्वारा दायर आवेदन, जिसके द्वारा विचाराधीन संरचना की वैज्ञानिक जांच की मांग की गई है, कानून की नजर में सिर्फ इसलिए मान्य नहीं हैं क्योंकि मुद्दों को अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है। वैज्ञानिक जांच का अन्य सबूतों से कोई लेना-देना नहीं है और जो भी सबूत एकत्र किए जाएंगे, वह सभी पक्षों के लिए हो सकते हैं न कि केवल वादी के लिए।

23. अन्यथा भी याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत है और तथ्यान्वेषी मंच (फैक्ट फाइंडिंग फोरम) के फैसलों पर पर्यवेक्षी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की गुंजाइश सीमित है और साथ ही, यह आवेदक/प्रतिवादी नंबर 4 का मामला नहीं है कि आक्षेपित आदेश विकृत है और अधीनस्थ अदालत के अधिकार क्षेत्र से परे है। यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करते हुए, अपीलीय निकाय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और तथ्यों की पुनर्मूल्यांकन करने वाला नहीं है। यह सब देखा जाना चाहिए कि क्या अधीनस्थ अदालत ने कानूनी प्रावधानों के भीतर रहकर कार्यवाही की है। वर्तमान मामले में, अधीनस्थ अदालत ने अधिकार क्षेत्र से बाहर काम नहीं किया है और यह आदेश सीपीसी के आदेश XXVI नियम 10ए के साथ पठित धारा 75 (ई) के प्रावधानों के अनुरूप है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा **मोहम्मद यूनुस बनाम मोहम्मद मुस्तक़ीम** एआईआर 1984 एससी में अपने आदेश में यह निर्णय दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए कानून की त्रुटियों को भी ठीक नहीं किया जा सकता है और इस शक्ति का संयम से प्रयोग तब किया जा सकता है जब यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राधिकरण/अधिकरण ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है या क्षेत्राधिकार की गलत धारणा के तहत कार्यवाही की है।

उच्च न्यायालय कठिनाई या गलत निर्णय के सभी प्रकारों को ठीक करने के लिए

असीमित विशेषाधिकार नहीं मान सकता है। हस्तक्षेप के लिए, कानून के मौलिक सिद्धांत के दुरुपयोग का स्पष्ट मामला होना चाहिए या जहां ट्रिब्यूनल आदि के आदेश के परिणामस्वरूप गंभीर अन्याय हुआ है। (संदर्भ संविधान पीठ के फैसले **डीएन बनर्जी बनाम पीआर मुखर्जी**, एआईआर 1953 एससी 58 और **नागेंद्र नाथ बोरा बनाम हिल्स डिवीजन और अपील के आयुक्त**, एआईआर 1958 एससी 398)

भारत के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप के लिए, प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्ष को विकृत या स्पष्ट रूप से गलत पाया जाना चाहिए और रिकॉर्ड पर तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति से परे होना चाहिए। (संदर्भ **लक्ष्मीकांत रेवचंद भजवानी बनाम प्रतापसिंह मोहनसिंह परदेशी**, (1995) 6 एससीसी 576; **रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम प्रवीणभाई जसभाई पटेल**, (1997) 7 एससीसी 300; **पेप्सी फूड लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट**, (1998) 5 एससीसी 749 और **वीरेंद्र काशीनाथ बनाम विनायक एन जोशी**, एआईआर 1999 एससी 162।

24. एक बार जब पुरातत्व विभाग और विभाग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपना रुख स्पष्ट कर दिया है कि विचाराधीन संपत्ति को कोई नुकसान नहीं होने जा रहा है, तो इस न्यायालय के पास उनके बयानों पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एएसआई के अधिकारी द्वारा दायर हलफनामे में परिस्थितियों को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह स्थापित कानून है कि इस स्तर पर आयोग जारी करने की अनुमति है। न्यायालय की राय में, आयोग द्वारा किया जाने वाला प्रस्तावित वैज्ञानिक सर्वेक्षण/जांच, न्याय के हित में आवश्यक है और इससे वादी और प्रतिवादियों को समान रूप से लाभ होगा और एक उचित निर्णय पर पहुंचने के लिए ट्रायल कोर्ट को सहायता मिलेगी। ऊपर निर्धारित और चर्चा किए गए कानून से यह स्पष्ट हो जाता है कि नीचे का न्यायालय आक्षेपित आदेश पारित करने में न्यायसंगत था। वर्तमान याचिका में सार का अभाव है और यह खारिज किए जाने योग्य है।

25. तदनुसार, याचिका **खारिज** की जाती है। अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है। जिला न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.7.2023 को बहाल किया जाता है और पक्षकारों को उक्त आदेश का पालन करना है, जो इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों और इस न्यायालय के समक्ष एएसआई की ओर से दायर हलफनामे की सामग्री के अधीन है।

26. हालांकि, इस रिट याचिका को खारिज होने से एएसआई द्वारा की जाने वाली वैज्ञानिक जांच के समय वाद के पक्षकारों के उपस्थित रहने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

27. चूंकि वाद की कार्यवाही लंबे समय से लंबित है, इसलिए यह देखना उचित होगा कि संबंधित न्यायालय, सीपीसी के आदेश XVII नियम 1 में निहित प्रावधानों को ध्यान में

रखते हुए, कम तारीखें देकर किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना, कार्यवाही को शीघ्रता से समाप्त करने का प्रयास करेगा।

(2023) 8 ILRA 652

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 7251 वर्ष 2023

अलका रे ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता :
प्रांजल कृष्ण

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - धारा 227 - उन्मोचन आवेदन, धारा 228 - आरोप तय करना,भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा **419, 420, 467, 468, 471, 120-**बी**, 177** और **506,** दंड विधि **(**संशोधन**)** अधिनियम**, 1932 -** धारा 7**,** संहिता की धारा 227 के अंतर्गत अभियुक्त को उन्मोचित करने के आवेदन पर विचार करते समय**,** न्यायालय को मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद एक निश्चित राय बनानी होती है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है **-** एक बार जब धारा के तथ्य और अवयव विद्यमान हो जाएं**,** तो न्यायालय यह मान लेगा कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने और तदनुसार आरोप विरचित करने का आधार है और न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह नहीं करेगा **-** उन्मोचन और आरोप विरचित करने के समय जांच का दायरा सीमित है।**(पैरा - 23,25)**

एफआईआर में आरोप - फर्जी दस्तावेजों के आधार पर एम्बुलेंस का पंजीकरण - आवेदक पर आपराधिक षड्यंत्र में शामिल होने का आरोप - कथित अपराध करने के लिए - आरोपमुक्ति के लिए आवेदन खारिज - विरुद्ध आरोप तय करना - आवेदन की प्रति अभिलेख पर नहीं लाई गई। **(पैरा - 3,5)**

अभिनिर्धारित:-मामले के अभिलेख पर विचार करने पर, आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। विचारण के दौरान साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने पर मामले की सच्चाई सामने आ जाएगी। **(पैरा - 26)**

अंतर्गत धारा 482 सीआर.पी.सी आवेदन खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम रामचन्द्र रबीदास**,** (2019) 10 एससीसी 75

2. शीला सेबेस्टियन बनाम आर**.** जवाहराज,(2018) 7 एससीसी 581

3. पलविंदर सिंह बनाम बलविंदर सिंह, (2008) 14 एससीसी 504,

4. भावना बाई बनाम घनश्याम, (2020) 2 एससीसी 217,

5. राजबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 4 एससीसी 51,

6. गुलाम हसन बेग बनाम मोहम्मद. मकबूल माग्रे, (2022) 12 एससीसी 657,

7. राजीव कौरव बनाम बाईसाहब, (2020) 3 एससीसी 317,

8. महाराष्ट्र राज्य बनाम मारोती (2023) 4 एससीसी 298,

9. भोलू राम बनाम पंजाब राज्य, (2008) 9 एससीसी 140,

10. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अखिल शारदा एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 820,

11. मोनिका बेदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2011) 1 एससीसी 284

12. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रणजीत सिंह, (1999) 2 एससीसी 61

13.अमित कपूर बनाम रमेश चंदर, (2012) 9 एससीसी 460

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल कृष्ण तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता -I श्री शिव नाथ तिलहारी की दलीलें सुनी गईं तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत दायर तत्काल आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय संख्या-19, बाराबंकी द्वारा पारित दिनांक 28.02.2023 के आदेश की वैधता पर सवाल उठाया है, जिसके तहत उसके उन्मुक्ति के लिए आवेदन को खारिज कर दिया गया था। आवेदक ने धारा 419, 420, 467, 468 और 471 आई.पी.सी. के तहत उसके खिलाफ आरोप तय करने वाले उपरोक्त न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.06.2023 के आदेश को भी चुनौती दी है।

3. दिनांक 02.04.2021 को सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी द्वारा थाना कोतवाली बाराबंकी में मुकदमा अपराध संख्या 0369/2021 की प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 419, 420, 467, 468 एवं 471 आई.पी.सी. के अंतर्गत दर्ज कराई गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि एक एम्बुलेंस जिसका पंजीकरण संख्या यू.पी.-41 AT-7171 है, दिनांक 21.12.2013 को परिवहन विभाग बाराबंकी में आवेदक के नाम से पंजीकृत हुई, जिसमें उसका पता 56, रफी नगर, बाराबंकी दर्शाया गया है, तथा दावा किया गया है कि एम्बुलेंस का उपयोग श्याम संजीवनी हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर प्राइवेट लिमिटेड, राष्ट्रीय

राजमार्ग 24, जी.टी. मऊ के मरीजों को लाने-ले जाने के लिए किया जाएगा। आवेदक ने उपरोक्त पता दर्शाते हुए अपने मतदाता पहचान पत्र की एक छायाप्रति प्रस्तुत की थी, जो झूठी और जाली निकली, क्योंकि यह पाया गया कि रफी नगर में 56 नंबर वाला कोई घर नहीं है। पड़ोसी अभय नगर में मकान नंबर 56 है, जिसमें प्रदीप मिश्रा पिछले कई सालों से रह रहे हैं। एफ.आई.आर. में आरोप लगाया गया है कि एंबुलेंस का पंजीकरण फर्जी दस्तावेजों के आधार पर कराया गया है।

4. जांच के बाद, आवेदक सहित सात आरोपियों के खिलाफ धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी, 177 और 506 आई.पी.सी. और आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 की धारा 7 के तहत अपराध करने के लिए दिनांक 04.07.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। हालांकि, आवेदक ने केवल धारा 419, 420, 467, 468, 471 आई.पी.सी. के तहत आरोप तय करने के आदेश को चुनौती दी है।

5. आवेदक ने अपने उन्मुक्ति के आवेदन को खारिज करने के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, हालांकि आवेदन की एक प्रति अभिलेख पर नहीं लाई गई है जिससे आवेदन की सामग्री एकत्र की जा सके।

6. विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-19, बाराबंकी ने उन्मुक्ति आवेदन को रद्द करते हुए अपने आदेश दिनांक 28.02.2023 में दर्ज किया है कि उन्मुक्ति आवेदन में कहा गया है कि एफ.आई.आर. में मोटर वाहन अधिनियम-1988 की धारा 55(5) का उल्लेख है जबकि उक्त प्रावधान के उल्लंघन के मामले में क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी को आख्या दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है तथा इसमें वाहन के पंजीकृत स्वामी को सुनवाई का अवसर देने के बाद पंजीकरण रद्द करने का प्रावधान है।

7. राज्य ने एक जवाबी हलफनामा दायर किया है जिसमें कहा गया है कि विभिन्न समाचार पत्रों में एक समाचार प्रकाशित हुआ था, कि सह-अभियुक्त व्यक्ति मुख्तार अंसारी जिला बाराबंकी में पंजीकृत एक एम्बुलेंस में पंजाब की एक अदालत में पेश होने गया था। इसे देखने पर, थाना कोतवाली नगर, बाराबंकी के प्रभारी निरीक्षक ने सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, बाराबंकी को दिनांक 01.04.2021 को एक पत्र भेजकर एम्बुलेंस के पंजीकरण के विवरण के बारे में पूछताछ की। क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी ने उप-मंडल मजिस्ट्रेट नवाबगंज, बाराबंकी को एक पत्र भेजकर सूचित किया कि एम्बुलेंस आवेदक के नाम पर पंजीकृत है और अपने पते के प्रमाण के रूप में उसने अपने मतदाता पहचान पत्र की एक प्रति प्रस्तुत की है। यह पाया गया कि वाहन के पंजीकरण के लिए आवेदक द्वारा प्रस्तुत मतदाता पहचान पत्र जाली था। पंजीकरण के लिए आवेदन श्याम संजीवनी अस्पताल और अनुसंधान केंद्र प्राइवेट लिमिटेड, राष्ट्रीय राजमार्ग 24 जी.टी., मऊ के मुद्रित पत्रशीर्ष पर जारी एक पत्र के साथ था,जिसमें कहा गया था कि एम्बुलेंस का उपयोग बिना किसी शुल्क के मरीजों के परिवहन के लिए किया जाएगा।

8. धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज आवेदक के बयान की एक प्रति जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न की गई है, जिसमें उसने कहा है कि वह सह-अभियुक्त डॉक्टर शेषनाथ राय के साथ मिलकर उसके मालिक प्यारे लाल सिंधी से किराए पर लिए गए परिसर में श्याम संजीवनी अस्पताल चला रही थी। प्यारे लाल सिंधी ने वर्ष 2009 में उमेश सिंह को मकान बेच दिया था। कहा जाता है कि उमेश सिंह मुख्तार अंसारी का बहुत करीबी है और उसने मकान खाली करने का दबाव बनाना शुरू कर दिया। आवेदक और सह-अभियुक्त शेषनाथ राय सह-अभियुक्त मुख्तार अंसारी से मिलने गए, जो जिला जेल गाजीपुर में बंद थे और मुख्तार अंसारी ने आश्वासन दिया कि कोई भी उससे घर खाली करने के लिए नहीं कहेगा। वह कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ दिनाँक 31.05.2013 को पुनः मुख्तार अंसारी से जेल में मिलने गई थी और जेल में हुई मुलाकात में उसे अपने अस्पताल के नाम पर एक एम्बुलेंस की व्यवस्था करने के लिए कहा गया था, जिसे विधायक निधि से खरीदा जाएगा। आवेदिका ने बताया कि समय बीतने के साथ उसका मुख्तार अंसारी से लगाव हो गया और उसने मुख्तार अंसारी की कलाई पर राखी बांधी थी। इसके बाद सह-अभियुक्त मुजाहिद जो मुख्तार अंसारी का प्रतिनिधि था और सह-अभियुक्त राज नाथ यादव जो मुख्तार अंसारी का कार्यालय देखता था, ने कहा कि जनसेवा के लिए उसके अस्पताल के नाम पर एंबुलेंस लेनी है। मुख्तार अंसारी ने खुद उसे जेल में मिलने के दौरान यह बात बताई थी। उसे भी लगा कि एंबुलेंस खरीदना उसके अस्पताल के लिए फायदेमंद होगा। इसलिए उसने श्याम संजीवनी हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर प्राइवेट लिमिटेड के पंजीकरण प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, अपना और अपने अस्पताल का पैन कार्ड की छायाप्रति दी। उसने अस्पताल के कुछ खाली छपे हुए पत्रशीर्ष भी दिए, जिन पर उसके हस्ताक्षर और मुहर थी और अस्पताल के बैंक खाते के कुछ खाली चेक भी दिए। कुछ देर बाद मुजाहिद और राज नाथ यादव ने उसे बताया कि कुछ तकनीकी समस्या के कारण विधायक निधि से एंबुलेंस नहीं खरीदी जा सकी और उन्होंने कहा कि एंबुलेंस आवेदिका के नाम पर हस्तांतरित कर दी जाएगी। मुजाहिद और राज नाथ यादव ने कुछ और दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर करवाए और उसके बाद एम्बुलेंस खरीदी गई और उसे मुख्तार अंसारी ने अपने पास रख लिया और उसी का इस्तेमाल कर रहा था। दिनाँक 31.03.2021 को, आवेदक को टी.वी. समाचार चैनलों के माध्यम से पता चला कि मुख्तार अंसारी उसके नाम पर पंजीकृत एम्बुलेंस से पंजाब की एक अदालत में सुनवाई में शामिल होने गया था। उसी दिन, सह-अभियुक्त आनंद यादव उसके अस्पताल आया और अपने मोबाइल फोन से उसकी बात सह-अभियुक्त शाहिद से करवाई और शाहिद ने उसे बताया था कि वह इस संबंध में अधिकारियों को क्या बयान देगी।

9. जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए कई अन्य सह-अभियुक्तों और कुछ स्वतंत्र गवाहों के बयान भी जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किए गए हैं। जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, आरोप-पत्र में धारा120-बी,177 और 506 आई.पी.सी.और आपराधिक

कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 की धारा 7 को जोड़ा गया।

10. दिनांक 02.09.2021 को चार और व्यक्तियों के विरुद्ध एक और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और दिनांक 05.03.2021 को दो और व्यक्तियों के विरुद्ध तीसरा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

11. प्रति-शपथ-पत्र में कहा गया है कि जांच के दौरान एकत्र दस्तावेजी,मौखिक एवं इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्यों के आधार पर अपराध में आवेदक की संलिप्तता स्थापित हुई है। आवेदक वर्ष 2009 से सह-अभियुक्त मुख्तार अंसारी के सम्पर्क में थी। उसे एम्बुलेंस क्रय की योजना के बारे में अच्छी तरह से जानकारी थी। उसने एम्बुलेंस क्रय कर उसके पंजीकरण के लिए आवेदन किया तथा गलत पता अंकित जाली मतदाता पहचान-पत्र प्रस्तुत किया। आवेदक ने वाहन यह दावा करते हुए क्रय किया था कि इसका उपयोग मरीजों के लाभ के लिए किया जाएगा, लेकिन उसने इसे सह-अभियुक्त मुख्तार अंसारी को उसकी अवैध गतिविधियों में उपयोग के लिए उपलब्ध कराया। वाहन मुख्तार अंसारी के नियंत्रण में रहा तथा इसका कभी भी मरीजों के लिए उपयोग नहीं किया गया। जब एम्बुलेंस के अवैध उपयोग से संबंधित मामला समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ,तो आवेदक ने सह-अभियुक्त आनंद यादव से मुलाकात की, जिसका प्रमाण सी.सी.टी.वी. फुटेज से मिलता है तथा उसने सह-अभियुक्त शाहिद से मोबाइल फोन पर बात की। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री आवेदक को अपराध के साथ उचित रूप से जोड़ती है तथा यह स्थापित होता है कि आवेदक अन्य अभियुक्तों के साथ षडयंत्र में शामिल थी।

12. मैंने न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेख पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है तथा पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है।

13. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल कृष्ण का पहला तर्क यह है कि आवेदक केवल झूठे दस्तावेज़ के आधार पर वाहन का पंजीकरण प्राप्त करने का दोषी है और इसके परिणाम मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 55 के तहत निम्नानुसार प्रदान किए गए हैं:

"55. पंजीकरण रद्द करना.–

* * *

(5) यदि पंजीकरण प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि मोटर यान का पंजीकरण ऐसे दस्तावेजों के आधार पर प्राप्त किया गया है, जो किसी तात्विक विवरण में झूठे थे, या उन पर अंकित इंजन संख्या या ढाँचा संख्या पंजीकरण प्रमाणपत्र में दर्ज संख्या से भिन्न है, तो पंजीकरण प्राधिकारी,स्वामी को ऐसा प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने के पश्चात, जैसा वह करना चाहे, (स्वामी को पंजीकरण प्रमाणपत्र में दर्ज उसके पते पर पंजीकृत डाक से सूचना भेजकर, जिसकी पावती प्राप्त हो) और कारणों को लेखबद्ध करके पंजीकरण को रद्द कर देगा।"

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **अरुणाचल प्रदेश राज्य बनाम रामचंद्र रबीदास,** (2019) 10 एस.सी.सी.75 के फैसले पर भरोसा

किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा रामचंद्र रबीदास बनाम त्रिपुरा राज्य, 2008 एस.सी.सी. ऑनलाइन गौ०-99 में जारी निर्देशों की वैधता का परीक्षण कर रहा था, कि सड़क यातायात अपराधों को केवल मोटर वाहन अधिनियम, 1988 ("एम.वी. अधिनियम") के प्रावधानों के तहत निपटाया जाएगा, और यह मानते हुए कि सड़क यातायात या मोटर वाहन अपराधों के मामलों में दंड संहिता, 1860 ("आई.पी.सी.") के प्रावधानों के तहत अभियोजन कानून की मंजूरी के बिना है, और आई.पी.सी. के प्रावधानों का सहारा लेना कानून में अस्थिर होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"6. हमारे विचार में आई.पी.सी. और मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के बीच कोई टकराव नहीं है। दोनों क़ानून पूरी तरह से अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं। दोनों क़ानूनों के तहत दिए गए अपराध एक दूसरे से अलग और भिन्न हैं। दोनों क़ानूनों के तहत दिए गए दंडात्मक परिणाम भी एक दूसरे से स्वतंत्र और भिन्न हैं। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, दोनों क़ानूनों के तहत अपराधों के तत्व अलग-अलग हैं, और एक अपराधी पर दोनों क़ानूनों के तहत स्वतंत्र रूप से मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे दंडित किया जा सकता है। *यह सिद्धांत कि विशेष कानून को सामान्य कानून पर हावी होना चाहिए, आई.पी.सी. और मोटर वाहन अधिनियम के तहत सड़क दुर्घटनाओं में अपराधियों के अभियोजन के मामलों में लागू नहीं होता है।"*

15. श्री प्रांजल कृष्ण ने दलील दी है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून की उपरोक्त व्याख्या केवल सड़क दुर्घटनाओं से संबंधित मामलों तक सीमित है और यह गलत पते पर वाहन पंजीकृत कराने के आरोप में भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए अभियोजन शुरू करने को उचित नहीं ठहराएगा।

16. उपर्युक्त दलीलों का उत्तर देते हुए,विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता -I श्री शिव नाथ तिलहरी ने दलील दी है कि जहां आरोपी व्यक्ति द्वारा किए गए कृत्य अपराध के घटित होने का संकेत देते हैं, वहां केवल इस आधार पर एफ.आई.आर. दर्ज करना वर्जित नहीं कहा जा सकता कि अभियोजन के अलावा अन्य कार्रवाई का प्रावधान किसी अन्य कानून में भी है और आरोपी व्यक्ति पर अपराध के घटित होने के लिए मुकदमा चलाया जाना है।

17. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 55 में किसी सजा का प्रावधान नहीं है, इसमें केवल संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के बाद पंजीकरण रद्द करने का प्रावधान है। यदि जाली दस्तावेजों के आधार पर गलत पते पर वाहन पंजीकृत कराने का कार्य आई.पी.सी. या किसी अन्य दंडात्मक कानून के तहत किसी अपराध का कारण बनता है, तो मोटर वाहन अधिनियम की धारा 55 के प्रावधान अन्य वैधानिक प्रावधानों के तहत अपराध के लिए आरोपी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा चलाने पर रोक नहीं लगाएंगे।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामचंद्र रविदास** (उपरोक्त) में स्पष्ट रूप से माना है कि आई.पी.सी. और मोटर वाहन अधिनियम के तहत दिए गए अपराध एक दूसरे से अलग और भिन्न हैं और दोनों क़ानूनों के तहत दिए गए दंडात्मक परिणाम भी एक दूसरे से स्वतंत्र और भिन्न हैं। दोनों क़ानूनों के तहत अपराधों के तत्व अलग-अलग हैं, और एक अपराधी पर दोनों क़ानूनों के तहत स्वतंत्र रूप से मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे दंडित किया जा सकता है। कानून का उपरोक्त सिद्धांत किसी भी तरह से केवल सड़क दुर्घटनाओं से उत्पन्न मामलों तक ही सीमित नहीं है। इसलि,मैं आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की पहली दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।

19. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि आवेदक पर जालसाजी का अपराध करने का आरोप लगाया गया है, जबकि इस बात का कोई आरोप नहीं है कि आवेदक ने खुद ही मतदाता पहचान पत्र में जालसाजी की थी, जिसका इस्तेमाल वाहन को पंजीकृत कराने के लिए किया गया था। इस तर्क के समर्थन में, उन्होंने **शीला सेबेस्टियन बनाम आर. जवाहरराज**, (2018) 7 एस.सी.सी. 581 के वाद में दिए गए फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि *"जालसाजी का आरोप उस व्यक्ति पर नहीं लगाया जा सकता जो इसका निर्माता नहीं है... धारा 464 के तहत अपराध बनाने के लिए यह जरूरी है कि कोई झूठा दस्तावेज बनाया गया हो और आरोपी व्यक्ति उसका निर्माता हो, अन्यथा आरोपी व्यक्ति जालसाजी के अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं है।"*

20. खंडन में, विद्वान अपर शाशकीय अधिवक्ता -I श्री शिव नाथ तिलहरी ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक पर केवल जालसाजी के अपराध के लिए आरोप नहीं लगाया गया है, उस पर जालसाजी सहित विभिन्न अपराधों के लिए साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि जब किसी व्यक्ति पर आपराधिक साजिश का हिस्सा होने का आरोप लगाया जाता है, तो यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति आपराधिक साजिश को आगे बढ़ाने के लिए किए गए सभी अपराधों के क्रियान्वयन में संलिप्त हो।

21. इस वाद में, आवेदक पर जालसाजी का अपराध करने का आरोप नहीं लगाया गया है, बल्कि उस पर धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी, 177 और 506 आई.पी.सी. और आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 की धारा 7 के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है, जिसमें कथित अपराधों को करने के लिए आपराधिक साजिश में शामिल होने का आरोप शामिल है। हालांकि, आवेदक ने धारा 120-बी, 177 और 506 आई.पी.सी. और आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 की धारा 7 के तहत आरोप तय करने के आदेश को चुनौती नहीं देना पसंद किया है, संभवतः इस कारण से कि वह उन आरोपों के लिए मुकदमा चलाना स्वीकार करती है। जब आवेदक पर धारा 419, 420, 467, 468, 471 के तहत अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र का अपराध करने का मुकदमा चलाया जा रहा है, तो यह आवश्यक नहीं है कि आवेदक पर स्वयं उन अपराधों को करने का आरोप लगाया जाए।

22. इसलिए, मैं आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क में कोई बल नहीं पाता।

23. श्री तिलहरी ने न्यायालय के समक्ष **पलविंदर सिंह बनाम बलविंदर सिंह,** (2008) 14 एस.सी.सी. 504, **भावना बाई बनाम घनश्याम,** (2020) 2 एस.सी.सी. 217, **राजबीर सिंह बनाम यू.पी. राज्य**, (2006) 4 एस.सी.सी. 51, **गुलाम हसन बेग बनाम मोहम्मद मकबूल मगरे** (2022) 12 एस.सी.सी. 657, **राजीव कौरव बनाम बाईसाहब**, (2020) 3 एस.सी.सी. 317, **महाराष्ट्र राज्य बनाम मारोती**, (2023) 4 एस.सी.सी. 298, **भोलू राम बनाम पंजाब राज्य**, (2008) 9 एस.सी.सी. 140, **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अखिल शारदा और अन्य**, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एससी 820, **मोनिका बेदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य**, (2011) 1 एस.सी.सी. 284 और **यूपी राज्य बनाम रंजीत सिंह,** (1999) 2 एससीसी 617,उपरोक्त वादों में दिए गए फैसले, आरोप मुक्त करने और आरोप तय करने के समय जांच के सीमित दायरे पर बल देने के लिए प्रस्तुत किए हैं।

24. धारा 227 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उन्मोचन के लिए आवेदन पर विचार करते समय और धारा 228 के तहत आरोप तय करते समय न्यायालय को जिस दृष्टिकोण से मामले की जांच करनी चाहिए, उसके बीच के अंतर को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र**, (2012) 9 एस.सी.सी. 460 में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है:–

"17. धारा 228 के अनुसार आरोप तय करना विचारण न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग है, जब तक कि अभियुक्त को धारा 227 के तहत दोषमुक्त न कर दिया जाए। इन दोनों प्रावधानों के तहत, न्यायालय को "वादों के अभिलेख " और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करना होता है और पक्षकारों की सुनवाई के बाद, वह या तो अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है या जहां न्यायालय को लगता है और उसकी राय में यह अनुमान लगाने का आधार है कि अभियुक्त ने कोई अपराध किया है, वह आरोप तय कर सकता है। एक बार जब धारा के तथ्य और तत्व मौजूद हो जाते हैं, तो न्यायालय का यह अनुमान लगाना सही होगा कि अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने और तदनुसार आरोप तय करने का आधार है। यह अनुमान विधि का अनुमान नहीं है। किसी अपराध के घटकों और उस अपराध को जन्म देने वाले तथ्यों के अस्तित्व के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि ऐसे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए अनिवार्य है। यह प्रथम दृष्टया मामले से भी कमजोर हो सकता है। संहिता की धारा 227 और 228 की भाषा में एक सूक्ष्म अंतर है। धारा 227 न्यायालय की निश्चित राय और निर्णय की अभिव्यक्ति है जबकि धारा 228 अस्थायी है। इस प्रकार, यह कहना कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को यह राय बना लेनी चाहिए कि अभियुक्त निश्चित रूप से अपराध करने का दोषी है, एक ऐसा दृष्टिकोण है जो संहिता की धारा 228 के अनुसार अस्वीकार्य है।

* * *

30. हम पहले ही देख चुके हैं कि विधायिका ने अपने विवेक से "यह मानने का

आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है। इसमें अनुमान का एक अंतर्निहित तत्व है, एक बार जब लगाए गए आरोपों के संदर्भ में अपराध के तत्व संतुष्ट हो जाते हैं, तो न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले पर अनावश्यक रूप से संदेह नहीं करेगा और जल्दबाजी में आरोप को खारिज करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार नहीं करेगा। महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा (1996) 4 एस.सी.सी. 659 में इस न्यायालय की एक पीठ ने ब्लैक विधि शब्दावली पर भरोसा करते हुए "अनुमान" शब्द के अर्थ का उल्लेख किया। इसका अर्थ "संभावित साक्ष्य पर विश्वास करना या स्वीकार करना" के रूप में परिभाषित किया गया था; "जब तक विपरीत साक्ष्य सामने न आ जाए, तब तक साबित मान लेना"। दूसरे शब्दों में, मामले की सच्चाई तब सामने आनी चाहिए जब अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पेश किए जाएं, बचाव पक्ष द्वारा गवाहों से जिरह की जाए, अभियुक्त के समक्ष संहिता की धारा 313 के अनुसार अपराध साबित करने वाली सामग्री और साक्ष्य पेश किए जाएं और फिर अभियुक्त को बचाव का अवसर दिया जाए, यदि कोई हो। ऐसे कदमों के पूरा होने पर ही अदालत अपनी अंतिम राय बनाने और अपना फैसला सुनाने के साथ मुकदमा समाप्त करती है। केवल इसलिए कि पक्षों के बीच एक दीवानी लेनदेन हुआ था, अपने आप में अपराध का गठन करने वाले आरोपों की स्थिति को नहीं बदलेगा।

25. इस प्रकार धारा 227 के तहत अभियुक्तों को मुक्त करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय और धारा 228 के तहत आरोप तय करते समय न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के बारे में विधि यह है कि धारा 227 के तहत अभियुक्तों को मुक्त करने के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद एक निश्चित राय बनानी होती है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। हालांकि, आरोप तय करते समय न्यायालय को यह निश्चित राय बनाने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त अपराध करने का दोषी है। मामले की सच्चाई तब सामने आएगी जब वाद के दौरान साक्ष्य पेश किए जाएंगे। एक बार जब धारा के तथ्य और तत्व मौजूद हो जाते हैं, तो न्यायालय यह मान लेगा कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने और तदनुसार आरोप तय करने का आधार है और न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह नहीं करेगा।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अमित कपूर** (उपरोक्त) में निर्धारित विधि के आलोक में मामले के तथ्यों पर विचार करने के बाद, मेरा विचार है कि वाद के अभिलेख पर विचार करने के बाद, आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। मामले की सच्चाई तब सामने आएगी जब मुकदमे के दौरान साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएंगे।

27. धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन में कोई बल नहीं है, इसलिए इसे **रद्द** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 659

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 18731 वर्ष 2023

चंद्रजीत सिंह उर्फ चेहकू एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता :

श्री पुरूषोत्तम दीक्षित, श्री जीतेन्द्र कुमार, श्री केशव हरि दीक्षित

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता :

जी.ए. , श्री सुशील कुमार दुबे

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति, धारा 311 - महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने, या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति,भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा147, 148, 149, 302, 395, 396, 504,भारतीय साक्ष्य अधिनियम**,** 1872 **-** धारा 145 **-** पूर्व लिखित कथनों के संबंध में प्रतिपरीक्षा **-***किसी गवाह को अकेले* प्रतिपरीक्षा *के लिए पेश नहीं किया जा सकता - यदि उसकी मुख्य* परीक्षा *नहीं की गई है, तो उससे* प्रतिपरीक्षा *नहीं की जा सकती।* **(पैरा-14)**

मामले में आरोपियों के विरुद्ध धारा 302 और 395 आई.पी.सी. के तहत आरोप शामिल हैं - बाद में इसे आई.पी.सी. की धारा 396 के तहत परिवर्तित और विरचित किया गया - विचारण न्यायालय ने पी.डब्लू. 1 और पी.डब्लू. 3 को प्रतिपरीक्षा के लिए बुलाया - सूचनादाता ने आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया - खारिज - बचाव पक्ष ने पी.डब्लू. 2, पी.डब्लू. 4 और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी को बुलाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया - सूचनादाता द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण दायर करने के कारण देरी - बाद में समन्वय पीठ द्वारा पारित - आगे के विचारण पर रोक - धारा 145 साक्ष्य अधिनियम के तहत गवाहों का खंडन करने के लिए - पी.डब्लू. 2, पी.डब्लू. 4 और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी की पुनः परीक्षा आवश्यक - गवाहों को बुलाने में न्यायालय की विफलता - अभियुक्तों के साथ बहुत अन्याय हुआ। (पैरा - 3,4,13)

अभिनिर्धारित:-धारा 302 और 395 आई.पी.सी. के तहत आरोप विरचित किए गए और धारा 396 आई.पी.सी. के तहत संशोधित आरोप हत्या से संबंधित हैं, इसलिए शवपरीक्षा करने वाले पी.डब्लू.2 को समन करना अनावश्यक है। आवेदकों ने आरोप संशोधन के बाद प्रतिपरीक्षा के लिए कोई कारण नहीं बताया है, इसलिए समन करना आवश्यक नहीं है।सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी और पी.डब्लू.2 को बुलाने का कोई आधार नहीं है। आवेदकों/बचाव पक्ष को 4,000 रुपये की लागत अदा करने पर पी.डब्लू.4 से पूछताछ का अवसर दिया जाएगा। पी.डब्लू.2 और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी को बुलाने की प्रार्थना अस्वीकृत। **(पैरा -13,15,18)**

आवेदन अंतर्गत धारा 482 सीआर.पी.सी. आंशिक रूप में स्वीकृत ।(ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य**,** एआईआर 2019 एससी 197

2. नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई. **(**राज्य**),** 2013 लॉ सूट**(**एससी**)** 404

3. स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सी.बी.आई.**,** (2019) 0 सुप्रीम (एससीसी) 319

4. राजाराम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य**,** (2013) 0 सुप्रीम **(**एससी**)** 589

5. भीम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 (3) एडीजे 87

6. रघुनंदन बनाम स्टेट ऑफ यूपी**,** (1974) 4 एससीसी 186

7. कमल ऑयल एंड एलाइड इंडस्ट्रीज **(**पी**)** लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन**,** 1982 क्रि एलआर 2046

8. एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम सी.बी.आई.**,** (2018) 16 एससीसी 299

9. सुखवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य**,** (1995) 3 एससीसी 367

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I द्वारा दिया गया)

श्री पुरूषोत्तम दीक्षित, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुशील कुमार दुबे, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रशान्त सक्सैना, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. वर्तमान 482 दं.प्र.सं. आवेदन दिनांक 06.05.2023 के आदेश (राज्य बनाम चंद्रजीत @ चहकु और अन्य) और विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, इटावा की अदालत में लंबित भा.दं.सं. की धारा 147, 148, 149, 302, 395, 396, 504 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 94/1994, पुलिस थाना- बसरेहर, जिला-इटावा से उत्पन्न विशेष मुकदमा संख्या 265/2008 की सभी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है और गवाह वी.पी. सिंह (सेवानिवृत्त) एस.आई., निवासी फूलबाग कॉलोनी, पुलिस थाना- नौचंदी, शहर और जिला-मेरठ (जांच अधिकारी), घनश्याम अहिरवार, इंस्पेक्टर (जांच अधिकारी सी.बी.सी.आई.डी.) और डॉ. एस.के. अग्रवाल, चिकित्सा अधिकारी, गवाह (पोस्टमॉर्टम)) को उनके जिरह के लिए वापस बुलाया जा सकता है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने आवेदकों/अभियुक्तों द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत दायर आवेदन 354 क दिनांकित

26.04.2023 को आक्षेपित आदेश दिनांकित 06.05.2023 द्वारा खारिज कर दिया। आवेदकों/अभियुक्तों ने दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत अपना आवेदन इस कथन के साथ दायर किया है कि शुरुआत में, आरोपी के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 302 और 395 के तहत आरोप तय किया गया था और उपरोक्त धाराओं में आरोप तय करने के बाद अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच की गई थी। दूसरा आरोप 13.10.2010 को भा.दं.सं. की धारा 396 के तहत तय किया गया था। दिनांक 14.02.2023 को भा.दं.सं. की धारा 396 के तहत परिवर्तित आरोप तय करने के बाद पी.डब्ल्यू.1 राजेश और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार से जिरह की गई।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोप में परिवर्तन के बाद, सूचक ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4882/2010, राजेश कुमार सिंह बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य दायर किया था। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांकित 18.11.2010 द्वारा उक्त आपराधिक मामले के विचारण पर रोक लगा दी गई थी। स्थगन आदेश वर्ष 2023 में हटा दिया गया। इसके बाद, पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.2 विजय कुमार से पूछताछ की गई। इस प्रकार, मामले की सुनवाई में देरी करने में अभियुक्त की ओर से कोई कृत्य नहीं किया गया। इस प्रकार, बचाव पक्ष ने मामले की सुनवाई में हुई देरी के लिए कोई योगदान नहीं दिया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत इन गवाहों का खंडन करने के लिए पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल, पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह एवं सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी घनश्याम अहिरवार का पुन:-परीक्षण आवश्यक है। उपरोक्त गवाहों को न बुलाकर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों के साथ बहुत अन्याय किया है और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है और विचारण न्यायालय को उपरोक्त गवाहों को बुलाने का निर्देश दिया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आधार पर दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत इस आवेदन का विरोध किया है कि आवेदकों/अभियुक्तों ने विभिन्न आवेदन प्रस्तुत करके मामले की सुनवाई में देरी की है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि बचाव पक्ष के आवेदन पर भा.दं.सं. की धारा 302 और 395 के तहत लगाए गए आरोप को 13.10.2010 को भा.दं.सं. की धारा 396 में बदल दिया गया था। इसके बाद, बचाव पक्ष के आवेदन पर, अदालत ने आदेश दिनांकित 20.10.2010 के तहत पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार को जिरह के लिए बुलाया। यह भी कहा गया है कि सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी घनश्याम अहिरवार को विचारण के दौरान पहले तलब नहीं किया गया था। बचाव पक्ष ने पहले पी.डब्लू. 1 राजेश कुमार और पी.डब्लू. 3 विजय कुमार को पुन:-परीक्षण के लिए बुलाने के लिए आवेदन दायर किया था, जिसे विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.02.2008 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था और मामला बहस के लिए तय किया गया था। आगे यह

प्रस्तुत किया गया है कि बचाव पक्ष द्वारा सभी बिंदुओं पर पी.डब्लू.2 डॉ. एसके अग्रवाल, जिन्होंने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की है, से गहनता से जांच की गई थी। इसलिए, गवाहों को जिरह के लिए बुलाने की बचाव पक्ष की प्रार्थना का कोई औचित्य नहीं था।

6. अपने तर्कों के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:-

(i) मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, एआईआर 2019 एससी 1976

(ii) नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई. (राज्य), 2013 मुकदमा (एससी) 404

7. सूचक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा किया है:-

(i) स्वपन कुमार चटर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, (2019) 0 सुप्रीम (एससीसी) 319

(ii) राजाराम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और एक अन्य, (2013) 0 सुप्रीम (एससी) 589

(iii) भीम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (3) एडीजे 87

8. रघुनन्दन बनाम उ.प्र. राज्य, (1974) 4 एससीसी 186 में *शीर्ष* न्यायालय ने इस प्रकार माना है:

"एक आपराधिक मामले में, कार्यवाही का भाग्य हमेशा पूरी तरह से पक्षों के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता है। यह देखना भी न्यायालय का कर्तव्य है कि आवश्यक प्रश्न जहाँ तक यथोचित संभव है, अनुत्तरित नहीं छोड़ दिए गए हैं। धारा 311 के प्रावधानों का अभिप्रेत इस उद्देश्य की पूर्ति करना है।"

9. दं.प्र.सं. की धारा 311 इस प्रकार है:-

311. <u>आवश्यक साक्षी को समन करने या उपस्थित व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति</u> – कोई न्यायालय इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी प्रक्रम में किसी व्यक्ति को साक्षी के तौर पर समन कर सकता है या किसी ऐसे व्यक्ति की, जो हाजिर हो, यद्यपि वह साक्षी के रूप में समन न किया गया हो, परीक्षा कर सकता है, किसी व्यक्ति को, जिसकी पहले परीक्षा की जा चुकी है पुनः बुला सकता है और उसकी पुनः परीक्षा कर सकता है; और यदि न्यायालय को मामले के न्यायसंगत विनिश्चय के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होता है तो वह ऐसे व्यक्ति को समन करेगा और उसकी परीक्षा करेगा या उसे पुनः बुलाएगा और उसकी पुनः परीक्षा करेगा।

10. इस धारा का उद्देश्य व्यापक होना है क्योंकि इसमें "कोई भी" शब्द का बार-बार उपयोग स्पष्ट रूप से इंगित करता है। यह धारा दो भागों में है, पहला भाग विवेकाधीन शक्ति देता है लेकिन दूसरा भाग अनिवार्य है। पहले भाग में "कर सकता है" शब्द का और दूसरे भाग में "करेगा" शब्द का प्रयोग इस अंतर को मजबूती से स्थापित करता है। पहला भाग अनुज्ञेय है। न्यायालय तीन तरीकों में से एक में कार्य कर सकता है:

(क) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाना,

(ख) अदालत में मौजूद किसी भी व्यक्ति की जांच करना, भले ही उसे समन न किया गया हो, और

(ग) पहले से परीक्षण किए गए गवाह को वापस बुलाना या पुनः-परीक्षण करना।

दूसरा भाग अर्थात यदि ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, तो यह अनिवार्य है और अदालत को इन 3 तरीकों या उनमें से किसी एक में कार्य करने के लिए मजबूर करता है। दूसरा भाग अर्थात यदि ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, तो यह अनिवार्य है और न्यायालय को इन 3 तरीकों या इनमें से किसी एक तरीके से कार्य करने के लिए बाध्य करता है। मुकदमा जिस चरण तक पहुंच गया है, उससे उत्पन्न होने वाली अदालत की शक्ति पर कोई सीमा नहीं है, बशर्ते अदालत की राय इस बात पर प्रामाणिक हो कि मामले के उचित निर्णय के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत गवाहों को आरोपी और अभियोजन पक्ष दोनों के लाभ के लिए वापस बुलाया जा सकता है। एकमात्र बात यह है कि अदालत को दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत आदेश की आवश्यकता के बारे में एक प्रामाणिक राय बनानी होगी।

11. **कमल ऑयल एंड अलाइड इंडस्ट्रीज (पी) लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन, 1982 सी.आर.एल.जे. 2046** में दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस प्रकार व्यवस्था दी है:

"सर्वोपरि विचार मामले के साथ न्याय करना है न कि अभियोजन या बचाव साक्ष्य में कमियों को भरना।"

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह पता चलता है कि आरोपी के विरुद्ध पहले भा.दं.सं. की धारा 302 और 395 के तहत आरोप तय किए गए थे और पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार, पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल, पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार और पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह का परीक्षण किया गया था। इसके बाद, दिनांक 13.10.2010 के आदेश के तहत, विचारण न्यायालय ने आरोपी के विरुद्ध आरोप को परिवर्तित कर दिया और उनके विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 396 के तहत आरोप तय किया। अदालत ने दिनांक 13.10.2010 के आदेश द्वारा पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.3 को जिरह के लिए बुलाया। भा.दं.सं. की धारा 396 के तहत आरोप के संशोधन के आदेश के विरुद्ध, सूचक ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4882/2010, **राजेश कुमार सिंह बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य** दायर किया तथा उच्च न्यायालय ने दिनांक 18.11.2010 के आदेश द्वारा सत्र मामले की सुनवाई पर रोक लगा दी। **एशियन रिसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, (2018) 16 एससीसी 299** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुपालन में 2023 में उपरोक्त स्थगन आदेश को हटा दिया गया था। इसके बाद, पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार से जिरह की गई। बचाव पक्ष ने पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल, पी.डब्ल्यू.4

एस.आई. वी.पी. सिंह और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी, घनश्याम अहिरवार को बुलाने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत 354क आवेदन प्रस्तुत किया, जिनका पहले परीक्षण नहीं किया गया था क्योंकि मामले की जांच में उनकी भूमिका अप्रासंगिक थी। उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि सत्र परीक्षण मामले की सुनवाई में विलंब सूचक द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4882/2010, राजेश कुमार सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य दाखिल किये जाने के कारण हुआ तथा इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.11.2010 के तहत संबंधित सत्र परीक्षण मामले की आगे की सुनवाई पर रोक लगा दी गई।

13. पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार की जिरह के अवलोकन से, जो आरोप में संशोधन के बाद की गई थी, यह पता चलता है कि बचाव पक्ष ने संशोधित आरोप पर उपरोक्त गवाहों से जिरह की है। इस प्रकार, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत इन गवाहों के साक्ष्य का खंडन करने के लिए, बचाव पक्ष को दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार के बयानों के संबंध में पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए। चूँकि भा.दं.सं. की धारा 302 और 395 के तहत पहले लगाए गए आरोप और भा.दं.सं. की धारा 396 के तहत संशोधित आरोप दोनों एक व्यक्ति की हत्या से संबंधित हैं, इसलिए, पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल को बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने मृतक अशोक कुमार सिंह और लायक सिंह का पोस्टमार्टम किया था। इसके अलावा आवेदकों ने यह भी कारण नहीं बताया कि आरोप में संशोधन के बाद पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल से जिरह क्यों जरूरी है। इसलिए, पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल को दं.प्र.सं. की धारा 311 के तहत तलब करना आवश्यक नहीं है और इस संबंध में आवेदक की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।

14. जहां तक सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी घनश्याम अहिरवार से जिरह की बात है तो भा.दं.सं. की धारा 302 और 395 के तहत आरोप तय होने के बाद उनसे पहले जिरह भी नहीं की गई थी। **सुखवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1995) 3 एससीसी 367** मामले में शीर्ष न्यायालय ने माना है कि:

"किसी गवाह को अकेले जिरह के लिए पेश नहीं किया जा सकता। यदि उनका मुख्य परीक्षण नहीं किया गया है तो उनसे जिरह नहीं की जा सकती।"

15. इस प्रकार, पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल एवं सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी घनश्याम अहिरवार को बुलाने का कोई आधार नहीं है। माना कि, जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह तब सेवानिवृत्त हो गए थे जब वह 2006 में परीक्षण के लिए अदालत में उपस्थित हुए थे। इससे पहले आरोप में संशोधन के बाद बचाव पक्ष ने केवल पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार को तलब करने के लिए आवेदन दायर किया था। उन्होंने पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के.

अग्रवाल और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी, घनश्याम अहिरवार को जिरह के लिए बुलाने के लिए प्रार्थना नहीं की थी। इसलिए, अदालत ने दिनांक 20.10.2010 के आदेश के तहत केवल पी.डब्ल्यू.1 राजेश कुमार और पी.डब्ल्यू.3 विजय कुमार को जिरह के लिए बुलाया था।

16. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, आवेदकों/बचाव पक्ष को 4,000/- रुपये की लागत के भुगतान पर पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह से पूछताछ करने का अवसर दिया जाएगा, जो गवाह के आगमन पर भुगतान किया जाएगा। उपरोक्त गवाह से उसी तारीख को पूछताछ की जाएगी और बचाव पक्ष को पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह से जिरह के लिए कोई स्थगन नहीं दिया जाएगा।

17. अपरिहार्य परिस्थितियों में और बचाव पक्ष की चूक के कारण नहीं, यदि पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह की जिरह उनके आगमन की तारीख पर समाप्त नहीं होती है, इसे साक्षी को 4,000/- रुपये की अतिरिक्त लागत के भुगतान के अधीन अगली तारीख पर समाप्त किया जाएगा।

18. उपरोक्त शर्तों के अधीन, दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन को जांच अधिकारी, पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. वी.पी. सिंह को बुलाने के संबंध में **आंशिक रूप से स्वीकृति** दी जाती है। हालाँकि, पी.डब्ल्यू.2 डॉ. एस.के. अग्रवाल और सी.बी.सी.आई.डी. के जांच अधिकारी, घनश्याम अहिरवार को तलब करने संबंधी प्रार्थना खारिज कर दी गई है।

(2023) 8 ILRA 664

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1179 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 सीआर.पी.सी.)

सूरज हरिजन ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :
श्री दीपक कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 461 - भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1933 - धारा 25 -अग्रिम जमानत के लिए आवेदन - चोरी का अपराध - एफआईआर - आवेदक का नाम एफआईआर में नामांकित नहीं था - उसके पास से कोई भी प्रत्यक्ष सबूत बरामद नहीं हुआ - न्यायालय ने देखा कि आवेदक को पहले नियमित जमानत आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया - न्यायालय ने पाया कि, आवेदक के विरुद्ध आरोप परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आअभिनिर्धारित थे, और उसे

अपराध से जोड़ने वाला कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था - अभिनिर्धारित, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन पर आगे कार्यवाही करने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि यह कानूनी रूप से पोषणीय नहीं है - इसलिए - आवेदक को इसी तरह के मामलों में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार नियमित जमानत आवेदन दायर करने का निर्देश दिया जाता है - तदनुसार, आवेदन खारिज कर दिया गया। (पैरा - 20, 21)

आवेदन अस्वीकृत. (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई. एवं अन्य। - (2022) 10 एससीसी 51,

2. सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - (2022) 1 एससीसी 676,

3. अमन प्रीत सिंह बनाम सी.बी.आई. निदेशक के माध्यम से - 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 941,

4. अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य - (2014) 8 एससीसी 273,

5. मोशन बनाम सी.बी.आई. (2004) 72 डीआरजे 629,

6. गया प्रसाद रामलाल बनाम महाराष्ट्र राज्य - एआईआर 1971 एससी 1112।

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. अपनी गिरफ्तारी की आशंका के चलते आवेदक **सूरज हरिजन** की ओर से मुकदमा अपराध संख्या 124/2021, अन्तर्गत धारा 461 भा0दं0सं0 और धारा 25 भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, थाना- हरपुर बुदाहाट, जनपद- गोरखपुर में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए वर्तमान प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया है।

3. अभियोक्ता की कहानी जैसा कि एफआईआर में बताया गया है कि दिनांक 24.11.2021 को प्रातः 7.10 बजे दूर संचार वोडाफोन मोबाइल टावर IN1231083 पर कार्यरत टेक्नीशियन श्रेयांश यादव ने सूचनाकर्ता को सूचना दी कि किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा मेन गेट का ताला तोड़कर बैटरी बैंक से 4 बैटरियां चोरी कर ली गयी हैं। दिनांक 24.11.2021 को 16.16 बजे एफआईआर दर्ज कर जांच शुरू की गयी।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि आवेदक निर्दोष है तथा उसे उपरोक्त प्रकरण में गिरफ्तारी की आशंका है, जबकि उसके खिलाफ कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप झूठे हैं। प्रकरण की जांच चल रही है। यह भी दलील दी गई है कि आवेदक का नाम एफआईआर में नहीं है तथा वर्तमान आवेदक के नियंत्रण में या उसके कब्जे से कोई भी आपत्तिजनक वस्तु बरामद नहीं हुई है। यदि आवेदक को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वह जमानत की

स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा तथा जमानत की सभी शर्तों का पालन करेगा।

5. विद्वान ए.जी.ए. ने अग्रिम जमानत की प्रार्थना का विरोध किया।

6. आरंभ में ही अभिलेखों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पहले आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 8413/2022 में आवेदक सूरज हरिजन और सह-अभियुक्त विकास गुप्ता को इस न्यायालय द्वारा संबंधित न्यायालय के समक्ष नियमित जमानत आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी और इस टिप्पणी के साथ कि चूंकि आवेदक के खिलाफ आरोपित अपराध अधिकतम सात वर्ष की कारावास से दंडनीय था और उन्हें गिरफ्तारी की कोई आशंका नहीं थी, अग्रिम जमानत आवेदन को दिनांक 6.9.2022 के आदेश के तहत पूर्वोक्त शर्तों के तहत निस्तारित किया गया था। हालांकि, **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य - (2022) 10 एससीसी 51, सिद्धार्थ बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में कोई नियमित जमानत आवेदन नहीं है । (2022) 1 एससीसी 676 और अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई जरिए डायरेक्टर 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 941 इस न्यायालय के निर्देशानुसार विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और बाद में वर्तमान आवेदक द्वारा सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जो आवेदक के लिए कानून के तहत अनुमेय नहीं था, लेकिन फिर भी इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत और निपटाए गए अग्रिम जमानत आवेदन के तथ्य को अतिरिक्त सत्र न्यायालय, न्यायालय संख्या 2, गोरखपुर के न्यायालय के संज्ञान में लाया गया, जिसने उक्त आवेदन पर विचार किया और उसका निपटारा किया ।

7. एक वैधानिक प्रावधान है कि यदि अग्रिम जमानत आवेदन पर उच्च न्यायालय ने स्वयं विचार किया है तो उसके किसी भी तरह से निपटारे के बाद उसी आवेदक को उसी प्रकरण में सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य में संशोधित धारा 438 (7) दं0प्र0सं0 विधायी योजना निर्धारित करती है और स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि "(7) यदि इस धारा के तहत कोई आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय में किया गया है, तो उसी व्यक्ति द्वारा कोई भी आवेदन सत्र न्यायालय द्वारा विचारित नहीं किया जाएगा।"

8. अब कानून के स्पष्ट प्रावधानों को दरकिनार करने के लिए, सत्र न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा भी आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका को खारिज किए जाने के बाद, इस न्यायालय से आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका पर विचार करने और विचार करने का अनुरोध किया गया है ।

9. इस न्यायालय द्वारा 2022 की सीआरपीसी संख्या 8413 की धारा 438 सीआरपीसी संख्या 8413 के तहत अग्रिम जमानत आवेदन में पारित दिनांक 6.9.2022 का आदेश उस मामले में आवेदक को आदेश की तारीख से 15 दिनों

के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष नियमित जमानत आवेदन दायर करने का एक विशिष्ट निर्देश देता है, जिसे सतेंद्र के मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर अवर न्यायालय द्वारा शीघ्रता से सुना और निपटाया जाना था। **सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य (2022) 10 एससीसी 511, सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश (2022) 1 एससीसी 676 और अमन प्रीत सिंह बनाम निदेशक 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 941 जरिए सीबीआई।** चूंकि आवेदक द्वारा उक्त आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए वह उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी अग्रिम जमानत दायर करने का हकदार नहीं था क्योंकि इस न्यायालय के आदेश की पवित्रता को किसी भी परिस्थिति में गुमनामी में फीका करने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी।

10. इसी प्रकार के एक प्रकरण में **मोहम्मद शरीफ सिद्दीकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य एसएलपी संख्या 11316/2022 (07.12.2022 - एससी आदेश): मनु/ एससीओआर/ 125299/ 2022** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 07.12.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया, जिसका संदर्भ नीचे दिया गया है:

"इस तथ्य पर विचार करते हुए कि पहले अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया था और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया था, उसके बाद दूसरा अग्रिम जमानत आवेदन, विशेष रूप से किसी भी बदली हुई परिस्थितियों के अभाव में, स्वीकार्य नहीं होगा।

उच्च न्यायालय ने दूसरी अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करके सही किया है। विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है। लंबित आवेदनों का निपटारा किया जाता है।"

11. दूसरे और क्रमिक अग्रिम जमानत आवेदन को दाखिल करने के संबंध में कानूनी स्थिति अनेक निर्णयों में तय की गई है कि इसे केवल तभी दाखिल किया जा सकता है जब परिस्थितियों में परिवर्तन हो ताकि याचिकाकर्ता परिस्थितियों में परिवर्तन के मद्देनजर अग्रिम जमानत के लिए अपना अधिकार सिद्ध कर सके।

12. **जी.आर. आनंद बाबू बनाम टीएन राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 176** में - माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर कानून की उक्ति को प्रख्यापित किया और इस प्रकार माना-

"7. वास्तव में, लगातार अग्रिम जमानत आवेदनों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। परिस्थितियों में बदलाव का बहाना बनाकर लगातार अग्रिम जमानत आवेदनों पर विचार नहीं किया जा सकता, जब इसे एक ही न्यायाधीश द्वारा आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया हो।"

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मुद्दे पर **मोहम्मद शमीम खान बनाम झारखंड**

राज्य एसएलपी (सीआरएल) संख्या 9449/2021 (16.12.2021 - एससी आदेश) : मनु/एससीओरआर/53999/2021 में दिए गए स्पष्ट निष्कर्ष का भी सहारा लिया जा सकता है, जो इस प्रकार बनाया गया था: "यहां तक कि हमारे सामने भी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता उच्च न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 438 के तहत दूसरा आवेदन दायर करने के अधिकार क्षेत्र को लागू करने के लिए परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं दिखा पाए हैं। हम पहली जमानत अर्जी खारिज होने के बाद धारा 438 के तहत दूसरी जमानत अर्जी दाखिल करने की प्रथा की निंदा करते हैं।"

14. इसी तरह के प्रकरण में केरल उच्च न्यायालय ने **बिपिन सनी बनाम केरल राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन केआर 5570** में इस प्रकार निर्णय दिया था-

"13. उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत याचिका खारिज किए जाने के बाद सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम आवेदन दायर करने के संबंध में प्रश्न पर आते हुए, वह भी उच्च न्यायालय के विपरीत आदेश को दबाने के बाद, किसी भी कारण से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, न्यायिक अनुशासन को बनाए रखने के लिए , ऐसे मामलों में जहां उच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत याचिका खारिज कर दी है, परिस्थितियों में बदलाव को इंगित करते हुए दूसरी या लगातार अग्रिम जमानत याचिकाएं उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की जानी चाहिए, न कि सत्र न्यायालय के समक्ष।"

15. **सुरेश चंद बनाम राजस्थान राज्य 2001 एससीसी ऑनलाइन राज 534** में इस सवाल से निपटते हुए कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किए जाने के बाद, अभियुक्त धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत सत्र न्यायालय के समक्ष दूसरी जमानत याचिका दायर करने का हकदार है , यह प्रतिपादित किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत जमानत आवेदन खारिज किए जाने के बाद दूसरी अग्रिम जमानत याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। इसके अलावा, धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त याचिकाकर्ता द्वारा की गई जमानत याचिका खारिज किए जाने के बाद, उसी राहत के लिए दूसरी जमानत याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष भी सुनवाई योग्य नहीं है और सत्र न्यायाधीश के पास दूसरी अग्रिम जमानत याचिका पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है।

16. न्यायालयों को कानून के किसी भी क्षेत्र में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय हमेशा सावधान रहना चाहिए क्योंकि अधिकार क्षेत्र न्यायालय का एक आभूषण है जो उसमें अंतर्निहित है और इसे किसी भी कृत्रिम तरीके से बनाया या ग्रहण नहीं किया जा सकता है। यदि न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए कोई वैधानिक निषेध है तो ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि कानून द्वारा जो सीधे तौर पर निषिद्ध है, उसे अप्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है। साथ ही यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर

दलील न देने से न्यायालय को अधिकार क्षेत्र नहीं मिलेगा जब किसी कानून द्वारा स्पष्ट रूप से वर्जित किया गया हो। चूंकि धारा 438 (7) दं0प्र0सं0 के तहत दिए गए कानूनी प्रावधान के अनुसार वर्तमान प्रकरण में लागू होने के कारण सत्र न्यायालय द्वारा अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने पर विचार वर्जित है, यदि उससे पहले अग्रिम जमानत आवेदन पहले ही दायर किया जा चुका है और उच्च न्यायालय द्वारा निपटाया जा चुका है, इसलिए सत्र न्यायालयों को अपनी कानूनी सीमाओं को पार करने के लिए बहुत सतर्क रहना चाहिए, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में छोड़ दिया गया है।

17. एक और पहलू जो वर्तमान आवेदन को अग्रिम जमानत देने के लिए विचार से रहित बनाता है, इस न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है कि अग्रिम जमानत आवेदन के साथ संलग्न हलफनामे के पैरा 4 में, वर्तमान आवेदन को पहली अग्रिम जमानत आवेदन कहा गया है और यह प्रमाणित किया गया है कि धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत कोई भी पिछला आवेदन इस न्यायालय या इसकी लखनऊ पीठ के समक्ष उसी कारण से दायर या लंबित नहीं है। रिकॉर्ड के अनुसार, यह निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण तथ्य को दबाने जैसा है क्योंकि अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 8413/2022 पहले ही इस प्रकरण में दायर किया जा चुका है और इस न्यायालय द्वारा दिनांक 6.9.2022 के आदेश के तहत निपटाया जा चुका है और यह निस्संदेह आवेदक द्वारा उसके पक्ष में अग्रिम जमानत देने के लिए की गई प्रार्थना को नकारता है।

18. इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अरुणिमा बरुआ बनाम भारत संघ, (2007) 6 एससीसी 120** में पारित निर्णय से समर्थित है, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

"12. यह एक सामान्य कानून है कि न्यायालय को अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से मना करने के लिए दमन का तथ्य महत्वपूर्ण होना चाहिए। वह तथ्य क्या होगा, जिसके दमन से अपीलकर्ता विवेकाधीन राहत प्राप्त करने के अधिकार से वंचित हो जाएगा, यह प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। भौतिक तथ्य का अर्थ है लिस के निर्धारण के उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण , जिसका तार्किक परिणाम यह होगा कि क्या यह राहत प्रदान करने या अस्वीकार करने के लिए महत्वपूर्ण है। यदि दबाया गया तथ्य पक्षों के बीच लिस के निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण नहीं है , तो न्यायालय अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार नहीं कर सकता। यह भी सामान्य बात है कि न्यायालय के विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने वाले व्यक्ति को गंदे हाथों से न्यायालय में जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

19. **प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, (2007) 8 एससीसी 449** में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया था, जिसमें न्यायालय के समक्ष स्वच्छ हाथों से न आने वाले व्यक्ति के दावे को खारिज करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी:

"35. .....यदि आवेदक पूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं करता है या प्रासंगिक सामग्री को दबाता है या अन्यथा न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो न्यायालय प्रकरण पर निर्णय लिए बिना ही मुकदमा खारिज कर सकती है।"

20. अतः, स्थापित कानून के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र पर आगे बढ़ने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि यह कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं है तथा इसमें तथ्यों को छिपाया गया है।

21. इन टिप्पणियों के साथ और संबंधित न्यायालय के उदासीन दृष्टिकोण पर कोई टिप्पणी किए बिना, जो अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र पर विचार करने के लिए लापरवाह रहा है, जो कानूनी रूप से उसके समक्ष स्वीकार्य नहीं था, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वर्तमान प्रार्थना पत्र स्वीकार्य नहीं है, और तदनुसार, **खारिज** कर दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 668

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1703 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 सी.आर.पी.सी.)

धर्मपाल गौतम उर्फ भिखारी गौतम ...निवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

शक्ति कृष्ण चैबे, प्रवीण त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 437(3), 438, 438(2), 438(I)(Iv) और 439(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120(बी), 255, 259, 260, 272, 273, 419, 420, 467, 468 और 471 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद - 21 - आबकारी अधिनियम, 1910 - धारा 60 - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा - 13(1)(डी) और 13(2) - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धारा 3 और 4 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27- अग्रिम जमानत आवेदन - एफआईआर - आरोप हैं कि आवेदक के परिसर से अवैध शराब और कुछ इंजेक्शन बरामद किए गए हैं - अन्वेषण - आरोप पत्र - आवेदक ने यह आधार लिया कि हिरासत में पूछताछ अनावश्यक थी - न्यायालय ने पाया कि, किसी भी स्वतंत्र व्यक्ति ने कथित बरामदगी कार्यवाही को नहीं देखा है, - पुलिस द्वारा स्वयं बरामदगी ज्ञापन और एफआईआर में दिए गए कथन में गंभीर विरोधाभास है - जमानत से इनकार करने के लिए कोई असाधारण आधार मौजूद नहीं है - इसलिए, अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदक के आवेदन को स्वीकृति दी जाती है - हालांकि, आवेदक की गिरफ्तारी/उपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय के समक्ष, उसे संबंधित एसएचओ/न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और समान राशि के

दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाएगा - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा - 11, 12, 13)

आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565: 1980 एससीसी (क्रि) 465

2. जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य, (2012) 4 एससीसी 379

3. महदूम बावा बनाम सी.बी.आई., 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 299

4. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2019) 9 एससीसी 24

5. प्रकाश कदम बनाम रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता, (2011) 6 एससीसी 189

6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21

7. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय, एआईआर 1960 एससी 1125

8. सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली), (2020) 5 एससीसी 1

9. सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1996) 1 एससीसी 667

10. सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 1 एससीसी 694

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण त्रिपाठी, राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राव नरेन्द्र सिंह को सुना गया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2. यह आवेदन आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 277/2016, धारा 60 आबकारी अधिनियम व धारा 255, 259, 260, 419, 420, 467, 468, 471, 272, 273 आई.पी.सी., थाना करनैलगंज, जिला गोंडा में अग्रिम जमानत हेतु प्रस्तुत किया गया है।

3. उपरोक्त वाद दिनांक 19.07.2016 को दो व्यक्तियों - रमेश वर्मा और धर्म पाल गौतम उर्फ भिखारी गौतम (आवेदक) के खिलाफ वरिष्ठ पुलिस उपनिरीक्षक द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी के आधार पर दर्ज किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि एक मुखबिर से प्राप्त सूचना के आधार पर, एक पुलिस दल आवेदक की पॉलिशर (लघु स्तरीय चावल मिल) पर पहुंचा। प्राथमिकी मामले के अनुसार, सह-अभियुक्त रमेश वर्मा को गिरफ्तार कर लिया गया, एक अन्य व्यक्ति भाग गया और गिरफ्तार व्यक्ति ने बताया कि भागने वाला व्यक्ति आवेदक था और वह पॉलिशर का मालिक है। प्राथमिकी में कहा गया है कि परिसर से एक जेरी-कैन में रखी गई

लगभग 25 लीटर अवैध शराब, अवैध शराब से भरी कुछ बोतलें और कुछ इंजेक्शन बरामद किए गए।

4. विद्वान ए.जी.ए. ने इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोप गंभीर प्रकृति के हैं और यह व्यवस्थित कानून है कि अग्रिम जमानत देने के लिए धारा 438 सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन केवल असाधारण परिस्थितियों में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। अपनी प्रस्तुति के समर्थन में श्री. विद्वान एजीए-I राव नरेंद्र सिंह ने पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2019) 9 एससीसी 24 के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा किया है। उक्त फैसला दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ अपील में पारित किया गया था, जिसमें केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा धारा 120-बी आईपीसी के साथ धारा 420 आईपीसी, धारा 8 और धारा 13(2) के तहत भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) के साथ दर्ज मामले में अपीलकर्ता की अग्रिम जमानत की याचिका को खारिज कर दिया गया था और प्रवर्तन निदेशालय द्वारा ईसीआईआर संख्या 07/एचआईयू/2017 में दर्ज मामले में धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3 और 4 के तहत दंडनीय अपराध में विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफआईपीबी) की मंजूरी में कथित अनियमितताओं से संबंधित अपराध में विदेशी निवेश प्राप्त करने के लिए आईएनएक्स मीडिया को 305 करोड़ रुपये का निवेश प्राप्त करने हेतु दिया गया था जो कि स्वीकृत 4.62 करोड़ रुपये निवेश के सापेक्ष था। इस संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि:

"69. आम तौर पर, गिरफ़्तारी जांच की प्रक्रिया का एक हिस्सा है, जिसका उद्देश्य न केवल अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है, बल्कि कई अन्य उद्देश्य भी हैं। धारा 438 सीआरपीसी के तहत शक्ति एक असाधारण शक्ति है और इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। गिरफ्तारी से पहले ज़मानत का विशेषाधिकार केवल असाधारण मामलों में ही दिया जाना चाहिए। न्यायालय को दिए गए न्यायिक विवेक का उपयोग आरोप की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक के न्याय से भागने की संभावना और अन्य कारकों के बारे में विचार करने के बाद उचित रूप से किया जाना चाहिए, ताकि यह तय किया जा सके कि यह अग्रिम ज़मानत देने के लिए उपयुक्त मामला है या नहीं। अग्रिम ज़मानत देना कुछ हद तक अपराध की जांच के क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है और इसलिए, न्यायालय को अग्रिम ज़मानत देने के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। अग्रिम ज़मानत नियम के तौर पर नहीं दी जानी चाहिए और इसे तभी दिया जाना चाहिए जब न्यायालय को यकीन हो कि असाधारण परिस्थितियाँ उस असाधारण उपाय का सहारा लेने के लिए मौजूद हैं।"

5. हालाँकि, बाद में **सुशीला अग्रवाल बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी), (2020) 5 एससीसी 1** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी खंडपीठ द्वारा दिए गए फैसले में,

> माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पी. चिदंबरम (उपरोक्त)** के मामले में फैसले सहित कई पिछले निर्णयों पर विचार करने के बाद विशेष रूप से माना कि: -
>
> > *"**53**. इसलिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सिब्बिया [गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565: 1980 एससीसी (क्रि) 465] में बड़े संविधान पीठ की प्रमुख सोच यह थी कि संविधान और अनुच्छेद 21 में स्वतंत्रता को दिए गए प्रीमियम और मूल्य को देखते हुए- और यह देखते हुए कि उत्पीड़न की प्रवृत्ति देखी गई थी- कभी-कभी अनुचित गिरफ्तारी से, अग्रिम जमानत का प्रावधान किया गया था। यह किसी भी शर्त या सीमाओं के साथ नहीं था - या तो इसकी अवधि के रूप में, या उस कथित अपराध के प्रकार के रूप में जिसका आवेदक पर आरोप लगाया गया था। अदालतों के पास ऐसी सीमाएँ लगाने का विवेक था (जैसे जाँच में सहयोग करना, सबूतों के साथ छेड़छाड़ नहीं करना, देश नहीं छोड़ना, आदि) जो किसी दिए गए मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में उचित और आवश्यक थीं। हालांकि, **ऐसा कोई अपरिवर्तनीय या अटल नियम नहीं था कि आवेदक को कोई विशेष मामला बनाना होगा,** या यह कि राहत सीमित अवधि के लिए, किसी समय बिंदु पर होगी, या किसी विशेष श्रेणी के अपराधों के लिए उपलब्ध नहीं होगी।"*

6. **सुशीला अग्रवाल (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को निर्णय के पैरा 92 में दोहराया गया है जो इस प्रकार है:-

> *"**92.** यह न्यायालय, दोनों निर्णयों में उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, और संदर्भ के उत्तरों के प्रकाश में, यह स्पष्ट करता है कि धारा 438 सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदनों से निपटने वाले न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:*
>
> ***92.1**. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य*

[(1980) 2 एससीसी 565] के फैसले के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत करता है और आदेश के लिए संपर्क करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (न कि अस्पष्ट या सामान्य आरोपों) पर आधारित होना चाहिए जो एक या दूसरे विशिष्ट अपराध से संबंधित हों। अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित केवल आवश्यक तथ्य होने चाहिए, और आवेदक को गिरफ्तारी की उचित आशंका क्यों है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी होना चाहिए। ये अदालत के लिए आवश्यक हैं जो उसके आवेदन पर विचार करेगी, ताकि धमकी या आशंका, इसकी भार या गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता का मूल्यांकन किया जा सके। यह आवश्यक नहीं है कि कोई आवेदन केवल प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही पेश किया जाए; इसे पहले भी पेश किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो।

***92.2.** धारा 438 के तहत आवेदन लेकर न्यायालय में आने पर, खतरे (गिरफ्तारी की) की गंभीरता के आधार पर, सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत देते समय भी, लोक अभियोजक को नोटिस जारी करना और तथ्य प्राप्त करना उचित हो सकता है।*

***92.3.** धारा 438 सी.आर.पी.सी. में ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालयों को जांच या पूछताछ के दौरान पुलिस द्वारा समय या प्राथमिकी दर्ज करने या किसी गवाह के बयान दर्ज करने के मामले में राहत को सीमित करने वाली शर्तें लगाने के लिए बाध्य या बाध्य करे।* ***अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के दौरान उसके द्वारा प्रभावित किए जाने की संभावना या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ (गवाहों को डराना-धमकाना सहित), न्याय से भागने की संभावना (जैसे देश छोड़ना) आदि पर विचार करना होता है।** न्यायालयों के लिए उचित होगा - और उन्हें धारा 437(3) सी.आर.पी.सी.*

अनुवादित

[धारा 438(2) के आधार पर] में बताई गई शर्तें लगानी चाहिए। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाने की आवश्यकता का निर्णय मामले-दर-मामला आधार पर और राज्य या जांच एजेंसी द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर किया जाना चाहिए। यदि मामला या मामलों की आवश्यकता हो तो ऐसी विशेष या अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाई जा सकती हैं, लेकिन सभी मामलों में नियमित तरीके से नहीं लगाई जानी चाहिए। इसी प्रकार, अग्रिम जमानत की मंजूरी को सीमित करने वाली शर्तें दी जा सकती हैं, यदि किसी मामले या मामलों के तथ्यों में उनकी आवश्यकता हो; हालांकि, ऐसी सीमित शर्तें हमेशा नहीं लगाई जा सकतीं।

92.4. न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों से निर्देशित होना चाहिए, जबकि वे इस बात पर विचार कर रहे हों कि अग्रिम जमानत दी जाए या नहीं। जमानत देना या न देना विवेक का मामला है; *इसी तरह, यदि हाँ, तो किस तरह की विशेष शर्तें लगाई जाएँ (या न लगाई जाएँ) यह मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और न्यायालय के विवेक के अधीन है।*

92.5. *अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।*

92.6. *अग्रिम जमानत का आदेश इस अर्थ में "सर्वव्यापी" नहीं होना चाहिए कि यह अभियुक्त को आगे कोई अपराध करने और गिरफ्तारी से अनिश्चितकालीन संरक्षण का दावा करने में सक्षम न बनाए। इसे किसी विशिष्ट घटना के संबंध में उस अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए, जिसके लिए गिरफ्तारी की आशंका मांगी गई है। यह किसी ऐसी भावी घटना के संबंध में लागू नहीं हो सकता जिसमें अपराध का होना शामिल हो।*

अनुवादित

92.7 *अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी तरह से पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, जो उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने के लिए है जो गिरफ्तारी पूर्व जमानत मांगता है और उसे जमानत दी जाती है।*

92.8. *सिब्बिया [गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565: 1980 एससीसी (सीआरआइ) 465] में जांच अधिकारी की आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित हिरासत" या "मानी गई हिरासत" के बारे में की गई टिप्पणियां, धारा 27 के प्रावधानों को पूरा करने के उद्देश्य से पर्याप्त होंगी, किसी वस्तु की बरामदगी या किसी तथ्य की खोज की स्थिति में, जो ऐसी घटना (यानी मान ली गई हिरासत) के दौरान दिए गए बयान से संबंधित है। ऐसी घटना में, अभियुक्त को अलग से आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत मांगने के लिए कहने का कोई सवाल (या आवश्यकता) नहीं है। सिब्बिया ने टिप्पणी की थी कि:*

"19. ... यदि और जब अवसर उत्पन्न होता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए राज्य उत्तर प्रदेश बनाम देवमन उपाध्याय, प्राथमिकी 1960 एससी 1125 में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत को लागू करके जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में किए गए तथ्यों की खोज के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लाभ का दावा करना संभव हो सकता है।"

92.9. *पुलिस या जांच एजेंसी को संबंधित न्यायालय में आवेदन करने की स्वतंत्रता है, जो अग्रिम जमानत प्रदान करता है, धारा 439(2) के तहत किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में अभियुक्त को गिरफ्तार करने के निर्देश के लिए, जैसे कि फरार होना, जांच के दौरान सहयोग न करना, जांच या परीक्षण के परिणाम को प्रभावित करने के उद्देश्य से*

गवाहों को डराना या प्रलोभन देना, आदि।

92.10. *उपर्युक्त पैरा 92.9 में संदर्भित न्यायालय वह न्यायालय है जो प्रचलित प्राधिकारियों के अनुसार प्रथम दृष्टया अग्रिम जमानत प्रदान करता है।*

92.11. *ज़मानत देने वाले आदेश की सत्यता पर राज्य या जाँच एजेंसी के कहने पर अपीलीय या उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है, और इस आधार पर उसे रद्द किया जा सकता है कि आदेश देने वाली अदालत ने महत्वपूर्ण तथ्यों या महत्वपूर्ण परिस्थितियों पर विचार नहीं किया। [देखें प्रकाश कदम बनाम रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता, (2011) 6 एससीसी 189, जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य, (2012) 4 एससीसी 379, यूपी राज्य बनाम अमरमणि त्रिपाठी, (2005) 8 एससीसी 21]।) यह धारा 439(2) सी.आर.पी.सी. के अनुसार "रद्दीकरण" नहीं है।*

92.12. *सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 1 एससीसी 694 (और इसी तरह के अन्य फैसले) में की गई टिप्पणियों को खारिज किया जाता है कि अग्रिम जमानत देते समय कोई प्रतिबंधात्मक शर्तें नहीं लगाई जा सकतीं। इसी तरह, सलाउद्दीन अब्दुलसमद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1996) 1 एससीसी 667 और उसके बाद के फैसले जो इस तरह की प्रतिबंधात्मक शर्तें या अग्रिम जमानत देने को सीमित करने वाली शर्तें तय करते हैं, उन्हें खारिज किया जाता है।*

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पांच माननीय न्यायाधीशों द्वारा दिया गया बाद का निर्णय स्पष्ट रूप से दो माननीय न्यायाधीशों के पिछले निर्णय पर प्रभावी होगा और वर्तमान कानून के अनुसार, इस बात पर कोई प्रतिबंध नहीं है कि धारा 438 सी.आर.पी.सी. के तहत गिरफ्तारी-पूर्व जमानत देने का विवेक केवल असाधारण परिस्थितियों में ही इस्तेमाल किया जा सकता है। आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए विचार किए जाने वाले कारक कुछ हद तक अभियुक्त व्यक्ति को जमानत देने के लिए ध्यान में रखे जाने वाले विचारों के समान हैं। धारा 438 सी.आर.पी.सी. के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखा जाने वाला एकमात्र अतिरिक्त विचार धारा 438 की उप-धारा (i) के खंड (iv) में निहित है, जिसके अनुसार न्यायालय को यह भी ध्यान में रखना

होगा कि क्या आरोप आवेदक को गिरफ्तार करके उसे चोट पहुँचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है। इसलिए, मैं विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उठाई गई उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति को स्वीकार करने में खुद को असमर्थ पाता हूँ और इसे अस्वीकार किया जाता है।

8. आवेदन की योग्यता पर दलीलें पेश करते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक को विवेचक ने बुलाया था और धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत उसका बयान दिनांक 30.12.2016 को दर्ज किया गया था। विवेचना पूरी होने के बाद, वर्ष 2017 में ही आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया था। विवेचना पूरी हो चुकी है, इसलिए आवेदक को हिरासत में लेकर पूछताछ करने की कोई जरूरत नहीं है।

9. आवेदक की ओर से एक पूरक हलफनामा दायर किया गया है जिसमें तीन अन्य मामलों में उसकी संलिप्तता का खुलासा किया गया है, जिसमें संख्या 106/2021, 202/2021 और 88/2020 सभी धारा 60 आबकारी अधिनियम के तहत, थाना करनैलगंज, जिला गोंडा शामिल है, जो एक जमानतीय अपराध है और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक को उपरोक्त तीनों मामलों में जमानत दी गई है।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **महदूम बावा बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो,** 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 299 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को उसके खिलाफ गंभीर आरोपों से जुड़े एक मामले में निम्नलिखित कारणों के आधार पर अग्रिम जमानत प्रदान की थी: -

"उपर्युक्त आरोपों के आधार पर, जो निश्चित रूप से गंभीर प्रकृति के हैं, अपीलकर्ताओं की अग्रिम जमानत की प्रार्थना का विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा घोर विरोध किया जाता है। लेकिन हमारे विचार में कम से कम तीन कारक हैं जो इस मामले में अपीलकर्ताओं के पक्ष में संतुलन बनाते हैं। वे हैं:–

(i) बेशक, सीबीआई को दिनांक 29.06.2019 (प्राथमिकी दर्ज करने की तारीख) से 31.12.2021 (अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने की तारीख) तक की जांच अवधि के दौरान अपीलकर्ताओं की हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि इस स्तर पर अपीलकर्ताओं की हिरासत की आवश्यकता हो सकती है;

(ii) उच्च न्यायालय के समक्ष दायर जवाब/प्रतिवाद में, सीबीआई ने स्पष्ट रुख अपनाया था कि न्यायालय ने केवल समन

जारी किया था, न कि अभियुक्त की उपस्थिति के लिए वारंट। श्री दीपक गुप्ता के मामले में, सीबीआई ने विशेष न्यायालय के समक्ष यह रुख अपनाया था कि "अभियुक्त की उपस्थिति जांच के लिए आवश्यक नहीं है, लेकिन निश्चित रूप से परीक्षण के लिए आवश्यक है" और इसलिए उसे उपस्थित होने की आवश्यकता है। इसलिए, सीबीआई केवल यही चाहती थी कि अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो ताकि विचारण का सामना कर सके। ऐसी परिस्थितियों में, इस स्तर पर अग्रिम जमानत अनुरोध का विरोध करना उचित नहीं हो सकता है; और

(iii) सभी लेन-देन जिसके बारे में शिकायत की गई थी, 2009-2010 से 2012-2013 की अवधि के दौरान हुए प्रतीत होते हैं और सभी रिकॉर्ड से पुष्टि करते हैं। जब प्राथमिक ध्यान दस्तावेजी साक्ष्य पर है, तो हम यह समझने में विफल हैं कि अपीलकर्ताओं को अब क्यों गिरफ्तार किया जाना चाहिए।

11. हालांकि प्राथमिकी में कहा गया है कि मौके पर कई लोग मौजूद थे, लेकिन जब उनसे कार्यवाही देखने के लिए कहा गया तो कोई भी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जाहिर है, प्राथमिकी वसूली की कार्यवाही समाप्त होने के बाद दर्ज की गई है जब पुलिस दल थाना पहुंचा। हालांकि बाद में दर्ज की गई प्राथमिकी में यह दर्ज है कि वसूली की कार्यवाही किसी ने नहीं देखी थी, लेकिन वसूली ज्ञापन के नीचे दो लोगों ने अपने हस्ताक्षर किए हैं जिनके बारे में विद्वान ए.जी.ए. ने कहा है कि वे स्वतंत्र गवाह हैं। इस प्रकार वसूली ज्ञापन में पुलिस द्वारा दिए गए कथन और बाद में दर्ज की गई प्राथमिकी में स्वतंत्र गवाहों की मौजूदगी के बारे में गंभीर विरोधाभास है।

12. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दिनांक 19.07.2016 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि एक मुखबीर से प्राप्त सूचना के आधार पर आवेदक के पॉलिशर से कुछ बरामदगी की गई थी; हालांकि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है कि बरामदगी के समय बड़ी भीड़ एकत्र हुई थी, किसी भी स्वतंत्र व्यक्ति ने कथित बरामदगी को नहीं देखा है; कि जांच पहले ही समाप्त हो चुकी है और आरोप पत्र वर्ष 2017 में ही प्रस्तुत किया जा चुका है, मेरा विचार है कि उपरोक्त तथ्य आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए पर्याप्त हैं।

13. उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका **स्वीकार** की जाती है। उपरोक्त मामले में आवेदक - **धर्मपाल गौतम उर्फ भिखारी गौतम** की गिरफ्तारी / थाना प्रभारी / विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने की स्थिति में, उसे संबंधित थाना

प्रभारी / न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बंधपत्र और समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों और विचारण न्यायालय द्वारा तय की गई किसी भी अन्य शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाएगा:

(i) आवेदक अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा;

(iii) आवेदक को विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रत्येक तारीख पर उपस्थित होना होगा।

(2023) 8 ILRA 674

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1775 वर्ष 2023
(अंतर्गत धारा 438 सीआर.पी.सी.)
साथ
आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1777 वर्ष 2023
(अंतर्गत धारा 438 सीआर.पी.सी)

सोमदेव शर्मा ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :
अमरजीत सिंह रखड़ा, बशिष्ठ मुनि मिश्र

प्रतिवादी के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा- 438 -भारतीय दंड संहिता- 1860- धाराएं 409, 420, 467, 468, 471 और 120बी- अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि आवेदक कोई असाधारण परिस्थिति बनाने में विफल रहा है और आवेदन के गुण-दोष की जांच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि आवेदक अग्रिम जमानत दिए जाने का हकदार है या नहीं - सीआर.पी.सी. की धारा 46, जो व्यक्तियों की गिरफ्तारी की प्रक्रिया निर्धारित करती है, में राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी और अभियुक्त को मंजूरी की सूचना भेजने का कोई प्रावधान नहीं है, ताकि वह गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश प्राप्त करने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटा सके।

अंतरिम अग्रिम जमानत स्वीकृत. (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य, (2020) 5 एससीसी 1

2. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 955

3. आद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2005) 4 एससीसी 303

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत)

1 . आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरजीत सिंह राखरा को तथा राज्य हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री राव नरेंद्र सिंह को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

2. उपरोक्त दोनों आवेदन पुलिस थाना एस0आई0टी0, जिला लखनऊ (ग्रामीण) में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420, 467, 468, 471, 120बी के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 0027/2021 में अग्रिम जमानत के लिए दायर किए गए हैं।

3. प्रारंभ में श्री राव नरेन्द्र सिंह, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता- I ने निम्नलिखित दो आधारों पर प्रार्थना पत्रों के विरुद्ध प्रारंभिक आपत्तियां उठाई हैं - (i) अग्रिम जमानत के लिए किसी आवेदन को जमानत के लिए सामान्य रूप से नियमित आवेदन के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और इस पर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब कुछ असाधारण परिस्थितियां हों जो गिरफ्तारी पूर्व जमानत देने के असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती हैं और वर्तमान मामले में कोई असाधारण परिस्थितियां नहीं हैं; (ii) प्रार्थीगण के नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं हैं और उन्हें निर्देश हैं कि उनके नाम आज तक किये गए अन्वेषण में सामने नहीं आए हैं और इसलिए, प्रार्थीगण की गिरफ्तारी की कोई युक्तियुक्त आशंका नहीं है। श्री राव नरेंद्र सिंह ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि सामान्य प्रक्रिया यह है कि भले ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई तथ्य प्रकाश में आता है, उसे राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त किए बिना गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और यदि प्रार्थीगण की गिरफ्तारी की आवश्यकता महसूस होती है, तो प्रक्रिया का पालन किया जाएगा। उन्होंने **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और एक अन्य,** (2020) 5 SCC 1 और **प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य,** 2021 SCC ऑनलाइन SC 955 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है।

4. प्रथम आपत्ति के समर्थन में, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और एक अन्य,** (2020) 5 एससीसी 1 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के निम्नलिखित अंशों पर विश्वास व्यक्त किया है: -

> ***"7.2** ऊपर उल्लिखित एक वृहद पीठ को संदर्भित बिंदुओं पर विचार करते हुए, गुरबख्श सिंह सिबिया (1980) 2 एससीसी 565 में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय को संदर्भित करने और विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। गुरबख्श सिंह*

सिब्बिया में संविधान पीठ के समक्ष यह प्रकरण पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय से उद्भूत हुआ। उच्च न्यायालय ने अपने मतानुसार सही विधिक स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत करने के बाद जमानत प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया, इसके अनुसार सही कानूनी स्थिति, अत : (गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, 1977 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 157)

*"(1) **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अंतर्गत शक्ति असाधारण प्रकृति की है और इसका प्रयोग मात्र असाधारण मामलों में संयमपूर्वक किया जाना चाहिए;***

(2) न तो धारा 438 और न ही संहिता का कोई अन्य प्रावधान उन अपराधों के लिए, जो अभी तक नहीं किए गए हैं या उन आरोपों के संबंध में जो अब तक लगाए नहीं गए हैं, पूर्ण अग्रिम जमानत देना अधिकृत करता है।

(3) उक्त शक्ति अनिर्देशित या अबाध नहीं है, लेकिन पूर्ववर्ती धारा 437 में आरोपित सभी सीमाएं उसमें निहित हैं और उन्हें धारा 438 में पढ़ा जाना चाहिए।

(4) धारा 437 में उल्लिखित सीमाओं के अतिरिक्त , अग्रिम जमानत देने की शक्ति के प्रयोग के लिए याचिकाकर्ता को एक विशेष वाद स्थापित करना चाहिए।

(5) जहां अन्वेषण एजेंसी द्वारा धारा 167(2) के अधीन अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में भेजने के लिए वैध मामला बनाया जा सकता है या साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभियुक्त से प्राप्त होने वाली संभावित सूचना से अभियोगात्मक सामग्री प्राप्त करने का युक्तियुक्त दावा किया जा सकता है, वहां धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(6) धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायालय को यह समाधान न हो जाए कि ऐसा आरोप मिथ्या या आधारहीन प्रतीत होता है।

(7) जनता और राज्य के व्यापक हित की मांग है कि आर्थिक अपराधों जैसे गंभीर मामलों में, जिनमें कार्यपालिका और राजनीतिक शक्ति के उच्च स्तर पर खुल्लम-खुल्ला भ्रष्टाचार

सम्मिलित है, संहिता की धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए; और

(8) याचिका में दुर्भावना के सामान्य आरोप अपर्याप्त हैं। न्यायालय को अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री से संतुष्ट होना चाहिए कि दुर्भावनापूर्ण आरोप पर्याप्त हैं और आरोप असत्य और आधारहीन प्रतीत होते हैं।

5. हालांकि, श्री. राव नरेंद्र सिंह यह ध्यान देने से चूक गए हैं कि उपरोक्त विधिक स्थिति को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा संक्षेपित किया गया था, और जिस निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया था, वह उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध दायर अपील में पारित किया गया था। अपील को स्वीकार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि-

"12. हम विद्वान अपर महाधिवक्ता के तर्कों अथवा उन बाधाओं को समग्रता में स्वीकार करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं जिन्हें उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति पर लागू किया है। ***धारा 438 का खंड (1) व्यापक और अप्रतिबंधित शब्दों में लिखा गया है। निर्वचन के किसी भी ज्ञात सिद्धांत द्वारा, व्यापकता और आयाम के निबंधनों को सामान्यतः इस प्रकार खारिज नहीं जाना चाहिए ताकि विधि की भाषा में इसे अवरोध और शर्तें प्रतिबिम्बित हों , जिन्हें आरोपित करना विधायिका ने स्वयं उचित या आवश्यक नहीं समझा। यह विशेष रूप से तब सत्य है जब विचार हेतु उपस्थित सांविधिक प्रावधान जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार जैसे मूल्यवान अधिकार को सुरक्षित करने के लिए निर्मित किया गया है और इसमें एक उपधारणा का प्रयोग सम्मिलित है जो हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र में उतना ही कल्याणकारी और गहरा है जितनी कि निर्दोषता की उपधारणा।*** *यद्यपि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार पहली बार धारा 438 द्वारा प्रदान किया गया था, तथापि जहां तक जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार है, उस प्रावधान को लागू करते समय विधायिका एक अभूतपूर्व कदम उठाने के अर्थ में किसी स्पष्ट पृष्ठभूमि में अपनी अभिव्यक्ति नहीं प्रदान कर रही थी। इसके समक्ष संहिता के दो संज्ञेय प्रावधान थे: धारा 437 जो गैर-जमानती मामलों में जमानत देने के लिए सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों की शक्ति से संबंधित है, और धारा 439 जो जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय की "विशेष शक्तियों" से संबंधित है। सम्पूर्ण धारा 437 जमानत देने के लिए कुछ न्यायालयों की शक्ति पर प्रतिबंधों से भरी हुई है। अतः वह धारा निम्नवत है:*

* * *

धारा 437 और 439 के प्रावधानों ने धारा 438 को अधिनियमित करते समय विधायिका को प्रतिलिपि तैयार करने के लिए एक सुविधाजनक प्रतिरूप प्रस्तुत किया। यदि इसने ऐसा नहीं किया है और एक ऐसी रीति का परित्याग किया है जिसे आवश्यक संशोधनों के साथ आसानी से अपनाया जा सकता है, तो यह मानकर ऐसे परित्याग को उसका पूर्ण प्रभाव देने से इनकार करना गलत होगा कि इसका आशय किसी विशेष या विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना नहीं था। हमारी राय में, परित्याग सलाहपूर्वक और उद्देश्यपूर्वक किया गया था: कम से कम आंशिक रूप से यह सलाह दी गई, विधि आयोग की 41 वीं रिपोर्ट, जिसने उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने में सक्षम बनाने के लिए संहिता में एक प्रावधान पेश करने की आवश्यकता की ओर इंगित करते हुए, प्रस्तर 39.9 में कहा था कि इसने "संविधि में कुछ शर्तों को प्रतिपादित करने के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया था जिसके अधीन ही अग्रिम जमानत हो सकती थी लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि इस तरह की जमानत देने का प्रश्न "न्यायालय के विवेक" पर छोड़ दिया जाना चाहिए और इसे वैधानिक प्रावधान द्वारा ही आबद्ध नहीं जाना चाहिए, क्योंकि विवेकाधिकार उच्चतर न्यायालयों को दिया जा रहा था जिनसे न्यायिक रूप से इसका प्रयोग करने की आशा की गई थी। ***विधायिका ने उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को अग्रिम जमानत देने के लिए एक व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया क्योंकि यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया गया था कि सर्वप्रथम तो उन शर्तों का क्रमशः निरूपण कठिन होगा जिनके अधीन अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए या नहीं दी जानी चाहिए और द्वितीय यह कि इसका आशय उच्चतर न्यायालयों को अग्रिम जमानत की राहत प्रदान करने में कुछ हद तक स्वतन्त्रता प्रदान करना था। इसीलिए, धारा 437 और 439 के निबंधनों से विचलित हो, धारा 438(1) उस भाषा का उपयोग करती है जिसे उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय "यदि वह उचित समझे" के रूप में निर्देश दे सकता है कि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाए।*** *धारा 438 की उप-धारा (2), अग्रिम जमानत देने के लिए एक व्यापक विवेकाधीन शक्ति प्रदान करने के लिए उसी विधायी आशय की एक और स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यह उपबंध करती है कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए निर्देश जारी करते समय, "विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ऐसी शर्तों को सम्मिलित कर सकती है, जैसा वह उचित समझे" , जिसमें उप-धारा (2) के खंड (i) से (iv) में निर्धारित शर्तें शामिल हैं। विधायी आशय का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण उस भाषा में पाया जा सकता है जिसका उपयोग विधायिका करती है। अस्पष्टताओं को निस्संदेह वाह्य साधनों द्वारा हल किया जा*

सकता है, किन्तु धारा 438 में उपयोग किए गए शब्दों को उनका पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए, विशेषतः जब ऐसा करने से इनकार करने से व्यक्ति की स्वतंत्रता और निर्दोषता की उपधारणा को अनुचित क्षति पहुँचेगी। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अग्रिम जमानत की प्रार्थना तब की जाती है जब इस आरोप पर गिरफ्तारी की आशंका होती है कि आवेदक ने गैर-जमानती अपराध किया है। एक व्यक्ति जिसने अभी तक गिरफ्तार होने से अपनी स्वतंत्रता खोना शेष है, गिरफ्तारी की स्थिति में स्वतंत्रता की प्रार्थना करता है। यही वह चरण है जिस पर यथासंभव उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करना और इस उपधारणा पर पूर्ण बल देना कि वह निर्दोष है, अनिवार्य है। वास्तव में, जिस चरण पर सामान्यतः अग्रिम जमानत की प्रार्थना की जाती है, उस स्थिति से स्पष्टतया भिन्न है जिसमें किसी व्यक्ति को गैर-जमानती अपराध करने के लिए गिरफ्तार किया गया और वह व्यक्ति जमानत मांगता है। पश्चातवर्णित स्थिति में, न्यायालय के पास पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है, या वह ऐसी सामग्री मंगा सकती है, जिसके प्रकाश में वह राहत दे सकती है या राहत देने से इंकार कर सकती है, एवं अग्रिम जमानत प्रदान करते समय, धारा 437 उल्लिखित सभी या किसी भी शर्त को लागू कर इसे संशोधित कर सकता है।"

(बल दिया दिया)

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा आरोपित इस शर्त संख्या 1 को अस्वीकार कर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अंतर्गत शक्ति असाधारण प्रकृति की है और इसे मात्र असाधारण मामलों में संयम पूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए, और यह धारित किया कि: -

*"**22.** प्रतिपादना संख्या 1 द्वारा उच्च न्यायालय का कहना है कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति "असाधारण प्रकृति की है और मात्र असाधारण मामलों में इसका संयमपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए"। शक्ति को असाधारण प्रकृति के रूप में वर्णित करना संभवतः सही हो सकता है क्योंकि प्रायः धारा 437 या धारा 439 के तहत जमानत के लिए आवेदन किया जाता है। ये धाराएं पुलिस की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को जमानत देने या अस्वीकार करने की शक्ति से संबंधित हैं और यह सामान्य स्थिति है जिसमें जमानत के लिए सामान्यतः आवेदन किया जाता है। लेकिन यह इस निष्कर्ष को सही नहीं ठहराता है कि शक्ति का प्रयोग मात्र असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए, क्योंकि यह असाधारण प्रकृति की है। हमारा कहना यही है कि समस्त विवेकाधिकारों को सतर्कतापूर्वक एवं सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए, जो इसके प्रयोग को सही ठहराने वाली परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इससे अधिक सीमाओं*

का पालन करना और विधायिका द्वारा प्रदत्त व्यापक शक्ति को स्व-आरोपित सीमाओं की कठोर संहिता के अधीन करना अनावश्यक है।

*****

33. *इसलिए, हम उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को धारा 438 के अधीन अपने विवेक के बुद्धिमत्तापूर्ण और सावधानीपूर्वक उपयोग द्वारा अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने हेतु स्वतंत्र रखना चाहेंगे, जिसके लिये वे अपने लंबे प्रशिक्षण और अनुभव के कारण आदर्श रूप से उपयुक्त हैं। इन न्यायालयों पर निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए विश्वास करके न्याय के उद्देश्यों को बेहतर ढंग से प्राप्त किया जाएगा और जमानत प्रदान किये जाने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले उन सिद्धांतों के अनुरूप कार्य किया जाएगा, जिन्हें वर्षों से मान्यता प्राप्त है, बजाय इसके कि सामान्य अनुप्रयोग के अनम्य नियमों को निर्धारित करके उन्हें उनके विवेक से वंचित कर दिया जाए जो विधायिका ने उन्हें प्रदान किया है। यह प्रथागत है एवं लगभग पुरातन है कि किसी विधि की ग्राह्यता को कोई इस आधार पर उचित पाता है कि आखिरकार, "विधायिका ने अपने ज्ञान से" एक विशेष अभिव्यक्ति का उपयोग करना उचित समझा है। कोई परिपाटी उपयोगी रूप से विकसित हो सकती है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय पर अपने ज्ञान के अनुरूप अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विश्वास किया जा सकता है, विशेषकर जब विवेकाधिकार को विधायिका द्वारा अपने संज्ञान में उनके हवाले किया जाता है। यदि वे त्रुटि करते हैं, तो वह संशोधनीय है।*

7. अतः विधिक स्थिति यह है कि अग्रिम जमानत के किसी प्रार्थनापत्र आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि प्रार्थी किसी भी असाधारण परिस्थिति को स्थापित कर पाने में विफल रहा है, और प्रार्थनापत्र के गुण-दोष की जांच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि आवेदक अग्रिम जमानत दिये जाने का अधिकारी है अथवा नहीं। तदनुसार, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता -I द्वारा उठाई गई प्रथम प्रारंभिक आपत्ति, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के त्रुटिपूर्ण पठन पर आधारित है, को खारिज कर दिया गया है।

8. अपनी प्रारंभिक आपत्ति के दूसरे अंग के समर्थन में, कि अग्रिम जमानत हेतु किसी प्रार्थनापत्र पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि आवेदक की गिरफ्तारी की वास्तविक आशंका न हो, श्री। राव नरेंद्र सिंह ने **सुशीला अग्रवाल बनाम भारत संघ, राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली),** (2020) 5 एससीसी 1 के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत किए जा रहे दो प्रश्न इस प्रकार थे: -

"(1) क्या धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी व्यक्ति को दी गई सुरक्षा एक निश्चित अवधि तक सीमित होनी चाहिए ताकि व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर सके और नियमित जमानत मांग सके।

(2) क्या अग्रिम जमानत की अवधि जीवन उस समय और चरण पर समाप्त होना चाहिए जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा तलब किया जाता है।"

9. यह प्रश्न कि क्या अग्रिम जमानत प्रार्थनापत्र पर मात्र 'असाधारण परिस्थितियों' में ही विचार किया जा सकता है या 'जहाँ गिरफ्तारी की गंभीर आशंका है' सुशीला अग्रवाल (पूर्वोक्त) में सम्मिलित नहीं था। हालांकि, सुशीला अग्रवाल में यह टिप्पणी की गई थी कि: -

***"35.** संहिता की धारा 438 (1) में एक शर्त रखी गई है जिसे अग्रिम जमानत देने से पूर्व पूर्ण करना होगा। प्रार्थी को यह प्रदर्शित करना होगा कि उसके पास यह "विश्वास करने का कारण" है कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है। अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण" के उपयोग से पता चलता है कि यह विश्वास कि आवेदक को गिरफ्तार किया जा सकता है, उचित आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। मात्र भय का होना विश्वास नहीं है, जिस कारण प्रार्थी के लिए यह प्रदर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके विरुद्ध आरोप लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। उन आधारों की, जिन पर आवेदक का विश्वास आधारित है कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, न्यायालय को निष्पक्ष रूप से जांच करने में सक्षम होना चाहिए, क्योंकि मात्र तभी न्यायालय यह विनिश्चयन कर सकती है कि क्या प्रार्थी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। इसलिए, धारा 438 (1) को अस्पष्ट और सामान्य आरोपों के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता है, जैसे कि संभावित गिरफ्तारी के खिलाफ स्वयं को आयुध से लैस करना। अन्यथा, अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों की संख्या किसी भी दर पर, वयस्क आबादी जितनी विशाल होगी। अग्रिम जमानत व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने का एक उपकरण है; यह न तो अपराधों के कारित किये जाने का पासपोर्ट है और न ही, संभावित या असंभव, किसी भी और सभी प्रकार के आरोपों के विरुद्ध ढाल है।*

10. वाद के तथ्यों का विश्लेषण और सुशीला अग्रवाल में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के

समक्ष प्रस्तुत तर्क एक शीर्षक - "विश्लेषण और निष्कर्ष" के पश्चात निर्णय के प्रस्तर 45 से प्रारंभ होते हैं और माननीय सर्वोच्च द्वारा प्रदत्त अंतिम निष्कर्ष निम्नवत हैं: -

> ***"न्यायालय के अंतिम निष्कर्ष***
>
> ***91.*** *न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति एस. रवींद्र भट, एवं उनसे सहमत न्यायमूर्तिगण अरुण मिश्रा, इंदिरा बनर्जी और विनीत सरन के दृष्टिगत , संदर्भ के निम्नलिखित उत्तर प्रदान किये गए हैं:*
>
> ***91.1*** *प्रश्न 1 के बारे में, यह न्यायालय धारित करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अंतर्गत किसी व्यक्ति को दी गई सुरक्षा सदैव एक निश्चित अवधि तक सीमित नहीं होनी चाहिए; यह समय पर किसी प्रतिबंध के बिना, अभियुक्त के पक्ष में होनी चाहिए। धारा 437(3) सहपठित धारा 438(2) के अंतर्गत सामान्य शर्तें आरोपित की जानी चाहिए; यदि किसी अपराध के संबंध में विशिष्ट तथ्य या विशेषताएं हैं, तो न्यायालय को कोई भी उचित शर्त (अनुतोष की निश्चित प्रकृति, या किसी घटना से आबद्ध होने सहित), आदि को आरोपित करने का अधिकार है।*
>
> ***91.2*** *इस न्यायालय को संदर्भित द्वितीय प्रश्न के संबंध में, यह धारित किया जाता है कि अग्रिम जमानत आदेश का जीवनकाल या अवधि सामान्य रूप से उस समय और चरण में समाप्त नहीं होती है जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा तलब किया जाता है, या जब आरोप तय किए जाते हैं, किन्तु यह मुकदमे के समापन तक जारी रह सकती हैं। फिर, अगर कोई विशेष या विशिष्ट विशेषताएं हैं, जिनके कारण न्यायालय को अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करने की आवश्यकता है, तो उसे ऐसा करने की स्वतंत्रता है।"*

11. वृहद पीठ को संदर्भित दो प्रश्नों का उत्तर देने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थनापत्रों पर विचार करने वाले न्यायालयों द्वारा कुछ बिंदुओं को ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जिनमें से मात्र प्रथम वर्तमान वाद हेतु प्रासंगिक है, जो निम्नानुसार है: -

> ***92.1*** *गुरबख्श सिंह सिबिया बनाम पंजाब राज्य के मामले में दिए गए निर्णय के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत करता है और आदेश हेतु प्रार्थना करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए जो एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित हो। अग्रिम जमानत की मांग करने वाले प्रार्थनापत्र में अपराध से एवं और आवेदक को गिरफ्तारी की आशंका*

क्यों है, इससे संबंधित आवश्यक तथ्य होने चाहिए, , साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी। यह न्यायालय द्वारा प्रार्थनापत्र पर विचार करते हुए, खतरे या आशंका, और इसकी गंभीरता के आंकलन हेतु तथा आरोपित की जाने वाली किसी भी शर्त के समौचित्य हेतु अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद ही आवेदन किया जाना चाहिए; इसे पहले भी प्रस्तुत किया जा सकता है, जब कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए युक्तियुक्त आधार हो।"

12. प्रेम **शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और एक अन्य,** 2021 SCC ऑनलाइन SC 955 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **आद्री धरन दास बनाम प. बं. राज्य,** (2005) 4 SCC 303 के एक पूर्व निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें निम्नवत धारित किया गया था: -

"16. धारा 438 एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जो किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित है जो निर्दोषता के अभिवाक का अधिकारी है करने का हकदार है, क्योंकि वह आवेदन के दिनांक पर उस अपराध हेतु दोषसिद्ध नहीं है जसके संबंध में वह संहिता की धारा 438 के अधीन शक्ति के प्रयोग द्वारा जमानत चाहता है। ***आवेदक को यह प्रदर्शित करना होगा कि उसके पास 'विश्वास करने का कारण' है कि उसे गैर-जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है। अभिव्यक्ति 'विश्वास करने का कारण' का उपयोग दर्शाता है कि आवेदक को गिरफ्तार किया जा सकता है, यह विश्वास उचित आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। केवल 'भय' 'विश्वास' नहीं है, जिस कारण से आवेदक के लिए यह प्रदर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके विरुद्ध आरोप लगाने जा रहा है जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। जिन आधारों पर आवेदक का विश्वास आधारित है कि उसे गैर-जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है, उन्हें परीक्षणीय होना चाहिये।*** *यदि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में कोई प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाता है, तो यह संबंधित न्यायालय को तय करना है कि माँगा गया अनुतोष प्रदान करने के लिये वाद स्थापित किया गया है अथवा नहीं। अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता है। एक पूर्ण आदेश सामान्यतः पारित नहीं किया जाना चाहिए। यह धारा की भाषा से ही उद्भूत होता है जिसके अनुसार प्रार्थी को यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता होती है कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। एक विश्वास को उचित आधार पर स्थापित किया जा सकता है, अगर*

कुछ ठोस है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रार्थी की यह आशंका वास्तविक है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। आम तौर पर इस आशय का निर्देश जारी नहीं किया जाना चाहिए कि प्रार्थी को 'जब भी किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाए' जमानत पर रिहा किया जाएगा। इस तरह के 'व्यापक आदेश' को पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह किसी भी तरह की कथित गैरकानूनी गतिविधि को आच्छादित या संरक्षित करने के लिए एक समग्र आदेश के रूप में कार्य करेगा। धारा 438 के अधीन आदेश व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक उपकरण है, यह न तो अपराधों को कारित करने का पासपोर्ट है और न ही, संभावित या असंभावित, किसी भी और समस्त प्रकार के आरोपों के विरुद्ध ढाल है। मामले के तथ्यों पर, ऊपर निर्धारित विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में विचार किया गया, यह प्रथम दृष्टया ऐसा मामला प्रतीत नहीं होता है जहाँ संहिता की धारा 438 के संदर्भ में कोई आदेश पारित किया जा सकता है।"

(बल दिया गया)

13. पूर्वोक्त तर्क का उत्तर देते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्रीअमरजीत सिंह रखड़ा ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 19.06.2019 की एक शिकायत के आधार पर व्यक्तियों के 14 समुच्चयों - विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों के पदाधिकारियों के 12 समुच्चयों , और दो सरकारी अधिकारियों और संस्थानों के अज्ञात कर्मचारियों और सरकार के अधिकारियों के विरुद्ध 20.07.2021 को दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर मामला दर्ज किया गया है, एवं एक विशेष जाँच दल का गठन किया गया, जिसने जाँच की और सरकार द्वारा गठित एक समिति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, और 27.05.2021 को हुई समिति की बैठक में आगे की कार्रवाई का निर्देश दिया गया। छात्रों की जांच और भौतिक सत्यापन के दौरान एकत्र किए गए सभी दस्तावेजी साक्ष्यों की जांच करने पर यह पता चला कि हालांकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति श्रेणियों के छात्रों को छात्रवृत्ति के भुगतान में 200 करोड़ रुपये के गबन की शिकायत थी, लेकिन संबंधित संस्थानों द्वारा मात्र 58 करोड़ रुपये ही आहरित किये गए थे।

14. अभियुक्तों का प्रथम समूह "कपिल गर्ग रजिस्ट्रार, अधिकारी और अन्य कर्मचारी" है। अभियुक्त संख्या 1 के रूप में प्रस्तुत किए गए व्यक्तियों के समूह का पता "बीएलएस इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, शाहिबाबाद, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश " है। बीएलएस संस्थान के संबंध में, यह आरोप लगाया गया है कि जाँच के दौरान यह पाया गया कि दो छात्रों, मोनिका गौतम और बृजेन्द्र कुमार के संबंध में छात्रवृत्ति आहरित की गई थी और यह पता चला कि दोनों उपर्युक्त छात्रों ने संस्थान में प्रवेश नहीं लिया था और उनके संबंध में छात्रवृत्ति का दावा फर्जी तरीके से किया गया था। आपराधिक विविध अग्रिम जमानत

प्रार्थनापत्र संख्या 1775/2023 में प्रार्थी सोसाइटी का अध्यक्ष है, जो बीएलएस प्रबंधन संस्थान का प्रबंधन करता है और आपराधिक विविध अग्रिम जमानत प्रार्थनापत्र संख्या 1775/2023 में प्रार्थी बीएलएस प्रबंधन संस्थान में कार्यालय सचिव है।

15. आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थनापत्र दायर किए थे, जिन्हें विशेष न्यायाधीश, सीबीआई (केंद्रीय), लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 27.07.2023 के आदेश के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया है कि अन्वेषण अभी भी चल रहा है और अपराध गंभीर आर्थिक अपराधों की श्रेणी में आता है, जिसका बड़े पैमाने पर समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और किसी भी प्रार्थी को अग्रिम जमानत देने का कोई आधार नहीं है। अग्रिम जमानत प्रार्थनापत्रों को इस आधार पर खारिज नहीं किया गया है कि आवेदकों की गिरफ्तारी की कोई आशंका नहीं है।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की उपधारा 1 में संलग्न परंतुक यह उपबंध करता है कि *"जहाँ उच्च न्यायालय या, यथास्थिति, सत्र न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया है, वहाँ पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी ऐसे आवेदन में लगाए गए आरोप के आधार पर आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा।"*

17. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि बीएलएस इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट के रजिस्ट्रार कपिल गर्ग को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध अग्रिम जमानत प्रार्थनापत्र संख्या 1566/ 2023 में पारित आदेश दिनांक 13.07.2023 के माध्यम से अग्रिम जमानत दी गई है। सत्र न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए प्रार्थीगण के प्रार्थनापत्रों को अस्वीकार कर दिया गया है, सांविधिक उपचार के अंतर्गत पुलिस स्वतंत्र है कि वह बिना वारंट के प्रार्थीगण को गिरफ्तार कर सकती है। पुनः उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा इंगित प्रक्रिया प्रथा वैधानिक नुस्खे पर अभिभावी नहीं होगी और अधिरोहित नहीं होगी।

18. मैंने प्रार्थनापत्र की पोषणीयता के बिंदु पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतर्कों तियों पर विचार किया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में होने वाली अभिव्यक्ति 'किसी भी व्यक्ति को विश्वास करने का कारण है' की व्याख्या इस बात को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए कि क्या अग्रिम जमानत मांगने वाले व्यक्ति की स्थिति में रखे गए सामान्य विवेक के किसी भी उचित व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण होगा कि मामले की परिस्थितियों में गिरफ्तारी की आशंका है।

19. मामले के तथ्यों से संकेत मिलता है कि यद्यपि सामान्यतः अभियुक्तगण को प्रथम सूचना रिपोर्ट में व्यक्तिगत रूप से नामित किया जाता है, वर्तमान मामले में आरोपी व्यक्तियों को समूह में रखा गया है और अभियुक्तगण का प्रथम समूह "कपिल गर्ग

रजिस्ट्रार, अधिकारी और अन्य कर्मचारी" है। अभियुक्त संख्या 1 के रूप में प्रस्तुत किये गए व्यक्तियों के समूह का पता "बी0एल0एस0 इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, शाहिबाबाद, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश" है। यह अभियोजन पक्ष को संस्थान के लिए काम करने वाले किसी भी व्यक्ति को सम्मिलित करने के लिए एक दीर्घ सूत्र सहित मुक्त छोड़ देता है।

20. प्रार्थनापत्रों के समर्थन में दायर शपथपत्र के प्रस्तर 42 में, प्रार्थीगण ने कहा है कि अन्वेषण एजेंसी ने न केवल एक से अधिक अवसरों पर प्रार्थीगण के बयान दर्ज किए हैं, बल्कि प्रार्थीगण से टेलीफोन पर बार-बार जानकारी भी मांगी है। यह विशेष रूप से कहा गया है कि सह-अभियुक्त कपिल गर्ग, जो संस्थान के रजिस्ट्रार हैं, को अग्रिम जमानत देने के बाद, प्रार्थीगण को उसी दिन कुछ जानकारी प्रदान करने या परिणाम भुगतने के लिए कहा गया था। प्रार्थीगण ने दलील दी है कि उन्हें इसमें गड़बड़ी की आशंका है और उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है।

21. सुशीला अग्रवाल और प्रेम शंकर प्रसाद (पूर्वोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के आलोक में वाद के तथ्यों पर विचार करने के बाद, मेरा मत है कि उपरोक्त तथ्य ऐसी परिस्थितियों को जन्म देते हैं जो दर्शाते हैं कि प्रार्थी के पास यह विश्वास करने का एक कारण है कि उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है। प्रार्थीगण को अस्पष्ट आशंका नहीं है कि कोई व्यक्ति उसके विरुद्ध आरोप लगाने जा रहा है जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। प्रार्थीगण का विश्वास उचित आधार पर स्थापित किया गया है और यह मात्र 'भय' नहीं है।

22. एक और बात महत्वपूर्ण है कि यद्यपि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रारंभिक आधार पर आवेदन की पोषणीयता का प्रबल विरोध किया है कि वर्तमान में आवेदकों के गिरफ्तार होने की कोई आशंका नहीं है, यह पूछे जाने पर कि क्या वह यह बयान दे सकते हैं कि भविष्य में भी आवेदकों को गिरफ्तार नहीं किया जाएगा, उन्होंने कहा कि उनके पास ऐसा कोई निर्देश नहीं है। उन्होंने केवल इतना कहा कि भविष्य में प्रार्थीगण की गिरफ्तारी की आवश्यकता पड़ने पर उनकी गिरफ्तारी का प्रस्ताव पहले राज्य सरकार को भेजा जाएगा। हालांकि, वह इस प्रक्रिया को अनिवार्य करने वाले विधि के किसी प्रावधान को इंगित नहीं कर सके।

23. सह-अभियुक्तगण में से एक, कपिल गर्ग, को इस न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत दे दी गई है और अग्रिम जमानत देने के लिए प्रार्थीगण के प्रार्थनापत्र खारिज कर दिए गए हैं, पुलिस स्वतंत्र है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की उपधारा (1) में संलग्न परंतुक में निहित वैधानिक प्रावधान के दृष्टिगत बिना वारंट के आवेदक को गिरफ्तार कर सके।

24. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46, जो व्यक्तियों की गिरफ्तारी की प्रक्रिया निर्धारित करती है, में राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति और अभियुक्त को भेजी जाने वाली स्वीकृति की सूचना को अनिवार्य करने वाला कोई प्रावधान नहीं है, ताकि वह गिरफ्तारी पूर्व

जमानत का आदेश प्राप्त करने के लिए न्यायालय से संपर्क कर सके।

25. इसलिए, प्रारंभिक आपत्ति का दूसरा अंग, कि प्रार्थीगण की गिरफ्तारी की कोई वास्तविक आशंका नहीं है, को भी खारिज कर दिया गया है।

26. प्रार्थनापत्र पर उसके गुण- दोष के आधार पर विचार किया जाना अपेक्षित है।

27. जैसा कि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रार्थना की है, प्रतिशपथपत्र दायर करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया जाता है। इसके बाद एक सप्ताह का समय आवेदक को प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने के लिए उपलब्ध होगा, यदि वह ऐसा चाहता है।

28. इस वाद को दिनांक 04.09.2023 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध करें।

29. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वर्ष 2019 में दर्ज शिकायत में 200 करोड़ रुपये के गबन का आरोप लगाया गया है; यह कि जांच के बाद, एसआईटी ने पाया कि विचाराधीन संस्थानों के छात्रों को छात्रवृत्ति का कुल वितरण 58 करोड़ रुपये था; यह कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में दो छात्रों के संबंध में लगभग 2.25 लाख रुपये की छात्रवृत्ति के गलत तरीके से आहरण का आरोप लगाया गया है; यह कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह राशि वास्तव में छात्रों को बैंक-ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान की गई थी और जब छात्रों ने प्रश्नगत संस्थान में अपना अध्ययन जारी नहीं रखा, तो विभाग को राशि वापस कर दी गई; यह कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए कथनों के अनुसार, जांच पहले ही पूरी हो चुकी है और सभी दस्तावेजी और अन्य साक्ष्य पहले ही एकत्र किए जा चुके हैं, और प्रार्थीगण शैक्षणिक संस्थान चलाने वाली सोसाइटी के अध्यक्ष और संस्थान के कार्यालय सचिव हैं और उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और संस्थान के रजिस्ट्रार को इस न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत दी गई है। मेरा विचार है कि वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थनापत्र के अंतिम निस्तारण तक प्रार्थी भी अंतरिम अग्रिम जमानत दिए जाने का अधिकारी हैं। इस प्रकार, एक अंतरिम उपाय के रूप में, यह निर्देश दिया जाता है कि सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक, विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रार्थीगण की गिरफ्तारी/उपस्थिति की स्थिति में, उन्हें उपरोक्त मुकदमा अपराध में, एक व्यक्तिगत बंधपत्र और समान राशि के दो प्रतिभू प्रस्तुत करने पर, संबंधित थाना प्रभारी / न्यायालय की निम्नलिखित शर्तों पर संतुष्टि एवं विचारण न्यायालय द्वारा निश्चित की जाने वाली अन्य शर्तों पर अंतरिम अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा:-

(i) प्रार्थी अन्वेषण में सहयोग करेगा।

(ii) प्रार्थी मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का प्रकटीकरण करने से रोका जा

सके अथवा साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ न की जा सके;

(iii) प्रार्थी न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) प्रार्थी प्रत्येक नियत तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

(2023) 8 ILRA 683

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1835 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438, सीआर.पी.सी.)

मो. अदीब अहमद ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

अभिषेक श्रीवास्तव, विनय कुमार वर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

जी.ए. , अश्विनी कुमार द्विवेदी

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3), 482 और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354, 420, 467, 468, 471, 504 और 506 - पंजीकरण अधिनियम, 1908- धारा 58- अग्रिम जमानत आवेदन - एफआईआर - छल , कूट-रचना, आपराधिक अभित्रास और महिला पर हमले का अपराध - निर्दोषता और कानूनी प्रावधानों के दुरुपयोग का दावा करते हुए अग्रिम जमानत मांगी गई थी - न्यायालय ने पाया कि, यह स्थापित कानून है कि समानता का सिद्धांत जमानत आवेदन की अस्वीकृति या अग्रिम जमानत आवेदन पर लागू नहीं होता है - इसके अलावा, उपरोक्त सह-अभियुक्त की अग्रिम जमानत अर्जी को खारिज करते समय समन्वय पीठ ने मामले के उपरोक्त पहलुओं पर विचार नहीं किया है - अभिनिर्धारित किया गया कि, न्यायालय समानता के आधार पर आवेदक की अग्रिम जमानत अर्जी को खारिज करने के लिए इच्छुक नहीं है - मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और कोई भी टिप्पणी किए बिना जो मामले के परिणाम को प्रभावित कर सकती है, न्यायालय का मानना है कि आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए मामला बनाने के लिए उपरोक्त तथ्य पर्याप्त हैं - तदनुसार, अग्रिम जमानत अर्जी को अनुमति दी जाती है। (पैरा - 15, 16, 17, 18)

आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. ईश्वर दास जैन बनाम सोहन लाल, (2000) 1 एससीसी 434

2.कमलेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1822

3. के.एस. विद्यानदम बनाम वैरावन, (1997) 3 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक श्रीवास्तव, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजीव कुमार वर्मा, तथा सूचक की ओर से अधिवक्ता श्री अश्विनी कुमार द्विवेदी का पक्ष रखते हुए श्री सुधीर कुमार पाण्डेय उपस्थित हुए तथा वकालतनामा दाखिल किया, जिसे रिकार्ड में लिया गया।

2. यह तात्कालिक आवेदन आवेदक द्वारा पुलिस स्टेशन कोतवाली सिटी, जिला हरदोई में पंजीकृत धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 354 आई.पी.सी. के तहत प्राथमिकी अपराध संख्या 897/2019 में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए दायर किया गया है।

3. उपरोक्त वाद दिनांक 17.12.2019 को चार व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी के आधार पर पंजीकृत किया गया है, जिसमें आवेदक भी शामिल है, जो धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत एक आवेदन के आधार पर दर्ज किया गया है, जिसमें कहा गया है कि सूचक और उसकी बेटी ने सह-अभियुक्त महमूद आलम को 45,00,000/- रुपये के सहमत विचार हेतु एक अचल संपत्ति बेचने के लिए सहमति व्यक्त की थी। महमूद आलम ने दिनांक 12.06.2019 को एक चेक के माध्यम से 10,00,000/- रुपये का भुगतान किया और राशि प्राप्त होने के बाद, दिनांक 16.06.2019 को संपत्ति की बिक्री के संबंध में पंजीकृत समझौता किया गया था, लेकिन सूचक को समझौते की सामग्री को पढ़ने की अनुमति नहीं दी गई थी और रजिस्ट्रार द्वारा केवल इतना ही पूछा गया था कि क्या उसे 10,00,000/- रुपये की बयाना राशि मिली है। जब सह-अभियुक्त महमूद आलम ने बिक्री प्रतिफल की शेष राशि का भुगतान नहीं किया, तो सूचक ने उसी संपत्ति को 48,00,000/- रुपये के उच्च बिक्री प्रतिफल पर बेचने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के साथ एक और समझौता किया और उसने उसी संपत्ति के संबंध में दिनांक 18.08.2019 को बिक्री विलेख निष्पादित किया। प्राथमिकी में आरोप है कि अगले ही दिन यानी दिनांक 19.08.2019 को आवेदक सहित अन्य अभियुक्तों, जो सह-अभियुक्त महमूद आलम के पुत्र हैं, ने सूचक और उसकी बेटी को धमकाया और दुर्व्यवहार किया। प्राथमिकी में उल्लेख है कि दिनांक 21.08.2019 को सूचक ने जनसुनवाई पोर्टल पर एक ऑनलाइन शिकायत दर्ज कराई थी, लेकिन सदर चौकी प्रभारी ने एक गलत रिपोर्ट प्रस्तुत की और शिकायत का निपटारा कर दिया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदन के समर्थन में दाखिल हलफनामे के पैरा 22 में यह कहा गया है कि सह-अभियुक्त महमूद आलम ने पहले ही

अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए मूल वाद संख्या 190/2019, विद्वान सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग), हरदोई के न्यायालय में वाद दायर किया है और धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन उक्त वाद दायर करने के पांच दिन बाद सूचक द्वारा दायर किया गया था।

5. अग्रिम जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में यह तर्क दिया गया है कि आवेदक निर्दोष है, उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और उसे वर्तमान वाद में झूठा फंसाया गया है।

6. विद्वान ए.जी.ए. ने जमानत के लिए प्रार्थना का इस आधार पर विरोध किया है कि इससे पहले आवेदक ने धारा 482 सी.आर.पी.सी. संख्या 1709/2021 के तहत एक आवेदन दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जिसका निपटारा कर दिया गया था और आवेदक के लिए यह खुला छोड़ दिया गया था कि वह 30 दिनों के भीतर जमानत के लिए आवेदन करे और यह निर्देश दिया गया था कि प्रार्थना पर विचार किया जाएगा और कानून के अनुसार निर्णय लिया जाएगा। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि चूंकि आवेदक ने विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया है, इसलिए उसकी अग्रिम जमानत पर विचार नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सभी आरोपियों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट पहले ही जारी किया जा चुका है, हालांकि विद्वान ए.जी.ए. के निर्देशों में वारंट जारी करने की तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है।

7. **कमलेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1822,** राजस्थान उच्च न्यायालय जोधपुर द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ दायर एक अपील थी, जिसमें अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत प्राथमिकी को रद्द करने की प्रार्थना करने वाली याचिका पहले ही खारिज हो चुकी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

> *"5. हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता। उच्च न्यायालय को आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार करना चाहिए था। तथ्य यह है कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत याचिका को खारिज कर दिया गया था, यह निर्णायक नहीं था और आवेदन को खारिज करने का कारण नहीं हो सकता।"*

8. इसलिए, आवेदक द्वारा धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत दायर आवेदन को खारिज करना उसकी अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करने का आधार नहीं होगा और आरोपों की प्रकृति और जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है, सहित सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए आवेदन पर विचार किया

जाना चाहिए और उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए।

9. प्राथमिकी में लगाए गए आरोप हैं कि सूचक ने दिनांक 16.06.2019 को आवेदक के पिता - सह-अभियुक्त महमूद आलम को अपनी संपत्ति बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौता किया था। वह दावा करती है कि उनकी समझ के अनुसार क्रेता को शेष बिक्री मूल्य का भुगतान करने के लिए एक महीने का समय दिया गया था, जबकि समझौते में उल्लिखित अवधि एक वर्ष है। हालाँकि, सूचना देने वाली महिला अनपढ़ नहीं है और उसने समझौते पर हस्ताक्षर किए थे और उसे उप-पंजीयक के समक्ष प्रस्तुत किया था, जिसने सूचना देने वाली महिला द्वारा समझौते के निष्पादन की स्वीकृति और उसके द्वारा प्रतिफल की प्राप्ति की स्वीकृति के संबंध में भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 58 के तहत अपेक्षित समर्थन किया था। **ईश्वर दास जैन बनाम सोहन लाल, (2000) 1 एससीसी 434** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पंजीकरण अधिनियम की धारा 58 के तहत उप-पंजीयक द्वारा किए गए समर्थन की शुद्धता की उपधारणा है।

10. अतः प्राथमिकी में लगाए गए आरोप कानून के प्रावधानों के विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

11. सूचक का दावा है कि जब सह-अभियुक्त महमूद आलम ने उसे बिक्री मूल्य की शेष राशि का भुगतान नहीं किया, तो उसने दिनांक 18.08.2019 को किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में विचाराधीन संपत्ति का विक्रय विलेख निष्पादित किया। सूचक ने दिनांक 16.06.2019 को पंजीकृत समझौते के तहत अपने दायित्वों के निर्वहन की मांग करते हुए क्रेता को कोई नोटिस नहीं भेजा। यदि सूचना देने वाली महिला को इस बात की गलतफहमी थी कि शेष राशि के भुगतान के लिए समझौते में एक वर्ष की अवधि निर्धारित की गई है, तो भी वह न्यायालय से इसे रद्द करने की मांग किए बिना पंजीकृत समझौते को अनदेखा नहीं कर सकती थी। **के.एस. विद्यानदम बनाम वैरावन, (1997) 3 एससीसी 1** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के इस सुस्थापित सिद्धांत की पुनः पुष्टि की है कि अचल संपत्ति से संबंधित बिक्री के समझौते के मामले में, समय अनुबंध का सार नहीं है जब तक कि इस आशय का विशेष प्रावधान न किया गया हो।

12. सूचक ने अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन या अनुबंध को रद्द करने के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की है और उसने पंजीकृत अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन करते हुए बिना उसे रद्द किए ही बिक्री विलेख निष्पादित कर दिया है। सूचक ने आवेदक के पिता द्वारा दिनांक 16.06.2019 को किए गए अनुबंध के तहत भुगतान की गई 10,00,000/- रुपये की राशि भी वापस नहीं की है।

13. उपरोक्त तथ्यों से प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि सूचना देने वाली महिला ने स्वयं ही एक दीवानी अपराध किया है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह क्रेता और उसके बेटों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करके कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रही है। प्राथमिकी से

ही स्पष्ट उपरोक्त तथ्य आवेदक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए निश्चित रूप से इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करते हैं।

14. यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्राथमिकी में कहा गया है कि पुलिस ने जनसुनवाई पोर्टल पर सूचक द्वारा दर्ज की गई पूर्व शिकायत के अनुसरण में जांच की थी और प्राथमिकी दर्ज किए बिना ही उसका निपटारा कर दिया था, जो पुलिस द्वारा अपनाया गया सही कदम प्रतीत होता है।

15. सूचक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सह-अभियुक्त मोहम्मद मुजम्मिल अहमद की अग्रिम जमानत याचिका को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 340/2022 में पारित आदेश दिनांक 21.04.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

16. जहां तक सह-अभियुक्त मोहम्मद मुजम्मिल अहमद की अग्रिम जमानत याचिका खारिज करने का सवाल है, यह स्थापित कानून है कि समानता का सिद्धांत जमानत याचिका की अस्वीकृति या अग्रिम जमानत आवेदन पर लागू नहीं होता है। इसके अलावा, उपर्युक्त सह-अभियुक्त की अग्रिम जमानत याचिका खारिज करते समय समन्वय पीठ ने मामले के उपरोक्त पहलुओं पर विचार नहीं किया है। इसलिए मैं समानता के आधार पर आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका खारिज करने के लिए इच्छुक नहीं हूं।

17. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और मामले के परिणाम को प्रभावित करने वाली कोई भी टिप्पणी किए बिना, मेरा विचार है कि उपरोक्त तथ्य आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए पर्याप्त हैं।

18. उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक - **मोहम्मद अदीब अहमद** की अग्रिम जमानत याचिका **स्वीकार** की जाती है। उपरोक्त मामले में आवेदक की गिरफ्तारी / थानाध्यक्ष / विचारण न्यायालय के समक्ष पेश होने की स्थिति में, उसे थानाध्यक्ष / संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक मुचलका और दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 687

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 2611 वर्ष 2023

माता फेर रावत ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

अविनाश कुमार श्रीवास्तव, सुनील कुमार यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत)

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (POCSO) अधिनियम, 2012 - धारा 5 और 6 -जमानत आवेदन - एफआईआर - बलात्कार का अपराध - आरोप पत्र - जमानत आवेदन - दलील दी गई कि, 2 साल की बच्ची जब खाट पर सो रही थी, उसके गुप्तांग पर लोहे की कील से चोट लग गई थी और यह बलात्कार का मामला नहीं है - यौन हमले की कोई राय नहीं - अभियोजन का मामला मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं है - अभिनिर्धारित, रिकॉर्ड का अवलोकन करने और आरोपों की प्रकृति, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार पीड़िता का गुप्तांग फट गया था और योनि से रक्तस्राव पाया गया था, सारांश डिस्चार्ज रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि पीड़िता के गुप्तांग पर गंभीर चोटें आई थीं, इसीलिए उसे सर्जरी के लिए रेफर किया गया था, अपराध बहुत गंभीर प्रतीत होता है क्योंकि लगभग 20 महीने की बच्ची जो अकेले सो रही थी, उसके साथ आवेदक ने बलात्कार किया था और पीडब्लू 1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 के बयानों में केवल मामूली विरोधाभास आवेदक की मदद नहीं करेगा, न्यायालय इसे जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं पाती है - तदनुसार, जमानत आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 10)

जमानत आवेदन निस्तरित। (ई-11)

1. यह दूसरा जमानत आवेदन है

2. माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद फ़ैज़ आलम खान द्वारा अभियोजन के अभाव में आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 14242/2021 में आदेश दिनांक 05.09.2022 द्वारा आवेदक की प्रथम जमानत अर्जी खारिज कर दी गई।

3. आरोपी-आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अविनाश कुमार श्रीवास्तव और साथ ही राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.-I श्री राजेश कुमार सिंह के सहायक ब्रीफ होल्डर सुश्री दिव्या वर्मा को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

4. यह जमानत याचिका आरोपी/आवेदक **माता फेर रावत** की जमानत पर रिहाई की मांग करते हुए दायर की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 070/2020,अन्तर्गत धारा 376 आई.पी.सी. व 5/6 पॉक्सो एक्ट, थाना हैदरगढ़, जनपद बाराबंकी में शामिल है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पीड़िता के दादा द्वारा दर्ज कराई गई थी और किसी ने भी पीड़िता के साथ बलात्कार की घटना को नहीं देखा था। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि 2 वर्ष की नवजात बच्ची को खाट पर सोते समय लोहे की कील से उसके गुप्तांग पर चोट लगी थी और यह बलात्कार का मामला नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत

किया है कि मेडिकल रिपोर्ट से पता चलता है कि डॉक्टर द्वारा यौन उत्पीड़न की कोई राय नहीं दी गई है और बलात्कार की कोई निश्चित राय नहीं दी गई है और पीड़िता के शरीर पर कोई शुक्राणु भी नहीं पाया गया है, इसलिए अभियोजन पक्ष का मामला मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित भी नहीं है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पीड़िता को गुदा भाग की सर्जरी के लिए केजीएमयू अस्पताल में भेजा गया था और यह इंगित करता है कि बलात्कार नहीं किया गया था। उन्होंने कोर्ट का ध्यान पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2, पी.डब्लू.-3 के बयान की ओर आकर्षित किया। पी.डब्ल्यू.-1 यानी पीड़िता की मां ने कहा है कि संदेह के आधार पर उसने आवेदक के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई है और इसी तरह के बयान पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 ने भी कोर्ट के सामने दिए हैं। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक के खिलाफ कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 26.02.20*अस्वीकरण:*

*अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए,निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा /*20 से जेल में है।

6. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए.-I श्री राजेश कुमार सिंह ने तर्क दिया है कि मृतक के दादा ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी जिसमें उल्लेख किया गया था कि उनकी पोती सौम्या उम्र लगभग 2 वर्ष अकेली सो रही थी और आवेदक ने उसके साथ बलात्कार किया था। जिसके कारण उसके प्राइवेट पार्ट में खून बहने लगा। विद्वान ए.जी.ए. ने आगे प्रस्तुत किया कि मेडिकल रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि पीड़िता का हाइमन हाल ही में टूटा और फटा हुआ था और योनि से रक्तस्राव के साथ-साथ योनि की दीवार भी फट गई थी।

7. विद्वान ए.जी.ए. ने बाल चिकित्सा विभाग द्वारा दी गई डिस्चार्ज समरी की ओर ध्यान आकर्षित किया है और जो निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं वे इस प्रकार हैं:

(i) पूर्ण आंतरिक मलाशय दीवार का फटना, जो गुदा छिद्र तक फैला हुआ है

(ii) फोरचेट टियर

(iii) पोस्टीरियर वैगिनल वाल की दो तिहाई डिस्टल टियर

(iv) एनल स्पिनस्टर के आंतरिक एवं बाह्य टियर

8. राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने अदालत का ध्यान पी.डब्लू.-1 राम सनेही के बयान की ओर आकर्षित किया है, जिन्होंने अदालत के समक्ष गवाही दी है कि दिन के 2 बजे थे, उन्होंने खाना खाया था और आवेदक माता फेर खाना लेने के लिए दूसरे घर में गये थे, जहां उनकी पोती अकेली सोयी हुई थी। प्रार्थी ने खाना नहीं खाया और उसने उसकी पोती के साथ दुष्कर्म किया। जब पीड़िता ने शोर मचाया तो पीड़िता के परिजन घटना स्थल पर पहुंचे और जैसे ही परिजन पहुंचे, प्रार्थी घटना स्थल

से भाग गया और पी.डब्ल्यू.-1 और उसके परिवार के सदस्यों ने देखा कि पीड़िता का प्राइवेट पार्ट से खून बह रहा था। विद्वान ए.जी.ए.-आई ने अदालत का ध्यान पी.डब्ल्यू.-2 यानी मृतक की मां और पी.डब्ल्यू.-3 यानी मृतक के पिता के बयान की ओर आकर्षित किया है और सभी गवाहों ने अपने मुख्य परीक्षण में एक ही तथ्य बयान किया है और अपनी जिरह में, उन्होंने अपने तथ्यात्मक बयान को पुख्ता किया है जो उनके द्वारा अपने मुख्य परीक्षण में सुनाया गया था।

9. राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने आगे प्रस्तुत किया है कि यह एक जघन्य अपराध है और आवेदक द्वारा 20 महीने की एक शिशु के साथ क्रूरतापूर्वक बलात्कार किया गया था और इसमें कोई संदेह नहीं है और कोई कारण नहीं है कि आवेदक को वर्तमान मामला में झूठा क्यों फंसाया जाएगा। प्रार्थी पीड़िता के घर आया था जो अकेली सो रही थी और उसके द्वारा दुष्कर्म किया गया। चूंकि आवेदक ने जघन्य अपराध किया है, इसलिए वह न्यायालय की दया का पात्र नहीं है, अत: आवेदक की जमानत अर्जी खारिज किये जाने के योग्य है।

10. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, रिकॉर्ड का अवलोकन करते हुए और आरोपों की प्रकृति, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि मेडिकल रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि पीड़िता का प्राइवेट पार्ट फट गया था और योनि से खून बहता पाया गया है, समरी डिस्चार्ज रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि पीड़िता के प्राइवेट पार्ट पर गंभीर चोटें आई थीं, इसीलिए उसे सर्जरी के लिए रेफर किया गया था, अपराध बहुत गंभीर प्रतीत होता है क्योंकि लगभग 20 महीने की बच्ची जो अकेले सो रही थी, उसके साथ बलात्कार किया गया आवेदक और इसमें केवल मामूली विरोधाभास पी.डब्लू.1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 के बयानों से आवेदक को मदद नहीं मिलेगी, इस प्रकार, मुझे यह जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता है।

11. अभियुक्त/आवेदक **माता फेर रावत** की जमानत अर्जी एतद्द्वारा अस्वीकार किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 689

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 3370 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 सी.आर.पी.सी.)

कंवर पाल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

श्री इंद्रपाल सिंह तोमर, सुश्री अंजलि सिंह तोमर

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

जी.ए., श्री कुलदीप सिंह तोमर

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3) और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 324, 326, 307 और 504- अग्रिम जमानत के लिए आवेदन - एफआईआर इस अभियोग के साथ दर्ज की गई थी कि आवेदक और सह-अभियुक्तों ने फसलों को नष्ट कर दिया था और बाद में सूचनादाता और उसके भाई पर गोली चलाई, जिससे उन्हें गंभीर चोटें आईं - सह-अभियुक्त के साथ समानता का दावा किया गया, जिसे अंतरिम संरक्षण दिया गया है - न्यायालय ने पाया कि, एक क्रॉस एफआईआर थी जो अभियोजन पक्ष के इस आरोप को पुष्ट करती है कि आवेदक घटनास्थल पर मौजूद था - आवेदक का मामला निजी प्रतिरक्षा के अधिकार का नहीं है - अभिनिर्धारित, आवेदक इस आधार पर सही नहीं है कि सह-अभियुक्त के अग्रिम जमानत आवेदन को दिनांकित आदेश के तहत स्वीकृत करते हुए जांच लंबित रहने तक अंतरिम उपाय के रूप में अग्रिम जमानत दी गई थी और उक्त अग्रिम जमानत आवेदन को न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा निष्फल मानते हुए खारिज कर दिया गया है - न्यायालय इस मामले में अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं पाती है - तदनुसार, अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 13, 14)

आवेदन अस्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. सुब्रमणि और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य रिपोर्टेड इन (2002) 7 एससीसी 210

2. शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिपोर्टेड इन एआईआर ऑनलाइन 2021 इलाहाबाद 484

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्र पाल सिंह तोमर और सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कुलदीप सिंह तोमर के साथ-साथ राज्य के ए.जी.ए. को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. अग्रिम जमानत के लिए वर्तमान प्रार्थना पत्र एफआईआर/मुकदमा अपराध संख्या 262 वर्ष 2022 के संबंध में, थाना- खतौली, जिला- मुजफ्फर नगर आईपीसी की धारा 147, 148, 149, 307 और 504 के तहत सुरक्षा के लिए दायर की गयी है।

3. शुरुआत में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने सह-आरोपी नितिन राठी के साथ समानता का दावा किया है, जिसे इस न्यायालय की एक अन्य पीठ द्वारा आपराधिक विविध अग्रिम जमानत अंतर्गत धारा 438 सीआर.पी.सी. आवेदन संख्या 3367 वर्ष 2023 के तहत पारित आदेश दिनांक 4.4.2023 द्वारा अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया है।

4. दूसरी ओर, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त प्रस्तुतिकरण का इस

आधार पर जोरदार विरोध किया है कि आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है क्योंकि सह-आरोपी नितिन राठी की अग्रिम जमानत याचिका को दिनांक 31.05.2023 के आदेश के तहत निरर्थक मानते हुए खारिज कर दिया गया था।

<u>अभियोजन का कथानक:</u>

अभियोजन के कथानक के अनुसार, सह-आरोपी व्यक्तियों, चरण सिंह, सोपाल और सुखपाल ने सूचनाकर्ता और उसके पड़ोसियों राकेश और विक्की के खेत की गन्ने की फसल को अपने ट्रैक्टर से जोतकर नष्ट कर दिया था। मामले की सूचना वरिष्ठ अधिकारियों को दी गई। इसके बाद, 27.5.2022 को लगभग 06:30 बजे, आवेदक सह-आरोपी व्यक्तियों चरण सिंह, सोपाल, सुखपाल और नितिन के साथ अपने ट्रैक्टर के साथ सूचनाकर्ता के खेत में आया और फिर से जुताई शुरू कर दी। सूचनाकर्ता और उसके भाई रूपेंद्र कुमार ने उन्हें ऐसा करने से परहेज करने के लिए कहा, जिस पर आवेदक और सह-आरोपी नितिन ने उन पर कट्टे से गोलियां चलाईं, जो वे ले आये थे, साथ ही उन्हें गालियां भी दीं, जिससे रूपेंद्र (सूचनाकर्ता के भाई) को गंभीर चोटें आईं। सूचनाकर्ता के शोर मचाने पर गांव वाले वहां पहुंचे और सूचनाकर्ता व उसके भाई को बचा लिया। सूचनाकर्ता रूपेंद्र कुमार के भाई को इलाज के लिए खतौली के सरकारी अस्पताल ले जाया गया और जिला अस्पताल मुजफ्फरनगर रेफर कर दिया गया। मुजफ्फरनगर में अपने भाई को भर्ती करने के बाद, सूचनाकर्ता ने उसी दिन दोपहर 12:10 बजे एफआईआर दर्ज कराई।

<u>प्रतिद्वंद्वी विवाद</u>

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि वर्तमान एफआईआर का एक क्रॉस वर्जन है जिसे बाद में घटना की उसी तारीख और समय के बारे में 20.08.2022 को एफआईआर संख्या 419 वर्ष 2022 में संस्थित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि इस समय, यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि कौन सा पक्ष हमलावर था, इसलिए, आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि आवेदक 55 वर्ष का व्यक्ति है और सह-अभियुक्तों में से एक चरण सिंह, जो उसके पिता हैं, की आयु 78 वर्ष है, इसलिए वह इस आधार पर भी अग्रिम जमानत का हकदार है।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि आघात रिपोर्ट नकली है और सूचनाकर्ता द्वारा निर्मित की गई है क्योंकि बाद में एक और घायल को जोड़ा गया है। रूपेंद्र कुमार की चोट की रिपोर्ट फर्जी है क्योंकि उसके द्वारा सहे गए दो कटे-फटे घाव हैं जो इस प्रकार हैं: -

"(i) एल/डब्लू आकार 15 x 12 सेमी दाहिनी लोअर बैक के पार्श्व पहलू पर आरटी इलियाक शिखा के ठीक ऊपर। रक्तस्राव मौजूद, गहराई की जांच नहीं की गई, मांसपेशियों और नरम ऊतक उजागर (केयूओ), एक्स-रे एलएस रीढ़ एपी / पार्श्व और चोट की प्रकृति, गहराई और इस्तेमाल किए गए हथियार के प्रकार के लिए सर्जन की राय, एक्स-रे पीबीएच एपी व्यू।

(ii) एल/डब्ल्यू आकार 3 x 0.5 सेमी, खोपड़ी तक गहरी खोपड़ी 12' ओ घड़ी की स्थिति के खोपड़ी के आरटी पार्श्विका क्षेत्र पर।

8. रेडियोलॉजिस्ट ने बताया कि धातु घनत्व के चर आकार के कई रेडियो अपारदर्शी छाया आरटी इलियाक क्षेत्र में देखे गए हैं। सही इलियाक शिखा हड्डी का फ्रैक्चर। पूरक रिपोर्ट में चोट संख्या 1 गंभीर प्रकृति की पाई गई थी। सर्जरी की गई और बाहरी निकायों को हटा दिया गया।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि सूचनाकर्ता ने उत्पत्ति को दबा दिया है क्योंकि उसने बाद में एक कहानी गढ़ी थी कि रूपेंद्र कुमार के शरीर पर रेडियो अपारदर्शी छाया देखी गई थी। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने *(2002) 7 एससीसी 210* में प्रकाशित *सुब्रमणि और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य* में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर बहुत भरोसा किया है, जिसके तहत अपील की अनुमति दी गई थी और उसमें अपीलार्थीगण को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया था। उक्त निर्णय के ऑपरेटिव पैरा निम्नानुसार पढ़े गए हैं: -

"29. एक बार जब यह माना जाता है कि अपीलार्थीगण ने निजी रक्षा के अपने अधिकार का उल्लंघन नहीं किया है, तो इसे तार्किक रूप से पालन करना चाहिए कि उन्हें धारा 324 और 326 आईपीसी के तहत कम अपराधों के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि उसी लेनदेन में और निजी बचाव के अपने अधिकार के प्रयोग में उन्होंने अभियोजन पक्ष के कुछ गवाहों को चोट पहुंचाई थी।

30. परिणाम में, इस अपील की अनुमति दी जाती है और अपीलार्थीगण को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया जाता है। अपीलार्थीगण को तत्काल रिहा कर दिया जाएगा जब तक कि किसी अन्य मामले में आवश्यक न हो।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सामान्य आरोप हैं और सह-अभियुक्त नितिन राठी को पहले ही अग्रिम जमानत दी जा चुकी है।

11. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ एजीए ने आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका का इस आधार पर जोरदार विरोध किया है कि सह-आरोपी नितिन राठी की अग्रिम जमानत याचिका को दिनांक 31.5.2023 के आदेश के तहत निरर्थक मानते हुए खारिज कर दिया गया है। उन्हें दिनांक 4.4.2023 के आदेश के तहत अंतरिम उपाय के रूप में अग्रिम जमानत दी गई थी, लेकिन इसकी पुष्टि नहीं की गई है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चोट की रिपोर्ट इंगित करती है कि चोट संख्या 1 प्रकृति में गंभीर थी। सह-आरोपी सुखपाल के बेटे द्वारा सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर करने के बाद स्थापित क्रॉस-एफआईआर इंगित करती है कि आवेदक और अन्य सह-आरोपी व्यक्ति उस समय घटना स्थल पर मौजूद थे।

12. एफआईआर संख्या 419 वर्ष 2022 का एक स्पष्ट अवलोकन घटना के स्थान पर आवेदक की उपस्थिति की ओर इशारा करता है। विद्वान अधिवक्ता ने *शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* और *एआईआरऑनलाइन 2021 ऑल 484* में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णय पर भी बहुत भरोसा किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि कोई क्रॉस वर्जन है, तो आरोपी व्यक्ति अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं।

<u>निष्कर्ष:</u>

13. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता का पहला तर्क इस आधार पर अच्छा नहीं है कि सह-आरोपी नितिन राठी की अग्रिम जमानत याचिका को 4.4.2023 के आदेश के तहत जांच के लंबित रहने तक अंतरिम उपाय के रूप में अग्रिम जमानत दी गई थी और उक्त अग्रिम जमानत याचिका को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 31.5.2023 के आदेश के तहत निरर्थक मानते हुए खारिज कर दिया है। एफआईआर शीघ्र ही दर्ज की गई क्योंकि सूचनाकर्ता अपने भाई रूपेंद्र कुमार की जान बचाने के लिए दौड़ा था और उसे एक अस्पताल में भर्ती कराया था और फिर उसी दिन प्राथमिकी दर्ज की थी और घायल व्यक्ति रूपेंद्र कुमार की चोट की रिपोर्ट को भी ध्यान में रखा था। क्रॉस एफआईआर अभियोजन पक्ष के आरोप को और मजबूत करती है कि आवेदक घटना स्थल पर मौजूद था।

14. मैंने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित सुब्रमणि (उपरोक्त) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी पढ़ा है और पाया है कि उक्त निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि यह आपराधिक अपील के संबंध में है जिसके द्वारा निजी बचाव के अधिकार का प्रयोग अभियुक्त द्वारा किया गया है। आवेदक का मामला निजी रक्षा के अधिकार का नहीं है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों और सुब्रमणि (उपरोक्त) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और शिवम (उपरोक्त) में पारित इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, मुझे मामले में अग्रिम जमानत देने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं लगता।

16. उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन तदनुसार **खारिज की जाती है।**

(2023) 8 ILRA 692

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 3817 वर्ष 2023

बद्री नारायण तिवारी ...आवेदक

बनाम

प्रवर्तन निदेशक, लखनऊ ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता:

पूर्णेन्दु चक्रवर्ती, शिवांशु गोस्वामी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:
रोहित त्रिपाठी

आपराधिक कानून - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा-439 - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-धारा-3/4- न्यायालय को यह सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं किया है। न्यायालय को बाद में दोषमुक्त करने और दोषसिद्धि के फैसले और विचारण शुरू होने से काफी पहले जमानत देने के आदेश के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखना चाहिए। इस स्तर पर न्यायालय का कर्तव्य साक्ष्यों का बारीकी से मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि व्यापक संभावनाओं के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना है। इसके अलावा, न्यायालय को जमानत दिए जाने के बाद अभियुक्त द्वारा अधिनियम के तहत अपराध करने की संभावना के बारे में निष्कर्ष दर्ज करना आवश्यक है- न्यायालय को जमानत देने के लिए निर्दोषता का निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है- यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि संदेह चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो, वह उचित संदेह से परे सबूत का स्थान नहीं ले सकता।

जमानत आवेदन स्वीकृत. (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय (2018) 11 एससीसी 46

2. विजय मदनलाल चौधरी और अन्य बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 929

3. गोरख नाथ प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (2018) 2 एससीसी 305

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री पूर्णेंदु चक्रवर्ती, और श्री रोहित त्रिपाठी, प्रतिपक्षी-प्रवर्तन निदेशालय (इसके बाद 'ईडी' के रूप में संदर्भित) के अधिवक्ता को सुना।

2. आवेदक द्वारा प्रस्तुत जमानत आवेदन सत्र न्यायाधीश की अदालत/विशेष न्यायालय पी.एम.एल.ए., लखनऊ में सत्र न्यायाधीश/ विशेष न्यायालय पी.एम.एल.ए., लखनऊ में सत्र मामला संख्या 1485/2022 में जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, जो धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के तहत धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002, थाना-प्रवर्तन निदेशालय, जिला लखनऊ के तहत उद्भूत हुआ है।

3. ईडी ने 29.06.2019 को ईसीआईआर/ एलकेजेडओ/05/2019 को पंजीकृत किया जब वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गौतम बुद्ध नगर ने दिनांक 12.02.2019 और 25.04.2019 के बीच मैसर्स गर्वित इनोवेटिव प्रमोटर्स लिमिटेड (जी.आई.पी.एल.) और इसके प्रमोटर श्री संजय भाटी और अन्य अज्ञात व्यक्तियों/संस्थाओं के खिलाफ धारा 406, 420, 467, 468, 471,

506 भ०द०वि० सहित विभिन्न धाराओं के तहत दर्ज वर्ष 25 प्राथमिकी की प्रतियां अग्रेषित की थीं। इस आरोप पर कि उपरोक्त कंपनी ने जनता को अच्छे रिटर्न के वादे के साथ अपनी योजनाओं में निवेश करने का लालच दिया था, लेकिन कंपनी ने अपना वादा पूरा नहीं किया और निवेश की गई राशि भी वापस नहीं की।

आवेदक का नाम उपरोक्त किसी भी प्राथमिकी या ईसीआईआर में आरोपी के रूप में नहीं है।

5. ईडी ने धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (इसके बाद 'पी.एम.एल.ए.' के रूप में संदर्भित) की धारा 50 के तहत आवेदक के बयान 22.10.2019, 23.10.2019 और 20.10.2020 को दर्ज किए।

6. ईडी ने मनोज त्यागी के खिलाफ 17.02.2021 को शिकायत दर्ज की।

7. आवेदक का नाम पहली बार ईडी द्वारा 13.01.2022 को दायर पूरक शिकायत में एक आरोपी व्यक्ति के रूप में शामिल किया गया था, जिसमें कहा गया था कि प्रथमीकियों में कुछ शिकायतकर्ताओं के बयान पी.एम.एल.ए. की धारा 50 के तहत दर्ज किए गए थे और उनके बयानों का सार यह है कि उन्होंने जी.आई.पी.एल. की बाइकबोट योजना में निवेश किया था और कंपनी द्वारा वादा किया गया रिटर्न प्राप्त नहीं किया था।

8. आवेदक को 21.07.2022 को गिरफ्तार किया गया था। मकान संख्या- आवेदक के 6,50,00,000/- रुपए मूल्य के बी-2/138, विजय खंड, गोमती नगर, लखनऊ को ईडी द्वारा जब्त कर लिया गया है।

9. मुख्य आरोपी जी.आई.पी.एल. के प्रमोटर और निदेशक संजय भाटी का बयान 04.11.2019, 22.11.2019 और 23.11.2019 को दर्ज किया गया। उन्होंने कहा कि जी.आई.पी.एल. के गठन के बाद से कारोबार नगण्य था और 2016 तक आय लगभग शून्य थी। कंपनी द्वारा केवल कुछ भूखंड खरीदे गए थे। नवंबर-दिसंबर 2016 में, उन्होंने बाइकबोट नाम के ऐप पर काम करना शुरू किया। 2017 में, उन्होंने बाइक खरीदी और उन्हें बाइक टैक्सी के रूप में पेश किया। उन्होंने कहा कि आवेदक बद्री नारायण तिवारी मोंटू भसीन, अनिल साहा और विजेंद्र हुड्डा के साथ संपत्ति खरीद और विकास के लिए प्रमुख निर्णय निर्माताओं में से एक थे।

10. संजय भाटी ने आगे कहा कि खाता अनुभाग के साथ सभी लेनदेन नोबल सहकारी बैंक की टीम द्वारा देखे गए थे जिसमें वी. के. शर्मा, उनके बेटे गोविंद और अन्य बैंक अधिकारी शामिल थे। वाहनों के संचालन, फ्रेंचाइजी और बाइक के पंजीकरण/डिलीवरी से संबंधित सभी कार्य विजयपाल कसाना द्वारा देखे गए। बाइक खरीदने के लिए प्रारंभिक पूंजी उनके द्वारा निवेश की गई थी और बाद में अन्य लोगों को बाइक में निवेश करने के लिए आमंत्रित किया गया था। हालांकि, बाइक के रजिस्ट्रेशन में दिक्कत आने के कारण उन्होंने कंपनी के अकाउंट में लोगों से पैसे लेने शुरू कर दिए और बाइक खरीदने के बाद उन्हें सेल

लेटर दे दिए। बाइकबोट की निवेश योजनाओं की अवधारणा संजय भाटी, राजेश भारद्वाज, करणपाल सिंह, अतुल ठाकुर और वीरेंद्र मलिक द्वारा जनवरी 2017 से जून 2017 के बीच की गई थी। बाइकबोट निवेशकों से पैसा बैंक खातों के माध्यम से ही लिया गया था। सिस्टम फेल होने की स्थिति में या अगस्त में नोबल बैंक के कदम रखने के बाद कैश भी स्वीकार किया जाता था। हालांकि, भुगतान केवल बैंक खातों के माध्यम से किया गया था। कंपनी में कैश काउंटर केवल नोबल बैंक के कर्मचारियों द्वारा संभाला जाता था। जी.आई.पी.एल. से जुटाई गई नकदी को नोबल बैंक और ग्रैंड वेनिस मॉल में स्थानांतरित किया गया, जहां से इसे नोबल बिल्डटेक, ग्रैंड वेनिस और साहा की परियोजनाओं में निवेश किया गया। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक को दो मौकों पर नकद दिया गया था।

11. आवेदक के बारे में, संजय भाटी ने कहा कि आवेदक, अतुल मिश्रा, मनोज त्यागी और विजेंद्र हुड्डा ने उन्हें नोबल को-ऑप. बैंक के प्रबंध निदेशक और सी.ई.ओ. वी.के शर्मा से नोबल को-ऑप. बैंक को 50 करोड़ रुपये में बेचने के लिए मिलवाया था। भुगतान के संबंध में निर्णय आमतौर पर वी.के शर्मा, विजेंद्र हुड्डा, मनोज त्यागी और आवेदक द्वारा लिए जाते थे।

12. संजय भाटी ने कहा कि बाइकबोट में लगभग 1,70,000 निवेशक थे जिन्होंने लगभग 2,800 करोड़ रुपये का भुगतान किया था और लगभग 1800-2000 करोड़ रुपये उन्हें वापस कर दिए गए थे और लगभग 10,000 बाइक खरीदी गई थीं। ई-बाइक को 11.01.2019 को नई दिल्ली में लॉन्च किया गया था और आवेदक भी उस समय मौजूद था। संजय भाटी ने आगे बताया कि अकाउंटेंट चौहान और सी.ए की टीम बलवंत को रिपोर्ट करती थी। जीपीएस, ऐप डेवलपमेंट, कस्टमर केयर, बाइक ऑपरेशंस आदि तकनीकी पहलुओं को तरुण शर्मा द्वारा देखा गया। संपत्ति विकास और खरीद की देखभाल अनिल साहा, बी एन तिवारी (आवेदक), विजेंद्र हुड्डा और मोंटू (सतिंदर) भसीन आदि द्वारा की गई थी।

13. बाइकबोट के लाभ मॉडल के संबंध में, संजय भाटी ने दावा किया कि प्रत्येक बाइक पर, कंपनी पंजीकरण, सामान, बीमा आदि को पूरा करने के बाद भी 12,000 / इसके अलावा, एक साल बाद, बाइक कंपनी की संपत्ति बन जाएगी। बाइक के लिए किराया योजना पहले किमी के लिए रु.10/- से शुरू हुई और बाद में रु. 4/- प्रति किमी + यात्रा समय के लिए रु.1/- प्रति मिनट और प्रतीक्षा समय के लिए रु.1/- प्रति मिनट अतिरिक्त।

14. मनोज कुमार त्यागी के बयान 29.08.2019, 30.08.2019, 12.03.2020 और 04.09.2020 को पी.एम.एल.ए. की धारा 50 के तहत दर्ज किए गए थे, जिसमें उन्होंने कहा था कि वह 05.01.2016 से 15.12.2018 तक इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड में अतिरिक्त निदेशक थे। वह समेकित वेतन के आधार पर मैसर्स पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड और प्रेमा सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड के साथ भी काम कर रहे थे। इसके अलावा, वह पाइमेक्स प्लास्टिक (पी) लिमिटेड, इंडिपेंडेंट टीवी

लिमिटेड, ए-वन न्यूज, न्यूज चैनल पिमेक्स ब्रॉडकास्ट प्राइवेट लिमिटेड, टाइम ब्रॉडकास्ट प्राइवेट लिमिटेड, पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड, प्रेमा सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, पिमेक्स ब्रॉडकास्ट (पी) लिमिटेड, आईपीआरओएफ लर्निंग सॉल्यूशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, एथिक्स मीडिया ट्रस्ट (पी) लिमिटेड, मैक्रो कॉमर्स (पी) लिमिटेड में निदेशक थे। वर्ष 2017 में, विजेंदर सिंह ने रिलायंस समूह से पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड के माध्यम से इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड (जिसे पहले रिलायंस बिग टीवी लिमिटेड के नाम से जाना जाता था) का अधिग्रहण किया। वह 05.01.2018 को इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड में अतिरिक्त निदेशक बने। वह 20.01.2015 को मेसर्स पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड में निदेशक बने और दिसंबर-2018 में इस्तीफा दे दिया। विजेंदर सिंह ने संजय भाटी को उनसे मिलवाया था क्योंकि संजय भाटी विजेंदर सिंह की कंपनियों का अधिग्रहण कर रहे थे। विजेंदर सिंह और संजय भाटी ने उन्हें जी.आई.पी.एल. के बारे में बताया। तिवारी से उनकी मुलाकात मार्च 2018 में नोएडा में आईटीवीएल के कार्यालय में हुई थी जहां विजेंदर सिंह को आईटीवीएल के संचालन के लिए धन की जरूरत थी और उन्होंने आवेदक को आईटीवीएल में निवेश करने की पेशकश की थी, लेकिन आवेदक ने तब कोई पैसा निवेश नहीं किया था। बाद में जब संजय भाटी ने विजेंदर सिंह की कंपनियों का अधिग्रहण कर लिया, तो आवेदक ने उन कंपनियों की देखभाल शुरू कर दी और संजय भाटी के इस्तीफा देने के बाद उन पर बहुत नियंत्रण रखा।

15. मनोज त्यागी ने अपने, विजेंदर सिंह, संजय भाटी, सचिन भाटी और कंपनियों पंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड, इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड, प्रेमा सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, पाइमेक्स ब्रॉडकास्ट प्राइवेट लिमिटेड और पिमेक्स प्लास्टिक प्राइवेट लिमिटेड आदि के बीच हुए शेयर खरीद समझौते दिनांक 31.05.2018 की प्रतियां भी प्रस्तुत कीं और उपरोक्त पक्षों के बीच एक समझौता समझौता किया गया, जिससे ईडी को पता चला कि उपरोक्त कंपनियों में सभी शेयरधारिता संजय भाटी और उनके भाई सचिन भाटी को कुल 135.00 करोड़ रुपये के लिए हस्तांतरित कर दी गई थी। विजेंदर सिंह और मनोज त्यागी 15.12.2018 तक इन कंपनियों के निदेशक मंडल में बने रहे। शेयरधारिता के लिए प्रतिफल के भुगतान के संबंध में मतभेद और विवाद थे और पार्टियां दिसंबर-2018 में दिल्ली उच्च न्यायालय में मध्यस्थता के लिए गई थीं और 29.01.2019 को एक सुलह समझौता हुआ था।

16. आवेदक का बयान पी.एम.एल.ए. की धारा 50 के तहत 22.10.2019, 23.10.2019 और 20.03.2020 को दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ कहा था कि मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड ठोस अपशिष्ट प्रबंधन/अपशिष्ट से ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण और संचालन में लगा हुआ था। विजेंदर सिंह ने सितंबर-2018 में आवेदक को संजय भाटी से मिलवाया था और बताया था कि वह संजय भाटी के साथ बिजनेस कर रहे थे और संजय भाटी को तुरंत इलेक्ट्रिक बाइक की जरूरत थी। संजय भाटी ने यह भी कहा था कि दिल्ली और गाजियाबाद में पुवाल और अपशिष्ट पदार्थों को

जलाने के कारण बहुत अधिक प्रदूषण है और वह दादरी में अपने खेतों में एक मिनी पावर प्लांट स्थापित करना चाहते हैं। आवेदक की कंपनी एकॉर्ड हाइड्रोलिक्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा निर्मित की जाने वाली गर्वित ब्रांडेड ई-बाइक की आपूर्ति के संबंध में आवेदक ने संजय भाटी से कई बार बात की थी। ई-बाइक की आपूर्ति के लिए एकॉर्ड हाइड्रोलिक्स और जी.आई.पी.एल. के बीच एक समझौता किया गया था। बायोमास/मल्टी फ्यूल पावर प्लांट की आपूर्ति के लिए जी.आई.पी.एल. और मार्स एनवायरोटेक प्राइवेट लिमिटेड के बीच एक अन्य समझौता किया गया था, जिसके लिए जी.आई.पी.एल. ने मार्स एनवायरोटेक को 3 करोड़ रुपये का भुगतान किया था। उपकरणों की आपूर्ति प्राप्त भुगतान से अधिक की गई थी, लेकिन चूंकि शेष भुगतान प्राप्त नहीं हुआ था, इसलिए आगे आपूर्ति नहीं की गई थी। पिमेक्स प्लास्टिक प्राइवेट लिमिटेड ने मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड के शेयर 5 करोड़ रुपये में खरीदे थे। विजेंदर सिंह ने आवेदक को भरोसा दिलाया था कि आवेदक की कंपनियों के शेयर लेने के बाद वह कारोबार का विस्तार करेंगे और उसे ब्रांड के तौर पर विकसित करने में सहयोग देंगे। विजेंदर सिंह ने आवेदक को निदेशक बनने और स्वतंत्र टीवी लिमिटेड संचालित करने के लिए भी प्रेरित किया था। हालांकि, जब वह 03.04.2020 को पैंटेल टेक्नोलॉजी प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक बने और इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड की आंतरिक ऑडिट रिपोर्ट पढ़ी और कर्मचारियों के साथ चर्चा की, तो उन्हें पता चला कि तीसरे पक्ष को किए गए भुगतान के संबंध में कोई दस्तावेज नहीं थे और कोई भी पैसे वापस नहीं कर रहा था और ऐसी सभी कंपनियां शेल कंपनियां थीं। इसलिए, उन्होंने निदेशक पद से इस्तीफा दे दिया। जब किसी ने विजेंदर सिंह को सूचित किया कि आवेदक ने कंपनियों से इस्तीफा दे दिया है और प्राथमिकी दर्ज करने जा रहा है, तो विजेंदर सिंह ने आवेदक को व्हाट्सएप के माध्यम से फोन किया था और उसे गाली दी थी। इस प्रकरण के बाद विजेंदर सिंह के साथ आवेदक के संबंधों में खटास आ गई। आवेदक की जानकारी के अनुसार विजेंदर सिंह ने माल्टा की नागरिकता ले ली थी और वहां रह रहे थे। आवेदक ने आगे कहा कि विजेंदर सिंह अपनी कंपनियों के शेयर लेना चाहते थे और इसलिए, इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड ने एक समझौते के तहत उनकी कंपनी के खाते में 7.50 करोड़ रुपये जमा किए थे। ब्याज जोड़ने के बाद, कुल 7.70 करोड़ रुपये के शेयरों के शेयर इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड को जारी किए गए और अपेक्षित जानकारी रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज को दी गई। इसके अलावा, उनके, उनके परिवार और आईटीवीएल के बीच कोई अन्य लेनदेन नहीं था। आवेदक ने कहा कि उनके बेटे आईटीवीएल में निदेशक बन गए, लेकिन जब उन्हें सही विवरण नहीं दिया गया, तो उन्होंने केवल 6 घंटे के लिए निदेशक बने रहने के बाद उसी दिन इस्तीफा दे दिया था।

17. आवेदक ने कहा कि वह पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड का निदेशक बन गया, लेकिन जब उसे कंपनी के बारे में पता चला, तो उसने तुरंत केवल 03 घंटे के बाद इस्तीफा दे दिया। उन्होंने विजेंदर सिंह के आश्वासन पर पैंटेल मोबिलिटी हेल्थ प्राइवेट लिमिटेड में निदेशक के रूप में कार्यभार ग्रहण

किया था, लेकिन जब 31.03.2019 की अनंतिम बैलेंस शीट तैयार की गई, तो उन्हें पता चला कि कंपनी लगभग 14-15 करोड़ के घाटे में थी जो बहुत अधिक थी और इसलिए उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

18. ईडी ने पूरक शिकायत में आरोप लगाया है कि आवेदक संजय भाटी का करीबी था और उसका सलाहकार बन गया और जी.आई.पी.एल. से जुड़ा रहा। संजय भाटी के इस्तीफा देने के बाद करनपाल व संजय भाटी के अन्य साथियों से लगातार बातचीत से आवेदक का प्रभाव बढ़ता गया। संजय भाटी के अनुसार, आवेदक जी.आई.पी.एल. की संपत्ति खरीद और विकास के लिए प्रमुख निर्णय निर्माताओं में से एक था। साथ ही जी.आई.पी.एल. कार्यालय में एकत्रित नकदी आवेदक को दो बार दी गई। नोबल कोऑपरेटिव बैंक में खाते खोले जाने के बाद, भुगतान के बारे में निर्णय आमतौर पर वी.के शर्मा, विजेंद्र हुड्डा, मनोज त्यागी और आवेदक द्वारा लिए जाते थे, जो संजय भाटी को उनके हस्ताक्षर के लिए चेक प्रस्तुत करते थे।

19. ईडी ने आगे आरोप लगाया है कि विशेष लेखा परीक्षा आवेदक के कहने पर आयोजित की गई थी, लेकिन उसने केवल टैली डेटा और बैंक लेनदेन विवरण प्रदान किया और उसने ऑडिट के लिए सभी प्रासंगिक दस्तावेज प्रदान नहीं किए।

20. शिकायत में आगे आरोप लगाया गया है कि दिसंबर 2018 के बाद, आईटीवीएल का पूरा प्रबंधन आवेदक द्वारा श्री संजय भाटी के करीबी विश्वासपात्र के रूप में किया जा रहा था। आवेदक को जी.आई.पी.एल. के प्रबंधन द्वारा बाइकबोट की ई-बाइक के लॉन्च इवेंट में, इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड के निवेश सलाहकार और ट्रस्टी और संजय भाटी के नामांकित व्यक्ति के रूप में पेश किया गया था। आईटीवीएल के सभी कर्मचारियों को आवेदक को रिपोर्ट करना था, जो इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड के लिए नए फंड की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी में सक्रिय रूप से भाग ले रहा था।

21. ईडी का तर्क है कि आवेदक के अधिकांश तर्क उसके बयानों में बैंक से रहस्योद्घाटन और कंपनियों के रजिस्ट्रार द्वारा दिए गए आंकड़ों और प्रस्तुत मामले में जांच के दौरान किए गए अन्य व्यक्तियों के दावों के विपरीत हैं। आवेदक ने शुरू में यह छिपाया था कि वह पैंटेल मोबिलिटी हेल्थ प्राइवेट लिमिटेड और इप्रोफ लर्निंग सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड में निदेशक था। ईडी ने आगे तर्क दिया है कि आवेदक का दावा है कि वह सिर्फ एक दिन के लिए इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड में शामिल हुआ था, सच से बहुत दूर प्रतीत होता है।

22. कुल मिलाकर 25 करोड़ रुपये मेसर्स पैंटेल टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड और मेसर्स पिमेक्स ब्रॉडकास्ट प्राइवेट लिमिटेड से मेसर्स मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड को हस्तांतरित किए गए हैं और इसे अनिवार्य रूप से परिवर्तनीय वरीयता शेयरों (सीसीपीएस) के आवंटन के भुगतान के रूप में चित्रित किया गया है, हालांकि आवंटन प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण और हेरफेर की गई है और आवेदक

द्वारा अपनी जांच के दौरान सभी प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए गए हैं। यहां तक कि मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड के शेयरों के मूल्यांकन के लिए चार्टर्ड अकाउंटेंट की नियुक्ति जून-2019 में हुई थी, यानी आवंटन प्रक्रिया समाप्त होने के बहुत बाद। एमसीए फाइलिंग भी बहुत बाद में की गई थी।

ईडी का दावा है कि प्राप्त धन का उपयोग लखनऊ में एक घर और नासिक, महाराष्ट्र में एक बिजली संयंत्र की खरीद के लिए किया गया था। इसके अलावा, धन एक्सल एनर्जी प्राइवेट लिमिटेड नामक एक नई निगमित कंपनी को हस्तांतरित किया गया था और अंततः लखनऊ में एक भूखंड की खरीद के लिए इस्तेमाल किया गया था, जो संजय भाटी और जी.आई.पी.एल. द्वारा उत्पन्न अपराध की आय के अलावा और कुछ नहीं है और आवेदक की सक्रिय मिलीभगत से उसके नियंत्रण में कंपनियों का उपयोग करके लॉन्ड्रिंग की गई थी। ईडी के अनुसार, कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय से प्राप्त आंकड़ों की जांच करने पर यह पाया गया कि आवेदक ने जानबूझकर ऐसी कंपनियों से खुद को अलग कर लिया था ताकि जांच से बचा जा सके।

ईडी का दावा है कि 06.07.2018 को, इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड ने मेसर्स पैंटेल मोबिलिटी हेल्थ प्राइवेट लिमिटेड को 5.00 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए थे। उसी तारीख को एच-67, सेक्टर-63, नोएडा में स्थित अचल संपत्ति के अधिग्रहण के लिए भुगतान के रूप में 2.75 करोड़ रुपये और 2.00 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए गए। यह संपत्ति पुष्पेन्द्र सिंह, जो कंपनी में निदेशक बने रहे, के माध्यम से आवेदक के निर्देश पर मैसर्स सिमको प्रोजेक्ट्स लिमिटेड को बेच दी गई थी और बिक्री प्रभावी होने के तुरंत बाद इस्तीफा दे दिया था।

25. आवेदक के अधिवक्ता श्री. पूर्णेंदु चक्रवर्ती ने प्रस्तुत किया है कि ईडी ने 29.06.2019 को ईसीआईआर पंजीकृत की थी और आवेदक का बयान 22.10.2019, 23.10.2019 और 20.03.2020 को धारा 50 पी.एम.एल.ए. के तहत दर्ज किया गया था, लेकिन उसे हिरासत में नहीं लिया गया था। आवेदक को 26.02.2021 को अनुसूचित अपराधों के संबंध में हिरासत में लिया गया था, और हालांकि आवेदक को 30.01.2022 को दायर पूरक अनुपालन में आरोपी के रूप में नामित किया गया था, जब आवेदक पहले से ही हिरासत में था, ईडी ने उसकी हिरासत की मांग नहीं की। ईडी ने आवेदक को 21.07.2022 को ही हिरासत में लिया, जब उसे 13.07.2022 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी गई थी।

26. श्री. चक्रवर्ती ने प्रस्तुत किया कि सह-आरोपी व्यक्तियों में से एक मनोज त्यागी को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 6190 वर्ष 2022 में पारित दिनांक 26.04.2023 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई है। एक अन्य सह-अभियुक्त विजेंद्र सिंह, जिन्हें पूरक शिकायत में भी आरोपी बनाया गया है, को विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.05.2023 के आदेश के माध्यम से मुख्य आधार पर अग्रिम जमानत दी गई है कि उपरोक्त सह-

अभियुक्त को पी.एम.एल.ए. की धारा 19 के तहत गिरफ्तार नहीं किया गया था। आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक भी समानता के आधार पर जमानत का हकदार है, क्योंकि एक व्यक्ति को अग्रिम जमानत दी गई है और दूसरे व्यक्ति को भी जमानत दी गई है, जबकि आवेदक 21.07.2022 से जेल में बंद है और मुकदमा आज तक शुरू नहीं हुआ है। मुकदमे को पूरा होने में कई साल लगेंगे क्योंकि कई नामजद आरोपी व्यक्ति अभी तक पेश नहीं हुए हैं या उन्हें अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है। जांच अभी भी जारी है। पूरक शिकायत के साथ 5,000 पृष्ठों के दस्तावेज दायर किए गए हैं, जिन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष साबित करने की आवश्यकता है और पूरक शिकायत में 11 गवाहों को नामित किया गया है।

27. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि आवेदक किसी भी बैंक खाते में हस्ताक्षरकर्ता नहीं है और उसे मैसर्स मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड को संचयी अनिवार्य परिवर्तनीय वरीयता शेयर (सीसीसीपीएस) के आवंटन के कारण फंसाया गया है। सीसीसीपीएस इक्विटी शेयर कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 23, 42, 55, 62 (1)(सी) के प्रावधानों के अनुसार प्रदान किए गए हैं, जिसे कंपनी प्रॉस्पेक्टस और जांच नियम 2014 और कंपनी शेयर पूंजी और डिबेंचर नियम 2014 के साथ पढ़ा गया है। सीसीसीपीएस कंपनियों के शेयर पूंजी और डिबेंचर नियम 2014 के नियम 9 के अनुसार कंपनियों के शेयरधारक समझौते के अनुसार जारी किए जा रहे हैं।

28. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यदि सीसीसीपीएस के तहत शेयरों के आवंटन में कोई अनियमितता की गई है, तो वह कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय और एनसीएलटी के अधिकार क्षेत्र में होगी और शेयरों के आवंटन में कोई विसंगति या कोई कर चोरी आवेदक के खिलाफ पी.एम.एल.ए. की कार्यवाही को जन्म नहीं देगी।

29. जमानत आवेदन का विरोध करते हुए, प्रतिपक्षी - प्रवर्तन निदेशालय के अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि प्राथमिकी और परिणामी आरोप-पत्र में आरोप यह था कि गलत काम में शामिल कंपनियों ने कई मनी मल्टीप्लायर योजनाओं के तहत जनता से जमा राशि मांगी और स्वीकार की थी, जिनमें से बाइकबोट योजना सबसे अधिक प्रचारित और लोकप्रिय थी। इस योजना के तहत किसी भी संबंधित संसाधन सृजन और सार्थक व्यवसाय के बिना अवास्तविक और अत्यधिक रिटर्न का वादा किया गया था। अनिवार्य रूप से, यह एक पोंजी स्कीम थी जिसका विफल होना ही था। जब निवेशकों ने रिटर्न की मांग की, तो उन्हें चेक सौंप दिए गए, जिन्हें अस्वीकार कर दिया गया। गवाहों के बयानों के अनुसार, आवेदक संपत्ति खरीद और जी.आई.पी.एल. के लिए प्रमुख निर्णय निर्माताओं में से एक था और उसने जी.आई.पी.एल. कार्यालय में नकदी को विनियोजित किया। आवेदक नोबेल सहकारी बैंक में जी.आई.पी.एल. के खाते से किए गए भुगतान के संबंध में निर्णय लेने में शामिल था। आवेदक के कहने पर एक कंपनी का विशेष ऑडिट किया गया था, जिसने जानबूझकर चार्टर्ड एकाउंटेंट से संबंधित

दस्तावेजों को रोक दिया था, जो इस मामले में गवाह है। दिसंबर, 2018 के बाद, आवेदक ने संजय भाटी की ओर से इंडिपेंडेंट टीवी लिमिटेड के मामलों का प्रबंधन किया।

30. श्री त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि यह प्रदर्शित करने के लिए सबूत हैं कि आवेदक को 19/20.01.2019 को कंपनी के कार्यक्रम में एक निवेश सलाहकार और आईटीवी के ट्रस्टी और श्री संजय भाटी के नामांकित व्यक्ति के रूप में पेश किया गया था। सभी कर्मचारियों को आवेदक को रिपोर्ट करना अनिवार्य था। बैंकिंग रिकार्डों के अनुसार, मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड, जिसका आवेदक निदेशक था, ने भी सीधे ही धन प्राप्त किया था, यद्यपि प्राप्तियों को संचयी अनिवार्य परिवर्तनीय अधिमान शेयरों के आबंटन के लिए भुगतान के रूप में चित्रित करके मध्यवर्ती लेन-देन का हिस्सा दर्शाया गया था। इस प्रकार आवेदक अपराध की आय का प्रत्यक्ष लाभार्थी था।

31. (2018) 11 एस.सी.सी. 46, रोहित टंडन बनाम प्रवर्तन निदेशालय, में रिपोर्ट किए गए निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा करते हुए। श्री त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि मनी लॉन्ड्रिंग मामले में आवेदक/अभियुक्त को पी.एम.एल.ए. की धारा 45 की कठोरता की सीमा को पार करने में सफल होना चाहिए।

32. श्री. त्रिपाठी ने आगे प्रस्तुत किया है कि मुख्य आरोपी संजय भाटी फरार है और जमानत पर रिहा होने पर आवेदक के न्याय के रास्ते से भागने की अच्छी तरह से स्थापित आशंका है।

33. मैंने मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है। रोहित टंडन (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि "न्यायालय को सकारात्मक निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं किया है। न्यायालय को बरी करने और दोषसिद्धि के बाद के फैसले और मुकदमे के शुरू होने से बहुत पहले जमानत देने के आदेश के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखना चाहिए। इस स्तर पर न्यायालय का कर्तव्य सबूतों को सावधानीपूर्वक तौलना नहीं है, बल्कि व्यापक संभावनाओं के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचना है। इसके अलावा, अदालत को जमानत देने के बाद अभियुक्त द्वारा अपराध करने की संभावना के रूप में एक निष्कर्ष दर्ज करना आवश्यक है।

34. पी.एम.एल.ए. की धारा 2 (यू) 'अपराध की आय' को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

(प) "अपराध के आगम" से अनुसूचित अपराध या ऐसी किसी संपत्ति के मूल्य से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्युत्पन्न या प्राप्त की गई कोई संपत्ति अभिप्रेत है या जहां ऐसी संपत्ति देश के बाहर ली गई या धारित की जाती है, तो देश के भीतर या विदेश में धारित मूल्य के समतुल्य संपत्ति;

संदेह को दूर करने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि "अपराध के आगम" में न केवल अनुसूचित अपराध से व्युत्पन्न या प्राप्त संपत्ति शामिल है, बल्कि कोई भी संपत्ति भी है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनुसूचित अपराध से संबंधित किसी आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्राप्त की जा सकती है;

35. विजय मदनलाल चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 929 मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि:-

> *251. "अपराध की आय" धन-शोधन के अपराध का गठन करने वाले अवयवों का मूल है, उस अभिव्यक्ति को सख्ती से समझने की आवश्यकता है। इसमें, सामान्य कानून के तहत एक अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के संबंध में जांच एजेंसी द्वारा बरामद या कुर्क की गई सभी संपत्तियों को अपराध की आय के रूप में नहीं माना जा सकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां उस अपराध से निपटने वाली जांच एजेंसी द्वारा कुर्क किए गए अनुसूचित अपराध के कमीशन में शामिल संपत्ति को पूरी तरह या आंशिक रूप से 2002 अधिनियम की धारा 2(1)(यू) के अर्थ के भीतर अपराध की आय के रूप में नहीं माना जा सकता है - जब तक कि संपत्ति का पूरा या कुछ हिस्सा किसी भी व्यक्ति द्वारा "कथित अनुसूची से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप" प्राप्त किया गया है। अपराध की आय होने के लिए, इसलिए, संपत्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, "अनुसूचित अपराध से संबंधित" आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप, प्राप्त किया जाना चाहिए। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, अनुसूचित अपराध में इस्तेमाल किए गए वाहन को संबंधित मामले (अपराध) में संपत्ति के रूप में संलग्न किया जा सकता है, यह अभी भी 2002 अधिनियम की धारा 2(1)(यू) के अर्थ के भीतर अपराध की आय नहीं हो सकती है। इसी प्रकार, कानूनी तरीकों से अर्जित बेहिसाबी संपत्ति का कब्जा कर उल्लंघन के लिए कार्रवाई योग्य हो सकता है और फिर भी इसे अपराध की आय नहीं माना जाएगा जब तक कि संबंधित कर कानून ऐसे उल्लंघन को अपराध के रूप में निर्धारित नहीं करता है और ऐसा अपराध 2002 अधिनियम की अनुसूची में शामिल नहीं किया जाता है। अपराध की आय के रूप में माना जाने के लिए, अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति को संबंधित अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा व्युत्पन्न या प्राप्त किया जाना चाहिए। 2002 अधिनियम के प्रयोजन के लिए अनुसूचित अपराध में निर्दिष्ट किसी भी संपत्ति को अपराध की आय के रूप में गणना करते समय इस*

अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि के माध्यम से अपराध की आय से निपटना अधिनियम की धारा 3 के तहत धन-शोधन का अपराध है।

* * *

284. दूसरे शब्दों में, 2002 अधिनियम के तहत प्राधिकरण, किसी व्यक्ति पर धन-शोधन के अपराध के लिए केवल तभी मुकदमा चलाना है जब उसके पास विश्वास करने का कारण हो, जिसे लिखित रूप में दर्ज करना आवश्यक है कि वह व्यक्ति "अपराध की आय" के कब्जे में है। यदि इस विश्वास को अपराध के आगमों से संबंधित किसी प्रक्रिया अथवा कार्यकलाप में संबंधित व्यक्ति के शामिल होने के संकेत वाले मूर्त और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा आगे समर्थन दिया जाता है तो अपराध के आगमों की कुर्की और जब्ती के लिए अधिनियम के अंतर्गत कार्रवाई की जा सकती है और जब तक इसे केन्द्र सरकार में निहित नहीं किया जाता है, तब तक शुरू की गई ऐसी प्रक्रिया एक एकल प्रक्रिया होगी।

36. मुख्य आरोपी संजय भाटी की प्रारंभिक कार्रवाई एक बाइकबोट योजना शुरू करने की थी, जिसमें लगभग 1,70,000 व्यक्तियों ने लगभग 2,800 करोड़ रुपये का निवेश किया था। कंपनी द्वारा लगभग 10,000 बाइक खरीदी गई थीं। ई-बाइक को 11.01.2019 को नई दिल्ली में लॉन्च किया गया था और उसके बाद कई अन्य शहरों में भी बाइक का परिचालन शुरू हो गया था।

37. ईडी का दावा है कि बाइकबोट योजना ने बिना किसी संबंधित संसाधन सृजन और सार्थक व्यवसाय के अवास्तविक और अत्यधिक रिटर्न का वादा किया। ईडी का दावा है कि यह एक पोंजी स्कीम थी जिसका विफल होना निश्चित था। हालांकि, संजय भाटी ने कहा है कि प्रत्येक बाइक पर, कंपनी ने पंजीकरण, सामान, बीमा आदि के खर्चों को पूरा करने के बाद भी 12,000/- रुपये बचाए होंगे और एक वर्ष के बाद, बाइक कंपनी की संपत्ति बन जाएगी। बाइक के लिए किराया योजना पहले किमी के लिए रु.10/- से शुरू हुई और बाद में रु.4/- प्रति किमी + यात्रा समय के लिए रु.1/- प्रति मिनट और प्रतीक्षा समय के लिए रु.1/- प्रति मिनट अतिरिक्त थी।

38. मुख्य आरोपी संजय भाटी के बयान के अनुसार योजना विफल होने के बाद भी लगभग 1800-2000 करोड़ रुपये निवेशकों को वापस कर दिए गए थे। आवेदक की भूमिका संपत्ति विकास और खरीद होने का आरोप है। प्रथम दृष्टया यह स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि आवेदक योजना की प्लानिंग बनाने के पीछे महत्वपूर्ण था।

39. यह कहा जाता है कि जी.आई.पी.एल. कार्यालय में एकत्र की गई नकदी आवेदक को दो बार दी गई थी, लेकिन आवेदक को भुगतान की गई नकद राशि या भुगतान की प्रकृति के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

ईडी का दावा है कि संचयी अनिवार्य रूप से परिवर्तनीय वरीयता शेयरों (सीसीसीपीएस) के आवंटन के लिए मेसर्स मार्स एनवायरोटेक लिमिटेड को 25 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए गए हैं, लेकिन आवंटन प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण और हेरफेर पूर्ण है। आवेदक का दावा है कि सीसीसीपीएस कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 23, 42, 55, 62 (1)(सी) के प्रावधानों के अनुसार प्रदान किया गया है, जिसे कंपनी प्रॉस्पेक्टस और जांच नियम 2014 और कंपनी शेयर पूंजी और डिबेंचर नियम 2014 के साथ पढ़ा गया है। सीसीसीपीएस कंपनियों के शेयर पूंजी और डिबेंचर नियम 2014 के नियम 9 के अनुसार कंपनियों के शेयर धारक समझौते के अनुसार जारी किए जा रहे हैं।

41. ईडी के अधिवक्ता ने अपनी लिखित प्रस्तुतियाँ दायर की हैं, लेकिन उन्होंने आवेदक की ओर से प्रस्तुत करने का कोई जवाब नहीं दिया है कि भले ही सीसीसीपीएस के तहत शेयरों के आवंटन में कोई अनियमितता की गई हो, वही कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय और एनसीएलटी के अधिकार क्षेत्र में होगी और शेयरों के आवंटन या किसी भी कर चोरी में कोई विसंगति पी.एम.एल.ए. की कार्यवाही को आवेदक के खिलाफ जन्म नहीं देगी।

42. विजय मदनलाल चौधरी (उपरोक्त) में यह माना गया है कि कानूनी साधनों द्वारा अर्जित बेहिसाब संपत्ति का कब्जा कर उल्लंघन के लिए कार्रवाई योग्य हो सकता है और फिर भी, अपराध की आय के रूप में नहीं माना जाएगा। इसी सिद्धांत को लागू करते हुए, जब तक शेयरों के हस्तांतरण में अनियमितताएं किसी कानून के तहत अपराध नहीं हैं और इस तरह के अपराध को 2002 अधिनियम की अनुसूची में शामिल नहीं किया गया है, इस तरह के हस्तांतरण में शामिल धन को 'अपराध की आय' नहीं कहा जा सकता है।

43. जैसा कि रोहित टंडन (उपरोक्त) में अवधारित किया गया है, इस न्यायालय को जमानत देने के लिए निर्दोषता के निष्कर्ष को रिकॉर्ड करने की आवश्यकता नहीं है। ऊपर चर्चा किए गए तथ्य स्पष्ट रूप से आवेदक को जमानत देने के लिए आवश्यक प्रथम दृष्टया संतुष्टि प्रदान करते हैं।

44. पी.एम.एल.ए. में धारा 24 जैसे कड़े प्रावधान हैं जो सबूत के रिवर्स बोझ के लिए प्रदान करते हैं और धारा 45 अभियुक्त की बेगुनाही की प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने के बाद ही जमानत देने के लिए अतिरिक्त शर्तें निर्धारित करते हैं। नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट में निहित समान वैधानिक प्रावधानों से निपटने के दौरान, गोरख नाथ प्रसाद बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में। बिहार राज्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 305 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> *"5. एनडीपीएस अधिनियम अभियुक्त पर सबूत के रिवर्स बोझ का प्रावधान करता है, जब तक कि दोषी साबित नहीं होने तक निर्दोषता की धारणा के लिए आपराधिक न्यायशास्त्र के सामान्य नियम के विपरीत। यह अभियोजन पक्ष की*

अनुवादित

आवश्यकता को पहले एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित करने की आवश्यकता को समाप्त नहीं करेगा, जिसके बाद ही भार अभियुक्त पर स्थानांतरित हो जाएगा। अधिनियम के तहत मामला दर्ज करने मात्र से शुरुआत से ही अभियुक्त पर बोझ नहीं पड़ेगा। वैधानिक आवश्यकताओं और प्रक्रियाओं का अनुपालन सख्त होना चाहिए और जांच कड़ी होनी चाहिए। यदि कोई संदेह है तो लाभ आरोपी को देना होगा।

45. प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक को प्रस्तुत मामले में केवल संदेह के आधार पर फंसाया गया है। यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि संदेह कितना भी मजबूत क्यों न हो, यह उचित संदेह से परे सबूत का स्थान नहीं ले सकता।

46. यह तथ्य भी प्रासंगिक है कि ईडी ने 29.06.2019 को ईसीआईआर पंजीकृत की थी और आवेदक का बयान 22.10.2019, 23.10.2019 और 20.03.2020 को धारा 50 पी.एम.एल.ए. के तहत दर्ज किया गया था, लेकिन उसे हिरासत में नहीं लिया गया था। आवेदक 26.02.2021 से अनुसूचित अपराधों के संबंध में हिरासत में रहा, और हालांकि आवेदक को 30.01.2022 को दायर पूरक अनुपालन में आरोपी के रूप में नामित किया गया था, ईडी ने उस अवधि के दौरान भी उसकी हिरासत नहीं मांगी। अनुसूचित अपराधों में जमानत देने के लिए आवेदक द्वारा दायर आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 18772 वर्ष 2021, 18775 वर्ष 2021, 19022 वर्ष 2021, 19214 वर्ष 2021 और 19379 वर्ष 2021 को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.07.2022 के आदेश के माध्यम से उन्हें, समता के सिद्धांत को लागू करते हुए, सभी अनुसूचित अपराधों में जमानत दे दी गई थी; हालांकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दर्ज किया कि आवेदक की भूमिका अतिव्यापी या कुछ अलग हो सकती है। ईडी ने आवेदक को 21.07.2022 को हिरासत में लिया, जब उसे 13.07.2022 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी गई थी, लगभग डेढ़ साल हिरासत में बिताने के बाद और मामले की जांच बहुत पहले ही पूरी हो चुकी थी और उसकी हिरासत में पूछताछ की कोई आवश्यकता नहीं थी।

47. मुकदमे को समाप्त होने में कई साल लगने की संभावना है क्योंकि नामित अभियुक्तों में से कई अभी तक पेश नहीं हुए हैं या उन्हें अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा 11 गवाहों की जांच की जानी है और 5,000 पृष्ठों में चलने वाले दस्तावेजों को साबित किया जाना है।

48. हालांकि ईडी ने आशंका व्यक्त की है कि आवेदक फिर से जमानत पर रिहा होने की स्थिति में इसी तरह के अपराध में लिप्त होगा, आवेदक का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है, विधेय अपराधों के अलावा, और जवाबी हलफनामे में कोई सामग्री नहीं रखी गई है जो

पूर्वोक्त आशंका के लिए उचित आधार को जन्म दे सकती है।

49. आवेदक को जी.आई.पी.एल. द्वारा संपत्ति की खरीद के लिए प्रमुख निर्णय निर्माताओं में से एक कहा जाता है, विजेंदर सिंह और विजेंदर सिंह को पहले ही जमानत दी जा चुकी है और इसलिए, आवेदक भी समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

50. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि आवेदक भी जमानत पर रिहा होने का हकदार है। तदनुसार, जमानत अर्जी मंजूर की जाती है।

51. आवेदक बद्री नारायण तिवारी को सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायालय पी.एम.एल.ए., लखनऊ के न्यायालय में सत्र प्रकरण संख्या 1485/2022, जो ईसीआईआर/ एलकेजेडओ/05 /2019 से उद्भूत है, धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3/4 के तहत, थाना-प्रवर्तन निदेशालय, जिला लखनऊ में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक जमानत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, जमानत पर रिहा किया जाए:-

(i) आवेदक अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा;

(ii) आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव नहीं डालेगा;

(iii) आवेदक विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रत्येक तारीख को उपस्थित होगा, जब तक कि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

(iv) यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह न्यायालय की पूर्वानुमति के बिना भारत से बाहर नहीं जा सकता है, आवेदक विचारण न्यायालय के समक्ष अपना पासपोर्ट सरेंडर करेगा।

52. उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, अभियोजन पक्ष जमानत रद्द करने के लिए एक आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2023) 8 ILRA 703

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 7420 वर्ष 2023

(अंतर्गत धारा 438 सीआर.पी.सी.)

बृजेश ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

सुश्री ममता सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 82, 83, 161, 164, 173(2) और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 174(ए), 323, 328, 376, 504 और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v), 18, 18-ए और 18-ए(2) -अग्रिम जमानत के लिए आवेदन - बलात्कार और धमकी का अपराध - एफआईआर - आवेदक ने गिरफ्तारी से सुरक्षा की मांग की - आरोपों में बलात्कार, आपराधिक अभित्रास और नशीले पदार्थ देने जैसे गंभीर अपराध शामिल हैं - अभियोजन पक्ष ने तर्क दिया कि अधिनियम, 1989 की धारा 18 और 18-ए द्वारा बनाए गए अवरोध के कारण अग्रिम जमानत आवेदन पोषणीय नहीं था, जो इस अधिनियम के तहत अपराधों से जुड़े मामलों में धारा 438 के आवेदन पर रोक लगाता है - आवेदक ने तर्क दिया कि कथित अपराध पीड़िता की जाति के कारण नहीं किया गया था और वह इस बात से अनजान था कि वह एससी/एसटी समुदाय से संबंधित है - प्रावधानों की प्रयोज्यता - आरोप पत्र - विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है - न्यायालय ने पाया कि, एफआईआर की सामग्री और धारा 161 और 164 के तहत अभियोजन पक्ष के बयान के अवलोकन से प्रथम दृष्टया अधिनियम, 1989 के तहत कोई अपराध गठित करने का कोई आरोप नहीं है- जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र में यह भी नहीं बताया गया है कि सीआर.पी.सी. की धारा 173(2) के तहत उक्त पुलिस रिपोर्ट किस आधार पर अधिनियम,1989 के प्रावधानों के तहत प्रस्तुत की गई थी- अभिनिर्धारित- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के दृष्टिगत इस न्यायालय के समक्ष इस तरह के आवेदन पर कार्यवाही पर कोई रोक नहीं है - हालांकि, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर उसे दी गई अग्रिम जमानत, आरोप पत्र दायर होने के बाद विचारण के अंत तक जारी रह सकती है - इसके अलावा, न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता जैसे विचारों से निर्देशित होना चाहिए - इसलिए, आवेदक की भूमिका और मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, यह अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है - तदनुसार, आवेदन खारिज कर दिया गया है। (पैरा - 9, 19, 20, 21)

आवेदन अस्वीकृत. (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पृथ्वी राज चौहान बनाम यू.ओ.आई., 2020 लॉ सूट (एससी) 143

2. सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 454

3. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य, (2020) 5 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. भा.दं.सं. की धारा 376, 323, 504, 506, 328 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (वी) के तहत मुकदमा अपराध संख्या 133/2022 थाना सिविल लाइन्स, जिला-प्रयागराज में अपनी गिरफ्तारी की आशंका को देखते हुए आवेदक **ब्रिजेश** की ओर से अग्रिम जमानत याचिका दायर की गई है।

3. एफआईआर में सामने आई अभियोजन की कहानी यह है कि अभियोक्त्री सह-अभियुक्त विशाल गुप्ता के साथ शादी करने का इरादा रखती थी और इस संबंध में उसे वर्तमान आवेदक ने अपने साथ इलाहाबाद उच्च न्यायालय जाने के लिए राजी किया था और तदनुसार वह उसे इलाहाबाद के एक होटल में ले गया और उसके बाद उसे कोई नशीला पदार्थ खिलाकर बेहोशी की हालत में उसने अभियोक्त्री के साथ बलात्कार किया और उसने शर्म के कारण इस घटना के बारे में किसी को नहीं बताया। जब सह-अभियुक्त विशाल गुप्ता जेल से बाहर आया और अभियोक्त्री वर्तमान आवेदक के साथ उसके घर गई तो उसने उसे दो दिनों तक वहां रखा और उसके साथ फिर से बलात्कार किया गया। इसके बाद विशाल गुप्ता ने उससे शादी करने से इनकार कर दिया और और उन दोनों ने उसे जान से मारने की धमकी दी। 30.3.2022 को एफआईआर दर्ज की गई और जांच शुरू हुई, जो आरोप पत्र में समाप्त हुई।

<u>अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 द्वारा निर्मित अवरोध की प्रयोज्यता-</u>

4. शुरुआत में ही पता चला कि ए.जी.ए. ने प्रारंभिक आपत्ति जताई है कि भा.दं.सं. की धारा 376, 323, 504, 506, 328 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (वी) के तहत दायर वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18 और 18ए (2) विशेष रूप से प्रदान करती है किः

"18. अधिनियम के अधीन अपराध करने वाले व्यक्तियों को संहिता की धारा 438 का लागू न होना- संहिता की धारा 438 की कोई बात इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के अभियोग पर किसी व्यक्ति की गिरफ़्तारी के किसी मामले के संबंध में लागू नहीं होगा।

"18 ए. (2) किसी न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश या निर्देश के होते हुए भी, संहिता की धारा 438 के उपबंध इस अधिनियम के अधीन किसी मामले पर लागू नहीं होंगे"।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त उल्लिखित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के प्रावधानों के मद्देनजर, वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है।

6. यह तर्क देते हुए कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि पूरे अभिलेख के अवलोकन से कहीं भी ऐसी कोई फुसफुसाहट नहीं मिलती है कि आवेदक को मामले के किसी भी चरण में इस तथ्य की जानकारी थी कि अभियोक्त्री एससी/एसटी समुदाय से है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कथित अपराध अभियोक्त्री के एससी/एसटी समुदाय का सदस्य होने के कारण नहीं किया गया था। यहां तक कि दं.प्र.स. की धारा 161 या 164 के तहत दिए गए अभियोजन पक्ष या आई.ओ. को दिए गए अन्य प्रासंगिक गवाहों के बयान में भी ऐसा कोई दावा नहीं है कि पीड़िता एससी/एसटी समुदाय से है और आरोपी को इसकी जानकारी थी, इसलिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के प्रावधान इस मामले पर लागू नहीं होते हैं।

7. अपने तर्क के समर्थन में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **पृथ्वी राज चौहान बनाम यूनियन ऑफ इंडिया 2020 लॉ सूट (एससी) 143** में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून यह है कि यदि शिकायत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के प्रावधानों की प्रयोज्यता के लिए प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है तो उक्त अधिनियम की धारा 18 और 18 ए द्वारा बनाया गया अवरोध लागू नहीं होता है। इसी तरह, लगभग समान पृष्ठभूमि में **सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2018) 6 एससीसी 454** में की गई टिप्पणियों भी उसी सिद्धांत को उजागर करती हैं।

8. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (2016 के अधिनियम 1 द्वारा प्रतिस्थापित) की धारा 3 (2) (v) में प्रावधान है कि:

> *"धारा 3(2) जो कोई भी, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होने पर", "(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत किसी व्यक्ति या संपति के विरुद्ध दस साल या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध यह जानते हुए करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपति ऐसे सदस्य की है, आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगा।"*

9. वर्तमान मामले में यद्यपि आई. ओ. द्वारा न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है और भा.दं.सं. की धारा 376, 323, 504, 506, 328 और अनुसूचित जाति और

अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (वी) के तहत संज्ञान लिया गया है, लेकिन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत किसी भी अपराध का गठन करने के लिए प्रथम दृष्टया कोई आरोप नहीं है। यहां तक कि एफआईआर में भी इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है कि अभियोक्त्री एससी/एसटी समुदाय से है। इस न्यायालय को दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत अभियोक्त्री द्वारा दिए गए बयानों पर गौर करने का अवसर मिलता है जिसमें अभियोक्त्री द्वारा कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि वह एससी/एसटी समुदाय से है और इस बिंदु पर उससे पूछताछ भी नहीं की गई है। चिकित्सा परीक्षण के समय अभियोक्त्री ने डॉक्टर के समक्ष भी इस तथ्य का खुलासा नहीं किया। आई. ओ. द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र से भी खुलासा नहीं होता है कि दं.प्र.सं. की धारा 173 (2) के तहत उक्त पुलिस रिपोर्ट किस आधार पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के प्रावधानों के तहत प्रस्तुत की गई थी। क्या कथित अपराध आवेदक द्वारा इस तथ्य को जानते हुए किया गया था कि अभियोक्त्री एससी/एसटी समुदाय से है, मामले को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत लाने का मुख्य प्रश्न था, लेकिन इस संबंध में रत्ती भर भी सबूत अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में मेरे विचार से जहां तक वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन का संबंध है, पृथ्वी राज चौहान (सुप्रा) और सुभाष काशीनाथ महाजन (सुप्रा) मामलों में निर्धारित कानून के मद्देनजर इस न्यायालय के समक्ष इस तरह के आवेदन को स्थानांतरित करने पर कोई रोक नहीं है।

<u>क्या भगोड़ा घोषित अग्रिम जमानत के हकदार हैं-</u>

10. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई एक और प्रारंभिक आपत्ति इस आशय की है कि आरोपी को भगोड़ा घोषित कर दिया गया है और इस आधार पर भी उसकी अग्रिम जमानत की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

11. इस आपत्ति पर टिप्पणी करते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि यद्यपि आवेदक के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत एक प्रक्रिया जारी की गई थी और उसे न्यायालय द्वारा भगोड़ा घोषित किया गया था और बाद में उसके विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 83 के तहत एक प्रक्रिया भी जारी की गई थी, लेकिन चूंकि वह कई कानूनी कार्यवाही के माध्यम से न्यायालय की शरण लेने में लगा हुआ था और अंतराल अवधि में उसके विरुद्ध ऐसी जबरदस्त प्रक्रियाएं जारी की गई, इसलिए उसे अग्रिम जमानत के माध्यम से गिरफ्तारी से सुरक्षा लेने से नहीं रोका जा सकता है।

12. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदक द्वारा पहली अग्रिम जमानत अर्जी 21.10.2022 को सत्र न्यायाधीश, प्रयागराज के समक्ष दायर की गई थी जिसे उक्त न्यायालय ने 15.12.2022 को खारिज कर दिया था। आवेदक के विरुद्ध प्रस्तुत आरोप पत्र में आई.ओ. ने उल्लेख किया है कि दिनांक

25.11.2022 को न्यायालय के निर्देशों के तहत दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत कार्यवाही शुरु करने का आदेश दिया गया था और यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सत्र न्यायालय, प्रयागराज के समक्ष प्रथम अग्रिम जमानत आवेदन के लंबित रहने के दौरान आवेदक के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत प्रक्रिया जारी की गई थी। अभिलेख से पता चलता है कि उद्घोषणा का आदेश न्यायालय द्वारा 2.12.2022 को पारित किया गया था और उक्त आदेश को आपराधिक अपील संख्या 9977/2022 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती भी दी गई थी, जो 12.12.2022 को दायर की गई थी, लेकिन इसे 20.12.2022 को वापस ले लिया गया। उपरोक्त अपील में दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत प्रक्रिया जारी करने के तथ्य का भी खुलासा किया गया था।

13. उल्लेखनीय है कि उपरोक्त कार्यवाही के क्रम में दं.प्र.सं. की धारा 82 के तहत आवेदक के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 174 (ए) के तहत मुकदमा अपराध संख्या 43/2023 भी दर्ज किया गया था। अभिलेख के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि दिनांक 15.12.2022 को प्रथम अग्रिम जमानत अर्जी खारिज होने के बाद, वर्तमान आवेदक को दं.प्र.सं. की धारा 438 के तहत आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत संख्या 234/2023 में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आदेश दिनांक 22.3.2023 के तहत अग्रिम जमानत दी गई थी, हालाँकि आवेदक के विरुद्ध 24.02.2023 को दं.प्र.सं. की धारा 83 के तहत एक प्रक्रिया पहले ही जारी की जा चुकी थी और जैसा कि अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है, उसकी संपत्ति की कुर्की भी 4.3.2023 को हुई थी, जबकि उसे उपरोक्त आदेश दिनांक 22.3.2023 द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक अग्रिम जमानत पहले ही दी जा चुकी थी। इस मामले में आरोप पत्र दायर किया गया था और संबंधित न्यायालय द्वारा 9.5.2023 को संज्ञान लिया गया था और संबंधित न्यायालय द्वारा उसी दिन सीधे गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था, लेकिन इस बीच आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद अग्रिम जमानत आवेदन संबंधित न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था, जिसे 12.6.2023 को खारिज कर दिया गया था और बाद में वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन 28.6.2023 को इस न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि आवेदक कानूनी सहारा ले रहा है और वह न्यायालय के चंगुल से भाग नहीं रहा है या जानबूझकर न्यायालय की प्रक्रिया से बच नहीं रहा है, बल्कि वह विभिन्न कानूनी मंचों के समक्ष सुरक्षा पाने के लिए ईमानदारी से प्रयास कर रहा है।

14. माननीय शीर्ष न्यायालय ने **लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2012) 8 सुप्रीम कोर्ट केस 730 मामले में, प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन सुप्रीम कोर्ट 955** में संदर्भित और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता पर भरोसा करते हुए इस बिंदु पर प्रासंगिक कानून निर्धारित किया है और उक्त निर्णय का पैराग्राफ 12 इस प्रकार है:

"12. इन सामग्रियों और सूचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे "भगौड़ा" घोषित कर दिया गया था। आम तौर पर, जब आरोपी "फरार" हो और उसे "भगोड़ा" घोषित किया गया हो, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया था और वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार है या खुद को छुपा रहा है और संहिता की धारा 82 के संदर्भ में भगोड़ा घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत से राहत का हकदार नहीं है।"

15. कानून की उपरोक्त उक्ति से यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि यह एक सामान्य नियम है कि जब कोई आरोपी फरार है और भगोड़ा घोषित किया गया है, तो उसे अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है, लेकिन यह एक सार्वभौमिक नियम नहीं है क्योंकि यदि रोक को निरपेक्ष बना दिया जाता है, तो इसका मतलब यह है कि यदि कोई आरोपी फरार है और उसे भगोड़ा घोषित कर दिया गया है, तो उसके पास अपने बचाव के लिए कुछ भी कहने का अवसर नहीं है कि किन परिस्थितियों में वह न्यायालय के सामने पेश नहीं हो सका और उसे भगोड़ा घोषित कर दिया गया और यही कारण है कि यदि आरोपी को भगोड़ा घोषित कर दिया गया है तो अग्रिम जमानत आवेदन दायर करने पर कोई रोक नहीं है, लेकिन, फिर भी, यदि वह अपनी सद्भावना के संबंध में न्यायालय को संतुष्ट करने में असमर्थ है, तो इस बिंदु पर कानून उस पर लागू होगा और उसे अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह एक भगोड़ा है। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, अभिलेख के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि न्यायालय के सम्मन से बचने और उसके अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए, आवेदक की ओर से कोई जानबूझकर चूक नहीं की गई थी और जब वह खुद का बचाव करने के लिए कानूनी सहारा लेने में लगे हुए थे, तब उनके खिलाफ दंडात्मक प्रक्रियाएं जारी की गई।

16. विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, आवेदक को अग्रिम जमानत के लिए आवेदन दायर करने से रोका नहीं जा सकता है और उसके विरुद्ध जारी दंडात्मक प्रक्रियाएं भी उस पर विचार करने में कोई बाधा नहीं पैदा करती हैं।

<u>मामले का तथ्यात्मक आव्यूह-</u>

17. जहां तक मामले के तथ्यात्मक पहलू का सवाल है. अभियोक्त्री ने दं.प्र.सं. की धारा 161 और 164 के तहत अपने बयान में आवेदक के अपराध के बारे में स्पष्ट रूप से बताया है। उल्लेखनीय है कि सह-अभियुक्त विशाल गुप्ता को इस मामले में पहले ही बरी कर दिया गया है और उसके विरुद्ध कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है क्योंकि जांच अधिकारी को उसके विरुद्ध कोई सबूत नहीं मिला, लेकिन साथ ही वर्तमान आवेदक के विरुद्ध पर्याप्त सबूत एकत्र किए गए थे। यह आवेदक द्वारा उसके विश्वास और भरोसे का फायदा उठाकर गरीब अभियोक्त्री के साथ बलात्कार का मामला है। आवेदक को इस तथ्य का लाभ नहीं दिया

जा सकता है कि चूंकि आरोप पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है और दं.प्र.सं. की धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक उसे पहले ही अग्रिम जमानत दी जा चुकी है और अब हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है, इसलिए वह अग्रिम जमानत का हकदार है क्योंकि जघन्य अपराध को अंजाम देने में आरोपी की सक्रिय भूमिका जांच के दौरान एकत्र किए गए ठोस और विश्वसनीय सबूतों द्वारा स्थापित की गई है।

18. इसमें कोई शक नहीं कि आरोप पत्र दाखिल होने के बाद अग्रिम जमानत की अवधि बढ़ाई और दी जा सकती है। **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2020) 5 एससीसी 1** में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने अंततः यह कहकर विवाद का निपटारा कर दिया कि अग्रिम जमानत हमेशा सीमित अवधि की नहीं होनी चाहिए। उचित मामले में, यह मुकदमे के समापन तक जारी रह सकता है।

19. इसमें आगे कहा गया है कि आरोपी के आचरण और व्यवहार के आधार पर दी गई अग्रिम जमानत, आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।

20. माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया है कि अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के दौरान उसके प्रभावित होने की संभावना या गवाहों को डराना, न्याय से भागने की संभावना, जैसे कि देश छोड़ना आदि सहित सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने पर विचार करना होगा।

आगे यह माना गया है कि अदालतों को आम तौर पर अग्रिम जमानत देने या इसे अस्वीकार करने पर विचार करते समय अपराध की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित होना चाहिए। अनुदान देना या न देना विवेक का विषय है।

21. माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर और अपराध की विशालता को ध्यान में रखते हुए, मैं इसे वर्तमान आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं मानता। आवेदन पत्र में की गई प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

22. अग्रिम जमानत अर्जी खारिज की जाती है.

23. हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में व्यक्त किए गए विचार केवल अग्रिम जमानत देने की सीमा तक ही सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले की योग्यता से संबंधित नहीं हैं और संबंधित न्यायालय हमेशा कानून के अनुसार अपना अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वतंत्र है।

(2023) 8 ILRA 708

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 30337 वर्ष 2023

मोहम्मद उबैद ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

श्री इमरान उल्लाह, श्री मोहम्मद दाउद

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

जी.ए., श्रीमती स्वाति अग्रवाल श्रीवास्तव

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 107 और 116 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 323, 385, 386, 504 और 506-जमानत आवेदन - एफआईआर - आईपीसी की धारा 147, 148, 323, 504, 506, 386 के तहत आरोप - आरोपों में 2 करोड़ रुपये के भुगतान के लिए उद्दापन और धमकी शामिल थी - न्यायालय ने पाया कि, - आईपीसी की धारा 385 से परे कोई मामला नहीं बनता है - आईपीसी की धारा 386 के तहत सजा के लिए, अभियोजन पक्ष को यह दिखाना होगा कि किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या सीलबंद कोई वस्तु दी गई थी, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता है - पक्षों के बीच लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी है क्योंकि दोनों पक्षों ने चुनाव लड़ा है और दोनों एक ही गांव के हैं - और आवेदक 9 अप्रैल, 2023 से जेल में था, और पिछले मामलों में जमानत के दुरुपयोग का कोई सबूत नहीं था - अभिनिर्धारित, आवेदक के विरुद्ध आईपीसी की धारा 386 के तहत अपराध अधिरोपित किया गया है, भले ही एफआईआर में इसके तत्व उपलब्ध नहीं हैं- सूचनादाता के अधिवक्ता यह दिखाने में असफल रहे कि आवेदक के विरुद्ध आईपीसी की धारा 386 के तहत अपराध कैसे बनाता है, पुलिस प्राधिकारियों द्वारा धारा 386 आईपीसी के तहत गैर-जमानती प्रकृति के मामले दर्ज करके अतिक्रमण करना, जबकि आवेदक के विरुद्ध अधिकतम धारा 385 आईपीसी के तहत ही मामला दर्ज किया जा सकता है, जो कि जमानती अपराध है - जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है - तदनुसार निर्देश जारी किए जाते हैं। (पैरा - 27, 28, 29)

आवेदन स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हरजीत सिंह बनाम इंद्रप्रीत सिंह उर्फ इंदर एवं अन्य, 2021 की आपराधिक अपील संख्या 883 वर्ष 2021, एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 3739 वर्ष 2021 से उत्पन्न

2. ऐश मोहम्मद बनाम शिव राज सिंह, (2012) 9 एससीसी 446

3. सत्येन्द्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई. एवं अन्य, 2022 (10) एससीसी 51

4. प्रभाकर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (11) एससीसी 648

5. इसहाक इसांगा मुसुम्बा और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 (15) एससीसी 357

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान द्वारा प्रदत)

1. राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. का मानना है कि निर्देश प्राप्त हो चुके हैं और यदि जमानत आवेदन की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की जाती है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

2. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता, सूचक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्रीमती स्वाति अग्रवाल श्रीवास्तव, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 6.4.2023 की एक घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट 7.4.2023 को दर्ज की गई थी। प्राथमिकी के अनुसार, यह आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने सूचक को दो करोड़ रुपये की रंगदारी देने के लिये धमकाया और जान से मारने की धमकी दी है। उनका कहना है कि एफआईआर भा.द.वि. की धारा 147, 148, 323, 504, 506 और 386 के तहत दर्ज की गई है और बाद में जांच की गई है और भा.द.वि. धारा 147, 148, 323, 504, 506 और 386 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। उनका कहना है कि वर्तमान मामले में, कोई धनराशि नहीं दी गई है और भले ही एफआईआर के अनुसार आरोप सही माना जाए, भा.द.वि. की धारा 385 से परे कोई मामला नहीं बनता है। उन्होंने आगे कहा कि भा.द.वि. की धारा 386 के तहत सजा के लिए, अभियोजन पक्ष को यह दिखाना होगा कि किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति सुरक्षा या हस्ताक्षरित या मुहरबंद कोई भी चीज़ सौंपी गई थी, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति सुरक्षा में परिवर्तित किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों पक्षों के बीच पुरानी दुश्मनी है क्योंकि दोनों पक्षों ने प्रधानी का चुनाव लड़ा है और दोनों एक ही गांव के हैं। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक के पास पिछले 10 मामलों का इतिहास है। हालाँकि उनका कहना इस तथ्य पर आधारित है कि अगर एफआईआर के आरोप को सच भी मान लिया जाए तो भा.द.वि. की धारा 385 के तहत ही मामला बनेगा जो जमानती अपराध है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पिछले अवसर पर जमानत दी गई थी, हालांकि आवेदक की जानकारी के अनुसार पिछले मामलों में जमानत रद्द करने के लिए आज तक सूचक द्वारा जमानत रद्द करने का कोई आवेदन नहीं किया गया है। उनका कहना है कि एक बार यह साबित हो जाए कि अपराध जमानती है तो आवेदक को केवल पिछले आपराधिक इतिहास के आधार पर जेल में रहने

की अनुमति नहीं दी जा सकती। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक के खिलाफ लंबा आपराधिक इतिहास केवल राजनीतिक दुश्मनी के कारण है। उन्होंने शपथपत्र के अनुच्छेद 21 पर भरोसा करते हुए कहा कि सूचना देने वाला पुलिसकर्मी के बेटे के पक्ष में स्थानांतरित की गई भूमि के विक्रयपत्र का गवाह है, जो स्वयं इस तथ्य का संकेत है कि सूचक द्वारा पुलिस से मित्रों की तरह से व्यवहार किया जा रहा है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त व्यक्तियों की गिरफ्तारी पर आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7242/2023 से इस न्यायालय द्वारा पहले ही रोक लगा दी गई है, जिसकी प्रतिलिपि अनुलग्नक संख्या 10 में दायर की गई है। आवेदक 9.4.2023 से जेल में बंद है और यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और मुकदमे में सहयोग करेगा।

5. सूचक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आवेदक का 10 मामलों का आपराधिक इतिहास है। उनका कहना है कि पिछले अवसर पर, आवेदक के खिलाफ सूचक द्वारा एफआईआर दर्ज की गई थी, जहां प्रधानी चुनाव विवाद के कारण, आवेदक सूचक को परेशान कर रहा था और 2 करोड़ रुपये की मांग कर रहा था। **उन्होंने एसएलपी (आपराधिक) संख्या 3739/2021 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या 883/2021 मे पारित हरजीत सिंह बनाम इंद्रप्रीत सिंह उर्फ इंदर और एक अन्य के वाद** में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा किया है। उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि एक बार 10 मामलों का इतिहास होने पर, आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं है।

6. सूचक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि जब सूचक द्वारा आवेदक के खिलाफ पहली एफआईआर दर्ज की गई थी और जमानत दे दी गई थी, तो आवेदक ने उसी के परिणाम स्वरूप सूचक के खिलाफ फिर से अपराध किया था, सूचक द्वारा पुलिस अधिकारियों के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था जिसके आधार पर धारा 107/116 सीआर.पी.सी. के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी। सूचक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि एक अन्य प्राथमिकी, मुकदमा अपराध संख्या 44/2023, आवेदक द्वारा सूचक पर किए गए हमले के संबंध में दर्ज की गई थी, जिसमें आवेदक को जमानत पर भी रिहा कर दिया गया था। सूचक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह फिर से अपराध कर सकता है।

7. राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया और कहा कि ग्राम प्रधान, जो एक निर्वाचित प्रतिनिधि है, से जबरन वसूली के लिए 2 करोड़ रुपये की मांग की गई है। उनका कहना है कि आवेदक पर भा.द.वि. की धारा 147, 148, 323, 504, 506 और 386 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया है और उसका पिछला आपराधिक इतिहास है।

8. राज्य के विद्वान एजीए ने आवेदक के आपराधिक इतिहास का उल्लेख किया है।

पिछले आपराधिक मामलों में साक्ष्यों से छेड़छाड़ या गवाहों को डराने-धमकाने के संबंध में कोई भी सामग्री या परिस्थिति इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाई गई है। **ऐश मोहम्मद बनाम शिव राज सिंह, (2012) 9 एससीसी 446**, अनुच्छेद 30 में शीर्ष अदालत ने कहा है: -

> *"हम यह कहने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि जब हम कहते हैं कि आरोपी एक हिस्ट्रीशीटर है तो हमें यह नहीं समझा जा सकता है कि हमने ऐसा कहा है -हिस्ट्रीशीटर कभी भी जमानत का हकदार नहीं है। लेकिन, जिस अपराध के संबंध में उस पर मामला दर्ज किया गया है, उसकी प्रकृति को ध्यान में रखना एक महत्वपूर्ण कारक है।"*

9. **प्रभाकर तिवारी बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2020 (11) एससीसी 648**, के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि एक आरोपी के खिलाफ कई आपराधिक मामलों का लंबित होना जमानत से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता है।

10. जहां तक आवेदक के आपराधिक इतिहास का सवाल है, यह राज्य का मामला नहीं है कि आवेदक जांच के साथ छेड़छाड़ कर सकता है या अन्यथा प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है, या वह मुकदमे से पहले या उसके दौरान गवाहों को डरा सकता है। राज्य ने ऐसी कोई सामग्री भी नहीं रखी है जिससे आवेदक ने अतीत में कानून की प्रक्रिया से बचने का प्रयास किया हो। यदि अभियुक्त को अन्यथा जमानत का हकदार पाया जाता है, तो उसे केवल आपराधिक इतिहास के आधार पर जमानत से इनकार नहीं किया जा सकता है, आपराधिक पृष्ठभूमि के आधार पर कोई भी असाधारण परिस्थिति आरोपी को जमानत देने से इनकार करने के लिए नहीं दिखाई पड़ती, इसलिए, न्यायालय को ऐसा नहीं लगता है आवेदक को केवल इस आधार पर जमानत देने से इनकार करना उचित है कि उसका आपराधिक इतिहास है।

11. यह सिद्धांत कि जमानत एक नियम है और जेल एक अपवाद है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 21 की कसौटी पर विशेष रूप से अच्छी तरह से मान्यता दी गई है। उक्त सिद्धांत को शीर्ष न्यायालय ने **सत्येन्द्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, 2022 (10) एससीसी 51** में दोहराया है। विद्वान एजीए ने कोई असाधारण परिस्थिति नहीं दर्शायी है जिसके कारण आवेदक को जमानत देने से इनकार करना पड़े।

12. कानून का यह स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। राज्य के लिए विद्वान एजीए द्वारा आवेदक के न्याय से भागने या न्याय की प्रक्रिया को विफल करने या गवाहों को डराने-धमकाने आदि जैसी कोई भी महत्वपूर्ण जानकारी या परिस्थितियां नहीं दर्शायी गई हैं।

प्रतिलिपि

13. राज्य के लिए विद्वान एजीए ने ऐसी कोई सामग्री या परिस्थिति नहीं दर्शायी है कि आरोपी/आवेदक जनता या राज्य के व्यापक हित में जमानत का हकदार नहीं है।

14. सूचक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान एजीए से पूछे गए एक स्पष्ट प्रश्न पर कि क्या भा.द.वि. की धारा 385 के तहत अपराध जमानती अपराध है, सूचक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान एजीए ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि धारा 385 भा.द.वि. के तहत अपराध जमानतीय प्रकृति का है।

15. यह देखा जाना चाहिए कि वर्तमान मामले में, एफआईआर में आरोप एक ग्राम प्रधान से 2 करोड़ रुपये की रंगदारी के रूप में पैसे की मांग के संबंध में हैं। आवेदक ने सूचक के खिलाफ ग्राम प्रधान का चुनाव भी लड़ा था और चुनाव समाप्त होने के बाद, 2 करोड़ रुपये की मांग के लिए वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है, जिसे अभियोजन पक्ष ने जबरन वसूली का आरोप माना है। **उद्दापन** (जबरनवसूली) को भा.द.वि. की धारा 383 में परिभाषित किया गया है, जिसे यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> *"**383. उद्दापन** - जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में साशय डालता है, और एतद्द्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करता है, वह "**उद्दापन**" करता है।*

16. भा.द.वि. की धारा 383 के तहत, आवश्यक घटकों में से एक यह है कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी संपत्तिया मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुहरबंद कुछ भी परिदत्त करना, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता है।

17. **इसाक इसांगा मुसुम्बा और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2014 (15) एससीसी 357** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि-

> *"3. हमने एफआईआर को पढ़ा है जिसे रिट याचिका के साथ संलग्नक पी-7 के रूप में संलग्न किया गया है और हमें वहां से पता चला है कि शिकायतकर्ताओं ने आरोप लगाया है कि आरोपी व्यक्तियों ने शिकायतकर्ताओं के खिलाफ युगांडा न्यायालय द्वारा जारी किए गए अंतरराष्ट्रीय वारंट की प्रतियां और युगांडा द्वारा लिखे गए पत्र दिखाए हैं। न्याय एवं संवैधानिक मामलों के मंत्रालय और आरोपियों ने 20 मिलियन डॉलर (110 करोड़*

रुपये के बराबर) की उगाही करने की धमकी दी है। शिकायत में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि आरोपी द्वारा की गई मांग के अनुसार, शिकायतकर्ताओं द्वारा आरोपी को कोई राशि पहुंचाई गई थी। यदि ऐसा है, तो हम यह देखने में असफल हो जाते हैं कि भा.द.वि. की धारा 383 में परिभाषित जबरन वसूली ***(उद्दापन)*** *का अपराध कैसे बनता है। भा.द.वि. की धारा 383 में कहा गया है कि: "383.* ***उद्दापन*** *- जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में साशय डालता है, और एतद्द्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई सम्पति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करता है, वह "****उद्दापन****" करता है।"*

इसलिए, जब तक कि धमकी के अनुसार आरोपी व्यक्ति को संपति नहीं दी जाती, तब तक जबरन वसूली का कोई अपराध नहीं बनता है और धारा 384 के तहत अपराध के लिए पुलिस द्वारा एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती।"

18. सूचक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ एजीए के विद्वान से यह पूछे जाने पर कि क्या संपत्ति या कोई राशि दी गई थी, दोनों अधिवक्ता निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं कि कोई राशि नहीं दी गई, केवल दो करोड़ रुपये की मांग को लेकर आरोप है।

19. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 386 भा.द.वि. के तहत अपराध के लिए, आरोप भा.द.वि. की धारा 383 की सीमा के भीतर आना चाहिए और इस प्रकार, मांगी गई राशि का वितरण होना चाहिए। वर्तमान मामले में, केवल मांग है, राशि दी नहीं गई।

20. आगे यह देखा जाना चाहिए कि भा.द.वि. की धारा 385 उस मामले से संबंधित है जहां जबरन वसूली का प्रयास किया गया है। भा.द.वि. की धारा 385 को यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

i. ***"385 उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति को क्षति के भय में डालना -*** *जो कोई उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति को किसी क्षति के पहुंचाने के भय में डालेगा या भय में डालने का प्रयत्न करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या*

दोनों से दण्डित किया जाएगा।"

21. उपरोक्त धारा के अवलोकन से यह प्रदर्शित होगा कि जहां कोई भी व्यक्ति जबरन वसूली के लिए किसी व्यक्ति को भय में डालता है या किसी व्यक्ति को किसी चोट पहुंचाने का भय पैदा करने का प्रयास करता है तो वह ऐसे अपराध के लिए अधिकतम दो वर्ष की अवधि के लिए दंडनीय है। जैसा कि पक्षों के बीच सहमति हुई है, भा.द.वि. की धारा 385 के तहत उपरोक्त अपराध जमानती प्रकृति का है।

22. एक बार विधायिका ने अपराध को जमानती प्रकृति का प्रावधान कर दिया तो व्यक्ति को जेल में नहीं डाला जा सकता क्योंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार प्रभावित होगा। अभियोजन पक्ष को यह दिखाना आवश्यक है कि वर्तमान मामले में भा.द.वि. की धारा 386 के तहत अपराध बनता है। अभियोजन पक्ष रिकॉर्ड से यह प्रदर्शित करने में विफल रहा है कि एक बार राशि की डिलीवरी नहीं होने पर भा.द. वि. की धारा 386 के तहत अपराध कैसे बनता है।

23. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक के खिलाफ आरोप धारा 386 भा.द.वि. के सीमा के अंतर्गत नहीं आता है और, धारा 385 भा.द.वि. द्वारा सर्वोत्तम रूप से विचारणीय होगा, जो जमानती अपराध है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के मद्देनजर जमानत के लिए आवेदक के अधिकार को कम नहीं किया जा सकता है।

24. सूचक के विद्वान अधिवक्ता और साथ ही विद्वान एजीए ने मामले के दोनों पहलुओं को निष्पक्षता से स्वीकार किया कि मांगी गई राशि का कोई वितरण नहीं हुआ है और इस प्रकार, धारा 386 भा.द.वि. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं हो सकती है। एक बार जब अपराध भा.द.वि. की धारा 385 के तहत हो, जो प्रकृति में जमानती है, तो आवेदक के जमानत पर रिहा होने के अधिकार को कम नहीं किया जा सकता है।

25. वर्तमान मामले में, आवेदक को भा.द.वि. की धारा 323 के तहत भी फंसाया गया है। किसी के घायल होने की सूचना नहीं है। इसका मतलब यह होगा कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार आवेदक द्वारा किसी खतरनाक हथियार का इस्तेमाल नहीं किया गया था। भा.द. वि. की धारा 323 के तहत दी गई सजा एक साल तक बढ़ाई जा सकती है। आवेदक को धारा 504 और 506 भा.द.वि. के तहत भी फंसाया गया है, इस आरोप के साथ कि आवेदक ने धमकी दी है और पैसे की मांग की है, अन्यथा सूचना देने वाला प्रधानी के पद के लिए उपयुक्त नहीं होगा और जान से मारने की धमकी दी गई। उपरोक्त धाराओं में अधिकतम सजा दो वर्ष है और मृत्यु या गंभीर चोट के मामले में यह सात वर्ष है।

26. आवेदक का अपराधिक इतिहास जमानत अर्जी के समर्थन में दाखिल हलफनामे के क्रमांक 30 से 44 तक से उजागर किया गया है। उपरोक्त मामलों में आवेदक को पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है। आवेदक एवं सूचक के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता है।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि एक बार जब कोई राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता होती है, तो आवेदक द्वारा आवेदक के झूठे निहितार्थ को जमानत अर्जी के समर्थन में दाखिल शपथपत्र के अनुच्छेद संख्या 21 के मद्देनजर अधिक विशेष रूप से उठाया जा सकता है। आवेदक ने आरोप लगाया है कि सूचना देने वाला स्थानीय पुलिस के संपर्क में है और पहले भी आवेदक को झूठी एफआईआर में फंसा चुका है। जिसका विवरण शपथपत्र के अनुच्छेद संख्या 22 में दिया गया है जहां आवेदक को पहले ही जमानत मिल चुकी है।

27. जिस तरह से आवेदक के खिलाफ भा.द.वि. की धारा 386 के तहत अपराध दर्ज किया गया है, भले ही इसकी सामग्री एफआईआर में उपलब्ध नहीं है या अन्यथा, विद्वान एजीए के साथ-साथ सूचक के विद्वान अधिवक्ता यह दर्शाने में विफल रहे हैं कि अपराध कैसे हुआ आवेदक के खिलाफ, धारा 386 भा.द.वि. के तहत दर्ज गैर-जमानती प्रकृति के मामला पुलिस अधिकारियों की अतिशयोक्ति को प्रदर्शित करता है, जबकि आवेदक के खिलाफ केवल भा.द.वि धारा 385 ही सर्वोत्तम पाई जा सकती है, जो कि जमानती अपराध है।

28. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, सबूत, अभियुक्तों की मिलीभगत, पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलों और मामले की योग्यता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक की जमानत के लिए मामला बनता है। जमानत अर्जी मंजूर की जाती है।

29. मुकदमा अपराध संख्या 066/2023 भा.द. वि. धारा 147, 148, 323, 504, 506, 386, थाना पुरामुफ्ती, जिला प्रयागराज में शामिल आवेदक **मोहम्मद उबैद** को व्यक्तिगत बंधपत्र एवं दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार निम्नलिखित शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए:-

i. आवेदक मुकदमे के दौरान साक्ष्यों से छेड़छाड़ नहीं करेगा।

ii. आवेदक अभियोजन पक्ष के गवाह पर दबाव नहीं डालेगा/धमकी नहीं देगा।

iii. आवेदक तय तारीख पर परीक्षण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट नहीं दी जाती है और/ या आवेदक को आवश्यकता पड़ने पर पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए खुद को उपलब्ध कराना होगा।

iv. आवेदक उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका उस पर आरोप है, या जिस अपराध के करने का उस पर संदेह है।

v. आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ न की जा सके।

vi. आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा।

vii. यदि आवेदक आवासीय पता बदलता है, तो आवेदक संबंधित अदालत को नए

आवासीय पते के बारे में लिखित रूप से सूचित करेगा।

30. यह भी प्रावधान है कि आवेदक सूचक के घर से 100 मीटर की परिधि के भीतर नहीं आएगा और सूचना देने वाले की शांति को भंग नहीं करेगा और यदि कोई गड़बड़ी होती है, तो पक्षों द्वारा कानून का सहारा लिया जाएगा।

31. संबंधित थाना प्रभारी पक्षों के बीच शांति एवं शांति बनाए रखेंगे।

32. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, अभियोजन पक्ष इस न्यायालय के समक्ष जमानत निरस्तीकरण हेतु आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2023) 8 ILRA 714

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 42807 वर्ष 2021.

आफताब खान ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

आवेदक के अधिवक्ता :

श्री मानवेन्द्र सिंह, श्री बाल कृष्ण यादव (ए.सी.)

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156(3) और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 324, 326, 307 और 504 -जमानत के लिए आवेदन - एफआईआर - आवेदक जेल में है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है - आवेदक ने तर्क दिया कि उसे परोक्ष उद्देश्यों के लिए झूठा फंसाया गया था और कानूनी कार्यवाही में सहयोग का आश्वासन दिया - न्यायालय ने पाया कि, पहले आवेदक को वर्तमान के इस मामले में जमानत पर रिहा कर दिया गया था - लेकिन, उसकी कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण, वह जमानत देने में असमर्थ है, इस तरह, वह जेल में सड़ रहा है -अभिनिर्धारित, न्यायालय ने आवेदक को जमानत दी, आरोपों की प्रकृति, सजा की गंभीरता, आवेदक का आपराधिक इतिहास की कमी और महामारी के दौरान जेलों की भीड़भाड़ सहित कई कारकों पर विचार करते हुए - न्यायालय ने सजा के सुधारात्मक सिद्धांत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधिदेश पर भी जोर दिया - तदनुसार आवेदन स्वीकृत किया गया।(पैरा 5,6,7)

आवेदन अस्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. सुखारी उर्फ सोबरात मामला - आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 19185 वर्ष 2022,

2. जमानत देने की रणनीति के संबंध में बनाम श्री गौरव अग्रवाल - एमएएनयू/ एससीओआर /14591 वर्ष 2023.

3. मोती राम एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य - 1978 खंड 4 एससीसी 47।

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा प्रदत)

<u>आपराधिक प्रकीर्ण पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र संख्या 2/2023 पर आदेश</u>

1. सूची पुनरीक्षित की गई है।

2. आवेदक की ओर से विद्वान न्यायमित्र श्री बाल कृष्ण यादव तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर न्यायमित्र श्री दीपक कुमार सिंह को सुना गया।

3. आवेदक ने अपना पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र दायर किया है। आवेदक उक्त प्रकरण में 5.1.2021 से जेल में है और उसका कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं है। आवेदक को इस प्रकरण में दिनांक 25.1.2022 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा किया गया था। आवेदक एक निर्धन व्यक्ति है जैसा कि जिला जेल द्वारा बताए गए अनुलग्नक-2 से स्पष्ट है क्योंकि आवेदक अपनी कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण जमानत देने में असमर्थ है, ऐसे में वह बिना किसी गलती के जेल में सड़ रहा है।

4. विद्वान न्यायमित्र ने **आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या - 19185/2022 में सुखारी @ सोबराती** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके तहत अपराधी को 10,000/- रुपये का निजी बंधपत्र और समान राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था।

5. विद्वान न्यायमित्र ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **री पॉलिसी स्ट्रैटजी फॉर ग्रांट ऑफ बेल बनाम श्री गौरव अग्रवाल, अधिवक्ता न्यायमित्र, मनु/एससीओआर/14591/2023** में पारित निर्णय पर भी भरोसा जताया है, जो इस प्रकार है: -

"समस्याओं को सुधारने के उद्देश्य से कई दिशा-निर्देश मांगे गए हैं। हमने निर्देशों की जांच की है, जिन्हें हम कुछ संशोधनों के साथ आगे पुन: प्रस्तुत कर रहे हैं:

1) न्यायालय जो विचाराधीन कैदी/दोषी को जमानत देता है, उसे उसी दिन या अगले दिन जेल अधीक्षक के माध्यम से कैदी को जमानत आदेश की सॉफ्ट कॉपी ई-मेल द्वारा भेजनी होगी। जेल अधीक्षक को ई-प्रिजन सॉफ्टवेयर [या जेल विभाग द्वारा उपयोग किए जा रहे किसी अन्य सॉफ्टवेयर] में जमानत देने की तारीख दर्ज करनी होगी।

2) यदि अभियुक्त को जमानत दिए जाने की तिथि से 7 दिनों की अवधि के भीतर रिहा नहीं किया जाता है, तो जेल अधीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह सचिव, डीएलएसए को सूचित करें, जो कैदी के साथ बातचीत करने

और उसकी रिहाई के लिए हर संभव तरीके से कैदी की सहायता करने के लिए अर्ध-कानूनी स्वयंसेवक या जेल विजिटिंग अधिवक्ता को नियुक्त कर सकते हैं।

3) एनआईसी ई-प्रिजन सॉफ्टवेयर में आवश्यक फील्ड बनाने का प्रयास करेगा ताकि जेल विभाग द्वारा जमानत की तारीख और रिहाई की तारीख दर्ज की जा सके और यदि कैदी को 7 दिनों के भीतर रिहा नहीं किया जाता है, तो सचिव, डीएलएसए को एक स्वचालित ईमेल भेजा जा सके।

4) सचिव, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, अभियुक्त की आर्थिक स्थिति का पता लगाने के लिए, कैदी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए परिवीक्षा अधिकारी या अर्ध-विधिक स्वयंसेवकों की सहायता ले सकता है, जिसे जमानत/जमानत की शर्तों में ढील देने के अनुरोध के साथ संबंधित न्यायालय के समक्ष रखा जा सकता है।

5) ऐसे प्रकरण में जहां विचाराधीन कैदी या दोषसिद्ध व्यक्ति अनुरोध करता है कि वह रिहा होने के बाद जमानत बांड या जमानत प्रस्तुत कर सकता है, तो उचित प्रकरण में न्यायालय अभियुक्त को निर्दिष्ट अवधि के लिए अस्थायी जमानत देने पर विचार कर सकता है ताकि वह जमानत बांड या जमानत प्रस्तुत कर सके।

6) यदि जमानत की तारीख से एक महीने के भीतर जमानत बांड प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो संबंधित न्यायालय स्वतः प्रकरण पर विचार कर सकता है और विचार कर सकता है कि क्या जमानत की शर्तों में पुनरीक्षण/ढील की आवश्यकता है।

7) अभियुक्त/दोषी की रिहाई में देरी का एक कारण स्थानीय जमानत पर जोर देना है। यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसे प्रकरण में, अदालतें स्थानीय जमानत की शर्त नहीं लगा सकतीं।"

6. बार में प्रस्तुत तर्कों को सुनने और विद्वान न्यायमित्र द्वारा प्रस्तुत न्याय निर्णयजों पर विचार करने के पश्चात, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि प्रस्तुत तर्कों, प्रस्तुत न्याय निर्णयज और **मोती राम एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1978) 4 एससीसी 47** में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया जाता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 15 इस प्रकार है:-

"15. यह दिलचस्प है कि अमेरिकी अपराधशास्त्रीय सोच और शोध को विधायी प्रतिक्रिया मिली और जमानत सुधार अधिनियम, 1966 अस्तित्व में आया। तत्कालीन राष्ट्रपति लिंडन बी.

जॉनसन ने हस्ताक्षर समारोह में कुछ टिप्पणियां कीं:

आज, हम अपनी आपराधिक न्याय प्रणाली में एक प्रमुख विकास को मान्यता देने के लिए एकत्रित हुए हैं : जमानत प्रणाली में सुधार।

यह प्रणाली 1789 के न्यायपालिका अधिनियम के बाद से ही पुरातन, अन्यायपूर्ण और वस्तुतः अप्रमाणित बनी हुई है।

जमानत का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि गिरफ्तारी के बाद रिहा होने पर आरोपी व्यक्ति मुकदमे के लिए वापस आएगा।

वर्तमान व्यवस्था के तहत यह उद्देश्य कैसे पूरा होता है? साधन संपन्न प्रतिवादी जमानत का भुगतान कर सकता है। वह अपनी स्वतंत्रता खरीद सकता है। लेकिन गरीब प्रतिवादी इसकी कीमत नहीं चुका सकता। उसे मुकदमे से पहले हफ्तों, महीनों और शायद सालों तक जेल में रहना पड़ता है।

वह इसलिए जेल में नहीं रहता क्योंकि वह दोषी है।

वह किसी भी सजा के कारण जेल में नहीं रहता।

वह जेल में नहीं रहता क्योंकि मुकदमे से पहले ही उसके भागने की सम्भावना अधिक है।

वह केवल एक कारण से जेल में रहता है-क्योंकि वह गरीब है...."

7. उपर्युक्त मुकदमा अपराध संख्या में शामिल आवेदक- **आफताब खान** को इस शर्त के साथ जमानत पर रिहा किया जाए कि विचारण न्यायालय **री पॉलिसी स्ट्रैटजी फॉर ग्रांट ऑफ बेल(पूर्वोक्त)** में पारित फैसले के पैराग्राफ 5 और 6 के आलोक में हर संभव प्रयास करेगा और उसे वर्तमान जमानत आदेश में पारित आदेश दिनांक 25.1.2022 के तहत आवेदक पर लगाई गई शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए 10,000/- रुपये के व्यक्तिगत बंध पत्र और समान राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करने के बाद जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 716

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 661 वर्ष 2003

पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :

एम.एस. खान, प्रदीप कुमार शुक्ला

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 107 और 306 - आत्महत्या के लिए उकसाना - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध

अपील - जुर्माने के साथ कारावास - अभियोजन साक्षी 3 के अलावा किसी अन्य साक्षी ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया - अभियुक्त अक्सर शराब पीता था, अपनी पत्नी और बच्चों की देखभाल नहीं करता था - अभियोजन साक्षी 3 के साक्ष्य से पता चलता है कि पत्नी अपने पति के आचरण से परेशान और क्षुब्ध महसूस कर रही थी और उनके बीच कलह का कारण थी - घटना वाले दिन, वह घर लौटा, खाना मांगा, उसने कहा कि जब राशन नहीं है तो खाना कैसे बनेगा, इस जवाब से क्रोधित होकर, उसने अपनी पत्नी के साथ मारपीट की - वह परेशान हो गई, गवाहों द्वारा सलाह दिए जाने पर, उसने अपनी जान लेने का फैसला किया, खुद को आग लगा ली, यह बात मरने से पहले दिए गए बयान से साबित होती है - मरने से पहले दिए गए बयान में उसने कहा कि उसका पति शराबी था, उसने उसे परेशान किया और उसकी सारी संपत्ति बेच दी - इस बयान के अलावा उसने ऐसा कुछ नहीं कहा जिससे उसे अपनी जान लेने पर मजबूर होना पड़ा, जिसकी पुष्टि अभियोजन साक्षी 3 ने की- अभियुक्त का कृत्य निंदनीय हो सकता है लेकिन आत्महत्या के लिए उकसाने के बराबर नहीं है जब तक कि इसमें कुछ और जोड़ने लायक न हो - इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया गया, बरी कर दिया गया। (पैरा 2, 18 से 20)

अपील स्वीकृत।(ई-14)

उद्धत मामलों की सूची:

उदे सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 17 एससीसी 301, (पैरा 16)

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा प्रदत)

1. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार शुक्ला और राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री जुगल किशोर को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील, अपीलार्थी पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी द्वारा दायर की गई है, जिसमें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी.-तृतीय, सुल्तानपुर द्वारा एस.टी. संख्या 37/2021 में पारित दोषसिद्धि और सजा के आदेश दिनांक 24.04.2003 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत अपीलार्थी को धारा 306 आई.पी.सी. के तहत दोषी ठहराया गया है और 8 वर्ष के कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने और जुर्माना न अदा करने की स्थिति में 6 महीने के अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. अपीलार्थी द्वारा अनेक विधिक और तथ्यात्मक बिन्दु उठाए गए हैं, जिन पर निर्णय के मुख्य भाग में उचित चरणों में विचार किया जाएगा।

4. प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

(i) सूचनाप्रदाता सत्य नारायण तिवारी ने सम्बन्धित थाने में लिखित आख्या दी कि उसकी बहन मीरा देवी का विवाह पवन सुत

उर्फ राम सुख तिवारी के साथ हुआ था; पवन सुत उर्फ राम सुख (अभियुक्त), राम दास, गुरुप्रसाद, श्रीचन्द ने दिनांक 26.09.2000 को रात्रि लगभग 9 बजे उसे आग लगा दी; एफ.आई.आर. में आरोप लगाया गया है कि उसका पति धीरे-धीरे अपनी सारी सम्पत्ति बेच रहा था तथा वह अपनी बहन से कहता था कि वह अपने खर्च चलाने के लिए उसके मायके से कम से कम 10,000 रूपये प्रतिमाह लाया करे; आगे आरोप लगाया गया है कि जब उसकी बहन ने उसे सारी बात बताई तो उसने उसे समझाया-बुझाया तथा उसे उसके पति के घर छोड़ दिया; उसे घटना की सूचना अगले दिन सायं लगभग 4.00 बजे मिली, अतः वे जिला अस्पताल, सुल्तानपुर पहुंचे; उसकी बहन (मृतका) ने उसे बताया कि जब उसने पूछा कि सब्जी लाये हो या नहीं तो अभियुक्त नाराज हो गया; उसने उस पर मिट्टी का तेल डाला और बाकी आरोपियों ने मदद की और उसके पति ने उसे आग लगा दी; उसकी हालत बिगड़ गई और उसने दिनाँक 28.09.2000 को अपनी चोटों के कारण दम तोड़ दिया; इस सूचना के आधार पर, मामला अपराध संख्या 402/2000 धारा 304 आई.पी.सी. के तहत पंजीकृत किया गया और जांच की गई; शव का अन्त्य परीक्षण किया गया; मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया; गवाहों के बयान दर्ज किए गए और उसके बाद आरोपी पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी के विरुद्ध धारा 306 आई.पी.सी. के तहत आरोप पत्र दायर किया गया ।

(ii) अभियोजन पक्ष ने अभियोजन साक्षी -1-सत्य नारायण (प्रथम सूचक), अभियोजन साक्षी-2-हरे राम, अभियोजन साक्षी-3-रवि दत्त तिवारी, अभियोजन साक्षी-4-अशर्फी लाल (तथ्य के साक्षी), अभियोजन साक्षी-5-डॉ. अनिल कुमार, अभियोजन साक्षी-6-डॉ. बी.एन. तिवारी, अभियोजन साक्षी 7-ए.एस.आई. प्रमोद कुमार, अभियोजन साक्षी-8-नायब तहसीलदार, अभियोजन साक्षी-9-आशा राम (नायब तहसीलदार), अभियोजन साक्षी-10-जांच अधिकारी से पूछताछ की।

(iii) अभियुक्त का बयान धारा 313 सी.आर.पी.सी. के अन्तर्गत दर्ज किया गया; अभियुक्त ने इस बात से इनकार किया कि उसकी पत्नी की मृत्यु जलने से हुई, परन्तु उसने स्वीकार किया कि उसकी पत्नी की मृत्यु दिनाँक 28.09.2000 को प्रातः लगभग 6.30 बजे हुई; मामले के अन्य सभी तथ्यों से साफ इनकार करने के पश्चात उसने कहा कि उसकी पत्नी के कपड़ों में आग तब लगी जब वह खाना बना रही थी और वह निर्दोष है।

5. उभय पक्षों के तर्कों के आलोक में अभिलेख पर उपलब्ध कागजातों को सुना और उनका अवलोकन किया।

6. अभियोजन साक्षी-1-सत्य नारायण तिवारी, जो निस्संदेह मृतका का सगा भाई है, ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करने का निर्णय लिया है तथा इस बात से इंकार किया है कि उसकी बहन ने उसे कभी बताया था कि अभियुक्त पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी (मृतका का पति) ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का तथा आग लगा दी; उसके द्वारा दिए गए बयान से यह तथ्य पर्याप्त रूप से सिद्ध होता है कि जब वह

अपनी बहन से अस्पताल में मिलने गया था, तो वह वहां पर शरीर पर गंभीर रूप से जलने के घावों के साथ पड़ी थी तथा अगले दिन उसकी मृत्यु हो गई।

7.अभियोजन साक्षी-2-हरि राम ने मृतका और उसके पति के बीच किसी भी तरह के झगड़े या उसके द्वारा कभी भी उसके साथ दुर्व्यवहार किए जाने की जानकारी होने से इनकार किया; उसने कहा कि घटना के समय वह गांव में नहीं था।

8. अभियोजन साक्षी-3- रवि दत्त तिवारी, जो अभियुक्त के ही परिवार से है, ने कहा है कि पवन सुत उर्फ राम सुख तिवारी शराबी था; वह कोई काम नहीं करता था और वह अपनी सारी संपत्ति धीरे-धीरे बेच रहा था, इसलिए उसके बच्चों की देखभाल करने वाला कोई नहीं बचा था; उसने कहा है कि उसकी पत्नी (मृतका) उसे ऐसी आदत में लिप्त होने और अपनी संपत्ति को नष्ट करने से रोकने की कोशिश करती थी और दलील देती थी कि यदि जीविका का कोई स्रोत नहीं बचा तो वह और उसके बच्चे कैसे जीवित रहेंगे; उसने आगे कहा है कि उसके बच्चे अक्सर भूखे सो जाते थे और कई बार वह ही उन्हें भोजन कराकर मदद करता था; वह पड़ोसियों द्वारा उसके बच्चों को भोजन कराने के मुद्दे पर अपनी पत्नी से झगड़ा भी करता था; उसकी पत्नी उसकी हरकतों से बहुत परेशान थी और चाहती थी कि वह शराब पीने की आदत छोड़ दे; वह अपनी पत्नी के साथ बार-बार मारपीट करता था; घटना के बारे में गवाही देते हुए उसने कहा है कि उस दिन अभियुक्त उसके घर लौटा और भोजन मांगा; उसकी पत्नी ने पलटकर कहा कि जब राशन ही नहीं है तो खाना कैसे बनेगा; इस उत्तर से क्रोधित होकर उसने अपनी पत्नी को पीटना शुरू कर दिया; उसके बच्चे जोर-जोर से रो रहे थे; उसने (गवाह ने) हस्तक्षेप किया और उन्हें समझाने तथा समझाने का प्रयास किया; अभियुक्त अपने घर से बाहर चला गया और लगभग 8 बजे शाम को वापस लौटा; उसने स्पष्ट रूप से कहा कि अपने घर से निकलते समय उसने उसे यह कहकर ताना मारा था कि वह घर में रहे और वह जा रहा है; इसके बाद मृतका साक्षी के घर आई; साक्षी और अन्य लोगों ने उसे समझाने का प्रयास किया; कुछ देर बाद उसने तेज चीखें सुनीं; वह मीरा देवी के घर की ओर दौड़ा और देखा कि दरवाजे से धुआं निकल रहा है; बच्चे रो रहे थे; वह और अन्य गवाह-हरि राम आदि घटना स्थल पर पहुंचे; मृतका ने दरवाजा खोला और देखा कि उसके कपड़े जल गए थे; वह रो रही थी; उसे दूसरे कपड़े पहनाए गए और उसे अस्पताल ले जाया गया; उसे जिला अस्पताल रेफर किया गया लेकिन उसकी मृत्यु हो गई।

9. अभियोजन साक्षी-4-अशर्फी लाल ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है।

10. अभियोजन साक्षी-5-डॉ. अनिल कुमार, जिन्होंने शव विच्छेदन किया था, ने बयान दिया है कि शरीर के एक छोटे से हिस्से को छोड़कर, उसके पूरे शरीर पर जलने के घाव थे और कुछ हिस्सों पर छाले थे; वह 80 से 90 प्रतिशत तक जली हुई थी।

11. अभियोजन साक्षी- 6-डॉ. बी.एन. तिवारी ने बयान दिया है कि उन्हें एस.डी.एम. के समक्ष मृत्युपूर्व बयान लेने के लिए भेजा गया था।

12. अभियोजन साक्षी-8-नायब तहसीलदार ने मृत्युपूर्व दिए गए बयान को साबित कर दिया है जो अभिलेख में है; अपने मृत्युपूर्व दिए गए बयान में उसने निम्नवत कहा है:-

"मेरा पती शराबी है रोज शराब पीकर हमें प्रताड़ित करता है और सारी संपति बेच डाला है जिससे तंग आकर मैंने खुद अपने शरीर में आग लगाकर झुलस गयी हूँ। मेरे बड़े लड़के का नाम मनीष उम्र लगभग 9 वर्ष,दूसरे लड़के का का नाम विपिन उम्र लगभग 6 वर्ष है तीसरी संतान लड़की है जो 3 वर्ष की है मेरे पिता का नाम शीतला प्रसाद तिवारी निवासी चौपड़िया थाना लम्भुआ सुल्तानपुर है। आग मैंने अपनी साड़ी में लगाई थी। मिटटी का का तेल आदि नहीं डाला था। बयान पढ़कर सुनाया गया तस्दीक की तथा हस्ताक्षर बनवाया जा रहा है।"

13. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने से पहले, सबसे पहले आई.पी.सी. की धारा 306,आत्महत्या के लिए उकसाने के दायरे की जांच करना उपयोगी होगा और मोटे तौर पर यह देखना होगा कि किस तरह के कृत्यों को धारा 306 आई.पी.सी. के अपराध की सीमा के भीतर लाने के रूप में समझा जा सकता है।

आई.पी.सी. की धारा 306 इस प्रकार है:-

"306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण:- यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दण्डित किया जाएगा, जिसे दस वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, और साथ ही वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।"

भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के तहत उकसावे को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:-

"107. किसी कार्य को करने का दुष्प्रेरण-कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने का दुष्प्रेरण करता है,जो -

प्रथम- किसी व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए उकसाता है; या द्वितीय- उस कार्य को करने के लिए किसी षडयंत्र में एक या एक से अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में और उस कार्य को करने के लिए कोई कार्य या अवैध लोप घटित होता है; या तृतीय- उस कार्य को करने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा जानबूझ कर सहायता करता है।

स्पष्टीकरण 1- कोई व्यक्ति, जो जानबूझकर दुर्व्यपदेशन द्वारा या किसी ऐसे तात्विक तथ्य को, जिसे प्रकट करने के लिए वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाकर, किसी बात को स्वेच्छा से करवाता या उपाप्त करता है या करवाने या उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, उस बात को किए जाने के लिए उकसाता है, कहा जाता है।

स्पष्टीकरण 2- जो कोई किसी कार्य के किए जाने से पूर्व या किए जाने के समय उस कार्य के किए जाने को सुगम बनाने के लिए कोई

कार्य करता है और तद्द्वारा उसके किए जाने को सुगम बनाता है, वह उस कार्य के किए जाने में सहायता करता है, यह कहा जाता है।

14. धारा 306 आई.पी.सी. के तहत अपराध के आवश्यक तत्व आत्महत्या के लिए उकसाना और उसके परिणामस्वरूप आत्महत्या करना है। 'उकसाने' का मतलब जानबूझकर मदद करना या उकसाना या साजिश में शामिल होना हो सकता है।

15. **उदे सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 17 एस.सी.सी. 301** में सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"16. आत्महत्या के लिए कथित रूप से उकसाने के मामलों में, आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्य/कार्यों का सबूत होना चाहिए। इस बात पर शायद ही कोई विवाद हो सकता है कि आत्महत्या के कारण का सवाल, विशेष रूप से आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के संदर्भ में, एक पेचीदा सवाल बना हुआ है, जिसमें मानव व्यवहार और प्रतिक्रियाओं/प्रभावों की बहुमुखी और जटिल विशेषताएं शामिल हैं। आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप के मामले में, न्यायालय आत्महत्या के लिए उकसाने के कृत्य/कार्यों के ठोस और पुख्ता सबूत की तलाश करेगा। आत्महत्या के मामले में, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मृतक को परेशान करने का मात्र आरोप पर्याप्त नहीं होगा, जब तक कि अभियुक्त की ओर से ऐसा कोई कार्य न हो जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता हो; और ऐसा अपमानजनक कार्य घटना के समय के निकट होना चाहिए। किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया है या नहीं, यह केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है।

16.1. यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति को आत्महत्या के लिए उकसाया है; विचार यह होगा कि क्या आरोपी आत्महत्या के लिए उकसाने के कृत्य का दोषी है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में स्पष्ट और दोहराया गया है-

जैसा कि उल्लेख किया गया है, ***उकसाने का अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ाना, उकसाना, उकसाना या प्रोत्साहित करना****। यदि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति अतिसंवेदनशील थे और आरोपी की कार्रवाई से अन्यथा समान परिस्थितियों वाले व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं हो सकता है। लेकिन, दूसरी ओर, यदि आरोपी अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं दिखता है, तो मामला धारा 306 आई.पी.सी. के अंतर्गत आ सकता है। यदि आरोपी पीड़ित के आत्म-गौरव और आत्मसम्मान को धूमिल करने में सक्रिय भूमिका निभाता है,जो अंततः पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है, तो*

आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से ***मनःस्थिति के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कार्यों के संदर्भ में की जाएगी*** *और यदि कृत्य और कार्य केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का इरादा उत्पीड़न या क्रोध के अचानक प्रदर्शन से अधिक कुछ नहीं था, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर अभियुक्त मृतक को शब्दों या कार्यों से तब तक तंग या परेशान करता रहा जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं की या उसे उकसाया नहीं गया,तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। यह मानव व्यवहार के नाजुक विश्लेषण का मामला है, इसलिए प्रत्येक मामले की जांच उसके अपने तथ्यों पर की जानी चाहिए, जबकि अभियुक्त और मृतक के कार्यों और मानसिकता पर असर डालने वाले सभी आसपास के कारकों पर ध्यान देना चाहिए।"*

16. भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अनुप्रयोग के लिए,विधि की अपेक्षा है कि आत्महत्या के कृत्य और अभियुक्त द्वारा पीड़ित के साथ किए गए व्यवहार या संव्यवहार के बीच निकटता होनी चाहिए या ऐसे कृत्य होने चाहिए जो जानबूझकर मृतक को अपना जीवन समाप्त करने में सहायता करने या उकसाने या प्रेरित करने के बराबर हों।

17. इस मामले में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि अभियुक्त ने अपराध के लिए उकसाया। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है, 'उकसाने' का अर्थ है "किसी कार्य" को करने के लिए उकसाना,आगे बढ़ाना, उकसाना, उत्तेजित करना या "किसी कार्य" को करने के लिए प्रोत्साहित करना। जाहिर है कि इरादा प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर जाना जाता है। सामान्य आवेदन के लिए कोई सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

18. अब इस मामले के तथ्यों पर वापस आते हैं, अभियोजन साक्षी-3 रवि दत्त तिवारी के अलावा किसी अन्य गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। उनके द्वारा दिए गए तथ्यों पर साक्ष्य इस निर्णय के पैरा-8 में पुनः प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके द्वारा बताए गए सभी तथ्यों को उनके अंकित मूल्य पर या विश्वसनीय और भरोसेमंद के रूप में लिया जाए, तो ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त अक्सर शराब पीता था और अपनी पत्नी और बच्चों की पर्याप्त देखभाल नहीं करता था। वह अपनी संपत्ति को बेचकर बर्बाद कर रहा था और यही अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच टकराव का कारण था। अभियोजन साक्षी-3 द्वारा दिए गए साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से आभास होता है कि पत्नी अपने पति के आचरण से परेशान और उत्तेजित महसूस कर रही थी और यही उनके बीच अक्सर झगड़े का कारण था। घटना के दिन, वह घर लौटा और खाना मांगा, इस पर उसने यह कहकर प्रतिक्रिया व्यक्त की कि जब राशन नहीं है तो खाना कैसे पकाया जा सकता है; इस जवाब से क्रोधित होकर, उसने अपनी पत्नी के साथ मारपीट की और ताना मारा कि वह घर में रहे और वह जा रहा है। उसके द्वारा दिए गए साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि

वह बहुत परेशान हो गई थी और उसे गवाह ने सलाह दी थी, हालांकि उसने अपनी जान लेने और खुद को आग लगाने का फैसला किया। उसने खुद को आग लगा ली, यह एक ऐसा तथ्य है जो उसके खुद के मृत्यु पूर्व बयान से स्पष्ट रूप से साबित हुआ है। यदि मृत्यु पूर्व बयान का अवलोकन किया जाए, तो उसने बस इतना कहा है कि उसका पति शराबी है और उसे परेशान करता था और सारी संपत्ति भी बर्बाद कर दी/बेच दी और कहा कि ***जिससे तंग आकर मैंने खुद अपने शरीर में आग लगाकर झुलस गयी हूँ।*** उपरोक्त बयान के अलावा, उसने ऐसा कुछ नहीं कहा है जो उन परिस्थितियों पर अतिरिक्त प्रकाश डाल सके जिसने उसे अपनी जान लेने के लिए मजबूर किया। उसके द्वारा उसके मृत्यु पूर्व बयान में दिया गया बयान अभियोजन साक्ष-3 द्वारा दिए गए बयान से पुष्ट होता है। उपरोक्त दो महत्वपूर्ण साक्ष्यों,यानी मृत्यु पूर्व बयान और अभियोजन साक्षी-3 की अन्य गवाही पर संदेह करने का कोई कारण नहीं दिखता। अब संक्षिप्त प्रश्न यह उठता है कि क्या ये तथ्य और परिस्थितियां धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत अपराध का गठन करेंगी।

19. एक पत्नी जो छोटे बच्चों की माँ थी, का दर्द और पीड़ा, उसके सामने आने वाली जीविका की समस्या, अपने पति को कारण समझने में असमर्थता, गरीबी की समस्या, पति और पत्नी के बीच जटिल मानवीय समीकरण, घरेलू शांति पर ऐसी स्थितियों का प्रभाव आदि की कल्पना आसानी से की जा सकती है। शराब पीने की आदत, संपत्ति को बरबाद करने की हरकत, मारपीट, घरेलू विवाद या दो वक्त की रोटी न जुटा पाने के कारण झगड़े, बच्चों की अच्छी देखभाल के लिए पैसे की कमी बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है और यह केवल आस-पास रहने वाले लोगों, मृतक और उसके बच्चों के करीबी रिश्तेदारों या शुभचिंतकों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सभी के मन में सहानुभूति और भावनाएं जगाती है। लेकिन न्यायालय का कर्तव्य है कि वह भावनाओं के आधार पर नहीं बल्कि तथ्यों के आधार पर निर्णय ले। मेरे विचार से अभियुक्त का कृत्य निंदनीय हो सकता है लेकिन इसे **"आत्महत्या के लिए उकसाना"** नहीं कहा जा सकता, जब तक कि इसमें कुछ और न जोड़ा जाए। मेरे विचार में, अभियुक्त की ओर से कुछ अधिक प्रत्यक्ष कार्य, यद्यपि अप्रत्यक्ष हो सकता है, की आवश्यकता थी ताकि उसके कृत्य या आचरण को "उकसाने" शब्द के अर्थ के अंतर्गत लाया जा सके।

20. दुर्भाग्यपूर्ण कहानी यहीं खत्म नहीं होती। अपराध बोध के साथ, मैं यह लिखने के लिए बाध्य हूं कि यह अपील सुनवाई के लिए तब आई है जब अभियुक्त ने अपनी पूरी सजा काट ली थी और उसे रिहा कर दिया गया था। वास्तव में, उसे अनजाने में हुई घटनाओं के कारण कारावास की अवधि से एक महीने अधिक समय तक हिरासत में रखा गया था, जिसका यहां विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना ही काफी है कि विधि की गरिमा में दरारें बहुत बड़ी हैं। न्याय प्रदान करने वाली प्रणाली की विफलताएं और कमज़ोरियाँ अपने आप ही सामने आ रही हैं।

21. पैरा संख्या-20 से पहले के उपखंडों में की गई चर्चा के मद्देनजर, विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को दोषी ठहराने वाला दिया गया निर्णय टिकने योग्य नहीं है और अभियुक्त बरी किये जाने का हकदार है।

22. अपर सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी. तृतीय, सुल्तानपुर द्वारा एस.टी. संख्या 37/2021 में पारित निर्णय एवं सजा आदेश दिनांक 24.04.2003 को रद्द किया जाता है और अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाता है।

23. तदनुसार, यह आपराधिक अपील **स्वीकार** की जाती है।

24. निर्णय की प्रति आवश्यक कार्रवाई हेतु तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 8 ILRA 722

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 1164 वर्ष 2015

नांगू उर्फ रामबाबू ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :

व्यक्तिगत रूप से, राजेश कुमार द्विवेदी

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 377/511 और 201 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - न्यायेतर स्वीकारोक्ति - विश्वसनीयता - संदेह का लाभ - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173(2), 207, 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 - पीडब्लू-2 और पीडब्लू-7 ने पीडब्लू-1 को बताया कि अपीलकर्ता ने उन्हें बताया कि उसने बहुत बड़ी गलती की है और शराब और गांजे के नशे में वह मृतक को झाड़ियों में ले गया था और उसके साथ अप्राकृतिक यौन संबंध बनाया और बाद में मृतक की हत्या कर दी, शव को तालाब में फेंक दिया - आगे कहा कि अपीलकर्ता ने उनसे पैसे लेकर पीडब्लू1 के साथ मामले में समझौता करने का अनुरोध किया - पीडब्लू-2 और पीडब्लू-7 अपने बयान से पलट गए - पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 करीबी रिश्तेदार थे और अपीलकर्ता के साथ उनके शत्रुतापूर्ण संबंध थे- पीडब्लू-1 ने पीडब्लू-1 और अपीलकर्ता के विरुद्ध सीआर.पी.सी. की धारा 107/16 के तहत कार्यवाही स्वीकार की - पीडब्लू-2 ने किसी आपराधिक मामले में शामिल होने की बात स्वीकार नहीं की, लेकिन स्वीकार किया कि अपीलकर्ता ने शराब पीकर पीडब्लू-2 के साथ दुर्व्यवहार किया था। - पीडब्लू-2 के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा किए गए न्यायेतर स्वीकारोक्ति के अलावा, अपराध में अपीलकर्ता की संलिप्तता साबित करने वाला कोई अन्य साक्ष्य नहीं है - अपीलकर्ता की

निशानदेही पर कोई बरामदगी नहीं हुई और घटनास्थल से कपड़े बरामद नहीं हुए, जिन्हें कभी फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया, अपीलकर्ता के विरुद्ध अंतिम बार देखे जाने का कोई साक्ष्य नहीं है। (पैरा 29 से 31, 33)

जेल अपील की अनुमति दी गई।(ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. राम लाल बनाम हरियाणा राज्य रिपोर्टेड इन (2019) 17 एससीसी 411, (पृष्ठ 418, पैरा 14)

2. आर. बनाम वारविकशाल: (1783) 1 लेस्च 263

3. राजस्थान राज्य बनाम राजा राम रिपोर्टेड इन (2003) 8 एससीसी 180, (एससीसी पृष्ठ 192, पैरा 19 और 20)

4. बलविन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य रिपोर्टेड इन 1996 एससीसी (क्रि) 59 (एससीसी पृष्ठ 265, पैरा 10)

5. पक्किरसामी बनाम तमिलनाडु राज्य रिपोर्टेड इन (1997) 8 एससीसी 158, (एससीसी पृष्ठ 162, पैरा 8)

6. कविता बनाम तमिलनाडु राज्य रिपोर्टेड इन (1998) 6 एससीसी 108, (एससीसी पृष्ठ 109, पैरा 4)

7. आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य रिपोर्टेड इन (2007) 12 एससीसी 230, (एससीसी पृष्ठ 265-66, पैरा 87 और 89)

8. संसार चंद बनाम राजस्थान राज्य रिपोर्टेड इन (2010) 10 एससीसी 604, (एससीसी पृष्ठ 611, पैरा 29- 30)

9. रमेशभाई चंदूभाई राठौड़ बनाम गुजरात राज्य रिपोर्टेड इन (2009) 5 एससीसी 740, (एससीसी पीपी. 772-73, पैरा 53)

10. एस.के. यूसुफ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2011) 11 एससीसी 754

11. पंचो बनाम हरियाणा राज्य (2011) 10 एससीसी 165

12. सहदेवन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य रिपोर्टेड इन (2012) 6 एससीसी 403, (एससीसी पृष्ठ 412, पैरा 16)

13. चंद्रपाल (पूर्व सांसद) बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, रिपोर्टेड इन 2022 लाइव लॉ (एससी) 529, (पैरा 11)

14. सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य 2022 रिपोर्टेड इन लाइव लॉ (एससी) 887, (पैरा 54, 57, 58, 59)

15. पवन कुमार चौरसिया बनाम बिहार राज्य रिपोर्टेड इन 2023 लाइव लॉ (एससी) 197, (पैरा 5)

16. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य रिपोर्टेड इन (1984) 4 एससीसी 116, (एससीसी पृष्ठ 185, पैरा 153)

17. निखिल चंद्र मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य रिपोर्टेड इन (2023) 6 एससीसी 605, (एससीसी पृष्ठ 609, पैरा 11)

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा प्रदत)

1. यह अपील अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, लखीमपुर खीरी द्वारा सत्र विचारण संख्या-761 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 01.08.2015 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, लखीमपुर खीरी (इसके बाद 'विचारण न्यायालय' के रूप में संदर्भित) ने अपीलकर्ता नंगू @ रामबाबू को धारा 302, 377/511 और धारा 201 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया है।

2. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि शिकायतकर्ता महेश ने दिनांक 01.11.2009 को थाना-गोला, जिला लखीमपुर खीरी (प्रदर्श क-13) के प्रभारी निरीक्षक को इस आशय की एक लिखित शिकायत प्रस्तुत की कि शिकायतकर्ता का बेटा अंकुर उम्र लगभग 10 वर्ष 31.10.2009 को लगभग 7:00 बजे, टॉफी खरीदने के लिए पास की दुकान पर गया था, लेकिन रात में वापस नहीं लौटा। शिकायतकर्ता ने अपने परिवार के सदस्यों के साथ अपने बेटे अंकुर की तलाश की और सुबह लगभग 09:00 बजे, उसके बेटे अंकुर (पंत, अंडरवियर और बनियान) के कपड़े गांव के उत्तर की ओर स्थित तालाब के पास पाए गए और तलाशी लेने पर उसके बेटे अंकुर का शव तालाब में मिला। यह अनुरोध किया गया था कि आवश्यक कार्रवाई की जाए।

3. शव की बरामदगी के बाद दिनांक 02.11.2009 (प्रदर्श क-3ए) को शव परीक्षण किया गया, उसके बाद धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-1341 वर्ष 2009 के साथ जीडी एंट्री (प्रदर्श क-12) की गई।

4. शिकायतकर्ता महेश द्वारा 18.11.2009 को थाना-गोला, जिला लखीमपुर खीरी के प्रभारी को इस आशय की एक और लिखित शिकायत (प्रदर्श क-1) प्रस्तुत की गई थी कि 18.11.2009 को, आरोपी नंगू @ राम बाबू शिकायतकर्ता के चचेरे भाई राजेश कुमार के पास आया और कहा कि उसने शराब और गांजा के प्रभाव में एक बड़ी गलती की है। वह अंकुर को अप्राकृतिक कृत्य के उद्देश्य से झाड़ियों में ले गया था और अंकुर द्वारा किए गए शोर-शराबे पर उसने उसकी हत्या कर दी थी और शव से कपड़े उतारने के बाद उसने अंकुर के शव को तालाब में फेंक दिया था। आगे कहा गया कि नंगू @ राम बाबू ने अपने चचेरे भाई से कहा कि वह पैसे ले सकता है और महेश के साथ मामला सुलझा सकता है। इसलिए, शिकायतकर्ता ने कहा है कि उसे पूरा विश्वास है कि उसके बेटे अंकुर की हत्या नंगू @ राम बाबू ने की है और उसे जेल भेजा जाए।

5. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, पुलिस ने अपराध की विवेचना की और सबूत इकट्ठा करने के बाद, धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत नंगू @ राम बाबू के खिलाफ धारा 302, 201 और 377 के साथ धारा 511 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दाखिल दिया और विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेने और धारा 207 द०प्र०स० के प्रावधानों का पालन करने के बाद मामले को सत्र न्यायालय में परीक्षण के लिए सौंप दिया। दिनांक 09.02.2011 को अभियुक्त नंगू @ रामबाबू पर धारा 511 भ०द०वि० सपठित धारा 302, 201 और 377 के तहत आरोप लगाया गया था। मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष द्वारा सात व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए, जिनमें महेश (मृतक अंकुर के पिता) अ.सा.-1, राजेश कुमार अ.सा.-2, डॉ. एस.पी सिंह (मृतक का शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर) अ.सा.-3, डॉ. ए.के शर्मा अ.सा.-4, राम नारायण सिंह अ.सा.-5, एस.आई मनोज कुमार यादव अ.सा.-6 और शहाबुद्दीन अ.सा.-7 शामिल हैं। नंगू @ रामबाबू नामक आरोपी का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था।

6. अभियोजन पक्ष ने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1, पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-2, फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-3, शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-3A, पैथोलोजी रिपोर्ट प्रदर्श क-4, नक़्शा नज़री प्रदर्श क-5, आरोप पत्र प्रदर्श क-6, फ़ोटो लाश प्रदर्श क-7, चालान लाश प्रदर्श क-8, नमूना मोहर प्रदर्श क-9, सीएमओ को चिट्ठी प्रदर्श क-10, थाना-रिपोर्ट प्रदर्श क-11, दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में जीडी रिपोर्ट प्रदर्श क-12 और लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-13 की प्रति प्रस्तुत की।

7. पूरे साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी नंगू @ रामबाबू को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और अभियुक्त/अपीलकर्ता को आजीवन कारावास और 20,000/-रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में एक वर्ष का साधारण कारावास, और धारा 377/511 भ०द०वि० के तहत पांच साल की कैद और 5,000 रुपये का जुर्माना और जुर्माना न देने की स्थिति में छह महीने की साधारण कैद भ०द०वि० की धारा 201 के तहत तीन साल की कैद और 2,000 रुपये का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर एक महीने का साधारण कारावास की सजा सुनाई।

8. अभियुक्त/अपीलकर्ता के अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने दोषसिद्धि के आदेश पर हमला किया और निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

I) अभियोजन का मामला पूरी तरह से अभियुक्त के अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर आधारित है जो विश्वसनीय नहीं है। यह अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति अपीलकर्ता की दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकती है क्योंकि इसकी कोई पुष्टि नहीं है और जब कानून के स्थापित सिद्धांतों के आलोक में इसकी जांच की जाती है, तो यह महत्वहीन है,

इस प्रकार, अभियुक्त संदेह के लाभ का हकदार है।

II) न्यायिक स्वीकारोक्ति, अग्राह्य होने के अलावा, साक्ष्य का एक बहुत ही कमजोर टुकड़ा भी है और वर्तमान जैसे परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, कोई अभियुक्त के खिलाफ अपराध के निष्कर्ष को वापस करने के लिए एक वैध आधार नहीं बना सकता है।

III) आरोपी अपीलकर्ता के लिए अ.सा.-2 के समक्ष स्वीकारोक्ति करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि स्वीकार्य रूप से अ.सा.-2 अभियुक्त के साथ अच्छे संबंध में नहीं है और अ.सा.-1 (चचेरे भाई भाई) से भी संबंधित था, जिसकी आरोपी अपीलकर्ता के साथ दुश्मनी थी।

IV) प्रस्तुत मामले में, न तो कोई चश्मदीद गवाह था और न ही अभियोजन पक्ष ने श्रृंखला परिस्थितियों को पूरा साबित किया था, अपराध के आयोग में अपीलकर्ता की भागीदारी का कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था।

V) किसी भी मामले में, पुलिस द्वारा बरामद की गई वस्तुओं का अपराध के कमीशन से कोई संबंध नहीं है, इसलिए कानून में दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए अभियुक्त के खिलाफ इन बरामदगी का उपयोग करना अस्वीकार्य होगा। अभियुक्त के इकबालिया बयान के आगे कोई बरामदगी नहीं की गई है।

VI) मृतक के बरामद लेख (पैंट, बनियान और अंडरवियर) को विवेचनाधिकारी द्वारा रासायनिक विश्लेषण के लिए नहीं भेजा गया था और न ही रिकॉर्ड पर कोई फोरेंसिक रिपोर्ट है। पैथोलॉजी रिपोर्ट प्रदर्श क-4 में, स्लाइड में कोई शुक्राणु नहीं पाया गया था।

VII) अ.सा.-2 के समक्ष की गई कथित न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति उन कारणों से विश्वसनीय नहीं है कि अ.सा.-2 संबंधित और शत्रुतापूर्ण गवाह है और इसके अलावा घटना के 16-17 दिनों के बाद अ.सा.-2 राजेश कुमार के समक्ष अभियुक्त की कथित न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की गई थी।

VIII) विवेचनाधिकारी को मौके पर कोई खून नहीं मिला। प्राथमिकी दर्ज करने में अत्यधिक विलंब हुआ है।

IX) न्यायालय अपने सही परिप्रेक्ष्य में रिकॉर्ड पर रखे गए चिकित्सा और अन्य सबूतों की मूल्यांकन करने में विफल रहा है।

X) अभियुक्त द्वारा अपराध करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई मकसद स्थापित नहीं किया गया है।

XI) अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और अभियोजन पक्ष द्वारा साबित की गई परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं हुई है और अभियोजन पक्ष इस तथ्य को स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा है कि केवल आरोपी अपीलकर्ता और कोई अन्य अपराध नहीं कर सकता था।

XII) अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करने में बुरी तरह

विफल रहा है। यह कानून की स्थापित स्थिति है कि संदेह कितना भी गंभीर क्यों न हो, सबूत का स्थान नहीं ले सकता।

XIII) अपीलकर्ता निर्दोष है और दुश्मनी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

(XIV) जांच एजेंसी द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत कोई बरामदगी नहीं की गई।

10. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रस्तुत मामले में अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति स्वीकार्य है क्योंकि यह अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों द्वारा विधिवत पुष्टि की गई है, और इस प्रकार, विचारण न्यायालय आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में पूरी तरह से न्यायसंगत था। राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि प्रस्तुत मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का है और अभियोजन पक्ष घटनाओं की श्रृंखला की हर परिस्थिति को स्थापित करने में सफल रहा है जो इस दृष्टिकोण का पूरी तरह से समर्थन करेगा कि अभियुक्त अपराध का दोषी है। विचारण न्यायालय अपील के तहत फैसले से निपटने के दौरान, सबूतों की उचित मूल्यांकन पर, इस प्रकार सही निष्कर्ष पर आया है।

11. अपीलकर्ता के अधिवक्ता, अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता दोनों की मदद से, हमने मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है, जिससे यह स्पष्ट है कि अ.सा.-1 घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। अ०सा०-1 ने अपनी जांच में कहा है कि उसके चचेरे भाई राजेश कुमार अ०सा०-2 और सहाबुद्दीन अ.सा.-7 ने अ.सा.-1 को बताया कि आरोपी उनके पास आया और कहा कि आरोपी ने शराब और गांजे के प्रभाव में बहुत बड़ी गलती की है। शनिवार की शाम आरोपी ने अ०सा०-1 के पुत्र अंकुर को झाड़ियों में ले जाकर उसका यौन उत्पीड़न करने का प्रयास किया जिस पर अंकुर ने हंगामा किया और रोने लगा और इसलिए, उसने अंकुर की हत्या कर दी और शव को तालाब में फेंक दिया। आरोपियों द्वारा आगे कहा गया कि जब पुलिस को इन तथ्यों के बारे में पता चला, तो उनसे पैसे लेने और महेश (अ.सा.-1) के साथ मामला सुलझाने का अनुरोध किया। अपनी जिरह में अ०सा०-1 ने गवाही दी कि उसने नंगू @ रामबाबू के खिलाफ अपने बेटे अंकुर की हत्या का संदेह उठाया है। अ०सा०-1 द्वारा आगे कहा गया है कि कृषि के संबंध में आरोपी अपीलकर्ता नंगू @ रामबाबू के साथ उसकी दुश्मनी थी और पुलिस ने दोनों पक्षों के खिलाफ धारा 107/16 द०प्र०स० के तहत कार्रवाई की थी। अ०सा०-1 द्वारा अपनी जिरह में यह भी स्वीकार किया गया था कि नांगू @ रामबाबू के साथ उसकी लंबे समय से पारिवारिक दुश्मनी थी और घटना से पहले नंगू @ रामबाबू ने अ०सा०-1 से कहा था कि वह एक या दो व्यक्तियों की हत्या कर देगा। अपनी जिरह में, अ०सा०-1 द्वारा यह भी कहा गया था कि लगभग 19 दिनों बाद, अ०सा०-1 को पता चला कि नंगू @ रामबाबू ने अपने बेटे अंकुर की हत्या कर दी है, लेकिन बाद में उन्होंने कहा कि यह खबर घटना के 5-6 दिन बाद उनके पास आई और उन्होंने 6 या 7

दिनों के बाद इस संबंध में रिपोर्ट दर्ज कराई। अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने यह भी स्वीकार किया था कि राजेश कुमार अ.सा.-2 उसका असली चचेरा भाई (चचेरा भाई) है। अपनी जिरह में, उन्होंने यह भी कहा था कि राजेश कुमार अ.सा.-2 ने अ.सा.-1 को सूचित किया था कि उनके बेटे की हत्या नंगू @ रामबाबू द्वारा की गई थी और राजेश कुमार अ.सा.-2 द्वारा दी गई इस जानकारी से पहले, उन्हें इस संबंध में कोई जानकारी नहीं थी कि नंगू @ रामबाबू ने अपने बेटे अंकुर की हत्या की थी। इसमें आगे कहा गया है कि गांव में किसी और ने अ.सा.-1 को सूचित नहीं किया था कि उसके बेटे की हत्या नंगू @ रामबाबू ने की थी।

12. अ०सा०-2 राजेश कुमार ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा था कि घटना के 16-17 दिनों के बाद, आरोपी नंगू @ रामबाबू उसके पास आया और बताया कि आरोपी ने अ०सा०-1 के पुत्र अंकुर को झाड़ियों में ले गया और अंकुर का यौन उत्पीड़न करने का प्रयास किया है, जिस पर अंकुर ने शोर मचाया और इसलिए, उसने अंकुर की हत्या कर शव को तालाब में फेंक दिया। आरोपियों द्वारा आगे कहा गया कि जब पुलिस को इन तथ्यों के बारे में पता चला, तो उनसे पैसे लेने और महेश (अ.सा.-1) के साथ मामला सुलझाने का अनुरोध किया। अ०सा०-2 की ओर से आगे कहा गया कि उसने महेश अ०सा०-1 को सूचित किया, तब अ.सा.-1 ने पुलिस को लिखित शिकायत दी। बचाव पक्ष द्वारा अपनी जिरह में, अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि महेश उसका चचेरा भाई है। अ.सा.-2 द्वारा आगे कहा गया है कि अ.सा.-2 या उसके परिवार का नंगू @ रामबाबू या उसके परिवार से कोई झगड़ा नहीं था। परिवार के अन्य सदस्यों का नंगू @ रामबाबू से झगड़ा हुआ था। अ०सा०-2 द्वारा अपनी जिरह में आगे कहा गया था कि नांगू @ रामबाबू शराब पीने के बाद झगड़ा करता था और गाली-गलौज करता था और इसलिए दुश्मनी थी। अ०सा०-2 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया था कि नांगू @ रामबाबू शराब के नशे में गाली-गलौज करते थे। अ०सा०-2 द्वारा अपनी जिरह में आगे कहा गया था कि नंगू @ रामबाबू ने अपने कृषि क्षेत्र में अ.सा.-2 को घटना के बारे में बताया था और अ.सा.-2 को छोड़कर कृषि क्षेत्र में कोई नहीं था। अ०सा०-2 द्वारा आगे कहा गया था कि वह उस समय को याद नहीं कर सकता जब आरोपी ने उसे घटना के बारे में बताया था कि सुबह या शाम थी।

13. अ०सा०-3 डॉ. एस. पी. सिंह वह डॉक्टर हैं जिन्होंने मृतक अंकुर की शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित किया है।

14. अ०सा०-4 डॉ. ए. के. शर्मा, पैथोलॉजिस्ट ने अपने मुख्य परीक्षण में बताया है कि स्लाइड की जांच करने पर कोई शुक्राणु नहीं मिला।

15. अ०सा०-5 श्री राम नारायण सिंह, सी.ओ. लहरपुर, सीतापुर ने जांच को सिद्ध किया है।

16. अ०सा०-6 एस. आई. मनोज कुमार यादव ने जांच रिपोर्ट और अन्य संबंधित दस्तावेजों को साबित कर दिया है।

17. अ०सा०-7 सहाबुद्दीन पुत्र शेर अली को पक्षद्रोही घोषित किया गया क्योंकि उसने इस बात से इनकार किया कि नंगू @ रामबाबू ने कभी उसके सामने अपना अपराध कबूल किया था।

18. आरोपी की धारा 313 द०प्र०स० के तहत जांच की गई और उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया गया। प्रश्न संख्या-8 के उत्तर में कि उसके खिलाफ मामला क्यों दर्ज किया गया है, आरोपी अपीलकर्ता ने जवाब दिया कि पुरानी दुश्मनी के कारण। धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने अतिरिक्त बयान में, आरोपी ने राजेश कुमार के समक्ष अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति करने से इनकार किया है।

19. ऊपर उल्लिखित मौखिक साक्ष्य से, हम पाते हैं कि अपराध करने के आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं है।

20. विचारण न्यायालय ने अ०सा०-2 के समक्ष अभियुक्त द्वारा किए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर भरोसा करते हुए आरोपी को दोषी ठहराया है।

21. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा किए जा रहे अपराध का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि विचारण न्यायालय ने अ०सा०-2 राजेश कुमार के समक्ष आरोपी द्वारा कथित रूप से किए गए अपुष्ट अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर भरोसा करके गंभीर त्रुटि की है।

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त के अपराध को लाने के लिए परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है।

23. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि न्यायालय द्वारा अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है, भले ही इसकी कोई पुष्टि न हो। इस संबंध में, अपर शासकीय अधिवक्ता ने राम लाल बनाम भारत संघ हिमाचल प्रदेश राज्य (2019) 17 एस.सी.सी. 411 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष ने सबूतों के आधार पर अपना मामला साबित कर दिया है कि यह केवल अभियुक्त था जो अपराध कर सकता था और आरोपी को छोड़कर किसी और ने अपराध नहीं किया है।

24. इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रस्तुत मामले में कोई चश्मदीद गवाह खाता नहीं है। यह परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामला है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, साक्ष्य की पूरी श्रृंखला को साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर है, जो निस्संदेह अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करेगा। इसके अलावा, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, जहां अभियोजन पक्ष अतिरिक्त न्यायिक

स्वीकारोक्ति पर भरोसा करता है, न्यायालय को अधिक सावधानी और सतर्कता के साथ इसकी जांच करनी होगी।

25. यह आपराधिक न्यायशास्त्र के स्थापित सिद्धांत हैं कि अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा है। जहां कहीं भी न्यायालय अभियोजन पक्ष के संपूर्ण साक्ष्य की उचित मूल्यांकन करने के बाद, एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर दोषसिद्धि को आधार बनाने का इरादा रखता है, अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह विश्वास को प्रेरित करता है और अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है। यदि, तथापि, न्यायिकेत्तर संस्वीकृति भौतिक विसंगतियों या अंतर्निहित असंभवताओं से ग्रस्त है और अभियोजन पक्ष के कथन के अनुसार ठोस प्रतीत नहीं होती है, तो न्यायालय के लिए इस तरह की स्वीकारोक्ति को आधार बनाना कठिन हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में, न्यायालय इस तरह के सबूतों पर विचार करने के लिए पूरी तरह से न्यायसंगत होगा।

26. स्वीकारोक्ति को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् न्यायिक और न्यायिकेत्तर। न्यायिक स्वीकारोक्ति वे हैं जो न्यायिक कार्यवाही के दौरान मजिस्ट्रेट या अदालत के समक्ष की जाती हैं। न्यायिकेत्तर संस्वीकृति वे हैं जो पक्षकार द्वारा मजिस्ट्रेट या न्यायालय के समक्ष किए जाने के बजाय कहीं और की जाती हैं। अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति आम तौर पर वे होते हैं जो किसी निजी व्यक्ति के सामने या उसके समक्ष एक पक्ष द्वारा किए जाते हैं जिसमें एक न्यायिक अधिकारी भी शामिल होता है। इसमें एक मजिस्ट्रेट भी शामिल है जिसे संहिता की धारा 164 के तहत स्वीकारोक्ति रिकॉर्ड करने का विशेष रूप से अधिकार नहीं है या मजिस्ट्रेट को इस तरह अधिकार प्राप्त है लेकिन वह उस स्तर पर संस्वीकृति प्राप्त कर रहा है जब धारा 164 लागू नहीं होती है। जहां तक न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति का सवाल है, दो सवाल उठते हैं: (i) क्या वे स्वेच्छा से किए गए थे? और (ii) क्या वे सच हैं? जैसा कि धारा अधिनियमित करती है, एक अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई स्वीकारोक्ति एक आपराधिक कार्यवाही में अप्रासंगिक है, यदि संस्वीकृति का निर्माण न्यायालय को किसी प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण हुआ प्रतीत होता है, (1) आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आरोप के संदर्भ में, (2) प्राधिकारी व्यक्ति से कार्यवाही, और (3) पर्याप्त, न्यायालय की राय में आरोपी व्यक्ति को आधार देने के लिए जो उसे यह मानने के लिए उचित प्रतीत होगा कि इसे बनाने से वह कोई लाभ प्राप्त करेगा या उसके खिलाफ कार्यवाही के संदर्भ में अस्थायी प्रकृति की किसी भी बुराई से बच जाएगा। यह इस प्रकार है कि एक संस्वीकृति स्वैच्छिक होगी यदि यह अभियुक्त द्वारा मन की एक स्वस्थ अवस्था में की जाती है, और यदि यह किसी भी प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण नहीं होती है जिसमें उसके खिलाफ आरोप का संदर्भ है, तो प्राधिकारी व्यक्ति से कार्यवाही की जाती है। यह अनैच्छिक नहीं होगा, अगर प्रलोभन, (ए) में आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आरोप का संदर्भ नहीं है, या (बी) यह प्राधिकरण में किसी व्यक्ति से आगे नहीं बढ़ता है; या (ग) यह पर्याप्त नहीं है, न्यायालय की राय में आरोपी

व्यक्ति को आधार देने के लिए जो उसे यह मानने के लिए उचित प्रतीत होगा कि, इसे करने/बनाने से, वह किसी भी लाभ को प्राप्त करेगा या उसके खिलाफ कार्यवाही के संदर्भ में एक अस्थायी प्रकृति की किसी भी बुराई से बच जाएगा। संस्वीकृति स्वैच्छिक थी या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जैसा कि धारा 24 के आलोक में निर्णय लिया गया है। कानून स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ संस्वीकृति का उपयोग तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो कि यह स्वैच्छिक था और उस स्तर पर यह सवाल नहीं उठता कि यह सच है या गलत। यदि संस्वीकृति करने के आस-पास के तथ्य और परिस्थितियाँ संस्वीकृति की सत्यता या स्वैच्छिकता पर संदेह उत्पन्न करती प्रतीत होती हैं, तो न्यायालय संस्वीकृति पर कार्रवाई करने से इनकार कर सकता है, भले ही वह साक्ष्य में ग्राह्य हो। वह एक स्वतंत्र व्यक्ति था या उसकी गतिविधियों को पुलिस द्वारा या तो स्वयं या उनके द्वारा नियुक्त किसी अन्य एजेंसी के माध्यम से नियंत्रित किया जाता था, जो इस तरह की स्वीकारोक्ति हासिल करने के उद्देश्य से थी। यह प्रश्न कि स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक है या नहीं, सदैव तथ्य का प्रश्न होता है। मामले के सभी कारकों और सभी परिस्थितियों, जिसमें प्रतिबिंब के लिए दिए गए समय के महत्वपूर्ण कारक, आरोपी को खतरे, प्रलोभन या वादे की भावना प्राप्त करने का दायरा शामिल है, यह तय करने से पहले विचार किया जाना चाहिए कि क्या न्यायालय संतुष्ट है कि उसकी राय प्रलोभन, धमकी या वादे, यदि कोई हो, के कारण हुई छाप, पूरी तरह से हटा दिया गया है। एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति उच्चतम श्रेय के योग्य है, क्योंकि यह अपराध की उच्चतम भावना से प्रवाहित माना जाता है। (देखें आर. वी. वारविकशेल: (1783)1 लेस्च 263)। यह कल्पना नहीं की जानी चाहिए कि एक आदमी को अपराध की एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति करने के लिए प्रेरित किया जाएगा, इसलिए मानव प्रकृति की भावनाओं और सिद्धांतों के विपरीत, अगर कबूल किए गए तथ्य सत्य नहीं थे। अपराध की जानबूझकर और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति, यदि स्पष्ट रूप से साबित होती है, तो कानून में सबसे प्रभावी सबूतों में से हैं। एक अनैच्छिक स्वीकारोक्ति वह है जो इसके निर्माता की स्वतंत्र इच्छा का परिणाम नहीं है। इसलिए जहां व्यक्ति को अपराधी और आरोपी के रूप में माना जाने के बाद कई घंटों तक उत्पीड़न और निरंतर पूछताछ के परिणामस्वरूप बयान दिया जाता है, तो ऐसे बयान को अनैच्छिक माना जाना चाहिए। प्रलोभन एक वादे या धमकी का रूप ले सकता है, और अक्सर प्रलोभन में वादा और धमकी दोनों शामिल होते हैं, अगर खुलासा किया जाता है तो माफी का वादा और अगर ऐसा नहीं है तो मुकदमा चलाने की धमकी (देखें वुडरॉफ एविडेंस, 9वां संस्करण, पृष्ठ 284)। एक वादा हमेशा स्वीकारोक्ति से जुड़ा होता है, वैकल्पिक जबकि एक खतरा हमेशा चुप्पी से जुड़ा होता है; इस प्रकार, एक मामले में कैदी वादे के शुद्ध लाभ को माप रहा है, प्रस्तुत असंतोषजनक स्थिति के विपरीत, झूठे स्वीकारोक्ति की सामान्य अवांछनीयता को घटाकर; जबकि दूसरे मामले में वह वर्तमान संतोषजनक स्थिति के शुद्ध

लाभों को माप रहा है, खतरे वाले नुकसान के खिलाफ स्वीकारोक्ति की सामान्य अवांछनीयता को घटाकर। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि हर प्रलोभन, धमकी या वादा एक स्वीकारोक्ति को दूषित नहीं करता है। चूंकि नियम का उद्देश्य केवल उन स्वीकारोक्तियों को बाहर करना है जो प्रशंसापत्र रूप से अविश्वसनीय हैं, प्रलोभन, धमकी या वादा ऐसा होना चाहिए जो एक असत्य स्वीकारोक्ति की ओर ले जाने के लिए गणना की जाती है। पूर्वोक्त विश्लेषण पर न्यायालय को प्रलोभन, वादा आदि की अनुपस्थिति या उपस्थिति या इसकी पर्याप्तता और अभियुक्त के दिमाग पर कैसे या किस उपाय से काम करना है, यह निर्धारित करना है। यदि न्यायालय की राय में प्रलोभन, वादा या धमकी पर्याप्त है, तो आरोपी व्यक्ति को आधार देने के लिए जो उसे यह मानने के लिए उचित प्रतीत होगा कि ऐसा करने से उसे कोई लाभ होगा या किसी भी बुराई से बचा जाएगा, यह स्वीकारोक्ति को बाहर करने के लिए पर्याप्त है। धारा के अंतिम भाग में 'उसे दिखाई देते हैं' शब्द अभियुक्त की मानसिकता को संदर्भित करता है।

27. अब हम इस पहलू से संबंधित कुछ निर्णयों की जाँच कर सकते हैं:

I) राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003) 8 एससीसी 180 में, सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांत निर्धारित किए कि (एससीसी 192, पैरा-19 और 20):

> "19. एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक और सत्य है और मन की उपयुक्त स्थिति में की गई है, तो न्यायालय द्वारा भरोसा किया जा सकता है। स्वीकारोक्ति को किसी अन्य तथ्य की तरह साबित करना होगा। स्वीकारोक्ति के रूप में साक्ष्य का मूल्य, किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह, उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिसे यह दिया गया है। स्वीकारोक्ति के रूप में साक्ष्य का मूल्य गवाह की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है जो साक्ष्य देता है। किसी भी न्यायालय के लिए यह अनुमान लगाना खुला नहीं है कि न्यायिकेत्तर संस्वीकृति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है। यह परिस्थितियों की प्रकृति, स्वीकारोक्ति के समय और गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा जो इस तरह की स्वीकारोक्ति के लिए बोलते हैं। ऐसी स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है और दोषसिद्धि उस पर स्थापित की जा सकती है यदि संस्वीकृति के बारे में साक्ष्य उन गवाहों के मुंह से निकलता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, अभियुक्त के प्रति दूर-दूर तक शत्रुतापूर्ण भी नहीं हैं, और जिनके संबंध में ऐसा कुछ भी सामने नहीं लाया जाता है जिससे यह संकेत मिलता हो कि अभियुक्त को असत्य कथन देने का उसका कोई कारण हो सकता है, गवाह द्वारा बोले गए शब्द प्रकट और स्पष्ट रूप से बताते हैं कि आरोपी अपराध का अपराधी

है और गवाह द्वारा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है जो इसके खिलाफ हो सकता है। गवाह के साक्ष्य को विश्वसनीयता की कसौटी पर कठोर परीक्षण के अधीन करने के बाद, असाधारण स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जा सकता है और यदि यह विश्वसनीयता की कसौटी पर खरा उतरता है तो यह दोषसिद्धि का आधार हो सकता है।

20. यदि न्यायिकेत्तर संस्वीकृति से संबंधित साक्ष्य विश्वसनीयता और स्वीकार्यता की कसौटी पर परखे जाने के बाद विश्वसनीय पाए जाते हैं, तो यह केवल दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। प्रतिपक्षी-अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गई पुष्टि की आवश्यकता, विवेक का विषय है और कानून का एक अपरिवर्तनीय नियम नहीं है.....

द्वितीय) बलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 196 एस.सी.सी. (सीआरआई) 59 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांत कहा कि: (एस.एस.सी. पी. 265, पैरा-10)

"10. अपनी प्रकृति से एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति बल्कि एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और इसके लिए बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। जहां एक न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी होती है, इसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और यह अपना महत्व खो देती है।

III) में पाक्किरिसामी बनाम (1997) 8 एस.सी.सी. 158 में रिपोर्ट किए गए टीएन राज्य, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: (एस.सी.सी. पी. 162, पैरा-8)

"8. .... यह अच्छी तरह से तय है कि यह सावधानी का एक नियम है जहां अदालत आम तौर पर इस तरह के असाधारण स्वीकारोक्ति पर कोई भरोसा करने से पहले एक स्वतंत्र, विश्वसनीय पुष्टि की तलाश करेगी।

चतुर्थ) कविता बनाम (1998) 6 एस.सी.सी. 108 में रिपोर्ट किए गए टीएन राज्य में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: (एसएस.सी. पी. 109, पैरा-4)

"4. इसमें कोई संदेह नहीं है कि दोषसिद्धि अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति पर आधारित हो सकती है, लेकिन यह अच्छी तरह से तय है कि चीजों की प्रकृति में, यह सबूत का एक कमजोर टुकड़ा है। इसे किसी भी अन्य तथ्य की तरह ही साबित किया जाना है और

इसका मूल्य उन [गवाहों] की सत्यता पर निर्भर करता है जिनके लिए यह बनाया गया है।

V) आलोक नाथ दत्ता बनाम भारत संघ के मामले में। (2007) 12 एस.सी.सी. 230 में रिपोर्ट किया गया, न्यायालय ने अन्य पुष्टिकारक सामग्री के अभाव में निचली अदालतों द्वारा अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति पर निर्भरता को अनुचित मानते हुए, देखा: (एस.सी.सी. पीपी 265-66, पैरा-87 और 89)

"87. स्वीकारोक्ति आमतौर पर साक्ष्य में स्वीकार्य है। यह एक प्रासंगिक तथ्य है। इस पर कार्रवाई की जा सकती है। स्वीकारोक्ति कुछ परिस्थितियों में और समय-समय पर उच्चतर न्यायपालिका द्वारा निर्धारित कानून के अधीन दोषसिद्धि का आधार बन सकती है। हालांकि, यह ट्राइट (स्थापित) है कि उक्त उद्देश्य के लिए अदालत को निम्नलिखित के संबंध में खुद को संतुष्ट करना होगा: (i) स्वीकारोक्ति की स्वैच्छिकता; (ii) स्वीकारोक्ति की सत्यता; (iii) पुष्टि।

* * *

89. एक विस्तृत स्वीकारोक्ति जो अन्यथा अभियुक्त के विशेष ज्ञान के भीतर होगी, स्वयं एक धारणा है कि स्वीकारोक्ति एक सत्य है बढ़ाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। एक स्वीकारोक्ति की मुख्य विशेषताओं को सत्यापित किया जाना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो कोई भी दोषसिद्धि केवल उसके आधार पर आधारित नहीं हो सकती है।

(VI) अतिरिक्त-न्यायिक संस्वीकृति की स्वीकार्यता को स्वीकार करते हुए, संसार चंद बनाम भारत संघ के मामले में न्यायालय। राजस्थान राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 604 में रिपोर्ट किया गया है कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 611, पैरा-29-30)

"29. कोई पूर्ण नियम नहीं है कि एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति कभी भी दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकती है, हालांकि आमतौर पर एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को किसी अन्य सामग्री द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए। [थिम्मा और थिम्मा राजू बनाम मैसूर राज्य (1970) 2 एस.सी.सी. 105, मुल्क राज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 902, शिवकुमार बनाम राज्य (2006) 1 एस.सी. 714 (एस.सी.सी. पैरा-40 और 41: ए.आई.आर. पैरा-41 और 42), शिव करम पयास्वामी तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 11 एस.सी.सी. 262 और मो. आजाद

वी. वेस्ट बी राज्य (2008) 15 एस.सी.सी. 449"

(VII) अभियुक्त द्वारा की गई न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति से मुकरने की स्थिति से निपटते हुए, रमेशभाई चंदूभाई राठौड़ बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में न्यायालय। गुजरात राज्य (2009) 5 एस.सी.सी. 740 में रिपोर्ट किया गया, जो निम्नानुसार अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पीपी 772-73, पैरा-53)

"53. इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता ने अपनी स्वीकारोक्ति को वापस ले लिया है। जब किसी अभियुक्त द्वारा न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति को वापस ले लिया जाता है, तो ऐसा कोई अनम्य नियम नहीं है कि अदालत को निरपवाद रूप से मुकर जाना स्वीकार करना चाहिए। लेकिन साथ ही अदालत के लिए मुकर गए स्वीकारोक्ति पर भरोसा करना असुरक्षित है, जब तक कि अदालत पूरे सबूतों पर विचार करने पर एक निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि वापस ली गई स्वीकारोक्ति सच है।

(VIII) न्यायिकेत्तर संस्वीकृति को सत्य माना जाना चाहिए और स्वेच्छा से और उपयुक्त मनोदशा में किया जाना चाहिए। गवाहों के शब्द प्रकट, स्पष्ट होने चाहिए और स्पष्ट रूप से यह बताना चाहिए कि आरोपी अपराध का अपराधी है। न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जा सकता है और दोषसिद्धि का आधार हो सकता है, यदि यह विश्वसनीयता की कसौटी पर खरा उतरता है। न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति से विश्वास पैदा होना चाहिए और न्यायालय को यह पता लगाना चाहिए कि क्या इसका समर्थन करने के लिए रिकॉर्ड पर अन्य ठोस परिस्थितियां हैं। [संदर्भ एसके यूसुफ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2011) 11 एस.सी.सी. 754 और पंचो बनाम हरियाणा राज्य (2011) 10 एस.सी.सी. 165.

IX) सहदेवन और एक अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2012) 6 एस.सी.सी. 403 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांत निर्धारित किए कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 412, पैरा-16)

"16. इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के उचित विश्लेषण के बाद, उन सिद्धांतों को बताना उचित होगा जो एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को एक अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने में सक्षम साक्ष्य का एक स्वीकार्य टुकड़ा बनाएंगे। ये उपदेश उन

मामलों की सत्यता से निपटने के दौरान न्यायिक दिमाग का मार्गदर्शन करेंगे जहां अभियोजन पक्ष अभियुक्त द्वारा कथित रूप से किए गए अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति पर बहुत अधिक निर्भर करता है।

(i) न्यायिकेत्तर संस्वीकृति अपने आप में एक कमजोर साक्ष्य है। अदालत द्वारा अधिक सावधानी और सतर्कता के साथ इसकी जांच की जानी चाहिए।

(ii) यह स्वेच्छा से किया जाना चाहिए और सच्चा होना चाहिए

(iii) इससे आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए।

(iv) न्यायिकेत्तर संस्वीकृति अधिक विश्वसनीयता और साक्ष्य मूल्य प्राप्त करती है, यदि इसे ठोस परिस्थितियों की श्रृंखला द्वारा समर्थित किया जाता है और आगे अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है।

(v) किसी न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति को दोषसिद्धि का आधार बनाए जाने के लिए उसमें कोई तात्विक विसंगतियां और अंतनहित असंभवताएं नहीं होनी चाहिए।

(vi) ऐसे कथन को अनिवार्य रूप से किसी अन्य तथ्य की तरह और कानून के अनुसार साबित किया जाना चाहिए।

X) चंद्रपाल (प्रदर्श में म.प्र.) वि. छत्तीसगढ़ राज्य 2022 लाइव लॉ (एससी) 529, (पैरा-11) में रिपोर्ट किया गया सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धांत निर्धारित किया कि हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार माना है कि एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और जब तक यह विश्वास को प्रेरित नहीं करता है या प्रकृति के किसी अन्य साक्ष्य द्वारा पूरी तरह से पुष्टि नहीं की जाती है, तब तक हत्या के अपराध के लिए आमतौर पर दोषसिद्धि केवल अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के साक्ष्य पर नहीं की जानी चाहिए।

XI) में सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य ने 2022 लाइव लॉ (एससी) 887 में रिपोर्ट किया, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: (पैरा-54, 57, 58 और 59)

"54. अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा है और अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यह विश्वास को प्रेरित करता है और

अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जाती है। इसे साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा माना जाता है क्योंकि जब भी प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है तो इसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति को स्वीकार करने के लिए यह स्वैच्छिक होना चाहिए और इससे विश्वास पैदा होना चाहिए। यदि अदालत संतुष्ट है कि अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक है, तो दोषसिद्धि को आधार बनाने के लिए इस पर कार्रवाई की जा सकती है।

57. पूर्वोक्त का योग और पदार्थ यह है कि इसकी प्रकृति से एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति बल्कि एक कमजोर प्रकार का सबूत है और इसके लिए बहुत सावधानी और सतर्कता के साथ मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। जहां एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी होती है, इसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और यह प्रस्तुत मामले की तरह अपना महत्व खो देती है। अदालतें आम तौर पर एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति पर कोई भरोसा रखने से पहले एक स्वतंत्र, विश्वसनीय पुष्टि की तलाश करती हैं।

58. कश्मीरा सिंह बनाम भारत संघ मामले में यह न्यायालय। ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 159 में रिपोर्ट किए गए मध्य प्रदेश राज्य ने निम्नानुसार टिप्पणी की थी

"एक आरोपी व्यक्ति की स्वीकारोक्ति धारा 3 में परिभाषित शब्द के सामान्य अर्थों में सबूत नहीं है। इसे दोषसिद्धि का आधार नहीं बनाया जा सकता है और इसका उपयोग केवल अन्य सबूतों के समर्थन में किया जा सकता है। सबसे पहले, उचित तरीका यह है कि अभियुक्त के खिलाफ सबूतों को पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाए और देखें कि क्या यह माना जाता है कि दोषसिद्धि सुरक्षित रूप से इस पर आधारित हो सकती है। यदि यह स्वीकारोक्ति से स्वतंत्र रूप से विश्वास करने में सक्षम है, तो निश्चित रूप से स्वीकारोक्ति को सहायता में कॉल करना आवश्यक नहीं है। लेकिन ऐसे मामले उत्पन्न हो सकते हैं जहां न्यायाधीश अन्य सबूतों पर कार्रवाई करने के लिए तैयार नहीं है, भले ही अगर माना जाता है, तो यह दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश संस्वीकृति को सहायता के लिए बुला सकता है और इसका उपयोग अन्य सबूतों को आश्वासन देने के लिए कर सकता है और इस प्रकार यह

विश्वास करने में खुद को मजबूत कर सकता है कि स्वीकारोक्ति की सहायता के बिना वह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा। [पैरा-8, 10]"

59. मौजूदा मामले में, उच्च न्यायालय ने इकबालिया बयान को आधार बनाने और उसके बाद पुष्टि की तलाश में जाने में गंभीर त्रुटि की। उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि इकबालिया बयान को पहले विचार किए बिना भौतिक विवरणों में पुष्टि की जाती है और अपीलकर्ता दोषी के खिलाफ सबूतों को मार्शल किया जाता है, जिसमें दोषसिद्धि को पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाता है। जैसा कि निर्णय में कहा गया है, ऊपर उद्धृत किया गया है, केवल तभी जब उपलब्ध साक्ष्य पर इस तरह के विचार पर, स्वीकारोक्ति के अलावा एक दोषसिद्धि सुरक्षित रूप से आधारित हो सकती है, तभी स्वीकारोक्ति का उपयोग उस विश्वास या निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है।

XII) पवन कुमार चौरसिया बनाम बिहार राज्य 2023 लाइव लॉ (एससी) 197 में रिपोर्ट किए गए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: (पैरा-5)

"5. जहां तक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति का संबंध है, कानून अच्छी तरह से तय है। आम तौर पर, यह सबूत का एक कमजोर टुकड़ा है। तथापि, न्यायिकेत्तर संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है बशर्ते कि संस्वीकृति स्वैच्छिक और सच्ची साबित हो। यह किसी भी प्रलोभन से मुक्त होना चाहिए। इस तरह की स्वीकारोक्ति का प्रमाणिक मूल्य उस व्यक्ति पर भी निर्भर करता है जिसे यह किया जाता है। मानव आचरण के स्वाभाविक क्रम के अनुसार, सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने द्वारा किए गए अपराध के बारे में केवल ऐसे व्यक्ति के साथ विश्वास करेगा जिसमें उसका निहित विश्वास है। आम तौर पर, एक व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को कबूल नहीं करेगा जो उसके लिए पूरी तरह से अजनबी है। इसके अलावा, न्यायालय को उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्वीकारोक्ति की विश्वसनीयता से संतुष्ट होना होगा जिनमें यह किया गया है। नियम के रूप में, पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, अगर रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सबूतों से न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की पुष्टि होती है, तो यह अधिक विश्वसनीयता प्राप्त करता है।

28. उन सिद्धांतों को बताने के बाद, जिन्हें न्यायालय द्वारा अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की स्वीकार्यता और साक्ष्य मूल्य की जांच करते समय ध्यान में रखा जा सकता है, अब हम प्रस्तुत मामले के तथ्यों का उल्लेख कर सकते हैं।

29. अ०सा०-1 ने अपने बयान में कहा है कि उसके चचेरे भाई (चचेरा भाई) राजेश कुमार अ०सा०-2 और एक सहाबुद्दीन अ.सा.-7 ने अ.सा.-1 को सूचित किया है कि नंगू @ रामबाबू उनके पास आया और कहा कि उसने बहुत बड़ी गलती की है और आगे बताया कि शनिवार की शाम को, वह अंकुर को सोडोमाइजिंग (अप्राकृतिक मैथुन) के लिए झाड़ियों में ले गया था और जब उसने प्रयास किया, अंकुर ने शोर मचाया, इसलिए आरोपी ने अंकुर की हत्या कर शव को तालाब में फेंक दिया। अ०सा०-1 के साक्ष्य के अनुसार इन गवाहों के समक्ष आरोपियों द्वारा आगे कहा गया था कि जैसे ही पुलिस को घटना के बारे में पता चला, उन्होंने उनसे पैसे लेकर अ.सा.-1 के साथ समझौता करने का अनुरोध किया।

30. अ०सा०-1 के चचेरे भाई राजेश कुमार की जांच अ०सा०-2 के रूप में की गई। सहाबुद्दीन अ.सा.-7, एक अन्य व्यक्ति जिसके समक्ष अभियुक्त द्वारा कथित न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की गई थी, को पक्षद्रोही घोषित किया गया था क्योंकि उसने गवाही दी है कि अभियुक्त ने उसके समक्ष कभी कबूल नहीं किया है।

अ०सा०-1 महेश और अ०सा०-2 राजेश कुमार के साक्ष्य में आया है कि दोनों गवाह करीबी रिश्तेदार यानी चचेरे भाई थे और आरोपी अपीलकर्ता के साथ उनके दुश्मनी थी। अ०सा०-1 ने यह भी स्वीकार किया था कि अ.सा.-1 और आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 107/16 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही की गई थी। हालांकि अ.सा.-2 ने कोई आपराधिक मामला होने की बात स्वीकार नहीं की थी, लेकिन उसने स्वीकार किया है कि आरोपी शराब पीने के बाद अ.सा.-2 के साथ दुर्व्यवहार करता था।

हमारी राय में यह असंभव है कि आरोपी एक ऐसे व्यक्ति पर विश्वास करेगा जो उसके प्रति शत्रुतापूर्ण है और अपने अपराध को कबूल करेगा। अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाए गए अन्य स्वतंत्र गवाह यानी अ०सा०-7 ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है।

33. रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के अवलोकन से, यह भी स्पष्ट है कि अ०सा०-2 राजेश कुमार के समक्ष आरोपी अपीलकर्ता द्वारा किए गए अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के अलावा, अपराध में आरोपी अपीलकर्ता की भागीदारी साबित करने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं है। अपीलकर्ता के इशारे पर कोई बरामदगी नहीं हुई। घटनास्थल से जो कपड़े बरामद किए गए थे, उन्हें कभी भी फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया था। आरोपियों के खिलाफ आखिरी बार देखे जाने का भी कोई सबूत नहीं था।

34. अ०सा०-2 राजेश कुमार जो न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति का एकमात्र गवाह है, उस सटीक समय के बारे में गवाही देने में सक्षम नहीं था जब अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पूर्वोक्त

स्वीकारोक्ति की गई थी अर्थात क्या अभियुक्त ने सुबह या शाम को स्वीकारोक्ति की थी। भले ही अ०सा०-2 आरोपी-अपीलकर्ता के साथ शत्रुतापूर्ण नहीं था, उसने स्वीकार किया कि आरोपी-अपीलकर्ता अ०सा०-2 के साथ दुर्व्यवहार करता था और इस संबंध में, अ.सा.-2 ने आरोपी-अपीलकर्ता के भाई से भी शिकायत की है लेकिन पुलिस को कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई है। अ०सा०-2 द्वारा यह भी कहा गया था कि वह यह बताने की स्थिति में नहीं था कि क्या अ०सा०-2 और आरोपी-अपीलकर्ता नंगू @ रामबाबू के परिवार के सदस्यों के बीच कोई आपराधिक मामला था। इसके अलावा अ०सा०-2 अ०सा०-1 (मृतक अंकुर का शिकायतकर्ता और पिता) का चचेरा भाई (चचेरा भाई) था, जिसने स्वीकार किया कि आरोपी के साथ दुश्मनी थी और अ.सा.-1 और आरोपी-अपीलकर्ता दोनों को पुलिस द्वारा धारा 107/16 द०प्र०स० के तहत चालान किया गया था।

राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के विचार में कि: (एस.सी.सी. पी. 192, पैरा-19)

> "19. एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक और सत्य है और मन की उपयुक्त स्थिति में की गई है, तो न्यायालय द्वारा भरोसा किया जा सकता है। स्वीकारोक्ति को किसी अन्य तथ्य की तरह साबित करना होगा। स्वीकारोक्ति के रूप में साक्ष्य का मूल्य, किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह, उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिसे यह दिया गया है। स्वीकारोक्ति के रूप में साक्ष्य का मूल्य गवाह की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है जो साक्ष्य देता है। किसी भी न्यायालय के लिए यह अनुमान लगाना खुला नहीं है कि न्यायिकेत्तर संस्वीकृति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है। यह परिस्थितियों की प्रकृति, स्वीकारोक्ति के समय और गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा जो इस तरह की स्वीकारोक्ति के लिए बोलते हैं। ऐसी स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है और दोषसिद्धि उस पर स्थापित की जा सकती है यदि संस्वीकृति के बारे में साक्ष्य उन गवाहों के मुंह से निकलता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, अभियुक्त के प्रति दूर-दूर तक शत्रुतापूर्ण भी नहीं हैं, और जिनके संबंध में ऐसा कुछ भी सामने नहीं लाया जाता है जिससे यह संकेत मिलता हो कि अभियुक्त को असत्य कथन देने का उसका कोई आशय हो सकता है। गवाह द्वारा बोले गए शब्द प्रकट और स्पष्ट रूप से बताते हैं कि आरोपी अपराध का अपराधी है और गवाह द्वारा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है जो इसके खिलाफ हो सकता है। गवाह के साक्ष्य को विश्वसनीयता की कसौटी पर कठोर परीक्षण के अधीन करने के बाद, अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जा सकता है और यदि यह विश्वसनीयता की कसौटी पर खरा उतरता है तो यह दोषसिद्धि का आधार हो सकता है।

हमारा विचार है कि अ.सा.-2 राजेश कुमार के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा कोई कारण नहीं था कि आरोपी एक ऐसे व्यक्ति पर विश्वास करेगा जो उसके साथ शत्रुतापूर्ण था और एक ऐसे व्यक्ति से निकटता से संबंधित था जिसका बेटा अपराध का पीड़ित था।

36. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम भारत संघ के मामले में प्रदर्श के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस.सी.सी. 116 में रिपोर्ट किया गया। उसमें, परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निपटते समय, यह माना गया है कि यह साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर थी कि श्रृंखला पूरी हो गई है और अभियोजन में कमी की दुर्बलता को झूठे बचाव या दलील से ठीक नहीं किया जा सकता है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि से पहले इस न्यायालय के शब्दों में प्रदर्शवर्ती शर्तों को पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। वे हैं: (एस.सी.सी. पृष्ठ 185, पैरा-153)

> (1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। संबंधित परिस्थितियों को स्थापित किया जाना चाहिए या होना चाहिए और नहीं किया जा सकता है;
>
> (2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;
>
> (3) परिस्थितियाँ एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए;
>
> (4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए; और
>
> (5) साक्ष्य की एक ऐसी श्रृंखला होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जा सके और यह दिखाया जाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

37. हाल ही में निखिल चंद्र मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2023) 6 एस.सी.सी. 605 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि: (एस.सी.सी. पी. 609, पैरा-11)

> "11. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने माना है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यह माना गया है कि संबंधित परिस्थितियों को "स्थापित किया जाना चाहिए या

होना चाहिए" और "स्थापित नहीं किया जा सकता है"। यह माना गया है कि "साबित किया जा सकता है" और "साबित किया जाना चाहिए या किया जाना चाहिए" के बीच न केवल एक व्याकरणिक बल्कि एक कानूनी अंतर है। यह माना गया है कि इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त ही दोषी है। यह माना गया है कि परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और उन्हें साबित करने की मांग को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और यह कि सबूतों की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।

38. रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्य के अवलोकन से, हमारी राय है कि अ०सा०-2 राजेश कुमार के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा किए गए अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को छोड़कर, अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ कोई सबूत नहीं था क्योंकि अभियोजन पक्ष परिस्थितियों को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है और अभियुक्त अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने के लिए घटनाओं की पूरी श्रृंखला है।

39. जहां तक रामलाल बनाम राम लाल के मामले में निर्णय का संबंध है। हिमाचल प्रदेश राज्य (उपरोक्त) पर अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि: (पृष्ठ 418, पैरा-14)

"14. यह अच्छी तरह से तय है कि दोषसिद्धि स्वेच्छा से स्वीकारोक्ति पर आधारित हो सकती है, लेकिन विवेक के नियम की आवश्यकता है कि जहां भी संभव हो, इसे स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए। सभी मामलों में आरोपियों के न्यायिकेत्तर कबूलनामे की पुष्टि करने की जरूरत नहीं है। मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे और अन्य (1992) 3 एस.सी.सी. 204 में, इस अदालत ने पियारा सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य का उल्लेख करने के बाद पंजाब राज्य (1977) 4 एस.सी.सी. 452 में माना कि कानून की आवश्यकता नहीं है कि सभी मामलों में एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के साक्ष्य की पुष्टि की जानी चाहिए। विवेक के नियम के लिए यह आवश्यक नहीं है कि स्वीकारोक्ति में उल्लिखित प्रत्येक परिस्थिति को अलग से और स्वतंत्र रूप से पुष्टि की जानी चाहिए।

40. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक अभियुक्त द्वारा अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति की सभी मामलों में पुष्टि करने की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त मामले में, अदालत बैंक के एक कर्मचारी द्वारा किए गए गबन के अपराध के संबंध में एक मामले से निपट रही थी।

41. प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 302 द०प्र०स० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और हम पहले ही कह चुके हैं कि अ.सा.-2 का बयान ऊपर वर्णित कारणों से भरोसेमंद नहीं है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का तर्क हालांकि सिद्धांत रूप में सही है, लेकिन प्रस्तुत मामले के तथ्यों में आकर्षित नहीं होता है।

42. संक्षेप में, हम मानते हैं कि असाधारण स्वीकारोक्ति के बिंदु पर सबूत विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं और उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। न्यायिक दिमाग को संतुष्ट करने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है कि अपीलकर्ता विश्वास क्यों करेगा और उस व्यक्ति के सामने कबूल करेगा जो आरोपी के साथ शत्रुतापूर्ण है।

43. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, हम पाते हैं और मानते हैं कि अभियोजन अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में विफल रहा है। यदि, अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को बाहर रखा गया है, तो अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ भी नहीं बचता है, इसलिए, अभियुक्त वैध रूप से संदेह का लाभ उठाने का हकदार है। इसलिए, अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश कानूनी स्थिति का सामना नहीं कर सका और अभियुक्त-अपीलकर्ता को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी करके उलटने की आवश्यकता है। नतीजतन, अपील को आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश को रद्द करके अनुमति दी जानी चाहिए।

निम्नलिखित आदेश के मद्देनजर:-

I) अपील की अनुमति दी जाती है;

II) धारा 302, 377, 511 और 201 भ०द०वि०, थाना-गोला, जिला लखीमपुर खीरी के तहत अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-5, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश दिनांक 01.08.2015 को रद्द एवं अपास्त किया जाता है।

III) अभियुक्त-अपीलकर्ता, नंगू @ रामबाबू को धारा 302, 377, 511 और 201 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध से बरी किया जाता है।

IV) अभियुक्तों को, यदि वह किसी अन्य अपराध में वांछित नहीं है तो तुरंत जेल से रिहा किया जाए।

V) अपीलकर्ता को रिहाई की तारीख से छह सप्ताह के भीतर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437-ए के अनुपालन में संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार एक व्यक्तिगत बांड और

दो जमानतदार दायर करने का निर्देश दिया जाता है।

VI) इस निर्णय की एक प्रति के साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए विचारण न्यायालय और संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रेषित किया जाए। इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या संबंधित विचारण न्यायालय के माध्यम से, जैसा भी मामला हो, अपीलकर्ता को भी भेजी जाए।

(VII) जुर्माने की राशि, यदि जमा की जा चुकी है तो, अभियुक्त को वापस कर दी जाए।

(2023) 8 ILRA 736

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 374 वर्ष 2010

गया प्रसाद शुक्ल ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता :
अनिल कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता :
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397/401 - पुनरीक्षण,भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 353, 504, 506,अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4 - परिवीक्षा पर रिहाई - प्रत्यक्षदर्शी साक्षी से पूछताछ न करना अभियोजन पक्ष के मामले को कलम के एक झटके से खारिज करने के एक कर्मकांडी सूत्र की तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता - न्यायालय एकमात्र साक्षी के बयान पर भी अभियुक्त को दोषी ठहरा सकता है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार ही क्यों न हो - स्वतंत्र साक्षी से पूछताछ न करना अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं होगा। (पैरा-13)

1994 का मामला - 29 वर्ष बीत गए - अभियुक्तों द्वारा कोई चोट नहीं पहुंचाई गई - पुनरीक्षणकर्ता दोषी करार - संग्रह चपरासी (पीडब्लू -1) और संग्रह अमीन (पीडब्लू -2) - तथ्य के साक्षी - एफआईआर दर्ज करने के लिए शिकायत दर्ज की - दावा किया कि गांव में 13,399/- रुपये का बकाया वसूलने की कोशिश करते समय - उन्हें एक व्यक्ति ने गिरफ्तार कर लिया - वह क्रोधित हो गया, उन्हें धक्का दिया, और देसी पिस्तौल से गोली मारने की धमकी दी - एक सप्ताह के भीतर उन्हें टुकड़े-टुकड़े करने की धमकी दी - उनकी तरफ से साक्षियों की मांग की गई - शिकायत का उद्देश्य घटना के बारे में सच्चाई स्थापित करना है - शिकायत दर्ज - आरोप पत्र - संज्ञान - धारा 313 सीआरपीसी के तहत अभियुक्त का बयान। **(पैरा -3,17)**

अभिनिर्धारित:-विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि कथित अपराध अभियुक्त पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किया गया था। अभियोजन पक्ष ने मामले को संदेह से परे सिद्ध कर दिया। पुनरीक्षण में कोई दम नहीं है। दोनों न्यायालयों द्वारा दर्ज दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। चूँकि पुनरीक्षणकर्ता वरिष्ठ नागरिक हो गया है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए अभियुक्त को सजा काटने के लिए जेल भेजने के बजाय उसे परिवीक्षा पर रखना उचित होगा। (पैरा - 16,17)

पुनरीक्षण आंशिक रूप से स्वीकृत।(ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. हरियाणा राज्य बनाम कृष्ण, एआईआर 2017 एससी 3125,

2. भगवान जगन्नाथ मारकंड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537

3. मुकेश बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र राज्य एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ),

4. साधु शरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 4एससीसी 357

5. कर्ण बनाम मुडप्पा, (1999) 5 एससीसी 73
6. मो. मोनिर आलम बनाम बिहार राज्य, (2010) 12 एससीसी 2

7. कृष्ण देव एवं अन्य बनाम राज्य, आपराधिक अपील संख्या 735 वर्ष 1982

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार त्रिपाठी और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री दिनेश कुमार गुप्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी एसटी एक्ट) न्यायालय संख्या 8, जिला सुल्तानपुर द्वारा आपराधिक अपील संख्या 15/2009 (गया प्रसाद शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 24.09.2010 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 397/401 सीआरपीसी के अंतर्गत तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता को धारा 353 आईपीसी के अंतर्गत एक वर्ष के कठोर कारावास एवं 1,000 रुपये जुर्माने तथा चूक की स्थिति में दो माह के अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, धारा 504 आईपीसी के तहत छह माह के कठोर कारावास और धारा 506 आईपीसी के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास और साथ ही मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर द्वारा आपराधिक मामला संख्या 2076 / 2002, अपराध संख्या 457 / 1994, (राज्य बनाम गया प्रसाद शुक्ल), पुलिस स्टेशन कोतवाली नगर, जिला सुल्तानपुर में उपरोक्त धाराओं के तहत पारित दिनांक 25 मार्च, 2009 के निर्णय और आदेश के खिलाफ, जिसके तहत अभियुक्त को धारा 353

आईपीसी के तहत दो साल के कठोर कारावास और 1,000 रुपये के जुर्माने से दंडित किया गया था एवं धारा 504 आईपीसी के तहत एक महीने का कारावास और 500 रुपये के जुर्माने से और धारा 506 आईपीसी के तहत दो साल के साधारण कारावास से दंडित किया गया था। दोनों निचली अदालतों ने यह भी निर्देश दिया कि सभी सजाएँ एक साथ चलेंगी।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि 15.05.1994 को लगभग 3:00 बजे अनिल कुमार मिश्रा, संग्रह चपरासी और तुलसी प्रसाद मिश्रा, संग्रह अमीन ने एफआईआर दर्ज करने के लिए एक लिखित शिकायत की, जिसमें कहा गया कि 15.05.1994 को जब वे दोनों बैंक के बकाया 13,399/- रुपये की वसूली के लिए ग्राम पलहीपुर गए और गिरफ्तारी वारंट के बारे में बताया और उन्हें तहसीलदार सदर, सुल्तानपुर के पास ले जाने की कोशिश की, तो वह क्रोधित हो गए और उन्हें धक्का दे दिया और गाली देने लगे उसके बाद उन्होंने कहा कि वह देशी पिस्तौल लेकर आ रहे हैं और उन दोनों पर गोली चला देंगे और उनका पेट फाड़ देंगे। उन्होंने यह भी धमकी दी कि एक सप्ताह के अंदर तुम दोनों को टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा, तुम जाओ और जो करना है करो, मैं देखता हूं कि तुम्हारी तरफ से कौन गवाह बनता है।करो, मैं देखूंगा कि तुम्हारी तरफ से कौन गवाह बनेगा।

4. यह भी लिखा था कि आरोपी बहुत प्रभावशाली और बुरा व्यक्ति है, कोई भी उसके खिलाफ बोलने को तैयार नहीं है क्योंकि वह दबंग व्यक्तित्व का व्यक्ति है.

5. उपरोक्त लिखित शिकायत के आधार पर दिनांक 16.05.1994 को अपराध संख्या 457 / 1994 धारा 353, 224, 504 एवं 506 आईपीसी के तहत शिकायत दर्ज की गई। एसआई जयपाल सिंह बिश्नोई ने मामले की जांच की और साक्ष्य जुटाकर उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप पत्र(प्रदर्श क-6) पेश किया।

6. संज्ञान लिया गया और आईपीसी की धारा 353, 504 और 506 के तहत आरोप तय किया गया। अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की:

1. पी.डब्ल्यू. 1. तुलसी प्रसाद मिश्र, संग्रह अमीन।

2. पी.डब्लू. 2. अनिल कुमार मिश्र, संग्रह चपरासी।

3. पी.डब्लू. 3. कांस्टेबल राजेंद्र प्रसाद मिश्रा।

समापन के बाद आरोपी का सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज किया गया, जिसमें उसने इस बात से इनकार किया। आरोप लगाते हुए कहा कि वसूली के दबाव के कारण गवाहों ने उनके खिलाफ गवाही दी थी। उन्होंने यह भी कहा कि प्रोफार्मा नंबर 69 और 70 के संबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं दी गई, जिस पर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं।

7. बचाव में D.W 1 - राम मिलन उसी गांव का परीक्षण किया गया।

इस पुनरीक्षण में पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त ने यह आधार लिया है कि विचारण न्यायालय और विद्वान अपीलीय अदालत अभिलेखित साक्ष्यों का अवलोकन करने में विफल रहे और उन्होंने पुनरीक्षणकर्ता को दोषी ठहराने और सजा देने में गलती की, पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता पर प्रोफार्मा 69 नामक मांग नोटिस की सेवा के संबंध में कोई सबूत नहीं था और नोटिस की सेवा के संबंध में अनिवार्य प्रावधान है; और इसे नीचे की अदालतों द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया है क्योंकि प्रोफार्मा 69 की प्रक्रिया, धारा 70 की प्रक्रिया का पालन किए बिना, वसूली नोटिस जारी नहीं किया जा सकता है। अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्वतंत्र गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया है, क्योंकि परिवादी की अवैध मांग पुनरीक्षणकर्ता द्वारा पूरी नहीं की गयी, अभियोजन सूचनाकर्ता द्वारा प्रारंभ किया गया है, प्रपत्र 69 पर पुनरीक्षणकर्ता के हस्ताक्षर नहीं हैं. पुनरीक्षणकर्ता को कोई जानकारी नहीं है प्रोफार्मा 70 के बारे में। सजा बहुत गंभीर है। उपरोक्त कारणों से, निचली अदालतों द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाए।

8. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बैंक का 13,399/- रुपये पुनरीक्षणकर्ता पर बकाया नहीं था।

9. पी.डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य से और पी.डब्ल्यू 2 के अनुसार, यह सिद्ध हो चुका है कि प्रोफार्मा 70 पर जारी गिरफ्तारी वारंट के साथ पुनरीक्षणकर्ता के पास पहुंचने से पहले, वे पुनरीक्षणकर्ता अभियुक्त से भी मिले थे और उसके विरुद्ध देय राशि का भुगतान करने का अनुरोध किया था। उन्होंने साबित कर दिया था कि लगभग एक सप्ताह पहले प्रोफार्मा 69 पुनरीक्षणकर्ता को उचित तरीके से दिया गया था, घटना और उस समय गवाह के सामने आरोपी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, लेकिन जब बकाया राशि का भुगतान नहीं किया गया, तो प्रोफार्मा 70 पर गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था और उसके अनुपालन में, पी.डब्ल्यू 1 और पी.डब्ल्यू 2 आरोपी- पुनरीक्षणकर्ता को गिरफ्तार करने गए थे।

10. साक्ष्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि तथ्य के दोनों गवाहों को अभियुक्त ने धक्का देकर उनकी गिरफ्त से छुड़ा लिया तथा ऊपर बताए अनुसार गाली-गलौज व धमकी भी दी। यह भी साबित हुआ कि जब वे आरोपियों को गिरफ्तार नहीं कर सके और आरोपियों ने बकाया राशि का भुगतान नहीं किया, तो मामले की सूचना तहसीलदार को दी गई और उनके निर्देश पर यह मामला दर्ज किया गया था।

11. जहां तक स्वतंत्र गवाहों से पूछताछ न किए जाने का सवाल है तो यह देखना होगा कि यह घटना अभियुक्त के गांव में हुई थी, इसलिए अभियोजन के समर्थन में कोई भी अपनी गवाही देने के लिए आगे नहीं आया. हालाँकि, यह साबित नहीं हुआ है कि P.W 1 और P.W 2 अभियुक्तों के शत्रु थे और किसी आपराधिक मामले में अभियुक्तों को झूठे फंसाने में उनकी कोई रुचि थी। इस तथ्य के दोनों गवाहों को एक घायल गवाह माना जा सकता है, इसलिए उनकी गवाही से इनकार नहीं किया जा सकता है।

12. ***हरियाणा राज्य बनाम. कृष्ण, ए.आई.आर 2017 एससी 3125, भगवान जगन्नाथ मार्कंड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537*** के मामले में यह माना गया है कि एक घायल गवाह के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों। प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर, घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति मामले में स्थापित होती है और यह साबित होता है कि उक्त घटना के दौरान उसे चोटें आई थीं।

13. ***मुकेश बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन जजों की बेंच), और साधु शरण सिंह बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 4एससीसी 357*** के मामले में यह आयोजित किया गया है यदि न्यायालय में जांच किया गया कोई गवाह अन्यथा विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है, तो उस गवाह द्वारा साबित किए जाने वाले तथ्य को अन्य गवाहों के माध्यम से साबित करने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि अन्य गवाह उपलब्ध हो सकते हैं जिनकी जांच की जा सकती थी लेकिन उनकी जांच नहीं की गई। यह स्थापित कानून है कि चश्मदीद गवाहों से पूछताछ न करने को कलम के झटके से अभियोजन मामले को खारिज करने के अनुष्ठानिक फॉर्मूले की तरह लागू नहीं किया जा सकता है। अदालत किसी आरोपी को एकमात्र गवाह के बयान पर दोषी ठहरा सकती है, भले ही वह मृतक का रिश्तेदार हो और स्वतंत्र गवाह से पूछताछ न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक नहीं होगा।

14. इस मामले में डी.डब्ल्यू-1 आरोपी का पड़ोसी है और उसकी स्थिति और सबूतों का विद्वान अपीलीय अदालत ने उचित मूल्यांकन किया है, जिसने सही निष्कर्ष निकाला है कि वह केवल आरोपी का पड़ोसी और ग्रामीण होने के नाते गवाही दे रहा था।

15. इस बचाव गवाह ने यह भी स्वीकार किया है कि संभवतः वह 15.05.1994 को, जो कि घटना की तारीख है, अपने रिश्तेदारी में गया होगा, इसलिए D.W 1 का साक्ष्य गैर-भरोसेमंद हो जाता है। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू. की गवाही को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है। 2 मामले के तथ्यों के संबंध में। जहां तक पी.डब्ल्यू. 3 के साक्ष्य का सवाल है, इस गवाह ने दस्तावेजी साक्ष्य को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में साबित कर दिया है, क्योंकि आई.ओ. उपलब्ध नहीं था और इस संबंध में, पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई तर्क आगे नहीं दिया गया है।

16. विचारण न्यायालय और विद्वान प्रथम अपीलीय अदालत ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों पर उचित रूप से चर्चा की है और सही निष्कर्ष निकाला है कि कथित अपराध आरोपी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किया गया था और अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक उचित संदेह से परे उसके खिलाफ मामला साबित कर दिया है। इसलिए, इस न्यायालय का सुविचारित दृष्टिकोण है कि जहां तक दोषसिद्धि का सवाल है, पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है और नीचे की दोनों अदालतों द्वारा दर्ज किए

गए दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

17. जहां तक सजा का सवाल है, चूंकि यह वर्ष 1994 का मामला है और लगभग 29 साल बीत चुके हैं और संबंधित धाराएं मजिस्ट्रेट की अदालत में विचारणीय हैं, इसलिए अभियुक्त को कोई चोट नहीं पहुंची है। पुनरीक्षणकर्ता एक वरिष्ठ नागरिक बन गया है और अभियुक्त का कोई पूर्व या बाद का आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए अभियुक्त को सजा काटने के लिए जेल भेजने के बजाय परिवीक्षा पर बढ़ाना उचित होगा। इसलिए, यह पुनरीक्षण तदनुसार निर्णय लेने योग्य है।

18. ***कर्नाटक राज्य बनाम मुद्दप्पा, (1999) 5 एससीसी 732*** में इसे इस प्रकार अवधारित किया गया है:-

> "2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोपी को बरी करने के फैसले पर हमला करने की स्थिति में नहीं हैं, लेकिन उन्होंने दृढ़ता से तर्क दिया कि अदालत ने आरोपी को दोषी ठहराने के बाद परिवीक्षा पर रिहा करने के लिए उचित विचारों को ध्यान में नहीं रखा। आईपीसी की धारा 304 भाग II के तहत अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम का लाभ किसी विशेष मामले में बढ़ाया जा सकता है या नहीं, यह उस स्थिति पर निर्भर करता है मामले में, माना जाता है कि धारा 304 भाग II के तहत अपराध के लिए अधिनियम को लागू करने के लिए कोई वैधानिक रोक नहीं है, जहां मामले को देखते हुए और उच्च न्यायालय के फैसले की जांच करने पर अधिकतम सजा न तो मौत है और न ही आजीवन कारावास है , हमने पाया कि न्यायालय ने प्रासंगिक सामग्री पर विचार किया और फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों को लागू करके आरोपी को परिवीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए इस अवधि के बाद इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया गया, खासकर तब जब इस बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है कि क्या आरोपी ने किसी भी तरह से उसे परिवीक्षा पर अनुमति देने के नियमों और शर्तों का उल्लंघन किया है।
>
> 3. तदनुसार, हम इस अपील को खारिज करते हैं। प्रतिवादी के जमानत बांड खारिज किये जाते हैं।"

19. ***मो. मोनिर आलम बनाम. बिहार राज्य, (2010) 12 एससीसी 26*** के मामले में इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया:-

"8. हमने श्री सूरी की दलीलों पर बहुत ध्यान से विचार किया है। हम दस्तावेजों को देखते हैं कि अपीलकर्ता मोहम्मद मोनिर आलम ने डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की है और वर्तमान में वह जम्मू विश्वविद्यालय के रणनीतिक और क्षेत्रीय अध्ययन विभाग में वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं। और उन्होंने यह नियुक्ति वर्ष 1997 में हासिल की थी। उनकी पेशेवर उपलब्धियाँ भी हमें प्रदान की गई हैं जो उनकी विशेषज्ञता में उनकी विशेषज्ञता को दर्शाती हैं और रणनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में दुनिया भर के प्रतिष्ठित संगठनों के साथ उनके जुड़ाव को भी दर्शाती हैं। इसलिए, इस राय में कि इस मामले में शामिल होने के बाद उसका आचरण और उपलब्धियां परिवीक्षा पर उसकी रिहाई को उचित ठहराती हैं, हम तदनुसार अपील को खारिज करते हैं, लेकिन निर्देश देते हैं कि उसे अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के तहत परिवीक्षा पर रिहा किया जाएगा। शर्तें विचारण न्यायालय द्वारा तय की जाएंगी।"

और ***कृष्ण देव और अन्य बनाम राज्य, आपराधिक अपील संख्या 735/1982***, के मामले में भी इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

"23. हम अपीलार्थी श्रीमती जलकल और श्रीमती भगवानदेले की भारतीय दंड संहिता की धारा 147 और 323/149 के अंतर्गत दोषसिद्धि में भी हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपीलार्थी संख्या 1 को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-II के अंतर्गत अपराध के लिए सजा सुनाने के बजाय, हम न्याय के हित में अपीलार्थी कृष्णदेव को अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ देकर रिहा करना उचित समझते हैं। हम अपीलार्थी श्रीमती जयकाली और श्रीमती भगवानदेले के विरुद्ध पारित सजा में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं, जिन्हें केवल जुर्माना भरने का निर्देश दिया गया था। अपीलार्थी कृष्णदेव को निचली अदालत में आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है। निचली

अदालत को निर्देश दिया जाता है कि वह अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के अनुसार उसे रिहा करे। निचली अदालत अपीलकर्ताओं- जयकाली और भगवानदेले से जुर्माना वसूलने के लिए सभी कठोर कदम उठाएगी, यदि उन्होंने जुर्माना जमा नहीं किया है।

आदेश

20. यह पुनरीक्षण **आंशिक रूप से ख़ारिज** किया जाता है, जहां तक आईपीसी की धारा 353, 504 और 506 के तहत दोषसिद्धि का सवाल है। इस पुनरीक्षण को नीचे की दोनों अदालतों द्वारा दी गई सजा के संबंध में आंशिक रूप से अनुमति दी गई है और आरोपी पुनरीक्षणकर्ता को उसके अच्छे आचरण और व्यवहार के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहने का निर्देश दिया गया है, न कि विद्वान अपीलीय अदालत द्वारा संशोधित और दी गई सजा को पूरा करने के लिए आदेश दिया गया है।

21. निर्देश दिया जाता है कि आज से तीस दिन की अवधि के भीतर अभियुक्त गया प्रसाद शुक्ला दो जमानत बंधपत्र, व्यक्तिगत बंधपत्र और जिला प्रोबेशन अधिकारी, सुल्तानपुर के समक्ष अपने अच्छे व्यवहार और आचरण के आधार पर परिवीक्षा पर बने रहने के लिए एक वचन पत्र निष्पादित करेगा। यदि वह ऐसा करता है तो उसे जेल नहीं भेजा जाएगा अन्यथा उसे विद्वान ए.एस.जे./विशेष न्यायाधीश (एससी. एसटी एक्ट), कोर्ट संख्या 08, सुल्तानपुर द्वारा तय की गई सजा काटने के लिए जेल भेजा जाएगा।

22. विद्वान अपीलीय अदालत द्वारा दिया गया जुर्माना भी आज से तीस दिनों की अवधि के भीतर जमा किया जाएगा अन्यथा वह अपीलीय अदालत के निर्देशानुसार शर्त के अनुसार भुगतान करेगा।

23. इस निर्णय की एक प्रति निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ अनुपालन सुनिश्चित करने और प्रेषण के लिए विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर को वापस भेजी जाए।

(2023) 8 ILRA 742

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीया न्यायमूर्ति सुश्री. नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 6543 वर्ष 2023 साथ
आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 5214 वर्ष 2023 और
आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 6664 वर्ष 2023

उदय राजगढ़िया ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

श्री अजीत सिंह, श्री सगीर अहमद (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

जी.ए., श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

क. आपराधिक कानून-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 173(8)- याचिकाकर्ताओं द्वारा आरोपी/प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के विरुद्ध तीन अलग-अलग एफआईआर दर्ज की गईं। संबंधित जांच की गई और सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए, संज्ञान लिया गया और आरोप तय किए गए। विचारण की शुरुआत के बाद, याचिकाकर्ताओं को अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में बुलाया गया और उनकी जांच की गई- इस स्तर पर, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ताओं/प्रथम सूचनादाताओं को धारा 160 सीआर.पी.सी. के तहत नोटिस दिया गया है कि वे प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हों ताकि धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत विशेष जांच अभिकरण (एसआईटी) के समक्ष अपना बयान दर्ज करा सकें और आगे की जांच का निर्देश दे सकें- याचिकाकर्ताओं ने व्यथित होकर उक्त आदेश को विशेष रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि आगे की जांच के लिए जांच अभिकरण द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय से कोई औपचारिक अनुमति नहीं मांगी गई थी- उक्त आदेश के बारे में न तो विद्वान विचारण न्यायालय को सूचित किया गया है और न ही इसकी सूचना दी गई है- इस विलंबित चरण में आगे की जांच का निर्देश देने वाला आदेश अभियुक्त/प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को लाभान्वित करेगा जिससे याचिकाकर्ताओं के प्रति पूर्वाग्रह पैदा होगा- अभिनिर्धारित, पुलिस के पास जांच की अप्रतिबंधित शक्ति है इसके बाद भी आगे की जांच के लिए मजिस्ट्रेट की औपचारिक अनुमति की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 1 से 21)

याचिका खारिज की जाती है।(ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. विनुभाई हरिभाई मालवीय बनाम गुजरात राज्य (2019) 17 एससीसी 1

2. सीबीआई राज्य की ओर से बनाम हेमेंद्र रेड्डी एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 55

3. अनंत थानूर करमुसे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2023) 5 एससीसी 802

4. सुबोध कुमार जैन उर्फ सुबोध जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य सीआरएलपी संख्या 6555 वर्ष 2021

5. निर्मल सिंह कहलों बनाम स्टेट ऑफ पुणे, रिपोर्टेड इन (2009) एससीसी 44

(माननीया न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री सगीर अहमद, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता,उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत सिंह और प्रतिवादी संख्या 5 और 6 की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी. पी. श्रीवास्तव, उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव और राज्य की ओर से ए.जी.ए. को सुना गया।

याचिकाकर्ता अपनी अपनी संबंधित प्रथम सूचना रिपोर्ट के पहले मुखबिर हैं और उन्होंने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.02.2023 (तीनों रिट याचिकाओं में समान) को चुनौती दी है। इसलिए, उपरोक्त तीनों रिट याचिकाओं को एक साथ जोड़ दिया गया है और एक समान आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

याचिकाकर्ताओं/प्रथम सूचनादाताओं ने माननीय उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और दिनांक 27.02.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की मांग की है, जिसमें ताजा निविष्टि प्राप्त होने पर सीआरपीसी की धारा 173(8) के तहत विशेष जांच दल (एसआईटी) को आगे की जांच का निर्देश दिया गया है।

तीनों मुकदमा अपराध संख्या का विवरण इस प्रकार है:

क्र. सं.	आपराधिक विविध. रिट याचिका संख्या	मुकदमा अपराध संख्या	धाराओं के अंतर्गत	थाना	जिला	मुकदमा संख्या	सामान्य आक्षेपित आदेश दिनांक
1.	5214/2023	2021 का 28 शैलेन्द्र अग्रवाल (सूचनाकर्ता)	419, 420, 467, 468, 471, 406, 506 आईपीसी	भेलपुर	वाराणसी	8903/2017	27.02.2023
2.	6543/2023	2020 का 698 उदय राजगढ़िया (सूचक)	419, 420, 467, 468, 471, 406, 409 और 506 आईपीसी	शिवपुर	वाराणसी	8006/2021	27.02.2023
3.	6664/2023	2023 का 41 आनंद प्रकाश (सूचक)	419, 420, 467, 468, 471, 406, 506 आईपीसी	सिगरा	वाराणसी	8763/2021	27.02.2023

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं: याचिकाकर्ताओं/प्रथम सूचनादाताओं ने व्यक्तिगत रूप से कोयला (खनन और व्यापार कंपनी) पीटी सूर्यांश टोटल इंडो रिसोर्सेज (एसटीआर), इंडोनेशिया के व्यवसाय में बड़ी राशि (करोड़ों में) का निवेश किया, जो आरोपी/प्रतिवादी संख्या 5 और 6 द्वारा संचालित और प्रबंधित है। निश्चित अवधि बीतने के बाद, याचिकाकर्ताओं ने अपनी

निवेशित राशि, अर्जित लाभ और साथ ही बैंक गारंटी वापस मांगी लेकिन उन्हें वापस नहीं किया गया। बल्कि उन्हें बताया गया कि उक्त बैंक गारंटी फर्जी है।

इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा आरोपी/प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के खिलाफ तीन अलग-अलग एफआईआर दर्ज की गईं। संबंधित जांच की गई और सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए, संज्ञान लिया गया और आरोप तय किए गए। मुकदमा शुरू होने के बाद, याचिकाकर्ताओं को बुलाया गया और अभियोजन गवाह के रूप में उनसे पूछताछ की गई।

इस स्तर पर, दिनांक 27.02.2023 के आदेश के अनुसार आगे की जांच का निर्देश देते हुए, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ताओं/प्रथम सूचनादाताओं को प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर सीआरपीसी की धारा 161 के तहत विशेष जांच एजेंसी (एसआईटी) के समक्ष अपना बयान दर्ज कराने के लिए सीआरपीसी की धारा 160 के तहत नोटिस दिया गया।

याचिकाकर्ताओं ने, व्यथित होकर, उक्त आदेश को विशेष रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि जांच एजेंसी द्वारा आगे की जांच के लिए निचली अदालत से कोई औपचारिक अनुमति नहीं मांगी गई थी। उक्त आदेश की सूचना विद्वान विचारण न्यायालय को नही दी गई| आगे यह दलील दी गई है कि इस विलंबित चरण में आगे की जांच का निर्देश देने वाले आदेश से आरोपी/प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को लाभ होगा, जिससे याचिकाकर्ताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. और अभियुक्तों/प्रतिवादियों के अधिवक्ताओ ने उपरोक्त प्रार्थना का विरोध किया है और दावा किया है कि पुलिस के पास सीआरपीसी की धारा 173(8) के आधार पर मामले की आगे की जांच करने की पर्याप्त शक्ति है। भले ही आरोपपत्र दाखिल कर दिया गया हो और संज्ञान लिया जा रहा हो आगे की जांच के लिए न्यायालय से अनुमति लेना कोई अनिवार्य शर्त नहीं है।

पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों को सुनने और अभिलेख को देखने पर, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पुलिस के पास जांच की असीमित शक्तियां हैं जो नए तथ्य प्रकाश में आने पर आरोप पत्र प्रस्तुत होने और उस पर संज्ञान लिए जाने के बाद भी जारी रह सकती हैं। जांच एजेंसी की वैधानिक शक्तियों के तहत आवश्यक होने पर पूरक रिपोर्ट या आरोपपत्र दायर करने के लिए जांच एजेंसी हमेशा सक्षम होती है।

(2009) एससीसी 44 में रिपोर्ट किए गए **निर्मल सिंह काहलों बनाम पंजाब राज्य** मामले में, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा: "

> *"धारा 36 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए राज्य द्वारा संहिता की धारा 173 (8) के संदर्भ में आगे की जांच का आदेश एक अलग स्तर पर भिन्न है। जांच अधिकारी को*

संहिता की धारा 173(8) के तहत अपने वैधानिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए और राज्य के कहने पर पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 36 को ध्यान में रखते हुए आगे की जांच करने की शक्ति को भिन्न संदर्भ में देखना चाहिए। संहिता की धारा 173(8) एक सक्षम प्रावधान है। केवल जब किसी अपराध का संज्ञान लिया जाता है, तो ही विद्वान मजिस्ट्रेट कुछ कह सकता है। लेकिन, न्यायिक कानून द्वारा लगाया गया प्रतिबंध केवल न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को बनाए रखने के उद्देश्य से है। साकिरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(2008) 2 एससीसी 409],में इस अदालत की एक खंडपीठ ने कहा है यह कहना एक बात है कि निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए अदालत के पास पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार होगा, जिसकी शुद्धता पर सवाल उठाया जा सकता है, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि जांच अधिकारी के पास मजिस्ट्रेट की स्पष्ट अनुमति के बिना कोई भी आगे की जांच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा।"

बार में उठाए गए तर्कों के संदर्भ में, पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 का उल्लेख करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

*"**राज्य सरकार में अधीक्षण** - एक सामान्य पुलिस जिले में पुलिस का अधीक्षण निहित होगा। और इसका प्रयोग उस राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा जिसके अधीन ऐसा जिला है और इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत अधिकृत लोगों को छोड़कर, किसी भी व्यक्ति, अधिकारी या न्यायालय को राज्य सरकार द्वारा किसी भी पुलिस कार्यप्रणाली को खत्म करने या नियंत्रित करने का अधिकार नहीं दिया जाएगा।*

यहां तक कि सीआरपीसी की धारा 36 के आधार पर, राज्य पुलिस के पास अपनी संतुष्टि के अनुसार किसी अपराध की जांच करने की पर्याप्त शक्ति है। सीआरपीसी की धारा 36 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

*"**वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की शक्तियां** - पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी से वरिष्ठ श्रेणी के पुलिस अधिकारी पूरे स्थानीय क्षेत्र में, जहां वे नियुक्त हैं, समान शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं, जैसा शक्तियों का ऐसे अधिकारी द्वारा अपने थाने की सीमा के भीतर प्रयोग किया जा सकता है।*

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "*निष्पक्ष और उचित जांच*" के आलोक में सीआरपीसी की धारा 173(8) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कुछ प्रतिमान/सिद्धांत निकाले हैं, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जांच निष्पक्ष, ईमानदार, न्यायपूर्ण और कानून के अनुरूप होनी चाहिए। निष्पक्ष जांच

का पूरा जोर सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष मामले की सच्चाई को सामने लाने और अनुचित और दागी जांच या झूठे आरोप के मामलों के मूल आधार को खारिज करने पर है। यहां तक कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 भी निष्पक्ष और उचित जांच की मांग करता है।

इस न्यायालय ने **आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 6555/2021(सुबोध कुमार जैन @सुबोध जैन बनाम यूपी राज्य और अन्य)** में पहले ही इस अवलोकन के साथ इस मुद्दे पर फैसला कर दिया है कि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद भी आगे की जांच की जा सकती है। उक्त उद्देश्य के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:

> *"कानून के प्रावधानों में प्रावधान है कि सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत एक रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेजे जाने के बाद किसी अपराध के संबंध में आगे की जांच में कोई बाधा नहीं आती है। इसमें यह भी प्रावधान है कि यदि इस तरह की आगे की जांच की जाती है और कुछ मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त होते हैं, तो निर्धारित तरीके से संबंधित मजिस्ट्रेट को एक अतिरिक्त या पूरक रिपोर्ट दी जाएगी और धारा 2 से 6 के प्रावधान ऐसे पूरक, अतिरिक्त या बाद में दाखिल रिपोर्ट पर लागू होंगे। इस संबंध में, ए.पी. राज्य बनाम ए.एस. पीटर, 2008 एआईआर एससीडब्ल्यू 637 के मामले में कानून की स्थिति तय की गई है। इस निर्णय में कहा गया है -*
>
> *"निर्विवाद रूप से, कानून आगे की जांच के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेने को अनिवार्य नहीं करता है आरोप पत्र दाखिल होने के बाद भी आगे की जांच करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है।"*
>
> *इस कानून की धारा 173 (8) की भाषा के अनुसार, यह अंतर्निहित है कि एक पुलिस अधिकारी संज्ञेय मामलों में आगे की जांच स्वत: संज्ञान लेकर कर सकता है। अन्यथा, धारा 156 (1) के तहत भी वह आगे की जांच कर सकता है और गैर संज्ञेय मामलों में, मजिस्ट्रेट द्वारा 156 (1) का आदेश पारित होने के बाद, वह ऐसा नहीं कर सकता है।"*

विनुभाई हरिभाई मालवीय बनाम गुजरात राज्य (2019) 17 एससीसी 1 में शीर्ष न्यायालय ने मजिस्ट्रेट की शक्तियों पर विचार किया है और माना है कि अपराध की आगे की जांच करने की पुलिस की शक्ति, बेशक मजिस्ट्रेट की मंजूरी के अधीन, विचारण शुरू होने तक जारी रहती है।

हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **केंद्रीय जांच ब्यूरो के माध्यम से राज्य बनाम हेमेंद्र रेड्डी और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 55** में अपनी टिप्पणियों को दोहराया है और **अनंत तनूर करमुसे बनाम**

महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2023) 5 एससीसी 802 में भी कहा है।.

"हम इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि उचित, निष्पक्ष, और प्रभावी जांच की कमी इसकी साख और विश्वसनीयता को कम कर रही है, यही आगे की जांच या पुन: जांच, आरोप पत्र प्रस्तुत करने या विचारण के लंबित रहने के दौरान निर्देश के लिए पूर्व शर्त है। लंबित परीक्षण किसी भी तरह से निषेधात्मक बाधा नहीं हो सकता। सच्चाई को उजागर करने और पक्षों को न्याय दिलाने के लिए आगे की जांच या पुन: जांच की आवश्यकता तय करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों और संबंधित परिस्थितियों का एकल मूल्यांकन और विश्लेषण किया जाना चाहिए। न्यायालय की मुख्य चिंता और प्रयास सच्चे तथ्यों के आधार पर न्याय सुनिश्चित करना होना चाहिए, जिसे एक प्रतिबद्ध, सुलझी हुई और सक्षम जांच एजेंसी के माध्यम से उजागर किया जाना चाहिए।"

मामला एक संज्ञेय अपराध से संबंधित है, और इसलिए, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें निराधार हैं। पुलिस के पास जांच की असीमित शक्ति है और यह जांच सीआरपीसी की धारा 173 (8) के तहत आरोप पत्र दायर होने और उस पर संज्ञान लिए जाने के बाद भी जारी रह सकती है। इसके बाद भी आगे की जांच करने के लिए मजिस्ट्रेट की औपचारिक अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

तदनुसार, ऊपर बताए गए कारणों से और चूंकि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की दलीलें बिना किसी अर्थ के पाई गईं, रिट याचिका विफल हो गई और खारिज किए जाने योग्य है। रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 746

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह

रिट-ए संख्या 7938 वर्ष 2023

राजेश यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

श्री सुदर्शन सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :

जी.ए., सी.एस.सी.

क. दंड विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश गोवध (निवारण) अधिनियम, 1955-धारा 3/5ए/8 -पशु क्रूरता अधिनियम, 1960 - धारा 11 - पोषणीयता - याचिकाकर्ता के नाम पर पंजीकृत पिकअप को जब्त कर लिया गया क्योंकि उसमें गायों का परिवहन पाया गया था। पुलिस अधीक्षक और उप निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर उत्तर प्रदेश गोवध निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 5ए(7) के तहत कार्यवाही की गई। पक्षों को सुनने के बाद, वाहन को राज्य के पक्ष में

जब्त कर लिया गया। उपधारा 7 से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट/पुलिस आयुक्त को वाहन की जब्ती और रिहाई की कार्यवाही से निपटने के लिए अधिकृत किया गया है। ऐसे आदेश के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण का प्रावधान नहीं किया गया है। हालांकि, धारा 11 के दृष्टिगत, जिसमें यह प्रावधान है कि जहां तलाशी, अधिग्रहण, निपटान और जब्ती के संदर्भ में प्रासंगिक नियमों का अधिनियम मौन है, वहां दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधान लागू होंगे। इसलिए, आक्षेपित आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा के तहत पुनरीक्षण योग्य होगा। इसलिए, रिट याचिका पोषणीय न होने के कारण खारिज की जाती है क्योंकि यह याचिकाकर्ता को उसकी शिकायतों के निवारण के लिए आक्षेपित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान करती है। 11) रिट याचिका खारिज की जाती है।(ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा एवं माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह द्वारा प्रदत)

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और राज्य के लिए विद्वान एजीए को सुना।

तत्काल रिट याचिका में निम्नलिखित राहत की मांग की गई है:-

"(i) केस नंबर 1032/2022 कंप्यूटर केस नंबर D202214180001032 (राज्य बनाम रवि उमर गौतम और अन्य) यूपी गोहत्या (रोकथाम) अधिनियम, 1955 की धारा 5 (ए) , यू/एस 3/5ए/8 यूपी गोवध (रोकथाम) अधिनियम और 11 पशु क्रूरता अधिनियम, के तहत, अपराध संख्या 205/2022, थाना चंदौली, जनपद चंदौली में प्रतिवादी नंबर 2 (जिला मजिस्ट्रेट, जिला चंदौली) द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.02.2023 को रद्द करने की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें "

एक पिकअप, जिसका पंजीकरण संख्या UP65JT6230 है, जिसे याचिकाकर्ता के नाम पर पंजीकृत बताया गया है, को जब्त कर लिया गया क्योंकि यह गायों का परिवहन करते हुए पाया गया था। यूपी गोवध निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 5ए(7) के तहत कार्यवाही पुलिस अधीक्षक और उप निरीक्षक की दिनांक 05.11.2022 और 04.11.2022 की रिपोर्ट के आधार पर की गई। पक्षों को सुनने के बाद वाहन को राज्य के पक्ष में जब्त कर लिया गया। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.02.2023 द्वारा SHO चंदौली को वाहन की नीलामी करने और बिक्री आय को संबंधित खाते में जमा करने के लिए अधिकृत किया गया है।

याचिकाकर्ता दिनांक 03.02.2023 के इस आदेश से व्यथित है और इसलिए, यह तत्काल याचिका है। विद्वान एजीए का तर्क यह है कि रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और जिस आदेश पर सवाल उठाया गया है, वह पुनरीक्षण योग्य है।

उठाए गए मुद्दे पर विचार करने के लिए, अधिनियम की धारा 5ए का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो गायों के परिवहन आदि के

विनियमन से संबंधित है। प्रासंगिक धारा उपधारा 7 है जो इस प्रकार है: -

"(7) वह वाहन जिसके द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों और संबंधित नियमों का उल्लंघन करते हुए गोमांस या गाय और उसकी संतान का परिवहन किया जाता है, को कानून प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा जब्त कर लिया जाएगा। संबंधित जिला मजिस्ट्रेट/पुलिस आयुक्त जब्ती और रिहाई की सभी कार्यवाही करेंगे,जैसा भी मामला हो,।"

इस रिट याचिका के प्रयोजनों के लिए उप-धारा 11 भी प्रासंगिक है जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"(11) जहां खोज, अधिग्रहण, निपटान और जब्ती के संदर्भ में इस अधिनियम या संबंधित नियमों के प्रावधान मौन हैं, वहां आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रासंगिक प्रावधान प्रभावी होंगे।"

उपधारा 7 के अवलोकन से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट/पुलिस आयुक्त को वाहन की जब्ती और रिहाई की कार्यवाही से निपटने के लिए अधिकृत किया गया है। ऐसे आदेश के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण का उपाय नहीं है। हालाँकि, धारा 11 के मद्देनजर जो यह प्रावधान करती है कि जहां खोज, अधिग्रहण, निपटान और जब्ती के संदर्भ में प्रासंगिक नियमों का अधिनियम मौन है, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधान लागू होंगे।

इन परिस्थितियों में, विद्वान एजीए की प्रस्तुति में बल प्रतीत होता है। इसलिए, रिट याचिका में दिए गए आदेश को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा के तहत संशोधित किया जाएगा, जो इस प्रकार है: -

"धारा 397 पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अभिलेखों को मंगाना।

(1) उच्च न्यायालय या कोई भी सत्र न्यायाधीश किसी भी कार्यवाही की शुद्धता, वैधता या औचित्य , निष्कर्ष, सजा या आदेश, दर्ज या पारित *के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से अपने या अपने स्थानीय क्षेत्राधिकार के भीतर स्थित किसी भी अवर आपराधिक न्यायालय के समक्ष किसी भी कार्यवाही के रिकॉर्ड की मांग और जांच कर सकता है और ऐसे अवर न्यायालय की किसी भी कार्यवाही की नियमितता के बारे में, और ऐसे रिकॉर्ड की मांग करते समय, निर्देश दे सकता है कि किसी भी सजा या आदेश का निष्पादन निलंबित कर दिया जाए, और यदि आरोपी कारावास में है, तो उसके रिकॉर्ड की जांच होने तक जमानत या अपने बांड पर रिहा किया जाए। स्पष्टीकरण.- सभी मजिस्ट्रेट चाहे कार्यकारी हों या न्यायिक, और चाहे वे मूल या अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहे हों, इस उपधारा और धारा 398 के प्रयोजनों के लिए सत्र न्यायाधीश से कमतर माने जाएंगे।*

(2) उप-धारा (1) द्वारा प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा।

(3) यदि इस धारा के तहत किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश को आवेदन किया गया है, तो उसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी भी अन्य आवेदन पर उनमें से दूसरे द्वारा विचार नहीं किया जाएगा।

इन परिस्थितियों में और चूंकि विवादित आदेश एक अंतिम आदेश है, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि विवादित आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता के पास सीआरपीसी की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण दाखिल करने का वैधानिक वैकल्पिक उपाय है।

इसलिए, याचिकाकर्ता को अपनी शिकायतों के निवारण के लिए दिए गए आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर करने की स्वतंत्रता देते हुए रिट याचिका को सुनवाई योग्य नहीं मानते हुए खारिज किया जाता है।

यह देखना प्रासंगिक होगा कि हमारी सुविचारित राय में, याचिकाकर्ता परिसीमा अधिनियम की धारा 11 के लाभ का हकदार हो सकता है, यदि ऐसी याचिका पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उठाई जाती है।

(2023) 8 ILRA 748

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

प्रथम अपील संख्या 170 वर्ष 2023

इति त्यागी ...अपीलकर्ता

बनाम

प्रिंस त्यागी ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :

अतुल दीक्षित

प्रतिवादी के अधिवक्ता :

(ए)पारिवारिक कानून - पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 - धारा 19(1) - अपील, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 13-बी - आपसी सहमति से तलाक - सभी सौहार्दपूर्ण समझौतों का सम्मान किया जाना चाहिए और ऐसे सभी मामलों में न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए जहां समझौता ज्ञापन पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है और पक्षकारों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए स्वतंत्र रूप से कार्य किया है - सौहार्दपूर्ण समझौते को कानून में तत्परता से मान्यता दी जानी चाहिए। (पैरा - 6,7)

दो पक्षों का मामला - 'समझौता ज्ञापन' के माध्यम से अपने वैवाहिक विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाया -ऐसी स्थिति में अलग होने का फैसला किया जहाँ वैवाहिक संबंध पूरी तरह से असुधार्य हो गए थे - पक्षों ने समझौता ज्ञापन तैयार किया - पक्ष - दोनों शिक्षित और कार्यरत थे। **(पैरा -5)**

अभिनिर्धारित:-मामले की विशिष्ट परिस्थितियों को देखते हुए, पारिवारिक न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया है और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए भेज दिया गया है। शेष छह महीने की अवधि माफ कर दी गई है और आवेदन संख्या 12-सी को स्वीकार कर

लिया गया है। पारिवारिक न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह धारा 13-बी के तहत कार्यवाही दो सप्ताह के भीतर पूरी करे। (पैरा 8)

प्रथम अपील निस्तारित।(ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:-

1. शिल्पा शैलेश बनाम वरुण श्रीनिवासन, 2023 लाइव लॉ (एससी) 375

2. अमित कुमार बनाम सुमन बेनीवाल, 2021 एससीसी ऑनलाइन 1270

3. नवीन कोहली बनाम नीलू कोहली, (2006) 4 एससीसी 558

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी एवं माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत)

<u>मौखिक</u>

1. श्री विश्वकांत श्रीवास्तव, अधिवक्ता, ने प्रतिवादी की ओर से वकालतनामा दायर किया है , जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के तहत दायर यह अपील पारिवारिक परिवाद संख्या 1524/2023 में पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 27.07.2013 के निर्णय/आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके तहत 29.04.2023 को शुरू किए गए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत विवाह विच्छेद के लिए पक्षों की पहली याचिका, उपशमन समयावधि की छूट के लिए आवेदन यानी सी-12 के साथ खारिज कर दी गई थी। कार्यवाही एक वर्ष से अधिक समय के बाद शुरू की गई थी, जब पक्ष अलग-अलग रहते थे और 28.04.2023 को विवाह के अपूरणीय रूप से टूटने के कारण अलग होने के लिए सौहार्दपूर्ण समझौता किया था।

4. दोनों पक्ष पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित थे और इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है। विद्वान पारिवारिक न्यायालय वैधानिक आदेश को ध्यान में रखते हुए ***2023 लाइव लॉ (एससी) 375: शिल्पा शैलेश बनाम वरुण श्रीनिवासन*** में रिपोर्ट किए गए निर्णय के आधार पर निर्मित तर्क से प्रभावित नहीं हुआ, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 142(1) के दायरे से निपटा था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 142(1) के तहत शक्तियों के आलोक में तलाक का आदेश दिया था। इस हद तक हमें पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखती।

5. हमारे समक्ष जो मामला है वह दो पक्षों का मामला है, जिन्होंने 28.04.2023 को 'समझौता ज्ञापन' (जिसे आगे 'एमओयू' कहा जाएगा) के माध्यम से अपने वैवाहिक विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है। दोनो पक्षों ने ऐसी स्थिति में अलग होने का फैसला किया, जहां

वैवाहिक संबंध पूरी तरह से अपरिवर्तनीय हो गए थे। पक्षों ने एमओयू पर भी काम किया है । दोनों पक्ष शिक्षित और कार्यरत हैं।

6. यह न्यायालय इस बात पर ध्यान दे सकता है कि पक्षों के बीच उनकी स्वतंत्र इच्छा से किए गए समझौता ज्ञापन की वैधता या अन्यथा धोखाधड़ी के आधार को छोड़कर न्यायिक जांच के लिए खुला नहीं है । मध्यस्थता या सौहार्दपूर्ण तरीकों से निपटान का विचार दर्शन के इस क्षेत्र से होकर गुजरता है और आगे बढ़ता है। वर्तमान मामले में पारिवारिक न्यायालय ने निश्चित रूप से समझौता ज्ञापन की वैधता पर विचार नहीं किया था, बल्कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत प्रतिबंध के आधार पर शक्ति का प्रयोग करने से परहेज किया था। कानून का अधिदेश प्रक्रियात्मक बना हुआ है। ऐसे मामले में जहां समझौता स्वतंत्र है, वहां दोनों पक्षों का सौहार्दपूर्ण समझौते द्वारा विवाद को निपटाने का मूल अधिकार है, कानून को ऐसे अधिकार का सम्मान करना चाहिए। सौहार्दपूर्ण तरीके से किए गए समझौते न्याय के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जिसे कानून कभी-कभी पक्षों के बीच प्रदान करने में विफल हो जाता है, जिससे असाधारण स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सौहार्दपूर्ण समझौतों के इस उद्देश्य का सम्मान किया जाना चाहिए तथा ऐसे सभी मामलों में न्यायालयों द्वारा इसे मान्यता दी जानी चाहिए, जहाँ समझौता ज्ञापन पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है तथा दोनों पक्षों ने सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसरण में स्वतंत्र रूप से कार्य किया है।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***अमित कुमार बनाम सुमन बेनीवाल के मामले में 2021 एससीसी ऑनलाइन 1270*** में रिपोर्ट की है कि विवाह की संस्था को जल्दबाजी में विवाह विच्छेद को रोककर बचाया जाना चाहिए, लेकिन साथ ही एक बार जब पक्षकार अलग हो जाते हैं और अपूरणीय विघटन के कारण अलगाव जारी रहता है, तो ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने ***नवीन कोहली बनाम नीलू कोहली (2006) 4 एससीसी 558*** का सहारा लेते हुए भी अन्यथा राय दी है। यदि विवाह के पक्षकारों को मुकदमा करने की अनुमति दी जाती है तो वे भी कानून के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पाएंगे और इस प्रकार विवाह की संस्था को समान रूप से नुकसान पहुंचाएंगे। यही कारण है कि एक सौहार्दपूर्ण समझौते को कानून में तत्परता से मान्यता दी जानी चाहिए।

8. हमारे समक्ष दोनों पक्षों ने प्रस्तुत किया है कि 28.04.2023 को हुए समझौता ज्ञापन पर अमल किया गया है और विवाह से बाहर कोई मुद्दा नहीं है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और अपनी मर्जी से अलग हुए हैं और इस अपूरणीय स्थिति को देखते हुए जिसने विवाह को अव्यवहारिक बना दिया है, कार्यवाही को लंबित रहने देना, ऐसे मामले में समझौता ज्ञापन के उद्देश्य को विफल करने और पक्षों को न्याय की सहायता से दूर करने के बराबर होगा। मामले की विशिष्ट परिस्थितियों को देखते हुए, हम पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश को रद्द करते हैं और मामले को नए सिरे से तय करने के लिए भेजते हैं। छह महीने की अवधि जो अब लगभग दो

महीने से कम है, माफ किए जाने योग्य है और आवेदन 12-सी तदनुसार स्वीकार किया जाता है। पारिवारिक न्यायालय को इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल होने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर धारा 13-बी के तहत कार्यवाही को अंतिम रूप देने का निर्देश दिया जाता है।

9. उपर्युक्त टिप्पणी के साथ, तत्काल अपील का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 750

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आदेश संख्या 236 वर्ष 2002 से प्रथम अपील

मैसर्स कृषक भारती को-ऑपरेटिव लिमिटेड कृभको सूरत गुजरात ...अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता :
अशोक कुमार भटनागर

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :
ए. श्रीवास्तव, अनिल श्रीवास्तव, जे.पी. मौर्य

ए. सिविल कानून -रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987-धारा 23 रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली, 1989 के साथ पठित- दावेदारों के बेटे की दुर्घटना में मृत्यु हो गई और न्यायाधिकरण के समक्ष मुआवजे के लिए आवेदन दायर किया गया- एक दिन दावेदार अनुपस्थित थे और आवेदन को चूक के कारण खारिज कर दिया गया- न्यायाधिकरण ने चूक के कारण आवेदन को खारिज कर दिया और मामले को बहाल करने के लिए कहा कि आवेदन दायर करने के लिए सीमा अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे- न्यायाधिकरण ने माना कि आवेदन दायर करने में 30 दिनों की समय सीमा है- यदि पर्याप्त कारण बनाया जाता है, तो न्यायाधिकरण को सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत देरी को माफ करने की शक्ति मिली है क्योंकि समय बढ़ाने के लिए अनुभाग में कोई विशिष्ट बहिष्करण या निषेध नहीं है। इसलिए, सीमा अधिनियम की धारा 29 (2) के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, सीमा अधिनियम की धारा 5 लागू होती है- यहां, अपीलकर्ताओं द्वारा देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण दिए गए हैं- इसलिए, न्यायाधिकरण को देरी को माफ करना चाहिए था। (पैरा 1 से 14)

B. रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली के नियम 18 में चूक के कारण आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दाखिल करने में 30 दिनों की समय-सीमा निर्धारित की गई है। लेकिन, समय बढ़ाने के लिए खंड में कोई विशिष्ट अपवर्जन या निषेध नहीं है। इसलिए, सीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, सीमा अधिनियम की धारा 5 लागू होती है। यह सच है कि मुकरी गोपालन के मामले से पहले, इस आशय के कई निर्णय हुए थे कि सीमा अधिनियम की

धारा 5 केवल सिविल न्यायालय पर लागू होती है। अब यह लगातार माना जाता रहा है कि विशिष्ट अपवर्जन या निषेध के अभाव में, यदि आवेदन दाखिल करने के लिए विशेष कानून में सीमा निर्धारित की गई है, तो सीमा अधिनियम की धारा 29(2) के साथ धारा 5 के आधार पर, न्यायाधिकरण, जिसमें न्यायालय के सभी अधिकार हैं, पर्याप्त कारणों पर देरी को माफ कर सकता है। रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 18(3) के मद्देनजर आवेदक की चूक के लिए बर्खास्तगी के किसी भी आदेश को रद्द करने में यह रेलवे दावा न्यायाधिकरण पर और भी अधिक लागू होता है। (पैरा 6,7)

अपील स्वीकृत।(ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. श्याम संतराम साली (मराठी) बनाम यू.ओ.आई., गुजरात उच्च न्यायालय

2. मुकरी गोपालन का मामला (1995) एआईआर एससी 2272

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत)

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार भटनागर और प्रतिवादी-भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री वरुण पांडे को सुना गया।

आदेश के विरुद्ध तत्काल प्रथम अपील दिनांक 09.02.2000 तथा दिनांक 21.01.2002 को रेलवे दावा अधिकरण अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत दावा प्रकरण संख्या 9700392 में विद्वान रेलवे दावा अधिकरण, लखनऊ पीठ, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसमें अपीलकर्ता के दावे को दिनांक 09.02.2000 को खारिज कर दिया गया तथा दिनांक 21.01.2002 के आदेश द्वारा बहाली आवेदन को खारिज कर दिया गया।

विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 21.01.2002 के आक्षेपित निर्णय में बहाली के लिए आवेदन को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि इसकी समय सीमा समाप्त हो चुकी है और देरी को माफ नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सीमा अधिनियम रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987के साथ पठित रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1989 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होता है।

तथ्य सीमित हैं। अपीलकर्ता द्वारा दायर दावा मामला 09.02.2000 को गैर अभियोजन के लिए खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, अपीलकर्ता ने 04.10.2000 को एक बहाली आवेदन दायर किया। बहाली के लिए आवेदन करने में 8 महीने की देरी हुई। आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दायर करने की समय सीमा 30 दिन है।

सवाल यह है कि क्या सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1989 के साथ पठित रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कार्यवाही पर लागू होता है और

क्या विलंब माफी आवेदन योग्यता के आधार पर सुनवाई के लिए उत्तरदायी था। निर्धारण के लिए जो कानूनी मुद्दा उठता है उसका निर्णय माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा ***श्याम संतराम साली (मराठी) बनाम भारत संघ*** के मामले किया गया है जो निम्नानुसार है:-

"6. रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली के नियम 18 में आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दायर करने में 30 दिनों की समय सीमा निर्धारित की गई है। लेकिन, इस खंड में समय बढ़ाने के लिए कोई विशेष अपवाद या निषेध नहीं है। इसलिए, परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू होती है। यह सच है कि मुकरी गोपालन एआईआर 1995 एससी 2272 के मामले में बड़ी संख्या में निर्णय हुए थे। इसका प्रभाव यह है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 केवल सिविल न्यायालय पर लागू होती है। अब यह लगातार माना जाता रहा है कि विशिष्ट अपवाद या निषेध के अभाव में, परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के साथ पठित धारा 5के आधार पर आवेदन दाखिल करने के लिए एक विशेष कानून में इसकी परिसीमा निर्धारित की जाती है। न्यायाधिकरण जिसके पास अदालत के सभी प्रावधान हैं, पर्याप्त कारणों पर देरी को माफ कर सकता है। यह बर्खास्तगी के किसी भी आदेश को रद्द करने में रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 18(3) के मद्देनजर आवेदक रेलवे दावा न्यायाधिकरण पर अधिक लागू होता है।

7. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमारी राय है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू है और न्यायाधिकरण को देरी को माफ कर देना चाहिए क्योंकि देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण दिए गए हैं। यहां, दावेदारों के बेटे की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई और न्यायाधिकरण के समक्ष मुआवजे के लिए आवेदन दायर किया गया। यह सच है कि एक दिन दावेदार अनुपस्थित थे और आवेदन चूक के कारण खारिज कर दिया गया था। आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने और मामले को बहाल करने के लिए आवेदन दाखिल करने पर आवेदन दाखिल करने के लिए लिमिटेशन एक्ट के प्रावधान लागू नहीं होंगे। आवेदन दाखिल करने के लिए 30 दिन की समय सीमा है. इसलिए, इसे 30 दिनों के भीतर दाखिल करना होगा। यदि पर्याप्त कारण बताया गया है, तो न्यायाधिकरण को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत देरी को माफ करने की शक्ति मिल गई है और न्यायाधिकरण को उदार दृष्टिकोण अपनाना होगा। यहां, देरी को माफ करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा पर्याप्त कारण दिए गए हैं। इसलिए, न्यायाधिकरण को देरी को माफ कर देना चाहिए था। इसलिए, हम चूक के लिए आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को माफ करते हैं और मामले को मेरिट के आधार पर निर्णय लेने के लिए न्यायाधिकरण को भेज दिया जाता है। हम मामले के गुण-दोष के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं. पक्ष 14.01.2008 को न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होंगे। अपील स्वीकृत की जाती है।"

यही मुद्दा माननीय गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष **धर्मेष मधुभाई परमार बनाम भारत संघ** के मामले में भी विचारार्थ के लिए आया, जिसमें रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1989 के साथ पठित रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कार्यवाही के लिए सीमा अधिनियम की धारा 5 की प्रयोज्यता की पुष्टि की गई थी और कानूनी स्थिति बताते हुए योग्यता के आधार पर देरी माफी के लिए आवेदन की अनुमति दी गई थी। :

"6. रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली के नियम 18 में चूक के लिए आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दाखिल करने में 30 दिनों की समय सीमा निर्धारित की गई है। लेकिन, इस धारा में समय बढ़ाने के लिए कोई विशिष्ट अपवाद या निषेध नहीं है। इसलिए, सीमा अधिनियम की धारा 29(2) के अधिदेश पर विचार करते हुए, सीमा अधिनियम की धारा 5 लागू होती है। यह सच है कि मुकरी गोपालन के मामले, एआईआर 1995 एससी 2272 से पहले, इस आशय के कई निर्णय थे कि सीमा अधिनियम की धारा 5 केवल सिविल न्यायालय पर लागू होती है। अब यह लगातार माना जाता रहा है कि विशिष्ट अपवाद या निषेध के अभाव में, आवेदन दाखिल करने के लिए एक विशेष कानून में सीमा निर्धारित की गई है, सीमा अधिनियम की धारा 29(2) के साथ धारा 5 के आधार पर, न्यायाधिकरण जिसके पास न्यायालय के सभी अधिकार हैं, पर्याप्त कारणों पर देरी को माफ कर सकता है। यह सब है रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 18(3) के मद्देनजर आवेदक की चूक के लिए बर्खास्तगी के किसी भी आदेश को रद्द करने में रेलवे दावा न्यायाधिकरण पर अधिक लागू होता है।

उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमारी राय है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू है और न्यायाधिकरण को देरी को माफ कर देना चाहिए क्योंकि देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण दिए गए हैं। यहां, दावेदारों के बेटे की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई और न्यायाधिकरण के समक्ष मुआवजे के लिए आवेदन दायर किया गया। यह सच है कि एक दिन दावेदार अनुपस्थित थे और आवेदन चूक के कारण खारिज कर दिया गया था। चूक के कारण आवेदन को खारिज करने के आदेश को अपास्त करने और मामले को बहाल करने के लिए आवेदन दाखिल करने पर आवेदन दाखिल करने के लिए लिमिटेशन एक्ट के प्रावधान लागू नहीं होंगे। आवेदन दाखिल करने के लिए 30 दिन की समय सीमा है. इसलिए, इसे 30 दिनों के भीतर दाखिल करना होगा। यदि पर्याप्त कारण बताया गया है, तो न्यायाधिकरण को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत देरी को माफ करने की शक्ति मिल गई है और न्यायाधिकरण को उदार दृष्टिकोण अपनाना होगा। यहां, देरी को माफ करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा पर्याप्त कारण दिए गए हैं। इसलिए, न्यायाधिकरण को देरी को माफ कर देना चाहिए था। इसलिए, हम खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को माफ करते हैं डिफ़ॉल्ट के लिए आवेदन और मामले को गुण-दोष के

आधार पर निर्णय लेने के लिए न्यायाधिकरण को भेज दिया जाता है। हम मामले के गुण-दोष के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं. पक्ष 14.01.2008 को न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होंगे। अपील स्वीकृत की जाती है।"

श्याम संतराम साली (मराठी) (उपरोक्त) और धर्मेश मधुभाई परमार (उपरोक्त) में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के तहत मामले को निर्णीत किया जायेगा।

पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि सीमा अधिनियम की धारा 5 रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987 के साथ पठित रेलवे दावा न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1989 के तहत की गई कार्यवाही पर लागू होती है। विलंब माफी आवेदन दायर किया गया बहाली के समर्थन में आवेदन गुण-दोष के आधार पर विचार करने योग्य है।

विलंब माफी के लिए आवेदन में दिखाए गए कारण से पता चलता है कि मामला गोरखपुर के न्यायाधिकरण से लखनऊ के रेलवे दावा न्यायाधिकरण में स्थानांतरित कर दिया गया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के कार्यालय की लापरवाही के कारण, इस तथ्य को अपीलकर्ता को सूचित नहीं किया जा सका। जब मामला लखनऊ में रेलवे दावा न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई के लिए रखा गया तो अपीलकर्ता/उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति वास्तविक कारणों और उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण थी। अपीलकर्ता को गैर अभियोजन के लिए दावा याचिका खारिज करने के आदेश की जानकारी मिलने पर बिना किसी देरी के तुरंत बहाली आवेदन दायर किया गया। विलंब माफ़ी के लिए आवेदन से पता चलता है कि देरी का कारण वास्तविक, सद्भावनापूर्ण था और देरी जानबूझकर नहीं की गई थी। इस न्यायालय ने यह भी पाया कि अपीलकर्ता अपने दावे के अभियोजन में हमेशा मेहनती था। इसके अलावा, जब पार्टियों के वास्तविक अधिकार अदालतों के सामने आते हैं,न्यायालयों का प्रयास हमेशा वास्तविक न्याय प्रदान करना होता है, न कि तकनीकी आधार पर दावेदारों के लिए न्याय के दरवाजे बंद करना।

इस परिप्रेक्ष्य में, विलंब माफी के लिए आवेदन पर विचार किया जा सकता है और उसे अनुमति दी जाती है। पुनर्स्थापना आवेदन अनुमति योग्य है और अनुमति दी जाती है।

विद्वान रेलवे दावा न्यायाधिकरण, लखनऊ खंडपीठ, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 09.02.2000 के साथ-साथ 21.01.2002 को अपास्त करने योग्य है और इसे अपास्त किया जाता है।

गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए मामला विद्वान न्यायाधिकरण को भेजा जाता है।

आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील को अनुमति है।

(2023) 8 ILRA 754

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव

आदेश से प्रथम अपील संख्या 301/2020

रूही अरोड़ा एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती मोनिका एवं अन्य ... प्रतिवादीगण

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री संतोष त्रिपाठी, श्री अजय कुमार सिंह, श्री अशोक कुमार बैस, श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, श्री देव दत्त अरोड़ा (व्यक्तिगत रूप से), श्री एमडी सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री एसडी ओझा

सिविल विधि-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे के अधिनिर्णय को चुनौती-मृतक की अविवाहित बहन और पिता ने अधिनिर्णय को संशोधित करने की मांग करते हुए याचिका दायर की - अपीलकर्ता संख्या 1 (अविवाहित बहन) को कोई मुआवजा नहीं दिया गया है- अपीलकर्ता संख्या 2 (पिता) को गणना किए गए मुआवजे का 10% अर्थात 5,23,032.80 रुपये या 5,28,033 रुपये दिया गया है। मृतक की पत्नी और नाबालिग बच्चों को प्रति वर्ष 6% ब्याज के साथ मुआवजे का 60%, 15% और 15% प्रदान किया गया है- ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता नंबर 1 (मृतक की बहन) को इस आधार पर मुआवजा देने से इनकार करके स्पष्ट रूप से कानूनी गलती की है कि उसे अपने पिता (अपीलकर्ता नंबर 2) के जीवनकाल के दौरान अपने मृत भाई पर आश्रित नहीं माना जा सकता है- उसे प्रदान की गई मुआवजे की राशि का 15% मुआवजा प्रदान करने का भी दायित्व था- इसके अलावा, ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता नंबर 2 के लिए गलत तरीके से 10% राशि आवंटित की, जबकि उसे 20% प्रदान किया जाना चाहिए था क्योंकि उसने अपने इकलौते बेटे को खो दिया था- *मैग्मा जनरल इंश्योरेंस मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और प्रणय सेठी मामले में* फैसले के अनुसार, जीवित पति या पत्नी (मृतक की पत्नी) रुपये के बजाय 40,000/- की सीमा तक वैवाहिक संघ के लिए हकदार है 2,500/- का मुआवजा दिया गया - इसी प्रकार अंतिम संस्कार व्यय भी 2,500/- रुपये से बढ़ाकर 15,000/- रुपये किया जा सकता है - अपीलकर्ता मृतक की अविवाहित बहन और पिता होने के नाते संतान की हानि के कारण 40,000/- रुपये प्रत्येक के हकदार हैं। (पैरा 1 से 26)

सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि 'कंसोर्टियम' एक संक्षिप्त शब्द है जिसमें 'वैवाहिक कंसोर्टियम', 'माता-पिता का कंसोर्टियम' और 'पुत्र-पुत्री कंसोर्टियम' शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक का साथ, देखभाल, सहायता, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल है, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृतक जीवनसाथी के साथ यौन संबंध भी शामिल हैं। वैवाहिक कंसोर्टियम को आम तौर पर पति-

प्रतिलिपि

पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जीवित जीवनसाथी को 'प्रत्येक वैवाहिक संबंध में दूसरे के साथ, समाज, सहयोग, स्नेह और सहायता' के नुकसान के लिए मुआवज़ा देता है। माता-पिता की अकाल मृत्यु पर, बच्चे को 'माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण' के नुकसान के लिए पैतृक कंसोर्टियम प्रदान किया जाता है। संतान कंसोर्टियम, बच्चे की आकस्मिक मृत्यु की स्थिति में माता-पिता का मुआवज़ा पाने का अधिकार है। किसी दुर्घटना में बच्चे की मृत्यु हो जाना, मृतक के माता-पिता और परिवार के लिए गहरा सदमा और पीड़ा का कारण बनता है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ा दुःख अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना होता है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, साथ और परिवार में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है। (पैरा 20)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) 6 एससीसी 121

2. रेशमा कुमारी एवं अन्य बनाम मदन मोहन एवं अन्य (2013) 9 एससीसी 65

3. राष्ट्रीय इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 एससीसी 680

4. संतोष देवी बनाम महावीर सिंह (2018) 9 एससीसी 146

5. सुरेशचंद्र बागमल दोशी बनाम न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2018) 15 एससीसी 649

6. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @ चुहरू राम (2018) 18 एससीसी 130

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं की ओर से श्री देव दत्त अरोड़ा (अपीलकर्ता संख्या 2) व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और दावेदार-प्रत्यथी संख्या 1 से 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एस.डी. ओझा को सुना गया। तामील के बावजूद प्रत्यथी संख्या 4 और 5 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. दिनांक 17.8.2013 के आदेश से यह पहली अपील, मृतक की अविवाहित बहन और पिता के कहने पर, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, सहारनपुर के के एमएसीपी संख्या 149/2011(श्रीमती मोनिका अरोड़ा एवं अन्य बनाम विष्णु कुमार मीना एवं अन्य) में दिए गए निर्णय/पचाट को संशोधित करने की मांग करते हुए दायर की गई है। दिए गए मुआवजे के हिस्से का पुनर्बंटवारा कर रु. 52,80,328/- में अपीलार्थी क्रमांक 1 (मृतक की अविवाहित बहन) को उचित हिस्सा प्रदान करें। दावेदार प्रत्यथी संख्या 1-श्रीमती मोनिका

अरोड़ा (मृतक की विधवा) के 60% हिस्से से समायोजन करके अपीलकर्ता संख्या 2 की हिस्सेदारी को पुरस्कार के 10% से बढ़ाकर 20% करना।

3. अपीलकर्ता नंबर 2, व्यक्तिगत रूप से, प्रस्तुत करता है कि उनके इकलौते बेटे विकल्प अरोड़ा की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई, जो 22.4.2011 को अपराह्न 3:30 बजे बुलंदशहर नोएडा रोड पर चचुरा नाहर थाना काकोर जिला गौतमबुद्धनगर के पास हुई थी। विकल्प अपने दोस्तों अंकित और सुरजीत के साथ पंजीकरण संख्या यूपी-21-टी-7739 वाली ऑल्टो कार में यात्रा कर रहा था। एक ट्रक जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर आरजे-11-जीए-2075 है, ऑल्टो कार पर सवार विकल्प अरोड़ा को कुचलते हुए पलट गया, जिससे उसकी मौके पर ही मौत हो गई। विकल्प अरोड़ा की उम्र 33 वर्ष थी और वह हिंदुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड में टेरिटरी सेल्स ऑफिसर के रूप में कार्यरत थे और लगभग 70,000 रुपये प्रति माह कमाते थे। अपीलकर्ताओं के अलावा उनकी पत्नी मोनिका अरोड़ा, एक नाबालिग बेटी अनन्या अरोड़ा और नाबालिग बेटा लव अरोड़ा जीवित थे। मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत दावा याचिका, की दावा याचिका संख्या 149/2011, एमएसीटी, सहारनपुर के समक्ष दावेदार-प्रत्यथी संख्या 1 से 3 द्वारा अपीलकर्ताओं के साथ दायर की गई थी, जिसमें 1,57,10,000/- रुपये के मुआवजे का दावा किया गया था। एवं उसके अलावा मोटर वाहन अधिनियम की धारा 140 के तहत तुरंत 50,000/- रुपये और अधिनियम की धारा 171 के तहत दुर्घटना की तारीख से वास्तविक भुगतान की तारीख तक 12% प्रति वर्ष ब्याज का भुगतान किया जाये। दिनांक 17.8.2013 के आक्षेपित फैसले के तहत दावा न्यायाधिकरण ने दावा याचिका की स्थापना की तारीख से 6% साधारण ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 52,80,328/- रुपये की राशि प्रदान की। दावा न्यायाधिकरण ने यहां अपीलकर्ता नंबर 1 (अविवाहित बहन) को इस आधार पर कोई मुआवजा नहीं दिया कि उसे पिता (यहां अपीलकर्ता नंबर 2) के जीवनकाल के दौरान मृत भाई पर निर्भर नहीं माना जा सकता है। हालाँकि, ट्रिब्यूनल ने मुआवजे के रूप में दी गई राशि का 10% अपीलकर्ता नंबर 2 (मृतक के पिता) के पक्ष में बांट दिया। पुरस्कार का 60% मृतक की पत्नी (यहाँ दावेदार प्रत्यथी संख्या 1) के पक्ष में विभाजित किया गया था, जबकि मृतक के आश्रित नाबालिग बच्चों (दावेदार प्रत्यथी संख्या 2 और 3 यहाँ) को दिए गए मुआवजे का 15% प्रत्येक को आवंटित किया गया था।

4. मृतक की पत्नी यानी मोनिका अरोड़ा ने अपने दो नाबालिग बच्चों यानी दावेदार-प्रत्यथी नंबर 1 से 3 के साथ एफएएफओ (डी) संख्या 290/2014 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 17.8.2013 के फैसले पर आपत्ति जताई। मृतक की पत्नी और नाबालिग बच्चों (यानी दावेदार-प्रत्यथी 1 से 3 क्रमांक)) द्वारा दायर अपील का निर्णय इस न्यायालय के समक्ष आयोजित राष्ट्रीय लोक अदालत के समक्ष दिनांक 3.10.2021 के आदेश के तहत हुए समझौते के अनुसार किया गया, जिसमें बीमा कंपनी (आईसीआईसीआई

लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) और दावेदार थे। दावेदारों द्वारा पहले ही प्राप्त की गई राशि (यदि कोई हो) के अलावा 26,25,000/- रुपये के पूर्ण और अंतिम विचार के लिए अपील का सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटारा किया गया। समझौते में यह शर्त भी शामिल थी कि बीमा कंपनी (आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) द्वारा दावेदारों को तय की गई उपरोक्त राशि से अधिक कुछ भी देय नहीं होगा।

5. प्रत्यथी क्रमांक 1 से 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.डी. ओझा का कहना है कि 3.10.2021 को हुआ समझौता पहले ही प्रभावी हो चुका है और दावेदारों को मुआवजे की राशि उसी अनुपात में प्राप्त हुई है जैसा ट्रिब्यूनल द्वारा दिया गया है। आक्षेपित पुरस्कार के तहत. अपीलकर्ता नंबर 2 देव दत्त अरोड़ा को दी गई राशि का 10% यानी 2,62,500/- रुपये जारी कर दिए गए हैं।

6. उपरोक्त पृष्ठभूमि में इस न्यायालय को वर्तमान अपील पर निर्णय लेना आवश्यक है।

7. श्री देव दत्त अरोड़ा, अपीलकर्ता संख्या 2, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए हैं, ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं: -

- दावा न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता नंबर 1 (मृतक की बहन) को इस आधार पर मुआवजा देने से इनकार करके कानून में स्पष्ट रूप से गलती की है कि उसे अपने पिता (अपीलकर्ता नंबर 2) के जीवनकाल के दौरान अपने मृत भाई पर निर्भर नहीं माना जा सकता है। वह दिए गए मुआवज़े की राशि का 15% की सीमा तक मुआवज़ा पाने के लिए भी उत्तरदायी थी।

- दावा न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता संख्या 2 के लिए गलत तरीके से 10% राशि आवंटित की, जबकि उसे 20% का पुरस्कार दिया जाना चाहिए था क्योंकि उसने अपना इकलौता बेटा खो दिया था।

- मुआवज़े की राशि न्यायसंगत और उचित नहीं है और अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 के एकमात्र भाई/पुत्र विकल्प अरोड़ा की आकस्मिक मृत्यु पर दावेदार/अपीलकर्ता की मृत्यु हुए नुकसान के अनुरूप नहीं है ।

- अपीलकर्ता नंबर 1 को मुआवजा देने से इनकार करना बिना किसी सबूत के आधार पर है और अपीलकर्ता नंबर 1 को उसके पिता (अपीलकर्ता नंबर 2) पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं माना जा सकता है, खासकर जब अपीलकर्ता नंबर 2 खुद उनके मृत पुत्र विकल्प अरोड़ा की आय पर निर्भर था।

8. तदनुसार प्रार्थना की जाती है कि अपील स्वीकार की जानी चाहिए और मोटर दुर्घटना

दावा न्यायाधिकरण का निर्णय प्रार्थना के अनुसार संशोधित किया जाना चाहिए।

9. हालाँकि, दावेदार/प्रत्यथी संख्या 1 से 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एस.डी. ओझा का कहना है कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, सहारनपुर का निर्णय उचित और उचित है और इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। ट्रिब्यूनल ने पाया है कि अपीलकर्ता नंबर 1, रूही अरोड़ा अपने पिता (अपीलकर्ता नंबर 2) पर निर्भर थी जो एक जनरल मर्चेंट की दुकान चलाते थे। इस प्रकार, उनका कहना है कि अपील को अस्वीकार किया जाना चाहिए।

10. मैंने संबंधित पक्षों को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

11. जहां तक विकल्प अरोड़ा की मृत्यु के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता नंबर 1, जूही अरोड़ा (अविवाहित बहन) को इस आधार पर मुआवजा देने से इनकार कर दिया गया कि उसे अपने पिता के जीवनकाल के दौरान मृतक पर निर्भर नहीं माना जा सकता है। (अपीलकर्ता) किसी सबूत के अभाव में उचित प्रतीत होता है कि मृतक अपीलकर्ता नंबर 1 की शिक्षा के लिए शुल्क आदि में योगदान दे रहा था। इस संबंध में दावा न्यायाधिकरण के समक्ष कोई सबूत नहीं दिया गया था और न ही कोई सबूत दिया गया था। इस आशय को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। यह साक्ष्य में आया है कि अपीलकर्ता नंबर 2 अपनी किराना दुकान चला रहा था, इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है। मामले को देखते हुए, न्यायालय इस संबंध में ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है।

12. सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, 2009 (6) एससीसी 121 के मामले में शीर्ष अदालत, अवधारित किया गया है जहां मृतक विवाहित था, वहां व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती 1/3 होनी चाहिए यदि आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या दो से तीन है; ¼ होनी चाहिए यदि आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या चार से छह है; और 1/5 होनी चाहिए यदि आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या छह से अधिक है। यदि मृतक कुंवारा था और दावा माता-पिता द्वारा दायर किया गया था, तो कटौती आम तौर पर कुंवारे व्यक्ति के व्यक्तिगत और रहने के खर्च के रूप में 50% होगी। इसके विपरीत साक्ष्य के अधीन पिता की अपनी आय होने की संभावना थी और उसे आश्रित नहीं माना जाएगा। अत: माता ही आश्रित मानी जायेगी। इसके विपरीत किसी सबूत के अभाव में, मृत कुंवारे भाई-बहनों को आश्रित नहीं माना जाएगा क्योंकि वे आम तौर पर या तो स्वतंत्र और कमाने वाले होंगे, या विवाहित होंगे, या पिता पर निर्भर होंगे।

13. उपरोक्त दृष्टिकोण के मामले में लिया गया है सरला वर्मा (उपरोक्त) को तीन जजों की बेंच ने रेशमा कुमारी एवं अन्य बनाम मदन मोहन एवं अन्य 2013 (9) एससीसी 65 के मामले में बाद की संवैधानिक पीठ द्वारा भी नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी में रिपोर्ट किया गया 2017 (16) एससीसी 680 में बरकरार रखा है

14. अब, आक्षेपित फैसले के तहत दावा न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित मुआवजे की मात्रा और अपीलकर्ता नंबर 2 (मृतक के पिता) के पक्ष में इसके बंटवारे पर आते हुए, अदालत ने पाया कि न्यायाधिकरण ने सिद्धांतों का पालन किया है मृत्यु के मामले में मुआवजे के आकलन के लिए जैसा कि न्यायिक आदेश द्वारा सरला वर्मा (उपरोक्त) के मामले मे विकसित किया गया है। विशेष रूप से और सरला वर्मा (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के पैरा 30, 31 और 32 में निर्धारित मानकों का पालन करते हुए सही गुणक लागू करके और व्यक्तिगत और जीवन-यापन के खर्चों के लिए कटौती करके उचित मुआवजे पर पहुंचा है। इस न्यायालय ने पाया कि ट्रिब्यूनल ने दावेदारों को देय मुआवजे की गणना निम्नानुसार की: -

i)	आय	रु. 4,19,562/- प्रति वर्ष
ii)	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती (1/3)	रु.1,39,854/-
iii)	गुणक और बोनस	2,79,708/- + रु. 50,000/- = रु. 3,29,708/- = (रु. 4,19,562 - रु. 1,39,854 + रु. 50,000)
iv)	निर्भरता का नुकसान	रु.3,29,708 x 16 = रु.52,75,708/-
v)	अंतिम संस्कार का ख़र्च	रु.2,500/-
vi)	जीवनसाथी के संघ की हानि	रु.2,500/-
	सम्पूर्ण प्रतिकर	रु.52,80,328/-

15. इस प्रकार दावा न्यायाधिकरण दावेदारों को 52,80,328/- रुपये की राशि देने के लिए आगे बढ़ा। अपीलकर्ता क्रमांक 1 को कोई मुआवजा नहीं दिया गया है। अपीलकर्ता नंबर 2 को गणना किए गए मुआवजे का 10% यानी 5,23,032.80 रुपये या 5,28,033/- रुपये दिए गए हैं। मृतक की पत्नी और नाबालिग बच्चों को 6% वार्षिक ब्याज के साथ 60%, 15% और 15% मुआवजा दिया गया है।

16. दावा न्यायाधिकरण के आक्षेपित पुरस्कार के अवलोकन से पता चलता है कि 2,500/- रुपये जीवनसाथी के नुकसान के लिए और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 2500/- रुपये का मुआवजा दिया गया है।

17. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय (2017) एससीसी 680 में शीर्ष अदालत की संविधान पीठ ने माना कि पारंपरिक और पारंपरिक प्रमुख (यानी संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार के खर्च) को प्रतिशत के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त मदों को मात्राबद्ध करना होगा। किसी भी परिमाणीकरण का उचित आधार होना

चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, कई क्षेत्रों में दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे अनभिज्ञ नहीं रह सकता। इस पहलू में एक मुख्य नियम रहा है. अन्यथा इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक मुख्य नियम लागू नहीं किया जाएगा, अत्यधिक भिन्नता होगी किसी भी प्रकार की स्थिरता का अभाव जिसके परिणामस्वरूप न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के आदेशों के दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, पारंपरिक मदों अर्थात् संपत्ति की हानि, कंसोर्टियम की हानि और अंतिम संस्कार व्यय पर उचित आंकड़े 15,000/- रुपये, 40,000/- और 15,000/- रु. क्रमशः होने चाहिए। उक्त प्रमुखों पर दोबारा विचार करने का सिद्धांत एक स्वीकार्य सिद्धांत है। लेकिन पुनरावलोकन तथ्य-केन्द्रित या क्वांटम-केन्द्रित नहीं होना चाहिए। शीर्ष अदालत ने कहा कि यह स्वीकार्य होगा कि ऊपर बताई गई राशि को हर तीन साल में प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए और तीन साल के स्पैम में यह वृद्धि 10% की दर से होनी चाहिए, जिससे उनके मदो में स्थिरता आएगी।

18. में) सतोंष देवी बनाम महावीर सिंह [(20189 SCC 146] के मामले में शीर्ष अदालत की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने वर्ष 2017 में संविधान पीठ द्वारा मानकीकृत आंकड़ों के संदर्भ में पारंपरिक मदों पर मुआवजा दिया। प्रणय सेठी, (उपरोक्त) पूरन चंद की पत्नी और बच्चों को, जिनकी मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई, जो 30.12.1992 को हुई थी।

19. सुरेशचंद्र बागमल दोशी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [(2018) 15 एससीसी 649] में सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 2017 में संविधान पीठ द्वारा मानकीकृत पारंपरिक मदों पर प्रणय सेठी के मामले में संपत्ति के नुकसान के रूप में 15,000/- रुपये का आंकड़ा प्रदान किया; कंसोर्टियम के नुकसान के लिए रु. 40,000/-; और माता-पिता [शीर्ष न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता], जिन्होंने 16.08.1998 को हुई एक मोटर दुर्घटना में अपनी इकलौती बेटी को खो दिया था, को अंतिम संस्कार के खर्च के रूप में 15,000/- रुपये दिए। उक्त निर्णय में, प्रणय सेठी को कंसोर्टियम के नुकसान के लिए दिए गए 40,000/- रुपये अपीलकर्ताओं, जो मृतक के माता-पिता हैं, को प्यार और स्नेह के नुकसान के लिए दिए गए थे। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 1 और 14 इस प्रकार पढ़ें;

> "1. भाग्य क्रूर हो सकता है। यह एक दुखद मामला है जहां एक अधिवक्ता पति और एक डॉक्टर पत्नी की इकलौती बेटी, जिसकी जल्दी शादी हो गई और दुर्भाग्य से कम उम्र में विधवा भी हो गई, की एक वाहन दुर्घटना में 16.8.1998 को मृत्यु हो गई। इस दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के संबंध में माता-पिता (यहाँ अपीलकर्ता) का दावा वर्तमान अपील का विषय है।
>
> X X X

14. अब अंतिम पहलू पर आते हैं, यानी, पारंपरिक प्रमुख, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी [(2017) 16 एससीसी 680] में, इसे संपत्ति के नुकसान के लिए 15,000 रुपये पर मानकीकृत किया गया है; कंसोर्टियम के नुकसान के लिए 40,000 रुपये (वर्तमान मामले में प्यार और स्नेह की हानि) और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 15,000 रुपये। इस प्रकार, कुल राशि 70,000 रुपये होगी, जिसे उक्त निर्णय के अनुसार हर तीन साल की अवधि में 10 प्रतिशत की दर से बढ़ाया जा सकता है। हालाँकि, हम अभी भी तीन साल की अवधि के भीतर हैं।" "अंडरलाइन आपूर्ति की गई"

20. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @ चुहरू राम [(2018) 18 एससीसी 130], में निर्णय का उल्लेख करने के बाद प्रणय सेठी (उपरोक्त), सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि कानूनी भाषा में, 'कंसोर्टियम' एक सारगर्भित शब्द है जिसमें 'पति-पत्नी संघ', 'अभिभावक संघ' और 'फ़िलियल कंसोर्टियम' शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक की कंपनी, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे। स्पाउसल कंसोर्टियम को आम तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो 'प्रत्येक वैवाहिक संबंध में कंपनी, समाज, सहयोग, स्नेह और दूसरे की सहायता' के नुकसान के लिए जीवित पति या पत्नी को मुआवजे की अनुमति देता है। माता-पिता की असामयिक मृत्यु पर 'माता-पिता की सहायता, सुरक्षा, स्नेह, समाज, अनुशासन, मार्गदर्शन और प्रशिक्षण' के नुकसान के लिए बच्चे को माता-पिता सहायता प्रदान की जाती है। फ़िलियल कंसोर्टियम किसी बच्चे की आकस्मिक मृत्यु के मामले में मुआवजे का माता-पिता का अधिकार है। एक दुर्घटना में एक बच्चे की मौत से मृतक के माता-पिता और परिवार को बहुत सदमा और पीड़ा होती है। माता-पिता के लिए सबसे बड़ी पीड़ा अपने जीवनकाल में अपने बच्चे को खोना है। बच्चों को उनके प्यार, स्नेह, सहयोग और परिवार इकाई में उनकी भूमिका के लिए महत्व दिया जाता है।

21. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि कंसोर्टियम एक विशेष प्रिज्म है जो वास्तविक रिश्तों की स्थिति और मूल्य के बारे में बदलते मानदंडों को दर्शाता है। दुनिया भर के आधुनिक न्यायक्षेत्रों ने माना है कि एक बच्चे के संघ का मूल्य किसी बच्चे की मृत्यु के मामले में दिए गए मुआवजे के आर्थिक मूल्य से कहीं अधिक है। अधिकांश इसलिए न्यायक्षेत्र माता-पिता को बच्चे की मृत्यु पर कंसोर्टियम के नुकसान के तहत मुआवजा देने की अनुमति देता है। माता-पिता को दी जाने वाली राशि मृत बच्चे के प्यार, स्नेह, देखभाल और साथ के नुकसान का मुआवजा है। मोटर वाहन अधिनियम एक लाभकारी कानून है जिसका उद्देश्य वास्तविक दावों के मामलों में पीड़ितों या उनके परिवारों को राहत प्रदान करना है। ऐसे मामले में जहां माता-पिता ने अपने नाबालिग बच्चे, या अविवाहित बेटे या बेटी को खो दिया है, माता-

पिता फिलाल कंसोर्टियम के प्रमुख के तहत कंसोर्टियम के नुकसान से सम्मानित होने के हकदार हैं। मोटर वाहन अधिनियम के तहत मोटर वाहन दुर्घटनाओं में अपने माता-पिता को खोने वाले बच्चों को पैरेंटल कंसोर्टियम प्रदान किया जाता है। शीर्ष अदालत ने आगे कहा कि, कंसोर्टियम के रूप में दिए जाने वाले मुआवजे की राशि 'कंसोर्टियम के नुकसान' के तहत मुआवजा देने के सिद्धांतों द्वारा शासित होगी जैसा कि प्रणय सेठी (उपरोक्त) मे निर्धारित किया गया है।

22. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस (उपरोक्त) के मामले में मृतक की उम्र 24 वर्ष थी, जो 'नमकीन उत्पादों' के निर्माण के व्यवसाय में लगा हुआ था, जिसकी 01.12.2013 को हुई एक मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई। मृतक के पिता, भाई और बहन ने मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत दावा याचिका दायर की। दावा न्यायाधिकरण ने मृतक के भाई को कोई मुआवजा नहीं दिया, क्योंकि उसे आश्रित नहीं माना जा सकता था। मृतक के पिता और अविवाहित बहन को मुआवजा दिया गया, जिन्हें आश्रित माना गया। मृतक के पिता और बहन ने दावा न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे को बढ़ाने के लिए पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने पाया कि दावा न्यायाधिकरण ने गुणक के आवेदन के लिए गलत सिद्धांत का इस्तेमाल किया। गुणक मृतक की उम्र के आधार पर लिया जाना चाहिए था न कि उसके पिता की उम्र के आधार पर। उच्च न्यायालय ने मुआवजे का पुनर्मूल्यांकन करते हुए मृतक के पिता और अविवाहित बहन को प्यार और स्नेह की हानि के लिए 1,00,000/- रुपये (50,000/- x 2) रुपये की राशि प्रदान की। बीमाकर्ता ने एस.एल.पी. दायर की, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष बहस करते हुए, अन्य बातों के अलावा, जो मृतक के पिता और बहन को आश्रित नही दमाना जाएगा और वे मुआवजे के हकदार नहीं होंगे। अविवाहित की मृत्यु के मामले में, केवल माँ को ही आश्रित माना जा सकता है। प्यार और स्नेह की हानि के लिए 1,00,000/- रुपये और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000/- रुपये का अनुदान गलत है। यह तर्क दिया गया कि प्रणय सेठी (उपरोक्त) फैसले के अनुसार केवल 30,000/- रुपये ही दिये जा सकते थे । [यानी, संपत्ति का नुकसान - रु. 15,000/- और अंतिम संस्कार का खर्च - रु. 15,000/-] शीर्ष अदालत ने माना कि, यह मानते हुए कि मृतक एक गाँव में रह रहा था, जहाँ वह अपने वृद्ध पिता के साथ रह रहा था, जो लगभग था 65 साल के बुजुर्ग और एक अविवाहित बहन, हाई कोर्ट ने सही ढंग से उन्हें मृतक का आश्रित माना और मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए एक तिहाई की कटौती की। [एससीसी का पैरा.16 @ पेज 135] शीर्ष अदालत ने पाया कि मृतक कुंवारा था, जिसकी मां की पहले ही मौत हो चुकी थी। मृतक के पिता करीब 65 वर्ष के थे और उसकी बहन अविवाहित थी. मृतक अपनी अल्प आय का एक हिस्सा परिवार के भरण-पोषण और अस्तित्व के लिए योगदान कर रहा था। इसलिए, शीर्ष अदालत ने माना कि मृतक के पिता और अविवाहित बहन उसके आश्रितों के तहत मुआवजे के हकदार होंगे। [पैरा.18 @ एससीसी का पेज 136] बीमाकर्ता के इस तर्क

से निपटते हुए कि उच्च न्यायालय ने प्यार और स्नेह की हानि के लिए 1,00,000/- रुपये और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 25,000/- रुपये का गलत फैसला दिया था, सर्वोच्च न्यायालय ने कोर्ट ने फैसले के पैरा 52 का हवाला देते हुए प्रणय सेठी (उपरोक्त) ने अंत्येष्टि व्यय के तहत मुआवजे को 25,000/- रुपये से घटाकर 15,000/- रुपये कर दिया। हालाँकि, प्यार और स्नेह की हानि के मद में दी जाने वाली राशि बरकरार रखी गई। स्पाउसल कंसोर्टियम, पैरेंटल कंसोर्टियम और फिलाल कंसोर्टियम की अवधारणा को समझाने के बाद, शीर्ष अदालत ने मृतक के पिता और अविवाहित बहन को, फिलिअल कंसोर्टियम के नुकसान के लिए प्रत्येक को 40,000/- रुपये की राशि का पुरस्कार देना उचित समझा।

23. शीर्ष अदालत की संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर प्रणय सेठी (उपरोक्त), जिसका पालन संतोष देवी और सुरेश चंद्र बागमलदोशी उपरोक्त के मामले में किया गया था जिसके अनुसार, संपत्ति के नुकसान, कंसोर्टियम के नुकसान और अंतिम संस्कार के खर्च के पारंपरिक प्रमुखों के तहत देय मुआवजा क्रमशः 15,000/-, 40,000/- और 15,000/- रुपये होना चाहिए। शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त आंकड़ों को हर तीन साल की अवधि में 10% की दर से प्रतिशत के आधार पर बढ़ाया जाना चाहिए।

24. शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर मैग्ना जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में निर्णय का उल्लेख करने के बाद प्रणय सेठी (उपरोक्त) जीवित पति/पत्नी (यहां प्रत्यथी संख्या 1) 2,500/- रुपये के बजाय 40,000/- की सीमा तक जीवनसाथी संघ के लिए हकदार है। इसी तरह अंतिम संस्कार का खर्च भी 15,000/- रुपये से बढ़ाकर 20 हजार रुपये किया जा सकता है। दावा न्यायाधिकरण द्वारा 2,500/- का पुरस्कार दिया गया। यहां अपीलकर्ता मृतक की अविवाहित बहन और पिता होने के नाते फिलियल कंसोर्टियम के नुकसान के कारण प्रत्येक को 40,000/- रुपये की राशि के हकदार हैं।

25. प्रत्यथी संख्या 1 से 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा जोरदार तर्क दिया गया है कि प्रत्यथी नं. 1 से 3 ने उनके द्वारा दायर अपील में बीमा कंपनी के साथ दावे का निपटारा किया और निपटान पहले ही प्रभावी हो चुका है और अब यहां अपीलकर्ता किसी भी अतिरिक्त मुआवजे के हकदार नहीं हो सकते हैं। न्यायालय की राय में उपरोक्त प्रस्तुतिकरण विचार के योग्य नहीं है क्योंकि वर्तमान अपीलकर्ता बीमा कंपनी के साथ हुए समझौते और के एफएएफओ (डी) संख्या 290/2014 दिनांक 03.10.2021 में दिए गए निर्णय में पक्षकार नहीं थे। वर्तमान अपीलकर्ताओं को बाध्य नहीं करेगा। आदर्श रूप से दोनों अपीलों पर एक साथ निर्णय/निपटारा किया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं किये जाने पर वर्तमान अपील पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया गया है। चूंकि इस न्यायालय ने अपीलकर्ता संख्या 2 के पक्ष में दिनांक 17.08.2013 के आक्षेपित पुरस्कार के 10% बंटवारे को बरकरार रखा है। अपीलकर्ता को पहले ही 5,28,033/- रुपये (जो पुरस्कार का

10% है) और 2,62,500/- रुपये (एफएएफओ (डी) संख्या 290/2014 में मुआवजे में वृद्धि के कारण) प्राप्त हो चुके हैं अपीलकर्ता नंबर 2 केवल फाइलियल कंसोर्टियम की हानि के कारण 40,000/- रुपये का हकदार होगा। अपीलकर्ता सं. 1 फिलियल कंसोर्टियम के नुकसान के कारण 40,000/-रुपये की राशि का हकदार होगा. अपीलकर्ताओं को सभी भुगतानों पर दावा याचिका की तारीख से वास्तविक भुगतान/वसूली की तारीख तक 6% प्रति वर्ष का ब्याज लगेगा। 5वां प्रत्यथी/बीमाकर्ता/ आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी शाखा प्रबंधक पार्श्वनाथ प्लाजा कोर्ट रोड, सहारनपुर (ट्रक नंबर आरजे-11जीए-2075 का बीमाकर्ता) के माध्यम से इस निर्णय की प्रमाणित प्रति की तामील की तारीख दो महीने की अवधि के भीतर इस अपील में दिए गए अतिरिक्त मुआवजे को ब्याज सहित पूरा भुगतान करेगा।

26. अपीलअ मे आंशिक रूप से उपरोक्त सीमा तक अनुमति की गई, आक्षेपित पुरस्कार तदनुसार संशोधित माना जाएगा। वाद व्यय के हिसाब से कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 762

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 302/1996

लालती देवी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

जगदीश कुमार एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सुरेंद्र कुमार मिश्रा, श्री राजेंद्र तिवारी, श्री राजेश तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अरुण कुमार शुक्ल, श्री अशोक कुमार पांडेय

ए. सिविल विधि **- मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे के अधिनिर्णय को चुनौती- मृतक की आयु 41 वर्ष थी और वह पीएचसी में वैक्सीनेटर के रूप में काम कर रहा था - उसकी आय 2000 रुपये प्रति माह मानी जाती है, क्योंकि मृतक 40 से 50 वर्ष की आयु वर्ग में था, प्रणय सेठी मामले के मद्देनजर भविष्य में होने वाली आय की हानि के रूप में 30% जोड़ने की आवश्यकता है - जहां तक गैर-आर्थिक क्षति के शीर्ष के तहत राशि का संबंध है, यह 70,000 रुपये होनी चाहिए, 14 का गुणक दिया गया है - न्यायाधिकरण ने गलती से पारिवारिक पेंशन की राशि और विधवा को वेतन के रूप में प्राप्त होने वाली राशि काट ली - ये निष्कर्ष सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ हैं - 32,000 रुपये की राशि काट ली जाए और बढ़ी हुई राशि पर ब्याज की गणना की जाए - रुपये पर ब्याज। 32,000/- की राशि अपरिवर्तित रहेगी - जहां तक ब्याज दर का प्रश्न है, इसे 12% से घटाकर 9% किया जाएगा, अतः बढ़ी हुई राशि पर ब्याज दर दावा याचिका दायर करने की तिथि से दावा याचिका के निर्णय तक 6% तथा उसके बाद 3% होगी - न्यायाधिकरण**

बजाज आलियांज मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा , क्योंकि मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है - चूंकि दुर्घटना वर्ष 1991 की है, इसलिए कोई राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी। (पैरा 1 से 15)

अपील का निस्तारण किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) 0 सुप्रीम (एससी) 105

2. विमल कंवर एवं अन्य बनाम किशोर दान एवं अन्य (2013) 7 एससीसी 476

3. एवी पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीलएच एससी 442

4. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2007) 2 जीलएच 291

5. श्रीमती सुदेस्ना एवं अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य .. एफएएफओ संख्या 23/2001

6. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं तथा प्रतिवादी- बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. यह अपील, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.टी., वाराणसी (जिसे आगे "ट्रिब्यूनल" कहा जाएगा) द्वारा एम.ए.सी. केस संख्या 105/1992 में पारित दिनांक 7.3.1996 के निर्णय और पारितोषिक को चुनौती देती है।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह है कि 14.12.1991 को राम लखन राम, हरविंदर सिंह के साथ रोहनिया बाजार की ओर जा रहे थे। लगभग 5 बजे जब वे जगतपुर के निकट जी.टी. रोड के मोड़ पर पहुंचे, तभी इलाहाबाद की ओर से वाराणसी की ओर जा रही वाहन संख्या यूएमजी 9121 डीसीएम टोयोटा अपने चालक द्वारा तेजी व लापरवाही से चलायी जा रही थी, जिसने वहां पहुंचकर राम लखन राम को टक्कर मार दी, जिससे वे गंभीर रूप से घायल हो गये और उन्हें एस.एस.पी.जी. अस्पताल, वाराणसी ले जाया गया, जहां से उन्हें एस.एस.एल. अस्पताल, बी.एच.यू., वाराणसी में स्थानांतरित कर दिया गया और 29.12.1991 को उनकी मृत्यु हो गयी।

4. मृतक राम लखन राम की आयु 41 वर्ष थी और वह पी.एच.सी. चिरईगांव, वाराणसी में वैक्सीनेटर के रूप में कार्यरत थे तथा प्रतिमाह 2000 रुपये कमाते थे। वह अपने पीछे पत्नी, तीन पुत्र और दो पुत्रियां छोड़ गए हैं। वर्ष 1991 में हुई एक दुर्घटना के लिए न्यायाधिकरण ने सर्वोच्च न्यायालय के उन दिनों के निर्णयों के बावजूद अर्थात् वर्ष 1996

में पेंशन और अन्य मृत्यु लाभों के लिए दी गई राशि में कटौती कर ली तथा यह माना कि चूंकि विधवा को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी गई थी, इसलिए वेतन को मुआवजा देने के लिए नहीं माना जा सकता है तथा 12% ब्याज के साथ केवल 32,000 रुपये की अल्प राशि दी।

5. मृतक की आयु 41 वर्ष थी, उसकी आय 2000/- रूपये प्रतिमाह मानी गई है, जिसमें मृतक की आयु 40 से 50 वर्ष के बीच होने के कारण, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, 2017 0 सुप्रीम (एस.सी.) 105** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर भविष्य में होने वाली आय की हानि के रूप में 30% जोड़ा जाना आवश्यक है। जहां तक गैर-आर्थिक क्षति के मद में राशि का सवाल है, यह 14 के गुणक के साथ 70,000/- रुपये होनी चाहिए। न्यायाधिकरण ने गलती से पारिवारिक पेंशन की राशि और विधवा को वेतन के रूप में मिलने वाली राशि काट ली। ये निष्कर्ष सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध हैं। **विमल कंवर एवं अन्य बनाम किशोर दान एवं अन्य, 2013 7 एससीसी 476** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू होगा।

6. अतः अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजा नीचे गणना किया गया है:

i. आय : 2000/- रु.

ii. भावी संभावनाओं के प्रति प्रतिशत : 30% अर्थात 600/- रु.

iii. कुल आय : 2000 + 600 = 2600/- रु.

iv. 1/3 की कटौती = 867/- रु. (पूर्णांकित)

v. 1/3 की कटौती के बाद आय : 1733/- रु.

vi. वार्षिक हानि : 1733 x 12 = 20,796/- रु.

vii. लागू गुणक : 14

vii. कुल हानि : 20,796 x 14 = 2,91,144/- रु.

viii. गैर-आर्थिक शीर्ष के अंतर्गत राशि : 70,000/- रु. + 30,000/- रु.

viii. कुल मुआवजा : 15,000/- रु. 3,91,144/- (4,00,000/- तक पूर्णांकित)

7. 32,000/- की राशि काट ली जाएगी और ब्याज की गणना बढ़ी हुई राशि पर की जाएगी। 32,000/- पर ब्याज अपरिवर्तित रहेगा। जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का सवाल है, श्री अरुण कुमार शुक्ला के मौखिक प्रस्तुतिकरण के अनुसार इसे 12% से घटाकर 9% किया जाएगा, इसलिए बढ़ी हुई राशि पर ब्याज दर दावा याचिका दायर करने की तारीख से दावा याचिका के निर्णय तक 6% और उसके बाद 3% होगी। यह प्रतिवादियों द्वारा दिया गया मात्र मुआवजा है, जिसका अर्थ है कि 3,70,000/- रुपये ब्याज सहित, दोनों पक्षों के बीच तय किया जाता है।

8. मामले की सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं बताया गया।

9. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पारितोषिक पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर

उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित अतिरिक्त राशि जमा करेगी।

10. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। **ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही ग्रामीण हैं।

11. **श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड , 2007(2) जीएलएच 291** में रिपोर्ट किया गये मामले में, माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित की जानी है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23/ 2001 **(श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य)** के विरुद्ध प्रथम अपील के पुनरीक्षण आवेदन संख्या 1/ 2020 में राशि वितरित करते समय दोहराया गया है।

12. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार नए सिरे से निर्णय लिया जाना चाहिए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना चाहिए।

13. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के अनुसार जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवज़ा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। दुर्घटना वर्ष 1991 की है, इसलिए कोई राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

14. रिकॉर्ड न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए।

15. यह न्यायालय इस पुरानी अपील का निपटारा करने के लिए दोनों विद्वान अधिवक्ताओं को धन्यवाद देता है।

(2023) 8 ILRA 765

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील (दोषपूर्ण) संख्या 430/2008

यूपीएसआरटीसी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

चंद्रभान साहू एवं अन्य. ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री नृपेन्द्र मिश्र, श्री देव दयाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री कमल मेहरोत्रा

सिविल विधि-**मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 173 -परिसीमा अधिनियम, 1963 -धारा 5 -चुनौती-मुआवजा देने का आदेश- रुपये की राशि को चुनौती दी गई। 333 दिनों की देरी के बाद मुआवजे के रूप में 50,000/- प्रदान किए गए - इस तरह की देरी को ठीक से समझाया नहीं गया है - दूसरे पक्ष को नोटिस देने के लिए कदम न उठाने पर मामला अध्याय 12 नियम 4 के तहत एक बार खारिज हो चुका है, यह बर्खास्तगी कदम न उठाने के लगभग 14 वर्षों के बाद वर्ष 2023 में हुई थी - सहभागी लापरवाही के मुद्दे में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है क्योंकि दुर्घटना सुबह बाईपास पर हुई थी और घायल व्यक्ति दुर्घटना के लिए बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं था, यह बस का चालक था जिसे न्यायाधिकरण द्वारा लापरवाह माना गया है - वाहन के मालिक का यह गंभीर कर्तव्य है कि वह अपने चालक का लाइसेंस प्रस्तुत करे ताकि यह पता चल सके कि चालक एक योग्य चालक था, इसमें कोई संदेह नहीं है कि वाहन का बीमा किया गया था और दुर्घटना इसी अवधि के दौरान हुई थी, जिससे भार स्थानांतरित नहीं होगा - यह मालिक का प्रथम दृष्टया कर्तव्य है कि वह चालक का वैध लाइसेंस रखकर भार का निर्वहन करे जो इस मामले में नहीं किया गया है - यह अपील देरी के प्रश्न और गुण-दोष के प्रश्न दोनों पर खारिज की जाती है। (पैरा 1 से 17)**

यह कोई पूर्वधारणा नहीं है कि न्यायालय जाने में देरी हमेशा जानबूझकर की जाती है। समय रहते उचित कानूनी उपाय न अपनाकर जानबूझकर किसी मामले में देरी करने से किसी को कोई लाभ नहीं होता, लेकिन "पर्याप्त कारण" शब्द यह दर्शाते हैं कि यदि कोई देरी हुई है, तो वह जानबूझकर, लापरवाही से और संबंधित वादी के लापरवाही भरे रवैये के कारण नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह सद्भावनापूर्ण होनी चाहिए, और उसके नियंत्रण से परे कारणों से होनी चाहिए, और किसी भी स्थिति में सद्भावना का अभाव नहीं होना चाहिए। यदि स्पष्टीकरण में सद्भावना के अभाव की बू नहीं आती है, तो न्यायालय को वादी के प्रति उचित विचार करना चाहिए, लेकिन जब वादी की ओर से लापरवाही स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो न्यायालय का दृष्टिकोण भी बदलना स्वाभाविक है। वादी द्वारा समय रहते न्यायालय जाने में चूक समझ में आती है,

लेकिन बिना किसी स्पष्टीकरण के लंबे समय तक पूरी तरह से निष्क्रिय रहना और वह भी वादी की ओर से कोई ईमानदार प्रयास न दिखाना, उसकी लापरवाही को और बढ़ा देगा, और उसके विरुद्ध जाने वाला एक प्रासंगिक कारक होगा। (अनुच्छेद 6)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम कातिजी (1987) 2 एससीसी 107

2. पीके रामचंद्रन बनाम केरल राज्य (1998) एआईआर एससी 2276

3. शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी (1969) एआईआर एससी 575

4. बृज इंदर सिंह बनाम कांशीराम (1918) आईएलआर 45 कैल 94

5. नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ और अन्य (2005) एआईआर एससी 2191

6. वेदबाई @ वैजयानताबाई बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल और अन्य, जेटी (2001) 5 एससी 608

7. पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) एलआरएस बनाम पूर्व इंजीनियर जलगांव मध्यम परियोजना एवं अन्य (2008) 17 एससीसी 448

8. मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन् मुंबई नगर निगम (2012) 5 एससीसी 157

9. पप्पू एवं अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा एवं अन्य (2018) एससी 592

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री देव दयाल और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री कोमल मेहरोत्रा को सुना गया।

2. यह उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम द्वारा वर्ष 2008 में प्रस्तुत दोषपूर्ण अपील है, जिसमें मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत मुआवजे के रूप में दी गई 50,000/- रूपये की राशि को चुनौती दी गई है। देरी 333 दिनों की है, जिसका उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, दिनांक 10.01.2007 का निर्णय 50,000/- रुपए की धनराशि प्रदान करता है तथा अपीलकर्ता से वसूली का अधिकार प्रदान करता है। जिस देरी को माफ करने की मांग की जा रही है, वह एक वर्ष की बहुत बड़ी देरी है, इसलिए देरी को माफ करने का कोई कारण नहीं है। मामला अध्याय 12 नियम 4 के तहत दूसरे पक्ष को नोटिस देने के लिए कदम न उठाने पर एक बार खारिज हो चुका है, यह खारिजगी करीब 14 साल तक कदम न उठाने के बाद वर्ष 2023 में हुई थी।

3. अधिनियम, 1963 की धारा 5 में "पर्याप्त कारण" की अभिव्यक्ति को उदार अर्थ में लिया गया है, ताकि पर्याप्त न्याय प्राप्त हो

सके और सामान्यतः अपील में देरी को न्याय के हित में माफ किया जा सकता है, जहां देरी के लिए माफी मांगने वाले पक्षों पर कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना की कमी आरोपित नहीं की जा सकती है। **कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण बनाम काटिजी, 1987(2) एससीसी 107** में न्यायालय ने कहा कि जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक दूसरे के खिलाफ लिए जाते हैं, तो पर्याप्त न्याय के कारण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि दूसरा पक्ष जानबूझकर देरी न करने के कारण अन्याय करने का अधिकार नहीं जता सकता। न्यायालय ने आगे कहा कि न्यायपालिका का सम्मान तकनीकी आधार पर अन्याय को वैध बनाने की उसकी शक्ति के कारण नहीं, बल्कि इसलिए किया जाता है क्योंकि वह अन्याय को दूर करने में सक्षम है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है।

4. **पी.के. रामचंद्रन बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 2276** में न्यायालय ने कहा:

> *"सीमा अवधि का कानून किसी विशेष पक्ष को कठोरता से प्रभावित कर सकता है, लेकिन जब कानून ऐसा निर्धारित करता है तो इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए और न्यायालयों को न्यायसंगत आधार पर सीमा अवधि बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है।"*

5. परिसीमा के नियम पक्षों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। वे वस्तुतः उपाय को छीन लेते हैं। उनका उद्देश्य यह है कि पक्षकार अपने अधिकारों को लेकर टालमटोल करने की रणनीति न अपनाएं और न ही सोएं। उन्हें तुरंत उपाय तलाशना चाहिए। कानूनी उपाय प्रदान करने का उद्देश्य कानूनी चोट के कारण हुई क्षति की भरपाई करना है। परिसीमा से संबंधित क़ानून कानूनी चोट के निवारण के लिए ऐसे कानूनी उपाय के लिए एक जीवन अवधि निर्धारित करता है, जिसे किसी ने झेला है। समय कीमती है और बर्बाद हुआ समय कभी वापस नहीं आता। समय बीतने के साथ, नए कारण सामने आएंगे, जिससे नए लोगों को अदालतों का दरवाजा खटखटाकर कानूनी उपाय तलाशने की ज़रूरत होगी। इसलिए प्रत्येक उपाय के लिए एक जीवन अवधि तय की जानी चाहिए। उपाय शुरू करने के लिए अंतहीन अवधि अंतहीन अनिश्चितता और परिणामी अराजकता का कारण बन सकती है। परिसीमा प्रदान करने वाला क़ानून सार्वजनिक नीति पर आधारित है। यह कहावत में निहित है कि मुकदमेबाजी के लिए एक अवधि निर्धारित की जानी चाहिए। यही कारण है कि जब कोई कार्रवाई समय के कारण बाधित हो जाती है, तो न्यायालय को विलंब को अनदेखा करने में धीमी गति से काम करना चाहिए, क्योंकि एक बार सीमा समाप्त हो जाने पर, दूसरा पक्ष अंतिम रूप प्राप्त करने के साथ विषय पर अपने अधिकारों को परिपक्व कर लेता है। हालांकि इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है

कि विलंब को माफ करने से इनकार करने पर मुकदमा करने वाले को अपना मामला आगे बढ़ाने से रोक दिया जाएगा, लेकिन साथ ही दूसरी ओर पक्ष भी एक निश्चित अवधि के बाद बैठकर चिंतामुक्त महसूस करने का हकदार है, जिससे उसे लगातार और निरंतर मुकदमेबाजी से राहत मिलती है।

6. ऐसी कोई धारणा नहीं है कि न्यायालय में जाने में देरी हमेशा जानबूझकर की जाती है। किसी भी व्यक्ति को समय रहते उचित कानूनी उपाय न करके जानबूझकर मामले में देरी करने से कोई लाभ नहीं होता है, लेकिन तब "पर्याप्त कारण" शब्द दर्शाते हैं कि यदि कोई देरी हुई है, तो वह जानबूझकर, लापरवाही से और संबंधित वादी के लापरवाही भरे रवैये के कारण नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह सद्भावनापूर्ण होनी चाहिए और उसके नियंत्रण से परे कारणों से होनी चाहिए और किसी भी मामले में सद्भावना की कमी नहीं होनी चाहिए। यदि स्पष्टीकरण सद्भावना की कमी की ओर संकेत नहीं करता है, तो न्यायालय को वादी के प्रति उचित विचार दिखाना चाहिए, लेकिन जब वादी की ओर से लापरवाहीपूर्ण रवैया स्पष्ट होता है, तो न्यायालय का रवैया भी बदलने के लिए बाध्य है। समय रहते न्यायालय में अपील करने में वादी की ओर से चूक समझ में आती है, लेकिन बिना किसी स्पष्टीकरण के लंबे समय तक विलंब करना और वह भी वादी की ओर से कोई ईमानदार प्रयास न करना, उसकी लापरवाही को और बढ़ाएगा और उसके खिलाफ जाने वाला एक प्रासंगिक कारक होगा।

7. मुझे इस निर्णय को अनेक निर्णयों से बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत "पर्याप्त कारण" की व्याख्या करने के लिए न्यायालय का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए, तथा पहले से संदर्भित किए गए कारणों के अतिरिक्त उनमें से कुछ का उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

8. **शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, एआईआर 1969 एससी 575** में न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि जब तक सद्भावना की कमी या ऐसी निष्क्रियता या लापरवाही साबित नहीं हो जाती जो किसी पक्ष को धारा 5 के संरक्षण से वंचित करती हो, तब तक आवेदन को खारिज नहीं किया जाना चाहिए या किसी भी देरी को माफ करने से इनकार नहीं किया जा सकता है।

9. **प्रिवी काउंसिल ने ब्रिज इंदर सिंह बनाम कांशी राम आईएलआर (1918) 45 कैल 94** में कहा कि धारा 5 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए न्यायालय के लिए सही मार्गदर्शक यह है कि अपीलकर्ता ने अपील पर मुकदमा चलाने में उचित परिश्रम किया है या नहीं। यह सिद्धांत अभी भी सही है क्योंकि प्रिवी काउंसिल के उपरोक्त निर्णय का बार-बार उल्लेख किया गया है, और हाल ही में **नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ और अन्य, एआईआर 2005 एससी 2191** में भी यही बात कही गई है।

10. **वेदाबाई @ वैजयंतीबाई बाबूराव बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल एवं अन्य, जे.टी.**

2001(5) एस.सी. 608 में न्यायालय ने कहा कि अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत उसे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। ऐसे मामले में अंतर किया जाना चाहिए, जहां देरी अत्यधिक हो और ऐसे मामले में जहां देरी कुछ दिनों की हो। पहले मामले में दूसरे पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह का विचार एक प्रासंगिक कारक होगा, इसलिए मामले में अधिक सतर्क दृष्टिकोण की आवश्यकता है, लेकिन दूसरे मामले में ऐसा कोई विचार नहीं उठ सकता है और ऐसा मामला उदार दृष्टिकोण का हकदार है। इस संबंध में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है और मूल मार्गदर्शक कारक पर्याप्त न्याय की उन्नति है।

11. **पुंडलिक जालम पाटिल (मृत) एलआरएस बनाम कार्यकारी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना और अन्य (2008) 17 एससीसी 448** में, फैसले के पैरा 17 में, न्यायालय ने कहा:

> *"...रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से पता चलता है कि अपील दायर करने में लंबे समय तक अपने ही अधिकारों की अनदेखी की गई। न्यायालय न्याय के आधार पर विलंबित और राज्य के दावों की जांच नहीं कर सकता। देरी न्याय को पराजित करती है। न्यायालय उन लोगों की मदद करता है जो सतर्क रहते हैं और "अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह नहीं रहते।"*

12. **मणिबेन देवराज शाह बनाम बृहन मुंबई नगर निगम, 2012 (5) एससीसी 157,** निर्णय के पैरा 18 में, न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

> *"इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि यद्यपि सीमा अधिनियम की धारा 5 और अन्य समान कानूनों के तहत शक्ति के प्रयोग में उदार और न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है, फिर भी न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकते हैं कि सफल वादी ने चुनौती दिए गए निर्णय के आधार पर कुछ अधिकार प्राप्त किए हैं और मुकदमेबाजी के विभिन्न चरणों में लागत के अलावा बहुत समय भी खर्च होता है। किसी दिए गए मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में 'पर्याप्त कारण' अभिव्यक्ति को क्या रंग मिलेगा, यह काफी हद तक स्पष्टीकरण की वास्तविक प्रकृति पर निर्भर करेगा। यदि न्यायालय को लगता है*

कि आवेदक की ओर से कोई लापरवाही नहीं की गई है और देरी के लिए दर्शाए गए कारण में सद्भावना की कमी नहीं है, तो वह देरी को माफ कर सकता है। दूसरी ओर, यदि आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत पाया जाता है या वह अपने मामले को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से लापरवाह है, तो देरी को माफ न करना विवेक का वैध प्रयोग होगा। राज्य और उसकी एजेंसियों/ उपकरणों से जुड़े मामलों में, न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान दे सकता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में पर्याप्त समय लिया जाता है, लेकिन राज्य और/या उसकी एजेंसियों/उपकरणों के अधिकारियों की ओर से पूरी तरह से सुस्ती या घोर लापरवाही को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता है और देरी के लिए माफी के लिए उनके द्वारा दायर किए गए आवेदनों को स्वाभाविक रूप से इस दलील को स्वीकार करके अनुमति नहीं दी जा सकती है कि सीमा के आधार पर मामले को खारिज करने से सार्वजनिक हित को नुकसान पहुंचेगा।"

13. इस न्यायालय के दृष्टिकोण से, यहाँ जिस प्रकार का स्पष्टीकरण दिया गया है, वह सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी को संतुष्ट नहीं करता है कि यदि विलम्ब ऐसे कारणों से हुआ है, जिनमें दुर्भावना की बू नहीं आती है, तो न्यायालय को क्षमादान देने से इनकार करने में संकोच करना चाहिए। इसके विपरीत, मैं पाता हूँ कि यह एक ऐसा मामला है, जो आवेदक की ओर से पूरी तरह से लापरवाही और लापरवाही से किया गया लंबा विलम्ब दर्शाता है, जो वस्तुतः बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं किया गया है और मामले को खारिज भी कर दिया गया है। इसलिए, मुझे वर्तमान मामले में विलम्ब को क्षमा करने को उचित ठहराने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग करने का कोई कारण नहीं दिखता।

14. गुण-दोष के आधार पर भी वाहन के मालिक का यह गंभीर कर्तव्य है कि वह अपने चालक का लाइसेंस पेश करे ताकि यह पता चले कि चालक एक योग्य चालक था, इसमें कोई संदेह नहीं है कि वाहन का बीमा किया गया था और दुर्घटना इस अवधि के दौरान हुई थी, जिससे बोझ नहीं हटेगा। **पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से यह न्यायालय अपने दृष्टिकोण को पुष्ट करता है, जिसे **एआईआर 2018 एससी 592** में रिपोर्ट किया गया है, जहां यह माना गया है कि यह मालिक

का प्रथम दृष्टया कर्तव्य है कि वह चालक का वैध लाइसेंस रखकर बोझ का निर्वहन करे, जो इस मामले में नहीं किया गया है।

15. यहां तक कि मुद्दा संख्या 2 में भी न्यायाधिकरण ने माना है कि बीमा कंपनी ने डी.डब्लू.-1 जो आर.टी.ओ. का अधिकारी है, से पूछताछ की है कि श्री कैलाशी चंद्र पुत्र श्री नाहर सिंह के नाम से जारी लाइसेंस हल्के मोटर वाहन और भारी माल वाहन के लिए था जो 06.01.2004 से 05.01.2007 तक संचालित था। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि वाहन कैलाशी चंद्र ही चला रहा था। कैलाशी चंद्र की जांच नहीं की गई। और इसलिए, यह पाया गया कि जो लाइसेंस पेश किया गया वह बस के चालक का नहीं था। यह तथ्य इस न्यायालय को न्यायाधिकरण के अच्छी तरह से लिखे गए फैसले में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

16. सहभागी लापरवाही के मुद्दे पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता क्योंकि दुर्घटना 22.06.2005 को सुबह बाईपास पर हुई थी और घायल व्यक्ति दुर्घटना के लिए बिल्कुल भी जिम्मेदार नहीं था, बल्कि बस का चालक था जिसे न्यायाधिकरण द्वारा लापरवाह माना गया है।

17. इसलिए, देरी के सवाल और गुण-दोष के सवाल दोनों के आधार पर यह अपील खारिज की जाती है। यदि राशि जमा नहीं की गई है तो उसे यथाशीघ्र जमा किया जाए।

(2023) 8 ILRA 769

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

आदेश से प्रथम अपील संख्या 488/2014

साथ

आदेश से प्रथम अपील संख्या 439/2014 एवं 442/2014

श्रीमती पुष्पा सिंह एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

मनोज कुमार सिंह एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

मोहम्मद सईद

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अनिल कुमार श्रीवास्तव

ए. सिविल विधि - **मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 173 - मुआवजे के निर्धारण को चुनौती - व्यक्तिगत चोट के लिए मुआवजे में वृद्धि - न्यायाधिकरण ने दर्द और पीड़ा तथा गैर-आर्थिक क्षति के मुद्दे पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है और यह नहीं देखा है कि एक छोटे बच्चे को चोट लगी थी, जिसे शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा, हालांकि उसके पैर पर साधारण था, और उसे अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा और कुछ चोटें भी आईं जो श्रीमती पुष्पा सिंह को लगीं - अपीलकर्ता अर्थात मास्टर अहान और श्रीमती पुष्पा सिंह, पीड़ा और दर्द तथा अन्य**

सहायक गैर-आर्थिक मदों के लिए 25,000/- रुपये प्रत्येक की अतिरिक्त राशि के हकदार हैं।

(a) आदेश संख्या 488/2014 से प्रथम अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। दावेदार अब आवेदन की तिथि से भुगतान की तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल 18,55,008/- रुपये के हकदार होंगे।

(b) आदेश संख्या 439/2014 से प्रथम अपील भी आंशिक रूप से स्वीकार की जाएगी, दावेदार अब आवेदन की तारीख से भुगतान की तारीख तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल 59,679 रुपये की राशि का हकदार होगा।

(c) आदेश संख्या 442/2014 से प्रथम अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है, दावेदार अब आवेदन की तिथि से भुगतान की तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल 38,000/- रुपये का हकदार होगा। (पैरा 1 से 56)

बी. वर्तमान मामले जैसे मामले में मुआवज़े का आकलन करते समय एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि दावा केवल एक बार ही दिया जा सकता है। दावेदार बाद में मुआवज़े की राशि बढ़ाने के लिए अदालत में यह कहते हुए वापस नहीं आ सकता कि कुछ अतिरिक्त खर्च हो गया है। इसलिए, 100% विकलांगता के मामले में, खासकर जहाँ मानसिक विकलांगता भी हो, मुआवज़ा तय करने वाले न्यायालयों या न्यायाधिकरणों को मुआवज़ा देते समय मामले पर उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह राशि तय करते समय हम न केवल शारीरिक विकलांगता, बल्कि मानसिक विकलांगता और कई अन्य कारकों को भी ध्यान में रख रहे हैं। यह बच्ची जीवन भर बिस्तर पर रहेगी। उसकी मानसिक उम्र नौ महीने के बच्चे जितनी होगी। प्रभावी रूप से, जब तक उसका शरीर बढ़ता है, वह एक छोटी बच्ची ही रहेगी। हम एक ऐसी बच्ची के साथ काम कर रहे हैं जो शारीरिक रूप से तो महिला बन जाएगी, लेकिन मानसिक रूप से नौ महीने की बच्ची ही रहेगी। यह बच्ची अपने दोस्तों के साथ खेलने से वंचित रह जाएगी। वह बातचीत नहीं कर पाएगी; वह जीवन के सुखों का आनंद नहीं ले पाएगी; वह कार्टून या फ़िल्में देखकर भी मनोरंजन नहीं कर पाएगी; वह बचपन के आनंद, युवावस्था के उत्साह, वैवाहिक जीवन के सुख से वंचित रह जाएगी; उसके बच्चे नहीं हो सकते जिन्हें वह प्यार कर सकती, नाती-पोतों की तो बात ही छोड़िए। उसे कोई सुख नहीं मिलेगा। उसका अस्तित्व एक वनस्पति जैसा है। इसलिए, हम मानते हैं कि मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, इस मामले पर एक अत्यंत रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाने के बाद भी, इस बच्चे के दुःख और पीड़ा के लिए देय राशि कम से कम 15,00,000 रुपये होनी चाहिए। (अनुच्छेद 27)।

तीनों अपीलों को आंशिक रूप से अनुमति दी गई (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. काजल बनाम जगदीश चंद एवं अन्य (2020) 4 एससीसी 413

2. मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम @ चुहरू राम (2018) 18 एससीसी 130

3. देवकर एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2008) 14 एससीसी 598

4. बालू कृष्ण चव्हाण बनाम रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (2022) लाइवलॉ एससी 932

5. मिस देवी बनाम राजकुमार एवं अन्य (2021) 2 टीएसी 413 राज

6. भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन एवं अन्य (2012) 8 एससीसी 148

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा पारित)

1. यह मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/विशेष न्यायाधीश (अयोध्या प्रकरण), लखनऊ द्वारा पारित अधिनिर्णय दिनांकित 23.01.2014 से उत्पन्न तीन अपीलों का एक समूह है। चार प्रारंभिक अपीलों में से, अपील संख्या 441/2014 (श्रीमती श्वेता लांबा बनाम मनोज कुमार सिंह और अन्य) को व्यतिक्रम के कारण दिनांक 10.02.2017 को खारिज कर दिया गया था और हालांकि प्रत्याह्वान के लिए एक आवेदन दिया गया था, परन्तु वह भी दोषपूर्ण था, इसलिए, न्यायालय मामले को आगे बढ़ाने के लिए इच्छुक नहीं था। परिणामस्वरूप, अपील खारिज हो गई। इस प्रकार, आदेश से प्रथम अपील संख्या 488/2014, 439/2014 और 442/2014 मात्र तीन अपीलें इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए हैं।

2. विवाद को समझने और तीन अपीलों के विकास को देखने के लिए यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि श्री अजीत सिंह की मृत्यु दिनांक 11.02.2010 को एक मोटर दुर्घटना में हो गई थी जब वह अपनी होंडा सिटी कार संख्या यू.पी.78-ए.जेड.-1116 चला रहे थे। वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ यात्रा कर रहे थे, हालांकि दुर्घटना करने वाले वाहन संख्या यू.पी.32-टी.-8252, जिसे तेजी और लापरवाही से चलाया जा रहा था, ने होंडा सिटी को टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप श्री अजीत सिंह की मृत्यु हो गई, जबकि उनकी पत्नी श्रीमती पुष्पा सिंह, उनकी बेटी श्रीमती श्वेता लांबा और उनके पोते मास्टर अहान को चोटें आईं।

3. यह उपर्युक्त पृष्ठभूमि में है कि दावा याचिका संख्या 78/2011 मृतक अजीत सिंह के सभी विधिक उत्तराधिकारियों, अर्थात उनकी पत्नी श्रीमती पुष्पा सिंह, पुत्री श्रीमती श्वेता लांबा और पुत्र विवेक लांबा तथा एक अन्य बेटी जिसे दावा याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 3 के रूप में शामिल किया गया था, जिसका नाम रेशमा है (जो परिवार के सदस्यों के साथ कार में यात्रा नहीं कर रही थी), द्वारा दायर की गई थी। यह दावा याचिका मुख्य रूप से श्री अजीत सिंह की मृत्यु के कारण मुआवजे के संबंध में थी।

4. श्रीमती पुष्पा सिंह ने व्यक्तिगत हैसियत से एक और दावा याचिका दायर की थी,

जिसकी संख्या 77/2011 था, जो उन्हें लगी चोटों के लिए था। परिवार के साथ यात्रा कर रही पुत्री श्रीमती श्वेता लांबा ने अपनी दावा याचिका संख्या 425/2010 दायर की थी, जिसमें उन्हें लगी चोटों के लिए मुआवज़ा मांगा गया था और इसी प्रकार उनके पुत्र मास्टर अहान (दिवंगत अजीत सिंह के पोते) की ओर से भी दावा याचिका संख्या 76/2011 दायर की गई थी। इस प्रकार से चार दावा याचिकाएँ दायर की गईं, जिनमें से एक अजीत सिंह की मृत्यु के लिए मुआवज़े के लिए थी, जबकि अन्य तीन उपरोक्त संबंधित व्यक्तियों को लगी चोटों के लिए मुआवज़े हेतु थीं। सभी चार दावा याचिकाओं को एक साथ समेकित कर दिया गया और एक साथ उनका प्रतिवाद किया गया।

5. दोषी वाहन/ट्रक संख्या यू.पी.32-टी-8252 के स्वामी मनोज कुमार सिंह ने मुख्य रूप से आरोपों से इनकार करते हुए अपना लिखित बयान दाखिल कराया, तथापि उन्होंने कहा कि उनके प्रश्नगत वाहन का विधिवत बीमा कराया गया था और चालक के पास वैध और अस्तित्वमान लाइसेंस था और ट्रक में सभी आवश्यक दस्तावेज भी थे, इस प्रकार, यदि कोई अधिनिर्णय पारित किया जाता है, तो यह बीमा कंपनी होगी जो अधिनिर्णय को प्रत्यासीन करने के लिए उत्तरदायी होगी।

6. बीमा कंपनी ने अपना अलग से लिखित बयान दाखिल किया और तर्क दिया कि प्रश्नगत ट्रक उक्त तिथि और समय पर बीमाकृत नहीं था क्योंकि यह कहा गया था कि दुर्घटना दिनांक 11.02.2010 को प्रातः 11 बजे के आसपास हुई थी, जबकि कंपनी द्वारा जारी बीमा पॉलिसी हालांकि दिनांक 11.02.2010 की तिथि की थी, जो शाम 6.13 बजे से प्रभावी थी और इस प्रकार जिस समय दुर्घटना हुई उस समय प्रश्नगत ट्रक का बीमा नहीं था, इसलिए बीमा कंपनी पर कोई दायित्व नहीं लगाया जा सकता।

7. तर्कों के आदान-प्रदान के पश्चात, न्यायाधिकरण ने 6 बिन्दु विरचित किए और पक्षों ने क्रमशः अपने अभिलेखीय और मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए। इस स्तर पर यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि दोषी ट्रक के स्वामी मनोज कुमार सिंह ने साक्षी के रूप में उपस्थिति दर्ज नहीं कराई और न ही उनके चालक को साक्षी के रूप में परीक्षित किया गया और व्यावहारिक रूप से मामला उनके विरूद्ध एकपक्षीय चला।

8. न्यायाधिकरण ने अपने समक्ष दावा याचिकाओं पर गुण-दोष के आधार पर गौर करते हुए पाया कि दुर्घटना दिनांक 11.02.2010 को हुई थी और यह भी पाया कि यह दोषी ट्रक चालक की लापरवाही और तेज गति से वाहन चलाने के कारण हुई थी, जिसका नंबर यू.पी.32-टी-8252 था। न्यायाधिकरण ने बिन्दु संख्या 2 और 3 पर विचार करते हुए पाया कि चालक के पास वैध और अस्तित्वमान लाइसेंस था और ट्रक के पास वैध फिटनेस प्रमाण पत्र, प्रदूषण प्रमाण पत्र भी था, हालांकि इसने दर्ज किया कि ट्रक के पास कोई परमिट नहीं था क्योंकि ऐसा कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं रखा गया था।

9. इस तथ्य पर विचार करते समय कि ट्रक का बीमा था या नहीं, न्यायाधिकरण ने पाया कि ट्रक का बीमा दिनांक 11.02.2010 को किया गया था परन्तु चूंकि अभिलेख पर लाई गई पॉलिसी यह इंगित करती था कि पॉलिसी शाम 6.13 बजे से वैध थी, इसलिए दुर्घटना के समय अर्थात सुबह 11 बजे, ट्रक को विधिवत बीमाकृत नहीं कहा जा सकता था। इसके पश्चात न्यायाधिकरण ने मुआवजे की गणना की और अजीत सिंह की मृत्यु से संबंधित मामले में अधिनिर्णय दिनांकित 23.01.2014 के माध्यम से दावेदारों के पक्ष में 7 प्रतिशत ब्याज सहित 10,69,000/- रुपये की राशि का आदेश दिया, तथापित इसने बीमा कंपनी को उसके दायित्व से मुक्त कर दिया और आदेश को स्वामी अर्थात मनोज कुमार सिंह द्वारा भुगतान करने का निर्देश दिया। दावा याचिका संख्या 78/2011 में पारित इस अधिनिर्णय ने आदेश से प्रथम अपील संख्या 488/2014 को जन्म दिया।

10. इसी प्रकार, श्रीमती पुष्पा सिंह द्वारा दायर दावा याचिका सं0 77/2011 के मामले में न्यायाधिकरण ने अधिनिर्णय दिनांकित 23.01.2014 के माध्यम से उन्हें लगी चोटों के लिए 13,000/- रुपए का मुआवजा देने का आदेश दिया, साथ ही ट्रक के स्वामी पर इस आदेश की जिम्मेदारी तय की और बीमा कंपनी को दोषमुक्त कर दिया। इस प्रकार दावा याचिका संख्या 77/2011 में पारित आदेश ने आदेश से प्रथम अपील संख्या 442/2014 को जन्म दिया है।

11. जहां तक श्रीमती श्वेता लांबा की दावा याचिका संख्या 425/2010 का प्रश्न है, जो अपनी चोटों के लिए मुआवजे की मांग कर रही थीं, उन्हें भी अधिनिर्णय दिनांकित 23.01.2014 के माध्यम से 7 प्रतिशत ब्याज सहित 50,939 रुपये की राशि देने हेतु स्वीकार की गई थी, साथ ही ट्रक के स्वामी पर इस आदेश की जिम्मेदारी तय की और बीमा कंपनी को दोषमुक्त कर दिया, जिसने आदेश से प्रथम अपील संख्या 441/2014 को जन्म दिया है। जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, श्रीमती श्वेता लांबा द्वारा दायर प्रथम अपील संख्या 441/2014 को दिनांक 10.02.2017 को व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया था और अपीलकर्ता श्रीमती श्वेता लांबा की अपील को बहाल करने का प्रयास भी विफल रहा, परिणामस्वरूप, आदेश से प्रथम अपील संख्या 441/2014 निस्तारित हो गई।

12. मास्टर अहान द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका संख्या 76/2010 भी 7 प्रतिशत ब्याज सहित 34,679/- रुपये की राशि हेतु स्वीकार की गई और ट्रक के स्वामी को इसका भुगतान करना था, जिसने आदेश से प्रथम अपील संख्या 439/2014 को जन्म दिया है।

13. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, तीन मौजूदा अपीलें: (I) अपील संख्या 488/2014, जो अजीत सिंह की मृत्यु के कारण मुआवजे से संबंधित है, (II) अपील संख्या 439/2014, जो मास्टर अहान द्वारा उनके द्वारा लगी चोटों के लिए मुआवजे को बढ़ाने के लिए दायर की गई है, और (III) अपील संख्या 442/2014 श्रीमती पुष्पा सिंह द्वारा उनके द्वारा लगी चोटों के

लिए मुआवजे को बढ़ाने की मांग करते हुए दायर की गई है, पर अब गुण-दोष के आधार पर विचार किया जा रहा है।

14. न्यायालय ने तीनों अपीलों में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद सईद और प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव को सुना। इस न्यायालय के समक्ष भी ट्रक के स्वामी मनोज कुमार सिंह तामीला के बावजूद उपस्थित नहीं हुए।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के कथन दोतरफा हैं। यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने स्वामी पर दायित्व तय करने में गलती की है, जबकि अभिलेख से यह सुस्थापित है कि बीमा पॉलिसी दिनांक 11.02.2010 को दोपहर 12 बजे जारी की गई थी। भले ही आरंभ का समय 18.13 बजे बताया गया हो, फिर भी यह पिछले दिन की मध्यरात्रि से संबंधित होगा। उन्होंने आगे कथन किया कि अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ट्रक के स्वामी ने अपने ट्रक को छुड़ाने के लिए फौजदारी न्यायालय में बीमा पॉलिसी दाखिल की थी और अपीलकर्ताओं ने उक्त न्यायालय से दस्तावेज प्राप्त किए थे, जिन्हें दावा न्यायाधिकरण में दाखिल किया गया था और अपीलकर्ताओं द्वारा दाखिल की गई उक्त पॉलिसी से पता चलता है कि पॉलिसी दिनांक 11.02.2010 से 10.02.2011 मध्य रात्रि से मध्य रात्रि तक वैध थी। यह भी कहा गया कि बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत की गई पॉलिसी से पता चलता है कि हालांकि बीमा पॉलिसी दोपहर 12 बजे जारी की गई थी और इसे 18.13 बजे से प्रभावी किया गया था, परन्तु दोनों पॉलिसियों के बीच विसंगति थी। फिर भी, बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत किए गए साक्षी पवन कुमार शर्मा ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा कि बीमा पॉलिसी ग्राहक से प्रीमियम राशि प्राप्त करने के बाद ही जारी की जाती है। उन्होंने आगे कहा कि पॉलिसी जारी करने का समय दोपहर 12 बजे दर्शाया गया है, जो सिस्टम द्वारा उत्पन्न डिफ़ॉल्ट समय है। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि उपर्युक्त साक्षी के अनुसार पॉलिसी दोपहर 12 बजे जारी की गई थी, फिर भी यह पिछले दिन की मध्यरात्रि के समय से संबंधित होगी।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कथन किया गया है कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पॉलिसी पर बीमा कंपनी द्वारा किसी भी स्तर पर विवाद नहीं किया गया है। इस प्रकार यह कथन किया गया है कि अधिकरण द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि ट्रक का दिए गए समय और तिथि पर बीमा नहीं किया गया था और स्वामी पर देयता तय करना स्पष्ट रूप से गलत है और **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम धरम चंद व अन्य; 2010 (28) एल.सी.डी. 1353 और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती चिंता देवी; ए.एल.आर. (40) पृष्ठ 645 (एस.सी.)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की अभ्युक्ति के विरूद्ध है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त दो निर्णयों के अतिरिक्त अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जगत पाल और अन्य 2013 (31) एल.सी.डी.**

पृष्ठ 849 को अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए उद्धृत किया।

17. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का दूसरा पहलू यह है कि अजीत सिंह की मृत्यु के मामले में न्यायाधिकरण ने यह देखते हुए कि मृतक के चार विधिक उत्तराधिकारी थे, फिर भी उसने **सरला वर्मा व अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम एवं अन्य; (2009) 6 एस.सी.सी. 121** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध जाकर त्रुटि की है और व्यक्तिगत खर्च के लिए एक-चौथाई के बजाय एक-तिहाई की कटौती की।

18. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि मास्टर अहान को उनकी चोटों के लिए दी गई मुआवजे की राशि भी बहुत कम है क्योंकि महज 34,679/- रुपये की मामूली राशि दी गई है, जबकि वह एक बड़ी राशि के हकदार थे क्योंकि उनकी सर्जरी हुई थी और इस पहलू पर न्यायाधिकरण ने उचित रूप से विचार नहीं किया है।

19. जहां तक श्रीमती पुष्पा सिंह द्वारा व्यक्तिगत चोटों के लिए अपने मुआवजे में वृद्धि के लिए दायर अपील का प्रश्न है, यह कथन किया गया है कि न्यायाधिकरण ने लगी चोटों पर विचार नहीं किया है और अनौपचारिक रूप से मात्र 13,000/- रुपये की मामूली राशि का आदेश दिया है। यह भी कथन किया गया है कि स्वामी को देयता का भुगतान करने का निर्देश देने के लिए यह आदेश गलत है, इसके अलावा उचित मुआवजा भी नहीं दिया गया है, इसलिए इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

20. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव ने कथन किया है कि न्यायाधिकरण ने उचिव रूप से यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि ट्रक उक्त तिथि और समय पर बीमित नहीं था। यह भी कथन किया गया है कि दावेदारों ने कागज सं0 सी.16/10 पॉलिसी की एक फोटोप्रति दाखिल की थी, जिसके अनुसार बीमा की अवधि दिनांक 11.02.2010 से 10.02.2011 तक आधी रात से आधी रात तक थी। यह भी कथन किया गया है कि इस पॉलिसी विशेष का सत्यापन किया गया था और यह कंपनी द्वारा जारी की गई पॉलिसी के उलट थी, जिसकी एक प्रति कागज सं0 सी-44/5 के रूप में अभिलेख में रखी गई है। एक अन्य पॉलिसी कागज संख्या सी-25/2 अभिलेख में रखी गई है, जो यह दर्शाता है कि हालांकि पॉलिसी दिनांक 11.02.2010 को दोपहर 12 बजे जारी की गई थी, परन्तु इसे दिनांक 11.02.2010 से 18.13 बजे से प्रभावी बनाया गया था जो दिनांक 10.02.2011 की मध्यरात्रि तक था। कागज संख्या सी-25/2 वाले उपरोक्त दस्तावेज पर अवलम्ब लेते हुए यह तर्क दिया गया है कि कंपनी उपरोक्त बीमा पॉलिसी से बंधी हुई है जो एक अनुबंध के अलावा और कुछ नहीं है और बीमा पॉलिसी के प्रारंभ पर शर्तें रखने के लिए कंपनी के पास पर्याप्त भार उपलब्ध है और इस मामले में इसे दिनांक 11.02.2010 को 18.13 बजे से प्रभावी बनाया गया था और चूंकि दुर्घटना दिनांक 11.02.2010 को लगभग 11 बजे हुई थी, इसलिए दी गई तिथि और समय पर ट्रक बीमित नहीं किया था और न्यायाधिकरण द्वारा इस पर उचित रूप से विचार किया गया है, इसलिए तथ्य का यह

निष्कर्ष जो साक्ष्य पर आधारित है, उसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

21. यह भी कहा गया है कि जहां तक व्यक्तिगत व्यय के लिए कटौती का प्रश्न है, बीमा कंपनी को इस पर कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि यह अब **सरला वर्मा (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा सुस्थापित है, जिसे **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 एस.सी.सी. 680** में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय में अनुमोदित और दोहराया गया है। तथापि, यह भी कथन किया गया है कि जहां तक व्यक्तिगत चोटों के लिए मुआवजे में वृद्धि का प्रश्न है, न्यायाधिकरण ने एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया है और उचित मुआवजा प्रदान किया है। दावेदारों द्वारा दायर किए गए सभी दस्तावेजों पर उचित रूप से विचार किया गया है और उसी को देखते हुए मुआवजा प्रदान किया गया है। यह भी कथन किया गया है कि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि व्यक्तिगत चोटों के लिए मुआवजे की मांग करने वाले किसी भी दावेदार को कोई कार्यात्मक विकलांगता हुई थी और उपरोक्त के साथ-साथ चिकित्सीय उपचार के लिए खर्च की गई धनराशि को इंगित करने वाले दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, जिसका न्यायाधिकरण ने विधिवत अवलोकन किया है, अधिनिर्णय दिया गया है जिसमें किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, यह कथन किया गया है कि तीनों अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं।

22. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर में यह इंगित करने का प्रयास किया है कि बीमा कंपनी ने जिस पूरे आधार पर अपने तर्क रखे हैं, वह पूरी तरह से सही नहीं है और अपने तर्कों को पुष्ट करने के लिए उन्होंने अपीलकर्ता द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए प्रार्थना पत्र पर भी अवलम्ब लिया है, जिसमें कुछ अतिरिक्त दस्तावेज अभिलेख पर लाए गए हैं, जो यह दर्शाते हैं कि आपराधिक न्यायालय में कुछ प्रश्नावली प्रस्तुत की गई थीं, जो यह दर्शाती हैं कि आपराधिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई पॉलिसी में बीमा पॉलिसी के प्रारंभ होने का कोई समय नहीं था। तर्क यह है कि जहां तक अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत बीमा पॉलिसी का संबंध है, जिसकी पुष्टि उक्त प्रश्नावली द्वारा की गई थी, इसलिए उपरोक्त परिस्थितियों में इस बात पर कोई संदेह नहीं हो सकता है कि बीमा कंपनी उत्तरदायी होगी और अपीलें स्वीकार किए जाने योग्य हैं।

23. आगे बढ़ने से पूर्व अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत दाखिल प्रार्थना पत्र पर एक नजर डालना आवश्यक होगा, जिसका सी.एम. प्रार्थना पत्र संख्या 111177/2017 है, जिसके साथ मनोज कुमार सिंह द्वारा अपने ट्रक को रिलीज करने के लिए दाखिल प्रार्थना पत्र की प्रमाणित प्रति, ए.सी.जे.एम., न्यायालय संख्या 15, रायबरेली के न्यायालय से प्राप्त दिनांक 29.04.2017 की प्रश्नावली, ए.सी.जे.एम., न्यायालय संख्या 15, रायबरेली के न्यायालय से प्राप्त दिनांक 19.05.2017 का

प्रश्नावली और ए.सी.जे.एम. न्यायालय संख्या 15, रायबरेली के न्यायालय से प्राप्त दिनांक 30.05.2017 का एक अन्य प्रश्नावली और आपराधिक वाद संख्या 4017/2010 के परीक्षण के दौरान दर्ज साक्षी का बयान दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी ने भी इस पर अपनी आपत्तियां दाखिल की हैं।

24. उक्त प्रार्थना पत्र के अवलोकन से यह इंगित होता है कि पैराग्राफ संख्या 8 में यह कहा गया है कि मामले के निर्णय के पश्चात ही अपीलकर्ताओं ने ऊपर उल्लिखित दस्तावेजों की प्रतियां प्राप्त करने का प्रयास किया तथा उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के अनुसार दाखिल किया जा रहा है।

25. सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 41 नियम 27 एक गैर-बाधा खंड से शुरू होता है तथा यह अधिकार के रूप में नहीं है कि कोई भी अपीलकर्ता अपीलीय चरण में साक्ष्य प्रस्तुत करने का हकदार है। उक्त प्रावधान में वे शर्तें शामिल हैं जिन्हें अपीलीय न्यायालय को उक्त दस्तावेजों को अभिलेख पर प्राप्त करने में सक्षम बनाने के लिए अनिवार्य रूप से पूरा किया जाना चाहिए। उपरोक्त के प्रकाश में, यदि इस मामले के तथ्यों को देखा जाए तो यह इंगित होगा कि विचाराधीन दुर्घटना दिनांक 11.02.2010 को हुई थी और दावा याचिकाएं 2010 से ही न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित हैं क्योंकि सबसे प्रारंभिक दावा याचिका श्रीमती श्वेता लांबा द्वारा दायर किया गया था, तथापि, दावेदारों की अन्य दावा याचिकाएं वर्ष 2011 में दायर की गईं और अधिनिर्णय वर्ष 2014 में पारित हुआ। जिन दस्तावेजों को अभिलेख में लाया गया है, वे सभी वर्ष 2010 से संबंधित हैं। केवल उक्त प्रश्नावली ही है जो अपीलकर्ताओं द्वारा दिनांक 29.04.2017 को प्राप्त की गई है, अभिलेख पर या यहां तक कि शपथपत्र में भी ऐसा कुछ नहीं है जो इंगित करे कि अपीलकर्ताओं को उक्त प्रश्नावली पहले प्राप्त करने से किस बात ने रोका था।

26. प्रथम दृष्टया, तथ्य के संदर्भ में और जिस प्रावधान के अंतर्गत ऐसी प्रश्नावली जारी की जाती हैं, उसे देखते हुए ऐसी प्रश्नावलियों की सत्यता अपने आप में संदिग्ध है। सामान्य नियम (आपराधिक) के नियम 141 और सामान्य नियम (सिविल) के नियम 224 और 225 का अवलोकन करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार हैः-

"सामान्य नियम (आपराधिक) से उद्धृतः

<u>141. सूचना के लिए प्रार्थना पत्रः</u>

कोई भी व्यक्ति, जो किसी मामले की क्रम संख्या, संस्थित करने की तिथि या अन्य पंजीकृत विवरण या उसमें किसी कार्यवाही, की जानकारी चाहता है, या किसी न्यायिक कार्यवाही का, जिसका अभिलेख न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट के न्यायालय या अभिलेखागार में है, वो अभिलेखागार के प्रभारी अधिकारी को अधिमानतः फॉर्म 7 (भाग 9, संख्या 45) में एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करेगा या डाक से भेजेगा, जिस पर पांच रुपये का कोर्ट-फीस लेबल चिपकाया जाएगा, जिसमें संस्थिती का वर्ष और पक्षकारों के नामों के बारे में

यथासंभव सर्वोत्तम विवरण दिए जाएंगे। वह आवेदन प्राप्त होने की तिथि से दस दिनों के भीतर ढूंढने और अभिलेखपाल द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में जानकारी, यदि प्राप्त हो सके, का हकदार होगा।

अभिलेखपाल प्रत्येक आवेदन पर क्रम संख्या अंकित करेगा। यदि पूर्वोक्त दस दिन के भीतर सूचना नहीं दी जाती है तो अभिलेखपाल उक्त दस दिन की अवधि की समाप्ति पर आवेदन के अनुपालन न करने का कारण लिखित रूप में न्यायालय को सूचित करेगा।

आवेदन को निस्तारण के पश्चात इस प्रयोजन के लिए रखी गई फाइल बुक में पृथक क्रम संख्या के अंतर्गत चिपकाया जाएगा तथा प्रतिवर्ष अभिलेखागार को भेजा जाएगा।

जहां आवेदक यह चाहता है कि सूचना उसे डाक द्वारा दी जाए तो वह अपना पता देगा, जहां सूचना भेजी जा सके तथा अपने आवेदन पर अपेक्षित मूल्य के डाक टिकट लगाएगा।

इस नियम की हिन्दी में मुद्रित प्रति प्रत्येक न्यायालय में तथा अभिलेखागार में भी किसी सुस्पष्ट स्थान पर सूचना पट्ट पर लगाई जाएगी।

सामान्य नियम (सिविल) से उद्धृतः

224. सूचना के लिए आवेदन।

कोई भी व्यक्ति, जो किसी वाद की क्रम संख्या, संस्थित करने की तिथि या अन्य पंजीकृत विवरण या उसमें किसी कार्यवाही या किसी न्यायिक कार्यवाही की जानकारी चाहता है, तो वह मुंसरिम को एक लिखित आवेदन प्रस्तुत करेगा या डाक द्वारा भेजेगा, जिस पर रु. 5.00 का न्यायालय शुल्क लेबल लगा होगा और जिसमें संस्थित होने के वर्ष और पक्षकारों के नामों के बारे में यथासंभव सर्वोत्तम विवरण दिए जाएंगे। मुंसरिम ऐसे आवेदन पर क्रम संख्या अंकित करेगा और संबंधित रजिस्टर के प्रभारी अधिकारी को खोज करने का निर्देश देगा। उक्त सूचना, यदि प्राप्त हो सके, तो आवेदन प्राप्त होने की तिथि से तीन दिन के भीतर रजिस्टर के प्रभारी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में आवेदक को दी जाएगी। यदि ऐसी सूचना तीन दिन के भीतर नहीं दी जा सकती है, तो मुंसरिम उक्त अवधि की समाप्ति पर आवेदन के अनुपालन न किए जाने का कारण न्यायाधीश को उसके आदेश के लिए लिखित रूप में रिपोर्ट करेगा। इस नियम की हिंदी में मुद्रित प्रति प्रत्येक न्यायालय में और प्रत्येक मुंसरिम के कार्यालय में भी सूचना-पट्ट पर एक सुस्पष्ट स्थान पर लगाई जाएगी।

निस्तारण के पश्चा खोज के लिए आवेदन को क्रमानुसार फाइल बुक में पोस्ट किया जाएगा। ऐसी प्रत्येक फाइल बुक को प्रत्येक कैलेंडर वर्ष के अंत में अभिलेख रूम में भेज दिया जाएगा।

225. लंबित मामलों में सूचना के लिए आवेदन।

लंबित मामलों में, किसी पक्ष को फॉर्म संख्या VI-122 में लिखित प्रश्नों और उत्तरों के माध्यम से कुछ जानकारी प्राप्त करने की छूट होगी। इस फॉर्म पर एक ही मामले से संबंधित प्रत्येक दो या उससे कम प्रश्नों के लिए 50 पैसे का कोर्ट-फी लेबल चिपकाया जाना चाहिए।

नोट- किसी भी परिस्थिति में इस नियम द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जाएगा कि वह अभिलेख के निरीक्षण या प्रतियों द्वारा अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की विधि का स्थान ले ले।"

27. प्रत्यक्ष है कि ऊपर वर्णित नियमों (सामान्य नियम (सिविल और आपराधिक)) के अनुसार, यह प्रावधान है कि किसी भी ऐसे दस्तावेज के संबंध में कोई प्रश्नावली जारी नहीं की जाएगी, जिसकी प्रमाणित प्रति प्राप्त की जा सकती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि किसी भी दस्तावेज की सामग्री को समझाने के लिए प्रश्नावली किसी भी प्राधिकारी द्वारा जारी नहीं की जा सकती है और इस प्रकार प्रश्नावली के अनुसार उक्त दस्तावेज अपीलकर्ताओं द्वारा मांगी गई सामग्री को प्रमाणित करने के लिए वैध नहीं हैं।

28. उपरोक्त बातों को एक क्षण के लिए यदि छोड़ भी दें, फिर भी तथ्य यह है कि बीमा कंपनी द्वारा उठाया गया बिन्दु अपीलकर्ताओं के संज्ञान में था और उन्होंने उपरोक्त तर्क पर पूरी कार्यवाही का प्रतिवाद किया था। यह न्यायालय पाता है कि दावेदारों ने स्वयं दिनांक 17.07.2012 को दस्तावेज़ सूची के साथ न्यायाधिकरण के अभिलेख पर कागज सं0 सी-16/10 वाला दस्तावेज़ दाखिल किया था। यहां तक कि जब वर्ष 2014 में अधिनिर्णय पारित किया गया था और अपीलकर्ताओं को उन कारणों की जानकारी थी, जिन्हें न्यायाधिकरण ने दावेदारों की प्रस्तुति को अस्वीकार करने में दर्ज किया है, फिर भी उन्होंने प्रतीक्षा की और आवेदन वर्ष 2017 में स्थानांतरित कर दिया गया है।

29. जहां तक सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र के साथ दस्तावेज़ सूची के साथ दाखिल एक साक्षी के बयान का संबंध है, इसमें इस अपील में शामिल मुद्दे के लिए बहुत अधिक प्रासंगिकता नहीं है, तथापित, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रश्नावली पर बहुत जोर दिया है जो दिनांक 29.04.2017, 19.05.2017 और 30.05.2017 को जारी की गई है। **भारत संघ बनाम इब्राहिम उद्दीन व अन्य (2012) 8 एस.सी.सी. 148** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के प्रावधानों के दायरे और प्रयोज्यता पर विचार किया था और उसमें प्रतिपादित सिद्धांतों के दृष्टिगत, यह न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा कोई सार्थक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उक्त दस्तावेज पहले क्यों दाखिल नहीं किए जा सके।

30. स्पष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 में निहित

प्रावधानों पर विचार करने से न तो खंड (ए) और न ही खंड (एए) इस मामले में आकर्षित होते हैं क्योंकि अपीलकर्ताओं का यह मामला नहीं है कि ये दस्तावेज न्यायाधिकरण के समक्ष दाखिल किए गए थे परन्तु न्यायाधिकरण इस पर ध्यान देने में विफल रहा है या यह कि दस्तावेज अधिनिर्णय पारित होने के बाद ही प्रकाश में आए। अब एकमात्र अवशेष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 का खंड (बी) है जो न्यायालय को पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है कि यदि उक्त दस्तावेज न्यायालय की राय में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने और प्रभावी निर्णय देने के लिए आवश्यक समझे जाएं तो वह उसे अभिलेख पर ले लें।

31. इस मामले के इस दृष्टिकोण से न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और प्रार्थना पत्र और अभिलेख पर प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजों का अवलोकन करने के पश्चात यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए स्वंय को सहमत नहीं कर सकता है कि अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों में कोई प्रासंगिकता है और वो इस न्यायालय के लिए विचार करने के लिए प्रासंगिक और अनिवार्य होंगे और प्रभावी आदेश पारित करने या पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने में सहायक होंगे। परिणामस्वरूप, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत उक्त प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

32. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मिस देवी बनाम राजकुमार व अन्य; 2021 (2) टी.ए.सी. 413 (राज.)** में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेने से पता चलता है कि यह तथ्यात्मक रूप से वर्तमान मामले के तथ्यों से काफी भिन्न है तथा और उपरोक्त कारणों से, राजस्थान उच्च न्यायालय का निर्णय अपीलकर्ताओं के लिए सहायक नहीं है।

33. अब पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के गुण-दोष पर आते हैं, इस अपील में विचारणीय बिन्दु दोतरफा है। (1) क्या अपीलकर्ता जिन्हें मुआवजा प्रदान किया गया है और यह माना गया है कि ट्रक का बीमा नहीं था, परिणामस्वरूप, स्वामी इन परिस्थितियों में अधिनिर्णय को प्रत्यायोजित करने का हकदार है, जहां ट्रक के स्वामी ने ऐसे निष्कर्ष पर आपत्ति नहीं की है कि क्या दावेदार अपनी अपील में ऐसा मुद्दा उठा सकता है। (2) इसमें शामिल अन्य बिन्दु अपीलकर्ताओं द्वारा दावा की गई वृद्धि के संबंध में है, जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है।

34. प्रथम प्रस्तुतिकरण तथा विचारणीय बिन्दु के सम्बन्ध में, स्पष्टतः, अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों से, अपीलकर्ता का मामला यह है कि दुर्घटना दिनांक 11.02.2010 को प्रातः 11 बजे हुई थी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के कथनों को भी उसके अंकित मूल्य पर लेने से यह संकेत मिलता है कि बीमा पॉलिसी जिसे अभिलेख पर लाया गया है तथा जिस पर बीमा कंपनी ने अवलम्ब लिया है, यह दर्शाती है कि इसे दोपहर 12 बजे जारी किया गया है, तथापि इसे 18.13 बजे से प्रभावी बनाया गया है। एक अन्य बीमा पॉलिसी जिसे अभिलेख पर लाया

गया है, वह कागज संख्या सी-44 है, जो यह दर्शाता है कि बीमा पॉलिसी यद्यपि दोपहर 12 बजे जारी की गई थी, परन्तु इसे मध्यरात्रि से मध्यरात्रि तक प्रभावी बनाया गया था।

35. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इस संबंध में न्यायाधिकरण के समक्ष मुद्दा प्रतिद्वंद्वी बीमा पॉलिसियों के संबंध में था, जिसके निष्कर्ष पर पहुंचना था। न्यायाधिकरण ने पाया कि बीमा कंपनी की ओर से आए साक्षी ने स्पष्ट रूप से इंगित किया कि बीमा कंपनी की ओर से जारी और दाखिल की गई पॉलिसी में बीमा कंपनी का लोगो और मुहर थी। साक्षी ने कहा कि पॉलिसी जारी करने का समय सिस्टम से उत्पन्न डिफ़ॉल्ट रूप से है और उसने आगे कहा कि चूंकि दोषी वाहन का स्वामी कार्यालय आया था और उसने डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से प्रीमियम का भुगतान किया था, इसलिए पॉलिसी दिनांक 11.02.2010 को 18.13 बजे से प्रभावी हो गई थी।

36. उपर्युक्त बातों पर गौर करते हुए न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि स्पष्ट रूप से दुर्घटना की तिथि को स्वामी ने ट्रक का बीमा करवाया था और प्रीमियम का भुगतान डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से किया गया था, जिस पर 11.02.2010 की तिथि अंकित है और उक्त परिस्थितियों में डिमांड ड्राफ्ट जारीकर्ता बैंक से लंच के समय से पहले प्राप्त नहीं किया जा सकता था और इसलिए प्रतिफल/प्रीमियम प्राप्त करने के पश्चात, न्यायाधिकरण ने माना कि पॉलिसी यदि दोपहर 12 बजे भी जारी की गई होती तो भी दुर्घटना को कवर नहीं करती, क्योंकि यह सुबह 11 बजे हुई थी और निश्चित रूप से उस समय ट्रक के स्वामी द्वारा दोषी ट्रक के लिए कोई बीमा कवर नहीं खरीदा गया था।

37. इस स्तर पर यदि **धर्म चंद (उपरोक्त)** के मामले में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णय पर गौर किया जाए तो यह पता चलता है कि उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बीमा कंपनी के अधिवक्ता द्वारा की गई सुविधा पर गौर करते हुए माना कि भले ही बीमा पॉलिसी जारी की गई थी और प्रीमियम पहले ही प्राप्त हो गया था, फिर भी यह माना जाएगा कि पॉलिसी प्रीमियम प्राप्त होने के समय से प्रभावी हुई है। उक्त निर्णय बीमा कंपनी के अधिवक्ता की सुविधा पर आधारित है, इसलिए उक्त कारण से यह बाध्यकारी उदहारण कायम नहीं करता है और अन्यथा यदि तथ्यात्मक रूप से देखा जाए तो यह पता चलता है कि **धरम चंद (उपरोक्त)** में प्रीमियम शाम 4 बजे प्राप्त हुआ था और दुर्घटना 4 घंटे बाद हुई थी, जबकि पॉलिसी अगले दिन से शुरू होनी थी। यहां तक कि इस मामले में अगर पॉलिसी को प्रीमियम प्राप्त होने के समय से प्रभावी बनाया जाता है, तब भी यह स्पष्ट होगा कि कोई बीमा नहीं है क्योंकि दुर्घटना सुबह 11 बजे हुई थी और प्रीमियम का भुगतान उसी तिथि अर्थात 11.02.2010 को दोपहर के काफी बाद डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से किया गया था और इसके अलावा इसके विपरीत कोई साक्ष्य नहीं है, इसलिए उक्त निर्णय अपीलकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं करता है।

38. **श्रीमती चिन्तो देवी (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि आम तौर पर जब कोई पॉलिसी जारी की जाती है तो वह उसी तिथि से पहले की मध्य रात्रि से अपनी देयता को कवर करती है, परन्तु पॉलिसी में उल्लिखित किसी विशेष अनुबंध के मामले में इसे विशेष अनुबंध के अनुसार लागू किया जाएगा। चूंकि पॉलिसी खरीदने के समय के बारे में विवाद था, इसलिए मामले को प्रतिप्रेषित किया गया। तथापि, इस मामले में यह स्वीकार किया गया है कि दुर्घटना सुबह 11 बजे हुई थी और जबकि प्रमाणित पॉलिसी दुर्घटना के समय के बाद दोपहर 12 बजे जारी की गई थी, जिसका प्रीमियम दोपहर के काफी बाद डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान किया गया था और पॉलिसी दुर्घटना के काफी बाद 18.13 बजे शुरू होनी थी, इसलिए **श्रीमती चिन्तो देवी (उपरोक्त)** का यह निर्णय भी अपीलकर्ताओं की सहायता नहीं करता है।

39. **जगत पाल (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि बीमा का अनुबंध जो पक्षों द्वारा स्वेच्छा से हस्ताक्षरित किया जाता है, अनुबंध में वर्णित और बीमा पॉलिसी में उल्लिखित समय, पक्षों पर बाध्यकारी होता है। खंडपीठ के समक्ष उक्त मामले में दुर्घटना 26.07.1991 को दोपहर 2 बजे हुई थी और दुर्घटना भी उसी समय हुई थी, इसलिए तर्क यह था कि चूंकि बीमा कंपनी को पॉलिसी जारी करने की औपचारिकताएं पूरी करने में समय लगेगा और इसलिए यह संभव नहीं है कि दुर्घटना के समय बीमा एक साथ खरीदा गया हो। उपरोक्त परिस्थितियों में बीमा कंपनी ने तर्क दिया कि वाहन बीमित नहीं था। उपरोक्त तर्क को नकारते हुए खंडपीठ ने माना कि जब पॉलिसी में यह उल्लेख किया गया था कि समय और तिथि वर्णित है तो पॉलिसी उसी समय अर्थात दोपहर 2 बजे प्रभावी होगी और दुर्घटना भी दोपहर 2 बजे हुई थी, इसलिए बीमा कंपनी अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकती। यह निर्णय भी तथ्यात्मक रूप से वर्तमान मामले के तथ्यों से काफी भिन्न है और अपीलकर्ताओं की सहायता नहीं करता है, परन्तु यदि अनुपात को वर्तमान मामले में लागू किया जाए तो यह अपीलकर्ताओं के विरुद्ध जा सकता है, क्योंकि वर्तमान मामले में पॉलिसी में समय दुर्घटना के काफी बाद के 18.13 घंटे का है और **जगत पाल (उपरोक्त)** मामले के अनुसार बीमा कंपनी पॉलिसी में दिए गए समय से बंधी हुई है।

40. जैसा कि देखा गया है, प्रावधानों और अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथित निर्णयों से, यह न्यायालय पाता है कि यदि कथनानुसार मामले को देखा जाए तो स्पष्ट है कि दुर्घटना सुबह 11 बजे हुई थी, इस तथ्य पर विवाद नहीं है। यहां तक कि अगर बीमा पॉलिसी को भी देखा जाए, तो यह इंगित करेगा कि इसे दोपहर 12 बजे जारी किया गया था और उसी दिन 18.13 बजे से प्रभावी किया गया था। तथ्य यह है कि जिस पॉलिसी पर अपीलकर्ताओं ने अवलम्ब लिया है, वह एक प्रति है, जिसके बारे में उनका कहना है कि उसे आपराधिक न्यायालय से प्राप्त किया गया है, परन्तु बीमा कंपनी के साक्षी द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया है। एक और महत्वपूर्ण पहलू जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि ट्रक का स्वामी

साक्षी के कठघरे में नहीं आया। वह मूल पॉलिसी के बारे में समझाने के लिए सबसे अच्छा व्यक्ति था, जो उक्त स्वामी के पास उपलब्ध होगी, हालांकि इसे अभिलेख पर नहीं रखा गया और न ही उसे दावेदारों द्वारा साक्षी के रूप में बुलाया गया। यह भी ध्यान में रखा जाएगा कि बीमा पॉलिसी में विसंगति के अलावा एक और कारण है और वह यह है कि ट्रक का कोई परमिट नहीं था जो अभिलेखों पर रखा गया हो और इस निष्कर्ष को स्वामी या दावेदारों द्वारा दर्ज किया गया है तथा इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई है।

41. यह समझा जाता है कि जहां तक दावेदारों का संबंध है, उन्हें मुआवजे में वृद्धि की मांग करने वाले पीड़ित पक्ष के रूप में माना जा सकता है, परन्तु मुख्य रूप से मोटर दुर्घटना दावा अपकार के कानून में एक दावा है जहां दायित्व अपकारकर्ता और जिसके विरूद्ध अपकार हुआ है, के बीच होता है। वर्तमान मामले में दावेदार एक मृतक पक्ष के उत्तराधिकारी हैं और वे व्यक्ति भी हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से चोटें आई हैं। उन्होंने अपकारकर्ता के विरूद्ध दावा दायर किया है जो एक ड्राइवर है जो वास्तव में ट्रक चला रहा था परन्तु उसे पक्ष नहीं बनाया गया है परन्तु रचनात्मक/प्रतिनिधि दायित्व के कारणों से यह स्वामी है जो उत्तरदायी है तथा कार्यवाही का एक पक्ष है।

42. बीमा का अनुबंध बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के बीच होता है और यह एक अलग अनुबंध है जिसके साथ दावेदारों का कोई संबंध नहीं होता है। वे केवल अपकारक से राशि वसूलने के हकदार हैं और इस मामले में यह चालक और ट्रक का स्वामी होगा, जो परोक्ष रूप से जिम्मेदार है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के अनुसार किसी वाहन का कम से कम तृतीय पक्ष के जोखिम कवर के साथ बीमा करवाना अनिवार्य है और ऐसे बीमित वाहन के विरूद्ध तृतीय पक्ष के दावे के मामले में, तो वह बीमा कंपनी है जो प्रदान किए गए अधिनिर्णय की क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है और बीमा कंपनी के लिए उपलब्ध प्रावधानों और बचावों के अधीन, केवल ऐसे सीमित आधारों पर ही वह अपने दायित्व से बच सकती है जिसमें अन्य बातों के अलावा दुर्घटना की तिथि और समय पर कोई वैध बीमा पॉलिसी नहीं होना शामिल है।

43. इस संबंध में **बालू कृष्ण चव्हाण बनाम रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; 2022 लाइव लॉ (एस.सी.) 932** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का लाभप्रद रूप से उल्लेख किया जा सकता है और संबंधित पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"8. इसलिए, हमारे विचार के लिए एकमात्र पक्ष यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, बीमा कंपनी को "भुगतान करने और वसूलने" का निर्देश देने का आदेश दिया जाना आवश्यक है। इस पहलू पर, सुस्थापित विधि है कि यदि बीमा कंपनी की देनदारी तय की जाती है और उन्हें उत्तरदायी नहीं माना जाता है, तो आमतौर पर, "भुगतान करने और वसूलने" का कोई निर्देश नहीं होगा। तथापि, प्रत्येक मामले में उत्पन्न तथ्यों और परिस्थितियों में, न्याय के उद्देश्यों को पूरा

करने के लिए इस न्यायालय द्वारा उचित आदेश दिए जाने की आवश्यकता है।

10. इसलिए, विधिक पहलू पर, यह स्पष्ट है कि सभी मामलों में "भुगतान और वसूलने" का ऐसा आदेश तब उत्पन्न नहीं होगा जब बीमा कंपनी उत्तरदायी नहीं है, परन्तु तथ्यों और परिस्थितियों में, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इस न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा।''

44. **देवकर एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम (2008) 14 एस.सी.सी. 598** में सर्वोच्च न्यायालय ने बीमा अनुबंध के महत्व पर उसके नियमों और शर्तों के संदर्भ में विचार करते हुए निम्नानुसार माना हैः-

"बीमा की एक पॉलिसी एक प्रस्ताव (प्रस्ताव) और स्वीकृति के आधार पर एक अनुबंध है। अपीलकर्ता ने एक प्रस्ताव रखा। प्रत्यर्थी ने प्रस्ताव को संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया। इसलिए, यह एक प्रति प्रस्ताव था। अपीलकर्ता के पास तीन विकल्प थे। पहला था प्रति-प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार करना, ऐसी स्थिति में कोई अनुबंध नहीं होता। दूसरा था प्रत्यर्थी के प्रति-प्रस्ताव को या तो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से स्वीकार करना (यानी संशोधन के साथ प्रत्यर्थी की स्वीकृति) जिसके परिणामस्वरूप प्रति प्रस्ताव के संदर्भ में एक संपन्न अनुबंध होता। तीसरा था प्रत्यर्थी के प्रति-प्रस्ताव के लिए एक प्रति प्रस्ताव देना, ऐसी स्थिति में कोई संपन्न अनुबंध तब तक नहीं होता जब तक कि प्रत्यर्थी ऐसे प्रति-प्रति-प्रस्ताव पर सहमत न हो। परन्तु अपीलकर्ता के पास निश्चित रूप से चौथा विकल्प नहीं था कि वह एक संपन्न अनुबंध को ऐसे संशोधन के साथ प्रस्तुत करे जिसे न तो किसी पक्ष द्वारा प्रस्तावित किया गया हो और न ही उस पर सहमति व्यक्त की गई हो। यदि अपीलकर्ता दिनांक 12.03.1988 से 12.09.1989 की अवधि के बजाय दिनांक 26.08.1988 से 25.08.1989 की अवधि को कवर करने वाली पॉलिसी से सहमत नहीं होता, तो परिणामतः दिनांक 30.06.1989 या किसी अन्य तिथि से प्रभावी बीमा अनुबंध कभी नहीं बनेगा।''

45. अब, ऊपर उल्लिखित विधिक प्रस्तावों की पृष्ठभूमि में, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से, यह न्यायालय इस कारण से अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वंय को सहमत नहीं कर सकता है कि जिस पॉलिसी पर अपीलकर्ताओं ने अवलम्ब लिया है, वह विश्वास पैदा नहीं करती है। अपीलकर्ता वे व्यक्ति नहीं हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि पॉलिसी उचित अभिरक्षा से आई है। मूल पॉलिसी या तो स्वामी से या बीमा कंपनी से आ सकती है और दोनों मामलों में ऐसा नहीं है। अपीलकर्ता पॉलिसी की कथित फोटोप्रति साबित नहीं कर सके, जिस पर किसी भी मामले में बीमा कंपनी ने विवाद किया हो। बीमा कंपनी ने एक प्रति दाखिल की है जिसमें समय और तिथि का उल्लेख किया गया है और यह मानते हुए भी कि पॉलिसी जारी करने का समय दोपहर 12 बजे है, परन्तु इसे 18.13 बजे से प्रभावी बनाया गया है। ट्रक का बीमा पॉलिसी में उल्लिखित बीमा के समय भी नहीं होगा, जो दोपहर 12 बजे है, और अगर इस

पर विचार किया जाए और निश्चित रूप से यदि इसे 18.13 बजे से शुरू नहीं माना जाता है, क्योंकि दुर्घटना सुबह 11 बजे हुई थी, इस प्रकार किसी भी मामले में बीमा के समय या पॉलिसी में उल्लिखित प्रारंभ के समय से पहले हुई थी।

46. अन्यथा भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रीमियम का भुगतान उसी तिथि को डिमांड ड्राफ्ट के जरिए किया गया था और बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत साक्षी द्वारा इसकी पर्याप्त व्याख्या की गई है और न्यायाधिकरण ने अपना निष्कर्ष दर्ज करते समय इस पर ध्यान दिया है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि दोषी वाहन के बीमा की अंतिम पॉलिसी दुर्घटना की तिथि से लगभग 40 दिन पहले ही समाप्त हो चुकी थी। इसलिए, पूरे घटनाक्रम पर ध्यान देने से पता चलता है कि दिनांक 11.02.2010 को दुर्घटना सुबह 11 बजे घटित हुई थी, जबकि पिछली पॉलिसी 40 दिन पूर्व समाप्त हो चुकी थी। दिनांक 11.02.2010 को बैंकर से जारी करवाकर तथा उसके बाद पॉलिसी खरीदकर, उसी तिथि के डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से प्रीमियम का भुगतान किया गया। इस प्रकार पॉलिसी जारी की गई तथा जारी करने का समय दोपहर 12 बजे था तथा वह 18.13 बजे से प्रभावी हो गई तथा इस पॉलिसी पर कंपनी का लोगो तथा सील लगी हुई है।

47. इस प्रकार उपरोक्त सभी कारणों से यह न्यायालय न्यायाधिकरण के साथ इस मामले में सहमत है जैसा कि उसने दर्ज किया है कि ट्रक का बीमा नहीं था तथा इसका दायित्व स्वामी का होगा।

48. अब मुआवजे की पर्याप्तता के विषय में अगले बिन्दु की बात करें तो, इस न्यायालय को लगता है कि पारंपरिक मद में मुआवजा भी उचित रूप से प्रदान नहीं किया गया है क्योंकि जो सहव्यवस्था न केवल पत्नी को जीवनसाथी के रूप में अपितु बच्चों को भी माता-पिता के सहव्यवस्था के रूप में उपलब्ध है, उसे उचित रूप से प्रदान नहीं किया गया है, जो कि **मैग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नानू राम उर्फ चुहरू राम; (2018) 18 एस.सी.सी. 130** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के भी विपरीत है। यहां तक कि व्यक्तिगत खर्चों के प्रति कटौती भी सही ढंग से नहीं की गई है और एक तिहाई के बजाय एक चौथाई कटौती की जानी चाहिए थी। इस प्रकार, इस सीमा तक अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के कथन अनुकूल प्रतीत होते है और पूर्वोक्त राशि को जोड़कर दावा याचिका संख्या 78/2011 के दावेदार निम्नलिखित राशि के हकदार होंगेः-

"आय = 26,350/- रुपये प्रति माह

घटाएँ- (1/4) = 6,588/- रुपये प्रति माह

(व्यक्तिगत व्यय के रूप में आय से

क्योंकि चार आश्रित हैं)

इस प्रकार कुल आय = 19,762/- रुपये प्रति माह

आयु 65

गुणक 7

इस प्रकार देय मुआवजा = 19,762/- x 12 x 7 = 16,60,000/- रुपये
जोड़ें-

पति/पत्नी सहव्यवस्था - अपीलकर्ता क्रमांक 1 = 40,000/- रुपये

पैतृक सहव्यवस्था- दो बेटियों के लिए = 80,000/- रुपये

पैतृक सहव्यवस्था- एक बेटे के लिए = 40,000/- रुपये

कुल = रु 1,60,000/-

संपत्ति की हानि = रु 15,000/-

अंतिम संस्कार व्यय = रु 15,000/-

कुल = रु 30,000/-

इस प्रकार, कुल मुआवजा भुगतान होगा
= रु 18,50,000/-
----

49. व्यक्तिगत चोट के लिए मुआवजे की वृद्धि के संबंध में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति के दूसरे भाग पर आते हुए, यह न्यायालय पाता है कि स्पष्ट रूप से न्यायाधिकरण ने दर्द और पीड़ा और गैर-आर्थिक क्षति के मुद्दे पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है और यह ध्यान नहीं दिया है कि एक छोटे बच्चे को चोट लगी थी, जिसे शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा, उसके पैर पर, और वह अस्पताल में भर्ती रहा और कुछ चोटें भी आईं जो श्रीमती पुष्पा सिंह को लगीं।

50. काजल बनाम जगदीश चंद व अन्य (2020) 4 एस.सी.सी. 413 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के कथन पर विचार करते हुए; जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 26 से 29 में अवलोकित किया और मानाः-

"दर्द, पीड़ा और सुविधाओं की हानि

26. दर्द, पीड़ा, सुविधाओं की हानि के मद में गैर-आर्थिक क्षति की बात करें तो उच्च न्यायालय ने इस लड़की को केवल 3,00,000/- रुपये का मुआवजा दिया है। मल्लिकार्जुन बनाम डिवीजनल मैनेजर, द नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड व अन्य में, इस न्यायालय ने इस मद में अधिनिर्णय के बिन्दु पर विचार करते हुए माना कि यदि विकलांगता 90 प्रतिशत से अधिक है तो यह कम से कम 6,00,000/- रुपये होना चाहिए। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, 100 प्रतिशत शारीरिक विकलांगता के अलावा छोटी लड़की गंभीर असंयम से पीड़ित है, वह गंभीर हिस्टीरिया से पीड़ित है और सबसे बढ़कर उसका मस्तिष्क नौ महीने के बच्चे जैसा हो गया है। यह एक ऐसा मामला है जहां सामान्य नियम से विचलन किया जाना है 14 2013

(10) स्केल 668 और इस बच्चे द्वारा झेली गई पीड़ा और दर्द ऐसा है कि मुआवजे की कोई भी राशि क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती है।

27. वर्तमान मामले में मुआवज़ा निर्धारित करते समय एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि दावा केवल एक बार ही दिया जा सकता है। दावेदार बाद में मुआवज़ा बढ़ाने के लिए न्यायालय में यह प्रार्थना करते हुए नहीं आ सकता कि कुछ अतिरिक्त खर्च हो गया है। इसलिए, 100 प्रतिशत विकलांगता के मामले में मुआवज़ा निर्धारित करने वाले न्यायालयों या न्यायाधिकरणों को, विशेष रूप से जहाँ मानसिक विकलांगता भी है, मुआवज़ा निर्धारित करते समय मामले पर उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह राशि निर्धारित करते समय हम केवल शारीरिक विकलांगता ही नहीं, अपितु मानसिक विकलांगता और अन्य कई कारकों को भी ध्यान में रख रहे हैं। यह बच्ची जीवन भर बिस्तर पर रहेगी। उसकी मानसिक आयु नौ महीने के बच्चे जितनी होगी। प्रभावी रूप से, जब तक उसका शरीर बढ़ता रहेगा, वह एक छोटी बच्ची ही रहेगी। हम एक ऐसी लड़की की बात कर रहे हैं जो शारीरिक रूप से एक महिला बन जाएगी, परन्तु मानसिक रूप से 9 महीने की बच्ची ही रहेगी। यह लड़की अपने दोस्तों के साथ नहीं खेल पाएगी। वह संवाद नहीं कर पाएगी; वह जीवन के सुखों का आनंद नहीं ले पाएगी; वह कार्टून या फ़िल्में देखकर भी खुश नहीं हो पाएगी; वह बचपन की मस्ती, जवानी के उत्साह से वंचित रह जाएगी; वैवाहिक जीवन के सुख; उसके पास बच्चे नहीं हो सकते जिन्हें वह प्यार कर सके, नाती-नातिन तो दूर की बात है। उसे कोई सुख नहीं मिलेगा। उसका अस्तित्व वनस्पति की तरह है। इसलिए, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हमें लगता है कि मामले के बहुत रूढ़िवादी दृष्टिकोण के बाद भी इस बच्चे के दर्द और पीड़ा के लिए देय राशि कम से कम 15,00,000/- रुपये होनी चाहिए।

<u>विवाह की संभावनाओं की हानि</u>

28. न्यायाधिकरण ने विवाह की संभावनाओं के नुकसान के लिए 3,00,000/- रुपये का मुआवजा दिया है। हमें इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता।

<u>भविष्य में चिकित्सा उपचार</u>

29. इस मद में दावेदार को केवल 2,00,000/- रुपये दिए गए हैं। यह राशि बहुत कम है। उसकी चोटों की प्रकृति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वह बिस्तर पर है, इस बच्ची को बहुत सारी चिकित्सा समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। यह सत्य है कि इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है, परन्तु ऐसा साक्ष्य शायद ही हो। उसे विशेष गद्दे की आवश्यकता हो सकती है जिसे बार-बार बदलना होगा। भविष्य में जैसे-जैसे यह बच्ची बड़ी होगी, उसे दुर्घटना में लगी चोटों के कारण कई अन्य चिकित्सा समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। उसकी कम उम्र को ध्यान में रखते हुए और यह मानते हुए कि वह अगले 50-60 साल तक जीवित रहेगी, उसे भविष्य के चिकित्सा खर्चों के लिए 5,00,000/- रुपये देना अनुचित नहीं होगा। मुआवजे का निवेश कैसे किया जाना चाहिए?"

51. इस न्यायालय का विचार है कि अपीलकर्ता अर्थात् मास्टर अहान और श्रीमती पुष्पा सिंह, पीड़ा और दर्द तथा अन्य सहायक गैर-आर्थिक मदों के लिए 25,000/- रुपये प्रत्येक की अतिरिक्त राशि पाने के हकदार हैं।

52. इस प्रकार, आदेश से प्रथम अपील संख्या 488/2014 आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है और दावा याचिका संख्या 78/2011 में पारित दिनांक 23.01.2014 के अधिनिर्णय को इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि दावेदार अब आवेदन की तिथि से उसके भुगतान की तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल **18,55,008/- रुपये** धनराशि पाने के हकदार होंगे।

53. आदेश से प्रथम अपील संख्या 439/2014 भी आंशिक रूप से स्वीकार की जाएगी और दावा याचिका संख्या 76/2011 में पारित दिनांक 23.01.2014 के अधिनिर्णय को इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि दावेदार अब आवेदन की तिथि से उसके भुगतान की तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल **59,679 रुपये** की धनराशि पाने का हकदार होगा।

54. आदेश से प्रथम अपील संख्या 442/2014 आंशिक रूप से स्वीकार की जाएगी और दावा याचिका संख्या 77/2011 में पारित दिनांक 23.01.2014 के अधिनिर्णय को इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि दावेदार अब आवेदन की तिथि से उसके भुगतान की तिथि तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ कुल **38,000 रुपये** की धनराशि पाने का हकदार होगा।

54. इस प्रकार, अपीलकर्ताओं द्वारा दायर तीनों अपीलें पूर्वोक्त सीमा तक **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती हैं। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

55. न्यायाधिकरण के अभिलेख तुरंत वापस भेजे जाए, जिससे अपीलकर्ताओं को ट्रक के स्वामी/प्रत्यर्थी संख्या 1 से विधि अनुसार उपरोक्त राशि वसूलने का अवसर मिले।

(2023) 8 ILRA 784

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 635/1998

श्रीमती गीता एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली और अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री बी.आर. सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अरुण कुमार शुक्ला

अनुवादित

ए. सिविल विधि - **मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173--मुआवजे को चुनौती-मृतक यूपी जल निगम में ठेकेदार था- प्रमाण पत्र साबित करता है कि मृतक की आय 3696 रुपये प्रति माह थी, जिसमें स्वरोजगार के रूप में 40% जोड़ा जाएगा, जैसा कि गोबाल्ड मोटर के फैसले के अनुसार था, जो उन दिनों भी राष्ट्रपति मूल्य के थे, 20% एकमुश्त कटौती को सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार नकार दिया है, 1/3 की कटौती पर आपत्ति नहीं है, 16 का गुणक और प्रणय सेठी के फैसले के अनुसार गैर-आर्थिक क्षति दी जाए- इस प्रकार, उसकी आय 3500 रुपये प्रति माह मानी जा सकती है क्योंकि दुर्घटना के समय मृतक 30 वर्ष का था, भविष्य में आय की हानि के रूप में आय का 40% जोड़ना होगा- कटौती 1/3, 16 का गुणक और रु। विधवा के लिए 50,000/-, पुत्र के लिए 50,000/- - इस प्रकार, कुल मुआवजा: 7,27,072/- दावा याचिका दायर करने की तिथि से दावा याचिका के निर्णय तक 7 % और उसके बाद 6% की दर से प्रदान किया जाता है । (पैरा 1 से 16)**

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. एवी पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीएलएच एससी 442

2. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इं. कंपनी लिमिटेड (2007) 2 जीलएच 291

3. श्रीमती सुदेस्ना एवं अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य एफएएफओ संख्या 23/2001

4. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य

5. गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर एम के वेलुस्वामी एवं अन्य (1962) एससीआर (1) 929

6. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) लॉसूट एससी 1093

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर. सिंह और प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला को सुना गया।

2. यह अपील, दावेदारों के कहने पर, एम.ए.सी.टी./विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट), मैनपुरी (जिसे आगे "ट्रिब्यूनल" कहा जाएगा) द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 164/1996 में पारित दिनांक 7.11.1997 के निर्णय और डिक्री को चुनौती देती है। दुर्घटना विवाद में नहीं है। दुर्घटना में उनकी मृत्यु विवाद का विषय नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा तय की गई लापरवाही का मुद्दा विवाद का विषय नहीं है। तय किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि मुआवजा कितना दिया जाए।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह प्राप्त हुए कि दिनांक 05.03.1996 को मृतक साहब सिंह टैम्पो संख्या यू.टी.एम. 9478 में यात्रा कर रहे थे। लगभग 10:00 बजे जी.टी. रोड पर शंकर कोल्ड स्टोरेज बेवर के सामने उक्त टैम्पो ट्रक संख्या एच.आर. 26/6368 से टकरा गया, जिससे साहब सिंह सहित कई व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। आरोप है कि ट्रक संख्या एच.आर. 26/6368 को उसके चालक द्वारा बहुत तेजी व लापरवाही से चलाया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप यह दुर्घटना घटित हुई।

4. मृतक साहब सिंह की आयु 30 वर्ष थी तथा वह उत्तर प्रदेश जल निगम में ठेकेदार था और उसके कानूनी उत्तराधिकारियों में उसकी विधवा और नाबालिग पुत्र शामिल हैं। उत्तर प्रदेश जल निगम में ठेकेदार होने के कारण एक्स 39 खा पृष्ठ 16 पर जारी प्रमाण पत्र है जिसका उल्लेख निर्णय में भी किया गया है, लेकिन न्यायाधिकरण ने इस राशि पर विचार नहीं किया तथा माना कि आय 1500 रुपये प्रतिमाह मानी जा सकती है, जिसमें से कटौती एक तिहाई थी, 20% एकमुश्त मुआवजा दिया गया तथा अंत में 15 का गुणक लगाया गया तथा 12% ब्याज सहित 1,48,000 रुपये का मुआवजा दिया गया।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.आर. सिंह ने प्रस्तुत किया कि प्रमाण पत्र से यह साबित होता है कि मृतक की आय 3696 रुपये प्रतिमाह थी, जिसमें चूंकि वह ठेकेदार था और स्वरोजगार में था, इसलिए **गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के. वेलुस्वामी एवं अन्य, 1962, एससीआर (1) 929** के निर्णय के अनुसार 40% जोड़ा जाए, जो उन दिनों में भी उतकृष्ट मूल्य था, 20% एकमुश्त कटौती को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बार-बार अस्वीकार किया गया है, 1/3 की कटौती पर आपत्ति नहीं की गई है, 16 का गुणक और गैर आर्थिक क्षति सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य, 2017 लॉसूट (एससी) 1093** के अनुसार या उत्तर प्रदेश में लागू नियमों के अनुसार दी जाए और 12% का ब्याज बरकरार रखा जाए। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर.सिंह द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री बी.आर.सिंह द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि भविष्य में आय की हानि के शीर्षक के अंतर्गत कोई राशि स्वीकृत नहीं की गई है।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रमाण पत्र के अलावा किसी भी सबूत के अभाव में कोई त्रुटि नहीं है जो किसी भी हस्तक्षेप की मांग करती है, हालांकि, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री ए.के. शुक्ला भविष्य की संभावनाओं को और 16 का गुणक लागू किया जाने के बारे में कुछ इंगित नहीं कर सके ।

7. पक्षों के वकीलों की बात सुनने तथा निर्णय और आदेश का अवलोकन करने के पश्चात, यह न्यायालय महसूस करता है कि उसकी आय 3500/- रुपए प्रतिमाह मानी जा सकती है। दुर्घटना के समय मृतक की आयु 30 वर्ष थी, अतः मृतक की भावी आय हानि

के रूप में 40% आय को जोड़ना होगा, 1/3 की कटौती, 16 का गुणक तथा विधवा के लिए 50,000/- रुपए, पुत्र के लिए 50,000/- रुपए होगी। विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के. शुक्ला की मौखिक आपत्ति स्वीकार की जाती है।

8. इसके अलावा, इस न्यायालय को लगता है कि राशि/मुआवजे की पुनर्गणना की आवश्यकता है। इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवज़ा नीचे गणना की गई है:

i. आय : 3500/- रु.
ii. भावी संभावनाओं का प्रतिशत : 40% अर्थात 1400/- रु.
iii. कुल आय : 3500 + 1400 = 4900/- रु.
iv. 1/3 की कटौती के बाद आय : 3266/- रु. (पूर्णांकित)
v. वार्षिक हानि : 3266 x 12 = 39,192/- रु.
vi. लागू गुणक : 16
vii. कुल हानि : 39,192 x 16 = 6,27,072/- रु.
xii. गैर-आर्थिक मद के अंतर्गत राशि : 1,00,000/- रु.
xiii. कुल मुआवजा : 7,27,072/-

9. जहां तक ब्याज दर का सवाल है, दावा याचिका दायर करने की तारीख से दावा याचिका के निर्णय तक 7% तथा उसके बाद 6% ब्याज दर लागू होगी।

10. मामले की सुनवाई के दौरान मौखिक रूप से कोई अन्य आधार नहीं बताया गया।

11. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पारितोषिक पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर पुनर्गणना की गई राशि को ऊपर बताए अनुसार ब्याज सहित जमा करेगी।

12. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। ए.**वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक / दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

13. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा **श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, 2007(2) जीएलएच 291** में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित की जानी है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये

से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। उपरोक्त विचार को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23/2001 **(श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य)** के विरुद्ध प्रथम अपील में समीक्षा आवेदन संख्या 1/2020 में राशि वितरित करते समय दोहराया गया है।

14. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार नए सिरे से निर्णय लिया जाना चाहिए। राज्य में न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले की लंबितता और **ए.वी. पद्मा (सुप्रा)** के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना चाहिए।

15. न्यायाधिकरण **बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के अनुसार जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवज़ा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। दुर्घटना वर्ष 1991 की है, इसलिए कोई राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

16. रिकॉर्ड न्यायाधिकरण को वापस भेजा जाए।

17. यह न्यायालय अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.आर.सिंह और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.के.शुक्ला को इस न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता करने के लिए धन्यवाद देता है।

(2023) 8 ILRA 787

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश संख्या से प्रथम अपील 665/1997

पवन कुमार अग्रवाल ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपीएसआरटीसी एवं अन्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
श्री आरबीडी मिश्रा, श्री शार्वे सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री एस.के. मिश्रा

A. सिविल विधि-**मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173- यह अपील वाहन के मालिक द्वारा वाहन को हुए नुकसान और उक्त दुर्घटना के कारण व्यवसाय की हानि के लिए की जाती है-दावेदार 76,500/- रुपये की घाटे की राशि का हकदार है। न्यायाधिकरण ने माना है कि दुर्घटना उत्तर प्रदेश की बस की लापरवाही और उतावलेपन के कारण हुई थी, इसलिए अपीलकर्ता को केवल बचाव के लिए बीमा कंपनी द्वारा प्रतिपूर्ति की गई थी, लेकिन**

व्यवसाय की हानि के लिए किए गए यातनापूर्ण कृत्य के लिए यह अपकृत्य फीसकर्ता है जिसे अच्छा करना होगा- वाहन का बीमा बीमा कंपनी के साथ किया गया था और बचाव के रूप में 58,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया गया था जो वाहन को हुए नुकसान के लिए सिर्फ मुआवजा नहीं था। वर्ष 1987 में वाहन, यदि अपीलकर्ता अपने अस्तित्व के लिए एक नया वाहन खरीदना चाहता 1,25,000/- और इसलिए, शेष राशि यूपीएसआरटीसी द्वारा भुगतान किए जाने का आदेश दिया जाना चाहिए था- एमवी अधिनियम के प्रावधान के तहत मुख्य सिद्धांत और अपकृत्य विधि **के अनुसार एक बार यह माना जाता है कि यूपीएसआरटीसी का चालक लापरवाह था, यह बिना कहे चला जाता है कि न्यायाधिकरण को इसके लिए मुआवजा देना होगा- 58,000/- रुपये की राशि अपीलकर्ता को हुए नुकसान के लिए पूर्ण भुगतान नहीं कहा जा सकता है- वाहन पूरी तरह से नष्ट हो गया था और इसलिए बचाव का भुगतान किया गया था- इसी मुद्दे पर निर्णय करते समय न्यायाधिकरण द्वारा इस पहलू को नजरअंदाज कर दिया गया है- अपकृत्य फीसकर्ता अर्थात यूपीएसआरटीसी न्यायाधिकरण के समक्ष आज से 12 सप्ताह के भीतर 7% ब्याज के साथ 50,000/- रुपये की अतिरिक्त राशि जमा करेगा। (पैरा 3 से 7)**

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

कर्नल भीम सिंह बनाम रजनीश नेशनल इंश्योरेंस कंपनी 1-1992 उपभोक्ता (सीपीजे) पेज 205

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री शार्वे सिंह और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विद्वान वकील श्री एस.के. मिश्रा को सुना गया।

2. इस अपील के माध्यम से दावेदार ने एमएसीटी/जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 3.5.1997 के आदेश द्वारा दावा याचिका खारिज करने को चुनौती दी है, जिन्होंने अपीलकर्ता द्वारा अपनी टैक्सी कार संख्या यू.एम.टी. 7855 के लिए मुआवजे/क्षतिपूर्ति का दावा करने के लिए प्रस्तुत दावा याचिका संख्या 71/1988 को खारिज कर दिया था, जो यू.पी.एस.आर.टी.सी. के स्वामित्व वाली बस संख्या यू.एच.आई. 30 से टकरा गई थी, दुर्घटना के परिणामस्वरूप तीन लोगों की मृत्यु हो गई थी और वाहन टैक्सी कार सड़क पर चलने योग्य नहीं थी। जहां तक मृत्यु दावे का संबंध है, दावा याचिका संख्या 64/1988, 65/1988 और 71/1988 दायर की गई थीं और इस मामले में निर्णय की तिथि तक एमएसीटी के समक्ष लंबित थीं।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह है कि अपीलकर्ता टैक्सी कार संख्या यू.एम.टी 7855 का मालिक था। दिनांक 26.12.1987 को लगभग 3:00 बजे, उसकी टैक्सी को प्रेम कुमार नामक व्यक्ति सामान्य गति से रुड़की

से हरिद्वार ले जा रहा था, जब वह ज्वालापुर और बहादराबाद के बीच दुर्घटना स्थल पर पहुंची तो धुरमलपुर डिपो की यू.पी.एस.आर.टी.सी. बस संख्या यू.एच.आई 30 ने अपीलकर्ता की टैक्सी को सामने से टक्कर मार दी, जिससे तीन लोगों की मौके पर ही मृत्यु हो गई और अपीलकर्ता की टैक्सी को भी क्षति पहुंची।

4. अपील में इस आधार पर मुआवजा न देने को चुनौती दी गई है कि दुर्घटना बस के चालक की लापरवाही से हुई थी, न कि कार के चालक की वजह से और उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम को मुआवजा देने का निर्देश दिया जाय।

5. टैक्सी ही एकमात्र वाहन था जिससे अपीलकर्ता अपनी आजीविका चला सकता था, वाहन का बीमा बीमा कंपनी से कराया गया था और 58,000/- रुपये का बचाव भुगतान किया गया था जो वाहन को हुए नुकसान के लिए सिर्फ मुआवजा नहीं था। वर्ष 1987 में यदि अपीलकर्ता अपने जीवनयापन के लिए नया वाहन खरीदना चाहता तो उसे 1,25,000/- रुपये खर्च करने पड़ते और इसलिए शेष राशि का भुगतान यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा किया जाना चाहिए था।

6. इसके विपरीत निष्कर्ष कानून की नज़र में गलत हैं। मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के तहत मुख्य सिद्धांत और अपकृत्य कानून के अनुसार एक बार जब यह माना जाता है कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. का चालक लापरवाह था, तो यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि न्यायाधिकरण को इसके लिए मुआवज़ा देना होगा। 58,000/- रुपये की राशि अपीलकर्ता को हुए नुकसान के लिए पूर्ण भुगतान नहीं कही जा सकती। वाहन पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गया था और इसलिए बचाव के लिए भुगतान किया गया। न्यायाधिकरण ने इसी मुद्दे पर निर्णय देते समय इस पहलू को नजरअंदाज कर दिया है। **कर्नल भीम सिंह बनाम रजनीश नेशनल इंश्योरेंस कंपनी 1-1992 उपभोक्ता (सी.पी.जे) पृष्ठ 205** के निर्णय से भी यह पता चलता है कि दावेदार 6% ब्याज दर के साथ 76,500/- रुपये की घाटे की राशि का हकदार है। प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री एस.के. मिश्रा का यह तर्क कि अपीलकर्ता ने बीमा कंपनी के साथ विवाद सुलझा लिया है और इसलिए यू.पी.एस.आर.टी.सी. को न्यायाधिकरण द्वारा किसी भी दायित्व से मुक्त किया जाना उचित है, यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि गलत के लिए अच्छा करना अपकारकर्ता का काम है, यह दोहरा लाभ नहीं है बल्कि घाटा मांगा गया है। हमारे मामले में न्यायाधिकरण ने माना है कि दुर्घटना यू.पी. की बस की लापरवाही के कारण हुई थी जिसे तेजी और लापरवाही से चलाया गया था और इसलिए मामलों को समेकित न करने के कारण विरोधाभास उत्पन्न हुआ है। दावा याचिका संख्या 64/1988 और 65/1988 को यह कहते हुए अनुमति दी गई कि बस के चालक ने लापरवाही की थी, इसलिए अपकारकर्ता को घाटे की भरपाई करनी होगी। इस मामले को देखते हुए अपीलकर्ता को केवल बचाव के लिए बीमा कंपनी द्वारा प्रतिपूर्ति की गई थी, लेकिन व्यवसाय के नुकसान के लिए

7. यातनापूर्ण कार्य के लिए अपकारकर्ता को क्षतिपूर्ति करनी होगी और इसलिए यह आदेश दिया गया। अपीलकर्ता ने उक्त वाहन पर ऋण लिया था, जिसे भी चुकाना था। न्यायाधिकरण के निष्कर्ष विरोधाभासी हैं और उन्हें खारिज किया जाता है। बिल प्रस्तुत किए गए हैं और इसलिए यह अतिरिक्त राशि यू.पी.एस.आर.टी.सी. को वाहन का मालिक होने और अपने कर्मचारियों के अपकार के लिए चुकानी होगी, बीमा कंपनी द्वारा 58,000/- रुपये का भुगतान अन्य शीर्ष के तहत किया जाता है। उपभोक्ता फोरम के फैसले लागू नहीं होंगे। यह अपील वाहन के मालिक द्वारा वाहन को हुई क्षति तथा उक्त दुर्घटना (किए गए अपकृत्य) के कारण व्यवसाय में हुई हानि के लिए प्रस्तुत की गई है।

8. उपरोक्त के मद्देनजर, यह अपील स्वीकार की जाती है। अपकृत्य फीसकर्ता अर्थात् यू.पी.एस.आर.टी.सी. आज से 12 सप्ताह के भीतर न्यायाधिकरण के समक्ष 50,000/- रुपये की अतिरिक्त राशि 7% ब्याज के साथ जमा करेगा। जब तक लंबा समय बीत न जाए, यह राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

9. रिकार्ड और कार्यवाही तुरन्त निचली अदालत को वापस भेजी जाए।

10. यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शार्वे सिंह और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.के.मिश्रा का आभारी है।

(2023) 8 ILRA 789

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 757 वर्ष 1997

श्रीमती बैजंती देवी एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

राजेश सिसौदिया एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री माधव जैन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री विनोद कांत श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता), सुश्री अनीता श्रीवास्तव

ए. सिविल विधि-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजा देने को चुनौती-ट्रिब्यूनल ने भविष्य में आय की हानि के लिए कोई राशि प्रदान नहीं की। मृतक की आय 2,400/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है-मृतक स्व -नियोजित श्रेणी में आता है और दुर्घटना के समय उसकी आयु 35 वर्ष की आयु वर्ग में थी, इसलिए, *गोबाल्ड मोटर केस के अनुसार भी आय की 40% भविष्य की आय की हानि के लिए जोड़ी जाएगी और प्रणय सेठी केस* के अनुसार 1/3 व्यक्तिगत खर्चों के लिए काटा जाएगा - *श्रीमती* के अनुसार 16 का गुणक स्वीकार्य होगा । *सरला वर्मा केस*- प्रणय सेठी के मामले में निर्णय के आलोक में मृतक

की पत्नी संघ की हानि के लिए 30,000/- रुपये पाने की हकदार होगी। इसके अलावा, *कुर्वन अंसारी के मामले में निर्णय के मद्देनजर मृतक के बेटे को 50,000/- रुपये दिए* जाएंगे। इस प्रकार, मुआवजे की कुल राशि 5,10,080/- रुपये दी जाती है, ब्याज की दर दावा याचिका दायर करने की तारीख से पुरस्कार तक 7% और उसके बाद राशि जमा होने तक 6% होगी। (पैरा 1 से 16)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. कुरवन अंसारी @कुरवन अली बनाम श्याम किशोर मुर्मू (2021) 0 एआईजेईएल-एससी 67995

2. गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आरएमके वेलुसामी (1962) एससीआर 1929

3. राष्ट्रीय इं.सं. कंपनी बनाम प्रणय सेठी (2014) 4 टीएसी 637 एससी

4. श्रीमती सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 2 टीएसी 677 एससी

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. इस अपील के माध्यम से, अपीलकर्ताओं ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/ XIIIवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, आगरा (इसके बाद 'अधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा एम.ए.सी. मुकदमा संख्या 359/1995 (श्रीमती बैजंती देवी और अन्य बनाम राजेश सिसोदिया और अन्य) में पारित दिनांक 7.2.1997 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी है, जिसमें दावा याचिका दायर करने की तारीख से राशि जमा होने तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ दावेदारों/अपीलकर्ताओं को मुआवजे के रूप में 1,00,500/- रुपये की राशि देने का आदेश दिया गया था।

2. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन और प्रतिवादी संख्या 5-ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की विद्वान अधिवक्ता सुश्री अनीता श्रीवास्तव को सुना गया। अभिलेख और निर्णय का अवलोकन किया गया।

3. हालांकि, इसमें दो वाहन शामिल हैं, एक का बीमा ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा तथा दूसरे का न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा किया गया है। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दावेदारों-अपीलकर्ताओं ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत सड़क दुर्घटना में सुरेश बाबू की मृत्यु के लिए मुआवजे का दावा करने के लिए न्यायाधिकरण के समक्ष एक मोटर दुर्घटना दावा याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि 25.9.1995 को सुरेश बाबू-मृतक बस संख्या UP 80G 9898 में यात्री के रूप

में यात्रा कर रहे थे, जो आगरा और मथुरा रोड पर जा रही थी। जब बस 220 केवी विद्युत स्टेशन के पास पहुंची, तो एक ट्रक संख्या UP 85 A 9705 विपरीत दिशा से आया, जिसे उसके चालक द्वारा बहुत तेजी और लापरवाही से चलाया जा रहा था। ट्रक चालक ने ट्रक पर से नियंत्रण खो दिया और बस में टक्कर मार दी। इस दुर्घटना में, यात्री/मृतक को गंभीर चोटें आईं और उक्त चोटों के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

5. मुख्यतः दिए गए मुआवजे से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने यह अपील दायर की है।

6. दुर्घटना विवाद में नहीं है। लापरवाही का मुद्दा अंतिम रूप ले चुका है क्योंकि न तो बीमा कंपनी और न ही वाहन के मालिक ने मौखिक रूप से प्रस्तुतीकरण में इस पर विवाद किया है। दुर्घटना की तिथि पर उक्त वाहन के चालक के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था, यह भी एक निर्णायक तथ्य है। वाहन का बीमा होना और पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन न होना एक निष्कर्ष है, जो अंतिम रूप ले चुका है। निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र मुद्दा न्यायाधिकरण द्वारा दिए जाने वाले मुआवजे की मात्रा है।

7. अब एकमात्र विवाद यह है कि 1,00,500/- रुपये का मुआवज़ा 12% ब्याज के साथ अपीलकर्ता को स्वीकार्य नहीं है। विद्वान न्यायाधिकरण ने भविष्य में आय के नुकसान के लिए कोई राशि नहीं दी। विद्वान न्यायाधिकरण ने मृतक की आय को 17,500/- रुपये प्रति वर्ष माना है, हालाँकि, उसका अपना व्यवसाय था और उसके बाद गलती से 40% काट लिया, यह मानते हुए कि मृतक लापरवाह था। विद्वान न्यायाधिकरण ने 15 का गुणक लागू किया है, न्यायाधिकरण ने अंतिम संस्कार के खर्च के लिए 3,000/- रुपये और संघ के नुकसान के लिए 3,000/- रुपये दिए हैं।

8. यद्यपि, यह प्रस्तुत किया गया है कि यह समग्र रूप से लापरवाही का मामला था न कि सहभागी लापरवाही का, क्योंकि मृतक बस में यात्री था और दुर्घटना बस और ट्रक के बीच हुई थी।

9. विवाद का मुख्य कारण यह है कि मृतक बस में एक यात्री था और भले ही बस के चालक ने ट्रक के लिए 60% और 40% का योगदान दिया हो, लेकिन मृतक के कानूनी उत्तराधिकारियों को देय मुआवजे से कोई राशि नहीं काटी जा सकती।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह भी कहा कि गैर-आर्थिक मदों के तहत दी गई राशि भी कम है और इसे बढ़ाने की आवश्यकता है। आगे कहा गया है कि दुर्घटना के समय मृतक की आयु 35 वर्ष थी, इसलिए लागू गुणक 16 होगा। उन्होंने उपरोक्त तर्कों के समर्थन में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 लॉ सूट (एससी) 1093 और सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एससीसी 121** के निर्णय पर भरोसा किया है।

11. प्रतिवादी-ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी

है कि उन्हें अन्य अपकृत्यकर्ता के खिलाफ वसूली के अधिकार दिए जा सकते हैं। ट्रक की बीमा कंपनी, जिसने पूरी राशि जमा कर दी है, बस की बीमा कंपनी से वसूली करने की हकदार होगी, जो 23 साल की अवधि तक पेश होने में विफल रही है। यह भी दलील दी गई है कि मृतक की आय का कोई ठोस सबूत नहीं है और वह आयकर दाता नहीं था , इसलिए विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई आय में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, मृतक की आय 2,400/- रुपए प्रतिमाह मानी जा सकती है। मृतक स्वरोजगार की श्रेणी में आता है तथा दुर्घटना के समय उसकी आयु 35 वर्ष की थी, अतः, ***गोबल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आरएमके वेलुसामी, 1962 एससीआर (1) 929*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, भविष्य में होने वाली आय की हानि के लिए आय का 40% जोड़ा जाएगा तथा 1/3 व्यक्तिगत 2व्यय के लिए काटा जाएगा, जैसा कि ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी [2014 (4) टीएसी 637 (एससी)]*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है। मृतक की आयु को ध्यान में रखते हुए, ***श्रीमती सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम [2009 (2) टीएसी 677 (एससी)]*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में 16 का गुणक स्वीकार्य होगा।

13. जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का सवाल है, ***प्रणय सेठी (पूर्वोक्त)*** के मामले में दिए गए फैसले के मद्देनजर मृतक की पत्नी को संघ के नुकसान के लिए 30,000 रुपये की राशि पाने का अधिकार है। इसके अलावा, ***कुर्वन अंसारी उर्फ कुर्वन अली बनाम श्याम किशोर मुर्मू, 2021 (0) एआईजेईएल-एससी 67995*** के फैसले के मद्देनजर मृतक के बेटे को 50,000 रुपये दिए जाएंगे।

14. अतः, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर अपीलकर्ताओं-दावेदारों को देय मुआवजे की कुल राशि की गणना नीचे की जा रही है:

(i) वार्षिक आय : रु.28,800/- प्रतिवर्ष (रु.2,400 x 12)

(ii) भविष्य की संभावनाओं के प्रति प्रतिशत 40 % : रु. 11,520/-

(iii) कुल आय : रु. 28,800/- + रु. 11,520/- = रु. 40,320/-

(iv) 1/3 कटौती के बाद आय: रु.40,320/- - रु.13,440/- = रु.26,880/-

(v) लागू गुणक : 16

(vi) निर्भरता की हानि : रु. 26,880/- x 16 = रु. 4,30,080/-

(vii) संघ की हानि के अंतर्गत राशि: रु. 30,000/- + रु. 50,000/- = रु. 80,000/-

(viii) कुल मुआवजा: रु.4,30,080/- + रु.80,000/- = रु.5,10,080/-

15. जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का संबंध है, ब्याज दर दावा याचिका दायर करने की तारीख

से लेकर पुरस्कार तक 7% और उसके बाद राशि जमा होने तक 6% होगी।

16. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित मानी जाएगी। प्रतिवादी-बीमा कंपनी आज से 8 सप्ताह की अवधि के भीतर उपरोक्त निर्देशानुसार ब्याज सहित राशि जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि को जमा की जाने वाली राशि से काट लिया जाएगा।

17. यदि ओरिएण्टल इंश्योरेंस कम्पनी सम्पूर्ण धनराशि जमा करा देती है तो वे बस के मालिक, चालक तथा बीमा कम्पनी से 60% धनराशि वसूलने के हकदार होंगे, जो इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में असफल रहे हैं।

18. रिकॉर्ड और कार्यवाही तुरंत ट्रिब्यूनल को वापस भेजी जाए। दावेदारों को राशि का भुगतान किया जाए और कोई भी राशि सावधि जमा में न रखी जाए।

19. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह सबसे पहले घाटे की अदालती फीस की राशि, यदि कोई हो, काट ले। ***ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल, 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442*** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए , निवेश का आदेश पारित नहीं किया जाता है क्योंकि आवेदक/दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

20. माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात के मद्देनजर, ***श्रीमती हंसागुरी पी. लधानी बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के मामले में, 2007(2) जीएलएच 291*** में रिपोर्ट किया गया, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 50,000/- रुपये से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत प्रदान किए गए 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के तहत उचित राशि काटने का हकदार है और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23/2001 (श्रीमती सुदेशना एवं अन्य बनाम हरि सिंह एवं अन्य) से प्रथम अपील में समीक्षा आवेदन संख्या 1/2020 में राशि वितरित करते समय उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराया गया है। उक्त निर्णय को उच्च न्यायालय गुजरात द्वारा आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 4800/2021 (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस) दिनांक 5.4.2022 को तय) में भी दोहराया गया है।

21. न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका में किए गए संशोधन के अनुसार तदनुसार नया निर्णय लिया जाना चाहिए। राज्य के न्यायाधिकरण इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक संवितरण का संबंध है, उसे वादी की स्थिति और मामले के लंबन तथा ***ए.वी. पद्मा*** *(*पूर्वोक्त*)* के निर्णय पर गौर करना चाहिए। प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए इसे लागू किया जाना चाहिए।

22. न्यायाधिकरण ***बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.1.2022*** के आदेश के अनुसार जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा, क्योंकि मुआवज़ा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। चूंकि लंबी अवधि बीत चुकी है, इसलिए राशि को बिना किसी एफ.डी.आर के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा किया जाना चाहिए।

(2023) 8 ILRA 792

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1726/2001

यूपीएसआरटीसी ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती नीरजा भाटिया और अन्य

... प्रतिवादीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सुनील कुमार मिश्रा, श्री समीर शर्मा, श्री राम सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अंसार अहमद, श्री काशी नरेश मिश्र, श्री रजनीश त्रिपाठी, श्री वीबी केसरवानी, सुश्री तनीषा जहांगीर मोनिर

A. सिविल विधि-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजा के अधिनिर्णय को चुनौती- ट्रिब्यूनल ने भविष्य में आय की हानि के मद में कोई राशि मंजूर नहीं की, हालांकि मृतक एक वेतनभोगी व्यक्ति था - मृतक की आय उसके पेशे को देखते हुए 23,803 रुपये प्रति माह मानी जा सकती है-जिसमें भविष्य में आय की हानि के लिए 25% जोड़ा जाएगा- मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती 1/3 होगी क्योंकि प्रणय सेठी में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर मृतक की आयु 47 वर्ष थी- मृतक की आयु 47 वर्ष थी, *सरला वर्मा* में निर्णय के मद्देनजर लागू गुणक 13 होगा- जहां तक गैर-आर्थिक क्षति के मद में राशि का संबंध है, 70,000 रुपये मंजूर किए जाते हैं-इसलिए, कुल मुआवजा 31,64,390 रुपये है, दावेदार दाखिल करने की तिथि से बढ़े हुए मुआवजे पर 6% ब्याज दर के हकदार होंगे दावा याचिका पर तब तक विचार किया जाएगा जब तक राशि जमा नहीं हो जाती - मूलतः अधिनिर्णित राशि पर न्यायाधिकरण द्वारा दी गई ब्याज दर कायम रहेगी। (पैरा 1 से 28) अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आरएमके वेलुसामी (1962) एससीआर 1929

2. राष्ट्रीय इं.सं. कंपनी बनाम प्रणय सेठी (2014) 4 टीएसी 637 एससी

3. श्रीमती सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 2 टीएसी 677 एससी

4. यूपीएसआरटीसी बनाम कु. ममता एवं अन्य (2016) एआईआर एससी 948

5. दीपाल गिरीशभाई सोनी एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बड़ौदा (2004) एआईआर एससी 2017

6. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य एफएएफओ संख्या 1818/2012

7. राम देव सिंह बनाम चुडास्मा बनाम हंस राज भाई कोडलो (1999) 2 टीएसी-331

8. द न्यू इंडिया एसो. कंपनी लिमिटेड बनाम रुखशाना खातून एवं अन्य एफएएफओ संख्या 3096/2004

9. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी एवं 2 अन्य एफएएफओ संख्या 2389/2016

10. जनरल मैनेजर केरल एसआरटीसी बनाम सुसम्मा थॉमस (1994) एससीसी (2) 176

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार मिश्रा और दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री रजनीश त्रिपाठी को सुना। सह-प्रतिवादी के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ है।

2. इस अपील के माध्यम से, यूपीएसआरटीसी ने मोटर एक्सीडेंट क्लेम्स ट्रिब्यूनल/ ग्यारहवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री दिनांक 20.8.2001, जिसके द्वारा प्रतिवादी-दावेदार संख्या 1 से 3 ने एम.ए.सी.टी. केस संख्या 95/1999 दायर करके एकमात्र कमाने वाले की मृत्यु के लिए मुआवजे का दावा किया था, से असंतुष्ट महसूस किया है। पक्षकारों को दावेदार- और अपीलकर्ता- यूपीएसआरटीसी कहकर संदर्भित किया गया है। ट्रिब्यूनल ने 9% की ब्याज दर से 24,85,012/- रुपये की राशि प्रदान की।

3. शुरुआत में, **एआईआर 2016 एससी 948 में वर्णित यूपीएसआरटीसी बनाम कु. ममता और अन्य** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत, अपीलीय अदालत के समक्ष उठाए गए सभी मुद्दों पर निर्णय लिया जाना चाहिए।

4. निर्णय और पत्रावली से जो तथ्य सामने आए हैं, उनसे प्रतीत होता है कि दावेदारों ने नुकसान के लिए दावा याचिका दायर की थी, लेकिन अनजाने में शीर्षक में याचिका अंतर्गत धारा 163 ए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 उल्लिखित कर दिया था, जैसा कि दावा

याचिका के शीर्षक में उल्लेख किया गया था। अन्य कथन और दावा याचिका मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (इसके बाद 'अधिनियम, 1988' के रूप में संदर्भित) की धारा 166 के तहत दायर की गई थी।

5. दावेदार, मृतक राकेश चंद्र जिनकी वाहन दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, के कानूनी प्रतिनिधि हैं। दावेदारों के अनुसार, राकेश चंद्र भाटिया यूपी राज्य बिजली विभाग के अंतर्गत हरदुआगंज पावर स्टेशन, काशिमपुर, जिला अलीगढ़ में तैनात एक वरिष्ठ सहायक अभियंता थे। दुर्घटना के समय उनकी मासिक आय 23,803/- रुपये प्रति माह थी। वह परिवार में अपनी विधवा और दो बेटियाँ छोड़ गए हैं।

6. दुर्घटना दिनांक 28.1.1999 को दोपहर 1:30 बजे बुलन्दशहर जिले में सिकन्दराबाद और दादरी के बीच ईदगाह से ठीक आगे ग्राम सिकन्दराबाद के निकट राष्ट्रीय राजमार्ग पर घटी। मृतक फिएट कार संख्या डीएल-2 सी-3693 में था जिसकी टक्कर यूपीएसआरटीसी की बस संख्या यूजीयू7161 से हो गई। ऐसा प्रकथन है कि मृतक के अंतिम सांस लेने से पहले उसे दुर्घटनावश कई चोटें लगी थीं। मृतक को सिकंदराबाद सरकारी अस्पताल ले जाया गया जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। दुर्घटना के दौरान लगी आकस्मिक चोटों के कारण मृतक की मृत्यु हो गई। दावेदारों ने दावा किया कि वे मृतक के कानूनी प्रतिनिधि थे क्योंकि पहली उसकी विधवा थी और दूसरी और तीसरी उसकी संतान (बेटियाँ) थीं।

7. दावेदारों ने 31,29,500/- रुपये की राशि का दावा किया। मृतक दावेदारों के साथ अपनी फिएट कार संख्या डीएल-2 सी-3693 में अलीगढ़ से दिल्ली जा रहा था, बाद में मृतक के माता-पिता को प्रो फार्मा प्रतिवादी के रूप में पक्षकार बनाया गया। माता-पिता ने याचिकाकर्ता के दावे का समर्थन किया है और अपने हिस्से का दावा भी किया है। अपीलकर्ता-यूपीएसआरटीसी ने अपने क्षेत्रीय प्रबंधक के माध्यम से, दावा याचिका के पैराग्राफ संख्या 1 से 10 में किए गए दावों को खारिज करते हुए, जवाब दाखिल किया, उन्होंने पैराग्राफ संख्या 11, 12 और 13 में किए गए दावों को स्वीकार कर लिया लेकिन फिर जहां तक पैराग्राफ संख्या 13 और 14 की बात है, तो अपीलकर्ता ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि अपीलकर्ता को उक्त तथ्यों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

8. अतिरिक्त जवाब में अपीलकर्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दावेदार कोई भी राशि प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं। अपीलकर्ताओं ने पक्षकारों के कुसंयोजन (मिस ज्वाइंडर) का तर्क प्रस्तुत किया। अपीलकर्ताओं ने, दुर्घटना जिस तरीके से हुई, उन तथ्यों से भी इंकार किया है। यह कहा गया है कि उक्त तिथि को बारिश हुई थी। उत्तर के पैरा 13 का जब अनुवाद किया गया तो उसमें कहा गया है कि दुर्घटना तो घटित हुई है परंतु जब कार घटनास्थल पर पहुंची तो उसने एक अन्य वाहन को ओवरटेक करने की कोशिश की और इस तरह उसने आकर बस को टक्कर मार दी और इसलिए, यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि मृतक पूरी तरह से लापरवाह था जबकि

बस का ड्राइवर कुशल ड्राइवर था और उसकी ओर से गाड़ी चलाने में कोई लापरवाही नहीं की गई थी। यह तर्क दिया गया कि कार की बीमा कंपनी को पक्षकार ना बनाए जाने के कारण, दावा याचिका खारिज की जानी चाहिए।

9. पक्षकारों ने सबूत पेश किए और यद्यपि याचिका का शीर्षक अंतर्गत धारा 163ए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 था, ट्रिब्यूनल ने इसे मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अंतर्गत माना, जो ट्रिब्यूनल द्वारा उठाए गए मुद्दों में से चुना गया है। ट्रिब्यूनल ने पांच मुद्दे उठाए, सबसे पहले दुर्घटना में शामिल **वाहन चालकों द्वारा ड्राइविंग में लापरवाही** के संबंध में था। दूसरा मुद्दा यह उठाया गया कि क्या मृतक की मृत्यु दुर्घटना में लगी चोटों से हुई थी। तीसरा मुद्दा यह था कि क्या दावा याचिका फिएट कार डीएल-2 सी-3693 के मालिक और बीमा कंपनी के असंयोजन (नॉन जॉइन्डर) के लिए सही नहीं थी और क्या दावेदार किसी भी राशि के हकदार थे या नहीं और अंत में मुद्दा नं. 5 यह साबित करने से संबंधित है कि क्या प्रतिवादी-यहां अपीलकर्ता, मुआवजे के भुगतान हेतु उत्तरदायी थे या नहीं और कितना मुआवजे देने के उत्तरदायी थे?

10. ट्रिब्यूनल ने दावा याचिका को मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अंतर्गत मान कर विचार किया, क्योंकि जहां तक मुद्दा संख्या 1 का प्रश्न है, उसने लापरवाही के मुद्दे का निर्णय किया, जिसे कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163ए के तहत निर्णित करना आवश्यक नहीं है क्योंकि पक्षकारों ने इस आशय के साक्ष्य दिए हैं। जहाँ तक मुद्दा नं. 5 का प्रश्न है, ट्रिब्यूनल ने वेतन को 23803/- रुपये प्रति माह माना है और आय को भी अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अनुसार माना है, न कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163 ए के तहत निर्धारण के अनुसार। अभिलेख से पता चलता है कि जब मुद्दे तय किए जा रहे थे तब अपीलकर्ता ने मामले का विचारण मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं की थी। यह अधिनियम कानून का लाभकारी भाग है और सिर्फ शीर्षक में गलत नाम होने के कारण, यह विधवा और नाबालिग बेटियों के लिए हानिकारक नहीं हो सकता।

11. इस अपील को स्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने नोटिस जारी करने का निर्देश दिया। 2001 से 2003 तक, यह सुनिश्चित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया कि प्रतिवादियों को तामीला हो। अपीलकर्ताओं को तीन सप्ताह के भीतर दावा अधिकरण के पास 15,00,000/- रुपये की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया और प्रतिवादी संख्या 1 को 5,00,000/- रुपये निकासी का हकदार बनाया गया। यह आदेश दिनांक 26.11.2001 का है और आज हम वर्ष 2023 में हैं। ***दीपल गिरीशभाई सोनी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बड़ौदा, एआईआर 2004 एससी 2017*** के निर्णय के आधार पर मुद्दों को चुनौती भी ट्रिब्यूनल के समक्ष नहीं उठाई गई है।

12. यूपीएसआरटीसी ने अंतरिम आदेश के विरुद्ध शीर्ष अदालत के समक्ष अपील दायर की। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त अपील 15.7.2002 को निर्णित हुई, उसके इक्कीस साल बाद यह अपील निर्णित हो रही है।

13. ट्रिब्यूनल के फैसले के खिलाफ चुनौती के आधार में भी, यूपीएसआरटीसी ने इस आधार पर तर्क दिया है कि याचिका मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत नहीं बल्कि धारा 163 ए के तहत थी। ट्रिब्यूनल और इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि ट्रिब्यूनल ने असावधानी के विषय पर निर्णय लेते समय अधिनियम की धारा 166 के तहत मामले पर विचार किया था। जहां तक मुआवजे का विषय है, द्वितीय अनुसूची के तहत राशि पर बहस नहीं की गई है कि अधिकतम स्वीकार्य राशि जहां दावा किया जा सकता है यदि मृतक की अधिकतम आय 40,000/- रुपये प्रति माह थी। द्वितीय अनुसूची घातक मामलों पर लागू नहीं होती है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163ए जो इस प्रकार है:

> "**(163ए)** *संरचित सूत्र के आधार पर मुआवजे के भुगतान के संबंध में विशेष प्रावधान:-*
>
> *(1) इस अधिनियम में या वर्तमान समय में लागू किसी अन्य कानून में या कानून का बल प्राप्त दस्तावेज/साधन में किसी भी प्रावधान के बावजूद, मोटर वाहन का मालिक या अधिकृत बीमाकर्ता मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न दुर्घटना के कारण मृत्यु या स्थायी विकलांगता के मामले में, द्वितीय अनुसूची में बताए अनुसार, यथाप्रकरण, विधिक उत्तराधिकारियों या पीड़ित को, मुआवजा देने का उत्तरदायी होगा।*
>
> *स्पष्टीकरण:- इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, "स्थायी विकलांगता" का वही अर्थ और सीमा होगी जो श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923 (8 /1923) में है।*
>
> *(2) उप-धारा (1) के तहत मुआवजे के किसी भी दावे में, दावेदार को यह याचना करने या स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होगी कि जिस मृत्यु या स्थायी विकलांगता के संबंध में दावा किया गया है वह संबंधित वाहन या वाहनों के स्वामी या किसी अन्य व्यक्ति के किसी गलत कार्य या असावधानी या चूक के कारण थी।*
>
> *(3) केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा जीवन यापन की लागत को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर द्वितीय अनुसूची में संशोधन कर सकती है।]"*

14. मामले को इस दृष्टिकोण से देखते हुए, जब पक्षकारों ने ट्रिब्यूनल के समक्ष और इस न्यायालय के समक्ष भी यह स्वीकार कर लिया है कि दावा याचिका को मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के प्रावधान के अनुसार निर्णित किया जाना था, तो अब इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई कारण नहीं उठाया जा सकता है कि यह याचिका अधिनियम की धारा 163 ए के तहत थी। धारा का उल्लेख केवल शीर्षक में था कि यह धारा

163ए के तहत याचिका थी। ट्रिब्यूनल के समक्ष दलीलों में और अपीलकर्ता के जवाब में भी इस बात पर आपत्ति नहीं की गई है कि मुद्दों को गलत तरीके से तैयार किया गया था और मुद्दों को फिर से तैयार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार अपीलकर्ता ने पूरी जानकारी के साथ सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष मुकदमे का विरोध किया था और यद्यपि इसे अपील के ज्ञापन में एक आधार के रूप में उठाया गया है, इसलिए, यह न्यायालय भी इस मुकदमे का निर्णय इस प्रकार करेगी जैसे यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत था।

15. आधार क्रमांक. 1 से 7 के रूप में उठाए गए अधिनिर्णय के प्रति आपत्ति के आधार, इस प्रकार है:-

"1. क्योंकि, निगम की बस को उचित सावधानी के साथ मध्यम गति से चलाया जा रहा था और दावा न्यायाधिकरण द्वारा इस संबंध में लिया गया विपरीत दृष्टिकोण गलत है।

2. क्योंकि, दुर्घटना पूरी तरह से फिएट कार नंबर डीएल 2सी/3693 जिसे मृतक श्री राकेश चंद्र भाटिया द्वारा चलाया जा रहा था, को जल्दबाजी और असावधानी से चलाने के कारण हुई थी, इसलिए निगम कोई मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी नहीं था।

3. क्योंकि दावा अधिकरण ने दावेदारों की ओर से पेश किए गए सबूतों पर अनुचित जोर दिया और निगम की ओर से पेश किए गए सबूतों को पूरी तरह से महत्व नहीं दे रहा है।

4. क्योंकि, दावेदार की ओर से श्रीमती नीरजा भाटिया, अभियोजन साक्षी-1 (स्वयं दावेदार) द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विश्वास योग्य नहीं था क्योंकि वह एक अत्यधिक हितबद्ध गवाह थी और दावा अधिकरण ने उस पर अनुचित विश्वास रख कर गलती की।

5. क्योंकि, निगम की ओर से गजराज सिंह, बचाव साक्षी-1 (निगम बस का ड्राइवर) और संगम लाल (बस का कंडक्टर) द्वारा पेश किए गए सबूत सबसे भरोसेमंद थे और दावा न्यायाधिकरण ने उस पर भरोसा न करके गलती की।

6. क्योंकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह स्पष्ट था कि मृतक ने बिना यह ध्यान दिए कि निगम की बस विपरीत दिशा से आ रही थी, जल्दबाजी और लापरवाही से दूसरे वाहन को ओवरटेक करने की कोशिश की थी और इस प्रकार, हादसे को टालने के निगम बस चालक के तमाम प्रयासों के बावजूद, हादसा हो गया।

7. क्योंकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, दावा अधिकरण ने स्पष्ट रूप से यह मान कर गलती की कि भले ही फिएट कार ने अचानक एक वाहन को ओवरटेक करने की कोशिश की थी, फिर भी यह आने वाले भारी वाहन की जिम्मेदारी थी कि वह सावधान रहे जिससे की दुर्घटना रोकी जा सके।"

16. आधार नं. 12 में पहली बार, इस प्रकार दर्शाया गया है:

> *'12. क्योंकि, दावा अधिकरण ने मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163ए के तहत मुआवजा प्रदान करने में गलती की, जिसमें अधिकरण, मृतक की वार्षिक आय 2,85,636 रुपये प्रति वर्ष मान कर, अधिनियम की धारा 163ए के साथ संलग्न द्वितीय अनुसूची के तहत प्रदान की गई अधिकतम आय, से आगे निकल गया।'*

17. यह आधार अपीलकर्ता के लिए उपलब्ध नहीं है और एक बार अपीलकर्ताओं द्वारा, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत मुकदमे के रूप में मुकदमा लड़ने के बाद, अपीलकर्ता द्वारा आश्रय लिए गए निर्णय इस वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे। यह दावा याचिका के ज्ञापन में केवल सरसरी तौर पर शीर्षक था कि गलत धारा का उल्लेख किया गया था, पक्षकारों को अच्छी तरह से पता था कि मामला मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत याचिका के रूप में आगे बढ़ना है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी इसे कभी भी मुद्दे के रूप में नहीं उठाया गया, इसलिए उक्त आधार विफल हो जाता है और खारिज किया जाता है।

<u>असावधानी के विषय पर निर्णय</u>

18. असावधानी शब्द का अर्थ है दूसरों के प्रति ऐसी सावधानी बरतने में विफलता, जो एक बुद्धिमान और विवेकी व्यक्ति किसी परिस्थिति में बरतेगा, या ऐसा कार्य करना जो ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति नहीं करेगा। असावधानी जानबूझकर या अनजाने में दोनों हो सकती है जो सामान्यतः अनजाने में होती है। विशेष रूप से, यह गाड़ी असावधानी से चलाने की ओर संकेत करता है और घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों में से एक पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है अन्यथा "रेस इप्सा लोकिटुर" का सिद्धांत जिसका अर्थ है "चीजें स्वयं बोलती है " लागू होगा ।

19. अंशदायी लापरवाही के सिद्धांत पर बार-बार चर्चा की गई है। वह व्यक्ति जिसका दुर्घटना में योगदान है या जो उसका रचयिता है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा।

20. 19.7.2016 को निर्णित, आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील संख्या 1818/2012 (बजाज एलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य) में इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह निर्धारित किया है :

> *"16. लापरवाही का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित आवश्यक स्तर की सावधानी और सतर्कता बरतने में विफलता। लापरवाही ऐसा कुछ कर पाने में हुई चूक है जो एक विवेकपूर्ण व्यक्ति,*

आम तौर पर मानवीय मामलों के संचालन को नियंत्रित करने वाले विचारों से मार्गदर्शन प्राप्त कर, करेगा, या कुछ ऐसा करना जो एक विवेकपूर्ण और बुद्धिमान व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष साक्ष्य का प्रश्न नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला एक निष्कर्ष है। लापरवाही एक निरपेक्ष शब्द नहीं है, बल्कि एक सापेक्ष शब्द है। बल्कि यह एक तुलनात्मक शब्द है। जो एक मामले में लापरवाही हो सकती है, वह कदाचित दूसरे मामले में लापरवाही न हो। जहां सावधानी बरतना कोई कर्तव्य नहीं है वहां, लोकप्रिय अर्थों में, लापरवाही का कोई विधिक महत्व नहीं है। जहां सावधानी का पालन करना कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूक से बचाव के लिए उचित सावधानी बरती जानी चाहिए जिनसे व्यक्ति को शारीरिक चोट पहुंचने की उचित संभावना हो। बेशक, सावधानी का आवश्यक स्तर प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। इन व्यापक सिद्धांतों पर वाहन चालकों की लापरवाही का आकलन आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत का भार विपक्षियों को उठाना होगा। दुर्घटना की व्याख्या करना अपराधी वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह सुस्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, यह तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह गति को धीमा करे और यदि चालक चौराहे पर गति धीमी नहीं करता है बल्कि इस बात की परवाह किए बिना कि कोई अन्य वाहन पार कर रहा है, तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखता है , तो चालक के आचरण से अवश्य ही यह निष्कर्ष निकलता है कि वाहन उसके द्वारा अंधाधुंध तरीके से और लापरवाही से चलाया जा रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम के साथ संलग्न 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने हेतु वैधानिक नियम दिए गए हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का हिस्सा होते हैं। ऐसे विनियमन के खंड-6 में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इसलिए कि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, वह सड़कों के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाएगा, खासकर जब वह

आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था वह चौराहे के पास आ रही थी।

19. यातायात की तेज़ और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) ३३० में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत आने वाला माना जा सकता है। । पैदल चलने वालों की दृष्टि से मोटर वाहनों के प्रयोग से इस देश की सड़कें अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'हिट एंड रन' के मामले जहां दुर्घटनाएं करने वाले मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात हैं। दरअसल ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है| जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे वह लापरवाही से हो या नहीं, तो यथास्थिति, उसे या उसके विधिक प्रतिनिधियों को, नुकसान की वसूली का हकदार होना चाहिए, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई भी अर्थ होना चाहिए .

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110ए और धारा 110बी) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पक्षकारों के अधिकारों को मूलभूत रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा बनाया गया कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजाति में नया, अपनी गुणवत्ता में नया, अपने सिद्धांतों में नया था। वह हर तरह से नया था| अधिनियम, 1988 के तहत विधिक प्रतिनिधियों को, मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दाखिल करने के लिए दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत किसी कार्रवाई की सीमाओं द्वारा बांधा नहीं जा सकता। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपचारों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें व्याख्या द्वारा, सुस्थापित माने जाने वाले वैधानिक सिद्धांतों, को विस्थापित न कर सकें और इसलिए, अदालत मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में लापरवाही के साक्ष्य से पूर्ण रूप से छूट नहीं दे सकती, कानून को निम्नलिखित आधार पर आगे विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन को उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा है, तो यह सामान्यतः दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेस-इप्सा लोकुटर का नियम, मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना

में, अधिक आवृत्ति के साथ लागू किया जा सकता है (जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840) में तीन-न्यायाधीशों की बेंच द्वारा)।

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में यह साबित करने के लिए साक्ष्य का भार सामान्यतः प्रतिवादी पर डाला जा सकता है कि मोटर वाहन उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा था या कि दूसरे पक्ष की ओर से भी उतनी ही असावधानी हुई है।"

21. लापरवाही के विषय पर निर्णय लेते समय ट्रिब्यूनल ने स्पष्ट रूप से मुद्दा संख्या 1 पर अपना निष्कर्ष दावेदारों के पक्ष में दिया है। तथ्यों का निष्कर्ष बहुत स्पष्ट है कि बस दाहिनी ओर से फिएट कार से टकराई। तत्काल मृत्यु यह दर्शाती है कि ट्रिब्यूनल ने यह मानने में कोई गलती नहीं की है कि बस का ड्राइवर ही दुर्घटना का एकमात्र जिम्मेदार था। गवाहों ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि बस का ड्राइवर मानसून के दौरान लापरवाही और असावधानी पूर्वक बस चला रहा था। हालांकि, पीडब्ल्यू-1, चालक, का यह बयान स्पष्ट रूप से पीडब्लू-1 के इस बयान का खंडन है कि उस तारीख को कोई बारिश नहीं हुई थी। असमान परिमाण के दो वाहनों के बीच दुर्घटना से पता चलता है कि बस फिएट कार से टकराई थी और इसलिए, तथ्यान्वेषण में कमी नहीं निकली जा सकती |

22. जहां तक मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 163ए के तहत मामले पर विचार करने का सवाल है, जब मुद्दे तय किए जा रहे थे तो पक्षकारों को आँखें खुली रखनी चाहिए थी| यदि यहाँ प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने मुद्दे तय होने के तुरंत बाद आपत्ति जताई होती तो ***राम देव सिंह बनाम चुड़ास्मा बनाम हंस राज भाई कोडलो, 1999 (2) टीएसी-331*** में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, दावेदार, शीर्षक में संशोधन कर सकता था। अतः ***दीपल गिरीशभाई सोनी और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, बड़ौदा, एआईआर 2004 एससी 2017*** के निर्णय की बुनियाद पर उठाये गए आधार इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे। अत: आधार सं. 12, 13, 14, और 15 पर जोर नहीं दिया जा सकता था। यह और कुछ नहीं बल्कि उत्तर चिंतन है| उक्त आधार प्रथम बार इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए हैं। 3.5.2019 को निस्तारित आदेश संख्या 3096/2004 (द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम रुखसाना खातून और अन्य) में इस न्यायालय के आदेश जिसमें समान दृष्टिकोण अपनाया गया है, वह दावेदारों के लाभ के लिए सुनिश्चित होगा।

23. यह इस न्यायालय को ट्रिब्यूनल द्वारा प्रदान किये गए मुआवजे की ओर ले जाता है, ट्रिब्यूनल ने भविष्य में आय के नुकसान के मद में कोई राशि नहीं प्रदान की जबकि मृतक एक वेतनभोगी व्यक्ति था। मृतक की आय 23,803/- रूपये प्रति माह थी और यह ठोस सबूतों से साबित होता है। ट्रिब्यूनल ने व्यक्तिगत खर्चों के लिए एक तिहाई की कटौती

की है और 13 का गुणक दिया है क्योंकि मृतक की आयु 47 वर्ष थी। ट्रिब्यूनल ने गैर आर्थिक क्षति के मद में 35000/- रुपये दिए हैं। **27.7.2016 को निस्तारित एफएएफओ संख्या 2389/2016 (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और 2 अन्य)** में इस न्यायालय के निर्णय और **महाप्रबंधक, केरल एसआरटीसी बनाम सुसम्मा थॉमस, 1994 एससीसी (2) 176** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के अनुसार दावेदारों के वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है|

24. अपीलीय न्यायालय को दावेदारों द्वारा लिखित प्रति आपत्ति के अभाव में भी उचित मुआवजा देना चाहिए। ट्रिब्यूनल भविष्य में आय के नुकसान के रूप में जाना जाने वाला अनुदान देने के लिए बाध्य था, जिसे **गोबल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड और अन्य बनाम आरएमके वेलुसामी, 1962 एससीआर (1) 929** के निर्णय के दृष्टिगत नहीं प्रदान किया गया था। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि ट्रिब्यूनल ने मुआवजा देने में गलती की है और न ही मुआवजा अधिक है।

25. पक्षकारों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, मृतक की आय उसके पेशे को देखते हुए 23,803/- रुपये प्रति माह मानी जा सकती है। जिसमें भविष्य में आय के नुकसान के लिए 25% जोड़ा जाएगा। **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य, 2017 0 सुप्रीम (एससी) 1050** में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती 1/3 होगी क्योंकि मृतक की आयु 47 वर्ष थी। क्योंकि मृतक की उम्र 47 वर्ष है, ***सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एससीसी 121*** के निर्णय के दृष्टिगत लागू गुणक 13 होगा। जहां तक गैर आर्थिक क्षति के मद में राशि का सवाल है, 70,000/- रुपये प्रदान किये जाते हैं।

26. इसलिए, अपीलकर्ताओं को देय कुल मुआवजे की गणना नीचे दी गई है:

i. प्रति वर्ष आय: रु.23803 x 12 = 2,85,636/-
ii. भविष्य की संभावनाओं के लिए प्रतिशत: 25% अर्थात रु.71,409/-
iii. कुल आय: रु. 2,85,636 + रु. 71,409 = रु. 3,57,045/-
iv. व्यक्तिगत खर्चों के प्रति 1/3 की कटौती के बाद आय: रु. 36,000
v. गुणक लागू: 13
vi. निर्भरता का नुकसान: रु.2,38,030 x 13 = रु.30,94,390/-
vii. गैर आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि: रु. 70,000/-
viii. कुल मुआवजा: रु. 31,64,390/-

27. जहां तक ब्याज दर के मुद्दे का सवाल है, दावेदार दावा याचिका दायर करने की तारीख से राशि जमा होने तक बढ़े हुए मुआवजे पर 6% ब्याज दर के हकदार होंगे। मूल रूप से दी गई राशि पर ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई ब्याज दर बरकरार रखी गई है।

28. उपरोक्त के दृष्टिगत, अपील योग्यता से रहित है और खारिज की जाती है। **27.7.2016 को निस्तारित एफएएफओ नंबर 2389/2016**

(नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और 2 अन्य) में पारित इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार मौखिक प्रति आपत्ति की अनुमति दी जाती है। दावेदारों को उनकी पहचान सुनिश्चित करने के बाद पिछली राशि का भुगतान किया जाए क्योंकि इस अपील को दायर करने की तारीख से 20 साल से अधिक समय बीत चुका है।

29. अंतरिम राहत तुरंत समाप्त कर दी जाएगी। ट्रिब्यूनल का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

(2023) 8 ILRA 800

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2367/2013

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **अपीलकर्ता**

श्री यामिन एवं अन्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री बृजेश चंद्र नाइक

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री निगमेंद्र शुक्ल, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री रोहित नंदन पांडे

ए. सिविल विधि-कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923-धारा 30, 4(1)(ए)- आयुक्त ने 1% ब्याज दर के साथ 301034/- रुपये का मुआवजा दिया है-इसके खिलाफ चुनौती- मृत्यु रोजगार के दौरान हुई और मृतक के बीमाधारक के साथ रोजगार से उत्पन्न हुई-कर्मचारी आयुक्त द्वारा निर्धारित मृतक की आय 2714.56/- रुपये प्रति माह है -दुर्घटना से मृत्यु उचित संदेह से परे साबित होती है-कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 4(1)(ए) में भविष्य की संभावनाओं के शीर्षक के तहत मजदूरी का पचास प्रतिशत प्रावधान है-दावेदार/कर्मचारी ईसी अधिनियम के तहत मुआवजे की गणना करते समय भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के हकदार हैं क्योंकि इसके लिए पूर्ववर्ती शर्तें विधिवत संतुष्ट हैं--इस प्रकार, कुल मुआवजा 12 % की दर से 4,52,800/- रुपये प्रदान किया जाता है। (पैरा 1 से 68)

बी. विधि का सारवान प्रश्न- ईसी अधिनियम, 1923 की धारा 4(4)- अंतिम संस्कार के खर्च को ईसी अधिनियम की योजना के तहत स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है। इसलिए उस शीर्षक के तहत ईसी अधिनियम के तहत मुआवजा देते समय एमवी अधिनियम से उत्पन्न होने वाले अधिकारियों या वैध सहारा का उपयोग नहीं किया जा सकता है। यदि [कर्मचारी] की चोट के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है, तो नियोक्ता उप-धारा (1) के तहत मुआवजे के अलावा, आयुक्त के पास [कर्मचारी] के सबसे बड़े जीवित आश्रित को ऐसे [कर्मचारी] के अंतिम संस्कार के खर्च के लिए या जहां [कर्मचारी] का कोई आश्रित नहीं था या वह अपनी मृत्यु के समय अपने आश्रित के साथ नहीं रह रहा था, उस व्यक्ति को भुगतान

करने के लिए [दो हजार और पांच सौ रुपये] की राशि जमा करेगा, जिसने वास्तव में ऐसा खर्च किया था। (पैरा 63)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. राष्ट्रीय इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी एवं अन्य (2017) 16 एससीसी 680

2. न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 822

3. न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अमित कुमार यादव एवं अन्य

4. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य

5. लैनकैशायर और यॉर्कशायर रेलवे कंपनी बनाम हाईली (1917) एसी 352

6. मैकिनन मैकेंज़ी एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम इब्राहिम महोम्मद इसाक

7. पंजीकृत निदेशक, कर्मचारी राज्य इंश्योरेन्स कॉर्पोरेशन बनाम हाई लैंड कॉफी वर्क्स ऑफ पीएफएक्स सलदान्हा एंड संस एंड अन्य, एसके गुप्ता एंड अन्य बनाम केपी जैन एंड अन्य

8. रमनलाल भाईलाल पटेल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य

9. सुनीता देवी बनाम औतार सिंह एवं अन्य

10. ए एंड एफ ओवरसीज ट्रेड लिमिटेड बनाम ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत अपीलीय प्राधिकरण और अन्य

11. क्षेत्रीय प्रबंधक, टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एसी जगदीसन और अन्य

12. क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त बनाम हुगली मिल्स कंपनी लिमिटेड एवं अन्य ।

13. ब्रह्मपाल @ सम्मय एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी

14. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड बनाम रजिस्ट्रार डायरेक्टर, कर्मचारी राज्य इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन एवं अन्य ।

15. चिल्लू कहार बनाम बर्न एंड कंपनी लिमिटेड

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा पारित)

1. चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

1	परिचय
2	आक्षेपित आदेश में निष्कर्ष
3	विद्वान अधिवक्ता का निवेदन
4	क़ानून का महत्वपूर्ण / सुसंगत प्रश्न
5	विचार एवं विश्लेषण

6	निष्कर्ष एवं निर्देश
7	परिशिष्ट

I. प्रस्तावना

2. प्रस्तुत अपील विद्वान कामगार मुआवजा आयुक्त और सहायक श्रम आयुक्त, उत्तर प्रदेश गाजियाबाद क्षेत्र, गाजियाबाद द्वारा केस संख्या-239/2009, में दिनांक 19.06.2013 को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के तहत (श्री यामीन बनाम मैसर्स सैनी @ प्राइवेट लिमिटेड और अन्य) में किए गए पंचाट से उद्भूत होती है।

3. कर्मकार प्रतिकर (संशोधन) अधिनियम, 2009 (45 वर्ष 2009) की धारा 4 द्वारा अधिनियम की नामावली में संशोधन किया गया है जिसमें "कर्मकार" शब्द के स्थान पर "कर्मचारी" शब्द प्रतिस्थापित किया गया है (18.01.2010 से)। अब यह अधिनियम कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923(8 वर्ष 1923) (1.7.1924 को लागू हुआ) के रूप में खड़ा है। इस दृष्टि से कर्मकार प्रतिकर अधिनियम को कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 19232 के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा।

4. अपील बीमा कंपनी द्वारा दायर की गई है। दावेदारों-प्रतिवादियों की ओर से क्रॉस आपत्तियां उठाई गई हैं।

II. आक्षेपित अधिनिर्णय में निष्कर्ष

5. विद्वान कामगार मुआवजा आयुक्त ने इन तथ्यों को आक्षेपित पंचाट में पाया। मृतक एक सहायक के रूप में काम करता था और ट्रक को साफ करने का काम करता था। मृतक ने ट्रक मालिक से अपनी मजदूरी प्राप्त की और उसके आदेशों के तहत काम किया। नियोक्ता ने पूर्व और मृतक के बीच नियोक्ता कर्मचारी संबंध? का विरोध नहीं किया। मृतक की 27/28-06-2006 को ट्रक में यात्रा करते समय दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मृत्यु हो गई थी। मृत्यु रोजगार के दौरान हुई और बीमित व्यक्ति के साथ मृतक के रोजगार से उत्पन्न हुई। कामगार आयुक्त द्वारा मृतक की निर्धारित आय 2714.56/- रुपये प्रतिमाह है।

6. दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर ट्रक अपीलकर्ता बीमा कंपनी द्वारा विधिवत बीमा किया गया था जिसे मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी पाया गया था। विद्वान कामगार आयुक्त ने यहां सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया मुआवजा दिया:

क्र सं	मद	पैसे
1	वार्षिक आय	32774.72
2	कारक- 219.95 कामगार प्रतिकर अधिनियम की अनुसूची IV के अनुसार	
3	आय- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अनुसार 2714.56 रुपये प्रति माह मजदूरी	
4	हर्जाना - 2714.56 x 219.95 x 50%	2,98,534/-
5	गैर आर्थिक (अंतिम संस्कार खर्च)	2500
6	कुल हर्जाना	301034
7	सूद	1

Shalini

III. अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

7. अपीलकर्ता बीमा कंपनी के अधिवक्ता श्री बी.सी नाइक का तर्क है कि कर्मचारी-नियोक्ता संबंध स्थापित नहीं किया गया था और यह कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

8. इस न्यायालय ने पाया कि आक्षेपित आदेश रिकॉर्ड में साक्ष्य की सामग्री और त्रुटिहीन मूल्यांकन के लिए दिमाग के पूर्ण आवेदन को दर्शाता है जो दर्शाता है कि मृतक बीमित व्यक्ति के रोजगार में था। उन्होंने नियोक्ता से अपना वेतन प्राप्त किया और सीधे बाद के आदेशों के तहत काम किया। नियोक्ता कर्मचारी संबंध के सभी तत्व तथ्य के मामले हैं जो विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष स्थापित किए गए थे। इन निष्कर्षों में कोई अशक्तता नहीं है और न ही किसी विकृति का उल्लेख किया जा सकता है। नियोक्ता कर्मचारी संबंध के संबंध में तथ्यों के इन निष्कर्षों से कानून का कोई ठोस सवाल नहीं उठता है।

9. श्री निगमेन्द्र शुक्ला, दावेदारों के अधिवक्ता प्रतिवादियों ने क्रॉस आपत्तियों पर बल दिया। यह तर्क दिया गया है कि वैधानिक प्रावधानों के पालन में मुआवजा नहीं दिया गया था।

10. क्रॉस आपत्तियों की अनुरक्षणीयता के लिए अपीलकर्ता की प्रारंभिक आपत्तियों को अपीलकर्ता बीमा कंपनी द्वारा तर्कों के बाद काफी हद तक माफ कर दिया गया था। क्रॉस आपत्तियों को पोषणीय माना जाता है क्योंकि वे पंचाट में दोष रेखाओं का खुलासा करते हैं जो जड़ तक जाते हैं। आपत्तियों के आधार कानून के पर्याप्त प्रश्न उठाते हैं।

IV. कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न

11. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री निगमेन्द्र शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि कर्मचारी मुआवजा अधिनियम और मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के प्रावधान कभी-कभी ओवरलैप होते हैं, और संचालन के ऐसे सामान्य क्षेत्रों में एम.वी. अधिनियम के तहत प्रावधान/न्यायिक अधिकारियों को ई.सी. अधिनियम के तहत उचित मुआवजा देने के लिए लागू किया जा सकता है। कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 के तहत दावेदारों द्वारा दावा किया जा सकता है।

12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री बी.सी नाइक ने प्रस्तुत किया कि ई.सी. अधिनियम और एम.वी. अधिनियम अलग-अलग क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं और एक अधिनियम के प्रावधान दूसरे अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं किए जा सकते हैं। विशेष रूप से अंतिम संस्कार के खर्च ई.सी. अधिनियम के तहत विधिवत प्रदान किए जाते हैं और एम.वी. अधिनियम के तहत उक्त प्रावधानों/विधि न्यायिक निर्णयों को लागू करना पूर्व अधिनियम की योजना के विपरीत होगा।

13. तर्कों के बाद, पक्षों के अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि मामले के तथ्यों में कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:

(ए) क्या कर्मचारी मुआवजा अधिनियम के तहत तत्काल कार्यवाही में दावेदारों को भविष्य

की संभावनाएं दी जा सकती हैं? यदि हां, तो उक्त लाभों के अनुदान के लिए क्या पूर्वापेक्षाएं स्थापित की जाएंगी और उनकी गणना का तरीका क्या है?

(ख) क्या कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अंतर्गत दावेदार मोटर यान अधिनियम, 1988 के अंतर्गत की गई कार्यवाहियों में उसी शीर्ष के अंतर्गत दिए गए मुआवजे के अनुरूप अंत्येष्टि व्यय के हकदार हैं?

V. विचार और विश्लेषण:

14. इस महंगाई के दौर में कल्याण कानून अक्सर श्रमिकों और उनके आश्रितों के लिए भाग्य की अनियमितताओं के खिलाफ एकमात्र सुरक्षा रखता है। कानून से बहने वाला "न्यायसंगत मुआवजा" और अदालतों द्वारा दिया गया दुर्भाग्य द्वारा लगाए गए निजीकरण से दावेदारों को राहत प्रदान करता है।

15. कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 को अधिनियमित करते समय विधायिका के लाभकारी आशय का खुलासा कानून के उद्देश्य में किया गया है जो नियोक्ताओं के कुछ वर्ग द्वारा दुर्घटना से चोट/मृत्यु के लिए मुआवजे के भुगतान के लिए अपने कर्मचारियों को प्रदान करना है। सांविधिक व्याख्या की स्थापित सिद्धांतों के अनुसार यह आवश्यक है कि ई. सी. अधिनियम, 1923 एक कल्याणकारी विधान होने के नाते उदारतापूर्वक व्याख्या की जा सकती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कामगारों के उस वर्ग को न्यायोचित मुआवजा प्रदान किया जाए जो ई. सी. अधिनियम, 1923 के लक्षित लाभार्थी हैं। साथ ही, यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरतनी होगी कि किसी अपात्र व्यक्ति को कोई अवैध लाभ न हो। [संदर्भ: ए एंड एफ ओवरसीज ट्रेड लिमिटेड बनाम ग्रेच्युटी अधिनियम और अन्य के भुगतान के तहत अपीलीय प्राधिकारी; मंडल प्रबंधक, टाटा ए.आई.जी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एसी जगदीसन और अन्य; क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त बनाम हुगली मिल्स कंपनी लिमिटेड और अन्य; ब्रह्मपाल उर्फ सम्मायंड एक अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी6; भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड बनाम क्षेत्रीय निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम और अन्य]

16. चिल्लू कहार बनाम बर्न एंड कंपनी लिमिटेड में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित "विस्तारित निर्माण" की अवधारणा आज भी सच है और इस मामले पर लागू होगी:

"16. किताबों में रिपोर्ट पढ़ना, इस भावना से बचना असंभव है कि संकट में एक कामगार की सहायता करने की इच्छा, जो निस्संदेह अपने रोजगार से उत्पन्न होने वाले कारणों से पीड़ित है, अक्सर क़ानून की भाषा को खींचती है। यहां तक कि उन मामलों में जहां निर्णय कामगार के पक्ष में था, विद्वान न्यायाधीशों की टिप्पणियों से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने दूसरे पक्ष पर तर्क का दबाव महसूस किया और शायद अधिनियम की नीति के अनुसरण में कामगार के पक्ष में फैसला किया। श्री सान्याल ने बताया, और मेरी

राय में, समय की प्रगति के साथ, उन परिस्थितियों की अवधारणा जिसमें कामगार मुआवजे का हकदार है, फैल गई है और अधिक से अधिक उदार हो गयी है। यहां तक कि अगर हाल के दिनों में सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा उन तथ्यों पर लिया गया दृष्टिकोण जो कमोबेश उन तथ्यों से मिलते-जुलते हैं, जिनसे निपटना है, एक ऐसा दृष्टिकोण है जो केवल अधिनियम के एक विस्तारित निर्माण को सहन कर सकता है, तो इसका पालन करना गलत नहीं होगा जब तक कि यह मौलिक सिद्धांतों के विरोध में प्रबल रूप से कुछ नहीं है।

17. सुनीता देवी बनाम औतार सिंह और अन्य में झारखंड उच्च न्यायालय की अवधारणा का उल्लेख करना भी उचित होगा। कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की योजना की व्याख्या करते समय:

"12. यह अच्छी तरह से तय है कि अधिनियम सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी कानून का एक हिस्सा है, इसका प्रमुख उद्देश्य कामगार की रक्षा करना है और इसलिए, अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या बहुत संकीर्ण रूप से नहीं की जानी चाहिए ताकि कामगार को मुआवजे से वंचित किया जा सके जो संसद ने सोचा था कि उन्हें मिलना चाहिए। विधायिका का इरादा नियोक्ता को कामगार का बीमाकर्ता बनाना था, जो चोटों या मृत्यु के कारण होने वाले नुकसान के लिए जिम्मेदार था, जो कि होना चाहिए था, जबकि कामगार अपने काम में लगा हुआ था।

18. मुआवजे के अनुदान के लिए विधायी योजना का एक विहंगम दृश्य चर्चा की प्रस्तावना करेगा। ई. सी. अधिनियम, 1923 की धारा-2 (एम) मजदूरी को परिभाषित करती है जबकि अधिनियमन की धारा 3 मुआवजे के लिए नियोक्ता पर देयता लगाती है। मुआवजे की गणना करने की विधि अनुसूची के सपठित धारा 4 में बताई गई है, और मजदूरी की गणना का तरीका ई.सी. अधिनियम की धारा 5 में प्रदान किया गया है।

19. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1923 की धारा 2 (ड) मजदूरी को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित करती है:-

"(एम) "मजदूरी", में कोई भी विशेषाधिकार या लाभ शामिल है जो धन में अनुमान लगाने में सक्षम है, यात्रा भत्ता या किसी भी यात्रा रियायत के मूल्य या किसी भी पेंशन या भविष्य निधि के लिए [कर्मचारी] के नियोक्ता द्वारा भुगतान किए गए योगदान के अलावा या एक [कर्मचारी] को भुगतान की गई राशि उसके रोजगार की प्रकृति द्वारा उस पर लगाए गए किसी भी विशेष खर्च को आच्छादित करने के लिए; "

20. प्रावधान में 'मजदूरी' की एक समावेशी परिभाषा शामिल है और उक्त अवधि को व्यापक दायरा प्रदान करता है। एक अंतर्निहित विधायी स्वीकृति है कि मजदूरी शब्द के कई घटक हैं। मासिक वेतन जो एक प्रमुख घटक है, को ई.सी. अधिनियम के तहत मुआवजे के अनुदान के लिए "मजदूरी" निर्धारित करने के लिए अन्य घटकों के साथ एकत्रित किया जाना है। समावेशी परिभाषा द्वारा बनाए गए "मजदूरी" शब्द का विस्तार रमनलाल भाईलाल

पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य में सर्वोच्च न्यायालय की पकड़ द्वारा समर्थित है, जिसने इन शर्तों में विधियों में समावेशी परिभाषा की व्याख्या की है:

"जहां परिभाषा एक समावेशी परिभाषा है, शब्द 'शामिल' का उपयोग क़ानून में प्रयुक्त शब्द के अर्थ को बढ़ाने के इरादे को इंगित करता है। नतीजतन, शब्द को न केवल ऐसी चीजों को समझने के रूप में माना जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक आयात के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी जो व्याख्या खंड घोषित करता है कि वे शामिल होंगे। इस प्रकार, जहां एक परिभाषा 'साधन' के विपरीत 'शामिल' शब्द का उपयोग करती है, परिभाषित शब्द न केवल अपने सामान्य लोकप्रिय और प्राकृतिक अर्थ को धारण करता है, बल्कि विस्तारित वैधानिक अर्थ भी धारण करता है।

(क्षेत्रीय निदेशक, कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम पी.एफ.एक्स सलदान्हा एंड संस और अन्य, एस.के गुप्ता और अन्य बनाम केपी जैन और अन्य के हाई लैंड कॉफी वर्क्स भी देखें)।

21. श्रम की न्यायसंगत मजदूरी से इनकार नहीं किया जा सकता। भविष्य में आय में वृद्धि अर्थशास्त्र और कानून में दी गई है। उदाहरण के लिए मजदूरी तय करने के मानदंड (उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, मुद्रास्फीति आदि) में निरंतर वृद्धि देखी जाती है जिससे मजदूरी में तदनुरूपी वृद्धि की आवश्यकता पैदा होती है। इस कठोर आर्थिक वास्तविकता को वैधानिक मान्यता प्राप्त है। मजदूरी में समय पर वृद्धि की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अंतर्गत समुचित सरकारों द्वारा समय-समय पर मजदूरी में वृद्धि संबंधी नियमित अधिसूचनाएं जारी की जाती हैं। इस संबंध में ई.सी. अधिनियम, 1923 की धारा 4 (आईबी) को भी संदर्भित किया जा सकता है (नीचे उद्धृत):

"[(1 बी) केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उप-धारा (1) के प्रयोजनों के लिए, एक कर्मचारी के संबंध में ऐसी मासिक मजदूरी निर्दिष्ट कर सकती है जिसे वह आवश्यक समझे।

22. भविष्य में बढ़ी हुई मजदूरी जीवन यापन की बढ़ती लागत से उत्पन्न अनिश्चितताओं के खिलाफ श्रमिक वर्ग के लिए एक विधायी सुरक्षा है। भावी मजदूरी में वृद्धि का आश्वासन औद्योगिक शांति का और औद्योगिक विकास का इंजन है। एक श्रमिक को उचित मुआवजा प्रदान करने का विधायी इरादा और सभी नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक न्याय हासिल करने का प्रस्तावना संवैधानिक लक्ष्य इस उपाय से प्राप्त होता है। भविष्य की मजदूरी में वृद्धि "मजदूरी" के अर्थ के भीतर आती है जैसा कि ई. सी. अधिनियम, 1923 में परिभाषित किया गया है।

23. मुआवजे की राशि की गणना ई. सी. अधिनियम, 1923 की धारा 4 और 5 में वर्णित है। धारा 4 के प्रासंगिक पैरा नीचे दिए गए हैं: -

"4 (1) (ए) जहां चोट से मृत्यु होती है	: मृतक [कर्मचारी] की मासिक मजदूरी के पचास प्रतिशत के बराबर राशि प्रासंगिक कारक से गुणा;

	नहीं तो [एक लाख और बीस हजार रुपये] की राशि, जो भी अधिक हो;

24. धारा 5 (जहां तक यह यहां लागू है) निम्नानुसार है: -

"धारा 5. मजदूरी की गणना करने की विधि- इस अधिनियम में और उसके प्रयोजनों के लिए अभिव्यक्ति "मासिक मजदूरी" से वह मजदूरी अभिप्रेत है जो किसी मास की सेवा के लिए संदेय समझी जाती है (चाहे मजदूरी मास द्वारा संदेय हो या किसी अन्य अवधि द्वारा या टुकड़े की दरों पर), और निम्नानुसार परिकलित की जाती है, अर्थात:- (महत्त्व सन्निविष्ट)

(ए) जहां * [कर्मचारी], दुर्घटना से ठीक पहले बारह महीने से कम नहीं, की निरंतर अवधि के दौरान, नियोक्ता की सेवा में रहा है, जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, * [कर्मचारी] का मासिक वेतन कुल मजदूरी का बारहवां हिस्सा होगा जो उस अवधि के अंतिम बारह महीनों में नियोक्ता द्वारा उसे भुगतान के लिए तय है;

(बी) जहां दुर्घटना से ठीक पहले सेवा की पूरी निरंतर अवधि जिसके दौरान * [कर्मचारी] नियोक्ता की सेवा में था जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, एक महीने से भी कम था, * [कर्मचारी] की मासिक मजदूरी औसत मासिक राशि होगी, जो दुर्घटना से ठीक पहले बारह महीनों के दौरान, एक ही नियोक्ता द्वारा एक ही काम पर नियोजित एक * [कर्मचारी] द्वारा अर्जित किया जा रहा था, या, यदि कोई * [कर्मचारी] नियोजित नहीं था, तो उसी इलाके में समान काम पर नियोजित;

(ग) अन्य मामलों में [उन मामलों सहित जिनमें खंड (बी) के तहत मासिक मजदूरी की गणना करने के लिए आवश्यक जानकारी की कमी के लिए संभव नहीं है], मासिक मजदूरी नियोक्ता से दुर्घटना से ठीक पहले सेवा की अंतिम निरंतर अवधि के संबंध में अर्जित कुल मजदूरी का तीस गुना होगी, (ऐसी अवधि वाले दिनों की संख्या से विभाजित करके) जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।"

25. धारा 4 और धारा 5 परिशिष्ट में उनकी संपूर्णता में पुन: प्रस्तुत किए गए हैं।

26. औद्योगिक न्यायशास्त्र में अधिकांश स्थापित प्रथाएं मासिक आधार पर मजदूरी को देय बनाती हैं। मजदूरी में भविष्य की वृद्धि पिछली सेवा और अंतिम आहरित मजदूरी पर आधारित है। भावी मजदूरी का दावा कामगार की सेवा के प्रत्येक दिन के साथ परिपक्व होता है। भविष्य की मजदूरी देय होने की राशि और अवधि को सटीकता के साथ निर्धारित नहीं किया जा सकता है। ई.सी. अधिनियम की धारा 5 में वाक्यांश "जो भी अन्य अवधि" भविष्य की संभावनाओं को अपने गुना में लाता है जिसमें अभी तक अपरिभाषित भविष्य की तारीख में देय बढ़ी हुई मजदूरी शामिल है।

27. संक्षेप में, मजदूरी मूलभूत आधार है और भविष्य की संभावनाएं ई. सी. अधिनियम,

1923 के तहत "मजदूरी" का एक अनिवार्य घटक है। मासिक मजदूरी ई.सी. अधिनियम, 1923 के अनुसार सख्ती से निर्धारित की जाएगी। मोटर यान अधिनियम, 1988 और उसके तहत बनाए गए वैधानिक नियमों (उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998) के तहत न्यायिक मिसालों का निकाय उस शीर्ष के तहत मुआवजे के निर्धारण को सक्षम कर सकता है।

28. आवश्यक वस्तु अधिनियम और एम0वी0 अधिनियम के उपबंधों का तुलनात्मक और समानांतर मूल्यांकन करते हुए चर्चा को आगे बढ़ाया जाएगा।

29. ई. सी. अधिनियम, 1923 की धारा 2 (ई) 'नियोक्ता' को निम्नानुसार परिभाषित करती है:

(ङ) "नियोक्ता" के अन्तर्गत व्यक्तियों का कोई निकाय चाहे निगमित हो या न हो और किसी नियोक्ता का कोई प्रबंध अभिकर्ता और मृत नियोक्ता का विधिक प्रतिनिधि और जब किसी कर्मकार की सेवाएं अस्थायी रूप से उस व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को उधार दी जाती हैं या किराए पर दी जाती हैं जिसके साथ कर्मकार ने सेवा या शिक्षुता की संविदा की है, ऐसे अन्य व्यक्ति का अर्थ है, जबकि कामगार उसके लिए काम कर रहा है;

30. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा-2 (30), 'मालिक' को निम्नानुसार परिभाषित करती है:

(30) "मालिक" का अर्थ है एक व्यक्ति जिसके नाम पर एक मोटर वाहन पंजीकृत है, और जहां ऐसा व्यक्ति नाबालिग है, ऐसे नाबालिग का अभिभावक, और एक मोटर वाहन के संबंध में जो किराया-खरीद, समझौते का विषय है, या पट्टे का एक समझौता या हाइपोथिकेशन का एक समझौता, उस समझौते के तहत वाहन के कब्जे में व्यक्ति।

31. आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत "नियोक्ता" और मोटर वाहन अधिनियम के तहत "मालिक" की परिभाषा यह स्थापित करती है कि वाहन का कोई भी मालिक ई. सी. अधिनियम के तहत भी नियोक्ता हो सकता है। वाहन के अनिवार्य बीमा के लिए मालिक पर एम.वी. अधिनियम द्वारा डाली गई बाध्यता भी एक नियोक्ता को बाध्य कर सकती है।

32. इसी प्रकार, आवश्यक वस्तु अधिनियम के अंतर्गत वह कामगार जो मालिक का वाहन चला रहा है, मोटर वाहन अधिनियम के अंतर्गत तृतीय पक्ष आच्छादित का हकदार हो सकता है। यदि एम.वी. अधिनियम के तहत तीसरे पक्ष के लाभों के लिए पात्रता स्थापित की जाती है, तो इसे अस्वीकार करना सही ठहराना मुश्किल होगा।

33. मोटर वाहन अधिनियम के तहत तीसरे पक्ष की हकदारियां धारा 146 में प्रदान की गई हैं जो यहां निकाली गई है:

"146. तृतीय पक्ष जोखिम के विरुद्ध बीमा की आवश्यकता- (1) कोई भी व्यक्ति, यात्री के रूप को छोड़कर, या किसी अन्य व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग करने की अनुमति नहीं देगा, जब तक कि उस

व्यक्ति या उस अन्य व्यक्ति द्वारा वाहन के उपयोग के संबंध में बल न हो, जैसा भी मामला हो, इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने वाली बीमा पॉलिसी:

[बशर्ते कि खतरनाक सामान ले जाने वाले वाहन के मामले में, या ले जाने के लिए, सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 (6 वर्ष 1991) के तहत बीमा की पॉलिसी भी होगी।

स्पष्टीकरण- मोटर वाहन चलाने वाला व्यक्ति केवल एक भुगतान कर्मचारी के रूप में, जबकि वाहन के उपयोग के संबंध में लागू है, इस उप-धारा द्वारा अपेक्षित ऐसी कोई नीति नहीं है, उप-धारा के उल्लंघन में कार्य करने के लिए नहीं समझा जाएगा जब तक कि वह जानता है या विश्वास करने का कारण नहीं है कि ऐसी कोई नीति लागू नहीं है।

(2) उपधारा (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व वाले और सरकारी प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किसी ऐसे वाहन को एन्गेज नहीं होगी जो किसी वाणिज्यिक उद्यम से असंबद्ध है।

(3) समुचित सरकार, आदेश द्वारा, निम्नलिखित प्राधिकरणों में से किसी के स्वामित्व वाले किसी भी वाहन को उपधारा (1) के संचालन से छूट दे सकती है, अर्थात्: -

(ए) केंद्र सरकार या राज्य सरकार, यदि वाहन का उपयोग किसी वाणिज्यिक उद्यम से जुड़े सरकारी उद्देश्यों के लिए किया जाता है;

(ख) कोई स्थानीय प्राधिकरण;

(ग) कोई भी राज्य परिवहन उपक्रम:

परन्तु ऐसे किसी प्राधिकारी के संबंध में ऐसा कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उस प्राधिकारी के किसी वाहन के उपयोग से उद्भूत किसी दायित्व को पूरा करने के लिए इस अधिनियम के अधीन इस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार उस प्राधिकारी द्वारा कोई निधि स्थापित नहीं कर ली गई है और उसका अनुरक्षण नहीं किया गया है, जो वह प्राधिकारी या उसके नियोजन में कोई व्यक्ति तृतीय पक्षकारों को उपगत कर सकता है।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "समुचित सरकार" से यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार अभिप्रेत है, और-

(i) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के स्वामित्व वाले किसी निगम या कंपनी के संबंध में, केन्द्रीय सरकार या उस राज्य सरकार से अभिप्रेत है;

(ii) केंद्र सरकार और एक या अधिक राज्य सरकारों के स्वामित्व वाले किसी निगम या कंपनी के संबंध में, केंद्र सरकार का मतलब है;

(iii) किसी अन्य राज्य परिवहन उपक्रम या किसी स्थानीय प्राधिकरण के संबंध में उस सरकार से अभिप्रेत है जिसका उस उपक्रम या प्राधिकरण पर नियंत्रण है।

34. बीमा अनुबंधों की सीमाओं का दायरा मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147 में वर्णित है जो इस प्रकार है:

"147. नीतियों की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं- (1) इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के लिए, बीमा की पॉलिसी एक ऐसी पॉलिसी होनी चाहिए जो-

(ए) एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया जाता है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है; और

(बी) उप-धारा(2) में निर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति/व्यक्तियों के वर्गों का बीमा करता है-

(i) किसी भी दायित्व के खिलाफ जो उसके द्वारा मृत्यु या शारीरिक [माल के मालिक या वाहन में किए गए उसके अधिकृत प्रतिनिधि सहित किसी भी व्यक्ति को चोट] या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के कारण या सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग से उत्पन्न होने के संबंध में उसके द्वारा किया जा सकता है;

(ii) सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न होने वाले सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ:

बशर्ते कि एक पॉलिसी की आवश्यकता नहीं होगी-

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न दायित्व के अलावा उसके रोजगार के दौरान और उसके दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में या ऐसे कर्मचारी द्वारा बनाए गए शारीरिक चोट के संबंध में दायित्व को आच्छादित करने के लिए, 1923 (8 वर्ष 1923), ऐसे किसी भी कर्मचारी की मृत्यु, या शारीरिक चोट के संबंध में -

(ए) वाहन चलाने में लगे हुए, या

(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के कंडक्टर के रूप में या वाहन पर टिकटों की जांच में लगा हुआ है, या

(ग) यदि यह माल गाड़ी है, वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करने के लिए।

[नीतियों की आवश्यकता और दायित्व की सीमाएं. - (1) इस अध्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन करने के लिए, बीमा की पॉलिसी एक पॉलिसी होनी चाहिए जो-

(ए) एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया जाता है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है; और

(बी) उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों का बीमा करता है -

(i) किसी भी दायित्व के खिलाफ जो माल के मालिक या उसके अधिकृत प्रतिनिधि सहित किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में उसके द्वारा वहन किया जा सकता है मोटर वाहन में ले जाया गया या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के कारण या सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न हुआ;

(ii) किसी परिवहन यान के किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के विरुद्ध, किसी माल वाहन के अनावश्यक यात्रियों को छोड़कर, सार्वजनिक स्थान पर मोटर यान के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होने वाली।

संदेह को दूर करने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उत्पन्न हुआ माना जाएगा, इस बात के बावजूद कि वह व्यक्ति जो मृत या घायल है या संपत्ति जो क्षतिग्रस्त है, उस समय सार्वजनिक स्थान पर नहीं थी, यदि वह कार्य या चूक जिसके कारण दुर्घटना हुई, सार्वजनिक स्थान पर हुई।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी व्यक्ति की मृत्यु या किसी व्यक्ति को गंभीर क्षति से संबंधित तृतीय पक्ष बीमा के प्रयोजनों के लिए, केन्द्रीय सरकार बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण के परामर्श से उपधारा (1) के अधीन बीमा पॉलिसी के लिए ऐसे प्रीमियम के संबंध में आधार प्रीमियम और बीमाकर्ता का दायित्व विहित करेगी।

(3) इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए एक पॉलिसी तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति के पक्ष में जारी नहीं किया जाता है जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावित होती है, निर्धारित प्रपत्र में बीमा का प्रमाण पत्र और किसी भी शर्त के निर्धारित विवरण शामिल होते हैं और किसी भी अन्य निर्धारित मामलों की, जिसके अधीन पॉलिसी जारी की जाती है; और विभिन्न मामलों में विभिन्न रूपों, विवरणों और मामलों को निर्धारित किया जा सकता है।

(4) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, मोटर यान (संशोधन) अधिनियम, 2019 के प्रारंभ होने से पहले जारी बीमा पॉलिसी को संविदा के अधीन विद्यमान निबंधनों पर जारी रखा जाएगा और इस अधिनियम के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो उक्त अधिनियम द्वारा इस अधिनियम का संशोधन नहीं किया गया हो।

(5) जहां इस अध्याय के प्रावधानों या इसके तहत बनाए गए नियमों या विनियमों के तहत बीमाकर्ता द्वारा जारी किए गए आच्छादित नोट का बीमा पॉलिसी द्वारा निर्दिष्ट समय के भीतर पालन नहीं किया जाता है, वहां बीमाकर्ता, आच्छादित नोट की वैधता की अवधि की समाप्ति के सात दिनों के भीतर, इस तथ्य को पंजीकरण प्राधिकारी या ऐसे अन्य प्राधिकारी को सूचित करेगा जैसा कि राज्य सरकार निर्धारित कर सकती है।

(6) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन बीमा

की पॉलिसी जारी करने वाला बीमाकर्ता पॉलिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को किसी दायित्व के संबंध में क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा जिसे पॉलिसी उस व्यक्ति या व्यक्तियों के उन वर्गों के मामले में आच्छादित करने का अभिप्राय रखती है।

35. आवश्यक आज्ञा संहिता के अधीन उपगत दायित्व को एम.वी. अधिनियम के अधीन निष्पादित संविदा द्वारा भी आच्छादित किया जा सकता है। इस मामले में बीमा पॉलिसी मोटर वाहनों से पहले की अवधि से संबंधित है। (संशोधन) अधिनियम, 2019 हालांकि, एम.वी. अधिनियम के असंशोधित प्रावधानों के अनुसार और तत्काल मामले में बीमाकर्ता और बीमित व्यक्ति के बीच निष्पादित बीमा अनुबंध ई.सी.अधिनियम के तहत नियोक्ता/बीमित व्यक्ति की देयता को आच्छादित करता है।

36. विवाद का एक और पहलू है। एम.वी. अधिनियम के तहत दावा याचिका के लिए कार्रवाई का कारण तब उत्पन्न होता है जब बीमित वाहन की लापरवाही से ड्राइविंग के कारण मृत्यु होती है।

37. क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का दायित्व अधिकार अधिनियम के अधीन तभी उत्पन्न होता है जब कर्मकार-मृतक के नियोजन के दौरान दुर्घटना से मृत्यु हो जाती है।

38. लापरवाही से वाहन चलाना तब होता है जब समझदारी से वाहन चलाने में विफलता होती है और सुरक्षित ड्राइविंग के मानदंडों का पालन नहीं किया जाता है। दूसरे शब्दों में, "उचित देखभाल" करने के लिए आक्षेपित वाहन के चालक की विफलता।

39. इसी प्रकार, आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन किसी कर्मचारी से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने नियोजन का कार्य करते समय उचित सावधानी बरते। दावेदार का मामला तब कमजोर हो जाता है जब किसी कर्मचारी की मृत्यु मृतक की सरासर लापरवाही या असावधानी के कारण होती है।

40. चर्चा को बिंदु में प्राधिकरण द्वारा मजबूत किया जा सकता है। मैकिनॉन मैकेंज़ी एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम इब्राहिम मोहम्मद इस्साक में उच्चतम न्यायालय ने वर्कमेन कंपनसेशन एक्ट के तहत मुआवजे के अनुदान पर एक कामगार की असावधानी के प्रभाव पर विचार करते हुए कहा:

"5. अधिनियम के भीतर आच्छादित होने के लिए दुर्घटना से चोट रोजगार के दौरान और बाहर उत्पन्न होनी चाहिए। "रोजगार के दौरान" शब्दों का अर्थ है "उस काम के दौरान जिसे करने के लिए कामगार को नियोजित किया जाता है और जो इसके लिए आकस्मिक है। "रोजगार से उत्पन्न" शब्दों का अर्थ यह समझा जाता है कि "रोजगार के दौरान, सेवा के कर्तव्यों के लिए आकस्मिक कुछ जोखिम के परिणामस्वरूप चोट लगी है, जो कि जब तक मास्टर के लिए कर्तव्य में संलग्न नहीं होता है, यह विश्वास करना उचित है कि कामगार को अन्यथा नुकसान नहीं हुआ होगा। दूसरे शब्दों में, दुर्घटना और रोजगार के बीच एक कारण का संबंध होना चाहिए। अभिव्यक्ति "रोजगार

से उत्पन्न" फिर से रोजगार की प्रकृति तक ही सीमित नहीं है। यह अभिव्यक्ति रोजगार पर लागू होती है - इसकी प्रकृति, इसकी स्थितियों, इसके दायित्वों और इसकी घटनाओं के लिए। यदि इनमें से किसी भी कारक के कारण कामगार को विशेष खतरे के क्षेत्र में लाया जाता है, तो चोट वह होगी जो 'रोजगार से बाहर' उत्पन्न होती है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो यदि दुर्घटना जोखिम के कारण हुई थी जो रोजगार की एक घटना है, तो मुआवजे के लिए दावा सफल होना चाहिए, जब तक कि निश्चित रूप से कामगार ने अपने स्वयं के अविवेकपूर्ण कार्य से खुद को एक अतिरिक्त जोखिम में उजागर नहीं किया हो। लंकाशायर और यॉर्कशायर रेलवे कंपनी बनाम हाईले [(1917) एसी 352] में लॉर्ड सुमेर ने यह निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित परीक्षण निर्धारित किया कि क्या दुर्घटना "रोजगार से उत्पन्न हुई":

"हालांकि, मेरी राय में, एक परीक्षण है जो हमेशा किसी भी दर पर लागू होता है, क्योंकि यह क़ानूनी शब्दों पर उत्पन्न होता है, और यह आम तौर पर कुछ वास्तविक सहायता का होता है। यह है: क्या यह घायल व्यक्ति के रोजगार का हिस्सा, खतरे में, पीड़ित होने के लिए, या ऐसा करने के लिए जो उसकी चोट का कारण बना? यदि हाँ, तो दुर्घटना उसके रोजगार से उत्पन्न हुई। यदि नहीं, तो ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि, जो जोखिम उठाना, पीड़ित होना या करना रोजगार का हिस्सा नहीं था, वह रोजगार से उत्पन्न होने वाली दुर्घटना का कारण नहीं हो सकता। यह पूछने के लिए कि क्या कामगार का कारण रोजगार के क्षेत्र में था, या रोजगार के सामान्य जोखिमों में से एक था, या रोजगार के लिए यथोचित रूप से आकस्मिक था, या इसके विपरीत, एक अतिरिक्त जोखिम था और रोजगार के क्षेत्र से बाहर, यह पूछने के सभी अलग-अलग तरीके हैं कि क्या यह उसके रोजगार का हिस्सा था कि काम करने वाले को वैसा ही काम करना चाहिए जैसा वह अभिनय कर रहा था, या उस स्थिति में होना चाहिए था जिसमें वह था, जिससे उस रोजगार के दौरान उसे चोट लगी।

41. एम.वी. अधिनियम, 1988 की धारा 168 में वाक्यांश "सिर्फ मुआवजा" विकसित न्यायिक मानकों के अनुसार अदालतों द्वारा अधिनिर्णय के माध्यम से एक कल्याणकारी उपाय को प्राप्त करने के विधायी इरादे का खुलासा करता है।

42. वाक्यांश "सिर्फ मुआवजा" एम.वी. अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है सामग्री और एम.वी. अधिनियम के तहत "सिर्फ मुआवजा" की अभिव्यक्ति का दायरा अदालतों द्वारा टॉर्ट्स के कानून में अच्छे अधिकारियों के प्रकाश में विकसित किया गया है। ई.सी. अधिनियम के तहत मुआवजा एक उचित मुआवजा होने के लिए उत्तरदायी है जिसकी गणना ई.सी. अधिनियम की योजना के अनुपालन में की जानी है।

43. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य में उच्चतम न्यायालय ने "उचित मुआवजा" देते हुए स्वर्णिम अर्थ के मार्ग की वकालत की:

“2. … दिल की पीड़ा या मानसिक क्लेशों के लिए वास्तविक मुआवजा नहीं हो सकता है।

सर्वोत्कृष्ट हानि की व्यावहारिक गणना में निहित है जो यथार्थवादी सन्निकटन के दायरे में होना चाहिए। इसलिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 (संक्षिप्तता "अधिनियम") यह निर्धारित करती है कि "उचित मुआवजा" दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, कानून की अदालत के लिए "उचित मुआवजा" निर्धारित करना एक चुनौती बन जाता है, जो न तो एक बोनस है और न ही एक अप्रत्याशित लाभ है, और साथ ही, एक मामूली राशि नहीं होनी चाहिए।

44. हाल ही में एक चोट के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अमित कुमार यादव और अन्य में अच्छे अधिकार पर जोर दिया कि सिर्फ मुआवजे की परिकल्पना की गई है कि "मुआवजे को दुर्घटना से पहले की स्थिति में दावेदार को पूरी तरह से और पर्याप्त रूप से बहाल करना चाहिए":

"यह देखा गया कि अधिनियम, 1988 की योजना से पता चलता है कि पंचाट "न्यायसंगत" होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि मुआवजे को, संभव सीमा तक, दुर्घटना से पहले की स्थिति में दावेदार को पूरी तरह से और पर्याप्त रूप से बहाल करना चाहिए। हर्जाना देने का उद्देश्य गलत तरीके से किए गए गलत के परिणामस्वरूप हुए नुकसान को निष्पक्ष, उचित और न्यायसंगत तरीके से पूरा करना है। एक व्यक्ति को न केवल शारीरिक चोट के लिए मुआवजा दिया जाना है, बल्कि उस नुकसान के लिए भी जो उसे इस तरह की चोट के परिणामस्वरूप हुआ है। इसका मतलब है कि उसे पूरा जीवन जीने में असमर्थता के लिए मुआवजा दिया जाना है, उन सामान्य सुविधाओं का आनंद लेने में असमर्थता जो उसने आनंद लिया होगा, लेकिन चोटों के लिए, और जितना वह कमाता था या कमा सकता था उतना कमाने में उसकी असमर्थता।

45. अधिकार प्राप्त अधिनियम की योजना के अनुरूप न्यायोचित मुआवजे की अवधारणा विधायी जनादेश की प्राप्ति को सक्षम बनाती है।

46. इस मामले के तथ्यों में अपीलकर्ता के पास मुआवजे की मांग के लिए एम.वी. अधिनियम और ई.सी. अधिनियम के तहत कार्यवाही करने का विकल्प था। उन्होंने बाद वाले को चुना। इस संबंध में मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"167. कतिपय मामलों में प्रतिकर के दावों के संबंध में विकल्प - कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (8 वर्ष 1923) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति से इस अधिनियम के अधीन और कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अधीन प्रतिकर के लिए दावा उत्पन्न होता है, प्रतिकर का हकदार व्यक्ति अध्याय X के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उन अधिनियमों में से किसी के अधीन ऐसे प्रतिकर का दावा कर सकेगा किंतु दोनों के अधीन नहीं।

47. प्रश्न यह है कि क्या एम.वी. अधिनियम के प्रावधान, उसके तहत बनाए गए नियम और बिंदु में मामले ई.सी.अधिनियम के तहत भविष्य की संभावनाओं की गणना में सहायता कर सकते हैं।

48. एम.वी. अधिनियम और ई.सी. अधिनियम अलग-अलग क़ानून हैं जो अलग-अलग क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं और विभिन्न न्यायाधिकरणों में कार्यवाही की परिकल्पना करते हैं। हालांकि, विधियों की विविधता आवश्यक रूप से असमान विधायी इरादों को चित्रित नहीं करती है और मंचों की बहुलता कानूनी अधिकारों से इनकार नहीं कर सकती है। पूर्ववर्ती पैराग्राफों में बनाई गई संविधियों की तुलनात्मक जांच भी दो अधिनियमों के संचालन के अतिव्यापी क्षेत्रों को प्रकट करती है। उद्देश्य की व्यापक अनुरूपता और संचालन के सामान्य क्षेत्रों में प्रमाणित दो विधियों की वस्तुओं की अंतर्निहित समानता अधिनियमितियों की एक एकीकृत व्याख्या द्वारा प्राप्त की जा सकती है। एक संविधि और उसके अधीन प्राधिकारियों के उपबंधों को दूसरे अधिनियमन के सादृश्य द्वारा लागू किया जा सकता है ताकि बाद के विधायी आशय को साकार किया जा सके।

49. वैधानिक निर्माण का एकीकृत दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करेगा कि दावेदारों को अधिनियमों के तहत उनके कानूनी अधिकारों से वंचित नहीं किया जाता है क्योंकि एक मंच को दूसरे अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए वरीयता में चुना जाता है। एकीकृत व्याख्या विधियों के समग्र पठन और अनुरूप न्यायिक अधिकारियों के भ्रमित आवेदन में प्रवेश करेगी। विधियों को उनके अतिव्यापी और संचालन के सुसंगत क्षेत्रों की सीमा तक एक विस्तारित विधायी योजना के हिस्से के रूप में पढ़ा जाएगा।

50. अब सावधानी: वैधानिक व्याख्या की एकीकृत पद्धति को लागू करने से पहले कुछ पूर्वापेक्षाएँ स्थापित की जानी चाहिए और इसे लागू करते समय विभिन्न सीमाओं का पालन करना होगा। सबसे पहले, यह एक तथ्य के लिए स्थापित किया जाना चाहिए कि दावेदारों को संबंधित विधियों के तहत दो न्यायाधिकरणों में से किसी एक से समान रूप से संपर्क करने का अधिकार था। दूसरे, किसी मामले के तथ्यों में दावेदारों के कानूनी अधिकारों की पुष्टि की जानी चाहिए। तीसरा, जांच की यह लाइन केवल विधियों के सामान्य और अतिव्यापी क्षेत्रों में लागू की जाएगी। अंत में, निर्माण की यह विधि उन प्रावधानों तक विस्तारित नहीं होगी जो एक विपरीत इरादे या क्षेत्रों का खुलासा करते हैं जो संबंधित अधिनियमों के तहत विशिष्ट प्रावधानों द्वारा आच्छादित किए जाते हैं।

51. न्यायालय का प्रयास अन्य पार्टी के पूर्वाग्रह के बिना दावेदारों को लाभान्वित करके दोनों अधिनियमों के वैधानिक इरादे को साकार करना होना चाहिए। न्यायालय किसी भी अधिनियम की वैधानिक योजना के विपरीत किसी भी स्पष्ट प्रावधान या अधिनियम से अलग नहीं हो सकता है।

52. भविष्य की संभावनाओं के लिए दावेदारों की पात्रता जैसा कि पहले देखा गया था, ई.सी. अधिनियम के प्रावधानों से निकलती है, लेकिन उक्त क़ानून में राशि की गणना की विधि अनुपस्थित है।

53. एम.वी. अधिनियम/उसके अधीन बनाए गए नियमों के तहत मजदूरी की भावी गणना करने की विधि और मामले ई.सी. अधिनियम के तहत मुआवजे के निर्धारण का विश्वसनीय मार्गदर्शन कर सकते हैं।

54. भविष्य की संभावनाओं का प्रमुख तरीका अदालतों द्वारा विकसित किया गया था, जबकि एम.वी. अधिनियम के तहत सिर्फ मुआवजा दिया गया था। ऐसे न्यायिक विधि निर्णयों के लाभ से, उत्तर प्रदेश राज्य में इसके संबंध में नियम विरचित किए गए हैं।

55. उत्तर प्रदेश मोटर यान नियमावली में भावी संभावनाओं की गणना का प्रावधान 1998; नियमों का नियम 220ए-3(iii) प्रासंगिक है और इसे यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"(3) मृतक की भावी संभावनाओं को मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम मजदूरी में निम्नानुसार जोड़ा जाएगा: "

(i) 40 वर्ष से कम आयु: वेतन का 50%।

56. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य में उच्चतम न्यायालय के समक्ष यूपी नियम, 1998 विचार के लिए आया। उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त) में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर:

"10. प्रणय सेठी में बिंदु पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि एक संकेत एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में निर्णय इस तरह के वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, खासकर जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। प्रिस्क्रिप्शन वर्ष 15% उन मामलों में जहां मृतक प्रणय सेठी में बताए गए अनुसार 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासी सिद्धांत के अभाव में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। यदि किसी सांविधिक लिखत ने एक फार्मूला तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है, तो ऐसे सांविधिक लिखत को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि सांविधिक लिखत अन्यथा अमान्य न पाया जाए। (महत्त्व सन्निविष्ट)

57. प्रणय सेठी (उपरोक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य में उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में भविष्य की संभावनाएं उत्तर प्रदेश नियम,

1998 पर ध्यान दिए बिना निर्धारित की गई थीं। उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त) में इस तथ्य का उल्लेख किया गया था:

"8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी के निर्णय से यह नहीं पता चलता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3(iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में बताए गए 15% के मुकाबले वेतन का 20% अतिरिक्त करने पर विचार करता है। अपने सबमिशन में, चूंकि वैधानिक साधन रखा गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, प्रणय सेठी के निर्णय को इस तरह के वैधानिक नियम के आवेदन को सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।

58. उत्तर प्रदेश नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनका संचालन प्रणय सेठी (उपरोक्त) द्वारा बाधित नहीं है। उत्तर प्रदेश नियम, 1998 में कानून का बल है और उपयुक्त मामलों में यह पूरी शक्ति के साथ लागू होगा। उत्तर प्रदेश नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में होल्डिंग्स, योग्य लाभार्थियों पर उत्तर प्रदेश नियम, 1998 द्वारा प्रदत्त लाभों को कम नहीं कर सकती है।

59. इस मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि दावेदार/उत्तरदाता ई.सी. अधिनियम के तहत कार्यवाही में भविष्य की संभावनाओं के शीर्ष के तहत मजदूरी के 50% के हकदार हैं, क्योंकि ऊपर चर्चा की गई पूर्वापेक्षाएँ संतुष्ट हैं।

VI. निष्कर्ष और निर्देश

60. कानून के पहले सारभूत प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया गया है:

61. दावेदार/कामगार ई.सी. अधिनियम के तहत मुआवजे की गणना करते समय भविष्य की संभावनाओं के अनुदान के हकदार हैं क्योंकि इसके लिए पूर्ववर्ती शर्तें विधिवत संतुष्ट हैं। भविष्य की संभावनाओं के शीर्ष के तहत देय राशि ई.सी. अधिनियम के तहत निर्धारित मजदूरी का पचास प्रतिशत है।

62. कानून के दूसरे महत्वपूर्ण प्रश्न पर आते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि बीमा कंपनी के अधिवक्ता श्री बी.सी नाइक की प्रस्तुतियों में योग्यता है कि अंतिम संस्कार के खर्च को स्पष्ट रूप से ई.सी. अधिनियम की योजना के तहत प्रदान किया गया है। इसलिए उस शीर्ष के तहत ई.सी. अधिनियम के तहत मुआवजा देते समय एम.वी. अधिनियम से उद्भूत, अधिकारियों के लिए कोई वैध सहारा नहीं हो सकता है। एकीकृत व्याख्या को अपनाने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें इस मुद्दे में स्थापित नहीं की गई हैं।

63. ई. सी. अधिनियम, 1923 की धारा-4(4) की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है जिसमें इस प्रकार कहा गया है:

"(4) यदि [कर्मचारी] की चोट के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है, तो नियोक्ता, उप-धारा (1) के तहत मुआवजे के अलावा, आयुक्त के पास [दो हजार और पांच

सौ रुपये] की राशि जमा करेगा, जो कि [कर्मचारी] के सबसे बड़े जीवित आश्रित को ऐसे [कर्मचारी] के अंतिम संस्कार के खर्च के लिए या जहां [कर्मचारी] का आश्रित नहीं था या वह अपने आश्रित के साथ नहीं रह रहा था। उसकी मृत्यु का समय उस व्यक्ति को जिसने वास्तव में ऐसा व्यय किया था। [बशर्ते कि केंद्र सरकार, समय-समय पर, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस उप-धारा में निर्दिष्ट राशि में वृद्धि कर सकती है।

64. कानून के दूसरे सारभूत प्रश्न का तदनुसार उत्तर इस प्रकार दिया गया है:

65. अंत्येष्टि व्यय और अन्य लाभों का निर्धारण निर्वाचन आयोग अधिनियम, 1923 की धारा 4 (4) के अनुसार किया जाएगा।

66. कानून के सारभूत प्रश्नों के उत्तरों के आलोक में, दावेदार/क्रॉस आपत्तिकर्ता जिस मुआवजे के हकदार हैं, वह नीचे सारणीबद्ध है:

i. दुर्घटना की तारीख - 27/28.06.2006
ii. मृतक का नाम - राशिद
iii. मृतक की आयु - 23 वर्ष
iv. मृतक का व्यवसाय - सहायक/सफाईकर्मी
v. मृतक के साथ दावेदारों का नाम, आयु और संबंध

क्रम सं	नाम	रिश्ता
1	यामिन	पिता
2	मुन्नी	माता
3	वाहिद	भाई

मुआवजे की गणना

क्रम	मद	पैसा (रुपये में)
सं		
1	वार्षिक आय	32774.72
2	कटौती - ईसी अधिनियम 1923 की धारा 4 (1) (ए) के अनुसार 50%	
3	फैक्टर- 219.95 ईसी अधिनियम, 1923 की अनुसूची IV के अनुसार	
4	आय- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अनुसार 2714.56 रुपये प्रति माह मजदूरी	
5	हर्जाना - 2714.56 x 219.95 x 50%	2,98.533.74
6	भविष्य की संभावनाएं	1,49,266.87
7	गैर आर्थिक (अंतिम संस्कार खर्च)	5000
8	कुल हर्जाना	4,52,800.61
9	ब्याज	12%

67. गुणकों को लागू करके एम.वी. अधिनियम के तहत गणना की गई क्षतिपूर्ति और ई.सी. अधिनियम के तहत दर आधारित गणना अंततः लगभग समान आंकड़ों पर पहुंची। इस संबंध में एक चार्ट परिशिष्ट का हिस्सा है। चार्ट इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मुआवजे की राशि में भौतिक अंतर को चित्रित नहीं करता है। (परिशिष्ट देखें)।

68. दावेदारों-उत्तरदाताओं की ओर से दायर क्रॉस ऑब्जेक्शन को ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है और अपील तदनुसार खारिज की जाती है।

i

VII परिशिष्ट

ईसी अधिनियम की धारा 4 और 5

"[4. प्रतिकर की रकम-(1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, प्रतिकर की रकम निम्नलिखित होगी, अर्थात:-

(ए) जहां चोट से मृत्यु होती है

मृतक 1[कर्मचारी] के मासिक वेतन के 3 [पचास प्रतिशत] के बराबर राशि को संबंधित कारक से गुणा किया जाता है; या 4 [एक लाख और बीस हजार रुपये], जो भी अधिक हो;

(b) जहां चोट के कारण स्थायी पूर्ण विकलांगता होती है

घायल 1[कर्मचारी] के मासिक वेतन के 5 [साठ प्रतिशत] के बराबर राशि प्रासंगिक कारक से गुणा की जाती है; या 6 [एक लाख और चालीस हजार रुपये] की राशि, जो भी अधिक हो:

7 [बशर्ते कि केंद्र सरकार, समय-समय पर सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, खंड (क) और (ख) में उल्लिखित मुआवजे की राशि में वृद्धि कर सकती है;]

स्पष्टीकरण I.- खंड (ए) और खंड (बी) के प्रयोजनों के लिए, "प्रासंगिक कारक", [कर्मचारी] के संबंध में अनुसूची IV के दूसरे कॉलम में निर्दिष्ट कारक का अर्थ है उस अनुसूची के पहले कॉलम में प्रविष्टि के खिलाफ वर्षों की संख्या निर्दिष्ट करना जो 1[कर्मचारी] की आयु के पूर्ण वर्षों के समान हैं, उसके अंतिम जन्मदिन पर तुरंत उस तारीख से पहले जिस पर मुआवजा देय था। 8 * * * **

(c) जहां चोट के कारण स्थायी आंशिक विकलांगता होती है।

(i) अनुसूची I के भाग II में निर्दिष्ट चोट के मामले में, मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो स्थायी कुल विकलांगता के मामले में देय होगा, जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया गया है, उस चोट के कारण कमाई क्षमता के नुकसान का प्रतिशत होने के नाते, और

(ii) अनुसूची I में निर्दिष्ट नहीं की गई चोट के मामले में, स्थायी कुल विकलांगता के मामले में देय मुआवजे का ऐसा प्रतिशत जो कमाई क्षमता के नुकसान के अनुपात में है (जैसा कि योग्य चिकित्सक द्वारा मूल्यांकन किया गया है) स्थायी रूप से चोट के कारण।

स्पष्टीकरण I - जहां एक ही दुर्घटना के कारण एक से अधिक चोटें आती हैं, इस शीर्ष के तहत देय मुआवजे की राशि को एकत्रित किया जाएगा, लेकिन किसी भी मामले में ऐसा नहीं है कि उस राशि से अधिक है जो चोटों के परिणामस्वरूप स्थायी पूर्ण विकलांगता होने पर देय होती।

स्पष्टीकरण II- उपखंड (ii) के प्रयोजनों के लिए कमाई क्षमता के नुकसान का आकलन करने में, योग्य चिकित्सक अनुसूची I में निर्दिष्ट विभिन्न चोटों के संबंध में कमाई क्षमता के नुकसान के प्रतिशत के संबंध में उचित संबंध रखेगा;

(घ) जहां अस्थायी विकलांगता, चाहे चोट से कुल या आंशिक परिणाम ए

पच्चीस प्रतिशत के बराबर राशि का अर्धमासिक भुगतान 1[कर्मचारी] की मासिक मजदूरी का, उपधारा (2) के प्रावधानों के अनुसार भुगतान किया जाना है। 2

[(1क) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, भारत के बाहर हुई दुर्घटना के संबंध में 1[कर्मचारी] को संदेय प्रतिकर की रकम नियत करते समय, आयुक्त ऐसे 1[कर्मचारी] को उस देश की विधि के अनुसार, जिसमें दुर्घटना हुई है, ऐसे 1[कर्मचारी] को दी गई प्रतिकर की राशि, यदि कोई हो, को ध्यान में रखेगा और उसके द्वारा नियत रकम को 1[कर्मचारी] को दिए गए प्रतिकर की रकम से तदनुसार घटाएगा उस देश के कानून के साथ।3

[(1 बी) केंद्र सरकार, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उप-धारा (I) के प्रयोजनों के लिए, एक कर्मचारी के संबंध में ऐसी मासिक मजदूरी निर्दिष्ट कर सकती है जिसे वह आवश्यक समझे;]

(2) उप-धारा (1) के खंड (डी) में निर्दिष्ट अर्ध-मासिक भुगतान सोलहवें दिन देय होगा-

(i) विकलांगता की तारीख से जहां ऐसी विकलांगता अट्ठाईस दिनों या उससे अधिक की अवधि तक रहती है, या

(ii) विकलांगता की तारीख से तीन दिनों की प्रतीक्षा अवधि की समाप्ति के बाद जहां ऐसी विकलांगता अट्ठाईस दिनों से कम की अवधि तक रहती है; और उसके बाद विकलांगता के दौरान या पांच साल की अवधि के दौरान, जो भी अवधि कम हो, अर्ध-मासिक:
बशर्ते कि-

(ए) किसी भी एकमुश्त या अर्ध-मासिक भुगतान से कटौती की जाएगी, जिसके लिए 1[कर्मचारी] किसी भी भुगतान या भत्ते की राशि का हकदार है, जो 1[कर्मचारी] ने नियोक्ता से मुआवजे के माध्यम से प्राप्त किया है विकलांगता की अवधि के दौरान इस तरह की एकमुश्त या पहली छमाही भुगतान की प्राप्ति से पहले, जैसा भी मामला हो; और

(बी) किसी भी मामले में कोई अर्ध-मासिक भुगतान उस राशि से अधिक नहीं होगा, यदि कोई हो, जिसके द्वारा दुर्घटना से पहले 1[कर्मचारी] की मासिक मजदूरी की आधी राशि ऐसी मजदूरी की आधी राशि को निष्पादित करती है जो वह दुर्घटना के बाद कमा रहा है।

स्पष्टीकरण - कोई भी भुगतान या भत्ता जो 1[कर्मचारी] ने नियोक्ता से अपने चिकित्सा उपचार के लिए प्राप्त किया है, उसे परंतुक के खंड (ए) के अर्थ के भीतर मुआवजे के माध्यम से प्राप्त भुगतान या भत्ता नहीं माना जाएगा।

[(2 ए) कर्मचारी को रोजगार के दौरान हुई चोटों के इलाज के लिए उसके द्वारा किए गए वास्तविक चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति की जाएगी।

(3) उस तारीख से पहले विकलांगता को समाप्त करने पर, जिस पर कोई अर्ध-मासिक भुगतान देय होता है, उस आधे महीने के संबंध

में उस आधे महीने में विकलांगता की अवधि के अनुपात में राशि देय होगी।

[(4) यदि 2 [कर्मचारी] की चोट से उसकी मृत्यु हो जाती है, तो नियोक्ता, उप-धारा (1) के तहत मुआवजे के अलावा, आयुक्त के पास 3 [दो हजार और पांच सौ रुपये] की राशि जमा करेगा, जो 2 [कर्मचारी] के सबसे बड़े जीवित आश्रित को ऐसे 2 [कर्मचारी] के अंतिम संस्कार के खर्च के लिए या जहां 2 [कर्मचारी] का आश्रित नहीं था या उसके साथ नहीं रह रहा था। उसकी मृत्यु के समय उस व्यक्ति पर निर्भर जिसने वास्तव में ऐसा व्यय किया था।

[बशर्ते कि केंद्र सरकार, समय-समय पर सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस उप-धारा में निर्दिष्ट राशि में वृद्धि कर सकती है।

[4 क. देय होने पर प्रतिकर का संदाय किया जाना और चूक के लिए शास्ति-- (1) धारा 4 के अधीन प्रतिकर का संदाय यथाशीघ्र किया जाएगा।

(2) ऐसे मामलों में जहां नियोक्ता दावा की गई सीमा तक मुआवजे के लिए दायित्व स्वीकार नहीं करता है, वह दायित्व की सीमा के आधार पर अनंतिम भुगतान करने के लिए बाध्य होगा, जिसे वह स्वीकार करता है, और, इस तरह के भुगतान आयुक्त के पास जमा किया जाएगा या 2 [कर्मचारी] को किया जाएगा, जैसा भी मामला हो, 2 [कर्मचारी] के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना।

[(3) जहां कोई नियोक्ता, इस अधिनियम के अधीन देय प्रतिकर का संदाय नियत तारीख से एक मास के भीतर करने में चूक करता है, वहां आयुक्त-

(क) निदेश देगा कि नियोजक, बकाया राशि के अतिरिक्त, उस पर बारह प्रतिशत की दर से साधारण ब्याज का भुगतान करेगा। (भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने किसी अनुसूचित बैंक की उधार दरों की अधिकतम सीमा से अनधिक अथवा इससे अधिक दर पर देय राशि पर सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएगी; और

(ख) यदि, उनकी राय में, देरी के लिए कोई औचित्य नहीं है, तो निर्देश दें कि नियोक्ता, बकाया राशि और उस पर ब्याज के अलावा, पचास प्रतिशत से अधिक नहीं, एक और राशि का भुगतान करेगा। जुर्माने के रूप में ऐसी राशि का:

बशर्ते कि दंड के भुगतान के लिए एक आदेश खंड (बी) के तहत नियोक्ता को कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना पारित नहीं किया जाएगा कि इसे पारित क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "अनुसूचित बैंक" का अर्थ है भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची में तत्समय सम्मिलित बैंक।

[(3 ए) उप-धारा (3) के तहत देय ब्याज और जुर्माना 2 [कर्मचारी] या उसके आश्रितों को भुगतान किया जाएगा, जैसा भी मामला हो।

5. [मजदूरी की गणना करने की विधि-8***9 [इस अधिनियम में और उसके प्रयोजनों के लिए अभिव्यक्ति "मासिक मजदूरी" से एक महीने की सेवा के लिए संदेय समझी जाने वाली मजदूरी की राशि अभिप्रेत है (चाहे मजदूरी महीने तक या किसी अन्य अवधि तक या टुकड़ा दरों पर संदेय हो), और परिकलित की जाती है] निम्नानुसार है, अर्थात्: -

(ए) जहां 1[कर्मचारी], दुर्घटना से ठीक पहले बारह महीने से कम नहीं, की निरंतर अवधि के दौरान, नियोक्ता की सेवा में रहा है, जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, 1[कर्मचारी] का मासिक वेतन कुल मजदूरी का बारहवां हिस्सा होगा जो उस अवधि के अंतिम बारह महीनों में नियोक्ता द्वारा उसे भुगतान के कारण गिर गया है;

[(बी) जहां दुर्घटना से ठीक पहले सेवा की पूरी निरंतर अवधि जिसके दौरान 1[कर्मचारी] नियोक्ता की सेवा में था जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, एक महीने से कम था, 1[कर्मचारी] की मासिक मजदूरी 3 *** औसत मासिक राशि होगी, जो दुर्घटना से ठीक पहले बारह महीनों के दौरान, एक ही नियोक्ता द्वारा एक ही काम पर नियोजित ए 1[कर्मचारी] द्वारा अर्जित किया जा रहा था या यदि कोई 1[कर्मचारी] नियोजित नहीं था, तो [कर्मचारी] द्वारा उसी इलाके में समान काम पर नियोजित किया गया था;]

[(ग) अन्य मामलों में [उन मामलों सहित जिनमें खंड (ख) के तहत मासिक मजदूरी की गणना करने के लिए आवश्यक जानकारी की कमी के लिए संभव नहीं है], मासिक मजदूरी नियोक्ता से दुर्घटना से ठीक पहले सेवा की अंतिम निरंतर अवधि के संबंध में अर्जित कुल मजदूरी का तीस गुना होगी जो मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, ऐसी अवधि वाले दिनों की संख्या से विभाजित।

स्पष्टीकरण- सेवा की अवधि, 7 [इस 8 [धारा]] के प्रयोजनों के लिए निरंतर मानी जाएगी जो चौदह दिनों से अधिक कार्य से अनुपस्थिति की अवधि से बाधित नहीं हुई है।

ii

VII परिशिष्ट

मोटर वाहन अधिनियम के तहत मुआवजे की गणना

मृतक की आयु - 23 वर्ष

आय - न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अनुसार 2714.56 रुपये प्रति माह मजदूरी

वार्षिक आय - रु. 32,474.72

फ्यूचर प्रॉस्पेक्ट्स - 50% (रु. 16, 287.36)

भविष्य की संभावनाओं के साथ कुल आय - रु. 32474.72+ रु. 16,287.36=रु. 48,762.08

कटौती - सरला वर्मा के मामले के अनुसार 50% क्योंकि मृतक कुंवारा था

गुणक - सरला वर्मा के मामले के अनुसार 18

मुआवजा - 24,381.04 x 18 = रु. 4,38,958.72

गैर-आर्थिक - 5000 रुपये अंतिम संस्कार का खर्च

कुल मुआवजा - रु. **4,43,958.72**

ब्याज - जैसा कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा प्रदान किया गया है

(2023) 8 ILRA 815

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2576/2012

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

... अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती निर्मला देवी एवं अन्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राहुल सहाय, श्री आदित्य सिंह परिहार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री एस. जयसवाल, श्री अजीत सिंह राणा, श्री अशोक के. जयसवाल, श्री भरत प्रताप सिंह, श्री देवेन्द्र गुप्ता, श्री विपुल सिंह

ए. सिविल विधि-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे में वृद्धि- मृतक को दुर्घटना में चोटें आईं और उसकी मृत्यु हो गई-दुर्घटना की तिथि पर आपत्तिजनक वाहन का बीमा अपीलकर्ता द्वारा कराया गया था-दावेदार मृतक के आश्रित थे-दुर्घटना के समय मृतक की आयु 39 वर्ष थी-उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली, 1998 के नियम 220ए-3(i) में मृतक की भविष्य की संभावनाओं के बारे में प्रावधान है-चूंकि मृतक की आयु 40 वर्ष से कम है, इसलिए वास्तविक वेतन में वेतन का 50% जोड़ा जाएगा-इस प्रकार, 7% की दर से कुल मुआवजा 32,69,710/- रुपये दिया जाता है।(पैरा 1 से 52)

बी. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 33 में अपील न्यायालय की शक्ति निर्धारित करते हुए स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि अपीलीय न्यायालय को कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी, जिसे मामले की आवश्यकता के अनुसार पारित किया जाना चाहिए था और यह शक्ति सभी या किसी भी प्रतिवादी या पक्ष के पक्ष में प्रयोग की जा सकती है, भले ही उन्होंने कोई क्रॉस अपील या आपत्ति दर्ज न की हो। (पैरा 28, 29)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. राष्ट्रीय इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी (2014) 4 टीएसी 637 एससी

2. श्रीमती सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 2 टीएसी 677 एससी

3. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी एवं अन्य एफएएफओ संख्या 2389/2016

4. दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी

5. महंत धनगीर एवं अन्य बनाम मदन मोहन और अन्य

6. जीतेन्द्र किमशंकर त्रिवेदी एवं अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार और अन्य

7. अरुण कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य

8. न्यू इंडिया अश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा पारित)

1. निर्णय को चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है.

I	परिचय		
II	विद्वत न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों एवं प्रतिवादियों का वाद		
III	विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा		
IV	पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों		
V	विचारणीय मुद्दे:		
	ए	दुर्घटना का तथ्य	
	बी	बीमा कंपनी का दायित्व	
	सी	मौखिक प्रति आपत्ति की रखरखाव	
	डी	विभिन्न शीर्षकों के तहत मुआवजे की मात्रा:	
		ए	भविष्य की संभावनाएं
		बी	पारंपरिक प्रमुख
		सी	गुणक
		डी	ब्याज
	ई	मुआवजे का निर्धारण जिसके दावेदार-उत्तरदाता हकदार है	
VI	निष्कर्ष और दिशा-निर्देश		

I. परिचय

2. आदेश से यह प्रथम अपील मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 171/2010 (श्रीमती निर्मला देवी एवं अन्य बनाम रामदेव शुक्ला एवं अन्य) में विद्वान मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/विद्वान अपर जिला न्यायाधीश विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 05.03.2012 के निर्णय एवं अधिनिर्णय से उत्पन्न होती है, जिसमें आंशिक रूप से दावेदारों द्वारा किए गए दावे की अनुमति दी गई है।

3. आदेश से पहली अपील बीमा कंपनी द्वारा मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व और विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे की मात्रा के खिलाफ दायर की गई है।

II. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों और प्रतिवादियों का वादः

4. विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दावेदारों का संक्षेप में वाद यह था कि मृतक-राजेश कुमार सीमा सुरक्षा बल में एक कांस्टेबल की सेवा कर रहे थे। दिनांक 06.05.2010 के दुर्भाग्यपूर्ण दिन, वह पंजीकरण संख्या उ.प्र. 30-एम-1588 वाली मोटरसाइकिल पर सवार था, जब रेत से लदी ट्रैक्टर ट्रॉली पंजीकरण संख्या उ.प्र.27-सी-2688 उक्त मोटरसाइकिल से टकरा गई। यह दुर्घटना पूरी तरह से ट्रैक्टर ट्रॉली के चालक की तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई। उक्त दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मृतक की मृत्यु हो गई। दुर्घटना की तारीख को अपीलकर्ता-न्यू इंडिया

एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा उल्लंघन करने वाले वाहन का बीमा किया गया था। दावेदार मृतक के आश्रित थे। हादसे के वक्त मृतक की उम्र 39 साल थी।

III. विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजाः

5. विद्वान न्यायाधिकरण ने पाया कि दुर्घटना ट्रैक्टर ट्रॉली के चालक के तेज और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। बीमा कंपनी मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थी।

6. विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 05.03.2012 के आक्षेपित निर्णय में यहां सारणीबद्ध रूप में दर्शाया गया मुआवजा प्रदान कियाः

क्रमांक	शीर्षक	न्यायाधिकरण द्वारा प्रदान की गई राशि
	मासिक आय (ए)	15,801/-
	वार्षिक आय (बी)	15801 x 12 1,89,612/-
	भविष्य की संभावनाएं (सी)	शून्य
	वार्षिक आय भविष्य की संभावनाएं (बी सी = डी)	शून्य
	व्यक्तिगत खर्चों के लिए कटौती	1,89,612 x 1/3 = 63,204/-
	कटौती के बाद कुल आय (इ)	1,89,61263,204 =1,26,410/-
	गुणक (एफ)	11
	निर्भरता का कुल	1,26,410 x 11=
	नुकसान (इxएफ)	13,90,510/-
	अंतिम संस्कार का खर्च	2000/-
	प्यार और स्नेह की हानि	5000/-
	नुकसान की सम्पत्ति	2500/-
	कुल मुआवजा	14,00,010/-
	ब्याज	6%

IV. पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँः

7. विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह परिहार का पक्ष रखने वाले श्री राहुल सहाय, अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दुर्घटना कभी नहीं हुई। यह एक झूठा दावा है। दूसरा, दायित्व ट्रैक्टर मालिक का था क्योंकि बीमा पॉलिसी का उल्लंघन हुआ था। तीसरा, मुआवजा गलत तरीके से दिया गया।

8. श्री विपुल सिंह, प्रतिवादी दावेदारों के लिए विद्वान अधिवक्ता बीमा कंपनी की देयता की पुष्टि करने वाले निष्कर्षों का समर्थन करते हैं और इस आशय के लिए एक मौखिक प्रति आपत्ति उठाई है कि भविष्य की संभावनाएं जिनके दावेदार निर्विवाद रूप से हकदार थे, उन्हें विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा गैरकानूनी रूप से अस्वीकार कर दिया गया है।

9. इसके विपरीत, विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह परिहार का पक्ष रखने वाले श्री राहुल सहाय, अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दावेदार

अपील के चरण में मौखिक प्रति आपत्ति नहीं उठा सकते हैं।

V. विचारणीय मुद्देः

10. अपने तर्कों को आगे बढ़ाने के बाद, दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि हालांकि कई आधारों की वकालत की गई है, इस अपील में केवल निम्नलिखित प्रश्न विचार के लिए आते हैं:-

(ए) क्या दावा याचिका में दर्शाई गई दुर्घटना वास्तव में हुई थी या उल्लंघन करने वाले वाहन को केवल मुआवजे की मांग के उद्देश्य से झूठा फंसाया गया था?

(बी) क्या उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक द्वारा बीमा पॉलिसी का उल्लंघन किया गया था?

(सी). क्या अपील के चरण में दावेदारों द्वारा मौखिक प्रति आपत्ति उठाई जा सकती है? यदि हां, तो किस हद तक?

(डी). क्या विद्वान अधिकरण ने इन विभिन्न शीर्षकों में मुआवजे की सही गणना की है। भविष्य की संभावनाएं, गुणक, पारंपरिक शीर्ष और व्याज?

(इ). प्रतिवादी प्रतिवादी जिस मुआवजे के हकदार हैं।

V ए. मुद्दा संख्या 1:

दुर्घटना का तथ्य

11. दावेदारों ने दुर्घटना के तथ्य और उल्लंघन करने वाली ट्रैक्टर ट्रॉली के चालक की लापरवाही को स्थापित करने के लिए दो गवाहों को पेश किया।

12. पी.डब्ल्यू. 2-महेश जो मृतक का भाई है, ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाही दी कि उसने दुर्घटना देखी थी। उन्होंने बयान दिया कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह अपने मृत भाई द्वारा चलाई जा रही मोटरसाइकिल पर पीछे की सवारी कर रहे थे। आपत्तिजनक ट्रैक्टर ट्रॉली बेकाबू गति से आई और मोटरसाइकिल से टकरा गई। दुर्घटना पूरी तरह से दुर्घटनाग्रस्त ट्रैक्टर ट्रॉली के तेज और लापरवाही से चलाने के कारण हुई थी। टक्कर के प्रभाव से मृतक जमीन पर गिर गया और दुर्घटना में लगी चोटों से उसकी मौत हो गई। ट्रैक्टर ट्रॉली चालक ने मौके पर ही भागने का प्रयास किया। हालांकि, दुर्घटना स्थल पर जमा ग्रामीणों ने उस पर काबू पा लिया। ट्रैक्टर ट्रॉली के साथ-साथ चालक को प्रत्यक्षदर्शियों और ग्रामीणों द्वारा पुलिस स्टेशन ले जाया गया। पुलिस अधिकारियों ने चालक को हिरासत में ले लिया और वाहन को जब्त कर लिया। पी.डब्ल्यू. 2 महेश भी सूचनाकर्ता था जिसने तुरंत प्राथमिकी दर्ज कराई थी। उन्होंने प्रति परीक्षण के दौरान कहा था कि वाहन पर पेंट की गई ट्रैक्टर ट्रॉली का पंजीकरण नंबर अवैध था।

13. पी.डब्ल्यू.-3 शीश राम ने गवाह के कटघरे में प्रवेश करने पर कहा कि वह दुर्घटना का चश्मदीद गवाह था। उन्होंने भी दुर्घटना में

मृतक की मौत और चालक की गलती की पुष्टि की।

14. पी.डब्ल्यू. 2 महेश और पी.डब्ल्यू. 3-शीश राम दोनों की गवाही प्रति परीक्षण के दौरान हिली नहीं गई। दो गवाहों की गवाही के संबंध में बीमा कंपनी की ओर से कुछ मामूली विरोधाभासाँ को उजागर किया गया था। हालांकि, ये विरोधाभास भौतिक नहीं हैं और उक्त गवाहों का श्रेय नहीं लेते हैं।

15. प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्करण विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गवाहों के बयानों के अनुरूप है। बीमा कंपनी की ओर से यह तर्क कि वाहन का विवरण प्राथमिकी में गायब था, दावेदारों द्वारा किए गए मुआवजे के दावे पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। यह अच्छी तरह से तय है कि प्राथमिकी सभी तथ्यों का विश्वकोश नहीं है। इसके अतिरिक्त, सूचना देने वाले द्वारा प्राथमिकी में उक्त ब्यौरे के न होने के संतोषजनक कारण दिए गए हैं।

16. विद्वान विचारण न्यायालय, जिसे गवाहों के आचरण को देखने का लाभ था, ने भी उन्हें श्रेय के योग्य पाया और उनकी गवाही पर विश्वास किया। इस न्यायालय के पास उक्त गवाहों के बयानों के संबंध में कोई अन्य दृष्टिकोण लेने का कोई कारण नहीं है। चश्मदीद गवाहों की मौखिक गवाही की भी प्राथमिकी द्वारा सार रूप में पुष्टि की गई है।

17. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य में कुछ विसंगतियों पर जोर दिया और फर्द बरामदगी को गलत ठहराया। इससे यह परिलक्षित हो सकता है कि पुलिस जांच में कुछ पहलुओं की कमी है। लेकिन मोटर वाहन अधिनियम के तहत दावेदारों द्वारा किए गए दावे पर इसका प्रतिकूल असर नहीं हो सकता है। अपराध में पुलिस जांच सहित आपराधिक कार्यवाही मोटर वाहन अधिनियम के तहत मुआवजे के दावों से अलग है। दोनों कार्यवाही दायरे, उद्देश्य, प्रक्रिया, साक्ष्य के मानक और मांगी गई राहत में भिन्न हैं।

18. इसके मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि दुर्घटना के तथ्य को स्थापित करने के लिए सभी प्रासंगिक तथ्य और आपत्तिजनक वाहन के चालक की ओर से जल्दबाजी और लापरवाही से ड्राइविंग पूरी तरह से मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष साक्ष्य के लागू मानकों द्वारा स्थापित किए गए थे। इस मुद्दे पर विद्वान न्यायाधिकरण के निष्कर्षों को सही ठहराया जाता है।

V बी. मुद्दा संख्या 2:

बीमा कंपनी का दायित्व

19. बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत किया गया कि ट्रैक्टर ट्रॉली के मालिक द्वारा बीमा पॉलिसी में उल्लंघन किया गया था, क्योंकि इसका उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था। ट्रैक्टर ट्रॉली को रेत और लकड़ी के दरवाजों से लोड करने मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि वाहन वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए था और बीमा पॉलिसी का उल्लंघन हुआ था।

20. बीमा पॉलिसी के उल्लंघन के सबूत का बोड़ा बीमा कंपनी पर था जो वे विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष करने में विफल रहे। इस तरह की कोई सामग्री इस न्यायालय के संज्ञान में भी नहीं लाई गई थी।

प्र.21. बीमा पॉलिसी के उल्लंघन बीमा कंपनी द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता है कि प्रभाव के लिए सीखा न्यायाधिकरण के निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप होने के लिए उत्तरदायी नहीं है. यह न्यायालय इस मुद्दे पर अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के खिलाफ दावेदार और प्रतिवादी के लिए पाता है।

22. संक्षेप में, दुर्घटना पूरी तरह से ट्रैक्टर ट्रॉली के चालक और बीमा कंपनी की लापरवाही के कारण हुई थी और मुआवजे का भुगतान करने के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी है।

V सी. मुद्दा संख्या 3 :

मौखिक प्रति आपति का रखरखाव

23. आय में भविष्य में वृद्धि के शीर्ष के तहत मुआवजे का अनुदान सिर्फ मुआवजे का अनिवार्य हिस्सा है जो बिंदु में अच्छे अधिकारियों द्वारा विधिवत तय किया गया है। पक्षकारों के लिए दोनों विद्वान अधिवक्ता कानून की स्थिति पर सहमत हैं। हालांकि, अपीलकर्ता-बीमा कंपनी की ओर से तर्क दिया गया है कि अपील के इस चरण में मौखिक प्रति आपति में इस आधार को नहीं लिया जा सकता है, अब निपटा जाएगा। संबंधित पक्षों द्वारा अपने मामले का समर्थन करने के लिए बार में विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया गया है।

24. यह प्रश्न कि क्या अपील के चरण में मुआवजे की वृद्धि के लिए मौखिक आपत्तियां उठाई जा सकती हैं, अच्छे अधिकारियों द्वारा बिंदु में अच्छी तरह से सुलझाया गया है।

25. पक्षकारों को मौखिक आपतियां लेने की अनुमति देने के लिए अपीलकर्ता न्यायालय का अधिकार क्षेत्र सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 में उल्लिखित अपील की न्यायालय की शक्ति का पता लगाने योग्य है। सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 को इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

"नियम 33. अपीलीय न्यायालय की शक्ति- अपीलीय न्यायालय को कोई डिक्री पारित करने और कोई आदेश करने की शक्ति होगी जो पारित या किया जाना चाहिए था और ऐसा आगे कोई डिक्री या आदेश पारित करने या करने की शक्ति होगी जो मामले की आवश्यकता हो सकती है, और इस आदेश का प्रयोग न्यायालय द्वारा इस बात के होते हुए भी किया आ सकेगा कि अपील केवल डिक्री का भाग है और इसका प्रयोग सभी या किसी के पक्ष में किया जा सकता है प्रतिवादी या पक्षकारों ने कोई अपील या आपत्ति दायर नहीं की हो सकती है और जहां प्रति सूट में डिक्री हुई है या जहां एक वाद में दो या दो से अधिक डिक्री पारित की गई हैं, वहां सभी या किसी भी डिक्री के संबंध में प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि इस तरह की डिकी के खिलाफ अपील दायर नहीं की गई है।

26. सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 में विधायिका द्वारा निहित वाक्यांश विज्ञान अपीलीय न्यायालय को निम्नानुसार अधिकार देता है:

"इस तरह के आगे या अन्य डिक्री या आदेश पारित करने या करने के लिए जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है"।

(जोर दिया गया)

27. यह प्रावधान सुनिश्चित करता है कि कानून के हथियार अन्याय तक पहुंचने के लिए पर्याप्त लंबे हैं और न्यायालय के हथियार न्याय की सेवा के लिए पर्याप्त मजबूत हैं। पूर्वोक्त प्रावधान से अपनी शक्ति को अपीलीय न्यायालय में आहरित करने से न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी किए जा सकते हैं। विशेष रूप से मोटर वाहन अधिनियम, 1988 से उत्पन्न मामलों में अपीलीय न्यायालय उचित मुआवजे के अनुदान के लिए इन शक्तियों का प्रयोग कर सकती है।

28. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती विद्यावती देवी और अन्य में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 के दायरे का निर्माण करते हुए निम्नानुसार आयोजित कियाः

"अपील की न्यायालय की शक्ति को निर्धारित करने वाली सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 33 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपीलीय न्यायालय के पास कोई भी डिक्री पारित करने और कोई भी आदेश देने की शक्ति होगी जिसे पारित किया जाना चाहिए या जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है, और इस शक्ति का प्रयोग सभी या किसी भी प्रतिवादी या पक्षकारों के पक्ष में किया जा सकता है, हालांकि उन्होंने कोई प्रति अपील या आपत्ति दायर नहीं की हो।

29. सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 का दायरा भी महंत धांगीर और अन्य बनाम मदन मोहन और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए गिर गया। सि.प्र.सं. के आदेश XLI नियम 33 में नियोजित वाक्यांश "जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है" के विशाल दायरे की व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने कहा कि प्रावधान अपीलीय न्यायालय को महंत धनंगीर (उपरोक्त) द्वारा पूर्ण न्याय करने के लिए बाध्य करता है:

"नियम 33 के तहत सता का प्रस्फुटन न केवल अपीलकर्ता और प्रतिवादी के बीच, बल्कि प्रतिवादी और सह-प्रतिवादियों के बीच किसी भी प्रश्न को निर्धारित करने के लिए पर्याप्त है। अपीलीय न्यायालय कोई भी डिक्री या आदेश पारित कर सकता है जो मामले की परिस्थितियों में पारित किया जाना चाहिए था। अपीलीय न्यायालय इस तरह के अन्य डिक्री या आदेश भी पारित कर सकती है जैसा कि मामले की आवश्यकता हो सकती है। नियम 33 आदेश 41 में प्रयुक्त शब्द "जैसा कि मामला अपेक्षित हो सकता है" को व्यापक शब्दों में रखा गया है ताकि अपीलीय न्यायालय न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कोई आदेश या डिक्री पारित कर सके। फिर क्या

बाधा होनी चाहिए? हमें बहुत कुछ नहीं मिलता है। हम कोई उदार व्याख्या नहीं कर रहे हैं। नियम अपने आप में काफी उदार है। एकमात्र बाधा जो हम देख सकते हैं, वह ये हो सकती है: अवर न्यायालय के समक्ष पक्षकार अपीलीय न्यायालय के समक्ष होने चाहिए। उठाया गया प्रश्न अवर न्यायालय के फैसले से उचित रूप से उत्पन्न होना चाहिए। यदि ये दो आवश्यकताएं हैं, तो अपीलीय न्यायालय अवर न्यायालय के निर्णय या डिक्री के किसी भी हिस्से के खिलाफ किसी भी आपत्ति पर विचार कर सकता है। किसी भी पक्ष द्वारा अपील के लिए आग्रह किया जा सकता है। यह सच है कि नियम 33 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्ति विवेकाधीन है। लेकिन यह न्यायिक विवेक का एक उचित प्रयोग है कि पक्षों के बीच पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए आग्रह किए गए सभी प्रश्नों को निर्धारित किया जाए। न्यायालय को केवल तकनीकी बार्ता पर उस विवेक का प्रयोग करने से इनकार नहीं करना चाहिए।

30. अपीलीय न्यायालय की शक्तियों की व्याख्या दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग बनाम बसंती देवी में समान शब्दों में की गई थी.

पीठ ने कहा, "हमारा विचार है कि मौजूदा मामले में आदेश 11 नियम 33 के प्रावधानों में रखी गई शर्तें पूरी हैं। दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि जब ऐसी परिस्थितियां मौजूद होती हैं जिनके लिए नियम 33 द्वारा प्रदत्त विवेक के प्रयोग की आवश्यकता होती है, तो न्यायालय को अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए दोषी नहीं पाया जा सकता है।

31. इसके विपरीत, रंजना प्रकाश बनाम डिवीजनल मैनेजर में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए बीमा कंपनी द्वारा दिए गए फैसले पर, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अपीलीय न्यायालय के दायरे को प्रतिबंधित करता है। विशेष रूप से, रंजना (उपरोक्त) में निम्नलिखित टिप्पणियों ने दावेदारों के दावे को नकारने के लिए उनके तर्क का समर्थन करने के लिए भरोसा किया:

"7. यह सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 से भी निकलता है जो एक अपीलीय न्यायालय को किसी भी आदेश को पारित करने में सक्षम बनाता है जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया जाना चाहिए था और इस तरह के आगे या अन्य आदेश बनाने के लिए मामले की आवश्यकता हो सकती है, भले ही प्रतिवादी ने कोई अपील या प्रति आपत्ति दायर नहीं किया हो। यह शक्ति अपीलीय न्यायालय को सौंपी गई है ताकि वह पक्षों के बीच पूर्ण न्याय कर सके। आदेश 41 नियम 33 हालांकि पुरस्कार को अधिक प्रभावी बनाने या अन्य आधारों पर पुरस्कार को बनाए रखने या लाभ या दायित्व साझा करने के लिए मुकदमेबाजी के लिए अन्य पक्षों को बनाने के लिए सेवा में दबाया जा सकता है, लेकिन बड़ी या उच्च राहत पाने के लिए इसे लागू नहीं किया जा सकता है. उदाहरण के लिए, जहां दावेदार वाहन के मालिक और बीमाकर्ता के खिलाफ मुआवजे की

मांग करते हैं और न्यायाधिकरण केवल मालिक के खिलाफ पुरस्कार देता है, मालिक द्वारा मात्रा को चुनौती देने की अपील पर, अपीलीय न्यायालय बीमाकर्ता को संयुक्त रूप से और गंभीर रूप से मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बना सकती है, मालिक के साथ, भले ही दावेदारों ने बीमाकर्ता के खिलाफ राहत न देने को चुनौती नहीं दी थी। जैसा भी हो सकता है।

8. जहां मुआवजे की मात्रा को चुनौती देने वाली अपील दायर की जाती है, भले ही अपील कौन दायर करे, उच्च न्यायालय के लिए उपयुक्त मार्ग तथ्यों की जांच करना और प्रासंगिक सिद्धांतों को लागू करके, उचित मुआवजे का निर्धारण करना है। यदि इसके द्वारा निर्धारित मुआवजा न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे से अधिक है, तो उच्च न्यायालय अपील की अनुमति देगा, यदि यह दावेदारों द्वारा है और अपील को खारिज कर देगा, यदि यह मालिक / बीमाकर्ता द्वारा है। इसी तरह, यदि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मुआवजा न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए मुआवजे से कम है, तो उच्च न्यायालय वृद्धि के लिए दावेदारों द्वारा किसी भी अपील को खारिज कर देगा, लेकिन मालिक / बीमाकर्ता द्वारा कटौती के लिए किसी भी अपील की अनुमति देगा। उच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से मुआवजे को कम करने के लिए मालिक बीमाकर्ता द्वारा अपील में मुआवजे को बढ़ा नहीं सकता है, न ही यह मुआवजे को बढ़ाने की मांग करने वाले दावेदारों द्वारा अपील में मुआवजे को कम कर सकता है।

32. मुझे डर है कि रंजना (उपरोक्त) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को अच्छे अधिकारियों द्वारा तय किए गए कानून के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए जो अपीलीय शक्ति पर इस तरह के किसी भी प्रतिबंध को आयात नहीं करते हैं। श्रीमती विद्यावती देवी (उपरोक्त), महंत धांगीर (उपरोक्त) और बसंती देवी (उपरोक्त) सहित उक्त अधिकारियों को रंजना (उपरोक्त) में न्यायालय में नहीं भेजा गया था।

33. अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के दायरे को भी कानून की प्रकृति के प्रकाश में समझा जाना चाहिए। मोटर यान अधिनियम एक कल्याणकारी विधान है और अपीलीय न्यायालय का प्रयास यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि मोटर यान अधिनियम के अंतर्गत लाभकारी हकदारियों से किसी पक्षकार को वंचित न किया जाए और इस पर शीघ्र निर्णय लिया जाए। यदि प्रति आपत्तियां उठाई जाती हैं तो विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा रिकॉर्ड के सामने त्रुटि अपीलीय न्यायालय द्वारा ठीक नहीं की जा सकती है। ऐसे मामलों में मामलों को रिमांड पर लेने से मुकदमेबाजी लंबी ही चलेगी। इसके परिणामस्वरूप दावेदारों की थकावट हो सकती है जो पहले से ही दुर्भाग्य से उत्पन्न अभाव से पीड़ित हैं।

34. पूर्ववर्ती पैराग्राफ में चर्चा की अधिकारियों के विचार पर, अपील की सुनवाई के चरण में मौखिक प्रति आपत्तियों पर विचार करने के लिए अपीलीय न्यायालय के दायरे के संबंध में कानूनी स्थिति इस प्रकार स्पष्ट होती है:

ए. मौखिक प्रति आपत्तियों पर केवल उस स्थिति में विचार किया जाना चाहिए जब मामले में न्यायालय को पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने और उचित मुआवजा देने के लिए ऐसा करने की आवश्यकता होती है।

बी. अवर न्यायालय के समक्ष पक्षकारों को अपील में पक्षकारों के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

सी. मौखिक प्रति आपत्तियां सीधे विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय से उत्पन्न होनी चाहिए।

डी. जिन पक्षों के अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने की संभावना है, उन्हें सि.प्र.सं. के आदेश 41 नियम 33 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए।

ई. यदि न्यायाधिकरण का अवार्ड संवैधानिक न्यायालयों की होल्डिंग के विपरीत या अज्ञानता में है जो उचित मुआवजे के मौलिक प्रमुखों को व्यवस्थित करता है और इस मुद्दे को केवल सरल गणित सूत्र के आवेदन की आवश्यकता होती है, तो न्यायालय विचार कर सकती है और मौखिक प्रति आपत्ति की अनुमति दे सकती है।

एफ. अपीलीय हमेशा न्याय के हित में एक विलम्बित चरण में मौखिक प्रति आपत्तियों पर विचार करते हुए कठिनाई को कम करने या पक्षकारों के प्रति पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए उपाय कर सकता है, आदेश पारित कर सकता है, या राहत दे सकता है।

जी. यदि मौखिक प्रति आपत्तियों के लिए साक्ष्य के जटिल पुनर्मूल्यांकन या विस्तृत तर्कों या श्रमसाध्य तर्क पर विचार करने की आवश्यकता होती है, तो अपीलीय न्यायालय मौखिक प्रति आपत्ति पर विचार करने के लिए प्रार्थना को अस्वीकार भी कर सकती है।

35. भविष्य की संभावनाओं के लिए दावेदारों की हकदारी अच्छे न्यायिक अधिकारियों द्वारा तय की जाती है। विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष मौलिक तथ्य (आय आदि) स्थापित किए गए हैं। भविष्य की संभावनाओं की गणना के लिए इस मामले में एक सरल गणितीय सूत्र के आवेदन की आवश्यकता होती है। विद्वान न्यायाधिकरण उक्त प्राधिकारियों के अनुरूप पूर्वोक्त शीर्ष के अंतर्गत कोई अधिनिर्णय देने में विफल रहा है।

36. सि.प्र.सं. के आदेश 41 नियम 33 के तहत शक्तियों का प्रयोग करके मौखिक प्रति आपत्तियों पर विचार करने की पूर्व-आवश्यकताएं इस मामले में स्थापित की जाती हैं।

37. वर्तमान मामले में, भविष्य की आय में वृद्धि एक दिया गया है और भविष्य की संभावनाओं का अनुदान सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन कंपनी और अन्य और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य में दावेदारों का हक माना गया है।

38. न्यायालय की निर्धारित हिस्सेदारी, न्यायालय प्रतिद्वंद्वी दलों के अधिकारों को स्पष्ट करती हैं। पात्रता से इनकार करने का परिणाम उचित मुआवजे से इनकार करना है।

39. अपीलीय न्यायालय अपील के चरण में न्यायसंगत मुआवजा देने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठा सकता है। एक बार कानून का निस्तारण हो जाने के बाद, न्यायालय का प्रयास ऐसे प्राधिकारियों के संदर्भ में उचित मुआवजा देना होता है और संविधि अपीलीय न्यायालय को ऐसा करने का अधिकार देती है। **[देखें: जितेंद्र किमशंकर त्रिवेदी और अन्य बनाम कसम दाउद कुंभार और अन्य, अरुण कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य]**

V डी. मुद्दा संख्या 4:
विभिन्न शीर्षकों के तहत मुआवजे की मात्रा

क. भविष्य की संभावनाएं:

40. भविष्य की संभावनाओं की गणना उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 19989 के अनुसार की जा सकती है। नियमों का नियम 220A-3(1) प्रासंगिक है और इसे यहां पुनः प्रस्तुत किया गया

"(3) मृतक की भावी संभावनाएं, मृतक के वास्तविक वेतन या न्यूनतम मजदूरी में निम्नानुसार जोड़ी जाएंगी (1) 40 वर्ष से कम आयु वेतन का 50%1

41. उ.प्र. नियम, 1998 न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उर्मिला शुक्ला और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। उर्मिला शुक्ला (उपरोक्त) में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य सहित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर ने कहा:

"10. प्रणय सेठी के मुद्दे पर चर्चा मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 के संदर्भ में "उचित मुआवजे" पर पहुंचने के दृष्टिकोण से थी।

11. यदि एक संकेतक एक वैधानिक साधन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है जो एक अनुकूल उपचार प्रदान करता है, तो प्रणय सेठी में निर्णय को ऐसे वैधानिक प्रावधान के संचालन को सीमित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है, विशेष रूप से जब नियमों की वैधता को किसी भी चुनौती के तहत नहीं रखा गया था। ऐसे मामलों में 15% का नुस्खा जहां मृतक 50-60 वर्ष की आयु वर्ग में था, जैसा कि प्रणय सेठी में कहा गया है. अधिकतम के रूप में नहीं लिया जा सकता है। वैधानिक व्यवस्था में उपलब्ध किसी भी शासी सिद्धांत की अनुपस्थिति में, यह केवल एक संकेत के रूप में था। **यदि एक वैधानिक साधन ने एक सूत्र तैयार किया है जो बेहतर या अधिक लाभ प्रदान करता है. तो ऐसे वैधानिक उपकरण को तब तक संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि वैधानिक साधन अन्यथा अमान्य न पाया जाए।**

(जोर दिया गया)

42. उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम, 1998 के नियम प्रणय सेठी (उपरोक्त) या सरला वर्मा (श्रीमती) और अन्य बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कंपनी और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं थे। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में भविष्य की संभावनाएं उ.प्र. नियम, 1998 को देखे बिना निर्धारित की गई थी। इस तथ्य का विज्ञापन उर्मिला शुक्ल (उपरोक्त) में किया गया था:

"8. श्री राव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रणय सेठी के फैसले से यह पता नहीं चलता है कि न्यायालय का ध्यान नियम 3 (iii) जैसे विशिष्ट नियमों की ओर आकर्षित किया गया था, जो 15% के मुकाबले वेतन का 20% जोड़ने पर विचार करता है, जिसे प्रणय सेठी में एक उपाय के रूप में बताया गया था। उनके विचार में, चूंकि वैधानिक साधन को रखा गया है जो अधिक लाभप्रद उपचार प्रदान करता है, इसलिए प्रणय सेठी के फैसले को इस तरह के वैधानिक नियम के आवेदन को सीमित करने के लिए नहीं माना जाना चाहिए।

43. उत्तर प्रदेश नियम, 1998 प्रकृति में वैधानिक हैं और उनके संचालन को प्रणय सेठी (उपरोक्त) द्वारा बाधित नहीं किया गया है। उत्तर प्रदेश नियम, 1998 में कानून का बल है और यह उपयुक्त मामर्ला में पूरी ताकत के साथ लागू होगा। उत्तर प्रदेश नियम, 1998 दावेदारों के लिए प्रणय सेठी (उपरोक्त) में किए गए प्रावधानों की तुलना में अधिक फायदेमंद हैं। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में हिस्सेदारी पात्र लाभार्थियों पर उ.प्र. नियम, 1998 द्वारा प्रदत्त लाभओं को कम नहीं कर सकती है।

44. इस न्यायालय ने पाया कि दावेदार/प्रतिवादी उ.प्र. नियम, 1998 के अनुरूप भविष्य की संभावनाओं के लिए मजदूरी में 50% वृद्धि के हकदार हैं। पुरस्कार में आवश्यक परिवर्तन तदनुसार किए जाएंगे।

45. इस मद्देनजर, भविष्य की संभावनाओं और मौखिक प्रति आपत्ति के अनुदान का मुद्दा दावेदारों के पक्ष में और बीमा कंपनी के खिलाफ पाया जाता है।

बी. पारंपरिक शीर्षकः

46. आक्षेपित पुरस्कार में पारंपरिक शीर्षकों के तहत निर्धारित राशि प्रणय सेठी (उपरोक्त) के साथ भिन्न है। प्रणय सेठी (उपरोक्त) में पारंपरिक शीर्षकों को निम्नानुसार निर्धारित किया गया था;

"54..... कहने की जरूरत नहीं है कि परम्परागत और पारंपरिक शीर्षकों का निर्धारण प्रतिशत के आधार पर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्वीकार्य मानदंड नहीं होगा। आय के निर्धारण के विपरीत, उक्त शीर्षकों की मात्रा निर्धारित की जानी चाहिए। किसी भी परिमाणीकरण में एक उचित आधार होना चाहिए। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि कई क्षेत्रों में मूल्य सूचकांक, बैंक ब्याज में गिरावट, दरों में वृद्धि पर ध्यान देना होगा। न्यायालय इससे बेखबर नहीं रह सकती। इस पहलू में एक सामान्य नियम रहा है। अन्यथा, इसके निर्धारण में अत्यधिक कठिनाई होगी और जब तक सामान्य नियम लागू नहीं किया जाता है, तब तक किसी भी प्रकार की

स्थिरता की कमी के कारण अत्यधिक भिन्नता होगी, जिसके परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरणों और न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के दिशाहीन होने की संभावना है। इसलिए, हम सोचते हैं कि उचित रकम तय करना उचित लगता है। हमें ऐसा लगता है कि पारंपरिक शीर्षकों पर उचित आंकड़े, अर्थात् संपति का नुकसान, कंसोर्टियम का नुकसान और अंतिम संस्कार का खर्च क्रमशः 15,000 रुपये, 40,000 रुपये और अंतिम संस्कार खर्च 40,000 रुपये होना चाहिए।

47. प्रणय सेठी (उपरोक्त) में निर्धारित पारंपरिक शीर्षकों के तहत आंकडे इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। पुरस्कार तदनुसार संशोधित किया गया है।

सी. गुणकः

48. मृत्यु के समय मृतक की आयु 39 वर्ष थी। 15 का गुणक जिसे विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सही ढंग से लागू किया गया है और प्रणय सेठी (उपरोक्त) और सरला वर्मा (उपरोक्त) के अनुरूप है।

डी. ब्याजः

49. 7% का ब्याज इस मामले के तथ्यों में न्यायसंगल और वैध है

V इ. मुद्दा संख्या 4:

मुआवजे का निर्धारण जिसके दावेदार हकदार हैं:

50. पूर्ववर्ती चचर्चा के मद्देनजर, दावेदारों को दिए गए मुआवजे की राशि नीचे सारणीबद्ध है:

i. दुर्घटना की तिथि 06.05.2010

iii. मृतक का नाम राजेश कुमार

iv. मृतक की आयु 39 वर्ष

v. मृतक का व्यवसाय कांस्टेबल (बीएसएफ) (सरकारी सेवक)

vi. मृतक की आय 15,801/-

vii. मृतक के साथ दावेदारों का नाम, आयु और संबंध

क्रमांक	नाम	उम्र	रिश्तेदार
1.	श्रीमती निर्मला देवी	38	पत्नी
2.	के. अनुराधा	15	बेटी
3.	के. अनुपम	13	बेटी
4.	अभिषेक	11	बेटा
5.	विवेक	8	बेटा
6.	श्रीमती राम श्री	60	माँ

vii. मुआवजे की गणना

क्रमांक	शीर्षक	राशि (रुपये में)
1.	मासिक आय	15,801/-
2.	वार्षिक आय	1,89,612/-
3.	भविष्य की संभावनाएं	30% 1,89,612 x 30% = 94,806/-
4.	वार्षिक आय + भविष्य की संभावनाएं	1,89,612+ 94,806 = 2,84,418/-
6	कटौती 1/4	2,84,418 x 1/4 = 71,104/-
7	1/4 कटौती के बाद कुल आय	2,84,418-71,104 = 2,13,314/-
8	गुणक (जी)	2,13,314 x 15 = 31,99,710/-
9	निर्भरता का कुल नुकसान	31,99,710/-
10	पारंपरिक प्रमुख (ए) कंसोर्टियम का नुकसान (बी) सम्पदा की हानि (सी) अंतिम संस्कार व्यय	70,000/-
11	कुल मुआवजा	32,69,710/-
12	ब्याज	7%

VI. निष्कर्ष और निर्देशः

51. मुआवजे की राशि जिसके लिए दावेदार इस प्रकार हकदार पाए गए हैं, बीमा कंपनी द्वारा तीन महीने के भीतर विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष जमा की जाएगी। इसके बाद विद्वान न्यायाधिकरण बिना किसी देरी के दावेदारों को राशि जारी करेगा। दावेदारों को पहले से वितरित राशि (यदि कोई हो) विधिवत समायोजित की जाएगी।

52. अपील शुरू करते समय अपीलकर्ता द्वारा जमा की गई 25,000/- रुपये की राशि तुरंत विद्वान न्यायाधिकरण को प्रेषित की जाएगी। दावेदारों को दी गई मुआवजे की राशि के हिस्से के रूप में राशि का भुगतान किया जाएगा।

53. प्रतिवादियों की ओर से दायर प्रति-आपत्ति की अनुमति दी जाती है और तदनुसार अपील खारिज कर दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 826

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

शासकीय अपील संख्या 356 वर्ष 2022

साथ

आपराधिक अपील संख्या 1823 वर्ष 2022

और

आपराधिक अपील अंतर्गत धारा 372

सीआरपीसी संख्या 672/2022

उत्तर प्रदेश राज्य ...अपीलकर्ता

बनाम

अनिल कुमार एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री शिव कुमार पाल

आपराधिक विधइ - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498 - ए, 304 - बी, 120 - बी और 302/34 - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा 4 - भारतीय दंड संहिता की धारा 306 (आत्महत्या के लिए उकसाना) के अंतर्गत दोषसिद्धि कानूनी रूप से अनुचित थी - हत्या के आरोप आत्महत्या के लिए दोषसिद्धि में परिणत नहीं हो सकते - क्रूरता का कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया - दहेज उत्पीड़न के आरोप केवल फोन कॉल के माध्यम से लगाए गए, बिना किसी लिखित शिकायत या इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के - पोस्टमार्टम में कंठिका अस्थि बरकरार पाई गई; चिकित्सा राय में फांसी लगाकर आत्महत्या का सुझाव दिया गया - हत्या का मामला नहीं - अभियोजन पक्ष क्रूरता या दहेज की मांग को उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा - संदेह का लाभ अभियुक्त को मिलना चाहिए - अभियुक्त की अपील - अपीलकर्ता को अनुमति दी गई - दोषसिद्धि को रद्द कर दिया गया - दोषमुक्ति के खिलाफ राज्य और सूचनाकर्ता द्वारा अपील खारिज कर दी गई।

<u>प्रासंगिक धाराएं</u> :

धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी, 302/34, 306 आईपीसी; धारा 4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम; धारा 107 आईपीसी; धारा 372 सीआरपीसी ।

<u>चर्चा की गई वादविधियाँ</u> :

1. संगराबोइना श्रीनु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1997 एससी 3233

2. हरजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, आपराधिक अपील संख्या 756/1999

3. मंगत राम बनाम हरियाणा राज्य, आपराधिक अपील संख्या 696/2009

4. सतबीर सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 6 एससीसी 1

5. एमपी राज्य बनाम जोगेंद्र एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 401

6. मारियानो एंटो ब्रूनो एवं अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक, आपराधिक अपील संख्या 1628/2022

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा पारित)

1. कृष्णा कुमारी, पहली सूचनाकर्ता लज्जा राम बैसला की बेटी, की मृत्यु के बाद, 18.12.2014 को इस आरोप के साथ एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई कि कृष्णा कुमारी, जो पहली सूचनाकर्ता की बेटी थी, का विवाह 15.2.2014 को ललित मोहन पोसवाल से हुआ था और ललित मोहन पोसवाल; उनके पिता अनिल कुमार; उसकी मां शिमला @ सीमा और बहन भावना ने कृष्णा कुमारी को आगे दहेज पाने के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया और अंततः उसकी हत्या कर दी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में, यह कहा गया था कि मृतिका ने विभिन्न अवसरों पर शारीरिक यातना के बारे में शिकायत की थी। यह भी कहा गया कि पहले सूचनाकर्ता ने तीन बार मृतक बेटी के ससुराल वालों के घर जाकर उन्हें समझाया था कि उसके लिए आगे दहेज देना संभव नहीं है, फिर भी ससुराल वाले आगे दहेज की मांग करते रहे। आरोप था कि मृतिका बेटी के ससुराल वालों ने खुलेआम फॉर्च्यूनर कार;11 लाख रुपये; 40 तोला सोना; सास के लिए एक बड़ा हार और पति के लिए एक सोने की चेन मांगी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया था कि पहले सूचनाकर्ता को उसकी मृतिका बेटी ने पहले बताया था कि वह अपने ससुराल वालों से कहती थी कि उसके पिता आगे दहेज नहीं दे पाएंगे क्योंकि उनकी तीन और बेटियां हैं। वह कथित तौर पर अपने ससुर को यह भी बताती थी कि वह 40,000 रुपये प्रति माह कमाने वाली नौकरी में थी और वह हमेशा अपने ससुराल वालों को जो पैसा देती थी। अंततः प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया कि प्रथम सूचनाकर्ता की पुत्री की अभियुक्त द्वारा दिनांक 18122014 को दहेज के लिए हत्या कर दी गई। इस संबंध में, आरोप यह था कि ललित मोहन पोसवाल (मृतिका बेटी के पति); अनिल कुमार (ससुर); शिमला @ सीमा (सास); भावना (ननद) और तेजपाल (ललित मोहन पोसवाल के मामा) पहले सूचनाकर्ता की बेटी कृष्णा कुमारी की मौत के लिए जिम्मेदार थे और यह प्रार्थना की गई थी कि उन्हें हत्या करने के लिए दंडित किया जाए।

2. पुलिस ने मामले की जांच की और न्यायालय के समक्ष अपनी चार्जशीट पेश की, जिसने ललित मोहन पोसवाल के खिलाफ आरोप तय किए; अनिल कुमार, श्रीमती शिमला @ सीमा के तहत भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत 20.6.2016 को मामला दर्ज किया गया। 22 नवंबर 2016 को तेजपाल और भावना के खिलाफ भारतीय दंड संहिता और दहेज निषेध अधिनियम की इन्हीं धाराओं के तहत आरोप तय किए गए। चूंकि दो बार आरोप तय किए गए थे, इसलिए दो सत्र परीक्षण अस्तित्व में आए, अर्थात् सत्र परीक्षण संख्या 332 वर्ष 2015 और सत्र परीक्षण संख्या 239 वर्ष 2016।

3. एक विचारण किया गया। इसमें अभियोजन पक्ष ने नौ अभियोजन पक्ष के गवाह पेश किए थे और बचाव पक्ष ने बचाव पक्ष के 14 गवाह पेश किए थे। आरोपियों को सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अपने बयान देने का मौका दिया गया।

4. अ.सा.-1 लज्जा राम बैसला पहले सूचनाकर्ता और मृतिका के पिता थे; अ.सा.-2 राजबाला मृतिका की मां थी। अ.सा.-3 सुनील कुमार मृतक का भाई था। अ.सा.-4 डॉ. ललित कुमार सिंह वह डॉक्टर थे जिन्होंने पोस्टमार्टम किया था; अ.सा.-5 प्रवीण यादव तहसीलदार थे जिन्हें जांच रिपोर्ट तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई थी; अ.सा.-6 बिजेंद्र सिंह सब-इंस्पेक्टर थे जिन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी और उन्होंने भी इसे साबित किया था और अ.सा.-7 डॉ अनूप सिंह, अ.सा.-8 अनिल कुमार और अ.सा.-9 जितेंद्र कुमार विवेचक थे।

5. विचारण के दौरान विभिन्न दस्तावेजी साक्ष्य रिकॉर्ड पर लाए गए थे। अंततः सत्र परीक्षण के समापन पर, आरोपी अनिल कुमार और शिमला @ सीमा को 2015 के सत्र परीक्षण संख्या 332 में दोषी नहीं ठहराया गया। उसी प्रकार; तेजपाल और भावना को 2016 के सत्र ट्रायल संख्या 239 में भी दोषी नहीं ठहराया गया था। हालांकि, मृतका के पति ललित मोहन पोसवाल को सत्र परीक्षण संख्या 332 वर्ष 2015 में आईपीसी की धारा 306 के तहत दोषी ठहराया गया था।

6. इससे व्यथित होकर, अपीलार्थी ललित मोहन पोसवाल ने आपराधिक अपील संख्या 1823 वर्ष 2022 दायर की है। प्रथम सूचनाकर्ता लज्जा राम बैसला ने भी बरी किए जाने के खिलाफ धारा 372 सीआरपीसी संख्या 672 वर्ष 2022 के तहत आपराधिक अपील दायर की। यह अनिल कुमार; शिमला @ सीमा; भावना और ललित मोहन पोसवाल के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क, 304-ख, 120-ख और 302/34 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत दोषसिद्धि से बरी होने के खिलाफ दायर किया गया था । उत्तर प्रदेश राज्य ने भी बरी करने के निर्णय और आदेश के खिलाफ सरकारी अपील संख्या 356 वर्ष 2022 के रूप में अपील दायर की।

7. विचारण के दौरान, अ.सा. -1 गवाह के कटघरे में पेश हुआ था और उसने कहा था कि

उसकी बेटी की हत्या आरोपी व्यक्तियों द्वारा की गई थी क्योंकि दहेज की उनकी मांग पूरी नहीं हुई थी। उसने न्यायालय के समक्ष दिए गए अपने बयान में कहा है कि शादी होने के बाद, वह तीन बार ससुराल वालों के घर गया था ताकि उन्हें समझा सके कि उसके लिए कोई और दहेज देना संभव नहीं है। दिनांक 12.06.2014 को वह अपनी बेटी के ससुराल गए थे और वह वहां एक दिन के लिए रहे और अपनी बेटी को वापस अपने घर ले गए लेकिन सामाजिक दबाव के कारण उन्होंने अपनी बेटी को फिर से ससुराल भेज दिया। जुलाई 2014 में वह अपनी बेटी को फिर से मायके ले आया लेकिन उसे फिर से उसके ससुराल भेज दिया। उन्होंने अपने बयान में कहा था कि आरोपियों में से एक तेजपाल जो आरोपी ललित कुमार पोसवाल का मामा था, उनकी बेटी के अनुसार, हर रोज शाम को आता था और अन्य आरोपियों को दहेज मांगने के लिए उकसाता था। उन्होंने आगे कहा है कि जब आरोपी व्यक्तियों ने अपने अत्याचार जारी रखे तो 11.12.2014 को उनकी बेटी से फोन आया कि ससुराल वाले क्रूरता में लिप्त थे, उन्होंने अपने बेटे को बेटी को उसके मायका में लाने के लिए भेजा था। उन्होंने कहा था कि 18.12.2014 को सुबह मृत्यु होने से पहले भी उनकी बेटी ने उनसे बात की थी और अपनी चिंता व्यक्त की थी कि उसे मार दिया जाएगा। उन्होंने कहा है कि जब वह अपनी बेटी के ससुराल जाने की तैयारी कर रहे थे, तो उन्हें एक संदेश मिला कि बेटी की मृत्यु हो गई है। यह संदेश उनके बेटे से प्राप्त हुआ था जो पुणे में रह रहा था और सेना में कार्यरत था। इसके बाद वह उस स्थान पर पहुंचे जहां पुलिस मौजूद थी। उन्होंने उन लेखों के बारे में भी कहा था जो उन्होंने शादी के समय दिए थे। जिरह में अ.सा.-1 लगातार बयान में दिए गए बयान पर कायम है और उससे पूछे गए सवालों का जवाब दिया है।

8. अ.सा.-2 जो मृतिका की मां थी, ने भी अपना बयान दिया है और इस तथ्य को दोहराया है कि बेटी को जीवित रहते हुए ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था और दहेज की मांग के कारण ससुराल वालों ने उसकी हत्या कर दी।

9. अ.सा. -3 जो मृतिका का भाई था और पहले सूचनाकर्ता का बेटा था, ने भी अपना बयान दिया और कहा कि विभिन्न अवसरों पर उसके साथ किए जा रहे अत्याचारों के संबंध में फोन कॉल किए गए थे और कहा है कि अत्याचारों के परिणामस्वरूप, मृतिका को मार दिया गया था।

10. अ.सा. -4 डॉ ललित कुमार सिंह, जिन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को साबित किया है और कहा है कि हाइडोइड हड्डी बरकरार थी, ने कहा है कि मृत्यु-पूर्व चोटों के कारण मौत हुयी थी और फांसी के कारण श्वासावरोध के कारण हुई थी।

11. अ.सा. -5 पंचनामा का गवाह था। अन्य गवाह यानी अ.सा. -6, 7, 8 और 9 विवेचक थे।

12. अपीलार्थी की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र मिश्रा ने सत्र न्यायालय के दिनांक 5.3.2022 के निर्णय और

आदेश का विरोध करते हुए निम्नलिखित आधार उठाए हैं:-

(i) आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत थे लेकिन दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि धारा 306 आईपीसी के तहत सजा संभव नहीं थी जब आरोप धारा 302 के तहत थे क्योंकि दोनों अपराध अलग-अलग और अलग-अलग श्रेणियों के हैं। उन्होंने कहा है कि जबकि धारा 302 के तहत अपराध का मूल घटक मानव वध है, धारा 306 के तहत अपराध आत्मघाती मौत और उसके लिए उकसाना है। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि न्यायालय ने अपीलार्थी को धारा 306 आईपीसी के तहत दोषी ठहराने में गलती की, जबकि आईपीसी की धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत कोई मामला नहीं बनता है। इस संबंध में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **एआईआर 1997 एससी 3233** में रिपोर्ट किए गए **संगराबोइना श्रीनु बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** में सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय पर भरोसा किया है।

(ii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अ.सा. -1, 2 और 3 सभी मृतक के परिवार के सदस्य थे और वे सभी इच्छुक गवाह थे। भले ही पड़ोसी थे जिन्होंने क्रूरता आदि देखी होगी, लेकिन कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया था।

(iii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जब अ.सा. -1, 2 और 3 ने कहा था कि मृतिका लगातार उत्पीड़न, क्रूरता, दहेज की मांग और इस आशंका के बारे में शिकायत कर रही थी कि उसकी हत्या हो सकती है, तो शिकायत दर्ज की जानी चाहिए थी, लेकिन वास्तव में शिकायतकर्ता के परिवार द्वारा कहीं भी लिखित में कोई शिकायत नहीं की गई थी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही विभिन्न अवसरों पर यह उल्लेख किया गया है कि मृतक द्वारा फोन कॉल किए जा रहे थे, लेकिन मृतक द्वारा किसी भी मंच के समक्ष क्रूरता के संबंध में कोई शिकायत/लिखित शिकायत कभी नहीं की गई थी।

(iv) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि जब कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं था और जब कोई स्वतंत्र गवाह नहीं था तो शिकायतकर्ता की ओर से उल्लिखित फोन कॉल का कोई महत्व नहीं था क्योंकि यह स्पष्ट नहीं था कि मृतिका ने अपने परिवार के सदस्यों के साथ क्या बातचीत की थी।

(v) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि दोनों पक्षों के परिवार के सभी सदस्य कमाने वाले सदस्य थे और वे आर्थिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्र थे और किसी को भी दूसरे के पैसे की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी अभियोजन पक्ष ने एक मामला बनाने की कोशिश की थी कि ससुराल वालों का परिवार पैसे की मांग कर रहा था।

अनुवादित

(vi) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि डॉक्टर के बयान और पोस्टमार्टम रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मृतक की मृत्यु आत्महत्या के कारण हुई थी और इसलिए, प्रस्तुत किया कि निश्चित रूप से हत्या का कोई मामला नहीं था।

(vii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यहां तक कि धारा 306 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि भी गलत तरीके से की गई थी क्योंकि बिल्कुल भी कोई सबूत नहीं मिला था जिसके द्वारा यह कहा जा सकता था कि अपीलार्थी ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया था। रिकॉर्ड पर ऐसा कोई सबूत नहीं था जिससे यह संकेत मिले कि मौत से पहले उत्पीड़न ऐसा था कि मृतक को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

(viii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि धारा 107 आईपीसी के तहत, दुष्प्रेरण को परिभाषित किया गया है। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने आईपीसी की धारा 107 पर बहुत जोर दिया है, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

> "107. किसी बात का दुष्प्रेरण---कोई व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए उकसाता है, जो-- पहला- किसी व्यक्ति को उस वस्तु के लिए उकसाता है; या
> दूसरा- उस चीज को करने के लिए किसी साजिश में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ संलग्न है, यदि उस साजिश के अनुसरण में कोई कार्य या अवैध चूक होती है, तो उस चीज को करने के लिए; या
> तीसरा.-- जानबूझ कर, किसी कार्य या अवैध चूक से, उस कार्य को करने में सहायता करता है।
>
> स्पष्टीकरण 1 - कोई व्यक्ति, जो जानबूझकर गलत बयानी करके, या किसी भौतिक तथ्य को जानबूझकर छिपाकर, जिसे प्रकट करने के लिए बाध्य है, स्वेच्छा से कारण बनाता है या प्राप्त करता है, या करने या प्राप्त करने का प्रयास करता है, एक काम करने के लिए उकसाता है, कहा जाता है।
>
> स्पष्टीकरण 2- जो कोई भी, किसी कार्य के किए जाने से पहले या उसके समय पर, उस अधिनियम के कमीशन को सुकर बनाने के लिए कुछ करता है, और उसके द्वारा उसके कारित करने को सुविधाजनक बनाता है, उसे उस कार्य के करने में सहायता करने के लिए कहा जाता है। इसलिए, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ऐसा कोई उकसावा नहीं था जिसके बारे में कहा जा सकता था कि उसने मृतक को इस हद तक उकसाया हो कि उसने आत्महत्या कर ली।

(ix) अंत में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी एक शांतिप्रिय व्यक्ति है और कभी भी किसी आपराधिक मामले में शामिल नहीं था और इसलिए, दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाए और अपीलार्थी को बरी कर दिया जाए।

13. श्री निपुण सिंह, आपराधिक अपील संख्या 672 वर्ष 2022 यानी वह अपील जो उसने अनिल कुमार; शिमला @ सीमा; भावना और तेजपाल के बरी होने के खिलाफ दायर की थी और ललित कुमार पोसवाल की सजा बढाने के लिए की थी, में अपनी प्रस्तुतियाँ देते हुए शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यदि अ.सा.-1 का बयान देखा जाए तो पता चलेगा कि मृतिका-कृष्णा कुमारी और अभियुक्त-ललित कुमार पोसवाल की शादी 15.2.2014 को होने के बाद, लगातार दहेज की मांग की जा रही थी; मांग के कारण दिनांक 12.6.2014 को मृतका के पिता कृष्णा कुमारी को अपने घर ले गए थे और उसे 10-12 दिनों तक रखा। इसके बाद जुलाई, 2014 में मृतिका को उसके पिता ने एक बार फिर अपने साथ ले गए। प्रथम सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अ.सा.-1 ने अपने मुख्य बयान में कहा है कि 10.12.2014 को, मृतिका ने फोन किया था और कहा था कि उसे पिछले दिन पीटा गया था। इसके बाद अ.सा.-1 ने 11.12.2014 को अपने बेटे को कृष्णा कुमारी को लाने के लिए भेजा लेकिन ससुराल वालों ने कृष्णा कुमारी को उसकी मायका वापस भेजने से मना कर दिया। शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अ.सा. -1 ने शादी में लगभग 40 लाख रुपये खर्च किए थे। इसका काफी कुछ भाग उस पर डाले गए दबाव के कारण खर्च किया गया था। उन्होंने कहा है कि मृतिका की कार की ईएमआई का भुगतान भी उनके बेटे द्वारा किया जा रहा था। अ.सा.-1 ने कहा था कि उसने खुद मृतिका की गर्दन के किनारे एक घाव देखा था। वास्तव में, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि दहेज की मांग की गई थी जिसमें एक फॉर्च्यूनर कार, 11 लाख रुपये और एक सोने की चेन की मांग शामिल थी और जो नहीं दी गई थी, आरोपी ललित कुमार पोसवाल और परिवार के अन्य सदस्यों, जो भी आरोपी थे, ने मृतिका की हत्या कर दी थी।

14. इसी तरह अ.सा.-2 और अ.सा.-3 द्वारा दिए गए बयानों के आधार पर, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आरोपी ने वास्तव में मृतिका की हत्या की थी। शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि मृतिका द्वारा किए गए फोन कॉल के कॉल विवरण भी रिकॉर्ड में थे और उन्होंने बताया है कि कॉल कितने सेकंड तक चली थी और उन्होंने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में दी गई तारीखों को कॉल रिपोर्टों में मौजूद तारीखों के साथ जोड़ने की कोशिश की है और यह भी स्थापित करने की कोशिश की है यदि कोई स्वतंत्र गवाह नहीं था, तो यह तथ्य कि कॉल विवरण अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में दिए गए समय के साथ मेल खाता था, स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि दहेज की मांग की गई थी और मांग पूरी न होने के कारण, मृतिका को यातना दी गई और वह हत्या में समाप्त हो गयी।

15. **हरजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य (अपील (सीआरएल) संख्या 756 वर्ष 1999 में 8.12.2005 को विनिश्चित; मंगत राम बनाम हरियाणा राज्य (आपराधिक अपील संख्या 696 वर्ष 2009, 27.3.2014 को विनिश्चित); सतबीर सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य**

(2021) 6 एससीसी 1; मध्य प्रदेश राज्य बनाम जोगेंद्र और अन्य (2022) 5 एससीसी 401 और मारियानो एंटो ब्रूनो और अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक (आपराधिक अपील संख्या 1628 वर्ष 2022 में 12.10.2022 को विनिश्चित) में सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों पर भरोसा करते हुए शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि जब मानसिक और शारीरिक यातना, क्रूरता और दहेज की मांग थी, तो एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष यह था कि मृतिका की हत्या कर दी गई थी। यह निष्कर्ष तब और भी अपरिहार्य था जब मृतिका और आरोपी की शादी के सात साल के भीतर मौत हो गई थी। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अभियुक्तों को अपना बचाव करना था और यह साबित करना था कि वे दोषी नहीं थे।

16. विद्वान एजीए ने शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को भी अपनाया है और प्रस्तुत किया है कि चूंकि दहेज की क्रूरता और मांग के संबंध में रिकॉर्ड पर स्पष्ट सबूत उपलब्ध थे, जिसके परिणामस्वरूप मृतिका की मृत्यु हो गई थी, इसलिए बरी करने के निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाए और अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत के तहत दोषी ठहराया जाए।

17. श्री आशुतोष मिश्रा और श्री सिद्धार्थ शंकर की सहायता से, अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सतीश चंद्र मिश्रा, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री निपुण सिंह और विद्वान एजीए को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि आरोपी ललित कुमार पोसवाल द्वारा दायर आपराधिक अपील संख्या 1823 वर्ष 2022 की अनुमति दी जाए और धारा 372 सीआरपीसी संख्या 672 वर्ष 2022 और सरकारी अपील संख्या 356 वर्ष 2022 खारिज कर दी जाए ।

18. सबसे पहले, हमारा निश्चित रूप से यह विचार है कि सत्र न्यायालय का निर्णय और आदेश गलत था क्योंकि जब धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 आईपीसी और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप लगाए गए थे और आरोपी व्यक्तियों पर हत्या का मुकदमा चलाया गया था, तो अपीलार्थी को धारा 306 आईपीसी के तहत आरोप के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता था जो उकसाने के लिए था एक आत्महत्या की। आत्महत्या एक ऐसी चीज है जिसे एक व्यक्ति अपने दम पर करता है और हत्या एक ऐसा कार्य है जिसके द्वारा अभियुक्त हत्या करने के इरादे से दूसरे व्यक्ति की हत्या करता है और इसलिए हम पाते हैं कि जब अभियुक्त-अपीलार्थी पर आईपीसी की धारा 498-ए, 304-बी, 120-बी और 302/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप लगाया जा रहा था, उन्हें आईपीसी की धारा 306 के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

19. यद्यपि हम साधारण कारण के लिए अपील की अनुमति दे सकते थे कि मुकदमा हत्या के लिए था, लेकिन सजा आत्महत्या के लिए दी गई थी, हम पक्षों के विद्वान

अधिवक्ता द्वारा किए गए अन्य तर्कों का भी विज्ञापन कर रहे हैं।

20. निश्चित रूप से, हम पाते हैं कि क्रूरता को स्थापित करने के लिए विचारण के दौरान कोई स्वतंत्र गवाह नहीं लाया गया था। आरोपी और मृतक दोनों शहरी इलाकों में रहते थे जहां पड़ोस में घर थे। निश्चित रूप से उन पड़ोसियों में से स्वतंत्र गवाह पेश किए जा सकते थे जिन्होंने क्रूरता को देखा हो और देखा था और जब कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया था, तो एकमात्र अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि वास्तव में क्रूरता किसी स्वतंत्र गवाह द्वारा नहीं देखी गई थी और इसलिए, क्रूरता का आरोप संदिग्ध हो जाता है।

21. हमने यह भी पाया कि जब भी मृतिका ने अपने परिवार के सदस्यों से क्रूरता की शिकायत की, तो वह हमेशा फोन पर होती थी और कभी लिखित में नहीं होती थी। ई-संचार के वर्तमान युग में, जब हम पाठ संदेश, ई-मेल, व्हाट्सएप और अन्य मैसेजिंग सिस्टम का उपयोग करते हैं, तो मृतिका द्वारा अपने माता-पिता को एक भी संदेश नहीं भेजा गया था, जिससे यह संकेत मिलता हो कि कोई क्रूरता हो रही थी। इस प्रकार क्रूरता का आरोप निश्चित रूप से संदिग्ध हो जाता है।

22. इसके अलावा न्यायालय ने पाया कि मृतक का परिवार एक शिक्षित परिवार था। पिता और भाई सशस्त्र बलों में कार्यरत थे। यदि इस तरह की कोई शिकायत थी जो प्रथम सूचना रिपोर्ट और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में दिखाई गई थी, तो न्यायालय को लगता है कि एक शिक्षित व्यक्ति को किसी उचित मंच के समक्ष शिकायत करनी चाहिए थी। कोई शिकायत न होने पर क्रूरता के आरोप संदिग्ध हो जाते हैं।

23. शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमें विभिन्न बयानों के माध्यम से बताया है और विभिन्न टेलीफोन कॉल पर बहुत जोर दिया है जो कथित तौर पर मृतिका द्वारा उसके माता-पिता को किए गए थे। हालांकि, हम शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत नहीं हैं। हमें लगता है कि बेटियां अपने माता-पिता को फोन कॉल करती हैं और अगर वे फोन कॉल किए गए थे, तो कुछ भी असाधारण नहीं था। इसके अलावा, हम पाते हैं कि कई फोन कॉल एक मिनट के समय से अधिक नहीं थे और इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि केवल 'हैलो' और 'गुड मॉर्निंग' कहने के लिए फोन कॉल किए गए थे। इसलिए, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि ये फोन कॉल माता-पिता या भाई को क्रूरता के संबंध में शिकायत करने के लिए किए गए थे। अगर ऐसी शिकायतें की जातीं, तो उन्हें फोन कॉल डिटेल्स से ज्यादा समय लगेगा।

24. इसके अलावा हम पाते हैं कि मृतिका को इस हद तक कोई उकसाया नहीं गया था कि वह अपना जीवन समाप्त कर सके। हाइडोइड हड्डी बरकरार थी और इसलिए, एकमात्र निष्कर्ष यह था कि यह एक आत्महत्या थी। यदि हाइडोइड हड्डी टूट जाती है, तो चिकित्सा न्यायशास्त्र के तहत, सामान्य रूप से इसका मतलब यह होगा कि मौत गला घोंटने के

रिपोर्टेबल

कारण हुई थी। डॉक्टर ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि मौत फांसी लगाने के कारण हुई थी जिसके परिणामस्वरूप श्वासावरोध हुआ था।

25. सभी पहलुओं पर विचार करने पर, हमारा विचार है कि अपीलार्थी ललित कुमार पोसवाल आपराधिक अपील संख्या 1823 वर्ष 2022 में उन आरोपों के दोषी नहीं थे जो उनके खिलाफ लगाए गए थे। इसलिए उन्हें बरी किया जा रहा है।

26. ऐसी परिस्थितियों में, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी-1, गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 5.3.2022 को अपीलार्थी ललित कुमार पोसवाल को दोषी ठहराते हुए, रद्द किया जाता है और इसे अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को तुरंत रिहा कर दिया जाए यदि उसकी किसी अन्य आपराधिक मामले में आवश्यकता नहीं है।

27. चूंकि हमने आपराधिक अपील संख्या 1823 वर्ष 2022 की अनुमति दी थी, इसलिए ऊपर बताए गए सभी कारणों से, धारा 372 सीआरपीसी संख्या 672 वर्ष 2022 और सरकारी अपील संख्या 356 वर्ष 2022 के तहत आपराधिक अपील खारिज कर दी गई है।

(2023) 8 ILRA 833

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

शासकीय अपील संख्या 1873/1984

उत्तर प्रदेश राज्य ...अपीलकर्ता

बनाम

हर दयाल सिंह एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:
अपर शासकीय अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री पीएन मिश्रा, श्री सुरेश धर द्विवेदी, श्री विद्या कांत त्रिपाठी

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378 - बरी किए जाने के खिलाफ अपील - सिद्धांतों को दोहराया गया - बरी किए जाने के संबंध में ट्रायल कोर्ट का फैसला विकृत नहीं पाया गया - चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष की कहानी से असंगत - मृतक और प्रत्यक्षदर्शियों पर चोटें अस्पष्ट - घटनास्थल पर पीडब्लू - 1 और पीडब्लू - 2 की उपस्थिति के बारे में संदेह - मामूली विरोधाभास बरी किए जाने के फैसले को पलटने के लिए पर्याप्त नहीं - उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

अभिनिर्धारित किया गया : जहाँ अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर दो दृष्टिकोण उचित रूप से संभव हों, वहाँ अभियुक्त के पक्ष में दिए गए दृष्टिकोण को दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में मान्य किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति, कारण, या चोटों के लिए विश्वसनीय स्पष्टीकरण को पुष्ट रूप से स्थापित करने में

विफल रहा। निचली अदालत के निष्कर्ष विकृत या तर्कहीन नहीं हैं। अतः, हस्तक्षेप अनुचित है।

अपील खारिज की गई।

<u>चर्चा की गई वादविधियाँ</u> :

1. रवि शर्मा बनाम राज्य, (2022) 8 एससीसी 536;

2. कुलदीप सिंह बनाम पुलिस कमिश्नर, (1999) 2 एससीसी 10;

3. विजय मोहन सिंह बनाम कर्नाटक राज्य, (2019) 5 एससीसी 436;

4. चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एससीसी 415;

5. धनपाल बनाम राज्य, (2009) 10 एससीसी 401;

6. एन. विजयन कुमार बनाम तमिलनाडु राज्य, (2021) 3 एससीसी 687;

7. हकीम खान बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2017) 5 एससीसी 719;

8. कर्नाटक राज्य बनाम के. गोपालकृष्ण, (2005) 9 एससीसी 291.

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ताओं के लिए श्री के.पी. पाठक, विद्वान ए.जी.ए. और अभियुक्त-विपक्षी पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेश धर, द्विवेदी विद्या कांत, को सुना।

2. संक्षेप में वर्तमान मामले के तथ्य इस प्रकार कहा गया है, कि प्रथम सूचना रिपोर्ट अंतर्गत धारा 302/324 आई.पी.सी., के तहत यह मामला अपराध संख्या 14/1983 दिनांक 11.02.1983 पुलिस स्टेशन एस.एम. उत्तर, उप-जिला पुवाया, जिला सहजानपुर, मुखबिर प्रत्यक्षदर्शी पीडब्लू-1 अवतार सिंह, जो मृतक कुन्दन सिंह का पुत्र है, के द्वारा दर्ज कराया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्करण के अनुसार, आरोपी हरदयाल सिंह से मृतक द्वारा खरीदी गई भैंसों को वापस करने का विवाद उत्पन्न हुआ और घटना की तारीख 01/02/1983 से लगभग तीन या चार महीने पहले साधारण हाथापाई हुई थी। जिसके परिणामस्वरूप दुश्मनी हुई। जब मृतक कुन्दन सिंह मुखबिर के साथ अपने खेत में बरसीम काट रहे थे, तभी आरोपी हरदयाल सिंह सूजा लेकर वहां आया और गाली-गलौज करने लगा और उसके बाद उसने अपने भाइयों आरोपी तिरलोक सिंह, बलविंदर सिंगली और अपने रिश्तेदार भूरा को भी बुला लिया। तिरलोक सिंह और बलविन्दर सिंह के पास तलवारें थीं और भूरा के पास "कांटा" था, इन सभी ने मृतक कुन्दन सिंह को पीटना शुरू कर दिया और तभी सूचना दाता के चाचा, दिलीप सिंह और उसका बेटा, सरदत और सूचना दाता की माँ मृतक को बचाने के लिए दौड़े, आरोपी हरदयाल ने मृतक की छाती पर हमला किया, तिरिंक

और बहवंदर ने तलवारों और कांता से हमला किया और दिलीप सिंह, सरदार सिंह और सूचक की माँ पर भी हमला कर घायल कर दिया और उसके बाद भाग गया। घटना का समय दोपहर 01:00 बजे बताया गया और प्रथम सूचना रिपोर्ट रात 09:15 बजे दर्ज की गई। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी के बारे में मुखबिर ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही बता दिया था। जांच अधिकारी मौके पर पहुंचे और जमीन पर पड़े खून और गेहूं की पत्तियों (का -13 और का -14) और खून के धब्बों वाली सफेद *पगड़ी* के नमूने लिए। (का -15). प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से पहले दिनांक 11.02.1983 को चिकित्सा अधिकारी द्वारा सूचक अवतार सिंह की चोटों की जांच की गई थी, जो कि किसी तेज धार वाली वस्तु से लगी हुई पाई गई थी। सरदार सिंह की चोटों की जांच दिनांक 11.02.1983 को चिकित्सा अधिकारी द्वारा की गई थी, लेकिन अभियोजन पक्ष ने परीक्षण के दौरान उनकी जांच नहीं की थी। दिलीप सिंह की चोटों की जांच दिनांक 11.02.1983 को चिकित्सा अधिकारी द्वारा की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा पीडब्लू -2 के रूप में उनकी जांच की गई थी। मुखबिर की मां, सुरिंदर कौर ने भी दिनांक 14.02.1983 को दोपहर 01:45 बजे अपना चिकित्सकीय परीक्षण कराया और उनकी चोट संख्या 2 को किसी तेज धार वाली वस्तु के कारण साधारण चोट पाया गया और चोट संख्या 1 और 3 को किसी तेज धार वाली वस्तु के कारण हुई चोट पाया गया। कठोर या कुंद वस्तु से सभी चोटें साधारण पाई गईं। मृतक के शरीर का पोस्टमार्टम किया गया और निम्नलिखित चोटें पाई गईं-

"(1) साफ किनारों के साथ मर्मज्ञ घाव - 2.5 सेमी x 1 सेमी x छाती गुहा दाहिनी पूर्वकाल छाती की दीवार पर गहरा 3 बजे दाहिनी निपल के संबंध में 6 सेमी, पीछे की ओर से।

(2) कटा हुआ घाव 8 सी.एम. x 2 सेमी. बाएं हाथ की पिछली हड्डी को ट्रांसवर्सली रखा गया है। अंगूठे और तर्जनी के बीच जाल तक आना, तीसरी, चौथी और पांचवीं मेटाकार्पल हड्डियों को काटना।

(3) फटा हुआ घाव 2 सी.एम. x 1 सेमी. x मांसपेशी बाईं ओर की खोपड़ी 8 सेमी. बाएँ कान के ऊपर।

(4) कंटूजन 2 सी.एम. x 2 सेमी. बाएँ कान का ऊपरी भाग पिन्ना।

(5) एक पंक्ति पर दो कटे हुए घाव, दो सी.एम. अलग-अलग, प्रत्येक 2 सी.एम. x 0.2 सेमी. x त्वचा, पीछे दाहिनी कलाई।

(6) घर्षण 2.5 सेमी. लंबा x 6 सेमी., ऊपरी लेट शोल्डर।"

3. शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर को छाती गुहा में 500 एमएल खून मिला, दाहिना फेफड़ा ढह गया था, हृदय खाली था, पेट में तीन औंस अर्ध-पचा हुआ भोजन मौजूद था, बड़ी आंत में मल मौजूद था, छोटी आंत में पचा हुआ भोजन मौजूद था। चिकित्सा अधिकारी ने कहा कि मृतक की मृत्यु का कारण सदमे और मृत्यु पूर्व चोटों के कारण रक्तस्राव है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श के-19 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. अभियोजन पक्ष ने सूचक अवतार सिंह को पीडब्लू-1, (चश्मदीद गवाह), दिलीप सिंह को पीडब्लू-2 (चश्मदीद गवाह), डॉ. हबीब अहमद को पीडब्लू-3, जिन्होंने घायलों की चोटों की जांच की, के रूप में पूछताछ की, राम स्वरूप वर्मा एस.एच.ओ. पीडब्लू-4 के रूप में, मान सिंह कांस्टेबल पीडब्लू-5 के रूप में, जो शव को पोस्टमार्टम के लिए ले गए, डॉ. सत्यपाल पीडब्लू-6 के रूप में, जिन्होंने शव परीक्षण किया। श्री विष्णु दत्त अग्निहोत्री की जांच **CW-1** के रूप में की गई। बचाव पक्ष की ओर से, आरोपी हरदयाल, तिरलोक, बलविंदर और पलविंदर सिंह उर्फ भूरा सिंह के आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत बयान दर्ज किए गए। एक महेंद्र सिंह से डीडब्ल्यू-1 के रूप में जांच की गई और जूनियर क्लर्क राम पाल से डीडब्ल्यू-2 के रूप में जांच की गई। साक्ष्यों पर विचार करते हुए, विद्वान सत्र न्यायाधीश, सहजहपुर ने धारा 302/307 आई.पी.सी. के तहत, पुलिस स्टेशन एस.एम नॉर्थ के सत्र परीक्षण संख्या 351/1983 (राज्य बनाम हरदयाल और तीन अन्य) में आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 31.03.1984 पारित किया और सभी आरोपियों, हरदयाल सिंह, तिरलोक, बलविंदर सिंह और पलविंदर सिंह उर्फ भूरा सिंह को आई.पी.सी. की धारा 302/34 और धारा 307 आई.पी.सी. के तहत आरोपों से बरी कर दिया। इस निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, राज्य द्वारा वर्तमान सरकारी अपील दायर की गई है।

5. श्री केपी पाठक, विद्वान एजीए, प्रस्तुत करते हैं कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने प्रथम सूचना रिपोर्ट, जांच रिपोर्ट, अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में मामूली विरोधाभास के कारण मनमाने ढंग से और अवैध रूप से आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया है, जबकि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे मकसद साबित कर दिया है। इस प्रकार, घटना का स्थान, सामान्य इरादा और वस्तु, मृतक और घायल गवाहों को लगी चोटें, अभियोजन के मामले को सुसंगत करते है और मामूली विरोधाभासों को अभियोजन के लिए घातक नहीं कहा जा सकता है

6. आरोपी व्यक्तियों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि चोटें चोट रिपोर्ट और साक्ष्यों से पुष्ट नहीं होतीं। अभियोजन मकसद साबित करने में पूरी तरह विफल रहा है पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 इच्छुक गवाह हैं और उनकी उपस्थिति पूरी तरह से संदिग्ध पाई गई है। इस संबंध में संदर्भ आक्षेपित निर्णय के पैराग्राफ 30, 31, 32, 34 और 38 में हो सकता है। यह स्थापित कानून है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय द्वारा तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है यदि ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष इतने विकृत हों कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस पर विश्वास न करे। उन्होंने आगे कहा कि सूजा एक तेज धार वाली नुकीली चीज है, जो बरछा के समान नहीं है। न तो सूजा की कोई बरामदगी हुई, न ही प्रथम सूचना रिपोर्ट में, या धारा 161 के तहत बयान में, मुखबिर गवाहों ने किसी भी स्तर पर कहा है कि कथित सूजा दोधारी था। उन्होंने आगे कहा कि यह पहली बार है कि पीडब्लू-1 ने अदालत के समक्ष दर्ज किए गए अपने साक्ष्य में ये सभी आरोप लगाए हैं। उन्होंने आगे कहा कि कथित घायल गवाहों ने, उचित परामर्श के बाद, प्रथम सूचना रिपोर्ट

दर्ज की ताकि आरोपी विरोधी पक्षों, यानी तीन सगे भाइयों और एक रिश्तेदार को झूठा फंसाया जा सके। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी व्यक्तियों के अपराध को स्थापित करने में पूरी तरह से विफल रहा है। उन्होंने आगे कहा कि उच्च न्यायालय द्वारा अपील में हस्तक्षेप का दायरा सीमित है, और ऐसी स्थिति में, यदि दिए गए साक्ष्यों के सेट पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, तो आरोपी को बरी करने के लिए ट्रायल कोर्ट द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का पालन करना होगा। उन्होंने आगे कहा कि विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत नहीं हैं, बल्कि वे रिकॉर्ड पर प्रासंगिक साक्ष्यों के उचित विचार पर आधारित हैं।

7. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है

8. हमने पाया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी व्यक्तियों को इस आधार पर बरी कर दिया है कि मृतक की तीन चोटों को अभियोजन पक्ष द्वारा समझाया नहीं जा सका, जादुई साक्ष्य और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पुष्टिकारक नहीं हैं, इसमें बड़ा विरोधाभास है मेडिकल रिपोर्ट और कथित चश्मदीदों के सबूतों के बीच, घायलों की जांच करने वाले पीडब्लू-3 ने राय दी है कि चोटें साधारण हैं और यह एक गढ़ा हुआ हो सकती हैं। पीडब्लू-3 डॉक्टर जिसने घायलों की चोटों की जांच की, एक पक्षपातपूर्ण गवाह है। पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 इच्छुक गवाह हैं। घटना स्थल पर पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की उपस्थिति संदिग्ध है और पीडब्लू-3 का आचरण भी संदिग्ध है। अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक की चोटें साबित नहीं की जा सकीं। अभियोजन पक्ष यह साबित करने में पूरी तरह विफल रहा कि मृतक को चोटें सूजा के कारण लगी थीं। मृतक कुन्दन सिंह की मृत्यु का कारण बनी चोटें, जैसा कि चिकित्सा अधिकारी द्वारा पाया गया, पहले ही ऊपर निकाली जा चुकी हैं। 2.5 सेमी x 1 सेमी का एक घुसा हुआ घाव था, तीन कटे हुए घाव थे, एक फटा हुआ घाव था, एक चोट थी और एक घर्षण था। निर्विवाद रूप से, सूजा गोल या चौकोर बार से बना होता है जिसके एक सिरे पर नुकीला बिंदु होता है

9. कुन्दन सिंह की चोट नंबर 1 भाले या बरछा जैसे किसी हथियार से लगी थी जिसके दो नुकीले किनारे और दो सेंटीमीटर से अधिक की चौड़ाई थी। मुखबिर ने हरदयाल के हाथ में मौजूद हथियार का नाम सूजा बताया है। यह पहली बार है कि पीडब्लू-1 ने यह कहकर मामले को बेहतर बनाने का प्रयास किया कि सूजा के दो पहलू थे। यहां तक कि धारा 161 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में भी, पीडब्लू-1/शिकायतकर्ता अवतार सिंह ने यह नहीं कहा था कि आरोपी हरदयाल सिंह द्वारा इस्तेमाल किया गया सूजा दोधारी था। **इस प्रकार स्पष्ट है कि मृतक कुन्दन सिंह के शरीर पर पाये गये चोट क्रमांक 1 का न तो स्पष्टीकरण किया जा सका और न ही यह सिद्ध किया जा सका कि यह चोट अभियुक्त हरदयाल द्वारा सूजा के कारण लगी थी।**

10. मृतक कुन्दन सिंह के शरीर पर 2 सेमी x 1 सेमी का एक कटा हुआ घाव। एक्समांसपेशी गहरी, एक चोट 2 सेमी। x 2 सेमी और एक घर्षण 2.5 सेमी X 0.6 सेमी पाया गया। चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार, मृतक को ये चोटें किसी कुंद वस्तु से लगी थीं। आरोपियों के हाथ में दिखाए गए हथियार सूजा, तलवार और कांटा हैं। अभियोजन पक्ष ने मृतक को उक्त चोट पहुंचाने के लिए आरोपी व्यक्तियों द्वारा किसी कुंद वस्तु के उपयोग का आरोप नहीं लगाया है। अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका कि मृतक को किस हथियार से और किस तरह से उपरोक्त चोटें आईं। इन चोटों का स्पष्टीकरण न करने से दो संभावित निष्कर्ष निकलते हैं।

पहला यह कि चोट लगने पर चोट लगने के लिए काँटा की छड़ का उपयोग कुंद वस्तु के रूप में किया जाता था और नीचे गिरने से चोट और घर्षण होता था। **दूसरा** निष्कर्ष यह हो सकता है कि ये चोटें किसी कुंद वस्तु के कारण लगी थीं जिसे शिकायतकर्ता अवतार सिंह पीडब्लू-1 और **दिलीप सिंह पीडब्लू-2** ने नहीं देखा था। दोनों निष्कर्षों से, एक निष्कर्ष बहुत अच्छी तरह से निकाला जा सकता है कि या तो पीडब्लू-1 अवतार सिंह और पीडब्लू-2 दिलीप सिंह घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे या उन्होंने परीक्षण के दौरान कुछ महत्वपूर्ण तथ्य छिपाए। दोनों ही परिस्थितियाँ अभियोजन पक्ष के लिए घातक हैं। घटना और चोटों को स्पष्ट करने का भार अभियोजन पक्ष पर था लेकिन अभियोजन यह साबित करने में विफल रहा है।

11. जहां तक **श्रीमती सुरिंदर कौर** की चोटों का प्रश्न है, चोट रिपोर्ट के अनुसार, उन्हें एक खरोंच, एक कटा हुआ घाव और एक चोट की साधारण चोटें लगीं थी। अभियोजन पक्ष ने उपरोक्त श्रीमती की जांच नहीं की थी। अभियोजन पक्ष की गवाह के रूप में सुरिंदर कौर, जिनके पति कुंदन सिंह को भी चोट और खरोंच का सामना करना पड़ा था। अभियोजन पक्ष ने श्रीमती से पूछताछ नहीं की थी। सुरिंदर कौर, जो अपनी चोटों के बारे में बताने के लिए सबसे अच्छे व्यक्ति हो सकती हैं। अभियोजन पक्ष की ओर से अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में सुरिंदर कौर से पूछताछ न करने के लिए कोई स्पष्टीकरण पेश नहीं किया गया है।

12. एफआईआर दर्ज करने से पहले **अवतार सिंह पीडब्लू-1** की मेडिकल जांच की गई। जीडी रिपोर्ट नंबर 24, प्रदर्श का.7 में, यह उल्लेख नहीं किया गया है कि पीडब्लू 1 अवतार सिंह के हाथ में कुछ पट्टीदार घाव था। यहां तक कि धारा 161 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, के तहत अपने बयान में भी, पीडब्लू-1 अवतार सिंह ने यह नहीं बताया था कि संबंधित घटना में उन्हें चोटें आईं थीं। इसके बजाय, अवतार सिंह ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा था। कि वह चोट से बच गया। पीडब्लू-1 अवतार सिंह ने पहली बार ट्रायल कोर्ट के सामने कहा कि उन्हें संबंधित घटना में चोटें आई हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह पैदा करता है।

13. **पीडब्लू-3 डॉ. हबीब अहमद** का आचरण भी संदिग्ध है। पीडब्लू-1 अवतार सिंह, पीडब्लू-2 दिलीप सिंह और सरदार सिंह की चोट रिपोर्ट

के अवलोकन से पता चलता है कि पीडब्लू-3 ने किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा अनुरोध किए बिना दिनांक 11.02 1983 को शाम 4 बजे से शाम 5 बजे के बीच उनकी जांच की। इन व्यक्तियों की चिकित्सा जांच के लिए, पीडब्लू-3 ने उपरोक्त तीन चोटों के बारे में पुलिस स्टेशन बांदा की पुलिस को सूचित न करने का भी फैसला किया है।

14. इस प्रकार, यह संदेहास्पद है कि इन तीन व्यक्तियों को उसी घटना में चोटें आई थीं जिसमें मृतक कुंदन सिंह की हत्या की गई थी। चोट की रिपोर्ट के अनुसार, दिलीप सिंह को किसी प्रीतम सिंह द्वारा लाया गया था, लेकिन पहले प्रीतम सिंह की पहचान का खुलासा ट्रायल कोर्ट में नहीं किया गया था। **पीडब्लू-3 ने स्वयं स्वीकार किया कि यदि उनमें सहनशीलता हो तो उपरोक्त तीनों घायलों को लगी चोटें स्वयं को पहुंचाई जा सकती हैं।** इस प्रकार, पीडब्लू-3 द्वारा तैयार की गई उक्त तीनों घायलों की मेडिकल रिपोर्ट विश्वास पैदा नहीं करती है।

15. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, तथ्य को ध्यान में रखते हुए, दोनों प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति घटना स्थल पर पीडब्लू-1 एवं पीडब्लू- 2 की उपस्थिति संदिग्ध प्रतीत हो रही है। उपरोक्त दोनों गवाहों ने कहा है कि मृतक कुंदन सिंह सफेद पगड़ी पहने हुए था, जबकि जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट में शव के पास गुलाबी पगड़ी पाई थी। पीडब्लू-1 शिकायतकर्ता - अवतार सिंह यह भी खुलासा करने में विफल रहा कि 'लंगर' से भोजन ले जाने वाली गाड़ी कौन चला रहा था और क्या गाड़ी बैल या भैंस द्वारा खींची जा रही थी। यदि वह वास्तव में घटनास्थल पर मौजूद होता, तो वह बता सकता था कि गाड़ी बैल या भैंस द्वारा खींची गई थी। उन्होंने एफआईआर में यह उल्लेख नहीं किया है कि वह संबंधित घटना में घायल हुए थे। पीडब्लू-1 अवतार सिंह ने अपनी जिरह में कहा है कि गाड़ी गुरुद्वारे की थी, लेकिन उन्हें नहीं पता कि इसे बैल चला रहे थे या भैंस। इस प्रकार, विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा घटना स्थल पर पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की उपस्थिति पर संदेह करते हुए लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है जिस पर सामान्य विवेक वाला व्यक्ति रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर विश्वास कर सकता है।

16. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, हम पाते हैं कि विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में घटना के स्थान पर पीडब्लू-1 की उपस्थिति, अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक की चोटों के बारे में गैर-स्पष्टीकरण, पीडब्लू-3 के साक्ष्य पर अविश्वास किया गया था और पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और सुरिंदर कौर की चोटें, यह मानने के लिए विश्वास को प्रेरित नहीं करती हैं कि अभियोजन पक्ष अपना मामला संदेह से परे स्थापित करने में विफल रहा है, अनुचित नहीं है, और जो निष्कर्ष निकला है वह रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर आधारित है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

<u>दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत</u>:-

17. **रवि शर्मा बनाम राज्य, (2022) 8 एससीसी 536** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों का उल्लेख किया और कहा कि धारा 378 सीआर.पी.सी. के तहत अपील में, अपीलीय न्यायालय के समक्ष निर्दोषता की धारणा को बल मिलता है। इसलिए, अभियोजन पक्ष पर जिम्मेदारी अधिक बोझिल हो जाती है क्योंकि इसमें निर्दोषता की दोहरी धारणा होती है। निश्चित रूप से, प्रथम दृष्टया न्यायालय के पास अपना फैसला सुनाने के अपने फायदे हैं, जिसमें गवाहों को गवाही देते समय व्यक्तिगत रूप से देखना शामिल है। अपीलीय न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल उसके सामने मौजूद साक्ष्यों की गहन, अध्ययनित जांच में शामिल हो, बल्कि स्वयं को संतुष्ट करने के लिए बाध्य है कि क्या ट्रायल कोर्ट का निर्णय संभव और प्रशंसनीय है। जब दो दृष्टिकोण संभव हों, तो बरी किए जाने के मामले में ट्रायल कोर्ट द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को गवाहों को देखने के लाभ के साथ-साथ स्वतंत्रता की कसौटी पर पालन किया जाना चाहिए। यह अदालत अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय ट्रायल कोर्ट में रिकॉर्ड किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकती है। यदि ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष विकृत हैं या यदि निष्कर्ष प्रासंगिक सामग्री को अनदेखा या बाहर करके या अप्रासंगिक/अस्वीकार्य सामग्री को ध्यान में रखकर निकाले गए हैं। निष्कर्ष को विकृत भी कहा जा सकता है यदि यह "साक्ष्य के वजन के विरुद्ध" है, या यदि निष्कर्ष इतनी अपमानजनक रूप से तर्क की अवहेलना करता है कि मामले तर्कहीनता के दोष से ग्रस्त है। **देखिए, राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन के [(1984) 4 एससीसी 635], आबकारी एवं कराधान अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकारी बनाम गोपी नाथ एंड संस [1992 सप्प (2) एससीसी 312], त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक्स बनाम सीसीई [1994 सप (3) एससीसी 665], गया दीन बनाम हनुमान प्रसाद [(2001) 1 एससीसी 501], अरुवेलु बनाम राज्य, [(2009) 10 एससीसी 206] और गामिनी बाला कोटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य। [(2009) 10 एससीसी 636])।"**

18. **कुलदीप सिंह बनाम पुलिस कमिश्नर [(1999) 2 एससीसी 10]** में माननीय प्रीम कोर्ट ने माना कि आदेश विकृत होगा, यदि कोई निर्णय बिना किसी सबूत या पूरी तरह से अविश्वसनीय सबूत के आधार पर आता है और कोई भी उचित व्यक्ति उस पर कार्रवाई नहीं करेगा। लेकिन अगर रिकॉर्ड पर कुछ सबूत हैं जो स्वीकार्य हैं और जिन पर भरोसा किया जा सकता है, तो निष्कर्षों को विकृत नहीं माना जाएगा, और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

19. **विजय मोहन सिंह बनाम कर्नाटक राज्य, [(2019) 5 एससीसी 436] (पैरा-31 और 31.1 से 31.4)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीआर.पी.सी. की धारा 378 के दायरे पर विचार किया और **सांबासिवन बनाम केरल राज्य, [(1998) 5 एससीसी 412], के. रामकृष्णन उन्नीथन बनाम केरल राज्य, [(1999) 3 एससीसी 309], एटली बनाम यूपी राज्य, में इसके पहले के निर्णयों का जिक्र करते हुए, [ए.आई.आर. 1955 एससी 807], विलायत खान बनाम यूपी राज्य [ए.आई.आर.**

1953 एससी 122], के. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [(1979) 1 एससीसी 355] और उम्मेदभाई जादवभाई बनाम गुजरात राज्य, [(1978) 1 एससीसी 228] में पारित निर्णय पर विचार किया और माना कि बरी करने के आदेश के विरुद्ध जब अपील पर विचार किया गया, उच्च न्यायालय स्वतंत्र रूप से संपूर्ण साक्ष्यों की पुनः समीक्षा करने और अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का, हकदार था। आमतौर पर, उच्च न्यायालय सत्र न्यायाधीश की राय को उचित महत्व देगा यदि वह साक्ष्य की उचित सराहना के बाद पहुंचा हो, लेकिन यह नियम वहां लागू नहीं होगा जहां सत्र न्यायाधीश ने बहुत ही महत्वपूर्ण और गलत धारणा बना ली है। मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में निर्णायक पहलू या यह कि सबूतों से निपटने में ट्रायल कोर्ट का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था या उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूरी तरह से अस्थिर थे या कि ट्रायल कोर्ट ने मामूली कारणों से विश्वसनीय साक्ष्य को खारिज कर दिया है और सबूतों को देखने का कदम उठाया है, जो मुश्किल से संभव है। ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है कि वह न्याय के हित में हस्तक्षेप करे और अपील की अदालत की अपनी व्यापक शक्ति का प्रयोग बरी करने के आदेश के खिलाफ सबूतों की सराहना करने में इस तरह से करे कि, दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ ट्रायल कोर्ट में आरोपी व्यक्ति की बेगुनाही की धारणा अपीलीय चरण तक जारी रहती है और अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट को उसकी राय के लिए उचित महत्व देना चाहिए जिसने बरी करने का आदेश रिकॉर्ड किया।

20. **चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में, [(2007) 4 एससीसी 415 (पैरा-42)]** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व के अनेक निर्णयों तथा धारा 378 सीआर.पी.सी. पर विचार किया और **अपीलीय अदालत की शक्तियों से संबंधित सिद्धांतों** को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया हैजो कि **बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील** के निस्तारण से संबंधित निम्नवत है:

42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे विचार में, दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील को निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत सामने आते हैं,

(1) अपीलीय न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है,

(2) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 इस तरह की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और अपीलीय न्यायालय तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले साक्ष्य पर विचार कर सकता है;

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, पर्याप्त और सम्मोहक कारण', 'अच्छे और पर्याप्त आधार', 'बहुत

मजबूत परिस्थितियाँ, 'विकृत निष्कर्ष', 'स्पष्ट गलतियाँ, आदि का उद्देश्य बरी किये जाने के विरुद्ध अपील में, साक्ष्यों की समीक्षा करने में, किसी अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने की अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में बरी करने में हस्तक्षेप करने के लिए अपीलीय न्यायालय की अनिच्छा पर जोर देने के लिए इस तरह की वाक्यांश विज्ञान भाषा के उत्कर्ष की प्रकृति में अधिक हैं।

(4) हालाँकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने की स्थिति में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा होती है। सबसे पहले, आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के तहत उसे निर्दोषता की उपधारणा उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह सक्षम अदालत द्वारा दोषी साबित न हो जाए। दूसरा, अभियुक्त ने अपनी रिहाई सुनिश्चित कर ली है, उसकी बेगुनाही की धारणा को ट्रायल कोर्ट द्वारा और अधिक मजबूत, पुन: पुष्टि और मजबूत किया गया है।

(5) यदि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय अदालत को ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए।

21. **धनपाल और अन्य बनाम राज्य के मामले में, [(2009) 10 एससीसी 401 (पैरा-39)],** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार पांच सिद्धांत निकाले हैं:

"39. उपरोक्त मामलों से निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं

1. *दोषी साबित होने तक आरोपी को निर्दोष माना जाता है। यह अनुमान है कि अभियुक्त के पास तब कब्ज़ा था जब वह ट्रायल कोर्ट के समक्ष था।*
   ट्रायल कोर्ट के बरी होने से यह अनुमान लगाया जाता है कि वह निर्दोष है।

2. *साक्ष्य की समीक्षा करने की शक्ति व्यापक है और अपीलीय अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद पूरे साक्ष्य की फिर से सराहना कर सकती है। यह अदालत ट्रायल कोर्ट के तथ्यों और कानून दोनों के संबंध में निष्कर्ष की समीक्षा कर सकता है, लेकिन अपीलीय न्यायालय को ट्रायल कोर्ट के फैसले पर उचित महत्व और विचार कर सहमती देनी चाहिए।*

3. अपीलीय अदालत को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि ट्रायल कोर्ट को गवाहों के आचरण को देखने का विशिष्ट लाभ था। गवाहों की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करने के लिए ट्रायल कोर्ट बेहतर स्थिति में है ।

4. अपीलीय अदालत ट्रायल कोर्ट के बरी करने के फैसले को केवल तभी खारिज कर सकती है या अन्यथा परेशान कर सकती है यदि उसके पास ऐसा करने के लिए "बहुत ठोस और बाध्यकारी कारण" हों।

5. यदि दो उचित या संभावित विचारों पर पहुंचा जा सकता है, एक दोषमुक्ति का और दूसरा दोषसिद्धि का - तो उच्च न्यायालयों/अपीलीय अदालतों को आरोपी के पक्ष में फैसला देना चाहिए।''

22. **एन. विजयन कुमार बनाम तमिलनाडु राज्य, [(2021) 3 एससीसी 687]** में हाल के फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के तहत, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील के बीच कोई अंतर नहीं किया जाना चाहिए।

23. **हकीम खान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2017) 5 एससीसी 719**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यदि ट्रायल कोर्ट का "संभावित दृष्टिकोण" उच्च न्यायालय के लिए सहमत नहीं है, तब भी ट्रायल कोर्ट द्वारा ऐसा "संभावित दृष्टिकोण" दर्ज किया गया है निषेध नहीं किया जा सकता। आगे यह माना गया है कि ट्रायल कोर्ट का दृष्टिकोण तर्कसंगत रूप से बनाया जा सकता है, भले ही उच्च न्यायालय उससे सहमत हो या न हो, ट्रायल कोर्ट के फैसले पर रोक नहीं लगाई जा सकती है और उच्च न्यायालय ट्रायल कोर्ट के दृष्टिकोण को हटा नहीं सकता है।

24. **सरकारी अपील संख्या 506/2019 (यूपी राज्य बनाम सलीम और 4 अन्य, निर्णय दिनांक 28.01.2020 (पैरा -11))** में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नानुसार निर्णय लिया:

"11. बरी किए जाने के खिलाफ अपील या पुनरीक्षण में हस्तक्षेप की गुंजाइश पर विचार करते समय, सुप्रीम कोर्ट ने यह माना है कि यदि साक्ष्य के दो दृष्टिकोण उचित संभव हैं, एक बरी करने का समर्थन करता है और दूसरा दोषसिद्धि का संकेत देता है, तो ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय को ऐसा नहीं कर हटा सकता कि वह ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के आदेश को उलट दें। कर्नाटक राज्य बनाम के गोपालकृष्ण की रिपोर्ट एम (2005) 9 एससीसी 291 के मामले में, बरी किए जाने के खिलाफ अपील

पर सुनवाई करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचार किया जो निम्नवत है:

"ऐसी अपील में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्ष अपीलीय अदालत को आसानी से परेशान नहीं करती यदि उसी के आधार पर साक्ष्य के, दो दृष्टिकोण यथोचित रूप से संभव हैं, और अभियुक्त पक्ष का दृष्टिकोण निचली अदालत ने स्वीकार कर लिया है, यही बरी करने का आदेश को बरकरार रखने के लिए पर्याप्त है. जब भी, बरी करने का आदेश अपीलीय न्यायालय के पास इस निष्कर्ष से आता है कि निचली न्यायालय का निष्कर्ष पूरी तरह से अनुचित हैं या विकृत और रिकॉर्ड पर मौजूद विवेक पर आधारित नहीं है, या गंभीर अवैधता जिसमें अज्ञानता या साक्ष्यों का ग़लत अर्थ शामिल है, अपीलीय अदालत द्वारा "बरी करने का आदेश" रद्द करना उचित होगा।"

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान मामले के तथ्यों पर संक्षेपित सिद्धांतों को **चंद्रप्पा (उपरोक्त)** और **धनपाल (उपरोक्त)** के मामले में लागू किया, सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने बरी करने के आदेश में उचित दृष्टिकोण अपनाया है। लिया गया दृष्टिकोण विकृत नहीं है। इसलिए, हमें सत्र न्यायालय द्वारा बरी करने के पारित आदेश को रद्द करने या परेशान करने का कोई अच्छा कारण नहीं मिलता है।

26. उपरोक्त सभी कारणों से, हमें इस सरकारी अपील में कोई योग्यता नहीं दिखती है, जो पिछले लगभग 40 वर्षों से इस अदालत में लंबित है।

27. **अपील** में योग्यता नहीं है और इसलिए **खारिज** कर दिया गया है। रिकॉर्ड्स को तुरंत वापस भेजा जाए।

(2023) 8 ILRA 841

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 167/2023

अंजलि ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

प्रदीप कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, विकास शर्मा

बंदी प्रत्यक्षीकरण- बंदी की नाबालिगता - आयु का निर्धारण - आधार कार्ड, हाई स्कूल मार्कशीट और अन्य प्रमाणपत्रों में विरोधाभासी

प्रविष्टियां - बंदी द्वारा स्कूल प्रमाणपत्र में जन्मतिथि से इनकार - नगरपालिका प्राधिकरण द्वारा जारी कोई जन्म प्रमाणपत्र नहीं - अदालत द्वारा अस्थिकरण परीक्षण का निर्देश - बंदी को बालिग पाया गया - अपनी इच्छा से विवाहित - प्राकृतिक अभिभावक (पिता) के साथ जाने को तैयार नहीं - निर्णय: जहां किशोर न्याय अधिनियम की धारा 94(2)(i) और (ii) के तहत दस्तावेजों द्वारा आयु निर्धारण अविश्वसनीय है, खंड (iii) के तहत अस्थिकरण परीक्षण एकमात्र वैध आधार बन जाता है - अनुच्छेद 21 के तहत बंदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बरकरार रखा जाना चाहिए - बंदी को अवैध हिरासत में नहीं पाया गया।

अभिनिर्धारितः

जहाँ बंदी की आयु विवादित हो और स्कूल प्रमाणपत्रों व आधार कार्ड जैसे दस्तावेज़ों में जन्मतिथियाँ परस्पर विरोधी हों, और जहाँ बंदी स्वयं स्कूल में दर्ज जन्मतिथि पर विवाद करता हो, वहाँ किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94(2)(iii) के अनुसार अस्थिभंग परीक्षण ही एकमात्र विश्वसनीय तरीका बन जाता है। वर्तमान मामले में, अस्थिभंग परीक्षण से यह स्थापित हुआ कि बंदी की आयु लगभग 18 वर्ष है। बंदी ने अपनी इच्छा से प्रतिवादी से विवाह किया है और अपने प्राकृतिक अभिभावक के साथ जाने से इनकार कर रही है। यह अपहरण या अवैध हिरासत का मामला नहीं है। अतः, याचिका खारिज कर दी गई और बंदी को अपनी इच्छा से जाने की स्वतंत्रता दे दी गई। **याचिका खारिज की गई।**

<u>चर्चा की गई वादविधियाँ</u> :

1. अलामेलु एवं अन्य बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व

2. (2011) 2 एससीसी 385

3. बिरादमल सिंघवी बनाम आनंद पुरोहित,

4. (1988) 3 एससीसी 24

5. नर्बदा देवी गुप्ता बनाम बीरेंद्र कुमार जयसवाल, (2003) 8 एससीसी 745

6. जया माला बनाम जम्मू-कश्मीर सरकार, (1982) 2 एससीसी 538

7. रविंदर सिंह गोरखी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 5 एससीसी 584

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. वर्तमान याचिका निरूद्ध प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप में एक रिट जारी करने के लिए जिसमें प्रतिवादी पक्षों को याचिकाकर्ता/निरूद्ध को इस न्यायालय के समक्ष पेश करने और उसे उसके पिता की देखरेख और संरक्षण में स्वतंत्र करने का आदेश देने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार त्रिपाठी और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आलोक तिवारी तथा निरूद्ध अंजलि, जिसे उप-निरीक्षक श्री राम विशाल सिंह और सिपाही मनीषा शर्मा द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पेश किया गया है, को सुना गया और साथ ही अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

3. प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं हैं, हालांकि प्रतिवादी संख्या 4 शेर सिंह उर्फ सेरा इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित है, जिसकी पहचान निरूद्ध ने की है।

4. इस न्यायालय ने दिनांक 8.8.2023 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किए हैं:-

> *"1. दिनांक 24.7.2023 के आदेश के अनुपालन में, निरूद्ध अंजलि को उप-निरीक्षक राम विशाल सिंह और महिला सिपाही मनीषा शर्मा द्वारा पेश किया गया है।*
>
> *2. पूछताछ करने पर निरूद्ध अंजलि ने बताया है कि उसकी जन्मतिथि 18.8.2004 है और वह वर्तमान में 20 वर्ष की है। उसने आगे कहा कि उसकी हाई स्कूल के अंकपत्र में दर्ज जन्मतिथि उसके आधार कार्ड में दर्ज जन्मतिथि से भिन्न है और उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उसने आगे कहा कि वह अपने पिता, अभिसाक्षी के साथ नहीं जाना चाहती है; बल्कि प्रतिवादी संख्या 4 के साथ रहना चाहती है जिससे उसकी शादी हो चुकी है।प्रतिवादी संख्या 4 सेरा और निरूद्ध दोनों ने प्रस्तुत किया है कि उन्हें आज पंजाब से इस न्यायालय के समक्ष लाया गया है। वे दोनों पंजाब में साथ रह रहे थे और वहीं अपना जीवनयापन कर रहे थे। शेरा ने आगे कहा है कि वह निरूद्ध के साथ थाना मड़ियांव में अपने चाचा के यहां रह रहा है और दोनों कुछ समय तक वहीं रहेंगे।*
>
> *3. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि निरूद्ध दावा करती है कि वह बालिग है और वह हाई स्कूल के अंकपत्र में जन्मतिथि का खंडन कर रही है, यह उचित होगा कि निरूद्ध की आयु पता लगाने के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सीतापुर द्वारा अस्थि-परीक्षण कराया जाए। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अभिसाक्षी ने संबंधित थाने में 9.5.2023 को तहरीर के रूप में एक आवेदन दिया था जिसमें उसने स्वयं निरूद्ध की जन्मतिथि 20 वर्ष बताई थी।*
>
> *4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क का सामना करने पर कहा कि अभिसाक्षी अशिक्षित है और उसे यह भी पता नहीं है कि आवेदन में वास्तव में क्या लिखा गया*

है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से यह पूछे जाने पर कि हाई स्कूल के अंकपत्र में निरूद्ध की जन्मतिथि 8.6.2006 कैसे दर्ज की गई है और यह आधार कार्ड में दर्ज जन्मतिथि से कैसे भिन्न है, जैसा कि निरूद्ध द्वारा बताया गया है, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उनके पास कोई प्रमाण नहीं है और इस संदर्भ में उन्होंने अपने मुवक्किल से कोई निर्देश नहीं लिया है।

5. अभिसाक्षी को निर्देश दिया जाता है कि वह निरूद्ध के प्रारंभिक विद्यालय (विद्यालयों), जहां उसने अध्ययन किया है, के प्रमाण-पत्रों को अभिलेख में लाते हुए एक पूरक शपथ पत्र दाखिल करे।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि केवल निरूद्ध की हाई स्कूल अंक पत्र में दर्ज जन्म तिथि को आयु का अनन्य प्रमाण नहीं माना जा सकता है, यह उचित होगा कि निरूद्ध का अस्थि-परीक्षण मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा कराया जाए।

7. यह आदेश दिया जाता है कि न्यायालय में उपस्थित पुलिस कर्मी आज निरूद्ध को बाल कल्याण समिति, सीतापुर के समक्ष प्रस्तुत करेंगे, जहां निरूद्ध को न्यायालय के अगले आदेश तक रखा जाएगा। वे निरूद्ध को कल मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सीतापुर के समक्ष प्रस्तुत करेंगे जो 24 घंटे के भीतर निरूद्ध का अस्थि-परीक्षण करेंगे और रिपोर्ट संबंधित पुलिस अधिकारी को सौंपेंगे।

8. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता तीन दिनों के भीतर प्रतिउत्तर शपथ पत्र दाखिल करेंगे।

9. दिनांक 11.8.2023 को सूचीबद्ध करें। उस दिन, निरूद्ध को पुनः प्रस्तुत किया जाएगा।"

5. आज, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने चिकित्सा बोर्ड, सीतापुर द्वारा कराए गए अस्थि-परीक्षण की मूल प्रति प्रस्तुत की है और रेडियोधर्मी एवं सामान्य शारीरिक बनावट के अनुसार, चिकित्सा बोर्ड द्वारा निरुद्ध व्यक्ति की आयु लगभग 18 वर्ष आंकी गई है और इस आशय का प्रमाण पत्र मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सीतापुर के कार्यालय द्वारा जारी किया गया है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रदान किए गए प्रमाण पत्र की छायाप्रति रिकॉर्ड पर ली जाती है।

6. दिनांक 8.8.2023 के आदेश (ऊपर उद्धृत) के पैराग्राफ संख्या 2 में इस न्यायालय द्वारा निरूद्ध अंजलि का बयान दर्ज किया गया था। आज पुनः पूछताछ किए जाने पर निरूद्ध अंजलि ने बताया है कि उसने शेर सिंह उर्फ सेरा से विवाह किया है तथा अपने कथन/तर्क के समर्थन में उसने आर्य समाज मंदिर लखनऊ द्वारा जारी विवाह प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है, जिसमें पंजीकरण संख्या 1867 दर्शाई गई है, जिससे पता चलता है कि निरूद्ध अंजलि ने 15.6.2023 को शेर सिंह के साथ विवाह किया

है। विवाह प्रमाण पत्र की छायाप्रति रिकार्ड में ली गई है। उसने आगे बताया कि विवाह तीन माह पूर्व लखनऊ में हुआ था। विवाह के पश्चात वह पंजाब राज्य में सेरा के साथ रह रही थी। वह अपने पति शेर सिंह उर्फ सेरा के साथ रहना चाहती है। अंजलि के आधार कार्ड की एक प्रति सेरा, जो न्यायालय में उपस्थित है, द्वारा उपलब्ध कराई गई है। इसके अवलोकन से पता चलता है कि निरूद्ध की जन्मतिथि 1.1.2004 है, जो निरूद्ध द्वारा पिछली तिथि को दिए गए इस कथन की पुष्टि करती है कि आधार कार्ड में उसकी जन्मतिथि हाईस्कूल के अंकपत्र में दर्ज जन्मतिथि से भिन्न है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि निरुद्ध व्यक्ति की वास्तविक जन्म तिथि 08.06.2007 है और हाई स्कूल के अंकपत्र में दर्ज जन्म तिथि गलत है।

8. अपने दावे के समर्थन में, उन्होंने अरुणोदय इंटर कॉलेज, सीतापुर द्वारा 08.12.2022 को जारी कक्षा 10वीं के छात्र पंजिका और स्थानांतरण प्रमाण पत्र दिया है और कक्षा 8वीं का अंकपत्र भी प्रस्तुत किया है, जो निरूद्ध की जन्म तिथि 08.06.2007 दर्शाता है और हाईस्कूल का अंकपत्र जो पुनः जन्मतिथि 8.6.2006 दर्शाता है।

9. याचिकाकर्ता की ओर से निरूद्ध की आयु से संबंधित प्रस्तुत शैक्षिक प्रमाण पत्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सही जन्म तिथि के संबंध में विरोधाभास है।

10. अभिसाक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने पिछली तिथि को इस न्यायालय के समक्ष बयान देते समय यह नहीं बताया कि किस आधार पर निरूद्ध की जन्मतिथि विभिन्न स्कूल प्रमाण-पत्रों में दर्ज की गई। यह आधार कार्ड से भी भिन्न है।

11. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 (एतदपश्चात संक्षेप में 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) बालक की आयु के विषय में उपधारणा एवं उसके अवधारण की विधि और तरीका प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 94 का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण

(1) जहां बोर्ड या समिति को, इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की प्रतीति के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उक्त व्यक्ति बालक है तो समिति या बोर्ड बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का कथन करते हुए ऐसे संप्रेषण को अभिलिखित करेगा और आयु की और अभिपुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, यथास्थिति, धारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच करेगा।

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह होने के युक्तियुक्त

आधार है कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो, यथास्थिति, समिति या बोर्ड, निम्नलिखित साक्ष्य अभिप्राप्त करके आयु अवधारण की प्रक्रिया का जिम्मा लेगा-

(i) विद्यालय से प्राप्त जन्म तिथि प्रमाणपत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र ;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का अवधारण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि जांच या कोई अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधारण जांच के आधार पर किया जाएगा : परंतु समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई ऐसी आयु अवधारण जांच ऐसे आदेश की तिथि से पन्द्रह दिन के भीतर पूरी की जाएगी।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु, इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी।"

12 अतः, अधिनियम की धारा 94(2) के प्रावधानों के अनुसार, यदि समिति या बोर्ड के पास इस बात पर संदेह के लिए यथोचित आधार हैं कि प्रस्तुत व्यक्ति बालक है या नहीं, तो समिति या बोर्ड, यथास्थिति, आयु निर्धारण की प्रक्रिया आरंभ करेगा और पहले, यदि उपलब्ध हो, तो विद्यालय का जन्म प्रमाण पत्र, या सम्बंधित परीक्षा बोर्ड का मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र प्राप्त करेगा; और उसके अभाव में; दूसरे, निगम, नगरपालिका या पंचायत द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र; और तीसरे, यदि उपर्युक्त शैक्षिक प्रमाण पत्र या जन्म प्रमाण पत्र अनुपलब्ध हो, तो आयु का निर्धारण अस्थि परीक्षण या समिति या बोर्ड के आदेश पर किए गए किसी अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा।

13. जहाँ तक धारा 94(2)(i) के अंतर्गत प्रथम आवश्यकता अर्थात् मैट्रिकुलेशन या समकक्ष प्रमाण पत्र या विद्यालय से प्रदत्त जन्म प्रमाण पत्र का प्रश्न है तो हाई स्कूल अंकपत्र के साथ-साथ इंटरमीडिएट अंकपत्र और याचिकाकर्ता की तरफ से दाखिल अन्य प्रमाण पत्रों और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत इस कथन के चलते कि हाई स्कूल अंकपत्र में दर्ज जन्म तिथि गलत है, वास्तविक जन्मतिथि संदेहास्पद हो जाती है।

14. निस्सन्देह, याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत शैक्षणिक प्रमाण पत्रों में जन्मतिथि में विरोधाभास है, जो निरूद्ध को नाबालिग दर्शाते हैं, इसलिये, अभिसाक्षी द्वारा प्रदत्त हाई स्कूल प्रमाण पत्र में दर्ज निरूद्ध की जन्म तिथि पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा, खासकर जब अभिसाक्षी (पिता) ने पुलिस को दी गई तहरीर दिनांक 09.05.2023 में यह उल्लेख किया है कि निरूद्ध की आयु 20 वर्ष है, जिसपर अभिसाक्षी द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया

है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिनांक 8.8.2023 को दिया गया अभिकथन नीचे उद्धृत है:-

> *"विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अभिसाक्षी ने संबंधित थाने में 9.5.2023 को तहरीर के रूप में एक आवेदन दिया था जिसमें उसने स्वयं निरूद्ध की जन्मतिथि 20 वर्ष बताई थी।"*

15 यह उल्लेखनीय है कि इस मामले में निरूद्ध ने स्वयं मैट्रिकुलेशन प्रमाण पत्र में उल्लिखित जन्मतिथि पर विवाद किया है और इस न्यायालय के समक्ष दिए गए उसके बयान के अनुसार उसकी सही जन्मतिथि 8.8.2004 है, इस प्रकार, निरूद्ध की सही जन्मतिथि के संबंध में इस असंगति की पृष्ठभूमि में और किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94(2) के अंतर्गत उल्लिखित किसी अन्य प्रमाण पत्र/दस्तावेजों की अनुपस्थिति में इस न्यायालय के पास अस्थि-परीक्षण रिपोर्ट पर भरोसा करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, जो इस मामले में पहले ही किया जा चुका है और जिसके अनुसार निरूद्ध बालिग है और 18 वर्ष की आयु की है।

16 माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***(2011) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 385 में रिपोर्ट किए गए अलामेलु और अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए राज्य*** के मामले में, पैराग्राफ 39, 40 और 42 से 49 (प्रासंगिक भाग) में निम्नलिखित तय किया है:

> ***"39.*** *हम सबसे पहले लड़की की उम्र के मामले पर विचार करेंगे। उच्च न्यायालय ने अपना निष्कर्ष स्थानांतरण प्रमाण पत्र, प्रदर्श पी-16 और अ०सा० 8 डॉ. गुनासेकरन, रेडियोलॉजिस्ट द्वारा जारी प्रमाण पत्र प्रदर्श पी-4 और प्रदर्श पी-5 के आधार पर निकाला है।*
>
> ***40.*** *निस्संदेह, स्थानांतरण प्रमाण पत्र, प्रदर्श पी-16 से पता चलता है कि लड़की की जन्म तिथि 15 जून, 1977 थी। इसलिए, उपरोक्त प्रमाण पत्र के अनुसार भी, कथित घटना की तिथि यानी 31 जुलाई, 1993 को उसकी आयु 16 वर्ष (16 वर्ष 1 माह और 16 दिन) से अधिक रही होगी। स्थानांतरण प्रमाण पत्र सरकारी स्कूल द्वारा जारी किया गया है और प्रधानाचार्य द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित किया गया है। इसलिए, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अंतर्गत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होगा। हालांकि, ऐसे दस्तावेज़ की स्वीकार्यता का उस सामग्री की अनुपस्थिति में जिसके आधार पर उम्र दर्ज की गई थी, लड़की की उम्र साबित करने के लिए साक्ष्य के रूप में बहुत अधिक महत्व नहीं होगा। स्थानांतरण प्रमाण पत्र में उल्लिखित जन्म तिथि का कोई साक्ष्य मूल्य नहीं होगा जब तक कि उस व्यक्ति का, जिसने प्रविष्टि*

की थी या जिसने जन्म तिथि दी थी, परीक्षण न किया जाए।

42. *किसी दस्तावेज़ में दर्ज तथ्यों को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है, इस पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने बीरद मल सिंहवी बनाम आनंद पुरोहित 1 के मामले में निम्नलिखित अवलोकन किया था: (SCC पृष्ठ 618-19, पैरा 14)।*

"14....छात्र पंजिका में उल्लिखित जन्म तिथि का तब तक कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है जब तक कि उस व्यक्ति की जांच न कर ली जाए जिसने प्रविष्टि की है या जिसने जन्म तिथि दी है??? केवल इसलिए कि दस्तावेज़ प्रदर्श 8, 9, 10, 11 और 12 साबित हो गए, इसका मतलब यह नहीं है कि दस्तावेजों की सामग्री भी साबित हो गई है। दस्तावेज़ प्रदर्श 8, 9, 10, 11 और 12 का केवल प्रमाणित होना, दस्तावेज़ों में उल्लिखित सभी सामग्रियों अथवा दस्तावेजों में उल्लिखित जन्म तिथि की सत्यता को प्रमाणित नहीं करता। चूंकि तथ्य अर्थात हुक्मी चंद और सूरज प्रकाश जोशी की जन्मतिथि की सत्यता विवादित थी, इसलिए उपरोक्त दो गवाहों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों का प्रमाणित होना मात्र दस्तावेजों के तथ्यों या सामग्री की सच्चाई का सबूत नहीं देता है। विवादित तथ्यों, अर्थात्, दो उम्मीदवारों के जन्म तिथि की सत्यता या अन्यथा, ग्राह्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध की जा सकती है, अर्थात् उन व्यक्तियों के साक्ष्य द्वारा जो विवादित तथ्यों की सत्यता को प्रमाणित कर सकें। प्रतिवादी ने इस प्रकार के कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था ताकि तथ्यों अर्थात्, हुकमी चंद और सूरज प्रकाश जोशी का जन्म तिथि की सत्यता को सिद्ध किया जा सके। इन परिस्थितियों में उक्त दस्तावेज़ों में उल्लिखित जन्म तिथियों का कोई प्रमाणिक मूल्य नहीं है और उनमें उल्लिखित जन्म तिथियों को स्वीकार नहीं किया जा सकता।"

43. *इस न्यायालय द्वारा नर्बदा देवी गुप्ता बनाम बीरेंद्र कुमार जायसवाल में विधि की यही प्रतिज्ञप्ति दोहराई गई है, जहां इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है:: (SCC पृष्ठ 75, पैरा 16)*

"16.... कानूनी स्थिति पर कोई विवाद नहीं है कि किसी दस्तावेज को मात्र प्रस्तुत करना और न्यायालय द्वारा उसे प्रदर्श के रूप में चिह्नित करना ही उसकी विषय-वस्तु का उचित प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसके निष्पादन को ग्राह्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध करना होगा, अर्थात् उन व्यक्तियों के साक्ष्य द्वारा जो विवादित तथ्यों की सत्यता को प्रमाणित कर सकें।"

44. *हमारी राय में, अभियोजन पक्ष ने उपरोक्त सबूत का भार नहीं निभाया है। पिता ने अपने साक्ष्य में स्थानांतरण प्रमाण पत्र के बारे में कुछ नहीं कहा है। प्रधानाध्यापक का बिल्कुल भी परीक्षण*

नहीं किया गया है। इसलिए, लड़की की उम्र निश्चित रूप से तय करने के लिए स्थानांतरण प्रमाण पत्र की प्रविष्टि पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

45. *लड़की की उम्र 18 वर्ष से कम निर्धारित करते समय, उच्च न्यायालय ने केवल अ०सा०-8 डॉ. गुनासेकरन द्वारा जारी प्रमाण पत्र पर भरोसा किया। हालांकि, उच्च न्यायालय यह गौर करने में विफल रहा कि न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में, अ०सा०-8, एक्स-रे विशेषज्ञ ने स्पष्ट रूप से प्रतिपरीक्षा में कहा था कि चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर, आम तौर पर, एक व्यक्ति की उम्र लगभग रूप से निर्धारित की जा सकती है। उन्होंने यह भी कहा था कि यह संभावना है कि उम्र अलग-अलग व्यक्ति में अलग-अलग हो सकती है। डॉक्टर ने यह भी कहा था कि उम्र में संभावित भिन्नताओं को देखते हुए, प्रमाण पत्र में एक विशिष्ट उम्र से दूसरी विशिष्ट उम्र के बीच संभावित उम्र का उल्लेख किया गया था। उपरोक्त के आधार पर, यह दृढ़ राय देना संभव नहीं होगा कि लड़की निश्चित रूप से 18 वर्ष से कम उम्र की थी।*

46. *इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय अ०सा०-13 डॉ. मनिमेगलाईकुमार द्वारा दिए गए विशेषज्ञ साक्ष्य पर विचार करने में विफल रहा, जिन्होंने पीड़िता की चिकित्सकीय जांच की थी। अपने प्रति-परीक्षण में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि एक चिकित्सीय परीक्षण केवल दो वर्षों के अंतराल के साथ लगभग उम्र का पता लगाएगा। उन्होंने कहा था कि इस मामले में लड़की की उम्र 17 से 19 वर्ष तक हो सकती है। उम्र में त्रुटि की इस संभावना को इस न्यायालय ने जया माला बनाम जम्मू और कश्मीर सरकार के मामले में न्यायिक रूप से मान्यता दी है। उक्त निर्णय में, निम्नलिखित अवलोकन किया गया है: (एससीसी पृष्ठ 541, पैरा 9)*

"9...हालांकि, यह कुख्यात है और कोई भी न्यायिक नोटिस ले सकता है कि रेडियोलॉजिकल परीक्षा द्वारा निर्धारित उम्र में त्रुटि की संभावना दोनों तरफ दो वर्ष है।"

47. *हमारा मानना है कि इस मामले के तथ्यों के आधार पर लड़की की उम्र स्थानांतरण प्रमाण पत्र के आधार पर तय नहीं की जा सकती थी। स्थानांतरण प्रमाण पत्र में दर्ज जन्मतिथि की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था। विशेषज्ञ साक्ष्य लड़की के बालिग होने की संभावना से इनकार नहीं करते हैं। हमारे विचार में अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि लड़की प्रासंगिक तिथि पर नाबालिग थी।*

48. *हम आगे गौर कर सकते हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35*

के संदर्भ में भी, एक सार्वजनिक दस्तावेज़ का परीक्षण सिविल और आपराधिक दोनों कार्यवाहियों में समान मानक लागू करके किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में, रविंदर सिंह गोरखी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर ध्यान देना उचित होगा, जो इस प्रकार हैः (एससीसी पृष्ठ 595, पैरा 38)

"38. स्कूल पंजिका में या अन्यथा दर्ज एक व्यक्ति की आयु, विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग की जा सकती है, यथा प्रवेश प्राप्त करने हेतु; नियुक्ति प्राप्त करने हेतु; चुनाव लड़ने हेतु; विवाह का पंजीकरण; जोत की सीमा के कानूनों के अंतर्गत एक अलग इकाई प्राप्त करना; और यहां तक कि एक सिविल फोरम के समक्ष मुकदमा करने के उद्देश्य के लिए, उदाहरण के लिए, एक न्यायालय में एक संरक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने की आवश्यकता, या जहां एक मुकदमा दायर किया गया है कि वादी नाबालिग था और उसे ठीक से प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था या उसके पक्ष में किया गया कोई भी लेन-देन अमान्य था क्योंकि वह नाबालिग था। न्यायालय द्वारा वाद के किसी पक्ष की उम्र का निर्धारण करने के लिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, एक ही मानक को लागू करना होगा। किसी आरोपी के मामले में कोई भिन्न मानक लागू नहीं किया जा सकता, जैसे कि अपहरण या बलात्कार के मामले में, या किसी समान अपराध में, जहां यद्यपि पीड़िता या अभियोक्ता की अभियुक्त के साथ सहमति संभावित रही हो, यदि स्कूल रजिस्टर में दर्ज प्रविष्टियों के आधार पर एक दोषसिद्धि का निर्णय लिया जाता है, तो आरोपी को संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत अपने संवैधानिक अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा, क्योंकि उस मामले में अभियुक्तको अनुचित रूप से दोषी ठहराया जा सकता है।"

***49.** ऐसी परिस्थितियों में, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय तथ्यात्मक और कानूनी मुद्दों की जांच किए बिना अनावश्यक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि लड़की कथित अपहरण के समय नाबालिग थी। ऐसा कोई संतोषजनक साक्ष्य नहीं है जो यह इंगित करता हो कि वह नाबालिग थी।"*

17.उपरोक्त निर्णय पर विचार करने पर यह स्पष्ट है कि स्कूल रजिस्टर में दर्ज व्यक्ति की उम्र या स्कूल द्वारा जारी प्रमाण पत्र का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है, जैसे कि प्रवेश प्राप्त करना, नियुक्ति प्राप्त करना, चुनाव लड़ना, विवाह का पंजीकरण करना या किसी अन्य उद्देश्य के लिए। न्यायालय द्वारा किसी दस्तावेज को मात्र प्रदर्शित करने और प्रदर्श बनाने को उसकी विषय-वस्तु का उचित प्रमाण नहीं माना जा सकता, विशेषकर इस मामले के तथ्यों में, जब निरूद्ध के विभिन्न शैक्षणिक प्रमाणपत्रों में जन्मतिथि दर्ज करने में स्पष्ट असंगति है,

तथा इस तथ्य के साथ कि निरूद्ध स्वयं मैट्रिकुलेशन प्रमाणपत्र में दर्ज अपनी जन्मतिथि पर विवाद कर रही है, तथा इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि पिछली तिथि को अभिसाक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया था कि वह यह बताने में असमर्थ हैं कि निरूद्ध की जन्मतिथि किस आधार पर उसके विद्यालय प्रमाणपत्रों में दर्ज की गई है।

18. इस प्रकार अधिनियम की धारा 94(2)(ii) के अंतर्गत उपलब्ध दूसरा विकल्प निगम या नगर पालिका या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र है, जो इस मामले में अनुपस्थित है। इस मामले में किसी भी पक्ष द्वारा ऐसा कोई प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया गया है सिवाय निरूद्ध के आधार कार्ड के, जिसमें जन्म तिथि 1.1.2004 है, इसलिए, आधार कार्ड पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में धारा 94(2)(i) और 94(2)(ii) के दोनों विकल्प उपयोगी नहीं हैं इसलिए, निरूद्ध की सही जन्म तिथि का पता लगाने के लिए केवल एकमात्र उपाय है धारा 94(2)(iii) के अनुसार अस्थि-परीक्षण, जिसे किया गया था और जिसके अनुसार निरूद्ध बालिग है।

19.भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निरूद्ध के अधिकार को न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। निरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष अभियुक्त नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत अधिकार को अति-तकनीकी आधार पर यह कहते हुए अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि निरूद्ध की आयु वयस्कता की आयु से कुछ महीने कम है।

20.इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि चिकित्सीय बोर्ड द्वारा किए गए रेडियोलॉजिकल परीक्षण में निरूद्ध बालिग है; निरूद्ध ने प्राकृतिक अभिभावक के साथ जाने से इनकार कर दिया है; वह विवाहित है और अपने पति के साथ रहना चाहती है; विवाह प्रमाणपत्र भी इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है और यह किसी पक्ष का मामला नहीं है कि उसका अपहरण किया गया है या उसे अगवा किया गया है, निरूद्ध को नारी निकेतन में रखने का आदेश नहीं दिया जा सकता है या उसे उसके माता-पिता के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध रहने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

21.जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, मुझे यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि यह अवैध हिरासत का मामला नहीं है और निरूद्ध बालिग है।

22.इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि निरूद्ध का पिता होने के नाते उसका उसकी बेटी को और अधिक परेशान करने का इरादा नहीं है। उनकी एकमात्र चिंता यह है कि वह कानूनी रूप से विवाहित होनी चाहिए। चूंकि, निरूद्ध द्वारा इस न्यायालय के समक्ष विवाह प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है, इसलिए वह इस याचिका को और आगे नहीं बढ़ाना चाहते।

23.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए कथन, निरूद्ध के कथन, अस्थि-

परीक्षण रिपोर्ट तथा अन्य अभिलेखों पर उचित विचार करने के पश्चात, याचिका गुण-दोष के आधार पर विफल हो जाती है तथा तदनुसार **खारिज** की जाती है। निरूद्ध को स्वेच्छानुसार जाने की स्वतंत्रता दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 848

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 571/2023

रामित लाला और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

सुश्री सौम्या चतुर्वेदी, श्री जी.एस.चतुर्वेदी वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री संजय कुमार यादव, श्री ज्ञान प्रकाश

सिविल विधि- **भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 167(2)-** धारा 167 की उपधारा 2 के प्रावधान क(ii) को मात्र पढ़ने से ही यह स्पष्ट है कि 60 दिनों की न्यायिक और पुलिस रिमांड की समाप्ति पर अभियुक्त डिफॉल्ट जमानत का हकदार है। यह हकदारी अभियुक्त की जमानत देने की प्रार्थना और तत्परता के अधीन है और ऐसी जमानत वास्तव में दी जानी चाहिए- रिमांड का आदेश पारित होने के समय ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की गई थी और न ही याचिका में उल्लेख किया गया है या याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि वास्तव में जमानत दी गई थी- चूंकि याचिकाकर्ताओं को कानूनी आदेश द्वारा न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया है, इसलिए ऐसी हिरासत अवैध नहीं है- बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका स्वीकार्य नहीं है। **(अनुच्छेद 17,18 और 21)** (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. प्रदीप राम बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, एआईआर 2019 सुप्रीम कोर्ट 3193

2. नताबर परिदा बिसनु चरण परिदा बताकृष्णपरिदा बालाजी बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1976 एससी 1465

3. सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2013) 3 एससीसी 77

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा एवं माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस.चतुर्वेदी और प्रतिवादियों की ओर से श्री ज्ञान प्रकाश को सुना ।

2. यह याचिका जिसे बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का नाम दिया गया है, निम्नलिखित राहत की मांग करती है: -

"i) धारा 120-बी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 (2018 में संशोधित), पुलिस स्टेशन सीबीआई/एसी-I/नई दिल्ली (अनुलग्नक संख्या 1) के तहत आरसी संख्या 2162023ए0004 से संबंधित आपराधिक विविध मामला संख्या 04/2023 (सी.बी.आई. बनाम रमित लाला और अन्य) में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (सी.बी.आई., गाजियाबाद) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26.06.2023 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में इस रिट याचिका के लिए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii). बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें संबंधित प्रतिवादी को याचिकाकर्ताओं को हिरासत से रिहा करने और निर्धारित तिथि पर इस माननीय न्यायालय के समक्ष पेश करने का निर्देश दिया जाए।"

3. मामले पर विचार करने पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रथम याचिकाकर्ता, रमित लाला, को पार्टियों की श्रृंखला से हटाने के लिए प्रार्थना की गई थी, जिसकी अनुमति दी गई थी और पार्टियों की श्रृंखला में आवश्यक विलोपन किया गया है।

4. याचिका को डेटा बेस में रमित लाला और तीन अन्य के रूप में दर्ज किया गया है। चूंकि पहले याचिकाकर्ता का नाम हटा दिया गया है, इसलिए याचिका को अब मोनिका धवन और दो अन्य के रूप में डेटा बेस में दर्ज किया जाना चाहिए। यह अपेक्षित सुधार कंप्यूटर अनुभाग द्वारा कंप्यूटर डेटा बेस में किया जाना चाहिए।

5. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं को 25.04.2023 को आरसी संख्या 2162023ए0004 के संबंध में भा.दं.सं. की धारा 120बी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 8, 9, 10 और 12 के तहत पुलिस स्टेशन सीबीआई/एसी-I/नई दिल्ली द्वारा गिरफ्तार किया गया था।

6. यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोप पत्र 22.06.2023 को दायर किया गया था और उसके बाद मामला एक विविध मामले के रूप में दर्ज किया गया और संज्ञान के प्रश्न पर सुनवाई के लिए 26.06.2023 की तारीख तय की गई। अगली तारीख यानी 26.06.2023 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया। अदालत ने उस तारीख पर संज्ञान नहीं लिया क्योंकि ब्रॉडकास्ट इंजीनियरिंग कंसल्टेंट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के महाप्रबंधक रमित लाला पर मुकदमा चलाने के लिए अपेक्षित मंजूरी नहीं ली गई थी। अगली तारीख 10.07.2023 को तय की गई। इसके साथ ही, याचिकाकर्ताओं को दं.प्र.सं. की धारा 309 के तहत न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया।

7. यह तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 309 के तहत शक्ति का उपयोग न्यायालय द्वारा केवल संज्ञान लेने के बाद ही किया जा

सकता है, उससे पहले नहीं। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं को न्यायिक हिरासत में भेजना अवैध है और याचिकाकर्ता की हिरासत को अवैध बना देता है।

8. यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता क्रमशः मेसर्स फ्यूजन कॉर्पोरेट सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के प्रबंध निदेशक, अध्यक्ष और व्यवसाय प्रमुख और निदेशक हैं।

9. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित भारत के अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री ज्ञान प्रकाश का तर्क दोहरा है। उन्होंने कहा कि आरोप-पत्र के अवलोकन पर ही यह स्पष्ट है कि जांच अभी भी पूरी नहीं हुई है। उन्होंने पेपर बुक के पृष्ठ 68 विशेषकर आरोप-पत्र के पैराग्राफ 16.91 का उल्लेख किया है। उक्त पैराग्राफ इस प्रकार है:-

"16.91- श्री रमित लाला द्वारा कुछ अन्य ठेकेदारों से रिश्वत प्राप्त करने के संबंध में कुछ बिंदुओं पर जांच अभी तक पूरी नहीं हुई है और जांच के निष्कर्ष पर दं.प्र.सं. की धारा 173(8) के तहत अलग से पूरक आख्या प्रस्तुत की जाएगी। मेसर्स फ्यूजन कॉरपोरेट सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा ब्रॉडकास्ट इंजीनियरिंग कंसल्टेंट्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड को सौंपे गए कथित फर्जी बिलों के संबंध में आगे की जांच भी बाकी रखी गई है।

10. उन्होंने आगे कहा कि रिमांड आदेश अधिनियम की धारा 167(2) के तहत है क्योंकि यह तब पारित किया गया है जब जांच अभी पूरी भी नहीं हुई है। उन्होंने आगे कहा कि किसी भी मामले में भा.दं.प्र. की धारा 309 का उल्लेख मात्र आदेश को रद्द नहीं करेगा क्योंकि मजिस्ट्रेट के पास धारा 167 के तहत न्यायिक रिमांड का आदेश देने की शक्ति है।

11. उन्होंने शीर्ष न्यायालय के **प्रदीप राम बनाम झारखंड राज्य और अन्य, एआईआर 2019 सर्वोच्च न्यायालय 3193** के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें पैराग्राफ 65 में इसे इस प्रकार रखा गया है:

"65. विशेष न्यायाधीश ने अपने आदेश में न तो धारा 309 और न ही धारा 167 का उल्लेख किया है जिसके तहत अभियुक्त को रिमांड पर लिया गया था। जब न्यायालय के पास कोई विशेष आदेश पारित करने की शक्ति होती है, तो कानून के प्रावधान का उल्लेख न करना या कानून के प्रावधान का गलत उल्लेख करना अप्रासंगिक है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, विशेष न्यायाधीश केवल धारा 309(2) के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकते थे, इसलिए, रिमांड आदेश दिनांक 25.06.2018 को दं.प्र.सं. की धारा 309(2) के तहत रिमांड आदेश के रूप में माना जाना चाहिए। वर्तमान मामले के तथ्यों में विशेष न्यायाधीश को धारा 309(2) के तहत आरोपी को रिमांड पर लेने का अधिकार होने के कारण, रिमांड आदेश दिनांक 25.06.2018 में कोई अवैधता नहीं है, जब आरोपी को न्यायिक हिरासत में भेजा गया था।"

12. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और

आक्षेपित आदेश दिनांक 26.06.2023 का अवलोकन किया है।

13. इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूर्व-संज्ञान चरण में दं.प्र.सं. की धारा 309 को मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है जैसा कि वर्तमान मामले में है। इस धारा के तहत शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के बाद ही किया जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि संज्ञान नहीं लिया गया है क्योंकि कुछ आरोपियों के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए अपेक्षित मंजूरी प्राप्त नहीं की गई थी।

14. इन परिस्थितियों में, एकमात्र प्रावधान दं.प्र.सं. की धारा 167(2) है जो किसी अभियुक्त को न्यायिक हिरासत में भेजने की अनुमति देता है। इस संदर्भ में, दं.प्र.सं. की धारा 167(2) की जांच करना प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है:

"167. प्रक्रिया जब चौबीस घंटे में जांच पूरी नहीं की जा सकती है:-

(1).....

(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक न होगी, निरुद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है। तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरुद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता है: परन्तु –

(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध पंद्रह दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं, किन्तु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध –

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहाँ अन्वेषण ऐसे अपराध के सम्बन्ध में है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय है;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहाँ अन्वेषण किसी अन्य अपराध के सम्बन्ध में है; और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और यह समझा जाएगा कि इस उपधारा के अधीन जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए उस अध्याय के उपबन्धों के अधीन छोड़ा गया है;

(ख) कोई मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन पुलिस की अभिरक्षा में अभियुक्त के निरोध को तब

तक प्राधिकृत नहीं करेगा जब तक अभियुक्त को उसके समक्ष पेश नहीं किया जाता है;

(ग) कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत न करेगा।

स्पष्टीकरण 1 *– शंकाएँ दूर करने के लिये इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि समाप्त हो जाने पर भी अभियुक्त व्यक्ति तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं दे देता है।*

स्पष्टीकरण 2 *– यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई अभियुक्त व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था जैसा कि खण्ड (ख) के अधीन अपेक्षित है, तो अभियुक्त व्यक्ति की पेशी को यथास्थिति, निरोध प्राधिकृत करने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर से साबित किया जा सकता है।"*

15. उक्त धारा का पहला प्रावधान अर्थात् क(ii) यह प्रावधान करता है कि किसी आरोपी की रिमांड की कुल अवधि अपराध के आधार पर 60 या 90 दिनों से अधिक नहीं हो सकती है। एक आरोपी जिसने जांच के तहत अपराध के अनुसार हिरासत में 60/90 दिन पूरे कर लिए हैं, उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा यदि जांच पूरी नहीं हुई है और यदि वह तैयार है और जमानत प्रस्तुत करता है।

16. यह प्रावधान शीर्ष न्यायालय के समक्ष **नटबर परिदा विष्णु चरण परिदा बटकृष्णपरिदा बालाजी बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1976 एससी 1465** के मामले में विचार के लिए आया था जैसा कि निम्नानुसार देखा गया है:

"परंतु परंतुक (क) में विधायिका का आदेश यह है कि आरोपी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और प्रस्तुत करता है और उसे 60 दिनों की अवधि से अधिक हिरासत में नहीं रखा जा सकता है, भले ही जांच अभी भी जारी हो।"

17. धारा 167 उपधारा 2 के परंतुक क(ii) को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट है कि 60 दिनों की न्यायिक और पुलिस रिमांड की समाप्ति पर एक आरोपी डिफ़ॉल्ट जमानत का हकदार है। यह अधिकार अभियुक्त की प्रार्थना और जमानत प्रस्तुत करने के तत्परता के अधीन है और ऐसी जमानत वास्तव में दी जानी चाहिए।

18. मौजूदा मामले में, न्यायालय द्वारा पूछे गए सवाल पर, श्री गोपाल चतुर्वेदी ने कहा है कि 26.06.2023 को जमानत के लिए ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की गई थी जब रिमांड का आदेश पारित किया गया था और न ही याचिका में यह कहा गया है या याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि जमानत वास्तव में दी गई थी।

19. शीर्ष न्यायालय ने **सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2013) 3 एससीसी 77 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:**

"17. हमारे विचार में, दं.प्र.सं. की धारा 167 के अंतर्गत मंजूरी प्रदान करने को कहीं भी परिकल्पित नहीं किया गया है। उक्त धारा जिस पर विचार करती है वह विभिन्न प्रकार

के मामलों के संबंध में एक निर्धारित अवधि के भीतर जांच को पूरा करने और जांच अधिकारियों के ऐसा करने में विफल रहने पर एक आरोपी के जमानत पर रिहाई का अधिकार है। किसी आरोपी की रिमांड से संबंधित प्रावधानों की योजना, पहले जांच के चरण के दौरान और उसके बाद, संज्ञान लेने के बाद, इंगित करती है कि विधायिका का इरादा कुछ अपराधों की जांच 60 दिनों के भीतर और मौत, आजीवन कारावास या कम से कम 10 वर्ष की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय अपराध 90 दिनों के भीतर पूरा करने का है। ऐसी स्थिति में, जांच अधिकारियों द्वारा जांच पूरी नहीं की जाती है, तो अभियुक्त को जमानत पाने का अपरिहार्य अधिकार प्राप्त हो जाता है, यदि आरोपी जमानत देने की पेशकश करता है। तदनुसार, यदि 61वें दिन या 91वें दिन, कोई आरोपी आरोप-पत्र दाखिल न होने की स्थिति में जमानत पर रिहा होने के लिए आवेदन करता है, तो अदालत के पास आरोपी को जमानत पर रिहा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। उक्त प्रावधान पर विभिन्न मामलों में विचार और व्याख्या की गई है, जैसे कि यहां पहले उल्लेख किया गया है। नटबर परिदा (सुप्रा) के मामले और संजय दत्त (सुप्रा) के मामले में दोनों फैसले ऐसे उदाहरण थे जहां दं.प्र.सं. की धारा 167(2) में निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था और आरोप-पत्र दाखिल होने से पहले जमानत देने के लिए एक आवेदन किया गया है, इस अदालत ने माना कि अभियुक्त को जमानत पाने का अपरिहार्य अधिकार प्राप्त था, यदि ऐसा कोई आवेदन आरोप-पत्र दाखिल करने से पहले किया गया था, लेकिन एक बार आरोप-पत्र दाखिल हो जाने के बाद, ऐसा अधिकार समाप्त हो जाता है और आरोपी योग्यता के आधार पर नियमित जमानत के लिए प्रार्थना करने का हकदार होगा।

18. उक्त मामलों में से कोई भी इस स्थिति से अलग नहीं है कि एक बार निर्धारित समय के भीतर आरोपपत्र दाखिल हो जाने पर डिफ़ॉल्ट जमानत या वैधानिक जमानत देने का सवाल ही नहीं उठता। जैसा कि ऊपर बताया गया है, हमारे विचार में, आरोप पत्र दाखिल करना इस मामले में धारा 167(2)(क)(ii) के प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन है। जहां तक दं.प्र.सं. की धारा 167 का सवाल है, संज्ञान लिया गया है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है।"

20. अत: इन परिस्थितियों में रिमांड का आदेश अवैध नहीं कहा जा सकता है। इसी कारण से और चूंकि रिमांड आदेश दिनांक 26.06.2023 डिफ़ॉल्ट जमानत के लिए प्रार्थना के अभाव में और किसी भी जमानतनामा, प्रतिभू आदि के प्रस्तुत करने के अभाव में अवैध नहीं था। इसके अलावा, आरोप-पत्र पहले ही दायर किया जा चुका था और इसलिए, संज्ञान न लिए जाने पर भी डिफ़ॉल्ट जमानत देने का सवाल ही नहीं उठता।

21. अत: प्रदीप राम (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट के मत के दृष्टिकोण से रिमांड आदेश दिनांक 26.06.2023 में दं.प्र.सं. की धारा 309 का उल्लेख होने के बावजूद भी दिनांक 26.06.2023 को पारित न्यायिक रिमांड का आदेश किसी भी तरह से अवैध नहीं कहा जा सकता है। चूंकि याचिकाकर्ताओं को कानूनी

आदेश द्वारा न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया है, इसलिए ऐसी हिरासत अवैध नहीं है। इसलिए, कोई बंदी प्रत्यक्षीकरण नहीं टिकेगी। याचिका, जहाँ तक बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने का दावा करती है, पोषणीय नहीं है।

22. चूंकि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ 22.06.2023 को आरोप पत्र दायर किया गया था, इसलिए वे डिफ़ॉल्ट जमानत के हकदार नहीं थे। आक्षेपित आदेश दिनांक 26.06.2023 द्वारा उनकी न्यायिक रिमांड पूरी तरह से उचित है। अत: आदेश रद्द किये जाने योग्य नहीं है।

23. चूँकि, रिट याचिका में दावा की गई दोनों राहतें ऊपर दिए गए कारणों से नहीं दी जा सकतीं, इसलिए यह रिट याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

(2023) 8 ILRA 853

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

जनहित याचिका संख्या 1843/2023

भूपेन्द्र सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राजीव कुमार, श्री प्रशांत यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री कृष्ण कांत सिंह, श्री प्रदीप कुमार उपाध्याय

सिविल विधि - जनहित याचिका - स्थिरता - अध्याय XXII - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 का नियम 1 (3-ए) - याचिकाकर्ता अनिवार्य रूप से विशिष्ट और सटीक प्रमाण-पत्रों का खुलासा करने में विफल रहा - कोई प्रथम दृष्टया सार्वजनिक कारण स्थापित नहीं हुआ - केवल निवासी और गांव सभा सदस्य होने का दावा अपर्याप्त - व्यक्तिगत या अप्रत्यक्ष उद्देश्य के लिए याचिका दायर की गई - सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरणों के मद्देनजर तुच्छ जनहित याचिका को हतोत्साहित किया गया - याचिका खारिज।

निर्णय - याचिकाकर्ता ने गढ़ी गांव में एक बोरवेल की स्थापना और स्थान के संबंध में एक जनहित याचिका में राहत की मांग करते हुए मदुसुआ , उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय XXII के नियम 1(3-ए) के तहत अपेक्षित विशिष्ट और सटीक तरीके से अपने परिचय-पत्रों का खुलासा करने में विफल रहे। कोई जनहित या जन अधिकारों का उल्लंघन नहीं दर्शाया गया। उनके दावे अस्पष्ट थे और उनके समर्थन में दस्तावेज़ों का अभाव था। प्रथम दृष्टया मामला और उचित खुलासे के अभाव में, याचिका जनहित याचिका के रूप में विचारणीय नहीं थी। संबंधित प्राधिकारियों से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज की जाती है।

जनहित याचिका खारिज।

<u>चर्चा की गई वादविधियाँ</u> :

1. उत्तरांचल राज्य बनाम बलवंत सिंह चौफाल, 2010 एआईआर एससीडब्ल्यू 1029

2. पंकज श्रीवास्तव बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, (2014) 3 यूपीएलबीईसी 1832

3. अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 2004 एससी 280

4. दत्तराज नाथूजी थावारे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 1 एससीसी 590

5. मेसर्स होलीको पिक्चर्स (पी) लिमिटेड बनाम प्रेम चंद्र मिश्रा, (2007) 14 एससीसी 281

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिज़वी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री राजीव कुमार, प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के विद्वान स्थायी वकील श्री दिनेश कुमार वर्मा और भूमि प्रबंधन समिति-प्रतिवादी संख्या 6 के विद्वान वकील श्रीकृष्ण कांत सिंह को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है: "

"(i) प्रतिवादी अधिकारियों को विशेष रूप से प्रतिवादी नंबर 3 को आदेश या निर्देश जारी करने के लिए कि वे प्रतिवादी अधिकारियों को अधूरे बोरवेल की स्थापना को पूरा करने और मौजा गढ़ी मदुसुआ में गाटा नंबर 728 क्षेत्र 0.144 हेक्टेयर पर उपरि पानी की टंकी के निर्माण करने का निर्देश दें, परगना पटियाली, तहसील अलीगंज, जिला एटा प्राधिकरण द्वारा पारित प्रस्ताव दिनांक 26.06.2023 के अनुसार।

(ii) उत्तरदाता प्राधिकारी को आदेश जारी करना कि वह बोरवेल को गाटा नंबर 728 क्षेत्र 0.144 हेक्टेयर से गाटा नंबर 581 क्षेत्र 0.150 हेक्टेयर में स्थानांतरित करने से रोकें।

(iii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय वर्तमान मामले की परिस्थितियों में उचित और सही समझे।

(iv) याचिकाकर्ता को याचिका की लागत प्रदान करना।"

3. शुरुआत में, विद्वान स्थायी वकील ने वर्तमान जनहित याचिका की विचारणीयता के बारे में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है क्योंकि याचिकाकर्ता ने अपनी साख और अन्य विवरणों का खुलासा नहीं किया है जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों (न्यायालय के नियम, 1952) के अध्याय XXII के नियम 1 के उप-नियम (3-ए) के तहत आवश्यक हैं, जिसे **उत्तरांचल राज्य बनाम बलवंत सिंह चौफल एवं अन्य** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **2010 एआईआर एससीडब्ल्यू 1029** में दिए गए निर्णय के आलोक में संशोधित किया गया है।

4. भूमि प्रबंधन समिति-प्रतिवादी नंबर 6 के विद्वान वकील श्रीकृष्ण कांत सिंह ने प्रस्तुत किया कि जनहित याचिका के माध्यम से वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा परोक्ष मकसद और भौतिक तथ्यों को छिपाने के साथ दायर की गई है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 26.06.2023 के प्रस्ताव को संलग्न नहीं किया है, जिसे गाँव सभा द्वारा पारित किया गया था, जिसके आधार पर वह वर्तमान याचिका में राहत का दावा कर रहा है।

5. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय XXII के उप-नियम (3-ए), नियम 1 के तहत आवश्यक प्रत्यय-पत्रों के गैर-प्रकटीकरण के अभाव में वर्तमान याचिका की विचारणीयता के सवाल पर, यह ध्यान रखना उचित होगा कि उपरोक्त नियम उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग में तैयार किया गया है, जो अर्ध-विधायी प्रकृति का है और इसे 01.05.2010 से XXII के नियम 1 में संशोधन के रूप में शामिल किया गया है और इसकी वैधता का परीक्षण किया गया है और **पंकज श्रीवास्तव बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय** के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा **(2014) 3 यूपीएलबीईसी 1832** में रिपोर्ट किया गया है।

6. तैयार संदर्भ के लिए, उक्त नियम को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है:

"**(3-ए)** इस अध्याय में अन्य नियमों की आवश्यकताओं को पूरा करने के अलावा, याचिकाकर्ता जो जनहित याचिका दायर करना चाहता है, उसे अपने साख देने के लिए शपथ पत्र में सटीक और विशेष रूप से बताना चाहिए, वह सार्वजनिक कारण जो वह जीवनसाथी की मांग कर रहा है; कि इस मामले में उसका कोई व्यक्तिगत या निजी हित नहीं है; कि उठाए गए प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा कोई आधिकारिक घोषणा नहीं की गई है; और यह कि मुकदमेबाजी के परिणाम से स्वयं को या उससे जुड़े किसी व्यक्ति को कोई अनुचित लाभ नहीं होगा, या किसी व्यक्ति, व्यक्तियों के निकाय या राज्य को कोई अनुचित नुकसान नहीं होगा।

7. उपर्युक्त नियम में, शब्द **'सटीक और विशेष रूप से बताना चाहिए'** जैसा कि परिकल्पित किया गया है, स्वयं याचिकाकर्ता द्वारा क्रेडेंशियल्स के प्रकटीकरण के महत्व और आवश्यकता को इंगित करता है। जनहित याचिका के रूप में याचिका पर विचार करने से पहले न्यायालयों द्वारा इसकी अवहेलना/ अनदेखी नहीं की जा सकती है। उक्त नियम में यह अपेक्षा की गई है कि सार्वजनिक हित का समर्थन करने वाले व्यक्ति को एक शपथ-पत्र दायर करना होगा जिसमें उसकी प्रत्यय-पत्र सटीक और विशिष्ट तरीके से तथा साथ ही उस सार्वजनिक हित का वर्णन होगा जिसका समर्थन किया जाना है।

8. याचिकाकर्ता से प्रत्यय पत्र के प्रकटीकरण की आवश्यकता वास्तव में उस व्यक्ति की पूर्ण पृष्ठभूमि को रिकॉर्ड पर लाने के लिए आवश्यक है जो न्यायालय के समक्ष आ रहा है। यह जानकारी याचिकाकर्ता की विश्वसनीयता, लोकस स्टैंडी और उसकी वास्तविकता को

स्थापित करने में मदद करती है। क्रेडेंशियल प्रदान करना यह भी दर्शाता है कि याचिकाकर्ता के पास मामले में शामिल गहराई और गंभीरता की आवश्यक विशेषज्ञता, ज्ञान और समझ है। उक्त जानकारी अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं होनी चाहिए। 'क्रेडेंशियल्स' शब्द किसी व्यक्ति के गुणों और अनुभव को दर्शाता है जो उसे किसी विशेष कार्य को करने के लिए उपयुक्त बनाता है।

9. 'क्रेडेंशियल' शब्द का एक विशिष्ट अर्थ और मतलब है। इसे ब्लैक के लॉ डिक्शनरी, 8 वें संस्करण में "1. एक दस्तावेज या अन्य सबूत जो किसी के अधिकार या विशेषज्ञता को साबित करता है। 2. एक प्रशंसापत्र कि एक व्यक्ति क्रेडिट या आधिकारिक शक्ति का प्रयोग करने के अधिकार का हकदार है। 3. किसी विदेशी देश के राजदूत या अन्य प्रतिनिधि को दिया गया विश्वास पत्र। 4. संसदीय विधि। एक प्रतिनिधि के अधिकार के साक्ष्य को एक सम्मेलन या अन्य विचार-विमर्श सभा में बैठने और मतदान करने के लिए।

10. इसके अलावा, ऑक्सफोर्ड इंग्लिश-इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, दूसरा संस्करण, क्रेडेंशियल्स को उस गुणवत्ता के रूप में समझाता है जो किसी व्यक्ति को नौकरी के लिए परिपूर्ण बनाता है या एक दस्तावेज जो इस बात का प्रमाण है कि उसके पास यह साबित करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और शिक्षा है कि वह विशेष कार्य करने के लिए योग्य व्यक्ति है।

11. **एआईआर 2004 एससी 280** में रिपोर्ट किए गए **अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिका पर विचार करते समय विचार किए जाने वाले मापदंडों को निर्धारित करने की कृपा की है, प्रासंगिक पैरा 14 का उद्धरण नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"14. न्यायालय को (क) आवेदक की साख के बारे में संतुष्ट होना होगा; (ख) उसके द्वारा दी गई सूचना की प्रथम दृष्टया शुद्धता या प्रकृति; (c) जानकारी अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं है। जानकारी में गंभीरता और गंभीरता शामिल होनी चाहिए। न्यायालय को दो परस्पर विरोधी हितों के बीच संतुलन बनाना होगा; (i) किसी को भी दूसरों के चरित्र को धूमिल करने वाले निराधार और लापरवाह आरोपों में लिप्त होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए: और (ii) सार्वजनिक शरारत से बचना और शरारतपूर्ण याचिकाओं से बचने के लिए, जो परोक्ष उद्देश्य, न्यायोचित कार्यकारी कार्यों के लिए हमला करने की मांग करते हैं। ऐसे मामले में, हालांकि, न्यायालय उदार होने का जोखिम नहीं उठा सकता है। यह देखने के लिए अत्यंत सावधान रहना होगा कि सार्वजनिक शिकायत के निवारण की आड़ में, यह संविधान द्वारा कार्यपालिका और विधायिका के लिए आरक्षित क्षेत्र का अतिक्रमण न करे ..."

12. इस स्तर पर, यह उल्लेखनीय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***बलवंत सिंह चौफल और अन्य (उपरोक्त)*** के मामले में जनहित याचिकाओं के दुरुपयोग के मुद्दों और उपचारात्मक उपायों से निपटा है जिसके द्वारा इसके दुरुपयोग को रोका जा सकता है या रोका

जा सकता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

12. इस स्तर पर, यह उल्लेखनीय है कि ***बलवंत सिंह चौफल और अन्य (उपरोक्त)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिका के दुरुपयोग के मुद्दों और उन उपचारात्मक उपायों से निपटा है जिनके द्वारा इसके दुरुपयोग को रोका जा सकता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"161. दुर्भाग्य से, हाल ही में, यह देखा गया है कि इस तरह के एक महत्वपूर्ण क्षेत्राधिकार को अदालतों द्वारा सावधानीपूर्वक बनाया गया है, बनाया गया है और बहुत सावधानी और सावधानी के साथ पोषित किया गया है, जिसका परोक्ष उद्देश्यों के साथ कुछ याचिकाएं दायर करके स्पष्ट रूप से दुरुपयोग किया जा रहा है। हम समझते हैं कि समय आ गया है जब वास्तविक और वास्तविक जनहित याचिकाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जबकि तुच्छ जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

162. हमारी सुविचारित राय में, हमें इस देश के लोगों के व्यापक हित में इस महत्वपूर्ण क्षेत्राधिकार की रक्षा और संरक्षण करना है, लेकिन हमें अदालतों द्वारा मौद्रिक और गैर-मौद्रिक निर्देशों के आधार पर इसके दुरुपयोग को रोकने और ठीक करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए।"

13. **(2005) 1 एससीसी 590** में रिपोर्ट किए गए **दत्ताराज नाथूजी थावरे बनाम महाराष्ट्र राज्य** के एक अन्य मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया था,

"12. जनहित याचिका एक हथियार है जिसका उपयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और न्यायपालिका को यह देखने के लिए बेहद सावधान रहना होगा कि सार्वजनिक हित के सुंदर पर्दे के पीछे, एक बदसूरत निजी द्वेष, निहित स्वार्थ और/या प्रचार की मांग छिपी न हो। इसे नागरिकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए कानून के शस्त्रागार में एक प्रभावी हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाना है। जनहित याचिकाओं के आकर्षक ब्रांड नाम का उपयोग शरारत के संदिग्ध उत्पादों के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य वास्तविक सार्वजनिक गलत या सार्वजनिक नुकसान का निवारण करना होना चाहिए और यह प्रचार उन्मुख या व्यक्तिगत प्रतिशोध पर आधारित नहीं होना चाहिए।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिकाओं पर विचार करने वाले न्यायालयों को समय-समय पर दिशा-निर्देश जारी किए हैं कि वे यह सुनिश्चित करने के लिए अतिरिक्त सावधानी बरतें कि न्यायालय की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग न हो और आगे यह सुनिश्चित किया जाए कि सार्वजनिक शिकायत के निवारण की आड़ में, जनहित याचिका संविधान द्वारा कार्यपालिका और विधायिका के लिए आरक्षित क्षेत्र का अतिक्रमण न करे। यह चेतावनी नोट माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मैसर्स होलीको पिक्चर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रेम चंद्र मिश्रा और अन्य** के मामले में

(2007) 14 एससीसी 281 में रिपोर्ट किए गए बहुत स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला में जनहित याचिका के महत्व को दोहराया है लेकिन कुछ आपत्तियों के साथ। जनहित याचिका के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग संवैधानिक न्यायालयों द्वारा किया जाता है। उक्त क्षेत्राधिकार न्यायिक रचनात्मकता द्वारा बनाया गया है। हालांकि, अदालतों को इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय अत्यधिक सावधानी और जिम्मेदारी के साथ इसका प्रयोग करना चाहिए।

16. जनहित याचिका की प्रकृति में दायर की गई तात्कालिक याचिका में; जो बात सामने आई है वह यह है कि याचिकाकर्ता बोरवेल लगाने के स्थान को उसी गांव के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करने के संबंध में एक मुद्दा उठा रहा है। याचिकाकर्ता ने न तो अपने तर्क की सत्यता दिखाने के लिए कोई दस्तावेज दायर किया है और न ही वह बड़े पैमाने पर जनता के बुनियादी मानवाधिकारों का कोई उल्लंघन साबित कर सकता है।

17. इसके अलावा, वर्तमान याचिका में किए गए कथनों के अवलोकन से, याचिकाकर्ता ने उसी के पैराग्राफ नंबर 4 में बस इतना कहा है कि "वह गांव नगला अजीत ग्राम पंचायत गढ़ी मदुसुआ, प्रज्ञा पटियाली, तहसील अलीगंज, जिला एटा का निवासी है, और इस तरह वह गांव सभा का सदस्य है"। उपरोक्त घोषणा को छोड़कर, याचिकाकर्ता ने अपनी साख के प्रति कोई अन्य कथन नहीं किया है। उक्त विवरण निस्संदेह अस्पष्ट और अनिश्चित है और इसे उनकी साख के प्रकटीकरण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

18. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह नोट करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याचिकाकर्ता ने किसी भी प्रमाण पत्र का खुलासा नहीं किया है, उपरोक्त उप-नियम (3-ए), इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम (न्यायालय के नियम, 1952) के अध्याय XXII के नियम 1 में अनिवार्य शब्दों **'स्पष्ट रूप से और विशेष रूप से बताना चाहिए'** के अनुरूप तो बिल्कुल भी नहीं है जैसा कि बलवंत सिंह चौफाल (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक में संशोधित हुआ था।

19. इसके अलावा, रिट याचिका में किए गए कथनों के साथ-साथ याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों के अवलोकन से, यह न्यायालय वर्तमान याचिका में सार्वजनिक हित का कोई तत्व शामिल नहीं पाया।

20. पूर्वगामी कारणों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका जनहित याचिका के रूप में विचार योग्य नहीं है और तदनुसार **खारिज** कर दी जाती है।

21. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता सहित संबंधित गांव के निवासियों के लिए कानून के अनुसार संबंधित अधिकारियों के समक्ष अपनी शिकायतें उठाना हमेशा खुला

है और अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे पीड़ित लोगों की वास्तविक शिकायतों को अच्छी तरह से देखें और कानूनी ढांचे के भीतर उनका निवारण सुनिश्चित करें।

(2023) 8 ILRA 857

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रेरा अपील (दोषपूर्ण) संख्या 85/2023

एमएस, सुपरटेक रियल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली ...आवेदक

बनाम

अंबर हसन ...विपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता:

अभिषेक खरे, आहुति अग्रवाल

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

अक्षत श्रीवास्तव

रियल एस्टेट विधि - रियल ईएसटी (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016- धारा 19(10), 44(1), 58 - स्वच्छ हाथ सिद्धांत, कब्जे का प्रस्ताव, आवंटन रद्दीकरण, परियोजना में देरी, प्रमोटर का दायित्व, नियामक प्राधिकरण, अपील सीमा, तीसरे पक्ष के अधिकार - रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 -

तथ्य

अपीलकर्ता-प्रमोटर मेसर्स सुपरटेक रियल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड ने प्रतिवादी-आवंटी अंबर हसन को "सुपर नोवा" परियोजना में फ्लैट नंबर 3201 दिनांक 18.12.2015 के आवंटन पत्र के माध्यम से 1,84,83,403/- रुपये में जून 2017 (6 महीने की छूट अवधि के साथ) की समय सीमा के साथ आवंटित किया। आवंटी ने 1,14,34,893/- रुपये का भुगतान किया और शेष राशि कब्जे के चरण में देय छोड़ दी। 18.07.2018 को पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बावजूद, प्रमोटर उचित कब्जा देने में विफल रहा। जब आवंटी ने फ्लैट का निरीक्षण किया और दोष पाए, तो प्रमोटर ने 25.09.2018 के पत्र के माध्यम से बकाया भुगतान की मांग की। RERA ने आवंटी को 90 दिनों के भीतर भुगतान करने का निर्देश दिया अपीलीय न्यायाधिकरण ने आवंटी की अपील को स्वीकार करते हुए कब्जे का उचित प्रस्ताव देने का निर्देश दिया।

अभिनिर्धारितः

जो प्रमोटर प्राधिकरण द्वारा प्रदत्त भुगतान अवधि समाप्त होने से पहले आवंटन रद्द करता है और कार्यवाही के दौरान बिना खुलासा किए इकाई किसी तीसरे पक्ष को बेच देता है, वह बेदाग नहीं है और न्यायसंगत राहत पाने का हकदार नहीं है। उचित कब्जे की पेशकश के बिना बकाया भुगतान की मांग करना ही रियल एस्टेट समझौते के तहत वैध प्रस्ताव नहीं माना जाता है। भुगतान तभी देय होगा जब समझौते की शर्तों के अनुसार उचित कब्जे की पेशकश की जाएगी। प्रमोटर अपने स्वयं के आवेदन पर नियामक प्राधिकरण द्वारा दी गई अवधि समाप्त होने से पहले आवंटन रद्द नहीं कर

सकता। ऐसा रद्दीकरण प्राधिकरण के आदेश की अवहेलना करने के समान है।

अपील जुर्माने के साथ खारिज कर दी गई।

उद्धृत वादविधि:

रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ, (2010) 14 एससीसी

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्टाम्प रिपोर्टर की आख्या का विरोध किया है जिसमें बताया गया था कि अपील में 2 दिन की देरी हुई थी।

2. स्टाम्प रिपोर्टर की उक्त आख्या को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया गया कि परिसीमा अवधि की गणना आदेश पारित होने की तिथि अर्थात दिनांक 31.05.2023 से की जाएगी। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 09.08.2023 को मामले के इस पहलू पर विचार किया गया और निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक खरे और उत्तरदातागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अक्षत श्रीवास्तव को सुना।

2. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि स्टाम्प रिपोर्टर ने आख्या दी है कि अपील समय से दो दिन पश्चात दायर की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तथ्यों का विरोध किया है और कहा है कि स्टाम्प रिपोर्टर की आख्या रियल एस्टेट अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश की दिनांक 31.05.2023 पर आधारित है। यह कहा गया है कि उक्त आदेश 06.06.2023 को अपलोड किया गया था जैसा कि उक्त आदेश में ही इस प्रभाव का पृष्ठांकन किया गया है और साथ ही उक्त मामले की स्थिति आख्या से यह संकेत मिलता है कि उक्त आदेश 06.06.2023 को अपलोड किया गया था।

4. परिसीमा के संबंध में, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 की धारा 58 के अनुसार अपील न्यायाधिकरण के निर्णय अथवा आदेश की सूचना की तिथि से 60 दिनों के भीतर अपील दायर की जा सकती है।

5. उपर्युक्त तथ्यों के अनुसार, यह कहा गया है कि परिसीमा अवधि उक्त आदेश अपलोड होने की तिथि अर्थात 06.06.2023 से प्रारंभ हुई थी।

6. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, स्टाम्प रिपोर्टर से एक नई आख्या मांगी जाए, जिसमें यह तथ्य शामिल हो कि आदेश 06.06.2023 को अपलोड किया गया था।

7. इस वाद को कल अर्थात दिनांक 10.08.2023 को शीर्ष दस वाद में सूचीबद्ध करें।"

अनुवादित

3. आज, जब मामले को लिया गया, तो यह देखा गया कि स्टाम्प रिपोर्टर ने आख्या दी है कि "हालांकि, प्रश्नगत आदेश की तामील की कोई तिथि नहीं बताई गई है, किंतु विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत आर.ई.आर.ए. अपील में तामील का शपथ पत्र संलग्न किया गया है, अतः तामील की तारीख से परिसीमा अवधि की गणना नहीं की जा सकती है और इसकी गणना दिनांक 31.05.2023 के प्रश्नगत आदेश से की गई है, जिसमें 60 दिनों की परिसीमा अवधि प्रदान की गई है।"

4. यह आदेश इस न्यायालय द्वारा पिछली तारीख को दिनांक 09.08.2023 के आदेश में दर्ज स्पष्ट निष्कर्ष के बावजूद पारित किया गया है, अर्थात, वर्तमान मामले में परिसीमा अवधि उक्त आदेश दिनांक 06.06.2023 को अपलोड होने की तिथि से प्रारंभ हुई थी।

5. यह आश्चर्य की बात है कि इस न्यायालय द्वारा जारी स्पष्ट निर्देशों के बावजूद स्टाम्प रिपोर्टर ने इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों की अनदेखी की है और उनका पालन करने में विफल रहा है। रजिस्ट्री के अधिकारियों से इस तरह की लापरवाही की उम्मीद नहीं की जाती है।

6. संयुक्त निबंधक (लिस्टिंग) द्वारा संबंधित अधिकारी से रिपोर्ट मांगी जाए और दिनांक 12.09.2023 को प्रशासनिक पक्ष में मेरे समक्ष प्रस्तुत की जाए।

7. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि परिसीमा की गणना दिनांक 06.06.2023 से की जानी है और इस संबंध में पक्षों के मध्य कोई विवाद नहीं है, इस न्यायालय का विचार है कि उक्त अपील दायर करने में कोई देरी नहीं हुई थी।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक खरे, उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता श्री अक्षत श्रीवास्तव को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

9. रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 (एतस्मिनपश्चात '2016 का अधिनियम' के रुप में संदर्भित) की धारा 58 के तहत वर्तमान अपील, अपीलकर्ता द्वारा रियल एस्टेट अपीलीय न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 31.05.2023 के आदेश से व्यथित होकर प्रस्तुत की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ता (प्रवर्तक) द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया गया है।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, जो बुनियादी ढांचे के निर्माण से संबंधित गतिविधियों में शामिल है और प्लॉट नंबर 3, सेक्टर-94, नोएडा में स्थित "सुपर नोवा" शैली में जानी जाने वाली एक परियोजना में शामिल थी। उत्तरदाता एक फ्लैट खरीदने में रुचि रखता था और तदनुसार उसने अपीलकर्ता को एक आवेदन दिया और दिनांक 18.12.2015 को एक आवंटन पत्र जारी किया गया और उत्तरदाता को फ्लैट नंबर 3201 (यूनिट नंबर आर203नेस्ट, टॉवर ए / नोवा-ईस्ट 32 वीं मंजिल पर, 2040 वर्ग फीट माप) को कुल 1,84,83,403 रुपये (एक करोड़ चौरासी लाख अस्सी तीन हजार चार सौ तीन

रुपये मात्र) के लिए आवंटित किया गया था। आवंटन पत्र के अनुसार, यूनिट उत्तरदाता को जून 2017 तक दी जानी थी, जिसमें 6 महीने की छूट अवधि थी, जो दिसंबर 2017 तक आती है। बेशक, उत्तरदाता ने पहले ही अपीलकर्ता को 1,14,34,893/- रुपये (एक करोड़ चौदह लाख चौंतीस हजार आठ सौ तिरानबे रुपये मात्र) का भुगतान कर दिया है और पक्षों के बीच समझौते के अनुसार मात्र कब्जे के चरण में भुगतान की जाने वाली राशि बकाया रह गई है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि उक्त परियोजना का पूर्णता प्रमाण पत्र भी दिनांक 18.07.2018 के पत्र के माध्यम से न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण से प्राप्त किया गया था और तदनुसार, धारा 19(10) के प्रावधानों के अनुसार उनका मामला यह है कि उत्तरदाता को इस स्तर पर उक्त फ्लैट का कब्जा लेने से पहले पूरी राशि का भुगतान कर देना चाहिए था। यह कहा गया है कि दिनांक 25.09.2018 के पत्र के माध्यम से उत्तरदाता को बकाया राशि 82,72,533.00 रुपये (बयासी लाख बहत्तर हजार पांच सौ तैंतीस मात्र) जमा करने के लिए कहा गया था। अपीलकर्ता ने उक्त पत्र को "कब्जे का प्रस्ताव" नाम दिया है, परन्तु उपरोक्त पत्र के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि यह मात्र बकाया राशि के भुगतान के लिए एक नोटिस था। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता को यह भी लिखा था कि अब परियोजना कब्जे के चरण में है और औपचारिकताएं पूरी की जानी हैं और उन्हें 15 दिनों के भीतर उक्त राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था, परन्तु फिर भी अपीलकर्ता द्वारा कब्जे की पेशकश की तारीख के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया था।

12. उत्तरदाता ने, उपरोक्त पत्र प्राप्त होने पर, दिनांक 14.11.2018 को मेल द्वारा अपीलकर्ता को उत्तर दिया था, जिसमें कहा गया था कि उत्तरदाता ने उक्त फ्लैट का दौरा किया था और निरीक्षण किया था और वहाँ कई खामियाँ थीं और यह ऐसी स्थिति में नहीं था, जहाँ उसका कब्ज़ा प्राप्त किया जा सकता था और उन्होंने तर्कों के समर्थन में विभिन्न तस्वीरें संलग्न की थीं।

13. उपरोक्त परिस्थितियों में अपीलकर्ता (प्रवर्तक) का मानना था कि उत्तरदाता द्वारा अधिभोग प्रमाण पत्र प्राप्त होने के बावजूद, वह शेष राशि का भुगतान नहीं कर रहा था और परिणामस्वरूप उसने रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण में शिकायत दर्ज कराई, जहां उसने आवंटी को जुर्माना सहित 90,59,687/- (नब्बे लाख उनसठ हजार छह सौ अस्सी मात्र) की बकाया राशि का भुगतान करने और बुक की गई इकाई पर कब्जा लेने का निर्देश देने की प्रार्थना की थी।

14. उत्तरदाता-आवंटी को नोटिस दिया गया तथा उक्त शिकायत का निर्णय दिनांक 02.03.2020 के आदेश के माध्यम से किया गया। उक्त आवेदन पर निर्णय लेते समय प्राधिकरण के निर्देश पर दिनांक 27.12.2019 को निरीक्षण किया गया। उक्त निरीक्षण में पाया गया कि परियोजना 90% पूर्ण हो चुकी है तथा इसके बावजूद प्राधिकरण ने उत्तरदाता -

आवंटी को उक्त आदेश के 90 दिनों के भीतर शेष राशि का भुगतान करने का निर्देश देकर शिकायत का निपटारा कर दिया तथा शिकायतकर्ता को यह देखने का निर्देश दिया गया कि उसके द्वारा दी गई सभी सुविधाएं तथा गारंटी पूर्ण हों तथा आवंटी को उपलब्ध कराई जाएं तथा यदि आवंटी 90 दिनों की अवधि के भीतर भुगतान करने में विफल रहता है तो शिकायतकर्ता को अनुबंध की शर्तों के अनुसार आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी गई।

15. अपीलकर्ता ने दिनांक 31.05.2020 को प्रतिवादी का आवंटन रद्द कर दिया। उक्त आदेश में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित कहा गया:

"उपर्युक्त के दृष्टिगत, हम आपके द्वारा हस्ताक्षरित बुकिंग फॉर्म/आवंटन पत्र के अनुसार सुपरनोवा में यूनिट संख्या नोवा ईस्ट/3201 के विरुद्ध आपकी बुकिंग को रद्द करते हैं और उक्त बुकिंग के विरुद्ध आपके खाते में जमा राशि बुकिंग/कंपनी की नीति के नियमों और शर्तों के अनुसार जब्त हो जाती है।"

16. यद्यपि अपीलकर्ता ने इस तथ्य का विरोध किया है कि उक्त पत्र मात्र निरस्तीकरण का नोटिस है, परन्तु इसके अवलोकन से स्पष्ट संकेत मिलता है कि उत्तरदाता का आवंटन स्पष्ट रूप से निरस्त कर दिया गया है।

17. इस स्तर पर, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि प्राधिकरण के दिनांक 02.03.2020 के आदेश में अपीलकर्ता की शिकायत का निपटारा करते हुए उत्तरदाता को 90 दिनों की अवधि के भीतर संपूर्ण बकाया भुगतान करने की स्वतंत्रता दी गई थी और, निश्चित रूप से, उक्त अवधि की समाप्ति से पहले, अपीलकर्ता ने आवंटन को रद्द करने की कार्यवाही की है।

18. एक बार आवंटन रद्द हो जाने के बाद, उत्तरदाता के पास बकाया राशि का भुगतान करने या रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के आदेश का पालन करने का कोई कारण नहीं होगा।

19. उत्तरदाता -आवंटी ने रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के आदेश से व्यथित होकर लखनऊ स्थित अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष अधिनियम 2016 की धारा 44(1) के अंतर्गत अपील दायर की। अपील में जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया गया कि प्राधिकरण ने उत्तरदाता को अवैध रूप से निर्देश दिया है कि वह परियोजना के पूर्ण होने से पहले ही शेष राशि का भुगतान कर दे तथा इस संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि फ्लैट में विभिन्न खामियां हैं, जैसा कि आवंटी द्वारा निरीक्षण किया गया था तथा इन सभी खामियों और कमियों को प्रवर्तक को विधिवत रूप से इंगित किया गया था, परन्तु उक्त किसी भी मुद्दे की खामियों/विसंगतियों को संबोधित किए बिना न तो प्रवर्तक ने उक्त खामियों को संबोधित किया और न ही नियामक प्राधिकरण ने इसका उचित संज्ञान लिया और इसलिए उक्त आदेश अवैध और मनमाना था। यह भी कहा गया कि प्रवर्तक ने स्वयं आदेश की शर्तों का उल्लंघन किया है क्योंकि भुगतान करने के लिए दिए गए समय से पहले ही उक्त प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया है और वास्तव में उसने

प्राधिकरण के आदेश का पालन करने के आवंटी के प्रयासों को विफल कर दिया है। प्रवर्तक को जानबूझकर प्राधिकरण के आदेश का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह भी कहा गया कि पक्षों के बीच समझौते के अनुसार, परियोजना दिसंबर, 2017 तक पूरी हो जानी चाहिए थी और प्रवर्तक की ओर से देरी के कारण ही विवाद हुआ और परिणामस्वरूप आवंटी भी उक्त परियोजना के पूरा होने में देरी के लिए ब्याज और जुर्माना का दावा करने का हकदार है।

20. न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता को नोटिस जारी करने के बाद सभी आपत्तियों पर विचार किया और उत्तरदाता के पक्ष में फैसला सुनाया। न्यायाधिकरण ने उक्त अपील पर निर्णय लेते समय पाँच प्रश्न निर्धारित किए थे और उन्होंने पक्षों के बीच समझौते का परीक्षण किया और इस प्रश्न के संबंध में कि क्या परियोजना में देरी हुई थी। यह निष्कर्ष निकाला गया कि निस्संदेह परियोजना दिसंबर 2017 तक पूरी होनी थी और उक्त परियोजना के पूरा होने में काफी देरी हुई थी, तदनुसार इस प्रश्न को आवंटी के पक्ष में तय किया गया।

21. इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया विवादास्पद प्रश्न, प्रश्न संख्या 6 है, जिसके तहत न्यायाधिकरण को यह परीक्षण करना था कि क्या आवंटी को इस संबंध में आबंटन पत्र में दर्शाई गई भुगतान योजना के अनुसार कब्जा देने से पहले कोई भुगतान करना आवश्यक था। आवंटन-पत्र और पक्षों के बीच समझौते का परीक्षण करने के बाद, न्यायाधिकरण का विचार था कि शेष भुगतान कब्जे के चरण में किया जाना था। इसने उक्त समझौते का सत्यापन किया और कहा कि कब्जे के प्रस्ताव की प्राप्ति पर भुगतान किया जाना था और उसके बाद ही आवंटी को भुगतान करना आवश्यक था। प्रस्तुत विवरण का परीक्षण करने के बाद, इसने निष्कर्ष निकाला कि प्रवर्तक द्वारा कब्जे का कोई प्रस्ताव नहीं दिया गया था और इसलिए, कब्जे के प्रस्ताव से पहले की गई कोई भी मांग न तो उचित थी और न ही उनकी ओर से न्यायोचित थी, और यह भी कहा गया कि प्रवर्तक मात्र बकाया राशि की मांग करने में रुचि रखता था, जिसका भुगतान आवंटी को कब्जे के प्रस्ताव पर करना था और वे आवंटी के खिलाफ भुगतान करने के लिए निर्देश मांगने के लिए शिकायत दर्ज करने की हद तक चले गए थे और नियामक प्राधिकरण द्वारा आवंटी को बकाया राशि का भुगतान करने के लिए दी गई अवधि समाप्त हुए बिना, यूनिट को रद्द करने की कार्यवाही की।

22. प्रश्न आवंटी के पक्ष में तय किए गए और अपील स्वीकार की गई, जिसमें प्रवर्तक को निर्देश दिया गया कि वह 45 दिनों की अवधि के भीतर शिकायत की एक प्रति और पूर्णता प्रमाण पत्र के साथ आवंटी को कब्जा प्रदान करे और साथ ही आवंटी को 15 दिनों के भीतर बकाया राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया और प्रवर्तक को कब्जे की पेशकश की तारीख से ओसी/सीसी/कब्जे की पेशकश की प्राप्ति तक, जो भी बाद में हो, एमसीएलआर + 1% की दर से ब्याज का भुगतान करने का हकदार होगा। यह उपरोक्त निर्देश के खिलाफ है कि वर्तमान अपील दायर की गई है।

23. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश अवैध, मनमाना है और इसमें उनके न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रवर्तक ने आवंटी को शेष बकाया राशि का भुगतान करने के लिए कहा था, परन्तु आवंटी ने पूरी बकाया राशि का भुगतान करने के बाद आवंटी को यूनिट का कब्जा देने में देरी की और न्यायाधिकरण द्वारा जारी निर्देश को वर्तमान मामले के तथ्यों में सम्मानित नहीं किया जा सकता था।

24. दूसरी ओर, आवंटी के विद्वान अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि अन्य तथ्यात्मक विवादों के अलावा, प्रवर्तक के आचरण की भी वर्तमान मामले में जांच की जानी चाहिए। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि प्रवर्तक को औपचारिकताओं और शर्तों का ध्यान रखे बिना बकाया राशि में रुचि थी, जिन्हें खुद को अंतिम उत्पाद/फ्लैट को पूर्ण आकार में आवंटी को देने के लिए पूरा करना था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि जब आवंटी ने उक्त फ्लैट का निरीक्षण किया था और उसे कई कमियां और दुर्बलताएं मिली थीं और उन्हें दिनांक 14.11.2018 को ईमेल के माध्यम से विधिवत सूचित किया गया था। अपीलकर्ता/ प्रवर्तक द्वारा उक्त मेल का कभी भी संज्ञान नहीं लिया गया और बकाया राशि के भुगतान के लिए उत्तरदाता को बार-बार पत्र लिखे गए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आज तक न तो पूर्णता प्रमाण पत्र उपलब्ध है और न ही नीचे दी गई किसी भी कार्यवाही में अभिलेख पर रखा गया है, और जब तक पूर्णता प्रमाण पत्र नहीं है, तब तक उक्त परिसर में प्रवेश करने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

25. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता स्वच्छ अंतःकरण से उपस्थित नहीं हुआ, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि 90 दिनों की अवधि समाप्त होने से पहले उन्होंने आवंटी/उत्तरदाता का आवंटन रद्द कर दिया और इसके अलावा, उन्होंने उक्त इकाई को तीसरे पक्ष को भी बेच दिया है। उन्होंने आगे कहा कि उनका आचरण इस तथ्य से स्पष्ट है कि ये सभी घटनाक्रम उनके द्वारा शुरू की गई कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान हुए हैं, जिसमें न तो किसी अभिवचन मे या उक्त लेनदेन का विवरण दिया गया है और जानबूझकर छिपाए गए हैं। वर्तमान अपील में भी प्रस्तर -51 में मात्र एक अप्रकट कथन दिया गया है कि तीसरे पक्ष के अधिकार बनाए गए हैं, लेन-देन का कोई विवरण दिए बिना या उस व्यक्ति का नाम बताए बिना जिसे उक्त फ्लैट बेचा गया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि ये तथ्य अपने आप में यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि अपीलकर्ता स्वच्छ अंतःकरण से उपस्थित नहीं हुआ है।

26. प्रतिद्वंदी पक्षों के उपरोक्त तर्को पर विचार करते हुए, यह पाया गया कि आवंटी ने अपीलकर्ता द्वारा विकसित योजना में फ्लैट के आबंटन के लिए आवेदन किया था। उसने सभी देय राशि का भुगतान कर दिया था, सिवाय उस राशि के जो कब्जे के चरण में भुगतान की जानी थी। वर्तमान मामले में विवाद उक्त परियोजना के अंतिम चरण में उत्पन्न हुआ है। प्रवर्तक के अनुसार, कब्जा प्रमाण पत्र दिनांक

18.7.2018 को प्राप्त कर लिया गया है और आवंटी से उसका पूरा भुगतान करने के लिए सीमित मांग की गई है।

27. दूसरी ओर, आवंटी अपने अधिकारों को लागू करने का प्रयास कर रहा है, जिसके तहत प्रवर्तक को उक्त परियोजना को पूरा करने और उसके द्वारा देखी गई सभी कमियों और खामियों को दूर करने की आवश्यकता है। वर्तमान मामले की कार्यवाही प्रवर्तक के कहने पर शुरू की गई है, जिसमें रेरा से आवंटी को शेष भुगतान करने का निर्देश देने की मांग की गई है, ताकि बुक की गई यूनिट उसे सौंपी जा सके। शिकायत पर सकारात्मक रूप से विचार किया गया और रेरा ने आवंटी को 90 दिनों के भीतर भुगतान करने के लिए कुछ निर्देश दिए हैं। उक्त अवधि समाप्त होने से पहले ही आवंटन रद्द कर दिया गया है। प्रवर्तक ने उस अवधि की समाप्ति का भी इंतजार नहीं किया, जो उनके आवेदन पर ही दी गई थी और ऐसा लगता है कि इस बीच, किसी भी प्राधिकरण की सूचना या अनुमति के बिना उक्त यूनिट को बेच दिया गया है। उन्होंने किसी भी प्राधिकरण या वर्तमान अपील में इस न्यायालय के समक्ष उक्त विवरण का खुलासा करना उचित नहीं समझा। इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अपीलकर्ता का आचरण उसे वर्तमान मामले में किसी अनुतोष का हकदार नहीं बनाता, क्योंकि वह न्यायालय में स्वच्छ अंतःकरण से नहीं आया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह निर्धारित किया है कि यदि अपीलकर्ता स्वच्छ अंतःकरण से आगे नहीं आया है, तो वह किसी भी न्यायसंगत अनुतोष का हकदार नहीं होगा। **<u>रामजस फाउंडेशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2010) 14 एससीसी 38</u>** के मामले में निम्नलिखित अवलोकन किया गया है:

"21. यह सिद्धांत कि जो व्यक्ति न्यायालय में स्वच्छ अंतःकरण से नहीं आता है, वह अपनी शिकायत के गुण-दोष के आधार पर सुनवाई का हकदार नहीं है और किसी भी मामले में ऐसा व्यक्ति किसी भी राहत का हकदार नहीं है, यह न मात्र संविधान के अनुच्छेद 32, 226 और 136 के तहत दायर याचिकाओं पर लागू होता है, बल्कि अन्य न्यायालयों और न्यायिक मंचों में दर्ज मामलों पर भी लागू होता है। इस सिद्धांत का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक न्यायालय न मात्र हकदार है, बल्कि बेईमान वादियों से खुद को बचाने के लिए बाध्य है, जो सत्य के प्रति कोई सम्मान नहीं रखते हैं और जो झूठ का सहारा लेकर या गलत बयान देकर या मामले में उठने वाले विवाद्यक(ओं) के न्यायनिर्णयन पर असर डालने वाले तथ्यों को दबाकर न्याय की धारा को प्रदूषित करने की कोशिश करते हैं।"

28. उपरोक्त के अतिरिक्त, न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर इस न्यायालय द्वारा भी विधिवत विचार किया गया है और उनका परीक्षण किया गया है। हमें न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई कमी नहीं दिखती है कि उक्त परियोजना में देरी हुई थी और उनके बयान के बावजूद कि परियोजना जून 2017 में पूरी हो जाएगी, यह तब भी पूरी नहीं हुई जब अपीलकर्ता ने रेरा से संपर्क किया था।

29. इस प्रश्न के संबंध में कि क्या अधिभोग प्रमाण पत्र प्राप्त होने के बाद प्रवर्तक द्वारा आवंटी को कोई कब्जा पत्र जारी किया गया था, इस प्रश्न का निर्णय प्रवर्तक के विरुद्ध किया गया, क्योंकि आवंटी के अनुसार भी अधिभोग प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद उसे कब्जे का कोई प्रस्ताव नहीं दिया गया था और अंत में, उनका यह आचरण कि उन्होंने 90 दिनों की समाप्ति से पहले आवंटन रद्द कर दिया है, न्यायाधिकरण द्वारा गैर- धारणीय माना गया है।

30. उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में, इस मामले में इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारण के लिए कोई विधिक प्रश्न नहीं उठता। तदनुसार अपील **खारिज** की जाती है और अपीलकर्ता के आचरण को देखते हुए, इसे 10,000.00 (मात्र दस हजार) रुपये की लागत के साथ खारिज किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 863

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 2221 वर्ष 2005

यूपी स्टेट शुगर कॉर्पोरेशन और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

धीरेन्द्र कुमार सिंह ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

पीके सिन्हा, अनीश श्रीवास्तव लाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, पीएन सिंह

क. श्रम विधि - उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 3-बी - स्थायी आदेश - खण्ड बी-1(4) - दैनिक वेतन भोगी के रूप में नियुक्ति - सेवा से समाप्ति - निर्णय - कामगार ने 240 दिन पूरे नहीं किए हैं - प्रभाव - श्रम न्यायालय ने दैनिक वेतन भोगी को मौसमी कामगार मानते हुए निर्णय पारित किया - वैधता को चुनौती दी गई - श्रम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया गया - निर्णय दिया गया कि एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में पदोन्नति स्पष्ट रूप से एक प्रबंधकीय कार्य था, जिसे श्रम न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता था - इस आशय के निष्कर्ष के अभाव में कि कामगार ने अपने मामले के अनुसार पेराई सत्रों के लिए काम किया है और स्थायी आदेशों के खण्ड बी-1(4) के तहत परिकल्पित अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी कर ली है, श्रम न्यायालय स्थायी आदेशों के तहत कामगार को मौसमी का दर्जा नहीं दे सकता था। उस निष्कर्ष के अभाव में, आक्षेपित निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध है। (अनुच्छेद 21 और 23)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचियो के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिन्हा और प्रत्यर्थियो के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.एन. सिंह को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचियो ने निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना की है:

(i) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 21.4.2004 के आक्षेपित निर्णय को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-पत्र की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) इस रिट याचिका के अनुलग्नक-1 में निहित आक्षेपित निर्णय को क्रियान्वित करने, लागू करने से प्रत्यर्थियो को किसी भी तरह से रोकने के लिए परमादेश की प्रकृति का रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

(iii) ऐसे अन्य आदेश या निर्देश पारित करना जो यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में याचियो के पक्ष में उपयुक्त एवं माकूल समझे।

(iv) याचियो के पक्ष में लागत के साथ रिट याचिका को स्वीकार करना।

3. मामले के तथ्य ये हैं कि उत्तर प्रदेश राज्य चीनी निगम कंपनी अधिनियम की धारा 617 के तहत पंजीकृत एक कंपनी है और इसकी विभिन्न औद्योगिक इकाइयां उत्तर प्रदेश राज्य के विभिन्न हिस्सों में स्थित हैं जो वैक्यूम पैन प्रक्रिया द्वारा चीनी का निर्माण करती हैं। याची संख्या 1 याची संख्या 2 की ऐसी औद्योगिक इकाइयों में से एक है जो कस्बा जरवल रोड, बहराइच में स्थित है और वैक्यूम पैन प्रक्रिया द्वारा चीनी का निर्माण करती है। याची उत्तर प्रदेश राज्य की सार्वजनिक क्षेत्र की होल्डिंग कंपनियां हैं। विपक्षी पक्षकार संख्या 1 ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत नामित प्राधिकारी के समक्ष एक औद्योगिक विवाद उठाया कि याची संख्या 1 की 2 सेवाओं को दिनांक 14.11.1994 से अवैधानिक और मनमाने ढंग से समाप्त कर दिया गया है, जहां वह मैग्मामैन के रूप में कारखाने में काम कर रहा था।

राज्य सरकार ने मामले को विपक्षी पक्ष संख्या 2 के समक्ष निर्णय के लिए भेजा, जहां इसे निर्णय मामला संख्या 13/1996 के रूप में पंजीकृत किया गया। विपक्षी संख्या 1 ने विपक्षी संख्या 2 के समक्ष लिखित बयान दायर किया, जिसमें विपक्षी संख्या 1 ने 14.11.1994 से विपक्षी संख्या 1 की सेवाओं की मौखिक समाप्ति की घोषणा और रद्दीकरण का दावा किया और आगे यह घोषणा मांगी कि विपक्षी संख्या 1 को दिनांक 14.11.1994 से लगातार मैग्मामैन के पद पर काम करना जारी रखने के रूप में घोषित किया जाए और आगे यह कि विपक्षी संख्या 1 को स्थायी सामयिक मैग्मामैन घोषित किया जा सकता है।

याची संख्या 1 ने दिनांक 9.8.1996 को विपक्षी संख्या 2 के समक्ष लिखित बयान भी दाखिल किया जिसमें कहा गया है कि विपक्षी संख्या 1 स्थायी आदेश एल-3 के मद्देनजर किसी भी नोटिस का हकदार नहीं है और न ही उसे नोटिस के मद्देनजर वेतन का भुगतान किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि याची दैनिक वेतन के आधार पर लोगों को नियुक्त करने के हकदार थे और विपक्षी संख्या 1 ने 240 दिन पूरे नहीं किए हैं। विपक्षी संख्या 1 द्वारा जवाबी उत्तर दाखिल किया गया जिसमें उसने लिखित बयान में लगाए गए अपने आरोप को दोहराया है। विपक्षी संख्या 1 की ओर से विपक्षी संख्या 1 ने खुद की जांच की और याची संख्या 1 की ओर से समयिक रक्षक श्री नंद किशोर की जांच की गई।

मामले की सुनवाई विपक्षी संख्या 2 द्वारा की गई, लेकिन पक्षकारों द्वारा बताए गए सही तथ्यों को समझने में विफल रहे। विपक्षी संख्या 2 यह समझने में विफल रहा कि वैक्यूम पैन प्रक्रिया द्वारा चीनी बनाने वाले चीनी उद्योग में कामगारों के रोजगार की शर्तें और नियम उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 3बी के तहत जारी स्थायी आदेश द्वारा शासित हैं,

लेकिन विपक्षी संख्या 2 ने सबसे अवैध और मनमाने तरीके से याचियो के खिलाफ आक्षेपित आदेश पारित किया। इसलिए यह रिट याचिका दायर की गई।

4. याचियो के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि विपक्षी संख्या 2 इस तथ्य को समझने में विफल रहा कि वैक्यूम पैन इंडस्ट्रीज पर लागू स्थायी आदेश के तहत कामगार की स्थिति में परिवर्तन का कोई प्रावधान नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि विपक्षी संख्या 2 यह समझने में भी विफल रहा कि एक बार जब कोई कामगार आकस्मिक या स्थायी रूप से नियुक्त हो जाता है तो उसे उक्त स्थिति में तब तक बने रहना पड़ता है जब तक कि नियोक्ता अपने विवेक से उसकी स्थिति में परिवर्तन नहीं कर देता।

5. याचियो के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विपक्षी संख्या 2 ने विपक्षी संख्या 1 को सामयिक कामगार घोषित करने में अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, जबकि विपक्षी संख्या 1 ने स्वयं स्वीकार किया है कि वह काम की उपलब्धता पर दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि विपक्षी संख्या 2 यह समझने में विफल रहा कि आकस्मिक कर्मकार की सेवाएं समाप्त करने के लिए तब तक कोई नोटिस देने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि कर्मकार उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 6-एन के तहत नोटिस प्राप्त करने का हकदार नहीं हो जाता।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि विपक्षी संख्या 2 प्रासंगिक तथ्यों को समझने में विफल रहा कि विपक्षी संख्या 1 को न तो प्रतिधारण भत्ता मिल रहा था और न ही उसके लिए कभी दावा किया गया था और इस तरह, वह एक सामयिक कर्मचारी नहीं था।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि विपक्षी संख्या 2 यह भी समझने में विफल रहा कि समय की शुरुआत में हमेशा कारखाने के सभी सामयिक कामगारों को नोटिस भेजा जाता है, जिसे विपक्षी संख्या 1 ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसे नोटिस नहीं भेजा गया है और इस तरह, विपक्षी संख्या 2 द्वारा विपक्षी संख्या 1 के सामयिक कामगार होने का अनुमान, अवैध और बिना किसी सबूत के है जिसके आधार पर विपक्षी संख्या 1 को सामयिक कामगार घोषित किया जा सकता था।

9. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में दलील दी कि विपक्षी संख्या 1 ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि उसने मार्च, 1994 से दिनांक 14.11.1994 के बाद की छुट्टियों में काम किया है और इस प्रकार, यह निष्कर्ष कि विपक्षी संख्या 1 की सेवाएं दिनांक 14.11.1994 को समाप्त कर दी गईं, अवैध और मनमाना है।

10. इसके विपरीत, विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 14.11.1994 को सेवा समाप्ति आदेश पारित करने से पूर्व न तो नोटिस दिया गया और न ही एक माह की अवधि का वेतन दिया गया, इसलिए श्रम न्यायालय द्वारा विपक्षी संख्या 1 के पक्ष में पारित निर्णय न्यायसंगत एवं उचित है तथा इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

11. विपक्षी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि श्रम न्यायालय ने स्थायी आदेशों पर आधारित निर्णय पारित करते समय कानून या अधिकार क्षेत्र की कोई त्रुटि नहीं की है।

12. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों तथा याची के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विधि रिपोर्ट पर विचार किया है।

13. याची के विद्वान अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य चीनी एवं गन्ना विकास निगम लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसका क्रियाशील भाग नीचे उद्धृत है:

> "***22.*** *उपर्युक्त तथ्यों और संबंधित पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए निवेदनों से, हमें यह प्रश्न तय करना है कि क्या न्यायाधिकरण के इस निष्कर्ष के प्रकाश में भी कि विपक्षी 2-15 द्वारा किया गया कार्य स्थायी प्रकृति का था जिसके कारण पूरे वर्ष उनकी सेवाओं की आवश्यकता थी, वह उक्त कामगारों को स्थायी घोषित कर सकता था या क्या ऐसी घोषणा प्रबंधन के कार्यों को हड़पने के*

समान थी जो उसकी शक्तियों से परे थे।

23. यह कि चीनी उद्योग में, और विशेष रूप से पेराई सत्र के दौरान, विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारी कार्यरत हैं, किसी भी पक्ष द्वारा आक्षेपित नहीं है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थायी कर्मचारियों के अलावा, अन्य श्रेणियों के कर्मचारी पेराई सत्र के दौरान नियोजित होते हैं, जो किसी दिए गए वर्ष में अक्टूबर के महीने में शुरू होता है और अगले वर्ष के अप्रैल महीने तक जारी रहता है। यह वह अवधि है जिसके दौरान गन्ने की फसल काटी जाती है और उसके बाद उसे विभिन्न मिलों में ले जाया जाता है, जहाँ चीनी के उत्पादन के लिए उसे पेराई की जाती है। बेशक, जैसा कि स्थायी आदेश 2 से पता चलता है, सभी कर्मचारियों, जो स्थायी नहीं हैं, की एक मस्टर रोल विभिन्न चीनी मिलों द्वारा रखी जाती है और पेराई सत्र की शुरुआत में पिछले पेराई सत्र के दौरान काम करने वाले सामयिक श्रमिकों को अपने पुराने काम में पेराई सत्र के लिए अपनी ड्यूटी पर शामिल होने के लिए कहा जाता है। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों के वेतनमान अलग-अलग हैं।

24. अपीलार्थी की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि जब सामयिक कामगारों को ऑफ सीजन के दौरान नियोजित किया जाता है, तब भी उन्हें वही मजदूरी दी जाती है जो उन्हें पेराई सत्र के दौरान दी जाती है, जो कि उनके और चीनी मिलों में कार्यरत स्थायी कामगारों के बीच बुनियादी अंतरों में से एक है।

25. यह भी एक स्वीकार्य स्थिति है कि चीनी मिलों द्वारा अपनाई गई नीति के अनुसार, किसी निश्चित समय पर उपलब्ध रिक्तियों की संख्या के आधार पर एक श्रेणी से अगली उच्च श्रेणी में पदोन्नति दी जाती है। यहां तक कि इस मामले में भी, संदर्भ की शर्तों में संदर्भित 39 कामगारों में से 13 को अपीलकर्ता द्वारा स्थायी किया गया था, जो अपीलकर्ता के मामले का समर्थन करता है कि जब भी रिक्तियां उपलब्ध होती हैं, तो एक श्रेणी से उच्च श्रेणियों में पदोन्नति दी जाती है और यह कार्य स्पष्ट रूप से एक प्रबंधकीय कार्य था जिसे श्रम न्यायालय द्वारा निष्पादित नहीं किया जा सकता था।

26. हम ब्रूक बॉन्ड मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचारों तथा हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हैं। हमारे विचार में, यह कार्य की प्रकृति के आधार पर फिटमेंट का मामला नहीं है, बल्कि रिक्तियां उपलब्ध होने पर पदोन्नति का मामला है। श्रम न्यायालय तथा माननीय न्यायालय दोनों ने ही मामले के इस पहलू पर उचित ध्यान नहीं दिया तथा इस आधार पर आगे बढ़े कि यह ऐसा मामला था जिसमें विपक्षी 2-15 को पूरे वर्ष उनके द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति के कारण स्थायी कर्मचारी के रूप में वर्गीकृत किए जाने के उनके अधिकार से वंचित किया गया था। उच्च न्यायालय ने वास्तव में मामले के संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार किए बिना केवल श्रम न्यायालय के निष्कर्षों पर भरोसा किया है।"

14. उपर्युक्त उद्धृत आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि जब रिक्तियां उपलब्ध होती हैं तो एक श्रेणी से उच्चतर श्रेणी में पदोन्नति दी जाती है और यह कार्य स्पष्ट रूप से प्रबंधकीय कार्य था जिसे श्रम न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता था।

15. इस मामले में, विपक्षी संख्या 1 ने इस आधार पर औद्योगिक विवाद उठाया कि याची संख्या 1 की सेवाएं अवैध रूप से और मनमाने ढंग से दिनांक 14.11.1994 से समाप्त कर दी गई हैं, जहां वह मैग्मामैन के रूप में फैक्ट्री में काम कर रहा था। राज्य सरकार ने मामले को विपक्षी संख्या 2 को भेजा, जहां इसे न्यायनिर्णयन वाद संख्या 13/1996 के रूप में पंजीकृत किया गया, जिसमें विपक्षी संख्या 2 ने यह घोषित किया कि विपक्षी संख्या 1 उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6-एन के तहत छंटनी किए गए कर्मचारी के लाभ पाने का हकदार है।

16. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि रिपोर्ट के प्रकाश में अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की जांच की है।

17. विपक्षी संख्या 1 ने 240 दिन पूरे नहीं किए हैं और वह सामयिक कामगार नहीं था जैसा कि याची संख्या 1 द्वारा दायर लिखित बयान में कहा गया है। एक वर्ष में 240 दिनों से अधिक काम करना केवल उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद, 1947 की धारा 6-एन के आवेदन के उद्देश्य से प्रासंगिक था, जिसमें कामगार को छंटनी करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों का प्रावधान है। यह कामगार द्वारा सेवा में नियमित होने के अधिकार के अधिग्रहण की बात नहीं करता है। मामले के इस दृष्टिकोण से, श्रम न्यायालय ने आक्षेपित पुरस्कार पारित करते समय इस पहलू पर विचार नहीं किया है कि विपक्षी संख्या 1 ने एक वर्ष में 240 दिन काम पूरा नहीं किया है।

18. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थायी कामगारों के अलावा अन्य श्रेणियों के कामगारों को पेराई सत्र के दौरान काम पर रखा जाता है, जो किसी दिए गए वर्ष में अक्टूबर के महीने में शुरू होता है और अगले वर्ष के अप्रैल महीने तक जारी रहता है। यह वह अवधि है जिसके दौरान गन्ने की फसल काटी जाती है और फिर उसे विभिन्न मिलों में ले जाया जाता है, जहाँ उसे चीनी के उत्पादन के लिए पेराई की जाती है।

19. जैसा कि स्थायी आदेश 2 से पता चलता है, सभी कर्मचारियों, जो स्थायी नहीं हैं, की मस्टर रोल विभिन्न चीनी मिलों द्वारा बनाए रखी जाती है और पेराई सत्र की शुरुआत में पिछले पेराई सत्र के दौरान काम करने वाले सामयिक श्रमिकों को पेराई सत्र के लिए अपनी पुरानी नौकरी में शामिल होने के लिए कहा जाता है। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि विभिन्न श्रेणियों के श्रमिकों का वेतनमान अलग-अलग है।

20. यहां तक कि जब सामयिक कामगारों को असमय के दौरान भी काम पर रखा जाता है, तो उन्हें वही मजदूरी दी जाती है जो उन्हें पेराई सत्र के दौरान दी जाती है, जो कि उनके और चीनी मिलों में काम करने वाले स्थायी कामगारों के बीच बुनियादी अंतरों में से एक है।

21. यह भी स्वीकार किया जाता है कि चीनी मिलों द्वारा अपनाई गई नीति के अनुसार, किसी निश्चित समय पर उपलब्ध रिक्तियों की संख्या के आधार पर एक श्रेणी से अगली उच्च श्रेणी में पदोन्नति दी जाती है। पदोन्नति एक श्रेणी से उच्च श्रेणी में तब दी जाती है जब रिक्तियां उपलब्ध होती हैं और यह कार्य स्पष्ट रूप से एक प्रबंधकीय कार्य था जिसे श्रम न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता था। मामले के इस दृष्टिकोण से, श्रम ने विपक्षी संख्या 1 को सामयिक कर्मचारी घोषित करके गंभीर अवैधता की है, हालांकि विपक्षी संख्या 1 ने स्वयं स्वीकार किया है कि वह काम की उपलब्धता पर काम करने वाला दैनिक वेतनभोगी था।

22. स्थायी आदेशों के तहत सामयिक घोषित किए जाने के लिए कामगारों के अधिकार का न्याय करने के लिए, श्रम न्यायालय को यह जांचना आवश्यक था कि उसके सामने मौजूद साक्ष्य के आधार पर, कामगार या उनमें से एक या अधिक स्थायी आदेशों के खंड बी-1(2) के तहत परिभाषित सामयिक कर्मचारी होने की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं या नहीं। यह भी निर्धारित करना होगा कि कामगार के मामले में श्रम न्यायालय के समक्ष मौजूद साक्ष्य के आधार पर खंड बी-1(4) के तहत परिकल्पित परिवीक्षा की आवश्यकता पूरी होती है या नहीं, और क्या वह सामयिक कर्मचारी की स्थिति का हकदार है।

23. श्रम न्यायालय ने अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों तथा नियोक्ता द्वारा अभिलेख प्रस्तुत न किए जाने के कारण निकाले गए विपरीत निष्कर्ष के आधार पर, उस संबंध में कामगारों द्वारा आवेदन किए जाने के बावजूद, यह मान सकता था कि कामगारों ने नियोक्ता के साथ संपूर्ण पेराई सत्र में काम किया है तथा

परिवीक्षा अवधि पूरी की है, जिससे उसे सामयिक कामगार का दर्जा प्राप्त होता है। लेकिन, उस विशिष्ट निष्कर्ष को दर्ज नहीं किया गया है। इस आशय के निष्कर्ष के अभाव में कि कामगार ने अपने मामले के अनुसार पेराई सत्र में काम किया है तथा स्थायी आदेशों के खंड बी-1(4) के अंतर्गत परिकल्पित अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी की है - कम से कम यह निष्कर्ष कि कामगार को एक निश्चित पेराई सत्र के लिए नियुक्त किया गया है तथा उसने अपनी परिवीक्षा अवधि पूरी की है - श्रम न्यायालय स्थायी आदेशों के अंतर्गत कामगार को सामयिक दर्जा प्रदान नहीं कर सकता था। उस निष्कर्ष के अभाव में, आक्षेपित निर्णय स्पष्ट रूप से अवैध है।

24. इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय में निष्कर्ष किसी भी कानूनी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं और न ही वैध कारणों से समर्थित हैं। उपरोक्त निर्णय में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर स्पष्ट रूप से लागू होते हैं।

25. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को समग्रता से देखते हुए, इस रिट याचिका को **स्वीकार** किया जाता है। विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 21.4.2004 के निर्णय (इस रिट याचिका के अनुलग्नक-1) को निरस्त किया जाता है, तथा मामले को विपक्षी संख्या 2 को वापस भेजा जाता है ताकि वह कानून के अनुसार तथा इस निर्णय में की गई टिप्पणियों के प्रकाश में मामले का नए सिरे से निर्णय ले सके, तथा यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः इस निर्णय की प्रमाणित प्रति याचियो द्वारा उसके समक्ष दाखिल किए जाने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर निर्णय ले सके।

26. दोनों पक्षों को सलाह दी जाती है कि वे अपने-अपने मामलों के समर्थन में ऐसे और साक्ष्य, विशेष रूप से दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करें। श्रम न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत सभी साक्ष्यों पर विचार करेगा, जिसमें कोई और साक्ष्य भी शामिल है, यदि प्रस्तुत किया गया हो, जैसा कि इसके द्वारा निर्देशित है, नया निर्णय देने से पहले। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सभी प्रस्तुतियाँ, श्रम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए पक्षों के लिए खुली रहेंगी, सिवाय उस प्रस्तुत को छोड़कर जो श्रम न्यायालय के पास कामगार के मामले पर यह घोषित करने के लिए अधिकार क्षेत्र की कमी से संबंधित है कि वह सामयिक कामगार है, न कि अस्थायी। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर वर्णित कामगार के पक्ष में सबूतों से श्रम द्वारा निकाले जा सकने वाले एक निष्कर्ष की संभावना को किसी भी तरह से इस मुद्दे पर राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं समझा जाएगा। श्रम न्यायालय इस मुद्दे पर अपने निष्कर्ष निकालने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा कि क्या अभिलेख पर मौजूद सबूतों के आधार पर कामगार स्थायी आदेशों के तहत सामयिक कामगार की स्थिति का हकदार है।

27. आज निर्णीत किसी भी रिट याचिका में लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 869

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट-ए संख्या 3180/2023

प्रो. रंजना शर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

अभिनीत जयसवाल, गौरव मेहरोत्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

A. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 300-ए - यूपी सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 - नियम 5 और 9 - संपत्ति का अधिकार - ग्रेच्युटी और पेंशन - एक कार्यकारी आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को वंचित करना - अनुमति - माना गया, नियम , 1961 के अधिदेश के आधार पर याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पेंशन और ग्रेच्युटी का अधिकार प्रवाहित होता है - एक कार्यकारी आदेश द्वारा ग्रेच्युटी को वापस लेना अनुमेय नहीं है - उच्च न्यायालय ने इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए का स्पष्ट उल्लंघन माना - *डॉ. हीरा लाल के मामले* और *जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव के मामले* पर भरोसा किया गया। (पैरा 14, 15, 16 और 20)

बी. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 14 - समानता का अधिकार - भेदभाव - जबकि याचिकाकर्ता को, एक मेडिकल कॉलेज का डॉक्टर होने के नाते, ग्रेच्युटी का लाभ देने से इनकार कर दिया गया था, प्रांतीय स्वास्थ्य सेवाओं में काम करने वाले डॉक्टरों को भी यही लाभ दिया गया है, जबकि ऐसे डॉक्टरों की आयु 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई थी और उन्हें विस्तारित अवधि के लिए वेतन का भुगतान किया गया था - माना गया कि यह अनुच्छेद 14 का स्पष्ट उल्लंघन है। (पैरा 20)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. डॉ. हीरा लाल बनाम बिहार राज्य एवं अन्य; (2020) 4 एससीसी 346

2. झारखंड राज्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य; (2013) 12 एससीसी 210

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता और स्थायी अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा को सुना।

2. 23.05.2023 को चार सप्ताह का समय देने और जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए और समय नहीं देने के आदेश के बावजूद, राज्य ने जवाबी हलफनामा दाखिल नहीं करने

का विकल्प चुना है। स्थायी अधिवक्ता द्वारा निर्देश प्रस्तुत किए गए हैं, जो उन कारणों को इंगित करते हैं कि याचिकाकर्ताओं को ग्रेच्युटी का दावा क्यों नहीं दिया जा रहा है। उक्त अनुदेशों को अभिलिखित किया जाता है और मामले पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जाता है क्योंकि यह मुद्दा कानूनी आधारों की व्याख्या पर टिका है, तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता संख्या-1 और 2 को क्रमशः गणेश शंकर विद्यार्थी मेमोरियल मेडिकल कॉलेज, कानपुर और मेडिकल कॉलेज, मेरठ में नियुक्त किया गया था और सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक सेवा करते रहे, हालांकि, राज्य सरकार सुपर स्पेशियलिटी डॉक्टरों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 65 वर्ष करने के लिए दिनांक 06.02.2015 को एक शासनादेश जारी किया गया है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के लिए (अनुलग्नक-7) के रूप में दायर की गई है। रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि सेवानिवृत्ति की आयु यानी 60 वर्ष प्राप्त करने पर, याचिकाकर्ता संख्या-2 ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया, हालांकि, कोई आदेश पारित नहीं किया गया और दोनों याचिकाकर्ता, याचिकाकर्ता संख्या-2 के स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन पर किसी भी आदेश के अभाव में, 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक सेवा करते रहे। सेवानिवृत्ति के बाद, याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह है कि उन्हें मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी का भुगतान नहीं किया गया है, जिसके वे हकदार हैं और साथ ही पेंशन के कम्यूटेशन का लाभ भी नहीं दिया गया है। यह रिकॉर्ड से पता चलता है कि इसी तरह से रखे गए एक डॉक्टर को जिसे उक्त लाभ से वंचित कर दिया गया था, ने रिट-ए संख्या-281 वर्ष 2022 (डॉ. सुनील कुमार गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर करके इस न्यायालय से संपर्क किया था, जिसे दिनांक 10.02.2022 के आदेश के माध्यम से निपटाया गया था, जिसमें प्रतिपक्षियों को राज्य सरकार को रिट-ए संख्या-281 वर्ष 2022 के याचिकाकर्ता की शिकायत पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। उक्त निर्देशों के जवाब में, रिट-ए संख्या-281 वर्ष 2022 के उक्त याचिकाकर्ता के संबंध में 13.12.2022 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें उसे ग्रेच्युटी के भुगतान के लाभों से इनकार किया गया था। दिनांक 13.12.2022 के आदेश में, उक्त लाभों से इनकार करने के लिए दर्ज किए गए कारण उक्त आदेश के पैरा-3 में निहित हैं, यह देखते हुए कि यह प्राधिकरण के संज्ञान में आया है कि बेसिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के साथ काम करने वाले शिक्षकों के संबंध में समान परिस्थितियों में जहां सेवानिवृत्ति की आयु बढ़ा दी गई थी, लेकिन उक्त व्यक्तियों को ग्रेच्युटी का भुगतान नहीं किया जा रहा है और उससे समानांतर आहरण कर रहा है; याचिकाकर्ता, जिनकी सेवाओं को 60 साल से बढ़ाकर 65 साल कर दिया गया था, वे भी ग्रेच्युटी के भुगतान के हकदार नहीं हैं। उक्त आदेश में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को अपने अधिकारों को जानने के बावजूद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुनने का अधिकार था, वे 65 तक काम करना जारी रखते थे, इस प्रकार वे ग्रेच्युटी के हकदार नहीं थे। उक्त तर्क के

आधार पर, याचिकाकर्ता डॉ. सुनील कुमार गर्ग का अभ्यावेदन खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता गौरव मेहरोत्रा के अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता डॉ. सुनील कुमार गर्ग के समान हैं, जिनके ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया था। ग्रेच्युटी का भुगतान न करने के लिए दर्ज तर्क याचिकाकर्ता संख्या-2 पर और आंशिक रूप से याचिकाकर्ता संख्या-1 पर लागू होगा और इस प्रकार, प्रस्तुत याचिका मृत्यु-सह सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी के लाभ और पेंशन के कम्यूटेशन के लाभ की मांग करते हुए दायर की गई है और यह न्यायालय इस मुद्दे का फैसला कर सकता है क्योंकि राज्य का रुख अब स्पष्ट है।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा का तर्क है कि उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961(इसके बाद '1961 के नियम' के रूप में संदर्भित) के संदर्भ में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी और पेंशन प्रवाह के कम्यूटेशन का अधिकार और इसे कानून के अनुसार छोड़कर नहीं छीना जा सकता था। उनके अनुसार, ग्रेच्युटी और पेंशन ऐसे अधिकार हैं जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के जनादेश के अनुसार 'कानून' के अनुसार छोड़कर नहीं छीना जा सकता है। उनका तर्क है कि अनुच्छेद 300-ए के जनादेश के अनुसरण में राज्य द्वारा कोई 'कानून' नहीं बनाया गया है ताकि ग्रेच्युटी के लाभ से इनकार किया जा सके। उन्होंने आगे तर्क दिया कि रिकॉर्ड पर मौजूद दस्तावेज से उपलब्ध और समझे गए तर्क कि राज्य सरकार द्वारा 01.04.2021 को पारित कार्यकारी आदेश के संदर्भ में याचिकाकर्ताओं को ग्रेच्युटी के लाभ से वंचित कर दिया गया है, जिसमें पेंशन और ग्रेच्युटी के साथ-साथ कम्यूटेशन के अनुदान के संबंध में, केजीएमयू विश्वविद्यालय के संकल्प और निर्णय दिनांक 19.07.2019 को राज्य सरकार द्वारा पेंशन ग्रेच्युटी और कम्यूटेशन के संबंध में अपनाया गया था। उन्होंने सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद पांच वर्ष की विस्तारित अवधि के लिए सेवा करने वाले व्यक्तियों के संबंध में पेंशन, ग्रेच्युटी और पेंशन के संराशीकरण सहित लाभ प्रदान करने के संबंध में केजीएमयू द्वारा लिए गए निर्णय की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है।

6. उनका तर्क है कि विश्वविद्यालय का निर्णय राज्य सरकार द्वारा अपनाया गया है, लेकिन यह अभी भी 'कानून' के दायरे में नहीं आएगा, जो अनुच्छेद 300 ए के जनादेश के संदर्भ में लाभ से इनकार करने या दूर करने के लिए आवश्यक है। वह डॉ. हीरा लाल बनाम बिहार राज्य और अन्य (2020)4 एस.सी.सी. 346 के मामले में फैसले पर भरोसा करता है।

7. उक्त के प्रकाश में और अनुच्छेद 300 ए की नींव पर, श्री गौरव मेहरोत्रा का तर्क है कि एक तरफ, याचिकाकर्ताओं को उनसे कोई सहमति लिए बिना सेवा करने के लिए बनाया गया था, केवल राज्य के हित की सेवा करने के लिए और याचिकाकर्ता 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक सेवा करते रहे और दूसरी ओर, उन्हें लाभ से वंचित कर दिया गया है, जो कानून के किसी भी अधिकार के बिना

वैधानिक नियमों के संदर्भ में उनके पक्ष में आता है और इस प्रकार, राज्य की कार्रवाई पूरी तरह से मनमानी और अवैध है और याचिकाकर्ताओं के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करती है।

8. याचिकाकर्ता संख्या-2 के संदर्भ में, जिसने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया था, उनका तर्क है कि यह राज्य था, जिसे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन पर एक आदेश पारित करना था, जिसे राज्य आसानी से ऐसा करने में विफल रहा और उक्त विफलता के कारण, याचिकाकर्ता संख्या-2 को 65 वर्ष की आयु तक सेवा जारी रखने के लिए मजबूर होना पड़ा।

9. रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा की गई ग्रेच्युटी की पूरी राशि, नियम वर्ष 1961 के संदर्भ में, याचिकाकर्ताओं को केवल इस आधार पर वंचित कर दी गई है कि वे 65 साल तक सेवा में रहे और जिसके लिए उन्हें कानून के अनुसार उनके वेतन का भुगतान किया गया था।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि प्रांतीय चिकित्सा सेवाओं के संबंध में, डॉक्टरों की आयु 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई थी, हालांकि, उन्हें ग्रेच्युटी का लाभ दिया गया था और इससे इनकार नहीं किया गया था और इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत गारंटीकृत अधिकारों का उल्लंघन भी है।

11. स्थायी अधिवक्ता ने निर्देशों का उत्पादन किया है, जो रिकॉर्ड पर लिए गए हैं, और जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए और समय के लिए प्रार्थना करते हैं, हालांकि, जैसा कि इस न्यायालय ने एक रोक आदेश पारित किया था, इस तथ्य के साथ कि ग्रेच्युटी के लाभों से इनकार करने के लिए बचाव को निर्देशों के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाया गया है, आगे समय देने में कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जैसा कि निर्देशों में विशेष रूप से दर्ज किया गया है कि केजीएमयू के मामले में पारित दिनांक 19.07.2019 के आदेश के बल पर और राज्य सरकार द्वारा दिनांक 01.04.2021 के प्रशासनिक आदेश के माध्यम से विधिवत अपनाया गया, याचिकाकर्ता किसी भी ग्रेच्युटी के हकदार नहीं थे और इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं का दावा खारिज करने के योग्य था।

12. ऊपर दर्ज की गई दलीलों और तर्कों के आलोक में, इस न्यायालय को यह तय करना है कि "क्या ग्रेच्युटी और पेंशन का लाभ याचिकाकर्ताओं की संपत्ति है और क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन में प्रशासनिक आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं को इससे वंचित किया जा सकता है"।

13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए को नीचे उद्धृत किया गया है:

> "300ए: व्यक्तियों को कानून के अधिकार के बिना संपत्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए - विधि के प्राधिकार के बिना

किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।

14. प्रस्तुत याचिका में उठाए गए और उत्पन्न सभी मुद्दे झारखंड राज्य और अन्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से पूरी तरह से कवर किए गए हैं; माननीय उच्चतम न्यायालय ने (2013)12 एस.सी.सी. 210 के मामले में अपने निर्णय में इस मुद्दे पर निर्णय लेते समय कि क्या पेंशन और उपदान संपत्ति के बराबर है और क्या इसे अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत यथा परिभाषित कानून बनाए बिना छीना जा सकता है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"14. पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को देवकीनंदन प्रसाद बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले द्वारा संपत्ति के अधिकार के रूप में मान्यता दी गई थी। बिहार राज्य [(1971) 2 एस.सी.सी. 330: 1971 सप्प एस.सी.आर 634], जैसा कि निम्नलिखित चर्चा से स्पष्ट है: (एस.सी.सी. पीपी 342-43, पैरा-27-33)

"27. विचार किया जाने वाला अंतिम प्रश्न यह है कि क्या सरकारी कर्मचारी द्वारा पेंशन प्राप्त करने का अधिकार संपत्ति है, ताकि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) को लागू किया जा सके। यह प्रश्न इस बात पर विचार करने के लिए तय किया जाता है कि क्या रिट याचिका अनुच्छेद 32 के तहत सुनवाई योग्य है। इस पहलू पर, हम पहले ही प्रदर्श दे चुके हैं और अब हम उसी पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

28. याचिकाकर्ता के अनुसार पेंशन प्राप्त करने का अधिकार संपत्ति है और प्रतिवादियों ने 12-6-1968 के एक कार्यकारी आदेश द्वारा गलत तरीके से उसकी पेंशन को रोक दिया है। यह आदेश संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) के तहत उनके मौलिक अधिकारों को प्रभावित करता है। प्रतिपक्षी, जैसा कि हमने पहले ही संकेत दिया है, पेंशन प्राप्त करने के याचिकाकर्ता के अधिकार पर विवाद नहीं करते हैं, लेकिन 5-8-1996 को पारित आदेश के लिए। जवाबी हलफनामे में केवल एक गंदा कथन है कि किसी भी मौलिक अधिकार का कोई सवाल ही विचार के लिए नहीं उठता है। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता श्री झा इस स्थिति को लेने के लिए तैयार नहीं थे कि पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को किसी भी परिस्थिति में संपत्ति नहीं माना जा सकता है। उनके मुताबिक इस मामले में राज्य की ओर से पेंशन देने का कोई

आदेश पारित नहीं किया गया है। हमने अधिवक्ता को यह आग्रह करने के लिए समझा कि यदि राज्य ने पेंशन देने का आदेश पारित किया था और बाद में उस आदेश से बचाव किया था, तो बाद के आदेश को संपत्ति के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिकार को प्रभावित करने के लिए माना जा सकता है ताकि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) को आकर्षित किया जा सके।

29. हम प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। पेंशन नियमों में सुसंगत प्रावधानों के संदर्भ में, हमने पहले ही संकेत दिया है कि पेंशन की मंजूरी अधिकारियों द्वारा इस आशय के आदेश पारित किए जाने पर निर्भर नहीं करती है। यह हो सकता है कि सेवा की अवधि और अन्य संबद्ध मामलों के संबंध में राशि को अर्हता प्राप्त करने के प्रयोजनों के लिए, अधिकारियों के लिए उस प्रभाव के लिए एक आदेश पारित करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन पेंशन प्राप्त करने का अधिकार एक अधिकारी को उक्त आदेश के कारण नहीं बल्कि नियमों के आधार पर प्रवाहित होता है। हम पहले ही बता चुके हैं कि नियम याचिकाकर्ताओं जैसे व्यक्तियों के पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को स्पष्ट रूप से उसमें उल्लिखित परिस्थितियों में मान्यता देते हैं।

30. यह सवाल कि क्या लोक सेवक को दी गई पेंशन अनुच्छेद 31(1) को आकर्षित करने वाली संपत्ति है, भगवंत सिंह बनाम पंजाब उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। भारत संघ [ए.आई.आर. 1962 पंजाब 503]। यह माना गया कि इस तरह का अधिकार 'संपत्ति' का गठन करता है और कोई भी हस्तक्षेप संविधान के अनुच्छेद 31(1) का उल्लंघन होगा। आगे यह माना गया कि राज्य एक कार्यकारी आदेश द्वारा पेंशन प्राप्त करने के लोक सेवक के अधिकार को पूरी तरह से कम या समाप्त नहीं कर सकता है। यह निर्णय एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया था। यह निर्णय भारत संघ द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील में लिया गया था। लेटर्स पेटेंट बेंच ने यूनियन ऑफ इंडिया बनाम भगवंत सिंह [आई.एल.आर. (1965)2 पंजाब 1] में अपने फैसले में एकल न्यायाधीश के निर्णय को मंजूरी दी। लेटर्स पेटेंट बेंच ने माना कि एक लोक सेवक को उसकी सेवानिवृत्ति पर दी गई पेंशन संविधान के अनुच्छेद 31(1) के अर्थ के भीतर 'संपत्ति' है और उसे केवल कानून के प्राधिकरण द्वारा ही इससे वंचित किया जा सकता है और पेंशन केवल इनकार

या रद्द करने पर संपत्ति नहीं रह जाती है। यह आगे कहा गया कि 'संपत्ति' के रूप में पेंशन का चरित्र संभवतः किसी विशेष व्यक्ति या प्राधिकरण की सनक पर इस तरह के उत्परिवर्तन से नहीं गुजर सकता है।

31. यह मामला फिर से केआर एरी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष आया। पंजाब राज्य [ए.आई.आर. 1967 पंजाब 279 आई.एल.आर. (1967)1 पंजाब 278]। उच्च न्यायालय को किसी अधिकारी के पेंशन पाने के अधिकार के स्वरूप पर विचार करना था। बहुमत ने अनुमोदन के साथ उसी उच्च न्यायालय के दो पूर्व निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को उद्धृत किया, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, और यह माना कि पेंशन को सरकार की इच्छा और खुशी पर देय इनाम के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और यह कि सेवानिवृत्ति पेंशन का अधिकार जिसमें इसकी राशि भी शामिल है, एक सरकारी कर्मचारी में निहित एक मूल्यवान अधिकार है। बहुमत द्वारा आगे यह माना गया था कि भले ही अधिकारी को पहले ही उसकी ओर से चूक या कदाचार के लिए दंड लगाने के खिलाफ कारण बताने का अवसर दिया गया था और उसे दोषी पाया गया है, फिर भी, जब किसी अधिकारी को उसके खिलाफ पहले से साबित हुए कदाचार के आधार पर देय पेंशन की मात्रा में कटौती करने की मांग की जाती है, इस संबंध में कारण बताने का एक और अवसर अधिकारी को दिया जाना चाहिए। आगे अवसर देने के संबंध में यह विचार न्यायाधीशों द्वारा संबंधित पंजाब सिविल सेवा नियमों के आधार पर व्यक्त किया गया था। लेकिन मुख्य न्यायाधीश अपने असहमतिपूर्ण फैसले में बहुमत से सहमत होने के लिए तैयार नहीं थे कि ऐसी परिस्थितियों में एक अधिकारी को एक और अवसर दिया जाना चाहिए जब राज्य द्वारा देय पेंशन की राशि में कटौती की जाती है। इस मामले में हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम इस प्रश्न पर विचार करें कि क्या पहले से की गई अनुशासनात्मक कार्रवाई के आधार पर पेंशन को कम करने या अस्वीकार करने के माध्यम से कार्रवाई करने से पहले, किसी अधिकारी को कारण बताओ नोटिस दिया जाना चाहिए। यह प्रश्न हमारे समक्ष विचारार्थ नहीं उठता। न ही हम किसी अधिकारी की सेवानिवृत्ति के बाद पहली बार पेंशन को कम करने या रोकने से पहले प्राधिकारियों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, यदि कोई हो, के

संबंध में आगे के प्रश्न से चिंतित हैं। इसलिए हम इस पहलू पर उपरोक्त पंजाब उच्च न्यायालय के फैसले में बहुमत और अल्पसंख्यक न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। लेकिन हम बहुमत के दृष्टिकोण से सहमत हैं जब इसने अपने पहले के निर्णय को मंजूरी दे दी है कि पेंशन सरकार की इच्छा और खुशी पर देय इनाम नहीं है और दूसरी ओर, पेंशन का अधिकार एक सरकारी कर्मचारी में निहित एक मूल्यवान अधिकार है।

32. मध्य प्रदेश राज्य बनाम रानोजीराव शिंदे [ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1053: (1968)3 एस.सी.आर 489] में इस न्यायालय को इस सवाल पर विचार करना था कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) में उस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर 'नकद अनुदान' 'संपत्ति' है। इस न्यायालय ने कहा कि यह संपत्ति थी, यह देखते हुए कि 'यह स्पष्ट है कि धन की राशि का अधिकार संपत्ति है'।

33. उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि पेंशन प्राप्त करने का याचिकाकर्ता का अधिकार अनुच्छेद 31(1) के तहत संपत्ति है और केवल एक कार्यकारी आदेश द्वारा राज्य के पास इसे रोकने की कोई शक्ति नहीं थी। इसी तरह, उक्त दावा भी अनुच्छेद 19(1)(एफ) के तहत संपत्ति है और इसे अनुच्छेद 19 के खंड (5) द्वारा बचाया नहीं गया है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि याचिकाकर्ता को पेंशन प्राप्त करने के अधिकार से वंचित करने वाला दिनांक 12-6-1968 का आदेश संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार को प्रभावित करता है, और इस तरह अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका सुनवाई योग्य है। यह हो सकता है कि पेंशन अधिनियम (23 वर्ष 1871) के तहत एक दीवानी न्यायालय के खिलाफ एक रोक है जो उसमें उल्लिखित मामलों से संबंधित किसी भी मुकदमे पर विचार करता है। यह कानून के अनुसार पेंशन के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर ठीक से विचार करने के लिए राज्य को जारी किए जा रहे परमादेश रिट के रास्ते में नहीं आता है।

15. पश्चिम बंगाल बनाम हरेश सी. बनर्जी [(2006)7 एस.सी.सी. 651: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1719] मामले में इस न्यायालय ने माना कि जब संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के तहत संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और अनुच्छेद 31(1) के निरस्त होने के बाद भी 20-6-1979 से संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं रह

गया है, यह अभी भी एक संवैधानिक अधिकार था, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 300-ए में प्रदान किया गया है। पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को संपत्ति के अधिकार के रूप में माना जाता था। अन्यथा, उस मामले में चुनौती पश्चिम बंगाल सेवा (मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ) नियम, 1971 के नियम 10(1) की शक्ति को दी गई थी, जिसने राज्यपाल को कुछ परिस्थितियों में पेंशन या उसके किसी हिस्से को रोकने या वापस लेने का अधिकार दिया था और उक्त चुनौती को इस न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था।

16. तथ्य यह है कि कानूनी सिद्धांत के लिए एक छाप है कि पेंशन प्राप्त करने का अधिकार "संपत्ति" में एक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 300-A निम्नानुसार है:

> "300-क. विधि के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित न किया जाएगा - विधि के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।
>
> एक बार जब हम उस आधार पर आगे बढ़ते हैं, तो इस फैसले की शुरुआत में हमारे द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर बहुत स्पष्ट हो जाता है। किसी व्यक्ति को कानून के अधिकार के बिना इस पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 300-ए में निहित संवैधानिक जनादेश है। यह इस प्रकार है कि अपीलकर्ता द्वारा पेंशन या ग्रेच्युटी का एक हिस्सा छीनने या यहां तक कि बिना किसी वैधानिक प्रावधान के और प्रशासनिक निर्देश के तहत नकदीकरण छोड़ने का प्रयास नहीं किया जा सकता है।

17. इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि कार्यकारी निर्देशों का सांविधिक स्वरूप नहीं है और इसलिए, पूर्वोक्त अनुच्छेद 300-ए के अर्थ के भीतर "कानून" नहीं कहा जा सकता है। ऐसे परिपत्र के आधार पर, जिसमें कानून का बल नहीं है, अपीलकर्ता पेंशन या ग्रेच्युटी का एक हिस्सा भी नहीं रोक सकता है। जैसा कि हमने ऊपर देखा, जहां तक वैधानिक नियमों का संबंध है, दी गई स्थिति में पेंशन या ग्रेच्युटी को रोकने का कोई प्रावधान नहीं है। अगर इन नियमों में ऐसा कोई प्रावधान होता, तो स्थिति अलग होती।

15. इसी प्रकार डॉ. हीरा लाल (उपरोक्त) के मामले में, एक समान मुद्दे पर निर्णय लेते समय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

> "18. हमारे सुविचारित विचार में, परिपत्र दिनांक 22-8-1974 और 31-10-1974, और सरकारी संकल्प संख्या-3104 दिनांक 31-7-1980, केवल प्रशासनिक अनुदेश/कार्यकारी आदेश थे। वे संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत शक्ति के प्रयोग में जारी

नहीं किए गए थे और उन्हें कानून का बल नहीं कहा जा सकता है।

19. सरकारी संकल्प दिनांक 31-7-1980 झारखंड राज्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव [झारखंड राज्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव, (2013) 12 एस.सी.सी. 210: (2014) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 315: (2014) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 570] में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। बिहार पेंशन नियमों के नियम 43(बी) और 31-7-1980 के सरकारी संकल्प संख्या-3104 पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने कहा कि राज्य के पास न्यायिक या विभागीय कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सरकारी कर्मचारी की पेंशन या ग्रेच्युटी की पूरी राशि को रोकने का कोई अधिकार या शक्ति नहीं थी; (एस.सी.सी. पीपी. 216-17 और 220-21, पैरा-9-11, 13 और 16-17); इस न्यायालय ने कहा कि:

9. कानूनी स्थिति स्पष्ट करने के बाद, आइए पहले पेंशन जारी करने से संबंधित नियमों पर चर्चा करें।

10. प्रस्तुत मामला बिहार पेंशन नियमों द्वारा शासित है, जैसा कि झारखंड राज्य पर लागू है। उक्त पेंशन नियमों का नियम 43(बी) राज्य सरकार को कुछ परिस्थितियों में पेंशन या उसके हिस्से को रोकने या निकालने की शक्ति प्रदान करता है। यह नियम 43(बी) निम्नानुसार है:

* * *

11. पूर्वोक्त नियम 43(बी) के पढ़ने से, निम्नलिखित स्थिति उभरती है:

(i) जब पेंशनभोगी को विभागीय कार्यवाही अथवा न्यायिक कार्यवाही में गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है तो राज्य सरकार को पेंशन अथवा इसके किसी भाग को रोकने अथवा वापस लेने की शक्ति प्राप्त है।

(ii) यह प्रावधान राज्य को उक्त शक्ति का उपयोग करने की शक्ति नहीं देता है जबकि विभागीय कार्यवाही या न्यायिक कार्यवाही लंबित है।

(iii) उपर्युक्त कार्यवाहियों के परिणाम पर ध्यान दिए बिना राज्य को इस नियम के अंतर्गत छुट्टी नकदीकरण रोकने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है।

(iv) इस शक्ति का उपयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कार्यवाही दोषी पाते हुए समाप्त हो जाती है और उससे पहले नहीं।

* * *

13. नियम 43(बी) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभागीय जांच के समापन के बाद भी, सरकार के लिए पेंशन आदि को रोकना जायज़ है। [एड. : दो तारांकन के बीच के मामले पर मूल रूप से जोर दिया गया है। केवल [एड. : दो तारांकन के बीच के मामले को मूल रूप से जोर दिया गया है।] जब विभागीय जांच या न्यायिक कार्यवाही में एक निष्कर्ष दर्ज किया जाता है कि कर्मचारी ने अपने कार्यालय में रहते हुए अपने कर्तव्य के निर्वहन में गंभीर कदाचार किया था। जब ऐसी विभागीय कार्यवाहियां या न्यायिक कार्यवाहियां अभी भी लंबित हैं तो पेंशन/ग्रेच्युटी को रोकने के लिए नियमों में कोई प्रावधान नहीं है।

* * *

16. ... किसी व्यक्ति को कानून के अधिकार के बिना इस पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 300-ए में निहित संवैधानिक जनादेश है। यह इस प्रकार है कि अपीलकर्ता द्वारा पेंशन या ग्रेच्युटी का एक हिस्सा छीनने या यहां तक कि बिना किसी वैधानिक प्रावधान के और प्रशासनिक निर्देश के तहत नकदीकरण छोड़ने का प्रयास नहीं किया जा सकता है।

17. इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि कार्यकारी निर्देशों का सांविधिक स्वरूप नहीं है और इसलिए, पूर्वोक्त अनुच्छेद 300-ए के अर्थ के भीतर "कानून" नहीं कहा जा सकता है। ऐसे परिपत्र के आधार पर, जिसमें कानून का बल नहीं है, अपीलकर्ता पेंशन या ग्रेच्युटी का एक हिस्सा भी नहीं रोक सकता है। जैसा कि हमने ऊपर देखा, जहां तक वैधानिक नियमों का संबंध है, दी गई स्थिति में पेंशन या ग्रेच्युटी को रोकने का कोई प्रावधान नहीं है। अगर इन नियमों में ऐसा कोई प्रावधान होता, तो स्थिति अलग होती। (महत्व सन्निविष्ट)

यह माना गया कि पेंशन संविधान के अनुच्छेद 300-ए के अर्थ के भीतर "संपत्ति" है, और कार्यकारी निर्देश जिनके पास कोई वैधानिक मंजूरी नहीं है, उन्हें अनुच्छेद 300-ए के अर्थ के भीतर "कानून" नहीं कहा जा सकता है। आगे यह माना गया कि पेंशन या ग्रेच्युटी को रोकने की अनुमति देने वाले वैधानिक नियमों के अभाव में, राज्य कार्यकारी निर्देशों के माध्यम से ऐसा नहीं कर सकता है। यह देखा गया कि: (जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव मामला [झारखंड राज्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव, (2013)12 एस.सी.सी. 210: (2014)1 एस.सी.सी. (सीआईवी)315: (2014)2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 570], एस.सी.सी. पृष्ठ 221, पैरा-17)

"17. ... जहां तक सांविधिक नियमों का संबंध है, दी गई स्थिति में पेंशन अथवा उपदान को रोकने का कोई प्रावधान नहीं है। अगर इन नियमों में ऐसा कोई प्रावधान होता, तो स्थिति अलग होती।

(महत्व सन्निविष्ट)

22. यह अच्छी तरह से तय है कि पेंशन का अधिकार केवल कार्यकारी आदेश या प्रशासनिक निर्देश द्वारा नहीं छीना जा सकता है। पेंशन और ग्रेच्युटी केवल इनाम नहीं हैं, या नियोक्ता द्वारा उदारता से दिए गए हैं। एक कर्मचारी अपनी लंबी, निरंतर, वफादार और बेदाग सेवा के आधार पर इन लाभों को अर्जित करता है। [झारखंड राज्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव, (2013) 12 एस.सी.सी. 210: (2014)1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 315: (2014)2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 570] लोक सेवक की पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 31(1) के तहत "संपत्ति के अधिकार" के तहत इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा देवकीनंदन प्रसाद बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में शामिल किया गया है। बिहार राज्य [देवकीनंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1971) 2 एस.सी.सी. 330: 1971 सप्प एस.सी.आर 634], जिसने फैसला सुनाया कि: (देवकीनंदन प्रसाद मामला [देवकीनंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1971) 2 एस.सी.सी. 330: 1971 सप्प एस.सी.आर 634], एस.सी.सी. पीपी 343-44, पैरा-30-31 और 33)

> "30. यह सवाल कि क्या लोक सेवक को दी गई पेंशन अनुच्छेद 31(1) को आकर्षित करने वाली संपत्ति है, भगवंत सिंह बनाम पंजाब उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था। भारत संघ [भगवंत सिंह बनाम भारत संघ, 1962 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी&एच 27: ए.आई.आर. 1962 पी&एच 503]। यह माना गया कि इस तरह का अधिकार "संपत्ति" का गठन करता है और कोई भी हस्तक्षेप संविधान के अनुच्छेद 31(1) का उल्लंघन होगा। आगे यह माना गया कि राज्य एक कार्यकारी आदेश द्वारा पेंशन प्राप्त करने के लोक सेवक के अधिकार को पूरी तरह से कम या समाप्त नहीं कर सकता है। यह निर्णय एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया था। यह निर्णय भारत संघ द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील में लिया गया था। लेटर्स पेटेंट बेंच ने यूनियन ऑफ इंडिया बनाम भगवंत सिंह [भारत संघ बनाम भगवंत सिंह, 1964 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी&एच 275: आई.एल.आर. (1965)2 पी&एच-1] में अपने फैसले में एकल न्यायाधीश के निर्णय को मंजूरी दी। लेटर्स पेटेंट बेंच ने माना कि एक लोक सेवक को उसकी सेवानिवृत्ति पर दी गई पेंशन संविधान के अनुच्छेद 31(1) के अर्थ के भीतर "संपत्ति" है और उसे केवल कानून के प्राधिकरण द्वारा ही इससे वंचित किया जा सकता है और पेंशन केवल इनकार या रद्द करने पर संपत्ति नहीं रह जाती है। यह आगे कहा गया कि "संपत्ति" के रूप में पेंशन का चरित्र संभवतः किसी विशेष व्यक्ति या प्राधिकरण की सनक पर इस तरह के उत्परिवर्तन से नहीं गुजर सकता है।

31. यह मामला फिर से के.आर एरी बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण

पीठ के समक्ष आया। पंजाब राज्य [केआर एरी बनाम पंजाब राज्य, 1966 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी&एच 255: आई.एल.आर. (1967) 1 पी&एच 278]। उच्च न्यायालय को किसी अधिकारी के पेंशन पाने के अधिकार के स्वरूप पर विचार करना था। बहुमत ने अनुमोदन के साथ दो पहले के निर्णयों [भगवंत सिंह बनाम भारत संघ, 1962 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी&एच 27: ए.आई.आर. 1962 पी&एच 503], [भारत संघ बनाम भगवंत सिंह, 1964 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी&एच 275: आई.एल.आर. (1965)2 पी&एच-1] में निर्धारित सिद्धांतों को उसी उच्च न्यायालय के रूप में उद्धृत किया; माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में यह निर्णय दिया है कि पेंशन को सरकार की इच्छा और प्रसन्नता पर देय उपहार के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और यह कि अधिवषता पेंशन का अधिकार, जिसमें इसकी राशि भी शामिल है, सरकारी कर्मचारी में निहित एक मूल्यवान अधिकार है। बहुमत द्वारा आगे यह माना गया था कि भले ही अधिकारी को पहले ही उसकी ओर से चूक या कदाचार के लिए दंड लगाने के खिलाफ कारण बताने का अवसर दिया गया था और उसे दोषी पाया गया है, फिर भी, जब किसी अधिकारी को उसके खिलाफ पहले से साबित हुए कदाचार के आधार पर देय पेंशन की मात्रा में कटौती करने की मांग की जाती है, इस संबंध में कारण बताने का एक और अवसर अधिकारी को दिया जाना चाहिए। आगे अवसर देने के संबंध में यह विचार न्यायाधीशों द्वारा संबंधित पंजाब सिविल सेवा नियमों के आधार पर व्यक्त किया गया था। लेकिन मुख्य न्यायाधीश अपने असहमतिपूर्ण फैसले में बहुमत से सहमत होने के लिए तैयार नहीं थे कि ऐसी परिस्थितियों में एक अधिकारी को एक और अवसर दिया जाना चाहिए जब राज्य द्वारा देय पेंशन की राशि में कटौती की जाती है। इस मामले में हमारे लिए इस सवाल पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या पहले से की गई अनुशासनात्मक कार्रवाई के आधार पर पेंशन को कम करने या अस्वीकार करने के माध्यम से कार्रवाई करने से पहले, किसी अधिकारी को कारण बताओ नोटिस दिया जाना चाहिए। यह प्रश्न हमारे समक्ष विचारार्थ नहीं उठता। न ही हम किसी अधिकारी की सेवानिवृत्ति के बाद पहली बार पेंशन को कम करने या रोकने से पहले प्राधिकारियों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, यदि कोई हो, के संबंध में आगे के प्रश्न से चिंतित हैं। इसलिए, हम इस पहलू पर उपरोक्त पंजाब उच्च न्यायालय के फैसले में बहुमत और अल्पसंख्यक न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। लेकिन हम बहुमत के दृष्टिकोण से सहमत हैं जब इसने अपने पहले के निर्णय को मंजूरी दे दी है कि पेंशन सरकार की इच्छा और खुशी पर देय इनाम नहीं है और दूसरी ओर, पेंशन का अधिकार एक सरकारी कर्मचारी में निहित एक मूल्यवान अधिकार है।

***

> 33. उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि पेंशन प्राप्त करने का याचिकाकर्ता का अधिकार अनुच्छेद 31(1) के तहत संपत्ति है और केवल एक कार्यकारी आदेश द्वारा राज्य के पास इसे

रोकने की कोई शक्ति नहीं थी। इसी तरह, उक्त दावा भी अनुच्छेद 19(1)(एफ) के तहत संपत्ति है और इसे अनुच्छेद 19 के खंड (5) द्वारा बचाया नहीं गया है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि 12-6-1968 का आदेश, याचिकाकर्ता को पेंशन प्राप्त करने के अधिकार से वंचित करता है, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) और 31(1) के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार को प्रभावित करता है, और इस तरह अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका सुनवाई योग्य है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

23. उपरोक्त निर्णय का पालन डीएस नकारा बनाम भारत संघ [डीएस नकारा बनाम भारत संघ, (1983) 1 एस.सी.सी. 305: 1983 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 145] में इस न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ द्वारा किया गया था, जिसने कहा था कि: (एस.सी.सी. पीपी 320 और 323-24, पैरा-20, 29 और 31)

"20. पेंशन के एक इनाम होने की पुरातन धारणा, नियोक्ता की मीठी इच्छा या अनुग्रह के आधार पर एक मुफ्त भुगतान जो अधिकार के रूप में दावा योग्य नहीं है और इसलिए, न्यायालय के माध्यम से पेंशन का कोई अधिकार लागू नहीं किया जा सकता है, देवकीनंदन प्रसाद बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में संविधान पीठ के निर्णय से गया है। बिहार राज्य [देवकीनंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1971) 2 एस.सी.सी. 330: 1971 सप्प एस.सी.आर 634]: जिसमें इस न्यायालय ने आधिकारिक रूप से फैसला सुनाया कि पेंशन एक अधिकार है और इसका भुगतान सरकार के विवेक पर निर्भर नहीं करता है, बल्कि नियमों द्वारा शासित होता है और उन नियमों के भीतर आने वाला सरकारी कर्मचारी पेंशन का दावा करने का हकदार है। यह आगे कहा गया कि पेंशन का अनुदान किसी के विवेक पर निर्भर नहीं करता है। यह केवल सेवा और अन्य संबद्ध मामलों के संबंध में राशि की मात्रा निर्धारित करने के उद्देश्य से है कि प्राधिकरण के लिए उस प्रभाव का आदेश पारित करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन पेंशन प्राप्त करने का अधिकार अधिकारी को ऐसे किसी आदेश के कारण नहीं बल्कि नियमों के आधार पर प्रवाहित होता है। इस दृष्टिकोण की पंजाब राज्य बनाम इकबाल सिंह [पंजाब राज्य बनाम इकबाल सिंह, (1976)2 एस.सी.सी.1: 1976 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 172] में पुष्टि की गई थी।

***

29. संक्षेप में यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि पेंशन न केवल अतीत में प्रदान की गई वफादार सेवा के लिए मुआवजा है, बल्कि पेंशन का

भी व्यापक महत्व है, जिसमें यह सामाजिक आर्थिक न्याय का एक उपाय है जो जीवन के पतन में आर्थिक सुरक्षा को अंतर्निहित करता है जब शारीरिक और मानसिक कौशल उम्र बढ़ने की प्रक्रिया के अनुरूप होता है और, इसलिए, किसी को बचत पर वापस करने की आवश्यकता है। ऐसी ही एक बचत यह है कि जब आप अपने नियोक्ता को जीवन के उत्कर्ष के दिनों में अपना सर्वश्रेष्ठ देते हैं, तो अमान्यता के दिनों में, आवधिक भुगतान के माध्यम से आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है। इस शब्द को न्यायिक रूप से पिछली सेवा के विचार में किए गए घोषित भत्ते या वजीफे या सेवा से सेवानिवृत्त किसी व्यक्ति को अधिकारों या परिलब्धियों के आत्मसमर्पण के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार, एक सरकारी कर्मचारी को देय पेंशन लंबी और कुशल सेवा प्रदान करके अर्जित की जाती है और इसलिए इसे मुआवजे का एक आस्थगित हिस्सा या प्रदान की गई सेवा के लिए कहा जा सकता है। एक वाक्य में कोई कह सकता है कि पेंशन के लिए सबसे व्यावहारिक कारण बुढ़ापे के कारण खुद को प्रदान करने में असमर्थता है। कोई भी जीवित रह सकता है और बेरोजगारी से बच सकता है लेकिन बुढ़ापा और दरिद्रता से नहीं बच सकता है, अगर उसे वापस करने के लिए कुछ भी नहीं है।

***

31. चर्चा से तीन बातें उभरती हैं: (i) कि पेंशन न तो एक इनाम है और न ही नियोक्ता की मधुर इच्छा के आधार पर अनुग्रह का मामला है और यह 1972 के नियमों के अधीन एक निहित अधिकार बनाता है जो चरित्र में वैधानिक हैं क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 309 और अनुच्छेद 148 के खंड (5) के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अधिनियमित किए जाते हैं; (ii) कि पेंशन अनुग्रह राशि का भुगतान नहीं है बल्कि यह पिछली बार की गई सेवा के लिए किया गया भुगतान है; और (iii) यह उन लोगों को सामाजिक-आर्थिक न्याय प्रदान करने वाला एक सामाजिक कल्याणकारी उपाय है, जिन्होंने अपने जीवन के उत्कर्ष के दिनों में नियोक्ता के लिए इस आश्वासन पर निरंतर मेहनत की कि उनके बुढ़ापे में उन्हें मझधार में नहीं छोड़ा जाएगा।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

24. पेंशन प्राप्त करने के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत संरक्षित संपत्ति का अधिकार माना गया है, यहां तक कि संविधान (चवालीसवें संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 31(1) के निरस्त होने के बाद भी 20-6-1979 से, जैसा कि डब्ल्यूबी बनाम हरेश सी बनर्जी राज्य में अवधारित किया गया था, (2006) 7 एस.सी.सी. 651: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 1719]।

16. प्रस्तुत मामले में, पेंशन और ग्रेच्युटी का अधिकार उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961(संक्षेप में '1961 नियम') और विशेष रूप से नियम 5 के जनादेश के आधार पर याचिकाकर्ताओं के पक्ष में प्रवाहित होता है, जो निम्नानुसार है:

> "5. मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति उपदान--(1) किसी अधिकारी को सेवानिवृत्ति पर अतिरिक्त उपदान का संदाय किया जा सकेगा, जिसकी राशि, परिलब्धियों के अधिकतम 16-1/2 गुना के अधीन रहते हुए, परिलब्धियों के एक-चौथाई के बराबर राशि होगी जिसे अर्हक सेवा की पूर्ण की गई छह मासिक अवधियों की कुल संख्या से गुणा किया जाएगा।
>
> (2) यदि किसी अधिकारी की सेवा में रहते हुए मृत्यु हो जाती है, तो उपदान, जिसकी रकम, न्यूनतम वर्ष 12 गुना और अधिकतम वर्ष परिलब्धियों के 16-1/2 गुना के अधीन रहते हुए, अर्हक सेवा की छह मासिक अवधियों की कुल संख्या से गुणा किए गए अधिकारी की परिलब्धियों के एक-चौथाई के बराबर राशि होगी, उस व्यक्ति या व्यक्तियों को संदत्त की जाएगी जिसे उपनियम (1) के अधीन (8) के नियम 6 के खंड (8) तक उपदान प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है और यदि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है तो उसका भुगतान उस नियम के उपनियम (9) में दर्शाए गए रीति से किया जाएगा।
>
> (3) यदि कोई अधिकारी, जो इन नियमों के भाग 1 के अधीन पेंशन या उपदान के लिए पात्र हो गया है या वास्तव में प्राप्त हो गया है, की सेवानिवृत्ति की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के भीतर मृत्यु हो जाती है और उप-नियम (1) के अधीन अनुदत्त उपदान और किसी के कम्यूटेड मूल्य सहित ऐसी उपदान या पेंशन के कारण मृत्यु के समय तक उसे अनुज्ञेय या वास्तव में प्राप्त किसी रकम का योग उसके द्वारा कम्यूट की गई पेंशन का हिस्सा उसकी "परिलब्धियों" के 12 गुना के बराबर राशि से कम है, कमी के बराबर ग्रेच्युटी उप-नियम (2) में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों को दी जाएगी।
>
> (4) उप-नियम (1) या उप-नियम (2) के अनुसार स्वीकार्य ग्रेच्युटी की राशि किसी भी स्थिति में 36,000 रुपये से

अधिक नहीं होगी और प्रति माह 2,500 रुपये से अधिक की परिलब्धियों को ऐसी ग्रेच्युटी की राशि की गणना में अनदेखा किया जाएगा।

[खंड 4 शासनादेश दिनांक 23.12.2016 द्वारा संशोधित]

17. इसी तरह 1961 के नियमों के नियम 8 के आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में पेंशन प्रवाह के कम्यूटेशन के अधिकार, जो नीचे उद्धृत किए गए हैं:

> 8. कम्यूटेशन- उत्तर प्रदेश सिविल पेंशन (कम्यूटेशन) नियमावली के अनुसार पेंशन के संराशीकरण की सुविधाएं जारी रहेंगी, किन्तु पेंशन की जो अधिकतम राशि वचनबद्ध की जाए, वह इन नियमावली के भाग-1 के अधीन अनुमेय पेंशन की एक-तिहाई तक ही सीमित रहेगी।
>
> बशर्ते कि जहां नियम 11 के तहत विकल्प का प्रयोग किया गया था, पेंशन की अधिकतम राशि, जिसे कम्यूट किया जा सकता है, मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी के समतुल्य पेंशन की कटौती के बाद स्वीकार्य पेंशन के एक-तिहाई तक सीमित होगी, इस शर्त के अधीन कि संराशीकरण के बाद वास्तव में देय पेंशन किसी भी मामले में सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 474 और 474-ए के तहत स्वीकार्य पेंशन के आधे से कम नहीं है: बशर्ते कि कम्यूटेशन के बाद वास्तव में देय पेंशन 20 रुपये से कम न हो।

18. नियम 5 के आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रदत्त अधिकारों को केवल तभी नकारा जा सकता है जब उक्त 1961 के नियमों के नियम 9 में उल्लिखित परिस्थितियों को बनाया गया हो। नियम 9 नीचे उद्धृत किया गया है:

> 9. विविध- (1) सरकार को उन्हीं परिस्थितियों में भाग 2 और 3 के अधीन स्वीकृत उपदान या पारिवारिक पेंशन से वसूली करने का अधिकार होगा जिस प्रकार सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-क के अधीन साधारण पेंशन से वसूली की जा सकती है।
>
> (2) भाग II और III के तहत कोई ग्रेच्युटी या पारिवारिक पेंशन नहीं दी जा सकती है यदि अधिकारी को कदाचार, दिवालियापन या अक्षमता के लिए बर्खास्त या हटा दिया गया था। तथापि, अनुकम्पा अनुदान सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 353 के अनुसार इन भागों के अंतर्गत दिया जा सकता है।
>
> (3) सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 470 के प्रावधानों का सम्यक ध्यान देने के पश्चात् भाग II और III के अधीन उपदान या पारिवारिक पेंशन स्वीकृत की जाएगी।
>
> (4) अनुबंध में दी गई दर पर परिकलित पेंशन के अतिरिक्त स्वीकार्य मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति उपदान को उपहार के रूप में माना जाएगा और किसी भी सरकारी देयता की वसूली इससे प्रभावी हो सकेगी।

(5) विद्यमान नियम जो साधारण पेंशन की मंजूरी पर लागू होते हैं, उपदान या कुटुम्ब पेंशन के संबंध में भी लागू होंगे जो भाग 2 और 3 के अधीन संस्वीकृत की जा सकें, जहाँ तक ऐसे नियम नियमों से असंगत न हों।

19. बेशक, नियम 9 में निर्दिष्ट शर्तों में से कोई भी प्रस्तुत मामले के याचिकाकर्ताओं के संबंध में मौजूद नहीं है।

20. ग्रेच्युटी को दिनांक 01.04.2021 के एक कार्यकारी आदेश द्वारा दूर करने का प्रस्ताव है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न तो स्वीकार्य है और न ही ऊपर उद्धृत निर्णयों के मद्देनजर किया जा सकता है और प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होता है, इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए का स्पष्ट उल्लंघन है। इसके अलावा, राज्य सरकार ने स्वयं प्रांतीय स्वास्थ्य सेवाओं में कार्यरत डाक्टरों को उपदान का लाभ प्रदान किया है, जबकि ऐसे डाक्टरों की आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई थी और उन्हें बढ़ाई गई अवधि के लिए वेतन दिया गया था, इस प्रकार ये अनुच्छेद 14 का भी स्पष्ट उल्लंघन है। इस प्रकार दोनों तर्कों यानी अनुच्छेद 300-ए और अनुच्छेद 14 के उल्लंघन पर, याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए और तदनुसार **अनुमति** दी जाती है।

21. प्रतिपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर दिनांक 01.04.2021 के सरकारी आदेश की अनदेखी करते हुए, दोनों याचिकाकर्ताओं को ग्रेच्युटी का भुगतान करें, जिसके वे हकदार हैं।

22. प्रतिपक्षी सेवानिवृत्ति की तारीख से ग्रेच्युटी की राशि पर ब्याज का भुगतान वास्तविक भुगतान/प्राप्ति @ 7% प्रति वर्ष तक सुनिश्चित करेंगे।

23. पेंशन के कम्यूटेशन के संबंध में, प्रतिपक्षी कानून के अनुसार तीन महीने की अवधि के भीतर दोनों याचिकाकर्ताओं के संबंध में पेंशन के कम्यूटेशन के आवेदन पर निर्णय लेंगे।

(2023) 8 ILRA 881

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-ए संख्या 5564/2023

सुरेंद्र कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

अजय पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एएसजीआई, कुशाग्र दीक्षित

ए. सेवा विधि - प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 - धारा 22 (3) - केंद्रीय

प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 - आर. 17 - सीमा अधिनियम, 1963 - एस.एस. 5 और 29 - समीक्षा शक्ति का प्रयोग - विलंबित समीक्षा याचिका विलंब क्षमा आवेदन के साथ दायर की गई थी - स्थिरता - न्यायाधिकरण ने विलंब क्षमा से संबंधित प्रावधान की कमी के आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया - वैधता को चुनौती दी गई - इससे पहले, उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को न्यायाधिकरण के समक्ष पुनरवलोकन प्रार्थना पत्र दायर करने की स्वतंत्रता दी थी - प्रभाव - न्यायाधिकरण की पुनरवलोकन करने की शक्ति का पता लगाने के बाद, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न तो अधिनियम की धारा 22, जो एक प्रशासनिक न्यायाधिकरण को समीक्षा की शक्ति देती है, और न ही नियम 17, जो समीक्षा के आवेदन के लिए प्रदान करता है, स्पष्ट रूप से सीमा अधिनियम की प्रयोज्यता को बाहर करता है - सीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष दायर पुनरवलोकन प्रार्थना पत्र पर लागू होंगे- पुनरवलोकन प्रार्थना पत्र में विलम्ब के लिए क्षमा हेतु प्रार्थना पत्र स्वीकार्य है। (पैरा 9, 28, 35 और 46)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. अक्षय कुमार परिदा बनाम भारत संघ और अन्य; एआईआर 2015 उड़ीसा 49

2. हारिस केएम एवं अन्य बनाम जाफर एवं अन्य; 2020 एससीसी ऑनलाइन केर 4009

3. अजीत कुमार रथ बनाम उड़ीसा राज्य; (1999) 9 एससीसी 596

4. गोपालबंधु बिस्वाल बनाम कृष्ण चंद्र मोहंती; (1998) 4 एससीसी 447

5. एन. बालकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति; (1998) 7 एससीसी 123

6. मंगू राम बनाम नगर निगम दिल्ली; (1976) 1 एससीसी 392

7. मुकरी गोपालन बनाम सीपी अबूबकर; (1995) 5 एससीसी 5

8. बिक्री कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश बनाम मदन लाल दान एंड संस, बरेली; (1977 (1) एससीआर 683

9. बिक्री कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश बनाम मदन लाल दान एंड संस, बरेली; (1977 (1) एससीआर 683

10. बी. माधुरी गौड़ बनाम बी. दामोदर रेड्डी; (2012) 12 एससीसी 693

11. सी. नारा सिम्हा राव बनाम क्षेत्रीय संयुक्त निदेशक, स्कूल शिक्षा; 2003 एससीसी ऑनलाइन एपी 1068

12. के. अजीत बाबू एवं अन्य बनाम भारत संघ; (1997) 6 एससीसी 473

13. रिट याचिका (सी) 3034/2021; भारत संघ एवं अन्य बनाम चंचल नाग 27-03-2023 को निर्णीत

14. एसएस राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य; (1989) 4 एससीसी 582

15. भारत संघ एवं अन्य बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण; (2002) एससीसी ऑनलाइन कैल 597

16. सिविल अपील संख्या 6213/2008; भारत संघ एवं अन्य बनाम चित्रा लेखा चक्रवर्ती, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल द्वारा पारित)

A. प्रस्तावना

(1) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है: -

i. केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या-561/2005, सुरेंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य में समीक्षा आवेदन संख्या-20/2016 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 13.03.2023 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ को मूल आवेदन संख्या-561/2005, सुरेंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य में समीक्षा आवेदन संख्या-20/2016 को गुण-दोष के आधार पर तय करने का निर्देश दिया जाए।

B. तथ्यात्मक मैट्रिक्स

(2) वर्ष 2001 में, याचिकाकर्ता संयुक्त आयुक्त, आयकर, फैजाबाद के अधीन दैनिक मजदूरी वाले आकस्मिक श्रमिक के रूप में कार्यरत था और 02.09.2005 से मौखिक रूप से उसकी सेवाओं को समाप्त होने तक काम करता रहा।

(3) 02.09.2005 से समाप्ति के उपरोक्त मौखिक आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, लखनऊ (इसके बाद 'ट्रिब्यूनल' के रूप में संदर्भित) के समक्ष मूल आवेदन संख्या-561 वर्ष 2005 को दायर की देकर चुनौती दी गई थी। अधिकरण ने दिनांक 30-09-2011 के निर्णय और आदेश के तहत उपर्युक्त मूल आवेदन को खारिज कर दिया।

(4) ट्रिब्यूनल के दिनांक 30.09.2011 के निर्णय और आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-1551(एस/बी) वर्ष 2013 दायर की। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने याचिकाकर्ता के सबमिशन को रिकॉर्ड करते हुए कहा कि एक समान मामले में, ट्रिब्यूनल के समक्ष एक समीक्षा आवेदन दायर किया गया था और ट्रिब्यूनल ने समीक्षा

आवेदन की अनुमति देने के लिए कार्यवाही की है, याचिकाकर्ता को ट्रिब्यूनल के समक्ष समीक्षा आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ, निर्णय और आदेश दिनांक 21.01.2016 के माध्यम से रिट याचिका का निपटारा किया है।

(5) जाहिरा तौर पर, उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 21.01.2016 के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने ट्रिब्यूनल के समक्ष समीक्षा आवेदन संख्या-20 वर्ष 2016 को दायर की दी, जिसमें मूल आवेदन संख्या-561 वर्ष 2005 में ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.09.2011 की समीक्षा की मांग की गई। ट्रिब्यूनल ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम-17 के प्रावधान और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि हालांकि रिट याचिका संख्या-1551(एस/बी) वर्ष 2013 में, इस न्यायालय ने 21.01.2016 को ट्रिब्यूनल को समीक्षा आवेदन दायर करने के संबंध में आदेश पारित किया था, हालांकि, याचिकाकर्ता ने केवल 17.05.2016 को समीक्षा आवेदन को दायर की दी और इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि नियम-17 के तहत देरी की माफी के लिए कोई प्रावधान नहीं है। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के अनुसार, समीक्षा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं होगा और तदनुसार, निर्णय और आदेश दिनांक 13.03.2023 के अनुसार, न्यायाधिकरण ने समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया। यह दिनांक 13.03.2023 का आदेश है, जिसे प्रस्तुत रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

C. प्रस्तुतियाँ

(6) याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री अजय पांडे और प्रतिवादियों/भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री कुशाग्र दीक्षित को सुना। यह अदालत श्री अपूर्वा तिवारी, एडवोकेट द्वारा मूल्यवान सुझाव को दर्ज करती है, जिन्हें इस याचिका में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय द्वारा अपनी सहायता देने का अनुरोध किया गया था।

(7) याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने शुरुआत में निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि प्रस्तुत रिट याचिका में, उन्होंने मूल आवेदन संख्या-561 वर्ष 2005 में ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.09.2011 को चुनौती नहीं दी है, लेकिन यह रिट याचिका दिनांक 13.03.2023 के आदेश को चुनौती देने की सीमा तक सीमित है, जिसके द्वारा ट्रिब्यूनल ने 30.09.2011(उपरोक्त) के पूर्वोक्त आदेश की समीक्षा की मांग करने वाले समीक्षा आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया है कि ट्रिब्यूनल के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने की कोई शक्ति नहीं है।

(8) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा समीक्षा किए जाने वाले आदेश को 30.09.2011 को पारित किया गया था और इसे शुरू में याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका संख्या-1551 वर्ष 2013 (एस/बी) में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के

दौरान, ट्रिब्यूनल ने स्वयं समीक्षा आवेदन के एक समूह पर विचार किया, जिसमें समान मुद्दे शामिल थे, प्रमुख समीक्षा आवेदन संख्या-332/00028/2014 था और 24.12.2014 के सामान्य निर्णय और आदेश के माध्यम से, ट्रिब्यूनल ने समीक्षा आवेदन के उक्त समूह में समीक्षा किए जाने वाले आदेश की समीक्षा/संशोधन करके समीक्षा आवेदनों के समूह की अनुमति दी और परिणामस्वरूप, ट्रिब्यूनल ने उत्तरदाताओं को छह महीने के भीतर कानून के अनुसार नियमितीकरण के लिए आवेदकों के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया। उनके अनुसार, दिनांक 24.12.2014 (उपरोक्त) के पूर्वोक्त आदेश के बारे में जानने पर, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या-1551(एस/बी) वर्ष 2013 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ की ओर उसी का ध्यान आकर्षित किया है, जिसने उक्त मामले को समाप्त कर दिया था।

(9) जाहिर है, इस न्यायालय की उक्त समन्वय पीठ ने इस संबंध में याचिकाकर्ता के प्रस्तुतिकरण की मूल्यांकन करते हुए, याचिकाकर्ता को दिनांक 21.01.2016 के आदेश के माध्यम से ट्रिब्यूनल के समक्ष एक समीक्षा आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान करके उक्त रिट याचिका का निपटारा किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने कानूनी राय मांगी और समीक्षा आवेदन संख्या-20 वर्ष 2016 तैयार किया और ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर किया। याचिकाकर्ता ने दावा किया कि पुनर्विचार याचिका दायर करने में देरी नेक नीयत से की गई क्योंकि याचिकाकर्ता चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है और उसे इस संबंध में कोई कानूनी जानकारी नहीं है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता की ओर से कोई जानबूझकर देरी नहीं हुई है, हालांकि, समीक्षा आवेदन दायर करने के वास्तविक कारणों पर विचार किए बिना, ट्रिब्यूनल ने केवल इस आधार पर आक्षेपित आदेश के माध्यम से समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया है कि ट्रिब्यूनल के पास देरी को माफ करने की कोई शक्ति नहीं है।

(10) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने एल.आर. बनाम भारत संघ और अन्य: ए.आई.आर. 2015 उड़ीसा 49 के माध्यम से अक्षय कुमार परिदा (मृत) में उड़ीसा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया है कि अक्ष कुमार परिदा (उपरोक्त) में, उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने माना है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 एक विशेष अधिनियम है और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली, 1987(जिसे इसके बाद नियमावली, 1987 कहा गया है) के नियम-17 में परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची से भिन्न पुनवलोकन दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि का प्रावधान है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, उड़ीसा उच्च न्यायालय ने उस फैसले में कहा है कि नियम, 1987 के नियम-17 में 30 दिनों के बाद समीक्षा आवेदन दायर करने पर रोक लगाने वाला कोई एक्सप्रेस राइडर शामिल नहीं है और न ही यह विशेष रूप से सीमा अधिनियम-1963 की धारा-5 के आवेदन को बाहर करता है, इसलिए ट्रिब्यूनल के पास धारा-5 के तहत समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी के लिए परिसीमा अधिनियम का एक आवेदन पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र

है। उनके अनुसार, हारिस केएम और अन्य बनाम जहफर और अन्य: 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन केरल 4009 के मामले में केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने यह भी माना है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी को सीमा अधिनियम की धारा-29 (2) के संचालन द्वारा सीमा अधिनियम, 1963 की धारा-5 के आवेदन से माफ किया जा सकता है।

(11) इस प्रकार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर समीक्षा आवेदन सुनवाई योग्य है और ट्रिब्यूनल के पास देरी को माफ करने की पर्याप्त शक्ति है, अगर वह ट्रिब्यूनल को संतुष्ट करता है कि समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, इस आधार पर समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया गया है कि ट्रिब्यूनल के पास देरी को माफ करने की कोई शक्ति नहीं है, इसे रद्द किया जा सकता है और मामले को ट्रिब्यूनल को इसके निर्णय के लिए भेज दिया जाएगा।

(12) प्रतिवाद के अनुसार, भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के पूर्वोक्त प्रस्तुतियों का विरोध किया है और तर्क दिया है कि नियम, 1987 के नियम-17(1) ने यह अनिवार्य बनाने के इरादे का संकेत दिया है कि समीक्षा के लिए कोई भी आवेदन तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि यह समीक्षा किए जाने के लिए मांगे गए आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीस दिनों के भीतर दायर नहीं किया जाता है।

(13) प्रतिवादियों के अधिवक्ता के अनुसार, पूर्वोक्त नियम, 1987 के लिए कोई अन्य स्पष्टीकरण या लाभ नहीं दिया जा सकता है क्योंकि नियम, 1987 के नियम-17(1) ने तीस दिनों से परे समीक्षा के लिए किसी भी आवेदन के मनोरंजन पर प्रतिबंध लगा दिया है। वह प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1987 के नियम-17(1) के तहत प्रदान किए गए तीस दिनों के बाद समीक्षा आवेदन संख्या-20 वर्ष 2016 दायर किया है, इसलिए न्यायाधिकरण ने समीक्षा आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया है क्योंकि आक्षेपित आदेश के माध्यम से बनाए रखने योग्य नहीं है। इस प्रकार, प्रस्तुत रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

D. विश्लेषण

(14) पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए और प्रस्तुत रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड के माध्यम से, हम पाते हैं कि विचार के लिए एक बहुत ही दिलचस्प प्रश्न उभरता है, जिसे नीचे के रूप में तैयार किया जा सकता है: -

> *"क्या केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के पास प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा-21 और 22 और केंद्रीय प्रशासनिक*

न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम-17(1) के मद्देनजर सीमा अधिनियम, 1963 की धारा-5 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले अपने फैसले के खिलाफ समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी को माफ करने की शक्ति है?"

(15) पूर्वोक्त प्रश्न का विश्लेषण करने से पहले, हम प्रस्तुत रिट याचिका में शामिल मुद्दे को छूने वाले प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान के माध्यम से जाना उचित समझते हैं।

(16) संभवतः, भाग-XIV-A को वर्ष 1976 में बयालीसवें संशोधन द्वारा भारत के संविधान में सम्मिलित किया गया था। उक्त भाग में दो अनुच्छेद हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 323A में केंद्र सरकार और राज्य सरकार के तहत सरकारी कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों से संबंधित विवादों और शिकायतों के निर्णय के लिए संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की स्थापना का प्रावधान है। इसमें भारत के क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगम के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण के कर्मचारी शामिल हैं। दूसरी ओर, भारत के संविधान का अनुच्छेद 323B राज्यों के विधानमंडलों को उक्त ट्रिब्यूनल द्वारा निर्णय के लिए उक्त अनुच्छेद के खंड 2 में वर्णित कुछ विवादों के अधिनिर्णय के लिए प्रदान करने का अधिकार देता है।

(17) भारत के संविधान के अनुच्छेद 323क के उपबंधों के अनुसरण में, संसद ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 323-क के खंड (1) के अंतर्गत आने वाले सभी मामलों का उपबंध करते हुए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 पारित किया। प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 के अनुसार, केंद्र में एक केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (CAT/कैट) और प्रत्येक राज्य के लिए राज्य स्तर पर एक राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण (SAT/सैट) होना चाहिए।

(18) प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के विभिन्न उपबंधों के साथ इस निर्णय पर भार डाले बिना, यह कहा गया है कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 (जिसे इसके बाद "अधिनियम, 1985" कहा गया है) की धारा-19 में यह प्रावधान किया गया है कि अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, अधिकरण की अधिकारिता के भीतर किसी भी मामले से संबंधित किसी आदेश से व्यथित व्यक्ति अपनी शिकायत के निवारण के लिए अधिकरण को आवेदन कर सकता है। अधिनियम, 1985 की धारा-21 मूल आवेदन दायर करने में परिसीमन से संबंधित है। अधिनियम की धारा-21 को निकालना लाभदायक होगा, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार कहा गया है:

"21. सीमा- (1) एक ट्रिब्यूनल एक आवेदन स्वीकार नहीं करेगा, -

(ए) ऐसे मामले में जहां एक अंतिम आदेश जैसा कि धारा-20 की उपधारा-(2) के खंड (ए)

में उल्लिखित है, शिकायत के संबंध में किया गया है जब तक कि आवेदन नहीं किया जाता है, उस तारीख से एक वर्ष के भीतर जिस पर ऐसा अंतिम आदेश दिया गया है;

(ख) ऐसे मामले में जहां कोई अपील या अभ्यावेदन जैसा कि धारा-20 की उपधारा-(2) के खंड (ख) में उल्लिखित है, बिना इस तरह के अंतिम आदेश के, छह महीने की उक्त अवधि की समाप्ति की तारीख से एक वर्ष के भीतर, किया गया है और उसके बाद छह महीने की अवधि समाप्त हो गई थी,

(2) उपधारा-(1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां-

(ए) शिकायत जिसके संबंध में एक आवेदन किया जाता है, उस तारीख से ठीक पहले तीन साल की अवधि के दौरान किसी भी समय किए गए किसी भी आदेश के कारण उत्पन्न हुआ था, जिस दिन ट्रिब्यूनल की क्षेत्राधिकार, शक्तियां और अधिकार इस अधिनियम के तहत उस मामले के संबंध में प्रयोग करने योग्य हो जाता है जिस मामले में ऐसा आदेश संबंधित है; और

(ख) किसी भी उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त तारीख से पहले इस तरह की शिकायत के निवारण के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी, ट्रिब्यूनल द्वारा आवेदन पर विचार किया जाएगा यदि यह खंड (ए) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर किया जाता है, या, जैसा भी मामला हो, खंड (बी), उप-धारा-(1) या उक्त तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर, जो भी अवधि बाद में समाप्त हो जाती है।

(3) उपधारा-(1) या उपधारा-(2) में किसी बात के होते हुए भी, कोई आवेदन उपधारा-(1) के खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट एक वर्ष की अवधि के पश्चात् या, यथास्थिति, उपधारा-(2) में विनिर्दिष्ट छह मास की अवधि के पश्चात् ग्राह्य किया जा सकेगा, यदि आवेदक अधिकरण को संतुष्ट करता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था।

(19) पूर्वोक्त उपबंधों, विशेष रूप से धारा-21(3) को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि अधिनियम स्वयं अधिकरण को मूल आवेदन दाखिल करने में विलंब को क्षमा करने की शक्ति प्रदान करता है, निश्चित रूप से आवेदक को अधिनियम के अधीन यथा उपबंधित परिसीमा की अवधि के भीतर उक्त आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण से संबंधित अधिकरण को संतुष्ट करना होगा।

(20) चूंकि, वर्तमान मुद्दा ट्रिब्यूनल के समक्ष समीक्षा दायर करने में देरी की माफी से संबंधित है, इस न्यायालय ने पाया कि प्रशासनिक ट्रिब्यूनल अधिनियम, 1985 की धारा-22(3)(एफ) अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा करने के लिए एक केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की शक्ति से संबंधित है। इसलिए, जहां तक प्रशासनिक अधिकरण को अपने निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति का संबंध है, संविधि के अनुसार ही पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई है। जाहिर है, ट्रिब्यूनल द्वारा

प्रयोग की जाने वाली शक्ति की सीमा को इस प्रावधान से अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि समीक्षा की उक्त शक्ति अधिनियम, 1985 की धारा-22(3) की बड़ी छतरी के नीचे पाई जानी है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

"22(3) किसी अधिकरण को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, वही शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो किसी वाद का विचारण करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन दीवानी न्यायालय में निहित हैं, निम्नलिखित विषयों की बाबत अर्थात्;-

(क) XXX
(ख) एक्स
(ग) XXXX
(घ) XXXX
(ड़) XXXX
(च) अपने निर्णयों की समीक्षा करना;
(छ) XXXX
(ज) XXXX
(i) कोई अन्य मामला जो केन्द्र सरकार द्वारा विहित किया जाए।

(महत्व सन्निविष्ट)

(21) उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, प्रशासनिक अधिकरण में निहित समीक्षा की शक्ति दीवानी न्यायालय के समतुल्य है और इस प्रकार, किसी पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करते समय और उसका निपटान करते समय, प्रशासनिक अधिकरण को सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुसरण करना होता है। इस प्रकार, आवश्यक निहितार्थों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा-114 और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII नियम-1 के तहत पाए गए समीक्षा के प्रावधानों को एक प्रशासनिक न्यायाधिकरण की समीक्षा की शक्ति के साथ शामिल किया गया। इसके अतिरिक्त, अपने निर्णय की समीक्षा करने की अधिकरण की शक्ति को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अजीत कुमार रथ बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में भली-भांति स्पष्ट किया गया है।

(ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक रिट याचिका (अर्थात् उड़ीसा राज्य)(1999) 9 एस.सी.सी. 596 और गोपालबंधु बिस्वाल बनाम कृष्ण चन्द्र मोहंती (1998)4 एस.सी.सी. 447 के मामले में दिनांक 10-10-2010 के अपने निर्णय में यह व्यवस्था दी थी कि अधिकरण की पुनरीक्षा शक्ति वैसी ही होगी जैसी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा-114 के अधीन या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII नियम-1 के अंतर्गत किसी दीवानी न्यायालय को प्रदान की गई है। किसी भी मामले में, समीक्षा की शक्ति पूर्ण नहीं है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII नियम-1 में इंगित प्रतिबंधों द्वारा बचाव किया जाता है और नए और महत्वपूर्ण मामले की खोज के प्रतिबंधित आधार पर किसी व्यक्ति के आवेदन पर इसका प्रयोग किया जा सकता है; या सबूत जो, उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद, उसके ज्ञान में नहीं था या उस समय उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था जब आदेश दिया गया था। इस शक्ति का प्रयोग तथ्य की किसी गलती या अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि या किसी अन्य पर्याप्त कारण के कारण भी किया जा

सकता है। यह बताया जा सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLVII नियम-1 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "कोई अन्य पर्याप्त कारण" का अर्थ नियम में निर्दिष्ट लोगों के लिए पर्याप्त रूप से अनुरूप कारण है और ट्रिब्यूनल पर पूरी तरह से लागू होता है।

(22) इसके अलावा, यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम, 1985 की धारा-22(1) में स्पष्ट रूप से और कुछ अनिवार्य तरीके से उल्लेख किया गया है कि ट्रिब्यूनल सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित प्रक्रिया से बाध्य नहीं होगा, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होगा और इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों और केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए किसी भी नियम के अधीन होगा। उक्त उपबंधों में यह भी कहा गया है कि अधिकरण को अपनी जांच के स्थानों और समय को निर्धारित करने और सार्वजनिक या निजी तौर पर बैठने का निर्णय लेने सहित अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति होगी।

(23) इस न्यायालय ने पाया कि पहली बार में अधिकरण को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जो नियमों के अधीन होगा और दूसरी बात यह है कि अधिकरण को अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने और अपनी जांच का समय निर्धारित करने के लिए एक निश्चित मात्रा में शक्ति दी गई है। अधिनियम, 1985 का नियम-21(3) जांच का समय निर्धारित करने के लिए उक्त विनियम के अनुरूप है क्योंकि यह प्रशासनिक अधिकरण को जांच का समय निर्धारित करने के लिए कुछ विवेकाधिकार देता है और इस संबंध में विलंब को माफ भी करता है, बशर्ते कि आवेदक द्वारा पर्याप्त कारण दर्शाया गया हो। किसी भी मामले में, अधिनियम, 1985 की धारा-21(3) कहती है कि एक आवेदन को सीमा की अवधि के बाद भी स्वीकार किया जा सकता है, यदि आवेदक ट्रिब्यूनल को संतुष्ट करता है कि उसके पास निर्धारित अवधि के भीतर आवेदन नहीं करने के लिए पर्याप्त कारण था। अधिनियम, 1985 की धारा-21(3) को परिसीमा अधिनियम की धारा-5 के समान ही कहा गया है। इस प्रकार, अधिनियम, 1985 की धारा-21 को परिसीमा अधिनियम की धारा-29 के साथ पढ़ा जाना है, जिसमें कहा गया है कि जहां कोई विशेष या स्थानीय विधि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए अनुसूची द्वारा निर्धारित अवधि से भिन्न परिसीमा की अवधि विहित करती है वहां धारा-3 के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो वह अवधि अनुसूची द्वारा विहित अवधि हो और परिसीमा की किसी अवधि का निर्धारण करने के प्रयोजन के लिए किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए विधारित, धारा-4 से धारा-24 (समावेशी) में अन्तर्विष्ट उपबंध केवल तब तक लागू होंगे जहाँ तक और उस सीमा तक जहाँ तक वे ऐसे विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं हैं।

(24) तथापि, पुनरीक्षण आवेदन में विलंब के लिए क्षमा हेतु आवेदन फाइल करने और उस पर विचार करने की प्रक्रिया अधिनियम के उपबंधों से स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है, यद्यपि मूल आवेदन को दायर करने और

उस पर विचार करने की सीमा से संबंधित धारा-21 का उल्लेख उक्त अधिनियम में ही किया गया है और धारा-21(3) में विलंब के लिए क्षमा करने का उपबंध है, लेकिन प्रशासनिक अधिनियम में समीक्षा के लिए इसी तरह के प्रावधान का उल्लेख नहीं किया गया है।

(25) चूंकि, इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाला मुद्दा समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी और आवश्यक प्रक्रिया को क्षमा करने से संबंधित है और चूंकि प्रशासनिक अधिनियम, 1985 में इसकी सीमा का विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, इसलिए किसी को अधिनियम की धारा-35 को देखना और संदर्भित करना होगा, जो निम्नलिखित शब्दों में नियम बनाने के लिए केंद्र सरकार की शक्ति प्रदान करता है: -

(1) केन्द्रीय सरकार, धारा-36 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

(2) पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिये उपबन्ध कर सकेंगे, अर्थात:-

(क) वे मामले या मामले जो धारा-5 की उपधारा-(4) के खंड (घ) के अधीन 3 से अधिक [दो सदस्यों] से मिलकर बनी पीठ द्वारा विनिश्चित किए जाएंगे;

(ख) धारा-9 की उपधारा-(3) के अधीन 4 [अध्यक्ष या अन्य सदस्य] के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण की प्रक्रिया;

(ग) अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते क्या-क्या हैं तथा उनके अन्य निबन्धन और शर्तें;

(घ) वह प्रारूप जिसमें धारा-19 के अधीन आवेदन किया जा सकेगा, वे दस्तावेज और अन्य साक्ष्य जिनके द्वारा ऐसा आवेदन 6 के साथ किया जाएगा [और ऐसे आवेदन को दाखिल करने के संबंध में या प्रक्रियाओं की सेवा या निष्पादन के लिए संदेय फीस;]

(ङ) वे नियम जिनके अधीन रहते हुए अधिकरण को धारा-22 की उपधारा-(1) के अधीन अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति होगी और वे अतिरिक्त विषय जिनके संबंध में अधिकरण उस धारा-की उपधारा-(3) के खंड (i) के अधीन किसी दीवानी न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा; और

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए या जिसके संबंध में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम बनाए जाने अपेक्षित हों।

(26) जाहिरा तौर पर, अधिनियम, 1985 की धारा-35 (2)(ई) केंद्र सरकार की नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, जहां तक वह धारा-22 की उप-धारा-(1) के तहत ट्रिब्यूनल द्वारा अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने की प्रवृत्ति रखती है और उन सभी शक्तियों के संबंध में भी जिनके लिए ट्रिब्यूनल उस धारा-की

उपधारा-(3) के खंड (i) के तहत दीवानी न्यायालय की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। यहां तक कि जहां तक समीक्षा के उपबंध का संबंध है, इस धारा में भी विशिष्ट रूप से नियम बनाने का उपबंध नहीं है और केवल केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने के लिए प्राधिकृत किया गया है कि अधिकरण द्वारा अपनी प्रक्रिया को विनियमित करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का किस प्रकार पालन किया जाना है और अधिकरण को सिविल प्रक्रिया संहिता। इस न्यायालय ने पाया कि अधिनियम की धारा-36 (3) के संदर्भ में उन मामलों के लिए नियम बनाने के लिए उपयुक्त सरकार को एक अवशिष्ट शक्ति दी गई है, जिनका उल्लेख अधिनियम की धारा-35 में नहीं किया गया है। चूंकि, नियमों के निर्माण से संबंधित योग्यता से संबंधित मुद्दा प्रस्तुत मामले में इस अदालत के समक्ष नहीं है, इसलिए यह अदालत उस पर अपना विचार व्यक्त नहीं करना चाहती है और खुद को वर्तमान याचिका में उठाए गए मुद्दे तक सीमित रखती है।

(27) फिर भी, प्रशासनिक नियम-1987 में बनाए गए और नियम-17 में निम्नलिखित शब्दों में समीक्षा के आवेदन के प्रावधान शामिल हैं:

"17. पुनरावलोकन के लिए आवेदन- (1) पुनरावलोकन के लिए किसी भी आवेदन पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह पुनरीक्षण के लिए मांगे गए आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर भरा न जाए।

(2) पुनरीक्षण आवेदन की सुनवाई साधारणतया उसी न्यायपीठ द्वारा की जाएगी जिसने आदेश पारित किया है, जब तक कि सभापति लिखित में अभिलिखित कारणों से उसे किसी अन्य न्यायपीठ द्वारा सुने जाने का निदेश न दे सकेगा।

(3) जब तक संबंधित बेंच द्वारा अन्यथा आदेश नहीं दिया जाता है, एक समीक्षा आवेदन का निपटान परिचालित द्वारा किया जाएगा और बेंच या तो आवेदन को खारिज कर सकती है या प्रतिपक्षी को सीधे नोटिस दे सकती है।

(4) जहाँ किसी निर्णय या आदेश के पुनर्विलोकन के लिये आवेदन किया गया है और उसका निपटान कर दिया गया है वहाँ पुनरावलोकन के लिये आगे किसी आवेदन पर उसी रीति से विचार नहीं किया जायेगा।

(5) पुनरावलोकन के लिए किसी भी आवेदन पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि उसका समर्थन सम्यक् शपथ पत्र द्वारा न किया जाता हो, जिसमें ज्ञान का स्रोत, व्यक्तिगत या अन्यथा, और वह भी जो कानूनी सलाह के आधार पर शपथ ली गई हो। समीक्षा आवेदन में जवाबी हलफनामा भी एक विधिवत शपथ पत्र होगा, जहां भी कोई कथन विवादित है।

(28) यद्यपि, पूर्वोक्त नियम यह उपबंध करता है कि प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष दायर किसी भी समीक्षा पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि वह आदेश की प्रति प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर नहीं

भरी जाती है। तथापि, अधिकरण की समीक्षा करने की शक्ति का पता लगाने के बाद, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न तो अधिनियम की धारा-22, जो प्रशासनिक अधिकरण को समीक्षा की शक्ति प्रदान करती है, और न ही नियम-17, जो समीक्षा के आवेदन का प्रावधान करती है, स्पष्ट रूप से परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता को बाहर करती है। इसके अलावा, शब्द; *"समीक्षा के लिए कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा"*, जिसका अर्थ यह है कि किसी भी समीक्षा आवेदन पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह 30 दिनों के भीतर दायर नहीं किया जाता है। इसमें यह नहीं कहा गया है और शायद यह संविधि के दायरे को कम करने के लिए नहीं कहा जा सकता है कि इसे दाखिल करने में विलंब की माफी के लिए कोई आवेदन तब नहीं किया जा सकता जब तक नियम-17 में निर्धारित समय के भीतर समीक्षा के लिए आवेदन दायर नहीं किया गया हो। जाहिर है, नियम-17 क़ानून के उद्देश्य को बचाने के लिए समीक्षा के लिए आवेदन करने के लिए निर्धारित करता है और इसका मतलब यह नहीं हो सकता है कि देरी के लिए एक आवेदन विशेष रूप से वर्जित है। वास्तव में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और सिविल प्रक्रिया संहिता के कुछ उपबंधों से बंधे अधिकरण का सृजन सिविल विवादों के मामले में दीवानी न्यायालयों द्वारा समय लेने वाली प्रक्रिया के विपरीत एक त्वरित प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए किया गया था। उपचार का दंड कभी भी कानून का इरादा नहीं था। 17 दिनों के भीतर समीक्षा की रखरखाव से संबंधित उक्त नियम 30 के नकारात्मक काउचिंग का अर्थ और आयात अच्छी तरह से समझाया जा सकता है, जैसा कि हारिस केएम बनाम जहफर: 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन केरल 4009 के मामले में केरल उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में अवधारित किया गया है:

"18 ..... हमारे अनुसार इसका कारण स्पष्ट है, क्योंकि प्रदान की गई शक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत समीक्षा करने की शक्ति है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में समीक्षा से संबंधित प्रावधान धारा-114 और आदेश XLVII में निहित हैं। परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 124 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत समीक्षा के लिए याचिका के लिए सीमा की अवधि 30 दिनों के रूप में निर्धारित करता है। तथापि, चूंकि परिसीमा अधिनियम के उपबंध लागू हैं, परिसीमा अधिनियम की धारा-5 भी लागू होती है और यदि याचिकाकर्ता विलंब के लिए पर्याप्त कारण दर्शाने में समर्थ हो तो 30 दिनों की अवधि के बाद भी पुनवचार याचिका दायर की जा सकती है।

19. धारा-35 (2)(डी), (ई) और (एफ) और धारा-36 (सी) के तहत प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में, केंद्र सरकार ने केरल प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 2010 को प्रख्यापित किया है। नियमों के नियम-21 में कहा गया है कि समीक्षा के लिए किसी भी आवेदन

पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि यह उस आदेश की तारीख से तीस दिनों के भीतर दायर नहीं किया जाता है जिसके लिए समीक्षा मांगी गई है। जैसा कि पहले ही देखा गया है, नियम बनाने की शक्ति समीक्षा आवेदन दाखिल करने के लिए सीमा की अवधि तय करने के लिए नियम बनाने की शक्ति नहीं लेती है। सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुनवचार याचिका दायर करने के लिए 30 दिनों का ऐसा प्रिस्क्रिप्शन, जो परिसीमा अधिनियम के अंतर्गत विहित प्रिस्क्रिप्शन के समान है, पूर्णत अनावश्यक और अवांछित था। नियम-21 के बिना भी, समीक्षा आवेदन 30 दिनों के भीतर दायर किया जाना चाहिए। चूंकि नियम-21 में निर्धारित सीमा की अवधि वही है जो सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत समीक्षा याचिका के लिए लागू है, इसलिए हम नहीं समझते कि नियम-21 को रद्द करना आवश्यक है। फिर भी, नियम-21 को आवश्यक रूप से परिसीमा अधिनियम की धारा-29 के उपबंधों के अध्यधीन होना चाहिए जो विशेष रूप से यह कहता है कि परिसीमा अधिनियम की धारा-4 से 24 में अंतर्विष्ट उपबंध किसी विशेष या स्थानीय कानून के अधीन परिसीमा के निर्धारण पर लागू होंगे। यह कहना है, समीक्षा याचिका को दायर की देने में देरी को माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा-5 के तहत एक आवेदन सुनवाई योग्य है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

(29) ऐसा कहने के बाद, यह न्यायालय इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकता है कि यदि समीक्षा की विचारणीयता के लिए पर्याप्त कारण बताए जाते हैं, तो ट्रिब्यूनल को सीमा के आधार पर अपने दरवाजे बंद नहीं करने चाहिए। यह देखते हुए कि सीमा के नियम पक्षगण के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एन. बालकृष्णन बनाम एम कृष्णमूर्ति (1998)7 एस.सी.सी. 123 के मामले में निम्नानुसार अवधारित किया: -

"11. सीमा के नियम पक्षगण के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। वे यह देखने के लिए हैं कि पक्षगण टालमटोल की रणनीति का सहारा न लें, बल्कि तुरंत उनका उपाय तलाशें। कानूनी उपाय प्रदान करने का उद्देश्य कानूनी चोट के कारण होने वाले नुकसान की मरम्मत करना है। परिसीमा का नियम इस प्रकार पीड़ित कानूनी चोट के निवारण के लिए ऐसे कानूनी उपाय के लिए एक जीवनकाल निर्धारित करता है। समय कीमती है और बर्बाद समय कभी दोबारा नहीं आएगा। समय बीतने के दौरान, नए कारण सामने आएंगे जिससे नए व्यक्तियों को अदालतों का दरवाजा खटखटाकर कानूनी उपचार प्राप्त करने की आवश्यकता होगी। इसलिए प्रत्येक उपाय के लिए एक जीवनकाल तय किया जाना चाहिए। उपाय शुरू करने के लिए अंतहीन अवधि अंतहीन अनिश्चितता और परिणामी अराजकता का कारण बन सकती है। इस प्रकार सीमा का नियम सार्वजनिक नीति पर आधारित है। यह अधिकतम ब्याज रेपबलिका अप सिट फिनिस लिटियम में निहित है (यह सामान्य कल्याण

के लिए है कि एक अवधि मुकदमेबाजी के लिए रखा जाए)। सीमा के नियम पक्षगण के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। वे यह देखने के लिए हैं कि पक्षगण टालमटोल की रणनीति का सहारा न लें, बल्कि तुरंत उनका उपाय तलाशें। विचार यह है कि हर कानूनी उपाय को विधायी रूप से निश्चित अवधि के लिए जीवित रखा जाना चाहिए। जैसा कि पहले बताया गया है, सी.पी.सी. की धारा-96 के तहत अपील एक वैधानिक अधिकार है। आम तौर पर, न्याय के हित में अपील को दायर की देने में देरी को माफ करने की आवश्यकता होती है, जहां कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर निष्क्रियता या सदाशयता की कमी नहीं है, देरी की माफी मांगने वाले पक्ष के लिए आरोपित है।

(३०) अनिवार्य रूप से, सीमा का कानून सार्वजनिक नीति की निहाई पर स्थापित किया गया है। हालांकि, नियम-17 की जांच करते समय, हमें विकलांगता के साथ काउंटर किया जाता है जो समीक्षा आवेदन की वरीयता के लिए स्थायी रूप में मौजूद है, यदि वे 30 दिनों के बाद दायर किए जाते हैं। इस समय, यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि मंगू राम बनाम नगर निगम दिल्ली, (1976)1 एस.सी.सी. 392 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक विशेष अधिनियम द्वारा केवल सीमा की अवधि के प्रावधानों का निर्धारण किया गया है, हालांकि स्थायी या अनिवार्य भाषा परिसीमा अधिनियम की धारा-5 की प्रयोज्यता को विस्थापित करने के लिए निम्नलिखित शब्दों में, पर्याप्त नहीं है:

"7. परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा धारा-29 की उपधारा-29 में अंतर्विष्ट उपबंध के रूप में एक महत्वपूर्ण विचलन है। (2) का संबंध है, जबकि भारतीय परिसीमन अधिनियम, 1908 की धारा-29 के अधीन उपधारा-29 (2), खंड (बी) बशर्ते कि किसी विशेष या स्थानीय कानून द्वारा किसी भी वाद, अपील या आवेदन के लिए निर्धारित सीमा की किसी भी अवधि को निर्धारित करने के उद्देश्य से भारतीय सीमा अधिनियम, 1908 के प्रावधान, एस.एस. 4, 9 से 18 और 22 में निहित इन के अलावा, लागू नहीं होंगे और इसलिए, धारा-5 एस 29, उप-धारा की प्रयोज्यता स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में बाहर रखी गई थी। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा-(2) इतने शब्दों में अधिनियमित करती है कि किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए निर्धारित परिसीमा की अवधि अवधारित करने के प्रयोजन के लिए धारा-4 से 24 में अन्तर्विष्ट उपबंध, जिसमें धारा-5 भी सम्मिलित है, उस सीमा तक लागू होगी जहां तक वे ऐसे विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं हैं। धारा-29, उप-धारा (2), भारतीय परिसीमन अधिनियम-1908 की धारा-(बी) में विशेष रूप से धारा-5 की प्रयोज्यता को बाहर रखा गया है, जबकि धारा-29, उप-धारा परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा-2(2) स्पष्ट और स्पष्ट शब्दों में धारा-5 की प्रयोज्यता के लिए प्रदान करती है और कौशल्या रानी के मामले में निर्णय का अनुपात, इसलिए, परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा शासित मामलों में कोई आवेदन नहीं हो सकता है, क्योंकि वह निर्णय इस परिकल्पना पर आगे बढ़ा था कि धारा-5 की प्रयोज्यता को

भारतीय परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा-29 (2)(बी) के कारण बाहर रखा गया था। चूंकि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अधीन धारा-5 को विशेष रूप से धारा-29 द्वारा लागू किया गया है। उप-धारा (2) का लाभ किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा निर्धारित परिसीमा की अवधि को बढ़ाने के प्रयोजन से उठाया जा सकता है यदि आवेदक यह दर्शा सकता है कि परिसीमा की अवधि के भीतर आवेदन प्रस्तुत न करने के लिए उसके पास पर्याप्त कारण था। यह केवल तभी होता है जब विशेष या स्थानीय कानून स्पष्ट रूप से धारा-5 की प्रयोज्यता को बाहर करता है, कि यह विस्थापित हो जाएगा। वहां, जैसा कि कौशल्या रानी के मामले में इस न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है, उप-धारा-(1) में निर्धारित साठ दिनों की समय-सीमा निर्धारित की गई है। धारा-417 का (4) परिसीमन का एक विशेष कानून है और हमें इस विशेष कानून में ऐसा कुछ नहीं मिलता है जो स्पष्ट रूप से धारा-5 की प्रयोज्यता को बाहर करता हो। यह सच है कि धारा-417 की उपधारा-(4) की भाषा अनिवार्य और बाध्यकारी है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं करता है कि बरी करने के आदेश से अपील करने के लिए विशेष अनुमति के अनुदान के लिए कोई आवेदन बरी करने के आदेश की तारीख से साठ दिनों की समाप्ति के बाद उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाएगा। लेकिन यह परिसीमा की अवधि निर्धारित करने वाले प्रत्येक उपबंध की भाषा होगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि सीमा की अवधि से परे किसी आवेदन के मनोरंजन के खिलाफ एक प्रतिबंध एक विशेष या स्थानीय कानून द्वारा बनाया गया है कि धारा-5 की सहायता को लागू करना आवश्यक हो जाता है ताकि इस तरह के प्रतिबंध के बावजूद आवेदन पर विचार किया जा सके। धारा-5 की प्रयोज्यता को विस्थापित करने के लिए केवल परिसीमन की अवधि का प्रावधान पर्याप्त नहीं है। इसलिए, यह निष्कर्ष अप्रतिरोध्य है कि ऐसे मामले में जहां परिसीमा अधिनियम, 1963 के लागू होने के बाद बरी करने के आदेश से अपील करने के लिए विशेष अनुमति के लिए आवेदन दायर किया जाता है, धारा-5 आवेदक के लिए उपलब्ध होगी और यदि वह यह दिखा सकता है कि उसके पास उप-धारा-1963 में निर्धारित साठ दिनों की समय सीमा के भीतर आवेदन को दायर की नहीं देने के लिए पर्याप्त कारण था। धारा-417 की धारा-(4) के अनुसार, आवेदन पर रोक नहीं लगाई जाएगी और साठ दिनों की समय सीमा समाप्त होने के बावजूद, उच्च न्यायालय को इस पर विचार करने की शक्ति होगी। इसलिए, प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने यह निर्णय देने में क्षेत्राधिकार के बिना कार्य नहीं किया कि दिल्ली नगर निगम द्वारा दायर की किए गए आवेदन को उप-धारा-1 में निर्धारित साठ दिनों की समय सीमा तक रोक नहीं दिया गया था, और इसके तहत मामला दर्ज किया गया है क्योंकि दिल्ली नगर निगम के पास इतनी समय-सीमा के भीतर आवेदन को दायर की न देने के पर्याप्त कारण थे। इन परिस्थितियों में विशेष अनुमति देने का आदेश उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर का आदेश नहीं था।

(३१) यह हमें तुरंत परिसीमा अधिनियम की धारा-२९ (२) पर लाता है, जो इस अवसर पर उठता है और निम्नलिखित शब्दों में कहता है:

"29(2) जहाँ कोई विशेष या स्थानीय विधि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए अनुसूची द्वारा विहित अवधि से भिन्न परिसीमा की अवधि विहित करती है वहाँ धारा-3 के उपबन्ध इस प्रकार लागू होंगे मानो वह अवधि अनुसूची द्वारा विहित अवधि थी और किसी वाद के लिए विहित परिसीमा की किसी अवधि का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए, किसी विशेष या स्थानीय कानून द्वारा अपील या आवेदन, धारा-4 से 24 (समावेशी) में निहित प्रावधान केवल तब तक लागू होंगे, जहां तक और जिस हद तक, उन्हें ऐसे विशेष या स्थानीय कानून द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर नहीं किया गया है।

(32) अतः अब यह प्रश्न उठता है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबंध परिसीमा अधिनियम, 1953 की धारा-29(2) के आधार पर विशेष अधिनियम के अधीन कार्यरत न्यायालय/अधिकरणों पर कब लागू होंगे। इस न्यायालय ने पाया कि मुकरी गोपालन बनाम सीपी अबूबकर, (1995)5 एस.सी.सी.5 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने केरल किराया अधिनियम, 1965 के प्रावधानों से निपटने के दौरान विस्तृत तरीके से, जिसके तहत किराया न्यायाधिकरण स्थापित किए गए हैं, बिक्री कर आयुक्त में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक पूर्व निर्णय को नोट किया, यूपी बनाम मदन लाल दान एंड संस; बरेली (1977(1) एस.सी.आर 683) में तीन न्यायाधीशों की पीठ यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि पीड़ित पक्षों द्वारा अपीलों को शासित करने वाले केरल अधिनियम की धारा-18 के तहत उसमें निर्धारित सीमा की अवधि की गणना परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा-4 से 24 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए की जाएगी क्योंकि ऐसी कार्यवाहियां परिसीमा अधिनियम की धारा-29(2) को लागू करेंगी और परिणामस्वरूप परिसीमा अधिनियम की धारा-5 भी ऐसी कार्यवाही।

(33) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपर्युक्त मुकरी गोपालन के मामले में पक्षकार के एक निवेदन का खंडन किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा-4 से 24 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत विधिवत रूप से गठित दीवानी न्यायालयों पर लागू होगी, जिसमें एक प्रतियोगी पक्ष द्वारा यह तर्क दिया गया था कि, यदि परिसीमा अधिनियम की धारा-29(2) को वाद पर लागू किया जाना है, अपील या आवेदन किसी विशेष या स्थानीय कानून द्वारा निर्धारित सीमा की अवधि द्वारा शासित होते हैं, वे आवश्यक रूप से इस तरह के वाद, अपील या आवेदन को पूर्ण दीवानी अदालतों के समक्ष विशेष या स्थानीय कानून के तहत दायर करने की आवश्यकता करते हैं अन्यथा अधिनियम की धारा-4 से 24 स्वयं उन पर लागू नहीं होगी। सर्वोच्च न्यायालय न केवल उक्त प्रस्ताव से सहमत है, बल्कि निम्नलिखित शब्दों में भी टिप्पणी करता है: -

"यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि धारा-29 (2) विशेष या स्थानीय कानून के तहत अधिकारियों के समक्ष दायर किए

जाने वाले किसी भी वाद, अपील या आवेदन के लिए सीमा की अवधि की गणना के लिए लागू होती है यदि उक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तें संतुष्ट होती हैं और एक बार जब वे संतुष्ट हो जाते हैं तो धारा-4 से 24 में निहित प्रावधान ऐसी कार्यवाही पर लागू होंगे, जिसका अर्थ है कि इन धाराओं द्वारा विचारित प्रक्रियात्मक योजना परिसीमा अधिनियम विशेष या स्थानीय कानून के ऐसे प्रावधानों में शामिल हो जाएगा। यह एक विधायी आशुलिपि के बराबर है। नतीजतन, श्री नरीमन के इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।
(महत्त्व सन्निविष्ट)

(34) जाहिर है, बिक्री कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश बनाम मदन लाल दान एंड संस, बरेली (1977(1) एस.सी.आर 683) में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में यह निर्णय दिया है कि किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा किसी आवेदन के लिए विहित परिसीमा की किसी अवधि का निर्धारण करने के प्रयोजन के लिए, अन्य बातों के साथ-साथ धारा-12(2) में अंतर्विष्ट उपबंध उस सीमा तक लागू होंगे जहां तक वे ऐसे विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं हैं, और नोट किया कि यूपी बिक्री कर अधिनियम में सीमा अधिनियम की धारा-12(2) के आवेदन को छोड़कर स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं था।

(35) इस प्रकार, परिसीमा अधिनियम की धारा-5 के उपबंध प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष पुनरीक्षा आवेदन क्षेत्र पर लागू होंगे क्योंकि परिसीमा के उपबंध प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम अथवा उसमें बनाए गए नियमों द्वारा विशिष्टतया वर्जित नहीं हैं। तथापि, अधिकरण को परिसीमा अधिनियम के उक्त उपबंध को लागू करते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए, ताकि किसी पक्षकार के उसके पास उपलब्ध सीमित कानूनी रूप से अनुमेय आधारों पर आदेश की समीक्षा करने के अधिकार और सार्वजनिक नीति जो पक्षकारों के बीच विवाद को अंतिम रूप देने का उपबंध करती है, के बीच संतुलन बनाया जा सके। विलंब को क्षमा करने के लिए अन्य उपबंधों के अतिरिक्त, अधिकरण को निम्नलिखित सिद्धांत द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए जो माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बी माधुरी गौड़ बनाम बी दामोदर रेड्डी (2012)12 एस.सी.सी. 693 में विलंब के लिए क्षमा हेतु आवेदन पर विचार करते समय पूर्व के विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करते हुए तैयार किया गया था। सामान्यतः अधिकरण को निम्नलिखित शर्तों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए जैसा कि उक्त निर्णय में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तैयार किया गया है: -

(i) विलंब की क्षमा के लिए किसी आवेदन पर कार्रवाई करते समय उदार, व्यावहारिक, न्यायोन्मुखी, गैर-पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए क्योंकि न्यायालयों से अन्याय को वैध बनाने की अपेक्षा नहीं की

जाती है बल्कि वे अन्याय को दूर करने के लिए बाध्य होते हैं।

(ii) "पर्याप्त कारण" शब्दों को उनकी उचित भावना, दर्शन और उद्देश्य में समझा जाना चाहिए क्योंकि ये शब्द मूल रूप से लोचदार हैं और तथ्य-स्थिति प्राप्त करने के लिए उचित परिप्रेक्ष्य में लागू किए जाने हैं।

(iii) सारभूत न्याय सर्वोपरि और निर्णायक होने के कारण तकनीकी पहलुओं पर अनुचित और अनावश्यक बल नहीं दिया जाना चाहिए।

(iv) जानबूझकर विलंब के कारण से कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है लेकिन अधिवक्ता या वादी की ओर से घोर लापरवाही को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(v) विलंब के लिए कोडोनेशन की मांग करने वाले पक्ष के लिए आरोपित सदाशयता का अभाव एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक तथ्य है।

(vi) यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सख्त सबूत का पालन सार्वजनिक न्याय को प्रभावित नहीं करना चाहिए और सार्वजनिक तबाही का कारण नहीं होना चाहिए क्योंकि न्यायालयों को सतर्क रहने की आवश्यकता है ताकि अंतिम घटना में न्याय की कोई वास्तविक विफलता न हो।

(vii) उदारवादी दृष्टिकोण की अवधारणा को युक्तिशीलता की अवधारणा को समाहित करना होगा और इसे पूरी तरह से स्वतंत्र रूप से खेलने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(viii) अत्यधिक विलंब और अल्प अवधि या कुछ दिनों की देरी के बीच अंतर है, क्योंकि पूर्वाग्रह का पूर्व सिद्धांत आकर्षित होता है जबकि बाद वाले की ओर यह आकर्षित नहीं हो सकता है। इसके अलावा, पहला सख्त दृष्टिकोण की मांग करता है जबकि दूसरा उदार परिसीमन की मांग करता है।

(ix) किसी पक्ष की निष्क्रियता या लापरवाही से संबंधित उसका आचरण, व्यवहार और रवैया प्रासंगिक कारक हैं जिन पर विचार किया जाना है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल सिद्धांत यह है कि न्यायालयों को दोनों पक्षों के संबंध में न्याय संतुलन के पैमाने को तौलना आवश्यक है और उदार दृष्टिकोण के नाम पर उक्त सिद्धांत को पूरी तरह से

नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

(x) यदि प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण मनगढ़ंत है या आवेदन में दिए गए आधार काल्पनिक हैं, तो न्यायालयों को सतर्क रहना चाहिए कि वे ऐसे मुकदमेबाजी का सामना करने के लिए दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से उजागर न करें।

(xi) यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कोई भी धोखाधड़ी, प्रतिनिधित्व या प्रक्षेप के साथ दूर नहीं हो जाता है, सीमा के कानून की तकनीकीताओं का सहारा लेता है।

(xii) समस्त तथ्यों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी है और दृष्टिकोण न्यायिक विवेक के प्रतिमान पर आधारित होना चाहिए जो वस्तुपरक विवेक पर आधारित है न कि व्यक्तिगत अवबोधन पर।

(xiii) राज्य या सार्वजनिक निकाय या सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाई को कुछ स्वीकार्य छूट दी जानी चाहिए।

(36) दोनों पक्षों ने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया है कि पूर्वोक्त पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई प्रत्यक्ष निर्णय नहीं है। हालांकि, इस न्यायालय ने पाया और जैसा कि प्रतिस्पर्धी पक्षों द्वारा भी भरोसा किया गया था कि उपरोक्त प्रश्न पर सीधे माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय, माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय, माननीय आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय और केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ और गुवाहाटी उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठों द्वारा विचार किया गया था।

(37) प्रतिपक्षी के अधिवक्ता सी. नरसिम्हा राव बनाम क्षेत्रीय संयुक्त निदेशक स्कूल शिक्षा, 2003 एस.सी.सी. ऑनलाइन एपी 1068 के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले के प्रासंगिक हिस्से पर भरोसा करेंगे, जिसमें पूर्ण पीठ प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम के तहत बनाए गए एपी प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियमों के नियम-19 पर विचार कर रही थी। ये नियम, नियम-17 के समरूप हैं जैसा कि इस न्यायालय द्वारा विचाराधीन है। पूर्ण पीठ ने के अजीत बाबू और अन्य बनाम भारत संघ, (1997)6 एस.सी.सी. 473 में निर्णय पर ध्यान दिया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय समीक्षा के अधिकार के रूप में जांच कर रहा था या समीक्षा आवेदन दायर करने के लिए "व्यथित व्यक्ति" कौन है और निम्नलिखित तरीके से अपने निष्कर्ष लौटाए:

> *"12. अन्यथा भी परिसीमा अधिनियम के प्रावधान, जो जब तक अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं किए जाते, अधिनियम/नियमों*

के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति पर लागू किए जा सकते हैं, लेकिन अधिनियम की धारा-29(2) में ऐसा नहीं कहा गया है क्योंकि इसमें प्रावधान है कि धारा-4 से 24 (समावेशी) केवल उस सीमा तक लागू होगी जहां तक उन्हें ऐसे विशेष या स्थानीय कानून द्वारा अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं किया गया है। यदि उनमें से किसी को भी बाहर नहीं रखा गया है, तो वे सभी लागू होते हैं, चाहे वे धाराएं लागू हों या नहीं, उन धाराओं की शर्तों द्वारा निर्धारित नहीं की जाती हैं, लेकिन विशेष या स्थानीय कानून के तहत कार्यवाही के लिए उनकी प्रयोज्यता या अनुपयुक्तता से। परिसीमा अधिनियम की धारा-6, जिसमें किसी ऐसे व्यक्ति, जो या तो नाबालिग है या पागल या मूर्ख है, के मामले में विकलांगता के बाद तक परिसीमा की अवधि के विस्तार का प्रावधान है, अधिनियम/नियमों के अंतर्गत कार्यवाहियों पर लागू नहीं है। इसी प्रकार, धारा-7 से 24 अधिनियम के तहत कार्यवाहियों के लिए लागू नहीं हैं, विशेष रूप से आवेदन दायर करने और अधिनियम/नियमों के तहत पालन की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में। अत उन उपबंधों की प्रयोज्यता का आकलन परिसीमा अधिनियम के निबंधनों से नहीं बल्कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों द्वारा किया जाना चाहिए जो मूल आवेदनों को दायर करने और आवेदनों की समीक्षा करने और उनके निपटान से संबंधित हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि क्या यह अपने आप में एक संपूर्ण संहिता है जो धारा-29()(क) में उल्लिखित है।

13. नियम-19 नकारात्मक रूप में लिखा गया है और आदेश के 30 दिनों के भीतर समीक्षा दायर नहीं किए जाने की स्थिति में व्यक्ति को अधिनियम की धारा-22(ई)(एफ) के तहत समीक्षा की मांग करने से अक्षम करता है। हालांकि, अधिनियम में नियम-19 को छोड़कर कहीं भी इस तरह की समीक्षा दर्ज करने की विधि या तरीके या समय सीमा नहीं बताई गई है। उसी के मद्देनजर, अधिनियम की धारा-21 के तहत देरी को माफ करने की ट्रिब्यूनल की शक्ति केवल धारा-19 के तहत दायर आवेदनों पर लागू होती है, लेकिन इसे धारा-22(3)(एफ) के तहत मांगी गई समीक्षा पर लागू नहीं किया जा सकता है। धारा-22 की उप-धारा-(1) ट्रिब्यूनल द्वारा ऐसी शक्ति के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाती है, अर्थात् ट्रिब्यूनल की शक्ति प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए

किसी भी नियम द्वारा निर्देशित होगी। अधिनियम या नियमों में देरी को माफ करने के लिए निर्धारित किसी भी प्रावधान के अभाव में, ट्रिब्यूनल के पास इस आधार पर परिसीमा अधिनियम की धारा-5 की सहायता और सहायता लेने में देरी को माफ करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा कि परिसीमा अधिनियम की धारा-29 की उप-धारा-(2) के मद्देनजर लागू किया गया है।

(38) यह स्पष्ट है कि माननीय आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने के अजीत बाबू के मामले में निर्णय पर भरोसा किया और उसके बाद केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की शक्तियों और क्षेत्राधिकार के संबंध में नकारात्मक उत्तर दिया ताकि समीक्षा के मामले में निर्धारित अवधि से अधिक विलंब को माफ किया जा सके। हालांकि, इस अदालत ने पाया कि के. अजीत बाबू के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस बात की जांच कर रहा था कि समीक्षा आवेदन दायर करने के लिए "व्यथित व्यक्ति" कौन है और ट्रिब्यूनल द्वारा समीक्षा आवेदन को दायर की देने में देरी की माफी की शक्ति से चिंतित नहीं था।

(39) इसी तरह, "भारत संघ और अन्य बनाम चंचल नाग" में गुवाहाटी उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच (डब्ल्यूपी(सी) 3034/2021 27-03-2023 को फैसला किया गया), ने माना कि ट्रिब्यूनल के पास देरी को माफ करने की कोई शक्ति नहीं होगी जब तक कि इसे बनाने वाले क़ानून द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया हो। चूंकि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियमावली, 1987 के नियम-17 में समीक्षा आवेदन ग्रहण करने के लिए 30 दिनों की समय-सीमा का स्पष्ट रूप से उपबंध है, जब तक कि सांविधिक उपबंध को अधिकारातीत घोषित नहीं किया जाता है, ऐसी शक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा संविधि में नहीं पढ़ा जा सकता है। विद्वान डिवीजन बेंच ने के. अजीत बाबू मामले (उपरोक्त) के फैसले के साथ-साथ एस.एस. राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1989)4 एस.सी.सी. 582 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को नोट किया, जिसमें कहा गया था कि दीवानी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को अधिनियम वर्ष 1985 द्वारा छीन लिया गया है और इस तरह यह माना गया है कि, जहां तक सरकारी कर्मचारियों का सवाल है, विशेष सीमाओं को देखते हुए अनुच्छेद 58 को लागू नहीं किया जा सकता है। गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने यह नोट करने के बाद कि के अजीत बाबू का मामला और एस.एस राठौर का मामला भारत संघ और अन्य बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण: (2002) एस.सी.सी. ऑनलाइन कलकत्ता 597 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दर्ज नहीं किया गया था और इस तरह माना कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले ने कानून का सही प्रस्ताव नहीं रखा था। इस प्रकार, गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

"8. जैसा कि ऊपर कहा गया है, समीक्षा आवेदन दाखिल करने की सीमा 30 दिन है,

जैसा कि नियम वर्ष 1987 के नियम-17 में प्रदान किया गया है। इस प्रकार, अधिनियम वर्ष 1985 में परिसीमा के संबंध में विशिष्ट प्रावधान तथा उसे क्षमा करने की शक्ति निर्धारित की गई है। इसलिए, अधिनियम वर्ष 1985 के तहत कार्यवाही को परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है, जो न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही में उत्पन्न होने वाली सीमा के मुद्दों को नियंत्रित करने वाला एक सामान्य कानून है। यह दृष्टिकोण तब और मजबूत हो जाता है जब हम इंटरनेशनल एसेट (उपरोक्त) और सकुरु (उपरोक्त) के मामलों में डॉ. शर्मा द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के अनुपात पर विचार करते हैं, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि एक वैधानिक न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही को अदालत के समक्ष कार्यवाही के बराबर नहीं रखा जा सकता है। ट्रिब्यूनल के पास देरी को माफ करने की कोई शक्ति नहीं होगी जब तक कि इसे बनाने वाले क़ानून द्वारा स्पष्ट रूप से शक्ति प्रदान नहीं की जाती है। जैसा कि नियम वर्ष 1987 के नियम-17 में स्पष्ट रूप से एक समीक्षा आवेदन पर विचार करने के लिए 30 दिनों की समय-सीमा प्रदान की गई है, जब तक कि वैधानिक प्रावधान को अधिकारातीत घोषित नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी शक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा क़ानून में नहीं पढ़ा जा सकता है।

(40) इस न्यायालय ने पाया कि के. अजीत बाबू का मामला (उपरोक्त) और एस.एस. राठौर के मामले (उपरोक्त) में संवैधानिक पीठ का निर्णय दोनों एक न्यायाधिकरण की समीक्षा की शक्ति से संबंधित सीमा के मुद्दे पर नहीं हैं। जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, के अजीत बाबू के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उनका आधिपत्य समीक्षा के अधिकार की जांच कर रहा था या प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम के तहत समीक्षा आवेदन दायर करने के लिए "व्यथित व्यक्ति" कौन है और इसी तरह, जहां तक एस.एस. राठौर के मामले में निर्णय का संबंध है, यह मूल आवेदन को दायर की देने के लिए अधिनियम की धारा-21 के तहत प्रदान की गई सीमा से संबंधित था। उल्लेखनीय रूप से, एस.एस. राठौर के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम द्वारा दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को हटा दिया गया है और अधिनियम की धारा-22(1) के अनुसार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के आवेदन/पालन या अधिनियम की धारा-22(3) के अनुसार

सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की प्रयोज्यता से संबंधित कुछ भी नहीं देखा गया है, जिसमें ट्रिब्यूनल द्वारा अपने स्वयं के निर्णय की समीक्षा से संबंधित प्रावधान भी शामिल हैं।

(41) दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भारत संघ और अन्य बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, (2002) एस.सी.सी. ऑनलाइन कैल 597 और अक्षय कुमार परिदा बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 2015 उड़ीसा 49 के मामले में माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय और उड़ीसा के माननीय उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णयों पर भरोसा किया जिसमें इस अधिकरण के क्षेत्राधिकार के संबंध में प्रत्यक्ष प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि परिसीमा की निर्धारित अवधि के बाद समीक्षा के लिए आवेदन दायर किए जाने की स्थिति में विलंब को माफ कर दिया जाए। अक्षय कुमार परिदा (मृत)(उपरोक्त) के मामले में, उड़ीसा के माननीय उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने के अजीत बाबू (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निम्नलिखित तरीके से अलग किया, जिस पर माननीय आंध्र उच्च न्यायालय ने भरोसा किया है:

> 21. मामले से अलग होने से पहले, हम यह देखना चाहेंगे कि श्रीमती कंचना बादसेठ (उपरोक्त) में, बेंच ने के. अजीत बाबू (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया था। के. अजीत बाबू (उपरोक्त) में, विचार के लिए छोटा सवाल यह उठा कि क्या अधिनियम की धारा-19 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन सुनवाई योग्य था। शीर्ष अदालत ने कहा कि अक्सर सेवा मामलों में ट्रिब्यूनल या न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय अन्य व्यक्तियों को भी प्रभावित करते हैं, जो मामलों के पक्षकार नहीं हैं। उस संदर्भ में, शीर्ष अदालत ने कहा कि आमतौर पर, समीक्षा का अधिकार केवल उन लोगों के लिए उपलब्ध है जो किसी मामले में पक्षकार हैं। यह आगे कहा गया कि समीक्षा का अधिकार, यदि ऐसा आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में उल्लिखित आधारों पर सीमा की अवधि के भीतर दायर किया जाता है, उपलब्ध है। इस प्रकार के. अजीत बाबू (उपरोक्त) को एक कानून बनाने के रूप में नहीं समझा जा सकता है कि ट्रिब्यूनल सीमा की निर्धारित अवधि से परे दायर समीक्षा के लिए एक आवेदन पर विचार करने में अपनी शक्ति से वंचित है, यदि वह सीमा अधिनियम की धारा-5 के तहत एक आवेदन के साथ है।

(42) के. अजीत बाबू के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को अलग करने के बाद, अक्षय कुमार परिदा

(मृत)(उपरोक्त) के मामले में उड़ीसा के माननीय उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि:

> *22. पूर्ववर्ती पैराग्राफ में किए गए विश्लेषण पर तार्किक अनुक्रमिक यह है कि अधिनियम की न तो धारा-22 और न ही नियमों के नियम-17 ने स्पष्ट रूप से सीमा अधिनियम की धारा-5 की प्रयोज्यता को बाहर रखा है। यदि समीक्षा के लिए एक आवेदन देरी की माफी के लिए एक आवेदन के साथ सीमा की अवधि से परे दायर किया जाता है और आवेदक ट्रिब्यूनल को संतुष्ट करता है कि उसके पास समय के भीतर आवेदन को दायर की नहीं देने के लिए पर्याप्त कारण था, तो ट्रिब्यूनल देरी को माफ कर सकता है।*
>
> (महत्व सन्निविष्ट)

(43) इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया और जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सही तरीके से भरोसा किया गया है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने प्रश्न तैयार किया था, जो इस न्यायालय के विचार में प्रश्न का सही सूत्रीकरण है क्योंकि नियम-17 के निहितार्थ का निर्णय एकांत में नहीं किया जा सकता है, केवल उक्त प्रावधान को पढ़कर, लेकिन उक्त प्रावधान को प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम के तहत सामान्य सीमा प्रदान करने वाले अधिनियम की धारा-21 और ट्रिब्यूनल द्वारा समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आवेदन के लिए प्रदान करने वाली धारा-22 के संयोजन में पढ़ा जाना चाहिए, ताकि प्रशासनिक ट्रिब्यूनल अधिनियम के सभी प्रावधानों के साथ-साथ उसमें बनाए गए नियमों को एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण दिया जा सके। जैसा कि यह हो सकता है, कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने "भारत संघ बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और अन्य" (उपरोक्त) के मामले में, निम्नलिखित तरीके से तय किए जाने वाले प्रश्न को तैयार किया: -

> *"क्या केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम-17 के प्रावधानों और प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा-21 और 22 के संबंध में, ट्रिब्यूनल के पास समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने का अधिकार क्षेत्र है?"*

(44) माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस विषय पर विभिन्न निर्णयों और कानून पर चर्चा करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकरण को अधिनियम और नियमों के तहत उक्त नियमों के अनुच्छेद 17 के बावजूद समीक्षा आवेदन दायर करने में परिसीमा अधिनियम की धारा-5 के तहत विलंब को माफ करने की शक्ति प्रदान की गई है।

(45) हाल ही में, केरल उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने उसी मुद्दे की जांच की थी जो प्रस्तुत मामले में इस न्यायालय का ध्यान, हारिस केएम बनाम जफर: 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन केरल 4009 के मामले में आकर्षित

कर रहा है। उक्त पूर्ण पीठ को सिविल अपील संख्या-6213 वर्ष 2008 में पारित भारत संघ और अन्य बनाम चित्रलेखा चक्रवर्ती में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक असूचित निर्णय को ध्यान में लाया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि चूंकि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष समीक्षा आवेदन दायर करने के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण नियमों के नियम-17 में एक विशिष्ट प्रावधान है, परिसीमा अधिनियम की धारा-5 नियम-17 के तहत एक याचिका पर लागू नहीं थी। पूर्ण पीठ ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रासंगिक हिस्से को निकालने के बाद निम्नानुसार अवधारित किया: -

> *"22. हमारी विनम्र राय में, हमारे आदेश पर सभी सम्मान के साथ, हम इस विचार के हैं कि उक्त निर्णय को एक बाध्यकारी मिसाल के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह दोनों अपवादों के अंतर्गत आता है अर्थात प्रति इंकुरियम और उप साइलेंटियो के तहत। हमने पहले ही उन वैधानिक प्रावधानों का संकेत दिया है जो ट्रिब्यूनल के समक्ष समीक्षा याचिका दायर करने को शासित करते हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णय में उन सांविधिक उपबंधों से अवगत नहीं कराया था जो अधिकरण के पास उपलब्ध पुनवलोकन की शक्ति से संबंधित हैं। वास्तव में, समीक्षा के लिए आवेदन नियम-17 के तहत दायर नहीं किया गया है, बल्कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा-22(3)(एफ) के तहत दायर किया गया है। अधिनियम की धारा-22 जो कहती है कि ट्रिब्यूनल के पास अपने निर्णयों की समीक्षा के लिए दीवानी न्यायालय के समान शक्तियां होंगी, पर विचार नहीं किया गया था। सिविल प्रक्रिया संहिता और परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों, जो समीक्षा की शक्ति को नियंत्रित करते हैं, पर भी विचार नहीं किया गया। यहां तक कि अगर नियम-21 को सीमा निर्धारित करने वाले विशिष्ट प्रावधान के रूप में माना जाना है, तो इस तथ्य पर भी विचार नहीं किया गया कि उक्त नुस्खा सीमा अधिनियम की धारा-29 के अधीन है।* (महत्त्व सन्निविष्ट)

E. निष्कर्ष

(46) तदनुसार, यह न्यायालय यह समुक्ति करता है कि माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय, माननीय कोलकाता उच्च न्यायालय और केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठों के निर्णय इस मुद्दे पर प्रासंगिक कानून हैं। इसलिए, यह न्यायालय मानता है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के समक्ष दायर समीक्षा आवेदन में देरी की माफी के लिए एक आवेदन बनाए रखने योग्य है और तदनुसार, यह माना जाता है कि ट्रिब्यूनल

सीमा अधिनियम की धारा-5 के तहत देरी को माफ कर सकता है, अगर यह संतुष्ट है कि समय के भीतर आवेदन को दायर की नहीं देने के लिए पर्याप्त कारण पूरक है।

(47) एक अनुक्रमिक के रूप में, हम एतद्द्वारा रिट याचिका की अनुमति देते हैं और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा पुन: मूल आवेदन संख्या-561/2005 और सुरेंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य, पृष्ठ 38 में समीक्षा आवेदन संख्या-20/2016 में पारित दिनांक 13.03.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं, तदनुसार याचिकाकर्ता द्वारा दायर देरी आवेदन की माफी के साथ समीक्षा आवेदन को उसकी मूल फाइल में बहाल करते हैं।

(48) यह भी निदेश दिया जाता है कि समीक्षा आवेदन और विलंब आवेदन की माफी पर केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, लखनऊ द्वारा अपने गुणावगुण के आधार पर निर्णय लिया जाए।

(49) यह न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि उसने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और संबंधित पक्षों को ट्रिब्यूनल के समक्ष अपने सभी आधारों और प्रस्तुतियों को प्रस्तुत करने की अनुमति है, जैसा कि कानून के तहत उन्हें अनुमति दी जा सकती है।

(50) लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 898

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 6453/2023

शोभित श्रीवास्तव एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री राजेश द्विवेदी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री आनंद प्रकाश पॉल

सेवा विधि - उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 - अनुकंपा नियुक्ति - टंकण दक्षता की आवश्यकता - नियमों के तहत सीमित अवसर - तृतीय टंकण परीक्षा की कोई गुंजाइश नहीं - परमादेश जारी - इसके बाद नियुक्ति की वैधता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता - अनुकंपा नियुक्ति, टंकण परीक्षा, सेवा विधि, नियम 5(1)(i) - सेवाकाल में मृत, कानपुर विकास प्राधिकरण - 13वां पुनरीक्षण नियमावली 2022, दक्षता आवश्यकता, परमादेश

जहां याचिकाकर्ताओं को उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था, और वे पहली टाइपिंग प्रवीणता परीक्षा में असफल

रहे, लेकिन अनुमत समय के भीतर दूसरी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, कानपुर विकास प्राधिकरण (केडीए) उन्हें प्रदर्शन की शिकायतों के आधार पर तीसरी परीक्षा देने के लिए मजबूर नहीं कर सकता था। 1974 के नियम (13वें पुनरीक्षण, 2022 के पूर्व और बाद) का नियम 5(1)(i) टाइपिंग टेस्ट पास करने के लिए केवल दो प्रयासों की अनुमति देता है। एक बार दूसरी परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने के बाद, अधिकारी मामले पर कार्यात्मक होता है। भले ही नियोक्ता को प्रवीणता पर संदेह हो, कोई भी तीसरी परीक्षा कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं है। अक्षमता के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई, यदि वारंटेड है, तो लागू सेवा नियमों के तहत अलग से की जानी चाहिए लेकिन नियुक्ति की वैधता को प्रभावित नहीं कर सकती है।

<u>उद्धरण:</u>

1. प्रबंध समिति, वैदिक कन्या इंटर कॉलेज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। उद्धरण: (2023) 7 आईएलआरए

2. कुल भूषण मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, उद्धरण: (2023) 7 आईएलआरए

3. दिनेश चंद्र वर्मा बनाम यूपी एवं अन्य। उद्धरण: (2023) 7 आईएलआरए

4. रजत यादव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य। उद्धरण: (2023) 8 आईएलआरए

5. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम शिव जग शर्मा और अन्य। उद्धरण: (2023) 8 आईएलआरए

6. जितेंद्र कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य एवं संबंधित मामले, उद्धरण: (2023) 8 आईएलआरए

7. शोभित श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, उद्धरण : (2023) 8 आईएलआरए

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका विशेष कर्तव्य अधिकारी (स्थापना), कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर द्वारा पारित दिनांक 28.03.2023 के आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए दायर की गई है। यह उपरोक्त विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के आदेश के अनुपालन में याचिकाकर्ताओं द्वारा 12.04.2023 को एक और टाइपिंग परीक्षा लेने का निर्देश देता है। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 28.03.2023 के विवादित आदेश के संदर्भ में 12.04.2023 को निर्धारित टाइपिंग परीक्षा के आयोजन पर रोक लगाने के लिए एक परमादेश की मांग की है।

2. याचिकाकर्ता सभी कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर (संक्षेप में, 'केडीए') में कार्यरत क्लर्क हैं और उन सभी को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया है। पहले याचिकाकर्ता शोभित श्रीवास्तव की नियुक्ति 28 जनवरी, 2018 को हुई थी जबकि दूसरे याचिकाकर्ता अजय श्रीवास्तव की नियुक्ति 30

मई, 2017 को हुई थी। तीसरे याचिकाकर्ता अभिषेक त्रिपाठी की नियुक्ति 20 दिसंबर, 2017 को हुई थी।

3. पार्टियों के बीच यह सामान्य आधार है कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति डाइंग इन हार्नेस नियमों के तहत होने के बावजूद, उनके द्वारा धारित पद के लिए याचिकाकर्ताओं को 25 शब्द प्रति मिनट की टाइपिंग गति के साथ अर्हता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। उपरोक्त योग्यता आवश्यक है। इस संबंध में, उत्तर प्रदेश हार्नेस में मरने वाले सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974 (संक्षेप में, '1974 के नियम') का संदर्भ लिया जा सकता है। इन नियमों को उत्तर प्रदेश हार्नेस में मरने वाले सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (13वां संशोधन) नियम, 2022 (संक्षेप में, '13वां संशोधन नियम) द्वारा संशोधित किया गया है, जिन्हें 27 दिसंबर, 2022 को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गया है। 1974 के नियमों के नियम 5 को 13वें संशोधन नियमों द्वारा संशोधित किया गया है और संशोधित और असंशोधित नियम 5 को विस्तृत रूप से पुनः प्रस्तुत करना लाभदायक होगा:

विद्यमान नियम	इसके द्वारा प्रतिस्थापित नियम
5.(1) मृतक के परिवार के एक सदस्य की भर्ती- यदि इन नियमों के लागू होने के बाद किसी सरकारी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है, और मृत सरकारी कर्मचारी का पति या पत्नी पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगम के तहत कार्यरत नहीं है, उसके परिवार का एक सदस्य जो पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगम के तहत कार्यरत नहीं है, उसे इस उद्देश्य के लिए आवेदन करने पर सरकारी सेवा में उपयुक्त रोजगार दिया जाएगा। उस पद को छोड़कर जो उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे में है, सामान्य भर्ती नियमों में छूट देते हुए, यदि ऐसा व्यक्ति- (i) पद के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यता पूरी करता हो: बशर्ते कि यदि नियुक्ति उस पद पर की जानी है जिसके लिए टाइपराइटिंग एक आवश्यक योग्यता निर्धारित की गई है और मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रित के पास टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता नहीं है, तो उसे इस शर्त के अधीन नियुक्त किया जाएगा कि वह एक वर्ष के भीतर टाइपराइटिंग में 25 शब्द प्रति मिनट की अपेक्षित गति हासिल कर लेगा और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो उसकी सामान्य वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी और उसे टाइपराइटिंग में अपेक्षित	5.(1) मृतक के परिवार के एक सदस्य की भर्ती- यदि इन नियमों के लागू होने के बाद किसी सरकारी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है, और मृत सरकारी कर्मचारी का जीवनसाथी पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगम के तहत कार्यरत नहीं है, उसके परिवार का एक सदस्य जो पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगम के तहत कार्यरत नहीं है या राज्य सरकार द्वारा इस प्रयोजन के लिए आवेदन करने पर सामान्य भर्ती नियमों में छूट देते हुए उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र में आने वाले पद को छोड़कर किसी अन्य पद पर सरकारी सेवा में उपयुक्त रोजगार दिया जाएगा। यदि ऐसा व्यक्ति- (i) पद के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यता पूरी करता हो: बशर्ते कि यदि नियुक्ति ऐसे पद पर की जानी है जिसके लिए टाइपराइटिंग एक आवश्यक योग्यता निर्धारित की गई है और मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रित के पास टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता नहीं है, उसे इस शर्त के अधीन नियुक्त किया जाएगा कि वह एक वर्ष के भीतर टाइपराइटिंग में

गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी जाएगी और यदि विस्तारित अवधि में भी वह टाइपराइटिंग में अपेक्षित गति प्राप्त करने में विफल रहता है। उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। बशर्ते कि यदि किसी ऐसे पद पर नियुक्ति की जानी है जिसके लिए कंप्यूटर संचालन और टाइपराइटिंग का ज्ञान आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित किया गया है और मृत सरकारी सेवक के आश्रित के पास कंप्यूटर संचालन और टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता नहीं है, उसे इस शर्त के अधीन नियुक्त किया जाएगा कि वह एक वर्ष के भीतर कंप्यूटर संचालन में डीओईएसीसी सोसायटी द्वारा प्रदान किया गया 'सी सी सी' प्रमाणपत्र या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी संस्थान से उसके समकक्ष प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेगा, साथ ही टाइपराइटिंग में 25 शब्द प्रति मिनट की आवश्यक गति प्राप्त कर लेगा। , अगर वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो उसकी सामान्य वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी और उसे कंप्यूटर संचालन में आवश्यक प्रमाणपत्र और कंप्यूटर संचालन में आवश्यक	25 शब्द प्रति मिनट की अपेक्षित गति हासिल कर लेगा और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, उसकी सामान्य वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी और उसे टाइपराइटिंग में अपेक्षित गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी जाएगी और यदि विस्तारित अवधि में भी वह टाइपराइटिंग में अपेक्षित गति प्राप्त करने में विफल रहता है, तो उसे चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति देने का आदेश जारी कर दिया जायेगा. <u>इस प्रकार दी गई नियुक्ति नई नियुक्ति मानी जाएगी और उसका प्रत्यावर्तन नहीं किया जाएगा। यदि वह निर्धारित समय के भीतर चतुर्थ श्रेणी के पद पर कार्यभार ग्रहण नहीं करते हैं तो उनकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी।</u> बशर्ते कि यदि किसी ऐसे पद पर नियुक्ति की जानी है जिसके लिए कंप्यूटर संचालन और टाइपराइटिंग का ज्ञान आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित किया गया है और मृत सरकारी सेवक के आश्रित के पास कंप्यूटर संचालन और टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता नहीं है,
प्रमाणपत्र और टाइपराइटिंग में आवश्यक गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी जाएगी। और यदि विस्तारित अवधि में भी वह कंप्यूटर संचालन में प्रमाणपत्र और टाइपराइटिंग में आवश्यक गति हासिल करने में विफल रहता है, तो उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी।	उसे इस शर्त के अधीन नियुक्त किया जाएगा कि वह डीओईएसीसी सोसायटी द्वारा प्रदान किया गया कंप्यूटर संचालन में 'सी सी सी' प्रमाणपत्र प्राप्त करेगा या एक वर्ष के भीतर टाइपराइटिंग में 25 शब्द प्रति मिनट की आवश्यक गति के साथ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान से उसके समकक्ष प्रमाण पत्र और, यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो उसकी सामान्य वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी और कंप्यूटर संचालन में आवश्यक प्रमाणपत्र और कंप्यूटर संचालन में आवश्यक प्रमाणपत्र और टाइपराइटिंग में आवश्यक गति प्राप्त करने के लिए उसे एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी जाएगी और यदि विस्तारित अवधि में भी वह कंप्यूटर संचालन में प्रमाणपत्र प्राप्त करने में विफल रहता है और टाइपराइटिंग में गति की आवश्यकता होती है, *<u>तो उसे चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति प्रदान करने का आदेश जारी किया जाएगा। इस प्रकार दी गई नियुक्ति नई नियुक्ति मानी जाएगी और उसका प्रत्यावर्तन</u>*

प्रतिलिपि

	नहीं किया जाएगा। यदि वह निर्धारित समय के भीतर चतुर्थ श्रेणी के पद पर कार्यभार ग्रहण नहीं करते हैं तो उनकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी।

4. पूर्व-संशोधित नियमों के पहले परंतुक के अवलोकन से पता चलता है कि 1974 के नियमों के तहत किसी पद पर नियुक्ति के मामले में, जिसके लिए टाइपराइटिंग एक आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित की गई है, मृत सरकारी सेवक का आश्रित,जिनके पास टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता नहीं है, उन्हें एक वर्ष के भीतर 25 शब्द प्रति मिनट की अपेक्षित टाइपिंग गति हासिल करने की शर्त पर सशर्त नियुक्त किया जाएगा। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो उसकी सामान्य वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी और अपेक्षित टाइपराइटिंग गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि दी जाएगी। यदि एक वर्ष की विस्तारित अवधि के भीतर, अनुकंपा पर नियुक्त व्यक्ति टाइपराइटिंग में अपेक्षित गति प्राप्त करने में विफल रहता है, तो उसकी सेवाएं निर्धारित कर दी जाएंगी।

5. संशोधित नियम 5(1)(i) के तहत, टाइपराइटिंग में अपेक्षित गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की समयावधि अपरिवर्तित रहती है और विफलता की स्थिति में, आवश्यक टाइपराइटिंग गति प्राप्त करने के लिए एक वर्ष की विस्तारित अवधि भी अपरिवर्तित रहती है। हालाँकि, विस्तारित एक वर्ष के भीतर विफलता पर परिणाम बदल गए हैं। पहले, इससे अनुकंपा पर नियुक्त व्यक्ति की सेवा का निर्धारण हो जाता था, जबकि अब अनुकंपा पर नियुक्त व्यक्ति को चतुर्थ श्रेणी पद पर नई नियुक्ति दी जाएगी।

6. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, इसमें कुछ मुद्दा हो सकता है कि क्या याचिकाकर्ताओं के मामले में असंशोधित नियम 5 लागू होगा या उनके अधिकार 13वें संशोधन नियमों द्वारा शासित होंगे। लेकिन, उन तथ्यों पर विवाद नहीं उठता. इसका कारण यह है कि पार्टियों के बीच यह सामान्य आधार है कि 1974 के नियमों के तहत उनकी संबंधित नियुक्तियों के बाद प्रत्येक याचिकाकर्ता के पास टाइपिंग में अपेक्षित दक्षता या 25 शब्द प्रति मिनट की निर्धारित गति नहीं थी। यह भी सामान्य आधार है कि तीनों याचिकाकर्ताओं ने नियम 5(1)(i) के अनुसार वर्ष 2019 में पहली बार टाइपराइटिंग परीक्षा दी और इसमें असफल रहे। इसलिए, सभी याचिकाकर्ताओं के पास टाइपराइटिंग में आवश्यक दक्षता हासिल करने के लिए एक और वर्ष था। याचिकाकर्ताओं ने एक साल बाद, यानी 25.08.2022 को दूसरी बार टाइपिंग टेस्ट दिया और चार अन्य समान परिस्थिति वाले नियुक्तियों के साथ इसे पास कर लिया। इस संबंध में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा न्यायालय का ध्यान दिनांक 28.03.2023 के आक्षेपित आदेश की ओर आकर्षित किया गया है। यह आदेश केडीए के विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी (स्थापना) द्वारा जारी किया गया है। आदेश के पहले भाग में, चार अन्य के अलावा याचिकाकर्ताओं के लिए दूसरे टाइपिंग टेस्ट के परिणाम की घोषणा की गई है। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि 25.08.2022 को आयोजित टाइपिंग टेस्ट में

यहां के तीन याचिकाकर्ताओं सहित सात क्लर्कों ने इसे पास किया था। दिनांक 28.03.2023 के आदेश पर इस सीमा तक कोई आपत्ति नहीं है; न ही यह हो सकता है.

7. आदेश के उत्तरार्ध में, यह उल्लेख किया गया है कि केडीए के उपाध्यक्ष ने अपने अनुमोदन आदेश दिनांक 10.03.2023 के संदर्भ में निर्देशित किया है कि परीक्षा में उत्तीर्ण कर्मचारियों का 12.04.2023 को दोपहर साढ़े बारह बजे सचिव की देखरेख में टाइपिंग टेस्ट होगा। आयोजन स्थल केडीए का कंप्यूटर विभाग होगा, जो तीसरी मंजिल पर स्थित है। आदेश केडीए के दो अधिकारियों को पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त करता है, जिन्हें यह संबोधित है। यह आदेश का वह हिस्सा है जिसके तहत याचिकाकर्ताओं को तीसरी बार टाइपिंग दक्षता परीक्षा से गुजरने की आवश्यकता है, जिसका याचिकाकर्ताओं ने विरोध किया है।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की दलील यह है कि नियमों के नियम 5 में 1974 के नियमों के तहत नियुक्त व्यक्ति के लिए केवल दो टाइपिंग टेस्ट की परिकल्पना की गई है, यदि उसके पास शुरू में अपेक्षित दक्षता और 25 शब्द प्रति मिनट की गति नहीं है। यदि वह पहली परीक्षा में असफल हो जाता है, तो अपेक्षित गति हासिल करने और अपनी नियुक्ति बरकरार रखने के लिए उसके पास पहली परीक्षा में असफल होने के एक साल बाद दूसरा और आखिरी मौका होता है। यहां, याचिकाकर्ताओं ने दूसरा परीक्षण पास कर लिया है और 1974 के नियमों के तहत, संशोधन से पहले या 13वें संशोधन के बाद किसी तीसरे परीक्षण की परिकल्पना नहीं की गई है। दरअसल, याचिकाकर्ताओं ने 25.08.2022 को अपनी दक्षता निर्धारित करने के लिए आयोजित दूसरी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, जिसका परिणाम 28.03.2023 को घोषित किया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अनुसार केडीए के पास उनकी दक्षता सत्यापित करने के लिए तीसरी परीक्षा आयोजित करने का कोई अवसर नहीं है।

9. इस न्यायालय ने केडीए को 05.07.2023 को जवाबी हलफनामा दायर करने का समय दिया और आज एक रिटर्न दाखिल किया गया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

10. पक्षों की सहमति से इस न्यायालय ने मामले की सुनवाई की है।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री राजेश द्विवेदी को, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री आनंद प्रकाश पॉल को और प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील सुश्री मोनिका आर्य को सुना गया। .

12. जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ नंबर 4 में, यह स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता हालांकि पहले प्रयास में टाइपिंग में दक्षता परीक्षा पास नहीं कर सके, लेकिन उन्होंने दूसरे प्रयास में इसे पास कर लिया। पैराग्राफ संख्या 5 में, यह कहा गया है कि 7 याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति को मंजूरी उपाध्यक्ष द्वारा दी गई थी, संभवतः याचिकाकर्ताओं द्वारा दूसरी बार

टाइपिंग परीक्षा उत्तीर्ण करने पर, लेकिन बाद में कुछ विभाग प्रमुखों से प्राप्त शिकायतों पर जिनके तहत याचिकाकर्ता अपने टाइपिंग कौशल के संबंध में काम कर रहे हैं, यह आवश्यक पाया गया कि सत्यापन किया जाए। इसी कारण से 28.03.2023 को आदेश जारी किया गया था, जिसमें परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले सभी उम्मीदवारों को 12.04.2023 को आयोजित होने वाली "अनुरूपता नियमित टाइपिंग परीक्षा" में उपस्थित होने के लिए कहा गया था। पैराग्राफ संख्या 3 में यह भी कहा गया है कि सात उम्मीदवारों में से, जिन्होंने दूसरे प्रयास में दक्षता परीक्षा उत्तीर्ण की, अकेले तीन ने इस रिट याचिका को प्राथमिकता दी है, जबकि अन्य चार ने विवादित आदेश को प्रस्तुत किया है और तीसरी बार परीक्षा दी है। . यह भी माना जाता है कि नियमों के तहत एक बार जब उम्मीदवार परीक्षा पास कर लेता है, तो उसे आगे के कौशल परीक्षण के लिए उपस्थित होने के लिए नहीं कहा जा सकता है, लेकिन यह प्राधिकरण को उन कर्मचारियों के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोकता है, जो अपने काम में पूरी तरह से अक्षम पाए जाते हैं। . कमोबेश, श्री पॉल ने जवाबी हलफनामे में अपनाए गए रुख के अनुरूप ही दलीलें पेश की हैं, जिसे उन्होंने अधिक स्पष्ट शब्दों में अदालत के सामने रखा है।

13. पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, इस न्यायालय की राय है कि केडीए के पास तीसरी परीक्षा आयोजित करने का न तो अधिकार है और न ही क्षेत्राधिकार, भले ही 1974 के नियमों के तहत नियुक्त उम्मीदवार दूसरी परीक्षा में आयोजित टाइपिंग दक्षता परीक्षा में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण हो। . 1974 के नियमों के नियम 5(1)(i), दोनों पूर्व-संशोधित और संशोधन के बाद केवल दो परीक्षणों पर विचार करते हैं अनुकंपा पर नियुक्त व्यक्ति, जिसके पास टाइपराइटिंग में अपेक्षित कौशल और 25 शब्द प्रति मिनट की गति नहीं है। इस कमी के साथ नियुक्त व्यक्ति को पहली परीक्षा अपनी नियुक्ति के एक वर्ष के अंत में देनी होगी, और असफल होने पर, उसे अपने कौशल में सुधार करने के बाद अगले वर्ष 8वीं दूसरी परीक्षा देनी होगी। यदि वह दूसरी बार में कौशल परीक्षा पास कर लेता है, तो केडीए के पास उसे तीसरी बार टाइपिंग कौशल या दक्षता परीक्षा से गुजरने के लिए कहने का कोई अधिकार नहीं बचता है। आख़िरकार, केडीए द्वारा दूसरी परीक्षा आयोजित की गई और याचिकाकर्ताओं को उक्त परीक्षा में सफल पाया गया। ऐसा भी नहीं है कि केडीए ने दूसरी परीक्षा आयोजित कर ली है और परिणाम के साथ किसी प्रकार की रोक लगा दी है। मामले की जड़ यह है कि नियम 5(1)(i) के तहत दूसरी बार टाइपिंग कौशल परीक्षा पास करने से क़ानून के तहत अध्याय हमेशा के लिए बंद हो जाता है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, केडीए के पास दूसरे के परिणाम को सत्यापित या पुष्टि करने के लिए तीसरा परीक्षण आयोजित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। भले ही उन्होंने इसे पकड़ लिया और पाया कि याचिकाकर्ता सही नहीं हैं, इसका कोई परिणाम नहीं होगा।

14. 14. कानून की इस स्थिति पर श्री पॉल बहुत गंभीरता से विवाद नहीं कर सके। हालाँकि, उन्होंने कहा कि टाइपराइटिंग में

कौशल की कमी के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। किसी कर्मचारी की अकुशलता के लिए सेवा नियमों के तहत कार्रवाई की अनुमति हो तो यह अलग बात है। इसका उनकी नियुक्ति से कोई लेना-देना नहीं है. यहां मुद्दा याचिकाकर्ताओं को दी गई अनुकंपा नियुक्ति की वैधता के बारे में है और दूसरी बार में टाइपराइटिंग दक्षता परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ, उनकी नियुक्ति को खतरे में नहीं डाला जा सकता है। यदि ऐसा नहीं किया जा सकता है, तो केडीए द्वारा टाइपराइटिंग दक्षता या याचिकाकर्ताओं की टाइपिंग गति का पता लगाने के लिए तीसरी परीक्षा आयोजित करने का कोई मतलब नहीं है, जिन्होंने पहले ही 1974 के नियमों के अनुसार आवश्यक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है। श्री पॉल ऐसा नहीं कर सके। यह न्यायालय सैद्धांतिक रूप से विपरीत दृष्टिकोण अपनाने वाले किसी भी प्राधिकारी को नोटिस देगा।

15. 15. मामले के इस दृष्टिकोण से, यह याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। दिनांक 28.03.2023 का विवादित आदेश इस सीमा तक रद्द किया जाता है कि इसमें तीसरी बार टाइपिंग कौशल परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया गया है। याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति की वैधता निर्धारित करने के उद्देश्य से उत्तरदाताओं को भविष्य में टाइपिंग टेस्ट आयोजित करने से एक परमादेश द्वारा रोका जाता है।

16. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 905

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 6758 वर्ष 2004

से संबद्ध

रिट-ए संख्या 6145 वर्ष 2002

अनिल किशोर गुप्ता ...याचिकाकर्ता

बनाम

एसबीआई एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

केके गौतम, अमित क्र. सिंह भदौरिय, एलबी सिंह भदौरिया

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एनके सेठ, गोपाल कुमार श्रीवास्तव

सेवा विधि - सजा - पदोन्नति परीक्षा - अनुचित साधनों का प्रयोग - विभागीय जांच - सेवा पुस्तिका में प्रविष्टि करके 'चेतावनी' की सजा दी गई, जिसकी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी पुष्टि की गई - याचिकाकर्ता को 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्ति के लिए लाभ प्राप्त करने से भी रोक दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - माना गया कि, एक सरकारी कर्मचारी की वरिष्ठता की हानि जिसके परिणामस्वरूप पदोन्नति की संभावनाओं, उच्च वेतन और परिलब्धियों का नुकसान उसके लिए गंभीर परिणाम का मामला है - एक बार, उसे 'चेतावनी' की सजा दी गई

है और इस संबंध में एक नोट उसकी सेवा पुस्तिका में बना दिया गया है, 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। (पैरा 24, 25, और 26)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. रिट याचिका संख्या 3988 (एस/एस) वर्ष 1992; के.के. गौतम बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य, 24.11.1993 को निर्णीत

2. सेवा एकल संख्या 331 वर्ष 2012; राम प्रकाश बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव नागरिक उड्डयन विभाग लखनऊ दिनांक 15.03.2021 को निर्णीत

3. यूपी राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010) 2 एससीसी 772

4. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक (2009) 2 एससीसी 570

5. एलपीए संख्या 155/2013; वरुण भारद्वाज बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य, 24.11.2015 को निर्णीत।

6. सिविल अपील संख्या 4455/2019; राजबीर सूरजभान सिंह बनाम अध्यक्ष, बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान, मुंबई 29.04.2019 को निर्णीत

7. सिविल रिट याचिका संख्या 7345 वर्ष 2022; रवि कुमार कुल्हारी बनाम राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड एवं अन्य, 09.09.2022 को निर्णीत

8. सिविल अपील संख्या 263/2013; स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम नरेन्द्र कुमार पाण्डेय दिनांक 14.01.2013 को निर्णीत।

9. तारा चंद व्यास बनाम अध्यक्ष एवं अनुशासनात्मक प्राधिकारी (1997) 4 एससीसी 565

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. श्री सुदीप सेठ, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित कुमार सिंह भदौरिया, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव, प्रतिपक्षी(ओं) बैंक के अधिवक्ता को सुना।

2. चूंकि दोनों रिट याचिकाएं उत्पन्न होती हैं और एक समान विवाद को जन्म देती हैं, इसलिए इस संयुक्त फ़ैसले/आदेश के माध्यम से इसका निर्णय लिया जा रहा है।

3. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने 05.08.2004 के अपीलीय आदेश के साथ-साथ 04.09.2004 के आदेश के साथ दिनांक 31.03.2004 के आक्षेपित अनुशासनात्मक आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक रिट जारी करने की

प्रार्थना के साथ वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था, परमादेश की प्रकृति में आदेश या निर्देश जिसमें प्रतिपक्षियों को दिनांक 01.08.2003 के आदेश को प्रभावी करने का आदेश दिया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को 01.04.2002 से सभी परिणामी लाभों के साथ 01.04.2002 से सभी परिणामी लाभों के साथ विलंबित भुगतान पर 24% ब्याज के साथ माना गया था।

3. प्रस्तुत रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

<u>रिट-ए संख्या-6145 वर्ष 2002</u>:

क्रम सं	मामले के प्रासंगिक तथ्य
A	याचिकाकर्ता ने वर्ष 1981 में लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से द्वितीय श्रेणी में अपना B.Com पूरा किया और लखनऊ विश्वविद्यालय से 64% अंकों के साथ द्वितीय श्रेणी में एलएलबी पूरा किया और सीएआईबी (ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स का प्रमाण पत्र) की प्रथम भाग परीक्षा उत्तीर्ण की है।
B	लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में अर्हता प्राप्त करने के बाद उन्हें प्रतिपक्षी बैंक द्वारा 17.07.1984 को क्लर्क/टाइपिस्ट के पद पर नियुक्त किया गया था। उन्होंने उक्त पद पर दिनांक 27.07.1984 को भारतीय स्टेट बैंक, नानपारा शाखा, जिला बहराइच में कार्यभार ग्रहण किया।
C	याचिकाकर्ता को मोबाइल ड्यूटी पर निरीक्षण विभाग में प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया था और 21.01.1988 को जोनल निरीक्षण कार्यालय, लखनऊ में तैनात किया गया था और उसे अन्य मासिक वेतन के अलावा विशेष भत्ते के रूप में प्रति माह 325 रुपये का भुगतान किया गया था।
D	वह 21.01.1988 से 19.08.1990 की अवधि के बीच प्रतिनियुक्ति पर रहे।
E	20.08.1990 को, प्रतिपक्षी बैंक ने याचिकाकर्ता को निरीक्षण विभाग में क्लर्क/टाइपिस्ट के रूप में समाहित कर लिया और 325/- रुपये के प्रतिनियुक्ति भत्ते का भुगतान रोक दिया गया।
F	12.12.1997 को, याचिकाकर्ता के स्वयं के अनुरोध पर, उन्हें स्थानांतरित कर दिया गया और एसबीआई के सर्कल ऑडिट विभाग, स्थानीय प्रधान कार्यालय, लखनऊ में तैनात किया गया।
G	14.08.1999 को, याचिकाकर्ता को एसबीआई, जोनल निरीक्षण कार्यालय, जयपुर, राजस्थान में प्रतिनियुक्ति पर 750/- रुपये प्रति माह के विशेष प्रतिनियुक्ति भत्ते के साथ मोबाइल ड्यूटी पर निरीक्षण सहायक के रूप में काम करने के लिए प्रतिनियुक्ति पर शामिल होने के लिए राहत मिली।
H	योग्यता सह वरिष्ठता चैनल के तहत, प्रतिपक्षी - बैंक ने 01.08.1998 से प्रभावी होने के लिए जूनियर प्रबंधन ग्रेड स्केल-I अधिकारी (संक्षेप के लिए, "जे.एम.जी.एस.-I) को पदोन्नति के लिए परीक्षा आयोजित की, जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया और 60 अंकों में से 52 अंक हासिल किए, लेकिन उसे साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया क्योंकि उसके पास उस समय तक कोई वरिष्ठता अंक नहीं था और मेरिट में 4.5 अंक कम था।
I	18.02.2001 और 25.02.2001 को, जे.एम.जी.एस.-I के लिए परीक्षा फिर से प्रतिपक्षी - बैंक द्वारा आयोजित की गई थी और याचिकाकर्ता ने फिर से उसी में भाग लिया था, हालांकि, उसे प्राप्त अंकों के बारे में सूचित नहीं किया गया था और साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया था।
J	02.09.2001 को, प्रतिपक्षी - बैंक ने 01.08.2000 से प्रभावी प्रशिक्षु अधिकारियों के रूप में पदोन्नति के लिए

	परीक्षा आयोजित की, जिसमें याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ और 70 अंकों में से 38.67 अंक प्राप्त किए, लेकिन साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया क्योंकि न्यूनतम कट ऑफ मार्क्स 40 था।
K	28.01.2002 को, याचिकाकर्ता ने अध्ययन अवकाश के लिए आवेदन किया और 05.02.2002 से 08.03.2002 तक छुट्टी पर रहा।
L	दिनांक 10.03.2002 को प्रतिपक्षी बैंक ने प्रशिक्षु अधिकारी के रूप में पदोन्नति के लिए लिखित परीक्षा आयोजित की और याचिकाकर्ता ने इसमें भाग लिया, तथापि, उसे इसके परिणाम के बारे में सूचित नहीं किया गया।
M	19.06.2002 और 20.06.2002 को, प्रतिपक्षी - बैंक ने उसी के लिए साक्षात्कार आयोजित किया, लेकिन याचिकाकर्ता को नहीं बुलाया गया।
N	28.07.2002 को, प्रतिपक्षी - बैंक ने 01.08.2001 और 01.08.2002 से प्रभावी जे.एम.जी.एस.-I अधिकारी के पद पर पदोन्नति के लिए परीक्षा आयोजित की और याचिकाकर्ता उसी में उपस्थित हुआ लेकिन उसे साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया।
O	दिनांक 31.07.2002 के पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी बैंक से उसे उन अंकों की सूचना देने के लिए कहा, जो उसने 2001 से प्रभावी प्रशिक्षु अधिकारी के रूप में पदोन्नति के लिए 10.03.2002 को आयोजित परीक्षा में प्राप्त किए थे।
P	भारतीय स्टेट बैंक, जयपुर, राजस्थान के निरीक्षण और लेखा परीक्षा विभाग ने दिनांक 12.08.2002 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया कि 01.08.2001 से प्रशिक्षु अधिकारी के रूप में पदोन्नति के लिए 10.03.2002 को आयोजित परीक्षा में उसने 70 में से 46.75 अंक प्राप्त किए थे।
Q	दिनांक 20.08.2002/29.08.2002 के पंजीकृत पत्र द्वारा उपरोक्त पत्र की पावती
	देते हुए, याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी से अनुरोध किया कि वह 46.75 अंक प्राप्त करने के बावजूद साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए उसे नहीं बुलाने के कारणों को सूचित करे, जबकि उससे कम अंकों के उम्मीदवारों को बुलाया गया था, हालांकि, उसे तब से कोई जवाब नहीं मिला है।
R	21.08.2002 को, याचिकाकर्ता को दिनांक 26.07.2002 के आदेश के तहत लखनऊ वापस कर दिया गया था और जयपुर, राजस्थान से अपने कर्तव्यों से मुक्त कर दिया गया था और उसने 24.08.2002 को एसबीआई, स्थानीय प्रधान अधिकारी, लखनऊ में ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया था।
S	02.09.2002 को, याचिकाकर्ता को आगे की तैनाती के लिए एसबीआई, जोनल अधिकारी, लखनऊ में स्थानांतरित कर दिया गया। चूंकि याचिकाकर्ता 3, 4 और 5 सितंबर, 2020 को छुट्टी पर था, उक्त आदेश उसे 06.09.2002 को दिया गया था और उसने तुरंत एसबीआई, जोनल ऑफिस, लखनऊ में ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया और तब से वह आगे के पोस्टिंग ऑर्डर की प्रतीक्षा कर रहा है।
T	16.09.2002 से आज तक, याचिकाकर्ता चिकित्सा अवकाश पर था क्योंकि वह ठीक नहीं था।
U	दिनांक 13.09.2002 के पत्र के तहत, जो याचिकाकर्ता को 11.10.2002 को प्राप्त हुआ था, एसबीआई, आंचलिक कार्यालय, लखनऊ के कार्मिक अनुभाग ने उसे सहायक महाप्रबंधक, क्षेत्र-II, एसबीआई, जोनल कार्यालय, लखनऊ को आगे की तैनाती के लिए रिपोर्ट करने का निर्देश दिया था।
V	याचिकाकर्ता बीमार होने के कारण, दिनांक 12.10.2002 के आवेदन के माध्यम से एजीएम, एसबीआई, जोनल ऑफिस, लखनऊ से अनुरोध किया गया कि वह अपनी चिकित्सा छुट्टी का विस्तार करे, हालांकि, उसे कोई जवाब नहीं दिया गया

Digitally Signed

	है और उसे कारणों से अवगत नहीं कराया गया था कि उच्च अंक प्राप्त करने के बावजूद, उसे 19.06.2002 और 20.06.2002 को आयोजित साक्षात्कार में प्रशिक्षु अधिकारी के रूप में पदोन्नति के लिए नहीं बुलाया गया था, जो 01.08.2001 से प्रभावी था। जबकि कम अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को बुलाया गया और पदोन्नत किया गया

<u>रिट-ए संख्या-6758 वर्ष 2004:</u>

A	याचिकाकर्ता को 27.07.1984 को प्रतिपक्षी बैंक में क्लर्क सह टाइपिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें निरीक्षण विभाग के लिए चुना गया था। अनुमोदित ट्रैक रिकॉर्ड के साथ सेवा की अपेक्षित लंबाई पूरी करने के बाद, उन्हें 01.08.1998 से जे.एम.जी.एस.-I के पद पर पदोन्नति के लिए पदोन्नति परीक्षा के लिए अनुमति दी गई थी। परीक्षा में 60 में से 52 अंक लाने पर उसे साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया।
B	याचिकाकर्ता फिर से 18.02.2001 और 25.02.2001 को आयोजित जे.एम.जी.एस.-I के लिए प्रचार परीक्षा में उपस्थित हुआ, हालांकि, प्राप्त अंकों का खुलासा उसे नहीं किया गया था।
C	याचिकाकर्ता 02.09.2001 को प्रशिक्षु अधिकारी के पद के लिए परीक्षा में उपस्थित हुआ और 70 में से 38.67 अंक प्राप्त किए।
D	वह फिर से 01.08.2001 से प्रशिक्षु अधिकारी के पद पर पदोन्नति के लिए प्रतियोगी परीक्षा में उपस्थित हुए, लेकिन उन्हें साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया, इसके बाद उन्हें 01.08.2001 और 01.08.2002 से प्रभावी अधिकारी जे.एम.जी.एस.-I के पद पर पदोन्नति के लिए लिखित परीक्षा में भर्ती कराया गया। परीक्षा 28.07.2002 को आयोजित की गई थी लेकिन याचिकाकर्ता को साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया था।
E	याचिकाकर्ता को साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया था, उसने प्रतिपक्षियों से 10.03.2002 को आयोजित परीक्षा में अपने अंक दिखाने का अनुरोध किया।
F	प्रतिपक्षी संख्या-2 ने दिनांक 12.08.2002 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया कि उसने 70 में से 46.75 अंक हासिल किए हैं, हालांकि, उसे पदोन्नत नहीं किया गया था।
G	जब याचिकाकर्ता से कम अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया, तो उसने रिट याचिका संख्या-6145 (एस/एस) वर्ष 2002 दायर की, जो इस न्यायालय के समक्ष लंबित है।
H	याचिकाकर्ता को निरीक्षण विभाग, जयपुर से स्थानीय प्रधान कार्यालय, लखनऊ और फिर जोनल कार्यालय, लखनऊ के क्षेत्र-II और फिर जिला प्रतापगढ़ में ग्राम शाखा, पट्टी में प्रत्यावर्तित किया गया।
I	दिनांक 31.03.2003 के पत्र के तहत प्रतिपक्षी संख्या-4 ने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया कि कथित कदाचार के लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों नहीं शुरू की जानी चाहिए।
J	याचिकाकर्ता ने लगाए गए आरोपों से इंकार करते हुए दिनांक 12-04-2003 को इसका उत्तर प्रस्तुत किया।
K	दिनांक 09.06.2003 के पत्र के तहत, याचिकाकर्ता को आक्षेपित परीक्षा में कथित रूप से अनुचित साधनों का उपयोग करने के लिए आरोप-पत्र दिया गया था और सात दिनों के भीतर जवाब देने के लिए कहा गया था।
L	01.08.2003 को, याचिकाकर्ता को 01.04.2002 से वरिष्ठता सह उपयुक्तता के आधार पर वरिष्ठ सहायक के कैडर पद पर पदोन्नत किया गया था, यानी याचिकाकर्ता की आक्षेपित परीक्षा में भाग लेने के बाद की तारीख।
M	दिनांक 24-11-2003 के समाचार पत्र दि पायनियर में आई.बी.पी.एस., जिसने प्रशिक्षु अधिकारियों की लिखित परीक्षा आयोजित की थी, जिसे प्रतिपक्षी बैंक के उप महाप्रबंधक के नियंत्रण में आयोजित किया गया था, में

अनुवादित

	आई.बी.पी.एस. के कैट और भारतीय स्टेट बैंक के परिवीक्षाधीन अधिकारियों सहित परीक्षा पत्रों के लीक होने में शामिल होने के संबंध में एक समाचार प्रकाशित किया गया था।
N	03.12.2003 को, प्रतिपक्षी संख्या-5 द्वारा मौखिक जांच करने के लिए पट्टी शाखा का दौरा किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता ने कहा था कि रिट याचिका संख्या-6145 (एस/एस) वर्ष 2002 में माननीय न्यायालय के समक्ष विवादित मामला विचाराधीन है, इसलिए, जांच करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, हालांकि, उसे बैठने और कार्यवाही गाने के लिए मजबूर किया गया था, हालांकि, जांच में, कोई अभियोजन नहीं हुआ, दस्तावेजों की जांच की गई।
O	प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के दिनांक 03.12.2003 के संक्षिप्त विवरण के निर्देशों के अनुसरण में प्रतिपक्षी संख्या-5 की भूमिका में कदम रखते हुए, याचिकाकर्ता ने अपना बचाव संक्षिप्त प्रस्तुत किया।
P	इस बीच, जांच लंबित रहने तक, प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता को 2.00 लाख रुपये का ऋण मंजूर किया गया था, हालांकि, अनुशासनात्मक कार्यवाही की छाया में, यह हकदार नहीं है।
Q	दिनांक 26.03.2004 के पत्र के तहत, प्रतिपक्षी संख्या-4 ने याचिकाकर्ता को पारित एक अस्थायी आदेश अग्रेषित किया। यह आरोप लगाया गया है कि उक्त आदेश जांच अधिकारी के निष्कर्षों के खिलाफ प्रस्तुतियाँ करने का अवसर दिए बिना पारित किया गया था।
R	30.03.2004 को, याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-4 से अनुरोध किया कि वह उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने सजा आदेश की समीक्षा करे कि उसने स्वयं याचिकाकर्ता के मूल्यांकन में वर्ष 10/10 अंक दिए थे और उसे 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नत किया था।
S	31.03.2004 को, प्रतिपक्षी संख्या-4 ने पहले प्रस्तावित निंदा प्रविष्टि के बजाय याचिकाकर्ता को चेतावनी देते हुए अंतिम आदेश पारित किया।
T	दिनांक 10.05.2004 के पत्र के तहत प्रतिपक्षी संख्या-4 ने कहा कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट पहले ही उपलब्ध करा दी गई है और दिनांक 14.05.2004 के आदेश के तहत, उसने यह कहते हुए अनंतिम आदेश की पुष्टि की कि यदि याचिकाकर्ता को कोई शिकायत है, तो वह 45 दिनों के भीतर अपील दायर कर सकता है।
U	27.05.2004 को, याचिकाकर्ता ने यह कहते हुए अपील दायर की कि उसने जानकारी एकत्र की है कि पूछताछ पर निरीक्षक ने इनकार किया है कि किसी भी अनुचित साधन का उपयोग किया गया है।
V	दिनांक 02.08.2004 के पत्र के तहत याचिकाकर्ता ने शाखा प्रबंधक, पट्टी से कोरवा शाखा के लिए उसे कार्यमुक्त करने का अनुरोध किया।
W	दिनांक 05.08.2004 के आदेश के तहत, प्रतिपक्षी संख्या-3 ने प्रतिपक्षी संख्या-4 के समान दृष्टिकोण रखते हुए याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया।
X	04.09.2004 को, प्रतिपक्षी संख्या-4 द्वारा एक नया आदेश जारी किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता की लालगंज में तैनाती का निर्देश दिया गया था।
Y	दिनांक 23.09.2004 के पत्र के तहत, शाखा प्रबंधक, पट्टी ने लालगंज शाखा के बजाय दिवागंज शाखा के लिए याचिकाकर्ता को कार्यमुक्त कर दिया और पांच दिनों के बाद, उन्हें निरीक्षण में सहायता करने के लिए कुंभी आइमा शाखा के लिए फिर से कार्यमुक्त कर दिया गया।
Z	11.10.2004 को, याचिकाकर्ता को कुंभी आइमा शाखा से लालगंज शाखा से मुक्त कर दिया गया।
AA	प्रतिपक्षियों की पूरी कार्रवाई को दुर्भावनापूर्ण, भ्रामक, पूर्वाग्रहपूर्ण, अवैध, पक्षपातपूर्ण, प्रतिशोधी, असमान और अधिकार क्षेत्र से परे होने का आरोप लगाया जा रहा है, याचिकाकर्ता को प्रशिक्षु अधिकारी के पद पर पदोन्नति से वंचित करते हुए, प्रस्तुत रिट

Digitally Signed

	याचिकाओं को इस न्यायालय के समक्ष दायर दी गई है।

4. याचिकाकर्ता के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता का निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता ने प्रशिक्षु अधिकारी के पद पर पदोन्नति परीक्षा में कभी भी अनुचित साधनों का उपयोग नहीं किया है और उसने श्री ए के बार्कले की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए हैं। श्री ए.के बार्कले, जिन्होंने स्वयं उक्त परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग करने की बात स्वीकार की थी।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आरोप पत्र और कुछ नहीं बल्कि एक विचार के बाद का उद्देश्य है ताकि किसी तरह याचिकाकर्ता को पदोन्नति से वंचित करने को सही ठहराया जा सके। प्रतिपक्षियों ने प्रशिक्षु अधिकारी के पद पर पदोन्नति का दावा करते हुए रिट याचिका संख्या-6145 (एस/एस) वर्ष 2002 दायर करने से पहले याचिकाकर्ता द्वारा अनुचित साधनों का उपयोग करने का तर्क कभी नहीं लिया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंकों को संप्रेषित करते समय अनुचित साधनों के उपयोग के आरोप के साथ भी सामने नहीं आए। इस संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा पूछे जाने के बाद भी, प्रतिपक्षियों ने कोई कारण नहीं बताया।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश अनुमानों और क़यासों के आधार पर और आरोपों को साबित करने के लिए किसी भी रचनात्मक सबूत के अभाव में पारित किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि एक तरफ जांच के दौरान प्रतिपक्षियों द्वारा कोई सबूत नहीं दिया गया है और दूसरी तरफ, प्रतिपक्षी-आई.बी.पी.एस. स्वयं साक्ष्य के आधार पर अपने तर्क का समर्थन करने में विफल रहा।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी ने यह कहते हुए गलती की कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के संक्षिप्त विवरण पर विधिवत विचार किया था, हालांकि, यह जांच अधिकारी के स्वयं के बयान के खिलाफ है, जिसके तहत उन्होंने कहा है कि उन्हें याचिकाकर्ता का बचाव विवरण प्राप्त नहीं हुआ था।

8. उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को 01.04.2002 से 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नत किया गया है, दिनांक 01.08.2003 के आदेश के माध्यम से वेतन और अन्य लाभ प्राप्त करने का हकदार है और इससे इनकार करना अवैध, दुर्भावनापूर्ण और पूर्वाग्रही है।

9. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि 04.09.2004 को वरिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नति का बाद का आदेश प्रकृति में निरर्थक और अधिकार क्षेत्र से परे है और इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है। अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी:

क) के के गौतम बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य; रिट याचिका संख्या-3988 (एस/एस) वर्ष 1992 का निर्णय 24.11.1993 को हुआ।

ख) राम प्रकाश बाजपेयी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य प्रधान सचिव के माध्यम से नागरिक उड्डयन विभाग लखनऊ; सेवा एकल संख्या-331 वर्ष 2012 का निर्णय 15.03.2021 को किया गया।

ग) उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010)2 एस.सी.सी. 772

घ) रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य; (2009)2 एस.सी.सी. 570

10. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी(ओं) के अधिवक्ता - बैंक ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता जयपुर जोन में प्रतिपक्षी बैंक के जोनल निरीक्षण और लेखा परीक्षा विभाग में सहायक (लेखा / टाइपिस्ट) के रूप में तैनात रहते हुए प्रशिक्षु अधिकारी, 2001 के पद पर नियुक्ति के लिए 10 मार्च, 2002 को आयोजित लिखित परीक्षा में उपस्थित हुआ। आई.बी.पी.एस. (बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान) द्वारा प्रस्तुत दिनांक 17.05.2002 की रिपोर्ट के अनुसार, उन्होंने लिखित परीक्षा के वस्तुनिष्ठ भाग में अनुचित साधनों का प्रयोग किया। इसलिए, प्रतिपक्षी बैंक ने उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का फैसला किया और उक्त कारण से, उसे 29.06.2002 और 20.06.2002 को आयोजित साक्षात्कार के लिए नहीं माना/बुलाया गया।

11. याचिकाकर्ता बीमारी के आधार पर 16.09.2002 से 28.10.2002 तक छुट्टी पर चला गया और इस बीच उसने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-6145 (एस/एस) वर्ष 2002 दायर की, जो विचाराधीन है। उन्होंने एक अन्य रिट याचिका संख्या-801 (एस/एस) वर्ष 2003 दायर की थी, जिसे दिनांक 05.02.2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश के खिलाफ उन्होंने विशेष अपील संख्या-80 वर्ष 2003 दायर की थी, जिसे इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने दिनांक 28.02.2003 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था।

12. उन्होंने प्रस्तुत किया कि कैरियर प्रगति की योजना के तहत बैंक की नीति के संदर्भ में, याचिकाकर्ता को 01.08.2004 से वरिष्ठ सहायक के पद पर पदोन्नत किया गया था और दिनांक 04.09.2004 के पत्र द्वारा लालगंज शाखा, जिला प्रतापगढ़ में स्थानांतरित कर दिया गया था। हालांकि, बैंक के मानदंडों के अनुसार, याचिकाकर्ता के नाम, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन था, पर विचार नहीं किया जा सका और इसलिए, उसे 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सका।

13. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि परीक्षा में अनुचित साधनों का उपयोग करने के लिए, याचिकाकर्ता को 09.06.2003 को एक आरोप पत्र दिया गया था, जिसके लिए याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था और जांच प्राधिकरण ने 12.12.2003 को अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष रखी गई पूरी सामग्री पर विचार करने के बाद, याचिकाकर्ता को निंदा की सजा देते हुए 26.03.2004 को अस्थायी आदेश पारित

किया गया था, जिसमें तीन दिनों के भीतर प्रस्तावित सजा के खिलाफ अपनी प्रस्तुतियाँ देने का एक और अवसर प्रदान किया गया था, जिसका उत्तर याचिकाकर्ता द्वारा 30.03.2004 को प्रस्तुत किया गया था, जिसमें कहा गया था कि यह आदेश प्रकृति में भेदभावपूर्ण है क्योंकि श्री ए.के. बारकले को केवल चेतावनी दी गई थी लेकिन याचिकाकर्ता को निंदा प्रविष्टि से सम्मानित किया गया है। याचिकाकर्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी - बैंक ने उनके काम की मूल्यांकन किया है और उन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव से वरिष्ठ सहायक के पद पर कैडर में पदोन्नति दी गई है, जिस पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने निम्नानुसार देखा है:

> *"(i) ईपीए की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों के तहत, यदि किसी भी परीक्षा में किसी भी प्रकृति के अनुचित प्रथाओं का सहारा लेने का आरोप आरोपित कर्मचारी द्वारा स्वीकार किया जाता है, तो इसे "मामूली कदाचार" माना जाता है, जबकि यदि कर्मचारी शुल्क स्वीकार नहीं करता है और बाद में उसके खिलाफ साबित हो जाता है, तो यह "सकल कदाचार" का गठन करता है। दोनों कर्मचारियों के कदाचार पर विचार किया गया और तदनुसार उन्हें सजा दी गई। यद्यपि आरोप के रूप में कोई भेदभाव या पूर्वाग्रह नहीं है, लेकिन जैसा कि दोनों दंड "चेतावनी" या "सेंसर" निपटान के एक ही खंड 6 (एच) में परिभाषित किए गए हैं, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने ईपीए द्वारा दावा किए गए एकरूपता के लिए चेतावनी की सजा पर विचार किया।*
>
> *(ii) आई.बी.पी.एस. द्वारा प्राप्त रिपोर्ट पर बैंक द्वारा इस संबंध में बनाए गए नियमों के तहत विचार किया गया था। आई.बी.पी.एस. के खिलाफ अखबार में प्रकाशित रिपोर्ट किसी भी तरह से इस मामले में इसकी विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करती है। इस प्रकार, उद्देश्यों को खारिज कर दिया।*
>
> *(iii) कदाचार की गंभीरता का निर्णय करते समय कर्मचारियों का कार्यनिष्पादन और अन्य उपलब्धियां संगत नहीं हैं और न ही इससे तात्कालिक मामले में उसकी अभियोज्यता कम होती है। बल्कि पूर्वव्यापी तारीखों से कैडर पदोन्नति प्रबंधन की ओर से पक्षपात के उनके आरोपों के खिलाफ बोलती है, इसलिए, उनकी आपत्तियों में कोई योग्यता नहीं है।*

14. उन्होंने प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उनके सामने रखी गई पूरी सामग्री पर विचार करने के बाद अस्थायी आदेश को इस हद तक संशोधित किया कि याचिकाकर्ता

को अपने सेवा रिकॉर्ड में इस आशय के एक नोट के साथ इस संबंध में अधिक सावधान रहने की चेतावनी दी जाए। उक्त आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की, जिसे निंदा दंड आदेश की पुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अवार्ड स्टाफ डिबार्मेंट पॉलिसी के अनुसार, जब अनुशासनात्मक कार्यवाही चल रही है, तो निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जा सकता है:

(i) एक कर्मचारी, जिसके खिलाफ धोखाधड़ी, धन के दुरुपयोग, जालसाजी या किसी अन्य कार्य के अपराध के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई पर विचार किया जाता है, जो प्रथम दृष्टया आपराधिक कदाचार के बराबर है, को 3 साल से अधिक की अवधि के लिए पदोन्नति से वंचित किया जाएगा, यदि कर्मचारी को लिखित रूप में सलाह दी जाती है। (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-125 वर्ष 1978 दिनांक 26.6.78)

(ii) अनुशासनात्मक कार्रवाई के अन्य सभी मामलों में, बार उस तारीख से काम करेगा जब कर्मचारी को आरोप-पत्र दिया जाता है (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-125 वर्ष 1978 दिनांक 26.6.78)

(iii) सामान्यत डिबार की 3 वर्ष की अवधि आरोप पत्र दाखिल करने की तारीख से शुरू होनी चाहिए। तथापि, कुछ मामलों में, कभी-कभी आरोप पत्र जारी करना संभव नहीं होता है क्योंकि बैंक आरोप पत्र तैयार किए जाने से पहले मामले की पूरी तरह से जांच करना चाहता है। यह बहुत संभव है कि एक कर्मचारी, जिसके कथित कदाचार की जांच की जा रही है, इस बीच पदोन्नति के लिए पात्र हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, कर्मचारी को यह सलाह देना आवश्यक हो सकता है कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई पर विचार किया जा रहा है। इसलिए, उसे पदोन्नति के लिए योग्य नहीं माना जा सकता है। यह निश्चित रूप से, बैंक के हित में और साथ ही कर्मचारी के हित में सुनिश्चित किया जाना चाहिए, कि जांच शीघ्रता से पूरी हो और जितनी जल्दी हो सके आरोप पत्र जारी किया जाए (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-125 वर्ष 1978 दिनांक 26.6.78)

(iv) जहां कर्मचारी को आरोपित किया गया है या मामूली कदाचार के लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई पर विचार किया गया है, उसे उच्च कैडर में पदोन्नति के लिए परीक्षण, साक्षात्कार आदि में उपस्थित होने के लिए अनंतिम रूप से अनुमति दी जा सकती है, बशर्ते कि वह अन्यथा पात्र हो, लेकिन ऐसे कर्मचारी के परिणाम को ऐसे समय तक रोक दिया जाना चाहिए जब तक कि मामला तय नहीं हो जाता है (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-125 वर्ष 1979), जहां बाद में, ऐसे मामलों पर निम्नलिखित तरीके से विचार किया जाएगा: -

(क) यदि अनुशासनिक कार्यवाही के निष्कर्ष पर कर्मचारी को पूर्णत दोषमुक्त कर दिया जाता है और यह पाया जाता है कि वह परीक्षण/साक्षात्कार में सफल रहा था तो उसे अन्य कर्मचारियों के साथ

भूतलक्षी प्रभाव से पदोन्नत किया जाएगा। (संदर्भ परिपत्र स्टाफ सं.107 वर्ष 1980 दिनांक 2.7.80)

(ख) प्रतिषेध नीति के अनुसार चेतावनी/निंदा को पदोन्नति के लिए पात्रता पर रोक नहीं माना जाता है। इसलिए, पदोन्नति के लिए उन कर्मचारियों पर विचार करने का मामला बनता है, जिन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही के समापन पर चेतावनी/निंदा की जाती है और जिन्हें भविष्य की तारीख से पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया जाता है। किसी कर्मचारी के विरुद्ध चिंतन/लंबित अनुशासनिक कार्यवाही और यदि साक्षात्कार से पहले दंड दिया गया है तो चेतावनी/निंदा का तथ्य साक्षात्कार समिति को ज्ञात है और यदि इसके बावजूद कर्मचारी पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया जाता है, तो यह उचित होगा कि उसका परिणाम रद्द न किया जाए और भविष्य की तारीख से पदोन्नति के लिए उस पर विचार किया जाए। इस प्रकार ऐसे कर्मचारी को सजा दूसरों की तुलना में वरिष्ठता का नुकसान होगा, जो उसी परीक्षा में उपस्थित हुए थे और पहले पदोन्नत हो गए थे। तदनुसार, ऐसे कर्मचारियों को पदोन्नति परीक्षा में फिर से उपस्थित हुए बिना सजा के पुरस्कार के बाद पदोन्नत बैच के साथ पदोन्नत किया जा सकता है। (संदर्भ परिपत्र स्टाफ सं-107 वर्ष 1980 दिनांक 2.7.80)

(ग) किसी अन्य दंड के मामले में, पदोन्नति परीक्षा का परिणाम रद्द कर दिया जाना चाहिए। ऐसे सभी मामलों में कर्मचारी को प्रतिबंध अवधि समाप्त होने के बाद नए सिरे से परीक्षण में उपस्थित होना होगा। हालांकि, परीक्षण में उनकी उपस्थिति, जिसका परिणाम घोषित नहीं किया गया है, को प्राप्त परिवर्तन के रूप में नहीं गिना जाएगा (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-107 वर्ष 1980 दिनांक 2.7.80)

(घ) सभी मामलों में, जहां कर्मचारियों को अनंतिम रूप से परीक्षा आदि में बैठने की अनुमति दी जाती है, उन्हें प्रारंभिक चरण में ही स्पष्ट रूप से सूचित किया जाना चाहिए कि परीक्षण, साक्षात्कार आदि में सफल होने की स्थिति में उनकी पदोन्नति, उनके खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणाम पर निर्भर करेगी और यह कि परीक्षा आदि में उनकी उपस्थिति केवल अनंतिम है। (संदर्भ परिपत्र स्टाफ संख्या-125 वर्ष 1979 दिनांक 3.10.79)

15. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को लगातार रिट याचिका दायर करने की आदत है और प्रस्तुत रिट याचिका में लिए गए

आधारों को पहले की रिट याचिकाओं में पहले ही लिया जा चुका है, जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1925 के नियम 7 अध्याय 22 के मद्देनजर मान्य नहीं है।

16. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि रिट याचिका में लगाया गया सजा आदेश न्यायसंगत और वैध है और इस माननीय न्यायालय से किसी भी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है और रिट याचिकाएं खारिज करने योग्य हैं। अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी:

क) वरुण भारद्वाज बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य; एल.पी.ए. सं.155/2013 पर निर्णय दिनांक 24.11.2015 को दिया गया।

ख) राजबीर सूरजभान सिंह बनाम अध्यक्ष, बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान, मुंबई; सिविल अपील संख्या-4455 वर्ष 2019 का निर्णय 29.04.2019 को दिया गया।

ग) रवि कुमार कुल्हारी बनाम राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड और अन्य और संबंधित रिट याचिकाएं; एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या-7345 वर्ष 2022 का निर्णय 09.09.2022 को हुआ।

घ) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम नरेंद्र कुमार पांडेय; सिविल अपील सं 263 वर्ष 2013 पर निर्णय दिनांक 14012013 को दिया गया।

ई) तारा चंद व्यास बनाम अध्यक्ष और अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अन्य; (1997) 4 एस.सी.सी. 565, के लिए 3.

17. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर सामग्री के साथ-साथ पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानून रिपोर्टों का अवलोकन किया है।

18. मामले में शामिल विवाद को हल करने के लिए, पक्षों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के प्रासंगिक हिस्से को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

➢ याचिकाकर्ता के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय:

क) के. के. गौतम (उपरोक्त):

"25. सेवा न्यायशास्त्र में नियम के बाद अगला पदोन्नति के मामले में मार्गदर्शक सिद्धांत है। जब कभी किसी कर्मचारी को उसके कनिष्ठों द्वारा किसी प्रशासनिक त्रुटि या अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के कारण सौंप दिया जाता है, तो त्रुटि का पता चलते ही उसकी वरिष्ठता को उसके कनिष्ठों की तुलना में वापस लाना पड़ता है या ऐसे कर्मचारी को आरोपों से मुक्त कर दिया जाता है। भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के पास 1985 में रिपोर्ट किए गए अरुण कुमार चटर्जी बनाम दक्षिण पूर्व रेलवे और अन्य

के मामले में इस सिद्धांत को फिर से दोहराने का अवसर था (2-एस.सी.सी.-451) और सही वरिष्ठता से इनकार करने की कुछ इसी तरह की स्थिति से निपटने के दौरान निम्नानुसार आयोजित किया गया:

अदालत ने कहा, 'हमें अपीलकर्ता को उसके वैध अधिकारों से वंचित करने में रेलवे प्रशासन द्वारा अपनाए गए रवैये का कोई औचित्य नजर नहीं आता। सरकारी कर्मचारी की वरिष्ठता का नुकसान और परिणामस्वरूप पदोन्नति की संभावनाओं, उच्च वेतन और परिलब्धियों का नुकसान उसके लिए गंभीर परिणाम का मामला है। जब अपीलकर्ता ने अपने अभ्यावेदन द्वारा विभागीय अधिकारियों का ध्यान उसके साथ हुए अन्याय की ओर आकर्षित किया, तो यह उनका कर्तव्य था कि वे गलती को सुधारते और अपीलकर्ता की वरिष्ठता को फिर से तय करते।

26. दोनों पक्षों को विस्तार से सुनने के बाद, याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से और प्रतिपक्षियों ने एक वरिष्ठ अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। हमारा यह पुष्ट विचार है कि प्रतिपक्षी याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर विचार करने में विफल रहे, ताकि उनके अपने वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा 1975 से याचिकाकर्ता को खुले दिमाग से पदोन्नति देने के लिए की गई सिफारिशों के आलोक में और बैंक की प्रथा और नीति के साथ-साथ कानून की स्थापित स्थिति के अनुसार पदोन्नति दी जा सके। इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित समानता खंड का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है। हम चाहते हैं कि कथित आरोपों से मुक्त होने के बाद, बैंक को याचिकाकर्ता को जे.एम.जी.एस.-आई (पुनः पदित) के पद पर पदोन्नत करने के संबंध में यथास्थिति बहाल करनी चाहिए थी। यह वास्तव में खेदजनक है कि अधीनस्थ अधिकारी के साथ उसके वरिष्ठों द्वारा इस तरह के कठोर तरीके से व्यवहार किया गया है। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ता सबसे अनुचित और मनमानी कार्रवाई का शिकार रहा है और इन सभी वर्षों में उसकी कोई गलती नहीं होने के कारण उसे भुगतना पड़ा है। इसलिए, उनकी पीड़ा बिना किसी देरी के समाप्त होनी चाहिए।

27. इन परिस्थितियों में, यह रिट याचिका सफल होती है और अनुमति के योग्य है। इसके द्वारा प्रतिपक्षियों को निर्देश देते हुए

परमादेश की एक रिट जारी की जाती है कि याचिकाकर्ता को 26-10-1975 को आयोजित लिखित परीक्षा में विधिवत उत्तीर्ण माना जाए और उसे जे.एम.जी.एस.-I के पुनः नामित पद पर नियुक्त किया गया माना जाए, जिस तारीख से 1975 से उसके किसी कनिष्ठ को पदोन्नत / नियुक्त किया गया था, जिसमें सभी परिणामी लाभ शामिल थे, जिसमें अगले सभी उच्च पदों पर आगे पदोन्नति भी शामिल थी। प्रतिपक्षियों को इस आदेश को तुरंत लागू करने का निर्देश दिया जाता है और किसी भी स्थिति में इस फैसले और आदेश की प्रमाणित प्रति उनके समक्ष पेश किए जाने की तारीख से एक महीने के भीतर नहीं होगी।

बी) राम प्रकाश बाजपेयी (उपरोक्त):

10. जहां तक याचिकाकर्ता के दूसरे सबमिशन का संबंध है, विभागीय कार्यवाही के रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि कोई भी गवाह विभागीय जांच में उपस्थित नहीं हुआ या याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई दस्तावेज साबित नहीं हुआ। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है।

11. (ए) सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक और अन्य 4 में इस न्यायालय ने कहा: -

"हमारी राय में याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र का जवाब देने के बाद जांच के लिए एक तारीख तय की जानी चाहिए थी और याचिकाकर्ता को जांच की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचित किया जाना चाहिए था और उस तारीख को याचिकाकर्ता के खिलाफ मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य उसकी उपस्थिति में पेश किए जाने चाहिए थे और उसे अपने खिलाफ गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए था और साथ ही उसे एक बयान, अपने स्वयं के गवाह और सबूत पेश करने का अवसर भी दिया जाना चाहिए था। यदि याचिकाकर्ता इस सूचना के जवाब में जांच के लिए उपस्थित होने में विफल रहा था, तो एक पक्षीय जांच होनी चाहिए थी, लेकिन याचिकाकर्ता की सेवा को बिना जांच किए समाप्त नहीं किया जाना चाहिए था। प्रस्तुत मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि कोई नियमित जांच नहीं की गई थी। यह सब किया गया था कि याचिकाकर्ता के आरोप पत्र का जवाब प्राप्त होने के बाद उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उसके बाद बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया था। हमारी राय में यह सही कानूनी

प्रक्रिया नहीं थी और प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन था। चूंकि जांच के लिए कोई तारीख तय नहीं की गई थी और न ही कोई जांच हुई थी जिसमें सबूत का नेतृत्व किया गया था, हमारी राय में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है।

(बी) उपरोक्त निर्णय सुभाष चंद्र शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी स्पिनिंग मिल्स और अन्य में एक अन्य डिवीजन बेंच द्वारा किया गया था, जहां न्यायालय ने आयोजित किया था:

"ऐसे मामलों में जहां एक बड़ी सजा दी जानी प्रस्तावित है, एक मौखिक जांच जरूरी है, चाहे कर्मचारी इसके लिए अनुरोध करे या नहीं। इसके लिए संबंधित कर्मचारी को एक नोटिस जारी करना आवश्यक है जिसमें उसे सुभाष चंद्र शर्मा बनाम प्रबंध निदेशक, (2000)1 यूपीएलबीईसी 541 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा आयोजित जांच की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचित किया जाए, जिसके खिलाफ एस.एल.पी को उच्चतम न्यायालय ने 16-8-2000 को खारिज कर दिया है। (महत्व दिया गया)

(C) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा में, उच्चतम न्यायालय ने कहा:

"एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासनिक प्राधिकारी / सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त है कि आरोप साबित हुए हैं। प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिपक्षियों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

जब सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है तो इसे लापरवाही की कवायद नहीं माना जा सकता। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने

की आवश्यकता है ताकि न केवल यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए जिसके परिणामस्वरूप बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित सजा दी जा सकती है।

12. उपरोक्त तथ्यों से, यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई जांच कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं है। इस प्रकार इस तरह की दोषपूर्ण और अवैध जांच के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित सजा का आदेश खड़ा नहीं हो सकता।

13. पूर्वोक्त को देखते हुए, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज करने के दिनांक 04.08.1995 के आदेश के साथ-साथ दिनांक 30.12.2011 के आदेश को रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता सेवा के सभी लाभों के हकदार होंगे जो अन्य दो अपराधी कर्मचारियों यानी श्री वी.के सक्सेना, जूनियर एयरक्राफ्ट मैकेनिक और श्री हरीश चंद्र @ मुन्ना, क्लीनर को दिए जाते हैं।

ग) उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उपरोक्त):

"27. पूर्वोक्त उप-नियम के एक महज़ सादे अवलोकन से पता चलता है कि जब प्रतिपक्षी आरोप पत्र को स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था, तो जांच अधिकारी पर जांच में उसकी उपस्थिति के लिए तारीख तय करना अनिवार्य था। यह केवल उस मामले में होता है जब सरकारी कर्मचारी निर्धारित तारीख की सूचना के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहता है कि जांच अधिकारी जांच के साथ एकपक्षीय आगे बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी आरोप पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करना जांच अधिकारी के लिए अनिवार्य है। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों की प्रतिपरीक्षा का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी आरोपों को स्थापित करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक सबूत पेश करने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-

साथ न्यायाधीश के रूप में भी काम किया है।

28. एक अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासनिक प्राधिकरण /सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत सबूतों की जांच करना है, यहां तक कि अपराधी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप साबित हुए हैं। प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिपक्षियों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

30. जब सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है तो इसे एक आकस्मिक प्रैक्टिस नहीं माना जा सकता है। जांच की कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने की आवश्यकता है ताकि न केवल यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्याय किया जाता है बल्कि प्रकट रूप से किया जाता है। नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए जिसके परिणामस्वरूप बर्खास्तगी/सेवा से हटाने सहित सजा दी जा सकती है।

घ) रूप सिंह नेगी (उपरोक्त):

14. निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। अपराधी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी अभियुक्तों के विरुद्ध जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनिक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उसकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच

अधिकारी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट पर भरोसा किया गया था जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने इससे पहले देखा है कि एकमात्र बुनियादी सबूत जिस पर जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया है, वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा की गई कथित स्वीकारोक्ति थी। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति को साबित किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चोरी करने में लिप्त था। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट का आशय दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।

23. इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी भी किसी भी कारण से समर्थित नहीं हैं। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम होते हैं, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो इस बात का कोई कारण नहीं था कि आपराधिक न्यायालय द्वारा स्व-समान साक्ष्य के आधार पर पारित निर्वहन के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करते हुए रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को साबित करने की आवश्यकता है। कुछ सबूतों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य है। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत हैं। चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट केवल अनुमानों और क़यासों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं थे। संदेह, जैसा कि सर्वविदित है, हालांकि उच्च हो सकता है, किसी भी परिस्थिति में कानूनी सबूत के

विकल्प के रूप में नहीं ठहराया जा सकता है।

➢ प्रतिपक्षी(ओं) के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय - बैंक:
ए) भारद्वाज (उपरोक्त) से:

"14. ..... एसबीआई ने एकल न्यायाधीश के समक्ष अपने हलफनामे में यह भी कहा कि 976 उम्मीदवारों ने उसके द्वारा आयोजित लिखित परीक्षा में अनुचित तरीके अपनाए थे। एसबीआई ने अदालत को सूचित किया कि आई.बी.पी.एस. द्वारा विकसित पद्धति को अपनाकर इसका पता लगाया जा सकता है, समान रूप से एक निश्चित संख्या से परे गलत उत्तरों के पैटर्न का पता लगाने के लिए। एकल न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट थे कि एसबीआई की कार्रवाई मनमानी नहीं थी और अदालत अपने न्यायिक समीक्षा अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल करते हुए विशेषज्ञों की राय को अपने साथ नहीं लेगी।

16. एसबीआई आई.बी.पी.एस. के दस्तावेज पर भरोसा करता है जिसका शीर्षक है "वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में अनुचित साधनों/कदाचारों के उपयोग का पता लगाना"। उक्त दस्तावेज़ के भाग-III में कहा गया है कि आई.बी.पी.एस. दो महत्वपूर्ण मानदंडों पर विचार करता है; एक, जहां उम्मीदवारों की एक जोड़ी 12 या अधिक समान गलत उत्तरों का उत्तर देती है; और बेमेल (अलग-अलग उत्तरों के साथ प्रश्नों की संख्या) छोटा होना, यानी 5 या उससे कम। दूसरा, मानदंड परीक्षणों में उच्च स्कोर करने वालों का पता लगाना है, लेकिन अनुचित साधनों का उपयोग करने के बाद, दो आयामी फिल्टर (ए) मानदंड के आवेदन से समझा जा सकता है जिसके द्वारा उम्मीदवारों के जोड़े में 90% से अधिक संख्या-में प्रश्न हैं, जिनमें गलत उत्तर हैं। समान गलत उत्तर (IWWs) प्रश्नों की कुल संख्या के एक अलग सेट के लिए न्यूनतम संख्या-होनी चाहिए0: (i) 50 आइटम परीक्षण के लिए, WW 5 या अधिक से अधिक होना चाहिए; (ii) जहां प्रश्नों की कुल संख्या 75 है, समान गलत उत्तर न्यूनतम 7 होने चाहिए, आदि इत्यादि। दस्तावेज़ आगे इस प्रकार बताता है:

"यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानदंड (ए) के तहत उम्मीदवारों ने सभी उचित संदेहों से परे अनुचित साधनों का उपयोग किया है।

यह अच्छी सटीकता के साथ संयोग से होने वाली ऐसी घटना की बहुत कम संभावना के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि मानदंड (बी) के तहत उम्मीदवारों ने अनुचित साधनों का उपयोग किया है।

उक्त दस्तावेज़ के अन्य सामग्री भागों को नीचे उद्धृत किया गया है:

"अनुचित साधनों के उपयोग के मामलों की पहचान के लिए आई.बी.पी.एस. में अपनाई गई प्रक्रिया:

(i) आई.बी.पी.एस. में अनुचित साधनों के उपयोग के मामलों की पहचान करने के लिए किसी विशेष केंद्र (शहर/कस्बे) में सभी परीक्षाओं के वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में उपस्थित होने वाले सभी उम्मीदवारों के जवाबों का विश्लेषण करने की प्रथा है।

(ii) आई.बी.पी.एस. ने अंतर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत पद्धति के आधार पर ऐसे मामलों की पहचान करने के लिए स्वदेशी रूप से सॉफ्टवेयर विकसित किया है। प्रत्येक उम्मीदवार के जवाबों की तुलना प्रत्येक केंद्र (शहर/कस्बे) में शेष सभी उम्मीदवारों के जवाबों से की जाती है और समान प्रतिक्रियाओं के लिए उनका मिलान किया जाता है। यह सॉफ्टवेयर उन सभी युग्मों की रिपोर्ट तैयार करता है जिनमें समान प्रतिक्रियाएं होती हैं और मुख्यत समान गलत प्रतिक्रियाएं होती हैं।

(iii) इस रिपोर्ट की आई.बी.पी.एस. विशेषज्ञों के समूह द्वारा आलोचनात्मक समीक्षा की जाती है। विशेषज्ञ समूह अनुचित साधनों के उपयोग की रिपोर्टिंग पर निर्णय लेते समय समान गलत उत्तरों के अलावा निम्नलिखित पर विचार करता है और अंतिम रिपोर्ट समिति द्वारा विश्लेषण का समर्थन करने वाले अन्य कारकों की समीक्षा करने के बाद ही तैयार की जाती है और मामलों को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए बैंक को अग्रेषित किया जाता है:

(1) किसी भी यादृच्छिक/पैटर्न अंकन का साक्ष्य

(2) 'आंतरायिक' और 'अंत' के समान मिलान ने प्रश्नों को छोड़ दिया

(3) आइटम जो अन्यथा केंद्र में अलग-अलग उत्तर दिखाते हैं

(4) उम्मीदवारों के एक सामान्य समूह द्वारा नकल के साक्ष्य।

आई.पी.बी.एस. इन उम्मीदवारों को अपनी ही परीक्षाओं (सीडब्ल्यूई)

के रिजल्ट से हटा देता है। अन्य सभी परीक्षाओं के लिए, रिपोर्ट संबंधित संगठन को भेजी जाती है।

24. न्यायालय सचेत है कि प्रौद्योगिकी अक्सर नागरिकों को सशक्त बनाती है; साथ ही इसका दुरुपयोग करने की क्षमता भी है। इस मामले के तथ्यों के संदर्भ में, यह न्यायालय अपीलकर्ता के इस कथन से सहमत नहीं है कि ठोस सामग्री या सबूत के बिना, एसबीआई आम तौर पर उम्मीदवारों और विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा "अनुचित साधनों" के रोजगार का अनुमान नहीं लगा सकता था। सूचना प्रसारित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग - या तो पाठ संदेश के रूप में या छिपे हुए श्रवण उपकरणों के उपयोग से जो अनिर्धारित हो जाते हैं, स्थापित करना कठिन हो सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि एलपीए 155/2013 पृष्ठ 17 पैटर्न जो स्पष्ट हैं और वैज्ञानिक सूत्रों या सांख्यिकीय मॉडल के आवेदन पर फेंक दिए जाते हैं, जो प्राथमिक सामग्री की आगे की जांच की ओर जाता है, न्यायालयों द्वारा समाप्त कर दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, जो पैटर्न सामने आया, उससे पता चला कि गलत उत्तरों के संबंध में अपीलकर्ता के परिणाम कुछ अन्य उम्मीदवारों के साथ मेल खाते हैं जो नई दिल्ली केंद्र में उपस्थित हुए थे। आगे की जांच करने पर, संदेह की तर्कसंगतता को उनके उत्तरों के प्रयास के तरीके से मजबूत किया गया था। ये, न्यायालय की राय में, एसबीआई के लिए यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त आधार थे कि अनुचित साधनों को नियोजित किया गया था और उसके परिणाम को रोक दिया गया था। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा विवेक के प्रयोग में मांगे गए निर्देश अनुपलब्ध हैं। नतीजतन, यह न्यायालय पाता है कि एकल न्यायाधीश का आक्षेपित निर्णय और आदेश हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है। इसलिए, लागत के रूप में किसी भी आदेश के बिना अपील खारिज कर दी गई है।

ख) राजबीर सूरजभान सिंह (उपरोक्त):

"12. इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका एक निजी निकाय के खिलाफ भी सुनवाई योग्य है, बशर्ते वह सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन करती हो। इस सवाल का फैसला करते हुए कि क्या इकरीसैट अनुच्छेद 226 के तहत रिट

क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी है, इस न्यायालय ने कहा कि यह परिभाषित करना आसान नहीं है कि सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक कर्तव्य क्या है। यह यथोचित रूप से कहा जा सकता है कि ऐसे कार्य जो राज्य द्वारा अपनी संप्रभु क्षमता में प्रदर्शन योग्य कार्यों के समान या निकटता से संबंधित हैं, सार्वजनिक कार्य हैं। आईसीआरआईएसएटी की प्राथमिक गतिविधि कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना है, विशुद्ध रूप से स्वैच्छिक आधार पर, जो इस न्यायालय के अनुसार, सार्वजनिक कर्तव्य नहीं है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक के रूप में बैंकिंग व्यवसाय करने वाली एक निजी कंपनी को किसी भी वैधानिक या सार्वजनिक कर्तव्य को ले जाने वाली संस्था या कंपनी के रूप में नहीं कहा जा सकता है।

14. *फेडरल बैंक मामले में इस न्यायालय ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका एक अनुसूचित बैंक के खिलाफ इस आधार पर सुनवाई योग्य नहीं है कि बैंकिंग का व्यवसाय "सार्वजनिक कर्तव्य" अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आता है। चूंकि बैंकों में नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया आयोजित करने की प्रतिपक्षी की गतिविधि प्रकृति में स्वैच्छिक है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिपक्षी द्वारा कोई सार्वजनिक कार्य किया जाता है। भर्ती परीक्षा आयोजित करने के लिए प्रतिपक्षी पर कोई सकारात्मक दायित्व नहीं है, या तो वैधानिक या अन्यथा है। उपरोक्त कारणों से, हमारी सुविचारित राय है कि प्रतिपक्षी भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद के तहत रिट क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी नहीं है।*

ग) रवि कुमार कुल्हारी (उपरोक्त):

"15. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर ये रिट याचिकाएं कारणों से खारिज होने के योग्य हैं; सबसे पहले, प्रतिपक्षियों ने याचिकाकर्ताओं के परिणाम को रोकने के लिए विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक सचेत निर्णय लिया है क्योंकि वे अनुचित साधनों का उपयोग करते हुए पाए गए थे; दूसरा, यह न्यायालय विशेषज्ञ-समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रतिपक्षियों के निर्णय पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में नहीं बैठ सकता है, तीसरा, भारत संघ (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय प्रस्तुत मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है क्योंकि पूर्वोक्त मामले में व्याख्याताओं को नियुक्त किया गया था और

सेवाओं में शामिल होने के बाद उन्हें कोई अवसर दिए बिना समाप्त कर दिया गया था। प्रस्तुत मामलों में सुनवाई करते हुए याचिकाकर्ताओं का अभी तक चयन भी नहीं किया गया है और तीसरा, क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन के नियमों और शर्तों को सावधानीपूर्वक पढ़ने के बाद चयन प्रक्रिया में भाग लिया है, इसलिए उन्हें अशोक कुमार (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के मद्देनजर इसे चुनौती देने के लिए रोक दिया गया है और अंत में, मेरे विचार से प्रतिवादियों द्वारा विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के आधार पर विज्ञापन के खंड 10 (6) को लागू करने के लिए कोई अवैधता नहीं की गई है।

घ) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य (उपरोक्त):

"12. उच्च न्यायालय द्वारा इंगित की गई पहली दुर्बलता यह थी कि आरोप पत्र में उन दस्तावेजों या गवाहों के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था, जिन पर उसने आरोपों को साबित करने के लिए भरोसा करने का प्रस्ताव दिया था, न ही दस्तावेजों या गवाहों की कोई सूची संलग्न की थी। उच्च न्यायालय के अनुसार, उपस्थित अधिकारी भी आरोपित अधिकारी को दस्तावेजों और गवाहों की सूची प्रदान करने में विफल रहे। इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने यह भी बताया कि कार्यवाही के कार्यवृत्त से संकेत मिलता है कि जांच प्राधिकारी के समक्ष अड़तालीस और दस्तावेज पेश किए गए थे और शेष दस्तावेजों को 07.11.1997 को पेश करने की अनुमति दी गई थी। 07.11.1997 को, चौंतीस और दस्तावेज पेश किए गए और पूर्व 51 से 84 के रूप में चिह्नित किए गए। उच्च न्यायालय ने यह भी बताया कि आरोपों के समर्थन में बैंक द्वारा किसी भी गवाह की जांच नहीं की गई थी और इसलिए सरकारी व्यवसाय शाखा से संबंधित आरोपों को साबित करना वास्तव में बिना किसी सबूत के समर्थित निष्कर्ष था।

20. हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में भी त्रुटि की कि चूंकि आरोपों के समर्थन में किसी गवाह की जांच नहीं की गई थी, इसलिए यह बिना सबूत का मामला था। हमारे विचार से एकपक्षीय जांच में यदि आरोप सामान्य कार्य के दौरान रखे गए दस्तावेजों से उत्पन्न होते हैं तो उन आरोपों को सिद्ध करने के लिए किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है। जब आरोपित

अधिकारी जांच में शामिल नहीं होता है, तो वह यह तर्क नहीं दे सकता है कि जांच प्राधिकारी को उन दस्तावेजों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो उसे उपलब्ध नहीं कराए गए थे या खुलासा नहीं किए गए थे। बेशक, यहां तक कि एक पक्षीय जांच में भी, आरोपों को स्थापित करने के लिए कुछ सबूत आवश्यक हैं, खासकर जब आरोपित अधिकारी आरोपों से इनकार करता है, ऐसी स्थिति में अकाट्य दस्तावेजी साक्ष्य आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं।

क) तारा चंद व्यास (उपरोक्त):
"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री बी.डी शर्मा का तर्क है कि आरोपों के सबूत के लिए किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई और न ही उन्हें जिरह करने का कोई अवसर दिया गया और याचिकाकर्ता ने अपनी देयता पर विवाद किया है। परिणामस्वरूप, पूरी जांच रिकॉर्ड प्रथम दृष्ट्या स्पष्ट त्रुटि से दूषित हो गई थी। हमें इस विवाद में कोई दम नजर नहीं आता। आरोप लगाने का जोर इस बात पर था कि उन्होंने डीलरों को ऋण देने से पहले पर्याप्त सुरक्षा हासिल करके बैंक के हितों की रक्षा के लिए एक जिम्मेदार अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन नहीं किया था, और ऋणकर्ताओं को माल की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं की थी। यह दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है जो पहले से ही रिकॉर्ड का हिस्सा रहा है और इसकी प्रतियां याचिकाकर्ता को दी गई थीं। उन परिस्थितियों में, हमें नहीं लगता कि रिकॉर्ड के चेहरे पर कोई स्पष्ट त्रुटि है, जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि आरोपों को साबित करने के लिए निष्कर्षों के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया गया है। जांच अधिकारी ने प्रत्येक आरोप पर विस्तार से चर्चा की थी और कारण दिए थे जिन पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि आरोप साबित हुए थे। इसलिए, अपीलीय प्राधिकारी था। वे दीवानी अदालत की तरह नहीं हैं।

19. याचिकाकर्ता के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि सेवा न्यायशास्त्र में अगला नियम पदोन्नति के मामले में मार्गदर्शक सिद्धांत है। जब कभी किसी कर्मचारी को उसके कनिष्ठों द्वारा किसी प्रशासनिक त्रुटि या अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के कारण सौंप दिया जाता है, तो त्रुटि का पता चलते ही उसकी वरिष्ठता को उसके कनिष्ठों

की तुलना में वापस लाना पड़ता है या ऐसे कर्मचारी को आरोपों से मुक्त कर दिया जाता है।

20. हालांकि, प्रतिपक्षी(ओं)-बैंक के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों के अवलोकन पर, यह परिलक्षित होता है कि यदि आरोप व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम में रखे गए दस्तावेजों से पैदा होते हैं, तो उन आरोपों को साबित करने के लिए कोई मौखिक साक्ष्य आवश्यक नहीं है। जब आरोपित अधिकारी जांच में शामिल नहीं होता है, तो वह यह तर्क नहीं दे सकता है कि जांच प्राधिकारी को उन दस्तावेजों पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जो उसे उपलब्ध नहीं कराए गए थे या खुलासा नहीं किए गए थे। निस्संदेह, एकपक्षीय जांच में भी, आरोपों को स्थापित करने के लिए कुछ साक्ष्य आवश्यक होते हैं, विशेषकर जब आरोपित अधिकारी आरोपों से इनकार करता है, ऐसी स्थिति में अकाट्य दस्तावेजी साक्ष्य आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त होते हैं।

21. इस मामले में, दिनांक 31.03.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत, निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए गए थे:

"इस संबंध में आपके प्रतिवेदन पर विचार करने के उपरांत मैं अपने अस्थायी आदेश दिनांक 26.3.2004 को इस सीमा तक संशोधित करता हूँ कि आपको "WARNED" किया जावे। मेरा अंतिम आदेश दिनांक 31.3.04 संलग्न हैं।"

आदेश

3. मैंने श्री गुप्ता द्वारा उठाए गए मुद्दों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और निम्नानुसार टिप्पणी की है:

i) ईपीए की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों के तहत, यदि किसी भी परीक्षा में किसी भी प्रकृति के अनुचित अभ्यास का सहारा लेने का आरोप आरोपित कर्मचारी द्वारा स्वीकार किया जाता है तो यह "मामूली कदाचार" का गठन करता है, जबकि यदि कर्मचारी आरोप स्वीकार नहीं करता है और बाद में उसके खिलाफ साबित हो जाता है, तो यह "सकल कदाचार" का गठन करता है। दोनों कर्मचारियों के कदाचार पर विचार किया गया और तदनुसार उन्हें सजा दी गई। यद्यपि कोई भेदभाव या पूर्वाग्रह नहीं है जैसा कि आरोप लगाया गया है, लेकिन जैसा कि दोनों दंड "चेतावनी या निंदा" निपटान के एक ही खंड 6 (एच) में परिभाषित किए गए हैं, मैं ईपीए द्वारा दावा किए गए एकरूपता के लिए चेतावनी की सजा पर विचार कर सकता हूं।

ii) आई.बी.पी.एस. द्वारा प्राप्त रिपोर्ट पर इस संबंध में बनाए गए नियमों के तहत बैंक द्वारा विचार किया गया था। आई.बी.पी.एस. के खिलाफ समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्ट, उदाहरण मामले में किसी भी तरह से इसकी विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करती है। इस प्रकार, आपत्ति को खारिज कर दिया जाता है।

iii) कर्मचारी का प्रदर्शन और अन्य उपलब्धियां उसके कदाचार की गंभीरता तय करते समय प्रासंगिक नहीं हैं और न ही यह प्रस्तुत मामले में उसकी दोषीता को कम करता है। बल्कि पूर्वव्यापी तिथि से कैडर में उनकी पदोन्नति प्रबंधन की ओर से पक्षपात के उनके आरोप के खिलाफ बोलती है। इसलिए, मुझे

उनकी उपरोक्त आपत्तियों में कोई योग्यता/तथ्य नहीं मिला।

4. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, ईपीए द्वारा दावा की गई एकरूपता के लिए, एक बार फिर रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री को ध्यान में रखते हुए, मैं अपने अस्थायी आदेश को इस हद तक संशोधित करता हूं और अंत में निर्णय लेता हूं कि श्री अनिल किशोर गुप्ता को चेतावनी दी जाए कि वे अपने सेवा रिकॉर्ड में इस आशय के उपयुक्त नोट के साथ इस संबंध में अधिक सावधान रहें।

22. दिनांक 05.08.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत अपीलीय प्राधिकारी ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए:

"2 - इस संबंध में अपीलीय अधिकारी द्वारा आपकी अपेल पर विचारोपरांत पारित आदेश दिनांक 4 अगस्त 2004 संलग्न है जिसके द्वारा आपकी अपील को अस्वीकृत / निरस्त कर दिया है।"

<u>आदेश</u>

4. मैंने आरोपपत्र, उसके उत्तर, जांच कार्यवाही, बचाव संक्षिप्त, जांच अधिकारी के निष्कर्षों, प्रस्तावित सजा के अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश और अपीलकर्ता के प्रस्तुतिकरण आदि सहित रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री के माध्यम से जाने के बाद अपील के आधारों की सावधानीपूर्वक जांच की है और मेरी टिप्पणियां निम्नानुसार हैं: -

(i) इस मामले में जांच 03-12-2003 को पूरी कर ली गई थी और प्रस्तुतकर्ता अधिकारी का संक्षिप्त विवरण उसी दिन प्राप्त हो गया था लेकिन जांच अधिकारी को बचाव संबंधी जानकारी 22-12-2003 को ही प्राप्त हो सकी, जिसने विचार-विमर्श के बाद उसे अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया। अनुशासनिक प्राधिकारी ने बचाव पक्ष सहित रिकार्ड में उपलब्ध संपूर्ण सामग्री को ध्यान में रखते हुए दिनांक 23.03.2004 को अपना अनंतिम आदेश पारित किया जो अपीलकर्ता को 27.03.2004 को तामील किया गया। अनंतिम आदेश के विरुद्ध मांगी गई अपीलकर्ता की प्रस्तुतियाँ अनुशासनिक प्राधिकारी को 30.03.2004 को प्राप्त हुईं, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ जांच अधिकारी के निष्कर्षों का बार-बार संदर्भ दिया। इस प्रकार, मैंने पाया कि बैंक में अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है और इस विषय पर किसी भी प्रक्रियात्मक नियम या कानून का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है, जिससे अपीलकर्ता पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो सकता है।

(ii) अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा जिस साक्ष्य पर भरोसा किया गया है वह बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान (आई.बी.पी.एस.), मुंबई, जो एक स्वतंत्र विशेषज्ञ निकाय है जिसे परीक्षा आयोजित करने का कार्य सौंपा गया था, द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट है। रिपोर्ट में अनुचित साधनों की नकल / उपयोग करने के लिए स्थापित उम्मीदवारों के मेरिट सूचीबद्ध जोड़े की विश्लेषणात्मक तारीख दिखाई गई है। डेटा संभाव्यता के सिद्धांत पर आधारित प्रतीत

होता है, जो परीक्षा समाप्त होने के बाद परीक्षणों में इस तरह के कदाचार की जांच करने में एक स्वीकृत वैज्ञानिक सूत्र है। उम्मीदवारों की जोड़ी में 12 समान गलत उत्तर और 4 बेमेल हैं जो मानदंडों के तहत सभी उचित संदेहों से परे अनुचित साधनों के उपयोग का स्थापित मामला है। इस प्रकार, गणना के वैज्ञानिक आधार पर स्थापित तथ्य अपीलकर्ता के खिलाफ साबित आरोपों को धारण करने के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं।

(iii) आई.बी.पी.एस. ने अपीलकर्ता और श्री ए.के बार्कले द्वारा उनके द्वारा उनकी संबंधित उत्तर पुस्तिकाओं में दिए गए उत्तरों के विश्लेषण के आधार पर अनुचित साधनों के उपयोग के मामले का पता लगाया। श्री बार्कले ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया लेकिन अपीलकर्ता ने स्वीकार नहीं किया और इनकार कर दिया। 16 अप्रैल 2002 को द्विपक्षीय समझौते के पैरा 7(एम) और 5(ओ) में निहित नियमों के तहत, श्री बार्कले के कदाचार को "मामूली कदाचार" और अपीलकर्ता के "सकल कदाचार" के रूप में माना जाता था, जो पैरा-8 और पूर्वोक्त के तहत दंडनीय था। तदनुसार, दोनों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही शुरू की गई थी और उनके कदाचार की प्रकृति, विषय-वस्तु और गंभीरता के अनुसार सजा दी गई थी। इसलिए, अपीलकर्ता को दी गई सजा उचित, पर्याप्त और न्यायसंगत है।

(iv) अपीलकर्ता के पिछले अच्छे रिकॉर्ड पर विचार करने का दावा उसकी चूक के लिए बाहरी होने के कारण मेरे समक्ष उसके मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत मान्य नहीं है।

5. उपरोक्त के मद्देनजर और रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री का एक स्वतंत्र मूल्यांकन करते हुए, मेरा विचार है कि अपीलकर्ता ने कोई महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं उठाया है और इस प्रकार कोई भी आधार सामने लाने में विफल रहा है जो अनुशासनात्मक प्राधिकरण के आदेश में मेरे हस्तक्षेप को आकर्षित कर सकता है।

6. इसलिए, मैं एक निंदा दंड देने के आदेश की पुष्टि करता हूं और अपील को अस्वीकार करता हूं। मैं उसी के अनुसार आदेश देता हूं।

23. दिनांक 04.09.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत, याचिकाकर्ता को वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था और लालगंज शाखा, जिला प्रतापगढ़ में तैनात करने का निर्देश दिया गया था।

24. यहां तक कि, यदि प्रतिपक्षी(ओं) - बैंक के मामले को उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार किया जाता है और यदि याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुचित साधनों का उपयोग करने का आरोप साबित हो जाता है और परिणामस्वरूप, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उसे अपनी सेवा पुस्तिका में इस संबंध में एक उपयुक्त नोट बनाकर चेतावनी जारी की गई थी, जिसकी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी पुष्टि की गई थी और प्रतिपक्षी(ओं) द्वारा किसी भी समय कोई संकेत नहीं दिया गया था यह शर्त कि याचिकाकर्ता 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्ति प्रदान करने के

लिए लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा, यदि समान रूप से स्थित व्यक्तियों को समान प्रदान किया गया है, तो उसे इससे वंचित नहीं किया जा सकता है।

25. यह प्रतिपक्षी(ओं) का विशिष्ट मामला है कि बैंक के मानदंडों के अनुसार, याचिकाकर्ता का नाम, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन था, पर विचार नहीं किया जा सका और इसलिए, उसे 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सका। एक बार, उसे "चेतावनी" की सजा दी गई है और इस संबंध में एक नोट उसकी सेवा पुस्तिका में बनाया गया है, 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने का कोई अवसर नहीं है।

26. एक सरकारी कर्मचारी को वरिष्ठता का नुकसान जिसके परिणामस्वरूप पदोन्नति की संभावनाओं, उच्च वेतन और परिलब्धियों का नुकसान उसके लिए गंभीर परिणाम का मामला है।

27. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों को आकर्षित नहीं करते हैं।

28. पूर्वोक्त कारणों को देखते हुए, रिट याचिका अनुमति देने योग्य है और एतदद्वारा इसकी **अनुमति** दी जाती है।

29. आक्षेपित अनुशासनात्मक आदेश दिनांक 31.03.2004, अपीलीय आदेश दिनांक 05.08.2004 के साथ-साथ याचिकाकर्ता को वरिष्ठ सहायक के पद पर नियुक्त करने वाले दिनांक 04.09.2004 के आदेश को एतदद्वारा रद्द किया जाता है।

30. परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाती है जिसमें प्रतिपक्षी(ओं) - बैंक को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को 01.04.2002 से वरिष्ठ सहायक के रूप में नियुक्त किए जाने वाले सभी परिणामी लाभों के साथ अगले सभी उच्च पदों पर आगे पदोन्नति सहित सभी परिणामी लाभों के साथ व्यवहार करे।

31. उक्त प्रक्रिया किसी भी स्थिति में इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति प्रतिपक्षियों के समक्ष पेश किए जाने की तारीख से 'आठ सप्ताह के बाद' पूरा नहीं किया जाना चाहिए।

32. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 8 ILRA 924

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 9268 वर्ष 2022

सुनील कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मो. आतिफ, श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए. सेवा विधि - केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल - स्थानांतरण - परिपत्र संख्या 134 दिनांक 25.09.2017 - खंड 12 और 13 - स्थानांतरण नीति और दिशानिर्देश - देश को सीआईएसएफ को तैनात करने के लिए आठ क्षेत्रों में विभाजित किया गया है - दिशानिर्देश कर्मियों को एक निश्चित अवधि के लिए गृह क्षेत्र में तैनात करने की अनुमति देते हैं - उल्लंघन - प्रभाव - स्थानांतरण में हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत और इसके अपवाद निर्धारित - माना गया, हालांकि स्थानांतरण सेवा की अनिवार्यता में है, एक कर्मचारी के पास पोस्टिंग का विकल्प नहीं हो सकता है और प्रशासनिक परिपत्र और दिशानिर्देश स्थानांतरण नीति के एक तरीके के रूप में किसी कर्मचारी को रिट कोर्ट द्वारा इसे लागू करने योग्य बनाने का कोई निहित अधिकार नहीं दे सकते हैं, लेकिन उपरोक्त नियम के लिए अच्छी तरह से रखे गए अपवाद हैं, जैसे विवेक का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग, कर्मचारी के पूर्वाग्रह के लिए मौद्रिक लाभों को प्रभावित करने वाला स्थानांतरण, वरिष्ठता को परेशान करने वाला विवेक का भेदभावपूर्ण प्रयोग या उनके पूर्वाग्रह के लिए समान रूप से असमान लोगों से मिलना। नीतिगत दिशानिर्देशों या कार्यकारी निर्देशों के उल्लंघन के मामले में भी, न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है - *दुर्गेश कुँवर के मामले* पर भरोसा किया गया। (अनुच्छेद 24)

बी. सेवा विधि **- भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - न्यायिक समीक्षा - प्रशासनिक निर्णय - हस्तक्षेप का दायरा - पारित गुप्त आदेश - अनुमति - दिमाग का प्रयोग न करना - प्रभाव - तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश, अच्छे प्रशासन के लिए कितना मौलिक है - माना गया, जिस तरह से एक बहुत ही गुप्त आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया गया है, रिकॉर्ड के सामने दिमाग का प्रयोग न करना स्पष्ट रूप से लिखा है - एक प्रशासनिक प्राधिकारी को निर्णय लेते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसका निर्णय उस पहलू से अच्छी तरह से अवगत है जिसके साथ एक कर्मचारी द्वारा अपने स्थानांतरण पर सवाल उठाते हुए अभ्यावेदन किया गया है - कर्तव्य के प्रशासनिक निर्वहन के अभ्यास में, एक कार्यकारी को अच्छे प्रशासन के लिए इसके मौलिक के रूप में लिए जाने वाले निर्णय के लिए कारण बताने चाहिए - उच्च न्यायालय ने दिनांक 14.06.2022 को दिए गए अभ्यावेदन को खारिज करने के आदेश को कानून की दृष्टि से अस्थिर माना क्योंकि यह आख्यापक नहीं था - एस. एन. मुखर्जी के मामले पर भरोसा किया गया। (28 और 29)**

रिट याचिका स्वीकार की गई (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. पंजाब एंड सिंध बैंक और अन्य बनाम दुर्गेश कुवंर; एआईआर 2020 एससी 3040

2. रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण (1979) 3 एससीसी 489

3. भारत संघ बनाम केपी जोसेफ एवं अन्य; (1973) 1 एससीसी 194

4. धर्मेंद्र कुमार सक्सेना बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; 2013 (7) एडीजे 153

5. परम सिंह व अन्य बनाम यूपी राज्य व अन्य; 2018 एससीसी ऑनलाइन आल 5677

6. डॉ. अमरजीत सिंह अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य; (1975) 3 एससीसी 503

7. एसएन मुखर्जी बनाम भारत संघ; 1990 (4) एससीसी 594

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता मोहम्मद आतिफ और सभी प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने इस याचिका के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है, जिसके दिनांक 09.6.2022 के आदेश पर हमला किया गया है जिसके तथ्य उसे केन्दीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सी.आई.एस.एफ.) में उप-निरीक्षक के रुप में कार्य करते हुए वाराणसी के हवाई अड्डे से भुवनेश्वर के हवाई अड्डे पर स्थानान्तरित कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता इस आदेश से स्थापित है कि उसने 11 वर्ष 6 माह से अधिक समय तक अपने गृह क्षेत्र से बाहर सेवा की है और याचिकाकर्ता , प्रतिवादीगण द्वारा घोषित स्थानान्तरण एवं समायोजन की अपनी नीति के अनुसार गृह क्षेत्र में पोस्टिंग दिये जाने का हकदार था विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर भी उक्त आदेश की आलोचना की है जब एक बार उन्हे गृह क्षेत्र से बाहर पोस्टिंग स्थानों पर सेवा देने के वाद वर्ष 2018 में अपने गृह क्षेत्र वाराणसी में पोस्टिंग दी गई है तो उन्हे अधिशेष कर्मचारी घोषित नहीं किया जा सकता है कि उसके गृह क्षेत्र से बाहर किसी अन्य स्थान पर समायोजित किया जाए । यह दलील दी गई है कि उनसे कनिष्ट लोगो को वाराणसी से पटना लाकर गृह क्षेत्र मे समायोजित कर दिया गया। इस सम्बन्धक में याचिकाकर्ता के कनिष्ठो में नामित अनुरेखा कुमारी, अक्षिता सिंहा और भरत चौबे के नाम लिए गये , जिन्हे उनके अनुसार पहली बार मे उनके गृह क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिए था। इस प्रकार वह स्थानान्तरण और पोस्टिंग के मामले में उसके साथ भेदभाव का अनुरोध करता है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने उपरोक्त तर्को के समर्थन में विभाग द्वारा बनाई गई

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी

उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

स्थानान्तरण नीति /नियमों पर भरोसा किया है जो विभिन्न क्षेत्रों में कांस्टेबलो, हेड कांस्टेबलो, सहायक उप-निरीक्षकों और निरीक्षको द्वारा व्यतीत की जाने वाली कार्यकाल अवधि का प्रावधान करता है । सेवा कैरियर के दौरान और जिसमें बुनियादी प्रशिक्षण की अवधि शामिल नहीं होगी।

5. अनुच्छेद 12 के अनुसार यह तर्क दिया गया है कि सेवा के पहले, दूसरे,तीसरे और चौथे कार्यकाल की अवधि को गृह क्षेत्र से बाहर सात वर्ष ,गृह क्षेत्र मे 12 वर्ष और फिर गृह क्षेत्र से बाहर छह वर्ष के विभाजन के साथ माना जाता है और चार साल गृह क्षेत्र में। उसका कहना है कि याचिकाकर्ता वर्ष 2006 में प्रारम्भिक नियुक्ति की तारीख से 11 साल एवं 6 महीने से अधिक समय बिता चुका है , वह गृह क्षेत्र मे पोस्टिंग के योग्य है और शायद यही कारण है कि उसे 03.04.2018 को वाराणसी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला स्थान है क्योकि याचिकाकर्ता का स्थायी निवास बिहार राज्य के कैमूर जिले में स्थित है और वाराणसी जिला पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है जिसमें स्थानान्तरण नीति/ नियमों के खण्ड 13 के तहत बिहार के जिले शामिल है।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि स्थानान्तरण और पोस्टिंग नियमों में खण्ड 10(सी) और खण्ड 39(XX) के तहत स्थानान्तरण और पोस्टिंग के मामलो में प्राधिकरण की विवेकाधीन शक्तियाँ भी शामिल है । उनके अनुसार यह स्थानान्तरण नीति/ नियम कर्मियो के स्थानान्तरण और पोस्टिंग के लिए व्यापक मापदण्ड और अन्तिम निर्णय सी.आई.एस.एफ. के सक्षम प्राधिकारी पर निर्भर करेगा, क्योंकि खण्ड 39 (XX) के अनुसार ये स्थानान्तरण नियम किसी भी कर्मी को बिना कोई कारण बताये भी एक विशेष स्थान पर तैनात करने में सक्षम प्राधिकारी के विवेक के रास्ते मे नहीं आयेगें और यह तर्क दिया जाता है कि स्थानान्तरण , नीति /नियम या अधिसूचनाएँ या परिपत्र चाहे इसे किसी भी नाम से जाना जाता हो लागू करने योग्य नहीं है क्योंकि यह पूरी तरह से प्रशासनिक निर्देश है और इनका उद्देश्य प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दिशा निर्देश प्रदान करता है।

7. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का आवेदन जो उसने पटना मे पोस्टिंग के लिए दिया गया था जो कि गृह क्षेत्र की अन्तर्गत आयेगा, जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 14.6.2022 को आदेश पारित करके पहले ही खारिज कर दिया गया है जो चुनौती के अधीन नही है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त हलफनामें के प्रत्युत्तर में यह प्रस्तुत किया है कि भले ही नीति अधिकारियों के पास नीहित विवेकाधीन शक्तियों के साथ व्यापक सिद्धान्तों को निर्धारित करती है, लेकिन इस शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण

परिस्थितियों में ही किया जाना है । प्राधिकरण को अपनी नीतियों और दिशानिर्देशों का पालन करना चाहिए अन्यथा विवेक के नाम पर किसी कर्मचारी को विभिन्न बाहरी विचारों के लिए और कभी-कभी सनक के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करना पूरी तरह से अनियंत्रित शक्ति होगी । इसलिए उनका तर्क है कि नीति/ नियम/ निर्देश/ अधिसूचना या परिपत्र को चाहे किसी नाम से पुकारा जाय वह बेकार कागज साबित होगा। उनका तर्क है कि किसी प्राधिकारी में नीहित कोई भी प्रशासनिक शक्ति कानून के

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

शासन वाले समाज में अनियंत्रित नहीं हो सकती है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि उन्हे दिनांक 14.06.2022 के आदेश को चुनौती देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह किसी भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया है। प्रस्तुत दिशानिर्देशो के खण्ड 10 के उपखण्ड (i) के अनुसार मामले में सक्षम प्राधिकारी महानिर्देशक (सी.आई. एस.एफ.) है । आगे यह तर्क दिया गया है कि यदि इसे एक प्रत्ययोजित शक्ति के रुप में लिया जाता है , तो प्रत्यायोजन एक सक्षम प्राधिकारी के पास होना चाहिए जिसके पास उस क्षेत्र से ऊपर क्षेत्रीय अधिकार हो, जिससे याचिकाकर्ता /कर्मचारी संवंधित है, न कि उस रैंक का अधिकारी जिसके पास है। उत्तरी क्षेत्र के डी.आई.जी. ने आदेश पारित किया । उनका कहना है कि याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि वह पूर्वी क्षेत्र से है।

10. संवंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं औरबार में उठाए गये उनके तर्कों को सुनने के बाद , मेरे विचार में इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए दो मुख्य मुद्दे उठते है जो इस प्रकार है:-

(क) - क्या प्राधिकारी स्थानान्तरण नीति के तहत अपने स्वयं के स्थानान्तरण नियमों और दिशा निर्देशों से बधे है, जिन्हें उन्होंने स्वयं अपने विवेक से बनाया है और इसके किसी भी उल्लंघन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा न्यायिक हस्तक्षेप को आवश्यकता नहीं होगी;

(ख) क्या प्रधिकारियों द्वारा वरिष्ठता के मामले में याचिकाकर्ता के दावे को मंजर अंदाज करना उचित था , जबकि उसे उस क्षेत्र के भीतर उस स्थान पर पोस्टिंग दी गई थी , जिसके लिए याचिकाकर्ता अपने गृह क्षेत्र के रुप में हकदार होगा।

11. मेरे मतानुसार, यदि पहला प्रश्न याचिकाकर्ता के पक्ष में अनुतरित है तो दूसरे प्रश्न को केवल इस हद तक देखने की आवश्यकता होगी कि क्या प्रतिवादीगण द्वारा जिस आदेश पर भरोसा किया गया है , उसके दावे को खारिज कर दिया है। याचिकाकर्ता पर्याप्त रुप से न्यासंगत है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है या नहीं।

12. जहाँ तक स्थानान्तरण नीति का सवाल है ,मैने सम्पूर्ण स्थानान्तरण नीति और उसमे दियेगये दिशानिर्देशो को ध्यान से पढा है जो परिपत्र संख्या -134 दिनांक 25.09.2017 द्वारा जारी किए गये है।

13. केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल वह सुरक्षा बल है जिसे केन्द्र सरकार द्वारा आवश्यक हवाई अड्डे और अन्य सार्वजनिक औद्योगिक क्षेत्रों और सरकारी प्रतिष्ठानो पर सुरक्षा सुनिश्चित करने के विशिष्ठ उद्देश्य से अस्तित्व में लाया गया है ।यह कर्तव्य सुरक्षा अधिकारियों द्वारा निभाया जाना है जो देश के विभिन्न स्थानों से आते है और करनी होती है ताकि पूरे दिन हवाई अड्डे अन्य औद्योगिक स्थानो और सरकारी प्रतिष्ठानों की सुरक्षा रात और यानी 24x7 सुनिश्चित की जा सके। इसे ध्यान में रखते हुए और बल की बेहतर तैनाती सुनिश्चित करने के लिए खण्ड 13 के तहत विभिन्न क्षेत्रों के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किये गये हैं । खण्ड 13 को पुन: प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है :-

" 13. इस नीति के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित क्षेत्र होगें।

(i) उत्तरी क्षेत्र - इसमें पूर्वी क्षेत्र के तहत निम्नलिखित पूर्वी उ0प्र0 के जिलो को छोडकर जम्मू-कश्मीर , पंजाब , हिमान्चल प्रदेश , हरियाणा , राजस्थान, चंडीगढ , उत्तराखण्ड और उ0प्र0 शामिल है।

(ii) एनसीआर क्षेत्र - इस क्षेत्र में एनसी आर जोन,एस एस जी, जीबीएस ,डी एम आर सी और समय समय पर एनसी आर क्षेत्र के तहत अधिसूचित अन्य इकाइयाँ शामिल है।

(iii)पूर्वी क्षेत्र - इसमें बिहार ,झारखण्ड और पूर्वी उ0प्र0 (वाराणसी, जौनपुर, गाजीपुर, चन्दौली, मिर्जापुर, संत रविदास नगर, सोनभद्र , देवरिया, गोरखपुर, कुशीनगर , महराजगंज, अम्बेडकर नगर, फैजाबाद , सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, बहराइच , बलरामपुर, गोण्डा,श्रावस्ती, बस्ती, संतकबीर नगर, सिद्धार्थनगर, आजमगढ , बलिया, मऊ , इलाहाबाद , फतेहपुर, कौशाम्बी, प्रतापगढ जिले शामिल हैं।

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

(iv)दक्षिण पूर्वी सेक्टर - इसमें पश्चिम बंगाल , उडीसा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और सिक्किम शामिल है।

(v) उत्तर पूर्वी सेक्टर - आसाम, अरुणाचल प्रदेश , नागालैण्ड , मणिपुर, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा।

(vi)केन्द्रीय सेक्टर - मध्य प्रदेश और छतीसगढ़।

(vii) पश्चिमी सेक्टर - महाराष्ट्र, गोवा, गुजरात, दमन और दीव और दादरा नगर हवेली।

(viii) दक्षिण सेक्टर - आंध्र प्रदेश , कर्नाटक , केरल, तेलंगाना, तमिलनाडु, पुडुचेरी और लक्षद्वीप।

14. उपरोक्त खण्ड को पढने पर यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल को तैनात करने के लिए देश को आठ क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। जोकि पूर्वी क्षेत्र में सम्पूर्ण बिहार, झारखण्ड और पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य शामिल है , जिसमें जिला वाराणसी भी शामिल है जब स्थानान्तरण और समायोजन का आदेश पारित किया गया था तब याचिकाकर्ता उस समय तैनात था।

15. इसलिए यह सवाल उठता है कि क्या किसी कल्याणकारी राज्य के लिए यह वयवहारिक होगा कि वह पूरे सेवा काल मे एक निश्चित अवधि केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल या उनके गृह जिलों/ सेक्टरों के आसपास कर्मियों या अधिकारियों की पोस्टिंग पर विचार करें। विचार करे कि यह होगा और वह यह है कि प्रश्न में केन्द्रीय अधिसूचना कार्यकाल की पोस्टिंग के लिए भी प्रदान करती है और खण्ड 12 के तहत नीति में पोस्टिंग का प्रावधान है , जिसे यहाँ पुन: प्रस्तुत किया गया है:

" <u>12, पोस्टिंग की अवधी</u>

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

एन जी ओ के संबन्ध में पोस्टिंग के लिए आउट आफ होम सेक्टर (ओ एच एस) और होम सेक्टर (एच एस) कार्यकाल रिक्तियों की उपलब्धता परिचालन और प्रशासनिक जरुरतों और नए प्रेरणों के अधीन है। विवरण निम्नानुसार है:

<u>सिपाही एच सी एस , एसस आईसस , एसआई और सभी क्षेत्रों के निरिक्षकों के लिए गृह क्षेत्र/ गृह क्षेत्र से बाहर का इस परिपत्र में अपवादो का उल्लेख किया गया है-</u>

बुनियादी प्रशिक्षण अवधि : न तो गृह क्षेत्र में गिना जायेगा और न ही गृह क्षेत्र से बाहर -

(क) प्रथम कार्यकाल- 07 वर्ष (बुनियादी प्रशिक्षण को छोड कर)

(ख) द्वितीय कार्यकाल- 12 वर्ष

(ग) तृतीय कार्यकाल - 06 वर्ष

(घ) चतुर्थ कार्यकाल(शेष सेवा) - गृह क्षेत्र

टिप्पणी:

1. तृतीय कार्यकाल के लिए अन्तरक्षेत्रीय स्थानान्तरण के दौरान व्यक्तियों से प्राथमिकता के क्रम में ओ एच एस एस में से गृह क्षेत्र से बाहर (ओ एच एस) के बारे में उनकी पसन्द पूछी जायेगी और उन्हे समायोजित करने का प्रयास किया जायेगा जो रिक्तियों की उपलब्धता के अधीन योग्यता के आधार पर गृह क्षेत्र से बाहर (ओ एच एस) विकल्प होग।

स्पष्टीकरण

(i) योग्यता पहले से ही सेवा की गई ओ एच एस की अवधि (महीनो में) पर आधारित होगी।

(ii) बाराबरी की स्थिति में, अधिक आयु वालो को प्राथमिकता दी जायेगी।

यदि दो या दो से अधिक कर्मियों के बीच अभी भी समानता है तो प्राथमिकता उन लोगों को दी जायेगी जो पहले सी आई एस एफ मे शामिल हुए हैं (नियुक्ति की तिथि)

2. गृह क्षेत्र में तैनाती पर विचार गृह क्षेत्र में रिक्तियों की उपलब्धा के आधार पर किया जायेगा (रिक्तियों की गणना इस शर्त के साथ की जायेगी कि क्षेत्र मे 60 प्रतिशत से अधिक एच एस कर्मी नहीं होने चाहिए) यह दोनों एच एस कार्याकालो (द्वितीय और चतुर्थ कार्यकाल) के लिए लागू होगा।

3. अन्तरक्षेत्रीय स्थानान्तरण के दौरान यदि कोई व्यक्ति ओ एच एस से एच एस तैनाती के लिए पात्र हो गया है, तो वह अधिकतम दो ओ एच एस (जहाँ वह वर्तमान मे तैनात किया गया है उसके अलावा) के लिए अपनी प्राथमिकता दे सकता है, जहाँ उसे तैनात किया जा सकता है । उसकी कम योग्यता के कारण उसे एच एस में तैनात नहीं किया गया है । हालांकि , एक बार अपनी पसन्द के अनुसार ओ एच एस मे तैनात होने के बाद, उसे एच एस तैनाती के लिए

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए

निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

फिर से बिचार करने से पहले इकाई के स्थान के आधार पर , लागू 02/03 वर्ष का पूरा कार्यकाल पूरा करना होगा। लेकिन ऐसी औ एच एस तैनाती को एच एस तैनाती में नहीं गिना जायेगा, भले ही उसने इसके लिए प्राथमिकता दी हो , क्योंकि एच एस तैनाती के कारण होने के बावजूद उसे अपने एच एस में समायोजित नहीं किया जा सका । यह दोनो एच एस कार्यकालों के लिए तैनाती पर लागू होगा। (द्वितीय और चतुर्थ कार्यकाल)"

16. उपरोक्त खण्ड स्पष्ट रुप से दर्शाता है कि सेवा की पूरी अवधि में, एक कार्मिक या अधिकारी वाल मे कुल मिलाकर लगभग 29-30 वर्ष की सेवा प्रदान करेगा जबकि अधिकतम अवधि वह गृह क्षेत्र से बाहर सेवा करेगा/ करेगी। यह अधिकतम 12 वर्ष की अवधि है जब उसे गृह क्षेत्र में तैनाती की अनुमति दी जायेगी। जैसा कि मैने पहले ही उपर पढा है कि गृह क्षेत्र आवश्यक रुप से कर्मियों के स्थायी पते का स्थान नहीं है , लेकिन इसमें एक बहुत बडा क्षेत्र शामिल है, उदाहरण के लिए , यदि कोई व्यक्ति बिहार राज्य से सम्बन्धित है, तो उसे झारखण्ड मे तैनात किया जा सकता है या पूर्वी उत्तर प्रदेश और यह सब गृह क्षेत्र के भीतर एक तैनाती के समान होगा । किसी को यह बताने की जरुरत नहीं है कि बिहार और झारखण्ड या झारखण्ड और बलिया जिले के बीच या बिहार के जिला कैमूर और पूर्वी क्षेत्र में आने वाले प्रतापगढ और कौशाम्बी जिलो के बीच कितनी दूरी है।

17. इसलिए , इन पारिस्थितियों में, यह तर्क दिया जाना उचित है कि नीति कर्मियों को गृह क्षेत्र में तैनाती देने को दृष्टि से बनाई गई थी। तैनाती मोटे तौर पर निश्चित रुप से अधिसूचना में निर्धारित दिशा- निर्देशों और सिद्धान्तों के अनुरुप की जाती है । हालांकि ,जहाँ तक इस तर्क का सवाल है कि दिशानिर्देशों पर केवल व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वे किसी भी स्थान पर तैनाती देने में प्राधिकारी द्वारा पयोग किये जाने वाले विवेक के लिए कोई बाधा नहीं बनाते है , मेरे विचार में यह सामान्य रुप से होगा , जहाँ किसी अधिकारी को किसी विशेष स्थान पर बार-बार तैनात करने के लिए विशेष परिस्थितियाँ सौपी जाती है , वहाँ इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए । अधिकारियो को सामान्य रुप से उनके द्वारा बनाये गये नियमो का पालन करना चाहिए और विवेक का प्रयोग करने की अधिभावी शक्ति केवल विशेष परिस्थितियो मे जहाँ स्थिति की मांग ही वहाँ होनी चाहिए । इसलिए आम तौर पर कोई विशेष कारण नहीं बताया जाता है , तो यह उम्मीद की जाती है कि सरकार निश्चित रुप से अपने स्वयं के दिशानिर्देशों पर भरोसा कर रही होगी जो निर्धारित किये गये है । आमतौर पर , नियम बनाने वाले प्राधिकारी का व्यवहारिक दृष्टिकोण है। देते हुए दिशानिर्देशों का पालन

करना चाहिए केवल असाधारण परिस्थितियों में ही प्राधिकरण दिशानिर्देशों को दरकिनार कर सकता है । यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कोई असाधारण परिस्थिति रखी गई हो । पूरे जवाबी हलफनामे में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है जो याचिकाकर्ता के वाराणसी हवाई अड्डे से भुवनेश्वर हवाई अड्डे में समायोजन की उचित ठहरा सके जो गृह क्षेत्र के बाहर पडता है।

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

18. याचिकाकर्ता को वर्ष 2018 में ही गृह क्षेत्र में तैनाती दी गई थी और इसलिए , उसे और अधिक अवधि के लिए जारी रखा जा सकता है था , लेकिन उसे अधिशेष कर्मचारी होने का कारण बताते हुए लागू आदेश के तहत भुवनेश्वर स्थानान्तरित कर दिया गया है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान उस कोर्ट की ओर आकर्षित किया है जिसे रिट याचिका के साथ अनुबन्ध -9 के रुप में जोडा गया है , जो दर्शाता है कि अनुरेखा कुमारी , भरत चौबे और अक्षिका सिंहा याचिकाकर्ताओं से कनिष्ट थे और उन्हें तैनाती दी गई थी , वाराणसी जो उनका गृह क्षेत्र भी है।

20. यह दावा किया गया है कि वे याचिकाकर्ता से कनिष्ठ थे इसलिए स्वाभाविक रुप से उन्होनें याचिकाकर्ता को तुलना में कम सेवा प्रदान की होगी।

21. अब याचिकाकर्ता और भरत चौबे के साथ तैनात राकेश कुमार को वाराणसी से पटना स्थानान्तरित कर दिया गया है . स्थानान्तरण नियमों के अनुसार , पटना भी गृह क्षेत्र में आता है क्योकि वाराणसी भी उसी क्षेत्र में आता है ।

22. इन परिस्थितियों में , जो व्यक्ति याचिकाकर्ता से कनिष्ठ थे उन्हें पहले अधिशेष कर्मचारी माना जाना चाहिए था और उन्हें क्षेत्र के बाहर तैनाती के एक अलग स्थान पर स्थानान्तरित किया जाना चाहिए।

23. इस प्रकार दिये गये तथ्यों और परिस्थितियों में मामले को सार्वजनिक हित में या प्रशासनिक अत्यावश्यकता में प्राधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय नहीं कहा जा सकता है , जो शक्तियाँ है जिन्हें विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलील के आलोक में लागू किया जा सकता है । प्रतिवादी को स्थानान्तरण नियमों के खण्ड 10 (सी) ए (xx) के तहत प्रावधान दिए गये है । यदि इस प्रकार की कार्यवाही स्थायी कानून है और इस न्यायालय के न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर कहा जाता है, तो यह निश्चित रुप से उस उद्देश्य और उद्देश्य को विफल कर देगा जिसके साथ नीति बनाई गई है।

24. यह न्यायालय कानून की अच्छी तरह से स्थापित स्थिति से अवगत है कि स्थानान्तरण सेवा की अत्यावश्यकता में होने के कारण , एक कर्मचारी के पास तैनाती और प्रशासनिक परिपत्रों और दिशानिर्देशों का विकल्प नहीं हो सकता है क्योंकि स्थानान्तरण नीति का एक तरीका किसी कर्मचारी को कोई नोहित अधिकार नहीं दे सकता है। यह याचिका न्यायालय द्वारा लागू करने योग्य है **(ए आई आर 2020 एस सी 3040: पंजाब एण्ड सिंद बैंक और अन्य बनाम दुर्गेश कुंवर)** लेकिन उपरोक्त नियम में अच्छी तरह से निर्धारित अपवाद है , जैसे विवेक का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग, कर्मचारी के पूर्वग्रह के लिए मौद्रिक लाभ को प्रभावित करने वाला स्थानान्तरण, भेदभावपूर्ण विवेक का प्रयोग वरिष्ठता को परेशान करता है या असमानो को समान रुप से उनके पूर्वाग्रह से बचाता है । यहाँ तक कि नीति दिशा निर्देशको या कार्यकारी निर्देशों के उल्लंघन के मामलों में भी , न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। **रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण और अन्य में: (1979) 3 एस सी सी 489**, उच्चतम न्यायालय ने बहुत स्पष्ट रुप से इस प्रकार कहा:

> **अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा**

यह प्रशासनिक कानून का एक सुस्थापित नियम है कि एक कार्यकारी प्राधिकारी को उसके द्वारा निर्धारित मानकों का कठोरता से पालन करना चाहिए, अपने कार्यो का न्याय किए जाने का दावा करता है और उल्लंघन में किसी कार्य के अमान्य होने के डर से उसे मानकों का ईमानदारी से पालन करना चाहिए । यह नियम श्रीमान न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर द्वारा विटरल्ली बनाम सैटन [359 यू.एस.535: विधि प्रकाशन (द्वितीय श्रृखला)10 12] में प्रतिपादित किया गया था , जहाँ विद्वान न्यायाधीश ने कहा:

एक कार्यकारी संस्था को उन मानकों का कडाई से पालन करना चाहिए जिनके आधार पर वह अपनी कार्यवाही का मूल्यांकन करने का दावा करती है । तदनुसार, यदि रोजगार से बर्खास्तगी एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है , भले ही ऐसी संस्था को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदार हो, उस प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए, ।प्रशासनिक कानून का न्यायिक रुप से विकसित नियम अब मजबूती से स्थापित हो गया है और अगर मैं जोड सकूँ तो यह सही भी है , जो कोई प्रक्रियात्मक तलवार लेगा वह तलवार से नष्ट हो जायेगा।

25. इससे पहले भी **भारत संघ बनाम के.पी. जोसेफ और अन्य: (1973)1 एस सी सी 19,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि:

> " आमतौर पर, एक प्रशासनिक आदेश कोई न्याय संगत अधिकार प्रदान नहीं करता है , लेकिन यह नियम अन्य सभी सामान्य नियमों की तरह अपवादों के अधीन है। यह न्यायालय संतराम शर्मा बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य (ए आई आर 1967 एस सी 1910) में आयोजित किया गया है । हालांकि सरकार वैधानिक नियमों , प्रशासनिक निर्देशों का उल्लंघन नहीं कर सकती है, फिर भी यदि संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गये नियम किसी विशेष बिन्दु पर चुप है , तो सरकार अन्तराल को भर सकती है और नियमों को पूरक कर सकती है और निर्देश जारी कर सकती है जो पहले से बनाए गये नियमों के साथ असंगत नहीं है और ये निर्देश होंगे जो सेवा की परिस्थिति को नियंत्रित करेगी। "

26. धर्मेन्द्र कुमार सक्सेना बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य : 2013 (7) एडीजे 153 के मामले में इस न्यायालय को एक समन्वय पीठ ने माना है कि :

> " 23..... सरकार कार्यकारी आदेशों / नीतियों से बंधी है । दिशानिर्देश इसका पालन करने के लिए बनाए गये है और बिना किसी उचित कारण के इसका उल्लंघन नहीं करने के लिए , जब भी सरकार अपनी नीतियों / दिशानिर्देशों / कार्यकारी निर्देशों से विचलित होती है तो आदेश को उचित ठहराने के लिए ठोस एवं मजबूत कारण होने चाहिए ; जब स्थानान्तरण आदेश को प्रतिनिधित्व के माध्यम से चुनौती दी जाती है , तो यह स्थापित करने के लिए अभिलेखो सामग्री होनी चाहिए कि निर्णय

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

सार्वजनिक हित में था और यह किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता है , अन्यथा आदेश रद्द हो सकता है तथा मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला मानते हुए खारिज कर दिया गया । अधिकारी अपने आदेशों को उचित नहीं ठहरा सकते कि कार्यकारी आदेशों का उल्लंघन पीडित व्यक्ति को कानूनी रुप से लागू करने योग्य अधिकार नहीं देता है , जैसा कि न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर ने कहा , "एक कार्यकारी संस्था को कठोरता से रखा जाना चाहिए, वे मानक ,जिनके आधार पर

वह अपनी कार्यवाही का मूल्यांकन करने का दावा करता है ।"

24. यह सच है कि सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह विचार किया है कि स्थानान्तरण मामलो में दिशानिर्देशों /नीति/ कार्यकारी आदेशो का उल्लंघन सरकारी कर्मचारियो को कोई कानूनी रुप से लागू करने योग्य अधिकार प्रदान नहीं करता है , लेकिन इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ध्यान से पढने पर यह भी स्पष्ट होता है कि उन सभी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि कार्यकारी निर्देशों / आदेशों के उल्लंघन के मामले में, सरकारी कर्मचारी उचित प्राधिकरण के समक्ष प्रतिनिधित्व कर सकता है और यदि ऐसा कोई प्रतिनिधित्व किया जात है तो उचित प्राधिकारी को उचित परिप्रेक्ष्य में और कानून के अनुसार इस पर विचार करना चाहिए।

27. समन्वय पीठ के उपरोक्त निर्णय को **परम सिंह और अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य : 2018 एससीसी सीधे संचार सम्पर्क एएलएल 5677** मामले में द्विपीठीय द्वारा अनुमोदन के साथ उदधृत किया गया था और कार्यकारी द्वारा प्रशासनिक निर्देशों के अनुपालन के मुद्दे पर द्विपीढिय द्वारा **डॉ0 अमरजीत सिंह अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य 1975)3 एससीसी 503,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया और अनुच्छेद 21,22,23 और 24 के माध्यम से इस प्रकार कहा है:

" 21. हम उक्त दृष्टिकोण से सहमत है । स्थानान्तरण नीति / दिशानिर्देशों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि शक्ति का प्रयोग सार्वजनिक हित में और कुशल सेवा के लिए किया जाना चाहिए । यह अनधिकृत उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है । हमने इसे धर्मेन्द्र कुमार सक्सेना (सुप्रा) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रमना दया राम शेट्टी बनाम भारतीय अन्तराष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण और अन्य (1979) 3 एस सी सी 489 और मामलों मे निर्धारित किया है , यह एक संवैधानिक फैसले में निर्धारित बुनियादी सिद्धान्त है , जिसे फैसले में संदर्भित किया गया है।

22. डॉ0 अमर जीत सिंह अहूलवालिया बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1975)3 एस सी सी 503 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विलियम विसेंट विटोरेल्ली बनाम फ्रेड ए. सीटन, आंतरिक सचिव , ईटी एएल., 359 यु.एस.535 (1959) मनु / यु एस एस सी/ 0176/1959 के मामले में श्रीमान

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और

सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को लागू किया , जहाँ विद्वान न्यायधीश ने कहा:

" एक कार्यकारी संस्था को उन मानको का कडाई से पालन करना चाहिए जिनके आधार पर वह अपनी कार्यावाही को आंकने का दावा करती है , सिक्योरिटीज एण्ड एक्सचेंज कमीशन बनाम चेनेरी कार्य, 318 यू.एस . 80, 318 यू.एस. 87-88 देखें। तदनुसार यदि रोजगार से बर्खास्तगी जो एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है , भले ही ऐसी संस्था को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदार हो, इस प्रक्रिया का इमानदारी से पालन किया जाना चाहिए। सर्विस बनाम डलेस ,354 यू.एस. 363 देखिए। प्रशासनिक कानून का यह न्यायिक रुप से विकसित नियम अब मजबूती से स्थापित हो गया है , और , अगर मैं जोड सकता हूँ , तो यह सही है । जो कोई प्रक्रियात्मक तलवार लेगा वह उस तलवार से नष्ट हो जायेगा।"

23. डॉ. अमरजीत सिंह अहलूवालिया (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रशासनिक निर्देशों को व्याख्या करते समय अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गये दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी । ब्रिटिश न्यायालय प्रशासनिक आदेशों पर रुढिवादी दृष्टिकोण अपनाते है। निम्नलिखित चर्चा और निष्कर्ष हमारे उद्देश्यों के लिए उपयुक्त और प्रासंगिक है:

" 8.....अब, यह सच है कि 25 अक्टूबर ,1965 के ज्ञापन का खण्ड (2) (ii) प्रशासनिक निर्देश की प्रकृति का था , जिसमे कानून का बल नहीं था, लेकिन राज्य सरकार ऐसा नहीं कर सकी , स्वयं का मित्र बिना तर्क संगत औचित्य के इससे अलग हो जायेगा और कुछ व्यक्तिगत अधिकारियों के मामले में केवल उस खण्ड के उल्लंघन मे उन्हें वरिष्ठता देने रे उद्देश्य से निरन्तर सेवा की अवधि शुरु करने के लिए एक कृत्रिम तारीख तय करेगा। यह स्पष्ट रुप से संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होगा। अनुच्छेद 14 और 16 का दायरा और व्यापक है । ये दो अनुच्छेद तर्कसंगत की सिद्धान्त का प्रतीक है और इनका उद्देश्य ' राज्य'द्वारा की गई मनमानी और भेदभावपूर्ण कार्यवाही के खिलाफ प्रहार करना है , जहाँ राज्य सरकार प्रशासनिक निर्देशों के बावजूद हरती है। इसके द्वारा निर्धारित वरिष्ठता का सिद्धान्त और प्रस्थान बिना कारण मनमाना है, यह अनुच्छेद 14 और 16 के तहत समानता की गारण्टी का उल्लंघन करेगा। यह देखना दिलचस्प है

कि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह , अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि एक कार्यकारी संस्था को उन मानकों का सख्ती से पालन करना चाहिए, जिनके द्वारा वह अपने कार्यों का मूल्यांकन करने का दावा करती है और उनके उल्लंघन मे किसी कार्य के अमान्य होने के दर्द पर उसे उन मानकों का ईमानदारी से पालन करना चाहिए। विटारल्ली बना सीटन, 359 यू.एस. 535,546-547: 3एल एड. द्वितीय 1012 में श्रीमान न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर के फैसले के

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

अनुसार यह दृष्टिकोण निश्चित रुप से संयुक्त राज्य संविधान के समानता खण्ड पर आधारित नहीं है और इसे प्रशासनिक कानून के नियम के रुप में विकसित किया गया है । लेकिन सिद्धान्त वही है , अर्थात राज्य की कार्यवाही में मनमानी को समाप्त किया जाना चाहिए। "

24. "यह सही बात है कि गौर - वैधानिक निर्देश न्यायालय में लागू नहीं किया जा सकता है । सरकार द्वारा बनाई गयी स्थानान्तरण नीति गौर - वैधानिक दिशानिर्ददेश में है, इसलिए इसे लागू नहीं किया जा सकता है इस संबन्ध में कानूनी स्थिति इतनी अच्छी तरह से तय हो चुकी है कि किसी भी पुनरावृति की आवश्यकता नहीं है । लेकिन डॉ. अमरजीत सिंह अहलूवालिया(सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बीच का रास्ता निकाला है कि प्रशासनिक आदेश राज्य के लिए बाध्यकारी है और वह इसके द्वारा जारी निर्देशों को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं कर सकता है।"

(महत्व जोडे)

28. मैं यहाँ यह भी जोड सकता हूँ कि यदि वास्तविक कारण नहीं दिये गये है, ताकि स्थानान्तरण के सामान्य नियमों को अधाभावी करते हुए विवेक का प्रयोग किया जा सके , तो यह एक दुर्भावना से प्रेरित अभ्यास होगा और किसी भी तथ्य के लिए आवश्यक नहीं है लेकिन यह कानूनी रुप से हो सकता है , जिस तरह से एक बहुत ही गुप्त आदेश के माध्यम से याचिकाककर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया है, जैसा कि जवाबी हलफनामे के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है , अभिलेखों के आधार पर एकदम स्पष्ट है कि मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया गया है किसी भी सामान्य नियम को पारित करने में विवेक का प्रयोग किया जाता है और यदि इसका विरोध किया जाता है तो उसका तर्कपूर्ण या अच्छी तरह से सूचित निर्णय द्वारा बचाव किया जाना चाहिए , केवल एक आदेश से प्रतिनिधित्व को अस्वीकार कर दिया गया है , यह एक अपरिहार्य निष्कर्ष को जन्म देगा कि प्राधिकरण के पास नियमों और नीतियों के

मापदण्डों पर अपने आदेश का बचाव करने का कोई कारण नहीं था और इसलिए उसने केवल उत्तरदाताओं को अस्वीकार कर दिया । यह कानून की दृष्टि से द्वेष है। **सोमेश तिवारी बनाम भारत संघ: (2009) 2 एससीसी 592** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि " दुर्भावना दो प्रकार की होती है , एक वास्तव में द्वेष और दूसरा विधि में द्वेष । विचाराधीन आदेश सिद्धान्त को आकर्षित करेगा यह विधि में दुर्भावनापूर्ण है क्योंकि यह स्थानान्तरण का आदेश पारित करने के लिए आधार पर आधारित था और अनाम शिकायत में अपीलकर्ता । यह कहना एक बात है कि नियोक्ता प्रशासनिक आवश्यकताओं में स्थानान्तरण का आदेश पारित करने का हकदार है , लेकिन यह कहना दूसरी बात है स्थानान्तरण का आदेश सजा के माध्यम से या उसके बदले में पारित किया जाता है , तो वह पूरी तरह से अवैध होने के कारण रद्द किया जा सकता है ।"

29. एक प्रशासनिक अधिकारी को निर्णय लेते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसका निर्णय उस पहलू से निपटने के लिए अच्छी तरह से उचित है , जिसके साथ एक कर्मचारी द्वारा उसके

अस्वीकरण : अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है । सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यो के लिए निर्णय का मूलसंस्करण ही मान्य होगा

स्थानान्तरण पर सवाल उठाया गया है , हालांकि यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धान्त है कि कर्तव्य के प्रशासनिक निर्वहन के अभ्यास में एक कार्यकारी को अच्छे प्रशासन के लिए मौलिक निर्णय लेने के लिए कारण बताना होगा। सर्वोच्च न्यायालय की एकल पीठ ने **एस.एन.मुखर्जी बनाम भारत संघ: 1990 (4) एससीसी 594** में प्रशासनिक निकाय/ प्राधिकरण द्वारा कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता को दोहराया है। इस प्रकार दिनांक 14.06.2022 के प्रत्यावेदन को ने बोलने के समान होने के कारण खारिज करने का आदेश विधिक दृष्टि से अस्थिर माना जाता है।

30. अत: इन परिस्थितियों में प्राधिकारी द्वारा लिया गया आक्षेपित निर्णय एक ऐसी प्रशासनिक कार्यवाही है जो इस न्ययालय द्वारा न्यायिक हस्तक्षेप का पात्र है।

31. दूसरे मुद्दे पर करते हुए ,मैनें पाया कि याचिकाकर्ता को अन्य दो व्यक्तियों, राकेश कुमार और भरत चौबे की तरह वर्ष 2018 में तैनाती दी गयी थी।

32. जबाबी हलफनामे के साथ संलग्न आदेश में यह खुलासा नहीं किया गया है कि इन व्यक्तियों को अधिशेष कर्मचारी के रुप में उनके गृह क्षेत्र से बाहर स्थानान्तरित करने के लिए चुना गया है।

33. फिर भी मुझे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क में दम नजर आता है कि इस मामले में सक्षम प्राधिकारी , दिशानिर्देशों / नीतियों के खण्ड 10 के तहत महानिदेशक (केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल) होंगे , जो यहाँ पुन: प्रस्तुत किया गया है :

> (क)" महानिदेशक ऐसे सभी स्थानान्तरण /तैनाती पर निर्णय लेने के लिए अन्तिम प्राधिकारी होंगे।"

34. माना कि आदेश डी.आई.जी (केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल) उत्तरी क्षेत्र , हवाई अड्डा क्षेत्र , द्वारा जारी किया गया है जो सक्षम प्राधिकारी नहीं है।

35. किसी भी दृष्टिकोण से , मैं याचिकाकर्ता को वाराणसी में अधिशेष आदेश को बनाये रखने योग्य नहीं समझता हूँ, जिसमें कनिष्ठों की तैनाती के स्थान पर रखा जा सके , याचिकाकर्ता के सम्बन्ध में पारित आदेश दिनांक 09.06.2022 को रद्द किया जाता है और इसी मामले में पारित परिणामी आदेश दिनांक 17.06.2022 को भी रद्द किया जाता है ।

36. उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करें और इस आदेश की प्रमाणित प्रतिप्रस्तुत करने के तीन सप्ताह के भीतर उचित आदेश पारित करें, जिससे उसे अपने गृह क्षेत्र के भीतर किसी भी स्थान पर तैनाती दी जा सके। निर्णय सक्षम प्राधिकारी द्वारा चार सप्ताह की अवधि के भीतर और किसी भी परिस्थिति में 25.08.2023 को या उससे पहले लिया जायेगा।

37. हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ऐसे निर्णय होने तक याचिकाकर्ता वर्तमान तैनाती स्थान पर बना रहेगा और वेतन का भुगतान किया जायेगा।

38. इस प्रकार विचारण याचिका सफल होती है और उपरोक्त शर्तों के अनुसार स्वीकार की जाती है ।

(2023) 8 ILRA 934

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीवे शुक्ला

रिट-ए संख्या 9429 वर्ष 2023

सुनील कुमार श्रीवास्तव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री मदन लाल श्रीवास्तव

A. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - स्थिरता - भौतिक तथ्य का दमन - याचिकाकर्ता को पहले की रिट याचिका में पारित 11.4.2023 के आदेश के बारे में पूरी

जानकारी थी, लेकिन उसने जानबूझकर इस तथ्य का खुलासा नहीं किया है, जिसका वर्तमान रिट याचिका के परिणाम पर सीधा असर पड़ता है - प्रभाव - माना गया, एक व्यक्ति जो रिट याचिका दायर करते समय भौतिक तथ्यों को छुपाता है, वह अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के तहत उच्च न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है - रिट कोर्ट का दरवाजा खटखटाने वाले याचिकाकर्ता को साफ हाथों से आना चाहिए और कुछ भी छिपाए या दबाए बिना सभी तथ्यों को अदालत के सामने रखना चाहिए। (पैरा 13, 15 और 18)

रिट याचिका खारिज (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया; (2007) 8 एससीसी 449

2. केडी शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (2008) 12 एससीसी 481

3. के. जयराम एवं अन्य बनाम बैंगलोर विकास प्राधिकरण एवं अन्य; (2022) 12 एससीसी 815

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीवे शुक्ला द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव, व्यक्तिगत रूप से और प्रतिवादी क्रमांक 1 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिवादी क्रमांक 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मदन लाल श्रीवास्तव को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने अपनी रिट याचिका में कहा है कि उन्होंने जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, प्रयागराज को एक शिकायत दर्ज की है जिसमें उन्होंने उल्लेख किया है कि श्री अरुण कुमार मिश्रा ने बाल कल्याण पूर्व माध्यमिक विद्यालय, बक्सी खुर्द, दारागंज, प्रयागराज में फर्जी दस्तावेजों के आधार पर सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति प्राप्त की है, अतः मामले की जांच करायी जाये और उपरोक्त श्री अरुण कुमार मिश्रा की नियुक्ति निरस्त की जाये।

3. याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर कहा कि यद्यपि, याचिकाकर्ता द्वारा दर्ज की गई उपरोक्त शिकायत का संज्ञान जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, प्रयागराज द्वारा लिया गया है, लेकिन अभी तक मामले में जांच पूरी नहीं हुई है, इसलिए यह न्याय के हित में याचिकाकर्ता की शिकायत पर जांच पूरी करने और परिणामी कार्रवाई के लिए इस न्यायालय द्वारा एक निर्देश जारी किया जाना चाहिए है।

4. प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री मदन लाल श्रीवास्तव ने दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर करते समय उन भौतिक तथ्यों को छुपाया है जो इस रिट याचिका दायर करने के समय उसकी जानकारी में थे और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई रिट याचिका इस न्यायालय द्वारा खारिज की जानी चाहिए, क्योंकि माननीय

सर्वोच न्यायालय के निर्णयों के आधार पर यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि यदि याचिकाकर्ता रिट याचिका दायर करते समय महत्वपूर्ण तथ्य छुपाता है तो वह उच्च न्यायालय से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उसके असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

5. प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यह रिट याचिका 26.5.2023 को इस न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध की गई थी और जब यह तथ्य इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया, तो निम्नलिखित आदेश पारित किया गयाः -

"प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री मदन लाल श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत वकालतनामा को रिकॉर्ड पर लिया गया है।

इस मामले को रिट याचिका संख्या 4262 सन् 2023 के साथ 30.05.2023 को फ्रेश के रूप मे से प्रस्तुत करें।"

6. प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता की शिकायत पर, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, प्रयागराज ने 6.2.2023 को एक आदेश पारित किया था, जिसके तहत श्री अरुण कुमार मिश्रा के खिलाफ जांच शुरू की गई है और आगे उपरोक्त श्री अरुण कुमार मिश्र के वेतन भुगतान पर रोक लगाने का निर्देश भी दिया गया।

7. इस न्यायालय के संज्ञान में यह भी लाया गया है कि उपरोक्त श्री अरुण कुमार मिश्रा ने रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 दाखिल करते हुए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 6.2.2023 को चुनौती दी है, जिसमें उन्होंने यह भी कहा है प्रार्थना की कि शिकायतकर्ता श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत शिकायत से उत्पन्न कार्यवाही को रद्द किया जाए।

8. इस न्यायालय ने उपरोक्त रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 पर सुनवाई के बाद 11.4.2023 को आदेश पारित किया है जो निम्नानुसार आंशित है: -

"श्री अनिल भूषण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जिनकी याचिकाकर्ता के ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री हिमांशु श्रीवास्तव द्वारा सहायता की गई, राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार को सुना गया।

इस रिट याचिका में चुनौती प्रतिवादी क्रमांक 3/ जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 6.2.2023 के आदेश को है जिसके द्वारा एवं जिसके तहत याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक के पद पर वेतन का भुगतान रोक दिया गया है। प्रतिवादियों को उस मुद्दे पर जिस पर पहले ही निर्णय हो चुका है, आगे की जांच न करने का निर्देश देने वाले परमादेश के लिए प्रार्थना भी की गई है। प्रतिवादियों को नियमित मासिक वेतन के साथ-साथ याचिकाकर्ता को वेतन का बकाया देने का निर्देश देने वाले परमादेश के लिए भी प्रार्थना की गई है।

याचिकाकर्ता के वकील ने तर्क दिया कि हाई स्कूल, इंटरमीडिएट और बीटीसी की अपेक्षित योग्यता रखने वाले याचिकाकर्ता को वर्ष 1983 में संस्थान में नियुक्त किया गया था और तब से याचिकाकर्ता अपने कर्तव्यों का परिश्रमपूर्वक निर्वहन कर रहा है और उसका रिकॉर्ड बेदाग है। इसी तरह की प्रेरित शिकायतें वर्ष 2021 में की गई, जिसकी जांच खंड शिक्षा अधिकारी ने की, जिन्होंने शिकायत को मनगढंत पाया और 2.11.2021 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। आगे यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान शिकायत श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव द्वारा जवाबी कार्रवाई में दायर की गई थी क्योंकि संस्थान के प्रबंधक द्वारा शिकायतकर्ता की पत्नी श्रीमती पुष्पा श्रीवास्तव के खिलाफ दस्तावेज खो जाने और जाली दस्तावेज बनाने का आरोप लगाते हुए प्राथमिकी दर्ज की गई थी (रिट याचिका का अनुबंध-6)। प्रेरित शिकायत पर जांच शुरू कर दी गई है और जांच लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता का वेतन रोक दिया गया है।

इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति वर्ष 1983 में हुई थी। याचिकाकर्ता ने नियुक्ति पत्र और आवेदन पत्र संलग्न किया है जिसमें याचिकाकर्ता की योग्यता का उल्लेख है कि उसने बीटीसी उत्तीर्ण किया है (रिट याचिका का अनुबंध-2)। सहायक अध्यापक पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की पात्रता न होने के संबंध में अभी तक कोई ठोस निष्कर्ष नहीं आया है।

न्यायालय की राय में, प्रश्नगत पद के लिए उसकी अयोग्यता के संबंध में किसी ठोस निष्कर्ष के अभाव में याचिकाकर्ता का वेतन नहीं रोका जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता संबंधित संस्थान में सहायक अध्यापक के पद पर लगातार अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। मामले पर विचार की जरूरत है.

प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार ने प्रार्थना की और उन्हें जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया। राज्य-प्रतिवादी नंबर 1 और 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता, यदि चाहें, तो इस बीच जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं।

उपरोक्त अवधि की समाप्ति के बाद इस मामले को सूचीबद्ध करें।

इस न्यायालय के अगले आदेश तक, प्रतिवादी नंबर 3 को याचिकाकर्ता के वर्तमान वेतन को महीने दर महीने, जब भी देय हो, वितरित करने के लिए एक अंतरिम परमादेश जारी किया जाता है।"

9. इस न्यायालय के संज्ञान में यह भी लाया गया है कि श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव, जो वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता भी हैं, ने 3.3.2023 को रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 में अपने पक्षकार के लिए एक आवेदन दायर किया है, जिस पर इस न्यायालय ने दिनांक 15.3.2023 को एक आदेश पारित किया है जिसके तहत उनके आवेदन को शीघ्र तिथि पर पिछले कागजात के साथ सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था।

10. प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत

किया है कि श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव ने अपनी वर्तमान रिट याचिका यानी रिट-ए संख्या 9429 सन् 2023 मे उपरोक्त रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 (अरुण कुमार मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य) के दाखिल होने के संबंध में खुलासा नहीं किया है और इसके अलावा उन्होंने रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 में पारित दिनांक 11.4.2023 के उपरोक्त आदेश का भी खुलासा नहीं किया है, जबकि उन्होंने पहले ही उक्त रिट याचिका में पक्षकार आवेदन पत्र दायर करके उपस्थिति दर्ज करा दी थी।

11. प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव को रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 दाखिल करने और उक्त रिट याचिका में पारित आदेश दिनांक 11.4.2023 के बारे में पूरी जानकारी थी लेकिन उन्होंने अपनी वर्तमान रिट याचिका यानी रिट-ए संख्या 9429 सन् 2023 दाखिल करते समय जानबूझकर उक्त तथ्यों को छुपाया है। इस पर आगे जोर दिया गया है कि श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव का इरादा बिल्कुल स्पष्ट है कि उन्होंने भौतिक तथ्यों को छिपाकर उपरोक्त श्री अरुण कुमार मिश्रा के खिलाफ दायर उनकी शिकायत के अनुसार जांच के निष्कर्ष और परिणामी कार्रवाई के लिए इस न्यायालय से आदेश प्राप्त करने का प्रयास किया है।

12. मैंने पक्षों की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और मैंने पाया है कि याचिकाकर्ता श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव को रिट-ए संख्या 4262 सन् 2023 (अरुण कुमार मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य) दाखिल होने और उक्त रिट याचिका में दिनांक 11.4.2023 का आदेश पारित किये जाने के बारे में पूरी जानकारी थी, लेकिन उन्होंने जानबूझकर अपनी वर्तमान रिट याचिका यानी रिट-ए संख्या 9429 सन् 2023 में उन तथ्यों का खुलासा नहीं किया है।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ इस न्यायालय के निर्णयों के माध्यम से यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि जो व्यक्ति रिट याचिका दायर करते समय भौतिक तथ्यों को छुपाता है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त उच्च न्यायालय से उसके असाधारण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

14. प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम भारतीय स्टेट बैंक, (2007) 8 एससीसी 449 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय केवल कानून की अदालत ही नहीं बल्कि समानता की अदालत भी है और जो व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान करता है, वह बिना किसी छिपाव के सभी तथ्यों को अदालत के समक्ष रखने के लिए बाध्य है। यदि उच न्यायालय के समक्ष ठोस तथ्यों को दबाया गया है या तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर याचिका पर विचार करने से इनकार करना पूरी

तरह से उचित होगा। प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया हैः-

"32. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि अपीलकर्ता कंपनी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, लेकिन उसने अदालत को सभी तथ्य स्पष्ट रूप से नहीं बताए थे। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन और असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है। इसके अलावा, कानून का न्यायालय समानता का न्यायालय भी है। इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि जब कोई पक्ष उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाए, तो उसे बिना किसी छिपाव के सभी तथ्य न्यायालय के समक्ष रखने चाहिए। यदि आवेदक की ओर से महत्वपूर्ण तथ्यों को दबाया गया है या तोड़-मरोड़ कर पेश किए गए तथ्य न्यायालय के समक्ष रखे गए हैं, तो रिट न्यायालय याचिका पर विचार करने से इनकार कर सकता है और मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना इसे खारिज कर सकता है। 33. उपरोक्त सिद्धांत में अंतर्निहित उद्देश्य को स्क्रूटन, एल.जे. द्वारा आर बनाम केंसिंग्टन इनकम टैक्स कॉमर्स में संक्षेप में बताया गया है। निम्नलिखित शब्दों में:

"यह कई वर्षों से न्यायालय का नियम रहा है, और जिसे बनाए रखना सबसे महत्वपूर्ण है, कि जब कोई आवेदक एक पक्षीय बयान पर राहत प्राप्त करने के लिए न्यायालय में आता है तो उसे सभी भौतिक तथ्य - तथ्य, कानून नहीं का पूर्ण और निष्पक्ष खुलासा करना चाहिए। यदि वह इसमें मदद कर सकता है तो उसे कानून को गलत तरीके से पेश नहीं करना चाहिए - न्यायालय को कानून के बारे में पता होना अपेक्षित है। लेकिन वह तथ्यों के बारे में कुछ नहीं जानता है, और आवेदक को तथ्यों को पूरी तरह और निष्पक्ष रूप से बताना चाहिए, और जिस दंड के द्वारा न्यायालय उस दायित्व को लागू करता है वह यह है कि यदि उसे पता चलता है कि तथ्य पूरी तरह से और निष्पक्ष रूप से नहीं बताए गए हैं, तो न्यायालय अपूर्ण कथन के विश्वास पर की गई किसी भी कार्रवाई को रद्द कर देगा।

34. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि विशेषाधिकार प्राप्त उपाय कोई स्वाभाविक बात नहीं है। इसलिए, असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय, एक रिट न्यायालय वास्तव में उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगा जो इस तरह के क्षेत्राधिकार का उपयोग कर रहा है। यदि आवेदक पूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं करता है या प्रासंगिक सामग्रियों को छुपाता है या अन्यथा न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो न्यायालय मामले पर फैसला किए बिना कार्रवाई को खारिज कर सकता है। यह नियम व्यापक जनहित में बेईमान वादियों को धोखा देकर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए विकसित किया गया है। रिट क्षेत्राधिकार का मूल आधार सत्य, पूर्ण और सही तथ्यों का खुलासा करना है। यदि भौतिक तथ्य स्पष्ट रूप से नहीं बताए गए हैं या दबाए गए हैं या विकृत किए गए हैं, तो रिट अदालतों का कामकाज असंभव हो जाएगा।

15. माननीय उच्चतम न्यायालय ने (2008) 12 एससीसी 481 में रिपोर्ट किए गए के. डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य के मामले में दिए गए अपने निर्णय मे माना है कि संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच न्यायालय एवं अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है और चूंकि इसमें उल्लिखित विशेषाधिकार रिट पर्याप्त न्याय करने के लिए जारी किए जाते हैं, इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि रिट न्यायालय में आने वाले याचिकाकर्ता को साफ हाथों से आना चाहिए और कुछ भी छिपाए या दबाए बिना न्यायालय के समक्ष तथ्य रखे जाने चाहिए और यदि प्रासंगिक और भौतिक तथ्यों का कोई स्पष्ट खुलासा नहीं किया गया है या याचिकाकर्ता न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो उसकी रिट याचिका दावे के गुण-दोष पर विचार किए बिना ही खारिज की जा सकती है। के. डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य (सुप्रा) के मामले में दिए गए फैसले का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है: -

"36. एक विशेषाधिकारपूर्ण उपाय कोई स्वभाविक बात नहीं है। असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय रिट न्यायालय निश्चित रूप से उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगा जो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करता है। यदि आवेदक गलत बयान देता है या महत्वपूर्ण तथ्य छुपाता है या न्यायालय को गुमराह करने का प्रयास करता है, तो न्यायालय उस अकेले आधार पर कार्रवाई को खारिज कर सकता है और यह कहकर मामले की योग्यता में प्रवेश करने से इनकार कर सकता है कि "तुमने जो किया है उसकी वजय से हम आपके आवेदन को नहीं सुनेंगे" यह नियम व्यापक जनहित में बेईमान वादियों को धोखा देकर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए विकसित किया गया है।

37. केंसिंग्टन इनकम टैक्स कमर्स में, विस्काउंट रीडिंग, सी.जे. ने पायाः (केबी पीपी.495-96)

"... जहां एक नियम निसी या अन्य प्रक्रिया के लिए इस न्यायालय में एक पक्षीय आवेदन किया गया है, यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदक के समर्थन में हलफनामा स्पष्ट नहीं था और तथ्यों को निष्पक्ष रूप से नहीं बताया गया था, तो न्यायालय को चाहिए कि, अपनी सुरक्षा के लिए और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, गुणों की जांच के लिए आगे बढ़ने से इनकार करे। यह न्यायालय में निहित एक शक्ति है, लेकिन इसका उपयोग केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जिसमें न्यायालय को यह दोष लगे कि उसे धोखा दिया गया है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले तथ्यों की सावधानीपूर्वक जांच की जाएगी जैसा कि वे हैं और जैसा कि आवेदक के हलफनामे में कहा गया है, और जब अदालत हलफनामे को पढे तो उन सभी बातों को सुना जाएगा जिनसे अदालत को प्रभावित करने का आग्रह किया जा सकता है। लेकिन अगर इस परीक्षण और सुनवाई के नतीजे से कोई संदेह नहीं रह

जाता है कि इस न्यायालय को धोखा दिया गया है, तो यह आवेदक की ओर से उस कार्यवाही में कुछ भी सुनने से इनकार कर देगा जो केवल एक भ्रामक हलफनामे के माध्यम से शुरू की गई है। (जोर दिया गया)

38. उपरोक्त सिद्धांतों को हमारी न्याय व्यवस्था में भी स्वीकार किया गया है। स्थापित कानून के अनुसार, जो पक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय व अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करता है, उसे सच्चा, स्पष्ट और खुला माना जाता है। उसे बिना किसी हिचकिचाहट के सभी भौतिक तथ्यों का खुलासा करना चाहिए, भले ही वे उसके खिलाफ हों। उसे 'छुपा- छुपी' खेलने या उन तथ्यों जिन्हें वह प्रकट करना चाहता है को 'चुनने' की अनुमति नहीं दी जा सकती कि किन्हे दबाना (छिपाना) चाहता है या किनहे नही। रिट क्षेत्राधिकार का मूल आधार सच्चे और पूर्ण (सही) तथ्यों का खुलासा करना है। यदि भौतिक तथ्यों को दबाया या विकृत किया जाता है, तो रिट न्यायालयों का कामकाज और अभ्यास असंभव हो जाएगा। याचिकाकर्ता को बिना किसी योग्यता के मांगी गई राहत पर असर डालने वाले सभी तथ्यों का खुलासा करना होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि, "न्यायालय कानून तो जानता है लेकिन तथ्य नहीं जानता"।

कैंसिंग्टन आयकर कमिश्नर्स में प्रकाशित किए गए प्राथमिक उद्देश्य को यदि ध्यान में रखा जाता है, तो एक आवेदक जो स्पष्ट तथ्यों और 'साफ छाती' के साथ नहीं आता है, वह 'गंदे हाथों' से न्यायालय की रिट नहीं पकड़ सकता है। भौतिक तथ्यों को दबाना या छिपाना कोई वकालत नहीं है। यह एक बाजीगरी, चालाकी, चपलता या गलत बयानी है, जिसका न्यायसंगत और विशेषाधिकार क्षेत्राधिकार में कोई स्थान नहीं है। यदि आवेदक सभी भौतिक तथ्यों का निष्पक्ष और सही तरीके से खुलासा नहीं करता है, बल्कि उन्हें विकृत तरीके से बताता है और न्यायालय को गुमराह करता है, तो न्यायालय के पास खुद को बचाने और नियम निसी का निर्वहन करने और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए गुण-दोष के आधार पर मामले की जांच को आगे बढ़ाने के लिए इनकार करने के लिए अंतर्निहित शक्ति है। यदि न्यायालय उस आधार पर याचिका खारिज नहीं करता है, तो न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल होगा। वास्तव में, ऐसे आवेदक पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए न्यायालय की अवमानना का मामला चलाया जाना चाहिए।"

16. माननीय उच्चतम न्यायालय ने (2022) 12 एससीसी 815 में रिपोर्ट किए गए के. जयराम और अन्य बनाम बैंगलोर विकास प्राधिकरण और अन्य के मामले में दिए गए अपने फैसले में माना है कि यदि याचिकाकर्ता रिट याचिका दायर करते समय भौतिक तथ्यों को छुपाता है न्यायालय, तो वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी भी राहत का हकदार नहीं है। के. जयराम और अन्य बनाम बैंगलोर विकास प्राधिकरण और अन्य (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट

द्वारा दिए गए फैसले का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया हैः-

"14. हमारे लिए यहां यह बताना आवश्यक है कि एक ही विषय-वस्तु से संबंधित कार्यवाहियों की बहुलता को जांच के लिए और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि झूठे बयान देने के दायित्व से बचने के लिए दलीलों में दिए गए बयानों में चुप रहकर या गुमराह करके भौतिक तथ्यों को दबाकर विभिन्न न्यायिक मंचों के माध्यम से असंगत आदेशों की मांग करने के खतरे को रोका जाएं, हमारा विचार है कि पक्षों को जो उनकी जानकारी में है, विवाद के विषय-वस्तु के किसी भी हिस्से से संबंधित अतीत या वर्तमान की सभी कानूनी कार्यवाहियों और मुकदमों के विवरण का खुलासा करना होगा। यदि विवाद के पक्षों के अनुसार, कोई कानूनी कार्यवाही या अदालती मुकदमा लंबित नहीं था या लंबित है, तो उन्हें कानून के अनुसार पक्षों के बीच विवाद को हल करने के लिए अपनी दलीलों में अनिवार्य रूप से यह बताना होगा।

15. वर्तमान मामले में, चूंकि अपीलकर्ताओं ने मुकदमा दायर करने और उसकी बर्खास्तगी और सिविल कोर्ट के फैसले के खिलाफ अपील का खारिज होने का खुलासा नहीं किया है, इसलिए अपीलकर्ताओं को भौतिक तथ्य के दमन के आधार पर गैर-मुकदमा होना होगा। वे साफ हाथों से अदालत में नहीं आए हैं और उन्होंने कानून की प्रक्रिया का भी दुरुपयोग किया है। इसलिए, वे असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन राहत के हकदार नहीं हैं।"

17. मुझे लगता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कानून बनाया है कि याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाते समय अपनी रिट याचिका में सभी प्रासंगिक तथ्यों का खुलासा करना होगा और यदि याचिकाकर्ता प्रासंगिक तथ्य और सामग्री का खुलासा नहीं करता है, तो वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है और ऐसी रिट याचिका खारिज कर दी जा सकती है।

18. वर्तमान मामले में, रिट याचिका दायर करने के समय याचिकाकर्ता को रिट-ए नंबर 4262 सन् 2023 (अरुण कुमार मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य) दाखिल करने के बारे में पूरी जानकारी थी और उपरोक्त रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 11.4.2023 पारित किया गया था उसे इसके बारे में भी पता था, लेकिन जानबूझकर उन्होंने वर्तमान रिट याचिका में उक्त तथ्यों का खुलासा नहीं किया है। याचिकाकर्ता ने अपनी रिट याचिका में उपरोक्त तथ्यों का खुलासा केवल इस इरादे से नहीं किया है कि किसी तरह इस अदालत से जांच के समापन और उसकी शिकायत के अनुसार परिणामी कार्रवाई के लिए आदेश प्राप्त किया जा सके। चूंकि याचिकाकर्ता ने उन महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया है जिनका इस रिट याचिका के परिणाम पर सीधा असर पड़ता है, इसलिए मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण

क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है और वर्तमान रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।

19. मैंने आगे पाया कि जब वर्तमान रिट याचिका के तथ्यों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त कानून के प्रकाश में देखा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर करते समय भौतिक तथ्यों को छुपाया है। यह न्यायालय और इसलिए, यह रिट याचिका खारिज करने योग्य है।

20. उपरोक्त कारणों और माननीय सर्वोच न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक मे, याचिकाकर्ता द्वारा दायर वर्तमान रिट याचिका खारिज कर दी गई है।

(2023) 8 ILRA 940

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 9955/2023

कुमारी हसीन बी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री इकराम अहमद, श्री असर मुख्तार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री पंकज श्रीवास्तव

A. सेवा विधि - पारिवारिक पेंशन - विधवा की मृत्यु के बाद बेटी की पात्रता - जिला न्यायाधीश द्वारा जारी उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता - अनुमति - दिनांक 08.08.1986 का जीओ - पैरा 9 - दिनांक 03.12.2012 का जीओ - जीओ के तहत, उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता तभी हो सकती है, जब विभाग याचिकाकर्ता के इस दावे से संबंधित तथ्यों को सत्यापित करने में सक्षम नहीं था कि वह मृत कर्मचारी पर आश्रित है - इसका गैर-अनुपालन - प्रभाव - माना गया कि, प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहने के लिए मजबूर करने के लिए आदेश में ऐसा कोई विचार नहीं किया गया है - उच्च न्यायालय ने मामले को जीओ दिनांक 08.08.1986 और 03.12.2012 के प्रकाश में दावे पर विचार करने के लिए प्राधिकारी को वापस भेज दिया। (पैरा 5 और 10)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री इकराम अहमद, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थाई अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने दिनांक 18.11.2022 के आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन के लिए अपने दावे के समर्थन में जिला न्यायाधीश द्वारा जारी उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है। याचिकाकर्ता स्वर्गीय कल्बे अली खान की बेटी है जो एक सरकारी कर्मचारी थे और उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी श्रीमती खतीजा बेगम को पी.पी.ओ. क्रमांक 318152 के माध्यम से पेंशन मिल रही थी। हालाँकि, बाद में वर्ष 2015 में उसकी मृत्यु हो गई और याचिकाकर्ता को उसके लिए पारिवारिक पेंशन स्वीकृत कराने के लिए दर-दर भटकना पड़ा।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता दिनांक 03.12.2012 के सरकारी आदेश के अनुसार पारिवारिक पेंशन का हकदार है, जिसमें प्रावधान है कि 25 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद भी, आश्रित पारिवारिक पेंशन का हकदार होगा। इसमें एक अविवाहित बेटी भी शामिल है। यह प्रस्तुत किया गया है कि पारिवारिक पेंशन के प्रयोजन के लिए दिनांक 08.08.1986 के सरकारी आदेश के अनुसार प्रक्रिया निर्धारित करने वाले प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में, आवेदक को आवश्यक उत्तराधिकार प्रमाण पत्र या कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर एक शपथपत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है। घटना में संबंधित विभाग के तहसीलदार मृत कर्मचारी या उसकी विधवा के आश्रित के रूप में याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में तथ्यों को सत्यापित नहीं कर सका, जो क्रमशः पेंशन और पारिवारिक पेंशन प्राप्त करते थे।

4. प्रासंगिक सरकारी आदेश दिनांक 3.12.2012 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"उत्तर प्रदेश शासन
वित्त (सामान्य) अनुभाग-3
संख्या सा-3-1665 /दस-2012-308-97
लखनऊ: दिनॉक 03 दिसम्बर, 2012

<u>कार्यालय ज्ञाप</u>

विषय- दिनांक 01 जनवरी 2006 के पूर्व सेवानिवृत्त / मृत राज्य सरकार के पेंशनरों / कर्मचारियों की अविवाहित / विधवा/तलाकशुदा पुत्रियों को पारिवारिक पेंशन की पात्रता के सम्बन्ध में।

शासनादेश संख्या-सा-3-1508/दस-2008-308-97, दिनांक 08 दिसम्बर, 2008 द्वारा दिनांक 01 जनवरी 2006 को अथवा उसके उपरान्त सेवा निवृत्त / मृत सरकारी कर्मचारियों की पारिवारिक पेंशन की अनुमन्यता हेतु परिवार को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है-

वर्ग (1)
पहले हो

(क) विधवा/विधुर, आजन्म अथवा पुनर्विवाह जो भी

(ख) पुत्र/पुत्री (विधवा पुत्री सहित) को विवाह/पुनर्विवाह अथवा 25 वर्ष की आयु तक अथवा जीविकोपार्जन की तिथि, जो भी पहले हो, तक।

वर्ग (II)

(ग) अविवाहित/विधवा/तलाकशुदा पुत्री, जो उपरोक्त वर्ग- (I) से आच्छादित नहीं है को विवाह /

पुनर्विवाह तक अथवा जीविकोपार्जन की तिथि अथवा मृत्यु की तिथि तक जो भी पहले हो,

(घ) ऐसे माता पिता जो सरकारी सेवक पर उसके जीवनकाल में पूर्णतः आश्रित रहे हों तथा मृत सरकारी सेवक ने अपने पीछे कोई विधवा/विधुर अथवा बच्चे नहीं छोड़े हैं।

आश्रित माता-पिता, अविवाहित/ तलाकशुदा / विधवा पुत्री को पारिवारिक पेंशन जीवन पर्यन्त मिलेगी।

वर्ग (II) से आच्छादित अविवाहित / विधवा / तलाकशुदा पुत्री तथा आश्रित माता/पिता को पारिवारिक पेंशन की अनुमन्यता उसी दशा में होगी जब मृतक के परिवार में उपर्युक्त वर्ग - (I) में सम्मिलित पात्र व्यक्ति उपलब्ध न हों तथा मृतक सरकारी सेवक के परिवार में ऐसी कोई संतान न हो, जो विकलॉग हो। पारिवारिक पेंशन की अनुमन्यता बच्चों को उनकी जन्मतिथि के क्रम में होगी अर्थात् पहले जन्म लिये बच्चे को अनुमन्यता पहले होगी और उसकी पात्रता समाप्त होने के उपरान्त बाद में जन्म लेने वाले बच्चे की पात्रता स्थापित होगी।

उपर्युक्त व्यवस्था दिनांक 01 जनवरी, 2006 से प्रभावी किये जाने के कारण दिांक 01 जनवरी 2006 के पूर्व सेवा निवृत्त / मृत सरकारी कर्मचारियों की अविवाहित / तलाकशुदा/विधवा पुत्रियों को उपर्युक्त लाभ अनुमन्य नहीं हो पा रहा है।

2- शासन को इस आशय के प्रत्यावेदन प्राप्त हो रहें है कि दिनांक 01 जनवरी 2006 के पूर्व सेवानिवृत्त / मृत सरकारी कर्मचारियों की अविवाहित/विधवा/तलाकशुदा पुत्रियों को भी उपर्युक्तानुसार पारिवारिक पेंशन की सुविधा अनुमन्य की जाय।

3- केन्द्र सरकार में दिनांक 01 जनवरी 2006 के पूर्व अथवा उसके पश्चात सेवानिवृत्त / मृत पेंशनरों / कर्मचारियों की अविवाहित/विधवा /तलाकशुदा पुत्रियों को पारिवारिक पेंशन 25 वर्ष की आयु के उपरान्त भी संगत शर्तों के साथ समान रूप से अनुमन्य है, चाहे उनका वैधव्य / तलाक 25 वर्ष की आयु के पूर्व हुआ हो अथवा उसके पश्चात |

4- उपर्युक्त के सम्बन्ध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि दिनांक 01 जनवरी 2006 के पूर्व सेवानिवृत्त / मृत पेंशनरों / सरकारी कर्मचारियों की अविवाहित / विधवा/तलाकशुदा पुत्रियों को, चाहे उनका वैधव्य / तलाक, उनकी 25 वर्ष की आयु के पूर्व अथवा पश्चात् घटित हुआ हो, दोनों ही दशाओं में, पारिवारिक पेंशन उपर्युक्त शासनादेश संख्या-सा-3-1508/दस-2008-308-97, दिनांक 08 दिसम्बर 2008 के प्रस्तर 7(3). (4) एवं (5) में विनिर्दिष्ट शर्तों के अधीन तत्काल प्रभाव से अनुमन्य कराये जाने की श्री राज्यपाल महोदय सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।

5-ऐसे प्रकरण जिनमें अविवाहित / विधवा /तलाकशुदा पुत्रियों को पारिवारिक पेंशन हेतु आश्रितों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है, उन प्रकरणों में पेंशन प्रपत्र के भाग -2 में सम्बन्धित पेंशनरों / पारिवारिक पेंशनरों द्वारा अविवाहित / विधवा/तलाकशुदा पुत्रियों के नाम तथा जन्म तिथि (यथेष्ट प्रमाण पत्र के साथ) अंकित कर सम्बन्धित कार्यालयाध्यक्ष / विभागाध्यक्ष को प्रस्तुत किया जायेगा। कार्यालयाध्यक्ष / विभागाध्यक्ष उपरोक्त नामांकन प्रपत्र (पेंशन प्रपत्र का भाग -2) को सत्यापित करते हुए सम्बन्धित पेंशन स्वीकर्ताधिकारी को प्रेषित करेंगे। पेंशन स्वीकर्ताधिकारी उक्त नामांकन प्रपत्र के आधार पर पारिवारिक पेंशनरों की पात्रता सूची में अविवाहित/विधवा/तलाकशुदा पुत्रियों के नाम एवं जन्मतिथि अंकित किये जाने सम्बन्धी आदेश सम्बन्धित कोषाधिकारी एवं प्रतिलिपि सम्बन्धित कार्यालयाध्यक्ष / विभागाध्यक्ष तथा पेंशनर / पारिवारिक

पेंशनर को प्रेषित करेंगे।

आनन्त मिश्र

प्रमुख सचिव, वित्त।"

(प्रभाव वर्धित)

5. हालांकि विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उसमें दिए गए कारण के लिए आदेश का बचाव करने की कोशिश की है, लेकिन उस तर्क को पूरा नहीं कर सके, जिसका समर्थन सरकारी आदेश दिनांक 08.08.1986 के पैराग्राफ 9 में मिलता है कि बाध्य करने के लिए लागू आदेश में ऐसा कोई विचार नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहने का अधिकार सरकारी आदेश का पैराग्राफ 9 यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

9- प्रार्थना पत्र प्राप्त होने के उपरान्त आवेदक को सम्बन्धित कार्यालयाध्यक्ष / विभागाध्यक्ष को इस बात से सन्तुष्ट करना होगा कि वह सम्बन्धित सरकारी सेवक की विधवा/विधुर अथवा पात्र संतान है। सम्बन्धित कार्यालयध्यक्ष/विभागाध्यक्ष उपरोक्त की पुष्टि प्रथमतः अपने कार्यालय में उपलब्ध अभिलेखों अथवा आवेदक द्वारा प्रस्तुत संगत दस्तावेजों के आधार करगें / यदि आवेदक अपनी पहचान हेतु कोई दस्तावेज प्रस्तुत न कर सकें और इस कार्यालय में भी इस हेतु कोई अभिलेख उपलब्ध न हो तो सम्बन्धित कार्यालयाध्यक्ष / विभागाध्यक्ष अपने कार्यालय के किन्हीं दो वरिष्ठ तथा स्थायी कर्मचारियों से आवेदक की शिनाख्त करवा ले। यदि उपर्युक्तानुसार भी कार्यावाही किया जाना सम्भव न हो सके तो सम्बन्धित आदेवक को निम्न में से एक साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा-

1- न्यायालय द्वारा प्रस्तुत उत्तराधिकार प्रमाण-पत्र या कार्यकारी मजिस्ट्रेट अथवा तहसीलदार के समक्ष

2- दिया गया शपथ पत्र "

(प्रभाव वर्धित)

6. इस स्तर पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता का मानना है कि मामले को संबंधित प्राधिकारी को भेजा जा सकता है प्रासंगिक नियमों और समय-समय पर जारी सरकारी आदेश के आलोक में नए सिरे से आदेश पारित करें।

7. प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उचित आदेश पारित करना संबंधित प्राधिकारी का काम है।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता और उसके

वर्जन में उठाए गए उनके तर्कों को सुनने के बाद, मैंने पाया कि इस याचिका में दिनांक 18.11.2022 का आदेश काफी अनुचित आदेश है ताकि इसमें जारी किए गए निर्देशों को उचित ठहराया जा सके क्योंकि इसमें कोई विचार नहीं किया गया है उपरोक्त शासनादेश के कंडिका संख्या 9 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार प्रदान किया गया।

9. इसलिए, इन परिस्थितियों में, दिनांक 18.11.2022 का आदेश कानूनन बरकरार नहीं रखा जा सकता है और तदनुसार, इसे रद्द किया जाता है।

10. मामला दिनांक 03.12.2012 के सरकारी आदेश के तहत निहित प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में और सरकारी आदेश दिनांक 08.08.1986 के पैराग्राफ 9 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार याचिकाकर्ता के पारिवारिक पेंशन हेतु दावा निर्धारण हेतु दावे को देखने और विचार करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को भेजा जाता है।

11. आदेश इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर पारित किया जाएगा।

12. तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और है, ऊपरोक्त के अनुसार अनुमति प्रदान की जाती है।

(2023) 8 ILRA 943

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 10448 वर्ष 2023

बलराम गुप्ता ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री धर्मेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सेवा विधि - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 225 - प्रारंभिक तथ्य-खोजी जांच - बार एसोसिएशन की शिकायत के आधार पर तहसीलदार को आंतरिक विभागीय जांच का सामना करना पड़ रहा है - कोई नियमित विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की गई - धारा 225, यूपी राजस्व संहिता, 2006 के तहत वैधानिक रोक के आधार पर प्रारंभिक रिपोर्ट को चुनौती - स्थिरता - अभिनिर्धारितः

जहाँ राजस्व विभाग द्वारा शिकायतों के आधार पर केवल प्रारंभिक तथ्य-खोजी जाँच की गई हो और कोई औपचारिक अनुशासनात्मक कार्यवाही या आरोप-पत्र प्रस्तुत न किया गया हो, वहाँ संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायिक समीक्षा समय से पूर्व है। उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225, सरकारी कर्तव्यों के निर्वहन में सद्भावनापूर्वक कार्य करने वाले सरकारी अधिकारियों को संरक्षण प्रदान करती है, लेकिन ऐसा वैधानिक संरक्षण औपचारिक

कार्यवाही प्रारंभ होने के बाद ही प्रासंगिक होता है। न्यायालय ने इस स्तर पर हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और कहा कि कोई आंतरिक विभागीय संचार या प्रारंभिक रिपोर्ट न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं है, जब तक कि वह नागरिक अधिकारों को प्रभावित करने वाली किसी नियमित जाँच का आधार न बने। याचिका को खारिज कर दिया गया, जिससे याचिकाकर्ता को भविष्य में शुरू की गई किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई को चुनौती देने का अधिकार मिल गया।

याचिका खारिज की गई।

<u>वादविधि उद्धरण:</u>

1. जुंजाराओ भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1999) 7 एससीसी 409

2. रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अन्य, (2007) 4 एससीसी 247

3. अंजलि चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 40/2023 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)

4. तमिलनाडु सरकार बनाम केएन राममूर्ति, (1997) 7 एससीसी 101

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री धर्मेंद्र कुमार श्रीवास्तव और राज्य के विद्वान स्थायी वकील को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता जो कि जिला जालौन की तहसील जालौन में तहसीलदार के पद पर कार्यरत हैं, तहसील बार एसोसिएशन द्वारा की गई शिकायत पर 03.02.2023 को प्रस्तुत कुछ विभागीय प्रारंभिक तथ्य खोज रिपोर्ट से व्यथित हैं।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225 के अन्तर्गत लगाए गए प्रतिबन्ध के मद्देनजर, सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में याचिकाकर्ता के आचरण के मामले में ऐसी कोई जांच स्वीकार्य नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह आंतरिक विभागीय जांच एक प्रारंभिक तथ्यान्वेषण जांच हो सकती है, जिसे राजस्व बोर्ड को भेज दिया गया है, जिसके आधार पर उन्हें आशंका है कि सक्षम प्राधिकारी एक नियमित विभागीय जांच शुरू कर सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को आगे बढ़ाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों पर भरोसा किया है जैसे कि ***जुंजाराराव भीकाजी नागरकर बनाम भारत संघ और अन्य: 1999 VII सुप्रीम कोर्ट केस 409, (2007) 4 एससीसी 247: रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय*** और हाल ही का एक और अन्य निर्णय जोकि इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा ***विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 40/2023 अंजलि चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*** में पारित किया गया है।

4. इसके विपरीत, विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि इस मामले में हस्तक्षेप करने का यह सही समय नहीं है, क्योंकि

प्रारंभिक तथ्यान्वेषण रिपोर्ट पर अभी तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया है, ताकि कोई नियमित जांच शुरू की जा सके। यह प्रस्तुत किया गया कि केवल आशंका के आधार पर इस न्यायालय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225 के तहत निहित प्रावधान भी इस स्तर पर लागू नहीं हो सकते। उन्होंने तर्क दिया कि रिट याचिका समय से पहले दायर की गई है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने, अभिलेखों का अवलोकन करने तथा इस याचिका में आरोपित रिपोर्ट का अध्ययन करने के पश्चात, मैं पाता हूँ कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई कुछ शिकायतों के आधार पर राजस्व विभाग के सक्षम प्राधिकारी ने प्रारंभिक तथ्यान्वेषण जांच की थी, जिसमें एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता को *प्रथम दृष्टया* शिकायत में लगाए गए आरोपों का दोषी पाया गया था।

6. प्रश्न यह है कि क्या इस प्रारंभिक तथ्यान्वेषण जांच रिपोर्ट पर इस आधार पर विचार किया जा सकता है कि लगाए गए आरोप निराधार थे और उनका कोई आधार नहीं था तथा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था, इस तथ्य के मद्देनजर कि आरोप उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225 के तहत निहित प्रावधानों के मद्देनजर संबंधित तहसील के तहसीलदार की हैसियत से याचिकाकर्ता द्वारा कर्तव्य के आधिकारिक निर्वहन के संबंध में थे।

7. मैं सबसे पहले उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225 के अंतर्गत निहित प्रावधानों की जांच करता हूं। उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 225 के अंतर्गत बेहतर मूल्यांकन के लिए निहित प्रावधान नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:-

> *"(1) राज्य सरकार का कोई भी अधिकारी या कर्मचारी इस संहिता या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन किए गए या किए जाने हेतु तात्पर्यित किसी कार्य के संबंध में किसी सिविल या आपराधिक कार्यवाही में उत्तरदायी नहीं होगा, यदि वह कार्य सद्भावपूर्वक और इस संहिता द्वारा या इसके अधीन अधिरोपित कर्तव्यों के निष्पादन या कार्यों के निर्वहन के दौरान किया गया हो।*
>
> *(2) इस संहिता के किसी उपबंध के कारण या इस संहिता या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के उपबंधों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने का इरादा रखते हुए की गई किसी भी क्षति या हुई या होने की संभावना वाली किसी भी चोट के लिए राज्य सरकार के विरुद्ध कोई वाद या अन्य कार्यवाही नहीं की जाएगी।"*

8. उपर्युक्त प्रावधान को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि अपने प्रशासनिक और अर्ध न्यायिक कार्य के निर्वहन में किसी अधिकारी को उसके द्वारा किए गए किसी भी कार्य के संबंध में किसी भी आपराधिक या सिविल कार्यवाही से संरक्षण दिया गया है। दूसरे शब्दों में, जैसा कि कानून में प्रावधान है, यदि अधिनियम के तहत शक्ति के कथित प्रयोग में, कोई कार्य सद्भावनापूर्वक और अधिनियम के तहत उसे सौंपे गए कार्यों के निष्पादन या निर्वहन के दौरान किया गया है, तो ऐसे अधिकारी पर कोई सिविल या आपराधिक दायित्व नहीं लगाया जा सकता है।

9. मेरे विचार से यह उपरोक्त चरण तब आएगा, जब याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र दिया जाएगा और इस तरह की जांच शुरू की जाएगी। यह वह चरण है, जिसमें याचिकाकर्ता के लिए यह खुला रह सकता है कि वह अर्ध-न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए सद्भावपूर्वक कर्तव्य निर्वहन में किए गए अपने किसी भी कार्य के संबंध में की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही पर सवाल उठा सके।

10. तथ्यों को देखते हुए, मुझे लगता है कि राजस्व बार एसोसिएशन द्वारा कुछ शिकायतें की गई थीं, जिसके कारण संबंधित विभाग को कुछ प्रारंभिक जांच करनी पड़ी। एक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट जब तक कि एक नियमित कर्मचारी का आधार न बन जाए और ऐसी कार्यवाही शुरू न हो जाए, ऐसी आंतरिक जांच पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। यह केवल एक आंतरिक विभागीय संचार होगा और इसलिए इस न्यायालय के लिए ऐसे आंतरिक संचार की न्यायिक समीक्षा करने का कोई अवसर नहीं है।

11. मेरे उपरोक्त विचार में, मैं याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णय में समर्थन पाता हूँ। ज़ुंजाराराव भीकाजी नागरकर *(सुप्रा)* के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि कदाचार का गठन करने के लिए अर्ध-न्यायिक शक्ति के प्रयोग में लापरवाही केवल असावधानी के लिए लापरवाही होनी चाहिए, लेकिन यह एक दोषपूर्ण लापरवाही नहीं है और नियमित जांच शुरू होने से पहले इसे समझने के लिए, प्राधिकरण को उन दस्तावेजों पर विचार करना चाहिए जो साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। पैराग्राफ 42 और 43 के अनुसार, न्यायालय ने इस प्रकार माना:

> *"42. किसी अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत ऐसी सूचना के आधार पर नहीं की जा सकती जो अस्पष्ट या अनिश्चित हो। ऐसे मामले में संदेह की कोई भूमिका नहीं होती। अनुशासनात्मक अधिकारी के पास दोषी अधिकारी के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए उचित आधार होना चाहिए। केवल इसलिए कि जुर्माना नहीं लगाया गया था और बोर्ड ने अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायाधिकरण में उस आदेश के खिलाफ अपील दायर करने का निर्देश दिया था, अपीलकर्ता के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। ऐसा कोई अन्य उदाहरण नहीं है जो यह*

दर्शाता हो कि इसी तरह के मामले में अपीलकर्ता ने हमेशा जुर्माना लगाया हो।

43. यदि कानून की प्रत्येक त्रुटि कदाचार का आरोप बनती है, तो यह अपीलकर्ता जैसे अर्ध न्यायिक अधिकारियों के स्वतंत्र कामकाज पर असर डालेगी। चूंकि संक्षेप में कदाचार का अनुमान अपीलकर्ता द्वारा कानून की त्रुटि किए जाने से लगाया जाता है, इसलिए आरोप-पत्र किसी भी कानूनी आधार पर आगे नहीं बढ़ता है, जिससे इसे रद्द किया जा सके। दूसरे शब्दों में, अर्ध न्यायिक प्राधिकरण के खिलाफ कोई आरोप-पत्र बनाए रखने के लिए कानून की मात्र गलती के अलावा कुछ और आरोप लगाया जाना चाहिए, उदाहरण के लिए, अर्ध न्यायिक आदेश को प्रभावित करने वाले कुछ बाहरी विचार की प्रकृति। चूंकि इस तरह का कुछ भी आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए आरोपित आरोप-पत्र अवैध हो जाता है। यदि आरोप-पत्र कायम रहता है, तो यह अर्ध न्यायिक प्राधिकरण के विश्वास और स्वतंत्र कामकाज पर असर डालेगा। प्रशासनिक न्यायनिर्णयन की पूरी प्रणाली, जिसके तहत प्रशासनिक अधिकारियों को अर्ध न्यायिक शक्तियां प्रदान की जाती हैं, बदनाम हो जाएगी यदि ऐसे कार्य करने वाले अधिकारियों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के निरंतर खतरे के कारण बिना किसी भय या पक्षपात के अपने कार्य करने से रोका जाए।"

12. ऐसा मानते हुए न्यायालय ने अंत में पैराग्राफ 44 के तहत टिप्पणी की कि मामले के संपूर्ण पहलू को देखते हुए, उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का मामला नहीं बनता, क्योंकि उसके आचरण के आरोप को हटाया नहीं गया।

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर दिए गए प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। एकमात्र मुद्दा यह है कि यह न्यायालय कब हस्तक्षेप करेगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का कोई भी प्रयोग चाहे वह प्रमाण पत्र या परमादेश रिट जारी करने का मामला हो, मुद्दा यह होगा कि क्या कोई विशेष दस्तावेज, जिसे रद्द करने की मांग की जा रही है या क्या प्राधिकारी कर्तव्य निर्वहन के लिए बाध्य था, ने वास्तव में अपना कर्तव्य निर्वहन किया है या नहीं, जैसा भी मामला हो, ताकि इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सके।

14. वर्तमान मामले में, प्रारंभिक जांच या इसे आंतरिक विभागीय संचार के रूप में आयोजित करने के लिए अभी तक याचिकाकर्ता के स्वयं के प्रवेश के अनुसार नियमित जांच आयोजित करने का आधार नहीं मिला है। इसलिए, परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता का मामला सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किए गए मामले से अलग है।

15. दूसरे निर्णय पर आते हैं जो किसी न्यायिक आदेश के लिए जांच करने से संबंधित है, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि

याचिकाकर्ता के मामले में अभी तक कोई नियमित जांच शुरू नहीं हुई है, इसलिए इस स्तर पर जांच की समीक्षा करने का अवसर नहीं आता है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपने कार्य के निर्वहन में अभी तक कोई कार्रवाई नहीं की गई है, जिससे उसे किसी भी दायित्व के तहत बाध्य किया जा सके कि जांच करने से पहले उसे यह विचार बनाना होगा कि आरोप वास्तव में ठोस और मान्य साक्ष्यों पर आधारित हैं, जो कि प्रथम दृष्टया हो सकता है, ताकि यह कृत्य ऐसी लापरवाही के बराबर हो जिसे दोषी लापरवाही कहा जा सके। रमेश चंद्र सिंह *(सुप्रा)* के मामले में अधिकारी द्वारा पारित न्यायिक आदेश के आधार पर अनुशासनात्मक जांच शुरू की गई थी, लेकिन इस मामले में वह चरण अभी तक नहीं आया है। यह निर्णय तथ्यों के आधार पर भी अलग है।

16. अंजलि चौरसिया (सुप्रा) के मामले में मुद्दा यह था कि न्यायिक अधिकारी के खिलाफ न्यायिक कार्य के निर्वहन में की गई शिकायत के संबंध में कोई हलफनामा न होने पर कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती थी या नहीं। उस मामले में, बेशक, न्यायिक अधिकारी अंजलि चौरसिया निलंबित थीं और रिट कोर्ट ने जांच पूरी करने का निर्देश दिया था। एक अंतर-न्यायालय अपील पेश किए जाने पर, न्यायालय ने यह विचार किया कि हलफनामे के समर्थन के बिना केवल शिकायत के आधार पर कोई अनुशासनात्मक जांच शुरू नहीं की जा सकती थी, क्योंकि शिकायत न्यायिक कार्य के निर्वहन के बारे में थी जिसमें कुछ आदेश पारित किए गए थे। यह माना गया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती थी।

17. ज़ुंजाराराव भीकाजी नागरकर (सुप्रा) के मामले पर भरोसा करते हुए, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, पैराग्राफ 26 और 27 के अनुसार डिवीजन बेंच ने इस प्रकार फैसला सुनाया:

" 26. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जब जुर्माना लगाने का मामला था, तो लगाए जाने वाले जुर्माने की राशि मामले के तथ्यों के आधार पर मूल्यांकन अधिकारी के विवेक पर छोड़ दी गई थी।

27. तमिलनाडु सरकार बनाम के.एन. राममूर्ति (1997 (7) एस.सी.सी. 101) में यह माना गया है कि अर्ध न्यायिक शक्ति का उचित प्रयोग न करना कदाचार के बराबर है। इस मामले में, उप वाणिज्यिक कर अधिकारी के रूप में कार्यरत प्रतिवादी पर निम्नलिखित आरोप लगाए गए:

"(i) कि वह ऊपर उल्लिखित प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यों का विश्लेषण करने में विफल रहे;

(ii) कि वह अंतिम मूल्यांकन करते समय खातों की गहराई से और पूरी तरह से जांच करने में विफल रहे;

(iii) कि वह मूल रूप से उपरोक्त टर्नओवर पर कर लगाने में विफल रहे; और

(iv) कि वह 44,850 रुपये की बड़ी सीमा तक सरकारी राजस्व की रक्षा करने में विफल रहे।"

18. मुझे यह मामला भी ऐसा लगता है, जिसमें अधिकारी को निलंबित करने का आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है और विभागीय अनुशासनात्मक जांच भी शुरू कर दी गई है, जिसे रिट कोर्ट ने शुरू में कानून के अनुसार समाप्त करने का निर्देश दिया था, बिना किसी छूट के।

19. चूंकि, वर्तमान मामले में कोई अनुशासनात्मक जांच शुरू नहीं की गई है, न ही याचिकाकर्ता को निलंबित किया गया है, इसलिए इस स्तर पर इस न्यायालय द्वारा प्रारंभिक तथ्य खोज जांच में हस्तक्षेप करने का सवाल ही नहीं उठता।

20. मामले में सक्षम अधिकारी द्वारा कमजोर या अनुपलब्ध आधार पर जांच करने का दायित्व तब प्रश्नगत होगा जब नियमित जांच स्वयं ही शुरू हो गई हो और उसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई हो। तब उस स्थिति में परमादेश रिट बनाए रखने योग्य होगी। प्रमाण पत्र रिट भी बनाए रखने योग्य होगी, जहां कुछ अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई हो, जिसका याचिकाकर्ता के नागरिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, यदि उसे उसके तार्किक अंत तक लाया जाता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही की वह रिपोर्ट संदिग्ध होगी और केवल उसी चरण में न्यायिक रूप से समीक्षा योग्य होगी।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, मैं इस मामले में इस समय हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूँ। हालाँकि, इस प्रारंभिक रिपोर्ट के आधार पर नियमित जाँच शुरू होने की स्थिति में याचिकाकर्ता के लिए कार्यवाही पर सवाल उठाना खुला रहेगा।

22. यह प्रश्न भी खुला रहेगा कि क्या शिकायत को बिना हलफनामे के स्वीकार किया जा सकता था, जो कि सरकारी आदेश दिनांक 09.05.1997 के प्रावधानों का उल्लंघन है।

23. तदनुसार, यह याचिका ***इस स्तर पर पूर्वोक्त स्वतंत्रता के अधीन खारिज*** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 948

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 10537/2023

ब्रिजेश बहादुर सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सत्येंद्र सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री पवन कुमार सिंह

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (चिकित्सा परिचर्या) नियमावली, 2011 - केन्द्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985 - नियम 37(2) - चिकित्सा प्रतिपूर्ति - विकास प्राधिकरण के सेवानिवृत कर्मचारी - केन्द्रीयकृत सेवाएं - प्रतिपूर्ति का अधिकार बोर्ड प्रस्ताव के सरकारी अनुसमर्थन पर निर्भर नहीं - नियम 37(2) - केन्द्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985 - आकर्षित - पात्रता मान्यता प्राप्त

निर्णय: प्रयागराज विकास प्राधिकरण (पीडीए) के एक सेवानिवृत्त जूनियर इंजीनियर को कोविड-19 महामारी के दौरान अपनी पत्नी के चिकित्सा उपचार खर्च की प्रतिपूर्ति से इस आधार पर इनकार कर दिया गया कि चिकित्सा उपस्थिति नियम, 2011, हालांकि पीडीए बोर्ड द्वारा अपनाया गया था, लेकिन राज्य सरकार द्वारा इसकी पुष्टि नहीं की गई थी। न्यायालय ने माना कि भले ही इस तरह के गोद लेने को यूपी शहरी नियोजन और विकास अधिनियम, 1973 की धारा 56 के तहत एक नियमन के रूप में नहीं माना जाता है, फिर भी चिकित्सा उपस्थिति नियम, 2011 का लाभ याचिकाकर्ता को यूपी विकास प्राधिकरण केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37(2) के तहत उपलब्ध होगा। यह नियम यह अनिवार्य करता है कि उन नियमों द्वारा कवर नहीं किए गए मामलों में, केंद्रीकृत सेवा के सदस्य (सेवानिवृत्त सहित) यूपी सरकार के कर्मचारियों पर लागू नियमों द्वारा शासित होंगे। प्रतिपूर्ति को अस्वीकार करने वाले विवादित आदेश को निरस्त कर दिया गया। पीडीए के उपाध्यक्ष एवं सचिव को आदेश प्राप्त होने के एक माह के भीतर याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा बिल का सत्यापन कर प्रतिपूर्ति करने का परमादेश जारी किया गया।

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>उद्धृत प्रमुख वाद:</u>

1. प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) आईएलआर 1 सभी 21

2. राजेंद्र प्रसाद द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023:एएचसी -एलकेओ:32771

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका, याचिकाकर्ता द्वारा अपनी पत्नी के इलाज पर हुए चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति के दावे को खारिज करने वाले सचिव, प्रयागराज विकास प्राधिकरण, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 4 फरवरी, 2023 के खिलाफ निर्देशित है।

2. याचिकाकर्ता एक सेवानिवृत्त अवर अभियंता हैं, जो भूतपूर्व इलाहाबाद विकास प्राधिकरण, इलाहाबाद में कार्यरत थे। वह दिनांक 31.07.2017 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुए। इलाहाबाद विकास प्राधिकरण, इलाहाबाद का नाम तबसे बदलकर प्रयागराज विकास प्राधिकरण, प्रयागराज कर दिया गया है, और इसलिए

याचिकाकर्ता, अंतिम नामित प्राधिकरण का सेवानिवृत्त कर्मचारी है। प्रयागराज विकास प्राधिकरण, प्रयागराज को इसके बाद 'पीडीए' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

3. याचिकाकर्ता ने पीडीए में अपनी भर्ती, सेवा में अपने नियमितीकरण, विभिन्न समय पर अपनी सेवा को प्रभावित करने वाले नियमों में किए गए संशोधनों से संबंधित तथ्यों का सूक्ष्म विवरण दिया है, लेकिन यह सब इस याचिका में उठने वाले मुद्दे के उद्देश्य के लिए अनावश्यक है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब याचिकाकर्ता पीडीए की सेवा में था, तब अनुसचिव, नियोजन एवं विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश नगरीय नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 (संक्षेप में '1973 का अधिनियम') के तहत स्थापित सभी विकास प्राधिकरणों के उपाध्यक्षों को एक ज्ञापन दिनांक 17.04.2012 संबोधित किया, जिसमें उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (चिकित्सा परिचर्या) नियमावली, 2011 (संक्षेप में 'चिकित्सा परिचर्या नियमावली, 2011') के प्रावधानों को विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों पर लागू करने की सरकार की इच्छा व्यक्त की गई थी। राज्य भर के विकास प्राधिकरणों के सभी उपाध्यक्षों को यह इंगित करते हुए अपनी सहमति देने की आवश्यकता थी कि विकास प्राधिकरण अपने संबंधित विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों के लिए चिकित्सा परिचर्या नियमावली, 2011 को अपनाने का वित्तीय भार वहन करने में सक्षम और इच्छुक है। यह पीडीए के लिए भी सच था, जिसके उपाध्यक्ष को सहमति देनी थी ताकि चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 कर्मचारियों के लिए उपलब्ध हो सके। दिनांक 5 मार्च, 2013 को अनुसचिव, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा राज्य भर के विकास प्राधिकरणों के उपाध्यक्षों को एक अनुस्मारक भेजा गया था, जिसमें उनसे चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने के लिए अपनी सहमति भेजने के लिए कहा गया था।

4. पीडीए ने, ज्ञापन दिनाँक 17.04.2012 और दिनांक 05.03.2013, ऊपर उल्लिखित, के जवाब में, दिनांक 06.04.2013 को आयोजित अपनी 107वीं बोर्ड बैठक में मामले पर विचार किया। पीडीए में चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 लागू करने के प्रस्ताव पर चर्चा की गई और संकल्प संख्या 1601 दिनांक 06.04.2013 द्वारा पीडीए बोर्ड द्वारा सर्वसम्मति से उसे स्वीकार किया गया। उक्त संकल्प, जो उस दिन के प्रस्ताव संख्या 7 से संबंधित था, रिकॉर्ड पर है। पीडीए के उपाध्यक्ष ने ज्ञापन दिनांक 24 अक्टूबर, 2013 के माध्यम से आवास और शहरी नियोजन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को विधिवत सूचित किया कि पीडीए के बोर्ड ने दिनांक 06.04.2013 को आयोजित अपनी बैठक में अपने कर्मचारियों के लाभ के लिए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को सर्वसम्मति से पारित और स्वीकृत किया है। याचिकाकर्ता का कहना है कि आवास और शहरी नियोजन विभाग ने पीडीए के संकल्प दिनांक 06.04.2013 को स्वीकार या अनुमोदित करने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया है। चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 के नियम 2 में नियमों के कार्यान्वयन का प्रावधान है जो कहता है:

"2. - कार्यान्वयन - ये निम्नलिखित पर लागू होंगे-

(ए) सभी सरकारी सेवक जब वे ड्यूटी पर हों, या छुट्टी पर हों या निलंबन में हों और उनका परिवार।

(बी) सेवानिवृत्त सरकारी सेवक और उनके परिवार और मृतक सरकारी कर्मचारी के मामले में उनके परिवार के ऐसे सदस्य जो पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हैं।"

5. याचिकाकर्ता का कहना है कि पीडीए द्वारा संकल्प दिनांक 06.04.2013 द्वारा चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने के बाद, उक्त नियमों के सभी प्रावधान कर्मचारियों के साथ-साथ सेवानिवृत्त कर्मचारियों और उनके आश्रित पारिवारिक सदस्यों के लाभ के लिए लागू और व्यवहृत होंगे।

6. कोविड-19 महामारी की दूसरी लहर के दौरान, याचिकाकर्ता की पत्नी श्रीमती कुसुम सिंह को दिनांक 15.04.2021 को कोविड-19 के लिए पॉजिटिव पाया गया था। चार दिन बाद, दिनांक 19 अप्रैल, 2021 को, उनकी रक्त ऑक्सीजन संतृप्ति खतरनाक स्तर तक गिर गई। चिकित्सकीय सलाह पर, उन्हें एक समर्पित कोविड अस्पताल, विनीता अस्पताल, फाफामऊ, प्रयागराज में भर्ती कराना पड़ा। श्रीमती कुसुम सिंह का इलाज किया गया और अंततः दिनांक 6 मई, 2021 को उन्हें छुट्टी दे दी गई। इलाज में शामिल मेडिकल बिल 2,75,000/- रुपये था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 23 जुलाई, 2021 को बिल का सारांश, मेडिकल बिल, डिस्चार्ज सारांश और अपनी पत्नी के कोविड-19 उपचार से संबंधित अनुवर्ती नुस्खों के साथ एक आवेदन पीडीए के अध्यक्ष के समक्ष मेडिकल बिलों की प्रतिपूर्ति के अनुरोध के साथ दिया। पीडीए के उपाध्यक्ष द्वारा उक्त आवेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसके बाद याचिकाकर्ता ने उसी अनुरोध को लेकर पीडीए के अध्यक्ष के समक्ष दिनांक 16 अक्टूबर, 2022 को एक अभ्यावेदन दिया। अध्यक्ष ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को उचित कार्रवाई के लिए पीडीए को चिह्नित और अग्रेषित किया। पीडीए के सचिव ने आक्षेपित आदेश दिनांक 04.02.2023 द्वारा उपरोक्त चिकित्सा उपचार में हुए खर्च की प्रतिपूर्ति के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि हालांकि पीडीए ने दिनांक 06.04.2013 की बैठक में अपने कर्मचारियों के लिए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को सर्वसम्मति से अपनाया था, लेकिन जब तक सरकार के निर्णय द्वारा उक्त नियमों को पीडीए तक अग्रेषित नहीं किया जाता, तब तक कोई प्रतिपूर्ति नहीं दी जा सकती। उक्त आदेश दिनांक 4 फरवरी, 2023 को पारित किया गया था जिस पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस याचिका में आपत्ति जताई गई।

7. प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 की ओर से श्री अरुण कुमार द्वारा जवाबी हलफनामा दायर किया गया है। वहां लिया गया संक्षिप्त मामला यह है कि पीडीए द्वारा चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने और उसके लिए वित्तीय भार को स्वीकार करने के बावजूद, राज्य सरकार ने उपरोक्त निर्णय की पुष्टि नहीं की है, जिससे कि पीडीए कर्मचारियों के लाभ

के लिए उपरोक्त नियम उपलब्ध हो जाएं। पीडीए का मामला यह है कि पीडीए बोर्ड के प्रस्ताव की राज्य सरकार द्वारा पुष्टि और पीडीए के कर्मचारियों के लिए उपरोक्त चिकित्सा परिचर्या नियमों की अधिसूचना के बिना, उन्हें लागू नहीं किया जा सकता है। पीडीए की ओर से दलील दी गई है कि 1973 के अधिनियम की धारा 56 के तहत, विकास प्राधिकरण, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के साथ, ऐसे नियम बना सकता है, जो अधिनियम और प्राधिकरण के प्रशासन के नियमों के साथ असंगत न हों। इस बात पर जोर दिया गया है कि धारा 56 की उप-धारा (2) (सी) में आगे यह भी परिकल्पित है कि उप-धारा (1) के तहत बनाए गए नियम सचिव, मुख्य लेखा अधिकारी और अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तों से संबंधित हो सकते हैं। उक्त प्रावधानों के मद्देनजर, पीडीए के बोर्ड द्वारा चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने से पीडीए कर्मचारियों को नियमों का लाभ नहीं मिलेगा।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येंद्र सिंह, राज्य के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार सिंह और प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार को सुना।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश दिनांक 04.02.2023 की आलोचना में दो दलीलें पेश की हैं। उन्होंने सबसे पहले दलील दी कि चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 पीडीए बोर्ड द्वारा अपनाए जाने के बाद स्वतः लागू हो जाते हैं। बोर्ड के प्रस्ताव को राज्य सरकार द्वारा किसी भी तरह से अनुमोदित या स्वीकार किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान 1973 के अधिनियम की धारा 56 के प्रावधानों की ओर आकर्षित करते हुए कहा कि उक्त प्रावधान एक विकास प्राधिकरण के नियम बनाने की शक्ति का उल्लेख करता है। यदि पीडीए जैसा कोई विकास प्राधिकरण 1973 के अधिनियम की धारा 56 के तहत नियम बनाना चाहता है, तो इस शक्ति का प्रयोग करने से पहले राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। श्री सत्येंद्र सिंह ने कहा कि वर्तमान मामले में, राज्य सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियों के लिए पहले से तैयार किए गए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को स्वीकार करते समय पीडीए द्वारा नियम बनाने की शक्ति का बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया गया है।

10. अन्य दलील, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश पर आपत्ति की है, वह यह है कि उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण केंद्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985 (संक्षेप में 'केंद्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985') की अधिसूचना के बाद, विकास प्राधिकरणों की केंद्रीकृत सेवाओं से संबंधित कर्मचारियों/पूर्व कर्मचारियों की सेवा शर्तें और सेवानिवृत्ति लाभ, केंद्रीकृत सेवा नियमावली, 1985 और उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 (संक्षेप में 'सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011') द्वारा शासित होते हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने केंद्रीकृत

सेवा नियमावली, 1985 के नियम 37 की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिसमें लिखा है:

"37. अन्य मामलों का विनियमन-

(1) यदि इन नियमों के किसी प्रावधान की व्याख्या के संबंध में कोई विवाद या कठिनाई उत्पन्न होती है, तो उसे सरकार को भेजा जाएगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा।

(2) इन नियमों या विशेष आदेशों के अंतर्गत न आने वाले मामलों के संबंध में, सेवा के सदस्य राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत उत्तर प्रदेश सरकार के कर्मचारियों पर सामान्य रूप से लागू नियमों, विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होंगे।

(3) उप-नियम (1) और (2) के अंतर्गत न आने वाले मामले ऐसे आदेशों द्वारा शासित होंगे जिन्हें सरकार जारी करना उचित समझे।"

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 में चिकित्सा लाभ का प्रावधान नहीं है, इसलिए उक्त नियम के नियम 37 के उप-नियम (2) द्वारा राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत यूपी सरकारी कर्मचारियों पर सामान्य रूप से लागू नियमों, विनियमों और आदेशों का कार्यान्वयन लागू किया जाएगा। इसलिए, इस परिस्थिति पर दलील यह है कि चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 (2) के आधार पर लागू होंगे, भले ही पीडीए बोर्ड के प्रस्ताव द्वारा यूपी सरकारी कर्मचारियों पर लागू चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को न अपनाए।

12. राज्य की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार सिंह और प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है।

13. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया है।

14. पीडीए सहित विकास प्राधिकरणों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले 1973 के अधिनियम के कुछ प्रावधानों और कुछ वैधानिक नियमों का संदर्भ लेना लाभप्रद होगा। 1973 के अधिनियम की धारा 4 में प्रावधान है:

"धारा 4. विकास प्राधिकरण

(1) राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए किसी विकास क्षेत्र के लिए विकास प्राधिकरण कहलाने वाले प्राधिकरण का गठन कर सकती है।

(2) प्राधिकरण उक्त अधिसूचना में उसे दिये गए नाम द्वारा, एक निगमित निकाय होगा, जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर होगी, जिसमें चल और अचल दोनों तरह की संपत्ति का अधिग्रहण,

धारण और निपटान करने और अनुबंध करने की शक्ति होगी और वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जा सकेगा।

(3) किसी विकास क्षेत्र के संबंध में प्राधिकरण, जिसमें उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 में परिभाषित शहर या उसका कोई भाग शामिल है, निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात-

(क) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अध्यक्ष:

(ख) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त उपाध्यक्ष:

(ग) राज्य सरकार का सचिव, उस विभाग का प्रभारी जिसमें, फिलहाल, विकास प्राधिकरणों से संबंधित कार्य स्थानांतरित किया जाता है, पदेन;

(घ) राज्य सरकार का सचिव, वित्त विभाग का प्रभारी, पदेन;

(ङ) मुख्य नगर एवं ग्राम नियोजक, उत्तर प्रदेश, पदेन;

(च) उत्तर प्रदेश जलापूर्ति और सीवरेज अधिनियम, 1975 के तहत स्थापित जल निगम के प्रबंध निदेशक, पदेन;

(छ) मुख्य नगर अधिकारी, पदेन;

(ज) प्रत्येक जिले, जिसका कोई भी भाग विकास क्षेत्र में शामिल है, का जिलाधिकारी, पदेन;

(झ) चार सदस्य, जो उक्त नगर के लिए नगर महापालिका के सभासदों द्वारा अपने में से चुने जाएंगे:

परन्तु ऐसा कोई सदस्य नगर निगम का सभासद न रहने पर, उस रूप में पद धारण करना छोड़ देगा:

(ञ) ऐसे अन्य सदस्य, जो तीन से अधिक न हो, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किया जाए।

(4) उपाध्यक्ष की नियुक्ति पूर्णकालिक होगी।

(5) उपाध्यक्ष प्राधिकरण की निधियों से ऐसे वेतन और भत्ते प्राप्त करने का हकदार होगा और ऐसी सेवा शर्तों द्वारा शासित होगा, जो राज्य सरकार के द्वारा इस निमित्त सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित की जाएं।

(6) उपधारा (३) के खण्ड (ग), खण्ड (घ), खण्ड (ङ) या खण्ड (च) में निर्दिष्ट सदस्य प्राधिकरण की बैठक में स्वयं उपस्थित होने के बजाय, ऐसे अधिकारी को जो, खण्ड (ग) या खण्ड (घ) में निर्दिष्ट सदस्य की दशा में, विभाग में उप सचिव के पद से नीचे का न हो; और खण्ड (ङ) में निर्दिष्ट सदस्य की दशा में नगर नियोजक के पद से नीचे का; और खण्ड (च) में निर्दिष्ट सदस्य की दशा में अधीक्षण अभियंता के पद से नीचे का न हो; बैठक में

उपस्थित होने के लिए प्रतिनियुक्त कर सकेगा। इस प्रकार प्रतिनियुक्त अधिकारी को बैठक की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा और उसे वोट देने का भी अधिकार होगा।

(7) उप-धारा (३) में उल्लिखित विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य विकास क्षेत्र से संबंधित प्राधिकरण में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और कम से कम पाँच और अधिक से अधिक ग्यारह ऐसे अन्य सदस्य होंगे, जिनमें विकास क्षेत्र में प्रत्येक में क्षेत्राधिकार रखने वाले नगरपालिका बोर्डों और अधिसूचित क्षेत्र समितियों का कम से कम एक सदस्य शामिल होगा, जो ऐसी अवधि के लिए और ऐसे नियमों और शर्तों पर पद धारण करेगा, जैसा कि इस संबंध में राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित किया जा सकता है:

> बशर्ते कि उपाध्यक्ष या प्राधिकरण के पदेन सदस्य के अलावा कोई सदस्य किसी भी समय, अपने हाथ से लिख कर, राज्य सरकार को संबोधित कर, अपने पद से इस्तीफा दे सकता है और ऐसे इस्तीफे को स्वीकार किए जाने पर उसके द्वारा अपना पद खाली कर दिया माना जाएगा।

(8) प्राधिकरण का कोई भी कार्य या कार्यवाही प्राधिकरण में किसी रिक्ति के अस्तित्व या उसके गठन में दोष के कारण अवैध नहीं होगी।"

15. 1973 के अधिनियम की धारा 5 को भी लाभ के साथ उद्धृत किया जा सकता है:

"धारा 5. प्राधिकरण के कर्मचारी

(1) राज्य सरकार दो उपयुक्त व्यक्तियों को क्रमशः प्राधिकरण के सचिव और मुख्य लेखा अधिकारी के रूप में नियुक्त कर सकती है जो ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेंगे और ऐसे कर्तव्यों का पालन करेंगे जो विनियमों द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं या प्राधिकरण या उसके उपाध्यक्ष द्वारा उन्हें सौंपे जा सकते हैं।

(2) ऐसे नियंत्रण और प्रतिबंधों के अधीन, जो राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं, प्राधिकरण अपने कार्यों के कुशल प्रदर्शन के लिए आवश्यक संख्या में अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है और उनके पदनाम और ग्रेड निर्धारित कर सकता है।

(3) प्राधिकरण के सचिव, मुख्य लेखा अधिकारी तथा अन्य अधिकारी और कर्मचारी प्राधिकरण की निधियों से ऐसे वेतन और भत्ते प्राप्त करने के हकदार होंगे तथा ऐसे वेतन और भत्ते द्वारा शासित होंगे तथा सेवा की अन्य ऐसी शर्तों द्वारा शासित होंगे, जो उस निमित्त बनाए गए विनियमों द्वारा निर्धारित की जा सकती हैं।"

16. 1973 के अधिनियम की धारा 5ए को 1985 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 21 के

तहत संशोधन द्वारा लाया गया था, और इसमें विकास प्राधिकरणों में केंद्रीकृत सेवाओं के सृजन का प्रावधान है। धारा 5-ए में निम्नानुसार प्रावधान है:

"5-ए. केन्द्रीयकृत सेवाओं का सृजन।-

(1) धारा 5 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, राज्य सरकार किसी भी समय, अधिसूचना द्वारा, धारा 59 की उपधारा (1) में उल्लिखित पदों के अलावा ऐसे पदों के लिए, जिन्हें राज्य सरकार ठीक समझे, सभी विकास प्राधिकरणों के लिए एक या अधिक 'विकास प्राधिकरण की केन्द्रीयकृत सेवा' सृजित कर सकेगी और ऐसी सेवा में भर्ती की रीति और शर्तें तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा के निबंधन और शर्तें विहित कर सकेगी।

(2) विकास प्राधिकरण केन्द्रीयकृत सेवा के सृजन पर, ऐसे सृजन के ठीक पूर्व ऐसी सेवा में सम्मिलित पदों पर सेवारत कोई व्यक्ति; जो उत्तर प्रदेश पालिका (केन्द्रीयकृत) सेवा नियमावली, 1966 द्वारा शासित व्यक्ति न हो, या प्रतिनियुक्ति पर सेवारत हो, जब तक कि वह अन्यथा विकल्प न दे, ऐसी सेवा में लीन किया जायेगा -

(क) अन्तिम रूप से, यदि वह अपने पद पर पहले से ही स्थायी हो चुका हो, और

(ख) अनन्तिम रूप से, यदि वह अस्थायी या स्थानापन्न नियुक्ति पर हो।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति ऐसी विकास प्राधिकरण केन्द्रीयकृत सेवा के सृजन से तीन मास के भीतर सरकार के आवास विभाग को ऐसी केन्द्रीयकृत सेवा में आमेलित न होने के अपने विकल्प की सूचना दे सकेगा, ऐसा न करने पर यह माना जाएगा कि उसने ऐसी केन्द्रीयकृत सेवा में, यथास्थिति, अंतिम या अनन्तिम आमेलन का विकल्प चुना है।

(4) विकास प्राधिकरण केन्द्रीयकृत सेवा में अंतिम आमेलन के लिए अनन्तिम रूप से आमेलित व्यक्ति की उपयुक्तता की जांच विहित तरीके से की जाएगी और यदि वह उपयुक्त पाया जाता है तो उसे अंतिम रूप से आमेलित कर लिया जाएगा।

(5) ऐसे कर्मचारी की सेवाएं, जो आमेलन के विरुद्ध विकल्प देता है या जो अंतिम आमेलन के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है, निर्धारित हो जाएंगी और किसी अवकाश, पेंशन, भविष्य निधि या ग्रेच्युटी के उसके दावे, जिसका कि वह हकदार होता, पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संबंधित विकास प्राधिकरण से मुआवजे

के रूप में निम्नलिखित के बराबर रकम पाने का हकदार होगा-

(क) तीन मास का वेतन, यदि वह स्थायी कर्मचारी था

(ख) एक मास का वेतन, यदि वह अस्थायी कर्मचारी था।

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, 'वेतन' शब्द में महंगाई भत्ता, वैयक्तिक वेतन और विशेष वेतन, यदि कोई हो, शामिल हैं।

(6) राज्य सरकार या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी के लिए, विकास प्राधिकरण केन्द्रीकृत सेवा में कोई पद धारण करने वाले किसी व्यक्ति को एक विकास प्राधिकरण से दूसरे विकास प्राधिकरण में स्थानांतरित करना वैध होगा।"

17. वित्त, लेखा और लेखा परीक्षा से संबंधित, 1973 के अधिनियम की धारा 20, जो अध्याय VII में पड़ती है, का संदर्भ लेना भी महत्वपूर्ण है। उपरोक्त धारा 20 नीचे उद्धृत है:

"धारा 20. प्राधिकरण का कोष

(1) प्राधिकरण के पास अपनी स्वयं की निधि होगी और वह उसे बनाए रखेगा, जिसमें निम्नलिखित जमा किया जाएगा -

(क) अनुदान, ऋण, अग्रिम या अन्यथा के रूप में राज्य सरकार से प्राधिकरण द्वारा प्राप्त सभी धन

(ख) ऋण या डिबेंचर के रूप में राज्य सरकार के अलावा अन्य स्रोतों से प्राधिकरण द्वारा उधार लिए गए सभी धन

(ग) इस अधिनियम के तहत प्राधिकरण द्वारा प्राप्त सभी फीस, टोल और शुल्क;

(घ) प्राधिकरण द्वारा भूमि, भवन तथा अन्य चल तथा अचल संपत्तियों के निपटान से प्राप्त सभी धन,तथा

(ङ) प्राधिकरण द्वारा किराए तथा लाभ के माध्यम में या किसी अन्य तरीके से या किसी अन्य स्रोत से प्राप्त सभी धन।

(2) निधि का उपयोग इस अधिनियम के क्रियान्वयन में प्राधिकरण द्वारा किए गए व्ययों को पूरा करने के लिए किया जाएगा तथा किसी अन्य प्रयोजनों के लिए नहीं।

(3) राज्य सरकार के किसी निर्देश के अधीन रहते हुए, प्राधिकरण अपनी निधि में से उतनी धनराशि जितनी वह अपनी अपेक्षित चालू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक समझे, किसी अनुसूचित बैंक

के चालू खाते में रख सकता है तथा किसी अधिशेष धन का ऐसे तरीके से निवेश कर सकता है जैसा कि वह ठीक समझे।

(4) राज्य सरकार, इस निमित्त कानून द्वारा, विधानमंडल द्वारा सम्यक् विनियोजन के पश्चात, प्राधिकरण को ऐसे अनुदान, अग्रिम तथा ऋण दे सकेगी जिन्हें वह इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राधिकरण के कार्यों के निष्पादन हेतु आवश्यक समझे तथा दिए जाने वाले सभी अनुदान, ऋण तथा अग्रिम ऐसे निबंधनों तथा शर्तों पर होंगे जैसा कि राज्य सरकार निर्धारित करे।

(5) प्राधिकरण ऐसे स्रोतों (राज्य सरकार के अलावा) से और ऐसे नियमों और शर्तों पर, जो राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित किये जा सकते हैं, ऋण या डिबेंचर के माध्यम से धन उधार ले सकता है।

(6) प्राधिकरण उप-धारा (5) के तहत उधार लिए गए धन की चुकौती के लिए एक निक्षेप निधि बनाए रखेगा और हर साल निक्षेप निधि में ऐसी राशि का भुगतान करेगा जो इस प्रकार उधार ली गई सभी धनराशियों की तय अवधि के भीतर चुकौती के लिए पर्याप्त हो।

(7) निक्षेप निधि या उसका कोई भाग, उस ऋण की समाप्ति में या उसकी ओर लगाया जाएगा, जिसके लिए ऐसी निधि बनाई गई थी और जब तक कि ऐसा ऋण पूरी तरह से चुकता नहीं हो जाता है, तब तक इसे किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जाएगा।"

18. 1973 के अधिनियम में संशोधन करते हुए धारा 5-ए के समावेशन के बाद, राज्य सरकार ने (दिनांक 25.06.1985 की अधिसूचना के माध्यम से) केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 और सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 को अधिसूचित किया, जो यहाँ पहले ही पेश और संदर्भित किये जा चुके हैं।

19. जहां तक याचिकाकर्ता के पहले तर्क का संबंध है, यह सच है कि 1973 के अधिनियम की धारा 56 के तहत पीडीए में निहित विनियम बनाने की शक्ति का प्रयोग राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से और इस सीमा के साथ किया जा सकता है कि बनाए गए विनियम इस अधिनियम के प्रावधानों और इसके तहत बनाए गए नियमों के साथ असंगत नहीं हैं। धारा 56 की उप-धारा (2) का खंड (सी) सचिव, मुख्य लेखा अधिकारी और अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तों के बारे में बोलता है। लेकिन, विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या पीडीए या इस मामले में 1973 के अधिनियम के तहत स्थापित कोई भी प्राधिकरण, सरकारी कर्मचारियों पर लागू किसी भी मौजूदा नियम का लाभ विकास प्राधिकरण के कर्मचारियों को

देने के अपने संकल्प के तहत कार्य करते हुए, ऐसा धारा 56 के तहत नियम बनाने की अपनी शक्ति के प्रयोग में करता है। यह न्यायालय ऐसा नहीं मानता। 1973 के अधिनियम के तहत 'नियम' शब्द का एक निश्चित अर्थ है और नियम बनाने की शक्ति 1973 के अधिनियम की धारा 55 के तहत एकमात्र राज्य सरकार में निहित है। यदि पीडीए या इस मामले में कोई भी विकास प्राधिकरण, 1973 के अधिनियम की धारा 55 के आधार पर नियम नहीं बना सकता है, तो वह राज्य सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियों के लिए तैयार नियमों को अपने कर्मचारियों के लाभ के लिए नहीं अपना सकता है, यदि कोई धारा 55 में आने वाले 'नियम' शब्द के अर्थ से सख्ती से चलता है। नियम बनाने या उन्हें अपनाने में शायद ही कोई अंतर है, क्योंकि नियम बनाने की शक्ति 1973 के अधिनियम की धारा 55 से जुड़ी है। वह शक्ति केवल राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जा सकती है, विकास प्राधिकरणों द्वारा नहीं। सरकार द्वारा पहले से बनाए गए नियमों को बनाने या अपनाने में केवल शक्ति के प्रयोग के तरीके में अंतर है, और कुछ नहीं।

20. उपर्युक्त टिप्पणियों के बावजूद, यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर फैसला नहीं सुनाना चाहता है, क्योंकि वर्तमान याचिका में शामिल विवाद को उठाए गए दूसरे मुद्दे पर निर्णित किया जा सकता है। क्योंकि पक्षों के अधिकारों का निर्धारण दूसरे मुद्दे के संदर्भ में किया जा सकता है, इसलिए इस प्रश्न पर उपयुक्त तरीके से निर्णय के लिए विकल्प खुला छोड़ दिया गया है।

21. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत अन्य वैकल्पिक दलील केन्द्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985 के प्रावधानों पर आधारित है। ये नियमावली राज्य सरकार द्वारा तैयार की गई है, जिसके लिए उन्हें अधिनियम, 1973 की धारा 5-ए के साथ पठित धारा 55 के कारण पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं। केन्द्रीयकृत सेवा नियमावली, 1985 के नियम 37 का उल्लेख ऊपर किया गया है और नियम 37 के उप-नियम (2) में यह प्रावधान है कि इन नियमों या विशेष आदेशों के अंतर्गत न आने वाले मामलों में सेवा के सदस्य, जिसका अर्थ है उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण केन्द्रीयकृत सेवा, राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत उत्तर प्रदेश सरकार के कर्मचारियों पर सामान्य रूप से लागू नियमों, विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होंगे, लगभग नियम 37(2) की शब्दावली को उधार लेकर।

22. 1973 के अधिनियम की धारा 55 के तहत शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 भी चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति से संबंधित कुछ भी प्रदान नहीं करते हैं, या इस विषय में चिकित्सा व्यय से संबंधित कुछ भी बिल्कुल भी प्रदान नहीं करते हैं। सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 पेंशन, ग्रेच्युटी, मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति पेंशन, पारिवारिक पेंशन और इसके संराशीकरण से संबंधित हैं। शायद यही कारण है कि राज्य सरकार ने विकास प्राधिकरणों, जिसमें पीडीए भी शामिल है, को राज्य सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियों के लिए बनाए गए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने के लिए कहा। स्वीकार्य रूप से, चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 न केवल

सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी के लिए, बल्कि उनके परिवार और मृतक सरकारी कर्मचारी के परिवार के ऐसे सदस्यों के लिए भी चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति प्रदान करता है, जो कि पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हैं।

23. अब, यह मानते हुए कि चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को अपनाने वाला बोर्ड का संकल्प, 1973 के अधिनियम की धारा 56 के तहत विनियमन के रूप में अर्ह नहीं है और अपने आप में धारा 55 के तहत नियम नहीं हो सकता है, क्योंकि नियम बनाने की शक्ति विकास प्राधिकरणों के पास उपलब्ध नहीं है, बल्कि अनन्य रूप से राज्य सरकार के पास है, केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) के प्रावधान चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 को केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 2 के उप-नियम 1(vii) के साथ पठित उप-नियम 1(vi) के तहत परिभाषित केन्द्रीयकृत सेवाओं के सदस्यों पर लागू करते हैं।

24. अब, यह स्थिति कि केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 अपने दायरे में न केवल कार्यरत सदस्यों की सेवा की शर्तों को लेते हैं, बल्कि सेवानिवृत्त सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को भी लेते हैं, उक्त नियमों के नियम 34 के उप-नियम (4) के प्रावधानों से स्पष्ट है। नियम 34(4) में प्रावधान है:

> "34. सेवानिवृत्ति की आयु-
>
> (4) सेवानिवृत्ति पेंशन और/या अन्य सेवानिवृत्ति लाभ, यदि कोई हो, प्रत्येक अधिकारी या अन्य कर्मचारी पर लागू प्रासंगिक नियमों के प्रावधानों के अनुसार और उसके अधीन उपलब्ध होंगे, जो इस नियम के तहत सेवानिवृत्त होते हैं या जिन्हें सेवानिवृत्त होने की आवश्यकता होती है या जिन्हें सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाती है।"

25. उपर्युक्त प्रावधान केंद्रीयकृत सेवा के सेवानिवृत्त कर्मचारी को सेवानिवृत्ति पेंशन और/या अन्य लाभ उपलब्ध कराते हैं, यदि ये किसी कर्मचारी पर लागू प्रासंगिक नियमों के प्रावधानों के अनुसार और उनके अधीन उपलब्ध हैं। सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 के अधिनियमित होने के बाद, पारिवारिक पेंशन सहित पेंशन और ग्रेच्युटी, उक्त नियमों द्वारा पात्रता, गणना, पेंशन के संराशीकरण आदि के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक प्रदान की गयी हैं। हालाँकि, सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 चिकित्सा प्रतिपूर्ति के विषय को शासित नहीं करता है या इसके बारे में प्रावधान नहीं करता है। इसलिए, केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 34 के उप-नियम (4) के आधार पर, जहाँ पारिवारिक पेंशन सहित पेंशन और ग्रेच्युटी का अधिकार सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 द्वारा शासित होगा, चिकित्सा प्रतिपूर्ति का अधिकार स्पष्ट रूप से केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) के प्रावधानों का पालन करता है, जिसके आधार पर चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 केंद्रीयकृत सेवा के सेवानिवृत्त सदस्यों पर, उनके परिवार सहित, लागू हो जाते हैं। चूंकि केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 यह परिभाषित नहीं करता है कि

केंद्रीयकृत सेवा के सदस्य के संबंध में 'परिवार' शब्द का क्या अर्थ होगा, इसलिए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 के तहत प्रदान की गई 'परिवार' की परिभाषा लागू होगी।

26. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह विशेष रूप से सत्य है कि केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 34 के उप-नियम (4) और नियम 37 के उप-नियम (2) को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि चिकित्सा प्रतिपूर्ति के लिए उनकी पात्रता के संबंध में केन्द्रीयकृत सेवा के सेवानिवृत्त सदस्यों और उनके परिवार के अधिकार, चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 द्वारा शासित होंगे। इस निर्णय में उद्धृत नियम 2(बी) के आधार पर चिकित्सा परिचर्या नियम अपने स्वयं के शर्तों पर सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवारों पर लागू होते हैं। केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) और केन्द्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 34(4) के संदर्भ में पढ़े गए चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 केन्द्रीयकृत सेवा के सदस्यों और उनके परिवार के कल्याण को आगे बढ़ाने के लिए एक एकीकृत योजना बनाते हैं। इसलिए, उन पर जो निर्माण किया जाना चाहिए वह ऐसा होना चाहिए जो उद्देश्य को आगे बढ़ाए न कि उसे पांडित्यपूर्ण संकुचन द्वारा बाधित करे।

27. सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 के अधिनियमित होने से बहुत पहले, केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के अंतर्गत केंद्रीकृत सेवा के सदस्यों की पेंशन की पात्रता का प्रश्न इस न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ के समक्ष प्रवीण कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (2011) आईएलआर 1 ऑल 21 में उठा था। यद्यपि, माननीय न्यायाधीशों ने 1973 के अधिनियम की धारा 24 के साथ धारा 5-क को साधारण रूप से पढ़ने पर केंद्रीकृत सेवा के सेवानिवृत्त सदस्यों के लिए पेंशन प्राप्त करने का अधिकार पाया, यह अधिकार केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37(3) और नियम 34(4) के प्रावधानों के साथ वित्तीय पुस्तिका और सिविल सेवा विनियमों में निहित प्रावधानों से भी जुड़ा माना गया, जो राज्य सरकार के कर्मचारियों को पेंशन का हकदार बनाता है। प्रवीण कुमार अग्रवाल (सुप्रा) में खण्ड पीठ के न्यायाधीशों द्वारा यह स्थापित किया गया:

"40. यहां मामले का एक अन्य पक्ष भी है। नियमावली का नियम 34, सेवानिवृत्ति पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के संबंध में विकास प्राधिकरणों के सभी कर्मचारियों को सम्मिलित करता है। नियम 37 स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि उप-नियम (1) और (2) के तहत समाविष्ट नहीं किए गए मामले, ऐसे सभी आदेशों द्वारा शासित होंगे जिन्हें राज्य सरकार उचित समझे। नियम 37 के उप-नियम (3) का उद्देश्य शून्यता को भरना है। उप-नियम (2) विशेष रूप से प्रावधान करता है कि इस नियमावली या विशेष आदेशों द्वारा समाविष्ट नहीं किए गए मामलों में, सेवा के सदस्य राज्य के मामलों के संबंध में सेवारत यूपी सरकार के

कर्मचारी पर आम तौर पर लागू होने वाले नियमों, विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होंगे।

41. नियम 37 के उप-नियम (2) को ध्यान में रखते हुए प्रतीत होता है कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए दिनांक 4.3.1983 और दिनांक 17.3.1983 के दो सरकारी आदेश जारी किए गए हैं। स्वीकृत रूप से, राज्य सरकार के कर्मचारी वित्तीय हस्तपुस्तिका और सिविल सेवा विनियमों में निहित प्रावधानों के मुताबिक पेंशन पाते हैं। तदनुसार, जब तक अलग प्रावधान नहीं किया जाता है, याचिकाकर्ता का मामला 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) द्वारा शासित होगा।"

28. जब तक **प्रवीण कुमार अग्रवाल** का फैसला नहीं हुआ था, तब तक केंद्रीकृत सेवा के सदस्यों के लिए सेवानिवृत्ति पेंशन की पात्रता को शासित करने वाले कोई अलग नियम नहीं थे, और इसलिए, **प्रवीण कुमार अग्रवाल** में रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 41 में समापन टिप्पणियों में कहा गया था कि याचिकाकर्ता का मामला केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) द्वारा शासित होगा। उस समय, पूर्वोक्त नियम 37 के उप-नियम (2) के आधार पर, केंद्रीकृत सेवा के सदस्यों के लिए पेंशन प्राप्त करने का अधिकार, राज्य सरकार के कर्मचारी जो राज्य के मामलों के संबंध में सेवा कर रहे हैं, पर लागू नियमों के तहत, चाहे वह वित्तीय हस्तपुस्तिका हो या सिविल सेवा विनियम, के समान होगा। अब, सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 के निर्माण के साथ यह स्थिति बदल गई है, जो नियम 34 के उप-नियम (4) के आधार पर सेवा के सेवानिवृत्त सदस्य पर लागू होती है।

29. हालाँकि, जहां तक चिकित्सा प्रतिपूर्ति का संबंध है, स्थिति वैसी ही होगी जैसी **प्रवीण कुमार अग्रवाल** के मामले में माननीय न्यायाधीशों के समक्ष थी और केंद्रीयकृत सेवा नियम, 1985 के नियम 37 के उप-नियम (2) के प्रावधान, केंद्रीयकृत सेवा के सेवानिवृत्त सदस्यों और उनके परिवारों पर चिकित्सा व्यय की प्रतिपूर्ति के प्रयोजनार्थ चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 के प्रावधानों को स्वतः ही लागू करेंगे।

30. कमोबेश इसी तर्क के आधार पर, राजेंद्र प्रसाद द्विवेदी बनाम यूपी राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव, आवास और शहरी नियोजन विभाग, लखनऊ, 2023: एएचसी-एलकेओ: 32771 में, इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने, केंद्रीयकृत सेवा के एक सेवानिवृत्त कर्मचारी, जिसने बांदा विकास प्राधिकरण के खिलाफ दावा किया था, के चिकित्सा बिलों की प्रतिपूर्ति से संबंधित मुद्दे का सामना किए जाने पर, कहा:

"15. चिकित्सा बिलों के भुगतान के संबंध में दूसरा मुद्दा, रिकॉर्ड से स्पष्ट है कि राज्य सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों को जो लाभ दिए गए थे, उन्हें प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक

18.11.2015 को अपनाया गया था, इस प्रकार, यहां कोई कारण नहीं है कि प्रतिवादी, चिकित्सा प्रतिपूर्ति भत्ते जिसे सीएमओ द्वारा विधिवत सत्यापित किया गया है और जो प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष लंबित है, का भुगतान नहीं करेंगे...।"

31. इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि याचिकाकर्ता ने अपनी पत्नी, जिसके बारे में कोई विवाद नहीं है कि वह मामले में लागू चिकित्सा परिचर्या नियम, 2011 के तहत उसके 'परिवार' की परिभाषा में आती है, के इलाज में हुए खर्च की चिकित्सा प्रतिपूर्ति के अपने अधिकार को स्पष्ट रूप से स्थापित किया है।

32. परिणामस्वरूप, याचिका **सफल होती है** और उसे **स्वीकार किया जाता है**। सचिव, पीडीए द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 04.02.2023 (रिट याचिका का संलग्नक संख्या 1) को एतद्द्वारा **रद्द किया जाता है**। याचिकाकर्ता द्वारा अपनी पत्नी के इलाज के लिए दिनांक 23.07.2021 को प्रस्तुत किए गए मेडिकल बिल की प्रतिपूर्ति, कानून और लागू नियमों के अनुसार सत्यापन करने के पश्चात, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के एक महीने के भीतर करने हेतु, उपाध्यक्ष, पीडीए और सचिव, पीडीए को एक परमादेश जारी किया जाता है।

33. लागत आसान।

(2023) 8 ILRA 958

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-ए संख्या 12283/2023

राम कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री हरिश्चंद्र दुबे, श्री आदिया धर द्वेवेदी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री गौतम दुबे

याचिकाकर्ता को **01. 10.1990** को **सफाई कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था** । हालाँकि नियमितीकरण के लिए उनके कागजात **1996 में भेजे गए थे** , लेकिन उनकी सेवाएँ **2008 में ही नियमित हुईं** । वह **31.07.2020** को **सेवानिवृत्त हुए** , लेकिन **पेंशन सहित सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ जारी नहीं किए गए** । क्या याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ देने से इनकार/विलंब उचित है? **सेवानिवृत्ति के लाभों को रोकना मनमाना, अवैध, नैतिक रूप से अप्रिय और सामाजिक रूप से निंदनीय है।** न्यायालय ने सार्वजनिक प्राधिकारियों की **निष्क्रियता की निंदा की** और इसे **"अपराध नहीं तो पाप" कहा।** इसने **अनुच्छेद 12 के संवैधानिक आदेश का आह्वान**

करते हुए सार्वजनिक पदाधिकारियों पर जिम्मेदारी डाल दी।

रिट स्वीकार की गई है।

<u>उद्धरण</u> :

1. कैसल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम ब्रूम, 1972 एसी 1027

2. रूक्स बनाम बर्नार्ड एवं अन्य, 1964 एसी 1129

3. लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एमके गुप्ता, जेटी 1993 (6) एससी 307

4. गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम बलबीर सिंह जेटी. 2004 (5) एस.सी. 17

5. पंजीकृत सोसायटी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1996) 6 एससीसी 530

6. शिवसागर तिवारी बनाम भारत संघ, (1996) 6 एससीसी 558

7. दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन एवं अन्य, एआईआर 1996 एससी 715

8. मुक्ति नाथ राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1992) 2 एडब्ल्यूसी 644

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-उत्तरदाताओं के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हरिश्चंद्र दुबे को सुना।

2. श्री गौतम दुबे ने प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से नोटिस स्वीकार किया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता को 01.10.1990 को सफाई कर्मचारी के पद पर नियुक्त किया गया था और हालांकि नियमितीकरण के लिए कागजात वर्ष 1996 में भेजे गए थे, उनकी सेवाओं को 2008 में नियमित किया गया था और प्रतिवादी नगरपालिका की सेवा करने के बाद, वह 31.07.2020 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद अपने पद से सेवानिवृत्त हुए।

4. याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि उसके द्वारा कुछ आवेदन दायर किए जाने के बावजूद पेंशन सहित सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ उसके पक्ष में जारी नहीं किए गए हैं।

5. सेवानिवृत्त कर्मचारियों के सेवानिवृत्ति लाभों को वर्षों तक रोकना न केवल अवैध और मनमाना है, बल्कि अपराध नहीं तो पाप भी है क्योंकि किसी भी कानून ने ऐसा घोषित नहीं किया है। अधिकारी, जो अभी भी सेवा में हैं और सेवानिवृत्त कर्मचारी को परेशान करने में इस तरह की देरी में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, हालांकि इस तरह के पाप करने से डरना चाहिए। यह नैतिक और सामाजिक रूप से अप्रिय है। यह सामाजिक और आथक न्याय

की अवधारणा के भी विरुद्ध है जो हमारे संविधान के संस्थापक स्तंभों में से एक है।

6. प्रतिवादी भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत "राज्य" होने के नाते, इसके अधिकारी सार्वजनिक पदाधिकारी हैं। हमारे संविधान के अंतर्गत संप्रभुता लोगों में निहित है। इसलिए, संवैधानिक तंत्र का प्रत्येक अंग लोकोन्मुखी होने के लिए बाध्य है। संवैधानिक या वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले सार्वजनिक प्राधिकरण अपने व्यवहार के लिए जवाबदेह हैं। यह उच्च समय है कि इस न्यायालय को उत्तरदाताओं को याद दिलाना चाहिए कि उनसे अधिक जिम्मेदार और उचित तरीके से प्रदर्शन करने की उम्मीद की जाती है ताकि बड़े पैमाने पर जनता और विशेष रूप से उनके पूर्व कर्मचारियों और याचिकाकर्ता जैसे उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को अनुचित और परिहार्य उत्पीड़न न हो। उत्तरदाताओं को संपूर्ण मशीनरी और क़ानून की विभिन्न शक्तियों का समर्थन प्राप्त है। एक आम नागरिक या आम आदमी शायद ही राज्य की ऐसी शक्ति या उसके साधनों का मुकाबला करने के लिए सुसज्जित है। सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा एक आम आदमी का उत्पीड़न सामाजिक रूप से घृणित और कानूनी रूप से प्रभावशाली है। इससे आम आदमी को व्यक्तिगत रूप से नुकसान हो सकता है लेकिन समाज को इससे कहीं अधिक गंभीर चोट पहुंची है। अपराध और भ्रष्टाचार, सार्वजनिक प्रतिरोध की कमी के कारण समाज में पनपते और समृद्ध होते हैं। एक आम नागरिक शिकायत करने और लड़ने के बजाय ज्यादातर कार्यालयों में अवांछनीय कामकाज के दबाव के आगे झुक जाता है, बजाय इसके खिलाफ खड़े होने के। यह कभी-कभी संसाधनों की कमी या बेजोड़ स्थिति के कारण होता है जो असहायता की भावना देता है। असहायता की भावना से ज्यादा हानिकारक कुछ भी नहीं है। सामान्य मामलों में भी, एक आम आदमी जिसके पास न तो राजनीतिक समर्थन है और न ही सार्वजनिक उन्मुख विभागों में निष्क्रियता से मेल खाने की वित्तीय ताकत है, निराश हो जाता है और यह प्रणाली में विश्वसनीयता को खत्म कर देता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिन मामलों पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता होती है, उन्हें ऐसे ही रहने दिया जा रहा है और उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। कोई भी प्राधिकरण खुद को मनमाने तरीके से कार्य करने की अनुमति नहीं दे सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोक प्रशासन में प्रशासनिक विवेक की एक बड़ी मात्रा शामिल है जो प्रशासनिक प्राधिकरण की कार्रवाई को ढालती है, लेकिन जहां यह पाया जाता है कि शक्ति का प्रयोग मनमौजी है या सदाशयी के अलावा अन्य है, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्रभावी कदम उठाए और अवसर पर उठ खड़ा हो अन्यथा आम आदमी का विश्वास हिल जाएगा। ऐसे मामलों में यह न्यायालय की जिम्मेदारी है कि वह ऐसे आम आदमी को तुरंत बचाए ताकि उसे यह विश्वास हो सके कि वह असहाय नहीं है, लेकिन उसकी देखभाल करने और मनमाने और अभिमानी, गैरकानूनी निष्क्रियता या सार्वजनिक पदाधिकारियों की ओर से शक्ति के अवैध प्रयोग को रोकने के लिए एक बड़ा प्राधिकरण है।

7. हमारी व्यवस्था में, संविधान सर्वोच्च है, परंतु वास्तविक शक्ति भारत के लोगों में

निहित है। संविधान "लोगों के लिए, लोगों द्वारा और लोगों के लिए" अधिनियमित किया गया है। एक सार्वजनिक पदाधिकारी को एक तानाशाह की तरह कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो एक आम आदमी को परेशान करता है और विशेष रूप से, जब उत्पीड़न का शिकार व्यक्ति उसका अपना कर्मचारी हो।

8. एक आम आदमी के उत्पीड़न के संबंध में, **कैसेल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम ब्रूम, 1972 एसी 1027** में **लॉर्ड हैलशम** की टिप्पणियों का जिक्र करते हुए और **रूक्स बनाम बर्नार्ड और अन्य 1964 एसी 1129** में **लॉर्ड डेवलिन**, **लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एमके गुप्ता जेटी 1993 (6) एससी 307** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

"एक आम नागरिक या आम आदमी राज्य की ताकत या उसके तंत्र की बराबरी करने में मुश्किल सक्षम है. यह कानून के शासन द्वारा प्रदान किया गया है..... एक सार्वजनिक पदाधिकारी यदि दुर्भावनापूर्ण या दमनकारी रूप से कार्य करता है और शक्ति के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पीड़न और पीड़ा होती है तो यह शक्ति का प्रयोग नहीं बल्कि इसका दुरुपयोग है। कोई भी कानून इसके खिलाफ सुरक्षा प्रदान नहीं करता है। जो इसके लिए जिम्मेदार है, उसे भुगतना होगा..... सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा एक आम आदमी का उत्पीड़न सामाजिक रूप से घृणित और कानूनी रूप से अनुमेय है। यह उन्हें व्यक्तिगत रूप से नुकसान पहुंचा सकता है लेकिन समाज को चोट कहीं अधिक गंभीर है। (पैरा 10)

9. उपरोक्त टिप्पणियों को **गाजियाबाद विकास प्राधिकरण बनाम बलबीर सिंह जेटी 2004 (5) एससी 17 में दोहराया गया है।**

10. विधि के शासन द्वारा शासित लोकतांत्रिक प्रणाली में सरकार का अर्थ ढीली सरकार नहीं है। लोक सेवक अपने पदों को विश्वास में रखते हैं और उनसे उचित परिश्रम के साथ प्रदर्शन करने की उम्मीद की जाती है, विशेष रूप से ताकि उनकी कार्रवाई या निष्क्रियता से आम आदमी को कोई अनुचित कठिनाई और उत्पीड़न न हो। जब भी इस न्यायालय के संज्ञान में यह आता है कि सरकार या उसके अधिकारियों ने घोर लापरवाही और बिना सोचे-समझे काम किया है, जिससे एक आम और असहाय व्यक्ति का उत्पीड़न हुआ है, तो यह न्यायालय कभी भी मूक दर्शक नहीं रहा है, बल्कि हमेशा अधिकारियों को कानून की कठघरे में लाने के लिए प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

11. **पंजीकृत सोसायटी बनाम भारत संघ और अन्य (1996) 6 एससीसी 530** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"कोई भी लोक सेवक यह नहीं कह सकता है कि "आप दुर्भावनापूर्ण आधार पर एक आदेश को रद्द कर सकते हैं लेकिन आप मुझे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते" कोई भी लोक सेवक मनमाने तरीके से कार्य करने की शक्ति का दावा नहीं कर सकता है।"

12. **शिवसागर तिवारी बनाम भारत संघ (1996) 6 एससीसी 558** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:

"एक मनमानी प्रणाली वास्तव में हमेशा भ्रष्ट होनी चाहिए। कभी भी एक आदमी नहीं था जिसने सोचा था कि उसके पास कोई कानून नहीं था, लेकिन उसकी अपनी इच्छा थी, जिसने जल्द ही यह नहीं पाया कि उसके पास कोई अंत नहीं था, लेकिन उसका अपना लाभ था।"

13. **दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन और अन्य एआईआर 1996 एससी 715** में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"लोकतांत्रिक सरकार का मतलब ढीली सरकार नहीं होता। प्रक्रिया के नियम और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत दोषी को उचित प्रतिशोध में देरी करने और पराजित करने में सक्षम बनाने के लिए नहीं हैं। न्याय का पहिया धीरे-धीरे पीसता हुआ दिखाई दे सकता है, लेकिन यह हम सभी का कर्तव्य है कि हम यह सुनिश्चित करें कि वे लगातार पीसें और अच्छी तरह से और सही मायने में पीस लें। न्याय प्रणाली को नरम, लापरवाह और रीढ़विहीन बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती है"।

14. इस न्यायालय ने वर्ष 1992 में, **मुक्ति नाथ राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (अधीक्षण अभियंता, पीडब्ल्यूडी के माध्यम से) और अन्य: (1992) 2 एडब्ल्यूसी 644** के मामले में, राज्य सरकार के तहत सभी विभागों को <u>सामान्य परमादेश</u> जारी किया था ताकि सेवानिवृत्ति के बाद देय राशि जारी करने के लिए सभी औपचारिकताओं को शीघ्रता से पूरा किया जा सके। उक्त निर्णय द्वारा जारी प्रासंगिक निर्देश नीचे दिए जा रहे हैं: -

*"6. इन कठिन दिनों में यह आवश्यक है कि पेंशन का भुगतान तुरंत शुरू किया जाना चाहिए। एक समाज को उसके वृद्ध और दुर्बल लोगों की देखभाल से आंका जाता है। इन परिस्थितियों में मैं सभी उत्तर प्रदेश सरकारी विभागों को एक **सामान्य परमादेश** जारी करना आवश्यक समझता हूं।*

*7. पेंशन प्रदान करने के लिए प्रासंगिक कार्यवाही नियम उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियम (उत्तर प्रदेश पेंशन नियमावली में प्रकाशित), और अन्य नियम, और पेंशन से संबंधित सरकारी आदेशों में निहित हैं। सिविल सेवा विनियमों के नियम 906 से 960 में पेंशन प्रदान करने की प्रक्रिया को सावधानीपूर्वक निर्धारित किया गया है, और इन नियमों में तत्परता पर जोर दिया गया है (जैसा कि 'तत्काल', 'तुरंत' आदि शब्द के पुन: उपयोग से स्पष्ट है)। नियम 906 में कहा गया है कि **प्रत्येक विभागाध्यक्ष को हर छह महीने में अर्थात प्रत्येक वर्ष 1 जनवरी और 1 जुलाई को और उन सभी राजपत्रित और अराजपत्रित सरकारी कर्मचारियों की सूची तैयार करनी होगी जो उस तारीख के अगले 12 से 18 महीनों के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं। सूची की एक प्रति लेखा परीक्षा अधिकारी को 31 जनवरी या 31 जुलाई के बाद नहीं भेजी जाएगी, जैसा भी मामला उस वर्ष का हो।***

9. अतः मैं निदेश देता हूँ कि अब से सिविल सेवा विनियमों के नियम 906 से 960 तक सभी संबंधित अधिकारियों द्वारा कड़ाई से पालन किया जाए और पेंशन का भुगतान उत्तर प्रदेश सरकार के कर्मचारी की सेवानिवृत्ति पर तुरंत शुरू किया जाए। ***इस परमादेश का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, और इसके उल्लंघन के लिए जिम्मेदार सभी, चाहे सेवानिवृत्त कर्मचारी के मूल विभाग में हों या महालेखाकार के कार्यालय में, इस तरह के उल्लंघन के लिए इस न्यायालय में जवाबदेह ठहराया जाएगा।***

12. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ और महालेखाकार, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद को भी भेजी जाएगी। मुख्य सचिव को निर्देश दिया जाता है कि वे इस फैसले की प्रतियां सभी विभागाध्यक्षों को जारी किए गए सामान्य परमादेश के अनुपालन के लिए प्रसारित करें।"

15. अनुभव के रूप में और सबसे अधिक पीड़ा के साथ, यह देखा गया है **कि उक्त सामान्य परमादेश का विभागों द्वारा पालन नहीं किया जा रहा है और इसलिए, इस न्यायालय में सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों का दावा करने वाली सैकड़ों और हजारों रिट याचिकाओं की बाढ़ आ गई है।**

16. इस रिट याचिका का **निस्तारण** निम्नलिखित शब्दों में किया जा रहा है:-

(ए) कार्यकारी अधिकारी, नगर पालिका परिषद, शिवहरा, जिला बिजनौर (प्रतिवादी नंबर 2) इस मामले को सर्वोच्च प्राथमिकता के साथ उठाएंगे और याचिकाकर्ता को देय सेवानिवृत्ति के बाद के, **15.10.2023 तक के बाद के नहीं,** लाभों की स्वीकार्यता पर निर्णय लेंगे।

(ख) इस न्यायालय के महानिबंधक को निदेश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति राज्य सरकार के नियंत्रण वाले सभी विभागों को अपेक्षित परिपत्र जारी करने के प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के मुख्य सचिव को भेजे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मुक्ति नाथ राय (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देश, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उनका अक्षरश अनुपालन किया जाए ताकि राज्य, इसके साधन और आम आदमी अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी में लिप्त न हों।

(2023) 8 ILRA 962

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 12438 वर्ष 2023

साथ में

रिट-ए संख्या 17855 वर्ष 2022

विनोद कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता

श्री राजेश कुमार पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता

ए. सेवा विधि - पुलिस अधिनियम, 1861 - धारा 7 - यूपी पुलिस अधीनस्थ रैंक के अधिकारी (दंड और अपील) नियम, 1991 - आर. 14 - परिशिष्ट -1 - विभागीय जांच - प्रक्रिया - आरोप पत्र को सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन नहीं दिए जाने का आरोप लगाया गया - बाद में सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन से एक और आरोप पत्र जारी किया गया - प्रभाव - माना गया कि पहले का आरोप पत्र, जो स्वयं जांच अधिकारी द्वारा जारी और हस्ताक्षरित किया गया था, उसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किए जाने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं थी - हालांकि, अब उन्हीं आरोपों के साथ एक नया आरोप पत्र जारी किया गया है और इस बार उच्च प्राधिकारी, अर्थात् अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया है, पहले का आरोप पत्र बाद के आरोप पत्र द्वारा हटा दिया गया है - अनुशासनात्मक जांच अब नियम, 1991 के परिशिष्ट -1 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सख्ती से की जाएगी। (पैरा 8 और 10)

ख. सेवा विधि - उ.प्र. सरकारी सेवा नियमावली, 1999 - विशेष विधि **बनाम सामान्य** विधि **- प्रयोज्यता - नियमावली, 1991 पुलिस विभाग पर लागू विशेष नियम है और इस सिद्धांत पर कि विशेष विधि सामान्य विधि पर हावी होगा, 1999 के नियम पुलिस कर्मियों के संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में लागू नहीं होंगे। (अनुच्छेद 12)**

रिट याचिका निस्तारित (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. उपर्युक्त दोनों याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई और निर्णय किया जा रहा है क्योंकि वे कानून और तथ्यों का समान प्रश्न उठाती हैं।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने रिट - ए संख्या - 17855 / 2022 में तर्क दिया गया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए याचिकाकर्ता को कुछ आरोप लगाते हुए जो आरोप पत्र जारी किया गया था, उसे उत्तर प्रदेश अधीनस्थ श्रेणी के पुलिस अधिकारियों की (दंड और अपील) नियमावली, 1991 (इसके बाद 'नियम, 1991' के रूप में संदर्भित) के अनुसार सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी नहीं थी। इस न्यायालय ने इस याचिका पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधार पर ध्यान दिया और निर्देश दिया कि विचाराधीन आरोप पत्र के अनुसरण में की जा रही अनुशासनात्मक कार्यवाही याचिका के निर्णय का पालन करेगी।

4. ऐसा विदित होता है कि जब मामला इस न्यायालय में लंबित था और जवाबी हलफनामा

दायर किया गया था, तो विभाग ने एक और आरोप पत्र जारी करने कर दिया और इस बार अतिरिक्त उपायुक्त, आगरा द्वारा उच्चतर सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी के साथ। अब इस आरोप पत्र को रिट याचिका संख्या 12438/2023 में इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि जब एक बार आरोप पत्र जारी करने में प्राधिकारी की क्षमता को इस न्यायालय के समक्ष पहले से ही चुनौती दी जा चुकी थी और आरोप पत्र पर रोक नहीं लगाई गई थी, इसलिए प्रतिवादियों को एक और आरोप पत्र, इस बार, शायद उच्चतर प्राधिकारी की मंजूरी के साथ, जारी करने का कोई औचित्य नहीं था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पहली रिट याचिका का बचाव करते हुए और आरोप पत्र पर आपत्ति जताते हुए न्यायालय का ध्यान उत्तर प्रदेश अधीनस्थ श्रेणी के पुलिस अधिकारियों की (दंड और अपील) नियमावली, 1991 के नियम 14 की ओर आकर्षित किया है जो विभागीय जांच करने की प्रक्रिया का प्रावधान करता है। उनके अनुसार प्रक्रिया यह निर्धारित करती है कि आरोप पत्र जारी किया जाएगा और नियमावली के परिशिष्ट-1 के अनुसार जांच की जाएगी, जो प्रक्रिया निर्धारित करता है।

6. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री एस.के. पाल तर्क देते हैं कि नियमावली इस बारे में बिल्कुल मौन हैं कि क्या आरोप पत्र को उच्चतर अधिकारी द्वारा भी अनुमोदित किया जाना आवश्यक है और जांच अधिकारी इस मामले में सक्षम नहीं होगा। उन्होंने कहा कि इसके बजाय पुलिस अधिनियम, 1861 के तहत आरोप पत्र जारी करने के लिए एक प्रपत्र निर्धारित किया गया है जो जांच अधिकारी को भी आरोप पत्र जारी करने के लिए अधिकृत करता है क्योंकि उसे ही आरोपों के लेख वाले दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने होते हैं और इसलिए, उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता का इस आधार पर आरोप पत्र पर आपत्ति करना उचित नहीं है कि इसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था। हालांकि उन्होंने कहा कि अब इस बार आरोप पत्र उच्चतर अधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया है और आरोप वही हैं जो रिट याचिका रिट ए संख्या-17855/2022 में आक्षेपित पिछले आरोप पत्र में लगाए गए थे अतः याचिकाकर्ता को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए।

7. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने और संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उद्धृत नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों और दोनों रिट याचिकाओं में चुनौती दी गई चार्जशीट को देखने के बाद, मैं सबसे पहले पाता हूं कि आरोप समान हैं, सिवाय इस तरीके के कि इस बार उच्चतर सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया है जबकि पहले का आरोप पत्र जांच अधिकारी द्वारा जारी किया गया था।

8. इसलिए, मामले के इस प्रकार के उपरोक्त दृष्टिकोण में, इस विवाद को इस न्यायालय का और समय नहीं लेना चाहिए क्योंकि एक बार जब आरोप पत्र को दूसरे आरोप पत्र, जो कि याचिकाकर्ता के अनुसार एक सक्षम आरोपपत्र

होगा, द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, तो अब अधिकारियों/अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कानून के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने के निर्देश के साथ, याचिकाओं का निस्तारण किया जा सकता है। हालांकि, इसी समय नियमावली 1991 के नियम 14 को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

*"14. **विभागीय कार्यवाही संचालित करने की प्रक्रिया**- (1) इन नियमों में निहित प्रावधानों के अधीन, पुलिस अधिकारियों के खिलाफ नियम 5 के उप-नियम (1) में निर्दिष्ट मामले में विभागीय कार्यवाही परिशिष्ट-I में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार की जा सकेगी।*

(2)- उप-नियम (1) में निहित किसी भी बात के बावजूद, नियम 5 के उप-नियम (2) में निर्दिष्ट मामलों में दंड, पुलिस अधिकारी को उसके खिलाफ की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई की और उस कार्य या लोप के लांछन की जिसपर यह कार्रवाई प्रस्तावित है, लिखित रूप से सूचना देकर और उसे प्रस्ताव के खिलाफ ऐसा अभ्यावेदन, जैसा वह करना चाहे, करने का उचित अवसर देने के पश्चात दिया जा सकता है।

(3)- इन नियमों के तहत शुरू की गई किसी भी कार्यवाही में, आरोपित पुलिस अधिकारी का प्रतिनिधित्व अधिवक्ता द्वारा नहीं किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

9. अब, मैं प्रासंगिक नियमों, जो नियमों के परिशिष्ट-1 को संदर्भित करते हैं, को पढ़ने मात्र पर पाता हूँ कि जांच संस्थित करने और अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की प्रक्रिया को विस्तार से बताता है। परिशिष्ट-1 में आरोप-पत्र के खिलाफ जांच के मामले में जांच अधिकारी द्वारा अपनाई जाने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं के बारे में बताया गया है और सबसे पहले, यह प्रावधान करता है कि जिन आधारों पर अनुशासनात्मक अधिकारियों द्वारा कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, उन्हें फॉर्म-1 के अनुसार निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। फॉर्म-1 को पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 7 के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए निर्धारित किया गया है और इसे पढ़ने मात्र से, मुझे लगता है कि इसे जांच अधिकारी के हस्ताक्षर के तहत जारी किया जाना होता है। नियम 1991 के प्रपत्र-1 के परिशिष्ट को यहाँ नीचे प्रस्तुत किया गया है:

"परिशिष्ट-1

पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध विभागीय कार्यवाहियों के संचालन से सम्बन्धित प्रक्रिया

(नियम 14 (1) देखिए)

कोई औपचारिक जॉच संस्थित किये जाने पर, ऐसे पुलिस अधिकारी को जिसके विरुद्ध जॉच संस्थित की गयी हो, उन आधारों की, जिन पर कार्यवाही करने का प्रस्ताव हो, लिखित सूचना दी जाएगी और उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर दिया जाएगा। <u>उन आधारों का जिन पर कार्यवाही करने का प्रस्ताव हो, प्रयोग किसी निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में किया जाएगा जैसा कि इस नियमावली से संलग्न प्रपत्र एक में है</u>, जिनकी सूचना

आरोपित पुलिस अधिकारी को दी जाएगी और जो इतना स्पष्ट और संक्षिप्त होगा कि आरोपित पुलिस अधिकारी को उसके विरूद्ध तथ्यों और परिस्थितियों का पर्याप्त संकेत मिल जाये। उससे युक्तियुक्त समय के भीतर अपने बचाव का लिखित विवरण देने और यह कहने की अपेक्षा की जाएगी कि क्या वह व्यक्तिगत सुनवाई के लिए इच्छुक है। यदि वह ऐसा चाहता है या यदि जांच अधिकारी ऐसा निर्देश देता है तो ऐसे आरोपों के सम्बन्ध में जो स्वीकार न किये जाएँ मौखिक जाँच की जाएगी। इस जॉच में ऐसे मौखिक साक्ष्य को अभिलिखित किया जायेगा जैसा जॉच अधिकारी आवश्यक समझे। आरोपित पुलिस अधिकारी साक्षियों की प्रति परीक्षा करने, स्वयं साक्ष्य देने और ऐसे साक्षियों को, जिन्हें वह चाहे, बुलाने का हकदार होगा।

किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जाँच अधिकारी पर्याप्त कारणों से, जो अभिलिखित किये जाएँगे, किसी साक्षी को बुलाने से इन्कार कर सकता है। कार्यवाहियों में साक्ष्य का पर्याप्त अभिलेख और निष्कर्ष का विवरण और आधार होगा। जाँच अधिकारी आरोपित पुलिस अधिकारी पर लगाये जाने वाले दण्ड के सम्बन्ध में इन कार्यवाहियों से अलग अपनी निजी संस्तुति भी कर सकता है।

प्रपत्र-एक

पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 7 के अधीन कार्यवाहियों में प्रयोग किया जाने वाला आरोप प्रपत्र

का कार्यालय

सेवा में,

दिनांक:.....199...

(आरोपित पुलिस अधिकारी का पूरा नाम और पदनाम)

आपको एतद्वारा आरोपित किया जाता है-

(1) कि आपको (या लगभग) या (के बीच).... .....और.....दिनांक) जब (पद नाम) के रूप में तैनात थे....एतदद्वारा

(मामले के तथ्य)

नियम ..... के उल्लंघन या अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहने या इत्यादि के दोषी थे।

साक्ष्य जिस पर आरोप के समर्थन में विचार किये जाने का प्रस्ताव है-

(I) +

(II) +

(III) +

(2) कि आप आदि*

(3) कि आप आदि*

+ (उतनी बार दोहराया जायेगा जितने आरोप थे)

एतद्वारा आपसे प्रत्येक आरोप के उत्तर में अपने बचाव का लिखित विवरण दिनांक..... को या उसके पूर्व प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है। आपको सचेत किया जाता है कि यदि अधोहस्ताक्षरी द्वारा अनुमत समय के भीतर आपसे ऐसा कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है, तो यह उपधारणा की जाएगी कि आपको कुछ नहीं प्रस्तुत करना है और आपके मामले में तदनुसार आदेश पारित कर दिये जाएँगे।

साथ ही साथ आपसे अधोहस्ताक्षरी को लिखित रूप से यह सूचित करने की भी अपेक्षा की जाती है कि क्या आप व्यक्तिगत सुनवाई के लिए इच्छुक हैं और यदि आप किसी साक्षी की परीक्षा या प्रति परीक्षा करना चाहते हैं तो अपने लिखित विवरण के साथ उनका नाम और पता और साक्ष्य का, जिसे प्रत्येक ऐसे साक्षी से देने की प्रत्याशा की जाएगी, संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है।

(जॉच अधिकारी का हस्ताक्षर और पदनाम)

(के लिए और की ओर से)*

प्रमाणित किया जाता है कि आरोप .....(आरोपित पक्ष) को साधारण हिन्दी में पढ़कर सुना दिया गया है और स्पष्ट कर दिया गया है और उसकी एक प्रति ..... को दी गई है । आरोप की एक प्रति प्राप्त किया।

(जॉच अधिकारी का हस्ताक्षर और पद नाम)
(आरोपित पक्ष का हस्ताक्षर)"

(जोर दिया गया)

10. इस प्रकार, उपरोक्त से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यहां तक कि पहले का आरोप पत्र जो याचिकाकर्ता को जारी किया गया था और जिस पर स्वयं जांच अधिकारी ने हस्ताक्षर किए थे, उसे अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं थी। हालाँकि, चूंकि अब उन्हीं आरोपों के साथ एक नया आरोप पत्र जारी किया गया है और इस बार उच्चतर प्राधिकारी, अर्थात् अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया गया है, मेरा निर्णय है कि 17 जून, 2023 को जारी किए गए बाद के आरोप पत्र ने पूर्व के आरोप पत्र का स्थान ले लिया है और तदनुसार अब अनुशासनात्मक जांच 17 जून, 2023 के आरोप पत्र के तहत लगाए गए आरोपों के संबंध में नियमावली, 1991 के परिशिष्ट -1 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कड़ाई से की जाएगी।

11. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने यूपी सरकारी सेवा नियमावली, 1991 की प्रयोज्यता के सम्बन्ध में कुछ आधार प्रस्तुत किये हैं जो प्रावधान करते हैं कि आरोप पत्र अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए।

12. मेरे विचार से नियमावली, 1991 पुलिस विभाग पर लागू होने वाले विशेष नियम हैं और इस सिद्धांत पर कि विशेष कानून सामान्य कानून पर हावी होगा, 1999 की नियमावली जहां तक, अनुशासनात्मक कार्यवाही और पुलिस कर्मियों के संबंध में संबंधित हैं, लागू नहीं होगी।

13. याचिकाकर्ता को आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर अपना जवाब प्रस्तुत करना है और उसके बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही में सहयोग करना है।

14. उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, इन दोनों याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 966

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 13308 वर्ष 2021

पंकजेश ...याचिकाकर्ता

बनाम

अध्यक्ष/अपीलीय प्राधिकरण एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
सुश्री रोशनी शुक्ला, श्री प्रशांत वर्धन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री सतीश किशोर कक्कड़, श्री अमरीश सहाय

A. सेवा विधि - बैंक की सतर्कता नियमावली - धारा 1 - सेवा से बर्खास्तगी - विभागीय जांच - याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति से ठीक 12 दिन पहले 18.10.2018 को आरोप पत्र दिया गया - 2005 से 2010 के बीच हुए ऋण लेनदेन के संबंध में अनियमितता करने का आरोप - विभागीय जांच शुरू करने में आठ साल की देरी - 2010 से 2018 तक, शाखा का नियमित वार्षिक वित्तीय निरीक्षण किया गया, लेकिन प्रतिवादी-बैंक ने किसी भी कथित अवैधता के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कभी कोई कदम नहीं उठाया - नियमावली किसी भी जांच को शुरू करने के लिए चार साल की सीमा प्रदान करती है - गैर-अनुपालन - प्रभाव - माना गया, घटना के चार साल बाद कार्यवाही शुरू करने पर एक विशिष्ट रोक है। प्रतिवादी-बैंक के लिए आठ साल की चूक के बाद केवल कारण बताओ नोटिस जारी करके सीवीसी के उक्त दिशानिर्देशों में हेरफेर करना खुला नहीं है, जो बैंक पर बाध्यकारी हैं। (अनुच्छेद 5, 6, 16, 18 और 21)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. यूको बैंक एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला; (2018) 14 एससीसी 92

2. यूको बैंक एवं अन्य बनाम प्रभाकर सदाशिव करवाडे ; (2018) 14 एससीसी 98

3. महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम रवींद्रनाथ चौबे; (2020) 18 एससीसी 71

4. उत्तर प्रदेश बनाम मोहम्मद शरीफ (मृत); एआईआर 1982 सुप्रीम कोर्ट 937

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा पारित)

1. वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.09.2020 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित

आदेश दिनांक 15.06.2021 को चुनौती दी गई थी, जिसके तहत सजा आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता की अपील भी खारिज कर दी गई थी।

2. मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को शुरू में तुलसी ग्रामीण बैंक (तत्कालीन इलाहाबाद यूपी ग्रामीण बैंक और अब आर्यावर्त बैंक दिनांक 01.04.2019) (इसके बाद 'बैंक' के रूप में संदर्भित) में एक अधिकारी के रूप में वर्ष 1983 में नियुक्त किया गया था और वह 31.10.2018 को सेवानिवृत्त होने वाले थे। बैंक की सेवा में रहते हुए दिनांक 23.09.2010 से 10.01.2011 तक उन्होंने चकौंध शाखा-चित्रकूट में अस्थाई प्रबंधक के पद पर कार्य किया। 11.01.2011 को याचिकाकर्ता को 20.07.2012 को स्थानांतरित होने तक उसी शाखा में स्थायी प्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था। उक्त शाखा में अस्थायी प्रबंधक के रूप में उनकी तैनाती के दौरान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत भारत सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त और विकास निगम द्वारा प्रायोजित एक योजना के तहत कुछ ऋण स्वीकृत किए गए थे।

3. याचिकाकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, सभी ऋण संबंधित खंड विकास अधिकारी द्वारा अनुशंसित/अनुमोदित किए गए थे और बैंक द्वारा विधिवत सत्यापित भी किए गए थे और उसके बाद स्वीकृत किए गए थे। उक्त ऋण के लाभार्थियों ने भी ऋण के अधीन वस्तुएं खरीदीं और प्राप्त कीं और अपनी संतुष्टि दर्ज की। ऋण का वितरण बैंक द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया गया। उक्त ऋणों का मूल्यांकन, स्वीकृत और वितरण किया गया और परिसंपत्तियों का निर्माण सहायक विकास अधिकारी (समाज कल्याण), पहाड़ी, चित्रकूट के साथ-साथ श्री आत्माराम गुप्ता, जो शाखा में तैनात स्थायी अधिकारी थे, की देखरेख में किया गया। ऋणों का वितरण प्रक्रिया के अनुसार किया गया था और याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 17.02.2010 को संचार द्वारा सक्षम प्राधिकारी को उक्त तथ्य की विधिवत सूचना दी गई थी। 30.03.2010 और 20.04.2010. निरीक्षण अधिकारी द्वारा दिनांक 09.06.2010 से 14.06.2010 तक शाखा का आंतरिक लेखापरीक्षा निरीक्षण भी किया गया। दिनांक 15.06.2010 की ऑडिट निरीक्षण रिपोर्ट में, यह बताया गया कि विवादित ऋण प्रबंधक की मंजूरी के बिना स्वीकृत किए गए थे।

4. प्रासंगिक समय में उक्त शाखा में केवल दो अधिकारी तैनात थे, अर्थात् श्री आत्माराम गुप्ता मूल्यांकन अधिकारी के रूप में और याचिकाकर्ता अस्थायी प्रबंधक के रूप में (बैंक दिशानिर्देशों के अनुसार ऋण स्वीकृत करने का कोई अधिकार नहीं था)।

5. दिनांक 15.06.2010 की निरीक्षण रिपोर्ट में उपरोक्त अनियमितताएं उजागर होने के तुरंत बाद, श्री आत्माराम गुप्ता को आदेश दिनांक 19.07.2010 द्वारा स्पष्ट निर्देश के साथ कि कोई भी ऋण लेनदेन न करें, दूसरी शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया था। बैंक के अनुसार निरीक्षण रिपोर्ट में बताई गई

अनियमितताओं को ठीक नहीं किया गया। इसके बाद 2018 तक बैंक द्वारा 08 और वित्तीय वार्षिक आंतरिक निरीक्षण किए गए और उक्त निरीक्षणों में कोई अनियमितता नहीं बताई गई। आश्चर्य की बात यह है कि वर्ष 2010 में घटी उक्त घटना के 08 वर्ष बाद याचिकाकर्ता को उक्त ऋण में अनियमितता के संबंध में कारण बताओ नोटिस दिनांक 23.08.2018 को जारी किया गया। कारण बताओ नोटिस जारी होने के बाद एक विशेष निरीक्षण कारण बताओ नोटिस दिनांक 23.08.2018 में उल्लिखित 14 ऋण लेनदेन के संबंध में किया गया। उक्त विशेष निरीक्षण दिनांक 27.09.2018. को किया गया।

6. प्रतिवादी-बैंक द्वारा याचिकाकर्ता को 11.10.2018 को एक आरोप पत्र जारी किया गया था जिसे तामील 18.10.2018 को किया गया था, यानी याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति से ठीक 12 दिन पहले, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ कुल 18 आरोप लगाए गए थे। 18 आरोपों में से, आरोप संख्या. 1 से 14 याचिकाकर्ता द्वारा अपने स्पष्टीकरण पत्र दिनांक 10.09.2018 में प्रदान की गई गलत जानकारी के संबंध में हैं, जो कथित तौर पर उनके द्वारा वर्ष 2010 में चकौंध शाखा में उनके कार्यकाल के दौरान स्वीकृत ऋणों के संबंध में लिखा गया था। आरोप संख्या 15 कर्तव्य की उपेक्षा के संबंध में है जिसमे स्वीकृत किया गया ऋण करते जो बाद में एन.पी.ए. में बदल गया। परिणामस्वरूप, प्रतिवादी बैंक को 43,924 रुपये की आर्थिक हानि हुई और आरोप संख्या 16 याचिकाकर्ता द्वारा प्रधान कार्यालय को प्रस्तुत की गई भ्रामक रिपोर्ट के संबंध में है और वर्ष 2010 में के विभिन्न ऋणों से संबंधित है जिसमे केवल उधारकर्ताओं के नाम और ऋण राशि आदि में भिन्नता है। आरोप संख्या 17 फिर से याचिकाकर्ता द्वारा उस अधिकारी के हस्ताक्षर के संबंध में प्रदान की गई गलत जानकारी को संदर्भित करता है, जिसने 25.03.2010 और 29.03.2010 को ड्राफ्ट किए गए बैंकर्स चेक जारी किए थे जिसका उल्लेख याचिकाकर्ता द्वारा अपने स्पष्टीकरण पत्र दिनांक 10.09.2018 में किया गया है। जहां तक आरोप संख्या 18 का सवाल है, इसमें आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता चौकंध शाखा में अपने कार्यकाल के दौरान बैंक दिशानिर्देशों का पालन करने में विफल रहने के सम्बन्ध में है क्योंकि श्री गुलाब सिंह के बचत बैंक खाते में दिनांक 06.12.2005 को 1,07,302/- रुपये की राशि को गलत तरीके से 2,07,302/- रु0 दिखाई गई थी और, इस प्रकार, खाताधारक द्वारा 91,439/- रुपये की अतिरिक्त राशि निकाल ली गई, जिससे बैंक को उक्त राशि की वित्तीय हानि हुई। सभी 18 आरोप 2005 से 2010 के बीच हुए लेनदेन से संबंधित हैं, यानी याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी होने से 8 साल पहले के हैं।

7. सजा आदेश को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई पहली दलील यह है कि घटना वर्ष 2010 की है और यह हमेशा से प्रतिवादी-बैंक का ज्ञान में थी।वास्तव में, श्री आत्माराम गुप्ता को आदेश दिनांक 19.07.2010 द्वारा बैंक से इस निर्देश के साथ कि उन्हें ऋण स्वीकृत

करने का कोई अधिकार नहीं दिया जाएगा स्थानांतरित कर दिया गया। जबकि , याचिकाकर्ता को आरोप पत्र 11.10.2018 को यानी घटना घटित होने के लगभग 08 साल बाद और वह भी याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति से केवल 12 दिन पहले जारी किया गया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता बैंक सतर्कता नियमावली के अध्याय-VII के खंड 1 पर भरोसा करते हैं जिसमें यह प्रावधान है कि कथित कृत्य के 4 साल बाद किसी अधिकारी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी। इस प्रकार, आरोप पत्र अत्यधिक विलंबित है और इसलिए, पूरी कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए। अपनी दलील के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता **यूको बैंक एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ल; (2018) 14 एससीसी 92** और **यूको बैंक एवं अन्य बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े (2018) 14 एससीसी 98** के मामलों में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों पर भरोसा करते हैं जिसमें कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही को कथित कृत्य और आरोप पत्र जारी करने के बीच अत्यधिक देरी के आधार पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द कर दिया गया था।

8. उसी के उत्तर में, प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि प्रत्येक आरोप के अवलोकन से पता चलता है कि आरोप पत्र याचिकाकर्ता द्वारा 10.09.2018 को प्रस्तुत उत्तर के आधार पर जारी किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जिन पूर्वोक्त निर्णयों पर भरोसा किया गया है , उन्हें सुप्रीम कोर्ट की एक बड़ी पीठ द्वारा महानदी कोल् फील्ड लिमिटेड बनाम रबिन्द्रनाथ चौबे **(2020) 18 एससीसी 71 के** मामले में खारिज कर दिया गया है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने कभी कोई स्पष्टीकरण पत्र दिनांकित 10.09.2018 जारी नहीं किया है और उस पर याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर से भी इनकार कर दिया। उन्होंने आगे कहा कि आरोपपत्र में आरोप अस्पष्ट हैं और उनमें कोई भी विवरण नहीं दिया गया है। सिर्फ प्रतिवादी द्वारा आरोपों की भाषा पर भरोसा किया गया है, जिसमें केवल यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने शाखा - चकौंध के प्रबंधक के रूप में काम करते हुए ऋण दिया था और उक्त संदर्भ में प्रधान कार्यालय को झूठी और भ्रामक रिपोर्ट दी है जिसमे व्यक्तियों को नामित किया गया है । वह आगे कहते हैं कि आरोपपत्र में अस्पष्ट आरोप अपने आप में पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता **यूपी राज्य बनाम मो. शरीफ (मृत).; एआईआर 1982 सुप्रीम कोर्ट 937** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हैं।

10. इसका उत्तर देते हुए, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आरोप पत्र के साथ याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में विवरण देते हुए दस्तावेज संलग्न किए गए थे। आरोप संख्या 1 से 14 तक के संबंध में उक्त परिशिष्ट में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि प्रधान कार्यालय के पत्र दिनांक 23.08.2018

के जवाब में, याचिकाकर्ता द्वारा 10.09.2018 को एक उत्तर प्रस्तुत किया गया था जो अस्पष्ट और गलत था। उक्त अनुलग्नकों में अलग ऋण खातों और उनमें स्वीकृत राशि का विवरण भी दिया गया है। इस प्रकार, ये पर्याप्त विवरण हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि आरोप अस्पष्ट हैं। आरोप क्रमांक 15 के संबंध में कहा गया है कि भैंस खरीदने के बाद न तो कोई स्वास्थ्य प्रमाणपत्र जारी किया गया और न ही भैंस का बीमा कराया गया। इसके अलावा, 40,000/- रुपये की ऋण राशि पर कभी कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई थी और अब ऋण राशि की वसूली नहीं की जा सकती है और इस प्रकार बैंक को आरोप पत्र जारी करने के दिन पर 43,924/- की राशि का नुकसान हुआ है।

11. आरोप संख्या 16 के संबंध में, उपरोक्त ऋण राशि का विवरण प्रदान किया गया है और यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने अपने द्वारा वितरित ऋण के लिए कोई सुरक्षा नहीं मांगी गयी थी और इस प्रकार, बाद में यह एन.पी.ए. के रूप में बदल गया और अब बैंक को नुकसान हो रहा है। आरोप संख्या 17 के संबंध में, अनुलग्नकों में फिर से कहा गया है कि बैंक के पत्र दिनांक 23.08.2018 पर उनका स्पष्टीकरण दिनांक 10.09.2018 गलत है और गलत जानकारी देता है और इसलिए, आरोप याचिकाकर्ता पर लगा है। आरोप संख्या 18 श्री गुलाब सिंह के उक्त बचत बैंक खाते में गलत तरीके से दिखाई गई राशि का विवरण देता है।

12. उपरोक्त के आधार पर, प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आरोप पत्र में पर्याप्त विवरण दिए गए हैं और इसमें कोई देरी नहीं हुई है और यह याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पत्र दिनांक 10.09.2018 के आधार पर है जो स्वयं अस्पष्ट एवं मिथ्या है। इस प्रकार, उनका कहना है कि चूंकि जब याचिकाकर्ता द्वारा गलत उत्तर प्रस्तुत किया गया था इसलिए कार्यवाही वर्ष 2018 में हुआ थी, इसलिए आरोप पत्र जारी करने में कोई देरी नहीं है। प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दिनांक 10.09.2018 का पत्र याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं लिखा गया है और वह इसे गलत तरीके से विवादित कर रहा है।

13. जांच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि आरोप सं.1 से 14 सिद्ध हो गए हैं, आरोप संख्या 15 आंशिक रूप से सिद्ध हो गया है जबकि याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 16 से दोषमुक्त कर दिया गया है, आरोप संख्या 17 सिद्ध हो गया है और आरोप संख्या 18 आंशिक रूप से सिद्ध हो गया है।

14. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

15. याचिकाकर्ता की पहली दलील उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में देरी के संबंध में है।

16. यह पार्टियों के बीच विवाद में नहीं है कि सभी ऋण स्वीकृत किए गए थे और आरोप

पत्र में उल्लिखित अन्य अधिनियम वर्ष 2010 या उससे पहले के हैं। याचिकाकर्ता को आरोप पत्र 11.10.2018 को जारी किया गया, जो उसे 18.10.2018 को तामील कराया गया, जबकि याचिकाकर्ता को 31.10.2018 को सेवानिवृत्त होना था। प्रतिवादी-बैंक द्वारा इस पर कोई विवाद नहीं किया गया है कि वर्ष 2010 से वर्ष तक 2018 में शाखा का नियमित वार्षिक वित्तीय निरीक्षण किया गया। इस प्रकार, यदि याचिकाकर्ता द्वारा कोई अनियमितता और अवैधता की गई थी, तो यह हमेशा प्रतिवादी-बैंक की जानकारी में थी। प्रतिवादी-बैंक ने कभी भी किसी कथित अवैधता के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया, भले ही वे मौजूद हों। बैंक अपने दिनांक 23.08.2018 के पत्र द्वारा स्पष्टीकरण मांगकर किसी भी अवैधता के संबंध में जो याचिकाकर्ता द्वारा किये गए हैं, विभागीय जांच शुरू करने में की गई 08 साल की देरी से छुटकारा नहीं पा सकता है यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 10.09.2018 को एक प्रतिक्रिया/पत्र भेजा/प्रस्तुत किया गया था, जो गलत और अस्पष्ट है और इस प्रकार अब विभागीय कार्यवाही शुरू की जा रही है।सभी आरोप वर्ष 2010 में गरीब व्यक्तियों के लिए सरकारी योजना के तहत दिए गए ऋण और वर्ष 2005 में एक ग्राहक के खाते से विकलन करने में विसंगति से संबंधित हैं।

17. पत्र दिनांक 23.08.2018 द्वारा मांगा गया स्पष्टीकरण केवल वर्ष 2010 के उक्त ऋणों और वर्ष 2005 की विसंगति के संबंध में है। याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करने में भी 08 साल की देरी के लिए कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं है और यह स्वीकार करना कि कारण बताओ नोटिस ही 08 साल बाद जारी किया गया है, यह दर्शाता है कि अत्यधिक देरी हुई है।

18. अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित और मानकीकृत करने के उद्देश्य से बैंक की सतर्कता नियमावली तैयार की गई है। अध्याय-VII "जांच रिपोर्ट के प्रसंस्करण और कर्मचारियों की जवाबदेही तय करने" से संबंधित है। इसके अनुच्छेद 1 में अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए समय सीमा प्रदान की गई है, यह इस प्रकार है:-

"प्रचलित प्रणाली के अनुसार, सभी उधार/गैर-उधार खाते क्रेडिट अंकेक्षण/निरीक्षण के अधीन हैं और उन्हें कड़ी जांच के तहत रखा जाता है। यह अंकेक्षण /निरीक्षण मंजूरी-पूर्व मूल्यांकन, दस्तावेज़ीकरण और ऋण/ अग्रिम के संवितरण और मंजूरी के बाद की अनुवर्ती कार्रवाई की जांच करेगा। यदि पहले लेखापरीक्षा/निरीक्षण में लेखापरीक्षकों/ निरीक्षकों द्वारा कोई अनियमितता छूट जाती है, तो यह उम्मीद करना उचित है कि शेष अज्ञात अनियमितताएं भी दूसरा अंकेक्षण /निरीक्षण द्वारा पता चल जाएंगी और अनुवर्ती कार्रवाई में संबंधित अधिकारियों के खिलाफ आवश्यक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाएगी। आम तौर पर दूसरा अंकेक्षण /निरीक्षण 3-4 साल के भीतर पूरा हो जाएगा। <u>सी.वी.सी. द्वारा तदनुसार इस प्रस्ताव को अनुमोदित किया गया है कि एक ही खाते के लगातार दो आंतरिक नियमित *अंकेक्षण*</u>

/निरीक्षणों के भीतर या घटना की तारीख से 4 साल के भीतर, जो भी बाद में हो, पाई गई किसी भी चूक के लिए किसी भी अधिकारी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जाएगी। यदि दूसरे *अंकेक्षण* /निरीक्षणों के बाद अनियमितताएं पाई जाती हैं, निरीक्षण संबंधित लेखा परीक्षकों/निरीक्षकों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए जवाबदेह और उत्तरदायी ठहराया जाएगा।*हालाँकि, यह समय सीमा i) धोखाधड़ी, ii) अन्य आपराधिक अपराध या (iii) ऐसे मामले जहां दुर्भावनापूर्ण आरोप लगाया जा सकता है पर लागू नहीं होगी ।"*

19. प्रतिवादी बैंक द्वारा दायर काउंटर में बैंक की सतर्कता नियमावली की प्रयोज्यता पर विवाद नहीं किया गया है। बहस के दौरान, बैंक के अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि यह लागू है, हालांकि, उनका कहना है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत झूठे स्पष्टीकरण दिनांक 10.09.2018 के आधार पर कार्यवाही शुरू की गई है।

20. उपरोक्त के अवलोकन से पता चलता है कि यदि पहले अंकेक्षण /निरीक्षण में कोई अनियमितता पाई गई थी और भले ही छूट गई हो, तो यह उचित रूप से अपेक्षित है कि दूसरे अंकेक्षण /निरीक्षण में इसका पता लगाया जाएगा। इस प्रकार, दूसरे ऑडिट निरीक्षण के तुरंत बाद अनुवर्ती कार्रवाई में संबंधित अधिकारी के खिलाफ आवश्यक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने की उम्मीद है। ऐसी कार्यवाही आम तौर पर 3-4 साल की अवधि के भीतर पूरा हो जाती है। सी.वी.सी. द्वारा तदनुसार अनुमोदित किया गया है कि एक ही खाते के लगातार दो आंतरिक नियमित ऑडिट/निरीक्षणों के भीतर या घटना की तारीख से 4 साल के भीतर, जो भी बाद में हो, पाई गई किसी भी चूक के लिए किसी भी अधिकारी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जाएगी। यदि दूसरे ऑडिट के बाद अनियमितताएं पाई जाती हैं/निरीक्षण, संबंधित लेखा परीक्षकों/निरीक्षकों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए जवाबदेह और उत्तरदायी ठहराया जाएगा। केवल धोखाधड़ी, अन्य आपराधिक अपराध या जहां दुर्भावनापूर्ण आरोप लगाया जा सकता है के मामले इसका अपवाद हैं।

21. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-बैंक का मामला यह नहीं है कि अंकेक्षण/निरीक्षण में अनियमितताएं नहीं पाई गईं। एक बार जब उनका पता चल गया, तो यह बैंक की जिम्मेदारी थी कि वह तुरंत विभागीय कार्यवाही आगे बढ़ाए। प्रतिवादी-बैंक द्वारा ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है कि यह धोखाधड़ी या आपराधिक अपराध या जहां दुर्भावना का अनुमान लगाया जा सकता है जैसे कोई अन्य मामला है। बैंक द्वारा ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है कि अनियमितताएं समय पर बैंक की जानकारी में नहीं आईं। घटना के चार साल बाद कार्यवाही शुरू करने पर एक विशेष रोक है। प्रतिवादी-बैंक द्वारा 08 वर्ष की समाप्ति के बाद कारण बताओ नोटिस जारी करने मात्र से सी.वी.सी. के उक्त दिशानिर्देशों, जो बैंक पर बाध्यकारी हैं, में हेरफेर करना संभव नहीं है । सी.वी.सी.

के दिशानिर्देश के तहत निर्धारित अवधि के भीतर बैंक द्वारा कोई भी कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना आवश्यक था। इस प्रकार, अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरूआत सीधे तौर पर उपरोक्त दिशानिर्देशों से प्रभावित होती है।

22. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने **महानदी कोलफील्ड्स (सुप्रा) के** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया जिसमे उल्लेखित है कि आरोपपत्र जारी करने में देरी विभागीय कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकती। उसी का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है-

"38. यूको बैंक बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला [यूको बैंक बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला, (2018) 14 एससीसी 92: (2018) 2 एससीसी (एल एंड एस) 625] में इस न्यायालय ने इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया कि आरोप-पत्र जारी करने में लगभग सात साल की देरी हुई। दक्षता रोक को उस अवधि को करने की अनुमति दी गई थी क्योंकि अनुशासनात्मक जांच के लंबित रहने के दौरान कर्मचारी को निर्वाह भत्ता या पेंशन का भुगतान नहीं किया गया था। यह पाया गया कि कर्मचारी जांच के दौरान निर्वाह भत्ते के का हकदार था। यूको बैंक बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े [यूको बैंक बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े, (2018) 14 एससीसी 98: (2018) 2 एससीसी (एल एंड एस) 630] का निर्णय संदर्भित किया गया था। <u>एक अवलोकन किया गया कि सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी की सजा नहीं दी जा सकती थी, लेकिन इसे निर्णय का अनुपात नहीं कहा जा सकता। यह मुख्यतः इस न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है कारणों से था जैसे देरी, गुजारा भत्ता का भुगतान न करने और कर्मचारी को विभागीय जांच के अंतर्गत सार्थक भागीदारी से वंचित करने के सम्बन्ध में दिया गया ।</u> उपरोक्त निष्कर्ष देने के बाद, उपरोक्त प्रश्न पर जाना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार यह राय व्यक्त की गई बर्खास्तगी की सजा को निर्णय का अनुपात नहीं कहा जा सकता। निर्भरता यूको बैंक बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े [यूको बैंक बनाम प्रभाकर सदाशिव करवड़े, (2018) 14 एससीसी 98: (2018) 2एससीसी (एल एंड एस) 630]के मामले पर रखी गई थी । यद्यपि यूको बैंक बनाम राजिंदर लाल कपूर [यूको बैंक बनाम राजिंदर लाल कपूर, (2007) 6 एससीसी 694: (2007) 2 एससीसी (एल एंड एस) 550] के फैसले को इस न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया था, लेकिन इस न्यायालय ने पूछताछ जारी रखने और कर्मचारी की सेवा में बने रहने को काल्पनिक मानने के प्रभाव पर विचार नहीं किया जैसा कि विभिन्न निर्णयों में ऊपर बताया गया है, और इस न्यायालय ने बैंक को होने वाले आर्थिक नुकसान के लिए विनियम 48 पर भरोसा किय। जबकि रमेश चंद्र शर्मा बनाम पंजाब नेशनल बैंक [रमेश चंद्र शर्मा बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2007) 9 एससीसी 15: (2008)1 एससीसी (एल एंड एस) 337] के मामले में इसके विपरीत यह माना गया कि एक बार (अनुशासन और अपील) विनियमों के विनियम 4 के तहत जांच शुरू होने पर पेंशन विनियमों के विनियम 48 का कोई औचित्य नहीं है , और

*बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखा गया था। रमेश चंद्र शर्मा बनाम पंजाब नेशनल बैंक में निर्णय [रमेश चंद्र शर्मा बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2007) 9 एससीसी 15: (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 337] और अन्य निर्णय जो डिवीजन बेंच पर बाध्यकारी थे, नहीं माने गए । उक्त निर्णय और ऊपर उल्लिखित अन्य निर्णयों पर , जिसमें यह माना गया था कि निरंतरता की कानूनी कल्पना को तार्किक निष्कर्ष पर ले जाना होगा, अवलोकन से पता चला कि यूको बैंक बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला [यूको बैंक बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला, (2018) 14 एससीसी 92: (2018) 2 एससीसी (एल एंड एस) 625] के मामले में लिया गया फैसला कि सेवानिवृत्ति के बाद की बर्खास्ती की सजा दी जा सकती है, निर्णय का अनुपात नहीं था और यूको बैंक बनाम प्रभाकर सदाशिव करवाडे [यूको बैंक बनाम. प्रभाकर सदाशिव करवाडे, (2018)14 एससीसी 98: (2018) 2 एससीसी (एल एंड एस) 630] के मामले में उक्त निर्णय के आधार पर व्यक्त की गयी राय दुर्बलता से ग्रस्त है और लागू नहीं हो सकती ." **(जोर दिया गया)***

महानदी कोयला क्षेत्र (सुप्रा) के मामले में फैसले का अवलोकन ने जिस पर प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया था ने **राजेंद्र शंकर शुक्ल (supra)** और **प्रभाकर सदाशिव करवाडे (सुप्रा) में लिए गए फैसलों को** केवल खारिज कर दिया है जहाँ तक बात दोषी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद निष्कासन की सजा नहीं दी जा सकती है की बात है अन्यथा अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में अस्पष्टीकृत अत्यधिक देरी से संबंधित कानून अभी भी लागू है। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया कानून यह है कि यदि अत्यधिक देरी होती है, तो प्रतिवादी-विभाग के लिए विभागीय कार्यवाही शुरू करने के लिए आगे बढ़ना खुला नहीं होगा। प्रतिवादी बैंक एक स्पष्टीकरण पत्र के आधार पर इस तरह की अत्यधिक देरी से उबर नहीं सकता है, जिसे याचिकाकर्ता ने कम से कम 8 साल पहले हुई घटनाओं के संबंध में लिखा है।

23. जहां तक उत्तर पत्र दिनांक 10.09.2018 का सवाल है, याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से इसका खंडन किया है। दोनों पक्षों ने अपनी हस्तलेखन विशेषज्ञ रिपोर्ट प्रस्तुत की है। उनके विशेषज्ञों ने विरोधाभासी रिपोर्टें दी हैं क्योंकि बैंक के विशेषज्ञ का कहना है कि याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर मेल खाते हैं जबकि याचिकाकर्ता के विशेषज्ञ कहते हैं की हस्ताक्षर मेल नहीं खाते हैं। इस प्रकार, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई निर्णायक सबूत नहीं था कि दिनांक 10.09.2018 को संचार में याचिकाकर्ता के होने का दावा किया गया कथित हस्ताक्षर उसके मूल हस्ताक्षर से मेल खाता है। इस न्यायालय ने भी अपने आदेश दिनांक 07.10.2021 द्वारा हस्ताक्षर को राज्य फोरेंसिक प्रयोगशाला से सत्यापन के लिए फोरेंसिक विशेषज्ञ को भेजने की आवश्यकता बताई थी।

24. दिनांक 10.09.2018 के पत्र पर हस्ताक्षर याचिकाकर्ता के हैं या नहीं, इसके संबंध में निष्कर्ष अनिर्णायक है और इस प्रकार रिकॉर्ड

पर उपलब्ध तथ्यात्मक साक्ष्य की पुनः परिक्षण का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है, इसलिए यह न्यायालय अपनी शक्तियों के भीतर उसकी जांच करायी और उस पर एक निष्कर्ष दिया। इस न्यायालय के निर्देशों के तहत प्रस्तुत विशेषज्ञ फोरेंसिक रिपोर्ट दिनांक 12.02.2021 में यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर दिनांक 10.09.2018 के कथित दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर के साथ मेल नहीं खाते हैं। यह अपने आप में पर्याप्त रूप से साबित करता है कि दिनांक 10.09.2018 का पत्र याचिकाकर्ता द्वारा लिखित नहीं है। इस प्रकार, उक्त संचार में कोई भी गलत बयान याचिकाकर्ता को नहीं थोपा जा सकता है और उसके आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है। इसके अलावा , इस न्यायालय ने रिट याचिका (पन्ना 81-बी)) के अनुलग्नक संख्या 10 के साथ दायर बैंक द्वारा रखे गए नमूना हस्ताक्षर और बैंक की अधिकारी अधिकृत हस्ताक्षर पुस्तक जिसे बैंक द्वारा सील कवर के तहत भी प्रस्तुत किया गया था, रिट याचिका के पृष्ठ 83 पर दिनांक 10.09.2018 के उक्त संचार पर हस्ताक्षर के साथ निरीक्षण किया। उक्त संचार दिनांकित 10.09.2018 दो पृष्ठों में है और इसके पहले पृष्ठ पर कोई हस्ताक्षर नहीं है। यह उक्त संचार का दूसरा पृष्ठ है जिसमें याचिकाकर्ता के कथित हस्ताक्षर हैं (पृष्ठ-83 पर) और जब इसकी तुलना बैंक द्वारा प्रस्तुत किये गए और पृष्ठ 81-बी पर दायर किए गए नमूना हस्ताक्षर से की जाती है, तो बिल्कुल मेल नहीं खाता है। ये दो अलग-अलग हस्ताक्षर हैं।

25. इस प्रकार, यह न्यायालय यह पाता है की उक्त संचार दिनांकित 10.09.2018, जिसके आधार पर आरोप पत्र जारी किया गया है, वह टिक नहीं सकता। इस प्रकार, बैंक याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 10.09.2018 के उक्त संचार का कोई लाभ भी नहीं ले सकता है।

26. उपरोक्त के आलोक में, इस याचिका को स्वीकार किया जाता है। आक्षेपित आदेश दिनांक 07.09.2020 एवं आदेश दिनांकित 15.06.2021 को किनारे किया जाता।

27. बैंक की अधिकारी अधिकृत हस्ताक्षर पुस्तिका भी बैंक द्वारा इस न्यायालय को सीलबंद कवर के तहत प्रस्तुत की गयी है। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा मूल पुस्तक को प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता को लौटा दिया जाए।

(2023) 8 ILRA 974

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-ए संख्या 16385 वर्ष 2008

रमेश चंद्र पांडे ...याचिकाकर्ता

बनाम

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विजय त्रिपाठी, श्री एपी पांडे, श्री अभिषेक मिश्रा, श्री जेएसपी सिंह, श्री ओपी सिंह, श्री आरसी पांडे (व्यक्तिगत रूप से), श्री संतोष कुमार मिश्रा, श्री शाश्वत आनंद, श्री ओम सुभाष त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री ए.सी. त्रिपाठी, श्री अभिषेक टंडन, एस.सी.

सेवा विधि - सेवा से बर्खास्तगी - विभागीय जाँच - प्राकृतिक न्याय - बैंकिंग सेवाएँ - वित्तीय ईमानदारी

याचिकाकर्ता, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के पूर्व सहायक प्रबंधक और कार्यवाहक शाखा प्रबंधक, ने वित्तीय अनियमितताओं के आरोपों पर विभागीय जांच के बाद सेवा से अपनी बर्खास्तगी को चुनौती दी, जिसमें गबन, निधियों का अनधिकृत प्रतिधारण और आधिकारिक पद का दुरुपयोग शामिल है। जांच अधिकारी ने कुछ आरोपों को आंशिक रूप से बरकरार रखा, लेकिन कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा या धोखाधड़ी से निकासी नहीं पाई। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों से अलग राय रखते हुए बर्खास्तगी का आदेश दिया, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने बरकरार रखा। याचिकाकर्ता ने पहले के बर्खास्तगी आदेशों को रद्द करने वाले पूर्व अदालती आदेशों का हवाला देते हुए प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन और अनुपातहीन सजा का तर्क दिया। प्रतिवादी-बैंक ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के कार्यों ने वित्तीय ईमानदारी से समझौता किया याचिकाकर्ता के कार्यों, जिनमें धन का अनाधिकृत संचालन और पद का दुरुपयोग शामिल है, बैंकिंग सेवाओं में गंभीर कदाचार का मामला है, जहाँ वित्तीय ईमानदारी सर्वोपरि है। बर्खास्तगी की सज़ा न्यायोचित और उचित मानी गई।

रिट याचिका खारिज कर दी गई।

<u>संदर्भ:</u>

1. अजय कुमार चौधरी बनाम भारत संघ (2015) 7 एससीसी 291

2. राम रतन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019) 4 एडीजे 870 (एलबी)

3. यूपी राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 1 सुप्रीम 561

4. एसबीआई बनाम रमेश दिनकर पुंडे (2006) 7 एससीसी 212

5. अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बनाम पीसी कक्कड़ (2003) 4 एससीसी 364

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. न्यायालय ने श्री ओ.पी. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री रमेश चंद्र पांडेय, स्वयं याचिकाकर्ता, जो इस न्यायालय के लंबे समय से प्रैक्टिस करने वाले वकील हैं, श्री ओम सुभाष त्रिपाठी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री

अभिषेक टंडन, प्रतिवादी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, को सुना।

2. 26.09.2022 के आदेश द्वारा, शीर्ष न्यायालय ने इस न्यायालय से इस रिट याचिका को शीघ्र तिथि पर लेने और कार्यवाही को यथासंभव शीघ्र समाप्त करने का अनुरोध किया, अधिमानतः आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह महीने के भीतर। छह महीने की अवधि मार्च, 2023 में पहले ही समाप्त हो चुकी है।

3. यह मामला पहली बार मेरे सामने रखा गया है।

4. 21.07.2023 को पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुनने के बाद, निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

5. यह रिट याचिका 20.12.2006 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को बैंकिंग सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था और साथ ही 30.11.2007 के आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा दंड आदेश के खिलाफ उनकी विभागीय अपील खारिज कर दी गई थी। रिट याचिका में निहित आक्षेपों के अनुसार प्रतिवादी बैंक में सहायक प्रबंधक के पद पर याचिकाकर्ता की बहाली के संबंध में भी परमादेश का अनुरोध किया गया है।

6. रिट याचिका में निहित आक्षेपों के अनुसार, याचिकाकर्ता को राम कोला शाखा देवरिया में सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के कार्यालय में क्लर्क-सह-कैशियर के पद पर नियुक्त किया गया था और उसके बाद, उन्हें उप लेखाकार/सहायक प्रबंधक, पडरौना शाखा के पद पर 28.8.1985 को पदोन्नत किया गया था। 31.12.1990 को, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया की एक नई शाखा विष्णुपुरा गांव में खोली गई थी, जो पडरौना शाखा देवरिया के कार्यालय से लगभग 9 किलोमीटर दूर थी और अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को विष्णुपुरा शाखा के शाखा प्रबंधक का प्रभार दिया गया था। याचिकाकर्ता ने 31.12.1990 से 22.06.1991 तक पडरौना शाखा के सहायक प्रबंधक के पद पर काम किया और साथ ही विशुनपुरा शाखा के शाखा प्रबंधक के पद पर भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया और उक्त अवधि के दौरान, याचिकाकर्ता के अलावा, किसी अन्य कर्मचारी को विशुनपुरा शाखा में तैनात नहीं किया गया था। विष्णुपुरा में कार्यवाहक शाखा प्रबंधक के कर्तव्य के अलावा, याचिकाकर्ता को क्लर्क, कैशियर और चपरासी और प्रबंधक के रूप में भी काम करना था ताकि बैंकों के नियमों और मानदंडों के अनुसार नकद प्रेषण चलाया जा सके और उसे अपने निकटतम पडरौना शाखा में नकद प्रेषण भी लाना था। विष्णुपुरा और पडरौना ग्राम की शाखाओं के बीच कोई नियमित वाहन नहीं था, और याचिकाकर्ता को उक्त दूरी को ऊपर और नीचे, या तो रिक्शा या तांगा से पार करना पड़ता था, जिससे याचिकाकर्ता को अन्य कर्मचारियों की अनुपलब्धता के कारण हर कार्य दिवस पर दोनों शाखाओं के कार्यालय में उपस्थित होने में बहुत जटिलताएँ उत्पन्न होती थीं। 09.05.1991 को, तत्कालीन क्षेत्रीय प्रबंधक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, गोरखपुर ने

याचिकाकर्ता को विष्णुपुरा शाखा के प्रेषण को पडरौना शाखा में जमा करने में देरी के संबंध में एक कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसका उत्तर याचिकाकर्ता ने 18.05.1991 को दिया था। 12.08.1991 के आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को क्षेत्रीय प्रबंधक, गोरखपुर द्वारा 13.08.1991 से विभागीय जांच के संबंध में निलंबित कर दिया गया था। 02.12.1991 को, क्षेत्रीय प्रबंधक, क्षेत्रीय कार्यालय, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, गोरखपुर ने याचिकाकर्ता को निम्न पांच आरोपों का वर्णन करते हुए तुच्छ, झूठे और अस्पष्ट आरोपों पर आरोप पत्र जारी किया:

(i). पडरौना शाखा में कार्य करते हुए श्री पांडेय को कभी-कभी कार्यवाहक शाखा प्रबंधक के रूप में विष्णुपुरा शाखा में प्रतिनियुक्ति दी जाती थी, जहां से उन्होंने 18.02.1991, 21.02.1991, 10.04.1991 को क्रमशः 1345 रुपये और 2100 रुपये की नकदी पडरौना शाखा में जमा करने के लिए ली थी। हालांकि श्री पांडेय इन तिथियों के कार्यालय में पडरौना शाखा में अच्छी तरह पहुंच गए, लेकिन उन्होंने नकदी जमा नहीं कराई और उसे अनधिकृत रूप से अपने पास रख लिया और एक दो दिन बाद ही नकदी जमा की जो उन्होंने 18.02.1991 को ली थी, 20.02.1991 को जमा की गई, 21.02.1991 को ली थी, 22.02.1991 को और 10.04.1991 को ली थी, 11.04.1991 को जमा की गई। इस प्रकार उन्होंने बैंक के धन का अस्थायी रूप से गबन किया था।

(ii). श्री पांडेय ने 24.03.1990 के 800 रुपये की एक क्रेडिट प्रविष्टि को टर्म लोन (ट्रैक्टर) खातेदार राधा किशन सिंह एंड अदर्स से टर्म लोन (किराना शॉप) खातेदार छेदी यादव में 23/24.03.1990 के 800 रुपये के क्रेडिट वाउचर को बदलकर और 24.01.1991 को उसी राशि के सी/ पी सुंड्री क्रेडिट में एक नकली प्रविष्टि करके और 29.01.1991 को ही एक डेबिट कैश वाउचर के माध्यम से छेदी यादव के लिए राशि प्राप्त होने के रूप में हस्ताक्षर करके निकाल लिया। इस प्रकार, श्री पांडेय ने धोखाधड़ी के तरीके से 800 रुपये निकाले।

(iii). श्री पांडेय ने अपने व्यक्तिगत ओवरड्राफ्ट खाते में ओवरड्राफ्ट को कम करने के लिए, जानबूझकर 13.11.1990 को अपने व्यक्तिगत ओवरड्राफ्ट खाते में 11000/- रुपये जमा किए, जो मेसर्स

पटना फार्मेसी द्वारा ओवरड्राफ्ट खाते में जमा किए गए थे। इसे छुपाने के लिए, उन्होंने 13.11.1990 को ही अपने व्यक्तिगत ओवरड्राफ्ट खाते में डिमांड ड्राफ्ट जारी करने के लिए मेसर्स पटना फार्मेसी द्वारा जारी किए गए 6831 रुपये के चेक नंबर 0515435 को भी पोस्ट कर दिया। इस प्रकार, श्री पांडेय ने गैरकानूनी तरीके से काम किया था,

(iv). श्री पांडेय ने 02.02.1991 को जनवरी 1991 के महीने के लिए 887.60 रुपये के अपने स्वयं के परिवहन प्रतिपूर्ति बिल को प्रबंधक के पद पर पारित किया, हालांकि उन्हें अपने स्वयं के बिल के लिए कोई शक्ति नहीं दी गई थी। उन्होंने इस परिवहन प्रतिपूर्ति को अनधिकृत रूप से लिया और आर्थिक लाभ प्राप्त किया।

(v). श्री पांडेय ने सक्षम प्राधिकारी से किसी भी मंजूरी के बिना अपने पक्ष में वर्ष 1991 के लिए चिकित्सा सहायता के रूप में 21.01.1991 को 800 रुपये का वाउचर जारी किया। उन्होंने इस प्रकार अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया है।

7. याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच की गई और जांच अधिकारी द्वारा 31.03.1993 की दिनांकित रिपोर्ट प्रस्तुत करने के साथ समाप्त हुई, जिसमें निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए गए:

(i) आरोप संख्या 1 सिद्ध नहीं हुआ ।

(ii). आरोप संख्या 2 इस हद तक सिद्ध होता है कि सी.एस.ओ. ने बिना सत्यापन आदि 800 रुपये की प्रविष्टि में परिवर्तन किया, लेकिन उन्हें धोखाधड़ी के तरीके से 800 रुपये निकालने का दोषी नहीं पाया गया। इस प्रकार, आरोप का यह भाग सिद्ध नहीं हुआ है।

(iii). आरोप इस हद तक सिद्ध होता है कि सी.एस.ओ. ने वाउचर/चेक गलत खाते में जमा किया है, लेकिन दुर्भावनापूर्ण इरादा साबित नहीं हुआ है।

(iv). यह तथ्य है कि सी.एस.ओ. के पास अपने स्वयं के परिवहन बिल को पास करने की शक्ति नहीं थी। इस प्रकार वह बिना किसी शक्ति के अपने स्वयं के परिवहन बिल को पास

करने का दोषी पाया गया है। लेकिन आरोप का दूसरा हिस्सा कि उसने अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त किया, साबित नहीं हो सका।

(v) सी.एस.ओ. को अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग करने के लिए दोषी नहीं पाया गया है।

8. इसके बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने, 03.11.1993 के आदेश द्वारा, जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से अपना असंतोष व्यक्त करते हुए, याचिकाकर्ता को निम्नलिखित शर्तों पर दंडित किया:

(i) आरोप संख्या 1: केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) 1976 के विनियम 4(g) के अनुसार सेवा से मुक्त करना।

(ii) आरोप संख्या 2: केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील)1976 के विनियम 4 (g) के अनुसार सेवा से मुक्त करना।

(iii) आरोप संख्या 3: केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) 1976 के विनियम 4 (e) के अनुसार "समयमान में दो वेतन वृद्धि की कटौती"।

(iv) आरोप संख्या 4: केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) 1976 के विनियम 4 (a) के अनुसार "सेंसर"।

(v) आरोप संख्या 5: केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील 1976 के विनियम 4 (a) के अनुसार "सेंसर"।

उपरोक्त आरोपों को ध्यान में रखते हुए, मैं एतद्द्वारा केंद्रीय बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) 1976 के विनियम 4 (a) के अनुसार सेवा से मुक्त करने का समेकित दंड तत्काल प्रभाव से प्रदान करता हूं।

9. याचिकाकर्ता ने अपील की, जिसे अपीलीय प्राधिकरण ने भी 25.06.1994 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

10. इस न्यायालय की खंडपीठ ने 15.09.1999 के आदेश द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 35032/1994 (रमेश चंद्र पांडेय बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य) में पारित आदेश द्वारा उपर्युक्त दो आदेशों को रद्द कर दिया, और बैंक को कानून

के अनुसार प्रक्रिया आगे बढ़ानेे का अवसर दिया गया। खंडपीठ का दृष्टिकोण यह था कि नैसर्गिग न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है, विशेष रूप से, उस पहलू के संबंध में जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ रहा था।

11. 15.09.1999 के आदेश के अनुपालन में, बैंक ने फिर से इस मामले में कार्यवाही की और 01.03.2001 के आदेश द्वारा, 1976 के विनियमों के अनुसार सेवा से बर्खास्तगी का समेकित दंड दिया। उक्त आदेश के विरुद्ध दायर अपील भी 21.05.2001 को खारिज कर दी गई थी।

12. याचिकाकर्ता ने फिर से इस न्यायालय के समक्ष सजा और अपीलीय आदेशों को सिविल विविध रिट याचिका संख्या 46839/2002 (रमेश चंद्र पांडेय बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई और अन्य) दाखिल करके चुनौती दी, जिसे खंडपीठ ने 21.08.2006 के आदेश द्वारा अनुज्ञात किया गया था। उक्त आदेश का प्रासंगिक भाग निम्नलिखित है:

> *"इस प्रकार, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 1.3.2001 (रिट याचिका के उपाबंध संख्या 28) के आक्षेपित आदेश और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.3.2002 (रिट याचिका के उपाबंध संख्या 32) के आदेश एतद्द्वारा निरस्त किए जाते हैं।* ***मामले को दिए गए दंड की मात्रा पर पुनर्विचार करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है और याचिकाकर्ता को पूर्ण सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद ,इस आदेश के संप्रेषण की तारीख से एक महीने के भीतर कानून के अनुसार, एक तर्कपूर्ण और आख्यापक आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है और यदि कोई अपील दायर की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकारी को भी उसी तरह, ऐसी अपील दाखिल करने की तारीख से एक महीने के भीतर, सकारात्मक रूप से निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों का अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर या अपील के मामले में अपीलीय प्राधिकारी पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा और वह इस मामले पर नए सिरे से विचार करे।"***

13. इस न्यायालय ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी को मामले को वापस भेजते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि प्राधिकारी को दंड की मात्रा पर निर्णय लेना है और आदेश में की गई टिप्पणियों का अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपील के मामले में अपीलीय प्राधिकारी पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा।

14. वापस भेजने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने फिर से 20.12.2006 को पारित आदेश (वर्तमान रिट याचिका में पहला आक्षेपित आदेश) द्वारा सेवा से पदच्युति की समान दीर्घ शास्ति दी, जिसकी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 30.11.2007 के पारित आदेश (वर्तमान रिट याचिका में दूसरा आक्षेपित आदेश) में अपील खारिज करके पुष्टि की गई है।

15. श्री ओ.पी. सिंह, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जब जांच अधिकारी ने जांच रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दर्ज किया था कि आरोप संख्या 1 सिद्ध नहीं हुआ है, याचिकाकर्ता 800 रुपये की राशि धोखाधड़ी से निकालने का दोषी नहीं पाया गया था, आरोप संख्या 2 पर विचार करते हुए, आरोप संख्या 3 कुछ हद तक सिद्ध हुआ था, लेकिन याचिकाकर्ता की दुर्भावनापूर्ण मंशा साबित नहीं हुई थी, याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 4 के तहत कोई अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं हुआ पाया गया था और अंत में, आरोप संख्या 5 पर विचार करते हुए, जांच अधिकारी द्वारा स्पष्ट रूप से यह पाया गया था कि याचिकाकर्ता अपनी आधिकारिक स्थिति का दुरुपयोग करने का दोषी नहीं पाया गया था, ऐसे में प्रतिवादी द्वारा याचिकाकर्ता को कोई दंड देना न्यायपूर्ण और उचित नहीं था।

16. श्री ओ.पी. सिंह ने आगे यह तर्क दिया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण और अपीलीय प्राधिकरण के प्रारंभिक आदेश को इस न्यायालय ने 15.09.1999 को तर्कपूर्ण निष्कर्ष दर्ज करके रद्द कर दिया था और, वापस भेजने के बाद भी, प्राधिकरणों ने वही दृष्टिकोण लिया और वही दंड दिया, जिसे इस न्यायालय ने 21.08.2006 के आदेश द्वारा फिर से रद्द कर दिया था, जिसमें यह स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया था कि एक शाखा से दूसरी शाखा में नकद राशि जमा करने में कुछ देरी हुई थी और पार्टियों का स्वीकृत मामला यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा राशि को अपने पास नहीं रोका गया था और याचिकाकर्ता की ओर से किसी भी तरह के दुर्भावनापूर्ण इरादे का कोई प्रमाण नहीं होने पर, सेवा से बर्खास्तगी का अत्यधिक दंड फिर से अनुचित था। यह आगे तर्क दिया गया है कि बैंक प्राधिकरणों ने याचिकाकर्ता को किसी भी तरह से दंडित करने के लिए अपना मन बना लिया था, इस तथ्य के बावजूद कि इस न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णयों में लगातार हस्तक्षेप किया था और इसलिए, निर्णयों को निरस्त किया जाना चाहिए क्योंकि वे इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विपरीत हैं।

17. याचिकाकर्ता के खिलाफ दंड आदेश और विभागीय कार्यवाही के आधार पर, श्री ओ.पी. सिंह ने निम्नलिखित प्राधिकरणों को विश्वशनीय माना है:

(1) अजय कुमार चौधरी बनाम यू.ओ.आई. अपने सचिव के माध्यम से और अन्य; 2015 (7) एससीसी 291

(2) राम रतन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2019 (4) एडीजे 870 (एलबी)

(3) उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; 2010 (1) सुप्रीम 561

(4) इंद्राणी बाई (श्रीमती) बनाम भारत संघ और अन्य; 1994 सुप्प (2) एससीसी 256

(5) ताजमहल होटल बनाम औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य; 2010 (0) सुप्रीम (डीईएल) 428

(6) रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य; 2009 (1) सुप्रीम 438

(7) पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम कुंज बिहारी मिश्रा; 1998 (7) एससीसी 84

(8) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम केपी नारायणन कुट्टी; 2003 (2) एससीसी 449

(9) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम अरविंद के शुक्ला; 2004 (13) SCC 797

(10) रणजीत सिंह बनाम भारत संघ और अन्य; 2006 (4) एससीसी 153

(11) लव निगम बनाम अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक आईटीआई लिमिटेड और अन्य; 2006 (9) एससीसी 440

(12) एसपी मल्होत्रा बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य; 2013 (7) एससीसी 251

13) पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम केके वर्मा; 2011 एआईआर (एससी) 120

(14) भारतीय स्टेट बैंक बनाम डीसी अग्रवाल; 1992 लॉ सूट (एससी) 671

(15) ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स और अन्य बनाम

एसएस श्योकंद और अन्य; 2014 (5) एससीसी 172

(16) एसएन नरूला बनाम भारत संघ और अन्य; 2011 (4) एससीसी 591

(17) एयर लाइन पायलट एसोसिएशन ऑफ इंडिया (एएलपीएआई) की संयुक्त कार्रवाई समिति और अन्य बनाम नागरिक उड्डयन महानिदेशक और अन्य; 2011 (5) एससीसी 435

(18) मो. यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2010 (7) सुप्रीम 970

(19) अध्यक्ष-सह-एमडी कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम अनंत साहा और अन्य; 2011 (5) एससीसी 142

(20) निशीथ चंद्र तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड; 2003 लॉ सूट (सभी) 532

(21) गोपाल कुमार माहुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2008 लॉ सूट (सभी) 517

(22) भारत संघ बनाम हेमराज सिंह चौहान और अन्य; 2010 (2) सुप्रीम 521

(23) एमपी गुप्ता बनाम सिंडिकेट बैंक और अन्य; 2011 (2) एडब्ल्यूसी 1193

(24) श्रीपति त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2010 (10) एडीजे 331 (डीबी)

(25) श्याम बाबू सविता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2015 (2) एडीजे 614

(26) राम नियादी राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2016 (9) एडीजे 603 (डीबी)

(27) कांस्टेबल एपी -90 शशि कांत पांडे बनाम यूपी राज्य प्रधान सचिव के माध्यम से और अन्य (2008 की रिट संख्या 36620 24.04.2015 को निर्णय लिया गया)

(28) एन राम बनाम भारत संघ और अन्य; 2017 (11) एडीजे 300 (डीबी)

अनुवादित

(29) रहमान बख्श मंसूरी बनाम भारत संघ और अन्य; 2017 लॉ सूट (सभी) 1182

(30) एस के दुआ बनाम हरियाणा राज्य और अन्य; 2008 (1) सुप्रीम 95

18. उपर्युक्त प्राधिकरणों पर विश्वास करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि एक बार विभागीय कार्यवाही के विभिन्न चरणों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन अच्छी तरह से स्थापित हो जाने पर, दंड आदेश कानून में शून्य हो जाता है। यह आगे तर्क दिया गया है कि स्थापित न्यायिक सिद्धांत के आधार पर, यदि जांच रिपोर्ट में दोषी कर्मचारी के पक्ष में पूरी तरह से या आंशिक रूप से निष्कर्ष निकाला गया है, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी अंतिम आदेश पारित करते समय जांच अधिकारी द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण लेता है, तो यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी का कर्तव्य है कि वह स्पष्ट तर्क दर्ज करे कि उसने इस मामले में भिन्न दृष्टिकोण क्यों लिया है और वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित दंड आदेश में उक्त त्रुटि है, जो रिकॉर्ड में बिलकुल स्पष्ट है। यह आगे तर्क दिया गया है कि एक बार दंड आदेशों को अवैध ठहराए जाने के बाद, याचिकाकर्ता को उसकी सेवाओं में सभी पारिणामिक लाभों के साथ बहाल किए जाने का हक होगा। हालांकि, श्री सिंह ने यह तर्क दिया हैं कि चूंकि याचिकाकर्ता काफी समय पहले सेवानिवृत्ति की आयु पार कर चुका है, हालांकि पद पर उसकी वास्तविक बहाली संभव नहीं है, उसे समाप्ति आदेश को अलग रखते हुए वित्तीय लाभ प्रदान किए जा सकते हैं, जिसका याचिकाकर्ता हकदार होता, यदि दंड आदेश पारित नहीं किया गया होता।

19. श्री ओ.पी. सिंह ने इस बात पर भी जोर दिया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने यह पाया है कि याचिकाकर्ता अपने निजी लाभ के लिए बेईमानी से बैंक को ठगने का आदी है और प्राधिकरण द्वारा अनुमानित यह राय पहले पारित दंड आदेश पर आधारित है, जिसके द्वारा चार वेतनवृद्धि रोक दी गई थी। उन्होंने यह तर्क दिया है कि वृद्धि रोकने के उक्त आदेश को रिट ए संख्या 14246/1984 (रमेश चंद्र पांडे बनाम भारत संघ और अन्य) का विषय वस्तु बनाया गया था, जिसे इस न्यायालय ने 30.03.2018 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया था और याचिकाकर्ता को 50% बकाया वेतन सहित लाभों का हकदार पाया गया था।

20. इसके विपरीत, प्रतिवादी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक टंडन ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को बैंक और ग्राहकों के वित्तीय हित के विरुद्ध गतिविधियों में लिप्त पाया गया था और अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने समय-समय पर, अपने समक्ष मौजूद सामग्री का गहन विश्लेषण करने के बाद, ठीक ही दंड दिया, क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि बैंकिंग सेवाओं में किसी भी कर्मचारी द्वारा की गई थोड़ी सी भी वित्तीय गबन या दुरुपयोग दीर्घ शास्ति के लिए पर्याप्त है। जहां तक श्री ओ पी सिंह के

तर्क और इस न्यायालय के समक्ष की गई विभिन्न कार्यवाहियों का संबंध है, श्री अभिषेक टंडन का निवेदन यह है कि यद्यपि यह सच है कि प्रारंभिक दंड आदेशों को 15.09.1999 को रद्द कर दिया गया था, लेकिन इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया था कि उस समय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ था क्योकि अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने जांच अधिकारी के दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण लिया । उन्होंने आगे कहा कि जहां तक सिविल विविध रिट याचिका संख्या 46839 वर्ष 2002 के अंतर्गत किए गए मुकदमे के दूसरे दौर का संबंध है, हालांकि इस न्यायालय द्वारा सजा के आदेश को रद्द कर दिया गया था, 21.08.2006 के आदेश में कुछ टिप्पणियां करने के बावजूद, इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि आदेश में की गई टिप्पणियों का अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपील के मामले अपीलीय प्राधिकारी पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा, और यह कि वे उसी प्रकार से मामले पर नए सिरे से पुनवचार करेंगे। श्री टंडन आगे तर्क देते हैं कि यद्यपि दिनांक 20.12.2006 के आक्षेपित दंड आदेश में, अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा चार वेतन वृद्धि रोकने के पूर्व दंड का उल्लेख किया गया है और यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बेईमानी से बैंक को धोखा देने की आदत है, अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा दर्ज किया गया यह एकमात्र कारण नहीं था, लेकिन यह केवल एक पारित टिप्पणी थी और इसलिए, याचिकाकर्ता को केवल इसलिए लाभ नहीं मिल सकता क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट संख्या 14246 वर्ष 1984 दिनांक 30.03.2018 के आदेश द्वारा चार वेतन वृद्धि को रोकने के सजा आदेश को रद्द कर दिया। उन्होंने आगे जोर देकर कहा कि अन्यथा भी, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 2019 की विशेष अपील संख्या 117 (सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और 2 अन्य बनाम रमेश चंद्र पांडे और 3 अन्य) को 13.02.2019 के आदेश द्वारा अनुमति देकर और विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द करने के अलावा 30.03.2018 के एकल न्यायाधीश के फैसले को रद्द कर दिया गया था और रिट याचिका भी खारिज कर दी गई। यह भी तर्क दिया गया है कि विशेष अपीलीय न्यायालय के 13.02.2019 के आदेश के विरुद्ध, हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा एक विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 22415/2019 (रमेश चंद्र पांडे बनाम भारतीय स्टेट बैंक और अन्य) दायर की गई थी, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है और इसलिए, जहां तक चार वेतनवृद्धि रोकने का संबंध है, उक्त दंड भी अंतिम हो गया है और केवल सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका की लंबित होने से याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता।

21. विवाद के निपटारे से जुड़े अंतिमता के सिद्धांत के संबंध में, बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक टंडन ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***एस. रामचंद्र राव बनाम एस. नागभूषण राव और अन्य***, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1460 में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें प्राङ न्याय के सिद्धांत पर विचार किया गया है। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय, ***तपन***

कुमार मंडल बनाम श्रीमती सुप्रभा मंडल और अन्य, 2018 एससीसी ऑनलाइन कल 2312 में दिए गए निर्णय का भी हवाला इस बात पर जोर देने के लिए कि इस न्यायालय द्वारा पारित वापसी का आदेश याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने तक सीमित था और इसलिए, याचिकाकर्ता इस न्यायालय द्वारा विभिन्न रिट याचिकाओं को अनुमति देते समय पारित किसी भी आदेश से कोई लाभ नहीं उठा सकता, विशेष रूप से जब अनुशासनात्मक प्राधिकरण के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकरण के लिए यह खुला छोड़ दिया गया था कि वे रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश में दर्ज की गई टिप्पणियों से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र निर्णय लें।

22. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, मैं पाता हूं कि हालांकि जांच अधिकारी ने अपनी 31.03.1993 की रिपोर्ट में दर्ज किया था कि आरोप संख्या 1 सिद्ध नहीं हुआ है; आरोप संख्या 2 इस हद तक सिद्ध हुआ है कि सीएसओ ने बिना सत्यापन आदि के रुपये 800/- की प्रविष्टि में परिवर्तन किया था, लेकिन उन्हें धोखाधड़ी के तरीके से रुपये 800/- निकालने का दोषी नहीं पाया गया था, इस प्रकार, आरोप का यह भाग सिद्ध नहीं हुआ है; आरोप इस हद तक सिद्ध हुआ है कि सीएसओ ने वाउचर/चेक गलत खाते में पोस्ट किया था, लेकिन दुर्भावनापूर्ण इरादा साबित नहीं हुआ; यह तथ्य है कि सीएसओ के पास अपना परिवहन बिल पास करने का अधिकार नहीं था, इस प्रकार उन्हें बिना किसी अधिकार के अपना परिवहन बिल पास करने का दोषी पाया जाता है, लेकिन आरोप का दूसरा भाग कि उन्होंने अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त किया, साबित नहीं किया जा सका; सीएसओ को अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग करने के लिए दोषी नहीं पाए जाने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने पूरे रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का विश्लेषण करने के बाद एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए ठोस तर्क दर्ज किया था, जो जांच कार्यवाही के रिकॉर्ड का हिस्सा था। यद्यपि उक्त आदेश इस न्यायालय द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 46839 वर्ष 2002 में रद्द कर दिया गया था, लेकिन जब मामले को 21.08.2006 के आदेश में दर्ज टिप्पणियों से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र निर्णय लेने के उद्देश्य से वापस भेजा गया, तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए पांच आरोपों का फिर से विश्लेषण किया और पाया कि वह राधा कृष्ण और अन्य के नाम पर टीएल खाते की 800/- रुपये की क्रेडिट प्रविष्टि के दुरुपयोग का दोषी था और उसने इसे धोखाधड़ी से निकाला था। अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने यह भी दर्ज किया कि याचिकाकर्ता ने 13.11.1990 को 11000/- रुपये जमा किए थे, जो मेसर्स पटना फार्मेसी द्वारा उनके ओवरड्राफ्ट चेक खाते के क्रेडिट के लिए जमा किए गए थे और इसे कवर करने के लिए, उन्होंने 13.11.1990 को अपने व्यक्तिगत ओवरड्राफ्ट खाते में डिमांड ड्राफ्ट जारी करने के लिए मेसर्स पटना फार्मेसी द्वारा जारी 6831/- रुपये के चेक को पोस्ट किया। यह भी दर्ज किया गया कि याचिकाकर्ता ने सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी के बिना 1991 के लिए चिकित्सा सहायता का भुगतान ले कर अपनी

आधिकारिक स्थिति का दुरुपयोग किया। यह आगे दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता ने स्वयं किसी न किसी तरह से बैंक के धन का अपने लाभ के लिए उपयोग किया है, उसने नियमों और विनियमों के साथ-साथ बैंक की सेवा शर्तों को अनदेखा करके स्वयं को लाभान्वित करने के तरीके से कार्य किया है और यह कि जांच अधिकारी ने रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय याचिकाकर्ता के आचरण के व्योरे में नहीं गया था, जो रिकॉर्ड पर स्पष्ट था।

23. मैंने यह भी पाया है कि जहां तक चार वेतन वृद्धि रोकने की सजा और उसके प्रभाव की प्रकृति का संबंध है, वह केवल अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा 20.12.2006 के आदेश में की गई एक व्यापक टिप्पणी थी और सजा का आदेश संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद पारित किया गया था, न कि केवल इसलिए कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण की राय में, याचिकाकर्ता पिछली सजा के मद्देनजर अपने निजी लाभ के लिए बैंक के साथ धोखाधड़ी करने का आदी था। इसके अलावा, जैसा कि पहले ही चर्चा की गई है, हालांकि इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा चार वेतन वृद्धि रोकने के आदेश को रद्द कर दिया गया था, लेकिन खंडपीठ ने उस निर्णय को उलट दिया और बैंक द्वारा दायर विशेष अपील को स्वीकार करते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया था और उक्त आदेश पर न तो कोई रोक लगाई गई है और न ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे रद्द किया गया है, हालांकि उसी के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका लंबित हो सकती है।

24. सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार बैंक सेवाओं में वित्तीय ईमानदारी के महत्व पर जोर दिया है। यह बैंकिंग प्रणाली के कामकाज के लिए एक अंतर्निहित आवश्यकता है। बैंक के अधिकारी और कर्मचारी बैंकिंग प्रणाली में लोगों के विश्वास और आत्मविश्वास के ट्रस्टी के रूप में कार्य करते हैं और यदि अधिकारी/कर्मचारी कदाचार करता है और यदि यह पाया जाता है कि उसने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए जमाकर्ता के हित के विरुद्ध कार्य किया है, तो उसके साथ सख्ती से निपटा जाना चाहिए और किसी भी तरह की सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए।

25. ***स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम रमेश दिनकर पुंडे,*** (2006) 7 एससीसी 212 मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए समान दृष्टिकोण अपनाया है कि एक बैंक अधिकारी से उच्च स्तर की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा की अपेक्षा की जाती है।वह जमाकर्ताओं और ग्राहकों के पैसे का लेन-देन करता है। बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी को बैंक के हितों की रक्षा के लिए सभी संभव कदम उठाने और अपने कर्तव्यों का निर्वहन अत्यंत निष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और लगन के साथ करने और जो एक बैंक अधिकारी के लिए अनुचित हो नहीं करने की आवश्यकता है । अच्छा आचरण और अनुशासन बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी के कामकाज का अविभाज्य अंग हैं। किसी संगठन का अनुशासन, विशेष रूप से बैंक का अनुशासन, उसके प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी के अपने निर्धारित क्षेत्र में कार्य करने और संचालन करने पर निर्भर करता है। अपने अधिकार से

परे कार्य करना अपने आप में अनुशासन का उल्लंघन है और कदाचार है। यह इसी कारण से है कि जब कोई बैंक अधिकारी कदाचार करता है, जैसा कि इस मामले में, अपने निजी स्वार्थों के लिए और बैंक और जमाकर्ताओं के हित के विरुद्ध करता है, तो उसके साथ सख्ती से निपटा जाना चाहिए और उसमें उदारतापूर्ण तरीके से नहीं निपटाया जाना चाहिए।

26. ***यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर बनाम पी.सी. कक्कड़*** मामले में, (2003) 4 एससीसी 364 में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक प्रस्तुतिकरण किया गया था कि कर्मचारी के कदाचार के कारण बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त प्रस्तुतिकरण को खारिज कर दिया और यह माना कि आचरण और अनुशासन बैंक कर्मचारी के कामकाज से अविभाज्य हैं।

27. इस संबंध में इसी प्रकार के मामलो का सन्दर्भ लिया जा सकता है जैसे कि इस न्यायालय के ***त्रिभुवन नाथ मिश्रा बनाम इलाहाबाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड की प्रबंध समिति और अन्य,*** 2007 (3) एडीजे 220 में रिपोर्ट किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय ***कैलाश नाथ गुप्ता बनाम जांच अधिकारी, आर.के. (राय), इलाहाबाद बैंक और अन्य मामले में, जे.टी. 2003 (3) एस.सी. 322 में रिपोर्ट किया गया है और राम प्रसाद गुप्ता बनाम इलाहाबाद बैंक और अन्य*** मामले में, 2004 (1) ए.डब्ल्यू.सी. 697 में रिपोर्ट किया गया है।

28. इस न्यायालय के समक्ष रखे गए रिकॉर्ड पर संपूर्ण सामग्री का अवलोकन करते हुए, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं और साथ ही व्यक्तिगत रूप से याचिकाकर्ता को सुनने के बाद और उपर्युक्त कानून की जांच करने के बाद, मैंने यह पाया है कि याचिकाकर्ता को दिया गया दंड न्यायपूर्ण और उचित था और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

29. रिट याचिका विफल होती है और तदनुसार **खारिज की जाती है।**

(2023) 8 ILRA 983

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्ताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट-ए संख्या 19467 वर्ष 2021

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

कृष्ण गोपाल एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शिखर आनंद, करुणानिधि यादव, राज बहादुर सिंह यादव

ए. सेवा विधि - यूपी पुलिस अधीनस्थ रैंक के अधिकारी (दंड और अपील) नियम, 1991 - नियम 14 (1) - अनुशासनात्मक कार्यवाही - सेवा से बर्खास्तगी - बिना अनुमति के ड्यूटी से अनुपस्थित रहने का आरोप - चिकित्सा उपचार का बचाव किया गया - न्यायाधिकरण ने बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन था; प्रारंभिक जांच के दौरान कोई व्यक्तिगत सुनवाई नहीं की गई; कोई आरोप पत्र ठीक से नहीं दिया गया; आदि आदि। - एस.टी. द्वारा वैधता को चुनौती दी गई। - निर्णय दिया गया, न्यायाधिकरण को संबंधित मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच करने के लिए भेज देना चाहिए था, जहां से यह दूषित हो गया था और दोषी कर्मचारी को आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद इसे समाप्त करना चाहिए था और दोषी को आरोप पत्र पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था। (पैरा 22 और 25)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. राज कुमार मेहरोत्रा बनाम बिहार सरकार एवं अन्य; 2006 एससीसी (एल एंड एस) 679

2. भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर; (1973) 2 एससीसी 836

3. क्रांति एसोसिएशन (पी) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य; (2010) 9 एससीसी 510

4. जी. वल्ली कुमार बनाम आंध्र एजुकेशन सोसाइटी; 2010 (2) एससीसी 947

5. राम चंद्र बनाम भारत संघ एवं अन्य; 1986 (53) एफएलआर 1991 (एससी)

6. कृष्ण कांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य; (2012) 3 एससीसी 178

7. डीके यादव बनाम जेएमए इंडस्ट्रीज लिमिटेड; 1993 (3) एससीसी 259

8. डिपो मैनेजर, एपीएसआरटीसी एवं अन्य बनाम सुरेंद्र; 2008 एयर एससीडब्ल्यू 5446

9. प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी करुणाकरण; 1994 एससीसी सप्ल (2) 391

10. यूपी राज्य एवं अन्य बनाम मनमोहन नाथ सिन्हा एवं अन्य; (2010) 8 एससीसी 310

11. करूण्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ एवं अन्य ; (2012) 3 एससीसी 178

12. उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह; (2008) 8 एससीसी 236

13. अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी एवं अन्य; (2009) 15 एससीसी 620

14. निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य; (2013) 4 एससीसी 301

15. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राजित सिंह; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 341

16. अध्यक्ष, भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य बनाम ए. मसीलामणि; (2013) 6 एससीसी 530

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा पारित)

ए. <u>परिचय</u>

(1) यह रिट याचिका राज्य प्राधिकारियों द्वारा दायर की गई है, जिसमें राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ (जिसे आगे "**अधिकरण**" कहा जाएगा) द्वारा पारित दिनांक 09.03.2021 के निर्णय और आदेश पर सवाल उठाया गया है, जिसके तहत दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका संख्या 701/2018 को दिनांक 21.09.2001 के बर्खास्तगी आदेश के साथ-साथ दिनांक 21.03.2018 के अपीलीय आदेश को रद्द करते हुए अनुमति दी गई थी और आगे विद्वान अधिकरण ने याचिकाकर्तागण/राज्य प्राधिकारियों को प्रत्यर्थी संख्या 1 को निम्नलिखित राहत प्रदान करने का निर्देश दिया था:-

I. दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को तत्काल प्रभाव से सेवा में बहाल किया जाएगा;

II. चूंकि दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपने स्पष्टीकरण के पैरा-6 में उल्लेख किया था कि उसने दिनांक 12.09.2000 से 19.09.2000 तक सरकारी अस्पताल से चिकित्सा उपचार प्राप्त किया था, इसलिए दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा दस्तावेजों के आधार पर सक्षम प्राधिकारी दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 को पूर्वोक्त अवधि के लिए चिकित्सा अवकाश प्रदान किए जाने के प्रकरण में तर्कपूर्ण और तर्कसंगत आदेश पारित करेगा;

III. दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 ने 22.11.2000 से 20.09.2001 तक तथा 21.09.2001 से 09.03.2021 (वह तारीख जब न्यायाधिकरण ने आदेश पारित किया) तक काम नहीं किया है, इसलिए दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांत पर उक्त अवधि के लिए वेतन और भत्ते पाने का हकदार नहीं होगा, तथापि उक्त अवधि को केवल पेंशन के प्रयोजनों के लिए दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 की नियमित सेवाओं के रूप में गिना जाएगा; तथा

IV. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने के भीतर पूरे निर्देश का अनुपालन किया जाएगा।

बी. <u>तथ्यात्मक मैट्रिक्स</u>

(2) वर्तमान रिट के अभिलेखों से पता चलता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1-कृष्ण गोपाल, 'बी' कंपनी, 45वीं बटालियन, पीएसी,

अलीगढ़ में लांस नायक (कांस्टेबल संख्या 53557) के पद पर तैनात रहते हुए, 12.09.2000 को 20 बजे से 19.09.2000 को 11:30 बजे तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहे। वह बिना अनुमति के 7 दिन 11 घंटे और 30 मिनट तक ड्यूटी से अनुपस्थित रहे। इसके अलावा 19.11.2000 को उन्हें दो दिन की छुट्टी दी गई थी, हालांकि, दो दिन की छुट्टी समाप्त होने के बाद भी, वह ड्यूटी पर वापस नहीं आए। इस प्रकार, उसके खिलाफ एक प्रारंभिक जांच शुरू की गई, जिसमें सहायक कमांडेंट-II, 45वीं बटालियन पीएसी, अलीगढ़ ने प्रारंभिक जांच करने के बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ उत्तर प्रदेश पुलिस अधिकारी अधीनस्थ रैंक (दंड और अपील) नियम, 1991 (जिसे आगे **'नियम, 1991'** कहा जाता है) के नियम 14 (1) के तहत नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की सिफारिश की, दिनांक 01.04.2001 की रिपोर्ट के अनुसार। इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ अंतिम अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और उप कमांडेंट, 45वीं बटालियन, पीएसी, अलीगढ़ को प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ प्रकरण में अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का कार्य सौंपा गया।

(3) परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांक 05.07.2001 को आरोप-पत्र जारी किया गया, जिसमें (i) 12.09.2000 से 19.09.2000 तक और (ii) 22.11.2019 से आगे की अवधि के दौरान ड्यूटी से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के आरोप लगाए गए।

(4) याचिकाकर्तागण के अनुसार, जब विशेष दूत प्रत्यर्थी संख्या 1 को उक्त आरोप-पत्र देने गया, तो वह अपने घर में नहीं मिला और उसके पिता ने उसे लेने से इनकार कर दिया और इस तरह, 07.07.2001 को, दो गवाहों, अर्थात् शिव राम सिंह और कैलाश बाबू की उपस्थिति में, प्रत्यर्थी संख्या 1 के घर के बाहर उक्त आरोप-पत्र चिपकाया गया। इसके बाद, 05.07.2001 की उक्त आरोप-पत्र भी 10.07.2001 को पंजीकृत डाक के माध्यम से भेजा गया था, लेकिन तब भी, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने न तो जांच अधिकारी को रिपोर्ट की थी और न ही 05.07.2001 की आरोप-पत्र पर अपना कोई जवाब प्रस्तुत किया था। इस पृष्ठभूमि में, जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ एकपक्षीय कार्यवाही की थी। इसके बाद, जांच अधिकारी ने उचित प्रक्रिया अपनाने के बाद जांच की और 18.08.2001 को अपनी रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रस्तुत की, जिसमें सिफारिश की गई कि (i) प्रत्यर्थी संख्या 1 को 12.09.2000 से 19.09.2000 तक और 22.11.2000 से आगे तक 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांत पर अनधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के लिए वेतन का भुगतान नहीं किया जाएगा; और (ii) प्रत्यर्थी संख्या 1 को सेवा से बर्खास्त किया जाएगा।

(5) अनुशासनिक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट दिनांक 18.08.2001 प्राप्त होने पर प्रत्यर्थी संख्या 1 को जांच रिपोर्ट की प्रति संलग्न करते हुए दिनांक 24.08.2001 को कारण बताओ नोटिस जारी किया। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कथित तौर पर इस बार आगे आकर दिनांक

24.08.2001 को कारण बताओ नोटिस पर दिनांक 31.08.2001 को अपना जवाब दिया, जिसमें कहा गया कि वह 12.09.2000 से 19.09.2000 तक सरकारी अस्पताल, इटावा में चिकित्सा उपचार के तहत था और इस संबंध में चिकित्सा प्रमाण पत्र कारण बताओ नोटिस के जवाब के साथ संलग्न किया गया था; और 22.11.2000 से आगे की अवधि के लिए, वह पुलिस विनियमन के अनुच्छेद 496/497 के संरक्षण के तहत, ग्राम और पोस्ट करीं, पीएस चौबिया , जिला इटावा में स्थित ज़मानतगीर , अर्थात् श्री परशुराम ओझा और श्री रमाशंकर यादव के निवास में रह रहा था।

(6) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया और प्रत्यर्थी को दोषी करार दिया तथा दिनांक 21.09.2001 के आदेश के तहत बर्खास्तगी की सजा सुनाई, जिसके खिलाफ प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपील दायर की, जिसे हालांकि दिनांक 23.05.2002 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उसकी अपील समय-सीमा के कारण वर्जित थी। इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 1 ने पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे भी दिनांक 17.10.2002 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया।

(7) दिनांक 21.09.2001 के उक्त खारिज आदेश, दिनांक 23.05.2002 के अपील आदेश और दिनांक 17.10.2002 के पुनरीक्षण आदेश से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 793/2015 प्रस्तुत की। विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 24.11.2017 के आदेश के तहत दावा याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया; दिनांक 23.05.2002 के अपील आदेश और दिनांक 17.10.2002 के पुनरीक्षण आदेश को रद्द कर दिया; और आगे अपीलीय प्राधिकारी को आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने के भीतर एक तर्कपूर्ण और तर्कपूर्ण आदेश द्वारा अपील पर गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया और इस प्रकार लिए गए निर्णय को प्रत्यर्थी संख्या 1 को तुरंत सूचित किया जाना चाहिए।

(8) उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 24.11.2017 के अनुपालन में अपीलीय प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 की अपील पर नए सिरे से विचार किया तथा दिनांक 21.03.2018 के आदेश द्वारा उसे खारिज कर दिया, जो प्रत्यर्थी संख्या 1 को 27.03.2018 को तामील किया गया।

(9) दिनांक 21.03.2018 के अपीलीय आदेश से असंतुष्ट होकर प्रत्यर्थी क्रमांक 1 ने न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 701/2018 पेश की। विद्वान न्यायाधिकरण ने प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और **राज कुमार मेहरोत्रा बनाम बिहार सरकार और अन्य:** 2006 एससीसी (एल एंड एस) 679, **भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर**: (1973) 2 एससीसी 836, **क्रांति एसोसिएशन (पी) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान और अन्य**: (2010) 9 एससीसी 510, **जी. वल्ली कुमार बनाम आंध्र एजुकेशन सोसाइटी**: 2010 (2) एससीसी 947, **राम चंद्र**

बनाम भारत संघ और अन्य: 1986 (53) एफएलआर 1991 (एससी), **कृष्ण कांत बी परमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य**: (2012) 3 एससीसी 178, **डी.के. यादव बनाम जेएमए इंडस्ट्रीज लिमिटेड**: 1993 (3) एससीसी 259, **डिपो मैनेजर, एपीएसआरटीसी और अन्य बनाम सुरेंद्र**: 2008 एआईआर एससीडब्ल्यू 5446, ने दावा याचिका को स्वीकार किया; 21.09.2001 के बर्खास्तगी आदेश और 21.03.2018 के अपीलीय आदेश को रद्द कर दिया; और न्यायाधिकरण द्वारा पैराग्राफ-1 में बताए गए निर्देशों की एक श्रृंखला भी जारी की गई। यह 09.03.2021 का यह आदेश है, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

सी. <u>प्रस्तुतियाँ</u>

(10) याचिकाकर्ता/राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1/दावेदार की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री करुणानिधि यादव को सुना गया।

(11) विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 09.03.2021 के आक्षेपित निर्णय/आदेश पर आपत्ति जताते हुए, याचिकाकर्तागण/राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने विवादित आदेश पारित करते समय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की है कि दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को जांच कार्यवाही में सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और जांच अधिकारी ने एकपक्षीय रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। एल.डी. स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने स्वयं 25.07.2001 को पत्र/नोटिस पर पावती देने से इनकार कर दिया था और इस तरह उसके स्थायी आवास के सामने के दरवाजे पर उसे चिपकाकर आरोप-पत्र विधिवत रूप से दिया गया था। उनके अनुसार, दो गवाहों की मौजूदगी में विशेष संदेशवाहक के माध्यम से अभियोगी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के स्थायी निवास के मुख्य द्वार पर आरोप-पत्र चिपकाकर तामील किए जाने के बावजूद, उन्होंने न तो जानबूझकर जांच कार्यवाही में भाग लिया और न ही वे अपने कर्तव्यों पर उपस्थित हुए और न ही अधिकारियों को अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के पीछे का कारण बताया। उन्होंने कहा कि चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने जानबूझकर अपने कर्तव्यों से खुद को अनुपस्थित रखा और उन्होंने जांच में भाग नहीं लिया, इसलिए कोई अन्य विकल्प न होने के कारण, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कानून के अनुसार 21.09.2001 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया है और बर्खास्तगी के आदेश में कोई कमी या अवैधता नहीं है।

(12) याचिकाकर्तागण का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे कहा है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 के कारण बताओ नोटिस के जवाब के पैरा 6 और 7 में दिए गए बयान को समझने में गलती की है कि वह 13.09.2000 से 17.09.2000 की अवधि के दौरान यानी पांच दिनों के लिए जिला अस्पताल, इटावा में डॉ. एम. सिंघल के उपचार में था । उनके अनुसार, चिकित्सा उपचार की कहानी एक बाद की सोच है और विद्वान न्यायाधिकरण इस तथ्य को समझने में विफल

रहा है कि दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 के उक्त दावे को प्रमाणित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। एल.डी. स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, उनके तर्क को इस तथ्य से और बल मिलता है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 खुद 22.11.2000 से 21.09.2001 को बर्खास्तगी के आदेश पारित होने तक अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति को उचित ठहराने में सक्षम नहीं है।

(13) अपने प्रस्तुतीकरण को और विस्तृत करते हुए, याचिकाकर्तागण का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पहले दायर दावा याचिका संख्या 793/2015 में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 24.11.2017 के निर्णय और आदेश की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है और प्रस्तुत किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 24.11.2017 को आदेश पारित करते समय दिनांक 21.09.2021 के दंड/बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया और न ही उसे रद्द किया और केवल याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका को अपीलीय आदेश को रद्द करते हुए आंशिक रूप से अनुमति दी गई क्योंकि यह केवल सीमा के आधार पर पारित किया गया था न कि योग्यता के आधार पर और इस तरह, विद्वान न्यायाधिकरण ने अपीलीय प्राधिकारी को योग्यता के आधार पर आदेश पारित करने का निर्देश दिया। इसलिए, विद्वान न्यायाधिकरण के लिए यह उचित नहीं था कि वह दिनांक 09.03.2021 को आरोपित निर्णय और आदेश पारित करते समय दिनांक 21.09.2021 के बर्खास्तगी आदेश को रद्द करके अपने पहले के निर्णय और आदेश दिनांक 24.11.2017 पर फिर से विचार करे।

(14) विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के आचरण की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है तथा प्रस्तुत किया है कि इससे पूर्व प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पोस्ट अतरौली , जिला अलीगढ़ में एक कांस्टेबल चालक के साथ की गई मारपीट के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 1 को निलंबित किया गया था तथा उसके विरुद्ध जांच प्रारंभ की गई थी तथा उचित जांच के पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध दिनांक 29.08.2000 को दंड आदेश भी पारित किया गया था, जिसमें 01.07.2000 से 09.07.2000 की अवधि के दौरान अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के कारण 9 दिनों के लिए अवैतनिक अवकाश सहित 30 दिनों के वेतन के समतुल्य दंड लगाया गया था। दिनांक 14.07.2000 को, दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को पुलिस स्टेशन टप्पल , जिला अलीगढ़ में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 6224420000216, धारा 6 (खा) पीएसी अधिनियम के संबंध में कमांडेंट, 45वीं बटालियन, पीएसी, अलीगढ़ द्वारा पुनः निलंबित कर दिया गया, जो अभी भी अपर जिला न्यायाधीश, कक्ष संख्या 19, जिला अलीगढ़ के न्यायालय में लंबित है। एल.डी. स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1 एक आदतन अनुपस्थित व्यक्ति है और उसने वर्दीधारी व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त गतिविधियों में खुद को शामिल किया है और इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 का आचरण प्रांतीय सशस्त्र कांस्टेबुलरी (पीएसी) जैसे अनुशासित बल में रहने के लिए उपयुक्त नहीं है।

(15) प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी करुणाकरण: 1994 एससीसी सप्लिमेंट (2) 391 और **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम मनमोहन नाथ सिन्हा और अन्य**: (2010) 8 एससीसी 310 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सजा आदेश विस्तृत, तर्कसंगत और विशिष्ट है और इस तरह, इसमें कोई कमी नहीं है और भले ही विद्वान न्यायाधिकरण ने जांच रिपोर्ट में कुछ तकनीकी खामियां देखी हों, वह इस प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उस चरण से आगे बढ़ने की स्वतंत्रता के साथ वापस भेज सकता था, जब उसने खामियां देखी थीं। हालांकि, उनके अनुसार, विद्वान न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को अनुमति देते हुए, प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उस चरण से वापस नहीं भेजने में गलती की है, जब उसने खामियां देखी थीं।

(16) इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 1 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान राज्य अधिवक्ता की उपरोक्त दलीलों का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि आरोप पत्र दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 को व्यक्तिगत रूप से नहीं दिया गया था, इसलिए, विद्वान न्यायाधिकरण ने सही रूप से यह निष्कर्ष दिया था कि सजा का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के पूर्ण उल्लंघन में पारित किया गया है।

(17) प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 12.09.2000 से 19.09.2000 तक तथा फिर 21.11.2000 से अनुपस्थित रहने का आरोप जानबूझकर नहीं था , बल्कि सद्भावनापूर्ण था, इसलिए इसे कदाचार नहीं कहा जा सकता। इस दलील को पुष्ट करने के लिए विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि 12.09.2000 से 19.09.2000 की अवधि के लिए सरकारी अस्पताल इटावा का एक चिकित्सा प्रमाण पत्र कमांडेंट, 45वीं बटालियन, पीएसी, इटावा को प्रस्तुत किया गया था, जहां वे तैनात थे तथा यह उनके आधिकारिक रिकॉर्ड में भी था। जहां तक 22.11.2000 के बाद की अवधि के लिए अनुपस्थिति का सवाल है, प्रत्यर्थी संख्या 1 पुलिस विनियमन के पैरा 496 और 497 के अंतर्गत ज़मानतगीर परशुराम ओझा और रमाशंकर यादव, ग्राम और पोस्ट करीं, पुलिस स्टेशन चौबिया , जिला इटावा के आवास में रह रहा था, जो कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पत्र दिनांक 26.11.2000, कमांडेंट, 45 वीं बटालियन, पीएसी, इटावा के पत्र दिनांक 20.12.2000, ज़मानतगीर के पत्र दिनांक 10.01.2001 और कमांडेंट के पत्र दिनांक 20.06.2001 के अनुसार दावा याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 से 14 में क्रमशः शामिल है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि, चूंकि विभागीय जांच करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी उपरोक्त तथ्यों की जांच करने में विफल रहा है, भले ही प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा कारण बताओ नोटिस के अपने उत्तर के पैरा 6-7 में उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख किया गया है, इसलिए पूरी अनुशासनात्मक कार्यवाही दोषपूर्ण थी। इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह साबित करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 की अनुपस्थिति जानबूझकर है, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 1 की उक्त अवधि के लिए अनुपस्थिति

को कदाचार नहीं कहा जा सकता है। इस दलील के समर्थन में, उन्होंने करुणाकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और अन्य: (2012) 3 एससीसी 178 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

(18) प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि जांच अधिकारी ने अपनी दिनांक 18.08.2001 की एकपक्षीय रिपोर्ट में प्रत्यर्थी संख्या 1 को सेवा से बर्खास्त करने तथा 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांत पर ड्यूटी से अनुपस्थित रहने की अवधि का वेतन रोकने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सिफारिश की है। विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान **उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह**: (2008) 8 एससीसी 236में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की ओर आकर्षित किया है और तर्क दिया है कि जांच अधिकारी किसी विशेष दंड को लागू करने की सिफारिश नहीं कर सकता क्योंकि उचित दंड लगाना दंड/अनुशासनात्मक प्राधिकारी का काम है और जांच अधिकारी की सजा देने में कोई भूमिका नहीं है क्योंकि वह केवल एक सिफारिश करने वाला प्राधिकारी है। इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित दंड की सिफारिश ही कानून के विपरीत है। विद्वान न्यायाधिकरण ने रिकॉर्ड को देखने के बाद सही ढंग से देखा है कि जांच अधिकारी की सिफारिश के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांक 21.09.2001 का दंड आदेश पारित किया गया था और दिनांक 2109.2021 का दंड आदेश पारित करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपना दिमाग नहीं लगाया था।

(19) प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 को 21.09.2001 के दंड आदेश के तहत सेवा से केवल इसलिए बर्खास्त कर दिया गया था क्योंकि वह 12.09.2001 से 19.09.2001 तक यानि 7 दिन 11 घंटे और 30 मिनट तथा 22.11.2000 से ड्यूटी से अनुपस्थित था और जांच अधिकारी की सिफारिश पर भरोसा किया था। इस प्रकार, उक्त अवधि के लिए 21.09.2001 को बर्खास्तगी की सजा बहुत अधिक है और इसे प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ लगाए गए आरोपों के अनुपात में नहीं कहा जा सकता है। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने **चेयरमैन-कम-मैनेजिंग डायरेक्टर, कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी और अन्य** : (2009) 15 एससीसी 620 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

(20) **निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य**: (2013) 4 एससीसी 301 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि **निर्मला जे. झाला (पूर्वोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि प्रारंभिक जांच में दर्ज साक्ष्य का उपयोग नियमित जांच में नहीं किया जा सकता क्योंकि अपराधी इससे संबद्ध नहीं है और प्रारंभिक जांच में पूछताछ किए गए व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है, इसलिए, ऐसे साक्ष्य का उपयोग करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। उन्होंने कहा कि वर्तमान प्रकरण में प्रारंभिक जांच अधिकारी और अंतिम जांच के गवाह संख्या 8 एक ही व्यक्ति हैं और

अंतिम जांच में गवाह संख्या 8/प्रारंभिक जांच अधिकारी से जिरह करने का अवसर प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रदान नहीं किया गया था, इसलिए जांच अधिकारी की रिपोर्ट में गवाह संख्या 8/प्रारंभिक जांच पर भरोसा करके प्रत्यर्थी संख्या 1 को दोषी पाया जाना, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

(21) इस प्रकार, प्रत्यर्थी संख्या 1 का यह तर्क है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका को उचित रूप से स्वीकार किया है।

डी. <u>विश्लेषण और निष्कर्ष</u>

(22) पक्षों द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए और इस रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड का अध्ययन करते हुए, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दंड/बर्खास्तगी के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रारंभिक जांच के दौरान व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था; प्रत्यर्थी संख्या 1 को आरोप पत्र ठीक से नहीं दिया गया था; जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट एकपक्षीय रूप से प्रस्तुत की थी ; जांच अधिकारी ने केवल प्रारंभिक जांच अधिकारी की सिफारिश पर भरोसा करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी; प्रारंभिक जांच अधिकारी को अंतिम जांच में गवाह बनाया गया था; जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय नियम, 1991 के परिशिष्ट-1 के अनुसार अलग से अपनी सिफारिश नहीं की थी; अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने केवल जांच अधिकारी की सिफारिश पर भरोसा करते हुए दंड का आदेश पारित किया था और प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा कारण बताओ नोटिस पर दिए गए उत्तर पर विचार नहीं किया था।

(23) यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यर्थी संख्या 1/अपराधी को ड्यूटी से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के आरोप के संबंध में विभागीय जांच का सामना करना पड़ रहा था। इसलिए, विद्वान न्यायाधिकरण को इस प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेज देना चाहिए था ताकि वह इस बिंदु से जांच कर सके कि यह दोषपूर्ण था।

(24) सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राजित सिंह :** 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 341 के प्रकरण में, **अध्यक्ष, भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य बनाम ए मसीलामणि,** (2013) 6 एससीसी 530 के प्रकरण में अपने पहले के फैसले पर विचार करते हुए, पैराग्राफ-15 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है : -

> "15. न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश से यह प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण ने यह भी देखा कि जांच कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध थी क्योंकि आरोप पत्र में उल्लिखित दस्तावेज दोषी अधिकारी को बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं कराए गए थे। कानून के

स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, ऐसे प्रकरण में जहां यह पाया जाता है कि जांच ठीक से नहीं की गई है और/या यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है, उस स्थिति में, न्यायालय कर्मचारी को बहाल नहीं कर सकता है और प्रकरण को जांच अधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के चरण से जांच के साथ आगे बढ़ने के लिए वापस भेजा जाना चाहिए और आरोप पत्र में उल्लिखित आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत करने के बाद जांच को आगे बढ़ाया जाना चाहिए, जिनके बारे में आरोप है कि उन्हें तत्काल प्रकरण में दोषी अधिकारी को नहीं दिया गया था। चेयरमैन, भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम ए. मसिलामणि, (2013) 6 एससीसी 530 के प्रकरण में, जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं की ओर से भी प्रस्तुत किया गया था, पैराग्राफ 16 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है :–

> "16. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि एक बार न्यायालय द्वारा सज़ा के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया जाता है कि जाँच ठीक से नहीं की गई थी, तो न्यायालय कर्मचारी को बहाल नहीं कर सकता। उसे संबंधित प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप देना चाहिए ताकि वह जाँच को उस बिंदु से संचालित कर सके जहाँ से यह दोषपूर्ण था, और उसी निष्कर्ष पर पहुँचे। (देखें ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर [(1993) 4 एससीसी 727], हिरन मयी भट्टाचार्य बनाम एसएम स्कूल फॉर गर्ल्स [(2002) 10 एससीसी 293], उ0प्र0 स्टेट स्पेज . कंपनी लिमिटेड बनाम आर.एस. पाण्डेय [(2005) 8 एससीसी 264] और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम वाई.एस. साधु [(2008) 12 एससीसी 30])।"

(प्रभाव वर्द्धित)

डी. <u>निष्कर्ष</u>

(25) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून को प्रकरण के तथ्यों पर लागू करते हुए, हमारा दृढ़ मत है कि चूंकि बर्खास्तगी का आदेश न्यायाधिकरण द्वारा इस आधार पर रद्द कर दिया गया है कि यह जांच कार्यवाही में अन्य दोषों के अलावा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, न्यायाधिकरण को संबंधित प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को इस बिंदु से जांच करने के लिए भेजना चाहिए था कि यह दोषपूर्ण था और दोषी कर्मचारी को आरोप-पत्र देने के बाद इसे समाप्त करना चाहिए और दोषी को आरोप-पत्र पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था।

(26) उपरोक्त के मद्देनजर और ऊपर बताए गए कारणों से, वर्तमान रिट याचिका

आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 09.03.2021 के आक्षेपित निर्णय और आदेश, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 21.09.2001 के दंड आदेश और साथ ही दिनांक 21.03.2018 के अपीलीय आदेश को रद्द और अपास्त किया जाता है। हालांकि, चूंकि जांच दोषपूर्ण पाई गई है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करती पाई गई है, क्योंकि आरोप है कि जांच में अन्य दोषों के अलावा, प्रत्यर्थी संख्या 1/अपराधी कर्मचारी को आरोप-पत्र नहीं दिया गया और जांच अधिकारी द्वारा कर्मचारी को अपना बचाव करने का कोई अवसर नहीं दिया गया, इसलिए हम प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजते हैं ताकि वह दोषपूर्ण चरण से नए सिरे से जांच कर सके, यानी प्रत्यर्थी संख्या 1 को आरोप-पत्र दिया जाए और आरोप-पत्र में उल्लिखित सभी आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत करने और प्राकृतिक न्याय के उचित सिद्धांतों का पालन करने के बाद जांच को आगे बढ़ाया जाए। चूंकि, यह प्रकरण वर्ष 2000 से संबंधित है, इसलिए उपरोक्त अभ्यास शीघ्रता से, अधिमानतः आज से छह महीने की अवधि के भीतर पूरा किया जाना चाहिए।

(2023) 8 ILRA 991

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

रिट-ए संख्या 19678 वर्ष 2019

विवेक कुमार शर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

स्वयं

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री आशीष मिश्रा

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा (यूपीएचजेएस) परीक्षा, 2016 - चयन प्रक्रिया को चुनौती - साक्षात्कार प्रक्रिया में कथित अनियमितताएं - अंकों का मॉडरेशन - उम्मीदवारों की पात्रता - साक्षात्कार का स्थगन - यूपी उच्चतर न्यायिक सेवा नियमावली, 1975 का अनुपालन।

निर्णय : **साक्षात्कार प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं** : याचिकाकर्ताओं का अपर्याप्त साक्षात्कार अवधि (उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा नियमावली, 1975 के परिशिष्ट 'जी' के अंतर्गत निर्धारित 25-30 मिनट के बजाय 8-10 मिनट) का दावा खारिज कर दिया गया। न्यायालय ने माना कि समय सीमा निर्देशात्मक है, अनिवार्य नहीं, क्योंकि इसका पालन न करने पर कोई दंड निर्धारित नहीं है। विशेषज्ञ पैनल के रूप में साक्षात्कार बोर्ड को योग्यता, चरित्र, व्यक्तित्व और शारीरिक बनावट के आधार पर उम्मीदवारों की उपयुक्तता का आकलन करने का विवेकाधिकार है, और अवैज्ञानिक या अनुचित मूल्यांकन का कोई प्रमाण नहीं मिला। रिट खारिज।

<u>वाद विधि</u> :

1. संदीप गुप्ता बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय (रिट याचिका संख्या 594/2016, सर्वोच्च न्यायालय, 19.07.2018)

2. धीरज मोर बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय (2020 एससीसी ऑनलाइन एससीसी 213)

3. हिरेन्द्र कुमार बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय (2020) 17 एससीसी 401

4. सूरज बली सिंह बनाम रजिस्ट्रार जनरल, इलाहाबाद उच्च न्यायालय (रिट-ए संख्या 20708/2012, इलाहाबाद उच्च न्यायालय, 08.05.2017)

5. दलपत अबासाहेब सोलुंके बनाम डॉ. बीएस महाजन (1990) 1 एससीसी 305

6. अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य (1985) 4 एससीसी 417

7. सतपाल बनाम हरियाणा राज्य 1995 सप्प (1) एससीसी 206

8. सरदारा सिंह बनाम पंजाब राज्य (1991) 4 एससीसी 555

9. बिहार राज्य बनाम बिहार राज्य भूमि विकास बैंक समिति (2018) 9 एससीसी 472

10. टॉपलाइन शूज़ लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन बैंक (2002) 6 एससीसी 33

11. कैलाश बनाम नन्हकू (2005) 4 एससीसी 480

12. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हिली मल्टीपर्पस कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड (2015) 16 एससीसी 20

13. प्रणव वर्मा बनाम रजिस्ट्रार जनरल, पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय (रिट याचिका संख्या 565/2019, सर्वोच्च न्यायालय, 13.12.2019)

परिणाम : रिट याचिका खारिज। कोई वादव्यय नहीं।

(माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह एवं माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा पारित)

1. श्री विवेक कुमार शर्मा (याचिकाकर्ता नंबर 1) और श्री प्रवीण सिंह (याचिकाकर्ता नंबर 2) को व्यक्तिगत रूप से सुना; श्री आशीष मिश्रा, उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता और श्री अरिमर्दन सिंह राजपूत, राज्य के लिए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता को भी सुना।

2. यह याचिका उच्च न्यायालय को यह निर्देश देने के लिए दायर की गई है कि उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा 2016 की परीक्षा में साक्षात्कार आयोजित करने के लिए गठित दो बोर्डों द्वारा दिए गए औसत अंकों के आधार पर याचिकाकर्ताओं को दिए गए अंकों को मॉडरेट और संशोधित किया जाए। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं को अपर जिला न्यायाधीश के

पद पर नियुक्ति के लिए विचार करने का आदेश देने का भी अनुरोध किया गया है।

3. सबसे पहले, यह ध्यान दिया जा सकता है, याचिकाकर्तागण अभ्यासरत अधिवक्ता हैं। याचिकाकर्ताओं ने व्यक्तिगत रूप से रिट कार्यवाही को आगे बढ़ाने का फैसला किया है। अभी तक, उन्होंने कई याचिकाएँ दायर की हैं। इनमें से कई की पुनरावृत्ति हुई है और यहां प्रचलित प्रारूप के अनुसार नहीं हैं। इसलिए, सुनवाई की शुरुआत में ही, हमने (दोनों याचिकाकर्ताओं से) स्पष्टीकरण मांगा कि वे किन दस्तावेजों और हलफनामों पर भरोसा करना चाहते हैं। तब याचिकाकर्ताओं द्वारा कहा गया कि वे रिट याचिका को उसके साथ संलग्न दस्तावेजों और हलफनामे के साथ-साथ दिनांक 23 सितंबर 2020 को 253 पृष्ठों का प्रथम पूरक हलफनामा, दिनांक 4 दिसंबर 2021 को 26 पृष्ठों का द्वितीय पूरक हलफनामा और दिनांक 14 मार्च 2022 को 25 पृष्ठों का उत्तर हलफनामा के समर्थन में दबाएंगे। अन्य हलफनामों में से, उन्होंने विशेष रूप से कहा, ऐसे दस्तावेज गलती से दायर किए गए थे। उन पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

4. 10.05.2016 को, इलाहाबाद उच्च न्यायालय (जिसे इसके बाद उच्च न्यायालय के रूप में संदर्भित किया जाएगा) ने उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा 2016 परीक्षा के लिए कुल 72 रिक्त पदों को भरने हेतु विज्ञापन दिया। इन रिक्तियों में से 37 अनारक्षित श्रेणी के अंतर्गत थीं; 15 रिक्तियां अनुसूचित जाति वर्ग के लिए आरक्षित थीं; 19 रिक्तियां अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षित थीं और 1 रिक्ति अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित थी। स्वयं को अभ्यासरत अधिवक्ता होने का दावा करते हुए याचिकाकर्ताओं ने सीधी भर्ती के लिए आवेदन किया। प्रारंभिक परीक्षा में सफल होने के बाद, उन्होंने 11.11.2016 को लिखित परीक्षा दी। 24.3.2017 को घोषित परिणाम में उन्हें फिर से सफल घोषित किया गया। कुल मिलाकर, 61 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए आमंत्रित किया गया था, जो मूल रूप से 22.04.2017 और 23.04.2017 को आयोजित किया जाना था। हालांकि, साक्षात्कार को 29.04.2017 और 30.04.2017 के लिए पुनर्निर्धारित किया गया था। याचिकाकर्ताओं को बताया गया कारण चयन और नियुक्ति समिति (बाद में समिति के रूप में संदर्भित) के अध्यक्ष की अनुपलब्धता थी। दो दिनों में साक्षात्कार आयोजित करने के लिए दो बोर्ड गठित किए गए थे। याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि उन्होंने 29-30 अन्य लोगों के साथ बोर्ड 'ए' द्वारा साक्षात्कार दिया था, जबकि एक अन्य बोर्ड 'बी' भी गठित किया गया था। इसने शेष उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया। याचिकाकर्ताओं की मुख्य शिकायत यह है कि दोनों बोर्डों ने अंकों के निर्धारण में कोई समानता नहीं रखी, जैसे कि बोर्ड 'बी' के समक्ष उपस्थित होने वाले सभी उम्मीदवारों को 80 अंक दिए गए, जो साक्षात्कार परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए आवश्यक उत्तीर्ण अंक थे, जबकि जो उम्मीदवार बोर्ड 'ए' के समक्ष उपस्थित हुए थे उन्हें आम तौर पर 80 से कम अंक दिए गए थे। याचिकाकर्ताओं को बोर्ड 'ए' द्वारा 60 अंक प्रदान किए जाने की सीमा तक, वे उनको दिए गए अंकों के मॉडरेशन/स्केलिंग की प्रार्थना

करते हैं। याचिकाकर्ता आगे दुर्भावना का दावा करते हैं। उनका कहना है कि मूल रूप से 22.04.2017 और 23.04.2017 के लिए निर्धारित साक्षात्कार को जानबूझकर 14 अपात्र उम्मीदवारों को समायोजित करने के लिए स्थगित कर दिया गया था। उन चौदह उम्मीदवारों में से बारह न्यायिक अधिकारी थे जिन्होंने चयन के लिए आवेदन करने से पहले अधिवक्ता के रूप में सात साल का निरंतर अभ्यास पूरा नहीं किया था। शेष दो अधिवक्ता अधिक उम्र के थे। केवल 14 अपात्र उम्मीदवारों को अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए साक्षात्कार स्थगित कर दिया गया था। उनमें से, दो अधिवक्ताओं को अंततः सफल घोषित किया गया था। वे प्रतिवादी संख्या 4 और 5 हैं। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के निर्णय पर निर्भरता रखी गई है, **सूरज बली सिंह और अन्य बनाम रजिस्ट्रार जनरल उच्च न्यायालय इलाहाबाद (रिट - ए नंबर 20708/2012)** 08.05.2017 को निर्णीत किया गया। वहां, कट-ऑफ तिथि पर 45 वर्ष से अधिक होने के कारण याचिकाकर्ता (उस मामले में) के विरुद्ध फैसला सुनाया गया था, वह अपात्र थे।

5. दूसरा, यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1975 (इसके बाद 'नियम' के रूप में संदर्भित) के नियम 18 (1) के तहत, समिति को केवल ऐसे उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाना चाहिए था जो स्पष्ट रूप से अपने प्रपत्रों की जांच और लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार के लिए अर्हता प्राप्त कर सकते थे। प्रतिवादी नंबर 4 (संदीप गुप्ता) और प्रतिवादी नंबर 5 (प्रतिमा) को केवल लिखित परीक्षा में अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति दी गई थी। हालांकि, उनके परिणामों को माननीय उच्चतम न्यायालय के प्रतिवादी संख्या 4 यानी संदीप गुप्ता बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय महानिबंधक के माध्यम से [रिट याचिका (ओं) (सिविल) संख्या 594 वर्ष 2016 के मामले में पारित आदेश दिनांक 22.07.2016 और समान प्रभाव का एक अन्य आदेश जो प्रतिवादी संख्या 5 के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा 2016 की सेवा पीठ संख्या 13984 (प्रतिमा बनाम माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद, महानिबंधक के माध्यम से, और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 18.07.2016 के तहत सीलबंद कवर में बनाए रखा जाना आवश्यक था। चूंकि प्रतिवादी संख्या 4 या प्रतिवादी संख्या 5 को साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति देने के लिए उच्चतम न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा आगे कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए समिति ने नियमों के नियम 18 (1) के प्रावधानों के विपरीत, इन उम्मीदवारों को साक्षात्कार लेने और चुने जाने का अवसर देने में गलती की।

6. तीसरा, नियमों के परिशिष्ट 'जी' का उल्लेख करते हुए, यह पुरजोर आग्रह किया गया है कि नियमों में निहित शर्त अनिवार्य है। याचिकाकर्ताओं को कम से कम 25 मिनट के लिए साक्षात्कार दिया जाना था। उस प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। वास्तव में, इसका पालन करना असंभव था क्योंकि 61 उम्मीदवारों (सभी में) का साक्षात्कार दो दिनों में केवल दो बोर्डों ('ए' और 'बी') द्वारा निर्धारित किया गया था। साक्षात्कार के पहले दिन, दो अलग-अलग बोर्डों द्वारा 20

उम्मीदवारों में से प्रत्येक का साक्षात्कार लिया जाना था और दूसरे दिन, शेष उम्मीदवारों को समान रूप से उन दो बोर्डों के बीच समान रूप से वितरित किया गया था। यदि एक साक्षात्कार 25 मिनट की आवश्यक अवधि के लिए आयोजित किया गया था, तो प्रत्येक बोर्ड द्वारा 20 उम्मीदवारों के साक्षात्कार में दस घंटे से अधिक का समय लगेगा। चूंकि, साक्षात्कार लगभग 10:30 बजे शुरू हुआ और वह चाय और दोपहर के खाने के विश्राम के साथ के साथ शाम 5:30 बजे समाप्त हो गए, इसलिए उस अनिवार्य शर्त का उल्लंघन हुआ। उस संबंध में, इस बात पर जोर दिया गया है, याचिकाकर्ता नंबर 1 का साक्षात्कार 30.04.2017 को हुआ था, जबकि याचिकाकर्ता नंबर 2 का साक्षात्कार 29.4.2017 को बोर्ड 'ए' द्वारा किया गया था। याचिकाकर्ता इस बात से भी व्यथित हैं कि उनका साक्षात्कार उचित रूप से नहीं लिया गया और प्रत्येक को आठ-दस मिनट से अधिक समय तक साक्षात्कार लेने के बाद उन्हें वापस भेज दिया गया।

7. चौथा, यह प्रस्तुत किया गया है, साक्षात्कार के पूरा होने पर, परिणाम 18.08.2017 को घोषित किया गया था, जिसमें 43 उम्मीदवारों को सफल घोषित किया गया था। हालांकि उस परिणाम को एकतरफा बदल दिया गया था - दोनों रूप में यथा उम्मीदवारों को सफल घोषित किए गए उम्मीदवारों की संख्या के संदर्भ में, और सफल घोषित किए गए उम्मीदवारों के संदर्भ में भी। इस प्रकार, बाद में, 01.10.2020 को, एक दूसरा परिणाम घोषित किया गया जिसमें 37 उम्मीदवारों को सफल घोषित किया गया। पूरी वरिष्ठता सूची में बदलाव किया गया। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 सहित कुछ अपात्र व्यक्तियों को समायोजित करने के लिए प्रत्येक उम्मीदवारों को दिए गए अंकों को इस बीच बदल दिया गया था।

8. पांचवां, दो बोर्डों द्वारा दिए गए अंकों में व्यापक अंतर (कथित) पर भरोसा करते हुए, यह दावा किया गया है कि बोर्ड 'बी' के समक्ष उपस्थित होने वाले सभी उम्मीदवार सफल थे, जबकि बोर्ड 'ए' का सामना करने वाले बहुत कम उम्मीदवार ही सफल हुए। ऐसी परिस्थिति में, यह ज़ोर देकर आग्रह किया गया है, अंकों को कम करने की आवश्यकता है। यदि याचिकाकर्ताओं को 20 अंक दिए गए थे, तो इस कारण से, वे भी नियुक्ति के लिए पात्र होंगे। यहां **प्रणव वर्मा एवं अन्य बनाम महानिबंधक, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ (रिट याचिका (सिविल) संख्या 565 वर्ष 2019, 617 वर्ष 2019 और की 651 वर्ष 2019)** के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय दिनांक 13.12.2019 पर भरोसा किया गया है।

9. छठा, यह आगे प्रस्तुत किया गया है, प्रतिवादी नंबर 5 ने पहले उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की थी। जबकि उस रिट याचिका को लंबित रखा गया था, उसने सुप्रीम कोर्ट के समक्ष **आई.ए. संख्या - 42562 वर्ष 2017** दायर करके एक समानांतर कार्यवाही शुरू की। जो उसे कभी नहीं करना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने भी उस रिट याचिका के लंबित रहने के बारे में उच्चतम न्यायालय को सूचित नहीं किया। नतीजतन,

उसे अवैध रूप से अंतिम चयन सूची में समायोजित किया गया था। इसे स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा की गई दुर्भावनापूर्ण अवैधता के रूप में उद्धृत किया गया है।

10. अंतिम में यह प्रस्तुत किया गया है कि एक अन्य उम्मीदवार श्रीकृष्ण कुमार, न्यायिक अधिकारी को दो श्रेणियों में परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी गई थी। पहला, एक अधिवक्ता के रूप में और दूसरा एक न्यायिक अधिकारी के रूप में। यह पूरी तरह से नियमों के विपरीत था। वास्तव में, इस तरह की भागीदारी की अनुमति देकर समिति ने नियमों की पूरी तरह से धज्जियां उड़ा दीं।

11. **दलपत अबासाहेब सोलुंके और अन्य बनाम डॉ. बी. एस. महाजन और अन्य (1990) 1 एससीसी 305** में सुप्रीम कोर्ट के निष्कर्ष पर भरोसा करते हुए, यह दावा किया गया है कि चयन प्रक्रिया के दौरान की गई स्पष्ट अवैधताओं और अनियमितताओं के कारण, चयन प्रक्रिया पूरी तरह से दोषयुक्त हो गई है।

12. इस तरह की दलीलों पर, हमने उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा (07.8.2023 को उनकी सुनवाई पर पारित आदेश द्वारा) को मूल परिणाम प्रस्तुत करने को कहा ताकि साक्षात्कार में विभिन्न उम्मीदवारों को दिए गए अंकों की जानकारी की जा सके। उसी के अवलोकन पर यह पता चलता है - 61 उम्मीदवारों को 29-30 अप्रैल 2017 को आयोजित साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। एक अभ्यर्थी अनुपस्थित रहा। साक्षात्कार किए गए 60 उम्मीदवारों में से, दो याचिकाकर्ताओं को छोड़कर सभी को 80 से अधिक अंक दिए गए। चयनित उम्मीदवारों के अंक 80-125 के बीच थे। अंकों को प्रदान करने में कोई पैटर्न नहीं दिखता है, जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा बताया गया है। साक्षात्कार में दिए गए अंकों के अवलोकन से यह निष्कर्ष कभी नहीं लगाया जा सकता है कि या तो सभी चयनित उम्मीदवारों को 80 अंक दिए गए थे या किसी एक बोर्ड ने दूसरे की तुलना में उदारता या सख्ती से अंक प्रदान किए थे। प्रत्येक बोर्ड द्वारा साक्षात्कार किए गए लगभग 30 उम्मीदवारों में से केवल 2 उम्मीदवारों को अस्वीकार कर दिया गया, वे उत्तीर्ण अंक (80) प्राप्त करने में असफल रहे हैं। दोनों हमारे सामने हैं।

13. उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा प्रस्तुत करते हैं कि समिति द्वारा अपनाई गई चयन प्रक्रिया में बिल्कुल भी अवैधता नहीं है। विज्ञापित सटीक रिक्तियों के रूप में, यह स्पष्ट किया गया है, मूल रूप से 37 रिक्तियों को अनारक्षित श्रेणी के तहत और 35 आरक्षित श्रेणी के तहत विज्ञापित किया गया था (जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा खुलासा किया गया है)। वहीं, पहले की भर्ती से 12 रिक्तियों को आगे बढ़ाया गया था। दोनों याचिकाकर्ताओं ने अनारक्षित श्रेणी के तहत आवेदन किया था। प्रारंभिक परीक्षा आयोजित करने के चरण में, समिति द्वारा अपनाए गए मानदंडों के तहत आवेदन पत्रों की न तो जांच आवश्यक थी और न ही ऐसा किया जा सकता था। इस प्रकार, सभी अभ्यर्थियों, जिन्होंने भरे हुए फार्म जमा कर दिए थे, को अनंतिम रूप से

प्रारंभिक परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी गई थी।

14. याचिकाकर्ताओं ने पहले सबमिशन के रूप में साक्षात्कार स्थगित किए जाने पर हेरफेर का आरोप लगाया, इस संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि यह तथ्यों के गलत व्याख्या से उत्पन्न होने वाली एक गलत धारणा है। प्रस्तुतियों के दौरान, श्री आशीष मिश्रा ने समिति की दिनांक 23.1.2017 की बैठक का मूल रिकॉर्ड भी प्रस्तुत किया है, जिसे सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ताओं को भी दिखाया गया है। इसे थोड़ी देर बाद रेफर किया जाएगा।

15. सर्वप्रथम, साक्षात्कारों को एक सप्ताह के लिए स्थगित करना, अपने आप में अपनाई गई प्रक्रिया की निष्पता पर कोई संदेह नहीं पैदा करता है। यह याचिकाकर्ताओं का मामला नहीं है कि उन्हें साक्षात्कार में भाग लेने से रोका गया था। लिखित परीक्षा के परिणामस्वरूप, 61 उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से सफल पाया गया और तदनुसार उन्हें साक्षात्कार के लिए आमंत्रित किया गया। (स्थगित तिथियों पर आयोजित) साक्षात्कार में उपस्थित नहीं होने वाले एकमात्र उम्मीदवार ने भी शिकायत नहीं की है। अतः, इस तरह के स्थगन से याचिकाकर्ताओं या किसी भी उम्मीदवार को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ। मूल रूप से 22.04.2017 और 23.04.2017 को आयोजित होने वाले साक्षात्कार के लिए आमंत्रित उम्मीदवारों के अलावा किसी अन्य या नए उम्मीदवार को साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया था। किसी भी उम्मीदवार को उस अवसर से भी वंचित नहीं किया गया।

16. याचिकाकर्ताओं का यह कहना कि अपात्र उम्मीदवारों को नियमों के नियम 18 (1) के विपरीत साक्षात्कार के लिए आमंत्रित किया गया था, नियमों के परिशिष्ट 'जी' के साथ पठित नियम 18 (1-ए) के परंतुक के बल पर पूरा किया गया है। साक्षात्कार मुख्य परीक्षा का हिस्सा है। नियमों के नियम 18 के तहत, मुख्य परीक्षा परिशिष्ट 'जी' के अनुसार आयोजित की जानी थी जो छह पेपर निर्धारित करता है। पांच पेपरों में लिखित परीक्षा शामिल है जिसमें छठे पेपर को साक्षात्कार के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार, उनके प्रस्तुतीकरण में, साक्षात्कार मुख्य परीक्षा का एक अनिवार्य अंग था। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश की भाषा का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि प्रतिवादियों और अन्य जिन्हें समान रूप से मुख्य परीक्षा में भाग लेने के लिए अनंतिम रूप से अनुमति दी गई थी, उन्हें साक्षात्कार में भाग लेने की अनंतिम रूप से अनुमति दी गई थी।

17. वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया गया है, किसी भी रूप में, साक्षात्कार में प्रतिवादी संख्या 4 और 5 की उम्मीदवारी अनंतिम रही। समिति ने दिनांक 11.04.2017 को एक और प्रस्ताव पारित किया था जिसमें प्रतिवादी संख्या 4 और 5 सहित कुछ उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति दी गई थी। यह उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए न्यायालयी निर्देशों के मद्देनजर किया गया था। फिर भी, यह एक प्रशासनिक निर्णय बना

रहा, किसी भी न्यायिक आदेश के विरुद्ध नहीं था।

18. इसके अलावा, श्री मिश्रा प्रस्तुत करते है कि उच्च न्यायालय के रिकॉर्ड के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 दोनों ने 18.8.2017 को घोषित अनंतिम चयन सूची में शामिल होने के लिए अपेक्षित योग्यता स्थिति हासिल की। हालांकि, उस स्तर पर, विभिन्न लंबित मुकदमों के कारण, उनके नामों का चयन सूची में खुलासा नहीं किया गया था। **रिट याचिका (सिविल) संख्या 594 वर्ष 2016** में 19.7.2018 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा अंतिम आदेश पारित किए जाने पर ही, परिणाम 1.10.2020 को प्रकाशित किया गया था, जिसमें उनके नामों का खुलासा पहली बार उनके सही मेरिट स्थिति के सापेक्ष किया गया था।

19. तीसरा, यह प्रस्तुत किया गया है कि साक्षात्कार 25 से 30 मिनट से ज़्यादा की अवधि में संचालित किए जाने की आवश्यकता केवल निर्देशात्मक प्रकृति का है। हालांकि, किसी भी विचलन के परिणामस्वरूप किसी भी साक्षात्कार को कम समय में पूरा किया जा रहा है, नियमों के तहत कोई निष्कर्ष प्रदान नहीं किया गया है और न ही किसी निष्कर्ष का अन्यथा अनुमान लगाया जा सकता है जो नियमों के परिशिष्ट 'जी' के नोट- I को पढ़ने की आवश्यकता को अनिवार्य रूप से अनुमति दे। उन्होंने **बिहार राज्य और अन्य बनाम बिहार राज्य भूमि विकास बैंक समिति, (2018) 9 एससीसी 472** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

20. यह चीजों की प्रकृति में है - एक साक्षात्कार बोर्ड कम समय में एक उम्मीदवार की उपयुक्तता निर्धारित कर सकता है। विशेषज्ञ होने के नाते, बोर्ड के सदस्य उनके समक्ष उम्मीदवारों की उपयुक्तता का परीक्षण करने की उस क्षमता में कार्य करते हैं। जब तक संबंधित बोर्ड द्वारा किसी भी याचिकाकर्ता को साक्षात्कार देने में अपनाई गई प्रक्रिया में कोई स्पष्ट अवैधता या त्रुटि नहीं दिखाई जाती है, तब तक ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि एक उम्मीदवार को उपयुक्त इसलिए नहीं पाया गया क्योंकि उम्मीदवार का साक्षात्कार 25-30 मिनट से कम समय में समाप्त हो गया था। यहां, उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि रिट याचिका में यह स्थापित करने के लिए कोई दलील नहीं दी गई है कि वर्तमान याचिकाकर्ताओं का साक्षात्कार 25-30 मिनट से कम समय में या 8 मिनट में समाप्त हो गया जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा मौखिक रूप से तर्क दिया गया है।

21. इसके बाद, यह प्रस्तुत किया गया है, 18.08.2017 को घोषित प्रारंभिक परिणाम में 12 न्यायिक अधिकारियों के नाम अनंतिम रूप से शामिल किए गए थे। **धीरज मोर बनाम माननीय उच्च न्यायालय दिल्ली, (2020) एससीसी ऑनलाइन एससीसी 213** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की घोषणा के बाद, उस परिणाम को संशोधित करना आवश्यक हो गया। चूंकि, 12 न्यायिक अधिकारी (18.08.2017 के परिणाम में अनंतिम रूप से शामिल), अयोग्य थे, इसलिए उनके नामों को बाहर रखा गया। हालांकि, उस प्रक्रिया में, पूरी चयन सूची को ही संशोधित किया गया क्योंकि

कुछ चयनित उम्मीदवार जिन्हें मूल रूप से आरक्षित श्रेणी के खिलाफ चयनित दिखाया गया था, उन्हें सामान्य श्रेणी के तहत चुना गया था। यद्यपि, उस बदलाव में नए या नए सिरे से अंक प्रदान करना शामिल नहीं था। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा दिए गए अंकों के परिवर्तन के रूप में व्यक्त की गई आशंका को निराधार बताया गया है।

22. फिर, यह प्रस्तुत किया गया है, प्रतिवादी नंबर 4 ने सुप्रीम कोर्ट के समक्ष **रिट याचिका (सिविल) संख्या 594 वर्ष 2016** को दायर किया था, जबकि प्रतिवादी नंबर 5 ने की **आई.ए. संख्या 42562 वर्ष 2017** दायर की थी। जिन्हें उच्चतम न्यायालय ने अनुमति दी थी। उस स्तर पर, सुप्रीम कोर्ट ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग किया और उन प्रतिवादियों को नियुक्त करने की अनुमति दी। यह आदेश 22 जुलाई 2016 को पारित किया गया था। चूंकि 18.08.2017 को घोषित प्रारंभिक परिणाम अनंतिम था और 01.10.2020 को परिणाम घोषित किया गया था और वह परिणाम सुप्रीम कोर्ट के अंतिम आदेश के बाद प्रकाशित किया गया था। परिणाम में कोई अवसन्नता नहीं है, इसलिए घोषित किया गया है।

23. जहां तक श्रीकृष्ण कुमार का भाग लेने का प्रश्न है, यह प्रस्तुत किया गया है, यह सच है कि उक्त उम्मीदवार ने लिखित परीक्षा में अनंतिम रूप से भाग लिया था। उस स्तर पर, यह संदेह में था कि क्या वह एक अधिवक्ता के रूप में, एक सेवारत न्यायिक अधिकारी होने के नाते या सीमित प्रतियोगी परीक्षा (संक्षेप में एलसीई) में भाग ले सकता है। चूंकि **धीरज मोर (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय नहीं दिया गया था, इसलिए उन्हें अस्थायी रूप से भाग लेने की अनुमति उनके अभ्यर्थन के मंज़ूर होने की शर्त के साथ दी गई थी। किसी भी हाल में, उनका नाम 01.10.2020 को प्रकाशित अंतिम चयन सूची में उल्लेखित नहीं है।

24. पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, जहां तक दुर्भावना का आधार उठाया गया है, जिसके परिणामस्वरूप साक्षात्कार परीक्षा को स्थगित करने में कथित अवैधता हुई है, जिससे अंततः चयनित उम्मीदवारों को अनुचित लाभ हुआ है, हम पाते हैं, पक्षकारों के लिए यह निर्विवाद है कि साक्षात्कार परीक्षा 22-23 अप्रैल 2017 से 29-30 अप्रैल 2017 तक एक सप्ताह के लिए स्थगित कर दी गई थी। वास्तव में, इस तरह के स्थगन में कोई अवैधता नहीं हो सकती है। यह प्रशासनिक कारणों से उत्पन्न हो सकता है जो न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे से बाहर रह सकते हैं, कि हम ऐसी कार्यवाही में प्रयोग कर सके। इसको सिद्ध करने के लिए किसी भी सामग्री की अनुपस्थिति में - यहां तक कि मूल रूप से साक्षात्कार परीक्षा के लिए बुलाए गए लोगों के अलावा एक भी व्यक्ति को उम्मीदवारों की अंतिम सूची में जोड़ा या हटाया गया होता, यह स्वीकार करने के लिए पूरी तरह से अनुचित और दूर की कौड़ी होगी (किसी भी गंभीर विचार के लिए) कि इस तरह के स्थगन का मतलब किसी भी व्यक्ति को कोई अनुचित लाभ पहुंचाना था।

25. यह तथ्य कि प्रतिवादी ने जवाबी हलफनामे में यह दावा किया होगा कि समिति के अध्यक्ष से जुड़े कुछ प्रशासनिक कार्यों के कारण स्थगन हुआ था, जिस तथ्य को याचिकाकर्ताओं द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत उच्चतम न्यायालय की रजिस्ट्री से प्राप्त जानकारी के आधार पर विवादित किया जाता है, उसमें ऐसी गुणवत्ता या स्वरूप नहीं है जिससे यह न्यायालय यह संदेह भी कर सके कि साक्षात्कार परीक्षा स्थगित करने में कोई घोर अनियमितता या दुर्भावना थी। चूंकि याचिकाकर्ताओं का यह मामला नहीं है कि 22-23 अप्रैल 2017 को निर्धारित साक्षात्कार परीक्षा के स्थगन के कारण किसी व्यक्ति या अन्य व्यक्ति को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया/अस्वीकार कर दिया गया, इसलिए यह चुनौती का आधार काल्पनिक और सनसनीखेज है, फिर भी पूरी तरह निराधार है। सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत याचिकाकर्ताओं को दी गई जानकारी की सटीकता या यहाँ तक कि शुद्धता के मुद्दे को अलग रखते हुए, किसी भी व्यक्ति को कोई अनुचित लाभ नहीं दिखाए जाने के अभाव में, याचिकाकर्ताओं द्वारा दिया जा रहा आधार विशुद्ध रूप से काल्पनिक और ज़्यादा से ज़्यादा सैद्धांतिक है।

26. उस बीच के समय में कोई घटना नहीं हुई जिससे किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में कोई अधिकार बनाया या नष्ट किया गया हो। केवल इसलिए कि 12 न्यायिक अधिकारियों और 2 अधिवक्ताओं के कहने पर, जिन्हें उनके द्वारा शुरू की गई न्यायिक कार्यवाहियों में पारित आदेशों के कारण साक्षात्कार परीक्षा में भाग लेने की अनंतिम रूप से अनुमति दी गई थी क्योंकि कुछ कानूनी कार्यवाहियां लंबित थीं। साक्षात्कार परीक्षा के लिए बुलाये गये किसी भी अन्यथा पात्र उम्मीदवार के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं किया गया था। पक्षकारों के बीच यह एक निर्विवाद तथ्य बना हुआ है कि यद्यपि उन 12 न्यायिक अधिकारियों को शुरू में 18.8.2017 को घोषित अनंतिम परिणाम में सफल घोषित किया गया था, फिर भी उनके नाम 01.10.2020 को प्रकाशित अंतिम चयन सूची में शामिल नहीं किए गए थे। **धीरज मोर बनाम माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावी बनाते हुए, अनंतिम चयन सूची को संशोधित किया गया था क्योंकि उन 12 अनंतिम रूप से चयनित उम्मीदवारों (न्यायिक अधिकारियों) की उम्मीदवारी को अयोग्य घोषित कर दिया गया था। दो अधिवक्ताओं (प्रतिवादी संख्या 4 और 5) के मामले पर चर्चा थोड़ी देर बाद की जाएगी।

27. नियमों के नियम 18 (1) के अनुप्रयोग के संबंध में, इसे यहां पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी हो सकता है। यह निम्नलिखित रूप में पढ़ा जाता है:

> *"18. चयन की प्रक्रिया--(1) नियम 16 में निर्दिष्ट चयन समिति प्राप्त आवेदनों की संवीक्षा करेगी और उसके बाद उम्मीदवारों की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए परिशिष्ट (G) में निर्धारित लिखित परीक्षा आयोजित करेगी। समिति ऐसे आवेदकों को साक्षात्कार के लिए बुलाएगी, जिन्होंने अपनी राय में जांच और लिखित*

परीक्षा के बाद साक्षात्कार के लिए अर्हता प्राप्त की है,

(1A) [चयन समिति उपनियम (1) में निर्दिष्ट लिखित परीक्षा में भर्ती किए जाने वाले उम्मीदवारों की उपयुक्तता का निर्णय लेने के लिए प्रारंभिक परीक्षा आयोजित कर सकती है। प्रारंभिक परीक्षा में नियमों के परिशिष्ट "जी" में लिखित परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से दो घंटे की अवधि के 100 अंकों से युक्त एक पेपर शामिल होगा:

बशर्ते कि केवल उन उम्मीदवारों को मुख्य लिखित परीक्षा के लिए पात्र माना जाएगा जो प्रारंभिक परीक्षा में न्यूनतम 45% अंक प्राप्त करते हैं, जो श्रेणी-वार रिक्तियों की संख्या के 20 गुना के अधीन है अर्थात सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग।

(2) किसी अभ्यर्थी के गुण-दोषों का मूल्यांकन करते समय चयन समिति उसकी वृत्तिक योग्यता, चरित्र, व्यक्तित्व और स्वास्थ्य का सम्यक ध्यान रखेगी।

(3) चयन समिति प्रारम्भिक चयन करेगी और सभी अभ्यर्थियों के अभिलेख मुख्य न्यायमूर्ति को प्रस्तुत करेगी और योग्यता क्रम में उन अभ्यर्थियों के नामों की सिफारिश करेगी जो उसकी राय में सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्त हैं।

(4) न्यायालय चयन समिति की सिफारिशों की परीक्षा करेगा और सीधी भर्ती किए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, योग्यता क्रम में निर्वाचित अभ्यर्थियों की सूची तैयार करेगा और उसे राज्यपाल को अग्रेषित करेगा।

28. इसके अलावा, तत्काल संदर्भ के लिए, नियमों के परिशिष्ट 'जी' को नीचे के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

"परिशिष्ट 'जी'

[देखिए नियम 18]

उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा में अधिकारियों की भर्ती के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम।

उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा के लिए परीक्षा में निम्नलिखित विषय शामिल होंगे:

पेपर नंबर 1 सामान्य ज्ञान

यह पेपर 100 अंकों और 3 घंटे की अवधि का होगा।

इसमें 'जनरल नॉलेज' का पेपर होगा। पेपर में भारत के इतिहास और भारतीय संस्कृति, भारत की भूगोल, भारतीय राजनीति, वर्तमान राष्ट्रीय मुद्दों और सामाजिक प्रासंगिकता के विषयों, भारत और विश्व, भारतीय अर्थव्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय मामलों और संस्थानों और विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार और अंतरिक्ष के क्षेत्र में विकास से संबंधित विषयों के आधार पर प्रश्न शामिल हो सकते हैं।

इन प्रश्नपत्रों में प्रश्नों की प्रकृति और मानक ऐसे होंगे कि ***एक अच्छी तरह से शिक्षित व्यक्ति*** *बिना किसी विशेषज्ञता के उनका उत्तर देने में सक्षम होगा*

पेपर नंबर 2 भाषा

यह पेपर 100 अंकों और 3 घंटे की अवधि का होगा। इसमें नीचे निर्दिष्ट चार प्रश्न शामिल होंगे: -

(i) निबंध अंग्रेजी में लिखा जाना है - 30 अंक

(ii) अंग्रेजी प्रीसिस लेखन -30 अंक

(iii) गद्यांश का हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद -20 अंक

(iv) अंग्रेजी से हिंदी में गद्यांश का अनुवाद -20 अंक

पेपर नंबर 3: कानून- I (मौलिक कानून)

यह पेपर 200 अंकों और 3 घंटे की अवधि का होगा।

प्रश्न सेट निम्नलिखित द्वारा कवर किए गए क्षेत्र तक ही सीमित होगा -

संविदा विधि, साझेदारी का कानून, सहज अधिकार और अपकृत्य (टॉर्ट) से संबंधित कानून, संपत्ति हस्तांतरण से संबंधित कानून जिसमें उस पर लागू इक्विटी के सिद्धांत शामिल हैं, न्यास और विशिष्ट राहत से संबंधित इक्विटी का सिद्धांत, हिंदू विधि और मुस्लिम विधि, और संवैधानिक विधि।

अकेले संवैधानिक कानून के संबंध में 50 अंकों के प्रश्न होंगे।

पेपर नंबर 4 कानून-II (प्रक्रिया और साक्ष्य)

यह पेपर 200 अंकों और 3 घंटे की अवधि का होगा।

प्रश्न सेट द्वारा कवर किए गए क्षेत्र तक ही सीमित होगा-

साक्ष्य विधि, दांडिक प्रक्रिया संहिता, और सिविल प्रक्रिया संहिता, जिसमें वकालत के सिद्धांत शामिल हैं। प्रश्न सेट मुख्य रूप से व्यावहारिक मामलों से संबंधित होगा जैसे कि आरोपों और मुद्दों को तैयार करना, गवाहों के साक्ष्य से निपटने के तरीके, सत्र परीक्षणों के निर्णय का लेखन, अपील, संशोधन और आम तौर पर मामलों का संचालन, लेकिन उस तक सीमित नहीं होगा।

पेपर नंबर 5 कानून III (दंड, राजस्व और स्थानीय कानून)

यह पेपर 200 अंकों और 3 घंटे की अवधि का होगा।

प्रश्न सेट किए गए क्षेत्र तक ही सीमित होंगे -

भारतीय दंड संहिता, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006, उत्तर प्रदेश शहरी भवन (लेटिंग, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972। उ0प्र0 नगर पालिका अधिनियम, उ0प्र00 पंचायतराज अधिनियम, उ0प्र0 जोत चकबन्दी

अधिनियम, उ0प्र0 नगरीय नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 के साथ मिलकर उपरोक्त अधिनियमों के अन्तर्गत बनाए गए नियम।

स्थानीय कानूनों के सवालों के जवाब अनिवार्य होंगे। दंड कानूनों से संबंधित प्रश्न ***50** अंकों के होंगे, जबकि राजस्व और स्थानीय कानूनों के 150 अंकों के होंगे।*

स्पष्टीकरण *- उम्मीदवारों के पास हिंदी या अंग्रेजी में सामान्य ज्ञान और कानून के पत्रों का जवाब देने का विकल्प होगा।*

पेपर नंबर 6-साक्षात्कार

साक्षात्कार 200 अंकों का होगा- *यूपी उच्च न्यायिक सेवा में रोजगार के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता को उसकी योग्यता, चरित्र, व्यक्तित्व और काया के संबंध में उसकी योग्यता के संदर्भ में परीक्षण किया जाएगा।*

टिप्पणियां-

(i) लिखित परीक्षा में न्यूनतम कुल 45% अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को साक्षात्कार में बैठने के लिए बुलाया जाएगा, जो श्रेणी-वार रिक्तियों की संख्या का अधिकतम तीन गुना होगा।

साक्षात्कार पूरी तरह से और वैज्ञानिक तरीके से होगा और प्रत्येक उम्मीदवार के लिए 25 से 30 मिनट के बीच कोई भी समय लगेगा।

(ii) साक्षात्कार में न्यूनतम 40% अंक हासिल करने वाले उम्मीदवार केवल चयन सूची में शामिल होने के पात्र होंगे। साक्षात्कार में प्राप्त अंकों को लिखित पत्रों में प्राप्त अंकों में जोड़ा जाएगा और चयन सूची में उम्मीदवार का स्थान दोनों के कुल योग पर निर्भर करेगा।

29. सबसे पहले, नियम 18(1) प्रारूप 'जी' में निर्दिष्ट लिखित परीक्षा को उम्मीदवारों की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए मानता है। यह परीक्षा उनके आवेदन पत्रों की जांच के आधार पर पात्र उम्मीदवारों के बीच आयोजित की जानी आवश्यक है। इसके बाद, नियम में ऐसे आवेदकों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाना आवश्यक है, जिन्होंने समिति की राय में, लिखित परीक्षा उत्तीर्ण की हो।

30. बाद में 8 मई 2014 की अधिसूचना द्वारा, उप-नियम (1-ए) पेश किया गया था। यह समिति को लिखित परीक्षा में भर्ती होने वाले उम्मीदवारों की उपयुक्तता निर्धारित करने के लिए पहले एक प्रारंभिक परीक्षा आयोजित करने की अनुमति देता है, नियमों के नियम 18 के उप-नियम (1) में संदर्भित। उप-नियम (1-ए) के परंतुक के तहत, "मुख्य लिखित परीक्षा" के लिए पात्रता प्रारंभिक परीक्षा में 45% अंकों पर निर्धारित की गई है। नियमों के परिशिष्ट 'जी' में उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवाओं में अधिकारियों की भर्ती के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। यह पाठ्यक्रम को छह पेपरों में विभाजित करता है,

उनमें से पांच लिखित पेपर होते हैं और छठा साक्षात्कार परीक्षा होता है।

31. इस प्रकार, नियमों की संरचना के आधार पर, साक्षात्कार परीक्षा को उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवाओं की मुख्य परीक्षा के एक भाग के रूप में शामिल किया गया है। इसे एक अलग विषय के रूप में वर्णित किया गया है, जो निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत, नियमों के परिशिष्ट जी के तहत पेपर नंबर 6 है। इस संबंध में प्रासंगिक विज्ञापन दिनांक 10.5.2016 के पैराग्राफ -3 जिसके आधार पर आक्षेपित चयन हुआ है, निम्नलिखित रूप में पढ़ा जा सकता है:

> *"एक प्रारंभिक परीक्षा (वस्तुनिष्ठ प्रकार) 31 जुलाई, 2016 को इलाहाबाद में आयोजित की जाएगी और केवल उन उम्मीदवारों को मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाएगा जिन्होंने प्रारंभिक परीक्षा में 45% या अधिक अंक प्राप्त किए हों, बशर्ते उम्मीदवारों की संख्या सामान्य, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए अलग-अलग श्रेणी-वार रिक्तियों की संख्या से 20 गुना से अधिक न हों। उन्हें मुख्य लिखित परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दी जाएगी।"*

32. इसलिए, हमारे विचार से, नियम और विज्ञापन उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवाओं में चयन के लिए किसी भी उम्मीदवार की उपयुक्तता का परीक्षण करने के लिए चार घटनाओं की बात करते हैं।

(i) सबसे पहले, एक प्रारंभिक परीक्षा आयोजित की जाती है, ताकि अगले चरण / लिखित परीक्षा में प्रवेश के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता का निर्धारण किया जा सके। इस परीक्षा के संबंध में दोनों पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है।

(ii) दूसरा चरण, आवेदन पत्रों की जांच है।

(iii) तीसरा चरण, लिखित परीक्षा है।

(iv) चौथा चरण, साक्षात्कार परीक्षा का आयोजन है।

33. इसी समय, दोनों - नियमों के नियम 18 (1-ए) के परंतुक और विज्ञापन - "मुख्य लिखित परीक्षा" शब्द का उपयोग लिखित परीक्षा (नियम 18 (1) के तहत प्रदान की गई) के लिए पात्रता, प्रारंभिक परीक्षा में प्राप्त किए जाने वाले न्यूनतम अंकों के संदर्भ में, निर्धारित करने के लिए करते हैं। इसलिए, नियमों और विज्ञापन के सह-संयुक्त पढ़ने पर, "मुख्य लिखित परीक्षा" केवल अनुसूची 'जी' के तहत निर्दिष्ट पांच विषयों को कवर करने वाली लिखित परीक्षा को संदर्भित करती है।

34. इसके अलावा, उस पात्रता विवरण का साक्षात्कार परीक्षा के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों पर कोई असर नहीं पड़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, नियमों के नियम 18 (1) के तहत, समिति केवल ऐसे उम्मीदवारों को साक्षात्कार परीक्षा के लिए बुला सकती है, जो उसकी राय में "लिखित परीक्षा" उत्तीर्ण की हैं और जिनके आवेदन पत्र सही पाए गए हों।

इसके बाद, अंतिम मेरिट सूची और उसके अनुरूप, चयन सूची तैयार की जानी थी।

35. यह विवाद में नहीं है कि चयन सूची लिखित परीक्षा (लेकिन प्रारंभिक परीक्षा नहीं) और साक्षात्कार परीक्षा में प्राप्त अंकों के योग पर तैयार की जाती है। इस प्रकार, साक्षात्कार परीक्षा मुख्य परीक्षा का एक आवश्यक हिस्सा है, जैसा कि नियमों के तहत निर्धारित किया गया है। फिर भी, यह लिखित परीक्षा का हिस्सा नहीं है। इसलिए, उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा उनके द्वारा पारित अंतरिम आदेशों में प्रयुक्त भाषा प्रासंगिक है। प्रतिवादी नंबर 4 के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित 22.7.2016 का अंतरिम आदेश निम्नानुसार है:

"सुना।

नोटिस जारी करें।

इसके अलावा, दस्ती की भी अनुमति है।

इस न्यायालय के अगले आदेशों के लंबित रहने तक, याचिकाकर्ताओं को निम्नलिखित शर्तों के अधीन 31 जुलाई, 2016 को आयोजित होने वाली उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा के लिए प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी:

(1) वे आज से दो दिनों के भीतर इलाहाबाद उच्च न्यायालय के महा-रजिस्ट्रार के समक्ष एक आवेदन पत्र प्रस्तुत करते हैं।

(2) आवेदन पत्रों की जांच करने पर, महा-निबंधक पाते हैं कि याचिकाकर्ता 1 जनवरी, 2016 को सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए निर्धारित 45 वर्ष की आयु सीमा और प्रासंगिक नियमों के नियम 12 के अनुसार निर्धारित आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए निर्धारित 48 वर्ष की आयु सीमा के अंतर्गत आते हैं।

(3) यदि वे प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं तो उन्हें उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा परीक्षा, 2016 (मुख्य) में उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी।

(4) मुख्य परीक्षा का परिणाम (यदि वे प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं) एक सीलबंद लिफाफे में रखा जाएगा।

डब्ल्यूपी (सी) नंबर 414 वर्ष 2016 और संबंधित मामलों के साथ पोस्ट करें।

36. इसी तरह, प्रतिवादी संख्या 5 के मामले में पारित इस न्यायालय (लखनऊ में आहूत) की समन्वय पीठ का आदेश, दिनांक 18.7.2016 नीचे दिया गया है:

"आवेदक-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और उच्च न्यायालय के लिए पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री उपेंद्र नाथ मिश्रा को सुना।

इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की है कि अन्य बातों के साथ-साथ, रिट याचिका में बताए गए आधारों पर, उसे प्रारंभिक परीक्षा के साथ-साथ अंतिम परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह मामला रिट याचिका (एस) (सिविल) संख्या 414 वर्ष 2016, डॉ अनिल कुमार सिंह और अन्य बनाम माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद और अन्य, और साथ ही एसएलपी (सी) संख्या 15750 वर्ष 2016 और अन्य संबंधित विशेष अनुमति याचिकाओं में सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहा है। शीर्ष न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है: -

"2016 की डब्ल्यूपी (सी) संख्या 414, 2016 की डब्ल्यूपी (सी) संख्या 405, 2016 की डब्ल्यूपी (सी) संख्या 423, 2016 की एसएलपी (सी) संख्या 15764:

इस न्यायालय के अगले आदेशों के लंबित रहने तक, याचिकाकर्ताओं को 31 जुलाई, 2016 को आयोजित होने वाली उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा के लिए प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी। यदि वे इसमें अर्हता प्राप्त करते हैं तो उन्हें उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा परीक्षा, 2016 (मुख्य) में बैठने की अनुमति भी दी जाएगी। हालांकि, जहां तक याचिकाकर्ताओं का संबंध है, मुख्य परीक्षा के परिणाम को रोक दिया जाएगा और एक सीलबंद कवर में रखा जाएगा।

2016 की एसएलपी (सी) संख्या 15750 और 2016 की एसएलपी (सी) संख्या 15644:

याचिकाकर्ताओं को निम्नलिखित शर्तों के अधीन 31 जुलाई, 2016 को आयोजित होने वाली उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा परीक्षा, 2016 में भी उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी:

(1) वे आज से दो दिनों के भीतर इलाहाबाद में उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष एक आवेदन करते हैं।

(2) आवेदनों की जांच के बाद, रजिस्ट्रार जनरल ने याचिकाकर्ताओं को सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए 1 जनवरी, 2016 को 45 वर्ष की ऊपरी आयु सीमा के भीतर और 48 वर्ष की ऊपरी आयु सीमा के भीतर पाया, जैसा कि आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए निर्धारित है।

(3) मुख्य परीक्षा का परिणाम (प्रारम्भिक परीक्षा में अर्हता प्राप्त करने के अधीन रहते हुए) सीलबंद लिफाफे में रखा जाएगा।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का मामला बिलकुल समान है, इसलिए, वह प्रारंभिक परीक्षा के साथ-साथ मुख्य परीक्षा में भी इस शर्त के अधीन उपस्थित होने का हकदार है कि परिणाम सीलबंद कवर में रखा जाएगा।

हम, तदनुसार, याचिकाकर्ता को प्रारंभिक परीक्षा के साथ-साथ मुख्य परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति देते हैं, जैसा कि शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया है, इस शर्त के अधीन कि याचिकाकर्ता का परिणाम सीलबंद लिफाफे में रखा जाएगा और उपरोक्त मामलों में शीर्ष अदालत के अंतिम फैसले द्वारा शासित होगा।

उपर्युक्त अवलोकन के अधीन, आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

37. सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित अंतरिम आदेशों को उनके सामने उत्पन्न तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में उस कानून की पृष्ठभूमि में पढ़ा जाना चाहिए जिसके साथ वे काम कर रहे थे। तथ्यों और कानून के उस मूल्यांकन ने अंतरिम उपायों का प्रावधान करने वाले आदेशों अभ्युदय हुआ। इधर, प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 को मुख्य परीक्षा यानी लिखित परीक्षा और फलस्वरूप साक्षात्कार परीक्षा में भाग लेने के लिए अयोग्यता का सामना करना पड़ा, इस तथ्य के कारण कि वे अधिक उम्र के थे। उस आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए और जो प्रस्तुतियां दी गई होंगी उनके प्रकाश में, सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने यह प्रावधान किया कि मुख्य परीक्षा का परिणाम सीलबंद लिफाफे में रखा जाए, बशर्ते कि वे प्रतिवादी प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण हों।

38. इसलिए, हमारी राय में, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 को चयन प्रक्रिया के तीसरे और चौथे चरणों में भाग लेने की अनुमति दी गई थी, बशर्ते कि वे पहले चरण (जैसा कि अंतरिम आदेशों के तहत स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया था) में उत्तीर्ण हों। ये दोनों आयोजन मिलकर मुख्य परीक्षा का गठन करते हैं, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के तहत वर्णित है। उन न्यायिक आदेशों में व्यक्तियों (जिनके पक्ष में आदेश पारित किए गए थे) को साक्षात्कार परीक्षा में भाग लेने से रोकने या केवल मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति देने के लिए कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया था, इसलिए याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत विपरीत तर्क, निराधार है। इसे खारिज किया जाता है।

39. नियमों और विज्ञापन के नियम 18 (1 ए) के परंतुक में प्रयुक्त वाक्यांश "मुख्य लिखित परीक्षा" को केवल चयन प्रक्रिया की दूसरी घटना के अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए, अर्थात, लिखित परीक्षा। लिखित परीक्षा (नियम 18(1क) और विज्ञापन के परंतुक में) अभिव्यक्ति के उपसर्ग में मुख्य शब्द केवल यह स्पष्ट करता है कि प्रारंभिक परीक्षा में दिए गए अंक केवल चयन प्रक्रिया के अगले कार्यक्रम में भाग लेने के लिए ही प्रासंगिक माने जाएंगे। फिर भी, यह संकेत देने के लिए कोई शब्दावली नहीं दी गई है और कोई प्रावधान नहीं किया गया है कि उन अंकों को साक्षात्कार परीक्षा के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की चयन सूची बनाने और/या अंतिम रूप से चयनित उम्मीदवारों की आपसी

मेधा सूची तैयार करने के उद्देश्य से शामिल किया जाएगा। इसे किसी भी कल्पना के आधार पर किसी अन्य मानदंड को संप्रेषित करने के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है।

40. जहां तक परिशिष्ट 'जी' का संबंध है, केवल इसलिए कि पेपर नंबर 6 को 200 अंकों के साक्षात्कार के रूप में वर्णित किया गया है, इसलिए यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि साक्षात्कार परीक्षा "लिखित परीक्षा" का हिस्सा थी। परिशिष्ट 'जी' को इस तरह से पढ़ना नियम के भीतर एक संघर्ष पैदा करना होगा। नियम 18(1) इस नियम का सारभूत भाग है। इसमें स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि समिति उम्मीदवारों की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए पहले एक लिखित परीक्षा आयोजित करेगी और उसके बाद यह ऐसे उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाएगी, जिन्होंने अपने आवेदन पत्रों की जांच के बाद लिखित परीक्षा उत्तीर्ण की होगी। विपरीत आशय को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किसी भी भाषा के अभाव में, साक्षात्कार परीक्षा को लिखित परीक्षा का हिस्सा मानने के लिए कोई वजह नहीं है। यह व्याख्या, यदि स्वीकार की जाती है, तो साक्षात्कार परीक्षा के लिए उन सभी उम्मीदवारों को बुलाने की आवश्यकता पड़ेगी जिन्होंने प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण की हो। यह नियमों के नियम 18 (1) का उल्लंघन होगा, जो स्पष्ट रूप से लिखित परीक्षा को साक्षात्कार परीक्षा से अलग मानता है। साथ ही, यह लिखित परीक्षा का प्रावधान करता है जो साक्षात्कार परीक्षा से पहले के चरण में आयोजित की जाएगी।

41. इस आलोक में देखा जाए, तो सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की शब्दावली प्रासंगिक है। प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा दायर रिट याचिका में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में था। बदले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट टिप्पणी की थी कि "मुख्य परीक्षा" का परिणाम सीलबंद कवर में रखा जाएगा। उस स्तर पर, सुप्रीम कोर्ट ने नियम 18 (1 ए) और विज्ञापन के परंतुक में प्रयुक्त प्रतिबंधात्मक अभिव्यक्ति "मुख्य लिखित परीक्षा" का उपयोग नहीं किया।

42. चूंकि न्यायिक आदेशों में "मुख्य परीक्षा" वाक्यांश का प्रयोग किया गया था, इसलिए समिति से यह अपेक्षा की गई थी कि वह प्रतिवादी संख्या 4 और 5 और इसी तरह के अन्य व्यक्तियों को "मुख्य परीक्षा" के दोनों चरणों में अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति दे, न कि अकेले "मुख्य लिखित परीक्षा" में। सामान्य रूप से पढ़े जाने पर, उन अंतरिम आदेशों में दोनों, लिखित परीक्षा और साक्षात्कार परीक्षा, को उनके दायरे में शामिल किया गया, निश्चित रूप से, इस शर्त के अधीन कि पहले मुख्य लिखित परीक्षा में योग्यता हासिल कर ली गई हो। हालांकि, उस आदेश में निहित आगे की शर्त के मद्देनजर कि उनके परिणाम एक सीलबंद कवर में रखे जाएंगे, उन्हें न तो सफल घोषित किया जा सकता था और न ही उन्हें सर्वोच्च न्यायालय/इस न्यायालय (न्यायिक पक्ष पर) की अनुमति के बिना नियुक्ति नहीं दी जा सकती थी।

43. सुनवाई के दौरान, हमें समिति के मूल प्रस्ताव की दिनांक 23.3.2017 की सामग्री से भी अवगत कराया गया है। इसके अवलोकन से पता चलता है कि निम्नलिखित निर्णय लिए गए थे:

"1. कंप्यूटर अनुभाग द्वारा तैयार की गई संयुक्त योग्यता सूची के अनुसार, 1603 उम्मीदवारों में से (श्रेणीवार 1:20 के अनुपात के तहत प्रारंभिक परीक्षा में सफल घोषित) मुख्य लिखित परीक्षा में कुल मिलाकर श्रेणी वार न्यूनतम अर्हक 45% या उससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों की संख्या नीचे सारणीबद्ध है:

		की संख्या		
1.	अनारक्षित	753	32	ए-1
2.	ओबीसी	480	06	ए-2
3.	अनुसूचित जाति	367	00	-
4.	अनुसूचित जनजाति	03	00	-
कुल		1603	38	एक

क्रम	कोटि	1:20 के तहत मुख्य लिखित परीक्षा में बुलाए गए उम्मीदवारों	न्यूनतम 45% योग्यता अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों की संख्या	संलग्नक

*इस प्रकार, 38 से अधिक उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है। ऐसे 38 उम्मीदवारों की सूची इस प्रस्ताव का हिस्सा **अनुलग्नक-ए** के रूप में बनाई गई है।*

2. 39 उम्मीदवारों में से, जो रोजगार में हैं/रहे हैं और उन्हें 1:20 के अनुपात से अधिक अपनी संबंधित श्रेणियों में अनंतिम रूप से मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी, 04 उम्मीदवारों ने न्यूनतम योग्यता अंक या उससे अधिक प्राप्त किए हैं। इस प्रकार, 04 उम्मीदवारों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है. ऐसे 04 उम्मीदवारों की सूची इस

*संकल्प का हिस्सा **अनुलग्नक-बी** के रूप में बनाई गई है।*

*3. 25 उम्मीदवारों में से, जिनका सात साल से कम या प्रैक्टिस पर विराम है और जिन्हें 1:20 के अनुपात से अधिक अपनी संबंधित श्रेणियों में मुख्य लिखित परीक्षा में अनंतिम रूप से उपस्थित होने की अनुमति दी गई है, केवल 01 उम्मीदवार ने न्यूनतम अर्हक अंक या उससे अधिक प्राप्त किए हैं। इस प्रकार, 01 उम्मीदवार को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है। उम्मीदवार का नाम इस प्रस्ताव के **अनुलग्नक-सी** के रूप में शामिल किया गया है।*

*4. 17 उम्मीदवारों में से, जिनकी आयु अधिक है और उन्हें 1:20 के अनुपात के अलावा अपनी संबंधित श्रेणियों में अनंतिम रूप से मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति है, केवल 01 उम्मीदवार ने न्यूनतम योग्यता अंक या उससे अधिक प्राप्त किए हैं। इस प्रकार, 01 उम्मीदवार को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है। उम्मीदवारों का नाम इस संकल्प का हिस्सा **अनुलग्नक-डी** के रूप में बनाया गया है।*

5. 03 उम्मीदवारों में से, जिनके फॉर्म विभिन्न पहलुओं में अपूर्ण पाए गए हैं और जिन्हें 1:20 के अनुपात से अधिक अपनी संबंधित श्रेणियों में अनंतिम रूप से मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति दी गई है, कोई भी न्यूनतम योग्यता अंक या उससे अधिक प्राप्त नहीं कर सका।

इसलिए, उपर्युक्त 84 उम्मीदवारों (बिंदु संख्या 2 से 5) में से, जिनके आवेदन पत्रों में, कुछ कमियां पाई गईं और उन्हें अनंतिम रूप से 1:20 के अनुपात से अधिक सफल घोषित किया गया। 06 उम्मीदवारों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाएगा। ऐसे 06 उम्मीदवारों की सूची इस संकल्प का हिस्सा अनुबंध-ई के रूप में बनाई गई है।

6. 35 न्यायिक अधिकारियों को मुख्य लिखित परीक्षा, 2016 में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए उनकी संबंधित श्रेणियों में 1:20 के अनुपात से अधिक के लिए बुलाया गया था, माननीय न्यायालयों के आदेशों के अनुसरण में, 15 उम्मीदवारों ने न्यूनतम योग्यता अंक या उससे अधिक प्राप्त किए हैं। इस प्रकार, 15 उम्मीदवारों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है। ऐसे न्यायिक अधिकारी/याचिकाकर्ताओं की एक सूची इस संकल्प का हिस्सा अनुबंध-एफ के रूप में बनाई गई है। ऐसे 15

उम्मीदवारों का परिणाम उनके द्वारा दायर याचिकाओं के अंतिम परिणाम के अधीन होगा।

7. 10 उम्मीदवारों में से जो अधिवक्ता हैं और जिन्हें 1:20 के अनुपात के अलावा उनकी संबंधित श्रेणियों में अनंतिम रूप से मुख्य लिखित परीक्षा, 2016 में उपस्थित होने के लिए बुलाया गया है, केवल 02 उम्मीदवारों ने न्यूनतम योग्यता अंक या उससे अधिक प्राप्त किए हैं। इस प्रकार, 02 उम्मीदवारों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाए और ऐसे 02 उम्मीदवार/याचिकाकर्ताओं की सूची इस संकल्प का हिस्सा अनुलग्नक-जी के रूप में बनाई गई है। ऐसे 02 उम्मीदवारों का परिणाम उनके द्वारा दायर याचिकाओं के अंतिम परिणाम के अधीन होगा।

इस प्रकार, न्यायिक आदेशों द्वारा अनुमत उपर्युक्त 45 न्यायिक अधिकारियों/याचिकाकर्ताओं (बिंदु संख्या 6 और 7) में से 1:20 के अनुपात से अधिक को अनंतिम रूप से सफल घोषित किया गया, 17 उम्मीदवारों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है। ऐसे 17 उम्मीदवारों की सूची इस संकल्प का हिस्सा अनुबंध-एच के रूप में बनाई गई है।

समिति को अवगत कराया गया है कि उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा सीधी भर्ती परीक्षा, 2016 में उपस्थित होने के लिए न्यायिक अधिकारियों/ अधिवक्ताओं द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय में दायर याचिकाएं अभी भी लंबित हैं। इस प्रकार, जैसा कि ऊपर समाधान किया गया है, ऐसे 17 उम्मीदवारों के परिणाम/उम्मीदवारी, जिन्हें साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जा रहा है, उनके द्वारा दायर लंबित याचिकाओं में न्यायालय के अंतिम आदेश/निर्णय के अधीन होंगे और उनकी संबंधित लंबित याचिकाओं के अंतिम निस्तारण तक सीलबंद कवर में रखे जाएंगे।

इस प्रकार, उपर्युक्त 129 उम्मीदवारों में से (84 उम्मीदवार जिनके आवेदन पत्र में कमियां पाई गई हैं + 45 उम्मीदवार जिन्हें न्यायिक आदेशों द्वारा अनुमति दी गई है), 23 उम्मीदवारों (04 + 01 + 01 + 15 + 02) को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जा रहा है। ऐसे 23 उम्मीदवारों का विवरण उपर्युक्त पैरा 2-7 में दिया गया है।

अतः कुल 61 (38+23) उम्मीदवारों (कुल 1732 उम्मीदवारों में से) जो 1:20 श्रेणीवार के अनुपात से अधिक अंक प्राप्त कर सके और जो अधिकतम 800 अंकों में से 360

(अर्थात 45 प्रतिशत) या उससे अधिक अंक प्राप्त कर सके, को अनंतिम रूप से 30प्र0 उच्चतर न्यायिक सेवा सीधी भर्ती 2016 के लिए आयोजित साक्षात्कार में बुलाया जाता है। ऐसे 61 उम्मीदवारों की एक संयुक्त सूची इस संकल्प का हिस्सा अनुबंध-जे के रूप में बनाई गई है।

समिति अपने निर्णय को दोहराती है कि साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए ऐसे सभी 61 उम्मीदवारों की उम्मीदवारी पूरी तरह से अनंतिम होगी।

मुख्य लिखित परीक्षा में उपस्थित होने वाले सभी उम्मीदवारों की संयुक्त मेरिट सूची बंद लिफाफे में रखी जाए।

समिति साक्षात्कार पत्र (अनुबंध-आर) के प्रारूप को मंजूरी देती है और संकल्प करती है कि साक्षात्कार पत्र उन 61 उम्मीदवारों को जारी किए जाएं जिनके नाम अनुलग्नक-जे में शामिल हैं।

ऐसे 61 सफल उम्मीदवारों के आवेदन पत्रों की अंतिम जांच की जाए और विसंगति, यदि कोई हो, समिति को सूचित की जाए। ऐसे 61 उम्मीदवारों के आवेदन पत्र अलग से रखे जाएं और साक्षात्कार के दौरान संबंधित साक्षात्कार बोर्डों के समक्ष रखे जाएं।

समिति यह भी समाधान करती है कि उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा सीधी भर्ती मुख्य लिखित परीक्षा, 2016 के साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए बुलाए गए सभी उम्मीदवारों के रोल नंबर (अनंतिम) उनके नाम और श्रेणी के साथ प्रासंगिक निर्देशों और साक्षात्कार के विवरण के साथ इस न्यायालय की वेबसाइट पर अपलोड किए जाएंगे। उन उम्मीदवारों को इंगित करना जिन्हें न्यायालयों द्वारा अनुमति दी गई है और 1:20 से अधिक घोषित किया गया है।

साक्षात्कार बुलावा पत्र वेबसाइट पर उपलब्ध कराए जाएंगे और इस आशय की एक सूचना भी वेबसाइट पर अपलोड की जाएगी ताकि सफल उम्मीदवार इसे बिना किसी समस्या के वेबसाइट से डाउनलोड कर सकें। साक्षात्कार बुलावा पत्र ऐसे उम्मीदवारों को "स्पीड पोस्ट/रजिस्टर्ड पोस्ट" के माध्यम से उनके संबंधित पते पर भी भेजे जाएंगे, जो उनके यूपीएचजेएस-2016 के आवेदन पत्रों में उपलब्ध हैं।

सीमित विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा, 2016 उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1975 के नियम 5 (बी) के तहत

सीधी भर्ती के साथ एलसीडीई की 23 रिक्तियों के खिलाफ भर्ती भी आयोजित की गई थी और उम्मीदवार कानून -1, कानून -2 और कानून -3 पत्रों में उपस्थित हुए थे। एलसीडीई में उपस्थित होने के लिए आवेदन जमा करने वाले उम्मीदवारों की कुल संख्या 113 थी। सीमित प्रतियोगिता परीक्षा, 2016 में उपस्थिति निम्नानुसार है:

क्रम उत्तर प्रदेश	विषय	उपस्थिति		
		उपस्थित		अनुपस्थित
1.	कानून-I	113	77	36
2.	कानून-II	113	76	37
3.	कानून-III	113	76	37
	कुल	339	229	110

उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1975 के परिशिष्ट-एच के नोट के अनुसार, लिखित परीक्षा में कट ऑफ अंक सीमित प्रतियोगी विभागीय परीक्षा, 2016 के उम्मीदवारों के लिए 45% है। नोट निम्नानुसार चलता है:

नोट लिखित परीक्षा में न्यूनतम कुल 45% अंक हासिल करने वाले उम्मीदवारों को रिक्तियों की संख्या के अधिकतम तीन गुना के अधीन साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाएगा।

चूंकि केवल 14 न्यायिक अधिकारी सीमित प्रतियोगी विभागीय परीक्षा में कुल मिलाकर 45% या अधिक अंक सुरक्षित कर सके, इसलिए उन सभी को अनंतिम रूप से साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए बुलाया जाए।

समिति ने इससे पहले 19.10.2016 को आयोजित अपनी बैठक में श्री कृष्ण कुमार VI, सिविल जज (सीनियर डिवीजन), चित्रकूट (रोल नंबर 7578) के दिनांक 29.09.2016 के अभ्यावेदन पर विचार-विमर्श किया था, जिसमें संबंधित अधिकारी ने मुख्य लिखित परीक्षा, 2016 में सीधी भर्ती और एलसीई उम्मीदवार के रूप में उपस्थित होने की इच्छा व्यक्त की थी, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें यूपीएचजेएस 2016 में सीधी भर्ती के रूप में उपस्थित होने की अनुमति दी है और वह एलसीई - 2016 के लिए भी पात्र था।

इस मामले में समिति का प्रस्ताव निम्नानुसार था।

"... अधिकारी को प्रवेश पत्र जारी किए जाएं ताकि वह सीधी भर्ती वाले उम्मीदवारों के साथ दोनों धाराओं में उपस्थित हो सके और उसकी उम्मीदवारी पर पहले से जारी किए गए रोल नंबर के लिए दोनों धाराओं में विचार किया जाए, जो अंततः माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अधीन है ..."

श्री कृष्ण कुमार, सिविल जज (सीनियर डिवीजन) का परिणाम, चित्रकूट जिन्हें दोनों धाराओं अर्थात मुख्य लिखित परीक्षा और सीमित प्रतियोगिता परीक्षा, 2016 में माना गया है, नीचे दिया गया है:

क्र.सं.	परीक्षा	अंक	अधिकतम अं	प्रतिशत	परिणाम

			क		
1.	मुख्य लिखित परीक्षा	436	800	54.5	सफल
2.	सीमित प्रतियोगिता परीक्षा	312	600	52.0	सफल

अधिकारी ने दोनों धाराओं के लिए अर्हता प्राप्त की है। इस प्रकार, समिति उसे दोनों धाराओं में साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाने का संकल्प करती है और तदनुसार प्रवेश पत्र जारी किया जाता है। इस आशय की जानकारी मुख्य लिखित परीक्षा, 2016 के परिणाम में शामिल किया जाए।

सीमित प्रतियोगी परीक्षा, 2016 में बैठने के लिए अनुमति प्राप्त सभी 113 उम्मीदवारों की एक मेधा सूची कंप्यूटर अनुभाग द्वारा तैयार की गई है और इसे बंद लिफाफे में रखा जाएगा। यह बताया गया है कि केवल 14 उम्मीदवार 45% या अधिक अंक प्राप्त कर सके (श्रीकृष्ण कुमार, सिविल जज (सीनियर डिवीजन), चित्रकूट, जिन्हें दोनों धाराओं अर्थात डायरेक्ट और एलसीडीई में माना गया है)। ऐसे 14 अधिकारी-उम्मीदवारों वाली एक सूची इस प्रस्ताव का हिस्सा ***अनुलग्नक-के*** *रूप में बनाई गई है।*

उपरोक्त 14 अधिकारियों को भी 23.04.2017 को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से उपस्थित होने के लिए बुलाया जाए। उनके रोल नंबर भी साक्षात्कार की तारीख के बारे में एक नोटिस के साथ वेबसाइट पर अपलोड किए जाएं। उनके साक्षात्कार बुलावा पत्र वेबसाइट पर उपलब्ध कराए जाएं ताकि उम्मीदवारों द्वारा इन्हें डाउनलोड किया जा सके और अधिकारियों को 'स्पीड पोस्ट/पंजीकृत पोस्ट' के माध्यम से भी भेजा जा सके। समिति सीमित प्रतियोगी विभागीय परीक्षा, 2016 के सफल उम्मीदवारों के लिए साक्षात्कार बुलावा पत्र के प्रारूप को अनुमोदित करती है और इसे ***अनुलग्नक-एल*** *के रूप में इस संकल्प का हिस्सा बनाया गया है।*

उम्मीदवारों को डुप्लिकेट प्रवेश पत्र जारी किए जाएंगे, यदि वे इसे प्राप्त करने में विफल रहते हैं, तो 21.04.2017 से 23.04.2017 (सुबह 9:30 बजे से) चयन और नियुक्ति कक्ष के कार्यालय से। इस आशय का एक नोट शामिल किया जाए।

समिति आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड करने के लिए परिणाम को मंजूरी देती है और इसे ***अनुलग्नक-एम*** *के रूप में इस प्रस्ताव का हिस्सा बनाया जाता है।*

44. साक्षात्कार आयोजित करने के लिए दो साक्षात्कार बोर्डों का भी गठन किया गया था। साक्षात्कार आयोजित करने के लिए 61

उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से साक्षात्कार परीक्षा के लिए आमंत्रित किया गया था।

45. इस प्रकार, समिति द्वारा एक सचेत निर्णय लिया गया, लिखित परीक्षा में सफल घोषित 61 उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से साक्षात्कार परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी गई। इस प्रकार भाग लेने की अनुमति देने वाले किसी भी उम्मीदवार की उम्मीदवारी को उस स्तर पर न तो खारिज किया गया था और न ही पुष्टि की गई थी। ऐसे उम्मीदवारों को अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति देकर समिति ने उस चरण में इस संबंध में कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया। बल्कि, इसने इसे भविष्य की तारीख के लिए टाल दिया।

46. लंबित मुकदमे और उसमें पारित अंतरिम आदेशों के सामने, सुप्रीम कोर्ट और इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 सहित कुछ उम्मीदवारों को "मुख्य परीक्षा" में अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति देना, एक प्रशासनिक निर्णय था जो सुविधा और कुशल आचरण और चयन प्रक्रिया को पूरा करने के लिए लिया गया हो सकता है। जब तक वह प्रशासनिक निर्णय न तो किसी कानून के विरोध में था और न ही इसे उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय की समन्वित पीठ द्वारा दिए गए अंतरिम आदेशों के विपरीत माना जाता है और आगे, दिनांक 23.3.2017 के प्रस्ताव को चुनौती दिए बिना, हम पाते हैं कि चयन प्रक्रिया को पूरा करने की अनुमति देने में समिति की ओर से कोई त्रुटि नहीं है, जिससे प्रतिवादी संख्या 4 और 5 और अन्य समान रूप से अनुमत व्यक्तियों को साक्षात्कार में अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति मिलती है।

47. यहां, यह भी ध्यान दिया जा सकता है, इस तरह की भागीदारी को उत्पन्न करने की अनुमति देकर, समिति ने याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला। प्रत्येक उम्मीदवार को उसकी विशेषताओं के आधार पर साक्षात्कार दिया जाना था और तदनुसार, उसे अंक दिए जाने थे। जहां तक चयन समिति द्वारा लिए गए प्रशासनिक निर्णय ने याचिकाकर्ताओं के अपने गुणों के आधार पर मूल्यांकन किए जाने के किसी भी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया और जहां तक याचिकाकर्ताओं का मूल्यांकन उनके द्वारा सामना किए गए साक्षात्कार बोर्ड द्वारा किया गया; हम नियम 18 को परिशिष्ट 'जी' के साथ पढ़ने के आधार पर उठाए जा रहे आपत्ति में कोई योग्यता नहीं पाते हैं।

48. जहां तक चुनौती दी गई है कि याचिकाकर्ताओं को 25-30 मिनट की वांछित अवधि के लिए साक्षात्कार नहीं दिया गया था, हम पाते हैं कि नियम बनाते समय, समिति द्वारा नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए अधिकतम समय सीमा निर्धारित की गई है। यह केवल एक संकेत के माध्यम से हो सकता है। वर्तमान में, यह 25-30 मिनट आंका गया है। तथापि, नियमों के अंतर्गत कोई शर्त नहीं है और ऐसा कोई कानून नहीं है जो बोर्ड/सदस्यों को अभ्यर्थी द्वारा मांगी गई नियुक्ति के लिए उसकी उपयुक्तता का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक अभ्यर्थी के साथ अनिवार्य रूप से 25-

30 मिनट बिताने को बाध्य करता हो। इसके अलावा, किसी भी साक्षात्कार परीक्षा के अमान्य होने के परिणाम के लिए कानून में कोई व्यवस्था नहीं है कि यदि साक्षात्कार बोर्ड किसी भी उम्मीदवार की योग्यता का आकलन करने के लिए 25-30 मिनट की इंगित समय सीमा का उल्लंघन करते हुए आगे बढ़ जाए। जैसा कि **बिहार राज्य और अन्य बनाम बिहार राज्य भूमि विकास बैंक समिति (उपरोक्त)** मे संक्षेप मे कहा गया है। इस विषय पर सुसंगत कानून बना हुआ है - किसी भी परिणाम के अभाव में, एक प्रावधान को अनिवार्य नहीं माना जा सकता है, बल्कि, यह निर्देशिका बनी रह सकती है ।

49. हालांकि यह निर्णय इस विवाद पर उत्पन्न हुआ - कि क्या पूर्व सूचना जारी करने और अनुपालन के शपथ पत्र को दाखिल करने के प्रमाण की आवश्यकता, जो कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34(5) की आवश्यकताएं हैं, अनिवार्य थीं या निर्देशिका, "शैल"(shall) शब्द के उपयोग पर विचार करते हुए और हालांकि वर्तमान मामले में ऐसा कोई विवाद नहीं है, प्रक्रियात्मक कानून की आवश्यकता (वर्तमान मामले में) के उल्लंघन का दावा करने के संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय में एक उपयोगी चर्चा निहित है।

50. सबसे पहले, **"टॉपलाइन शूज लिमिटेड बनाम कॉर्पोरेशन बैंक, (2002) 6 एससीसी 33"** मामले में अपने पहले के फैसले को ध्यान में रखते हुए, यह स्वीकृति के साथ नोट किया गया था कि बचाव पक्ष का बयान दर्ज करने के लिए एक निश्चित समयरेखा निर्धारित करने वाला प्रावधान, इसके अनुपालन न करने के किसी भी परिणाम के निर्धारण के बिना, एक निर्देशिका की आवश्यकता बनी रहेगी। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय ने उस रिपोर्ट की निम्नलिखित सामग्री (पैराग्राफ नंबर 8) को स्वीकृति के साथ उद्धृत किया। यह इस प्रकार पढ़ा जा सकता है:

> *8. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के उद्देश्यों और कारणों के कथन से पता चलता है कि इसे उपभोक्ताओं के अधिकारों और हितों के संवर्धन और संरक्षण तथा उनकी शिकायतों का त्वरित और सरल निवारण प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया है। इसलिए, इस उद्देश्य के लिए विभिन्न स्तरों पर अर्ध-न्यायिक तंत्र स्थापित किया गया है। इन अर्ध-न्यायिक निकायों को उद्देश्यों और कारणों के कथन के खंड 4 के अनुसार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना होता है, जो निम्नानुसार पठित होता है-*
>
> > *4. उपभोक्ता विवादों का त्वरित और सरल निवारण प्रदान करने के लिए, जिला, राज्य और केंद्र स्तरों पर एक अर्ध-न्यायिक तंत्र स्थापित करने की मांग की जाती है। ये अर्ध-न्यायिक निकाय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करेंगे और उन्हें विशिष्ट प्रकृति की राहत देने और जहां उचित हो, उपभोक्ताओं को मुआवजा देने*

का अधिकार दिया गया है। अर्ध-न्यायिक निकायों द्वारा दिए गए आदेशों का पालन न करने पर दंड का भी प्रावधान किया गया है।

(प्रभाव वर्धित)

इस प्रकार उत्तर दाखिल करने के लिए समय-सीमा प्रदान करने का इरादा, वास्तव में ऐसे मामलों की सुनवाई में तेजी लाने और जवाब दाखिल करने के बहाने कार्यवाही पर अनावश्यक स्थगन से बचने के लिए है। तथापि, जैसा कि प्रावधान किया गया है, यह इंगित नहीं करता है कि यह अनिवार्य प्रकृति का है। यदि बढ़ाई गई समय सीमा 15 दिनों से अधिक हो जाती है तो इसके लिए कोई दंडात्मक परिणाम निर्धारित नहीं किए जाते हैं। समय के विस्तार की अवधि "15 दिनों से अधिक नहीं", सीमा की किसी भी प्रकार की अवधि निर्धारित नहीं करती है। यह प्रावधान निर्देशिका प्रकृति का प्रतीत होता है, जिसे उपभोक्ता मंचों को आमतौर पर उनके समक्ष कार्यवाही में लागू करना चाहिए। हम याचिकाकर्ता (व्यक्तिगत रूप में) द्वारा किए गए इस तर्क में कोई बल नहीं पाते हैं कि किसी भी स्थिति में, प्रतिवादी का जवाब 45 दिनों की अवधि के बाद रिकॉर्ड में नहीं लिया जा सकता। यह प्रावधान ऐसे विवादों के शीघ्र निपटान के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया के माध्यम से अधिक है। यह मजबूत शब्दों में "वांछनीयता" की अभिव्यक्ति है। लेकिन यह शिकायतकर्ता के पक्ष में किसी भी प्रकार का मूल अधिकार बनाने से कम हो जाता है, जिसके कारण प्रतिवादी को किसी भी परिस्थिति में बचाव में अपना संस्करण रखने से वंचित किया जा सकता है। यह फोरम या आयोग पर है कि वह अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ एक दिशानिर्देश के रूप में उत्तर दाखिल करने के लिए समय-सीमा प्रदान करने वाले सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करे, और फिर अपने विवेक का सर्वोत्तम प्रयोग करे क्योंकि यह न्याय के उद्देश्यों की सेवा कर सकता है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए ऐसे मामलों के त्वरित निपटान के उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। फोरम अधिनियम की धारा 13 (2) (ए) के मद्देनजर 15 दिनों से अधिक समय बढ़ाने से इनकार कर सकता है, लेकिन विस्तार की 15 दिनों की अवधि से अधिक होने से आदेश में कोई घातक अवैधता नहीं होगी।

51. इसके बाद, सुप्रीम कोर्ट ने **कैलाश बनाम नन्हकू और अन्य, (2005) 4 एससीसी 480** के निष्कर्षको भी मंजूरी के साथ नोट किया। वहां पुन सिविल कार्यवाही में तेजी लाने के लिए शामिल सीपीसी के आदेश VIII नियम 1 की भाषा के संदर्भ में यह कहा गया कि यह निम्नानुसार है:

> *"30. . . . . मात्र इसलिए कि कानून का कोई प्रावधान निषेधात्मक भाषा में लिखा गया है जिसका अर्थ अनिवार्य चरित्र है, इसका मतलब यह नहीं है कि इसमें अपवाद नहीं हैं। अदालतें, जब किसी प्रावधान की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए बुलाई जाती हैं, तो उस पूरे संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, जिस संदर्भ में प्रावधान को अधिनियमित किया गया था, उसे निषेधात्मक रूप से शब्दबद्ध*

करने के बावजूद निर्देशिका माना जा सकता है।

34. न्यायमूर्ति जीपी सिंह ने अनिवार्य और निर्देशिका प्रावधानों से निपटने के दौरान अपने प्रसिद्ध कार्य प्रिंसिपल्स ऑफ स्टेट्यूटरी इंटरप्रिटेशन (9 वां संस्करण, 2004) में नोट किया है:

"इस विषय पर कई मामलों के अध्ययन से किसी भी सार्वभौमिक नियम का निर्माण नहीं होता है, सिवाय इसके कि भाषा अकेले अक्सर निर्णायक नहीं होती है, और यह निर्धारित करने के लिए कि क्या यह अनिवार्य है या निर्देशिका, वैधानिक प्रावधान के संदर्भ, विषय-वस्तु और उद्देश्य पर ध्यान देना चाहिए। प्रायः उद्धृत एक परिच्छेद में लॉर्ड कैम्पबेल ने कहा: 'इस बारे में कोई सार्वभौमिक नियम नहीं बनाया जा सकता है कि क्या अनिवार्य अधिनियमों को केवल निर्देशिका माना जाएगा या अवज्ञा के लिए एक निहित अमान्यता के साथ अनिवार्य माना जाएगा। विचाराधीन संपूर्ण अधिनियम के दायरे पर सावधानीपूर्वक ध्यान देकर विधायिका के वास्तविक इरादे को प्राप्त करने का प्रयास करना न्यायालयों का कर्तव्य है।"(पृष्ठ 338)

" 'विधायिका के वास्तविक इरादे का पता लगाने के लिए', न्यायमूर्ति सुब्बाराव बताते हैं, 'न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ, क़ानून की प्रकृति और अभिकल्पना, और इसे किसी एक या दूसरे तरीके से समझने के परिणामों पर विचार कर सकता है; अन्य प्रावधानों का प्रभाव जिसके द्वारा विचाराधीन प्रावधानों के अनुपालन की आवश्यकता से बचा जाता है; परिस्थितियाँ, अर्थात्, यह कि क़ानून प्रावधानों के गैर-अनुपालन की आकस्मिकता के लिए प्रदान करता है; तथ्य यह है कि प्रावधानों का गैर-अनुपालन है या किसी दंड द्वारा नहीं देखा जाता है; गंभीर या साधारण नतीजे, जो उससे उत्पन्न होते हैं; और सबसे बढ़कर, क्या अधिनियमन के उद्देश्य को पराजित किया जाएगा या आगे बढ़ाया जाएगा। यदि अधिनियमन के उद्देश्य को निर्देशिका मानकर पराजित किया जाएगा, तो इसे अनिवार्य माना जाएगा, जबकि यदि इसे अनिवार्य मानने से निर्दोष व्यक्तियों को गंभीर सामान्य असुविधा होगी, तो अधिनियमन के उद्देश्य को आगे बढ़ाए बिना इसे निर्देशिका के रूप में समझा जाएगा। (पीपी 339-40)"

52. फिर, **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हिली मल्टीपर्पज कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड, (2015) 16 एससीसी 20** में सुप्रीम कोर्ट के एक अन्य फैसले के मद्देनजर जो संदेह पैदा हुआ था, उस पर भी ध्यान दिया गया। **टॉपलाइन (उपरोक्त)** और **कैलाश (उपरोक्त)** के निष्कर्ष पर फिर से जोर दिया गया।

53. हमारी स्थिति के संदर्भ में, यह नहीं देखा जा सकता है कि परिशिष्ट 'जी' में उल्लिखित साक्षात्कार परीक्षा के लिए समय सीमा का निर्धारण 25-30 मिनट था। उस परीक्षा के लिए पालन की जाने वाली निर्धारित प्रक्रिया का हिस्सा होने के नाते, किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में एक महत्वपूर्ण अधिकार बनाने के लिए इसे नहीं पढ़ा जा सकता है कि साक्षात्कार आवश्यक रूप से 25-30 मिनट की अवधि के लिए किया ही जाना चाहिए। दूसरा, यह समय-सीमा केवल प्रत्येक उम्मीदवार को क्षमता, चरित्र, व्यक्तित्व और काया के निर्धारित मापदंडों पर मूल्यांकन के लिए खुद को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय देने की आवश्यकता के रूप में एक संकेत है।

54. किसी व्यक्तिगत मामले में पर्याप्त समय क्या होगा, हालांकि यह व्यक्तिपरक और परिवर्तनशील बना रहेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि एक व्यक्तिगत के साक्षात्कार की कार्यवाही कैसे अद्वितीय, अप्रत्याशित और अपूरणीय तरीके से हो सकती है, जारी रखी जा सकती है और पूरी की जा सकती है। ऐसी व्यक्तिपरक कार्यवाही में बहुत सारे चर मौजूद होते हैं और संचालित होते हैं। वे किसी भी कठोर प्रारूप या शर्तों को उसके आचरण के लिए निर्धारित करना मुश्किल बनाते हैं। इसलिए, ऐसी कार्यवाही किसी व्यक्तिगत विशेषज्ञ के बजाय विशेषज्ञों के बोर्ड के सामूहिक ज्ञान को सौंप दी जाती है, ताकि किसी भी व्यक्तिगत विशेषज्ञ द्वारा किए गए किसी भी मूल्यांकन में आने वाले पूर्वाग्रह, मनमानी, अशुद्धियों और विसंगतियों को खारिज किया जा सके। ऐसे साक्षात्कार परीक्षण में लगने वाला कुल समय भी किसी भी उम्मीदवार को दिए गए व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान उत्पन्न होने वाली बातचीत की गुणवत्ता के लिए व्यक्तिपरक रहेगा।

55. पूर्वगामी कारणों के लिए, उपरोक्त कारणों से, मुख्य रूप से नियमों के तहत कोई परिणाम प्रदान नहीं किए जाने के कारण, 25-30 मिनट की सांकेतिक समयसीमा के उल्लंघन स्थिति में साक्षात्कार परीक्षा की अमान्यता का अनुमान लगाने के लिए उस घटना पर कानून में कोई परिणाम नहीं हो सकता। कानून में केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सांकेतिक समयसीमा को अनुचित रूप से कम या बढ़ाया नहीं जा सकता है, क्योंकि यह स्वयं साक्षात्कार परीक्षा में अपनाए गए गैर-वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थापित कर सकता है।

56. इस प्रकार नियमों के परिशिष्ट 'जी' से जुड़ा 'नोट' स्पष्ट रूप से नियमों के तहत प्रदान की गई एक विधायी सहायता या दिशानिर्देश है। हालांकि, यह किसी भी तरह से अनिवार्य नहीं था। साक्षात्कार बोर्ड के सदस्य विशेषज्ञ होने के नाते और उनके सामने उपस्थित होने वाले उम्मीदवारों की व्यक्तिगत योग्यता पर विचार करने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित हैं। सामूहिक रूप से, उन्हें व्यक्तिगत उम्मीदवारों से ऐसे प्रश्न पूछने के लिए पर्याप्त छूट दी जानी चाहिए, जो "क्षमता, चरित्र, व्यक्तित्व और काया" के वैधानिक रूप से निर्धारित मानदंडों पर उनकी उपयुक्तता का न्याय करने के लिए प्रासंगिक और पर्याप्त लग सकते हैं।

57. कितने न्यूनतम प्रश्न और किस तरीके से उन्हें रखा जा सकता है और किस न्यूनतम अवधि के लिए साक्षात्कार जारी रखा जा सकता है, प्रत्येक साक्षात्कार के व्यक्तिगत तथ्यों पर निर्भर करेगा। ऐसी समय-सीमा निर्धारित करना न केवल कठिन है, बल्कि यह अनिवार्य न्यूनतम समय-सीमा निर्धारित करने के लिए चयन प्रक्रिया की दक्षता के लिए अवांछनीय और प्रतिकूल हो सकता है।

58. इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किए गये समय का सख्त निर्देश और उसके उल्लंघन का परिणाम न केवल नियमों के तहत निर्धारित नहीं है, बल्कि यदि इसे सख्ती से लागू किया जाता है, तो यह पूरी तरह से अवांछनीय होगा। जैसा कि श्री मिश्रा द्वारा सुझाया गया है, इससे बेतुके परिणाम हो सकते हैं, जहां यह मानते हुए कि एक उम्मीदवार एक भी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ है और साक्षात्कार बोर्ड के साथ उत्पादक रूप से बातचीत करने में असमर्थ है, तो बाद वाला उलझन में रहेगा और 25-30 मिनट के लिए उसकी मौन संगति में कैद रहने के लिए मजबूर होगा, जो किसी भी अच्छे उद्देश्य के लिए नहीं है। उपरोक्त कारणों से, याचिकाकर्ताओं द्वारा उस आधार पर प्रस्तुत की जा रही याचिका खारिज किए जाने की योग्य है।

59. यहां, हम इस विषय पर पहले से मौजूद कानून पर भी ध्यान दे सकते हैं। **अशोक कुमार यादव और अन्य में। (1985) 4 एससीसी 417**, हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा हरियाणा सिविल सेवा (कार्यकारी) और अन्य संबद्ध सेवाओं में रिक्तियों को भरने के लिए आयोजित साक्षात्कार के संदर्भ में। 119 उपलब्ध पदों के मुकाबले लगभग 1300 उम्मीदवारों को मौखिक परीक्षा के लिए आमंत्रित किया गया था. दूसरों के बीच, असफल उम्मीदवारों ने जमीन पर दूसरों के बीच चयन पर हमला किया - मौखिक रूप से, साक्षात्कार बोर्ड द्वारा व्यक्तिगत उम्मीदवारों की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त समय दिया गया था। मौखिक बातचीत के लिए आमंत्रित किए गए इतनी बड़ी संख्या में उम्मीदवारों को अपर्याप्त समय दिया गया था यानी 10 से 30 मिनट से कम समय को व्यक्तिगत उम्मीदवार की योग्यता का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने के उद्देश्य से पूरी तरह से अपर्याप्त माना गया था।

60. उस चुनौती में, सुप्रीम कोर्ट की चार-न्यायाधीशों वाली पीठ ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण टिप्पणी की:

> *"हम खंड पीठ द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकते। लेकिन निष्कर्ष से असहमति जताते हुए, हमें यह स्वीकार करना होगा कि हरियाणा लोक सेवा आयोग ने लिखित परीक्षा में 45% या उससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले सभी 1300 से अधिक उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाकर ठीक नहीं किया। प्रतिवादियों ने हरियाणा लोक सेवा आयोग के कृत्य को न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया, परिशिष्ट 1 में*

निहित विनियमों के विनियम 3 पर भरोसा करते हुए पंजाब सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) नियम, 1930 जो हरियाणा राज्य में लागू थे और तर्क दिया कि उस विनियम के सही अर्थों में, हरियाणा लोक सेवा आयोग उन सभी उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाने के लिए बाध्य था जिन्होंने लिखित परीक्षा में न्यूनतम 45% अंक प्राप्त किए थे। हमें नहीं लगता कि यह तर्क ठोस है। विनियम 3 का साधारण पठन बताता है कि यह मौखिक परीक्षा में उपस्थित होने की पात्रता के लिए केवल एक न्यूनतम योग्यता निर्धारित करता है। मौखिक परीक्षा में उपस्थित होने के लिए पात्र होने वाले प्रत्येक उम्मीदवार को लिखित परीक्षा में कुल मिलाकर कम से कम 45% अंक प्राप्त करने चाहिए। लेकिन न्यूनतम 45% अंक प्राप्त करना अपने आप में किसी उम्मीदवार को यह जोर देने का हक नहीं देता कि उसे मौखिक परीक्षा के लिए बुलाया जाए। हरियाणा लोक सेवा आयोग पर यह दायित्व नहीं है कि वह उन सभी उम्मीदवारों को मौखिक परीक्षा के लिए बुलाए जो न्यूनतम पात्रता के लिए आवश्यक 45% अंक को पूरा करते हैं। हरियाणा लोक सेवा आयोग यह कहने के लिए स्वतंत्र है कि लिखित परीक्षा में न्यूनतम 45% अंक के पात्रता मानदंड को पूरा करने वाले उम्मीदवारों में से केवल सूची में शीर्ष पर मौजूद सीमित संख्या में उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाएगा। और यह आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए क्योंकि अन्यथा मौखिक परीक्षा एक नाटक बनकर रह जाएगी। यह वास्तव में देखना मुश्किल है कि किसी उम्मीदवार के व्यक्तित्व को ठीक से और संतोषजनक ढंग से मापने के लिए मौखिक परीक्षा कैसे आयोजित की जा सकती है, यदि किसी सेवा में भर्ती के लिए 1300 से अधिक उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया जाना है। यदि एक मौखिक परीक्षा (वाइवा वोस) को पूरी तरह से और वैज्ञानिक तरीके से आयोजित किया जाना है, जैसा कि किसी उम्मीदवार के व्यक्तित्व का निष्पक्ष और संतोषजनक मूल्यांकन करने के लिए जरूरी है, तो साक्षात्कार (इंटरव्यू) में 10 से 30 मिनट के बीच का समय लगना चाहिए। वास्तव में, हरमन फ़ाइनर ने अपनी पुस्तक "थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ़ मॉडर्न गवर्नमेंट" में बताया है कि "साक्षात्कार कम से कम आधे घंटे तक चलना चाहिए"। भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए चयन करने वाला केंद्रीय लोक सेवा आयोग भी लगभग आधे घंटे के लिए एक उम्मीदवार का साक्षात्कार करता है। 5½ घंटे के एक दिन में केवल 11 से 12 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। यह स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में, यदि 1300 से अधिक उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया जाना है, तो एक संतोषजनक मौखिक

परीक्षा आयोजित करना असंभव होगा। ऐसे में साक्षात्कार आकस्मिक, सतही और लापरवाह हो जाएंगे और इस तरह के साक्षात्कारों में किया गया मूल्यांकन उम्मीदवार के व्यक्तित्व का सही माप नहीं दर्शाएगा। इसके अलावा, ऐसा तरीका मनमानी की संभावना को बढ़ा देगा, क्योंकि लिखित परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर सूची में बहुत नीचे रहने वाला उम्मीदवार भी, जैसा कि खंड पीठ द्वारा इस्तेमाल की गई अभिव्यक्ति के अनुसार, मौखिक परीक्षा में अनुचित रूप से उच्च अंक प्राप्त करने के बाद, चयन की सीमा में 'अवैध रूप से प्रवेश' कर सकता है। इसलिए, केंद्रीय लोक सेवा आयोग का हमेशा यही तरीका रहा है कि वह साक्षात्कार के लिए उपलब्ध रिक्तियों की संख्या से दो या तीन गुना से अधिक उम्मीदवारों को नहीं बुलाए। कोठारी समिति की "सिविल सेवा परीक्षा के लिए भर्ती नीति और चयन के तरीके" पर रिपोर्ट इस सवाल की गहन जांच के बाद यह भी बताती है कि साक्षात्कार के लिए कितने उम्मीदवारों को बुलाया जाना चाहिए:

> *"हमारे विचार से, लिखित परीक्षा में प्राप्त कुल अंकों के क्रम में साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या, भरे जाने वाले रिक्त पदों की संख्या से दोगुनी से अधिक नहीं होनी चाहिए।"*

अन्यथा, लिखित परीक्षा, जिसका मूल्यांकन निश्चित रूप से मौखिक परीक्षा की तुलना में अधिक वस्तुनिष्ठ है, अपना सारा अर्थ और विश्वसनीयता खो देगी और मौखिक परीक्षा, जो कुछ हद तक मूल्यांकन में व्यक्तिपरक और विवेकाधीन है, चयन प्रक्रिया में निर्णायक कारक बन जाएगी। इसलिए, हमारा यह मत है कि जहां लिखित परीक्षा और उसके बाद मौखिक परीक्षा से युक्त सम्मिलित परीक्षा होती है, वहां लिखित परीक्षा में प्राप्त अंकों के क्रम में साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने वाले उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले रिक्त पदों की संख्या से दोगुनी या अधिकतम तीन गुनी से अधिक नहीं होनी चाहिए। हरियाणा लोक सेवा आयोग ने वर्तमान मामले में न्यूनतम पात्रता आवश्यकता को पूरा करने वाले 1300 से अधिक उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया था, जिन्होंने लिखित परीक्षा में न्यूनतम 45% अंक प्राप्त किए थे, और यह निश्चित रूप से सही नहीं था, लेकिन हम यह बता सकते हैं कि ऐसा करने में, हरियाणा लोक सेवा आयोग को किसी भी तरह के दुर्भाव या परोक्ष मकसद से प्रेरित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि दोनों पक्षों के बीच यह सर्वविदित था कि यह वह अभ्यास था

जिसका हरियाणा लोक सेवा आयोग वर्षों से लगातार पालन कर रहा था और इस मामले में जो किया गया वह कुछ भी असाधारण नहीं था। केवल यह सवाल है कि क्या इसका हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा किए गए चयन पर कोई अमान्यकारी प्रभाव पड़ा है।"

(प्रभाव वर्धित)

60. फिर, **सतपाल बनाम हरियाणा राज्य, 1995 सप्प (1) एससीसी 206** में, बहुत बड़ी संख्या में उम्मीदवारों के संदर्भ में, अर्थात्, 400-600 ने एक ही तारीख को साक्षात्कार के लिए बुलाया, यह नीचे देखा गया:

*"अब जहां तक चयन प्रक्रिया का संबंध है, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय में बोर्ड की ओर से दायर हलफनामे की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, <u>जिसमें यह कहा गया था याचिका के पैरा 5 में आरोप लगाया गया है कि विभिन्न स्थानों</u> पर प्रतिदिन लगभग 400 उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और साक्षात्कार सुबह 9.00 बजे से शुरू होकर आधे घंटे के लंच ब्रेक के साथ देर रात तक शुरू हुए थे। आगे यह कहा गया था कि उक्त पद के लिए अपनी योग्यता और उपयुक्तता का निर्णय लेने के लिए प्रत्येक उम्मीदवार के साक्षात्कार में पर्याप्त समय दिया गया था। कुछ उम्मीदवार एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके और इसलिए ऐसे उम्मीदवारों द्वारा बहुत कम समय लिया गया। इस हलफनामे की एक प्रति बहस के दौरान हमें उपलब्ध कराई गई थी। हमारा ध्यान वर्तमान कार्यवाही में बोर्ड के सचिव द्वारा दायर एक छोटे जवाबी हलफनामे की ओर भी आकर्षित किया गया था, जिसमें पैराग्राफ 4 में कहा गया है कि प्रत्येक दिन सुबह 9.00 बजे से देर रात तक 400-600 उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया था। उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान कार्यवाही में बोर्ड की ओर से किए गए उक्त कथनों से, यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि एक ही दिन में बोर्ड द्वारा नियुक्त प्रत्येक समिति द्वारा 400-600 उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया था। यदि कोई यह मान भी ले कि समिति ने उम्मीदवारों के साक्षात्कार के लिए एक ही दिन में 12 घंटे यानी सुबह 9.00 बजे से रात 9.00 बजे तक समर्पित किए हैं, तो वह प्रति उम्मीदवार दो मिनट से अधिक समय नहीं दे पाएगी। <u>तर्क के लिए यह मानते हुए कि चूंकि कुछ उम्मीदवार एक भी प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम नहीं थे, इसलिए उनके द्वारा लिया गया समय संक्षिप्त था, यह एक मिनट से कम नहीं हो सकता था और इसलिए, यह मानना मुश्किल है कि साक्षात्कार सार्थक और उद्देश्यपूर्ण थे ताकि पद के लिए प्रत्येक उम्मीदवार के ज्ञान और उपयुक्तता का उचित मूल्यांकन किया जा सके। इसलिए,</u>

उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी करने में सही था कि साक्षात्कार केवल एक मजाक था और एक ही दिन में 400-600 उम्मीदवारों के प्रभावी साक्षात्कार में मानवीय रूप से असंभव था।

(प्रभाव वर्धित)

61. उसी समय, **सरदारा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1991) 4 एससीसी 555** में उठाए गए समान चुनौती पर विचार करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने **अशोक कुमार यादव (उपरोक्त)** में अपने पहले के चार-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के निष्कर्षपर विचार किया और इसे अपने सामने लाए गए तथ्यों पर लागू नहीं पाया। वहां, 35 घंटे की अवधि में 821 उम्मीदवारों का साक्षात्कार पाया गया (जबकि याचिकाकर्ता ने उस मामले में 15 घंटे का दावा किया था)। पटवारी के पद (तृतीय श्रेणी के पद के रूप में) पर चयन करने के उद्देश्य से प्रति उम्मीदवार औसतन 3 मिनट का साक्षात्कार समय दिया गया था। यह उस सीमा तक पर्याप्त पाया गया था जिस कारण से कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था। हमारी चर्चा के लिए प्रासंगिक, रिपोर्ट का पैराग्राफ 6 नीचे के रूप में पढ़ता है:

"6. इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि साक्षात्कार में याचिकाकर्ताओं को उचित अवसर नहीं दिया गया था। 821 उम्मीदवारों के साक्षात्कार के लिए केवल 15 घंटे खर्च किए गए और इसलिए, चयन एक तमाशा है। यह विवाद भी उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था, बल्कि पहली बार इन अपीलों में उठाया गया था। इस न्यायालय में दायर काउंटर में इसका खंडन किया गया था। यह कहा गया था कि उन्होंने प्रति दिन 7 घंटे की दर से कुल 35 घंटे बिताए थे। यानी उन्होंने उम्मीदवारों के चयन में 5 दिन का समय लगाया। तृतीय श्रेणी सेवा में पटवारियों का चयन होता है। अशोक कुमार यादव बनाम भारत संघ में अनुपात; हरियाणा राज्य [(1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88: 1985 सप्प 1 एससीआर 657] का इस मामले में तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। उसमें चयन राज्य सेवा की प्रथम श्रेणी सेवा के लिए था और प्रत्येक उम्मीदवार के साक्षात्कार के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता थी। इस मामले में, गणना करने पर, हमने पाया कि प्रत्येक उम्मीदवार के चयन के लिए औसतन तीन मिनट खर्च किए गए थे। नियमों के नियम 7 में योग्यता प्रदान की गई है, अर्थात्, मैट्रिक या उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण; मध्य स्तर तक हिंदी और पंजाबी में ज्ञान और ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति का अच्छा ज्ञान। शैक्षिक योग्यता रिकॉर्ड से स्पष्ट है और इस संबंध में किसी साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है। यह देखा जा सकता है कि सामान्य रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाले उम्मीदवारों को ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। इसलिए, ग्रामीण अर्थव्यवस्था या संस्कृति के बारे में उनके ज्ञान का पता लगाने के लिए

विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है। उन परिस्थितियों में चयन के लिए प्रत्येक उम्मीदवार पर सामान्य ज्ञान और पटवारी आदि के रूप में काम के लिए कुछ प्रश्न पूछने के अलावा अधिक समय खर्च करने की आवश्यकता नहीं है।

(प्रभाव वर्धित)

63. जहां तक याचिकाकर्ताओं का अपना मामला है कि उन्हें साक्षात्कार बोर्ड "ए" द्वारा 8-10 मिनट के लिए बातचीत की पेशकश की गई थी और चूंकि यह याचिकाकर्ताओं का मामला नहीं है कि उन्हें उस साक्षात्कार बोर्ड के साथ किसी भी बातचीत की अनुमति नहीं दी गई थी, जिसका उन्होंने सामना किया था, वास्तव में, इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है कि आयोजित साक्षात्कार परीक्षा अवैज्ञानिक या अविश्वसनीय थी। उस आलोक में, हम पाते हैं कि रिट याचिका में यह स्थापित करने के लिए कोई दलील नहीं दी गई है कि याचिकाकर्ताओं या उनमें से किसी एक को अपर्याप्त या अपर्याप्त साक्षात्कार समय दिया गया था। द्वितीय अनुपूरक हलफनामे के माध्यम से, पैराग्राफ संख्या 72, 73 और 74 में केवल इतना ही कहा गया है जैसा कि नीचे उद्धृत किया गया है:

"72. मैं कहता हूं कि डिपोनेंट सहित प्रत्येक उम्मीदवार के लिए साक्षात्कार मुश्किल से पांच से दस मिनट तक चला। मैं आगे कहता हूं कि पांच से दस मिनट के दौरान डिपोनेंट सहित प्रत्येक उम्मीदवार की क्षमता का आकलन करना मुश्किल है। ज्यादातर मामलों में जरूरी नहीं कि पहली छाप सबसे अच्छा प्रभाव हो। यूपीएचजेएस 2016 में 70 से अधिक उम्मीदवार साक्षात्कार के लिए योग्य हुए हैं। साक्षात्कार के लिए 70 से अधिक उम्मीदवारों के लिए केवल दो बोर्ड का गठन किया गया था।

73. मैं कहता हूं कि इतनी कम अवधि में सभी उम्मीदवारों का साक्षात्कार आयोजित करना संभव नहीं था। यू.पी.एच.जे.एस. नियम 1975 में परिशिष्ट जी (नियम 18 देखें) का प्रासंगिक पैरा है

"साक्षात्कार 200 अंकों का होगा -

यूपी उच्च न्यायिक सेवा में रोजगार के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता को उसकी योग्यता, चरित्र, व्यक्तित्व और काया के संबंध में उसकी योग्यता के संदर्भ में परीक्षण किया जाएगा।

टिप्पणियाँ-

(ii) लिखित परीक्षा में न्यूनतम कुल 45% अंक हासिल करने वाले उम्मीदवारों को साक्षात्कार में बैठने के लिए बुलाया जाएगा, जो श्रेणी-वार रिक्तियों की संख्या का अधिकतम तीन गुना होगा।

साक्षात्कार पूरी तरह से और वैज्ञानिक तरीके से होगा और प्रत्येक उम्मीदवार के लिए 25 से 30 मिनट के बीच का समय लगेगा।

74. मैं कहता हूं कि साक्षात्कार के मौखिक परीक्षण की व्यक्तिपरकता और अनिश्चितता के

प्रतिलिपि

आधार पर बहुत आलोचना की गई है। अलग-अलग साक्षात्कारकर्ताओं के पास अच्छे व्यक्तित्व की अपनी धारणाएं होती हैं, कुछ के लिए, यह किसी भी चीज़ से अधिक आकर्षक शारीरिक बनावट और पोशाक में होता है, और उनके साथ उम्मीदवार का आकर्षक और चमकदार अभ्यर्थी अत्यधिक स्कोर करता है जबकि कच्चे, अनगढ़ हीरों जैसे लोग सराहे नहीं जाते। साक्षात्कार का माहौल कृत्रिम होता है और कुछ उम्मीदवारों को अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने से रोकता है। इसकी अवधि कम होती है, पूछे जाने वाले कुछ हिट या मिस प्रकार के प्रश्न उम्मीदवार की वास्तविक योग्यता को प्रकट नहीं कर पाते।"

64. इस प्रकार, यह बताते हुए कि प्रत्येक उम्मीदवार का साक्षात्कार 5-10 मिनट के लिए किया गया था और यह अपर्याप्त था, क्योंकि यह चयनित प्रत्येक उम्मीदवार की उपयुक्तता का न्याय करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, यह स्थापित करने के लिए कोई तथ्य नहीं दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं से कोई प्रासंगिक पूछताछ नहीं की गई या उन्हें साक्षात्कार बोर्ड द्वारा, अपना सर्वश्रेष्ठ पेश करने की अनुमति दिए बिना, उनकी क्षमता, चरित्र, व्यक्तित्व आदि के अनुरूप, सरसरी तौर पर मुक्त कर दिया गया था।

65. याचिकाकर्ताओं अदालत के समक्ष प्राथमिक रूप से साबित करने के लिए आवश्यक दायित्व उठाया है कि - या तो उनसे की गई पूछताछ / बातचीत की रेखा ऐसी थी जो प्रासंगिक नहीं थी या जिसके उत्तर दिए गए थे उसके कारण अधिक अंक दिए गए हों, या कि उनके साथ भेदभाव किया गया था या कोई अन्य वैध आधार (साक्षात्कार बोर्ड द्वारा तैयार की गई विशुद्ध रूप से व्यक्तिपरक संतुष्टि के संदर्भ में), और जिसे प्रतिपादित किया गया हो ताकि इस न्यायालय को यह विश्वास हो सके कि साक्षात्कार बोर्ड द्वारा याचिकाकर्ताओं की सही योग्यता के बारे में व्यक्तिपरक मूल्यांकन करने में जल्दबाजी के कारण निर्णय लेने में कोई गंभीर त्रुटि हुई है, हम समिति द्वारा गठित किए गए साक्षात्कार बोर्ड, जिसने याचिकाकर्ताओं का साक्षात्कार लिया, द्वारा व्यक्त व्यक्तिपरक राय पर संदेह करने का कोई कारण नहीं देखते हैं ।

66. इसके अलावा, यह स्थापित करने के लिए कोई दलील मौजूद नहीं हैं कि याचियों को बिना किसी प्रासंगिक प्रश्न के, जिससे उनकी उपयुक्तता का सांविधिक रूप से निर्धारित मानदंडों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सके, सरसरी तौर पर निपटा दिया गया था। विशेषज्ञ पैनल द्वारा उनके मूल्यांकन के आकलन को चुनौती देने के लिए उम्मीदवारों/याचियों को स्वयं अपने द्वारा उत्तीर्ण किसी भी चयन परीक्षा में अपनी उपयुक्तता का प्रमाण पत्र देना नहीं है जिनके समक्ष उन्होंने स्वयं को इस तरह के मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किया था। प्रत्येक उम्मीदवार की योग्यता का पर्याप्त रूप से परीक्षण करने के लिए विशेषज्ञों के पैनल पर ही इसे छोड़ देना चाहिए। जब तक रिकॉर्ड पर कोई तथ्यात्मक परिस्थिति मौजूद नहीं होती है, जिसके लिए प्रक्रिया की निष्पक्षता और पूर्णता के संबंध में गहन जांच की आवश्यकता हो

सकती है, तब तक कोई हस्तक्षेप उचित नहीं है।

67. किसी भी व्यक्ति को अपने आत्म-मूल्य का आकलन करने से रोका नहीं जा सकता। यह उसका स्वतंत्र अधिकार है। इस प्रकार, हर कोई यह मानने के लिए स्वतंत्र है कि वह दूसरों से अधिक योग्य है। कानून को इससे कोई लेना-देना नहीं है। यह केवल ऐसे व्यक्तियों/नागरिकों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को जन्म दे सकता है। साथ ही, एक खुली प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा के संदर्भ में, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के तहत निहित समानता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए, कोई भी नागरिक/व्यक्ति जो ऐसी प्रतियोगिता का सामना करना चुनता है, उसे किसी तीसरे व्यक्ति/संस्था द्वारा परीक्षण के आधार पर स्वयं को प्रमाणित करना आवश्यक है। हालांकि ऐसा प्रतिभागी उस मूल्यांकन को स्वयं पसंद न करे, लेकिन साथ ही, उसे अपने स्व-मूल्यांकन के आधार पर, उस व्यक्तिपरक मूल्यांकन की शुद्धता पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

68. याचियों द्वारा साक्षात्कार परीक्षा का सामना करने के बाद, चूंकि कोई भी गैर-कानूनी या अनियमितता मौजूद नहीं है, इसके परिणाम पर याचियों द्वारा व्यक्त किए गए एक निर्दोष संदेह के आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है, उनके व्यक्तिपरक आत्म-मूल्यांकन के रूप में, उनके वास्तविक गुण के लिए। जबकि अदालत को न तो आवश्यक है और न ही उसने साक्षात्कार परीक्षा में याचियों की व्यक्तिगत योग्यता का कोई मूल्यांकन किया है, उसके पास समिति द्वारा किए गए उस मूल्यांकन पर संदेह करने के लिए कोई सामग्री या कारण नहीं है।

69. पूर्वाग्रह और द्वेष के रूप में दलीलें उद्देश्य होने के बजाय निंदनीय हैं। बोर्ड के अध्यक्ष के खिलाफ बेबुनियाद और लापरवाह आरोप लगाए गए हैं। याचिकाकर्ताओं ने अपनी सबसे बुरी कल्पनाओं और आशंकाओं को पंख दिए हैं। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, समिति ने सुप्रीम कोर्ट और इस न्यायालय के अंतरिम आदेशों के अनुपालन में, अनंतिम रूप से, कुछ उम्मीदवारों को मुख्य परीक्षा में भाग लेने की अनुमति देने में कानून के अनुसार कार्य किया है। हालांकि, जो सभी अयोग्य थे, उन्हें अंतिम चयन सूची से हटा दिया गया था।

70. व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दिए गए अंकों के रूप में, मूल रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह सामने आया है कि व्यक्तिगत उम्मीदवारों को अलग-अलग अंक दिए गए हैं। साक्षात्कार के लिए बुलाए गए 61 उम्मीदवारों में से केवल 60 ने भाग लिया। दो याचिकाकर्ताओं को छोड़कर, 58 अन्य ने साक्षात्कार परीक्षा में 80-125 के बीच या उससे अधिक उत्तीर्ण अंक प्राप्त किए हैं। उस रिकॉर्ड के अवलोकन से कुछ भी स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं है जिससे इस न्यायालय को दूर का भी संदेह हो सके कि अंक केवल एक मानदंड पर दिए गए थे यानी 80 अंकों पर उत्तीर्ण हुए और 80 से नीचे अनुत्तीर्ण।

71. स्वतः विभिन्न अभ्यर्थियों को दिए गए अंकों का अवलोकन करने से ही यह संकेत

मिलता है कि प्रत्येक अभ्यर्थी की वैयक्तिक योग्यता का मूल्यांकन दो साक्षात्कार बोर्डों द्वारा किया गया था, जिनके समक्ष कोई भी अभ्यर्थी उपस्थित हुआ हो। इसलिए, याचिकाकर्ताओं द्वारा की गई धारणा पूरी तरह से निराधार है। यह एक संदेह से ज्यादा कुछ नहीं है, दुख की बात है, याचिकाकर्ताओं द्वारा मिली विफलता के कारण से उत्पन्न होता है।

72. साक्षात्कार प्रक्रिया के पूरा होने के बाद क्या हुआ, फिर से निराधार संदेह ने याचिकाकर्ताओं को विश्वास दिलाया है कि उनके साथ अन्याय हुआ है। साक्षात्कार परीक्षा पूरी होने के बाद, प्रारंभ में, 18.8.2017 को एक अनंतिम परिणाम घोषित किया गया था। उसमें 43 अभ्यर्थियों को समिति द्वारा मूल्यांकन किए गए पारस्परिक योग्यता के क्रम में चयन सूची में शामिल पाया गया था। तथापिि, उन लोगों के पक्ष में संचालित विभिन्न अंतरिम आदेशों को ध्यान में रखते हुए जिन्हें अनंतिम रूप से उस चयन सूची में शामिल किया गया था और विभिन्न अंतरिम आदेशों में आगे की शर्तों को ध्यान में रखते हुए - ऐसे अभ्यर्थियों के परिणाम को सीलबंद लिफाफे में रखने के लिए, मुक़दमे में शामिल ऐसे 14 अभ्यर्थियों के नामों का खुलासा नहीं किया गया था। परिणाम को ही अनंतिम बताया गया था। ऐसा होना ही था क्योंकि उस सूची में शामिल अनंतिम रूप से चयनित 14 उम्मीदवारों के संबंध में मुकदमा उस तारीख को लंबित था।

73. निर्विवाद रूप से, प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दायर की **रिट याचिका संख्या 594 वर्ष 2016 (संदीप गुप्ता बनाम उच्च न्यायालय)** दिनांक 19.7.2018 के आदेश के माध्यम से निस्तारित की गई। याचिकाकर्ताओं द्वारा व्यक्त किए जा रहे संदेहों को समाप्त करने के लिए उस पूरे आदेश को उद्धृत करना उपयोगी होगा। वह आदेश निम्नलिखित रूप में पढ़ा जा सकता है:

"1. आई.ए. संख्या 42562/2017 की अनुमति है।

2. दिनांक 10.05.2016 के विज्ञापन के अनुसार, आरक्षित श्रेणियों के पिछले वर्षों के रिक्त 12 पदों के साथ, उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा में 72 पदों को भरने के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए।

3. रिट याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में इस आधार पर नियमों की वैधता को चुनौती दी कि विज्ञापन के अनुसार उसने 45 वर्ष की आयु पार कर ली है। दिनांक 22.07.2016 के अंतरिम आदेश के अनुसरण में उम्मीदवारों को चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी गई थी।

4. हमें सूचित किया गया है कि अंतिम दौर में केवल 43 उम्मीदवार सफल हुए, जिनमें याचिकाकर्ता-संदीप गुप्ता और इंटरवेनर-प्रतिमा शामिल हैं। वास्तव में, कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों के कारण, उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा की परीक्षा पिछले तीन वर्षों से अधिक समय से आयोजित नहीं की जा सकी, यद्यपि नियमों में ऐसा नहीं है।

5. याचिकाकर्ता, हस्तक्षेपकर्ता और प्रतिवादी/उच्च न्यायालय की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, हम यह उचित समझते हैं कि इस न्यायालय को पूर्ण न्याय करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करना चाहिए।

6. तदनुसार, इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है, जिसमें प्रतिवादी/उच्च न्यायालय को याचिकाकर्ता/संदीप गुप्ता और हस्तक्षेपकर्ता/प्रतिमा के परिणामों को स्पष्ट करने का निर्देश दिया जाता है। चूंकि वे अन्यथा सफल हुए हैं, इसलिए उन्हें बिना किसी देरी के नियुक्त किया जाएगा।

7. वरिष्ठता के संबंध में किसी भी विवाद से बचने के लिए, हम यह स्पष्ट करते हैं कि वरिष्ठता चयन सूची में उनकी स्थिति पर निर्भर करेगी।

8. चूंकि, यह आदेश मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में पारित किया गया है, इसलिए इसे एक मिसाल के रूप में नहीं माना जाएगा।

9. इस न्यायालय की रजिस्ट्री को उच्च न्यायालय से प्राप्त परिणामों को सीलबंद लिफाफे में वापस भेजने का निर्देश दिया जाता है।

10. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान किया जाएगा।

74. इस प्रकार, न केवल प्रतिवादी नंबर 4 संदीप गुप्ता बल्कि प्रतिवादी नंबर 5 - सुश्री प्रतिमा (2017 के आईए नंबर 42562 के मद्देनजर) को भी सुप्रीम कोर्ट ने राहत दी। सतही तौर पर, यह राहत भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत उस न्यायालय की असाधारण और अद्वितीय शक्ति से मिलती है, जो किसी भी मामले के विशिष्ट तथ्यों में पूर्ण न्याय करने के लिए है। सर्वोच्च न्यायालय की यह वास्तव में अनूठी शक्ति, इसे "मिडास टच" प्रदान करती है ताकि कानूनों के कठोर नुस्खे न्याय की शुद्ध जरूरतों को योग्य तथ्यों में पूरा कर सकें। बिना किसी अनिश्चित शब्दों के, सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया कि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 दोनों के परिणाम उच्च न्यायालय द्वारा घोषित किए जाएं। आज तक, न तो याचिकाकर्ताओं ने और न ही किसी अन्य व्यक्ति ने सुप्रीम कोर्ट के उस आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन किया है, न ही उक्त आदेश को संशोधित किया गया है।

75. तथ्य यह है कि उस आदेश को शुरू में सुप्रीम कोर्ट ने एक अन्य कार्यवाही में रोक दिया था और बाद में उस स्थगन आदेश को भी खाली कर दिया गया था, हमारे सामने विवाद का कोई कारण नहीं है। यह केवल इस हद तक प्रासंगिक है कि 01.10.2020 को परिणाम (अंतिम) की घोषणा की तारीख पर, उस परिणाम की घोषणा के खिलाफ कोई निषेधाज्ञा लागू नहीं हुई। वास्तव में, उस तारीख से पहले, एक और घटनाक्रम (वर्तमान

मामले पर असर डालने वाला) हुआ, अर्थात् सुप्रीम कोर्ट ने **धीरज मोर (उपरोक्त)** में दिनांक 19.2.2020 को एक और आदेश पारित किया। इस प्रकार इसने उन 12 न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ स्पष्ट रूप से फैसला सुनाया जो लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए थे और जिनके नाम दिनांक 18.08.2017 की अनंतिम चयन सूची में शामिल किए गए थे।

76. इस प्रकार, यह निर्धारित किया गया था - सात साल के निरंतर अभ्यास की आवश्यकता सीधी भर्ती की मांग करने वाले किसी भी उम्मीदवार द्वारा कट-ऑफ तारीख पर पूरी की जाने वाली शर्त थी। कोई भी न्यायिक अधिकारी जो सेवा में आने से पहले प्रैक्टिस में रहा हो, इसलिए उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा परीक्षा में सीधी भर्ती के लिए आवेदन करने के लिए अयोग्य रहा। इस प्रकार, 18.08.2017 को घोषित परिणाम में अनंतिम रूप से शामिल 14 उम्मीदवारों में से 12 (यानी, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 को छोड़कर सभी) अयोग्य हो गए। वे न्यायिक अधिकारी थे जिनके दावे को **धीरज मोर (उपरोक्त)** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के संदर्भ में खारिज किया जाना था।

77. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपर्युक्त कानून के मद्देनजर, 18.08.2017 को घोषित अनंतिम परिणाम को समिति द्वारा संशोधित किया जाना था, ताकि 12 न्यायिक अधिकारियों को बाहर रखा जा सके। इसके परिणामस्वरूप कुछ नए नाम शामिल किए गए और उनकी श्रेणी और पारस्परिक योग्यता स्थिति को संशोधित किया गया। इससे आरक्षण के खिलाफ चुने गए उम्मीदवारों की सूची के कामकाज पर तत्काल प्रभाव पड़ा।

78. परिणामस्वरूप, कुल उम्मीदवारों की कम संख्या का चयन किया गया। योग्यता क्रम में परिवर्तन के कारण, न केवल कम संख्या में उम्मीदवारों (कुल 37) को अब पारस्परिक योग्यता के आधार पर चयन सूची में शामिल किया गया था, बल्कि उस श्रेणी को भी बदल दिया गया जिसके तहत उनमें से कुछ का चयन किया गया था। इस प्रकार, कुछ उम्मीदवार जो पहले अनंतिम चयन सूची में आरक्षित श्रेणी में शामिल थे, अब खुद को अनारक्षित पदों के खिलाफ शामिल पाया गया। ओबीसी श्रेणी के तहत केवल एक उम्मीदवार का चयन किया गया था। शेष आरक्षित पद खाली रह गए।

79. इस संबंध में, 01.10.2020 को घोषित अंतिम परिणाम की अधिसूचना नीचे दी गई है:

"इलाहाबाद उच्च न्यायालय

सीधी भर्ती

उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा-2016

संख्या 49/एस एंड ए सेल/2020

दिनांक: इलाहाबाद: 01 अक्टूबर, 2020

(अधिवक्ताओं में से सीधी भर्ती)

एसएलपी (सी) संख्या 14156 वर्ष 2015 धीरज मोर बनाम माननीय उच्च न्यायालय दिल्ली और अन्य संबंधित याचिका से उत्पन्न सिविल अपील संख्या 1698 में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.02.2020 के अनुसरण में, उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा सीधी भर्ती परीक्षा, 2016 के परिणाम को संशोधित किया गया है और निम्नलिखित उम्मीदवार, उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1975 के नियम 15 के साथ पठित नियम 5 (सी) के तहत उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा में सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय द्वारा श्रेणीवार और योग्यता के क्रम में सिफारिश की गई है।

अनारक्षित श्रेणी

1.	*2506*	*जय प्रकाश*	*जनरल*
2	*3195*	*मनमीत सिंह सूरी*	*जनरल*
3	*4420*	*प्रथम कांत*	*जनरल*
4	*4101*	*पारुल जैन*	*जनरल*
5	*1106*	*अशोक कुमार*	*जनरल*
6	*7182*	*विकास गोस्वामी*	*जनरल*
7	*5991*	*सत्येन्द्र नाथ त्रिपाठी*	*जनरल*
8	*5445*	*रोहित रघुवंशी*	*जनरल*
9	*5827*	*संतोष कुमार गौतम*	*जनरल*
10	*5019*	*राकेश पांडेय*	*जनरल*
11	*2465*	*जैनेंद्र कुमार पांडेय*	*जनरल*
12	*4424*	*प्रतीक्षा नागर*	*जनरल*
13	*5293*	*रवि करन सिंह*	*जनरल*
14	*6754*	*सुरेंद्र कुमार*	*जनरल*
15	*7609*	*संदीप गुप्ता*	*जनरल*
16	*1903*	*ध्रुव राय*	*जनरल*
17	*224*	*अजय श्रीवास्तव*	*जनरल*
18	*4151*	*पवन कुमार शर्मा*	*जनरल*
19	*6104*	*शैलेंद्र सचान*	*जनरल*
20	*3106*	*मन मोहन सिंह*	*जनरल*

अनारक्षित

21	*2343*	*हनी गोयल*	*जनरल*
22	*5383*	*रेखा शर्मा*	*जनरल*
23	*2526*	*जितेंद्र कुमार द्विवेदी*	*जनरल*
24	*609*	*आंचल लावनिया*	*जनरल*
25	*5866*	*संतोष कुमार त्रिपाठी*	*जनरल*
26	*7200*	*विकास श्रीवास्तव*	*जनरल*
27	*6223*	*शशि भूषण कुमार शांडिल*	*जनरल*
28	*4425*	*प्रतिमा [एफ]*	*जनरल*
29	*4622*	*राहुल मिश्रा*	*जनरल*
30	*7129*	*विजय कुमार हिमांशु*	*जनरल*
31	*7544*	*योगेश कुमार*	*जनरल*
32	*4150*	*पवन कुमार शर्मा*	*जनरल*
33	*521*	*अमित वर्मा*	*ओबीसी*
34	*7116*	*विजय कुमार*	*ओबीसी*
35	*6808*	*सुरेश कुमार गुप्ता*	*ओबीसी*
36	*7450*	*विवेक कुमार*	*ओबीसी*

अन्य पिछड़ा वर्ग

1.	*6141*	*शाकिर हसन*	*ओबीसी*

***नोट: 05 ओबीसी श्रेणी** के उम्मीदवारों के नाम अनारक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों की सूची में लिखित परीक्षा और साक्षात्कार में उनके अंकों के आधार पर शामिल किए गए हैं और उन्हें अनारक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के रूप में माना जा रहा है।*

(अजय कुमार श्रीवास्तव-I)

महानिबंधक"

80. जाहिर है, याचिकाकर्ताओं द्वारा परिणाम में हेरफेर के रूप में आवाज उठाई जा रही शंकाएं पूरी तरह से निराधार हैं। रिकॉर्ड (जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा सुनवाई के दौरान भी देखा गया है, परिणाम के संबंध में और 23.3.2017 के संकल्प के संबंध में भी), स्पष्ट रूप से अन्यथा दर्शाता है।

81. जहां तक याचिकाकर्ता नंबर 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 और 5 के साथ समानता के बल पर किए गए दावे का संबंध है, इसे इस सरल कारण से खारिज कर दिया जाना चाहिए कि समिति द्वारा अपने विवेक के प्रयोग पर समानता प्रदान नहीं की गई थी, बल्कि, समिति ने केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को प्रभावी किया था। किसी भी उम्मीदवार को किसी भी अदालत द्वारा निर्धारित कानून के माध्यम से या कानून में किसी भी पात्रता के माध्यम से या

रियायत के माध्यम से, अन्यथा दी गई आयु में छूट नहीं दी गई है।

82. इस विषय पर कानून अन्यथा बना हुआ है क्योंकि **हीरंद्र कुमार बनाम उच्च न्यायालय इलाहाबाद और अन्य (2020) 17 एससीसी 401** में, एचजेएस परीक्षा 2018 में उपस्थित होने वाले एक उम्मीदवार हीरेंद्र कुमार द्वारा किए गए इसी तरह के दावे को सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया था और उस याचिकाकर्ता द्वारा **संदीप गुप्ता बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय (उपरोक्त)** के साथ मांगी गई समानता को रद्द कर दिया गया था, इसे इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया था कि उक्त निर्णय बाध्यकारी मिसाल नहीं था, यह संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सुप्रीम कोर्ट की असाधारण शक्तियों के प्रयोग में किया गया था।

83. **सूरज बली सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय (उपरोक्त)** में खंडपीठ के फैसले के बल पर याचिकाकर्ताओं का तर्क भी **हीरंद्र कुमार (उपरोक्त)** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा घोषित कानून के मद्देनजर प्रासंगिक नहीं है।

84. हमें याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण में कोई योग्यता नहीं मिलती है कि श्री कृष्ण कुमार को चयन प्रक्रिया में अनंतिम रूप से भाग लेने की अनुमति देने के कारण चयन प्रक्रिया में कोई अमान्यता उत्पन्न हुई। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रासंगिक समय पर, कानून में स्थिति स्पष्ट नहीं थी। इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा बाद में की गई घोषणाओं से यह स्पष्ट हो गया। जहां तक श्री कृष्ण कुमार को कोई अधिकार नहीं मिला है, किसी भी न्यायालय द्वारा घोषित किसी भी कानून के विपरीत और जहां तक वह एक असफल उम्मीदवार बने हुए हैं, हमें याचिकाकर्ताओं द्वारा स्थापित याचिका में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

85. प्रतिवादी नंबर 5 रिट याचिका वापस नहीं लिया और प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा शुरू रिट कार्यवाही में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक आईए दायर करने के लिए चुना कि तथ्य यह करने के लिए भी जोर दिया गया था. जबकि प्रतिवादी नंबर 5 द्वारा सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश किया गया आचरण हो सकता है, यह इस न्यायालय के लिए नहीं है, कि वह उस मुद्दे की आगे जांच करे। यहां, याचिकाकर्ताओं का दावा है कि उन्हें साक्षात्कार परीक्षा में गलत तरीके से असफल घोषित किया गया है। यदि ऐसा होता भी तो उस मुद्दे को उच्चतम न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए था। सर्वोच्च न्यायालय के साथ क्या विद्यमान था जिसके कारण इस आदेश को उसके द्वारा पारित किया गया था, यह इस अदालत के लिए इस प्रक्रिया में विचार करने के लिए नहीं है। यह मुकदमा एक उचित अंत तक पहुंच गया है और उसमें पारित आदेश को अंतिम रूप दिया गया है, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया जा रहा मुद्दा वर्तमान में अस्तित्वहीन पाया गया है।

86. जहां तक अन्य उत्तरदाताओं का संबंध है, यह याचिकाकर्ताओं का निर्विवाद मामला है कि

चयन समिति द्वारा घोषित परिणाम में उनके नाम बाहर रखे गए थे। **धीरज मोर (उपरोक्त)** मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद यह बहिष्करण लागू किया गया था।

87. वर्तमान कार्यवाही में विचार के लिए कोई और मुद्दा नहीं बचता।

88. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, पूरी चयन प्रक्रिया में कोई मौलिक या वास्तविक अवैधता नहीं पाई गई, जिसमे इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। इसलिए, याचियों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के **दलपत आबासाहेब सोलुंके और अन्य बनाम डॉ. बी.एस. महाजन और अन्य (1990) 1 एस.सी.सी. 305** के फैसले के आधार पर उद्धृत सिद्धांत पूरी तरह से अनुपयुक्त हैं।

89. रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और तदनुसार **खारिज** की जाती है। चूंकि याचिकाकर्ता अधिवक्ता हैं, इसलिए लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है।

(2023) 8 ILRA 1022

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

रिट-ए संख्या 61055 वर्ष 2016

राम कृष्ण @ राम कृष्ण यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

आईओसी एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राहुल श्रीपत, श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री प्रकाश पाडिया, श्री आनंद तिवारी

सेवा विधि - अनुशासन और अपील नियम, 1980 - नियम 26, 31 और 38 - अनुशासनात्मक कार्यवाही - इकबालिया बयान - सीसीटीवी फुटेज - प्राकृतिक न्याय - आचरण - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 65ए, 65बी - बर्खास्तगी आदेश की वैधता - अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकारियों द्वारा तर्कपूर्ण आदेशों की आवश्यकता इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के बिटुमेन ड्रम फिलिंग प्लांट (BDFP), मथुरा को 184 बिटुमेन ड्रमों की चोरी से जुड़े कदाचार के आरोपों के बाद सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। आरोप 17.02.2015 को तीन अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति में पुलिस के समक्ष दिए गए कथित मौखिक स्वीकारोक्ति और सीसीटीवी फुटेज में हेरफेर पर आधारित थे। याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार किया, यातना और जबरन स्वीकारोक्ति का आरोप लगाया। जाँच अधिकारी ने आरोपों को आंशिक रूप से सिद्ध पाया और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने असहमति नोट जारी करने के बाद याचिकाकर्ता को 01.08.2016 को बर्खास्त कर दिया। अपीलीय प्राधिकारी ने 02.12.2016 को अपील को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता ने दोनों आदेशों को चुनौती दी, यह तर्क देते हुए कि जाँच दोषपूर्ण थी, स्वीकारोक्ति साबित नहीं हुई थी, और आदेशों में तर्क का अभाव था।

अभिनिर्धारित: न्यायालय ने माना कि जांच कार्यवाही निम्न कारणों से दोषपूर्ण थी: (i) कथित इकबालिया बयान के साक्ष्य के रूप में अनुपस्थिति और इकबालिया बयान की पुष्टि के लिए पुलिस अधिकारियों को गवाह के रूप में पेश करने में विफलता; (ii) अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा पूछताछ के दौरान इस्तेमाल की गई धमकी भरी भाषा की स्वीकृति और याचिकाकर्ता की व्यथित स्थिति, जो दबाव का संकेत देती है; (iii) सुरक्षा पर्यवेक्षक को पेश करने में विफलता, जिसे कथित रूप से चाबियाँ सौंपी गई थीं; और (iv) साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ए और 65बी के तहत आवश्यक सीसीटीवी फुटेज के प्रमाणीकरण की कमी। याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया, निर्वाह भत्ते के भुगतान के निर्देश दिए गए, और परिणामी लाभ जांच के परिणाम के अधीन किए गए।

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

<u>चर्चा की गई वादविधि:</u>

1. रूप सिंह नेगी बनाम पीएनबी (2009) 2 एससीसी 570

2. यसवंत रेडकर बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड (1998) 3 बॉम सीआर 743

3. आरपी भट्ट बनाम भारत संघ (1986) 2 एससीसी 651

4. राम चंद्र बनाम भारत संघ (1986) 3 एससीसी 103

5. प्रभागीय वन अधिकारी बनाम मधुसूदन राव (2008) 3 एससीसी 469

6. अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल (2020) 7 एससीसी 1

7. रविन्द्र सिंह बनाम पंजाब राज्य (2022) 7 एससीसी 581

8. केएल सिन्हा बनाम मैसूर राज्य (1976) 3 एससीसी 766

9. हरियाणा बनाम रतन सिंह (1977) 2 एससीसी 491

10. जेडी जैन बनाम एसबीआई प्रबंधन (1992) 1 एससीसी 143

11. बलमाडी ईएसटी के कामगार बनाम प्रबंधन (2008) 4 एससीसी 517

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे को विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे की सहायता से और उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद तिवारी को सुना।

2. रिट याचिका में दिए गए अनावश्यक विवरणों में से संक्षिप्त रूप से बताए गए तथ्य हैं कि भारत सरकार, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय के वित्तीय तत्वावधान में इंडियन

ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन जी-9 अली यावर जंग मार्ग, बांद्रा (पूर्व), मुंबई, महारत्न (संक्षेप में प्रतिवादी निगम) द्वारा किए गए चयनों के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को स्टेनो/टाइपिस्ट के रूप में चुना गया था और 15.03.1999 को नियुक्ति दी गई थी। रिट याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि रिट याचिकाकर्ता को 30.07.2012 को बिक्री अधिकारी के रूप में पदोन्नत किया गया था और उसे आजमगढ़ में तैनात किया गया था और बाद में 05.05.2014 को उसे आजमगढ़ से मथुरा टर्मिनल "ए" में ऑपरेशन अधिकारी के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया था और उसने मथुरा में बिटुमेन प्लांट में उक्त तिथि को कार्यभार ग्रहण किया था।

3. रिट याचिकाकर्ता के अनुसार जब वह ऑपरेशन ऑफिसर बीडीएफपी, मथुरा ईएमपी नंबर 30090 के रूप में संयंत्र में "बी" शिफ्ट ड्यूटी पर 13.02.2015 को दोपहर 2:00 बजे से तैनात था। रात 10:00 बजे तक उसने उक्त तिथि को रात 10:00 बजे अपनी ड्यूटी का समय पूरा करने के बाद सुरक्षा पर्यवेक्षक के साथ फाटकों के ताले नियमानुसार सील कर दिए, तथापि यह आरोप है कि 2 कोलतार वाले 184 ड्रमों की चोरी हुई और मामला 14.02.2015 को सुबह दर्ज किया गया।

4. यह रिट याचिकाकर्ता का मामला है कि 17.02.2015 को रिट याचिकाकर्ता के साथ अमृत लाल गुप्ता, ऑपरेशन ऑफिसर, दीपांजन बरई, प्लांट इंचार्ज और गिरिजा शंकर, उप महाप्रबंधक को पुलिस स्टेशन, मथुरा रिफाइनरी में बुलाया गया था और रिट याचिकाकर्ता को थर्ड डिग्री यातना दी गई थी और रिट याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर उसकी इच्छा के विरुद्ध एक खाली शीट पर लिए गए थे और उसे मामले में 18.02.2015 को औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया था धारा 380, 381, 411, 120 बी आईपीसी पीएस रिफाइनरी मथुरा के तहत 2015 का अपराध संख्या 110 और उसके बाद रिट याचिकाकर्ता जेल में बंद था। अंततः अदालतें उनके बचाव में आईं और उन्हें 04.08.2015 को न्यायिक हिरासत से रिहा कर दिया गया। 2015 के मुकदमा अपराध नंबर 667 में न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा के समक्ष आपराधिक मुकदमा चल रहा है।

5. आरोप लगाते हुए, एक ऐसे कार्य में लिप्त होना, जिसके कारण परिसर से निगम की संपत्ति की चोरी हुई, जिससे वित्तीय नुकसान हुआ और निगम की छवि धूमिल हुई, नियम 26, उप-नियम 1 (ए) के तहत प्रावधानों का प्रयोग करते हुए इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के आचरण, अनुशासन और अपील नियम, 1980 रिट याचिकाकर्ता को तीसरे प्रतिवादी द्वारा 18.02.2015 को निलंबित कर दिया गया था, महाप्रबंधक, प्रभारी, यूपीएसओ II, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन, ई -8, सेक्टर 1, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर। 07.08.2015 को रिकॉर्ड के अनुसार, ईडी यूपी एसओ-II सक्षम और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने इसके बाद निलंबन की समीक्षा की, जबकि निलंबन जारी रखा गया जो पहले से ही 18.02.2015 से प्रभावी हो चुका है। रिट याचिकाकर्ता को 31.08.2015 को एक आरोप पत्र जारी किया गया था जिसमें इस आरोप से

संबंधित दो आरोप थे कि जब वह मई, 2014 से फरवरी, 2015 तक बीडीएफपी, मथुरा में "बी" शिफ्ट ड्यूटी पर 13.02.2015 को संयंत्र में "बी" शिफ्ट ड्यूटी पर "बी" के रूप में तैनात थे, तो "बी" के बंद होने पर मानक प्रक्रिया के अनुसार शिफ्ट, उसकी अभिरक्षा के तहत चाबी के साथ फाटकों को बंद करने और हस्ताक्षर के तहत अद्वितीय संख्या प्लास्टिक सील और पेपर सील के साथ गेट को सील करने के लिए आवश्यक है, जिसे बी-होल पर पूरे ताले पर तैनात किया जाना आवश्यक है और ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा पर्यवेक्षक और ताले की चाबियां निवर्तमान अधिकारी के पास रखी जानी चाहिए थीं और सुबह "ए" शिफ्ट अधिकारी को लॉक पेपर सील लॉक और अद्वितीय संख्या, रात की शिफ्ट अधिकारी द्वारा उसी के प्रावधान के रिकॉर्ड के साथ गेट पर प्लास्टिक सील की जांच करने और उसके पास उपलब्ध चाबी के साथ लॉक खोलने की आवश्यकता होती है, लेकिन रिट याचिकाकर्ता ने उक्त मानक प्रक्रिया का उल्लंघन किया और 13.02.2015 को "बी" शिफ्ट ड्यूटी के समापन के बाद श्री भगवान सिंह सुरक्षा पर्यवेक्षक को मुख्य गेट की चाबी सौंप दी और उसने बाद में भगवान सिंह से चाबियां एकत्र कीं। आरोप संख्या 2 के रूप में आरोप के दूसरे बयान के संबंध में, यह आरोप लगाया गया है कि सीआरएमबी जोन के पास स्थित कैम 05 के सीसीटीवी फुटेज में 14.02.2015 को सुबह 00:18 बजे और 2:18:19 बजे के बीच दो ट्रकों का अनुचित प्रवेश और निकास दिखाया गया है, जो 14.02.2015 की सुबह के शुरुआती घंटों में संयंत्र परिसर के भीतर ट्रकों की अनुचित आवाजाही को स्थापित करता है और यह भी देखा गया था कि अन्य सीसीटीवी कैमरे भी परेशान थे उनकी दिशा ऊपर की ओर है यह सुनिश्चित करने के लिए कि जमीनी आंदोलन की कोई रिकॉर्डिंग नहीं देखी जा सकती है। उक्त कृत्यों और चूक के कारण बिटुमेन वाले 184 भरे हुए ड्रमों की चोरी हो गई। उक्त आरोप में यह भी दर्शाया गया है कि रिट याचिकाकर्ता ने 17.02.2015 को श्री गिरजा शंकर डीजीएम (आरसी), मथुरा, श्री दीपांजन बरई, प्लांट इंचार्ज, बीडीएफपी, मथुरा और श्री अमृत लाल गुप्ता एएम (आरसी) की उपस्थिति में श्री भगवान सिंह सुरक्षा पर्यवेक्षक बीडीएफपी, मथुरा को चाबियां सौंपने और उनसे इसे एकत्र करने के लिए पुलिस को एक स्वीकारोक्ति की, जो अन्यथा भी दर्शाता है कि याचिकाकर्ता ने स्वीकारोक्ति के माध्यम से अपना अपराध स्वीकार किया था।

6. आरोपों को घर लाने के लिए 9 दस्तावेजों का प्रदर्शन किया गया और अभियोजन पक्ष ने (क) श्री गिरिजा शंकर, डीजीएम (आरसी), मथुरा; (ख) श्री अमृत लाल गुप्ता, एएम (आरसी), बीडीएफपी, मथुरा; (ग) श्री दीपांजन बरई उप एमजीआर (इंजीनियर), दुर्गापुर डीओ; (घ) जांच कार्यवाहियों के दौरान आवश्यक समझा गया कोई अन्य गवाह।

7. याचिकाकर्ता का दावा है कि वह चार्ज मेमो के लिए प्राप्त करने के लिए हैरान और आश्चर्यचकित था, उसने 27.09.2015 को उसी पर अपना जवाब/आपत्ति प्रस्तुत की, जिसमें 31.08.2015 के आरोप पत्र में निहित आरोपों से इनकार करते हुए कहा गया कि रिट याचिकाकर्ता निर्दोष है और उस पर लगाए जाने

वाले आरोपों में खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं था और उसने कदाचार नहीं किया है। उक्त उत्तर में यह भी कहा गया था कि रिट याचिकाकर्ता ने किसी भी समय श्री भगवान सिंह, सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबियां नहीं सौंपी थीं और चूंकि निगम के अन्य कर्मचारियों के पास भी डिपो की चाबियां थीं, इस प्रकार, चोरी, यदि कोई हो, उनकी गलती के कारण हुई हो सकती है और उसने सीसीटीवी कैमरे में हेरफेर नहीं किया था ताकि कमीशन की कथित गतिविधि को छिपाया जा सके। चोरी और विशेष रूप से इस बात से भी इनकार किया कि उसने अभियोजन पक्ष के गवाह की उपस्थिति में पुलिस प्राधिकारियों के समक्ष किसी भी समय स्वीकारोक्ति नहीं की थी कि उसने चाबी सौंप दी थी और वह लापरवाह था और उसने उक्त कदाचार किया था।

8. आरोप पत्र की तामील और आरोपों से इनकार करते हुए रिट याचिकाकर्ता द्वारा जवाब प्रस्तुत करने के परिणामस्वरूप, सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने एक श्री शैलेश कुमार सिंह, तत्कालीन मुख्य टर्मिनल प्रबंधक, आगरा (टीओपी) को जांच अधिकारी (आईओ) और श्री गौरव गुप्ता उप महाप्रबंधक (पी), मथुरा बीपी को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्त किया।

9. जांच अधिकारी ने तारीखों की संख्या तय करते हुए जांच को आगे बढ़ाया। जांच करने के बाद अधिकारी ने 20.05.2016 को सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि आरोप संख्या 1 और 2 आंशिक रूप से साबित हो रहे हैं।

10. 13.06.2016 को महाप्रबंधक/आईसी यू.पी.एस.ओ. द्वितीय सक्षम अनुशासनिक प्राधिकारी, तीसरे प्रतिवादी ने असहमति के कारणों को दर्शाते हुए एक असहमति नोट जारी किया, जिसमें रिट याचिकाकर्ता को उसी के खिलाफ अपनी आपत्ति प्रस्तुत करने के लिए 5 नोटिस दिए गए। रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने 20.07.2016 को असहमति नोट दिनांक 13.06.2016 के खिलाफ अपना लिखित अभ्यावेदन/आपत्ति प्रस्तुत किया है।

11. तीसरे प्रतिवादी महाप्रबंधक, प्रभारी, यूपीएसओ II, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन, ई-8, सेक्टर 1, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर ने इसके बाद 01.08.2016 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत रिट याचिकाकर्ता पर बर्खास्तगी की सजा लगाई गई।

12. रिट याचिकाकर्ता ने इसके खिलाफ व्यथित होने के कारण अपीलीय प्राधिकारी, दूसरे प्रतिवादी कार्यकारी निदेशक प्रभारी (आपूर्ति), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन जी -9, अली यावर जंग मार्ग, बांद्रा (पूर्व), मुंबई के समक्ष 04.10.2016 को एक वैधानिक अपील दायर की, जिसे दूसरे प्रतिवादी, कार्यकारी निदेशक प्रभारी (आपूर्ति), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन जी -9, अली यावर जंग मार्ग, बांद्रा (पूर्व), मुंबई 02.12.2016 को।

13. तीसरे प्रतिवादी महाप्रबंधक, प्रभारी, यूपीएसओ II, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन, ई-8, सेक्टर 1, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 01.08.2016 के आदेशों पर सवाल उठाते हुए, रिट याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने के साथ-साथ दूसरे प्रतिवादी कार्यकारी निदेशक प्रभारी (आपूर्ति), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.12.2016, इंडियन ऑयल भवन जी-9, अली यावर जंग मार्ग, बांद्रा (पूर्व) ने अपील को खारिज करते हुए रिट याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है और प्रतिवादियों को रिट याचिकाकर्ता को पूर्ण लाभ के साथ बहाल करते हुए सेवा में बने रहने की अनुमति देने का निर्देश देने की मांग की है।

14. इस न्यायालय ने 22.12.2016 को रिट याचिकाकर्ता पर विचार किया और इसमें प्रतिवादियों को अपना जवाब दाखिल करने की आवश्यकता थी।

15. प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की ओर से 07.10.2021 को वरिष्ठ प्रबंधक (कर्मचारी 6 संबंध) इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसके लिए रिट याचिकाकर्ता ने अपना प्रत्युत्तर हलफनामा भी दायर किया है। रिट याचिकाकर्ता द्वारा एक पूरक हलफनामा भी दायर किया गया है जो रिकॉर्ड पर है।

16. रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों की वैधता और वैधता के संबंध में प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों पर जांच शुरू करने से पहले न केवल वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा, बल्कि आरोप ज्ञापन, उत्तर की सामग्री के साथ-साथ अनुशासनात्मक और अपीलीय अधिकारियों द्वारा दर्ज की गई खोज भी उचित होगी (प्रासंगिक उद्धरण)-

<u>श्री राम कृष्ण यादव (याचिकाकर्ता) के खिलाफ़ आरोपों के आरोप का बयान दिनांक 31.08.2015:</u>

संदर्भ संख्या: आईआर/आर (30090)

श्री राम कृष्ण यादव, रोजगार संख्या 30090, संचालन अधिकारी, बीडीएफपी, मथुरा (निलंबन के तहत) के संबंध में तैयार किए गए आरोप के लेखों के समर्थन में आरोप का विवरण।

आरोप है कि मथुरा में मई 2014 से फरवरी 2015 तक संचालन अधिकारी के पद पर तैनात रहे श्री राम कृष्ण यादव ने लोगी और कमीशन के निम्नलिखित कृत्यों को अंजाम दिया। आरोप नीचे दिए गए हैं:

1. कि श्री राम कृष्ण यादव, कर्मचारी संख्या 30090, प्रचालन अधिकारी, बीडीएफपी मथुरा दिनांक 13.02.2015 को संयंत्र में 'बी' शिफ्ट ड्यूटी पर थे। मानक प्रक्रिया के अनुसार, बी शिफ्ट बंद होने पर ड्यूटी पर तैनात अधिकारी को अपनी अभिरक्षा के नीचे चाबी के साथ गेटों को बंद करना होता है और यूनिक नंबर प्लास्टिक सील के साथ गेट को सील करना होता है। हस्ताक्षर के तहत कागज की मुहर को ताले के कीहोल कवर पर चिपकाया जाना आवश्यक है, जिसमें "बी" शिफ्ट अधिकारी के साथ-साथ ड्यूटी पर सुरक्षा पर्यवेक्षक के हस्ताक्षर हों। ताले की चाबियां निवर्तमान अधिकारी के पास रखी जानी चाहिए थी। सुबह

'ए' शिफ्ट अधिकारी को लॉक, लॉक पर पेपर सील और यूनिक नंबर की जांच करने की आवश्यकता होती है। रात की पाली अधिकारी द्वारा उसी के प्रावधान के रिकॉर्ड के साथ गेट पर प्लास्टिक की सील और उसके पास उपलब्ध चाबी के साथ ताला खोलें। हालांकि, श्री राम कृष्ण यादव ने मानक प्रक्रिया का उल्लंघन किया और 13.02.2015 को अपनी "बी" शिफ्ट ड्यूटी समाप्त करने के बाद श्री भगवान सिंह, सुरक्षा पर्यवेक्षक को मुख्य द्वार की चाबी सौंप दी। उन्होंने बाद में श्री भगवान सिंह से चाबियाँ एकत्र कीं। इस प्रकार श्री रामकृष्ण यादव ने संयंत्र के मुख्य द्वार की चाबी संभालने में मानक प्रक्रिया का उल्लंघन किया था।

2. सीआरएमबी के पास स्थित सीएएम 05 के सीसीटीवी फुटेज में 14.02.2015 को सुबह 00.18 बजे और 02:18:19 बजे के बीच दो ट्रकों के अनुचित प्रवेश और निकास को दिखाया गया है, जो 14.02.2015 की सुबह संयंत्र परिसर के भीतर ट्रकों की अनुचित आवाजाही को स्थापित करता है। यह भी देखा गया कि संयंत्र के अन्य सीसीटीवी कैमरे भी उनके निर्देशों को ऊपर की ओर करके परेशान कर रहे थे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जमीनी गतिविधि की कोई रिकॉर्डिंग नहीं देखी जा सके। 14.02.2015 की शाम को संयंत्र की सूची लेने पर यह पाया गया कि 184 ड्रमों की कमी थी।

घटनाओं का अनुक्रम इस तथ्य को स्थापित करता है कि 'बी' शिफ्ट के बंद होने पर संयंत्र छोड़ने से पहले श्री राम कृष्ण यादव द्वारा सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबियां सौंपने के कृत्य के परिणामस्वरूप 13.02.2015/14.02.2015 की रात को संयंत्र से लगभग 184 भरे हुए बिटुमेन ड्रम चोरी हो गए थे। इसमें 13/14.02.2015 की रात को बीडीएफपी प्लांट से 184 भरे हुए ड्रमों की कथित चोरी में श्री राम कृष्ण यादव की संलिप्तता की ओर भी इशारा किया गया है। समाचार दैनिक में दिखाई देने वाली समाचार क्लिपिंग इस तथ्य की ओर भी इशारा करती है कि श्री राम कृष्ण यादव भी कथित चोरी में शामिल थे।

इसके अलावा, श्री राम कृष्ण यादव ने 17.02.2015 को श्री गिरिजा शंकर, डीजीएम (आरसी), मथुरा, श्री दीपनजन बरई, प्लांट मैनेजर, बीडीएफपी मथुरा और श्री अमृत लाल गुप्ता, एएम (आरसी), मथुरा की उपस्थिति में बीडीएफपी मथुरा छोड़ने से पहले श्री भगवान सिंह, सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबियां सौंपने और बाद में उनसे एकत्र करने का एक अपराध कबूल किया था।

श्री राम कृष्ण यादव द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना चाबियां सौंपने की स्वीकारोक्ति के साथ-साथ घटनाओं के क्रम के साथ जिसमें सीसीटीवी कैमरों के साथ छेड़छाड़, 13/14.02.2015 की रात/सुबह परिसर के भीतर ट्रकों की अनुचित आवाजाही शामिल है, संयंत्र से लगभग 184 भरे हुए कोलतार ड्रमों की कथित चोरी में श्री राम कृष्ण यादव की मिलीभगत को इंगित करता है जिससे निगम की संपत्ति को नुकसान हुआ।

इस प्रकार श्री राम कृष्ण यादव ने मानक प्रक्रिया का उल्लंघन करने वाली चाबियां एक गुप्त उद्देश्य से सौंप दीं, जिसके परिणामस्वरूप 13.02.2015 की रात को संयंत्र से लगभग 184 भरे हुए बिटुमेन ड्रमों की चोरी हुई, जिससे निगम की संपत्ति को नुकसान हुआ है। इसके अलावा, प्लांट के सीसीटीवी कैमरों को भी परेशान किया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ग्राउंड मूवमेंट की कोई रिकॉर्डिंग नहीं देखी जा सके।"

<u>अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए जाने के लिए प्रस्तावित प्रदर्श के रूप में दस्तावेजों की सूची:</u>

1. ड्रमों की भौतिक सूची पर रिपोर्ट 14.02.2015 को की गई।
2. श्री गिरिजा शंकर, उप महाप्रबंधक (आरसी), मथुरा का दिनांक 11.08.2015 का विवरण।
3. श्री अमृत लाल गुप्ता, एएम (आरसी), बीडीएफपी, मथुरा का दिनांक 11.08.2015 का विवरण।
4. एमआरटी/चोरी दिनांक 16.02.2015 की जांच रिपोर्ट
5. फरवरी, 2015 के महीने के लिए उपस्थिति रजिस्टर।
6. पत्र रेफरी। शून्य दिनांक 15.02.2015 पुलिस प्रभारी, पुलिस स्टेशन, मथुरा रिफाइनरी को संबोधित किया गया।
7. पुलिस आरोप पत्र संख्या 80/2015 दिनांक 12.04.2015।
8. सीएएम से सीसीटीवी फुटेज 5।
9. विभागीय जांच कार्यवाही के दौरान आवश्यक समझे जाने वाले कोई अन्य दस्तावेज।

<u>अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए गवाहों की सूची:</u>

(क) श्री गिरिजा शंकर, उप महाप्रबंधक (आरसी), मटुरा;
(बी) श्री अमृत लाल गुप्ता, एम (आरसी), बीडीएफपी, मथुरा;
(ग) श्री दीपांजन बरई, उप एमजीआर (इंग्लैंड), दुर्गापुर डो;
(घ) जांच कार्यवाहियों के दौरान आवश्यक समझा गया कोई अन्य गवाह।

<u>दिनांक 31.08.2015 के आरोप पत्र पर याचिकाकर्ता का उत्तर दिनांक 27.09.2015:</u>

आरोप संख्या 1 का उत्तर

यह आपको पुष्टि करने के लिए है कि मैंने दोनों मुख्य द्वारों (इन/आउट) पर उचित लॉकिंग सुनिश्चित की थी, जो सील बुक में ठीक से दर्ज किया गया था और 13/02/2015 को परिसर छोड़ने से पहले दोनों गेटों पर अद्वितीय प्लास्टिक सील नंबर 5401662 (बड़ा/मुख्य गेट नंबर 1) और सील नंबर 5401695 (बड़ा/मुख्य गेट नंबर 2) के साथ-साथ पेपर सील ठीक से किया गया था। यह आगे पुष्टि करने के लिए है कि मैंने सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को मेरे पास उपलब्ध चाबियां नहीं सौंपी

थीं और मेरा उनसे कोई संबंध भी नहीं था। यह भी नोट किया जाए कि इन तालों को खोलने और बंद करने के लिए मास्टर कीज की प्रति के अलावा अन्य अधिकारियों के पास भी चाबियां उपलब्ध थीं।

आरोप संख्या 2 का उत्तर

मुझे "बी" शिफ्ट में तैनात किया गया था और मेरी ड्यूटी केवल 12.02.2015 को 22:00 बजे थी, इसलिए मैं 00:18 बजे और 2:18:19 बजे के बीच ट्रकों की आवाजाही पर टिप्पणी करने की स्थिति में नहीं हूं। महोदय, बीडीएफ संयंत्र में सीसीटीवी कैमरों का प्रावधान है इसलिए अन्य कैमरों के फुटेज की सहायता से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मैं कैमरों की स्थिति को बिगाड़ने में लिप्त नहीं था।

यह इस बात की भी पुष्टि करने के लिए है कि मुझे कैमरों की स्थिति को परेशान करने और इसे कैसे किया गया, इसका कोई ज्ञान नहीं है। मैंने ड्रम की भौतिक सूची में भाग लिया था लेकिन संयंत्र के अन्य अधिकारियों के पास उपलब्ध सूची के आधार पर सैद्धांतिक उपलब्धता दर्ज की गई थी। भौतिक सूची 14.02.2015 को लगभग 23:00 बजे शुरू हुई और अगले दिन सुबह यानी 15.02.2015 को 2:00 बजे तक जारी रही।

मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि मैंने सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबियां नहीं सौंपी हैं, आगे कहा गया है कि समाचार कतरनों के लिए मेरा कोई योगदान नहीं है।

मुझे पुलिस ने बुरी तरह पीटा, जिसमें मुझसे बलपूर्वक स्वीकारोक्ति सुनिश्चित करने के लिए बिजली के झटके का आवेदन भी शामिल था। मैं अत्यधिक यातना, धमकी और बिजली के झटके के तहत स्वीकारोक्ति प्राप्त करने के लिए पुलिस द्वारा यातना सहित उचित समय पर माननीय न्यायालय के समक्ष चाबियां नहीं सौंपने की सच्चाई को दोहराऊंगा।

मैंने पहले ही पुष्टि कर दी है कि मैंने सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबी नहीं दी और सीसीटीवी कैमरों के साथ छेड़छाड़ नहीं की और मैं 13/14.02.2015 की रात/सुबह ट्रकों की टिप्पणियों की स्थिति में नहीं हूं क्योंकि मैं पहले ही 22:00 बजे बिटुमेन प्लांट छोड़ चुका था।

आपको यह भी बताया जाता है कि बीडीएफपी "सी" शिफ्ट यानी 22:00 बजे से सुबह 06:00 बजे तक सुरक्षा कर्मियों की निगरानी में था। संयंत्र की रात/सी शिफ्ट के दौरान निगम का कोई कर्मचारी उपलब्ध नहीं था। मैं उस समय ड्यूटी पर नहीं था और इसलिए मुझ पर लगाए गए सभी आरोप

अटकलों पर आधारित हैं, मुझे बलि का बकरा बनाया और पुलिस द्वारा बलपूर्वक स्वीकारोक्ति की गई।

महोदय, मैं आपको सूचित करना चाहूंगा कि मैं निगम में अपनी 15 वर्षों से अधिक की सेवा के दौरान कभी भी किसी गैर-कानूनी गतिविधि में शामिल/लिप्त नहीं रहा हूं। मैंने हमेशा ईमानदारी, गरिमा और कर्तव्यों के प्रति समर्पण के साथ नैतिक मानकों के उच्चतम स्तर का पालन किया है, जिम्मेदारियों और जवाबदेही के साथ शब्दशः आदेशों / निर्देशों का पालन किया है। महोदय, मैंने राज्य कार्यालय स्तर पर उच्चतम स्तर के प्राधिकारियों के साथ भी काम किया है और अलमारी की चाबियों के साथ अत्यंत संवेदनशील प्रकृति/गोपनीय के अभिलेखों को रखा है लेकिन आरोप का ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है।

मैं विनम्रतापूर्वक आपसे अनुरोध करता हूं कि आप सभी आरोपों से मुक्त हो जाएं और कृपया मेरा निलंबन भी रद्द कर दें।

15.12.2015 की जांच कार्यवाही का प्रासंगिक उद्धरण:

<u>प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा पी.डब्ल्यू. 1 श्री गिरिजी शंकर, डीजीएम (सीआर), मथुरा के मुख्य परीक्षा:</u>

प्रश्न 10: क्या आपको 17.02.2015 को मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था? वहां क्या हुआ?

उत्तर 10: बीडीएफपी संयंत्र/डीजीएम (आरसी), मथुरा कार्यालय से चार व्यक्तियों को 17.02.2015 को मथुरा पुलिस स्टेशन रिफाइनरी में बुलाया गया। मैं, श्री दीपांजन बरई तत्कालीन पीएम बीडीएफपी, मथुरा, श्री गिरिजा शंकर डीजीएम (आरसी), मथुरा और श्री राम कृष्ण यादव (सीएसई) ऑपरेशन अधिकारी, बीडीएफपी, मथुरा, एसएसपी मथुरा उस समय मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में मौजूद थे, श्री भगवान सिंह सुरक्षा पर्यवेक्षक पहले से ही वहां मौजूद थे, एसएसपी मथुरा ने हमें अपना परिचय देने के लिए कहा, सीएसई और सुरक्षा पर्यवेक्षक को पुलिस द्वारा पूछताछ के लिए ले जाया गया।

जब सीएसई वापस लौटा तो उसने डीजीएम (आरसी), मथुरा के सामने स्वीकार किया, मैंने और श्री दीपांजन बरई ने 13.02.2015 की रात को सुरक्षा पर्यवेक्षक को मुख्य द्वार की चाबी दी।

प्रश्न 11: क्या सीएसई ने 13.02.2015 की रात और 14.02.2015 की सुबह बीडीएफपी, मथुरा में हुई 184 बिटुमेन ड्रमों की चोरी के संबंध में पुलिस के सामने अपनी भागीदारी स्वीकार की?

उत्तर 11: हां, उसने स्वीकार किया कि वह 13.02.2015 की रात को

बीडीएफपी, मथुरा में चोरी में शामिल था और उसने मुख्य द्वार की चाबी सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को 13.02.2015 की रात को पुलिस के सामने, स्वयं श्री दीपांजन बरई और गिरिजा शंकर को सौंप दी थी।

पी.डब्ल्यू. 1, गिरजा शंकर उप महाप्रबंधक (आरसी), मथुरा दिनांक 15.12.2015 का प्रतिपरीक्षा।

प्रश्न 5: क्या आपके सामने सीएसई से पूछताछ करते समय पुलिस के साथ कोई हाथापाई की गई?
उत्तर 5: कोई आदमी नहीं संभाला गया था लेकिन सीएसई से धमकी भरी भाषा में पूछताछ की गई थी।
प्रश्न 6: क्या आपको याद है कि पुलिस ने सीएसई से क्या पूछा था?
ए 6: नहीं, मुझे ठीक से याद नहीं है।
प्रश्न 7: जब सीएसई को कुछ समय के लिए पुलिस द्वारा ले जाया गया था और जब वह लौटा तो क्या वह आपको दिखाई दिया कि उसे आदमी के साथ संभाला गया था? 10 ए 7: मुझे नहीं पता कि अंदर क्या हुआ लेकिन वह रोते हुए बाहर आया।
प्रश्न 8: जब सीएसई के अंदर से बाहर आने के बाद आपके सामने सीएसई पुलिस से मौखिक स्वीकारोक्ति प्राप्त की गई थी, तो क्या कोई हाथापाई की गई थी?
जवाब 8: कोई हाथापाई नहीं की गई लेकिन धमकी भरी भाषा का इस्तेमाल किया गया।

पी.डब्ल्यू. 2 श्री अमृत लाल गुप्ता एएम (आरसी) बीडीएफपी, मथुरा दिनांक 18.01.2016 के मुख्य परीक्षा।

प्रश्न 7: क्या आपको 17.02.2015 को मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था? वहां क्या हुआ?
उत्तर 7: हां, मुझे 17.02.2015 की सुबह मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट करने के लिए डीजीएम (आरसी) का फोन आया क्योंकि उन्हें मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन से फोन आया। मैंने डीजीएम (आरसी) मथुरा और अमृत लाल गुप्ता के साथ एएम (आरसी) मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में लगभग 11:00 बजे रिपोर्ट की, सीएसई 10-15 मिनट के बाद वहां पहुंचा।

पी.डब्ल्यू. 2: पी.डब्ल्यू.2 के मुख्य परीक्षा दिनांक 18.01.2016

प्रश्न 4: क्या एसएसपी के अलावा किसी अन्य पुलिस अधिकारी ने भी पुलिस स्टेशन के अंदर सीएसई से पूछताछ की थी?
ए 4: अन्य वरिष्ठ अधिकारी भी मौजूद थे लेकिन मुख्य रूप से एसएसपी, मथुरा हमारे साथ पूछताछ कर रहे थे।
प्रश्न 5: क्या सीएसई को पुलिस स्टेशन के भीतर पूछताछ के लिए कुछ समय के लिए ले जाया गया था?
ए 5: हां, उसे 2-3 मिनट के केबिन से बाहर ले जाया गया था।

जांच रिपोर्ट दिनांक 20.05.2016 का प्रासंगिक उद्धरण-

*"**इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड***

(विपणन प्रभाग)

संदर्भ: ईओ/एसकेएस/2015-16/आरकेवाई/30090

***विषय**: श्री राम कृष्ण, कर्मचारी संख्या 30090, 00 यू/एस, मथुरा टर्मिनल ए, आरोप पत्र संदर्भ: आईआर/आर (30090) दिनांक 31.08.2015 के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच पर जांच अधिकारी की रिपोर्ट।*

डीई ने अपनी सारांश रिपोर्ट में यह भी प्रस्तुत किया है कि सीएसई को प्रताड़ित किया गया था और पुलिस द्वारा दबाव में उससे स्वीकारोक्ति निकाली गई थी, जिसे सीएसई द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, जिसे अभी न्यायिक जांच से गुजरना है, सीएसई की भागीदारी साबित नहीं करता है।

पीओ द्वारा प्रस्तुत सभी गवाहों ने मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में सीएसई द्वारा सीएसई द्वारा 13.02.205 को सुरक्षा पर्यवेक्षक, श्री भगवान सिंह को चाबियां सौंपने की उनकी उपस्थिति में स्वीकारोक्ति की पुष्टि की। उन्होंने अपने बयान में यह भी पुष्टि की कि सीएसई को कुछ समय के लिए उस कमरे से दूर ले जाया गया था, जहां वे पुलिस अधिकारियों के सामने एक साथ बैठे थे और लौटने के बाद सीएसई ने चाबियां सौंपने की बात कबूल की। पीडब्लू 1 ने अपने बयान में प्रतिपरीक्षा में पुष्टि की है कि सीएसई रोते हुए बाहर आया था। प्रश्न और उत्तर नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

प्रश्न 7: जब सीएसई को पुलिस कुछ समय के लिए ले गई और जब वह वापस लौटा तो क्या आपको लगा कि उसके साथ हाथापाई की गई है?

उ०–पता नहीं अंदर क्या हुआ लेकिन वो रोता हुआ बाहर आ गया।

इसलिए, गवाहों द्वारा प्रदर्शन और बयान की जांच करने के बाद, आरोप केवल आंशिक रूप से साबित होता है।"

<u>चार्ज नंबर 2:</u>

सीसीटीवी फुटेज की रिकॉर्डिंग और विश्लेषण के माध्यम से 13-14.02.2015 की रात में कैमरे को झुकाने का काम भी निर्णायक रूप से साबित होता है। <u>उनमें से कम से कम दो (सीएएम 27 और सीएएम 31) झुके हुए थे जब एससीई बीडीएफपी संयंत्र में मौजूद था।</u> चूंकि चोरी उसी रात हुई थी इसलिए कैमरों की स्थिति खराब हो गई थी ताकि ग्राउंड मूवमेंट रिकॉर्ड न हो सके। <u>इसलिए यह आरोप संख्या 2 भी आंशिक रूप से साबित होता है।</u>

***<u>निष्कर्ष:</u>** प्रदर्शन, गवाहों के बयान और निष्कर्षों और प्रत्येक आरोप के खिलाफ निष्कर्ष के माध्यम से प्रस्तुत तथ्यों के मद्देनजर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सीएसई के खिलाफ लगाए गए दोनों आरोप आंशिक रूप से स्थापित किए गए हैं।"*

<u>दिनांक 13.06.2016 के असहमति नोट का प्रासंगिक उद्धरण:</u>

"1. श्री अमृत लाल गुप्ता, एएम (टी), मथुरा टर्मिनल (पीडब्लू -1), श्री दीपांकन

बरई, तत्कालीन बीडीएफपी। प्रभारी अब उप प्रबंधक (इंजीनियरिंग), दुर्गापुर बीपी (पीडब्लू-2) और श्री गिरिजा शंकर, डीजीएम (आरसी), मथुरा (पीडब्लू-3) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वे पुलिस स्टेशन में मौजूद थे जब श्री राम कृष्ण यादव ने 13.02.2015 को श्री भगवान सिंह, सुरक्षा पर्यवेक्षक को चाबियां सौंपने की बात स्वीकार की थी। तीनों ने पुष्टि की है कि श्री राम कृष्ण को कमरे से दूर ले जाया गया था और लौटने के बाद उन्होंने 13.02.2015 को सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को मुख्य द्वार की चाबी सौंपने की बात कबूल की थी।

श्री राम कृष्ण ने अपने बचाव में कहा है कि उन्हें प्रताड़ित किया गया था और दबाव में पुलिस द्वारा उनसे स्वीकारोक्ति ली गई थी। बीई ने दिनांक 21.03.2016 को अपने बयान में अन्य बातों के साथ-साथ कहा है कि "एसएसपी ने मुझे बताया कि वह सही नहीं कह रहे हैं और एसएचओ और अन्य पुलिसकर्मियों से मुझे दूसरे कमरे के अंदर ले जाने के लिए कहा। जब मैं वहां पहुंचा तो उन्होंने मेरे कपड़े उतार दिए और मुझे छड़ी और "पट्टा" (एक प्रकार की बेल्ट) से पीटना शुरू कर दिया, वे मुझे 15-20 मिनट तक पीटते रहे। जब मैं बेहोश हुआ तो उन्होंने पानी छिड़क दिया। मेरा चेहरा और फिर मुझे पीने के लिए चाय दी। चाय पीने के बाद उन्होंने मुझसे घटना का सही संस्करण बताने के लिए कहा, जब मैंने बार-बार कहा कि मैं इस घटना में शामिल नहीं हूं और मुझे नहीं पता कि कौन शामिल है तो उन्होंने मेरे निजी अंगों पर बिजली के झटके का इस्तेमाल किया। उसके बाद वे मुझे वापस एसएसपी के पास ले गए। एसएसपी ने फिर से मुझे सही संस्करण बताने के लिए कहा। एसएसपी मथुरा ने मुझे यह भी बताया कि कमरे में बैठे इंडियन ऑयल के अन्य अधिकारी झूठ नहीं बोल रहे हैं और आप सच्चाई/सही संस्करण बताएं। उसके बाद एसएचओ और सीओ ने सबके सामने मुझे पीटना शुरू कर दिया। उसके बाद मैंने एसएसपी से कहा कि मैं चोरी में शामिल नहीं हूं, लेकिन आगे की यातना से बचने के लिए मैंने उससे कहा कि वह जो चाहे लिख दे। तभी एक पुलिसवाला कोरे कागज का एक टुकड़ा लेकर आया और उस पर मेरे हस्ताक्षर लिए। श्री राम कृष्ण यादव के बयान कि उन्हें प्रताड़ित किया गया था, अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा पुष्टि नहीं की गई है। इस संबंध में पीडब्लू 1 ने अपने बयान में पुष्टि की है कि जब सीएसई कमरे में लौटा तो वह रो रहा था। प्रश्न 8 के जवाब में कि क्या कोई हाथापाई की गई थी, पीडब्ल्यू -1 ने गवाही दी थी कि "कोई हाथापाई नहीं की गई थी, लेकिन धमकी भरी भाषा का इस्तेमाल किया गया था"।

<u>रिट याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन दिनांक 20.07.2016 को असहमति नोट दिनांक 20.05.2016:</u>

"इस विशेष तथ्य/कथित स्वीकारोक्ति को निम्नलिखित कारणों से सच नहीं माना जा सकता है: -

(क) सीएसई ने सुरक्षा पर्यवेक्षक, श्री भगवान सिंह को चाबियां सौंपने की ऐसी किसी तथाकथित स्वीकारोक्ति से इंकार किया है।

(ख) सीएसई को पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया गया था, यह एक सुप्रमाणित तथ्य है।

(ग) मथुरा रिफाइनरी पुलिस स्टेशन में कथित अभिपे्रत स्वीकारोक्ति और कुछ नहीं बल्कि पीडब्ल्यू-1, पीडब्ल्यू-2 और पीडब्ल्यू-3 तथा आरसी/बीडीएफपी, मथुरा रिफाइनरी के अन्य प्रबंधन अधिकारियों की मनगढ़ंत कहानी है जिसका साक्ष्य अधिनियम के अनुसार कोई तथ्यात्मक अथवा कानूनी आधार नहीं है।"

<u>आदेश दिनांक 01.08.2016 सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित सेवा से रिट याचिकाकर्ता को खारिज करना:</u>

"अपने विवेक का इस्तेमाल करने के बाद, और रिकॉर्ड पर लाए गए तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत हूं और आपको कदाचार के निम्नलिखित कृत्यों का दोषी पाता हूं:

7 (1) निगम के व्यवसाय या संपत्ति के संबंध में चोरी, धोखाधड़ी या बेईमानी

7(5) निगम के हितों के प्रतिकूल तरीके से कार्य करना

7(9) कार्य की उपेक्षा या कर्तव्य के निष्पादन में लापरवाही

7(10) निगम की किसी संपत्ति को जानबूझकर या लापरवाही से नुकसान पहुंचाना

*आपके खिलाफ साबित हुए कदाचार के कृत्य की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मैं आपको अनुशासनात्मक कार्रवाई के उपाय के रूप में **"बर्खास्तगी"** का दंड देता हूं। आपको आगे सूचित किया जाता है कि निगम के आचरण, अनुशासन और अपील नियम, 1980 के नियम 38 में निहित प्रावधान के अनुसार,*

यदि आप चाहें तो इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 60 दिनों के भीतर दंड के आदेश के खिलाफ अपील कर सकते हैं। अपील अधोहस्ताक्षरी के माध्यम से अपीलीय प्राधिकारी को संबोधित की जा सकती है।"

<u>अपील ज्ञापन दिनांक 04.10.2016:</u>

अपील में तर्क:-

उत्तर (I) कि मैंने (सीएसई/अपीलकर्ता) सुरक्षा पर्यवेक्षक, श्री भगवान सिंह या किसी अन्य सुरक्षा व्यक्ति को चाबी सौंपने की ऐसी किसी भी कथित स्वीकारोक्ति से इनकार किया।

ii) कि मुझे (सीएसई/अपीलकर्ता) पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया गया था, यह एक अच्छी तरह से सिद्ध तथ्य है।

iii) कि मैंने (सीएसई/अपीलकर्ता) कार्यवाही के दौरान सभी आरोपों को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया।

डी (ii) चूंकि अभियोजन/प्रबंधन के गवाह भी झूठ बोल रहे हैं और मनगढ़ंत बयान दे रहे हैं कि कथित स्वीकारोक्ति मेरे (सीएसई/अपीलकर्ता) द्वारा की गई थी। जबकि, पी.डब्लू.-3 ने 02.03.2016 क्यू2 एवं ए2 को अपनी जिरह में कहा: ***".....लेकिन सिक्योरिटी सुपरवाइजर श्री भगवान सिंह ने थाने में वहां मौजूद आईओसीएल के सभी अधिकारियों के सामने कबूल किया..."***

(iii) प्रस्तावक के मामले में, इन गवाहों द्वारा कथित स्वीकारोक्ति मनगढ़ंत कहानी थी और दस्तावेजी साक्ष्य के विरुद्ध थी। पीओ/प्रबंधन कार्यवाही के दौरान रिकॉर्डेड कथित/कथित इकबालिया बयान पेश करने के लिए बाध्य था, लेकिन वह उसे पेश करने में विफल रहा और इसलिए, दस्तावेजी साक्ष्य के खिलाफ ऐसे किसी भी मौखिक साक्ष्य/बयानों के आधार पर कोई जुर्माना/सजा नहीं दी जा सकती है।

(iv) इसका अर्थ है और यह साबित होता है कि 17.02.2015 को कोई संस्वीकृति / कथित स्वीकारोक्ति / स्वीकारोक्ति बयान नहीं किया गया था जैसा कि उपरोक्त तीन अभियोजन/प्रबंधन गवाहों द्वारा आरोप लगाया गया था।

एम (i) पीई-7 के अनुसार बिटुमन संयंत्र में स्थापित 34 सीसीटीवी कैमरों में से पीओ द्वारा केवल दो/तीन कैमरों के अप्रामाणिक और चयनात्मक वीडियो फुटेज दिखाए गए थे। लेकिन केवल दो या तीन वीडियो फुटेज में कार्यवाही में दिखाई गई सीडी होती है और अन्य फुटेज को पूछताछ के दौरान स्पष्ट रूप से नहीं दिखाया गया था क्योंकि उक्त गवाहों के कुछ निहित स्वार्थ के कारण अधिक फुटेज छिपाए गए थे। सीसीटीवी कैमरों/उनके रख-रखाव की निगरानी करने वाले किसी भी अधिकारी को उसकी अवलोकन/प्रतिपरीक्षा के लिए पेश नहीं किया गया, जो अपने आप में संदिग्ध/संदेह है। इस तरह के सीसीटीवी फुटेज के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है और न ही इसे कार्यवाही में सबूत के रूप में माना जा सकता है।

(ii) विभागीय जांच के दौरान पीओ/प्रबंधन द्वारा साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए सीसीटीवी फुटेज की न तो मूल फुटेज से तुलना की गई है और न ही मूल/प्रामाणिकता का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा, इस तरह के फुटेज न तो कुछ साबित कर सके और न ही इसका कोई साक्ष्य मूल्य था।

(iii) एक विवेकशील व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि जब वह एक कमरे में उपस्थित हो तो वह कमरे से बाहर की गतिविधियों को नहीं देख सकता था। न तो इंसान अपनी पीठ पीछे देख सकता है और न ही कुछ कर सकता है।"

<u>अपीलीय आदेश दिनांक 02.12.2016:</u>

"8) आपकी अपील में आपके तर्कों के संबंध में, मुझे लगता है कि:

जांच कार्यवाही 02.11.2015, 26.11.2015, 15.12.2015, 18.01.2016, 02.03.2016 और 21.03.2016 को आयोजित की गई।

ii 3 प्रबंधन गवाह और 11 अभियोजन पक्ष के प्रदर्शन यानी पी.डब्लू. 1 से पी.डब्लू. 3 और पीई1 से पीई11 को जांच कार्यवाही के दौरान पेश किया गया।

iii रक्षा ने डीडब्लू 1 को गवाह के रूप में और डीइ1 को रक्षा प्रदर्शनी के रूप में प्रस्तुत किया है।

(iv) सीडीए नियमावली, 1980 के नियम 31 के अनुसार और नैसर्गिक न्याय के अनुपालन में जांच की गई है।

v. आपके द्वारा आरोपों से इनकार करने के बाद, आपको बचाव की सुविधा प्रदान की गई और आपने श्री असीम तिवारी, सीएम (आरएस), यूपीएसओ II को अपने बचाव कर्मचारी के रूप में चुना।

vi. आपकी उपस्थिति में और डीई की उपस्थिति में जांच आयोजित की गई थी, जिसमें साक्ष्य प्रस्तुत करना और गवाहों को प्रस्तुत करना शामिल था। सभी गवाहों की परीक्षा और प्रतिपरीक्षण किया गया।

vii. अनुरोधित दस्तावेज आपको 15.12.2015 को आयोजित जांच के दौरान उपलब्ध कराए गए थे।

viii जांच कार्यवाही में शामिल सभी 3 प्रबंधन गवाहों ने उल्लेख किया है कि आपने उनके सामने पुलिस स्टेशन में जांच अधिकारी के सामने कबूल किया था कि 13.02.2015 को बी शिफ्ट बंद करने के बाद, आपने सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को बीडीएफपी मथुरा के मुख्य द्वार की चाबी सौंप दी और श्री भागवान सिंह ने अगले दिन सुबह मथुरा रिफाइनरी टाउनशिप के पास कहीं आपको चाबी लौटा दी।

ix प्रबंधन के 3 साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के दौरान उक्त गवाहों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का खंडन करने के लिए कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं आया है।

x. 21.03.2016 को हुई जांच के दौरान, बचाव कर्मचारी (डीई) के जांच अधिकारी (आईओ) के एक प्रश्न के लिए, डीई ने उल्लेख किया है कि "मेरे पास कोई अन्य गवाह नहीं है और उपरोक्त के साथ मैं अपनी प्रस्तुति समाप्त करता हूं"।

xi. आईओ के एक प्रश्न के अलावा, आपने उल्लेख किया है कि "मैं यह कहना चाहूंगा कि मैं इस घटना में शामिल नहीं हूं और मेरे खिलाफ आरोप सही नहीं हैं। इसलिए मैं आपसे न्याय के लिए अनुरोध करती हूं। इसके बाद आईओ ने संक्षिप्त प्रस्तुत करने की सलाह दी और तदनुसार पीओ और आप/डीई ने संक्षिप्त प्रस्तुत किया।

xii. सीडीए ने एक विस्तृत आदेश द्वारा जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर विचार करते हुए जांच अधिकारी के निष्कर्षों के साथ मतभेद किया है जो आपको अपना

लिखित अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत किया गया था।

xiii. सीडीए ने दिनांक 01.08.2016 के अंतिम आदेश के तहत एक तर्कपूर्ण बोलने का आदेश पारित किया है और आप पर 'बर्खास्तगी' का दंड लगाया है। मैंने अपने दिमाग का इस्तेमाल किया है और मुझे लगता है कि आपने 04.10.2016 की अपनी अपील में कोई नया तथ्य/परिस्थितियां सामने नहीं लाई हैं, जो सीडीए के 01.08.2016 के अंतिम आदेश के साथ मेरे हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। इसके अलावा, "बर्खास्तगी" का दंड आपके द्वारा किए गए कदाचार के सिद्ध कृत्यों के लिए न्यायसंगत और आनुपातिक पाया जाता है। तदनुसार, मैं आपकी अपील को अस्वीकार करता हूं।"

<u>आचरण, अनुशासन और अपील नियम, 1980 का नियम 26: नियम 26 निलंबन</u>

(1) अनुशासनिक प्राधिकारी या कोई अन्य प्राधिकारी जिसे प्रबंधन द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा उस निमित्त अधिकार दिया गया है, किसी कर्मचारी को निलम्बित कर सकेगा।

(क) जहां उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही पर विचार किया जाता है या लंबित है; नहीं तो

(ख) जहां किसी आपराधिक अपराध के संबंध में उसके खिलाफ कोई मामला जांच या विचारण के अधीन है।

***(2)** कोई कर्मचारी जो पुलिस हिरासत में रखा गया है, चाहे वह आपराधिक आरोप में हो या अन्यथा, 48 घंटे से अधिक की अवधि के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश द्वारा निरोध की तारीख से निलंबित समझा जाएगा, और अगले आदेशों तक निलंबन में रहेगा।*

***(3)** जहां निलंबन के अधीन किसी कर्मचारी पर अधिरोपित सेवा से बर्खास्तगी या निष्कासन का दंड इन नियमों के अधीन अपील पर या पुनवलोकन पर रद्द कर दिया जाता है और मामला आगे की जांच या कार्रवाई या किसी अन्य निदेश के साथ विप्रेषित कर दिया जाता है वहां उसके निलंबन का आदेश बर्खास्तगी या हटाए जाने के मूल आदेश की तारीख को और उससे प्रवृत्त समझा जाएगा और आगे तक प्रवृत्त रहेगा आदेश।*

***(4)** जहां किसी कर्मचारी पर लगाई गई बर्खास्तगी या सेवा से हटाने का दंड कानून के न्यायालय के निर्णय के परिणामों में या उसके द्वारा रद्द कर दिया जाता है या घोषित या शून्य कर दिया जाता है और अनुशासनिक प्राधिकारी, मामले की परिस्थितियों पर विचार करने पर, उस आरोप पर उसके खिलाफ एक और जांच करने का फैसला करता है जिस पर बर्खास्तगी या हटाने का दंड मूल रूप से लगाया गया था, कर्मचारी को बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तारीख से*

अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निलंबन के तहत रखा गया माना जाएगा और अगले आदेश तक निलंबन में रहेगा।"

17. रिट याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री सिद्धार्थ खरे द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, ने प्रस्तुत किया कि तीसरे प्रतिवादी द्वारा पारित दिनांक 01.08.2016 के आदेश के साथ-साथ दूसरे प्रतिवादी द्वारा बर्खास्तगी की सजा देने और अपील को खारिज करने के आदेश दिनांक 01.12.2016 को पारित किया गया है, जो कानून की नजर में अस्थिर हैं। उक्त सबमिशन को विस्तृत करते हुए यह तर्क दिया गया है कि घटनाओं की पूरी श्रृंखला से पता चला है कि एक आरोप लगाया गया है कि कुछ कृत्यों और चूक के कारण 13.02.2015 को कथित रूप से किया गया था, जबकि रिट याचिकाकर्ता को 13.02.2015 को ऑपरेशन ऑफिसर, बीडीएफपी, मथुरा के रूप में तैनात किया गया था जब वह "बी" पर था उन्होंने प्रचलित मानदंडों के खिलाफ मुख्य द्वार की चाबी सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को सौंप दी और उसे एकत्र किया, अन्यथा भी जिसके कारण 184 बिटुमन के ड्रम चोरी हो गए, जिससे न केवल वित्तीय नुकसान हुआ बल्कि निगम की छवि भी धूमिल हुई। रिट याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उक्त चोरी की सूचना 14.02.2015 की सुबह दी गई थी और 17.02.2015 को याचिकाकर्ता के साथ पीडब्ल्यू 1 श्री गिरजा शंकर डीजीएम (सीआर), पीडब्ल्यू 2 श्री अमृत लाल गुप्ता एएम (सीआर) बीडीएफपी, मथुरा और पीडब्ल्यू 3 उप प्रबंधक को पुलिस स्टेशन, मथुरा रिफाइनरी मथुरा में बुलाया गया था, जिसमें रिट याचिकाकर्ता को थर्ड डिग्री यातना दी गई थी और खाली शीट पर हस्ताक्षर किए गए थे और उन्होंने औपचारिक रूप से 18.02.2015 को गिरफ्तार किया गया था और उसे 31.07.2015 को जमानत दी गई थी और 04.08.2015 को न्यायिक हिरासत से रिहा कर दिया गया था।

18. प्रस्तुत किया गया है कि पूरी चार्जशीट रिट याचिकाकर्ता द्वारा पीडब्ल्यू 1, पीडब्ल्यू 2 और पीडब्ल्यू 3 की उपस्थिति में संबंधित पुलिस स्टेशन में पुलिस अधिकारियों के समक्ष किए गए कथित स्वीकारोक्ति पर आगे बढ़ती है, हालांकि, सच्चाई यह है कि उसने उक्त कदाचार या अपराध करने का अपना अपराध कबूल नहीं किया है और पूरी कहानी सिर्फ थप्पड़ मारने के लिए झूठ के बंडल के अलावा और कुछ नहीं है रिट याचिकाकर्ता को ड्यूटी से बेदखल करते हुए आपराधिक और अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ।

19. संक्षेप में, रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि रिट याचिकाकर्ता ने श्री भगवान सिंह, सुरक्षा पर्यवेक्षक को प्रचलित मानदंडों के खिलाफ चाबियां सौंपने के बारे में कोई स्वीकारोक्ति की थी और सीसीटीवी के साथ छेड़छाड़ की थी तो इसे लिखित रूप में कम किया जाना चाहिए क्योंकि स्वीकारोक्ति एक स्वीकार्य साक्ष्य के चरित्र का हिस्सा नहीं हो सकती है या अभियोजन पक्ष को रिट याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के लिए हाथ नहीं दे सकती है जब तक

कि रिट याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता और जब तक इसकी न केवल पुष्टि नहीं की जाती है, बल्कि आसपास की परिस्थितियां भी स्पष्ट रूप से उसी की ओर इशारा करती हैं।

20. श्री खरे आगे प्रस्तुत करते हैं कि रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप तय करने का आधार इकबालिया बयान है और अभियोजन पक्ष के तीन गवाह इस मामले के साथ आए हैं कि रिट याचिकाकर्ता ने पुलिस अधिकारियों और अभियोजन पक्ष के गवाह की उपस्थिति में पुलिस स्टेशन में दिनांक 13.02.2015 की किसी भी घटना के संबंध में 17.02.2015 को अपना अपराध कबूल किया। श्री खरे ने पीडब्ल्यू 1 गिरजा शंकर डीजीएम (आरसी), मथुरा दिनांक 15.12.2015 के मुख्य परीक्षा प्रश्न संख्या 10 की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है जिसमें पीडब्ल्यू 1 ने गवाही दी थी कि रिट याचिकाकर्ता ने अभियोजन पक्ष के गवाह के सामने स्वीकार किया था कि उसने 13.02.2015 को सुरक्षा पर्यवेक्षक को मुख्य द्वार की चाबी दी थी, वह आगे प्रस्तुत करता है कि प्रश्न संख्या 5 के जवाब में पीडब्ल्यू 1 (गिरजा शंकर) की जिरह में पीडब्ल्यू 1 ने जवाब दिया था कि हालांकि कोई हाथापाई नहीं की गई थी, लेकिन रिट याचिकाकर्ता से धमकी भरी भाषा में पूछताछ की गई थी। यहां तक कि प्रश्न संख्या 8 के उत्तर में पीडब्ल्यू 1 के बयान में भी उक्त स्टैंड आया है। श्री खरे ने प्रश्न संख्या 7 के उत्तर के संबंध में पीडब्ल्यू 1 गिरजा शंकर की जिरह की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें पीडब्ल्यू 1 ने गवाही दी थी कि हालांकि उन्हें नहीं पता था कि केबिन के अंदर क्या हुआ था जहां पूछताछ की गई थी, लेकिन चार्जशीट कर्मचारी (रिट याचिकाकर्ता) रोते हुए बाहर आया।

21. रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिया गया तर्क यह है कि अगर कोई इकबालिया बयान होता तो उसे आरोप पत्र के प्रदर्शों और भाग और पार्सल में से एक बनाया जाना चाहिए था ताकि आरोपों को घर लाया जा सके और एक बार मूल दस्तावेज जिसके आधार पर पूरे आरोप लगाए गए हैं और संरचित किया गया है, वह मौजूद नहीं है, तो आरोपों को साबित नहीं कहा जा सकता है रिट याचिकाकर्ता।

22. श्री खरे द्वारा इस बात पर भी जोर दिया गया है कि एक बार जब अभियोजन पक्ष के गवाह इस बात पर सहमत हो गए कि आरोप-पत्र वाले कर्मचारी को धमकी दी गई थी और वह रोते हुए बाहर आया और अभियोजन पक्ष के गवाह और अन्य पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा पूछताछ की गई, तो उक्त परिस्थितियां स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि स्वीकारोक्ति, यदि कोई हो, तो स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति नहीं हो सकती क्योंकि सभी संभावनाओं और संभावनाओं के अनुसार यह दबाव में एक बलपूर्वक स्वीकारोक्ति है और यह रिट याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने का आधार नहीं हो सकता है।

23. सीसीटीवी कैमरे के हेरफेर के संबंध में ताकि उक्त घटना को छिपाने का संबंध है, रिट याचिकाकर्ता प्रस्तुत करता है कि वह शुरू से ही मूल सीसीटीवी फुटेज के लिए पूछ रहा था

जिसे सत्यापित और प्रमाणित किया जाना है, लेकिन किसी भी प्रमाणन के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि रिट याचिकाकर्ता दोषी है, खासकर जब प्रश्न में डिपो की चाबी अन्य कर्मचारी या कर्मचारियों के पास थी निगम का।

24. श्री खरे ने **रूप सिंह नेगी बनाम पीएनबी और अन्य 2009 (2) एससीसी 570** के मामले में निर्णय और **यशवंत रेडकर बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड 1998(3) बॉम. में रिपोर्ट किया गया सीआर 743 में बॉम्बे हाईकोर्ट** के फैसले पर भरोसा किया है। रिट याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे कहा कि 28.05.2016 की जांच रिपोर्ट हालांकि यह रिट याचिकाकर्ता को दोनों आरोपों के लिए आंशिक रूप से दोषी ठहराती है, हालांकि, उक्त जांच इस निष्कर्ष पर पहुंचने में किसी भी कारण से परे है कि कैसे आरोप रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ आंशिक रूप से साबित हुए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी के 13.06.2016 को असहमति नोट प्राप्त होने के परिणामस्वरूप, रिट याचिकाकर्ता ने 20.07.2016 को प्रत्येक मुद्दे पर बिंदुवार अपनी आपत्ति प्रस्तुत की, जबकि न केवल विस्तृत कारण दिए कि आरोप साबित नहीं हुए, बल्कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 01.08.2016 के आदेश के आधार पर रिट याचिकाकर्ता की आपत्ति को खारिज कर दिया है और निष्कर्ष पर आने में कोई कारण दर्ज किए बिना बर्खास्तगी आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा है। एक गुप्त आदेश पारित करना। बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ रिट याचिकाकर्ता ने 14.10.2016 को एक वैधानिक अपील को प्राथमिकता दी, जिसमें सभी आधारों को प्रदर्शित किया गया था कि कोई भी आरोप साबित नहीं हुआ, इसे पूरी तरह से एक गैर-स्पष्ट और तर्कसंगत आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है और इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ वकील के अनुसार "विचार करने के लिए" शब्द की उपस्थिति तात्पर्य यह है कि अपीलीय प्राधिकारियों को उसके विवेक का प्रयोग करते समय एक तर्कसंगत और मौखिक आदेश पारित करने का आदेश दिया जाता है। **आरपी भट्ट बनाम भारत संघ (1986) 2 एससीसी 651 और राम चंदर बनाम भारत संघ और अन्य (1986) 3 एससीसी 103** के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

25. **प्रभागीय वन अधिकारी काठगुडेम और अन्य बनाम मधुसूदन राव (2008) 3 एससीसी 469** के मामले में निर्णय पर और भरोसा किया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि अपीलीय और पुनरीक्षण अधिकारियों के स्तर पर विभागीय कार्यवाही के मामले में प्रतिज्ञान का आदेश भी बोलने और तर्कसंगत आदेश होना चाहिए।

26. श्री खरे विद्वान वरिष्ठ वकील ने **अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल और अन्य** के मामले में भी फैसले पर भरोसा किया है, **(2020) 7 एससीसी 1 और रवींद्र सिंह उर्फ काकू बनाम पंजाब राज्य में रिपोर्ट किया गया, (2022) 7 एससीसी 581** में रिपोर्ट किया गया ताकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ए और 65बी के तहत यह तर्क दिया जा सके, इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की

स्वीकार्यता के संबंध में, उक्त प्रावधानों का अनुपालन अनिवार्य है।

27. उक्त सबमिशन का विरोध करते हुए, श्री आनंद तिवारी जो प्रतिवादी निगम के लिए उपस्थित होते हैं, ने प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश पूरी तरह से उचित हैं और विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कोई अपवाद नहीं बनाया जा सकता है कि यहां रिट याचिकाकर्ता को यह कर्तव्य सौंपा गया था कि वह चाबियां अपने पास रखे और उसे किसी और को न सौंपे और वह ऑपरेशन ऑफिसर ने ऐसे कार्य और चूक की थी, जिसके कारण न केवल निगम को वित्तीय नुकसान हुआ था, बल्कि छवि धूमिल हुई थी।

28. श्री तिवारी के अनुसार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है क्योंकि रिट याचिकाकर्ता को चार्जशीट जारी की गई है, उसने अपना जवाब प्रस्तुत किया और प्रश्नगत नियमों के अनुसार जांच कार्यवाही की गई, हालांकि जांच अधिकारी द्वारा आरोप आंशिक रूप से साबित किए गए लेकिन असहमति नोट जारी किया गया और आपत्तियों पर विचार करने के बाद अंततः बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया जो अपील में किया गया था और उसी की पुष्टि भी की गई थी।

29. प्रस्तुत करना यह है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत एक स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला नहीं है, बल्कि पूर्वाग्रह का सिद्धांत भी एक भूमिका निभाता है और आगे रिट याचिकाकर्ता को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है ताकि किसी भी हस्तक्षेप को वारंट किया जा सके।

30. जहां तक रिट याचिकाकर्ता के आरोप का संबंध है कि उसने अपने कदाचार को कबूल नहीं किया है, यह गलत होने के अलावा स्पष्ट रूप से गलत है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 17.02.2015 को रिट याचिकाकर्ता ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति में, जो संख्या में तीन हैं, पुलिस अधिकारियों के समक्ष इकबालिया बयान दिया, हालांकि, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने के बाद एक नई कहानी गढ़ी जा रही है। प्रतिवादियों के वकील का निवेदन यह है कि उसके पास उपलब्ध रिकॉर्ड से हो सकता है, इकबालिया बयान रिकॉर्ड पर नहीं है, लेकिन यह किसी भी तरह से रिट याचिकाकर्ता को आरोपों से मुक्त नहीं करता है क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान के माध्यम से पुष्टि और आसपास की परिस्थितियों में ही यह इंगित किया गया है कि रिट याचिकाकर्ता ने कदाचार कबूल किया था। श्री आनंद तिवारी द्वारा **केएल सिन्हा बनाम मैसूर राज्य 1976 (3) एससीसी 766, हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह 1977 (2) एससीसी 491, जेडी जैन बनाम भारतीय स्टेट बैंक प्रबंधन 1992 (1) एससीसी 143 और बालमाड़ी राज्यों के कामगार 2008 (4) एससीसी 517** के मामले में निर्णयों सहित विभिन्न निर्णयों पर भरोसा किया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि साक्ष्य अधिनियम विभागीय में लागू नहीं है कार्यवाही और प्राकृतिक न्याय के आगे के सिद्धांतों को सार में लागू नहीं किया जा सकता है और अनुच्छेद 226 के तहत यह

न्यायालय अपराधी कर्मचारी के बचाव में नहीं आएगा जहां कदाचार के आरोप स्पष्ट और साबित होते हैं। इस प्रकार, श्री तिवारी ने प्रार्थना की कि रिट याचिका को खारिज कर दिया जाए।

31. मैंने पक्षों के विद्वान वकील को सुना है और उस रिकॉर्ड का अवलोकन किया है जो 20.07.2023 को दिनांक 04.07.2023 के आदेश के अनुसार इस न्यायालय के समक्ष रखा गया है।

32. निर्विवाद रूप से, बीडीएफपी, मथुरा के प्रभारी अधिकारी के रूप में तैनात रहते हुए रिट याचिकाकर्ता ने कुछ कृत्यों और चूक को अंजाम दिया है, जिसके तहत 13.02.2015 को, उसने "बी" शिफ्ट के बंद होने पर मानक प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए श्री भगवान सिंह सुरक्षा अधिकारी को चाबियां सौंप दीं, जिसे उनके द्वारा रखा जाना था और उसके बाद श्री भगवान सिंह से इसे ले लिया जिससे 184 बिटुम ड्रम चोरी हो गए जिससे निगम को वित्तीय नुकसान हुआ और उसकी छवि धूमिल हुई। आरोपों से आगे पता चलता है कि रिट याचिकाकर्ता ने सीसीटीवी कैमरे के साथ छेड़छाड़ की गई गलत कामों को कवर करने के लिए इसे एक अलग दिशा में घुमाया ताकि उसके द्वारा किए गए कृत्यों और चूक को रिकॉर्ड न किया जा सके। इसके अलावा रिट याचिकाकर्ता ने 17.02.2015 को एसएसपी, मथुरा के समक्ष पुलिस स्टेशन, मथुरा रिफाइनरी में अभियोजन पक्ष के गवाह की उपस्थिति में एक स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति भी की कि उसने श्री भगवान सिंह को चाबी सौंप दी थी जिसके कारण चोरी हुई थी और उसने दोषी ठहराया और कदाचार दर्ज किया। यह भी विवाद में नहीं है कि उक्त कथित स्वीकारोक्ति घटना के चार दिनों के बाद 17.02.2015 की है, जिसे 13.02.2015 होना बताया गया है।

33. पक्षकार इस बात पर भी सहमत हैं कि रिट याचिकाकर्ता को 18.02.2015 को गिरफ्तार किया गया था और न्यायालय के दिनांक 31.07.2015 के आदेश से रिट याचिकाकर्ता को जमानत दे दी गई थी और उसे 04.08.2015 को न्यायिक हिरासत से रिहा कर दिया गया था। इसके बाद 31.08.2015 को रिट याचिकाकर्ता को एक चार्जशीट जारी की गई जिसे फैसले के पहले हिस्से में निकाला गया है। आरोपों को साबित करने के लिए आरोपों को घर लाने के लिए 9 प्रदर्शनों को ध्यान में रखा गया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि हालांकि पुलिस स्टेशन, मथुरा रिफाइनरी के पुलिस प्रभारी और 2015 की पुलिस चार्जशीट संख्या 80 दिनांक 12.04.2015 को संबोधित दिनांक 15.02.2015 के पत्र को प्रदर्शित किया गया था, लेकिन रिट याचिकाकर्ता के 17.02.2015 के कथित इकबालिया बयान को चार्जशीट का हिस्सा और पार्सल नहीं बनाया गया था, हालांकि, चार्जशीट में रिट याचिकाकर्ता के कथित कबूलनामे के आधार पर आरोप शामिल हैं। इसके अलावा, गवाहों की सूची में, इंडियन ऑयल कार्पोरेशन के अधिकारी होने के नाते 3 गवाहों को अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में चिन्हित किया गया था लेकिन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के साथ-साथ पुलिस अधिकारी जो इकबालिया बयान देने के दौरान उपस्थित थे, को गवाह के रूप में चिह्नित नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने

27.09.2015 के आरोप पत्र के अपने जवाब में विशेष रूप से उक्त आरोपों से इनकार किया, जबकि 22 के साथ यह रुख पेश किया कि उसने श्री भगवान सिंह को चाबी नहीं दी थी और आगे जवाब के तीसरे पृष्ठ में रिट याचिकाकर्ता ने कहा कि उसे पुलिस द्वारा बुरी तरह से पीटा गया था, जिसमें बिजली के झटके का आवेदन भी शामिल था ताकि उससे बलपूर्वक स्वीकारोक्ति सुनिश्चित हो सके।

34. पी.डब्ल्यू. 1 श्री गिरजा शंकर डीजीएम (आरसी), मथुरा दिनांक 15.12.2015 की परीक्षा में रिट याचिकाकर्ता द्वारा दिए जा रहे इकबालिया बयान से संबंधित प्रश्न संख्या 10 और 11 पर ध्यान दिया गया था, हालांकि, प्रश्न संख्या 5 और 8 के उत्तर में पीडब्ल्यू 1 की प्रतिपरीक्षा में यह पीडब्ल्यू 1 की ओर से एक स्वीकारोक्ति है कि हालांकि कोई हाथापाई नहीं की गई थी, लेकिन रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ धमकी भरी भाषा का इस्तेमाल किया गया था और प्रश्न संख्या 7 के उत्तर में आगे कहा गया है कि पीडब्ल्यू 1 को पता नहीं था कि अंदर क्या हुआ लेकिन रिट याचिकाकर्ता रोते हुए बाहर आया। यही बात पी.डब्ल्यू. हालांकि जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, आरोपों को आंशिक रूप से साबित माना है, लेकिन मूल आधार जिस पर आरोप आंशिक रूप से साबित पाए गए थे, वह भी इस न्यायालय के विश्वास को प्रेरित नहीं करता है, विशेष रूप से क्योंकि उक्त निष्कर्ष पर आने के कारणों के संबंध में कोई चर्चा नहीं हुई है, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 13.06.2016 को एक असहमति नोट जारी किया जिसमें वही आरोप रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ इस आधार पर साबित होते दिखाए गए हैं कि रिट याचिकाकर्ता ने पुलिस स्टेशन में ही अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति में कदाचार और अपराध को कबूल किया था, इस प्रकार, आरोप रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ साबित हुए। रिट याचिकाकर्ता ने असहमति नोट प्राप्त होने के बाद 20.07.2016 को अपना जवाब दिया, विशेष रूप से इसका खंडन करते हुए यह भी प्रदर्शित किया कि उसने उदाहरण और विवरण देकर कथित रूप से उसके द्वारा किए गए उक्त कदाचार को कबूल नहीं किया था, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 01.08.2016 के आधार पर आपत्ति को खारिज कर दिया और बर्खास्तगी की सजा लगाई जिसके खिलाफ 14.10.2016 को अपील दायर की गई थी, जिसे भी अकारण आदेश द्वारा पूरी तरह से खारिज कर दिया गया था।

35. विशेष रूप से, पूरे आरोप कथित इकबालिया बयान से उपजे हैं। बताया जाता है कि रिट याचिकाकर्ता ने मथुरा रिफाइनरी के पुलिस स्टेशन में एसएसपी और अभियोजन पक्ष के गवाह सहित पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति में इकबालिया बयान दिया है। आरोप पत्र में संलग्न गवाहों की सूची में न तो एसएसपी जिसके समक्ष उक्त स्वीकारोक्ति की बात कही गई है और न ही अन्य पुलिस अधिकारी जो उपस्थित थे, इसका हिस्सा और पार्सल हैं, जो वास्तव में भी न्यायालय के विश्वास को प्रेरित नहीं करता है, खासकर जब इकबालिया बयान रिकॉर्ड पर नहीं है। श्री आनंद तिवारी से बार-बार पूछे जाने पर, जो प्रतिवादी निगम की ओर से पेश होते हैं कि क्या कोई

इकबालिया बयान है या नहीं, जिसके लिए श्री आनंद तिवारी ने बार में एक विशिष्ट बयान दिया था कि इकबालिया बयान पुलिस रिकॉर्ड का हिस्सा नहीं है और यह रिकॉर्ड में भी उपलब्ध नहीं है। वह प्रस्तुत करता है कि इकबालिया बयान मौखिक है और लिखित रूप में कम नहीं है और इस प्रकार, उक्त आधार पर रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए गए हैं।

36. कानून के न्यायालय उपयुक्त मामलों में मौखिक इकबालिया बयान पर भरोसा करेंगे, लेकिन यहां, वर्तमान मामले में कुछ रिडीमिंग विशेषताएं हैं जो अमूर्त सिद्धांत के आवेदन से न्यायालय को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के पुष्टिकरण और मूल्यांकन के बिना इकबालिया बयान पर भरोसा करने के लिए प्रेरित नहीं करेंगी; (क) इकबालिया बयान 17.02.2015 को दर्ज किया गया है जबकि घटना 13.02.2015 को हुई थी; (ख) वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक या पुलिस अधिकारी, जिनके समक्ष पुलिस स्टेशन में मौखिक रूप से संस्वीकृति बयान दर्ज किया गया था, न तो अभियोजन गवाह के रूप में चिह्नित किए जाते हैं और न ही अभियोजन की कहानी को साबित करने के लिए पेश किए जाते हैं; (ग) अभियोजन पक्ष के अनुसार गवाहों को धमकी दी गई थी यद्यपि हाथापाई नहीं की गई थी और आरोप-पत्रित कर्मचारी रोते हुए बाहर आया था। श्री अशोक खरे विद्वान वरिष्ठ वकील ने **रूप सिंह नेगी** (उपरोक्त) के मामले में एक फैसले पर भरोसा किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि इकबालिया बयान को चार्जशीट किए गए कर्मचारी के खिलाफ आरोप लगाने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। **रूप सिंह नेगी** (उपरोक्त) के मामले में आरोप-पत्र में दाखिल कर्मचारी को दोषी ठहराने के लिए इकबालिया बयान पर दबाव डाला गया था, हालांकि, स्वीकारोक्ति साबित नहीं हुई थी, हालांकि वह पुलिस अधिकारियों के समक्ष की गई थी।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 4, 5, 14 और 15 में निम्नानुसार टिप्पणी की-

4. उक्त घटना के पांच साल बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ एक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसमें कहा गया था कि 18.11.1991 और 09.10.1993 की अवधि के दौरान, उसने एक खाली ड्राफ्ट इश्यू बुक को ले लिया था, जिसमें नंबर 626401 से 62645 था। कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। कारण उसके द्वारा दिखाया गया था। जांच अधिकारी ने उन्हें दोषी पाया। उक्त कार्यवाही में, वर्ष 1993 में पुलिस अधिकारियों के समक्ष अपीलकर्ता के कथित कबूलनामे पर भरोसा किया गया था। इसे प्रदर्श पीई -3 के रूप में चिह्नित किया गया था।

***5.** निर्विवाद रूप से, बैंक से संबंधित फॉर्म और अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें और दस्तावेज कभी भी चपरासी की कस्टडी में नहीं रहते हैं। यह स्वीकार किया गया कि पुलिस अधिकारियों द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र किए गए थे। उन दस्तावेजों को बस उत्पादित किया गया*

था; वे साबित नहीं हुए। अपीलकर्ता द्वारा कथित स्वीकारोक्ति भी साबित नहीं हुई। केवल इसलिए कि उक्त स्वीकारोक्ति पुलिस अधिकारियों के समक्ष की गई थी, जांच अधिकारी ने उसके आधार पर अनुमान लगाया कि अपीलकर्ता का उन व्यक्तियों के साथ संबंध था जिन्होंने उन बैंक ड्राफ्ट का इस्तेमाल किया था, जिसमें कहा गया था:

"... इसलिए, अधोहस्ताक्षरी की राय है कि प्रदर्श पीई -4 साबित करता है कि श्री रूप सिंह नेगी के उक्त अपराधियों के साथ संबंध हैं। दिनांक 20-07-1999 को गवाह एमडीडब्ल्यू 1 से पूछताछ करने पर उसने कहा है कि श्री रूप सिंह नेगी के बयान के अनुसार, उसने स्वीकार किया है कि राजबीर, देविंदर उर्फ मेंटल, आसिफ और ब्रह्मपाल के निर्देश/कहने पर, जो यमुना पार क्षेत्र के निवासी हैं, उसने मसौदा पुस्तक चुराई थी।

अन्य बातों के साथ-साथ यह निष्कर्ष निकाला गया था :

"उपरोक्त विवरण/कार्यवाही के मद्देनजर, यह साबित होता है कि अपराधी कर्मचारी ने स्वीकार किया है कि ड्राफ्ट नं। क्यूडब्ल्यूए-626401 से 626425 शाखा कार्यालय, माल रोड, दिल्ली शाखा से पृष्ठ संख्या 25057 के माध्यम से चोरी की गई है और इससे बैंक को वित्तीय नुकसान हुआ है लेकिन उसने स्वीकार नहीं किया है कि उसने उक्त ड्राफ्ट चुराया है।

चूंकि अपराधी कर्मचारी पर मुख्य आरोप मसौदा पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों को चुराने का है, इसलिए, ऐसे मामलों में प्रत्यक्ष सबूत/साक्ष्य आम तौर पर उपलब्ध नहीं होते हैं और निष्कर्ष धारणा के आधार पर पहुंचा गया है।

14. *निर्विवाद रूप से, एक विभागीय प्रक्रिया एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित सबूतों को अनुशासनात्मक कार्यवाही में सबूत नहीं माना जा सकता है। साईं दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्राथमिकी पर भरोसा किया गया था जिसे सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता था;*

15. *हमने यहां पहले देखा है कि एकमात्र बुनियादी सबूत जिसके आधार पर जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया है, वह अपीलकर्ता द्वारा पुलिस के समक्ष किया गया कथित स्वीकारोक्ति*

था। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति को साबित किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने में लिप्त थे। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट का स्वरूप दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।"

38. जहां तक **यशवंत रेडकर** (उपरोक्त) के मामले में फैसले का संबंध है, यह एक ऐसा मामला था जहां पूरी कार्यवाही सुनवाई के साक्ष्य के अनुसार शुरू की गई थी, बॉम्बे हाईकोर्ट ने कहा कि दोषी कर्मचारी को केवल सुनवाई के साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराना उचित नहीं होगा, बिना किसी प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य के खोज के समर्थन में।

39. यहां, वर्तमान मामले में रिट याचिका पर लगाए गए पूरे आरोप इकबालिया बयान पर आधारित हैं, हालांकि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा समर्थित होने की मांग की गई है। तथापि, यह पता लगाने के लिए कि क्या यह वक्तव्य दिया गया था अथवा नहीं, केवल एक चीज जो कम से कम जानकारी के लिए प्रासंगिक होगी, वह है लिखित दस्तावेज जिसमें उस व्यक्ति के हस्ताक्षर होंगे जिसने इकबालिया बयान दिया था। हालांकि इस मामले में एक तरफ अपराधी इकबालिया बयान से इनकार कर रहा है, लेकिन दूसरी तरफ, अभियोजन पक्ष विपरीत रुख के साथ आ रहा है। चूंकि आरोपों का पूरा आरोप इकबालिया बयान पर आधारित है, लेकिन इकबालिया बयान को न तो आरोप पत्र का हिस्सा और पार्सल बनाया गया है और न ही पुलिस अधिकारियों को जिनके समक्ष रिट याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए इकबालिया बयान को जिरह के लिए रखा गया है, इस प्रकार, न्यायालय की राय में इकबालिया बयान पर रखा गया एकमात्र भरोसा पूरी कार्यवाही को दूषित करता है, खासकर जब अभियोजन पक्ष के गवाहों ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है और गवाही दी है कि रिट याचिकाकर्ता को धमकी दी गई थी और वह रोते हुए आया था, इस प्रकार, इन परिस्थितियों में रिट याचिकाकर्ता को इकबालिया बयान के आधार पर दोषी ठहराना न तो उचित है और न ही उपयुक्त।

40. श्री भगवान सिंह को रिट याचिकाकर्ता द्वारा चाबियां सौंपने के संबंध में, सुरक्षा पर्यवेक्षक का संबंध है कि उन्हें गवाह के रूप में चिह्नित नहीं किया गया है। एक बार जब रिट याचिकाकर्ता ने आरोपों से इनकार कर दिया, तो उक्त तथ्य को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष का कर्तव्य था कि वह जांच की कार्यवाही से पहले सुरक्षा पर्यवेक्षक श्री भगवान सिंह को पेश करे और ऐसा नहीं किया

जा रहा है जो जांच को समाप्त करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक भी है।

41. अब जहां तक सीसीटीवी कैमरे में हेरफेर करने के संबंध में दूसरे आरोप का संबंध है, रिट याचिकाकर्ता ने उस संबंध में गतिविधि को छिपाने के लिए सीसीटीवी कैमरे के साथ कोई हेरफेर करने पर विवाद किया था। इसके अलावा, दिनांक 13.06.2016 के असहमति नोट के उत्तर दिनांक 20.07.2016 में, रिट याचिकाकर्ता ने पैरा 24 (सी) (डी) और (ई) में विशेष रूप से मूल सीसीटीवी फुटेज की तुलना करने की मांग की है और उसी की प्रामाणिकता पर सवाल उठाया है। उक्त आधार को 14.10.2016 के अपील ज्ञापन में भी लिया गया था, हालांकि, इसे नजरअंदाज कर दिया गया और इस पर विचार नहीं किया गया। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम 1872 के प्रावधान लागू नहीं होंगे, तथापि, अनुशासनिक प्राधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह उक्त जारी किए गए मुद्दे पर ध्यान देकर यह पता लगाए कि क्या सीसीटीवी फुटेज में छेड़छाड़ की गई थी, छेड़छाड़ की गई थी या नहीं। विधायिका वर्तमान समय के आगमन के साथ प्रौद्योगिकी के सुधार के बारे में काफी सचेत थी और तदनुसार, साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 65ए और 65बी को जोड़ा गया है और यह अनिवार्य माना गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अर्जुन पंडितराव खोतकर** (उपरोक्त) और **रवींद्र सिंह** (उपरोक्त) में अभिनिर्धारित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी (4) के तहत एक प्रमाण पत्र प्राप्त किया जाना है।

42. नियम बनाने प्राधिकारी आचरण के नियम 38 में "विचार" शब्द नियोजित करते समय सचेत था, अनुशासन और अपील नियम, 1980 जिस तरह से अपील सजा आदेश के खिलाफ विचार किया जा रहा है से निपटने. "विचार" शब्द को निर्णयों की श्रृंखला में नोट किया गया है और **आरपी भट्ट** (उपरोक्त), माननीय सर्वोच्च न्यायालय में पैरा 4 और 5 में निम्नानुसार देखा गया है:

"4. नियम 27(2) में 'विचार' शब्द का अर्थ है 'दिमाग का उचित अनुप्रयोग'। नियम 27 (2) की शर्तों पर यह स्पष्ट है कि अपीलीय प्राधिकारी को (1) इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि क्या नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन किया गया है; और यदि नहीं, तो क्या इस तरह के गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन हुआ है या न्याय की विफलता हुई है;

(2) क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों को रिकॉर्ड पर साक्ष्य द्वारा वारंट किया जाता है; और (3) क्या लगाया गया जुर्माना पर्याप्त है; और उसके बाद दंड की पुष्टि, वृद्धि आदि के आदेश पारित करें, या मामले को उस प्राधिकारी को वापस भेज सकते हैं जिसने इसे लगाया है। नियम 27 (2) अपीलीय प्राधिकारी पर एक कर्तव्य डालता है कि वह खंड (ए), (बी) और (सी) में निर्धारित प्रासंगिक कारकों पर विचार करे।

***5.** आक्षेपित आदेश में कोई संकेत नहीं है कि महानिदेशक इस बात से संतुष्ट थे कि क्या नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया था; और यदि नहीं, तो क्या इस तरह के गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन हुआ था या न्याय की विफलता हुई थी। हमें खेद है कि महानिदेशक ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी कोई निष्कर्ष नहीं दिया है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों को रिकॉर्ड में मौजूद साक्ष्य द्वारा वारंट किया गया था। ऐसा लगता है कि उन्होंने केवल नियम 27 (2) के खंड (सी) की आवश्यकता पर अपना दिमाग लगाया, अर्थात क्या लगाया गया जुर्माना वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पर्याप्त या उचित था। नियमों के नियम 27 (2) की आवश्यकताओं का अनुपालन न होने के कारण, महानिदेशक द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है।"*

43. **आरपी भट्ट** (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के बाद, **राम चंदर** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"5. कम से कम कहने के लिए, यह रेलवे सेवक नियमों के नियम 22 (2) की शब्दावली का एक यांत्रिक पुनरुत्पादन है, जिसमें रेलवे बोर्ड की ओर से यह तय करने के लिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य को मार्शल करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निष्कर्ष बनाए रखा जा सकता है या नहीं। इस बात का भी कोई संकेत नहीं है कि रेलवे बोर्ड ने इस बात पर विचार किया कि क्या कदाचार का कार्य जिसके साथ अपीलकर्ता पर परिचर परिस्थितियों और अपीलकर्ता के पिछले रिकॉर्ड के साथ आरोप लगाया गया था, वह ऐसा था कि उसे 24 साल की सेवा की अवधि में एक चूक के लिए सेवा से हटाने के चरम दंड के साथ दौरा किया जाना चाहिए था। सेवा से बर्खास्तगी या निष्कासन एक सिविल सेवक के लिए गंभीर चिंता का विषय है, जो इतनी लंबी सेवा के बाद, इस तरह की कठोर सजा के लायक नहीं हो सकता है। रेल सेवक नियमावली के नियम 22 (2) की अपेक्षाओं का अनुपालन न किए जाने के कारण रेलवे बोर्ड द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जा सकता है।"

44. इसके अलावा **प्रभागीय वन अधिकारी (उपरोक्त)** के मामले में पैरा 19 और 20 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"19. संबंधित पक्षों की ओर से की गई प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद और विस्तृत तरीके से भी जिसमें आंध्र प्रदेश प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने मामले को निपटाया था, जिसमें प्रतिवादी द्वारा प्राप्त धन के संवितरण के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण भी शामिल थे, हम प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न होने का कोई कारण नहीं देखते हैं

और उच्च न्यायालय द्वारा समर्थित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रभागीय वन अधिकारी ने इस मामले को विस्तार से निपटाया, लेकिन यह अपीलीय प्राधिकारी का भी कर्तव्य था कि वह प्रतिवादी द्वारा दायर अपील को खारिज करने के लिए कम से कम कुछ कारण बताए। राज्य में वन विभाग में सर्वोच्च प्राधिकरण होने के नाते पुनरीक्षण प्राधिकरण पर भी इसी प्रकार का कर्तव्य लगाया गया था। दुर्भाग्यवश, पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी केवल यह संकेत दिया है कि प्रभागीय वन अधिकारी के निर्णय की वन संरक्षक, खम्मम द्वारा जांच की गई थी जिसमें दुवनियोजन का आरोप स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया था। उन्होंने भी प्रतिवादी द्वारा बनाए गए बचाव के मामले पर विचार नहीं किया और केवल बर्खास्तगी की सजा का समर्थन किया, हालांकि इसे सेवा से हटाने के लिए कम कर दिया।

20. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी को निचले मंच द्वारा पारित आदेश से सहमत होने और पुष्टि करने के लिए विस्तृत कारण देने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन हमारे विचार में, न्याय के हित में, अपराधी अधिकारी को कम से कम अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी के मन को जानने का अधिकार है कि वह अपनी अपील और/या संशोधन को खारिज कर दे। यह सच है कि किसी विस्तृत कारण की आवश्यकता नहीं है, लेकिन निचले मंच के विचारों की पुष्टि करने वाले आदेश में भी कुछ संक्षिप्त कारण बताए जाने चाहिए।"

45. प्रतिवादी निगम के 23.12.2014 तक संशोधित आचरण, अनुशासन और अपील नियम, 1980 के प्रावधानों की एक करीबी स्कैनिंग यह दर्शाती है कि नियम 29 दो प्रकार के दंड अर्थात् मामूली दंड और प्रमुख दंड से संबंधित है। छोटी या बड़ी शास्ति लगाने के लिए अलग से प्रक्रिया निर्धारित की गई है। जहां तक विवाद का संबंध है, वही बड़े दंड से संबंधित है, इस प्रकार, 1980 के नियमों का नियम 31 लागू होगा। सिद्धांत के रूप में, 1980 के नियमों के नियम 31 में जांच करने के लिए चरणबद्ध तरीके से अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

46. आरोपों के ज्ञापन युक्त एक आरोप पत्र न केवल आरोपों के आरोप लेकिन यह भी दस्तावेजों और गवाहों जिसके आधार पर आरोपों को साबित किया जा रहा है युक्त अपराधी पर तामील किया जा रहा है, मामले में, अपराधी आरोपों से इनकार करता है तो एक जांच अधिकारी की नियुक्ति के बाद, वह तारीख तय करने के लिए है, (ग) मौखिक जांच के लिए समय और स्थान निर्धारित किया गया है और अनुशासनिक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है जो असहमति की स्थिति में जांच अधिकारी के कारणों से असहमत कारण बताओ नोटिस के साथ असहमति नोट जारी करता है और अपराधी द्वारा आपत्ति/उत्तर प्रस्तुत करने के बाद अंतिम आदेश पारित किया जाता है। व्यावहारिक रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कदम दर कदम पालन किया जाना चाहिए। अपराधी के खिलाफ साबित होने वाले आरोपों को पकड़ने के लिए, जांच अधिकारी को जांच करनी है और

अभियोजन पक्ष को न केवल महत्वपूर्ण गवाहों को पेश करना है, बल्कि उन दस्तावेजों को भी साबित करना है जो उस संबंध में भौतिक प्रदर्शन हैं। जैसा कि वर्तमान मामले में ऊपर देखा गया है, जांच स्वयं दोषपूर्ण थी क्योंकि न तो अभियोजन पक्ष ने इकबालिया बयान पेश किया और न ही साबित किया।

47. अब एक सवाल उठता है कि एक बार एक निष्कर्ष निकाला जाता है कि जांच की कार्यवाही दोषपूर्ण थी और नियमों के अनुरूप नहीं थी, तो कार्रवाई का अगला कोर्स क्या होगा। न्यायालय के समक्ष दो विकल्प उपलब्ध हैं या तो आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाए और जांच करने और अपराधी को बहाली देने के अनुशासन प्राधिकरण के अधिकार को समाप्त किया जाए या मामले को सक्षम अनुशासनिक प्राधिकारी को वापस भेजा जाए ताकि नए सिरे से जांच करने और परिणामी लाभ के भुगतान के प्रयोजनों के लिए दोषी को निलंबित करते समय उस चरण से नए सिरे से जांच की जा सके जहां दोष उत्पन्न हुआ हो नए सिरे से जांच के परिणाम के अधीन किया जाना चाहिए।

48. यह निर्धारित करने के लिए कि क्या पाठ्यक्रम अपनाया जाना है और कानून की अदालतों को आरोपों की गंभीरता और जांच कार्यवाही में दोष की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा।

49. 1980 नियमों के नियम 26 (4) ही यह बर्खास्तगी या सेवा से हटाने का एक दंड एक कर्मचारी पर लगाया जाता है जहां के अनुसार के रूप में कहा विषय पर प्रकाश देता है एक अलग सेट या घोषित या कानून की अदालत के एक निर्णय के परिणामस्वरूप या शून्य प्रदान की है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों पर विचार करने पर अपराधी के खिलाफ आगे की जांच आयोजित करने का फैसला करता है जिन आरोपों पर बर्खास्तगी या हटाने का दंड मूल रूप से लगाया गया था, अपराधी को बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तारीख से अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा निलंबन के तहत रखा गया माना जाएगा और अगले आदेशों तक निलंबन में रहेगा।

50. चूंकि, सजा आदेश पारित करने में परिणत विभागीय जांच आयोजित करने में एक दोष है, इस प्रकार, अपराधी पर लगाए गए आरोपों की प्रकृति को देखते हुए वर्तमान मामले के तथ्यों में, इस न्यायालय की राय है कि आक्षेपित आदेशों को अलग रखा जाए और अनुशासनात्मक प्राधिकरण को जांच करने और न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर इसे समाप्त करने का निर्देश जारी किया जाए। इस मौके पर, प्रतिवादी निगम के विद्वान वकील श्री आनंद तिवारी ने प्रस्तुत किया कि यदि मामले को नए सिरे से जांच करने के लिए वापस भेज दिया जाता है तो यह उस चरण से होना चाहिए जब जांच में दोष हुआ था और उनके अनुसार यह आरोप पत्र के अपराधी द्वारा उत्तर प्रस्तुत करने के चरण से होना चाहिए। रिट याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री अशोक खरे ने प्रस्तुत किया कि चूंकि रिट याचिकाकर्ता ने 27.09.2015 को दिनांक 31.08.2015 को आरोप पत्र पर अपना

जवाब प्रस्तुत किया है, इसलिए इस चरण से इस न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर जांच समाप्त करने का निर्देश दिया जाए।

51. तदनुसार, उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, रिट याचिका का निर्णय निम्नलिखित शर्तों पर किया जाता है; (ए) तीसरे प्रतिवादी, महाप्रबंधक, प्रभारी, यू.पी.एस.ओ. द्वारा दिनांक 01.08.2016 को पारित आदेश। II, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन, ई-8, सेक्टर 1, नोएडा, गौतमबुद्धनगर, रिट याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करते हुए दिनांक 02.12.2016 के आदेश के साथ ही रिट याचिकाकर्ता की अपील दिनांक 04.10.2016 को खारिज करते हुए दूसरे प्रतिवादी द्वारा पारित कार्यकारी निदेशक प्रभारी (आपूर्ति), इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इंडियन ऑयल भवन जी-9, अली यावर जंग मार्ग, बांद्रा (पूर्व), मुंबई को अलग रखा जाता है; (बी) दिनांक 01.08.2016 और 02.12.2016 के आदेशों को रद्द करने के परिणामस्वरूप रिट याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया जाएगा; (सी) रिट याचिकाकर्ता तीसरे प्रतिवादी के समक्ष बकाया, निर्वाह भत्ता और महीने-दर-महीने आधार पर निर्वाह भत्ते के भुगतान की मांग करते हुए एक आवेदन/अभ्यावेदन देगा और इसकी प्राप्ति पर तीसरा प्रतिवादी बकाया, यदि कोई हो, का भुगतान सुनिश्चित करेगा। , और नियमानुसार वर्तमान जीवन निर्वाह भत्ता का भुगतान करें; (डी) चूंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.08.2016 को रद्द कर दिया गया है, इस प्रकार, दिनांक 27.09.2015 को उत्तर प्रस्तुत करने के चरण से रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच करने के लिए मामला अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भेज दिया गया है। आरोप पत्र दिनांक 31.08.2015; (ई) जांच किसी भी पक्ष द्वारा आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर सख्ती से कानून के अनुसार, क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले नियमों के अनुसार और अवसर प्रदान करने के बाद आयोजित और समाप्त की जाएगी। अपराधी कर्मचारी को; (एफ) रिट याचिकाकर्ता जांच कार्यवाही में पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा; (छ) बकाया वेतन और अन्य संबद्ध लाभों सहित परिणामी लाभों का अनुदान जांच कार्यवाही के परिणाम और भाग्य के अधीन होगा।

52. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1045

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट-बी संख्या 7376 वर्ष 1980

अमर सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

डीडीसी आगरा एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आरपी तिवारी, श्री एचएन सिंह, श्री सत्यम सिंह, श्री शिव नाथ सिंह, श्री सूर्यभान सिंह, श्री यादवेंद्र कृष्ण

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री आशुतोष कुमार राय, एमुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री मान बहादुर सिंह, श्री राजीव कुमार, श्री नागेंद्र सिंह चौधरी, श्री आरपी सिंह

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 9-ए (2), 11 और 48 - वंशावली और कृषि जोत में हिस्सेदारी के बारे में विवाद - वंशावली पुजारी (पंडा) के साक्ष्य और 'बही' में रखे गए दस्तावेज - पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया - निर्णय: मजबूत और विश्वसनीय विपरीत साक्ष्य के अभाव में, परंपरा के नियमित क्रम में रखे गए और पिछली प्रविष्टियों से पुष्टि होने वाले पंडा के मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता - धारा 48 के तहत पुनरीक्षण न्यायालय का हस्तक्षेप उचित - 43 साल बाद याचिका खारिज - न्यायालय ने न्यायिक देरी से बचने के लिए बार और बेंच की सामूहिक जिम्मेदारी की आवश्यकता पर जोर दिया।

अभिनिर्धारितः

"वंशावली पुजारी (पांडा) के मौखिक साक्ष्य, जो उनके बही के दस्तावेजों द्वारा समर्थित है, याचिकाकर्ताओं के गवाहों के मौखिक साक्ष्य की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। पंडा के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई उचित आधार नहीं है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 48 के तहत अधिकार क्षेत्र का सही प्रयोग किया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाई गई। रिट याचिका खारिज की जाती है। इसके अलावा, यह न्यायालय मामले के निर्णय में 43 वर्षों से अधिक की देरी को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता - न्याय में देरी, न्याय से इनकार के समान है - बार और बेंच, दोनों को ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी ही चाहिए और मामलों के समय पर निस्तारण के लिए काम करना चाहिए।" (अनुच्छेद 25, 26, 27)

<u>वाद विधि जिन पर भरोसा किया गया</u> :

1. दुख हरण तिवारी और अन्य बनाम दुल्हिन बिहासा कुएर एवं अन्य, एआईआर 1963 पैट 390

2. फर्रुखाबाद के कलेक्टर बनाम गजराज सिंह, 15 इंड कैस 625

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. तिवारी, प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री मान बहादुर सिंह और श्री राजीव कुमार और राज्य के लिए विद्वान अपर सी.एस.सी. श्री आशुतोष कुमार राय को सुना।

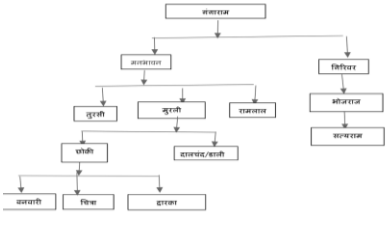
2. संक्षेप में तथ्य यह है कि विवादित भूमि खाता संख्या 94, क्षेत्रफल 6.47 एकड़ एवं खाता संख्या 4, क्षेत्रफल 2.01 एकड़ ग्राम-शित्तलपुर, परगना-एटा साकेत, जिला-एटा में स्थित है। उक्त गांव को चकबंदी कार्रवाई के तहत लाया गया था, जिसमें मूल याचिकाकर्ताओं में से एक ने यूपी की धारा 9-ए (2) के तहत आपत्ति दायर की थी। जोतों का समेकन अधिनियम, 1953 (1953 का अधिनियम) कि विवादित भूमि में सत्य राम

पुत्र भोज राज (मूल प्रतिवादी संख्या 4) का हिस्सा 1/3 था और इसे मूल वर्ष में गलती से 1/2 के रूप में दिखाया गया था, जिसमें सुधार की आवश्यकता थी।

3. याचिकाकर्ताओं के अनुसार लिस के पक्षकारों की वंशावली इस प्रकार है:-



जबकि इसके विपरीत, उत्तरदाताओं द्वारा दी गई वंशावली इस प्रकार है:-



4. चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 16.08.1976 के आदेश के तहत रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, मूल प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा लगाई गई आपत्तियों को खारिज कर दिया है और उन्हें प्रश्नाधीन भूमि का, केवल ⅓ हिस्से की सीमा तक सह-हिस्सेदार मानते हुए मूल वर्ष प्रविष्टि को बनाए रखा है। चकबंदी अधिकारी द्वारा लौटाए गए प्रासंगिक निष्कर्ष इस प्रकार हैं:-

"इस तरह से जहाँ तक वंशावली का सवाल है सत्यराम यह साबित नही कर सके कि भोजराज गिरवर के लड़के थे और यह बात कतई तौर पर साबित हो जाती है कि भोजराज मनभावन के लड़के थे और जहाँ तक शजरा बनवारी बगैरहा ने दिया है वह सही है सत्यराम ने गलत शजरा हिस्सा ज्यादा पाने की गरज से दिया है।"

XXX

"उपरोक्त के आधार पर जमीन की आइडेन्टी और कन्टीनटी एक नहीं रह जाती है और यदि जमीन की आइडेन्टिटी और कन्टीनिटी एक ही है तो वह मूरसान की पैदा की हुई नहीं कही जा सकती है इसके अलावा सत्यराम का बहुत निश्चित केश है कि आराजी निजाई गंगाराम की पैदा की हुई है मगर सत्यराम कोई भी कागज ऐसा दाखिल नहीं कर सके जिससे यह सिद्ध हो सकता कि कोई जमीन कभी भी गंगाराम के नाम रही हो जबकि बनवारी आदि का निश्चित केश यह है आराजी निजाई में कुछ जमीन गिरवर व मनभावन के नाम और थी जो उन्होने पैदा की थी मगर उन्होने छोड दिया था।"

XXX

"ऐसी सूरत में आइडेन्टी और कन्टीनटी साबित होना निहायत जरूरी है उपरोक्त से यह सिद्ध हो जाता है कि भूमि निजाई की आयडेन्टी है न कन्टीनिटी है।"

(जोर दिया गया)

5. उपरोक्त संदर्भित आदेश के विरुद्ध और उ.प्र जोत समेकन अधिनियम, 1953 की धारा

11 के अंतर्गत दो अपीलें प्रस्तुत की गईं। और दोनों को बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा दिनांक 23.10.1978 को पारित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसके प्रासंगिक निष्कर्ष इस प्रकार हैं:-

"1901 में विवादित भूमि का रकबा 13-10 एकड़ मनभावन व गिरवर के पास था। 1931 के जमीदारी बटवारे में भी यही रकबा यह के वाद 24 बीघा जमीन बेची गई। और इसी का रकबा अब भूमि का रकबा 8-50 एकड़ रह गया है। इसलिये यह तर्क गलत है कि 1901 से अब तक भूमि की एक रूपता तथा तरितम्यता समाप्त हो गई है। 1347 फ० में व 1336 फ० में सत्यराम डाल चन्द्र अमर सिंह और तुरसी दर्ज थे यदि अमर सिंह और तुरसी दर्ज थे यदि अमर सिंह आदि को सत्यराम का हिस्सा हड़पना होता, 1347 व 1336 की प्रविष्टियों के आधार पर सत्यराम का 1/4 अंश भी कह सकते थे अमर सिंह आदि की ओर से जबानी सबूत में जालिम सिंह गवाह है जिनकी उम्र 85 साल है पेश हुआ इसका बयान है कि गिरवर सिंह अक्षम व्यक्ति थे उनकी शादी नहीं हुई थी और मनभावन के राम लाल लड़का नहीं था बल्कि भोजराज लड़का था जालिम सिंह शीतलपुर का ही रहने वाला है चित्तर सिंह की आयु 75 वर्ष है और उसने जिरह में कहा है कि, गिरवर की शादी नहीं हुई थी उन पैर में खुजली और आँख में फली थी भोजराज मन भावन का लड़का था।

उपरोक्त से प्रकट है कि सत्यराम भोजराज का लड़का है और भोजराज का लडका है और भोजराज मन भावन का लड़का था इस प्रकार दोनो अपील के अवधानिक है च०अ०का निर्णय सही है इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नही है।"

(जोर दिया गया)

6. उपरोक्त संदर्भित आदेशों से व्यथित होकर मूल प्रतिवादी संख्या 4 ने अधिनियम 1953 की धारा 48 के तहत एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे आक्षेपित आदेश 17.05.1980 द्वारा अनुमति दी गई थी। आदेश का प्रासंगिक भाग का उल्लेख इसके बाद किया गया है:-

"अब सवाल इस बात का है कि भोजराज किसका लड़का है मनभावन का यह गिरवर का। इसमें दोनो ओर से जुबानी सहादत दी गई है। सदाशिव पंडा की ओर से जो कागज दाखिल हुये है उसमे भोजराज गिरवर के बेटे लिखे हैं। यह पेपर फाइल पर 16/1, 16/2 व 16/3 है। इन कागजातों में तो इस खानदान के अन्य लोगों का विवरण दिया है वह दोनो पक्षों के दिये गये विवरणों से काफी तालमेल खाता है।

प्रतिपक्षी का केस यह है कि पहले यह जमीन मनभावन व गिरवर की थी और वाद में तुलसी, मुरली व भोगराज ने दुबारा पैदा की।

मैंने पूरे कागजात का अध्ययन किया पर ऐसी कोई चीज न मिली जिससे कि यह पता चलता कि यह दुबारा पैदा की गई है। अगर रकबा बढ़ा है तो वह उन्ही नम्बरों में बढ़ा है जो पहले थे और प्रत्येक बन्दोबस्त में ऐसा होता भी है। इसका प्रमाण इसी बात से है कि जमीन की वैयत एक सी बदस्तूर है। प्रतिपक्ष की ओर से यह कहा गया कि पंडे की बही का इन्द्राज मानने योग्य नहीं है। मैंने यह बही जिसका कि हवाला दिया गया है तो नहीं देखी, पर स्वयं सोरों के पंडे जो अपने जिजमानो के बारे में

सूचना रखते हैं और सूचना रखने की जो कार्यप्रणाली अपनाते है उसको देखा। उसमें वह लोग किसी के अधिकारों को या जायदाद में हिस्सों को ध्यान में रखकर नहीं बनाते बल्कि खानदान के आदमियों का और उनके सम्बन्धियों का ही नाम पता आदि इसलिए रखते हैं कि उनके जिजमानों का पूरा पूरा ज्ञान उनको हो। पंडा की जो तीन कागज फाइल पर है वह बनावटी नहीं प्रतीत होते है और न प्रतिपक्ष ने कोई ऐसा सबूत दिया कि जो वंशावली दूसरे पक्ष ने यानी रिवीजनकर्ता ने दी है वह त्रुटिपूर्ण है जो जमीन बढी है वह भी पूरे खाते में बढ़ी है। केवल यह बात मानना कि तीन आदमियों ने तीन खेत 8.8 बीघे के बेचे यह सिद्ध नहीं करता कि वह पूरे जमीन में तिहाई के हिस्सेदार हैं।

अमर सिंह आदि की ओर से जो गवाह पेश हुये है जालिम और चित्तर। उनकी गवाही पर विश्वास किया जाना उचित प्रतीत नहीं होता। चित्तर सिंह कहते है कि जमीन उनके सामने उठाई गई थी परन्तु यह कहते है कि जब जमीन उठाई गई थी तो मनभावन उससे पहले ही मर चुके है। अगर ऐसा है तो मनभावन का नाम 1901 में कैसे आ गया। प्रतिपक्ष में ऐसा कोई सबूत नहीं दिया कि जिससे सत्यराम द्वारा दिया गया सजरा गलत सिद्ध हो और न कोई ऐसी बात का प्रमाण है कि यह जमीन कभी दुबारा ली गई थी। रिवीजनकर्ता का जो सबूत जबानी है वह उसके पक्ष को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है अतः मै अवर न्यायालय के आदेशों को निरस्त करते हुये रिवीजन स्वीकार करता हूँ। और आदेश देता हूँ कि सत्यराम आदि इस जायदाद में आधे के और विपक्षी शेष आधे भाग के सजरे के अनुसार हिस्सा तदनुसार कागजात में इन्द्राज किया जावे। "

(जोर दिया गया)

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि पुनरीक्षण न्यायालय ने गलती से 'पंडा' के साक्ष्य और उसकी बही के दस्तावेजों पर अत्यधिक निर्भरता रखी है, जिसे दस्तावेज संख्या 16/1, 16/2 और 16/3 के रूप में रिकॉर्ड में प्रदर्शन के रूप में चिह्नित किए बिना रखा गया था। और इस तरह उन्हें विधिवत साबित नहीं किया गया।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि चकबंदी के उप निदेशक ने अपीलीय न्यायालय द्वारा लौटाए गए विशिष्ट निष्कर्षों को रद्द नहीं किया है। पुनरीक्षण न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय द्वारा लौटाए गए विशिष्ट निष्कर्ष पर विचार नहीं किया है कि भूमि की पहचान और निरंतरता समान नहीं रहती है और भूमि मूल रूप से 'गंगा राम' की नहीं है और साथ ही विवादित आदेश में कोई तर्क नहीं दिया गया है कि प्रश्नगत भूमि 'गंगाराम' की कैसी थी।

9. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि चकबंदी के उप निदेशक ने न तो याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत वंशावली के संबंध में निष्कर्ष को स्वीकार किया है और न ही उत्तरदाताओं द्वारा दी गई वंशावली को स्वीकार करने का कोई कारण बताया है।

10. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ऊपर बताए अनुसार चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा दिए गए कारणों को पढ़ा है और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का भी उल्लेख किया है कि जिसमें 1953 के अधिनियम, धारा 48 में दिए गए कारकों पर विचार किए बिना एक सुविचारित आदेश में हस्तक्षेप किया है।

11. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त दलीलों का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया कि 'पंडा' यानी सदाशिव का मौखिक साक्ष्य, जो एक प्रासंगिक दस्तावेज था क्योंकि यह बही पर आधारित था, रिकॉर्ड पर था। संवत 1973, 1997 व 2022 की बही से पता चला है कि भोजराज गिरवर के पुत्र थे। यह एक भौतिक और स्वीकार्य साक्ष्य था और इससे बेहतर कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था जो इसका खंडन कर सके।

12. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **दुख हरण तिवारी और अन्य बनाम दुल्हिन बिहासा कुएर एवं अन्य :एआईआर 1963 पैट 390**, पर भरोसा जताया है। विद्वान अधिवक्ता ने **फर्रुखाबाद के कलेक्टर बनाम गजराज सिंह, 15 इंड कैस 625** के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित एक फैसले पर भी भरोसा जताया। और उसके प्रासंगिक पैराग्राफ का उल्लेख इसके बाद किया गया है: -

"इसके अभाव में उन्होंने सोरन में पंडा के रूप में जाने जाने वाले कुछ ब्राह्मणों द्वारा रखी गई पुस्तकों में खेतों और पवित्र शहर मुतफ्रा के दस्तावेजी साक्ष्य की मांग की है। ये 'पंडा' पुजारी हैं जो भक्ति के प्रयोजनों के लिए तीर्थयात्रियों को पवित्र स्थानों पर ले जाते हैं और अवसर के अनुरूप समारोहों के निष्पादन में उनकी सहायता करें। उनकी आजीविका उन तीर्थयात्रियों द्वारा भुगतान की जाने वाली फीस पर निर्भर करती है जो इस प्रकार उनकी सेवाएं लेते हैं, और इसमें संदेह है कि वे सभी को प्राप्त करने और उनकी सेवा करने के अपने पारंपरिक या आदेशात्मक अधिकारों के प्रति अत्यधिक ईर्ष्यालु हैं। किसी भी परिवार से संबंधित तीर्थयात्री जिसने एक बार निश्चित रूप से अपने जजमानों या ग्राहकों की सूची में खुद को नामांकित किया है। इस उद्देश्य के लिए वे कुछ किताबें या रजिस्टर रखते हैं जिनमें से एक वादी के गवाह द्वारा हमारे सामने पेश किया गया है।

XXX

XXX

ऐसा प्रतीत होता है कि जब एक ही गाँव से संबंधित प्रविष्टियाँ पुस्तक के विभिन्न भागों में आ जाती हैं, तो संदर्भ की सुविधा के लिए विशेष गाँवों से संबंधित प्रविष्टियों को एक साथ या किसी भी दर पर रखने में काफी परेशानी उठानी पड़ती है। इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि गांवों को एक साथ समूहित करने में एक निश्चित मात्रा में प्रणाली का उपयोग किया जाता है ताकि अलग-अलग गांवों में रहने वाले एक ही परिवार की विभिन्न शाखाओं से संबंधित प्रविष्टियों को एक-दूसरे से जोड़ा जा सके। प्रविष्टियों में स्वयं काफी हद तक वंशावली या टुकड़ों का समावेश होता है। वंशावली कभी-कभी निर्दिष्ट वर्ष और महीने में सोरन में गंगा की यात्रा के अवसर पर संबंधित परिवार के किसी विशेष सदस्य द्वारा या उसके

आदेश पर बनाई गई होती है, कभी-कभी किसी अन्य प्रविष्टि के नीचे लिखी जाती है, अवसर का या उस विशेष व्यक्ति का विशिष्ट रिकॉर्ड के बिना जिसके अधिकार पर प्रविष्टि की गई है। निःसंदेह, यह पुस्तक पारिवारिक वंशावली का कोई व्यवस्थित रिकॉर्ड नहीं है और न ही ऐसा होने का दावा करती है। पृष्ठों को क्रमानुसार क्रमांकित नहीं किया गया है। यह स्वीकार किया जाता है कि जिल्दसाज़ी को सिला नहीं गया है और जब भी पंडा को ऐसा करना सुविधाजनक लगता है, तब नए पन्ने डाले जाते हैं। समय-समय पर पुस्तक के मुख्य भाग में रिक्त स्थान और यहाँ तक कि खाली पन्ने भी दिखाई देते हैं। यह स्वीकार किया जाता है कि यदि कोई पृष्ठ बहुत अधिक घिसा-पिटा हो जाता है या फट जाता है, तो "पंडा" उस पर लिखी प्रविष्टियों को जो समझ सकता है उसे एक नए पृष्ठ पर कॉपी कर लेगा और उसके स्थान पर उसे डाल देगा। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि "पंडा" उन तीर्थयात्रियों की पहचान के लिए खुद को जिम्मेदार नहीं ठहराता जो उसके सामने आते हैं और खुद को अमुक परिवार के सदस्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं।"

(जोर दिया गया)

13. पक्षों के अधिवक्ता को सुना और पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा उपलब्ध कराए गए अभिलेख और लिखित प्रस्तुतिकरण का अवलोकन किया।

14. विवाद याचिकाकर्ताओं और उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी वंशावली के बीच है कि- क्या गिरवर निःसंतान मर गया? यदि हाँ, तो क्या भोज राज मनभावन का पुत्र है, या यदि नहीं, तो क्या भोज राज गिरवर का पुत्र है? और दूसरा मुद्दा यह है कि जमीन गंगाराम ने खुद अर्जित की थी या मनभावन और गिरवर के द्वारा अर्जित कि थी?

15. पक्षों ने अपनी-अपनी वंशावली साबित करने की कोशिश की है। उत्तरदाताओं का मामला मुख्य रूप से 'पंडा' के मौखिक साक्ष्य और उनके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों पर आधारित है, जो बही के कागजात में कायम वंशावली को दर्शाया गया है।

16. जबकि याचिकाकर्ताओं का मामला मुख्य रूप से दो बूढ़े व्यक्तियों के मौखिक साक्ष्य पर आधारित है, जिसमें कहा गया है कि गिरवर ने कभी शादी नहीं की और निःसंतान मर गया और भोज राज, मनभावन का पुत्र था।

17. न्यायालय को उपरोक्त संदर्भित साक्ष्यों में से निर्णय लेना है, जो अधिक विश्वसनीय हैं अर्थात याचिकाकर्ताओं की ओर से दो वृद्ध व्यक्तियों का बयान या उत्तरदाताओं की ओर से प्रदान किए गए अपने बही के दस्तावेजों के साथ 'पंडा' का बयान।

18. परिवार के सदस्यों का विवरण पंडों (वंशावली पुजारी) द्वारा संरक्षित किया जाता है जो एक बहुत पुरानी परंपरा है। उन्होंने पारिवारिक वंश क्रम/वंशावली का विवरण बनाए रखने के लिए एक विशेष तरीके का पालन किया। यहां तक कि रजिस्टर के नंबरों से भी वे संबंधित रजिस्टर/प्रविष्टि आसानी से निकाल सकते हैं। यह नहीं माना जा सकता कि

अभिलेख तैयार करते समय उन्होंने वंशावली का विवरण यह ध्यान में रखते हुए दर्ज किया, कि भविष्य में यह कानूनी कार्यवाही का हिस्सा होगा और इसलिए, केवल एक पक्ष को लाभ पहुंचाने के लिए प्रविष्टियां की गईं। दस्तावेज़ संवत 1973, 1997 और 2022 (अर्थात वर्ष 1916, 1940 और 1965) के हैं, जबकि पंडा की गवाही वर्ष 1976 में दर्ज की गई थी, यानी क्रमशः 60, 36 और 11 साल बाद, इसलिए, एक विशेष इरादे के साथ प्रविष्टि करने के तत्व को पूरी तरह से खारिज कर दिया गया है और साथ ही इस बात पर अविश्वास करने के लिए कोई विपरीत सामग्री नहीं है कि उक्त दस्तावेजों में की गई प्रविष्टियां परिवार के सदस्यों द्वारा सही ढंग से दी गई जानकारी पर आधारित नहीं थीं। **दुख हरण तिवारी (उपरोक्त) और फर्रुखाबाद के कलेक्टर (उपरोक्त)** में, क्रमशः पटना उच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने माना है कि यह संदिग्ध होगा कि वे (पंडा) परिवार के किसी एक सदस्य का समर्थन करने के लिए गलत प्रविष्टि करेंगे।

19. विचार के लिए अगला मुद्दा यह है कि क्या पंडा द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज (कागज संख्या 16/1, 16/2, 16/3) वास्तविक बही का हिस्सा थे और विधिवत प्रमाणित थे या नहीं। एक सदाशिव पंडा गवाह के रूप में उपस्थित हुए हैं। उक्त प्रविष्टियों के लेखक उपस्थित नहीं हुए थे, लेकिन सदा शिव पंडा, जो अभिलेख के संरक्षक भी थे, उपस्थित हुए और ऊपर उल्लिखित कागजात को उन्होंने साबित किया था। चकबंदी अधिकारी ने उन साक्ष्यों को खारिज कर दिया है कि बही की न तो ठीक से व्यवस्था की गई थी और न ही गांव का नाम बताया गया था, तथापि उप चकबंदी निदेशक ने किसी विपरीत साक्ष्य के अभाव में बही के कागजातों को असली माना है और ऐसे सबूत पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

20. वंशावली पुजारी (पंडा) वर्षों से वंशावली अभिलेख का रख रखाव और संरक्षण कर रहे हैं और कुछ मामलों में, उनके अभिलेख 15 से 20 पीढ़ियों तक पुराने हैं। इन अभिलेखों में लोगों के मूल स्थान, नाम, जन्म, मृत्यु, मृत्यु का कारण, निवास स्थान, जाति, वंश आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी शामिल है। ये अभिलेख कई धार्मिक केंद्रों जैसे कि प्रयागराज, नासिक, गया, पिहोवा और वर्तमान मथुरा मामले में उपलब्ध हैं। भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (आईसीएचआर) ने भी वंशावली पुजारियों (पंडा) द्वारा संरक्षित पैतृक अभिलेखों को मान्यता दी है।

21. गवाहों के बयानों की प्रतिलिपि अभिलेख पर नहीं है, इसलिए, अदालत उस संबंध में तीन अदालतों द्वारा की गई चर्चा के आधार पर कार्यवाही कर रही है। (अर्थात चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी और उप निदेशक चकबंदी द्वारा)।

22. 'वंश रिकार्ड' पर आधारित साक्ष्यों को हल्के में नहीं लिया जा सकता क्योंकि यह रिकॉर्ड की वास्तविकता का एक तत्व रखता है और इसे नज़रअंदाज करने के क्रम में, कोई बहुत मजबूत सबूत होना चाहिए। चकबंदी अधिकारी एवं बंदोबस्त अधिकारी द्वारा वंशावली अभिलेख, चकबन्दी द्वारा पैतृक अभिलेखों पर संदेह पैदा होने का कारण यह था कि कागजात

क्रमांक में नहीं थे, गांव के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था आदि। लेकिन एक पहलू चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, के विचार से छूट गया है, कि वंशावली में, परिवार के सभी सदस्यों के नाम का उल्लेख किया गया था, जो निर्विवाद हैं, भोज राम के संबंध में प्रविष्टि को छोड़कर, जो धोखाधड़ी का परिणाम नहीं हो सकता है और, इसलिए, साक्ष्य के इस टुकड़े पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है या पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, सिवाय इसके कि जब कोई बहुत मजबूत और विश्वसनीय विपरीत साक्ष्य उपलब्ध हो।

23. उपर्युक्त साक्ष्यों का खंडन करने के लिए, याचिकाकर्ताओं ने जालिम सिंह (85 वर्ष) और चित्तर सिंह (75 वर्ष) की जांच की है कि गिरवर विवाहित व्यक्ति नहीं था और वह निःसंतान मर गया, हालांकि, उप निदेशक चकबंदी द्वारा उनके साक्ष्य पर इस आधार पर अविश्वास किया गया था कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि मानभवन को जमीन कैसे हस्तांतरित की गई, जो कि एक सही तर्क प्रतीत होता है, क्योंकि वे इसे सामान्य रूप से जानते होंगे, लेकिन वे स्रोत का खुलासा करने में बुरी तरह विफल रहे कि जमीन कैसे और किस तरह से मनभावन को हस्तांतरित की गई थी।

24. इस समय, **दुख हरण तिवारी (उपरोक्त)** के पैराग्राफ का उल्लेख करना उचित होगा जिसमें वंशावली पुजारी के साक्ष्य का जिक्र करते हुए कहा गया है कि: -

"6.

×××××

×××××

नैनीजोर के किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं किये जाने या वादी पक्ष द्वारा उस गांव में कोई पूछताछ नहीं किये जाने की अपीलकर्ताओं की टिप्पणी उचित है। लेकिन मामले में अधिक भरोसेमंद दस्तावेजी सबूत हैं जो इस मुद्दे पर निर्णय लेने में मदद करेंगे। पी. डब्ल्यू. 1 मथुरा का एक पंडा है। उन्होंने गवाही दी कि रामगति मथुरा की तीर्थयात्रा पर गए थे और उनके जजमान थे। उन्होंने गवाह की जजमानिका पुस्तक में उन प्रविष्टियों पर हस्ताक्षर किए जहां रामगति, उनके पिता लीला तिवारी और उनके दादा नरखू तिवारी के नाम लिखे गए थे। उन प्रविष्टियों को प्रदर्श 1 (ई) के रूप में और रामगति के हस्ताक्षर प्रदर्श 2 के रूप में चिह्नित किया गया था। उस पुस्तक में कई अन्य प्रविष्टियां यह दिखाने के लिए प्रदर्शित की गईं कि अन्य व्यक्ति भी उसी ग्राम बचरी से हैं जो उस अवसर पर रामगति के साथ मथुरा आये और उन व्यक्तियों के नाम उनके पिता और दादाओं के नाम के साथ पुस्तक में लिखे गए। यह जजमानिका पुस्तक पी.डब्ल्यू. 1 और अन्य के बीच एक विभाजन और उस मुकदमे में डिक्री द्वारा मुकदमे की विषय-वस्तु थी, पुस्तक के प्रासंगिक पृष्ठ पी.डब्ल्यू. 1 के हिस्से में आवंटित किए गए थे। विद्वान अधिवक्ता ने इस पुस्तक और उसमें की गई प्रविष्टियों की स्वीकार्यता पर आपत्ति जताई। रामगति की मौत हो चुकी है।

<u>उनका बयान, लिखित या मौखिक, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत</u>

स्वीकार्य है, जब वह बयान व्यवसाय के सामान्य क्रम में दिया गया हो और विशेष रूप से जब इसमें सामान्य क्रम में रखी गई पुस्तकों में उनके द्वारा की गई कोई प्रविष्टि या ज्ञापन शामिल हो। व्यवसाय या पेशेवर कर्तव्य के निर्वहन में या जब व्यक्तियों के बीच किसी भी रिश्ते के अस्तित्व से संबंधित बयान, जिसके संबंध में रामगति के पास ज्ञान के विशेष साधन थे और विवाद में प्रश्न उठाए जाने से पहले ऐसा बयान कब दिया गया था। धारा 32 के उप-खंड (2) और (5) ऐसे बयान को स्वीकार्य और प्रासंगिक बनाते हैं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि पी.डब्ल्यू.1 झूठी गवाही देने आएगा या वादी का समर्थन करने के लिए जजमानिका पुस्तक में प्रविष्टियां उसके द्वारा गढ़ी जाएंगी। पुस्तक की स्थिति भी आत्मविश्वास जगाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रविष्टियां सामान्य क्रम में और पी.डब्ल्यू. 1 के पेशेवर या धार्मिक कर्तव्यों के निर्वहन में की गई थीं और रामगति (एसआईसी) पी.डब्ल्यू. 9 ने दर्शाया था कि वह रामगति के साथ मथुरा गए थे और उन्होंने पी.डब्ल्यू.1 की जजमानिका किताब में की गई प्रविष्टियों को साबित किया था।"

(जोर दिया गया)

25. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि वंशावली पुजारी (पंडा) के मौखिक साक्ष्य, जो उनकी बही के दस्तावेजों द्वारा समर्थित हैं, जालिम सिंह और चित्तर सिंह के मौखिक साक्ष्य की तुलना में अधिक महत्व रखते हैं और वंशावली पुजारी (पंडा) के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई उचित आधार नहीं है। इसलिए, पुनरीक्षण प्राधिकरण ने 1953 के अधिनियम की धारा 48 के तहत कानूनी रूप से प्रदान किए गए पुनरीक्षण के अधिकार क्षेत्र के भीतर चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा लौटाए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया है।

26. इसलिए, चूंकि आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है, इसलिए रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

27. निर्णय देने से पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस न्यायालय ने 43 वर्षों के बाद अंततः वर्तमान रिट याचिका पर निर्णय लिया है। इस रिट याचिका को अभियोजन के अभाव में तीन बार खारिज कर दिया गया, हालांकि हर बार बहाल कर दिया गया। इस बीच कुछ पक्षों की मृत्यु के कारण, उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को अभिलेख पर लाने का मामला लंबित रहा। कुछ तारीखों पर पक्षकारों के अधिवक्ता के अनुरोध पर याचिका स्थगित कर दी गई। चार दशकों में पीढ़ी बदल जाती है, लेकिन कोर्ट इस रिट याचिका पर शीघ्र निर्णय लेने में विफल रहा है। अधिवक्ताओं की भूमिका भी चिंता का विषय है, जब वे उपस्थित होने में विफल रहे या स्थगन की मांग की, लेकिन न्यायालय भी कानून के अनुसार मामलों का शीघ्रता से निर्णय करने की अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता। "न्याय में देरी न्याय न मिलने के बराबर है", एक कानूनी कहावत है, जिसे हम सभी को हमेशा ध्यान में रखना होगा। चार दशकों से अधिक समय के बाद वर्तमान रिट याचिका पर अंतिम निर्णय लेने में हुई देरी को उचित ठहराने के लिए कोई कारण नहीं बताया जा सका। इतनी बड़ी देरी के लिए बार और

बेंच दोनों को दोष स्वीकार करना होगा। न्याय के बेहतर प्रशासन के लिए दोनों को मिलकर काम करना होगा ताकि मामलों का फैसला कानून के मुताबिक तेजी से किया जा सके ताकि ऐसी स्थिति केवल एक अपवाद के रूप में बनी रहे न कि नियमित रूप से।

(2023) 8 ILRA 1052

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट-सी संख्या 2637/2023

तहसील बार एसोसिएशन गाजियाबाद

...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपीपीसीएल एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विवेक प्रकाश मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री प्रांजल मेहरोत्रा, श्री कृष्ण अग्रवाल

सिविल विधि - विद्युत अधिनियम, 2003 - टैरिफ वर्गीकरण - तहसील परिसर में अधिवक्ताओं के चैंबर - क्या घरेलू या व्यावसायिक दर पर शुल्क लिया जाना उत्तरदायी है - घरेलू उपयोग के लिए दर अनुसूची एलएमवी-1 में वकीलों जैसे पेशेवर चैंबर शामिल हैं - परिपत्र दिनांक 28.11.1983 और 08.10.1985 वकीलों के कार्यालयों के लिए एलएमवी-1 दर अनिवार्य करते हैं - यूपीपीसीएल ने दर अनुसूची 2022-23 (अवशिष्ट खंड) के खंड 13 के आधार पर एलएमवी-2 (वाणिज्यिक) शुल्क लिया - निर्णय: कानूनी पेशा एक व्यावसायिक गतिविधि नहीं है - अधिवक्ता व्यापार या व्यवसाय में संलग्न नहीं हैं - उनका कार्य समाज सेवा और न्यायिक कार्य के समान है - टैरिफ नीति, परिपत्रों और कानूनी व्याख्या के विपरीत न्यायालय/तहसील परिसर में अधिवक्ताओं के चैंबरों पर वाणिज्यिक टैरिफ लगाना - अधिवक्ताओं के चैंबरों में बिजली कनेक्शन को एलएमवी-1 के तहत घरेलू श्रेणी के रूप में मानने का निर्देश जारी किया गया।

निर्णय: "कानूनी पेशा एक गंभीर पेशा है, न कि कोई व्यावसायिक गतिविधि। न्याय प्रशासन में सहायता करने वाले अधिवक्ता, व्यापार या वाणिज्य में संलग्न नहीं होते हैं। इसलिए, उनके चैंबर - यहाँ तक कि तहसील परिसर में भी - का बिल वाणिज्यिक टैरिफ अनुसूची एलएमवी -2 के अंतर्गत नहीं, बल्कि पिछले परिपत्रों और स्थापित सिद्धांतों के अनुसार घरेलू श्रेणी एलएमवी -1 के अंतर्गत लिया जा सकता है।"

<u>वाद विधियाँ जिन पर भरोसा किया गया</u>:

1. सखा राम नारायण खेरडेकर बनाम नागपुर शहर कॉर्पोरेशन, एआईआर 1964 बीओएम 200

2. डॉ. डीएम सुरती बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1969 एससी 63

3. वीएस शशिधरन बनाम मेसर्स पीटर एंड करुणाकर, एआईआर 1984 एससी 1700

4. एमपी इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम शिव नारायण, (2005) 7 एससीसी 283

5. सुधा बनाम अध्यक्ष, एडवोकेट्स एसोसिएशन, चेन्नई, (2010) 14 एससीसी 114

6. अरूप सरकार बनाम सीईएससी लिमिटेड, 2020 एसटीपीएल 4200 कलकत्ता

7. रामनाथन बनाम केरल राज्य, 1991 (1) केईएलटी 89

8. बीएन मैगन बनाम दक्षिण दिल्ली नगर निगम, 217 (2015) डीएलटी 55

<u>व्याख्या:</u>

1. उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 (खण्ड 3.3(ई), 1.5)

2. विद्युत अधिनियम, 2003 (धारा 3, 61, 86)

3. दर अनुसूची एलएमवी-1 और एलएमवी-2 (वित्तीय वर्ष 2022-23)

4. परिपत्र संख्या 4177-एचसी/आर-83 दिनांक 28.11.1983 और 2446-एचसी/आर-83 दिनांक 08.10.1985

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा पारित)

1. इस रिट याचिका में, याचिकाकर्ता, तहसील बार एसोसिएशन, सदर तहसील परिसर, गांधी नगर, गाजियाबाद, सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत अधिवक्ताओं का एक संघ है। याचिकाकर्ता संघ के सदस्य कानूनी अभ्यासरत वकील हैं और सभी अधिवक्ताओं ने प्रतिवादी पावर कॉर्पोरेशन द्वारा वैध बिजली कनेक्शन के साथ तहसील सदर परिसर में अपने चैंबर स्थापित कर लिए हैं। प्रतिवादी पावर कॉर्पोरेशन की वेबसाइट पर उपलब्ध वित्तीय वर्ष 2016-17 के लिए टैरिफ शेड्यूल के अनुसार, अधिवक्ताओं जैसे पेशेवरों के आवासीय परिसरों सहित उनके चैंबरों को घरेलू माना जाता है और अनुसूची एलएमवी -1 के तहत अच्छी तरह से कवर किया गया है। ऐसे अधिवक्ताओं के चैंबरों में बिजली कनेक्शन देने के बाद प्रतिवादी ने व्यावसायिक दरों पर बिजली शुल्क वसूलना शुरू कर दिया, जिस पर याचिकाकर्ता संघ ने आपत्ति जताई और चूंकि उनकी शिकायतों का समाधान नहीं हुआ, तो उन्होंने रिट सी नंबर 6115/2019 *(तहसील बार एसोसिएशन और 12 अन्य बनाम यूपी राज्य और 6 अन्य)* दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 22.02.2019 के आदेश के तहत निम्नानुसार निपटाया था: -

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री विवेक प्रकाश मिश्रा को सुना।

इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता इस न्यायालय में एक शिकायत लेकर आए हैं कि गाजियाबाद जिले के गांधी नगर में सदर तहसील, तहसील बार एसोसिएशन के कोर्ट परिसर में वकीलों के चैंबर में बिजली कनेक्शन लगाया गया है और बिल का भुगतान वाणिज्यिक आधार पर किया जा रहा है, जबकि वित्तीय वर्ष 2016-17 के लिए टैरिफ शेड्यूल में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एलएमवी-1 *(घरेलू) पेशेवरों जैसे वकीलों, डॉक्टरों, कलाकारों, सलाहकारों आदि के चैंबरों पर लागू होगा। सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत, याचिकाकर्ता को 13.8.2017 को प्रदान की गई जानकारी यह है कि वकीलों के चैंबर में स्थापित मीटर घरेलू श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। हालांकि, यह कहा गया है कि बिल वाणिज्यिक श्रेणी के लिए भेजे जा रहे हैं।*

यह रिट याचिका इस टिप्पणी के साथ निस्तारित की जाती है कि यदि याचिकाकर्ता पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, मेरठ के अधिशासी अभियंता को अभ्यावेदन करते हैं, तो उसी पर विचार किया जाए और उचित आदेश पारित किए जाएं और यदि आवश्यक हो तो बिजली बिलों को संशोधित किया जाए। उक्त निर्णय अधिशासी अभियंता द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने के दो महीने के भीतर लिया जाएगा।"

2. उपर्युक्त आदेश में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि वित्तीय वर्ष 2016-17 के लिए टैरिफ शेड्यूल में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एलएमवी-1, घरेलू दरें पेशेवरों जैसे वकीलों, डॉक्टरों, कलाकारों, सलाहकारों आदि के चैंबरों पर लागू होंगी। यह देखा गया कि सूचना के अधिकार के तहत, 13.08.2017 को प्रदान की गई जानकारी में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गाजियाबाद में जिला एवं सत्र न्यायालय में अधिवक्ताओं के चैंबरों में स्थापित बिजली कनेक्शन घरेलू श्रेणी के तहत जारी किए गए थे और बिजली शुल्क उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत नियामक आयोग द्वारा निर्धारित एलएमवी-1के अनुसार टैरिफ दर पर लिया जा रहा है।

3. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 22.02.2019 को पारित उपर्युक्त आदेश के संदर्भ में, याचिकाकर्ता संघ ने प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष अभ्यावेदन किया, जिसका निस्तारण दिनांक 27.07.2019 के आदेश द्वारा कर दिया गया है। प्रतिवादी संख्या 4 ने उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 के खंड 3.3 (ई) पर भरोसा करते हुए कहा कि चूंकि तहसील परिसर में अधिवक्ताओं के चैंबर घरेलू बिजली उपयोग की श्रेणी में नहीं आते हैं, इसलिए खपत की गई बिजली को घरेलू खपत नहीं माना जा सकता है। उपरोक्त आदेश नीचे पुन:प्रस्तुत किया गया है:-

"सकारण आदेश

अध्यक्ष/सचिव तहसील बार एसोसियेशन, गाजियाबाद के द्वारा दिनांक 18.07.2019 को प्रस्तुत किए गए प्रत्यावेदन विषय तहसील बार एसोसियेशन के 13 नंबर अधिवक्ता/सदस्यो के द्वारा प्रत्यावेदन एवं मा॰ उच्च न्ययालय के दायर याचिका 6115/2019 एवं 3874/2019 मे पारित आदेश के अनुपालन में प्रकरण में अध्ययन करने पर पाया गया कि विद्धुत नगरीय वितरण खंड - तृतीय, गाजियाबाद द्वारा तहसील परिसर में अधिवक्ताओ के चैंबर में दिये गए संयोजन उ.प्र. इलैक्ट्रिकसिटी कोड़-2005 के अनुसार लागू टैरिफ दर पर निर्गत है ।

उ.प्र. विद्धुत प्रदाय सहिंता 2005 के नियम 3.3 (ई) जो निम्नलिखित है--

"वास्तुकार, चार्टर्ड एकाउंटेंट, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील और शिक्षक आदि पेशेवर अपने कब्जे में अधिकतम 50 वर्ग मीटर आवासीय स्थान का उपयोग परामर्श कार्य के पेशेवर अभ्यास के लिए कर सकते हैं, और इस पर गैर-घरेलू टैरिफ लागू नहीं होगा।" *के अनुसार अधिवक्ता द्वारा घरेलू परिसर का अधिकार प्राप्त होने पर उस परिसर क्षेत्र में अधिकतम 50 वर्ग मी॰ एरियाको प्रॉफेशनल या कंसलटेनसी में प्रयोग करने पर उक्त घरेलू क्षेत्र का प्रयोग गैर-घरेलू टैरिफ में नहीं होगा ।उक्त प्रकरण में अधिवक्ता तहसील परिसर में विद्धुत का प्रयोग कर रहे है जो कि घरेलू परिसर का क्षेत्र नहीं है। **तहसील परिक्षेत्र में अभिवक्ता कक्ष को घरेलू विदया में *नहीं लिया जा सकता है।***

तहसील परिसर में ऊर्जीक्रत अधिवक्ता कक्ष के संयोजन वाणिज्यिक विदया से घरन्तु विदया में परिवर्तित करने योग्य नहीं हैं ।अत: आवेदन दिनांक 18.07.2019 को निस्तारित किया जाता है ।

अधिशासी अभियंता

अधिज्ञानी अभियंता

विद्धुत नगरीय वितरण खंड- तृतीय

गाजियाबाद"

4. उपरोक्त आदेश को 13.04.2023 के आदेश द्वारा, निम्नानुसार संशोधित किया गया है।:-

"सकारण

आदेश

माननीय उच्च न्यायाल, इलाहाबाद द्वारा पारित निर्णय दिनांक 06.04.2023 के अनुपालन में खंड कार्यालय द्वारा पूर्वा में पारित सकारण आदेश स.04667 दिनांक 27.07.2019 को पुन: निमन्वत संशोधित किया जाता है ।

विद्धुत नगरीय वितरण खंड तृतीय, गाजियाबाद द्वारा उत्तर प्रदेश पावर कार्पोरेशन लि॰ एवं माननीय ***उत्तर प्रदेश विद्धुत नियामक आयोग द्वारा समय समय पर जारी आदेश एवं निर्धारित रेट शेड्युल के अनुसार विद्धुत सयोंजनों की बिलिंग करने हेतु प्राप्त आदेशो का पालन किया जाता है ।*** *वर्तमान में माननीय उत्तर प्रदेश विद्धुत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित वर्ष 2020-21 के टैरिफ वर्ष 2021-21 की ए॰पी॰आर॰ तथा वर्ष 2022-23 के सकाल राजस्व एवं टैरिफ के संबंध में पुनरक्षित डरो को लागू करने हेतु प्राप्त दिशा निर्देश के अनुपल्न में सामान्य नियनों/ प्रविधानों के अंतर्गत टैरिफ के बिन्द सं॰-13 निमन्वत आदेशित है:-*

उपभोक्ता किसी भी दर अनुसूची के अंतर्गत शामिल नहीं है
किसी भी श्रेणी से स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया:

प्रकाश, पंखे और बिजली के उपभोक्ताओं के लिए (मोटिव पावर लोड को छोड़कर) नहीं किसी भी एलएमवी दर से स्पष्ट रूप से बाहर रखे गए किसी भी दर अनुसूची के तहत कवर किया गया शेड्यूल को एलएमवी-2 के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाएगा।

उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लि॰ को माननीय विद्धुत नियामक आयोग द्वारा समय समय पर निर्धारित रेट शेडयूल के अनुसार सयोंजनों की श्रेणिवार बिलिंग करने हेतु आदेशित किया जाता है ।विद्धुत नियामक आयोग द्वारा जारी रेट हेडयूल (टैरिफ) में अधिवक्ताओ के तहसील परिसर में स्थित कक्ष में स्थापित विद्धुत सयोंजनों की बिलिंग घरेलू शरेणि के अंतर्गत करने हेतु कही कोई विशेष स्पष्ट आदेश नहीं है । अधिवक्ता चैंबर मे स्थापित सयोंजनों का किसी श्रेणी के अंतर्गत परिभाषित न होने के कारण अघरेलू श्रेणि के अंतर्गत एलएमवी-2 विदया रेट अनुसार बिलिंग की जा रही है ।

एवं उत्तर प्रदेश विद्धुत परदाय सहित 2005 के नियम 3.3 (ई) जो की निम्न प्रकार परिभाषित है:-

पेशेवर आर्किटेक्ट, चार्टेड अकाउंटेंट, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील और शिक्षक आदि अधिकतम 50 वर्ग मीटर आवासीय स्थान का उपयोग कर सकते हैं परामर्श कार्य का पेशेवर अभ्यास करने के लिए, उनके कब्जे में, और पर गैर-घरेलू टैरिफ लागू नहीं होगा। के अनुसार अधिवक्ता द्वारा घरेलू परिसर का अधिकार प्राप्त होने पर उस परिसर क्षेत्र में अधिकतम 50 वर्ग मी॰ एरियाको प्रॉफेशनल या कंसलटेनसी में प्रयोग करने पर उक्त घरेलू क्षेत्र का प्रयोग Non-domईstic Taआरiff में नहीं होगा ।उक्त प्रकरण में अधिवक्ता तहसील परिसर में विद्धुत का प्रयोग कर रहे है ।

अत: इस प्रकार के सयोंजनों का विद्धुत नियामक आयोग द्वारा जारी टैरिफ शेडयूल के अंतर्गत घरेलू क्षेत्र (एलएमवी-1) के अंतर्गत तहसील परिसर में स्थित अधिवक्ता चैंबर को परिभाषित नहीं किया गया है ।एवं उत्तर प्रदेश विद्धुत प्रदाय सहित 2005 के धारा-3.3 (ई) के अनुसार तहसील परिसर के अंतर्गत अधिवक्ता चैंबर की बिलिंग अघरेलू

श्रेणि (एलएमवी-2) के अंतर्गत की जा रही है । खंड द्वारा माननीय नियामक आयोग के नियमो के अनुपालनर्थ टैरिफ / बिलिंग से भिन्न टैरिफ मे बिलिंग करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है । अत: तहसील परिसर स्थित अधिवक्ता चैंबर मे विद्धुत संयोजन का किसी अन्य विदया (श्रेणी) ,मे बिलिंग हेतु माननीय उत्तर प्रदेश विद्धुत नियामक आयोग द्वारा आदेश जारी किए जाने की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता माननीय उत्तर प्रदेश विद्धुत नियामक आयोग के समक्ष भी प्रकरण प्रस्तुत कर सकते है। "

5. उपरोक्त 27.07.2019 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित छूट की प्रार्थना करते हुए यह याचिका दायर की है:-"

"I. प्रतिवादियों द्वारा पारित 27.07.2019 के दिनांकित विवादित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 6) को रद्द करने के लिए सर्टिओरेरी की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

"II. प्रतिवादियों के मनमाने कृत्य को रोकने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके द्वारा उन्होंने ... उन्हें वाणिज्यिक बिजली उपभोक्ता के रूप में माना है और लगातार 8.50 रुपये प्रति यूनिट वाणिज्यिक टैरिफ योजना के तहत विद्युत बिल भेजे हैं।"

III. प्रतिवादियों को एक घरेलू बिजली उपभोक्ता के रूप में व्यवहार किए जाने वाले वाणिज्यिक उपभोक्ता के रूप में अतिरिक्त बिल भुगतान राशि को पुन: समायोजित करने का निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।"

IV. परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ता एसोसिएशन और उसके सदस्यों से वर्तमान बिल की वसूली को तब तक रोकें, जब तक कि उनके घरेलू बिलों में रूपांतरण का निपटारा नहीं हो जाता।"

V. इस माननीय न्यायालय द्वारा उपयुक्त समझी जाने वाली कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जो इस मामले की परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त हो।

VI. याचिकाकर्ता को रिट याचिका का खर्च प्रदान करें।"

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वित्तीय वर्ष 2016-17 के टैरिफ अनुसूची के अनुसार, अधिवक्ताओं, डॉक्टरों, कलाकारों, सलाहकारों आदि पेशेवरों के आवासीय परिसर, उनके कक्षों सहित, एलएमवी-1 (घरेलू) की श्रेणी के अंतर्गत आते थे, इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4 के प्रवेश के अनुसार भी, रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-3

के रूप में संलग्न जानकारी में, गाजियाबाद जिला और सत्र न्यायालय में अधिवक्ता कक्षों में बिजली कनेक्शन घरेलू श्रेणी के तहत जारी किया गया है। इसी तरह, 22.02.2009 को *रिट सी नंबर 6115/2019* में पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए, नोएडा पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड ने उक्त आदेश में किए गए अवलोकनों को स्वीकार कर लिया है और उसने नोएडा जिला बार एसोसिएशन में अधिवक्ता कक्षों में घरेलू दरों पर बिजली का शुल्क लेना शुरू कर दिया है।"

"याचिकाकर्ता एसोसिएशन के सदस्यों को भी बिजली के घरेलू उपभोक्ता के रूप में माना जाना चाहिए और उनसे घरेलू बिजली उपभोक्ताओं पर लागू होने वाली दर पर शुल्क लिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि एक वकील का पेशा एक व्यावसायिक गतिविधि नहीं है बल्कि यह समाज की सेवा है और वकील न्याय प्रशासन में सक्रिय खिलाड़ी हैं जैसे न्यायाधीश। पेशेवर गतिविधि एक वकील या एक न्यायाधीश द्वारा बार पर साथ-साथ चलती है और दोनों एक ही पेशा हैं। प्रत्येक का कार्य अलग-अलग है लेकिन यह एक ही पेशा है, उद्देश्य कानून के अनुसार न्याय का प्रशासन है। इसलिए, वकीलों का पेशा एक प्रकार का पेशा है जिसे सामाजिक सेवा कहा जा सकता है, जो निश्चित रूप से व्यावसायिक प्रकृति का पेशा नहीं है।" "इसलिए, न्यायालय परिसर में अधिवक्ताओं के कक्षों को आपूर्ति की गई बिजली की वाणिज्यिक दरों को लागू नहीं किया जा सकता है और उनसे बिजली आपूर्ति की घरेलू अनुसूची के अनुसार शुल्क लिया जाना चाहिए।"

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा रखा है:-"

1. सखा राम नारायण खर्डेकर विरुद्ध नागपुर नगर निगम, एआईआर 1964 बॉम्बे 200 में रिपोर्ट किया गया।

2. रामनाथन विरुद्ध केरल राज्य, 1991 वॉल्यूम I केरएलटी 89 में रिपोर्ट किया गया।

3. बी.एन. मागोन विरुद्ध दक्षिण दिल्ली नगर निगम, 217 (2015) डीएलटी 55 में रिपोर्ट किया गया।

4. मध्य प्रदेश विद्युत बोर्ड और अन्य विरुद्ध शिव नारायण और अन्य, (2005) 7 एससीसी 283 में रिपोर्ट किया गया।

5. अरूप सरकार विरुद्ध सी.ई.एस.सी. लिमिटेड और अन्य 2020 एसटीपीएल 4200 कलकत्ता में रिपोर्ट किए गए।

6. ससीधरन विरुद्ध एम/एस पीटर एंड करुणकर रिपोर्टेड 1984 एआईआर एससी 1700।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने 28.11.1983 के परिपत्र संख्या 4177-एचसी/आर-83 पर भी भरोसा रखा है, जो न्यायपालिका पर लागू होने वाली एलएमवी-1 श्रेणी के तहत दर अनुसूची प्रदान करता है। उन्होंने आगे परिपत्र संख्या 2446- एचसी/आर-

83 दिनांक 08.10.1985 पर भरोसा किया, जो प्रदान करता है कि वकील या वकीलों की फर्म के कार्यालय को घरेलू लाइट, पंखा और बिजली उपभोक्ताओं पर लागू एलएमवी-1 दर अनुसूची के तहत बिल किया जाना है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 के खंड 1.5 पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत करते हैं कि उपरोक्त परिपत्र जो विशेष रूप से वकीलों के कार्यालय या फर्म को श्रेणी एलएमवी-1 के तहत दर अनुसूची की प्रयोज्यता प्रदान करते हैं, उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता के खंड 1.5 के अनुसार सुरक्षित हैं क्योंकि नए दर अनुसूची में वकीलों के कक्षों को बिजली आपूर्ति के संबंध में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है।

10. श्री प्रणजल मेहरोत्रा, प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान वकील उत्तर प्रदेश विद्युत नियामक आयोग द्वारा वर्ष 2022-23 के लिए अनुमोदित दर अनुसूची पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत करते हैं कि वकीलों के कक्षों में गतिविधि घरेलू गतिविधि नहीं है। इस प्रकार, अपने कक्षों में वकीलों की गतिविधि एक गैर-घरेलू गतिविधि है। इसलिए, वित्तीय वर्ष 2020-23 के लिए दर अनुसूची के खंड 13 के अनुसार, अधिवक्ता कक्षों में बिजली का उपयोग एक गैर-घरेलू गतिविधि है और वकीलों के कक्षों को बिजली आपूर्ति के लिए एलएमवी-2 लागू होगा। वर्ष 2022-23 के लिए दर अनुसूची वकीलों के कक्षों के लिए विशिष्ट दर अनुसूची का प्रावधान नहीं करती है, इसलिए, खंड 13 किसी गतिविधि/श्रेणी के लिए एलएमवी-2 की प्रयोज्यता का प्रावधान करता है, जो किसी दर अनुसूची में शामिल नहीं है। श्री मेहरोत्रा, प्रतिवादी के विद्वान वकील, आगे प्रस्तुत करते हैं कि दर अनुसूची उत्तर प्रदेश विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित हैं और प्रतिवादी संख्या 4 वितरण कंपनी होने के नाते उत्तर प्रदेश विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित दर अनुसूची से बाध्य है। यदि याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित दर अनुसूची के संबंध में कोई शिकायत है, तो वे स्वयं उत्तर प्रदेश विद्युत नियामक आयोग के समक्ष अपनी शिकायत उठा सकते हैं। इसलिए, वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के कारण, रिट याचिका निरधारणीय नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।"

11. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में ***एमपी विद्युत बोर्ड और अन्य विरुद्ध शिव नारायण और अन्य, (2005) 7 एससीसी 283*** में रिपोर्ट किया गया है, जिस पर भारी भरोसा रखा है, जिसके द्वारा इस मामले को लार्जर बेंच के समक्ष संदर्भित किया गया था, ***नई दिल्ली नगर निगम विरुद्ध सोहन लाल सचदेव, (2002) एससीसी 494*** में निर्णय की शुद्धता पर संदेह करते हुए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की लार्जर बेंच ने ***सोहन लाल सचदेव (उपरोक्त)*** में निर्णय की पुष्टि की थी, यह कहते हुए कि इसे किसी पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, यह ध्यान रखना उचित है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस सवाल पर नहीं गया है कि क्या वकील को किसी व्यावसायिक गतिविधि को करने के लिए कहा जा सकता है या नहीं।"

12. पार्टियों के वकीलों के उपरोक्त प्रस्तुतिकरणों के मद्देनजर इस न्यायालय द्वारा निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न उभरते हैं:-

1. क्या एक वकील की गतिविधियाँ/पेशा एक व्यावसायिक गतिविधि है, जो विद्युत खपत की वाणिज्यिक दर को आकर्षित करेगी?"

2. क्या दर अनुसूची एलएमवी-2, जो वाणिज्यिक गतिविधियों पर लागू होती है, क्या वकीलों के कक्षों को आपूर्ति की जाने वाली बिजली पर लागू की जा सकती है?

3. क्या प्रतिवादी विभिन्न न्यायालय परिसरों में अधिवक्ता कक्षों को बिजली आपूर्ति के बीच भेदभाव कर सकते हैं?"

13. परिपत्र संख्या. 4177-एचसी/आर-83 दिनांक 28.11.1983 निम्नानुसार पढ़ा जाता है:-

"केंद्रीय और राज्य सरकार के कार्यालय जो व्यावसायिक गतिविधियों में लगे हुए हैं, उन्हें वाणिज्यिक लाइट पंखे और बिजली पर लागू दर अनुसूची एलएमवी-2 पर बिल दिया जाना चाहिए, जबकि अन्य को दर अनुसूची एलएमवी-1 के अनुसार विस्तृत विवरण दिया जाना चाहिए:

ए. जहां एलएमवी-2 लागू है बी. जहां एलएमवी-1 लागू है बी. ***जहां एलएमवी -1 लागू है***

1. *ऑल इंडिया रेडियो* *1. राजस्व विभाग*

2.दूरदर्शन
2. पुलिस विभाग

3. राज्य सड़क परिवहन निगम *3. न्यायपालिका*

4. पुल निगम

5. नगर विकास प्राधिकरण

6. सभी राज्य सरकार/केंद्र सरकार उपक्रम और निगम

7. डाक विभाग,

8. रेलवे (5 किलोवाट तक) [5 किलोवाट से अधिक एलएमवी-10(4)(b) के तहत बिल किए जाने हैं]

9. उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम

10. उत्तर प्रदेश आवास बोर्ड"

14. परिपत्र संख्या 2446-एचसी/आर-83 दिनांक 08-10-85 निम्नानुसार प्रदान करता है:-"

"वकील या वकीलों की फर्म के कार्यालय को दर अनुसूची एलएमवी-1 के तहत बिल किया जाना है, जो घरेलू लाइट, पंखा और बिजली उपभोक्ताओं पर लागू होता है।"

15. वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए दर अनुसूची एलएमवी-1के अनुसार, प्रयोज्यता खंड निम्नानुसार है:-"

> *"आवासीय/घरेलू प्रयोजन के लिए परिसर, घरेलू प्रयोजन के लिए अतिथि गृह (गेस्ट हाउस को छोड़कर) भुगतान करने वाले मेहमानों के लिए आवास, जनता सेवा कनेक्शन, कुटीर ज्योति कनेक्शन, झुग्गी/झोंपड़ियां, पूजा स्थल (जैसे मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च) और इलेक्ट्रिक श्मशान, आश्रय गृह, अनाथालय, वृद्धाश्रम, मानसिक रूप से विकलांग और बेसहारा बच्चों के लिए संस्थान। किसी भी धर्म के धार्मिक व्यक्तियों द्वारा कब्जा किए गए गैर-व्यावसायिक स्थान भी इस श्रेणी में, अधिकतम 5 किलोवाट तक के भार के लिए, इस शर्त पर पात्र हैं कि ऐसे गैर-व्यावसायिक स्थान का किसी धर्मार्थ ट्रस्ट से वैध पंजीकरण/मान्यता हो।"*

16. गैर-आवासीय लाइट, पंखे और बिजली के लिए दर अनुसूची एलएमवी-2, निम्नानुसार सभी उपभोक्ताओं पर लागू होती है:

> *"यह अनुसूची उन सभी उपभोक्ताओं पर लागू होगी जो गैर-आवासीय उद्देश्यों के लिए लाइट, पंखे और बिजली भार के लिए विद्युत ऊर्जा का उपयोग करते हैं, जैसे: सभी प्रकार की दुकानें, जिनमें पटरी दुकानदार भी शामिल हैं।होटल, रेस्तरां, निजी गेस्ट हाउस, निजी ट्रांजिट हॉस्टल, निजी छात्र हॉस्टल, विवाह भवन, शोरूम, वाणिज्यिक/व्यापारिक प्रतिष्ठान।सिनेमा और थिएटर, बैंक, केबल टीवी ऑपरेटर, टेलीफोन बूथ/पीसीओ (एसटीडी/आईएसडी), फैक्स संचार केंद्र, फोटो कॉपीयर, साइबर कैफे।निजी नैदानिक केंद्र (एक्स-रे प्लांट, एमआरआई केंद्र, सीएटी स्कैन केंद्र, पैथोलॉजी सहित) और निजी विज्ञापन/साइन पोस्ट/साइन बोर्ड।वाणिज्यिक संस्थान/ सोसायटी, ऑटोमोबाइल सेवा केंद्र, कोचिंग संस्थान, निजी संग्रहालय।5 किलोवाट से कम भार वाले पावर लूम।1956 के कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत सभी कंपनियां जिनका भार 75 किलोवाट से कम है।*

17. सार्वजनिक और निजी संस्थानों की लाइट और बिजली के लिए दर अनुसूची एलएमवी-4 निम्नलिखित पर लागू होती है:

"यह अनुसूची निम्नलिखित पर लागू होगी:

(क) सरकारी अस्पताल / सरकारी अनुसंधान संस्थान / 1956 के कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत कंपनियों के अलावा सरकारी संगठनों के कार्यालय।

(ख) सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त (i) शिक्षण संस्थान (ii) छात्रावास (iii) पुस्तकालय।

(ग) धार्मिक और धर्मार्थ ट्रस्ट और संस्थान, जिनके पास आयकर विभाग द्वारा जारी धारा 12एए और 80जी के तहत वैध पंजीकरण है, जिनमें अस्पताल, कॉलेज और वे संस्थान

शामिल हैं जो निःशुल्क सेवाएं प्रदान करते हैं या ऐसे शुल्क/शुल्क संरचना पर सेवाएं प्रदान करते हैं जो समकक्ष सरकारी संचालित संस्थानों से अधिक नहीं हैं।

(घ) रेलवे प्रतिष्ठान (रेलवे कर्षण, औद्योगिक परिसर और मेट्रो को छोड़कर) जैसे बुकिंग केंद्र, रेलवे स्टेशन और रेलवे अनुसंधान और विकास संगठन, रेलवे विश्राम गृह, रेलवे अवकाश गृह, रेलवे निरीक्षण गृह।

(ङ) आकाशवाणी और दूरदर्शन।

(च) सरकारी, अर्ध-सरकारी, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम संगठनों के अतिथि गृह।"

18. दर अनुसूची के सावधानीपूर्वक अवलोकन से, जैसा कि वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए उत्तर प्रदेश राज्य विनियामक आयोग द्वारा अनुमोदित है, यह स्पष्ट है कि अधिवक्ताओं और पेशेवरों या न्यायपालिका जैसे सार्वजनिक संस्थानों की गतिविधियों का किसी भी दर अनुसूची में स्थान नहीं है। वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए दर अनुसूची के संबंध में सामान्य प्रावधानों का खंड 13 निम्नानुसार प्रदान करता है:

"गैर-मोटिव पावर भार (प्रतिरूपक पावर भार को छोड़कर) के लाइट, पंखे और बिजली के उपभोक्ताओं के लिए जो किसी दर अनुसूची के तहत कवर नहीं किए गए हैं या स्पष्ट रूप से किसी एलएमवी दर अनुसूची से बाहर रखे गए हैं, उन्हें एलएमवी -2 के तहत वर्गीकृत किया जाएगा।'

19. उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 का खंड 1.5 निम्नानुसार प्रदान करता है:"

"1.5 लाइसेंसधारी के अपने नियमावली में विद्यमान प्रावधान:

लाइसेंसधारी उन मामलों में अपने स्वयं के नियमावली या आदेशों का उल्लेख कर सकता है जो इस आपूर्ति संहिता में विशेष रूप से शामिल नहीं हैं, बशर्ते कि ऐसे दिशानिर्देश इस आपूर्ति संहिता और विद्युत अधिनियम 2003 के किसी भी प्रावधान के विपरीत न हों"

20. खंड 3.3 का उप-खंड (ई) निम्नानुसार प्रदान करता है:

"(ई) पेशेवर, आर्किटेक्ट, चार्टर्ड एकाउंटेंट, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील और शिक्षक आदि अपने कब्जे में अधिकतम 50 वर्ग मीटर आवासीय स्थान का उपयोग पेशेवर अभ्यास या परामर्श कार्य करने के लिए कर सकते हैं, और इससे गैर-आवासीय टैरिफ लागू नहीं होगा।"

21. विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 3 की उप-धारा (1) राज्य सरकारों के परामर्श से टैरिफ नीति तैयार करने के लिए केंद्र सरकार पर एक कर्तव्य का समर्पण करती है। विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 3 की उप-धारा (3) आगे समय-समय पर केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों और प्राधिकरण के परामर्श से राष्ट्रीय विद्युत नीति और टैरिफ नीति की समीक्षा और संशोधन का प्रावधान करती है। विद्युत अधिनियम की धारा 86 राज्य आयोग को

बिजली के उत्पादन, आपूर्ति, पारेषण और व्हीलिंग के लिए टैरिफ निर्धारित करने का अधिकार प्रदान करती है। टैरिफ नीति निर्धारित करते समय, राज्य आयोग राष्ट्रीय विद्युत नीति, राष्ट्रीय विद्युत योजना और धारा 3 के तहत प्रकाशित टैरिफ नीति से निर्देशित होगा, जैसा कि धारा 86 की उप-धारा (4) में प्रदान किया गया है। विद्युत अधिनियम की धारा 86 की उप-धारा (1) का खंड (f) राज्य आयोग को लाइसेंसधारी और उत्पादक कंपनियों के बीच विवादों पर निर्णय लेने और किसी भी विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजने का अधिकार प्रदान करता है।

22. एलएमवी-2 गैर-आवासीय उद्देश्यों पर लागू होता है, जैसे सभी प्रकार की दुकानें, जिनमें पटरी दुकानदार, होटल, रेस्तरां, निजी गेस्ट हाउस, निजी ट्रांजिट अस्पताल, निजी छात्र हॉस्टल, विवाह भवन, शोरूम, वाणिज्यिक/व्यापारिक प्रतिष्ठान, सिनेमा और थिएटर, बैंक, केबल टीवी ऑपरेटर, टेलीफोन बूथ, फोटो कॉपीयर की दुकान, साइबर कैफे आदि शामिल हैं। यदि हम दर अनुसूची एलएमवी-2 में इंगित गैर-आवासीय उद्देश्यों को देखें, तो वकील का पेशा इस दर अनुसूची में बताए गए गैर-आवासीय उद्देश्य के तहत शामिल नहीं है। यह प्रस्ताव अच्छी तरह से स्थापित है कि एक ही संदर्भ में आने वाले शब्दों को एक दूसरे से अपना रंग लेना चाहिए। वकीलों के कार्यालय को गैर-आवासीय उद्देश्यों की श्रेणियों के अंतर्गत लाने के लिए, गतिविधि को एलएमवी-2 श्रेणी के तहत दर अनुसूची में दर्शाए गए समान स्वरूप की स्थापित की जानी चाहिए। डॉ. डी.एम. सुरती बनाम गुजरात राज्य, (एआईआर 1969 एससी 63) में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> *"शब्द एक दूसरे से अर्थ ग्रहण करते हैं, अर्थात् अधिक सामान्य शब्द कम सामान्य शब्द के तुल्यार्थक अर्थ तक सीमित हो जाता है। 'नॉस्कोर ए सोसाइस' के सिद्धांत के तहत संबद्ध शब्द एक दूसरे से अपना अर्थ लेते हैं, जिसका दर्शन यह है कि एक संदिग्ध शब्द का अर्थ इससे जुड़े शब्दों के अर्थ के संदर्भ में पता लगाया जा सकता है; ऐसा सिद्धांत 'एजसडेम जेनेरिस' अधिकतम से व्यापक है।"*

इस प्रकार, एलएमवी-2 के तहत दर अनुसूची में इंगित गैर-आवासीय उद्देश्य की उदाहरणात्मक परिभाषा के स्पष्ट पढ़ने से, हमारा दृढ़ मत है कि वकीलों के कक्ष एलएमवी-2 के तहत दर अनुसूची में उदाहरण के रूप में बताए गए गैर-आवासीय उद्देश्य की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएंगे, क्योंकि उदाहरणात्मक गतिविधियाँ व्यावसायिक प्रकृति की गतिविधियों को दर्शाती हैं। मामलों की कैटेन में न्यायिक पेशे को गैर-व्यावसायिक गतिविधि माना गया है और यह कोई व्यापार या धंधा नहीं है। बार काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा बनाए गए नियमों के द्वारा, वकीलों को किसी भी व्यापार या पेशे में सक्रिय रूप से भाग लेने से भी प्रतिबंधित किया गया है। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने **एम.पी. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य बनाम शिव नारायण चोपड़ा (सुप्रा)** में कहा कि अधिवक्ताओं के कार्यालय

पर वाणिज्यिक दर पर अतिरिक्त शुल्क नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि न्यायिक पेशा एक व्यावसायिक गतिविधि नहीं है।

23. डॉ. डी.एम. सुरती बनाम गुजरात राज्य (सुप्रा) में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि 'एक पेशेवर गतिविधि एक व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत कौशल और बुद्धि के द्वारा की जाने वाली गतिविधि होनी चाहिए। यह पेशेवर गतिविधि और व्यावसायिक चरित्र वाली गतिविधि के बीच एक मूलभूत अंतर है।'

24. सुधा बनाम अध्यक्ष, एडवोकेट्स एसोसिएशन, चेन्नई एंड अन्य में (2010) 14 एससीसी 114 रिपोर्ट में निम्नानुसार कहा गया है:

"न्यायिक पेशा एक गंभीर और महत्वपूर्ण व्यवसाय है। यह एक महान आह्वान है और जो लोग इससे जुड़े हैं, वे इसके सम्माननीय सदस्य हैं। यद्यपि विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित योग्यता प्राप्त करने से ही इस पेशे में प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन एक पेशेवर के रूप में सम्मान उसके सदस्यों द्वारा न्यायालय के अंदर और बाहर दोनों जगह अपने अनुकरणीय आचरण के द्वारा बनाए रखा जाना चाहिए। न्यायिक पेशा अन्य पेशों से इस अर्थ में भिन्न है कि वकील जो करते हैं, वह न केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है, बल्कि न्याय के प्रशासन को भी प्रभावित करता है, जो सभ्य समाज की नींव है।"

25. ब्लैक लॉ डिक्शनरी - छठा संस्करण में 'पेशा' शब्द को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

'पेशा- एक व्यवसाय या कार्य जिसमें विशेष, प्रायः उच्च शिक्षा, ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है; जैसे, कानून या चिकित्सा पेशे। साथ ही, ऐसे पेशे के संपूर्ण समूह को भी संदर्भित करता है।'

पेशे में मुख्यतः मानसिक या बौद्धिक श्रम और कौशल शामिल होता है, न कि शारीरिक या मैनुअल श्रम।

मूल रूप से इस शब्द का उपयोग केवल तकनीकी, कानून और चिकित्सा क्षेत्रों के लिए किया जाता था, लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान और ज्ञान का अन्य क्षेत्रों में विस्तार हुआ, अन्य व्यवसायों को भी यह नाम मिला, जो कि विशेष ज्ञान में दावा किए गए ज्ञान को दर्शाता है।

किसी चीज को सार्वजनिक रूप से घोषित करना; किसी धर्म में आस्था की घोषणा है।"

26. एडवांस्ड लॉ में 'प्रोफेशन' शब्द को भी परिभाषित किया गया है
लैक्सिकॉन खंड-3 पृष्ठ-3764 पर जो इस प्रकार है:

"पेशा-"पेशा" एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें या तो विशुद्ध बौद्धिक कौशल की आवश्यकता होती है या कोई हस्तकला शामिल होती है, जैसे चित्रकला और मूर्तिकला या शल्यक्रिया, जहां कौशल को

संचालक के बौद्धिक कौशल द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यह उस व्यवसाय से भिन्न है, जो मुख्य रूप से वस्तुओं के उत्पादन या बिक्री या उत्पादन व बिक्री की व्यवस्था से संबंधित है। (सी.आई.टी. बनाम मनमोहन दास (1966) 59 आईटीआर 699, 710 (एससी) आयकर अधिनियम, 1961, धारा 28).

पृष्ठ 3765 पर इसे इस प्रकार कहा गया है:

"पेशे की एक परिभाषा रोजगार है, विशेष रूप से वह रोजगार जिसमें शिक्षित शिक्षा की आवश्यकता होती है, जैसे कि कानून और भौतिकी (वेबस्टर शब्दकोश)। सेंचुरी शब्दकोश में, पेशे की परिभाषा, अन्य रूपों के साथ, एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें विज्ञान या ज्ञान के किसी विभाग के पेशेवर ज्ञान का उपयोग दूसरों के मामलों में व्यावहारिक अनुप्रयोग से किया जाता है, या तो उन्हें सलाह देने, मार्गदर्शन देने या शिक्षित करने में, या उस पर आधारित किसी कला के अभ्यास में उनके हित या कल्याण की सेवा में किया जाता है।"

"यह शब्द विशिष्ट ज्ञान में पेशेवर निपुणता का बोध कराता है, केवल कौशल से भिन्न; अध्ययन या जांच से भिन्न मामलों का व्यावहारिक संचालन; और ऐसे ज्ञान के उपयोग को दूसरों के लिए एक व्यवसाय के रूप में लागू करना, स्वयं के प्रयोजनों के लिए उसके पीछा से भिन्न है।"10

"यह शब्द उस व्यवसाय या कार्य पर लागू होता है जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए अध्ययनपूर्ण और विशिष्ट तैयारी की आवश्यकता होती है।"

1. वह व्यवसाय, जिसमें कोई अपने कौशल का दावा करता है और उसी को अपनाता है; कोई भी कार्य या व्यवसाय, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति नियमित रूप से अपनी आजीविका कमाता है (आयकर अधिनियम की धारा 2(36) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 150; 2. पूर्वोत्तर पहाड़ी विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 7).

"किसी गतिविधि को पेशा माना जाने के लिए, यह आवश्यक है कि वह किसी व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत कौशल, बुद्धि और व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर करते हुए किया जाए। सखाराम नारायण खर्देकर बनाम नागपुर शहर निगम, (एआईआर 1964 बॉम्बे 200, 210 (बॉम्बे दुकानें और स्थापना अधिनियम (1948 का 79, धारा 2(4)).

चार्टर्ड एकाउंटेंट के विविध कार्यों में ग्राहक की सेवा के लिए ईमानदारी, बुद्धि और व्यक्तिगत कौशल के प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसलिए, चार्टर्ड एकाउंटेंट अधिनियम, 1949 की प्रस्तावना एक चार्टर्ड एकाउंटेंट के आह्वान को एक पेशा के रूप में वर्णित करती है। एन.ई. मर्चेंट बनाम राज्य. (एआईआर 1968 बॉम्बे

283, 287. बॉम्बे दुकानें और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान अधिनियम (1948 का 76))

कोई पेशा या व्यवसाय आजीविका अर्जित करने के उद्देश्य से किया जाता है, और ऐसे पेशे या व्यवसाय को चलाने के पीछे लाभ का मकसद नहीं होता है। एल.एम. चिताला बनाम श्रम आयुक्त. (एआईआर 1964 मद्रास 131, 133 (भारत का संविधान, अनुच्छेद 19(6))

"वाणिज्यिक" से भिन्न "पेशा" का अर्थ है वह व्यक्ति जो किसी पेशे में प्रवेश करता है। इसमें पेशेवर गतिविधि के रूप में कौशल की एक निश्चित मात्रा शामिल होती है, जबकि वाणिज्यिक गतिविधि में यह वस्तुओं या व्यावसायिक गतिविधि का अधिक मामला होता है। पेशे में, यह विशुद्ध रूप से कौशल गतिविधि का उपयोग है। इसलिए, वाणिज्यिक गतिविधि में दो अलग-अलग अवधारणाएं हैं - एक लाभ या लाभ के लिए काम करता है और इसके विपरीत, पेशे में, व्यक्ति अपनी आजीविका के लिए काम करता है।

27. वी. शशिधरन बनाम मीज़ पीटर एंड करूनाकर, एआईआर 1984 (4) एससीसी 230 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि केरल दुकानें वाणिज्यिक प्रतिष्ठान अधिनियम, 1960 के प्रावधानों के अर्थ में वकील का कार्यालय या वकीलों की फर्म व्यावसायिक प्रतिष्ठान नहीं है। उक्त निर्णय के पैरा-9 में आगे यह नोट किया गया है कि "आज के वकील की भूमिका के बारे में और एक पेशे व दूसरी ओर व्यापार या व्यवसाय के बीच अंतर के कथित रूप से कम होने के बारे में आम धारणा या गलतफहमी चाहे जो हो, यह सर्वविदित है कि पारंपरिक रूप से वकील न तो व्यापार या व्यवसाय करते हैं और न ही 'ग्राहकों' को सेवाएं प्रदान करते हैं ।"

28. चेयरमैन, मध्य प्रदेश विद्युत बोर्ड बनाम शिव नारायण, 2005 7 एससीसी 283 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निरीक्षण किया है:

"12. एक पेशेवर गतिविधि वह गतिविधि होनी चाहिए जो किसी व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत कौशल और बुद्धि से संचालित की जाती है। इसलिए, एक पेशेवर गतिविधि और व्यावसायिक चरित्र की गतिविधि के बीच एक मूलभूत अंतर है। बॉम्बे दुकानें और प्रतिष्ठान अधिनियम (1948 का 79) की धारा 2(4) की पृष्ठभूमि में एक समान प्रश्न पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने डॉ. देवेंद्र एम. सूर्ति बनाम गुजरात राज्य (एआईआर 1969 एससी 63) में यह निर्धारित किया था कि एक डॉक्टर का प्रतिष्ठान "व्यावसायिक प्रतिष्ठान" शब्द के अंतर्गत नहीं आता है।"

"14. भले ही यह स्वीकार कर लिया जाए कि उपयोगकर्ता घरेलू नहीं था, यह गैर-घरेलू हो सकता है। लेकिन यह स्वत: ही "व्यावसायिक" नहीं बन जाता है। "गैर-घरेलू" और "व्यावसायिक" शब्द परस्पर विनिमेय नहीं हैं...."

29. हिक्स द्वारा लिखित एथिक्स ऑफ बार एंड बेंच पुस्तक के पृष्ठ 229 और 230 पर दिए गए एक अंश में कानूनी पेशे को निम्नानुसार वर्णित किया गया है:

> *"कानून का अभ्यास सभी के लिए खुला व्यवसाय नहीं है, बल्कि एक व्यक्तिगत अधिकार है, जो कुछ ही अच्छे नैतिक चरित्र वाले व्यक्तियों तक सीमित है, जिनके पास विशेष योग्यताएं होती हैं, जिनका निर्धारण और प्रमाणन सामान्य और पेशेवर दोनों प्रकार के अध्ययन के लंबे पाठ्यक्रम के बाद और उस उद्देश्य के लिए नियुक्त राज्य बोर्ड द्वारा गहन परीक्षा के बाद किया जाता है। कानून का अभ्यास करने का अधिकार राज्य की एक फ्रेंचाइजी की प्रकृति में है, जो केवल योग्यता के लिए प्रदान की जाती है....."*

"एक वकील और ग्राहक का संबंध सीमित और गरिमामय अर्थ में स्वामी और सेवक का संबंध है, जिसमें उच्चतम विश्वास और भरोसा शामिल होता है। बिना सहमति के इसे अन्य को नहीं सौंपा जा सकता और यह किसी निगम द्वारा कानून का अभ्यास करने के लिए नियुक्त वकील और निगम के ग्राहक के बीच मौजूद नहीं हो सकता, क्योंकि वह निगम के निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य होगा, न कि ग्राहक के निर्देशों का। उसके और ग्राहक के बीच न तो कोई अनुबंध होगा और न ही सामिप्य, और वह वास्तविक वादकर्ता के प्रति वकील के कर्तव्य का पालन भी नहीं करेगा। निगम मुकदमेबाजी को नियंत्रित करेगा, अर्जित धन निगम का होगा, और वकील केवल निगम के प्रति उत्तरदायी होगा। उसका स्वामी ग्राहक नहीं होगा, बल्कि निगम होगा, जिसका संचालन पूरी तरह से अनभिज्ञ व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है, जो केवल धन कमाने के लिए संगठित हैं, न कि न्याय के प्रशासन में सहायता करने के लिए, जो एक वकील और कानून सलाहकार का सर्वोच्च कार्य है। निगम के शेयरधारकों, निदेशकों या अधिकारियों में से कोई वकील नहीं हो सकता है। इसके सदस्य चरित्र, ज्ञान या प्रस्थिति के बिना हो सकते हैं। जनता को धोखे या धोखाधड़ी से बचाने के लिए परिशिष्ट या निष्कासन द्वारा कोई उपाय नहीं होगा, एक प्राचीन और सम्मानित पेशे की परंपराओं से अच्छे आचरण के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होगा और शेयरधारकों के लिए धन कमाने के अलावा कोई मार्गदर्शन नहीं होगा। बार, जो एक उच्चतम उपयोगिता और प्रतिष्ठा का संस्थान है, गंभीर रूप से ह्रासित हो जाएगा, यदि उसके सबसे विनम्र सदस्य भी एक धन-कमाऊ निगम के आदेशों के अधीन हो जाते हैं, जो स्वयं के लिए मुकदमेबाजी करने में नहीं, बल्कि दूसरों के लिए मुकदमेबाजी करने के व्यवसाय में लगा हुआ है। बार का ह्रास राज्य के लिए एक हानि है।"

30. रमनाथन बनाम केरल राज्य (1991 (1) केएलजे 410) के मामले में, केरल उच्च न्यायालय ने केरल दुकानें और वाणिज्यिक

प्रतिष्ठान अधिनियम, 1960 से संबंधित मामले पर विचार करते हुए यह निरीक्षण किया कि एक वकील का पेशा वाणिज्यिक या औद्योगिक गतिविधि में शामिल नहीं है।

31. अरूप सरकार बनाम सीईएसई लिमिटेड एंड अदर्स, (रिट याचिका संख्या 18367/2019, निर्णय दिनांक 11.02.2020) के मामले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि एक वाद-संस्थान वकील का कक्ष स्पष्ट रूप से उसके व्यक्तिगत पेशेवर कौशल के आधार पर उसकी आजीविका के लिए उपयोग किया जाता है, इसलिए उसकी गतिविधि को वाणिज्यिक गतिविधि नहीं कहा जा सकता है। अतः उन पर कमर्शियल (शहरी) श्रेणी के तहत शुल्क नहीं लिया जा सकता है और वकील के कक्ष को "घरेलू (शहरी)" श्रेणी के तहत शुल्क लगाने का निर्देश दिया है।

32. सकाराम बनाम नागपुर निगम (एआईआर 1960 बॉम्बे 200) के मामले में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या वकील के कार्यालय को बॉम्बे दुकानें और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान अधिनियम के तहत प्रतिष्ठान घोषित किया जा सकता है। कानूनी पेशे के विभिन्न पहलुओं की जांच के बाद, यह निरीक्षण किया गया कि एक वकील की गतिविधि वह होती है जो उसके व्यक्तिगत कौशल, बुद्धि, अध्ययन, ईमानदारी और व्यक्तिगत विशेषताओं द्वारा संचालित होती है। अंत में, खंडपीठ ने कानूनी पेशे की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि एक कानूनी पेशेवर का कार्यालय उक्त अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान नहीं है।

33. एक अधिवक्ता या कानूनी प्रैक्टिशनर न्यायालय के पदाधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। एक अधिवक्ता को किसी भी व्यवसाय करने या किसी वाणिज्यिक गतिविधि में शामिल होने से प्रतिबंधित किया गया है और बार काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा उनकी पेशेवर गतिविधियों के विज्ञापन से भी प्रतिबंधित किया गया है। बार काउंसिल ऑफ इंडिया ने एक अधिवक्ता के कर्तव्यों को भी परिभाषित किया है जिनमें उसके मुवक्किल के प्रति, न्यायालय के प्रति, सहयोगियों और विरोधियों के प्रति कर्तव्य शामिल हैं। एक अधिवक्ता को उस मामले के विषय वस्तु में कोई स्वार्थी हित बनाने से रोका जाता है जिसके लिए वह नियुक्त है। वह मामले के परिणाम पर निर्भर शुल्क निर्धारित नहीं कर सकता है और न ही वह मामले की आय को साझा करने के लिए सहमत हो सकता है। ये सभी विशेषताएं हैं, जो स्पष्ट रूप से कानूनी पेशे को व्यापार या व्यवसाय से अलग करती हैं। इसलिए, कानूनी पेशे को किसी भी कल्पना से व्यावसायिक गतिविधि, व्यापार या व्यवसाय नहीं कहा जा सकता है।

34. यह निर्धारित करने के बाद कि कानूनी पेशा किसी व्यापार या व्यवसाय से जुड़ा वाणिज्यिक गतिविधि नहीं है, दर अनुसूची एलएमवी-2, जिसे हालांकि एलएमवी-2 के तहत 'गैर-घरेलू उपयोगकर्ता' के रूप में वाक्यांशित किया गया है, स्पष्ट रूप से वाणिज्यिक

गतिविधियों को इंगित करता है, जो विशुद्ध रूप से व्यापार और व्यवसाय से संबंधित हैं। इसलिए, उक्त दर अनुसूची कानूनी पेशेवरों के कार्यालयों पर लागू नहीं हो सकती, चाहे ऐसे कार्यालय आवासीय भवनों में हों या न्यायालय परिसर में स्थित हों। न्यायालय परिसर के भीतर स्थित वकीलों के कक्ष न्यायिक परिसर का हिस्सा हैं, जहां 28.11.1983 के परिपत्र के अनुसार, एलएमवी-1 लागू होता है। 08.10.1985 के परिपत्र ने यह भी अनिवार्य किया कि एक वकील या वकील फर्म के कार्यालय को घरेलू प्रकाश और बिजली उपभोक्ताओं पर लागू होने वाली दर अनुसूची एलएमवी-1 पर बिल दिया जाना है, जो एक स्थापित प्रथा है। हालांकि, वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए जारी दर अनुसूची में, वकील का पेशा या गतिविधियां निर्धारित दर अनुसूचियों में से किसी में भी नहीं मिलती हैं। केवल दर अनुसूची के खंड - 13 के कारण, जो एक अवशिष्ट खंड है, वाणिज्यिक गतिविधियों पर लागू होने वाली दर अनुसूची एलएमवी-2 को न्यायालय परिसर में वकीलों के कक्षों के मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।

35. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा पूर्व रिट याचिका, रिट सी नंबर 6115/2019 में दिनांक 22.02.2019 को पारित आदेश के बाद, नोएडा पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने सुराजपुर जिला न्यायालयों, जिला गौतम बुद्ध नगर के न्यायालय परिसर में स्थित वकीलों के कक्षों में बिजली उपभोग के लिए दर अनुसूची एलएमवी-1 के अनुसार शुल्क लेना शुरू कर दिया है। अतः, याचिकाकर्ता भी इसी तरह की स्थिति में है और उसके कक्षों पर भी यही दर अनुसूची लागू की जानी चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता ने ऐसे ही एक वकील के कक्ष के 31.12.2022 के बिजली बिल की प्रति भी प्रस्तुत की है। प्रतिवादी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि गौतम बुद्ध नगर जिला न्यायालय में वकीलों के कक्षों को बिजली की आपूर्ति यूपी पावर कॉर्पोरेशन द्वारा नहीं, बल्कि एक अलग बिजली निगम द्वारा शासित होती है, इसलिए, उक्त दर लागू नहीं की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में, दर अनुसूची यूपी विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित हैं और यही दरें पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होती हैं। अतः, प्रतिवादी के विद्वान वकील का तर्क निराधार और बिना तथ्य के है। इसलिए, विभिन्न बिजली निगम और कंपनियां एक ही राज्य में बिजली उपभोक्ताओं के साथ अलग-अलग व्यवहार नहीं कर सकती हैं।

36. वकील के पेशे को एलएमवी-2 के तहत शुल्क लगाने की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है, जो वाणिज्यिक गतिविधियों पर लागू होता है। वकील की गतिविधियां व्यावसायिक प्रतिष्ठान नहीं हैं, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित किया गया है।

37. उपरोक्त निष्कर्षों के प्रकाश में, हम वर्तमान याचिका में उठाए गए मुद्दों के उत्तरों को निम्नलिखित तरीके से सारांशित करते हैं:

1. एक अधिवक्ता की गतिविधियां/पेशा एक वाणिज्यिक गतिविधि नहीं है, जो

उत्तर प्रदेश राज्य में लागू दर अनुसूची एलएमवी-2 में निर्धारित वाणिज्यिक बिजली उपभोग दर को आकर्षित करती है, जिसे यूपी विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित किया गया है।

2. वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए लागू होने वाली दर अनुसूची एलएमवी-2 का वकीलों के कक्षों को दी जाने वाली बिजली पर लागू नहीं किया जा सकता है। वकीलों के कक्षों/कार्यालयों से केवल एलएमवी-1 घरेलू श्रेणी के तहत ही शुल्क लिया जाएगा क्योंकि वकील न तो कोई व्यापार या व्यवसाय करते हैं और न ही किसी वाणिज्यिक गतिविधि में शामिल होते हैं।

3. प्रतिवादी एक ही राज्य में, जहां दर अनुसूची एक ही प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित हैं, विभिन्न न्यायालय परिसरों में अधिवक्ताओं के कक्षों को दी जाने वाली बिजली आपूर्ति के बीच भेदभाव नहीं कर सकते हैं।

38. अतः उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। प्रतिवादियों को न्यायालय परिसर में स्थित अपने कक्षों में वकीलों द्वारा बिजली उपभोग के लिए यूपी विद्युत नियामक आयोग द्वारा अनुमोदित दर अनुसूची एलएमवी-1 के अनुसार ही शुल्क लेने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1065

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार

रिट-सी संख्या 10037 वर्ष 2020

साथ

रिट-सी संख्या 37119 वर्ष 2022

छतरपुर क्रैशर एसो. और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री बीरेंद्र सिंह, श्री शुभम अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता (श्री शशि नंदन), श्री सिद्धार्थ सेठ

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री दीपक कुमार जयसवाल, श्री नंद किशोर मिश्रा, सुश्री शिल्पा आहूजा

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश उपखनिज (रियायत) नियमावली, 2020 - नियम 21(4) एवं 70(2) - उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2020 के नियम 21(4) और नियम 70(2), उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2021 के नियम 21(5) और नियम 72(2) और अन्य राज्यों से परिवहन किए गए लघु खनिजों (भवन निर्माण पत्थर, गिट्टी, बोल्डर) पर क्रमशः 50/- रुपये और 100/- रुपये प्रति घन मीटर का नियामक शुल्क लगाने वाले 24.02.2020 और 10.08.2022 के सरकारी आदेशों की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिकाएँ उत्तर प्रदेश में

खनन के लिए राज्य सरकार की अनुमति को खारिज किया जाता है। विवादित नियम और सरकारी आदेश खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (एमएमआरडी अधिनियम) के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि राज्य सरकार को धारा 15(1-ए)(जी) के तहत खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए शुल्क लगाने का अधिकार है, जिसमें अन्य राज्यों में कानूनी रूप से उत्खनित खनिज भी शामिल हैं। धारा 4(1-ए) और धारा 23-सी के अनुसार, राज्य सरकार को खनिजों के परिवहन और भंडारण के लिए नियम बनाने का अधिकार है, जो अवैध खनन तक सीमित नहीं है। एमएमआरडी अधिनियम और राष्ट्रीय खनिज नीति, 2021 के उद्देश्यों के अनुरूप, अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए बुनियादी ढांचे (चेक गेट, वेब्रिज, एआई तकनीक) को निधि देने के लिए नियामक शुल्क लगाए जाते हैं। नियामक शुल्क लगाना भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन नहीं करता है, क्योंकि यह अनुच्छेद 304(बी) के तहत सार्वजनिक हित में एक उचित प्रतिबंध का गठन करता है, और अनुच्छेद 301 के तहत व्यापार, वाणिज्य और संभोग की स्वतंत्रता को बाधित नहीं करता है। याचिकाकर्ताओं के संघ के पास सुने जाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि इसके सदस्य सीधे तौर पर खनन या खनिजों के अंतर-राज्यीय परिवहन में शामिल नहीं हैं। पक्षों को अपनी लागत स्वयं वहन करनी होगी।

<u>वाद विधि</u> :

1. तमिलनाडु बनाम एमपीपी कावेरी चेट्टी, (1995) 2 एससीसी 402;

2. गुजरात राज्य बनाम जयेशभाई कांजीभाई कलाथिया, (2019) एससीसी ऑनलाइन एससी 297;

3. अल्ट्राटेक सीमेंट लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य, रिट याचिका संख्या 9330/2021 (मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय);

4. श्री साई केशव एंटरप्राइजेज बनाम कर्नाटक राज्य, रिट याचिका संख्या 8851/2021 (कर्नाटक एचसी);

5. उड़ीसा राज्य बनाम एमए टुलोच, एआईआर 1964 एससी 1284;

6. शेओ वरन सिंह बनाम राज्य, एआईआर 1980 ऑल 92;

7. डीके त्रिवेदी बनाम गुजरात राज्य, (1986) सप्प एससीसी 20;

8. तमिलनाडु बनाम हिंद स्टोन, (1981) 2 एससीसी 205;

9. पश्चिम बंगाल बनाम केसोराम इंडस्ट्रीज, (2004) 10 एससीसी 201;

10. जिंदल स्टेनलेस लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य, (2017) 12 एससीसी 145;

11. अटियाबारी टी कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य, एआईआर 1961 एससी 232;

12. ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1962 एससी 1406

(इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय VII नियम 1(2) के तहत खंडपीठ के लिए माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी द्वारा पारित)

1. रिट याचिका (सी.एम.डब्ल्यू.पी. संख्या 10037/2020) के माध्यम से याचिकाकर्ता, जो पंजीकृत सोसायटी के सदस्य हैं, मध्य प्रदेश और अन्य राज्यों में लघु खनिजों को निकालने, कुचलने, परिवहन करने और बेचने के व्यवसाय में हैं, चुनौती दे रहे हैं उत्तर प्रदेश गौण खनिज (रियायत) नियमावली, 1963 में 48वां संशोधन, उत्तर प्रदेश गौण खनिज (रियायत) नियमावली, 2020 के नियम 21(4) एवं नियम 70(2), एवं नियम 21(5) एवं नियम 72(2)) उत्तर प्रदेश उपखनिज (रियायत) नियमावली, 2021 एवं शासनादेश दिनांक 24.02.2020 एवं 10.08.2022।

2. जब उपरोक्त रिट याचिका लंबित थी, याचिकाकर्ताओं ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि रिट याचिका सूचीबद्ध थी, लेकिन न तो स्थगन आवेदन पर सुनवाई हुई, न ही मुख्य याचिका पर। इस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस न्यायालय को कार्यवाही शीघ्रता से तय करने का निर्देश दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के मद्देनजर, हमने वर्तमान रिट याचिका पर विचार किया है।

इस मामले की पृष्ठभूमि

3. खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 (इसके बाद संक्षिप्तता के लिए एमएमआरडी अधिनियम 1957 के रूप में संदर्भित), खान और खनिजों के विकास और विनियमन के लिए संसद द्वारा अधिनियमित किया गया है। प्रासंगिक अनुभाग जो वर्तमान मुद्दों के निर्णय के लिए महत्वपूर्ण हैं, उन्हें संदर्भ के लिए यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

4. खान एवं खनिज (विनियमन एवं विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 15 इस प्रकार है:-

"15. (1) राज्य सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, गौण खनिजों के संबंध में खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों के अनुदान और उनसे जुड़े उद्देश्यों के लिए नियम बना सकती है।

(1ए) विशेष रूप से और पूर्वाग्रह शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्: -

(ए) वह व्यक्ति जिसके द्वारा और जिस तरीके से खदान पट्टों, खनन

पट्टों या अन्य खनिज रियायतों के लिए आवेदन किया जा सकता है और उसके लिए भुगतान की जाने वाली फीस;

(बी) वह समय जिसके भीतर और वह प्रपत्र जिसमें ऐसे किसी भी आवेदन की प्राप्ति की रसीद भेजी जा सकती है;

(सी) वे मामले जिन पर विचार किया जा सकता है जहां एक ही भूमि के संबंध में आवेदन एक ही दिन के भीतर प्राप्त होते हैं;

(डी) वे शर्तें जिन पर, और वे शर्तें जिनके अधीन वह प्राधिकारी जिसके द्वारा खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें दी या नवीनीकृत की जा सकती हैं;

(ई) खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें प्राप्त करने की प्रक्रिया;

(एफ) खनन कार्यों से संबंधित मामलों में अनुसंधान या प्रशिक्षण करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा प्रतिनियुक्त व्यक्तियों को खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों के धारकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाएं;

*(जी) किराया, रॉयल्टी, फीस, अनिवार्य किराया, जुर्माना या **अन्य शुल्कों** का निर्धारण और संग्रहण और समय जिसके भीतर और जिस तरीके से ये देय होंगे;*

(एच) वह तरीका जिसमें तीसरे पक्ष के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है (चाहे मुआवजे के भुगतान के माध्यम से या अन्यथा) जहां कोई भी ऐसी पार्टी किसी भी पूर्वेक्षण या खनन कार्यों के कारण प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है;

(आई) किसी उत्खनन या खनन कार्य के कारण नष्ट हुई वनस्पतियों और अन्य वनस्पतियों, जैसे कि पेड़, झाड़ियाँ और इसी तरह की अन्य चीजों का पुनर्वास उसी क्षेत्र में या राज्य सरकार द्वारा चयनित किसी अन्य क्षेत्र में किया जाएगा। चाहे पुनर्वास की लागत की प्रतिपूर्ति के माध्यम से या अन्यथा) उत्खनन या खनन पट्टा रखने वाले व्यक्ति द्वारा;

(जे) वह तरीका जिससे और वे शर्तें जिनके अधीन खदान पट्टा, खनन पट्टा या अन्य खनिज रियायत हस्तांतरित की जा सकती है;

(के) खदान या खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायत में शामिल किसी भी भूमि पर सड़कों, बिजली पारेषण लाइनों, ट्रामवे, रेलवे, हवाई रोपवे, पाइपलाइनों का निर्माण, रखरखाव और उपयोग और खनन उद्देश्यों के लिए पानी के लिए मार्ग बनाना;

(एल) इस अधिनियम के तहत बनाए जाने वाले रजिस्टरों का प्रारूप;

(एम) खदान या खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों के धारकों

द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट और विवरण और वह प्राधिकारी जिसे ऐसी रिपोर्ट और विवरण प्रस्तुत किए जाएंगे;

(एन) वह अवधि जिसके भीतर और जिस तरीके से और जिस प्राधिकारी को इन नियमों के तहत किसी भी प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी आदेश के संशोधन के लिए आवेदन किया जा सकता है, उसके लिए भुगतान की जाने वाली फीस, और पुनरीक्षण प्राधिकारी की शक्तियां; और

(ओ) कोई अन्य मामला जो निर्धारित किया जाना है या निर्धारित किया जा सकता है।

5. 18.12.1999 को एमएमआरडी आधनियम 1957 *वस्तुओं का विवरण और अधिनियम में संशोधन के उद्देश्य और कारण इस प्रकार हैं:*

"उद्देश्य और कारण कथन

खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के अलावा अन्य खनिजों के नियमित और विकास के लिए प्रावधान करता है। दिसंबर, 1996 में आयोजित खान और भूविज्ञान राज्य मंत्रियों/सचिवों के सम्मेलन में लिए गए निर्णयों के परिणामस्वरूप, तत्कालीन सचिव, खान मंत्रालय की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। फरवरी, 1997 में, अन्य बातों के साथ-साथ, अन्वेषण लाइसेंस और खनन पट्टों के अनुदान और नवीनीकरण से संबंधित राज्य सरकारों को शक्तियों के प्रत्यायोजन के संबंध में सिफारिशें करने और इस संबंध में देरी को कम करने के उपाय सुझाने के लिए, खनिजों के विनियमन और विकास को नियंत्रित करने वाले मौजूदा कानूनों और प्रक्रियाओं की समीक्षा करने के लिए उन्हें बदले हुए नीतियों के साथ अधिक संगत बनाने के लिए और <u>अवैध खनन की रोकथाम के उपाय। समिति ने अपनी रिपोर्ट में राज्य सरकारों को शक्तियों के प्रत्यायोजन, प्रक्रियात्मक सरलीकरण आदि के क्षेत्र में व्यापक सिफारिशें की हैं,</u> जो राज्यों और संभावित निवेशकों द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं को कम करने के लिए एक लंबा रास्ता तय करेंगी, जबकि साथ ही, खनन उद्योग के हितों को विशेष रूप से और राष्ट्रीय हित, सामान्य रूप में, अक्षुण्ण रखते हुए। समिति की सिफारिशों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, सरकार ने खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1947 में संशोधन करने का निर्णय लिया है।

2. कुछ और महत्वपूर्ण संशोधन जो कि किए जाने प्रस्तावित हैं, निम्नलिखित हैं:

(i) ....

(ii) ....

(iii) अवैध खनन को रोकने के उद्देश्य से, अधिनियम में एक नया प्रावधान जोड़ने का प्रस्ताव है, जो किसी भी खनिज के परिवहन या भंडारण या परिवहन या भंडारण का कारण बनने को अधिनियम के उचित प्रावधानों के अलावा प्रतिबंधित करता है। इसके अलावा, अधिनियम में संशोधन का प्रस्ताव है ताकि प्रस्तावित नए प्रावधान के प्रावधानों का उल्लंघन दंडनीय हो। यह भी प्रस्तावित है कि एक नया प्रावधान जोड़ा जाए जो अधिनियम के तहत जब्त की गई किसी भी चीज को न्यायालय के आदेशों के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी करे। अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने और उससे संबंधित उद्देश्यों के लिए राज्य सरकारों को नियम बनाने के लिए सशक्त करने के लिए एक नई धारा जोड़ने का प्रस्ताव है।"

संशोधित धाराएँ इस प्रकार थीं:-

धारा 4(1ए), धारा 23-ए और 23(सी)

धारा 4 (1ए) *कोई भी व्यक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार किसी भी खनिज का परिवहन या भंडारण नहीं करेगा या परिवहन या भंडारण नहीं कराएगा।*

धारा 23-सी (1) *राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, खनिजों के अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने और उससे जुड़े उद्देश्यों के लिए नियम बना सकती है।*

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के लिए प्रदान कर सकते हैं, अर्थात्: -

(क) पारगमन के तहत खनिजों की जांच के लिए चेक-पोस्ट की स्थापना;

(ख) परिवहन किए जाने वाले खनिज की मात्रा को मापने के लिए वजन पूलो की स्थापना;

(घ) ***खनिजों के परिवहन का विनियमन, जो किसी भी नाम से खनिजों को उत्खनन करने की अनुमति दी गई है, उस क्षेत्र से किया जाता है जो एक पूर्वेक्षण लाइसेंस या खनन पट्टे या खदान लाइसेंस या परमिट के तहत प्रदान किया गया है;***

(ङ) उत्खनन या भंडारण के स्थान पर या पारगमन के दौरान खनिजों का निरीक्षण, जांच और खोज;

(च) इन नियमों के प्रयोजनों के लिए रजिस्टरों और प्रपत्रों का रखरखाव;

(छ) `वह अवधि जिसके भीतर और उस प्राधिकारी को इस धारा के तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत किसी भी प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के संशोधन के लिए आवेदन दिया जाएगा और उसके लिए भुगतान की जाने वाली

फीस और ऐसे आवेदनों के निपटान के लिए ऐसे प्राधिकारी की शक्तियां; और

(ज) कोई अन्य मामला जो खनिजों के अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम के उद्देश्य से निर्धारित किया जाना आवश्यक है या किया जा सकता है।

***(3)** धारा 30 में निहित किसी भी बात के बावजूद, केंद्र सरकार के पास उप-धारा (1) और (2) के तहत बनाए गए नियमों के तहत राज्य सरकार या उसके किसी अधिकृत अधिकारी या किसी प्राधिकरण द्वारा पारित किसी भी आदेश को संशोधित करने की कोई शक्ति नहीं होगी।*

6. वर्ष 2021 में अधिनियम में एक और संशोधन किया गया, जिसमें धारा 21 में एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया था।

<u>धारा 21</u> दंड —5 [(1) .....

स्पष्टीकरण–खनन और खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने की तारीख से और उसके बाद, इस धारा में प्रयुक्त "किसी भी खनिज को किसी भी वैध प्राधिकारी के बिना उठाना, परिवहन करना या उठाने या परिवहन करने का कारण बनना" अभिव्यक्ति का अर्थ है बिना किसी व्यक्ति द्वारा खनन पट्टा या समग्र लाइसेंस या धारा 23सी के तहत बनाए गए नियमों के उल्लंघन में किसी भी खनिज को उठाना, परिवहन करना या उठाने या परिवहन करना।

संशोधित (आईएनए.अधिनियम द्वारा 16/2021, ए. 20 (28-3-2021 से प्रभावी)2.

7. राज्य सरकार ने एमएमआरडी अधिनियम 1957 की धारा 15 के तहत प्रदत्त शक्तियों के तहत उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 1963 बनाई थी।

8. उत्तर प्रदेश राज्य ने धारा 23 (सी) के तहत दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए एक नियम बनाया था, जिसका नाम उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2002 था।

ये नियम 2018 में एक नए नियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिए गए थे, जिसका नाम "उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2018" था।

2018 के ये नियम 2019 में फिर से संशोधित किए गए थे और इन नियमों को "उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2019" कहा गया था।

9. राज्य सरकार ने 2020 में उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियमावली, **1963 में संशोधन किया, और इसे "** उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) **(अढ़तालीसवा संशोधन) नियम, 2020" कहा गया, इस नियम द्वारा**

नियम 21 और नियम 70 में संशोधन किया गया था, और "नियामक शुल्क" की शुरुआत की गई थी। संशोधित नियम इस प्रकार हैं:

"<u>नियम 21. रॉयल्टी</u> - (1) इन नियमों के प्रारंभ होने के बाद या उसके बाद दिए गए खनन पट्टे के धारक को पट्टा क्षेत्र से निकाले गए किसी भी खनिज के लिए इन नियमों के प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट दरों पर रॉयल्टी का भुगतान करना होगा। *(1-ए) नियम 3 में किसी भी बात के विपरीत होते हुए भी, संबंधित ईंट भट्ठा मालिक या साधारण मिट्टी को साधारण मिट्टी पर उपयोग करने वाले व्यक्ति को इन नियमों के प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट दर पर रॉयल्टी का भुगतान करना होगा:*

परंतु यह कि राज्य सरकार ईंट भट्ठा मालिकों से जिलों के वर्गीकरण के आधार पर भुगतान पर तय किए गए ऐसे दरों पर नियामक शुल्क लेगी, जो समय-समय पर इसके द्वारा अधिसूचित किए जाएंगे।

(2) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रथम अनुसूची में शामिल करने या उसमें से बाहर करने या किसी भी खनिज के संबंध में रॉयल्टी की दर को बढ़ाने या घटाने के लिए, ऐसी तारीख से प्रभावी कर सकती है, जैसा कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किया गया हो:

2संशोधित (आईएनए.2021 के अधिनियम 16, ए. 20 (28-3-2021 से प्रभावी)

परंतु यह कि राज्य सरकार किसी खनिज के संबंध में रॉयल्टी की दर को तीन वर्ष की किसी भी अवधि के दौरान एक से अधिक बार नहीं बढ़ाएगी और रॉयल्टी को खदान के मुंह के मूल्य के 20 प्रतिशत से अधिक की दर से नहीं तय करेगी।

(3) जहां रॉयल्टी खनिज के गड्ढे के मुंह के मूल्य पर ली जानी है, राज्य सरकार पट्टे के अनुदान के समय ऐसे मूल्य का आकलन कर सकती है और रॉयल्टी की दर का उल्लेख पट्टा विलेख में किया जाएगा। यदि राज्य सरकार को लगता है कि वृद्धि आवश्यक है तो यह वर्ष में एक बार से अधिक नहीं गड्ढे के मूल्य का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए राज्य सरकार के लिए खुला होगा।

(4) राज्य सरकार अन्य राज्यों से राज्य में प्रवेश करने वाले खनिजों पर समय-समय पर नियामक शुल्क निर्धारित कर सकती है।"

इसके अलावा, संशोधित नियम 70 (2) इस प्रकार है:

"70. खनिजों के परिवहन पर प्रतिबंध -

(1) खनन पट्टे या परमिट धारक या उसकी ओर से इस संबंध में अधिकृत व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति को जो किसी वाहन, पशु या परिवहन के किसी अन्य साधन द्वारा लघु खनिज की एक खेप ले जा रहा है, को फॉर्म एमएम-11 या फॉर्म ई-एमएम-11 में एक पास जारी करेगा, जो इलेक्ट्रॉनिक प्रक्रिया के माध्यम से तैयार किया जाएगा, राज्य सरकार, जिला अधिकारी के माध्यम से, मुद्रित एमएम-11 फॉर्म पुस्तकों की आपूर्ति के लिए भुगतान के आधार पर व्यवस्था कर सकती है।

(2) कोई भी व्यक्ति, रेलवे को छोड़कर, वाहन, पशु या किसी अन्य परिवहन के साधन

से राज्य के भीतर किसी भी खनिजों को ले जाने के लिए, उप-नियम (1) के तहत जारी किए गए फॉर्म एमएम-11/फॉर्म ई-एमएम-11 के पासपोर्ट के बिना नहीं ले जाएगा, नियम 7(3) के तहत जारी वैध पारगमन पास, उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2018 या किसी अन्य राज्य द्वारा जारी समान वैध पारगमन पास:

परंतु यह कि यदि राज्य सरकार ठेकेदार के माध्यम से रॉयल्टी एकत्र करने के लिए एक समझौता करती है, तो रॉयल्टी की रसीद या शून्य रसीद, जैसा भी हो, ऐसे ठेकेदार द्वारा जारी की जाएगी और ऐसी मामलों में फॉर्म एमएम-11/फॉर्म ई-एमएम-11 के साथ ऐसी रसीद ले जाना परिवहन के लिए अनिवार्य होगा:

परंतु यह भी कि अन्य राज्य से आने वाले खनिज पर लगाए गए नियामक शुल्क का राज्य सरकार द्वारा निर्धारण करने के बाद ही खनिज का परिवहन मान्य होगा।

(3) कोई भी व्यक्ति, जो किसी भी लघु खनिजों को ले जा रहा है, नियम 66 के तहत अधिकृत किसी भी अधिकारी या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी भी अधिकारी के मांग करने पर, उस अधिकारी को उक्त पास दिखाएगा और उसे पास के विवरण की** यथार्थता **की जांच करने की अनुमति देगा, जिसमें खनिजों की मात्रा का उल्लेख है।

(4) राज्य सरकार किसी भी खनन पट्टे या अनुमति में शामिल किसी भी क्षेत्र के लिए एक चेक-पोस्ट स्थापित कर सकती है और जब कोई चेक-पोस्ट स्थापित किया जाता है तो इस तथ्य की सूचना राजपत्र में प्रकाशन और राज्य सरकार द्वारा उपयुक्त समझे जाने वाले अन्य तरीके से दी जाएगी।

***(5)** कोई भी व्यक्ति जिस पर लघु खनिज के लिए ये नियम लागू होते हैं, उसे उस क्षेत्र से ऐसे क्षेत्र के लिए स्थापित चेक पोस्ट पर खनिज के वजन या माप के सत्यापन के लिए प्रस्तुत किए बिना नहीं ले जाएगा।*

(6) इस नियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने वाला कोई भी व्यक्ति, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे खनिजों की कीमत सहित रॉयल्टी के साथ 25,000/- रुपये (पच्चीस हजार) का जुर्माना वसूल किया जाएगा। उपरोक्त सभी राशि जमा करने के बाद खनिजों सहित वाहन आदि को छोड़ दिया जाएगा।"

(10) उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियम, 1963 में 2021 में राज्य सरकार द्वारा संशोधन किया गया था, जिसे " उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियम, 2021" कहा जाता था। इसके नियम 21 में उप-नियम (5) जोड़ा गया था, जो इस प्रकार है:-

नियम 21 (5) - राज्य सरकार अन्य राज्यों से राज्य में प्रवेश करने वाले खनिजों पर समय-समय पर नियामक शुल्क निर्धारित कर सकती है।

नियम 72(2)-.....

परंतु यह और कि अन्य राज्यों से आने वाले खनिज पर समय-समय पर लगाए गए नियामक शुल्क का राज्य सरकार द्वारा निर्धारण किए जाने के बाद ही खनिज का परिवहन वैध होगा।

यह संशोधित नियम केवल उन खनिजों के लिए था जिन्हें अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लाया गया था

11. नियमों के अनुसरण में, राज्य सरकार ने 24.02.2022 को एक सरकारी आदेश जारी किया, जिसमें अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में परिवहन किए जाने वाले ईमारती पत्थर, गिट्टी और बोल्डर **के परिवहन के संबंध में** 50 रुपये प्रति का विनियमन शुल्क लगाया गया है **इस सरकारी आदेश को जारी करने के कारण और उद्देश्य** निम्नलिखित थे:-

"1- उपर्युक्त विषय के सम्बन्ध में अवगत कराना है कि खनिजों के अवैध परिवहन पर प्रभावी नियंत्रण शासन का शीर्ष प्राथमिकता है, जिस हेतु प्रदेश में खनिज वाहनों की जांच को प्रभावी बनाये जाने की आवश्यकता है। प्रदेश में अन्य राज्यों से भी काफी संख्या में खनिज लदे वाहन आते है जिनके जांच हेतु सीमावर्ती विभिन्न स्थानों पर आर्टिफिसियल इन्टेलीजेन्स युक्त चेक गेट्स, जिस पर वे ब्रिज, कैमरा आदि की सुविधा होगी, लगाये जाने का निर्णय लिया गया है। उपखनिजों के परिवहन को विनियनित करने के उद्देश्य से ऐसे चेक गेट्स की स्थापना प्रदेश के अन्य प्रमुख मार्गों पर भी किया जाना है।

2- अतः अन्य राज्यों से आने वाले उपखनिजो के वाहनों की सुगमतापूर्वक जांच किये जाने आदि के उद्देश्य से स्थापित किये जा रहे चेक गेट्स की अवस्थापना/ अनुरक्षण में होने वाले व्यय के दृष्टिगत राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश उपखनिज (परिहार) नियमावली, 1963 (यथासंशोधित) के नियम- 21(4) तथा नियम-70(2) के प्राविधान के अन्तर्गत उपखनिज ईमारती पत्थर, गिट्टी, बोल्डर, बालू मौरम के वाहनो पर रू0-50 प्रतिघन मी0 की दर से विनियमन शुल्क अवधारित करते हुये उसे अधिरोपित किये जाने का निर्णय लिया गया है।"

12. राज्य सरकार ने दिनांक 10.08.2022 को एक और सरकारी आदेश जारी किया, जिसमें अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लाए जाने वाले ईमारती पत्थर, गिट्टी और बोल्डर के परिवहन पर प्रति घन मीटर 50 रुपये का विनियमन शुल्क बढ़ाकर प्रति घन मीटर 100 रुपये कर दिया गया है।

13. शासकीय आदेश के उद्देश्यों का एक स्पष्ट पठन यह बहुत स्पष्ट करता है कि विनियामक शुल्क लगाने के कारण केवल एमएमआरडीए अधिनियम की धारा 23(सी) में निर्धारित शर्तों के सख्त अनुपालन के लिए एक उचित बुनियादी ढांचा स्थापित करना था।

याचिकाकर्ताओं की दलीलें

14. याचिकाकर्ताओं की ओर से 2020 की रिट याचिका संख्या.10037 में श्री सिद्धार्थ सेठ को सुना गया और 2022 की रिट याचिका संख्या .37119 में याचिकाकर्ता की ओर से श्री बीरेंद्र

सिंह द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन को सुना गया।

15.याचिकाकर्ता, जो स्वयं को पत्थर-क्रशर्स का एक संघ होने का दावा करता है, ने याचिका (सी.एम.डब्ल्यू.पी. नंबर 10037/2020) के माध्यम से विनियमन शुल्क वसूलने के लिए जारी किए गए नियमों और सरकारी आदेश की वैधता को चुनौती दी है। याचिका में निम्नलिखित प्रार्थनाएं की गई थीं:

- **"(i)** उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियम, **1963 के नियम 21 के उप-नियम(4) को घोषित करें, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा** उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत),नियम 1963 **को (आढ़तलिसवा संशोधन) नियम, को 2020 दिनांक 05.02.2020 के माध्यम से संशोधित किया गया है, भारत के संविधान के लिए अल्ट्रा-वायर्स है।**

(ii) उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियम,, 1963 के नियम 70 के उप-नियम (2) के उप-नियम (i) उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) (**अढ़तालिसवा** संशोधन) नियमावली, 2020 दिनांक 05.02.2020 के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा संशोधित के रूप में भारत के संविधान के लिए अतिव्यापी घोषित करें।

(iii) दिनांक 24.02.2020 को सचिव (भूतत्व एवं खानिज कर्म), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा जारी सरकारी आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेष्ण रिट के रूप में एक लिखित, आदेश या निर्देश जारी करें;

(iii-ए) दिनांक 10.08.2022 को जारी सरकारी आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेष्ण रिट के रूप में एक लिखित आदेश, या निर्देश जारी करें;

(iii-b) यह माननीय न्यायालय कृपया उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियम, 2021 के नियम 21 (5) और नियम 72 (2) और उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) नियमावली, 2021 के संबंधित नियम, जो इस तरह के विनियमन शुल्क के लगाने/उगाहने का प्रावधान करते हैं, को खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 में निहित प्रावधानों और भारत के संविधान के तहत उत्पन्न प्रासंगिक प्रावधानों के लिए अतिव्यापी घोषित करें।

(iv) याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में शीघ्र और उचित समझे;
और

(v) **याचिकाकर्ताओं के पक्ष में याचिका की लागत प्रदान करें।"**

16.याचिकाकर्ता के अधिवक्ताने प्रस्तुत किया कि दिनांक 05.02.2020 को 48वें संशोधन के

माध्यम से राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश गौण खनिज(रियायत) **(अढ़तालिसवा संशोधन) नियमावली, 2020 (यहाँ से आगे 'नियम 2020' के रूप में संदर्भित) को अधिसूचित किया, जिसके द्वारा राज्य सरकार ने नियम 21 (4) को जोड़ा है और साथ ही नियम 1963 के नियम 70 (2) के तहत एक उप-नियम भी जोड़ा है। संशोधित नियम 2020 के नियम 21 (4) के द्वारा, राज्य सरकार को अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लाए जाने वाले खनिजों पर विनियमन शुल्क लगाने की शक्ति सुरक्षित है।**

17. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताने प्रस्तुत किया कि विनियमन शुल्क तब लगाया गया था जब उत्तर प्रदेश राज्य की तुलना में अन्य राज्यों में लघु खनिजों की दर में अंतर था। विनियमन शुल्क लगाने का यह कारण उन उद्देश्यों का उल्लंघन करता है जिनके लिए नियम बनाए गए हैं। राज्य ने कानून की गलत व्याख्या करके अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर ऐसा आदेश पारित किया है। इसलिए, दिनांक 24.02.2020 और दिनांक 10.08.2022 के सरकारी आदेश रद्द किए जाने के योग्य हैं।

18. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चुनौती के तहत संशोधित नियम और सरकारी आदेश, दिनांक 24.02.2020 और 10.08.2022 राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 1957 की धारा 15 के साथ पठित धारा 23(सी) के तहत प्रदत्त शक्तियों के कथित प्रयोग के तहत जारी किए गए हैं। इन संशोधित नियमों के माध्यम से, राज्य ने अवैध रूप से और मनमाने ढंग से दो अलग-अलग सरकारी आदेशों द्वारा प्रति घन मीटर 50/- रुपये की विनियमन शुल्क लगाया है, जिसे बाद में प्रति घन मीटर 100/- रुपये तक बढ़ा दिया गया था, जो घोर मनमाना और अवैध है और अधिनियम 1957 में निहित प्रावधानों के अधिकारतीत भी है। राज्य के पास उन खनिजों पर कोई शुल्क या कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है जो उनके द्वारा कानूनी रूप से निकाले गए हैं और जिन पर रॉयल्टी का भुगतान किया गया है। इसके अलावा, ये सरकारी आदेश अवैध हैं क्योंकि राज्य सरकार द्वारा दिया गया कारण वैधानिक प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों से परे है।

19. खनिज क्षेत्र पहले से ही सूची-1 के तहत निर्धारित मापदंडों के भीतर संसदीय अधिनियम द्वारा कवर किया गया है। इसलिए, अन्य राज्यों में उत्खनन किए गए किसी खनिज के बाद राज्य का कोई नियंत्रण नहीं है। राज्य उत्तर प्रदेश में इन खनिजों के प्रबंधन में कोई बाधा नहीं पैदा कर सकता है।

20. भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 पूरे भारत के क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता प्रदान करता है, और निर्मित कोई भी बाधा उक्त अनुच्छेद का उल्लंघन होगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 के आधार पर नियामक शुल्क का लगाया जाना व्यापार की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध माना जाता है।

21. चुनौती वाले नियम भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन करते हैं क्योंकि इसका प्रभाव संविधान के अनुच्छेद 301 के तहत व्यापार, वाणिज्य और वाणिज्य की स्वतंत्रता

को बाधित करना है। इस अनुच्छेद के तहत, "स्वतंत्रता" शब्द को "भारत के पूरे क्षेत्र में" शब्द के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

22. अनुच्छेद 302 के तहत, संसद एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच व्यापार, वाणिज्य या वाणिज्य की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है, जैसा कि सार्वजनिक हित में आवश्यक हो हालांकि, अनुच्छेद 302 अनुच्छेद 303 द्वारा योग्य है जो संसद और राज्य विधानमंडलों को कोई भी कानून बनाने से रोकता है जो एक राज्य को दूसरे पर प्राथमिकता देता है या एक राज्य और दूसरे के बीच भेदभाव करता है **राज्य विधानमंडल सार्वजनिक हित में आवश्यक होने पर व्यापार, वाणिज्य या वाणिज्य की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने की शक्ति के लिए, ऐसे बिल या संशोधन को राज्य विधानमंडल में केवल राष्ट्रपति से पूर्व अनुमति प्राप्त करने के बाद ही पेश किया जा सकता है। राष्ट्रपति को, राज्य के प्रमुख और संघ के संरक्षक होने के नाते, यह सुनिश्चित करना चाहिए** कि इस तरह के कानून की वास्तव में आवश्यकता है और इस प्रकार, यह राष्ट्रीय हित पर प्रांतीय हितों के प्रचार पर अंकुश के रूप में कार्य करता है।

23. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एमएमआरडी अधिनियम, 1957 को अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के उद्देश्य से संशोधित किया गया था, बजाय इसके कि एमएमआरडी अधिनियम, 1957 और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए। किसी भी खनिज के अंतर-राज्य व्यापार पर निषेध या प्रतिबंध का न तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा इरादा था, न ही प्रदान किया गया या परिकल्पना की गई थी।

24. एमएमआरडी अधिनियम, 1957 की समग्र योजना, अधिनियम, 1957 की धारा 4 (1-ए), 15, 18, 21 और 23-सी के प्रावधानों में निहित है, यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि खनिजों, जिसमें लघु खनिज भी शामिल हैं, के परिवहन या भंडारण को विनियमित करने या नियम बनाने के लिए शक्ति का प्रतिनिधि मंडल **राज्य सरकार को सीधे प्रतिबंध लगाने या विनियमन शुल्क के नाम पर खनिजों की आवाजाही में अतिरिक्त शुल्क लगाने के लिए नियम बनाने की शक्ति नहीं देता है और न ही इसे बढ़ाया जा सकता है।**

---

3 1999 में संशोधित खान और खनिज (विनियमन और विकास) संशोधन के रूप में जाना जाता है

अधिनियम, 1999 (1999 का अधिनियम संख्या 38)

25. अधिनियम, 1957 की धारा 15, जो राज्य सरकार को खानों और खनिजों के संबंध में नियम बनाने का अधिकार देती है, खनन पट्टे के नियमों और शर्तों के तहत पहले से ही उत्खनित लघु खनिजों के विनियमन तक विस्तारित नहीं है। **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य बनाम एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी, (1995) 2 एससीसी 402,4 के मामले में, तमिलनाडु राज्य द्वारा बनाए गए नियमों को रद्द करने का समर्थन किया, जहां राज्य सरकार ने उत्खनन के बाद ग्रेनाइट की बिक्री**

पर न्यूनतम मूल्य निर्धारित किया था।, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस मामले में जोर देकर कहा था कि, धारा 15 के तहत राज्य सरकार को लघु खनिजों पर नियंत्रण करने की शक्ति नहीं है, जब वे उत्खनन कर चुके हों।

26. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताने आगे तर्क दिया कि 1957 के एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 से राज्य सरकार को खनन पट्टों के आवंटन को विनियमित करने और इसके लिए नियम बनाने की शक्ति मिलती है। 'इससे संबंधित उद्देश्य'। यह वाक्यांश 'इससे संबंधित उद्देश्य' अन्य राज्यों से लघु खनिजों के परिवहन पर शुल्क लगाने में शामिल नहीं होगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विभिन्न राज्यों से कानूनी रूप से उत्खनन किए गए खनिज, जो उत्तर प्रदेश राज्य में लाए जाते हैं उन पर उत्तर प्रदेश राज्य विनियमन शुल्क नहीं लगा सकता है। जिन नियमों के तहत नियामक शुल्क लिया जाता है और सरकारी आदेश दिनांक 24.02.2020 और 10.08.2022 को रद्द किया जाना चाहिए क्योंकि वे अधिकारातीत हैं।

27. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताने कहा कि राज्य केवल वह फीस वसूल कर सकता है जो 1957 के अधिनियम की धारा 15 और धारा 23-सी द्वारा प्रदत्त है, और धारा 23-सी यह स्पष्ट करती है कि इसके पीछे का उद्देश्य अवैध खनन, परिवहन को रोकना है। और यह कानूनी रूप से उत्खनित खनिजों पर कोई शुल्क लगाने की कोई शक्ति नहीं देता है, इस तर्क को पुष्ट करने के लिए उन्होंने गुजरात राज्य और अन्य आदि के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **गुजरात राज्य बनाम जयेशभाई कांजीभाई कलाथिया आदि 5** पारित निर्णय पर बहुत अधिक भरोसा किया। और मध्य प्रदेश उच्च न्ययालय के इंदोर **अल्ट्राटेक सीमेंट बनाम मध्य प्रदेश** के मामले में पारित एक डिवीजन बेंच के निर्णय पर भी भरोसा किया। 6

4तमिलनाडु राज्य बनाम एम.एम.कावेरी चेटी,(1995) 2 एसीसी 402

5गुजरात राज्य एवं अन्य आदि बनाम जयेशभाई कंजीभाई कालथिया2019(16) एससीसी513

6अल्ट्राटेक सीमेंट बनाम मध्य प्रदेश(रिट याचिका सं.9330/2021 निर्णीत 29.04.2022

28. 1957 के अधिनियम धारा 15 के तहत दी गई शक्तियों में उत्तर प्रदेश राज्य, माइनर मिनरल्स (केन्शेसन) नियमों को तैयार करते समय, किसी अन्य राज्य में उत्खनन किए गए लघु खनिज के संबंध में कोई कानून नहीं बना सकता है। इसलिए, उत्तर प्रदेश राज्य अन्य राज्यों में उत्खनन किए गए खनिजों के लिए कोई भी नियम बनाने की शक्ति नहीं रखता है।

29. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 (1) या 15 (1-ए) में विनियमन शुल्क लगाने का प्रावधान नहीं है। प्रयोग किया गया शब्द "फिक्सिंग और कलेक्शन" है । नियम बनाने की शक्ति केवल निर्धारण और संग्रहण तक ही सीमित है और "विनियमन शुल्क" लगाने की कोई शक्ति नहीं है।

30. धारा 15 (1) के प्रावधानों के तहत बनाए गए अधीनस्थ विधान का प्रयोग केवल उत्तर प्रदेश में पाए जाने वाले और उत्खनन किए गए खनिजों के संबंध में ही किया जा सकता है। यह यह साबित करने का बोझ राज्य पर है कि, उसके पास उन खनिजों के संबंध में कर या शुल्क लगाने की विधायी शक्ति है, जिसका उत्तर प्रदेश में खनन या उत्खनन नहीं होता है।

31. धारा 23-सी के प्रावधान केवल उन खनिजों के संबंध में लागू होंगे जो उत्तर प्रदेश राज्य में पाए गए हैं और उत्खनन किए गए हैं। इसके अलावा, इस खंड में मूल शब्द "अवैध खनन" है और इस खंड में उल्लिखित सभी गतिविधियां अवैध खनन के आसपास की गतिविधियों तक सीमित हैं और आगे यह खंड राज्य को उन वस्तुओं पर शुल्क लगाने की शक्ति नहीं देता है जो कानूनी रूप से उत्खनन किए जाते हैं और केवल उत्तर प्रदेश राज्य में लाए जाते हैं।

32. चेक-पोस्ट लगाने का उद्देश्य अवैध खनिज परिवहन को रोकने के लिए है, इसके लिए चेक-पोस्ट पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में बनाया जाना चाहिए और न की आवश्यक रूप से राज्य की सीमाओं पर। यदि उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर अवैध खनिज परिवहन किया जाता है तो ऐसे परिवहन को रोकने के लिए कोई तंत्र नहीं है। यदि चेक-पोस्ट का उद्देश्य अवैध परिवहन को रोकना है तो चेक-पोस्ट को राज्य के सभी सड़कों पर होना चाहिए।

33. यदि 2021 के नियमों के नियम 21 (5) और नियम 72 (2) के प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाए तो यह पता चलता है कि शुल्क का लगाव केवल उन कुछ श्रेणियों के खनिजों के लिए है जो अन्य राज्यों से लाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश में उत्खनन किए गए खनिजों पर विनियमन शुल्क नहीं लगता है, जबकि अन्य राज्यों से लाए गए खनिजों पर विनियमन शुल्क लगता है। यह स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है। ऐसा लगता है कि विनियमन शुल्क लगाने का उद्देश्य अवैध परिवहन को रोकना नहीं है, बल्कि आय का स्रोत बनाना है।

34. वर्ष 2021 के नियमों के माध्यम से लगाया जा रहा नियामक शुल्क स्पष्ट रूप से अवैध खनन को रोकने के लिए नहीं है, बल्कि यह केवल खनिजों के आयात पर शुल्क है, या अन्य राज्यों से मुक्त व्यापार को रोकने के लिए है। उपर्युक्त योजना के द्वारा, यह स्पष्ट हो जाता है कि जब राज्य विधायिका पर इस तरह के प्रतिबंध होते हैं, तो राज्य सरकार ऐसे प्रतिबंध को ऐसी विधि के तहत नहीं लगा सकती जिसका उद्देश्य खानों और खनिज विकास को विनियमित करना है, न कि व्यापार और वाणिज्य को।

35. अन्य राज्यों से लाए गए खनिजों पर विनियमन शुल्क लगाना उत्तर प्रदेश राज्य में खनन और उत्खनन किए गए खनिजों की तुलना में स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है, क्योंकि उनके परिवहन पर ऐसा कोई विनियमन शुल्क/ प्रतिबंध नहीं है।

36. याचिकाकर्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तमिलनाडु राज्य बनाम एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी (उपरोक्त),7 के मामले

में पारित निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में निर्णय सुनाया है:-

22.नियम 8डी और 19बी, राज्य सरकार या कंपनी या निगम को, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा निर्देशित किया जा सकता है, हर परमिट धारक द्वारा खुदी हुई ग्रेनाइट या अन्य चट्टान के बिक्री को नियंत्रित करने की शक्ति प्रदान करता है जो सजावटी या सजावटी उद्देश्यों के लिए उपयुक्त है। वे राज्य सरकार या उसके अधिकारियों या राज्य सरकार की कंपनी या निगम को, जैसा कि मामला हो सकता है, उसके लिए बिक्री की न्यूनतम कीमत निर्धारित करने की भी शक्ति प्रदान करते हैं। सरकार के आदेश संख्या 214 दिनांक 10 जून, 1992 के शब्दों से जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, इसका उद्देश्य ग्रेनाइट संसाधनों को संरक्षित और सुरक्षित करना है।

23. यह समझना मुश्किल है कि ग्रेनाइट के उत्खनन के बाद ग्रेनाइट की बिक्री को नियंत्रित करके और उसकी न्यूनतम कीमत निर्धारित करके ग्रेनाइट संसाधनों को कैसे संरक्षित किया जा सकता है।

24. उक्त अधिनियम के तहत राज्य सरकार को उत्खनन के बाद लघु खनिजों पर नियंत्रण करने की कोई शक्ति नहीं दी गई है। राज्य सरकार की शक्ति, अधीनस्थ नियम बनाने वाले प्राधिकरण के रूप में, धारा 15 में निर्धारित तरीके से प्रतिबंधित है। लघु खनिज की बिक्री और बिक्री मूल्य को नियंत्रित करने की शक्ति धारा 15 के उप-धारा (आई) के खंड (ओ) के शब्दों में शामिल नहीं है। यह खंड केवल खदानों और खनन पट्टों और अन्य खनिज अनुदानों के आवंटन के विनियमन से संबंधित हो सकता है और यह पहले से ही खनन किए गए खनिजों की बिक्री को विनियमित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है।

7तमिलनाडु राज्य बनाम एम.एम. कावेरी चेटी (उपरोक्त)

यह निर्णय स्पष्ट करता है कि राज्य उत्खनन के बाद खनिजों पर नियंत्रण नहीं कर सकता है।

37. याचिकाकर्ता के अधिवक्ताने फिर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **गुजरात राज्य और अन्य बनाम जयेशभाई कानजीभाई कालथिया और अन्य(उपरोक्त)8** मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया, जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:

> ***"17). उपरोक्त दलील का समर्थन करने के लिए, उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान* डी.के. त्रिवेदी एंड संस और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य *के निर्णय की ओर आकर्षित किया। इस मामले में, इस न्यायालय ने धारा 15 के तहत नियम बनाने की राज्य सरकारों की शक्ति पर विचार किया, जिसमें उन्हें अपने द्वारा दी गई लघु खनिजों के पट्टों के संबंध में** मृत किराया

और रॉयल्टी वसूल करने और ऐसे पट्टों के अस्तित्व के दौरान मृत किराया और रॉयल्टी की दरों में वृद्धि करने में सक्षम बनाती है ***- एक शक्ति जो राज्य द्वारा पट्टे के आवंटन के बाद की शर्तों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग की जाती है। लघु खनिजों के संबंध में विधायी इतिहास का पता लगाने के बाद, यह देखा गया कि अधिनियम के माध्यम से पूरे क्षेत्र को संसद द्वारा ले लिया गया था और उसके बाद सभी शक्तियों को राज्य सरकारों को सौंप दिया गया था। न्यायालय ने यह भी माना कि धारा 15 के तहत लघु खनिजों को विनियमित करने की शक्ति अत्यंत व्यापक है; कि लघु खनिजों पर नियंत्रण राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में विशेष रूप से है; कि लघु खनिज ऐतिहासिक रूप से संसद द्वारा, दोनों पूर्व और स्वतंत्रता के बाद, स्थानीय क्षेत्रों और स्थानीय उद्देश्यों के लिए उपयोग के लिए देखे गए हैं; और यह राज्य सरकारों पर छोड़ा गया है कि वे धारा 15 (1) के तहत बनाए गए नियमों द्वारा उन्हें लिखें जो प्रतिबंध लगाना उचित समझते हैं, ।***

26. *इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह संघ है जो इस देश में खनिजों को विनियमित और नियंत्रित कर सकता है और राज्य लघु खनिजों की शक्ति संघ के प्रतिनिधियों के रूप में प्रयोग करते हैं, इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर संघ का रुख जानने के लिए भारत संघ को भी इन कार्यवाही का नोटिस जारी करना उचित समझा था। भारत संघ ने अपना जवाब दाखिल किया है, जिसमें एक विशिष्ट रुख अपनाया है कि 1966 के नियमों के नियम 44-बीबी या 2010 के नियमों के नियम 71 जैसा नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं है। माननीय अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल सुश्री माधवी दीवान, भारत संघ के लिए उपस्थित हुईं और मामले को और भी उच्च स्तर पर ले गईं। उनका तर्क था कि भारत संघ के पास भी इन कार्यवाही में उल्लिखित प्रकृति के नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं है क्योंकि ये संविधान के अनुच्छेद 301 का उल्लंघन होंगे। इसलिए, किसी भी परिस्थिति में, ऐसी शक्ति राज्य सरकार में नहीं हो सकती। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 15 जो राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में नियम बनाने का अधिकार देती है, वह खनन पट्टे की शर्तों और शर्तों के तहत पहले से निकाले गए*

लघु खनिजों के विनियमन तक नहीं बढ़ाती है। यह बात एमपीपी में तीन जजों की बेंच ने स्पष्ट कर दी है। कावेरी चेट्टी जिसमें इस न्यायालय ने उत्खनन के बाद ग्रेनाइट की बिक्री के लिए न्यूनतम मूल्य तय करने के लिए राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों को रद्द करने को बरकरार रखा था। ***जिसमें ग्रेनाइट की बिक्री के लिए न्यूनतम मूल्य निर्धारित किया गया था। न्यायालय ने जोर देकर कहा कि राज्य सरकार के पास एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 के तहत उत्खनन के बाद लघु खनिजों पर नियंत्रण करने की शक्ति नहीं थी। धारा 15 के तहत शक्ति सीमित थी और राज्य को खनिजों की बिक्री या बिक्री मूल्य को नियंत्रित करने की शक्ति नहीं थी, एक बार वे खनन किए गए थे।*** *बाद के निर्णय का एक अन्य तीन सदस्यीय पीठ के निर्णय में के.टी. वर्गीज और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य में पालन किया गया है। बाद के मामले में, लाइसेंस की एक शर्त यह थी कि खनिजों को केवल केरल राज्य के भीतर, वह भी घरेलू और कृषि उद्देश्यों के लिए बेचा जा सकता है। इसे अप्राप्य पाया गया। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के निर्णयों में अमृतलाल नथुभाई शाह और डी.के. त्रिवेदी एंड संस एक ओर*

8गुजरात राज्य और अन्य बनाम जयेशभाई कंजीभई कथलिया एवं अन्य (उपरोक्त)

और एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी दूसरी ओर किसी भी प्रकार का कोई विरोध नहीं है। उनका तर्क था कि अमृतलाल नथुभाई शाह में, जबकि इस बात पर जोर दिया गया था कि राज्य सरकार अपने क्षेत्र के भीतर 'खनिजों की मालिक' है और खनिज इसमें निहित हैं, यह राज्य सरकार द्वारा आरक्षण की चुनौती के संदर्भ में आयोजित किया गया था। बॉक्साइट के शोषण के कुछ क्षेत्रों की सार्वजनिक क्षेत्र में। निजी पक्षों ने उस आशय के अधिसूचना को चुनौती दी और केंद्र सरकार जिससे उन्होंने संशोधन के लिए आवेदन किया था, उसने माना कि खनिज राज्य सरकार में निहित हैं जो इसका मालिक था और राज्य सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र में शोषण के लिए किसी भी क्षेत्र को आरक्षित करने का अंतर्निहित अधिकार था। उसने इस तरह के प्रस्ताव से झगड़ा नहीं किया। हालांकि, उनकी चेतावनी यह थी

कि यह एक ऐसा मामला था जहां निजी पक्षों के पक्ष में कोई पट्टे नहीं थे, बल्कि निजी पक्ष सरकार से पट्टों के अनुदान के लिए याचिका कर रहे थे|

28) माननीय अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने अपीलकर्ताओं के तर्क का भी खंडन किया कि विनियमन की शक्ति में राज्य से बाहर की आवाजाही को प्रतिबंधित करने की शक्ति शामिल होगी। उन्होंने तर्क दिया जबकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अभिव्यक्ति 'विनियमन' के कई अर्थ हैं और यह निषेध (सुधीर रंजन नाथ और हिंद स्टोन) का उल्लेख कर सकता है, वर्तमान मामले में मुद्दा यह है कि क्या एमएमआरडी अधिनियम के प्रावधानों के तहत कानूनी रूप से खनन की गई सामग्री के परिवहन पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कुछ परिस्थितियों में खनन या पट्टों के आवंटन पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है, लेकिन अवैध खनन से हटकर परिवहन पर नहीं।

34. इन अपीलों के विषय-वस्तु और उपरोक्त तर्कों से स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचार के लिए मुख्य मुद्दे निम्नलिखित हैं:

(क) क्या संसद के प्रतिनिधि के रूप में गुजरात राज्य द्वारा बनाए गए आक्षेपित नियम एमएमआरडी अधिनियम के तहत उसे दी गई शक्तियों से परे हैं? दूसरे शब्दों में, क्या आक्षेपित नियम धारा 15, 15! और 23-सी एमएमआरडी अधिनियम के अधिकारतीत हैं?

(ख) क्या आक्षेपित नियम भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन करते हैं?

36. उपरोक्त तर्क को मानना मुश्किल है क्योंकि न्यायालय ने एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी और के.टी. वर्गीज में दिए अपने फैसलों में स्पष्ट रूप से कहा है कि एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 के तहत राज्य सरकार की शक्ति में उत्खनन के बाद लघु खनिजों पर नियंत्रण शामिल नहीं है। निम्नलिखित अवलोकन उक्त निर्णयों से निकाले गए हैं:

"19. उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से इस आधार पर नियम 8-डी और 19-बी को रद्द कर दिया कि उक्त अधिनियम की धारा 15 में राज्य सरकार को

उत्खनन के बाद ग्रेनाइट के आंतरिक या विदेशी व्यापार को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं दी गई है। धारा 15 ने राज्य सरकार को ग्रेनाइट के लिए न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने के लिए एक राज्य सरकार की कंपनी या निगम को सक्षम करने वाले नियम बनाने की भी शक्ति नहीं दी है।

20. अपीलकर्ता राज्य के विद्वान अधिवक्ताने प्रस्तुत किया कि नियम 8-डी और 19-बी उक्त अधिनियम के प्रस्तावना और धारा 18 को ध्यान में रखते हुए वैध थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि राज्य की धारा 15(o) के तहत नियम बनाने की शक्ति नियम 8-डी और 19-बी को समाहित करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यापक थी।

21. उक्त अधिनियम संघ के नियंत्रण में खानों और खनिजों के विकास के विनियमन के लिए बनाया गया है। उक्त अधिनियम की धारा 2 में घोषणा की गई है कि सार्वजनिक हित में यह उचित है कि संघ उक्त अधिनियम में प्रदान की गई सीमा तक खानों और खनिजों के विनियमन और विकास को अपने नियंत्रण में ले। धारा 13 केंद्र सरकार को खनिजों के संबंध में खनन पट्टों और खनन पट्टों के आवंटन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 15 की उप-धारा (1) राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टों, खनन पट्टों और अन्य खनिज अनुदानों के आवंटन को विनियमित करने और उससे संबंधित उद्देश्यों के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 15 की उप-धारा (1-ए) में कहा गया है कि ऐसे नियम निम्नलिखित विषयों के लिए उपबंध कर सकते हैं, अर्थात्, कोई व्यक्ति और किस प्रकार खदान पट्टे, खनन पट्टे आदि के लिए आवेदन किया जा सकता है; इसके लिए देय शुल्क; आवेदन कब और किस रूप में किया जाना है; एक ही दिन में एक ही भूमि के संबंध में प्राप्त आवेदनों पर विचार किए जाने वाले मामले; जिन शर्तों और शर्तों पर पट्टे दिए या विनियमित किए जा सकते हैं; इस बारे में प्रक्रिया; पट्टाधारकों को दिए जाने वाले सुविधाएं; किराए और अन्य शुल्क का निर्धारण और संग्रह और उनके भुगतान की

समय सीमा; तीसरे पक्ष के अधिकारों की सुरक्षा; वनस्पति की सुरक्षा; जिस तरह से पट्टे हस्तांतरित किए जा सकते हैं; भूमि पर सड़कों, बिजली प्रसारण लाइनों आदि के निर्माण, रखरखाव और उपयोग; बनाए जाने वाले रजिस्ट्रियों का रूप; रिपोर्ट और बयान प्रस्तुत करने और किसके लिए; और किसी भी प्राधिकरण द्वारा उक्त नियमों के तहत पारित किसी भी आदेश का संशोधन। उप-धारा (1-ए) के खंड (ओ) में "किसी अन्य विषय के लिए जो निर्धारित किया जाना है या हो सकता है" पढ़ा जाता है। उक्त अधिनियम की धारा 18 में कहा गया है कि केंद्र सरकार का कर्तव्य होगा कि वह पर्यावरण के संरक्षण और व्यवस्थित विकास के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए, जिससे खनन या खनन कार्यों से होने वाले किसी भी प्रदूषण को रोका या नियंत्रित किया जा सके।

22. नियम 8-डी और 19-बी राज्य सरकार या उसके अधिकारियों या राज्य सरकार द्वारा निर्देशित किसी राज्य सरकार की कंपनी या निगम को उत्खनन किए गए ग्रेनाइट या अन्य चट्टान के बिक्री को नियंत्रित करने की शक्ति देते हैं जो सजावटी या सजावटी उद्देश्यों के लिए उपयुक्त है। वे राज्य सरकार या उसके अधिकारियों या राज्य सरकार की कंपनी या निगम को, जैसा भी मामला हो, बिक्री के लिए न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने की भी शक्ति देते हैं। उद्देश्य, जैसा कि उपरोक्त उद्धृत सरकार के आदेश संख्या 214 दिनांक 10-6-1992 की शर्तों से पता चलता है, ग्रेनाइट संसाधनों को संरक्षित और सुरक्षित करना है।

23. यह समझना मुश्किल है कि उत्खनन के बाद ग्रेनाइट की बिक्री को नियंत्रित करके और उसमें न्यूनतम मूल्य निर्धारित करके ग्रेनाइट संसाधनों का कैसे संरक्षित किया जा सकता है।

24. उक्त अधिनियम के तहत राज्य सरकार को लघु खनिजों पर उत्खनन के बाद नियंत्रण करने की कोई शक्ति नहीं दी गई है। अधीनस्थ नियम-निर्माण प्राधिकारी के रूप में राज्य सरकार की शक्ति धारा 15 में निर्धारित तरीके से सीमित है। धारा 15 की उप-धारा (1-ए) के खंड (ओ) के संदर्भ में बिक्री और बिक्री मूल्य को नियंत्रित करने की शक्ति शामिल नहीं है। यह

खंड केवल खदान और खनन पट्टों और अन्य खनिज अनुदानों के आवंटन के विनियमन से संबंधित हो सकता है और यह पहले से ही खनन किए गए खनिजों की बिक्री को विनियमित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है।"

41) अनुसूचित खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 23-ग के संबंध में, इसे अवैध खनन को रोकने के उद्देश्य से 1999 के संशोधन अधिनियम द्वारा सम्मिलित किया गया था। यह उद्देश्य और कारणों के विवरण में स्पष्ट रूप से लिखा है।

42. यह इस संदर्भ में है कि धारा 23-सी में "परिवहन" और "भंडारण" शब्दों की व्याख्या की जानी है। यहां इन दो शब्दों का उपयोग "अवैध खनन" के संदर्भ में किया जाता है। यह स्पष्ट है कि अवैध खनन का परिवहन और भंडारण ही इस प्रावधान के तहत विनियमित किया जा सकता है, न कि बालू जैसे लघु खनिजों का खनन जो कानूनी है और विधिवत दिए गए लाइसेंस द्वारा समर्थित है। इसलिए, इस प्रावधान से कानूनी रूप से उत्खनन किए गए खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं मिलती है।

38. मध्य प्रदेश राज्य ने दिनांक 22.10.2021 के अधिसूचना संख्या F-19-3-2017-XII-1 द्वारा मध्य प्रदेश खनिज नियम, 1996 में नियम 29 के उप-नियम (6) को प्रतिस्थापित करके संशोधन किया, जिसके द्वारा अन्य राज्यों से मध्य प्रदेश राज्य में आने वाले लघु खनिजों पर 'विनियमन शुल्क' के नाम पर एक शुल्क लगाया गया था। उक्त संशोधन को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इंदौर की खंडपीठ में रिट याचिका संख्या .9330 /2021 (मेसर्स अल्ट्राटेक सीमेंट लिमिटेड बनाम म.प्र. राज्य) में चुनौती दी गई थी। इस रिट याचिका का निर्णय करते हुए मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने जयेशभाई के मामले पर जोर देते हुए निम्नलिखित रूप में निर्णय सुनाया:

"33. एक अन्य तर्क का समर्थन इस न्यायालय के वी.ए. लड एंड संस (उपरोक्त) प्रकरण में दिए गए निर्णय पर निर्भर करते हुए किया गया था, जिसके अनुसार राज्य सरकार के पास धारा 23-ग के तहत परिकल्पित विषयों से निपटने की कार्यकारी शक्ति है। हालांकि, अन्य राज्यों में कानूनन उत्खनित खनिजों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए धारा 23-ग बिल्कुल भी लागू नहीं होगी। राज्य सरकार की ओर से दिए गए तर्कों का पर्याप्त हिस्सा शुल्क एकत्र किए जाने और प्रदान की जा रही सेवाओं के बीच सह-संबंध के संबंध में क्विड-प्रो-क्वो के मुद्दे पर है। उक्त तर्क इस शर्त पर प्रासंगिक है कि राज्य को अन्य राज्यों से कानूनी रूप से

उत्खनित लघु खनिजों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। ऐसी शक्ति राज्य सरकार को निहित नहीं है।"

39. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कर्नाटक उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच द्वारा श्री साई केशव एंटरप्राइजेज बनाम कर्नाटक राज्य 9 के मामले में पारित एक निर्णय का हवाला दिया, जो रिट याचिका संख्या. 8851 / 2021 में पारित किया गया था और जिसे 07.07.2022 के निर्णय में दिया गया था। जिसमें न्यायालय ने कहा कि धारा 15 बहुत स्पष्ट है, राज्य सरकार केवल अवैध खनन, परिवहन और खनिजों के भंडारण को रोकने के लिए नियम बना सकती है। वे उन खनिजों पर शुल्क नहीं लगा सकते हैं जो पहले से ही किसी अन्य राज्य में कानूनी रूप से उत्खनन किए गए हैं, और ये खनिज उस राज्य से उत्तर प्रदेश राज्य में लाए जा रहे हैं।

9श्री साई केशव एंटरप्राइसेस बनाम कर्नाटक राज्य 2021(2) एआईआर कर.(1)

उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"19. इस प्रकार, 1957 के उक्त अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (1) राज्य सरकार को खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज अनुदानों और संबंधित उद्देश्यों के आवंटन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 15 की उप-धारा (2) के खंड (g) राज्य सरकार को किराए, रॉयल्टी, शुल्क, मृत किराए, जुर्माना या अन्य शुल्कों को तय करने और एकत्र करने और उन्हें कब और कैसे देय होगा, के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

24. प्रस्तुतियों से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने दो प्रश्न तैयार किए जो पैराग्राफ 34.1 और 34.2 में उद्धृत हैं जो इस प्रकार हैं:

"34.1. क्या संसद के प्रतिनिधि के रूप में गुजरात राज्य द्वारा बनाए गए आक्षेपित नियम एमएमआरडी अधिनियम के तहत उसे दी गई शक्तियों से परे हैं? दूसरे शब्दों में, क्या आक्षेपित नियम एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15, 15-ए और 23-सी अधिकारतीत हैं?

34.2. क्या आक्षेपित नियम भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन करते हैं?"

25. सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने पहले के निर्णय तमिलनाडु राज्य बनाम एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी के मामले पर विचार किया।

पैराग्राफ 42 में उक्त निर्णय से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"42. इस संदर्भ में धारा 23-सी में 'परिवहन' और 'भंडारण' शब्दों की व्याख्या की जानी है। यहां इन दो शब्दों का उपयोग 'अवैध खनन' के संदर्भ में किया जाता है। यह स्पष्ट है कि अवैध खनन का परिवहन और भंडारण है, न कि बालू जैसे लघु खनिजों का खनन जो कानूनी है और विधिवत दिए गए लाइसेंस

द्वारा समर्थित है, जिसे इस प्रावधान के तहत विनियमित किया जा सकता है। इसलिए, इस प्रावधान से कानूनी रूप से उत्खनन किए गए खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की कोई शक्ति नहीं मिलती है।"

26.इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 1957 के उक्त अधिनियम की धारा 23-सी में प्रयुक्त शब्द "परिवहन" और "भंडारण" अवैध खनन के संदर्भ में हैं, न कि बालू जैसे लघु खनिजों के खनन के संदर्भ में, जो कानूनी है और विधिवत अनुमोदित लाइसेंस द्वारा समर्थित है। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से कहा कि राज्य सरकार को उक्त अधिनियम की धारा 23-सी के तहत कानूनी रूप से उत्खनन किए गए खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए कोई नियम बनाने की शक्ति नहीं है।

34. संविधान के सातवें अनुसूची के सूची-II में प्रविष्टि 66 के आधार पर भी एक तर्क दिया गया था। प्रविष्टि 66 किसी भी सूची-II के विषय में शुल्क के बारे में है। सूची-II राज्य सरकारों के विधायी अधिकारों के बारे में है। इसलिए, राज्य विधानमंडल सूची-II के प्रविष्टि-66 का आह्वान करके एक पूर्ण विधायी कार्य करने के लिए सक्षम है। हालांकि, राज्य के बाहर खनन परिचालन को विनियमित करने का विषय सूची-II के प्रविष्टि-66 में शामिल नहीं है। प्रविष्टि 66 किसी भी सूची-II के विषय में शुल्क निर्धारित करने के बारे में है। सूची-II में प्रविष्टि-23 खनिजों और खनिज विकास के विनियमन के बारे में है, जो संघ के नियंत्रण में विनियमन और विकास के संबंध में सूची-I के प्रावधानों के अधीन है। यह क्षेत्र केंद्र सरकार द्वारा अधिनियमित उक्त अधिनियम 1957 द्वारा कब्जा कर लिया गया है, जो आक्षेपित उप-नियम में प्रदान किए गए शुल्क के लिए प्रावधान नहीं करता है। इसके अलावा, राज्य सरकार ने उक्त सूची के प्रविष्टि-66 के अनुसार कोई कानून नहीं बनाया है। यह मानते हुए कि राज्य विधानमंडल में प्रविष्टि-66 के सूची-II के आधार पर शुल्क लगाने की ऐसी शक्ति है, नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है बशर्ते कि कोई कानून बनाया जाए।"

40. इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राज्य बनाम **गुजरात राज्य बनाम जयेशभाई** के मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **मेसर्स अल्ट्राटेक सीमेंट** के मामले में और **कर्नाटक उच्च न्यायालय** द्वारा **श्री साईं केशव एंटरप्राइजेज** के मामले में पालन किए गए कानून के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार के पास अन्य राज्यों में कानूनी रूप से खनन किए गए खनिजों पर कोई नियम बनाने या विनियमन शुल्क लगाने की शक्ति नहीं है, और उत्तर प्रदेश राज्य में लाए गए हैं। इसके अलावा, जो नियम मुक्त व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं वे भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन करते हैं, और इसलिए, निरस्त नियमों और सरकारी आदेशों को अधिकारतीत घोषित किया जा सकता है।

राज्य का तर्क

41. श्री एम.सी. चतुर्वेदी, माननीय अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री देवेश विक्रम, श्री अम्बरीश

शुक्ला और सुश्री उत्तरा बहुगुणा, माननीय अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री अंकुर टंडन, माननीय स्थायी अधिवक्ता और श्री प्रदीप त्रिपाठी, माननीय ए.जी.ए., वर्ष 2020 की रिट याचिका संख्या 10037 में राज्य उत्तरदाताओं के लिए और श्री मनीष गोयल, माननीय अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री ए.के. गोयल, माननीय अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, वर्ष 2022 की रिट याचिका संख्या 37119 में राज्य उत्तरदाताओं के लिए सहायता प्राप्त, निम्नलिखित प्रस्तुत किया:-

42. श्री चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं का संघ (रिट याचिका संख्या.10037 of 2020) इस याचिका को दायर करने के लिए कोई अधिकारक्षेत्र नहीं रखता है। उन्होंने इस न्यायालय को इस सोसायटी के गठन के उद्देश्यों से अवगत कराया। उद्देश्यों के अनुसार, सोसायटी का गठन पत्थर को कुचलने के व्यवसाय में लगे सदस्यों द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए किया गया था। सोसायटी के किसी भी सदस्य का खनन या अन्य राज्यों में खनिजों के परिवहन के व्यवसाय से कोई संबंध नहीं है। संघ के सदस्यों का उन नियमों से कोई दूर-दूर का भी संबंध नहीं था, जिन्हें उन्होंने याचिका में चुनौती दी है। इसलिए, याचिका को शुरू में ही अधिकारक्षेत्र के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए। इस तर्क को मजबूत करने के लिए उन्होंने जसभाई मोतीभाई देसाई बनाम रोशन कुमार, हाजी बशीर अहमद और अन्य10 और विनोय कुमार बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य (2001 (4) एससीसी 734) के निर्णयों पर जोर दिया।

10जसभाई मोतीभाई देसाई बनाम रोशन कुमार, हाजी बशीर अहमद और अन्य 1976(1) एससीसी 671

11विनॉय कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य 2001 (4) एससीसी 734

43. विदयवान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 245 और 246(3) के तहत, राज्य को संविधान के 7वें अनुसूची की सूची-II में उल्लिखित किसी भी विषय के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है। इसके अलावा, राज्य खदानों और खनिजों के लिए नियम बना सकता है (एंट्री-23 के अनुसार) और संविधान के 7वें अनुसूची की सूची-II के एंट्री -66 के अनुसार इस सूची में आने वाले किसी भी विषय के संबंध में शुल्क भी लगा सकता है।

44. उन्होंने प्रस्तुत किया कि राज्य संविधान के सातवें अनुसूची की सूची-II के एंट्री -23 में निहित शक्तियों और इस सूची-II के एंट्री -66 के तहत प्रदत्त शक्ति के तहत "नियामक शुल्क" वसूल रहा है।

45. श्री अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि खान अधिनियम, 1952 को खानों में श्रम और सुरक्षा के विनियमन के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। खान अधिनियम, 1952 की धारा 2 (1) (j) और (v) इस प्रकार हैं:-

"(j) "खान" का अर्थ किसी भी उत्खनन से है जहां खनिजों की खोज या प्राप्ति के लिए कोई भी कार्य किया गया है या किया जा रहा है, जिसमें शामिल हैं -

(v) खान या खनिजों या अन्य वस्तुओं को लाने या निकालने के लिए या वहां से कूड़ा-कचरा निकालने के लिए प्रदान किए गए सभी कन्वेयर या हवाई रस्सी मार्ग;

यहां कन्वेयर और रस्से मार्ग परिवहन का एक तरीका है, जो एमएमआरडी अधिनियम की धारा 3 (i) के दायरे में आता है।

46. एमएमआरडी **अधिनियम, 1957 की धारा 2 के द्वारा, यह घोषित किया गया है कि सार्वजनिक हित में यह उचित है कि संघ खानों और खनिजों के विकास के विनियमन को उसके नियंत्रण में ले ले, जितना कि आगे प्रदान किया गया है। यह धारा** एमएमआरडी **अधिनियम, 1957 के प्रावधानों तक सीमित करके एंट्री -54 के दायरे पर एक अतिरिक्त प्रतिबंध लगाती है।**

47. एमएमआरडी अधिनियम की **धारा (3)** के प्रावधान इस प्रकार हैं:-

(एए) "खनिज" में खनिज तेलों को छोड़कर सभी खनिज शामिल हैं;

(एई) "खनिज अनुज्ञा" का अर्थ या तो एक अन्वेषण परमिट, अन्वेषण लाइसेंस, खनन पट्टा, संयुक्त लाइसेंस या इनमें से किसी का संयोजन है और "अनुज्ञा" शब्द को तदनुसार समझा जाएगा;

(b) "खनिज तेल" में प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम शामिल हैं;

(ई) "लघु खनिज" का अर्थ भवन पत्थर, बजरी, साधारण मिट्टी, साधारण रेत (निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए उपयोग की जाने वाली रेत के अलावा) और कोई अन्य खनिज है जिसे केंद्र सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा लघु खनिज घोषित कर सकती है;

(ईए) "सूचित खनिज" का अर्थ चौथे अनुसूची में निर्दिष्ट कोई भी खनिज है।"

धारा 4ए पूर्वेक्षण करने पर सामान्य प्रतिबंध प्रदान करती है खनन कार्य. धारा 4 के प्रासंगिक उप-भाग इस प्रकार पढ़ें:

(1ए) कोई भी व्यक्ति खनिजों को इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार परिवहन या भंडारण नहीं करेगा या परिवहन या भंडारण का कारण नहीं बनेगा।

(3) कोई भी राज्य सरकार, केंद्रीय सरकार से पूर्व परामर्श के बाद और धारा 18 के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार, राज्य के भीतर किसी भी क्षेत्र में, जो किसी भी खनिज अनुज्ञा के तहत पहले से ही नहीं है, प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी खनिज के संबंध में अन्वेषण, अन्वेषण या खनन कार्य शुरू कर सकती है।

इसी प्रकार, धारा 4ए में अन्वेषण लाइसेंस या खनन पट्टों को समाप्त करने का प्रावधान है, जो केंद्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित खनिजों के संबंध में राज्य सरकार को एक महत्वपूर्ण विनियामक भूमिका में भी रखता है।

धारा 13 में केंद्रीय सरकार को खनिजों के संबंध में खनिज अनुज्ञा के प्रावधान को विनियमित करने और इसके लिए संबंधित उद्देश्यों के लिए नियम बनाने का अधिकार है।

अधिनियम की धारा 14 खनिजों के संबंध में खदान पट्टों, खनन पट्टों और अन्य खनिज अनुज्ञाओं और इसके लिए संबंधित उद्देश्यों को अधिनियम की धारा 5 से 13 तक के आवेदन को बाहर कर देता है।

अधिनियम की धारा 18 खनिजों के संरक्षण और व्यवस्थित विकास और पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रदान करती है और इस प्रकार है:

धारा 18. खनिज विकास।(i) यह केंद्रीय सरकार का कर्तव्य होगा कि वह भारत में खनिजों के संरक्षण और व्यवस्थित विकास और पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए, जिससे अन्वेषण या खनन कार्यों से होने वाले किसी भी प्रदूषण को रोका या नियंत्रित किया जा सके और इस प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा ऐसे नियम बना सके, जो वह ठीक समझे।

48. एक संयुक्त पठन धारा 4(3) और धारा 18 से पता चलता है कि केंद्रीय सरकार के नियंत्रण में खनिजों के संबंध में भी, राज्य सरकार को अन्वेषण, अन्वेषण और खनन कार्य शुरू करने का अधिकार है, जो प्रभावी रूप से राज्य सरकार के पास विनियमन होने के बराबर है। इस प्रकार प्रावधान केंद्र सरकार द्वारा नियंत्रित निर्दिष्ट खनिजों के संबंध में राज्य सरकार की विनियामक शक्ति को दर्शाते हैं।

49. वर्ष 1999 में, संघ ने खानों और खनिजों के विकास को इसके विनियमन से अधिक महत्वपूर्ण माना, जिससे अधिनियम में गंभीर संशोधन किए गए, एमएमआरडी अधिनियम,

1957 का नामकरण अधिनियम संख्या 38, 1999 द्वारा खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (यहाँ से आगे एमएमआरडी अधिनियम) के रूप में बदल दिया गया और उक्त संशोधन द्वारा धारा 4 (1ए), धारा 23-ए और धारा 23-सी को शामिल किया गया।

50. धारा 23 (सी) एमएमआरडी अधिनियम, 1957 (जो 1999 में एक संशोधन द्वारा शामिल किया गया था) राज्य विधानमंडल को खनिजों की अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है। अधिनियम के तहत दी गई इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार ने धारा 23-सी (2) (ए) और (बी) में उल्लिखित दायित्वों को पूरा करने के लिए अलग-अलग नियम बनाए हैं।

51. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 में, राज्य को लघु खनिजों के संबंध में नियम और विनियम बनाने की शक्ति दी गई है। धारा 15 (1-ए) (ए) और (जी) में शब्द "शुल्क" का उल्लेख किया गया है, जो यह दर्शाता है कि राज्य सरकार शुल्क लगाने के लिए नियम बनाने की शक्ति रखती है और किराया, रॉयल्टी, शुल्क, मृत किराया, जुर्माना या अन्य शुल्क तय करने और एकत्र करने की भी शक्ति रखती है। यह इस शक्ति के तहत है जो राज्य को अधिनियम के तहत दी गई है, नियम बनाए गए थे और अधिसूचनाएं जारी की गई थीं, जो चुनौती के तहत हैं। राज्य को ऐसे नियम बनाने और "नियामक शुल्क" लगाने की पूर्ण अधिकार और शक्ति है। राज्य ने एमएमआरडीए अधिनियम के तहत प्रदत्त शक्ति के तहत, 1963 के नियमों को निरस्त करते हुए, एक नए नियम उत्तर प्रदेश खनन और खनिज (कनसेशन) नियम, 2021 को एक समग्र नियम कहा जाता है। इन नियमों के तहत, राज्यों को विभिन्न मदों के तहत विभिन्न शुल्कों को चार्ज करने का पूर्ण अधिकार है। नियम 21(2), 26 और 27 राज्यों को शुल्क लगाने की शक्ति प्रदान करते हैं। इन नियमों के तहत शुल्क लगाने की शक्ति एमएमआरडीए अधिनियम की धारा 15 के तहत दी गई शक्ति के समान है। इसलिए, बनाए गए नियम और 24.02.2020 और 10.08.2022 के दिनांकित सरकार के आदेश एमएमआरडी अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के अनुरूप हैं।

52. खनन और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 13 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्रीय सरकार द्वारा 1960 के खनिज अनुज्ञा नियम बनाए गए थे।

नियम 27 में उन शर्तों का प्रावधान किया गया है जिनके अधीन प्रत्येक खनन पट्टा होगा। नियम 27 के उप-नियम (1)(ओ) में कहा गया है कि

(o) किसी भी खनिज के संबंध में, जो कुछ उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने के संबंध में प्रमुख खनिज के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने के संबंध में एक लघु खनिज के रूप में, पट्टा धारक

जो इन नियमों के तहत ऐसे खनिजों के निष्कर्षण के लिए पट्टा रखता है, चाहे वह पट्टा दस्तावेज में प्रमुख खनिज के रूप में निर्दिष्ट किया गया हो या नहीं, वह खनिज का उपयोग या बिक्री नहीं करेगा या किसी भी तरह से उससे निपटायेगा या जानबूझकर किसी को खनिज का उपयोग या बिक्री करने या किसी भी तरह से उससे निपटने की अनुमति नहीं देगा। जैसा कि वह एक लघु खनिज है।

परंतु यह कि यदि पट्टाधारक द्वारा इस संबंध में किए गए आवेदन पर, राज्य सरकार संतुष्ट है कि इस तरह के खनिज की निम्न गुणवत्ता को देखते हुए, इसका उपयोग उन किसी भी उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है, जिससे इसका उपयोग प्रमुख खनिज कहा जा सकता है या कि इस तरह के खनिज का कोई बाजार नहीं है। प्रमुख खनिज के रूप में, "राज्य सरकार आदेश/पट्टा द्वारा पट्टाधारक को इस तरह के खनिज को ऐसी मात्रा में और ऐसे तरीके से निपटाने की अनुमति दे सकती है जैसा कि उसे एक लघु खनिज के रूप में निर्दिष्ट किया गया हो।"

यह दर्शाता है कि धारा 13 के तहत केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियम भी राज्य सरकार को खनिजों की प्रकृति (प्रमुख या लघु) पर निर्णय लेने और उसी को विनियमित करने की शक्ति प्रदान करते हैं।

अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों की योजना की एक व्यापक समीक्षा से पता चलता है कि नियामक शक्ति का लगातार राज्य सरकार के पास और नियंत्रण केंद्रीय सरकार के पास निहित है।

53. श्री मानिश गोयल, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि भारत के संविधान के सातवी अनुसूची की सूची I के प्रविष्टि-54 में खानों और खनिजों के विकास का विनियमन शामिल है, जिस हद तक यह संसद द्वारा घोषित संघ के नियंत्रण में है, इसकी सख्त व्याख्या दी जानी चाहिए। सूची II के प्रविष्टि 23 के विपरीत, जो सामान्य प्रकृति का है और सूची I में आरक्षित है और सूची II में कुछ भी आरक्षित नहीं है।

54. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 3 (एए) में खनिजों की परिभाषा दी गई है, जिसमें खनिज तेल को छोड़कर सभी खनिज शामिल हैं। धारा 3 (ई) में लघु खनिज की परिभाषा दी गई है। अधिनियम के तहत प्रमुख खनिजों की कोई परिभाषा नहीं है। धारा 23-सी (1) में कहा गया है कि राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा खनिजों की अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने और इसके लिए संबंधित उद्देश्यों के लिए नियम बना सकती है।

55. गोवा सरकार ने एमएमआरडी अधिनियम, 1957 की धारा 23-सी के तहत दी गई शक्तियों के तहत गोवा (अवैध खनन भंडारण और परिवहन खनिजों की रोकथाम) नियम, 2013 का गठन किया था। इन नियमों को सुप्रीम कोर्ट ने गोवा फाउंडेशन बनाम भारत

संघ12 मामले में माना था, जिसमें न्यायालय ने कहा था:

> *"62.* ***सीईसी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि गोवा राज्य में खनन पट्टों में उत्पादित लौह अयस्क की मात्रा, रॉयल्टी के भुगतान, खनन विभाग द्वारा खनिज परिवहन के लिए जारी किए गए परमिट, वन विभाग द्वारा जारी किए गए पारगमन परमिट की समय-समय पर जांच करने की कोई प्रणाली नहीं है, न ही खनन पट्टे में उत्पादित लौह अयस्क की मात्रा का मिलान उस लौह अयस्क की मात्रा से किया जाता है जिसके लिए रॉयल्टी का भुगतान किया गया है और पारगमन परमिट जारी किए गए हैं, और चेक पोस्ट पर पारगमन परमिट का कोई सत्यापन नहीं है और निर्यात/घरेलू रूप से उपयोग किए जाने वाले खनिज की मात्रा का कोई सत्यापन नहीं है। वैध रूप से उत्पादित मात्रा के मुकाबले। सीईसी के अनुसार, इस तरह के चेक/सत्यापन/नियंत्रण के अभाव में, अवैध खनन आसानी से किया जा सकता है और खनन पट्टों से उत्पादित और परिवहन किए जाने वाले लौह अयस्क की वास्तविक मात्रा का गोवा राज्य या पट्टाधारियों द्वारा हिसाब नहीं रखा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व की हानि होती है.....***
>
> ***63.*** *हम पूरी तरह से सीईसी की रिपोर्ट से सहमत हैं कि उचित चेक, सत्यापन और नियंत्रण के अभाव में खनिजों की अवैध खनन, भंडारण और परिवहन होना तय है, लेकिन हम पाते हैं कि सीईसी की रिपोर्ट के बाद, गोवा (निवारण) खनन) नियम, 2013 को एमएमआरडी अधिनियम की धारा 23-सी के तहत राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया है। इन नियमों को पढ़ने से पता चलता है कि इन नियमों में अवैध खनन को रोकने और अयस्क की बिक्री, निर्यात और पारगमन, खनिज के भंडारण, परिवहन और जीतने और तराजू और पारगमन में खनिजों की निरीक्षण के लिए कई प्रावधान किए गए हैं। इसके अलावा, इन नियमों में सरकार द्वारा अधिकृत किसी भी व्यक्ति को प्रवेश करने, निरीक्षण करने, तलाशी लेने और वस्तुओं को जब्त करने की शक्ति प्रदान की गई है। इन नियमों को राज्य सरकार द्वारा सख्ती से लागू किया जाना होगा और हम उम्मीद करते हैं कि इन नियमों के सख्त अनुपालन से गोवा राज्य में खनन, भंडारण और खनिजों के परिवहन पर नियंत्रण और विनियमन हो जाएगा और राजस्व के रिसाव और चोरी को काफी हद तक रोका जा सकेगा।"*

56. वर्ष 2008 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 (मार्च, 2008 से प्रभावी) तैयार की। जाहिर है कि यह नीति कमोबेश केवल कागज पर थी, और प्रभावी रूप से लागू नहीं की गई, शायद निहित स्वार्थों वाले बहुत शक्तिशाली लोगों की भागीदारी के कारण। अवैध खानों और परिवहन के खतरे पर अंकुश लगाने के लिए जिम्मेदार लोगों ने बड़े पैमाने

पर अवैध या गैरकानूनी खनन से आंखें मूंद लीं, जिसका पर्यावरण और उस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी लोगों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। यह मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ध्यान में **टी.एन. गोदावरमन** के मामले में ओडिशा राज्य में हो रहे बड़े

12गोवा फाउंडेशन बनाम भारत संघ 2014 (6) एससीसी 590

पैमाने पर अवैध खनन के बारे में लाया गया, जिसमें न्यायालय ने न्यायमूर्ति एम.बी. शाह (सुप्रीम कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति) की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट वर्ष 2013 में दी।

57. उच्चतम न्यायालय ने कॉमन कॉज बनाम भारत संघ13 मामले में न्यायमूर्ति एमबी शाह की रिपोर्ट और 2008 के राष्ट्रीय खनिज नीति पर भी विचार किया और निष्कर्ष निकाला कि 2008 में राष्ट्रीय खनिज नीति को लागू नहीं किया गया था और प्रभावी भी नहीं थी, क्योंकि इसमें अवैध खनन कार्यों की जांच के लिए कोई उचित तंत्र नहीं था। कोर्ट का विचार था कि 2008 की राष्ट्रीय खनिज नीति, अप्रभावी प्रवर्तन तंत्र के कारण केवल एक कागजी नीति बन कर रह गई और इसे लागू नहीं किया जा सका। आगे कोर्ट का विचार था कि खनन नीति एक दशक पुरानी थी और इसे एक नया रूप देना आवश्यक था क्योंकि देश के कई हिस्सों में विनाशकारी खनन की शुरुआत सहित घटनाओं की एक श्रृंखला हुई है। कोर्ट ने निम्नलिखित रूप में निर्णय सुनाया:

"230. हम भारत संघ को राष्ट्रीय खनिज नीति, 2008 पर एक नया नजर डालने का निर्देश देते हैं, जो लगभग एक दशक पुरानी है, विशेष रूप से संरक्षण और खनिज विकास के संबंध में। इस अभ्यास को 31.12.2017 तक पूरा किया जाना चाहिए।"

58. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसार, भारत सरकार ने नई राष्ट्रीय खनिज नीति, 2019 (जिसे 28.02.2019 को मंत्रिमंडल द्वारा मंजूरी दी गई थी) के साथ आई। नीति का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

1. दृष्टि

.....चूंकि खनन राज्य के राजस्व में काफी योगदान देता है, इसलिए अवैध खनन और मूल्य लीकेज को रोकने के लिए एक कुशल विनियामक तंत्र की आवश्यकता है...।

2. खनिज विनियमन

2.1 भारत के संविधान के सातवी अनुसूची के संघ सूची (सूची I) के प्रविष्टि 54 और राज्य सूची (सूची II) के प्रविष्टि 23 के अनुसार खनिज संसाधनों का प्रबंधन केंद्र और

राज्य सरकारों दोनों की जिम्मेदारी है।

2.2 व्यवसाय करने में आसानी के अनुकूल विनियामक वातावरण बनाने के लिए, खनिज पट्टों के अनुदान के लिए प्रक्रियाएं पारदर्शी और निर्बाध होंगी, जिसमें पट्टों के हस्तांतरणीयता के साथ-साथ पट्टेदारी की निश्चित सुरक्षा सुनिश्चित की जाएगी, जो खनिज क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2.3 खनन योजनाओं के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (आईबीएम) और राज्य खनन और भूविज्ञान निदेशालयों को पर्याप्त जनशक्ति, उपकरण और कौशल सेटों के साथ राज्य को अत्याधुनिक स्तरों तक उन्नत करके मजबूत किया जाएगा।

2.4 नियमन तंत्र को मजबूत करने पर जोर दिया जाएगा, जिसमें उपग्रह और रिमोट सेंसिंग अनुप्रयोगों सहित ई-गवर्नेंस को शामिल किया जाएगा। आईटी सक्षम प्रणालियों के उपयोग से आपूर्ति श्रृंखला में खनिज/अयस्क के एंड-टू-एंड लेखांकन के लिए प्रावधान किए जाएंगे।

जागरूकता और सूचना अभियानों के लिए उपयुक्त तंत्र विकसित करने के प्रयास भी किए जाएंगे और अवैध खनन को रोकने के लिए कानून प्रवर्तन क्षमताओं को पूरक करने के लिए स्थानीय आबादी की भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी।

3. राज्य की खनिज विकास में भूमिका

3.1 खनन में राज्य के मुख्य कार्य अन्वेषण और खनन गतिविधियों को सुविधाजनक बनाना और विनियमित करना होगा, बुनियादी ढांचे के विकास और कर संग्रह के लिए प्रावधान करना होगा.....।

59. नई राष्ट्रीय खनिज नीति, 2019 के तहत अवैध खनन को रोकने के लिए राज्यों को ई-गवर्नेंस प्रणालियों के उच्च प्रसार के साथ कुशल और प्रभावी विनियामक तंत्र बनाने के लिए बाध्य थे। इसके लिए ई-गवर्नेंस को शामिल करके विनियामक तंत्र को मजबूत करने पर जोर दिया जाना चाहिए, जिसमें उपग्रह और रिमोट सेंसिंग अनुप्रयोग शामिल हैं। आपूर्ति श्रृंखला में खनिज/अयस्क के शुरू

से-अंत तक लेखांकन के लिए आईटी सक्षम प्रणालियों के उपयोग के साथ प्रावधान किए जाने थे। अवैध खनन को रोकने में कानून प्रवर्तन क्षमताओं को पूरक करने के लिए जागरूकता और सूचना अभियानों और स्थानीय आबादी की भागीदारी के लिए उपयुक्त तंत्रों को तैयार करने के प्रयास भी किए जाएंगे। खनन में राज्य के मुख्य कार्य अन्वेषण और खनन गतिविधियों को सुविधाजनक बनाना और विनियमित करना होगा, बुनियादी ढांचे के विकास और कर संग्रह के लिए प्रावधान करना होगा।

60. अतिरिक्त महाधिवक्ता के अनुसार, नियम में संशोधन का कारण एक समस्या थी जो तब उत्पन्न हुई जब कुछ लोग, जो याचिकाकर्ता के समान स्थित थे, इस न्यायालय के पास आए और यह निर्देश मांगा कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लगाए गए किसी भी शुल्क का भुगतान करने के बाद मध्य प्रदेश राज्य में कानूनी रूप से निकाले गए लघु खनिजों को उत्तर प्रदेश राज्य में लाने में सहयोग करे। इस न्यायालय में एक रिट याचिका संख्या.52892 / 2016 (मेसर्स दिगैना इंडस्ट्रीज़ प्राइवेट. लि. बनाम भारत संघ एवं अन्य)14 दायर की गई थी, जिसमें इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा था कि, उत्तर प्रदेश राज्य से बाहर लघु खनिज ले जाने या अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लघु खनिज लाने के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। न्यायालय ने राज्य सरकार को अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लाए गए लघु खनिजों पर नीति बनाने के लिए दो महीने का समय दिया।

61. मेसर्स दिगैना इंडस्ट्रीज़ प्राइवेट. लि. (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में, राज्य सरकार ने लघु खनिजों के अंतर-राज्य परिवहन को विनियमित करने के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया, जिसके परिणामस्वरूप, यू.पी. माइनर मिनरल्स (कनसेसन) (48th संशोधन) नियम, 2020 को तैयार करके, यू.पी. गौण खनिज(रियायत) नियम, 1963 में नियम 21 का उप-नियम (4) और नियम 70 के उप-नियम (2) का उपबंध जोड़ा गया था।

62. उत्तर प्रदेश सरकार ने 2020 के नियमों में संशोधन करके और नियमों द्वारा, लघु खनिजों के अंतर-राज्य परिवहन पर "नियामक शुल्क" लगाने की शक्ति सुरक्षित कर ली, जिसे राज्य सरकार समय-समय पर निर्धारित कर सकती है। इसके बाद, इन संशोधित नियमों के अनुपालन में राज्य सरकार द्वारा दिनांक 24.02.2020 का एक सरकारी आदेश जारी किया गया, जिसमें अन्य राज्यों से आने वाले लघु खनिजों पर नियामक शुल्क निर्धारित किया गया था। दिनांक 24.02.2020 के सरकारी आदेश के उद्देश्य और कारण स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि नियामक शुल्क केवल एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23-सी (2) (ए) और (बी) में निर्धारित दायित्वों को पूरा करने के लिए लगाया गया था। नियम और सरकारी आदेश राष्ट्रीय खनिज नीति, 2019 द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुरूप हैं।

14(मेसर्स मेसर्स दिगैना इंडस्ट्रीज़ प्राइवेट. लि. बनाम भारत संघ एवं अन्य)2017(1) एडीजे 549

63. इसके बाद, उत्तर प्रदेश लघु खनिज (पट्टा) नियम, 2021 (यहाँ से आगे नियम, 2021 के रूप में संदर्भित) तैयार किए गए। नियम, 2021 के नियम 21 (5) और नियम 72 (2) का दूसरा उपबंध नियम, 1963 के बाद 48वें संशोधन के समान हैं और समान भाषा का उपयोग करते हैं। वर्तमान मामले में चुनौती दी गई नियम और दिनांक 24.2.2020 और दिनांक 10.8.2022 के सरकारी आदेश इसी के अनुपालन में पारित किए गए थे, और राष्ट्रीय खनिज नीति, 2019 को भी आगे बढ़ा रहे हैं।

64. श्री गोयल ने आगे प्रस्तुत किया कि, अधिनियम के तहत कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है जो राज्य सरकार को नियामक शुल्क लगाने से रोकता है, बल्कि यह एमएमडीआर अधिनियम, 1957 में राज्य के लिए लघु और खनिजों के विकास को राज्य सरकार के हाथों में विनियमित करने के लिए सक्षम प्रावधान हैं। वास्तव में, नियम एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 (1) के तहत चेक गेट लगाकर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और नवीनतम उपलब्ध तकनीक का उपयोग करके अवैध परिवहन को रोकने के लिए तैयार किए गए थे। यह केवल भौतिक बुनियादी ढांचा प्रदान नहीं कर रहा था, बल्कि ई-प्रवेश पास जारी करने तक भी गया था जो लोडिंग के बिंदु पर उत्पन्न होता है (यानी अन्य राज्य में) यह खदान पारगमन ई-पास किसी भी मानवीय संपर्क से बचने और अवैध परिवहन से बचने के लिए उत्पन्न होता है।

65. श्री गोयल ने एक ब्रोशर रखा जिसमें अवैध रूप से निकाले गए खनिजों के परिवहन को रोकने के लिए विभिन्न उपायों को दर्शाया गया है, जो अधिनियम की धारा 23-सी के प्रावधानों के अनुसार राज्य पर एक दायित्व है। ब्रोशर के अनुसार राज्य ने बुनियादी ढांचा बनाने में भारी मात्रा में धन खर्च किया है, जो इस प्रकार हैं:

(i) भू-सीमांकन सभी खनन पट्टों की सीमाओं का भू-निर्देशांकों के साथ मानचित्र पर प्लॉट किया गया है, जिसमें सभी खनन स्थलों की आभासी भौगोलिक मापदंडों को प्रदर्शित किया गया है, अब तक 518 से अधिक पट्टेदार क्षेत्रों को भू-सीमांकित किया गया है।

(ii) तौल तराजू पर पीटीजेड कैमरे को खनन गतिविधि की सक्रिय निगरानी के लिए 100 मीटर की सीमा के साथ आईआर सेंसर के साथ स्थापित किया गया है जो न्यूनतम प्रकाश और अल्ट्रा कम प्रकाश में काम करते हैं। खनन क्षेत्र से आने वाले वाहनों पर खनिज की वास्तविक मात्रा को ट्रैक करने के लिए सभी खनन क्षेत्रों में तौल तराजू स्थापित किए गए हैं, अब तक 466 से अधिक तौल तराजू स्थापित किए गए हैं और राज्य में काम कर रहे हैं।

(iii) माइन टैग: राज्य के भीतर खनिज परिवहन में लगे वाहन को प्रमाणित करने के लिए एक अद्वितीय आरएफआईडी टैग जारी किया जाता है। टैग में विभाग द्वारा वाहन को जारी किए गए आवश्यक अनुमति/निर्देशों का विवरण होता है। वाहन पर स्थापित आरएफआईडी टैग को एंड्रॉइड आधारित मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से वाहन मास्टर डेटाबेस से मैप किया जाएगा। जब स्थापित टैग वाला वाहन चेक गेट से गुजरेगा

है, तो आरएफआईडी रीडर टैग तक पहुंच जाएगा और पूरे जानकारी को केंद्रीय डेटाबेस में भेज देगा। 20.9.2022 तक खनिज ले जाने वाले वाहनों में 95000 से अधिक माइन टैग जारी और स्थापित किए गए थे।

(iv) आरएफआईडी हैंडहेल्ड रीडर और एम-चेक ऐप विभिन्न जिलों में खनन अधिकारियों को प्रदान किए गए थे। यह एक स्मार्ट डिवाइस है जिसमें वायरलेस संचार और अल्ट्रा हाई स्कैनिंग (यूएचएफ स्कैनिंग) सुविधाओं के साथ डेटा अधिग्रहण, प्रसंस्करण और प्रसारण जैसी सुविधाएं हैं। यह एंड्रॉइड 6.0 ओए के साथ कॉन्फ़िगर किया गया है और इसमें उच्च विश्वसनीयता और विस्तारशीलता है। इसमें वाहन डेटा के साथ आरएफआईडी टैग के मैपिंग के साथ वास्तविक समय चेक गेट अलर्ट और सूचनाएं प्राप्त करने के लिए एक इनबिल्ट अद्वितीय एंड्रॉइड आधारित मोबाइल एप्लिकेशन है। इसके साथ विभाग के अधिकारी एम-चेक ऐप के माध्यम से ई-नोटिस जारी कर सकते हैं।

(v) एम-चेक मोबाइल ऐप: एक ऐप बनाया गया है जो एमआईएनई टैग, वाहन संख्या, ई-टीपी नंबर या क्यूआर कोड का उपयोग करके सभी प्रकार के ट्रांजिट पास (ई-टीपी) अर्थात ई-एमएम-11/ ई-फॉर्म-सी/ आईएटीपी दस्तावेजों का ऑनलाइन सत्यापन करने के लिए बनाया गया है। अन्य राज्यों के एपीआई के एकीकरण के माध्यम से अन्य राज्यों के ट्रांजिट पास की प्रामाणिकता भी जाँच की जा सकती है। लंबित ई-नोटिस की जानकारी स्वचालित रूप से उत्पन्न और प्रदर्शित की जाती है ताकि उचित कार्रवाई की जा सके। वाहनों का सत्यापन वाहन एपI का उपयोग करके वास्तविक समय में कानूनी खनिज परिवहन के साथ किया जाता है और निकटतम प्रवर्तन टीम को आगे की कार्रवाई के लिए तत्काल अलर्ट/सूचना दी जाती है। यह ऐप साक्ष्य एकत्र करने और ई-नोटिस भेजने में भी मदद करता है। एक बार जब मौके पर सत्यापन के दौरान विसंगतियां पाई जाती हैं, तो ऐप सभी साक्ष्य जैसे वाहन संख्या, फोटो, दस्तावेज, चालक का विवरण, लागू अपराध, एमआईएनई-टैग स्थिति आदि एकत्र करता है। वाहनों को विसंगतियां होने पर ऑनस्पॉट वास्तविक समय में ई-नोटिस भेजा जा सकता है। वाहन मालिक को तुरंत वास्तविक समय में अलर्ट (एएमए/ माइनमित्रा ऐप सूचना) भेजे जाते हैं। आगे यह मैनुअल बैरियर पर मॉनिटरिंग तंत्र भी प्रदान करता है। यह मैनुअल बैरियर से गुजरने वाले वाहन को ट्रैक करता है और डेटा संग्रहीत करता है।

(vi) माइनिंग चेकगेट: माइनिंग चेकगेट एक एआई और आईओटी आधारित स्मार्ट प्रवर्तन प्रणाली है जो प्रमुख खनन मार्गों पर संदिग्ध वाहनों को ट्रैक करने और कमांड सेंटर में निर्णय समर्थन सॉफ्टवेयर (डीएए) के माध्यम से खनन विभाग को अलार्म उठाने के लिए स्थापित किया गया है। समाधान को खनन विभाग द्वारा निर्धारित नियमों और विनियमों के अनुसार अवैध गतिविधियों के प्रति शून्य सहिष्णुता के साथ एक मानक कानूनी व्यवस्था स्थापित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, जो अनुभव, पृष्ठभूमि या व्यवसाय के आकार के बावजूद किसी भी पक्षपात, पूर्वाग्रह या पक्षपात के बिना प्रत्येक और हर हितधारक के

लिए समान रूप से लागू है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की मदद से ये बिना किसी चालक के चेकगेट अवैध खनन को रोकने के लिए एक ई-बैरियर के रूप में काम करते हैं। यह प्रत्येक खनिज ले जाने वाले वाहन की जांच करता है। यह तकनीकी से संबंधित धोखाधड़ी जैसे बोगस ट्रांजिट पास, फोटोशॉप्ड ट्रांजिट पास, फिशिंग साइटों आदि को भी दूर कर देता है। यह स्थानीय प्रवर्तन टीमों और चूकियों के बीच मिलीभगत से भी बचता है।

(vii) यह एक एकीकृत राजस्व कमांड सेंटर स्थापित करने के लिए भी प्रदान करता है जहां सभी खनिज परिवहन को एक ही स्थान पर मॉनिटर किया जा सकता है।

इन गतिविधियों के अलावा, राज्य अवैध खनन और इस तरह के अवैध रूप से निकाले गए खनिजों के परिवहन की समस्या को रोकने के लिए विभिन्न अन्य उपाय भी कर रहा है। नियामक शुल्क से एकत्र की गई राशि इस बुनियादी ढांचे के निर्माण पर खर्च की जाती है।

66. जैसा कि तर्क दिया गया है, नियामक शुल्क को कर के बराबर नहीं माना जा सकता है। राज्य कर नहीं लगा रहा है और न ही यह तर्क दिया जा सकता है कि राज्य बिक्री के राजस्व को नियंत्रित कर रहा है। यह केवल अवैध खनन और परिवहन को नियंत्रित करने के उद्देश्यों के लिए है, जिन्हें नियंत्रित करने की आवश्यकता है। राज्य पूरी तरह से सक्षम है और उसे नियामक शुल्क लगाने का पूर्ण अधिकार है।

67. विद्वान एएजी ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ताने माननीय उच्चतम न्यायलाय के निर्णय पर भारी निर्भरता रखी है तमिलनाडु राज्य बनाम एम.एम.पी कावेरी चेट्टी (उपरोक्त) जिसमें न्यायालय ने कहा था कि धारा- 15 राज्य सरकार को, कंपनी या निगम को ग्रेनाइट के लिए न्यूनतम मूल्य तय करने में सक्षम बनाने के लिए नियम बनाने के लिए सशक्त नहीं करती है। खनन के बाद राज्य के पास खनिज पदार्थों पर नियंत्रण का कोई अधिकार नहीं था। खनिजों की बिक्री और बिक्री मूल्य को नियंत्रित करने की शक्ति धारा-15 के उप-धारा (Iए) के खंड (o) के प्रावधानों में शामिल नहीं है। यह खंड केवल खदान और खनन पट्टों और अन्य खनिज अनुदानों के प्रावधान को विनियमित करने से संबंधित हो सकता है और यह पहले से खनन किए गए खनिजों की बिक्री को विनियमित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है और इसे अधिकारातीत घोषित किया गया था।

यह निर्णय भेदभावपूर्ण है क्योंकि तथ्य पूरी तरह से अलग हैं। यहां राज्य राज्य में परिवहन किए गए किसी चीज पर कोई लागत तय नहीं कर रहा है। वहां, न्यायालय इस मुद्दे से निपट रही थी कि क्या राज्य पहले से खनन किए गए खनिजों की बिक्री मूल्य तय करने की शक्ति रखता है। इसलिए इस निर्णय का प्रवर्तन वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

68. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चन्नन मल,15 के मामले में, 1957 के खनिज और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम के प्रावधानों के तहत तैयार किए गए राज्य

अधिनियम की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी। संविधान पीठ ने यह निर्धारित किया कि केंद्रीय सरकार के समग्र पर्यवेक्षण के अधीन, राज्य सरकार अपनी स्वयं की शक्ति का एक क्षेत्र है और केंद्रीय अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत कानूनी रूप से निर्दिष्ट कार्रवाई कर सकता है। इस प्रकार, 1957 के केंद्रीय अधिनियम के प्रावधानों के तहत नियंत्रण और विनियमन का पूरा क्षेत्र केंद्रीय सरकार के लिए आरक्षित नहीं कहा जा सकता है।

69. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15(1) की वैधता को डी.के. में चुनौती दी गई थी।

त्रिवेदी और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य 16 इस आधार पर कि इसने कार्यपालिका को विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन प्रदान किया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना कि:

"76. हमारे निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए:

(1) खनिज और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 15 की उप-धारा (1) संवैधानिक और वैध है और धारा 15 (1) के तहत राज्य सरकारों को प्रदान की गई नियम बनाने की शक्ति ***कार्यपालिका*** *की विधायी शक्ति का अत्यधिक* ***प्रत्यायोजन*** *नहीं है।*

(2) 1957 के अधिनियम में राज्य सरकारों द्वारा धारा 15 (1) के तहत नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग के लिए पर्याप्त दिशा-निर्देश प्रदान किए गए हैं। ये दिशा-निर्देश उस उद्देश्य में पाए जाते हैं जिसके लिए ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है, अर्थात् "लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज अनुदानों के प्रावधान को विनियमित करने के लिए और इसके लिए संबंधित उद्देश्यों के लिए; शब्द "विनियमन" का अर्थ; वाक्यांश "इसके लिए संबंधित उद्देश्यों" का दायरा; धारा 13 की उप-धारा (2)

5हरियाणा राज्य और अन्य। वी. चानन मल (1977) 1 एससीसी 340

16डी.के. त्रिवेदी और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य 1986 (सप्लीमेंट) एससीसी*में निर्धारित उदाहरणात्मक मामलों; और धारा 4 से 12 के 1957 के अधिनियम में निहित प्रतिबंध और अन्य मामले।*

(3) धारा 15 (1) द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति में मृत किराया और रॉयल्टी वसूलने के लिए नियम बनाने की शक्ति शामिल है।

(4) धारा 15 (1) के तहत नियम बनाने की शक्ति में पहले से बनाए गए नियमों में संशोधन करने की शक्ति, जिसमें नियमों में संशोधन करने की शक्ति भी शामिल है ताकि रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाया जा सके।

(5) धारा 15 (1) के तहत राज्य सरकार रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने वाले नियमों में संशोधन करने का हकदार है, भले ही ऐसे संशोधन के दिनांक पर पट्टे कायम हों।

(6) उप-धारा (3) धारा 15 राज्य सरकारों को रॉयल्टी वसूलने या समय-समय पर वसूली जाने वाली रॉयल्टी की दर बढ़ाने के लिए नियम बनाने की शक्ति नहीं देती है।

(7) राज्य सरकारों द्वारा नियम बनाने और संशोधन करने की शक्ति का एकमात्र भंडार, जिसमें रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने वाले संशोधन भी शामिल हैं, धारा 15 की उप-धारा (1) है।

(8) किसी भी नियम में संशोधन करने से पहले राज्य सरकार को ऐसे पट्टेदारों को सुनवाई का मौका या प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है जो ऐसे संशोधनों से प्रभावित होंगे।

70. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य बनाम श्री मेसर्स हिंद स्टोन और अन्य 17 मामले में, खनन और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 15 के संदर्भ में राज्य के नियम बनाने की शक्तियों और क्या प्रतिबंध भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन और अधिकारातीत **है, न्ययालाय ने यह कहा कि:-**

हम संतुष्ट हैं कि नियम 8-सी राज्य सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति के सद्भाव में बनाया गया था और इसे अपने स्वयं के स्वार्थ में आगे बढ़ाने के लिए दुरुपयोग नहीं किया गया था। हालांकि हम यह समझने से बचते हैं कि हमने इस स्थिति को स्वीकार कर लिया है कि एक नियम जो पूरी तरह से ठीक है, उसे नियम बनाने की शक्ति का दुरुपयोग माना जाएगा, यदि यह किसी राज्य के हित में है, जिसका वास्तव में अर्थ है राज्य के लोगों।

... हम नहीं मानते कि "विनियमन" का अर्थ उस कठोरता से है जो कभी भी "निषेध" को शामिल नहीं करता है। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अभिव्यक्ति का उपयोग क़ानून में कहाँ किया गया है और परिकल्पित विनियमन से क्या हासिल किया जाना है।

...."शब्द 'विनियमन' का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। इसका अर्थ उस वस्तु की प्रकृति के अनुसार भिन्न होता है जिस पर इसका अनुप्रयोग किया जाता है।" आधुनिक क़ानूनों में जो आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों से संबंधित हैं, "इसमे विनियमन" को अनिवार्य रूप से इतना व्यापक अर्थ प्राप्त करना चाहिए ...

.... "अनुच्छेद 301 द्वारा स्वतंत्रता से गारंटीकृत प्रतिबंध ऐसे प्रतिबंध होंगे जो सीधे और तुरंत व्यापार के मुक्त प्रवाह या आंदोलन को प्रतिबंधित या बाधित करते हैं" (अतिबारी चाय कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य [एआईआर 1961 एसी 232: (1961) 1 एसीआर 809])। और, "नियामक उपाय या व्यापार सुविधाओं के उपयोग के लिए प्रतिपूरक कर लगाने वाले उपाय अनुच्छेद 301 द्वारा परिकल्पित प्रतिबंधों के दायरे में नहीं आते हैं"। "वे संविधान के भाग XIII के प्रावधानों से बाहर रखे गए हैं क्योंकि वे व्यापार, वाणिज्य या समागम को बाधित नहीं करते हैं बल्कि उन्हें सुविधाजनक बनाते हैं" [ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य [एआईआर 1962 एससीसी 1406: (1963)

17तमिलनाडु बनाम मैसर्स हिंद स्टोन और अन्य, (1981) 2 एससीसी 205

1 एसीआर 491]]। खनन और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, बिना किसी संदेह के एक नियामक उपाय है, संसद ने इसे विशेष रूप से "खानों और खनिजों के विनियमन" के उद्देश्य से अधिनियमित किया है। इसलिए अधिनियम और उसके तहत उचित रूप से बनाए गए नियम धारा 301 के दायरे से बाहर हैं। यहां तक कि धारा 302 जो संसद को कानून द्वारा एक राज्य और दूसरे के बीच या भारत के किसी भी हिस्से के भीतर व्यापार, वाणिज्य या आवागमन की स्वतंत्रता पर ऐसी पाबंदियां लगाने में सक्षम बनाती है, जैसा कि जनहित में आवश्यक हो, धारा 301 के कथित उल्लंघन के आधार पर दावे का उत्तर भी प्रस्तुत करता है। खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम संसद द्वारा अधिनियमित कानून है और संसद द्वारा जनहित में उपयुक्त घोषित किया गया है। नियम 8-सी को राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा राजपत्र में अधिसूचित किया गया है, जो उसे अधिनियम की धारा 15 द्वारा प्रदान की गई शक्ति के अनुसार है। एक वैधानिक नियम, जबकि मूल अधिनियम के अधीनस्थ, अन्यथा, अधिनियम के भाग के रूप में और प्रभावी माना जाना चाहिए। "अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों को निर्माण या दायित्व के सभी उद्देश्यों के लिए ठीक उसी तरह माना जाना चाहिए जैसे कि वे अधिनियम में थे और अधिनियम में निहित होने पर भी उनका समान प्रभाव होगा और न्यायिक रूप से अधिसूचित किया जाना चाहिए"।

71. प्रतिवादी के लिए अधिवक्ताने आगे प्रस्तुत किया कि इससे पहले इसी तरह का मुद्दा इस न्यायालय में **रामधनी सिंह बनाम कलेक्टर सोनभद्र और अन्य 18** में आया था, जहां उत्तर प्रदेश राज्य ने लघु खनिजों पर उपकर लगाना शुरू किया था। जिस अधिनियम के तहत

खनिजों पर उपकर लगाया जा रहा था, उसके प्रावधानों की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि खानों और खनिजों के क्षेत्र पर एमएमआरडी अधिनियम 1957 के तहत कब्जा कर लिया गया था, इसलिए, राज्य के लिए किसी अन्य राज्य द्वारा अधिनियमित, खनिज पर उपकर लगाना खुला नहीं था। , जो एमएमआरडी अधिनियम 1957 के तहत शासित था। चूंकि यह शक्ति विशेष रूप से केंद्र सरकार द्वारा प्रयोग योग्य थी, इसलिए, राज्य सरकार द्वारा बनाया गया कोई भी अधिनियम या नियम अल्ट्रा वायर्स होगा। इस न्यायालय ने खनिजों पर उपकर लगाने की राज्य की शक्ति को बरकरार रखा। इस आदेश के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय में अपील की गई थी, जिसे अन्य मामलों के साथ टैग किया गया था, पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसोराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य19** के मामले में इसे सुना। सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि लघु खनिजों पर राज्य सरकार द्वारा उपकर लगाने की शक्ति वैध और अंतरतीत है।

72. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **डी.के. त्रिवेदी (उपरोक्त)** में निर्धारित सिद्धांतों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पांच जजों की **संवैधानिक** पीठ ने भी **राज्य बनाम केसोरम इंडस्ट्रीज (उपरोक्त)** में विचार किया था, जिसमें निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला गया था:

98....., खनन और खनिज विकास अधिनियम के कई प्रावधानों, विशेष रूप से धारा 9ए, 15, 15 (1-ए) (क) और (ग), 15 (3), 17 (3), 21 (5), 25 का अवलोकन करने से पता चलता है कि वसूली की शक्ति हमेशा राज्य सरकार को दी जाती है और जाहिर है कि धारा 25 में "सरकार" शब्द का अर्थ राज्य सरकार है, जिसे केवल भूमि राजस्व के बकाया के रूप में देय राशियों को वसूलने का अधिकार है।

112..... राज्य किसी भी शुल्क को कुछ के लिए कुछ के आधार पर लगा सकता है। सात जजों की पीठ का निर्णय हमारे द्वारा इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि केंद्र द्वारा विनियमन और केंद्रीय के लिए कब्जा किए गए क्षेत्र में, राज्य को कर और शुल्क लगाने की शक्ति तब तक उपलब्ध है जब तक कि वह विनियमन में हस्तक्षेप नहीं करता है - संघ द्वारा ग्रहण और कब्जा की गई शक्ति।

114. हमारा विचार है कि राज्य विधान द्वारा लगाए गए एक उचित कर या शुल्क की व्याख्या संघ की खानों और खनिजों को विनियमित और नियंत्रित करने की शक्ति और स्वतंत्रता के रूप में नहीं की जा सकती है।

129.पूर्ववर्ती चर्चा से निकाले गए प्रासंगिक सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:-

---

18रामधनी सिंह बनाम. कलेक्टर सोनभद्र एवं अन्य (एआईआर 2001 सभी 5)

19 पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसोराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य। (2004 10 एससीसी 201)

..... (8) विधान के प्राथमिक उद्देश्य और अनिवार्य उद्देश्य को इसके अंतिम या आकस्मिक परिणामों या परिणामों से अलग किया जाना चाहिए, जो कि लेवी की प्रकृति का निर्धारण करने के लिए है। एक लेवी जो अनिवार्य रूप से कर की प्रकृति में है और राज्य विधानमंडल की शक्ति के भीतर है, उसे केवल इस आधार पर असंवैधानिक नहीं ठहराया जा सकता है कि इसका वस्तु की कीमत पर प्रभाव पड़ सकता है। एक राज्य कानून, जो उपकर लगाने के प्रावधान करता है, चाहे राज्य के राजस्व संसाधनों को बढ़ाने के लिए कर के रूप में हो या प्रतिफल के रूप में सेवाएं प्रदान करने के लिए शुल्क के रूप में हो, लेकिन विनियमित करने और नियंत्रित करने के किसी भी इरादे के बिना, यह नहीं कहा जा सकता है कि लेवी की घटना के कारण केंद्र सरकार से संबंधित 'नियमन और नियंत्रण' के क्षेत्र का अतिक्रमण किया गया है, जिसके द्वारा खरीदार या उपभोक्ता को पारित किया जाना अनुमेय है, और जिससे वस्तु या माल की कीमत प्रभावित होती है।

सूची II में प्रविष्टि 23 खानों और खनिज विकास के विनियमन की बात करती है, जो सूची I के प्रावधानों के अधीन है, केंद्रीय सरकार के नियंत्रण में विनियमन और विकास के संबंध में। सूची I की प्रविष्टि 52 और 54 दोनों को "सार्वजनिक हित में समीचीन घोषित किए गए" अभिव्यक्ति द्वारा योग्य बनाया गया है। एक साथ पढ़ने से पता चलता है कि संसद द्वारा घोषणा प्रविष्टि 52 में 'उद्योगों के नियंत्रण' के लिए और प्रविष्टि 54 में 'खानों के विनियमन या खनिज विकास' के लिए होनी चाहिए। ऐसा नियंत्रण, विनियमन या विकास 'सार्वजनिक हित में समीचीन' होना चाहिए। प्रविष्टि 52 और 54 द्वारा कवर किए गए क्षेत्र में संघ द्वारा विधान राज्य विधानसभाओं को घोषणा का विषय बनाने वाली संपूर्ण क्षेत्र को जादुई स्पर्श या वर्जित की तरह नहीं छुएगा। राज्य को अस्वीकरण केवल संसद द्वारा की गई घोषणा की सीमा तक ही विस्तारित होगा। प्रविष्टि 52 या 54 के संदर्भ में की गई घोषणा के बावजूद, राज्य घोषणा से बाहर छोड़े गए क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतंत्र होगा। सूची II में प्रविष्टियों के संदर्भ में कर लगाने की विधायी शक्ति पूर्ण होती है जब तक कि प्रविष्टि स्वयं क्षेत्र को किसी अन्य प्रविष्टि के 'अधीन' नहीं बनाती है या किसी भी सीमा के द्वारा क्षेत्र को अमूर्त नहीं करती है जो लागू और अनुमेय है। राज्य द्वारा अपने वित्त को बढ़ाने के उद्देश्य से और उचित सीमा के भीतर लगाया गया कर या शुल्क स्वतः ही विषय के विनियमन, विकास या नियंत्रण पर हस्तक्षेप नहीं करता है। यह अलग बात है कि राज्य द्वारा लगाया जाने वाला कर या शुल्क स्वयं को नियामक कहा जा सकता है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य विनियमन या नियंत्रण करना है और राजस्व में वृद्धि या सेवा प्रदान करना केवल गौण या आकस्मिक है।

9) सूची I में प्रविष्टि 83 से 92B और सूची II में प्रविष्टि 45 से 63 में कर के प्रमुख स्पष्ट रूप से गिनाए गए हैं। सूची III, समवर्ती सूची, कर के किसी भी प्रमुख का प्रावधान नहीं करती है। सूची I में प्रविष्टि 96, सूची II में प्रविष्टि 66 और सूची III में प्रविष्टि 47 शुल्क से संबंधित हैं। कर के क्षेत्र में विधायी शक्ति का

अवशिष्ट अधिकार, जो अनुच्छेद 248 (2) और सूची I में प्रविष्टि 97 में उल्लिखित है, केवल उन विषयों पर लागू किया जा सकता है जो सूची II की प्रविष्टियों 45 से 63 में शामिल नहीं हैं।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूची II की प्रविष्टि 49 में भूमि और भवन पर कर संघ द्वारा नहीं लगाया जा सकता है। सूची II की प्रविष्टि 50 में एक विषय, खनिज अधिकारों पर कर भी संघ द्वारा नहीं लगाया जा सकता है, हालांकि प्रविष्टि में स्वयं कहा गया है कि संघ राज्य की शक्ति पर सीमाएं लगा सकता है और ऐसी सीमाएं, यदि कोई हों, संसद द्वारा खनिज विकास से संबंधित कानून द्वारा लगाई गई हैं और उस सीमा तक राज्य की विधायी शक्ति को सीमित कर देगी। खनिज अधिकारों पर कर लगाने की शक्ति राज्यों के पास है; ऐसे अधिकार के प्रयोग पर सीमाएं निर्धारित करने की शक्ति, आवश्यकतानुसार विनियमन, विकास या नियंत्रण के हित में, संघ के पास है। यह सूची II की प्रविष्टि 50 और सूची I में प्रविष्टियों 52 और 54 के सजातीय पठन से प्राप्त परिणाम है।

जब तक खनिज अधिकारों पर कर या शुल्क सार में और पदार्थ में राज्य के राजस्व संसाधनों को बढ़ाने के लिए कर या राज्य द्वारा सेवाएं प्रदान करने के लिए शुल्क है और यह खानों और खनिज विकास के विनियमन या केंद्रीय सरकार द्वारा उद्योग के नियंत्रण पर असर नहीं डालता है, तो यह असंवैधानिक नहीं है

142. जैसा कि हमने पहले बताया है, एक उपकर कर या शुल्क हो सकता है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, इस भेदभाव के लिए मामले के तथ्यों के संदर्भ में किसी और जांच की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विवादित उपकर संविधानतः वैध है चाहे उसे कर माना जाए या शुल्क। हम इसके साथ और अधिक व्यवहार जारी रखने का प्रस्ताव नहीं करते हैं क्योंकि यह निरर्थक होगा। हम केवल विवादित उपकर की वैधता को बरकरार रखने के अपने कारणों को संक्षेप में रिकॉर्ड पर रखेंगे, चाहे वह कर हो या शुल्क।

143. ...राज्य के कानून में कर के रूप में उपकर लगाने में कुछ भी गलत नहीं है ताकि उसके धन का सृजन हो सके। यद्यपि इसे 'खनिज अधिकार पर उपकर' के रूप में कहा जाता है, इसका प्रभाव खनिजों को वितरित करने वाली भूमि पर पड़ता है। इस प्रकार, उपकर का प्रवर्तन भी सूची II की प्रविष्टि 49 के दायरे में आता है। चूंकि खनिज अधिकारों पर प्रवर्तन खनिज विकास से संबंधित कानून द्वारा संसद द्वारा लगाए गए किसी भी सीमा का उल्लंघन नहीं करता है, इसलिए यह सूची II की प्रविष्टि 50 द्वारा भी कवर किया जाता है। राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता के भीतर निहित किसी भी कर या शुल्क को लगाने की शक्ति सूची II में प्रविष्टि 5 के अर्थ में कानून द्वारा गठित स्थानीय सरकार की किसी भी संस्था को प्रत्यायोजित की जा सकती है। सूची II की प्रविष्टियाँ 5, 23, 49, 50 और 66 विवादित उपकर के अधिनियमन को पर्याप्त संवैधानिक कवरेज प्रदान करती हैं। यह सच है कि उपकर की मात्रा निर्धारित करने की

विधि उत्पादित खनिज की मात्रा के संदर्भ में है। यह प्रभार के चरित्र को नहीं बदलेगा। कर की मात्रा निर्धारित करने के लिए रेत के मूल्य की गणना करने के कई तरीके हैं, जिसका संदर्भ हम पहले ही इस निर्णय के दूसरे भाग में दे चुके हैं।

145. हिंगीर-रामपुर कोल कंपनी में संवैधानिक पीठ के निम्नलिखित अवलोकन एएDए अधिनियम और एएDए नियमों की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखने के लिए सीधे लागू होते हैं -

"..... सार और तत्व विवादित अधिनियम इसके तहत अधिसूचित खनन क्षेत्रों के विकास से संबंधित है। दूसरी ओर, केंद्रीय अधिनियम कोयले का उद्योग सहित सभी उद्योगों के नियंत्रण के साथ अधिक सीधे तौर पर संबंधित है।"

" धारा 6(4) अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य और उद्देश्य को सामने लाती है। इसका उद्देश्य अनुसूचित उद्योग या अनुसूचित उद्योगों के समूह में उत्पादकता की दक्षता को बढ़ाना, उस सेवा को सुधारना या विकसित करना है जो ऐसा उद्योग या उद्योगों का समूह समुदाय को प्रदान करता है या प्रदान कर सकता है, या ऐसे उद्योग या उद्योगों के समूह को प्रदान करने में सक्षम बनाना है। ऐसी सेवा अधिक किफायती है।"

"..... केंद्रीय अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित उद्योगों के सुधार और विकास की दृष्टि से उन्हें विनियमित करना है। वे समाज को जो सेवा प्रदान कर सकते हैं, और इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की बड़ी समस्या के समाधान में सहायता कर सकते हैं। यह मानना मुश्किल है कि इस अधिनियम की धारा 2 द्वारा की गई घोषणा द्वारा कवर किया गया क्षेत्र, इसके कई प्रावधानों के प्रकाश में माना जाता है, वही है जो विवादित अधिनियम द्वारा कवर किया गया क्षेत्र है। ऐसा होने पर, यह नहीं कहा जा सकता कि 1951 के अधिनियम एलएक्सवी के साथ पढ़ी गई प्रविष्टि 52 के परिणामस्वरूप विवादित अधिनियम की शक्तियों को सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है।"

इसलिए हमारा निष्कर्ष यह है कि विवादित अधिनियम सातवीं अनुसूची की सूची II में प्रविष्टि 234 और 66 से संबंधित है, और इसकी वैधता प्रविष्टि 52 और 54 द्वारा क्रमशः अधिनियम LXV 1951 और अधिनियम LIII 1948 के साथ पठित होने से क्षीण या प्रभावित नहीं होती है।

146. जैसा कि पहले भी कहा गया है, विवादित उपकर को शुल्क के रूप में भी उचित ठहराया जा सकता है। शब्द उपकर का प्रयोग आमतौर पर किसी उद्देश्य के लिए कर या किसी विशेष चीज के लिए आवंटित कर को दर्शाने के लिए किया जाता है। हालांकि, इसका अर्थ आकलन या प्रवर्तन भी है। प्रवर्तन के संदर्भ और उद्देश्य के आधार पर, उपकर कर नहीं हो सकता; यह शुल्क या शुल्क भी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एकत्रित शुल्क में से प्रदान की जाने वाली सेवाएं एकत्रित शुल्क की राशि के साथ सीधे आनुपातिक हों। यह भी समान रूप से

आवश्यक नहीं है कि एकत्रित शुल्क द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं उन व्यक्तियों तक सीमित रहें जिनसे शुल्क एकत्र किया गया है। उपकर लगाने वाले व्यक्तियों और एकत्रित शुल्क से प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बीच अप्रत्यक्ष लाभ और एक सामान्य संबंध की उपलब्धता शुल्क की वैधता को बरकरार रखने के लिए पर्याप्त है। विवादित उपकर के प्रवर्तन को भी प्रविष्टि 5 के साथ पठित अनुसूची II की।प्रविष्टि 66 के संदर्भ में बरकरार रखा जा सकता है। "

73. संविधान पीठ के निर्णय के अनुसार राज्य को दूसरे राज्य से आने वाले सामान पर उपकर लगाने की शक्ति है। प्रविष्टि 54 को सख्ती से व्याख्यायित किया जाना है और यह सामान्य प्रविष्टि नहीं है जो बाद के वाक्यांशों से योग्य है। राज्य सूची सामान्य है और केंद्रीय सूची जो संघ सूची है, को सख्ती से लागू किया जाना है। इस मामले में नियामक शुल्क लगाने का वास्तविक उद्देश्य खनिजों के अवैध खनन और उसके परिवहन को रोकना था। नियामक शुल्क का उपयोग देश के बड़े हित को संबोधित करने और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है जो मुख्य है"।

74. राज्य के अधिवक्ताका तर्क है कि **गुजरात राज्य और अन्य बनाम जयेशभाई कांजीभाई कलाथिया और अन्य (उपरोक्त)** केस प्रति-न्यायिक है क्योंकि यह **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसोराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त)** और **ऑटोमोबाइल्स ट्रांसपोर्ट बनाम राजस्थान राज्य20** के निर्णय में निर्धारित अनुपात पर विचार नहीं करता है।

गुजरात राज्य ने राज्य से खनिजों की आवाजाही पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया था, इसलिए, **गुजरात राज्य बनाम जयेशभाई कांजीभाई कलाथिया और अन्य (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अन्य राज्यों में खनिजों के मुक्त व्यापार पर

20ऑटोमोबाइल परिवहन बनाम। राजस्थान राज्य.

पूर्ण प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद 301, 303 और 304 का उल्लंघन होगा, हालांकि, वर्तमान मामले में उत्तर प्रदेश राज्य ने किसी भी तरह का प्रतिबंध नहीं लगाया है, जो भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन होगा।

75. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना गया। उनके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों और निर्णयों का अवलोकन किया।

निष्कर्ष:

76. याचिकाकर्ता की ओर से श्रीमान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा उठाए गए वर्ष 2020 की रिट याचिका संख्या 10037 में याचिकाकर्ता के अधिकार क्षेत्र के संबंध में आपत्ति पर, हमारे पास याचिकाकर्ता के संघ के अधिकार क्षेत्र के बारे में गंभीर आरक्षण हैं, लेकिन जैसा कि मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया है, हम गुणों के आधार पर मामले पर विचार करने के लिए आगे बढ़ेंगे।

77. वर्तमान रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम 2020 के नियम 21(4) और नियम 70(2) और उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम 2021 के नियम 21(5) और नियम 72(2) और दिनांक 24.2.2020 के शासनादेश और दिनांक 10.8.2022 के शासनादेश की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी है कि यह एमएमआरडी अधिनियम और भारत के संविधान के भाग XIII के प्रावधानों का उल्लंघन करता है।

78. इन रिट याचिकाओं के विषय-वस्तु के साथ-साथ पक्षकारों द्वारा दिए गए तर्कों से, निम्नलिखित मुद्दों को विचार के लिए स्पष्ट किया जा रहा है:-

1. क्या उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियम 2020 के नियम 21(4) और नियम 70(2) और **उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम** 2021 के नियम 21(5) और नियम 72(2) एमएमआरडी अधिनियम, 1957 के प्रावधानों से परे हैं

2. क्या अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में आने वाले खनिजों पर नियामक शुल्क लगाने के लिए बनाया गया नियम और दिनांक 24.2.2020 का शासनादेश और दिनांक 10.8.2022 का शासनादेश एमएमआरडी अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के उद्देश्यों के अनुरूप हैं, और क्या वे 2019 की नई खनन नीति के अनुरूप हैं?

3. क्या नियामक शुल्क का अधिरोपण भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन है?

79. इससे पहले कि हम पक्षों की ओर से किए गए प्रस्तुतियों और प्रति-प्रस्तुतियों के गुणों की जांच करें, यह एमएमआरडी अधिनियम, 1957 के प्रावधानों की व्याख्या के लिए प्रासंगिक कुछ सिद्धांतों को संक्षेप में बताना और संक्षेप में बताना उपयोगी होगा।

80. माइन और खनिज विकास के विनियमन के संबंध में संघ और राज्यों के कानून बनाने के क्षेत्र, जहां तक यह तत्काल रिट याचिका में शामिल विवाद से संबंधित है, को भारत के संविधान, 1950, खान अधिनियम, 1952 और खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करके समझा जा सकता है।

81. खान अधिनियम, 1952 को पहली बार खानों में श्रम और सुरक्षा के विनियमन के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। उसके बाद, संसद ने एमएमआरडी अधिनियम, 1957 को अधिनियमित किया जिसमें यह घोषित किया गया था कि जनहित में यह समीचीन है कि संघ खानों के विनियमन और खनिजों के विकास को अपने नियंत्रण में ले ले। जबकि एमएमआरडी अधिनियम 1957 की धारा 13 केंद्र सरकार को खनिजों के संबंध में टोही परमिट, पूर्वेक्षण लाइसेंस और खनन पट्टों के

अनुदान को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति देती है। एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में नियम बनाने की समान शक्ति देती है, और राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से, खदान पट्टों और खनन पट्टों या लघु खनिजों के संबंध में अन्य खनिज रियायतों को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है और "उससे संबंधित उद्देश्यों के लिए"। केंद्र सरकार और राज्य सरकार की शक्तियां इन दो धाराओं अर्थात एमएमआरडी अधिनियम, 1957 की धारा 13 और 15 में समान हैं।

82. धारा 13, 14 और 15 जो एक समूह बनाती हैं, को एक साथ पढ़ना होगा| धारा 15 (1) धारा 13 (1) के साथ सममूल्य है, प्रत्येक 'विनियमन' के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। 'विनियमित' शब्द के शब्दकोश अर्थ के मद्देनजर, धारा 13 (1) और 15 (1) द्वारा दी गई नियमों द्वारा विनियमित करने की शक्ति खनिजों के अलावा अन्य खनिजों के संबंध में पूर्वेक्षण लाइसेंस और खनन पट्टों के अनुदान को नियंत्रित करने, शासन करने और निर्देशित करने की शक्ति है और उससे जुड़े हुए उद्देश्यों के लिए धारा 13 (1) के मामले में और लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टों, खनन पट्टों और अन्य खनिज रियायतों का अनुदान और उससे जुड़े उद्देश्यों के लिए धारा 15 (1) के मामले में और इस तरह के अनुदान को प्रतिबंधों के अधीन करने और उन्हें उस मामले की परिस्थितियों और परिवेश के अनुकूल बनाने के लिए जिसके संदर्भ में ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाता है। धारा 13 (1) और 15 (1) द्वारा प्रदान की गई विनियमित करने की शक्ति न केवल उन उप-धाराओं में उल्लिखित लाइसेंस और पट्टों के अनुदान के संबंध में है, बल्कि "उससे जुड़े उद्देश्यों" के संबंध में भी है। यह वाक्यांश सरकार को लघु खनिजों के आकस्मिक होने वाले सभी कार्यों के संबंध में नियम बनाने की व्यापक शक्ति देता है।

83. धारा 15 (1), 15 (1) (g) और 15 (1) (o) का एक स्पष्ट भाग दर्शाता है कि राज्य सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है, और ऐसे नियम, किराया, शुल्क और अन्य शुल्क निर्धारित करने, वसूल करने की शक्ति प्रदान करेंगे। इसके अलावा ऐसे नियम किसी भी अन्य मामले के लिए बनाए जा सकते हैं, जो निर्धारित किया जाना है या निर्धारित किया जा सकता है।

84. जब संसद ने अपनी विवेक बुद्धि से 18.12.1999 को एमएमआरडी अधिनियम, 1957 में संशोधन किया और धारा 4 (1ए), 23 (ए) और 23 (सी) जोड़ने के लिए आगे बढ़ी। इस संशोधन का एकमात्र उद्देश्य अवैध खनन को रोकने के एकमात्र इरादे से खनिजों के परिवहन और भंडारण को प्रतिबंधित करना था। धारा 4 (1ए) स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि कोई भी व्यक्ति अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के विपरीत किसी भी खनिज का परिवहन या भंडारण नहीं करेगा। इसके अलावा, धारा 23 (सी) (1) अनिवार्य रूप से राज्य को अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए नियम बनाने का आह्वान करती है और

यह भी बताती है कि सभी राज्य अवैध खनन, उनके परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए क्या करने वाले हैं। राज्य को कई उपाय करने के लिए बाध्य किया जाता है जैसे कि पारगमन के तहत खनिजों की जांच के लिए चेक पोस्ट स्थापित करना और अवैध खनिजों के परिवहन को रोकने के लिए नवीनतम तकनीकों का उपयोग करके अन्य संबद्ध बुनियादी ढांचा स्थापित करना।

85. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15, जो एक मूल अधिनियम है, यह प्रावधान करती है कि राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में नियम बनाने की शक्ति है। संसद ने 1957 के अधिनियम में 21वां संशोधन किया और अधिनियम में धारा 4(1-ए), धारा 23-ए और धारा 23-सी को जोड़ा। इन संशोधनों का उद्देश्य अवैध खनन और ऐसे अवैध रूप से खनन किए गए खनिजों के परिवहन को रोकना था। इसने राज्य सरकार को खनिजों के अवैध खनन, खनिजों के परिवहन और खनिजों के भंडारण को रोकने के

---

21 1999 से प्रभावी संशोधन अधिनियम संख्या 38 द्वारा। 18.12.1999

लिए नियम बनाने का स्पष्ट रूप से अधिकार दिया। धारा 23-सी ने अवैध खनन और परिवहन को रोकने के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसके लिए एक दिशानिर्देश भी दिया।

86. खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 15 (1) राज्य सरकारों को लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टों और खनन पट्टों और अन्य खनिज रियायतों के अनुदान को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की सामान्य शक्ति प्रदान करती है और उससे जुड़े उद्देश्यों के लिए। हालांकि, धारा 15 (1-ए), जिसे अधिनियम संख्या 37, 1986 के माध्यम से 10.02.1987 से लागू किया गया था, यह निर्धारित करता है कि राज्य सरकार धारा 15 (1) के तहत प्रदान की गई शक्तियों की व्यापकता के बिना नियम बना सकती है।

87. राज्य सरकार ने एमएमडीआर अधिनियम 1957 की धारा 15 और धारा 23 (सी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम, 1963 तैयार किए थे। उत्तर प्रदेश राज्य ने धारा 23 (सी) के तहत प्रदान की गई शक्ति का प्रयोग करते हुए एक नियम बनाया जो 'उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम 2002' था। इन नियमों को 2018 में एक नए नियम 'उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम 2018' द्वारा अधिगृहीत कर लिया गया था। 2018 के इस नियम को 2019 में फिर से संशोधित किया गया था और उक्त नियमों को 'उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम 2019' कहा जाता था।

88. "खान" और "खनिज" की परिभाषा जो सांविधिक पुस्तक में दी गई है, उस पर विचार करना प्रासंगिक है। उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम 1963 में 48वां संशोधन किए जाने के समय खान अधिनियम,

1952 के प्रावधान लागू थे और खान अधिनियम की धारा 2 (1) (j) का प्रावधान "खान" की परिभाषा प्रदान करता है और 2(1)(jj) "खनिज" को परिभाषित करता है। खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 3(i) के आधार पर शब्द 'खान' का अर्थ वही है जो खान अधिनियम, 1952 में परिभाषित किया गया है। हालांकि, खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 3 (ई) में "लघु खनिज" को परिभाषित किया गया है।

---

22 से प्रभावी 25.02.2020

23 जैसा कि 2021 के अधिनियम संख्या 16 द्वारा संशोधित किया गया है

89. उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियम, 1963 में राज्य सरकार द्वारा 2020 में संशोधन किया गया था, और इसे " उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) (आढ़तालिसवा संशोधन) नियम, 2020" कहा जाता था। इस नियम के द्वारा 21 और नियम 70 में संशोधन किया गया था, और "विनियमन शुल्क पेश किया गया था"। संशोधित नियम 21 (4) ने अन्य राज्यों से आने वाले और उत्तर प्रदेश राज्य में प्रवेश करने वाले खनिजों पर विनियमन शुल्क लगाने का मार्ग प्रशस्त किया। शुल्क की राशि राज्य द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जानी थी। इसके अलावा, नियम 70 (2) के प्रावधान स्पष्ट रूप से निर्धारित करते हैं कि निर्धारित विनियमन शुल्क का भुगतान होने के बाद ही खनिजों का परिवहन वैध होगा।

90. उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम, 2020 में राज्य सरकार द्वारा 2021 में एक बार फिर संशोधन किया गया था, इसे " उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम, 2021" कहा जाता था। इसमं नियम 21 में खंड (5) जोड़ा गया था, जिसने राज्य को "विनियमन शुल्क" लगाने की शक्ति दी थी, जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में प्रवेश करने वाले खनिजों पर निर्धारित किया जाएगा, और नियम 70 (2) में यह निर्धारित किया गया था कि राज्य द्वारा विनियमन शुल्क के निर्धारण के बाद ही खनिजों का परिवहन वैध होगा।

91. यह केवल एमएमआरडी अधिनियम की धारा 23-सी के तहत दी गई शक्तियों के प्रयोग में था, राज्य सरकार ने नियम बनाए थे। राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 24.02.2020 और 10.08.2022 का विवादास्पद शासनादेश राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के तहत थे। इन शासनादेशों द्वारा विनियमन शुल्क लगाने के उद्देश्य बहुत स्पष्ट थे, यह विनियमन शुल्क केवल अवैध खनन और उसके परिवहन और भंडारण को रोकने और रोकने के लिए बुनियादी ढांचा (जिसमें नवीनतम तकनीक का उपयोग शामिल है) स्थापित करने के खर्च को पूरा करने के लिए लिया जा रहा था। प्रारंभ में शासनादेश दिनांक 24.02.2022 के माध्यम से अन्य राज्य से उत्तर प्रदेश राज्य में परिवहन किए गए निर्माण पत्थरों, गिट्टी, बोल्डर पर 50 रुपये प्रति घन मीटर का विनियमन शुल्क निर्धारित किया गया था, उसके बाद, राज्य सरकार ने एक और शासनादेश जारी किया

दिनांक 10.08.2022 जिसके द्वारा विनियमन शुल्क को 50 रुपये से बढ़ाकर 100 रुपये प्रति घन मीटर कर दिया गया।

92. राज्य द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि इस प्रकार एकत्रित विनियमन शुल्क राज्य के संवर्धन के लिए नहीं था, बल्कि राज्य के अत्याधुनिक बुनियादी ढांचे को स्थापित करने के लिए खर्च किया गया था जिसमें चेक गेट, कैमरा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और अन्य नवीनतम तकनीकों का उपयोग करते हुए वजन पुल और क्यूआर कोड और विभिन्न अन्य उपकरणों का उपयोग करके ई-चालान उत्पन्न करना शामिल है, ताकि राज्य के विभिन्न हिस्सों की महत्वपूर्ण सड़कों पर अवैध रूप से खनन किए गए खनिजों के परिवहन को रोका जा सके और जांच की जा सके, उत्तर प्रदेश इतना बड़ा राज्य होने के नाते, इसकी सीमा सैकड़ों किलोमीटर तक चलती है, अवैध खनिजों के परिवहन की जांच करना एक कठिन काम है। इस बुनियादी ढांचे को स्थापित करने के लिए, राज्य पर भारी लागत आएगी और इस भारी लागत को निर्धारित करने का एकमात्र तरीका, अन्य राज्य से आने वाले खनिजों पर विनियमन शुल्क लगाना है।

93. एमएमआरडी अधिनियम, 1957 की धारा 4 (1-ए) के तहत निहित शक्ति यह दर्शाती है कि परिवहन एक ऐसी गतिविधि है, जो राज्य सरकार के डोमेन के भीतर है और राज्य सरकार द्वारा विनियमित की जानी है। राज्य सरकार को इस संबंध में नियम बनाने की आवश्यकता है और खनन किए गए खनिजों के परिवहन को विनियमित करना है और साथ ही पारगमन के दौरान खनिजों का निरीक्षण, जांच और तलाशी लेना है।

इसलिए, राज्य को पहले से खनन किए गए खनिजों को विनियमित करने और उल्लंघन के मामले में दंडात्मक कार्रवाई करने की शक्ति प्राप्त है।

धारा 23-सी में तीन (3) अलग-अलग पहलुओं की परिकल्पना की गई है, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा विनियमित किया जाना है:

(ए) अवैध खनन की गतिविधि को रोकने के लिए पट्टे/लाइसेंस की शर्तों के अनुसार खनन सुनिश्चित करें।

(बी) कानून के अनुसार खनन किए गए खनिजों का उचित परिवहन सुनिश्चित करें।

(सी) कानून के अनुसार खनन के बाद खनिजों का उचित भंडारण सुनिश्चित करें।

ये सभी गतिविधियां अपने चरित्र से खनन की गतिविधि को विनियमित कर रही हैं और खनिज विकास से जुड़ी नहीं हैं। उक्त गतिविधियां खनन से जुडा स्वाभाविक परिणाम हैं, जिसे विशेष रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 39(बी) में निहित प्रावधानों के मद्देनजर विनियमित करने की आवश्यकता है।

नियमों और धारा का अवलोकन यह बताता है कि खनिजों के परिवहन पर पूर्ण विनियामक नियंत्रण राज्य के पास निहित है, खासकर लघु खनिजों पर। हालांकि, धारा 23-

सी के केवल पठन से और राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों और उससे जुड़े प्रपत्रों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि परिवहन को उस राज्य के भीतर विनियमित किया जा रहा है जहां खनिजों का उस राज्य के भीतर खनन किया गया हो।

दूसरी ओर, धारा 4 (1-ए) राज्य सरकार को खनिज के परिवहन को विनियमित करने की पूर्ण शक्ति देती है। परिवहन के पूरे क्षेत्र को राज्य सरकार के हाथों में विनियमित किया जाता है, चाहे वह अंतर-राज्य या अंतरराज्यीय **हो। अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रदर्शित किया जाता है, की 2018 के नियमों के नियम 12 के अवलोकन से जहां अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र का प्रावधान किया गया है और उनके अधिकार क्षेत्र को राज्य के भीतर परिवहन के लिए सीमित करता है।**

विवाद संख्या 1

(1) उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम 2020 के नियम 21(4) और नियम 70(2) और उत्तर प्रदेश गौण खनिज(कनसेशन) नियम 2021 के नियम 21(5) और नियम 72(2) क्या यह मएमआरडी अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के लिए अल्ट्रा वायर्स हैं?

94. पहले मुद्दे का निर्णय करने से पहले, हम यह विचार करना चाहेंगे कि अतीत में नियमों के वायर्स का परीक्षण कैसे किया गया है।

95. सर्वोच्च न्यायालय ने ओडिशा राज्य बनाम एम.ए. टुलोच24 मामले में, यह टिप्पणी की: की जिसमे यह सवाल था कि क्या राज्य विधानमंडल द्वारा सूची II की प्रविष्टि 66 के तहत शुल्क लगाया जा सकता है?

16... .. प्रविष्टियों के भौतिक शब्द हैं: "इस सूची में किसी भी मामले के संबंध में शुल्क"। इसलिए, शुल्क के वैध लगाव के लिए यह एक पूर्व शर्त है कि यह "सूची में किसी मामले" के संबंध में हो। यदि संसद द्वारा घोषणा के कारण "खनिजों के संरक्षण और विकास" के पूरे विषय को संसद द्वारा निपटाए जाने के लिए ले लिया गया है, इस प्रकार राज्य को उस शक्ति से वंचित कर दिया है जो उसके पास है, तो यह अनुसरण करेगा कि "मामला" राज्य सूची में, घोषणा की सीमा तक, राज्य सूची की प्रविष्टि 23 के दायरे और क्षेत्र से हटकर है। इसलिए, 1957 के केंद्रीय अधिनियम के बाद, "सूची में कोई मामला नहीं" होगा जिससे शुल्क को वैध बनाने के लिए संबंधित किया जा सकता है।...

24उड़ीसा राज्य बनाम एम.ए. टुलोच, एआईआर 1964 एससी 1284

96. शेओ वरण सिंह बनाम में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ।

राज्य, 25 ने एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 (1) से निपटा है, न्यायालय ने माना कि: -

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ताके तर्क पर विचार करने के उद्देश्य से धारा 15 की उपधारा (1) के कुछ शब्द महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द हैं:

"विनियमन" और "उससे जुड़े उद्देश्यों के लिए"।

... शब्द "रेगुलेशन" का व्यापक महत्व है और शॉर्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में दिए गए "रेगुलेशन" शब्द का शब्दकोश अर्थ "विनियमन का कार्य" है, और "रेगुलेट" शब्द का अर्थ "नियंत्रण करना, शासन करना" दिया गया है या नियम या विनियम द्वारा निर्देशित"। इस प्रकार यह राज्य सरकार को विनियमन के लिए आवश्यक शर्तें निर्धारित करने के उद्देश्य से नियम बनाने की शक्ति देता है

धारा 15(1) ऐसी भाषा में दी गई है जो राज्य सरकार को व्यापक शक्ति प्रदान करती है।

19. विधानमंडल ने राज्य सरकारों को ऐसे सभी "उससे जुड़े उद्देश्यों" के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया है। अभिव्यक्ति "उससे जुड़े उद्देश्यों के लिए" डॉ. शमशुद्दीन बनाम श्रीमती मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष व्याख्या का विषय रही है। ज़ैबुन्निसा26. इस मामले में पूर्ण पीठ द्वारा लिया गया दृष्टिकोण यह स्थापित करता है कि यह अभिव्यक्ति नियम बनाने की शक्ति को प्रावधान बनाने में सक्षम बनाती है जो अधिनियम को प्रभावी ढंग से प्रशासित कर सकती है। गौण खनिजों के पट्टे देने, अवधि निर्धारित करने और आवश्यक सामग्री पर विचार करने के प्रयोजनों के लिए, नियम को उस आधार पर अमान्य नहीं कहा जा सकता है।

97. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने मेसर्स दिगियाना इंडस्ट्रीज लिमिटेड (उपरोक्त) में यह माना है कि, उस समय प्रदान की गई योजना के अनुसार, एक राज्य के लघु खनिजों को दूसरे राज्य में नहीं ले जाया जा सकता है। लघु खनिजों के अंतरराज्यीय परिवहन की अनुमति देने के लिए राज्य सरकार को एक नीतिगत निर्णय लेना था। राज्य सरकार को लघु खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए दो महीने का समय दिया गया था। इस मामले में जारी निर्देश के जवाब में, उत्तर प्रदेश राज्य ने उत्तर प्रदेश माइनर मिनरल्स (कनसेशन) नियम, 2020 तैयार किया था जिसमें विनियमन शुल्क का प्रावधान पेश किया गया था। 2020 के इस नियम में 2021 में फिर से संशोधन किया गया जिसमें अन्य राज्य से उत्तर प्रदेश में प्रवेश करने वाले खनिजों पर विनियमन शुल्क लागू किया गया था।

98. जी.के. कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य27 में: यह माना गया था कि "विनियमन" शब्द का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। इसका अर्थ उस चीज़ की प्रकृति के अनुसार भिन्न होता है जिस पर इसे लागू किया जाता है।" आधुनिक विधानों में, जो आर्थिक और

25शियो वरण सिंह बनाम. राज्य, एआईआर 1980 इलाहाबाद 92

26 डॉ. शमशुद्दीन बनाम श्रीमती। जैबुन्निसा (1979 (यूपी) आरसीसी 349)।
27 जी.के.कृष्णा बनाम तमिलनाडु राज्य (1975) 1 एससीसी 375 : एआईआर 1975 एससी 583 :

सामाजिक गतिविधियों से संबंधित हैं, "विनियमन" को इतना व्यापक अर्थ प्राप्त करना चाहिए कि कुछ स्थितियों में, यह निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्धा को बाहर करना चाहिए। एक कल्याणकारी राज्य में तो और भी। इसी तरह के विचार प्रिवी काउंसिल ने कॉमनवेल्थ ऑफ ऑस्ट्रेलिया बनाम बैंक ऑफ न्यू साउथ वेल्स28 मामले में भी लिए थे।

99. शुल्क लगाने की राशि राज्य द्वारा सेवाएं प्रदान करने में किए गए खर्चों पर आधारित होती है, राशि खर्चों के साथ अंकगणितीय रूप से अनुरूप नहीं हो सकती है जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने *डी.सी.एम.* बनाम *मुख्य आयुक्त 29* मामले में माना है। इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यू.पी.राज्य एवं अन्य बनाम सीतापुर पैकिंग वुड सप्लायर्स और अन्य 30 मामले में यह माना है कि यदि शुल्क विनियामक है तो राज्य सरकार को कुछ के लिए कुछ **स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है।**

100. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम सज्जन लाल पंजवानी31 मामले में यह माना है कि, शुल्क को उचित ठहराया जा सकता है जहां उगाही का उद्देश्य किसी सेवा का खर्च बढ़ाना और उससे कोई लाभ नहीं कमाना है।

101. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इंडियन माइका एंड निकनाइट इंडस्ट्रीज बनाम बिहार राज्य 32 मामले में और कलकत्ता निगम बनाम लिबर्टी सिनेमा 33 मामले में यह माना है कि, राज्य लाइसेंसिंग के माध्यम से किसी भी व्यापार या व्यवसाय के विनियमन के लिए कानून बनाता है, तो उसे विनियमन को प्रशासित करने की लागत को पूरा करने के लिए लाइसेंस शुल्क वसूलने का अधिकार है। इन मामलों में यद्यपि प्रतिशोध के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं; लेकिन इस प्रकार वसूले जाने वाले शुल्क का विनियमन के प्रशासन की लागत के साथ व्यापक सह-संबंध होना चाहिए। जो आवश्यक है वह यह है कि शुल्क अत्यधिक या अत्यधिक न हो।

102. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य मेसर्स हिंद स्टोन और अन्य 34 के मामले में, एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 के तहत राज्य की नियम बनाने की

28ऑस्ट्रेलिया का राष्ट्रमंडल बनाम बैंक ऑफ न्यू साउथ वेल्स [1950 एी 235: (1949) 2 सभी ईआर 755 (पीसी)]।
29डी.सी.एम. बनाम मुख्य आयुक्त (1979) 2 एससीसी 172
30यूपी राज्य एवं अन्य बनाम सीतापुर पैकिंग वुड सप्लायर्स एवं अन्य (2002) 4 सुप्रीम न्यायालयी मामले 566
31राजस्थान बनाम. सज्जनलाल पंजवत (1974 (1) एससीसी 500
32भारतीय अभ्रक और निकेनाइट उद्योग बनाम। बिहार राज्य (एआईआर 1971 एससी 1182,

33 कलकत्ता निगम बनाम. लिबर्टी सिनेमा (एआईआर 1965 एससी 1107)
34 तमिलनाडु बनाम मैसर्स हिंद स्टोन और अन्य, (1981) 2 एससीसी 205

शक्तियों से निपटते हुए, माना कि, जब राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग में नियम बनाया जाता है, न कि उसके अपने स्वार्थ को आगे बढ़ाने के लिए इसके दुरुपयोग में, ऐसे नियम को नियम बनाने की शक्ति का दुरुपयोग नहीं माना जा सकता है, यदि यह राज्य के हित को आगे बढ़ाता है। न्यायालय ने आगे माना कि निजी एजेंसियों द्वारा निषेधात्मक दोहन खनिजों के संरक्षण का सही तरीका था। राज्य द्वारा लगाई गई निषेधाज्ञा को एमएमआरडी अधिनियम के प्रावधानों के अधिकारातीत **नहीं कहा जा सकता है। प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:**

> *124. संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 23, "संघ के नियंत्रण के तहत विनियमन और विकास के संबंध में सूची I के प्रावधानों के अधीन खानों और खनिज विकास का विनियमन" है। सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 54, "उस सीमा तक खानों और खनिज विकास का विनियमन जिस सीमा तक संघ द्वारा इस तरह के विनियमन और विकास को जनहित में समीचीन घोषित किया जाता है" इस प्रकार जबकि 'खानों और खनिज विकास का विनियमन' आमतौर पर राज्य विधान के लिए एक विषय है। संसद, कानून द्वारा, उस सीमा को घोषित कर सकती है जिस सीमा तक संघ द्वारा इस तरह के विनियमन और विकास का नियंत्रण जनहित में समीचीन है, और उस सीमा तक यह संसदीय विधान के लिए एक विषय बन जाता है। संसद ने तदनुसार खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 अधिनियमित किया है। अधिनियम में यह घोषित किया गया है कि जनहित में यह समीचीन है कि संघ अपने नियंत्रण में खानों के विनियमन और उसके बाद प्रदान किए गए सीमा तक खनिजों के विकास को ले ले। यह अब पक्षों के बीच सामान्य आधार है कि संसद द्वारा की गई घोषणा के परिणामस्वरूप, राज्य विधानसभाओं को खानों और खनिज विकास के विनियमन के संबंध में उनकी पूरी विधायी शक्ति से वंचित कर दिया गया है और संपूर्ण विधायी क्षेत्र संसद द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया है।*

103. एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15(1) की वैधता को डी.के. त्रिवेदी और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य 35 मामले में इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह कार्यपालिका को विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन प्रदान करता है, इस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"76. हमारे निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए:

(1) खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 15 की उप-धारा (1) संवैधानिक और वैध है और इसके तहत राज्य सरकारों को प्रदान की गई नियम बनाने की शक्ति कार्यपालिका को विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन नहीं है।

(2) 1957 अधिनियम की धारा 15(1) के तहत राज्य सरकारों की नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग के लिए 1957 अधिनियम में पर्याप्त दिशानिर्देश प्रदान किए गए हैं। ये दिशानिर्देश उस उद्देश्य में पाए जाते हैं जिसके लिए ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है, अर्थात्, "लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें प्रदान करने के लिए और उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए विनियमन; शब्द 'विनियमन' का अर्थ; वाक्यांश 'इससे जुड़े प्रयोजनों के लिए' का दायरा; धारा 13 की उप-धारा (2) में निर्दिष्ट उदाहरणात्मक मामले; और 1957 अधिनियम की धारा 4 से 12 में निहित प्रतिबंध और अन्य मामले।

(3) धारा 15(1) द्वारा प्रदान की गई नियम बनाने की शक्ति में मृत किराया और रॉयल्टी लगाने के लिए नियम बनाने की शक्ति शामिल है।

(4) धारा 15(1) के तहत नियम बनाने की शक्ति में बनाए गए नियमों को संशोधित करने की शक्ति शामिल है, जिसमें रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने के लिए नियमों को संशोधित करने की शक्ति शामिल है।

(5) एक राज्य सरकार धारा 15(1) के तहत नियमों को संशोधित करने और रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने की हकदार है, भले ही इस तरह के संशोधन की तारीख को पट्टे मौजूद हों।

(6) धारा 15 की उप-धारा (3) राज्य सरकारों को रॉयल्टी लगाने या समय-समय पर लगाई गई रॉयल्टी की दर को बढ़ाने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान नहीं करती है।

(7) रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने वाले संशोधनों सहित नियम बनाने और उनमें संशोधन करने की राज्य सरकारों की शक्ति का एकमात्र भंडार धारा 15 की उप-धारा (1) है।

(8) किसी राज्य सरकार को उन पट्टेदारों को सुनवाई या प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है जो इस तरह के संशोधन करने से पहले नियमों के किसी भी संशोधन से प्रभावित होंगे।

104. इस मामले में मुद्दा यह था कि क्या एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15ए कार्यपालिका की विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन से ग्रस्त है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना , हालांकि धारा 13 और 14 लघु खनिजों पर लागू नहीं होती हैं, लेकिन धारा 13(1) धारा 15(1) की भाषा के साथ समरूप है। इनमें से प्रत्येक प्रावधान "विनियमन" के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है। शॉर्ट ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, तीसरा संस्करण, "विनियमित" शब्द को "नियम या विनियम द्वारा नियंत्रित, शासित या निर्देशित करने के रूप में परिभाषित करता है; मार्गदर्शन या प्रतिबंधों के अधीन करने के लिए; परिस्थितियों या परिवेश के अनुकूल होने के लिए"। इस प्रकार, धारा 15(1) द्वारा दिए गए नियमों द्वारा विनियमित करने की शक्ति खनिज पट्टों, खनन पट्टों और अन्य खनिज रियायतों को प्रदान करने के लिए नियमों द्वारा नियंत्रित, शासित और निर्देशित करने की शक्ति है। लघु खनिजों के संबंध में और उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए है। यह ध्यान रखना उचित है कि धारा 13(1) और 15(1) द्वारा प्रदान की गई विनियमित करने की शक्ति न केवल उन उप-धाराओं में उल्लिखित लाइसेंस और पट्टों के अनुदान के संबंध में है, बल्कि "उससे जुड़े प्रयोजनों" के संबंध में भी है, अर्थात, इस तरह के अनुदान से जुड़े उद्देश्य। न्यायालय ने आगे माना कि एमएमआरडी अधिनियम की धारा 15 (1) संवैधानिक और वैध है और इसके तहत राज्य सरकार को प्रदान की गई नियम बनाने की शक्ति कार्यपालिका को विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन नहीं है। राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग के लिए 1957 अधिनियम में पर्याप्त दिशानिर्देश प्रदान किए गए हैं। ये दिशानिर्देश उस उद्देश्य में पाए जाते हैं जिसके लिए ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है, अर्थात्, "लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें प्रदान करने के लिए और उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए विनियमन", शब्द का अर्थ 'विनियमन', और वाक्यांश 'इससे जुड़े प्रयोजनों के लिए' का दायरा अधिनियम के प्रावधानों में निर्धारित किए गए हैं। धारा 15 (1) के तहत नियम बनाने की शक्ति में बनाए गए नियमों को संशोधित करने की शक्ति शामिल है, जिसमें रॉयल्टी और मृत किराए की दरों को बढ़ाने की शक्ति शामिल है।

105. इस मुद्दे पर मील का पत्थर निर्णय म्युनिसिपल कॉरपोरेशन ऑफ द सिटी ऑफ टोरंटो बनाम वर्गो (1896 एी 88) 36 और ऑन्टेरियो के अटॉर्नी-जनरल बनाम डोमिनियंस के अटॉर्नी-जनरल (1896 एी 348)37 से लेकर राज्य बनाम हिंदुस्तान एल्युमिनियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड38 तक यह निर्धारित करते हैं कि "विनियमन" का वह अर्थ नहीं है कि "निषेध" को शामिल न किया जाए। बहुत कुछ उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें अभिव्यक्ति का उपयोग किया जाता है और प्रतिबद्ध विनियमन द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य पर निर्भर करता है।

106. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चानन मल,39 में, एमएमआरडी अधिनियम, 1957 और हरियाणा के एक राज्य अधिनियम के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, (जिसकी

संवैधानिक वैधता को चुनौती दी जा रही थी) संविधान पीठ ने माना कि, केंद्र सरकार के समग्र पर्यवेक्षण के अधीन, राज्य सरकार के पास अपनी शक्ति का क्षेत्र है और केंद्रीय अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत कानूनी रूप से निर्दिष्ट कार्रवाई कर सकती है। इस प्रकार, 1957 के केंद्रीय अधिनियम के प्रावधानों के तहत नियंत्रण और विनियमन के पूरे क्षेत्र को केंद्र सरकार के लिए आरक्षित नहीं कहा जा सकता है।

107. तत्पश्चात माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मेसर्स केशोराम इंडस्ट्रीज (उपरोक्त) में माना है कि :-

> ***"98. अधिनियम के कई प्रावधानों और विशेष रूप से धारा 9-ए, 15, 15(1-ए)(ए) और (जी), 15(3), 17(3), 21(5) और 25 के एक पठन से पता चलता है कि वसूली की शक्ति हमेशा राज्य सरकार को दी जाती है और जाहिर है कि धारा 25 में शब्द "सरकार" का तात्पर्य राज्य सरकार से है, जो केवल राज्य के बकाया को भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करने के लिए अधिकृत है।***

36टोरंटो शहर बनाम कन्या (1896 ऐी 88)

37 ओंटारियो के लिए अटॉर्नी-जनरल बनाम डोमिनियन के लिए अटॉर्नी-जनरल (1896 ऐी 348)

38यूपी राज्य बनाम हिंदुस्तान एल्युमीनियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (1979) 3 एससीसी 229: एआईआर 1979 एससी1459

39हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चानन मल, (1977) 1 एससीसी 340

4

> ***114. हमारी राय में, राज्य विधान द्वारा लगाया गया एक उचित कर या शुल्क संघ की खानों और खनिजों को विनियमित और नियंत्रित करने की शक्ति और स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के रूप में नहीं माना जा सकता है।***
>
> ***129 (8) ….एक उगाही जो रूप से कर की प्रकृति में है और राज्य विधायिका की शक्ति के साथ है, उसे केवल इसलिए असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह वस्तु की कीमत पर प्रभाव डाल सकता है। एक राज्य कानून, जो उपकर लगाने के लिए प्रावधान करता है, चाहे राज्य के राजस्व संसाधनों को बढ़ाने के लिए कर के माध्यम से या प्रतिफल के रूप में सेवाएं प्रदान करने के लिए शुल्क के माध्यम से, लेकिन उगाही के विषय को विनियमित और नियंत्रित करने के किसी भी इरादे के बिना, यह नहीं कहा जा सकता कि केंद्र सरकार से संबंधित "विनियमन और नियंत्रण" के क्षेत्र में अतिक्रमण किया गाया है… …….एक साथ पढ़ने से पता चलता है कि प्रवेश 52 में "उद्योगों के नियंत्रण"***

के लिए और प्रवेश 54 में "खानों के विनियमन या खनिज विकास के लिए" के लिए संसद द्वारा घोषणा होनी चाहिए। ऐसा नियंत्रण, विनियमन या विकास "जनहित में समीचीन" होना चाहिए। प्रविष्टियों 52 और 54 द्वारा कवर किए गए क्षेत्र में केंद्र द्वारा कानून बनाना, एक जादुई स्पर्श या वर्जना की तरह राज्य विधानसभाओं को घोषणा के विषय-वस्तु बनाने वाले पूरे क्षेत्र को उजागर नहीं करेगा। राज्य से इनकार केवल संसद द्वारा की गई घोषणा की सीमा तक ही बढ़ेगा...

129(9) ...जहां तक खनिज अधिकारों पर कर या शुल्क अपनी सत्ता में और सारांश में राज्य के राजस्व संसाधनों को बढ़ाने के लिए कर या राज्य द्वारा सेवाएं प्रदान करने के लिए शुल्क के रूप में रहता है और यह खानों और खनिज विकास के विनियमन या केंद्र सरकार द्वारा उद्योग के नियंत्रण पर प्रहार नहीं करता है, यह असंवैधानिक नहीं है।

142. जैसा कि हमने पहले बताया है, उपकर कर या शुल्क हो सकता है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, इस भेदभाव को मामले के तथ्यों के संदर्भ में किसी और जांच की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विवादित उपकर संवैधानिक रूप से वैध है चाहे उसे कर या शुल्क माना जाए।

143. .....प्रश्न केवल उपकर लगाने का है। राज्य के कानून में कर के रूप में उपकर लगाने में कुछ भी गलत नहीं है ताकि उसकी निधियां उत्पन्न हो सकें..... .....इस प्रकार, उपकर लगाना भी सूची II की प्रविष्टि 49 के दायरे में आता है। चूंकि खनिज अधिकारों पर लगाया गया उपकर खनिज विकास से संबंधित कानून द्वारा संसद द्वारा लगाए गए किसी भी प्रतिबंध का उल्लंघन नहीं करता है, इसलिए यह सूची II की प्रविष्टि 50 के अंतर्गत भी आता है। सूची II की प्रविष्टि 5 के अर्थ में विधिवत रूप से गठित किसी भी स्थानीय स्वशासन संस्था को राज्य विधायिका की विधायी क्षमता के अंतर्गत आने वाले किसी भी कर या शुल्क को लगाने की शक्ति प्रत्यायोजित की जा सकती है। सूची II की प्रविष्टियां 5, 23, 49, 50 और 66 विवादित उपकर लगाने को पर्याप्त संवैधानिक कवरेज प्रदान करती हैं...

108. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताने **गुजरात राज्य और अन्य बनाम जयेशभाई कांजीभाई कलाथिया और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा जताया है। इस मामले में, गुजरात राज्य ने गुजरात लघु खनिज नियम 2010 में संशोधन किया और नियम 44बीबी डाला, जिसमें, इस नियम द्वारा गुजरात राज्य से परे रेत की आवाजाही को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया गया था। यह नियम

कथित तौर पर एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23-सी के तहत बनाया गया था। गुजरात राज्य के बाहर रेत की आवाजाही पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाने वाले नियमों को गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने माना कि नियमों पर रोक लगाना एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 और धारा 23-सी के दायरे से बाहर है और इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 का उल्लंघन भी माना, गुजरात उच्च न्यायालय के इस आदेश की गुजरात राज्य ने आलोचना की थी। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर करके, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि राज्य सरकार द्वारा राज्य के बाहर रेत की बिक्री पर प्रतिबंध को एमएमडीआर अधिनियम के प्रावधानों की वस्तुओं के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है। एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23-सी अवैध खनन को रोकने के एकमात्र उद्देश्य से जोड़ी गई थी। न्यायालय ने आगे कहा, इस संदर्भ में धारा 23-सी में 'परिवहन' और 'भंडारण' शब्दों की व्याख्या 'अवैध खनन' के संदर्भ में की जानी चाहिए। यह स्पष्ट है कि यह अवैध उत्खनित खनिजों का परिवहन और भंडारण है और ऐसे कोई नियम नहीं बनाए जा सकते हैं जो राज्य की सीमाओं से परे खनिजों (रेत) की आवाजाही पर रोक लगाएंगे, जब इस खनिज का कानूनी रूप से खनन किया गया हो, जो विधिवत लाइसेंस द्वारा समर्थित हो। इसलिए, कानूनी रूप से उत्खनित खनिजों के परिवहन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने के लिए इस प्रावधान से कोई शक्ति नहीं निकलती है।

109. जयेशभाई के मामले में, सवाल यह था कि क्या राज्य की सीमा के बाहर खनिज की आवाजाही को पूरी तरह से प्रतिबंधित करने के लिए नियम बनाया जा सकता है। माननीय न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 39 में अमृत लाल नाथू भाई शाह, डीके त्रिवेदी एंड संस और हिंड स्टोन्स के निर्णय पर ध्यान दिया। हालांकि, निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के कॉमन कॉज निर्णय के अनुपात को ध्यान में नहीं रखा गया है, जिसमें न्यायालय ने राष्ट्रीय खनिज नीति तैयार करने का निर्देश दिया था और इसलिए, पैराग्राफ 42 में अवलोकन गोवा फाउंडेशन मामले में जो कुछ भी रखा गया है उसके अनुरूप नहीं हो सकता है और कॉमन कॉज मामले में राष्ट्रीय खनिज नीति के साथ पढ़ा गया। इसके अलावा जहां तक अनुच्छेद 301 और 304 के तहत शक्ति पर चर्चा का संबंध है, निर्णय नौ (9) न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर ध्यान नहीं देता है। जिंदल स्टेनलेस में जो क्षेत्र रखता है और इसलिए, जिंदल स्टेनलेस का अनुपात निर्णय क्षेत्र को कवर करेगा अनुच्छेद 301 और 304 की व्याख्या को देखते हुए जयेशभाई निर्णय के निष्कर्ष को ग्रहण करेगा।

इसके अलावा, पैराग्राफ 47 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक नोटिस लिया है कि गुजरात राज्य द्वारा एक तरह का भेदभाव किया जा रहा है, जिसके तहत वह रेत के निर्यात पर प्रतिबंध लगा रहा है, लेकिन रेत के आयात पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा रहा है। यह प्रतिबंध भारत के संविधान के भाग-XIII के विरुद्ध है।

इस निर्णय का अनुपात सीधे तौर पर हाथ में आए मामले को कवर नहीं करेगा क्योंकि उत्तर प्रदेश राज्य में अन्य राज्यों से खनिजों के निर्यात या आयात पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यह राज्य में एक दो तरफा यातायात है। विनियमित करने की शक्ति उपलब्ध है। जयेशभाई का निर्णय परिस्थितियों के एक अलग सेट में दिया गया था और यह हाथ में आए मुद्दे को नहीं बता सकता है।

110. जयेशभाई के मामले में यह माना गया था कि धारा 23-सी को "अवैध खनन" पर अंकुश लगाने के विशिष्ट उद्देश्य से सम्मिलित किया गया था। इसलिए, इसमें होने वाले शब्द "परिवहन" और "भंडारण" नोसिटुर ए सोसिस के सिद्धांत पर "अवैध खनन" अभिव्यक्ति से अपना रंग लेंगे। यह वस्तुओं और कारणों के विवरण से भी स्पष्ट था। निषेध अनुमेय होता था, बशर्ते उसका खनिज के संरक्षण, दोहन और उत्खनन से कोई सीधा संबंध हो। पहले से ही खनन किए गए खनिजों के परिवहन या बिक्री पर राज्य के बाहर प्रतिबंध का एमएमडीआर अधिनियम के उद्देश्यों और उद्देश्य से कोई सीधा संबंध नहीं है। इस मामले में, न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाला गया था कि राज्य सरकार द्वारा बनाए गए निषेधात्मक नियमों के आधार पर, जो अधिनियम की धारा 15 (1-ए) और धारा 23 (सी) के दायरे और उद्देश्य से परे माना जाता था।

111. मध्य प्रदेश राज्य ने भी विनियमन शुल्क लगाए थे, लेकिन जयेशभाई के निर्णय के बाद माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अल्ट्राटेक सीमेंट लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले में यह निर्णय दिया कि अन्य राज्यों से मध्य प्रदेश राज्य में लाए गए खनिजों पर विनियमन शुल्क लगाना राज्य सरकार की शक्ति से परे होगा, जब तक कि खनिजों का अवैध रूप से खनन नहीं किया गया हो। धारा 15 और धारा 23 (सी) राज्य सरकार को अन्य राज्यों में कानूनी रूप से खनन किए गए लघु खनिजों के लिए नियम बनाने के लिए अधिकृत नहीं करती है।

112. इसी तरह, कर्नाटक राज्य ने कर्नाटक लघु खनिज रियायत नियम, 1994 के नियम 42 (7) के तहत अन्य राज्यों से कर्नाटक राज्य में लाए गए कुछ खनिजों पर

कर्नाटक गौण खनिज रियायत नियम, 1994 के 40नियम 42(7)।

प्रवेश शुल्क लेना शुरू किया। नियम 42 (7) की वैधता कर्नाटक लघु खनिज रियायत नियम, 1994 जिसके द्वारा प्रवेश शुल्क लिया गया था, को कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। श्री साई केशव इंटरप्राइजेज बनाम कर्नाटक राज्य 41 के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित **जयेशभाई** के निर्णय का हवाला देते हुए कहा कि न तो 1957 के उक्त अधिनियम की धारा 15 और न ही धारा 23-सी के तहत, दूसरे राज्य से विधिपूर्वक उत्खनित खनिजों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति राज्य सरकार में निहित है, और अन्य राज्यों से कर्नाटक राज्य में

विधिपूर्वक उत्खनित खनिजों के प्रवेश पर शुल्क नहीं लगाया जा सकता है।

113. याचिकाकर्ता के अधिवक्ताने जयेशभाई, के निर्णय पर भारी भरोसा किया था, जिसका पालन एमपी उच्च न्यायालय ने अल्ट्राटेक सीमेंट में और कर्नाटक उच्च न्यायालय ने श्री साई केशव एंटरप्राइजेज में किया था। दूसरी ओर, प्रतिवादी के अधिवक्ताने स्पष्ट रूप से कहा था कि जयेशभाई के अनुपात पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह हिंद स्टोन और डीके त्रिवेदी के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित पहले के निर्णय के अनुपात के अनुरूप नहीं था। हालाँकि, इन दोनों निर्णयों का उल्लेख जयेशभाई में किया गया था, लेकिन उनके अनुपात पर न तो विचार किया गया और न ही उनमें अंतर किया गया। इसके अलावा, केसोराम के मामले में संवैधानिक पीठ द्वारा निर्धारित अनुपात पर भी जयेशभाई के मामले में विचार नहीं किया गया था। इसके अलावा, केसराम के मामले में संविधान पीठ ने उन मुद्दों पर विचार किया था, जो वर्तमान मामले के समान हैं। उस मामले में, उपकर लगाने और नियमों की वैधता को चुनौती दी गई थी। रामधनि के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने वैधता को बरकरार रखा और जब राज्य द्वारा इसे चुनौती दी गई, तो इसे जोड़ा गया और केसोराम के मामले में निर्णय दिया गया।

इस निर्णय में, एमपीपी कावेरी चेट्टी और डीके त्रिवेदी में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात पर विचार नहीं किया गया था। यहां तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ का अनुपात पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसराम इंडस्ट्रीज और अन्य के मामले में भी नहीं माना गया था।

114. याचिकाकर्ता के अधिवक्ताने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तमिलनाडु राज्य बनाम एमपीपी कावेरी चेट्टी (उपरोक्त) के मामले में पारित एक निर्णय पर भरोसा किया

41श्री साई केशव इंटरप्राइजेज बनाम कर्नाटक राज्य 2021 (2) एआईआर में रिपोर्ट किया गया **था। इस निर्णय में, राज्य सरकार ने विनियामक भूमिका की आड़ में कुछ खनिजों पर कीमत तय की थी, राज्य सरकार ने न्यूनतम कीमत निर्धारित करके इसे प्रतिबंधित कर दिया था। इस मुद्दे पर, शीर्ष न्यायालय ने माना कि राज्य सरकार के पास पहले से ही खनन किए गए खनिजों की बिक्री को विनियमित करने की कोई शक्ति नहीं है। यह फिर से ऐसी स्थिति थी जो राज्य के भीतर खनन किए गए खनिजों के संबंध में थी और राज्य सरकार खनिज को प्रतिबंधित कर रही थी। खनिज की कीमत को विनियमित करने के अलावा, राज्य ने यह भी शर्त लगाई थी कि खनन केवल राज्य के स्वामित्व वाली कंपनी या निगम द्वारा किया जाएगा। हालांकि में राज्य निगमों/कंपनी द्वारा किए जाने वाले खनन को बरकरार रखा गया था, लेकिन केवल खनिज की न्यूनतम कीमत निर्धारण को ही रद्द कर दिया गया था।**

इसलिए, उपरोक्त निर्णय का तत्काल मामले के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है क्योंकि खनिजों की कीमत निर्धारण अधिनियम के प्रावधानों के उद्देश्यों के दायरे से परे था।

यहां बिक्री मूल्य को न तो विनियमित किया जाता है और न ही किसी खनिज पर न्यूनतम बिक्री मूल्य तय किया जा रहा है जो किसी अन्य राज्य में उत्खनन किया गया है। केवल अधिनियम की धारा 15 (1-ए) और धारा 23 (सी) के प्रावधानों के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक विनियामक शुल्क लगाया जा रहा है, और आगे यह राष्ट्रीय खनिज नीति को प्रभावी करने में सहायता के लिए एक कदम है।

115. दोनों वादो के तथ्य **एम.पी.पी. कावेरी चेट्टी** और **जयेशभाई** का मामला पूरी तरह से अलग था, क्योंकि पहला मामला एक लघु खनिज की कीमत और बिक्री मूल्य को नियंत्रित करने से संबंधित था, और दूसरे मामले में, राज्य सरकार ने लघु खनिज की आवाजाही पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया था, जबकि वर्तमान मामले में, लघु खनिजों के अंतर-राज्यीय परिवहन पर विनियामक शुल्क लगाया गया है। यह अधिरोपण अधिनियम की धारा 15(1-ए) और 23(1) के प्रावधानों के उद्देश्यों के अनुसार निर्धारित किया गया है और अवैध खनन, परिवहन और इसके भंडारण पर अंकुश लगाने के लिए उचित बुनियादी ढांचा स्थापित करने के लिए लगाया गया था।

116. यह स्पष्ट है कि एमएमआरडी अधिनियम के तहत नियम बनाने की राज्य सरकार की क्षमता को कई बार चुनौती दी गई है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में इसका परीक्षण किया गया है। पहली बार शिव वरण सिंह के मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ, जिसने इस मुद्दे को निपटाया था, ने माना कि धारा 15 (1) एक ऐसी भाषा में दी गई है जो राज्य सरकार को अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नियम बनाने की व्यापक शक्ति प्रदान करती है। कार्यवाही करना। इसके अलावा, यह माना गया कि विधायिका ने राज्य सरकार को इससे जुड़े सभी उद्देश्यों के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया है।

117. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति पर एक बार फिर **तमिलनाडु राज्य बनाम मेसर्स हिंद स्टोन और अन्य (उपरोक्त)** मामले में सवाल उठाया गया था, जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 स्वयं नियम बनाने की शक्ति देता है। विधि के तहत बनाए गए नियमों को निर्माण या दायित्व के सभी प्रयोजनों के लिए ठीक उसी तरह पढ़ा जाना चाहिए जैसा कि वे अधिनियम में होते हैं और उसी प्रभाव के होने चाहिए जैसे कि अधिनियम में निहित हैं और इसमें निहित नियमों को विधियों से प्राप्त शक्ति से निर्मित किया गया है।

118. **केर्सोरम इंडस्ट्रीज़ (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की **संवैधानिक** पीठ ने एक बार फिर नियम बनाने की राज्य की शक्ति को बरकरार रखा, न्यायालय ने यहां तक कहा कि किसी भी कर या शुल्क को लगाने की शक्ति इसके अंतर्गत आती है। राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता स्थानीय अधिकारियों को भी सौंपी जा सकती है।

119. इसके अलावा, इस प्रकार निर्मित नियम **मेसर्स दिगयाना इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य (उपर्युक्त)** मामले

में पारित निर्देशों के तहत थे, और ये नियम भी, जिन्हें यहां चुनौती दी गई है, भारत सरकार द्वारा जारी 2021 की नई खनन नीति के अनुरूप बनाए गए हैं।

120. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कॉमन कॉज (उपरोक्त) मामले में भारत सरकार को एक नई खनन नीति तैयार करने का निर्देश दिया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, भारत सरकार ने 'खनन नीति 2021' तैयार की। इस नीति को मंत्रिमंडल द्वारा 28.02.2021 को मंजूरी दी गई थी, जबकि जयेशभाई का निर्णय अगली सुबह ही यानी 01.03.2021 को सुनाया गया था। संभवतः यही कारण था कि निर्णय सुनाते समय न्यायालय को नई खनन नीति की जानकारी नहीं थी और इसे इस निर्णय में नहीं माना गया।

121. एमएमडीआर अधिनियम को खनिजों के विकास और विनियमन के एकमात्र उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। इसलिए, विकास, उत्खनन, परिवहन के लिए बनाए गए

42 2017(1) एडीजे 549

कोई भी नियम या विनियमन एमएमडीआर अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं माना जाएगा, भले ही वे प्रकृति में विनियमित हों। जैसा कि केसोराम के मामले में संवैधानिक पीठ ने माना है कि राज्य विधान द्वारा लगाया गया एक उचित शुल्क केंद्र की खानों और खनिजों को विनियमित और नियंत्रित करने की शक्ति और स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के रूप में नहीं समझा जा सकता है। एमएमडीआर अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के तहत नियंत्रण और विनियमन के पूरे क्षेत्र को केंद्र सरकार के लिए आरक्षित नहीं कहा जा सकता है।

122. एमएमडीआर अधिनियम की धारा 23-सी (1) में प्रयुक्त वाक्यांश 'अवैध खनन', परिवहन और भंडारण है। इन तीनों शब्दों अर्थात अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को अलग-अलग पढ़ा जाना है, न कि संयोजन के रूप में। धारा स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को इन सभी मुद्दों के लिए स्वतंत्र रूप से नियम बनाने की शक्ति देती है, हालांकि ये तीनों मुद्दे खनन उद्योग का एक अभिन्न हिस्सा हैं, लेकिन धारा का स्पष्ट पठन यह है कि नियम अवैध खनन के लिए स्वतंत्र रूप से बनाए जा सकते हैं। खनिजों का, खनिजों के परिवहन के लिए अलग नियम और विनियम, और खनिजों के भंडारण के लिए पूरी तरह से अलग नियम और विनियम, इसमें कानूनी और अवैध रूप से उत्खनित खनिज दोनों शामिल होंगे। यह आगे 2021 में एमएमडीआर अधिनियम की धारा 21 में संशोधन से पुष्ट होता है जहां दंड खंड (धारा 21) में एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया था, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि धारा 23 (2) के तहत बनाए गए नियमों का उल्लंघन करने वाले किसी भी खनिज के उत्खनन या परिवहन पर जुर्माना लगाया जाएगा। यह संशोधन स्पष्ट करता है कि अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को संयोजन के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है।

123. सातवीं अनुसूची की सूची में प्रविष्टियों को उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए जो व्यापक उदार भावना से प्रेरित हो और संकीर्ण

विद्वान अर्थ में नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सूचियों में विषय का आवंटन वैज्ञानिक या तार्किक परिभाषा के आधार पर नहीं बल्कि व्यापक श्रेणियों के "सरलीकृत गणना" के आधार पर किया जाता है। विधान करने की शक्ति में आकस्मिक और सहायक मामलों को छूने वाले विधान भी शामिल होंगे। सातवीं अनुसूची में सूचियों की योजना में विशिष्ट या व्यापक निहितार्थ वाले विषय के साथ सामान्य विषयों के बीच स्पष्ट अंतर मौजूद है। एमएमडीआर अधिनियम की संशोधित धारा 15 (1-ए), एक गैर-बाधा खंड से शुरू होती है जो व्यापक शक्ति प्रदान करती है नियम बनाने के लिए, जो विषयों के लिए निर्दिष्ट थे। उपरोक्त के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 (1-ए) राज्य को एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 के संशोधित प्रावधानों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ऐसे नियम बनाने का अधिकार देती है। एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 (1-ए) (जी) राज्य को शुल्क लगाने के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है। इसलिए, राज्य द्वारा 2020 के नियमों के नियम 21 (4) और नियम 70 (2) और 2021 के नियमों के नियम 21 (5) और नियम 70 (2) बनाकर लगाया गया विनियामक शुल्क एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15 (1-ए) के तहत निहित शक्तियों के दायरे में था।

124. अतः, नियम 21(4) और नियम 70 (2) 2020 के नियमों के और नियम 21(5) और नियम 70(2) 2021 के नियम एमएमडीआर अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अंतर स्थापित हैं।

क्या अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में आने वाले खनिजों पर विनियामक शुल्क लगाने के लिए बनाए गए नियम और 24.2.2020 का शासनादेश और 10.8.2022 का शासनादेश एमएमडीआर अधिनियम के उद्देश्यों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुरूप हैं, और क्या वे नई खनन नीति 2019 के अनुरूप हैं?

125. संसद ने अपने विवेक में, खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 को अधिनियमित किया है, जिसे समय-समय पर संशोधित किया गया और नए प्रावधान जोड़े गए। इन संशोधनों को अधिनियम के प्रावधानों के उचित कार्यान्वयन की आवश्यकता को पूरा करने और क़ानून के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया गया था। संशोधन, जो 18.12.1999 से प्रभावी हुआ, जहां राज्य को खनिजों के परिवहन और भंडारण पर नियम बनाने की व्यापक शक्ति प्रदान करना था। धारा 4(1-ए) में यह निर्धारित किया गया है कि राज्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार खनिजों के परिवहन और भंडारण के लिए नियम बनाएगा। यह धारा राज्य की नियम बनाने की शक्ति को केवल अवैध रूप से खनन किए गए खनिजों के लिए ही प्रतिबंधित नहीं करती है, बल्कि कानूनी रूप से खनन किए गए खनिजों के लिए भी करती है।

126. एमएमडीआर अधिनियम की धारा 41-ए राज्य को खनिजों के परिवहन और भंडारण के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है। इसमें कानूनी रूप से और अवैध रूप से खनन किए

गए खनिजों के बीच कोई अंतर नहीं है, जबकि धारा 23 (सी-1) में प्रयुक्त वाक्यांश 'अवैध खनन, परिवहन और भंडारण' है। दोनों धाराओं के एक सामान्य पठन से यह स्पष्ट होता है कि वाक्यांश 'अवैध खनन, परिवहन और भंडारण' को अलग-अलग पढ़ा जाना है, न कि संयोजन के रूप में। धारा स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को इन सभी विषयों के लिए स्वतंत्र रूप से नियम बनाने की शक्ति देती है, हालांकि ये तीनों विषय खनन उद्योग का एक अभिन्न हिस्सा हैं, लेकिन धारा का स्पष्ट पठन यह है कि नियम अवैध खनन के लिए स्वतंत्र रूप से बनाए जा सकते हैं। खनिजों का, खनिजों के परिवहन के लिए अलग नियम और विनियम, और खनिजों के भंडारण के लिए पूरी तरह से अलग नियम और विनियम, इसमें कानूनी और अवैध रूप से उत्खनित खनिज दोनों शामिल होंगे। यह आगे 2021 में एमएमडीआर अधिनियम की धारा 21 में संशोधन से पुष्ट होता है जहां दंड खंड (धारा 21) में एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया था, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि धारा 23 (2) के तहत बनाए गए नियमों का उल्लंघन करने वाले किसी भी खनिज के उत्खनन या परिवहन पर जुर्माना लगाया जाएगा, इसमें यह नहीं बताया गया है कि क्या यह कानूनी रूप से या अवैध रूप से उत्खनित खनिज है।

127. इसलिए, याचिकाकर्ता का तर्क कि राज्य सरकार के पास अन्य राज्यों में कानूनी रूप से निकाले गए खनिजों पर विनियामक शुल्क लगाने या सरकारी आदेश जारी करने की कोई शक्ति नहीं है, को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि राज्य सरकार के पास अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश राज्य में लाए गए खनिजों के परिवहन के लिए नियम बनाने की स्वतंत्र शक्ति है। इसके अलावा, 24.02.2020 और 10.08.2022 के शासनादेश के उद्देश्य अधिनियम के उद्देश्यों के अनुरूप हैं और आगे एकत्रित विनियामक शुल्क का उपयोग अवसंरचना स्थापित करने और नवीनतम तकनीक का उपयोग करने में किया गया है, जो निश्चित रूप से खनिजों के अवैध खनन और इसके परिवहन पर अंकुश लगाएगा। राज्य के विभिन्न हिस्सों की महत्वपूर्ण सड़कों पर क्यूआर कोड और अन्य विभिन्न उपकरणों का उपयोग करके ई-चालान उत्पन्न करके जियोफेंसिंग, पीजीजेड कैमरा, माइन टैग, आरएफआईडी रीडर, वेटब्रिज और चेकगेट स्थापित करना और कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अन्य नवीनतम तकनीकों का उपयोग करना, निश्चित रूप से अवैध रूप से खनन किए गए खनिजों के परिवहन को रोकेगा और जांचेगा। इतना बड़ा राज्य होने के कारण, इसकी सीमा सैकड़ों किलोमीटर में चलती है, अवैध खनिजों के परिवहन की जांच करना एक बहुत बड़ा काम है। इस बुनियादी ढांचे को स्थापित करने के लिए, राज्य निस्संदेह भारी लागत से बोझिल हुआ है और इस भारी लागत को पूरा करने का एकमात्र तरीका, अन्य राज्यों से आने वाले खनिजों पर विनियामक शुल्क लगाकर है। विनियामक शुल्क लगाने में उठाए गए कदमों के मद्देनजर यह कहना गलत नहीं होगा कि राज्य द्वारा एकत्र किया गया विनियामक शुल्क राज्य के संवर्धन के लिए नहीं था बल्कि अधिनियम की धारा 23-सी में प्रदान किए गए अनुसार राज्य के दायित्वों को पूरा करने के लिए खर्च किया गया था। इसके अलावा,

विनियामक शुल्क लगाया गया था, उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिनके लिए एमएमडीआर अधिनियम में संशोधन लाया गया था (18.12.1999 को), जिसमें क़ानून के तहत राज्य सरकार को खनिजों के अवैध खनन, परिवहन और भंडारण को रोकने के लिए नियम बनाने के लिए बाध्य किया गया था। इसके अलावा, लगाया गया विनियामक शुल्क भारत सरकार द्वारा बनाई गई खनन नीति 2021 के अनुसरण में था।

128. अतः, विनियामक शुल्क इस प्रकार अधिनियम और नियमों के तहत प्रदान किए गए राज्य के दायित्वों को पूरा करने में किए गए अतिरिक्त खर्चों को पूरा करने के लिए लगाया गया था। 24.2.2020 और 10.8.2022 के शासनादेश पूरी तरह से अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अनुरूप हैं और भारत सरकार द्वारा जारी 2019 की खनन नीति के अनुरूप भी हैं।

<u>(III) क्या विनियामक शुल्क लगाना भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन है</u>

129. याचिकाकर्ताओं ने नियमों को चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया है कि विवादित नियम संविधान के भाग XIII का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि इसका प्रभाव संविधान के अनुच्छेद 301 के तहत व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता को बाधित करना है।

भारत के संविधान के भाग XIII के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:-

"301. व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता.- इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन, भारत के पूरे क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र होगा"

302. संसद को व्यापार, वाणिज्य और आवागमन पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति.- संसद कानून द्वारा एक राज्य और दूसरे के बीच या भारत के किसी भी हिस्से के भीतर व्यापार, वाणिज्य या आवागमन की स्वतंत्रता पर ऐसे प्रतिबंध लगा सकती है जो जनहित में आवश्यक हो।

303. व्यापार और वाणिज्य के संबंध में संघ और राज्यों की विधायी शक्तियों पर प्रतिबंध.- (1) अनुच्छेद 302 में किसी बात के होते हुए भी, न तो संसद और न ही किसी राज्य की विधानमंडल को कोई कानून बनाने की शक्ति होगी जो किसी भी राज्य को दूसरे राज्य पर प्राथमिकता दे, या किसी एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच किसी भेदभाव की अनुमति दे, या किसी भी सूची में व्यापार और वाणिज्य से संबंधित किसी प्रविष्टि के आधार पर ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करे, जो सातवीं अनुसूची में दी गई है।

(2) खंड (1) में कुछ भी नहीं संसद को कोई भी कानून बनाने, या किसी भी भेदभाव को देने, या देने के लिए अधिकृत करने, या बनाने के लिए

अधिकृत करने से नहीं रोकेगा, यदि ऐसे कानून द्वारा घोषित किया गया है कि ऐसा करना आवश्यक है और इसका उद्देश्य भारत के किसी भी भाग में माल की कमी से उत्पन्न स्थिति से निपटना है।

304. राज्यों के बीच व्यापार, वाणिज्य और आवागमन पर प्रतिबंध.- अनुच्छेद 301 या 303 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य की विधानमंडल कानून द्वारा-

(क) अन्य राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों से आयातित वस्तुओं पर कोई भी कर लगा सकती है, जो उसी राज्य में निर्मित या उत्पादित समान वस्तुओं के अधीन है, ताकि आयातित वस्तुओं और निर्मित या उत्पादित वस्तुओं में भेदभाव न हो।

(ख) उस राज्य के साथ या उसके भीतर व्यापार, वाणिज्य या आवागमन की स्वतंत्रता पर ऐसे उचित प्रतिबंध लगा सकती है जो जनहित में आवश्यक हो:

परंतु खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी राज्य की विधानमंडल में पेश या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा।

130. इस अनुच्छेद के तहत, व्यापार, वाणिज्य और समागम और अभिव्यक्ति 'स्वतंत्रता' को 'भारत के संपूर्ण क्षेत्र में' अभिव्यक्ति के साथ पढ़ा जाना चाहिए। अनुच्छेद 302 के तहत, संसद सार्वजनिक हित में आवश्यकतानुसार एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है। 'सार्वजनिक हित' अभिव्यक्ति में क्षेत्रीय हित भी शामिल हो सकता है। हालाँकि, अनुच्छेद 302 अनुच्छेद 303 द्वारा योग्य है जो संसद और राज्य विधानमंडलों को कोई भी कानून बनाने से रोकता है जो एक राज्य को दूसरे पर प्राथमिकता देता है या एक राज्य और दूसरे के बीच भेदभाव करता है। अनुच्छेद 303 (2) के तहत अभाव की स्थितियों से संसद द्वारा निपटा जाना है। व्यापार, वाणिज्य या संभोग की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने की राज्य विधानमंडल की शक्ति, जैसा कि सार्वजनिक हित में आवश्यक हो सकता है, के लिए ऐसे विधेयक या संशोधन को राष्ट्रपति से पूर्व सहमति प्राप्त करने के बाद ही राज्य विधानमंडल में स्थानांतरित करने की आवश्यकता होती है।

131. अनुच्छेद 301 ऑस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 92 से प्रेरित है, हालांकि, अनुच्छेद 301 अनुच्छेद 302, 303 और 304 में सीमाओं और शर्तों के अधीन है, जो अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद 1 के तहत वाणिज्य खंड से उधार लिए गए हैं। इसलिए, भाग XIII संयुक्त राज्य अमेरिका और ऑस्ट्रेलियाई संविधानों का एक मिश्रण है जो विनियामक और कर लगाने की शक्तियों के बीच अंतर लाता है।

ऑस्ट्रेलियाई संविधान की धारा 92 व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता प्रदान करती है। हालांकि, प्रिवी काउंसिल और ऑस्ट्रेलियाई उच्च न्यायालयों के कई निर्णयों में यह माना गया है कि धारा 92 व्यापार और वाणिज्य के विनियमन को सभी घटनाओं में तब तक खुला छोड़ देती है जब तक कि विनियमन को अधिनियमित नहीं किया जाता है बशर्ते कि यह अंतर-राज्य वाणिज्य की वास्तविक स्वतंत्रता में बाधा न डाले। यह तर्क इस सिद्धांत पर आधारित है कि सभी व्यापार और वाणिज्य कानून के अधीन संचालित होना चाहिए। इस प्रकार, हमारे पास कर लगाने और विनियामक कानूनों के बीच अंतर है। इस तरह "विनियामक शुल्क" की अवधारणा सामने आई।

अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद 1 की धारा 8 में वह शामिल है जिसे "कॉमर्स क्लॉज" कहा जाता है, जो व्यापार और वाणिज्य को नियंत्रित करता है। अमेरिका में सरकार के दोहरे रूप और "पुलिस शक्ति" की अवधारणा और "कर लगाने की शक्ति" को ध्यान में रखते हुए, अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि वाणिज्य खंड में निहित वाणिज्य शक्ति में विनियमित करने की शक्ति निहित है; वह है, उस नियम को निर्धारित करने की शक्ति जिसके द्वारा इस वाणिज्य को शासित किया जाना है (स्टोन द्वारा संवैधानिक कानून देखें)।

<u>कूली बनाम बोर्ड ऑफ वॉर्डेंस ऑफ पोर्ट ऑफ फिलाडेल्फिया (1851)</u> मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने पेन्सिलवेनिया राज्य के साथ सहमति व्यक्त की कि उसे 1789 में कांग्रेस के एक अधिनियम के तहत, फिलाडेल्फिया के बंदरगाह सहित अपने जलमार्गों पर पायलटों से संबंधित मामलों को विनियमित करने का अधिकार था। कोर्ट ने माना कि कांग्रेस ने कभी भी राज्यों को वाणिज्य को विनियमित करने की सभी शक्ति से वंचित करने का इरादा नहीं किया था।

132. अनुच्छेद 301 में कहा गया है कि इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन, पूरे भारत में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र होगा। यह सभी कानूनों से मुक्ति नहीं है, बल्कि उन कानूनों से मुक्ति है जो राज्यों के बीच व्यापार और वाणिज्य की गतिविधियों को प्रतिबंधित या प्रभावित करते हैं। हालांकि अनुच्छेद 301 सकारात्मक रूप से लिखा गया है, वास्तव में, यह नकारात्मक है क्योंकि स्वतंत्रता तदनुसार यह सुनिश्चित करने के लिए सभी विधायी शक्ति पर सामान्य सीमा उत्पन्न करती है कि पूरे भारत में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र होगा। इसलिए, अनुच्छेद 301 उन कानूनों से स्वतंत्रता को संदर्भित करता है जो उन नियमों से परे जाते हैं जो राज्यों के बीच और राज्य के भीतर व्यापार आंदोलन को बोझ करते हैं, प्रतिबंधित करते हैं या रोकते हैं। चूंकि "स्वतंत्रता" तदनुसार "सीमा" लगाती है, इसलिए हमारे पास अनुच्छेद 301 में व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता पर विवादास्पद कानून के संचालन के "प्रत्यक्ष और तत्काल प्रभाव" का सिद्धांत है, जिसे पहली बार अटियाबारी टी कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य 43 मामले में प्रतिपादित किया गया था।

133. इसलिए, अनुच्छेद 301 न केवल राज्यों के बीच व्यापार और वाणिज्य के संरक्षण और

प्रोत्साहन के लिए कानून बनाने का एक प्राधिकरण है, बल्कि अपने स्वयं के बल से व्यापार का एक क्षेत्र बनाता है जो राज्य द्वारा हस्तक्षेप से मुक्त है और इसलिए,

---

43अतियाबारी टी कंपनी लिमिटेड बनाम। असम राज्य एआईआर 1961 एसी 232

अनुच्छेद 301 प्रति से राज्य की शक्ति पर सीमा का गठन करता है। हालांकि, अनुच्छेद 301 अनुच्छेद 302, 303 और 304 के अन्य प्रावधानों के अधीन है। इसमें कहा गया है कि इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन, पूरे भारत में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र होगा।

134. अनुच्छेद 301 संघ विधायिका और राज्य विधानसभाओं पर बाध्यकारी है, लेकिन संसद अनुच्छेद 302 के तहत कानून बनाकर अनुच्छेद 301 द्वारा लगाई गई सीमा से छुटकारा पा सकती है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 304 द्वारा लगाई गई शर्तों के अनुपालन में राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून पर अनुच्छेद 301 का प्रहार नहीं होगा। इस प्रकार अनुच्छेद 301 अंतर-राज्य और अंतर-राज्य व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो भाग XIII के अन्य प्रावधानों के अधीन है और तदनुसार यह विधायी शक्तियों पर एक सामान्य सीमा लगाता है।

135. संविधान के किसी भी प्रावधान की व्याख्या तभी सही होगी जब न्यायालय संविधान को समग्र रूप से देखे और संवैधानिक योजना के महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण कारकों को ध्यान में रखते हुए लगातार खुद को एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण की आवश्यकता के बारे में याद दिलाए, ताकि किसी दिए गए प्रावधान पर रखी गई व्याख्या का प्रभाव कमजोर न हो या कम न हो। संविधान के अन्य प्रावधान या विशेषता का प्रभाव और महत्व। इस तरह से व्याख्या की गई, भाग XIII में प्रकट होने वाला अनुच्छेद 301 इस मामले के लिए राज्य शक्ति पर बाधा के रूप में कार्य नहीं करता है।

136. अनुच्छेद 301 द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता पर प्रतिबंध ऐसे प्रतिबंध होंगे जो सीधे और तुरंत व्यापार के मुक्त प्रवाह या आवागमन को प्रतिबंधित या बाधित करते हैं। विनियामक उपाय अनुच्छेद 301 द्वारा चिंतित प्रतिबंधों के दायरे में नहीं आते हैं। खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 निस्संदेह एक विनियामक उपाय है, संसद ने इसे खानों के विनियमन और खनिजों के विकास के स्पष्ट उद्देश्य के लिए अधिनियमित किया है। अधिनियम और उसके तहत ठीक से बनाए गए नियम, इसलिए, अनुच्छेद 301 के दायरे से बाहर हैं। यहां तक कि अन्यथा अनुच्छेद 302 जो संसद को एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच व्यापार, वाणिज्य या आवागमन की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने के लिए सार्वजनिक हित में आवश्यक हो, कानून द्वारा सक्षम बनाता है, अनुच्छेद 301 के कथित उल्लंघन के आधार पर दावे का उत्तर भी देता है।

137. सर्वोच्च न्यायालय के एक सात-न्यायाधीशों की संविधान पीठ के समक्ष,

ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य और अन्य44 मामले में, यह प्रश्न उठा कि क्या राज्य अनुच्छेद 301 के तहत गारंटीकृत मुक्त व्यापार, वाणिज्य और आवागमन पर विनियामक प्रतिबंध लगाने वाले कानून बना सकता है और क्या एक राज्य कर को अनुच्छेद 301 के तहत स्वतंत्रता को बाधित करने वाला माना जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि

***..... राज्यों के पास अपना प्रशासन चलाने के लिए राजस्व भी होना चाहिए और सूची II में करों को लगाने से संबंधित कई मदें हैं। संविधान निर्माताओं का इरादा रहा होगा कि उन मदों के तहत राज्य अपने स्वयं के उद्देश्यों के लिए राजस्व जुटाने के हकदार होंगे। यदि व्यापक दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जाता है, तो व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, हमारे संविधान द्वारा परिकल्पित शक्तियों के वितरण के तहत उन्हें आवंटित क्षेत्रों के भीतर भी राज्य स्वायत्तता का अंत हो जाएगा। सातवीं अनुसूची की सूचियों में प्रविष्टियों की एक परीक्षा से पता चलता है कि राज्य सूची (सूची II) और समवर्ती सूची (सूची III) में बड़ी संख्या में प्रविष्टियां हैं जिनके तहत राज्य विधानमंडल को कानून बनाने की शक्ति है। इनमें से कुछ प्रविष्टियों के तहत राज्य विधानमंडल विभिन्न प्रकार के कर और शुल्क लगा सकता है, जैसे संपत्ति कर, बिक्री कर, उत्पादन शुल्क आदि, और इनमें से किसी भी मद के संबंध में कानून का व्यापार और वाणिज्य पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। यहां तक कि उपरोक्त सूचियों में विभिन्न प्रविष्टियों के तहत बनाए गए कराधान कानूनों के अलावा अन्य कानून भी अप्रत्यक्ष या दूरस्थ रूप से* व्यापार और वाणिज्य को प्रभावित कर सकते हैं। यदि यह माना जाता है कि विधानमंडल द्वारा बनाए गए प्रत्येक कानून, *जिसका शुल्क, लाइसेंसिंग, विपणन विनियमों, मूल्य नियंत्रण आदि पर प्रभाव पड़ता है, को राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति होनी चाहिए, तो संविधान जहां तक वह उन्हें आवंटित क्षेत्रों में राज्यों और राज्य विधानसभाओं को पूर्ण शक्ति देता है, अर्थहीन हो जाएगा"।*

अनुच्छेद 301 द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता का अर्थ कराधान से मुक्ति नहीं है। कर लगाने की शक्ति अनिवार्य रूप से सरकार के अस्तित्व के लिए है, हालांकि इसके प्रयोग को उस संबंध में किए गए संवैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। कर लगाने की शक्ति संवैधानिक सीमाओं से बाहर नहीं है। सूची I में प्रविष्टि 52 और 54 द्वारा उपलब्ध कराए गए क्षेत्र में शक्ति का प्रयोग करना संसद पर निर्भर करता है। यह भी संसद पर निर्भर करता है कि वह उन सीमाओं को - और उनके स्वीप - को बताए जो वह सूची II में प्रविष्टि 50 के संदर्भ में कराधान के लिए राज्यों को उपलब्ध क्षेत्र पर लगाना चुन सकता है। यह न्यायालयों के लिए किसी व्यक्तिगत मामले में सिर्फ यह पता लगाने और यह बताने के लिए पूछताछ में उद्यम करना नहीं हो सकता है कि यदि संसद ने कानून बनाकर चुप्पी साधने या कुछ स्पष्ट कहने में विफल रहने का विकल्प चुना है तो कौन सा कर खनिज विकास में बाधा उत्पन्न करेगा।

44ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य और अन्य।

138. जिंदल स्टील्स लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य, (2017) 12 एसीसी 145 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि:-

76. अनुच्छेद 301, 302, 303 और 304 के संबंध में हमने जो कुछ भी ऊपर कहा है उसका सार निम्नानुसार दिया जा सकता है:

76.1 अनुच्छेद 301 के संदर्भ में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है, लेकिन भाग XIII के प्रावधानों के अधीन है।

76.2. भाग XIII में प्रकट होने वाला अनुच्छेद 302 संसद को जनहित में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार देता है।

76.3. हालांकि, संसद अनुच्छेद 302 के संदर्भ में जो प्रतिबंध लगा सकती है, वह किसी राज्य को किसी अन्य राज्य पर सातवीं अनुसूची में किसी भी सूची में व्यापार और वाणिज्य से संबंधित किसी प्रविष्टि के आधार पर किसी भी प्रकार की प्राथमिकता नहीं दे सकती है।

76.4. अनुच्छेद 302 के संदर्भ में संसद द्वारा लगाए गए प्रतिबंध में किसी एक राज्य को दूसरे राज्य पर प्राथमिकता देना या भेदभाव की अनुमति देना शामिल हो सकता है, केवल तभी जब संसद कानून द्वारा घोषित करे कि माल की कमी से उत्पन्न स्थिति इस तरह के भेदभाव या प्राथमिकता को वारंट करती है।

76.5. अनुच्छेद 304 (ए) अन्य राज्यों से आयातित वस्तुओं पर कर लगाने की शक्ति की उपलब्धता को मान्यता देता है, ऐसा करने की विधायी शक्ति संविधान के अनुच्छेद 245 और 246 में पाई जाती है।

76.6. हालांकि, कर लगाने की ऐसी शक्ति इस शर्त के अधीन है कि राज्य में निर्मित या उत्पादित समान वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है और इस कारण से आयातित वस्तुओं और निर्मित या उत्पादित वस्तुओं के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता है।

76.7. कर लगाने की शक्ति की सीमा पूरी तरह से अनुच्छेद 304 के खंड (ए) द्वारा कवर की गई है जो राज्य विधानमंडल की कर लगाने की शक्ति से संबंधित ब्रह्मांड को समाप्त कर देती है।

76.8. परिणामस्वरूप, अन्य राज्यों से आयातित वस्तुओं पर केवल भेदभावपूर्ण कर अनुच्छेद 302 के अर्थ के भीतर मुक्त व्यापार, वाणिज्य और

आवागमन पर बाधा के रूप में काम करेगा।

76.9. अनुच्छेद 304 के खंड (बी) में निर्दिष्ट जनहित में उचित प्रतिबंधों में प्रतिबंध के रूप में करों का अधिरोपण शामिल नहीं है, खासकर जब करों को उचित और जनहित में दोनों माना जाता है।

139. नियामक शुल्क का लगाना निस्संदेह जनहित में लगाया गया एक उचित प्रतिबंध है। विवादित नियम और सरकारी आदेश अपने चरित्र से खनन की गतिविधि को विनियमित कर रहे हैं। उक्त गतिविधियाँ खनन से जुड़े प्राकृतिक परिणाम हैं जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 39(बी) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए विशेष रूप से विनियमित करने की आवश्यकता है।

45जिंदल स्टील्स लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य, (2017) 12 एससीसी 1

140. नियमों और धारा के एक अध्ययन से पता चलता है कि खनिजों के परिवहन पर पूर्ण नियामक नियंत्रण राज्य में निहित है, और अधिक इसलिए कि लघु खनिजों पर। धारा 4(1-ए) राज्य सरकार को खनिजों के परिवहन को विनियमित करने की पूर्ण शक्ति देती है। परिवहन के पूरे क्षेत्र को राज्य सरकार के हाथों में विनियमित किया जाता है, चाहे वह अंतरा-राज्य हो या अंतर-राज्य।

141. इसलिए, नियम 2020 और नियम 2021 द्वारा लगाए गए नियामक शुल्क, जो कि अधिनियम की धारा 23(सी) के तहत राज्य द्वारा निर्धारित दायित्वों को पूरा करने के लिए हैं, को भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

142. उपर्युक्त के मद्देनजर, हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं:

(ए) राज्य को एमएमडीआर अधिनियम की धारा 15-1 के तहत नियम बनाने की शक्ति है। नियम, 2020 के नियम 21(4) और नियम 70(2) और यूपी खनन और रियायत नियम, 2021 के नियम 21(5) और नियम 72(2) एमएमडीआर अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत हैं।

(बी) दिनांक 24.02.2020 और 10.08.2022 को जारी सरकारी आदेश, जिसमें अन्य राज्य से उत्तर प्रदेश राज्य में गिराए गए खनिजों पर नियामक शुल्क लगाने का आदेश दिया गया है, को वैध ठहराया जाता है क्योंकि यह उपरोक्त नियमों के अनुसार और नई खनन नीति, 2021 के अनुसरण में जारी किया गया है।
(सी) लगाए गए नियामक शुल्क भारत के संविधान के भाग XIII का उल्लंघन नहीं करते हैं

143. तदनुसार, याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। पक्षकार अपने स्वयं के खर्च वहन करेंगे।

(2023) 8 ILRA 1114

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 11292 वर्ष 2021

लक्ष्य इन्फ्रा. पावर प्रा. लिमिटेड ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अतुल कुमार तिवारी, श्री नितिन शर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री संजय सिंह

सिविल विधि - यूपी खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2018 - नियम 7 और 10 - भंडारण लाइसेंस - लाइसेंस रद्द करना - सुरक्षा की जब्ती - माना गया, हालांकि याचिकाकर्ता सीसीटीवी और डिस्प्ले बोर्ड की स्थिति के अनुपालन को साबित करने में विफल रहा, लेकिन राज्य को वित्तीय नुकसान के बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया। - इस तरह के निष्कर्ष के बिना सुरक्षा की जब्ती अस्थिर है - नियम 10 के तहत शब्द "हो सकता है" विवेक को इंगित करता है, न कि मजबूरी को - जब्ती की कार्रवाई कारणों के साथ समर्थित होनी चाहिए - जब्ती आदेश को रद्द कर दिया गया, लाइसेंस रद्दीकरण को बरकरार रखा गया।

अभिनिर्धारित: भले ही यह पाया गया हो कि सीडी प्राधिकरण के संतोष के अनुरूप नहीं थी, फिर भी राज्य को किसी भी प्रकार की वित्तीय हानि के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकला। इसलिए, अधिकारियों ने सुरक्षा राशि जब्त करने में त्रुटि की। हालाँकि लाइसेंस रद्द करने का निर्णय बरकरार रखा गया है, लेकिन सुरक्षा जमा राशि की जब्ती अपास्त की जाती है।

चर्चा की गई वादविधि :

1. स्टाइल (ड्रेस लैंड) बनाम केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ एवं अन्य, (1999) 7 एससीसी 89

2. रणवीर सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2017 (1) एडीजे 240 (डीबी)

3. ओरिक्स फिशरीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2010) 13 एससीसी 427

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत।

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नितिन शर्मा और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता को उ.प्र. खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियम, 2018 (इसके बाद '2018 नियम' के रूप में संदर्भित) के तहत गाटा संख्या 333 क्षेत्रफल

0.5990 हेक्टेयर और गाटा संख्या 330 क्षेत्रफल 0.5307 हेक्टेयर कुल 1.1257 हेक्टेयर पर 20,000 घन मीटर बालू/मोरंग के भंडारण के लिए 11.06.2020 से शुरू होने वाली और 15.10.2020 को समाप्त होने वाली अवधि के लिए भंडारण का लाइसेंस दिया गया था। '2018 नियम' में प्रावधान है कि यदि नियम 7 के तहत लाइसेंस प्रदान किया जाता है, तो लाइसेंसधारी बिक्री बिंदुओं पर बिक्री मूल्य को प्रमुखता से प्रदर्शित करेगा; सीसीटीवी कैमरे तैनात करेगा और भंडार की उचित निगरानी के लिए चेक गेट प्रदान करेगा। लाइसेंसधारी को ई-फॉर्म 'सी' फॉर्म 'सी' फॉर्म 'जी' में निर्धारित प्रारूप में प्रतिदिन खरीदे और विभिन्न गंतव्यों तक पहुंचाए गए खनिजों का एक सही और समझदार खाता भी रखना होगा जो वैध ट्रांजिट पास की गुणवता के अनुरूप होगा जिसके द्वारा अनुज्ञप्तिधारी को खनिज प्राप्त हुआ था।

3. सुविधा के लिए, '2018' नियमों का नियम 7 यहां नीचे दिया गया है;

"7. भंडारण लाइसेंस देने के लिए सामान्य शर्तें लाइसेंस निम्नलिखित शर्तों के अधीन फॉर्म बी में दिया जाएगा:

(i) लाइसेंसधारी भंडारण स्थल पर बिक्री मूल्य को प्रमुखता से प्रदर्शित करेगा।

(ii) लाइसेंसधारी भंडार की उचित निगरानी के लिए सीसीटीवी कैमरा और चेक गेट तैनात करेगा

(iii) लाइसेंसधारी को ई-फॉर्म 'सी' फॉर्म 'सी' फॉर्म 'जी' में निर्धारित प्रारूप में प्रतिदिन खरीदे गए और विभिन्न गंतव्यों तक परिवहन किए गए खनिजों का एक सही और सुगम खाता रखना होगा, जो वैध ट्रांजिट पास की मात्रा के अनुरूप होगा जिसके द्वारा अनुज्ञप्तिधारी को खनिज प्राप्त हुआ है।

(iv) लाइसेंसधारी प्रत्येक माह के लिए क्रमशः खंड (ii) और (iii) के तहत बनाए गए खातों का फॉर्म है में मासिक विवरणपत्र अगले महीने के पहले सप्ताह के भीतर जिला अधिकारी को प्रस्तुत करेगा,

(v) सभी रिपोर्टों, विवरणपत्रों और रजिस्टरों का रखरखाव लाइसेंसधारी द्वारा किया जाएगा और व्यवसाय के स्थान पर रखे जाएंगे और निरीक्षण अधिकारी को उपलब्ध कराए जाएंगे,

(vi) लाइसेंसधारी खनिजों का भंडारण करके या प्रसंस्करण संयंत्र या लाभकारी संयंत्र या कारखाने में उनका उपयोग करते समय पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करेगा।

(vii) लाइसेंसधारी खान निदेशालय के निरीक्षण अधिकारियों को खनिजों के भंडार को सत्यापित करने और नमूने लेने और अभिलेख निकालने के लिए स्टोर, फैक्ट्री, प्रसंस्करण संयंत्र, लाभकारी संयंत्र का निरीक्षण करने की अनुमति देगा।

(viii) जिला अधिकारी ऐसी अतिरिक्त शर्तें लगा सकता है जो जनता के हित में आवश्यक हो।"

4. दिनांक 04.09.2020 को किये गये निरीक्षण के आधार पर दिनांक 05.09.2020 को लाइसेंसधारी को नोटिस मिला कि उसने सीसीटीवी कैमरे नहीं लगाये हैं तथा भण्डारण स्थल पर विक्रय मूल्य भी प्रदर्शित नहीं किया है।

5. नोटिस के जवाब में दिनांक 07.09.2020 को याचिकाकर्ता ने सीसीटीवी कैमरों के फुटेज की सीडी के साथ अपना जवाब प्रस्तुत किया। उन्होंने यह भी कहा था कि भंडारण स्थल पर बिक्री मूल्य का डिस्प्ले बोर्ड भी लगा हुआ था। जवाब से संतुष्ट नहीं होने पर, याचिकाकर्ता का लाइसेंस 2018 नियम' के नियम 10 के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 10.09.2020 को यह निष्कर्ष निकालने के बाद रद्द कर दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा आपूर्ति की गई सीडी में रिकॉर्डिंग की तारीख और समय प्रदान नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी निष्कर्ष दिया था कि रेत/मोरंग की कोई लोडिंग और अनलोडिंग नहीं पाई गई थी और इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर पर अविश्वास करने के बाद याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द कर दिया गया था। साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई 15,00,000/- रुपये की प्रतिभू भी जब्त कर ली गई।

6. दिनांक 10.09.2020 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने '2018 नियम' के नियम 15 के तहत अपील दायर की और अपील खारिज होने पर, तत्काल रिट याचिका दायर की गई है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता ने सीसीटीवी कैमरे की रिकॉर्डिंग की सीडी प्रस्तुत की थी जो '2018 नियम' के नियम 7 के अनुसार स्थापित किया गया था तो याचिकाकर्ता को कोई सजा नहीं दी जानी चाहिए थी। वहां बहुत डिस्प्ले बोर्ड भी था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सुरक्षा जब्त करने के संबंध में कहा है कि आदेश में प्रतिभू राशि जब्त करने का कोई कारण नहीं बताया गया है। उनका कहना है कि यदि प्रतिभू राशि जब्त की जानी थी तो एक निश्चित निष्कर्ष दिया जाना चाहिए था कि राज्य को कितनी वित्तीय हानि हुई थी जिसके कारण प्रतिभू राशि जब्त करना जरूरी हो गया था।

9. '2018 नियम' के नियम 10 पर भरोसा करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि नियम 10 में जो सजा दी गई है, उसमें कहा गया है कि न केवल लाइसेंस रद्द किया जा सकता है, बल्कि जिला अधिकारी उस पर अर्जित व्याज के साथ प्रतिभू जमा भी जब्त कर सकता है। इसलिए, उनका मानना है कि 'जब्त' शब्द अनिवार्य रूप से प्रतिभू राशि को जब्त करने का आदेश नहीं देता है। जिला अधिकारी के लिए प्रतिभू राशि जब्त करने का आदेश देना वैकल्पिक था और इस विकल्प का प्रयोग करने के लिए उन्हें कारण बताना चाहिए था।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **स्टाइल (ड्रेस लैंड) बनाम केंद्र शासित प्रदेश**

चंडीगढ़ और अन्य 1999 (7) एससीसी 89, रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और 7 अन्य 2017 (1) एडीजे 240 (डीबी) तथा ओरिक्स फिशरीज लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई 2010 में रिपोर्ट किए गए (13) एससीसी 427 मामलों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

11. 1999 (7) एससीसी 89 पर भरोसा करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब कानून इस संबंध में मौन है कि जब्ती कब की जानी चाहिए और कब नहीं की जानी चाहिए, तो राज्य को विवेक के साथ काम करना चाहिए और मनमाने ढंग से जब्ती का दंड थोपना नहीं चाहिए। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने 1999 (7) एससीसी 89 में रिपोर्ट किए गए फैसले के पैराग्राफ 10 और 11 पर भरोसा किया था, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है;

"10. नियमों की अनुपस्थिति में, किराए में वृद्धि सहित पट्टे के नियमों और शर्तों को लागू करने के संबंध में प्रतिवादियों की कार्रवाई निष्पक्ष और उचित होनी आवश्यक है और उन विचारों से प्रेरित नहीं है जिन्हें मनमाना या भेदभावपूर्ण कहा जा सकता है। सरकार केवल अपने पट्टेदारों से लाभ निकालने के उद्देश्य से शर्तों को लागू करने में एक निजी व्यक्ति की तरह कार्य नहीं कर सकती है। सरकारी कार्रवाइयों को ऐसे मानकों पर आधारित होना आवश्यक है जो मनमाने या अनधिकृत न हों। यह न्यायालय रमना दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डा प्राधिकरण मामले में न्यायमूर्ति मैथ्यू की टिप्पणियों से सहमत होते हुए कहाः (एससीसी) पीपी. 505-06, पैरा 12)

"12. हम वी. पुन्नेन थॉमस बनाम केरल राज्य में न्यायमूर्ति मैथ्यू एन की टिप्पणियों से सहमत हैं किः

'सरकार अपनी उदारता के लिए प्राप्तकर्ताओं का चयन करने में एक व्यक्ति जितनी स्वतंत्र नहीं है और न ही होनी चाहिए। चाहे उसकी गतिविधि कुछ भी हो, सरकार अभी भी सरकार है और एक लोकतांत्रिक समाज में उसकी स्थिति में निहित प्रतिबंधों के अधीन होगी। एक लोकतांत्रिक सरकार उन व्यक्तियों की पसंद के लिए मनमाने और मनमौजी मानक नहीं बना सकती जिनके साथ वह अकेले ही व्यवहार करेगी।'

यही बात इस न्यायालय ने इरुशियन इक्विपमेंट एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम प.बं. राज्य में कही थी, जहां सवाल था कि क्या किसी व्यक्ति को सुनवाई का मौका दिए बिना काली सूची में डालना बुरा है?

राय, मुख्य न्यायमूर्ति ने अपनी और पीठ पर अपने सहयोगियों की ओर से बोलते इस ओर इशारा किया कि जो कि पॉपुंडियन शब्दों में, व्यक्तित्व और सार दोनों का हित है, बल्कि उसे सरकार के साथ अनुबंध करने के मामले में उसे समानता से भी वंचित करता है और इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई के बिना इसका समर्थन नहीं किया जा सकता है। सरकार की ओर से यह तर्क दिया गया कि किसी भी व्यक्ति को सरकार के साथ संविदात्मक संबंध

में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है और सरकार को, किसी भी अन्य निजी व्यक्ति की तरह, अपनी इच्छानुसार किसी के भी साथ अनुबंध में प्रवेश करने का पूर्ण अधिकार है। लेकिन न्यायालय ने, विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति के माध्यम से बोलते हुए, जवाब दिया कि सरकार एक निजी व्यक्ति की तरह नहीं है जो उस व्यक्ति को चुन सकती है जिसके साथ वह व्यवहार करेगी, लेकिन सरकार तब भी एक सरकार होती है जब वह अनुबंध करती है या जब वह उदारता का प्रबंध कर रही होती है और वह पर्याप्त कारण के बिना, किसी भी व्यक्ति को उसके साथ व्यवहार करने से बाहर नहीं कर सकती है या मनमाने ढंग से उदारता वापस नहीं ले सकती है। विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने कहा कि जब सरकार जनता के साथ व्यापार कर रही होती है, तो सरकार का 'लोकतांत्रिक' रूप समानता और मनमानी की अनुपस्थिति की मांग करता है... सरकार की गतिविधियों में सार्वजनिक तत्व होता है और इसलिए, निष्पक्षता और समानता होनी चाहिए। राज्य को किसी के साथ कोई अनुबंध करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन यदि वह ऐसा करता है, तो उसे बिना किसी भेदभाव और अनुचित प्रक्रिया के निष्पक्ष रूप से ऐसा करना चाहिए।' यह प्रस्ताव सरकार द्वारा जनता के साथ व्यवहार के सभी मामलों में लागू होगा, जहां हितों की रक्षा करना एक विशेषाधिकार है। इसलिए, इसे कानून के रूप में लिया जाना चाहिए कि जहां सरकार जनता के साथ चाहे नौकरी देने के माध्यम से या अनुबंध में प्रवेश करने या कोटा या लाइसेंस जारी करने या अन्य प्रकार की उदारता प्रदान करने के माध्यम से व्यवहार कर रही है, वहां सरकार अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकती है और एक निजी व्यक्ति की तरह, अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति के साथ व्यवहार नहीं कर सकती है, बल्कि इसकी कार्रवाई मानक या मानदंडों के अनुरूप होनी चाहिए जो मनमानी, तर्कहीन या अप्रासंगिक नहीं है। नौकरियों, अनुबंधों, कोटा लाइसेंस आदि के पुरस्कार सहित उदारता प्रदान करने के मामले में सरकार की शक्ति या विवेक को तर्कसंगत, प्रासंगिक और गैर-भेदभावपूर्ण मानक या मानदंड द्वारा सीमित और संरचित किया जाना चाहिए और यदि सरकार किसी विशेष मामले या मामलों में ऐसे मानक या मानदंड से पीछे हटती है, तो सरकार की कार्रवाई रद्द की जा सकती है, जब तक कि सरकार द्वारा यह नहीं दिखाया जा सके कि प्रस्थान मनमाना नहीं था, बल्कि कुछ वैध सिद्धांत पर आधारित था जो अपने आप में तर्कहीन, अनुचित या भेदभावपूर्ण नहीं था।"

11. यहां तक कि प्रशासनिक आदेशों और (केवल इस प्रकार) अर्ध-न्यायिक आदेशों को भी प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप तरीके से बनाए जाने की आवश्यकता होती है, जब वे संपति पर नागरिकों के अधिकारों या संपति की विशेषताओं को प्रभावित करते हैं। न्यायिक समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपनी कार्रवाई के समर्थन में सरकार द्वारा दिए गए कारणों पर गौर कर सकता है लेकिन अपने स्वयं के कारणों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। न्यायालय किसी कार्यकारी आदेश को रद्द कर सकता है, यदि उसे लगता है कि दिए गए कारण अप्रासंगिक और असंगत

हैं। अदालतें निर्णय से अधिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को लेकर चिंतित हैं।"

12. विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव ने रिट याचिका का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि जब यह पाया गया कि याचिकाकर्ता ने सीसीटीवी कैमरा स्थापित नहीं किया था और भंडारण बिंदु पर बिक्री मूल्य भी प्रदर्शित नहीं किया था, तो जिला अधिकारी के लिए दंड देना अनिवार्य था जैसा कि 'नियम 2018' के नियम 10 में दिया गया है। उनका कहना है कि हो सकता है' शब्द की व्याख्या भी इस तरह से की जानी थी कि यदि लाइसेंस रद्द कर दिया गया था तो प्रतिभू की जब्ती भी होनी थी।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री राहुल श्रीवास्तव, विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि जिला मजिस्ट्रेट का आदेश दिनांक 10.09.2020 और अपीलीय न्यायालय का आदेश दिनांक 18.12.2020 कानून की नजर में कायम नहीं रह सकता। भले ही यह पाया गया कि सीडी प्राधिकरण को संतुष्ट करने वाली नहीं थी, लेकिन इस तथ्य के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकला कि राज्य को कोई वित्तीय हानि हुई थी। इस मामले को देखते हुए, हमारा मानना है कि अधिकारियों ने प्रतिभू राशि जब्त करके गलती की है।

14. हालांकि, ऐसी परिस्थितियों में हम जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 10.09.2020 के आदेश और अपीलीय अदालत के आयुक्त के दिनांक 18.12.2020 के आदेश, जहां तक वे याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द करते हैं, को बरकरार रखते हैं, हम प्रतिभू राशि जब्त करने के आदेशों को रद्द करते हैं।

15. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका आंशिक रूप से **स्वीकार की** जाती है।

(2023) 8 ILRA 1118

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-सी संख्या 22367/2023

शिवनाथ एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री अभिषेक भूषण, श्री अर्पण श्रीवास्तव, श्री पवन कुमार पांडे, श्री अनिल भूषण, श्री अनिल भूषण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अशोक कुमार राय, श्री पवन कुमार पांडे, श्री राजेश कुमार, श्री मंगला प्रसाद राय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - जब कोई आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित किया जाता है, तो वैकल्पिक उपाय पर कोई रोक नहीं है - रिट पोषणीय है।

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 31/32, 38(4) एवं 210 - संक्षिप्त कार्यवाही - दर्ज खातेदार को पक्षकार बनाये बिना लम्बे समय से चली आ रही प्रविष्टि को विलोपित किया जाना - प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन - आदेश निरस्त किये जाने योग्य - अवसर प्रदान करने के पश्चात पुनः सुनवाई का निर्देश।

अभिनिर्धारितः

प्रभावित पक्षों को पक्षकार बनाए बिना और उन्हें सुनवाई का अवसर दिए बिना, लंबे समय से चली आ रही राजस्व प्रविष्टि को हटाना, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 31/32 के अंतर्गत संक्षिप्त कार्यवाही में भी, दर्ज खातेदार को उचित सूचना दी जानी चाहिए। संहिता की धारा 210 के अंतर्गत वैकल्पिक उपाय, जहाँ प्राकृतिक न्याय का स्पष्ट उल्लंघन हो, रिट याचिका पर रोक नहीं लगाता। दिनांक 17.2.2018, 9.3.2021 और 13.4.2023 के आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं। याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात, मामले को नए सिरे से निर्णय हेतु उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, सदर, वाराणसी को प्रतिप्रेषित किया जाता है। रिट स्वीकृत।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

1. चतुरगन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2005 (98) आरडी 244

2. प्रबंधन समिति एवं अन्य बनाम कुलपति एवं अन्य, 2009 (1) एडब्ल्यूसी 437 (एससी)

3. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, एआईआर 1999 एससी 22

4. गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी एवं कराधान अधिकारी, एआईआर 2023 एससी 781

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अनिल भूषण, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अभिषेक भूषण द्वारा सहायता प्राप्त और प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के अधिवक्ता श्री मंगला प्रसाद राय, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक कुमार राय द्वारा सहायता प्राप्त तथा राज्य-प्रतिवादियों के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला को सुना। प्रतिवादी संख्या 7 से 18 को प्रोफार्मा प्रतिवादी कहा जाता है, इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 7 से 18 को नोटिस दिया जाता है।

2. रिट याचिका पर सुनवाई की जा रही है और अंततः प्रति-शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना पक्षकारों के विद्वान वकीलों की सहमति से इसका निपटान किया जा रहा है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 4 ने उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 33/39 के तहत दिनांक 29.8.2014 को एक आवेदन पत्र दाखिल किया, जिसमें उत्तर

प्रदेश राज्य को प्रतिपक्षी बनाया गया था, जिसमें याचिकाकर्ताओं के नाम को अखारी, परगना-कस्वर राजा, तहसील- सदर, जिला-वाराणसी में स्थित अराजी नंबर 1052 क्षेत्र 0.134 हेक्टेयर से हटाने की प्रार्थना की गई थी। उपरोक्त आवेदन पत्र, जिसे प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर किया गया था, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 31/32 के तहत वाराणसी के उप-संभागीय मजिस्ट्रेट (सदर) (प्रतिवादी संख्या 3) के समक्ष वाद संख्या 9582 वर्ष 2016, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या T20161470019582 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त कार्यवाही में लेखपाल द्वारा 20.6.2015 को, राजस्व निरीक्षक द्वारा 26.6.2015 को तथा नायब तहसीलदार एवं तहसीलदार द्वारा भी क्रमशः 18.3.2016/10.2.2018 को रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। प्रतिवादी संख्या 3 ने उपरोक्त मामले की सुनवाई की और दिनांक 17.2.2018 के अपने आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटा दिया। याचिकाकर्ताओं ने 29.8.2018 को बहाली के लिए आवेदन किया, जिसे दिनांक 9.3.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 9.3.2021 के आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 (4) के तहत अपील संख्या 00683 वर्ष 2021, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या सी202114000000683 दायर की। उपरोक्त अपील को प्रतिवादी संख्या 2/अतिरिक्त आयुक्त द्वारा दिनांक 13.4.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, इसलिए याचिकाकर्ताओं की ओर से यह रिट याचिका दायर की गई है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 17.2.2018 और 9.3.2021 के आदेशों और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 13.4.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है।

4. याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 31/32 के तहत सारांश कार्यवाही में याचिकाकर्ताओं की लम्बे समय से चली आ रही प्रविष्टि को बिना सुनवाई का अवसर दिए हटा दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि सारांश कार्यवाही में, लम्बे समय से चली आ रही प्रविष्टि को हटाया नहीं जा सकता। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विवादित भूखंड पर याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों को पंजीकृत बिक्री विलेख के आधार पर 27.10.1952 से दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि चकबंदी अभियान के दौरान, याचिकाकर्ताओं के अधिकार को भी मान्यता दी गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ताओं को कार्यवाही में शामिल भी नहीं किया गया था, इसलिए, उन्हें सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया। उन्होंने इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए इस न्यायालय के ***चतुर्गण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2005(98) आरडी 244*** मामले के फैसले का हवाला दिया कि प्राधिकरण द्वारा प्रविष्टि हटाने से पहले अभिलेखित पट्टाधारक को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री मंगला प्रसाद राय ने तर्क दिया कि अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ताओं को नोटिस जारी किया गया था और आदेश कानून के अनुसार पारित किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 31/32 के तहत

अधिकार क्षेत्र का सही प्रयोग किया गया है, इसलिए, विवादित आदेश के खिलाफ कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि अतिरिक्त आयुक्त द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 (4) के तहत पारित आदेश उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत पुनरीक्षित है, इसलिए, वैकल्पिक उपाय के आधार पर रिट याचिका खारिज करने योग्य है।

6. राज्य-प्रतिवादियों के वरिष्ठ अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला ने तर्क दिया कि आदेश उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 (4) के तहत प्रदान किए गए अनुसार पुनरीक्षित है, इसलिए रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और याचिकाकर्ताओं को विवादित आदेशों के खिलाफ अपनी शिकायत के निवारण के लिए पुनरीक्षण न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 31/32 के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ताओं को पक्ष बनाए बिना हटा दिया गया है।

9. विवाद को समझने के लिए, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 38 का अध्ययन करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"38. <u>त्रुटि और चूक का सुधार</u>- (1) मानचित्र, क्षेत्रीय पुस्तक (खसरा) या अधिकारों के अभिलेख (खतौनी) में किसी त्रुटि या चूक के सुधार के लिए आवेदन तहसीलदार को निर्धारित तरीके से किया जाएगा।

[(2) उप-धारा (1) के तहत आवेदन प्राप्त होने पर या किसी अन्य त्रुटि या चूक के उसके संज्ञान में आने पर, तहसीलदार ऐसी जांच करेगा जैसी उसे आवश्यक प्रतीत हो, और मानचित्र सुधार के मामले में कलेक्टर को और अन्य सुधार के मामले में उप-विभागीय अधिकारी को अपनी रिपोर्ट के साथ मामला संदर्भित करेगा।

(3) मामला कलेक्टर या उप-विभागीय अधिकारी, जो भी हो, द्वारा उसके समक्ष या तहसीलदार के समक्ष दायर आपत्ति और प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने के बाद तय किया जाएगा।

(4) कलेक्टर या उप-विभागीय अधिकारी, जो भी हो, के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उप-धारा (3) के तहत, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर आयुक्त के समक्ष अपील दायर कर सकता है, और [आयुक्त का निर्णय, धारा 210 के प्रावधानों के अधीन, अंतिम होगा]।]

(5) मानचित्र, खसरा या अधिकारों के अभिलेख (खतौनी) में किसी जाली या छेड़छाड़ की गई प्रविष्टि को इस धारा के तहत हटाया जा सकता है।

(6) इस संहिता के अन्य प्रावधानों में किसी भी चीज के होते हुए, राजस्व

निरीक्षक खतौनी या खसरे में किसी निर्विवाद त्रुटि या चूक को निर्धारित तरीके से और ऐसी जांच करने के बाद, जैसा कि विहित किया जा सकता है, सुधार सकता है।]

स्पष्टीकरण. - इस धारा के तहत किसी त्रुटि या चूक को सुधारने की शक्ति में शीर्षक से संबंधित विवाद को निपटाने की शक्ति शामिल नहीं होगी।"

10. इस न्यायालय ने **चतुर्गण (उपरोक्त)** मामले में यह निर्णय दिया है कि किसी लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि को हटाने से पहले, न्यायालय द्वारा अभिलेखित पट्टाधारक को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। निर्णय का अनुच्छेद संख्या 8 प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"*8. तदनुसार, यह निर्णय दिया जाता है कि जब भी किसी राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टि को रद्द करना और प्रतिस्थापित करना होता है, खासकर जब प्रविष्टि एक वर्ष से अधिक समय से जारी रहती है, तो उस पक्ष को नोटिस दिया जाना चाहिए जिसके पक्ष में प्रविष्टि है, भले ही प्रथम दृष्टया प्राधिकरण/ न्यायालय (अधिकांश मामलों में उप-कलेक्टर/उप-विभागीय अधिकारी) इस राय का हो कि प्रविष्टि फर्जी आदेश या धोखाधड़ी का परिणाम है। इसी तरह, यदि किसी असामी पट्टेदार का नाम पट्टे की अवधि समाप्त होने या किसी अन्य आधार पर राजस्व रिकॉर्ड से हटाया जाना है, तो उसका नाम हटाने से पहले उसे नोटिस दिया जाना चाहिए। हाल ही में हरि राम बनाम कलेक्टर , 2004 (2) आरडी 360 मामले में इस न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 202 के तहत बेदखली के वाद के अलावा, असामी पट्टेदार को उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा 34 के तहत राजस्व रिकॉर्ड से उसका नाम हटाने के बाद बेदखल किया जा सकता है, लेकिन यह केवल पट्टेदार/आनुषंगिक को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद ही किया जा सकता है। हालांकि, यदि किसी व्यक्ति को सुने बिना प्रविष्टि को हटा दिया जाता है या कोई अन्य आदेश पारित किया जाता है, तो वह उस न्यायालय/अधिकारी के समक्ष आदेश के बाद सुनवाई और आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दायर करने का हकदार है जिसने पक्षकार आदेश पारित किया था। यदि ऐसा आवेदन दायर किया जाता है तो संबंधित न्यायालय/अधिकारी आवेदक को सुनेगा और यदि यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि पूर्व का आदेश सही नहीं है, तो उक्त आदेश को रद्द कर दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में पहले आदेश को रद्द करना और फिर संबंधित पक्ष को सुनना आवश्यक नहीं है। ऐसे आवेदन के साथ-साथ ऐसे*

साक्ष्य भी दाखिल किए जाने चाहिए जो पक्ष अपना मामला पेश करने के लिए आवश्यक समझता है। सर्वोच्च न्यायालय ने ए.एम.यू, अलीगढ़ बनाम एम.ए. खान, (2000) 7 एससीसी 529 : एआईआर 2000 एससी 2783 मामले में यह निर्णय दिया है कि जो व्यक्ति सुनवाई के अवसर से वंचित होने की शिकायत करता है, उसे यह बताना होगा कि यदि उसे अवसर दिया गया होता तो वह क्या कारण बताता या क्या बचाव लेता। (इसी तरह का विचार एस.एल. गुप्ता बनाम ए.डी. गुप्ता, 2003 एआईआर एससीडब्ल्यू 7089 (पैरा 29) और कैनरा बैंक ((2003) 4 एससीसी 557 : एआईआर 2003 एससी 2041) (उपरोक्त) मामलों में भी लिया गया है।) नाम हटाने के पक्षकार आदेशों के खिलाफ सीधे पुनरीक्षण और अपील आदि दायर करना उचित नहीं है। हालांकि, यदि पुनरीक्षण, अपील आदि सीधे दायर किया जाता है तो पुनरीक्षण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय गुण-दोष के आधार पर पुनरीक्षण या अपील का फैसला करने के बजाय प्रभावित पक्ष को निर्णय के बाद सुनवाई के लिए आवेदन करने और ट्रायल कोर्ट/प्राधिकरण के समक्ष आदेश वापस लेने के लिए अनुमति दे सकता है। पुनरीक्षण/अपीलीय प्राधिकारी भी केनरा बैंक (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में उल्लिखित निर्णय के बाद सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद मेरिट के आधार पर मामले का फैसला कर सकते हैं (यानी यह दिखाने का अवसर कि पहले की प्रविष्टि नकली नहीं थी)।"

11. उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम / उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 33/39 के तहत दायर आवेदन की जांच से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं को कार्यवाही में शामिल नहीं किया गया था। अतः विवादित भूखंड के संबंध में राजस्व रिकॉर्ड से याचिकाकर्ताओं की प्रविष्टि को हटाने/बदलने का आदेश कायम नहीं रह सकता।

12. जहां तक वैकल्पिक उपाय का सवाल है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **2009 (1) एडब्ल्यूसी 437 (एससी) प्रबंध समिति और अन्य बनाम कुलपति और अन्य** मामले में निर्णय दिया गया है कि यदि आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है, तो वैकल्पिक उपाय भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका को स्वीकार करने में बाधा नहीं होगा। **प्रबंध समिति (उपरोक्त)** के फैसले में दिए गए पैराग्राफ नंबर 21, 24, 25 और 26 प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:

"21. इसके अतिरिक्त, जब किसी प्राधिकरण द्वारा बिना अधिकार क्षेत्र या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आदेश पारित किया जाता है, तो शीर्ष न्यायालय वैकल्पिक उपाय विद्यमान होने पर भी अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इंकार नहीं करेंगे। इस संदर्भ में, व्हर्लपूल

कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य एआईआर 1999 एससी 22 के मामले में इस न्यायालय द्वारा किए गए अवलोकनों को संदर्भित करना उचित है।।

15. लेकिन इस न्यायालय द्वारा लगातार कम से कम तीन स्थितियों में वैकल्पिक उपाय को बाधा के रूप में नहीं माना गया है, अर्थात् जहां किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई हो या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो या आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से बिना अधिकार क्षेत्र के हों या किसी अधिनियम की विधि को चुनौती दी जाए।
इस मामले में, यद्यपि हमारे सामने पहली बार, अधिनियम की धारा 16 से जुड़े परिशिष्ट की विधि, हमारे द्वारा यहां बताए गए अन्य बिंदुओं के अलावा, विचाराधीन है।

24. इस प्रकृति के मामले में क्या किसी शक्ति का प्रयोग उचित रूप से किया गया है या नहीं, हमारी राय में, यह एक जटिल प्रश्न है, जिसे सामान्यतः उच्च न्यायालय द्वारा ही निर्धारित किया जाना चाहिए। हमारा ध्यान इस न्यायालय की सात-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय की ओर भी दिलाया गया है, जो पी.ए. इनमदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य एआईआर 2005 एससी 3226 मामले में दिया गया था।

126. टी.एम.ए. पई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य एआईआर 2003 एससी 355 मामले में बहुमत की राय के पैरा 68 में की गई टिप्पणियाँ, जिस पर पक्षों के विद्वान वकीलों ने अपने तर्कों में काफी भिन्नता व्यक्त की है, हमारे अनुसार, मुख्य निर्णय के अन्य भागों से अलग करके नहीं पढ़ी जानी चाहिए। पई फाउंडेशन के फैसले के कुछ पैराग्राफों में निहित कुछ टिप्पणियाँ यदि अलग-अलग पढ़ी जाती हैं, तो वे परस्पर विरोधाभासी या असंगत प्रतीत होती हैं। लेकिन यदि किए गए टिप्पणियों और निकाले गए निष्कर्षों को समग्र रूप से पढ़ा जाए, तो निर्णय कहीं भी यह नहीं कहता है कि अनाधिकृत निजी शैक्षणिक संस्थानों अल्पसंख्यकों और गैर-अल्पसंख्यकों को राज्य की सीट-शेयरिंग और आरक्षण नीति के अधीन होने के लिए बाध्य किया जा सकता है। निर्णय के प्रासंगिक अंशों को पढ़ना, जिन पर विद्वान वकीलों ने टिप्पणियाँ और जवाबी टिप्पणियाँ दी हैं, और पूरे निर्णय को पढ़ना (इस न्यायालय के पिछले निर्णयों के आलोक में, जिन्हें पई फाउंडेशन में स्वीकृत किया गया था) हमारे विचार से, पैरा 68 में की गई टिप्पणियाँ केवल अनाधिकृत निजी संस्थानों को राज्य के साथ सीट-शेयरिंग के लिए

स्वेच्छा से सहमत होकर या राज्य की सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर चयन अपनाकर प्रवेश के मानदंड के रूप में योग्यता बनाए रखने की अनुमति देती हैं। यह भी कहा गया है कि वे जरूरतमंद और गरीब छात्रों को मुफ्त छात्रवृत्ति और छात्रवृत्ति देने के लिए अपनी नीति बना सकते हैं या समाज के कमजोर और गरीब वर्गों की शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राज्य की आरक्षण नीति के अनुरूप नीति अपना सकते हैं।

25. मामले में उठने वाले कानूनी सवालों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में यह एक उपयुक्त मामला नहीं था, जहां उच्च न्यायालय को रिट आवेदन पर विचार करने के लिए अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करना चाहिए था।

26. उपरोक्त कारणों से, विवादास्पद आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे तदनुसार रद्द कर दिया जाता है। तदनुसार अपील स्वीकार कर ली जाती है। उच्च न्यायालय से अनुरोध किया जाता है कि वह मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार करे। कोई लागत नहीं।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में **एआईआर 2023 सर्वोच्च न्यायालय 781 मेसर्स गोडरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी और कर अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकारी और अन्य** मामले में फैसला सुनाया है कि अनुच्छेद 226 के तहत रिट जारी करने की शक्ति पूर्ण प्रकृति की है और यह रिट जारी करने की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा या प्रतिबंध नहीं लगाती है।

14. इस मामले में, याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों को 27.10.1952 से दर्ज किया गया था और चकबंदी कार्रवाई के दौरान भी याचिकाकर्ताओं के अधिकार को मान्यता दी गई थी, अतः याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए ताकि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी दोनों यह प्रदर्शित कर सकें कि क्या लंबे समय से चली आ रही प्रविष्टि को सारांश कार्यवाही में हटाया जा सकता है या नहीं।

15. इस न्यायालय द्वारा **चतरुगन (उपरोक्त)** और शीर्ष न्यायालय द्वारा **प्रबंध समिति और अन्य (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दिनांक 17.2.2018, 19.3.2021 और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 13.4.2023 को पारित किए गए आक्षेपित आदेशों को अलग रखा जाना चाहिए और उन्हें इसके द्वारा अलग रखा जाता है। रिट याचिका को आंशिक रूप से **स्वीकार किया जाता है** और मामले को प्रतिवादी संख्या 3, उप-संभागीय मजिस्ट्रेट, सदर, वाराणसी के समक्ष वापस भेज दिया गया है ताकि कार्यवाही को उसकी मूल संख्या पर पंजीकृत किया जा सके और याचिकाकर्ताओं को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 धारा 31/32 के तहत कार्यवाही में पेश किया जा सके। यह

भी निर्देश दिया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 3, उप-संभागीय मजिस्ट्रेट, सदर, वाराणसी पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के बाद अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति की तारीख से **तीन महीने** की अवधि के भीतर मामले का निर्णय शीघ्रता से करें।

(2023) 8 ILRA 1123

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार

रिट-ए संख्या 27553 वर्ष 2019

मेसर्स संतोष प्रिजर्वेशन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य ....याचिकाकर्ता

बनाम

दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री मयंक कुमार अग्रवाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री बालेश्वर चतुर्वेदी, सुश्री उषा किरण, सुश्री उषा किरण

तथ्य: याचिकाकर्ता, एचवी-2 टैरिफ के तहत 280 केवीए पावर लोड के साथ एक कोल्ड स्टोरेज का संचालन कर रहे थे, जिनका 12.06.2019 को निरीक्षण किया गया था। निरीक्षण में मुख्य मीटर और पोल मीटर के साथ छेड़छाड़, आर और बी चरणों में कटे तारों का पता चला, जिसके परिणामस्वरूप ट्रांसफार्मर रीडिंग में उपयोग का संकेत देने के बावजूद शून्य दर्ज की गई खपत थी। एक निरीक्षण रिपोर्ट ने विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 के तहत बिजली चोरी की पुष्टि की। याचिकाकर्ताओं ने 56 लाख रुपये समझौता शुल्क के रूप में और 10 लाख रुपये अनुमानित मूल्यांकन के लिए अदा किए। 23,48,452 रुपये का अनंतिम मूल्यांकन जारी किया गया था, जिसे बाद में 22.08.2019 के अंतिम मूल्यांकन में घटाकर 20,54,895 रुपये कर दिया गया। अदालत ने याचिका खारिज कर दी और कहा कि निरीक्षण के दौरान छेड़छाड़ स्पष्ट थी, क्योंकि मीटर में शून्य खपत दर्ज की गई थी, जिससे बिजली चोरी का निष्कर्ष परीक्षण रिपोर्ट से स्वतंत्र था। खंड 5.6(सी)(iii) को अनुपयुक्त माना गया, क्योंकि चोरी का निष्कर्ष प्रयोगशाला परीक्षणों पर आधारित नहीं था। 59 दिनों तक मूल्यांकन को चुनौती नहीं दी गई, और अदालत ने अंतिम मूल्यांकन आदेश में कोई अवैधता नहीं पाई। 56 लाख रुपये की राशि को आपराधिक मुकदमे से बचने के लिए शमन शुल्क के रूप में पुष्टि की गई , न कि बिजली शुल्क के रूप में, और याचिकाकर्ता के धन वापसी के दावे को खारिज कर दिया गया। अदालत ने इस बात पर ज़ोर दिया कि बिजली एक सार्वजनिक वस्तु है और मीटर से छेड़छाड़ रोकने के लिए मूल्यांकन को बरकरार रखा।

महत्वपूर्ण शब्द: बिजली चोरी, मीटर से छेड़छाड़, यूपी विद्युत आपूर्ति संहिता 2005, खंड 5.6 (सी) (iii), समझौता शुल्क, मूल्यांकन

आदेश, बिजली का अनधिकृत उपयोग, धारा 135 विद्युत अधिनियम 2003, सार्वजनिक भलाई, स्वतंत्र प्रयोगशाला परीक्षण, रिट याचिका, अनुच्छेद 226।

याचिका खारिज।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

1. मो. सगीर बनाम दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड

2. श्रीमती. अमरावती देवी बनाम पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड एवं अन्य

3. केसी निनान बनाम केरल राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता एवं माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा पारित)

पृष्ठभूमि

1. याचिकाकर्ताओं के पास कोल्ड स्टोरेज चलाने के लिए 280 केवीए का अनुबंधित विद्युत लोड था । एमआरआई डाउनलोडिंग की सुविधा के साथ लागू टैरिफ HV-2 था। याचिकाकर्ताओं के परिसर में दिनांक 12.06.2019 को चेकिंग किए जाने पर मुख्य मीटर की विन्डो सील और नेट मीटर में टीपी सील के साथ छेड़छाड़ की हुई पाई गई। टीपी कवर खोलने पर पता चला कि 'R और B फेज" तार काट दिया गया था। नतीजतन, बिजली करंट की मीटरिंग बाधित हो गयी। मीटर शून्य खपत दिखा रहा था।

2. पोल मीटर के विंडो कवर की सील के साथ भी छेड़छाड़ की हुई मिली। टीपी कवर की दो सीलों से भी छेड़छाड़ की गई थी। उक्त मीटर में भी R व B फेज के तार कटने से मीटर शून्य खपत रिकार्ड कर रहा था। हालाँकि, ट्रांसफार्मर को जब ट्रंक परीक्षक के साथ परीक्षण किया गया तो R फेज पर 112 एम्पियर, Y फेज पर 120 एम्पियर और B फेज पर 125 एम्पियर रिकॉर्डिंग कर रहा था। जाहिर है, याचिकाकर्ता ने मीटर ख़राब होना बताया जिसके कारण बिजली की खपत रिकॉर्ड नहीं हो पा रही थी। उत्तरदाताओ (रिस्पोंन्डेंटस)ने एमआरआई रीडिंग ली और उसके बाद जांच याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधि की उपस्थिति में तीनों मीटरों को अलग किया गया और सील करके परीक्षण के लिए भेजा गया। मौके पर निरीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई और उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख करते हुए यह कहा गया कि यह बिजली की चोरी की श्रेणी में आता है जो विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 के तहत दंडनीय है (संक्षेप में 'अधिनियम' कहा जाएगा)। इस पर निरीक्षण दल के और याचिकाकर्ता कंपनी के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर भी हैं।

3. याचिकाकर्ताओं ने उसी तारीख को 56 लाख रुपये का चेक बिजली विभाग को सौंपा। प्रतिवादी विद्युत विभाग के अनुसार उक्त चेक याचिकाकर्ता द्वारा कंपाउंडिंग शुल्क के रूप में इसे न भुनाने के मौखिक अनुरोध के साथ दिया गया था क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा 48 घंटे के अंदर RTGS के ऑनलाइन माध्यम से राशि जमा कर दी जाएगी।

4. अगली ही तारीख पर यानी 13.06.2019, को प्रतिवादी क्रमांक 2 ने अधीक्षण अभियंता, विद्युत वितरण खण्ड-III, सैफई ,इटावा को लिखा कि 59 दिनों की अवधि के लिए एसेसिबल यूनिट 138221 होगी।

5. प्रतिवादी-विद्युत विभाग के अनुसार, जैसा कि याचिकाकर्ता ने 56 लाख रुपये का चेक कंपाउंडिंग शुल्क के रूप में सौंपा था और विभाग को आश्वासन भी दिया था कि 48 घंटे के भीतर चेक को नकद राशि से बदल दिया जाएगा इसलिए 13.6.2019 को याचिकाकर्ता के परिसर में एक नया मीटर लगाया गया और बिजली आपूर्ति बहाल कर दी गई।

6. यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता ने 56 लाख रुपये RTGS के माध्यम से (14.6.2019 को 30 लाख रुपये और 15.6.2019 को 26 लाख रुपये) जमा किए। 56 लाख रुपये की एक समेकित रसीद प्रतिवादी-विद्युत विभाग द्वारा दिनांक 17.6.2019 को जारी की गई और चेक लौटा दिया गया। रसीद में कहा गया है कि याचिकाकर्ता के परिसर में 12.6.2019 को की गई जांच के आधार पर जमा की गई राशि कंपाउंडिंग शुल्क के मद में थी।

7. याचिकाकर्ता ने 10 लाख रुपये "विद्युत व्यय" के लिए जमा की गई राशि' उल्लेख करते हुए भी जमा किए। याचिकाकर्ता के अनुसार ये शुल्क उसके खिलाफ किए जाने वाले मूल्यांकन को आंशिक रूप से संतुष्ट को करने के लिए था। आरोप है कि बिजली आपूर्ति उक्त राशि जमा करने के बाद ही बहाल की गयी।

8. 15.06.2019 को याचिकाकर्ता को 23,48,452/- रुपये के अनंतिम मूल्यांकन के साथ कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और याचिकाकर्ता को पंद्रह दिन के भीतर आपत्ति दाखिल करने को कहा गया। दिनांक 29.06.2019 को याचिकाकर्ता ने बिजली चोरी से इनकार करते हुए अपना जवाब प्रस्तुत किया और उत्तरदाताओ द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को चुनौती दी।

9. 22.8.2019 को, उत्तरदाताओं ने अंतिम असेसमेंट आदेश जारी किया। आदेश में उल्लेख किया गया है कि यह मीटर से छेड़छाड़ करके बिजली चोरी करने का मामला था। पहले प्रस्तावित मूल्यांकन राशि रु. 23,48,452/- घटाकर रु. 20,54,895/- कर दी गई और याचिकाकर्ता ने जो10 लाख रुपये अंतिम मूल्यांकन आदेश की प्रत्याशा में अनंतिम आधार पर जमा किये गए थे उक्त राशि का उचित समायोजन कर दिया गया था। कनेक्शन काटने और पुनः जोड़ने के लिए 2,000/- रुपये और शेष रु. 9,98,000 का मूल्यांकन राशि के विरूद्ध समायोजन किया गया। उक्त तथ्य का अभियंता, विद्युत वितरण खण्ड-तृतीय, सैफई, इटावा के हस्ताक्षर से जारी कार्यालय मेमो दिनांकित 27.8.2019 में विधिवत उल्लेख किया गया।

10. प्रारंभ में याचिकाकर्ता ने वसूली नोटिस दिनांकित 27.7.2019 को चुनौती दी थी। इसके बाद, रिट याचिका में संशोधन करके

याचिकाकर्ता ने 22.8.2019 के अंतिम मूल्यांकन आदेश पर भी सवाल उठाया है। उन्होंने उत्तरदाताओं को उनसे अब तक रुपये वसूले गये 56 लाख और 10 लाख रुपए की धनराशि18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित वापस करने का निर्देश करने के लिए एक मैंडमस (परमादेश रिट) के लिए भी प्रार्थना की है।

विरोधी तर्क

11. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उत्तरदाता द्वारा जो मूल्यांकन किया गया है वह कार्यकारी अभियंता डीवीवीएनएल (परीक्षण डिवीजन) की परीक्षण रिपोर्ट दिनांकित 13.6.2019 पर आधारित हैं। कहा गया है कि जब परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर मूल्यांकन किया गया है तो याचिकाकर्ता को स्वतंत्र प्रयोगशाला से मीटर का परीक्षण कराने का अवसर देना अनिवार्य था। चूँकि उपरोक्त विकल्प नहीं दिया गया था इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा किया गया मूल्यांकन अवैध था। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के दो फैसलों पर भरोसा जताया है (i) **मो. सगीर बनाम दक्षिणांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड (2014 (6) एडीजे 219)** और (ii) **श्रीमती अमरावती देवी बनाम पूर्वांचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड और अन्य (2009 (2) एडब्ल्यूसी 1189) ।**

12. आगे यह कहा गया है कि प्रस्तावित मूल्यांकन 23,48,452 रुपये का था जबकि नोटिस दिनांक 22.8.2019 में उल्लेख है कि याचिकाकर्ता से रु.10,56,895/- की वसूली होनी थी। इसके अलावा अंतिम मूल्यांकन आदेश में उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई कारण नहीं दिया गया है। यह भी आग्रह किया गया है कि मूल्यांकन आदेश एक नान स्पीकिंग आदेश है इसलिए, कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं है।

13. दूसरी तरफ प्रतिवादी-विद्युत विभाग के लिए विद्वान वकील ने कहा कि यह बिजली चोरी का मामला है। याचिकाकर्ता को मुख्य मीटर के साथ-साथ पोल मीटर से भी छेड़छाड़ करके रंगे हाथ बिजली चोरी करते हुए पकड़ा गया। याचिकाकर्ता ने स्वयं को और अपने निदेशकों को आपराधिक कार्यवाही से बचाने के लिए कंपाउंडिंग शुल्क जमा करके अपराध को कंपाउंड कराना चुना। याचिकाकर्ता ने प्रस्तावित आकलन के विरूद्ध10 लाख रुपये की एक और राशि जमा करके विद्युत आपूर्ति बहाल कराने का अनुरोध किया। विभाग ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता कोल्ड स्टोरेज चलाता है याचिकाकर्ता के अनुरोध पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया और बिजली की आपूर्ति बहाल करके पुराने मीटर को बदल कर नया मीटर भी लगा दिया। यह कहा गया है कि चूंकि बिजली की चोरी नग्न आंखों के लिए भी स्पष्ट थी इसलिए सर्वोत्तम निर्णय मूल्यांकन के लिए आगे बढ़ने में कोई बाधा नहीं थी आग्रह किया गया है कि जब कोई उपभोक्ता किसी कृत्रिम साधन, या ऐसे साधन जो बोर्ड, या लाइसेंसधारी द्वारा अधिकृत नहीं हैं का उपयोग करता है और इससे बिजली की चोरी होती है तो कानून के तहत यह अभिधारणा है कि बिजली का निकाला जाना,

उपभोग या उपयोग उपभोक्ता के द्वारा बेईमानी की नियत से किया गया है। याचिकाकर्ता उक्त अवधारणा को खंडित करने में विफल रहा था। प्रस्तुत मामले में बिजली की चोरी से संबंधित निष्कर्ष परीक्षण के परिणाम पर आधारित नहीं है। यह तो निरीक्षण के समय ही तय हो गया था। इसलिए मीटर का परीक्षण करवाना या याचिकाकर्ता को उसकी पसंद की एक स्वतंत्र प्रयोगशाला में मीटर का परीक्षण करवाए जाने का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं था। आगे कहा गया है कि वास्तव में याचिकाकर्ता ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था कंपाउंडिंग शुल्क और जमा कर दिया था और इसी कारण से उसके खिलाफ कोई अन्य कठोर कार्रवाई नहीं की गई। उपरोक्त स्वीकृत तथ्य को ध्यान में रखते हुए, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अंतिम मूल्यांकन का आदेश किसी भी प्रकार से अवैध है, अथवा न्यायसंगत और विवेकसम्मत क्षेत्राधिकार के तहत इसमें हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश है।

मुद्दा (वादबिंदु)

14. मुख्य विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या प्रस्तुत मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ में मूल्यांकन कार्यवाही को याचिकाकर्ता को अपनी पसंद की स्वतंत्र प्रयोगशाला में मीटर का परीक्षण कराने का विकल्प नहीं दिए जाने के कारण अवैध माना जा सकता है जैसा कि उ.प्र. विद्युत आपूर्ति कोड, 2005.की धारा 5.6(C)(iii) के तहत प्रावधान किया गया है।

प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान

15. विद्युत अधिनियम, 2003 (संक्षेप में, इसके बाद इसे "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 126 मूल्यांकन अधिकारी को अधिकार देती है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा देय बिजली शुल्क का अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार अनंतिम आकलन करें जो किसी भी स्थान या परिसर के निरीक्षण पर, या उपकरणों, गैजेट्स, मशीनों, उपकरणों के निरीक्षण के बाद उनसे जुड़ा हुआ, या उपयोग करने वाला पाया गया है, या किसी व्यक्ति के द्वारा रखे गए रिकॉर्ड के निरीक्षण के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अमुक व्यक्ति बिजली के अनधिकृत उपयोग में लिप्त पाया गया है। वाक्यांश "बिजली के अनधिकृत उपयोग" को धारा 126(6) के स्पष्टीकरण में इस प्रकार परिभाषित किया गया है,

"(बी) "बिजली का अनधिकृत उपयोग" का अर्थ है -

बिजली का

(i) किसी कृत्रिम तरीके से; या

(ii) **ऐसे माध्यम से जो संबंधित व्यक्ति, लाइसेंसधारी या प्राधिकारी द्वारा अधिकृत नहीं है या**

(iii) **छेड़छाड़ किए गए मीटर के माध्यम से; या**

(iv) जिस उद्देश्य के लिए बिजली का उपयोग अधिकृत किया गया है उसके अलावा अन्य प्रयोजन के लिए या

(v) उन परिसरों या क्षेत्रों के अलावा जिनके लिए

बिजली की आपूर्ति अधिकृत थी।"

उपयोग किया जाना। (जोर दिया गया)

16. उपधारा (5) के अनुसार ऐसा मूल्यांकन उस संपूर्ण अवधि के लिए होगा जिसके दौरान बिजली का ऐसा अनधिकृत उपयोग किया गया है और यदि, वह अवधि निश्चित नहीं की जा सकती तो ऐसी अवधि निरीक्षण की तिथि से ठीक पहले के बारह महीने की अवधि तक सीमित होगी।

17. धारा 135 का प्रासंगिक भाग जो "बिजली चोरी" से संबंधित है , इस प्रकार है:-

"135. बिजली की चोरी.-[(1) जो कोई भी बेईमानी से,

(ए) लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता से ओवरहेड, भूमिगत या पानी के नीचे की लाइनें या केबल,या सर्विस वायर, या उसकी सेवा सुविधाएं, जैसा भी मामला हो; को किसी भी प्रकार के कनेक्शन के माध्यम से, टैप करता, बनाता या बनवाता है

(बी) किसी मीटर से छेड़छाड़ करता है, छेड़छाड़ किए गए मीटर को स्थापित करता है या उसका उपयोग करता है,करंट रिवर्सिंग ट्रांसफार्मर, लूप कनेक्शन या कोई भी अन्य उपकरण या विधि जो सटीकता या उचित पंजीकरण, अंशांकन या मीटरिंग में हस्तक्षेप करती है या अन्य प्रकार से बिजली चोरी होने या इसके बर्बाद होने में परिणामित होती है, या

(सी) किसी विद्युत मीटर, इक्विपमेंट, एपरेटस या तार को नुकसान पहुंचाता है या नष्ट कर देता है, या उनमें से किसी को इतना क्षतिग्रस्त या नष्ट होने का कारण बनता है या होने देता है कि वे बिजली की उचित और सटीक मीटरिंग में हस्तक्षेप उत्पन्न करें

(डी) छेड़छाड़ किए गए मीटर के माध्यम से बिजली का उपयोग करता है; या

(ई) जिस उद्देश्य के लिए बिजली का उपयोग अधिकृत था, उसके अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए बिजली को अबस्ट्रेक्ट करता, उपभोग या उपयोग करता है उसे तीन वर्ष तक की सज़ा या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकेगा। बशर्ते कि ऐसे मामले में जहां लोड समाप्त हो गया हो, उपभोग कर लिया गया हो, या उपयोग किया गया या अबस्ट्रेक्ट करने का प्रयास किया गया या उपयोग या उपभोग का प्रयास किया गया -

(i) 10 किलोवाट से अधिक नहीं है तो पहली बार लगाया गया जुर्माना ऐसी बिजली चोरी से हुए वित्तीय लाभ के तीन गुना से कम नहीं होगा और दूसरी या इसके बाद की स्थिति में लगाया गया जुर्माना बिजली की ऐसी चोरी के कारण हुए वित्तीय लाभ के छह गुना से कम नहीं होगा

(ii) 10 किलोवाट से अधिक होने पर पहली बार दोषसिद्धि पर जुर्माना ऐसी बिजली चोरी से हुए वित्तीय लाभ के तीन गुना से कम नहीं होगा और दूसरी बार या बाद की स्थिति में दोषसिद्धि पर कम से कम छह महीने के कारावास की सज़ा होगी जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना बिजली की

ऐसी चोरी के कारण हुए वित्तीय लाभ के छह गुना से कम नहीं होगा।

बशर्ते कि दूसरे और उसके बाद दोषसिद्धि की स्थिति में जहां उस व्यक्ति द्वारा उपभोग कर लिया गया , या उपयोग किया गया या अबस्ट्रेक्ट करने का प्रयास किया गया या उपयोग या उपभोग का प्रयास किया गया लोड 10 किलोवाट से अधिक है,

तो ऐसे व्यक्ति को एक अवधि के लिए जो तीन महीने से कम नहीं होगी लेकिन दो साल तक बढ़ भी सकती है किसी भी प्रकार की बिजली आपूर्ति प्राप्त करने से भी वंचित कर दिया जाएगा और उस अवधि के लिए किसी अन्य स्रोत या उत्पादन स्टेशन से विद्युत आपूर्ति प्राप्त करने से रोक दिया जाएगा।

बशर्ते कि यदि यह प्रावधान किया गया है कि कोई कृत्रिम साधन या ऐसे साधन जो बोर्ड या लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता द्वारा अधिकृत नहीं हैं उपभोक्ता द्वारा बिजली की अबस्ट्रेक्शन के लिए, खपत या उपयोग के लिए मौजूद हैं तब विपरीत साबित न हो पाने की स्थिति यह माना जाएगा कि उपभोक्ता द्वारा बेईमानी की नियत से बिजली का अबस्ट्रेक्शन, उपभोग या उपयोग किया गया है

(1ए) इस अधिनियम के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता, जैसा भी मामला हो, ऐसी बिजली की ऐसी चोरी का पता लगाने पर तुरंत बिजली की आपूर्ति बंद कर सकते हैं:

यह भी कि लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का कोई ऐसा अधिकारी, जो उपयुक्त आयोग द्वारा इस प्रयोजन के लिए प्राधिकृत किया गया है या लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता का कोई आयोग द्वारा अधिकृत पद से ऊँचे पद का अन्य अधिकारी,जैसी भी स्थिति हो, बिजली की आपूर्ति लाइन काट देगा:

यह भी कि लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता जैसा भी मामला हो, का ऐसा अधिकारी, लाइन काटने के चौबीस घंटे के भीतर संबंधित क्षेत्राधिकार वाले पुलिस स्टेशन में ऐसे अपराध के घटित होने के संबंध में शिकायत दर्ज कराएगा।

बशर्ते यह भी कि लाइसेंसधारी या आपूर्तिकर्ता, जैसा भी मामला हो, निर्धारित राशि के जमा करने या भुगतान पर इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप बिजली शुल्क अदा करने पर शिकायत(जैसा कि इस खंड के दूसरे परंतुक में उल्लिखित है)दर्ज कराने के दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना 48 घंटे के भीतर(जोर दिया गया) बिजली की आपूर्ति लाइन बहाल करेंगे।

18. धारा 152 की उपधारा (2) जो अपराध की कंपाउंडिंग की बात करती है, इस प्रकार है:-

"(2) **उपधारा (1) के अनुसार धनराशि का भुगतान करने पर** कोई भी व्यक्ति जो हिरासत में है उस अपराध के लिए स्वतंत्र कर दिया जाएगा **और ऐसे उपभोक्ता या व्यक्ति के विरुद्ध किसी आपराधिक न्यायालय में कोई**

कार्यवाही संस्थित नहीं होगी और न ही जारी रखी जाएगी"

(जोर दिया गया)

19. राज्य आयोग ने उ.प्र. विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 अधिनियम की धारा 50 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए उपरोक्त प्रावधानों को अधिनियम के उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए किया गया है संहिता का प्रासंगिक खंड 5.6 दोषपूर्ण मीटरों से संबंधित है।

उसका एक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

5.6 ख़राब मीटर: (ए) लाइसेंसधारी के पास मीटर की सटीकता के बारे में एक उचित संदेह होने पर मीटर एवं संबंधित उपकरण को परीक्षण करने का अधिकार होगा और उपभोक्ता लाइसेंसधारी को परीक्षण के संचालन में **आवश्यक सहायता प्रदान करेगा** । हालाँकि उपभोक्ता को परीक्षण के दौरान उपस्थित रहने की अनुमति दी जाएगी।

(बी) एक उपभोक्ता लाइसेंसधारी से अपने परिसर में स्थापित मीटर का परीक्षण करने का अनुरोध कर सकता है यदि उसे मीटर की सटीकता पर संदेह है कि मीटर की रीडिंग उसके बिजली की खपत के अनुरूप नहीं है या,मीटर के रुकने, या सील के खराब होने पर निर्धारित प्रारूप (अनुलग्नक 5.1) में लाइसेंसधारी को अपेक्षित परीक्षण शुल्क के साथ आवेदन करना होगा।

लाइसेंसधारी मीटर का परीक्षण करेगा:

(1) आवेदन प्राप्त होने के 15 दिन के भीतर उपभोक्ता के परिसर में,या

(ii) 30 दिनों के भीतर, लाइसेंसधारी की प्रयोगशाला में या स्वतंत्र प्रयोगशाला में, या

(iii) आवेदन पत्र प्राप्ति के 7 दिनों के भीतर मौजूदा मीटर के साथ श्रृंखला में एक परीक्षणित चेक मीटर स्थापित करके।

(सी) उपभोक्ता के परिसर में मीटर के परीक्षण के मामले में,मीटर की टेस्टिंग न्यूनतम 1 किलोवाट / घंटे खपत के लिए की जाएगी। लाइसेंसधारी की मीटर परीक्षण टीम परीक्षण करने के लिए पर्याप्त क्षमता का ताप भार ले जाएगी। ऑप्टिकल स्कैनर का उपयोग पल्सेज/रिवोल्यूशनज् की गिनती के लिए किया जा सकता है या फिर मीटर का परीक्षण आईएस/आईईआर 1956 के अनुसार या एलटी मीटर के लिए एक्वा-चेक के माध्यम से और दूसरे मीटरों के लिए आरएसएस के माध्यम से किया जाएगा।

इस एक्वा चेक और आरएसएस को साल में एक बार राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की प्रयोगशाला में कैलिब्रेट किया जाएगा।

(i) यदि मीटर ठीक पाया जाता है, तो आगे कार्रवाई नहीं की जाएगी.

(ii) यदि लाइसेंसधारी द्वारा मीटर तेज/धीमा पाया जाता है और उपभोक्ता रिपोर्ट से सहमत है, तो 15 दिन के भीतर इस मीटर के स्थान पर नया मीटर लगाया जाएगा और उस माह से जिस माह में विवाद उत्पन्न हुआ है पहले के

तीन महीने के बिल को परीक्षण परिणाम के अनुसार आगामी बिल में समायोजित कर दिया जायेगा। यदि मीटर धीमा पाया जाता है, तो ये शुल्क उपभोक्ता के अनुरोध पर तीन से अनधिक किस्तों में वसूल किया जाएया।

(iii) **यदि उपभोक्ता परीक्षण के परिणामों पर विवाद करता है, या उपभोक्ता के परिसर में मीटर परीक्षण करना कठिन है** तो लाइसेंसधारी द्वारा खराब मीटर के स्थान पर नया जांचा गया मीटर लगाया जाएगा और उसके बाद **दोषपूर्ण मीटर को उपभोक्ता की उपस्थिति में सील करने के बाद उपभोक्ता की जैसी सहमति हो लाइसेंसधारी की प्रयोगशाला/स्वतंत्र प्रयोगशाला/ या विद्युत निरीक्षक के पास परीक्षण करवाया जाएगा। उपभोक्ता द्वारा विकल्प का एक बार प्रयोग कर लेने पर इसे बदला नहीं जाएगा। परीक्षण प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर लिया गया निर्णय लाइसेंसधारी के साथ-साथ उपभोक्ता के लिए भी अंतिम निर्णय होगा।**

(डी) लाइसेंसधारी के यहां/ स्वतंत्र परीक्षण प्रयोगशाला में मीटर के परीक्षण के मामलों में

(i) उपभोक्ता को परीक्षण की प्रस्तावित तिथि के बारे में कम से कम 7 दिन पहले सूचित किया जाएगा ताकि वह परीक्षण के समय व्यक्तिगत रूप से या अपने किसी अधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित रह सके।

(ii) उपभोक्ता या उसके अधिकृत प्रतिनिधि व्यक्ति यदि कोई उपस्थित हो तो उसके हस्ताक्षर परीक्षण परिणाम पत्रक पर प्राप्त किये जाएंगे।

(iii) **परीक्षण, बिलिंग और उपभोक्ता द्वारा परीक्षण के परिणामों पर विवाद के मामले में वही होगा जैसा कि ऊपर खंड 5.6 (सी) में दिया गया है।**

नोट: (i) लाइसेंसधारी एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर प्रतिष्ठित और अनुमोदित परीक्षण प्रयोगशालाओं की सूची, उनके परीक्षण शुल्क सहित आयोग को दे सकता है

(ii) हालांकि आईईआर 1956 के प्रावधान अधिनियम की धारा 53 और 55 के तहत नियम बनने तक लागू रहेंगे।

(ई) यदि चेक मीटर स्थापित किया गया है , और परीक्षण की अवधि के 7-15 दिनों में, मौजूदा मीटर अनुमन्य सीमा से अधिक तेज़ या धीमी गति से चलता हुआ पाया जाता है और परीक्षण परिणाम उपभोक्ता द्वारा विवादित नहीं हैं, तो चेक मीटर को भविष्य की पैमाइश के लिए उसके स्थान पर छोड़कर इस मीटर को हटा दिया जाएगा और जिस माह में विवाद उत्पन्न हुआ है उसके पिछले तीन महीनों के बिल परीक्षण परिणामों के अनुसार अगले बिल में समायोजित किये जाएंगे । जहां परीक्षण का परिणाम विवादित है वहाँ जैसा भी मामला हो,उपरोक्त खंड 5.6 (सी) के अनुसार प्रक्रिया का पालन किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

विश्लेषण

20. **श्रीमती अमरावती देवी** (उपरोक्त) में चेकिंग टीम ने पाया कि मीटर धीमी गति से चल रहा था, इसलिए उसे जांच के लिए विभाग

की प्रयोगशाला भेजा गया था। परीक्षण के दौरान पता चला कि मीटर से छेड़छाड़ की गई थी। उपभोक्ता को मीटर का परीक्षण एक स्वतंत्र प्रयोगशाला में करा पाने का विकल्प नहीं दिया गया। उपरोक्त पृष्ठभूमि में खंड 5.6(सी)(iii) पर भरोसा करते हुए, यह अवधारित किया गया कि जब अतिरिक्त बिजली शुल्क की मांग परीक्षण रिपोर्ट पर आधारित हो तो उपभोक्ता को संहिता के खंड 5.6(सी)(iii) के मद्देनजर मीटर का परीक्षण बाहरी एजेंसी में कराने का अवसर मिलना चाहिए था।

उक्त निर्णय का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:- "6. खंड 5.6 (सी) को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि यह खंड स्पष्ट शब्दों में घोषित करता है कि उपभोक्ता की उपस्थिति में दोषपूर्ण मीटर की सीलिंग के बाद उपभोक्ता की सहमति से लाइसेंसधारी की प्रयोगशाला/स्वतंत्र प्रयोगशाला/विद्युत निरीक्षक द्वारा इस मीटर का परीक्षण किया जाएगा। इस प्रकार उपभोक्ता की सहमति मीटर के निगम की प्रयोगशाला या किसी अन्य स्वतंत्र एजेंसी की प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए आवश्यक है।आगे यह कहा गया है कि उपभोक्ता द्वारा एक विकल्प का प्रयोग कर लेने पर उसे बदला नहीं जा सकता। इसलिए खंड अधिकारियों को मीटर सील करने के बाद उपभोक्ता की सहमति से इसका परीक्षण करवाने का अधिकार देता है। चूंकि खंड उपभोक्ता के विरुद्ध कठोरता से कार्य करता है इसलिए इसकी व्याख्या में भी इसे कठोरता से समझा जाना चाहिए।

उपभोक्ता को मीटर की जांच स्वतंत्र एजेंसी से कराने का अधिकार है। इसलिए उपभोक्ता को उसके अधिकार से अवगत कराना अधिकारियों का कर्तव्य है। उपखंड (सी) (ii) से उत्पन्न अधिकार का प्रयोग करते हुए मीटर को परीक्षण के लिए भेजने में अपने इस कर्तव्य का निर्वहन करने में विफलता अधिकारियों द्वारा मीटर को सील करने की संपूर्ण कार्यवाही को अनियमित और अवैध वना देता है।"

21. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा **मोहम्मद सगीर** (उपरोक्त) पर भारी भरोसा जताया गया है यह उल्लेखनीय है कि निरीक्षण के समय, मीटर सील, लीड सील, अल्ट्रासोनिक वेल्डिंग सील सही पाई गई । हालाँकि, चूंकि उत्तरदाताओं को मीटर में छेड़छाड़ का संदेह था इसलिए उन्होंने मीटर को अपने कब्जे में ले लिया। उपभोक्ता को उचित सूचना देकर एक तारीख नियत की गई थी और उस तारीख पर उक्त उद्देश्य हेतु गठित समिति के समक्ष मीटर खोला गया। यह पाया गया कि यद्यपि बाहरी मुहरें बरकरार थीं, लेकिन याचिकाकर्ता ने मीटर के अंदर अतिरिक्त तार और रिमोट कंट्रोल सैंसिंग डिवाइस लगाया था। इसके बाद समिति द्वारा किए गए मीटर के निरीक्षण के आधार पर उपभोक्ता द्वारा बिजली के अनाधिकृत उपयोग का मूल्यांकन किया गया। मूल्यांकन आदेश को इस आधार चुनौती दी गई कि उपभोक्ता को खंड 5.6(सी)(iii) के तहत एक स्वतंत्र प्रयोगशाला में मीटर की जांच कराने का मौका नहीं दिया गया। दूसरी तरफ बिजली विभाग ने यह तर्क देते हुए दावे का विरोध किया कि यह मीटर से छेड़छाड़ का मामला था जहां मीटर के अंदर कोई बाहरी डिवाइस मिली थी इसलिए, खंड 5.6 जो "दोषपूर्ण मीटर" से संबंधित है यहाँ लागू नहीं

होगा। उपरोक्त विवाद यह मानते हुए निरस्त कर दिया गया कि खंड 5.6(ए) की व्याख्या ऐसे संकीर्ण तरीके से नहीं की जा सकती कि मीटर से छेड़छाड़ के मामले इससे बाहर रह जाएं क्योंकि ऐसा अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाना नहीं होगा। यह अवधारित किया गया कि छेड़छाड़ वाला मीटर भी एक दोषपूर्ण मीटर होगा और धारा 5.6 के दायरे में आएगा। प्रासंगिक आब्जर्वेशन इस प्रकार हैं:-

"25. अब उत्तरदाताओं के विद्वान वकील द्वारा निवेदित किए गए और आक्षेपित आदेश तथा जवाबी हलफनामे में अपनाया गया रुख यह है कि संहिता,2005 की धारा 5.6 तब लागू नहीं होती जब मीटर से छेड़छाड़ का कोई आरोप हो। संहिता, 2005 का खंड 5.6 (ए) प्रावधान करता है कि लाइसेंसधारी को किसी भी मीटर और संबंधित उपकरण का परीक्षण करने का अधिकार होगा"। हालांकि शब्द का शीर्षक "ख़राब मीटर" है, लेकिन उक्त शीर्षक ठोस प्रावधान को नियंत्रित नहीं कर सकता जब प्रावधान स्पष्ट और सुनिश्चित हो । **लाइसेंसधारी का मीटर को परीक्षण करने का अधिकार छीना नहीं जा सकता जहां लाइसेंसधारी को उचित संदेह है कि मीटर के साथ छेड़छाड़ हुई है और ऐसी स्थिति मे जैसा कि उत्तरदाताओं द्वारा कहा गया है कि यह अधिकार केवल ख़राब मीटरों तक ही सीमित है यह व्याख्या अधिनियम, 2003 के उद्देश्य को आगे नहीं बढाएगी।**

26. संहिता, 2005 का खंड 5.9 खराब/जले मीटरों को बदलने में आनै वाली लागत से संबंधित है। संहिता, 2005 उपखंड (ए) (ii) में"परीक्षण के परिणाम स्वरूप, उपभोक्ता द्वारा जानबूझकर किए गए हस्तक्षेप, या छेड़छाड़ या किसी अन्य कारण से मीटर खराब हो गया था" शब्दों का उपयोग किया गया है। इस प्रकार उप-खंड 5.6 और 5.9 को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि मीटर को खराब मीटर माना जाना है यदि उपभोक्ता द्वारा जानबूझकर छेड़छाड़ या किसी अन्य कारण से किया गये कार्य के कारण मीटर खराब हुआ है। इस प्रकार ऐसे मामलों में जहां आरोप है कि उपभोक्ता ने मीटर से छेड़छाड़ की है उक्त मीटर पूरी तरह से कोड, 2005 के खंड 5.6 में खराब की परिभाषा के अंतर्गत आता है। और उत्तरदाताओं का यह कहना कि दिए गए मामले में खंड 5.6 आकर्षित नहीं होता, गलत है।

22. उपरोक्त व्याख्या निश्चित रूप से अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाती है। हालाँकि मूल मुद्दा यह है कि क्या छेड़छाड़ के सभी मामलों में उपभोक्ता को मीटर की जांच स्वतंत्र प्रयोगशाला में कराने का विकल्प देना अनिवार्य है जिसके न देने पर मूल्यांकन अवैध हो जाएगा।

23. संहिता का खंड 5.6 लाइसेंसधारी और उपभोक्ता दोनों को मीटर की जांच कराने का अधिकार देता है। पहले उदाहरण में परीक्षण उपभोक्ता के परिसर में किया जाता है। यदि कोई दोष नहीं पाया जाता है तो आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाती है। हालाँकि यदि मीटर तेज/धीमा चलता पाया जाता है और उपभोक्ता रिपोर्ट से सहमत है तो मीटर को एक नए मीटर से बदल दिया जाएगा और जिस महीने में विवाद उत्पन्न हुआ है उससे पहले के तीन

महीने के बिल परीक्षण के परिणाम के अनुसार आगामी बिलों में समायोजित कर लिया जायेगा। दूसरी ओर यदि वह परीक्षण परिणाम पर विवाद करता है या परीक्षण उसके परिसर में संभव नहीं है तो खराब मीटर की जांच उपभोक्ता की सहमति से लाइसेंसधारी की प्रयोगशाला/स्वतंत्र प्रयोगशाला/विद्युत निरीक्षक से कराई जाएगी। उपभोक्ता द्वारा एक बार प्रयोग किया गया विकल्प बदला नहीं जाएगा। टेस्ट लैब की रिपोर्ट के आधार पर फैसला लाइसेंसधारक के साथ-साथ उपभोक्ता पर भी अंतिम और बाध्यकारी होगा।

24. संहिता की योजना से पता चलता है कि उपरोक्त प्रक्रिया का पालन केवल उन मामलों में किया जाना आवश्यक है जहां जांच रिपोर्ट के आधार पर यह सुनिश्चित किया जाना है कि क्या मीटर धीमा या तेज चल रहा है। यह मीटरिंग उपकरण में यांत्रिक दोष के कारण या इसके साथ छेड़छाड़ के कारण हो सकता है जो नग्न आंखों से दिखाई दे भी सकता है और नहीं भी। जब यह नग्न आंखों से दृश्यमान होता है जैसा कि प्रस्तुत मामले में 'शून्य' खपत दर्ज करने पर बिजली चोरी का निष्कर्ष निकलता है तब यह निष्कर्ष परीक्षण रिपोर्ट पर निर्भर नहीं है।

25. खंड 5.6(सी)(iii) का उद्देश्य किसी पक्षपात की शिकायत को खारिज करना है यदि मीटर का परीक्षण लाइसेंसधारी की प्रयोगशाला में या विद्युत निरीक्षक द्वारा मीटर से छेड़छाड़ या किसी अन्य कारण से तेज/धीमी गति से चलने का परीक्षण रिपोर्ट से पता लगाया जाना है। खंड 5.6(सी)(iii) के तहत उपभोक्ता को मीटर का परीक्षण उसकी पसंद की प्रयोगशाला में करवाए जाने का विकल्प देना होगा। हालाँकि जब छेड़छाड़ का निष्कर्ष प्रयोगशाला के परीक्षण/विद्युत निरीक्षक की रिपोर्ट पर आधारित नहीं है,महज यह तथ्य कि विभाग ने मीटर को जांच के लिए भेज दिया है, उपभोक्ता के पक्ष में कोई नया अधिकार प्रदान नहीं करता जो वास्तव में कभी अस्तित्व में नहीं था। जिसके परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति में खंड 5.6(सी)(iii) आकर्षित नहीं होगा।

26. हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने '**K C निनान बनाम केरल राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य**'2023 SCC OnLine SC 663 के मामले में कहा कि "बिजली का गठन 'सार्वजनिक हित(पब्लिक गुड) के लिए किया गया है। न्यायालय की व्याख्या इस सार्वजनिक हित को बढ़ावा देने वाली होनी चाहिए। हमारी राय में, उपरोक्त व्याख्या से मीटर से छेड़छाड़ के बेशर्म कृत्य से मुकाबला करने में मदद मिलेगी और 'सार्वजनिक हित' की लूट को रोकने और अधिनियम और संहिता के उद्देश्य को आगे बढ़ाने को गति मिलेगी।

27. **मो. सगीर** (उपरोक्त) एक ऐसा मामला था जहां छेड़छाड़ निरीक्षण के समय स्पष्ट नहीं हुई थी। लाइसेंसधारी को केवल संदेह था और इसलिए उसने मीटर को परीक्षण के लिए भेजा। इसलिए छेड़छाड़ के संबंध में अंतिम निष्कर्ष के रूप में तीन सदस्यों की समिति द्वारा दी गई परीक्षण रिपोर्ट को आधार बनाया गया था इसलिए, उपभोक्ता को उसकी पसंद की प्रयोगशाला में मीटर का परीक्षण करवाने का

अधिकार प्राप्त होना उचित था। श्रीमती अमरावती देवी के मामले में भी स्थिति भी वैसी ही थी। मौजूदा मामले में छेड़छाड़ स्पष्ट थी इसको लेकर रत्ती भर भी संदेह नहीं है।

इसके अलावा मीटर में खपत शून्य रिकार्ड हो रही थी इसलिए, मीटर कितना धीमा चल रहा था ऐसा भी कोई मुद्दा नहीं था।

28. मौजूदा मामला मीटर को बाय-पास करते हुए मुख्य लाइन से टैपिंग द्वारा बिजली चोरी के मामले जैसा है। ऐसे मामलों में मूल्यांकन करने का फार्मूला धारा 126 की उपधारा (5) द्वारा शासित होता है जिसमें कहा गया है कि मूल्यांकन अनधिकृत उपयोग की पूरी अवधि के लिए किया जाएगा और यदि उक्त अवधि अनिश्चित है तो ऐसी अवधि निरीक्षण की तारीख से ठीक पहले बारह महीने की अवधि तक सीमित होगी।

29. वर्तमान मामले में उत्तरदाताओं ने केवल 59 दिनों के लिए मूल्यांकन किया है। यह रिकॉर्ड पर नहीं आया है कि मूल्यांकन केवल 59 दिनों के लिए ही क्यों किया गया लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा मूल्यांकन की अवधि को चुनौती नहीं दी गई है इसलिए, हमें इसमें कोई अवैधता नहीं नजर आती।

30. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप हमें इस तर्क में कोई बल नहीं दिखाई देता कि मूल्यांकन आदेश रद्द किये जाने योग्य है क्योंकि यह एक नान स्पीकिंग आदेश है।
मीटर छेड़छाड़ से संबंधित निष्कर्ष जैसा कि ऊपर बताया गया पहले ही लिया जा चुका है। इसके अलावा यह मामला संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करके हस्तक्षेप करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है।

31. खत्म करने से पहले हम एक और इश्यू पर ध्यान देना चाहेंगे जो प्लीडिंग्स में तो आया है लेकिन बहस में विशेष रूप से नहीं उठाया गया। वह यह कि 56 लाख रुपये कंपाउंडिंग शुल्क के रूप में नहीं बल्कि बिजली शुल्क के रूप में भुगतान किया गया है अतः असेसमेंट अमाउंट के विरुद्ध समायोजित किए जाने योग्य है। हम देखते हैं किउत्तरदाताओं द्वारा जारी रसीद में स्पष्ट उल्लेख है किउपरोक्त राशि का भुगतान समझौता शुल्क के रूप में किया गया था। जवाबी हलफनामे में उत्तरदाताओं का विशिष्ट मामला यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा सभी सीलें टूटी हुई पाई जाने और मीटर में बिजली की खपत की रिकॉर्डिंग नहीं होते हुए देखकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया और याचिकाकर्ता ने , उसके निदेशकों और अधिकारियों के खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही न हो इसलिए कंपाउंडिंग शुल्क का भुगतान खुद ही ऑफर किया। यह स्वीकृत तथ्य है कि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ऐसे मामलों में अपराधी के विरुद्ध आपराधिक मुकदमा चलाया जाता है। मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता द्वारा कहीं भी यह दलील नहीं दी गई कि लाइसेंसधारी ने याचिकाकर्ता या उसके निदेशकों के खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की है। इसलिए हमें प्रतिवादियों की इस बात पर विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं मिलता कि याचिकाकर्ता द्वारा 14/15.06.2019 को 56 लाख रुपये कंपाउंडिंग शुल्क के रूप में स्वयं को आपराधिक अभियोजन से बचाने के लिए

जमा किये गये थे। इसलिए, विवाद का कोई औचित्य नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

32. याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1133

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति मंजीवे शुक्ला

रिट-सी संख्या 27768 वर्ष 2019

बाटा इंडिया लिमिटेड और अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य सूक्ष्म एवं लघु उद्यम सुविधा परिषद एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री चन्द्रभान गुप्ता, श्री नीरज ग्रोवर

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री अशोक कुमार सिंह, श्री अशोक कुमार सिंह, श्री सुजीत कुमार, श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा, श्री सृजन मेहरोत्रा

सिविल विधि - सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 - धारा 18(3) और 24 - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 80 - एमएसएमईडी अधिनियम का अधिभावी प्रभाव - मध्यस्थता के लिए सुविधा परिषद का क्षेत्राधिकार - धारा 80 के तहत निषेध - प्रयोज्यता

निर्णय : सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (एमएसएमईडी अधिनियम), एक विशेष विधि होने के नाते, धारा 24 के आधार पर मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों को रद्द करता है। एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 18(3) के तहत, सुविधा परिषद को विवाद का स्वयं मध्यस्थता करने या वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएँ प्रदान करने वाली किसी संस्था को संदर्भित करने का पूर्ण विवेकाधिकार प्राप्त है, भले ही मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 80 के तहत निषेध हो, जो किसी मध्यस्थ को मध्यस्थ के रूप में कार्य करने से रोकता है। *गुजरात राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड बनाम रामकृष्ण फूड्स प्राइवेट लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय। लिमिटेड* (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1492) और इलाहाबाद उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के रिट-सी संख्या 7785/2020 के फैसले में पुष्टि की गई है कि मध्यस्थ के रूप में काम करने के कारण सुविधा परिषद को धारा 18(3) के तहत विवाद में मध्यस्थता करने से रोका नहीं गया है। विशेषज्ञ सदस्यों के साथ एक वैधानिक निकाय के रूप में परिषद की संरचना पक्षपात की चिंताओं को नकारती है और मध्यस्थता करने का उसका अधिकार क्षेत्र पक्षों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौते से प्रभावित नहीं होता है। विवाद में मध्यस्थता करने का निर्णय लेने वाले सुविधा परिषद के 11.6.2019 और 24.7.2019 के आदेशों को कानूनी और वैध माना गया। याचिकाकर्ताओं का यह तर्क कि विवाद को विशेषज्ञता के लिए दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र को भेजा जाना

चाहिए, खारिज कर दिया गया क्योंकि सुविधा परिषद ऐसे विवादों से निपटने के लिए विशेषज्ञों से सुसज्जित है।

रिट याचिका खारिज कर दी गई।

<u>चर्चा की गई वादविधियाँ</u> :

1. गुजरात स्टेट सिविल सप्लाइज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम रामकृष्ण फूड्स प्राइवेट लिमिटेड, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1492।

2. गुजरात स्टेट पेट्रोनेट लिमिटेड बनाम माइक्रो और लघु उद्यम सुविधा परिषद, रिट याचिका संख्या 5459/2015 (बॉम्बे उच्च न्यायालय, 06.08.2018) (सुप्रीम कोर्ट द्वारा आंशिक रूप से रद्द)।

3. प्रिंसिपल चीफ इंजीनियर बनाम मणि भाई एंड ब्रदर्स (गुजरात उच्च न्यायालय), एसएलपी संख्या 17434/2017 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई।

4. रिट - सी संख्या 7785/2020 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय, 03.03.2020)।

5. शिल्पी इंडस्ट्रीज (सुप्रीम कोर्ट) - एमएसएमईडी अधिनियम के तहत आपूर्तिकर्ता पंजीकरण पर।

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीवे शुक्ला द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री नीरज ग्रोवर और श्री चंद्र भान गुप्ता, प्रतिवादी नंबर-2 के अधिवक्ता श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा जिनको अधिवक्ता श्री सृजन मेहरोत्रा द्वारा सहायता प्राप्त थी, को सुना।

2. याचिकाकर्ताओं ने इस रिट याचिका को दायर करके उत्तर प्रदेश राज्य सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद (इसके बाद 'परिषद' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 11.6.2019 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत यह निर्णय लिया गया है कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (इसके बाद '2006 का अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 18 (3) के मद्देनजर निर्णय लिया गया है, परिषद स्वयं याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद की मध्यस्थता करेगी! याचिकाकर्ताओं ने परिषद द्वारा पारित दिनांक 24.7.2019 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच मध्यस्थता को वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले किसी भी संस्थान या केंद्र को संदर्भित करने के लिए मध्यस्थता याचिका संख्या 402/2019 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.7.2019 के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया गया है।

<u>मामले के संक्षिप्त तथ्य</u>

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता नंबर-1 भारतीय कंपनी अधिनियम, 1930 के तहत निगमित कंपनी है और भारत का सबसे बड़ा रिटेलर और जूते और सहायक उपकरण का अग्रणी निर्माता है।

याचिकाकर्ता नंबर-1 अपने स्वयं के कारखानों में अपने माल का निर्माण करने के अलावा, अपने व्यवसाय के दौरान विभिन्न निर्माताओं को अपनी खुदरा बिक्री के साथ-साथ संस्थागत आपूर्ति के लिए विभिन्न सरकारी संगठनों को आपूर्ति सहित कुछ वस्तुओं के निर्माण के लिए भी नियुक्त करता है।

4. प्रतिवादी नंबर-2 ए.वी.एस इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत निगमित कंपनी है और जूते का निर्माता भी है। याचिकाकर्ता नंबर-1 और प्रतिवादी नंबर-2 ने याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी नंबर-2 द्वारा माल की आपूर्ति के लिए दिनांक 7.1.2016 को एक समझौता किया। उक्त समझौता एक वर्ष की अवधि के लिए वैध था और उसके बाद, याचिकाकर्ता नंबर-1 और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच दिनांक 10.1.2017 को एक नया समझौता किया गया था और उक्त समझौते के तहत प्रतिवादी नंबर-2 उन याचिकाकर्ताओं को जूते बनाने और आपूर्ति करने के लिए सहमत हो गया था, जिनके पास भारतीय नौसेना को जूते की आपूर्ति के लिए भारत सरकार के साथ अनुबंध था। पूर्वोक्त समझौते में प्रतिवादी नंबर 2 याचिकाकर्ता नंबर-1 और भारत सरकार के बीच दर अनुबंध की शर्तों के अनुसार जूते की आपूर्ति करने के लिए बाध्य था।

5. रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने दलील दी है कि प्रतिवादी नंबर-2 ने विनिर्माण समझौते की शर्तों और माल की समय पर डिलीवरी के संबंध में खरीद आदेश के कई उल्लंघन किए हैं और इसके अलावा भारतीय नौसेना द्वारा प्रतिवादी नंबर-2 द्वारा निर्मित और आपूर्ति किए गए जूते की घटिया गुणवत्ता और दोषपूर्ण आपूर्ति के बारे में कई मुद्दे उठाए गए हैं। रिट याचिका में आगे यह दलील दी गई है कि उपरोक्त कारणों से भारतीय नौसेना ने माल को तीन बार खारिज कर दिया और देर से वितरण जुर्माना लगाया, जो कि सहमत शर्तों के अनुसार, प्रतिवादी नंबर-2 द्वारा वहन किया जाना था और इस तरह, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी नंबर-2 को देय राशि से इस तरह के शुल्क काट लिए।

6. प्रतिवादी नंबर-2 ने विभिन्न कानूनी नोटिसों के माध्यम से इसकी लंबित राशि के बारे में मांग की और उसके बाद, याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 ने आपस में विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास किया।

7. प्रतिवादी नंबर-2 एक पंजीकृत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम है और इस तरह, अधिनियम 2006 के प्रावधान इस पर लागू होते हैं!

8. प्रतिवादी नंबर-2, उपरोक्त परिस्थितियों में, कानपुर नगर में यूपी स्टेट माइक्रो एंड स्मॉल एंटरप्राइजेज फैसिलिटेशन काउंसिल से क्लेम पिटीशन नंबर 58 वर्ष 2019 दायर करके संपर्क किया। परिषद ने उपरोक्त दावा याचिका पर विचार करते हुए याचिकाकर्ताओं को अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 21.5.2019 को सुलह कार्यवाही में शामिल होने के लिए सुलह नोटिस जारी किया। याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधि और प्रतिवादी नंबर-2 के प्रतिनिधि दिनांक 21.5.2019 को

परिषद के समक्ष सुलह कार्यवाही में उपस्थित हुए और परिषद को अवगत कराया गया कि पार्टियां स्वयं एक समझौते के लिए बातचीत कर रही हैं और इस कारण से परिषद ने पक्षों को बातचीत समाप्त करने के लिए एक महीने का समय दिया! हालांकि, पक्ष समझौते पर नहीं पहुंच सके और याचिकाकर्ताओं ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद 1996 के अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 76 (4) के अनुसार सुलह कार्यवाही को समाप्त करने का फैसला किया।

9. चूंकि याचिकाकर्ता नंबर-1 और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच हुए समझौते के खंड 25 के तहत मध्यस्थता का प्रावधान था, इसलिए याचिकाकर्ताओं ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष 1996 के अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत याचिका दायर की। याचिकाकर्ताओं ने 2019 की उपरोक्त दावा याचिका संख्या 58 में परिषद को प्रतिवादी नंबर-1 के साथ सुलह कार्यवाही को समाप्त करने के बारे में भी बताया। परिषद ने दिनांक 11.6.2019 को सुलह कार्यवाही के लिए पक्षों को दिनांक 6.6.2019 को फिर से एक नोटिस जारी किया ! याचिकाकर्ताओं के अधिकृत प्रतिनिधि ने परिषद के समक्ष दिनांक 11.6.2019 को कार्यवाही में भाग लिया और परिषद को अवगत कराया कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्वावधान में दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र के माध्यम से संस्थागत मध्यस्थता के लिए याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद के संदर्भ के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और परिषद से औपचारिक रूप से लंबित सुलह कार्यवाही को समाप्त करने का अनुरोध किया है। परिषद ने दिनांक 11.6.2019 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, परिषद ने स्वयं याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद में मध्यस्थता करने का निर्णय लिया!

10. याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त परिस्थितियों में, मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 में I.A. No.8574 वर्ष 2019 दायर करके फिर से दिल्ली उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। दिल्ली उच्च न्यायालय की अवकाशकालीन पीठ ने आवेदन पर प्रतिवादी नंबर-2 को नोटिस जारी किया और मामले में सुनवाई के लिए दिनांक 24.6.2019 की तारीख तय की! जबकि उपरोक्त आई.ए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए लंबित था, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 19.6.2019 को परिषद के समक्ष एक अभ्यावेदन दायर किया, जिसमें अनुरोध किया गया कि वह मध्यस्थता मुद्दे पर विचार करने के अपने प्रस्ताव को वापस ले और दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्वावधान में स्थापित एक वैकल्पिक विवाद समाधान मध्यस्थता केंद्र "दिल्ली इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन सेंटर" के माध्यम से संस्थागत मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करे!

11. दिल्ली उच्च न्यायालय ने मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 में दायर 2019 के उपरोक्त आई.ए संख्या 8574 पर सुनवाई की और दिनांक 2.7.2019 को एक आदेश

पारित किया। दिनांक 2.7.2019 के आदेश को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

"आईए 8572/2019 (छूट)

1- छूट की अनुमति सभी अपवादों के अधीन है।

ए.आर.बी.पी 402/2019

2. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को काफी विस्तार से सुना गया है। वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता प्रार्थना करता है कि पर्सा को दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता और सुलह केंद्र के तत्वावधान में मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कई शिकायतें उठाई हैं और अन्य चातों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश सूक्ष्म लघु उद्यम सुविधा परिषद द्वारा पारित दिनांक 11 जून, 2019 के आदेश का विरोध किया है, जिसके तहत इसने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) के संदर्भ में प्रवेश किया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि सुविधा परिषद ने सुलहकर्ता के रूप में काम किया है, इसलिए अब उनके लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण की भूमिका ग्रहण करना अस्वीकार्य है। शुरुआत में, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान याचिका का विरोध किया और इसे बनाए रखने के आधार पर विरोध किया! हालांकि अपने मुवक्किल के निर्देश पर वह कहती है कि प्रतिवादी को मामले में कोई आपति नहीं है, इस मामले को किसी भी संस्था या केंद्र को भेजा जाता है जो इस तरह की मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करता है. हालांकि, वह आगे कहती हैं कि इस निर्णय को सुविधा परिषद द्वारा विचार करने के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए।

3. इस मोड़ पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अदालत को सूचित किया कि, उनके मुवक्किल ने 19 जून, 2019 को एक प्रतिनिधित्व किया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, मध्यस्थता के लिए मामले को एक संस्था को संदर्भित करने का अनुरोध किया गया है। यह अभ्यावेदन वर्तमान में लंबित है। उनका कहना है कि हालांकि उक्त अभ्यावेदन में मामले को दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता और सुलह केंद्र को संदर्भित करने का अनुरोध किया गया है, हालांकि, उनके मुवक्किलों को इस मामले में कोई आपति नहीं होगी, मध्यस्थता किसी अन्य संस्था या केंद्र के तत्वावधान में की जाती है जो वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करता है। इस प्रकार, अधिकारों और तर्की के पूर्वाग्रह के बिना दोनों अधिवक्ता इस बात से सहमत है कि सुविधा परिषद मामले को किसी संस्था को संदर्भित करने का निर्णय ले सकती है।

4. तदनुसार, दोनों अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए बयानों के मद्देनजर, मामले की आगे सुनवाई करने से पहले, किसी भी संस्था या केंद्र के तहत मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने के लिए 19 जून, 2019 के अभ्यावेदन को तय करने के लिए सुविधा परिषद को निर्देश देना उचित समझा जाता है! फैसले की जानकारी आज से दो सप्ताह के भीतर इस अदालत को दी जाएगी! प्रतिनिधित्व

तय करते समय केंद्र ऊपर बताए गए अनुसार पक्षों के रुख को ध्यान में रखेगा!
5. 26 जुलाई, 2019 को सूचीबद्ध करें।

6. रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति उ0प्र0 सूक्ष्म लघु उद्यम सुविधा परिषद को भेजी जाए

7. इस आदेश की प्रति दस्ती दी जाए!

12. इसके बाद, परिषद ने दिनांक 2.7.2019 के पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में अपने समक्ष लंबित मामले की सुनवाई की और अंततः वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली संस्था को मध्यस्थता के लिए विवाद को संदर्भित करने के लिए याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया और दिनांक 11.6.2019 के अपने पहले के निर्णय की पुष्टि की और इस तरह परिषद ने स्वयं विवाद की मध्यस्थता की। बाद में, मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 पर दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 9.8.2019 के निर्णय और आदेश के माध्यम से सुनवाई और निर्णय लिया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 9.8.2019 के तहत याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को खारिज कर दिया, जिसमें समझौते में निहित मध्यस्थता खंड के अनुसार विवाद को मध्यस्थ को संदर्भित करने के लिए, 1996 के अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग किया गया था।

<u>याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

13. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पक्षों द्वारा दर्ज किए गए समझौते के खंड 25 में स्पष्ट रूप से उक्त समझौते से उत्पन्न विवादों के संबंध में मध्यस्थता के तंत्र का प्रावधान है। करार के खंड 25 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

<u>25. शासी कानून और मध्यस्थताः</u>

पक्षों के बीच किसी भी विवाद के मामले में, पार्टियां विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करेंगी और पीड़ित पक्ष दूसरे पक्ष को विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने का अनुरोध करते हुए एक नोटिस भेजेगा। यदि पक्षकार इस तरह के विवाद को 15 दिनों के भीतर हल करने में असमर्थ हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया है, तो पीड़ित पक्ष मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के तहत मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित कर सकता है, जिसका निर्णय बी.आई.एल द्वारा नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ द्वारा किया जाएगा! मध्यस्थता कार्यवाही का स्थान दिल्ली में होगा। कार्यवाही और पंचाट अंग्रेजी में होगा और मध्यस्थ का निर्णय अंतिम और निर्णायक होगा, पक्षकार मध्यस्थता व्यय को समान अनुपात में वहन करेंगे.

दिल्ली की अदालतों के पास उपरोक्त मध्यस्थता प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाले किसी भी मुद्दे के बारे में और अंतरिम राहत के संबंध में, सभी मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के अनुसार विशेष अधिकार क्षेत्र होगा,!

यह समझौता दिल्ली न्यायालयों के विशिष्ट क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के साथ भारत के कानूनों के अनुसार शासित और व्याख्या किया जाएगा। प्रत्येक पक्ष मध्यस्थों द्वारा प्रदान किए गए पंचाट से बाध्य होगा."

14. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद था और समझौते के अनुसार उक्त विवाद को समझौते के खंड 25 के अनुसार मामले को मध्यस्थ को संदर्भित करके हल किया जाना था, इसलिए याचिकाकर्ताओं ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 दायर की और प्रार्थना की गई कि वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाला एक संस्थागत मध्यस्थ हो सकता है प्रश्न में विवाद को मध्यस्थता करने की जिम्मेदारी दी।

15. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन विवाद में जटिल तकनीकी मुद्दों का निर्णय शामिल है और इसलिए, दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्वावधान में दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद की मध्यस्थता करने के लिए एक सबसे अच्छा संस्थान होगा!

16. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 की धारा 18 के प्रावधानों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। सुलभ संदर्भ के लिए, अधिनियम 2006 की धारा 18 निम्नानुसार निकाली गई हैः-

"18. सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद का संदर्भ

(1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, विवाद का कोई पक्षकार, धारा 17 के अधीन देय किसी राशि के संबंध में, सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद को निर्देश दे सकेगा!

(2) उपधारा (1) के अधीन संदर्भ प्राप्त होने पर, परिषद् या तो स्वयं उस मामले में सुलह करेगी या ऐसी संस्था या केन्द्र को सुलह करने के लिए और माध्यस्थम और सुलह अधिनियम की धारा 65 से 81 के उपबंधों के लिए ऐसी संस्था या केन्द्र को संदर्भ देकर वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केन्द्र की सहायता लेगी, (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका (सिविल) संख्या 1996 (1996 का 26) ऐसे विवाद पर लागू होगी मानो सुलह उस अधिनियम के भाग III के अधीन आरंभ की गई हो।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन आरंभ किया गया सुलह सफल नहीं होता है और पक्षकारों के बीच किसी समझौते के बिना समाप्त हो जाता है, वहां परिषद् या तो स्वयं विवाद को मध्यस्थता के लिए उठाएगी या ऐसी मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केंद्र और माध्यस्थम और सुलह अधिनियम के

उपबंधों को संदर्भित करेगी, 1996 (1996 का 26) विवाद पर लागू होगा जैसे कि मध्यस्थता उस अधिनियम की धारा 7 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में थी!

(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद या वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले केन्द्र को अपने क्षेत्राधिकार के भीतर स्थित आपूर्तिकर्ता और भारत में कहीं भी स्थित क्रेता के बीच विवाद में इस धारा के अधीन मध्यस्थ या सुलहकर्ता के रूप में कार्य करने की अधिकारिता होगी!

(5) इस धारा के अधीन किए गए प्रत्येक निर्देश का विनिश्चय ऐसा निर्देश करने की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के भीतर किया जाएगा।

17. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) में प्रावधान है कि संदर्भ प्राप्त होने पर परिषद या तो स्वयं मामले में सुलह करेगी या ऐसी संस्था या केंद्र का संदर्भ देकर वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केंद्र की सहायता मांगेगी; सुलह करने के लिए और उक्त सुलह कार्यवाहियों में माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 65 से 81 के प्रावधान लागू होंगे! याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम 2006 की धारा 18 (3), सुलह कार्यवाही की विफलता के मामले में, परिषद को या तो मध्यस्थता के लिए विवाद को लेने या वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केंद्र को संदर्भित करने की शक्ति देती है, लेकिन चूंकि अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) के तहत परिषद द्वारा शुरु की गई सुलह कार्यवाही विफल रही और चूंकि परिषद स्वयं सुलहकर्ता था, इसलिए 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध के मद्देनजर, परिषद स्वयं पक्षों के बीच मध्यस्थता करने के लिए कैस को हाथ में नहीं ले सकती थी। सुलभ संदर्भ के लिए, 1996 के अधिनियम की धारा 80 निम्नानुसार निकाली गई हैं:-

"80. अन्य कार्यवाहियों में सुलहकर्ता की भूमिका- जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति न हो,-

(ए) सुलहकर्ता एक मध्यस्थ के रूप में या किसी विवाद के संबंध में किसी भी मध्यस्थ या न्यायिक कार्यवाही में किसी पक्ष के प्रतिनिधि या अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं करेगा जो सुलह कार्यवाही का विषय है;

(ख) सुलहकर्ता को पक्षकारों द्वारा किसी मध्यस्थ या न्यायिक कार्यवाही में गवाह के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा!

18. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने सहानुभूतिपूर्वक तर्क दिया है कि अधिनियम 2006 की धारा 18(2) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि 1996 के अधिनियम की धारा 65 से 81 परिषद के समक्ष सुलह कार्यवाही में लागू होगी और इसलिए, 1996 के अधिनियम की धारा 80 के तहत लगाए गए स्पष्ट निषेध

कि सुलहकर्ता मध्यस्थ नहीं हो सकता है, मामले में लागू होगा और इस प्रकार परिषद याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी संख्या 2 के बीच विवाद में मध्यस्थता करने के लिए स्वयं को नहीं ले सकती थी।

19. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका संख्या 5459 वर्ष 2015, गुजरात स्टेट पेट्रोनेट लिमिटेड बनाम सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद और अन्य में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए दिनांक 6.8.2018 के एक फैसले पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पूर्वोक्त निर्णय में विचाराधीन मुद्दों को शामिल किया गया है और उपरोक्त निर्णय में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने स्पष्ट रूप से माना है कि अधिनियम 2006 की धारा 18(2) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि 1996 के अधिनियम की धारा 80 लागू होगी और जहां परिषद स्वयं सुलहकर्ता थी और सुलह कार्यवाही विफल होने की स्थिति में, परिषद स्वयं पक्षों के बीच विवाद की मध्यस्थता नहीं कर सकती है! दिनांक 6.8.2018 के निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:-

19. एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18 की उप-धाराओं (2) और (3) का एक सादा पठन यह स्पष्ट करता है कि परिषद के लिए या तो स्वयं सुलह कार्यवाही करना या वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले किसी संस्थान या केंद्र की सहायता लेना अनिवार्य है। मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 65 से 81 के प्रावधान सुलह कार्यवाही पर लागू किए जाते हैं। यदि सुलह की कार्यवाही असफल हो जाती है और समाप्त हो जाती है, तो परिषद या तो विवाद को मध्यस्थता के लिए ले जा सकती है या इस तरह के मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं साबित करने वाली किसी संस्था या केंद्र को भेज सकती है। मध्यस्थता अधिनियम 1996 के प्रावधान, इसकी संपूर्णता में, लागू किए जाते हैं जैसे कि मध्यस्थता (1) धारा की 7 की माध्यस्थम अधिनियम, 1996 उप-धारा में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में था।

20. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की उपधारा (2) और उपधारा (3) सुलहकर्ता के साथ-साथ मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए परिषद में अधिकार क्षेत्र निहित करती है। प्रश्न मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 80 के प्रावधानों के मद्देनजर है, जिस परिषद ने सुलह कार्यवाहियां आयोजित की हैं, उसे मध्यस्थ के रूप में कार्य करने से प्रतिबंधित किया गया है। जैसा कि पहले कहा गया है, धारा 80 सहित मध्यस्थता अधिनियम 1996 के कुछ प्रावधानों को विशेष रूप से एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18(2) द्वारा विचारित सुलह कार्यवाही पर लागू किया जाता है। जबकि मध्यस्थता अधिनियम 1996 के प्रावधान, इसकी संपूर्णता में, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18 की उप-धारा (3) द्वारा विचारित मध्यस्थता और सुलह कार्यवाही पर लागू होते हैं।

21. इन प्रावधानों की एक सामंजस्यपूर्ण पढ़ने से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 80 एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18 की उप-धाराओं (2) और (3) के तहत सुलह के साथ-साथ मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होती है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 80 इस प्रकार है:

"80. अन्य कार्यवाहियों में सुलहकर्ता की भूमिका

जब तक अन्यथा पक्षों द्वारा सहमति न हो -

(ए) सुलहकर्ता एक मध्यस्थ के रूप में या किसी विवाद के संबंध में किसी भी मध्यस्थ या न्यायिक कार्यवाही में किसी पक्ष के प्रतिनिधि या अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं करेगा जो सुलह कार्यवाही का विषय है, तथा

(ख) सुलहकर्ता किसी भी मध्यस्थ या न्यायिक कार्यवाही में एक गवाह के रूप में पक्षों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जाएगा.

22. धारा 80 का एक सादा रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि सुलहकर्ता एक विवाद के संबंध में किसी भी मध्यस्थ या न्यायिक कार्यवाही में मध्यस्थ या उसके प्रतिनिधि या किसी पक्ष के अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं कर सकता है. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एम्.इस.ई.ऍफ़.सी सुलहकर्ता के साथ-साथ मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, या यह विवाद को किसी भी केंद्र या संस्था को संदर्भित करने का विकल्प चुन सकता है जो पक्षों को सुलह या मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करता है। तथापि, एक बार जब एम.एस.ई.एफ. सी सुलहकर्ता के रूप में कार्य करता है, तो धारा 80 के प्रावधानों के मद्देनजर, इसे मध्यस्थ के रूप में कार्य करने से प्रतिबंधित किया जाता है!

23. बेशक, वर्तमान मामले में, प्रतिवादी नंबर-1 ने याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर-3 के बीच सुलह की कार्यवाही की और आक्षेपित आदेश द्वारा, असफल होने के कारण इसे समाप्त कर दिया! आश्चर्य की बात यह है कि प्रतिवादी नंबर-1, एम.एस.ई.एफ.सी, पक्षों के बीच विवाद को सुलझाने और सुलह की कार्यवाही असफल और समाप्त होने के बाद, एम.एस.ई.एफ.सी ने स्वयं उन्हीं पक्षों के बीच विवाद को मध्यस्थता करने की पहल की। हमारे विचार में, प्रतिवादी नंबर-1-एम.एस.ई.एफ.सी खुद याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर-3 के बीच मध्यस्थता की कार्यवाही शुरु नहीं कर सकला था! एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18 की उप-धारा (3) के प्रावधानों के संदर्भ में, प्रतिवादी नंबर-1 एम.एस.ई.एफ.सी को याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर-3 के बीच विवाद को मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी भी संस्था या केंद्र को संदर्भित करना चाहिए था। आक्षेपित आदेश, जहां तक यह प्रतिवादी नंबर-1 एम.एस.ई.एफ.सी को मध्यस्थता कार्यवाही / मध्यस्थ विवाद शुरू करने के लिए अधिकृत करने से संबंधित है, को बनाए नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द करने और अलग करने के योग्य है।

24. तदनुसार, हम निम्नलिखित आदेश पारित करके याचिका का निपटारा करते हैं:

1. हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर-3 के बीच स्वतंत्र मध्यस्थता समझौते के बावजूद, प्रतिवादी नंबर-1 एम.एस.ई.एफ.सी के पास एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम की धारा 18 के तहत प्रतिवादी नंबर-3 द्वारा किए गए संदर्भ पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र है।

2. आक्षेपित आदेश के ऑपरेटिव भाग के खंड 2 अर्थात "मध्यस्थता कार्यवाही एम.एस. एम.ई.डी अधिनियम 2006 की धारा 18(3) के तहत शुरू की जाए और यह परिषद एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करेगी" को रद्द कर दिया जाता है और अलग कर दिया जाता है और प्रतिवादी नंबर-1 एम.एस.ई.एफ.सी को याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नंबर-3 के बीच विवाद को मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी भी संस्था या केंद्र को संदर्भित करने का निर्देश दिया जाता है। प्रतिवादी नंबर-1 एम.एस.ई.एफ.सी शुभदा एस कदम 23/24 डब्ल्यू.पी 5459.15.doc इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर यथासंभव शीघ्रता से और किसी भी मामले में आवश्यक कदम उठाएगा।

3. नियम, तदनुसार, उपरोक्त शर्तों में पूर्ण बनाया गया है।

20. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम परिषद याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी नंबर-2 के बीच विवाद की मध्यस्थता करने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित नहीं है, जबकि दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्वावधान में दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र गुणवत्ता मध्यस्थता कार्यवाही करने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित है और इस तरह प्रस्तुत किया है कि भले ही विवेक परिषद के पास था या तो विवाद को मध्यस्थता करने या इसे संदर्भित करने के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाओं से संबंधित एक संस्था, यह उपयुक्त था कि परिषद को मामले को एक संस्था को भेजना चाहिए था!

21. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस प्रकार अपनी दलीलें समाप्त कर दी हैं और प्रार्थना की है कि याचिकाकर्ताओं की रिट याचिका को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 5459 वर्ष 2015 में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 6.8.2018 के आलोक में अनुमति दी जानी चाहिए और इस तरह परिषद द्वारा पारित दिनांक 24.7.2019 और 11.6.2019 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जा सके!

<u>प्रतिवादी नंबर-2 की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

22. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 को निर्णय और आदेश दिनांक 9.8.2019 के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ताओं ने पूर्वोक्त

निर्णय की प्रति का खुलासा और संलग्न किए बिना इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की है, जिसमें परिषद द्वारा पारित आदेशों को चुनौती दी गई है, जबकि दिल्ली उच्च न्यायालय ने अधिनियम 2006 के प्रावधानों पर भी विचार किया है, और याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर याचिका को दिनांक 9.8.2019 के निर्णय और आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया है! पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 9.8.2019 का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है: -

"20. हालांकि, विभिन्न उच्च न्यायालयों के विचारों का अंतर और विरोधाभासी विचार इस न्यायालय को वर्तमान याचिका पर फैसला करने के लिए प्रभावित या बाधित नहीं करते हैं। जहां तक एम.एस.एम.ई अधिनियम की धारा 18 के तहत एम.एस.एम.ई परिषद के अधिकार क्षेत्र का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऊपर उल्लिखित सभी निर्णयों में, न्यायालयों ने लगातार माना है कि एम. एस. एम. ई अधिनियम के प्रावधान मध्यस्थता खंड से संबंधित हैं। इस संबंध में प्रधान मुख्य अभियंता बनाम मणि भाई एंड ब्रदर्स में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जिसमें न्यायालय ने कहा,

"6.1. इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि अधिनियम, 2006 एक विशेष अधिनियम है और अधिनियम, 2006 की धारा 24 के अनुसार, धारा 15 से 23 के प्रावधान तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतवष्ट असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे! इसलिए, अधिनियम, 2006 की धारा 18 का अधिभावी प्रभाव होगा या मध्यस्थता अधिनियम, 1996 सहित कुछ समय के लिए लागू कोई अन्य कानून होगा और इसलिए, यदि अधिनियम, 2006 द्वारा शासित पक्षों के बीच कोई विवाद है, तो उक्त विवाद को केवल अधिनियम की धारा 18 के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया के माध्यम से हल किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, अधिनियम, 2006 की धारा 18 पर विचार करते हुए, अधिनियम, 2006 की धारा 18 (2) के अनुसार सुलह विफल होने के बाद, उसके बाद धारा 18 की उप-धारा (3) के अनुसार, जहां उप-धारा (2) के तहत शुरु किया गया सुलह सफल नहीं होता है और पक्षों के बीच किसी भी समझौते के बिना समाप्त हो जाता है, परिषद या तो मध्यस्थता के लिए विवाद को उठाएगी या किसी भी संस्था या केंद्र को संदर्भित करेगी जो इस तरह के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करती है मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के प्रावधान तब विवाद पर लागू होंगे जैसे कि मध्यस्थता उप-धारा (2) में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में थी, परिषद की धारा 18 के पास मध्यस्थता के लिए विवाद लेने का अधिकार क्षेत्र होगा! इसलिए, एक बार जब परिषद स्वयं उस मामले में मध्यस्थ के रूप में कार्य कर रही है, उसके बाद परिषद जो मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है, उसके पास मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 के तहत आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार औरख्या अधिकार क्षेत्र नहीं है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 उस मामले में लागू होगी जहां कोई कार्यवाही "न्यायिक प्राधिकरण" के समक्ष लंबित है।

न्यायिक प्राधिकरण" मध्यस्थता अधिनियम, 1996 में परिभाषित नहीं है। हालांकि, एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और (2005) 8 एस.सी.सी 618 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखा गया है कि "न्यायिक सर्वोच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (ई) में परिभाषित नहीं है और हमारी राय में ये नियम अन्य अदालतों को भी शामिल करेगा और यहां तक कि उपभोक्ता फोरम की तरह एक विशेष न्यायाधिकरण भी शामिल हो सकता है। यहां तक कि मॉर्गन सिक्योरिटीज एंड क्रेडिट प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया है कि "न्यायिक प्राधिकरण" ने अपनी साधारण भाषा में अधिनियम के तहत एक न्यायालय की रक्षा को समझा होगा, लेकिन ऐसी अदालतें भी जो या तो एक दीवानी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण होगी जो न्यायिक कार्य था अर्थ न्यायिक कार्य करती है।

7.0 पेपर और बोर्ड कन्वर्टर्स (उपरोक्त) के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा इसी प्रश्न पर विचार किया गया था। अधिनियम, 2006 की धारा 18 के बहुत प्रावधान की व्याख्या करते हुए, पैरा 12 में, डिवीजन बेंच ने देखा है और निम्नानुसार अवधारित किया हैः

12. धारा 18 की उपधारा (1) में और फिर धारा 18 की उपधारा (4) में निहित गैर-ऑब्स्टेन प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए संचालित होता है कि यह एक सुविधा परिषद है जिसके पास अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर स्थित आपूर्तिकर्ता और भारत में कहीं भी स्थित खरीदार के बीच विवाद में मध्यस्थ या सुलहकर्ता के रूप में कार्य करने का अधिकार क्षेत्र है। सुविधा परिषद के पास कार्रवाई के दो पाठ्यक्रमों में से केवल एक ही खुला थाः या तो स्वयं मध्यस्थता का संचालन करना या पक्षों को उप-धारा (3) में निर्धारित वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले केंद्र या संस्थान को संदर्भित करना।

10. उपर्युक्त के मद्देनजर और ऊपर बलाए गए कारणों के लिए, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 8 के तहत आवेदन पर विचार नहीं करने में विद्वान परिषद द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गई है। जैसा कि ऊपर देखा गया है और अधिनियम, 2006 की धारा 18 की उप-धारा (1) पर विचार करते हुए, सुविधा परिषद के पास पक्षकारों के बीच किसी भी विवाद को मध्यस्थ और/या सुलहकती के रूप में कार्य करने का अधिकार क्षेत्र है और उस परिषद के पास कार्रवाई के केवल दो पाठ्यक्रमों में से एक था, या लो स्वयं मध्यस्थता का संचालन करने के लिए या पक्षों को एक केंद्र या संस्थान को संदर्भित करने के लिए जो धारा 18(3) अधिनियम, 2006 में निर्धारित वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करता है। इसलिए, वर्तमान अपील को खारिज करते हुए, यह देखा गया है कि परिषद अब धारा 18 की उप-धारा (3) के प्रावधान के अनुसार कार्य करेगी और या तो स्वयं मध्यस्थता करेगी या पक्षों को वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाले केंद्र या संस्थान को संदर्भित करेगी! उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान अपील खारिज की जाती है। कोई लागत नहीं।

प्रथम अपील खारिज होने के मद्देनजर, सिविल आवेदन तदनुसार खारिज किया जाता है!

21. उक्त निर्णय को प्रधान मुख्य अभियंता बनाम मेसर्स मणिभाई और भाई, एस.एल.पी संख्या 17434/2017 में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसका निर्णय 5 जुलाई 2017 को हुआ था, जहां सुप्रीम कोर्ट ने एक सकारण आदेश द्वारा निम्नानुसार अवलोकन किया थाः

पीठ ने कहा, "हमने कल और आज हमारे समक्ष पेश की गई दलीलों पर विचारशील विचार किया है। हम संतुष्ट हैं, कि मध्यस्थता कार्यवाही के संदर्भ में आक्षेपित आदेश में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 की धारा 18 पर उच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या पूरी तरह से उचित है और इसके प्रावधानों के अनुरूप है।

उपरोक्त की पुष्टि करने के बाद, हमारा विचार है कि आक्षेपित आदेश में निपटाए गए अन्य सभी मामले वर्तमान विवाद के अधिनिर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं हैं, और उनकी जांच करने की आवश्यकता नहीं है। विशेष अनुमति याचिका उपरोक्त शर्तों में खारिज की जाती है। लंबित आवेदनों का निस्तारण किया जाता है।

22. चूंकि गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय की उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, इसलिए मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि एम.एस.एम.ई अधिनियम की धारा 18, पक्षों के बीच सहमत मध्यस्थता खंड के प्रावधानों को ओवरराइड करेगी और परिणामस्वरूप परिषद के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाही कानून के अनुसार है। याचिकाकर्ता ने सुप्रीम कोर्ट में कहा कि "ए एंड सी अधिनियम की धारा 80 के तहत बार के तहत न्यायिक विवाद, उच्च न्यायालयों के विभिन्न विचारों का विषय है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। हालांकि, इस मुद्दे पर परस्पर विरोधी विचारों के बावजूद, न्यायालय वर्तमान कार्यवाही में मांगी गई राहत नहीं दे सकता है। ए एंड सी अधिनियम की धारा 11 (6) के प्रावधान कैवल उन स्थितियों के तहत लागू होंगे जो उक्त प्रावधान के तहत उल्लिखित हैं, जो निम्नानुसार है:

"(6) जहां, पक्षों द्वारा सहमत एक नियुक्ति प्रक्रिया के तहत,

(ए) एक पक्ष उस प्रक्रिया के तहत आवश्यक कार्य करने में विफल रहती है; नहीं तो

ख) पक्षों, या दो नियुक्त मध्यस्थों, उस प्रक्रिया के तहत उनसे अपेक्षित समझौते तक पहुंचने में विफल, (नहीं तो

(ग) कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत कोई संस्था भी है, उस प्रक्रिया के अधीन उसे संपि गए किसी कृत्य का पालन करने में विफल रहता है, कोई पक्षकार उच्चतम न्यायालय या, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या ऐसे न्यायालय द्वारा अभिहित किसी व्यक्ति या संस्था) से आवश्यक उपाय करने का अनुरोध कर सकेगा, जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया पर करार नियुक्ति प्राप्त करने के लिए अन्य साधन उपलब्ध न करा दे!

23. याचिकाकर्ता यह दिखाने में असमर्थ है कि वर्तमान मामले में पूर्वोक्त उपखंडों में से किसी को कैसे लागू किया जा सकता है। इस प्रकार, याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। प्रतिवादी के प्रस्तुत करने में भी योग्यता है कि ऊपर वर्णित मामले के तथ्यों से यह संकेत नहीं मिलता है कि परिषद ने वास्तव में एक सुलहकर्ता की भूमिका निभाई है. इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुलह की कार्यवाही शुरू की गई थी और याचिकाकर्ता सुलह प्रक्रिया में शामिल हो गया था, लेकिन यह केवल परिषद से अपने फैसले को स्थगित करने का अनुरोध करने के लिए था क्योंकि पार्टियां समझौते पर बातचीत कर रही थी। तत्पश्चात्, परिषद को सूचित किया गया कि समझौता फलीभूत नहीं हुआ है और सुलह प्रक्रिया को समाप्त करने का नोटिस भेजा गया था। इस प्रकार, परिषद ने कभी भी पक्षों के बीच एक सुलहकर्ता के रूप में सक्रिय रूप से काम नहीं किया!

24. जैसा भी हो, ए एंड सी अधिनियम की धारा 11 (6) के तहत, मेरे पास परिषद द्वारा पारित दिनांक 24 जुलाई, 2019 के निर्णय की वैधता का परीक्षण करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा! याचिकाकर्ता को आर्बिट्रल ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र को चुनौती देने के लिए ए एंड सी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत इसके उपायों का लाभ उठाना होगा! मुझे वर्तमान याचिका में कोई योग्यता नहीं मिली और इसे खारिज किया जाता है। लंबित आवेदनों, यदि कोई हाँ, का निपटान किया जाता है!

ओ.एम.पी. (1) (कॉम) 201/2019

25. वर्तमान याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थनाएं की गई हैं:

"31. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में, यह सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय दिनांक 19/5/2019 को प्रतिवादी नंबर-2 के समक्ष शुरू होने वाली प्रस्तावित मध्यस्थता कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करे और प्रतिवादी नंबर-2 को दिल्ली इंटरनेशनल के तत्वावधान में मध्यस्थता के लिए पक्षों के बीच विवाद के संदर्भ के लिए धारा 11 (6) के तहत याचिकाकर्ता की याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रस्तावित मध्यस्थता में मध्यस्थता केंद्र कोई आदेश पारित करने से रोके!

26. मध्यस्थता याचिका में दिए गए निर्णय के मद्देनजर, जिसमें नं. 402/2019, वर्तमान याचिका में मांगी गई राहत देने का कोई आधार नहीं है! इसके अलावा, चूंकि मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व विवादित नहीं है और एम.एस.एम.ई अधिनियम के तहत शुरू की गई मध्यस्थता कार्यवाही कानून के अनुसार है, इसलिए वर्तमान याचिका पर विचार करने का कोई आधार या कारण नहीं है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

23. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने और उससे जुड़े या आकस्मिक मामलों को बढ़ावा देने के लिए विधायिका ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 को अधिनियमित किया है। 2006 के पूर्वोक्त

अधिनियम की धारा 24 स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 15 से 23 को अधिभावी प्रभाव देती है, भले ही तत्समय प्रवृत किसी अन्य कानून में निहित कुछ भी असंगत हो। अधिनियम 2006 की धारा 24 निम्नानुसार निकाली गई है:-

24. अधिभावी प्रभाव-धारा 15 से धारा 23 के उपबन्ध तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी असंगत बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।

24. अधिनियम 2006 की उपरोक्त धारा 24 के आलोक में, प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता जोरदार तर्क दिया है कि उपरोक्त धारा 24 में किए गए प्रावधानों के मद्देनजर जिससे अधिनियम की धारा 15 से 23 को अधिभावी प्रभाव दिया जा रहा है, प्रतिवादी नंबर-2 द्वारा परिषद को किया गया संदर्भ और इस तरह परिषद द्वारा पारित आदेश विवाद को मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ने के लिए अच्छी तरह से सलाहकार परिषद के अधिकार क्षेत्र में है।

25. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता जोरदार तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 18 (2) के तहत विधायिका ने परिषद को विवेक दिया है कि या तो खुद को सुलझाने के लिए आगे बढ़े या वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी भी संस्था या केंद्र की सहायता लें और 1996 के अधिनियम की धारा 65 से 81 केवल सुलह कार्यवाही के दौरान सुलहकर्ता द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में लागू की गई है। आगे यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत विधायिका ने परिषद को पूर्ण विवेक दिया है कि सुलह कार्यवाही की विफलता की स्थिति में या तो विवाद को स्वयं मध्यस्थता करें या मामले को वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली संस्था को संदर्भित करें, इसलिए, 1996 के अधिनियम की धारा 80 का प्रतिबंध लागू नहीं होगा जिसमें निषेध है कि सुलहकर्ता मध्यस्थ नहीं बन सकता है अधिनियम 2006 के तहत मामलों में! इस बात पर भी जोर दिया गया है कि जहां तक विवादों की मध्यस्थता करने के लिए परिषद के अधिकार क्षेत्र का संबंध है, विधायिका ने परिषद को पूर्ण विवेक दिया है और उस विवेक के संबंध में 1996 के अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि 2006 का अधिनियम एक विशेष क्षेत्र से संबंधित एक विशेष कानून है और इसके अलावा, 1996 के अधिनियम की धारा 65 से 81 के प्रावधानों को केवल परिषद द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में, जब मध्यस्थता कार्यवाही को हल या किया जाता है, लागू किया गया है।

26. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने 2020 के रिट-सी नंबर 7785 में दिनांक 3.3.2020 को दिए गए इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें यह माना गया है कि 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) और 18 (3) के तहत निहित अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय परिषद पर लागू नहीं होगा!

दिनांक 3.3.2020 के निर्णय और आदेश का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:-

"59. कर्नाटक उच्च न्यायालय ने वास्तव में गुजरात स्टेट पेट्रोनेट लिमिटेड बनाम माइक्रो एंड स्मॉल एंटरप्राइजेज फैसिलिटेशन काउंसिल और अन्य (उपरोक्त) और गुजरात उच्च न्यायालय में प्रिंसिपल चीफ इंजीनियर बनाम मेसर्स मणिभाई एंड ब्रदर्स (उपरोक्त) में बॉम्बे हाईकोर्ट के फैसले का पालन किया! हम पाते हैं कि पैरा-15 में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा है कि अधिनियम, 1996 की धारा 80 में एक हितकारी सिद्धांत शामिल है कि एक 'मुलहकर्ता' मध्यस्थ के रूप में भी कार्य नहीं कर सकता है और इस हितकारी सिद्धांत को धारा 18(3) के प्रावधानों में विपरीत इरादे का अनुमान लगाकर और धारा 24 को लागू करके कम या बाहर नहीं किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश, जब हमने जांच की तो हमें ऐसा कोई कथित हितकारी सिद्धांत नहीं दिखाया गया जिसे अन्यथा प्रदान करने वाले व्यक्त सांविधिक उपबंध पर अधिभावी प्रभाव दिया जा सकता था! इसके अलावा, हम यह भी पाते हैं कि धारा 18 (4) की पूरी तरह से अनदेखी की गई है और धारा 18(4) का हवाला देकर कोई कारण नहीं दिया गया है कि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद मध्यस्थ के रूप में कार्य क्यों नहीं कर सकती है, जब एक विशिष्ट घोषणा की गई है कि उसके पास मध्यस्थ कार्य करने का अधिकार क्षेत्र होगा! धारा 18 (4) को उस सीमा तक लागू करने के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं दी गई है। इसलिए, हमारे विचार में, उपरोक्त एकल न्यायाधीश के फैसले से याचिकाकर्ताओं को मदद नहीं मिलेगी और हम कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के पूर्वोक्त अधिकार के साथ अपनी असहमति दर्ज करते हैं।

60. हमने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता से पूछताछ की कि इस तरह के कथित हितकारी सिद्धांत कहां हैं कि एक सुलहकर्ता मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, लेकिन वह अधिनियम, 1996 की धारा 80 को छोड़कर हमारे सामने कुछ भी नहीं रख सकता है! धारा 80 को पढ़ने के बाद, हम पाते हैं कि इसमें ये निषेध भी कि सुलहकर्ता किसी मध्यस्थता या न्यायिक कार्यवाही में मध्यस्थ के रूप में या पक्ष के प्रतिनिधि या अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं करेगा, पूर्ण प्रस्ताव नहीं है, लेकिन यह पक्षों को अन्यथा एक समझौता करने की अनुमति देता है। वास्तव में इसमें जो विचार किया गया है वह यह है कि जब एक सुलहकर्ता ने एक विशेष राय बनाई है, लेकिन पार्टियां ऐसी राय से सहमत नहीं हैं, तो ऐसे सुलहकर्ता की ओर से पूर्वाग्रह के किसी भी दायरे से बचने के लिए, जब ऐसा विवाद मध्यस्थता के लिए आगे बढ़ता है, उसे मध्यस्थ नहीं होना चाहिए। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि यह निषेध भी है कि जब मामला न्यायिक कार्यवाही में लिया जाता है तो ऐसा सुलहकर्ता किसी एक पक्ष के प्रतिनिधि या अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं करेगा। हम आगे पाते हैं कि इस सिद्धांत को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून पर संयुक्त राष्ट्र आयोग के अनुच्छेद 18 में मान्यता दी गई थी (इसके बाद "UNCITRAL" के रूप में संदर्भित); अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता अभ्यास पर UNCITRAL मॉडल कानून को अपनाया.

इसे 1985 में अपनाया गया था। अधिनियम, 1996 की प्रस्तावना से हम पाते हैं कि उपर्युक्त मॉडल कानून के साथ-साथ सुलह नियम जो 1980 में यूएनसीआईटीआरएएल द्वारा अपनाए गए थे, को अधिनियम, 1996 के अधिनियमन में मोटे तौर पर ध्यान में रखा गया है। हम जो महसूस करते हैं वह यह है कि धारा 80 में मान्यता प्राप्त उपरोक्त निषेध प्राकृतिक न्याय के प्रसिद्ध सिद्धांतों में से एक के अनुरूप है कि कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के कारण न्यायाधीश नहीं होगा, जिसमें से पूर्वाग्रह पक्षपात की अनुपस्थिति का तत्व अभिन्न पहलुओं में से एक है। पूर्वोक्त सिद्धांत को एक आधार नहीं दिया जा सकता है ताकि विधायिका द्वारा किए गए अनिवार्य प्रावधान को ओवरराइड किया जा सके, वह भी इसे एक अधिभावी प्रभाव देकर, और, हमारे विचार में, न्यायालय को कुछ सिद्धांत खोजने के बजाय स्पष्ट और विशिष्ट प्रावधान का पालन करने और बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए जिसे विधायिका द्वारा संरक्षित नहीं किया गया है। एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) और (4) की वैधता को हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है। इसलिए प्रावधान को पढ़ा जाना चाहिए, व्याख्या की जानी चाहिए और इसका पालन किया जाना चाहिए!

61. एक और पहलू है। आम तौर पर एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण में एकमात्र मध्यस्थ या दो मध्यस्थ होते हैं जो अंपायर के साथ या उसके बिना होते हैं. ऐसे मामले में, मध्यस्थ न्यायाधिकरण का गठन करने वाले ऐसे व्यक्तियों की ओर से व्यक्तिगत पक्षपात पूर्वाग्रह का एक तत्व हो सकता है, यदि उनमें से एक या उन सभी ने सुलहकर्ता के रूप में भी काम किया है. हालांकि, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (1) के तहत किए गए संदर्भ के संबंध में यह स्थिति नहीं है क्योंकि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद एक सांविधिक निकाय है! एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 21 में प्रावधान है कि ऐसे सुलहकर्ता के सदस्य तीन से कम नहीं होंगे लेकिन पांच से अधिक नहीं होंगे! परिषद की संरचना धारा 21 (1) (i) से (iv) में भी दी गई है और इसमें राज्य सरकार के विभाग में उद्योग निदेशक या कोई अन्य अधिकारी शामिल है जो ऐसे निदेशक के पद से नीचे नहीं है; सूक्ष्म या लघु उद्योग या उद्यम संघ के पदाधिकारी या प्रतिनिधिः सूक्ष्म या लघु उद्यमों को ऋण देने वाले बैंकों और वित्तीय संस्थानों के प्रतिनिधि। धारा 21 (1) के खंड (iv) में उल्लिखित व्यक्तियों को सूक्ष्म और लघु उद्यमों को उधार देने वाले बैंकों और वितीय संस्थानों के प्रतिनिधियों के विकल्प में परिषद में लाया जा सकता है, यदि उद्योग, वित्त, कानून, व्यापार या वाणिज्य के क्षेत्र में विशेष ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को शामिल करना आवश्यक समझा जाता है! निदेशक एम.ए.एस.ई.एफ परिषद के अध्यक्ष हैं। इसलिए, एम.ए.एस.ई.एफ परिषद जैसी सांविधिक संस्था व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या पक्षपात के तत्व से ग्रस्त नहीं है जैसा कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण का गठन करने वाले व्यक्तिगत व्यक्तियों के मामले में उपलब्ध है। यह हो सकता है कि सुलह के समय एम.ए.एस.ई.एफ. परिषद का गठन करने वाले व्यक्ति वहीं नहीं हो सकते हैं जब उक्त सुलहकर्ता ने मध्यस्थता के लिए मामला उठाया

था। इसलिए, माध्यस्थम अधिकरण का गठन करने वाले व्यक्तियों के मामले में उपलब्ध धारा 80 (1) द्वारा बनाए गए प्रतिबंध से परे केंद्रीय विचार एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 द्वारा कवर किए गए मामले में अनुपस्थित है, क्योंकि यहां परिषद, जिसे सुलहकर्ता के साथ-साथ मध्यस्थ के रूप में कार्य करने की अनुमति है, एक सांविधिक निकाय है जिसमें कम से कम व्यक्ति नहीं बल्कि पांच व्यक्ति हैं और, इसलिए, ऐसे मामले में व्यक्तिगत पूर्वाग्रह, पूर्वाग्रह का तत्व अनुपस्थित है!

62. अन्यथा भी, जैसा कि हमने पहले ही चर्चा की है, धारा 80 स्वयं पक्षों के बीच एक अन्यया समझौते की अनुमति देती है! इसका अर्थ है कि इस प्रकार यह प्रतिबंध कि सुलहकर्ता मध्यस्थ न्यायाधिकरण नहीं होगा, निरपेक्ष नहीं है. ऐसा होने के कारण, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) और 18 (4) और धारा 24 में निहित अनिवार्य और अभिभावी प्रभाव को हितकारी सिद्धांत का हवाला देकर कम नहीं किया जा सकता है, हालांकि हमारे विचार में, ऐसा कोई हितकारी सिद्धांत जिसमें कानून का बल हो, इस हद तक कि एक विधायी प्रावधान को उप-सेवा के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, मान्यता प्राप्त है या उपलब्ध है।

63. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम स्पष्ट रूप से विचार कर रहे हैं कि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद ने सुलहकर्ता के रूप में कार्य किया है, धारा 18(3) के तहत विवाद को मध्यस्थता करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रूप में काम करने से रोक नहीं दिया गया है और एम.ए.एस.ई.एफ. परिषद के ऐसे अधिकार क्षेत्र को धारा 18 (4) और धारा 24 के आधार पर अधिभावी प्रभाव दिया गया है, जिसे कवर किए गए क्षेत्र में पूर्ण स्विंग दिया जाना है। इसलिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अन्यथा दिए गए तर्क को खारिज कर दिया जाता है। ऊपर तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर याचिकाकर्ता के खिलाफ दिया गया है और हम मानते हैं कि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद पक्षों के बीच विवाद के अधिनिर्णय के लिए मध्यस्थ के रूप में काम करने से प्रतिबंधित नहीं है और यह मामले को किसी अन्य निकाय को संदर्भित करने के लिए बाध्य नहीं है।

27. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) और 18 (3) के तहत परिषद के समक्ष सुलह और मध्यस्थता कार्यवाही में 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध की प्रयोज्यता के संबंध में इस रिट याचिका में शामिल मुद्दा पहले से ही विचार किया गया है और निर्णय लिया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश 31 अक्टूबर 2022, एस.एल.पी (सी) नंबर 12884/2020, गुजरात स्टेट सिविल सप्लाईज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम रामकृष्ण फूड्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य संबंधित सिविल अपीलों के साथ, 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1492 में रिपोर्ट किया गया!

28. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए पेश अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है

कि बॉम्बे के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए डिवीजन बेंच के फैसले को भी उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि 1996 के अधिनियम की धारा 80 के तहत निहित निषेध धारा 18 (2) और 18 (3) अधिनियम 2006 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय परिषद पर लागू नहीं होगा।

29. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले में शामिल तीन मुद्दों को तैयार करने की कृपा की है। 31 अक्टूबर, 2022 के पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

"4. मामलों के पूर्वोक्त परिप्रेक्ष्य की पृष्ठभूमि में, कानून के निम्नलिखित सामान्य प्रश्न विचार के लिए उठते हैं:

(i) क्या एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के अध्याय- के उपबंधों का प्रभाव माध्यस्थम. अधिनियम, 1996 के उपबंर्धा पर अधिभावी होगा?

(ii) क्या एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 17 के तहत देय किसी राशि के संबंध में विवाद के किसी पक्षकार को उक्त अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (1) के तहत सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद को संदर्भ देने से रोका जाएगा, यदि मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 7 में यथा विचारित पक्षों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता मौजूद हो;

(iii) क्या सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद स्वयं विवाद को मध्यस्थता के लिए ले सकती है और मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकती है, जब परिषद ने स्वयं माध्यस्थम अधिनियम 1996 की धारा 80 में निहित बार को ध्यान में रखते हुए एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 की उपधारा (2) के तहत सुलह कार्यवाहियां की थीं,

30. प्रतिवादी नंबर-2 की ओर से पेश अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए 31 अक्टूबर, 2022 के पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 34 में निहित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की ओर भी इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। सुलभ संदर्भ के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए 31 अक्टूबर, 2022 के पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:-

"25. इस प्रकार, मध्यस्थता अधिनियम, 1996 सामान्य रूप से मध्यस्थता और सुलह के कानून को नियंत्रित करता है, जबकि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 व्यक्तियों की विशिष्ट श्रेणियों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों की विशिष्ट प्रकृति को नियंत्रित करता है, जिन्हें एक विशिष्ट मंच के माध्यम से एक विशिष्ट प्रक्रिया का पालन करके हल

किया जाना है। उदाहरण के लिए, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 एक विशेष कानून और मध्यस्थता अधिनियम, 1996 एक सामान्य कानून होने के नाते, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम के प्रावधानों को मध्यस्थता अधिनियम, 1996 पर वरीयता या प्रबल होगा! सिल्पी इंस्टीट्यूट मामले (उपरोक्त) में भी, इस न्यायालय ने भारत सेवा संस्थान बनाम उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रॉनिक्स निगम का अवलोकन किया थाः (ए.आई.आर 2007 एस.सी 2961) एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18(3) के अनुसार शुरु की गई मध्यस्थता कार्यवाहियों में अनुरक्षणीयता और प्रतिदावे के संबंध में मुद्दे पर विचार करते समय कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 विलंबित भुगतानों पर ब्याज के भुगतान के लिए एक सांविधिक तंत्र की स्थापना करके एम.एस.एम.ई की रक्षा करने के लिए एक विशेष कानून है, उक्त अधिनियम मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों को ओवरराइड करेगा जो एक सामान्य विधान है। यदि माध्यस्थम अधिनियम, 1996 को एक विशेष कानून के रूप में माना जाता है, तो भी एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 को बाद में अर्थात् 2006 में अधिनियमित किया गया है, इसका अधिभावी प्रभाव होगा, विशेष रूप से एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 24 को ध्यान में रखते हुए, जो विशेष रूप से किसी अन्य कानून की तुलना में अधिनियम की धारा 15 से 23 के प्रावधानों को प्रभावी बनाता है कुछ समय के लिए प्रवृत होने के लिए, जिसमें माध्यस्थम अधिनियम, 1996 भी शामिल होगा।

26. न्यायालय धारा 18 की उपधारा (1) और उपधारा (4) में निहित विशिष्ट गैर-बाधा खंडों की दृष्टि भी नहीं खो सकता है, जिनका प्रभाव किसी अन्य कानून पर लागू है। जब 2006 में एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 अधिनियमित किया जा रहा था, विधायिका को 1996 के अपने पहले अधिनियमित मध्यस्थता अधिनियम के बारे में पता था, और इसलिए, यह माना जाता है कि विधायिका ने जानबूझकर मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों को एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम के तहत विवादों पर लागू किया था, (ख) सरकार ने वर्ष 2006 में एक ऐसे चरण में समझौता किया है जब एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 की उपधारा (2) के अंतर्गत शुरू की गई सुलह प्रक्रिया विफल हो जाती है और जब सुविधा परिषद स्वयं विवादों को मध्यस्थता के लिए लेती है या ऐसे माध्यस्थम के लिए इसे किसी संस्था या केन्द्र को भेजती है। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 18 (3) अभिव्यक्ति का उपयोग करके एक कानूनी कल्पना बनाई गई है 'जैसे कि' इस तरह के मध्यस्थता के इलाज के उद्देश्य से जैसे कि यह उप-धारा में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में था (1) मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7, जैसा कि के. प्रभाकरन बनाम पी. जयराजन में अवधारित किया गया है, एक कानूनी कल्पना उन तर्थों की स्थिति के अस्तित्व को पूर्ववत करती है जो मौजूद नहीं हो सकते हैं और फिर उन परिणामों पर काम करते हैं जो तथ्यों की उस स्थिति से प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार, एम. एस. एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के समय लक्ष्यों, उद्देश्यों और योजना और उसमें प्रयुक्त

स्पष्ट अभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि एम. एस. एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के अध्याय-V के प्रावधानों का प्रभाव मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों पर ओवरराइड है!

27. सहमति शब्द की एक सचेत चूक कि खरीदारों के लिए अधिवक्ता की ओर से किए गए प्रस्तुतियाँ "समझौते" उप धारा में (1) धारा 18, जो अन्यथा धारा में उल्लेख पाता है 16 एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 का तात्पर्य है कि मध्यस्थता समझौते स्वतंत्र रूप से पर्थ्यो के बीच में प्रवेश के रूप में धारा के तहत चिंतन, मध्यस्थता अधिनियम की, (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है, और इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता! पक्षों के बीच एक निजी समझौता वैधानिक प्रावधानों को खत्म नहीं कर सकता है। एक बार जब धारा 18 की उपधारा (1) के तहत वैधानिक तंत्र किसी भी पक्ष द्वारा शुरु किया जाता है, तो यह धारा 18 की उप- धारा (1) और उप-धारा (4) में निहित गैर-बाध्यकारी खंडों को ध्यान में रखते हुए, पक्षों के बीच स्वतंत्र रूप से दर्ज किए गए किसी भी अन्य समझौते को ओवरराइड करेगा।

(2005) 1 एस.सी.सी 754 धारा 15 से 23 के प्रावधानों का भी अधिभावी प्रभाव है जैसा कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 24 में विचार किया गया है जब कुछ भी असंगत समय के लिए किसी अन्य कानून में निहित है। यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी संविधि की व्याख्या करते समय, यदि दो व्याख्याएं संभव हैं, तो अधिनियम के उद्देश्य को बढ़ाने वाली व्याख्या को उस व्यक्ति की तुलना में प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अधिनियम के उद्देश्य को विफल कर सकती है। यदि खरीदारों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के तहत कवर किए गए विवाद का पक्ष एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (1) के तहत उपलब्ध उपाय का लाभ नहीं उठा सकता है, जब पक्षों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता मौजूद है, तो एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम 2006 को लागू करने का उद्देश्य व्यर्थ हो जाएगा।

28. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित कानून के प्रस्ताव के लिए कोई असहमति नहीं हो सकती है, खरीदारों के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है कि न्यायालय को समझौते को, जैसा कि ये है, पढ़ना है क्योंकि फिर से एक नया समझौता लिख या बना नहीं सकता है, और यह कि एक मध्यस्थता समझौते के पक्षकारों को न केवल प्रक्रियात्मक कानून का पालन करने के लिए बल्कि मूल कानून पर भी निर्णय लेने की स्वायत्तता है, हालांकि, यह समान रूप से स्थापित कानूनी स्थिति है कि पर्सा के बीच किए गए किसी भी समझौते को वैधानिक प्रावधानों पर प्रधानता नहीं दी जा सकती है। जब विशेष अधिनियम अर्थात् एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 उन आपूतकर्ताओं को समय पर और सुचारू भुगतान सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है जो सूक्ष्म और लघु उद्यम हैं, और अधिनियम के तहत पक्षकारों के बीच बकाया

राशि की वसूली के संबंध में विवाद को हल करने के लिए एक कानूनी ढांचा प्रदान करने के लिए, उक्त कानून को किसी अन्य कानून पर एक अधिभावी प्रभाव प्रदान करने के लिए भी बनाया गया है, इसके अनादर में कोई भी व्याख्या अधिनियम के उद्देश्य को विफल कर देगी! इसलिए यह प्रस्तुत करना कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के तहत पक्षों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के वैधानिक प्रावधानों पर प्रबल होगा, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18. की उप-धारा (1) एक समर्थकारी प्रावधान है जो पक्षकारों के बीच विद्यमान माध्यस्थम करार के बावजूद, धारा 17 के अंतर्गत कवर किए गए विवाद के पक्षकार को सुविधा परिषद से संपर्क करने का विकल्प प्रदान करता है। उक्त प्रावधान में समझौते' शब्द की अनुपस्थिति को न तो कानून में कैसस ओमिसस के रूप में माना जा सकता है और न ही इसे धारा 17 के तहत कवर किए गए विवाद के लिए पक्ष के खिलाफ एक प्रीक्लूजन के रूप में माना जा सकता है, इस आधार पर कि पक्ष के बीच एक मध्यस्थता समझौता मौजूद है। वास्तव में, यह उक्त प्रावधान के तहत पक्ष के पक्ष में सृजित एक महत्वपूर्ण अधिकार है। इसलिए यह माना जाता है कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 17 के तहत कवर किए गए विवाद के किसी भी पक्ष को धारा 18 (1) के तहत सुविधा परिषद को संदर्भ देने से रोका नहीं जाएगा, केवल इसलिए कि पक्षों के बीच एक मध्यस्थता समझौता मौजूद है।

29. पूर्वोक्त कानूनी स्थिति खरीदारों के अधिवक्ता की ओर से दिए गए तर्कों को भी दूर करती है कि सुविधा परिषद ने एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (2) के तहत सुलहकर्ता के रूप में कार्य किया है, विवाद को मध्यस्थता के लिए नहीं ले सकता है और मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। हालांकि यह सच है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 80 में एक बार है कि सुलहकर्ता किसी विवाद के संबंध में किसी भी मध्यस्थ कार्यवाही में मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करेगा जो सुलह कार्यवाही के अधीन है, उक्त बार को एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम 2006 की धारा 24 के साथ पठित धारा 18 में निहित प्रावधानों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है, जैसा कि पहले आयोजित किया गया था, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के अध्याय-V में निहित प्रावधानों का प्रभाव मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों को ओवरराइड करना है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधान सुविधा परिषद द्वारा संचालित कार्यवाही पर तभी लागू होंगे जब धारा 18 (2) के तहत परिषद द्वारा शुरू की गई सुलह की प्रक्रिया विफल हो जाती है और परिषद या तो स्वयं विवाद को मध्यस्थता के लिए उठाती है या इसे किसी संस्थान या केंद्र को भेजती है जैसा कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत विचार किया गया है।

30. जब सुविधा परिषद या संस्था या केंद्र मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है, तो उसके पास निर्दिष्ट विवादों का फैसला करने की सभी

शक्तियां होंगी जैसे कि इस तरह की मध्यस्थता उप- धारा (1) में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में थी। धारा 7 की मध्यस्थता अधिनियम, 1996 और फिर मध्यस्थता अधिनियम के सभी ट्रैपिंग, 1996 ऐसी मध्यस्थता पर लागू होगा. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि माध्यस्थम अधिकरण के रूप में कार्य करने वाली ऐसी सुविधा परिषद/संस्था/केन्द्र भी माध्यस्थम अधिनियम, 1996 के अंतर्गत नियुक्त किसी अन्य माध्यस्थम अधिकरण की तरह अपने स्वयं के क्षेत्राधिकार पर निर्णय देने के लिए सक्षम होगा, जैसा कि उसकी धारा 16 में विचार किया गया है।

31. खरीदारों के लिए अधिवक्ताओं द्वारा किए गए प्रस्तुतियों में से एक पक्ष आपूर्तिकर्ता नहीं था कि अगर पक्ष आपूर्तिकर्ता नहीं था "आपूर्तिकर्ता" धारा के अर्थ के भीतर 2 (एन) एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की तारीख पर अनुबंध पक्षों के बीच में दर्ज किया, यह एम.एस.एम.ई की धारा 18 (1) के तहत सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद के लिए विवाद का संदर्भ नहीं दे सकता था. घ) अधिनियम, 2006 के तहत एक मध्यस्थ के रुप में विवादों पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार परिषद के पास नहीं होगा।

32. इस मोड़ पर, इस मुद्दे पर सिल्पी इंडस्ट्रीज मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा की गई एक बहुत ही प्रासंगिक टिप्पणियों को पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता है: -

"26. ..... हमारे विचार में, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम के तहत प्रावधानों का लाभ लेने के लिए, विक्रेता को अनुबंध में प्रवेश करने की तारीख के अनुसार अधिनियम के प्रावधानों के तहत पंजीकृत होना चाहिए। किसी भी घटना में, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम के प्रावधानों के तहत इकाई के पंजीकरण से पहले किए गए अनुबंध के अनुसार आपूर्ति के लिए, ऐसी इकाई द्वारा कोई लाभ नहीं मांगा जा सकता है, जैसा कि एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम के तहत विचार किया गया है। लघु और सहायक औद्योगिक उपक्रमों को विलंबित भुगतान पर ब्याज के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए अधिनियम, 1993, इस न्यायालय ने शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम असम राज्य विद्युत बोर्ड के मामले में निर्णय में कहा है कि वस्तुओं/सेवाओं की आपूर्ति की तारीख को प्रासंगिक तारीख के रूप में लिया जा सकता है, जिस तारीख को आपूर्ति के लिए, यहां तक कि उक्त अनुपात को भी लागू करते हुए, अनुबंध दर्ज किया गया था, पूर्वोक्त अधिनियम की प्रयोज्यता के लिए, अपीलकर्ता अधिनियम का लाभ लेने का हकदार नहीं है.....

उप-अधिनियम की धारा 8 की धारा (1), माल और सेवाओं की संविदा और आपूर्ति में प्रवेश करने के बाद, कोई भी एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के तहत वर्गीकृत होने की कानूनी स्थिति को एक उद्यम के रूप में नहीं मान सकता है, जिस तारीख को अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के साथ अनुबंध किया था! अपीलकर्ता एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम 2006 के अर्थ के भीतर लाभ का दावा करने के लिए सूक्ष्म या लघु उद्यम या आपूर्तिकर्ता नहीं बन सकता है,

अनुबंध में प्रवेश करने और माल और सेवाओं की आपूर्ति में प्रवेश करने के बाद पंजीकरण प्राप्त करने के लिए एक ज्ञापन प्रस्तुत करके! यदि कोई पंजीकरण प्राप्त किया जाता है, तो वह भावी होगा और पंजीकरण के बाद वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति के लिए लागू होगा लेकिन पूर्वव्यापी रूप से संचालित नहीं हो सकता है। प्रावधान की कोई अन्य व्याख्या गैर-बराबरी को जन्म देगी और कानून द्वारा अभिप्रेत नहीं होने वाली पक्ष के पक्ष में अनुचित लाभ प्रदान करेगी!

33. उपर्युक्त अनुपात के बाद, यह माना जाता है कि एक पक्ष जो अनुबंध में प्रवेश करने की तारीख को एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 2 (एन) के अनुसार "आपूर्तिकर्ता" नहीं थी, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के तहत आपूर्तिकर्ता के रूप में कोई लाभ नहीं ले सकती थी। एक पक्ष एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के तहत लाभ का दावा करने के लिए एक सूक्ष्म या लघु उद्यम या आपूर्तिकर्ता नहीं बन सकती है, अनुबंध में प्रवेश करने और माल की आपूर्ति या सेवाएं प्रदान करने के बाद पंजीकरण प्राप्त करने के लिए एक ज्ञापन प्रस्तुत करकेा यदि बाद में कोई पंजीकरण प्राप्त किया जाता है तो उसका भावी प्रभाव होगा और वह पंजीकरण के बाद माल की आपूर्ति और सेवाएं प्रदान करने के लिए लागू होगा। वही पूर्वव्यापी रूप से काम नहीं कर सकता है। तथापि, क्षेत्राधिकार संबंधी मुद्दा होने के कारण, यदि उठाया जाता है तो इस पर एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 के अंतर्गत माध्यस्थम अधिकरण के रूप में कार्य करने वाली सुविधा परिषद/संस्थान/केन्द्र द्वारा भी निर्णय लिया जा सकता है!

34. उपरोक्त का परिणाम यह है किः

(i) एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 का अध्याय- माध्यस्थम अधिनियम, 1996 के उपबंधों का अभिभावी होगा!

(ii) एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 17 के तहत देय किसी राशि के संबंध में विवाद के किसी भी पक्षकार को सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद को संदर्भ देने से रोका नहीं जाएगा, हालांकि पक्षों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता मौजूद है।

31. प्रतिवादी नंबर-2 की ओर से पेश अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 31 अक्टूबर, 2022 के पैराग्राफ 35 (IV) की ओर भी इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने भरोसा किया है. इस निष्कर्ष पर ये अलग रखा गया है कि सुविधा परिषद स्वयं मध्यस्थता शुरु करने का निर्णय नहीं ले सकती थी एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) के तहत कार्यवाही! माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 35 (IV) को निम्नानुसार उद्धृत किया गया हैः-

"(IV) सीए ..... 2022 का (@ एस.एल.पी (सी) नंबर 31227 वर्ष 2018 (1) इस अपील में, अपीलकर्ता गुजरात स्टेट पेट्रोनेट लिमिटेड (मूल याचिकाकर्ता) ने बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.08.2018 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने माना कि स्वतंत्र मध्यस्थता, समझौते के बावजूद सुविधा परिषद को किया गया संदर्भ बनाए रखने योग्य था। उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि सुविधा परिषद ने स्वयं सुलह कार्यवाही का संचालन किया है, यह एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) के तहत मध्यस्थता कार्यवाही शुरु करने का निर्णय नहीं ले सकता था।

(ii) वर्तमान मामले में, प्रतिवादी नंबर-1 यानी कुणाल वर्क्स (मूल प्रतिवादी नंबर-3) ने सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद से संपर्क करके एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (1) का आह्वान किया था। उक्त संदर्भ में, अपीलकर्ता जी.एस.पी.एल ने पक्षों के बीच मौजूद मध्यस्थता समझौते के मद्देनजर संदर्भ पर विचार करने के लिए सुविधा परिषद के अधिकार क्षेत्र के संबंध में आपति उठाई थी। सुविधा परिषद ने पर्षों के बीच सुलह की कार्यवाही शुरु की थी, हालांकि यह विफल होने के बाद, परिषद ने दिनांक 29.04.2015 के आदेश के माध्यम से मध्यस्थता के लिए विवाद को लेने का निर्णय लिया। जी.एस.पी.एल ने इस आदेश को बंबई उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी!

(ii) हमारे विचार में, दोनों मुद्दों पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है और यहां यह मानते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि धारा 17 के तहत देय किसी भी धन के संबंध में विवाद के लिए एक पक्ष द्वारा सुविधा परिषद का संदर्भ पक्षों के बीच मौजूद एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौते के बावजूद बनाए रखने योग्य होगा और यह कि सुविधा परिषद मध्यस्थता के लिए विवाद भी उठा सकती है और, मध्यस्थता अधिनियम 1996 की धारा 80 में निहित रोक के बावजूद एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 धारा 18 (3) के तहत विचार किए गए मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकती है।

(iv) उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, इसलिए जिस हद तक यह निष्कर्ष दर्ज करता है कि सुविधा परिषद एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) के तहत स्वयं मध्यस्थता कार्यवाही शुरु करने का निर्णय नहीं ले सकती थी, जो रद्द करने के योग्य है और तदनुसार इसे अलग रखा गया है।

(v) सुविधा परिषद के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाहियों को माध्यस्थम अधिनियम, 1996 के अनुसार आगे बढ़ाया जाएगा। तदनुसार अपील का निपटारा किया जाता है।

32. प्रतिवादी नंबर-2 के लिए उनके द्वारा उद्धृत पूर्वोक्त निर्णयों के बल पर उपस्थित अधिवक्ता ने अपने तर्कों को समाप्त कर दिया है और प्रार्थना की है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाए।

<u>निष्कर्ष</u>

33. हमने पक्षों के लिए उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं द्वारा दी गयी प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

34. हम पाते हैं कि विधायिका ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 को एक विशेष उद्देश्य के लिए अधिनियमित किया है, जो सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने और उससे जुड़े या प्रासंगिक मामलों को बढ़ावा देने के लिए है और यही कारण है कि अधिनियम 2006 की धारा 24 में प्रावधान है कि अधिनियम 2006 की धारा 15 से 23 तक प्रभावी होगी, भले ही इसमें निहित कुछ भी असंगत हो तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में। 2006 के उपर्युक्त अधिनियम में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों से निपटने के लिए विभिन्न प्रावधान शामिल हैं और इसलिए, 2006 का अधिनियम सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों से संबंधित एक विशेष कानून है और इस उद्देश्य के लिए, अधिनियम 2006 की धारा 24 ने अधिनियम 2006 की धारा 15 से 23 को अभिभावी प्रभाव दिया है।

35. अधिनियम 2006 की धारा 18 (1) अवधारित करती है कि लिए किसी भी कानून में निहित कुछ अन्य के बावजूद, विवाद किसी भी पक्ष में हो सकता है (?) धारा 17 के तहत देय किसी भी राशि के संबंध में, सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद के लिए एक संदर्भ बना सकते हैं. अधिनियम 2006 की धारा 18 (2) में प्रावधान है कि उपधारा (1) के तहत संदर्भ प्राप्त होने पर, परिषद या तो स्वयं मामले में सुलह करेगी या सुलह और मध्यस्थता अधिनियम की धारा 65 से 81 के प्रावधानों के लिए ऐसे संस्थान या केंद्र को संदर्भ देकर वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केंद्र की सहायता मांगेगी! अधिनियम 2006 की धारा 18(3) में यह प्रावधान है कि जहां उपधारा (2) के तहत शुरू किया गया सुलह सफल नहीं होता है और पक्षों के बीच किसी समझौते के बिना समाप्त हो जाता है, तो परिषद या तो स्वयं मध्यस्थता के लिए विवाद उठाएगी या ऐसी मध्यस्थता के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था या केंद्र को भेजेगी और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के प्रावधान तब विवाद पर लागू होंगे जैसे कि मध्यस्थता उस अधिनियम की धारा 7 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट मध्यस्थता समझौते के अनुसरण में थी!

36. हम पाते हैं कि अधिनियम 2006 के 18 के तहत प्रावधानों का अधिनियम 2006 की धारा 24 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर अधिभावी प्रभाव है। विधायिका ने अधिनियम 2006 की धारा 18(2) में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया है कि परिषद या तो स्वयं सुलहकर्ता के रूप में कार्य कर सकती है या मामले को सुलह के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली किसी संस्था को भेज सकती है और सुलह कार्यवाहियों की प्रक्रिया 1996 के अधिनियम की धारा 65 से 81 के अनुसार की जाएगी। इसके बाद, अधिनियम 2006 की धारा 18(3) के तहत विधायिका ने परिषद को पूर्ण विवेक दिया है कि सुलह कार्यवाहियों की विफलता की स्थिति में या तो परिषद स्वयं पक्षों के बीच विवाद की

मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ सकती है या परिषद वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली संस्था को मध्यस्थता भेज सकती है और आगे यह प्रावधान किया गया है कि ऐसी मध्यस्थता के दौरान 1996 के अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे!

37. हम पाते हैं कि जहां तक मध्यस्थता के मंच के चयन का संबंध है, विधायिका ने परिषद को पूर्ण विवेक दिया है कि या तो परिषद स्वयं पक्षों के बीच विवाद की मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ सकती है या मध्यस्थता के लिए विवाद को वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं प्रदान करने वाली संस्था को संदर्भित कर सकती है और उक्त विवेक के प्रयोग में 1996 के अधिनियम के प्रावधानों को लागू नहीं किया गया है। बल्कि मध्यस्थता कार्यवाही के मंच के चयन में उक्त विवेक के प्रयोग के बाद, 1996 के अधिनियम के प्रावधानों को मध्यस्थ द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में लागू किया जाता है!

38. हम यह भी पाते हैं कि 2006 का अधिनियम एक विशेष कानून है और उक्त अधिनियम की धारा 24 में किए गए प्रावधानों के मद्देनजर, पक्षों के बीच मध्यस्थता के मंच का चयन करने के लिए अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत परिषद को दिया गया विवेक अधिभावी प्रभाव है और इसलिए, परिषद द्वारा मध्यस्थता के लिए मंच के चयन के चरण में धारा 80 में निहित निषेध 1996 का अधिनियम लागू नहीं होगा!

39. हम यह भी पाते हैं कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर याचिका यानी मध्यस्थता याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 को खारिज करते हुए 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध के मुद्दे पर विचार किया है और निष्कर्ष निकाला है कि 1996 के अधिनियम के 80 में निहित निषेध परिषद द्वारा धारा 18 (3) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मध्यस्थता के लिए 2006 का अधिनियम मंच का चयन करने के मामले में लागू नहीं होगा!

40. हम आगे पाते हैं कि इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 2020 की रिट-सी संख्या 7785 में दिए गए निर्णय और आदेश दिनांक 3.3.2020 के तहत अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत कार्यवाही में 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध की प्रयोज्यता के बारे में निर्णय लिया है और माना है कि 2006 का अधिनियम एक विशेष कानून है और इसे एक विशेष उद्द्देश्य के लिए अधिनियमित किया गया है और इसलिए, पक्षकारों के बीच मध्यस्थता के लिए मंच का चयन करने के लिए परिषद को दिया गया विवेकाधिकार परिषद के साथ एक पूर्ण विवेक है और इसलिए, 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध लागू नहीं होगा! इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 62 और 63 को निम्नानुसार निकाला गया है:-

62. अन्यथा भी, जैसा कि हमने पहले ही चर्चा की है, धारा 80 स्वयं पक्षों के बीच एक अन्यथा समझौते की अनुमति देती है।

इसका अर्थ है कि इस प्रकार यह प्रतिबंध कि सुलहकर्ता मध्यस्थ न्यायाधिकरण नहीं होगा, निरपेक्ष नहीं है. ऐसा होने के कारण, एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18(3) और 18 (4) और धारा 24 में निहित अनिवार्य और अभिभावी प्रभाव को हितकारी सिद्धांत का हवाला देकर कम नहीं किया जा सकता है, हालांकि हमारे विचार में, ऐसा कोई हितकारी सिद्धांत जिसमें कानून का बल हो, इस हद तक कि एक विधायी प्रावधान को उप-सेवा, मान्यता प्राप्त है या उपलब्ध है, के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

63. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम स्पष्ट रूप से विचार कर रहे हैं कि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद ने सुलहकर्ता के रूप में कार्य किया है, धारा 18 (3) के तहत विवाद को मध्यस्थता करने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रूप में काम करने से रोक नहीं दिया गया है और एम.ए.एस.ई.एफ परिषद के ऐसे अधिकार क्षेत्र को धारा 18 (4) और धारा 24 के आधार पर अधिभावी प्रभाव दिया गया है, जिसे कवर किए गए क्षेत्र में पूर्ण स्विंग दिया जाना है। इसलिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अन्यथा दिए गए तर्क को खारिज कर दिया जाता है। ऊपर तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर याचिकाकर्ता के खिलाफ दिया गया है और हम मानते हैं कि एम.ए.एस.ई.एफ परिषद पक्षों के बीच विवाद के अधिनिर्णय के लिए मध्यस्थ के रूप में काम करने से प्रतिबंधित नहीं है और यह मामले को किसी अन्य निकाय को संदर्भित करने के लिए बाध्य नहीं है।

41. हम यह भी पाते हैं कि अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत कार्यवाही में 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध की प्रयोज्यता के संबंध में मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका है और निर्णय लिया गया है। एस.एल.पी (सी) संख्या 12884/2020 में दिए गए अपने निर्णय और आदेश दिनांक 31 अक्टूबर, 2022, गुजरात राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड बनाम रामकृष्ण फूड्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (अन्य जुड़े नागरिक अपीलों के साथ), 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1492 में रिपोर्ट किया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 31 अक्टूबर, 2022 के पैराग्राफ 4 में प्रश्न और प्रश्न संख्या 2022 तैयार किए हैं। (iii) माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाई गई कार्रवाई निम्नानुसार उद्धृत की गई है

"4. XXXXX

(iii) क्या सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद स्वयं विवाद को मध्यस्थता के लिए ले सकती है और मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकती है, जब परिषद ने स्वयं माध्यस्थम अधिनियम 1996 की धारा 80 में निहित बार को ध्यान में रखते हुए एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 की उपधारा (2) के तहत सुलह कार्यवाहियां की थी,."

42. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम 2006 और 1996 के अधिनियम के कानूनी प्रावधानों पर चर्चा करने के बाद पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 31.10.2022 के पैराग्राफ

संख्या 34 में उपरोक्त प्रश्न का उत्तर दिया है, जिसे निम्नानुसार निकाला गया है:-

"34 (ii) सुविधा परिषद, जिसने एम. एस. एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (2) के तहत सुलह कार्यवाही शुरू की थी, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 80 में निहित बार के बावजूद मध्यस्थ के रूप में कार्य करने की हकदार होगी।

43. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने रिट याचिका संख्या 5459 वर्ष 2015, गुजरात स्टेट पेट्रोनेट लिमिटेड बनाम सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद और अन्य में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए निर्णय और आदेश दिनांक 6.8.2018 पर अपनी दलीलें दी हैं, लेकिन हम पाते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 31 अक्टूबर 2022 को, बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले को इस हद तक रद्द कर दिया है कि यह पता चलता है कि सुविधा परिषद अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत स्वयं मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने का निर्णय नहीं ले सकती थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए 31 अक्टूबर, 2022 के पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार निकाला गया है:-

"35. (IV) (iv) उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, इसलिए इस हद तक यह इस निष्कर्ष को दर्ज करता है कि सुविधा परिषद एम.एस.एम.ई.डी अधिनियम, 2006 की धारा 18 (3) के तहत मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने का निर्णय नहीं ले सकती थी, जिसे अलग रखा जाना चाहिए और तदनुसार इसे अलग रखा गया है।

44. हम पाते हैं कि विधायिका ने अधिनियम 2006 के रूप में एक विशेष कानून अधिनियमित किया है जिसमें सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के संबंध में विशेष प्रावधान शामिल हैं और इसके अलावा विधायिका ने अधिनियम 2006 की धारा 15 से 23 को अधिभावी प्रभाव दिया है। इस प्रकार, पक्षों के बीच मध्यस्थता के मंच के चयन के संबंध में अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत सुविधा परिषद को दिया गया विवेक पूर्ण है और किसी अन्य कानून पर इसका अधिभावी प्रभाव है। इसलिए, परिषद द्वारा सुलह कार्यवाही किए जाने की स्थिति में और इसकी विफलता पर परिषद स्वयं पक्षों के बीच विवाद को मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ सकती है और 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध का परिषद द्वारा उक्त विवेक के प्रयोग में कोई प्रयोग नहीं होगा।

45. धारा 80 अधिनियम 1996 में निहित निषेध के आवेदन के संबंध में कानून पहले से ही इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में निपटाया गया है और यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि जहां सुविधा परिषद स्वयं सुलहकर्ता थी और सुलह कार्यवाही विफल होने की स्थिति में, अधिनियम 2006 की धारा 18 (3) के तहत परिषद स्वयं विवाद की मध्यस्थता करने के लिए आगे बढ़ सकती है और वहां 1996 के अधिनियम की धारा 80 में निहित निषेध का कोई आवेदन नहीं होगा!

46. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिया गया दूसरा तर्क है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के तत्वावधान में दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता केंद्र एक विशेषज्ञ निकाय है और गुणवत्ता मध्यस्थता कार्यवाही करने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित है और इसलिए, विवाद को उक्त मध्यस्थता केंद्र को भेजा जाना चाहिए। हम पाते हैं कि विधायिका ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के कार्यकरण में शामिल विभिन्न प्रकार के मुद्दों से निपटने के लिए अधिनियम 2006 के रूप में विशेष कानून बनाए हैं और इसलिए, अधिनियम 2006 के तहत विधायिका ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के क्षेत्र के विशेषज्ञों को शामिल करते हुए सुविधा परिषद के गठन का प्रावधान किया है। और इसलिए, याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क देना पूरी तरह से गलत है कि सुविधा परिषद याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी संख्या 2 के बीच विवाद की मध्यस्थता करने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित नहीं है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिए गए उक्त तर्क में दम नहीं है और इसे खारिज कर दिया गया है।

47. उपरोक्त कारणों को देखते हुए, हम दावा याचिका संख्या 402 वर्ष 2019 में सुविधा परिषद द्वारा पारित दिनांक 11.6.2019 और 24.7.2019 के आदेशों में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं पाते हैं।

48. तदनुसार, याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1155

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 66462 वर्ष 2006

जय प्रकाश एसो. लिमिटेड ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राघव नायर, भव्य तिवारी, श्री प्रशांत शुक्ला, श्री रोहन गुप्ता, श्री वाई. वर्मा, श्री नवीन सिन्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री सीएस सिंह, श्री आरपी सिंह

वचन-बाधित रोक - वैध अपेक्षा - स्टाम्प शुल्क से छूट - पूर्वव्यापी राजपत्र अधिसूचना - बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचा परियोजना - जनहित - अंतरिम आदेशों के तहत भुगतान किए गए स्टाम्प की वापसी - छूट अधिसूचना में खंड (डी) का प्रभाव

अभिनिर्धारितः -

जहाँ राज्य सरकार ने 18.02.2003 के सरकारी आदेश द्वारा 750 करोड़ रुपये से अधिक की सार्वजनिक परियोजनाओं पर स्टाम्प शुल्क में छूट देने का सैद्धांतिक रूप से संकल्प लिया था, और 28.02.2003 से 21.07.2003 के

बीच स्टाम्प शुल्क का भुगतान किए बिना ही दस्तावेज़ निष्पादित किए गए थे, वहाँ स्टाम्प शुल्क पर ज़ोर देने वाले 13.08.2004 के बाद के माँग नोटिस और 30.08.2003 के सरकारी आदेश, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 9(1)(ए) के तहत जारी 17.11.2007 के पूर्वव्यापी राजपत्र अधिसूचना, जिसमें 13.02.2003 से छूट प्रदान की गई थी, को रद्द नहीं कर सकते थे। 750 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश करने वाला याचिकाकर्ता, 28.11.2007 के पत्र के अनुसार छूट का पात्र था। दिनांक 13.08.2004 के माँग नोटिस, दिनांक 30.08.2003 के शासनादेश और दिनांक 13.10.2006 के आदेश निरस्त। वसूली कार्यवाही और परिणामी प्रमाणपत्र अपास्त। अंतरिम आदेशों के तहत जमा की गई राशि वापस की जाए; बैंक गारंटियाँ रद्द की जाएँ।

रिट स्वीकृत।

<u>संदर्भित/प्रासंगिक उद्धरण:</u>

1. मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 2 एससीसी 409

2. भारत संघ बनाम गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड, (1985) 4 एससीसी 369

3. बिहार राज्य बनाम सुप्रभात स्टील लिमिटेड, (1999) 1 एससीसी 31

4. कासिंका ट्रेडिंग बनाम भारत संघ, (1995) 1 एससीसी 274

5. श्री सिद्धबली स्टील्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 3 एससीसी 193

6. राजस्थान राज्य बनाम जेके उदयपुर उद्योग लिमिटेड, (2004) 7 एससीसी 673

7. सीमा शुल्क आयुक्त बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2004) 3 एससीसी 488

8. सदर्न पेट्रोकेमिकल इंडस्ट्रीज कंपनी लिमिटेड बनाम इलेक्ट्रिसिटी इंस्पेक्टर, (2007) 5 एससीसी 447

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा पारित)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता ने की और श्री निमाई दास, जिनकी सहायता विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अमित कुमार ने की, को सुना।

2. जब उत्तर प्रदेश राज्य ने एक परियोजना जिसके द्वारा छह लेन का 160 किलोमीटर लंबा एक्सप्रेसवे बिछाया जाना था, के विकास के लिए उत्तर प्रदेश औद्योगिक विकास क्षेत्र अधिनियम, 1976 के तहत ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (इसके बाद "प्राधिकरण" के रूप मे संदर्भित) को सम्मिलित किया था, तो याचिकाकर्ता, जो एक निजी डेवलपर है, को यमुना नदी के किनारे अनछुए क्षेत्र पर नोएडा और आगरा को जोड़ने वाली

कुछ भूमि हस्तांतरित की गई थी। जब प्राधिकरण से याचिकाकर्ता को भूमि हस्तांतरित की गई, तो समझौते किए गए और सरकारी आदेश दिनांक 27.2.2003 के अनुसार, 100/- रुपये के स्टांप पर समझौते किए गए। सरकार ने, यह देखते हुए कि निजी उद्यम को प्रोत्साहित किया जाए, दिनांक 18.2.2003 को एक परिपत्र जारी किया था और सिद्धांत रूप में इच्छा व्यक्त की थी कि 750 करोड़ रुपये से अधिक मूल्य की सार्वजनिक परियोजनाओं के लिए सभी लेन-देन पर स्टांप नहीं लगाया जाएगा। इसके अनुसरण में जब याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 28.2.2003 और दिनांक 21.7.2003 के बीच 14 लेख पत्र निष्पादित किए गए, तो कोई स्टांप शुल्क नहीं दिया गया। हालाँकि, दिनांक 13.8.2004 को 14 अलग-अलग लेख पत्रों के लिए स्टांप की कमी हेतु 14 अलग-अलग नोटिस जारी किए गए। इन्हें रिट याचिका के संलग्नक-18 पर पेज संख्या 169 से 183 तक पाया जा सकता है। याचिकाकर्ता ने इन नोटिसों को शासनादेश दिनांक 30.8.2003, जिसमें कई शब्दों में कहा गया था कि जब तक भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 की धारा 9(1)(ए) के तहत राजपत्र अधिसूचना नहीं होती, तब तक सभी लेनदेन पर स्टांप शुल्क का भुगतान करना होगा, के साथ चुनौती दी। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वचनबद्धता और वैध अपेक्षा के सिद्धांतों के आधार पर अपना दावा करते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की।

3. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में कहा था कि चूंकि सरकार सैद्धांतिक रूप से इस बात पर सहमत थी कि सभी निजी डेवलपर्स जो ताज एक्सप्रेसवे परियोजना का हिस्सा थे, उन्हें स्टाम्प ड्यूटी जमा करने से छूट दी जाएगी, इसलिए दिनांक 30.8.2003 का शासनादेश जारी नहीं किया जा सकता। इसलिए याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की थी कि दिनांक 13.8.2004 की नोटिसों को रद्द कर दिया जाए और शासनादेश दिनांक 30.8.2003 को भी रद्द करने की प्रार्थना की। इस बीच, रिट याचिका लंबित रहने के दौरान, स्टाम्प अधिकारी (वित्त और राजस्व के एडीएम) ने दिनांक 13.10.2006 को नोटिसों में की गई मांग को बरकरार रखते हुए आदेश पारित किए और इसलिए आदेश दिनांक 13.10.2006 को भी चुनौती दी गई। रिट याचिका में प्रतिवादियों को यह आदेश देने की भी प्रार्थना की गई थी कि वे स्टाम्प अधिनियम, 1899 के प्रावधानों के अनुसार याचिकाकर्ता को वे लाभ प्रदान करें जो शासनादेश दिनांक 28.2.2003 और दिनांक 10.4.2003 के परिपत्रों से निर्गत हो रहे थे।

4. रिकॉर्ड से, हम पाते हैं कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान राजपत्र अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य ने एक अधिसूचना जारी की थी कि यदि निवेश 750 करोड़ रुपये या उससे अधिक का है और परियोजना सार्वजनिक हित में है और यदि स्टाम्प शुल्क में कोई छूट आदि पहले से नहीं ली गई है, तो कोई स्टाम्प शुल्क नहीं लगाया जाएगा। यह सरकारी अधिसूचना जो दिनांक 17.11.2007 की थी, भूतलक्षी रूप से लागू हुई और दिनांक 13.02.2003 से प्रभावी हुई। दिनांक 17.11.2007 को राजपत्रित सरकारी अधिसूचना नीचे उद्धृत की जा रही है:-

"राज्यपाल महोदय सरकारी अधिसूचना संख्या के.एन. 5-4513(1)/11-2007-500(22)-2003 दिनांक 17 नवम्बर, 2007 का निम्नलिखित अंग्रेजी अनुवाद सर्वसाधारण की जानकारी हेतु प्रकाशित करने का आदेश देते हैं:

संख्या के.एन.एस. 5-4513(1)/11-2007-500(22)-2003 लखनऊ,

दिनांक 17 नवम्बर, 2007

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (अधिनियम संख्या 02 सन् 1899) की धारा 9 की उपधारा (1) के खण्ड (क) के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जैसा कि उसके उत्तर प्रदेश को दिये गए आवेदन में संशोधित है, राज्यपाल महोदय 750 करोड़ रुपये या उससे अधिक पूंजी निवेश वाली बड़ी परियोजनाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, ऐसी परियोजना के हित में, उक्त अधिनियम के तहत भूमि के हस्तांतरण के लिए निष्पादित हस्तांतरण के लेख पत्रों पर आदेय स्टाम्प शुल्क को दिनांक 13 फरवरी, 2003 से प्रभावी, छूट प्रदान करते हैं;

बशर्ते कि,-

(क) संबंधित लेख पत्रों पर स्टाम्प शुल्क में उपर्युक्त छूट उन परियोजनाओं के संबंध में उपलब्ध होगी, जिन्हें मंत्रिमंडल या आर्थिक मामलों पर मंत्रिमंडल की उप-समिति, यथास्थिति, ने राज्य सरकार के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में इस उद्देश्य के लिए गठित एक अधिकृत समिति की सिफारिश पर मंजूरी दी है। अधिकृत समिति, शुल्क में कमी या छूट की सिफारिश करने से पहले, इस मानदंड पर परियोजना की जांच करेगी कि-

(I) परियोजना में 750 करोड़ रुपये या उससे अधिक का निवेश किया जा रहा है।

(II) परियोजना जनहित में है।

(III) परियोजना को वित्तीय रूप से व्यवहार्य बनाने के लिए शुल्क में छूट सहित कोई भी सुविधा राज्य

सरकार द्वारा जनहित में दी जानी आवश्यक है।

(ख) प्रमुख सचिव/संबंधित विभाग के सचिव या इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से नामित उनके प्रतिनिधि यह प्रमाणित करेंगे कि जिस परियोजना से संबंधित लेख पत्र है, उसमें पूंजी निवेश 750 करोड़ रुपये या उससे अधिक है और निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद सक्षम स्तर से उचित अनुमोदन प्राप्त किया गया है। इस आशय का प्रमाण पत्र लेख पत्र के पंजीकरण के समय प्रस्तुत किया जाएगा।

(ग) उक्त मानदंड तत्काल प्रभाव से लागू होंगे। लेकिन किसी भी परियोजना, जिसमें इस अधिसूचना से पहले ही, प्राधिकृत समिति की सिफारिश पर कैबिनेट या आर्थिक मामलों पर कैबिनेट की उप-समिति का अनुमोदन लेने के बाद, छूट या कटौती दी जा चुकी है, की समीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

(घ) किसी भी लेख पत्र पर भुगतान किया गया कोई भी स्टांप शुल्क वापस नहीं किया जाएगा।

(ङ) परियोजना के उद्यमी या विकासकर्ता को, इस प्रकार प्राप्त भूमि को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरण के लिए निष्पादित किए जा रहे लेख पत्रों पर, स्टाम्प शुल्क में कोई छूट स्वीकार्य नहीं होगी।

आदेशानुसार,

के. चंद्रमौली,

प्रमुख सचिव"

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सरकारी अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 पर अपने तर्कों को आधारित करते हुए कहा कि अब चूंकि स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 9(1)(ए) के तहत स्टाम्प शुल्क माफ करने के लिए अधिसूचना जारी कर दी गई है, इसलिए दिनांक 13.8.2004 के नोटिसों द्वारा की गई स्टाम्प शुल्क की कोई मांग, वसूली नहीं जा सकती। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा आज तक कोई स्टाम्प शुल्क नहीं चुकाया गया है। यह भी कहा गया है कि इस न्यायालय द्वारा वर्तमान रिट याचिका में पारित आदेश दिनांक

11.12.2006 और आदेश दिनांक 23.2.2007 के अनुसार, याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.2.2003 और दिनांक 21.7.2003 के बीच निष्पादित लेखपत्रों के संबंध में कोई स्टाम्प शुल्क जमा नहीं किया था। आदेश दिनांक 23.2.2007 के अन्तर्गत याचिकाकर्ता द्वारा किया गया कोई भी जमा बैंक गारंटी के रूप में था। सुविधा के लिए आदेश दिनांक 11.12.2006 और 23.2.2007 को निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है:-

*"**11.12.2006***

तीन दिनों के भीतर कदम उठाए जाएं।

तीन सप्ताह के भीतर सीए फाइल करें।

एक सप्ताह के भीतर आरए फाइल करें।

उसके बाद सूचीबद्ध करें।

प्रतिवादी याचिकाकर्ता के खिलाफ बलपूर्वक कोई कार्रवाई नहीं करेंगे।"

*"**23.2.2007***

याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आरएन त्रिवेदी और प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

दिनांक 11.12.2006 के आदेश के बावजूद, प्रतिवादियों द्वारा जवाबी हलफनामा दाखिल नहीं किया गया है और न ही प्रतिवादी संख्या 5 ने उपस्थिति दर्ज कराई है। आज, संशोधन के लिए एक आवेदन पेश किया गया है जिसमें अधिकारियों द्वारा पारित कई आदेशों को भी चुनौती दी गई है।

प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने मुख्य याचिका के साथ-साथ संशोधन आवेदन पर जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए और समय देने का अनुरोध किया है। हालांकि, उन्होंने कहा है कि संशोधन आवेदन पर भुगतान किया गया न्यायालय शुल्क पर्याप्त नहीं है और याचिकाकर्ता को कुछ राशि जमा करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि उसने अतिरिक्त स्टांप शुल्क की मांग करने वाले अधिनियम के तहत पारित आदेशों को चुनौती दी है।

उपरोक्त के मद्देनजर, मुख्य याचिका के साथ-साथ संशोधन आवेदन पर

प्रतिवादियों द्वारा चार सप्ताह के भीतर जवाबी हलफनामा दाखिल किया जा सकता है।

इसके बाद दो सप्ताह के भीतर उनपर प्रत्युत्तर हलफनामा भी दाखिल किया जा सकता है।

याचिका को छह सप्ताह के बाद सूचीबद्ध करें।

इस दौरान, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता संशोधन आवेदन में न्यायालय फीस की कमी को बेहतर कर सकते हैं। याचिकाकर्ता संशोधन आवेदन में चुनौती दिए गए विभिन्न आदेशों द्वारा मांग के अनुसार बकाया राशि का 15 प्रतिशत नकद और 10 प्रतिशत बैंक गारंटी के रूप में चार सप्ताह के भीतर संबंधित प्राधिकारी की संतुष्टि के अधीन जमा करने का वचन देता है।"

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि याचिकाकर्ता ने 750 करोड़ रुपये से कहीं अधिक का निवेश किया था और इसलिए, वह छूट के लिए पात्र था जैसा कि राज्य सरकार द्वारा राजपत्र अधिसूचना दिनाँक 17.11.2007 के अनुसार दिया जा रहा था। यह स्थापित करने के लिए कि याचिकाकर्ता राजपत्र अधिसूचना के तहत छूट के लिए हकदार था, याचिकाकर्ता न्यायालय के संज्ञान में सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य का संचार दिनांक 28.11.2007 लाया है जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 750 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश किया था और वह राजपत्र अधिसूचना दिनाँक 17.11.2007 के अनुसार स्टांप शुल्क माफ किये जाने का हकदार था।

"2. इस सम्बंध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि ताज एक्सप्रेसवे परियोजना की कुल लागत लगभग रु.3200.00 करोड़ है, जो रु०. 750.00 करोड़ से अधिक है। उक्त परियोजना लोकहित में है और परियोजना को वित्तीय रूप से जीवान्त बनाने हेतु राज्य सरकार द्वारा कोई सुविधा, जिसमें शुल्क में छूट भी सम्मिलित है, दिया जाना आवश्यक है। कर एवं निबन्धन अनुभाग-5 की अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 (जो दिनांक 13.02.2003 से प्रभावी है) के प्रस्तर (ग) के अन्तर्गत दिये गये प्राविधानों से उक्त परियोजना आच्छादित है, जिसके अन्तर्गत परियोजना के लिये प्रथम चरण में होने वाले ट्रान्स्जेक्शन यथा-

शासन/ताज एक्सप्रेसवे प्राधिकरण से मै० जय प्रकाश इण्डस्ट्रीज लि० के पक्ष में सड़क एवम् विकास हेतु भूमि के लिये हस्तांतरित की जा रही भूमि (लगभग 4100 हेक्टेयर) पर स्टैम्प शुल्क से छूट प्रदान करने के सम्बंध में निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात सक्षम स्तर से समुचित अनुमोदन दिनांक 27.02.2003 को प्राप्त कर लिया गया है।

उपर्युक्त के दृष्टिगत कर एवं निबन्धन की उपरोक्त अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 में दिये गये प्राविधानों के अन्तर्गत ताज एक्सप्रेसवे परियोजना को स्टाम्प शुल्क में छूट देय है।"

7. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री निमाई दास ने प्रस्तुत किया है कि ऐसी राशि जो याचिकाकर्ता द्वारा राजपत्र अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 से पहले जमा की गई थी, याचिकाकर्ता को वापस नहीं की जा सकती है। इसके समर्थन में उन्होंने जवाबी हलफनामे का पैराग्राफ-9 पढ़ा है। चूंकि विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-9 का बहुत अधिक आधार लिया है, इसलिए इसे यहां नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"9. सरकार ने अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 के माध्यम से, 13.2.2003 से भूतलक्षी प्रभाव से स्टांप शुल्क माफ कर दिया, इस शर्त के साथ कि किसी भी लेख पत्र पर भुगतान किया गया कोई भी स्टांप शुल्क वापस नहीं किया जाएगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है, याचिकाकर्ता ने अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 के तहत छूट की मांग की है और रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, माननीय न्यायालय के निर्देश के तहत प्रश्नगत लेख पत्र पर स्टांप शुल्क का भुगतान भी किया है, स्टांप ड्यूटी के तौर पर पहले ही भुगतान की गई राशि स्टांप शुल्क छूट की विशिष्ट शर्त को देखते हुए वापसी योग्य नहीं है।"

8. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने राजपत्र अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 के परंतुक- (डी) का भी आधार लिया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं से, अधिसूचना दिनांक 17.11.2007 के आने से पहले, किसी भी लेख पत्र पर भुगतान किये गए किसी भी स्टांप शुल्क को वापस नहीं किया जाएगा।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, हमारा मत है कि राजपत्र अधिसूचना दिनाँक 17.11.2007 के सरकारी राजपत्र में प्रकाशित होने के पश्चात, स्टाम्प शुल्क राजपत्र अधिसूचना के अनुसार लिया जाना था तथा राजपत्र अधिसूचना स्पष्ट रूप से कहती है कि उत्तर प्रदेश राज्य की 750 करोड़ रुपये या उससे अधिक के निवेश वाली किसी भी बड़ी सार्वजनिक परियोजना में किसी भी निजी डेवलपर द्वारा किए गए किसी भी निवेश पर कोई भी लेनदेन, जो 13.02.2003 के पश्चात हुआ हो, पर स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अन्तर्गत कोई स्टाम्प शुल्क नहीं लगेगा।

10. याचिकाकर्ता ने निश्चित रूप से 750 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश किया था, जैसा कि राज्य सरकार के संचार दिनाँक 28.11.2007 से स्पष्ट है, जिसे इस निर्णय में भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, हमारा मत है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध 13.8.2004 को जारी किए गए नोटिस कानून की नजर में टिक नहीं सकते, अतः उन्हें रद्द किया जा रहा है। सरकारी आदेश दिनाँक 30.8.2003 जिसने राज्य को याचिकाकर्ता से स्टाम्प ड्यूटी वसूलने का अधिकार दिया गया था, को भी रद्द किया जाता है। आक्षेपित आदेश दिनाँक 13.10.2006, जो 13.8.2004 की नोटिसों के अनुसरण में पारित किया गया था, भी रद्द किया जाता है।

11. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सभी परिणामी वसूली प्रमाणपत्र भी रद्द किए जाते हैं। अंतरिम आदेश दिनाँक 23.2.2007 के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई सभी राशि याचिकाकर्ता को वापस कर दी जाएगी और बैंक गारंटी समाप्त हो जाएगी।

12. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1160

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

मामला अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 3275/2023

चंद्र रेखा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:
नदीम मुर्तजा, सूर्यांश सिंह सूर्यवंशी, वली नवाज खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

सिविल विधि - आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 - धारा 6ए - जहाँ कोई वाहन (उत्तर प्रदेश पुनरीक्षण) के अंतर्गत जब्त किया जाता है, वहाँ कलेक्टर के लिए यह अनिवार्य है कि वह जब्त वाहन के मालिक को जब्ती के बदले वाहन के बाजार मूल्य से अधिक का जुर्माना अदा करने का विकल्प दे। ऐसा विकल्प न देने पर जब्ती आदेश अमान्य हो जाता है। जिला

मजिस्ट्रेट द्वारा पारित जब्ती आदेश और अपीलीय आदेश, दोनों को धारा 6ए के अनिवार्य द्वितीय परंतुक का उल्लंघन होने के कारण रद्द कर दिया गया।

याचिकाकर्ता को 3,00,000 रुपये जुर्माना जमा करने पर वाहन को मुक्त करने की अनुमति दी गई, क्योंकि वाहन बेकार पड़ा था और कठिनाई पैदा कर रहा था।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

उपायुक्त, दक्षिण कन्नड़ जिला बनाम रूडोल्फ फर्नांडीस, (2000) 3 एससीसी 306

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी संख्या 1, 3 और 4 के विद्वान ए.जी.ए. श्री आलोक तिवारी को सुना गया तथा उनकी ओर से शपथपत्र दायर किया गया, जिसे अभिलेखित किया गया है।

विद्वान ए.जी.ए. ने मामले के प्रतिवादी संख्या 2, सूचनाकर्ता की ओर से एक व्यक्तिगत शपथपत्र भी दायर किया है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि याचिकाकर्ता मेसर्स ग्लोरियस खुशी एंटरप्राइजेज का एकमात्र मालिक है और टैंकर वाहन संख्या यू.पी. 70 जेटी 8187 उक्त फर्म के नाम पर पंजीकृत है। रिकवरी मेमो में आरोप लगाया गया है कि सूचनादाता से प्राप्त सूचना के आधार पर याचिकाकर्ता के वाहन अर्थात टैंकर संख्या यू.पी. 70 जेटी 8187 को रोका गया तथा टैंकर के चालक रमेश और अजहर अली को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने अपना अपराध कबूल कर लिया और आगे कहा कि सह-आरोपी अंकित साहू, वकील अहमद, मुकेश, अविनाश और राहुल कुमार रावत भी एटीएफ की अवैध खरीद-बिक्री में शामिल थे, जो क्रेटा कार संख्या यू.पी. 78 जीडब्ल्यू 1792 में पीछे से आ रहे थे। क्रेटा कार को भी रोक लिया गया और सभी आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया। आरोपियों ने कबूल किया कि वे एयरपोर्ट से एटीएफ चुराते हैं और टैंकर में भरकर खुले बाजार में बेचते हैं। टैंकर संख्या यूपी 70 जेटी 8187 का निरीक्षण करने पर पाया गया कि इसमें 8500 लीटर एटीएफ भरा हुआ था, जो विमानन टरबाइन ईंधन (विनियमन और विपणन) आदेश 2001 का उल्लंघन है और आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के अंतर्गत अपराध है। वाहनों को कब्जे में ले लिया गया तथा सह-आरोपियों को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

दिनांक 07.06.2022 का वसूली ज्ञापन तैयार किया गया और परिणामस्वरूप जिलाधिकारी, लखनऊ की अनुमति के बाद उपरोक्त सात नामजद अभियुक्तों के विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 6ए के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 186/2022 के रूप में थाना बंथरा, जिला लखनऊ में मामला दर्ज किया गया।

जांच अधिकारी ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत आरोपियों के बयान दर्ज करने के बाद एफ.आई.आर. में नामित सात आरोपियों के

खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता और एक अन्य व्यक्ति फकीर मोहम्मद (क्रेटा कार के मालिक) के खिलाफ भी अलग से आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

अपर कलेक्टर/अपर जिलाधिकारी (नागरिक आपूर्ति), लखनऊ की अदालत ने आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के तहत दिनांक 04.01.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता के टैंकर और क्रेटा कार के मालिक की क्रेटा कार को जब्त कर लिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता फर्म मेसर्स ग्लोरियस खुशी एंटरप्राइजेज का एकमात्र मालिक होने के नाते वाहन का वास्तविक मालिक है। वाहन का टैक्स इनवॉयस और टैंकर वाहन का पंजीकरण विवरण रिकॉर्ड में है। याचिकाकर्ता ने एसबीआई से फाइनेंस करवाकर टैंकर वाहन खरीदा है और नियमित रूप से मासिक किस्त का भुगतान कर रहा है। मेसर्स ग्लोरियस ख़ुशी एंटरप्राइजेज का बैंक स्टेटमेंट रिकॉर्ड में है। वाहन भी न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी से दिनांक 02.03.2023 को 25,20,000/- रुपये के वर्तमान मूल्य पर सुरक्षित है। वाहन के बीमा कागजात भी रिकार्ड में हैं।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता का नाम एफ.आई.आर. में नहीं है। पुलिस हिरासत में अभियुक्त के इकबालिया बयान का कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं है। मजिस्ट्रेट के समक्ष दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत किसी भी आरोपी का बयान दर्ज नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता ने वाहन को मुक्त करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, तथापि, उसके मुक्ति आवेदन को यांत्रिक तरीके से खारिज कर दिया गया और अपीलीय न्यायालय ने अपील को खारिज करते हुए आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (यूपी संशोधन) की धारा 6 ए के स्पष्ट प्रावधान को भी नजरअंदाज कर दिया, जिसके अनुसार जिला कलेक्टर पर यह दायित्व है कि वह आवश्यक वस्तु को जब्त करने के बदले में बाजार मूल्य से अधिक नहीं जुर्माना देने का विकल्प दे, जिसे ले जाया जाना है।

अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **"उपायुक्त, दक्षिण कन्नड़ जिला बनाम रूडोल्फ फर्नांडीस, (2000) 3 एससीसी 306"** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता का नाम एफ.आई.आर. में नहीं था। याचिकाकर्ता को अपने ड्राइवर द्वारा किए गए कथित अपराध के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यह अपराध याचिकाकर्ता की जानकारी और मिलीभगत के बिना किया गया था और अपराध की जानकारी या मिलीभगत के अभाव में, याचिकाकर्ता के टैंकर वाहन को जब्त करके उसे उसकी आजीविका से वंचित नहीं किया जा सकता है और ऐसा कृत्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(जी) का उल्लंघन है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता को केवल आवश्यक

वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 3/7 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया है और भा.दं.सं. की धारा 120बी के तहत कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, इसलिए, प्रथम दृष्टया यह राज्य का मामला नहीं है कि अपराध करने के लिए याचिकाकर्ता की अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ कोई मिलीभगत थी। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र केवल इस तथ्य के कारण दायर किया गया है कि याचिकाकर्ता के वाहन का उपयोग सह-आरोपियों द्वारा अपराध को अंजाम देने में किया गया था।

7. विद्वान ए.जी.ए. ने याचिका का विरोध करते हुए कहा कि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा अलग-अलग आरोप-पत्र प्रस्तुत किए गए हैं, जिनका इस न्यायालय द्वारा अवलोकन किया गया है।

राज्य के विद्बान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि आरोप पत्र दायर किया जा चुका है, इसलिए संज्ञान उचित स्तर पर लिया जा सकता है और इसलिए, याचिकाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह परिसंपत्तियों/संपत्ति की अभिरक्षा और निस्तारण के लिए दं.प्र.सं. की धारा 451 के तहत आवेदन प्रस्तुत करे, जो इस मामले में कथित टैंकर वाहन है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वाहन को आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत जब्त किया गया है, जो एक विशेष अधिनियम है और दं.प्र.सं. की धारा 5 में एक गैर-बाधित खंड भी शामिल है और इसलिए, इस विकल्प पर विचार करने में इस न्यायालय के लिए कोई बाधा नहीं है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात, जहां तक क्षेत्राधिकार के मुद्दे का संबंध है, मैं याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में बल पाता हूं कि वाहन को विशेष अधिनियम के अंतर्गत जब्त किया गया है, जो इस मामले में आवश्यक वस्तु अधिनियम है तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 5 के मद्देनजर मेरा विचार है कि वाहन की अभिरक्षा के लिए याचिका पर विचार करने में कोई बाधा नहीं है, जिसे आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अंतर्गत जब्त किया गया है। आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (उ.प्र. संशोधन) की धारा 6(क) के अन्तर्गत परिवहन की परिभाषा दी गई है, जो नीचे उद्धृत है:-

> *"6क. (1) जहां कोई आवश्यक वस्तु उसके सम्बन्ध में धारा 3 के अधीन किए गए आदेशों के अनुसरण में अभिगृहीत की जाती है जहां ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट, अयुक्तियुक्त विलंब के बिना उस जिले या प्रेसीडेंसी नगर के, जिसमें ऐसी आवश्यक वस्तु का अभिग्रहण किया जाता है कलक्टर को की जाएगी और चाहे ऐसे आदेश के उल्लंघन के लिए अभियोजन संस्थित किया जाता है या नहीं, यदि*

कलक्टर ऐसा करना समीचीन समझता है तो वह इस प्रकार अभिगृहीत आवश्यक वस्तु को अपने समक्ष निरीक्षण के लिए पेश किए जाने का निदेश दे सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि आदेश का का उल्लंघन हुआ है तो वह

(क) ऐसे अभिगृहीत की गई आवश्यक वस्तु के;

(ख) जिसे पैकेज, आवेष्टक या पात्र में ऐसी आवश्यक वस्तु पाई जाए उसके; और

(ग) ऐसी आवश्यक वस्तु को ले जाने में प्रयुक्त किसी पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य प्रवहण के,

अधिग्रहण का आदेश कर सकेगा:

परन्तु इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन की जा सकने वाली किसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कोई खाद्यान्न; खाद्य तिलहन जो उनके सम्बन्ध में धारा 3 के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में किसी उत्पादक से अभिगृहीत किए गए हों, यदि अभिगृहीत खाद्यान्न या खाद्य तिलहन उसके द्वारा उत्पादित किए गए हों, इस धारा के अधीन अधिगृहीत नहीं किए जाएंगे;

परन्तु यह और कि भाड़े पर माल या यात्रियों को ले जाने के लिए प्रयुक्त किसी पशु, गाड़ी, यान या अन्य प्रवहण की दशा में ऐसे पशु, गाड़ी, यान या अन्य प्रवहण के स्वामी को उसका अधिहरण किए जाने के बदले में ऐसा जुर्माना जो ऐसे पशु, गाड़ी, यान या अन्य प्रवहण द्वारा ले जाई जाने वाली आवश्यक वस्तु के अभिग्रहण की तारीख को उसकी बाजार कीमत से अधिक का न हो संदाय करने का विकल्प दिया जाएगा।

(2) जहां उपधारा (1) अधीन किसी आवश्यक वस्तु के अभिग्रहण की रिपोर्ट प्राप्त करने पर या उसके निरीक्षण पर कलक्टर की यह राय है कि आवश्यक वस्तु शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है या लोकहित में ऐसा करना अन्यथा समीचीन है वहां वह

(i) उसका विक्रय उस नियंत्रित कीमत पर यदि कोई हो, किए जाने का आदेश दे सकेगा जो ऐसी आवश्यक वस्तु के लिए इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन नियत की गई हो; या

(ii) जहां कोई ऐसी कीमत नियत नहीं की गई है वहां लोक नीलाम द्वारा उसका विक्रय किए जाने का आदेश दे सकेगा:

परन्तु क्लक्टर, खाद्यानों की दशा में, उनके साभियक वितरण और उनकी उचित कीमत पर उपलभ्यता के लिए उनका विक्रय उचित दर की दुकानों के माध्यम से जनता को उस कीमत पर किए जाने का आदेश दे सकेगा जो यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा ऐसे खाद्यान्नों के फुटकर विक्रय के लिए नियत की गई हो।

(3) जहां किसी आवश्यक वस्तु का विक्रय पूर्वोक्त रीति से किया जाता है वहां उसके विक्रय आगम, किसी ऐसे विक्रय या नीलाम के व्यय या उससे संबंधित अन्य आनुषंगिक व्यय की कटौती करने के पश्चात्-

(क) जहां अधिहरण का कोई आदेश कलक्टर द्वारा अन्तिम रूप से पारित नहीं किया जाता है,

(ख) धारा 6ग की उपधारा (1) के अधीन अपील में पारित किसी आदेश में ऐसी अपेक्षा की गई है, या

(ग) जहां ऐसे आदेश के उल्लंघन के लिए, जिसके संबंध में इस धारा के अधीन अधिहरण का आदेश किया गया है। संस्थित किसी अभियोजन में संबंधित व्यक्ति दोषमुक्त कर दिया जाता है,

वहां उसके स्वामी या उस व्यक्ति को, जिससे उसका अभिग्रहण किया गया है, संदत्त किए जाएंगे ।]

परन्तु उपधारा (2) के प्रथम परन्तुक के अनुसार उचित दर की दुकानों के माध्यम से बेचे गए खाद्यान्नों की दशा में, स्वामी को ऐसे बेचे गए खाद्यान्नों के लिए राज्य सरकार द्वारा ऐसी दुकानों के

माध्यम से ऐसे खाद्यान्नों की खुदरा बिक्री के लिए निर्धारित मूल्य में से उपधारा (2) के अधीन बिक्री या नीलामी के समस्त व्ययों को घटाकर भुगतान किया जाएगा।"

धारा 6ए (1)(ग) कलेक्टर को आवश्यक वस्तु ले जाने में प्रयुक्त वाहन या अन्य वाहन को जब्त करने का अधिकार देती है। धारा 6क का दूसरा प्रावधान कलेक्टर पर एक अनिवार्य कर्तव्य भी डालता है कि वह ऐसे वाहन के मालिक को, जिसे जब्त किया गया है, जब्ती के बदले में जुर्माना भरने का विकल्प दे, जो आवश्यक वस्तु की जब्ती की तारीख को बाजार मूल्य से अधिक नहीं होगा। उपरोक्त प्रावधान अनिवार्य है।

जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि यद्यपि आदेश में आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 6क का संदर्भ दिया गया है, तथापि अभियोजन का यह स्वीकार्य मामला है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 6(क) के अंतर्गत जुर्माना अदा करने के लिए वाहन स्वामी को कोई विकल्प नहीं दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलीय आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, जिसमें इस तथ्य की अनदेखी की गई है कि अपीलकर्ता द्वारा विशिष्ट आधार लिया गया है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 6(क) के दूसरे प्रावधान में जुर्माना अदा करने का विकल्प है। जिला कलेक्टर द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 6(क) के दूसरे प्रावधान की अनदेखी करके उक्त आदेश पारित किया गया है, फिर भी अपीलीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता द्वारा अपीलीय न्यायालय के समक्ष उठाए गए विशिष्ट आधार पर कोई निष्कर्ष दिए बिना यांत्रिक और सरसरी ढंग से अपील का निर्णय कर दिया।

परंतुक स्पष्ट है। जिला कलेक्टर के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकरण का यह दायित्व था कि वह याचिकाकर्ता को, जो टैंकर वाहन संख्या यूपी70-जेटी-8187 का मालिक है, वाहन जब्त किए जाने के बदले में वाहन के बाजार मूल्य से कम जुर्माना भरने का विकल्प प्रदान करें।

डिप्टी कमिश्नर (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 9 में कहा है कि वाहन के मालिक को वाहन की जब्ती के बदले में जुर्माना भरने का विकल्प दिया जाना चाहिए, जो वाहन के बाजार मूल्य से अधिक नहीं होना चाहिए। उक्त निर्णय का पैरा 9 नीचे उद्धृत है:-

9. न्यायालय ने कहा कि यद्यपि उपर्युक्त परंतुक की भाषा स्पष्ट है, तथापि अधिनियम की धारा 6-क(1) के परंतुक के तहत व्यक्त किया जाने वाला विचार समान प्रतीत होता है। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा की गई तुलना त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि परंतुक में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि जहां किसी ऐसे वाहन का

उपयोग माल की तस्करी में परिवहन के साधन के रूप में किया जाता है, वहां वाहन के मालिक को वाहन की जब्ती के बदले में, तस्करी किए जाने वाले माल के बाजार मूल्य से अधिक नहीं जुर्माना अदा करने का विकल्प दिया जाना चाहिए। स्पष्टीकरण में कहा गया है कि बाजार मूल्य का तात्पर्य उस तारीख का बाजार मूल्य है, जब माल जब्त किया गया। इसके विपरीत, धारा 6-क का दूसरा प्रावधान आवश्यक वस्तु के बाजार मूल्य से अधिक जुर्माने के भुगतान का उल्लेख नहीं करता है, बल्कि स्पष्ट संदर्भ जब्त किए जाने वाले वाहन के बाजार मूल्य से अधिक जुर्माने का है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि ऐसे मामले में जहां जब्त आवश्यक वस्तु का बाजार मूल्य वाहन के मूल्य से अधिक है, तो वाहन का मालिक उसे वापस लेने के लिए आगे नहीं आएगा, यदि उससे बाजार मूल्य से अधिक भुगतान करने के लिए कहा जाए। इसी प्रकार, जब जब्त वाहन का बाजार मूल्य आवश्यक वस्तु के मूल्य से बहुत अधिक है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसे जब्त करने के बजाय बाजार मूल्य से कम मूल्य पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इसके अलावा यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि धारा 6-ख (2) के तहत वाहन या अन्य वाहन को जब्त करने का कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है यदि मालिक सक्षम प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए साबित कर देता है कि इसका उपयोग उसकी जानकारी या मिलीभगत के बिना आवश्यक वस्तु को ले जाने में किया गया था।

10. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर याचिका **स्वीकार** की जाती है। जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ की अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 01.06.2023, साथ ही अपर जिलाधिकारी (नागरिक आपूर्ति), लखनऊ द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 6 (क) के तहत मामला संख्या 186/2022 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 04.11.2022, जो याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 और अनुलग्नक संख्या 2 में निहित है, को रद्द किया जाता है।

11. जहां तक जुर्माने के भुगतान का संबंध है, इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि एफ.आई.आर. के अनुसार 8500 लीटर एटीएफ की कीमत लगभग 10,45,000 रुपये

थी और दिनांक 10.05.2013 के आदेश के अनुसार, यह स्पष्ट है कि उक्त जब्त एटीएफ की नीलामी की गई थी और राशि राजकोष में जमा कर दी गई है। बीमा रसीद के अनुसार, वाहन का मूल्य 25,20,000/- रुपये आंका गया है, एटीएफ तेल की बिक्री से राज्य को पहले ही प्राप्त राशि को ध्यान में रखते हुए, वाहन दिनांक 07.06.2022 से संबंधित पुलिस स्टेशन में बेकार पड़ा है; एक वर्ष से अधिक समय बीत चुका है और याचिकाकर्ता को उक्त वाहन से कोई कमाई नहीं हुई है, साथ ही तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता भारी किश्तों का भुगतान भी कर रहे हैं जो कि एसबीआई बैंक से संबंधित फर्म के बयान के अवलोकन से स्पष्ट है जो याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में रिकॉर्ड में है, इक्विटी को संतुलित करने के लिए, यह प्रावधान किया गया है कि याचिकाकर्ता आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 6(क) के तहत विपक्षी संख्या 3 के समक्ष 3,00,000/- रुपये की राशि जुर्माने के रूप में जमा करेगा। उक्त धनराशि जमा होने पर विपक्षी पक्षकार संख्या 3 याचिकाकर्ता के वाहन संख्या यूपी70 जेटी 8187 को तत्काल छोड़ देगा।

12. याचिकाकर्ता का वाहन इस शर्त पर छोड़ा जाएगा कि याचिकाकर्ता यह वचन देगा कि जब तक आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत मुकदमा लंबित है, वह वाहन को नहीं बेचेगा या किसी तीसरे पक्ष का हित नहीं बनाएगा तथा न्यायालय द्वारा मांगे जाने पर वाहन को प्रस्तुत करेगा।

(2023) 8 ILRA 1166

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 839/2020

प्रो.विपिन सक्सैना ...आवेदक

बनाम

सीबीआई/एसीबी लखनऊ एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:

प्रांजल कृष्णा, शिवम पांडे

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

एएसजी, अनुराग कुमार सिंह, डॉ. वीके सिंह

आपराधिक विधि - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 7, 13(1)(डी), 13(2) और 19 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120-बी - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164 - मंजूरी आदेश - वैधता - बोर्ड के सदस्यों के बहुमत की राय को ध्यान में रखते हुए, बोर्ड द्वारा अपनी 62वीं बैठक में याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी दी गई थी - बोर्ड द्वारा अपनी 63वीं बैठक में पुष्टि की गई - बोर्ड द्वारा मंजूरी आदेश को मंजूरी दी गई और 62वीं बैठक में कोरम की कमी के कारण अनियमितता, यदि कोई हो, को 63वीं बैठक में ठीक कर दिया गया, जब ट्रायल कोर्ट ने अपराध का संज्ञान लिया था। (पैरा 2, 35)

मुख्य परीक्षा और पीडब्लू-1 की जिरह दर्ज करने के बाद स्वीकृति आदेश को चुनौती दी गई - स्वीकृति देने वाले प्राधिकारी का बयान दर्ज करने के बाद स्वीकृति आदेश को चुनौती देने पर याचिकाकर्ता पर कोई रोक नहीं है, स्वीकृति आदेश को चुनौती देने में विलंब से संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ता को कुलपति द्वारा पारित स्वीकृति आदेश से न्याय में कोई विफलता नहीं झेलनी पड़ी। (पैरा 36)

स्वीकृति आदेश की विषय-वस्तु प्रारूप आदेश की विषय-वस्तु के समान है, यह विवेक के प्रयोग न करने का संकेत नहीं है, स्वीकृति आदेश में भिन्न विषय-वस्तु का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं है, जब तक कि स्वीकृति प्राधिकारी प्रारूप आदेश की विषय-वस्तु से सहमत न हो - अपनाई गई प्रक्रिया विश्वविद्यालय अधिनियम, 1994 की धारा 12 (3) में निहित प्रावधानों के अनुसार है। (पैरा 40, 41)

प्रार्थना पत्र खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची :</u>

1. आरएस नायक बनाम एआर अंतुले, (1984) 2 एससीसी 183, (पैरा 23)

2. नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2015) 14 एससीसी 186

3. सीबीआई बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, (2014) 14 एससीसी 295, (पैरा 19, 58, 59)

4. राज्य (पुलिस निरीक्षक) बनाम सूर्य शंकरम कर्री, (2006) 7 एससीसी 172

5. गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस, (2005) 8 एससीसी 130, (पैरा 12)

6. नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2015) 14 एससीसी 186

7. बिहार राज्य बनाम राजमंगल राम, (2014) 11 एससीसी 388

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. श्री. प्रांजल कृष्णा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, श्री अनुराग कुमार सिंह, प्रतिपक्षी संख्या-1, सी.बी.आई. का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता और डॉ वी.के सिंह, प्रतिपक्षी संख्या-2, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के अधिवक्ता को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने आपराधिक मामला संख्या-545 वर्ष 2017 में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई. (पश्चिम), लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.05.2019 की वैधता को चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन दिनांक 07.03.2019 को विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा पारित अभियोजन मंजूरी आदेश दिनांक 26.10.2017 को चुनौती देते हुए खारिज कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता 25.06.2011 से विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में काम कर रहा था। विश्वविद्यालय में संविदा आधार पर सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत श्री वेद कुमार ने 31.05.2017 को एक निजी फर्म मेसर्स श्री साईनाथ एसोसिएट्स द्वारा नियुक्त विश्वविद्यालय में काम करने के वाले एक आउटसोर्स निजी कर्मचारी विजय कुमार द्विवेदी खिलाफ शिकायत दर्ज की, जिसमें शिकायतकर्ता के सेवा अनुबंध को 31.05.2017 से आगे बढ़ाने के लिए 50,000/- रुपये की अवैध रिश्वत की मांग का आरोप लगाया गया। उपरोक्त शिकायत के आगे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, धारा 7 के तहत दि:02.06.2017 को आर.सी.संख्या-0062017ए0012 के तहत थाना-सी.बी.आई./एसीबी लखनऊ में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। याचिकाकर्ता का नाम शिकायत में या प्राथमिकी में नहीं था।

4. दिनांक 02.06.2017 को एक जाल बिछाया गया और नामजद अभियुक्त विजय द्विवेदी को शिकायतकर्ता से सेवा अनुबंध के विस्तार के लिए 50,000/- रुपये रिश्वत मांगते और स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। आरोपी विजय द्विवेदी ने कहा कि उसने याचिकाकर्ता की ओर से रिश्वत मांगी थी और स्वीकार की थी, जिसने उसे अनुबंध के आधार पर काम करने वाले प्रत्येक सहायक प्रोफेसरों से रिश्वत के रूप में 50,000 रुपये वसूलने का निर्देश दिया था, जो अपनी सेवा अवधि बढ़ाना चाहते थे। याचिकाकर्ता और विजय द्विवेदी के बीच दो टेलीफोनिक बातचीत की व्यवस्था और रिकॉर्डिंग की गई, जिसमें याचिकाकर्ता ने विजय द्विवेदी द्वारा दी गई जानकारी को स्वीकार किया कि उसने विभिन्न शिक्षकों से पैसे एकत्र किए थे। याचिकाकर्ता के कार्यालय से संविदा संकाय के विस्तार चिह्नित एक फाइल बरामद की गई थी।

5. विवेचना पूरी होने के बाद, 01.08.2017 को सी.बी.आई. ने याचिकाकर्ता और विजय द्विवेदी के खिलाफ धारा 120-बी भ०द०वि० और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 7 और 13(2) के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए आरोप पत्र दायर किया।

6. याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा 26.10.2017 को मंजूरी दी गई थी।

7. दिनांक 05.07.2018 को विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई.(पश्चिम), लखनऊ ने दिनांक 26.10.2017 के मंजूरी आदेश के आधार पर अपराधों के कमीशन का संज्ञान लिया और यह मुकदमा आगे बढ़ाया।

8. 08.01.2019 को, विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1 श्री के मुख्य परीक्षण को रिकॉर्ड करना शुरू किया। विश्वविद्यालय के कुलपति आर.सी सोबाती - वह व्यक्ति जिसने याचिकाकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी देने का आदेश जारी किया था, और उनकी जिरह भी उसी तारीख को शुरू हुई, जो 21.01.2019 को संपन्न हुई।

9. 07.03.2019 को याचिकाकर्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें 26.10.2017 के मंजूरी आदेश की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि अभियोजन के लिए मंजूरी केवल याचिकाकर्ता के नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा दी जा सकती है, जो विश्वविद्यालय का प्रबंधन बोर्ड है। विश्वविद्यालय का कुलपति याचिकाकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी नहीं है और कुलपति द्वारा दी गई अभियोजन मंजूरी बिना अधिकार के थी।

10. अभियोजन मंजूरी आदेश की वैधता को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता के आवेदन को विचारण न्यायालय ने दिनांक 28.05.2019 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया था कि कुलपति ने विश्वविद्यालय के प्रबंधन बोर्ड की ओर से अभियोजन मंजूरी आदेश पारित किया था।

11. दिनांक 28.05.2019 के आदेश का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री प्रांजल कृष्ण ने प्रस्तुत किया है कि विश्वविद्यालय का प्रबंधन बोर्ड प्राधिकरण है जो विश्वविद्यालय में एक स्थायी शिक्षक की नियुक्ति/हटा सकता है और अकेले बोर्ड अभियोजन के लिए मंजूरी देने के लिए सक्षम है। प्रस्तुत मामले में, विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा अभियोजन की मंजूरी दी गई है और वह विश्वविद्यालय के अधिनियम और संविधि के प्रावधान के तहत सक्षम प्राधिकारी नहीं है।

12. प्रतिपक्षी संख्या-1 - सी.बी.आई. के अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह और प्रतिपक्षी संख्या-2 - विश्वविद्यालय के अधिवक्ता डॉ वी.के सिंह ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के अभियोजन की मंजूरी विश्वविद्यालय के प्रबंधन बोर्ड द्वारा अपनी 62 वीं बैठक में दी गई थी और कुलपति ने केवल प्रबंधन बोर्ड के निर्णय को लागू किया था। इसके बाद प्रबंधन बोर्ड ने अपनी 63वीं बैठक में निर्णय की पुष्टि की थी।

13. विश्वविद्यालय के अधिवक्ता डॉ. वी. के. सिंह ने प्रस्तुत किया है कि बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय अधिनियम, 1994 की धारा 12 (3) कुलपति को तात्कालिकता के मामले में प्रबंधन बोर्ड की ओर से निर्णय लेने के लिए अधिकृत करती है। कुलपति ने परिचालन द्वारा प्रबंधन बोर्ड के सदस्यों के साथ इस मुद्दे पर विधिवत विचार-विमर्श किया, उनकी सहमति ली और अधिनियम वर्ष 1988 की धारा 19 के तहत अभियोजन शुरू करने की अनुमति प्रदान करने के लिए आगे बढ़े।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आर.एस नायक बनाम एआर अंतुले, (1984)2 एस.सी.सी. 183, नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2015) 14 एस.सी.सी. 186, सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (2014) 14 एस.सी.सी. 295, राज्य (पुलिस निरीक्षक) बनाम सूर्य शंकरम कारी, (2006) 7 एस.सी.सी. 172 और गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस, (2005) 8 एस.सी.सी. 130 में

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

15. आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अंतुले, (1984) 2 एस.सी.सी. 183 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> "23.... विधायिका ने सलाह दी कि लोक सेवक को पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी को स्पष्ट कारण के लिए मंजूरी देने की शक्ति प्रदान की जाए कि केवल वह प्राधिकारी सक्षम होगा, जब तथ्यों और सबूतों को उसके सामने रखा जाता है ताकि यह निर्णय किया जा सके कि क्या कोई गंभीर अपराध किया गया है या अभियोजन या तो तुच्छ या काल्पनिक है। केवल वही प्राधिकारी यह निर्णय करने में सक्षम होगा कि क्या कथित तथ्यों के आधार पर लोक सेवक द्वारा धारित पद का दुरुपयोग किया गया है। वह प्राधिकारी यह जानने की स्थिति में होगा कि लोक सेवक के पद को क्या शक्ति प्रदान की गई थी, भ्रष्ट उद्देश्य के लिए उस शक्ति का दुरुपयोग कैसे किया जा सकता है और क्या प्रथम दृष्टया ऐसा किया गया है। केवल सक्षम प्राधिकारी ही इस पद पर आसीन लोक सेवक द्वारा निर्वहन की प्रकृति और कार्यों को जान सकता है और क्या इसका दुरुपयोग किया गया है। लोक सेवक को उस पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी और लोक सेवक द्वारा धारित पद की प्रकृति, जिसके विरुद्ध स्वीकृति मांगी गई है, के बीच ऊर्ध्वाधर पदानुक्रम है जो पदानुक्रम को इंगित करेगा और जो इसलिए कार्यालय के कार्यों और कर्तव्यों और लोक सेवक द्वारा इसके दुरुपयोग या दुरुपयोग के बारे में ज्ञान के अनुमान की अनुमति देगा। इसीलिए विधायिका ने स्पष्ट रूप से उपबंध किया है कि केवल वही प्राधिकारी स्वीकृति प्रदान करने के लिए सक्षम होगा जो उस लोक सेवक को हटाने का हकदार है जिसके विरुद्ध पद से स्वीकृति मांगी गई है।

16. नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2015) 14 एस.सी.सी. 186 के मामले में विचारण न्यायालय ने माना था कि जिस प्राधिकारी ने मंजूरी दी थी, वह ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं था और तथ्य की इस खोज पर उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विवाद नहीं था। हालांकि, उपरोक्त निष्कर्ष दर्ज करने के बाद, विचारण न्यायालय ने मामले के गुण-दोष के आधार पर बरी करने का आदेश पारित किया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि विचारण न्यायालय ने मंजूरी को अवैध माना है, इसलिए उसे अभियुक्त को दोषमुक्त करने की बजाय उसे आरोपमुक्त कर देना चाहिए था। इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ऐसी मंजूरी की वैधता के संबंध में प्रश्न कार्यवाही के किसी भी चरण में उठाया जा सकता है।

17. सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (2014) 14 एस.सी.सी. 295 का प्रासंगिक मार्ग, जिस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भरोसा किया है, इस प्रकार है: -

> "58. इसमें शामिल सबसे प्रासंगिक मुद्दा यह है कि मंजूरी आदेश की वैधता किस चरण में उठाई जा सकती है। मुद्दा अब 'रेस एन्टीग्रा' नहीं है। दिनेश कुमार बनाम एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया (2012)1 एस.सी.सी. 532 में इस न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटा और प्रकाश सिंह बादल बनाम भारत संघ के फैसले पर भरोसा किया। पंजाब राज्य (2007)1 एस.सी.सी.1, में न्यायालय निम्नानुसार निष्कर्ष पर पहुंचा:
>
> "13. हमारे विचार में, प्रस्तुत मामले के तथ्यों के संबंध में, अब चूंकि विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है, इसलिए उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा विचार के लिए मंजूरी की वैधता के सवाल को खुला छोड़ने और अपीलकर्ता को विचारण के दौरान मंजूरी आदेश की वैधता से संबंधित मुद्दे को उठाने की स्वतंत्रता देने में गलती नहीं की जा सकती है। यह प्रक्रिया प्रकाश सिंह बादल मामले में इस अदालत के फैसले के अनुरूप है।
>
> 59. निस्संदेह, मंजूरी की वैधता की जांच करने का चरण परीक्षण के दौरान है और हम यह कहने का प्रस्ताव नहीं करते हैं कि वैधता की जांच, जांच के चरण के दौरान या पूर्व-परीक्षण चरण में की जानी चाहिए।

18. राज्य (पुलिस निरीक्षक) बनाम सूर्य शंकरम कारी, (2006) 7 एस.सी.सी. 172 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "जब किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा मंजूरी दी जाती है जो कानून में अधिकृत नहीं है, तो वह अधिकार क्षेत्र के बिना है, और वह एक शून्यता होगी।

19. कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन इस सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ दायर अपील में पारित एक निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर अपील का निर्णय करते समय दोहराया गया था, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में कि जिस प्राधिकारी ने मंजूरी आदेश पारित किया था, उसने मुख्य रूप से अपनी परीक्षा में स्वीकार किया था कि नियमों के तहत हालांकि वह अभियुक्त को सेवा से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं था, उसे हटाने की शक्ति के साथ प्रत्यायोजित किया गया था। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने फैसले के पैरा-23 में दर्ज किया कि "सत्ता के कथित प्रत्यायोजन ने कभी दिन की रोशनी नहीं देखी थी। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था कि उक्त गवाह मंजूरी देने के लिए अधिकृत था। विशेष

न्यायाधीश ने मामले के इन पहलुओं पर बिल्कुल भी अपना दिमाग नहीं लगाया।

20. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस, (2005)8 एस.सी.सी. 130 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें निर्विवाद रूप से कंपनी सचिव द्वारा प्रतिपक्षी के अभियोजन के लिए मंजूरी दी गई थी, जबकि प्रतिपक्षी को उस पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी जो वह धारण कर रहा था, वह निदेशक मंडल था। कंपनी के निदेशक मंडल का ऐसा कोई आदेश/संकल्प नहीं था जिसमें निदेशक मंडल द्वारा पारित मंजूरी आदेश को सूचित करने के लिए कंपनी सचिव को प्राधिकृत किया गया हो। दिनांक 02.01.1995 के मंजूरी आदेश के अनुसरण में, 29.5.1995 को संज्ञान लिया गया था। दिनांक 29-05-1995 को संज्ञान लिए जाने के बाद गोवा शिपयार्ड कंपनी लि० के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक द्वारा दिनांक 07-09-1997 को एक अन्य मंजूरी आदेश जारी किया गया था और इसमें यह उल्लेख किया गया था कि निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए और निदेशक मंडल की ओर से प्रतिपक्षी पर भूतलक्षी प्रभाव से मुकदमा चलाने की मंजूरी 14-09-1994 से दी गई थी। उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

> "12. जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, मंजूरी आदेश केवल अनियमितता, त्रुटि या चूक नहीं है। दिनांक 2-1-1995 का प्रथम स्वीकृति आदेश एक ऐसे प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया था जो नियमों के तहत ऐसा आदेश जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं था। दिनांक 7-9-1997 का दूसरा मंजूरी आदेश भी एक प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था, जो संबंधित नियमों के तहत इसे जारी करने के लिए सक्षम नहीं था, इस तथ्य के अलावा कि इसे 14-9-1994 से पूर्वव्यापी रूप से जारी किया गया था, जो बुरा है। विशेष न्यायाधीश द्वारा 29-5-1995 को संज्ञान लिया गया। इसलिए, जब विशेष न्यायाधीश ने 29-5-1995 को संज्ञान लिया, तो कानून के तहत उन्हें संज्ञान लेने के लिए अधिकृत करने वाला कोई मंजूरी आदेश नहीं था। यह एक मौलिक त्रुटि है जो अधिकार क्षेत्र के बिना संज्ञान को अमान्य कर देती है।

21. दिनांक 08.09.2017 को आयोजित विश्वविद्यालय के प्रबंधन बोर्ड की 62वीं आपात बैठक की कार्यसूची और कार्यवृत्त की एक प्रति विश्वविद्यालय की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न की गई है। बैठक का एकमात्र एजेंडा "सी.बी.आई. केस संख्या-2016 में सी.बी.आई. के लिए मांगी गई अभियोजन RC0062017A0012 डा विपिन सक्सेना, प्रोफेसर, कंप्यूटर विज्ञान और मानद निदेशक, यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, बीबीएयू, लखनऊ, के विरुद्ध की मंजूरी जारी करने पर विचार करना था। कार्यसूची में यह उल्लेख किया गया था कि सी.बी.आई. से प्राप्त पत्र दिनांक

01.08.2017 की एक प्रति को एजेंडा के साथ रखा गया था और कुलपति ने प्रबंधन बोर्ड के सभी सदस्यों से 14 दिनों के भीतर अपनी सहमति/टिप्पणियां भेजने का अनुरोध किया था। 5 सदस्यों से प्राप्त प्रतिक्रिया को कार्यसूची में जोड़ा गया। एक सदस्य प्रो रघुवेन्द्र तंवर ने सूचित किया था कि कुलपति अपने विवेक से निर्णय ले सकते हैं और तदनुसार प्रबंधन बोर्ड को सूचित कर सकते हैं। अजय कुमार झा ने लिखा कि स्थिति की गंभीरता को देखते हुए कुलपति ने कहा... विश्वविद्यालय के प्रधान कार्यकारी और अकादमिक प्रमुख सी.बी.आई. को दिए गए पत्र में संलग्न इस मामले पर अपनी राय के अनुसार आगे बढ़ने की अनुमति दे सकते हैं और उसके बाद प्रबंधन बोर्ड को अपनी अगली बैठक में मामले की रिपोर्ट कर सकते हैं। विद्या शारदा ने स्पष्ट रूप से लिखा कि *"मैं डॉ. विपिन सक्सेना के अभियोजन के लिए अपनी सहमति देता हूं"।*

22. 08.09.2017 को आयोजित प्रबंधन बोर्ड की 62 वीं बैठक में 7 सदस्यों की अपेक्षित गणपूर्ति के मुकाबले केवल 6 सदस्यों ने भाग लिया और उपस्थित सभी सदस्य याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी देने के पक्ष में थे। कुलपति ने बोर्ड के सदस्यों की सहमति सर्कुलेशन द्वारा मांगी थी और प्रो विद्या शारदा, जो बैठक में उपस्थित नहीं थीं, ने याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए अपनी सहमति लिखित रूप में स्पष्ट रूप से सूचित की थी। रघुवेंद्र तंवर और प्रो अजय कुमार झा ने लिखा कि स्थिति की गंभीरता को देखते हुए, कुलपति सी.बी.आई. को दिए गए पत्र में संलग्न इस मामले पर अपनी राय के अनुसार आगे बढ़ने की अनुमति दे सकते हैं और उसके बाद मामले को प्रबंधन बोर्ड को अपनी अगली बैठक में रिपोर्ट कर सकते हैं।

23. इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रबंधन बोर्ड द्वारा प्रबंधन बोर्ड के अधिकांश सदस्यों की राय को ध्यान में रखते हुए मंजूरी दी गई थी, जो 7 सदस्यों के निर्धारित कोरम से कम नहीं थी और इसलिए, मंजूरी आदेश अवैध या अधिकार के बिना नहीं है क्योंकि 08.09.2017 को आयोजित प्रबंधन बोर्ड की 62 वीं बैठक में कोरम पूरा नहीं हुआ था।

24. विश्वविद्यालय के कुलपति के हस्ताक्षर के तहत जारी किए गए दिनांक 26.10.2017 के मंजूरी आदेश में उल्लेख किया गया है कि "द०प्र०स० की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज बयानों और आरोपों के संबंध में अन्य प्रासंगिक सामग्री सहित इसके समक्ष रखी गई सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच करने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और पूरी तरह से संतुष्ट होने पर, प्रबंधन बोर्ड का मानना है कि उक्त डॉ. विपिन सक्सेना, प्रो कंप्यूटर विज्ञान विभाग, यूआईईटी, बीबीएयू (यूपी) के तत्कालीन मानद निदेशक पर उक्त अपराधों के लिए न्यायालय में मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

अब, इसलिए, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ का प्रबंधन बोर्ड एतद्द्वारा उक्त डॉ. विपिन सक्सेना, प्रो कंप्यूटर विज्ञान विभाग, यूआईईटी, बीबीएयू (यूपी) के तत्कालीन मानद निदेशक के खिलाफ धारा 120-बी भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए मुकदमा चलाने के लिए भ्रष्टाचार निवारण

अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत मंजूरी प्रदान करता है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी) और कोई अन्य अपराध जैसा कि माननीय न्यायालय ने उपरोक्त कृत्यों के संबंध में और सक्षम न्यायालय द्वारा उक्त अपराधों का संज्ञान लेने के लिए वांछित प्राथमिकी दर्ज करने की इच्छा जताई है।

25. याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए स्वीकृति देने के संबंध में 08.09.2017 को आयोजित 62 वीं आपात बैठक के कार्यवृत्त की पुष्टि प्रबंधन बोर्ड ने अपनी 63 वीं बैठक में की थी। इसलिए, प्रबंधन बोर्ड द्वारा मंजूरी आदेश को मंजूरी दे दी गई थी और 62 वीं बैठक में कोरम की कमी के कारण अनियमितता, यदि कोई हो, 14.11.2017 को आयोजित 63 वीं बैठक में ठीक हो गई, 05.07.2018 से बहुत पहले, जब विचारण न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया था।

26. इसके अलावा, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय अधिनियम, 1994 की धारा 12 (3) में निम्नानुसार प्रावधान है: -

> "12(3). (4) कुलपति, यदि उसकी राय हो कि किसी विषय पर तत्काल कार्रवाई आवश्यक है, तो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी को प्रदत्त किसी शक्ति का प्रयोग कर सकेगा और ऐसे प्राधिकारी को ऐसे विषय पर उसके द्वारा की गई कार्रवाई के बारे में प्रतिवेदन दे सकेगा।
>
> परन्तु यदि संबंधित प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए थी तो वह मामले को उस कुलाध्यक्ष को निर्देशित कर सकेगा जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगा।
>
> परन्तु यह और कि विश्वविद्यालय की सेवा में कोई व्यक्ति, जो इस उपधारा के अधीन कुलपति द्वारा की गई कार्रवाई से व्यथित है, को ऐसी कार्रवाई के विरुद्ध उस तारीख से तीन मास के भीतर प्रबंध बोर्ड में अपील करने का अधिकार होगा, जिस तारीख को ऐसी कार्रवाई पर विनिश्चय उसे सूचित किया जाता है और तत्पश्चात् प्रबन्ध बोर्ड पुष्टि कर सकेगा, कुलपति द्वारा की गई कार्रवाई को संशोधित या उलट दें।
>
> (महत्त्व सन्निविष्ट)

27. कुलपति के पास विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग करने की वैधानिक शक्ति है, जिसमें स्पष्ट रूप से धारा 12 की उपधारा (3) में उल्लिखित कुछ स्थितियों में विश्वविद्यालय का प्रबंधन बोर्ड शामिल होगा। प्रबंधन बोर्ड कुलपति की कार्रवाई को अस्वीकार कर सकता था और उस स्थिति में, प्रबंधन बोर्ड इस मामले को विश्वविद्यालय के विजिटर को भेज सकता था, लेकिन प्रबंधन बोर्ड ने कुलपति की कार्रवाई को अस्वीकार नहीं करने का विकल्प चुना, बल्कि प्रबंधन बोर्ड की 62 वीं बैठक में लिया गया निर्णय, जिसके

आगे कुलपति ने दिनांक 26.10.2017 को स्वीकृति आदेश जारी किया था, जिसकी पुष्टि 14.11.2017 को आयोजित 63वीं बैठक में की गई थी। बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय अधिनियम, 1994, धारा 12(3) द्वारा कुलपति को प्रदत्त वैधानिक शक्ति के अनुसार मंजूरी आदेश जारी किया गया था और यह अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं था।

28. इसलिए, प्रस्तुत मामले के तथ्य याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामलों के तथ्यों से अलग हैं और पूर्वोक्त मामले में बताए गए कानून का सिद्धांत प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

29. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन से पूर्व, इस क्षेत्र को शासित करने वाला कानून भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 था और 1947 के अधिनियम की धारा 6 में अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान शामिल थे: -

> "6. अभियोजन के लिए आवश्यक पूर्व स्वीकृति
>
> (1) कोई न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 161 या धारा 164 या धारा 165 के अधीन या इस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) या उपधारा (3क) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, जो किसी लोक सेवक द्वारा कथित रूप से किया गया है, पूर्व मंजूरी के सिवाय, संज्ञान नहीं लेगा-
>
> (क) किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित है और केन्द्रीय सरकार की केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से दिए गए अपने पद से हटाने योग्य नहीं है;
>
> (ख) किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित है और राज्य सरकार की/द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना अपने पद से हटाने योग्य नहीं है;
>
> (ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे अपने पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी का।
>
> (2) जहाँ किसी कारण से, यह शंका उत्पन्न होती है कि उपधारा (1) के अधीन यथा अपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए या नहीं तो ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो लोक सेवक को उस समय उसके पद से हटाने के लिए सक्षम होता जब अपराध कथित रूप से किया गया था।

30. तथापि, 1947 के अधिनियम को 1988 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19, जैसा कि यह उत्तर प्रदेश राज्य

पर लागू होता है, में अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान शामिल हैं: -

"19. अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक- (1) कोई न्यायालय लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 में अन्यथा उपबंधित पूर्व मंजूरी के सिवाय, धारा 7, 11, 13 और 15] के अधीन कथित रूप से किसी लोक सेवक द्वारा किए गए कथित दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा-

(क) किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो यथास्थिति, नियोजित अभिकथित अपराध किए जाने के समय संघ के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित था] और उस सरकार की केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना उसके पद से हटाया नहीं जा सकेगा;

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो यथास्थिति, नियोजित है, या यथास्थिति, किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित अभिकथित अपराध किए जाने के समय था और उस सरकार की राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना उसके पद से हटाया नहीं जा सकता;

(ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे अपने कार्यालय से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी का।

(घ) खंड (ग) में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, जहां वह ऐसा करना आवश्यक समझती है, खंड (ग) में निर्दिष्ट प्राधिकारी से इस निमित्त विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर पूर्व मंजूरी देने की अपेक्षा कर सकेगी और यदि उक्त प्राधिकारी ऐसी अवधि के भीतर पूर्व स्वीकृति देने में असफल रहता है तो राज्य सरकार द्वारा पूर्व मंजूरी दी जा सकेगी।

स्पष्टीकरण--(1) इस खंड के प्रयोजन के लिए, "प्राधिकरण" के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण के अधीन कोई प्राधिकारी नहीं है।

(2) संदेह को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस खंड के तहत राज्य सरकार की शक्ति का प्रयोग उस मामले में भी किया जा सकता है जहां खंड (सी) में निर्दिष्ट प्राधिकारी ने पहले पूर्व मंजूरी देने से इनकार कर दिया है।

बशर्ते कि पुलिस अधिकारी या जांच एजेंसी या अन्य कानून प्रवर्तन प्राधिकरण के अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, उपयुक्त सरकार या सक्षम प्राधिकारी को, जैसा भी मामला हो, इस उप-धारा में निर्दिष्ट किसी भी अपराध के न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के लिए ऐसी सरकार या प्राधिकरण की पूर्व मंजूरी के लिए कोई अनुरोध नहीं किया जा सकता है, जब तक-

(i) ऐसे व्यक्ति ने उन कथित अपराधों के बारे में सक्षम न्यायालय में शिकायत दर्ज की है जिनके लिए लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की मांग की गई है; और

(ii) न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 वर्ष 1974) की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज नहीं किया है और शिकायतकर्ता को आगे की कार्यवाही के लिए लोक सेवक के खिलाफ अभियोजन की मंजूरी प्राप्त करने का निर्देश दिया है:

परन्तु यह और कि पुलिस अधिकारी या अन्वेषण एजेंसी के अधिकारी या अन्य विधि प्रवर्तन प्राधिकरण से भिन्न व्यक्ति के अनुरोध की दशा में, समुचित सरकार या सक्षम प्राधिकारी संबंधित लोक सेवक को अपना पक्ष सुने जाने का अवसर प्रदान किए बिना किसी लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की मंजूरी नहीं देगा:

बशर्ते कि उपयुक्त सरकार या कोई सक्षम प्राधिकारी, इस उप-धारा के तहत एक लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता वाले प्रस्ताव की प्राप्ति के बाद, इस तरह के प्रस्ताव पर निर्णय को इसकी प्राप्ति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर सूचित करने का प्रयास करेगा:

बशर्ते कि ऐसे मामले में, जहां अभियोजन के लिए मंजूरी देने के उद्देश्य से, कानूनी परामर्श की आवश्यकता होती है, ऐसी अवधि, लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, एक महीने की और अवधि तक बढ़ाई जा सकती है:

परन्तु यह भी कि केन्द्रीय सरकार, किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी के प्रयोजन के लिए, ऐसे दिशा-निर्देश विहित कर सकेगी जिन्हें वह आवश्यक समझे।

स्पष्टीकरण- उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, "लोक सेवक" पद के अंतर्गत ऐसा व्यक्ति भी है-

(क) जिसने उस पद को धारण करना बंद कर दिया है जिसके दौरान अपराध कथित रूप से किया गया है; नहीं तो

(ख) जिसने उस पद को धारण करना बंद कर दिया है जिसके दौरान अपराध कथित रूप से किया गया है और उस पद से भिन्न पद धारण कर रहा है जिसके दौरान अपराध कथित रूप से किया गया है।

(2) जहाँ किसी कारण से, इस बारे में कोई शंका उत्पन्न होती है कि उपधारा (1) के अधीन यथा अपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए या नहीं तो ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो लोक सेवक को उस समय उसके पद से हटाने के लिए सक्षम होता जब वह अपराध कथित रूप से किया गया था।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, -

(क) किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी की अनुपस्थिति या उसमें किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर अपील, पुष्टिकरण या पुनरीक्षण में किसी न्यायालय द्वारा तब तक उलटा या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, न्याय की विफलता वास्तव में घटित न हो गई हो;

(ख) कोई न्यायालय प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर तब तक रोक नहीं लगाएगा जब तक उसका समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है;

(ग) कोई न्यायालय किसी अन्य आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर रोक नहीं लगाएगा और कोई न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाहियों में पारित किसी वादकालीन आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन अवधारित करने में कि क्या ऐसी मंजूरी की अनुपस्थिति, या कोई त्रुटि, लोप या अनियमितता न्याय की विफलता के कारण हुई है या नहीं हुई है, न्यायालय इस तथ्य के संबंध में विचार करेगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही में किसी पूर्व चरण में उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी।

स्पष्टीकरण.- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, -

(क) त्रुटि के अंतर्गत स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्राधिकारी की सक्षमता भी है;

(ख) अभियोजन के लिए अपेक्षित मंजूरी के अंतर्गत किसी अपेक्षा का संदर्भ भी है कि अभियोजन किसी विनिदष्ट प्राधिकारी के कहने पर या किसी विनिदष्ट व्यक्ति की मंजूरी से या इसी प्रकार की किसी अपेक्षा से होगा।

31. पूर्वोक्त दो वैधानिक प्रावधानों के एक मात्र अवलोकन से संकेत मिलता है कि पहले यह जांचने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि क्या न्याय की विफलता मंजूरी आदेश में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण हुई है,

लेकिन 1988 के अधिनियम में, न्यायालयों को मंजूरी आदेश में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर हस्तक्षेप करने से प्रतिबंधित किया गया है, जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो।

32. श्री. प्रतिपक्षी संख्या-1 सी.बी.आई. के अधिवक्ता अनुराग कुमार सिंह ने बिहार राज्य बनाम राजमंगल राम, (2014) 11 एस.सी.सी. 388 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें बाबू थॉमस (उपरोक्त) को प्रतिष्ठित किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है) और धारा 465 द०प्र०स० का हवाला दिया, जो इस प्रकार है: -

> "465. त्रुटि, लोप या अनियमितता के कारण प्रतिवर्ती होने पर ढूँढना या दंडादेश - (1) इसके पहले अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश शिकायत में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण अपील, पुष्टिकरण या पुनरीक्षण के न्यायालय द्वारा उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, इस संहिता के अधीन विचारण से पहले या उसके दौरान या किसी जांच या अन्य कार्यवाही में सम्मन, वारंट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या अन्य कार्यवाही, या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में कोई त्रुटि, या अनियमितता, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, वास्तव में न्याय की विफलता नहीं हुई है।
>
> (2) यह आयोजित करने में कि क्या इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही में कोई त्रुटि, लोप या अनियमितता, या अभियोजन के लिए किसी संस्वीकृति में कोई त्रुटि, या अनियमितता न्याय की विफलता का कारण बनी है, न्यायालय इस तथ्य का ध्यान रखेगा कि क्या आपत्ति कार्यवाहियों में प्रारम्भिक अवस्था में उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी। (महत्व सन्निविष्ट)

माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि:-

"6. ऐसी स्थिति में जहां दोनों अधिनियमों के तहत मंजूरी में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता, जिसमें मंजूरी देने के लिए प्राधिकरण की क्षमता भी शामिल होगी, दोषसिद्धि और सजा सहित मुकदमे में अंतिम निष्कर्ष को समाप्त नहीं करती है, जब तक कि निश्चित रूप से न्याय की विफलता नहीं हुई है, यह देखना मुश्किल है कि सरकार ने, स्वीकृति आदेश में त्रुटि, चूक अथवा अनियमितता के संबंध में इस संतुष्टि तक पहुंचे बिना कि न्याय की विफलता भी हुई है, मध्यस्थ चरण में

एक आपराधिक अभियोजन को कैसे रद्द किया जा सकता है या किसी भी तरह के कारण रोक दिया जा सकता है;। वेंकटेश मूर्ति (2004) 7 एस.सी.सी. 763 में इस न्यायालय द्वारा यह निर्णय लिया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह देखा गया है कि:

"14. ... केवल इसलिए कि मंजूरी देने के मामले में कोई चूक, त्रुटि या अनियमितता है, जो कार्यवाही की वैधता को तब तक प्रभावित नहीं करता जब तक कि अदालत इस संतुष्टि को दर्ज नहीं करती है कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है। (मूल में बल दिया गया)

7. उपरोक्त दृष्टिकोण को प्रकाश सिंह बादल बनाम भारत संघ में भी दोहराया गया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पंजाब राज्य (2007)1 एस.सी.सी.1 में रिट याचिका (दीवानी) संख्या-1 में दिनांक 10-11-2008 के अपने निर्णय में यह व्यवस्था दी थी कि मंजूरी में मात्र चूक, त्रुटि या अनियमितता को तब तक घातक नहीं माना जाना चाहिए जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो। प्रकाश सिंह बादल मामले में यह भी कहा गया था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19(1) प्रक्रिया का विषय है और अधिकार क्षेत्र की जड़ तक नहीं जाती है.'

8. गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस (2005)8 एस.सी.सी. 130 में इस न्यायालय का एक विपरीत दृष्टिकोण है कि मंजूरी देने में त्रुटि अभियोजन पक्ष की जड़ तक जाती है। लेकिन बाबू थॉमस के मामले में लिए गए निर्णय को उसके तथ्यों में आवश्यक रूप से समझा जाना चाहिए, नामत प्राधिकरण ने स्वयं प्रारंभिक मंजूरी आदेश के आधार पर पहले से लिए गए संज्ञान को वैध ठहराने के लिए भूतलक्षी प्रभाव से दूसरी मंजूरी जारी करके प्रारंभिक मंजूरी की अमान्यता को स्वीकार किया था। अन्यथा भी, मध्य प्रदेश बनाम वीरेंद्र कुमार त्रिपाठी (2009)15 एस.सी.सी. 533 राज्य में वृहद खंडपीठ द्वारा स्थिति स्पष्ट की गई है।

33. 1988 के अधिनियम की धारा 19 में होने वाली अभिव्यक्ति "न्याय की विफलता" को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सी.बी.आई. बनाम अशोक कुमार अग्रवाल (उपरोक्त) में निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया है: -

"19. न्यायालय को यह जांचना चाहिए कि क्या न्याय की विफलता के बारे में उठाया गया मुद्दा वास्तव में सही अर्थों में न्याय की विफलता है या क्या यह केवल एक छलावरण तर्क है। अभिव्यक्ति "न्याय की विफलता" एक अत्यंत व्यवहार्य या आसान अभिव्यक्ति है जिसे किसी भी मामले में फिट किया जा सकता है। न्यायालय को सच्चाई का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए। न केवल अन्यायपूर्ण दोषसिद्धि से बल्कि अपेक्षित साक्ष्य प्रस्तुत करने में

अन्यायपूर्ण या लापरवाही से विफलता के परिणामस्वरूप दोषी को बरी करने से भी "न्याय की विफलता" होगी। बेशक, अभियुक्तों के अधिकारों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और उनकी रक्षा की जानी चाहिए, लेकिन उन्हें इस हद तक अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए कि यह भूल जाए कि पीड़ितों के भी कुछ अधिकार हैं। यह दिखाया जाना चाहिए कि अभियुक्त को भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र के तहत उसे उपलब्ध सुरक्षा में कुछ विकलांगता या हानि का सामना करना पड़ा है। "पूर्वाग्रह" अपने सामान्य अर्थों में व्याख्या करने और आपराधिक न्यायशास्त्र पर लागू होने में असमर्थ है। पूर्वाग्रह की दलील जांच या मुकदमे के संबंध में होनी चाहिए न कि उनके दायरे से बाहर के मामले में। एक बार जब अभियुक्त यह दिखाने में सक्षम हो जाता है कि इन पहलुओं में से किसी के संबंध में उसके साथ गंभीर पूर्वाग्रह हुआ है, और इसने कानूनी न्यायशास्त्र के तहत उसे उपलब्ध अधिकारों को हरा दिया है, तो आरोपी अदालत से राहत मांग सकता है।

34. याचिकाकर्ता यह नहीं बता सका कि जांच या परीक्षण के संबंध में उसे उपलब्ध सुरक्षा में कुलपति द्वारा पारित अभियोजन मंजूरी आदेश से क्या हानि हुई है और यह करने के लिए कि उसके खिलाफ पारित अभियोजन मंजूरी आदेश से उसे न्याय की विफलता हुई है।

35. प्रबंधन बोर्ड के अधिकांश सदस्यों की राय को ध्यान में रखते हुए 08.09.2017 को आयोजित अपनी 62 वीं बैठक में याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए प्रबंधन बोर्ड द्वारा मंजूरी दी गई थी। याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी देने के संबंध में 08.09.2017 को आयोजित 62 वीं आपात बैठक के कार्यवृत्त की पुष्टि प्रबंधन बोर्ड ने अपनी 63 वीं बैठक में की थी। इसलिए, प्रबंधन बोर्ड द्वारा मंजूरी आदेश को मंजूरी दे दी गई थी और 62 वीं बैठक में कोरम की कमी के कारण अनियमितता, यदि कोई हो, 05.07.2018 से बहुत पहले, जब विचारण न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया था, 14.11.2017 को आयोजित 63 वीं बैठक में ठीक हो गई। इसलिए, ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता है जो प्रस्तुत मामले में न्याय की विफलता का कारण बन सकता है।

36. इसके अलावा, विचारण न्यायालय द्वारा 05.07.2018 को अपराध का संज्ञान लेने के बाद, अ०सा०-1 की मुख्य परीक्षण 08.01.2019 को शुरू हुई और उनकी जिरह भी उसी तारीख को शुरू हुई, जो 21.01.2019 को संपन्न हुई। याचिकाकर्ता ने अभियोजन की मंजूरी को अमान्य घोषित करने के लिए केवल 07.03.3019 को आवेदन दायर किया, जिसे 28.05.2019 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया। दिनांक 28.05.2019 के आदेश की वैधता को चुनौती देने वाले धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन 06.02.2020 को दायर किया गया था। याचिकाकर्ता मंजूरी आदेश और संज्ञान आदेश पारित करने के तुरंत बाद मंजूरी आदेश के खिलाफ आपत्तियां दर्ज

कर सकता था और करना चाहिए था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उन्होंने मुख्य परीक्षा की रिकॉर्डिंग और अ.सा.-1 की जिरह के बाद ही मंजूरी आदेश को चुनौती देने का फैसला किया। यद्यपि स्वीकृति प्राधिकारी के बयान को दर्ज करने के बाद मंजूरी के आदेश को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई रोक नहीं है, मंजूरी आदेश को चुनौती देने में देरी से संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ता को कुलपति द्वारा पारित मंजूरी आदेश से न्याय की कोई विफलता नहीं हुई।

37. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि पूरी सामग्री प्रबंधन बोर्ड के सदस्यों के समक्ष नहीं रखी गई थी और उनके पास सामग्री पर अपना दिमाग लगाने का अवसर नहीं था, जो आदेश को दूषित करता है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि मंजूरी आदेश सी.बी.आई. द्वारा भेजे गए मसौदा मंजूरी आदेश का शब्दशः पुनरुत्पादन है, जो आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी द्वारा दिमाग का उपयोग न करने का संकेत देता है।

38. रिकॉर्ड में उपलब्ध सामग्री से ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यसूची में यह उल्लेख किया गया था कि सी.बी.आई. से प्राप्त दिनांक 01.08.2017 के पत्र की एक प्रति को कार्यसूची के साथ रखा गया था और कुलपति ने प्रबंधन बोर्ड के सभी सदस्यों से 14 दिनों के भीतर अपनी सहमति/टिप्पणियां भेजने का अनुरोध किया था। विश्वविद्यालय की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के लिए दिनांक 01.08.2017 के पत्र की एक प्रति अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में संलग्न की गई है, जिसमें सी.बी.आई. द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट शामिल है जिसमें मामले की पृष्ठभूमि, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप, जांच का परिणाम, जांच का सारांश, अभियुक्त व्यक्तियों के बयान और मसौदा मंजूरी आदेश, टेलीफोन पर बातचीत के प्रासंगिक उद्धरण शामिल हैं।

39. यद्यपि सदस्यों में से एक श्रीमती अंजू बाला ने लिखा था कि उन्हें दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों की आवश्यकता उनके संलग्नकों के साथ थी, उन्होंने यह नहीं लिखा कि पत्र के संलग्नक उन्हें प्रदान नहीं किए गए थे। विद्या शारदा ने सूचित किया था कि "उपरोक्त पत्र के साथ संलग्न प्रासंगिक दस्तावेजों के सावधानीपूर्वक अवलोकन के बाद, सम्मानित संस्थान, बीबीएयू के प्रबंधन बोर्ड के सदस्य के रूप में मेरी क्षमता में, मैं डॉ विपिन सक्सेना के अभियोजन के लिए अपनी सहमति देता हूं। किसी भी सदस्य ने शिकायत नहीं की कि उसे पूरी सामग्री उपलब्ध नहीं कराई गई थी।

40. इसलिए, मैं याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि प्रबंधन बोर्ड के सदस्यों के समक्ष पूरी सामग्री नहीं रखी गई थी। इसके अलावा, मंजूरी आदेश की विषय-वस्तु का मसौदा आदेश की विषय-वस्तु के समान होना भी इस बात का संकेत नहीं है कि उसने दिमाग नहीं लगाया है क्योंकि मंजूरी आदेश में विभिन्न विषय-वस्तु का उपयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जब तक कि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी मसौदा आदेश की विषय-वस्तु से सहमत न हो।

41. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अंत में प्रस्तुत किया कि यह स्थापित कानून है कि जब भी किसी काम को करने के लिए कोई तरीका निर्धारित किया जाता है, तो उस चीज को अकेले उसी तरीके से किया जाना चाहिए और काम करने के अन्य तरीकों को अनिवार्य रूप से मना किया जाता है। कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता है, लेकिन सिद्धांत की प्रयोज्यता को प्रस्तुत मामले के तथ्यों के प्रकाश में परीक्षण किया जाना है। कुलपति के पास विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (3) में उल्लिखित कतिपय स्थितियों में विश्वविद्यालय के किसी भी प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग करने की सांविधिक शक्ति है, जिसमें स्पष्ट रूप से विश्वविद्यालय का प्रबंधन बोर्ड शामिल होगा। प्रबंधन बोर्ड के पास कुलपति की कार्रवाई को अस्वीकार करने और मामले को विश्वविद्यालय के विजिटर को संदर्भित करने का अधिकार था, लेकिन प्रबंधन बोर्ड ने कुलपति की कार्रवाई को अस्वीकार नहीं करने का विकल्प चुना। बल्कि, बोर्ड ने अपनी अगली बैठक में मंजूरी के आदेश की पुष्टि की, इससे पहले कि अदालत ने अपराध का संज्ञान लिया। इसलिए, अपनाई गई प्रक्रिया विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 12(3) में अंतवर्ष्ट उपबंधों के अनुसार है और मुझे इस निवेदन में भी कोई बल नहीं लगता है।

42. धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग इस न्यायालय द्वारा न्यायालय के दुरुपयोग या प्रक्रिया को रोकने या न्याय के लक्ष्य को सुरक्षित करने के लिए किया जाना है। किसी ऐसे व्यक्ति पर मुकदमा चलाने से इनकार करने से "न्याय की विफलता" होगी, जिसके खिलाफ भ्रष्टाचार के अपराध के लिए उसके अभियोजन की आवश्यकता के लिए पर्याप्त प्रथम दृष्टया सामग्री है और उच्च न्यायालय द्वारा अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाकर किसी भी मध्यस्थ स्तर पर अभियोजन को विफल नहीं किया जाना चाहिए। जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, प्रस्तुत मामले में आवेदक को न्याय की कोई विफलता नहीं हुई है।

43. पूर्वगामी चर्चा के मद्देनजर, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी देने वाले विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.10.2017 और आपराधिक मामला संख्या-545 वर्ष 2017 में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, सी.बी.आई. (पश्चिम), लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.05.2019 का आदेश, याचिकाकर्ता के आवेदन दिनांक 07.03.2019 को खारिज करते हुए अभियोजन मंजूरी आदेश दिनांक 26.10.2017 की वैधता को चुनौती देते हुए, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं है और न्याय के उद्देश्यों को पराजित नहीं करते हैं और वे किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं हैं।

44. धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन में योग्यता का अभाव है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1179

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 3527/2021

अखिलेश पाल एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता:

श्री सुजान सिंह, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री पंकज कुमार त्रिपाठी

विपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री राधा कांत सिंह

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366 और 376 - पोक्सो अधिनियम, 2012 - धारा 3 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 164 - आपराधिक कार्यवाही - रद्द करना - घटना की तारीख पर, सभी आरोपियों द्वारा शादी के बहाने सूचनाकर्ता की बेटी का अपहरण कर लिया गया - विवेचना के दौरान, पीड़िता बरामद हुई, सह-आरोपी गिरफ्तार - पीड़िता ने अपने बयान में कहा कि वह अपनी मर्जी से गांव से गई थी, उन दोनों ने मंदिर में शादी की, पति-पत्नी की तरह रह रहे थे, उसने उसे लालच नहीं दिया - आवेदक ने किसी अपराध में भूमिका नहीं निभाई, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आवेदक पीड़िता और सह-आरोपी की योजना जानते थे - यह स्थापित नहीं हुआ कि वे दोनों आवेदकों द्वारा सुविधा प्रदान की गई थी या उन्होंने कभी उस स्थान का दौरा किया जहां वे दोनों पीड़िता की बरामदगी से पहले रह रहे थे, यह स्थापित नहीं हुआ कि आवेदक पीड़िता और सह-आरोपी के ठिकाने जानते थे - इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आवेदक ने प्रासंगिक अवधि के दौरान आजीविका के लिए कोई राशि प्रदान की - इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आवेदक ने कथित अपराध को अंजाम देने में सहयोग दिया या षडयंत्र रचा। (पैरा 2 से 6)

प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. विनीत कुमार व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश व अन्य , मनु/एससी/0351/2017

2. सुंदर बाबू एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009)14 एससीसी 244

3. अहमद अली कुरैशी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2020) 13एससीसी 435

4. सुरेश कुमार गोयल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2019) 14 एससीसी 318

5. एमएन ओझा एवं अन्य बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य , (2009) 9 एससीसी 682

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम, आज़मगढ़, जिला आज़मगढ़ (राज्य बनाम कमलेश) के समक्ष लंबित वाद संख्या 31/2020 की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है जो केवल आवेदकों के संबंध में थाना सिधारी, जिला आज़मगढ़ में धारा 363, 366, 376 भा.दं.सं. और ¾ पॉक्सो अधिनियम के तहत पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 102/2019 से उत्पन्न हुआ है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता सूबेदार यादव ने दिनांक 14.04.2019 की घटना के संबंध में अपराध संख्या 102/2019 की धारा 363, 366 भा.दं.सं. के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जिसमें बाद में भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत आरोप पत्र भी प्रस्तुत की गई है। मामले के तथ्य यह है कि 14.09.2019 को कमलेश पाल पुत्र जग्गू पाल अपनी नाबालिग बेटी से निजी तौर पर बात कर रहा था, जब उसका भाई हवलदार यादव वहां पहुंचा और दोनों को फटकार लगाई और उन्हें भगा दिया और फिर कभी न मिलने की बात कही। उसी रात लगभग 09:00 बजे आरोपी कमलेश पाल को उसके बेटे राजेश यादव ने अपने भाई अखिलेश पाल और दीपक पाल (आवेदकों) के साथ अपने घर के बगल वाली गली में घूमते हुए देखा। उसी रात उसकी बेटी को सभी आरोपियों ने शादी का झांसा देकर अगवा कर लिया था, अखिलेश पाल ने आरोपी कमलेश पाल का मोबाइल नंबर उपलब्ध कराया तो उसने दिए गए नंबर पर संपर्क किया तो वह स्विच ऑफ था। उसने अपने स्तर से बहुत कुछ खोजने की कोशिश की, जब उसे पता चला, तो वह पुलिस स्टेशन गया और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई।

4. जांच के दौरान पीड़ित को बरामद किया गया और आरोपी कमलेश पाल को गिरफ्तार कर लिया गया और पीड़िता का बयान दर्ज किया गया। पीड़िता ने द०प्र०सं० की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा है कि 14.04.2019 को, उसने अपनी मर्जी से अपना गाँव छोड़ दिया, उसने कमलेश पाल को रात 10:00 बजे फोन किया जब उसके माता-पिता सो गए, वे अपनी मर्जी से एक साथ रेलवे स्टेशन गए। वहां से वे दोनों ट्रेन से लुधियाना गए। वहां उन दोनों ने मंदिर में शादी कर ली और पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। कमलेश उसी स्टील कंपनी में काम करने लगे, वे दोनों खुशी से रह रहे थे कमलेश अपने घर पर फोन पर बात करता था। एक दिन उसे पता चला कि उसकी माता की तबीयत खराब है तो वे दोनों 18 जनवरी, 2020 को चुपके से अपनी मां से मिलने वापस आ रहे थे, नरौली इंटर सेक्शन पर पुलिस को देखकर कमलेश वहां से हट गया और पुलिस उसे थाने ले आई। वह कमलेश पाल के साथ रहना चाहती है।

5. पीड़िता ने द०प्र०सं० की धारा 164 के तहत अपने बयान में कहा है वह 2-3 महीने कम, लगभग 18 साल की थी। दिनांक 14.04.2019 को वह अपनी मर्जी से कमलेश के साथ लुधियाना गई थी। वे दोनों एक-दूसरे को दो-तीन साल से जानते थे, वे एक-दूसरे को पसंद करते थे, वह अपनी मर्जी से उसके साथ गयी थी, उसने उसे बहकाया नहीं, उन दोनों ने शादी कर ली और पति-पत्नी की तरह रह रहे थे। उसे कमलेश के साथ रहना है।

6. परोक्त कथन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आवेदक ने किसी भी अपराध के घटित होने में कोई भूमिका नहीं निभाई है। इस बात का जरा भी साक्ष्य नहीं है कि आवेदक पीड़िता और आरोपी कमलेश पाल की योजना को जानते थे। यह स्थापित नहीं किया जा सका कि उन दोनों को आवेदकों द्वारा सहायता प्रदान की गई थी या वे कभी उस स्थान पर गए थे जहां वे दोनों पीड़ित की बरामदगी से पहले रह रहे थे। यह स्थापित नहीं किया जा सका कि आवेदक पीड़िता और आरोपी कमलेश पाल के लुधियाना स्थित ठिकाने के बारे में जानते थे। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि संबंधित अवधि के दौरान आवेदक द्वारा उनकी आजीविका के लिए कोई राशि प्रदान की गई थी। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से यह पता चलता है कि, यह एक लड़के और लड़की के बीच प्रेम संबंध का मामला है। इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि आवेदक ने कथित अपराध के कमीशन के लिए किसी भी तरह से उकसाया या साजिश रची। तब भी उनके खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

7. इस न्यायालय का विचार है कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर आवेदकों के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए द०प्र०सं० की धारा 482 को शामिल किया गया है। यह न्यायालय द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है यदि वह इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए आवश्यक समझता है। द०प्र०सं० की धारा 482 इस प्रकार है।

"482. उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों का बचाव । इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की अंतनहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी कि वह ऐसे आदेश दे सके जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हों।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

1. विनीत कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य मनु/ एससी/0351/2017 में, मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए धारा 482 द०प्र०सं० के तहत याचिका की अनुमति दी गई और मजिस्ट्रेट को नए आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया।

2. सुंदर बाबू और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2009) 14 एससीसी 244 में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य से शुरू की गई थी और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से, इसलिए शिकायत को रद्द कर दिया गया था।

3. अहमद अली कुरैशी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2020) 13SCC 435 में, शिकायत को दुर्भावनापूर्ण प्रकृति का पाया गया और अपीलकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ दुर्भावनापूर्ण उद्देश्यों के साथ दुर्भावनापूर्ण रूप से स्थापित किया गया, इसलिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया गया।

4. सुरेश कुमार गोयल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2019) 14 एससीसी 318 में, शिकायत को शिकायतकर्ता द्वारा अपने परिवार के खिलाफ प्रतिशोध लेने के लिए एक प्रतिवाद पाया गया था। शिकायत को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग माना गया था, इसलिए द०प्र०सं० की धारा 245 (2) के तहत निर्वहन आवेदन की अनुमति दी गई थी और शिकायतकर्ता को तुच्छ मुकदमेबाजी शुरु करने के लिए प्रत्येक आवेदक को लागत के रूप में 25,000 रुपये का भुगतान करने का भी निर्देश दिया गया था।

5. एमएन ओझा और अन्य बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव और अन्य (2009) 9 एससीसी 682 में, शिकायत स्पष्ट रूप से अपीलकर्ताओं को परेशान करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग पाई गई थी। शिकायत में कथन और आरोप अपीलकर्ताओं द्वारा किसी भी अपराध को अंजाम दिए जाने का खुलासा नहीं कर रहे थे। यह मामला विचारण न्यायालय द्वारा दिमाग का उपयोग न करने का एक उत्कृष्ट उदाहरण पाया गया था, जहां मजिस्ट्रेट ने शिकायत की सामग्री की भी जांच नहीं की थी, जिससे साइट सामग्री दस्तावेज रिकॉर्ड पर उपलब्ध था।

उपरोक्त सभी उद्धरण अपीलकर्ताओं के पक्ष में लागू होते हैं।

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर जब आवेदकों के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, तो इस न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह आवेदकों के संबंध में आक्षेपित आपराधिक मामले की पूरी कार्यवाही को रद्द कर दे। इसलिए इस आवेदन की अनुमति दी जानी चाहिए।

<u>आदेश</u>

द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत इस आवेदन की अनुमति दी जाती है और आवेदकों के खिलाफ उपरोक्त मामले अपराध संख्या की पूरी कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1182

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 4744/2023

पुनीत शरण तिवारी एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता:
श्री केएस तिवारी, श्री विवेक तिवारी

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, श्री सुरेंद्र कुमार चौबे

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 323, 504, 506 और 308 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - समन आदेश के विरुद्ध - दायरा - सूचनाकर्ता, पीडब्लू-1 ने आवेदकों और छह अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की, जिसमें आरोप लगाया गया कि वे उनकी जमीन पर अवैध रूप से शौचालय का निर्माण कर रहे थे - जब आरोपियों को ऐसा करने से रोका गया, तो उन्होंने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया और आवेदक को लाठी, डंडा और मुक्कों से पीटा, जब उसकी मां उसे बचाने पहुंची, तो आरोपियों ने उसे भी पीटा जिससे उसे घातक चोटें आईं - आरोप तय होने के बाद, अदालत ने घायल, पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और प्रत्यक्षदर्शी पीडब्लू-3 का बयान दर्ज किया - माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन व्यक्तियों को बुलाने के संबंध में निर्धारित विधि के आलोक में अदालत में दर्ज पीडब्लू-1 से पीडब्लू-3 के बयानों पर विचार किया गया, जिनका नाम आरोप पत्र में सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आरोपी के रूप में नहीं है, इस प्रकार ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 11, 13)

प्रार्थना पत्र अस्वीकृत। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. नवीन बनाम हरियाणा राज्य, एसएलपी (आपराधिक) संख्या 3446/2022 में 01.11.2022 को पारित किया गया

2. मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2021 एआईआर एससी 4247

3. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 92, (पैरा 105, 106)

4. एस. मोहम्मद इस्पहानी बनाम योगेन्द्र चांडक, (2017) 16 एससीसी 226, (पैरा 35)

5. राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम द्वारा पारित)

1. आवेदकों के विद्वान वकील श्री के एस तिवारी को, राज्य के लिए विद्वान ए जी ए को और विपक्षी संख्या 2 के विद्वान वकील श्री सुरेंद्र कुमार चौबे को सुना, और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. धारा 482 सीआरपीसी के तहत वर्तमान आवेदन एस टी संख्या 55/ 2019 राज्य बनाम श्याम धर तिवारी और अन्य में, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 192/2017, धारा 147, 323, 504, 506, 308 आईपीसी, थाना कोइरौना, जिला भदोही, से उत्तपन्न हुआ है, में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-प्रथम, भदोही,

ज्ञानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.01.2023 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है। । आक्षेपित आदेश के माध्यम से, ट्रायल कोर्ट ने आवेदकों को मुकदमे के लिए सीआरपीसी की धारा 319 के तहत बुलाया है।

3. आवेदकों के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रायल कोर्ट ने उन्हें बिना किसी सबूत के उपरोक्त धाराओं के तहत मुकदमे के लिए बुलाया है। यह भी कहा गया है कि हालांकि उनका नाम एफआईआर में था लेकिन जांच अधिकारी को जांच के दौरान उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला और उन्होंने उनके खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विपक्षी संख्या 2, अभिषेक तिवारी द्वारा आवेदकों और छह अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई प्राथमिकी में, आवेदकों के साथ-साथ अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ मुखबिर के साथ दुर्व्यवहार और पिटाई की सामान्य भूमिका बनाई गई है। उन्हें कोई विशेष भूमिका नहीं सौंपी गई है. दलील दी गई है कि आवेदकों को पिछली दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज साक्ष्य में, विपक्षी संख्या 2 और उसकी मां मीना तिवारी को चोट पहुंचाने की मुख्य भूमिका सह-अभियुक्त कृपाशंकर को सौंपी गई है और आवेदकों को धारा308 आईपीसी के तहत अपराध से कोई लेना-देना नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत मुकदमे के लिए आवेदकों को बुलाने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत नहीं थे, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने उन्हें गलत तरीके से बुलाया।

4. आवेदकों को **नवीन बनाम हरियाणा राज्य एसएलपी (सीआरएल) संख्या 3446/2022** में सर्वोच्च न्यायालय के 01.11.2022 में पारित फैसले पर भरोसा है।

5. विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान वकील के साथ-साथ विद्वान एजीए ने आवेदन का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि आवेदकों को छह अन्य सह-अभियुक्तों के साथ एफआईआर में नामित किया गया है जो समान रूप से अपराध में भाग ले रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि जांच अधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल करते समय गलत तरीके से उनके नाम हटा दिए थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोप तय होने के बाद, अभियोजन पक्ष के घायल गवाह पी.डब्ल्यू.-1-अभिषेक तिवारी, घायल पी.डब्ल्यू.-2-श्रीमती मीना तिवारी और प्रत्यक्षदर्शी गवाह पी.डब्ल्यू.-3-जटाशंकर तिवारी ने अभियोजन मामले का समर्थन किया और आवेदकों के खिलाफ गवाही दी साथ ही अन्य सह-अभियुक्तों पर अपराध में शामिल होने का आरोप है, जिसके दौरान पी.डब्ल्यू.-1 अभिषेक तिवारी और पी.डब्ल्यू.-2 मीना तिवारी को घातक चोटें आई हैं।

6. विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान वकील ने **मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2021 एआईआर एससी 4247** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है।

7. ***हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 3 एससीसी 92*** और पैरा 105 और 106 में माननीय शीर्ष न्यायालय की संविधान पीठ की घोषणा से धारा 319 सीआरपीसी का दायरा और अच्छी तरह से तय हो गया है जो इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं उन्हें यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"105. सीआरपीसी, 1973 की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमित रूप से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां उचित हों। इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब किसी व्यक्ति के खिलाफ अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि आकस्मिक और लापरवाह तरीके से।

106. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह ऐसा है जो आरोप तय करने के समय किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, अगर खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, अदालत को सीआरपीसी, 1973 की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। सीआरपीसी, 1973 की धारा 319 में, देने के उद्देश्य के शब्दों से स्पष्ट है कि यदि "साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई अपराध किया है" "उसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है"। इस्तेमाल किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके"। इसलिए, सीआरपीसी, 1973 की धारा 319 के तहत कार्रवाई करने वाली अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।"

8. ***एस मोहम्मद इस्पहानी बनाम योगेन्द्र चांडक (2017) 16 एससीसी 226*** में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा और आयोजित किया है:

"35. इस बात पर प्रकाश डालने की जरूरत है कि जब शिकायतकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति का नाम एफआईआर में दर्ज किया जाता है, लेकिन पुलिस जांच के बाद उस व्यक्ति विशेष की कोई भूमिका नहीं पाती है और उसे फंसाए बिना आरोप पत्र दायर करती है, तो न्यायालय शक्तिहीन नहीं हो सकती है, और सम्मन के चरण में, यदि ट्रायल कोर्ट को लगता है कि किसी विशेष व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाया जाना चाहिए, भले ही आरोप-पत्र में उसका नाम न हो, तो वह ऐसा कर सकता है। उस स्तर पर, शिकायतकर्ता को भी एक विरोध याचिका दायर करने का मौका दिया जाता है,

जिसमें ट्रायल कोर्ट से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह किया जाता है, जिनका नाम एफआईआर में था लेकिन आरोप पत्र में शामिल नहीं किया गया था।एक बार वह चरण बीत जाने के बाद भी न्यायालय सीआरपीसी की धारा 319 के आधार पर शक्तिहीन नहीं है। हालाँकि, यह धारा तब लागू होती है जब मुकदमे के दौरान प्रस्तावित आरोपी के खिलाफ कुछ सबूत सामने आते हैं।"

9. **राजेश बनाम हरियाणा राज्य (2019) 6 एससीसी 368** के मामले में, इस न्यायालय द्वारा यहां ऊपर उल्लिखित **हरदीप सिंह (सुप्रा)** में की गई टिप्पणियों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने आगे देखा और माना कि ऐसे मामले में भी जहां शिकायतकर्ता को एक विरोध याचिका दायर करने का अवसर देने का चरण जिसमें ट्रायल कोर्ट से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह किया गया था जिनका नाम एफ.आई.आर. में था लेकिन आरोप पत्र में फंसाया नहीं गया है, उस मामले में भी धारा 319 सीआरपीसी के आधार पर न्यायालय अभी भी शक्तिहीन नहीं है और यहां तक कि उन लोगों को भी, जिनके नाम एफ.आई.आर. में हैं लेकिन आरोप-पत्र में फंसाए नहीं गए लोगों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है, बशर्ते मुकदमे के दौरान प्रस्तावित आरोपी के खिलाफ कुछ सबूत सामने आएं हों।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ट्रायल कोर्ट एक गवाह के मुख्य परीक्षण के आधार पर उन व्यक्तियों को आरोपी के रूप में बुला सकता है जिनके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत समन करने से पहले गवाह से जिरह की जाए। सीआरपीसी की धारा 319 के तहत ऐसे व्यक्तियों को बुलाने के लिए आवश्यक सबूत प्रथम दृष्टया मामले से अधिक हैं, लेकिन ऐसे सबूतों की कमी है, जिनका अगर खंडन नहीं किया गया तो मुकदमे के लिए बुलाए गए व्यक्तियों को दोषी ठहराया जा सकता है।

11. सूचना देने वाले, पीडब्लू -1 अभिषेक तिवारी ने, पुनीत शरण तिवारी और अमित कुमार और छह अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जिससे मामला अपराध संख्या 192/2017 का उद्भव हुआ, जिसमें आरोप लगाया गया है कि वे अपनी जमीन पर अवैध रूप से शौचालय का निर्माण कर रहे थे। जब आरोपियों को ऐसा करने से रोका गया तो वे गाली-गलौज करने लगे और प्रार्थी को लाठी, डंडा व मुक्कों से पीटा और मदद के लिए पुकारने पर जब उसकी मां उसे बचाने पहुंची तो आरोपियों ने उसे भी पीटा, जिससे उसे भी घातक चोटें आईं। जांच के बाद आवेदकों और अन्य सह-अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। आरोप तय करने के बाद न्यायालय ने घायल पी.डब्ल्यू.-1-अभिषेक तिवारी, घायल पी.डब्ल्यू.-2-श्रीमती मीना तिवारी और चश्मदीद गवाह पी.डब्ल्यू.-3-अताशंकर तिवारी का बयान दर्ज किया। 12. पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 के बयानों के अवलोकन से यह पता चलता है कि कथित तिथि, समय और घटना के स्थान पर आवेदकों-अभियुक्तों ने छह अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के साथ मिलकर

सामान्य इरादे से आगे बढ़कर सूचना देने वाले और उसकी मां को गालियां दीं और जब उसने उन्हें रोका तो उन्होंने उसे और उसकी मां को लाठी, डंडा और मुक्कों से पीटना शुरू कर दिया, जिससे उन्हें घातक चोटें आईं। घटना को पी.डब्लू.-3 जटाशंकर तिवारी ने देखा।

13. धारा 319 सीआरपीसी के तहत आरोप-पत्र में जिन व्यक्तियों को नामित नहीं किया गया है, उन्हें बुलाने के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में अदालत में दर्ज पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 के बयानों के आलोक में आक्षेपित आदेश में, मुझे ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं मिली।

14. ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 07.01.2023 के आक्षेपित आदेश को सही ढंग से पारित किया है। आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि या अवैधता नहीं है और इसलिए, इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

15. तदनुसार, धारा 482 के तहत आवेदन खारिज किया जाता है।

16. पहले दिया गया अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, निरस्त किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1185

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 6461 वर्ष 2019

फुरहे खान उर्फ फकीर मोहम्मद खान एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता:

मोहन सिंह, राजेश सिंह

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, सुरेश चंद्र श्रीवास्तव

आपराधिक विधि - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 116 और 207 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 94 और 151 - शांति भंग होने की संभावना वाली भूमि से संबंधित विवाद - प्रक्रिया - दायरा - भूमि आवेदकों और विरोधी पक्षकार संख्या 5 के नाम पर थी, संपत्ति में सह-हिस्सेदार और पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा विरोधी पक्षकार संख्या 4 के पक्ष में संपत्ति बेची गई , इस आशंका के साथ विवाद उत्पन्न हुआ कि आवेदक विरोधी पक्षकार संख्या 4 के शांतिपूर्ण कब्जे में बाधा डालेंगे - आवेदक संख्या 1 और 3 द्वारा उप-विभागीय अधिकारी के समक्ष विभाजन के लिए मुकदमा दायर किया गया, विरोधी पक्षकार संख्या 4 के पक्ष में फैसला सुनाया गया, इसके बाद अपील दायर की गई, विरोधी पक्षकार संख्या 4 के पक्ष में फैसला सुनाया गया, अंतरिम आदेश अस्तित्व में थे कि पक्ष यथास्थिति बनाए रखेंगे - राजस्व परिषद के

अतिरिक्त

समक्ष दूसरी अपील लंबित, अंतरिम आदेश जारी - 4, धारा 146 (1), सीआरपीसी के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश , पूर्व तथ्य की अनदेखी करते हुए संपत्ति कुर्क की गई - यदि किसी संपत्ति के संबंध में सिविल सक्षमता न्यायालय के समक्ष सिविल विवाद लंबित है, तो धारा 145, सीआरपीसी के तहत समानांतर आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का कोई औचित्य नहीं है - ऐसी परिस्थितियों में, उक्त धारा के तहत कार्यवाही पोषणीय नहीं है - इस प्रकार, आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं। (पैरा 18 से 20, 24)

प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. महंत राम सरन दास बनाम हरीश मोहन और अन्य (2001) 10 एससीसी 758 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 2)

2. महरजहाँ एवं अन्य बनाम दिल्ली राज्य एवं अन्य (2004) 13 एससीसी 421 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 7, 8)

3. राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1985) 1 एससीसी 427, (पैरा 2) में रिपोर्ट किया गया

4. अशोक कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य (2013) 3 एससीसी 366, (पैरा 14, 15) में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मोहन सिंह, विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेश चंद्र श्रीवास्तव, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री निर्मल कुमार पाण्डेय को सुना।

2. एसडीएम जमुनहा, थाना मल्हीपुर, जिला श्रावस्ती के न्यायालय में लंबित कंप्यूटरीकृत वाद संख्या टी201808620302227, राज्य उत्तर प्रदेश बनाम अख्तर एवं अन्य अन्तर्गत धारा 145 दं0प्र0सं0 की आक्षेपित कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान प्रार्थना पत्र दायर किया गया है, साथ ही विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय-II, श्रावस्ती द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 70/2018, फुरहे खान एवं अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य में पारित दिनांक 05.08.2019 के आक्षेपित आदेश और विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 11.07.2018 (अन्तर्गत धारा 145 दं0प्र0सं0) एवं 11.07.2018 (अन्तर्गत धारा-145/146 दं0प्र0सं0) के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान प्रार्थना पत्र दायर किया गया है।

3. प्रकरण का तथ्यात्मक सार यह है कि पटपर गंज, तहसील- जमुनहा जिला- श्रावस्ती में स्थित भूमि गाटा संख्या 2 क्षेत्रफल 1.5830 हेक्टेयर, राजस्व अभिलेख में आवेदक और विपक्षी संख्या 5 के नाम दर्ज है। 22.10.2016 को विपक्षी संख्या 5 ने पंजीकृत

विक्रय विलेख निष्पादित करके अपना हिस्सा विपक्षी संख्या 4 को हस्तांतरित कर दिया और उसके बाद उसे विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में म्यूटेशन कर दिया गया। 27.10.2016 को विपक्षी संख्या 4 ने विक्रय विलेख के आधार पर वर्तमान आवेदकों और आवेदक संख्या सहित अन्य खातेदारों के कब्जे में बाधा उत्पन्न करना शुरू कर दिया। 1 ने जोत के बंटवारे हेतु उप्र राजस्व संहिता 2006 की धारा 116 के अंतर्गत उप जिलाधिकारी के समक्ष वाद दायर किया तथा उक्त वाद के संस्थित होने के पश्चात उप जिलाधिकारी ने आदेश पारित करते हुए पक्षकारों को यथास्थिति 20.10.2016 को कायम रखने का निर्देश दिया। विपक्षीगण संख्या 4 व 5 भी उक्त वाद में पक्षकार थे। दिनांक 11.05.2018 को बंटवारे का वाद निर्णीत हुआ तथा दिनांक 14.05.2018 को आवेदकगण संख्या 1 व 3 ने धारा 207 संहिता 2006 के अंतर्गत मण्डलायुक्त देवी पाटन मण्डल गोण्डा के समक्ष अपील दायर की। अपील स्वीकार की गई तथा दिनांक 22.5.2018 को अन्तरिम आदेश पारित किया गया कि पक्षकार प्रश्नगत सम्पत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखेंगे। दिनांक 07.06.2018 को विपक्षीगण संख्या 4 ने विविध एकल संख्या 17523/2018 (श्रीमती शकीरा खान बनाम यूपी राज्य) नामक रिट याचिका दायर की, जिसमें इस न्यायालय ने 07.06.2018 को आदेश पारित किया है, जो निम्नानुसार है :-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक कुमार मिश्रा को सुना गया।

विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय द्वारा विपक्षी संख्या 1 से 3 के लिए नोटिस स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्तावित आदेश के मद्देनजर, विपक्षी संख्या 4 से 9 को नोटिस जारी करने से छूट दी गई है।

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने अपर आयुक्त, देवीपाटन मंडल, गोंडा द्वारा पारित दिनांक 22.5.2018 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत विपक्षी संख्या 4 और 5 की अपील स्वीकार कर ली गई है और अगली तारीख 26.6.2018 तय की गई है, जिसमें निर्देश दिया गया है कि सूचीबद्धता की अगली तारीख तक संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखी जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उन्होंने 22.5.2018 के उपरोक्त आदेश को वापस लेने की मांग करते हुए एक रिकॉल आवेदन दायर किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि संबंधित न्यायालय को निर्धारित तिथि अर्थात 26.6.2018 को रिकॉल आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया जाए।

इन परिस्थितियों में, यह प्रावधान किया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता ने अपने दिनांक 29.5.2018 के रिकॉल आवेदन की प्रति पहले ही अपीलकर्ताओं को उपलब्ध करा दी है, तो उक्त आवेदन का निपटारा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा या तो

निर्धारित तिथि अर्थात 26.6.2018 को या उसके बाद एक महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा।

*उपर्युक्त शर्तों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।"*

4. उपर्युक्त आदेश के तहत यह निर्देश दिया गया था कि विपक्षी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत रिकॉल आवेदन का निपटारा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा या तो निर्धारित तिथि अर्थात 26.06.2018 को या उसके बाद एक महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा।

5. उक्त आदेश के पश्चात अपीलीय न्यायालय ने विपक्षी संख्या 4 के रिकॉल आवेदन पर दिनांक 26.10.2018 के आदेश द्वारा निर्णय दिया तथा दिनांक 22.05.2018 के पूर्व अन्तरिम आदेश को बरकरार रखा। अन्ततः अपील विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में अन्तिम रूप से निर्णीत की गई तथा व्यथित होकर वर्तमान आवेदक ने राजस्व मण्डल के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत की, जिसमें विपक्षी संख्या 4 को भी पक्षकार बनाया गया तथा पक्षों को सुनने के पश्चात दिनांक 05.01.2023 को आदेश पारित किया गया, जिसके तहत पक्षों को प्रश्नगत भूमि पर यथास्थिति बनाये रखने का निर्देश दिया गया। राजस्व मण्डल के समक्ष प्रकरण विचाराधीन है तथा दिनांक 05.01.2023 के आदेश द्वारा पारित अन्तरिम आदेश अभी भी प्रभावी है।

6. इस बीच विपक्षी संख्या 4 ने एसडीएम के समक्ष दं0प्र0सं0 की धारा 145 के तहत एक प्रार्थना पत्र पेश किया और उक्त प्रार्थना पत्र पर विचार करते हुए एसडीएम ने आदेश पारित किया और दिनांक 11.07.2018 के आदेश के तहत संपत्ति को कुर्क कर लिया। आवेदकों ने दिनांक 11.07.2018 के आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षण दायर किया और पुनरीक्षण न्यायालय ने भी एसडीएम द्वारा पारित दिनांक 11.7.2018 के आदेश को बरकरार रखा।

7. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान आवेदक तथा विपक्षी संख्या 5 प्रश्नगत सम्पत्ति में सह-हिस्सेदार हैं। विपक्षी संख्या 5 ने पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करके अपना हिस्सा विपक्षी संख्या 4 को बेच दिया तथा उसके पश्चात् आवेदकों तथा विपक्षी संख्या 4 के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया। प्रकरण विभाजन हेतु उप-विभागीय अधिकारी के पास गया, जिसमें अन्तरिम आदेश पारित किया गया तथा अन्ततः यह आवेदकों के विरूद्ध निर्णय हुआ तथा उसके पश्चात् अपील दायर की गई, जो भी विपक्षी संख्या 4 तथा 5 के पक्ष में निर्णय हुई, अन्ततः द्वितीय अपील राजस्व मण्डल के समक्ष संस्थित की गई, जो विचाराधीन है तथा अन्तरिम आदेश पारित किया गया, जिससे पक्षकारों को यथास्थिति बनाये रखने का निर्देश दिया गया, जो अभी भी चल रही है।

8. उन्होंने आगे कहा कि जब से उप-विभागीय अधिकारी के समक्ष विभाजन के लिए मुकदमा शुरू किया गया था, तब से ही पक्षों द्वारा यथास्थिति बनाए रखने के लिए अंतरिम आदेश पारित किया गया था और बार-बार, जब प्रकरण अपीलीय न्यायालय में गया, तो पक्षों

को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए अंतरिम आदेश दिया गया। चूंकि, इस अंतराल अवधि में, संपत्ति की कुर्की के लिए विपक्षी संख्या 4 द्वारा एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और इसे स्वीकार करते हुए, संबंधित संपत्ति, जो कि सिविल सक्षमता न्यायालय, यानी राजस्व बोर्ड के समक्ष भी विषय वस्तु है, को कुर्क कर लिया गया।

9. उन्होंने कहा कि जब किसी भूमि या संपत्ति के संबंध में सिविल कार्यवाही सिविल सक्षमता न्यायालय के समक्ष लंबित है और कुछ अंतरिम आदेश पारित हो चुके हैं, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 (1) के तहत कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा।

10. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **महंत राम सरन दास बनाम हरीश मोहन एवं अन्य (2001) 10 एससीसी 758** में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए अपने तर्क का समर्थन किया और पैराग्राफ 2 का हवाला दिया। उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ 2 नीचे उद्धृत है:-

> *"विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है, वह यह है कि वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत घोषणा के लिए एक सिविल मुकदमा सक्षम फोरम, सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित है, क्या विपक्षी धारा 145 दं0प्र0सं0 के तहत मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने का हकदार था, और मजिस्ट्रेट कार्यवाही शुरू करने और उसमें रिसीवर की नियुक्ति का कोई अंतरिम आदेश पारित करने का हकदार था। यह विवादित नहीं है कि सिविल मुकदमे में ही न्यायालय ने निषेधाज्ञा का अंतरिम आदेश पारित किया है, और संबंधित संपत्ति के अलगाव के संबंध में पक्षों पर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं। यह सच है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदक को सिविल मुकदमे में पक्ष-विपक्षी के रूप में नहीं रखा गया है, लेकिन इससे किसी भी तरह से स्थिति नहीं बदलेगी क्योंकि हमारे विचार में सिविल न्यायालय प्रकरण के अधीन है, इसलिए सिविल न्यायालय से ही कोई उचित राहत प्राप्त की जा सकती है और मजिस्ट्रेट के पास धारा 145 के तहत आवेदन पर विचार करने और उस पर कोई आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ धारा 145 दं0प्र0सं0 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष शुरू की गई कार्यवाही को रद्द किया जाता है। तदनुसार अपील का निपटारा किया जाता है। आज की स्थिति को बनाए रखने की आवश्यकता है ताकि पक्षकार उचित आदेश के लिए सिविल न्यायालय में जा सकें।"*

11. महार जहां एवं अन्य बनाम दिल्ली राज्य और अन्य (2004) 13 एससीसी 421 में दिए गए फैसले का हवाला दिया है और उपरोक्त

फैसले के पैराग्राफ 7 और 8 का हवाला दिया है। उपरोक्त फैसले के पैराग्राफ 7 और 8 नीचे उद्धृत किए गए हैं :-

"7. हमने केवल पक्षों द्वारा उठाए गए विवादों पर ध्यान दिया है। हमारी राय में, सिविल न्यायालय ऐसी शिकायतों पर विचार करने तथा ऐसा अंतरिम आदेश पारित करने के लिए सबसे उपयुक्त मंच होगा जो दोनों पक्षों के हितों की उचित रूप से रक्षा करेगा। सिविल न्यायालय अंतरिम निषेधाज्ञा जारी कर सकता है, आयुक्त या रिसीवर नियुक्त कर सकता है या संपत्ति के कब्जे या उपयोग के संबंध में कोई अन्य अंतरिम व्यवस्था कर सकता है जो सिविल न्यायालय में कार्यवाही का विषय है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 94 और 151 द्वारा उसे प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करता है।

8. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर अपील स्वीकार की जाती है। धारा 145 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही को रद्द करने का निर्देश दिया जाता है। पक्षकार सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि पक्षों के संबंधों को देखते हुए, सिविल न्यायालय मुकदमे के सीमित दायरे से शर्मिंदा हुए बिना प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुरूप ऐसा अंतरिम आदेश देने के लिए स्वतंत्र महसूस करेगा जो स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा है।"

12. राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1985) 1 एससीसी 427 के प्रकरण में दिए गए फैसले पर भरोसा करते हुए उन्होंने फैसले के पैराग्राफ 2 का हवाला दिया है। उपरोक्त फैसले का पैराग्राफ 2 नीचे उद्धृत है:-

"इस प्रार्थना पत्र में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उस आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें विपक्षी 2-5 के कहने पर दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'कोड') की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू करने और संपत्ति को कुर्क करने के निर्देश देने वाले आदेश के खिलाफ अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया गया था। निस्संदेह, उसी संपत्ति के संबंध में बलिया में सिविल जज की न्यायालय में टाइटल सूट संख्या 87/1975 के तहत कब्जे और निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा दायर किया गया था, जिसमें शीर्षक के सवाल पर विचार किया गया था और 28 फरवरी, 1981 के फैसले द्वारा उक्त मुकदमे को खारिज कर दिया गया था। अपीलकर्ता उस मुकदमे में विपक्षी था। अपीलकर्ता के अनुसार विपक्षी 2-5 के करीबी रिश्तेदार वादी थे और हम इस न्यायालय में दायर जवाबी हलफनामे से यह पाते हैं कि सिविल जज के फैसले के खिलाफ अपील की गई है और यह अभी भी अपीलीय न्यायालय के समक्ष निपटान के लिए लंबित है। विशेष अनुमति के लिए याचिका में किए गए इस दावे

को कि विपक्षी 2 से 5 करीबी रिश्तेदार हैं, गंभीरता से चुनौती नहीं दी गई है। जवाबी हलफनामे में। जब संपत्ति के लिए एक सिविल मुकदमा लंबित है जिसमें कब्जे का सवाल शामिल है और उस पर निर्णय हो चुका है, तो हम धारा 145 के तहत समानांतर आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का कोई औचित्य नहीं देखते हैं। इस स्थिति पर संदेह करने या विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि हमारे सामने आए प्रकरण जैसे प्रकरण में सिविल न्यायालय का फैसला आपराधिक न्यायालय पर बाध्यकारी है। विपक्षी 2-5 के अधिवक्ता इस प्रस्ताव को चुनौती देने की स्थिति में नहीं थे कि समानांतर कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और सिविल न्यायालय के फैसले की स्थिति में, आपराधिक न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, खासकर जब कब्जे की जांच सिविल न्यायालय द्वारा की जा रही हो और पक्षकार विवाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति की पर्याप्त सुरक्षा के लिए निषेधाज्ञा या रिसीवर की नियुक्ति जैसे अंतरिम आदेशों के लिए सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में हों। मुकदमेबाजी की बहुलता पक्षकारों के हित में नहीं है और न ही निरर्थक मुकदमेबाजी पर सार्वजनिक समय बर्बाद करने की अनुमति दी जानी चाहिए। इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि समानांतर कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए और विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। तदनुसार हम अपील स्वीकार करते हैं और विद्वान मजिस्ट्रेट के उस आदेश को रद्द करते हैं जिसके द्वारा संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई है और विवादित संपत्ति को कुर्क किया गया है। हम किसी भी पक्ष को कब्जे से संबंधित विवाद की स्थिति में, यदि सलाह दी जाती है, तो उचित अंतरिम आदेशों के लिए सिविल मुकदमे में अपीलीय न्यायाधीश के पास जाने की छूट देते हैं।"

13. अशोक कुमार बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य (2013) 3 एससीसी 366 के फैसले पर आगे भरोसा करते हुए पैराग्राफ 14 और 15 का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त निर्णय के पैराग्राफ 14 और 15 नीचे उद्धृत हैं:-

"14. हम इस प्रकरण में पाते हैं कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि कोई आपात स्थिति है, जिसके लिए धारा 146(1) लागू की जाए और संबंधित संपत्ति को कुर्क किया जाए। धारा 146 के अनुसार आपात स्थिति को शांति भंग की आशंका के प्रकरण से अलग किया जाना चाहिए । जब रिपोर्ट से पता चलता है कि पार्टियों में से एक ने सही या गलत तरीके से कब्जा कर रखा है, तो मजिस्ट्रेट आपात स्थिति के आधार पर कुर्की का

आदेश पारित नहीं कर सकता। आदेश में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि अशोक कुमार ने संबंधित संपति में निर्माण शुरू कर दिया है, इसलिए संपति का कब्जा अपीलकर्ता - अशोक कुमार के पास है, चाहे वह कानूनी हो या नहीं, यह तय करना एसडीएम का काम नहीं है।

15. हम यह भी देखते हैं कि विपक्षी ने 02.09.2009 को सिविल जज (जेडी) हरिद्वार के समक्ष निषेधाज्ञा के लिए एक सिविल वाद दायर किया है और अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन भी लंबित है, जिस पर सिविल न्यायालय ने केवल एक नोटिस जारी किया है। अमीन की रिपोर्ट मांगी गई और अमीन ने 21.11.2009 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सिविल वाद समय से पहले दायर किया गया था, यह सिविल न्यायालय को तय करना है कि वाद दायर करने की तिथि पर किसका कब्जा था। किसी भी दृष्टिकोण से, यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि संपति को कुर्क करने के लिए धारा 146 (1) के तहत शक्तियों का उपयोग करने के लिए कोई आपात स्थिति थी, खासकर, जब सिविल न्यायालय प्रकरण को संभाल रहा हो। ऐसी परिस्थितियों में, हम एसडीएम द्वारा पारित 25.11.2009 के आदेश और उच्च न्यायालय के 27.03.2012 के आदेश को रद्द करने के लिए इच्छुक हैं।

14. उपर्युक्त निर्णयों का हवाला देते हुए, उन्होंने दलील दी कि वर्तमान आवेदकों का प्रकरण उपरोक्त निर्णयों के अनुपात से पूरी तरह से आच्छादित है। इसलिए, दलील यह है कि दं0प्र0सं0 की धारा 145 (1) के तहत शुरू की गई कार्यवाही और दं0प्र0सं0 की धारा 146 के तहत अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए पारित आदेश कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण हैं और इस प्रकार, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश, अस्थिर हैं।

15. विपक्षी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों का पुरजोर विरोध किया है। उन्होंने कहा कि विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित होने के बाद, उसे कुछ नागरिक अधिकार विरासत में मिले हैं और जब से आवेदकों ने शांतिपूर्ण कब्जे में व्यवधान डालना शुरू किया और शांति भंग होने की आशंका हुई, विपक्षी संख्या 4 ने दं0प्र0सं0 की धारा 145 (1) के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया । उन्होंने यह भी कहा कि आवेदकों का प्रकरण जो उप-विभागीय अधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष स्थापित किया गया था, विपक्षी संख्या 4 और 5 के पक्ष में तय किया गया था, और अब प्रकरण राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित है और इसलिए, शांति भंग की आशंका के प्रकरण में, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने सही ढंग से आदेश पारित किया है और पुनरीक्षण न्यायालय ने उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को सही ढंग से बरकरार रखा है।

16. उपर्युक्त तर्कों के बाद, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विपक्षी संख्या 4 की पहली और सबसे बड़ी शिकायत यह है कि किसी को भी संपत्ति को अलग नहीं करना चाहिए और संबंधित भूमि पर शांतिपूर्ण कब्जे या उसके उपयोग में बाधा नहीं डालनी चाहिए जैसा कि पक्षकारों द्वारा पारंपरिक रूप से किया जाता रहा है। उन्होंने स्वीकार किया कि राजस्व बोर्ड ने 05.01.2023 को पक्षों को संबंधित भूमि पर यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया है और इस प्रकार, उनका तर्क है कि पक्षों को राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेशों का पालन करने का निर्देश दिया जा सकता है।

17. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता के कथन का समर्थन किया है और तर्क दिया है कि जब विपक्षी संख्या 4 द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया था और उसके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के अनुसार शांति भंग होने की आशंका थी, तो प्रक्रिया के आदेश का पालन करते हुए पुलिस से रिपोर्ट मांगी गई और रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा सही तरीके से आदेश पारित किया गया। उन्होंने कहा कि जब प्रकरण पुनरीक्षण न्यायालय में गया, तो पुनरीक्षण न्यायालय ने बहुत ही विस्तृत तरीके से इस मुद्दे पर निर्णय लिया और उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा। इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि उप-विभागीय मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में कोई त्रुटि या विकृति नहीं है।

18. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह उभर कर आता है कि प्रारम्भ में, प्रश्नगत भूमि आवेदक तथा विपक्षी संख्या 5 के नाम पर थी तथा वे सम्पत्ति में सह-हिस्सेदार थे तथा जब सम्पत्ति पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में बेच दी गई, तो यह आशंका के साथ विवाद उत्पन्न हुआ कि आवेदक विपक्षी संख्या 4 के शांतिपूर्ण कब्जे में बाधा उत्पन्न करेंगे। यह भी एक तथ्य है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (जिसे आगे संहिता कहा जाएगा) की धारा 116 के अन्तर्गत विभाजन हेतु वाद आवेदक संख्या 1 तथा 3 द्वारा उप-जिलाधिकारी के समक्ष प्रारम्भ में संस्थित किया गया था तथा उसमें विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में निर्णय हुआ तथा उसके पश्चात अपील दाखिल की गई, उसमें भी विपक्षी संख्या 4 के पक्ष में निर्णय हुआ, यद्यपि अन्तरिम आदेश सदैव विद्यमान थे कि पक्षकार प्रश्नगत भूमि पर यथास्थिति बनाए रखेंगे। अब प्रकरण द्वितीय अपील के चरण में है तथा राजस्व बोर्ड के समक्ष सुनवाई के लिए विचाराधीन है, जिसमें भी अंतरिम आदेश इस निर्देश के साथ जारी है कि पक्षकार यथास्थिति बनाए रखेंगे।

19. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से यह पता चलता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और उसके बाद उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 146(1) के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए आदेश पारित किया गया था

और प्रश्नगत सम्पत्ति को इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कुर्क कर लिया गया था कि विभाजन वाद और अपील का प्रकरण सिविल सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित था, अन्तरिम आदेश चल रहे थे, जिसके तहत पक्षकारों को यथास्थिति बनाये रखने का निर्देश दिया गया था, इस प्रकार, विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या सिविल प्रकरण के लंबित रहने के दौरान और सिविल सक्षम न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेश के अस्तित्व में रहते हुए, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) और 146(1) के अन्तर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए कोई आदेश पारित करने का अधिकार था ?

20. यह सामान्य कानून है कि यदि किसी संपत्ति के संबंध में सिविल विवाद सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित है, तो दं0प्र0सं0 की धारा 145 के तहत समानांतर आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का कोई औचित्य नहीं है । इसमें कोई संदेह और विवाद नहीं है कि सिविल न्यायालय का निर्णय आपराधिक न्यायालयों पर बाध्यकारी है। इसके अलावा, सिविल कार्यवाही लंबित होने और पक्षों द्वारा यथास्थिति बनाए रखने के लिए पारित आदेश या कोई अंतरिम आदेश अस्तित्व में होने की स्थिति में, दं0प्र0सं0 की धारा 145 के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

21. इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि सिविल विवाद से संबंधित प्रकरण को सी.पी.सी. की धारा 94 और 151 के तहत सिविल न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बहुत अच्छी तरह से निपटाया जा सकता है। सिविल न्यायालय सिविल शिकायतों को समाप्त करने और पक्षों के हितों की रक्षा करने के लिए एक उचित मंच है। सिविल विवाद को हल करने के लिए, आपराधिक कार्यवाही के लिए रास्ता खोलना उचित नहीं होगा क्योंकि इससे न केवल मुकदमों की बहुलता होगी बल्कि यह सिविल विवाद को आपराधिकता का रंग भी देगा।

22. इस न्यायालय की यह भी राय है कि यदि पक्षकारों के बीच सिविल वाद लंबित है और प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद सिविल प्रकृति का है और कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है, तब भी धारा 145(1) दं0प्र0सं0 के तहत आपराधिक कार्यवाही की अनुमति नहीं दी जा सकती है और ऐसी स्थिति में सिविल न्यायालय सीपीसी की धारा 94 और 151 के तहत प्रदत्त अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

23. जहां तक वर्तमान प्रकरण का सवाल है, दं0प्र0सं0 की धारा 145 (1) के तहत कार्यवाही उप-विभागीय अधिकारी के समक्ष संबंधित संपत्ति के विभाजन के लिए मुकदमे के लंबित रहने के दौरान शुरू की गई थी और पक्षों को वहां यथास्थिति बनाए रखने के निर्देश के साथ एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था। इसके अलावा, यथास्थिति बनाए रखने का आदेश सभी कार्यवाहियों में जारी रहा, जो विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के समक्ष लंबित थीं और अब राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित दूसरी अपील में भी चल रही हैं।

ऐसी परिस्थितियों में, दं0प्र0सं0 की धारा 145 (1) के तहत कार्यवाही पोषणीय नहीं है।

24. परिणामस्वरूप, एसडीएम, जमुनहा द्वारा मुकदमा संख्या टी201808620302227 में पारित आदेश दिनांकित 11.07.2018 तथा अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक-(द्वितीय), श्रावस्ती द्वारा पारित पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांकित 05.08.2019 को अपास्त किया जाता है।

25. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, वर्तमान प्रार्थना पत्र **स्वीकृत** किया जाता है।

26. परिणामों का पालन किया जाए।

(2023) 8 ILRA 1192

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 7244/2023

डॉ. शैल कुमार जैन ...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री शिव पी. शुक्ला

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 - धारा 17बी, 17ए(ई), 18ए एवं 27 - औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियम, 1945 - नियम 123, अनुसूची के - समन आदेश के विरुद्ध - आवेदक पंजीकृत चिकित्सक है - दवा का नमूना लेने के बाद, प्रयोगशाला में भेजा गया, जांच की गई, मानदंडों के विरुद्ध पाया गया, नोटिस जारी किया गया और जवाब मिलने के बाद, विभागीय अधिकारियों द्वारा निर्णय लेने के लिए शिकायत दायर की गई, अधिकारियों ने चार साल का समय लिया - देरी को उचित ठहराने के लिए, फिर से नोटिस दिया गया, प्रथम दृष्टया, अत्यधिक देरी को समझाने के लिए अपर्याप्त - जो नमूना लिया गया था, वह नियम, 1945 के नियम 123 की अनुसूची 'के' के अंतर्गत आता है, लेकिन अधिकारियों ने छूट खंड के प्रावधानों की अनदेखी की - आरोपित आदेश के अवलोकन से, यह पता चलता है कि कारण दर्ज नहीं किए गए हैं, केवल उल्लेख किया गया है कि न्यायालय ने शिकायत और उपलब्ध रिकॉर्ड को देखा - अधिकारियों द्वारा अधिनियम 1940 की धारा 33एम के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया, उचित प्रक्रिया के आदेश का उल्लंघन किया गया - मामला वापस भेज दिया गया। (पैरा 2, 16 से 18, 20)

प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। (ई-14)

उद्धृत वादों की सूची:

1. अनिल कुमार एवं अन्य बनाम एम . के. अयप्पा एवं अन्य, (2013)10 सुप्रीम कोर्ट केस,705, (पैरा 11) में रिपोर्ट किया गया

2. मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2008) 5 सुप्रीम कोर्ट केस 668 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 13)

3. प्रियंका श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2015) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 287 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 20 से 22, 26 से 28)

4. एस. अथिलक्ष्मी बनाम राज्य, ड्रग्स इंस्पेक्टर के द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 269, (पैरा 21)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला और राज्य के लिए श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता-I और श्रीमती नुसरत जहां अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट की धारा 27 (डी) के तहत दंडनीय अपराध के लिए पंजीकृत आवेदक के खिलाफ धारा 17बी/17ए(ई)/18ए/27 ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940 (संक्षेप में 'अधिनियम') के तहत आपराधिक मामला संख्या-1437 वर्ष 2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शैल कुमार जैन) की आपराधिक कार्यवाही और के साथ-साथ 19-07-2023 के सम्मन आदेश को रद्द करने के लिए प्रार्थना की जाती है।

3. आवेदक की ओर से पेश अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि वास्तव में, प्रस्तुत आवेदक लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए.एम.एस. पाठ्यक्रम का वैध डिग्री धारक है और यह शिकायतकर्ता द्वारा भी विवादित नहीं है, लेकिन अतिरिक्त जिला और सत्र के समक्ष धारा 17बी/17ए (ई)/18 ए/27 ड्रग्स एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट 1940 (इसके बाद 'अधिनियम 1940' के रूप में संदर्भित) के तहत न्यायाधीश एन.डी.पी.एस. अधिनियम, लखनऊ में शिकायत दर्ज की गई है। वह प्रस्तुत करता है कि एक बार नमूने लेने और नोटिस जारी किए जाने के बाद, प्रस्तुत आवेदक ने जवाब दिया है, हालांकि इसे निर्णय लेने के लिए लंबे समय तक रखा गया था, अर्थात, लगभग चार साल तक और उसके बाद फिर से एक नोटिस दिया गया था जिसका प्रस्तुत आवेदक द्वारा तुरंत जवाब दिया गया था लेकिन इस सब की अनदेखी करते हुए, आवेदक के खिलाफ गैर-आधार पर शिकायत दर्ज की गई है। अपने तर्कों को जोड़ते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि जहां तक 'अधिनियम 1940' की धारा 33एम के प्रावधान का संबंध है, यह कहता है कि इस अध्याय के तहत कोई भी अभियोजन संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक कि एक निरीक्षक (धारा 33G की उप-धारा (4) के तहत निर्दिष्ट प्राधिकरण की पूर्व मंजूरी के साथ, जो प्रस्तुत मामले में गायब है, और आवेदक को बुलाते समय विचारण न्यायालय द्वारा इस तथ्य की अनदेखी की गई है।

4. उन्होंने आगे तर्क दिया कि ड्रग रूल्स, 1945 का नियम 123 (इसके बाद 'नियम 1945' के रूप में संदर्भित) छूट खंड के संबंध में है और इसे यहां उद्धृत किया गया है: -

"123. अनुसूची K में निर्दिष्ट दवाओं को अधिनियम के अध्याय IV के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों से उस अनुसूची में निर्दिष्ट शर्तों की सीमा तक और छूट दी जाएगी।

5. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि यह प्रदान करता है कि 'अनुसूची के' में निर्दिष्ट दवाओं को अनुसूची में निर्दिष्ट विषय और शर्त की सीमा तक अधिनियम के अध्याय IV और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों से छूट दी जाएगी। वह प्रस्तुत करता है कि जिस दवा के लिए नमूना लिया गया था, वह अनुसूचित दवाओं के दायरे में आती है जो 'नियम, 1945' की अनुसूची के तहत है और यह छूट खंड के तहत आता है और इसलिए उक्त अपराध के लिए कोई शिकायत दर्ज नहीं की जा सकती है।

6. आवेदक के अधिवक्ता का आगे तर्क यह है कि सम्मन आदेश, जो इस शिकायत में लगाया गया है, अपने आप में गलत है और कानून के स्थापित प्रस्ताव के खिलाफ है, क्योंकि अभियुक्त/प्रस्तुत आवेदक को बुलाने के दौरान कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की श्रेणी में माना है कि एक बार मजिस्ट्रेट एक अभियुक्त को समन जारी करने के बाद, सम्मन आदेश पारित करते समय, विस्तृत कारण दर्ज किया जाना चाहिए, लेकिन जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, कारणों को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज नहीं किया गया है।

7. अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने अनिल कुमार और अन्य बनाम एम.के.अयप्पा और अन्य के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो (2013) 10 उच्चतम न्यायालय केस, 705 में रिपोर्ट किया गया है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या-11 पर भरोसा किया है, जिसे यहां उद्धृत किया गया है: -

"11. धारा 156(3) द०प्र०स० का दायरा कई मामलों में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया। मकसूद सैयद मामले में इस न्यायालय ने धारा 156(3) के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग के अनुप्रयोग की आवश्यकता की जांच की और माना कि जहां धारा 156(3) या धारा 200 द०प्र०स० के संदर्भ में दायर शिकायत पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को ऐसे मामले में अपना दिमाग लगाना आवश्यक है; विशेष न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट किसी लोक सेवक के खिलाफ धारा 156(3) के तहत मामले को वैध मंजूरी आदेश के बिना संदर्भित नहीं कर सकते हैं। मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग का उपयोग आदेश में

परिलक्षित होना चाहिए। केवल यह बयान कि उसने शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, जैसा कि आदेश में परिलक्षित है, पर्याप्त नहीं होगा। शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन करने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत जांच का आदेश देने के लिए मजिस्ट्रेट के साथ क्या महत्व था, आदेश में परिलक्षित होना चाहिए, हालांकि उनके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति न तो आवश्यक है और न ही वांछित है। हमने पहले ही विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को निकाल लिया है, जिसमें हमारे विचार में, जांच का आदेश देने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

8. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 156(3) द०प्र०स० या धारा 200 द०प्र०स० के संदर्भ में मामले से निपटने के दौरान माना है कि मजिस्ट्रेट को अपने दिमाग का उपयोग करने की आवश्यकता है और मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग का अनुप्रयोग आदेश में परिलक्षित होना चाहिए और केवल बयान कि उसने शिकायत का अध्ययन किया है, दस्तावेज और शिकायतकर्ता को सुना, पर्याप्त नहीं होगा।

9. उन्होंने मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो (2008) 5 उच्चतम न्यायालय केस 668 में रिपोर्ट किया गया है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या-13 को संदर्भित किया है, जिसे यहां उद्धृत किया गया है: -

"13. जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) या धारा 200 के संदर्भ में दायर शिकायत याचिका पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना दिमाग लगाना आवश्यक है। दंड संहिता में प्रबंध निदेशक अथवा कंपनी के निदेशकों की ओर से प्रत्यावर्ती दायित्व संलग्न करने का कोई प्रावधान नहीं है जबकि अभियुक्त कंपनी है। विद्वान मजिस्ट्रेट सही सवाल उठाने में विफल रहे, जैसे कि क्या शिकायत याचिका, भले ही अंकित मूल्य दिया गया हो और इसकी संपूर्णता में सही माना जाए, इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि यहां प्रतिवादी किसी भी अपराध के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी थे। बैंक एक निगमित निकाय है। प्रबंध निदेशक और निदेशक का प्रत्यावर्ती दायित्व उत्पन्न होगा बशर्ते कि संविधि में इस संबंध में कोई उपबंध विद्यमान हो। विधियों में निर्विवाद रूप से ऐसी प्रत्यावर्ती देनदारियों को तय करने का प्रावधान होना चाहिए। यहां तक कि उक्त उद्देश्य के लिए, शिकायतकर्ता की ओर से अपेक्षित आरोप लगाना अनिवार्य है जो कि विचित्र दायित्व का गठन करने वाले प्रावधानों को आकर्षित करेगा।

10. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस सादृश्य को भी दोहराया है कि धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन से निपटने के दौरान दिमाग का आवेदन आवश्यक है।

11. फिर से, उन्होंने प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो (2015) 6 उच्चतम न्यायालय के मामलों 287 में रिपोर्ट किया गया है और पैराग्राफ संख्या-20, 21, 22, 26, 27 और 28 को संदर्भित किया है, जो यहां उद्धृत हैं: -

"20. विद्वान मजिस्ट्रेट, जैसा कि हम पाते हैं, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए आरोपों का वर्णन किया है और उसके बाद, बिना किसी दिमाग के, आवेदन में उल्लिखित अपराधों के लिए प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश पारित किया है। धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय विद्वान मजिस्ट्रेट पर लगाए गए कर्तव्य को हाशिए पर नहीं रखा जा सकता है। उसी के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए, हम उक्त प्रावधान को पुन: पेश करना उपयुक्त समझते हैं:

"156. संज्ञेय मामले का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति-(1) थाना-का भारसाधक कोई अधिकारी, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकेगा, जिसे ऐसे स्टेशन की सीमाओं के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय XIII के उपबंधों के अधीन जांच करने या विचारण करने की शक्ति होगी।

(2) ऐसे किसी मामले में किसी पुलिस अधिकारी की किसी भी कार्यवाही को किसी भी स्तर पर इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसे इस धारा के तहत ऐसे अधिकारी को जांच करने की शक्ति नहीं थी।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त कोई मजिस्ट्रेट उपर्युक्त के अनुसार ऐसी अन्वेषण का आदेश दे सकेगा।

21. धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति से निपटते हुए, देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी बनाम वी नारायण रेड्डी [(1976)3 एस.सी.सी. 252: 1976 एस.सी.सी. (क्रि) 380] में तीन न्यायाधीशों की पीठ को इस प्रकार व्यक्त करना था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 258, पैरा-17)

"17. ... यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि धारा 156 की उपधारा (3) के तहत किया गया आदेश, धारा 156(1) के तहत जांच की अपनी पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करने के लिए पुलिस को एक अनुस्मारक या सूचना की प्रकृति का है। इस तरह की जांच में पूरी प्रक्रिया शामिल होती है जो धारा 156 के तहत साक्ष्य एकत्र करने से शुरू होती है और धारा 173 के तहत एक रिपोर्ट या आरोप पत्र के साथ समाप्त होती है।

22. अनिल कुमार बनाम एम. के. अयप्पा मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ का यह कहना था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 711, पैरा-11)

"11. धारा 156(3) द०प्र०स० का दायरा कई मामलों में इस न्यायालय के समक्ष

विचार के लिए आया। मकसूद सैयद [मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य, (2008) 5 एस.सी.सी. 668: (2008) 2 एस.सी.सी. (क्रि) 692] में इस न्यायालय ने धारा 156(3) के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग के अनुप्रयोग की आवश्यकता की जांच की और माना कि जहां धारा 156(3) या धारा 200 द०प्र०स० के संदर्भ में दायर शिकायत पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपने दिमाग का इस्तेमाल करना आवश्यक है। ऐसे मामले में, विशेष न्यायाधीश/ मजिस्ट्रेट वैध मंजूरी आदेश के बिना किसी लोक सेवक के खिलाफ धारा 156(3) के तहत मामले को संदर्भित नहीं कर सकते हैं। मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग का उपयोग आदेश में परिलक्षित होना चाहिए। केवल यह बयान कि उसने शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, जैसा कि आदेश में परिलक्षित है, पर्याप्त नहीं होगा। शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन करने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत जांच का आदेश देने के लिए मजिस्ट्रेट के साथ क्या महत्व था, आदेश में परिलक्षित होना चाहिए, हालांकि उनके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति न तो आवश्यक है और न ही वांछित है। हमने पहले ही विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को निकाल लिया है, जिसमें हमारे विचार में, जांच का आदेश देने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

26. इस स्तर पर, हम उपयोगी रूप से ललिता कुमारी बनाम भारत संघ मामले में संविधान पीठ द्वारा कही गई बातों का उल्लेख कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य [(2014)2 एस.सी.सी.1: (2014) एस.सी.सी. (क्रि) 524] इस संबंध में। बड़ी बेंच ने निम्नलिखित दो प्रश्न पूछे थे: (एस.सी.सी. पृष्ठ 28, पैरा-30)

"(i) क्या प्राथमिकी को तत्काल दर्ज न करने से पुलिस द्वारा हेरफेर की गुंजाइश होती है जो पीड़ित/ शिकायतकर्ता के अधिकार को प्रभावित करता है कि आरोप लगाए जाने पर तुरंत शिकायत की जांच की जाए; और

(ii) क्या ऐसे मामलों में जहां शिकायत/सूचना में संज्ञेय अपराध किए जाने का स्पष्ट रूप से खुलासा नहीं किया गया है, लेकिन प्राथमिकी अनिवार्य रूप से दर्ज की गई है, तो क्या यह अभियुक्त के अधिकारों का उल्लंघन करता है।

पूछे गए सवालों का जवाब देते हुए, बड़ी बेंच ने इस प्रकार कहा: (ललिता कुमारी केस [(2014) 2 एस.सी.सी. 1: (2014) 1 एस.सी.सी. (क्रि) 524] ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एस.सी.सी. पीपी 35-36, 41 और 58-59, पैरा-49, 72, 111 और 115)

"49. नतीजतन, संहिता की धारा 154 के तहत प्राथमिकी दर्ज करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि

जानकारी होनी चाहिए और उस जानकारी को एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करना चाहिए। यदि किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाली कोई जानकारी धारा 154 (1) की आवश्यकता को पूरा करने वाले थाना के प्रभारी अधिकारी के समक्ष लाई जाती है, तो उक्त पुलिस अधिकारी के पास निर्धारित प्रपत्र में उसके सार को दर्ज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, अर्थात ऐसी जानकारी के आधार पर मामला दर्ज करना। संहिता की धारा 154 का प्रावधान अनिवार्य है और संबंधित अधिकारी एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाली जानकारी के आधार पर मामला दर्ज करने के लिए कर्तव्यबद्ध है। इस प्रकार, संहिता की धारा 154(1) के सादे शब्दों को उनका शाब्दिक अर्थ दिया जाना चाहिए।

72. इस प्रकार यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि प्राथमिकी का पंजीकरण अनिवार्य है और यह भी कि इसे प्रत्येक प्राथमिकी को एक अद्वितीय वार्षिक संख्या देकर प्राथमिकी बुक में दर्ज किया जाना है ताकि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के साथ-साथ सक्षम न्यायालय द्वारा प्रत्येक पंजीकृत प्राथमिकी की सख्त ट्रैकिंग को सक्षम किया जा सके, जिसमें प्रत्येक प्राथमिकी की प्रतियां भेजी जानी आवश्यक हैं।

***

111. ... संहिता पुलिस को जांच से पहले और बाद में किसी मामले को बंद करने की शक्ति देती है। एक पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 157 के तहत जांच से पहले एक प्राथमिकी को रोक सकता है, अगर उसे लगता है कि इसकी जांच करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। इस धारा में ही कहा गया है कि एक पुलिस अधिकारी जांच तब शुरू कर सकता है जब उसके पास 'अपराध होने का संदेह करने का कारण' हो। इसलिए, संहिता की धारा 157 के तहत जांच शुरू करने की आवश्यकताएं संहिता की धारा 154 के तहत आवश्यकता से अधिक हैं। पुलिस अधिकारी, किसी दिए गए मामले में, मामले की जांच भी कर सकता है और फिर मामले को बंद करने की मांग करते हुए संहिता की धारा 173 के तहत एक अंतिम रिपोर्ट दायर कर सकता है। इसलिए, पुलिस प्रत्येक प्राथमिकी में जांच शुरू करने के लिए उत्तरदायी नहीं है जो एक संज्ञेय अपराध के कमीशन से संबंधित सूचना प्राप्त करने पर अनिवार्य रूप से दर्ज की जाती है।

115. यद्यपि, हम, स्पष्ट शब्दों में, यह मानते हैं कि संहिता की धारा 154 सभी संज्ञेय अपराधों की प्राप्ति पर प्राथमिकी के अनिवार्य पंजीकरण को दर्शाती है, फिर भी, ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जहां समय बीतने के साथ अपराधों की उत्पत्ति और नवीनता में

परिवर्तन के कारण प्रारंभिक जांच की आवश्यकता हो सकती है। ऐसा ही एक उदाहरण डॉक्टरों की ओर से चिकित्सा लापरवाही से संबंधित आरोपों के मामले में है। केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर एक चिकित्सा पेशेवर पर मुकदमा चलाना अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

ऐसा कहने के बाद संविधान पीठ [(2014) 2 एस.सी.सी.1: (2014)1 एस.सी.सी. (क्रि) 524] ने यह बताने के लिए आगे बढ़ाया कि जहां प्रारंभिक जांच आवश्यक है, यह प्राप्त जानकारी के सत्यापन या अन्यथा के उद्देश्य से नहीं है, बल्कि केवल यह पता लगाने के लिए है कि क्या जानकारी किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है। ऐसा करने के बाद, बड़ी बेंच ने कहा: (ललिता कुमारी मामला [(2014) 2 एस.सी.सी.1: (2014)1 एस.सी.सी. (क्रि) 524], एस.सी.सी. पी. 61, पैरा-120)

"120.6. किस प्रकार और किन मामलों में प्रारंभिक जांच की जानी है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। मामलों की श्रेणी जिनमें प्रारंभिक जांच की जा सकती है, निम्नानुसार हैं -

(क) वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवाद

(b) वाणिज्यिक अपराध

(c) चिकित्सा लापरवाही के मामले

(d) भ्रष्टाचार के मामले

(ङ) ऐसे मामले जिनमें आपराधिक अभियोजन शुरू करने में असामान्य विलंब होता है, उदाहरण के लिए, विलंब के कारणों को संतोषजनक ढंग से स्पष्ट किए बिना मामले की रिपोर्ट करने में 3 महीने से अधिक का विलंब।

उपर्युक्त केवल दृष्टांत हैं और उन सभी स्थितियों के संपूर्ण नहीं हैं जिनके लिए प्रारंभिक जांच की आवश्यकता हो सकती है।

120.7. अभियुक्त और शिकायतकर्ता के अधिकारों को सुनिश्चित और संरक्षित करते हुए, प्रारंभिक जांच समयबद्ध की जानी चाहिए और किसी भी मामले में यह 7 दिनों से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस तरह की देरी का तथ्य और इसके कारणों को सामान्य डायरी प्रविष्टि में परिलक्षित किया जाना चाहिए।

हमने इस उद्देश्य के लिए उपरोक्त घोषणा का उल्लेख किया है कि कुछ परिस्थितियों में पुलिस को प्रारंभिक जांच करने की भी आवश्यकता है कि क्या कोई संज्ञेय अपराध बनता है या नहीं।

27. कानून के पूर्वोक्त प्रतिपादन के संबंध में, यह दोहराया जाना चाहिए कि विद्वान मजिस्ट्रेट को लगाए गए आरोपों की प्रकृति के संबंध में सतर्क रहना होगा और दिमाग के उचित अनुप्रयोग के बिना निर्देश जारी नहीं

करना होगा। उसे यह भी ध्यान में रखना होगा कि मामले को भेजना न्याय के अनुकूल होगा और फिर वह अपेक्षित आदेश पारित कर सकता है। प्रस्तुत मामला एक ऐसा मामला है जहां आरोपी व्यक्ति बैंक में उच्च पदों पर सेवारत हैं। हम पूरी तरह सचेत हैं कि स्थिति मायने नहीं रखती, क्योंकि कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। लेकिन, विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोपों को पूरी तरह से ध्यान में रखना चाहिए, घटना की तारीख और क्या कोई संज्ञेय मामला दूर से बनाया गया है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब सरफेसी अधिनियम के तहत आच्छादित किए गए वित्तीय संस्थान का एक उधारकर्ता, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का आह्वान करता है और बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के तहत एक अलग प्रक्रिया भी है, तो अधिक सावधानी, और सतर्कता के दृष्टिकोण का पालन करना होगा।

28. प्राथमिकी दर्ज करने के लिए "आवेदन के अनुसार" बताते हुए एक निर्देश जारी करना समाज में एक बहुत ही अस्वास्थ्यकर स्थिति पैदा करता है और विद्वान मजिस्ट्रेट के गलत दृष्टिकोण को भी दर्शाता है। यह प्रतिवादी 3 अर्थात् प्रकाश कुमार बजाज जैसे बेईमान और सिद्धांतहीन वादियों को वित्तीय संस्थाओं को घुटनों पर लाने के लिए न्यायालयों के साथ साहसिक कदम उठाने के लिए भी प्रोत्साहित करता है। जैसा कि तथ्यात्मक व्याख्या से पता चलता है, प्रतिवादी 3 ने पहले के अधिकारियों पर मुकदमा चलाया था और एक रिट याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा निपटाए जाने के बाद, वह आपराधिक मामले को वापस नहीं लेता है और किसी तरह की स्थिति की प्रतीक्षा करता है जहां वह प्रतिशोध ले सकता है जैसे कि वह सभी सर्वेक्षणों का सम्राट है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि अपीलकर्ता के कार्यकाल के दौरान, जो वर्तमान में उपाध्यक्ष के पद पर है, न तो ऋण लिया गया था, न ही डिफ़ॉल्ट किया गया था, और न ही सरफेसी अधिनियम के तहत कोई कार्रवाई की गई थी। हालांकि, सरफेसी अधिनियम के तहत कार्रवाई प्रस्तुत अपीलकर्ता 1 के कहने पर दूसरी बार की गई थी। हम केवल ऋण के भुगतान से बचने के एकमात्र इरादे से अपीलकर्ताओं को परेशान करने के लिए प्रतिवादी 3 के शैतानी डिजाइन के बारे में बता रहे हैं। जब कोई नागरिक किसी वित्तीय संस्थान से ऋण लेता है, तो यह उसका दायित्व है कि वह वापस भुगतान करे और अनुपस्थित न हो, या उस मामले के लिए कब्ज़ा न करे। जैसा कि हमने देखा है, वह इस तरह के साहसिक कार्य करने में सक्षम रहा है क्योंकि उसे यह दृढ़ विश्वास है कि उसे दंडित नहीं किया जाएगा क्योंकि धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन जांच एजेंसी को निर्देश जारी करने के लिए अदालत में एक सरल आवेदन है। हमें अवगत कराया गया है कि धारा 154(3) के अनुपालन को दिखाने के लिए एक दस्तावेज की कार्बन कॉपी दायर की गई है, यह दर्शाता है कि इसे संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेजा गया है।

12. अपने तर्क के दौरान उन्होंने ड्रग्स इंस्पेक्टर द्वारा 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 269, एस. अथिलक्ष्मी बनाम राज्य प्रतिनिधि में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भरोसा किया है और उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 21

का उल्लेख किया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 21 को यहां उद्धृत किया गया है: -

> *"21. मंजूरी प्राधिकारी ने इस बात की बिल्कुल भी जांच नहीं की थी कि क्या एक प्रैक्टिस करने वाले डॉक्टर पर मामले के तथ्यों के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है, दवाओं की छोटी मात्रा और नियम 123 के तहत चिकित्सा व्यवसायी के पक्ष में बनाए गए अपवाद को देखते हुए, अनुसूची "के" के साथ पढ़ा गया। स्वीकृति प्राधिकारी द्वारा इन सभी कारकों पर विचार किया जाना चाहिए था। इन परिस्थितियों में हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द करते हैं और एक्स मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, एग्मोर, चेन्नई की फाइल पर आपराधिक मामला संख्या-7315 वर्ष 2018 में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करते हैं।*

13. उपर्युक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि प्रस्तुत मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स एस. अथिलक्ष्मी (उपरोक्त) के मामले के समान है क्योंकि उस मामले में भी, दवाओं की छोटी मात्रा पर विचार करते हुए एक प्रैक्टिस करने वाले डॉक्टर के खिलाफ अभियोजन शुरू किया गया था और इसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियम 1945 की अनुसूची 'के' सपठित नियम 123 के तहत छूट दी गई थी। इसी प्रकार, प्रस्तुत मामले में भी, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने छूट खंड और नियम 1945 की अनुसूची के प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया है, जो कानून के जनादेश का स्पष्ट उल्लंघन है और इसलिए, प्रस्तुत आवेदक के खिलाफ शुरू की गई पूरी आपराधिक कार्यवाही कानून की नजर में खराब है।

14. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 19.7.2023 का सम्मन आदेश न केवल गलत और गैरकानूनी है, बल्कि यह सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की अधिकता में दिए गए कानून के स्थापित प्रस्ताव के खिलाफ है और इसलिए, यह टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

15. दूसरी ओर, राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता ने पूर्वोक्त तर्क का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि शिकायत बहुत विस्तृत है और आवेदक को अवसर देने के बाद, जब अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई मामला है, तो शिकायत दर्ज की गई थी। उन्होंने कहा कि शिकायत भौतिक साक्ष्य के साथ संलग्न है, जिससे पता चलता है कि प्रस्तुत आवेदक ने 'अधिनियम 1940' की धारा 17बी/17ए(ई)/18ए/27 के तहत अपराध किया है, इसलिए विचारण न्यायालय ने सही आदेश पारित किया है, जिसके तहत प्रस्तुत आवेदक को तलब किया गया है और इस प्रकार कोई हस्तक्षेप वांछित नहीं है।

16. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह पता चलता

है कि प्रस्तुत आवेदक एक आयुर्वेदिक डॉक्टर है, जिसके पास लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए.एम.एस. की डिग्री है और एक पंजीकृत चिकित्सक है, जो पक्षों के बीच एक स्वीकृत तथ्य है। दवा का नमूना लेने के बाद, उसे प्रयोगशाला में भेजा गया और उसकी जांच की गई और एक बार जब इसे मानदंडों के खिलाफ पाया गया, तो नोटिस जारी किया गया और उत्तर प्राप्त करने और निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद, विभागीय अधिकारियों द्वारा शिकायत दर्ज की गई लेकिन ऐसा लगता है कि निर्णय लेने के लिए, अधिकारियों ने चार साल का समय लिया है जो एक असाधारण देरी है। इसके अलावा ऐसा लगता है कि देरी को सही ठहराने के लिए, आवेदक को फिर से एक नोटिस दिया गया था, हालांकि, प्रथम दृष्टया, यह अत्यधिक देरी को भरने या समझाने के लिए अपर्याप्त है।

17. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि 'नियम 1945' के नियम 123 में एक छूट खंड है, जो स्पष्ट रूप से कहता है कि अनुसूची 'के' में निर्दिष्ट दवाओं को अधिनियम के अध्याय IV के प्रावधान से छूट दी जाएगी। जहां तक नमूने का संबंध है, जो लिया गया था, यह माना जाता है कि नियमावली, 1945 की अनुसूची के अंतर्गत आता है लेकिन प्राधिकारियों ने छूट खंड के उपबंधों की उपेक्षा की है।

18. मैंने आवेदक के अधिवक्ता की दलीलों पर भी विचार किया है कि दिनांक 19.07.2022 का आदेश पारित करते समय कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है, जिसके तहत प्रस्तुत आवेदक को तलब किया गया है। आक्षेपित आदेश के महज़ अवलोकन से, यह पता चलता है कि कारणों को दर्ज नहीं किया गया है और केवल यह उल्लेख किया गया है कि न्यायालय ने शिकायत के साथ-साथ उसके समक्ष उपलब्ध रिकॉर्ड पर भी गौर किया है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार माना है कि शिकायत से उत्पन्न मामलों में, विचारण न्यायालय समन जारी करते समय, विस्तृत कारणों को रिकॉर्ड करेगा, जिसे स्पष्ट रूप से दिमाग के प्रयोग को दिखाना चाहिए। मजिस्ट्रेट के इस कर्तव्य को हाशिए पर नहीं रखा जा सकता है।

20. यह भी दलील दी गई है कि अधिनियम, 1940 की धारा 33एम का प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि अधिनियम के अध्याय IV के तहत कोई भी अभियोजन, धारा 33(जी) की उपधारा (4) के तहत निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ एक निरीक्षक को छोड़कर स्थापित किया जा सकता है और पूर्वोक्त की जांच करते समय, यह न्यायालय पाता है कि उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन अधिकारियों और जनादेश द्वारा नहीं किया गया है एवं उचित प्रक्रिया का उल्लंघन किया गया है।

21. उपरोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, इस मामले में योग्यता है, परिणामस्वरूप, शिकायत मामला संख्या-1437 वर्ष 2022 में पारित दिनांक 19.07.2022 के आदेश को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

22. उपरोक्त टिप्पणियों पर विचार करते हुए, मामला संबंधित विचारण न्यायालय को इस आदेश की तारीख से 60 दिनों की अवधि के भीतर एक नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेजा जाता है।

23. प्रस्तुत आवेदन की एतद्द्वारा अनुमति दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 1200

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 8378/2023

शीतला बख्श सिंह ...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री नरेंद्र कुमार सिंह

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री सैयद अहमद फैजान, सुश्री फातिमा अंजुम

आपराधिक विधि - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 - मजिस्ट्रेट द्वारा शिकायत खारिज करने के खिलाफ - आवेदक ने शिकायत दर्ज कराई, विरोधी पक्षकार संख्या 2 द्वारा जारी किए गए चेक के अनादर का आरोप लगाया - विरोधी पक्ष को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया - बाद में, शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में धारा 256 सीआरपीसी के तहत शिकायत खारिज कर दी गई - आवेदक ने तर्क दिया कि शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में कार्यवाही स्थगित न करने के कारणों को दर्ज किए बिना उक्त आदेश पारित किया गया था - इस प्रकार, आरोपित आदेश सीआरपीसी की धारा 378 (4) के तहत अपील योग्य था । छुट्टी, सीमा आदि के संबंध में **विधि की सभी आवश्यकताओं के अधीन , इसलिए, संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन उस आदेश के विरुद्ध कोई तर्क नहीं होगा - इन परिस्थितियों में, विपक्षी संख्या 2 द्वारा स्थिरता के संबंध में उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा जाता है। (पैरा 2 से 6, 9, 18, 20)**

प्रार्थना पत्र अस्वीकार किया गया। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. एचपी एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एमपीएस चावला, 1996 एससीसी ऑनलाइन एचपी 54, (पैरा 11)

2. सुनील मिश्रा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2015 (90) एसीसी 169

3. रुखसार खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2020 (7) एडीजे 525, (पैरा 41, 42)

4. दिनेश चंद्र शर्मा बनाम डिप्टी कमिश्नर ऑफिस एम्प्लाइज यूनियन एवं अन्य, 2020

एससीसी ऑनलाइन एचपी 1677, (पैरा 27 से 29, 32, 33, 35)

5. ओम गायत्री एंड कंपनी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2005 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1622, (पैरा 11 से 14)

6. केएल वेंकटेश्वर राव बनाम एपी राज्य और अन्य, 2003 (3) एपीएलजे 398 (एचसी)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री नरेंद्र कुमार सिंह, श्री सैयद अहमद फैजान के लिए अधिवक्ता सुश्री फातिमा अंजुम, श्री डी.के. श्रीवास्तव, और विद्वान ए.जी.ए. राज्य के लिए को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'कोड') की धारा 482 के तहत यह आवेदन न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट संख्या 5, फर्रुखाबाद के दिनांक 10.11.2022 के शिकायत मामले संख्या 59/2022 में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत पारित आदेश के खिलाफ निर्देशित है जिसे संहिता की धारा 256 के तहत खारिज कर दिया गया।

3. सुश्री फातिमा अंजुम द्वारा एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि संहिता की धारा 482 के तहत यह आवेदन विचारणीय नहीं है, क्योंकि दंडाधिकारी द्वारा संहिता की धारा 256 के तहत आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, जो बरी करने के निर्णय के समान है। जिसके विरुद्ध उपाय इस न्यायालय की विशेष अनुमति से संहिता की धारा 378(4) के तहत अपील है। इसलिए, उनका कहना है कि संहिता की धारा 482 के तहत यह आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है।

4. अनावश्यक विवरण से रहित, संहिता की धारा 482 के तहत इस आवेदन को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि आवेदक ने 15.03.2018 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फर्रुखाबाद की अदालत में एक शिकायत दर्ज की, जिससे शिकायत मामले संख्या 59/ 2022 की परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत उत्पत्ति हुयी।

5. शिकायत दिनांक 20.01.2018 को 2,00,000/- रुपये मूल्य के एक चेक के अनादर के बारे में थी, जिसका नंबर 183239 था, जो विपक्षी नंबर 2 द्वारा जारी किया गया था, जो एक्सिस बैंक, हेवेट रोड, लखनऊ पर दिनांक 20.01.2016 को जारी किया गया था। आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया चेक कथित तौर पर अनादरित हो गया था। आवश्यक वैधानिक नोटिस की सेवा के बाद, जिसका कानून द्वारा निर्दिष्ट समयावधि तक अनुपालन नहीं किया गया था, विवादित शिकायत दर्ज की गई थी।

6. दूसरे विपक्षी पक्ष को दिनांक 04.05.2022 के आदेश द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमा चलाने के लिए बुलाया गया था। इस आशय का कथन शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में है। बाद में, आदेश दिनांक 10.11.2022 द्वारा, संहिता की धारा 256 के तहत

शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में शिकायत को खारिज कर दिया गया।

7. प्रारंभिक आपत्ति के समर्थन में दूसरे विपक्षी पक्ष के विद्वान वकील द्वारा यह आग्रह किया गया है कि संहिता की धारा 482 के तहत यह याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि संहिता की धारा 256 के तहत शिकायत को खारिज करने का आदेश बरी करने का निर्णय है जिसके खिलाफ अपील का उपाय संहिता की धारा 378 के तहत परिकल्पित है।

8. अपनी दलीलों के समर्थन में, विपरीत पक्ष संख्या 2 की विद्वान वकील सुश्री फातिमा अंजुम ने **एचपी एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एमपीएस चावला**, **1996 एससीसी ऑनलाइन एचपी 54.** में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड (सुप्रा) यह आयोजित किया गया है:

> *11. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 256 के तहत डिफ़ॉल्ट रूप से शिकायत को खारिज करने से आरोपी को बरी कर दिया जाता है। एक बार जब किसी आरोपी को अपराध से बरी कर दिया जाता है, तो कानून बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील के माध्यम से एक उपाय प्रदान करता है। एक बार जब याचिकाकर्ता को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के तहत अपील के माध्यम से कोई उपाय उपलब्ध हो जाता है, तो याचिकाकर्ता द्वारा ऐसे उपाय का लाभ उठाने में विफल रहने पर, यह अदालत विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती है।.*

9. प्रारंभिक आपत्तियों के खंडन में आवेदक के विद्वान वकील श्री नरेंद्र कुमार सिंह ने सुनील मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2015 (90) एसीसी 169 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है कि एक आवेदन प्रस्तुत करने के लिए संहिता की धारा 482 कायम रखने योग्य है, जहां संहिता की धारा 256(1) के तहत शिकायत को खारिज करने का आदेश शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में कार्यवाही स्थगित न करने के कारणों को दर्ज किए बिना पारित किया जाता है।

10. श्री नरेंद्र कुमार सिंह, अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि सुनील मिश्रा (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय का निर्णय एक बाध्यकारी मिसाल है जबकि हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय प्रेरक से अधिक कुछ नहीं है।

11. **सुनील मिश्रा** मामले में इस न्यायालय के फैसले को देखने से पता चलता है कि इसमें

कोई संदेह नहीं है कि मामला एक ऐसा था, जहां परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत एक शिकायत को, 19.02.2014 को शिकायतकर्ता की गैर-उपस्थिति के कारण खारिज कर दिया गया था संहिता की धारा 256(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए और धारा 256 के तहत खारिज करने की शक्ति के प्रयोग के तरीके को इस न्यायालय द्वारा धारा 482 के तहत एक आवेदन में अस्वीकार कर दिया गया था, जिसे अनुमति दी गई थी और शिकायत को खारिज करने का आदेश रद्द कर दिया गया था, लेकिन, इस न्यायालय की राय है कि **सुनील मिश्रा** का निर्णय कोई मिसाल नहीं है। कारण यह है कि यद्यपि यह मुद्दा शामिल था कि क्या संहिता की धारा 256(1) के तहत एक आदेश को धारा 482 के तहत एक आवेदन में संहिता की धारा 378(4) के तहत अपील के स्पष्ट उपाय के सामने चुनौती दी जा सकती है, यह शामिल था, न्यायमूर्ति प्रत्यूष कुमार, के फैसले को पढ़ने से स्पष्ट है कि सैल्मंड द्वारा न्यायशास्त्र पर सैल्मंड द्वारा नियोजित शास्त्रीय शब्दों को उधार लेना "न्यायालय द्वारा नहीं माना गया था या उसके दिमाग में मौजूद नहीं था", 12वां संस्करण, पृष्ठ 153 निर्णय **सुनील मिश्रा में** न्यायमूर्ति प्रत्यूष कुमार, की, जहां तक उनके हाथ में बिंदु शामिल है, यह एक बाधक पूर्वावलोकन नहीं है और इसे सब साइलेंटियो माना जाना चाहिए।

12. मुझे सब साइलेंटियो के सिद्धांत पर विचार करने का अवसर मिला और **रुखसार खान बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2020 (7) एडीजे 525** में सब साइलेंटियो के सिद्धांत के कारण पहले के फैसले बाध्यकारी मिसाल नहीं होंगे, जहाँ आयोजित किया गया है:

> 41. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किए गए विभिन्न निर्णयों के बारे में यह कहा जाना चाहिए, जहां कारण को जन्म देने वाले तथ्यों के एक संक्षिप्त बयान के बाद निर्देश जारी किए गए हैं, कि इन निर्णयों में मिसाल का बल नहीं है। एक निर्णय में मिसाल का मूल्य होता है, जहां यह एक ऐसे बिंदु को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत निर्धारित करता है जो बाद के निर्णय में विचार के लिए उठता है। एक निर्णय जो तर्कों पर विचार करने के बाद शामिल तथ्यों के संदर्भ में कानून के सिद्धांत को प्रतिपादित नहीं करता है, उसे उस न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं माना जाना चाहिए जिसके समक्ष संबंधित मुद्दा बाद में उठता है।निर्णय को पाससब साइलेंटियो माना जाता है। सब साइलेंटियो का सिद्धांत एक अच्छी तरह से स्वीकृत सिद्धांत है जो न्यायालय को मिसाल के दायित्व से मुक्त करता है, जहां निर्णय

पर इस तरह के विचार का संकेत नहीं मिलता है। सब साइलेंटियो के सिद्धांत से संबंधित कानून के बारे में एक शास्त्रीय बयान यूपी राज्य और अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड और एक अन्य, (1991) 4 एससीसी 139में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड (सुप्रा) में, जिस सिद्धांत को न्यायमूर्ति आर.एम. सहाय, के सहमति निर्णय में प्रतिपादित किया गया है इस प्रकार है:

"41. क्या यह सिद्धांत कानून के किसी निष्कर्ष पर विस्तारित और लागू होता है, जिसे न तो उठाया गया था और न ही उस पर पहले कोई विचार किया गया था। दूसरे शब्दों में क्या ऐसे निष्कर्षों को कानून की घोषणा माना जा सकता है? यहाँ फिर से अंग्रेजी अदालतों और न्यायविदों ने मिसाल के नियम के लिए एक अपवाद बनाया है। इसे सब-साइलेंटियो के नियम के रूप में समझाया गया है। "एक निर्णय सब-साइलेंटियो पास करता है, तकनीकी अर्थ में जो उस वाक्यांश से जुड़ा हुआ है, जब निर्णय में शामिल कानून के विशेष बिंदु को न्यायालय द्वारा नहीं माना जाता है या उसके दिमाग में मौजूद नहीं होता है।"(न्यायशास्त्र पर सैल्मंड 12वां संस्करण, पृष्ठ 153). लैंकेस्टर मोटर कंपनी (लंदन) लिमिटेड बनाम ब्रेमिथ लिमिटेड [(1941) 1 केबी 675, 677: (1941) 2 सभी ईआर 11] में न्यायालय ने बाध्य महसूस नहीं किया पहले का निर्णय जैसा कि 'बिना किसी तर्क के, नियम के महत्वपूर्ण शब्दों के संदर्भ के बिना और प्राधिकार के किसी उद्धरण के बिना ' दिया गया था। इसे दिल्ली नगर निगम बनाम गुरनाम कौर [(1989) 1 एससीसी 101] मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था, पीठ ने कहा था कि, 'उदाहरण सब - साईलेंटियोऔर बिना तर्क के कोई क्षण नहीं हैं। ' इस प्रकार न्यायालयों ने अन्यायपूर्ण उदाहरणों द्वारा किए गए अन्याय से राहत

पाने के लिए इस सिद्धांत का सहारा लिया है। एक निर्णय जो अभिव्यक्त नहीं है और कारणों पर आधारित नहीं है और न ही यह मुद्दे के विचार पर आगे बढ़ता है, उसे बाध्यकारी प्रभाव वाला घोषित कानून नहीं माना जा सकता है, जैसा कि अनुच्छेद 141 में माना गया है कि एकरूपता और स्थिरता न्यायिक अनुशासन का मूल है। लेकिन जो बिना किसी अवसर के फैसले से बच जाता है, वह अनुपातिक निर्णय नहीं है। बी शमा राव बनाम केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी [एआईआर 1967 एससी 1480: (1967) 2 एससीआर 650: 20 एसटीसी 215] में यह देखा गया,'यह कहना उचित नहीं है कि कोई निर्णय उसके निष्कर्षों के कारण नहीं बल्कि उसके अनुपात और उसमें निर्धारित सिद्धांतों के संबंध में बाध्यकारी होता है। बिना सोचे समझे की गई या बिना किसी कारण के की गई किसी भी घोषणा या निष्कर्ष को कानून या प्राधिकार की सामान्य प्रकृति का एक मिसाल बाध्यकारी घोषणा नहीं माना जा सकता है। असहमति या फैसले को खारिज करने में संयम स्थिरता और एकरूपता के लिए है, लेकिन उचित सीमा से परे कठोरता कानून के विकास के लिए हानिकारक है।"

42. इस सिद्धांत को डिविजनल कंट्रोलर, केएसआरटीसी बनाम महादेव शेट्टी और अन्य (2003) 7 एससीसी 197 मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा फिर से समझाया गया था, इसे डिविजनल कंट्रोलर केएसआरटीसी (सुप्रा) में आयोजित किया गया था:

> "23. जहां तक दावेदार द्वारा भरोसा किए गए नागेशा मामले [(1997) 8 एससीसी 349] का सवाल है, केवल यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि निर्णय मात्रा तय करने के आधार को इंगित नहीं करता है क्योंकि न्यायालय द्वारा एकमुश्त राशि तय की गई थी। निर्णय आम तौर पर न्यायालय के समक्ष मामले पर एक निर्णय होता है, जबकि

निर्णय में अंतर्निहित सिद्धांत बाद में निर्णय के लिए आने वाले मामले में एक मिसाल के रूप में बाध्यकारी होगा। इसलिए, निर्णय को बाद के मामले में लागू करते समय, इससे निपटने वाले न्यायालय को सावधानीपूर्वक पिछले निर्णय द्वारा निर्धारित सिद्धांत को सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए। कोई निर्णय अक्सर उस मामले में शामिल प्रश्न से अपना रंग लेता है जिसमें उसे प्रस्तुत किया गया है। किसी मिसाल का दायरा और अधिकार कभी भी किसी दी गई स्थिति की जरूरतों से परे अनावश्यक रूप से विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए। प्राधिकारी के रूप में अगले न्यायाधीश पर बाध्यकारी एकमात्र चीज़ वह सिद्धांत है जिस पर मामले का निर्णय लिया गया था। जो कथन अनुपात निर्णय का हिस्सा नहीं हैं, उन्हें ओबिटर डिक्टा के रूप में जाना जाता है और वे आधिकारिक नहीं हैं। सिद्धांत को खोजने का कार्य कठिनाई से भरा है क्योंकि तथ्यों की जांच के बिना, यह नहीं माना जा सकता है कि सामाजिक न्याय के उपाय के रूप में एक समान दिशा बनाई जानी चाहिए या नहीं। सब साइलेंटियो और बिना तर्क के उदाहरण किसी क्षण के नहीं होते। मात्र आकस्मिक अभिव्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता है, न ही किसी न्यायाधीश की हर गुजरती अभिव्यक्ति, चाहे वह कितनी भी प्रतिष्ठित क्यों न हो, को अधिकार का महत्व रखने वाले एक पूर्व कैथेड्रा बयान के रूप में माना जा सकता है।"

13. यह मुद्दा कि क्या संहिता की धारा 256 (1) के तहत पारित आदेश को संहिता की धारा 482 के तहत एक आवेदन में चुनौती दी जा सकती है, या उस मामले के लिए, संहिता की धारा 401 के तहत एक संशोधन **दिनेश चंदर शर्मा बनाम डिप्टी कमिश्नर कार्यालय कर्मचारी**

संघ और अन्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एचपी 1677 उच्च न्यायालय हिमाचल प्रदेश के समक्ष विचार के लिए आया। दिनेश चंदर शर्मा (सुप्रा) में यह आयोजित किया गया था:

> 27. बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ अपील सीआरपीसी की धारा 378(4) के तहत उच्च न्यायालय में की जा सकती है, जिसमें बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ अपील करने के लिए विशेष अनुमति मांगी जाती है। याचिका दायर करने के बजाय सीआरपीसी की धारा 378(4) के तहत, हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालय में, याचिकाकर्ता ने सत्र न्यायालय, ऊना, हिमाचल प्रदेश के समक्ष सीआरपीसी की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत करने को प्राथमिकता दिया।
>
> 28. विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि जब शिकायत को खारिज करने के आदेश को चुनौती देने का उपाय सीआरपीसी की धारा 401 के तहत उच्च न्यायालय में अपील दायर करना था, तो उसके पास सीआरपीसी की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का उपयोग करके एक पुनरीक्षण याचिका सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

378. दोषमुक्ति की स्थिति में अपील.-

(4) यदि शिकायत पर स्थापित किसी भी मामले में बरी करने का ऐसा आदेश पारित किया जाता है और उच्च न्यायालय, शिकायतकर्ता द्वारा इस संबंध में किए गए आवेदन पर, बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ अपील करने के लिए विशेष अनुमति देता है, तो शिकायतकर्ता ऐसी अपील उच्च न्यायालय में प्रस्तुत सकता है।

29. अपील एक मुकदमे की निरंतरता है और इसकी शुद्धता, वैधता और साक्ष्य की सराहना के लिए एक वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निर्णय का परीक्षण कराने का वैधानिक अधिकार है। एक अपील, क़ानून का प्राणी होने के नाते, केवल वहीं होती है जहां स्पष्ट रूप से दिया गया हो।

32. एच.पी. फाइनेंशियल कॉर्पोरेशन बनाम सुश्री कॉन्टिनेंटल स्पिनर्स लिमिटेड, आईएलआर (2016) 2 एचपी 442 में, इस न्यायालय की एकल पीठ ने कहा: -

7. चूँकि मामला एक शिकायत पर स्थापित किया गया था और शिकायत को खारिज करने का प्रभाव दोषमुक्ति पर पड़ता है, इसलिए, संहिता की धारा 378 की उपधारा (4) के प्रावधानों के मद्देनजर, शिकायतकर्ता का उपाय

विवादित आदेश के खिलाफ अपील करने और अपील प्रस्तुत करने के लिए विशेष अनुमति मांगने के लिए एक आवेदन करना था, जो शिकायतकर्ता ने नहीं अपनाया था।

33. मेरे विचार में सेशन जज का यह दृष्टिकोण कानूनी रूप से सही और उचित था। इसलिए, मुझे विद्वान सत्र न्यायाधीश, ऊना द्वारा पारित दिनांक 17 अक्टूबर, 2017 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं मिली और मैं इसकी पुष्टि करता हूं। हालाँकि, विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश कानून की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है, लेकिन इसे उलटने का उपाय यह याचिका नहीं है।

35. शिकायतकर्ता के लिए उपलब्ध उपाय इस न्यायालय से अनुमति मांगकर सीआरपीसी की धारा 378(4) के तहत अपील दायर करना था। इसके बजाय, शिकायतकर्ता ने एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया, वह भी सत्र न्यायालय के समक्ष। उसने एक गलत उपाय चुना, और जैसा कि ऊपर कहा गया है, उसे अपील दायर करके गलती को सुधारने का पूरा अधिकार है, यदि वह ऐसा महसूस करता है और चाहता है।"
(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

14. इस मुद्दे ने **ओम गायत्री एंड कंपनी और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2005 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1622** में बॉम्बे हाई कोर्ट के आदेश पर ध्यान आकर्षित किया, जहां यह देखा गया:

11. धारा 256(1) कहती है कि यदि शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति उचित नहीं है,तो मजिस्ट्रेट आरोपी को बरी कर देगा। किसी शिकायत पर शुरू किए गए समन मामले में, यदि शिकायतकर्ता सुनवाई की तारीख पर अनुपस्थित है, तो मजिस्ट्रेट को तीन नियमों में से किसी एक का पालन करना होगा। 1) अभियुक्त को बरी करना; 2) मामले को स्थगित करना और 3) शिकायतकर्ता की उपस्थिति से छूट देना और मामले को आगे बढ़ाना। वर्तमान मामले में, मजिस्ट्रेट ने पाया कि शिकायतकर्ता सबूत देने से बच रहा था, इसलिए, 1998 एमएच एलजे 576: (1998 सीआरआई एलजे 3754) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए मजिस्ट्रेट ने आरोपी को बरी करने का आदेश पारित किया। एक बार यह आदेश पारित हो जाने के बाद, शिकायतकर्ता

सीआरपीसी की धारा 378(4) के अनुसार अदालत की अनुमति प्राप्त करने के बाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के तहत अपील करना है। यह दृष्टिकोण लगातार इस न्यायालय द्वारा अपनाया जाता है। सबसे पहला निर्णय जस्टिस वैद्य का है, जिसकी रिपोर्ट AIR 1959 बॉम्बे 94 में दी गई है। यह मुद्दा तब धराजी गंगाराम घोलम बनाम विठोबा सोमा खाड़े के मामले में उठा, जिसकी रिपोर्ट 1992 माह एलजे 118: (1992 सीआरआई एलजे 870) में की गई थी। उस मामले में, दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पढ़ी गई धारा 417 और 420 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा एक शिकायत मामले में आरोपी को बरी कर दिया गया था, बिंदु यह है कि क्या बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है या क्या न्यायालय के विचारार्थ एक पुनरीक्षण रखा जा सकता है। इस न्यायालय के पहले के निर्णय और धारा 401(4) के प्रावधानों का हवाला देते हुए, जो यह प्रावधान करता है कि जहां अपील दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत होती है, और कोई अपील नहीं की जाती है, उस पक्ष के कहने पर जो अपील कर सकता था पुनरीक्षण के माध्यम से किसी कार्यवाही पर विचार नहीं किया जाएगा। न्यायमूर्ति दाउद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सीआरपीसी की धारा 378 के प्रावधानों के अनुरूप बरी करने के आदेश के खिलाफ केवल अपील ही की जा सकती है, 1999 (3)) मह एलजे 397 राजा पुत्र डॉ एस पी उपाध्याय बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के एक अन्य फैसले का भी संदर्भ लिया जा सकता है। उस मामले में भी एन.आई. की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया था। कार्यवाही करना। परिवादी की अनुपस्थिति में अर्जित मजिस्ट्रेट ने आरोप मुक्त करने का आदेश पारित कर दिया। उस मामले में भी एन.आई.एक्ट की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए

अभियोजन चलाया गया था, शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपमुक्त करने का आदेश पारित किया। उस आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दाखिल किया गया। इस पर सत्र न्यायाधीश ने विचार किया। सत्र न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध अपील की गई। इस संदर्भ में, न्यायमूर्ति पटेल, ने रिपोर्ट के पैरा 9 में देखा कि: "यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल मजिस्ट्रेट ने बरी के आदेश को दर्ज करने में त्रुटि की, इससे शिकायतकर्ता को पुनरीक्षण करने का अधिकार मिल जाएगा और उसका ऐसा करना उचित था।

चूंकि आदेश स्वयं में बहुत स्पष्ट है कि यह सीआरपीसी, 1973 की धारा 256(1) के तहत पारित किया गया है, इसे अनिवार्य रूप से धारा 256(1) के तहत बरी करने का आदेश माना जाएगा, न कि आरोपमुक्त करने का। एक और अंतर यह है जिसे ध्यान में रखना होगा कि एक बार आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 256(1) के तहत बरी करने का आदेश पारित हो जाता है, तो शिकायतकर्ता को उसी तथ्य पर दूसरी शिकायत दर्ज करने से रोक दिया जाता है जब तक बरी करने का आदेश रद्द नहीं किया जाता। इसलिए, शिकायतकर्ता के लिए एकमात्र रास्ता दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378(5) के तहत अदालत की विशेष अनुमति से विद्वान मजिस्ट्रेट के उक्त आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील करना था।

12. इस मुद्दे पर अन्य उच्च न्यायालयों के विचारों का उल्लेख करना भी सार्थक हो सकता है। 2003 सीआरआई एलजे 149 में रिपोर्ट किए गए कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम मोहम्मद जारोस के मामले में, इस बिंदु से निपटते समय, न्यायमूर्ति महमूद अली ने रिपोर्ट के पैरा 4 में अपीलकर्ता की ओर से किए गए प्रस्तुतीकरण का उल्लेख किया है। इसका अवलोकन किया गया: “उन्होंने गेस्ट

क्लेन विलियम्स लिमिटेड बनाम मुरारीलाल, 1984 राजधानी एलआर 32 (1983 सीआरआई एलजे 554) का हवाला दिया था, जहां इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने माना था कि केवल सीआर पीसी की धारा 256 के तहत एक शिकायत को खारिज करने के आदेश के खिलाफ एक अपील ही हो सकती है। उन्होंने श्री एम.एम.एस. बेदी बनाम केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, (1986) 89 पन एलआर 687; विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, (1999) 4 आरईसी सीआरआई संदर्भ 469 और हिमाचल उच्च न्यायालय के एक निर्णय एचपी एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एम.पी.एस चावला (1997) 2 अपराध 591 का भी हवाला दिया तथा उसके तर्क के समर्थन में जो सीआरपीसी की धारा 256 के तहत शिकायत को खारिज कर दिया गया था और आरोपी को बरी कर दिया गया था जिसे चुनौती देने का उपाय पुनरीक्षण नहीं बल्कि अपील होगा।" इस दलील को विद्वान न्यायाधीश ने स्वीकार कर लिया। इन तर्कों से निपटते हुए, विद्वान न्यायाधीश ने पैरा 5 में देखा: "प्रतिवादी के वकील ने शुरू में इस याचिका में लगाए गए अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश को इस आधार पर उचित ठहराया कि यह संबंधित मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम केशवानंद, 1998) 1 एससीसी 687: एआईआर 1998 एससी 596: (1998 सीआर एलजे 856) और इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के एक निर्णय शिव कुमार बनाम मोंड, सगीर, 1997 जेसीसी 149: (1997 सीआर एलजे 1264) में पारित कानून के अनुरूप नहीं था लेकिन अंत में अदालतों द्वारा आयोजित सुसंगत दृष्टिकोण के मद्देनजर यह स्वीकार किया गया कि सीआरपीसी की धारा 256 के तहत जिसमें शिकायत को खारिज करने के आदेश के परिणामस्वरूप आरोपी को बरी कर दिया गया हो पुनरीक्षण नहीं बल्कि एक अपील ही उचित उपाय

होगा।"एच.पी.एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एम.पी.एस चावला, 1997 (2) अपराध 591 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका दायर की गई थी, जिसमें सीआरपीसी की धारा 256 के तहत पारित बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती दी गई थी, बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह बनाम काली सिंह और मेजर जनरल एएस गौरया बनाम एसएन ठाकुर में पारित सुप्रीम के फैसलों का हवाला देने के बाद कोर्ट ने रिपोर्ट के पैरा 12 में देखा: "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 256 के तहत डिफ़ॉल्ट रूप से शिकायत को खारिज करने से आरोपी को बरी कर दिया जाएगा। एक बार जब किसी आरोपी को अपराध से बरी कर दिया जाता है, तो कानून बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील के माध्यम से एक उपाय प्रदान करता है। एक बार जब याचिकाकर्ता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के तहत अपील के माध्यम से कोई उपाय उपलब्ध हो जाता है, तो याचिकाकर्ता द्वारा ऐसे उपाय का लाभ उठाने में विफल रहने पर, यह न्यायालय विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

13. यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के पहले के फैसलों ने लगातार यह कानून बनाया है कि केवल शिकायत को खारिज करने के आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है, जो आरोपी को बरी करने के बराबर है और बरी होने की स्थिति में पीड़ित पक्ष के पुनरीक्षण का उपाय नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं सीआरपीसी की धारा 401 के तहत उस पक्ष जो अपील कर सकता है के अनुरोध पर भी पुनरीक्षण पर विचार करने पर स्पष्ट रोक है ।

14. ...यह मुद्दा कि सीआरपीसी की धारा 256(1) के तहत पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ कोई अपील या पुनरीक्षण है

या नहीं, यह न्यायालय के समक्ष नहीं था और इस फैसले में न्यायालय द्वारा इसका निर्णय नहीं किया गया था। इसलिए यह निर्णय इस बिंदु पर प्राधिकारी नहीं है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 256(1) के तहत पारित बरी करने के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण या अपील की जा सकती है या नहीं। जो भी हो, इस न्यायालय के समक्ष अतीत में धरमजी गंगाराम बनाम विठोबा खाड़े के मामले में ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई थी, जहां न्यायमूर्ति बौड़ को भी इसी तरह की दुविधा का सामना करना पड़ा था। उस मामले में भी, 1986 (2) बॉम सीआर 289 में रिपोर्ट किए गए कोकिलाबाई रामचंद्र महाजन बनाम गंगाधर शिवराम महाजन मामले में न्यायमूर्ति शरद मनोहर के फैसले का संदर्भ दिया गया था, जिसमें यह माना गया था कि बरी करने के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण हो सकता है। प्रासंगिक टिप्पणियों और कानूनी प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद, न्यायमूर्ति, दाउद ने तथ्यों के आधार पर निर्णय में अन्तर किया और पैरा 5 पृष्ठ 1217 में कहा कि: "यदि उनका ध्यान बदाकास निर्णय की ओर आकर्षित किया गया होता, तो शायद विद्वान न्यायाधीश ने खुद को व्यापक संदर्भ में व्यक्त करने का विकल्प नहीं चुना होता जो उन्होंने चुना। वर्तमान मामले में, मौजूदा मामले में भी हमें ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए कि लंबे समय से चली आ रही मिसालों का पालन किया जाना चाहिए, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि महेंद्र इंदरमल बोराना बनाम अनिल शंकर जोशी के मामले में विवाद का निर्णय करते समय, (सुप्रा) इस न्यायालय के साथ-साथ अन्य उच्च न्यायालयों के पहले के निर्णयों के प्रति आकर्षित नहीं किया गया था, जिसमें कहा गया था कि सीआरपीसी की धारा 256 (1) के तहत आरोपी को बरी करने का आदेश पारित होने की स्थिति में,

एकमात्र उपाय अपील दायर करना है न कि पुनरीक्षण..."

15. यहां जो प्रश्न शामिल है, वह **के.एल. वेंकटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, 2003 (3) एपीएलजे 398 (एचसी)** मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष भी उठा था, जिसमें संहिता की धारा 256 (1) के तहत बरी करने के आदेश को चुनौती दी गई थी। जहां संहिता की धारा 378 (4) के तहत अपील दायर करने की सीमा समाप्त हो गई थी।

16. संहिता की धारा 256 (1) के तहत अपने आदेश को वापस लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन की स्थिरता के संबंध में शामिल प्रश्न के अलावा, अन्य प्रश्न न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों में तैयार किया गया था:

"(ii) जब एक बार विशेष अनुमति के साथ बरी करने के आदेश के खिलाफ़ अपील उच्च न्यायालय में होती है, तो आरोपी को बरी करने के बर्खास्तगी आदेश को रद्द करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर याचिका पर 4 साल 3 महीने के बाद भी विचार किया जा सकता है? "

17. इस प्रश्न का उत्तर न्यायालय ने न्यायमूर्ति ए गोपाल रेड्डी, के माध्यम से इस प्रकार दिया:

13. बिंदु संख्या 2: विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सी. पद्मनाभ रेड्डी का तर्क है कि यदि बर्खास्तगी आदेश को कायम रहने दिया गया तो शिकायतकर्ता के साथ अन्याय होगा और कोई उपाय नहीं मिलेगा और यह अदालत याचिका को अपील के रूप में परिवर्तित कर सकती है और न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 21-8-1997 को पारित किया गये आदेश को रद्द कर सकती है।

14. इसमें कोई विवाद नहीं है कि अभियुक्त को बरी करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किसी भी आदेश के खिलाफ शिकायतकर्ता विशेष अनुमति के साथ अपील दायर कर सकता है। दोषमुक्ति धारा 378 की उप-धारा (5) स्पष्ट रूप से कहती है कि बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील करने के लिए विशेष अनुमति देने के लिए उप-

धारा (4) के तहत ऐसे किसी भी आवेदन पर छह महीने की समाप्ति के बाद उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाएगा जहां शिकायतकर्ता एक लोक सेवक है और प्रत्येक अन्य मामले में 60 दिन की गणना बरी करने के आदेश की तारीख से की जाती है। चूँकि शिकायतकर्ता द्वारा लगभग 4 साल 3 महीने के बाद दायर की गई वर्तमान याचिकाओं पर यदि विचार किया जाता है और धारा 482 सीआरपीसी के तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में बरी होने पर अपील में परिवर्तित कर दिया जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को प्राप्त मूल्यवान अधिकार छीना जाएगा।

15. यह काफी अच्छी तरह से स्थापित है कि मुख्य कारक जो एक वादी को सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ देने में अदालत को प्रभावित करेगा, वह यह है कि क्या पूर्व कार्यवाही उचित परिश्रम और 'अच्छे विश्वास' के साथ की गई थी। धारा 14 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'सद्भावना' का अर्थ है 'उचित देखभाल और ध्यान देना'। धारा 14 के संदर्भ में, अभिव्यक्ति 'सद्भावना' अदालत में उन कार्यवाही पर मुकदमा चलाने को योग्य बनाती है जो अंततः कोई क्षेत्राधिकार नहीं रखती हैं।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील दायर करने के लिए निर्धारित अवधि से परे शिकायतकर्ता द्वारा दायर की गई वर्तमान आपराधिक याचिकाएं, यानी, लगभग 4 साल 3 महीने के बाद, यदि अपील के रूप में माना जाता है, तो उसे बहाल करने के लिए आपराधिक याचिका दायर करने पर यह सवाल उठ सकता है कि बर्खास्तगी आदेश को रद्द करके सीसी को बहाल करने के लिए उनकी आपराधिक याचिकाएं उचित परिश्रम और 'अच्छे विश्वास' के साथ दायर की गई हैं। भले ही जवाब सकारात्मक हो, फिर भी

आगे सवाल उठ सकता है, एक बार जब मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश 821 और 822 सन् 1999 की आपराधिक याचिका संख्या में अमान्यता के रूप में चुनौती दी गई है, जिससे याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत लगभग 2 साल 5 महीने तक इंतजार करना पड़ा, उपरोक्त याचिकाओं में उनकी उपस्थिति दर्ज होने के बाद भी नहीं आ रहा है। शिकायतकर्ता ने अपील के अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए तुरंत कार्रवाई करने का विकल्प नहीं चुना, जिससे उसने अपना अधिकार त्याग दिया। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, इस अदालत का विचार है कि आपराधिक याचिकाओं को अपील में परिवर्तित करके शिकायतकर्ता के अधिकार को समाप्त करने पर अभियुक्त को प्राप्त अधिकार को छीना नहीं जा सकता है।

18. प्राधिकारी, इसलिए, पूर्व-विचाराधीन है, प्रेरक हो सकता है, कि संहिता की धारा 256(1) के तहत एक आदेश संहिता की धारा 378 (4) के तहत अपील योग्य है, और, इसलिए, संहिता की धारा 482 के तहत एक आवेदन उस आदेश के विरुद्ध नहीं होगी। इसे बरी किए जाने के खिलाफ अपील के माध्यम से चुनौती दी जानी चाहिए, जो कानून की सभी आवश्यकताओं जैसे कि छुट्टी, सीमा आदि के अधीन है।

19. इस न्यायालय की राय है कि जहां संहिता द्वारा किसी विशेष प्रकार के आदेश के खिलाफ अपील का एक विशिष्ट उपाय प्रदान किया गया है, वादी को कानून के तहत परिकल्पित अपने वैधानिक उपचार को छोड़ने और राहत पाने के लिए संहिता की धारा 482 का सहारा लेने की अनुमति देना अदालत की अंतर्निहित शक्तियों का सबसे असंगत अभ्यास होगा।

20. इन परिस्थितियों में, विद्वान वकील द्वारा विपक्षी संख्या 2 की ओर से उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा जाता है और संहिता की धारा 482 के तहत इस आवेदन को रखरखाव के आधार पर **खारिज** कर दिया जाता है।

21. यदि सलाह दी जाए तो आवेदक को संहिता की धारा 378(4) के तहत अपील करने की स्वतंत्रता होगी।

(2023) 8 ILRA 1209

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 11738/2018

प्रशांत त्यागी एवं अन्य ...प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

प्रार्थीगण के अधिवक्ता:

श्री अमरेन्द्र नाथ राय, श्री प्रभात कुमार, श्री संजय सिंह

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अभिनव गौड़, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री विभु राय

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 - धारा 138, 141 - दायित्व उस प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होता है जब अपराध किया गया था और केवल कंपनी में पद या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं - दायित्व कंपनी के मामलों में किसी की भूमिका पर निर्भर करता है न कि पदनाम या स्थिति पर - यदि अभियुक्त के दस्तावेज संदेह या शंका से परे हैं, तो उन्हें मुकदमे में भेजना न्याय का उपहास होगा - न्यायालय न्याय को बढ़ावा देने के लिए प्रथम दृष्टया चरण में महत्वपूर्ण सामग्रियों की जांच कर सकता है। (पैरा-16)

आवेदक क्रमांक 1 ने चेक जारी होने से पहले ही कंपनी से त्यागपत्र दे दिया था - चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे - जारी होने की तिथि पर आवेदक केवल शेयरधारक थे - कंपनी के दैनिक व्यवसाय में उनकी कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी - शिकायत में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि आवेदक कंपनी के व्यवसाय संचालन के लिए किस प्रकार प्रभारी या उत्तरदायी थे। **(पैरा -23)**

अभिनिर्धारित:- कंपनी के दैनिक कार्यों में आवेदकों की भागीदारी नहीं पाई गई। इस कथन के आधार पर कि बचाव पक्ष साक्ष्य के समय ही देखा जाएगा, ऐसे व्यक्तियों को अभियोजन पक्ष के समक्ष घसीटना न्याय का उपहास होगा जिनका चेक जारी होने या उसके अनादरित होने से कोई संबंध नहीं है। परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के विरुद्ध पाया गया। समन आदेश और आपराधिक पुनरीक्षण में पारित निर्णय रद्द। **(अनुच्छेद-23,24,25)**

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र स्वीकृत(E-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :-

1. श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) एसीसी 90

2. सुनीता पलिता एवं अन्य बनाम मेसर्स पंचमी स्टोन कौरी, आपराधिक अपील संख्या 2022 [एसएलपी (***आपराधिक***) संख्या 10396/2019 से उत्पन्न]

3. एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एससीसी 89

4. हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबातिलता कोले एवं अन्य, (2011) 3 एससीसी 351

5. पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2014) 16 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर) द्वारा पारित)

आवेदकों के लिए अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को स्थानांतरित करके, अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 25.11.2016 को धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत सी.सी संख्या-70/2016 में पारित सम्मन आदेश को रद्द करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-19 वर्ष 2017 में पारित आदेश दिनांक 22.02.2018 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 13.10.2016 को आवेदकों और छह अन्य व्यक्तियों के खिलाफ इस संस्करण के साथ शिकायत दर्ज की गई थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक लिमिटेड कंपनी थी और विजय कुमार पुत्र स्वर्गीय श्री सतपाल कंपनी की ओर से शिकायत दर्ज करने के लिए अधिकृत थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 खरीदने, बेचने और संपत्तियों के निर्माण के व्यवसाय में लिप्त था। प्रतिपक्षी संख्या-1 (शिकायत में) मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एक पंजीकृत कंपनी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 6 इसके निदेशक और अधिकारी थे और प्रतिपक्षी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि थे। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 9 सभी दिन-प्रतिदिन के कारोबार और प्रतिपक्षी संख्या-1, मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के लेनदेन के लिए जिम्मेदार थे।

प्रतिपक्षियों (शिकायत में) ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को आश्वासन दिया था कि वे शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को उचित मूल्य पर जमीन उपलब्ध कराएंगे। प्रतिपक्षियों में विश्वास करते हुए शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 16.08.2014 को प्रतिपक्षियों को 5,00,00,000/- रुपये का भुगतान किया, जो प्रतिपक्षियों द्वारा प्राप्त किए गए थे। जब उनके आश्वासन के अनुसार प्रतिपक्षी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के लिए भूमि की व्यवस्था नहीं कर सके और शिकायतकर्ता ने उन्हें प्राथमिकी दर्ज करने की धमकी दी, तो प्रतिपक्षियों ने ब्याज के साथ 5,00,00,000/- रुपये की मूल राशि के अनुसरण में 7,00,00,000/- रुपये का भुगतान करने का

वादा किया। प्रतिपक्षियों ने शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में 1,00,00,000/- का चेक दिया। दिनांक 30.07.2016 को 1,00,00,000/- रुपये मूल्य का यह चेक संख्या-000285 अस्वीकृत हो गया, जबकि प्रतिपक्षियों ने इसे भुनाने का आश्वासन दिया था। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को 29.08.2016 को प्राप्त हुई थी और उचित प्रक्रिया के बाद, शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कंपनी सहित नौ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 420 भ०द०वि० के तहत शिकायत दर्ज की गई थी।

धारा 200 द०प्र०स० और धारा 202 द०प्र०स० के तहत बयानों के बाद, विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.11.2016 के आदेश के तहत सभी नौ आरोपियों को निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट 1881 की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 25.11.2016 के इस आदेश के विरूद्ध, प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी नामक तीन पक्षों/वर्तमान आवेदकों ने सत्र न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण दायर किया, जिसे दिनांक 22.02.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 22.02.2018 से व्यथित महसूस करते हुए, वर्तमान आवेदन आवेदक प्रशांत त्यागी, श्रीमती नीता त्यागी और श्रीमती श्वेता त्यागी द्वारा केवल इस संस्करण के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1, जो पहले मेसर्स सी.एस.के. इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक थे, ने 26.09.2014 को, प्रतिपक्षी संख्या-2 को दिनांक 30.07.2016 को चेक संख्या-000285 जारी करने से बहुत पहले, अपने पद से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने इस आशय के लिए फॉर्म डीआईआर-12 (जिसे पहले फॉर्म 32 के नाम से जाना जाता था) की प्रमाणित प्रति दाखिल की है। उसने न तो चेक पर हस्ताक्षर किए थे और न ही उसके बैंक खाते में राशि प्राप्त हुई थी, इस प्रकार, आवेदक संख्या-1 आरोपी कंपनी में पूर्व निदेशक है। आवेदक संख्या-2 और 3 आवेदक संख्या-1 की मां और बहन हैं। उनका आरोपी कंपनी के कामकाज से किसी भी तरह से कोई संबंध नहीं था। वे कंपनी के आचरण और व्यवसाय के लिए प्रभारी और जिम्मेदार नहीं हो सकते थे। बिना किसी विशिष्ट कथन के कि उन्होंने आरोपी कंपनी के कामकाज और व्यवसाय में क्या भूमिका निभाई है, उन्हें धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए नहीं फंसाया जा सकता है। सम्मन आदेश एन.आई. अधिनियम की धारा 141 पर विचार किए बिना पारित किया गया है, इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सभी आवेदक कंपनी के शेयरधारक हैं और एक ही परिवार से संबंधित हैं। वर्तमान आवेदक प्रशांत त्यागी राम सेवक त्यागी का पुत्र है, आवेदक संख्या-2 श्रीमती नीता त्यागी राम सेवक त्यागी की पत्नी है और आवेदक संख्या-3 श्रीमती श्वेता त्यागी, गौरव की पत्नी है/राम सेवक त्यागी और राम सेवक की पुत्री

है, वह व्यक्ति है जो आरोपी कंपनी का अधिकृत प्रतिनिधि है और उसने 30.07.2016 को शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 के पक्ष में चेक जारी किया था। जब 30.08.2013 को वार्षिक आम बैठक बुलाई गई थी तो विवादित कंपनी के सभी शेयरधारकों के शेयर निम्नानुसार थे: -

राम सेवक त्यागी के पास 20000 शेयर थे, प्रशांत त्यागी आवेदक संख्या-1 के पास 25000 शेयर थे, श्रीमती नीता त्यागी के पास 20000 थे और श्रीमती श्वेता त्यागी के पास 10000 शेयर थे और राम किशन के पास 5000 शेयर थे, इस प्रकार, यहां सभी आवेदक आरोपी कंपनी के शेयरधारक हैं।

सभी आवेदक राम सेवक त्यागी के रक्त-संबंधी हैं और राम किशन राम सेवक का बहनोई है, जो उक्त धोखाधड़ी का मास्टर माइंड है। राम सेवक कंपनी के अन्य निदेशकों और शेयरधारकों के साथ कंपनी के वित्तीय और लेखा मामलों को संभाल रहे थे और निदेशकों, अधिकृत प्रतिनिधियों के साथ-साथ कंपनी के अन्य शेयरधारकों की ओर से कंपनी के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। सभी आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के प्रभारी हैं। निचली अदालत ने आवेदकों के पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया था। आवेदक संख्या-1 कंपनी का संयुक्त निदेशक है और अभी भी कंपनी का निदेशक है और बहुत कम समय के लिए वह निदेशक मंडल में नहीं था। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय/कार्यों की देखभाल करने वाले और कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि होने के नाते सभी आवेदक अपराध के लिए उत्तरदायी हैं, इसलिए, अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया है।

आवेदकों ने एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया जिसमें जवाबी हलफनामे के संस्करण से इनकार किया गया था और शिकायत के संस्करण को दोहराया गया था।

आवेदकों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने एन.आई. अधिनियम की धारा 141 का अध्ययन नहीं किया है, जो कंपनियों द्वारा अपराधों से संबंधित है। इस धारा को देखे बिना आक्षेपित आदेश को पूर्ण और भावात्मक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या-1 ने 26.09.2014 को इस्तीफा दे दिया था, जबकि कहा जाता है कि चेक 30.07.2016 को जारी किया गया था। उनके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर-12 दाखिल किया गया है, जो एक सार्वजनिक दस्तावेज है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं और महिलाएं हैं। उनकी भागीदारी को कंपनी में सक्रिय नहीं कहा जा सकता है और शिकायत में यह स्पष्ट कथन है कि आरोपी संख्या-2 से 6 कंपनी के निदेशक और शेयरधारक होने के नाते आरोपी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। आवेदक संख्या-2 और 3 सहित आरोपी संख्या-7 से 9 कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार तीनों आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के सभी लेनदेन और समग्र व्यवसाय के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन कोई विवरण या व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका,

जिसे शिकायत में स्पष्ट किया जाना चाहिए, स्पष्ट नहीं किया गया है। जाहिर है कि चेक किसी भी आवेदक द्वारा जारी नहीं किया गया था। आवेदक संख्या-2, आवेदक संख्या-1 की मां एक वरिष्ठ नागरिक है। इसलिए, तदनुसार प्रार्थना की जाती है।

जबकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता के संस्करण का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक कंपनी में शेयरधारक हैं और राम सेवक के परिवार के सदस्य हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विवादित चेक जारी किया है और चेक जारी करने वाले व्यक्ति की पत्नी, बेटे और बेटी होने के नाते सभी आवेदकों को राम सेवक त्यागी द्वारा किए गए कार्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिकायत में आरोपी संख्या-7 चूंकि पूरी धोखाधड़ी/छल आवेदकों की सहमति और मिलीभगत से की गई है, इसलिए एन.आई अधिनियम की धारा 141 की मदद से सभी आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे। सम्मन के इस चरण में आवेदकों के बचाव का निर्णय नहीं किया जा सकता है। आवेदकों की देयता केवल साक्ष्य के बाद ही तय की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की धारा 141 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अपराध आवेदकों की सहमति या मिलीभगत से किया गया साबित होता है तो वे भी इसके लिए उत्तरदायी होंगे और तदनुसार दंडित किए जाएंगे। इस प्रकार आवेदकों के अपराध को साबित करने के लिए पक्षकारों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हैं और इस प्रारंभिक अवस्था में आवेदकों की देयता तय नहीं की जा सकती है।

श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 (94) ए.सी.सी. 90 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियुक्तों को बुलाने के चरण में, बचाव जो वे बाद में जोड़ सकते हैं, नहीं देखा जा सकता क्योंकि इस तरह के संभावित बचाव को देखने का कोई अवसर नहीं था, जो तब आ सकता है जब आरोपी पेश होंगे और मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला रखेंगे। सम्मन जारी करने के चरण में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या प्रथम दृष्टया अपराध दिखाया गया है और उन अभियुक्त व्यक्तियों को तलब करने को न्यायोचित ठहराने के लिए उपयुक्त सामग्री आई है जिनके विरुद्ध शिकायत की गई है। आवेदकों को स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में सौंपी गई भूमिका को शिकायत के पैराग्राफ 4 में संदर्भित किया गया है, कि सभी आरोपी व्यक्ति कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय और कामकाज के लिए जिम्मेदार हैं।

इस निर्णय के आधार पर, यह आगे तर्क दिया गया है कि कंपनी के सभी अधिकारी कंपनी के नाम पर किए गए कृत्यों के लिए जिम्मेदार हैं और उन कृत्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाने की मांग की जाती है जिसके परिणामस्वरूप कंपनी के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई की जा रही है। इस प्रकार, यह दावा किया जाता है कि सभी आवेदक पूर्वोक्त धाराओं के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं।

आवेदकों के अधिवक्ता ने सुनीता पलिता और अन्य बनाम मैसर्स पंचमी स्टोन कौरी,

आपराधिक अपील संख्या-2006 में दिए गए निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकषत किया। वर्ष 2022 [एसएलपी (सीआरएल) संख्या-10396 वर्ष 2019 से उत्पन्न], 01.08.2022 को फैसला किया गया और एसएमएस फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम नीता भल्ला, (2005) 8 एस.सी.सी. 89 में निर्णय का उल्लेख किया गया है, जिसमें पैरा - 10 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

कंपनी ने कहा, 'कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा। यह केवल वे व्यक्ति हैं जो अपराध के कमीशन के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार थे, जो आपराधिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी कंपनी का निदेशक जो प्रभारी नहीं था और प्रासंगिक समय पर कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं था, तो प्रावधान के तहत उत्तरदायी नहीं होगा। देयता प्रासंगिक समय पर कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने से उत्पन्न होती है जब अपराध किया गया था और केवल किसी कंपनी में पदनाम या कार्यालय रखने के आधार पर नहीं। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो किसी कंपनी में कोई कार्यालय या पदनाम नहीं रखता है, यदि वह प्रासंगिक समय पर किसी कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए प्रभारी और जिम्मेदार होने की मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है, उत्तरदायी हो सकता है। देयता किसी कंपनी के मामलों में निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करती है न कि पदनाम या स्थिति पर।

न्यायालय का ध्यान आगे हर्षेंद्र कुमार डी. बनाम रेबतीलता कोले और अन्य, (2011) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 351 में फैसले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि शिकायतकर्ता बैंकर के माध्यम से चेक का अनादरण उसके इस्तीफे के बाद था, इसलिए आवेदक संख्या-1 को उस समय कंपनी के साथ कोई चिंता नहीं कहा जा सकता है।

आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि शिकायत में महज़ सादा कथन कि "आवेदक कंपनी के दिन-प्रतिदिन के व्यवसाय की देखभाल कर रहे हैं, इसलिए, वे किए गए अपराध के लिए उत्तरदायी हैं" अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह कथन किसी भी विवरण से रहित है।

पूजा रविंदर देवीदासानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2014) 16 एस.सी.सी. के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 141 के तहत प्रत्यावर्ती दायित्व को बांधने के लिए, उस सुसंगत समय पर वह व्यक्ति कंपनी के मामलों के शीर्ष पर होगा, जो कंपनी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों की सक्रिय रूप से देखभाल करता है और विशेष रूप से अपने व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार है। सिर्फ इसलिए कि एक व्यक्ति एक कंपनी का निदेशक है ..... कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति प्रावधान के दायरे में नहीं आएगा।

इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक संख्या-1 उस तारीख को कंपनी का निदेशक

नहीं था जब चेक जारी किया गया था और उसके इस्तीफे के संबंध में फॉर्म डीआईआर - 12 रिकॉर्ड पर रखा गया है। आवेदक संख्या-2 और 3 कंपनी में केवल शेयरधारक हैं। उन्हें कंपनी के कामकाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता का तर्क है कि इस संबंध में बहस के समय आवेदकों का बचाव देखा जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय ने हर्षेंद्र कुमार डी बनाम रेबटिलता कोले और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में कहा कि यदि अभियुक्त द्वारा रखे गए दस्तावेजों के चेहरे पर, उसके खिलाफ आरोप टिक नहीं सकते, यह न्याय का उपहास होगा यदि आरोपी को मुकदमे में धकेल दिया जाता है और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बचाव साबित करने के लिए कहा जाता है। ऐसे मामले में, न्याय को बढ़ावा देने के लिए या प्रक्रिया के अन्याय या दुरुपयोग को रोकने के लिए, न्यायालय उन सामग्रियों को देख सकता है जिनका प्रथम दृष्टया स्तर पर मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यदि हम श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा दिए गए फैसले को देखते हैं, तो उस मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से अलग हैं, जिसमें उस मामले के तथ्यों के अनुसार याचिकाकर्ता और अन्य निदेशकों की उपस्थिति में चेक जारी किए गए थे, जबकि प्रस्तुत मामले में शिकायतकर्ता की उपस्थिति में चेक कभी जारी नहीं किए गए थे, बल्कि तब तक आवेदक संख्या-1 ने कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जबकि श्रीमती बी देवी (बसंती देवी) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों के अनुसार इस्तीफे के संबंध में दस्तावेजों को जाली दस्तावेज होने का आरोप लगाया गया था, लेकिन आवेदक संख्या-1 के इस्तीफे के मामले में चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा ऊपर दिए गए विभिन्न सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की उपस्थिति में इस न्यायालय के फैसले का लाभ नहीं उठा सकते हैं।

इस प्रकार चर्चा और ऊपर दिए गए निर्णयों के आधार पर, यह पाया जाता है कि आवेदक संख्या-1 ने चेक जारी करने से बहुत पहले कंपनी से इस्तीफा दे दिया था। जाहिर है, चेक पर किसी भी आवेदक के हस्ताक्षर नहीं थे। चेक जारी करने की तारीख को आवेदक कंपनी के शेयरधारक मात्र थे। कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कारोबार और लेन-देन में आवेदकों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी और शिकायत में ही यह उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक कैसे और किस तरीके से प्रभारी थे या आरोपी कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। इस प्रकार, न्यायालय की राय में, जैसा कि रिकॉर्ड के आधार पर, आवेदकों की भागीदारी कंपनी के दिन-प्रतिदिन के कामकाज में नहीं पाई जाती है, इसलिए, इस संस्करण के आधार पर कि साक्ष्य के समय बचाव को देखा जाएगा, अभियोजन पक्ष का सामना करने के लिए व्यक्तियों को घसीटना न्याय का उपहास होगा जो चेक जारी करने या

उसके जारी करने से जिसको अस्वीकृत किया जा रहा है, किसी भी तरह से जुड़े नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए आवेदकों को समन करना उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के जनादेश के खिलाफ पाया गया है।

अपर न्यायालय प्रथम, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 25.11.2016 और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-15, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित दिनांक 22.02.2018 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 8 ILRA 1215

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र संख्या 12016/2023

जयपाल एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता:

श्री रजत कुमार शुक्ला

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 120बी, भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली की मूलभूत नींव - किसी अपराध के आरोपी को आपराधिक मुकदमे की पूरी प्रक्रिया के दौरान उपस्थित रहना होगा - एकपक्षीय सुनवाई भारतीय कानूनी प्रणाली के लिए विदेशी है - निष्पक्ष सुनवाई भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है - आरोप के निर्धारण और सुनवाई के दौरान साक्ष्य दर्ज करने के लिए आरोपी की उपस्थिति आवश्यक है - गैर-जमानती वारंट जारी करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है और न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए - वारंट, चाहे जमानती हो या गैर-जमानती, तथ्यों की उचित जांच और पूरी तरह से विवेक का प्रयोग किए बिना कभी भी जारी नहीं किया जाना चाहिए। (अनुच्छेद - 11,16)

समन आदेश पारित किया गया - आवेदकों ने आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर की - आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया - आवेदकों ने पुनरीक्षण आदेश को चुनौती देते हुए अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका दायर की - तर्क - समन आदेश और उनकी उपस्थिति की तारीख के बारे में कोई जानकारी नहीं - मजिस्ट्रेट को पर्याप्त तामील के बिना जमानती

या गैर-जमानती वारंट जारी करने का कोई अधिकार नहीं है। **(पैरा - 19)**

अभिनिर्धारितः- आवेदकों को समन आदेश और गैर-जमानती वारंट की जानकारी थी, और वे बेईमानी या धोखाधड़ी से अदालत में पेश होने से बच रहे थे। अदालत ने गैर-जमानती वारंट जारी किए, जिससे यह संकेत मिलता है कि विवादित आदेशों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। **(पैरा-20,21)**

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 द.प्रस. खारिज (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :-

1. इंद्र मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल एवं अन्य, 2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 6679

2. पुरुषोत्तम चौधरी बनाम सीबीआई, पुलिस अधीक्षक सीबीआई/एसीबी लखनऊ के माध्यम से , प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 संख्या - 1974/2023

3. इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री रजक कुमार शुक्ला और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री के. पी. पाठक को सुना गया।

2. द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत यह आवेदन धारा 302, 120बी भा.दं.सं., पुलिस स्टेशन- शिकोहाबाद, जिला-फिरोजाबाद के तहत आपराधिक वाद संख्या 528/2017 से उत्पन्न आपराधिक वाद संख्या 2685/2019 (राज्य बनाम जयपाल सिंह और अन्य) में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों दिनांक 15.03.2023, 16.02.2023, 16.01.2023, 14.10.2022, 05.09.2022, 25.08.2022, 15.07.2022, 09.06.2022 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद के न्यायालय के समक्ष लंबित है।

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि:-

(i) दिनांक 16.07.2017 को लगभग 13:10 बजे विपक्षी संख्या 2 द्वारा आवेदकों और 5 अन्य अभियुक्तों के खिलाफ धारा 302 भा.दं.सं. के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 0528/2017 के रूप में दर्ज किया गया जिसमे आरोप है कि विपक्षी संख्या 2 गीतम सिंह वर्तमान में अपने पुत्र राघवेंद्र सिंह के साथ के. के. यादव के मकान में रह रहे थे। उनके बेटे का अपनी पत्नी कविता के साथ कुछ विवाद चल रहा था। दिनांक 04.06.2017 को प्रातः लगभग 08:00 बजे सूचनाकर्ता अपने कार्यालय गया और उसका पुत्र राघवेन्द्र घर में अकेला था, मकान मालिक और अन्य लोग स्नान करने गए थे, लगभग 11:50 बजे गंगा दशहरा के अवसर पर सूचनाकर्ता को कविता (उनकी पुत्रवधू) का फोन आया, जिसने राघवेंद्र के बारे में पूछताछ की।

उसने यह भी कहा कि बार-बार कॉल करने के बावजूद, राघवेंद्र द्वारा उसका फोन कॉल रिसीव नहीं किया जा रहा था। उसने सूचनाकर्ता से वहां जाने और उसी के बारे में पता लगाने का भी अनुरोध किया। इस तरह की जानकारी मिलने पर सूचनाकर्ता ने राघवेंद्र को फोन करने की कोशिश की, लेकिन उसका फोन नहीं उठाया गया और इसके बाद वह अपने सरकारी वाहन और अन्य पुलिस कर्मियों यानी कांस्टेबल अनिल कुमार, वीरेंद्र सिंह और ड्राइवर आनंद के साथ अपने किराए के मकान पर गया और देखा कि उसका बेटा जमीन पर घुटनों के बल लेटा हुआ था और उसके गले में प्लास्टिक की रस्सी बंधी हुई थी। सूचनाकर्ता और अन्य लोगों ने तुरंत फंदा खोला और वह अपने बेटे को शिकोहाबाद के सरकारी अस्पताल ले गया, जहां डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। सूचनाकर्ता सदमे में था, उसने पंचायत नामा भरा और मृतक राघवेंद्र का पोस्टमार्टम कराया गया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में मौत की वजह गला घोंटना बताया गया था। इसके बाद मृतक के शव को सूचनाकर्ता द्वारा मथुरा लाया गया और अंतिम संस्कार व अन्य अनुष्ठान संपन्न होने के बाद जीतू पुत्र बच्चू सिंह निवासी गांव-नवली, मथुरा ने सूचनाकर्ता को बताया कि दिनांक 13.04.2017 को जयपाल व नरेश मोटरसाइकिल पर आए और उसे अपने साथ राघवेंद्र के ससुराल ले गए। वहाँ राघवेंद्र की पत्नी, कविता और उनके पिता, देशराज, उसका भाई; मोनू और कविता के बहनोई; जितेंद्र, बहन; मीणा उपस्थित थीं। इसके बाद, कविता ने कहा कि वह राघवेंद्र को सबक सिखाना चाहती है और जयपाल और नरेश की सहायता लेकर, वह आखिरकार ऐसा करने में सफल होगी। उन्होंने तदनुसार, उसी के लिए योजना बनाई। जीतू ने उपरोक्त व्यक्तियों से अनुरोध किया कि वे ऐसा कोई काम न करें क्योंकि राघवेंद्र उसका बहनोई था। जयपाल ने जीतू को जान से मारने की धमकी देते हुए कहा था कि अगर वह उक्त योजना की जानकारी किसी को देता है तो वह गंभीर परिणाम भुगतने के लिए तैयार है।

(ii) दिनांक 02.06.2017 को जयपाल पुष्पलता (सूचनाकर्ता की पुत्री) के साथ ग्राम पाली खेड़ा आया और दिनांक 04.06.2017 को जयपाल और नरेश प्रातः 07:00 बजे यह कहकर अपने घर से निकले कि वे किसी कार्य से बाजार जा रहे हैं और अपराह्न 04:00 बजे वापस आएंगे। जब वे आए, तो उनका चेहरा कपड़ों से ढका हुआ था और वे घबरा गए थे। उन्होंने सूचनाकर्ता की बेटी को बताया कि उसका भाई, राघवेंद्र उससे मिलना चाहता है। उपरोक्त तथ्यों को पुष्पलता ने सूचनाकर्ता को बताया और उपरोक्त जानकारी के आधार पर उसे पूरा विश्वास था कि उसके पुत्र राघवेंद्र की हत्या जयपाल, नरेश, कविता, मोनू, देशराज, जीतेंद्र और मीणा ने की है। इसलिए, वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

(iii) जांच के दौरान, चूंकि आवेदकों सहित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कोई साक्ष्य एकत्र नहीं किया जा सका, इसलिए, जांच अधिकारी ने 29.10.2017 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, लेकिन अंतिम रिपोर्ट न्यायालय को नहीं भेजी गई क्योंकि सर्कल अधिकारी ने मामले में आगे की जांच के लिए निर्देश दिया था। 8.10.2018 को आगे की जांच के दौरान प्रतिवादी संख्या 2

ने जांच अधिकारी को एक आवेदन दिया कि उसके द्वारा दर्ज किए गए मामले को छोड़ दिया जाए। इसके बाद, जांच अधिकारी ने मामले की आगे जांच की और दिनांक 29.10.2017 की अंतिम रिपोर्ट को मंजूरी दी और इसे संबंधित न्यायालय को भेज दिया।

(iv) दिनांक 29.10.2017 की उपरोक्त अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ, विपक्षी संख्या 2 ने 21.10.2019 को अवर न्यायालय के समक्ष एक विरोध याचिका दायर की। इसके बाद, 07.11.2019 को संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उक्त अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और आवेदकों और अन्य को धारा 302, 120-बी भा.दं.सं. के तहत तलब किया।

(v) पूर्वोक्त सम्मन आदेश दिनांक 07.11.2019 से व्यथित आवेदकों ने संबंधित न्यायालय के समक्ष एक आपराधिक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी, जिसे 10.05.2022 को खारिज कर दिया गया। उपरोक्त आदेश दिनांक 10.05.2022 के खिलाफ, आवेदक संख्या 1- जयपाल सिंह ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर करने के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष संपर्क किया, जिसकी संख्या 7505/2022 है, जिसमें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने आवेदक को अंतरिम संरक्षण प्रदान करने की कृपा की थी। हालांकि, आवेदक संख्या 2; नरेश कुमार और अन्य ने अनुच्छेद 227 संख्या 4722/2022 के तहत मामलों वाली एक याचिका दायर की है, जिसमें उपरोक्त पुनरीक्षण आदेश दिनांक 10.05.2022 को चुनौती दी गई है, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 29.08.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि चूंकि एक चश्मदीद गवाह है, इसलिए, न्यायालय ने 07.11.2019 और 10.05.2022 के आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं पाई।

(vi) इसके बाद, आवेदक संख्या 1; जयपाल सिंह ने अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 7343/2022 दायर किया है, जबकि आवेदक संख्या 2; नरेश कुमार और अन्य ने अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 7503/2022 दायर किया है, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 01.11.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था।

(vii) अन्य आरोपी व्यक्तियों, अर्थात् श्रीमती कविता, मोनू @ ऋषि, देशराज और मीणा ने क्रमशः अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 7287/2022, 7304/2022, 7286/2022 और 7701/2022 दायर की है, जिन्हें इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 01.11.2022 के आदेशों के तहत इस आधार पर मंजूरी दी थी कि चश्मदीद गवाहों ने उनका नाम नहीं लिया है।

(v) आवेदकों के अग्रिम जमानत आवेदनों के रूप में; जयपाल सिंह और नरेश को 01.11.2022 को खारिज कर दिया गया था, इससे पहले उन्हें संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 07.11.2019 के आदेश के तहत पहले ही तलब किया जा चुका है और उपरोक्त सम्मन आदेश के खिलाफ दायर संशोधन को भी 10.05.2022 में खारिज कर दिया गया है, इसलिए, मामले की जानकारी

होने के बावजूद, आवेदक संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से बच रहे हैं। इसलिए, आवेदकों को दिनांक 09.06.2022 के आदेश के तहत फिर से तलब किया गया।

(vi) इसके बाद, आवेदकों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए 15.07.2022 को सूचनाकर्ता द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था। उपरोक्त आवेदन के अनुसरण में, संबंधित मजिस्ट्रेट ने दिनांक 15.07.2022 के आदेश के तहत आवेदकों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए हैं। इसके बाद, दिनांक 25.08.2022 के आदेश के तहत, आवेदकों के खिलाफ धारा 82 द०प्र०सं० के तहत कार्यवाही शुरू की गई। आवेदकों ने इस न्यायालय के समक्ष लंबित मामले के हलफनामे और स्थिति के साथ संबंधित न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसे आवेदकों के खिलाफ धारा 82 और 83 द०प्र०सं० के तहत प्रक्रिया जारी करने के आदेश दिनांक 14.10.2022 द्वारा अवर न्यायालय ने खारिज कर दिया था। फिर से 15.03.2023 को, चूंकि आवेदकों सहित आरोपी व्यक्ति संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो रहे थे, इसलिए धारा 82 और 83 द०प्र०सं० के तहत कार्यवाही शुरू की गई। इस प्रकार, वर्तमान मामला उपरोक्त आदेशों दिनांक 15.03.2023, 16.02.2023, 16.01.2023, 14.10.2022, 05.09.2022, 25.08.2022, 15.07.2022 और 09.06.2022 को चुनौती देते हुए दायर किया गया है।

<u>आवेदकों द्वारा प्रस्तुतियाँ:-</u>

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि दिनांक 17.05.2022 के आदेश द्वारा, संबंधित मजिस्ट्रेट ने आवेदकों को तलब किया है। हालांकि, द०प्र०सं० की धारा 66 के संदर्भ में आवेदकों को समन नहीं दिया गया है, जो यह प्रदान करता है कि जहां समन किए गए व्यक्ति सरकार की सक्रिय सेवा में हैं, समन जारी करने वाला न्यायालय आमतौर पर इसे उस कार्यालय के प्रमुख को दो प्रतियों में भेजेगा जिसमें ऐसा व्यक्ति कार्यरत है, और इस तरह के प्रमुख इसके बाद धारा 62 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से सम्मन की तामील करवाएंगे, और उस धारा द्वारा आवश्यक समर्थन के साथ अपने हस्ताक्षर के तहत न्यायालय को वापस कर देंगे।

5. वह आगे प्रस्तुत करता है कि संबंधित न्यायालय ने अगली तारीख यानी 09.06.2022 तय की है। उस तारीख को, सूचनाकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर सीधे गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है. इस तथ्य की पुष्टि किए बिना कि क्या आवेदकों को निर्धारित तिथि यानी 09.06.2022 के बारे में सूचित किया गया है। इसके बाद तीसरी तारीख 15.07.2022 को विद्वान विचारण न्यायालय ने पुलिस अधीक्षक, बदायूं के माध्यम से आवेदकों के खिलाफ फिर से गैर जमानती वारंट जारी किया। इसके बाद, 25.08.2022 को, विद्वान विचारण न्यायालय ने सीधे गैर-जमानती वारंट जारी किया और धारा 82 द०प्र०सं० की घोषणा फिर से जारी की, इस तथ्य की पुष्टि किए बिना कि क्या आवेदक को 15.07.2022 को जारी किए जा रहे गैर-जमानती वारंट के बारे में पता है।

6. वह आगे प्रस्तुत करता है कि मजिस्ट्रेट को समन की पर्याप्त तामील के बिना, धारा 83 और 83 द०प्र०सं० के तहत जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट या उद्घोषणा और कुर्की जारी करने का कोई अधिकार नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य, 2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 6679 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपनाई जा रही इस तरह की कवायद को खारिज कर दिया है। उन्होंने इस न्यायालय के 27.02.2023 को धारा 482 संख्या 1974/2023 के तहत आवेदन में पारित पुलिस अधीक्षक सीबीआई एसीबी लखनऊ के माध्यम से पुरुषोतम चौधरी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो के मामले में दिए फैसले पर भी भरोसा किया है।

7. इसलिए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त आक्षेपित आदेश संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा अवैध और मनमाने तरीके से पारित किए गए हैं। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा इसे रद्द किया जा सकता है। राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ:-

8. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है क्योंकि आवेदकों को दिनांक 07.11.2019 के सम्मन आदेश के बारे में पर्याप्त जानकारी है, जिसके खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसे खारिज भी कर दिया गया था, उपरोक्त के बावजूद, आवेदक अवर न्यायालय में उपस्थित होने से बच रहे हैं। इसलिए, संबंधित न्यायालय के पास गैर-जमानती वारंट जारी करने और धारा 82 और 83 द०प्र०सं० के तहत उद्घोषणा जारी करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था।

9. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का कहना है कि यह न्यायालय वर्तमान मामले में द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, और इसलिए वर्तमान आवेदन खारिज कर दिया जा सकता है।

विश्लेषण, तर्क और निष्कर्षः

10. मैंने पक्षकारों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

11. भारत में आपराधिक न्याय प्रणाली की मूलभूत नींव में से एक यह है कि अपराध के अभियुक्त को आपराधिक मुकदमे की पूरी प्रक्रिया के दौरान उपस्थित होना पड़ता है। एकपक्षीय विचारण की अवधारणा भारतीय कानूनी प्रणाली के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष विचारण के मूल सिद्धांतों से भिन्न है। आरोप तय करने और मुकदमे के दौरान साक्ष्य दर्ज करने दोनों के लिए अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक है। इसलिए यह जरूरी है कि न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए दिशानिर्देश जारी करे

कि उपरोक्त को प्राप्त करने के लिए आधुनिक तकनीक के उपयोग के साथ एक उचित प्रक्रिया रखी जाए।

12. दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय VI में "उपस्थिति को मजबूर करने की प्रक्रियाएं" प्रदान की गई हैं। संहिता के अध्याय VI को चार भागों में विभाजित किया गया है:-

"भाग ए समन (धारा 60 69), भाग बी गिरफ्तारी का वारंट (धारा 70-81), भाग सी उद्घोषणा और अनुलग्नक (धारा 82-86), भाग डी प्रक्रियाओं के संबंध में अन्य नियम (धारा 87-90)1

13. गैर-जमानती वारंट जारी करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप शामिल है। गिरफ्तारी और कारावास का अर्थ है किसी व्यक्ति के सबसे कीमती अधिकार से वंचित होना। इसलिए न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधानी बरतनी होगी।

14. न्यायालय महसूस करता है कि किसी व्यक्ति को न्यायालय में लाने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए जब सम्मन या जमानती वारंट के वांछित परिणाम होने की संभावना नहीं होगी। यह तव हो सकता है जबः (ए) यह विश्वास करना उचित है कि व्यक्ति स्वेच्छा से न्यायालय में उपस्थित नहीं होगा; या (बी) पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति को खोजने में असमर्थ हैं जो उसे समन के साथ सेवा दे सके; या (सी) यह माना जाता है कि व्यक्ति किसी को नुकसान पहुंचा सकता है अगर उसे तुरंत हिरासत में नहीं रखा जाता है।

15. जहां तक संभव हो, यदि न्यायालय की राय है कि न्यायालय में अभियुक्त की उपस्थिति के लिए एक समन पर्याप्त होगा, तो समन या जमानती वारंट को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वारंट जारी होने पर होने वाले अत्यंत गंभीर परिणामों और दुष्परिणामों के कारण, तथ्यों की उचित जांच और दिमाग का पूरा उपयोग किए बिना जमानती या गैर-जमानती वारंट कभी भी जारी नहीं किए जाने चाहिए। न्यायालय को बहुत सावधानी से जांच करनी चाहिए कि क्या आपराधिक शिकायत या प्राथमिकी एक परोक्ष मकसद से दर्ज नहीं की गई है।

16. (2007) 12 एससीसी 1 में रिपोर्ट किए गए इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में, यह माना गया है कि गैर-जमानती वारंट जारी करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है और अदालतों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधान रहना चाहिए। शीर्ष न्यायालय ने आगे कहा कि जमानती या गैर-जमानती वारंट तथ्यों की उचित जांच और दिमाग के पूर्ण उपयोग के बिना कभी भी जारी नहीं किए जाने चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति को उसके खिलाफ लंबित कानूनी प्रक्रिया के बारे में जागरुक किया गया था। इंदर मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) में फैसले का प्रासंगिक हिस्सा नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य का हित

50. सभ्य देशों ने माना है कि स्वतंत्रता सभी मानवाधिकारों में सबसे कीमती है। अमेरिकी स्वतंत्रता घोषणा, 1776, पुरुषों और नागरिकों के अधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा, 1789, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय वाचा, 1966 सभी एक स्वर में बोलते हैं स्वतंत्रता हर इंसान का प्राकृतिक और अहस्तांतरणीय अधिकार है। इसी तरह, हमारे संविधान का अनुच्छेद 21 यह घोषित करता है कि कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किसी को भी उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

51. गैर-जमानती वारंट जारी करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप शामिल है। गिरफ्तारी और कारावास का अर्थ है किसी व्यक्ति के सबसे कीमती अधिकार से वंचित होना। इसलिए, न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधान रहना होगा।

52. जिस तरह स्वतंत्रता एक व्यक्ति के लिए कीमती है, उसी तरह कानून और व्यवस्था बनाए रखने में समाज का हित है। सभ्य समाज के अस्तित्व के लिए दोनों ही अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी जनता और राज्य के व्यापक हित में किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को एक निश्चित अवधि के लिए कम करना नितांत अनिवार्य हो जाता है, तभी गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए।

17. संहिता की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करने के लिए, यह आवश्यक है कि न्यायालय को सामग्री के आधार पर संतुष्ट होना होगा कि एक व्यक्ति, कार्यवाही का ज्ञान होने के बावजूद, जारी की गई प्रक्रिया से बच रहा है।

18. न्यायालय को संहिता की धारा 83 के तहत यह अधिकार प्राप्त है कि वह संहिता की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी होने के बाद किसी भी समय घोषित व्यक्ति की चल और/या अचल संपत्तियों की कुर्की का आदेश दे सकता है।

19. जहां तक मजिस्ट्रेट को पर्याप्त सेवा के बिना धारा 82 और 83 द०प्र०सं० के तहत जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट या उद्घोषणा कुर्की जारी करने का कोई अधिकार नहीं होने के संबंध में आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, न्यायालय ने पाया कि शुरू में, सम्मन आदेश 07.11.2019 को पारित किया गया था जिसके खिलाफ आवेदकों द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसे दिनांक 10.5.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया है और उसके बाद, आवेदकों ने 10.5.2022 के पुनरीक्षण आदेश को चुनौती देते हुए अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदकों को सम्मन आदेश या अवर न्यायालय के समक्ष पेश होने के लिए तय की गई तारीख के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

20. वर्तमान मामले में, आवेदकों को उनके खिलाफ जारी किए गए सम्मन आदेश और गैर-जमानती वारंट के बारे में अच्छी तरह से पता था, और स्पष्ट रूप से, आवेदक बेईमानी से या धोखे से अवर न्यायालय में पेश होने से बच रहे थे। इसलिए, संबंधित न्यायालय के पास द०प्र०सं० की धारा 82 और 83 के तहत कार्यवाही के साथ गैर-जमानती वारंट जारी करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

21. ऊपर बताए गए कारणों के लिए, इस न्यायालय की राय है कि यह धारा 482 द०प्र०सं० के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है, इसलिए, इस तरह की गई प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाता है।

22. पूर्वोक्त टिप्पणियों के साथ, द०प्र०सं० की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन, तदनुसार, खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1221

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

मध्यस्थता और सुलह आवेदन अंतर्गत धारा 11(4) संख्या - 142 वर्ष 2019

मेसर्स बंसल कंस्ट्रक्शन, मुजफ्फरनगर

...आवेदक

बनाम

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकासप्राधिकरण, जीबी नगर एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री जेपी पांडे

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

श्री आदित्य भूषण सिंघल, श्री प्रियांश शुक्ला

सिविल विधि - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 11(6) और 12(5) सातवीं अनुसूची के साथ - मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध - समझौते का खंड 33 YEIDA के सीईओ/नामित व्यक्ति तक मध्यस्थता को सीमित करता है - यह खंड धारा 12(5) के विपरीत है जिससे सीईओ अयोग्य हो जाता है - क्या मध्यस्थता खंड मौजूद है? - हाँ। विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का मूल उद्देश्य बना हुआ है - नियुक्ति प्राधिकारी (अर्थात सीईओ) की प्रक्रियात्मक अमान्यता समाप्त की जा सकती है - मध्यस्थ की निष्पक्षता वैधानिक अधिदेश है - न्यायालय को स्वतंत्र मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार है - विभागीय नामित व्यक्ति की अनुपस्थिति में मध्यस्थता को समाप्त करने वाला खंड सार्वजनिक नीति का उल्लंघन करता है और लागू करने योग्य नहीं है।

अभिनिर्धारितः

समझौते में मध्यस्थता को यीडा के सीईओ या उनके द्वारा नामित व्यक्ति तक सीमित करने और ऐसी नियुक्ति संभव न होने पर मध्यस्थता को समाप्त करने का प्रावधान, मध्यस्थ की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाली धारा 12(5) के तहत वैधानिक आवश्यकता को रद्द नहीं कर सकता। प्रक्रियात्मक भाग के

अप्रवर्तनीय हो जाने के बावजूद मध्यस्थता समझौता वैध बना रहता है। धारा 11(6) के तहत, न्यायालय, तटस्थ मध्यस्थता को बढ़ावा देने के विधायी उद्देश्य को बनाए रखने के लिए मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है।

खंड 33 और कथित छूट हलफनामे के आधार पर गैर-धारणीयता के संबंध में आपत्तियां तथ्य के प्रश्न हैं - मध्यस्थ के समक्ष उठाई जा सकती हैं।

न्यायमूर्ति पी.के.एस. बघेल (पूर्व न्यायाधीश) को मध्यस्थ नियुक्त किया गया।

आवेदन स्वीकृत।

<u>चर्चा की गई वाद विधियाँ</u> :

1. एलोरा पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2022) 3 एससीसी 1

2. वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम डीएमआरसी, (2017) 4 एससीसी 665

3. भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड बनाम यूनाइटेड टेलीकॉम्स लिमिटेड, (2019) 5 एससीसी 755

4. टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड, (2017) 8 एससीसी 377

5. क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया (प्रा.) लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेंट वाटर प्यूरिफिकेशन इंक., (2013) 1 एससीसी 641

6. राम कृपाल सिंह कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड बनाम एनटीपीसी, एआरबी.पी 582/2020, दिल्ली उच्च न्यायालय

7. एमजेएस कंस्ट्रक्शन बनाम भारत संघ, 2023 (1) एडीजे 497

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र द्वारा पारित)

1. यह याचिका मध्यस्थता समझौते के पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद '1996 का अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 11(6) के तहत दायर की गई है। समझौते का खंड 33, जिसमें मध्यस्थता खंड शामिल है, को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"खंड 33: मध्यस्थ

सिवाय इसके कि अनुबंध में अन्यथा कहां प्रावधान किया गया है, यहां उल्लिखित विनिर्देशों, डिज़ाइनों, रेखाचित्रों और निर्देशों के अर्थ और कार्य में प्रयुक्त कारीगरी या सामग्री की गुणवत्ता से संबंधित सभी प्रश्न और विवाद या किसी अन्य प्रश्न के दावे के अधिकार या अतिरिक्त वस्तुओं के लिए स्वीकृत और तय की गई दरें सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संपर्क, डिजाइन, चित्र, विनिर्देशों, अनुमान निर्देशों या इन शर्तों पर आदेश या अन्यथा कार्य या कार्यकारी के संबंध में नहीं हैं या इसे निष्पादित

करने में विफलता चाहे कार्य की प्रगति के दौरान उत्पन्न हो या मुख्य कार्यकारी अधिकारी, वाईईआईडीए द्वारा नियुक्त व्यक्ति या व्यक्ति के बाद उत्पन्न हो।

ऐसी किसी भी नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं होगी कि वह मामला जिससे अनुबंध संबंधित है और वाईईआईडीए सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों के दौरान, उन्होंने विवाद या मतभेद वाले सभी या किसी भी मामले पर विचार व्यक्त किए थे। जिस मध्यस्थ को मामला मूल रूप से या बाद में भेजा गया है वह कार्य करने में असमर्थ है। वाईईआईडीए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अनुबंध की अवधि के अनुसार मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करेंगे। ***यह उनके अनुबंध की एक शर्त भी है कि उपरोक्तानुसार वाईईआईडीए के मुख्य-निष्पादित अधिकारी द्वारा नियुक्त व्यक्ति के अलावा कोई भी व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करेगा और यदि किसी कारण से, यह संभव नहीं है, मामले को मध्यस्थता के लिए बिल्कुल भी नहीं भेजा जाना चाहिए***। मध्यस्थ समय-समय पर पार्टियों की सहमति से निर्णय देने और प्रकाशित करने के लिए समय बढ़ा सकते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, मध्यस्थता अधिनियम 1940 के प्रावधान या उसके बाद कोई वैधानिक संशोधन या पुन: अधिनियमन और उसके तहत बनाए गए और कुछ समय के लिए लागू नियम इस खंड के तहत मध्यस्थता कार्यवाही पर लागू होंगे।

2. रिकॉर्ड से पता चलता है कि आवेदक को उस्मानपुर गांव के पास सेक्टर-18 में 12 मीटर और 24 मीटर सड़क के निर्माण का ठेका दिया गया था। अनुबंधित कार्य दिनांक 30.6.2017 को पूर्ण हो गया। प्राधिकरण द्वारा समय-समय पर चालू बिलों के विरूद्ध भुगतान जारी किये गये। चौथे और अंतिम बिल का भुगतान मार्च, 2019 में किया गया जिसमें विभिन्न कटौतियाँ की गईं। इस प्रकार पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हो गया। आवेदक ने अपने पत्र दिनांक 26.6.2019 के माध्यम से विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने का अनुरोध किया। अनुस्मारक भी भेजे गए जिसके बाद यह आवेदन दाखिल किया गया है।

3. विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के अनुरोध को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अकेले खंड 33 के अनुसार मामले में मध्यस्थता करने में सक्षम हैं और चूंकि वह अब 1996 के अधिनियम की धारा 12(5) के आधार पर अयोग्य हो गया है, इसलिए, मध्यस्थता खंड का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

4. विपक्षी द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि आवेदक ने प्राधिकरण के समक्ष एक हलफनामा प्रस्तुत किया है जिसमें कहा गया

है कि विभिन्न बाधाओं और अतिरिक्त मुआवजे की मांग के कारण इसके द्वारा मौके पर अतिरिक्त कार्य किए गए और इस तरह की भिन्नता के लिए प्राधिकरण के समक्ष कोई दावा नहीं उठाया जाएगा। यह नोटरी शपथ पत्र 100/- रूपये के स्टाम्प पेपर पर है। यह हलफनामा एक मुद्रित प्रोफार्मा पर है और विवरण हाथ से भरा गया है जिसमें कोई तारीख नहीं है। हलफनामे का उल्लेख जवाबी हलफनामे के पैरा 16 में किया गया है। प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर किया गया है जिसमें जवाबी हलफनामे के पैरा 16 में दिए गए दावों को नकारते हुए कहा गया है कि हलफनामे में फर्म के मालिक या उसके अधिकृत एजेंट/ हस्ताक्षरकर्ता के हस्ताक्षर नहीं हैं।

5. उत्तरदाताओं का यह भी तर्क है कि मध्यस्थता खंड विशेष रूप से इस बात पर विचार करता है कि मध्यस्थ या तो मुख्य कार्यकारी अधिकारी हो सकता है या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति हो सकता है और यदि किसी कारण से, यह संभव नहीं है, तो विवाद को मध्यस्थता के लिए बिल्कुल भी नहीं भेजा जाएगा।

6. जब कल मामले की सुनवाई हुई, तो मध्यस्थता आवेदन संख्या 54/2017 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, श्री एबी सिंघल द्वारा याचिका की स्थिरता पर आपत्ति उठाई गई। इस न्यायालय ने मध्यस्थता समझौते में निहित एक समान प्रावधान की जांच करते हुए निम्नानुसार कहा: -

निर्णय के पहले भाग में उद्धृत मध्यस्थता खंड में इस आशय का एक पाठ शामिल है "यह इस अनुबंध की एक शर्त भी है कि उपरोक्त नियुक्त व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए। ..." मध्यस्थता खंड में यह कथन स्पष्ट रूप से पार्टियों के सहमत इरादे को उजागर करता है कि मुख्य अभियंता या उनके द्वारा नामित किसी भी व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए। अब, यह स्वयं 2015 में संशोधित अधिनियम 1996 की धारा 12(5) से प्रभावित होगा और विरोधी पक्षों के बचाव में नहीं आएगा, हालाँकि, इन शब्दों का पालन इस शर्त के साथ किया जाता है **-"और यदि किसी कारण से यह संभव नहीं है, तो मामले को मध्यस्थता के लिए बिल्कुल भी नहीं भेजा जाना चाहिए।"** <u>ये शब्द स्पष्ट रूप से पार्टियों के सहमत इरादे को दर्शाते हैं कि विवाद को मध्यस्थता के लिए न भेजा जाए यदि ऐसी मध्यस्थता मुख्य अभियंता या उनके द्वारा नामित किसी व्यक्ति द्वारा नहीं की जा सकती है।</u> ऐसी स्थिति में मामले को मध्यस्थता के लिए न भेजने का सहमत इरादा मध्यस्थता खंड से स्पष्ट है। समझौते में यह शर्त आवेदक सहित पार्टियों पर बाध्यकारी है। अधिनियम 1996 की धारा 11 की उप-धारा 6-ए के तहत इस न्यायालय

को केवल मध्यस्थता खंड के अस्तित्व को देखना आवश्यक है। मेरी सुविचारित राय है कि उपरोक्त कथन के मद्देनजर, मुख्य अभियंता या उनके द्वारा नामित किसी व्यक्ति के अलावा किसी अन्य मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए यह आवेदन पार्टियों के बीच हुए समझौते के मद्देनजर चलने योग्य नहीं है, ऐसी स्थिति में जब उपरोक्त प्राधिकारियों को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है, मामले को मध्यस्थता के लिए बिल्कुल भी नहीं भेजा जाएगा। इस शर्त के मद्देनजर न तो संशोधन अधिनियम 2015 और न ही असंशोधित अधिनियम 1996 आवेदक के बचाव में आते हैं। तदनुसार, मध्यस्थ की नियुक्ति का आवेदन खारिज किया जाता है।"

7. इस न्यायालय ने देखा है कि जहां मध्यस्थता समझौते के संदर्भ में कार्य करना संभव नहीं है क्योंकि नामित मध्यस्थ अधिनियम की धारा 12(5) के आधार पर कार्य करने के लिए अयोग्य है, विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थता स्वयं उपलब्ध नहीं होगी क्योंकि समझौते की शर्तों को प्रतिवादी के लिए श्री ए बी सिंघल को प्रभावी करना होगा, इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 12(5) के तहत पेश किए गए वैधानिक अंतर्विरोध के आधार पर, मध्यस्थ कार्य नहीं कर सकता है और अनुबंध में विशिष्ट खंड के मद्देनजर मध्यस्थता के लिए पार्टियों की सहमति समाप्त हो जाएगी।

8. आवेदक के अधिवक्ता ने यह तर्क देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है कि वर्तमान मामले के तथ्यों में मध्यस्थ इस न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने के लिए उत्तरदायी है। एलोरा पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य, सिविल अपील संख्या 7697/2021, दिनांक 4.1.2022; दुर्गा चरण रौत्रे बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य, 2012 (1) एडब्ल्यूसी 404; यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम एंटीक आर्ट एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, (2019) 5 एससीसी 362; इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनसीसी लिमिटेड, (2023) 2 एससीसी 539; में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का संदर्भ दिया गया है; और एमजेएस कंस्ट्रक्शन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2023 (1)एडीजे 497 में इस न्यायालय का निर्णय, और राम कृपाल सिंह कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड बनाम एनटीपीसी, एआरबी.पी 582/2020, दिनांक 9.11.2022 (दिल्ली) में दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय, यह प्रस्तुत करने के लिए कि मध्यस्थता समझौता मोटे तौर पर दो भागों में है, पहला, विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने के लिए समझौता और दूसरा, ऐसे संदर्भ पर मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया। यह आग्रह किया जाता है कि पार्टी की स्वायत्तता पर विचार करने वाली प्रक्रिया हमेशा 1996 के अधिनियम की धारा 12(5) में निहित वैधानिक अंतर्विरोध के अधीन है और इसे मध्यस्थ को विवाद के संदर्भ के लिए समझौते के पहले भाग को ख़त्म करने के रूप में नहीं माना जा सकता है।

9. यह प्रस्तुत किया गया है कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी का मध्यस्थ के रूप में कार्य करने या मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार नियुक्ति की प्रक्रिया का हिस्सा है और भले ही अधिनियम की धारा 12(5) के आधार पर ऐसा अधिकार समाप्त हो जाता है, मध्यस्थ द्वारा विवाद के निर्णय पर विचार करने वाला मुख्य खंड अस्तित्व में रहेगा।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्तों को सुना है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों का अवलोकन किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस मामले में मध्यस्थता खंड इस तरह से जुड़ा हुआ है कि मध्यस्थता स्वयं खंड 33 के संदर्भ में संभव नहीं होगी क्योंकि प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में, एक अधिकारी होने के नाते अधिनियम की धारा 12(5) के साथ पढ़ी गई 7वीं अनुसूची के आधार पर मध्यस्थ के रूप में कार्य करने या मध्यस्थ नियुक्त करने के अधिकार क्षेत्र से स्पष्ट रूप से वंचित किया जाएगा। हालाँकि, इस खंड की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि पार्टियों के वास्तविक इरादे का पता लगाया जा सके। अनुबंध से उत्पन्न होने वाले सभी विवादों को मध्यस्थ के पास भेजने के लिए पार्टियों के बीच समझौता समझौते का मुख्य हिस्सा है। मध्यस्थ की नियुक्ति का तरीका, अधिक से अधिक, प्रक्रिया के दायरे में आएगा। केवल इसलिए कि वह व्यक्ति, जो मध्यस्थता खंड के संदर्भ में मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकता है, 7वीं अनुसूची के साथ पढ़े गए अधिनियम की धारा 12(5) के आधार पर मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए अयोग्य हो जाता है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने के समझौते का मुख्य हिस्सा निरर्थक हो जाएगा। व्याख्या, जिसे उत्तरदाताओं द्वारा खारिज करने की मांग की गई है, स्पष्ट रूप से मध्यस्थ की तटस्थता या विवाद को मध्यस्थता के संदर्भ में विफल कर देगी। 7वीं अनुसूची के साथ पठित अधिनियम की धारा 12(5) को पेश किया गया है ताकि एक स्वतंत्र व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में कार्य करने का प्रावधान करके मध्यस्थता की प्रक्रिया को अधिक वैधता प्रदान की जा सके और दूसरे पक्ष को अपने मामले में न्यायाधीश बनने से रोका जा सके। इसलिए, यह न्यायालय उस व्याख्या के पक्ष में झुकेगा जो विधायी इरादे के अनुरूप मध्यस्थता के उपाय को प्रभावित करती है यानी 1996 के अधिनियम की धारा 12(5) 7वीं अनुसूची के साथ पढ़ी जाती है।

11. यह न्यायालय क्लोरो कंट्रोल्स इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेंट वॉटर प्यूरीफिकेशन इंक, (2013) 1 एससीसी 641 के फैसले के पैरा 96 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा की गई टिप्पणियों से भी परिचित है, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है :

> "विधायी उद्देश्य और क़ानून के निर्माताओं के इरादे यानी मध्यस्थता को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता के दृष्टिकोण से जांच की गई, अदालत को लंबित कार्रवाई में अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने, पार्टियों को मध्यस्थता खंड में रखने और उन्हें कार्रवाई के विविध कारणों, पार्टियों और प्रार्थनाओं को शामिल

करते हुए नागरिक कार्रवाई लाकर मध्यस्थता के सौदे से बचने की अनुमति नहीं देने की आवश्यकता है।

12. सातवीं अनुसूची के साथ पठित धारा 12 की उप-धारा (5) को शामिल करने के उद्देश्य की सुप्रीम कोर्ट ने एलोरा पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम एमपी राज्य, (2022) 3 एससीसी 1 मामले में जांच की। न्यायालय के पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए रिपोर्ट के पैरा 8 में यह देखा गया:-

"8. जयपुर जिला दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ [जयपुर जिला दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लिमिटेड बनाम अजय सेल्स एंड सप्लायर्स, (2021) 17 एससीसी 248: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 730] में इस न्यायालय द्वारा एक समान प्रश्न पर विचार किया गया। और टीआरएफ में इस न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के बाद [टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड, (2017) 8 एससीसी 377: (2017) 4 एससीसी (सिव) 72] और इस बिंदु पर अन्य निर्णयों पर, इसे निम्नानुसार देखा और आयोजित किया गया है : (अजय सेल्स एंड सप्लायर्स मामला [जयपुर जिला दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लिमिटेड बनाम अजय सेल्स एंड सप्लायर्स, (2021) 17 एससीसी 248: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 730], एससीसी पैरा 8.3 से 12)

> "8.3. जहां तक याचिकाकर्ताओं की ओर से यह निवेदन है कि समझौता अधिनियम की सातवीं अनुसूची के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 12 की उप-धारा (5) को शामिल करने से पहले था और इसलिए अधिनियम की सातवीं अनुसूची के साथ पढ़ी गई धारा 12 की उप-धारा (5) के तहत अयोग्यता लागू नहीं होगी और एक बार मध्यस्थ - अध्यक्ष ने मध्यस्थता की कार्यवाही शुरू कर दी, उसके बाद उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नियुक्त करना उचित नहीं है, उपरोक्त संबंधित हैं इसमें कोई तथ्य नहीं है और टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड [टीआरएफ लिमिटेड बनाम एनर्जो इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट्स लिमिटेड, (2017) 8 एससीसी 377: (2017) 4 एससीसी (सिव) 72]; भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड बनाम यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड [भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड बनाम यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड, (2019) 5 एससीसी 755: (2019) 3 एससीसी (सिव) 1]; वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2017) 4 एससीसी 665: (2017) 2 एससीसी (सिव) 607] मामले में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर इसे स्वीकार किया जा सकता है उपरोक्त निर्णयों में, इस न्यायालय को अधिनियम की सातवीं अनुसूची के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 12 की उप-धारा (5) को

सम्मिलित करने के वस्तु और उद्देश्य पर विस्तार से विचार करने का अवसर मिला।

9. वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच [वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2017) 4 एससीसी 665: (2017) 2 एससीसी (सिव) 607] में इस न्यायालय द्वारा यह देखा और माना गया कि प्रावधान में संशोधन का मुख्य उद्देश्य "मध्यस्थों की तटस्थता" प्रदान करना था। आगे यह देखा गया है कि इसे प्राप्त करने के लिए, धारा 12 की उपधारा (5) बताती है कि इसके विपरीत किसी भी पूर्व समझौते के बावजूद, कोई भी व्यक्ति जिसका पार्टियों या अधिवक्ता या विवाद की विषय वस्तु के साथ संबंध सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट श्रेणियों में से किसी एक के अंतर्गत आता है, वह मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य होगा। आगे यह देखा गया है कि ऐसी स्थिति में, यानी जब मध्यस्थता खंड संशोधित प्रावधानों के साथ गलत पाया जाता है [सातवीं अनुसूची के साथ पढ़ी गई धारा 12 की उप-धारा (5)] मध्यस्थ की नियुक्ति मध्यस्थता समझौते के दायरे से परे होगी, जिससे अदालत को ऐसे मध्यस्थ को नियुक्त करने का अधिकार मिल जाएगा, जो स्वीकार्य हो। आगे यह देखा गया है कि, यह धारा 12 की उप-धारा (5) में निहित गैर-अस्थिर खंड का प्रभाव होगा और दूसरा पक्ष मध्यस्थता समझौते के संदर्भ में मध्यस्थ की नियुक्ति पर जोर नहीं दे सकता है।

10. इस न्यायालय द्वारा वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच [वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2017) 4 एससीसी 665: (2017) 2 एससीसी (सिव) 607] में यह देखा और माना गया है कि मध्यस्थ की स्वतंत्रता और निष्पक्षता किसी भी मध्यस्थता कार्यवाही की पहचान है। पूर्वाग्रह के विरुद्ध नियम प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है जो सभी न्यायिक और अर्ध-न्यायिक कार्यवाहियों पर लागू होता है। आगे यह देखा गया है कि यही कारण है कि इस तथ्य के बावजूद कि पार्टियों, मध्यस्थता और मध्यस्थों के बीच संबंध प्रकृति में संविदात्मक हैं और मध्यस्थ की नियुक्ति का स्रोत पार्टियों के बीच हुए समझौते से निकाला जाता है, इसके बावजूद ऐसे मध्यस्थ की गैर-स्वतंत्रता और गैर-निष्पक्षता उसे मध्यस्थता का संचालन करने के लिए अयोग्य बना देगी। आगे यह देखा गया है कि इस तर्क के पीछे उत्पत्ति यह है कि जब एक मध्यस्थ को अनुबंध के संदर्भ में और अनुबंध के पक्षों द्वारा नियुक्त किया जाता है, तब भी वह पार्टियों से स्वतंत्र होता है।

11. पैरा 16 से 18 में इसे निम्नानुसार देखा और निर्धारित किया गया है: (वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच मामला [वोएस्टालपाइन शिएनन जीएमबीएच बनाम दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2017) 4 एससीसी 665: (2017) 2 एससीसी (सिव) 607], एससीसी पीपी. 679- 83)

"16. अन्य संशोधनों के अलावा, धारा 12 में भी संशोधन किया गया था

और संशोधित प्रावधान पहले ही ऊपर पुन: प्रस्तुत किया जा चुका है। यह संशोधन भी विधि आयोग की सिफारिश पर आधारित है जो विशेष रूप से "मध्यस्थों की तटस्थता" के मुद्दे से निपटता है और इस संबंध में एक चर्चा पैरा 53 से 60 में निहित है और हम पूरी चर्चा को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत करना चाहेंगे:

"मध्यस्थों की तटस्थता

53. यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत है कि मध्यस्थता प्रक्रिया सहित कोई भी अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार होनी चाहिए। मध्यस्थता के संदर्भ में, मध्यस्थों की तटस्थता अर्थात उनकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता, पूरी प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण है।

54. अधिनियम में, तटस्थता के लिए परीक्षण धारा 12(3) में निर्धारित किया गया है जो प्रदान करता है-

'12. (3) किसी मध्यस्थ को केवल तभी चुनौती दी जा सकती है जब-

(ए) ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित संदेह पैदा करती हैं।...'

55. अधिनियम उन "परिस्थितियों" की पहचान करने के लिए कोई अन्य शर्तें नहीं रखता है जो "उचित संदेह" को जन्म देती हैं, और यह स्पष्ट है कि ऐसी कई परिस्थितियाँ और स्थितियाँ हो सकती हैं। परीक्षण यह नहीं है कि, परिस्थितियों को देखते हुए, क्या कोई वास्तविक पूर्वाग्रह है जो बाधा को बहुत ऊंचा कर रहा है; लेकिन, क्या विचाराधीन परिस्थितियाँ पूर्वाग्रह की किसी उचित आशंका को जन्म देती हैं?

56. संभावित मध्यस्थ के रूप में विशेष व्यक्तियों/पदनामों (उस इकाई से जुड़े) को नामित करने वाली राज्य संस्थाओं के साथ अनुबंध के संदर्भ में इस प्रावधान की सीमाओं का परीक्षण भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय के अनेक निर्णयों से इसका समाधान हो गया है *[कार्यकारी अभियंता, सिंचाई प्रभाग बनाम गंगाराम छापोलिया देखें [कार्यकारी अभियंता, सिंचाई प्रभाग बनाम गंगाराम छापोलिया, (1984) 3 एससीसी 627]; तमिलनाडु राज्य बनाम मुनुस्वामी मुदलियार [तमिलनाडु राज्य बनाम मुनुस्वामी मुदलियार, 1988 एससीसी 651]; अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण बनाम के.डी. बाली [अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण बनाम के.डी. बाली, (1988) 2 एससीसी 360] ; एस. राजन बनाम केरल राज्य [एस. राजन बनाम केरल राज्य, (1992) 3 एससीसी 608]; इंडियन ड्रग्स एंड*

फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम इंडो स्विस सिंथेटिक जेम मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड। [इंडियन ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम इंडो स्विस सिंथेटिक्स जेम मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, (1996) 1 एससीसी 54]; भारत संघ बनाम एम.पी गुप्ता [भारत संघ बनाम एम.पी. गुप्ता, (2004) 10 एससीसी 504] ; एसीई पाइपलाइन कॉन्ट्रैक्ट्स (पी) लिमिटेड बनाम भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड [एसीई पाइपलाइन कॉन्ट्रैक्ट्स (पी) लिमिटेड बनाम भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2007) 5 एससीसी 304]] सरकारी अनुबंधों में मध्यस्थता समझौते जो विभाग के एक सेवारत कर्मचारी द्वारा मध्यस्थता का प्रावधान करते हैं, वैध और लागू करने योग्य हैं। जबकि सुप्रीम कोर्ट ने *इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम राजा ट्रांसपोर्ट (पी) लिमिटेड [इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम राजा ट्रांसपोर्ट (पी) लिमिटेड, (2009) 8 एससीसी 520: (2009) 3 एससीसी (सिवी) 460]* में उन स्थितियों में एक छोटा सा अपवाद बनाया जब मध्यस्थ -

"विषय अनुबंध के संबंध में नियंत्रण या व्यवहार प्राधिकारी था या यदि वह उस अधिकारी का प्रत्यक्ष अधीनस्थ (किसी अन्य विभाग में निम्न रैंक के अधिकारी से विपरीत) है जिसका निर्णय विवाद का विषय-वस्तु है"

(एससीसी पृष्ठ 533, पैरा 34)

और इस अपवाद का उपयोग सुप्रीम कोर्ट द्वारा डेनियल (पीटीआई) लिमिटेड बनाम रक्षा मंत्रालय [डेनेल (पीटीआई) लिमिटेड बनाम रक्षा मंत्रालय, (2012) 2 एससीसी 759: (2012) 2 एससीसी (सिव) 37] और बिप्रोमाज़ बिप्रॉन ट्रेडिंग सा बनाम भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड [बिप्रोमाज़ बिप्रॉन ट्रेडिंग सा बनाम भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 384: (2012) 3 एससीसी (सिव) 702] में धारा 11 के तहत एक स्वतंत्र मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए किया गया था, यह पर्याप्त नहीं है।

57. इन अनुबंधों की प्रक्रियात्मक निष्पक्षता और बाध्यकारी प्रकृति के बीच संतुलन, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बाद के पक्ष में झुका हुआ प्रतीत होता है, और आयोग का मानना है कि कानून की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है। चूंकि निष्पक्षता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों को कार्यवाही के किसी भी चरण में खारिज नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से मध्यस्थ न्यायाधिकरण के गठन के चरण में, यह कहना असंगत होगा कि इन सिद्धांतों की पूर्ण उपेक्षा में पार्टी की स्वायत्तता का प्रयोग किया जा सकता है - भले ही पार्टियों के बीच विवाद उत्पन्न होने से पहले इस पर सहमति बनी हो। स्वतंत्रता

और निष्पक्षता के कुछ न्यूनतम स्तर हैं जो पार्टियों के स्पष्ट समझौते की परवाह किए बिना मध्यस्थता प्रक्रिया के लिए आवश्यक होने चाहिए। *उदाहरण के लिए, कोई भी अनुभूत कानून ऐसे मध्यस्थ की नियुक्ति की अनुमति नहीं दे सकता, जो स्वयं विवाद में एक पक्ष है, या जो एक पक्ष द्वारा नियोजित (या इसी तरह उस पर निर्भर) है, भले ही दोनों पक्ष इस पर सहमत हों।* आयोग ने यह भी कहा कि विधि आयोग के पदेन सदस्य श्री पी.के. मल्होत्रा ने राज्य के लिए एक अपवाद रखने और राज्य पार्टियों को कर्मचारी मध्यस्थ नियुक्त करने की अनुमति देने का सुझाव दिया। आयोग की राय है कि इस मुद्दे पर राज्य और गैर-राज्य दलों के बीच कोई अंतर नहीं किया जा सकता है। पार्टी की स्वायत्तता की अवधारणा को उस बिंदु तक नहीं बढ़ाया जा सकता है जहां यह विवादों के समाधान के लिए निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्णायकों के आधार को ही नकार दे। वास्तव में, जब निर्णायक नियुक्त करने वाली पार्टी राज्य है, तो एक निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्णायक नियुक्त करने का कर्तव्य और भी अधिक कठिन है - और प्राकृतिक न्याय के अधिकार को केवल अनुबंध के समय और विवादों के उत्पन्न होने से पहले पार्टियों के बीच "पूर्व" समझौते के आधार पर माफ नहीं किया जा सकता है।

58. मध्यस्थों की तटस्थता के इस बुनियादी मुद्दे को संबोधित करने के लिए बड़े पैमाने पर संशोधन का सुझाव दिया गया है, जिसे आयोग भारत में मध्यस्थता प्रक्रिया के कामकाज के लिए महत्वपूर्ण मानता है। विशेष रूप से, अधिनियम की धारा 11, 12 और 14 में संशोधन प्रस्तावित किया गया है।

59. आयोग ने किसी भी प्रकार के संबंध या हित के अस्तित्व के संबंध में, जिससे उचित संदेह पैदा होने की संभावना हो, मध्यस्थ द्वारा उसकी संभावित नियुक्ति के चरण में विशिष्ट खुलासे करने की आवश्यकता का प्रस्ताव दिया है। *आयोग ने चौथी अनुसूची को शामिल करने का प्रस्ताव दिया है, जो अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता में हितों के टकराव पर आईबीए दिशानिर्देशों की लाल और नारंगी सूची से लिया गया है और जिसे यह निर्धारित करने के लिए एक "मार्गदर्शक" के रूप में माना जाएगा कि क्या ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो ऐसे उचित संदेह को जन्म देती हैं।* दूसरी ओर, अधिनियम की प्रस्तावित धारा 12(5) और पांचवीं अनुसूची के संदर्भ में, जिसमें आईबीए दिशानिर्देशों की लाल सूची से श्रेणियां शामिल हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है),

मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए प्रस्तावित व्यक्ति, इसके विपरीत किसी भी पूर्व समझौते के बावजूद, नियुक्त होने के लिए अयोग्य होगा। यदि ऐसे अयोग्य व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाना कथित है, तो धारा 14 के प्रस्तावित स्पष्टीकरण के अनुसार, उसे कानूनी रूप से अपने कार्यों को करने में असमर्थ माना जाएगा। इसलिए, जबकि श्रेणियों की व्यापक सूची के संबंध में *प्रकटीकरण* आवश्यक है (जैसा कि चौथी अनुसूची में निर्धारित है, और आईबीए दिशानिर्देशों की लाल और नारंगी सूचियों के आधार पर), मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने की *अयोग्यता* (और इसके परिणामस्वरूप कार्य करने में असमर्थता) स्थितियों के एक छोटे और अधिक गंभीर उपसमूह से उत्पन्न होती है (जैसा कि पांचवीं अनुसूची में निर्धारित है, और आईबीए दिशानिर्देशों की लाल सूची के आधार पर)

60. हालांकि, आयोग का मानना है कि *असली* और *वास्तविक* पार्टी की स्वायत्तता का सम्मान किया जाना चाहिए, और, कुछ स्थितियों में, पार्टियों को प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची में निर्धारित अपात्रता की श्रेणियों को भी माफ करने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह पारिवारिक मध्यस्थता या अन्य मध्यस्थता की स्थितियों में हो सकता है जहां एक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता और निष्पक्षता के संबंध में वस्तुनिष्ठ "उचित संदेह" के अस्तित्व के बावजूद, विवाद के पक्षों के अंध विश्वास और विश्वास का आदेश देता है। ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए, आयोग ने धारा 12(5) के प्रावधान का प्रस्ताव दिया है, जहां पार्टियां, *उनके बीच उत्पन्न होने वाले विवादों के बाद*, लिखित रूप में एक स्पष्ट समझौते द्वारा प्रस्तावित धारा 12(5) की प्रयोज्यता को माफ कर सकती हैं। अन्य सभी मामलों में, प्रस्तावित धारा 12(5) में सामान्य नियम का पालन किया जाना चाहिए। यदि मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जाता है, आयोग ने धारा 12(1) के संदर्भ में प्रकटीकरण की मांग करने का प्रस्ताव दिया है और इस संदर्भ में उच्च न्यायालय या नामित को मध्यस्थ की नियुक्ति में इस तरह के प्रकटीकरण की सामग्री पर "उचित सम्मान" रखना है।

17. हम यहां स्पष्टीकरण का एक नोट डाल सकते हैं। हालाँकि, विधि आयोग ने "मध्यस्थों की तटस्थता" शीर्षक के तहत उपरोक्त पहलू पर चर्चा की, चर्चा का ध्यान मध्यस्थों की निष्पक्षता और स्वतंत्रता पर था, जिसका किसी एक पक्ष से संबंध या पूर्वाग्रह है। अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता के क्षेत्र में, तटस्थता आम तौर पर मध्यस्थ की राष्ट्रीयता से संबंधित

होती है। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में, "तटस्थता की उपस्थिति" को समान रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसका अर्थ है कि एक मध्यस्थ तटस्थ है यदि उसकी राष्ट्रीयता पार्टियों से अलग है। हालाँकि, यह वह पहलू नहीं है जिस पर विचार किया जा रहा है और इस्तेमाल किया गया शब्द "तटस्थता" किसी भी पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह के बिना, मध्यस्थों की निष्पक्षता और स्वतंत्रता से संबंधित है। वास्तव में, "मध्यस्थों की तटस्थता" शब्द का प्रयोग आमतौर पर इस संदर्भ में भी किया जाता है।

18. विधि आयोग की उपरोक्त अनुशंसा को ध्यान में रखते हुए, जिस भावना के साथ, धारा 12 को संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा संशोधित किया गया है, यह स्पष्ट है कि प्रावधान में संशोधन करने का मुख्य उद्देश्य मध्यस्थों की तटस्थता प्रदान करना था। इसे प्राप्त करने के लिए, धारा 12 की उपधारा (5) यह निर्धारित करती है कि इसके विपरीत किसी भी पूर्व समझौते के बावजूद, कोई भी व्यक्ति जिसका पार्टियों या अधिवक्ता या विवाद की विषय-वस्तु के साथ संबंध सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी श्रेणी के अंतर्गत आता है, वह मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य होगा। ऐसी स्थिति में, यानी जब मध्यस्थता खंड ऊपर निकाले गए संशोधित प्रावधानों के साथ गलत पाया जाता है, तो मध्यस्थ की नियुक्ति मध्यस्थता समझौते से परे होगी, जिससे अदालत को ऐसे मध्यस्थों को नियुक्त करने का अधिकार मिल जाएगा जो अनुमत हो सकते हैं। यह धारा 12 की उप-धारा (5) में निहित गैर-अप्रत्याशित खंड का प्रभाव होगा और दूसरा पक्ष मध्यस्थता समझौते के संदर्भ में मध्यस्थ की नियुक्ति पर जोर नहीं दे सकता है।'

12. *भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क [भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड बनाम यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड,* (2019) 5 एससीसी 755: (2019) 3 एससीसी (सिव) 1] में, यह देखा गया है कि सातवीं अनुसूची के साथ पढ़ी गई धारा 12 की उप-धारा (5) ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि मध्यस्थ सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट श्रेणियों में से किसी एक में आता है, तो वह मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए "अपात्र" हो जाता है। आगे यह देखा गया है कि एक बार जब वह "अपात्र" हो जाता है, तो यह स्पष्ट है कि वह तब अपने कार्यों को करने में कानूनी रूप से असमर्थ हो जाता है, क्योंकि कानून में उसे "अयोग्य" माना जाता है। उक्त निर्णय में यह भी देखा गया है कि जहां कोई व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य हो जाता है, ऐसे मामले में ऐसे मध्यस्थ के समक्ष चुनौती देने का कोई सवाल ही नहीं है यानी एक मामला जो अधिनियम की धारा 14(1)(ए) के अंतर्गत आता है, तब तक आकर्षित हो जाता है, जब तक मध्यस्थ कानून के मामले में (अर्थात् कानूनी तौर पर), धारा

12(5) के तहत अपने कार्यों को करने में असमर्थ हो जाता है, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त होने के लिए अयोग्य होने और ऐसा होने पर, उसका जनादेश स्वतः समाप्त हो जाता है, और फिर उसे किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा।

13. वर्तमान समझौते में खंड 33 विवाद को मध्यस्थता में भेजने पर विचार करते समय अनिवार्य रूप से इसकी प्रयोज्यता को विभागीय अधिकारी यानी मुख्य कार्यकारी अधिकारी या उसके नामित व्यक्ति द्वारा निर्णय तक सीमित करता है। खंड 33 में आगे की शर्त यह है कि जहां ऐसे अधिकारी का संदर्भ संभव नहीं है, मध्यस्थता स्वयं उपलब्ध नहीं होगी। यह शर्त नियोक्ता यानी वाईईआईडीए के निर्णय की शक्ति को बनाए रखने के इरादे को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है, जो मध्यस्थ की तटस्थता की भावना के खिलाफ है, जिसके लिए अकेले 1996 के अधिनियम की धारा 12(5) पेश की गई है। एलोरा पेपर मिल्स (उपरोक्त) मामले में विधि आयोग द्वारा की गई चर्चा का जिक्र करते हुए सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी महत्व रखती है। मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में निष्पक्षता या स्वतंत्रता के सिद्धांतों का सम्मान किया जाना चाहिए और यह मानना असंगत होगा कि इन सिद्धांतों की पूरी तरह से उपेक्षा करके पार्टी की स्वायत्तता का प्रयोग किया जा सकता है।

14. एक बार जब क़ानून ने मध्यस्थता समझौते में मध्यस्थ की तटस्थता को लागू करने के लिए कदम उठाया है, अधिनियम की धारा 12(5) के आधार पर, मध्यस्थता को त्यागने की कीमत पर निर्णय की शक्ति या पार्टी की स्वायत्तता को नियोक्ता के पास रखने के लिए समझौते में खंड की शाब्दिक व्याख्या करना न्यायालय के लिए उचित नहीं होगा। इस प्रकार मध्यस्थ की तटस्थता के मामले में मध्यस्थता को बाहर करने वाले समझौते के खंड 33 को 1996 के अधिनियम की धारा 12(5) के अधीन माना जाना चाहिए। किसी भी मामले में, नियोक्ता यानी वाईईआईडीए द्वारा न्यायनिर्णयन की शक्ति बनाए रखने की चिंता में पार्टियों के अपने विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के इरादे को रद्द नहीं किया जा सकता है।

15. यह न्यायालय राम कृपाल सिंह (उपरोक्त) मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त दृष्टिकोण से सम्मानजनक सहमत है, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार कहा: -

> "17.4. मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के समझौते से स्पष्ट रूप से विशिष्ट और अलग करने योग्य है, भले ही ये एक ही मध्यस्थता खंड में शामिल हों। यदि इसलिए, कानून में संशोधन, पुन: कथन या पुन: व्याख्या के कारण, जैसा कि वर्तमान मामले में ए एंड सी अधिनियम में धारा 12(5) को शामिल करने और टीआरएफ लिमिटेड और पर्किन्स ईस्टमैन (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट के फैसलों के कारण हुआ है। किसी एक पक्ष के हाथों मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया कानूनी रूप से

अमान्य, शून्य और अप्रवर्तनीय हो जाती है, इसका मतलब यह नहीं है कि पार्टियों के बीच अपने पारस्परिक विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का मूल समझौता स्वयं ही नष्ट हो जाता है। इस न्यायालय की राय में - यह "मेरा रास्ता या राजमार्ग" दृष्टिकोण- कानून में स्वीकार्य नहीं है; और ऐसी परिस्थितियों में, मध्यस्थता समझौते का वह हिस्सा जिसे अमान्य, शून्य और लागू करने योग्य बना दिया गया है, मध्यस्थता समझौते के बाकी हिस्सों को संरक्षित करते हुए, मध्यस्थता खंड से अलग किया जाना या हटाया जाना है।

17.5. तदनुसार, इस अदालत का मानना है कि पार्टियों के बीच एक वैध और मौजूदा मध्यस्थता समझौता है, हालांकि सीएमडी, एनटीपीसी के हाथों मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया अब वैध नहीं है और इसलिए इसे शेष मध्यस्थता खंड से अलग किया जाना चाहिए;"

16. नंदिनी कंस्ट्रक्शन्स में इस न्यायालय का निर्णय, जिस पर वाईईआईडीए ने भरोसा किया है, इस प्रकार ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णयों के मद्देनजर मान्य नहीं होगा, और इसलिए, श्री सिंघल की आपत्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

17. जहां तक श्री सिंघल की आपत्ति है कि कार्य का दायरा समझौते के अंतर्गत शामिल नहीं है, यह भी मध्यस्थता के दौरान उठाया और जांचा जाने वाला एक पहलू होगा और अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय इस न्यायालय द्वारा उस संबंध में कोई निश्चित राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। आवेदक द्वारा ऐसा कोई दावा नहीं करने के लिए कथित हलफनामा दाखिल करने के संबंध में मुद्दा भी उस संबंध में सबूत आदि पेश किए जाने के बाद मध्यस्थ द्वारा निर्णय के लिए खुला छोड़ दिया गया है।

18. ऊपर दर्ज कारणों से, यह आवेदन सफल होता है और अनुमति दी जाती है।

19. तदनुसार, माननीय श्री न्यायमूर्ति पी.के.एस.बघेल (पूर्व न्यायाधीश), निवासी 8-बी/6ए पार्थसारथी हाउस, मेयो रोड, मेयो हॉल स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स के पास, इलाहाबाद, मोबाइल नंबर 9936931931 को संदर्भ में प्रवेश करने और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के अनुसार विवाद को निपटाने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाता है, जो कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 11-ए के संदर्भ में उनकी सहमति के अधीन है।

20. मध्यस्थ, 2016 के अधिनियम संख्या 3 द्वारा सम्मिलित चौथी अनुसूची के प्रावधानों के अनुसार, फीस का हकदार होगा। खर्च पार्टियों द्वारा समान रूप से वहन किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 1231

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र (अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी) संख्या 57/2023

विजय पाल प्रजापति ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी दल

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री पूर्णेन्दु चक्रवर्ती, श्री प्रांजल जैन

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री दिग्विजय नाथ दुबे

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 156 (3), 482 और 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 120 बी, 323, 504, 506, 406, 420, 467, 468 और 471- अग्रिम जमानत आवेदन - एफआईआर - रेत खनन निविदाओं से संबंधित धोखाधड़ी गतिविधियों से जुड़ी एक योजना का हिस्सा होने के आरोपी के खिलाफ आरोप - आवेदक ने अन्य लोगों के साथ मिलकर कथित तौर पर सूचनाकर्ता को धोखा देने के लिए जाली दस्तावेजों का इस्तेमाल किया और गलत बयानी के जरिए 1.6 करोड़ रुपये का हस्तांतरण हासिल किया - अदालत ने पाया कि, आरोपों में आईपीसी की गंभीर धाराएं शामिल हैं, जैसे धोखाधड़ी, जालसाजी और आपराधिक धमकी - अदालत का मानना है कि आवेदक को अग्रिम जमानत देने के आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता यह अनुमान लगाया गया है कि आवेदक ने जाली पत्र तैयार किया था - और एफआईआर में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक द्वारा पत्र जाली या मनगढ़ंत बनाया गया था - आवेदन स्वीकार किया जाता है। (पैरा - 22, 23, 25)

प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है (ई-11)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. कमलेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1822

2. राजीव लोचन पालीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी संख्या 1750/2022

3. नवनीत भदौरिया बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी संख्या 1841/2022

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री पूर्णेन्दु चक्रवर्ती अधिवक्ता, राज्य की ओर से

विद्वान ए.जी.ए. श्री अरविन्द कुमार पाण्डेय तथा सूचनाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री दिग्विजय नाथ दुबे को सुना गया।

2. वर्तमान प्रार्थना पत्र के माध्यम से, आवेदक मुकदमा अपराध संख्या 363/2021, धारा 323/504/506/406/420/467/468/471भा0दं0 सं0, थाना विभूति खंड, जिला लखनऊ में अग्रिम जमानत की मांग कर रहा है।

3. उपरोक्त प्रकरण सूचनाकर्ता दीपक शर्मा द्वारा 23.07.2021 को आवेदक सहित चार नामजद व्यक्तियों और एक अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ दर्ज कराई गई एफआईआर के आधार पर पंजीकृत किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि दिसंबर, 2018 में सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह उर्फ बाबा त्रिकालदर्शी ने सूचनाकर्ता से मुंबई में मुलाकात की और दावा किया कि उसे बालू के खनन की अच्छी समझ है और बांदा के बाजार पर उसकी अच्छी पकड़ है। सूचनाकर्ता ने दिसंबर, 2018, जनवरी, 2019 और फरवरी, 2019 में तीन बार लखनऊ का दौरा किया, जहां सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह ने उससे एक अस्पताल में और सह-अभियुक्त राजीव पोरवाल के आवास पर मुलाकात की और आवेदक और सह-अभियुक्त नवनीत सिंह भदौरिया भी बैठकों में बैठते थे और उन्होंने खुद को मोरंग (निर्माण गतिविधियों में उपयोग होने वाला एक लघु खनिज) का स्थापित व्यवसायी होने का दावा किया। सरकारी टेंडर के लिए सूचनाकर्ता से 1 करोड़ रुपये लिए और उसने सूचनाकर्ता से कुछ दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने को कहा जो आवेदक ने तैयार किए थे। आवेदक ने टेंडर प्रक्रिया में कंपनी के पंजीकरण से संबंधित कुछ दस्तावेज दिखाए थे लेकिन दस्तावेज जाली निकले। 11.02.2019 को, रेत के उत्खनन के लिए निविदा आमंत्रित करने वाला एक नोटिस प्रकाशित किया गया था, जिसमें आवेदक ने सूचनाकर्ता के ज्ञान के बिना बोली लगाई थी और सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह ने सूचनाकर्ता को बताया था कि केवल आवेदक के नाम का उपयोग किया जाएगा और कार्य का वास्तविक नियंत्रण सूचनाकर्ता को दिया जाएगा। सूचनाकर्ता ने आरोप लगाया कि उन्होंने टेंडर के लिए बयाना राशि के रूप में मेसर्स वीपी कंस्ट्रक्शन के खाते में 1,60,00,000/- रुपये की राशि स्थानांतरित की थी। सूचनाकर्ता का दावा है कि उसके और आरोपी व्यक्तियों के बीच यह आपसी सहमति से तय हुआ था कि मेसर्स वीपी कंस्ट्रक्शन को आवंटित टेंडर में निवेश और लाभ सभी व्यक्तियों के बीच वितरित किया जाएगा और 05.12.2020 को सूचनाकर्ता, आवेदक और प्रमोद तिवारी के बीच एक संयुक्त उद्यम समझौता किया गया था। उसी दिन, बिक्री और विपणन के लिए एक और समझौता सूचनाकर्ता और आवेदक के बीच निष्पादित किया गया था, लेकिन कुछ समय बाद, आरोपी व्यक्तियों ने मेसर्स वीपी कंस्ट्रक्शन के माध्यम से उत्खनित रेत की बिक्री और विपणन शुरू कर दिया और उन्होंने 05.12.2020 के समझौते का उल्लंघन किया। सूचनाकर्ता ने आरोप लगाया कि जब उसने इसका विरोध किया, तो आरोपियों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसे धमकी दी।

4. आवेदक को दिनांक 16.01.2023 के एक आदेश के माध्यम से अंतरिम अग्रिम जमानत दी गई थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सह-अभियुक्त राजीव लोचन पालीवाल को आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 1750/2022 "राजीव लोचन पालीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य" में पारित आदेश दिनांक 20.10.2022 के माध्यम से अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई है। एक अन्य सह-आरोपी नवनीत भदौरिया को भी इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 1841/2022 "नवनीत भदौरिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य" में पारित किया है।

5. राज्य और सूचनाकर्ता ने अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र का विरोध करते हुए जवाबी हलफनामा दायर किया है।

6. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन का पुरजोर विरोध किया है और उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सह-अभियुक्त नवनीत भदौरिया को अग्रिम जमानत देते समय , इस न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 1841/2022 में पारित आदेश दिनांक 18.11.2022 में विशेष रूप से दर्ज किया गया था कि उपरोक्त सह-अभियुक्तों का प्रकरण आनंद कुमार सिंह उर्फ बाबा त्रिकालदर्शी और विजय पाल प्रजापति (आवेदक) के प्रकरण से अलग है और उन्होंने प्रस्तुत किया है कि आवेदक समानता के आधार पर अग्रिम जमानत दिए जाने का हकदार नहीं है।

7. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक ने पहले धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत एक आवेदन दायर किया था। संख्या 6044/2022 और 06.09.2022 को पारित आदेश में, इस न्यायालय ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की दलील पर ध्यान दिया था कि आवेदक ने अपनी सद्भावना दिखाने के लिए सूचना देने वाले को पूरी रकम का भुगतान करने का इरादा किया था और यह आदेश में दर्ज किया गया था कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता अगली तारीख पर 2 करोड़ रुपये का बैंक ड्राफ्ट लाएंगे। 14.09.2022 को उपरोक्त प्रकरण में पारित आदेश में, यह दर्ज किया गया था कि आवेदक ने बहाने बनाए, जिससे न्यायालय ने पाया कि आवेदक का विपक्षी संख्या 2 को कोई राशि देने का कोई इरादा नहीं था, जिसका पैसा कथित रूप से लिया गया था। आवेदक के उपरोक्त आचरण के मद्देनजर, धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन खारिज कर दिया गया। दुबे ने दलील दी है कि आवेदक का उपरोक्त आचरण उसे अग्रिम जमानत दिए जाने के योग्य नहीं बनाता।

8. उपर्युक्त दलील का जवाब देते हुए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पूर्णेन्दु चक्रवर्ती ने प्रस्तुत किया कि आवेदक ने विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 9397/2022 दायर करके धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन को खारिज करने के दिनांक 14.09.2022 के आदेश को चुनौती दी थी, जिसे दिनांक 10.10.2022 के आदेश के माध्यम से वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया था, लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया था

कि धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत आवेदन को खारिज करते समय उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों से विचारण न्यायालय प्रभावित नहीं हो सकता है ।

9. यह स्पष्ट है कि दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत प्रार्थना पत्र को गुण-दोष के आधार पर खारिज नहीं किया गया था और इसे केवल इस कारण से खारिज कर दिया गया था कि आवेदक ने सूचना देने वाले को पैसे वापस नहीं किए थे। सूचना देने वाले की शिकायत यह है कि पैसे का भुगतान न करना एक समझौते का उल्लंघन है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने बताया है कि सूचना देने वाले ने पैसे की वसूली के लिए ग्वालियर के वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष कार्यवाही शुरू कर दी है, जो कार्यवाही लंबित है। इसलिए, आवेदक को पैसे के भुगतान और इसकी वसूली के लिए सूचना देने वाले के अधिकार का मुद्दा उन कार्यवाहियों में तय किया जाएगा और इस संबंध में इस न्यायालय के लिए कोई टिप्पणी करना उचित नहीं होगा। हालांकि, केवल पैसे का भुगतान न करना आपराधिक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकता है और यह निश्चित रूप से अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है।

10. **कमलेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1822** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश के खिलाफ दायर एक आपराधिक अपील पर फैसला कर रहा था, जिसके तहत अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन को उच्च न्यायालय ने केवल इस आधार पर खारिज कर दिया था कि धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना करने वाली याचिका पहले ही खारिज हो चुकी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

> ***"5.** हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता। उच्च न्यायालय को आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार करना चाहिए था। तथ्य यह है कि धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत याचिका को खारिज कर दिया गया था, जो निर्णायक नहीं था और आवेदन को खारिज करने का कारण नहीं हो सकता।"*

11. इसलिए, कानून स्पष्ट है कि धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदक के आवेदन को खारिज करना , अग्रिम जमानत के लिए उसके आवेदन के गुण-दोष पर विचार करने में बाधा नहीं बनेगा।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि सूचनाकर्ता को 08.03.2019 को अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, बांदा की ओर से जारी किए गए आशय पत्र के आधार पर एक संयुक्त उद्यम समझौते में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया गया था, जो पत्र जाली था। हालाँकि, इस बात का कोई स्पष्ट दावा नहीं है कि पत्र किसने जाली बनाया था और, किसी भी प्रकरण

में, ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक द्वारा पत्र जाली बनाया गया था।

13. जांच अधिकारी ने पहले ही आरोप पत्र दाखिल कर दिया है और आरोप पत्र में सूचनाकर्ता के अलावा सभी गवाह पुलिस कर्मी हैं। जिला मजिस्ट्रेट, बांदा के कार्यालय के किसी भी अधिकारी या कर्मचारी को आरोप पत्र में गवाह के रूप में उल्लेखित नहीं किया गया है।

14. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक की लिखावट का नमूना भी प्रश्नगत पत्र पर किए गए हस्ताक्षरों से मिलान करने के लिए नहीं लिया गया है, जिसे आवेदक द्वारा जालसाजी किए जाने को साबित करने के लिए साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था।

15. श्री दिग्विजय नाथ दुबे, सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि धनराशि आवेदक के बैंक खाते में स्थानांतरित कर दी गई है और वह किए गए अपराध का लाभार्थी है।

16. इस संबंध में, सबसे पहले यह देखा जाना चाहिए कि आवेदक पर भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी के तहत अपराध करने का आरोप नहीं लगाया गया है और केवल इसलिए कि आवेदक किसी अपराध का लाभार्थी है, आवेदक को जालसाजी के अपराध का दोषी नहीं माना जाएगा, जब उसके द्वारा अपराध करने का कोई आरोप नहीं है।

17. दूसरे, यह धनराशि लघु खनिजों के खनन का व्यवसाय करने के लिए एक समझौते को आगे बढ़ाने के लिए आवेदक को हस्तांतरित की गई थी और सूचनाकर्ता का दावा है कि आरोपी व्यक्तियों ने समझौते का उल्लंघन किया है, जो विवाद प्रथम दृष्टया एक ऐसा विवाद प्रतीत होता है जो स्वाभाविक रूप से सिविल प्रकृति का है।

18. आजकल व्यापारिक लेन-देन में पक्षकारों पर दबाव डालने के लिए आपराधिक कानून को लागू करना एक सामान्य चलन बन गया है। अनुबंधों के विशिष्ट निष्पादन, लेखा-जोखा या धन की वसूली के लिए सिविल कार्यवाही शुरू करने के बजाय, जहां वादी/दावेदार को न्यायालय शुल्क देना पड़ता है और जहां विवाद का निर्णय बहुत लंबा समय लेता है, वहां दूसरे पक्ष को जेल में डालने के उद्देश्य से एफआईआर दर्ज की जाती है ताकि उस पर दबाव डाला जा सके ताकि वह सूचनाकर्ता की शिकायतों का निवारण कर सके। हालांकि, न्यायालय ऐसे मामलों में अपनी आंखें बंद नहीं कर सकते हैं ताकि यह पता न चल सके कि आरोपी व्यक्ति को जेल में डालने के लिए पर्याप्त सामग्री है या नहीं और यह जांच न कर सकें कि आपराधिक कार्यवाही का उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति के अभियोजन के लिए किया जा रहा है जिसने अपराध किया है या विवादों को आपराधिक रंग देकर किसी ऐसे व्यक्ति को सताने के लिए इसका दुरुपयोग किया जा रहा है जिसने समझौते का उल्लंघन किया है।

19. चूंकि समझौते के तहत भुगतान की गई धनराशि की वसूली के लिए पक्षों के बीच

कार्यवाही वाणिज्यिक न्यायालय, ग्वालियर के समक्ष लंबित है, इसलिए इसकी वसूली के लिए सूचनाकर्ता के अधिकार का मुद्दा उन कार्यवाहियों में तय किया जाएगा और इस संबंध में कोई टिप्पणी करना इस न्यायालय के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

20. सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह उर्फ बाबा त्रिकालदर्शी की जमानत याचिका इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 03.03.2023 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दी गई है । इस संबंध में, यह कहना पर्याप्त है कि समान आरोपों के आरोपी व्यक्तियों को जमानत देते समय समानता एक प्रासंगिक विचार है, लेकिन जमानत आवेदनों को खारिज करने के लिए समानता का सिद्धांत लागू नहीं होता है।

21. इसके अलावा, सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह की जमानत याचिका को खारिज करने वाले दिनांक 03.03.2023 के आदेश में केवल यह उल्लेख किया गया है कि जमानत प्रार्थना पत्र को सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को ध्यान में रखते हुए खारिज किया जा रहा है कि जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ खनन अधिकारी को भी शिकायत की गई थी, जहां आरोपियों ने आश्वासन दिया था कि वे सूचनाकर्ता को पैसा वापस कर देंगे, लेकिन अभी तक उन्होंने पैसा वापस नहीं किया है।

22. जैसा कि पिछले पैराग्राफ में पहले ही कहा जा चुका है, अनुबंध के तहत भुगतान की गई राशि का भुगतान न करना अनुबंध के किसी पक्ष के खिलाफ आपराधिक मुकदमा चलाने का आधार नहीं हो सकता है और किसी भी प्रकरण में, यह आरोपी व्यक्ति की अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है। इसलिए, मेरा मानना है कि आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

23. आवेदक के संबंध में, एफआईआर में उल्लेख किया गया है कि सह-अभियुक्त आनंद कुमार सिंह उर्फ बाबा त्रिकालदर्शी ने सूचनाकर्ता से कुछ दस्तावेजों पर अपने हस्ताक्षर करने के लिए कहा था, जो दस्तावेज आवेदक द्वारा तैयार किए गए थे। जाहिर है, सूचनाकर्ता को जिला मजिस्ट्रेट की ओर से अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी दिनांक 08.03.2019 के पत्र पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होगी और इसलिए, उपरोक्त आरोप से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि आवेदक ने दिनांक 08.03.2019 के पत्र में जालसाजी की है। एफआईआर में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आवेदक द्वारा दिनांक 08.03.2019 के पत्र को जाली या गढ़ा गया था।

24. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने सूचित किया है कि आवेदक ने इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16.01.2023 के आदेश के अनुसार जमानत बंध पत्र प्रस्तुत किया है। विद्वान ए.जी.ए. आवेदक द्वारा अग्रिम जमानत की शर्तों के उल्लंघन या उसके दुरुपयोग का कोई संकेत नहीं दे सके।

25. उपर्युक्त परिस्थितियों में, मुझे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.01.2023 को

पारित आदेश में लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला। इसलिए, दिनांक 16.01.2023 का आदेश निरपेक्ष माना जाता है और उपरोक्त आदेश के अनुसार प्रार्थना पत्र **स्वीकृत** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1236

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र (अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी) संख्या 5408/2023

रियाजुद्दीन ..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री विनोद सिंह

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 376, 504 और 506- अभियोक्ता और आरोपी के बीच शारीरिक संबंध आरोपी आवेदक की ओर से शादी करने के वादे के आधार पर विकसित हुए, जो लगभग एक वर्ष तक जारी रहा, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान मामले में, यह आरोपी आवेदक नहीं है, जिसने अभियोक्ता के साथ शादी करने से इनकार कर दिया, हालांकि एफआईआर में ऐसा आरोप लगाया गया है। पूरक हलफनामे में एक विशिष्ट कथन शामिल है कि यह अभियोक्ता है, जिसने पहले ही रिजवान नामक व्यक्ति के साथ अपना विवाह कर लिया था, जबकि वर्तमान आवेदक अभी भी कुंवारा है और इसलिए इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि शादी करने का वादा आवेदक द्वारा स्वयं तोड़ा गया था। मुकदमे के अंत तक आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला। (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2019 (9) एससीसी 608

2. सोनू उर्फ सुभाष कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य 2021 0 सुप्रीम (एससी) 182

3. आपराधिक अपील संख्या 257/2023, नईम अहमद बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2023 लाइवलॉ (एससी) 66

4. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य , (2020) 5 एससीसी 1

5. अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई, निदेशक के माध्यम से, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 941

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. आज दाखिल किया गया पूरक हलफनामा अभिलेख पर लिया गया।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

3. भा.दं.सं. की धारा 376, 504, 506 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 551/2019, पुलिस स्टेशन टांडा, जिला रामपुर में अपनी गिरफ्तारी की आशंका से, आवेदक- **रियाजुद्दीन** ने उपरोक्त अपराध संख्या में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए यह अग्रिम जमानत अर्जी दायर की है।

4. एफ.आई.आर. में यह आरोप लगाया गया है कि शादी का झूठा झांसा देकर आरोपी आवेदक ने पीड़िता के साथ लगभग एक साल तक शारीरिक संबंध बनाए और बाद में उससे शादी करने से इनकार कर दिया और उसे जान से मारने की धमकी दी। एफ.आई.आर. 16.11.2019 को दर्ज किया गया था और जांच शुरु हुई और अब आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक निर्दोष है और उसे उपरोक्त मामले में अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, जबकि उसके खिलाफ कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। आवेदक पर लगाए गए आरोप गलत हैं। मामले की जांच पूरी हो चुकी है और आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक ने कभी भी अभियोक्त्री के साथ शादी करने का कोई वादा नहीं किया। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यह सहमति से संबंध का मामला है और पीड़िता एक बालिग महिला है और वह अपनी स्वतंत्र इच्छा और सहमति से आवेदक के साथ रह रही थी और आवेदक ने कभी भी पीड़िता के साथ जबरन या उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध नहीं बनाए। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में अभियोक्त्री ने कहा है कि वह आवेदक से प्यार करती थी और उसने अपनी मर्जी से आवेदक के साथ शारीरिक संबंध बनाए। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 24816/2019 में दं.प्र.सं. की धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट दाखिल होने तक आवेदक को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 5.12.2019 के आदेश द्वारा सुरक्षा प्रदान की गई थी और आवेदक ने उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक जांच के दौरान सहयोगात्मक रहा है। उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक के विरुद्ध कोई दंडात्मक प्रक्रिया जारी नहीं की गई है। आगे कहा गया है कि इस मामले में आवेदक से हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। अब आरोप पत्र जमा होने के बाद आवेदक मुकदमे की समाप्ति तक अग्रिम जमानत का हकदार है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अग्रिम जमानत की प्रार्थना का विरोध किया और प्रस्तुत किया गया कि पर्याप्त साक्ष्य एकत्र करने के बाद इस मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। मेडिकल रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करती है।

7. आज दायर पूरक हलफनामे के माध्यम से आवेदक ने इस तथ्य को इस न्यायालय के ध्यान में लाया है कि वह अभी भी कुंवारा है, जबकि अभियोक्त्री ने रिजवान पुत्र कलुवा निवासी मोहल्ला विजय नगर, पुलिस थाना काशीपुर, जिला उधम सिंह नगर (उत्तराखंड) के साथ विवाह किया था।

8. आजकल न्यायालयों में ऐसे मामलों की भरमार है जिनमें यह आरोप लगाया जाता है कि आरोपी पुरुष ने केवल अपनी हवस पूरी करने के लिए शादी का झूठा वादा करके पीड़िता के साथ शारीरिक संबंध बनाए और बाद में अपना वादा नहीं निभाया और उसे लावारिस छोड़ दिया। ऐसे मामलों में, न्यायालय को वास्तव में रिश्ते की शुरुआत से ही आरोपी की मंशा पर गौर करना चाहिए।

9. प्रमोद सूर्यभान पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2019 (9) एससीसी 608 में माननीय शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि निर्माता द्वारा यह समझने पर दिया गया झूठा वादा कि इसे तोड़ दिया जाएगा और किसी वादे का उल्लंघन जो सद्भावना से किया गया हो लेकिन बाद में पूरा न किया गया हो, के बीच अंतर है।

उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 14 में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है किः

"14.... वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता द्वारा कथित "तथ्य की गलत धारणा" अपीलकर्ता द्वारा उससे शादी करने का वादा है। विशेष रूप से शादी करने के वादे के संदर्भ में, इस न्यायालय ने देखा है कि निर्माता द्वारा यह समझाने पर दिया गया झूठा वादा कि इसे तोड दिया जाएगा और किसी वादे का उल्लंघन जो सद्भावना से किया गया हो लेकिन बाद में पूरा न किया गया हो, के बीच अंतर है। अनुराग सोनी बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2019) एससीसी ऑनलाइन एससी 509 में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:

"37. उपरोक्त निर्णयों का योग एवं सार यह होगा कि यदि यह स्थापित और प्रमाणित है कि शुरुआत से ही आरोपी जिसने अभियोक्त्री को शादी करने का वचन दिया, का शादी करने का कोई इरादा नहीं था और अभियोक्त्री ने आरोपी के इस आश्वासन पर संभोग के लिए सहमति दे दी कि वह उससे शादी करेगा, ऐसी सहमति को भा.दं.सं. की धारा 90 के अनुसार तथ्य की गलत धारणा पर प्राप्त सहमति कहा जा सकता है और, ऐसे मामले में, ऐसी सहमति अपराधी को माफ नहीं करेगी और ऐसे अपराधी के बारे में कहा जा सकता है कि उसने बलात्कार किया है जैसा कि भा.दं.सं. की धारा 375 के तहत परिभाषित किया गया है और उसे भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है।"

इसी तरह की टिप्पणियों इस न्यायालय द्वारा दीपक गुलाटी बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 7 एससीसी 675 ("दीपक गुलाटी") में की गई थीः

"21.... केवल वादा तोड़ने और झूठा वादा पूरा न करने के बीच अंतर है। इस प्रकार, न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या आरोपी ने प्रारंभिक चरण में शादी का झूठा वादा किया था?"

इसके अलावा, उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 16 में शर्तों तथ्य की गलत धारणा, सहमति और वादे का उल्लंघन की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किः

"16.... जहां शादी करने का वादा झूठा है और वादा करते समय वादा करने वाले का इरादा उसका पालन करने का नहीं था, बल्कि महिला को धोखा देकर उसे यौन संबंध बनाने के लिए मनाने के लिए राजी करना था, वहां एक "तथ्य की गलत धारणा" जो महिला की "सहमति" को दूषित करता है। दूसरी ओर, किसी वादे के उल्लंघन को झूठा वादा नहीं कहा जा सकता है। झूठे वादे को सिद्ध करने के लिए, वादा करने वाले का वादा करते समय अपने वचन पर कायम रहने का कोई इरादा नहीं होना चाहिए। धारा 375 के तहत एक महिला की "सहमति" "तथ्य की गलत धारणा" के आधार पर दूषित हो जाती है, जहां ऐसी ग़लतफ़हमी ही उसके उक्त कार्य में शामिल होने का चयन करने का आधार थी। दीपक गुलाटी में इस न्यायालय ने गौर किया है: "21..... महज़ एक वादे का उल्लंघन करने और झूठे वादे को पूरा न करने के बीच अंतर है। इस प्रकार, अदालत को यह जांच करनी चाहिए कि क्या आरोपी ने प्रारंभिक चरण में शादी का झूठा वादा किया था; और क्या इसमें शामिल सहमति यौन भोग की प्रकृति और परिणामों को पूरी तरह समझने के बाद दी गई थी। ऐसा कोई मामला हो सकता है जहां अभियोक्त्री आरोपी के प्रति अपने प्यार और जुनून के कारण संभोग करने के लिए सहमत हो, न कि केवल आरोपी द्वारा उसके साथ की गई गलत बयानी के कारण, या जहां एक अभियुक्त उन परिस्थितियों के कारण, जिसकी उसने कल्पना नहीं की थी, या जो उसके नियंत्रण से परे थीं, ऐसा करने का हर इरादा होने के बावजूद, उससे शादी करने में असमर्थ था। ऐसे मामलों को अलग तरह से व्यवहार किया जाना चाहिए।

24. इसलिए, यह स्पष्ट है कि यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत होने चाहिए कि प्रासंगिक समय पर यानी प्रारंभिक चरण में, आरोपी का पीड़िता से शादी करने का अपना वादा निभाने का कोई इरादा नहीं था। निस्संदेह, ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं, जब नेक इरादे वाला व्यक्ति विभिन्न अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण पीड़िता से शादी करने में असमर्थ हो। "भविष्य की अनिश्चित तिथि के संबंध में किए गए वादे को निभाने में विफलता, ऐसे कारणों से जो उपलब्ध साक्ष्यों से बहुत स्पष्ट नहीं हैं, हमेशा तथ्य की गलत धारणा नहीं होती है। "तथ्य की गलत धारणा" शब्द के अर्थ में आने के लिए, तथ्य की तत्काल प्रासंगिकता होनी चाहिए।" ऐसी स्थिति में किसी लड़की के कृत्य को पूरी तरह से माफ करने और दूसरे पर

आपराधिक दायित्व तय करने के लिए भा.दं.सं. की धारा 90 की सहायता नहीं ली जा सकती, जब तक कि न्यायालय को इस तथ्य के बारे में आश्वस्त नहीं किया जाता है कि शुरू से ही, आरोपी ने कभी भी उससे शादी करने का इरादा नहीं किया था।" (बल दिया गया)

10. वर्तमान मामले में, मामले के तथ्यात्मक आव्यूह से यह पता चलता है कि पीड़िता और आरोपी के बीच शारीरिक संबंध आरोपी आवेदक की ओर से शादी करने के वादे के आधार पर विकसित हुए थे, जो लगभग एक वर्ष तक जारी रहा, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान मामले में, लेकिन महत्वपूर्ण रूप से, वर्तमान मामले में, यह आरोपी आवेदक नहीं है, जिसने पीड़िता के साथ शादी करने से इनकार कर दिया, हालांकि एफ.आई.आर. में ऐसा आरोप लगाया गया था। आज दायर किए गए पूरक हलफनामे में एक विशिष्ट कथन शामिल है कि यह अभियोक्त्री है, जिसने पहले ही रिजवान नाम के एक व्यक्ति के साथ अपनी शादी कर ली है, जबकि वर्तमान आवेदक अभी भी कुंवारा है और इसलिए इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता कि शादी का वादा आवेदक ने खुद तोड़ा है।

11. सोनू सुभाष कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य 20210 सुप्रीम (एससी) 182 में, लगभग समान परिस्थितियों में जहां पक्षकार, जो वयस्क थे और लगभग डेढ़ साल की अवधि तक सहमति से संबंध में थे, यह पाया गया कि इस आशय का कोई आरोप नहीं था कि पीड़िता से शादी करने का वादा शुरू में झूठा था, मुख्य आरोपी को लाभ दिया गया था।

12. भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत दोषसिद्धि के खिलाफ दायर की गई **आपराधिक अपील संख्या 257/2023, नईम अहमद बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2023 लाइव लॉ (एससी) 66** में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने उसी सिद्धांत को दोहराते हुए स्पष्ट रूप से कहा किः

"20..... प्रतिवादियों की और से उठाए गए विवाद का मुख्य जड़ यह है कि अभियोक्ती ने तथ्य की गलत धारणा के तहत यौन संबंध के लिए अपनी सहमति दी थी, क्योंकि आरोपी ने आसे शादी करने का झूठा वादा किया था और बाद में उसने शादी नहीं की थी, और इसलिए ऐसी सहमति कानून की नजर में कोई सहमति नहीं थी और मामला भा.दं.सं. की धारा 375 के दूसरे खंड के अंतर्गत आता है। इस संबंध में, यह ध्यान रखना उचित है कि अभियुक्त द्वारा झूठा वादा करने और झूठा वादा करने और वादाखिलाफी करने में अंतर है। झूठे वादे के मामले में, शुरू से ही अभियुक्त का अभियोक्त्री से शादी करने का कोई इरादा नहीं होगा और धोखा दिया होगा या उसने केवल अपनी वासना को संतुष्ट करने के लिए उसने अभियोक्ती से शादी करने कर झूठा वादा करके उसे धोखा दिया होगा जबकि वादे के उल्लंघन के मामले में, कोई भी इस संभावना से इनकार नहीं कर सकता है कि आरोपी ने पूरी गंभीरता के साथ उससे शादी करने का वादा किया होगा, और बाद में उसके द्वारा अप्रत्याशित कुछ परिस्थितियों या उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों का सामना करना पड़ा होगा, जिसने उसे अपना वादा पूरा करने से रोका होगा। इसलिए, शादी के वादे के हर उल्लंघन

को झूठा वादा मानना और धारा 376 के तहत अपराध के लिए किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाना मूर्खता होगी। जैसा कि पहले कहा गया है, प्रत्येक मामला न्यायालय के समक्ष अपने सिद्ध तथ्यों पर निर्भर करेगा।"

13. वर्तमान मामले में, न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत करने का तथ्य, निश्चित रूप से आवेदक को अग्रिम जमानत के माध्यम से सुरक्षा के लिए इस न्यायालय से संपर्क करने से नहीं रोकता है।

14. सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2020) 5 एससीसी 1 में माननीय शीर्ष न्यायालय ने अग्रिम जमानत को हमेशा के लिए सीमित अवधि की आवश्यकता नहीं मानते हुए विवाद का निपटारा कर दिया है। उचित मामले में, यह मुकदमे के समापन तक जारी रह सकता है। इसमें आगे कहा गया है कि दी गई अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।

माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया है कि अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच की प्रक्रिया को प्रभावित करने या गवाहों को डराने-धमकाने सहित सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की संभावना, न्याय से भागने की संभावना, जैसे कि देश छोड़ने आदि पर विचार करना होगा।

आगे यह माना गया है कि न्यायालयों को आम तौर पर अग्रिम जमानत देने या इसे अस्वीकार करने पर विचार करते समय अपराध की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित होना चाहिए। अनुदान देना या न देना विवेक का विषय है।

15. उपर्युक्त सिद्धांत को दोहराते हुए, अमन प्रीत सिंह बनाम निदेशक के माध्यम से सी.बी.आई., 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 941 मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय ने अपने स्वयं के प्रस्ताव बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, (2004) 72 डीआरजे 629 पर न्यायालय में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक फैसले का जिक्र करते हुए, उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 11 में ऐसा कहा है।

"11.... जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है और दं.प्र.सं. की धारा 170 के तहत सामान्य सिद्धांत हैं, गैर-जमानती अपराध में एक आरोपी के संदर्भ में सबसे उपयुक्त टिप्पणियां उच्च न्यायालय के निर्णय के उप-पैरा (v) में हैं, जिनकी जांच अवधि के दौरान हिरासत की आवश्यकता नहीं थी। ऐसे परिदृश्य में, यह उचित है कि आरोपी को जमानत पर रिहा कर दिया जाए क्योंकि जांच के दौरान उसे गिरफ्तार नहीं किए जाने या हिरासत में पेश नहीं किए जाने की परिस्थितियां ही उसे जमानत पर रिहा करने के लिए पर्याप्त हैं। तर्क को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति कई वर्षों से स्वतंत्र है और उसे जांच के दौरान गिरफ्तार भी नहीं किया गया है, तो अचानक उसकी गिरफ्तारी का

निर्देश देना और केवल इसलिए जेल में डाल देना क्योंकि आरोप पत्र दायर किया गया है, जमानत देने के शासकीय सिद्धांतों के विपरीत होगा। हम इससे अधिक सहमत नहीं हो सके।"

16. निस्संदेह, यह दो बालिग व्यक्तियों के बीच सहमति से बने संबंध का मामला है। आवेदक को जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था और न ही जांच अधिकारी द्वारा हिरासत में लेने की आवश्यकता थी और अब आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, उपरोक्त कानूनी घोषणाओं के आलोक में और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलें, आरोप की प्रकृति, आवेदक की भूमिका, मामले के गुणदोष के बारे में कोई राय व्यक्त किए बिना, मेरे विचार में, यह मामले में मुकदमे की समाप्ति तक आवेदक को अग्रिम जमानत देने का उपयुक्त मामला है।

17. अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र **स्वीकार** किया जाता है।

18. उपरोक्त मामले में आवेदक की गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए 50,000/- रुपये का मुचलका और इतनी ही राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर मुकदमे के अंत तक अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा:-

(i) आवेदक को मामले में निर्धारित तिथि पर संबंधित न्यायालय के समक्ष स्वयं को उपलब्ध कराना होगा,

(ii) आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके;

(iii) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा और यदि उसके पास पासपोर्ट है, तो उसे संबंधित एस.एस.पी./एस.पी. के समक्ष जमा करना होगा।

19. किसी भी शर्त में चूक की स्थिति में, यह आवेदक को दी गई सुरक्षा को रद्द करने का आधार हो सकता है।

(2023) 8 ILRA 1241

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र (अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी) संख्या 7762/2023

राज कपूर **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...विपरीत पक्ष**

आवेदक के अधिवक्ता:
श्री बृजभूषण उपाध्याय

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता-1860-धारा 406,420,467 और 468- यदि शब्द 'सामान्यतः' को 'अनिवार्यतः' शब्द से प्रतिस्थापित किया जाए तो इसका अर्थ है कि यदि कोई अभियुक्त फरार है और उसे घोषित अपराधी घोषित किया गया है, तो उसे अपने बचाव में कुछ भी कहने का कोई अवसर नहीं है कि किन बाध्यकारी परिस्थितियों में वह न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और उसे घोषित अपराधी घोषित कर दिया गया और इसीलिए यदि अभियुक्त को घोषित अपराधी घोषित कर दिया गया है तो अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने पर कोई रोक नहीं है, लेकिन, यदि वह न्यायालय को अपनी सद्भावना के संबंध में संतुष्ट करने में असमर्थ है, तो इस मुद्दे पर विधि उस पर लागू होगा और उसे अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह एक घोषित अपराधी है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय के सम्मन से बचना तथा उसके अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना आवेदक की ओर से जानबूझकर किया गया चूक था और इसलिए, भले ही वर्तमान आवेदक अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने का हकदार माना जाता हो, वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है। (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) एवं अन्य, (2020) 5 एससीसी 1

2. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन सुप्रीम कोर्ट 955

3. लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2012) 8 सुप्रीम कोर्ट केस 730

4. सोवरन सिंह अदिति और 5 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 438 सीआरपीसी संख्या 3037/2023, 5.4.2023 को निर्णीत

5. एम.पी. राज्य बनाम प्रदीप शर्मा, (2014) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 171

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. यह प्रार्थना पत्र आवेदक **राज कपूर** की ओर से मुकदमा अपराध संख्या 396/2014, अन्तर्गत धारा 406, 420, 467, 468 भा0दं0सं0, थाना ताजगंज, जिला आगरा में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक निर्दोष है तथा उसे उपरोक्त प्रकरण में अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, जबकि उसके विरुद्ध कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है। आवेदक के विरुद्ध लगाए गए आरोप झूठे हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक ने आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 15335/2014 के माध्यम से इस न्यायालय में आवेदन किया था, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांक 5.9.2014 के आदेश द्वारा आवेदक को धारा 173(2) दं0प्र0सं0 के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक संरक्षण प्रदान किया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जांच अधिकारी ने प्रकरण में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके बाद संबंधित सर्किल अधिकारी के आदेशानुसार प्रकरण की पुनः जांच की गई तथा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया तथा संबंधित न्यायालय द्वारा उस पर संज्ञान भी लिया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सूचनाकर्ता बाबूलाल ने आवेदक के पक्ष में वैध पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की थी, जिसके आधार पर प्रश्नगत लेनदेन हुआ। यह भी कहा गया है कि उक्त लेनदेन में मुखबिर बाबूलाल के दोनों बेटे संबंधित दस्तावेज के सत्यापनकर्ता गवाह के रूप में उपस्थित हुए थे। यह भी कहा गया है कि आवेदक एक वृद्ध, अशक्त और बीमार व्यक्ति है और वह हृदय रोगी भी है। विवाद पूरी तरह से सिविल प्रकृति का है। आवेदक के खिलाफ धारा 82 दं0प्र0सं0 के तहत प्रक्रिया भी जारी की गई है। यह भी कहा गया है कि यदि आवेदक को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और जमानत की सभी शर्तों का पालन करेगा। अपने तर्कों के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **लवेश बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2012) 8 सर्वोच्च न्यायालय वाद 730** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

4. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने अग्रिम जमानत की प्रार्थना का विरोध किया तथा प्रस्तुत किया कि इस प्रकरण में जांच के पश्चात आवेदक के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है तथा जांच के दौरान उसके विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित किए गए हैं तथा अब उसे उद्घोषित अपराधी घोषित किया जा चुका है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वन्द्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है तथा सम्पूर्ण अभिलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।

6. इस प्रकरण में, अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि सूचनाकर्ता ने आगरा विकास प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहित भूमि के संबंध में आवेदक के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था , लेकिन सूचनाकर्ता की भूमि का कुछ हिस्सा आवेदक ने खुद को उक्त संपत्ति का मालिक बताते हुए 10.12.2013 को विक्रेता चंद्रपाल के पक्ष में बेच दिया था, जिसके परिणामस्वरूप

सूचनाकर्ता को भारी आर्थिक हानि हुई। उक्त भूमि को चंद्रपाल ने 3.1.2014 को किसी अन्य व्यक्ति को बेच दिया और उसके बाद 17.5.2014 को वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई। उक्त प्राथमिकी को आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 15335/2014 के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 5.9.2014 के आदेश के अनुसार धारा 173(2) दं0प्र0सं0 के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान किया गया था। जांच जारी रही और आवेदक के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिलने पर पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। हालांकि, पुनः जांच पूरी होने के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया तथा दिनांक 11.7.2017 को संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान भी लिया गया। आवेदक को समन जारी किया गया। चूंकि आवेदक संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए उसके खिलाफ बलपूर्वक कार्यवाही की गई तथा धारा 82 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही अभी भी जारी है।

7. **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) और अन्य, (2020) 5 एससीसी 1** में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद अग्रिम जमानत के लिए आवेदन की स्थिरता के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंततः यह मानते हुए विवाद को सुलझा लिया है कि अग्रिम जमानत हमेशा सीमित अवधि की नहीं होनी चाहिए। उचित प्रकरण में, यह मुकदमे के समापन तक जारी रह सकता है। इसमें आगे कहा गया है कि अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अग्रिम जमानत देने के आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच को प्रभावित करने या गवाहों को डराने-धमकाने सहित सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की संभावना, न्याय से भागने की संभावना, जैसे देश छोड़ना आदि पर विचार करना होगा। आगे कहा कि न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और प्रकरण के तथ्यों जैसे विचारों से निर्देशित होना चाहिए, जब वे अग्रिम जमानत देने या इसे अस्वीकार करने पर विचार करें। देना या न देना विवेक का विषय है।

8. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात दिनांक 11.7.2017 को मजिस्ट्रेट न्यायालय ने प्रकरण में संज्ञान लिया तथा आवेदक के विरुद्ध समन जारी किया गया; दिनांक 20.5.2019 को जमानती वारंट जारी किया गया तथा तत्पश्चात दिनांक 10.12.2021 को न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया गया ताकि आरोपी आवेदक की उपस्थिति सुनिश्चित की जा सके तथा उसके पश्चात दिनांक 17.2.2023 को धारा 82 दं0प्र0सं0 के अंतर्गत उसके विरुद्ध प्रक्रिया जारी की गई। दिनांक 8.6.2023 को सत्र न्यायालय, आगरा में अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया

जिसे सत्र न्यायालय द्वारा दिनांक 13.6.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया जिसमें आवेदक के विरुद्ध धारा 82 दं0प्र0सं0 के अंतर्गत प्रक्रिया जारी करने के संबंध में टिप्पणियां की गई थीं।

9. आवेदक का आचरण **प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन सर्वोच्च न्यायालय 955** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रख्यापित कानून के दायरे में आता है। इस प्रकरण के तथ्यों में, आरोपी के खिलाफ धारा 406, 420 भा0दं0सं0 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था और इस प्रकार यह स्पष्ट था कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया प्रकरण पाया गया था। रिकॉर्ड से पता चलता है कि आरोपी के खिलाफ मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था और उसके बाद मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में धारा 82, 83 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी। उसके बाद ही आरोपी ने अग्रिम जमानत के लिए अवर न्यायालय में आवेदन दिया, जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया। हालांकि, बाद में उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त आरोपी को अग्रिम जमानत दे दी गई

"19. गुण-दोष के आधार पर उपरोक्त टिप्पणियों के बावजूद और इस तथ्य के बावजूद कि यह उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था कि प्रतिवादी संख्या 2 - अभियुक्त फरार है और यहां तक कि दं0प्र0सं0 की धारा 82-83 के तहत कार्यवाही भी 10.01.2019 को ही शुरू कर दी गई है, उच्च न्यायालय ने उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं को अनदेखा कर दिया है और प्रतिवादी संख्या 2 - अभियुक्त को यह देखते हुए अग्रिम जमानत दे दी है कि आरोप की प्रकृति एक व्यापारिक लेनदेन से उत्पन्न हुई है। धोखाधड़ी आदि के विशिष्ट आरोप, जिन पर विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था, उन पर उच्च न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। यहां तक कि उच्च न्यायालय ने केवल यह देखते हुए दं0प्र0सं0 की धारा 82-83 के तहत कार्यवाही शुरू करने के तथ्य को अनदेखा कर दिया है कि "जैसा भी हो"। अग्रिम जमानत देने के उपरोक्त प्रासंगिक पहलू को उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए था और उच्च न्यायालय द्वारा इस पर बहुत गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था, न कि लापरवाही से।

20. **मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में, इस न्यायालय द्वारा यह देखा और माना गया है कि यदि किसी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत पाने का हकदार नहीं है।"

10. जहां तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लवेश बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2012) 8 सर्वोच्च न्यायालय केस 730**, **प्रेम शंकर प्रसाद केस (पूर्वोक्त)** में संदर्भित और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस पर भरोसा किया गया है, के प्रकरण में निर्धारित कानून का संबंध है, उक्त निर्णय का पैराग्राफ 12 इस प्रकार है :

"12. इन सामग्रियों और सूचनाओं से यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे "फरार" घोषित किया गया था। आम तौर पर, जब अभियुक्त "फरार" होता है और उसे "घोषित अपराधी" घोषित किया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया था और वह वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार है या खुद को छिपा रहा है और उसे संहिता की धारा 82 के अनुसार घोषित अपराधी घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।"

11. कानून के उपर्युक्त कथन से, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि यह एक सामान्य नियम है कि जब कोई अभियुक्त फरार हो जाता है और उसे घोषित अपराधी घोषित कर दिया जाता है, तो उसे अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं उठता। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक मुद्दा उठाया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लवेश** (पूर्वोक्त) के उक्त निर्णय के ऊपर उद्धृत पैराग्राफ 12 में 'सामान्य रूप से' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जो इस बात पर जोर देता है कि ऐसा कोई सामान्य कानून नहीं है कि घोषित अपराधी को हमेशा अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती है और सामान्य रूप से यह वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार या खुद को छिपाने वाले अभियुक्त को दी जानी चाहिए।

12. उपर्युक्त दलील के आलोक में, यदि 'सामान्यतः' शब्द को 'अनिवार्यतः' शब्द से प्रतिस्थापित किया जाए तो इसका अर्थ है कि यदि कोई अभियुक्त फरार है और उसे अपराधी घोषित किया गया है, तो उसे अपने बचाव में यह कहने का कोई अवसर नहीं है कि किन मजबूरीपूर्ण परिस्थितियों में वह न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और उसे अपराधी घोषित किया गया और इसीलिए अभियुक्त को अपराधी घोषित किए जाने की स्थिति में अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने पर कोई रोक नहीं है, लेकिन, फिर भी, यदि वह न्यायालय को अपनी सद्भावना के बारे में संतुष्ट करने में असमर्थ है , तो इस मुद्दे पर कानून उस पर लागू होगा और उसे अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह अपराधी घोषित है। जहां तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय के समन से बचने और उसके अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए आवेदक की ओर से जानबूझकर चूक की गई थी और इसलिए, भले ही वर्तमान आवेदक को अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत करने का हकदार माना जाता हो, लेकिन वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है। इसलिए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुति लावेश (पूर्वोक्त) में प्रख्यापित कानून की पूर्णतः गलत व्याख्या है।

13. लगभग इसी तरह के प्रकरण में, इस न्यायालय ने प्रासंगिक कानूनों से निपटा है जिसमें एक ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्मान को सुनिश्चित करने और दूसरी ओर

न्यायालय की प्रक्रिया का पालन करने में जानबूझकर चूक के प्रभाव पर जोर दिया गया है और यह इस न्यायालय द्वारा **आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 438 दं0प्र0सं0 संख्या 3037/2023, सोवरन सिंह अदिति और 5 अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य**, 5.4.2023 को निर्णीत किए गए (उक्त निर्णय के पैराग्राफ 13,14,15 और 16) में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"13. साथ ही, जब हम 'अग्रिम जमानत' के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं , तो हम पाते हैं कि उक्त शब्द का प्रयोग धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत नहीं किया जाता है । जो सक्षम प्रावधान को समाहित करता है। इसे गिरफ्तार होने की आशंका के रूप में लिया जा सकता है। गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 565 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के ऐतिहासिक फैसले में , यह था कि "अग्रिम जमानत मांगने वाला व्यक्ति अभी भी एक स्वतंत्र व्यक्ति है जो निर्दोषता की धारणा का हकदार है। वह अपनी स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों और शर्तों को स्वीकार करने के लिए तैयार है, उन शर्तों को स्वीकार करके जिन्हें न्यायालय लागू करना उचित समझे, इस आश्वासन पर विचार करते हुए कि अगर गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा"।
सिद्धराम के प्रकरण में सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 1 एससीसी 694 में निम्नानुसार निर्णय दिया गया:

"14. उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह स्पष्ट है कि धारा 438 दं0प्र0सं0 को दं0प्र0सं0 में शामिल करने का उद्देश्य एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आजादी के महत्व को मान्यता देना था। जब हम इस धारा का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते हैं , तो विधायिका की बुद्धिमत्ता बिल्कुल स्पष्ट और स्पष्ट हो जाती है कि विधायिका व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक थी और साथ ही इस पुराने सिद्धांत पर जोर दिया कि किसी व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे न्यायालय द्वारा दोषी नहीं पाया जाता है"।

15. **सिब्बिया प्रकरण (पूर्वोक्त)** में , जहां माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत की अवधारणा के दायरे और दायरे से व्यापक रूप से निपटने का अवसर मिला था, यह देखा गया था कि धारा 438 दं0प्र0सं0 एक असाधारण प्रावधान है, जहां आरोपी को गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, उसे गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत दी जा सकती है, जो निस्संदेह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है, लेकिन इस तरह के विवेक का प्रयोग प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित सावधानी, सतर्कता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। निस्संदेह इसे चार्जशीट दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रखा जा सकता है।

16. अग्रिम जमानत का विचार किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धांत को मजबूत करता है, लेकिन अगर न्यायालय के समक्ष यह स्पष्ट है कि ऐसा व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर सकता है या कर

चुका है, तो ऐसे व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने से इनकार करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है। न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करते हुए फरार होना व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गंभीर दुरुपयोग है और इसीलिए, "यदि किसी व्यक्ति को धारा 82 दं0प्र0सं0 के अनुसार फरार/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, " जैसा कि **मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एससीसी 171** में कहा गया है, "तो वह अग्रिम जमानत दिए जाने का हकदार नहीं है।"

14. इसके अलावा, **लवेश** (पूर्वोक्त) में पारित निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा, (2014) 2 सर्वोच्च न्यायालय वाद 171** में संदर्भित किया गया था और लावेश (पूर्वोक्त) के निर्णय के पैराग्राफ 12 का उल्लेख करते हुए, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 16 में, यह देखा गया था, जिसका प्रासंगिक हिस्सा निम्नानुसार है :

"16.....उपर्युक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि यदि किसी को धारा 82 के अन्तर्गत भगोड़ा/उद्घोषित अपराधी घोषित किया जाता है तो वह अग्रिम जमानत की राहत पाने का हकदार नहीं है।"

15. उपरोक्त चर्चाओं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून तथा आवेदक के आचरण को ध्यान में रखते हुए, मैं वर्तमान आवेदक को अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त प्रकरण नहीं समझता। ऐसा व्यक्ति, जो न्यायालय/जांच एजेंसी के साथ सहयोग नहीं करता है तथा न्यायालय की प्रक्रिया का जानबूझकर उल्लंघन करता है, इस न्यायालय से अग्रिम जमानत के माध्यम से राहत पाने के किसी भी अधिकार से वंचित हो जाता है। प्रार्थना पत्र में की गई प्रार्थना अस्वीकार किए जाने योग्य है।

16. अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1247

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

आपराधिक प्रकीर्ण प्रथम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 23551/2023

विवेक कुमार मौर्य ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:
ओम नारायण पांडे

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता, श्री लक्ष्मण त्रिपाठी

आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा-439 - भारतीय दंड संहिता-1860-धारा 90, 323 और 375- आवेदक के साथ अपने पैतृक घर से बार-बार भागने और दिल्ली, लखनऊ, मुगलसराय और आवेदक के रिश्तेदारों के यहां जाने के अभियोजन पक्ष के आचरण से

पता चलता है कि वह पूरी तरह से सहमति देने वाली पार्टी थी- आवेदक जहां भी अभियोजन पक्ष को ले गया, उसने आवेदक के साथ उसके कोर्ट मैरिज से पहले और बाद में बिना किसी जोर-जबरदस्ती के शारीरिक संबंध बनाने की बात स्वीकार की, इसलिए उसकी सहमति आईपीसी की धारा 90 के तहत कवर नहीं की गई, न ही आवेदक द्वारा अभियोजन पक्ष के साथ बनाया गया शारीरिक संबंध आईपीसी की धारा 375 के अनुसार बलात्कार की परिभाषा में आएगा- उसके शारीरिक उत्पीड़न के आरोपों का किसी भी मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थन नहीं किया गया है। एफआईआर में घर के साथ किए गए व्यवहार का कोई सबूत नहीं हो सकता, लेकिन आईपीसी की धारा 323 के तहत आरोप लगाने को उचित ठहराने के लिए ऐसा आरोप लगाया गया।

जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है । (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, एसएलपी (आपराधिक) संख्या 5191/2021 में पारित

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ द्वारा पारित)

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री लक्ष्मण त्रिपाठी एवं सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वत ए.जी.ए को सुना।

2. अपीलार्थी **विवेक कुमार मौर्या** की ओर से तत्काल जमानत आवेदन इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया है, कि उसे मामला अपराध संख्या 143 /2020 के अन्तर्गत धारा 363, 366, 376, 323, 504, 506, 354, 354-ए आईपीसी व 3/4 पॉक्सो एक्ट के तहत थाना सारनाथ, जिला वाराणसी में मामले के लंबित रहने के दौरान जमानत पर रिहा किया जाये।

3. अपीलार्थी के खिलाफ शादी के इरादे से नाबालिग लड़की का अपहरण, बलात्कार का अपराध करना, पीटना, धमकी देना, उसकी गरिमा को ठेस पहुचाना एवं यौन उत्पीड़न और यौन हमले के आरोप हैं।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप है कि वाराणसी निवासी पीड़िता जब बीएससी पार्ट-1 की छात्रा थी, तो उसे शादी का झूठा वादा कर लगभग एक वर्ष तक अपीलार्थी के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए मजबूर किया गया। जब भी अभियोजन पक्ष अपीलार्थी से उनकी शादी के बारे में बात करता था तो वह उसके अनुरोध को टाल देता था। पर दिनांक 3.5.2019 को जब अभियोक्त्री कॉलेज जा रही थी तो सुबह 7 बजे अपीलार्थी उसे रास्ते से बहला फुसला कर अपनी मौसी के घर दिल्ली ले गया जहां उसने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए। अभियोक्त्री के पिता ने दिनांक 4.5.2019 को प्रार्थी द्वारा उसके अपहरण किये जाने का आवेदन थाने में दिया। इसके बाद अपीलार्थी के पिता और मां ने पीड़िता के पिता और मां पर दबाव डाला और उन्होंने अपने बेटे, अपीलार्थी के खिलाफ पुलिस के सामने कोई भी बयान देने पर उन्हें जान से

मारने की धमकी दी। इसलिए, पीड़िता के पिता ने 7.5.2019 को पुलिस को दी गई शिकायत वापस ले ली और पीड़िता को अपीलार्थी और सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उसके घर वापस छोड़ दिया गया, लेकिन अपीलार्थी की गतिविधियों में कोई बदलाव नहीं आया। फिर जब भी अभियोक्त्री के घर पर कोई नहीं होता था तो अपीलार्थी आता था और शादी का झूठा वादा करके अभियोक्त्री के साथ शारीरिक संबंध बनाता था। 27.8.2019 को सुबह 8 बजे अपीलार्थी पीड़िता को रजिस्ट्रार के पास ले गया और अपनी शादी का पंजीकरण कराया। इसके बाद वह पीड़िता को लखनऊ ले गया जहां उसने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए। चार दिन बाद उसने फिर से पीड़िता के साथ शारीरिक संबंध बनाए और उसे *धर्मशाला के* मुगलसराय ले आया एवं वहां भी वही कृत्य दोहराया। अगले दिन वह उसे वाराणसी के लंका स्थित एक कमरे में ले गया; फिर उसके मामा के घर मडुवाडीह में जहां उसने उसके खिलाफ वही अपराध दोहराया। उसने मामा के घर पर उसने उसे अपने चचेरे भाई(मामा के बेटे) के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए भी मजबूर किया. जब उक्त मामा के पुत्र *ने* उसे गलत तरीके से छुआ तो उसने शोर मचा दिया, इसके बाद अपीलार्थी और उसके मामा के बेटे ने उसके साथ गाली-गलौज और मारपीट की। अपीलार्थी का कहना था कि उसने उससे केवल शारीरिक भोग के लिए शादी की है। इसके बाद अपीलार्थी ने उससे कहा कि चले जाओ नहीं तो जहर देकर मार दिया जायेगा। अपीलार्थी ने अपने पिता, चाचा और भाई को बुलाया, जो सह-अभियुक्त हैं, और उन सभी ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसका यौन उत्पीड़न किया। उन्होंने 5.9.2019 की रात 11 बजे उसके साथ मारपीट की और उसे घायल हालत में सड़क पर फेंक दिया। राहगीरों ने उसकी मदद की और उसने अपनी मां को बुलाया और वह उसे अपने घर ले गई। इसके बाद उनकी मां ने घर पर ही घरेलू दवाइयों से उनका इलाज किया। 6.9.2019 को आरोपी फिर से उसके घर आए और पुलिस में शिकायत करने पर पीड़िता और उसके परिवार को जान से मारने की धमकी दी। 18.2.2020 को फिर से सह-अभियुक्त व्यक्ति उसके घर आए और उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसके परिवार को अपना गांव छोड़कर चले जाने के लिए कहा। इसके बाद स्वयं अभियोजन पक्ष की ओर से दिनांक 3.5.2019 की घटना के संबंध में 9.3.2020 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई।

5. अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए पीड़िता के बयान में, उसने खुद दावा किया है कि उसकी उम्र लगभग 19 वर्ष है और वह बी.एससी. भाग- I की छात्रा है। इसलिए पुलिस द्वारा अपीलार्थी को धारा ¾ पॉस्को अधिनियम के तहत झूठा फंसाया गया। उसने स्वीकार किया कि अपीलार्थी के साथ उसका पिछले एक साल से अफेयर था। अपीलार्थी ने उससे शादी करने के लिए अपना घर छोड़ने के लिए कहा। वह अपना घर छोड़कर दिल्ली चली गई और फिर अपीलार्थी की मौसी के घर गई जहां उसने सहमति से अपीलार्थी के साथ शारीरिक संबंध बनाए। इसके बाद उसके परिजन आये और उसे वापस ले गये। अपीलार्थी ने उसे विवाह के उद्देश्य

से कचहरी बुलाया। इसके बाद अपीलार्थी उसे लखनऊ और फिर मुगलशरी ले गया और फिर वे वाराणसी लौट आए। उसे उसके माता-पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध कैद में रखा था। इसके बाद दोनों के परिवार के सदस्यों के बीच विवाद हुआ और अभियोजन पक्ष अपीलार्थी से अलग हो गया और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थी और पीड़िता के विवाह पंजीकरण प्रमाणपत्र को प्रस्तुत किया, जिससे पता चलता है कि उनका कोर्ट विवाह 11.8.2019 को हुआ था। अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी को झूठा फंसाने के लिए ही उसके खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई है। वह अपीलार्थी की पत्नी है और बिना तलाक लिए सही तथ्य छिपाकर झूठे आरोप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में शामिल हुई है। अपीलार्थी ने अभियोजन पक्ष के खिलाफ वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए वर्ष 2019 में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत आवेदन दायर किया है। वह 16.1.2023 से जेल में है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

7. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि घटना के समय पीड़िता नाबालिग थी। उसकी जन्म तिथि 10.7.2001 है, घटना प्रारंभ में 3.5.2019 को हुई थी। आरोपों की गंभीरता और शादी का झूठा वादा करके बार-बार बलात्कार का अपराध करना अपीलार्थी को जमानत देने का अधिकार नहीं देता है। उसने एक मासूम और बेबस लड़की की जिंदगी बर्बाद कर दी है।

8. विद्वत ए.जी.ए ने भी जमानत देने के लिए अपीलार्थी की प्रार्थना का विरोध किया है, लेकिन उपरोक्त तथ्यों पर प्रतिवाद नहीं कर सका।

9. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट झूठे आरोपों और गलत तथ्यों के आधार पर दर्ज की गई है। अभियोजन पक्ष ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का पूरी तरह से समर्थन नहीं किया है। अपीलार्थी के चचेरे भाई द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में आरोप (मामा का बेटा) गायब है। नया आरोप यह लगाया गया है कि अपीलार्थी के सह-अभियुक्त परिवार के सदस्यों ने उसे कोरे कागज पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। अभियोक्त्री और अपीलार्थी का विवाह पंजीकृत किया गया था। कोई तलाक, विवाह विच्छेद या अदालत के माध्यम से जोड़े का न्यायिक अलगाव नहीं हुआ है।

10. इस अदालत ने पाया कि अदालतों में बड़ी संख्या में ऐसे मामले आ रहे हैं जिनमें लड़कियां और महिलाएं आरोपी के साथ लंबे समय तक शारीरिक संबंध बनाने के बाद झूठे आरोपों पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करके अनुचित लाभ उठाती हैं। समय आ गया है कि अदालतें ऐसी जमानत अर्जियों पर विचार करते समय बहुत सतर्क रहें। यह कानून पुरुषों के प्रति अत्यधिक पक्षपाती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई भी अनर्गल आरोप लगाना और

वर्तमान मामले की तरह किसी को भी ऐसे आरोपों में फंसाना बहुत आसान है।

11. प्रथम सूचना रिपोर्ट अनिवार्य रूप से कानून के विभिन्न प्रावधानों के तहत निहितार्थ के लिए एक स्पष्ट मामला बनाने के लिए आवश्यक सभी आवश्यक सामग्रियों को शामिल करते हुए विशेषज्ञ के साथ उचित परामर्श के बाद दर्ज की जाती है। धारा 154(1) सीआरपीसी के तहत सीधे थाना प्रभारी को मौखिक रूप से सूचना देने पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती है। धारा इस प्रकार है

"154. संज्ञेय मामलों में सूचना.

(1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे, जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन अभिलिखित इत्तिला की प्रतिलिपि, इत्तिला देने वाले को तत्काल निःशुल्क जाएगी।

(3) ....."

12. एफआईआर दर्ज करने का काम हमेशा पुलिस स्टेशन में लिखित आवेदन देकर किया जाता है, जिसमें वर्तमान मामले की तरह हमेशा झूठे फंसाए जाने का खतरा रहता है। ऐसे आवेदनों का मसौदा अदालतों या विशेषज्ञों द्वारा या थाने के *मुंशी*वरिष्ठ लिपिक के द्वारा तैयार किया जाता है। विशेषज्ञ दंडात्मक कानून के प्रत्येक प्रावधान की सामग्री से अवगत हैं। वे आरोपों को इस तरह से शामिल करते हैं ताकि आरोपी को आसानी से और जल्दी जमानत भी न मिल सके। प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों पर बस एक सरसरी नज़र ही न्यायालय के बिना अपने विवेक के इस्तेमाल किए फाइल को खारिज करने के लिए पर्याप्त है। राज्य की स्थिति चिंताजनक अनुपात में बढ़ गई है। एक ईमानदारी से लिखी गई प्रथम सूचना रिपोर्ट बहुत संक्षिप्त और किसी भी अनावश्यक और झूठे आरोप से रहित होती है। यह परीक्षा है, लेकिन इसका एहसास कभी कभी ही होता है।

13. सोशल मीडिया, फिल्मों, टीवी शो आदि द्वारा फैलाई जा रही खुलेपन की संस्कृति का अनुकरण किशोर/युवा लड़के-लड़कियां कर रहे हैं, लेकिन जब उनका आचरण भारतीय सामाजिक और पारिवारिक मानदंडों के विपरीत आता है और सम्मान की रक्षा की बात आती है लड़की के परिवार और लड़की के सम्मान के लिए ऐसी दुर्भावनापूर्ण झूठी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाती है। ऐसी प्रथम सूचना रिपोर्ट तब भी दर्ज की जाती है जब कुछ समय/लंबे समय तक लिव-इन रिलेशनशिप में रहने के बाद लड़के और लड़की के बीच किसी मुद्दे पर विवाद हो जाता है। समय के साथ पार्टनर का

स्वभाव दूसरे पार्टनर के सामने उजागर होता है और फिर जब उन्हें एहसास होता है कि उनका रिश्ता जीवन भर नहीं चल सकता, तो परेशानी शुरू हो जाती है। चूंकि कानून की सुरक्षा की बात आती है तो लड़कियों/महिलाओं का दबदबा होता है, इसलिए वे वर्तमान प्रकृति के मामले में किसी लड़के या पुरुष को फंसाने में आसानी से सफल हो जाती हैं। ऐसे अपराधों की पारंपरिक धारणा अप्रासंगिक हो गई है। किशोरों में जागरूकता का स्तर बढ़ाने और तुलनात्मक रूप से कम उम्र में मासूमियत खोने में सोशल मीडिया, फिल्मों आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। निर्दोषता की पारंपरिक धारणा ने मासूमियत के असामयिक नुकसान को जन्म दिया है जिसके परिणामस्वरूप किशोरों का अप्रत्याशित विचलित व्यवहार सामने आया है जिस पर कानून ने पहले कभी विचार नहीं किया था। कानून एक गतिशील अवधारणा है और ऐसे मामलों में बहुत गंभीरता से पुनर्विचार की आवश्यकता होती है।

14. यह अदालत यह मान रही है कि ऐसे यौन अपराधों के वास्तविक मामले अब अपवाद हैं। सामान्य नियम यौन अपराधों के मामलों में झूठा फंसाने का है। मामले में निहितार्थ यौन अपराध की सुनवाई से पहले सजा का एक निश्चित तरीका है। आम तौर पर जमानतें आसानी से और जल्दी नहीं मिलतीं। जिन मामलों में पाॅस्को एक्ट के तहत मामला बनता है, वहां स्थिति और भी खराब हो जाती है। आरोपियों का कुछ महीने या सालों तक जेल में रहना तय है. न्यायिक अधिकारियों को उनके प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षण अभी भी यौन अपराधों के मामलों में जमानत की पुरानी अवधारणा के अनुरूप है। जमीनी हकीकत पर नजर रखे बिना एफ.आई.आर. में सभी बेबुनियाद आरोपों को ईश्वरीय सत्य मानना बहुत अन्याय का कारण बन रहा है।

15. अदालतें और न्यायाधीश समाज का हिस्सा हैं. कानून लागू करते समय समाज में क्या हो रहा है यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। जहां भी कोई अपराध होता है, विशेषज्ञ (ज्यादातर जिला अदालत में अधिवक्ता या *मुंशी*/ पुलिस स्टेशन के वरिष्ठ लिपिक) से परामर्श किया जाता है। वह एक आरोपी के परिवार के सदस्यों, उसके प्रभावशाली दोस्तों और शुभचिंतकों, स्थानीय और बाहर उपस्थित लोगों के बारे में पूछताछ करता है। वह यह भी पता लगाता है कि सूचना देने वाले पक्ष की किसी से दुश्मनी है या वह किससे हिसाब बराबर करना चाहता है। फिर विशेषज्ञ उन सभी को फंसाता है जिनके साथ मुखबिर/ शिकायतकर्ता को अन्य शिकायतें हैं, शिकायत किए जा रहे अपराध से संबंधित नहीं हैं, क्योंकि एक झटके में सभी दुश्मनों के खिलाफ शिकायत/एफआईआर दर्ज करना एक अवसर के रूप में भुनाया जाता है। एफ.आई.आर. में उनकी भूमिकाओं को इतनी बारीकी से दिखाया गया है कि अनुभवी से अनुभवी न्यायधीश भी लड़खड़ा जाते हैं। जिला स्तर की अदालतों के लिए, उच्च न्यायालयों द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के डर से ऐसे गंभीर और सावधानीपूर्वक लगाए गए आरोपों के मामलों में जमानत देना काफी खतरनाक है। यह इनमें से एक है

यही वजह है कि जिला अदालतें ज्यादातर मामलों में सिर्फ आरोपों की गंभीरता के कारण जमानत देने से भी इनकार कर देती हैं। आरोप प्रथम दृष्टया विश्वसनीय हैं या साबित हैं या नहीं, यह उनके स्तर पर बहुत प्रासंगिक नहीं है। वे राहत देने से इनकार करके ऐसे मामलों से छुटकारा पा लेते हैं, जो कि उनके प्रशिक्षण संस्थान में उनकी सेवा में शामिल होने की दहलीज पर उनके प्रशिक्षण का भी हिस्सा है। एफ.आई.आर./शिकायत का मसौदा तैयार करने वाले विशेषज्ञ की भूमिका के कारण इस प्रकार अन्याय होता है। यदि घटना के तुरंत बाद शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता का ईमानदार बयान पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा लिखित रूप में दर्ज किया जाता है और रिपोर्ट दर्ज करने में विशेषज्ञ की भूमिका को बाहर रखा जाता है, तो झूठे आरोप लगाने के मामलों में कमी आएगी।

16. अब वर्तमान मामले पर वापस आते हुए इस अदालत ने पाया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के शुरुआती भाग में मुख्य आरोप शादी के झूठे वादे पर अपीलार्थी के साथ अभियोजक के साथ शारीरिक संबंध बनाने का है। यह आरोप तब गलत साबित हुआ जब एफआईआर के बाद के भाग में अभियोजक ने स्वीकार किया कि अपीलार्थी ने उसके साथ कोर्ट मैरिज की थी।

17. इसके बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियोजन पक्ष द्वारा लगाया गया नया आरोप यह है कि जब अपीलार्थी उसे अपने मामा के घर ले गया जहां पर उसने पीड़िता से उसके मामा के बेटे के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए कहा। उसने कहा कि उसने उससे केवल शारीरिक आनंद के लिए शादी की है, लेकिन सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज पीड़िता के बयान में यह आरोप गायब है।

18. अभियोक्त्री का अपीलार्थी के साथ अपने माता-पिता के घर से बार-बार भागने और दिल्ली, लखनऊ, मुगलसराय और अपीलार्थी के रिश्तेदारों के स्थानों पर जाने के आचरण से पता चलता है कि वह पूरी तरह से एक सहमति वाली पार्टी थी। कोर्ट मैरिज के बाद अपीलार्थी अपनी शादी को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के लिए उसे अपने रिश्तेदारों के यहां ले गया, लेकिन उसके बाद उनके बीच कुछ गलत हो गया, जिसके कारण अपीलार्थी को इस मामले में फंसाना पड़ा।

19. सभी स्थानों पर जहां अपीलार्थी अभियोक्त्री को ले गया, उसने कोर्ट मैरिज से पहले और बाद में बिना किसी दबाव के अपीलार्थी के साथ शारीरिक संबंध बनाने की बात स्वीकार की, इसलिए उसकी सहमति आईपीसी की धारा 90 के तहत कवर नहीं की गई, न ही उसके द्वारा बनाया गया शारीरिक संबंध। अभियोक्त्री के साथ अपीलार्थी आईपीसी की धारा 375 के अनुसार बलात्कार की परिभाषा के अंतर्गत आएगा। यहां, जोड़े के बीच शारीरिक संबंध का आधार बनने वाले विवाह के वादे का अपीलार्थी द्वारा सम्मान किया गया, जो कि एफआईआर में ही स्वीकार किया गया है।

20. उसके शारीरिक उत्पीड़न के आरोप किसी भी मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं हैं। प्राथमिकी में यह आरोप लगाया गया है कि पीड़िता की चोटों का इलाज उसकी मां ने घर

पर किया था। यह एक विशेषज्ञ द्वारा एफआईआर की सावधानीपूर्वक ड्राफ्टिंग को भी साबित करता है। घरेलू उपचार का कोई सबूत नहीं हो सकता है, लेकिन आईपीसी की धारा 323 के तहत निहितार्थ को सही ठहराने के लिए ऐसा आरोप लगाया गया था।

21. अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, अभियुक्त की संलिप्तता को ध्यान में रखते हुए; ऊपर उल्लिखित पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलें; अपीलार्थी के विद्वान वकील द्वारा की गई दलीलों में बल पाया गया ; परीक्षण के समापन के संबंध में अनिश्चितता को ध्यान में रखते हुए; आरोपी पक्ष के मामले को नजरअंदाज कर पुलिस की एकतरफा जांच; विचाराधीन अपीलार्थी के पास त्वरित सुनवाई का मौलिक अधिकार है; भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का बड़ा अधिदेश है कि; उच्चतम न्यायालय के आदेश पर विचार करते हुए *सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई. में एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 5191/2021* ***में पारित*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का हालिया दिनांकित 11.07.2022 के निर्णय पर विचार किया गया; जेलों में उनकी क्षमता से 5-6 गुना अधिक कैदियों की भीड़ को देखते हुए और मामले की मेरिट पर कोई राय व्यक्त किए बिना,अदालत का मानना है कि अपीलार्थी ने जमानत के लिए उपयुक्त मामला है अतः जमानत आवेदन केा अनुमति दी जाती है।

21. अपीलार्थी को निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार व्यक्तिगत बन्धपत्र और समान राशि की दो प्रतिभूतियां प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाएगा। इसके अलावा, रिहाई आदेश जारी करने से पहले, प्रतिभूतियों का सत्यापन किया जाना चाहिए।

1. अपीलार्थी जांच या मुकदमे के दौरान गवाहों को डराने/दबाव देकर अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

2. अपीलार्थी किसी भी स्थगन की मांग किए बिना ईमानदारी से मुकदमे में सहयोग करेगा।

3. अपीलार्थी जमानत पर रिहा होने के बाद किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा या कोई अपराध नहीं करेगा।

4. अपीलार्थी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके;

5. अपीलार्थी को इस आशय का एक वचन पत्र दाखिल करना होगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों और गवाहों के अदालत में उपस्थित होने पर किसी भी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त में चूक की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानेगा और अपीलार्थी की उपस्थिति सुनिश्चित

करने के लिए कानून के अनुसार आदेश पारित करेगा।

6. अपीलार्थी (i) मामले को खोलने, (ii) आरोप तय करने और (iii) सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में इस शर्त में चूक जानबूझकर या बिना पर्याप्त कारण के की गई है, तो विचारण न्यायालय के लिए यह उपलब्ध होगा कि वह इस तरह की चूक को उसकी जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग माने और उसके खिलाफ कानून के अनुसार आगे बढ़े।

22. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन पर, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा।

(2023) 8 ILRA 1252

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 7436/2023

गुड्डू चौहान ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री ज़ीशान मज़हर, श्री अभिषेक चंद्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

ए. आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226- यूपी गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970-धारा 3- रद्द करना - यूपी गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 3 के तहत याचिकाकर्ता को जारी नोटिस और याचिकाकर्ता के खिलाफ छह महीने के लिए निर्वासन आदेश पारित किया गया- विद्वान अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने कमिश्नर के समक्ष यूपी गुंडा नियंत्रण अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत एक आपराधिक अपील दायर की, जिन्होंने आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और अपील को बिना किसी बल के पाया और अपील को खारिज कर दिया- माना, चूंकि याचिकाकर्ता को वर्ष 2019 में यूपी गोहत्या निवारण अधिनियम की धारा 3/5ए/8 के तहत दर्ज एकल मामले के आधार पर नोटिस जारी किया गया था और ऐसा नोटिस अधिनियम 1970 की धारा 2 (बी) की कानूनी आवश्यकता से कम है- इसलिए, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। (पैरा 1 से 14)

ख. इस न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परिभाषा और विधि के अनुसार, किसी व्यक्ति को तब तक आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता जब तक कि अपराध की पुनरावृत्ति न हो और अधिक से अधिक उस व्यक्ति की सामान्य प्रतिष्ठा यह हो कि वह हताश है और समुदाय के लिए खतरनाक है। चूँकि इस मामले में याचिकाकर्ता

के विरुद्ध केवल एक चरम घटना का उल्लेख है, इसलिए केवल उस एक घटना के आधार पर याचिकाकर्ता को आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता, इसलिए यह नोटिस 1970 के अधिनियम की धारा 2(ख) के खंड (1) में प्रदत्त कानूनी आवश्यकता से कम है (पैरा 12) ।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1984) 3 एससीसी 14

2. भीम सैन त्यागी त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1999 (39) एसीसी 321

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा पारित)

1. निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना करते हुए तत्काल रिट याचिका दायर की गई है:

"(i) मामला संख्या 249 /2022 (गुड्डू चौहान बनाम अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट और अन्य) में आयुक्त विंध्याचल मंडल, मिर्ज़ापुर द्वारा पारित दिनांकित 31.3.2022 आदेश, उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत, वाद संख्या 0321/2020 (राज्य बनाम गुड्डु चौहान) में अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), भदोही द्वारा पारित दिनांकित 3.1.2022 आदेश के साथ, धारा 3(1) के अंतर्गत उत्तर प्रदेश नियंत्रण अधिनियम एवं, अपर जिला मजिस्ट्रेट, भदोही द्वारा उत्तर प्रदेश नियंत्रण अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत पारित की गयी नोटिस दिनांक 22.6.2020 को अपास्त करते हुए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

2. आदेश दिनांकित 3.1.2022 के माध्यम से अपर जिला मजिस्ट्रेट, भदोही ने याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, 1970 की धारा 3 के तहत नोटिस जारी किया और जिला भदोही के याचिकाकर्ताओं के खिलाफ छह महीने के लिए निर्वासन आदेश पारित किया। विद्वान अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, भदोही द्वारा पारित आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश गुंडा नियंत्रण अधिनियम, की धारा 3(1) के तहत आयुक्त विंध्याचल मंडल, मिर्ज़ापुर के समक्ष आपराधिक अपील दायर की। विद्वान आयुक्त ने विद्वान एडीएम द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की वैधता और सत्यता की जांच की, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार किया और अपील को बिना किसी बल के पाया और अपील खारिज कर दी। अपील में आक्षेपित आदेश की पुष्टि की गई।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना, राज्य के विद्वान एजीए को सुना और अभिलेख पर उपस्थित सामग्री का अवलोकन किया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यूपी गुण्डा नियंत्रण अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत नोटिस जारी करने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ उ.प्र. गुण्डा नियंत्रण अधिनियम की धारा 3 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ की गयी। जिसमें कहा

गया कि एस.एच.ओ. गोपीगंज/एस.पी. भदोही ने उन्हें बताया कि ग्राम महुआरी, थाना गोपीगंज, जिला भदोही निवासी लल्लू चौहान का पुत्र गुड्डु चौहान एक गुंडा है, जो या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में आदतन अपराध करता है या अपराध करने का प्रयास करता है या ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है जो भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVI, अध्याय XXII के तहत दंडनीय अपराध है। उन्हें आम तौर पर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जाना जाता है जो हताश है और समुदाय के लिए ख़तरा है। उसकी गतिविधियां इलाके के लोगों की जान-माल के लिए खतरनाक हैं। गवाह अपने व्यक्ति और संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में आशंका के कारण उसके खिलाफ सबूत देने के लिए आगे आने को तैयार नहीं हैं। 24.8.2019 को अपराध संख्या 194/2019 के तहत गोवध अधिनियम की धारा 3/5ए/8 और पशु क्रूरता अधिनियम की धारा 11 के तहत मामला दर्ज किया गया, जब एक उप-निरीक्षक ने उसके पास से चार गाय की बछड़े बरामद किया। जो अमानवीय एवं क्रूर तरीके से पंजीकरण संख्या यूपी-66-टी-88-72 वाले वाहन पर लादे गए थे। याचिकाकर्ता को 2.7.2020 को सुबह 10:00 बजे उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। उक्त नोटिस के अनुसरण में अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होकर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करें। उन्हें अपने पक्ष के समर्थन में स्वयं या किसी अन्य गवाह से परीक्षण करने का अवसर भी दिया गया। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश में पाया कि नोटिस की पर्याप्त तामील के बाद भी, विरोधी पक्ष व्यक्तिगत रूप से या वकील के माध्यम से उनके सामने उपस्थित होने में विफल रहा और पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट का अवलोकन करने के बाद, वह संतुष्ट थे कि विपरीत पक्ष एक व्यक्ति है, जो समाज के प्रति क्रूर है और उसका कृत्य यूपी गुंडा एक्ट का नियंत्रण के दायरे में आता है और इस निष्कर्ष पर उन्हें छह महीने की अवधि के लिए जिला भदोही की सीमा से बाहर करने का निर्देश दिया गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने मिर्ज़ापुर में विद्वान आयुक्त विंध्याचल डिवीजन के समक्ष एडीएम द्वारा पारित निर्वासन आदेश का विरोध किया। जिन्होंने याचिकाकर्ता और राज्य के अधिवक्ता की दलीलें सुनने के बाद अपील को खारिज कर दिया और विद्वान एडीएम द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। उन्होंने आगे कहा कि आरोपी अपीलकर्ता पहले ही उक्त मामले में गोवध अधिनियम की धारा 3/5ए/8 के तहत ज्ञानपुर में प्रभारी सत्र न्यायाधीश, भदोही द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.9.2019 द्वारा जमानत पर रिहा हो चुका है। एडीएम द्वारा पारित निष्कासन आदेश एकपक्षीय था और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना, क्योंकि वह उपरोक्त तथ्य से अनभिज्ञ था, उसने जिला नहीं छोड़ा जिसके कारण उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और उस पर प्राथमिकी दर्ज की गई। 16.1.2022, मुकदमा अपराध संख्या 19 / 2022 में धारा 10 उ.प्र. गुंडा नियंत्रण अधिनियम के तहत दायर किया गया जिसमें याचिकाकर्ता ने जमानत के लिए आवेदन किया था और उसे सीजेएम के आदेश दिनांक 20.1.2022 द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था, उक्त जमानत आदेश की एक प्रमाणित प्रति रिट याचिका में अनुलग्नक

संख्या 6 के रूप में संलग्न की गई है। उ.प्र. गुंडा अधिनियम नियंत्रण की धारा 3(1) के तहत नोटिस. याचिकाकर्ता को दुर्भावनापूर्ण इरादे से जारी किया गया था, केवल याचिकाकर्ता को परेशान करने और उसे उस जिले से निष्कासित करने के उद्देश्य से जहां वह जन्म से रह रहा है। याचिकाकर्ता को एडीएम द्वारा जारी किए गए नोटिस की प्रति कभी नहीं दी गई। यहां तक कि डिविजनल कमिश्नर यानी प्रतिवादी संख्या 2 भी मामले के सही तथ्यों को समझने में विफल रहे और न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना अपील को खारिज कर दिया। गोवध अधिनियम की धारा 3/5ए/8 के तहत एकल मामला केवल अनुमान के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ झूठा दर्ज किया गया था। विवादित आदेश में दी गई सजा की अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी है, फिर भी इसके दंडात्मक परिणाम याचिकाकर्ता को परेशान कर रहे हैं, क्योंकि उसके साथ सामाजिक कलंक जुड़ा हुआ है कि उस पर यूपी गुण्डा एक्ट पर नियंत्रण की धारा 3 के तहत कार्रवाई की गई है एवं जनपद भदोही से बाहर किये जाने हेतु निर्देशित किया गया। दिनांक 3.1.2022 के आक्षेपित आदेश के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को अभी भी पुलिस कर्मियों के हाथों कठोर उत्पीड़न का शिकार होना पड़ रहा है, जो एक और अन्य कारण से उसके घर पर छापा मारते थे। याचिकाकर्ता का रिट याचिका में उल्लिखित मामले को छोड़कर कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंततः एक रिट, आदेश या उत्प्रेषण की प्रकृति में निर्देश के लिए विद्वान आयुक्त विंध्याचल, मिर्ज़ापुर डिवीजन द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.3.2022 को प्रस्तुत किया और साथ ही विद्वान एडीएम द्वारा दिनांक 22.6.2020 को पारित किए गए आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की जाती है। याचिकाकर्ता के संबंध में आक्षेपित आदेश में कोई जानकारी का उल्लेख नहीं किया गया है।

6. इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने अपनी दलीलों में आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया और कहा कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है। आक्षेपित आदेश उचित सामग्री पर आधारित हैं, यहां तक कि याचिकाकर्ता इसका पालन करने में भी विफल रहा। निर्वासन आदेश और उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और अधिनियम की धारा 10 के तहत उसके खिलाफ मामला दर्ज किया गया, जिसमें बाद में उसे जमानत मिल गई।

7. याचिकाकर्ता को यूपी की धारा 3/5ए/8 के तहत दर्ज एकल मामले के आधार पर नोटिस जारी किया गया था। वर्ष 2019 में गोवध निवारण अधिनियम के तहत आरोपी को कथित तौर पर टाटा मैजिक वाहन में चार संख्या में गोवंश ले जाते समय पुलिस ने गिरफ्तार किया था, जो सीखपुर से गोपीगंज की ओर जा रहा था। इस प्रकार, गिरफ्तारी और जब्ती राज्य की सीमा के भीतर की गई। याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत रूप से अधिनियम की धारा 3(1) के तहत नोटिस के तहत उपस्थित होने से इनकार कर दिया है। एडीएम द्वारा पारित आदेश में याचिकाकर्ता को नोटिस तामील करने के तरीके और तरीके का उल्लेख

नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता ने एडीएम के समक्ष कार्यवाही के बारे में अनभिज्ञता जाहिर की और कहा कि नोटिस की तामील न होने के कारण वह उनके समक्ष उपस्थित नहीं हो सका।

8. जहां तक याचिकाकर्ता के खिलाफ गुंडा तत्व होने के आरोपों का संबंध है, गुंडा अधिनियम की धारा 2 (बी) में 'गुंडा' शब्द का वर्णन इस प्रकार किया गया है: -

"2(बी) "गुंडा" का तात्पर्य है ऐसा व्यक्ति से है-

(i) या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या नेता के रूप में, भारतीय दंड संहिता की धारा 153 या धारा 153-बी या धारा 294 या अध्याय XV के तहत दंडनीय अपराध को आदतन करता है या करने का प्रयास करता है, या करने के लिए उकसाता है। ., उक्त कोड का अध्याय, अध्याय XVI, अध्याय XVII या अध्याय XXII: या

(ii) महिलाओं और लड़कियों में अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम 1956 के तहत किसी दंडनीय अपराध के लिए कम से कम तीन बार दोषी ठहराया गया हो और या

(iii) यूपी उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 या सार्वजनिक जुआ अधिनियम 1867 या धारा 25, धारा 27 या शस्त्र अधिनियम 1959 की धारा 29 के तहत दंडनीय अपराध के लिए कम से कम तीन बार दोषी ठहराया गया हो या

(iv) आम तौर पर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जाना जाता है जो समुदाय के लिए दुःसाहसिक और खतरनाक है

(v) आदतन अभद्र टिप्पणियाँ करता रहा हो या महिलाओं या लड़कियों को छेड़ता रहा हो: या

(vi) वह एक दलाल हो।

गुंडों के निष्कासन के संबंध में, गुंडा अधिनियम की धारा 3 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

3. गुंडों का निष्कासन आदि -जहां जिला मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि-

(ए) कोई व्यक्ति गुंडा है; और

(बी) (i) कि जिले या उसके किसी भी हिस्से में उसकी गतिविधियां या कृत्य व्यक्तियों या संपत्ति को खतरे या नुकसान का कारण बना रहे हैं, या उत्पन्न करने के लिए तैयार हैं; या

(ii) यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि वह जिले या उसके किसी भी हिस्से में, धारा 2 के खंड (बी) के उपखंड (i) से (iii) में निर्दिष्ट अपराध में शामिल है या शामिल होने वाला है, या ऐसे किसी अपराध के लिए उकसाने में; और]

(सी) कि गवाह अपने व्यक्ति या संपत्ति की सुरक्षा के संबंध में आशंका के कारण उसके खिलाफ सबूत देने के लिए आगे आने को तैयार नहीं हैं

जिला मजिस्ट्रेट लिखित नोटिस द्वारा खंड (ए), (बी) और (सी) के संबंध में उसके खिलाफ

लगाए गए वास्तविक आरोपों की सामान्य प्रकृति के बारे में सूचित करेगा और उन्हें उनके संबंध में स्पष्टीकरण देने का उचित अवसर देगा।

(2) जिस व्यक्ति के खिलाफ इस धारा के तहत आदेश दिया जाना प्रस्तावित है, उसे अपनी पसंद के वकील से परामर्श करने और बचाव करने का अधिकार होगा और यदि वह चाहे तो उसे खुद की जांच करने का उचित अवसर दिया जाएगा, और किसी भी अन्य गवाह की जांच करना जिसे वह अपने स्पष्टीकरण के समर्थन में पेश करना चाहे, जब तक कि लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से जिला मजिस्ट्रेट की राय न हो कि अनुरोध परेशान करने या देरी के उद्देश्य से किया गया है।

(3) तब जिला मजिस्ट्रेट संतुष्ट होने पर कि उपधारा (1) के खंड (ए), (बी) और (सी) में निर्दिष्ट शर्तें मौजूद हैं, लिखित आदेश द्वारा-

[(ए) उसे अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र या ऐसे क्षेत्र और किसी जिले या जिलों या उसके किसी भी हिस्से की सीमा के भीतर, ऐसे मार्ग से, यदि कोई हो, और ऐसे समय के भीतर जो निर्दिष्ट किया जा सकता है, खुद को बाहर निकालने का निर्देश दे सकता है। आदेश में और उक्त क्षेत्र में प्रवेश करने से बचना होगा या

वह क्षेत्र और ऐसा निकटवर्ती जिला या जिले या उसका भाग, जैसा भी मामला हो, जहां से उसे उक्त आदेश में निर्दिष्ट छह महीने से अधिक की अवधि की समाप्ति तक खुद को हटाने के लिए निर्देशित किया गया था;] (बी)

(i)) ऐसे व्यक्ति से अपेक्षा करें कि वह अपनी हरकतों को सूचित करे या स्वयं रिपोर्ट करे, या दोनों को, ऐसे तरीके से, ऐसे समय पर और ऐसे प्राधिकारी या व्यक्ति को बताए जो आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है;

(ii) उसके द्वारा आदेश में निर्दिष्ट किसी भी वस्तु के कब्जे या उपयोग को प्रतिबंधित करना;

(iii) उसे अन्यथा आदेश में निर्दिष्ट तरीके से आचरण करने का निर्देश दें, जब तक कि ऐसी अवधि की समाप्ति न हो, जो छह महीने से अधिक न हो, जैसा कि आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है।

9. **विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1984) 3 एससीसी 14**के मामले में उच्च न्यायालय देखा गया कि 1970 अधिनियम की धारा 2(बी) के खंड (i) की प्रयोज्यता के लिए अपराध किए जाने की कम से कम दो घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

10. चूँकि मौजूद नोटिस में केवल एक घटना का संदर्भ है, यह 1970 अधिनियम की धारा 2 (बी) के खंड (i) में प्रदान की गई कानूनी आवश्यकता से कम है।

11. पुनः, विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य, 1984 (3) एससीसी 14 और पूर्ण पीठ के फैसले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करने के बाद, सुरेश तिवारी बनाम यूपी राज्य और अन्य में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 23.5.2018 को फैसला सुनाया और भीम सैन त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

1999 (39) एसीसी 321 में न्यायालय की पूर्ण पीठ ने एक अकेले मामले के आधार पर किसी व्यक्ति के खिलाफ अधिनियम के दंडात्मक प्रावधानों को लागू करने से संबंधित मुद्दे पर विचार करते हुए, निम्नानुसार देखा गया है: -

" विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य (1984) 3 एससीसी 14 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मानते हुए प्रसन्नता व्यक्त की है कि धारा की प्रयोज्यता के लिए अपराध की कम से कम दो घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। (i) अधिनियम की धारा 2(बी) के। चूंकि नोटिस में केवल एक घटना का संदर्भ है, यह धारा 2(बी) के खंड (i) में प्रदान की गई कानूनी आवश्यकता से कम है और इस तरह से नोटिस के अवैध होने को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है, जैसा कि भीम सैन त्यागी बनाम यूपी राज्य और अन्य 1999 (39) एसीसी 321 के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित किया गया था। यदि दो या दो से अधिक घटनाओं का संदर्भ दिया गया हो आक्षेपित नोटिस में, तब धारा, 2(बी) खंड (i) की न्यूनतम कानूनी आवश्यकता पूरी हो गई होगी, और फिर उस मामले में गुण-दोष के आधार पर सामग्री की पर्याप्तता को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती, बल्कि संबंधित प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। जैसा कि जैनेंद्र @ छोटू के मामले में डिवीजन बेंच के फैसले में निर्धारित किया गया था

सिंह बनाम यूपी राज्य (सुप्रा)। लेकिन चूँकि वर्तमान मामले में लगाया गया नोटिस कानूनी आवश्यकता से कम है, इसलिए इसे इस न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। जैनेंद्र (सुप्रा) के मामले में फैसले के पैरा 12 में जो टिप्पणियाँ ऊपर उद्धृत की गई हैं, वे भी इस निष्कर्ष का समर्थन करती हैं।"

12. इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परिभाषा और कानून के अनुसार, किसी को तब तक आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता जब तक कि अपराध की पुनरावृत्ति न हो और अधिक से अधिक व्यक्ति की सामान्य प्रतिष्ठा यह हो कि वह समुदाय के लिए दुस्साहसिक और खतरनाक है। चूंकि इस मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल एक चरम उदाहरण का संदर्भ है, केवल उस एक घटना के आधार पर याचिकाकर्ता को आदतन अपराधी नहीं माना जा सकता है, इसलिए 1970 अधिनियम की धारा 2 (बी) के नोटिस खंड (1) में प्रदान की गई कानूनी आवश्यकता से कम है।

13. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 22.6.2020 के आक्षेपित आदेश में कोई मेरिट नहीं है और परिणामस्वरूप, अपीलीय अदालत का दिनांक 31.3.2022 का आदेश भी बरकरार नहीं रखा जा सकता है, इसलिए, दोनों आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं।

14. रिट याचिका के अनुमति है अतः प्रतिवादी संख्या-3 अपर जिलाधिकारी (वित्त एवं राजस्व) भदोही द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 22.6.2020 एवं प्रतिवादी संख्या-2 मिर्जापुर में विंध्याचल मंडल के आयुक्त द्वारा आैर अपीलीय न्यायालय के द्वारा पारित आदेश दिनांकित 31.3.2022 को बर्खास्त किया जाता है।

15. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्यवाही हेतु जिला मजिस्ट्रेट, भदोही को प्रेषित की जाये।

(2023) 8 ILRA 1258

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम

आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 7581/2023

अरविंद सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री ब्रजेश कुमार द्विवेदी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री आलोक कृष्ण त्रिपाठी, श्री उत्पल सिंह

क. दंड विधि-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226-भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 366, 120-बी-प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करना- सूचनाकर्ता ने याचिकाकर्ताओं को परेशान करने के लिए पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के 3 महीने बाद दूसरी प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जिसमें जांच अधिकारी द्वारा जांच में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी- सूचनाकर्ता ने उसके द्वारा दर्ज मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के खिलाफ विधि के तहत उपलब्ध कानूनी उपाय नहीं किया- उसने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष उसी घटना के संबंध में धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन प्रस्तुत किया और दूसरी प्राथमिकी दर्ज कराई- उसी घटना के संबंध में दूसरी प्राथमिकी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि द्वारा वर्जित है- दूसरी प्राथमिकी भी इस आधार पर बनाए रखने योग्य नहीं थी कि सूचनाकर्ता के पास उसके द्वारा दर्ज पहली प्राथमिकी में जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ विधि के तहत पर्याप्त उपाय था। (पैरा 1 से 14)

याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. कारी चौधरी बनाम एमएसटी. सीता देवी एवं अन्य (2002) 1 एससीसी 714

2. टीटी एंटनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य सीआरएलए संख्या 689/2001, विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) 1522/2000

3. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल एवं अन्य (1992) सप्लीमेंट 1 एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम द्वारा पारित)

1.याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री ब्रजेश कुमार द्विवेदी को सुना गया, सूचक के विद्वान वकील श्री आलोक कृष्ण त्रिपाठी को और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित हुए विद्वान एजीए को श्रीमती मंजू ठाकुर को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 06 04 2023 को धारा 366 120-बी आई पी सी थाना जीयनपुर जिला-आजमगढ़ के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 216/2023 के रूप में दर्ज किये जाने को रद्द करने की और प्रतिवादियों को यह निर्देश देने के लिए कि वे याचिकाकर्ताओं को प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार गिरफ्तार न करें प्रार्थना की गई है।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि सूचक/प्रतिवादी संख्या 4, राम बिलास राजभर ने दिनांक 2812 2022 को 11.30 बजे कथित घटना के संबंध में धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत एक आवेदन दिया था, जिस पर न्यायिक मजिस्ट्रेट आज़मगढ़ ने दिनांक 03.04.2023 को एक आदेश पारित किया जिसके तहत याचिकाकर्ताओं के खिलाफ पहली सूचना रिपोर्ट 06.04.2023 को मुकदमा अपराध संख्या 216/2023 धारा 366, 120-बी आईपीसी, थाना जीनपुर, जिला-आजमगढ़ के तहत दर्ज की गई थी।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1, अरविंद सिंह, ग्राम-रसूलपुर, जिला-आजमगढ़ के पूर्व ग्राम प्रधान हैं। उनके बंधुआ मजदूर राम नयन राम की मां दुलारी देवी उनके गांव की वर्तमान ग्राम प्रधान हैं। ग्राम प्रधान का पूरा काम आरोपी /याचिकाकर्ता नंबर 1 अरविंद सिंह देखता है. उक्त ग्राम प्रधान के कार्यकाल में हुए विकास कार्यों की जांच के लिए सूचक ने पूर्व ग्राम प्रधान के खिलाफ उच्च अधिकारियों को शिकायत सौंपी है। इसी दुश्मनी के कारण अभियुक्तगण अरविन्द सिंह, अजीत सिंह, राम नयन राम, राम बचन राजभर एवं नैतिक ने सूचक को अपमानित करने एवं उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाने की साजिश रची। इसके क्रम में दिनांक 28.12.2022 को रात्रि 11.30 बजे अभियुक्तों ने सूचक की पुत्री अन्नू को बनौरा रोड से जबरन अपहरण कर स्कार्पियो वाहन में उस समय ले गये जब वह बद्रीनाथ डिग्री कॉलेज कंजरा दिलशापुर से बी एससी प्रथम वर्ष की परीक्षा देकर घर लौट रही थी। . घटना को उसके गांव के ही जितेंद्र सिंह और लाल बहादुर यादव ने देख लिया. सूचक ने आशंका व्यक्त की है कि आरोपीगण उसकी बेटी को अपहरण के बाद बेच सकते हैं या उसकी हत्या कर सकते हैं। वही सूचक राम बिलास राजभर ने घटना के दिन ही दिनांक 28 12 2022 को 22 02 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी थी जिसे याचिकाकर्ता संख्या 5 नैतिक के खिलाफ थाना जीनपुर, जिला आज़मगढ़ में धारा 366 आईपीसी के तहत मामला अपराध संख्या 764/2022 के रूप में दर्ज किया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि पीड़िता, अन्नू घटना के समय लगभग 18 वर्ष 6 महीने की थी। उसकी

जन्मतिथि 02.07.2004 है। याचिकाकर्ताओं ने पीड़िता की हाई स्कूल की मार्कशीट दाखिल की है जो रिट याचिका के अनुबंध संख्या 4 के रूप में संलग्न है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, पीड़िता अन्नू राजभर आरोपी नैतिक के साथ थाना प्रभारी, पुलिस स्टेशन- जीनपुर, जिला-आजमगढ़ के समक्ष उपस्थित हुई और 11.01.2023 को एक प्रार्थना पत्र दिया जिसमें स्वीकार किया गया कि दिनांक 28.12.2022 की कथित घटना पीड़िता अन्नू राजभर की स्वतंत्र सहमति से हुई थी और वे एक साथ रह रहे थे। पीड़िता अन्नू राजभर ने जांच अधिकारी के समक्ष धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में और दिनांक 28.01.2023 को धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में जिसे संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उसने अपनी मर्जी से अपना घर छोड़ दिया था और आरोपी नैतिक के साथ शादी करने के लिए उसके साथ गुजरात चली गई थी।

6. जांच के बाद, पीड़िता के धारा 161 और 164 सीआरपीसी के बयानों और स्वतंत्र गवाह संजय राजभर के बयानों के आधार पर और यह पाया गया कि पीड़िता अन्नू बालिग थी और उसने अपनी मर्जी से अपना घर छोड़ दिया था और आरोपी नैतिक के साथ शादी कर ली थी, जांच अधिकारी ने 19 01 2023 को थाना-जीनपुर, जिला-आजमगढ़ में धारा 366 आईपीसी के तहत केस अपराध संख्या 764/2022 में अंतिम प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ताओं ने पीड़ित और स्वतंत्र गवाह संजय राजभर के सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत बयान और रिट याचिका के **अनुलग्नक संख्या 6, 8, 9 और 10** के रूप में अंतिम रिपोर्ट दाखिल की है।

7 इस तथ्य का खुलासा किये बिना कि सूचक ने इसी घटना के संबंध में 2812 2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी थी जिसमें जांच के बाद जांच अधिकारी ने 19 01 2023 को अंतिम रिपोर्ट पेश की थी, घटना के संबंध में 28 12 2022 की धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन प्रस्तुत किया था और 06 04 2023 को एक एफआईआर दर्ज कराई, जिसमें पिछले सह-अभियुक्त नैतिक के अलावा 4 अन्य आरोपियों को शामिल किया गया था, एक ही घटना के लिए दो प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.12.2022 को दर्ज नहीं की जा सकती हैं। सूचक ने पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के 3 महीने बाद याचिकाकर्ताओं को परेशान करने के लिए दिनांक 06.04.2023 को दूसरी एफआईआर दर्ज की थी जिसमें जांच में जांच अधिकारी द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।

8. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ धारा 366, 120-बी आईपीसी के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा जताया है:-

(i) कारी चौधरी बनाम सुश्री सीता देवी और अन्य, (2002) 1 एससीसी 714

(ii) टी टी एंटनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य, अपील (सीआरएल) 689 ऑफ 2001, विशेष अनुमति याचिका (सीआरएल) 1522 ऑफ 20009.

9.थाना जीयनपुर में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 764/2022 के रूप में पंजीकृत प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.12.2022 में सूचक राम बिलास राजभर ने बताया है कि उनकी बेटी अन्नू राजभर उम्र लगभग 18 वर्ष 6 माह जो बद्रीनाथ डिग्री कॉलेज में बीएससी-1 में पढ़ती थी, दिनांक 28.12.2022 को परीक्षा देने के लिए कॉलेज गई थी लेकिन शाम को घर वापस नहीं लौटी। मुखबिर को दृढ़ विश्वास था कि अभियुक्त नैतिक पुत्र रामबचन, निवासी ग्राम-रसूलपुर उसकी पुत्री को बहला-फुसलाकर भगा ले गया है।

10. **कारी चौधरी (सुप्रा)** के मामले में, शीर्ष अदालत ने माना है कि एक ही मामले के संबंध में एक ही आरोपी के खिलाफ दो एफ.आई.आर. नहीं हो सकती हैं। लेकिन जब एक ही प्रकरण के संबंध में दो प्रतिद्वंद्वी संस्करण होते हैं, तो वे आम तौर पर दो अलग-अलग एफ.आई.आर. का रूप ले लेते हैं और उन दोनों के तहत एक ही जांच एजेंसी द्वारा जांच की जा सकती है। इसके अलावा, बाद की एफआईआर के माध्यम से अदालत को सौंपी गई रिपोर्ट को पुलिस द्वारा जांच के दौरान की गई नई खोज के संबंध में अदालत को सौंपी गई एक जानकारी के रूप में माना जाना चाहिए कि पहली एफआईआर में नामित नहीं किए गए व्यक्ति ही असली अपराधी हैं। उक्त कार्यवाही को केवल इस आधार पर रद्द करना कि पहली एफआईआर में अंतिम रिपोर्ट लगा दी गई थी, कम से कम, बहुत तकनीकी है। अन्यथा भी, पिछले अवसर पर धारा 173 की उप-धारा (2) के तहत एक रिपोर्ट अग्रेषित करने के बावजूद जांच एजेंसी को किसी अपराध के संबंध में आगे की जांच से नहीं रोका जाता है। यह संहिता की धारा 173(8) से स्पष्ट है।

11. **टी.टी. एंटनी (सुप्रा)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय एफआईआर दर्ज करने और एफआईआर दर्ज करने से संबंधित कानून और उसके अनुसरण में जांच एजेंसी द्वारा उठाए जाने वाले कदमों के साथ-साथ उसी घटना के संबंध में दर्ज की गई दूसरी एफआईआर की स्थिति पर इस प्रकार चर्चा की गई है:-

"चूँकि वास्तविक प्रश्न एफ.आई.आर. के पंजीकरण से संबंधित है, हम उपयोगी रूप से आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआर.पी.सी.) की धारा 154 का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है: "154. संज्ञेय मामलों में जानकारी। -

(1) किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने से संबंधित प्रत्येक जानकारी, यदि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को मौखिक रूप से दी गई है, तो उसके द्वारा या उसके निर्देश के तहत लिखित रूप में कम कर दी जाएगी, और मुखबिर को पढ़ दी जाएगी;

और ऐसी हर जानकारी, चाहे लिखित रूप में दिया गया हो या पूर्वोक्त रूप से लिखकर दिया गया हो, इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा, और उसके सार को ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में

ऐसे प्रारूप में दर्ज किया जाएगा जैसा कि राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित कर सकती है।
(2) उप-धारा (1) के तहत दर्ज की गई जानकारी की एक प्रति सूचना देने वाले को तुरंत निःशुल्क दी जाएगी।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट जानकारी को रिकॉर्ड करने के लिए पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की ओर से इनकार से व्यथित कोई भी व्यक्ति ऐसी जानकारी का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा, संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है, जो संतुष्ट होने पर कि ऐसी जानकारी एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, मामले की जांच या तो खुद करेंगे या इस संहिता द्वारा प्रदान किए गए तरीके से अपने अधीनस्थ किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा जांच करने का निर्देश दे सकता है, और ऐसे अधिकारी के पास उस अपराध के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी।
सीआरपीसी की धारा 154 की उपधारा (1) में एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के लिए चार आदेश शामिल हैं। पहला आदेश देता है कि संज्ञेय अपराध से संबंधित प्रत्येक जानकारी यदि मौखिक रूप से दी जाती है तो उसे लिखित रूप में बदल दिया जाएगा और दूसरा निर्देश देता है कि इसे मुखबिर को पढ़कर सुनाया जाएगा; तीसरे के लिए आवश्यक है कि ऐसी प्रत्येक जानकारी, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या लिखित रूप में दी गई हो, मुखबिर द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिए और चौथा यह है कि ऐसी जानकारी का सार स्टेशन हाउस डायरी में दर्ज किया जाएगा। यहां सीआरपीसी की धारा 157 की उप-धारा (1) में निहित एक और निर्देश पर ध्यान देना उचित होगा जो यह प्रदान करता है सूचना प्राप्त होने पर तुरंत पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी प्रत्येक संज्ञेय अपराध की रिपोर्ट अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को भेजेगा और फिर जांच के लिए आगे बढ़ें या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच के लिए अपने अधीनस्थ अधिकारी को नियुक्त करें। उपधारा (2) मुखबिर को उपधारा (1) के तहत दर्ज की गई जानकारी की एक प्रति निःशुल्क प्राप्त करने का अधिकार देती है। उप-धारा (3) में कहा गया है कि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा उप-धारा (1) के तहत दी गई जानकारी को दर्ज करने से इनकार करने की स्थिति में, इससे व्यथित व्यक्ति ऐसी जानकारी का सार लिखित रूप में भेज सकता है और संबंधित पुलिस अधीक्षक को डाक द्वारा भेजा जाएगा, जिसे विकल्प दिया जाएगा कि या तो वह स्वयं मामले की जांच करे या सीआरपीसी द्वारा प्रदान किए गए तरीके से अपने अधीनस्थ पुलिस अधिकारी को जांच करने का निर्देश दे यदि वह संतुष्ट है कि जानकारी संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है। पुलिस अधीक्षक द्वारा जिस पुलिस अधिकारी को जांच सौंपी जाती है, उसके पास उस अपराध के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियां होती हैं। Cr.P.C की धारा 154 की उप-धारा (1) के तहत दी गई जानकारी को आमतौर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट (F.I.R.) के रूप में जाना जाता है, हालांकि इस शब्द का उपयोग संहिता में नहीं किया गया है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है. और जैसा कि इसके उपनाम से पता चलता है, यह किसी पुलिस स्टेशन के

प्रभारी अधिकारी द्वारा दर्ज की गई संज्ञेय अपराध की सबसे प्रारंभिक और पहली सूचना है। यह आपराधिक कानून को गति प्रदान करता है और जांच की शुरुआत को चिह्नित करता है जो सीआरपीसी की धारा 169 या 170 के तहत राय के गठन के साथ समाप्त होता है, जैसा भी मामला हो, और सीआरपीसी की धारा 173 के तहत एक पुलिस रिपोर्ट को अग्रेषित किया जाता है। यह बिल्कुल संभव है और ऐसा अक्सर नहीं होता है कि एक या एक से अधिक संज्ञेय अपराधों से जुड़ी एक ही घटना के संबंध में एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी पुलिस अधिकारी को एक से अधिक सूचनाएं दी जाती हैं। ऐसे मामले में उसे उनमें से प्रत्येक को स्टेशन हाउस डायरी में दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है यह सीआरपीसी की धारा 154 में निहित है, फोन कॉल या गुप्त टेलीग्राम द्वारा अस्पष्ट जानकारी के अलावा, इस उद्देश्य के लिए रखी गई स्टेशन हाउस डायरी में सबसे पहले दर्ज की गई जानकारी, किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी पुलिस अधिकारी द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट - सीआरपीसी की धारा 154 द्वारा निर्धारित एफआईआर है, अन्य सभी सूचनाएं मौखिक रूप से या प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों से खुलासा किये गये संज्ञेय अपराध की जांच शुरू होने के बाद लिखित रूप में पुलिस अधिकारी द्वारा स्टेशन हाउस डायरी में दर्ज किए गए या ऐसे अन्य संज्ञेय अपराध जो जांच के दौरान उनके संज्ञान में आ सकते हैं, सीआरपीसी की धारा 162 के तहत आने वाले बयान होंगे। ऐसी किसी भी सूचना/बयान को उचित रूप से एफ.आई.आर. नहीं माना जा सकता। और स्टेशन हाउस डायरी में फिर से दर्ज किया गया, क्योंकि यह वास्तव में दूसरी एफआईआर होगी और यह सीआरपीसी की योजना के अनुरूप नहीं हो सकती। ऐसे मामले को लें जहां एफआईआर में आईपीसी की धारा 307 या 326 के तहत संज्ञेय अपराध का उल्लेख है और जांच एजेंसी को जांच के दौरान पता चलता है या ताजा जानकारी मिलती है कि पीड़ित की मृत्यु हो गई है, धारा 302 आईपीसी के तहत कोई नई एफआईआर दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है जो अनियमित होगी; ऐसे मामले में पहली एफआईआर में कानून के प्रावधान में बदलाव करना उचित कदम है। आइए हम एक अलग स्थिति पर विचार करें जिसमें एच ने डब्ल्यू की हत्या कर दी है, उसकी पत्नी पुलिस को सूचित करती है कि उसे किसी अज्ञात व्यक्ति ने मार डाला है या यह जानते हुए कि डब्ल्यू को उसकी मां या बहन ने मार डाला है, एच जिम्मेदारी लेता है और जांच के दौरान सच्चाई का पता चलता है; इसमें वास्तविक अपराधी एच के खिलाफ नई एफआईआर दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, जिसे सीआरपीसी की धारा 173(2) या 173(8) के तहत रिपोर्ट में दोषी ठहराया जा सकता है, जैसा भी मामला हो। जांच अधिकारी के लिए निश्चित रूप से यह अनुमति है कि वह पहले भी संबंधित मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट भेज सकता है कि जांच उस व्यक्ति के खिलाफ की जा रही है जिसके आरोपी होने का संदेह है। सीआरपीसी की योजना यह है कि पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को संज्ञेय अपराध के घटित होने का पता चलने पर प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रविष्टि के आधार पर सीआरपीसी की धारा 156 या 157 के अनुसार जांच शुरू करनी होती है। . जांच पूरी होने पर और एकत्र

किए गए सबूतों के आधार पर उसे सीआरपीसी की धारा 169 या 170, जैसा भी मामला हो, के तहत राय बनानी होती है और सीआरपीसी की धारा 173(2) के तहत अपनी रिपोर्ट संबंधित मजिस्ट्रेट को भेजनी होती है। हालाँकि, ऐसी रिपोर्ट दर्ज करने के बाद भी यदि उसके पास अतिरिक्त जानकारी या सामग्री आती है, तो उसे नई एफआईआर दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, उसे आगे की जांच करने का अधिकार है, आम तौर पर अदालत की अनुमति के साथ, और जहां आगे की जांच के दौरान वह मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र करता है, वह उसे एक या अधिक अतिरिक्त रिपोर्टों के साथ अग्रेषित करने के लिए बाध्य है; यह धारा 173 सीआरपी सी की उपधारा (8) का आयात है। उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि सीआरपीसी की धारा 154, 155, 156,157, 162, 169, 170 और 173 के प्रावधानों की योजना के तहत। किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने के संबंध में केवल सबसे प्रारंभिक या पहली सूचना ही सीआरपीसी की धारा 154 की आवश्यकताओं को पूरा करती है। ऐसे में दूसरी एफ.आई.आर. नहीं हो सकती. और परिणामस्वरूप एक ही संज्ञेय अपराध या एक या अधिक संज्ञेय अपराधों को जन्म देने वाली एक ही घटना या घटना के संबंध में प्रत्येक बाद की जानकारी प्राप्त होने पर कोई नई जांच नहीं हो सकती है। किसी संज्ञेय अपराध या संज्ञेय अपराध या अपराध को जन्म देने वाली किसी घटना की सूचना प्राप्त होने पर और थाने की डायरी में एफआईआर दर्ज करने पर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को न केवल एफआईआर में रिपोर्ट किए गए संज्ञेय अपराध की जांच करनी होती है, बल्कि उसी लेनदेन या उसी घटना के दौरान किए गए अन्य संबंधित अपराधों की भी जांच करनी होती है और सीआरपीसी की धारा 173 में दिए गए अनुसार एक या अधिक रिपोर्ट दर्ज करें।

12. **टी.टी. एंटनी (सुप्रा)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने पर, हम पाते हैं कि सूचक राम बिलास राजभर ने नैतिक के विरुद्ध अपनी पुत्री अन्नू के अपहरण के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.12.2022 को 22.02 बजे थाना जीयनपुर में मुकदमा अपराध संख्या 764/2022 धारा 366 आईपीसी के रूप में पंजीकृत करायी थी। जांच के बाद, जांच अधिकारी को आरोपी नैतिक के खिलाफ अपराध करने के संबंध में कोई सबूत नहीं मिला और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। सूचक ने अपने द्वारा दर्ज मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के खिलाफ कानून के तहत उपलब्ध कानूनी उपाय का पालन नहीं किया। उन्होंने उसी घटना के संबंध में 21.03.2023 को संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन प्रस्तुत किया था।और याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दिनांक 06.04.2023 को पुलिस स्टेशन- जीनपुर में धारा 366, 120-बी आईपीसी के तहत केस अपराध संख्या 216/2023 के रूप में दूसरी एफआईआर दर्ज की गई, जिसमें पिछली एफआईआर के आरोपी नैतिक और 4 अन्य आरोपी व्यक्ति शामिल थे। . घटना के संबंध में दूसरी एफआईआर कानून के तहत चलने योग्य नहीं थी। उसी घटना के संबंध में दूसरी एफआईआर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा

प्रतिपादित कानून द्वारा वर्जित है। दूसरी एफआईआर भी इस आधार पर कायम रखने योग्य नहीं थी कि मुखबिर के पास उसके द्वारा दर्ज की गई पहली एफआईआर में जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ कानून के तहत पर्याप्त उपाय था। **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल और अन्य, (1992) सप्ल (1) एससीसी 335 में**, शीर्ष अदालत ने एफ.आई.आर. को रद्द करने के लिए छठा आधार माना है:

6) जहां संहिता के किसी भी प्रावधान में कोई स्पष्ट कानूनी बात शामिल हो या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) संस्था को और कार्यवाही जारी रखने और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

13. **भजन लाल (सुप्रा)** मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, सूचक राम बिलास राजभर द्वारा दर्ज की गई दूसरी एफआईआर, केस अपराध संख्या 216/2023 धारा 366, 120-बी आईपीसी, पुलिस स्टेशन जीनपुर जिला - आजमगढ़, के तहत दर्ज की गईपोषणीय नहीं है और निरस्त किये जाने योग्य है।

14. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 06.04.2023 को मुकदमा अपराध संख्या 216 सन् 2023 धारा 366, 120-बी आई.पी.सी., थाना-जीयनपुर, जिला-आजमगढ़ के तहत पंजीकृत किया गया, साथ ही सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है।

(2023) 8 ILRA 1264

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7644/2023

श्रीमती मालती देवी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री उदयवीर सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार

क. आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 366-एफआईआर रद्द करना- याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 बालिग हैं और उन्होंने अपनी मर्जी से विवाह किया है- केवल यह पता लगाना कि महिला का अपहरण किया गया था, पर्याप्त नहीं है, यह भी साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने महिला का अपहरण इस इरादे से किया कि उसे मजबूर किया जा सकता है, या यह जानते हुए कि उसे

किसी व्यक्ति से शादी करने के लिए मजबूर किया जाएगा या ताकि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जा सके या बहकाया जा सके या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा या बहकाया जाएगा- जब तक अभियोजन यह साबित नहीं कर देता कि अपहरण धारा 366 आईपीसी में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए है, तब तक न्यायालय अभियुक्त को दोषी नहीं ठहरा सकता और उसे धारा 366 आईपीसी के तहत दंडित नहीं कर सकता। (पैरा 1 से 10)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. श्रीमती जूली कुमारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य सीएमडब्ल्यूपी संख्या 17046/2022

2. कविता चन्द्रकान्त लखानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और (2018) एआईआर एससी 2099

3. गब्बू बनाम एमपी राज्य (2006) एआईआर एससी 2461

4. शाहजहां बनाम राज्य (2011) क्रि.एल.जे. 573

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह- प्रथम द्वारा पारित)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री उदयवीर सिंह, सूचक के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार और राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य विधि अधिकारी श्री राजेश कुमार सचान को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका में भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 214/2023, पुलिस थाना-राठ, जिला-हमीरपुर के रूप में दर्ज दिनांक 04.05.2023 की आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और प्रतिवादियों को आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है।

3. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि कनिष्ठ हाई स्कूल अंकपत्र के अनुसार,

याचिकाकर्ता संख्या 1, श्रीमती. मालती देवी की जन्मतिथि 10.07.2001 है तथा आधार कार्ड एवं पैन कार्ड के अनुसार याचिकाकर्ता संख्या 2, राजकुमार की जन्मतिथि 01.01.1992 है और इस प्रकार, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 बालिग हैं और उन्होंने अपनी मर्जी से शादी की है, इसलिए कोई अपराध नहीं हुआ है। याचिका के परिशिष्ट-4 की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा गया है कि विवाह पंजीकरण के लिए ऑनलाइन आवेदन भी प्रस्तुत किया जा चुका है। वर्तमान याचिका याचिकाकर्ताओं संख्या 1 और 2 के संयुक्त हलफनामे द्वारा भी समर्थित है। आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 17046/2022 (श्रीमती जूली कुमारी और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और 2 अन्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित 5.12.2022 के फैसले और आदेश पर भरोसा किया गया है कि समान

परिस्थितियों में याचिका की अनुमति दी गई थी और उसमें दर्ज एफआईआर को रद्द कर दिया गया था।

4. आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 17046/2022 (श्रीमती जूली कुमारी और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और 2 अन्य) में पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 5.12.2022 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

वर्तमान रिट याचिका में भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0475/2022, पुलिस थाना सौरिख, जिला कन्नौज के रूप में दर्ज दिनांक 25.10.2022 की प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने और प्रतिवादियों को पूर्वोक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार न करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है।

पीड़ित लड़की के आधार कार्ड पर दर्शाई गई उसकी जन्मतिथि 1.1.2004 पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 एक बालिग लड़की है, जिसकी उम घटना दिनांक को 18 वर्ष से अधिक थी।

वर्तमान याचिका दोनों याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 द्वारा संयुक्त रूप से इस घोषणा के साथ दायर की गई है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 ने अपनी मर्जी से अपना पैतृक घर छोड़ दिया था और एक बालिग लड़की होने के नाते, वह याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ विवाह करने के लिए अपनी पसंद लेने के लिए स्वतंत्र है।

हालांकि, वर्तमान याचिका इस दावे पर दायर की गई है कि भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 1 एक बालिग लड़की है। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दर्ज किया गया संपूर्ण आपराधिक मामला कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

*याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, एआईआर 2018 एससी 2099 में रिपोर्ट किए गए कविता चंद्रकांत लखानी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य में उच्चतम न्यायालय के फैसले के मद्देनजर आक्षेपित एफआईआर रद्द की जानी चाहिए, जिसमें यह माना गया कि भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत अपराध गठित करने के लिए अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि आरोपी ने शिकायतकर्ता महिला को बहकाया या बलपूर्वक कहीं से जाने के लिए मजबूर किया, कि ऐसा प्रलोभन कपटपूर्ण तरीकों से किया गया था, कि ऐसा अपहरण इस इरादे से हुआ था कि शिकायतकर्ता को अवैध संभोग बनाने के लिए बहकाया जा सके औरख्या आरोपी को यह पता था कि अपहरण के परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता को अवैध संभोग के लिए बहकाया जा सकता है। महज अपहरण किसी आरोपी को इस दंडात्मक धारा के दायरे में नहीं लाता है। जहां तक भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत आरोप का सवाल है, केवल यह पता लगाना कि एक महिला का अपहरण किया

गया था, पर्याप्त नहीं है, इसके अलावा यह साबित किया जाना चाहिए कि आरोपी ने महिला का अपहरण इस इरादे से किया था कि वह मजबूर हो सकती है, या यह जानते हुए कि उसे किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए बाध्य किया जाएगा या उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा या बहकाया जाएगा या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर किया जाएगा। जब तक अभियोजन यह साबित नहीं कर देता कि अपहरण भा.दं.सं. की धारा 366 में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए किया गया है, तब तक अदालत आरोपी को दोषी नहीं ठहरा सकती और उसे भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत दंडित नहीं कर सकती।

जहां तक पीड़ित लड़की की उम्र का संबंध है, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न आधार कार्ड में दर्शाया गया है, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा कोई विवाद नहीं उठाया गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दोनों याचिकाकर्ता बालिग हैं। तथ्य यह है कि वर्तमान रिट याचिका पीड़ित लड़की की घोषणा के साथ दायर की गई है और वह याचिकाकर्ता संख्या 2 की संगत में स्वेच्छा से रह रही है, वकालतनामे पर पीड़ित लड़की के हस्ताक्षर से समर्थित है। एक बार पीड़ित लड़की की उम विवाद में नहीं है, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 को भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत अपराध करने के लिए आरोपी नहीं बनाया जा सकता क्योंकि पीड़िता ने याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ रहने के लिए अपना घर छोड़ दिया था।

हम यह स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान याचिका में सवाल दो व्यक्तियों यानी याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 की शादी की वैधता के बारे में नहीं है। बल्कि, यह मुद्दा दो व्यक्तियों के जीवन और साथी चुनने की स्वतंत्रता या उनकी पसंद की स्वतंत्रता के अधिकार के बारे में है कि वे किसके साथ रहना पसंद करेंगे।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा मानना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट से भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, हालांकि, दोनों याचिकाकर्ता बालिग हैं और याचिकाकर्ता संख्या 1 स्पष्ट रुख के साथ आयी है कि उसने याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ स्वेच्छा से अपना घर छोड़ दिया था और एक विवाहित महिला के रूप में उसके साथ रह रही है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0475/2022, पुलिस थाना-सौरिख, जिला कन्नौज के रूप में दर्ज दिनांक 25.10.2022 की प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द किया जाता है।

हालाँकि, हम स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान याचिका पर निर्णय लेते समय, हमने याचिकाकर्ताओं की शादी की वैधता पर ध्यान नहीं दिया है।"

5. इसके विपरीत, सूचक के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान राज्य विधि अधिकारी ने प्रार्थना

का विरोध करने की मांग की। उन्होंने कहा है कि याचिकाकर्ता संख्या 1, श्रीमती मालती देवी की पहली शादी 17.02.2023 को मंगल सिंह से हुई थी। इस रिट याचिका से संबंधित प्रथम सूचना रिपोर्ट केवल भा.दं.सं. की धारा 366 के अंतर्गत पंजीकृत है। न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या अभियुक्त/ याचिकाकर्ता संख्या 2. राजकुमार के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत अपराध किया गया है। याचिकाकर्ता संख्या 2 के विरुद्ध द्विविवाह के संबंध में कोई शिकायत मामला दर्ज नहीं किया गया है।

6. दुद्धिविवाह का अपराध भा.दं.सं. की धारा 494 के तहत दंडनीय है या भा.दं.सं. की धारा 495 के तहत। दं.प्र.सं. की धारा 198 (1) (सी) में दिए गए प्रावधानों के अनुसार अपराध गैर-संज्ञेय है और शिकायत केवल पीडित व्यक्ति अर्थात पति या पत्नी या पत्नी के मामले में उसके पिता, मो, आई, बहन, पुत्र या पुत्री या उसके पिता या माता, भाई या बहन द्वारा या उसके रक्त, विवाह या गोद लेने से संबंधित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अदालत की अनुमति से दायर किया जा सकता है।

7. सूचक के विद्वान अधिवक्ता या राज्य विधि अधिकारी की ओर से कोई दावा नहीं किया गया है कि याचिकाकतो संख्या 1, श्रीमती मालती देवी के किसी रिश्तेदार ने याचिकाकर्ता संख्या

2. राजकुमार द्वारा कथित द्विविवाह के संबंध में किसी अदालत में शिकायत मामला दायर किया है।

8. यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या प्रथम दृष्टया भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत अपराध बनता है, यहां नीचे उद्धृत भा.दं.सं. की धारा 362 और 366 का अध्ययन करना आवश्यक है, जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

362. <u>अपहरण</u>- जो कोई किसी व्यक्ति को किसी स्थान से जाने के लिए बल द्वारा विवश करता है, या किन्हीं प्रवंचनापूर्ण उपायों द्वारा उत्प्रेरित करता है, वह उस व्यक्ति का अपहरण करता है, यह कहा जाता है।

<u>सामग्री:-</u> इस धारा के लिए दो चीजों की आवश्यकता है:-

(1) कपटपूर्ण साधन से जबरदस्ती या प्रलोभन;

(2) ऐसी बाध्यता या प्रलोभन का उद्देश्य किसी व्यक्ति का किसी स्थान से जाना होना चाहिए।

अभिव्यक्ति "कपटपूर्ण साधन" में एक आमक कथन शामिल है। वास्तव में, यह इरादे का मामला है। अभियुक्त की मंशा ही आरोप का आधार और गंभीरता है। यदि व्यक्ति की सहमति स्वतंत्र रूप से और स्वेच्छा से दी गई है, तो कोई अपहरण नहीं होगा। अपहरण के विपरीत, भा.दं.सं. की धारा 362 के तहत परिभाषित अपहरण संहिता के तहत एक ठोस अपराध नहीं है, लेकिन अपहरण एक सहायक कार्य है और इसे आपराधिक और दंडनीय तभी माना जाता है जब यह भा.दं.सं. की धारा 366 में निर्दिष्ट एक या अन्य इरादे से किया जाता है।

366. *<u>विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत करना, अपहृत करना या उत्प्रेरित करना</u> - जो कोई किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उस स्त्री को विवश करने के आशय से या वह विवश की जाएगी, यह सम्भाव्य जानते हुए अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उस स्त्री को विवश या विलुब्ध करने के लिए या वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी, यह संभाव्य जानते हुए करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा, और जो कोई किसी स्त्री को किसी अन्य व्यक्ति से अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से या वह विवश या विलुब्ध की जाएगी, यह सम्भाव्य जानते हुए इस संहिता में यथा परिभाषित आपराधिक अभित्रास द्वारा अथवा प्राधिकार के दुरुपयोग या विवश करने के अन्य साधन द्वारा उस स्त्री को किसी स्थान से जाने को उत्प्रेरित करेगा, वह भी पूर्वोक्त प्रकार से दंडित किया जायएगा*

<u>सामग्री:-</u> इस धारा के लिए आवश्यक है:-

(1) किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण;

(2) ऐसा व्यपहरण या अपहरण तो होना ही चाहिए -

(i) इस इरादे से कि उसे मजबूर किया जा सकता है या यह जानते हुए कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति से शादी करने के लिए विवश किया जाएगा; या

(ii) ताकि उसे अवैध संभोग के लिए मजबूर या बहकाया जा सके या यह जानते हुए कि उसे अयुक्त संभोग के लिए विवश या विलुब्ध किया जाएगा; या

(iii) साधनों या आपराधिक धमकी से या अन्यथा किसी स्त्री को इस इरादे से किसी स्थान से जाने के लिए प्रेरित करना, या यह जानते हुए कि उसे अयुक्त संभोग के लिए विवश या विलुब्ध किया जाएगा।

भा.दं.सं. की धारा 366 केवल तभी लागू होता है जब अपहृत महिला का अपहरण के समय विवाह या वैध संभोग का कोई इरादा नहीं होता है। महज अपहरण ही आरोपी को इस दंडात्मक धारा के दायरे में नहीं लाता है।

गब्बू बनाम म.प्र. राज्य, एआईआर 2006 एससी 2461 में, शीर्ष न्यायालय ने माना है कि जहां तक भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत आरोप का सवाल है, केवल यह पता लगाना कि एक महिला का अपहरण किया गया था पर्याप्त नहीं है। यह भी साबित किया जाना चाहिए कि अपहरण भा.दं.सं. की धारा 366 में उल्लिखित उद्देश्यों के लिए किया गया है।

शाहजहाँ बनाम राज्य, 2011 सी.आर.एल.जे. 573 में शीर्ष न्यायालय ने कहा है:-

"भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत अपराध स्थापित करने के लिए, पहले यह स्थापित

करना चाहिए कि भा.दं.सं. की धारा 361 के तहत अपहरण या भा.दं.सं. की धारा 362 के तहत अपहरण का अपराध साबित हो गया है। फिर यह दिखाया जाना चाहिए कि ऐसा व्यपहरण या अपहरण भा.दं.सं. की धारा 366 के तहत उल्लिखित घृणित इरादे से किया गया था।"

9. भा.दं.सं. की धारा 366 लागू होने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि किसी महिला को विवश करने के इरादे से या यह जानते हुए कि उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से शादी करने के लिए विवश किया जाएगा या उसे अवैध संभोग के लिए विवश या विलुब्ध किया जाएगा, अपहरण किया गया है।

10. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 2, राजकुमार के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 362 या यहां तक कि भा.दं.सं. की धारा 366 की आवश्यक सामग्री पूरी नहीं हुई है।

11. मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, हम रिट याचिका को अनुमति देने के इच्छुक है।

12. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। आ.दं.सं. की धारा 366 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 214/2023, पुलिस थाना-राठ, जिला-हमीरपुर के रूप में दर्ज दिनांक 04.05.2023 की प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द किया जाता है।

13. हालांकि, हम स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान याचिका पर निर्णय लेते समय, हमने याचिकाकर्ताओं की शादी की वैधता पर ध्यान नहीं दिया है।

(2023) 8 ILRA 1268

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

अवमानना प्रार्थना पत्र (सिविल) 695/2013

महेश चंद्र शुक्ला ...अपीलकर्ता

बनाम

अचल मिश्रा बेसिक शिक्षा अधिकारी लखीमपुर खीरी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री निर्मल सिंह, श्री पवन कुमार पांडे, श्री शरद पाठक, श्री तेज पाल सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री ज्योतिन्जय वर्मा, श्री राम कुमार सिंह, श्री संदीप कुमार यादव

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 506 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 215 - न्यायालय की अवमानना - न्यायालय के आदेश का उल्लंघन - न्यायालय के साथ धोखाधड़ी - कार्यवाही को रद्द करना - आवेदक ने उच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करने, वित्त एवं लेखा अधिकारी कृष्ण कुमार पांडे द्वारा वित्तीय अनियमितताओं को

दबाने और सरकारी अधिकारियों को परेशान करने के लिए धोखाधड़ी का आरोप लगाने के लिए 10.05.2013 के बाद की गई कार्रवाइयों को शून्य घोषित करने की मांग की - गलत मकसद से दर्ज की गई प्राथमिकी, केस डायरी से न्यायालय के आदेश और वरिष्ठ रजिस्ट्रार के पत्र को हटा दिया गया - निर्धारित पद से नीचे के अधिकारी द्वारा जांच की गई और निर्देशानुसार उच्च न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई - हेरफेर की गई जांच के साथ धारा 506 आईपीसी के तहत आरोप पत्र दायर किया गया - न्यायालय ने पाया कि सरकारी अभियोजक के स्वतंत्र मूल्यांकन ने विशेष अधिवक्ता द्वारा कोई अपराध नहीं होने की पुष्टि की - आईपीसी की धारा 506 के तहत कार्यवाही रद्द कर दी गई - संभावित अवमानना कार्यवाही के लिए अदालत के आदेश का पालन न करने पर पुलिस अधिकारियों को नोटिस जारी किया गया।

<u>संदर्भित वाद विधि</u> :

1. एबीसीडी बनाम भारत संघ, (2020) 2 एससीसी 52

2. विद्या देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2020) 2 एससीसी 569

3. श्रीमती सरिता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (40) एलसीडी 871

4. डॉ. जेएस यादव बनाम डॉ. अनिल कुमार उपाध्याय, 2022 (40) एलसीडी 1415

5. बारांगोर जूट फैक्ट्री पीएलसी मजदूर संघ बनाम बारानागोर जूट फैक्ट्री पीएलसी, (2017) 5 एससीसी 506

6. दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, (1996) 4 एससीसी 622

7. ए.वी.एस. पप्या शास्त्री बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, (2007) 4 एससीसी 221

8. हमजा हाजी बनाम केरल राज्य, (2006) 7 एससीसी 416

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना।

2. यह निम्नलिखित निर्देशों के लिए संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत दायर एक आवेदन है।

"(1) उपरोक्त अवमानना याचिका में माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 10.05.2013 के आदेश का उल्लंघन करते हुए और माननीय उच्च न्यायालय पर धोखाधड़ी के आधार पर 10.5.2013 के बाद की गई सभी कार्रवाइयों को शून्य घोषित करने और मामला अपराध संख्या-207/2013, केस संख्या-3922 वर्ष 2013, थाना-वजीरगंज, जिला लखनऊ को खत्म कर दिया जाए और रद्द कर दिया जाए।

(2) धारा 506 भ०द०वि० के तहत झूठे मामले शुरू करने और जारी रखने के लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही सहित कानूनी कार्यवाही शुरू करने का निदेश देना।

(3) ऐसा अन्य आदेश या निर्देश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और न्यायसंगत समझे, न्याय और इक्विटी के हित में भी पारित किया जा सकता है।

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि एक व्यक्ति श्री कृष्ण कुमार पांडे, जो वर्ष 2013 में प्रासंगिक समय पर जिला अम्बेडकर नगर में लेखा अधिकारी के पद पर थे और जो वित्तीय गबन के गंभीर आरोपों का सामना कर रहे थे और उनके खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं, स्पष्ट रूप से उसके खिलाफ 10.05.2013 को पारित माननीय उच्च न्यायालय के आदेश का उपयोग एक उपकरण के रूप में करने में सफल रहे हैं, लेकिन मामलों की जोड़ी को प्रभावित करने और तत्कालीन बेसिक शिक्षा अधिकारी, मामलों की जोड़ी बनाने वाले प्रतिवादी और तत्कालीन ए.पी.पी I/ विशेष अधिवक्ता/सम्मानित और माननीय उच्च न्यायालय, लखनऊ में अवध बार के सम्मानित और प्रसिद्ध सदस्य के खिलाफ प्रतिशोध लेने के लिए भी, जो 10.05.2013 को प्रासंगिक समय पर उपरोक्त अवमानना याचिका में सरकारी कर्मचारी के लिए उपस्थित हो रहे थे और सरकार द्वारा उसके माध्यम से शपथ पत्र भी दायर किया गया था।

चूंकि इस अवमानना याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 10.5.2013 के आदेश को प्रतिवादी और दो अन्य निर्दोष व्यक्तियों के खिलाफ एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया है, इसलिए प्रतिवादी के पास इस न्यायालय के समक्ष इस आवेदन को दायर करने के अलावा कोई अन्य वैकल्पिक उपाय नहीं है ताकि दिनांक 10.05.2013 के आदेश के उल्लंघन में की गई कार्रवाई को शून्य घोषित किया जा सके। यह सुस्थापित है कि माननीय न्यायालय की कार्रवाई के कारण किसी भी व्यक्ति को परेशानी नहीं होने दी जा सकती और कार्यवाही/आदेश, जिसका आधार धोखाधड़ी है, को शून्य/निरस्त किया जाना है।

4. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त अवमानना याचिका में दिनांक 10.5.2023 का आदेश कृष्ण कुमार पांडे के कहने पर पारित किया गया था और इसकी पुष्टि 18.02.2020 को की गई थी। दिनांक 10.05.2023 का आदेश तत्कालीन वरिष्ठ रजिस्ट्रार (श्री आलोक मुखर्जी) के खिलाफ था। तत्कालीन वरिष्ठ रजिस्ट्रार (श्री आलोक मुखर्जी) ने एस.एस.पी, लखनऊ को दिनांक 10.05.2013 को पत्र लिखा। एस.एस.पी., लखनऊ ने दिनांक 10.5.2013 को थानाध्यक्ष, वजीरगंज, लखनऊ को पत्र लिखा। यद्यपि उच्च न्यायालय के दिनांक 10.5.2013 के आदेश और वरिष्ठ रजिस्ट्रार के पत्र दिनांक 10.5.2013 का उल्लेख एस.एस.पी. के दिनांक 10.05.2013 के पत्र में किया गया है, लेकिन यह सुनिश्चित किया गया है कि माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 10.5.2013 के आदेश और न्यायालय के दिनांक 10.05.2013 के

आदेश और वरिष्ठ रजिस्ट्रार के पत्र दिनांक 10.05.2013 में निहित निर्देश के अनुसार प्राथमिकी दर्ज नहीं की जाए/केस डायरी के हिस्सा नहीं बनाया जाए।

5. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कृष्ण कुमार पांडे, एक बुरी घटना का व्यक्ति(?), 10.05.2013 को प्राथमिकी दर्ज करने में कामयाब रहा और यह सुनिश्चित किया कि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के साथ-साथ रजिस्ट्रार के पत्र दिनांक 10.05.2013 को केस डायरी का हिस्सा नहीं बनाया जाए।

6. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी ने 24.11.2022 को माननीय उच्च न्यायालय की फाइल का निरीक्षण किया है और उसके अवलोकन से, जो रिकॉर्ड के पृष्ठ संख्या-3 पर पाया गया है, यह स्पष्ट करता है कि श्री कृष्ण कुमार पांडे ने शुरू में किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया था और वरिष्ठ रजिस्ट्रार श्री आलोक मुखर्जी को दिए गए मूल आवेदन में प्राथमिकी का उनका संस्करण पूरी तरह से अनुपस्थित है।

7. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि पूर्वोक्त के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि शुरू में, किसी नाम का उल्लेख नहीं किया गया था और प्राथमिकी का उसका संस्करण आवेदन में पूरी तरह से अनुपस्थित है, लेकिन बाद में गंभीर वित्तीय और अन्य अनियमितताओं को आच्छादित करने के लिए सरकार को उनकी रिपोर्टिंग को रोकने और पैरोकर को मजबूर करने के लिए, श्री कृष्ण कुमार पांडे, वित्त और लेखा अधिकारी, जिनके खिलाफ माननीय उच्च न्यायालय में याचिकाओं में शपथ पत्र दायर किए गए थे और उनके आचरण को भी 10.5.2013 से पहले उच्च अधिकारियों के ध्यान में लाया गया था और जिनके खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं, द्वारा राज्य सरकार के धोखाधड़ी और राज्य के खजाने की लूट से जुड़े मामलों को खोलने के लिए विशेष अधिवक्ता, वह प्राथमिकी दर्ज करने का प्रबंधन करता है।

8. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वास्तव में, कहानी का यह परिवर्तन इसलिए हुआ है क्योंकि एक श्री धीरेंद्र कुमार सिंह, जो वित्त और लेखा अधिकारी, लखीमपुर खीरी भी थे, जो उपरोक्त अवमानना में माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित थे, जिनके खिलाफ 10.5.2013 का हलफनामा सरकारी कर्मचारी द्वारा ए.पी.पी.-I के माध्यम से दायर किया गया था, जिनके विरुद्ध भी शिकायतें राज्य सरकार को अग्रेषित की गई थीं और जांच चल रही थी और उनके विरुद्ध श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय की मिलीभगत से गंभीर आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं। वे उन मामलों के बारे में जिनमें जांच चल रही थी, काम करने वाले व्यक्तियों पर दबाव बनाने के अवसर को भुनाना चाहते थे।

9. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि श्री कृष्ण कुमार पांडे ने वरिष्ठ रजिस्ट्रार को अपना पहला आवेदन देने के बाद, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, जिसमें प्रतिवादी सहित किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं है और प्राथमिकी का उनका संस्करण पूरी तरह से

अनुपस्थित है, सुरक्षा प्रदान किए जाने के बाद श्री धीरेंद्र कुमार सिंह के साथ माननीय उच्च न्यायालय के परिसर से उनकी मोटरसाइकिल संख्या-यूपी-32 एक्सवी 3674 पर रवाना हुए और उन्होंने हाथ से वरिष्ठ रजिस्ट्रार को नोट लिखा।

10. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि श्री कृष्ण कुमार पांडे द्वारा दी गई पहली रिपोर्ट और श्री कृष्ण कुमार पांडे द्वारा हस्तलिखित नोट को कभी भी केस-डायरी का हिस्सा नहीं बनाया गया है और न ही कभी किसी कार्यवाही में सामने आया है और यह 24.11.2022 को माननीय उच्च न्यायालय के रिकॉर्ड के निरीक्षण के बाद ही प्रतिवादी के संज्ञान में आया है।

यह उल्लेख करना उचित है कि श्री कृष्ण कुमार पांडे द्वारा दिया गया हस्तलिखित नोट बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि माननीय उच्च न्यायालय को सुनाई गई कहानी थी और माननीय उच्च न्यायालय ने 10.5.2013 को आदेश पारित किया था और इसलिए, 4 दस्तावेजों में से किसी में भी अर्थात आदेश दिनांक 10.5.2013, श्री कृष्ण कुमार पांडे द्वारा हस्तलिखित नोट दिनांक 10.5.2013, वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा दिनांक 10.05.2013 के पत्र और एस.एस.पी., लखनऊ द्वारा दिनांक 10.05.2013 के पत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है और प्राथमिकी का उनका संस्करण पूरी तरह से अनुपस्थित है।

श्री कृष्ण कुमार पांडे द्वारा थाना में श्री धीरेंद्र कुमार सिंह के साथ मिलकर कहानी बदल दी गई है और वे माननीय उच्च न्यायालय के आदेश को प्रतिवादी और दो अन्य निर्दोष व्यक्तियों के खिलाफ एक उपकरण के रूप में उपयोग करने में लगभग सफल रहे हैं और इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आवेदन दायर किया जा रहा है।

11. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सरकार को उनकी रिपोर्टिंग को रोकने के लिए गंभीर वित्तीय और अन्य अनियमितताओं को आच्छादित करने के लिए और पैरोकार, सरकारी सेवक, विशेष अधिवक्ता को श्री कृष्ण कुमार पांडे, एक वित्त और लेखा अधिकारी द्वारा राज्य के खजाने की धोखाधड़ी और लूट से जुड़े राज्य सरकार के मामलों को कमज़ोर करने के लिए मजबूर करने के लिए प्राथमिकी की गई थी, और उनका आचरण भी दिनांक 10.05.2013 से पूर्व उच्च प्राधिकारियों के ध्यान में लाया गया, और जिनके विरुद्ध गंभीर आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं, श्री आलोक कुमार मुखर्जी की बदौलत अस्तित्व में आए।

12. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि तत्कालीन वरिष्ठ रजिस्ट्रार ने तत्कालीन एस.एस.पी., लखनऊ को दिनांक 14.5.2013 को एक और पत्र लिखा था। वरिष्ठ रजिस्ट्रार के दिनांक 10.05.2013 के पत्र को केस डायरी का हिस्सा बनाया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 15.05.2015 को विवेचनाधिकारी को बदल दिया गया और अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे के सर्कल अधिकारी को विवेचनाधिकारी बनाया गया है।

13. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि दागी और हेरफेर की गई जांच के परिणामस्वरूप 20.6.2013 को धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित रूप से आरोप पत्र दाखिल की गई, जो केस डायरी के अवलोकन से ही स्पष्ट है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जांच में हेरफेर किया गया और आगे की जांच को दागी और हेरफेर किया गया, जिसके परिणामस्वरूप धारा 506 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र मार्च, 2015 तक चला।

14. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि पत्र पीटी-रैंक: वीएडी/9837-41/2013-14 दिनांक 31.01.2014 द्वारा विशिष्ट अनुरोध किया गया था, जिसकी प्रति माननीय न्यायालय के दिनांक 10.05.2013 के आदेश के अनुपालन में माननीय न्यायालय को रिपोर्ट के साथ केस डायरी लाने का बीमा करने के लिए उच्च अधिकारियों को थी, लेकिन यह पत्र न तो केस डायरी का हिस्सा है और न ही यह ज्ञात है कि तत्कालीन श्री आलोक कुमार मुखर्जी वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा इसके साथ क्या किया गया है।

15. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि मामलों की पैरवी को प्रभावित करने के लिए श्री कृष्ण कुमार पांडे ने विभाग के पैरोकर का वेतन रोक दिया। विभाग ने उस पर जमकर कार्रवाई की। उनके द्वारा रिट याचिका संख्या-415 (एमबी) वर्ष 2014 (कृष्ण कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की गई थी। उन्होंने वर्ष 10.5.2013 को अपने तरीके से घटनाओं का वर्णन किया और धारा 506 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया। माननीय उच्च न्यायालय ने अपनी रिट याचिका में उनके विरुद्ध जांच करवाई थी और उनके विरुद्ध प्रतिकूल रिपोर्ट प्राप्त होने पर माननीय उच्च न्यायालय ने मामले को सरकार को भेज दिया था। उपर्युक्त कथनों के संबंध में वित्त सचिव के विशेष सचिव द्वारा उनके विरुद्ध कार्रवाई हेतु लिखा गया दिनांक 26.11.2014 का पत्र प्रासंगिक है।

16. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट, अम्बेडकर नगर ने निदेशक कोषागार, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को दिनांक 1.6.2014 को पत्र लिखा था, जिसकी प्रति प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा और प्रमुख सचिव, वित्त को भेजी गई थी, जिसमें श्री कृष्ण कुमार पांडे के आचरण का वर्णन केस डायरी का हिस्सा नहीं है, हालांकि विवेचनाधिकारी के ध्यान में लाया गया था।

17. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 11.11.2013 का पत्र जिसमें धारा 161 द०प्र०स० के तहत प्रतिवादी का बयान है, उपरोक्त अवमानना याचिका का हिस्सा है, लेकिन केस डायरी का हिस्सा नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश, अवमानना याचिका संख्या-688/2013 से संबंधित रिकॉर्ड को केस डायरी का हिस्सा नहीं बनाकर दस्तावेजों को गायब करने वाले फर्जी पत्रों/दस्तावेजों को तैयार करना, केस डायरी के पन्नों को बदलना बाहरी कारणों से किया गया था।

18. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि केस डायरी की तारीखें जिस पर

पर्यवेक्षी अधिकारी ने केस डायरी देखी है, 16.5.2013 से गायब हो गई। केस डायरी के पन्ने बदल दिए गए हैं। यह रनिंग पेजों में नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मामला सीडी-इलेवन दिनांक 24.5.2013 के बाद से चल रहे पृष्ठ पर नहीं है। दिनांक 18062013 की सीडी-XVI से केस डायरी पुन पृष्ठों पर चल रही है। एस.सी.डी रनिंग पेज में नहीं है, विवेचनाधिकारी द्वारा जो लिखा गया है वह एस.सी.डी के अनुलग्नकों से अलग है (एस.सी.डी विवेचनाधिकारी हिरदेश कठेरिया द्वारा लिखा गया था और इसकी देखरेख श्री अजय कुमार ने की थी)। श्री अजय कुमार अंत तक दागी जांच से जुड़े रहे।

19. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि केस डायरी के साथ धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत कोई भी रिपोर्ट 29.1.2018 तक माननीय उच्च न्यायालय में नहीं लाई गई थी। द०प्र०स० केस डायरी के साथ केवल धारा 173(2) के तहत रिपोर्ट या केस डायरी के साथ धारा 173(8) के तहत किसी और रिपोर्ट पर विचार करता है।

20. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि हालांकि केस डायरी में पर्याप्त सामग्री/कागजात थे जो दर्शाते हैं कि माननीय उच्च न्यायालय इस मामले से अवगत है। धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत केस डायरी या धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत केस डायरी के साथ केवल एक रिपोर्ट पर विचार किया गया है।

21. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संज्ञान उपरोक्त अवमानना याचिका में पारित माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 10.5.2013 के आदेश के उल्लंघन में लिया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 10.5.2013 के आदेश का तत्कालीन वरिष्ठ रजिस्ट्रार श्री आलोक मुखर्जी, जांच अधिकारियों और पर्यवेक्षी अधिकारियों और निचली अदालत द्वारा उल्लंघन किया गया था।

22. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि माननीय उच्च न्यायालय ने दिनांक 19.1.2018 के आदेश के माध्यम से दिनांक 10.5.2013 के आदेश का उल्लंघन नोट किया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 10.05.2013 के आदेश का पूर्ण उल्लंघन है। 10.5.2013 के बाद हर कृत्य इसका उल्लंघन करते हुए किया गया। माननीय उच्च न्यायालय अथवा उच्चतर न्यायालय को छोड़कर किसी को भी माननीय उच्च न्यायालय के आदेश को संशोधित करने की अनुमति नहीं है।

23. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि विशेष अधिवक्ता/ए.पी.पी.-I के संबंध में, जो 10.5.2013 को प्रासंगिक समय पर उपरोक्त अवमानना याचिका में उपस्थित हो रहा था और जिसकी उपस्थिति में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.5.2013 का आदेश पारित किया गया था, सरकार धारा 506 भ०द०वि० के तहत अभियोजन से वापस लेने का निर्णय लेती है।

24. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष से वापसी के लिए आवेदन को खारिज कर

दिया। अस्वीकृति आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290/2017 में चुनौती दी गई थी। माननीय उच्च न्यायालय ने धारा 506 भ०द०वि० के तहत अभियोजन वापस लेने के साथ-साथ वापसी के लिए राज्य के आवेदन के संबंध में सरकारी आदेश की जांच की और मामलों का स्वतः संज्ञान लिया, रिकॉर्ड से पता चला कि लोक अभियोजन ने स्वतंत्र दिमाग लगाया था और सही निष्कर्ष निकाला था कि पुनरीक्षणकर्ता न तो मौके पर था और न ही कोई अपराध किया था। आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290/2017 माननीय उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण बन गया। माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के संगत भाग को निम्नानुसार पुन प्रस्तुत किया जा रहा है।

"द०प्र०स० की धारा 321 के तहत दायर वापसी आवेदन की प्रमाणित प्रति और अदालत को दिखाए गए 14 मार्च, 2017 के सरकारी आदेश को रिकॉर्ड में लिया जाता है।"

.... यह एक आवेदन है जिसमें पांच आधार हैं जो दर्शाता है कि लोक अभियोजक ने स्वतंत्र रूप से अपने दिमाग का इस्तेमाल किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया है और इस राय पर पहुंचा है कि पुनरीक्षणकर्ता ने कोई अपराध नहीं किया है, वह मौके पर नहीं था, यह देखते हुए कि पुनरीक्षणकर्ता ने इस अदालत की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, यह अनावश्यक प्रतीत होता है।

25. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290/2017 में पारित आदेश के उल्लंघन में अभियोजन पक्ष से वापसी के लिए आवेदन को फिर से निचली अदालत द्वारा खारिज कर दिया गया था। अस्वीकृति आदेश को राज्य द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार श्रीवास्तव) में चुनौती दी गई थी, जिसमें सूचनादाता को देरी, प्रवेश और अंतिम सुनवाई के चरण में सुना गया था, उसके बाद दिनांक 14.9.2020 के आदेश द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई थी।

26. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290/2017 और 711 वर्ष 2019 में दो पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश की अनदेखी करते हुए, दो अलग-अलग आदेश एक अभियोजन से वापसी के लिए राज्य के आवेदन पर उक्त आपराधिक पुनरीक्षणों में दो पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा जांच की गई और बरकरार रखा गया, लेकिन राज्य द्वारा अस्वीकार कर दिया गया और राज्य के आवेदन दिनांक 3.3.2021 पर राज्य के नए आवेदन दिनांक 23.9.2020 से संबंधित वापसी पारित की गई। दो आदेशों के कारण राज्य द्वारा दो अलग-अलग आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-85/2021 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण कुमार पांडे और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-86 वर्ष 2021) दर्ज किए गए। राज्य के आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति 30.4.2022 को दी गई थी।

27. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि चूंकि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-

711 वर्ष 2019 में पारित आदेश दिनांक 14.9.2020 का अनुपालन नहीं किया गया था, अवमानना याचिका संख्या-398 वर्ष 2022 दायर की गई थी। इस अवमानना याचिका के लंबित रहने के दौरान, राज्य के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-85/21 और 85/21 (?) की अनुमति दी गई थी, इसलिए आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-86/2021 में पारित आदेश के उल्लंघन के लिए, अवमानना याचिका संख्या-1337 वर्ष 2022 दायर की गई थी।

28. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि ये माननीय उच्च न्यायालय के ध्यान में लाना उचित है और सीएमसी संख्या-646 वर्ष 2022 वाले स्थानांतरण आवेदन को विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर किया गया था। सी.एम.सी. संख्या-646/2022 को दिनांक 13.7.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

29. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक ने धारा 506 भ०द०वि० के तहत मामले को बंद करने के लिए दिनांक 30.7.2022 को फिर से आवेदन दायर किया और आवेदक द्वारा दायर आवेदन दिनांक 30.7.2022 पर निचली अदालत के आदेश के समर्थन में राज्य ने दिनांक 30.7.2022 को लिखित प्रस्तुतियाँ दायर कीं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत यानी विशेष एसीजेएम, सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ को फिर से अवमानना याचिका संख्या-398 वर्ष 2022 और अवमानना याचिका संख्या-1337 वर्ष 2022 के पैरा के माध्यम से धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के बारे में उपरोक्त निर्णायक निष्कर्ष के बारे में पता चला और आवेदक के आवेदन दिनांक 30.7.2022 के साथ-साथ राज्य द्वारा दायर लिखित प्रस्तुतियाँ दिनांक 30.7.2022 शामिल हैं।

30. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि माननीय उच्च न्यायालय के निरंतर आदेशों के बाद निचली अदालत ने अवमानना याचिका संख्या-398/22 और अवमानना याचिका संख्या-1337/2022 दोनों में 17.10.2022 को अनुपालन का हलफनामा दायर किया। निचली अदालतों ने दिनांक 26.9.2022 के आदेश को रिकॉर्ड पर लाया है, जिसे आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-86 वर्ष 2021 के आदेश के अनुपालन में पारित किया गया है। अवमानना याचिका संख्या-398/22 और अवमानना याचिका संख्या-1337/22 में दिनांक 17.10.2022 के आदेश पारित किए गए।

31. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अवमानना याचिका संख्या-398/2022 में दिनांक 17.10.2022 के आदेशों के संबंध में और अवमानना याचिका संख्या-13337/2022 में रिकॉल आवेदन दायर किया गया था और उस पर बल/दबाव नहीं डाला गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत के दिनांक 26.9.2022 के आदेश यानी विशेष एसीजेएम, सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ में 30.7.2022 को दायर राज्य की लिखित प्रस्तुतियाँ शामिल नहीं हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत के दिनांक 26.09.2022 के आदेश यानी विशेष एसीजेएम, सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ में गलत

तरीके से राज्य की प्रस्तुतियों का उल्लेख किया गया है/राज्य द्वारा कभी नहीं किए गए राज्य के सबमिशन का उल्लेख है जैसा कि 30.7.2022 को दायर राज्य की लिखित प्रस्तुतियों से स्पष्ट है।

32. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत का आदेश दिनांक 26.9.2022 यानी विशेष एसीजेएम, सीबीआई/ अयोध्या प्रकरण, लखनऊ जिसमें राज्य की प्रस्तुतियाँ शामिल नहीं हैं, जैसा कि 30.7.2022 को दायर राज्य की लिखित प्रस्तुतियों से स्पष्ट है, कानूनी आदेश के रूप में योग्य नहीं होगा।

33. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत द्वारा दिनांक 26.9.2022 का आदेश यानी विशेष एसीजेएम, सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ वापसी के लिए राज्य के दिनांक 23.9.2020 के आवेदन और इसके समर्थन में दायर आवेदन दिनांक 21.12.2022 और 30.01.2021 तक ही सीमित नहीं है। इन आवेदनों पर शिकायतकर्ता द्वारा कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई।

34. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत द्वारा दिनांक 26.9.2022 का आदेश अर्थात विशेष ए.सी.जे.एम., सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ माननीय उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290 वर्ष 2017 और सत्र न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711/2019 में राज्य के दिनांक 9.6.2017 के आवेदन पर है और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 में निर्णय और आदेश दिनांक 14.9.2020 के बाद राज्य द्वारा कभी बल नहीं दिया गया है, ये 30.7.2022 को दायर राज्य की लिखित प्रस्तुतियों के पैरा-1 में इंगित राज्य के रुख से स्पष्ट है। क्रिमिनल पुनरीक्षण संख्या-711/2019 में निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.9.220 के बाद बदली हुई परिस्थितियों में वापसी के लिए राज्य का आवेदन दिनांक 23.9.2020 दायर किया गया। राज्य का आवेदन दिनांक 23.9.2020 सत्र न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 में दर्ज धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के संबंध में निर्णायक निष्कर्ष पर आधारित है। राज्य केवल वापसी के लिए अपने दिनांक 23.9.2020 के आवेदन और इसके समर्थन में दायर 21.12.2020 और 30.01.2021 के आवेदनों तक ही सीमित है। इन आवेदनों में सूचनाकर्ता द्वारा कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी।

35. आवेदक के अधिवक्ता ने इसके बाद निचली अदालत के दिनांक 26.9.2022 के आदेश अर्थात विशेष ए.सी.जे.एम., सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ को पहले निर्धारित आदेश दिनांक 10.2.2021 के अंग्रेजी में संक्षेप और पदार्थ पुनरावृत्ति में प्रस्तुत किया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के बारे में उपरोक्त निर्णायक निष्कर्ष का उल्लेख, बावजूद इसके लगातार उनके ध्यान में लाने के बावजूद, विशेष एसीजेएम, सीबीआई/अयोध्या प्रकरण, लखनऊ सहित किसी भी मजिस्ट्रेट के

आदेश में किसी भी छुपे मकसद से नहीं किया गया है।

36. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक द्वारा दायर आवेदन, विशेष रूप से शिकायतकर्ता कृष्ण कुमार पांडे को आरोपी के रूप में बुलाने के लिए दिनांक 29.11.2021 के आवेदन, हालांकि प्रत्येक तारीख को बल दिए गए थे, को बाहरी कारणों से लंबित रखा गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत बाहरी विचारों के कारण कानून के खिलाफ कार्यवाही कर रही है।

37. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सभी आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290/2017, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-85 वर्ष 2021 के साथ-साथ आपराधिक प्रकीर्ण मामला संख्या-646 वर्ष 2022, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-85 वर्ष 2021 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-86 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 13.7.2022 में आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290 वर्ष 2017, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 के आदेशों पर ध्यान दिया गया है।

38. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-85 वर्ष 2021 के अनुपालन में और राज्य द्वारा दायर आवेदन दिनांक 30.04.2022 पर निचली अदालत का कोई आदेश नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि बेसिक शिक्षा विभाग के मामलों को प्रभावित करने के लिए धारा 506 भ०द०वि० के तहत एक झूठा मामला स्थापित किया गया है।

39. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 में किए गए धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के बारे में निर्णायक निष्कर्ष के बाद, अदालत के समक्ष मुकदमा न तो वारंट विचारण और न ही समन विचारण और न ही सारांश विचारण रहता है। धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के संबंध में निचली अदालत के समक्ष कार्यवाही चल रही है।

40. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आरोप पत्र सहित केस डायरी की जांच करने और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 में सत्र न्यायालय द्वारा धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के बारे में निश्चित निर्णायक निष्कर्ष पर आने के बाद, धारा 506 भ०द०वि० के तहत कोई कानूनी रूप से वैध आरोप पत्र नहीं थी, जिस पर निचली अदालत द्वारा कार्रवाई की जानी थी। राज्य की वापसी की स्वीकृति के साथ-साथ धारा 506 भ०द०वि० के तहत मामले को बंद करने के संबंध में केवल औपचारिक आदेश निचली अदालत द्वारा पारित किया जाना आवश्यक था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि धारा 506 भ०द०वि० के तहत कथित अपराध के बारे में उपरोक्त निष्कर्ष को लगातार अदालत के नोटिस में लाने के बावजूद निचली अदालत के किसी भी आदेश में उल्लेख नहीं किया गया है और धारा 506 भ०द०वि० के तहत मामला कानून के उल्लंघन में जारी है।

41. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक द्वारा धारा 506 भ०द०वि० के तहत मामले को बंद करने और राज्य द्वारा अभियोजन से वापसी के लिए आवेदन स्वीकार करने के लिए लगातार प्रार्थना के बावजूद ऐसा नहीं किया गया है।

42. अगले के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून है कि अदालत का कर्तव्य है कि वह आदेशों के उल्लंघन में की गई चीजों को सुधारने के लिए उचित निर्देश जारी करे। उस संबंध में अदालत कार्यवाही के किसी भी राज्य में सुधारात्मक उपाय भी कर सकती है। यह भी स्थापित कानून है कि सभी न्यायालयों को एक गलत को पूर्ववत करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों के साथ निहित किया गया है जो अदालत की गलती के कारण किसी पक्ष को पूर्वाग्रह पैदा करने के कारण हो सकता है।

43. अपने प्रस्तुतियाँ के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता निम्नलिखित निर्णय पर निर्भरता रखा गया है:

(i) एबीसीडी बनाम भारत संघ और अन्य 52 (2020)2 उच्चतम न्यायालय के मामलों में रिपोर्ट किए गए।

(ii) विद्या देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य (2020)2 उच्चतम न्यायालय के मामले 569

(iii) श्रीमती सरिता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ने 2022(40) एलसीडी 871

(iv) डॉ. जेएस यादव बनाम डॉ. अनिल कुमार उपाध्याय और अन्य 2022(40) एलसीडी 1415

(v) बारांगीर पटसन फैक्टरी पीएलसी मजदूर संघ (बीएमएस) एवं अन्य रिपोर्ट (2017)5 उच्चतम न्यायालय के मामले 506

(vi) दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन कंपनी (प्रा) लि और अन्य सूचित (1996) 4 उच्चतम न्यायालय मामले 622

(vii) एवी पप्या शास्त्री एवं अन्य। आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य 221(2007)4 उच्चतम न्यायालय के मामलों में रिपोर्ट किए गए

(viii) हमजा हाजी बनाम 7 उच्चतम न्यायालय मामले 416 2006 एस.सी.सी. ऑन लाइन एस.सी. 842 में रिपोर्ट किया गया।

44. मैंने आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और आवेदन में शामिल विवाद के संदर्भ में रिकॉर्ड पर सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की है कि क्या इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.5.2023 के बाद की प्रक्रिया का कानून के अनुसार पालन किया गया है या नहीं।

45. प्रारंभिक चरण से विवाद को समझने के लिए, न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.5.2013 को नीचे दिया गया है:

"जब इस मामले में कार्यवाही चल रही थी, एक श्री कृष्ण कुमार पांडेय, वित्त

और लेखा अधिकारी (बेसिक), जिला अम्बेडकर नगर, जो उपस्थित थे और जिनके मामले (आपराधिक प्रकीर्ण मामला संख्या-688 (सी) वर्ष 2013) का फैसला किया गया था, रोते हुए अदालत के अंदर पहुंचे और चिल्लाते हुए कहा कि उन्हें अदालत के बाहर पीटा गया है और उनका चश्मा भी क्षतिग्रस्त हो गया है।

रजिस्ट्रार को निदेश दिया जाता है कि वह अपनी सुरक्षा और संरक्षण के लिए उपयुक्त कदम उठाएं और दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करें। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि मामले में जांच तेजी से पूरी की जाएगी, और किसी भी मामले में 15 दिनों के भीतर रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी।

कि अदालत के बाहर, अधिवक्ताओं ने एक अवांछित और अनियंत्रित दृश्य बनाया है, और रजिस्ट्रार ने इस न्यायालय के सुचारू संचालन के लिए उचित व्यवस्था नहीं की है, इसलिए इस न्यायालय के पास उठने के अलावा कोई राय नहीं है।

46. उपर्युक्त निकाले गए आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया गया था कि वह अपनी सुरक्षा और संरक्षण के उचित कदम उठाए और दोषी व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करे और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि मामले में जांच तेजी से पूरी की जाएगी, और किसी भी मामले में 15 दिनों के भीतर और रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी।

47. यह भी ध्यान देने योग्य है कि श्री कृष्ण कुमार पांडे, वित्त और लेखा अधिकारी (बेसिक), जिला अम्बेडकर नगर ने इस न्यायालय के समक्ष किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं लिया है जिसने यह कार्य किया है।

48. श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय एवं वरिष्ठ रजिस्ट्रार के दिनांक 10.5.2013 के पत्रों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि पत्रों में घटना नोट की गई है; इसके बाद श्रीकृष्ण कुमार पाण्डेय को संरक्षण देने का अनुरोध किया। और श्री कुमार पांडे को दिनांक 10.5.2013 की शिकायत के साथ तुरंत प्राथमिकी दर्ज करने और यह सुनिश्चित करने के लिए भेजें कि उपरोक्त मामले की जांच किसी अधिकारी द्वारा की जाए जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे का न हो और कानून के अनुसार आवश्यक कार्रवाई करें और 15 दिनों के भीतर इस न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करें ताकि इसे माननीय न्यायालय के समक्ष निर्देशानुसार रखा जा सके।

49. प्राथमिकी दर्ज करते समय, अज्ञात अधिवक्ताओं के साथ कुछ व्यक्तियों के नाम आरोपी के रूप में शामिल किए गए हैं। 15.5.2015 को, विवेचनाधिकारी को बदल दिया गया और अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे के अंचल अधिकारी को विवेचनाधिकारी बनाया गया है और विवेचना के बाद, प्राधिकारी ने 10.5.2023 को निर्देशित इस न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट पेश करने के

अनुवादित

बजाय संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 506 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिस पर संज्ञान लिया गया।

50. मामले के पूर्वोक्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, इस कॉउट की समन्वय पीठ ने दिनांक 29.1.2018 के आदेश के तहत दिनांक 10.5.2013 के आदेश के अनुपालन में निर्देश दिया कि अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, लखनऊ के न्यायालय के कुछ जिम्मेदार अधिकारी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अगली तारीख अर्थात 29.1.2018 को पूरी केस डायरी पेश की जाए।

51. विशेष अधिवक्ता के संबंध में जो 10.5.2013 को प्रासंगिक समय पर उपरोक्त अवमानना याचिका में उपस्थित हो रहे थे और जिनकी उपस्थिति में न्यायालय द्वारा दिनांक 10.5.2013 का आदेश पारित किया गया था, सरकार ने धारा 506 भ०द०वि० के तहत अभियोजन से वापस लेने का निर्णय लिया और न्यायालय के समक्ष अभियोजन से वापसी के लिए एक आवेदन दायर किया। उक्त निर्णय से व्यथित होकर, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-1290 वर्ष 2017 दायर किया गया था और धारा 506 भ०द०वि० के तहत अभियोजन वापस लेने के साथ-साथ वापसी के लिए राज्य के आवेदन के संबंध में सरकारी आदेश की जांच करने और मामले का स्वतः संज्ञान लेने के बाद, यह पता लगाने के लिए दर्ज किया गया है कि लोक अभियोजक ने स्वतंत्र दिमाग लगाया था और सही निष्कर्ष पर पहुंचा था कि पुनरीक्षणकर्ता (विशेष अधिवक्ता) न तो खेल पर था और न ही कोई अपराध किया था।

52. इसके बाद, अभियोजन से वापसी के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया था जिसे खारिज कर दिया गया था। उक्त अस्वीकृति से व्यथित होकर, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-711 वर्ष 2019 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार श्रीवास्तव) निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ दायर किया गया था:

> "मात्र कह देने से प्राथमिकी के तथ्य साबित नहीं होते हैं जब तक कि स्वतन्त्र गवाहों, विद्वान अधिवक्तागण या कर्मचारी या पुलिस के कर्मचारी के बयान समर्थन न करते, हों, इस सम्बन्ध में अभियोजन साक्ष्य पुरी तरह धमकी के बाबत मौन हैं।"
>
> 'केवल प्राथमिकी के संबंध में मात्र औपचारिकता निभाने के लिए 506 आईपीसी में आरोप पत्र प्रेषित किया गया है जो केस डायरी में लिये गये स्वतंत्र गवाहों एवं अधिवक्तागण के बयानों से पुष्टि नहीं होती हैं।"
>
> "माननीय उच्च न्यायालय ने यह भी निष्कर्षित किया गया था कि अभियोजन पक्ष की ओर से जो मुकदमा वापसी का प्रार्थना पत्र दिया गया था वह स्वतंत्र मन से, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मुकदमा वापसी के नोटिफिकेशन पर विचार करते हुए मुकदमा वापसी का प्रार्थना पत्र दिया गया था।
>
> इस तरह से इस न्यायालय के मत से निगरानीकर्ता / लोक

अभियोजक द्वारा प्रस्तुत मुकदमा वापसी का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया है वह स्वतंत्र मन से पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक्य में गर्वमेन्ट द्वारा मुकदमा वापसी किये गये नोटिफिकेशन ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

जैसा कि उपरोक्त विवेचन किया जा चुका है कि जहाँ मुकदमें में दोषसिद्धि की संभावनाएं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से न हो तथा मुकदमा वापसी के आदेश को गर्वमेन्ट के नोटिफिकेशन को किसी सक्षम न्यायालय में चुनौती न दिया गया हो तथा वर्तमान में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत प्रकरण में निगरानी आदेश के द्वारा निगरानीकर्ता द्वारा जयोर्तिमय वर्मा द्वारा प्रस्तुत मामले में पत्रावतली पर उपलब्ध साक्ष्यों से घटनास्थल पर उपस्थित न होने के साक्ष्य हो.....

53. इस न्यायालय ने एक बार फिर पहले सूचनादाता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद मामले की सुनवाई करने का निर्देश दिया है।

54. प्रस्तुतियाँ के समर्थन में आवेदक के अधिवक्ता ने निर्णय के कई निर्णयों का हवाला दिया जो यहां नीचे दिया गया है।

(i) एबीसीडी (उपरोक्त): -

16. इस न्यायालय द्वारा चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा [चंद्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा, (1995) 1 एस.सी.सी. 421: 1995 एस.सी.सी. (सीआरआई) 239] में यह भी निर्धारित किया गया है कि एक व्यक्ति जो अदालत को धोखा देने का प्रयास करता है, न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है और उसे अदालत की अवमानना का दोषी ठहराया जा सकता है। उस मामले में एक पति जिसने वैवाहिक कार्यवाही के हस्तांतरण की मांग करने वाली अपनी पत्नी की प्रार्थना का विरोध करने के लिए एक गढ़ा हुआ दस्तावेज दायर किया था, उसे अदालत की अवमानना का दोषी पाया गया और दो सप्ताह के कारावास की सजा सुनाई गई। यह निम्नानुसार देखा गया था: (एस.सी.सी. पी.पी 423-24 और 427, पैरा-1-2 और 14)

"1. न्याय प्रशासन की धारा को प्रदूषित नहीं रहना चाहिए ताकि न्यायालय के वातावरण की शुद्धता राज्य के सभी अंगों को जीवन शक्ति प्रदान कर सके। इसलिए, न्यायिक आकाश के प्रदूषकों को न्यायालय के पर्यावरण की उदात्तता को बनाए रखने के लिए अच्छी तरह से ध्यान रखने की आवश्यकता है; इसलिए यह निष्पक्ष रूप से और सभी संबंधितों की संतुष्टि के लिए न्याय का प्रशासन करने में सक्षम बनाने के लिए भी।

2. जो कोई भी धोखाधड़ी का सहारा लेता है, वह न्यायिक कार्यवाही की प्रक्रिया को टाल देता है; या अगर कुछ भी तिरछे मकसद से किया जाता है, तो वह न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है। ऐसे व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार करने की आवश्यकता है, न केवल उन्हें गलत किए गए कार्यों के लिए दंडित करने के लिए, बल्कि दूसरों को भी ऐसे कृत्यों में लिप्त होने से रोकने के लिए जो न्याय प्रशासन की प्रणाली में लोगों के विश्वास को हिलाते हैं।

***

14. इस प्रकार कानूनी स्थिति यह है कि यदि प्रकाशन अदालत को धोखा देने के इरादे से किया गया है या धोखाधड़ी के इरादे से किया गया है, तो यह अवमानना होगी, क्योंकि यह न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करेगा। यह, किसी भी मामले में, उसके साथ हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता है। यह निश्चित रूप से ऐसा होगा यदि उपरोक्त आशय के साथ एक मनगढ़ंत दस्तावेज दायर किया जाता है। मामले में मनगढ़ंत दस्तावेज स्पष्ट रूप से अदालत को धोखा देने के लिए था; ठगी का इरादा बड़ा है। इसलिए अनिल कुमार अवमानना के दोषी हैं।

(ii) विद्या देवी (उपरोक्त) :-

12.13. ऐसे मामले में जहां न्याय की मांग इतनी सम्मोहक है, एक संवैधानिक न्यायालय न्याय को बढ़ावा देने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा, न कि इसे पराजित करने के लिए। [सदाशिवस्वामी बनाम तमिलनाडु राज्य, (1975)1 एस.सी.सी.152: 1975 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 22]

(III) श्रीमती सरिता सिंह (उपरोक्त): -

कई वर्षों से, उत्तर प्रदेश राज्य में, पदों के सृजन के लिए पूर्व अनुमति के बिना शैक्षणिक संस्थानों के प्रबंधन द्वारा शिक्षकों की नियुक्ति करने और फिर वेतन के भुगतान के लिए न्यायालय में आने का खेल चल रहा है और इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम/अंतिम आदेशों के आधार पर ऐसी नियुक्तियों को करदाताओं के धन से कई हजार करोड़ रुपये का भुगतान किया गया है। इसलिए, केवल प्रबंधन समिति और ऐसी नियुक्तियां ही दोषी नहीं हैं, बल्कि शिक्षा विभाग के अधिकारियों का भी दोषी होने में बराबर का हिस्सा है।

(iv) डॉ जे एस यादव (उपरोक्त): -

22. इस प्रकार, यह इस तरह के कार्य पर ध्यान दे सकता है और अवमानना क्षेत्राधिकार के तहत ऐसे आदेश पारित कर सकता है जहां कार्य कानून की महिमा या न्यायालय की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। तथापि, साथ ही, यह भली-भांति याद रखना चाहिए कि क्षेत्राधिकार किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश की गरिमा की रक्षा करना नहीं है बल्कि न्याय प्रशासन को बदनाम होने से बचाना है।

23. न्यायालय निरर्थक आदेश पारित नहीं करते हैं। तथापि, एक बार एक आदेश पारित हो जाने के बाद, वह पक्षों के लिए बाध्यकारी है और निष्पादित और अनुपालन करने में सक्षम होना चाहिए। यदि न्यायालय अपने आदेशों का अनुपालन करने में असमर्थ रहता है तो इसका कोई मूल्य नहीं होगा अन्यथा जनता का विश्वास कम हो जाएगा और यह न्यायिक प्रणाली पर सबसे अनुचित रूप से प्रतिबिंबित होगा। इस प्रकार, न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को उनके तार्किक निष्कर्ष पर ले जाना चाहिए ताकि बड़े पैमाने पर जनता का विश्वास बरकरार रहे और न्यायालय के आदेशों को उन लोगों द्वारा हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए जो इसका पालन करने के लिए बाध्य हैं।

(v) मजदूर संघ (उपरोक्त) :-

23. जैसा कि डीडीए बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड [डीडीए बनाम स्किपर कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड, (1996) 4 एस.सी.सी. 622] में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था, और एक कदम आगे बढ़ते हुए, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह आदेशों के उल्लंघन में की गई चीजों को सुधारने के लिए उचित निर्देश जारी करे। उस संबंध में, न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में सुधारात्मक उपाय भी कर सकता है।

(vi) दिल्ली विकास प्राधिकरण:-
अवमाननाकर्ता को अपनी अवमानना के फल का आनंद लेने या बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

17. यह सिद्धांत कि एक अवमाननाकर्ता को अपनी अवमानना के फल का आनंद लेने और/या रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, अच्छी तरह से तय है। मो. इदरीस बनाम रुस्तम जहांगीर बाबूजी [(1984)4 एस.सी.सी.216: 1984एस.सी.सी. (सीआरआई) 587: (1985)1 एस.सी.आर 598] में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि अवमानना के लिए सजा भुगतने का मतलब यह नहीं है कि अदालत अपने आदेशों के उल्लंघन में की गई चीजों को सुधारने के लिए उचित निर्देश

देने का हकदार नहीं है। उसमें याचिकाकर्ताओं ने बंबई उच्च न्यायालय को एक वचन दिया था। उन्होंने इसका उल्लंघन किया। एकल न्यायाधीश ने उन्हें अवमानना का दोषी पाया और एक महीने के कारावास की सजा सुनाई। इसके अलावा, एकल न्यायाधीश ने वचनबद्धता के उल्लंघन को दूर करने के लिए उचित निर्देश दिए। इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि याचिकाकर्ताओं को अदालत की अवमानना के लिए दंडित करने के अलावा न्यायाधीश पूर्वोक्त निर्देश देने में न्यायसंगत नहीं थे। इस तर्क को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि "एकल न्यायाधीश उल्लंघन (उपक्रम के) को बंद करने के लिए उचित निर्देश देने में काफी सही थे"।

18. उपरोक्त सिद्धांत दीवानी न्यायालयों द्वारा जारी निषेधाज्ञा के आदेशों के उल्लंघन के मामले में भी लागू किया गया है। क्लार्क बनाम चाडबर्न [(1985)1 इला. ई.आर. 211] में सर रॉबर्ट मेगारी वीसी ने देखा:

"मुझे इस प्रस्ताव के लिए प्राधिकरण का हवाला देने की आवश्यकता नहीं है कि यह उच्च महत्व का है कि अदालत के आदेशों का पालन किया जाना चाहिए। अदालत के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा अदालत की अवमानना के रूप में दंडनीय है, और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस तरह की अवज्ञा को उचित रूप से अवैध बताया जा सकता है। यदि इस तरह की अवज्ञा से व्यक्तियों को यह दावा करने का आदेश दिया जाता है कि उन्होंने दूसरों के अधिकारों और दायित्वों में वैध रूप से कुछ आरोप लगाए हैं, तो मैं यह नहीं देख सकता कि यह क्यों कहा जाना चाहिए कि यद्यपि वे जो कुछ भी करते हैं उसके लिए अदालत की अवमानना के लिए दंड के लिए उत्तरदायी हैं, फिर भी वे कार्य वैध रूप से किए गए थे। निस्संदेह, यदि कोई कार्य किया जाता है तो केवल यह इंगित करके कि वह कानून का उल्लंघन करके किया गया था, पूर्ववत नहीं किया जा सकता। यदि कोई बैठक निषेधाज्ञा के उल्लंघन में अवधारित की जाती है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि बैठक अवधारित नहीं की गई है। लेकिन कानून के उल्लंघन में जो किया गया है उसके कानूनी परिणाम स्पष्ट रूप से अवैधता से बहुत अधिक प्रभावित हो सकते हैं। यह मुझे सिद्धांत पर लगता है कि जो लोग निषेध की अवहेलना करते हैं, उन्हें यह दावा करने में सक्षम नहीं होना चाहिए कि उनकी अवज्ञा के फल अच्छे हैं, और उन्हें उत्पन्न करने वाली अवैधता से दूषित नहीं होना चाहिए।

19. इसी आशय के लिए सेंचुरी फ्लोर मिल्स लिमिटेड बनाम एस सुप्पिया [ए.आई.आर. 1975 मैड 270: (1975) 2 एमएलजे 54] और सुजीत पाल बनाम प्रबीर कुमार सन [ए.आई.आर. 1986 कलकत्ता 220: (1986) 90 सीडब्ल्यूएन 342] में मद्रास और कलकत्ता उच्च न्यायालयों के फैसले हैं। सेंचुरी फ्लोर मिल्स लिमिटेड [ए.आई.आर. 1975 एमएडी 270: (1975) 2 एमएलजे 54] में मद्रास उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ द्वारा यह माना गया था कि जहां कोई कार्य स्थगन

आदेश या निषेधाज्ञा के उल्लंघन में किया जाता है, तो नीति के रूप में यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह गलत को सही करे और गलत काम को बनाए रखने की अनुमति न दे। अदालत की अंतर्निहित शक्ति, यह माना गया कि न केवल ऐसे मामले में उपलब्ध है, बल्कि यह न्याय के हित में गलत को सुधारने के लिए इसका प्रयोग करने के लिए बाध्य है। यह एक ऐसा मामला था जहां निषेधाज्ञा के आदेश के विपरीत एक बैठक आयोजित की गई थी। अदालत ने यह मानने से इनकार कर दिया कि बैठक का आयोजन कानूनी है। इसने पक्षों को उसी स्थिति में वापस ला दिया क्योंकि वे अंतरिम आदेश की सेवा से ठीक पहले खड़े थे।

20. सुजीत पाल [ए.आई.आर. 1986 कलकत्ता 220: (1986) 90 सीडब्ल्यूएन 342] में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने यही विचार रखा है। वहां, प्रतिवादी ने निषेधाज्ञा के आदेश का उल्लंघन करते हुए वादी को जबरन बेदखल कर दिया और संपत्ति पर कब्जा कर लिया। अदालत ने पुलिस की सहायता से वादी को कब्जा बहाल करने का निर्देश दिया। न्यायालय ने कहा कि कोई भी तकनीक अदालत को अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में न्याय करने से नहीं रोक सकती है। यह माना गया कि आदेश 39 के नियम 2-ए का उद्देश्य केवल तभी पूरा होगा जब पीड़ित पक्ष को कब्जे की बहाली के लिए ऐसा अनिवार्य निर्देश दिया गया हो। यह देखा गया क कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक था।

21. इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस हितकारी नियम को लागू किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो, तो किसी भी प्रक्रियात्मक या अन्य तकनीकी आपत्तियों को खारिज करके इस न्यायालय द्वारा प्रभावी किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 129 एक संवैधानिक शक्ति है और जब अनुच्छेद 142 के साथ प्रयोग किया जाता है, तो ऐसी सभी आपत्तियों को रास्ता देना चाहिए। अदालत को अपने समक्ष पक्षों के बीच पूर्ण न्याय सुनिश्चित करना चाहिए।

(vii) ए.वी. पपाय्य शास्त्री (उपरोक्त) :-

21. अब, यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई निर्णय या आदेश धोखाधड़ी से प्राप्त किया जाता है, तो इसे कानून में निर्णय या आदेश नहीं कहा जा सकता है। तीन शताब्दियों से पहले, मुख्य न्यायाधीश एडवर्ड कोक ने घोषणा की: *"धोखाधड़ी सभी न्यायिक कृत्यों, सनक या लौकिक से बचा जाता है।*

22. इस प्रकार यह विधि का स्थापित प्रस्ताव है कि न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी पर धोखाधड़ी करके प्राप्त निर्णय, डिक्री या आदेश विधि की दृष्टि में शून्यता और अमान्य है। इस तरह के निर्णय, डिक्री या आदेश - प्रथम न्यायालय द्वारा या अंतिम न्यायालय द्वारा - प्रत्येक न्यायालय द्वारा शून्यता माना जाना चाहिए, चाहे वह श्रेष्ठ हो या अवर। इसे किसी भी न्यायालय में, किसी भी समय, अपील, पुनरीक्षण, रिट या यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी चुनौती दी जा सकती है।

23. लाजर एस्टेट्स लिमिटेड के प्रमुख मामले में, बेस्ली [(1956)1 इला. ई.आर. 341:

(1956) 1 क्यूबी 702: (1956)2 डब्ल्यू.एल.आर. 502 (सीए)] लॉर्ड डेनिंग ने देखा: (सभी ई.आर. पृष्ठ 345 सी) "अदालत का कोई निर्णय, मंत्री का कोई आदेश, को, यदि यह धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, बाकी रहने होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

24. डचेस ऑफ किंगस्टोन में, स्मिथ के अग्रणी मामले, 13 वें संस्करण, पृष्ठ 644, धोखाधड़ी की प्रकृति की व्याख्या करते हुए, डी ग्रे, सीजे ने कहा कि हालांकि एक निर्णय न्यायिक होगा और भीतर से महाभियोग योग्य नहीं होगा, यह बिना महाभियोग योग्य हो सकता है। दूसरे शब्दों में, हालांकि यह दिखाने की अनुमति नहीं है कि अदालत "गलत" थी, यह दिखाया जा सकता है कि यह "गुमराह" था। गलती और प्रवंचना के बीच एक आवश्यक अंतर है। भेद का स्पष्ट निहितार्थ यह है कि किसी निर्णय को रद्द करने की कार्रवाई इस आधार पर नहीं की जा सकती है कि यह गलत तरीके से तय किया गया है, अर्थात्, योग्यता के आधार पर, निर्णय ऐसा था जिसे प्रदान नहीं किया जाना चाहिए था, लेकिन इसे, अगर अदालत पर निर्णय देने के लिए लगाया गया था या धोखा दिया गया था, अपास्त किया जा सकता है।

25. यह कहा गया है, कि <u>कपट और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते</u> (फ्राउस एट जस ननक्वाम सहवासियों); या धोखाधड़ी और छल से किसी को लाभ नहीं होना चाहिए (फ्राउस एट डोलस नेमिनी पैट्रोसिनरी डिबेंट)।

26. धोखाधड़ी को जानबूझकर धोखे के कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें दूसरे का अनुचित लाभ उठाकर कुछ अनुचित या अवांछित लाभ हासिल करने के डिजाइन के साथ किया जा सकता है। धोखाधड़ी में एक को दूसरे के नुकसान पर लाभ होता है। यहां तक कि सबसे गंभीर कार्यवाही भी खराब हो जाती है यदि वे धोखाधड़ी से सक्रिय होते हैं। इस प्रकार धोखाधड़ी एक बाहरी संपार्श्विक कार्य है जो सभी न्यायिक कृत्यों को दूषित करता है, चाहे वह रेम में हो या व्यक्तिगत रूप से। "मुकदमेबाजी की अंतिमता" के सिद्धांत को एक बेतुकेपन की सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है कि इसका उपयोग बेईमान और धोखेबाज वादियों द्वारा उत्पीड़न के इंजन के रूप में किया जा सकता है।

27. एस. पी. चेंगलवराया नायडू बनाम जगन्नाथ [(1994)1 एस.सी.सी.1] इस न्यायालय के पास धोखाधड़ी के सिद्धांत और एक पक्ष द्वारा प्राप्त निर्णय पर उसके प्रभाव पर विचार करने का अवसर था। उस मामले में, एक पंजीकृत विलेख द्वारा एक ए ने सी के पक्ष में वाद संपत्ति में अपने सभी अधिकारों को त्याग दिया, जिसने संपत्ति बी को बेच दी। इस तथ्य का खुलासा किए बिना, ए ने बी के खिलाफ कब्जे के लिए मुकदमा दायर किया और प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की। अंतिम डिक्री के लिए एक आवेदन के लंबित रहने के दौरान, बी को सी के पक्ष में ए द्वारा रिलीज विलेख के तथ्य के बारे में पता चला। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि अदालत पर धोखाधड़ी करके डिक्री प्राप्त की गई थी और यह एक अमान्य

था। निचली अदालत ने इस दलील को बरकरार रखा और आवेदन खारिज कर दिया। हालांकि, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया, यह देखते हुए कि "वादी पर कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है कि वह एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आए और इसे सच्चे सबूतों से साबित करे"। बी ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

28. अपील की अनुमति देते हुए, उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करते हुए और उच्च न्यायालय की टिप्पणियों को "पूरी तरह से विकृत" बताते हुए, जस्टिस कुलदीप सिंह ने कहा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 5, पैरा-5) *"कानून की अदालतें पक्षों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए हैं। जो अदालत में आता है, उसे साफ हाथों से आना चाहिए। हम यह कहने के लिए विवश हैं कि अधिकांशत न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपति हड़पने वाले, कर-चोर, बैंक-ऋणदाता और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अदालती प्रक्रिया को अनिश्चित काल तक अवैध लाभ को बनाए रखने के लिए एक सुविधाजनक लीवर पाते हैं। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित है, उसे अदालत जाने का कोई अधिकार नहीं है। उसे मुकदमेबाजी के किसी भी चरण में सरसरी तौर पर बाहर निकाला जा सकता है।* (महत्त्व सन्निविष्ट)

29. न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 5, पैरा-6) "एक वादी, जो अदालत से संपर्क करता है, उसके द्वारा निष्पादित सभी दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है जो मुकदमेबाजी के लिए प्रासंगिक हैं। यदि वह दूसरी तरफ लाभ हासिल करने के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज को रोकता है तो वह अदालत के साथ-साथ प्रतिपक्षी पर धोखाधड़ी करने का दोषी होगा।

30. न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला: (एस.सी.सी. पृष्ठ 5, पैरा-5) "मुकदमेबाजी की अंतिमता' के सिद्धांत को इस तरह की बेतुकापन की सीमा तक नहीं दबाया जा सकता है कि यह बेईमान वादियों के हाथों में धोखाधड़ी का इंजन बन जाए।

31. इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया)(पी) लिमिटेड [(1996) 5 एस.सी.सी. 550: जेटी 1996 (7) एस.सी. 135] में लाजर एस्टेट्स का जिक्र करते हुए [(1956)1 इला. ई.आर. 341: (1956)1 क्यूबी 702: (1956) 2 डब्ल्यू.एल.आर. 502 (सीए)] और स्मिथ बनाम ईस्ट एलो रूरल डिस्ट्रिक्ट। परिषद [1956 एसी 736: (1956) 1 इला ई.आर. 855: (1956)2 डब्ल्यू.एल.आर. 888 (एचएल)] (एस.सी.सी. पीपी 562-63, पैरा-22) में इस न्यायालय ने कहा:

> "22. भारत में न्यायपालिका के पास भी अंतर्निहित शक्ति है, विशेष रूप से धारा 151 सी.पी.सी. के तहत, अपने फैसले या आदेश को वापस लेने के लिए यदि यह अदालत में धोखाधड़ी से प्राप्त किया जाता है। वाद या कार्यवाही के लिए किसी पक्ष पर धोखाधड़ी के मामले में, अदालत प्रभावित पक्ष को धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त डिक्री को रद्द करने के लिए एक अलग

मुकदमा दायर करने का निर्देश दे सकती है। निहित शक्तियां वे शक्तियां हैं जो सभी न्यायालयों में निवास करती हैं, विशेष रूप से उच्चतर क्षेत्राधिकार की। ये शक्तियां कानून से नहीं बल्कि न्यायाधिकरणों या अदालतों की प्रकृति और गठन से उत्पन्न होती हैं ताकि वे अपनी गरिमा बनाए रख सकें, इसकी प्रक्रिया और नियमों का पालन कर सकें, अपने अधिकारियों को अपमान और गलत से बचा सकें और अनुचित व्यवहार को दंडित कर सकें। यह शक्ति अदालत के कामकाज के व्यवस्थित प्रशासन के लिए आवश्यक है।

32. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह [(2000)3 एस.सी.सी. 581: 2000 एस.सी.सी. (सीआरआई) 726: जेटी (2000) 3 एस.सी. 151] बीमा कंपनी पर धोखाधड़ी का अभ्यास करके, दावेदार ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से मुआवजे का पंचाट प्राप्त किया। धोखाधड़ी का पता चलने पर, बीमा कंपनी ने पंचाट वापस लेने के लिए आवेदन किया। हालांकि, ट्रिब्यूनल ने इस आधार पर याचिका खारिज कर दी कि उसके पास अपने स्वयं के पंचाट की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं है। उच्च न्यायालय ने आदेश की पुष्टि की। कंपनी ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

33. अपील की अनुमति देते हुए और आदेशों को रद्द करते हुए, (एस.सी.सी. पीपी 587-88, पैरा-15-17) इस न्यायालय ने कहा:

"15. अपीलकर्ता कंपनी से धोखाधड़ी के आधार पर पहली बार में दावे का विरोध करने की उम्मीद करना अवास्तविक है क्योंकि अपीलकर्ता कंपनी को उस स्तर पर दावेदारों द्वारा कथित रूप से किए गए धोखाधड़ी के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यदि बीमा कंपनी को मुआवजे के लिए दावा निकालने के भयावह उद्देश्य के साथ किए गए किसी भी संदिग्ध मनगढ़ंत कहानी के बारे में पता चलता है, और यदि उस समय तक पंचाट पहले ही पारित हो चुका था, तो कंपनी के लिए पंचाट के खिलाफ वैधानिक अपील दायर करना संभव नहीं होगा. न केवल अपील दायर करने की सीमा पर रोक के कारण, बल्कि अपील पर विचार, भले ही देरी को माफ किया जा सके, तब तक की गई दलीलों से तैयार किए गए मुद्दों तक सीमित होगा।

16. इसलिए, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च डिग्री की धोखाधड़ी के लिए नए खोजे गए तथ्यों के आधार पर आदेश को वापस लेने के लिए कदम उठाने का उपाय, ऐसी स्थिति में बंद नहीं किया जा सकता है। किसी भी अदालत या न्यायाधिकरण को अपने स्वयं के आदेश को वापस लेने के लिए शक्तिहीन नहीं माना जा सकता है यदि यह आश्वस्त है कि आदेश धोखाधड़ी या इस तरह के आयाम की गलत बयानी के माध्यम से किया गया था जो दावे के आधार को प्रभावित करेगा।

17. अपीलकर्ता बीमा कंपनी द्वारा लगाए गए आरोप, कि दावेदार दुर्घटना में शामिल नहीं थे, जिसे उन्होंने दावा याचिकाओं में वर्णित किया था, इस मामले में आगे की जांच के बिना एक

तरफ नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उक्त आरोप को विशेष रूप से दावेदारों द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है जब उन्हें पुरस्कारों को वापस लेने के लिए आवेदनों पर आपत्ति दर्ज करने के लिए कहा गया था। दावेदारों ने तब अपने प्रतिरोध को इस दलील तक सीमित कर दिया कि वापस बुलाने के लिए आवेदन कानूनी रूप से बनाए रखने योग्य नहीं है। इसलिए, हम दृढ़ता से महसूस करते हैं कि बीमा कंपनी द्वारा अब कथित धोखाधड़ी के आधार पर दावे का विरोध करने की अनुमति दी जानी चाहिए। अगर हम बीमा कंपनी को उनकी दलीलों को साबित करने का अवसर देने में विफल रहते हैं, तो यह निश्चित रूप से न्याय की गंभीर हानि का कारण बन सकता है।

(viii) हमजा हाजी (उपरोक्त): -

10. यह सच है, जैसा कि डी ग्रे, सीजे, में आर डचेस ऑफ किंग्स्टन [2 स्मिथ एलसी 687] में है कि:

"धोखाधड़ी' एक बाहरी, संपार्श्विक कार्य है, जो न्याय की अदालतों की सबसे गंभीर कार्यवाही को दूषित करता है। लॉर्ड कोक का कहना है कि यह सभी न्यायिक कृत्यों, सनकी और लौकिक से बचता है।

11. धोखाधड़ी और गलती पर, यह कहा गया है कि: "इस नियम को लागू करने में, यह मायने नहीं रखता है कि क्या निर्णय एक अवर या क्षेत्र में न्यायपालिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाया गया है, लेकिन सभी मामलों में समान रूप से यह हर अदालत के लिए सक्षम है, चाहे वह श्रेष्ठ हो या हीन, किसी भी निर्णय को शून्यता के रूप में मानने के लिए जिसे प्रकट रूप से स्पष्ट धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त किया गया दिखाया जा सकता है।

12. यह भी स्पष्ट है जैसा कि किंच बनाम में दर्शाया गया है। वालकॉट [1929 एसी 482: 1929 इला. ई.आर. रेप 720: 141 एलटी 102 (पीसी)] कि यह धोखाधड़ी से दूषित डिक्री के लिए एक पक्ष की शक्ति में सीधे अदालत में आवेदन करने के लिए होगा जिसने इसे खाली करने की घोषणा की। केर के अनुसार:

"एक निर्णय को महाभियोग लगाने के लिए एक कार्रवाई को बनाए रखने के लिए, वास्तविक धोखाधड़ी को दिखाया जाना चाहिए; केवल रचनात्मक धोखाधड़ी, लंबी देरी के बाद सभी घटनाओं में, पर्याप्त नहीं है ... लेकिन इस तरह के फैसले को केवल इस सबूत पर रद्द नहीं किया जाएगा कि निर्णय झूठी गवाही द्वारा प्राप्त किया गया था। (देखें 7वां संस्करण, पेज 416-17)

13. कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम, वॉल्यूम 49, पैरा-265 में, यह स्वीकार किया जाता है कि:

"रिकॉर्ड या सामान्य क्षेत्राधिकार के न्यायालयों के पास अपने स्वयं के निर्णयों को रद्द करने या अपास्त करने की अंतर्निहित शक्ति है।

पैरा-269 में आगे कहा गया है:

"निर्णय प्राप्त करने में धोखाधड़ी या मिलीभगत इसे खोलने या खाली करने के लिए एक पर्याप्त आधार है, यहां तक कि उस अवधि के बाद भी, जिस पर इसे प्रस्तुत किया गया था, बशर्ते धोखाधड़ी बाहरी और संपार्श्विक थी और

कार्रवाई में वास्तव में या संभावित रूप से मुद्दा नहीं था।
यह भी कहा गया है:

"अदालत में धोखाधड़ी हमेशा निर्णय को रद्द करने का आधार होती है, जैसे कि जहां अदालत को भौतिक परिस्थितियों के रूप में धोखा दिया जाता है या गुमराह किया जाता है, या इसकी प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप एक निर्णय का प्रतिपादन होता है जो नहीं दिया जाता यदि मामले का पूरा आचरण निष्पक्ष होता।

14. अमेरिकी न्यायशास्त्र, दूसरा संस्करण, वॉल्यूम 46, पैरा-825 में, यह कहा गया है:

"वास्तव में, एक निर्णय के साथ धोखाधड़ी का संबंध एक निर्णय के संचालन के साथ इक्विटी की अदालत द्वारा हस्तक्षेप के मुख्य कारणों में से एक है। इस तरह की राहत देने में इक्विटी के न्यायालयों की शक्ति अंतर्निहित है, और इस आधार पर निर्णयों के खिलाफ न्यायसंगत राहत के लिए लगातार आवेदन इक्विटी में किए गए थे, इससे पहले कि नए परीक्षण देने की प्रथा को आम कानून की अदालतों में पेश किया गया था।
जहां धोखाधड़ी शामिल है, यह कुछ मामलों में अवधारित किया गया है, कि अपील, त्रुटि, या उत्प्रेषण द्वारा कानून में एक उपाय निर्णय से इक्विटी में राहत को नहीं रोकता है। न ही, यह कहा गया है, क्या कोई कारण है कि धोखाधड़ी से प्राप्त निर्णय इक्विटी में कार्रवाई द्वारा सीधे हमले का विषय नहीं हो सकता है, भले ही निर्णय संतुष्ट हो।

15. भारत में कानून अलग नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 एक पक्ष को अन्यथा पिछले निर्णय से बाध्य करने में सक्षम बनाती है ताकि यह दिखाया जा सके कि यह अंतिम या बाध्यकारी नहीं था क्योंकि यह धोखाधड़ी से दूषित है। इसलिए यह प्रावधान अदालत को इस सवाल पर विचार करने और निर्णय लेने का अधिकार देता है कि क्या धोखाधड़ी से पूर्व अधिनिर्णय खराब हो गया है। में परांजपे बनाम कनाडे [आई.एल.आर. (1882) 6 बॉम्बे 148]

यह माना गया था कि: (आई.एल.आर. पृष्ठ 148)
"किसी भी अदालत के लिए किसी भी निर्णय या आदेश को रद्द करने के लिए हमेशा सक्षम होता है, अगर यह साबित हो जाता है कि ऐसा निर्णय या आदेश प्रकट धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था;"

16. लक्ष्मी चरण साहा बनाम नूर अली [आई.एल.आर. (1911) 38 कलकत्ता 936: 15 सीडब्ल्यूएन 1010] में यह माना गया था कि: (आई.एल.आर. पृष्ठ 936)

"[टी] वह एक मुकदमे की कोशिश करने में न्यायालय का अधिकार क्षेत्र [धोखाधड़ी से दूषित होने के रूप में पहले के फैसले पर सवाल उठाते हुए,] केवल एक जांच तक सीमित नहीं था कि क्या वादी को प्रतिवादी की धोखाधड़ी से पूर्व परीक्षण में अपने मामले को ठीक से रखने से रोका गया था। अदालत यह निर्धारित करने के लिए पूरे मामले को चीर सकती है कि क्या डिक्री की खरीद में धोखाधड़ी हुई थी।

17. मणींद्र नाथ मित्रा बनाम हरि मंडल [(1919) 24 सीडब्लूएन 133: ए.आई.आर. 1920 कलकत्ता 126] में न्यायालय ने धोखाधड़ी से दूषित होने वाले पूर्व निर्णय की दलील को बरकरार रखने से पहले साबित किए जाने वाले तत्वों की व्याख्या की। न्यायालय ने कहा: (ए.आई.आर. पृष्ठ 127)

"इस सवाल के संबंध में कि धोखाधड़ी का गठन क्या है जिसके लिए एक डिक्री को अलग रखा जा सकता है, दो प्रस्ताव अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पहला यह है कि यद्यपि यह दिखाने की अनुमति नहीं है कि न्यायालय (पूर्व वाद में) गलत था, यह दिखाया जा सकता है कि इसे गुमराह किया गया था; दूसरे शब्दों में, जहां न्यायालय को जानबूझकर किसी पक्ष की धोखाधड़ी से गुमराह किया गया है और न्यायालय पर धोखाधड़ी की गई है उसका निर्णय प्राप्त करने के इरादे से, यह अपने फैसले को खराब कर देगा। दूसरा यह है कि एक डिक्री को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि यह विकृत साक्ष्य द्वारा प्राप्त किया गया है:

18. इस स्थिति को उसी उच्च न्यायालय ने एस्माइल उद्दीन बिस्वास बनाम शाजोरन नेसा बेवा [132 आईसी 897: ए.आई.आर. 1931 कलकत्ता 649 (2)] में दोहराया था। यह अवधारित किया गया था कि: (ए.आई.आर. पृष्ठ 650*) "[I] यह दिखाया जाना चाहिए कि अदालत में कार्यवाही के संबंध में धोखाधड़ी की प्रैक्टिस की गई थी और डिक्री को अदालत पर किसी प्रकार की धोखाधड़ी का अभ्यास करके प्राप्त किया जाना चाहिए:"*

19. नेमचंद तांटिया बनाम किशिनचंद चेलाराम (इंडिया) लिमिटेड [(1959) 63 सीडब्ल्यूएन 740: ए.आई.आर. 1959 कलकत्ता 776] में यह माना गया था कि: (सीडब्ल्यूएन, पृष्ठ 740) *"एक डिक्री को एक नई कार्रवाई द्वारा फिर से खोला जा सकता है जब इसे पारित करने वाली अदालत को धोखाधड़ी से गुमराह किया गया था, लेकिन जब अदालत बस गलत हो तो इसे फिर से नहीं खोला जा सकता है; जब गलत सबूतों के आधार पर डिक्री पारित की गई थी, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि अदालत को गुमराह किया गया था।*

20. इस प्रश्न पर न्याय विधि निर्णयों को गुणा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह मामला पहले के अवसरों पर इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया है। एस.पी. चेंगलवराया नायडू बनाम जगन्नाथ [(1994)1 एस.सी.सी.1: 1993 पूरक (3) एस.सी.आर 422] में इस न्यायालय ने कहा कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 2, पैरा-1)

"यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि अदालत पर धोखाधड़ी करके प्राप्त निर्णय या डिक्री कानून की नजर में एक अमान्य और गैर-एस्ट है। प्रथम न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए ऐसे निर्णय/डिक्री को प्रत्येक न्यायालय द्वारा शून्यता माना जाना चाहिए, चाहे वह उच्चतर हो या कमतर। इसे किसी भी अदालत में चुनौती दी जा सकती है, यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी।

न्यायालय ने कहा कि उस मामले में उच्च न्यायालय पूरी तरह से त्रुटि में था जब उसने

कहा कि वादी पर एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आने और सच्चे साक्ष्य द्वारा इसे साबित करने का कोई कानूनी कर्तव्य नहीं था। उनके बाहुल्य ने कहा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 5, पैरा-5)

पीठ ने कहा, "कानून की अदालतें दोनों पक्षों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए होती हैं। जो अदालत में आता है, उसे सही तथ्यों के साथ आना चाहिए। हम यह कहने के लिए विवश हैं कि अधिकांशत न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति हड़पने वाले, कर-चोर, बैंक ऋणदाता और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अवैध लाभ को अनिश्चित काल तक बनाए रखने के लिए अदालती प्रक्रिया को एक सुविधाजनक लीवर पाते हैं। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित है, उसे अदालत जाने का कोई अधिकार नहीं है। उसे मुकदमेबाजी के किसी भी चरण में सरसरी तौर पर बाहर निकाला जा सकता है।

21. राम प्रीति यादव बनाम उत्तर प्रदेश बोर्ड ऑफ उच्च स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजुकेशन [(2003) 8 एस.सी.सी. 311: 2003 पूरक (3) एस.सी.आर 352] में इस न्यायालय ने लाजर एस्टेट्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश बोर्ड से प्रासंगिक मार्ग को उद्धृत करने के बाद। बेस्ली [(1956)1 इला. ई.आर. 341: (1956)2 डब्ल्यू.एल.आर. 502: (1956)1 क्यूबी 702 (सीए)] और एसपी चेंगलवराया नायडू बनाम का जिक्र करने के बाद; जगन्नाथ [(1994)1 एस.सी.सी.1: 1993 पूरक(3) एस.सी.आर 422] ने दोहराया कि धोखाधड़ी सभी न्यायिक कृत्यों से बचती है। आंध्र प्रदेश बनाम टी सूर्यचंद्र राव [(2005) 6 एस.सी.सी. 149] राज्य में, इस न्यायालय ने पहले के फैसलों का उल्लेख करने के बाद कहा कि एक भौतिक दस्तावेज को छिपाना भी न्यायालय के साथ धोखाधड़ी हो सकता है। इसने (एस.सी.सी. पृष्ठ 155, पैरा-16 पर) लाजर एस्टेट्स लिमिटेड बेस्ली [(1956) 1 इला. ई.आर. 341: (1956) 2 डब्ल्यू.एल.आर. 502: (1956) 1 क्यूबी 702 (सीए)] कि: (इला ई.आर.पी में लॉर्ड डेनिंग की टिप्पणियों को भी उद्धृत किया।

"अदालत का कोई निर्णय, किसी मंत्री का कोई आदेश, यदि धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, तो उसे बाकी रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। धोखाधड़ी सब कुछ सुलझा देती है।

22. कहानी के इक्विटी न्यायशास्त्र के अनुसार, 14 वां संस्करण, वॉल्यूम 1, पैरा-263:

"वास्तव में धोखाधड़ी, इक्विटी के न्यायालय के अर्थ में, उचित रूप से सभी कृत्यों, चूक, और छुपाने को शामिल करता है जिसमें कानूनी या न्यायसंगत कर्तव्य, विश्वास, या विश्वास का उल्लंघन शामिल है, उचित रूप से लगाया जाता है, और दूसरे के लिए हानिकारक होता है, या जिसके द्वारा एक अनुचित लाभ लिया जाता है।

23. पैच में बनाम वार्ड [(1867) 3 Ch App 203: 18 LT 134] सर जॉन रोल्ट, एलजे ने कहा कि:

"धोखाधड़ी वास्तविक सकारात्मक धोखाधड़ी होनी चाहिए, पक्षों और अदालत को मामले के वास्तविक तथ्यों की अज्ञानता में रखने के लिए एक ध्यान और जानबूझकर युक्ति, और उस युक्ति से उस डिक्री को प्राप्त करना।

24. यह न्यायालय भाऊराव दगडू परलकर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2005) 7 एस.सी.सी. 605] ने माना कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 607)

"एक भौतिक दस्तावेज को छिपाना भी अदालत में धोखाधड़ी के समान होगा। हालांकि, लापरवाही धोखाधड़ी नहीं है, लेकिन यह धोखाधड़ी पर सबूत हो सकता है।

25. इस प्रकार, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदि वन न्यायाधिकरण से पहले का आदेश अपीलकर्ता द्वारा विकृत साक्ष्य पर प्राप्त किया गया है, तो यह स्वयं न्यायालय को उत्प्रेषण या समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने या भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत पहले के आदेश को शून्य करने में सक्षम नहीं करेगा। लेकिन अगर अदालत को पता चलता है कि अपीलकर्ता ने वन न्यायाधिकरण के समक्ष अपने मामले की स्थापना एक झूठी दलील पर या एक ऐसे दावे पर की थी, जिसे वह झूठा जानता था और दबे हुए दस्तावेज या लेनदेन जो उसके दावे को तय करने में प्रासंगिक थे, तो यह धोखाधड़ी होगी। इस मामले में, अपीलकर्ता ने वर्ष 1968 में दस्तावेज़ संख्या-2685 वर्ष 1968 दिनांक 2-6-1968 के तहत लगभग 55 एकड़ की सीमा खरीदी थी। उन्होंने वन अधिकरण के समक्ष अपने साक्ष्य के अनुसार भी दिनांक 30-1-1969 के एक दस्तावेज के तहत अपने भाई को 5 एकड़ भूमि उपहार में दी थी। इसके अतिरिक्त, राज्य के अनुसार, उन्होंने वर्ष 1971 और 1972 के दौरान विभिन्न विक्रय विलेखों द्वारा 5525 एकड़ में से 4993 एकड़ भूमि बेची थी। हालांकि, बिक्री विलेखों का विवरण जैसे पंजीकृत दस्तावेजों की संख्या, बिक्री की तारीखें, हस्तांतरणकर्ताओं के नाम, शामिल विस्तार और प्राप्त विचार राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष समीक्षा के लिए जो अपने आवेदन में निर्धारित किए गए थे, एक सामान्य इनकार को छोड़कर, अपीलकर्ता लेनदेन से विशेष रूप से इनकार नहीं कर सकता था और न ही करता था। इस न्यायालय में भी ऐसा ही है, जहां जवाबी हलफनामे में, इन लेनदेन का विवरण राज्य द्वारा निर्धारित किया गया है और अपीलकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर में, इन लेनदेन या उन लेनदेन में शामिल सीमाओं का कोई विशिष्ट खंडन नहीं है। इसलिए, यह उच्च न्यायालय द्वारा पाए गए संदेह के बिना स्थापित किया गया है कि अपीलकर्ता ने इस तथ्य को दबा दिया कि उसने पंजीकृत दस्तावेज के तहत उसके द्वारा खरीदी गई लगभग पूरी संपत्ति के साथ भाग लिया था, जिसके माध्यम से उसने वन न्यायाधिकरण के समक्ष याचिका अनुसूची संपत्ति के स्वामित्व / हक्के मिल्कियत का दावा किया था। दूसरे शब्दों में, जब उसने यह दावा किया कि उसके पास 20 एकड़ भूमि का अधिकार है और वह राज्य में निहित नहीं है और विकल्प के रूप में, वह वास्तव में उस भूमि पर खेती करना चाहता था और उस भूमि पर खेती कर रहा था, वास्तव में, उस भूमि पर उसका न तो कोई अधिकार था और न ही उसका कब्जा। ट्रिब्यूनल ने पाया था कि भूमि एक निजी वन थी और इसलिए ये अधिनियम के तहत निहित है। ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता को केवल अधिनियम की धारा 3(3) के आधार पर राहत दी थी, जिसमें यह प्रावधान था कि नियत दिन से पहले निष्पादित स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के वैध पंजीकृत दस्तावेज के

तहत एक मालिक द्वारा अवधारित निजी वन की इतनी सीमा और जो केरल भूमि सुधार अधिनियम की धारा 82 के तहत उसके लिए लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक नहीं है, छूट दी जा सकती है। इसलिए, जब तक अपीलकर्ता के पास आवेदन अनुसूची भूमि का स्वामित्व / हक्के मिल्कियत नहीं होता और यह साबित नहीं होता कि वह स्वयं उस भूमि पर खेती करने का इरादा रखता है, तब तक वह अधिनियम की धारा 3(3) के तहत एक आदेश का हकदार नहीं होता। यह स्पष्ट है कि जब उसने दावा किया, तो अपीलकर्ता का न तो जमीन पर अधिकार था और न ही कब्जा। जिस जमीन से वह पहले ही अलग हो चुका था और जिस पर कब्जा करने का उसे कोई अधिकार नहीं था, उस पर खेती करने का उसका कोई इरादा नहीं हो सकता था। इसलिए, अपीलकर्ता ने यह कहकर न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की कि वह आवेदन अनुसूची संपत्ति का स्वामित्व-धारक था और वह उसी पर खेती करने का इरादा रखता था, जबकि आवेदन अनुसूची भूमि के बहिष्करण के आदेश की खरीद करता था। यह केवल विकृत साक्ष्य का मामला नहीं था। यह सबसे महत्वपूर्ण तथ्य का दमन था और एक गैर-मौजूद तथ्य पर दावे की स्थापना थी। यह जानबूझकर धोखा देने के इरादे से किया गया था। इसलिए, अपील के तहत फैसले में उच्च न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि अपीलकर्ता ने वन न्यायाधिकरण से उस पर धोखाधड़ी करके पहले के आदेश को प्राप्त किया था। यह अपीलकर्ता द्वारा केवल झूठे दावे को सामने रखने या विकृत साक्ष्य के आधार पर निर्णय प्राप्त करने का मामला नहीं था। यह एक ऐसा मामला था जहां राहत के अधिकार के एक बुनियादी तथ्य पर, उन्होंने जानबूझकर महत्वपूर्ण जानकारी को दबाकर और एक झूठा दावा सामने रखकर अदालत को गुमराह किया था, जो उनकी जानकारी के लिए झूठा था, और एक दावा जिसे वह जानते थे कि वास्तव में या कानून पर कोई आधार नहीं था। इसलिए यह स्पष्ट है कि वन न्यायाधिकरण का आदेश अपीलकर्ता द्वारा धोखाधड़ी करके प्राप्त किया गया था और उक्त आदेश धोखाधड़ी से दूषित है। तथ्य यह है कि पहले के अवसर पर उच्च न्यायालय ने या तो उसके पास आने में देरी के आधार पर या इस आधार पर हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया था कि दूसरी समीक्षा बनाए रखने योग्य नहीं थी, उस संबंध में स्थानांतरित न्यायालय को पहले के आदेश को धोखाधड़ी से दूषित घोषित करने से नहीं रोक सकता है।

26. उच्च न्यायालय ने, रिकॉर्ड की अदालत के रूप में, अपीलकर्ता द्वारा इस प्रकार प्राप्त वन न्यायाधिकरण के आदेश को शून्य करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है, यह पाते हुए कि यह धोखाधड़ी से दूषित है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए न्यायालय के पास न्यायालय पर धोखाधड़ी खेलकर प्राप्त निर्णय को पूर्ववत करने की शक्ति है। अपीलकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत हमारे अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया है। जब हम उच्च न्यायालय के साथ सहमति में पाते हैं कि उसके द्वारा प्राप्त आदेश धोखाधड़ी से दूषित

है, तो यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग से इनकार करके उसकी सहायता करने से इनकार कर देना चाहिए। हमें नहीं लगता कि अशोक नगर वेलफेयर एसोसिएशन बनाम आरके शर्मा [(2002) 1 एस.सी.सी. 749: 2001 पूरक (5) एस.सी.आर 662] में निर्णय को नोटिस करने के अलावा इस स्थिति के समर्थन में किसी भी न्याय निर्णय विधि को संदर्भित करना आवश्यक है।

55. मैंने आवेदक के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानून-रिपोर्टों के आलोक में रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की है।

56. दिनांक 10.5.2013 के आदेश के तहत, इस न्यायालय ने विशेष रूप से वरिष्ठ रजिस्ट्रार को दोषी व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने और सुरक्षा देने का निर्देश दिया, लेकिन प्राथमिकी दिनांक 10.5.2013 के आदेश में निहित निर्देश के अनुसार दर्ज नहीं की गई है क्योंकि प्राथमिकी में विशेष अधिवक्ता सहित कुछ व्यक्तियों का नाम है। प्राथमिकी दर्ज करने से पहले, श्रीकृष्ण कुमार पांडे ने इस अदालत के समक्ष कोई नाम नहीं बताया है और न ही दिनांक 10.05.2013 के आदेश के अनुपालन में लिखे गए किसी भी पत्र में किसी भी नाम का उल्लेख किया गया है। मामले के इस दृष्टिकोण में, इस न्यायालय की राय है कि कुछ व्यक्तियों का नाम गुप्त मकसद के कारण फंसाया गया है जो दिनांक 10.5.2013 के आदेश में निहित निर्देश के विपरीत है।

57. वरिष्ठ रजिस्ट्रार ने विशेष रूप से एस.एस.पी. से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया कि इस मामले की जांच किसी अधिकारी द्वारा की जाए जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे का न हो, लेकिन कुछ दिनों के बाद, इस न्यायालय से अनुमति प्राप्त किए बिना विवेचनाधिकारी को बदल दिया गया।

58. दिनांक 10.5.2013 के आदेश में, एक विशिष्ट निर्देश था कि रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी, लेकिन इस न्यायालय के निर्देश का अनुपालन किए बिना रिपोर्ट संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की गई है, जिस पर संज्ञान लिया गया था। इस मामले के मद्देनजर, इस न्यायालय की राय है कि दिनांक 10.5.2023 के आदेश के बाद की प्रक्रिया का पालन इस न्यायालय के आदेश में निहित निर्देश के अनुसार नहीं किया गया है।

59. जांच में, किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कुछ भी नहीं पाया गया है जिसे प्राथमिकी में आरोपी के रूप में नामित किया गया है। इसलिए, सरकार ने धारा 506 के तहत अभियोजन वापस लेने का निर्णय लिया और दो बार आवेदन दायर किए जिन्हें अस्वीकार कर दिया गया। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने समवर्ती रूप से देखा है कि लोक अभियोजक ने स्वतंत्र दिमाग लगाया था और सही निष्कर्ष पर पहुंचा था कि पुनरीक्षणकर्ता (विशेष अधिवक्ता) न तो ट्रिक कर रहा था और न ही कोई अपराध किया था, लेकिन वापसी के लिए आवेदन को खारिज करते समय उक्त अवलोकन को निचली अदालत द्वारा नहीं लिया गया है।

60. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के अवलोकन से पता चलता है कि उच्च न्यायालय पूर्ण क्षेत्राधिकार का न्यायालय है। उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होने के नाते भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति रखता है। एक अभिलेख न्यायालय उच्चतर क्षेत्राधिकार का न्यायालय होने के नाते अपने समक्ष उठाए गए अपने अधिकार क्षेत्र के प्रश्न पर विचार करने का हकदार है। अनुच्छेद 215 विशेष रूप से न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान करता है जिसमें स्वयं की अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति भी शामिल है।

61. उच्च न्यायालय की अवमानना अधिकारिता न केवल न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए है, बल्कि ऐसे कृत्यों पर प्रहार करने के लिए भी है जो न्याय के प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं या न्याय के पाठ्यक्रम को बाधित करने की प्रवृत्ति रखते हैं जो न्यायिक संस्था में जनता के विश्वास को हिला सकते हैं। इस प्रकार, यह इस तरह के कार्य पर ध्यान दे सकता है और अवमानना क्षेत्राधिकार के तहत ऐसे आदेश पारित कर सकता है जहां अधिनियम कानून की महिमा या न्यायालय की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। हालांकि, साथ ही, यह अच्छी तरह से याद रखना चाहिए कि क्षेत्राधिकार किसी व्यक्तिगत न्यायाधीश की गरिमा की रक्षा करने के लिए नहीं है, बल्कि न्याय प्रशासन को बदनाम होने से बचाने के लिए है।

62. यह यह भी दर्शाता है कि न्यायालय का कर्तव्य है कि वह आदेशों के उल्लंघन में की गई चीजों को सुधारने या संशोधित करने के लिए उचित निर्देश जारी करे। उस संबंध में, न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में सुधारात्मक उपाय भी कर सकता है। अदालत की अंतर्निहित शक्ति में यह माना गया कि न केवल ऐसे मामले में उपलब्ध है, बल्कि यह न्याय के हित में गलत को सुधारने के लिए इसका प्रयोग करने के लिए बाध्य है।

63. यह कानून का अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव है कि न्यायालय, न्यायाधिकरण या प्राधिकरण पर धोखाधड़ी करके प्राप्त निर्णय, डिक्री या आदेश कानून की नजर में शून्य और गैर-एस्ट है। प्रथम न्यायालय या अंतिम न्यायालय द्वारा इस तरह के निर्णय, डिक्री या आदेश को प्रत्येक न्यायालय द्वारा शून्य माना जाना चाहिए, जो निम्न से श्रेष्ठ है। इसे किसी भी न्यायालय में, किसी भी समय, अपील, पुनरीक्षण, रिट या यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी चुनौती दी जा सकती है।

64. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए न्यायालय के पास अदालत पर धोखाधड़ी खेलकर प्राप्त निर्णय को पूर्ववत करने की शक्ति है। ऐसे मामले में जहां न्याय की मांग इतनी सम्मोहक है, एक संवैधानिक न्यायालय न्याय को बढ़ावा देने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा, न कि इसे पराजित करने के लिए।

65. यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि श्रीमती सरिता सिंह (उपरोक्त) के मामले में तथ्यों को छिपाने के संबंध में मुद्दे पर विचार करते हुए, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने देखा कि कई वर्षों से उत्तर प्रदेश राज्य में पदों के सृजन के लिए पूर्व अनुमति के बिना शैक्षणिक संस्थानों के प्रबंधन द्वारा शिक्षकों की नियुक्ति करने और फिर वेतन के भुगतान के लिए अदालत में आने का खेल चल रहा है और इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम/अंतिम आदेशों के आधार पर ऐसी नियुक्तियों को करदाताओं के कई हजार करोड़ रुपये का भुगतान किया गया है। इसलिए, केवल प्रबंधन समिति और ऐसी नियुक्तियां ही दोषी नहीं हैं, बल्कि शिक्षा विभाग के अधिकारियों का भी दोषी होने में बराबर का हिस्सा है।

66. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ आवेदक के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत कानून-रिपोर्टों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के तहत दायर इस आवेदन की अनुमति दी जाती है।

67. तथापि, यह निर्देश दिया जाता है कि उपरोक्त अवमानना याचिका में माननीय उच्च न्यायालय के दिनांक 10.05.2013 के आदेश का उल्लंघन करते हुए दिनांक 10.05.2013 के बाद की गई सभी कार्रवाइयों को एतद्द्वारा शून्य घोषित किया जाता है और मामला अपराध संख्या-207/2013, केस संख्या-3922 वर्ष 2013, थाना-वजीरगंज, जिला लखनऊ में धारा 506 भ०द०वि० से संबंधित संपूर्ण कार्यवाही रद्द की जाती है। अभिलेख संबंधित कार्यालय को लौटाया जाता है।

68. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि नोटिस उन पुलिस अधिकारियों के खिलाफ यह बताने के लिए कि उनके खिलाफ न्यायालय अवमानना अधिनियम के तहत कार्यवाही क्यों नहीं शुरू की जाए, जारी किया गया है जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है, जैसा कि दिनांक 10.5.2013 के आदेश के माध्यम से निर्देशित किया गया था।

(2023) 8 ILRA 1291

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 627 वर्ष 2004

दिलीप कुमार तिवारी उर्फ पप्पू ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी पक्ष

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए और 304-बी - दहेज हत्या - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 107 और 313 - जुर्माने के साथ कठोर कारावास -

सूचनाकर्ता ने पति और परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ लिखित शिकायत दर्ज कराई और आरोप लगाया कि उन्होंने दहेज की मांग की, जब पूरा नहीं किया गया, तो उन्होंने उसकी बेटी को मार डाला - माना गया, डॉक्टर द्वारा मृतका के शरीर पर मृत्यु से ठीक समक्ष की यातना का कोई निशान नहीं पाया गया - मृतका द्वारा कोई पत्र नहीं दिया गया कि उसके साथ क्रूरता की गई थी - सूचनाकर्ता द्वारा बचाव में भेजे गए दो पत्रों में दहेज की मांग के संबंध में कोई बयान नहीं है - इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृतका को आवश्यक भोजन और कपड़े आदि नहीं दिए गए थे , इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृतका के बेटों को आरोपी द्वारा प्रताड़ित किया गया था - इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृतका की विदाई के दौरान उसके ससुराल से कोई समस्या उत्पन्न हुई - पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 के साक्ष्य से साबित हुआ कि मृतका अपनी इच्छा के अनुसार अपने माता-पिता के घर जाती थी - उसे अनिश्चित काल के लिए अपने माता-पिता के घर में रहने के लिए कभी मजबूर नहीं किया गया। (अनुच्छेद 2, 6, 7, 35)

यह साबित नहीं हुआ कि अभियुक्तगण घटनास्थल पर मौजूद थे और उन्होंने मृतक को आत्महत्या करने से रोकने का प्रयास नहीं किया - अभियोजन पक्ष आत्महत्या के लिए उकसाने को साबित करने में विफल रहा - मृतक को सिनेमा देखने के लिए साथ जाने की अनुमति न देना यह निष्कर्ष निकालने का आधार नहीं है कि अभियुक्तगण ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। (अनुच्छेद 37, 38, 43)

अपील स्वीकार की गई। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. किशोरी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2007 सुप्रीम कोर्ट 2457

2. रंग नाइक बनाम राज्य, (2004) 12 एससीसी 521

3. संजू @संजय सिंह सेंगर बनाम एमपी राज्य, एआईआर 2002 सुप्रीम कोर्ट 1998

4. सिरिएक बनाम एसआई पुलिस कदुथुरुथी, 2005 सीआरएलजे 4322 (केरल)

5. शारदा भाई जीवन लाल वानिया बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2012 सुप्रीम कोर्ट 925

6. गुरुचरण बनाम पंजाब राज्य, (2017) 1 एससीसी 433

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, राज्य के लिए श्री अनुराग सिंह चौहान, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत अपीलकर्ता द्वारा सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी.-IV), प्रतापगढ़ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.03.3004 के खिलाफ सत्र परीक्षण संख्या-162/96, केस अपराध संख्या-77/94, धारा 498-ए, 304-बी भ०द०वि०, थाना-नवाबगंज, जिला प्रतापगढ़ राज्य उत्तर प्रदेश बनाम श्याम बिहारी और अन्य के तहत दायर किया गया है। अपीलकर्ता को दोषी ठहराने और धारा 306 भ०द०वि० के तहत सजा सुनाने के लिए सात साल के कठोर कारावास और 10,000 रुपये जुर्माना और आगे दो साल के कठोर कारावास और धारा 498-ए भ०द०वि० के तहत 2000 रुपये जुर्माना की सजा सुनाई जाएगी। सजाएं साथ-साथ चलनी थीं।

3. आवेदक ने आधार लिया है कि निचली अदालत का आक्षेपित निर्णय और आदेश अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित है और विकृत भी है। अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है, अभियोजन मामले के समर्थन में कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को रिकॉर्ड पर मौखिक और चिकित्सा साक्ष्य के साथ समर्थन नहीं मिलता है। धारा 498-ए और 304-बी के तहत तीन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मुकदमा चलाया गया था और विचारण न्यायालय ने पाया है कि धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। इसी साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय ने आरोपी श्याम बिहारी तिवारी (ससुर), श्रीमती अंबो उर्फ चंद्र काली (सास) को बरी कर दिया है। अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 498-ए, 306 भ०द०वि० के तहत कोई मामला नहीं बनता है। विचारण न्यायालय ने कानून के प्रावधानों को एकीकृत करते समय कानून की स्पष्ट त्रुटि की है।

4. उपरोक्त आधारों पर अपीलकर्ता ने दोषसिद्धि के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है और उपरोक्त के रूप में पारित सजा सुनाई है।

5. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता मंगला दत्त मिश्रा ने प्रतापगढ़ के पुलिस अधीक्षक को एक लिखित शिकायत दी कि उनकी बेटी राधा देवी की शादी छह साल पहले दिलीप कुमार के साथ हुई थी।

6. श्री श्याम बिहारी तिवारी, ससुर और उनके पुत्र दिलीप कुमार तिवारी स्कूटर और फ्रिज की मांग कर रहे थे। वह उक्त मांग को पूरा करने में असमर्थ था। गुस्से में आकर आरोपी व्यक्तियों ने 20.09.1994 को उसकी बेटी की हत्या कर दी। दिनांक 21.09.1994 को उक्त आवेदन प्राप्त होने के बाद, धारा 498-ए और 304-बी भ०द०वि० (प्रदर्श क-13) के तहत एक प्राथमिकी थाना-नवाबगंज, जिला प्रतापगढ़ में दर्ज की गई थी, जिसे जी.डी. (दैनिकी) (प्रदर्श क-4) में भी दर्ज किया गया था और जांच शुरू हुई थी।

7. इस प्राथमिकी के पंजीकरण से पहले, मृतका के आरोपी - श्याम बिहारी तिवारी (ससुर) ने भी थाना-नवाबगंज में एक आवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि उसकी बहू राधा देवी पत्नी दिलीप कुमार तिवारी ने आग लगाकर खुद को जला दिया है। यह सूचना दिनांक

20.09.1994 को सायं 16:00 - 17:00 बजे जी.डी. में दर्ज की गई तथा एस.डी.एम. कुंडा, प्रतापगढ़ से जांच के लिए अनुरोध किया गया। इसके बाद थानाध्यक्ष अपने अन्य पुलिस कर्मियों के साथ अतिरिक्त तहसीलदार निजामुद्दीन थाना-कुंडा के साथ मौके पर पहुंचे।

8. तहसीलदार निजामुद्दीन के निर्देश पर श्री आर. एन. सिंह, (एस.ओ.) द्वारा पंचान, रूप नारायण मिश्र, मंगला दत्त मिश्र, विजय बहादुर, आनंद विजय पाण्डेय और श्याम बिहारी के समक्ष जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) तैयार की गई।

9. विवेचना से संबंधित कागजात यानी प्रदर्श क-5, और प्रदर्श क-6 भी तैयार किए गए थे। शव को मार्किन कपड़े में बंद कर शव परीक्षण रिपोर्ट के लिए जिला प्रतापगढ़ के शव परीक्षण हाउस भेजा गया। अपर तहसीलदार कुंडा के सामने शव, जला हुआ कपड़ा, राख, हैंडल रॉड सील कर फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया।

10. डॉ. डी.आई.जी विजय सिंह अ०सा०-4 ने दिनांक 21.09.1994 को अपराह्न 3:15 बजे शव परीक्षण किया एवं निम्नलिखित तथ्यों को पाया -

<u>मृत शरीर की वाह्य जांच</u>

11. मृतका सफेद रंग की महिला थी, औसत कद, आंखें बंद थीं, मृतका का मुंह आधा खुला हुआ था, मुंह से खून भी आ रहा था और नाक, पेट और छाती भाले हुए थे। हाथ की उंगलियां मुड़ी हुई थीं और कठोर अकड़न गुजरने की अवस्था में था, शरीर का ऊपरी हिस्सा पेट के ऊपर जल गया था और बाल झुलस गए थे। शरीर के कुछ हिस्सों में फफोले तरल के साथ मौजूद थे और कुछ फफोले फट गए थे। फफोले के नीचे लाल थे। लालिमा की रेखा भी मौजूद थी।

12. दोनों जांघों के सामने की तरफ दोनों पैरों तक जला हुआ था। सिर और गर्दन पर जलने की चोट थी, झिल्ली, सिर, मस्तिष्क, छाती और अन्य हिस्सों में कंजेसशन थी, ग्रसनी, स्वरयंत्र और श्वासनली भी कंजेसशन में थे और कार्बन कण मौजूद थे। फेफड़े कंजेसशन वाले थे। दिल के कक्ष खून से भरे हुए थे और गहरा लाल रंग निकल रहा था। पेट, पेरिटोनियम कंजेसशन वाले थे। माउंट में 14/14 दांत थे। पेट खाली था। गुर्दे खाली थे, गर्भाशय सामान्य था। मौत का कारण मौत से पहले जलने की चोटों के कारण दम घुटना था। डिप्टी एसपी हरभजन सिंह ने विवेचना शुरू की और मृतका के ससुर और सास और पति के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क-2, धारा 498-ए भ०द०वि०, 304-बी के तहत दाखिल किया।

13. मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था, जहां सत्र न्यायाधीश ने धारा 498-ए भ०द०वि०, 304-बी के तहत आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय किए, जिससे उन्होंने इनकार कर दिया और विचारण चाहा।

14. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों की जांच की गई है:-

1. अ०सा०-1. श्री मंगल दत्त मिश्र,
2. अ०सा०-2. श्री सदा शिव दुबे।

3. अ०सा०-3. श्रीवास्तव, तत्कालीन उप पुलिस अधीक्षक

4. अ०सा०-4. डॉ. डी.आई.जी. विजय सिंह।

5. अ०सा०-5. श्री निजामुद्दीन, एस.डी.एम.

6. अ०सा०-6. श्री हरभजन सिंह, सेवानिवृत्त उप पुलिस अधीक्षक

15. अभियोजन साक्ष्य बंद होने के बाद आरोपी व्यक्तियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने आरोपों से इनकार किया और कहा कि आरोपी दिलीप कुमार तिवारी और मृतका राधा देवी के बीच विवाह 09 मई, 1987 को हुआ था और 11 मई, 1987 को दुल्हन अपने ससुराल गई थी। 15 (क) मृतका की मौत के संबंध में संबंधित थाने को पहले ही सूचना दी जा चुकी थी। आरोप पत्र गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने दहेज की मांग के संबंध में झूठे साक्ष्य दिए हैं और बाकी गवाहों ने भी झूठे साक्ष्य दिए हैं। शादी के बाद मृतका अलग रहती थी। सूचना देने वाले का दो बेटियों के अलावा कोई बेटा नहीं है, मृतका बड़ी बेटी थी, लकवा के कारण उसका चेहरा टेढ़ा हो गया था, लेकिन संपत्ति मिलने की उम्मीद में मृतका ने शादी कर ली। घटना के दिन श्याम बिहारी हमेशा की तरह प्री-सेकेंडरी स्कूल अंतामऊ में पढ़ाने गए थे, जो उनके गांव से करीब दो किलोमीटर दूर है। दिलीप कुमार का बेटा वीरू बीमार था, वह उसके लिए कुछ दवाई लेने ऊंचाहार जा रहा था। मृतका भी उसके साथ जाना चाहता था और उसने सिनेमा देखने की योजना बनाई थी। इस पर दिलीप ने उन्हें फटकार लगाई। गुस्से में मृतका ने उसे कमरे में बंद कर दिया और आग लगा दी। प्रमोद और संतोष मिश्रा ने श्याम बिहारी को अंतामऊ स्थित उसके स्कूल में घटना की जानकारी दी। उन्होंने आकस्मिक अवकाश का आवेदन दिया और घर लौट आए। उनकी पत्नी अंबोज कुमारी @ चंद्र काली गन्ना काटने के लिए खेत में गई थीं, सूचना पर वह घर लौट आईं।

16. संक्षेप में, गवाहों के बयान नीचे दिए गए हैं: -

अ०सा०-1, मंगला दत्त मिश्रा, सूचनाकर्ता, ने गवाही दी है कि दिलीप कुमार मिश्रा @ पप्पू के साथ उनकी बेटी राधा देवी के बीच विवाह 28 अप्रैल, 1990 को हुआ था। श्याम बिहारी तिवारी पिता और चंद्रावती दिलीप कुमार मिश्र की माता हैं, उन्होंने अपनी क्षमता के अनुसार शादी में दहेज दिया है। उनकी बेटी की विदाई शादी में हुई थी।

17. 29 अप्रैल, 1990 को उन्हें विदा किया गया, 2 - 2 ½ महीने बाद जब उनकी बेटी माता-पिता के घर आई, तो उसने बताया कि उसका पति, ससुर और सास फ्रिज और स्कूटर की मांग कर रहे थे। उन्होंने कहा कि वर्तमान में वह मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं। सक्षम होने के बाद वह मांग को पूरा करेगा। आगे उसकी बेटी अपने ससुराल चली गई और पांच-छह महीने तक रही, जहां से वह शिकायत करती थी। उसने अपनी सास को मामला समझाया। उसकी बेटी ने बताया कि फ्रिज और स्कूटर न देने पर उसका पति-ससुर और सास उसे मारपीट-पीट करते थे। वह अपनी मृत्यु से पहले 2-3 बार अपने माता-पिता के घर आई थी और जब भी वह आई तो उसने वही शिकायत दोहराई। श्याम बिहारी जब भी मृतका

के साथ आते तो स्कूटर और फ्रिज की यही मांग दोहराते थे। आरोपियों ने उसकी बेटी को जलाकर मार डाला था। दो-ढाई साल पहले उनके गांव के अ०सा०-2 सदा शिव भी उनके साथ श्याम बिहारी के घर गए थे, जहां उन्होंने कहा था कि शांत रहो वह बहुत जल्द स्कूटर और फ्रिज उपलब्ध करा देंगे, जिस पर श्याम बिहारी नाराज हो गए और कहा कि सक्षम होने के बाद भी, वह ये उपलब्ध नहीं करा रहे हैं। उन्होंने अपने अंतर्देशीय पत्र में भी धमकी दी थी, जो विवेचनाधिकारी को प्रदान किया गया था, उनके दामाद ने भी बिना स्टाम्प के एक पत्र भेजा है, जो विवेचनाधिकारी को भी प्रदान किया गया था। दोनों पत्रों में उन्होंने उसे धमकी दी थी और शादी में कुछ भी नहीं देने के लिए डांटा था। उन्हें 20.09.1994 को थाना-कोखराज के माध्यम से घटना के बारे में सूचित किया गया था, जिस पर वह, सदा शिव, विजय बहादुर, राम पाल और अन्य मृतका के ससुराल गए थे। यह स्पष्ट था कि उसे जलाकर मार दिया गया था। जब उनकी शिकायत पर थाना-नवाबगंज द्वारा विचार नहीं किया गया, तो उन्होंने प्रतापगढ़ के पुलिस अधीक्षक को एक पत्र (प्रदर्श क-1) दिया, जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

जिरह के दौरान गवाहों ने उसके द्वारा लिखे और पोस्ट किए गए पत्रों (प्रदर्श ख-1 और प्रदर्श ख-2) को स्वीकार किया। उन्होंने स्वीकार किया कि दो बेटियों को छोड़कर उनका कोई बेटा नहीं है। उनके पास 4 - 4 ½ बीघा कृषि भूमि थी और वे एक प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक थे। उन्होंने आगे गवाही दी कि श्याम बिहारी भी एक प्राथमिक शिक्षक हैं, उनके पास केवल 2 ½ बीघा जमीन थी। उन्होंने यह वादा करने से इनकार कर दिया कि वह संपत्ति का आधा हिस्सा बड़ी बेटी (मृतका) और आधा अपनी छोटी बेटी को देंगे, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मृतका छत से गिरी थी और उसका मुंह टेढ़ा था। उनके अनुसार उन्होंने शादी की सगाई के समय 5,100/- रुपये प्रदान किए थे और न केवल 501/- रुपये। उन्होंने तिलक समारोह में 4,001/- रुपये ही नहीं 11,000/- रुपये नकद प्रदान किए थे। खीचड़ी खाने के समय उसने 200 रुपये दिए थे और दामाद ने उससे सोने की अंगूठी ले ली थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मृतका की शादी 11 मई, 1987 को हुई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने अपने बयान में लिखा है कि शादी छह साल पहले हुई थी।

18. जब पहली बार राधा देवी अपने मायके आई तो उन्होंने स्कूटर और फ्रिज की डिमांड की जानकारी दी। उन्होंने न तो यह लिखा है कि शादी के समय स्कूटर और फ्रिज की मांग की गई थी और न ही विवेचनाधिकारी के सामने इसका जिक्र किया है क्योंकि यह नहीं पूछा गया था। उन्होंने आगे कहा कि यह सच है कि जब उनकी बेटी अपने ससुराल में रहती थी, तो उसके माता-पिता उसे लेने जाते थे और जब वह अपने माता-पिता के घर रहती थी, तो उसके ससुराल वाले उसे लेने जाते थे। मृतका की विदाई को लेकर उसके ससुराल वालों और उसके बीच कोई झगड़ा नहीं हुआ। उनके दो बेटे धीरू और बीरू हैं। वह अपनी मृत्यु से दस दिन पहले अपने मायके से लगभग एक महीने रहने के बाद गई थी, जब वह अपने ससुराल गई तो उसने

कहा कि शांत रहो, वह स्कूटर और फ्रिज उपलब्ध कराएगा, जब वह मृतका के ससुराल पहुंचा, तो चौकीदार शव को देख रहा था, उसके सामने पूछताछ नहीं की गई। उन्होंने और उनके पड़ोसी विजय बहादुर ने इस पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने वहां के मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी को कोई लिखित शिकायत नहीं दी थी। शव को देखने के बाद वह जान गया कि उसके ससुराल वालों ने उसकी हत्या कर दी होगी। उसे नहीं पता कि घटना कैसे हुई। उसे नहीं पता कि आरोपी अपने छोटे बेटे के इलाज के लिए ऊंचाहार स्थित डॉ. अमरनाथ के पास गया था या नहीं, उसे नहीं पता कि घटना के समय श्याम बिहारी अपने स्कूल में था या नहीं। उसे नहीं पता कि जब दिलीप ऊंचाहार जा रहा था तो उसके और मृतका के बीच झगड़ा हो गया था। उसे नहीं पता कि उसी झगड़े की वजह से मृतका ने आत्महत्या की थी या नहीं।

अ०सा०-2 - सदा शिव ने सूचनाकर्ता अ०सा०-1 के समान गवाही दी है।

अ०सा०-3 - के. के. श्रीवास्तव डिप्टी एसपी ने बताया है कि उन्होंने विवेचनाधिकारी डिप्टी एसपी हरभजन सिंह के तबादले के बाद जांच की थी। उन्होंने पेपर संख्या-8 तैयार किया, अपर तहसीलदार निजामुद्दीन का बयान दर्ज किया और आरोप पत्र (प्रदर्श क-.ए.2) जमा की। गवाह ने इस आरोप पत्र को साबित कर दिया है। जिरह में, इस गवाह ने गवाही दी है कि उसने पूर्व विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों पर भरोसा किया था और एकत्रित सबूतों के आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। उसने गांव के किसी भी व्यक्ति से पूछताछ नहीं की थी।

अ०सा०-4 - डॉ. डी.आई.जी. विजय सिंह ने मृतका का शव परीक्षण किया था, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। इस गवाह ने शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-3) को साबित कर दिया है। जिरह के दौरान, इस गवाह ने स्वीकार किया कि उसे शव के ऊपर किसी तेज धार वाले हथियार से मारने, बांधने या चोट पहुंचाने का कोई संकेत नहीं मिला। उसे वहां मिट्टी के तेल की गंध नहीं मिली है, वह यह नहीं बता सकता कि मृतका किस परिस्थिति में जला था।

अ०सा०-5 निजामुद्दीन, एस.डी.एम. ने गवाही दी है कि 21.09.1994 को वह अतिरिक्त तहसीलदार, कुंडा के रूप में कार्यरत थे और उन्होंने पंचान को नियुक्त करने के बाद पंचनामा किया था और उनके निर्देश पर संबंधित कागजात तैयार किए गए थे। उनके सामने शव को सील कर दिया गया, उनके निर्देश पर प्रतिसार निरीक्षक और सी.एम.ओ. को पत्र तैयार किया गया। इस गवाह ने इन कागजातों को प्रदर्श क-4 से प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया है। इस गवाह ने स्वीकार किया कि पूछताछ के दौरान, सूचनाकर्ता ने दहेज के लिए अपनी बेटी को प्रताड़ित करने के बारे में उसे कोई लिखित शिकायत नहीं दी थी, यहां तक कि उसने मौखिक रूप से भी शिकायत नहीं की थी।

गवाह ने गवाही दी कि यदि सूचनादाता ने मौखिक शिकायत की होती, तो वह थानाध्यक्ष को निर्देश देता। उन्होंने अपनी राय लिखने से पहले घटना के बारे में पूछताछ की थी। अगर दहेज या यातना की मांग उनके संज्ञान में आई होती तो वह इस संबंध में अपनी राय बताते या जिक्र नहीं करते। यह सच है कि उन्होंने दहेज और प्रताड़ना की मांग के बारे में अपनी राय का उल्लेख नहीं किया था। उन्होंने स्वीकार किया कि पंचनामा उनके लेखन में नहीं था, बल्कि उनके निर्देश पर लिखा गया था।

अ०सा०-6 हर बचन सिंह, विवेचनाधिकारी /सेवानिवृत्त डिप्टी एसपी ने गवाही दी है कि उन्होंने जांच शुरू की थी और शिकायत की नकल की थी, एचएम राजेंद्र सिंह, आरोपी श्याम बिहारी और दिलीप का बयान दर्ज किया था। उन्होंने सामग्री को कब्जे में ले लिया था और सीडी पर्चा 1-ए में उल्लेख किया था। उन्होंने आरोपी के घर की तलाशी ली, नक्शा/नक़्शा नज़री का निरीक्षण कर तैयार किया, पंचनामा की नकल कराई, शव परीक्षण रिपोर्ट दर्ज की, सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया, विवाह पत्र और अंतर्देशीय पत्र की प्रतियां संलग्न कर सीडी के साथ संलग्न किया, श्याम बिहारी मिश्रा, सदा शिव (मृतका के चाचा), विजय बहादुर द्विवेदी का बयान दर्ज किया। रामपाल शुक्ला, दिनेश चंद्र मिश्रा, रूप नारायण मिश्रा, आनंद भान पांडेय, कांस्टेबल जितेंद्र कुमार सिंह और चौकीदार कंधई लाल। दिनांक 10.09.1995 को सीओ के.के श्रीवास्तव ने विवेचना शुरू की। उनकी जांच के दौरान आरोपी - श्याम बिहारी, दिलीप कुमार और श्रीमती अंबोज कुमारी @ चंद्रकाली के खिलाफ धारा 498-ए, 304-बी, भ०द०वि० के तहत अपराध साबित हुआ था। इस गवाह ने विवाह कार्ड और अंतर्देशीय पत्र और बिना मुद्रांकित पत्र प्रदर्श क-11 को साबित कर दिया है। नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-12) और चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-13), जीडी कायमी और जीडी, रिपोर्ट न-10 प्रदर्श क-14 के रूप में प्रदर्श क-15 के रूप में साबित की। जिरह के दौरान, इस गवाह ने स्वीकार किया है कि फोटोस्टेट पत्रों का मूल पत्र उसके समक्ष नहीं था। फोटोकॉपी उसके द्वारा प्रमाणित नहीं हैं। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने राम दुलार यादव, बलराम और अन्य के बयान दर्ज किए थे, गांव के किसी भी गवाह ने दहेज के लिए यातना देने की पुष्टि नहीं की थी या मृतका को आरोपियों द्वारा जलाया गया था। उन्होंने उत्पीड़न का कोई विशिष्ट तरीका और सामान्य यातना और दहेज की मांग को छोड़कर कोई घटना नहीं दी थी।

19. बचाव पक्ष की ओर से:

ब०सा०- 1 - संतोष कुमार @ पप्पू ने गवाही दी कि उसने प्री-सेकेंडरी स्कूल, अंतामऊ में श्री श्याम बिहारी मिश्रा को लगभग 2:00 बजे सूचना दी थी, इसके बाद वह लगभग 03:00 बजे दिलीप कुमार को सूचित करने के लिए ऊंचाहार में डॉ अमरनाथ सिंह के क्लिनिक में गया था। जिरह के दौरान इस गवाह ने स्वीकार किया था कि श्याम बिहारी उसका मामा है; वह उसके घर जाता था। दिलीप कुमार अपने बेटे के इलाज के लिए डॉ. अमरनाथ सिंह क्लीनिक गए थे। श्याम बिहारी साइकिल से स्कूल जाते थे।

ब०सा०-2 मक्कू नाई ने आरोपी और मृतका के विवाह समारोह में सहायता की थी। उनके मुताबिक शादी में लेन-देन को लेकर कोई झगड़ा नहीं हुआ था। दहेज की मांग को लेकर मृतका को कभी प्रताड़ित नहीं किया गया। घटना सुबह करीब 11:30 बजे की है और शोरगुल सुनकर वह श्याम बिहारी के घर गए थे, जहां उन्होंने देखा कि लोग आग बुझा रहे हैं, लेकिन उनकी मौत हो गई और वह बच नहीं सकी। घटना के समय श्याम बिहारी स्कूल गया हुआ था और दिलीप कुमार अपने बेटे के इलाज के लिए ऊंचाहार गया था, श्याम बिहारी की पत्नी खेत में गई थी। घटना के बाद ये लोग फोन पर आए। श्रीमती राधा देवी अपने पति के साथ ऊंचाहार जाना चाहती थीं लेकिन उन्होंने उन्हें अनुमति नहीं दी, गुस्से में उन्होंने आत्महत्या कर ली। इस गवाह ने विवेचना के दौरान आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में बरकरार सबूत दिए थे।

ब०सा०-3 - जय प्रकाश, कॉलेज के चपरासी ने उपस्थिति रजिस्टर (प्रदर्श ख-1/1) साबित किया था, और तथ्य यह है कि घटना के दिन आरोपी श्याम बिहारी संबंधित स्कूल में मौजूद था।

जिरह में इस गवाह ने भी ऐसा ही बयान दिया था।

आरोपी श्याम बिहारी की आरोपी पत्नी श्रीमती अंबोज कुमारी ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपों से इनकार किया है और कहा है कि घटना के समय उनके पति श्याम बिहारी हमेशा की तरह स्कूल में पढ़ाने के लिए गए थे, जो उनके घर से लगभग पांच किलोमीटर दूर है। दिलीप कुमार अपने बेटे के इलाज के लिए ऊंचाहार जा रहे थे, मृतका ने भी सिनेमा देखने के लिए उनके साथ जाने की जिद की और जब दिलीप कुमार ने डांट लगाई तो गुस्से में आकर दरवाजा बंद कर लिया और खुद को आग लगा ली। वह फसल काटने के लिए खेत में गई थी और घटना की जानकारी पाकर आई थी।

20. श्याम बिहारी द्विवेदी ने अपनी पत्नी श्रीमती अंबोज कुमार @ चंद्रकली के कथन पर भी ऐसा ही बयान दिया है।

21. यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्त अंबोज कुमारी और श्याम बिहारी ने आरोपों से बरी कर दिया गया था और सूचनाकर्ता या राज्य द्वारा बरी करने के फैसले और आदेश के खिलाफ कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं किया गया है। इसलिए, इन दो आरोपी व्यक्तियों का मामला इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन नहीं है।

22. अभियुक्त दिलीप कुमार ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत कहा है कि उसका विवाह श्रीमती राधा देवी के साथ 09.05.1987 को हुआ था और विदाई (बीड़ाई) 29.04.1990 को हुई थी। विदाई के चार-पांच महीने बाद वह मृतका के साथ अलग रहने लगा। सूचनाकर्ता का दो बेटियों के अलावा कोई बेटा नहीं था। लकवा होने के कारण मृतका का मुंह टेढ़ा हो गया था, लेकिन संपत्ति की उम्मीद में यह शादी संपन्न हो गई थी। घटना के समय उसके पिता रोज की तरह पढ़ाने के लिए स्कूल गए

हुए थे और वह अपने बेटे के इलाज के लिए ऊंचाहार गए थे। उनकी पत्नी भी उनके साथ सिनेमा देखने जाना चाहती थी, जिस पर उन्होंने उन्हें डांट दिया था। गुस्से में उसने दरवाजा बंद कर दिया था और आग लगा ली; उसके भाइयों प्रमोद और संतोष ने अपने स्कूल, अंतामऊ में अपने पिता को सूचित किया था। एंडोर्समेंट के बाद उसके पिता वापस आ गए थे, उसकी मां फसल काटने के लिए खेत में गई थी और सूचना पाकर आई थी।

23. इस मामले में, विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि शादी के समय दहेज की कोई मांग नहीं थी, इसलिए डी.पी. अधिनियम की धारा 3 और 4 लागू नहीं होगी। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतका की मृत्यु से पहले यातना और क्रूरता का कोई सबूत नहीं था, इसलिए आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ डी.पी. अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत कोई मामला या आरोप नहीं बनता है। यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि मृतका के पिता और सास क्रमशः स्कूल और फील्ड गए थे और वे अपने बेटे की शादी के तुरंत बाद अलग रह रहे थे।

24. पूर्वोक्त निष्कर्ष के आधार पर, विचारण न्यायालय ने आरोपी श्याम बिहारी द्विवेदी और श्रीमती अंबोज कुमारी @ चंद्रकाली को धारा 498-ए, 304-बी, भ०द०वि० के तहत आरोपों से बरी कर दिया। विचारण न्यायालय ने यह भी नहीं पाया कि यह धारा 304-बी भ०द०वि० के तहत अपराध था, लेकिन निष्कर्ष निकाला है कि मृतका के पति दिलीप कुमार धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोपी है। यह उल्लेखनीय है कि न तो सूचनाकर्ता मंगला दत्ता मिश्रा और न ही राज्य ने इन दोनों आरोपियों को बरी करने के आदेश के खिलाफ कोई भी पुनरीक्षण दायर किया है। इसलिए, यह अदालत मृतका के पति आरोपी दिलीप कुमार के मामले का फैसला करने तक ही सीमित है कि क्या उसने धारा 306 भ०द०वि० के तहत कोई अपराध किया है या नहीं। इस संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों की जांच की जानी है कि क्या धारा 306 भ०द०वि० के तहत आरोपी दिलीप कुमार द्वारा अपराध करने के बारे में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही है या नहीं?

25. विचारण न्यायालय ने इस संबंध में निष्कर्ष दर्ज किए हैं, जिनका उल्लेख निर्णय के पृष्ठ संख्या-13 और 14 पर किया गया है। इसके लिए विचारण न्यायालय ने आरोपी के बयान पर भी भरोसा किया है, जिसमें आरोपी दिलीप कुमार ने कहा है कि मृतका राधा देवी का मुंह/चेहरा लकवे के कारण टेढ़ा था, लेकिन संपत्ति की उम्मीद में शादी संपन्न हुई थी। इस तथ्य के बारे में सूचनाकर्ता अ०सा०-1 को सुझाव दिए गए हैं, जिन्होंने इस तथ्य से इनकार किया है।

26. विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर जोर दिया है कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान में, आरोपी दिलीप कुमार ने कहा है कि मृतका ने भी वहां जाकर उनके साथ सिनेमा देखने की इच्छा जताई थी, जिस पर आरोपी दिलीप ने उसे डांटा था, उसके बाद गुस्से में

उसने दरवाजा बंद कर लिया और खुद को आग लगा ली।

27. विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि आरोपी दिलीप के इस तरह के कृत्य को मृतका को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के लिए बताया जाएगा। विचारण न्यायालय ने भी नक़्शा नज़री के आधार पर इस तथ्य को स्वीकार किया है कि आरोपी दिलीप कुमार अपनी पत्नी के साथ अपने माता-पिता के हिस्से से एक ही घर में अलग रह रहा था। विचारण न्यायालय ने यह साबित करने के लिए तथ्यों को भी स्वीकार किया है कि घटना के समय सभी आरोपी व्यक्ति घर से बाहर थे, जैसा कि ऊपर आरोप लगाया गया है, लेकिन विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि शादी के बाद आरोपी दिलीप कुमार ने स्कूटर और फ्रिज की मांग की और उसे पीटा और उसे डांटा और रोका जबकि वह उसके साथ जाना चाहती थी। इस प्रकार आरोपियों ने ऐसा माहौल बनाया, जिससे मृतका आत्महत्या करने को मजबूर हो गया।

28. अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने गलत निष्कर्ष निकाला है कि दहेज की कोई मांग आरोपी दिलीप कुमार द्वारा की गई थी और उसने दहेज के लिए मृतका की पिटाई की थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि मृतका को ऊंचाहार जाने की अनुमति नहीं देने के लिए केवल डांटना आरोपी दिलीप कुमार तिवारी की ओर से आत्महत्या करने के लिए उकसाना नहीं होगा और इस तरह के मामूली मामले पर, यदि मृतका ने आत्महत्या की है, तो यह कृत्य धारा 306 भ०द०वि० के तहत आकर्षित नहीं होगा।

29. प्रारंभ में इस संबंध में कानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर गौर करना आवश्यक है।
दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 107 निम्नानुसार है: -

"107. किसी वस्तु का दुष्प्रेरण करना– जो व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए उकसाता है, जो–(प्रथम) – किसी व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए उकसाता है; नहीं तो
(दूसरा) - उस कार्य को करने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ संलग्न है, यदि उस षड्यंत्र के अनुसरण में और उस कार्य को करने के क्रम में कोई कार्य या अवैध लोप होता है; नहीं तो
(तीसरा) - जानबूझकर किसी भी कार्य या अवैध चूक से, उस काम को करने में सहायता करता है।
स्पष्टीकरण 1. - कोई व्यक्ति, जो जानबूझकर मिथ्या निरूपण द्वारा, या जानबूझकर किसी तात्विक तथ्य को, जिसे वह प्रकट करने के लिए बाध्य है, स्वेच्छा से कारित करता है या प्रापण करता है, या किसी कार्य को कारित करने या प्रापण करने का प्रयत्न करता है, उस कार्य को करने के लिए उकसाने वाला कहा जाता है। उदाहरण A, एक सार्वजनिक अधिकारी, Z, B को पकड़ने के लिए न्याय न्यायालय के वारंट द्वारा अधिकृत है, इस तथ्य को जानते हुए और

यह भी कि C, Z नहीं है, जानबूझकर A का प्रतिनिधित्व करता है कि C, Z है, और इस तरह जानबूझकर A को C को पकड़ने का कारण बनता है। यहाँ B, C की आशंका को उकसाता है।

स्पष्टीकरण 2. जो कोई, किसी कार्य के किए जाने से पहले या उसके समय में, उस कार्य के किए जाने को सुकर बनाने के लिए कुछ करता है और उसके द्वारा उसके कमीशन को सुकर बनाता है, वह उस कार्य को करने में सहायता करने वाला कहा जाता है।

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 306 इस प्रकार है: -

"306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण - यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा।

30. भ०द०वि० की धारा 107 के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि एक अभियुक्त ने अपराध को उकसाया था, जब तक कि अभियुक्त किसी अन्य को उकसाने, आग्रह करने या कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने के माध्यम से उकसाता नहीं है। दुष्प्रेरण में किसी व्यक्ति को कुछ कार्य करने के लिए उकसाने या जानबूझ कर सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। अभियुक्त द्वारा कुछ सकारात्मक कार्य उन्मूलन का गठन करने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार, यह देखा जाना चाहिए कि क्या आरोपी दिलीप कुमार ने उकसाया था या कोई साजिश रची थी या जानबूझकर जोड़ा था ताकि मृतका आत्महत्या कर सके।

31. किशोरी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2007 उच्चतम न्यायालय 2457 में, अभियुक्त को अपनी पत्नी को आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के लिए धारा 306 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया था और उसे पांच साल के कारावास की सजा सुनाई गई थी। मामले के तथ्य यह थे कि आरोपी की शादी घटना से दस साल पहले हुई थी। दुर्भाग्यपूर्ण दिन जब वह काम से लौटा, तो उसने पाया कि उसके घर का दरवाजा अंदर से बंद था। उसने अपनी पत्नी को फोन किया, लेकिन अंदर से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, इसलिए उसने कुछ दुर्घटना की आशंका जताई और तुरंत पुलिस को सूचित किया। पुलिस ने दरवाजा खोला तो आरोपी की पत्नी का शव छत से लटका मिला क्योंकि उसने आत्महत्या की थी। जांच करने पर, आरोपी को विचारण न्यायालय द्वारा अपनी पत्नी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी पाया गया और तदनुसार सजा सुनाई गई। इसे मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी बरकरार रखा था। उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करने पर, यह माना गया कि यह दिखाने के लिए सबूत थे कि आत्महत्या का मुख्य कारण यह था कि मृतका एक बच्चे के लिए भारी मानसिक तनाव में था। अदालत ने यह भी कहा कि अभियोजन पक्ष आरोपी के खिलाफ आरोपों को साबित करने में विफल रहा क्योंकि शव परीक्षण रिपोर्ट के मुताबिक, उसके शरीर पर कोई चोट या

हिंसा के संकेत नहीं पाए गए थे। इसलिए आरोपी को अदालत ने बरी कर दिया।

उकसाने का पहला तत्व यह है कि एक व्यक्ति को दूसरे को कार्य करने के लिए उकसाने के लिए कहा जाता है, जब वह वास्तव में उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करने के लिए सुझाव देता है या उत्तेजित करता है। "उकसाना" शब्द का अर्थ है किसी को कार्य करने के लिए उकसाना, आग्रह करना या प्रोत्साहित करना। केवल "सलाह" जरूरी नहीं कि उकसाने के बराबर हो जब तक कि यह अधिनियम के आयोग के लिए कुछ सक्रिय समर्थन या उत्तेजना नहीं कर सकता है।

32. रंग नाइक बनाम राज्य, (2004) 12 एस.सी.सी. 521 में, यह माना गया है कि किसी व्यक्ति को उकसाने का दोषी ठहराने के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि इस तरह के उकसावे उस अपराध के संदर्भ में थे जो किया गया था और वह अपराध जो व्यक्ति द्वारा किए जाने की संभावना थी, जो इतना भड़काया गया था।

33. संजू @ संजय सिंह सेंगर बनाम मध्य प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 2002 उच्चतम न्यायालय 1998 में, अभियुक्त (अपीलकर्ता) और मृतका के बीच 25 जुलाई, 1998 को झगड़ा हुआ था, जिसके दौरान आरोपी ने मृतका के खिलाफ अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल किया और उत्तेजना में उसे "जाओ और मर जाओ" कहा। अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया कि इन अविवेकी शब्दों के कारण, मृतका ने 27 जुलाई को आत्महत्या कर ली और इसलिए वे अपमानजनक शब्द आत्महत्या का कारण थे। यह माना गया कि उकसाने के लिए गुस्से में बोले गए शब्दों को द्वेष के साथ नहीं कहा जा सकता है और कोई आशय/इरादा नहीं होने के कारण, धारा 107 के प्रावधान आकर्षित नहीं होते हैं, खासकर जब घटना के दो दिन बाद मृतका द्वारा आत्महत्या की गई थी।

34. सिरियाक बनाम एस.आई पुलिस कडुथुरुथी 2005 सीआरएलजे 4322 (केरल) में, मृतका पर अभियुक्त का 200/- रुपये का कर्ज था। अपने पैसे के भुगतान पर पूछने के दौरान, आरोपी ने सार्वजनिक रूप से मृतका को ये शब्द संबोधित किए "तुम पृथ्वी पर बोझ क्यों बने हुए हो, और तुम जाकर मर क्यों नहीं जाते", जहां मृतका ने आत्महत्या कर ली। आरोपी पर धारा 107 भ०द०वि० के तहत उकसाने का आरोप लगाया गया था। अदालत ने आरोपी को आरोपों से बरी कर दिया और कहा कि आरोपी व्यक्ति द्वारा बोले गए शब्द अपमानजनक हो सकते हैं, लेकिन निश्चित रूप से मृतका को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के लिए नहीं हैं।

35. इस मामले में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जिसने शव परीक्षण किया है उसके द्वारा मृत्यु से ठीक पहले मृतका पर चोट या पिछली यातना या क्रूरता का कोई निशान नहीं पाया गया है। मृतका का ऐसा कोई पत्र नहीं था कि दहेज की मांग या किसी अन्य कारण से उसके साथ क्रूरता की गई। सूचनाकर्ता द्वारा भेजे गए दो पत्र बचाव में सिद्ध हो चुके हैं, जिनमें अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से दहेज की मांग के संबंध में कोई बयान नहीं है,

हालांकि पत्रों की दो फोटोकॉपी आरोपी दिलीप कुमार द्वारा भेजी गई फाइल के साथ संलग्न हैं, जिसमें पैसे के लेन-देन से संबंधित कुछ मामले हैं या सूचनाकर्ता से कुछ पैसे प्राप्त करने की इच्छा है, लेकिन इस बात की कोई धमकी नहीं है कि अगर ऐसा नहीं किया गया तो मृतका को मार दिया जाएगा या आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया जाएगा। शादी के बाद इन छह वर्षों के दौरान मृतका और आरोपी दिलीप कुमार के विवाह से दो बेटों का जन्म हुआ था। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि मृतका को आवश्यक भोजन और कपड़े आदि उपलब्ध नहीं कराए गए थे। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृतका के बेटों को आरोपी दिलीप कुमार ने कभी प्रताड़ित किया हो। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृतका की विदाई (बीड़ाई) के दौरान उसके ससुराल से उसके मायके के घर या उसके मायके से ससुराल के घर तक कोई समस्या पैदा हुई थी। अ०सा०-1 एवं अ०सा०-2 के साक्ष्यों से सिद्ध हो चुका है कि सामान्य रूप से मृतका अपने मायके आती थी और अपनी इच्छानुसार आती थी। उसे कभी भी अनिश्चित काल के लिए अपने माता-पिता के घर में रहने के लिए मजबूर नहीं किया गया था।

36. अ०सा०-1 मंगला दत्त मिश्रा ने जिरह में गवाही दी है कि जैसे ही वह शादी के लिए गए, उसी दिन यह तय हो गया और दहेज शादी में तय नहीं किया गया था। उसने विवेचनाधिकारी को यह नहीं बताया था कि शादी में स्कूटर और फ्रिज की मांग की गई थी। उन्होंने स्वीकार किया है कि मृतका की बिदई को लेकर न तो पितृ घर से और न ही ससुराल से कोई विवाद या झगड़ा हुआ था। गवाह ने घटना के समय और स्थान पर सभी अभियुक्तों की अनुपस्थिति के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की है। उन्होंने यह बयान नहीं दिया है कि अपराध के समय आरोपी व्यक्ति मौके पर मौजूद थे। यहां तक कि आरोपी अपने बेटे के साथ ऊंचाहार जा रहे आरोपी दिलीप और मृतका के बीच हुए झगड़े को लेकर भी उसने अनभिज्ञता जताई है। इस गवाह ने इस बात से भी इनकार नहीं किया है कि मृतका ने आरोपी दिलीप कुमार तिवारी के साथ उक्त झगड़े के कारण आत्महत्या की थी।

37. जहां तक साजिश द्वारा कमी के संबंध में दूसरे घटक का संबंध है, यह बहुत स्पष्ट है कि आरोपी व्यक्तियों की ओर से मृतका द्वारा आत्महत्या करने की साजिश के बारे में कोई सबूत नहीं है। उपशमन का तीसरा घटक यह है कि क्या इस संबंध में सहायता करके यह छूट की गई थी। रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह बहुत स्पष्ट है कि अभियुक्तों ने आत्महत्या करने के लिए मृतका को जानबूझकर सहायता नहीं की थी, न ही उन्होंने माचिस की डिब्बी प्रदान की थी, न ही दरवाजा बंद किया था, और न ही किसी अन्य तरीके से आत्महत्या करने की सुविधा दी थी। अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से कोई अवैध चूक नहीं हुई है।

38. यह साबित नहीं हुआ है कि घटना के समय, आरोपी व्यक्ति घटनास्थल पर मौजूद थे और उन्होंने मृतका को आत्महत्या करने से रोकने की कोशिश नहीं की। यह भी साबित नहीं हुआ है कि आरोपी व्यक्तियों ने इसे कम

करने का प्रयास किया, जो धारा 109 और 110 भ०द०वि० के तहत दंडनीय है।

39. शारदा भाई जीवन लाल वानिया बनाम गुजरात राज्य 2012 उच्चतम न्यायालय 925 में, अपीलकर्ता पर धारा 114 सपठित धारा 498-ए और 304-बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया था, जहां उसकी पत्नी ने अपीलकर्ता के साथ शादी के दो साल बाद ही खुद को आग लगाकर आत्महत्या कर ली थी। अतिरक्त सत्र न्यायचीश, राजकोट ने अपीलकर्ता को बरी कर दिया क्योंकि दहेज की मांग के संबंध में क्रूरता या उत्पीड़न का कोई सबूत नहीं था। राज्य द्वारा दायर किया की गई अपील को उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई थी और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया था और पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी।

40. अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि मृतका द्वारा अपनी भाभी को उसे पीटने और तलाक लेने के लिए मजबूर करने के संबंध में लिखे गए पत्र साबित नहीं हुए थे। इसलिए आरोपी को संदेह का लाभ दिया गया और बरी करने का आदेश पारित किया गया।

41. गुरुचरण बनाम पंजाब राज्य (2017)1 एस.सी.सी. 433 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत आत्महत्या की मौत को कम करने के अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक तत्व आत्महत्या के आयोग की सहायता और उकसाने के लिए अभियुक्त का इरादा और भागीदारी है।

42. इनमें से किसी भी घटक का कोई भी विच्छेद या अनुपस्थिति उक्त अभियोग के खिलाफ कम हो जाएगी, दोषी जीवन की दूरदर्शिता, या अभियुक्त के इरादे में निहित चूक या आत्महत्या को वास्तविक रूप देने के लिए धारा 306 भ०द०वि० को आकर्षित करने के लिए आवश्यक आत्महत्या के उन्मूलन के अपराध से कम हो जाएगा। प्रस्तुत मामले में, पति के परिवार के सदस्यों को दो बेटियों के साथ पत्नी द्वारा आत्महत्या करने में धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था, लेकिन ये तत्व अप्रमाणित रहे। इसलिए अपीलकर्ताओं को बरी कर दिया गया।

43. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता अभियुक्त दिलीप कुमार तिवारी की ओर से मृतका द्वारा आत्महत्या करने के लिए छूट के आवश्यक अवयवों को साबित करने में सक्षम नहीं रहा है। मृतका को सिनेमा देखने के लिए ऊंचाहार जाने की अनुमति नहीं देना मात्र इस निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार नहीं है कि आरोपी ने मृतका को आत्महत्या के लिए उकसाया था।

44. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि, सजा का निर्णय और आदेश कानून की नजर में खराब/त्रुटिपूर्ण है और कायम रहने योग्य नहीं है।

<u>आदेश</u>

45. अपील की अनुमति दी जाती है। सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी.-IV), प्रतापगढ़ द्वारा

सत्र परीक्षण संख्या-162/96, केस अपराध संख्या-77/94 में धारा 498-ए, 304-बी भ०द०वि०, थाना-नवाबगंज, जिला प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्याम बिहारी और अन्य के तहत पारित अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा के निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है।

46. आरोपी को मुक्त किया जाए; जमानत बांड को रद्द किया जाता है और ज़ामिनान को उन्मोचित किया जाता है।

47. इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति अभिलेखों में रखने के लिए निचली अदालतों के मूल रिकॉर्ड के साथ विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 8 ILRA 1302

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आपराधिक अपील संख्या 1129 वर्ष 2023

ओकांश कुमार सिंह ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

उमेश चंद्र त्रिपाठी, चंद्र भूषण पांडे, शंभूनाथ मिश्र

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, चंदन श्रीवास्तव, योगेश सोमवंशी

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376डी, 342 और 506 - सामूहिक बलात्कार - जुर्माने के साथ आजीवन कारावास - समन आदेश, जमानती वारंट के विरुद्ध - अभियोक्ता के बयान में असंगति - प्रासंगिकता - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v) - शुरुआत में अपीलकर्ता के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई, जांच अधिकारी ने अंतिम रिपोर्ट पेश की और उसके बाद विरोध आवेदन दायर किया, ट्रायल कोर्ट ने उस पर विचार किया और सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अभियोक्ता के बयान और रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सबूतों पर विचार करने के बाद, 04.10.2019 का आदेश पारित किया, जिसके तहत अपीलकर्ता को बुलाया गया है - पीड़िता/अभियोक्ता के बयान में कुछ विरोधाभास हो सकता है , जिसकी ट्रायल कार्यवाही में जांच की जा सकती है विरोधाभास - सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों के अनुसार, धारा 164 के तहत अभियोजन पक्ष का केवल बयान ही दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है। (पैरा 28, 29, 31, 32)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u>:

1. प्रशांत भारती बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2013) 9 एससीसी 293, (पैरा 24, 25)

2. पॉपुलर मुथैया बनाम राज्य, (2006) 7 एससीसी 296, (पैरा 29, 30)

3. राजेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (2007) 7 एससीसी 378, (पैरा 11)

4. यूपी राज्य एवं अन्य बनाम अखिल शारदा एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 840/2022, (पैरा 7)

5. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2019) 6 एससीसी 107, (पैरा 14)

6. हजरत दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य विशेष अपील संख्या 9552/2021

7. तमिलनाडु राज्य बनाम रवि @ नेहरू, (2006) 10 एससीसी 534, (पैरा 20)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह द्वारा पारित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्र भूषण पांडे को विद्वान अधिवक्ता श्री शंभू नाथ मिश्रा की सहायता से, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को और विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री चंदन श्रीवास्तव को सुना।

2. इस अपील के माध्यम से अपीलकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, (एससी/एसटी एक्ट) न्यायालय, बाराबंकी द्वारा पारित दिनांक 04.10.2019 के समन आदेश और दिनांक 15.11.2019 के जमानती वारंट आदेश को चुनौती दी है।

3. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता ने वर्तमान अपीलकर्ता और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध दिनांक 27.07.2017 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसमें दिनांक 16.05.2017 की घटना को भा.द.स की धारा 376डी, 342, 506 और 3(2)(v) एससी/एसटी (पी.ए.) अधिनियम के अंतर्गत आरोपित किया, जो मुकदमा अपराध संख्या 224/2017 के रूप में पुलिस स्टेशन जैदपुर, जिला बाराबंकी में पंजीकृत किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी ने 16.08.2017 को शिकायतकर्ता/पीडिता का अभिकथन अभिलिखित किया, जिसमें पीडिता ने कहा कि अपीलकर्ता ने एक अन्य सह-आरोपी, अर्थात् अंजनी वर्मा के साथ मिलकर उसके साथ बलात्कार किया। शिकायतकर्ता/पीडिता का चिकित्सीय परीक्षण भी 17.08.2017 को जिला महिला चिकित्सालय, बाराबंकी में कराया गया और चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार बलात्कार के साक्ष्य पाए गए। इसके बाद, दिनांक 29.08.2017 को द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत पीडिता का अभिकथन भी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलिखित किया गया, जिसमें द.प्र.स. की धारा 161 के अंतर्गत दिए गए अभिकथन को दोहराया गया और आगे, दिनांक 08.12.2017 को उसके बाद के अभिकथन (मजीद बयान) में पीडिता ने

कहा कि उसे दिग्विजय वर्मा द्वारा एक साधन के रूप में उपयोग किया गया है क्योंकि उसे एक झूठा और मनगढ़ंत मामला दर्ज कराने के लिए कहा गया था जिससे अपीलकर्ता पर दबाव बनाया जा सके, जो कि अपराध वाद संख्या 456/2017 में गवाह है। अग्रेतर अभिवाक यह है कि अपीलकर्ता एक सहायता प्राप्त सरकारी इंटर कॉलेज, अर्थात्, श्री देशराज नारंग दयानंद इंटर कॉलेज, गोविंद नगर, वाल्टरगंज, जिला बस्ती में भौतिक विज्ञान के प्रवक्ता के रूप में कार्यरत था और वह 15 और 16 मई, 2017 को सुबह 7:00 बजे से दोपहर 12:30 बजे के बीच वहां उपस्थित था, अर्थात्, जिस तारीख को घटना घटित हुई थी।

4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का संकथन है कि दिनांक 04.10.2019 का समन आदेश और दिनांक 15.11.2019 का जमानती वारंट विधि की दृष्टि में धारणीय नहीं है क्योंकि अधीनस्थ न्यायलय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की समीक्षा करने में विफल रही है। वह प्रस्तुत करते है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, जब जांच अधिकारी को घटना को प्रमाणित करने के लिए कोई निश्चयात्मक साक्ष्य नहीं मिला, तो उन्होंने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की और 20 महीने के विलंब के बाद, अपीलकर्ता के अभ्यापत्ति प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर लिया गया।

5. आगे प्रस्तुति यह है कि पीडिता की चिकित्सीय जांच के अनुसार बलात्कार का कोई साक्ष्य नहीं है और यह अभियोक्ता के अभिकथन का समर्थन भी नहीं करता है। उन्होंने कहा कि अभ्यापत्ति प्रार्थना पत्र स्वीकार करते समय कोई उचित कारण अभिलिखित नहीं किए गए हैं और यह निराधार कल्पना और अनुमान पर आधारित है।

6. अपने तर्कों को जोड़ते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्वान विचारण न्यायालय, तथ्यों और साक्ष्यों की समीक्षा में विफल रहा है कि अपीलकर्ता एक सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेज में लेक्चरर के रूप में कार्य कर रहा था, जिसका नाम श्री देशराज नारंग दयानंद इंटर कॉलेज, गोविंद नगर, वाल्टरगंज, जिला बस्ती था और उक्त घटना की तिथि और समय पर, वह ड्यूटी पर था और इसके अतिरिक्त, पीडिता के अभिकथन से एक स्पष्ट साक्ष्य सामने आया है कि पीडिता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट आकाश कुमार वर्मा, प्राथमिकी संख्या 456/2017 के सूचनाकर्ता द्वारा दिग्विजय वर्मा और हिमांशु वर्मा के विरुद्ध भा.द.स. की धारा 376, 516, 506 के अंतर्गत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के प्रतिउत्तर में दर्ज कराई गई थी और पीडिता को दिग्विजय वर्मा द्वारा अपीलकर्ता पर दबाव बनाने, गवाह के रूप में अभिकथन पर अडिग न रहने और अपराध वाद संख्या 456/2017 में प्रतिपक्षी बनने के लिए एक साधन के रूप में उपयोग किया गया था।

7. आगे संकथन यह है कि पीडिता द्वारा वर्णित अभियोजन कहानी अत्यधिक असंभव और संदिग्ध है क्योंकि उसने खुद को पीलिया रोग से पीड़ित बताया है और कहा है कि वह बिना किसी परिचारक के सुबह 5 बजे लखनऊ से बाराबंकी आई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पीडिता ने अभियोजन की कमी को पूरा करने के लिए हर स्तर पर कहानी बदल दी है और

यदि पीडिता के अभिकथन पर विचार किया जाए तो यह पता चलता है कि केवल द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत अभिकथन अस्तित्व में है, यद्दपि यह भी धारा 161 के अंतर्गत अभिकथन के साथ-साथ बाद के अभिकथन के भी विरोधाभास में है जिसे पुलिस द्वारा 'मजीद बयान' के रूप में अभिलिखित किया गया था।

8. यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान विचारण न्यायलय ने त्रुटिपूर्ण रीती से संज्ञान लिया है और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(वी) के अंतर्गत आरोपी को तलब किया है, यद्दपि इस कहानी का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है कि अपीलकर्ता ने सार्वजनिक रूप से पीडिता की जाति का नाम लेते हुए कोई गाली दी।

9. अपने संकथन के समर्थन में, अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **(2013) 9 एससीसी 293, प्रशांत भारती बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)** के वाद पर विश्वास किया है और निर्णय के प्रस्तर 24 और 25 का सन्दर्भ दिया है, जो इस प्रकार है :-

> *"24. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उपरोक्त आरोपों के विरुद्ध परिवादकर्ता द्वारा कोई भी अभिवाक प्रस्तुत नहीं किया गया है। सुनवाई के दौरान भी, आरोपी द्वारा जिस सामग्री पर विश्वास किया गया था, उसका खंडन नहीं किया गया। वास्तव में, परिवादकर्ता/पीडिता ने स्वयं उच्च न्यायालय से संपर्क किया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि उसके द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना को निरस्त कर दिया जाए। इसलिए इस प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि आरोपी द्वारा जिस सामग्री पर विश्वास किया गया है, उसका परिवादकर्ता/पीडिता द्वारा खंडन नहीं किया गया है। यहां तक कि 28.6.2007 की चार्जशीट में (ऊपर उद्धृत) जांच अधिकारी ने स्वीकार किया है कि उन्हें आरोपों की पुष्टि के लिए कोई साक्ष्य नहीं मिला। आरोप-पत्र केवल परिवादकर्ता/पीडिता के अभिकथन के आधार पर द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत दायर किया गया था।*
>
> *25. उपरोक्त दो प्रस्तरो में संक्षेपित तथ्यों और परिस्थितियों के समग्र विचार के आधार पर; हम संतुष्ट हैं कि राजीव थापर के प्रकरण (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निरुपित सभी कार्रवाई संतुष्टि के स्तर पर हैं। सभी कार्रवाई का उत्तर केवल सकारात्मक रूप में दिया जा सकता है। इसलिए हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संशय नहीं है कि उच्च न्यायालय की न्यायिक अन्तश्चेतना को, आरोपी अपीलकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए उसके समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रश्नगत आदेश पारित करते समय द.प्र.स. की धारा 482*

के अंतर्गत निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय आश्वस्त होना चाहिए। तदनुसार, यहां निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर, हम संतुष्ट हैं कि अपीलकर्ता-आरोपी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 328, 354 और 376 के अंतर्गत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट और दिनांक 28.6.2007 की परिणामी आरोपपत्र, साथ ही अपर सत्र न्यायाधीश, नई दिल्ली द्वारा 1.12.2008 को तय आरोप, निरस्त किए जाने योग्य है। तदनुसार उन्हें निरस्त किया जाता है "

10. उपर्युक्त निर्णय का सन्दर्भ देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त वाद में द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत आरोप पत्र केवल पीडिता के अभिकथन के आधार पर दायर किया गया था और आरोपों को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं थे और इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपने निष्कर्ष देते हुए, आपराधिक कार्यवाही को निरस्त कर दिया और यह भी माना कि द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऐसे विषयों का निस्तारण किया जा सकता है।

11. उन्होंने आगे **(2006) 7 एससीसी 296, पॉपुलर मुथैया बनाम राज्य** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर विश्वास किया है और उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 29 और 30 का सन्दर्भ दिया है। प्रस्तर 29 और 30 यहाँ नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"29. इस प्रकार, उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण या अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते हुए, अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, यह अति सामान्य बात है, मूल और प्रक्रियात्मक दोनों विषयों के संबंध में।

30. आकस्मिक या पूरक शक्ति के संबंध में, स्पष्ट रूप से, उच्च न्यायालय कार्यवाही की प्रकृति की अपेक्षा किये बिना अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है । इसमें प्रक्रियात्मक प्रतिबंधों से बाधा नहीं आती है

(i) न्याय के हित में स्वप्रेरणा से शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। यदि ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो इससे अभियुक्त के साथ अन्याय भी हो सकता है।

(ii) ऐसी शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के साथ-साथ किया जा सकता है और इसके लिए कोई औपचारिक आवेदन दायर करने की आवश्यकता नहीं है।

(iii) तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति असीमित नहीं है। इसका प्रयोग अन्य बातों के साथ-साथ तब भी किया जा सकता है जहा संहिता मौन हो, जहां न्यायालय की शक्ति को व्यापक नहीं माना जाता है, या संहिता में कोई विशिष्ट प्रावधान है; या संविधि संहिता की परिधि में

नहीं आती है क्योंकि इसमें विशिष्ट विधि का अनुप्रयोग सम्मिलित है। यह न्यायोचित कार्य करता है। इस प्रकार, यह वास्तविक और सारवान न्याय कर सकता है जिसके लिए ही इसका अस्तित्व है। "

12. उपर्युक्त का सन्दर्भ देते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण या अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, मूल और प्रक्रियात्मक दोनों ही विषयों के संबंध में अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और यहां तक कि न्याय के हित में स्वतः संज्ञान से भी इसके प्रयोग को विस्तारित किया जा सकता है।

13. अपने तर्कों का समापन करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि वास्तव में, विचारण न्यायालय ने समन आदेश पारित करते समय विचार-विमर्श करने के लिए न केवल महत्वपूर्ण तथ्यों और साक्ष्यों को छोड़ दिया है, अपितु सुस्थापित विधि के प्रस्थापना को भी उपेक्षित किया है और इसलिए यह प्रस्तुत किया जाता है कि अपराध वाद संख्या 0224/2017 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 346/2019 की कार्यवाही को निरस्त किया जा सकता है।

14. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वकथित संकथनों का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया है कि वर्तमान अपीलकर्ता के विरुद्ध भा.द.स. की धारा 376 डी, 342, 506 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(वी) के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और यह जघन्य प्रकृति का है और समाज को बुरी तरह प्रभावित करता है। उन्होंने कहा कि प्रारंभ में जांच के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, लेकिन अभ्यापत्ति प्रार्थना पत्र दायर करने के बाद, विद्वान विचारण न्यायलय ने विस्तृत परिचर्चाओं और कारणों को अभिलिखित करते हुए दिनांक 04.10.2019 को आदेश पारित किया। इसके अतिरिक्त, द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत अभिलिखित पीडिता के अभिकथन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता और एक अन्य सह-आरोपी द्वारा परिवादकर्ता/पीडिता के साथ बलात्कार किया गया है और मेडिकल जांच रिपोर्ट भी इसका समर्थन करती है।

15. अगला संकथन यह है कि जहां तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति "अन्यत्र उपस्थिति" के अभिवाक का प्रश्न है, यह इस स्तर पर विचारणीय नहीं है, क्योंकि इस स्तर पर अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक यह एक लघु परीक्षण के समान होगा, जो विधि के अधीन स्वीकार्य नहीं है। अपने संकथन के समर्थन में, उन्होंने **(2007) 7 एससीसी 378, राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर विश्वास किया है और निर्णय के प्रस्तर 11 का सन्दर्भ दिया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार करने के पश्चात, हम इस मत

पर पहुंचे हैं कि द.प्र.स. की धारा 161 के अंतर्गत गवाहों के अभिकथनो का साक्ष्य में पूर्ण रूप से अस्वीकार्य होने के कारण उन पर विचार नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने के लिए पूर्ण रूप से अस्वीकार्य साक्ष्य पर विश्वास किया। इसके अतिरिक्त, द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत किसी याचिका में पहली बार उच्च न्यायालय द्वारा अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक पर कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर होता है जिसे वह विचारण में साक्ष्य प्रस्तुत करके कर सकता था न कि कुछ शपथपत्र या अभिकथनो को दाखिल करके जिन्हें कथित रूप से द.प्र.स. की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित किया गया है। उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई पूरी प्रक्रिया स्पष्ट रूप से अवैधानिक है और इसे स्थिर नहीं रखा जा सकता है। सह-अभियुक्त दया सिंह की दोषमुक्ति पर आधारित अन्य तर्क में भी योग्यता नहीं है। <u>शशिकांत सिंह बनाम तारकेश्वर सिंह</u> के वाद में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या द.प्र.स. की धारा 319 के अंतर्गत पारित आदेश तब प्रभावी नहीं रह जाएगा, जब सह-अभियुक्त का विचारण समाप्त हो चुका है और इसे रिपोर्ट के प्रस्तर 9 में इस प्रकार माना गया है:

"9. यहां प्रावधान का आशय यह है कि जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान, साक्ष्य से न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई अपराध किया है, तो न्यायालय उस अपराध के लिए उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है जो उसके द्वारा किया गया प्रतीत होता है। इस स्तर पर, न्यायालय इस बात पर विचार करेगा कि ऐसे व्यक्ति पर उस अभियुक्त के साथ अभियोग चलाया जा सकता है जो पहले से ही न्यायालय के समक्ष परिक्षण का सामना कर रहा है। ऐसे व्यक्ति के संबंध में प्रदान किया गया संरक्षण यह है कि, कार्यवाही आरंभ से ही अनिवार्य रूप से नए सिरे से शुरू की जानी चाहिए और गवाहों की पुनः सुनवाई की जानी चाहिए। संक्षेप में, उसके विरुद्ध नए सिरे से विचारण किया जाना चाहिए। नए सिरे से सुनवाई का प्रावधान अनिवार्य है। यह न्यायालय के समक्ष लाए गए व्यक्ति के अधिकारों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति-परिक्षण के लिए केवल गवाहों को प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं होगा। उनका नए सिरे से परिक्षण करना होगा। धारा 319(4) का अधिदेश नए योगित अभियुक्त का नए सिरे से

मुख्य परिक्षण करना है न की केवल प्रति-परिक्षण के उद्देश्य से उसको उपस्थिति करना है। धारा 319(1) में शब्द 'अभियुक्त के साथ परिक्षण किया जा सकता है ' केवल निर्देशात्मक प्रतीत होता है। इन परिस्थितियों में 'हो सकता है' को 'अवश्य होना चाहिए' नहीं माना जा सकता। इस प्रावधान की यह व्याख्या नहीं की जा सकती कि चूंकि न्यायालय के समक्ष उपस्थित व्यक्ति के संबंध में विचारण समाप्त हो गया है, जिसके परिणामस्वरूप नए योगित व्यक्ति पर उस अभियुक्त के साथ विचारण नहीं किया जा सकता है, जो धारा 319(1) के अंतर्गत आदेश पारित होने के समय न्यायालय के समक्ष था, इसलिए यह आदेश अप्रभावी और निष्प्रभावी हो जाएगा, जिससे न्यायालय द्वारा अपने समक्ष साक्ष्य के आधार पर बनाया गया पूर्ववर्ती मत अमान्य हो जायेगा कि ऐसा प्रतीत होता है कि नए योगित व्यक्ति ने अपराध कारित किया है, जिसके परिणामस्वरूप उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित करने का आदेश दिया गया। "

"अतः मात्र यह तथ्य कि सह-अभियुक्त दया सिंह का विचारण समाप्त हो गया है का प्रभाव विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा 26.5.2005 को पारित आदेश को अमान्य या निष्फल नहीं बना सकता।"

16. उपर्युक्त निर्णय पर विश्वास करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा 'अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक' का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया जा सकता है और 'अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक' को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है, जिसे वह परीक्षण कार्यवाही में साक्ष्य प्रस्तुत करके कर सकता है न कि कुछ शपथपत्र या अभिकथनो को दाखिल करके जिन्हें कथित रूप से द.प्र.स. की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित किया गया है।

17. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के एक अन्य संकथन का पुरजोर विरोध करते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला में यह माना गया है कि उच्च न्यायालय, द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए, साक्ष्यों की समीक्षा के समय, 'लघु परिक्षण' का आयोजन नहीं कर सकते हैं और ऐसा परीक्षण कार्यवाही में किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि जहां तक अपीलकर्ता के अभिवाक का प्रश्न है कि पीडिता के द.प्र.स. की धारा 161 और 164 के अंतर्गत किये गए अभिकथनों और पुलिस प्राधिकारी के समक्ष किये गए पूरक अभिकथन में विरोधाभास है, इसका परिक्षण या गवाही इस याचिका में नहीं की जा सकती।

18. पुनः, अपने संकथन के समर्थन में, उन्होंने **आपराधिक अपील संख्या 840/2022, उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अखिल शारदा एवं**

अन्य में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया है तथा उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 7 का संदर्भ दिया है। निर्णय का प्रस्तर 7 यहाँ नीचे उद्धृत है:-

> *"7. उच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय और आदेश के अवलोकन के बाद, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को अपास्त किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने वस्तुतः एक लघु परीक्षण किया है, जो इस स्तर पर स्वीकार्य नहीं है और द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन पर निर्णय करते समय जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में देखा और माना गया है, द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा कोई लघु परिक्षण का आयोजन नहीं किया जा सकता है और द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन को निर्णित करने के चरण में, उच्च न्यायालय विचाराधीन विशिष्ट वाद के साक्ष्य की समीक्षा नहीं कर सकता है।*

19. वह प्रस्तुत करते है कि उपर्युक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में माना है कि वस्तुतः लघु परीक्षण के आयोजन की अनुमति नहीं है।

20. आगे **(2019) 6 एससीसी 107 मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर विश्वास प्रकट करते हुए, प्रस्तर 14 का सन्दर्भ दिया गया है। निर्णय के प्रस्तर 14 को यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:-

> *"14. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "द.प्र.स.") की धारा 482 के अंतर्गत कार्यवाही के साक्ष्य की समीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि गवाहों के अभिकथनों में विरोधाभास या/और असंगतताएं हैं या नहीं, यह अनिवार्य रूप से साक्ष्य की समीक्षा से संबंधित विषय है और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण के समय इस पर विचार किया जा सकता है, जब पक्षों द्वारा संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं। इस वाद में वह चरण अभी आना बाकी है।"*

21. उपर्युक्त का सन्दर्भ देते हुए, वह प्रस्तुत करते है कि सर्वोच्च न्यायालय का विचार है कि क्योंकि गवाहों के अभिकथनों में विरोधाभास और असंगति है, उच्च न्यायालय को द.प्र.स. की धारा 482 के अंतर्गत कार्यवाही में साक्ष्यों के परिक्षण का कोई अधिकार नहीं है, जो कि अनिवार्य रूप से साक्ष्यों की समीक्षा का विषय है।

22. पुनः विधिक प्रश्न के संबंध में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के संकथन का खंडन करते हुए कि धारा 164 के अंतर्गत पीडिता का अभिकथन आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है जिससे आरोपी के दोष सिद्धि

के लिए अभियोग को तार्किक अंत तक ले जाया जा सके, यह प्रस्तुत किया गया है कि बलात्कार के अपराध को प्रकाश में लाने के लिए द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत किया गया अभिकथन, भा.द.स. की धारा 376 के अंतर्गत आरोप तय करने और विचारण को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त होगा और इस तथ्य का कि द.प्र.स.की धारा 161 और 164 के अंतर्गत पीडिता के अभिकथनों में कुछ विरोधाभास हैं, का कोई प्रभाव नहीं होगा।

23. अपने संकथनों के समर्थन में, राज्य अधिवक्ता ने **विशेष अपील संख्या 9552/2021 हजरत दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य** में प्रतिपादित निर्णय पर विश्वास किया है और निम्नलिखित प्रस्तरों का सन्दर्भ दिया है:-

> *"प्र.सू.रि. प्रारंभिक दस्तावेज है। पीडिता द्वारा वयस्क होने के बाद दंड प्रक्रिया संहिता (द.प्र.स.) की धारा 164 के अंतर्गत दिए गए अपने अभिकथन में, उसने स्पष्ट रूप से ऐसे अभिकथन किये है जो भा.द.स. की धारा 376 के अंतर्गत अपराध के समान हैं। प्र.सू.रि. और द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत किसी भी उत्तरवर्ती अभिकथन के मध्य की विसंगतियां बचाव का आधार हो सकती हैं। यद्यपि, विसंगतियां विचारण आरम्भ किए बिना आरोप मुक्ति का आधार नहीं हो सकतीं।"*

24. उपर्युक्त का सन्दर्भ देते हुए, वह प्रस्तुत करते है कि सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट रूप से माना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के संस्करण और द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत उत्तरवर्ती अभिकथन के मध्य की विसंगतियों के विषय में, इसे परीक्षण के समय में बचाव के रूप में लिया जा सकता है, लेकिन यह आरोप मुक्ति का आधार नहीं हो सकतीं।

25. उन्होंने **(2006) 10 एससीसी 534, तमिलनाडु राज्य बनाम रवि @ नेहरू** में रिपोर्ट किये गए वाद का भी सन्दर्भ दिया है और प्रस्तर 20 का उल्लेख किया है जो यहाँ नीचे उद्धृत है:-

> *"यौन उत्पीड़न की पीड़िता का साक्ष्य, चोटिल गवाह के साक्ष्य के समकक्ष होता है। जिस प्रकार से घायल होने वाला गवाह इस अभिप्राय में सबसे अच्छा गवाह होता है कि उसके द्वारा वास्तविक अपराधी को दोषमुक्त करने की संभावना सबसे कम है, यौन-अपराध की पीड़िता का साक्ष्य, पुष्टिकरण के अभाव में भी बहुत अधिक महत्व का हकदार है।*

26. उपर्युक्त का सन्दर्भ देते हुए उन्होंने कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि घायल गवाह का अभिकथन यौन उत्पीड़न की पीड़िता के अभिकथन के समकक्ष है और सभी अभिप्रायों में, यौन उत्पीड़न की पीडिता ही सबसे अच्छी गवाह है और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है।

अनुवादित

27. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का अग्रेतर संकथन यह है कि चूंकि वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा पीडिता के साथ बलात्कार करने का विशिष्ट आरोप है और यह यथावत् है, और इसलिए इस स्तर पर विचारण में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समय-समय पर बार-बार प्रतिपादित निर्णय के अनुपात का उल्लंघन होगा। इसलिए, प्रस्तुति यह है कि वर्तमान अपीलकर्ता किसी भी अनुतोष का हकदार नहीं है।

28. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रस्तुतिकरणों पर विचार करने तथा अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के पश्चात यह सामने आता है कि प्रारंभ में वर्तमान अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें जांच अधिकारी ने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा उसके पश्चात अभ्यापत्ति प्रार्थना पत्र दायर किया गया, जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया तथा पीडिता के द.प्र.स. की धारा 161 तथा 164 के अंतर्गत किये गए अभिकथन तथा अभिलेख पर उपस्थित अन्य साक्ष्यों पर सम्यक विचारोपरांत दिनांक 04.10.2019 का आदेश पारित किया गया, जिससे अपीलकर्ता को समन किया गया है।

29. अपीलकर्ता द्वारा द.प्र.स. की धारा 161 तथा 164 के अंतर्गत किये गए अभिकथन में असंगति के बारे में पहला अभिवाक दिया गया। इस न्यायालय का मानना है कि पीड़िता/पीडिता के अभिकथनों में कुछ विरोधाभास हो सकता है, लेकिन क्या इस स्तर पर इसकी जांच की जा सकती है, यह पहला और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि द.प्र.स. की धारा 161 तथा 164 के अंतर्गत अभियुक्त के अभिकथनों में विसंगतियां हो सकती हैं, लेकिन विचारण की कार्यवाही के अतिरिक्त इसकी जांच/समीक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि यह लघु परिक्षण के समान होगा।

30. आगे, इस न्यायालय का यह विचारित मत है कि पीडिता के द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत किये गए अभिकथन, आपराधिक मामले में घायल गवाह के समान ही साक्ष्य मूल्य रखता है। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का पहला संकथन विधि के स्थापित प्रस्ताव के विरुद्ध है और इसलिए, इसमें कोई बल नहीं है।

31. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के दूसरे श्रेणी के तर्क और राज्य सहित दूसरे पक्ष के अधिवक्ता के प्रतिउत्तर पर विचार करते हुए, कि वर्तमान अपीलार्थी 15 और 16 मई, 2017 को प्रातः 7:00 बजे से अपराह्न 12:30 बजे के बीच एक महाविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में कार्यरत था, यह कहते हुए कि वह महाविद्यालय, अर्थात् श्री देशराज नारंग दयानंद इंटर कालेज, गोविंद नगर, वाल्टरगंज, जिला बस्ती में उपस्थित था, उसकी अन-उपस्थिति का विषय 'अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक' का विषय है, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका है, जिसमें यह माना गया है कि 'अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक' की जांच, विचारण न्यायालय द्वारा

परीक्षण कार्यवाही में की जा सकती है, क्योंकि इसके लिए साक्ष्यों एवं तथ्यात्मक विरोधाभासों के समीक्षा की आवश्यकता होती है। वर्तमान विषय में, यह कहा गया है कि इस बात के साक्ष्य हैं कि अपीलकर्ता कथित घटना के समय बस्ती स्थित कॉलेज में था, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इस स्तर पर इसकी समीक्षा की जा सकती है, इसका उत्तर स्थापित विधि के अनुसार नकारात्मक है।

32. जहां तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के संकथन कि द.प्र.स. की धारा 164 के अंतर्गत बलात्कार के प्रकरण में पीडिता का अभिकथन, अभियुक्त को दोषी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है का प्रश्न है, इसका उत्तर सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों में भी दिया गया है, जिसमें यह माना गया है कि केवल धारा 164 के अंतर्गत पीडिता का अभिकथन ही दोष सिद्धि के लिए पर्याप्त है।

33. उपरोक्त प्रस्तुतियों और परिचर्चाओं के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि तात्कालिक अपील में कोई योग्यता नहीं है। परिणामस्वरूप, अपील को एतद् द्वारा **निरस्त** किया जाता है।

34. आगे यह भी स्पष्ट किया जाता है कि उपर्युक्त कोई भी टिप्पणी विचारण की गुणावगुण को प्रभावित नहीं करेगा ।

(2023) 8 ILRA 1310

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

आपराधिक अपील संख्या 2067 वर्ष 2006

सुरेन्द्र यादव ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपक्षी पक्ष

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

बालक राम वर्मा, अतुल वर्मा, हरि कृष्ण वर्मा, संजीत कुमार पटेल

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366 और 376 - बलात्कार के लिए सजा - पीडब्लू-2 के बयान से पता चलता है कि पीड़िता अपीलकर्ता के साथ चली गई, पीडब्लू-2 द्वारा उसी दिन शाम को सूचित किया गया, पुलिस को कोई सूचना नहीं दी गई - पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 दोनों ने अपने बयानों में पीड़िता की उम्र 14 वर्ष बताई, हाई स्कूल की मार्कशीट के अनुसार उसकी उम्र 17 वर्ष थी और रेडियोलॉजिकल जांच के अनुसार वह बालिग थी - स्वीकार किया गया तथ्य कि अभियोक्ता अपने बयान के अनुसार अपनी मर्जी से चली गई - वह बिना कोई अलार्म उठाए, सहमति पार्टी के साथ 40 दिनों की अवधि के लिए अपीलकर्ता के साथ रही - अज्ञात व्यक्ति का बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज नहीं किया गया । जांच अधिकारी द्वारा, जो पीड़िता पर नजर रखता था, उसे जांच का हिस्सा नहीं बनाया गया -

केवल अभियोजन पक्ष की गवाही के आधार पर, जिसमें सुधार संबंधी कोई पुष्टिकारी सामग्री नहीं है, आरोपी को अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता - निचली अदालत में पेश की गई हाई स्कूल की मार्कशीट की फोटोकॉपी, अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं की गई - सीएमओ का प्रमाण पत्र जिसके अनुसार अभियोजन पक्ष वयस्क है, पीडब्लू-4 द्वारा साबित किया गया - पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की गवाही उसकी उम्र के संबंध में विरोधाभासी है - इस प्रकार, आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया, बरी कर दिया गया। (पैरा 21 से 25, 28)

अपील स्वीकार की गई। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची :</u>

1. मोहम्मद अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 7 एससीसी 272 में रिपोर्ट किया गया

2. कुलदीप के. महतो बनाम बिहार राज्य (1998) 6 एससीसी 420 में रिपोर्ट किया गया

3. नरेंद्र कुमार बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2012)7 एससीसी 171

4. जय कृष्ण मंडल बनाम झारखंड राज्य, (2010)14 एससीसी 534

5. राजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2008) 15 एससीसी 133

6. तमीजुद्दीन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2009)15 एससीसी 566

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. अंतिम तिथि को अपीलार्थी की स्थिति दिनांक 14.12.2022 के आदेश द्वारा तलब की गई थी।

विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल कुमार वर्मा ने कहा कि उन्होंने अपीलार्थी की ओर से वकालतनामा पहले ही दाखिल कर दिया है और पुष्टि करते हैं कि अपीलार्थी जीवित है और इसलिए आगे किसी रिपोर्ट की आवश्यकता नहीं है।

2. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल वर्मा और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अनंत प्रताप सिंह को सुना गया।

3. धारा 374 (2) सी.आर.पी.सी के तहत वर्तमान अपील अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, अंबेडकर नगर द्वारा दिनांक 19.09.2006 को पारित निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, मुकदमा अपराध संख्या 30/2004, एस.टी. संख्या 56/2005, धारा 363/366/376 आई.पी.सी. के तहत, थाना हंसवर, जिला अंबेडकर नगर " उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुरेंद्र यादव और अन्य", जिसके तहत अपीलार्थी को धारा 363/366/376 आई.पी.सी. के तहत दोषी ठहराया गया है और धारा 366 के तहत उसे 2000 रुपये के जुर्माने के साथ 4 साल के कठोर कारावास की सजा

सुनाई गई है, धारा 366 आई.पी.सी. के तहत उसे 2000 रुपये के जुर्माने के साथ 6 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और धारा 376 आई.पी.सी. के तहत उसे 2000 रुपये के जुर्माने के साथ 7 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, जिसमें प्रत्येक अपराध में चूक के प्रावधान शामिल हैं। सभी सजाएं एक साथ चलेंगी।

4. लिखित रिपोर्टके अनुसार, वादी की पुत्री प्रतिमा श्रीवास्तव उम्र लगभग 14 वर्ष को दिनांक 28.05.2004 को लगभग 12 बजे दिन में सुरेन्द्र नामक व्यक्ति अपने माता-पिता की मिलीभगत से बहला-फुसलाकर भगा ले गया है। उस दिन वादी व उसकी पत्नी घर पर नहीं थे, केवल नाबालिग बच्चे ही घर पर थे। अभियोक्त्री मामा के घर जाने के बहाने अभियुक्तगणों के साथ चली गयी। वादी ने अपनी पुत्री की काफी खोजबीन की, परन्तु जब वह नहीं मिली तो उसने दिनांक 05.06.2004 को मुकदमा अपराध संख्या 30/2004 धारा 363/366/376 आई.पी.सी. के अन्तर्गत थाना हंसवर, जिला अम्बेडकर नगर में अभियुक्त सुरेन्द्र, उसकी माता व पिता के विरुद्ध पंजीकृत कराया। प्राथमिकी में उसने आरोप लगाया है कि जब उसने अभियुक्त सुरेन्द्र के घर उसके माता-पिता के साथ पूछताछ की तो वे मारपीट करने लगे।

5. उपनिरीक्षक रमेशचंद्र द्वारा इसकी विवेचना शुरू की गई थी। अभियोक्त्री को दिनांक 07.07.2004 को बरामद किया गया। विवेचक ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान दर्ज करने और नक्शा नजरी तैयार करने के बाद आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया है। सभी आरोपियों के खिलाफ धारा 363/366 आई.पी.सी. के तहत आरोप तय किए गए और सुरेन्द्र के खिलाफ धारा 376 आई.पी.सी. के तहत आरोप तय किए गए।

6. अभियोजन पक्ष ने अपना वाद साबित करने के लिए निम्नलिखित सात गवाह पेश किए:-

(i) पी.डब्लू.-1 हरिकृष्ण श्रीवास्तव (पीड़िता के पिता)
(ii) पी.डब्लू.-2 जयकिशुन लाल (पी.डब्लू.-1 का भाई)
(iii) पी.डब्लू.-3 पीड़ित
(iv) पी.डब्लू.-4 डॉ. मीरा वर्मा
(v) पी.डब्लू.5 हेड कांस्टेबल अशोक कुमार (प्राथमिकी लेखक)
(vi) उपनिरीक्षक श्री आर.वी. गौतम
(vii) हेड कांस्टेबल अशोक कुमार

7. धारा 313 सी.आर.पी.सी. के तहत आरोपियों के बयान दर्ज किए गए, जहां उनका वाद अस्वीकार की अवस्था में था और उनसे कहा गया कि दुश्मनी के कारण उन्हें झूठा फंसाया गया है।

8. पी.डब्लू.-1 हरिकृष्ण लाल श्रीवास्तव पीड़िता का पिता है। उसने बताया कि दिनांक 28.05.2004 को वह और उसकी पत्नी घर पर नहीं थे, वे दो दिन पूर्व अपने ससुर से मिलने गये थे। दिनांक 28.05.2004 को लगभग 2:30 बजे जब वे वापस लौटे तो नाबालिग बच्चे रितेश कुमार और बृजेश कुमार जिनकी उम्र लगभग 9 वर्ष और 10 वर्ष थी, ने बताया

कि पीड़िता सुरेन्द्र के साथ कहीं चली गयी है। जब वह सुरेन्द्र के घर गया तो उसकी मां ने घटना के सम्बन्ध में अनभिज्ञता प्रकट की। तत्पश्चात उसके भाई जय कृष्ण लाल ने उसे बताया कि उसने पीड़िता को लगभग 1:00 बजे सुरेन्द्र के साथ देखा था। वह शाम तक पीड़िता को खोजता रहा और एक-दो दिन तक अपने सम्बन्धियों से भी पूछताछ की और जब वह अपनी पुत्री को नहीं खोज पाया तो अन्ततः दिनांक 05.06.2004 को उसने थाने में सूचना दी और प्राथमिकी दर्ज कराई जो कि प्रदर्श का-1 के रूप में प्रदर्शित की गयी है और पी.डब्लू.-1 द्वारा प्रमाणित की गयी है।

9. पी.डब्लू.-1 ने आगे बताया कि पीड़िता को 10-12 दिन बाद बसखारी में बस से उतरते समय बरामद किया गया। उसने यह भी बताया कि पीड़िता को सुरेंद्र और उसके माता-पिता बहला-फुसलाकर ले गए थे।

10. पी.डब्लू.-2 जयकिशुन लाल पी.डब्लू.-1 का सगा छोटा भाई है। उसने बताया है कि पीड़िता उसकी भतीजी है। दिनांक 28.05.2004 को लगभग 12 बजे उसने और उसकी पत्नी विजय लक्ष्मी ने पीड़िता को अपीलार्थी सुरेन्द्र के साथ देखा। उस समय उसकी उम्र 14 वर्ष थी। जब उसने पीड़िता को सुरेन्द्र के साथ देखा तो उसने कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि वह अपने भाई पी.डब्लू.-1 से बातचीत नहीं करता था। अपीलार्थी शाम को उसके घर आता था। जब उसका भाई पीड़िता को खोजता हुआ आया तो उसने उसे इस बारे में बताया। पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 दोनों ने पीड़िता को 6-7 दिन तक खोजा और जब वह नहीं मिली तो रिपोर्ट दर्ज कराई गई।

11. पी.डब्लू.-3 पीड़िता है। अपने कथन में उसने कहा है कि अपीलार्थी घटना से पूर्व से पीड़िता को जानता था। वह उसके घर आता-जाता था। दिनांक 28.05.2004 को उसने अपीलार्थी सुरेन्द्र से कहा कि वह उसे उसके चाचा के घर सुल्तानपुर पहुंचा दे, उस समय उसके माता-पिता घर पर नहीं थे। लगभग 12 बजे वह सुरेन्द्र के साथ चली गयी, रास्ते में उसके पिता शिवदास, माता इन्द्रावती व मौसी श्यामा देवी मिले तथा ये लोग उसके साथ बसखारी तक आये तथा वहां इन लोगों ने उसे वाराणसी जाने वाली बस में बैठा दिया। बस में उसके साथ सुरेन्द्र भी बैठा था। कुछ दूर जाने पर एक व्यक्ति भी था जिसने अपना चेहरा गमछे से ढका हुआ था। वह अपीलार्थी के साथ वाराणसी में 2-3 दिन तक रुकी। उसने कहा कि जब उसने वाराणसी जाते समय विरोध किया तो सुरेन्द्र के साथ मौजूद एक अन्य व्यक्ति ने उसे डांटा तथा चुप रहने की धमकी दी। इसके बाद उसे वाराणसी से चेन्नई ले जाया गया। चेन्नई में उसे एक कमरे में बंद कर दिया गया और एक महीने तक उसी कमरे में रखा गया, जहाँ सुरेंद्र उसके साथ बलात्कार करता रहा। उसने विरोध किया। एक महीने बाद, अपीलार्थी सुरेंद्र उसे चेन्नई से वाराणसी और वाराणसी से बसखारी बस से ले गया। अपीलार्थी नाके पर बस से उतरा और उससे कहा कि अगली क्रॉसिंग पर उतर जाना। जब वह बस से उतर रही थी, तो पुलिस ने उसे पकड़ लिया, पुलिस के साथ उसके पिता भी थे।

12. पी.डब्लू.-4 डॉ. मीरा वर्मा ने मेडिकल रिपोर्ट को साबित किया है जिसे प्रदर्श का-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। उन्होंने अपने बयान में कहा है कि पीड़िता संभोग की आदी थी। उन्होंने पीड़िता की बाहरी और आंतरिक परिक्षण किया । उसकी बाहरी परिक्षण में पाया गया कि उसके गुप्तांगया शरीर के किसी भी हिस्से में कोई चोट नहीं थी। पीड़िता के अंग पूरी तरह से विकसित थे। आंतरिक परिक्षण में चोट का कोई निशान नहीं मिला। गुप्तांग में दो उंगलियां आसानी से पार हो सकती थीं। उन्होंने कहा कि उन्हें ऐसा कोई संकेत नहीं मिला है जिससे पता चले कि उसके साथ बलात्कार हुआ था। उन्होंने सी.एम.ओ. द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र को भी साबित किया है जिसमें उसकी उम्र 18 वर्ष आंकी गई थी। पीड़िता के सभी अंग पूरी तरह से विकसित थे और वह वयस्क थी।

13. पी.डब्लू.-5 हेड कांस्टेबल अशोक कुमार है, जो प्राथमिकी और जी.डी. नकल का लेखक भी है।

14. पी.डब्लू.-6 वह विवेचक है जिसने साबित किया है कि फर्द बरामदगी का-5 है और नक्शा नजरी का-6 है। उसने आरोप पत्र भी साबित कर दिया है।

15. दूसरे गवाह के रूप में पी.डब्लू.-7 हेड कांस्टेबल अशोक कुमार ने आर.बी. गौतम के हस्ताक्षर साबित किये हैं, जिन्होंने नक्शा नजरी (प्रदर्श का-8) तथा आरोप पत्र (प्रदर्श का-9) तैयार किया था।

16. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि घटना 28.05.2004 को हुई थी और प्राथमिकी 6-7 दिनों की देरी से दर्ज की गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 ने अपने बयानों में पीड़िता की उम्र 14 साल बताई है, जबकि रेडियोलॉजिकल परीक्षण के अनुसार पीड़िता बालिग थी और पी.डब्लू.-3 पीड़िता के खुद के बयान के अनुसार उसकी उम्र 17 साल थी। इस प्रकार, शुरू से ही, इस पहलू से, यह माना जा सकता है कि वादी अपीलार्थी को झूठा फंसाना चाहता था।

17. अपीलार्थी की ओर से यह भी कहा गया है कि पीड़िता को दिनांक 07.07.2004 को बरामद किया गया था, अर्थात घटना के 40 दिन बाद। उन 40 दिनों में से तीन दिन वह वाराणसी स्टेशन पर अभियुक्त के साथ रही, तीन दिन वह वाराणसी से चेन्नई जाने वाली ट्रेन में उसके साथ रही और 30 दिन से अधिक वह चेन्नई में रही। यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि पीड़िता सार्वजनिक परिवहन अर्थात बसखारी से वाराणसी, वाराणसी से चेन्नई जाने वाली ट्रेन से यात्रा कर रही थी और वह वाराणसी स्टेशन पर रुकी थी, अर्थात वह भी एक सार्वजनिक स्थान था और पीड़िता के बयान के अनुसार वहाँ बहुत से लोग थे, हालाँकि, उसने कभी कोई आवाज उठाने की भी कोशिश नहीं की और उसने अपीलार्थी के साथ रहने के बारे में कभी किसी को नहीं बताया। यह भी कहा गया है कि अभियोक्त्री एक सहमति देने वाला पक्ष है और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी ठहराते हुए इस प्रासंगिक और भौतिक तथ्य की अनदेखी करते हुए गलती की कि उसने बसखारी से

वाराणसी और वाराणसी से चेन्नई की अपनी यात्रा के दौरान और अपीलार्थी के साथ तीन दिन और चेन्नई में लगभग एक महीने तक रहने के दौरान वह कभी चीखी चिल्लाई नहीं।

18. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि स्कूल अभिलेख के अनुसार, पीड़िता की उम्र साढ़े सत्रह वर्ष है, तथापि, केवल हाई स्कूल की मार्कशीट की प्रतिलिपि दाखिल की गई है, जिसे भी प्रदर्शित नहीं किया गया है और इसलिए, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी ठहराते समय गलत तरीके से उसी पर भरोसा किया।

19. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 03.02.2013 से प्रभावी 2013 के अधिनियम 13 के आधार पर संशोधन से पहले, धारा 375 आई.पी.सी. के प्रयोजनों के लिए सहमति की आयु 16 वर्ष थी और इस मामले में, रेडियोलॉजिकल परीक्षण के अनुसार अभियोक्त्री की आयु 16 वर्ष से अधिक है, जहां उसकी आयु 18 वर्ष पाई गई है या अभियोजन पक्ष के स्वयं के स्वीकारोक्ति के अनुसार जहां उसने कहा है कि वह 17 वर्ष की है और इसलिए, इस मामले में दोषसिद्धि के लिए आयु आधार नहीं हो सकती थी।

20. विद्वान ए.जी.ए. ने अपील का विरोध करते हुए कहा कि अभियोक्त्री की आयु उसकी हाईस्कूल मार्कशीट के अनुसार 18 वर्ष से कम है तथा विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई अवैधानिकता नहीं है।

21. पी.डब्लू.-2 के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि पीड़िता दिनांक 28.05.2004 को अपीलार्थी के साथ चली गई थी और यह तथ्य पी.डब्लू.-2 जो पीड़िता का सगा भाई है, ने उसी दिन शाम को बताया था, फिर भी दिनांक 05.06.2004 तक पुलिस को कोई सूचना नहीं दी गई। पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 दोनों ने न्यायालय के समक्ष अपने बयानों में पीड़िता की उम्र 14 वर्ष बताई है जबकि हाई स्कूल की मार्कशीट के अनुसार उसकी उम्र 17 वर्ष थी और रेडियोलॉजिकल परीक्षण के अनुसार वह बालिग थी। इस पहलू पर अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की दलील वजनदार है कि शुरू से ही वादी अपीलार्थी को झूठा फंसाना चाहता था और उम्र कम करके वादी सिर्फ अपराध की गंभीरता को बढ़ाना चाहता था।

22. यह स्वीकारा गया तथ्य है कि अभियोक्त्री हमेशा अपनी मर्जी और स्वतंत्र इच्छा से अपीलार्थी के साथ चली गई थी, इसलिए अपीलार्थी के खिलाफ धारा 363/366 आई.पी.सी. के तहत कोई मुकदमा नहीं बनता है। एक और स्वीकारा गया तथ्य यह है कि अभियोक्त्री बिना किसी शोर-शराबे के 40 दिनों की अवधि तक अपीलार्थी के साथ रही, जो दर्शाता है कि वह एक सहमति पक्ष थी। धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत पीड़िता के बयान के अंतिम भाग में, यह बात सामने आई है कि एक लड़का अपीलार्थी सुरेंद्र के साथ गमछा/चुन्नी में बैठता था जो पीड़िता पर नज़र रखता था, हालाँकि, विचारण न्यायालय के समक्ष उसका परिक्षण नहीं किया गया है।

23. न्यायालय ने आगे उल्लेख किया है कि अभियोक्त्री अपनी इच्छा से वादी की अनुपस्थिति में अपीलार्थी के साथ उसके घर से चली गई तथा अपने दो नाबालिग बच्चों को छोड़कर चली गई। तथ्य यह है कि वह अपीलार्थी के साथ वाराणसी स्टेशन पर तीन दिन, वाराणसी से चेन्नई तक ट्रेन में तीन दिन तथा चेन्नई में एक कमरे में 30 दिन से अधिक समय तक रही, तथापि, किसी भी समय उसके द्वारा कोई आवाज नहीं उठाया गया। जिरह में पी.डब्लू.-3 पीड़िता ने स्वीकार किया है कि वह अपीलार्थी के साथ साइकिल से त्रिमहनी गई तथा वहां से बसखारी तथा बसखारी से वाराणसी बस से गई। अभियोक्त्री के कथनों के अनुसार, बसखारी से वाराणसी तथा वाराणसी से चेन्नई जाते समय, यद्यपि वहां कई व्यक्ति थे, उसने अपीलार्थी के साथ रहने के बारे में किसी को नहीं बताया। चेन्नई जाते समय पीड़िता ने कुल छह दिन सार्वजनिक परिवहन तथा वाराणसी स्टेशन जैसे सार्वजनिक स्थान पर बिताए, तथापि, किसी भी समय उसके द्वारा कोई आवाज नहीं उठाया गया।

24. न्यायालय ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि अज्ञात व्यक्ति का बयान 161 सी.आर.पी.सी. के तहत क्यों नहीं दर्ज किया गया है, जो पीड़िता के बसखारी से वाराणसी और वाराणसी से चेन्नई और चेन्नई जाते समय उसके साथ था। वास्तव में, उसे विवेचना का हिस्सा नहीं बनाया गया है। न्यायालय के समक्ष अभियोक्त्री के बयान से यह स्पष्ट है कि उसने अपने मामले में पर्याप्त सुधार करने की कोशिश की है।

25. अभियोक्त्री की एकमात्र गवाही के आधार पर, बिना किसी पुष्टि सामग्री के और अभियोक्त्री की इस तरह की अस्थिर और असंगत गवाही के आधार पर जिसमें सुधार किया गया है और तथ्य यह है कि अभियोक्त्री सहमति देने वाला पक्ष था, अभियुक्त को अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अभियोक्त्री की ऐसी गवाही के आधार पर अपीलार्थी को दोषी ठहराना उचित नहीं होगा।

मोहम्मद अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 7 एससीसी 272 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: -

*'29. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अभियोक्त्री की एकमात्र गवाही के आधार पर, यदि वह दोषमुक्त और दोष से परे है, तो दोषसिद्धि आधारित हो सकती है। इस मामले में, विद्वान विचारण जज और साथ ही उच्च न्यायालय ने गवाह की गवाही की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता की सराहना किए बिना इस सिद्धांत से खुद को दूर कर लिया है। वास्तव में, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आरोपित निर्णय में जो भी विश्लेषण किया गया है, वह केवल दृष्टिकोण की अनुचितता को इंगित करता है। **अभियोक्त्री ने गवाही दी है कि उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया गया और लगभग दो महीने तक विभिन्न घरों में रही। उसके द्वारा दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यह है कि उसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा धमकाया गया था। यह उसकी गवाही में नहीं है कि उसे एक स्थान तक सीमित रखा गया था। वास्तव में, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से यह पता चला है कि वह एक***

<u>स्थान से दूसरे स्थान पर गई थी और उसके साथ कई बार बलात्कार किया गया था। इन परिस्थितियों में, चिकित्सीय साक्ष्य महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि परिक्षण करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि गुप्तांगों पर कोई चोट नहीं है। प्राथमिकी में देरी, गवाहों का परीक्षण न होना, अभियोक्त्री की गवाही, संबंधित परिस्थितियाँ और चिकित्सीय साक्ष्य, अभियोक्त्री की गवाही को इतना स्वाभाविक और सत्य मानने में संदेह पैदा करते हैं कि उस पर भरोसा किया जा सके। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अभियोक्त्री का साक्ष्य इतना गुणवत्तापूर्ण नहीं है कि उस पर भरोसा किया जा सके।</u>

(मेरे द्वारा जोर दिया गया)

26. सर्वोच्च न्यायालय ने **"कुलदीप के. महतो बनाम बिहार राज्य (1998) 6 एससीसी 420"** के पैराग्राफ 11 (प्रासंगिक भाग) में निम्नानुसार माना है:-

"अभियोक्त्री के पास न केवल रामगढ़ स्थित घर से भागने का पर्याप्त अवसर था, बल्कि वह उक्त गांव के पड़ोसियों की मदद भी ले सकती थी। डॉ. माया शंकर ठाकुर, पी.डब्लू. 5 के चिकित्सीय साक्ष्य से भी संकेत मिलता है कि अभियोक्त्री के शरीर पर उसके गुप्तांगो सहित कोई चोट नहीं थी। उसका पूरा आचरण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वह यौन संबंध के लिए सहमति देने वाली पक्ष थी और यदि ऐसा है, तो धारा 376 आई.पी.सी. के तहत अपीलार्थी की सजा बरकरार नहीं रह सकती। एक और अतिरिक्त कारक है जिसका हमें उल्लेख करना चाहिए कि यह अभियोक्त्री का मुकदमा नहीं है कि उसे रामगढ़ स्थित घर में शारीरिक रूप से रोका गया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी गतिविधियाँ प्रतिबंधित थीं। यह परिस्थिति अपीलार्थी द्वारा अभियोक्त्री के साथ जबरन संभोग के मामले को भी नकारती है।"

सर्वोच्च न्यायालय ने **(2012)7 एससीसी 171 नरेंद्र कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)** मामले में कहा कि जहां अभियोक्त्री का साक्ष्य अन्य सामग्री के साथ असंगतता और कमज़ोरी से ग्रस्त पाया जाता है, उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। प्रासंगिक पैरा 22 को इस प्रकार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"जहां अभियोक्त्री के साक्ष्य में गंभीर कमज़ोरी पाई जाती है और अन्य सामग्री के साथ असंगतता पाई जाती है, अभियोक्त्री अपनी ओर से सहमति से इंकार करने के उद्देश्य से सामग्री बिंदु पर जानबूझकर सुधार करती है और उसके शरीर पर कोई चोट नहीं है, भले ही उसका कथन अन्यथा हो, उसके साक्ष्य पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। (सुरेश एन. भुसारे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1999) 1 एससीसी 220)")

(2010)14 एससीसी 534 जय कृष्ण मंडल बनाम झारखंड राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने दोहराया कि अभियोक्त्री के असंभावित बयान पर विश्वास नहीं किया जा सकता। पैरा 4 का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"4.....बलात्कार का एकमात्र साक्ष्य अभियोक्त्री का स्वयं का बयान था और जब इस साक्ष्य को समग्रता में पढ़ा गया तो अभियोक्त्री द्वारा प्रस्तुत कहानी इतनी असंभाव्य थी कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।"

राजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2008) 15 एससीसी 133 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि बलात्कार का झूठा आरोप आरोपी को भी समान रूप से कष्ट, अपमान और क्षति पहुंचा सकता है और आरोपी के हितों की भी रक्षा की जानी चाहिए। पैरा 10 और 11 के प्रासंगिक हिस्से को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"10..... कि सामान्यतः अभियोक्त्री के साक्ष्य पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए तथा उस पर विश्वास किया जाना चाहिए, क्योंकि उसके कथन का मूल्यांकन घायल गवाह के कथन के समतुल्य किया जाना चाहिए तथा यदि साक्ष्य विश्वसनीय है, तो किसी पुष्टिकरण की आवश्यकता नहीं है।

"11.....इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि बलात्कार से पीड़ित को सबसे ज़्यादा तकलीफ़ और अपमान होता है, लेकिन साथ ही बलात्कार का झूठा आरोप भी आरोपी को उतना ही तकलीफ़, अपमान और नुकसान पहुँचा सकता है। आरोपी को झूठे आरोप की संभावना से भी बचाया जाना चाहिए..... ऐसी कोई धारणा या कोई आधार नहीं है जिससे यह माना जा सके कि ऐसे गवाह का बयान हमेशा सही होता है या उसमें कोई बढ़ा-चढ़ाकर या अतिशयोक्ति नहीं होती।"

इसी प्रकार का विचार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **तमीजुद्दीन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली (2009)15 एससीसी 566)** में व्यक्त किया है।

27. अभियोजन पक्ष के मामले में कई खामियाँ हैं। सबसे पहले, अभियोक्त्री अपनी मर्जी से अपने माता-पिता की अनुपस्थिति में नाबालिग बच्चों को छोड़कर अपीलार्थी के साथ चली गई। दूसरी बात, वह अपीलार्थी के साथ सार्वजनिक परिवहन के ज़रिए चेन्नई गई और किसी भी समय उसने कोई आवाज नहीं उठाई, जिससे पता चलता है कि वह सहमति देने वाली पक्षकार थी। चेन्नई में भी वह 30 दिनों की अवधि तक रही, हालाँकि, उसने कभी आवाज उठाने का कोई प्रयास भी नहीं किया, जिससे पता चलता है कि वह अपनी सहमति से अपीलार्थी के साथ गई थी।

28. जहां तक विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई हाई स्कूल अंकपत्र की प्रतिलिपि का सवाल है, अभियोजन पक्ष द्वारा इसे साबित नहीं किया गया है, इसलिए अपीलार्थी को दोषी ठहराते समय विचारण न्यायालय द्वारा इस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। सी.एम.ओ. का प्रमाण पत्र जिसके अनुसार अभियोक्त्री वयस्क है, पी.डब्लू.-4 द्वारा साबित किया गया है। अभियोक्त्री की परिक्षण करते समय पी.डब्लू.-4 द्वारा कोई पुष्टि करने वाली सामग्री नहीं पाई गई। जहां तक उसकी उम्र का सवाल है, पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 की गवाही अभियोक्त्री की गवाही से विरोधाभासी है।

29. इस प्रकार, यह झूठे आरोप का मुकदमा प्रतीत होता है। अभियोक्त्री की आयु अपराध के समय 17 वर्ष से अधिक थी और दिनांक 03.02.2013 से प्रभावी अधिनियम 13/2013 के आधार पर संशोधन से पहले, धारा 375 आई.पी.सी. के प्रयोजनों के लिए सहमति की आयु 16 वर्ष थी, इसलिए, धारा 376 आई.पी.सी. के तहत कोई अपराध नहीं कहा जा सकता था।

30. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 19.09.2006 (उपरोक्त) के आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है। आरोपी-अपीलार्थी को बरी किया जाता है। यदि वह जमानत पर है, तो उसके जमानत अनुबंध रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को मुक्त किया जाता है।

31. निचली अदालत का अभिलेख इस फैसले की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 8 ILRA 1317

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.07.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल

आपराधिक अपील संख्या 2184/2023

साहब लाल ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

विनीत कुमार मिश्र, मालती मिश्रा

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 154 (1) और 156 (3) - आवेदन की अस्वीकृति के खिलाफ - स्थिरता - एफआईआर के अनुसार, सूचना देने वाले के बेटे को विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा क्रूरता से पीटा गया था - उसने स्कूल जाने से इनकार कर दिया - जब वह 21.9.2022 को फिर से स्कूल गया, तो उसे फिर से पीटा गया - इसके बाद, वह बीमार पड़ गया, चलने-फिरने और अपना सामान्य जीवन जीने में असमर्थ हो गया - जिला अस्पताल द्वारा मेडिकल कॉलेज रेफर किया गया जहां चार दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गई - अपीलकर्ता ने धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन दायर किया, रिपोर्ट मांगी गई - रिपोर्ट के अनुसार वह 20.9.2022 को स्कूल नहीं गया - घायल की 19.10.2022 को अस्पताल में चिकित्सकीय जांच की गई, जिसमें साधारण प्रकृति की तीन चोटें पाई गईं - घायल गुर्दे की बीमारी से पीड़ित था, उसे डायलिसिस की सलाह दी गई और उसके इलाज के दौरान 28.10.2022 को उसकी मृत्यु हो गई - अभिनिर्धारित किया गया, सभी चोटें साधारण प्रकृति की हैं, जो किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करता - अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के संबंध में, मूल अपराध के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए - सूचना देने वाले के पास क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराने का

समान रूप से प्रभावी उपाय है - अतः, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और उचित प्रक्रिया अपनाए बिना अपील दायर करना विधि प्रक्रिया का दुरुपयोग है। (अनुच्छेद 5, 11, 15)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. ललिता कुमारी बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, एआईआर 2014 एससी 187

2. हरि सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 5 एससीसी 733

3. मोहम्मद यूसुफ बनाम श्रीमती अफाक जहां एवं अन्य 2006 (1) एससीसी 10

4. दिलावर सिंह बनाम दिल्ली राज्य, 2007 (10) एससीसी 585

5. एम. सुब्रमण्यम एवं अन्य बनाम एस. जानकी एवं अन्य, एआईआर 2020 एससी 387

6. सुधीर भास्करराव तांबे बनाम हेमन्त यशवन्त ढगे एवं अन्य, 2016 (6) एससीसी 277

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल द्वारा पारित)

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14(ए)-1 के तहत वर्तमान आपराधिक अपील, विद्वान विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी (पीए) अधिनियम, हरदोई द्वारा प्रकीर्ण वाद संख्या 721/2022 अन्तर्गत धारा 156(3) सीआरपीसी में पारित आदेश दिनांक 20.4.2023 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता के प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया था।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध गवाहों के बयानों पर विचार नहीं किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले की सामग्री की अनदेखी करते हुए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का गलत मूल्यांकन किया है। अतः, आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण है और इसमें स्पष्ट विधिक त्रुटि है तथा यह अपास्त किए जाने योग्य है।

शुरुआत में ही, विद्वान एजीए ने दलील दी कि वर्तमान अपील स्वीकार्य नहीं है क्योंकि अपीलकर्ता के पास मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर शिकायत दर्ज करने के लिए समान रूप से प्रभावी उपाय उपलब्ध हैं। चोटें सामान्य प्रकृति की हैं। यह भी दलील दी गई कि मजिस्ट्रेट ने धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र पर रिपोर्ट मांगी थी और जांच में घटना झूठी पाई गई। इसलिए धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र को सही रूप से अस्वीकार किया गया है और अपील खारिज किए जाने योग्य है।

संक्षेप में एफआईआर की विषयवस्तु यह है कि शिकायतकर्ता अनुसूचित जाति से है और विरोधी पक्ष ब्राह्मण जाति का है। सूचनाकर्ता का पुत्र अनूप कुमार शैल कुमारी बटेश्वर दयाल पब्लिक इंटर कॉलेज, सहिजना, हरदोई में कक्षा सात में पढ़ता था। विरोधी पक्ष संख्या 2, प्रदीप कुमार द्विवेदी ने सूचनाकर्ता के पुत्र को बेरहमी से पीटा और उसे आघात पहुंचाया। इसलिए उसके बेटे ने स्कूल जाने से इनकार कर दिया। जब सूचनाकर्ता का पुत्र 21.9.2022 को फिर से स्कूल गया, तो उसे फिर से मुक्कों, लात-घूंसों और डंडों से पीटा गया। इसके बाद उसका बेटा बीमार पड़ गया और वह चलने-फिरने और अपना सामान्य जीवन जीने में असमर्थ हो गया। उसे जिला अस्पताल द्वारा किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ रेफर किया गया, जहां उसके बेटे की चार दिन बाद मृत्यु हो गई। सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत दायर प्रार्थना पत्र के आधार पर संबंधित थाने से रिपोर्ट मंगवाई गई। संबंधित थाने द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के अनुसार, सूचनाकर्ता का पुत्र 20.9.2022 को स्कूल नहीं गया। घायल का 19.10.2022 को लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में चिकित्सीय परीक्षण किया गया, जिसमें तीन सामान्य चोटें पाई गईं। घायल गुर्दे की बीमारी से पीड़ित था, इसलिए उसे डायलिसिस की सलाह दी गई और उपचार के दौरान 28.10.2022 को उसकी मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु का कारण बीमारी के कारण सेप्टीसीमिया बताया गया है। मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु का कारण सेप्टीसीमिया और सदमा है। अपीलकर्ता ने प्रार्थना पत्र में कहा था कि उसने अपने बेटे का पोस्टमार्टम पैनल द्वारा कराने के लिए प्रार्थना पत्र किया था, लेकिन उसका निस्तारण नहीं किया गया।

धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, घटना की तिथि 20.9.2022 और 21.9.2022 दर्शाई गई है। हालाँकि, थाने द्वारा की गई प्राथमिक जाँच के अनुसार, घायल का 19.10.2022 को केजीएमसी, लखनऊ में चिकित्सीय परीक्षण किया गया था और उसके शरीर पर तीन मामूली चोटें पाई गई थीं, जो चिकित्सीय परीक्षण से 2-4 दिन पहले की थीं। इसके बाद, घायल का राजधानी अस्पताल, दुबग्गा रोड, लखनऊ में चिकित्सीय उपचार किया गया, जहाँ उसे डायलिसिस की सलाह दी गई और उपचार के दौरान ही घायल की मृत्यु हो गई।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पुलिस रिपोर्ट इस आशय के लिए विश्वसनीय नहीं है कि घायल व्यक्ति 20.9.2022 को स्कूल नहीं आया था। हालाँकि, अपील के साथ संलग्न अनुलग्नक-4 के अनुसार, उसे उसकी डायरी में गृहकार्य दिया गया था। प्रथम दृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि घायल व्यक्ति 20.9.2022 और 21.9.2022 दोनों दिन स्कूल गया था।

सीआरपीसी की धारा 156 इस प्रकार है:

"156. संज्ञेय मामले की जांच करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति।

(1) किसी पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, किसी ऐसे संज्ञेय मामले की जांच कर सकेगा, जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति ऐसे थाने की सीमाओं के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने

वाले न्यायालय को अध्याय XIII के उपबंधों के अधीन होगी।

(2) किसी ऐसे मामले में पुलिस अधिकारी की कोई कार्यवाही किसी भी प्रक्रम पर इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि मामला ऐसा था जिसका अन्वेषण करने के लिए ऐसा अधिकारी इस धारा के अधीन सशक्त नहीं था।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट उपर्युक्त जांच का आदेश दे सकेगा।"

एक मजिस्ट्रेट सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत संज्ञान से पहले और बाद में अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस शक्ति में मामला दर्ज करने और जाँच पूरी करने के लिए प्रभारी पुलिस अधिकारी भी शामिल हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति पुलिस को संज्ञेय अपराध की सूचना देकर कानूनी प्रक्रिया शुरू कर सकता है। पुलिस के लिए कानूनन यह आवश्यक है कि वह ऐसी सूचना मिलने पर जाँच शुरू करे और मामला दर्ज करे।

सीआरपीसी की धारा 154(1) के अनुसार, संज्ञेय अपराध के घटित होने से संबंधित कोई भी सूचना, चाहे मौखिक रूप से हो या लिखित रूप में, पुलिस थाने के प्रभारी को लिखित रूप में दी जानी चाहिए और उस पर उनके हस्ताक्षर होने चाहिए। हमारे देश की आपराधिक न्याय प्रणाली में एफआईआर एक आवश्यक दस्तावेज़ है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य मामले*** में पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि शिकायत प्राप्त होने पर पुलिस अधिकारियों को प्राथमिकी दर्ज करनी होगी। पुलिस अधिकारियों को सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत दायर ऐसे प्रार्थना पत्र पर कार्रवाई करनी होगी। मजिस्ट्रेट केवल न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना मामला दर्ज करने वाला एक साधारण पद नहीं है। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि पुलिस द्वारा मामला दर्ज करने और जाँच करने का औचित्य है। पुलिस और मजिस्ट्रेट दोनों को बिना प्राथमिकी दर्ज किए अपराध की जाँच करने की अनुमति है, चाहे कोई संज्ञेय अपराध बनता हो या नहीं। प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश पारित करने से पहले, न्यायालय को शुरू में ही यह देखना होगा कि कोई संज्ञेय अपराध बनता है या नहीं।

हालांकि, धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र के अवलोकन से यह कहा गया है कि घायल को विपक्षी संख्या 2 द्वारा बुरी तरह पीटा गया था, लेकिन रिकॉर्ड पर उपलब्ध चिकित्सा कानूनी जांच से पता चलता है कि घायल के शरीर पर तीन चोटें पाई गईं, जो इस प्रकार हैं:

"(i) दाहिने कान से 3 सेमी ऊपर सिर के दाहिनी ओर 3.0 सेमी x 2.0 सेमी की नीलगू निशान वाली सूजन;

(ii) नाभि से 1 सेमी दूर निचले पेट के बाईं ओर 4.0 सेमी x 3.0 सेमी का नीलगू निशान;

(iii) नितंब के बायीं ओर 3 सेमी x 2 सेमी का खरोंचदार निशान।"

सभी चोटें सामान्य प्रकृति की हैं। इससे भारतीय दंड संहिता में किसी संज्ञेय अपराध का पता नहीं चलता। जहाँ तक अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के प्रावधानों का संबंध है, इसे मूल अपराध के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए।

हरि सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2006) एससीसी में यह निर्णय लिया गया था कि यदि पुलिस घटना की जांच करने में विफल रहती है तो शिकायतकर्ता संज्ञान लेने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज करा सकता है। कानून मजिस्ट्रेट को सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत जांच का आदेश देने की अनुमति नहीं देता है, मजिस्ट्रेट को सीआरपीसी की धारा 190, 200 और 204 के तहत संज्ञान लेने से पहले संहिता के अध्याय XIV के प्रावधान के अनुसार शिकायत की जांच करनी आवश्यक है। संज्ञान से पहले के चरण के दौरान, यदि कोई व्यक्ति इस बात से व्यथित है कि उसकी एफआईआर सीआरपीसी की धारा 154 के तहत दर्ज नहीं की गई है और संबंधित पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा उचित जांच नहीं की गई है, तो ऐसा व्यथित व्यक्ति पुलिस अधीक्षक या सीआरपीसी की धारा 154(3) के तहत पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से वरिष्ठ रैंक के अन्य पुलिस अधिकारी से लिखित प्रार्थना पत्र कर सकता है। यदि इसमें भी कोई संतोषजनक परिणाम नहीं मिलता है, तो एफआईआर दर्ज नहीं की जाती है या एफआईआर दर्ज होने के बाद भी उचित जांच नहीं की जाती है, तो पीड़ित व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत प्रार्थना पत्र दायर कर सकता है। यदि ऐसा प्रार्थना पत्र दायर किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट एफआईआर दर्ज करने और उचित जांच का आदेश दे सकता है। मोहम्मद यूसुफ बनाम श्रीमती अफाक जहां एवं अन्य 2006 (1) एससीसी 10 और *दिलावर सिंह बनाम दिल्ली राज्य* 2007 (10) एससीसी 585 के मामलों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी ऐसा ही निर्णय दिया था।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एम. सुब्रमण्यम एवं अन्य बनाम एस. जानकी एवं अन्य (2020) एससीसी** के मामले में साकिरी वासु के फैसले की पुष्टि की, और **सुधीर भास्करराव तांबे बनाम हेमंत यशवंत धागे एवं अन्य (2010)** एससीसी में पहले के एक फैसले का हवाला दिया। पीड़ित पक्ष के लिए उपाय यह है कि वे संबंधित मजिस्ट्रेट के पास धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत जा सकते हैं यदि उन्हें शिकायत है कि पुलिस ने सीआरपीसी की धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज नहीं की है, तो और यह परिकल्पना की गई है कि यदि पुलिस ने एफआईआर दर्ज करने से इनकार कर दिया और एफआईआर दर्ज करने के बाद ठीक से जांच नहीं की, तो सूचनाकर्ता को एसपी के समक्ष प्रार्थना पत्र देने का अधिकार है। जब पीड़ित ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत अनुरोध किया, तो उन्हें सीआरपीसी की धारा 154(1) और 154(2) में दिए गए सभी चरणों का पालन करना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र और चिकित्सा रिपोर्ट में

प्रकट की गई विषयवस्तु के आधार पर कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम से संबंधित विषयवस्तु को मूल अपराध के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। सूचनाकर्ता के पास मामले के विचारण के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराने का भी उतना ही प्रभावी उपाय है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में कानून के उपर्युक्त प्रावधानों पर अच्छी तरह से चर्चा की है। अतः, विचारण न्यायालय का आदेश किसी भी प्रकार की अवैधता, अनियमितता या विकृति से ग्रस्त नहीं है। उचित प्रक्रिया अपनाए बिना अपील दायर करना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अपील को **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1321

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 412 वर्ष 2023

सुरेन्द्र प्रजापति ...पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणवादी के लिए अधिवक्ता:
श्री अनिल कुमार प्रजापति

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
शासकीय अधिवक्ता

(ए) आपराधिक विधि - पुनरीक्षण - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 - भरण-पोषण - पत्नी को दी जाने वाली स्थायी गुजारा भत्ता की राशि पक्षकारों की स्थिति और पति/पत्नी की भरण-पोषण देने की क्षमता के अनुरूप होनी चाहिए - भरण-पोषण हमेशा मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करता है - न्यायालय द्वारा विभिन्न कारकों के आधार पर भरण-पोषण के दावे को स्वीकार करना न्यायोचित होगा। (पैरा-8)

न्यायालय ने भरण-पोषण के लिए 4,000/- रुपये प्रतिमाह देने का आदेश दिया - पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी को - उचित कारण के आधार पर - पत्नी की आय के स्वतंत्र स्रोत का कोई साक्ष्य नहीं - अभिलेख और तथ्यात्मक साक्ष्य के आधार पर निचली अदालत का निष्कर्ष - पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी उचित कारण से अपने पति से अलग रह रही है - पत्नी (प्रतिवादी संख्या 4) द्वारा अपने पति (पुनरीक्षणकर्ता) के विरुद्ध तलाक की याचिका दायर की गई - पर्याप्त कारण के बिना कथित अलगाव की धारणा नहीं मानी जा सकती। **(पैरा-10)**

अभिनिर्धारित: पारित आदेश में कोई महत्वपूर्ण कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं है पुताई और रंग-रोगन का काम करने वाले पुनरीक्षणकर्ता की अप्रमाणित आय और स्वयं के भरण-पोषण तथा परिवार के सदस्यों की देखभाल की ज़िम्मेदारी के कारण, भरण-पोषण की देय राशि

को कम करने की आवश्यकता है। न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता की दैनिक मजदूरी पर निर्भरता को 200 रुपये से घटाकर 250 रुपये प्रतिदिन कर दिया। पारिवारिक न्यायालय के निर्णय को संशोधित कर 4,000 रुपये प्रति माह से 3,000 रुपये प्रति माह कर दिया गया, जिसमें मौजूदा भरण-पोषण भुगतान को तदनुसार समायोजित किया गया। प्रतिवादी संख्या 2 संशोधित राशि के लिए आवेदन कर सकते हैं यदि वे यह साबित कर सकें कि वे निजी काम से मासिक आय पुनरीक्षणकर्ता के साक्ष्य से अधिक कमाते हैं। **(अनुच्छेद 11,12)**

पुनरीक्षण का निस्तारण किया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :-

1. भीखा राम बनाम गोमा देवी एवं अन्य, 1999 सीआरआई एलजे 1789

2. कल्याण देव चौधरी बनाम रीता डे चौधरी नी नंदी, सिविल अपील संख्या 5369/2017

3. डॉ. कुलभूषण कुमार बनाम राज कुमारी एवं अन्य, (1970) 3 एससीसी 129

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा पारित)

वर्तमान पुनरीक्षण, प्रकीर्ण वाद संख्या 10/2020 (श्रीमती रामदेवी @ मोहिनी बनाम सुरेन्द्र प्रजापति) धारा 125 दं0प्र0सं0 , थाना बार, जिला ललितपुर में प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, ललितपुर द्वारा पारित दिनांक 16.9.2022 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध है, जिसके तहत पुनरीक्षणकर्ता को निर्णय की तिथि से अपनी पत्नी-विपक्षी संख्या 2 को भरण-पोषण के रूप में 4,000/- रुपये प्रति माह देने का निर्देश दिया गया है।

संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के अनुसार विपक्षी संख्या 2 को नोटिस दिया जा चुका है, लेकिन विपक्षी संख्या 2 की ओर से इस पुनरीक्षण पर जोर देने के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

पुनरीक्षणकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि विपक्षी संख्या 2 ने अपने पति के खिलाफ धारा 125 दं0प्र0सं0 के तहत भरण-पोषण के लिए एक आवेदन दायर किया था , जिसमें कहा गया था कि उसका विवाह विपक्षी के साथ 19.4.2014 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था; उसके माता-पिता ने अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार नकद और उपहार दिए थे लेकिन उसके पति और ससुराल वाले उसकी शादी में दिए गए दहेज से संतुष्ट नहीं थे और अतिरिक्त दहेज के रूप में 02 लाख रुपये की मांग करने लगे और पूरा न होने पर उन्होंने उसके साथ शारीरिक और मानसिक क्रूरता करना शुरू कर दिया। धारा 125 दं0प्र0सं0 के तहत याचिका दायर करने से पहले , उसे उसके पति और ससुराल वालों ने यह धमकी देते हुए घर से निकाल दिया था कि अगर वह बिना दहेज के वापस आई तो उसे बाहर कर दिया जाएगा। 2- आवेदिका अपने मायके में थी,

उसके पति और ससुराल वाले उसके घर आये और कहा कि यदि वह दहेज की उनकी मांग पूरी नहीं कर सकती तो उनका वैवाहिक संबंध समाप्त कर दिया जायेगा और जब उसने उनकी मांग पूरी करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने उसके साथ गाली-गलौज की और लात-घूसों व मुठ्ठियों से मारपीट की और इसलिए उसने भरण-पोषण का दावा किया क्योंकि संशोधितकर्ता के पास दो एकड़ कृषि भूमि है और वह ठेके पर बड़ी इमारतों में पेंटर का काम करता है जिससे उसे 50,000 रुपये प्रति माह की कमाई होती है।

विद्वान अवर न्यायालय ने भरण-पोषण के प्रकरण में पक्षकारों की दलीलों और दर्ज साक्ष्यों पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष दिया कि यह स्वीकार्य तथ्य है कि आवेदिका और विपक्षी पति-पत्नी हैं; आवेदिका छह वर्षों से अपने पैतृक घर में रह रही है और उस अवधि में वह कभी अपने ससुराल वापस नहीं आई; पक्षकारों के बीच तलाक की कार्यवाही चल रही है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनके पुनः मिलने की संभावना क्षीण है और इस प्रकार उसके पास अपने पति से अलग रहने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है, इसलिए यह माना गया कि आवेदिका उचित कारणों से विपक्षी से अलग रह रही है, विद्वान न्यायालय ने यह भी पाया कि विपक्षी के कथन के अनुसार वह मजदूरी करता है और 200-250/- रूपये प्रतिदिन कमाता है और इसलिए उसके पास आवेदिका के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त आय है। इन निष्कर्षों को दर्ज करने के बाद अधीनस्थ न्यायालय ने निर्णय की तिथि से 4,000/- रूपये प्रतिमाह भरण-पोषण प्रदान करने का आदेश दिया। उक्त आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षणकर्ता- विपक्षी द्वारा वर्तमान पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधीनस्थ न्यायालय ने अवैधानिक तरीके से कार्य किया है तथा आक्षेपित आदेश पारित करते समय अनियमितता की है; निर्णय में अभिलेख के आधार पर स्पष्ट विधिक त्रुटि है। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 बिना किसी उचित कारण के तथा स्वेच्छा से पुनरीक्षणकर्ता से अलग रह रही है, इसलिए पुनरीक्षणकर्ता उसका भरण-पोषण करने के लिए बाध्य नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता अल्प आर्थिक स्रोत वाला व्यक्ति है तथा वह दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्य करता है तथा बहुत कम कमाता है, इसलिए वह प्रत्यर्थी संख्या 2 को 4,000/- रूपये प्रतिमाह भरण-पोषण देने की स्थिति में नहीं है। वह अपने भाई जो लम्बे समय से बीमार है तथा अपने माता-पिता का भरण-पोषण भी अल्प वेतन से करता है तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 ने पुनरीक्षणकर्ता के विरूद्ध घरेलू हिंसा अधिनियम के अन्तर्गत आवेदन भी प्रस्तुत किया था, जिसे सम्बन्धित न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था तथा उस कार्यवाही में पुनरीक्षणकर्ता ने न्यायालय के समक्ष अपनी पत्नी को अपने साथ रखने का वचन दिया था तथा न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को यह भी निर्देश दिया था कि वह अपनी पत्नी को अपने साथ रखे। 2 को अपने पति के साथ उसके वैवाहिक घर जाने के लिए कहा, लेकिन उसने न्यायालय के आदेश का पालन नहीं किया।

चूंकि विपक्षी संख्या 2 ने पारिवारिक सुलह केंद्र के समक्ष आवेदन दायर किया था, जिसमें उसने कहा था कि वह अपने पति से तलाक लेने को तैयार है और वह उसके साथ रहने को तैयार नहीं है; तलाक की याचिका विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर की गई है, न कि स्वयं पुनरीक्षणकर्ता द्वारा, इसलिए विपक्षी संख्या 2 के आचरण से यह भी पता चलता है कि वह दं0प्र0सं0 की धारा 125 के तहत कार्यवाही में कोई भरण-पोषण पाने की पात्र नहीं है ।

पुनरीक्षणकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने **भीखा राम बनाम गोमा देवी एवं अन्य, 1999 आपराधिक एलजे 1789** में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें न्यायालय ने पैरा 8 और 9 में टिप्पणी की थी, जो इस प्रकार है :-

8. पति द्वारा भरण-पोषण का अधिकार वैवाहिक कर्तव्य के पालन से उत्पन्न होता है। यह तभी संभव है जब न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भरण-पोषण का दावा करने वाली पत्नी को पति द्वारा वैवाहिक कर्तव्य निभाने से रोका गया था, तभी उसे भरण-पोषण दिया जा सकता है। जब यह पाया जाता है कि पत्नी बिना किसी उचित कारण के पति के साथ रहने से इनकार करती है और पति द्वारा दुर्व्यवहार का कोई सबूत नहीं है, तो पत्नी भरण-पोषण पाने की हकदार नहीं है। इस प्रकरण में , यह देखा गया है कि पति ने पत्नी को एक पंजीकृत नोटिस भी भेजा था जिसमें उसे अपने साथ रहने के लिए कहा गया था, लेकिन उसने नोटिस स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

9. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने तथा अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में न्यायोचित नहीं हो सकता, जब यह नहीं दिखाया जाता कि मजिस्ट्रेट ने कुछ महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार करना छोड़ दिया था या साक्ष्य को गलत तरीके से पढ़ा था। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने स्पष्ट रूप से मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष को बिना किसी ठोस कारण के पलटने में अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है। गोमा देवी यह साबित नहीं कर पाई कि उसके पति ने उसकी उपेक्षा की है। वास्तव में वह अपनी मर्जी से अपने माता-पिता के साथ रह रही है। इसलिए वह अपने लिए भरण-पोषण भत्ते की हकदार नहीं है। हालांकि, वह अपने दो बच्चों के लिए भरण-पोषण भत्ते की हकदार है, जो उसके साथ रह रहे हैं। भीखा राम ने यह प्रकरण सामने नहीं रखा है कि वह बच्चों के लिए गोमा देवी को भरण-पोषण भत्ता दे रहा था। जब बच्चे अपनी मां के साथ रह रहे हैं, तो इसमें उनकी कोई गलती नहीं है। पिता उन्हें भरण-पोषण देने के लिए बाध्य है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **कल्याण देव चौधरी बनाम रीता डे चौधरी नी नंदी** में रखरखाव की राशि के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया, जो हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 (2) के तहत आवेदन पर कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ दायर सिविल अपील संख्या 5369/2017 में था, जिसके तहत रखरखाव की राशि 20,000 रुपये से घटाकर 23,000 रुपये कर दी गई थी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **डॉ. कुलभूषण कुमार बनाम राज कुमारी और अन्य (1970) 3 एससीसी 129** पर भरोसा किया है, जिसमें यह माना जाता है कि पति के शुद्ध वेतन का 25% विपक्षी पत्नी को रखरखाव के रूप में दिया जाना उचित होगा। पत्नी को दी जाने वाली स्थायी गुजारा भत्ता की राशि पार्टियों की स्थिति और पति या पत्नी की रखरखाव का भुगतान करने की क्षमता के अनुकूल होनी चाहिए। भरण-पोषण हमेशा प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करता है और न्यायालय द्वारा विभिन्न कारकों के आधार पर भरण-पोषण के लिए दावा पारित करना न्यायोचित होगा । दं0प्र0सं0.

इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने प्रस्तुत किया कि विपक्षी संख्या 2 ने दं0प्र0सं0 की धारा 125 के तहत याचिका में कहा है कि दहेज की अतिरिक्त मांग पूरी न होने के कारण उसके पति और ससुराल वालों ने उसके साथ क्रूरता की और अंततः उसे उसके ससुराल से निकाल दिया गया, इसलिए उसके पास अपना वैवाहिक घर छोड़ने और अपने पति से अलग रहने का वैध कारण है। विद्वान एजीए ने यह भी प्रस्तुत किया कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा कथित रूप से दिया गया बयान परिवार सुलह केंद्र के समक्ष वर्ष 2017 से संबंधित है जबकि तलाक याचिका में याचिकाकर्ता ने पैरा-2 में कहा है कि उसका स्त्रीधन रखने के बाद उसे जनवरी, 2019 में उसके वैवाहिक घर से निकाल दिया गया था। उसने अपने साक्ष्य में परिवार सुलह केंद्र के समक्ष दिए गए कथित बयान को अस्वीकार कर दिया था और कहा गया बयान विधिवत साबित नहीं हुआ है।

वर्तमान प्रकरण में, विद्वान न्यायालय द्वारा विपक्षी सं. 2, जो पुनरीक्षणकर्ता की पत्नी है, को भरण-पोषण के लिए 4,000/- रुपये प्रतिमाह दिए जाने का आदेश दिया गया है। उक्त राशि अत्यधिक या किसी भी तरह से अनुचित नहीं है; रिकॉर्ड पर इस आशय का कोई सामग्री या साक्ष्य नहीं है कि विपक्षी सं. 2 के पास आय का स्वतंत्र स्रोत है; निचली न्यायालय का निष्कर्ष है कि आवेदक, जो वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण में विपक्षी सं. 2 है, उचित कारणों से अपने पति के साथ अलग रह रही है; यह निष्कर्ष रिकॉर्ड पर सामग्री और तथ्यों के निष्कर्ष पर आधारित है जो वर्तमान पुनरीक्षण में किसी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है; यह स्वीकृत तथ्य है कि विपक्षी सं. 2 द्वारा पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ तलाक की याचिका दायर की गई है, यहां तक कि यह तथ्य कि विपक्षी सं. 2- आवेदक द्वारा निचली न्यायालय के समक्ष तलाक की याचिका दायर की गई है, इस कथित तथ्य की धारणा के रूप में नहीं माना जा सकता है कि वह बिना किसी पर्याप्त कारण के अपने पति से अलग रह रही थी।

इस प्रकार, मुझे वर्तमान प्रकरण में विद्वान पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई ठोस कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं दिखती। हालांकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुनरीक्षणकर्ता की आय रिकॉर्ड पर विशेष रूप से साबित नहीं हुई है और यह तथ्य रिकॉर्ड पर लाया गया है कि वह घरों की धुलाई और रंगाई का काम करता है और उसे खुद का भरण-पोषण करना है और उसे परिवार के सदस्यों की देखभाल करनी है; यह आवश्यक

है कि भरण-पोषण की राशि को कुछ हद तक कम किया जाए क्योंकि कहा गया है कि वह दिहाड़ी मजदूर के रूप में प्रतिदिन लगभग 200/- से 250/- रुपये कमाता है और इस पर अवर न्यायालय निर्भर है।

परिणामस्वरूप, पारिवारिक न्यायालय के विवादित निर्णय और आदेश में दी गई भरण-पोषण की राशि को 4,000/- रुपये से संशोधित कर 3,000/- रुपये प्रति माह किया जाता है, जो आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट समान नियमों और शर्तों के अधीन है। भरण-पोषण के लिए पहले से भुगतान की गई कोई भी राशि, वर्तमान निर्णय में संशोधित भरण-पोषण राशि के अनुसार समायोजित की जाएगी। हालांकि, विपक्षी संख्या 2 के लिए यह खुला है कि वह अवर न्यायालय द्वारा दी गई भरण-पोषण की राशि में परिवर्तन के लिए प्रार्थना पत्र दायर करे, जिसे इस आदेश द्वारा संशोधित किया गया है। यदि उसे इस तथ्य के समर्थन में कोई सामग्री मिलती है कि वह अपने निजी काम के माध्यम से अधिक मासिक राशि कमाता है, जो कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में बताई गई राशि से अधिक है।

वर्तमान पुनरीक्षण उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ निस्तारित किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1325

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

चुनाव याचिका संख्या 3 वर्ष 2022

शैलेन्द्र यादव ललई ...याचिकाकर्ता

बनाम

रमेश एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

व्यक्तिगत रूप से, श्री सरोज कुमार यादव, श्री शैलेन्द्र यादव ललई (व्यक्तिगत रूप से), श्री अनिल शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्री धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री अखिलेश मिश्रा, श्री अमर बहादुर सिंह, श्री बाबू लाल राम, श्री धर्मेन्द्र कुमार सिंह, श्री कमलेश कुमार राजभर, श्री लालता प्रसाद, श्री उदयन नंदन, श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि- सिविल प्रक्रिया संहिता-1908- आदेश 7 - नियम 11 - जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951-धारा 86(1)- प्रतिवादी संख्या 1 के नामांकन पत्र को अनुचित रूप से स्वीकार किए जाने के आधार पर चुनाव को चुनौती देने वाली चुनाव याचिका में महत्वपूर्ण तथ्य और विवरण प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 100(1)(डी)(i) के अंतर्गत वाद हेतुक और विचारणीय मुद्दा उजागर होता है कि नामांकन पत्र को अनुचित रूप से स्वीकार किए जाने के कारण प्रतिवादी संख्या 1 का निर्वाचन दूषित हुआ है। अतः, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) का अनुपालन होता है,

इसलिए दोनों आवेदन, अर्थात् सीपीसी के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 86(1) के अंतर्गत प्रार्थना पत्र, खारिज किए जाते हैं।

प्रार्थना पत्र खारिज (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. अज़हर हुसैन बनाम राजीव गांधी, एआईआर 1986 एससी 1253

2. अनिल वासुदेव सालगांवकर बनाम नरेश कुशली शिगांवकर (2009) 9 एससीसी 310

3. वीरेंद्र नाथ गौतम बनाम सतपाल सिंह एवं अन्य एआईआर 2007 एससी 581

4. हरकीरत सिंह बनाम अमरिंदर सिंह (2005) 13 एससीसी 511

5. मननी लाल मंडल बनाम बिष्णु देव भंडारी (2012) 3 एससीसी 314

6. राजेंद्र कुमार मेश्राम बनाम वंशमणि प्रसाद वर्मा एवं अन्य (2016) 10 एससीसी 715

7. किसन शंकर कटोहोरे बनाम अरुण दत्तात्रय सावंत एवं अन्य (2014) 14 एससीसी 162.

8. रिसर्जेंस इंडिया बनाम भारत निर्वाचन आयोग एवं अन्य (2014) 14 एससीसी 189

9. दुरई मुथुस्वामी बनाम एन. नचियप्पन और अन्य (1973) 2 एससीसी 45

10. मदीराजू वेंकट रमण राजू बनाम पेद्दिरेड्डीगारी रामचन्द्र रेड्डी एवं अन्य (2018) 14 एससीसी 1

11. मैरेम्बम पृथ्वीराज @ पृथ्वीराज सिंह बनाम पुखेम शरतचंद्र सिंह (2017) 2 एससीसी 487

12. वी.नारायणस्वामी बनाम सीपी थिरुनावुक्करासु (2000) 2 एससीसी 294

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा पारित)

सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या-6 वर्ष 2022 पर आदेश, सी.पी.सी. के आदेश VII नियम 11 के तहत

एवं

सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या-7 वर्ष 20 22 पर आदेश, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत)

1. श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री उदयन नंदन, प्रतिपक्षी संख्या-1/आवेदक के अधिवक्ता, और श्री अनिल कुमार शर्मा, चुनाव-याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सरोज कुमार यादव, एडवोकेट द्वारा सहायता प्राप्त, को सुना।

2. प्रतिपक्षी संख्या-1 रमेश, जो विधानसभा क्षेत्र संख्या-365, शाहगंज, जिला जौनपुर के

चुनाव में सफल प्रत्याशी हैं, ने सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या-6 वर्ष 2022 सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11 के तहत, (ii) सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या-7 वर्ष 2022 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत दो आवेदन दायर कर चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा शुरू की गई चुनाव याचिका को संक्षिप्त रूप से खारिज करने की मांग की है।

3. निर्वाचन आयोग ने उत्तर प्रदेश की नई विधान सभा के गठन के लिए दिनांक 14.01.2022 को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951(संक्षेप में 'आर.पी. अधिनियम, 1951') की धारा-15 के तहत एक अधिसूचना जारी की। विधानसभा क्षेत्र संख्या-365, शाहगंज, जिला जौनपुर का चुनाव 7वें चरण के तहत निर्धारित था। अधिसूचित चुनाव कार्यक्रम का विवरण नीचे दिया गया है: -

नामांकन का प्रारंभिक दिन	10.02.2022
नामांकन की अंतिम तिथि	17.02.2022
नामांकन पत्रों की जांच	18.02.2022
नामांकन वापस लेने की अंतिम तिथि	21.02.2022
मतदान की तारीख	07.03.2022
मतगणना और परिणाम की घोषणा	10.03.2022

4. उक्त चुनाव में निर्वाचन क्षेत्र संख्या-365, शाहगंज, जिला जौनपुर के संबंध में विधान सभा सदस्य के लिए चुनाव याचिकाकर्ता बारह अन्य उम्मीदवारों के साथ चुनाव लड़ रहा था। चुनाव-याचिकाकर्ता ने 'साइकिल' प्रतीक के तहत समाजवादी पक्ष (एसपी) के उम्मीदवार के रूप में अपना नामांकन पत्र दाखिल किया और प्रतिपक्षी संख्या-1 ने निर्बल इंडियन शोषित हमारा आम दल पक्ष से अपना नामांकन पत्र दाखिल किया, जिसे 'निषाद पक्ष' के नाम से जाना जाता है। प्रतिपक्षी संख्या-1 को 719 मतों के अंतर से निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया।

5. प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को मुख्य रूप से आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(डी)(आई) और 100(1)(डी)(iv) के तहत आधार पर चुनौती दी गई है। चुनाव याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को चुनौती देने के लिए चुनाव याचिका में निम्नलिखित आधार निर्धारित किए हैं:

"(i) क्योंकि, चुनाव का परिणाम जहां तक प्रतिपक्षी संख्या-1(निर्वाचित उम्मीदवार) से संबंधित है, भारत के संविधान, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और चुनाव नियम, 1961 के प्रावधानों और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत जारी आदेशों और संविधान द्वारा पुष्टि की गई अपनी शक्ति के प्रयोग में समय-समय पर भारत निर्वाचन आयोग द्वारा जारी आदेशों, धाराओं और दिशानिर्देशों के प्रावधानों का कोई अनुपालन नहीं होने से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है।

(ii) क्योंकि, चुनाव का परिणाम अब तक संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है, क्योंकि यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है क्योंकि निर्वाचन अधिकारी और सहायक निर्वाचन अधिकारी ने चुनाव नियम, 1961 के भाग-III और चुनाव संचालन नियम, 1961 के नियम 54-ए के उल्लंघन और निर्वाचन अधिकारी के लिए हैंडबुक में समय-समय पर भारत निर्वाचन आयोग द्वारा जारी किए गए आदेश, दिशानिर्देश और अनुदेश में काम किया है।

(iii) क्योंकि, चुनाव का परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-I को अवैध रूप से चुनाव कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी गई थी और उसका नामांकन कानूनी पूर्वसर्ग के विपरीत वैध ठहराया गया था।

(iv) क्योंकि, प्रतिपक्षी संख्या-1 ने तथ्यों को संप्रभूत रूप से छिपाकर और गलत तरीके से आपराधिक पूर्ववृत्त का खुलासा करके अवैधता की है और भ्रष्ट आचरण को अपनाया है।

(v) क्योंकि, प्रतिपक्षी संख्या-1 और उसके अभिकर्ताओं ने मतदाताओं को प्रभावित किया और उन्हें पैसे, साड़ी और शराब की पेशकश और प्रदान करके रिश्वत दी, जिसके बारे में रमेश सोनकर नामक मतदाता ने एस.सी./एसटी अधिनियम 1989(संशोधन अधिनियम, 2015) की धारा 323, 504, 506, 188, 3(2)(वीए) के तहत थाना-शाहगंज, जिला जौनपुर में 06.03.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-65 वर्ष 2022 दर्ज की।

(vi) क्योंकि निर्वाचन क्षेत्र संख्या-365 शाहगंज से निर्वाचित अभ्यर्थी रमेश का निर्वाचन अवैध है और भ्रष्ट आचरण करने, मतदाताओं को रिश्वत देने, चुनावी मशीनरी को प्रभावित करने और आपराधिक पूर्ववृत्त और वित्तीय शक्ति के साथ-साथ चल और अचल संपत्ति का खुलासा करते समय धोखाधड़ी करने के कारण अवैध और शून्य है।

6. पूर्वोक्त आधारों के संबंध में, पैरा-16 से आगे चुनाव याचिका में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का उल्लेख किया गया है।

7. प्रतिपक्षी संख्या-1 ने आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत एक आवेदन दायर किया है जिसमें आग्रह किया गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण प्रदान नहीं किया है, जिस पर वह भरोसा करता है, इसलिए, चुनाव याचिका आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83 के प्रावधान का पालन नहीं करती है। इसमें आगे कहा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-1 और उसके अभिकर्ताओं द्वारा कथित रूप से किए गए भ्रष्ट आचरण के आधार पर चुनौती दी गई है। हालांकि, चुनाव याचिका में चुनाव के दौरान किए गए किसी भी भ्रष्ट आचरण के पूर्ण विवरण वाले महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण नहीं है। आगे यह कहा गया है कि चुनाव याचिका में आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) के प्रावधानों के अनुसार भ्रष्ट आचरण करने वाले व्यक्तियों के नाम और प्रत्येक भ्रष्ट आचरण के कमीशन की तारीख

और स्थान के बारे में पूरा बयान नहीं है। यह भी कहा गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता इस तरह के भ्रष्ट आचरण और उसके विवरण के आरोप के समर्थन में निर्धारित प्रारूप में एक हलफनामा दायर करने में विफल रहा है, और इस प्रकार, आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के परंतुक का पालन करने में विफल रहा है।

8. आगे यह कहा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति के आधार पर प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव पर हमला किया गया है, लेकिन चुनाव याचिका में प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति द्वारा चुनाव के परिणाम पर प्रभाव को प्रदर्शित करने वाले किसी भी विवरण का अभाव है और न ही इसमें प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य का संक्षिप्त विवरण है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति ने संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है चुनाव के परिणाम जहां तक यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है।

9. आगे यह कहा गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका के पैरा-26 से 35 में वोटों की गिनती में विसंगति का आरोप लगाया है, लेकिन इन पैरा में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण नहीं है। यह भी कहा गया है कि ईवीएम और चुनावों में डाले गए और दर्ज किए गए मतों के साथ छेड़छाड़ का कोई आरोप नहीं है, और इस प्रकार, वोटों की गलत गिनती का आरोप किसी भी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य द्वारा समर्थित नहीं है। प्रतिपक्षी संख्या-1 ने आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 81(1), 81(3), 83(1)(ए) और (बी) और धारा 83(1) के परंतुक का पालन न करने के लिए चुनाव याचिका को खारिज करने की मांग की है।

10. सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11 के तहत आवेदन में, यह आरोप लगाया गया है कि चूंकि चुनाव याचिका में किसी भी भ्रष्ट आचरण के पूर्ण विवरण वाले महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का अभाव है, इसलिए, चुनाव याचिका कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करती है और सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11(1) के तहत खारिज करने योग्य है।

11. चुनाव याचिकाकर्ता ने दोनों आवेदनों पर आपत्तियां दर्ज कीं, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया कि चुनाव याचिका आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83 के प्रावधान के अनुसार दायर की गई है और इसमें पूर्ण विवरण के साथ सभी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य शामिल हैं जो कार्रवाई का कारण बनने के लिए आवश्यक हैं, और इस तरह, चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन गलत हैं।

12. श्री शशि नंदन, प्रतिपक्षी संख्या-1/आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपरोक्त दो आवेदनों के समर्थन में प्रस्तुत किया है कि चुनाव याचिका में भ्रष्ट प्रथाओं के पूर्ण विवरण वाले महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण नहीं है, जिसमें व्यक्तियों के नाम, तिथि, समय और स्थान शामिल हैं।

13. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चुनाव याचिका में दलीलों से यह स्पष्ट है कि यह महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के संक्षिप्त बयान से वंचित है, जिस पर चुनाव याचिकाकर्ता भरोसा करता है और भ्रष्ट प्रथाओं के पूर्ण विवरण भी शामिल है, जिसमें इस तरह के भ्रष्ट आचरण करने वाले कथित दलों के नाम का यथासंभव पूर्ण विवरण शामिल है, इस तरह के भ्रष्ट आचरण के कमीशन की तारीख और स्थान के अनुसार, चुनाव याचिका आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत आर.पी. अधिनियम की धारा 83(1)(ए) और (बी) का पालन न करने के लिए खारिज कर दी जा सकती है।

14. वह आगे तर्क देता है कि आर.पी. अधिनियम की धारा 83(1) के परंतुक में यह विचार किया गया है कि जहां याचिकाकर्ता किसी भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाता है, चुनाव याचिका के साथ इस तरह के भ्रष्ट आचरण के आरोप और उसके विवरण के समर्थन में निर्धारित प्रपत्र में एक हलफनामा भी दिया जाएगा। वह प्रस्तुत करता है कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के परंतुक के तहत अपेक्षित हलफनामा चुनाव याचिका के साथ संलग्न नहीं है, इसलिए, आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के परंतुक का पालन न करने के लिए चुनाव याचिका को सरसरी तौर पर खारिज कर दिया जाना चाहिए।

15. वह प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता को नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति के आधार पर प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को चुनौती देने में सफल होने के लिए न केवल यह स्थापित करना होगा कि प्रतिपक्षी संख्या-1 का नामांकन फॉर्म अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है, बल्कि उसे यह भी साबित करना होगा कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है क्योंकि यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है। वह प्रस्तुत करता है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने यह दलील नहीं दी है कि चुनाव का परिणाम कैसे प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव से संबंधित है, प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को वोटों की गलत गिनती के आधार पर चुनौती दी गई है, लेकिन इस तरह के आधार के समर्थन में दलील में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और भौतिक विवरणों का भी अभाव है।

16. उन्होंने अंत में आग्रह किया कि चुनाव याचिका में इस आरोप के संबंध में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों का अभाव है कि फॉर्म-20 अवैध रूप से तैयार किया गया है। यह भी आग्रह किया जाता है कि चुनाव याचिका के पैरा-31 और 32 में लगाए गए आरोपों सपठित अनुसूची 13 के रूप में संलग्न दस्तावेजों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने 82, 542 वोट प्राप्त किए हैं और प्रतिपक्षी संख्या-1 ने 84, 947 वोट प्राप्त किए हैं, इसलिए, चुनाव याचिकाकर्ता के स्वयं के प्रवेश पर, वह 2405 वोटों से चुनाव हार गए हैं। इसलिए, वोटों का मार्जिन जिसके द्वारा

प्रतिपक्षी संख्या-1 ने चुनाव जीता, का अर्थ है कि चुनाव का परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित नहीं हुआ था। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि चुनाव याचिका धारा 83(1)(ए) और (बी) के प्रावधान और अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के प्रावधान का पालन नहीं करती है, और आगे यह कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करती है और आर.पी. अधिनियम की धारा 86 सपठित धारा 83 के प्रावधान द्वारा वर्जित है, इसलिए, 1951 में चुनाव याचिका सरसरी तौर पर खारिज किए जाने योग्य है।

17. प्रतिवाद, श्री अनिल शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) का अनुपालन है। यह प्रस्तुत किया गया है कि चुनाव याचिका में दलीलों को पूरी तरह से पढ़ा जाना चाहिए न कि टुकड़ों में। वह प्रस्तुत करता है कि कार्रवाई के कारण का खुलासा करने के लिए आवश्यक सभी प्राथमिक और महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को चुनाव याचिका में कहा गया है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) के तहत अपेक्षित पूर्ण विवरण वाले महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण चुनाव याचिका में प्रत्येक आधार के समर्थन में कहा गया है, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव पर चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा हमला किया गया है। इस प्रकार, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) का अनुपालन होता है। वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र को महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के दमन के कारण अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने अपने आपराधिक पूर्ववृत्त को दबा दिया है और संपत्ति और आयकर के विवरण का भी खुलासा नहीं किया है, और चूंकि तथ्यों का दमन प्रकृति में पर्याप्त है, इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-1 का नामांकन फॉर्म निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति ने स्पष्ट रूप से चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है जहां तक यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है क्योंकि यदि प्रतिपक्षी संख्या-1 का नामांकन फॉर्म अनुचित तरीके से स्वीकार नहीं किया गया होता, तो वह चुनाव नहीं लड़ सकता था। तदनुसार, वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा चुनाव याचिका को सारांश खारिज करने की मांग करने वाले दो आवेदन खारिज किए जाने योग्य हैं।

18. दोनों पक्षों के वकीलों द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों को एक उपयुक्त स्थान पर संदर्भित किया जाएगा।

19. मैंने पक्षकारों के वकीलों द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

20. आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत आवेदन प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा दायर किया गया है जिसमें आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) और धारा 83(1) के परंतुक का अनुपालन न करने का आरोप लगाया गया है। लोक

प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 83 निम्नानुसार पढ़ी जाती है;-

"83. याचिका की विषय-वस्तु-(1) एक निर्वाचन याचिका-

(क) में उन महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होगा जिन पर याचिकाकर्ता भरोसा करता है;

(ख) किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण निर्धारित करेगा जो याचिकाकर्ता आरोप लगाता है, जिसमें इस तरह के भ्रष्ट आचरण करने के लिए कथित रूप से पक्षगण के नाम और इस तरह के प्रत्येक अभ्यास के कमीशन की तारीख और स्थान के रूप में संभव के रूप में पूर्ण बयान शामिल है; और

(ग) याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा और अभिवादों के सत्यापन के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) में निर्धारित तरीके से सत्यापित किया जाएगा:

[बशर्ते कि जहां याचिकाकर्ता किसी भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाता है, वहां याचिका के साथ ऐसे भ्रष्ट आचरण के आरोप और उसके विवरण के समर्थन में निर्धारित प्रपत्र में एक शपथ पत्र भी संलग्न किया जाएगा।

(2) याचिका की कोई अनुसूची या अनुलग्नक भी याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित और याचिका के समान तरीके से सत्यापित किया जाएगा]।"

21. दूसरे शब्दों में, चुनाव याचिका में न केवल उन महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होना चाहिए, जिन पर चुनाव याचिकाकर्ता भरोसा करता है, बल्कि चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा कथित किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण निर्धारित करना चाहिए, जिसमें इस तरह के भ्रष्ट आचरण करने वाले कथित दलों और इस तरह के प्रत्येक भ्रष्ट आचरण के कमीशन की तारीख और स्थान, याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित और आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83 के आलोक में दलीलों के सत्यापन में सी.पी.सी. के तहत निर्धारित तरीके से सत्यापित नामों का यथासंभव पूर्ण विवरण शामिल है।

22. अब, यह देखा जाना चाहिए कि चुनाव याचिका आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) और धारा 83(1) के परंतुक के जनादेश का अनुपालन करती है या नहीं।

23. अजहर हुसैन बनाम राजीव गांधी, ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 1253 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तार से बताया है कि वास्तव में अभिव्यक्ति 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों' का सार क्या है, जिसे चुनाव याचिकाकर्ता आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) की आवश्यकता को पूरा करने के लिए शामिल

करेगा। उक्त निर्णय के पैरा-14 को यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"14. इससे पहले कि हम इन आधारों से निपटें, हम कानून की स्थापित स्थिति को फिर से बताना उचित समझते हैं क्योंकि यह इस न्यायालय के कई निर्णयों से उभरता है, जिन्हें इस प्रश्न के संबंध में हमारे सामने उद्धृत किया गया है कि वास्तव में अभिव्यक्ति 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों' की सामग्री क्या है, जिसे चुनाव याचिकाकर्ता अधिनियम की धारा 83(1) के आधार पर अपनी याचिका में शामिल करेगा।

(1) प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य और विवरण क्या हैं ?
प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य ऐसे तथ्य हैं जो यदि स्थापित हो जाते हैं तो याचिकाकर्ता को मांगी गई राहत मिल जाएगी। परीक्षण का उत्तर यह दिया जाना आवश्यक है कि क्या न्यायालय चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में प्रत्यक्ष फैसला दे सकता था यदि याचिका में दिए गए तथ्यों के आधार पर चुनाव याचिका का विरोध करने के लिए वापस आया उम्मीदवार उपस्थित नहीं हुआ था। (1969) 3 एस.सी.आर 217: (ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 734) मनुभाई नंदलाल अमरसे बनाम पोपटलाल मणिलाल जोशी।
(2) सरकारी सेवक से प्राप्त सहायता से संबंधित कथित भ्रष्ट आचरण के संबंध में, याचिका को कार्रवाई के कारण के साथ संलग्न करने के लिए निम्नलिखित तथ्य आवश्यक हैं जो निर्वाचित उम्मीदवार से उत्तर मांगेंगे और इसलिए दलील दी जानी चाहिए। (1972) 2 एस.सी.आर 742: (ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 515) हरद्वारी लाल बनाम कंवल सिंह,
क) सहायता का तरीका;
बी) सहायता का उपाय; और
ग) सहायता से संबंधित सभी विभिन्न प्रकार के तथ्य।
(3) निर्वाचन में सरकारी सेवकों की सहायता प्राप्त करने, प्राप्त करने, दुष्प्रेरित करने या प्राप्त करने या प्राप्त करने का प्रयत्न करने के संबंध में किसी अभियोग के संदर्भ में, निम्नलिखित अभिवचन करना नितांत आवश्यक है:
(ए) प्राप्त या प्राप्त सहायता का प्रकार या रूप;
(ख) अपने निर्वाचन की संभावनाओं को बढ़ावा देने के लिए निर्वाचन अभ्यर्थी द्वारा किस प्रकार सहायता प्राप्त की गई अथवा प्रापण किया गया अथवा प्राप्त करने का प्रयास किया गया (ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 515)।
(4) लौटे हुए अभ्यर्थी को अवश्य बताया जाना चाहिए कि उसे किस प्रकार की सहायता लेनी थी, किस प्रकार की सहायता, सहायता की रीति, सहायता का समय, वे व्यक्ति जिनसे वास्तविक और

विशिष्ट सहायता प्राप्त की गई थी (ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 515)।

(5) चुनाव याचिका में एक बयान भी होना चाहिए जिसमें चुनाव की संभावनाओं को आगे बढ़ाने के तरीके का वर्णन किया गया था और जिस तरह से सहायता प्रदान की गई थी (ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 515)(उपरोक्त)।

(6) चुनाव याचिकाकर्ता को सहायता का समय, सहायता का तरीका, जिन व्यक्तियों से सहायता प्राप्त की गई थी या प्राप्त की गई थी, उनका समय और तारीख सटीक रूप से बतानी चाहिए, इन सभी को विवरण (ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 515)(उपरोक्त) में निर्धारित करना होगा।

24. संदर्भ भी अनिल वासुदेव सलगांवकर बनाम नरेश कुशाली शिगॉनकर (2009)9 एस.सी.सी. 310, जिसमें यह अवधारित किया जाता है कि चुनाव याचिका सरसरी तौर पर दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति के प्रयोग में खारिज कर दिया जा सकता है अगर अनिवार्य आवश्यकता आर.पी. अधिनियम की धारा 83 द्वारा आदेशित, निर्वाचन याचिका में तात्विक तथ्यों को शामिल करने के लिए 1951 में दायर याचिका का अनुपालन नहीं किया जाता है। प्रस्तुत मामले के संदर्भ में, उक्त निर्णय के पैरा-57 से 59 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"57. यह तय कानूनी स्थिति है कि सभी "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" को सीमा की अवधि के भीतर उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में पक्ष द्वारा दलील दी जानी चाहिए। चूंकि उद्देश्य और लक्ष्य प्रतिपक्षी को उस मामले को जानने में सक्षम बनाना है जिससे उसे मिलना है, दलील के अभाव में, एक पक्ष को साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक भी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य बताने में विफलता चुनाव याचिका को खारिज कर देगी। चुनाव याचिका में "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" का एक संक्षिप्त विवरण होना चाहिए, जिस पर याचिकाकर्ता भरोसा करता है।

58. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में और न ही दीवानी प्रक्रिया संहिता में "तात्विक तथ्यों" की कोई परिभाषा नहीं है। निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस न्यायालय ने निर्धारित किया है कि कार्रवाई का एक पूर्ण कारण तैयार करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों को "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" के रूप में कहा जाना चाहिए। सभी बुनियादी और प्राथमिक तथ्य जो किसी पक्ष द्वारा कार्रवाई या बचाव के कारण के अस्तित्व को स्थापित करने के लिए साबित किए जाने चाहिए, प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य हैं। दूसरे शब्दों में "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" का अर्थ है तथ्यों का पूरा बंडल

जो कार्रवाई का एक पूर्ण कारण होगा। हरकीरत सिंह बनाम अमरिंदर सिंह (2005)13 एस.सी.सी. 511 में इस न्यायालय ने "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" के विभिन्न अर्थ देने की कोशिश की। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा-48 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

48. अभिव्यक्ति 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' को न तो अधिनियम में और न ही संहिता में परिभाषित किया गया है। शब्दकोश अर्थ के अनुसार, 'सामग्री' का अर्थ है 'मौलिक', 'महत्वपूर्ण', 'बुनियादी', 'कार्डिनल', 'केंद्रीय', 'निर्णायक', 'आवश्यक', 'अपरिहार्य', या 'प्राथमिक'। [बर्टन का कानूनी थिसॉरस, (तीसरा संस्करण), पृष्ठ 349]। इसलिए, वाक्यांश 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' को उन तथ्यों के रूप में कहा जा सकता है, जिन पर एक पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए भरोसा करती है। दूसरे शब्दों में, 'प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य' ऐसे तथ्य हैं जिन पर वादी की कार्रवाई का कारण या प्रतिपक्षी का बचाव निर्भर करता है। 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' के रूप में क्या विवरण कहा जा सकता है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। हालांकि, यह नितांत आवश्यक है कि सभी बुनियादी और प्राथमिक तथ्य जो पक्ष द्वारा कार्रवाई या बचाव के कारण के अस्तित्व को स्थापित करने के लिए परीक्षण में साबित किए जाने चाहिए, प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य हैं और पक्ष द्वारा दलील में कहा जाना चाहिए।

59. भ्रष्ट आचरण के आरोप के संदर्भ में, "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" का अर्थ होगा विशेष भ्रष्ट आचरण के अवयवों का गठन करने वाले सभी बुनियादी तथ्य, जो याचिकाकर्ता (यहां प्रतिपक्षी) उस आरोप पर सफल होने से पहले साबित करने के लिए बाध्य है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि यदि "प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य" गायब हैं, तो उन्हें चुनाव याचिका दायर करने के लिए सीमा की अवधि समाप्त होने के बाद आपूर्ति नहीं की जा सकती है और दलील त्रुटिपूर्ण हो जाती है।

25. दो निर्णय, अर्थात्, वीरेंद्र नाथ गौतम बनाम सतपाल सिंह और अन्य ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 581 और हरकीरत सिंह बनाम अमरिंदर सिंह (2005)13 एस.सी.सी. 511, जिस पर चुनाव याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भरोसा किया था, यह भी दोहराता है कि 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' और 'विवरणों' का गठन क्या है और 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' और 'विवरणों' के बीच अंतर क्या है। वीरेंद्र नाथ गौतम (उपरोक्त) के फैसले के पैरा-33 और 34 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"33. 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' और 'विवरणों' के बीच एक अंतर, हालांकि, अनदेखी नहीं की जानी चाहिए 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' प्राथमिक या बुनियादी तथ्य जो वादी या प्रतिपक्षी द्वारा या तो कार्रवाई या बचाव के अपने कारण साबित करने के लिए उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में वकालत की जानी चाहिए। दूसरी ओर, 'विवरण' पक्ष द्वारा प्रस्तुत महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के समर्थन में विवरण हैं। वे पहले से खींची गई तस्वीर की मूल रूपरेखा को विशिष्ट स्पर्श देकर महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को बढ़ाते, परिष्कृत और अलंकृत करते हैं ताकि इसे पूर्ण, अधिक स्पष्ट और अधिक जानकारीपूर्ण बनाया जा सके। इस प्रकार विवरण निष्पक्ष विचारण का संचालन सुनिश्चित करते हैं और इससे प्रतिपक्षी आश्चर्यचकित नहीं होगा।

34. सभी 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' को उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में पक्ष द्वारा दलील दी जानी चाहिए। चूंकि उद्देश्य और लक्ष्य प्रतिपक्षी को उस मामले को जानने में सक्षम बनाना है जिससे उसे मिलना है, दलील के अभाव में, एक पक्ष को साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, एक भी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य बताने में विफलता के लिए मुकदमा या याचिका खारिज कर दी जाएगी। दूसरी ओर, विशेष मामले का विवरण है जो साक्ष्य की प्रकृति में है जो एक पक्ष परीक्षण के समय नेतृत्व करेगा।

26. हरकीरत सिंह (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' और 'भौतिक विवरणों' के बीच अंतर को दोहराया। उक्त निर्णय के पैरा-51 और 52 को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"51. "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" और "विवरण" के बीच एक अंतर, हालांकि, अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य" प्राथमिक या बुनियादी तथ्य हैं जिन्हें वादी या प्रतिपक्षी द्वारा उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में या तो उसकी कार्रवाई या बचाव के कारण को साबित करने के लिए दलील दी जानी चाहिए। दूसरी ओर, "विवरण", पक्ष द्वारा दलील दिए गए महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के समर्थन में विवरण हैं। वे पहले से खींची गई तस्वीर की मूल रूपरेखा को विशिष्ट स्पर्श देकर महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को बढ़ाते, परिष्कृत और अलंकृत करते हैं ताकि इसे पूर्ण, अधिक स्पष्ट और अधिक जानकारीपूर्ण बनाया जा सके। इस प्रकार "विवरण" निष्पक्ष परीक्षण का संचालन सुनिश्चित करते हैं और प्रतिपक्षी को आश्चर्यचकित नहीं करेंगे।

52. सभी "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में पक्ष द्वारा वकालत की जानी चाहिए. चूंकि उद्देश्य और लक्ष्य प्रतिपक्षी को उस मामले को जानने में सक्षम बनाना है जिससे उसे मिलना है; दलील के अभाव में, एक पक्ष को साक्ष्य का नेतृत्व करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, एक भी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य बताने में विफलता के कारण मुकदमा या याचिका खारिज कर दी जाएगी। दूसरी ओर, विशेष मामले का विवरण है जो साक्ष्य की प्रकृति में है जो एक पक्ष परीक्षण के समय नेतृत्व करेगा।

27. निर्वाचन याचिका को संक्षिप्त रूप से खारिज करने की शक्ति न्यायालय को प्रदान करने का उद्देश्य यदि उसमें प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य का अभाव है और कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करता है, तो यह सुनिश्चित करना है कि मुकदमेबाजी जो अर्थहीन है और निष्फल साबित होने के लिए बाध्य है, उसे न्यायालय के बहुमूल्य समय का उपभोग नहीं करना चाहिए और उत्तरदाताओं को उत्पीड़न से बचाना चाहिए और उसे मुकदमेबाजी के मनोवैज्ञानिक बोझ से मुक्त करना चाहिए ताकि वह पालन, उनकी साधारण खोज और अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के लिए स्वतंत्र हो। यह स्पष्ट है कि यदि चुनाव याचिका की तलवार विधायिका के निर्वाचित सदस्य पर लटकी रहती है, तो वह सार्वजनिक महत्व के मामलों पर अपना पूरा ध्यान देने के लिए पर्याप्त रूप से स्वतंत्र महसूस नहीं करेगा, जिस निर्वाचन क्षेत्र के लिए वह एक निर्वाचित प्रतिनिधि रहा है, उसके लोगों की भलाई के लिए उसके ध्यान की आवश्यकता है।

28. पूर्वोक्त निर्णयों ने इस बात पर जोर दिया है कि 'प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य' प्राथमिक या बुनियादी तथ्य हैं जिन्हें याचिकाकर्ता या प्रतिपक्षी द्वारा उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में या तो उसकी कार्रवाई या बचाव के कारण को साबित करने के लिए दलील दी जानी चाहिए। दूसरी ओर विवरण पक्ष द्वारा प्रस्तुत महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के समर्थन में विवरण हैं। सभी 'महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों' को पक्ष द्वारा उसके द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में दलील दी जानी चाहिए क्योंकि दलील देने का उद्देश्य और लक्ष्य प्रतिपक्षी को उस मामले को जानने में सक्षम बनाना है जिसे उसे पूरा करना है, एक भी प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य बताने में विफलता चुनाव याचिका को खारिज कर देगी। महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों में तथ्यों का सकारात्मक विवरण और नकारात्मक तथ्य का सकारात्मक कथन भी शामिल होगा।

29. यह भी ध्यान दें कि महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों की वकालत करने में विफलता चुनाव याचिका के लिए घातक है, और चुनाव याचिका दायर करने की सीमा समाप्त होने के बाद इस तरह के महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को शामिल करने के लिए दलील के किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक चुनाव याचिका को सरसरी तौर पर इस आधार पर खारिज करने के लिए कि यह

कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं करता है, अदालत चुनाव याचिका में दलीलों को देखने के लिए बाध्य है और कुछ नहीं।

30. अब, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) का अनुपालन अनिवार्य क्यों है, इस उद्देश्य की व्याख्या करते हुए पूर्वोक्त सिद्धांतों के आलोक में, न्यायालय यह पता लगाने के लिए पक्षगण के संबंधित तर्कों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या चुनाव याचिका धारा 83(1)(ए) और (बी) की आवश्यकता और धारा 83 के परंतुक का अनुपालन करती है और क्या यह कार्रवाई के कारण का खुलासा करती है या नहीं।

31. प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को चुनौती देने का पहला आधार यह है कि चुनाव दिनांक 17.02.2022 की संशोधित दिनांकित मतदाता सूची के आधार पर अवधारित किया गया है, जिसमें से उन मतदाताओं की संख्या का नाम हटा दिया गया था जिनके नाम 05.01.2022 को प्रकाशित मतदाता सूची में थे। इस संबंध में, चुनाव याचिका के पैरा-17 से 19 में आवश्यक कथन किए गए हैं।

32. चुनाव याचिका के पैरा-17 में कहा गया है कि निर्वाचन क्षेत्र के निर्वाचन अधिकारी ने दिनांक 05.01.2022 को निर्वाचन सूची/मतदाता सूची जारी की जो निर्वाचन अधिकारी के कार्यालय में उपलब्ध थी और उसे निर्वाचन आयोग की वेबसाइट पर भी अपलोड किया गया था। चुनाव याचिका के पैरा-18 में आगे दलील दी गई है कि निर्वाचन अधिकारी ने उन पात्र व्यक्तियों को 07.03.2022 को मतदान के उद्देश्य से मतदाता सूची में अपना नाम शामिल करने के अपने दावों पर जोर देने के लिए अवसर बढ़ाया, जिनके नाम दिनांक 05.01.2022 को निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में शामिल नहीं किए गए थे। आगे यह कहा गया है कि हालांकि नामों में जोड़ने के अवसर की अनुमति है, लेकिन 05.01.2022 को प्रकाशित अंतिम मतदाता सूची से नामों को हटाया नहीं जा सकता है। यह आगे कहा गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने लगभग 25,000 निवासियों से संबंधित दस्तावेज दायर किए, जिनके नाम मतदाता सूची में उनके नाम जोड़ने के लिए 05.01.2022 को प्रकाशित निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में नहीं थे। अधिकारी इस मामले पर चुप्पी साधे रहे, और 04.03.2022 को दिनांक 17.02.2022 की संशोधित निर्वाचन सूची/मतदाता सूची चुनाव-याचिकाकर्ता के चुनाव अभिकर्ताओं को उपलब्ध कराई गई।

33. चुनाव याचिका के पैरा-19 में चुनाव याचिकाकर्ता ने आगे कहा है कि बूथ लेवल ऑफिसर जिसे 'बीएलओ' के रूप में जाना जाता है, ने उपरोक्त निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं/मतदाताओं को मतदाता सूचना पर्ची (बीएलओ पर्ची) वितरित की। वे मतदाता मतदान की तिथि दिनांक 07.03.2022 को मतदान करने के लिए मतदान केंद्र पर पहुंचे, लेकिन उन्हें इस आधार पर मतदान नहीं करने दिया गया कि उनके नाम निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में नहीं थे। इस संबंध में चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका के पैरा-

19 में वर्ष 113 मतदाताओं का विवरण दिया है।

34. प्रतिपक्षी संख्या-1 के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि चुनाव याचिका के पैरा-17 से 19 में निहित कथन अस्पष्ट हैं और महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को नहीं बताते हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि चुनाव याचिका के पैरा-18 में एक अस्पष्ट बयान दिया गया है कि चुनाव-याचिकाकर्ता ने निर्वाचन क्षेत्र के लगभग 25000 निवासियों से संबंधित दस्तावेज दायर किए, जिनके नाम निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में उनके नाम जोड़ने के लिए 05.01.2022 को प्रकाशित निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में जगह नहीं मिली। यह प्रस्तुत किया गया है कि न तो व्यक्तियों के नाम और न ही इस तथ्य का समर्थन करने वाली कोई सामग्री कि वे निर्वाचन क्षेत्र के निवासी थे, चुनाव याचिका में दलील दी गई है; और इस प्रकार, उक्त कथन कार्रवाई का कारण बनाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। उन्होंने आगे कहा कि चुनाव याचिका के पैरा-19 में कहा गया है कि बीएलओ ने मतदाताओं को मतदाता पर्ची वितरित की है, लेकिन मतदाताओं को मतदाता सूचना पर्ची वितरित करने वाले बीएलओ का नाम नहीं बताया गया है। उन्होंने आगे कहा कि चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका के पैरा-19 में केवल 113 व्यक्तियों के नाम बताए हैं, जिन्हें वोट डालने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि उनके नाम मतदाता सूची में उल्लिखित नहीं थे। वह प्रस्तुत करता है कि भले ही यह आरोप सही हो कि 113 व्यक्तियों को वोट डालने की अनुमति नहीं दी गई थी, लेकिन यह चुनाव को संप्रभूत रूप से प्रभावित नहीं करेगा, क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने 719 मतों से चुनाव जीता है।

35. चुनाव याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल शर्मा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक बार अंतिम मतदाता सूची लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा-14(1)(बी) के अनुसार प्रकाशित हो जाने के बाद, इसे आर.पी. अधिनियम, 1950 की धारा 21 के तहत विचारित प्रक्रिया का पालन किए बिना बदला नहीं जा सकता है, और प्रस्तुत मामले में, संशोधित निर्वाचन सूची/मतदाता सूची दिनांक 17.02.2022 को प्रकाशित करके निर्वाचन सूची/मतदाता सूची में परिवर्तन करने में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 21 के अधीन प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, इसलिए, उक्त मतदाता सूची के आधार पर अवधारित चुनाव दूषित है। वह प्रस्तुत करता है कि चुनाव याचिका के पैरा-17 से 19 को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य और विवरण शामिल हैं, इसलिए, दलीलें पूरी हैं और इस आधार पर चुनाव की चुनौती के संबंध में एक विचारणीय मुद्दा उठाते हुए कार्रवाई के कारण का खुलासा करती हैं कि चुनाव एक अवैध और पूर्ववर्ती मतदाता सूची द्वारा अवधारित किया गया था, और इसने चुनाव के परिणाम को, जहां तक यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है, अब तक संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है।

36. इस आरोप के समर्थन में चुनाव याचिका के पैरा-17 से 19 के अवलोकन से पता चलता है कि चुनाव अवैध निर्वाचन सूची/मतदाता सूची

के आधार पर आयोजित किया गया था, यह दर्शाता है कि इस संबंध में दलीलें पूरी तरह से अस्पष्ट हैं और उक्त आधार पर चुनाव याचिका में एक विचारणीय मुद्दा उठाने के लिए कार्रवाई का कारण बनने के लिए आवश्यक प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य का अभाव है।

37. यह ध्यान रखना उचित है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने कहा है कि उसने निर्वाचन क्षेत्र के 25000 निवासियों से संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत किए थे, जिनके नाम 05.01.2022 को प्रकाशित मतदाता सूची से छूट गए थे, लेकिन ऐसे निवासियों के नाम नहीं बताए गए हैं और न ही चुनाव याचिका में ऐसे निवासियों के विवरण का खुलासा किया गया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि वे निर्वाचन क्षेत्र के निवासी थे और वोट देने के हकदार थे और शामिल नहीं किए गए थे उनके नामों ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है। चुनाव याचिकाकर्ता ने उस प्राधिकारी का नाम नहीं बताया है जिसे चुनाव याचिकाकर्ता ने इन 25,000 निवासियों के नाम मतदाता सूची में जोड़ने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत किए थे।

38. इसके अलावा, इस आरोप के संबंध में बुनियादी और प्राथमिक तथ्य कि दिनांक 04.03.2022 को याचिकाकर्ता के चुनाव अभिकर्ताओं को दिनांक 17.02.2022 को एक पूर्व दिनांकित संशोधित मतदाता सूची उपलब्ध कराई गई थी, चुनाव याचिका में कमी है क्योंकि चुनाव याचिका में कोई कथन नहीं है कि दिनांक 17.02.2022 को संशोधित निर्वाचन सूची/मतदाता सूची तैयार करने में क्या अवैधता बरती गई थी और उस मतदाता सूची का आरोप लगाने का आधार क्या है दिनांक 17.02.2022 पूर्वदिनांकित है। चुनाव याचिका के पैरा-18 में केवल एक पंक्ति में अस्पष्ट दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता के चुनाव अभिकर्ता और चुनाव के अधिकारियों को दिनांक 17.02.2022 की संशोधित मतदाता सूची उपलब्ध कराई गई थी। यह बताना भी प्रासंगिक है कि चुनाव याचिका में इस बात का कोई निवेदन नहीं है कि मतदाता प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 21 के तहत मतदाता सूची में मतदाताओं के नाम जोड़ने या छोड़ने के लिए जिस प्रक्रिया पर विचार किया गया था, उसका पालन कैसे नहीं किया गया।

39. इसके अलावा, मतदाताओं को सूचना पर्ची (बीएलओ पारची) वितरित करने वाले बीएलओ के नाम का खुलासा नहीं किया गया है और न ही उन व्यक्तियों का विवरण बताया गया है जिनके नाम 17.01.2022 को प्रकाशित अंतिम निर्वाचन सूची/मतदाता सूची से हटा दिए गए हैं/हटा दिए गए हैं।

40. यह भी ध्यान देने योग्य है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने केवल 113 व्यक्तियों के नाम का खुलासा किया है, जिन्हें चुनाव याचिकाकर्ता के अनुसार वोट डालने की अनुमति नहीं थी। यदि उक्त आरोप को सच माना जाता है, तो इसने प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव के परिणाम को कैसे प्रभावित किया, यह दलील नहीं दी जाती है।

41. कानून में यह तय है कि यदि चुनाव को आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-

100(1)(डी)(iv) के तहत उल्लिखित आधार पर चुनौती दी जाती है, तो चुनाव याचिकाकर्ता के लिए यह बताना अनिवार्य है कि चुनाव का परिणाम जहां तक निर्वाचित उम्मीदवार का संबंध है, संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है। इस संबंध में, मनानी लाल मंडल बनाम बिष्णु देव भंडारी (2012)3 एस.सी.सी. 314 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा-10 से 12 को पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा: -

"10. 1951 के अधिनियम की धारा 83 के साथ उपरोक्त प्रावधान को पढ़ने से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि जहां एक निर्वाचित उम्मीदवार पर संविधान या 1951 अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम या आदेशों के प्रावधानों का पालन न करने का दोषी होने का आरोप लगाया जाता है और उसके चुनाव को ऐसे आधार पर शून्य घोषित करने की मांग की जाती है, चुनाव याचिकाकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों की दलील देकर यह बताए कि चुनाव का परिणाम जहां तक उसका संबंध है, निर्वाचित उम्मीदवार को इस तरह के उल्लंघन या गैर-पालन से संप्रभूत रूप से प्रभावित किया गया है। यदि चुनाव याचिका पर सुनवाई होती है तो चुनाव याचिकाकर्ता को उल्लंघन या गैर-अनुपालन के आरोप को भी साबित करना होगा और साथ ही यह भी स्थापित करना होगा कि चुनाव का परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है। यह केवल इस तरह की दलील और सबूत के आधार पर है कि न्यायालय राय बनाने और निष्कर्ष दर्ज करने की स्थिति में हो सकता है कि संविधान या 1951 अधिनियम या उसके तहत किए गए किसी भी नियम या आदेशों के प्रावधानों के उल्लंघन या गैर-अनुपालन ने निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव को शून्य घोषित करने से पहले चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है।

11. केवल संविधान या ऊपर देखे गए वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने से धारा-100(1)(डी)(iv) के तहत लौटने वाले उम्मीदवार के चुनाव को अमान्य नहीं किया जा सकता है। धारा-100(1)(डी) के खंड (iv) के तहत जमीन पर एक निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए अनिवार्य शर्त इस तथ्य का एक और प्रमाण है कि इस तरह के उल्लंघन या गैर-पालन के परिणामस्वरूप निर्वाचित उम्मीदवार के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया गया है। दूसरे शब्दों में, संविधान या 1951 अधिनियम या नियमों या उसके तहत किए गए आदेशों के प्रावधानों का उल्लंघन या गैर-अवलोकन या गैर-अनुपालन, अपने आप में, निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव को धारा-100(1)(डी)(iv) से शून्य नहीं बनाता है। चुनाव याचिकाकर्ता को इस तरह के आधार

पर सफल होने के लिए, धारा-100(1)(डी)(iv), उसे न केवल दलील देनी होगी और जमीन साबित करनी होगी, बल्कि यह भी कि चुनाव का परिणाम जहां तक इसका संबंध है, निर्वाचित उम्मीदवार को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया गया है। हमने जो दृष्टिकोण लिया है, उसे इस न्यायालय के तीन निर्णयों से समर्थन मिलता है (1) जबर सिंह बनाम गेंदा लाल ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1200; (2) एल.आर. शिवरामगौड़ा बनाम टीएम चंद्रशेखर (1999)1 एस.सी.सी. 666; और (3) उमा बल्लव रथ बनाम महेश्वर मोहंती (1999)3 एस.सी.सी. 357.

12. हालांकि आक्षेपित निर्णय 30 पृष्ठों में है, लेकिन दुर्भाग्य से यह अपीलकर्ता की पहली पत्नी और उस विवाह से पैदा हुए आश्रित बच्चों और उनकी संपत्ति और देनदारियों से संबंधित जानकारी के गैर-प्रकटीकरण के रूप में सबसे महत्वपूर्ण पहलू पर किसी भी विचार को प्रतिबिंबित नहीं करता है, जहां तक यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है। वास्तव में, पूरी चुनाव याचिका में यह दलील नहीं दी गई है कि वापसी करने वाले उम्मीदवार द्वारा नामांकन पत्र के साथ दायर हलफनामे में अपनी पहली पत्नी और आश्रित बच्चों के संबंध में जानकारी को छिपाया गया है और उनकी संपत्ति और देनदारियों का खुलासा न करने से चुनाव के परिणाम पर प्रासंगिक प्रभाव पड़ा है। इस संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया है और न ही चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा कोई सबूत दिया गया है। उच्च न्यायालय ने भी इस पहलू पर कोई राय नहीं बनाई है।

42. इस प्रकार, पूर्वोक्त चर्चा के मद्देनजर, इस न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता की प्रस्तुति में पदार्थ पाया कि चुनाव याचिका में इस आरोप के संबंध में प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य का अभाव है कि चुनाव वैध मतदाता सूची / मतदाता सूची द्वारा अवधारित नहीं किया गया था।

43. अब, प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव पर हमले का अगला आधार यह है कि उसका नामांकन पत्र निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है। यह माना जाता है कि निर्वाचन अधिकारी ने प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र को स्वीकार करते समय आपराधिक इतिहास, आयकर रिटर्न के विवरण और संपत्ति के बारे में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों के दमन की अनदेखी की, जिसे प्रतिपक्षी संख्या-1 को फॉर्म-26 के कॉलम 4 में प्रस्तुत करना आवश्यक था। यह आरोप लगाया गया है कि इस संबंध में आवश्यक कथन चुनाव याचिका के पैरा-20 से 25 में किए गए हैं, जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

20. कि निर्वाचित उम्मीदवार के अनुचित प्रभाव में, चुनाव के साथ-साथ पोलिंग पक्ष के अधिकारियों ने निर्वाचित उम्मीदवार को अनुचित रूप

से पक्ष दिया और उसे जीतने के लिए अवैध रूप से काम किया। निर्वाचन अधिकारी द्वारा निर्वाचन अधिकारी द्वारा आपराधिक इतिहास, आई.टी.आर. और संपत्ति के भौतिक छिपाव की जांच किए बिना और जानबूझकर अनदेखी किए बिना नामांकन पत्र स्वीकार किए गए हैं, जिसका विवरण निम्नलिखित पैरा में दिया गया है।

21. कि फॉर्म-26 पर प्रतिपक्षी संख्या-1 कॉलम 4 की आवश्यकता के अनुसार, पिछले 5 वित्तीय वर्षों के आयकर रिटर्न का विवरण दिखाने की आवश्यकता थी, लेकिन जानबूझकर उसने केवल वित्त वर्ष 2021-22 के लिए उल्लेख किया और शेष पिछले 4 वित्तीय वर्षों को शून्य दिखाया गया है, वही रणनीति अपनी पत्नी को दिखाते हुए अपनाई गई है, बेटियों और बेटे के आई.टी.आर., जो महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को छिपाने और दबाने के तहत आते हैं।

22. यहां यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 रमेश ने फॉर्म-26 के कॉलम 5 और (1) धारा 34, 307 भ०द०वि० और 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम में आपराधिक पूर्ववृत्त का खुलासा करते हुए जानबूझकर महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को छिपाया, जिसके तहत केस अपराध संख्या-696 वर्ष 2017, थाना-खुथान, जिला-जौनपुर में और 2 अन्य मामलों में जिनमें आरोप पत्र दायर किया गया है, धाराओं का ठीक से वर्णन नहीं किया गया है और प्रतिपक्षी संख्या-1 ने आपराधिक पूर्ववृत्त में हेरफेर किया है, लेकिन जिसे निर्वाचन अधिकारी द्वारा गलत तरीके से स्वीकार किया गया है क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-1 और निर्वाचन अधिकारी आपस में गठजोड़ में थे।

23. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने फॉर्म-26 के 7 (ख) को दाखिल करते समय गलत प्रकटीकरण किया है और महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को दबाया है, जिसमें उसने महाराष्ट्र राज्य के कर्जत और मानगांव में खरीदी गई संपत्ति के एकड़ में क्षेत्र का खुलासा नहीं किया है और आगे उसने स्व-अर्जित संपत्ति की खरीद की शर्त और तारीख देने के लिए निर्धारित कॉलम में शून्य दर्ज किया है। प्रतिपक्षी संख्या-1 ने जानबूझकर खरीद की तारीख और स्व-अर्जित संपत्ति की स्थिति के कॉलम में ज्ञात नहीं होने का उल्लेख किया।

24. प्रतिपक्षी संख्या-1 द्वारा-16.02.2022 को प्रस्तुत नामांकन पत्र यह दर्शाता है कि उसने जानबूझकर आपराधिक पृष्ठभूमि को छिपाया है और फॉर्म-26 ए और बी दाखिल करते समय आई.टी.आर. और संपत्ति (संपत्तियों) के विवरण में हेरफेर किया है क्योंकि उसके

नामांकन पत्र अवैध रूप से स्वीकार किए गए थे, इसलिए चुनाव का परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ।

25. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निर्वाचित उम्मीदवार श्रीमती नीलम सिंह की पत्नी ने अप्रैल/मई 2021 के महीने में आयोजित स्थानीय निकाय चुनाव में वार्ड संख्या-16 ब्लॉक खुथान के लिए सदस्य, जिला पंचायत जौनपुर के पद के लिए चुनाव लड़ा, और अपना नामांकन पत्र दाखिल करते हुए, कृषि भूमि की जोत के बारे में संपत्ति का खुलासा किया, जिसमें उल्लिखित (i) गाटा सं 69/3/20 1 एकड़ 13, (ii) गाटा सं 33/1/ए जिसमें 3 एकड़ 11 है, मानगांव और कर्जत महाराष्ट्र में स्थित है। उन्होंने मॉडल सहकारी बैंक में 54,196/- रुपये और एसबीआई वासी में 65,627/- रुपये जमा करने और 50,000/- रुपये नकद के साथ-साथ एक स्कॉर्पियो और 5 लाख रुपये के आभूषण की घोषणा का खुलासा किया था।

नीलम सिंह ने फ्लैट संख्या-202 द्वितीय तल राज अपार्टमेंट, लखनऊ कार्यालय का बाजार मूल्य 70 लाख रुपये है और आगे वह महाराष्ट्र में 50 लाख रुपये मूल्य के एक अन्य फ्लैट संख्या-1105 की मालकिन हैं। प्रतिपक्षी संख्या-1 ने जानबूझकर उपरोक्त संपत्तियों और जमा को छुपाया और अपने हलफनामे में संपत्ति के मूल्य का खुलासा नहीं किया और जानबूझकर आई.टी.आर. के कॉलम और संपत्ति के कॉलम के खिलाफ शून्य दिखाया।

44. प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चुनाव-याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के आधार पर सफल होने के लिए न केवल यह साबित करना होगा कि निर्वाचन अधिकारी ने प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र को अनुचित तरीके से स्वीकार किया है, बल्कि यह भी स्थापित करना है कि नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है, जहां तक यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है। वह प्रस्तुत करता है कि चुनाव याचिका में इस आशय की दलीलों का अभाव है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है, जहां तक यह प्रतिपक्षी संख्या-1 से संबंधित है। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस तथ्य के मद्देनजर, चुनाव याचिका पूर्वोक्त आरोप के संबंध में प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य से रहित है, और इस प्रकार, इस संबंध में विचारणीय मुद्दे को उठाने वाली चुनाव याचिका में कार्रवाई का कोई कारण मौजूद नहीं है।

45. प्रतिपक्षी संख्या-1 के वरिष्ठ अधिवक्ता ने आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(सी) और धारा-100(1)(डी)(आई) के बीच अंतर करने की मांग की है, जिसमें तर्क दिया गया है कि धारा-100(1)(सी) के तहत आने वाले मामले में, एक बार यह स्थापित हो

जाने के बाद कि किसी भी नामांकन को अनुचित रूप से खारिज कर दिया गया है, निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव शून्य घोषित किया जाएगा और चुनाव याचिकाकर्ता को नामांकन की अनुचित अस्वीकृति को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है जहां तक यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है, पेपर ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है, जबकि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(डी)(आई) के तहत आने वाले मामले में, याचिकाकर्ता को महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों की वकालत करनी होगी और विशेष रूप से प्रतिपक्षी संख्या-1 का नामांकन पत्र अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है और निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है।

46. अपने पूर्वोक्त तर्क के समर्थन में, उन्होंने राजेंद्र कुमार मेश्राम बनाम वंशमणि प्रसाद वर्मा और अन्य (2016) 10 एस.सी.सी. 715 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा-10 और 11 पर भरोसा किया है, जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

> *"10. धारा-100(1)(डी) के तहत, यदि नामांकन की इस तरह की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है, एक चुनाव को नामांकन की अनुचित स्वीकृति के आधार पर शून्य घोषित किया जा सकता है। यह धारा-100(1)(सी) में निहित है, यानी नामांकन की अनुचित अस्वीकृति जो चुनाव के परिणाम पर इस तरह की अस्वीकृति के प्रासंगिक प्रभाव के प्रमाण की किसी और आवश्यकता के बिना चुनाव को अमान्य करने के लिए पर्याप्त आधार है। उपरोक्त भेद को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उक्त आधार पर कार्यवाही करते हुए, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने आगे के प्रश्न में जाने का प्रयास नहीं किया, जिसे निर्धारित करने की आवश्यकता होगी, भले ही यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ता-निर्वाचित उम्मीदवार ने मतदाता सूची या उसकी प्रमाणित प्रति दाखिल नहीं की थी और इसलिए, 1951 के अधिनियम की धारा 33(5) के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया था।*

> *11. दूसरे शब्दों में, उपरोक्त आधार पर चुनाव को रद्द करने से पहले, उच्च न्यायालय को एक और अभ्यास, अर्थात् यह पता लगाने के लिए कि क्या नामांकन की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया था, करना चाहिए था। यह मुद्दा 6 तैयार किए जाने के बावजूद नहीं किया गया है जो विशेष रूप से उपरोक्त प्रभाव के लिए है। उच्च न्यायालय उक्त मुद्दे यानी अंक 6 को निर्धारित*

करने में विफल रहा, स्वाभाविक रूप से, अपीलकर्ता के चुनाव को शून्य घोषित करने का अधिकार नहीं था, भले ही हम यह मान लें कि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन की स्वीकृति अनुचित थी।

47. चुनाव याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह स्थापित करने के लिए आवश्यक प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र को निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है, चुनाव याचिका में विस्तृत किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक उम्मीदवार को फॉर्म-26 में पूरा विवरण प्रस्तुत करना होगा। यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम 72 वर्ष 2022 द्वारा आर.पी. अधिनियम, 1951 में 24.08.2002 से धारा 33-ए डाली गई थी, जिसके लिए उम्मीदवार को धारा 33(1) के तहत आवश्यक जानकारी के अलावा अतिरिक्त जानकारी प्रदान करने की आवश्यकता होती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रेणी में विस्तार से बताया गया है कि मतदाता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत सही उम्मीदवार का चुनाव करने के लिए उम्मीदवार के आपराधिक पूर्ववृत्त, आयकर रिटर्न, संपत्ति आदि जानने का मौलिक अधिकार है और फॉर्म-26 के साथ दायर हलफनामे में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों को दबाने के परिणामस्वरूप उम्मीदवार का नामांकन अस्वीकार हो जाएगा। इस प्रकार, यदि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन को अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है, तो यह चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित करेगा, जहां तक यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है, क्योंकि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के लिए, वह चुनाव में चुनाव नहीं लड़ सकता था और निर्वाचित नहीं हो सकता था।

48. श्री अनिल शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा किया है जिसमें आर.पी. अधिनियम, 1951 में धारा 33-ए को सम्मिलित करने के इतिहास का विवरण दिया गया है। पहला निर्णय किसान शंकर कटोहोरे बनाम अरुण दत्तात्रेय सावंत और अन्य (2014) 14 एस.सी.सी. 162 है। उक्त निर्णय के पैरा-40 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"40. हम पहले ही यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (2002)5 एस.सी.सी. 294 और पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2003)4 एस.सी.सी. 399 और उसके अनुसरण में चुनाव आयोग द्वारा जारी दिशानिर्देशों में निर्णयों के प्रासंगिक अंशों को पुन: प्रस्तुत कर चुके हैं। संयुक्त रूप से पढ़ने से स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि इस न्यायालय द्वारा निर्देश जारी करने और उसके अनुसार चुनाव आयोग द्वारा दिशानिर्देश जारी करने का मुख्य कारण यह है कि नागरिकों को भारत के संविधान के अनुच्छेद

19(1)(ए) के तहत चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के बारे में जानने का मौलिक अधिकार है और यह प्राथमिक कारण है जो इन उम्मीदवारों पर आपराधिक पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी प्रस्तुत करने के लिए एक गंभीर दायित्व डालता है। उम्मीदवार, उसके पति या पत्नी और आश्रित बच्चों द्वारा अवधारित शैक्षिक योग्यता और संपत्ति। इसी आधार पर न केवल निर्वाचन आयोग ने दिशा-निर्देश जारी किए हैं बल्कि शपथ-पत्र दायर करने के लिए प्रारूप भी तैयार किए हैं। एक फोर्टियोरी के रूप में, यह इस प्रकार है कि यदि उम्मीदवार, उसकी पत्नी और आश्रित बच्चों की संपत्ति के संबंध में उक्त प्रारूप के अनुसार आवश्यक जानकारी नहीं दी जाती है, तो यह दमन/गैर-प्रकटीकरण होगा।

49. पुनरुत्थान भारत बनाम भारत निर्वाचन आयोग और अन्य (2014) 14 एस.सी.सी. 189 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी प्रस्तुत मामले के तथ्यों में प्रासंगिक है। उक्त निर्णय के पैरा-20 से 22 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

> *"20. इस प्रकार, इस न्यायालय ने माना कि एक मतदाता को एक उम्मीदवार के पूर्ण विवरण को जानने का प्राथमिक अधिकार है जो संसद में उसका प्रतिनिधित्व करता है और सूचना प्राप्त करने का ऐसा अधिकार सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त प्राकृतिक अधिकार है जो लोकतंत्र की अवधारणा से बहता है और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) का एक अभिन्न अंग है। यह आगे कहा गया कि चुनाव के मामले में मतदाता के भाषण या अभिव्यक्ति में वोट डालना शामिल होगा, अर्थात मतदाता वोट डालकर बोलता है या व्यक्त करता है। इस उद्देश्य के लिए, चयनित होने वाले उम्मीदवार के बारे में जानकारी आवश्यक है। इस प्रकार, स्पष्ट शब्दों में, यह माना जाता है कि संसद में उसका प्रतिनिधित्व करने वाले उम्मीदवार के बारे में जानने का नागरिक का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) का एक अभिन्न अंग होगा और कोई भी अधिनियम, जो मौलिक अधिकारों का अपमान करता है, बिल्कुल अधिकारातीत है।*
>
> *21. इस पृष्ठभूमि के साथ, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33-ए को अधिनियम 72 वर्ष 2002 द्वारा 24.08.2002 से लागू किया गया था। इस प्रकार, अधिनियम 72 वर्ष 2002 का उद्देश्य एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (उपरोक्त) में चिंतन किए गए अधिकार को प्रभावित करना था। हालांकि, विधायकों ने उपरोक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्देशित सभी सुझावों को शामिल नहीं किया, लेकिन सभी उम्मीदवारों को आर.पी. अधिनियम*

की धारा 33(1) के तहत दायर नामांकन पत्र के साथ निर्धारित हलफनामा दाखिल करके धारा 33 ए के तहत आपराधिक पूर्ववृत्त का खुलासा करने के लिए अनिवार्य किया ताकि नागरिकों को उम्मीदवार के आपराधिक पूर्ववृत्त के बारे में पता होना चाहिए इससे पहले कि वे भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत वोट डालना अपनी दायर की कि वे स्वतंत्रता का प्रयोग कर सकें। परिणामस्वरूप, वर्तमान में, प्रत्येक उम्मीदवार अपने आपराधिक पूर्ववृत्त, परिसंपत्तियों और देनदारियों और शैक्षिक योग्यता के संबंध में प्रासंगिक जानकारी के साथ एक हलफनामा दायर करने के लिए बाध्य है।

22. आइए अब हम परीक्षण करें कि क्या हलफनामा दाखिल करना यह बताता है कि हलफनामे में दी गई जानकारी सही है लेकिन सामग्री को खाली छोड़ने से इसे दाखिल करने के पीछे का उद्देश्य पूरा होगा। इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से खंडन है। नामांकन पत्र के साथ हलफनामा दाखिल करने का अंतिम उद्देश्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत नागरिक के मौलिक अधिकार को प्रभावित करना है। नागरिकों को अपने मतदान का विकल्प चुनने के लिए नामांकन पत्र दाखिल करने के समय आवश्यक जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। जब कोई उम्मीदवार खाली विवरण के साथ हलफनामा दायर करता है, तो यह हलफनामे को ही निरर्थक बना देता है।

50. दुरई मुथुस्वामी बनाम एन. नचियप्पन और अन्य (1973)2 एस.सी.सी. 45 के मामले में, यह माना गया था कि एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र के चुनाव के मामले में यदि दो से अधिक उम्मीदवार हैं और पराजित उम्मीदवारों में से एक का नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया था, तो यह सवाल उठ +सकता है कि क्या निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव का परिणाम इस तरह के अनुचित स्वागत से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ था। ऐसे में यह सवाल उठेगा कि उस पराजित उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मतों का क्या हुआ होगा जिसका नामांकन स्वीकार नहीं किए जाने पर अनुचित तरीके से स्वीकार किया गया था। उस स्थिति में, चुनाव को चुनौती देने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक होगा कि वह न केवल आरोप लगाए, बल्कि यह भी साबित करे कि चुनाव का परिणाम अन्य पराजित उम्मीदवार के नामांकन की अनुचित स्वीकृति से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ था। जब तक वह यह साबित करने में सफल नहीं हो जाता कि यदि उस उम्मीदवार के पक्ष में डाला गया वोट जिसका नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया था, चुनाव याचिकाकर्ता के पक्ष में गया होता और उसे बहुमत मिल जाता, तो वह अपनी चुनाव याचिका में सफल नहीं हो सकता। आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(डी)(i) ऐसी आकस्मिकता से संबंधित है। (एस.सी.सी. पृष्ठ 48-49 पी.आर 3 देखें)।

51. मदिराजू वेंकट रमण राजू बनाम पेद्दिरेड्डी रामचंद्र रेड्डी और अन्य (2018)14 एस.सी.सी. 1 के मामले में, एक निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव को आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(ए) और (डी)(i) के तहत इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसने हलफनामे में चल संपत्ति के मूल्य के बारे में सही विवरण प्रस्तुत नहीं किया था। उच्च न्यायालय ने चुनाव याचिका को खारिज करते हुए कहा कि चुनाव याचिका में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण नहीं है कि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के कारण, निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है। शीर्ष न्यायालय ने दुरई मुथुस्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया। उक्त निर्णय के पैरा-52, 53, 55, 57 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

52. प्रतिपक्षी संख्या-1 की एकमात्र अन्य दलील जिसकी जांच की आवश्यकता है, चुनाव याचिका में कथन की अनुपस्थिति के बारे में है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति के कारण, इसने प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव परिणामों को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है। यहां तक कि इस विवाद को भी हमें मैरेम्बम पृथ्वीराज बनाम पुखरमशरतचंद्र सिंह (2017) 2 एस.सी.सी. 487 में इस न्यायालय के हालिया फैसले में विस्तार के आलोक में नहीं रोकना चाहिए। दुरई मुथुस्वामी बनाम एन. नचियप्पन (1973)2 एस.सी.सी. 45 में, इस फैसले में देखा गया है, यह देखा गया है कि एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र के चुनाव के मामले में, यदि 2 से अधिक उम्मीदवार हैं और पराजित उम्मीदवारों में से एक का नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया था, तो एक सवाल उठ सकता है कि क्या निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव का परिणाम इस तरह के अनुचित स्वागत से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ था। अपने नामांकन की अनुचित स्वीकृति के आधार पर "निर्वाचित उम्मीदवार" के चुनाव को चुनौती देने के मामले में ऐसा नहीं होगा।

53. एम. पृथ्वीराज (उपरोक्त) में निर्णय के पैरा-23 में, दुरई मुथुस्वामी (उपरोक्त) में प्रदर्शनी का विश्लेषण करने के बाद, न्यायालय ने इस प्रकार देखा:

"23. दुरई मुथुस्वामी के उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन की अनुचित स्वीकृति और किसी अन्य उम्मीदवार के नामांकन की अनुचित स्वीकृति के बीच अंतर है। उन मामलों के बीच भी अंतर है जहां केवल दो उम्मीदवार मैदान में हैं और ऐसी स्थिति जहां दो से अधिक उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे हैं। यदि निर्वाचित उम्मीदवार के अलावा किसी अन्य उम्मीदवार का नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है, तो यह आवश्यक है कि चुनाव याचिकाकर्ता को यह साबित करना होगा कि ऐसे उम्मीदवार के पक्ष में मतदान उसके पक्ष में किया गया होगा। दूसरी ओर, यदि नामांकन की अनुचित

स्वीकृति लौटाए गए उम्मीदवार की है, तो इस बात के प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है कि चुनाव संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है क्योंकि निर्वाचित उम्मीदवार चुनाव लड़ने में सक्षम नहीं होता यदि उसका नामांकन स्वीकार नहीं किया जाता। प्रतिपक्षी के लिए यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि चुनाव का परिणाम जहां तक यह संबंधित है कि निर्वाचित उम्मीदवार को उसके नामांकन की अनुचित स्वीकृति से संप्रभूत रूप से प्रभावित किया गया है क्योंकि चुनाव लड़ने वाले केवल दो उम्मीदवार थे और यदि अपीलकर्ता के नामांकन को अनुचित रूप से स्वीकार किया गया घोषित किया जाता है, तो उसके चुनाव को बिना किसी और जांच के रद्द करना होगा और मैदान में बचा एकमात्र उम्मीदवार हकदार है, वो निर्वाचित घोषित किया जाएगा।

55. दुनी चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2014)16 एस.सी.सी. 152 में, इस न्यायालय को यह विचार करने के लिए बुलाया गया था कि क्या अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत नामांकन पत्र को निर्वाचन अधिकारी द्वारा अनुचित रूप से स्वीकार किया गया था। यह देखा गया कि यदि निर्वाचन अधिकारी ने जांच के समय अपीलकर्ता के नामांकन पत्र को खारिज कर दिया होता, तो अस्वीकृति का आदेश वैध होता। नतीजतन, अपीलकर्ता चुनाव प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकता था और उसके लिए चुने जाने का कोई अवसर नहीं होता। इसलिए, यह माना जाएगा कि निर्वाचन अधिकारी द्वारा उनके नामांकन की अनुचित स्वीकृति ने अनिवार्य रूप से चुनाव के परिणाम को प्रभावित किया है।

57. हमारा ध्यान एल.आर. शिवरामगौड़ा बनाम टीएम चंद्रशेखर (1999)1 एस.सी.सी. 666 के अधिवक्ता द्वारा भी आकर्षित किया गया है, पैरा-10 और 11 पर विशेष जोर देने के साथ, जिसमें न्यायालय ने कहा कि धारा-100(1)(डी)(iv) के तहत चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए चुनाव याचिकाकर्ता के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वह यह दलील दे कि चुनाव का परिणाम जहां तक यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है, संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है। प्रस्तुत मामले में, चुनाव याचिका धारा-100(1)(डी)(आई) के तहत प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन फॉर्म की अनुचित स्वीकृति के आधार पर है। इस प्रकार, यदि उस याचिका को स्वीकार कर लिया जाता है और प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव को शून्य घोषित कर दिया जाता है, तो यह आवश्यक रूप से पालन करेगा कि निर्वाचित उम्मीदवार का चुनाव परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है।

52. इस संबंध में, मैरेम्बम पृथ्वीराज उर्फ पृथ्वीराज सिंह बनाम पुखरेम शरतचंद्र सिंह (2017)2 एस.सी.सी. 487 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा। निर्णय के पैरा-23 और 24 को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"23. दुरई मुथुस्वामी (उपरोक्त) में उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन की

अनुचित स्वीकृति और किसी अन्य उम्मीदवार के नामांकन की अनुचित स्वीकृति के बीच अंतर है। उन मामलों के बीच भी अंतर है जहां केवल दो उम्मीदवार मैदान में हैं और ऐसी स्थिति जहां दो से अधिक उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे हैं। यदि निर्वाचित उम्मीदवार के अलावा किसी अन्य उम्मीदवार का नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया है, तो यह आवश्यक है कि चुनाव याचिकाकर्ता को यह साबित करना होगा कि ऐसे उम्मीदवार के पक्ष में मतदान उसके पक्ष में किया गया होगा। दूसरी ओर, यदि नामांकन की अनुचित स्वीकृति लौटाए गए उम्मीदवार की है, तो इस बात के प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है कि चुनाव संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है क्योंकि निर्वाचित उम्मीदवार चुनाव लड़ने में सक्षम नहीं होता यदि उसका नामांकन स्वीकार नहीं किया जाता। प्रतिपक्षी के लिए यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि चुनाव का परिणाम जहां तक यह संबंधित है, निर्वाचित उम्मीदवार को उसके नामांकन की अनुचित स्वीकृति से संप्रभूत रूप से प्रभावित किया गया है क्योंकि चुनाव लड़ने वाले केवल दो उम्मीदवार थे और यदि अपीलकर्ता के नामांकन को अनुचित रूप से स्वीकार किया गया घोषित किया जाता है, तो उसके चुनाव को बिना किसी और जांच के रद्द करना होगा और एकमात्र उम्मीदवार मैदान में बचा होगा निर्वाचित घोषित होने का हकदार है।

24. दुरई मुथुस्वामी (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय को जगजीत सिंह बनाम धर्म पाल सिंह, 1995 सप्प (1) एस.सी.सी. 422 में संदर्भित किया गया था जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"21. विचारण न्यायाधीश ने माना है कि चूंकि याचिका में कोई कथन नहीं है कि चुनाव का परिणाम अनुचित अस्वीकृति या वोटों की स्वीकृति से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ था, इसलिए यह कार्रवाई के कारण से रहित है। हम इस बात से सहमत नहीं हो पा रहे हैं कि इस मामले के तथ्यों में इस तरह के कथन का अभाव घातक है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बताया गया है, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां परिस्थितियों से निकाला जाने वाला स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि चुनाव का परिणाम संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है और अधिनियम की धारा-100(1)(डी) का उद्देश्य ऐसे मामले में एक सुविधाजनक तकनीकी दलील प्रदान करना नहीं है जहां कथित दुर्बलता से प्रभावित होने वाले चुनाव के परिणाम के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है। (देखें: दुरई मुथुस्वामी बनाम एन. नचियप्पन [(1973)2 एस.सी.सी. 45। प्रस्तुत मामले में, चुनाव

याचिका में अपीलकर्ता ने कहा है कि वह केवल 80 मतों के अंतर से हारा है। चुनाव याचिका में विभिन्न कथनों से यह स्पष्ट था कि अपीलकर्ता के वैध वोटों की संख्या, जिन्हें कथित रूप से अनुचित तरीके से खारिज कर दिया गया है, 80 से अधिक है। चुनाव याचिका में निहित कथनों से यह स्पष्ट है कि यदि अपीलकर्ता चुनाव याचिका में निर्धारित अपने मामले को स्थापित करने में सफल होता है, तो इस चुनाव का परिणाम, जहां तक यह निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है, संप्रभूत रूप से प्रभावित होगा।

53. पूर्वोक्त निर्णय में कहा गया है कि जहां चुनाव को आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(डी)(i) के तहत निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के आधार पर चुनौती दी गई है, चुनाव याचिकाकर्ता को यह दलील देने की आवश्यकता नहीं है कि नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति ने चुनाव के परिणाम को संप्रभूत रूप से प्रभावित किया है जहां तक यह नामांकन की अनुचित स्वीकृति के रूप में निर्वाचित उम्मीदवार से संबंधित है निर्वाचित अभ्यर्थी के पेपर का तात्पर्य यह है कि निर्वाचित उम्मीदवार के चुनाव का परिणाम इस कारण से संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ था कि लौटा हुआ उम्मीदवार चुनाव नहीं लड़ सकता था और निर्वाचित घोषित नहीं किया जा सकता था यदि उसका नामांकन पत्र अनुचित रूप से स्वीकार नहीं किया गया था।

54. प्रस्तुत मामले में, चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में कहा है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने फॉर्म-26 के कॉलम-4 में आवश्यक आयकर रिटर्न के पांच वित्तीय वर्षों का विवरण नहीं दिया है क्योंकि उसने केवल वित्तीय वर्ष 2021-22 के विवरण का उल्लेख किया है, शेष चार वित्तीय वर्षों के विवरण में 'शून्य' का उल्लेख किया गया है। चुनाव याचिका के पैरा-22 में यह भी दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता ने फॉर्म-26 में प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य को दबा दिया है कि उसके खिलाफ धारा 34, 307 भ०द०वि० और 7 वें आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया है और केस अपराध संख्या-696 वर्ष 2017, थाना-खुठान, जिला जौनपुर में आरोप पत्र दायर किया गया है।

55. यदि पैरा-20 से 25 में की गई चुनाव याचिका में निर्वाचित उम्मीदवार के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के संबंध में अभिवचन सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के प्रकाश में और इस तथ्य पर भी विचार करने पर पढ़े जाते हैं कि आर.पी. अधिनियम 1951 में धारा 33-ए के अधिनियमन का उद्देश्य, भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत निहित मतदाता के मौलिक अधिकार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए है ताकि मतदाता को उस उम्मीदवार के पूर्ववृत्त और विवरण के बारे में पता होना चाहिए जिसे वह चुनने जा रहा है और लोगों के हित को सौंपना चाहिए और उस निर्वाचन क्षेत्र को भी जिसके लिए ऐसा उम्मीदवार चुनाव लड़ रहा है, इस न्यायालय

का विचार है कि चुनाव-याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे को स्थगित करने के लिए कार्रवाई का कारण बनने वाले प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य कि प्रतिपक्षी संख्या-1 का चुनाव प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्रों की अनुचित स्वीकृति से दूषित है, चुनाव याचिका में दलील दी गई है। इस तथ्य के मद्देनजर, प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता की प्रस्तुति योग्यता से रहित है।

56. यह श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि चुनाव याचिकाकर्ता ने चुनाव याचिका में आरोप लगाया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 ने भ्रष्ट आचरण किया है। वह प्रस्तुत करता है कि अभिव्यक्ति 'भ्रष्ट आचरण' को आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-123 में समझाया गया है। वह प्रस्तुत करता है कि चुनाव याचिका में प्रतिपक्षी संख्या-1 या उसके किसी भी अभिकर्ता द्वारा भ्रष्ट आचरण का कोई विशिष्ट उदाहरण नहीं है। तदनुसार, वह प्रस्तुत करता है कि चुनाव याचिका प्रासंगिक एवं सुसंगत तथ्य के संक्षिप्त बयान से रहित है और इसलिए, आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 86 सपठित धारा 83 द्वारा इसे रोक दिया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि भ्रष्ट आचरण के संबंध में आरोप किसी भी हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं है, जैसा कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के परंतुक के तहत माना गया है, और इस तथ्य के मद्देनजर, भ्रष्ट प्रथाओं के संबंध में आरोपों को पढ़ा नहीं जा सकता है और अनदेखा किया जा सकता है।

57. इस दलील को पुष्ट करने के लिए कि यदि चुनाव को भ्रष्ट प्रथाओं के आधार पर चुनौती दी जाती है, तो चुनाव याचिकाकर्ता को निर्धारित प्रपत्र में एक हलफनामा दायर करना होगा जैसा कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83 के परंतुक में प्रदान किया गया है, और प्रस्तुत मामले में, ऐसा नहीं किया गया है, उसने वी. नारायणस्वामी बनाम सीपी थिरुनावुक्करसु (2000) 2 एस.सी.सी. 294 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैरा-23 में निम्नानुसार अवधारित किया: -

"23. इस प्रकार यह देखा जाएगा कि एक चुनाव याचिका अधिकारों पर आधारित है, जो विशुद्ध रूप से क़ानून का प्राणी है, और यदि क़ानून किसी विशेष आवश्यकता को अनिवार्य बनाता है, तो अदालत गैर-अनुपालन को माफ करने के लिए वितरण शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती है। चुनाव याचिका की विचारणीयता के रूप में प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करने के उद्देश्य से, याचिका में कथनों को सही माना जाना चाहिए और अदालत को यह पता लगाना होगा कि क्या ये कथन कार्रवाई के कारण या एक विचारणीय मुद्दे का खुलासा करते हैं। नियमों के नियम 94-ए सपठित धारा 81, 83(1)(सी) और 86 और फॉर्म 25 को एक अभिन्न योजना के रूप में संयुक्त रूप से पढ़ा जाना है। जब ऐसा पढ़ा जाता

है, तो यदि अदालत गैर-अनुपालन पाती है, तो उसे प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखना होगा और याचिका को खारिज करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" और "भौतिक विवरणों" के बीच अंतर है। जबकि महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों की दलील देने में विफलता चुनाव याचिका के लिए घातक है, भौतिक विवरणों की अनुपस्थिति को बाद के चरण में एक उचित संशोधन द्वारा ठीक किया जा सकता है। "महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों" का अर्थ है तथ्यों का पूरा पुलिंदा, जो कार्रवाई का एक पूर्ण कारण होगा और इन्हें चुनाव याचिका में संक्षिप्त रूप से कहा जाना चाहिए, अर्थात, धारा 83 की उपधारा (1) के खंड (ए), फिर धारा 83 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत चुनाव याचिका में किसी भी भ्रष्ट आचरण का पूरा विवरण होना चाहिए। ये विवरण स्पष्ट रूप से उन महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों से अलग हैं जिन पर याचिका की स्थापना की गई है। भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाने वाली याचिका को कानून द्वारा एक हलफनामे द्वारा समर्थित होना आवश्यक है और चुनाव याचिकाकर्ता भ्रष्ट आचरण के आयोग के संबंध में जानकारी के अपने स्रोत का खुलासा करने के लिए बाध्य है। उसे यह बताना होगा कि कौन से आरोप उसकी जानकारी के अनुसार सही हैं और कौन से उसके द्वारा प्राप्त जानकारी पर उसके विश्वास के अनुसार सही हैं। यह हलफनामे का रूप नहीं है बल्कि इसका सार है जो मायने रखता है। कानून द्वारा अपेक्षित भ्रष्ट आचरण की वकालत करने के लिए यह विशेष रूप से आरोप लगाया जाना चाहिए कि भ्रष्ट आचरण उम्मीदवार की सहमति से किए गए थे और किसी व्यक्ति का एक विशेष चुनावी अधिकार प्रभावित हुआ था। अदालत के लिए तर्क की एक शामिल प्रक्रिया को अपनाकर निष्कर्ष निकालने के लिए समय, मौका या अनुमान पर नहीं छोड़ा जा सकता है। जहां कथित भ्रष्ट आचरण दो समान संभावित निष्कर्षों के लिए खुला है, भ्रष्ट आचरण की दलील विफल होनी चाहिए। जहां भ्रष्ट आचरण का आरोप लगाने वाली चुनाव याचिका के कई पैरा सत्यापन खंड के साथ-साथ हलफनामे के तहत अपुष्ट रहते हैं, शपथ न लेने वाले आरोप का कोई कानूनी अस्तित्व नहीं हो सकता है और अदालत इसका संज्ञान नहीं ले सकती है। भ्रष्ट आचरण का आरोप अर्ध-आपराधिक प्रकृति का है, अदालत को हमेशा कानून के प्रावधानों के सख्त अनुपालन पर जोर देना चाहिए। ऐसे मामले में यह भी उतना ही आवश्यक है कि याचिका में आरोपों का विवरण स्पष्ट रूप से और सटीक रूप से बताया गया हो। यह अधिनियम की धारा 81 के प्रावधानों का उल्लंघन है जो पर्याप्त अनुपालन

के सिद्धांत के आवेदन को आकर्षित कर सकता है। दूसरी ओर अधिनियम की धारा 83 में प्रदान किए गए प्रकार के दोष को दीवानी प्रक्रिया संहिता में निहित सिद्धांतों पर, इलाज के सिद्धांत के तहत निपटाया जा सकता है। धारा 83 के प्रावधानों का अनुपालन न करने पर याचिका खारिज की जा सकती है यदि मामला दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 16 और आदेश 7, नियम 11 के दायरे में आता है। जहां न तो याचिका में सत्यापन और न ही हलफनामा याचिकाकर्ता की जानकारी के स्रोतों का कोई संकेत देता है कि याचिका में बताए गए तथ्य जो उसकी जानकारी में नहीं हैं और याचिकाकर्ता इस बात पर कायम रहता है कि सत्यापन सही है और निर्धारित रूप में हलफनामा किसी भी दोष से ग्रस्त नहीं है, भ्रष्ट आचरण के आरोपों की जांच और सुनवाई बिल्कुल नहीं की जा सकती है। ऐसे मामले में याचिका को दलीलों के रूप में कानून के अनिवार्य प्रावधानों का पालन न करने के लिए सीमा पर खारिज कर दिया जाना चाहिए। यह स्वतः संज्ञान लेते हुए न्यायालय के कर्तव्य का हिस्सा नहीं है कि जब दूसरे पक्ष द्वारा आपत्ति की जाती है तो बेहतर विवरण प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाए। जहां याचिका में कार्रवाई के किसी कारण का खुलासा नहीं किया गया है, उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। हालाँकि, न्यायालय दलीलों को कई भागों में विभाजित नहीं कर सकता है और इस बात पर विचार नहीं कर सकता है कि क्या उनमें से प्रत्येक कार्रवाई के कारण का खुलासा करता है। याचिका पर समग्र रूप से विचार किया जाना चाहिए। याचिका को आंशिक रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है।

58. चुनाव याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल शर्मा उपरोक्त कानूनी प्रस्ताव पर विवाद नहीं करते हैं और यह भी मानते हैं कि आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1) के परंतुक का अनुपालन नहीं है। इस तथ्य के मद्देनजर, चुनाव याचिका के पैरा-19, 20, 26, 27, और 33 में लगाए गए आरोपों को नजरअंदाज किया जा सकता है।

59. अब, श्री शशि नंदन, वरिष्ठ अधिवक्ता के अंतिम प्रस्तुतिकरण पर आते हैं कि चुनाव याचिका के पैरा-26 से 32 में वोटों की गिनती में भ्रष्ट आचरण के संबंध में लगाए गए आरोपों में वोटों की गिनती में निर्वाचन अधिकारी द्वारा अपनाए गए भ्रष्ट आचरण के विवरण सहित महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों का उल्लेख नहीं है इसलिए, चुनाव याचिका में कार्रवाई के कारण का खुलासा नहीं किया गया है, जहां तक वोटों की गिनती में भ्रष्ट प्रथाओं के संबंध में आरोप का संबंध है। इस संबंध में, चुनाव याचिका के पैरा-26 से 32 और 34 और 35 को पुन: प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा: -

"26. मतगणना के दौरान, 10.03.2022 को मतगणना के कर्तव्यों का पालन करने वाले निर्वाचन अधिकारी और उसके अधिकारियों ने भ्रष्ट आचरण अपनाया और यह पीठासीन अधिकारी द्वारा जारी फॉर्म 17C के तहत दिए गए मतदान के रिकॉर्ड की तुलना में ईवीएम में अधिक वोट पाया गया। मतदान केंद्र संख्या-332 (प्राथमिक विद्यालय हबीबपुर पश्चिमी भाग) में बूथ पर आवंटित मतदाताओं की कुल संख्या-731 एवं कुल 386 मत दर्ज किए गए। ईवीएम रिकॉर्ड के अनुसार 386 वोट मिले।

हैरानी की बात यह है कि मतगणना के दौरान पुलिस बूथ संख्या-332 पर उपयोग की गई ईवीएम में 608 वोट दर्ज किए गए थे, जिनमें से 608 वोट दर्ज किए गए थे

प्रतिपक्षी संख्या-1 के पक्ष में 386 मतों की गिनती हुई और

याचिकाकर्ता के पक्ष में 107 वोट गिने गए,

इंद्र देव के पक्ष में 92 वोट गिने,

परवेज आलम के पक्ष में 4 वोट गिने गए,

कपिल देव के पक्ष में 2 वोट गिने गए,

ओ वोट का मुकाबला जितेंद्र कुमार के पक्ष में,

नायब अहमद खान के पक्ष में ओ वोट,

रामानुज के पक्ष में 7 वोट पड़े,

राम प्रताप के पक्ष में ओ वोट,

राम सुमेर के पक्ष में 1 वोट का मुकाबला,

विनोद कुमार के पक्ष में 3 वोट पड़े,

सुरेश राजभर के पक्ष में ओ वोट,

विनोद के पक्ष में 0 वोट पड़े और

नोटा के पक्ष में 6 वोट पड़े।

27. यह बहुत आश्चर्यजनक है कि मतदान केंद्र/बूथ संख्या-332 पर कुल 386 मत डाले गए और ईवीएम में 608 मत पाए गए और गिने गए, जो चुनाव में भ्रष्ट आचरण करने का एक स्पष्ट उदाहरण है, निर्वाचन अधिकारी, जिला निर्वाचन अधिकारी और माइक्रो और मैक्रो पर्यवेक्षकों द्वारा 222 अतिरिक्त मतों के बारे में कोई औचित्य नहीं दिया गया है।

28. याचिकाकर्ता यह भी रिकॉर्ड पर ला रहा है कि शाहगंज, तहसील पूर्व मतदान केंद्र संख्या-236 की ईवीएम की गिनती नहीं की गई थी, लेकिन निर्वाचन अधिकारी और भारत निर्वाचन आयोग द्वारा मतगणना चार्ट में दिखाए गए वोटों की गिनती की गई थी।

29. कि 440 मतदान केन्द्रों की मतगणना तथा परिणाम प्रत्याशी रमेश के पक्ष में घोषित कर उसे 719 मतों से विजयी घोषित किया गया।

30. कुल 1265 पोस्टल बैलेट वोटों की गिनती हुई, जिसमें से
याचिकाकर्ता को 781 वोट मिले
रमेश (निर्वाचित उम्मीदवार) को 253 वोट मिले
इंद्रदेव को मिले 160 वोट,
परवेज आलम को 6 वोट मिले,
कपिल देव को 2 वोट मिले,
जितेंद्र कुमार को 0 वोट मिले,
नायब अहमद खान को 1 वोट मिले,
रामानुज को 5 वोट मिले,
राम प्रताप को 3 वोट मिले,
राम सुमेर को 0 वोट मिले
विनोद कुमार को 3 वोट मिले,
सुरेश राज भर को 0 वोट मिले
विनोद को 0 वोट मिले
कुल 51 वोट खारिज कर दिए गए।
नोटा को 0 वोट मिले और कोई टेंडर वोट नहीं पड़ा।
निर्वाचन अधिकारी, निर्वाचन क्षेत्र संख्या-365 शाहगंज द्वारा फॉर्म-20 पर जारी अंतिम परिणाम पत्रक के अनुसार,
याचिकाकर्ता को 86514 वोट मिले
प्रतिपक्षी संख्या-1 को 87233 वोट मिले
इंदर देव को 48957 वोट मिले,
परवेज आलम को 1529 वोट मिले,
कपिल देव को मिले 857 वोट,
जितेंद्र कुमार को 383 वोट मिले
नायब अहमद खान को 8128 वोट मिले,
रामानुज को 2551 वोट मिले,
राम प्रताप को 514 वोट मिले,
राम सुमेर को 775 वोट मिले,
विनोद कुमार को 783 वोट मिले।
सुरेश राजभर को 626 वोट मिले।
विनोद को 427 वोट मिले,
कुल वैध वोट 239277
कुल 51 वोट खारिज
नोटा 1643 वोट
कुल वोटों की गिनती 240971
ईवीएम की गिनती के अनुसार
याचिकाकर्ता को 85733 वोट मिले
प्रतिपक्षी संख्या-1 को 86980 वोट मिले
इंदर देव को 48797 वोट मिले
परवेज आलम को 1523 वोट मिले
कपिल देव को 855 वोट मिले
जितेंद्र कुमार को 383 वोट मिले
नायब अहमद खान को 8127 वोट मिले
रामानुज को 2546 वोट मिले
राम प्रताप को 511 वोट मिले
राम सुमेर को 775 वोट मिले
विनोद कुमार को 780 वोट मिले
सुरेश राजभर को 626 वोट मिले
विनोद खन्ना को 427 वोट मिले
0 वोट खारिज कर दिए।
नोटा 1643 वोट
निविदा वोट 0
ईवीएम द्वारा कुल गिने गए 239706 वोट
31. कि मतगणना चार्ट के अनुसार 32 राउंड में 440 मतदान केंद्रों की तालिकावार मतगणना हुई
याचिकाकर्ता को कुल 82542 वोट मिले

लौटे प्रत्याशी रमेश को 84947 वोट मिले,
इंदर देव को 47995 वोट मिले
परवेज आलम को 1493 वोट मिले
कपिल देव को 826 वोट मिले
जितेंद्र कुमार को 375 वोट मिले
नायब अहमद खान को 7922 वोट मिले
रामानुज को 2495 वोट मिले
राम प्रताप को 503 वोट मिले
राम सुमेर को 756 वोट मिले
विनोद कुमार को 768 वोट मिले
सुरेश राजभर को 605 वोट मिले
विनोद को 414 वोट मिले
नोटा को 1609 वोट मिले
कुल गिने गए वोट- 233250

32. निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन क्षेत्र संख्या-365 शाहगंज द्वारा प्रपत्र-20 पर जारी अंतिम परिणाम पत्रक के अवलोकन से 444 मतदान केन्द्रों की गणना एवं चार्ट तैयार कर लिया गया है, जबकि भारत निर्वाचन आयोग द्वारा बनाए गए तालिकावार चार्ट में 440 मतदान केन्द्रों/केन्द्रों का परिणाम दर्शाया गया है और इस प्रकार 4 मतदान केन्द्रों के मतों की गणना नहीं की जाती है।

33. .....

34. कि तालिकावार मतगणना चार्ट, उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त वोटों के अलग-अलग आंकड़े और निर्वाचन अधिकारी द्वारा जारी अंतिम परिणाम पत्रक अलग-अलग है, जो प्रतिपक्षी संख्या-1 के पक्ष में घोषित पूरी चुनाव कार्यवाही को दूषित करता है।

35. हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा बूथ संख्या-332 के लिए वीवीपीएटी की गिनती के लिए अनुरोध किया गया था, लेकिन निर्वाचन अधिकारी ने बूथ संख्या-332 की वीवीपीएटी की गिनती करने से इनकार कर दिया।

60. चुनाव याचिका के पैरा-26 और 27 के अवलोकन से पता चलता है कि चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि निर्वाचन अधिकारी ने भ्रष्ट आचरण अपनाया है, लेकिन पैरा-22 से 27 में इस आशय का कोई कथन नहीं है कि निर्वाचन अधिकारी द्वारा निर्वाचित उम्मीदवार या उसके चुनाव अभिकर्ताओं की सहमति से भ्रष्ट आचरण किया गया है और न ही यह निर्वाचन अधिकारी और अधिकारियों के नाम का खुलासा करता है जो मतगणना के लिए ड्यूटी पर थे और भ्रष्ट आचरण अपनाते थे। यदि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(बी) के तहत चुनाव को चुनौती भ्रष्ट आचरण के आधार पर दी जाती है, तो चुनाव याचिकाकर्ता को न केवल यह स्थापित करना होगा कि कोई भ्रष्ट आचरण निर्वाचित उम्मीदवार या उसके चुनाव अभिकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है, बल्कि उसे यह भी स्थापित करना होगा कि इस तरह का भ्रष्ट आचरण निर्वाचित उम्मीदवार या उसके चुनाव की सहमति से किया गया है आढ़तिया।

61. जहां तक निर्वाचन याचिका में लगाए गए आरोप का संबंध है कि निर्वाचन अधिकारी द्वारा जारी किए गए फॉर्म-20 के अंतिम परिणाम पत्रक से पता चलता है कि चार्ट 444 मतदान केंद्रों के लिए तैयार किया गया था, जबकि भारत निर्वाचन आयोग द्वारा तैयार तालिकावार चार्ट 440 बूथ/मतदान केंद्रों के परिणाम दिखाता है। इस प्रकार, चार मतदान केंद्रों के मतों की गणना नहीं की जाती है। चुनाव याचिका के पैरा-32 के अवलोकन से पता चलता है कि चुनाव-याचिकाकर्ता ने उन चार मतदान केंद्रों के नाम का खुलासा नहीं किया है जिनके वोटों की गिनती चुनाव आयोग द्वारा नहीं की गई है और न ही उक्त पैरा में कोई उल्लेख है कि चार मतदान केंद्रों के मतों की गिनती नहीं करने से प्रतिपक्षी संख्या-1 का चुनाव संप्रभूत रूप से प्रभावित हुआ है।

62. यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि चुनाव याचिका में इस आशय की दलील का भी अभाव है कि चुनाव याचिकाकर्ता या उसके अभिकर्ताओं ने फॉर्म-20 में मतों की गिनती को चुनौती दी थी। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि चुनाव याचिका में वोटों की गिनती और फॉर्म-20 तैयार करने में निर्वाचन अधिकारी या उसके अधिकारियों द्वारा अपनाए गए भ्रष्ट आचरण के आधार पर प्रतिपक्षी संख्या-1 के चुनाव की चुनौती के संबंध में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों का अभाव है। इस प्रकार, कोई विचारणीय मुद्दा नहीं बनता है, और उक्त आरोप के संबंध में दलील को भी नजरअंदाज किया जा सकता है।

63. इस न्यायालय ने ऊपर माना है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 के नामांकन पत्र की अनुचित स्वीकृति के आधार पर चुनाव याचिका में महत्वपूर्ण एवं सुसंगत तथ्यों और विवरणों की दलील दी गई है, जिसमें आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा-100(1)(डी)(i) के तहत कार्रवाई के कारण और एक विचारणीय मुद्दे का खुलासा किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-1 का चुनाव नामांकन फॉर्म की अप्रभावी स्वीकृति से दूषित है। इसलिए, आर.पी. अधिनियम, 1951 की धारा 83(1)(ए) और (बी) का अनुपालन है, इसलिए, दोनों आवेदन, अर्थात, आवेदन संख्या-6 वर्ष 2022 (सी.पी.सी. के आदेश 7 नियम 11 के तहत) और आवेदन संख्या-7 वर्ष 2022, (जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 86(1) के तहत) को बिना किसी लागत के आदेश के **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1350

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 229/2022

मास्टर नमिश गुप्ता @गुड्डू गुप्ता एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री सतेन्द्र कुमार (सिंह), श्री अभिषेक मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री प्रमोद कुमार सिंह

सिविल विधि - हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - बंदी प्रत्यक्षीकरण - लगभग 2½ वर्ष की आयु के नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा - पिता, प्राकृतिक संरक्षक होने के नाते, नाना-नानी से अभिरक्षा की मांग की - याचिका स्वीकार की गई - पिता को बच्चे की भावनात्मक और आर्थिक रूप से देखभाल करने के लिए उपयुक्त पाया गया - नाना-नानी बेहतर कल्याण व्यवस्था को प्रदर्शित करने में विफल रहे - निर्णय: दादा-दादी के पास अभिरक्षा अवैध हिरासत के समान है - बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका स्वीकार्य - नाबालिग के कल्याण के हित में अभिरक्षा पिता को सौंपी गई।

अभिनिर्धारितः

नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा याचिकाकर्ता को वापस की जाएगी - पिता हिंदू अल्पवयस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(ए) के तहत प्राकृतिक संरक्षक है। दादा-दादी की अभिरक्षा अवैध निरोध के बराबर है। बच्चे के हित में प्रतिवादी 3 से 5 को मिलने-जुलने का अधिकार दिया गया है।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

1. तेजस्विनी गौड़ बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी (2019) 7 एससीसी 42;

2. विनायक त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 2583/2017;

3. श्रीमती मंजू मालिनी बनाम विजय तिरुगननम, डब्ल्यूपीएचसी संख्या 13/2018 (कर्नाटक एचसी) - पर भरोसा किया गया।

4. रेशु @ नित्या बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2021 (6) एएलजे 632 - विशिष्ट

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा पारित)

1. याचिका में यह प्रार्थना करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट जारी करने की मांग की गई है कि विरोधी पक्ष 3, 4 और 5 को यह आदेश दिया जाए कि वे निरुद्ध मास्टर नैमिश गुप्ता उर्फ गुड्डू गुप्ता को न्यायालय में पेश करें और उसकी अभिरक्षा उसके पिता नितेश गुप्ता, याचिकाकर्ता को सौंप दें।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सतेंद्र कुमार (सिंह), विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आलोक तिवारी और निजी प्रतिवादी संख्या 3 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार सिंह को सुना गया।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि निरुद्ध नमिश गुप्ता उर्फ गुड्डू गुप्ता की उम्र इस याचिका दायर करने के समय लगभग डेढ़ वर्ष थी और वर्तमान में उसकी उम्र लगभग ढाई वर्ष है। अभिसाक्षी नितेश गुप्ता उनके पिता

और प्राकृतिक अभिभावक हैं। अभिसाक्षी की शादी प्रतिवादी 3 और 4 की बेटी और प्रतिवादी संख्या 5 की बहन स्वर्गीय प्रियंका गुप्ता से 22.4.2014 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुई थी। यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता कोलकाता में एक उद्योग चलाता है। उनके विवाह से प्रारंभ में 7.9.2015 को कनिका गुप्ता नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ। स्वर्गीय प्रियंका गुप्ता वर्ष 2020 में पुनः गर्भवती हुईं। उस समय स्वर्गीय प्रियंका गुप्ता के माता-पिता ने उन्हें लखनऊ भेजने का अनुरोध किया ताकि वह अपनी मां के साथ रह सकें, जो गर्भावस्था और प्रसव के दौरान उनकी देखभाल कर सकें।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता ने निरुद्ध की मृत मां के साथ-साथ निरुद्ध की भी देखभाल की है और निजी प्रतिवादियों को वित्तीय सहायता प्रदान की है। बैंक स्टेटमेंट की फोटोकॉपी जिसके माध्यम से निजी प्रतिवादियों के खाते में पैसे जमा किए गए थे, याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में दायर की गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी बड़ी बेटी कनिका गुप्ता का सफलतापूर्वक पालन-पोषण किया है जो कोलकाता में जी.डी. गोयनका स्कूल में पढ़ रही है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने अपने और अपने दो बच्चों यानी बेबी कनिका गुप्ता और मास्टर नैमिश गुप्ता के नाम पर 5 लाख रुपये की राशि का स्वास्थ्य बीमा लिया है। उन्होंने कनिका गुप्ता की भविष्य की वित्तीय जरूरतों को सुरक्षित करने के लिए एक सुकन्या समृद्धि खाता भी खोला है और भविष्य की वित्तीय जरूरतों के लिए जमा करता था। बेबी कनिका गुप्ता के सुकन्या समृद्धि खाते की प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में दायर की गई है। उन्होंने बेबी कनिका गुप्ता के नाम पर एक बीमा पॉलिसी भी खरीदी है। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अभिसाक्षी निरुद्ध के साथ-साथ निजी प्रतिवादियों की वित्तीय आवश्यकताओं का ध्यान रखता रहा है, इसलिए प्रतिवादी निरुद्ध को पैसे ऐंठने के साधन के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं और वे बच्चे की अभिरक्षा अभिसाक्षी को नहीं सौंपना चाहते हैं। यद्यपि अभिसाक्षी की दिवंगत पत्नी की चिकित्सा के लिए निजी प्रतिवादियों को पर्याप्त धनराशि सौंपी गई थी, निजी प्रतिवादियों ने एक विशेषज्ञ स्त्री रोग विशेषज्ञ से परामर्श करने के बजाय बी.एच.एम.एस. (होम्योपैथिक) डिग्री वाले डॉक्टर से परामर्श किया और हर समय अभिसाक्षी को बताया गया कि प्रियंका गुप्ता एक विशेषज्ञ स्त्री रोग विशेषज्ञ की निगरानी में है। 14.12.2020 को स्वर्गीय प्रियंका गुप्ता ने दीप हॉस्पिटल, हरदोई रोड, लखनऊ में निरुद्ध को जन्म दिया। जन्म प्रमाण पत्र की प्रति पत्रावली में है और अनुलग्नक-2 के रूप में दाखिल की गई है। प्रस्तुत है कि सेप्टिक शॉक के कारण दिवंगत प्रियंका गुप्ता की हालत बिगड़ गई और इस तरह उन्हें 19.12.2020 को केजीएमयू, लखनऊ रेफर किया गया, जहां उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई।

यह प्रस्तुत किया गया है कि निजी प्रतिवादीगण अभिसाक्षी को मुलाकात के अधिकार और निरुद्ध की अभिरक्षा से भी वंचित कर रहे हैं। जून, 2021 में जब याचिकाकर्ता निरुद्ध की अभिरक्षा लेने गया,

तो निजी प्रतिवादियों ने पुलिस को बुला लिया। निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अभिसाक्षी हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम के तहत पिता और प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते अवयस्क निरुद्ध के समग्र कल्याण को देखते हुए उसकी अभिरक्षा लेने का अधिकारी है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निजी प्रतिवादियों की वित्तीय स्थिति ऐसी नहीं है कि वे निरुद्ध को शैक्षिक और चिकित्सा खर्च आदि प्रदान कर सकें और उसे पूरा कर सकें।निरुद्ध को अभिसाक्षी की अभिरक्षा से वंचित करना, उसे उसके प्राकृतिक अभिभावक के भावनात्मक प्यार और स्नेह से वंचित करना होगा और साथ ही यह निरुद्ध को उसकी बड़ी बहन के प्यार और स्नेह से भी वंचित करेगा जो अभिसाक्षी के साथ रह रही है। यदि निरुद्ध की अभिरक्षा अभिसाक्षी को प्रदान की जाती है, तो उसे अपने प्राकृतिक अभिभावक, यानी पिता और अपनी बहन की संगति प्राप्त होगी।

यह प्रस्तुत किया गया है कि अभिसाक्षी कोलकाता में एक संयुक्त परिवार में रहता है जहाँ वह अपने पिता, चाचा, चाची और अपनी बेटी के साथ रहता है, इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि निरुद्ध की देखभाल करने के लिए परिवार में पर्याप्त सदस्य हैं। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **तेजस्विनी गौड़ और अन्य** बनाम **शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य** (2019)7 एससीसी 42 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, **विनायक त्रिपाठी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** में दिनांक 30.9.2022 के निर्णय, इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 2583/2017 में पारित निर्णय और कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा **श्रीमती मंजू मालिनी शेषचलम** बनाम **विजय थिरुगनम एवं अन्य**, डब्ल्यू.पी. एच.सी. संख्या 13/2018 में पारित दिनांक 19.4.2018 के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

5. इसके विपरीत, श्री आलोक तिवारी, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि निरुद्ध जन्म से ही अपने नाना-नानी के साथ रह रहा है और इसलिए, उसे नाना-नानी की अभिरक्षा से वंचित करना निरुद्ध के समग्र कल्याण में नहीं हो सकता है क्योंकि वह भावनात्मक रूप से नाना-नानी से जुड़ा हुआ हो सकता है और निरुद्ध की उम्र ऐसी नहीं है कि वह अपनी पसंद के बारे में कोई निर्णय ले सके कि वह किसके साथ रहना चाहता है। अपने तर्क के समर्थन में, श्री तिवारी ने **रेशू उर्फ नित्या** और **अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2021(6) एएलजे 632** में इस अदालत की एक समन्वय पीठ के फैसले पर विश्वास व्यक्त किया है।

6. निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि अभिसाक्षी एक प्राकृतिक अभिभावक है, लेकिन निरुद्ध जन्म से ही उनकी अभिरक्षा हैं और वे निरुद्ध की अभिरक्षा को बनाए रखना चाहते हैं, जो निरुद्ध के हित में होगा।

अभिसाक्षी से प्राप्त राशि के संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह राशि कुछ वस्तुओं की खरीद के लिए दी गई थी। उन्होंने न्यायालय का ध्यान कुछ बिलों और वाउचरों की ओर भी आकर्षित किया गया है, जिन्हें पूरक प्रति शपथपत्र के साथ दायर किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि निजी प्रतिवादियों की वित्तीय स्थिति निरुद्ध को अच्छी शिक्षा और पालन-पोषण देने के लिए पर्याप्त है।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि निजी प्रतिवादियों ने स्वच्छ अंतःकरण से न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिका के पैरा 22, 23 और 24 में स्पष्ट रूप से दलील दी गई है कि निरुद्ध की मृतक मां का परामर्श बीएचएमएस डिग्री वाले होम्योपैथिक डॉक्टर ने किया था, न कि किसी विशेषज्ञ स्त्री रोग विशेषज्ञ ने। उन्होंने दीप अस्पताल द्वारा 14.12.2020 को जारी जन्म प्रमाण पत्र पर विश्वास किया है। प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय रिट याचिका के पैरा 24 के कथन का कोई उत्तर नहीं दिया गया है जिसमें निरुद्ध के जन्म प्रमाण पत्र के बारे में बताया गया है। हालांकि, पूरक प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय निजी प्रतिवादियों ने उसी क्रम संख्या के साथ उसी अस्पताल के नाम वाला एक और जन्म प्रमाण पत्र दाखिल किया है, लेकिन इस बार डॉक्टर का नाम बदल दिया गया है और न्यायालय को यह आभास देने का प्रयास किया गया है कि निरुद्ध की मृतक मां का इलाज स्त्री रोग विशेषज्ञ ने किया था।

यह प्रस्तुत किया गया है कि केवल इतना ही नहीं, प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय, निजी प्रतिवादियों द्वारा अभिसाक्षी से प्राप्त धन के बारे में एक अलग कहानी बताई गई थी। हालाँकि, पूरक प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय, कहानी बदल दी गई है और अनुलग्नक संख्या एससीए-4 के रूप में पूरक प्रतिशपथपत्र के साथ कुछ बिल संलग्न किए गए हैं, ताकि यह असफल रूप से प्रदर्शित किया जा सके कि अभिसाक्षी द्वारा अपने लिए एफएलपी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड के कुछ उपभोग्य उत्पाद खरीदने के लिए धन हस्तांतरित किया गया था। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान पृष्ठ 65, यानी एससीए-5 की ओर भी आकर्षित किया है, जहाँ कुछ ग्राहक चालान दाखिल किए गए हैं। पृष्ठ 65 और 66 पर, प्राप्तकर्ता का नाम प्रियंका गुप्ता के रूप में दिखाया गया है, जो निरुद्ध की माँ है। पृष्ठ 66, पृष्ठ 65 की छायाप्रति है और पृष्ठ 67 के बाद से, कथित ग्राहक चालान किसी भी तरह से अभिसाक्षी या निरुद्ध की मृत माँ से संबंधित नहीं हैं क्योंकि जिस प्राप्तकर्ता को उत्पाद भेजे जा रहे हैं उसका विवरण नहीं दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि निजी प्रतिवादियों ने विरोधाभासी दो शपथपत्र दायर कर न्यायालय को दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया है।

8. इस न्यायालय ने पाया है कि दीप अस्पताल द्वारा जारी जन्म तिथि प्रमाण पत्र, जिसे रिट याचिका के अनुलग्नक 2 के रूप में संलग्न किया गया है, का क्रमांक

742 है और डॉक्टर का नाम कमला प्रसाद है। यह पाया गया है कि प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय याचिका के प्रस्तर 24 का कोई उत्तर नहीं दिया गया है। हालांकि, पूरक प्रतिशपथपत्र दाखिल करते समय, एक और जन्म प्रमाण पत्र दाखिल किया गया है, जिसका क्रमांक 742 है, एवं डॉक्टर का नाम बदलकर डॉ. निहान इकबाल कर दिया गया है। निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बारे में कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सका कि उनके द्वारा दाखिल प्रतिशपथपत्र में कोई उत्तर क्यों नहीं दिया गया। हालांकि, यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि यह एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका है, जो निरुद्ध की अभिरक्षा की मांग करते हुए, उसके समग्र हित में उसके पिता द्वारा दायर की गई है।

9. तेजस्विनी गौड़ (उपरोक्त) वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी ऐसे व्यक्ति से, जो व्यक्तिगत विधि के अनुसार उसका विधिक या प्राकृतिक अभिभावक नहीं है, अवयस्क की अभिरक्षा की पुनर्स्थापना के लिए, समुचित मामलों में, रिट कोर्ट के पास अधिकार क्षेत्र है और इस प्रकार, उस वाद में शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य 2019 एससीसी ऑनलाइन Bom 214 में उच्च न्यायालय के दिनांक 6.2.2019 के निर्णय की पुष्टि करते हुए, अपीलकर्ता को कुछ निर्देशों और टिप्पणियों के साथ प्रथम प्रतिवादी- पिता को बच्चे की अभिरक्षा सौंपने का निर्देश दिया गया था। तेजस्विनी गौड़ वाद के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"13. इस तर्क का विरोध करते हुए, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वाद प्रस्तुत किये गए तथ्यों में, उच्च न्यायालय के पास भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने की असाधारण शक्ति है और उच्च न्यायालय ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को स्वीकृति देकर सही किया था। विद्वान अधिवक्ता ने गौहर बेगम और मंजू मालिनी शेषचलम पर विश्वास व्यक्त किया है। प्रतिवादी संख्या 1 का तर्क यह है कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 1, पिता होने के नाते प्राकृतिक अभिभावक है और अपीलकर्ताओं के पास बच्चे की अभिरक्षा को बरकरार रखने का कोई अधिकार नहीं है और अभिरक्षा सौंपने से इनकार करना बच्चे के अवैध संरक्षणके बराबर है और इसलिए, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट उसके लिए समाधान प्राप्त करने के लिए उपलब्ध उचित उपचार था।

14.बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है एवं अवैध या अनुचित अभिरक्षा से तत्काल रिहाई का प्रभावी साधन है। रिट, नाबालिग की अभिरक्षा को उसके अभिभावक के पक्ष में पुनर्स्थापित करने के लिए भी प्रभावी है, जब उसे

दोषपूर्ण तरीके से इससे वंचित किया जाता है। नाबालिग की अभिरक्षा ऐसे व्यक्ति द्वारा प्राप्त करना, जो उसकी विधिक अभिरक्षा का अधिकारी नहीं है, नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा की रिट स्वीकृत करने के उद्देश्य से अवैध अभिरक्षा के समतुल्य माना जाता है। किसी ऐसे व्यक्ति से, जो व्यक्तिगत कानून के अनुसार उसका कानूनी या प्राकृतिक अभिभावक नहीं है, नाबालिग की अभिरक्षा के पुनर्स्थापन के लिए, समुचित मामलों में, रिट कोर्ट के पास अधिकार क्षेत्र है।

32. इस मामले में, पिता ही एकमात्र जीवित प्राकृतिक अभिभावक है और उसने न तो बच्चे का परित्याग किया है और न ही उसकी उपेक्षा की है। मात्र वाद की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण, अपीलकर्ताओं द्वारा बच्चे की देखभाल की गई थी। इसलिए, अपीलकर्ताओं द्वारा उद्धृत निर्णयविधियां तथ्यों के आधार पर भिन्न हैं और उन्हें पिता को बच्चे की अभिरक्षा से वंचित करने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है।

34. जैसा कि पहले रोजी जैकब के वाद में टिप्पणी की गई थी , पिता की योग्यता पर सभी प्रासंगिक परिस्थितियों के संदर्भ में मुख्य रूप से उसके नाबालिग बच्चों के कल्याण के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए, निर्धारित किया जाना चाहिए और आंकलन किया जाना चाहिए। बच्चे के कल्याण में नैतिक पालन-पोषण, अभिभावक की आर्थिक कुशलता, बच्चे की सामान्य सुविधा, संतोष, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि जैसे विभिन्न कारक सम्मिलित होंगे। बच्ची शिखा ने अपनी माँ को खो दिया, जब वह सिर्फ चौदह माह की थी और अब उसे बिना किसी वैध कारण के अपने पिता के प्यार से वंचित किया जा रहा है। जैसा कि उच्च न्यायालय ने बताया है, पिता एक उच्च शिक्षित व्यक्ति है और एक प्रतिष्ठित पद पर काम कर रहा है। उसकी आर्थिक स्थिति स्थिर है।"

10. विनायक त्रिपाठी (उपरोक्त) वाद में, इस न्यायालय ने प्रस्तर 43 में टिप्पणी की थी कि याचिकाकर्ता एक प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते तथा परिवार की सहायता प्राप्त होने के कारण, अत्यधिक वृद्ध नाना-नानी, की तुलना में बच्चे के पालन-पोषण की बेहतर देखभाल कर सकता है। प्रासंगिक पैरा 43 और 47 नीचे उद्धृत हैं:

"43. इस न्यायालय ने यह भी देखा है कि नाना-नानी अर्थात प्रतिवादी सं. 3 और 4 काफी वृद्ध व्यक्ति हैं और उनके लिए नाबालिग बच्चे की देखभाल करना बहुत कठिन होगा, जबकि याचिकाकर्ता सं. 2 प्राकृतिक अभिभावक होने और परिवार की सहायता होने के कारण बच्चे का

पालन-पोषण बेहतर तरीके से कर सकता है।

47. रिट याचिका के साथ संलग्न अभिलेख के परिशीलन से यह समझा जा सकता है कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 का आचरण और व्यवहार, जहाँ तक बच्चे की उसके पिता तक पहुंच का संबंध है, प्रथमदृष्टया अप्रत्याशित प्रतीत होता है। यह समझ में नहीं आता है कि नाना-नानी बच्चे की अभिरक्षा उसके पिता को न देने के लिए इतने अड़े क्यों हैं, क्योंकि वह अभिभावक होने के लिए अयोग्य नहीं लगता है, इस प्रकार यह अनुचित अभिरक्षा का सर्वोत्तम उदाहरण है।"

11. मंजू मालिनी (उपरोक्त) के वाद में, निरुद्ध को याचिकाकर्ता की छोटी बहन ने पति के साथ अभिरक्षा में लिया था, जिसने अवयस्क की अभिरक्षा याचिकाकर्ता, जो प्राकृतिक अभिभावक था, को सौंपने से इनकार कर दिया था । प्रासंगिक प्रस्तर 24 अधोउद्धृत है:

"24. जिस क्षण प्रतिवादी 1 और 2 ने नाबालिग तनिष्का की अभिरक्षा याचिकाकर्ता, जो प्राकृतिक और विधिक अभिभावक था, को सौंपने से इनकार कर दिया, उनके पास उसकी अभिरक्षा जारी रखना अवैध अभिरक्षा बन जाती है। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से इस तरह का जानबूझकर किया गया कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 361 के तहत दंडनीय अपहरण के अपराध के समान है। इसलिए इस तर्क में कोई बल नहीं है कि रिट याचिका विचारणीय नहीं है और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 बच्ची तनिष्का के विधिक अभिरक्षक हैं।

12. रेशू के वाद (उपरोक्त) में विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय के संबंध में, इस न्यायालय ने धारित किया कि अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा के संबंध में निर्णय लेते समय, अवयस्क के कल्याण का विचार सर्वोपरि होना चाहिए और इस तरह के प्रश्न को केवल विधि के अधीन पक्षों के प्रतिस्पर्धी अधिकारों के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। उस मामले में भी, बच्चा बचपन से ही अपने नाना के साथ रह रहा था। बच्चे की अभिरक्षा पिता को देने से इस कारण इनकार कर दिया गया कि पिता पर धारा 498-ए, 304-बी भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के तहत अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति की मां की कथित हत्या के लिए आरोपी के रूप में आरोप लगाया गया था और इसलिए, उन विशिष्ट तथ्यों के आलोक में, न्यायालय ने पिता को अवयस्क की अभिरक्षा देने से इनकार कर दिया।

रेशू (उपरोक्त) के वाद में निर्णय तथ्यों के आधार पर 'भिन्न' है और इसे वर्तमान वाद में पिता को बच्चे की अभिरक्षा सौंपने से इनकार करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता। इस वाद में, यह तथ्य विवादित नहीं है कि अभिसाक्षी निरुद्ध का पिता और प्राकृतिक

अभिभावक है। यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि वह कोलकाता में एक उद्योग चला रहा है। यह तथ्य भी कि उचित चिकित्सा स्वास्थ्य सुनिश्चित करने के लिए, याचिकाकर्ता ने निरुद्ध और उसकी बेटी के नाम पर स्वास्थ्य बीमा लिया है, सुकन्या समृद्धि खाते में निवेश किया है और साथ ही कनिका गुप्ता के नाम पर बीमा पॉलिसी खरीदी है, विवादित नहीं है। यह भी विवादित नहीं है कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6, विशेष रूप से इसकी धारा 6-ए के अधीन, पुरुष शिशु के मामले में प्राकृतिक अभिभावक, पिता है।

इसके अलावा, निजी प्रतिवादी यह सिद्ध नहीं कर सके कि उनके पास निरुद्ध को उचित शिक्षा और पालन-पोषण प्रदान करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन हैं, जैसा कि कोलकाता में उसकी बड़ी बहन को प्रदान किया जा रहा है।

यह न्यायालय इस तथ्य को उपेक्षित नहीं कर सकता कि निजी प्रतिवादियों द्वारा दायर पहले प्रतिशपथपत्र में, उन्होंने दीप अस्पताल द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र को स्वीकार किया है जो दर्शाता है कि निरुद्ध की मृतक माँ का इलाज स्त्री रोग विशेषज्ञ द्वारा नहीं बल्कि बी.एच.एम.एस. डॉक्टर द्वारा किया गया था, और बाद में विरोधाभासी कथन के साथ दायर शपथपत्र के साथ-साथ एक ही क्रमांक के साथ एक अलग जन्म प्रमाण पत्र निजी प्रतिवादियों को यह प्रदर्शित करने में सहायता नहीं करेगा कि उन्होंने मृतक की पर्याप्त देखभाल की है। यहाँ निरुद्ध केवल 2 1/2 वर्ष का है और स्पष्ट रूप से कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं है।

13. निजी प्रतिवादियों के अधिवक्ता का यह अभिकथन कि निरुद्ध की अभिरक्षा याचिकाकर्ता/साक्षी को सौंपने से उसके पालन-पोषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा इससे वह भावनात्मक रूप से भी प्रभावित होगा, आधारहीन है, क्योंकि तेजस्विनी गौड़ (उपरोक्त) वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने समान बिंदु पर विचार करते हुए प्रस्तर 36 में यह धारित किया था कि यदि अभिरक्षा पिता को नहीं दी जाती है, तो न्यायालय बच्चे और पिता दोनों को एक-दूसरे के प्रेम और स्नेह से वंचित करेगा, जिसके वे अधिकारी हैं तथा समय बीतने के साथ-साथ बच्चे का पिता के साथ अधिक लगाव विकसित हो सकता है तथा यदि अभिरक्षा से इनकार किया जाता है, तो बाद में बच्चा अपने पिता के पास जाने का अनिच्छुक हो सकता है, ऐसी स्थिति में पिता, बच्चे के प्रेम और स्नेह से पूर्णतः वंचित हो जाएगा। तेजस्विनी गौड़ वाद का प्रासंगिक प्रस्तर 36 अधोउद्धृत है:

> *"36. अपीलकर्ता का यह अभिकथन है कि बच्चे को प्रथम प्रतिवादी को सौंपने से उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और कुछ वर्षों के बाद बच्चे की अभिरक्षा सौंपी जा सकती है। बच्चा केवल 1 ½ वर्ष का है और जन्म के बाद लगभग चार माह तक बच्चा पिता के पास था। यदि प्रथम प्रतिवादी को अभिरक्षा नहीं दी जाती है, तो न्यायालय बच्चे और पिता दोनों को एक-दूसरे के प्रेम और स्नेह से वंचित करेगा, जिसके वे अधिकारी हैं। चूंकि बच्चा अभी कोमल आयु अर्थात 1 ½*

वर्ष का है, इसलिए इस स्तर पर उसकी पसंद का पता नहीं लगाया जा सकता है। समय बीतने के साथ, वह अपीलकर्ताओं के साथ अधिक घनिष्ठता विकसित कर सकता है, और कुछ समय बाद, वह अपने पिता के पास जाने का अनिच्छुक हो सकता है। ऐसी स्थिति में, प्रथम प्रतिवादी अपने बच्चे के प्रेम और स्नेह से पूर्णतः वंचित हो सकता है। बच्चे के कल्याण और उसकी अभिरक्षा रखने के पिता के अधिकार को ध्यान में रखते हुए और वाद के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने यह उचित ही धारित किया कि बच्चे के कल्याण के लिए बच्चे की अभिरक्षा प्रथम प्रतिवादी को सौंपना सर्वश्रेष्ठ होगा।"

14. प्रस्तुत वाद में, निरुद्ध की वर्तमान आयु 2 ½ वर्ष है और इस स्तर पर उसकी पसंद का भी पता नहीं लगाया जा सकता है। यह तथ्य विवादित नहीं है कि बच्ची कनिका गुप्ता अभिसाक्षी के साथ रह रही है जो उसकी अच्छी तरह से देखभाल कर रहा है। यदि अभिसाक्षी को निरुद्ध की अभिरक्षा देने से मना किया जाता है, तो न्यायालय पिता और बड़ी बहन, दोनों को निरुद्ध की संगति से वंचित कर देगा तथा निरुद्ध को पिता और बड़ी बहन की संगति से वंचित कर देगा। इसलिए, इस वाद के विशिष्ट तथ्यों में भी, तेजस्विनी गौड़ (उपरोक्त) वाद के प्रस्तर 36 में प्रस्तुत तर्क प्रयोज्य हैं।

15. इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि और बच्चे के समग्र कल्याण और पालन-पोषण को ध्यान में रखते हुए, याचिका स्वीकृत की जाती है। प्रतिवादी सं. 3 से 5 को बच्चे की अभिरक्षा अभिसाक्षी को तत्काल सौंपने का निर्देश दिया जाता है। इस स्तर पर, प्रतिवादी सं. 3, 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि उन्हें निरुद्ध से मिलने की अनुमति दी जा सकती है, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को कोई आपत्ति नहीं है।

16. बच्चे के हित और याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए वचन को ध्यान में रखते हुए, यह प्रावधान किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या. 3 से 5 को निरुद्ध से मिलने का अधिकार होगा।

17. प्रतिवादी सं. 1 और 2 इस आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेंगे।

(2023) 8 ILRA 1356

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 746 वर्ष 2023

अवधेश कुमार श्रीवास्तव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री पंकज कुमार श्रीवास्तव, श्री अस्तित्व श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 - पेंशन - पुरानी पेंशन योजना - अर्हक सेवा - दैनिक वेतनभोगी और कार्यभारित सेवा - 2021 का यूपी अधिनियम संख्या 1 - - याचिकाकर्ता ने अपनी पेंशन को नई पेंशन योजना में परिवर्तित करने के 31.05.2022 के आदेश को चुनौती दी और पुरानी पेंशन योजना के लाभों के लिए नियमित सेवा के साथ दैनिक वेतनभोगी और कार्यभारित कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवाओं को शामिल करने की मांग की - याचिकाकर्ता 01.05.1989 से दैनिक वेतनभोगी (गज रीडर) के रूप में कार्यरत था, 25.07.1997 को कार्यभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त हुआ और 29.09.2011 को नियमित हुआ - नए प्रवेशकों के लिए 01.04.2005 से नई पेंशन योजना शुरू की गई - प्रतिवादियों ने तर्क दिया कि 2011 में याचिकाकर्ता के नियमितीकरण ने उन्हें नई पेंशन योजना के अधीन कर दिया और 2021 के यूपी अधिनियम संख्या 1 ने दैनिक वेतनभोगी/कार्य-प्रभारित सेवा को अर्हक सेवा से बाहर कर **दिया** 2021 का अधिनियम संख्या 1, *प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* , (2019) 10 एससीसी 516 को रद्द करने के परीक्षणों को पूरा नहीं करता है, क्योंकि यह दैनिक वेतन/कार्य-प्रभारित सेवा को बाहर करने में मनमानी को संबोधित करने में विफल रहता है और समानों को असमान मानकर अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है - 01.05.1989 से की गई सेवा को अर्हक सेवा के रूप में गिना जाता है - याचिकाकर्ता 01.04.2005 के बाद नया प्रवेशी नहीं है, पुरानी पेंशन योजना का हकदार है - 31.05.2022 का आदेश रद्द - प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को पुरानी पेंशन योजना में रखने और दैनिक वेतन/कार्य-प्रभारित सेवा सहित पेंशन की गणना करने का निर्देश दिया गया - याचिकाकर्ता को प्राप्त अंशदायी निधि जमा करनी है। **रिट याचिका स्वीकार की जाती है।**

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

1. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 10 एससीसी 516

2. दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम बनाम बचन सिंह , (2009) 14 एससीसी 793

3. केसर चंद बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1988 पी एंड एच 265

4. ए. मंजुला भाषिनी बनाम प्रबंध निदेशक, आंध्र प्रदेश महिला सहकारी वित्त निगम लिमिटेड , (2009) 8 एससीसी 431

5. गुजरात के राज्य बनाम रमन लाल केशव लाल सोनी, (1983) 2 एससीसी 33

6. चेयरमैन, रेलवे बोर्ड बनाम सीआर रंगधामैया, (1997) 6 एससीसी 623

7. कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी, (2006) 4 एससीसी 1

8. राजस्व परिषद बनाम प्रसीद नारायण उपाध्याय, 2006 (62) एएलआर 839

9. राणा प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1996) ऑल एलजे 301

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री विक्रम बहादुर यादव को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 5-कार्यकारी अभियंता, जांच और योजना (जल संसाधन), डिवीजन मिर्ज़ापुर (फतेही सिंचाई कॉलोनी), मिर्जापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.05.2022 को चुनौती दी है, याचिकाकर्ता को पेंशन के लाभ को नई पेंशन में परिवर्तित कर दिया गया है और आगे परमादेश के एक रिट के लिए प्रार्थना की गई है जिसमें प्रतिवादीगण को उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा को दैनिक दांव के रूप में शामिल करने और नियमित सेवा के साथ कार्यभारित स्थापना और पुरानी पेंशन का अनुदान लाभ शामिल करने का निर्देश दिया जाए।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता प्रारंभ में 01.05.1989 को गेज रीडर के पद पर दैनिक वेतनभोगी के रूप में लगा था। कर्मचारियों के प्रमोशन के चलते कुछ पद खाली हो गए थे। अधीक्षण अभियंता ने कार्यकारी अभियंता को संबोधित दिनांक 24.07.1997 को एक पत्र जारी किया, जिसमें उन दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के नाम अग्रेषित किए गए, जिन्होंने सेवा में 240 दिन पूरे कर लिए हैं और चयन समिति द्वारा उक्त रिक्त पदों पर नियुक्ति के लिए योग्य पाए गए हैं। याचिकाकर्ता का नाम क्रमांक पर अंकित है। उक्त पत्र के साथ संलग्न सूची में क्रमांक 1. जिसके अनुपालन में, कार्यकारी अभियंता ने याचिकाकर्ता को दिनांक 25.07.1997 को एक नियुक्ति पत्र जारी किया, जिसमें उसे गेज रीडर के पद पर वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया। बाद में दिनांक 29.09.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा गेज रीडर के पद पर नियमित कर दी गयी। याचिकाकर्ता को प्रतिवादी क्रमांक 5 के कार्यालय से दिनांक 31.05.2022 को एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें बताया गया कि वह 30.06.2022 को सेवानिवृत हो रहा है और याचिकाकर्ता के संबंध में नई पेंशन योजना के लाभ से संबंधित कागजात संबंधित विभाग को भेज दिए गए थे।

4. याचिकाकर्ता ने उक्त पत्र से व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका दायर की है जिसमें प्रार्थना की गई है कि दैनिक वेतनभोगी और कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को वापस लिया जाए और पेंशन हेतु उनकी नियमित सेवा में गिना जाता है।

5. प्रतिवादीगण द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि

याचिकाकर्ता को अत्यावश्यकता के कारण दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक 25.07.1997 द्वारा कार्य प्रभार स्थापना में गेज रीडर के पद पर नियुक्त किया गया था। दिनांक 15.07.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएँ नियमित कर दी गयीं।

6. प्रतिवादीगण ने आगे अनुरोध किया कि उत्तर प्रदेश राज्य दिनांक 01.10.2019 से नई अंशदायी पेंशन योजना शुरु की गई। 01.04.2005 शासनादेश क्रमांक जी-33-379/एक्स-2005- 301(9) 2003 दिनांक 28.03.2005 द्वारा दिनांक 28.03.2005 के सरकारी आदेश के अनुसार उक्त योजना राज्य सरकार और सभी राज्य नियंत्रित स्वायत्त संस्थानों और राज्य सहायता प्राप्त निजी शैक्षणिक संस्थानों की सेवा में सभी नई भर्तियों पर अनिवार्य रूप से लागू की गई है।

7. आगे यह निवेदन किया गया है कि दिनांक 07.04.2005 की एक अन्य अधिसूचना के माध्यम से, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियम, 2005 को अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति के नियम (2) में उप-खंड (3) जोड़ा गया था। लाभ नियम, 1961 (बाद में 'नियम, 1961' के रूप में संदर्भित), जो यह प्रावधान करता है कि उक्त नियमों में से कुछ भी 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों पर लागू नहीं होगा। 07.04.2005 को राज्य सरकार ने एक और अधिसूचना जारी की सामान्य भविष्य निधि (यूपी) (संशोधन) नियम, 2005 को अधिसूचित किया गया। इसके बाद राज्य सरकार ने 14.08.2008 को एक कार्यालय आदेश जारी किया जिसमें नई पेंशन योजना को अधिसूचित किया गया जो 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में शामिल होने वाले व्यक्तियों पर लागू होती है।

8. प्रतिवादीगण का आगे का मामला यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता की सेवा वर्ष 2011 में नियमित हो गई थी, इसलिए, उसने 01.04.2005 के बाद सेवा में प्रवेश किया, और इस प्रकार, नियम, 1961 के प्रावधान याचिकाकर्ता पर लागू नहीं होते हैं, इसलिए, वह पुरानी पेंशन योजना से कवर नहीं है। आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता को नई पेंशन योजना के तहत PRAN नंबर 110052567014 आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता के साथ-साथ राज्य सरकार का योगदान उक्त PRAN नंबर में जमा किया गया था, और 30.06.2022 को याचिकाकर्ता की सेवानिवृति के बाद, सभी स्वीकार्य लाभों का भुगतान पहले ही किया जा चुका है। इस अधिनियम के अलावा किसी भी अन्य साधन में उस समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद, 'अर्हकारी सेवा' का निर्धारण 2021 के अधिनियम संख्या 1 की धारा 2 के प्रावधानों के अनुसार किया जाना है, न कि पिछले निर्णयों के अनुसार।

9. प्रतिवादीगण का आगे का मामला यह है कि प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य (2019) 10 एससीसी 516, में सर्वोच्च न्यायालय के

फैसले के बाद उत्तर प्रदेश राज्य ने आदेश 2021 का अधिनियम संख्या 1 'अर्हक सेवा' को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है पद के लिए सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाएँ जारी किया उ0प्र0 अधिनियम 2021 की धारा 4 के संख्या 1 में प्रावधान है कि इस अधिनियम के प्रावधान होंगे। राज्य सरकार और सभी राज्य नियंत्रित स्वायत संस्थानों और राज्य सहायता प्राप्त निजी शैक्षणिक संस्थानों की सेवा में नए प्रवेशकों पर लागू होगी। यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश सेवानिवृति लाभ नियमावली, 1961 में उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ (संशोधन) नियम, 2005 द्वारा शुरू किए गए नियम 2 के उप-नियम (3) को पढ़ने से पता चलता है कि नई पेंशन योजना कर्मचारियों पर 1 अप्रैल, 2005 को या उसके बाद पेंशन योग्य प्रतिष्ठान पर राज्य के मामलों के संबंध में सेवाओं में प्रवेश करना, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी लागू होगी ।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतन भोगी और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के तहत प्रदान की गई सेवा को पुरानी पेंशन योजना के अनुदान के लिए अर्हक सेवा की गणना से बाहर नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता प्रेम सिंह (अधिवक्ता) के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले का लाभ पाने का हकदार है और दैनिक वेतनभोगी के रूप में और कार्य-प्रभारित के रूप में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को जोड़ने का याचिकाकर्ता का अधिकार है। संशोधन के बल पर स्थापना को नकारा नहीं जा सकता। प्रस्तुत है कि उ.प्र. अधिनियम 2021 की धारा 2 संख्या 1 'अर्हक सेवा को परिभाषित करते हुए मनमाने ढंग से नियमितीकरण से पहले किसी कर्मचारी द्वारा दैनिक वेतनभोगी या कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के तहत प्रदान की गई सेवा को 'अर्हकारी सेवा' शब्द से बाहर कर देता है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अधिसूचना संख्या जी-3-379/एक्स-2005-301(9)-2003, दिनांक 28.05.2005 से यह स्पष्ट कि नई पेंशन योजना है

12. तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार जब याचिकाकर्ता नियमित सेवा के साथ- साथ कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का हकदार है, तो यह किसी भी तरह से नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता सेवाओं में नया प्रवेशकर्ता है। याचिकाकर्ता के रूप में राज्य सरकार ने गेज रीडर के पद पर दैनिक वेतन भोगी के रूप में नियुक्ति की तिथि पर राज्य सरकार की सेवा में प्रवेश किया और उसके बाद अपनी सेवानिवृति तक गेज रीडर के रूप में काम करना जारी रखा। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना द्वारा शुरु की गई नई पेंशन योजना याचिकाकर्ता पर लागू नहीं होती है। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया योजना के लाभ का हकदार है स्थान है कि याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन

13. इसके विपरीत, प्रतिवादीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क होगा कि प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले के बाद, राज्य सरकार ने पेंशन मान्यकरण के लिए उत्तर प्रदेश अर्हकारी सेवा अधिनियम, 2021 को प्रख्यापित किया है (यूपी अधिनियम 2021 का नंबर 1) 'योग्य सेवा' को परिभाषित करता है। उनका कहना है कि उ.प्र. की धारा 2 के अनुसार 2021 के अधिनियम संख्या 1 में 'अर्हकारी सेवा' का अर्थ है सरकार द्वारा पद के लिए निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवा। उन्होंने आगे कहा कि यू.पी. अधिनियम 2021 का संख्या 11 अप्रैल 1961 से लागू हुआ है जो कि उ.प्र. की धारा 3 से स्पष्ट है। 2021 का अधिनियम संख्या 1, इसलिए, प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का लाभ याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं है, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतनभोगी और कार्यभारित के रूप में प्रदान की गई सेवा पेंशन के लिए 'अर्हक सेवा' निर्धारित करने हेतु प्रतिष्ठान को उसकी नियमित सेवा में नहीं जोड़ा जा सकता।

14. उन्होंने आगे तर्क दिया कि यू.पी. राज्य राज्य सरकार और सभी राज्य नियंत्रित स्वायत संस्थानों की सेवा में नए प्रवेशकों के लिए मौजूदा पेंशन योजना के स्थान पर एक नई अंशदान पेंशन प्रणाली शुरु करने के लिए दिनांक 28.03.2005 को एक अधिसूचना जारी की गई है और राज्य सहायता प्राप्त निजी शिक्षण संस्थान, और तदनुसार, इसने यू.पी. नियम 1961 में संशोधन द्वारा किया नियम, 1961 के नियम 2 में उप-नियम (3) सम्मिलित करके सेवानिवृत्ति लाभ नियम 2005 में कहा गया है कि नियम 1961 राज्य के मामलों के संबंध में 1 अप्रैल, 2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश करने वाले कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा। पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, चाहे अस्थायी हो या स्थायी।

15. नियम, 1961 में उक्त संशोधन के आधार पर, उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता की सेवा दिनांक 29.09.2011 के आदेश द्वारा नियमित कर दी गई है, इसलिए, राज्य सरकार की सेवा में उनका प्रवेश 1 अप्रैल 2005, के बाद है और इसलिए, वह 28.03.2005 की अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार द्वारा शुरु की गई नई पेंशन योजना द्वारा शासित होगा और इसलिए, याचिकाकर्ता को नई पेंशन योजना के तहत रखा गया है।

16. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने 2021 की विशेष अपील संख्या 398 (श्री चंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) में इस न्यायालय के तीन निर्णयों पर भरोसा किया, 22.04.2022 को निर्णय लिया, 2023 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 17 (यूपी राज्य ने प्रमुख सचिव, सिंचाई विभाग और अन्य बनाम सदानानद के माध्यम से, 16.01.2023 और 2019 की विशेष अपील संख्या 80 (यूपी आवास एवं विकास परिषद लखनऊ और अन्य बनाम सैयद जलाल हैदर रिज़वी और अन्य) पर 24.01.2023 पर निर्णय लिया।

17. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

18. रिकॉर्ड से उभरे निर्विवाद तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता 01.05.1989 को गेज रीडर के पद पर दैनिक वेतन भोगी के रूप में कार्यरत था। इसके बाद, कर्मचारियों की पदोन्नति के कारण विभाग में पद रिक्त हो गया, अधीक्षण अभियंता ने दिनांक 24.07.1997 को एक पत्र द्वारा चयन समिति द्वारा जांचे गए दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के नाम भेजे, जिन्होंने 240 से अधिक दिन पूरे कर लिए हैं। दैनिक वेतन भोगी को कार्य प्रभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किये जाने हेतु उक्त सूची में याचिकाकर्ता का नाम एसआई क्रमांक 1 में आया। पत्र दिनांक 24.07.1997 के अनुसरण में, कार्यकारी अभियंता ने याचिकाकर्ता को 25.07.1997 को 775- 12-955-द० रो0-14-1025 रुपये के वेतनमान में गेज रीडर के रूप में नियुक्ति पत्र जारी किया।

19. इसके बाद, याचिकाकर्ता की सेवा को कार्यकारी अभियंता के आदेश दिनांक 29.09.2011 द्वारा गेज रेडर के पद पर नियमित कर दिया गया। याचिकाकर्ता का दावा है कि वह 01.05.1989 को गेज़ रीडर के रूप में नियुक्त हुआ था और गेज़ रीडर के रूप में अपनी सेवानिवृति तक प्रतिवादी संख्या 5 के कार्यालय में काम करता रहा, इसलिए, उसकी पिछली सेवा एक दैनिक वेतन भोगी और काम के तहत थी- आरोपित प्रतिष्ठान पेंशन के लिए गिने जाने के लिए उत्तरदायी हैं।

20. अब, उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, यह न्यायालय संबंधित वकीलों द्वारा दिए गए तर्कों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है।

21. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए पहला प्रश्न यह है कि क्या राज्य प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले को अस्वीकार या खारिज कर सकता है और एक कर्मचारी द्वारा दैनिक वेतन भोगी के रूप में बिताई गई सेवा के लाभ से इनकार कर सकता है और कार्य प्रभारित स्थापना के अंतर्गत पेंशन के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने हेतु उक्त अवधि को नियमित सेवा के साथ न जोड़कर उ.प्र. 2021 का एक्ट नंबर 1.

22. उक्त प्रश्न की सराहना करने के लिए, उस पृष्ठभूमि पर विचार करना उचित होगा जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय दिया है। उक्त मामले में शीर्ष अदालत के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या उत्तर प्रदेश की सिविल सेवा विनियमन की नियमावली, 1961 के नियम 3 (8) और विनियम 370 को इस तथ्य के मद्देनजर अल्ट्रा वायरस घोषित किया जाए कि शीर्ष अदालत ने इस मामले में दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम बनाम बचन सिंह, (2009) 14 एससीसी 793 ने केसर चंद बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1988 पी एवं एच 265 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा है। बराबर घोषित करते हुए पंजाब राज्य में 11 मटेरिया प्रावधान अधिनियमित किया गया, जिसमें पेंशन अल्ट्रा-वाइस के लिए अर्हक सेवा

से कार्य प्रभार सेवाओं की अवधि की गणना को बाहर रखा गया।

23. प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में पैराग्राफ संख्या 16 में शीर्ष न्यायालय ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के कैसर चंद के फैसले के पैराग्राफ 19 को नोट किया, जिसमें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने राज्य की कार्रवाई के समापन में कारणों का विवरण दिया था। पेंशन के लिए कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान पर कर्मचारी द्वारा की गई सेवा को नियमित सेवा से बाहर करने में सरकार मनमानी कर रही है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने माना कि

"कानूनों के समान संरक्षण का मतलब समान रूप से स्थित सभी व्यक्तियों के लिए समान कानूनों की सुरक्षा होना चाहिए। अनुच्छेद 14 मनमानी पर प्रहार करता है क्योंकि जो प्रावधान मनमाना है, उसमें समानता का निषेध शामिल है। यहां तक कि इसके तहत अस्थायी या स्थानापन्न सेवा भी शामिल है।" अर्हक सेवा के निर्धारण के लिए राज्य सरकार को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह अतार्किक प्रतीत होता है कि किसी कर्मचारी द्वारा अपने नियमितीकरण से पहले कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में बिताई गई सेवा की अवधि को उसकी अर्हक सेवा के निर्धारण के लिए ध्यान में नहीं रखा गया है। जो वर्गीकरण सरकारी कर्मचारियों के बीच बनाने की मांग की जाती है जो पेंशन के लिए पात्र हैं और जिन्होंने कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के रूप में शुरुआत की और उनकी सेवाएं बाद में नियमित हो गई, और अन्य किसी भी समझदार मानदंड पर आधारित नहीं हैं और इसलिए, कानून में टिकाऊ नहीं हैं। कार्यप्रभारित कर्मचारी की सेवाएँ नियमित हो जाने के बाद वह अन्य सेवकों की भाँति लोक सेवक है। उसे पेंशन से वंचित करना न केवल अन्यायपूर्ण और असमान है, बल्कि मनमानी की मार है, और इन कारणों से, नियमों के नियम 3.17 के उप-नियम (II) के प्रावधानों को रद्द करना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।"

24. केसर चंद (उपरोक्त) के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए कानून को बचन सिंह (उपरोक्त के मामले में और पंजाब एसईबी बनाम नराता सिंह केस (एससीसी पृष्ठ 530 प्रेम सिंह के फैसले के पैराग्राफ नंबर 18) के मामले में भी शीर्ष न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था।

25. वर्तमान मामले के संदर्भ में, प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ संख्या 20 को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जो निम्नानुसार है: -

"20. इस न्यायालय ने नराता सिंह (एससीसी पृष्ठ 324-25 और 328, पैरा 25-27 और 40) केसर चंद (उपरोक्त) के मामले में पर भरोसा किया और कहा:-

"25. केसर चंद बनाम पंजाब राज्य में, पूर्ण पीठ ने माना कि पंजाब सिविल सेवा नियमों का नियम 3.17 (ii) भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। पूर्ण पीठ के फैसले को एक विशेष अनुमति याचिका दायर करके इस

न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी जिसे खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, पूर्ण पीठ के फैसले द्वारा निर्धारित अनुपात कि कोई भी नियम जो किसी कर्मचारी की कार्य-प्रभारित सेवा की गिनती को बाहर करता है, जिसकी सेवाओं को बाद में नियमित किया गया है, को कानून की दृष्टि से खराब माना जाना चाहिए, इस न्यायालय द्वारा परेशान नहीं किया गया था। एक कर्मचारी जो अस्थायी या स्थानापन्न सेवा में था और जो पंजाब सिविल सेवा नियमों के नियम 3.17 (ii) में उल्लिखित कार्य-प्रभारित सेवा में था, के बीच किया गया अंतर तब गायब हो गया जब उक्त नियम को पूर्ण पीठ द्वारा रद्द कर दिया गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि अपनी सेवानिवृति की तारीख पर स्थायी पद पर रहने वाला एक कर्मचारी कार्य में सेवा की अवधि को अर्हक सेवा के रूप में पूरी तरह से गिनने का आरोपित प्रतिष्ठान हकदार था-

26. इस स्थापित स्थिति को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि पंजाब सरकार के तहत प्रतिवादी 1 द्वारा प्रदान की गई कार्य-प्रभारित सेवा पंजाब सरकार के नियमों के तहत पेंशन अनुदान के लिए योग्य थी और इसलिए, बोर्ड पेंशन अनुदान के लिए राज्य सरकार के साथ उसके द्वारा प्रदान की गई कार्य-प्रभारित सेवा की अवधि को शामिल करने के प्रतिवादी के दावे को इस आधार पर खारिज करना सही नहीं है कि उसके द्वारा पीएसईबी के बाहर और विभागों में कार्य-प्रभारित क्षमता में प्रदान की गई सेवा राज्य सरकार की एक गैर-पेंशन योग्य सेवा थी।

27. इस आशंका का कोई तथ्यात्मक आधार नहीं है कि प्रतिवादी 1 के मामले को स्वीकार करने से उन्हें पंजाब राज्य के कर्मचारियों का दर्जा मिल जाएगा। यह सच है कि राज्य सरकार को संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत अपने कर्मचारियों की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले नियम बनाने की शक्ति है, जबकि बोर्ड को बिजली (आपूर्ति) अधिनियम की धारा 79 (सी) के तहत नियम बनाकर सेवा की शर्तें निर्धारित करने की शक्ति है। 1948. हालांकि, किसी विशेष संस्था का शासन और भरने के निर्देश जारी करना उन क्षेत्रों में अंतर जहां वैधानिक प्रावधान लागू नहीं होते हैं, आधुनिक समय में प्रशासन के एक वैध तरीके के रूप में मान्यता प्राप्त है,

40. जहां तक इस तर्क का संबंध है, यह सत्य है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आक्षेपित निर्णय में उपरोक्त राय व्यक्त की है। हालांकि, पंजाब सिविल सेवा नियमों के नियम 3.17 (ii) के साथ-साथ केसर चंद बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले और 16-11 के बोलने वाले आदेश का संदर्भ- प्रतिवादी 1 के दावे को खारिज करते हुए बोर्ड द्वारा पारित 2005 यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को इस उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए राज्य सरकार के साथ कार्य-प्रभारित क्षमता में प्रतिवादी 1 द्वारा प्रदान की गई सेवा की अवधि की गणना करने का निर्देश दिया है। पेंशन. इसके अलावा, प्रतिवादी 1 को पेंशन जारी होने से पहले बोर्ड के निर्देशों के अनुसार अपीलकर्ताओं से प्राप्त कर्मचारी

अंशदायी निधि की राशि ब्याज सहित जमा करने का निर्देश दिया गया है।"

26. सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम सिंह (उपरोक्त के मामले में फैसले के पैराग्राफ संख्या 29 में उत्तर प्रदेश राज्य के अधिवक्ता की दलील पर गौर किया, जिसमें कार्य-प्रभारित कर्मचारियों और नियमित कर्मचारियों के बीच अंतर करने की मांग की गई थी। इस आधार पर बनाया गया है कि वर्कचार्ज कर्मचारियों को नियुक्त करने में उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है जबकि नियमित कर्मचारियों की नियुक्ति नियमों के अनुसार की जाती है और आगे वर्कचार्ज कर्मचारियों पर काम का उतना दबाव नहीं होता है और उनका काम नियमित कर्मचारियों से भौतिक और गुणात्मक रूप से भिन्न होता है। उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रस्तुत विवाद को सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम सिंह (उपरोक्त मामले में 15 पैराग्राफ संख्या 30 से 34 निरस्त कर दिया।

27. अनुच्छेद संख्या. निर्णय के 29 से 34 को यहां-नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"29. उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से अनुरोध किया गया है कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों और नियमित कर्मचारियों के बीच मामले को इस आधार पर अलग किया जाए कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है, उनके पास ऐसा नहीं है काम का दबाव बहुत अधिक है, वे असमान हैं और उनके साथ समान व्यवहार नहीं किया जा सकता है. कार्य-प्रभारित कर्मचारी एक बिल्कुल अलग वर्ग बनाते हैं, उनका काम भौतिक और गुणात्मक रूप से भिन्न होता है, कार्य-प्रभारित कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित सेवा के साथ जोड़ा नहीं जा सकता है और इसके विपरीत, यदि कार्य-प्रभारित कर्मचारी को नियमित सेवा में माना जाता है तो यह स्थायी और जिम्मेदार नियमित कर्मचारी को प्रोत्साहन और पुरस्कार देने की मूल अवधारणा को कमजोर कर देगा।

30. हम उपरोक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। प्रश्नाधीन कार्यप्रभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी तथा उन्हें दक्षता सीमा भी पार करनी थी। उनकी सेवाएँ नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से किस प्रकार भिन्न हैं? नीरस बयान देने के अलावा गुणात्मक अंतर दर्शाने वाली कोई भी सामग्री इंगित नहीं की गई है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्यभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है बल्कि, उस काम के लिए शोषणकारी शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके कार्य-प्रभारित रोजगार की अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है जो प्रकृति में नियमित और बारहमासी है।

31. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों से कार्य प्रभार के आधार पर कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर अपॉइंटमेंट का सहारा लेना चाहिए था। वर्कचार्ज के आधार पर लंबे समय तक काम लेना शोषणकारी युक्ति अपनाने के समान है। हालांकि बाद में उनकी सेवाएं नियमित कर दी गयीं हालांकि, उनके द्वारा कार्य-प्रभारित की गई अवधिस्थापना को अर्हक सेवा में नहीं

गिना गया है। इस प्रकार, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान उन्हें न केवल उनके उचित परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभ के लिए अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है, जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान नहीं की गई थी। अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3 (8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, कार्य-प्रभारित, आकस्मिकताओं या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने ऐसी सेवा प्रदान की है पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के बीच दिया गया हो या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के अंतराल में ऐसी सेवा प्रदान की हो। उपरोक्त अत्यावश्यक परिस्थितियों में कार्य-प्रभारित सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. प्रश्न उठता है कि क्या यह शर्त लगाना कि ऐसी सेवा को गिना जाना है, अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के बीच प्रदान की जानी चाहिए, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, हालांकि नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए, कर्मचारी ने इससे पहले अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, हालांकि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर और उसके बाद वेतनमान में किया गया था। कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान की दक्षता पट्टी को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियों के नियम 3 (8) के नोट में निहित शर्त के कारण यह अत्यधिक भेदभावपूर्ण और अतार्किक होगा, विशेष रूप से ऐसी सेवा की गणना नहीं करना, जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी या बीच में हो जाती है अस्थायी और स्थायी सेवाएँ। यदि कार्यभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई है तो उसकी गणना न करने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में नियम 3(8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और अतार्किक होगा। कार्यभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना है तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं खर्च की गई अवधि की गणना कर रहे हर्हो ऐसी सेवा में, कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। उस कार्य प्रभारित सेवा पर जो राइडर लगाया गया है वह अस्थायी क्षमता से पहले होना चाहिए, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा

और यह मानना होगा कि पहले भी प्रदान की गई सेवाएँ कार्य-प्रभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारियों या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में नियमितीकरण को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पहले न हुई हो।

28. शीर्ष न्यायालय ने प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में नियम 1961 के नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ा। नतीजतन, इसने दो बिंदुओं पर सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 370 और वितीय हैंडबुक के अनुच्छेद 669 में निहित प्रावधानों को रद्द कर दिया; किसी कर्मचारी द्वारा उसकी अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए उसके नियमितीकरण से पहले कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में बिताई गई सेवा को बाहर करने की राज्य की कार्रवाई किसी भी समझदार मानदंड पर आधारित नहीं है क्योंकि उसकी सेवा नियमित होने के बाद वह एक लोक सेवक बन जाता है, इसलिए, वंचित करना उनकी पेंशन न केवल अन्यायपूर्ण और असमान है, बल्कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 से प्रभावित है क्योंकि इस तरह के प्रावधान में समानता का खंडन शामिल है; दूसरे, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या में उल्लेख किया है। निर्णय की धारा 30 एवं 31 में कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को वर्षों तक कार्य पर बने रहने की अनुमति दी गई तथा राज्य ने शोषणकारी शर्तों पर ऐसे कर्मचारी से वह काम लेकर कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान की अवधारणा का दुरुपयोग किया था जो वास्तव में प्रकृति में नियमित और बारहमासी था। इसमें आगे कहा गया है कि राज्य ने मनमाने ढंग से काम किया है और कम वेतन पर वर्षों तक इन कार्य-प्रभारित कर्मचारियों से स्थायी और शाश्वत प्रकृति का काम लेने में अनुचित श्रम अभ्यास अपनाया है।

29. यह भी देखा गया कि कार्य-प्रभारित कर्मचारी द्वारा कम वेतन पर प्रदान की गई सेवा से राज्य को लाभ हुआ है, इसलिए, कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा नियमित सेवा के साथ शामिल करने से इनकार करना अन्यायपूर्ण होगा।

30. इस बिंदु पर, शीर्ष न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उचित होगा, जिसमें यह सिद्धांत दिया गया है कि न्यायिक निर्णय को पलटने के लिए वैध अधिनियम का अनुपालन करना होगा।

31. ए मंजुला भाषिनी और अन्य बनाम प्रबंध निदेशक, आंध प्रदेश महिला सहकारी वित निगम लिमिटेड और अन्य, (2009) 8 एससीसी 431 के मामले में, यह संक्षेप में बताया गया है कि विधायिका कब न्यायिक निर्णय को सीधे खारिज कर सकती है, पलट सकती है और रद्द कर सकती है निर्णय के पैराग्राफ संख्या 67,68 और 72 नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

67. विधायी और न्यायिक कार्यों के बीच अंतर सर्वविदित है। अपनी विधायी क्षमता के दायरे में और अन्य संवैधानिक सीमाओं के अधीन, कानून बनाने की विधायिका की

शक्ति पूर्ण है। उस शक्ति का प्रयोग करते हुए, विधायिका संभावित रूप से और साथ ही पूर्वव्यापी रूप से भी कानून बना सकती है। विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून के अनुसार पार्टियों के अधिकारों का निर्णय एक न्यायिक कार्य है। उस कार्य के निष्पादन में, न्यायालय क़ानून में सन्निहित विधायिका के इरादे और आदेश की व्याख्या करता है और उसे प्रभावी बनाता है। यदि अदालत को लगता है कि विशेष कानून विधायिका की शक्ति या संविधान के किसी प्रावधान के अधिकार के बाहर है, तो उसे रद्द किया जा सकता है।

68. यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि विधायिका केवल घोषणा के द्वारा, बिना किसी और बात के, किसी न्यायिक निर्णय को सीधे खारिज, उलट या रद्द नहीं कर सकती है। हालाँकि, यह संविधान के अनुच्छेद 245 और 246 द्वारा प्रदत्त पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एक वैध कानून बनाकर एक न्यायिक निर्णय को अप्रभावी बना सकता है, उन शर्तों को मौलिक रूप से बदल सकता है या बदल सकता है जिन पर ऐसा निर्णय आधारित है। ऐसा कानून भी हो सकता है। किसी मान्य तिथि के साथ या किसी विशेष तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया है। सवाल यह है कि क्या विधायिका के पास पहले से मौजूद फैसले को स्पष्ट रूप से प्रभावित करने वाला कानून बनाने या मौजूदा कानून में संशोधन करने की शक्ति है, जिसकी व्याख्या पहले ही न्यायालय द्वारा एक विशेष तरीके से की जा चुकी है। कई मामलों में विचार किया गया है

72. न्यायालय ने श्री पृथ्वी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम ब्रोच बरो नगर पालिका, पटेल गोरधनदास हरगोविंदा बनाम नगर निगम कमिश्नर, अहमदाबाद, ओरिएंट पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य, मिश्रीलाल जैन बनाम राज्य में पहले के निर्णयों का हवाला दिया। उडीसा सरकार, तीरथ राम राजिन्द्र नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सरकार ए.पी. बनाम हिंदुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, आई.एन. सक्सेना बनाम म.प्र. राज्य और कुछ अन्य निर्णय और आयोजितः (इंडियन एल्युमीनियम केस, एससीसी पृष्ठ 638-39)

"मान्यकरण अधिनियम की वैधता को निम्नलिखित परीक्षणों द्वारा आंका जाना चाहिए: (i) क्या विषय-वस्तु वैधीकरण अधिनियम को लागू करने वाली विधायिका के पास सक्षमता है: (ii) क्या विधायिका ने सत्यापन द्वारा उस दोष को दूर कर दिया है जो अदालत ने पिछले कानून में पाया था; (iii) क्या वैधीकरण कानून संविधान के अध्याय III के प्रावधानों के अनुरूप है। यदि ये परीक्षण संतुष्ट हैं, तो अधिनियम पिछले लेनदेन को मान्य कर सकता है जिन्हें अदालत ने असंवैधानिक घोषित किया था। विधायिका लागू कानून के संदर्भ में निर्णय लेने का दायित्व न्यायपालिका पर छोड़े बिना कानून के अपने अधिनियमन के आधार पर किसी मामले पर निर्णय देने की शक्ति नहीं ले सकती है। विधायिका उस आधार को ठीक से हटाए बिना जिस पर निर्णय आधारित है, अदालत के फैसले को पलटने में भी अक्षम है। अदालत के पास किसी अमान्य कानून को मान्य करने या अवैध रूप से बनाए और एकत्र किए गए कर

को वैध बनाने या अमान्यता के मानदंड को हटाने या कोई उपाय प्रदान करने की शक्ति नहीं है। ये न्यायिक कार्य नहीं हैं बल्कि विधायिका के विशिष्ट प्रांत हैं। इसलिए, वे न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण नहीं कर रहे हैं,

विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, विधायिका केवल घोषणा के द्वारा, बिना किसी और बात के, किसी न्यायिक निर्णय को सीधे तौर पर खारिज, संशोधित या रद्द नहीं कर सकती है। यह अपने विधायी क्षेत्र के भीतर इस विषय पर वैध कानून बनाकर मौलिक रूप से परिवर्तन करके या इसके चरित्र को पूर्वव्यापी रूप से बदलकर न्यायिक निर्णय को अप्रभावी बना सकता है। परिवर्तित या संशोधित शर्तें ऐसी होनी चाहिए कि न्यायालय द्वारा पिछला निर्णय नहीं दिया गया होता, यदि कानून को अमान्य घोषित करने के समय वे शर्तें मौजूद होती इसे पूर्वव्यापी कानून को एक विचारणीय तिथि के साथ या किसी विशेष तिथि से प्रभावी बनाने का भी अधिकार है...

32. गुजरात राज्य और अन्य बनाम रमन लाल केशव लाल सोनी और अन्य, (1983) 2 एससीसी 33, शीर्ष अदालत ने गुजरात पंचायत (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 1978 को अधिकारातीत घोषित कर दिया, जिसे उच्च न्यायालय के फैसले के आधार को रद्द करने के लिए अधिनियमित किया गया था, जिसके तहत उच्च कोर्ट ने याचिकाकर्ताओं को यह कहते हुए कुछ राहत दी है कि निचले कैडर से संबंधित पंचायत सेवा के सदस्य सरकारी सेवक थे और पदों के समीकरण, वेतनमान में संशोधन और वेतन के भुगतान के लिए परिणामी निर्देश जारी किए। फैसले का पैराग्राफ संख्या 52 यहां-नीचे यहां नी पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"52. कानून शुद्ध और सरल है, आत्म-धामक है, अगर हम विधायिका द्वारा बनाए गए कानून के संदर्भ में ऐसी अभिव्यक्ति का उपयोग कर सकते हैं। विधायिका निस्संदेह पूर्वव्यापी प्रभाव से प्राप्त किसी भी निहित अधिकार को छीनने या खराब करने के लिए कानून बनाने में सक्षम है। मौजूदा कानून लेकिन चूंकि कानून एक लिखित संविधान के तहत बनाए जाते हैं, और उन्हें संविधान के क्या करें और क्या न करें के अनुरूप होना चाहिए, न तो संभावित और न ही पूर्वव्यापी कानून बनाए जा सकते हैं ताकि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो। कानून को आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए संविधान आज पार्टियों के अर्जित या अर्जित अधिकारों को ध्यान में रखता है। कानून यह नहीं कह सकता कि बीस साल पहले पार्टियों के पास कोई अधिकार नहीं थे, इसलिए, यदि कानून बीस साल पहले का है तो संविधान की आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी। हम आज के अधिकारों के बारे में चिंतित हैं न कि कल के। कोई विधायिका बीस साल पहले की स्थिति के संदर्भ में आज कानून नहीं बना सकती है और बीस वर्षों के दौरान अर्जित घटनाओं और संवैधानिक अधिकारों की अनदेखी नहीं कर सकती है। यह अत्यंत मनमाना, अनुचित और इतिहास को नकारना होगा। बीएस में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इस ओर इशारा किया था। यादव, हरियाणा राज्य।

चंद्रचूड, सी.जे., ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहाः

"चूंकि राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत विधायी शक्ति का प्रयोग करते हैं, इसलिए उनके लिए उस प्रावधान के तहत बनाए गए नियमों को पूर्वव्यापी प्रभाव देने का अधिकार है। लेकिन नियमों को लागू करने की तारीख दिखानी होगी। या तो नियमों की दृष्टि से या बाहरी साक्ष्य के आधार पर, इसमें निहित प्रावधानों के साथ उचित संबंध हो नियम, खासकर जब पूर्वव्यापी प्रभाव इस मामले में लंबी अवधि तक फैलता है।"

आज के समकक्षों को यह कहकर असमान नहीं बनाया जा सकता कि वे बीस साल पहले असमान थे और हम आज एक कानून बनाकर और इसे पूर्वव्यापी बनाकर उस स्थिति को बहाल करेंगे। संवैधानिक अधिकारों, संवैधानिक दायित्वों और संवैधानिक परिणामों के साथ इस तरह से छेड़छाड़ नहीं की जा सकती। एक कानून जो यदि आज बनाया जाता है तो मौजूदा स्थिति के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने के कारण स्पष्ट रूप से अमान्य होगा, पूर्वव्यापी बनाये जाने से वैध नहीं हो सकता है। अतीत के गुण (संवैधानिक) को भूतलक्षी कानून बनाकर वर्तमान गुण (संवैधानिक) को मिटाने के लिए नहीं बनाया जा सकता। इसलिए, हमारा दृढ विचार है कि गुजरात पंचायत (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 1978 असंवैधानिक है, क्योंकि यह अनुच्छेद 311 और 14 का उल्लंघन करता है और मनमाना और अनुचित है। हमने इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या गुजरात पंचायत (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 1978 के किसी प्रावधान को बचाया जा सकता है। हमें डर है कि प्रावधान. एक-दूसरे से इस कदर गुंथे हुए हैं कि किसी भी जीवन रक्षक सर्जरी पर विचार करना लगभग असंभव है। संपूर्ण तीसरा संशोधन अधिनियम ख़त्म होना चाहिए। परिणाम में 1978 की रिट याचिका संख्या 4266-4270 को 15,000 रुपये की लागत के साथ अनुमति दी गई है। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश, जिनकी हमने पुष्टि की है, का अनुपालन 30 जून 1983 से पहले किया जाना चाहिए। इस बीच, पंचायतों के कर्मचारी अपील और रिट याचिकाओं द्वारा कवर किए गए रुपये की राशि 1 फरवरी 1978 से पहले उन्हें मिलने वाली परिलब्धियों से 200 प्रति माह अधिक प्राप्त होगी। यह आदेश 1 फरवरी 1983 से प्रभावी होगा। 20 फरवरी 1978 को दिया गया अंतरिम आदेश 31 जनवरी 1983 तक प्रभावी रहेगा। भुगतान की गई राशियाँ हैं बाद में समायोजित किया जाएगा।"

33. रेलवे बोर्ड अध्यक्ष, और अन्य बनाम सी.आर. रंगधमैय्या और अन्य, (1997) 6 एससीसी 623, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने रेलवे बोर्ड द्वारा अपने कर्मचारियों की पेंशन को पूर्वव्यापी प्रभाव से संशोधित करने के लिए जारी अधिसूचना की घोषणा की कि किसी संशोधन द्वारा निहित अधिकार या अर्जित अधिकार को छीना नहीं जा सकता। फैसले का पैरा-24 यहां- नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"24 इनमें से कई निर्णयों में "निहित अधिकार" या "अर्जित अधिकार" अभिव्यक्तियों का

उपयोग उन विवादित प्रावधानों को रद्द करते समय किया गया है जिन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था ताकि पदोन्नति, वरिष्ठता, मूल के मामले में प्रतिकूल प्रभाव पड़ सके। कर्मचारियों की नियुक्ति, आदि उक्त अभिव्यक्तियों का उपयोग प्रासंगिक नियम के तहत आने वाले अधिकार के संदर्भ में किया गया है, जिसे पूर्व तिथि से बदलने की मांग की गई थी और इस तरह लागू नियम के तहत उपलब्ध लाभों को छीन लिया गया था। उस समय यह माना गया है कि पूर्वव्यापी प्रभाव वाला ऐसा संशोधन, जिसका प्रभाव मौजूदा नियम के तहत कर्मचारी को पहले से उपलब्ध लाभ को छीनने का है, मनमाना, भेदभावपूर्ण और संविधान अनुच्छेद 14 और 16 के तहत गारंटीकृत अधिकारों का उल्लंघन है। हम यह मानने में असमर्थ हैं कि ये निर्णय रोशन लाल टंडन, बी.एस. यादव और रमन लाल केशव लाल सोनी के निर्णयों के अनुरूप नहीं हैं।"

34. शीर्ष न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं, जिन्हें वैध अधिनियम को न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किए गए पिछले लेनदेन को मान्य करने के लिए संतुष्ट करना होगाः-

(i) क्या मान्य अधिनियमों को अधिनियमित करने वाली विधायिका के पास विषय वस्तु पर क्षमता है;

(ii) क्या विधायिका ने सत्यापन द्वारा उस दोष को दूर कर दिया है जो न्यायालय ने पिछले कानून में पाया था;

(iii) क्या मान्य कानून सुसंगत संविधान के अध्याय ।।। के साथ है।

35. यह न्यायालय अब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ रहा है कि क्या यू.पी. अधिनियम 2021 का संख्या 1 याचिकाकर्ता को प्रेम सिंह (उपरोक्त के फैसले के लाभ को नकारने के लिए उपरोक्त मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों को पूरा करता है।

36. जहां तक उत्तर प्रदेश अधिनियम 2021 के संख्या 1 का संबंध है में कानून बनाने की राज्य सरकार की क्षमता का संबंध है, यह ध्यान रखना उचित है कि राज्य सरकार के पास यूपी 2021 का एक्ट नंबर 1. में कानून बनाने की क्षमता है।

37. लेकिन क्या यू.पी. अधिनियम 2021 का संख्या 1 याचिकाकर्ता को प्रेम सिंह (उपरोक्त) के फैसले का लाभ देने से इनकार करने के लिए अन्य दो शर्तों को भी पूरा करता है, जो वर्तमान मामले में एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। यह न्यायालय नीचे दर्ज कारणों से यह निष्कर्ष निकालता है कि यू.पी. अधिनियम 2021 का संख्या 1 अन्य दो परीक्षणों को पूरा नहीं करता है, अर्थात्, यह प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा बताई गई बुराई को समाप्त नहीं करता है और न ही उक्त अधिनियम भारत का संविधान भाग-।।। के अनुरूप है।.

38. प्रेम सिंह (उपरोक्त) (एससीसी पृष्ठ 540 पैरा 30, 31) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बताया है कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को वर्षों तक जारी रखने की अनुमति दी गई थी और उनमें और नियमित कर्मचारियों के बीच गुणात्मक अंतर ऐसा नहीं था। इसके अलावा, कार्य- प्रभारित कर्मचारी की अवधारणा का राज्य सरकार द्वारा अपने लाभ के लिए दुरुपयोग और शोषण किया गया है, क्योंकि नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्य-प्रभारित कर्मचारी की मूल अवधारणा है, बल्कि ऐसे कर्मचारियों को अनुमति दी गई थी उस काम के लिए शोषणकारी शर्तों पर काम करना जो प्रकृति में नियमित और बारहमासी था।

39. इसमें आगे कहा गया है कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों को नियमितीकरण से पहले लंबे समय तक कम वेतन पर काम करने की अनुमति दी गई है, और उनकी सेवाओं से राज्य सरकार को लाभ हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में दैनिक वेतनभोगी या कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के तहत लगे कर्मचारियों से स्थायी और बारहमासी प्रकृति का काम लेने की प्रथा को खारिज कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप, यह माना गया कि यह होगा पेंशन के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए कार्य-प्रभारित कर्मचारी द्वारा नियमित सेवा के साथ प्रदान की गई अवधि को बाहर करना अन्यायपूर्ण है। प्रतिवादीगण ने यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं रखी है कि यू.पी. 2021 का अधिनियम संख्या 1 प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई बुराई को मिटा देता है।

40. इस संबंध में, यह ध्यान रखना उचित है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने रिट के एक समूह में याचिकाएँ, जिनमें से प्रमुख 2022 की रिट-ए संख्या 8968 है, यह देखने के बाद कि यू.पी. 2021 का अधिनियम संख्या 1 प्रेम सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फैसले के पैरा 12 में बताए गए दोषों को इस प्रकार दूर नहीं करता है:-

"12. उपरोक्त के आलोक में, चूंकि 2021 के अधिनियम की धारा 2 भी प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा बताए गए दोषों से ग्रस्त है, इसलिए, मनमानी से बाहर लाने के लिए, इसे पढ़ा जाता है अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाओं को सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के रूप में पढ़ा जाता है, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हो। इसलिए, यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता भी प्रेम सिंह (उपरोक्त) के फैसले के लाभ के हकदार हैं, सभी विवादित आदेश निरस्त किये जाते हैं। दिहाड़ी मजदूरः"

41. अब, अदालत इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ती है कि क्या यू.पी. एक्ट 2021 का नंबर 1 भारत के संविधान के भाग III के अनुरूप है। प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत ने बचन सिंह के मामले में अपने फैसले पर ध्यान दिया, जिसने केसर चंद के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा, जिसमें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने माना कि कोई भी

नियम जो गिनती को बाहर करता है। किसी कर्मचारी की कार्य-प्रभारित सेवा, जिसकी सेवाओं को बाद में नियमित कर दिया गया है, को कानून की नजर में खराब माना जाना चाहिए क्योंकि ऐसा अंतर किसी भी समझदार मानदंड पर आधारित नहीं है।

42. फैसले के पैरा-33 में यह भी कहा गया कि यह भेदभावपूर्ण होगा और नियमित सेवा के साथ कार्यभारित कर्मचारी के रूप में बिताई गई सेवा की अवधि की गणना न करना तर्कहीन है, हालांकि ऐसी सेवा की अवधि को गिना जा सकता है, जहां यह पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के बीच प्रदान की गई हो। नतीजतन, यह माना गया कि पेंशन के उद्देश्य के लिए 'योग्य सेवा' निर्धारित करने के लिए नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा की गणना नहीं करने का कोई औचित्य नहीं है। नतीजतन, इसने पेंशन नियम, 1961 के नियम 3(8) को पढ़ा।

43. इस न्यायालय का विचार है कि किसी कर्मचारी द्वारा कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या दैनिक वेतनभोगी पर प्रदान की गई सेवा को यूपी की धारा 2 से बाहर करने में राज्य की कार्रवाई 2021 का अधिनियम संख्या 1 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 से प्रभावित है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान पर किसी कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवा को नियमित सेवा से बाहर करना समान माना जाएगा। इसके अलावा, पेंशन के लिए अर्हक सेवा का निर्धारण करने के लिए किसी कर्मचारी की कार्य-प्रभारित या दैनिक मजदूरी के रूप में की गई सेवा को नियमित सेवा से बाहर करने का कोई औचित्य नहीं है, जबकि किसी कर्मचारी द्वारा अस्थायी या स्थायी पद के रूप में की गई सेवा की अवधि को गिना जा सकता है। अर्हता प्राप्त करने के उद्देश्य से सेवा जब दैनिक वेतनभोगी या कार्यभारित प्रतिष्ठान या अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त व्यक्ति द्वारा किए गए कर्तव्यों की प्रकृति समान और समान हो।

44. यह निष्कर्ष निकालने का दूसरा कारण कि यूपी अधिनियम 2021 के संख्या 1 की धारा 2 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 से प्रभावित है, यह है कि राज्य अपनी मनमानी कार्रवाई से प्रतिष्ठान या दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले कर्मचारी को कार्य प्रभार पर नहीं रख सकता है। ऐसे कर्मचारी से वर्षों तक कम वेतन पर स्थायी प्रकृति का काम लेने और कार्य प्रभार स्थापना के तहत या दैनिक वेतनभोगी के रूप में ऐसे कर्मचारी द्वारा की गई सेवा की अवधि को पेंशन के लिए अर्हक सेवा की गणना के लिए नियमित सेवा से बाहर करने से नुकसान होता है जब कर्तव्यों की प्रकृति का पालन किया जाता है। ऐसे कर्मचारी राज्य सरकार द्वारा बनाए गए सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी और स्थायी पद पर नियुक्त कर्मचारी द्वारा किए गए कर्तव्यों की प्रकृति के समान हैं और उनकी सेवाएं अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए गिना जाने योग्य हैं।

45. कानून में यह तय है कि अर्जित या निहित अधिकार को किसी संशोधन द्वारा

छीना नहीं जा सकता। इस बिंदु पर कानून कि पेंशन कोई इनाम नहीं है और कर्मचारी द्वारा अपनी लंबी सेवा के आधार पर अर्जित की जाती है, अब इंटीग्रा नहीं है। वर्कचार्ज कर्मचारी या दैनिक वेतनभोगी को उनकी प्रदान की गई सेवा को वर्कचार्ज के अंतर्गत शामिल करने का अधिकार पेंशन के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए नियमित सेवा वाले प्रतिष्ठान या दैनिक- मजदूरी को सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम सिंह के मामले में मान्यता दी है, इसलिए, किसी कर्मचारी का ऐसा अधिकार कानून बनाकर नहीं छीना जा सकता है जो भारत का संविधान. अनुच्छेद 14 से प्रभावित है।

46. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि यू.पी. अधिनियम 2021 का संख्या 1, प्रेम सिंह के मामले (उपरोक्त में शीर्ष न्यायालय के फैसले के लाभ को नकारने के लिए ऊपर उल्लिखित निर्णयों में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित तीन परीक्षणों पर खरा नहीं उतरता है।

47. 2021 की विशेष अपील संख्या 152 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 2017 की रिट- ए संख्या 35301 में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले की पुष्टि की है, जिसके तहत विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी भानु प्रताप की रिट याचिका को निर्देश देते हुए अनुमति दी है।

राज्य अधिकारी उन्हें पुरानी पेंशन योजना का लाभ दें। इस न्यायालय ने धारा 2 को ध्यान में रखते हुए उ.प्र. अधिनियम 2021 का क्रमांक 1 इस प्रकार है:-

"यूपी अधिनियम 2021 के की धारा 2 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सेवानिवृति लाभ नियम, 1961 या सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 और 370 में निहित किसी भी चीज़ के बावजूद इसका प्रभाव होगा। हालांकि, इसे ध्यान से पढ़ने से पता चलता है कि " अर्हक सेवा" का तात्पर्य सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से है।

माना कि, याचिकाकर्ता को 10.05.1989 को आज़मगढ़ में वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। हालांकि उनकी सेवाएँ 15.6.2011 को नियमित कर दी गई। सेवा नियमितीकरण स्थायी पद के विरुद्ध था और ऐसा नहीं है कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति सेवा नियमावली के अनुरूप नहीं थी.

उपरोक्त के आलोक में, वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में कार्य करते हुए सेवा में बिताई गई अवधि अस्थायी आधार पर हो सकती है, नियमितीकरण के साथ आगे बढ़ने पर, पिछली सेवाओं के लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर जब आक्षेपित आदेश का परीक्षण किया गया तो उसे गलत नहीं ठहराया जा सकता।

जिसके मद्देनजर कोई भोग नहीं बनता है.

नतीजतन, अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है। कोई लागत नहीं।"

48. यूपी राज्य 2021 की विशेष अपील संख्या 152 में फैसले के खिलाफ 2022 की विशेष अनुमति अपील (सी) संख्या (एस) 16381 के रूप में पंजीकृत विशेष अनुमति याचिका में चला गया। विशेष अनुमति याचिका को शीर्ष अदालत ने दिनांक 11.07 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। 2022. शीर्ष अदालत ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन करने के लिए आठ सप्ताह का समय दिया। शीर्ष अदालत का दिनांक 11.07.2022 का निर्णय यहां-नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम वर्तमान याचिका पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं।

तदनुसार, विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है। लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई हो, का निपटारा कर दिया जाएगा।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन करने के लिए आठ सप्ताह का समय मांगा और भुगतान के रूप में दिया गया।

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आगे कोई विस्तार मंजूर नहीं होगा

49. इस न्यायालय ने यूपी राज्य द्वारा दायर 2020 की एक और विशेष अपील संख्या 475 को खारिज कर दिया। एक रिट याचिका में 2 जुलाई 2019 के आदेश को चुनौती देते हुए कहा गया कि याचिकाकर्ता द्वारा संग्रह चपरासी के रूप में प्रदान की गई सेवा पेंशन लाभ के लिए गिना जाने योग्य है।

50. 2020 की विशेष अपील संख्या 475 में पारित निर्णय दिनांक 12.07.2021 का प्रासंगिक उद्धरण यहां नीचे दिया गया है:-

"हमने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और याचिकाकर्ता/गैर-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह की गई दलीलों पर विचार किया है।

यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता/गैर-अपीलकर्ता को 20 फरवरी, 1976 को सीजनल कलेक्शन चपरासी के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्होंने 31 जुलाई, 2010 को अपने नियमितीकरण तक प्रतिवादियों के साथ काम करना जारी रखा। याचिकाकर्ता/गैर-अपीलार्थी 31 फरवरी को सेवा से सेवानिवृत्त हो गए। मार्च, 2012. चूंकि उन्हें सेवानिवृति से पहले सेवा में नियमित किया गया था, इसलिए वे राजस्व बोर्ड और अन्य बनाम प्रसिद्ध नारायण उपाध्याय, 2006 (62) एएलआर 839 के मामले में इस न्यायालय के फैसले के मद्देनजर सेवानिवृत्ति लाभों के हकदार बन गए। उसी विवाद का फैसला किया। यह माना गया कि एक बार जब किसी कर्मचारी को सेवा में नियमित कर दिया जाता है तो उसकी सभी पिछली सेवाओं को निर्धारण के लिए आवश्यक लाभ गिना जाएगा। यह अस्थायी आधार पर प्रारंभिक नियुक्ति के बावजूद है।

प्रिसिध नारायण (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा भरोसा किए जाने पर, हमें अपील में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है। अधिक। इसलिए, इसी मुद्दे

पर इस न्यायालय द्वारा 2021 की विशेष अपील दोष संख्या 156 (यूपी राज्य और 4 अन्य बनाम नारायण सिंह शर्मा) दिनांक 19 फरवरी, 2021 की अपील में निर्णय लिया गया था।

उपरोक्त के प्रकाश में, यह अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है।"

51. यूपी राज्य फिर से विशेष अनुमति याचिका क्रमांकित विशेष अनुमति अपील (सी) संख्या के लिए पसंदीदा 9883-9884/2022 जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.07.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित करके खारिज कर दियाः-

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम वर्तमान याचिकाओं पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं।

तदनुसार, विशेष अनुमति याचिकाएं खारिज की जाती हैं। लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई हो, का निपटारा कर दिया जाएगा।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन करने के लिए आठ सप्ताह का समय मांगा और भुगतान के रूप में दिया गया।

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आगे कोई विस्तार नहीं दिया जाएगा।"

52. 2020 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 564 में, राज्य सरकार ने इस न्यायालय द्वारा 2018 की रिट-ए संख्या 10116 में पारित दिनांक 18.09.2019 के आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत विशेष अपीलीय न्यायालय ने रिट-ए संख्या में पारित निर्णय की पुष्टि की। 2018 का 10116 याचिकाकर्ता को पेंशन का लाभ प्रदान करता है। फैसले का प्रासंगिक उद्धरण यहां- नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"जवाबी हलफनामे में दिए गए तथ्यों का अवलोकन करने पर, हम पाते हैं कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि मौसमी संग्रह अमीन नियुक्त होने पर, पद के लिए स्वीकार्य नियमित वेतनमान प्रतिवादी-याचिकाकर्ता को दिया गया था और इसे समय-समय पर संशोधित भी किया गया था। समय-समय पर। अपीलकर्ता-प्रतिवादियों ने प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के वेतन से आयकर भी काटा। नियमित वेतनमान का अनुदान ही इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त है कि प्रतिवादी-याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियमित आधार पर पर हुई थी और इस तरह वह सेवानिवृति के बाद के लाभों का हकदार है।"

53. उक्त फैसले के खिलाफ, राज्य सरकार ने अपील (सी) संख्या. 12588 ऑफ 2021 के लिए विशेष अनुमति को प्राथमिकता दी, जिसे शीर्ष अदालत ने 23.08.2021 को निम्नलिखित आदेश पारित करके खारिज कर दियाः

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

हमें आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है, क्योंकि याचिकाकर्ता को शुरू में सीजनल संग्रह अमीन

के रूप में वर्ष 1978 में नियुक्त किया गया था, और 1988 से नियमित वेतनमान बढ़ाया गया था और समय-समय पर उसका वेतन संशोधित भी किया गया था। जब तक वह सेवानिवृति की आयु प्राप्त नहीं कर लेता।

मामले को देखते हुए, विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।"

54. यह न्यायालय उपरोक्त मामलों में लगातार यू.पी. अधिनियम 2021 के संख्या 1 को ध्यान में रखते हुए उस कानून को मंजूरी दे दी जो सेवा को कार्य-प्रभारित के रूप में प्रदान की गई है। पेंशन के लिए अर्हक सेवा निर्धारित करने के लिए कर्मचारी या दैनिक वेतनभोगी को नियमित सेवा के साथ गिना जाने के लिए उत्तरदायी है, और सभी मामलों में राज्य सरकार द्वारा पसंदीदा अपील की विशेष अनुमति को राज्य सरकार को अनुपालन करने के निर्देश के साथ आदेश में निर्धारित अवधि के भीतर उच्च न्यायालय के आदेश खारिज कर दिया गया है।

55. अब, उन निर्णयों पर आते हैं जिन पर प्रतिवादीगण द्वारा भरोसा किया गया है, यह न्यायालय यह नोट कर सकता है कि उन निर्णयों में कानून के सिद्धांतों पर विचार नहीं किया गया है सर्वोच्च न्यायालय ने ऊपर दिए गए निर्णयों में बताया है कि विधायिका कब फैसले को पलट सकती है। इसके अलावा, उन निर्णयों में ऊपर उल्लिखित विशेष अपीलों में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों और उन निर्णयों के खिलाफ विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

56. यह भी ध्यान रखना उचित है कि किसी निर्णय को पेरिनक्यूरियम तब कहा जा सकता है जब वह न्यायालय द्वारा प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों और या समन्वय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय या उच्चतर न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय की अनदेखी में दिया गया हो। अदालत। इस संबंध में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने राणा प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) 1 ऑल सीजे 200: (1996 ऑल एलजे 301) में निम्नानुसार निर्धारित किया है (पृ. 308 पर) सभी एलजे के):-

"यही वह है जो अब हमें प्रति इंक्यूरियम नियम के मापदंडों का गठन करता है। जैसा कि पंजाब भूमि और मनोरंजन निगम लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी श्रम न्यायालय, (1990) 3 एससीसी 682 में सुप्रीम कोर्ट ने समझाया, "लैटिन अभिव्यक्ति प्रति इंक्यूरियम का अर्थ है असावधानी से। एक निर्णय को आम तौर पर तब दिया गया कहा जा सकता है जब इस न्यायालय ने इस न्यायालय के किसी बहुमूल्य निर्णय को अनभिज्ञतापूर्वक कार्य किया हो अपने स्वयं के या समन्वित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय का निर्णय जिसने उसके समक्ष मामले को कवर किया, या जब उसने हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय की अनदेखी करते हुए कार्य किया हो।"

प्रति इंक्यूरियम नियम की एक समान व्याख्या यूपी राज्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स

लिमिटेड, (1991) 4 एससीसी 139 में पाई जाती है, अर्थात्,

"इंकुरिया" का शाब्दिक अर्थ है 'लापरवाही'। व्यवहार में प्रति इंक्यूरियम का अर्थ प्रति इग्नोरेटियम प्रतीत होता है। अंग्रेजी अदालतों ने घूरकर निर्णय लेने के नियम में ढील देने के लिए इस सिद्धांत को विकसित किया है। 'कानून में उद्धृत करने योग्य' को टाला जाता है और अनदेखा कर दिया जाता है यदि इसे 'किसी कानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकारी की अज्ञानता में' प्रस्तुत किया जाता है। (यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन कंपनी लिमिटेड) (1944 1 केबी 718): (1944) 2 सभी ईआर 293।"

57. **चंद्र सिंह (उपरोक्त)** के मामले में, चंद्र सिंह की पेंशन दिनांक 16.05.2018 के आदेश से कम कर दी गई थी, इसके बाद, उन्होंने 2021 की रिट-ए संख्या 20874 (एस/एस) दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, और उनकी रिट याचिका खारिज कर दी गई और विशेष अपील भी विशेष अपील न्यायालय द्वारा दिनांक 22.04.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। विशेष अपील न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि चूंकि सीजनल संग्रह अमीन को केवल निर्दिष्ट कर्तव्य के लिए सीमित अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है, जिसके पूरा होने पर उसे सेवामुक्त कर दिया जाता है, इसलिए सीजनल संग्रह अमीन द्वारा रुक-रुक कर किया जाने वाला कर्तव्य इस श्रेणी में नहीं आएगा। सिविल सेवा विनियमावली के नियम 352 (ए) के दायरे में "उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा"।

58. यह ध्यान रखना उचित हो सकता है कि इस न्यायालय ने चंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में ऐसा नहीं किया अपील की विशेष अनुमति (सी) संख्या में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर ध्यान दें। 2021 का 12588 दिनांक 23.08.2021, ऊपर निकाला गया, 2020 की विशेष अपील संख्या 564 में इस न्यायालय के फैसले की पुष्टि करता है।

59. जहां तक 16.01.2023 को सदानंद (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले का सवाल है, उक्त निर्णय में 2020 की विशेष अपील संख्या 475 और विशेष अपील संख्या में इस न्यायालय के फैसले पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। 152 ऑफ 2021, जिसके खिलाफ विशेष अनुमति याचिकाएं शीर्ष द्वारा खारिज कर दी गई हैं।

60. इसके अलावा, उक्त निर्णय में इस मुद्दे पर विचार नहीं किया गया है कि क्या यू.पी. 2021 का अधिनियम संख्या 1 किसी फैसले को पलटने के लिए विभिन्न घोषणाओं में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित तीन परीक्षणों को पूरा करता है।

61. इसी प्रकार, सैयद जलाल हैदर (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय का 2019 की विशेष अपील संख्या 80 में पारित निर्णय, 24.01.2023 को दिया गया निर्णय भी प्रतिवादीगण को बचाने के लिए नहीं आता है क्योंकि न्यायालय ने विशेष अपील को खारिज

कर दिया है सदानंद केस (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, 16.01.2023 को निर्णय लिया गया।

62. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैरा-5 में कहा गया है कि वह 01.05.1989 को गेज़ रीडर की 37 पोस्ट दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में कार्यरत था।

जवाबी हलफनामे में प्रतिवादीगण द्वारा इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है। यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र दिनांक 24.07.1997 में उल्लिखित वेतनमान पर कार्यकारी अभियंता के आदेश दिनांक 24.07.1997 द्वारा कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था, और बाद में, याचिकाकर्ता को नियमित कर दिया गया था। गेज रीडर के रूप में आदेश दिनांक 29.09.2011. यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता वर्ष 1989 में सगाई की तारीख से उनकी सेवानिवृत्ति तक गेज रीडर के पद पर बना रहा।

63. उपरोक्त तथ्य यह स्थापित करते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति स्थायी और बारहमासी थी। इसके अलावा, याचिकाकर्ता से दैनिक वेतन भोगी के रूप में काम लेने और उसके बाद कम वेतन देकर लगभग 21 वर्षों तक कर्मचारी से काम लेने की प्रतिवादियों की कार्रवाई प्रतिवादीगण द्वारा शक्तियों के मनमाने ढंग से प्रयोग के अलावा और कुछ नहीं है और एक अनुचित श्रम है। अभ्यास।

64. यह नोट करना भी प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता अन्य नियमित कर्मचारियों के समान कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था, और इसलिए, अनुदान के प्रयोजन के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतनभोगी के रूप में और उसके बाद कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में काम की गई अवधि को छोड़कर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के लागू होने से पेंशन मनमाना और भेदभावपूर्ण प्रभावित होगी इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता की दैनिक वेतनभोगी के रूप में नियुक्ति की तारीख से यानी 01.05.1989 को की गई सेवा को याचिकाकर्ता को पेंशन लाभ देने के लिए नियमित सेवा के साथ गिना जाएगा।

65. अब, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता की दूसरी दलील पर आते हैं कि चूंकि याचिकाकर्ता की सेवा दिनांक 29.09.2011 के आदेश द्वारा नियमित कर दी गई है, इसलिए याचिकाकर्ता को 01.04.2005 के बाद राज्य सरकार के साथ सेवा में शामिल माना जाएगा। नई पेंशन योजना लागू होने के कारण उन्हें पुरानी पेंशन योजना का लाभ नहीं दिया जा सकता। इस संबंध में, यह नोट करना उचित है कि इस न्यायालय ने उपरोक्त विस्तृत कारण दिए हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा दैनिक वेतनभोगी और कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में प्रदान की गई सेवाएं पेंशन के लिए अर्हक सेवा के निर्धारण के लिए गिना जाने योग्य हैं।

66. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, यह दलील कि याचिकाकर्ता का राज्य सरकार की सेवा में प्रवेश 01.04.2005 के बाद हुआ है,

इसलिए, वह नई पेंशन योजना के अंतर्गत आता है, गलत धारणा है। दिनांक 28.03.2005 की अधिसूचना के उद्देश्य और कारणों के विवरण को पढ़ने से पता चलता है कि उक्त योजना राज्य सरकार और सभी राज्यों की सेवा में नए प्रवेशो पर लागू होती है। नियंत्रित स्वायत्त संस्थान और राज्य सहायता प्राप्त निजी शैक्षणिक संस्थान जहां मौजूदा पेंशन योजना सरकारी कर्मचारियों के लिए योजना के अनुरूप है और राज्य सरकार के समेकित निधि द्वारा वित पोषित है।

67. संशोधन नियम, 2005 द्वारा नियम 1961 के नियम 2 में शामिल उप-नियम (3) में प्रावधान है कि ये नियम राज्य के मामलों के संबंध में 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश करने वाले कर्मचारियों पर लागू नहीं होंगे। पेंशन योग्य प्रतिष्ठान पर वहन किया जाता है चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, जिसका अर्थ है कि नियम, 1961 उन सरकारी कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं जिन्होंने 01.04.2005 को या उसके बाद सेवा में प्रवेश किया है।

68. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने 01.04.2005 के बाद सेवा में प्रवेश किया है, क्योंकि यह निर्विवाद है कि वह 01.05.1989 को गेज़ रीडर के पद पर दैनिक वेतन भोगी के रूप में कार्यरत था। इसके बाद, उन्हें 25.07.1997 को कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता को राज्य सरकार के कोष से मजदूरी का भुगतान किया गया था। यद्यपि याचिकाकर्ता उस लाभ का आनंद नहीं ले रहा था जो नियमित कर्मचारियों को उपलब्ध था, तथ्य यह है कि वह राज्य अधिकारियों की देखरेख में राज्य सरकार की स्थापना में काम कर रहा था और उसे वेतन का भुगतान किया जा रहा था। राज्य सरकार द्वारा दैनिक वेतनभोगी के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख से यानी 01.05.1989 से 40 रु.

69. इस संबंध में 2013 बाघेश्वरी प्रसाद की रिट-ए संख्या 28543 में पारित निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा, जिसमें इस न्यायालय ने माना था कि याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र मिलने पर 09.04.2005 को शामिल होने का अधिकार नहीं मिला, लेकिन 29.04.1999 को जब इस न्यायालय ने उस संबंध में एक सकारात्मक निर्देश जारी किया। इस न्यायालय ने माना कि एक बार यदि राज्य प्रतिवादी। पाया गया कि उन्होंने पूरी तरह से कार्यवाही में देरी की है, तो उन्हें देरी के परिणाम से बचने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

70. प्रेम सिंह के मामले (उपरोक्त) में भी, शीर्ष अदालत ने तीस, चालीस साल या उससे अधिक समय से सेवा प्रदान करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित नहीं करने और उन्हें सेवानिवृत्त करने में प्रतिवादी राज्य की कार्रवाई की सराहना नहीं की। शीर्ष न्यायालय कर्नाटक राज्य बनाम के फैसले का पालन कर रहा है। उमा देवी (2006) 4 एससीसी 1 ने उन कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने का निर्देश जारी किया, जिन्होंने 10 वर्ष या उससे अधिक काम किया है और पूरा कर लिया है।

प्रेम सिंह (उपरोक्त) के फैसले का पैरा-36 यहां-नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है, जबकि वे सेवानिवृत हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने कार्यभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, किसी विशेष के खिलाफ नहीं परियोजना के तहत उनकी सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए था

सरकारी निर्देश और यहां तक कि कर्नाटक राज्य और अन्य में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार। वी. उमादेवी 2006 (4) एससीसी 1। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ में दस साल से अधिक समय तक सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए। कर्मचारी। मामले के तथ्यों के अनुसार जिन कर्मचारियों ने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। नियमितीकरण पर विचार के लिए उन्हें विनियमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य लोगों को नियमित कर दिया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि वे सेवानिवृति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में बने रहे तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत हुए हों और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को इस प्रकार पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा गिना जाएगा।"

71. यह न्यायालय नोट कर सकता है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को पहले ही नियमित किया जाना चाहिए था, लेकिन प्रतिवादीगण के उदासीन और असंवेदनशील दृष्टिकोण के कारण, याचिकाकर्ता की सेवा पहले नियमित नहीं की गई थी, और लगभग 21 साल की सेवा प्रदान करने के बाद भी। दैनिक वेतन भोगी एवं कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में उनकी सेवा नियमित कर दी गयी।

72. ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, राज्य यह तर्क देने के लिए वर्ष 2005 में अधिसूचित नई पेंशन योजना का आश्रय नहीं ले सकता क्योंकि याचिकाकर्ता की सेवा अधिसूचना/सरकारी आदेश जी-33 द्वारा नई पेंशन योजना की शुरुआत के बाद नियमित कर दी गई है। -379/एक्स-2005-301(9)-2003, दिनांक 01.04.2005, अतः याचिकाकर्ता पुरानी पेंशन योजना के हकदार नहीं हैं।

73. ऊपर दिए गए कारणों से, प्रतिवादी संख्या 5-कार्यकारी अभियंता, जांच और योजना (जल संसाधन), डिवीजन मिर्जापुर (फतेही सिंचाई कॉलोनी), मिर्जापुर द्वारा आदेश दिनांक 31.05.2022 पारित किया गया, जिससे यह नए का लाभ देता है। याचिकाकर्ता की पेंशन योजना को खारिज कर दिया गया है। नतीजतन, लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

74. संबंधित प्रतिवादी को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को पुरानी पेंशन योजना में रखे और दिनांक 01.10.19 से सेवा जोड़कर 01.05.1989 नियमित सेवा के साथ उसकी पेंशन की गणना करे।। याचिकाकर्ता को कर्मचारी अंशदायी निधि की वह राशि जमा करने का भी निर्देश दिया गया है जो उसने पेंशन जारी होने से पहले प्रतिवादीगण से प्राप्त की थी।

75. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने के भीतर प्रतिवादीगण द्वारा उपरोक्त कार्य पूरा किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 1376

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.08.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट ए संख्या 962 वर्ष 2010

राम किशन एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

डॉ. एल.पी. मिश्रा, वी.के. बाजपेयी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, संजय भसीन

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14, 16 और 21 - उत्तर प्रदेश यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों का सरकारी सेवा नियम, 2011 में आमेलन - छंटनी किए गए कर्मचारियों का आमेलन - समान कार्य के लिए समान वेतन - यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारी - यूपी सिविल सचिवालय में आमेलन से इनकार - 11.05.2010 का विवादित आदेश रद्द - याचिकाकर्ता 01.01.2006 से ग्रुप-डी कर्मचारियों और संशोधित वेतनमान के रूप में आमेलन के हकदार हैं।

अभिनिर्धारित: याचिकाकर्ता, यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारी, जिन्हें यूपी सिविल सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के रूप में अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया है, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवा नियम, 2011 में यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के आमेलन और 20.12.2011 के सरकारी आदेश के तहत ग्रुप-डी कर्मचारियों के रूप में आमेलन के हकदार हैं। 1983 सेवा नियमों के आधार पर आमेलन से इनकार करने वाला 11.05.2010 का विवादित आदेश टिकाऊ नहीं है क्योंकि आमेलन नियम, 2011 असंगत प्रावधानों को ओवरराइड करता है। 01.01.2006 से आमेलन और संशोधित वेतनमान से इनकार मनमाना, भेदभावपूर्ण है और संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का उल्लंघन करता है। समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत लागू होता है याचिकाकर्ता उपयुक्त समूह-घ पदों पर आमेलन, अधिवर्षिता (60 वर्ष) की आयु तक सेवा में बने रहने, तथा 01.01.2006 से संशोधित वेतनमान (न्यूनतम ₹6050/- प्रति माह) के अनुसार वेतन और अन्य अनुमेय लाभों के हकदार हैं। 11.05.2010 का

विवादित आदेश निरस्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं को उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में आमेलित समूह-घ कर्मचारी माना जाए, उन्हें तत्काल उपयुक्त पदों पर कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी जाए, 60 वर्ष की आयु पर अधिवर्षता तक उनकी सेवा जारी रखी जाए, तथा 01.01.2006 से संशोधित वेतनमान के अनुसार वेतन दिया जाए।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

ब्रह्मा नंद लवानिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) 2013, दिनांक 29.05.2014, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 430/2014 में पुष्टि की गई।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा और राज्य-प्रत्यर्थी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री पंकज खरे को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्तागण ने निम्नानुसार प्रार्थना की है : -

> "[ए] विपक्षी पक्षों को आदेश या निर्देश जारी कर उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में याचिकाकर्तागण को चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से स्वीकृत और रिक्त पदों पर, जिन पर वे कार्यरत हैं, आमेलन हेतु योजना तैयार करने का आदेश दिया जाए।
>
> [बी] विपक्षी पक्षों को आदेश या निर्देश जारी कर याचिकाकर्तागण को दिनांक 01.01.2006 से संशोधित वेतनमान के अनुसार मूल वेतन के न्यूनतम वेतन के साथ-साथ बकाया सहित अन्य स्वीकार्य लाभों का भुगतान करने का आदेश देना ।
>
> [सी] इस याचिका की लागत याचिकाकर्तागण के पक्ष में देने के लिए ।
>
> [डी] कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसे यह माननीय न्यायालय प्रकरण की परिस्थितियों में उचित और उचित समझे।
>
> [ई] उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे दिनांक 11.5.2010 के विवादित आदेश को रद्द कर दिया जाए। (अनुलग्नक संख्या 40)
>
> [एफ] सैलरी देने के लिए आदेश, आदेश या निर्देश जारी करें, अर्थात उस तारीख से जब यह उ0प्र0 सचिवालय के नियमित रूप से नियुक्त समूह-डी कर्मचारियों को दिया जा रहा है। विपक्षी पक्षकार संख्या 3

को याचिकाकर्तागण के भविष्य निधि खाते में अपना अंशदान करने का भी निर्देश दिया जा सकता है।

[जी] **प्रार्थना हटा दी गई।**

[एच] विपक्षी पक्षों को आदेश या निर्देश जारी कर याचिकाकर्तागण को उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से समूह-घ कर्मचारियों के रूप में आमेलन से उत्पन्न सभी सेवा लाभ प्रदान करने का आदेश दिया जाए, जिसमें दिनांक 20.11.2011 की अधिसूचना के अनुसरण में जारी दिनांक 04.04.2012 के आमेलन आदेश के बावजूद अपट्रॉन के कर्मचारियों के रूप में याचिकाकर्तागण द्वारा दी गई सेवाएं भी शामिल हैं।"

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड की स्थापना उ0प्र0 इलेक्ट्रॉनिक्स कॉर्पोरेशन की एक सहायक कंपनी के रूप में की गई थी, जो सीधे आईटी और इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग, उ0प्र0 सरकार द्वारा नियंत्रित है। यह इलेक्ट्रॉनिक्स सामानों के डिजाइन और निर्माण में लगी हुई थी और वर्ष 1991 तक, कंपनी लाभ में चल रही थी, लेकिन अचानक , इसे वित्तीय घाटा हुआ और 20.6.1994 को इसे एक बीमार इकाई घोषित कर दिया गया और बीआईएफआर को भेज दिया गया।

4. वर्तमान रिट याचिका के याचिकाकर्तागण को वर्ष 1982, 1983, 1984, 1985, 1986 और 1987 में लिखित परीक्षा और उसके बाद साक्षात्कार में उत्तीर्ण होने के पश्चात विधिक प्रक्रिया का पालन करते हुए स्वीकृत और रिक्त पदों पर नियुक्त किया गया था।

5. मंत्रिमण्डल ने परामर्शी प्रभाग को छोड़कर कम्पनी की सभी इकाइयों को बंद करने का निर्णय लिया तथा इसके बंद होने से याचिकाकर्तागण के साथ-साथ अन्य कर्मचारी भी कार्य बंद होने के कारण बेरोजगार हो गये। दिनांक 11.11.1998 को एक शासनादेश जारी किया गया, जिसमें प्रावधान किया गया कि बीमार इकाइयों के कर्मचारियों को सरकारी विभागों/प्रतिष्ठानों/संस्थाओं में उपलब्ध पदों के विरुद्ध संविदा के आधार पर नियुक्त किया जा सकेगा। दिनांक 1.12.1988 को मंत्रिमण्डल की बैठक में अपट्रॉन को बंद करने तथा इसके कर्मचारियों के समायोजन के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया।

6. दिनांक 22.12.1998 को शासनादेश जारी कर सभी सरकारी विभागों/प्रतिष्ठानों/संस्थाओं को रिक्तियों की उपलब्धता के अनुसार अपट्रॉन कर्मचारियों के समायोजन/नियुक्ति हेतु निर्देशित किया गया था। राज्य सरकार के उक्त नीतिगत निर्णय के अनुसरण में प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 के मध्य समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गये तथा यह निर्णय लिया गया कि याचिकाकर्तागण को संविदा के आधार पर उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में समूह-घ कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया जायेगा।

7. 23.7.2009 को एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्तागण को चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के रूप में अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट

प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। उसके बाद, याचिकाकर्तागण को, उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के रूप में उनकी संबंधित नियुक्ति की तारीखों से यानी अगस्त, 1999 से लेकर आज तक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को स्वीकार्य मूल वेतन का न्यूनतम भुगतान किया जा रहा है, हालांकि वे वही काम कर रहे हैं जो उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय के नियमित रूप से नियुक्त चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों द्वारा किया जाता है।

8. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्तागण को मूल वेतन का न्यूनतम भुगतान किया जा रहा है, जो कि मात्र 2,550/- रुपये प्रतिमाह है, जो समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत के भी विरुद्ध है और इस प्रकार प्रत्यर्थी कानूनी रूप से उसी वेतनमान का भुगतान करने के लिए बाध्य हैं जो उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय के नियमित रूप से नियुक्त चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को दिया जा रहा है।

9. सरकार ने विभिन्न सरकारी विभागों/निगमों में संविदा के आधार पर कार्यरत कर्मचारियों को छठे वेतन आयोग की संस्तुतियों के क्रियान्वयन हेतु गठित वेतन समिति की संस्तुतियों के अनुरूप पुनरीक्षित वेतनमान का लाभ प्रदान किया है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य विधि आयोग में संविदा के आधार पर कार्यरत कर्मचारियों को पुनरीक्षित वेतनमान का लाभ दिया गया है।

10. अपट्रॉन के वे कर्मचारी जो उत्तर प्रदेश राज्य मानवाधिकार आयोग में संविदा के आधार पर नियुक्त थे, उन्हें भी छठे वेतन आयोग की संस्तुतियों के अनुरूप वेतन पुनरीक्षण का लाभ दिया गया है, जिसके आदेश दिनांक 21.5.2009 हैं।

11. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपट्रॉन के कर्मचारियों को उत्तर प्रदेश राज्य मानवाधिकार आयोग में उन्हीं शर्तों व नियमों पर संविदा के आधार पर नियुक्त किया गया था जिन पर याचिकाकर्तागण को नियुक्त किया गया था, लेकिन मानवाधिकार आयोग में नियुक्त अपट्रॉन के कर्मचारियों को दिनांक 21.5.2009 के आदेश द्वारा संशोधित वेतनमान का लाभ दिया गया है, जबकि याचिकाकर्तागण को अभी तक उक्त लाभ नहीं दिया गया है और इस प्रकार, याचिकाकर्ता भी विभिन्न सरकारी विभागों में कार्यरत अपने समकक्षों के बराबर व्यवहार पाने के हकदार हैं, जिन्हें संशोधित वेतनमान का लाभ दिया गया है, जो कि 6050/- रुपये है।

12. याचिकाकर्तागण को वर्ष 1999-2000 से अर्थात उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में उनके कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के मूल वेतन के न्यूनतम रूप में 2550/- रूपये प्रतिमाह का भुगतान किया जा रहा है तथा वर्तमान में छठे वेतन आयोग की संस्तुतियों के अनुसार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के मूल वेतन का न्यूनतम रूप में 6050/- रूपये प्रतिमाह निर्धारित किया गया है तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को यह वेतन 1.1.2006 से दिया जा रहा है, अतः इस प्रकरण के परिप्रेक्ष्य में भी याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को

स्वीकार्य मूल वेतनमान के न्यूनतम रूप में 6050/- रूपये प्रतिमाह पाने के हकदार हैं।

13. वर्ष 2005 से याचिकाकर्ता लगातार प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष समस्त तथ्यों का उल्लेख करते हुए अभ्यावेदन दे रहे हैं तथा ग्रुप-डी कर्मचारियों के रिक्त पदों पर अर्थात जिस पद पर वे पिछले 10 वर्षों से काम कर रहे हैं, उनके समायोजन का अनुरोध कर रहे हैं, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ।

14. याचिकाकर्तागण की ओर से विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि कार्मिक, सचिवालय विभाग द्वारा दी गई सूचना के मद्देनजर याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सिविल सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में संविलियन के लिए विधिक रूप से हकदार हैं। Prashasan विभाग , लेकिन इस संबंध में प्रत्यर्थीगण की ओर से निष्क्रियता अवैध, मनमानी और भेदभावपूर्ण है।

15. यह प्रस्तुत किया गया है कि अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड के बंद होने के बाद, सभी कर्मचारी जिन्होंने वीआरएस का विकल्प नहीं चुना और याचिकाकर्तागण की तरह विभिन्न विभागों / निगमों के प्रतिष्ठानों में या तो अनुबंध के आधार पर या प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किए गए थे, वे एक ही वर्ग का गठन कर रहे हैं और 250 से अधिक अपट्रॉन कर्मचारियों को रिक्तियों की उपलब्धता के आधार पर विभिन्न विभागों जैसे गृह विभाग, उ0प्र0 पावर कॉरपोरेशन, राज्य उपभोक्ता फोरम, राज्य चुनाव आयोग में स्थायी रूप से अवशोषित किया गया है, लेकिन याचिकाकर्ता जो स्थायी रूप से अवशोषित किए गए लोगों के समान स्थिति वाले व्यक्ति हैं, लेकिन उन्हें प्रत्यर्थीगण द्वारा नहीं रखा जा रहा है, जो कि प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का उल्लंघन है।

16. यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 23.2.2010 के आदेश के अनुसार, उ0प्र0 सचिवालय के ग्रुप-डी पदों के विरुद्ध समान स्थिति वाले कई व्यक्तियों को समाहित किया गया है, एक सिया राम, जो कि उ0प्र0 टायर्स एंड ट्यूब्स लिमिटेड, अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड जैसी एक सरकारी उपक्रम का छंटनीकृत कर्मचारी था, को उ0प्र0 सचिवालय के ग्रुप-डी पदों के विरुद्ध समाहित/नियुक्त किया गया है और इस प्रकार प्रकरण के इस दृष्टिकोण से, उनके समाहितीकरण के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण को खारिज करते समय प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिया गया तर्क मनमाना और भेदभावपूर्ण है, जो कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है।

17. दिनांक 11.5.2010 के आदेश में दिया गया तर्क कि चूंकि याचिकाकर्ता अपट्रॉन के छंटनीग्रस्त कर्मचारी हैं , जो उ0प्र0 सचिवालय के समूह-घ पद के विरुद्ध संविदा के आधार पर काम कर रहे हैं, उन्हें 1983 की नियमावली में किए गए निर्धारण के मद्देनजर उक्त पदों के विरुद्ध समाहित नहीं किया जा सकता है, जिसके द्वारा उ0प्र0 सचिवालय के समूह-घ कर्मचारियों की सेवा शर्तें शासित होती हैं, कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है,

क्योंकि राज्य सरकार आवश्यक समाहित करने के लिए सक्षम है।

18. उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्तमान रिट याचिका के सभी याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 2011 (जिसे आगे 'आमेलन नियम, 2011' कहा जाएगा) में निहित प्रावधानों के अनुसार उ0प्र0 सिविल सचिवालय में उनके गैर-आमेलन से व्यथित हैं, जिसे 20.12.2011 को अधिसूचित किया गया था और सरकारी आदेश दिनांक 20.12.2011।

टेलीविजन सेट और अन्य इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के उत्पादन के व्यवसाय में एक वाणिज्यिक उद्यम के रूप में काफी लंबे समय तक सफलतापूर्वक काम करने के बाद, यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड बीमार हो गया और अंततः उत्तर प्रदेश राज्य का उक्त सफल उद्यम बंद हो गया ।

दिनांक 11.12.1998 को उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में आयोजित एक बैठक में, जिसमें राज्य सरकार के उच्च अधिकारियों तथा विभिन्न राज्य सरकार के निकायों/उपक्रमों के अन्य अधिकारियों ने भाग लिया था, यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को विभिन्न सरकारी विभागों/ कार्यालयों तथा प्रतिष्ठानों में संविदा के आधार पर नियुक्त करने का निर्णय लिया गया था।

इसी प्रकार के एक प्रकरण में, इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 4556 (एस/एस) 2012 में 05.03.2013 को आदेश पारित किया जो निम्नानुसार है :-

"दिनांक 22.02.2013 के आदेश के अनुपालन में, श्री सुनील कुमार, प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार और सुश्री अमृता सोनी, परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश न्यायालय में उपस्थित हैं ।

उनसे पूछे गए एक प्रश्न पर, प्रमुख सचिव श्री सुनील कुमार ने बताया कि उत्तर प्रदेश यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 2011 को लाभकारी अधीनस्थ कानून के रूप में 20.12.2011 को अधिसूचित किया गया था, ताकि उन कर्मचारियों को लाभ मिल सके जो यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के बंद होने से पहले उक्त संगठन में काम कर रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्तागण सहित यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों के राज्य सरकार में आमेलन का प्रस्ताव 24.12.2012 को राज्य परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान से प्राप्त हुआ है और यह जांच और विचाराधीन है। उन्होंने न्यायालय को आश्वासन दिया कि प्रकरण में अंतिम निर्णय आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर राज्य सरकार द्वारा लिया जाएगा।

तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त आमेलन नियमावली 20.12.2011 को प्रख्यापित की गई थी तथा इसके निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन के लिए उसी दिन अर्थात् 20.12.2011 को शासनादेश भी जारी किया गया था। तथापि, यह देखना आश्चर्यजनक है कि लगभग 15 माह की अवधि बीत जाने के बाद भी, जहां तक सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों का प्रश्न है, अभी तक कोई ठोस अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है। यह सही है कि नियमावली में यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों के आमेलन के संबंध में निर्णय लेने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है, तथापि, यह मानना होगा कि चूंकि नियमावली यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों को कतिपय लाभ देने के उद्देश्य से बनाई गई है, इसलिए निर्णय कुछ उचित समय के भीतर लिया जाना चाहिए था। यद्यपि उचित समय को परिभाषित नहीं किया जा सकता है, तथापि प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों तथा यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के बंद होने के बाद से इसके कर्मचारियों द्वारा सामना की जा रही स्थिति को देखते हुए, राज्य सरकार और सर्व शिक्षा अभियान से यह अपेक्षा की जाती है कि वे शीघ्रता से कार्य करते, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि नियमों के तहत बनाए गए अधिकारों का लाभ वास्तव में उन कर्मचारियों तक पहुंचे, जिनके लिए नियम बनाए गए हैं।

इस प्रकरण में एक बहुत ही परेशान करने वाली बात, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि दोनों रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता, अर्थात् ब्रह्मा नंद लवानिया और शरद मेहरोत्रा, 58 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद 31.08.2012 और 31.10.2012 को सेवानिवृत्त हुए हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड में प्रचलित नियमों के अनुसार सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष है, जबकि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में सेवानिवृत्ति की आयु को नियंत्रित करने वाले प्रावधान के अनुसार यह 60 वर्ष है। दिसंबर, 2011 से अक्टूबर 2012 तक, एक लंबा समय बीत गया जब दोनों याचिकाकर्तागण के मामलों पर विचार किया जा सकता था और किया जाना चाहिए था। यदि उनके मामलों पर विचार किया गया होता, तो वे उस अधिकार को प्राप्त करने में सक्षम होते जो 20.12.2011 को नियमों के प्रख्यापन पर उनके लिए स्पष्ट हो गया था।

हालांकि, उत्तर प्रदेश सरकार के बेसिक शिक्षा विभाग के प्रमुख सचिव श्री सुनील कुमार ने न्यायालय को आश्वासन दिया है कि प्रकरण के उपरोक्त पहलू पर भी गौर किया

जाएगा और उपरोक्त नियमों और सरकारी आदेश के तहत याचिकाकर्तागण के मामलों पर विचार करते समय इस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा। न्यायालय अपना पूरा भरोसा और विश्वास व्यक्त करता है कि राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा इस प्रकरण पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

इस प्रकरण को 13.05.2013 को सूचीबद्ध किया जाए।

श्री सुनील कुमार, प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार और सुश्री अमृता सोनी, परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश को जब तक बुलाया न जाए, दोबारा उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है।"

19. न्यायालय ने दिनांक 05.03.2013 को आदेश पारित करते हुए बेसिक शिक्षा विभाग के प्रमुख सचिव द्वारा दिए गए आश्वासन को दर्ज किया कि दोनों याचिकाकर्तागण के समायोजन से संबंधित प्रकरण पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा। राज्य सरकार के ऐसे उच्च अधिकारी द्वारा दिए गए आश्वासन पर न्यायालय ने अपना विश्वास और आस्था व्यक्त की कि याचिकाकर्तागण के समायोजन के प्रकरण पर अधिकारियों द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

20. इस प्रकरण में इस न्यायालय के लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्तागण को आमेलन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के सरकारी आदेश में निहित प्रावधानों के अनुसार आमेलन के लाभों से गलत तरीके से वंचित किया गया है। न्यायालय के विचारणीय एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकार के प्राधिकारियों ने उक्त आमेलन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के सरकारी आदेश के अनुसार आमेलन के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण पर विचार करने से संबंधित प्रकरण में अनुचित रूप से देरी की है, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्तागण को सरकारी सेवा में आमेलन के लाभ से वंचित किया गया है।

21. राज्य सरकार द्वारा यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत अधिशेष कर्मचारियों को राज्य सरकार के अन्य विभागों/संगठनों में आमेलित किये जाने हेतु नीतिगत निर्णय लिया गया, जिसके क्रम में आमेलन नियमावली, 2011 बनायी गयी तथा शासनादेश दिनांक 20.12.2011 जारी किया गया। उक्त नियमावली के नियम 1(2) में निहित प्रावधानों के अनुसार दिनांक 20.12.2011 को अधिसूचित आमेलन नियमावली, 2011, अधिसूचना के साथ ही लागू हो गयी। नियम 2(ई) में 'अतिरिक्त कर्मचारी' का तात्पर्य यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड के ऐसे कर्मचारी से है (तदर्थ, आकस्मिक, कार्यभारित या संविदा के आधार पर नियोजित कर्मचारी को छोड़कर) जो यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड के पूर्णतः या आंशिक रूप से समापन के फलस्वरूप अधिशेष हो गया हो तथा किसी सरकारी विभाग में संविदा या बॉडी शॉपिंग या प्रतिनियुक्ति पर कार्य कर रहा हो।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारी हैं और वे यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के नियमित कर्मचारी होने के नाते, अवशोषण नियम, 2011 के नियम 2 (ई) में आने वाले उक्त शब्द के अर्थ के भीतर 'अतिरिक्त कर्मचारी' शब्द से आच्छादित हैं और इसके अलावा दोनों याचिकाकर्ता अवशोषण नियम, 2011 की अधिसूचना/प्रख्यापन की तिथि अर्थात 20.12.2011 को प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहे थे।

आमेलन नियम, 2011 का नियम 3 एक गैर- अपरिहार्य खंड के साथ शुरू होता है और यह प्रावधान करता है कि सरकार, एक अधिसूचित आदेश द्वारा, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में आने वाले पद या सेवा को छोड़कर, सरकार के अधीन किसी भी पद या सेवा में अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के आमेलन की आवश्यकता कर सकती है। इसमें आगे प्रावधान है कि सरकार भर्ती की शर्तों में छूट सहित ऐसे आमेलन के लिए प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है। नियम 3 के उप-नियम (2) में प्रावधान है कि प्रासंगिक सेवा नियमों में निहित प्रावधानों को इस सीमा तक संशोधित माना जाएगा कि वे उप-नियम (1) में संदर्भित अधिसूचित आदेश में किए गए प्रावधानों से असंगत हैं।

इस प्रकार, आमेलन नियम, 2011 के नियम 3 ने राज्य सरकार को एक अधिसूचित आदेश जारी करके यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के आमेलन के लिए प्रावधान करने में सक्षम बनाया। इस प्रकार, नियम, प्रकृति में सक्षम हैं।

आमेलन नियमावली, 2011 के नियम 3(1) के अन्तर्गत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने दिनांक 20.12.2011 को ही एक अधिसूचित आदेश जारी किया, जिसमें प्रावधान है कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा निर्णय लिया गया है कि प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यू.पी.टी. आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को सरकारी सेवा में आमेलित किया जायेगा। अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 में यह निर्णय निहित है कि सरकारी विभागों में संविदा/बाडी शॉपिंग के आधार पर कार्यरत यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को उन्हीं सरकारी विभागों में आमेलित किया जायेगा। उक्त अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 में एक अन्य निर्णय यह भी सन्निहित है कि नियम 2(ई)(ii) के प्रावधान यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया के उन अधिशेष कर्मचारियों पर भी लागू होंगे, जो राज्य सरकार के किसी विभाग के अन्तर्गत किसी सोसायटी या प्राधिकरण या किसी अन्य संगठन/निकाय में कार्यरत हैं।

उक्त अधिसूचित आदेश में निर्देश दिया गया है कि संबंधित विभाग सरकार द्वारा नियंत्रित सोसायटी, प्राधिकरण या किसी अन्य संगठन में कार्यरत ऐसे कर्मचारियों को सरकारी विभाग में कार्यरत मानते हुए उनके आमेलन के लिए आमेलन नियम, 2011 को अपनाएगा।

इस प्रकार, सरकार ने 20.12.2011 को उपर्युक्त अधिसूचित आदेश जारी किया, जिसके तहत न केवल सरकारी विभागों में प्रतिनियुक्ति/अनुबंध/बॉडी शॉपिंग के आधार पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को समाहित करने का प्रावधान किया गया, बल्कि उन कर्मचारियों को भी समाहित किया गया, जो किसी सोसायटी या प्राधिकरण या सरकारी विभाग के अधीन कार्यरत किसी संगठन में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, दोनों याचिकाकर्ता, अवशोषण नियम, 2011 के नियम 2 (ई) में आने वाले उक्त शब्द के अर्थ के संदर्भ में यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के निर्विवाद रूप से अधिशेष कर्मचारी हैं। यह भी विवादित नहीं हो सकता है कि दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के प्रावधानों के अनुसार, चूंकि उ0प्र0 राज्य में सर्व शिक्षा अभियान एक सरकारी स्वामित्व वाली और प्रशासित सोसायटी के माध्यम से संचालित किया जा रहा है, अर्थात्, " एमआरआरकेजे इज़्न्स्क lHkh ds fy , ifj;kstuk ifj"kn " (उ0प्र0 एजुकेशन फॉर ऑल प्रोजेक्ट काउंसिल) के अनुसार, याचिकाकर्ता भी दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार आमेलन के लिए विचार किए जाने के पात्र हैं। अधिसूचित आदेश में प्रासंगिक प्रावधान जो याचिकाकर्तागण के प्रकरण में लागू है, इस प्रकार है :-

"(ख) उपर्युक्त संदर्भित आमेलन नियमावली, 2011 विषयक अधिसूचना संख्या- 1477/78-1-2011-51इले0/92टीसी-5, दिनांक 20 दिसम्बर, 2011 का प्रस्तर-2ई (ii) उन कर्मचारियों पर भी लागू होगा जो शासन के किसी भी विभाग के अधीन किसी सोसायटी, प्राधिकरण अथवा किसी अन्य संस्था में कार्य कर रहे हैं। ऐसे कर्मचारियों को भी उसी विभाग में कार्यरत मानते हुए समायोजित करने के लिए संबंधित विभाग नियमावली को अपने यहां अंगीकृत कर लें।"

इस प्रकार, आमेलन नियमावली के नियम 2(ई)(ii) के प्रावधान राज्य सरकार के अधीन कार्यरत किसी सोसाइटी में कार्यरत कर्मचारियों पर भी लागू किये गये हैं तथा ऐसी सोसाइटी में कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के ऐसे अधिशेष कर्मचारियों को सरकारी विभाग का कर्मचारी माना जाना था तथा तदनुसार उनके मामलों पर आमेलन हेतु विचार किया जाना था। दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के पूर्वोक्त प्रावधान में आने वाले सुसंगत शब्द हैं " -------, क्रमांक deZpkfj;ksa डीकेएस हख एमएलएच फ़ोHkkx ईएसए डीके;जेडजेआर एकर्स दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में प्रयुक्त उपर्युक्त वाक्यांश का स्पष्ट अर्थ है कि राज्य सरकार के अधीन कार्यरत सोसाइटियों या अन्य संगठनों में कार्यरत कर्मचारियों को आमेलन के प्रयोजनार्थ सरकारी विभाग का कर्मचारी माना जाएगा।

22. दिनांक 11.5.2010 के विवादित आदेश का आधार यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता

अपट्रॉन के छंटनीग्रस्त कर्मचारी हैं , जो उ0प्र0 सचिवालय के ग्रुप-डी पद के विरुद्ध संविदा के आधार पर काम कर रहे हैं, इसलिए 1983 की नियमावली में किए गए निर्धारण के मद्देनजर उन्हें उक्त पदों पर समायोजित नहीं किया जा सकता है, जिसके तहत उ0प्र0 सचिवालय के ग्रुप-डी कर्मचारियों की सेवा शर्तें शासित होती हैं।

23. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि समान परिस्थितियों में, ब्रह्मा नंद लवानिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) 2013) के प्रकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने अपने आदेश दिनांक 29.5.2014 के तहत निम्नलिखित आदेश पारित किया है, जो नीचे उद्धृत है: -

"चूंकि इन तीनों याचिकाओं के तथ्य आपस में जुड़े हुए हैं, इसलिए पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की सहमति से, तीनों याचिकाओं पर एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

राज्य प्रत्यर्थीगण के स्थायी अधिवक्ता श्री बदरूल हसन की सहायता से विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी, उ0प्र0 एजुकेशन फॉर ऑल प्रोजेक्ट काउंसिल के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.एम. त्रिपाठी और यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड/उ0प्र0 इलेक्ट्रॉनिक्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय भसीन को सुना गया।

संबंधित पक्षों की दलीलों से प्राप्त प्रकरण के तथ्य रिकार्ड पर उपलब्ध हैं, जो इस प्रकार हैं:

दोनों याचिकाकर्ता अर्थात् ब्रह्मा नंद लवानिया और शरद मेहरोत्रा मेसर्स यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारी हैं और 20.12.2011 को अधिसूचित उत्तर प्रदेश यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 2011 (जिसे आगे 'आमेलन नियम, 2011' कहा जाएगा) और 20.12.2011 के सरकारी आदेश में निहित प्रावधानों के अनुसार बेसिक शिक्षा विभाग में उनके गैर-आमेलन से व्यथित हैं।

श्री ब्रह्मा नंद लवानिया को दिनांक 13.07.1982 के आदेश के माध्यम से यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड की सेवाओं के तहत डिस्पैच सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार, श्री शरद मेहरोत्रा को दिनांक 07.07.1979 के आदेश के माध्यम से यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड/उ0प्र0 इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन लिमिटेड की सेवाओं के तहत सहायक के रूप में नियुक्त किया गया था।

टेलीविजन सेट और अन्य इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के उत्पादन के व्यवसाय में एक वाणिज्यिक उद्यम के रूप में काफी लंबे समय तक सफलतापूर्वक काम करने के बाद, यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड बीमार हो गया और अंततः उत्तर प्रदेश राज्य का उक्त सफल उद्यम बंद हो गया ।

दिनांक 11.12.1998 को उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में आयोजित एक बैठक में, जिसमें राज्य सरकार के उच्च अधिकारियों तथा विभिन्न राज्य सरकार के निकायों/उपक्रमों के अन्य अधिकारियों ने भाग लिया था, यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को विभिन्न सरकारी

विभागों/कार्यालयों तथा प्रतिष्ठानों में संविदा के आधार पर नियुक्त करने का निर्णय लिया गया था।

उक्त निर्णय के अनुसार, ब्रह्मा नंद लवानिया को दिनांक 22.04.2000 के आदेश के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य की सभी के लिए शिक्षा परियोजना (जिसे आगे सर्व शिक्षा अभियान के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के अंतर्गत विशेषज्ञ/बेसिक शिक्षा अधिकारी, जिला आगरा के कार्यालय में प्रतिनियुक्ति पर कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार, याचिकाकर्ता-शरद मेहरोत्रा को भी परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 24.05.2002 के आदेश के माध्यम से सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत विशेषज्ञ/बेसिक शिक्षा अधिकारी/जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बलिया के कार्यालय में सहायक वित्त एवं लेखा अधिकारी के पद पर प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया गया था।

राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में मौलिक नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार अधिवर्षिता की आयु 60 वर्ष है जबकि यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों पर लागू सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अधिवर्षिता की आयु 58 वर्ष है। ब्रह्मा नंद लवानिया के प्रकरण में, यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इंडिया लिमिटेड के प्रबंध निदेशक द्वारा 31.07.2012 को एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उन्हें 31.08.2012 को कार्यालय समय की समाप्ति से कंपनी की सेवाओं से सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा। इसी प्रकार, शरद मेहरोत्रा के प्रकरण में, यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इंडिया लिमिटेड द्वारा 27.09.2012 को एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उन्हें 31.10.2012 को कार्यालय समय की समाप्ति से कंपनी की सेवाओं से सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा। दिनांक 31.07.2012 और 27.09.2012 के उपरोक्त आदेश इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पारित किए गए प्रतीत होते हैं कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड में सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष है और ब्रह्मा नंद लवानिया की जन्म तिथि 31.08.1954 है जबकि शरद मेहरोत्रा की जन्म तिथि 23.10.1954 है।

दिनांक 31.07.2012 और 27.09.2012 के उपरोक्त आदेश क्रमशः ब्रह्मा नंद लवानिया और शरद मेहरोत्रा द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 4556 (एस/एस) 2012 और रिट याचिका संख्या 5600 (एस/एस) 2012 में चुनौती का विषय हैं।

उपर्युक्त दो याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 4556 (एस/एस) 2012 में 01.02.2013 को कुछ निर्देश जारी किए गए थे, जिसमें इस न्यायालय ने अपेक्षा व्यक्त की थी कि सर्व शिक्षा अभियान और राज्य सरकार के अधिकारी मिलकर काम करेंगे और याचिकाकर्तागण सहित यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के अवशोषण का एक निश्चित समयबद्ध प्रस्ताव लेकर आएंगे। उक्त आदेश दिनांक 01.02.2013 को इस न्यायालय द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया था कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के तत्कालीन कर्मचारियों, जिन्हें सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया गया था, के अवशोषण का प्रस्ताव राज्य सरकार के समक्ष विचाराधीन था। इसके बाद

न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 4556 (एस/एस) 2012 में 05.03.2013 को एक आदेश पारित किया जो इस प्रकार है :-

> "दिनांक 22.02.2013 के आदेश के अनुपालन में, श्री सुनील कुमार, प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार और सुश्री अमृता सोनी, परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश न्यायालय में उपस्थित हैं ।
>
> उनसे पूछे गए एक प्रश्न पर, प्रमुख सचिव श्री सुनील कुमार ने बताया कि उत्तर प्रदेश यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों का सरकारी सेवा में आमेलन नियम, 2011 को लाभकारी अधीनस्थ कानून के रूप में 20.12.2011 को अधिसूचित किया गया था, ताकि उन कर्मचारियों को लाभ मिल सके जो यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के बंद होने से पहले उक्त संगठन में काम कर रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्तागण सहित यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों के राज्य सरकार में आमेलन का प्रस्ताव 24.12.2012 को राज्य परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान से प्राप्त हुआ है और यह जांच और विचाराधीन है। उन्होंने न्यायालय को आश्वासन दिया कि प्रकरण में अंतिम निर्णय आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर राज्य सरकार द्वारा लिया जाएगा।

तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त आमेलन नियमावली 20.12.2011 को प्रख्यापित की गई थी तथा इसके निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन के लिए उसी दिन अर्थात् 20.12.2011 को शासनादेश भी जारी किया गया था। तथापि, यह देखना आश्चर्यजनक है कि लगभग 15 माह की अवधि बीत जाने के बाद भी, जहां तक सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों का प्रश्न है, अभी तक कोई ठोस अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है। यह सही है कि नियमावली में यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों के आमेलन के संबंध में निर्णय लेने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है, तथापि, यह मानना होगा कि चूंकि नियमावली यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के कर्मचारियों को कतिपय लाभ देने के उद्देश्य से बनाई गई है, इसलिए निर्णय कुछ उचित समय के भीतर लिया जाना चाहिए था। यद्यपि उचित समय को परिभाषित नहीं किया जा सकता है, तथापि प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों तथा यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के बंद होने के बाद से इसके कर्मचारियों द्वारा सामना की जा रही स्थिति को देखते हुए, राज्य सरकार और सर्व शिक्षा अभियान से यह अपेक्षा की जाती है कि वे शीघ्रता से कार्य करते, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि नियमों के तहत बनाए गए

अधिकारों का लाभ वास्तव में उन कर्मचारियों तक पहुंचे, जिनके लिए नियम बनाए गए हैं।

इस प्रकरण में एक बहुत ही परेशान करने वाली बात, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि दोनों रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता, अर्थात् ब्रह्मा नंद लवानिया और शरद मेहरोत्रा, 58 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद 31.08.2012 और 31.10.2012 को सेवानिवृत्त हुए हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड में प्रचलित नियमों के अनुसार सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष है, जबकि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में सेवानिवृत्ति की आयु को नियंत्रित करने वाले प्रावधान के अनुसार यह 60 वर्ष है। दिसंबर, 2011 से अक्टूबर 2012 तक, एक लंबा समय बीत गया जब दोनों याचिकाकर्तागण के मामलों पर विचार किया जा सकता था और किया जाना चाहिए था। यदि उनके मामलों पर विचार किया गया होता, तो वे उस अधिकार को प्राप्त करने में सक्षम होते जो 20.12.2011 को नियमों के प्रख्यापन पर उनके लिए स्पष्ट हो गया था।

हालांकि, उत्तर प्रदेश सरकार के बेसिक शिक्षा विभाग के प्रमुख सचिव श्री सुनील कुमार ने न्यायालय को आश्वासन दिया है कि प्रकरण के उपरोक्त पहलू पर भी गौर किया जाएगा और उपरोक्त नियमों और सरकारी आदेश के तहत याचिकाकर्तागण के मामलों पर विचार करते समय इस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा। न्यायालय अपना पूरा भरोसा और विश्वास व्यक्त करता है कि राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा इस प्रकरण पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

इस प्रकरण को 13.05.2013 को सूचीबद्ध किया जाए।

श्री सुनील कुमार, प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार और सुश्री अमृता सोनी, परियोजना निदेशक, सर्व शिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश को जब तक बुलाया न जाए, दोबारा उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है।"

न्यायालय ने दिनांक 05.03.2013 को आदेश पारित करते हुए बेसिक शिक्षा विभाग के प्रमुख सचिव द्वारा दिए गए आश्वासन को दर्ज किया कि दोनों याचिकाकर्तागण के समायोजन से संबंधित प्रकरण पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा। राज्य सरकार के ऐसे उच्च अधिकारी द्वारा दिए गए आश्वासन पर न्यायालय ने अपना विश्वास और आस्था व्यक्त की कि याचिकाकर्तागण के समायोजन के प्रकरण पर अधिकारियों द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

इस न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 05.03.2013 के अनुपालन में दिनांक 28.05.2013 को

एक आदेश पारित किया गया, जिसके तहत याचियों को शिक्षा विभाग में संविलियन नहीं किया गया, बल्कि केवल यह प्रावधान किया गया कि चूंकि वे 58 वर्ष की आयु पूर्ण करने के पश्चात 31.08.2012 एवं 31.10.2012 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करते हुए सेवानिवृत्त हुए हैं, अतः वे 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर अधिवर्षिता की आयु तक सेवारत मानते हुए सेवानिवृत्तोत्तर देय राशि का लाभ पाने के हकदार होंगे। इसी तिथि अर्थात् 28.05.2013 को राज्य सरकार द्वारा एक अन्य आदेश भी पारित किया गया, जिसके तहत सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के 75 अधिशेष कर्मचारियों को राज्य सरकार के बेसिक शिक्षा विभाग की सेवाओं में संविलियन करने का निर्देश दिया गया। यह दिनांक 28.05.2013 का उपरोक्त आदेश है, जिसके द्वारा याचिकाकर्तागण को संविलियन नहीं किया गया; बल्कि उन्हें 60 वर्ष की आयु पूरी होने पर सेवानिवृत्त मानते हुए सेवानिवृत्ति के बाद का भत्ता दिया गया है, जिसे रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) 2013 में चुनौती दी गई है।

इस प्रकरण में न्यायालय के लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्तागण को आमेलन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के सरकारी आदेश में निहित प्रावधानों के अनुसार आमेलन के लाभों से गलत तरीके से वंचित किया गया है। न्यायालय के विचारणीय एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकार और सर्व शिक्षा अभियान के प्राधिकारियों ने उक्त आमेलन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के सरकारी आदेश के अनुसार आमेलन के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण पर विचार करने से संबंधित प्रकरण में अनुचित रूप से देरी की है, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्तागण को सरकारी सेवा में आमेलन के लाभ से वंचित किया गया है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि दोनों याचिकाकर्ता यूपीट्रॉन इंडिया के अधिशेष कर्मचारी हैं और राज्य सरकार द्वारा यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को राज्य सरकार के अन्य विभागों/संगठनों में प्रतिनियुक्ति पर काम करने के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया गया था, जिसके अनुसार, आमेलन नियम, 2011 तैयार किए गए और दिनांक 20.12.2011 का शासनादेश जारी किया गया। 20.12.2011 को अधिसूचित आमेलन नियम, 2011 उक्त नियमावली के नियम 1(2) में निहित प्रावधानों के अनुसार अपनी अधिसूचना पर ही लागू हो गए। नियम 2 (ई) में 'अतिरिक्त कर्मचारी' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है: अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड का कोई कर्मचारी (तदर्थ, आकस्मिक,

कार्यभारित या अनुबंध के आधार पर नियोजित कर्मचारी को छोड़कर) जो अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड के पूर्णतः या आंशिक रूप से समापन के परिणामस्वरूप अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड से अधिशेष हो गया हो और जो अनुबंध के आधार पर या बॉडी शॉपिंग के आधार पर या किसी सरकारी विभाग में प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहा हो।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों याचिकाकर्ता यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारी हैं और वे यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के नियमित कर्मचारी होने के नाते, अवशोषण नियम, 2011 के नियम 2 (ई) में आने वाले उक्त शब्द के अर्थ के भीतर 'अतिरिक्त कर्मचारी' शब्द से आच्छादित हैं और इसके अलावा दोनों याचिकाकर्ता अवशोषण नियम, 2011 की अधिसूचना/प्रख्यापन की तिथि अर्थात 20.12.2011 को प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहे थे।

आमेलन नियम, 2011 का नियम 3 एक गैर- अपरिहार्य खंड के साथ शुरू होता है और यह प्रावधान करता है कि सरकार, एक अधिसूचित आदेश द्वारा, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में आने वाले पद या सेवा को छोड़कर, सरकार के अधीन किसी भी पद या सेवा में अपट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के आमेलन की आवश्यकता कर सकती है। इसमें आगे प्रावधान है कि सरकार भर्ती की शर्तों में छूट सहित ऐसे आमेलन के लिए प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है। नियम 3 के उप-नियम (2) में प्रावधान है कि प्रासंगिक सेवा नियमों में निहित प्रावधानों को इस सीमा तक संशोधित माना जाएगा कि वे उप-नियम (1) में संदर्भित अधिसूचित आदेश में किए गए प्रावधानों से असंगत हैं।

इस प्रकार, आमेलन नियम, 2011 के नियम 3 ने राज्य सरकार को एक अधिसूचित आदेश जारी करके यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों के आमेलन के लिए प्रावधान करने में सक्षम बनाया। इस प्रकार, नियम, प्रकृति में सक्षम हैं।

आमेलन नियमावली, 2011 के नियम 3(1) के अन्तर्गत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने दिनांक 20.12.2011 को ही एक अधिसूचित आदेश जारी किया, जिसमें प्रावधान है कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा निर्णय लिया गया है कि प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को सरकारी सेवा में आमेलित किया जायेगा। अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 में यह निर्णय निहित है कि सरकारी विभागों में संविदा/बाडी शॉपिंग के आधार पर कार्यरत यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया

लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को उन्हीं सरकारी विभागों में आमेलित किया जायेगा। उक्त अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 में एक अन्य निर्णय यह भी सन्निहित है कि नियम 2(ई)(ii) के प्रावधान यू.पी.टी.आर.ओ.एन. इण्डिया के उन अधिशेष कर्मचारियों पर भी लागू होंगे, जो राज्य सरकार के किसी विभाग के अन्तर्गत किसी सोसायटी या प्राधिकरण या किसी अन्य संगठन/निकाय में कार्यरत हैं। उक्त अधिसूचित आदेश में निर्देश दिया गया है कि संबंधित विभाग सरकार द्वारा नियंत्रित सोसायटी, प्राधिकरण या किसी अन्य संगठन में कार्यरत ऐसे कर्मचारियों को सरकारी विभाग में कार्यरत मानते हुए उनके आमेलन के लिए आमेलन नियम, 2011 को अपनाएगा।

इस प्रकार, सरकार ने 20.12.2011 को उपर्युक्त अधिसूचित आदेश जारी किया, जिसके तहत न केवल सरकारी विभागों में प्रतिनियुक्ति/अनुबंध/बॉडी शॉपिंग के आधार पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को समाहित करने का प्रावधान किया गया, बल्कि उन कर्मचारियों को भी समाहित किया गया, जो किसी सोसायटी या प्राधिकरण या सरकारी विभाग के अधीन कार्यरत किसी संगठन में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, दोनों याचिकाकर्ता, अवशोषण नियम, 2011 के नियम 2 (ई) में आने वाले उक्त शब्द के अर्थ के संदर्भ में यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के निर्विवाद रूप से अधिशेष कर्मचारी हैं। यह भी विवादित नहीं हो सकता है कि दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के प्रावधानों के अनुसार, चूंकि उ0प्र0 राज्य में सर्व शिक्षा अभियान एक सरकारी स्वामित्व वाली और प्रशासित सोसायटी के माध्यम से संचालित किया जा रहा है, अर्थात्, " उत्तर प्रदेश सभी के लिए परियोजना परिषद" (उ0प्र0 एजुकेशन फॉर ऑल प्रोजेक्ट काउंसिल) के अनुसार, याचिकाकर्ता भी दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार आमेलन के लिए विचार किए जाने के पात्र हैं। अधिसूचित आदेश में प्रासंगिक प्रावधान जो याचिकाकर्तागण के प्रकरण में लागू है, इस प्रकार है :-

(ख) उपर्युक्त संदर्भित आमेलन नियमावली, 2011 विषयक अधिसूचना संख्या-1477/78-1-2011-51इले0/92टीसी-5, दिनांक 20 दिसम्बर 2011 का प्रस्तर-2ई (ii) उन कर्मचारियों पर भी लागू होगा जो शासन के किसी भी विभाग के अधीन किसी सोसायटी, प्राधिकरण अथवा किसी अन्य संस्था में कार्य कर रहे हैं। ऐसे कर्मचारियों को भी उसी विभाग में कार्यरत मानते हुए समायोजित करने

के लिए संबंधित विभाग नियमावली को अपने यहां अंगीकृत कर लें।"

इस प्रकार, आमेलन नियमावली के नियम 2(ई)(ii) के प्रावधान राज्य सरकार के अधीन कार्यरत किसी सोसाइटी में कार्यरत कर्मचारियों पर भी लागू किये गये हैं तथा ऐसी सोसाइटी में कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के ऐसे अधिशेष कर्मचारियों को सरकारी विभाग का कर्मचारी माना जाना था तथा तदनुसार उनके मामलों पर आमेलन हेतु विचार किया जाना था। दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान में आने वाले सुसंगत शब्द हैं " -------, क्रमांक deZpkfj;ksa डीकेएस हख एमएलएच फ़ोHkkx ईएसए डीके;जेडजेआर एकर्स दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में प्रयुक्त उपर्युक्त वाक्यांश का स्पष्ट अर्थ है कि राज्य सरकार के अधीन कार्यरत सोसाइटियों या अन्य संगठनों में कार्यरत कर्मचारियों को आमेलन के प्रयोजनार्थ सरकारी विभाग का कर्मचारी माना जाएगा।

राज्य प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया रुख यह है कि दोनों याचिकाकर्तागण को उनके मूल विभाग यानी यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड द्वारा 31.07.2012 और 27.09.2012 के आदेश के माध्यम से सेवानिवृत्त किया गया था और सर्व शिक्षा अभियान सरकार का स्थायी विभाग नहीं होने के कारण उन्हें सर्व शिक्षा अभियान में शामिल नहीं किया जा सकता था। राज्य प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि तदनुसार सर्व शिक्षा अभियान के परियोजना निदेशक द्वारा राज्य सरकार को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था जिसमें शिक्षा विभाग में शामिल किए जाने वाले कर्मचारियों की एक सूची शामिल थी जिसमें याचिकाकर्तागण के नाम इस टिप्पणी के साथ शामिल थे कि याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं और उन्हें उनके मूल विभाग यानी यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड से कार्यमुक्त कर दिया गया है।

राज्य प्रत्यर्थीगण द्वारा याचिकाकर्तागण को बेसिक शिक्षा विभाग (जो सर्व शिक्षा अभियान को नियंत्रित और पर्यवेक्षण करने वाला राज्य सरकार का प्रशासनिक विभाग है) की सेवा में समाहित न करने के लिए लिया गया एकमात्र आधार यह है कि चूंकि याचिकाकर्तागण को 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड द्वारा पहले ही कार्यमुक्त कर दिया गया है, इसलिए उन्हें राज्य सरकार की नियमित सेवाओं में समाहित नहीं किया जा सकता।

यहां कुछ तिथियों का उल्लेख करना आवश्यक है। आमेलन नियमावली, 2011 दिनांक 20.12.2011 को अधिसूचित की गई थी तथा उसी तिथि अर्थात् 20.12.2011 को

आमेलन नियमावली के नियम 3(1) के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित आदेश भी जारी किया गया था। आमेलन नियमावली, 2011 के प्रख्यापन तथा उसके अनुसरण में जारी अधिसूचित आदेश की तिथि को दोनों याचिकाकर्ता राज्य के बेसिक शिक्षा विभाग के अन्तर्गत कार्यरत सोसायटी सर्व शिक्षा अभियान परिषद की सेवाओं में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत थे। तथापि, आमेलन हेतु याचिकाकर्तागण के मामलों पर विचार दिनांक 28.05.2013 को किया गया, अर्थात् लगभग एक वर्ष पांच माह की अवधि बीत जाने के पश्चात। यदि ब्रह्मा नंद लवानिया के प्रकरण में 21.08.2012 से पहले और शरद मेहरोत्रा के प्रकरण में 31.10.2012 से पहले उपरोक्त अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 के अनुसार आमेलन के लिए याचिकाकर्तागण का प्रकरण किया गया होता, तो दोनों याचिकाकर्तागण को शिक्षा विभाग की सेवाओं में आमेलित कर दिया गया होता, क्योंकि वे दोनों आमेलन नियम, 2011 और अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2012 के अंतर्गत आते हैं।

यद्यपि, सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के याचिकाकर्तागण और अन्य अधिशेष कर्मचारियों के प्रकरण पर विचार करने में हुई देरी के लिए राज्य-प्रत्यर्थीगण द्वारा कुछ स्पष्टीकरण देने की मांग की गई है, तथापि, दिया गया स्पष्टीकरण न्यायालय को अपील नहीं करता है। यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को कुछ लाभ प्रदान करने के प्रयोजनों के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत अवशोषण नियम, 2011 तैयार किए गए हैं। उक्त नियम कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए अधिशेष कर्मचारियों को कुछ लाभ प्रदान करने के लिए राज्य सरकार द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय को प्रभावी करने के उद्देश्य से तैयार किए गए थे । तदनुसार, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 20.12.2011 को अधिसूचित आदेश जारी किया गया था, जिसमें स्वयं उल्लेख किया गया है कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के अधिशेष कर्मचारियों को अवशोषित करने का नीतिगत निर्णय कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को देखते हुए लिया गया था। इस प्रकार, दिनांक 20.12.2011 का उक्त अधिसूचित आदेश लाभकारी अधीनस्थ कानून का एक टुकड़ा है।

यह समझना कठिन है कि एक बार जब राज्य सरकार द्वारा एक सरकारी कंपनी, जिसका समापन हो चुका था, के अधिशेष कर्मचारियों को कुछ लाभ देने का निर्णय लिया गया था और निर्णय को प्रभावी करने के लिए, अवशोषण नियम बनाए गए थे और 20.12.2011 को ही अधिसूचित

आदेश भी जारी किया गया था, तो किन परिस्थितियों में, राज्य सरकार के विभाग की सेवाओं में उनके अवशोषण के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा लगभग 17 महीने की इतनी लंबी अवधि ली गई थी। यह सच है कि न तो अवशोषण नियम, 2011 और न ही 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में अवशोषण के लिए पात्र अधिशेष कर्मचारियों के मामलों पर विचार करने के लिए कोई समय अवधि या सीमा निर्धारित की गई है, हालांकि, इस तरह की समय अवधि निर्धारित न करने का मतलब यह नहीं होगा कि अधिशेष कर्मचारियों के अवशोषण के लिए किसी विशेष प्रकरण में इतने लंबे समय के बाद विचार करने की अनुमति दी जा सकती है जो अवशोषण नियम, 2011 के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा और उक्त नियमों के तहत अधिसूचित आदेश भी जारी किया गया था। अवशोषण नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 का अधिसूचित आदेश राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय को प्रभावी बनाने के लिए मात्र साधन हैं। यदि अवशोषण नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश से मिलने वाले लाभों को विस्तारित करने के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया को इतना लंबा खींचा जाता है कि वह उद्देश्य ही विफल हो जाए जिसके लिए नियम और अधिसूचित आदेश जारी किए गए थे, तो यह सरकार के लिए गंभीर चिंता का विषय होना चाहिए। ऐसे प्रकरण में निर्णय लेने की प्रक्रिया में लगने वाला लंबा समय स्पष्ट रूप से सरकार के एक निश्चित समूह को लाभ प्रदान करने के इरादे के विपरीत है। कल्याणकारी राज्य को प्राप्त करने के लिए विकसित उपायों को लागू करने का उद्देश्य न केवल विफल हो जाता है बल्कि यह समाप्त हो जाता है ।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान प्रकरण में प्रत्यर्थीगण द्वारा याचिकाकर्तागण को सेवा में शामिल करने के प्रकरण पर विचार करने में काफी लंबा समय लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः याचिकाकर्तागण को सेवा में शामिल करने के लाभ से मनमाने ढंग से वंचित किया गया तथा उन्हें अधिक वर्षों तक सेवा करनी पड़ी।

न्यायालय की सुविचारित राय में, वर्तमान प्रकरण इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि राज्य सरकार द्वारा अपने नीतिगत निर्णय, जो कि आमेलन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के सरकारी आदेश में सन्निहित है, के तहत प्रदान किए गए लाभकारी उपायों से याचिकाकर्तागण को केवल इसलिए वंचित कर दिया गया क्योंकि सेवा में उनके आमेलन के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण पर विचार करने से संबंधित निर्णय

लेने की प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से अधिक समय लग गया।

न्यायालय अब इस बात की जांच करने जा रहा है कि क्या 28.05.2013 के आदेश में याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार करने का कारण कानूनी रूप से मान्य है। 28.05.2013 के विवादित आदेश में एकमात्र कारण जिसके तहत याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार किया गया है, वह यह है कि आमेलन के लिए विचार किए जाने की तिथि पर, दोनों याचिकाकर्ता अपने मूल विभाग में 58 वर्ष की आयु प्राप्त करके सेवानिवृत्त हो चुके थे।

याचिकाकर्ता संविलियन नियमावली की अधिसूचना तथा अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 के जारी होने की तिथि पर सर्व शिक्षा अभियान में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत थे। ब्रह्मा नंद लवानिया को 58 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर 31.08.2012 को सेवानिवृत्त कर दिया गया तथा शरद मेहरोत्रा को 31.10.2012 को सेवानिवृत्त कर दिया गया। ब्रह्मा नंद लवानिया के 31.08.2012 को सेवानिवृत्त होने तथा अधिसूचित आदेश दिनांक 20.12.2011 के जारी होने के बीच, मेरी सुविचारित राय में, प्रत्यर्थीगण के पास उनके सेवा में संविलियन के प्रकरण में निर्णय लेने के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध था। इसी प्रकार, चूंकि शरद मेहरोत्रा 31.10.2012 को सेवानिवृत्त हुए, इसलिए उनके प्रकरण पर विचार करने के लिए भी पर्याप्त समय था।

इस प्रकरण में एक अन्य पहलू जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह है यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के उन अधिशेष कर्मचारियों के संबंध में दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में निहित प्रावधान, जो राज्य सरकार के किसी सरकारी विभाग के अधीन किसी सोसायटी या प्राधिकरण या किसी अन्य संगठन/निकाय में प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहे थे। प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहे ऐसे अधिशेष कर्मचारियों के प्रकरण में, अधिसूचित आदेश में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि आमेलन नियमावली के नियम 2(ई) (ii) के प्रावधान लागू होंगे। अधिसूचित आदेश में आगे प्रावधान किया गया है कि ऐसे कर्मचारियों को सरकारी विभाग में कार्यरत माना जाएगा। राज्य सरकार के सरकारी विभागों में सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष है। इस प्रकार, यदि याचिकाकर्तागण को सरकारी विभाग में कार्यरत माना जाता है, तो ब्रह्मा नंद लवानिया के प्रकरण में उनकी सेवानिवृत्ति की संबंधित तिथि 31.08.2014 और शरद मेहरोत्रा के प्रकरण में 31.10.2014 होगी।

उपर्युक्त का स्वाभाविक परिणाम यह है: यदि याचिकाकर्तागण को

20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार सरकारी विभाग में काम करने वाला माना जाता, तो उन्हें इस साधारण कारण से सेवानिवृत्त नहीं माना जा सकता था कि सरकारी कर्मचारियों के प्रकरण में सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सेवा में आमेलन के लिए उनके मामलों पर विचार करने की तिथि यानी 28.05.2013 को, दोनों याचिकाकर्तागण को 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में निहित प्रावधान के आधार पर सेवानिवृत्त नहीं माना जा सकता था, जो स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के ऐसे अधिशेष कर्मचारियों को सरकारी विभाग के अधीन काम करने वाला माना जाना चाहिए।

याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार करने वाला विवादित आदेश याचिकाकर्तागण को 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त मानते हुए पारित किया गया है , अर्थात याचिकाकर्तागण को यूपीट्रॉन इंडिया लिमिटेड के सेवानिवृत्त कर्मचारी माना गया है न कि राज्य सरकार के विभाग के कर्मचारी। 28.05.2013 को आदेश पारित करते समय राज्य सरकार द्वारा की गई ऐसी धारणा स्पष्ट रूप से 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में किए गए निर्देशों के विपरीत है, जिसमें प्रावधान है कि राज्य सरकार के किसी विभाग के तहत काम करने वाली किसी सोसायटी या किसी अन्य संगठन में काम करने वाले अधिशेष कर्मचारियों को भी सरकारी विभाग में ही काम करने वाला माना जाएगा। चूंकि राज्य सरकारों के सरकारी विभागों के कर्मचारियों के प्रकरण में सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष है, इसलिए सेवा में आमेलन के लिए विचार के समय याचिकाकर्तागण को सेवानिवृत्त नहीं माना जा सकता था।

इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, वह मूल आधार, जिस पर राज्य सरकार ने सेवा में आमेलन के लिए उनके मामलों पर विचार करते समय याचिकाकर्तागण के प्रकरण में निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ी है, इस कारण से टिकने योग्य नहीं है कि यह दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश में उपलब्ध निर्देशों के विपरीत है। रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) 2013 के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न दिनांक 28.05.2013 का विवादित आदेश, इसलिए, रद्द किए जाने योग्य है।

तदनुसार, ऊपर दिए गए संचयी कारणों से, दिनांक 28.05.2013 का विवादित कार्यालय आदेश, जिसे रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) 2013 के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन

का लाभ देने से इनकार कर दिया गया था, को रद्द किया जाता है।

चूंकि राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार करते समय ऊपर चर्चित कारण के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं दिया गया है, इसलिए राज्य सरकार को याचिकाकर्तागण के सेवा में आमेलन के प्रकरण पर पुनर्विचार करने का निर्देश देना व्यर्थ होगा। इस दृष्टि से, दिनांक 28.05.2013 के आक्षेपित कार्यालय आदेश (रिट याचिका संख्या 3316 (एस/एस) वर्ष 2013 का अनुलग्नक संख्या 1) को रद्द करते हुए, तीनों रिट याचिकाओं का निपटारा राज्य-प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए किया जाता है कि वे याचिकाकर्तागण को दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार उपयुक्त पद पर बेसिक शिक्षा विभाग के आमेलित कर्मचारी मानें और ब्रह्मा नंद लवानिया के प्रकरण में उन्हें 31.08.2012 से और शरद मेहरोत्रा के प्रकरण में 31.10.2012 से उनके संबंधित पदों का वेतन दें। दोनों याचिकाकर्तागण को तत्काल बेसिक शिक्षा विभाग में उपयुक्त पदों पर कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी जाए तथा उन्हें 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी जाए तथा उन्हें वेतन भी दिया जाए।

इस आदेश का अनुपालन संबंधित राज्य-प्रत्यर्थीगण द्वारा इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर सुनिश्चित किया जाएगा।

चूंकि, जैसा कि इस निर्णय के पिछले पैराग्राफों में देखा गया है, राज्य सरकार की ओर से, संविलियन नियम, 2011 और दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार सेवा में संविलियन के लिए याचिकाकर्तागण के प्रकरण पर विचार करने में अनुचित रूप से काफी देरी हुई है, जिसके परिणामस्वरूप सेवा में संविलियन के लिए विचार करने के उनके अधिकार से वंचित होना पड़ा है, हालांकि न्यायालय का विचार है कि राज्य सरकार पर कुछ जुर्माना लगाया जाना चाहिए, हालांकि, याचिकाकर्तागण को वेतन के भुगतान के लिए निर्णय के पहले भाग में दिए गए निर्देश को ध्यान में रखते हुए, मैं जुर्माना लगाने से परहेज करता हूं।

उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, सभी तीन रिट याचिकाएं निपटा दी गई हैं।"

24. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.5.2014 को विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 430/2014 में चुनौती दी गई है, जिसे खारिज कर दिया गया तथा विद्वान एकल

न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की गई।

25. उपरोक्त रिट याचिका में, इस न्यायालय ने राज्य प्रत्यर्थीगण को निर्देश जारी किया कि वे याचिकाकर्तागण को दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार बेसिक शिक्षा विभाग के उपयुक्त पद पर आमेलित कर्मचारी मानें तथा उन्हें संबंधित तिथियों से उनके संबंधित पदों का वेतन दें। इसके अलावा यह भी आदेश दिया गया कि दोनों याचिकाकर्तागण को विभाग में उपयुक्त पदों पर तत्काल कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी जाए तथा उन्हें सेवानिवृत्ति की आयु अर्थात 60 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक सेवा में बने रहने दिया जाए तथा उन्हें वेतन भी दिया जाए।

26. उपर्युक्त प्रकरण के तथ्य और परिस्थितियां वर्तमान प्रकरण की ओर आकर्षित होती हैं, इसलिए प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों और इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को देखते हुए और साथ ही ऊपर दिए गए संचयी कारणों से, दिनांक 11.5.2010 का विवादित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-40), जिसके तहत याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार कर दिया गया था, को रद्द किया जाता है।

चूंकि राज्य सरकार ने याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन का लाभ देने से इनकार करते हुए ऊपर चर्चित कारण के अलावा कोई अन्य कारण नहीं बताया है, इसलिए राज्य सरकार को याचिकाकर्तागण को सेवा में आमेलन करने के प्रकरण पर पुनर्विचार करने का निर्देश देना व्यर्थ होगा। इस दृष्टि से रिट याचिका का **निस्तारण** राज्य प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने के साथ किया जाता है कि वे याचिकाकर्तागण को दिनांक 20.12.2011 के अधिसूचित आदेश के अनुसार उपयुक्त पद पर उ0प्र0 सिविल सचिवालय के आमेलित कर्मचारी मानें और उन्हें उनके संबंधित पदों के अनुसार वेतन दें। सभी याचिकाकर्तागण को विभाग में उपयुक्त पदों पर तत्काल कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी जाए और उन्हें 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक सेवा में बने रहने की अनुमति दी जाए और उन्हें वेतन भी दिया जाए।

इस आदेश का अनुपालन संबंधित राज्य-प्रत्यर्थीगण द्वारा इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर सुनिश्चित किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 1394

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 1994/2009

अनुराग कुमार गुप्ता ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री वाईएस लोहित

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
श्री बीएल वर्मा, श्री बलराम यादव

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 और 16 - यूपी सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975, विनियम 104 - अनुकंपा नियुक्ति - सिविल मृत्यु - अनुशासनात्मक कार्यवाही - 31.08.2004 का विवादित बर्खास्तगी आदेश रद्द - याचिकाकर्ता अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार का हकदार है।

अभिनिर्धारित: याचिकाकर्ता, उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक के एक कर्मचारी का कानूनी उत्तराधिकारी है। ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड, जिसकी सिविल मृत्यु 30.04.2008 को घोषित की गई थी, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 के विनियम 104 के अंतर्गत अनुकंपा नियुक्ति हेतु विचारणीय है। कर्मचारी के 27.01.1997 को लापता होने के बाद पारित 31.08.2004 का विवादित बर्खास्तगी आदेश अमान्य है क्योंकि प्रतिवादियों को कर्मचारी की अनुपस्थिति की जानकारी थी और उन्होंने जाँच रिपोर्ट या कारण बताओ नोटिस ठीक से तामील नहीं किया। पूर्वव्यापी प्रभाव से शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही, न्यायालय के दिनांक 01.09.1995 के पूर्व आदेश के अनुरूप नहीं थी, जिसमें दिनांक 08.06.1995 के पूर्व बर्खास्तगी आदेश को रद्द कर दिया गया था और त्रुटि के स्तर से नए सिरे से जाँच की अनुमति दी गई थी। बार-बार अनुरोध के बावजूद, अनुकंपा नियुक्ति आवेदन पर विचार करने में प्रतिवादियों द्वारा की गई देरी, मृतक कर्मचारी के परिवार को तत्काल वित्तीय राहत प्रदान करने की नीति को विफल करती है और अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है। कर्मचारी के लापता होने के बाद कथित बर्खास्तगी जैसे तुच्छ आधारों पर याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति आवेदन पर आठ सप्ताह के भीतर विचार करें, जिसमें नियुक्ति की तिथि से लाभ प्रदान किए जाएँ।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u>:

1. अश्वनी कुमार सिंह बनाम यूपी लोक सेवा आयोग एवं अन्य, (2003) 11 एससीसी 584

2. मलाया नंदा सेठी बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 684

3. फर्टिलाइजर्स एंड केमिकल्स त्रावणकोर लिमिटेड एवं अन्य बनाम अनुश्री केबी, 2022 लाइवलॉ (एससी) 819

आदेश: दिनांक 31.08.2004 का आक्षेपित आदेश निरस्त। प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि वे आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के आठ सप्ताह के भीतर, 1975 के विनियमन 104 के अंतर्गत अनुकंपा नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार करें। याचिकाकर्ता नियुक्ति की तिथि से लाभों का हकदार है। वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री वाई.एस लोहित और प्रतिवादी(ओं) के अधिवक्ता श्री बलराम यादव को सुना।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें प्रतिपक्षियों को आदेश दिया गया है कि वे याचिकाकर्ता को उसके पिता के स्थान पर उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के विनियमन 104 के प्रावधानों के तहत उसकी शैक्षणिक योग्यता के अनुसार अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करें, जिसकी 'सिविल मृत्यु' (मानसिक अक्षमता के कारण?) को सक्षम न्यायालय द्वारा 30.04.2008 को एक और प्रार्थना के साथ उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना के साथ घोषित किया गया है, जिसमें रिट याचिका के अनुलग्नक-19 के रूप में निहित दिनांक 31.08.2004 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया है, जिसमें प्रतिवादियों को आदेश दिया गया है कि वे याचिकाकर्ता के पिता को 19 की तारीख तक सेवा में बहाल किए गए रूप में मानने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। उनकी 'सिविल मृत्यु' अर्थात 30.04.2008 को जैसा कि कानून के सक्षम प्राधिकारी द्वारा घोषित किया गया है और प्रतिपक्षियों को उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को वेतन और भत्ते और अन्य परिणामी लाभों की बकाया राशि का भुगतान करने के लिए एक अनुवर्ती निर्देश जारी करने के लिए।

3. प्रस्तुत रिट याचिका को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

क्रम सं	**मामले के प्रासंगिक तथ्य**
A	याचिकाकर्ता के पिता को 03.09.1971 को लेखा लिपिक/अंकिक यानी अकाउंट क्लर्क यानी उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड की बंसेडीह शाखा में तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्त किया गया था। इसके बाद, उन्हें 10, माल एवेन्यू, लखनऊ शाखा में हेड अकाउंटेंट के रूप में तैनात किया गया।
B	उन्हें बैंक के जिला प्रबंधक द्वारा दिनांक 02.03.1990 को दिनांक 01.03.1990 के आदेश के तहत निलंबित कर दिया गया था। बाद में, उन्हें दिनांक 08.06.1995 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।
C	उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष 1995 की रिट याचिका संख्या-2891 (एस/एस) में चुनौती दी गई थी, जिसमें दिनांक 08.06.1995 के बर्खास्तगी के पूर्वोक्त आदेश दिनांक 01.09.1995 द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसमें प्रतिवादियों पर 1000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया था, जिससे कानून के अनुसार सख्ती से एक नया आदेश पारित करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था।

D	27.01.1997 को, याचिकाकर्ता के पिता निर्वाह भत्ता प्राप्त करने के लिए 10, माल एवेन्यू, लखनऊ में बैंक के मुख्यालय गए, लेकिन वह घर वापस नहीं लौटे। याचिकाकर्ता के पिता के चचेरे भाई - यानी श्री विनोद कुमार गुप्ता ने थाना-हुसैनगंज, जिला लखनऊ में इस आशय की पहली सूचना रिपोर्ट (संक्षेप के लिए, "प्राथमिकी") दर्ज की, लेकिन न तो प्राथमिकी दर्ज की गई और न ही इसके आगे कुछ भी किया गया। इसके बाद, सक्षम न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी।
E	इस आशय का एक विज्ञापन भी दिनांक 29.03.1997 को निर्धारित प्रारूप पर आवेदन को आगे बढ़ाने के लिए दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया था, जिसे याचिकाकर्त्ता के पिता के चचेरे भाई श्री विनोद कुमार गुप्ता द्वारा प्रस्तुत दिनांक 09.07.1997 के निर्धारित प्रारूप पर आवेदन को आगे बढ़ाते हुए आकाशवाणी पर प्रसारित किया गया था।
F	याचिकाकर्ता की मां द्वारा अपने पति को देय राशि के भुगतान के साथ-साथ 13.03.2000 को उत्तराधिकारियों को किए जाने वाले अनुवर्ती भुगतान के लिए एक आवेदन भेजा गया था, जिस पर बैंक के महाप्रबंधक (प्रशासन) ने प्राथमिकी की प्रति, पुलिस का प्रमाण पत्र और क्षतिपूर्ति बांड मांगा।
G	इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता की मां द्वारा सभी दस्तावेज प्रस्तुत किए गए थे, जिसके बाद नवंबर, 2011 के महीने में एक अनुस्मारक भेजा गया था।
H	वाद सं 66/2007 में सिविल जज (जूनियर डिवीजन), मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर ने 30-04-2008 को एक निर्णय दिया जिसमें सिविल जज के पिता की सिविल मृत्यु की घोषणा की गई थी। दिनांक 14.05.2008 की डिक्री द्वारा याचिकाकर्ता।
I	उक्त निर्णय और डिक्री के आधार पर, नगर पालिका परिषद, मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर ने दिनांक 02-06-2008 को मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता के पिता की दिनांक 30-04-2008 को 'सिविल मृत्यु' का उल्लेख किया गया था।
J	इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए अनुरोध करते हुए कई आवेदनों को प्राथमिकता दी, लेकिन उनके अनुरोधों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।
K	07.04.2009 को, इस न्यायालय ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए रिट याचिका पर सुनवाई करते हुए सवाल किया कि क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्रता विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के पिता की नागरिक मृत्यु की घोषणा की तारीख के

	आधार पर बनी रह सकती है या यह पात्रता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम हो जाएगी कि वह और परिवार के अन्य सदस्य अपने पिता - लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता के लापता होने के बाद से लंबे समय तक निर्वाह करते थे यानी 27.01.1997 से। जवाब में, प्रतिपक्षियों के विद्वान वकील ने दिनांक 31.08.2004 के आदेश की एक प्रति पारित की, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता के पिता को दिनांक 31.08.2004 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, इसलिए, विनियमों के विनियमन 104 के तहत नियुक्ति पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था।
L	दिनांक 31.08.2004 के आदेश में कहा गया है कि 1995 की विशेष अपील संख्या-258 (एस/बी) को त्रुटि के चरण से नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता के साथ 05.07.2001 को खारिज कर दिया गया था लेकिन मुख्यालय ने दिनांक 08.11.1995 के आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता को फिर से निलंबित करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू कर दी और क्षेत्रीय प्रबंधक, लखीमपुर खीरी को दिनांक 01.01.2002 के आदेश के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया, जिन्होंने 3 तारीखें तय कीं लेकिन श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता नहीं आए और अंतिम अवसर से, उन्होंने 11.03.2004 को स्थानीय दैनिक समाचार पत्र में एक अधिसूचना/सूचना प्रकाशित करवाई जिसमें 10 दिनों के भीतर और दस दिनों के भीतर स्पष्टीकरण, विवरण और दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गई। जांच अधिकारी ने दस्तावेजों और गवाहों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की।
M	दिनांक 08.05.2009 को दिनांक 31.08.2004 के आदेश की प्रति देते समय, याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस और जांच रिपोर्ट नहीं दी गई थी और न ही उसे या उसके परिवार के सदस्य को आज तक दी गई है।
N	अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति नहीं देने के प्रतिवादियों के कृत्य और कार्रवाई से व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता के पिता को निलंबित करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि यह अनुशासनात्मक कार्यवाही में की गई त्रुटि के चरण से नए सिरे से जांच के तहत आच्छादित नहीं किया गया था, वह भी लगभग छह साल के पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ। उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी की जल्दबाजी में की गई कार्रवाई 37 दिनों के भीतर तीन तारीखें तय करने और फिर दैनिक समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन से केवल 10 दिन का

समय तय करने से स्पष्ट है। महाप्रबंधक के दिनांक 13.03.2000 के पत्र से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पिता 27.01.1997 को गायब हो गए और उसकी मां ने अपने पति के लापता होने के कारण नियुक्ति का दावा किया।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों ने इस तथ्य को जानने के बाद कि प्राप्तकर्ता उपलब्ध नहीं है, दिनांक 28.01.2004 को मनगढ़ंत कारण बताओ नोटिस जारी किया। उन्होंने कहा कि जांच रिपोर्ट को केवल आक्षेपित आदेश को सही ठहराने के लिए एक कागजी कार्रवाई के रूप में तैयार किया गया था, जो स्पष्ट रूप से विकृत प्रकृति का है क्योंकि यह किसी भी गवाह के बयानों या इस संबंध में निष्कर्ष पर पहुंचने से नहीं निपटता है।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि पूरी कवायद प्रतिपक्षियों द्वारा याचिकाकर्ता की मां के दावे को विफल करने के लिए की गई थी।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की मां के दावे पर 30.04.2008 के निर्णय द्वारा याचिकाकर्ता के पिता की सिविल मृत्यु की घोषणा और सिविल जज (जूनियर डिवीजन) द्वारा जारी डिक्री दिनांक 14.05.2008 और नगर पालिका परिषद, मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर द्वारा 02.06.2008 को जारी मृत्यु प्रमाण पत्र के बाद भी विचार नहीं किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता के पिता की सिविल मृत्यु का उल्लेख 30.04.2008 था।

8. उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पिता की सेवा को खारिज करने का आदेश दिनांक 08.06.1995 को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या-2891 (एस/एस) वर्ष 1995 में दिनांक 01.09.1995 के आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया था, जिसमें प्रतिपक्षियों पर 1000/-रुपये की लागत लगाई गई थी, जिससे कानून के अनुसार सख्ती से एक नया आदेश पारित करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था।

9. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 01.09.1995 का आदेश विशेष अपील संख्या-258 (एस/बी) वर्ष 1995 में चुनौती का विषय था, जिसे दिनांक 05.07.2001 के आदेश द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही में की गई त्रुटि के चरण से नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया गया था, लेकिन प्रतिवादियों ने दिनांक 08.11.1995 के आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता को फिर से निलंबित करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की।

10. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि सभी अभ्यास प्रतिपक्षियों द्वारा केवल वैधानिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए किए गए थे, जो 01.09.1995 के निर्णय और आदेश पारित करते समय गायब था और मामले को उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, लखनऊ को संदर्भित करने के लिए।

11. उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता अपने पिता यानी लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता का कानूनी

उत्तराधिकारी होने के नाते यू.पी. सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के विनियमन 104 और अन्य परिणामी लाभों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का हकदार है। अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भरता रखी:

क) अश्विनी कुमार सिंह बनाम उ0प्र0 लोक आयोग एवं अन्य; (2003)11 एस.सी.सी. 584

ख) मलाया नंदा सेठी बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य; 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 684

12. दूसरी ओर, प्रतिवादी(ओं) के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पिता लेफ्टिनेंट जय प्रकाश नारायण गुप्ता प्रतिवादियों के जिला कार्यालय में लेखाकार के रूप में काम कर रहे थे और उन्होंने निम्नलिखित अनियमितताएं कीं, जिसके लिए उन्हें निलंबित कर दिया गया:

क) नशे की स्थिति में कार्यालय में भाग लेना,
ख) बैंक के कामकाज में रुचि नहीं लेना,
ग) बिना छुट्टी के ड्यूटी से अनुपस्थित रहना,
घ) अनुसूची के अनुसार कर्तव्यों का पालन नहीं करना,
ई) सरकारी संपत्ति का दुरुपयोग,
च) सार्वजनिक धन का गबन।

13. उन्होंने प्रस्तुत किया कि जांच के दौरान, उपरोक्त अनियमितताओं को उनके खिलाफ साबित पाया गया और परिणामस्वरूप उन्हें दिनांक 08.06.1995 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता के पिता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-2891 (एस/एस) वर्ष 1995 को दायर किया दी और दिनांक 08.06.1995 के आदेश को इस न्यायालय द्वारा 01.09.1995 के आदेश के तहत रद्द कर दिया गया था और प्रतिपक्षियों को कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता थी। उक्त आदेश के खिलाफ, प्रतिवादियों ने विशेष अपील संख्या-258 (एस/बी) वर्ष 1995 दायर की, जिसे दिनांक 05.07.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसमें गलती होने के चरण से कानून के अनुसार नए सिरे से जांच करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था। इसके बाद, जांच की कार्यवाही फिर से शुरू की गई और याचिकाकर्ता के पिता को जांच रिपोर्ट और संबंधित दस्तावेज दिए गए लेकिन उन्होंने अपना मामला नहीं लड़ा और इसके परिणामस्वरूप, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, याचिकाकर्ता के पिता को दिनांक 31.08.2004 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। इस बीच, याचिकाकर्ता के पिता छूट गए और मर गए और याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रस्तुत रिट याचिका दायर की है, हालांकि, अनुरोध इस तथ्य के मद्देनजर स्वीकार्य नहीं है कि उसके पिता को 31.08.2004 से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और याचिकाकर्ता इस न्यायालय द्वारा किसी भी राहत के लिए हकदार नहीं है। अपनी दलीलों के समर्थन में, उन्होंने फर्टिलाइजर्स एंड केमिकल्स त्रावणकोर लिमिटेड

और अन्य बनाम अनुश्री के. बी. 2022 लाइव लॉ (एस.सी.)819: सिविल अपील संख्या-6958 वर्ष 2022, आदेश दिनांक 30.09.2022;

14. प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों के जवाब में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर हलफनामे के आधार पर प्रस्तुत किया कि चूंकि प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता के पिता के लापता होने के बारे में पता था, इसलिए उस पर जांच रिपोर्ट और शब्दों की सेवा करने का कोई अवसर नहीं था "लेकिन उसने अपना मामला नहीं लड़ा", जैसा कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-9 में वर्णित है, यह साबित करने के लिए अपने आप में पर्याप्त है कि याचिकाकर्ता के पिता अनुशासनात्मक कार्यवाही में उपस्थित नहीं थे, इसलिए, 31.08.2004 का आक्षेपित आदेश कानून की नजर में शून्य है और टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

15. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षियों द्वारा पसंद की गई विशेष अपील को अनुशासनात्मक कार्यवाही में हुई त्रुटि के चरण से नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए खारिज कर दिया गया था, हालांकि, उक्त स्वतंत्रता प्रतिपक्षियों द्वारा प्रासंगिक तथ्य को छिपाकर प्राप्त की गई थी कि याचिकाकर्ता के पिता वर्ष 1997 से लापता थे और जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-9 में, प्रतिपक्षियों ने जानबूझकर "वर्ष 1997 से" के बदले "इस बीच" शब्द का उल्लेख किया है, यानी जिस वर्ष से याचिकाकर्ता के पिता लापता थे। इस प्रकार, विशेष अपील खारिज होने के बाद, याचिकाकर्ता के पिता को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए सेवा में बहाल कर दिया गया और याचिकाकर्ता उसका कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते, रिट याचिका में प्रार्थना के अनुसार राहत का हकदार है।

16. उपरोक्त प्रस्तुतियों के जवाब में, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि याचिकाकर्ता के पिता अनुशासनात्मक कार्यवाही में निर्धारित तारीखों पर उपस्थित नहीं हुए, इसलिए विवेचनाधिकारी ने उनके समक्ष मौजूद दस्तावेजों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की।

17. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पिता पहले अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान निलंबित थे और उक्त आदेश को रद्द करने के बाद, पहले की जांच जारी रखते हुए, उन्हें फिर से नए सिरे से जांच के लिए निलंबित कर दिया गया था, इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और यह न्यायसंगत और वैध है।

18. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विवेचनाधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1976 के विनियमन 84(iii) के प्रावधानों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य सहकार ग्राम विकास बैंक कर्मचारी सेवा नियमों के नियम 73(3) के अनुसार याचिकाकर्ता के पिता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। 1976 में एक मामला दर्ज किया गया और जब याचिकाकर्ता द्वारा उक्त नोटिस वापस कर दिया गया था, तो प्रकाशन के लिए दैनिक समाचार पत्र हिंदुस्तान में एक प्रेस नोट

जारी किया गया था जिसे 11-03-2004 को प्रकाशित किया गया था और कारण बताओ नोटिस के प्रकाशन के पश्चात् यह माना गया था कि उसे तामील कर दिया गया है और उसके बाद बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

19. उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी बैंक के नियमों और नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए 31.08.2004 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप उसके खिलाफ पूरी तरह से साबित पाया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि न तो याचिकाकर्ता, न ही उसकी मां या परिवार का कोई अन्य सदस्य उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों को खारिज करने के लिए विवेचनाधिकारी के सामने पेश हुआ।

20. उन्होंने प्रस्तुत किया कि यदि याचिकाकर्ता और उसकी मां को पता था कि लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता जीवित नहीं थे, तो वे अपने कानूनी कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वहन करने में विफल रहे और इस प्रकार, रिट याचिका योग्यता से रहित होने के कारण खारिज कर दी जानी चाहिए और चूंकि याचिकाकर्ता के पिता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, इसलिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता का दावा कानून की नजर में मान्य नहीं है।

21. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा दी गई उपरोक्त प्रस्तुतियों के जवाब में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि हालांकि याचिकाकर्ता और उसकी मां अपने कानूनी कर्तव्य और दायित्वों का निर्वहन करने में विफल रहे, लेकिन 21.11.2016 की संशोधित रिट याचिका के जवाबी हलफनामे में कोई विशिष्ट इनकार नहीं किया गया था, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि महाप्रबंधक, उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड, लखनऊ ने याचिकाकर्ता की मां से दिनांक 13.03.2000 के पत्र द्वारा लागू लाभों के भुगतान के उद्देश्य से प्राथमिकी, पुलिस प्रमाण पत्र और नामिती/आश्रितों का नाम रखने के लिए कहा। मतलब, वह याचिकाकर्ता के पिता की गुमशुदगी और मृत्यु के बारे में अच्छी तरह से जानता था।

22. मैंने पक्षों के लिए अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख पर सामग्री के रूप में अच्छी तरह से पक्षों और इस मामले के लिए लागू नियमों के लिए अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामले कानूनों का अवलोकन किया है.

23. मामले में शामिल विवाद को हल करने के लिए, प्रासंगिक नियमों और पक्षों के लिए अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों के पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

> ➢ उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 का विनियमन 104:
>
> (i) यदि सहकारी समिति का कोई कर्मचारी, जो या तो अपनी नियुक्ति में स्थायी है या यदि अस्थायी है, जिसे उत्तर प्रदेश सहकारी समिति

कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के प्रावधानों के अनुसार भर्ती किया गया है और जो कम से कम तीन वर्ष की निरंतर अवधि के लिए अपना पद धारण कर रहा है, इन विनियमों के लागू होने के बाद हार्नेस (ड्यूटी पर) में मर जाता है, उसके परिवार का एक सदस्य, जो पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या निगम या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी उपक्रम के अधीन नियोजित नहीं है, इस प्रयोजन के लिए आवेदन करने पर संबंधित सोसाइटी के तहत एक उपयुक्त रोजगार दिया जाएगा, बशर्ते कि ऐसा सदस्य पद के लिए निर्धारित न्यूनतम शैक्षिक योग्यता रखता हो और अन्यथा नियुक्ति के लिए उपयुक्त हो। इस तरह के रोजगार उक्त सदस्य को बिना देरी के और जहां तक संभव हो, उसी सोसायटी के तहत दिया जाएगा जिसमें मृतक नौकर उसकी मृत्यु के समय कार्यरत था।

(ii) .....

(iii) .....

(iv) विनियम 15 के खंड (i) में किसी बात के होते हुए भी, यह बोर्ड के लिए खुला होगा जिसे नियुक्ति समिति द्वारा मामला भेजा जाएगा, चयन की प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं जैसे कि चयन समिति द्वारा लिखित परीक्षा या साक्षात्कार को समाप्त करने के लिए, और उम्मीदवार की नियुक्ति के लिए अपनी मंजूरी देने के बाद खुद को संतुष्ट करने के बाद कि उम्मीदवार प्रश्नगत पद के लिए उससे अपेक्षित दक्षता के न्यूनतम मानक को बनाए रखने में सक्षम होगा, और यह कि विनियमन 9 और 14 की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है।

(v) जहां मृत कर्मचारी के परिवार के एक से अधिक सदस्य इस विनियम के अधीन रोजगार चाहते हैं वहां बोर्ड मृतक कर्मचारी के परिवार के समग्र हित को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से विधवा और उसके अवयस्क सदस्यों के इस विनियम के उपबंधों के अधीन किन सदस्यों को रोजगार दिया जाए, यह निर्णय लेगा। इस मामले में बोर्ड का निर्णय अंतिम होगा।

टिप्पणी - इस विनियम के प्रयोजनों के लिए परिवार में मृत कर्मचारी की पत्नी/पति, पुत्र और अविवाहित या विधवा पुत्रियां शामिल होंगी।

➔ याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय:

आ) अश्वनी कुमार सिंह (उपरोक्त):

10. न्यायालयों को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर निर्भरता नहीं रखनी चाहिए कि तथ्यात्मक स्थिति उस निर्णय की तथ्य स्थिति के साथ कैसे फिट बैठती है जिस पर निर्भरता रखी गई है। न्यायालयों की टिप्पणियों को यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए और न ही क़ानून के प्रावधानों के रूप में। इन टिप्पणियों को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे दिखाई देते हैं। न्यायालयों के निर्णयों को संविधियों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। शब्दों, वाक्यांशों और क़ानून के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए, न्यायाधीशों के लिए लंबी चर्चा शुरू करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन चर्चा व्याख्या करने के लिए होती है न कि परिभाषित करने के लिए। न्यायाधीश विधियों की व्याख्या करते हैं, वे निर्णयों की व्याख्या नहीं करते हैं। वे विधियों के शब्दों की व्याख्या करते हैं; उनके शब्दों की व्याख्या विधियों के रूप में नहीं की जानी चाहिए। लंदन में ग्रेविंग डॉक कंपनी लिमिटेड वी। हॉर्टन (9.761 पर एसी) लॉर्ड मेडरमोट ने देखा: (सभी ईआर पृष्ठ 14 सीडी)

"इस मामले को, निश्चित रूप से, केवल विल्स, जे के इप्सिसिमा वर्ट्रा का इलाज करके नहीं सुलझाया जा सकता है, जैसे कि वे संसद के एक सेशन का हिस्सा थे और इसके लिए उपयुक्त व्याख्या के नियमों को लागू करते थे। इसका उद्देश्य उस सर्वाधिक प्रतिष्ठित न्यायाधीश द्वारा वास्तव में प्रयुक्त भाषा को दिए जाने वाले महत्व को कम करना नहीं है.....

11. होम ऑफिसर वी. डोरसेट यॉट कंपनी में, लॉर्ड रीड ने कहा, "लॉर्ड एटकिन का भाषण..... ऐसा नहीं माना जाना चाहिए कि यह एक क़ानून की परिभाषा थी। इसके लिए नई परिस्थितियों में योग्यता की आवश्यकता होगी। (सभी ईआर पृष्ठ 297 जी-एच)। मेगरी, जे इन शेफर्ड होम्स लिमिटेड बनाम संधम, (सं-2) ने देखा: (सभी ईआर पृष्ठ 1274 डी-ई) "किसी को, निश्चित रूप से, रसेल, एलजे के एक आरक्षित निर्णय को भी नहीं समझना चाहिए जैसे कि यह संसद का एक अधिनियम था। में हेरिंगटन बनाम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड, लॉर्ड मॉरिस ने कहा: (सभी ईआर पृष्ठ 761 सी)

"भाषण या निर्णय के शब्दों को, जैसे कि वे विधायी अधिनियमन में शब्द हैं, और यह याद रखना चाहिए कि किसी विशेष मामले के तथ्यों की स्थापना में किए गए न्यायिक कथन, व्यवहार करने में हमेशा जोखिम होता है।

ख) मलाया नंदा सेठी (उपरोक्त):

15. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर और ऊपर बताए गए कारणों के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को खारिज और रद्द किया जाता है। प्रतिपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे जुलाई, 2010 में किए गए अपने मूल आवेदन के अनुसार 1990 के नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए, यदि वह अन्यथा उसे जूनियर क्लर्क के पद पर नियुक्त करने के योग्य पाया जाता है, अपीलकर्ता के मामले पर विचार करें। उपर्युक्त कार्य आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर पूरा कर लिया जाएगा। हालांकि, यह देखा गया है कि अपीलकर्ता केवल अपनी नियुक्ति की तारीख से सभी लाभों का हकदार होगा। तदनुसार, वर्तमान अपील को अनुमति दी जाती है। हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

16. वर्तमान आदेश से अलग होने से पहले, हम यह देखने के लिए विवश हैं कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य और लक्ष्य पर विचार करते हुए, अर्थात, मृत कर्मचारी के परिवार को सेवा में रहते हुए कर्मचारी की असामयिक मृत्यु पर वित्तीय कठिनाई की स्थिति में रखा जा सकता है और आधार या नीति मृतक की असामयिक मृत्यु के परिणामस्वरूप उसके परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करने में तात्कालिकता है, प्राधिकारियों को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए ऐसे आवेदनों पर नीति के अनुसार यथाशीघ्र विचार करना चाहिए और, लेकिन ऐसे पूर्ण किए गए आवेदनों को प्रस्तुत करने की तारीख से एसआईसी माह की अवधि के बाद नहीं, उन पर निर्णय लेना चाहिए।

17. हम उपरोक्तानुसार निदेश देने के लिए विवश हैं क्योंकि हमने पाया है कि कई मामलों में, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदनों पर समय पर सुनवाई नहीं की जाती है और उन्हें वर्षों तक लंबित रखा जाता है। परिणामस्वरूप, कई मामलों में आवेदकों को अपने आवेदनों पर विचार करने के लिए परमादेश रिट की मांग करते हुए संबंधित उच्च न्यायालयों से संपर्क करना पड़ता है। ऐसा निदेश जारी किए जाने के बाद भी आवेदनों को अस्वीकार करने के लिए तुच्छ अथवा अफसोसजनक कारण दिए जाते हैं। एक बार फिर, आवेदकों को उच्च न्यायालय के समक्ष अस्वीकृति के आदेश को चुनौती देनी पड़ती है जिसके कारण मुकदमेबाजी लंबित

रहती है और समय बीतता है, जिससे कर्मचारी का परिवार मझधार में और वित्तीय कठिनाई में मर जाता है। इसके अतिरिक्त, अधिकारियों को ही बेहतर ज्ञात कारणों से और असंगत विचार किए जाने पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए किए गए आवेदनों को अस्वीकृत कर दिया जाता है और कई वर्षों के बाद या प्रस्तुत मामले के रूप में बिल्कुल भी नहीं माना जाता है।

18. यदि संगत नीतियों या नियमों के तहत परिकल्पित अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य और लक्ष्य को प्राप्त किया जाना है तो यह उचित और आवश्यक है कि ऐसे आवेदनों पर समय पर विचार किया जाए न कि धीमी गति से। हमारे सामने ऐसे मामले आए हैं जहां लगभग दो दशकों से अनुकंपा नियुक्ति के लिए किए गए आवेदन के संबंध में विवाद का समाधान नहीं हुआ है। इसके परिणामस्वरूप सेवा में रहते हुए कर्मचारी की मृत्यु पर अनुकंपा नियुक्ति देने की नीति की निराशा होती है। इसलिए, हमने निर्देश दिया है कि ऐसे आवेदनों पर जल्द से जल्द विचार किया जाना चाहिए। विचार निष्पक्ष, उचित और प्रासंगिक विचार पर आधारित होना चाहिए। आवेदन को तुच्छ और मामले के तथ्यों से असंगत कारणों के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। तब और केवल अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य और लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

➔ प्रतिवादी(ओं) के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय:

➔ फर्टिलाइजर्स एंड केमिकल्स त्रावणकोर लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त):

"9.

.....

...

9.1 पूर्वोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करना और ऊपर की गई टिप्पणियों और उस उद्देश्य और लक्ष्य पर विचार करना जिसके लिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई है, प्रतिवादी अपने पिता की मृत्यु पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का हकदार नहीं होगा, जिनकी वर्ष 1995 में मृत्यु हो गई। मृत कर्मचारी की मृत्यु से 24 वर्ष की अवधि के बाद, प्रतिवादी अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का हकदार नहीं होगा। यदि ऐसी नियुक्ति अभी और/या वर्ष 14/24 वर्ष की अवधि के बाद की जाती है, तो यह उस उद्देश्य और लक्ष्य के विरुद्ध होगी जिसके लिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई है।

9.2 इन परिस्थितियों में, एकल न्यायाधीश और साथ ही उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच दोनों ने अपीलकर्ताओं को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रतिवादी के मामले पर पुनर्विचार करने का निर्देश देने में गंभीर त्रुटि की है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश अस्थिर/ना-पुख्ता है।

24. अश्विनी कुमार सिंह (उपरोक्त) के मामले में पूर्वोक्त निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता 1987 में संयुक्त राज्य सेवा परीक्षा में कोषागार अधिकारी/लेखा अधिकारी/सहायक लेखा अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए उपस्थित हुए थे। 40 रिक्तियों के लिए राज्य सरकार द्वारा भेजे गए मांग पत्र के आधार पर 1989 में एक मेधा सूची तैयार की गई थी। मेरिट लिस्ट में अपीलकर्ता एके को क्रम सं-52 पर रखा गया था, जबकि अपीलकर्ता बीएन को बहुत नीचे रखा गया था। अपीलकर्ता एके को बाद में सहायक लेखा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था जब चयनित उम्मीदवारों में से कुछ सेवा में शामिल नहीं हुए थे।

25. 1992 में, अपीलकर्ताओं द्वारा इस आधार पर रिट याचिकाएं दायर की गई थीं कि चयनित उम्मीदवारों के शामिल न होने के कारण जो रिक्तियां उत्पन्न हुई थीं, उन्हें मेरिट सूची से भरा जाना चाहिए था और ऐसा नहीं किया गया था, बाद में की गई नियुक्तियां अवैध थीं। राज्य और आयोग द्वारा इस दावे का विरोध किया गया और जिन्होंने यह रुख अपनाया कि ऐसी कोई प्रतीक्षा सूची नहीं थी और रिक्तियों को कानून में अपेक्षित बाद की अवधि के लिए आगे बढ़ाया गया था और व्यक्तियों को बाद की परीक्षा के आधार पर पहले ही नियुक्त किया जा चुका था। याचिकाओं को उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था और इसलिए भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील दायर की गई थी। अपील को खारिज करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि यह सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम नहीं है कि जब कभी रिक्ति होती है, तो योग्यता सूची में शामिल व्यक्तियों को मजबूरन नियुक्त किया जाना होता है। बहुत कुछ क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधानों पर निर्भर करेगा। जय नारायण मामला, (1996)1 एस.सी.सी.332 जिस पर अपीलकर्ताओं द्वारा भरोसा किया गया है, एक अलग तथ्यात्मक और कानूनी पृष्ठभूमि में प्रदान किया गया था, और आरक्षित वर्ग से संबंधित व्यक्तियों की गैर-नियुक्ति से संबंधित था।

(i) न्यायालय को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर भरोसा नहीं करना चाहिए कि तथ्यात्मक स्थिति उस निर्णय की तथ्यात्मक स्थिति के साथ कैसे फिट बैठती है जिस पर भरोसा किया जाता है। अदालतों की टिप्पणियों को यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए और न ही क़ानून के

प्रावधानों के रूप में। इन टिप्पणियों को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे दिखाई देते हैं। न्यायालयों के निर्णयों को संविधि के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। किसी क़ानून के शब्दों, वाक्यांशों और प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए, न्यायाधीशों के लिए लंबी चर्चा शुरू करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन चर्चा समझाने के लिए होती है न कि परिभाषित करने के लिए। न्यायाधीश विधियों की व्याख्या करते हैं, वे निर्णयों की व्याख्या नहीं करते हैं। वे विधियों के शब्दों की व्याख्या करते हैं; उनके शब्दों की व्याख्या विधियों के रूप में नहीं की जानी चाहिए। परिस्थितिजन्य लचीलेपन में, एक अतिरिक्त या अलग तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच अंतर की दुनिया बना सकता है। किसी निर्णय पर आंख मूंदकर भरोसा करके मामलों का निपटान उचित नहीं है।

(ii) यह रिकार्ड में है कि उन उम्मीदवारों को नियुक्त करने का नीतिगत निर्णय लिया गया था जिन्होंने कोषागार अधिकारी/लेखा अधिकारी का विकल्प चुना था यदि उनके नाम योग्यता सूची के प्रथम 40 में शामिल किए गए थे। जाहिर है, अपीलकर्ताओं को मेरिट सूची में नीचे रखा गया था। इसके अलावा, यह दलील भी निराधार है कि इस तरह के निर्धारण के लिए कोई तर्क नहीं है। यदि नियोक्ता एक कट-ऑफ स्थिति तय करता है, तो उसके साथ हल्के ढंग से छेड़छाड़ नहीं की जानी चाहिए जब तक कि यह पूरी तरह से तर्कहीन न हो या दुर्भावनापूर्ण न हो। नियोक्ता अपने ज्ञान में चयन की एक विशेष श्रेणी को उपयुक्त मान सकता है। यह नहीं दिखाया गया है कि निर्धारण कैसे तर्कहीन है, न कि दुर्भावनापूर्ण। इसके अतिरिक्त, यह देखा गया है कि भरे नहीं गए पदों को अगले वर्ष के लिए अग्रेनीत किया गया था और आयोग द्वारा किए गए चयन के आधार पर भरा गया है। अपीलकर्ताओं की प्रार्थना को स्वीकार करने का मतलब यह होगा कि जिस स्थिति ने घोषित से अधिक के लिए एक प्रकार की अंतिमता ग्रहण की है, वह अस्थिर होगी। जिन व्यक्तियों को बाद की परीक्षा के आधार पर नियुक्त किया गया है, उन्हें अपीलकर्ता एके को रास्ता देना होगा। हालांकि उन पर मुकदमा चलाया गया था लेकिन वे पेश नहीं हुए, इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसा कुछ किया जाना

चाहिए जो कानून में स्वीकार्य नहीं है। मौजूदा स्थिति को छेड़ना उचित नहीं होगा।

(iii) एके को बाद में लेखा अधिकारी के रूप में पदोन्नत किया गया था। लेकिन वह उन लोगों पर वरिष्ठता का दावा नहीं कर सकते जिन्हें बाद में नियुक्त किया गया था क्योंकि उन्हें बाद में पदोन्नत किया गया था। किसी वैधानिक प्रिस्क्रिप्शन के अभाव में, जिन व्यक्तियों को पहले उच्च पदों पर नियुक्त किया गया है, वे तार्किक रूप से उनसे वरिष्ठ होंगे।

26. मलाया नंदा सेठी (उपरोक्त) के मामले में, अपीलकर्ता के पिता आबकारी विभाग में सहायक उप-निरीक्षक के रूप में कार्यरत थे। उनका सेवा में रहते हुए 02-01-2010 को निधन हो गया। अपने पिता की मृत्यु पर, अपीलकर्ता ने जुलाई, 2010 में उड़ीसा सिविल सेवा (पुनर्वास सहायता) नियम, 1990 के तहत अनुकंपा के आधार पर जूनियर क्लर्क के रूप में अपनी नियुक्ति के लिए आवेदन किया। अपीलकर्ता की ओर से यह मामला था कि उसकी मां अपनी चिकित्सा स्थिति के कारण सरकारी नौकरी करने में असमर्थ थी। उक्त आवेदन दिनांक 03-08-2011 के पत्र द्वारा आबकारी आयुक्त, उड़ीसा, कटक के कार्यालय को भेजा गया था। तत्पश्चात्, उक्त आवेदन दिनांक 21-09-2011 को अपर सचिव, सरकार, उत्पाद शुल्क विभाग को अग्रेषित कर दिया गया था। उक्त आवेदन पर आबकारी विभाग द्वारा पांच वर्षों की काफी अवधि तक ध्यान नहीं दिया गया था। पांच वर्ष की अवधि के बाद अपर सचिव ने दिनांक 09.09.2016 के पत्र/संचार द्वारा कलेक्टर, गंजम को मृत सरकारी सेवक के परिवार की वित्तीय स्थिति के बारे में एक नई रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा। इसके साथ ही, सीडीएमओ, गंजम से एक रिपोर्ट भी मांगी गई थी ताकि अपीलकर्ता की मां के मामले को उचित जांच के लिए मेडिकल बोर्ड के समक्ष रखा जा सके ताकि यह पता लगाया जा सके कि सरकारी नौकरी करने में उसकी असमर्थता जारी है या नहीं। सीडीएमओ, गंजम ने एक मेडिकल बोर्ड का गठन किया और अपीलकर्ता की मां की जांच की और 01.11.2016 को अतिरिक्त सचिव को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि वह सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य है। सीडीएमओ, गंजम ने इसी आशय की एक और रिपोर्ट दिनांक 06.02.2017 को प्रस्तुत की। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद तहसीलदार, बेलगुंठा, जो अपीलकर्ता का मूल स्थान है, से एक रिपोर्ट भी वित्तीय स्थिति का पता लगाने के लिए मांगी गई थी और तहसीलदार ने दिनांक 28.10.2017 के पत्र के माध्यम से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि सभी स्रोतों से अपीलकर्ता की पारिवारिक आय 72,000 रुपये प्रति वर्ष की सीमा से अधिक नहीं है।'

(i) उपर्युक्त के बावजूद, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को विचाराधीन

लंबित रखा गया था। हालाँकि, 1990 के नियमों के तहत अपीलकर्ता को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करने के किसी भी आदेश के पारित होने से पहले, 1990 के नियमों को नए नियमों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाने लगा, अर्थात्, ओडिशा सिविल सेवा (पुनर्वास सहायता) नियम, 2020, दिनांक 17.02.2020 की अधिसूचना द्वारा जारी किया गया। 2020 के नियमों के तहत, मृत सरकारी कर्मचारी के परिवार के एक सदस्य को "ग्रुप डी" बेस लेवल पोस्ट पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया जाएगा। इसलिए, अपीलकर्ता के आवेदन को आबकारी आयुक्त, ओडिशा के कार्यालय द्वारा 2020 नियमों के तहत आवश्यक कार्रवाई करने के लिए कलेक्टर को भेजा जा रहा है, जिसे दिनांक 26.04.2021 को सूचित किया गया था।

(ii) दिनांक 26.04.2021 के संचार से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, जिसके द्वारा अपीलकर्ता के मामले को 2020 नियमों के तहत विचार करने का निर्देश दिया गया था, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय के समक्ष, अपीलकर्ता का यह विशिष्ट मामला था कि उस समय प्रचलित नीति जब अनुकंपा के आधार पर आवेदन किया गया था, लागू होगी न कि आवेदन पर निर्णय लेने के समय प्रचलित बाद की योजना। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों पर भरोसा किया गया। हालांकि, आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा और एनसी संतोष बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में निर्णय पर भरोसा करना और/या विचार करना; (2020)7 एस.सी.सी.617 के मामले में, उच्च न्यायालय ने उक्त रिट याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि दावे को संशोधित नियमों के अनुसार माना जाना चाहिए जो आवेदन पर विचार के समय प्रचलित थे, न कि उन नियमों के अनुसार जो सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर प्रचलित थे।

(iii) उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका को खारिज

करते हुए पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए और यह मानते हुए कि अपीलकर्ता का मामला 2020 के नियमों द्वारा शासित होगा, प्रस्तुत अपील दायर की गई थी, जिसे आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने की अनुमति दी गई थी और प्रतिपक्षियों को 1990 के नियमों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए अपीलकर्ता के मामले पर विचार करने का निर्देश जारी किया गया था, जुलाई, 2010 में किए गए उसके मूल आवेदन के अनुसार और यदि वह अन्यथा उसे कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्त करने के लिए पात्र पाया जाता है। उपर्युक्त कार्य को आदेश की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर पूरा करने का निर्देश दिया गया था। यह भी देखा गया कि अपीलकर्ता केवल उसकी नियुक्ति की तारीख से सभी लाभों का हकदार होगा।

27. फर्टिलाइजर्स एंड केमिकल्स त्रावणकोर लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में, प्रतिवादी के पिता अपीलकर्ता सं-1 के साथ लोडिंग हेल्पर के रूप में कार्यरत थे और 19.04.1995 को ड्यूटी पर रहते हुए उनकी मृत्यु हो गई। कर्मचारी की मृत्यु के समय, मृत कर्मचारी की पत्नी सेवारत थी और इसलिए सेवाकाल में मरने वाले कर्मचारियों के आश्रितों के रोजगार की योजना पर विचार करते हुए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं थी। वर्ष 14 वर्ष की अवधि के बाद, मृत कर्मचारी की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी, मृत कर्मचारी की बेटी ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की मांग करते हुए एक अभ्यावेदन दिया। अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका आवेदन 12.02.2018 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसका नाम मृत कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत आश्रितों की सूची में नहीं था और यह नीति मृतक कर्मचारी की विधवा या बेटे या अविवाहित बेटी को रोजगार देने की थी।

(i) अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन को अस्वीकृत किया जाना एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका में चुनौती का विषय था। दिनांक 13.11.2019 के आदेश के तहत, एकल न्यायाधीश ने योजना के खंड 1 के भीतर प्रतिवादी के आवेदन पर पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ रिट याचिका का निपटारा किया।

(ii) 12.12.2019 को, पुनर्विचार के बाद, अपीलकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रतिवादी के आवेदन को इस

आधार पर खारिज कर दिया कि यह योजना के प्राथमिक परीक्षण को पूरा नहीं करता है कि मृत कर्मचारी "अपने परिवार का एकमात्र कमाने वाला" होना चाहिए, क्योंकि उसकी पत्नी उसकी मृत्यु के समय केरल राज्य स्वास्थ्य सेवा विभाग के साथ लाभप्रद रूप से कार्यरत थी और इस आधार पर भी कि मृत कर्मचारी की मृत्यु की तारीख को 24 साल बीत चुके हैं।

(iii) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रतिवादी के आवेदन को खारिज करने के दिनांक 13.11.2019 के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए, प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसे दिनांक 22.01.2023 के आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई जिसमें अपीलकर्ताओं को मुकदमेबाजी के पहले दौर में पारित एकल न्यायाधीश दिनांक 13.11.2019 के आदेश में पारित टिप्पणियों और निर्देशों के संदर्भ में प्रतिवादी के दावे पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया गया था।

(iv) एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश, रिट अपील के माध्यम से उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष अपील की विषय वस्तु थी, जिसे आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, जिसे न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है। अपील की अनुमति दे दी गई है और एकल न्यायाधीश के साथ-साथ उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों को यह कहते हुए रद्द कर दिया गया है कि एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच दोनों ने अपीलकर्ताओं को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए प्रतिवादी के मामले पर पुनर्विचार करने का निर्देश देने में गंभीर त्रुटि की है।

28. इस मामले में याचिकाकर्ता के पिता उप्र सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड की बंसेडीह शाखा में लेखा लिपिक/अंकिक यानी अकाउंट क्लर्क यानी तृतीय श्रेणी पद के पद पर कार्यरत थे। इसके बाद, उन्हें 10, माल एवेन्यू, लखनऊ शाखा में हेड अकाउंटेंट के रूप में तैनात किया गया। उसे निलंबित कर दिया गया था और दिनांक 08.06.1995 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-2891 (एस/एस) वर्ष 1995 में चुनौती दी गई थी, जिसमें दिनांक 08.06.1995 के बर्खास्तगी के पूर्वोक्त आदेश को दिनांक 01.09.1995 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसमें प्रतिवादियों पर 1000/-रुपये का जुर्माना लगाया गया था, जिससे कानून के अनुसार सख्ती से एक नया आदेश पारित करने के लिए खुला छोड़ दिया

गया था। 27.01.1997 को, याचिकाकर्ता के पिता छूट गए और इस संबंध में सक्षम न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई और इस आशय की खबर दूरदर्शन पर भी प्रसारित की गई और ऑल इंडिया रेडियो पर प्रसारित की गई।

29. इसके बाद, याचिकाकर्ता की मां यानी लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता की पत्नी द्वारा अपने पति को देय राशि के भुगतान के साथ-साथ 13.03.2000 को उत्तराधिकारियों को किए जाने वाले अनुवर्ती भुगतान के लिए अनुरोध किया गया था, जिस पर बैंक के महाप्रबंधक (प्रशासन) ने प्राथमिकी की प्रति मांगी। पुलिस का प्रमाण पत्र और क्षतिपूर्ति बांड।

30. बाद में, वाद संख्या-66/2007 में, सिविल जज, (जूनियर डिवीजन), मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर ने 30.04.2008 को एक निर्णय दिया जिसमें याचिकाकर्ता के पिता की सिविल मृत्यु को 14.05.2008 की डिक्री द्वारा घोषित किया गया और उक्त निर्णय और डिक्री के आधार पर, नगर पालिका परिषद, मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर ने दिनांक 30.04.2008 को याचिकाकर्ता के पिता की सिविल मृत्यु का उल्लेख करते हुए 02.06.2008 को मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए अनुरोध करने वाले प्रतिपक्षियों को कई अभ्यावेदन दिए, लेकिन उनके अनुरोधों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

31. 07.04.2009 को, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए रिट याचिका पर सुनवाई करते हुए इस न्यायालय ने सवाल किया कि क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्रता सिविल न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के पिता की नागरिक मृत्यु की घोषणा की तारीख के आधार पर बनी रह सकती है या यह पात्रता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम हो जाएगी कि वह और परिवार के अन्य सदस्य अपने पिता लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता के लापता होने के बाद से लंबे समय तक निर्वाह करते थे यानी 27.01.1997 से और इसके जवाब में, प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 31.08.2004 के आदेश की एक प्रति पेश की, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता के पिता को दिनांक 31.08.2004 के आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, इसलिए, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के विनियमन 104 के तहत नियुक्ति के दावे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था।

32. दिनांक 31.08.2004 के आदेश से पता चलता है कि प्रतिपक्षियों द्वारा दायर विशेष अपील संख्या-258 (एस/बी) वर्ष 1995 को 05.07.2001 को अनुशासनात्मक कार्यवाही में की गई त्रुटि के चरण से नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया गया था, लेकिन उन्होंने याचिकाकर्ता को 08.11.1995 के आदेश के अनुसार फिर से निलंबित करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की।

33. यह प्रतिवादियों का मामला है कि क्षेत्रीय प्रबंधक, लखीमपुर खीरी को दिनांक 01.01.2002 के आदेश के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए विवेचनाधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था, जिन्होंने तीन तारीखें तय कीं, लेकिन लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता ने खुद को प्रस्तुत नहीं किया और अंतिम अवसर के माध्यम से, 11.03.2004 को स्थानीय दैनिक समाचार पत्र में एक अधिसूचना/सूचना प्रकाशित की गई जिसमें 10 दिनों के भीतर बयान और दस्तावेज और जब उपरोक्त अवधि के दौरान, स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी, पोर याचिकाकर्ता के पिता ने खुद को पेश नहीं किया है, तो विवेचनाधिकारी ने दस्तावेजों और गवाहों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की।

34. अभिलेख पर सामग्री के साथ-साथ मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्र विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षियों के लिए याचिकाकर्ता के पिता को फिर से निलंबित करने और पूर्वव्यापी प्रभाव से जांच शुरू करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि यह नए सिरे से जांच के तहत आच्छादित नहीं किया गया था जिसे अनुशासनात्मक कार्यवाही में की गई त्रुटि के चरण से शुरू करने का निर्देश दिया गया था।

35. महाप्रबंधक के दिनांक 13.03.2000 के पत्र से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पिता 27.01.1997 को गायब हो गए थे और उनकी मां ने अपने पति के लापता होने के वेंट में नियुक्ति का दावा किया था और प्राथमिकी की प्रति, पुलिस का प्रमाण पत्र और क्षतिपूर्ति बांड मांगा गया था।

36. याचिकाकर्ता के पिता 27.01.1997 को चूक गए और उनकी सिविल मृत्यु दिनांक 30.04.2008/डिक्री दिनांक 14.05.2008 के निर्णय के तहत घोषित की गई, जिसके बाद नगर पालिका परिषद द्वारा जारी मृत्यु प्रमाण पत्र में याचिकाकर्ता के पिता की सिविल मृत्यु का उल्लेख 30.04.2008 को किया गया था।

37. इस बीच, याचिकाकर्ता की मां और याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे और पति/पिता के बकाया भुगतान के दावे पर विचार करने के लिए प्रतिपक्षियों को कई अभ्यावेदन दिए हैं।

38. प्रतिवादी बैंक के अधिवक्ता द्वारा की गई आपत्तियों के संबंध में कि याचिकाकर्ता के पिता को उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1976 के विनियमन 84(iii) के प्रावधानों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य सहकार ग्राम विकास बैंक कर्मचारी सेवा नियम, 1976 के नियम 73(3) के अनुसार कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था और जब याचिकाकर्ता द्वारा उक्त नोटिस वापस कर दिया गया था, प्रकाशन के लिए दैनिक समाचार पत्र हिन्दुस्तान में एक प्रेस नोट जारी किया गया था जो 11-03-2004 को प्रकाशित हुआ था और कारण बताओ नोटिस के प्रकाशन के बाद यह माना गया था कि उसे तामील कर दिया गया है और उसके बाद बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, यह विचारणीय है कि यद्यपि याचिकाकर्ता और

उसकी मां अपने कानूनी कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वहन करने में विफल रहे। हालांकि, इस बात से कोई विशेष इनकार नहीं किया गया था कि महाप्रबंधक, यू.पी. सहकारी ग्राम्य विकास बैंक लिमिटेड, लखनऊ ने याचिकाकर्ता की मां से 13.03.2000 के पत्र के माध्यम से प्राथमिकी, पुलिस प्रमाण पत्र और नामिती/आश्रितों के नाम की प्रति लागू लाभों के भुगतान के उद्देश्य से रखने के लिए कहा था। इस प्रकार, प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता के पिता की गुमशुदगी और मृत्यु के बारे में अच्छी तरह से पता था।

39. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए रिट याचिका की सुनवाई करते हुए इस न्यायालय द्वारा पूछे गए प्रश्न के संबंध में कि क्या अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्रता सिविल न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के पिता की नागरिक मृत्यु की घोषणा की तारीख के आधार पर बनी रह सकती है या यह पात्रता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम हो जाएगी कि वह और परिवार के अन्य सदस्य अपने पिता लेफ्टिनेंट श्री जय प्रकाश नारायण गुप्ता के लापता होने के बाद से लंबे समय तक निर्वाह करते थे अर्थात 27.01.1997 से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पिता 27.01.1997 को चूक गए और उनकी सिविल मृत्यु को सक्षम न्यायालय द्वारा 30.04.2008 घोषित किया गया। अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि उपरोक्त अवधि के बीच, याचिकाकर्ता और उसकी मां द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के साथ-साथ परिणामी लाभों के भुगतान के संबंध में कई संचार किए गए थे, हालांकि, प्रतिपक्षियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई है और याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित दावे को नजरअंदाज कर दिया गया है।

40. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य और लक्ष्य, अर्थात, मृत कर्मचारी के परिवार को सेवा में रहते हुए कर्मचारी की असामयिक मृत्यु पर वित्तीय कठिनाई की स्थिति में रखा जा सकता है और आधार या नीति उसकी असामयिक मृत्यु के परिणामस्वरूप मृतक के परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करने में तात्कालिकता है, प्राधिकारियों को प्रचलित नीति के अनुसार अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए ऐसे आवेदनों पर विचार करना चाहिए और उन पर निर्णय लेना चाहिए।

41. जैसा कि कई मामलों में पाया गया है, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदनों पर समय पर सुनवाई नहीं की जाती है और उन्हें वर्षों तक लंबित रखा जाता है। परिणामस्वरूप, कई मामलों में आवेदकों को अपने आवेदनों पर विचार करने के लिए परमादेश रिट की मांग करते हुए संबंधित उच्च न्यायालयों से संपर्क करना पड़ता है। ऐसा निदेश जारी किए जाने के बाद भी आवेदनों को अस्वीकार करने के लिए तुच्छ अथवा अफसोसजनक कारण दिए जाते हैं। एक बार फिर, आवेदकों को उच्च न्यायालय के समक्ष अस्वीकृति के आदेश को चुनौती देनी पड़ती है जिसके कारण मुकदमेबाजी लंबित रहती है और समय बीतता है, जिससे कर्मचारी का परिवार मझधार में और वित्तीय कठिनाई में मर जाता है। इसके अतिरिक्त, अधिकारियों को ही बेहतर ज्ञात कारणों से और असंगत विचार किए जाने

पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए किए गए आवेदनों को अस्वीकृत कर दिया जाता है। कई वर्षों के बाद या प्रस्तुत मामले के रूप में बिल्कुल भी नहीं माना जाता है।

42. यदि संगत नीतियों या नियमों के तहत परिकल्पित अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य और लक्ष्य को प्राप्त किया जाना है, तो यह उचित और आवश्यक है कि ऐसे आवेदनों पर समय पर विचार किया जाए न कि धीमी गति से। मेरे सामने ऐसे मामले आए हैं जहां लगभग दो दशकों से अनुकंपा नियुक्ति के लिए किए गए आवेदन के संबंध में विवाद का समाधान नहीं हुआ है। इसके परिणामस्वरूप सेवा में रहते हुए कर्मचारी की मृत्यु पर अनुकंपा नियुक्ति देने की नीति की निराशा होती है। ऐसे आवेदनों पर यथाशीघ्र विचार किया जाना चाहिए। विचार निष्पक्ष, उचित और प्रासंगिक विचार पर आधारित होना चाहिए। आवेदन को तुच्छ और मामले के तथ्यों से असंगत कारणों के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। तब और केवल अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य और लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

43. ऊपर दर्ज किए गए कारणों के मद्देनजर और मलाया नंदा सेठी (उपरोक्त) के मामले में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए फैसले के मद्देनजर, प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं।

44. रिट याचिका अनुमति देने योग्य है और अता इसे एतद्द्वारा अनुमति दी जाती है।

45. अनुबंध-19 के रूप में निहित दिनांक 31.08.2004 के आक्षेपित आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

46. प्रतिपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के मामले पर, उसके मूल आवेदन के अनुसार और यदि वह अन्यथा उसे पद पर नियुक्त करने के योग्य पाया जाता है, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार करें। उपर्युक्त प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

47. हालांकि, यह अवलोकित किया जाता है कि याचिकाकर्ता केवल अपनी नियुक्ति की तारीख से सभी लाभों का हकदार होगा।

48. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 1409

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट-ए संख्या 2472 वर्ष 2018

श्रीमती तारा देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अतिरिक्त

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री अनूप कुमार उपाध्याय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री ए. मिश्रा

A. सेवा विधि - यूपी सेवा में मृत सरकारी कर्मचारियों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974 - अनुकंपा नियुक्ति - मौसमी चपरासी के रूप में नियुक्ति - 24 साल की अवधि के लिए काम किया - प्रभाव - नियमित पद के रूप में मानने का दावा खारिज कर दिया गया - इस आधार पर सेवानिवृत्ति का लाभ नहीं दिया गया कि वह एक मौसमी कर्मचारी / क्लर्क के रूप में सेवानिवृत्त हुई - वैधता को चुनौती दी गई - माना गया, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल नियमित आधार पर की जा सकती है। जब प्रतिवादियों ने अनुकंपा के आधार पर उसकी नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के अनुरोध को स्वीकार कर लिया, तो परिणामस्वरूप यह माना जाएगा कि नियुक्ति आदेश दिनांक 05.01.1994 के माध्यम से की गई नियुक्ति नियमित आधार पर की गई थी, भले ही यह एक मौसमी नियुक्ति के रूप में इंगित करता हो - उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को नियमित नियुक्त कर्मचारी मानते हुए सेवानिवृत्ति बकाया का भुगतान करने के लिए परमादेश जारी किया।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. राम चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2008(26) एलसीडी 669

2. रवि करण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 1999 (17) एलडीसी 641

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान राज्य अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 2 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनग मिश्रा को सुना गया।
2. इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए प्रार्थना की है:
"(1) प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 27.12.2017 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है।

(2) प्रत्यर्थियों को यह आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे नियुक्ति की तारीख से याचिकाकर्ता को नियमित कर्मचारी के रूप में मानें और उसे वेतन और अन्य परिणामी लाभों का बकाया भुगतान करें और उसे नियमित कर्मचारी मानते हुए नियमित वेतन भी दें।"

3. सर्वप्रथम श्री मिश्रा ने कहा कि इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 04.07.2023 के तहत उप गन्ना आयुक्त, देवी पाटन मंडल गोंडा को उपस्थित होने का आदेश दिया था क्योंकि उक्त तिथि को मामला सूचीबद्ध होने पर प्रत्यर्थियों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ था। उन्होंने कहा कि

उक्त तिथि को उनकी गैर-उपस्थिति इस तथ्य के कारण थी कि उनका पूरा नाम वाद सूची में नहीं दर्शाया गया था और वह उक्त मामले को दर्ज नहीं कर सके। श्री मिश्रा ने कहा कि आगे से वह मामले को सूचीबद्ध होने पर दर्ज करने में सावधानी बरतेंगे।

4. आदेश दिनांक 04.07.2023 के अनुपालन में श्री आर.वी. राम, उप गन्ना आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा उपस्थित हैं।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि याचिकाकर्ता के पति सहकारी गन्ना समिति मनकापुर, जिला गोंडा अर्थात प्रत्यर्थी संख्या 5 के विभाग में सामयिक चपरासी के पद पर तैनात थे। उनका दावा है कि याचिकाकर्ता के पति की वर्ष 1993 में मृत्यु हो गई थी और इसलिए याचिकाकर्ता ने यू.पी. मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 (जिसे आगे नियमावली, 1974 कहा जाएगा) के प्रावधानों के अंतर्गत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए दावा किया था। इसके अनुसरण में याचिकाकर्ता को दिनांक 05.01.1994 का नियुक्ति पत्र जारी किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को 750-940 रुपये के नियमित वेतनमान में सामयिक चपरासी के पद पर नियुक्त किया गया था। हालांकि, नियुक्ति पत्र में कहा गया था कि नियुक्ति अस्थायी आधार पर होगी। इसके बाद गन्ना आयुक्त, यूपी, लखनऊ द्वारा दिनांक 16.03.2010 का आदेश जारी किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 में है आदेश में कहा गया है कि दिनांक 26.10.1988 के आदेश के माध्यम से समितियों में सामयिक चपरासी-जमादारों के पद समाप्त कर दिए गए हैं तथा निर्देश दिया गया है कि सभी कार्यरत सामयिक चपरासी को अन्य पदों पर समायोजित किया जाए तथा यदि उन्हें समायोजित नहीं किया जा सकता है तो उन्हें उनकी सेवानिवृत्ति तक उसी पद पर बनाए रखा जाए। उक्त आदेश में यह भी इंगित किया गया है कि चूंकि सामयिक चपरासी का पद समाप्त हो गया था, इसलिए याचिकाकर्ता को सामयिक चपरासी के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था। हालांकि, चूंकि याचिकाकर्ता लगभग 16 वर्षों की अवधि से कार्यरत थी, इसलिए यह निर्णय लिया गया कि यदि कोई पद रिक्त है तो चपरासी के पद पर नियुक्ति के लिए उसके दावे पर उसकी एस.सी. श्रेणी के विरुद्ध विचार किया जाए।

6. जब मामले में कुछ नहीं किया गया तो याचिकाकर्ता ने नियमितीकरण का दावा करते हुए श्रीमती तारा देवी बनाम यूपी राज्य एवं अन्य के मामले में रिट याचिका संख्या 24513 (एस/एस) 2017 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए बाध्य हुई। रिट याचिका पर दिनांक 12.10.2017 के निर्णय और आदेश द्वारा निर्णय लिया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 4 में है, जिसके तहत इस न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार करने की आवश्यकता बताई।

7. इसके अनुसरण में याचिकाकर्ता के दावे को प्रत्यर्थियों ने दिनांक 27.12.2017 के आदेश

द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में है, इस आधार पर खारिज कर दिया कि गन्ना आयुक्त के दिनांक 16.03.2010 के आदेश के बावजूद उसकी श्रेणी अर्थात एस.सी. के विरुद्ध चपरासी का कोई पद रिक्त नहीं है।

8. आरोपित आदेश को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यद्यपि याचिकाकर्ता दिनाँक 31.03.2020 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गई है, फिर भी यह देखते हुए कि वह हमेशा चपरासी के पद पर बनी रही है, वह अपनी सेवानिवृत्ति देय राशि की हकदार है, जो कि चूंकि उस संस्थाी में भविष्य निधि और ग्रेच्युटी देय है जिसमें याचिकाकर्ता काम कर रही थी, पैंशन देय नहीं है।

9. इस संबंध में तर्क दिया गया है कि जैसा कि माना जाता है कि याचिकाकर्ता को 1974 के नियमों के प्रावधानों के तहत नियुक्त किया गया था और ऐसी नियुक्ति केवल नियमित पद के विरुद्ध की जा सकती थी, ऐसे में सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए याचिकाकर्ता के कामकाज को नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाना चाहिए। नतीजतन, वह दिनाँक 31.03.2020 को अपनी सेवानिवृत्ति पर उसे नियमित कर्मचारी मानते हुए उसके पूरे सेवानिवृत्ति बकाया के लिए हकदार है।

10. अपने तर्क के समर्थन में कि अनुकंपा नियुक्ति केवल नियमित पद के विरुद्ध ही की जा सकती है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **राम चंद्र बनाम यूपी राज्य और अन्य-2008(26)एलसीडी 669 और रवि करण सिंह बनाम यूपी राज्य-1999(17)एलडीसी 641** के मामलों में इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णयों पर भरोसा किया है।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 2 से 5 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मिश्रा ने जवाबी हलफनामे में निहित कथनों के आधार पर तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को निश्चित रूप से सामयिक चपरासी के रूप में नियुक्त किया गया था। नियमित नियुक्ति दिए जाने के उसके दावे पर, गन्ना आयुक्त ने दिनांक 16.03.2010 को आदेश पारित किया है जिसके तहत दिनांक 26.10.1988 के पिछले आदेश पर विचार किया गया था जिसमें सामयिकी चपरासी के पद को समाप्त कर दिया गया था। तथापि, चूंकि याची लगभग 16 वर्षों से कार्यरत थी, अतः यह निर्णय लिया गया कि चपरासी के नियमित पद पर उसकी नियुक्ति के दावे पर उसकी श्रेणी के विरूद्ध विचार किया जाए। तत्पश्चात पाया गया कि चपरासी के चार नियमित पदों पर 5 व्यक्ति कार्यरत थे, तथा इस प्रकार, नियमितीकरण पर विचार करने हेतु रिट न्यायालय के दिनांक 12.10.2017 के आदेश के बावजूद, न तो नियमितीकरण का दावा, न ही नियमित नियुक्ति का दावा स्वीकार्य या व्यवहार्य पाया गया, अतः दिनांक 27.12.2017 के आदेश द्वारा अभ्यावेदन को अस्वीकृत कर दिया गया। इस प्रकार आरोपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है।

12. जहां तक याची के इस दावे का संबंध है कि नियम, 1974 के प्रावधान के अनुसार उसे नियमित कर्मचारी माना जाए, श्री मिश्रा का

तर्क यह है कि चूंकि याची के पति भी सामयिक चपरासी थे, अतः समिति या गन्ना विभाग के नियमों में सामयिक कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा नियुक्ति देने का कोई प्रावधान नहीं था। हालांकि, याचिकाकर्ता की इस दुर्दशा पर विचार करते हुए कि वह एक विधवा थी, उसे अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करने का निर्णय लिया गया और साथ ही प्रत्यर्थियों द्वारा याचिकाकर्ता को सामयिकी पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करते समय कोई अवैधानिकता और अदृढ़ता नहीं की गई है। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता सामयिकी चपरासी के रूप में काम करते हुए सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गई थी, इसलिए वह सेवानिवृत्ति बकाया के लिए हकदार नहीं है।

13. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात यह बात सामने आई कि याचिकाकर्ता का पति समिति में अर्थात प्रतिवादी संख्या 5 के अधीन सामयिकी चपरासी के पद पर कार्यरत था, जिसकी 05.01.1994 को सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता ने नियम, 1974 के प्रावधानों के अंतर्गत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया। प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता के अनुरोध को स्वीकार करते हुए उसे 750-940 रुपए के नियमित वेतनमान में सामयिकी चपरासी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया। यह माना जा सकता है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियम, 1974 के प्रावधानों के तहत की गई है, जैसा कि नियुक्ति आदेश दिनांक 05.01.1994 के अवलोकन से पता चलता है, जिसमें " मृतक आश्रित के शाशनान्तर्गत " शब्दों का प्रयोग किया गया है, अर्थात सेवा में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974 के अनुसार नियुक्त किया गया है। चूंकि याचिकाकर्ता केवल सामयिकी आधार पर काम कर रही थी, इसलिए उसने नियमित आधार पर नियुक्ति के लिए अपना दावा पेश किया, जिस पर गन्ना आयुक्त ने अपने आदेश दिनांक 16.07.2010 के तहत यह विचार व्यक्त किया कि याचिकाकर्ता की लगभग 16 वर्ष की लंबी सेवा को देखते हुए, उसे उसकी श्रेणी अर्थात एस.सी. श्रेणी के विरुद्ध चपरासी के रूप में नियमित कर्मचारी माना जाना चाहिए।

14. जब कोई आदेश पारित नहीं किया गया तो याचिकाकर्ता चपरासी के पद पर नियमित होने का दावा करते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए बाध्य हुई इस न्यायालय ने दिनांक 12.10.2017 के आदेश के तहत प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए कहा, जिसे उन्होंने दिनांक 27.12.2017 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूंकि चपरासी के रूप में उनकी श्रेणी यानी एस.सी. में कोई रिक्त पद नहीं था, इसलिए उन्हें नियमित नियुक्ति नहीं दी जा सकती। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने सामयिक चपरासी के रूप में काम करना जारी रखा और दिनांक 31.03.2020 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गई।

15. वर्ष 1994 में अनुकंपा के आधार पर याचिकाकर्ता को सामयिक चपरासी के रूप में नियुक्त करते समय प्रत्यर्थियों के ध्यान से यह बात छूट गई कि नियम, 1974 की व्याख्या इस न्यायालय की खंडपीठ ने **रवि करण सिंह (सुप्रा)** के मामले में की है, जिसमें निम्न निर्णय दिया गया है:-

"*हमारे मतानुसार, सेवाकाल के दौरान मृत्यु नियम के अंतर्गत नियुक्ति को स्थायी नियुक्ति माना जाना चाहिए, अन्यथा यदि ऐसी नियुक्ति को अस्थायी नियुक्ति माना जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि नियुक्ति के तुरंत बाद सेवा समाप्त की जा सकती है, तथा इससे सेवाकाल के दौरान मृत्यु नियम का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा, क्योंकि ऐसी नियुक्ति का उद्देश्य परिवार को कमाने वाले की अचानक मृत्यु पर तत्काल राहत प्रदान करना है। इसलिए, हम मानते हैं कि सेवाकाल के दौरान मृत्यु नियम के अंतर्गत नियुक्ति एक स्थायी नियुक्ति है, न कि अस्थायी नियुक्ति, और इसलिए उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियम, 1975 के प्रावधान ऐसी नियुक्तियों पर लागू नहीं होंगे।*"

16. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **राम चंद्र (सुप्रा)** के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया:-

"*पक्षकारों का यह स्वीकृत मामला है कि याचिकाकर्ता के पिता स्वर्गीय श्री राम धीरज राजकीय वास्तुकला महाविद्यालय, लखनऊ में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में कार्यरत थे, जिनकी मृत्यु सेवा में रहते हुए ही हो गई थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (सेवाकाल के दौरान मृत्यु) नियम, 1974 के प्रावधानों के तहत अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया। पक्षकारों का यह स्वीकृत मामला है कि याचिकाकर्ता को दिनाँक19.3.1983 के आदेश द्वारा चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्त किया गया था। यह स्थापित कानून है कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती (सेवाकाल के दौरान मृत्यु) नियम, 1974 के प्रावधानों के तहत की गई नियुक्तियां स्थायी प्रकृति की हैं। चूंकि याचिकाकर्ता की नियुक्ति स्थायी प्रकृति की थी, इसलिए उत्तर प्रदेश अस्थायी सरकारी सेवक (सेवा समाप्ति) नियम, 1975 के प्रावधान लागू नहीं होते । दिनांक 10.12.1985 का आक्षेपित समाप्ति आदेश कानूनी रूप से संधारणीय नहीं है।*"

17. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से यह सामने आता है कि इस न्यायालय ने बार-बार माना है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल नियमित आधार पर ही की जा सकती है। जब प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अनुरोध को स्वीकार कर लिया, तो परिणामस्वरूप यह माना जाएगा कि दिनांक 05.01.1994 के नियुक्ति आदेश के माध्यम से की गई नियुक्ति नियमित आधार पर की गई थी, भले ही इसमें इसे सामयिकी नियुक्ति के रूप में दर्शाया गया हो। इसके अलावा याचिकाकर्ता 24 वर्षों की अवधि तक कार्यरत रही और वह दिनांक 31.03.2020 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुई, उसे इस आधार पर सेवानिवृत्ति देय राशि

नहीं दी गई है कि वह एक सामयिकी कर्मचारी/लिपिक के रूप में सेवानिवृत्त हुई। चूंकि याचिकाकर्ता को नियम, 1974 के प्रावधानों के अंतर्गत अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था और नियम, 1974 के अनुसार अनुकंपा नियुक्ति केवल नियमित पद पर ही की जा सकती है, परिणामस्वरूप उसकी नियुक्ति और याचिकाकर्ता की निरंतर सेवा को प्रत्यर्थियों द्वारा इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून के मद्देनजर नियमित आधार पर किया जाना चाहिए था।

18. पूर्वोक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका **स्वीकृत** की जाती है।

19. दिनांक 27.12.2017 का आक्षेपित आदेश, जिसकी एक प्रति याचिकाकर्ता के अनुलग्नक संख्या 1 में है, को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थियों को एक परमादेश रिट जारी की जाती है जिसमें उन्हें याचिकाकर्ता को नियम, 1974 के प्रावधान के तहत नियमित पद पर नियुक्त मानते हुए उसके सेवानिवृत्ति बकाए के भुगतान पर विचार करने का निर्देश दिया जाता है

(2023) 8 ILRA 1414

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 2733/2023

सत्य प्रकाश शर्मा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री वशिष्ठ तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

ए. सेवा विधि - यूपी अंशदायी भविष्य निधि बीमा पेंशन नियम, 1964 - नियम 19 (बी) - पेंशन - पेंशन पाने के लिए कार्यवाहक प्रिंसिपल की पात्रता - स्थानापन्न पद को मौलिक पद न बनाने में एसटी की विफलता - प्रभाव - माना गया, यदि एसटी, अपनी निष्क्रियता से, किसी पद पर मौलिक आधार पर नियुक्ति नहीं करता है, तो स्थानापन्न क्षमता के रूप में पद धारण करने वाला व्यक्ति, लेकिन प्रकृति में मौलिक पद होने के कारण, उक्त पद के लिए स्वीकार्य वेतन भी प्राप्त कर रहा है, उसे पेंशन लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है - *लक्ष्मण वीर का मामला* पर भरोसा किया गया। (पैरा 7 और 12)

बी. क़ानून की व्याख्या - लाभकारी निर्माण - पेंशन लाभ नियमों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिस उद्देश्य से नियम बनाए गए हैं, वह प्राप्त हो और लाभ *पंक्ति में खड़े अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे* - *डी.एस. नाकारा के मामले* पर भरोसा किया गया। (पैरा 10)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. नरसिंह राय बनाम उप शिक्षा निदेशक, वाराणसी एवं अन्य; 2018 (11) एडीजे 135

2. रूद्र कुमार सैन बनाम भारत संघ; (2000) 8 एसएससी 25

3. लक्ष्मण वीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2019 (4) आलएलजे 116

4. सुरेन्द्र प्रसाद अग्निहोत्री बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2010 0 सुप्रीम (आल) 196

5. डीएस नकारा बनाम भारत संघ; 1983 एआईआर 130

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री वशिष्ठ तिवारी और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी वकील को सुना गया।

2. मेरे दिनांक 22 मार्च, 2023 के अंतिम आदेश के अनुपालन में अनुपालन का शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिसे रिकॉर्ड में ले लिया गया है

3. अनुपालन हलफनामे में राज्य सरकार ने तर्क दिया है कि 9 जनवरी, 2019 को विरश भान शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में पारित रिट-ए संख्या 23690/2018 के निर्णय के मद्देनजर, किसी कार्यवाहक प्रिंसिपल को मूल क्षमता में उक्त पद धारण करने वाला नहीं कहा जा सकता है, इसलिए उत्तर प्रदेश अंशदायी भविष्य निधि बीमा पेंशन नियम, 1964 के नियम 19(बी) की व्याख्या करने का आग्रह किया गया है, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि किसी व्यक्ति को पेंशन प्राप्त करने का हकदार बनाने के लिए उसे मूल पद धारण करना चाहिए।

4. तदनुसार, विरश भान के मामले में याचिकाकर्ता को पेंशन देने से मना कर दिया गया। पैराग्राफ 9 में दिए गए फैसले का अनुपात नीचे दिया गया है:

"9. नियम-19 (ए) के अनुसार, किसी कर्मचारी द्वारा की गई सेवा को पेंशन के लिए नहीं गिना जाएगा जब तक कि कर्मचारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में कोई महत्वपूर्ण पद धारण न करता हो। नियम-19 का उपनियम (ख) एक अपवाद है, जिसके अनुसार पेंशन भुगतान के प्रयोजनार्थ निरन्तर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को भी शामिल किया जाएगा, यदि ऐसी निरन्तरता उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के जारी रहती है। इसलिए, वैधानिक योजना स्पष्ट रूप से सुझाव देती है कि यह या तो सरकारी कर्मचारी द्वारा मूल रूप से धारित पद है जो पेंशन के निर्धारण के लिए प्रासंगिक मानदंड होगा या निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न आधार पर सेवा, जिसके बाद उस पद या समान पद पर पुष्टि की जाती है। अर्हक सेवा का निर्धारण आवश्यक पहलू है, जिसे नियम 19 (बी) द्वारा निपटाया जाता है, जबकि देय पेंशन का अधिकार नियम 19 (ए) द्वारा विनियमित किया जाएगा। यह एक कर्मचारी द्वारा धारित

मूल पद है, जो पेंशन प्राप्त करने के लिए उसके अधिकार का निर्धारण करेगा। चूंकि याचिकाकर्ता मूल आधार पर व्याख्याता के पद पर कार्यरत था, इसलिए उसकी पेंशन का निर्धारण उसकी मूल नियुक्ति के संदर्भ में किया जाएगा और इसलिए प्रतिवादी ने तदनुसार उसकी पेंशन निर्धारित करने में कोई गलती नहीं की है।

5. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की समवर्ती पीठ के दो निर्णयों पर भरोसा किया है। पहला **नरसिंह राय बनाम उप शिक्षा निदेशक, वाराणसी एवं अन्य: 2018 (11) एडीजे 135** का मामला, जिसमें इशरत जहां बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में रिट-ए संख्या 5737/2018 में व्यक्त सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण का हवाला दिया गया है, जिसमें **रुद्र कुमार सैन बनाम भारत संघ: (2000) 8 एसएससी 25** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया था। सेवा न्यायशास्त्र की व्याख्या करते हुए महामहिम ने मामले के इस पहलू का उल्लेख किया कि अपेक्षित योग्यता रखने वाला कोई व्यक्ति लंबे समय तक पद पर बना रहता है, तो वह पेंशन लाभ पाने का हकदार होगा, क्योंकि पेंशन का निर्धारण अंतिम प्राप्त वेतन के आधार पर किया जाता है।

6. 'मूलभूत आधार' शब्द का अर्थ यह लगाया जाता है कि व्यक्ति को मूल प्रकृति का पद धारण करना चाहिए तथा उसके पास अपेक्षित योग्यता होनी चाहिए। इस प्रकार, मूल पद तथा मूल आधार पर पद धारण करने के बीच बहुत कम अंतर किया जाता है। नरसिंह राय के मामले के पैराग्राफ 4 में उद्धृत निर्णय को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"4- उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 7439/2016 (नरसिंह राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य) दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 21.3.2018 के आदेश द्वारा निम्नानुसार अनुमति दी:

"याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आदर्श सिंह और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील को सुना गया।

याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तीसरे प्रतिवादी, उप शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), पंचम क्षेत्र, वाराणसी द्वारा पारित दिनांक 15.2.2018 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत उन्होंने उनकी पेंशन स्वीकृत करने से इनकार कर दिया है और तीसरे प्रतिवादी को सहायक अध्यापक एल.टी. ग्रेड के पद पर उनकी पेंशन स्वीकृत करने और उनकी सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात 31.3.2018 से इसका भुगतान करने का निर्देश देने का अनुरोध किया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 2.7.1994 को एक मान्यता प्राप्त एवं सहायता प्राप्त संस्था ग्रामोदय इंटर कॉलेज गौरा बादशाहपुर, जिला जौनपुर में

सहायक अध्यापक एल.टी. ग्रेड के पद पर हुई थी। इसके अनुपालन में उन्होंने 8.7.1994 को संस्था में कार्यभार ग्रहण किया। तब से वे उक्त पद पर उक्त संस्था में अध्यापन कार्य कर रहे हैं तथा उन्हें 10 वर्ष की सेवा के बाद वार्षिक वेतन वृद्धि एवं एल.टी. ग्रेड का चयन ग्रेड सहित नियमित वेतन भी दिया जा रहा है। याची की नियुक्ति को जिला विद्यालय निरीक्षक, जौनपुर द्वारा 15.7.1995 को विधिवत अनुमोदित भी किया गया था। तत्पश्चात, संयुक्त शिक्षा निदेशक, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.4.2017 द्वारा उनकी सेवाओं को भी 22.3.2016 से नियमित कर दिया गया है। 23 वर्ष से अधिक सेवा करने के पश्चात याची उक्त पद पर अधिवर्षता आयु प्राप्त करने के पश्चात 31.3.2018 को सेवानिवृत्त हो गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को अवगत कराया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावा ***इस न्यायालय द्वारा दिनांक 7.3.2018 को रिट ए संख्या 5737/2018 (इशरत जहां बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य) में पारित निर्णय एवं आदेश द्वारा पूर्णतः कवर किया गया है, जिसे दिनांक 7.3.2018 को निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ स्वीकार किया गया:-***

"17. इस मामले में जिस संक्षिप्त प्रश्न पर निर्णय की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता, जिसे तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था और जो नियमितीकरण के बिना उसी पद पर सेवानिवृत्त भी हो गई थी, को नियमित आधार पर काम करने के लिए माना जा सकता है। "तदर्थ", "अस्थायी" और "आकस्मिक" शब्दों पर सर्वोच्च न्यायालय ने रुद्र कुमार सैन बनाम भारत संघ, (2000) 8 एससीसी 25 के मामले में विचार किया। न्यायालय ने पाया कि एक व्यक्ति, जिसके पास अपेक्षित योग्यता है और जिसे उचित प्राधिकारी के अनुमोदन से नियुक्त किया गया है और यदि उसे काफी लंबे समय तक पद पर बने रहने की अनुमति दी जाती है, तो ऐसी नियुक्ति को अस्थायी/आकस्मिक या पूरी तरह से तदर्थ नियुक्ति नहीं माना जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"सेवा न्यायशास्त्र में, यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष पद पर नियुक्त होने के लिए अपेक्षित योग्यता रखता है और फिर उसे उपयुक्त प्राधिकारी के अनुमोदन और परामर्श से नियुक्त किया जाता है और वह काफी लंबी अवधि तक पद पर बना रहता है, तो ऐसी नियुक्ति को "अस्थायी या आकस्मिक या पूरी

तरह से तदर्थ" नहीं माना जा सकता है।

18. रमेश के. शर्मा बनाम राजस्थान सिविल सेवा, (2001) 1 एससीसी 637 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने बालेश्वर दास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1981 एससी 41) के फैसले के बाद "मूलभूत आधार" शब्द पर विचार किया। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अगर कोई व्यक्ति अनिश्चित काल के लिए पद पर बना रहता है तो उसे तदर्थ नियुक्ति नहीं कहा जा सकता। कोर्ट ने इस प्रकार माना:-

"यदि किसी पदधारी को चयन की उचित प्रक्रिया के बाद अस्थायी पद या स्थायी पद पर नियुक्त किया जाता है और ऐसी नियुक्ति, न तो तात्कालिक या आकस्मिक है, तो उसे मौलिक आधार पर माना जा सकता है। लेकिन यदि पद को किसी विशेष आकस्मिकता को पूरा करने के लिए सीमित अवधि के लिए ही बनाया गया है, और उस पर नियुक्ति किसी चयन प्रक्रिया के माध्यम से नहीं बल्कि तात्कालिक आधार पर की गई है, तो ऐसी नियुक्ति को मौलिक आधार पर नहीं माना जा सकता। सेवा न्यायशास्त्र में "मौलिक आधार" शब्द का प्रयोग तदर्थ या विशुद्ध रूप से तात्कालिक या आकस्मिक के विपरीत किया जाता है।"

19. इस न्यायालय ने डॉ. हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1989) यूपीएलबीईसी 501 के मामले में उत्तर प्रदेश और सिविल सेवा विनियमों में लागू मौलिक नियमों के अनुच्छेद 361 और नियम 56 के खंड (ई) पर विचार किया। डॉ. हरि शंकर असोपा को 4 अगस्त, 1964 को आगरा के एस.एन. मेडिकल कॉलेज में सर्जरी विभाग में लेक्चरर के पद पर अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था। वर्ष 1969 में उन्हें उसी कॉलेज में सर्जरी में रीडर के मूल पद पर नियुक्त किया गया था, वह नियुक्ति भी अस्थायी आधार पर थी। नियुक्ति की अवधि एक वर्ष या उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध होने तक थी, जो भी पहले हो। तीन वर्ष के पश्चात उन्हें झांसी मेडिकल कॉलेज में सर्जरी के प्रोफेसर के पद पर पदोन्नत कर दिया गया। उक्त नियुक्ति भी अस्थायी थी तथा एक वर्ष की अवधि अथवा उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा नियमित रूप से चयनित अभ्यर्थी उपलब्ध होने तक अथवा डॉ. असोपा की सेवाओं की आवश्यकता होने तक, जो भी पहले हो, के लिए थी। डॉ. असोपा लगातार 18 वर्षों तक अस्थायी आधार पर लेक्चरर, रीडर और प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहे। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के उनके

अनुरोध को राज्य सरकार ने वर्ष 1983 में इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया कि उन्हें कोई पेंशन नहीं दी जाएगी, क्योंकि वे सरकारी सेवा के किसी भी पद पर स्थायी नहीं थे। डॉ. असोपा ने उक्त आदेश दिनांक 21.2.1983 से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका प्रस्तुत की।

20. हंस राज पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2007 (3) यूपीएलबीईसी 2073 (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय को उत्तर प्रदेश राज्य सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थान कर्मचारी भविष्य निधि, बीमा एवं पेंशन नियम, 1964 के प्रावधानों पर भी विचार करने का अवसर मिला। इस न्यायालय द्वारा उक्त नियम के नियम 43, 44 एवं 45 पर विस्तार से विचार किया गया तथा उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियम के नियम 465 एवं 465 ए पर भी विचार किया गया। न्यायालय ने निम्न प्रकार से निर्णय दिया:-

"वर्तमान मामले में, जहां तक शर्त संख्या ए और सी का संबंध है, वे संतुष्ट हैं और विवाद केवल शर्त संख्या बी के संबंध में है, अर्थात सेवा के स्थायी स्वरूप का अभाव। हालांकि, हमारे विचार में, यू.पी. अधिनियम संख्या 24, 1975 द्वारा मूल नियम 56 में संशोधन के बाद उपरोक्त प्रावधान समाप्त हो गए हैं, जो अस्थायी कर्मचारियों की भी सेवानिवृत्ति की अनुमति देता है और खंड (ई) में प्रावधान करता है कि सेवानिवृत्ति पेंशन देय है और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ, यदि कोई हो, प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को उपलब्ध होंगे जो इस नियम के तहत सेवानिवृत्त होता है या सेवानिवृत्त होने की आवश्यकता होती है या उसे अनुमति दी जाती है। चूंकि उपर्युक्त संशोधन नियम 56 विधानमंडल के एक अधिनियम द्वारा बनाया गया था, इसलिए सिविल सेवा विनियमों के तहत अन्यथा निहित प्रावधान, जो कि पूर्व-संवैधानिक हैं, को मौलिक नियम 56 के प्रावधानों के लिए रास्ता देना होगा। ***दूसरे शब्दों में, मौलिक नियम 56 के प्रावधान सिविल सेवा विनियमों पर लागू होंगे, यदि वे असंगत हैं। सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 361 की शर्त-बी (सुप्रा) मौलिक नियम 56 के साथ स्पष्ट रूप से असंगत है और इसलिए यह लागू नहीं है।"***

"21. उपर्युक्त निर्णय से यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि यदि तदर्थ/अस्थायी/अस्थायी कर्मचारी के पास आवश्यक योग्यता है और उसे वैधानिक नियमों के अनुसार नियुक्त किया गया है तथा वह लम्बे समय तक कार्यरत रहता है तथा अर्हकारी सेवा पूरी कर लेता है, तो वह पेंशन

तथा अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार है।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के लिए हकदार है क्योंकि उसकी नियुक्ति वैधानिक नियमों के अनुसार की गई थी और इसे जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 8.5.2013 के आदेश द्वारा अनुमोदित भी किया गया था। बेशक, रिट याचिका संख्या 38769/2000 में पारित दिनांक 20.1.2004 के अंतरिम आदेश के कारण, याचिकाकर्ता ने संस्थान में काम करना जारी रखा और अंततः 1.7.2017 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गई (31.3.2018 तक सत्र लाभ के तहत काम किया) और उसने 25 से अधिक वर्षों तक निर्बाध रूप से काम किया।

23. प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को कानून के अनुसार यथाशीघ्र सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान करें, अधिमानतः इस आदेश के संप्रेषण की तारीख से तीन महीने के भीतर।

24. परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावा बेहतर आधार पर है, क्योंकि उनकी सेवाएं पहले ही उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 की धारा 33-सी के अंतर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार 22.3.2016 को नियमित कर दी गई हैं। अनुरोध किया गया है कि वर्तमान रिट याचिका भी उपरोक्त निर्णय के अनुसार स्वीकार किए जाने योग्य है।

विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता मामले के तथ्यात्मक और कानूनी पहलू पर विवाद नहीं करते हैं।

न्यायालय ने विचाराधीन अभिलेख की जांच की और पाया कि आदेश पारित करते समय शिक्षा उपनिदेशक (माध्यमिक), पंचम क्षेत्र, वाराणसी ने 22.3.2016 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के नियमितीकरण का संज्ञान लिया है और इस प्रकार, याचिकाकर्ता का मामला उपरोक्त निर्णय के अंतर्गत आता है।

उपरोक्त के मद्देनजर, आरोपित आदेश कायम नहीं रह सकता और तदनुसार उसे रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और मामले को उप शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) को

वापस भेजा जाता है ताकि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर इशरत जहां मामले (सुप्रा) में पारित उपरोक्त निर्णय के आलोक में नए सिरे से उचित निर्णय ले सकें।" (जोर दिया गया)

7. इस न्यायालय की एक अन्य समवर्ती पीठ ने लक्ष्मण वीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2019 (4) AIILJ 116 के मामले में विशेष रूप से इस मुद्दे पर विचार किया और संशोधन वैधीकरण अधिनियम, 1975 के साथ मौलिक नियम 26 सी और ई को शामिल करने की मांग की ताकि यह व्याख्या की जा सके कि नियम स्थायी और अस्थायी कर्मचारी के बीच अंतर नहीं करते हैं। इस मामले में न्यायालय ने सेवा न्यायशास्त्र के दर्शन के अनुरूप भी काम किया है, जिसके अनुसार किसी पद को धारण करने के लिए व्यक्ति के पास नियमों के तहत अपेक्षित योग्यता होनी चाहिए। इसलिए, यदि राज्य अपनी निष्क्रियता के कारण किसी पद पर मौलिक आधार पर नियुक्ति नहीं करता है, तो पद पर कार्यवाहक क्षमता के रूप में पद धारण करने वाला व्यक्ति, लेकिन पद मौलिक प्रकृति का होने के कारण उक्त पद के लिए स्वीकार्य वेतन भी प्राप्त कर रहा है, उसे उपरोक्त उद्धृत निर्णय के मद्देनजर पेंशन लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 28, 29, 30 31 नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"28. नियम 17 पेंशन के लिए पात्रता प्रदान करता है और नियम 17(1) कहता है कि कर्मचारी सेवानिवृत्ति के बाद सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने या सेवानिवृत्ति के बाद दिए गए विस्तार की समाप्ति पर पेंशन के लिए पात्र होगा और वर्तमान मामले में, निर्विवाद रूप से याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद सेवानिवृत्त हुआ। जहां तक नियम 19-ए का संबंध है, यह कहता है कि पेंशन के लिए कर्मचारी को स्थायी प्रतिष्ठान में मूल पद धारण करना चाहिए। यहां तथ्य यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता को राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त करने वाले स्थायी प्रतिष्ठान के मूल पद पर नियुक्त किया गया था। इसलिए, नियम-1964 के नियम-17 और 19-ए में प्रावधान के अनुसार याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद पेंशन के लिए हकदार है।

29. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 361 पर भरोसा किया है और उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:--

पहला--सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा--रोजगार वास्तविक और स्थायी होना चाहिए।

तीसरा--सेवा का भुगतान सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित अनुभाग में पूरी तरह से समझाया गया है।

1. स्थायी पद पर पर्याप्त सेवा पेंशन के लिए अर्हक है जब तक कि किसी विशेष पद पर सेवा को अनुच्छेद 350 सीएसआर के तहत विशेष रूप से अयोग्य घोषित नहीं किया जाता है, जब एक अस्थायी पद को स्थायी बनाया जाता है या एक स्थायी पद स्वीकृत किया जाता है, तो यह बताना आवश्यक नहीं है कि प्रश्नगत पद अनुच्छेद 361 सीएसआर के तहत भी पेंशन योग्य होगा।

361-ए. तथापि, राज्य सरकार सामान्य राजस्व से भुगतान की जाने वाली सेवा के मामले में, भले ही (1) और (2) में से कोई एक या दोनों शर्तें पूरी न हुई हों:--

(1) यह घोषित करना कि अराजपत्रित हैसियत में की गई कोई भी निर्दिष्ट प्रकार की सेवा पेंशन के लिए अर्ह होगी;

(2) अलग-अलग मामलों में और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जिन्हें वह प्रत्येक मामले में लागू करना उचित समझे, किसी अधिकारी द्वारा की गई सेवा को पेंशन के लिए गणना में लेने की अनुमति देना।

ऐसी शर्तों के अधीन, जिन्हें वह लागू करना उचित समझे, राज्य सरकार इस अनुच्छेद के तहत अपनी शक्तियों को विभागाध्यक्षों को सौंप सकती है।

30. सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 361 के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता प्रथम एवं तृतीय आकस्मिकताओं को पूरा कर रहा है तथा जहां तक द्वितीय आकस्मिकता का प्रश्न है, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क बलवान है, क्योंकि इस न्यायालय के दिनांक 25.04.2005 के आदेश के पश्चात प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से समय पर निष्क्रियता के कारण उसके नियमितीकरण के मामले पर निर्णय नहीं लिया जा सका था तथा उस पर याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के पश्चात दिनांक 03.01.2015 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया है, जो कि ऊपर वर्णित अनुसार टिकने योग्य नहीं है।

31. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अधिनियम, 1975 के नियम 56(सी) और (ई) पर भी भरोसा जताया है और उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

56(सी)। खंड (क) या खंड (ख) में निहित किसी बात के होते हुए भी,

नियुक्ति प्राधिकारी किसी भी समय किसी सरकारी सेवक (चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी) को नोटिस द्वारा, बिना कोई कारण बताए, पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात सेवानिवृत्त होने की अपेक्षा कर सकता है या ऐसा सरकारी सेवक नियुक्ति प्राधिकारी को अधिसूचना द्वारा पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात या बीस वर्ष की अर्हक सेवा पूरी करने के पश्चात किसी भी समय स्वेच्छा से सेवानिवृत्त हो सकता है।

56(ई). प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को, जो इस नियम के तहत सेवानिवृत्त होता है या सेवानिवृत्त होने की अपेक्षा की जाती है या उसे सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाती है, सेवानिवृत्ति पेंशन देय होगी और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ, यदि कोई हो, प्रासंगिक नियमों के प्रावधानों के अनुसार उपलब्ध होंगे।

स्पष्टीकरण- (1) खंड (ग) के अधीन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा सरकारी सेवक को सेवानिवृत्त करने का निर्णय, जैसा कि इसमें विनिर्दिष्ट है, इस प्रकार नहीं समझा जाएगा कि आदेश में इस प्रकार के निर्णय को लोकहित में लिए जाने का उल्लेख आवश्यक है।

(2) ऐसा प्रत्येक निर्णय, जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए, लोकहित में माना जाएगा।

(3) 'नियुक्ति प्राधिकारी' से तात्पर्य उस प्राधिकारी से है जिसे उस पद या सेवा पर मौलिक नियुक्तियां करने की शक्ति प्राप्त है जिससे सरकारी सेवक सेवानिवृत्त होना चाहता है या होना चाहता है; तथा 'अर्हक सेवा' का वही अर्थ होगा जो सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्ति से संबंधित सुसंगत नियमों का है।

(4) इस नियम के खंड (घ) के प्रथम परंतुक के अधीन किसी सरकारी सेवक को तत्काल सेवानिवृत्त होने के लिए कहने वाला नियुक्ति प्राधिकारी का प्रत्येक आदेश उसके जारी होने की तिथि के अपराह्न से प्रभावी होगा, बशर्ते कि यदि संबंधित सरकारी सेवक उसके जारी होने की तिथि के पश्चात सद्भावपूर्वक तथा उस आदेश की जानकारी न होने पर अपने पद के कर्तव्यों का पालन करता है तो उसके कार्य वैध माने जाएंगे, भले ही उसके पहले सेवानिवृत्त होने के तथ्य मौजूद हों।

8. **सुरेन्द्र प्रसाद अग्निहोत्री बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2010 0 सुप्रीम (सभी) 196** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने बहुत स्पष्ट रूप से माना कि वरिष्ठता के आधार पर मूल पद धारण करने वाले और अपेक्षित योग्यता रखने वाले कार्यवाहक प्रिंसिपल को यदि सेवा लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है और वेतन के मामले में, ऐसे व्यक्ति को पेंशन से भी वंचित नहीं किया जा सकता है, जिसे सेवा लाभ भी मिलता है, जिसका वह अन्यथा

अंतिम प्राप्त वेतन के आधार पर हकदार होता। निर्णय के पैराग्राफ 17 के अनुसार न्यायालय ने संदर्भ का उत्तर इस प्रकार दिया:

> *"17. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों तथा कानूनी स्थिति को देखते हुए, हम निम्नलिखित कानूनी प्रश्न पर विचार करने के लिए एक बड़ी पीठ के गठन का संदर्भ देते हैं:*
> *"क्या इंटरमीडिएट कॉलेज का कोई शिक्षक, जिसे उसकी सेवा की विस्तारित अवधि में सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर उसकी वरिष्ठता के आधार पर संस्थान का कार्यवाहक प्रिंसिपल नियुक्त किया जा चुका है, कार्यवाहक प्रिंसिपल के रूप में या केवल एक शिक्षक के रूप में कार्य करना जारी रखेगा?"*

9. श्री मुकेश चंद्र, उप शिक्षा निदेशक, आगरा क्षेत्र, आगरा द्वारा दायर व्यक्तिगत हलफनामे के भाग के रूप में उद्धृत और संलग्न निर्णय पर वापस आते हुए, मैं बहुत सम्मान के साथ कहना चाहता हूँ कि समवर्ती पीठ ने ***नरसिंह राय (सुप्रा)*** के मामले में पूर्व समवर्ती पीठ के निर्णय और ***सुरेन्द्र प्रसाद अग्निहोत्री (सुप्रा)*** के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा उत्तर दिए गए संदर्भ पर ध्यान नहीं दिया।

10. 1982 में **डी.एस. नाकरा बनाम भारत संघ: 1983 एआईआर 130** के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने बहुत स्पष्ट रूप से व्याख्या की थी कि पेंशन लाभ नियमों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि जिस उद्देश्य से नियम बनाए गए हैं, वह हासिल हो और लाभ पंक्ति में खड़े आखिरी व्यक्ति तक पहुंचे। मेरे सुविचारित विचार और ऊपर उद्धृत निर्णयों के आलोक में यह पर्याप्त होगा कि केवल ऐसे पद को धारण करना जो मूल प्रकृति का हो और मूल रूप से पद को धारण न करना भी व्यक्ति को पेंशन का हकदार बनाता है बशर्ते उसने अपने नाम पर योग्य सेवा की हो। यह सही कहा गया है कि प्रावधानों की व्याख्या करते समय एक न्यायाधीश को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह जो व्याख्या कर रहा है क्या उससे पंक्ति में खड़े आखिरी व्यक्ति को लाभ होगा।

11. चूंकि विरष भान शर्मा *(सुप्रा)* के मामले में समवर्ती पीठ ने न तो नरसिंह राय के मामले पर और न ही पूर्ण पीठ *(सुप्रा)* द्वारा उत्तर दिए गए संदर्भ पर ध्यान दिया है, इसलिए इसे बाध्यकारी मिसाल के रूप में नहीं लिया जा सकता है और इसलिए मैं विरष भान के मामले में लिए गए दृष्टिकोण से बाध्य नहीं हूं।

12. वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने संस्था के कार्यवाहक प्रिंसिपल का पद संभाला था जो एक मूलभूत पद था और स्कूलों के जिला निरीक्षक के अनुमोदन से उन्हें वेतन भी दिया गया था क्योंकि उनके हस्ताक्षर इस प्रकार प्रमाणित थे, और तदनुसार, मैं उन्हें संस्था के प्रिंसिपल के रूप में याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन के आधार पर पेंशन का हकदार मानता हूं जो कानून में अन्यथा स्वीकार्य होगा।

13. उपर्युक्त के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और इसे उपरोक्तानुसार स्वीकार किया जाता है।

14. उप शिक्षा निदेशक, माध्यमिक आगरा क्षेत्र आगरा को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता की पेंशन की गणना संस्था के प्रधानाचार्य के रूप में प्राप्त अंतिम वेतन के आधार पर करें तथा उसे अगले तीन माह के भीतर जारी कर दें।

15. अतः इन परिस्थितियों में लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 1421

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट ए संख्या 5351 वर्ष 2023

महेंद्र पाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

वैभव श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, गौरव मेहरोत्रा

ए. सेवा विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - लापरवाही - समीक्षा लंबित होने पर कार्रवाई का नया कारण कब तक दें - 23.05.2007 को दंड आदेश पारित किया गया था, जिसके खिलाफ लापरवाही के आधार पर 15.02.2008 को वैधानिक अपील खारिज कर दी गई थी - समीक्षा दायर की गई थी जिसे 18.04.2023 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि यह बनाए रखने योग्य नहीं है - सजा आदेश और परिणामी आदेश को चुनौती दी गई थी - अभिनिर्धारित किया गया, केवल इसलिए कि अधिकारियों ने 18.04.2023 के आदेश के माध्यम से समीक्षा की गैर-धारणीयता के बारे में सूचित किया था, इससे प्रस्तुत रिट याचिका में पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता - उच्च न्यायालय ने लापरवाही के आधार पर रिट याचिका खारिज कर दी। (पैरा 17 और 23)

रिट याचिका खारिज (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :

1. एमआर गुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य; 1995 (5) एससीसी 628

2. भारत संघ एवं अन्य बनाम तरसेम सिंह; 2008 (8) एससीसी 648

3. त्रिपुरा राज्य व अन्य बनाम अरबिंद चक्रवर्ती व अन्य; (2014) 6 एससीसी 460

4. नरेश कुमार एवं अन्य बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली); (2019) 9 एससीसी 416

5. भारत संघ एवं अन्य बनाम एमके सरकार; (2010) 2 एससीसी 59

6. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राजमती सिंह; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1785

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 से 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा को सुना गया।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए दायर की गई है:

"(i) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 18.04.2023 के आरोपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में निहित प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा पारित दिनांक 15.02.2008 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iii) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में निहित विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 23.05.2007 (जहां तक यह दंड लगाने से संबंधित है) के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iv) प्रत्यर्थीगण को आदेश, रिट या निर्देश जारी कर निर्धारित समय के भीतर याचिकाकर्ता की सेवा पुस्तिका में दिनांक 23/05/2007 के आक्षेपित आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3) के तहत दी गई निंदा प्रविष्टि को हटाने/मिटाने का आदेश देना।

(v) प्रत्यर्थीगण को आदेश या निर्देश जारी कर निलंबन अवधि के दौरान देय वेतन और अन्य भत्तों का पूरा बकाया, वास्तविक भुगतान की तिथि तक लागू ब्याज सहित, निर्दिष्ट समय के भीतर देने का आदेश देना।

(vi) प्रत्यर्थीगण को आदेश, निर्देश या परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी करना, जिसमें निर्धारित समय के भीतर याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों सहित एक वेतन वृद्धि प्रदान करने/अनुदान देने का आदेश दिया जाए, जिसे दिनांक 23.05.2007 के आपत्तिजनक आदेश (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3) द्वारा रोक दिया गया था।"

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रकरण यह है कि याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 2 बैंक का कर्मचारी है। याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही की गई थी और दिनांक 23.05.2007

को एक दंड आदेश पारित किया गया था, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 3 में है, जिसके तहत निम्नलिखित दंड दिए गए थे:

(ए) प्रतिकूल प्रविष्टि और

(बी) संचयी रूप से एक वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी।

4. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने एक अपील दायर की जिसे 15.02.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 2 में है, इस आधार पर कि इसे समय से परे दायर किया गया था। याचिकाकर्ता का दावा है कि इसके बाद भी वह प्रत्यर्थीगण के समक्ष प्रतिनिधित्व करता रहा और 12.03.2008 को पुनरीक्षण दायर करने का भी दावा करता है। बार-बार प्रतिनिधित्व के बाद, उक्त पुनरीक्षण को 18.04.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा तय किया गया है, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 में है। पुनरीक्षण को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि अपील के निर्णय के बाद पुनरीक्षण दायर करने के लिए सेवा नियमों में कोई प्रावधान नहीं है।

5. तीनों आदेशों अर्थात् दिनांक 18.04.2023 के आदेश, दिनांक 15.02.2008 के आदेश तथा दिनांक 23.05.2007 के दण्ड आदेश को चुनौती देते हुए, यह रिट याचिका दायर की गई है।

6. प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा द्वारा प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि रिट याचिका लापरवाही और देरी के कारण केवल इसलिए बाधित है क्योंकि अधिकारियों ने 18.04.2023 को एक आदेश पारित किया है, जिसके द्वारा यह इंगित किया गया है कि पुनरीक्षण पर विचार करने के लिए सेवा नियमों के तहत पुनरीक्षण की कोई शक्ति नहीं है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई उक्त पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया है, वही याचिकाकर्ता को वर्ष 2007 और 2008 के पुराने आदेशों को चुनौती देने के लिए कार्रवाई का एक नया कारण नहीं देगा और इस प्रकार रिट याचिका केवल इस आधार पर खारिज किए जाने योग्य है।

7. उपरोक्त का उत्तर देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वैभव श्रीवास्तव का तर्क है कि **एम.आर. गुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, जो **1995 (5) एससीसी 628** में रिपोर्ट किया गया था और **भारत संघ और अन्य बनाम तरसेम सिंह** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को जो **2008 (8) एससीसी 648** में रिपोर्ट किया गया था, याचिकाकर्ता के पास रिट याचिका दायर करने के लिए कार्रवाई का निरंतर कारण है क्योंकि याचिकाकर्ता को लगाए गए दंड में से एक संचयी रूप से एक वेतन वृद्धि का रोक है जो आज की तारीख तक उसे प्रभावित करना जारी रखता है और इसलिए कार्रवाई का निरंतर कारण होने के नाते, वह पूरी तरह से रिट याचिका दायर करने का हकदार है जब भी प्रत्यर्थी कोई आदेश पारित करते हैं, यहां तक

कि पुनरीक्षण पर भी जो पहली बार में बनाए रखने योग्य नहीं थी।

8. इस पर प्रतिक्रिया देते हुए, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा का तर्क है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ 23.05.2007 को दंडात्मक आदेश पारित किया गया था। याचिकाकर्ता ने इसके खिलाफ विलम्बित अपील दायर की जिसे 15.02.2008 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि इसे समय से परे दायर किया गया है। भले ही याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण दायर की है, जो सेवा नियमों और प्रत्यर्थी बैंक से संबंधित अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले नियमों के तहत बनाए रखने योग्य नहीं थी, फिर भी बैंक ने अपने विवेक से 18.04.2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता की पुनरीक्षण को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उक्त पुनरीक्षण स्वयं बनाए रखने योग्य नहीं है। परिणामस्वरूप, इससे याचिकाकर्ता के लिए कोई नया कारण उत्पन्न नहीं होगा, क्योंकि एक बार पुनरीक्षण स्वयं ही पोषणीय नहीं था, भले ही याचिकाकर्ता ने उसे दायर किया हो और अपने पुनरीक्षण आवेदन पर निर्णय के लिए प्रत्यर्थीगण के समक्ष प्रतिनिधित्व करना जारी रखा हो, इससे कोई नया कारण उत्पन्न नहीं होगा, क्योंकि चुनौती दिए गए आदेश वे आदेश माने जाते हैं, जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद पारित किए गए हैं, अर्थात 23.05.2007 का दंड आदेश और 15.2.2008 का अपीलीय आदेश और 15 वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद रिट याचिका दायर की गई है, इसलिए केवल इसी आधार पर इसे खारिज किया जाना उचित है।

9. इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **त्रिपुरा राज्य एवं अन्य बनाम अरबिंद चक्रवर्ती एवं अन्य (2014) 6 एससीसी 460**, **नरेश कुमार एवं अन्य बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली) (2019) 9 एससीसी 416**, **भारत संघ एवं अन्य बनाम एम.के. सरकार (2010) 2 एससीसी 59** और **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम राजमती सिंह (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1785)** मामलों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

10. उपर्युक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, श्री गौरव मेहरोत्रा का तर्क यह है कि जब किसी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन के आधार पर आदेश पारित किया गया है, तब भी वह पुराने दावे को जीवित नहीं करेगा और परिणामस्वरूप जब तत्काल रिट याचिका मुख्य रूप से दंड आदेश और वर्ष 2007 और 2008 में पारित अपीलीय आदेश के खिलाफ दायर की गई है, परिणामस्वरूप रिट याचिका केवल इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है।

11. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

12. अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने के पश्चात, उसके विरुद्ध दिनांक 23.05.2007 को दंड आदेश पारित किया गया था, जिसके अंतर्गत उसे प्रतिकूल प्रविष्टि तथा संचयी आधार पर एक वेतन वृद्धि रोकने का दंड दिया गया था। प्रारंभ में याचिकाकर्ता उक्त आदेश से असंतुष्ट नहीं था, क्योंकि उसने

नियमानुसार निर्धारित समय के भीतर अपील दायर नहीं की थी। उसने दंड आदेश के विरुद्ध विलम्बित अपील दायर की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 15.02.2008 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह नियमों के अंतर्गत निर्दिष्ट समय के बाद दायर की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता इस प्रकरण में चुप रहा तथा उसने सक्षम न्यायालय के समक्ष इसे चुनौती नहीं दी। यह तर्क दिया गया कि उसने दंड आदेश तथा अपीलीय आदेश दोनों के विरुद्ध दिनांक 12.03.2008 को पुनरीक्षण दायर की। यह आरोप लगाया गया कि उक्त पुनरीक्षण प्रत्यर्थीगण के पास लंबित रही तथा याचिकाकर्ता अपनी पुनरीक्षण पर निर्णय पारित किए जाने के लिए लगातार अभ्यावेदन करता रहा। इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा 18.04.2023 को ही एक आदेश पारित किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को यह तर्क देकर खारिज कर दिया गया है कि पुनरीक्षण दायर करने के लिए सेवा नियमों में कोई शक्ति नहीं है। अब तीनों आदेशों यानी दंड आदेश, अपीलीय आदेश और साथ ही पुनरीक्षण पर पारित आदेश को चुनौती देते हुए, जो स्वयं अनुरक्षणीय नहीं था, तत्काल याचिका दायर की गई है।

13. लापरवाही को स्पष्ट करने के लिए **एम.आर. गुप्ता (पूर्वोक्त) तथा तरसेम सिंह (पूर्वोक्त)** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

14. न्यायालय **तरसेम सिंह (पूर्वोक्त)** के निर्णयों पर विचार करता है जिसमें **एम.आर. गुप्ता (पूर्वोक्त)** के पहले के निर्णय पर विचार किया गया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **तरसेम सिंह (पूर्वोक्त)** प्रकरण में निम्नानुसार निर्णय दिया है:"

*"5. संक्षेप में, सामान्य रूप से, विलम्बित सेवा संबंधी दावे को देरी और लापरवाही (जहां रिट याचिका दायर करके उपाय मांगा जाता है) या सीमा (जहां प्रशासनिक न्यायाधिकरण में आवेदन करके उपाय मांगा जाता है) के आधार पर खारिज कर दिया जाएगा। **उक्त नियम के अपवादों में से एक निरंतर गलत से संबंधित प्रकरण हैं। जहां सेवा संबंधी दावा निरंतर गलत पर आधारित है, वहां राहत दी जा सकती है, भले ही उपचार मांगने में बहुत देरी हो, उस तारीख के संदर्भ में जिस पर निरंतर गलत शुरू हुआ, अगर ऐसा निरंतर गलत चोट का निरंतर स्रोत बनाता है।** लेकिन अपवाद का एक अपवाद है। यदि शिकायत किसी ऐसे आदेश या प्रशासनिक निर्णय के संबंध में है जो कई अन्य लोगों से संबंधित या प्रभावित है, और यदि मुद्दे को फिर से खोलने से तीसरे पक्ष के तय अधिकारों पर असर पड़ेगा, तो दावे पर विचार नहीं किया जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि मुद्दा वेतन या पेंशन के भुगतान या पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो देरी के बावजूद राहत दी जा सकती है क्योंकि यह तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है। लेकिन अगर दावे में वरिष्ठता या*

पदोन्नति आदि से संबंधित मुद्दे शामिल हैं, जो दूसरों को प्रभावित करते हैं, तो देरी से दावा बेकार हो जाएगा और आलस्य/सीमा का सिद्धांत लागू होगा। जहां तक पिछली अवधि के लिए बकाया की वसूली के परिणामी राहत का सवाल है, आवर्ती/क्रमिक गलतियों से संबंधित सिद्धांत लागू होंगे। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय बकाया से संबंधित परिणामी राहत को आम तौर पर रिट याचिका दायर करने की तारीख से तीन साल पहले की अवधि तक सीमित कर देंगे।

16. तरसेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने से यह संकेत मिलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विलम्बित सेवा दावे को विलंब और लापरवाही के आधार पर खारिज किया जा सकता है, जहां रिट याचिका दायर करके उपचार मांगा जाता है या सीमा अवधि के आधार पर खारिज किया जा सकता है, जहां प्रशासनिक न्यायाधिकरण में आवेदन करके उपचार मांगा जाता है, लेकिन उक्त नियम का एक अपवाद निरंतर गलत से संबंधित होगा, जहां सेवा से संबंधित दावा निरंतर गलत पर आधारित है। यदि निरंतर गलत शुरू होने की तिथि के संदर्भ में उपचार मांगने में बहुत देरी हुई है, तो भी राहत दी जा सकती है, यदि ऐसा निरंतर गलत नुकसान का निरंतर स्रोत बनाता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'निरंतर गलत' के सिद्धांत के लिए कुछ अपवाद बनाए हैं, जिनमें से एक अपवाद जो याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है, वह यह है कि यदि मुद्दा वेतन और पेंशन के भुगतान या पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो देरी के बावजूद राहत दी जा सकती है क्योंकि यह तीसरे पक्ष के अधिकार को प्रभावित नहीं करता है।

17. प्रथम दृष्टया, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कुछ बल प्रतीत होता है, क्योंकि संचयी प्रभाव से एक वेतन वृद्धि रोकने की सजा कई वर्षों के बीत जाने के बाद भी प्रभावी रहती है, इसलिए वह 15 वर्ष की अवधि के बाद भी इस याचिका को प्रस्तुत करने का हकदार हो सकता है। हालांकि **तरसेम सिंह (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि जहां तक इस प्रकरण का संबंध है, छूट वहां दी गई है, जहां कुछ प्रशासनिक निर्णयों के कारण वेतन या पेंशन का गलत निर्धारण हुआ है। इस प्रकरण में प्रशासनिक निर्णयों के कारण याचिकाकर्ता का वेतन गलत तरीके से निर्धारित नहीं किया गया है, बल्कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ जानबूझकर और जानबूझकर सजा आदेश पारित किया गया था, जिसके तहत संचयी प्रभाव से एक वेतन वृद्धि रोकने की सजा पारित की गई थी। याचिकाकर्ता ने अपने विवेक से विलम्ब से अपील दायर की जिसे वर्ष 2008 में ही खारिज कर दिया गया और उसके बाद उसने एक ऐसा उपाय अपनाया जो सेवा नियमों के तहत स्वीकार्य नहीं था यानी पुनरीक्षण का उपाय। यहां तक कि जब वर्ष

2008 में पुनरीक्षण दायर की गई थी, तब भी यह प्रकरण हो सकता था कि वर्ष 2008 में याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से पुनरीक्षण पर निर्णय लेने की प्रार्थना की होगी (जो स्वयं में स्वीकार्य नहीं थी) लेकिन याचिकाकर्ता ने प्रकरण को दबाना जारी रखा और यह केवल तब हुआ जब प्राधिकारियों ने स्वयं याचिकाकर्ता को दिनांक 18.04.2023 के आदेश के माध्यम से संकेत दिया कि पुनरीक्षण स्वयं स्वीकार्य नहीं है क्योंकि नियमों के तहत कोई प्रावधान नहीं है, तब याचिकाकर्ता जागा और उसने तीनों आदेशों को चुनौती देने का फैसला किया।

18. उपर्युक्त चर्चा पर विचार करते हुए, **तरसेम सिंह (पूर्वोक्त)** में निर्धारित कानून के सिद्धांत लागू नहीं होंगे।

19. जहां तक प्रत्यर्थीगण की ओर से उद्धृत निर्णय का संबंध है, अर्थात् **अरबिंद चक्रवर्ती (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> *"15. हमारी राय में, यह मुकदमा सीमा अवधि के कानून द्वारा पूरी तरह से वर्जित था। **जब कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है या कोई वैधानिक अपील प्रदान नहीं की गई है, तो केवल एक अभ्यावेदन देने से सीमा अवधि नहीं बढ़ेगी। कानून केवल एक अभ्यावेदन दाखिल करने से सीमा अवधि के विस्तार की अनुमति नहीं देता है। कोई व्यक्ति वर्षों तक अभ्यावेदन करता रह सकता है और ऐसी स्थिति में सीमा अवधि उस तिथि से शुरू नहीं होगी जिस तिथि को अंतिम अभ्यावेदन पर निर्णय लिया गया है।** वर्तमान प्रकरण में, यह एक तथ्य है कि प्रत्यर्थी को 22.11.1967 को एक नया नियुक्ति आदेश दिया गया था, जो रिकॉर्ड में है। उक्त नियुक्ति आदेश ने प्रत्यर्थी को एक नई नियुक्ति दी और इसलिए, प्रत्यर्थी के पहले रोजगार से सेवा की निरंतरता के संबंध में कोई सवाल नहीं हो सकता था।*
>
> *18. यह एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि सीमा अवधि उस तिथि से शुरू होगी जिस दिन वाद का कारण बनता है। यदि प्रत्यर्थी को अपील का अधिकार देने वाला कोई कानून होता और यदि प्रत्यर्थी ने ऐसी कोई वैधानिक अपील दायर की होती, तो सीमा अवधि उस तिथि से शुरू होती जिस दिन वैधानिक अपील का निर्णय होता। वर्तमान प्रकरण में, किसी वैधानिक अपील के संबंध में कोई प्रावधान नहीं था। **प्रत्यर्थी एक के बाद एक अभ्यावेदन करता रहा और सभी अभ्यावेदन खारिज कर दिए गए। प्रत्यर्थी का यह कहना कि सीमा अवधि उस तिथि से शुरू होगी जिस दिन उसका अंतिम अभ्यावेदन खारिज किया गया था, स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि स्वीकार किया जाता है, तो यह सीमा अवधि के कानून का उपहास होगा। कोई 25 साल तक अभ्यावेदन करता रह सकता है और***

उस स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि सीमा अवधि उस तिथि से शुरू होगी जिस दिन अंतिम अभ्यावेदन का निर्णय हुआ था। *इस कानूनी मुद्दे पर, हमें लगता है कि अवर न्यायालयों ने अंतिम अभ्यावेदन की अस्वीकृति की तिथि को वाद का कारण बनने की तिथि मानकर गलती की है। ऐसा नहीं किया जा सका।"*

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

20. इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नरेश कुमार (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"13. ***यह स्थापित कानून है कि पुनरीक्षण की शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कानून में इसके लिए प्रावधान हो। संबंधित कानून में ऐसे किसी प्रावधान के अभाव में, संबंधित प्राधिकारी द्वारा पुनरीक्षण की ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।*** *कलाभारती एडवरटाइजिंग बनाम हेमंत विमलनाथ नरिचानिया (2010) 9 एससीसी 437 के प्रकरण में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:*

> "...12. यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि जब तक कानून/नियम इसकी अनुमति नहीं देते, न्यायिक/ अर्धन्यायिक आदेशों के प्रकरण में पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार्य नहीं है। अधिनियम में पुनरीक्षण की स्पष्ट शक्ति प्रदान करने वाले किसी प्रावधान के अभाव में, यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षण नहीं की जा सकती है और यदि पुनरीक्षण आदेश पारित किया जाता है, तो वह अधिकार क्षेत्र से बाहर, अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

(देखें- पटेल चुन्नीभाई दाजीभा बनाम नारायणराव खंडेराव जाम्बेकर [एआईआर 1965 एससी 1457] और हरिभजन सिंह बनाम करम सिंह [एआईआर 1966 एससी 641]।)

13. पटेल नरशी ठाकरशी बनाम प्रद्युम्न सिंहजी अर्जुनसिंहजी [(1971) 3 एससीसी 844: एआईआर 1970 एससी 1273], मेजर चंद्रभान सिंह बनाम लताफत उल्लाह खान [(1979) 1 एससीसी 321], कुंतेश गुप्ता (डॉक्टर) बनाम हिंदू कन्या महाविद्यालय [(1987) 4 एससीसी 525: 1987 एससीसी (एल एंड एस) 491: एआईआर 1987 एससी 2186], उड़ीसा राज्य बनाम भूमि अभिलेख और निस्तारण आयुक्त [(1998)

7 एससीसी 162] और सुनीता जैन बनाम पवन कुमार जैन [(2008) 2 एससीसी 705: (2008) 1 एससीसी (सीआरआई) 537] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पुनरीक्षण करने की शक्ति एक अंतर्निहित शक्ति नहीं है। इसे कानून द्वारा स्पष्ट रूप से/विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए और अधिनियम/नियमों में किसी प्रावधान के अभाव में, पहले के आदेश की पुनरीक्षण अस्वीकार्य है क्योंकि पुनरीक्षण क़ानून द्वारा बनाई गई है। पुनरीक्षण का अधिकार क्षेत्र केवल क़ानून से ही प्राप्त किया जा सकता है और इस प्रकार, किसी भी वैधानिक प्रावधान के अभाव में पुनरीक्षण का कोई भी आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना होने के कारण अमान्य है।

14. अतः, उपर्युक्त के मद्देनजर, ***इस मुद्दे पर कानून को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है कि पुनरीक्षण के लिए किसी वैधानिक प्रावधान के अभाव में, स्पष्टीकरण/संशोधन/सुधार की आड़ में पुनरीक्षण के लिए आवेदन स्वीकार करना स्वीकार्य नहीं है।***

(प्रभाव वर्द्धित)"

21. इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एम.के. सरकार (पूर्वोक्त)** प्रकरण में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"14. न्यायाधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी के प्रथम आवेदन को गुण-दोष की जांच किए बिना स्वीकार करने तथा अपीलकर्ताओं को उसके अभ्यावेदन पर विचार करने का निर्देश देने के आदेश से अनावश्यक मुकदमेबाजी तथा अनावश्यक जटिलताओं को बढ़ावा मिला है। इस न्यायालय द्वारा सी. जैकब बनाम भूविज्ञान एवं खनन निदेशक एवं अन्य - 2009 (10) एससीसी 115 में ऐसे निर्देशों के दुष्प्रभावों पर विचार किया गया है:

"न्यायालय/न्यायाधिकरण इस धारणा पर आगे बढ़ते हैं कि प्रत्येक नागरिक को अपने अभ्यावेदन का उत्तर मिलना चाहिए। दूसरे , वे यह मानते हैं कि अभ्यावेदन पर विचार करने और उसका निपटारा करने के मात्र निर्देश से पक्षों के अधिकारों और दायित्वों पर कोई 'निर्णय' नहीं होता। उन्हें इस बात का अहसास ही नहीं होता कि 'विचार' करने के ऐसे निर्देश के क्या

परिणाम होंगे। यदि अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है और उसे स्वीकार कर लिया जाता है, तो पूर्व कर्मचारी को राहत मिलती है, जो उसे 'विचार' करने के निर्देश के कारण लंबे विलंब के कारण नहीं मिलती। यदि अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है और उसे अस्वीकार कर दिया जाता है, तो पूर्व कर्मचारी 1982 के मूल कारण के संदर्भ में नहीं, बल्कि 2000 में दिए गए अभ्यावेदन की अस्वीकृति को कारण के रूप में मानते हुए एक आवेदन/रिट याचिका दायर करता है। अभ्यावेदन की अस्वीकृति को रद्द करने और अभ्यावेदन में दावा की गई राहत प्रदान करने के लिए प्रार्थना की जाती है। न्यायाधिकरण/उच्च न्यायालय नियमित रूप से ऐसे आवेदनों/याचिकाओं पर विचार करते हैं, अभ्यावेदन से पहले की गई भारी देरी को अनदेखा करते हुए , और दावे की योग्यता के आधार पर जांच करते हैं और राहत प्रदान करते हैं। इस प्रकार, सीमा की बाधा या लाचिस नष्ट हो जाती है या उसे नजरअंदाज कर दिया जाता है।"

15. ***जब किसी 'पुराने' या 'मृत' मुद्दे/विवाद के संबंध में विलम्बित अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है और ऐसा करने के लिए न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्देश के अनुपालन में निर्णय लिया जाता है, तो ऐसे निर्णय की तिथि को 'मृत' मुद्दे या समय-बाधित विवाद को पुनर्जीवित करने के लिए कार्रवाई का नया कारण प्रस्तुत करने के रूप में नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। सीमा या विलंब और आलस्य के मुद्दे पर कार्रवाई के मूल कारण के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए, न कि उस तिथि के संदर्भ में जिस पर न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में आदेश पारित किया जाता है। न तो गुण-दोष की जांच किए बिना जारी किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने का न्यायालय का निर्देश, और न ही ऐसे निर्देश के अनुपालन में दिया गया निर्णय, सीमा को बढ़ाएगा, या विलंब और आलस्य को मिटाएगा।"***

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

22. इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजमती सिंह (पूर्वोक्त)** प्रकरण में निम्नांकित निर्णय दिया है:

"19. इस प्रकरण के तथ्यों के अनुसार, "सी. जैकब बनाम भूविज्ञान और खनन निदेशक और अन्य" (2008) 10 एससीसी 115 में, इस न्यायालय ने पाया कि कर्मचारी ने 20 साल बाद अपनी सेवाओं की समाप्ति के आदेश को अचानक चुनौती दी और सभी परिणामी लाभों का दावा किया, इसलिए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मांगी गई राहत अस्वीकार्य थी। इस संबंध में कानूनी स्थिति निम्नलिखित शब्दों में बताई गई:

> *"10. राहत के लिए सरकार के हर अभ्यावेदन को गुण-दोष के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता। ऐसे मामलों से संबंधित अभ्यावेदन जो पुराने हो गए हैं या समय-सीमा के कारण वर्जित हो गए हैं, उन्हें दावे के गुण-दोष की जांच किए बिना केवल इसी आधार पर खारिज किया जा सकता है। विभाग से असंबंधित अभ्यावेदनों के संबंध में , उत्तर केवल यह सूचित करने के लिए हो सकता है कि प्रकरण विभाग से संबंधित नहीं है या उचित विभाग को सूचित किया जाए। अधूरे विवरण वाले अभ्यावेदनों का उत्तर प्रासंगिक विवरण मांगकर दिया जा सकता है। **ऐसे अभ्यावेदनों के उत्तर, कार्रवाई का नया कारण प्रस्तुत नहीं कर सकते या पुराने या मृत दावे को पुनर्जीवित नहीं कर सकते।***
>
> *11. जब न्यायालय /न्यायाधिकरण द्वारा प्रतिनिधित्व पर विचार करने या उससे निपटने के लिए कोई निर्णय जारी किया जाता है, तो आमतौर पर निर्देशित व्यक्ति (निर्देशित व्यक्ति) प्रकरण की जांच गुण-दोष के आधार पर करता है, क्योंकि उसे लगता है कि ऐसा न करना अवज्ञा के बराबर हो सकता है। **जब न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुपालन में दावे या प्रतिनिधित्व पर विचार करने और उसे खारिज करने का आदेश पारित किया जाता है, तो ऐसा आदेश पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं करता है, न ही किसी तरह के "न्यायिक संबंध की स्वीकृति" के रूप में कार्य करता है, जिससे कार्रवाई का कोई नया कारण पैदा होता है।"***

23. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के सावधानीपूर्वक अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि केवल इसलिए कि किसी कर्मचारी द्वारा अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया

है जिस पर निर्णय लिया गया है, निर्णय से पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। अन्यथा भी, वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता ने अपनी मर्जी से एक पुनरीक्षण दायर की है जो वर्ष 2008 में सेवा नियमों के अनुसार स्वयं पोषणीय नहीं था और यह केवल तब है जब अधिकारियों ने उसे वर्ष 2023 में सूचित किया कि सेवा नियमों के अनुसार पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है, तब याचिकाकर्ता ने वर्ष 2007 के दंड आदेश और वर्ष 2008 के अपीलीय आदेश सहित सभी आदेशों को चुनौती दी है। इस प्रकार केवल इसलिए कि अधिकारियों ने 18.04.2023 के आदेश के माध्यम से पुनरीक्षण की गैर-स्थायीता के बारे में सूचित किया, इससे वर्तमान रिट याचिका की तरह पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।

24. उपर्युक्त पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा जाता है और रिट याचिका को लापरवाही के आधार पर **खारिज** किया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1429

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 6057/2023

कुलभास्कर आश्रम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री चंदन शर्मा, श्री रवि कुमार भाटिया

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री प्रतीक चंद्र

सेवा विधि - नियुक्ति - प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले का पद - पद की प्रकृति - तकनीकी या गैर-तकनीकी पद - आउटसोर्सिंग के माध्यम से की जाने वाली नियुक्ति - अनुमति - दिनांक 06.02.2011 के जीओ के अनुसार तकनीकी पद को छोड़कर सभी चतुर्थ श्रेणी के पद आउटसोर्सिंग के माध्यम से भरे जाएंगे - प्रयोज्यता - माना गया कि पशु पकड़ने वाले का पद आवश्यक रूप से एक तकनीकी पद होना आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के पास अनुसंधान के प्रयोजनों के लिए जानवरों को सुरक्षित रूप से पकड़ने के लिए तकनीकी हाथ होना चाहिए - इसे सामान्य चतुर्थ श्रेणी का पद नहीं माना जा सकता - संस्थान को संस्थान की प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले के स्वीकृत पद के सापेक्ष नियमित नियुक्ति करने का अधिकार है। (पैरा 2, 10, 18 और 19)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री चंदन शर्मा, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी

वकील श्री कविश सुहैल और राज्य विश्वविद्यालय के विद्वान वकील श्री प्रतीक चंद्रा का पक्ष सुना।

2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज से संबद्ध एक स्नातकोत्तर, सहायता प्राप्त एवं मान्यता प्राप्त डिग्री महाविद्यालय है। ऐसा हुआ कि ग्रुप-डी के एक कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के कारण, प्राणीशास्त्र विभाग में एनिमल कैचर (ग्रुप-डी तकनीकी) का पद रिक्त हो गया। चूंकि प्रश्नगत पद को भरने के लिए उच्च शिक्षा निदेशक से अनुमति आवश्यक थी, इसलिए याचिकाकर्ता ने आवेदन किया, लेकिन उच्च शिक्षा निदेशक, यूपी, प्रयागराज ने अपने 1 मार्च, 2023 के आदेश के तहत इस आधार पर अनुमति देने से इनकार कर दिया कि प्रश्नगत पद चतुर्थ श्रेणी का है, इसलिए 6 फरवरी, 2011 के शासनादेश के आलोक में तकनीकी पद को छोड़कर चतुर्थ श्रेणी के सभी पदों को आउटसोर्सिंग के माध्यम से भरा जाएगा।

3. इस याचिका में उपरोक्त आदेश को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती दी गई है कि संबंधित अधिकारी द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण कानून की दृष्टि से टिकने योग्य नहीं है, क्योंकि प्राणी विज्ञान विभाग में पशु पकड़ने वाले का पद एक तकनीकी पद है, न कि नियमित ग्रुप-डी पद। इस संबंध में याचिकाकर्ता ने 14 मार्च, 1984 के सरकारी आदेश का हवाला दिया है, जो पद सृजन के लिए मानदंड निर्धारित करता है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के अनुसार विज्ञान संकाय में प्रयोगशाला में सृजित पद को तकनीकी पद माना जाना चाहिए न कि सामान्य चतुर्थ श्रेणी का पद। उनके अनुसार प्रयोगशाला अपने आप में एक ऐसी जगह का संकेत है जो वैज्ञानिक या तकनीकी शोध, प्रयोग आदि के लिए आरक्षित है और यद्यपि प्रयोगशाला में प्रयोग और शोध के काम को सुविधाजनक बनाने के लिए काम करने वाले सभी हाथ तकनीकी हाथ ही माने जाएंगे।

5. उन्होंने कहा कि 14 मार्च, 1984 के सरकारी आदेश में जो मानदंड बनाए गए हैं, उनमें विभिन्न विभागों में कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों का प्रावधान है, जैसे कॉलेज के लिए सामान्य श्रेणी, फिर पुस्तकालय और अंत में प्रयोगशाला के लिए। इस प्रकार, तर्क यह है कि पशु पकड़ने वाले को प्रयोगशाला चलाने वाले प्राणी विज्ञान विभाग में तकनीकी पद के रूप में लिया जाना चाहिए।

6. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि पशु पकड़ने वाले को कहीं भी तकनीकी पद के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है और जब तक किसी विशेष श्रेणी के पदों के लिए विशिष्ट योग्यताएं नहीं दी जाती हैं, तब तक चतुर्थ श्रेणी के पद को सामान्य प्रकृति का माना जाएगा न कि तकनीकी। विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा एक और तर्क दिया गया है कि न्यायालय ऐसी कोई बात नहीं रख सकता है, जो यह मानने के लिए मौजूद न हो कि कोई विशेष पद तकनीकी पद होगा। यह तर्क दिया गया है कि न्यायालय

इस विषय का तकनीकी विशेषज्ञ नहीं है और जब तक राज्य सरकार द्वारा इस पद को तकनीकी के रूप में परिभाषित नहीं किया जाता है, तब तक इसे तकनीकी मानना उचित नहीं होगा।

7. दिलचस्प बात यह है कि विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तटस्थ रुख अपनाया है। उन्होंने न तो याचिकाकर्ता की ओर से और न ही प्रतिवादी की ओर से दलीलें दीं।

8. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनने के बाद, मुझे लगता है कि मुद्दा यह है कि क्या प्राणी विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले का पद स्वीकृत किया जाना चाहिए। सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि प्राणी विज्ञान की शाखा क्या है और प्रयोगशाला के लिए क्या आवश्यक है।

9. 'प्राणीशास्त्र' जीवविज्ञान की एक शाखा है, जो जीवित या विलुप्त जानवरों के अध्ययन में विशेषज्ञता रखती है, जिसमें उनकी शारीरिक रचना और शरीर विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, आनुवंशिकी, विकास, वर्गीकरण, आदतें, व्यवहार और वितरण शामिल हैं। इसलिए, प्राणीशास्त्र की प्रयोगशाला छात्रों को जानवरों की शारीरिक, रूपात्मक और शारीरिक विशेषताओं की खोज करके पशु जगत से संबंधित शोध को समझने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है। प्रयोगशाला में शोध कार्य करने की सामान्य तकनीकें रेडियोइम्यूनोसे (आरआईए) टीकों का विकास, एसेप्टिक कल्चर तकनीक, बैक्टीरिया की वृद्धि, बैक्टीरिया का अलगाव और पहचान के साथ-साथ सांख्यिकीय विधियों का उपयोग है। ऐसे अध्ययनों को करने के लिए, कई उपकरणों की आवश्यकता होती है, जिन्हें न केवल तकनीकी हाथों से संचालित किया जाता है, बल्कि उन्हें ले जाने वाले और उनके रखरखाव के लिए जिम्मेदार लोगों को भी तकनीकी हाथों के रूप में लिया जाना चाहिए। आम तौर पर, जो अध्ययन अतीत में हुए हैं और जो अभी भी जारी हैं और जो चूहों, हम्सटर, गिनी सूअरों, खरगोशों और बंदरों जैसे जानवरों से संबंधित हैं।

10. पशु पकड़ने वाले का पद इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि शोध कार्य के लिए पशुओं की आवश्यकता होती है और पशुओं को नियमित रूप से नहीं पकड़ा जाना चाहिए, बल्कि पशु पकड़ने वाले को स्वस्थ पशु का पता लगाने में सक्षम होना चाहिए और उन्हें पकड़ने के लिए ऐसी तकनीक का उपयोग करना चाहिए जिससे पशु को फंसने और अंततः पकड़े जाने से पहले चोट न लगे। यदि शोध कार्य के उद्देश्य से पकड़े जाने की प्रक्रिया में पशु को चोट लग जाती है, तो उसमें बैक्टीरिया और वायरस का घर बन सकता है, जो अंततः पशु को एक ओर बेकार बना देगा और दूसरी ओर पशु के साथ हिंसा करेगा, जो पारिस्थितिकी के लिए अच्छा नहीं होगा। इस प्रकार, पशु पकड़ने वाले का पद तकनीकी होना आवश्यक है क्योंकि शोध के उद्देश्य से पशु को सुरक्षित रूप से पकड़ने के लिए व्यक्ति के पास तकनीकी हाथ होना चाहिए।

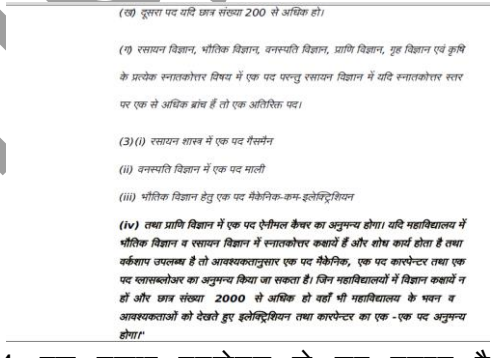
11. अब 14 मार्च, 1984 के सरकारी आदेश पर गौर करें तो पता चलता है कि कार्यालय प्रयोजन के लिए ग्रुप-सी, ग्रुप-बी और ग्रुप-डी श्रेणी में सामान्य पद सृजित किए गए हैं। सामान्य श्रेणी ग्रुप-डी का पद 100 छात्रों पर 5 पदों के अनुपात में है और प्रत्येक 200 की वृद्धि के लिए एक अतिरिक्त पद सृजित किया जाता है। यदि छात्रों की संख्या 800 तक पहुंच जाती है, तो ऐसे पद पर 2 व्यक्तियों को कॉलेज द्वारा स्वीपर के रूप में नियुक्त करना होगा। यह भी प्रावधान है कि यदि 100 से अधिक छात्र हैं, तो दफ्तरी का एक अतिरिक्त पद स्वीकृत किया जाएगा। इस प्रकार, श्रेणी-IV सामान्य श्रेणी में, 3 पद निर्धारित किए गए हैं; (i) चपरासी, (ii) दफ्तरी और (iii) स्वीपर। इसके बाद सरकारी आदेश में पुस्तकालय के लिए मानदंड निर्धारित किए गए हैं और उस श्रेणी में भी पुस्तकालय चपरासी के रूप में चतुर्थ श्रेणी का पद सृजित किया गया है और यदि 1000 से अधिक छात्र हैं, तो पुस्तक बाइंडर का एक अतिरिक्त पद सृजित किया जाना चाहिए। सरकारी आदेश में यह भी प्रावधान है कि 300 छात्रों तक चपरासी का एक पद होगा जबकि 500 छात्रों की वृद्धि पर चपरासी का एक अतिरिक्त पद होगा।

12. इसी प्रकार शासनादेश में प्रयोगशाला के लिए ग्रुप-सी और ग्रुप-डी के अलग-अलग पदों का प्रावधान है। प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में एनिमल कैचर का पद स्वीकृत है। इसी प्रकार भौतिकी विभाग के लिए मैकेनिक-कम-इलेक्ट्रीशियन का चतुर्थ श्रेणी का पद सृजित है, रसायन विज्ञान विभाग में गैसमैन का पद सृजित है, इसी प्रकार वनस्पति विज्ञान विभाग में माली का पद सृजित है। लैब चपरासी का पद भी 200 विद्यार्थियों तक सृजित है, लेकिन रसायन विज्ञान विभाग में यदि स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम संचालित है और उसकी एक से अधिक शाखाएं हैं, तो लैब बॉय का एक अतिरिक्त पद होगा।

13. दिनांक 14 मार्च, 1984 के सरकारी आदेश के खंड-2 और 3 को निम्नानुसार प्रस्तुत किया जाता है:

(२) प्रयोगशाला परिचर-*निर्धारित वेतनमान*

(क) प्रत्येक स्नातक प्रयोगात्मक विषय में आरम्भ में एक पद।



(ख) दूसरा पद यदि छात्र संख्या 200 से अधिक हो।

(ग) रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, गृह विज्ञान एवं कृषि के प्रत्येक स्नातकोत्तर विषय में एक पद परन्तु रसायन विज्ञान में यदि स्नातकोत्तर स्तर पर एक से अधिक ब्रांच हैं तो एक अतिरिक्त पद।

(3) (i) रसायन शास्त्र में एक पद गैसमैन

(ii) वनस्पति विज्ञान में एक पद माली

(iii) भौतिक विज्ञान हेतु एक पद मैकेनिक-कम-इलेक्ट्रिशियन

(iv) तथा प्राणि विज्ञान में एक पद ऐनीमल कैचर का अनुमन्य होगा। यदि महाविद्यालय में भौतिक विज्ञान व रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर कक्षायें हैं और शोध कार्य होता है तथा वर्कशाप उपलब्ध है तो आवश्यकतानुसार एक पद मैकेनिक, एक पद कारपेन्टर तथा एक पद ग्लासब्लोअर का अनुमन्य किया जा सकता है। जिन महाविद्यालयों में विज्ञान कक्षायें न हों और छात्र संख्या 2000 से अधिक हो वहाँ भी महाविद्यालय के भवन व आवश्यकताओं को देखते हुए इलेक्ट्रिशियन तथा कारपेन्टर का एक -एक पद अनुमन्य होगा।'

14. इस प्रकार उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि प्रयोगशाला चपरासी प्रयोगशाला में उपलब्ध तकनीकी पदों से अलग पद है। प्रयोगशाला चपरासी प्रयोगशाला में चपरासी के रूप में काम करेगा, रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में गैसमैन, वनस्पति विज्ञान की प्रयोगशाला में गार्डनर (माली), भौतिकी की प्रयोगशाला में मैकेनिक-कम-इलेक्ट्रीशियन और प्राणी विज्ञान की प्रयोगशाला में एनिमल कैचर सभी तकनीकी पद हैं।

15. मैंने पहले ही ऊपर प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला और पशु पकड़ने वाले के कार्य के बारे में चर्चा की है, इसलिए मैं विद्वान स्थायी वकील के इस तर्क को मानने में असमर्थ हूँ कि यह पद सामान्य श्रेणी का है और इसे चतुर्थ श्रेणी का पद माना जाना चाहिए तथा यह उस सरकारी आदेश के दायरे में आएगा, जो तकनीकी पद के मामले को छोड़कर चतुर्थ श्रेणी के पदों के संबंध में आउटसोर्सिंग का प्रावधान करता है।

16. इस तर्क पर विचार करना कि यदि सरकारी आदेश मौन है तो न्यायालय किसी विशेष पद को तकनीकी पद मानने के लिए अपने स्वयं के दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता, वर्तमान मामले के संदर्भ में अत्यधिक गलत है। विद्वान स्थायी वकील द्वारा भी इस बात पर संदेह या विवाद नहीं किया जा सकता है कि प्रयोगशाला एक ऐसी जगह है जहाँ तकनीकी रूप से अनुसंधान और प्रयोग होते हैं, विशेष रूप से तकनीकी कार्य। अनुसंधान और प्रयोग विशेषज्ञ तकनीकी हाथों और क्षेत्र के लिए लागू प्रौद्योगिकी की मदद से किए जाते हैं। संबंधित क्षेत्र/संबंधित अनुशासन के बारे में कोई जानकारी न रखने वाला व्यक्ति जिससे प्रयोगशाला संबंधित है, कोई मदद नहीं कर सकता। इसलिए, गैसमैन, गार्डनर, मैकेनिक-कम-इलेक्ट्रीशियन और एनिमल कैचर जैसे पदों को उन लोगों द्वारा भरा जाना चाहिए, जो तकनीकी रूप से कुशल व्यक्ति हैं। सरकारी आदेश, स्वयं लैब बॉय और लैब चपरासी प्रदान करता है, जिन्हें सामान्य श्रेणी-IV श्रेणी का कहा जा सकता है।

17. इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि यदि न्यायालय प्रयोगशाला के प्रयोजनों के लिए बनाए गए पद को अनुसंधान कार्य में सहायता के रूप में चतुर्थ श्रेणी के हाथों की सहायता करने वाला मानता है, तो उसे तकनीकी पद नहीं माना जाएगा, क्योंकि सरकारी आदेश में 'तकनीकी' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यदि कोई 'तकनीकी' शब्द को परिभाषित करता है, तो संबंधित अनुशासन और क्षेत्र से संबंधित इसके कई अर्थ हो सकते हैं, जैसे कि रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में गैसमैन वह व्यक्ति होता है, जो गैसों को ले जाता है और उनका रखरखाव करता है, इसलिए उसे इसे प्रबंधित करने का ज्ञान होना चाहिए और यह तभी हो सकता है, जब उसके पास तकनीकी कौशल हो। इसी तरह, माली वनस्पति उद्यान को बनाए रखने के लिए पौधों और पौधों के क्षेत्र में कुशल व्यक्ति होता है और फिर एक मैकेनिक-कम-इलेक्ट्रीशियन को मशीनों और बिजली के उपकरणों से निपटने में कुशल होना आवश्यक है। इसलिए, प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले को भी अनुसंधान के उद्देश्य से पशुओं को सुरक्षित रूप से पकड़ने के लिए तकनीकी रूप से कुशल व्यक्ति होना आवश्यक होगा।

18. उपर्युक्त के मद्देनजर, इसलिए, मेरा मानना है कि प्राणी विज्ञान की प्रयोगशाला के लिए पशु पकड़ने वाले का पद एक तकनीकी पद है और इसे सामान्य चतुर्थ श्रेणी का पद नहीं माना जा सकता।

19. इन परिस्थितियों में, 6 जनवरी, 2011 के सरकारी आदेश के अनुसार, जो कि

आउटसोर्सिंग का प्रावधान करता है, प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले का पद तकनीकी वर्ग-IV पद के अपवाद खंड में आएगा। इस प्रकार, संस्था प्राणि विज्ञान की प्रयोगशाला में पशु पकड़ने वाले के स्वीकृत पद के विरुद्ध नियमित नियुक्ति करने की हकदार है।

20. तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और उसे **अनुमति** दी जाती है। उच्च शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज की ओर से जारी संयुक्त शिक्षा निदेशक, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 4 मार्च, 2023 के आदेश को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता-संस्था को पशु पकड़ने वाले के पद को निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नियमित नियुक्ति/भर्ती करके भरने की अनुमति प्रदान करें। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के 15 दिनों के भीतर आवश्यक अनुमति प्रदान की जाएगी।

21. लागत के रूप में कोई ऑर्डर नहीं होगा।

(2023) 8 ILRA 1433

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 9704 वर्ष 2023

बेचन गिरी ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सीमांत सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एएसजीआई, श्री सलिलेंदु कुमार उपाध्याय, श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अनुकंपा नियुक्ति, सेवाकाल में मृत्यु , बड़ौदा यूपी बैंक, योजना प्रवर्तन, पूर्वव्यापी संचालन, भावी आवेदन, वित्त मंत्रालय योजना, खंड 8.1 और 8.2, वित्तीय संकट, आर्थिक निर्भरता, सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक, परिपत्र दिनांक 28.03.2019

अभिनिर्धारित: 20.01.2020 के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका, जिसमें याचिकाकर्ता को इस आधार पर अनुकंपा नियुक्ति देने से मना कर दिया गया था कि उसके पिता की मृत्यु 15.03.2019 को अनुकंपा नियुक्ति योजना के लागू होने से पहले हो गई थी, और 28.03.2019 के परिपत्र ने योजना के भावी संचालन को स्पष्ट किया था, उसे खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता के पिता, बड़ौदा यूपी बैंक में एक कार्यालय सहायक, योजना की शुरूआत से पहले 08.10.2018 को मर गए। वित्त मंत्रालय द्वारा 05.08.2014 को अधिसूचित और बैंक द्वारा 15.03.2019 को खंड 8.1 के तहत अपनाई गई योजना, मृत्यु की तारीख से पांच साल के भीतर आवेदनों

पर विचार करने की अनुमति देती है दिनांक 28.03.2019 का परिपत्र, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि यह योजना लागू होने से पहले हुई मौतों को कवर नहीं करती है, योजना के उद्देश्य के अनुरूप माना जाता है। आक्षेपित आदेश में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उचित नहीं है।

<u>संदर्भ:</u>

1. मुख्य प्रबंधक (एचआर) बंगीय ग्रामीण विकास बैंक बनाम भारत संघ (2022 एससीसी ऑनलाइन कैल 759);

2. सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम उर्मिला देवी (2017 लैबआईसी 3646);

3. गिगना देवी बनाम भारत संघ (2022 एससीसी ऑनलाइन राज 2929);

4. श्रीमती मनजीत कौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (रिट-ए संख्या 2615/2023);

6. एमपी बनाम आशीष अवस्थी ((2022) 2 एससीसी 157);

7. सचिव, सरकार, शिक्षा विभाग बनाम भीमेश (एआईआर 2022 एससी 402);

8. इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला ((2020) 2 एससीसी 729);

9. एमपी राज्य बनाम अमित श्रीवास ((2020) 10 एससीसी 496);

10. केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार ((2015) 7 एससीसी 412);

11. मुकेश कुमार बनाम भारत संघ (2019 (12) एडीजे 429);

12. मोती लाल बनाम भारत संघ (रिट-ए संख्या 6628/2020);

13. एसबीआई बनाम राज कुमार; एमजीबी ग्रामीण बैंक ;

14. एसबीआई बनाम शिव शंकर तिवारी

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका दिनांक 20.01.2020 के एक आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें याचिकाकर्ता की मां द्वारा उसके पिता की मृत्यु के आधार पर अनुकंपा नियुक्ति की मांग करने वाले एक आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।

2. इस याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता के पिता बड़ौदा यूपी बैंक में कार्यालय सहायक के रूप में कार्यरत थे। जिसे पहले पूर्वांचल बैंक के नाम से जाना जाता था। उक्त बैंक को इसके बाद 'बैंक' कहा जाएगा। याचिकाकर्ता के पिता अंतिम बार शाखा कदमतर, जिला बलिया में तैनात थे। 8 अक्टूबर, 2018 को सेवा के दौरान उनकी मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता की मां ने उसके लिए अनुकंपा नियुक्ति की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया, याचिकाकर्ता मृतक का

सबसे बड़ा बेटा था। मृत कर्मचारी के मृत्यु प्रमाण पत्र दिनांक 02.11.2018 के साथ 18.04.2019 को बैंक के महाप्रबंधक को आवेदन किया गया था। बैंक के सहायक महाप्रबंधक ने दिनांक 20.01.2020 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के मामले पर इस आधार पर विचार करने से इनकार करते हुए बैंक के निर्णय की सूचना दी कि डाइंग इन हार्नेस योजना बैंक में दिनांक 15 मार्च, 2019 से प्रभावी हो गई है। जबकि याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 15 मार्च, 2019 से पहले हो गई थी।

3. याचिकाकर्ता ने बैंक के प्रधान कार्यालय द्वारा जारी 28.03.2019 के एक परिपत्र को भी चुनौती दी है, जिसमें बताया गया है टी उन्होंने अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना का संचालन इस संदर्भ में किया कि योजना में प्रावधान जो दावा करता है, 'पांच साल पहले होने वाली मृत्यु के मामले में विचार किया जा सकता है', इसका मतलब यह नहीं है कि योजना का पूर्वव्यापी संचालन होगा। दूसरे शब्दों में, प्रधान कार्यालय द्वारा जारी परिपत्र स्पष्ट करता है कि योजना लागू होने से पहले हुई कर्मचारियों की मृत्यु के मामलों में अनुकंपा नियुक्ति पर विचार करने का अधिकार नहीं है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सीमांत सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सलिलेंदु कुमार उपाध्याय को सुना गया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सीमांत सिंह का कहना है कि बैंक के प्रधान कार्यालय द्वारा जारी दिनांक 28.03.2019 का परिपत्र, जिसमें डाइंग इन हार्नेस योजना को संचालन में संभावित बताया गया है, त्रुटिपूर्ण है और मूल रूप से अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना के जनादेश को विफल करता है। बैंक द्वारा तैयार और अपनाया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनुकंपा नियुक्ति की योजना, जैसा कि इसे कहा जाता है, वित्त मंत्रालय द्वारा दिनांक 05.08.2014 से अधिसूचित की गई थी। योजना का खंड 8 पढ़ता है:

> "8.1. योग्य आश्रित से योजना के तहत रोजगार के लिए आवेदन पर आम तौर पर चिकित्सा आधार पर मृत्यु या सेवानिवृत्ति की तारीख से पांच साल तक विचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले में योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए।
>
> 8.2. हालाँकि, बैंक अनुकंपा नियुक्ति के अनुरोध पर तब भी विचार कर सकता है जब कर्मचारी की मृत्यु या चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्ति बहुत पहले हुई हो, यहाँ तक कि पाँच साल पहले भी। हालाँकि, ऐसे विलंबित अनुरोधों पर विचार करते समय, इसकी अवधारणा को ध्यान में रखा जाना चाहिए अनुकंपा नियुक्ति काफी हद तक कर्मचारी के परिवार को आर्थिक संकट से राहत दिलाने के लिए तत्काल सहायता की

आवश्यकता से संबंधित है। यह तथ्य कि परिवार इन सभी वर्षों में किसी तरह अपना गुजारा करने में सक्षम रहा है, इसे आम तौर पर इस बात के पर्याप्त प्रमाण के रूप में लिया जाना चाहिए कि परिवार के पास आजीविका के कुछ भरोसेमंद साधन थे। इसलिए, ऐसे मामलों की जांच के लिए बहुत अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होगी। इसलिए, ऐसे मामलों में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का निर्णय केवल बोर्ड स्तर पर ही लिया जा सकता है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सीमांत सिंह का कहना है कि योजना के खंड 8.1 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मृत कर्मचारी के आश्रित द्वारा अनुकंपा नियुक्ति का दावा आम तौर पर मृत्यु की तारीख से पांच साल तक माना जा सकता है। उनके अनुसार, यह योजना प्रकृति में लाभकारी है और इसे उन मामलों में भी पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जाना चाहिए, जहां बैंक में योजना लागू होने से पहले मृत्यु हो गई हो, लेकिन कर्मचारी की मृत्यु के पांच साल के भीतर, उसके आश्रित को इसके तहत हकदार बनाया जा सके।

7. अपने तर्क के समर्थन में, श्री सीमांत सिंह ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के **मुख्य प्रबंधक (एचआर) बंगीय ग्रामीण विकास बैंक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन सीएएल 759** फैसले पर भरोसा जताया है, जो तथ्यों के आधार पर बिल्कुल समान है और इसमें उसी योजना के प्रावधानों की व्याख्या की गई है जो वित्त मंत्रालय द्वारा अधिसूचित की गई थी और उस मामले में बैंक द्वारा अपनाई गई थी, जैसा कि यहां मामला है। उक्त निर्णय में, यह माना गया है कि बैंक में योजना लागू होने की तारीख से पहले कर्मचारी की मृत्यु के बावजूद, उसका आश्रित अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपने मामले पर विचार करने का हकदार है, यदि दावा कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पांच साल के भीतर किया जाता है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे पटना उच्च न्यायालय के **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम उर्मिला देवी, 2017 लैबआईसी 3646** एक फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह भी माना गया है कि यह योजना उन कर्मचारियों के आश्रितों के मामलों पर लागू होती है, जिनकी मृत्यु योजना लागू होने से पहले हो गई थी, लेकिन मृत्यु के पांच साल के भीतर दावा किया गया है।

9. एक अन्य निर्णय, जिसे श्री सीमांत सिंह ने सहायता के लिए कहा है, वह राजस्थान उच्च न्यायालय का **गिग्ना देवी और अन्य बनाम भारत संघ सचिव वित्त मंत्रालय और अन्य के माध्यम से, 2022 एससीसी ऑनलाइन राज 2929** के मामले में भी, यह माना गया कि जिस कर्मचारी की बैंक द्वारा योजना अपनाने से पहले मृत्यु हो गई थी, उसका आश्रित अनुकंपा नियुक्ति का हकदार होगा क्योंकि उसने कर्मचारी की मृत्यु के पांच साल के भीतर आवेदन किया था। इस योजना को पूर्वव्यापी संचालन के लिए आयोजित किया गया था। श्री

सीमांत सिंह ने इस न्यायालय के एक **श्रीमती मंजीत कौर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट-ए सख्यां-2615/2023, 05.04.2023** को निर्णय लिया गया। न्यायालय का ध्यान न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा **श्रीमती मंजीत कौर (उपरोक्त)** के निम्नलिखित टिप्पणियों की ओर आकर्षित किया गया है:

> "उक्त खंड के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदन मृत्यु की तारीख से पांच साल की अवधि के भीतर स्थानांतरित किया जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि उक्त योजना लागू होने से पहले ही मृत्यु हो गयी हो। खंड 8.2 विशेष रूप से कहता है कि आवेदन मृत्यु के पांच साल के भीतर दायर किया जा सकता है। इस प्रकार जब मृत्यु पहले हो चुकी हो तब भी ऐसे मामलों पर विचार किया जाएगा। योजना में इस संबंध में कोई रोक नहीं है।
>
> वर्तमान मामले में, मृत्यु योजना लागू होने से मुश्किल से एक साल पहले हुई है, इसलिए इसमें कोई विवाद नहीं है कि आवेदन पांच साल की अवधि के भीतर किया गया है।
>
> इसे ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित आदेश 07.12.2021 दिनांकित दिया गया, लागू नहीं और अपास्त किया जाता है।"

10. भारत सरकार के विद्वान अधिवक्ता श्री सलिलेंदु कुमार उपाध्याय के साथ बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता की ओर से योजना के खंड 8.1 और 8.2 पर दी गई व्याख्या बिल्कुल त्रुटिपूर्ण है। श्री खरे का कहना है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का अधिकार एक अंतर्निहित अधिकार नहीं है, बल्कि यह योजना के तहत आता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि सेवाकाल में मरने वाले कर्मचारी के आश्रित के लिए कार्रवाई का कोई कारण नहीं होगा यदि उसकी मृत्यु की तारीख पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए कोई योजना लागू नहीं है। यह आग्रह किया जाता है कि क्लॉज 8.1 और 8.2 में उल्लिखित सेवा के दौरान मरने वाले कर्मचारी के आश्रित के लिए पांच साल की सीमा अवधि मृत्यु की तारीख पर एक मौजूदा योजना को निर्धारित करती है। इसका उस स्थिति में कोई उपयोग नहीं है जहां कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पर, योजना बैंक प्रतिष्ठान में बिल्कुल भी लागू नहीं है। श्री खरे का कहना है कि यदि बैंक में योजना लागू होने के बाद, किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है, तो खंड 8.1 और 8.2 के तहत दो अलग-अलग प्रकार के अधिकार देने वाली पांच साल की सीमा अवधि उत्पन्न होगी, लेकिन मृत्यु की तारीख पर बैंक में योजना लागू ही नहीं थी।

11. अपने तर्क के समर्थन में, श्री खरे ने सुप्रीम कोर्ट के **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम आशीष अवस्थी, (2022) 2 एससीसी 157** के एक हालिया फैसले पर भरोसा जताया है। श्री खरे ने इस न्यायालय के **मुकेश कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2019 (12) एडीजे**

429 एक निर्णय पर भी भरोसा जताया है और सिद्धांत का पालन करते हुए एक अप्रतिवेद्य निर्णय **मुकेश कुमार (उपरोक्त)** में **मोती लाल बनाम भारत संघ और अन्य**, रिट ए नंबर-6628/2020 02.09.2021 को निर्णीत।

12. इस मामले में शामिल विवादास्पद प्रश्न यह है: क्या नौकरी के दौरान मरने वाले कर्मचारी के आश्रित का अधिकार कर्मचारी की मृत्यु की तारीख या आश्रित के आवेदन को विचार के लिए स्थानांतरित करने की तारीख पर नियोक्ता की स्थापना में लागू योजना या नियमों द्वारा शासित होना है?

13. किसी के लिए अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का अधिकार कानून में आम तौर पर समझे जाने वाले अर्थ में अधिकार नहीं है। यह एक प्रकार की रियायत है जो मृत कर्मचारी के आश्रितों को दी जाती है, जो अपने परिवार को ऐसे वित्तीय संकट में छोड़कर मर जाता है जिसे टर्मिनल लाभों के एकमुश्त भुगतान या मामूली पारिवारिक पेंशन से दूर नहीं किया जा सकता है। यह राज्य के स्टेब्लिसमेंट में प्रदान किए गए राज्य के कल्याण कार्य का एक उप-उत्पाद है, जहां राज्य नियोक्ता है या एक स्टेब्लिसमेंट है जो किसी तरह से राज्य का साधन या राज्य का चेहरा है। इसका उद्देश्य मृत कर्मचारी के परिवार को एक प्रकार का स्थिर समर्थन प्रदान करके आर्थिक संकट में फंसने से बचाना है, जो जीवित परिवार को उस संकट से निपटने में सक्षम कर सके जो कमाने वाले की अचानक हानि के कारण होता है। इसलिए, अब तक, यह कमोबेश तय हो गया है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा एक व्यापक फॉर्मूले द्वारा नहीं दिया जाना चाहिए। अनुकंपा नियुक्ति देने से पहले मृतक के बचे हुए परिवार से संबंधित कई कारकों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह अक्सर और सही कहा जाता है कि अनुकंपा नियुक्ति सार्वजनिक सेवा में भर्ती का तरीका नहीं है। मृतक के परिवार के सदस्यों को उसके निधन पर अंतिम लाभ के रूप में मिलने वाली धनराशि के अलावा, आश्रित बच्चों की उम्र, उनकी शिक्षा और भविष्य की ज़रूरतें, योजना या नियम के तहत अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा स्वीकार करने से पहले सभी के मूल्यांकन की आवश्यकता हो सकती है। इस अर्थ में यह एक प्रकार का निहित अधिकार नहीं है जो मृत कर्मचारी के आश्रित को कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में प्राप्त होता है। विचाराधीन प्रश्न का उत्तर देने के लिए अन्य प्रासंगिक कारक यह है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार का अधिकार एक अंतर्निहित अधिकार नहीं है। जब तक नियोक्ता की स्थापना में अनुकंपा नियुक्ति के लिए वैधानिक नियम या कोई योजना लागू नहीं होती है, तब तक मृत कर्मचारी का कोई भी आश्रित, जिसकी नौकरी के दौरान मृत्यु हो जाती है, अपना दावा नहीं कर सकता है।

14. यह उपरोक्त सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में है, और, उससे भी अधिक, अनुकंपा नियुक्ति की प्रकृति में ही है कि यहां शामिल प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है।

15. वास्तव में इस प्रश्न के कारण, विशेष रूप से, यहाँ योजना के संदर्भ में न्यायिक राय में बहुत अधिक विभाजन हुआ है। किसी भी सार्थक निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले उन निर्णयों

पर ध्यान देना आवश्यक है। **बंगिया ग्रामीण विकास बैंक (उपरोक्त)**, जो कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ का निर्णय है, तथ्य यह थे कि रिट याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 28 जून, 2017 को हुई थी। वह एक संदेशवाहक, ग्रुप-डी कर्मचारी था। अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को दिनांक 16 नवंबर, 2019 के एक संचार द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उनके पिता की मृत्यु बैंक में 6 मार्च, 2019 से योजना लागू होने से पहले हो गई थी। रिट याचिकाकर्ता ने 8 अप्रैल, 2019 तारीख को विचारार्थ आवेदन किया, यानी, इस योजना के 6 मार्च, 2019 से लागू होने के बाद। लेकिन, उनके दावे को बैंक का समर्थन नहीं मिला, जैसा कि पहले ही कहा गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और बैंक ने खण्ड पीठ के समक्ष में अपील की। खण्ड पीठ की माननीय न्यायाधीश सुब्रत तालुकदार, ने निम्नलिखित अवधारित किया:

> "12. पक्षों को सुनने और रखी गई सामग्रियों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष निकालता है:
>
> ए) रिट याचिकाकर्ता ने 8 अप्रैल 2019 को आवेदन किया था, उस समय तक यह योजना 6 मार्च 2019 को लागू हो चुकी थी। के सम्बन्ध में सीए संख्या 8564/ 2015 (उपरोक्त) प्रस्तुत किया गया जो अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किया गया एक प्राधिकारी है, यह देखा गया है कि जिसका संदर्भ सीए 2798/2010 (2020) 2 एससीसी 729 के मामले में दिया गया है, जैसा कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया जिसका पैरा 23, इस प्रकार है:
>
> "23. हमें हाल के एक फैसले में अनुकंपा नियुक्ति के मुद्दे की जांच करने का अवसर मिला इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला 4, हम उपयोगी रूप से पैरा 3, 4, और 5 को निम्नानुसार संदर्भित कर सकते हैं: "3. लागू योजना के बारे में कुछ भ्रम है और इस प्रकार, इस न्यायालय ने मृत्यु की तारीख पर प्रचलित योजना को विचार के लिए इस न्यायालय के समक्ष रखने का निर्देश दिया, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने एक ऐसी योजना से निपटा है जो अगली तारीख की थी। इसकी आवश्यकता इस न्यायालय के केनरा बैंक बनाम एम. महेश कुमार, (2015) 7 एससीसी 412 फैसले से तय हुई कानूनी स्थिति के कारण भी उत्पन्न हुई, ऐसी योजना के आवेदन के लिए अंतिम तिथि क्या होगी। 4. इस न्यायालय की कई न्यायिक घोषणाओं के आधार

पर, इस बात पर जोर देना उचित है कि अनुकंपा नियुक्ति का सामान्य विकल्प नहीं है, और 4 (2020) 2 एससीसी 729 13 अनुकंपा नियुक्ति पाने का कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है। इसका उद्देश्य केवल कठिन समय में परिवार को सांत्वना और सहायता प्रदान करना है और इस प्रकार, प्रासंगिकता उस समय होती है जब कर्मचारी का निधन हो जाता है। 5. इस निर्णय द्वारा जांचा गया एक पहलू यह है कि क्या किसी विशेष वर्ष की योजना के तहत अनुकंपा रोजगार के दावे का निर्णय उस बाद की योजना के आधार पर किया जा सकता है जो दावे के बहुत बाद लागू हुई थी। इसका उत्तर सशक्त रूप से नकारात्मक है। यह भी देखा गया है कि पारिवारिक पेंशन का अनुदान और सेवांत लाभ का भुगतान रोजगार सहायता प्रदान करने के विकल्प के रूप में नहीं माना जा सकता है। महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस योजना पर विचार किया जाए कि ऐसी अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना में क्या प्रावधान किए गए हैं।"

बी) जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, अधिकारियों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि आम तौर पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा लागू योजना के आधार पर तय किया जाना है, न कि बाद की योजना के आधार पर। हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की कि यह पता लगाने के लिए योजना की जांच करना महत्वपूर्ण होगा कि क्या योजना ने उन मामलों में अनुकंपा नियुक्ति के लिए प्रावधान किया है जहां योजना लागू होने से पहले संबंधित कर्मचारी की मृत्यु हो गई थी। .

सी) इस न्यायालय को उत्तर के लिए अवश्य आना चाहिए बी) माननीय एकल पीठ के आक्षेपित आदेश के ऊपर, यह देखा गया है कि माननीय एकल पीठ ने उक्त योजना की शर्तों को निम्नलिखित तरीके से दर्ज करने का कष्ट किया है:

> "याचिकाकर्ता के पिता की 28 जून, 2017 को मृत्यु हो गई, जब वह बंगीय ग्रामीण विकास बैंक में समूह- "डी" श्रेणी में "मैसेंजर" के रूप में कार्यरत थे। याचिकाकर्ता ने अपने मृत पिता के स्थान पर अनुकंपा रोजगार के लिए विचार किए जाने के लिए 8 अप्रैल, 2019 को आवेदन किया था।

बैंक के निदेशक मंडल ने 9 जनवरी, 2019 को "राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक" (नाबार्ड) के तहत अन्य सभी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तर्ज पर अनुकंपा रोजगार के लिए एक मॉडल योजना 8 मार्च, 2019 को सभी शाखाओं, विभागों और प्रधान कार्यालय में लागू की।

याचिकाकर्ता के आवेदन को 16 नवंबर, 2019 के एक संचार द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता के पिता की अनुकंपा रोजगार योजना विनियम 2019 के लागू होने से पहले ही मृत्यु हो गई थी। हालाँकि, इसके बदले में, बैंक ने याचिकाकर्ता को अनुग्रह राशि की पेशकश की। इस न्यायालय के समक्ष 16 नवंबर, 2019 के अस्वीकृति आदेश की औचित्य और वैधता पर सवाल उठाया गया है।

बैंक की अधिवक्ता सुश्री राव ने तर्क दिया कि चूंकि योजना 6 मार्च, 2019 को लागू हुई और याचिकाकर्ता के पिता की वर्ष 2017 में मृत्यु हो गई, इसलिए उनका आवेदन योजना से बाहर है। अनुकंपा रोजगार के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन की तारीख और उस पर विचार अप्रासंगिक है।

बैंक के अधिवक्ता ने दूसरा तर्क दिया कि यदि याचिकाकर्ता के आवेदन को अनुमति दी जाती है तो उन सभी व्यक्तियों के दावों की बाढ़ आ जाएगी, जिनकी वर्ष 2015 से मृत्यु हो गई है, क्योंकि ऐसे अन्य व्यक्ति इस अदालत के समक्ष नहीं हैं।

सुश्री राव ने इस मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एकल पीठ के एक अप्रमाणित निर्णय सर्वेश पाण्डेय बनाम भारत संघ दिनांक 25 सितंबर, 2019 केस नंबर रिट-ए नंबर 14578 ऑफ 2019 पर भरोसा किया है।

बैंक के लिए विद्वान अधिवक्ता सुश्री राव द्वारा दिए गए तर्कों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस न्यायालय ने पाया कि अनुकंपा रोजगार योजना 9 जनवरी, 2019 को किसी समय अपनाई गई थी और 6 मार्च, 2019 को एक संचार द्वारा सभी शाखाओं को

अनुवादित

कार्यान्वयन के लिए भेजी गई थी।

"योजना में कवरेज" को खंड (1) में परिभाषित किया गया है। "1.1. बंगीय ग्रामीण विकास बैंक के स्थायी कर्मचारी के आश्रित परिवार के सदस्य को - ए) सेवा के दौरान मृत्यु हो जाती है (आत्महत्या से मृत्यु सहित) बी) 55 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले अक्षमता के कारण चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त हो जाता है, (अक्षमता होना चाहिए) सरकारी मेडिकल कॉलेज/सरकारी जिला मुख्यालय अस्पतालों/इस उद्देश्य के लिए बैंक द्वारा नामित डॉक्टरों के पैनल में विधिवत नियुक्त मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रमाणित)। 1.2. योजना के प्रयोजन के लिए, "कर्मचारी" का अर्थ केवल एक पुष्टिकृत नियमित कर्मचारी होगा जो 55 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले चिकित्सा आधार पर मृत्यु/सेवानिवृत्ति के समय पूर्णकालिक या अंशकालिक वेतन पर सेवा कर रहा था। इसमें अनुबंध/अस्थायी/आकस्मिक या कमीशन के आधार पर भुगतान किया गया कोई भी व्यक्ति शामिल नहीं है।

आवेदन पर विचार करने की समय सीमा 8(1) के अंतर्गत खंड 8 में निर्धारित है। हालाँकि, उक्त योजना के खंड 8(2) पर भी ध्यान दिया जा सकता है। "8. आवेदनों पर विचार करने की समय सीमा 8.1 पात्र आश्रितों से योजना के तहत रोजगार के लिए आवेदन पर आम तौर पर चिकित्सा आधार पर मृत्यु या सेवानिवृत्ति की तारीख से पांच साल तक विचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले में योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। 8.2 हालाँकि, बैंक मृत्यु या सेवानिवृत्ति पर भी अनुकंपा नियुक्ति के अनुरोध पर विचार कर सकता है कर्मचारी के चिकित्सीय आधार पर बहुत पहले, यहां तक कि पांच साल पहले भी ऐसा हुआ था। हालाँकि, इस तरह के विलंबित अनुरोधों पर विचार करते समय, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अनुकंपा नियुक्ति की अवधारणा काफी हद तक कर्मचारी के परिवार को आर्थिक संकट से राहत देने के लिए तत्काल सहायता की आवश्यकता से संबंधित है। यह तथ्य कि परिवार इन सभी वर्षों में किसी तरह अपना भरण-पोषण करने में सक्षम रहा है,

अनुवादित

आम तौर पर इस बात का पर्याप्त प्रमाण माना जाना चाहिए कि परिवार के पास आजीविका के कुछ भरोसेमंद साधन थे। इसलिए, ऐसे मामलों की जांच के लिए बहुत अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होगी। इसलिए, ऐसे मामलों में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का निर्णय केवल बोर्ड स्तर पर ही लिया जा सकता है।

खंड 1.2 और खंड 8.2 को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि याचिकाकर्ता वास्तव में निम्नलिखित कारणों से उपरोक्त योजना के अंतर्गत आता है: (ए) खंड 8(2) स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि बैंक मृत्यु के मामले में अनुकंपा रोजगार के अनुरोध पर विचार कर सकता है। या चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्ति यहां तक कि कर्मचारी की 'पांच साल पहले' मृत्यु हो गई हो। याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु वर्ष 2017 में, यानी योजना लागू होने से 5 साल के भीतर हो गई।

(बी) याचिकाकर्ता ने 6 मार्च, 2019 को योजना के कार्यान्वयन की तारीख के बाद 8 अप्रैल, 2019 को आवेदन किया था। आक्षेपित आदेश की तारीख, यानी 16 नवंबर, 2019 को, अनुकंपा रोजगार के लिए उपरोक्त योजना लागू थी। .

अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि प्रार्थना करते समय और ऐसी प्रार्थना पर विचार करते समय लागू नियम ही लागू होते हैं।

यह सच है कि अनुकंपा रोजगार रोजगार के सामान्य नियम का अपवाद है। हालाँकि, जेनरेलिया स्पेशलिबस नॉन डिरोगेंट के सिद्धांत का पालन करते हुए, यदि किसी संगठन में ऐसी नियुक्ति के लिए कोई योजना और/या नियम विशेष रूप से निर्धारित किए जाते हैं, तो उक्त नियम ऐसे रोजगार के दावों के लिए नियुक्ति का आधार बन जाएंगे, भले ही उनके आवेदन के सामान्य सिद्धांत कुछ भी हों। .

के तथ्य सर्वेश पाण्डेय (उपरोक्त) का मामला तत्काल मामले से काफी अलग है। उक्त निर्णय में अनुकंपा रोजगार पाने के लिए चुनौती कर्मचारी की मृत्यु 5 वर्ष के बाद की कटऑफ तिथि को दी

सत्यापित

गई थी। आवेदक की मां को पहले ही अनुग्रह राशि मिल चुकी थी और वह उक्त राशि बैंक को वापस कर अनुकंपा नियुक्ति चाहती थी। उक्त मामले में याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु योजना लागू होने के वर्षों से पहले हो गई थी।

उक्त निर्णय मामले के तथ्यों में भिन्न है। उक्त योजना के तहत पूर्वव्यापी संचालन को स्वीकार करते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा कि निर्धारित 5 वर्ष की कट-ऑफ तिथि को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। इसलिए उसमें याचिकाकर्ता का दावा खारिज कर दिया गया।

यहां ऊपर बताए गए कारणों से, इस न्यायालय का मानना है कि 16 नवंबर, 2019 का आक्षेपित आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाता है।

प्रत्यर्थी बैंक अनुकंपा रोजगार के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करेगा और इस आदेश की एक प्रति के संचार की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर योजना और लागू नियमों के अनुसार प्रक्रिया करेगा।

तत्काल रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और उसका निस्तारण किया जाता है। वाद व्यय के रूप में कोई आदेश नहीं होगा। यदि आवेदन किया जाता है तो इस आदेश की तत्काल फोटोस्टेट प्रमाणित प्रति सभी औपचारिकताओं के अनुपालन पर पार्टियों को दी जाएगी।"

XXXX

13. उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में, यह न्यायालय इसलिए मानता है कि अनुकंपा नियुक्ति की उक्त योजना रिट याचिकाकर्ता के आवेदन की तिथि पर रिट याचिकाकर्ता के दावे पर लागू थी। यह न्यायालय आगे मानता है कि माननीय एकल पीठ ने सही ढंग से देखा है कि उक्त योजना के प्रावधान इस मामले के तथ्यों में कर्मचारी, यानी रिट याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु तक अपना कवरेज बढा दिया हैं, जो उक्त योजना के लागू होने के पांच वर्ष के समयकाल के अन्दर जैसा कि खण्ड 8.2 मे बताया गया है।

14. तदनुसार, रिट याचिकाकर्ता का दावा सीए 2798/2010 (उपरोक्त) और सीए 8564/2015 (उपरोक्त) निर्धारित विचार क्षेत्र के अंतर्गत आता है, इस आशय से कि यदि उक्त योजना स्वयं पूर्वव्यापी आवेदन

> के लिए पांच तक विस्तार योग्य प्रावधान करती है कर्मचारी की मृत्यु के वर्षों के बाद भी इसे लागू माना जाएगा।"

16. **उर्मिला देवी (उपरोक्त)** में जो फिर से पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ का निर्णय है, प्रासंगिक तथ्य यह है कि 04.10.2012 को सेंट्रल बैंक के तीन कर्मचारी 35 लाख रुपये भेजने के उद्देश्य से बैंक की नवादा शाखा से हरनौत शाखा में गए थे। वे बैंक द्वारा उपलब्ध कराई गई एम्बेसडर कार से आगे बढ़ रहे थे। वे ड्यूटी पर थे. नेशनल हाईवे पर कार रोककर लूटपाट की गई। कार को जबरन रोकने की कोशिश में लुटेरों ने उसे एक ट्रक से टकरा दिया, जिससे कार में सवार तीन कर्मचारियों की मौत हो गई। इस प्रकार, डकैती और हिंसा में सेंट्रल बैंक के तीन कर्मचारियों की मौत हो गई, जो ड्यूटी पर थे। तीनों कर्मचारियों में से प्रत्येक के परिवार के सदस्यों ने अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा किया। क्षेत्रीय कार्यालय ने इसकी अनुशंसा की थी, लेकिन बैंक के प्रधान कार्यालय ने दावे को खारिज कर दिया. तीनों मृत कर्मचारियों के निराश आश्रितों ने अलग-अलग रिट याचिकाएं दायर कीं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाओं को स्वीकार करते हुए बैंक को 2007 की योजना के साथ-साथ 2014 की योजना के अनुसार रिट याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया। बैंक ने इस आधार पर खंडपीठ के समक्ष तीन अपीलें कीं कि वे आश्रित कर्मचारी अनुकंपा नियुक्ति के हकदार नहीं थे। यह आग्रह किया गया कि आश्रित एक अनुग्रह से बाहर 2007 की योजना के तहत भुगतान के हकदार थे, लेकिन 2014 की योजना के तहत अनुकंपा नियुक्ति के हकदार नहीं थे। 2014 की योजना वर्तमान मामले के समान ही है। 2007 की योजना में आम तौर पर अनुकंपा नियुक्ति का प्रावधान नहीं था, लेकिन अनुग्रह से बाहर अनुकंपा नियुक्ति के बदले भुगतान का प्रावधान था. हालाँकि, 19 जुलाई, 2007 को इसमें किए गए एक संशोधन द्वारा निम्नलिखित आकस्मिकताओं में अनुकंपा नियुक्ति के लिए दो खंड जोड़े गए:

> "(ए) हिंसा, आतंकवाद, डकैती या डकैती के परिणामस्वरूप अपने आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते समय मर जाता है
>
> (बी) अपनी पहली नियुक्ति के पांच साल के भीतर या 30 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले, जो भी बाद में हो, आश्रित जीवनसाथी और/या नाबालिग बच्चों को छोड़कर मर जाता है।

17. इसके बाद, 2014 की योजना 1.1.2014 से लागू हुई। 05.08.2014 अनुकंपा नियुक्ति के सामान्य अधिकार की शुरुआत। इसमें खंड 8.1 और 8.2 शामिल हैं, जो यहां विचाराधीन हैं। अपील में, बैंक का कहना था कि कर्मचारियों की मौत सड़क दुर्घटना के कारण हुई थी, न कि ड्यूटी करते समय डकैती या हिंसा, आतंकवाद या डकैती के परिणामस्वरूप। डिवीजन बेंच ने इस मामले में बैंक के मामले को सही माना, क्योंकि घटना का एकमात्र सबूत एक एफआईआर थी, जिससे पता चला कि

आधिकारिक ड्यूटी पर कार एक ट्रक से टकरा गई, जिससे कर्मचारियों की मौत हो गई। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी कि मौत हिंसा, आतंकवाद, डकैती या डकैती का परिणाम थी। **उर्मिला देवी** के मामले में माननीय न्यायमूर्ति इस मामले को इस आधार पर स्वीकार कर लिया गया कि उनके पति की मृत्यु उनकी पहली नियुक्ति के पांच साल के भीतर और 2007 की योजना में संशोधन के तहत निर्धारित अन्य आकस्मिकताओं को आकर्षित करते हुए 30 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले हो गई थी।

18. चूँकि, तीन अलग-अलग कर्मचारी थे, जिनके आश्रितों ने दावा किया है, और उनमें से एक अकेले 2007 की संशोधित योजना के खंड (बी) के अंतर्गत आता था, माननीय न्यायमूर्ति ने 2007 की योजना के खंड 8.1 के तहत याचिकाकर्ताओं के मामले की जांच की, कम से कम दो बार। रिट याचिकाकर्ताओं को 2014 की योजना के तहत हकदार माना गया था, यह मानते हुए कि खंड 8.1 उन मामलों पर लागू होगा "जहां मृत्यु योजना के लागू होने की तारीख से पांच साल के भीतर हुई थी, न कि 05.08.2014 के बाद। **"उर्मिल देवी** के मामले में मै खण्ड पीठ की तरफ से अवधारित कर रहा हूं, यह मुख्य न्यायाधीश राजेंद्र मेनन, द्वारा अवधारति किया गया था:

> "7. जहां तक तीनों कर्मचारियों का सवाल है, भले ही उनके मामले योजना, 2007 के खंड (ए) के अंतर्गत नहीं आते हों, हम पाते हैं कि उनके मामले खंड 8.1 के अंतर्गत आएंगे। 2014 की योजना के अनुसार, चूंकि विचाराधीन घटना 04.10.2012 को हुई थी और योजना के तहत उनके रोजगार के मामलों पर मृत्यु की तारीख से पांच साल तक या चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्ति आदि पर विचार किया जाना चाहिए। यह तर्क है हमारे समक्ष बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिन्हा ने जोरदार तर्क दिया कि वर्ष 2014 की योजना 05.08.2014 से लागू हो गई है और इसलिए, केवल तभी जब दुर्घटना 05.08. 2014 के बाद होती है।, तो उनके मामलों को योजना के लागू होने की तारीख से पांच साल तक माना जा सकता है। यदि ऐसा कोई तर्क स्वीकार किया जाता है, तो खंड 8.1. अनावश्यक होगा. इसमें कोई भी मामला शामिल नहीं होगा जहां मृत्यु 05.08.2014 से पहले हुई हो। यह केवल उन मामलों में लागू होगा जहां मृत्यु 05.08.2014 के पांच साल बाद हुई हो। योजना के खंड 8.1 सूत्रधार का यह इरादा कभी नहीं हो सकता। 2014 की योजना, हमारे विचार में, ऐसे मामलों में अनुकंपा नियुक्ति का लाभ देने के लिए शुरू की गई थी, जहां मृत्यु 2014 की योजना के लागू होने की तारीख से पांच साल के भीतर हुई थी, न कि 05.08.2014 के बाद। विद्वान रिट न्यायालय ने भी मामले के इस पहलू

पर विचार किया है और इन धाराओं के तहत कर्मचारियों के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया है और हमें पुनर्विचार की आवश्यकता में कोई त्रुटि नहीं दिखती है। हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, खंड 8.1 को शामिल करने का उद्देश्य 2014 की योजना केवल उन मामलों में अनुकंपा नियुक्ति का लाभ देने के लिए होगी जहां योजना लागू होने से पांच साल पहले मृत्यु हो जाती है और यदि बैंक द्वारा प्रस्तुत तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारा विचार है कि खंड 8.1. 2014 की योजना को उस तरीके से शामिल करने की आवश्यकता नहीं है जिस तरह से इसे किया गया है। तदनुसार, कोई योग्यता नहीं पाते हुए, हम अपील खारिज करते हैं।"

19. कलकत्ता उच्च न्यायालय और पटना उच्च न्यायालय के समान तर्क को अपनाते हुए, इसे राजस्थान उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने **गिगना देवी (उपरोक्त)** के मामले में अवधारित किया था। जिसमें खंड 8.1 और 8.2 के संदर्भ में और योजना के पूर्वव्यापी अनुप्रयोग के मुद्दे पर है।:

"8. उपरोक्त खंड के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र आश्रितों पर आम तौर पर मृत्यु की तारीख से पांच साल तक विचार करने का प्रावधान है, लेकिन उन मामलों पर भी विचार किया जा सकता है जहां मृत्यु पांच साल से अधिक पहले हुई हो। वर्तमान मामला एक विशिष्ट मामला है जहां अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन वर्ष 2014 में दायर किया गया था और उस पर तीन साल की लंबी अवधि तक विचार भी नहीं किया गया था। वर्ष 2017 में ही बैंक ने यह रुख अपनाया कि अनुकंपा नियुक्ति की कोई योजना नहीं है जो प्रत्यर्थी बैंक को नियंत्रित करती हो। उक्त संचार के तुरंत बाद, वर्तमान रिट याचिका को प्राथमिकता दी गई है और इस बीच, माना जाता है कि 2019 की नीति प्रत्यर्थी बैंक द्वारा अपनाई गई है जो विशेष रूप से उन मामलों पर विचार करने का प्रावधान करती है जिनमें किसी कर्मचारी की मृत्यु पांच साल पहले या उससे भी पहले हुई हो। जहां तक मामला आशीष अवस्थी (उपरोक्त) के मामले में जहां तक प्रत्यर्थिओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा करने का संबंध है, यह एक ऐसा मामला था जिसमें अनुकंपा नियुक्ति के लिए किसी भी योजना के अस्तित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं था। उसमें विवाद पॉलिसी की प्रयोज्यता की तारीख और कौन सी पॉलिसी लागू होगी, को लेकर था। वर्तमान मामले को उक्त मामले से अलग किया जा सकता है क्योंकि वर्तमान मामले में पॉलिसी की

प्रयोज्यता के संबंध में कोई विवाद नहीं है। इसके अलावा, आशीष अवस्थी (उपरोक्त) के ममाले में वर्तमान योजना में खंड 8 के समान कोई खंड नहीं था।

9. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी बैंक पर लागू योजना विशेष रूप से उन मामलों पर विचार करने का प्रावधान करती है जिनमें मृत्यु पांच साल से अधिक पहले हुई हो। इसे स्वाभाविक रूप से पूर्वव्यापी प्रभाव देने के इरादे से शामिल किया गया है। कर्मचारी की मृत्यु वर्ष 2014 में हुई, अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन उसी वर्ष, यानी 2014 में दायर किया गया था और बैंक द्वारा नीति/योजना वर्ष 2019 में अपनाई गई थी। इसलिए, अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दायर किया गया वर्ष 2014 में याचिकाकर्ता नंबर 1 द्वारा निश्चित रूप से योजना के खंड 8 के दायरे में आता है क्योंकि मृत्यु पॉलिसी अपनाने के वर्ष से पांच साल पहले हुई थी।

20. यहां उठने वाला प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के **आशीष अवस्थी (उपरोक्त)** के मामले में विचार के लिए उत्पनन हुआ है, इस मामले में रिट याचिकाकर्ता के पिता सहायक अभियंता, लोक स्वास्थ्य अभियंता, जिला टीकमगढ़, मध्य प्रदेश के कार्यालय में चौकीदार थे। याचिकाकर्ता के पिता की 08.10.2015 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई। अपने निधन के समय, मृतक कार्य प्रभारित स्टेब्लिसमेंट में कार्यरत था और आकस्मिक निधि से वेतन पाता था। रिट याचिकाकर्ता को उसके पिता के निधन के समय लागू पॉलिसी के अनुसार 29.09.2014 की पॉलिसी के अनुसार 2 लाख रुपये की क्षतिपूर्ति राशि का भुगतान किया गया था। बाद में नियोक्ता स्टेब्लिसमेंट में अनुकंपा नियुक्ति की नीति लागू की गई, संशोधित परिपत्र दिनांक 31.08.2016 में प्रावधान किया गया है कि कार्य प्रभारित स्टेब्लिसमेंट में किसी कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में, उसका कोई उत्तराधिकारी/आश्रित अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए पात्र होगा।

21. रिट याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की, जिस पर नियोक्ताओं को कानून के अनुसार रिट याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। निर्देशों का लाभ उठाने के लिए, रिट याचिकाकर्ता ने नियोक्ता को एक आवेदन दिया, जिसे दिनांक 15.03.2017 के एक आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि नीति/परिपत्र दिनांक 31.08.2016 भावी रूप से लागू था, अर्थात 15.03.2017 से लागू था। 22.12.2016, जबकि जिस कर्मचारी की मृत्यु के कारण रिट याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति का दावा किया था, उसकी 08.10.2015 को मृत्यु हो गई। इसके कारण रिट याचिकाकर्ता को उच्च न्यायालय के समक्ष एक और रिट याचिकाकर्ता स्थापित करना पड़ा। इसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि कार्य प्रभारित स्टेब्लिसमेंट में कर्मचारी की मृत्यु के समय लागू नीति उस पर लागू होगी। उसके आश्रितों

को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार और उसके बाद की कोई भी नीति लागू नहीं होगी।

22. रिट याचिकाकर्ता ने मामले को डिवीजन बेंच में अपील में ले जाया। डिवीजन बेंच ने अपील की अनुमति दी और अपीलकर्ता को नीति/परिपत्र दिनांक 31.08.2016 के आधार पर अनुकंपा आधार पर नियुक्ति के लिए रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया।

23. मध्य प्रदेश राज्य द्वारा की गई विशेष अनुमति अपील में, रिट याचिकाकर्ता के तर्क को अस्वीकार करते हुए, माननीय न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित अवधारित किया गया था:

> "5. अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के तय प्रस्ताव के अनुसार, केवल मृत कर्मचारी की मृत्यु के समय प्रचलित नीति पर विचार करना आवश्यक है, न कि बाद की नीति पर।
>
> 6. इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला [इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला, (2020) 2 एससीसी 729: (2020) 1 एससीसी (एल एंड एस) 312], के मामले में यह देखा और माना जाता है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए दावा केवल कर्मचारी की मृत्यु की तारीख और उसके बाद की योजना पर प्रचलित प्रासंगिक योजना के आधार पर तय किया जाना चाहिए। जिस पर गौर नहीं किया जा सकता. इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा मप्र राज्य बनाम अमित श्रीवास [मप्र राज्य बनाम अमित श्रीवास, (2020) 10 एससीसी 496: (2021) 1 एससीसी (एल एंड एस) 68] के मामले मे भी अपनाया गया है। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि अमित श्रीवास [मप्र राज्य बनाम अमित श्रीवास, (2020) 10 एससीसी 496: (2021) 1 एससीसी (एल एंड एस) 68] में वर्तमान मामले में लागू योजना विचाराधीन थी और यह माना गया कि मृत कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पर प्रचलित योजना ही लागू होनी चाहिए माना। मामले को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय और आदेश [अशीष अवस्थी बनाम मप्र राज्य, 2018 एससीसी ऑनलाइन एमपी 1824] के डिवीजन बेंच द्वारा पारित किया गया है, यह पोषणीय नहीं है और इसे रद्द कर अपास्त कर दिया जाना चाहिए।"

24. यह मुद्दा कि क्या हार्नेस में मरने वाले नियमों के तहत आश्रित के दावे पर कर्मचारी की मृत्यु की तारीख या उसके बाद की तारीख पर लागू नियम या योजना के अनुसार विचार किया जाएगा, जैसे कि जब कोई आश्रित आवेदन करता है, या आवेदन विचार के लिए आता है, तो यह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा **सरकार के सचिव शिक्षा विभाग (प्राथमिक) बनाम भीमेश उर्फ भीमप्पा, एआईआर 2022 एससी 402** के मामले में

बहुत विस्तृत मार्गदर्शन का विषय था।. जो कुछ रखा गया था उसे जन्म देने वाले तथ्य **भीमेश उर्फ भीमप्पा (उपरोक्त)** के मामले से माननीय न्यायाधीश के शब्दों में सर्वोत्तम रूप से वर्णित किया जा सकता है, जो निम्नानुसार है:

> "8. माना जाता है कि, कर्नाटक राज्य में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति नियमों के एक सेट द्वारा शासित होती है जिसे कर्नाटक सिविल सेवा के रूप में जाना जाता है।
>
> (अनुकंपा आधार पर नियुक्ति) नियम, 1996, कर्नाटक राज्य सिविल सेवा अधिनियम, 1978 की धारा 8 के साथ पठित धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किए गए। नियम यथावत थे, जिस तारीख को प्रत्यर्थी की बहन की नौकरी के दौरान मृत्यु हो गई, इसमें एक अविवाहित भाई शामिल नहीं है, उक्त नियमों के नियम 2 (1) (ए) के तहत "मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रित" की परिभाषा के अंतर्गत एक मृत महिला अविवाहित सरकारी कर्मचारी है. लेकिन यह केवल दिनांक 20.06.2012 के एक मसौदा अधिसूचना के तहत प्रस्तावित संशोधन के माध्यम से था, जिसे अंतिम अधिसूचना संख्या DPAR 55 SCA 2012, बैंगलोर दिनांक 11.07.2012 के तहत प्रभावी किया गया था कि एक मृत महिला अविवाहित सरकारी कर्मचारी का अविवाहित भाई परिभाषा के अंतर्गत शामिल किया गया था। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी की बहन की मृत्यु अविवाहित महिला सरकारी कर्मचारी के रूप में, लेकिन नियमों में संशोधन होने से पहले 8.12.2010 को हुई थी।

25. इस मुद्दे का उत्तर देते हुए कि क्या संबंधित सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के बाद लागू होने वाले संशोधित नियमों में उस मामले में मृत अविवाहित महिला सरकारी कर्मचारी के आश्रित अविवाहित भाई के लाभ के लिए पूर्वव्यापी प्रभाव होगा, या संशोधन होगा उस तिथि से प्रभावी रूप से लागू करें जब यह लागू हुआ, यह माननीय नयायाधीश द्वारा अवधारित किया गया था:

"9. यह मानने के लिए कि संशोधन पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा, उच्च न्यायालय के साथ-साथ ट्रिब्यूनल ने कर्नाटक राज्य बनाम अक्कमहादेवम्मा और अन्य मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया, जिसका निर्णय 18.11.2010 को रिट याचिका संख्या 20914/2010 (2011 (2) एआईआर कार आर 118) में दिया गया था। लेकिन शुरुआत में ही यह बताया जाना चाहिए कि अक्कमहादेवम्मा मामले में उच्च न्यायालय का फैसला कर्नाटक सिविल सेवा (सामान्य भर्ती) (57वां संशोधन) नियम, 2000 में संशोधन से उत्पन्न हुआ था। 30.03.2010 को

किए गए संशोधन द्वारा उक्त नियमों में पोता, अविवाहित पोती, बहू, विधवा बेटी और विधवा पोती को नियम 9 के स्पष्टीकरण-2 के तहत "परिवार के सदस्यों" की परिभाषा में शामिल किया गया था। लेकिन 30.03.2010 को किए गए संशोधन ने इसका विस्तार किया। अभिव्यक्ति "परिवार के सदस्यों" की परिभाषा ट्रिब्यूनल के एक आदेश द्वारा शुरू की गई थी जिसने असंशोधित नियम को असंवैधानिक माना था। यह उस संदर्भ में है कि 23.11.2000 को जारी नियमों में 30.03.2010 को किए गए संशोधन को उच्च न्यायालय ने पूर्वव्यापी प्रकृति का माना था। यह भी याद रखना चाहिए कि विस्तारित परिभाषा परियोजना विस्थापितों के संबंध में थी। परियोजना से विस्थापित व्यक्ति को दिया गया अधिकार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पाने के व्यक्ति के अधिकार से अलग है। किसी भी मामले में, किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के आधार पर, कुछ श्रेणियों के व्यक्तियों के बहिष्कार को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन मानते हुए लाए गए संशोधन को ऐसी व्याख्या प्राप्त हो सकती है जैसा कि अक्कमहादेवम्मा के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तावित किया गया है। लेकिन यह बात उस प्रकृति के संशोधनों पर लागू नहीं हो सकती है जिससे हम इस मामले में चिंतित हैं।

10. एक्स एक्स एक्स

11. जैसा भी हो, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता जयंत मुथराज ने दलील दी कि इस न्यायालय के निर्णयों की दो पंक्तियाँ हैं, एक यह मानता है कि सरकारी कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पर लागू नियम/योजना क्षेत्र को नियंत्रित करेगी और दूसरी जोत दावे पर विचार की तिथि पर लागू नियम/योजना क्षेत्र को नियंत्रित करेगी जो इस संघर्ष को सुलझाने में असमर्थ है, इस न्यायालय की दो सदस्यीय पीठ ने भारतीय स्टेट बैंक बनाम शिव शंकर तिवारी में अपने आदेश दिनांक 08.02.2019 द्वारा मामले को एक बड़ी पीठ के पास विचार के लिए भेज दिया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जयन्त मुथराज ने इसलिए अनुरोध है कि वर्तमान अपील को या तो संदर्भ के साथ रखा जाए या उपरोक्त संदर्भ पर निर्णय की प्रतीक्षा की जाए।

12. लेकिन हम ऐसा करना जरूरी नहीं समझते. यह निस्संदेह सत्य है कि, जैसा कि प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है, समान शक्ति वाली पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों की दो पंक्तियाँ हैं। लेकिन निर्णयों की उन दो पंक्तियों के बीच स्पष्ट संघर्ष, एक संशोधन के बीच अंतर के कारण था जिसके द्वारा मौजूदा लाभ को वापस ले लिया गया था या कम कर दिया गया था और एक संशोधन जिसके द्वारा मौजूदा लाभ को बढ़ाया गया था। इस न्यायालय द्वारा अपनाई

गई व्याख्या संशोधन की प्रकृति के आधार पर भिन्न-भिन्न थी। इसे प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा संदर्भित निर्णयों को सारणीबद्ध कॉलम में प्रस्तुत करके देखा जा सकता है:

सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किए गए छह मामलों का एक विस्तृत सारणीबद्ध संदर्भ है, जहां इस मुद्दे पर अलग-अलग विचार व्यक्त किए गए हैं कि क्या मृत कर्मचारी की मृत्यु के समय लागू योजना आश्रित के दावे पर विचार करने के उद्देश्य से लागू होगी। अनुकंपा नियुक्ति के लिए या बाद में लागू नियम/योजना, सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के बाद, उस समय जब अनुकंपा नियुक्ति के विचार के लिए आवेदन किया जाता है संक्षिप्तता के लिए, **भीमेश उर्फ भीमप्पा** के मामले में तालिका रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 12 में दी गई है जिसका उद्धरण नहीं किया जा रहा है.

26. **भीमेश उर्फ भीमप्पा** के मामले में सारणीबद्ध विश्लेषण के बाद दो अन्य मामलों पर विचार किया गया है जहां यह अवधारित किया जाता है:

> "13. उपरोक्त निर्णयों के अलावा हमारा ध्यान मध्य प्रदेश राज्य बनाम अमित श्रीनिवास के मामले में तीन सदस्यीय खंडपीठ के निर्णय की ओर भी आकर्षित हुआ। लेकिन यह मामला एक मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रित द्वारा किए गए दावे से उत्पन्न हुआ, जो मूल रूप से एक कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान पर नियुक्त किया गया था और जिसने बाद में एक स्थायी कर्मचारी बनने का दावा किया था। न्यायालय ने एक स्थायी स्थिति और नियमित स्थिति वाला कर्मचारी के बीच अंतर पर विचार किया। आश्रित के इस दावे के बावजूद कि उसके पिता एक स्थायी कर्मचारी बन गए थे, इस न्यायालय ने उस मामले में कहा कि मृत्यु की तारीख पर प्रचलित नीति के अनुसार, एक कार्य प्रभारित/ आकस्मिक निधि कर्मचारी अनुकंपा नियुक्ति का हकदार नहीं था। ऐसा कहते हुए, बेंच ने इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला मामले में अपनी राय दोहराई।
>
> 14. अमित श्रीवास (सुप्रा) में पूर्वोक्त निर्णय का पालन इस न्यायालय की दो सदस्यीय पीठ द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम आशीष अवस्थी मामले का निर्णय 18.11.2021 को किया गया था: (एआईआरऑनलाइन 2021 एससी 1047)।"

27. इस मुद्दे पर इन अलग-अलग राय को देखने के बाद, न्यायालय ने **भीमेश उर्फ भीमप्पा** के मामले का अवलोकन करना शुरू कर दिया है:

> "15. आइए अब बड़ी बेंच के समक्ष लंबित संदर्भ पर आते हैं। भारतीय स्टेट बैंक बनाम शिव शंकर तिवारी (उपरोक्त) के मामले में, इस

न्यायालय की दो सदस्यीय पीठ ने एक ओर भारतीय स्टेट बैंक बनाम राज कुमार और एमजीबी ग्रामीण बैंक और दूसरी ओर केनरा बैंक बनाम एम. महेश के बीच स्पष्ट संघर्ष पर ध्यान दिया। दूसरी ओर, कुमार के मामले को बड़ी पीठ के पास विचार के लिए भेज दिया। बड़ी बेंच को संदर्भित करने का आदेश वास्तव में दिनांक 8.02.2019 का था।

16. एक बड़ी पीठ के उपरोक्त संदर्भ के बाद ही इस न्यायालय ने क्रमशः (i) इंडियन बैंक बनाम प्रोमिला; में कम से कम चार मामलों का फैसला किया; (ii) एन.सी. संतोष बनाम कर्नाटक राज्य; (iii) मध्य प्रदेश राज्य बनाम अमित श्रीवास; और (iv) मध्य प्रदेश राज्य बनाम आशीष अवस्थी। इन चार निर्णयों में से, एन.सी. संतोष (उपरोक्त) का निर्णय तीन सदस्यीय पीठ द्वारा किया गया था, जिसने वास्तव में बड़ी पीठ के समक्ष लंबित संदर्भ पर ध्यान दिया था।

17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यदि हम उस तरीके का आलोचनात्मक विश्लेषण करें जिसमें यह न्यायालय कर्मचारी की मृत्यु के बाद लागू होने वाली नई या संशोधित योजना की प्रयोज्यता की व्याख्या करने के लिए आगे बढ़ा है, तो हम एक दिलचस्प विशेषता देख सकते हैं। ऐसे मामलों में जहां मौजूदा योजना के तहत लाभ छीन लिया गया था या उसके स्थान पर कम लाभ दिया गया था, इस न्यायालय ने नई योजना लागू करने का निर्देश दिया। लेकिन ऐसे मामलों में जहां किसी मौजूदा योजना के तहत लाभ बाद में संशोधित योजना द्वारा बढ़ा दिए गए थे कर्मचारी की मृत्यु पर, इस न्यायालय ने केवल वही योजना लागू की जो कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर लागू थी। यह मूल रूप से इस तथ्य के कारण है कि अनुकंपा नियुक्ति को हमेशा भर्ती की सामान्य पद्धति का अपवाद माना जाता था और शायद इसे व्यक्ति के प्रति कम करुणा और कानून के शासन के लिए अधिक चिंता के साथ देखा जाता था।

18. यदि अनुकंपा नियुक्ति सेवा की शर्तों में से एक है और किसी भी प्रकार की जांच के बिना किसी कर्मचारी की मृत्यु पर स्वचालित रूप से की जाती है, तो इसे कानून में निहित अधिकार के रूप में माना जाएगा। लेकिन यह वैसा नहीं है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति स्वचालित नहीं है, लेकिन परिवार की वित्तीय स्थिति, मृत कर्मचारी पर परिवार की आर्थिक निर्भरता और परिवार के अन्य सदस्यों की आजीविका सहित विभिन्न मापदंडों

अनुवादित

की सख्त जांच के अधीन है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का निहित अधिकार होने का दावा। यही कारण है कि कुछ निर्णय जिन्हें हमने ऊपर सारणीबद्ध किया है, उनमें संशोधित योजनाओं की प्रयोज्यता की अलग-अलग व्याख्या की गई है, जिससे मतभेद पैदा हुआ है। यद्यपि इस बात पर विवाद है कि क्या कर्मचारी की मृत्यु की तारीख पर लागू योजना लागू होगी या अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के आवेदन पर विचार की तारीख पर लागू योजना लागू होगी, निश्चित रूप से इस बारे में कोई विरोधाभास नहीं है। उपरोक्त निर्णयों में अंतर्निहित चिंता परिलक्षित होती है। जहां भी संशोधित योजनाओं ने मौजूदा लाभों को कम कर दिया, इस न्यायालय ने उन लाभों को लागू कर दिया, लेकिन जहां भी संशोधित योजना ने बड़े लाभ दिए, वहां पुरानी योजना को लागू कर दिया गया।

19. विचारों के टकराव के बारे में महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह दो तारीखों के आसपास घूमता है, अर्थात्, (i) कर्मचारी की मृत्यु की तारीख; और (ii) आश्रित के आवेदन पर विचार करने की तिथि। इन दो तिथियों में से केवल एक, अर्थात मृत्यु की तिथि ही एक निश्चित कारक है जो बदलती नहीं है। अगली तारीख अर्थात् दावे पर विचार करने की तारीख, कुछ ऐसी है जो कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे कि आवेदन दाखिल करने की तारीख, दावेदार के बहुमत प्राप्त करने की तारीख और वह तारीख जिस पर फाइल सक्षम व्यक्ति के पास रखी जाती है। वैधानिक व्याख्या का कोई सिद्धांत नहीं है जो किसी नियम की प्रयोज्यता पर अनिश्चित या परिवर्तनीय कारक के आधार पर निर्णय लेने की अनुमति देता है। आइए उदाहरण के लिए ए को लें काल्पनिक मामला जहां 01 जनवरी, 2020 को 2 सरकारी कर्मचारियों की मृत्यु हो गई। मान लीजिए कि इन 2 मृत सरकारी कर्मचारियों के आश्रित 2 अलग-अलग तारीखों 29.05.2020 और 02.06.2020 को नियुक्ति के लिए आवेदन करते हैं और एक संशोधित योजना 01 जून, 2020 को लागू होती है। यदि दावे पर विचार करने की तारीख को यह निर्धारित करने के लिए मानदंड माना जाता है कि संशोधित योजना लागू होती है या नहीं, तो इससे दो अलग-अलग परिणाम सामने आएंगे, एक उस व्यक्ति के संबंध में जिसने 1 जून, 2020 से पहले और दूसरा 01 जून, 2020 के बाद आवेदन करने वाले व्यक्ति के संबंध में आवेदन किया था। दूसरे शब्दों में, यदि दो कर्मचारियों की एक ही तारीख को मृत्यु हो जाती है और उन कर्मचारियों के आश्रित दो

अलग-अलग तारीखों पर आवेदन करते हैं, एक संशोधित योजना लागू होने से पहले और दूसरा उसके बाद, यदि आवेदन की तारीख और उस पर विचार करने की तारीख को निर्णायक कारक माना जाता है तो वे विभेदक उपचार के लिए आएंगे। व्याख्या का एक नियम जो व्यक्ति क्या करता है या क्या नहीं करता है उसके आधार पर अलग-अलग परिणाम उत्पन्न करता है, अकल्पनीय है। यही कारण है कि, कुछ बैंकों के प्रबंधन ने, ऊपर सूचीबद्ध मामलों में, संशोधित योजना में ही एक नियम पेश किया है, जो सभी लंबित आवेदनों पर नई/संशोधित योजना के तहत निर्णय लेने का प्रावधान करता है। इसलिए, हमारा विचार है कि संशोधित योजना की प्रयोज्यता की व्याख्या केवल मृत्यु की तारीख जैसे निर्धारित और निश्चित मानदंडों पर निर्भर होनी चाहिए, न कि किसी अनिश्चित और परिवर्तनशील कारक पर।

20. मामले की बात करें तो, कर्मचारी की मृत्यु 8.12.2010 को हुई और नियमों में संशोधन 20.06.2012 को एक मसौदा अधिसूचना के माध्यम से प्रस्तावित किया गया था। अंतिम अधिसूचना 11.07.2012 को जारी की गई थी। केवल इसलिए कि नियुक्ति के लिए आवेदन संशोधन जारी होने के बाद विचार के लिए लिया गया था, प्रत्यर्थी संशोधन का लाभ नहीं मांग सकता था। अक्कमहादेवम्मा के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ का फैसला, जिस पर ट्रिब्यूनल के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भी भरोसा किया था, अनुकंपा नियुक्तियों के मामले में लागू नहीं था, क्योंकि अक्कमहादेवम्मा के मामले में संशोधन किसके परिणामस्वरूप आया था मौजूदा नियम को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के दायरे से बाहर घोषित किया जा रहा है।"

28. यहां यह कोई मुद्दा नहीं है कि प्रश्नगत योजना में लंबित मामलों पर विचार करने के संबंध में कोई प्रावधान ही नहीं है अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दिनांक 15 मार्च, 2019 से योजना प्रारंभ होने से पूर्व किए गए। यह तार्किक रूप से ऐसा है क्योंकि वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहां स्पष्ट रूप से कोई पुरानी योजना थी जो लागू अनुकंपा नियुक्ति या किसी अधिकार पर विचार करने के लिए किसी प्रकार का सीमित अनुग्रह राशि के भुगतान का अधिकार प्रदान करती थी।, जिसके तहत मृत कर्मचारी के आश्रित द्वारा आवेदन किया जा सकता है। यहां तथ्यों से जो प्रतीत होता है वह 15 मार्च, 2019 से पहले का है, प्रत्यर्थी बैंक की स्थापना में अनुकंपा नियुक्ति के किसी भी प्रकार के अधिकार का विस्तार करने वाली कोई योजना नहीं थी, चाहे वह कितना भी सीमित या असीमित क्यों न हो। योजना के लागू होने पर अनुकंपा नियुक्ति का

अधिकार दिनांक 15 मार्च, 2019 से प्रभावी होगा जिससे एक नया अधिकार मिला था। इसलिए, किसी भी कारण से अनुकंपा नियुक्ति की मांग करने वाले कर्मचारी के आश्रितों के लिए अधिकार प्रदान करने के लिए योजना में किसी भी प्रावधान के अभाव में, अनुकंपा नियुक्ति का कोई अधिकार नहीं हो सकता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार एक अंतर्निहित अधिकार नहीं है, बल्कि यह किसी कर्मचारी की मृत्यु के समय लागू होने वाले नियम या योजना से आता है। उस व्याख्या की सहायता के लिए और भी कारण हो सकते हैं। एक बार यह माना जाता है कि अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार अंतर्निहित नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा नियम है जो सेवा के दौरान कर्मचारी की सेवा के दौरान मृत्यु उस लागू योजना या विनियम द्वारा शाषित होगी। ऐसा कोई तथ्य नहीं है कि किसी कर्मचारी की मृत्यु के बाद, बाद की तारीख में शुरू की गई अनुकंपा नियुक्ति की कोई योजना या नियम आश्रित को विचार का अधिकार दे सके। निःसंदेह, उस प्रकार का अधिकार उत्पन्न हो सकता है यदि योजना अपनी शर्तों पर उस अधिकार का प्रावधान करती है। यहां, खंड 8.1 में प्रयुक्त शब्द, या खंड 8.2 के लिए योजना के आश्रितों के मामलों के संज्ञान की परिकल्पना नहीं की गई है, जहां बैंक में योजना लागू होने से पहले किसी कर्मचारी की मृत्यु हो गई हो। खंड 8.1 में अभिव्यक्ति का नियोजन "आम तौर पर मृत्यु की तारीख से पांच साल तक माना जाएगा" उस तारीख को मृत्यु के पांच साल की अवधि को संदर्भित करता है जब योजना पहले से ही बैंक में लागू थी; योजना की शुरूआत से पाँच वर्ष या उससे थोड़ा कम समय नहीं।

29. इसलिए, इस न्यायालय की राय में, लागू आदेश में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

30. यह याचिका **विफल** होती और **ख़ारिज** की जाती है।

31. वादव्यय के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 8 ILRA 1449

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट-ए संख्या 11930 वर्ष 2014

विनोद ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री एनके मौर्य, श्री राजेश सिंह, श्री एसके मौर्य

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री एसके गुप्ता

विषय: सेवा विधि - सेवा से बर्खास्तगी - सफाई कर्मचारी - अनुशासनात्मक जांच में प्रक्रियात्मक अनियमितताएं - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन - लगाम बयान -

प्रतिलिपि

बकाया वेतन, अनुशासनात्मक जांच, प्राकृतिक न्याय, अनधिकृत अनुपस्थिति, बर्खास्तगी, लगाम बयान, बकाया वेतन, सजा की आनुपातिकता।

याचिकाकर्ता, नगर निगम, इलाहाबाद में सफाई कर्मचारी , को नगर आयुक्त द्वारा 15.10.2005 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, जिसे 12.03.2007 को कमिश्नर ने बरकरार रखा, कथित अनधिकृत अनुपस्थिति और कदाचार के लिए। अनुशासनात्मक जांच में प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के आधार पर बर्खास्तगी को चुनौती दी गई थी। याचिकाकर्ता को जांच की तारीख, समय और स्थान तय करने और सूचित करने में विफलता और गवाहों की जिरह के लिए मौखिक साक्ष्य या अवसर की अनुपस्थिति के कारण जांच दूषित हो गई थी, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था। अनधिकृत अनुपस्थिति और कथित कदाचार का आरोप तुच्छ था, और बर्खास्तगी की सजा चौंकाने वाली अनुपातहीन थी। जांच के बाद कारण बताओ नोटिस का जवाब देने का अवसर जांच प्रक्रिया में बुनियादी खामियों को दूर नहीं कर सका।

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>उद्धृत वाद विधि</u> :

उत्तर प्रदेश बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. इस वाद में, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 3 से 8 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एसके गुप्ता को जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए समय प्रदान करते हुए, 07.01.2020 को नोटिस जारी किया गया था। न तो राज्य की ओर से और न ही प्रतिवादी सं 3 से 8 की ओर से कोई जवाबी हलफनामा दायर किया गया है। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 07.01.2020 द्वारा याचिका दायर करने में की गई देरी को माफ कर दिया है।

2. स्वीकृत।

3. तत्काल सुना गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश सिंह और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी को सुना।

5. प्रतिवादी संख्या 3 से 8 की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

6. यह रिट याचिका नगर आयुक्त, नगर निगम, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.10.2005 जिसमें याचिकाकर्ता, जो एक सफाई कर्मचारी है, को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, के विरुद्ध निर्देशित है। इस आदेश को आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद द्वारा आदेश दिनांक 12.03.2007 द्वारा, अपील में बरकरार रखा गया है। वर्तमान रिट

याचिका में इन दोनों आदेशों को आक्षेपित किया गया है।

7. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसे वर्ष 1992 में नगर आयुक्त द्वारा नगर निगम, इलाहाबाद में सफाई कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। बाद में उसे स्थायी कर्मचारी बना दिया गया। याचिकाकर्ता का मामला यह है कि परिवार में एक शादी थी और उसने 04.05.2005 को नगर आयुक्त और नगर स्वास्थ्य अधिकारी, नगर निगम के समक्ष दस दिन की छुट्टी की मांग करते हुए एक अवकाश का आवेदन प्रस्तुत किया। यह आवेदन 09.05.2005 को नगर आयुक्त को अग्रसारित कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि नगर स्वास्थ्य अधिकारी ने अपर नगर आयुक्त को यह कहते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि याचिकाकर्ता पहले से ही चिकित्सा अवकाश पर है, और इसलिए उसे दस दिन की छुट्टी मंजूर करना संभव नहीं है। यह रिपोर्ट नगर आयुक्त को दे दी गई। याचिकाकर्ता को इसके बारे में कभी सूचित नहीं किया गया। याचिकाकर्ता को उसके अवकाश आवेदन दिनांक 04.05.2005 पर पारित आदेश की भी सूचना नहीं दी गई।

8. याचिकाकर्ता के अनुसार, सात महीने बीत गए, लेकिन उसके अवकाश आवेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि नगर स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा प्रस्तुत एक शिकायत पर नगर आयुक्त ने बिना अवकाश स्वीकृत किए अनुपस्थित रहने के कारण याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू करने का निर्णय लिया। याचिकाकर्ता के अनुसार, अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू करने का निर्णय नगर स्वास्थ्य अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर और याचिकाकर्ता से स्पष्टीकरण मांगे बिना लिया गया। आदेश दिनाँक 30.06.2005 द्वारा याचिकाकर्ता को जांच लंबित रहने तक निलंबित कर दिया गया। याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र दिनाँक 30.06.2005 दिया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने 14.07.2005 को जवाब प्रस्तुत किया।

9. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जांच अधिकारी ने जांच की कोई तिथि, समय या स्थान तय नहीं किया और न ही याचिकाकर्ता को किसी भी समय, किसी भी तरीके से जांच की कार्यवाही के बारे में सूचित किया। दलील दी गई है कि जांच की कार्यवाही में याची को न तो जांच अधिकारी द्वारा सूचित किया गया और न ही उसे मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बुलाया गया। जांच अधिकारी ने जांच पूरी की और रिपोर्ट दिनांक 24.09.2005 बनाई। याची को कारण बताओ नोटिस दिनांक 30.09.2005 जारी किया गया। याची ने कारण बताओ नोटिस का जवाब दाखिल किया।

10. इसके बाद नगर आयुक्त ने याची को सेवा से बर्खास्त करने वाला आक्षेपित आदेश पारित कर दिया। याची ने उक्त आदेश को सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 20517/2006 द्वारा इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, लेकिन आदेश दिनांक 17.04.2006 द्वारा वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के आधार पर इसे खारिज कर दिया गया। पूर्व रिट याचिका खारिज होने के बाद याची ने मंडलायुक्त के

समक्ष उप्र नगर महापालिका सेवा नियमावली, 1962 के नियम 35 के अंतर्गत अपील दायर की। आयुक्त ने आदेश दिनाँक 12.03.2007 द्वारा अपील खारिज कर दी और याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश की पुष्टि की।

11. व्यथित होकर, यह याचिका संस्थित की गई है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह कहना है, जैसा कि पहले ही नोटिस किया जा चुका है, कि यह जांच एक दिखावा है, जबकि आरोप ऐसा है जिसके स्थापित होने पर बड़ी सजा हो सकती थी। यह जोर देकर कहा गया है कि जांच की कोई तारीख, समय या स्थान तय नहीं किया गया था। यह भी कहा गया है कि आरोपों के समर्थन के लिए अधिष्ठान की ओर से किसी गवाह की जांच नहीं की गई।

13. चूंकि नगर निगम की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए खंडन में कुछ नहीं है। हालांकि, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि आदेश कानून के अनुसार है और उन्होंने इसका समर्थन किया है।

14. आरोप-पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप एकल है। यह इस प्रकार है:

> "1- सफाई एवं खाद्य निरीक्षक की टिप्पणी 27-06-2005 से स्पष्ट है कि आप दिनांक 05-05-2005 से 15-05-2005 तक का अवकाश प्रार्थना पत्र देकर अवकाश स्वीकृत न किए जाने के बावजूद अपनी ड्यूटी से दिनांक 26-06-05 तक बगैर किसी पूर्व सूचना के अनुपस्थित रहे और दिनांक 27-06-2005 को अपनी ड्यूटी हेतु उपस्थित होकर सफाई एवं खाद्य निरीक्षक से श्री सादिक अली व श्री राम कुमार तिवारी सफाई नायक के सामने अपना अर्जित अवकाश स्वीकृत कराने के सम्बन्ध में अभद्रता किया तथा उन्हें गालियाँ दी एवं जान से मारने की धमकी दी। इस प्रकार आप बगैर अवकाश स्वीकृति एवं बिना पूर्व सूचना के अपने कार्य से अनुपस्थित रहें जिसके कारण क्षेत्र में गन्दगी व्याप्त रही और आपके इस कृत्य से आपके क्षेत्र प्रचुर मात्रा में गन्दगी व्याप्त रही जिसके कारण नागरिको को सफाई न होने के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस प्रकार आपका यह कृत्य अपने कर्तव्यो के प्रति घोर लापरवाही, अनुशासनहीनता, स्वच्छन्द आचरण तथा कर्मचारी आचरण नियमावली के विरूद्ध एवं उदण्डता का परिचायक है जो आपकी सत्यनिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

15. आरोप-पत्र में उद्धृत आरोप के समर्थन में साक्ष्य निम्नलिखित हैं:

"1 उक्त आरोपों की पुष्टि में निम्नलिखित साक्ष्य प्रस्तावित है:-
1- सफाई एवं खाद्य निरीक्षक की टिप्पणी दिनांक 27-06-2005 की छायाप्रति ।

2- आपका सफाई एवं खाद्य निरीक्षक को दिया गया प्रार्थना पत्र दिनांक 4-05-05 की छायाप्रति ।"

16. जांच रिपोर्ट के अवलोकन, जहां नगर स्वास्थ्य अधिकारी जांच अधिकारी थे, से पता चलता है कि आरोप के समर्थन में जिन साक्ष्यों पर विचार किया गया था वह सेनेटरी एवं फूड इंस्पेक्टर द्वारा दिनांक 27.06.2005 का एक नोट है, बल्कि इसकी एक फोटोस्टेट कॉपी है और अन्य साक्ष्य, एक आवेदन दिनांक 04.05.2005, जिसे भी सेनेटरी एवं फूड इंस्पेक्टर द्वारा बनाया गया है, और फिर से, दस्तावेज़ की फोटोस्टेट कॉपी है।

17. जांच रिपोर्ट के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने अपने लिखित बयान में आरोप से इनकार किया है। जांच रिपोर्ट में आगे यह भी दर्ज है कि याचिकाकर्ता को बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने और आरोपों के विरुद्ध अपनी बात रखने के लिए 30.08.2008 को जांच अधिकारी के कार्यालय में बुलाया गया था। यह टिप्पणी की गई है कि याचिकाकर्ता को अवसर दिए जाने और उसे आरोप स्पष्ट किये जाने के बावजूद भी, याचिकाकर्ता ने केवल इतना कहा कि स्वच्छता एवं खाद्य निरीक्षक तथा सफाई हवलदार ने क्रमश: 1000 रुपये और 500 रुपये की रिश्वत मांगी थी, लेकिन इस आरोप के समर्थन में कोई गवाह या लिखित दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया।

18. जांच रिपोर्ट में आगे दर्ज है कि 29.08.2005 को संबंधित सफाई निरीक्षक उत्तम कुमार को 27.06.2005 की घटना के बारे में गवाही देने के लिए बुलाया गया था और दूसरे गवाह सादिक अली, सफाई नायक को भी बुलाया गया था। यह दर्ज है कि सादिक अली ने 29.08.2005 को जांच अधिकारी के सामने गवाही दी कि 27.06.2005 को दोपहर 1.20 बजे याचिकाकर्ता कार्यालय में आया और सफाई और खाद्य निरीक्षक को अभद्र भाषा में गाली दी और उसे जान से मारने की धमकी दी। इतना कहे जाने के बाद, जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि आरोप सही हैं।

19. जांच रिपोर्ट के अवलोकन से बिल्कुल भी यह पता नहीं चलता है कि एक उचित जांच की गई थी, जिसमें दोनों पक्षों को सूचित करते हुए जांच की तारीख, समय और स्थान निर्धारित किया गया था। कानून की यह आवश्यकता है कि जांच अधिकारी द्वारा जांच की तिथि, समय और स्थान निश्चित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से, जब जांच किसी गंभीर आरोप के बारे में हो। जांच की तिथि, समय और स्थान दोनों पक्षों और संबंधित अन्य लोगों को सूचित किया जाना चाहिए। ऐसा बिल्कुल नहीं किया गया है। वैध जांच की दूसरी आवश्यकता यह है कि सबसे पहले, आरोप के समर्थन में अधिष्ठान की ओर से मौखिक गवाही दर्ज की जानी चाहिए, जिसमें अपचारी को अधिष्ठान की ओर से पेश किए

गए गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यहां, याचिकाकर्ता के हितों के विरुद्ध, बहुत ही प्रतिकूल कुछ किया गया है, और फिर से, एक ऐसी प्रक्रिया को अपनाया गया है जो कानून में पूरी तरह से अस्वीकार्य है।

20. 29.08.2005 को, अधिष्ठान के दो गवाहों, जिनमें स्टार गवाह सादिक अली भी शामिल हैं, को जांच अधिकारी ने अपने कार्यालय में बुलाया और उनके साक्ष्य, चाहे किसी भी तरह के, याचिकाकर्ता की पीठ पीछे दर्ज किए गए। याचिकाकर्ता को अगले दिन यानी 30.08.2005 को जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया। इसलिए, मौखिक गवाही, चाहे किसी भी तरह की हो और किसी भी तरीके से अधिष्ठान की ओर से पेश की गई हो, याचिकाकर्ता की मौजूदगी में, उसे अधिष्ठान के गवाहों से जिरह करने का अवसर देते हुए, नहीं की गई। यह दोष मामले की जड़ तक जाता है और जांच अधिकारी के निष्कर्ष को खराब करता है। हैरानी की बात है कि इस तरह की लापरवाह जांच के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करते हुए, आक्षेपित आदेश पारित कर दिए हैं।

21. कानून की यह स्थिति कि बड़े दंड के आरोपण से जुड़े मामलों में वैध जांच कर सकने हेतु, आरोपों के समर्थन में अधिष्ठान की ओर से मौखिक गवाही दर्ज की जानी चाहिए, जिसमें अपराधी को गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772 में बताई गई बातों से स्पष्ट है। सरोज कुमार सिन्हा (सुप्रा) में, माननीय न्यायाधीशों द्वारा यह माना गया है:

> *"28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य कर रहा जांच अधिकारी स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना होता है। यह देखने के लिए कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं, उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि अपचारी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी। वर्तमान मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हुए हैं, उन पर विचार नहीं किया जा सकता था।*

22. इस स्तर पर, श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने बताया है कि जांच के समापन के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकरण के समक्ष, उसे जांच रिपोर्ट की एक प्रति संलग्न करते हुए दूसरा कारण बताओ नोटिस दिया गया था और जांच अधिकारी के निष्कर्षों और प्रस्तावित दंड के खिलाफ कारण बताने के लिए एक विशिष्ट तिथि पर निर्दिष्ट समय पर जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का अवसर दिया गया

था। यह भी बताया गया है कि याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ और कारण बताया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उसे सुना गया।

23. इसलिए, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता का यह कहना है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट में जो भी त्रुटि है, वह इस अवसर के प्रदान किये जाने से दूर हो गई है। इस न्यायालय को डर है कि यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती।

24. जांच की तिथि, समय और स्थान तय करने की प्रक्रिया और अधिष्ठान द्वारा अपना मामला साबित करने की आवश्यकता अनिवार्य है और इसका पालन किया जाना चाहिए, जबकि जांच अधिकारी यह पता लगाने के लिए जांच कर रहा है कि अपचारी आरोपों का दोषी है या नहीं। यह एक ऐसा चरण है जहां पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने होते हैं- एक पक्ष द्वारा आरोपों के समर्थन में और दूसरे पक्ष द्वारा आरोपों को खारिज करने के लिए। यह अधिष्ठान ही है जिसे पहले अपने साक्ष्य द्वारा आरोपों को साबित करना होता है और एक बार अधिष्ठान द्वारा ऐसा कर लेने के बाद, अपचारी को अधिष्ठान के गवाहों से जिरह करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। इसके बाद, खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार अपचारी के कंधों पर होता है। वर्तमान मामले में ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ है और जिस अवसर की बात विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता प्रतिवादियों को बचाने के लिए कर रहे हैं, वह एक ऐसा अवसर है जिसकी संभावना पर उस चरण में ध्यान दिया गया है जिसे लोकप्रिय रूप से 'दूसरा कारण बताओ' कहा जाता है। यह जांच के बाद का चरण है और निश्चित रूप से उस दोष को ठीक नहीं करेगा जो जांच के दौरान मामले की जड़ तक जाता है और कार्यवाही को खराब करता है।

25. सामान्यतः, ऊपर दर्ज निष्कर्षों के साथ, यह न्यायालय बर्खास्तगी के आदेश को रद्द कर देता तथा प्रतिवादियों के लिए पुनः जांच करने का विकल्प छोड़ देता, किन्तु आरोप की प्रकृति को देखते हुए, जो कि तुच्छ प्रतीत होता है तथा इस तथ्य को देखते हुए कि काफी समय बीत चुका है, यह न्यायालय इस राय का है कि, इस प्रकार की कार्रवाई बिल्कुल भी उचित नहीं है। निश्चित रूप से, यहां दी गई सजा उस अपवादात्मक श्रेणी में आती है, जिसे कानून में आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन माना जाता है।

26. इन परिस्थितियों में, यह याचिका सफल होती है तथा **स्वीकार की जाती है**। नगर आयुक्त, नगर निगम, इलाहाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.08.2005 तथा आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.03.2007 एतद्द्वारा **रद्द किया जाता है।**

27. नगर आयुक्त, नगर निगम, इलाहाबाद को याचिकाकर्ता को निरंतरता तथा वरिष्ठता का लाभ प्रदान करते हुए उसे तत्काल सेवा में बहाल करने का आदेश देते हुए, एक परमादेश जारी किया जाता है। हालाँकि, जिस परिस्थिति में याचिकाकर्ता वर्तमान में है और इस तथ्य

पर विचार करते हुए कि उसने प्रतिवादियों को कोई सेवा नहीं दी है, यद्यपि इसमें उसकी कोई गलती नहीं है, वह पचास प्रतिशत पिछली मजदूरी पाने का हकदार होगा।

लागत आसान।

(2023) 8 ILRA 1454

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 25.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट-ए संख्या 2001270 वर्ष 2013

अजीत प्रताप सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आलोक मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

एएसजी, श्री अजीत कुमार द्विवेदी, श्री आलोक कुमार त्रिपाठी, श्री अनुराग श्रीवास्तव, श्री डीपी द्विवेदी

ए. सेवा विधि - अवशोषण - ग्राहक संबंध कार्यकारी का पद - नियुक्ति दो वर्ष की अवधि के लिए की गई थी - 20.07.2010 के परिपत्र ने वर्ष 2009-2010 के दौरान न्यूनतम 60% लक्ष्य प्राप्त करने की शर्त पर अधिकारियों के अवशोषण के लिए नीति निर्धारित की थी - याचिकाकर्ता को अवशोषित नहीं किया गया क्योंकि उसने केवल 55.91 % लक्ष्य प्राप्त किया था, हालांकि विभिन्न व्यक्ति जिनका लक्ष्य 60% के बेंचमार्क से कम था, उन्हें बैंक द्वारा अवशोषित किया गया है - भेदभाव का आरोप - समानता का दावा - नकारात्मक समानता, कहाँ तक प्रासंगिक - निर्णय दिया गया, अन्य व्यक्तियों के अवशोषण का कारण, जैसा कि सामने आता है, यह है कि अनुबंध के आधार पर नियुक्त किए जाने के बावजूद उन्हें कोई लक्ष्य नहीं दिया गया था और उनसे केवल अन्य कार्य लिया गया था - भले ही उपरोक्त चार व्यक्तियों को गलत तरीके से अवशोषित किया गया हो, याचिकाकर्ता समान लाभ का दावा नहीं कर सकता क्योंकि नकारात्मक समानता या समानता नहीं हो सकती है। (पैरा 22 और 23)

बी. सेवा विधि - रेस ज्यूडिकाटा का सिद्धांत - आवेदन - दिनांक 18.08.2010 और 20.07.2010 के परिपत्र की वैधता को चुनौती दी गई थी - इससे पहले भी सेवा से बर्खास्तगी/मुक्ति के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें दिनांक 18.08.2010 और 20.07.2010 के परिपत्र के लाभ पर विचार करने की मांग की गई थी, तदनुसार उच्च न्यायालय ने प्राधिकारी को प्रतिनिधित्व पर विचार करने का निर्देश दिया - प्रभाव - माना गया, एक बार याचिकाकर्ता को स्वयं पिछली याचिका में 20.07.2010, 26.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों का लाभ दिया जाना आवश्यक था, परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के लिए पहले की राहत/याचिका से मुकरने और अब याचिका में मांगी गई राहत के अनुसार 20.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों की वैधता को चुनौती

देने का कोई अवसर नहीं हो सकता है, याचिकाकर्ता की उक्त कार्रवाई स्पष्ट रूप से 'पुनःन्यायिकता' के सिद्धांतों के विरुद्ध होगी - *डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में* इसी पर भरोसा किया गया - (पैरा 30 और 32)

सी. सेवा विधि - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - नीतिगत निर्णय - हस्तक्षेप का दायरा - *गोपीनाथ दास के मामले* पर आधारित - निर्णय दिया गया कि नीतिगत निर्णय सरकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए क्योंकि विभिन्न कोणों से सभी बिंदुओं पर विचार करने के बाद ही वह यह तय कर सकती है कि कौन सी नीति अपनाई जाए। सरकार द्वारा नीतिगत निर्णयों या विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में, जब तक कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन सिद्ध न हो, न्यायालयों को हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। (पैरा 34 और 35)

रिट याचिका खारिज (ई-1)

<u>उद्धृत वादों की सूची :</u>

1. अरूप दास व अन्य बनाम असम राज्य व अन्य; (2012) 5 एससीसी 559

2. पंकजेश्वर शर्मा व अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य व अन्य; (2021) 2 एससीसी 188

3. डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य; (2014) 5 एससीसी 75

4. एलपीए संख्या 260/2015 , स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम धर्मेंद्र प्रसाद सिंह एवं अन्य, 30.04.2015 को निर्णीत

5. उड़ीसा राज्य व अन्य बनाम गोपीनाथ दाश व अन्य; (2005) 13 एससीसी 495

6. कर्नल आईवीएस गहलोत बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2018) 17 एससीसी 564

7. यूपी राज्य बनाम राज कुमार शर्मा; (2006) 3 एससीसी 330

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता और श्री एन. के सेठ, वरिष्ठ अधिवक्ता प्रतिपक्षी बैंक के अधिवक्ता अनुराग श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्रदान, को सुना।

2. सबसे पहले, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा का कहना है कि हालांकि इस न्यायालय के दिनांक 27.04.2023 के आदेश के अनुसरण में, बैंक द्वारा दिनांक 18.05.2023 को एक पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया का इरादा नहीं रखता है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा का उपरोक्त बयान दर्ज किया जाता है।

4. निम्नलिखित राहतों के लिए प्रार्थना करते हुए प्रस्तुत याचिका दायर की गई है:

(i) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 में निहित प्रतिपक्षी संख्या - 6 द्वारा पारित दिनांक 17.5.2013 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना ।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए प्रतिपक्षियों को आदेश दिया गया है कि वे प्रतिपक्षी सं-6 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 17.5.2013 को प्रभावी न करें, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 में निहित है।

(iii) दिनांक 20.7.2010 के आक्षेपित परिपत्र पत्र को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए, केवल बैंक की सेवाओं में आमेलन के लिए वित्तीय वर्ष 2009-2010 के दौरान 60% लक्ष्य प्राप्त करने की शर्त प्रदान करता है, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-6 में निहित है।

(iv) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए प्रतिपक्षियों को आदेश दिया जाए कि वे 20.7.2010 के आक्षेपित परिपत्र पत्र को केवल उस सीमा तक प्रभावी न करें जो बैंक की सेवाओं में अवशोषण के लिए वित्तीय वर्ष 2009-2010 के दौरान 60% लक्ष्य प्राप्त करने की शर्त प्रदान करता है, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-8 में निहित है।

(v) दिनांक 18-08-2010 और 8-3-2011 के आक्षेपित परिपत्रों को रद्द करते हु उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश जारी करना, जिस सीमा तक वे बैंक की सेवाओं में स्थायी आमेलन के प्रयोजनों के लिए ग्राहक संबंध कार्यकारी (मध्यम उद्यम) सहित अन्य संविदात्मक कर्मचारियों के मामले में नहीं, केवल ओएमआरएस के मामले में ही कारोबार के उपयुक्त संशोधन के लाभ को प्रबंधित / प्रतिबंधित करें।

(vi) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश अथवा निदेश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षियों को दिनांक 18-08-2010 और 8-3-2011 के विवादित परिपत्रों उस सीमा तक प्रभावी न करने का आदेश दिया जाए जहां तक वे सेवाओं में स्थायी आमेलन के प्रयोजनों के लिए ग्राहक संबंध कार्यकारी (मध्यम उद्यमों) सहित अन्य संविदा कर्मचारियों के मामले में नहीं बल्कि केवल ओएमआरएस के मामले में बैंक का कारोबार लक्ष्य के उपयुक्त संशोधन का लाभ प्रदान करें / प्रतिबंधित करें।

(vii) रिट याचिका के नक संख्या-2 में निहित प्रतिपक्षी संख्या-7 द्वारा जारी किए गए नोटिस दिनांक 30.8.2010 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना ।

(viii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षियों को कनिष्ठ प्रबंधन ग्रेड स्केल- में विशेषज्ञ अधिकारी के रूप में आमेलन के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने के लिए दिनांक 20-7-2010 के परिपत्र की आक्षेपित शर्त की अनदेखी करते हुए और बजट

के संशोधन का लाभ देने के बाद एक निर्धारित अवधि के भीतर विचार करने का आदेश दिया गया हो। (ii) सभी परिणामी लाभों सहित दिनांक 18-08-2010 के परिपत्र पत्र के अनुसार उपलब्धि |

(ix) किसी अन्य उपयुक्त आदेश या निर्देश को पारित करने के लिए जो मामले की परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझा जाता है, भी पारित किया जा सकता है।

(x) लागत के साथ रिट याचिका की अनुमति देने के लिए।

5. पक्षों के दोनों अधिवक्ता इस बात से सहमत हैं कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 27.04.2023 के आदेश में मामले के तथ्यों को पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है। सुविधा के लिए, दिनांक 27.04.2023 के आदेश को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है:

"1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा और प्रतिपक्षी बैंक की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव को सुना।

2. प्रतिपक्षी बैंक के अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव ने प्रतिपक्षी संख्या-2 से 7 की ओर से एक पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया ।

3. श्री श्रीवास्तव का कहना है कि हालांकि हलफनामा दिनांक 27.09. 18 का है, फिर भी इसकी एक प्रति सितंबर, 2018 में ही याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को दी जा चुकी थी लेकिन अंजाने में इसे दायर नहीं किया जा सका।

4. पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए, पूरक जवाबी फनामे को रिकॉर्ड पर रखा जाए।

5. दिनांक 17.05.2013 के आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत रिट याचिका दायर की गई है,जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 1 है जिसके तहत याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया गया है।

6. याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारित मामला यह है कि याचिकाकर्ता को शुरू में 01.09.2008 को 01.09.2008 से 30.08.2010 की अवधि के लिए ग्राहक संबंध कार्यकारी - मध्यम उद्यम (सीआरईएमई) के रूप में दो साल की अवधि के लिए नियुक्त किया गया था। नियुक्ति आदेश की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 3 ए है।

7. प्रतिपक्षियों ने दिनांक 20.07.2010 को एक परिपत्र जारी किया था, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 6 में है, जिसके द्वारा विशेषज्ञ अधिकारी के रूप में जूनियर मैनेजमेंट ग्रेड स्केल-I (जेजीएमएस-1) में अधिकारियों विपणन और वसूली (ग्रामीण), तकनीकी अधिकारियों (कृषि क्षेत्र), माइक्रो फाइनेंस मार्केटिंग अधिकारियों, ग्राहक संबंध कार्यकारी (पीबी) और ग्राहक संबंध कार्यकारी (एमई) के स्थायी अवशोषण की नीति जारी की गई थी।

8. उपर्युक्त परिपत्र के संड 2.1 के अनुसार , वे अधिकारी जो 14.07.2010 को बैंक की सेवा

में थे, वर्ष 2009-2010 के दौरान न्यूनतम 60% लक्ष्य प्राप्त करने के अदीन आमेलन के पात्र थे अधिकारीयों के प्रदर्शन का मूल्यांकन संबंधित एसबीयू द्वारा सलाह दिए गए प्रदर्शन मूल्याकंन मैट्रिक्स के अनुसार किया जाना था

9. दिनांक 30.08.2010 के एक आदेश के माध्यम से जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 2 मे है याचिकाकर्ता को सुचित किया गया था कि उसकी नियुक्ति की दो साल की अनुबंध अवधि 30.8.2010 को समाप्त होना वाली है और इस तरह उसे बैंक के प्रति अपनी देनदारियो को समाप्त करने और लैपटॉप को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता थी

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है की प्रतिपक्षी बैंक द्वार अनुबंध अवधि के अंत में उसकी सेवाओ को समाप्त करने के लिये जारी किया गया समाप्ती आदेश था

11. याचिकाकर्ता यह पता लगाने पर की उसका प्रदर्शन उसके बजटीय लक्ष्य का 55.91% था जैसे की कुछ अन्य व्यक्ति जिनका प्रदर्शन केवल 0% था और कुछ अन्य व्यक्ति जिनका लक्ष्य याचिकाकर्ता से कम था फिर भी 20.7.2010 के प्ररिपत्र के संदर्भ मे अवशोषित किया गया था रिट-ए सं. नं. 57034 वर्ष 2010 योगेश कुमार एवं अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका का निपटान किया और इस न्यायालय ने दिनांक 28.1.2012 के निर्णय और आदेश के तहत रिट याचिका का निपटान कर दिया जिसमे याचिकाकर्ताओ को एक नया अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी गयी जिसे इस संबन्ध मे कानून और सुसंगत परिपत्र के अनुसार प्रतिपक्षी बैंक द्वारा निर्णित किये जाने का निदेश दिया गया था

12. इसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने 12.02.2013 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का दावा किया है जिसे दिनांक 17.5.2013 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है और इसलिये रिट याचिका दायर की गयी है

13. आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुये, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि (ए) विभिन्न व्यक्ति जिनका लक्ष्य 60% के बेंच मार्क से कम था बैंक द्वारा 20.07.2010 की नीति के संदर्भ मे अवशोषित किया गया है जिसमे एक श्री ए.पी.एस वर्मा भी शामिल है जिनका लक्ष्य याचिकाकर्ता प्रतिनिधित्व को खारिज करते हुए 0% था प्रतिपक्षिये ने संकेत दिया है कि याचिकाकर्ता का विशिष्ट तर्क की उसका प्रतिशत 100% से अधिक हो सकता है बैंक निरर्थक के रूप में अस्वीकार कर दिया गया है, फिर भी श्री मनीष कुमार सिंह के संबंध में, जिसका प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक - 10 के भाग के रूप में संलग्न किया गया है, उसका प्रदर्शन और प्रतिशत शर्तों को 108.33% यानी 100% से अधिक के रूप में इंगित किया गया है। और इस प्रकार प्रतिपक्षियों का तर्क रिकॉर्ड से झुठलाया जाता है और उन व्यक्तियों को अलग- अलग लक्ष्य

दिए गए हैं जो एक ही क्षेत्र में काम कर रहे थे जो स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने श्री ए. पी. एस. वर्मा का उदाहरण देते हुए दिनांक 20.07.2010 के परिपत्र के संदर्भ में 0% वसूली वाले व्यक्तियों के आधार को विस्तृत किया है।

15. रिट याचिका संख्या-1271 (एसबी) वर्ष 2013 में श्री अजय कुमार सोनकर नामक एक व्यक्ति के मामले में पारित एक आदेश की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने यह देखते हु कि कम लक्ष्य वाले कुछ व्यक्तियों को अवशोषित कर लिया गया था, प्रतिपक्षियों को एक हलफनामा दायर करने की आवश्यकता जो श्री ए. पी. एस. वर्मा के संबंध में की गई कार्रवाई का संकेत देता है जिसे वर्ष 2009-2010 में 0% उपलब्धि होने के बावजूद अवशोषित किया गया है।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने रिट याचिका के पैरा-27 में किए गए विशिष्ट कथन की ओर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि श्री ए. पी. एस. वर्मा को 0% उपलब्धि के बावजूद बैंक सेवाओं में अवशोषित कर लिया गया है। उनका तर्क है कि प्रतिपक्षी बैंक द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में जवाबी हलफनामे के पैरा-27 का जवाब दिया गया है, जिसमें को 20.07.2010 के कॉर्पोरेट सेंटर पत्र में उल्लिखित लक्ष्यों के 60% की उपलब्धि के मापदंडों की पुष्टि किए बिना बैंक सेवा में स्थायी रूप से अवशोषित कर लिया गया है और यह कि बैंक द्वारा आगे कदम उठाए जा रहे हैं और उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी किए गए हैं।

17. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में उक्त कथन किए जाने के बावजूद, श्री ए. पी. एस. वर्मा और अन्य तीन व्यक्तियों के खिलाफ आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई है, बल्कि उपरोक्त चार व्यक्तियों श्री ए.पी.एस. वर्मा और तीन अन्य के खिलाफ जो कार्रवाई शुरू करने की मांग की गई थी, उसे बैंक द्वारा रोक दिया गया है।

18. उसी का जवाब देते हुए, प्रतिपक्षी बैंक के अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव ने कहा कि 20.07.2010 के परिपत्र के संदर्भ में याचिकाकर्ता जैसे व्यक्तियों को केवल प्रतिपक्षी बैंक की सेवाओ मे शामिल किया जा सकता है जो लक्ष्य का 60% पुरा करते है उनका तर्क है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने बजटीय लक्ष्य का केवल 55.91% हासिल किया है, जिसके परिणामस्वरूप योजना के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, उसकी सेवाओं को अवशोषित नहीं किया गया है, बल्कि उसे 30.08.2010 के आदेश के तहत समाप्त कर दिया गया है और इस प्रकार प्रतिपक्षी - बैंक द्वारा की गई कार्रवाई में कोई दुर्बलता नहीं है।

19. श्री ए. पी. एस. वर्मा और तीन अन्य व्यक्तियों की रिट याचिका में लगाए गए आरोपों का जवाब देते हुए, जिनका लक्ष्य 0% था और याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त 55.91% के

लक्ष्य से भी कम था, श्री अनुराग श्रीवास्तव, एडवोकेट का तर्क यह है कि बैंक ने जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में किए गए विशिष्ट कथन के अनुसार चार अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई शुरू करने के बावजूद अभी तक उक्त कार्रवाई अवधारित की गई है; तथापि, श्री अनुराग श्रीवास्तव, अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज कुमार शर्मा के मामले में (2006) 3 एस. सी. सी. 330 में रिपोर्ट किए ग सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है कि भले ही कुछ उम्मीदवारों को गलत तरीके से लाभ दिया गया हो, याचिकाकर्ता को नकारात्मक समानता प्रदान करने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है, अर्थात भले ही कुछ नियुक्ति गलती से या गलत प्रक्रिया से की गई हो जो कोई भी नहीं करेगा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के रुप में याचिकाकर्ता को नियुक्ति का अधिकार नकारात्मक समानता की परिकल्पना नहीं करता है और यदि राज्य ने कोई गलती की है तो उसे उक्त गलती को बनाए रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

20. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर पेश अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, जो स्पष्ट होता है वह यह है कि याचिकाकर्ता जिसे दो साल की अवधि के लिए दिनांक 01.09.2008 के आदेश के तहत ग्राहक संबंध कार्यकारी (एमई) के रूप में नियुक्त किया गया था, को 30.08.2010 के एक आदेश के माध्यम से इस आधार पर समाप्त कर दिया गया था कि दिनांक 20.07.2010 की नीति के अनुसार वह 60% के लक्ष्य को पूरा करने में विफल रहा है। इस संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा दायर अभ्यावेदन को भी प्रतिपक्षियों द्वारा दिनांक 17052013 के आदेश द्वारा विभिन्न आधारों पर अस्वीकार कर दिया गया है।

21. याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य आधारों में प्रवेश किए बिना, न्यायालय द्वारा पहले जिस बात की आलोचना की जानी चाहिए, वह याचिकाकर्ता द्वारा किया गया विशिष्ट कथन है कि चार व्यक्ति जिनमें से एक श्री ए. पी. एस. वर्मा हैं, जिनके पास केवल 0% उपलब्धि थी, तीन अन्य लोगों के साथ जिनका प्राप्त लक्ष्य 60% के बेंचमार्क से बहुत कम था। दिनांक 20-07-2010 की नीति के अनुसार बैंक में आमेलित / नियुक्त किए गए बैंकों में से अधिकांश को आमेलित / नियुक्त किया गया है और प्रतिपक्षी बैंक द्वारा चार व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई शुरू किए जाने के बावजूद, उक्त कार्रवाई को रोक दिया गया है। इसके अलावा, प्रतिपक्षी बैंक के अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव के अनुसार, हालांकि उक्त चार व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई शुरू की गई है, लेकिन प्रतिपक्षी-बैंक के अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकार किए जाने के बाद कार्रवाई को रोक दिया गया है। हालांकि, उनका तर्क यह है कि भले ही चार व्यक्तियों को 0% प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त करने के बावजूद गलती से नियुक्त या अवशोषित किया गया हो, यह न्यायालय प्रतिपक्षी-बैंक को वही गलती करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है।

22. प्रस्तुत मामले में, यह रिट न्यायालय का मामला नहीं है जिसमें प्रतिपक्षी- को गलती

करने की आवश्यकता है। इसका कारण दूर नहीं है क्योंकि प्रारंभ में प्रतिपक्षी-बैंक ने स्वीकार किया है कि उसने श्री ए. पी. एस. वर्मा जैसे व्यक्तियों को आमेलित करके गलती की है, जिनके पास केवल 0% लक्ष्य है और बैंक के जिम्मेदार अधिकारी अर्थात् भारतीय स्टेट बैंक के मुख्य प्रबंधक द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में एक विशिष्ट कथन किया गया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने डा अशोक नगर, कानपुर के मामले एक मामला दर्ज किया है जिसमें यह सूचित किया गया है कि इस संबंध में आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं और उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी किए गए हैं। बाद में कार्रवाई रोक दी गई है। निस्संदेह, कोई नकारात्मक समानता नहीं हो सकती है जिसका अर्थ यह है प्रतिपक्षी बैंक को उसी गलती, यदि कोई हो, को दोहराने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जो उन व्यक्तियों के अवशोषण में की गई है जिनका लक्ष्य दिनांक 20.07.2010 के परिपत्र में यथा विनिदष्ट बेंचमार्क से कम लक्ष्य है। हालांकि, प्रस्तुत मामले में, बैंक ने शुरू में कहा कि उसने गलती की है, लेकिन उक्त चार व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई शुरू करने के बाद, उसने कार्रवाई को रोक दिया है, जिसका अर्थ है कि उसने कुछ शक्ति का प्रयोग किया है जैसा कि बैंक में निहित है, जिसके तहत कम लक्ष्य वाले व्यक्तियों को अवशोषित किए जाने के बावजूद उन्हें बैंक की सेवा में बनाए रखा गया है और वह भी रिट न्यायालय को सूचित किए जाने के बावजूद प्रस्तावित कार्रवाई के प्रति शपथ पत्र के पैरा-20 में किए गए विशिष्ट कथन के अनुसार इस प्रकार, यह नकारात्मक समानता का मामला नहीं होगा और परिणामस्वरूप, राजकुमार शर्मा (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय प्रथम दृष्टया प्रस्तुत मामले के तथ्यों में लागू नहीं हो सकता है।

23. तदनुसार, उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और मामले के साथ आगे बढ़ने से पहले, इस न्यायालय को महाप्रबंधक, नेटवर्क -II, स्थानीय प्रधान कार्यालय, मोती महल मार्ग, लखनऊ यानी प्रतिपक्षी सं-6 को इस स्तर पर अपना व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल करने की आवश्यकता होगी, जिसमें श्री अमित कुमार द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के पैरा-20 में रिट न्यायालय को सूचित किए जाने के कारणों का संकेत दिया गया है। मुख्य प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक, कानपुर कि श्री ए. पी. एस. वर्मा और तीन अन्य के खिलाफ कार्रवाई प्रस्तावित की जा रही है, जो 60% के लक्ष्य को पूरा नहीं करने के बावजूद बैंक में अवशोषित हो गए हैं, बल्कि 0% वसूली होने के कारण उक्त व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई को रोक दिया गया है। व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल करते समय, उक्त चार व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई को रोकते हुए प्रयोग की गई शक्ति को प्रतिपक्षी संख्या - 6 द्वारा दायर किए जाने वाले हलफनामे में भी इंगित किया जाएग

24. उक्त हलफनामा तीन सप्ताह के भीतर दायर किया जाए, जिसमें विफल होने पर प्रतिपक्षी सं-6 न्यायालय की सहायता के लिए रिकॉर्ड के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होगा ।

25. इस मामले को 23.05.2023 को सूचीबद्ध करें।

6. दिनांक 27.04.2023 के आदेश के अवलोकन से, यह उभरता है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए चुनौती के आधार दिनांक 27. 2023 के आदेश के पैरा-13 में निर्धारित किए गए हैं, अर्थात् जो विभिन्न व्यक्ति जिन लक्ष्य 60% के बेंचमार्क से कम था, बैंक द्वारा विशोषित कर लिया गया है, जिसमें एक श्री ए.पी.एस. वर्मा 20.07.2010 की नीति के संदर्भ भी शामिल हैं, जिनका लक्ष्य अस्वीकार करते समय 0% था याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व, प्रतिपक्षियों ने संकेत दिया है कि याचिकाकर्ता के विशिष्ट तर्क कि उसका प्रतिशत 100% से अधिक हो सकता है, को बैंक द्वारा निरर्थक के रूप में नकार दिया गया है, फिर भी एक श्री मनीष कुमार सिंह के संबंध में, जिसका प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक-10 के भाग के रूप में संलग्न किया गया है, उसके प्रदर्शन और प्रतिशत की शर्तों को 108.33% यानी 100% से अधिक के रूप में इंगित किया गया है और इस प्रकार प्रतिपक्षियों को रिकॉर्ड से झुठलाया जाता है और अलग-अलग लक्ष्य उन व्यक्तियों को दिए गए हैं जो एक ही क्षेत्र में काम कर रहे थे जो स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है।

7. इस न्यायालय ने दिनांक 27.04.2023 के आदेश के तहत स्वयं संकेत दिया था कि पूरक जवाबी हलफनामा केवल इस आधार पर दायर किया जाना आवश्यक है जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया था, जो यह था कि विभिन्न व्यक्ति जिनका लक्ष्य 60% के बेंचमार्क 9 से कम था, उन्हें बैंक द्वारा 20.07.2010 की नीति के संदर्भ में अवशोषित किया गया है, जिसमें एक श्री ए.पी.एस. वर्मा भी शामिल हैं जिनका लक्ष्य शून्य प्रतिशत था। अन्य आधारों पर अभी भी इस न्यायालय द्वारा विचार किया जाना है।

8. दिनांक 27.04.2023 के आदेश के अनुसरण में, प्रतिपक्षी बैंक द्वारा दिनांक 18.05.2023 को एक पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है।

9. जहां तक आधार (ए) का संबंध है कि विभिन्न व्यक्ति जिनका लक्ष्य 60% के बेंचमार्क से कम था, को अवशोषित कर लिया गया है और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता जिसकी उपलब्धि बजट लक्ष्य का केवल 55.91% थी, को भी विशेष रूप से तब अवशोषित किया जाना चाहिए जब शून्य प्रतिशत लक्ष्य वाले व्यक्ति अर्थात् एक श्री ए.पी.एस. वर्मा को अवशोषित कर लिया गया हो और इस तरह याचिकाकर्ता भी इसी तरह के लाभ के लिए हकदार है, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. सेठ ने उन परिस्थितियों के बारे में बताया जिनमें श्री ए. पी. एस. वर्मा और तीन अन्य जिनकी उपलब्धि 60% के लक्ष्य से बहुत कम थी, को अवशोषित कर लिया गया।

10. उन्होंने कहा कि यह पता चलने पर कि चार व्यक्तियों श्री काश सिंह वर्मा (ए.पी.एस.वर्मा), श्री अरविंद कुमार पाल, श्री राम अनुज सिंह और श्री विजय कुशवाहा को संबंधित परिपत्रों की शर्तों के उल्लंघन में विपणन और वसूली अधिकारी (ग्रामीण) के पद

पर नियुक्त किया गया है, उनके रिकॉर्ड की जांच की गई और यह पाया कि वे पूर्वोक्त योजना के अनुसार स्थायी अवशोषण के मानदंडों को पूरा नहीं करते हैं और परिणामस्वरूप नोटिस दिनांक दिनांक 23.02.2013 से उन्हें कारण बताने लिए दिनांक 23.02.2013 को एक आदेश जारी किया गया था जिसमें उनसे यह अनुरोध कारण बताओ नोटिस दिनांक 23.02.2023 की प्रतियां पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक- एस. सी. ए-1 के रूप में दायर की गई हैं। श्री सेठ का तर्क है कि सभी चार अधिकारियों ने अपना जवाब प्रस्तुत किया है जिसे पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक - एस. सी. ए-2 के रूप में दायर किया गया है। पूरे रिकॉर्ड की जांच और उनके उत्तर के बाद, यह पाया गया कि सभी चार व्यक्तियों को दिसंबर 2009 में नियुक्त किया गया था और संबंधित वित्तीय वर्ष 2009-2010 में, उन्हें कोई लक्ष्य नहीं सौंपा गया था और विपणन और वसूली अधिकारी (ग्रामीण) के पद पर अनुबंध के आधार पर नियुक्त होने के बावजूद केवल अन्य कार्य लिया गया था। मामले के इस पहलू और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि चूंकि 2010 में बैंक की सेवा में आमेलन के बाद से सभी अधिकारी संतोषजनक ढंग से कार्य कर रहे थे और उनके मामले में लक्ष्य शामिल न होने के प्रश्न के परिणामस्वरूप उक्त अधिकारियों को सेवा में जारी रखा गया है।
गया था कि उनकी नियुक्ति क्यों न रद्द कर दी जाए।

11. जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए अन्य आधार का संबंध है, अर्थात् याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज करते हुए, प्रतिपक्षियों ने संकेत दिया है कि याचिकाकर्ता के विशिष्ट तर्क कि उसका प्रतिशत 100% से अधिक हो सकता है, बैंक द्वारा श्री मनीष कुमार सिंह के संबंध में अभी तक निरर्थक के रूप में नकार दिया गया है, जिसका प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक - 10 के हिस्से के रूप में संलग्न किया गया है; उनके प्रदर्शन और प्रतिशत पदों को 108.33% यानी 100% से अधिक के रूप में इंगित किया गया है, श्री रोठ का तर्क है कि भले ही श्री मनीष कुमार सिंह के नाम के सामने दर्ज 108.33% को नजरअंदाज कर दिया जाए और फिर से गणना की जाए, उनका प्राप्त बजट का कुल प्रतिशत लगभग 62.46% होगा जो 60% के लक्ष्य से ऊपर होगा और परिणामस्वरूप जब याचिकाकर्ता का प्रतिशत 60% से कम था और भले ही यह गलत तरीके से इंगित किया गया है कि श्री मनीष कुमार सिंह का लक्ष्य 100% से अधिक है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि श्री मनीष कुमार सिंह द्वारा प्राप्त बजट प्रतिशत 60% से अधिक होने के कारण उनके अवशोषण में कोई त्रुटि नहीं हुई है। अन्य भी, यह तर्क दिया जाता है कि भले ही याचिकाकर्ता के 100% से अधिक लक्ष्य पर विचार किया जाना है, लेकिन उसका बजटीय लक्ष्य 60% से अधिक नहीं होगा ताकि वह 60% लक्ष्य के दायरे में तैर सके जिसे सभी ग्राहक संबंध कार्यकारी (मध्यम उद्यम) द्वारा पूरा किया जाना आवश्यक था।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तीसरे आधार पर जवाब देते हुए कि एक ही क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को

अलग-अलग लक्ष्य दिए गए हैं, दिनांक 01.05.2015 के जवाबी हलफनामे के पैरा-17 में निहित कथनों पर भरोसा करते हुए, श्री सेठ का तर्क यह है कि क्षेत्र में व्यवसाय की क्षमता के आधार संचालन के विभिन्न क्षेत्रों में अधिकारियों के लक्ष्य अलग- अलग तय किए गए थे।

13. इसे विस्तार से बताते हुए, श्री सेठ का तर्क यह है कि लक्ष्य उन क्षेत्रों के आधार पर निर्धार किए गए थे जिनमें अधिकारियों को सेवा करने की आवश्यकता थी। एक उदाहरण के रूप में, यह कहा गया है कि यदि किसी अधिकारी को उस क्षेत्र में सेवा करने की आवश्यकता होती है जिसमें शाखा का बड़ा व्यवसाय हो रहा है तो लक्ष्य प्राप्त करना आसान होगा और इसलिए लक्ष्य को अधिक निर्धारित किया गया था जबकि उस क्षेत्र में जिसमें बैंक का व्यवसाय कम था, एक कम लक्ष्य तय किया गया था और लक्ष्य का ऐसा निर्धारण भेदभावपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

14. श्री सेठ का एक और तर्क यह है कि भले ही तर्कों के लिए यह स्वीकार कर लिया जाए कि चार व्यक्ति जिन्हें प्रतिपक्षी बैंक द्वारा इस आधार पर कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि उन्होंने लक्ष्य प्राप्त नहीं किया है, अंकित मूल्य पर लिया गया है और उक्त व्यक्तियों को गलत तरीके से अवशोषित किया गया था, फिर भी याचिकाकर्ता 60% के लक्ष्य को पूरा करने में *अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा!*

विफल रहा है, परिणामस्वरूप कोई परमादेश ऐसा नहीं हो सकता है, जो उन लोगों के साथ समानता प्रदान करने के लिए जारी किया गया है जिन्हें गलत तरीके से अवशोषित किया गया हो क्योंकि कोई नकारात्मक समानता नहीं हो सकती है। इस संबंध में, अरूप दास और अन्य बनाम असम राज्य और अन्य - (2012) 5 एस.सी.सी. 559 और पंकजेश्वर शर्मा और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य (2021) 2 एस. सी. सी. 188 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

15. श्री सेठ का यह भी तर्क है कि याचिकाकर्ता ने पहले योगेश कुमार और अन्य के साथ रिट - ए संख्या - 57034 वर्ष 2010 दायर किया था, जिसे रिट याचिका का निपटारा रिट - ए संख्या - 6084 वर्ष 2011 में पुन: राजीव कुमार पुष्कर बनाम एसबीआई और अन्य में पारित आदेश के अनुसार दिनांक 28.01.2023 के निर्णय और आदेश के अनुसार किया गया था। उक्त आदेशों की प्रतियां रिट याचिका के अनुलग्नक - 8 के रूप में दायर की गई हैं।

16. श्री सेठ का तर्क है कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व का निर्णय 20.07.2010, 26.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों पर विचार किया जाना आवश्यक था। यह तर्क दिया गया है कि एक बार याचिकाकर्ता को पहले ही 20.07.2010, 26.07.2010 और

18.08.2010 के परिपत्रों के रिट न्यायालय द्वारा लाभ दिया जा चुका है, जिसके परिणामस्वरूप प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता को उक्त परिपत्रों की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि पुनर्निर्णय के सिद्धांत लागू होंगे। इस संबंध में, डा सुब्रमण्यम स्वामी बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (2014) 5 एस. सी. सी. 75 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय भरोसा किया गया है। भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम धर्मेंद्र प्रसाद सिंह और में 30.04.2015 को दिए गए निर्णय में एल.पी.ए. संख्या - 260 वर्ष 2015 में पारित दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया गया है।

17. यह भी तर्क दिया जाता है कि परिपत्र केवल नीतिगत निर्णय हैं और बैंक एक वित्तीय इकाई होने के नाते, पूरी तरह से सशक्त है और अपने स्वयं के व्यवसाय के कामकाज के लिए ऐसे परिपत्र जारी करने का हकदार है और उन व्यक्तियों के मामलों पर विचार करने के लिए जो काम कर रहे हैं और इसके लिए चुनौती देने का कोई सवाल ही नहीं होगा क्योंकि उक्त परिपत्र बैंक के सामान्य कामकाज में जारी किए गए हैं और केवल एक नीतिगत निर्णय होने के कारण उन्हें रिट याचिकाओं के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस संबंध में, उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम गोपीनाथ दास और अन्य (2005) 13 एस. सी. सी. 495 और कर्नल आईवीएस गहलोत बनाम भारत संघ और अन्य (2018) 17 एस. सी. सी. 564 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा!

18. उक्त तर्कों का जवाब देते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आलोक मिश्रा का तर्क है कि इस न्यायालय के दिनांक 27.04.2023 के विस्तृत आदेश के बावजूद पूरक जवाबी हलफनामा दाखिल करते समय प्रतिपक्षी उन कारणों को इंगित करने में विफल रहे हैं जो उन व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिए प्रबल थे, जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने संकेत दिया था, जिनका लक्ष्य शून्य प्रतिशत था। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि चार व्यक्तियों को जारी किए गए कारण बताओ नोटिरा गें, जिराकी प्रतियां पूरक जवाबी हलफनागे के साथ संलग्न की गई हैं, यह इंगित किया गया है कि उनका विलय नीति के खिलाफ था, लेकिन सभी चार व्यक्तियों द्वारा दिए गए उत्तर में केवल यह इंगित किया गया था कि चूंकि वे पहले से ही सेवा में समाहित हो चुके हैं, इसलिए किसी भी कारण बताओ नोटिस का कोई सवाल ही नहीं है, जो तथ्य है प्रतिपक्षी बैंक द्वारा उन चार व्यक्तियों को सेवा में जारी रखने का निर्णय लेते समय उन पर विचार नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि चार व्यक्तियों को उनके लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किए बिना अवशोषित कर लिया गया है, परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को भी उसी सादृश्य पर सेवा में शामिल किया जाना चाहिए।

19. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा कोई अन्य आधार नहीं गया है और न ही किसी मामले के कानून का हवाला दिया गया है।

20. पक्षकारों के वकीलों को सुनने और अभिलेखों अवलोकन करने के बाद, जो उभरता है वह यह है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित आदेश को चुनौती देने में तीन आधार, जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है,आग्राह किया गया है इस प्रकार न्यायालय तीन आधारों से निपटने के लिए आगे बढ़ता है।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया पहला आधार यह है कि विभिन्न व्यक्ति जिनका लक्ष्य बैंक द्वारा निर्धारित 60% के बेंचमार्क से कम था, बैंक द्वारा 20.07.2010 की नीति के संदर्भ में अवशोषित किया गया है, जिसमें एक श्री ए. पी. एस. वर्मा भी शामिल हैं, जिनका लक्ष्य शून्य प्रतिशत था, जबकि याचिकाकर्ता के खिलाफ भेदभाव करते हुए जिसका लक्ष्य भी बेंचमार्क से नीचे था और याचिकाकर्ता को अवशोषित नहीं करने में था ।

22. प्रतिपक्षी बैंक द्वारा दायर पूरक जवाबी हलफनामे के अवलोकन से, जिसके लिए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जवाब दाखिल करने के अपने अधिकार को माफ कर दिया है, यह स्पष्ट है कि सभी चार व्यक्ति जो अवशोषण के उद्देश्य से विभिन्न परिपत्रों में निर्दिष्ट 60% के लक्ष्य को पूरा करने में विफल रहे, अवशोषित किए जा रहे थे। उनके आमेलन का कारण, जैसा कि उभरता है, यह है कि उन्हें संविदा आधार पर नियुक्त किए जाने के बावजूद कोई लक्ष्य नहीं दिया गया था और उनसे केवल अन्य कार्य लिया गया था। तदनुसार, एक बार जब उक्त चार व्यक्तियों को कोई लक्ष्य नहीं सौंपा गया था और उन्हें अन्य कार्य सौंपा गया था, जिसके परिणामस्वरूप उन व्यक्तियों को अवशोषित करने में कोई त्रुटि नहीं पाई गई है और इस तरह उक्त व्यक्तियों को शून्य प्रतिशत प्रदर्शन करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा जो याचिकाकर्ता को इसी तरह की राहत का दावा करने के लिए मजबूर कर सकता है।

23. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि भले ही उपरोक्त चार व्यक्तियों को गलत तरीके से अवशोषित किया गया हो, फिर भी याचिकाकर्ता समान लाभ का दावा नहीं कर सकता क्योंकि नकारात्मक समानता, समानता नहीं हो सकती है।

24. इस संबंध में, अरूप दास (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"इस न्यायालय ने आगे कहा कि भले ही कुछ मामलों में नियुक्तियां गलती से या गलत तरीके से की गई हों, लेकिन यह किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्ति का कोई अधिकार नहीं देता है, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 14 में नकारात्मक समानता की परिकल्पना नहीं की गई है और यदि राज्य कोई गलती की है, तो उसे उक्त गलती को बनाए रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है (न्यायालय का जोर):-

25. इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज कुमार शर्मा (2006) 3 एस. सी. सी. 330 के मामले सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

उन्होंने कहा,'भले ही कुछ मामलो मे नियुक्तियां गलती से या गलत तरीके से की गई हों, लेकिन इससे किसी अन्य व्यक्ति कोई अधिकार नहीं मिल जाता। संविधान के अनुच्छेद 14 में नकारात्मक समानता की परिकल्पना नहीं की गई है, और यदि राज्य ने गलती की है तो उसे उसी गलती को बनाए रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। (देखें: स्नेहप्रभा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (ए.आई. आर. 1996 एस. सी. 540), सचिव, जयपुर विकास प्राधिकरण, जयपुर, बनाम दौलत मल जैन और अन्य (1997 (1) एस. सी. सी. 35), हरियाणा राज्य और अन्य बनाम राम कुमार मान (1997 (3) एस. सी. सी. 321), फरीदाबाद सीटी स्कैन सेंटर बनाम डीजी स्वास्थ्य सेवाएं और अन्य (1997 (7) एस. सी. सी. 752), जालंधर सुधार ट्रस्ट बनाम सम्पूरन सिंह (ए.आई. आर. 1999 एस. सी. 1347), पंजाब राज्य और अन्य बनाम डॉ राजीव सरवाल (1999(9) एस.सी.सी. 240), योगेश कुमार और अन्य बनाम भारत संघ बनाम डा राजीव सरवाल बनाम डा राजीव सरवाल (1999 (9) एस. सी. सी. 240), योगेश कुमार एवं अन्य बनाम डा राजीव सरवाल (1999(9) एस.सी. सी. 240), योगेश कुमार एवं अन्य बनाम डा राजीव सरवाल बनाम डा राजीव सरवाल (1999 (9) एस. सी. सी. एनसीटी, दिल्ली और अन्य (2003 (3) एस. सी. सी. 548), भारत संघ और अन्य बनाम इंटरनेशनल ट्रेडिंग कंपनी और अन्य (2003 (5) एस. सी. सी. 437) और कस्था निवारक जीएसएस मर्यादित, इंदौर बनाम अध्यक्ष, इंदौर विकास प्राधिकरण (जेटी2006 (2) एस.सी. - 259) (न्यायालय का जोर)

26. इसी तरह, पंकजेश्वर शर्मा (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"इस न्यायालय ने आगे कहा कि भले ही कुछ मामलों में नियुक्तियां गलत या गलती से की गई हों, लेकिन यह किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्ति का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 14 में नकारात्मक समानता की परिकल्पना नहीं की गई है और यदि राज्य या उसके प्राधिकरण ने किसी भी स्तर पर कोई गलती की है, तो उसे अनुच्छेद 226 तहत उच्च न्यायालय के रिट अधिकार क्षेत्र के तहत उक्त गलती को बनाए रखने के किया जा सकता है। (न्यायालय का जोर)

27. जब प्रतिपक्षियों की ओर से आक्षेपित कार्रवाई को पूर्वोक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के संदर्भ में देखा जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि भले ही चार व्यक्ति, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उनके अवशोषण के लिए निर्दिष्ट मानदंडों को पूरा नहीं करते हैं यानी 60% प्रदर्शन और उन्हें लत तरीके से अवशोषित किया गया था, फिर भी याचिकाकर्ता को समान लाभ का कोई विस्तार नहीं हो सकता है क्योंकि कोई नकारात्मक

समानता पर ऐसा नहीं हो सकता है। न्यायालय ने यह जोड़ने की जल्दबाजी की कि प्रतिपक्षी बैंक द्वारा अपने पूरक जवाबी हलफनामे उन चार व्यक्तियों के अवशोषण से संबंधित कारणों को संतोषजनक पाया गया है क्योंकि उनके लिए कोई विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया था। इस प्रकार, पहला आधार खारिज कर दिया गया है।

28. जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा लिए गए दूसरे आधार का संबंध है कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज करते हुए, प्रतिपक्षियों ने संकेत दिया है कि याचिकाकर्ता के विशिष्ट तर्क कि उसका प्रतिशत 100% से अधिक हो सकता है, बैंक द्वारा श्री मनीष कुमार सिंह के संबंध में अभी तक निरर्थक के रूप में अस्वीकार कर दिया गया है, जिसका प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक - 10 के हिस्से के रूप में संलग्न किया गया है जो उनके प्रदर्शन और प्रतिशत शर्तों को 108.33% यानी 100% से अधिक के रूप में इंगित किया गया है और इस प्रकार प्रतिपक्षियों के तर्क को रिकॉर्ड से झुठलाया जाता है, श्री सेठ, वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि भले ही याचिकाकर्ता *अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा!*

से संबंधित उक्त कथन को नजरअंदाज किया जाना है, फिर भी यदि श्री मनीष कुमार सिंह की उपलब्धियों को देखा जाना है और गणना प्रतिशत वर्ष 108.33% की अनदेखी करके की जानी है, तब भी श्री मनीष कुमार सिंह का प्रतिशत 62.46% होगा। यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि यदि उसका प्रदर्शन 100% से अधिक देखा जाता है तो वह 60% के प्रदर्शन को पूरा करेगा। इस प्रकार, पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा लिया गया दूसरा आधार भी कानून की नजर में मान्य नहीं पाया जाता है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

29. जहां तक तीसरे आधार का संबंध है, अर्थात एक ही क्षेत्र में काम कर रहे व्यक्तियों को अलग- अलग लक्ष्य दिए गए हैं, जो भेदभाव को जन्म देता है, यहां यह बताने के लिए पर्याप्त है कि जवाबी हलफनामे के पैरा-17 में किए गए कथनों के अनुसार प्रतिपक्षी बैंक द्वारा स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अधिकारियों के लक्ष्य व्यवसाय की क्षमता के आधार पर संचालन के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग तय किए गए थे क्षेत्र में थे। प्रतिपक्षी एक बैंक है। अधिकारियों के लिए लक्ष्य निर्धारित करना उसके अधिकार क्षेत्र में है। यह अधिकारियों पर निर्भर करता है कि वे बैंक जैसी वाणिज्यिक इकाई के उक्त लक्ष्यों को पूरा करें और यदि याचिकाकर्ता बैंक द्वारा निर्धारित लक्ष्य या मानक को पूरा करने में विफल रहता है, तो उसे उक्त मानदंडों को पूरा नहीं करने के लिए खुद को 'धन्यवाद' देना होगा और परिणामस्वरूप बैंक के व्यवसाय की क्षमता के आधार पर संचालन के विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्य निर्धारित करने में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार उक्त आधार को खारिज किया है।

30. जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 18.08.2010 और 20.07.2010 के परिपत्रों को दी गई चुनौती का संबंध है, जैसा कि राहत (ii) (iv) (v) (vi) और (viii) के अवलोकन से उभरता है, याचिकाकर्ता ने पहले योगेश कुमार और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में रिट-ए संख्या-57034 वर्ष 2010 दायर किया था, जिसे इलाहाबाद में इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या-6084 वर्ष 2011 में पारित आदेश के तहत निपटाया गया था। रिट - ए संख्या - 6084 वर्ष 2011 में, रिट न्यायालय ने टिप्पणी की कि सेवा से समाप्ति / कार्यमुक्ति का आदेश पारित करते समय प्रतिपक्षी बैंक ने दिनांक 20.07.2010, 26.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों पर विचार नहीं किया था और इस प्रकार बैंक को निर्देश दिया था कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय करते समय प्रतिपक्षी बैंक सेवा से समाप्ति / कार्यमुक्ति के आदेश से प्रभावित नहीं होगा। यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि उक्त निर्णय को अलग कर दिया गया है और इस प्रकार, स्वीकार्य रूप से, निर्णय ने पक्षों के बीच अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार, एक बार जब याचिकाकर्ता को स्वयं पहले की याचिका में दिनांक 20.07.2010, 26.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों का लाभ दिया जाना आवश्यक था, तो याचिकाकर्ता के लिए पहले की राहत / याचिका से पीछे हटने और अब याचिका में प्रार्थना की गई राहत के अनुसार दिनांक 20.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रों की वैधता को चुनौती देने का कोई अवसर नहीं हो सकता है क्योंकि याचिका में प्रार्थना की गई क्योंकि याचिकाकर्ता की उक्त कार्रवाई स्पष्ट रूप से न्याय निर्णय के सिद्धांतों से प्रभावित होगी।

31. इस संबंध में, डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, जहां यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

39. रेस जुडिकाटा के सिद्धांत के आवेदन का दायरा प्रश्न मे है "रेस" का शाब्दिक अर्थ है. "वह सब कुछ जो अधिकारो की वस्तु बन सकता है और इसमे एक वस्तु विषय- वस्तु या स्थिति शामिल है " और रेस जुडिकाटा का शाब्दिक अर्थ है एक मामलो न्यायिक रूप से कार्य या निर्णय लिया गया मामला; कोई बात या मामलो जो निर्णय द्वारा सुलझाया जाता है "रेस जुडिकाटा प्रो वेरिटेट एसिपिटुर" पुर्ण कहावत है, जो पिछले कुछ वर्षो में , केवल रेस जुडिकाटा तक सिकुड गई है, जिसका अर्थ है कि रेस जुडिकाटा सत्य के लिए स्वीकार किया जाता है सिद्धान्त में निर्णय के निष्कर्ष का नियम शामिल है जो आंशिक रूप से रोमन न्यायालय के अधिकतम पर आधारित है "बोज रेपुबलिका उट सिट फिनिस लिटियम"(यह राज्य की चिंता करता है कि कानून के मुकदमों का अंत हो) और आंशिक रूप से अधिकतम पर "निमो डेबेट बिस वेक्सरी प्रो युनो एटड एडेम कॉसा" (किसी भी व्यक्ति को एक ही कारण के लिये दो बार परेशान नही किया जाना चाहिए)

40. यहां तक कि कानून के एक सवाल पर एक गलत निर्णय यह करने के लिए पक्षों के बीच रेस जुडीकटा के सिद्धांत को आकर्षित करती है. न्यायिक निर्णय की शुद्धता या अन्यथा का इ सवाल पर कोई असर नहीं पड़ता है कि यह न्यायिक निर्णय के रूप में संचालित

होता है या नहीं। (वीडियो: शाह शिवराज गोपालजी बनाम ईडी, अप्पाकाध अय्यासा बी और अन्य, ए.आई. आर. 1949 पीसी 302; और मोहनलाल गोयनका बनाम बिनॉय किशन मुखर्जी और अन्य, ए.आई.आर. 1953 एस. सी. 65)....

42. सत्यध्यान घोषाल और अन्य बनाम श्रीमती देवराजिन देबी और अन्य ए.आई. आर. 1960 एस.सी. 941 में इस न्यायालय ने पुनर्निर्णय के सिद्धांत के दायरे को निम्नानुसार समझाया:

"7. न्यायिक निर्णय का सिद्धांत न्यायिक निर्णयों को अंतिम रूप देने की आवश्यकता पर आधारित है। यह जो कहता है वह यह है कि एक बार रेस न्यायिक हो जाने के बाद, इसे फिर नहीं माना जाएगा। प्राथमिक रूप से यह पिछले मुकदमेबाजी और भविष्य के मुकदमेबाजी के बीच के रूप में लागू होता है, जब एक मामला चाहे तथ्य के प्रश्न पर या कानून के प्रश्न पर - एक वाद या कार्यवाही में दो पक्षों के बीच निर्णय लिया गया है और निर्णय अंतिम है, क्योंकि या तो कोई अपील उच्च न्यायालय में नहीं की गई थी या अपील खारिज कर दी गई थी, या कोई अपील झूठ नहीं है, किसी भी पक्ष को भविष्य के मुकदमे में अनुमति नहीं दी जाएगी या मामले को फिर से कैनवस करने के लिए एक ही पक्ष के बीच कार्यवाही की अनुमति नहीं जाएगी। रेस जुडिकाटा का यह सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता के एस 11 में वाद संबंध में सन्निहित है; लेकिन यहां तक कि जहां एस 11 लागू नहीं होता है, मुकदमेबाजी में अंतिमता प्राप्त करने के उद्देश्य से अदालतों द्वारा रेस जुडिकाटा का सिद्धांत लागू किया गया है। इसका नतीजा यह है कि मूल अदालत के साथ-साथ किसी भी उच्च न्यायालय को भविष्य के किसी भी मुकदमे में इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि पिछला निर्णय सही था ।

इसी तरह के विचार को इस अदालत ने डैरेया अन्य बनाम भारत संघ, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई. आर. 1961 एस. सी. 1457; ग्रेटर कोचीन डेवलपमेंट अथॉरिटी बनाम लीलम्मा वाल्सन और अन्य, ए.आई. आर. 2002 एस. सी. 952; और भानु कुमार जैन बनाम अर्चना कुमार और अन्य ए.आई. आर. 2005 स. सी. 626 में दोहराया है।

43. अमलगमेटेड कोलफील्ड्स लिमिटेड और अन्य बनाम जनपद सभा छिंदवाड़ा और अन्य, ए.आई.आर. 1964 एस. सी. 1013 में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने रिट क्षेत्राधिकार में लागू न्यायिक निर्णय के मुद्दे पर विचार किया और निम्नानुसार अवधारित किया:

"... इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि रेस जुडिकाटा का सामान्य सिद्धांत अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिकाओं पर लागू होता है। इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि अनुच्छेद 32 के तहत दायर याचिकाओं के लिए न्यायिक सिद्धांत का अनुप्रयोग किसी भी तरह से भारत के नागरिकों को गारंटीकृत मौलिक अधिकारों की सामग्री को प्रभावित नहीं करता है। यह केवल उस तरीके को विनियमित करने का प्रयास करता है जिसमें उक्त अधिकारों को

सफलतापूर्वक दावा किया जा सकता है और कानून की अदालतों में सही ठहराया जा सकता है।

44. होप प्लांटेशन लिमिटेड बनाम तालुक लैंड बोर्ड, पीरमेड एंड एएनआर, (1999)5 एस.सी.सी. 590 में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के फैसले की अंतिमता के दायरे को निम्नानुसार समझाया है:

"सार्वजनिक नीति का एक महत्वपूर्ण विचार यह है कि सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालतों द्वारा सुनाया गया निर्णय अंतिम होना चाहिए, जब तक कि उन्हें अपीलीय प्राधिकरण और अन्य सिद्धांत द्वारा संशोधित या उलट नहीं किया जाता है कि किसी को भी दो बार एक तरह के मुकदमेबाजी का सामना नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसी प्रक्रिया निष्पक्ष खेल और न्याय के विचार के विपरीत होनी चाहिए।

रेस जुडिकाटा का नियम न्यायिक निर्धारण के लिए पक्षों को एक ही प्रश्न को फिर मुकदमा करने से रोकता है, भले ही निर्धारण भी गलत हो । जब कार्यवाही अंतिम रूप प्राप्त कर लेती है, तो पक्ष निर्णय से बंधे होते हैं और इस पर सवाल उठाने से रोक दिए जाते हैं। (यह भी देखें: बर्न एंड कंपनी, कलकत्ता वी। उनके कर्मचारी, ए.आई. आर. 1957 एस. सी. 38; जी.के. दुदानी एवं अन्य बनाम एस. डी. शर्मा एवं अन्य, ए.आई.आर. 1986 एस. सी. 1455; और अशोक कुमार श्रीवास्तव बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य ए.आई. आर. 1998 एस. सी. 2046) ।

45. पंजाब राज्य बनाम बुआ दास कौशल, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1676 में इस अदालत की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस मुद्दे पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यदि आवश्यक तथ्य पक्षकारों के दिमाग में मौजूद थे और अदालत द्वारा जांच की गई थी, तो ऐसी तथ्य-स्थिति में, लिखित बयान में विशिष्ट दलील की अनुपस्थिति और अदालत द्वारा न्यायिक निर्णय के विशिष्ट मुद्दे को तैयार करना सारहीन है।

46. इसी तरह के विचार को इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम नानक सिंह, ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1370 में निम्नानुसार अवलोकन करते हुए दोहराया है:

"गुलाबचंद छोटेलाल बनाम भारत संघ के मामले में इस अदालत ने गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस. सी. 1153 में पाया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के प्रावधान बाद के नियमित वाद में एक ही मामले पर एक ही मामले पर एक ही पक्ष के बीच न्यायिक निर्णय के रूप में संचालित सभी पूर्व निर्णयों के संबंध में संपूर्ण नहीं हैं, और न्यायिक निर्णय के सामान्य सिद्धांत पर विवाद में किसी मामले पर कोई भी पिछला निर्णय, पूर्ण प्रतियोगिता के बाद या पक्षों को निर्णय लेने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा अपने मामले को साबित करने के लिए उचित अवसर प्रदान करने के बाद, बाद के नियमित मुकदमे में न्यायिक निर्णय के रूप में काम करेगा। यह आवश्यक नहीं है कि पूर्व में मामले का निर्णय करने वाला न्यायालय बाद के वाद का निर्णय करने के लिए सक्षम हो या यह कि

पूर्व कार्यवाही और उसके बाद के वाद की विषय-वस्तु समान हो । संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के तहत रिट कार्यवाही में विवादित मामलों पर इस तरह के निर्णयों को एक ही पक्ष के बीच विवाद में समान मामलों पर बाद के नियमित वादों में न्यायिक निर्णय के रूप में काम करने से रोकने का कोई अच्छा कारण नहीं है और इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के बाद निर्णयों की अंतिमता के सिद्धांत को सीमित प्रभाव देना है।

48. अन्यथा भी, कानून की व्याख्या पर एक अलग दृष्टिकोण संभव हो सकता है, लेकिन इसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए यदि इसमें उन निर्णयों के आधार पर दर्ज किए गए अस्थिर लेनदेन का प्रभाव है, क्योंकि पिछले और बंद लेनदेन या निपटाए गए शीर्षकों को फिर से खोलना खतरे में पड़ जाएगा और इससे एक अराजक स्थिति पैदा होगी जो समाज में अस्थिरता ला सकती है।

50. मदन मोहन पाठक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य ए.आई. आर. 1978 एस. सी. 803, इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने एक मामले से निपटा जिसमें यह सवाल उठा कि क्या कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश भारतीय जीवन बीमा निगम (इसके बाद एलआईसी के रूप में संदर्भित) को पक्षों के समझौते के संदर्भ में अपने वर्ग 3 और 4 के कर्मचारियों को वर्ष 1975-76 के लिए नकद बोनस का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था अंतिम बनने की अनुमति दी गई थी। निर्णय की घोषणा के तुरंत बाद, संसद ने एलआईसी (निपटान संशोधन) अधिनिय 1976 अधिनियमित किया। कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध दायर अपील पर एलआईसी द्वारा जोर नहीं दिया गया था और उक्त निर्णय को अंतिम रूप देने की अनुमति दी गई थी। इस न्यायालय ने एलआईसी के इस तर्क को खारिज कर दिया कि कानून के हस्तक्षेप के मद्देनजर यह उक्त निर्णय के तहत देयता को पूरा करने के लिए उत्तरदायी नहीं था। न्यायालय ने माना कि अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उक्त निर्णय के प्रभाव को कम करता है या जो निर्णय को शून्य कर सकता है या एलआईसी के खिलाफ उक्त निर्णय के बाध्यकारी चरित्र को दूर कर सकता है। इस प्रकार, एलआईसी उक्त निर्णय के अनुसार भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था और इसे उक्त निर्णय द्वारा लगाए गए दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता था।

51. इस न्यायालय ने गुजरात राज्य और अन्य बानाम न्यायामुर्ति आर. ए मेहता (सेवानिवृत) और अन्य ए.आइ.आर 2013 एस.सी 693 मे इस न्यायालय के फैसले के बाध्यकारी प्रभाव पर विचार करते हुए अवधारित कियाठ:

पीठ ने कहा, " स्थापित कानूनी प्रस्ताव के संबंध मे कोई विवाद नही हो सकता की इस न्यायालय का फैसला बाध्यकारी है .....यह कहना भी सही है कि , भले ही किसी विशेष मुद्दे को पहले नही उठाया गया हो , यह एक विशेष तर्क दिया गया था लेकिन उस पर विचार नही किया गया था उक्त निर्णय अपना बाध्कारी प्रभाव नही खोता है, बशर्ते कि जिस बिन्दु के संदर्भ में एक तर्क बाद में दिया गया है, वास्तव में तय किया गया है| इसलिये,

निर्णय अपने अधिकार को नही खोएगा, "केवल इसलिये की यह एक बूरी तरह से तर्क दिया गया था अप्रयाप्त रूप से विचार किया गया था यह भ्रमक रूप से तर्क किया गया था" (विदे: श्रीमति सोनवति एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, ए.आइ.आर. 1963 एस सी. 151: बल्लभ दास मथुरा दास लखानी एवं अन्य बनाम नगर समिति, मलकापुर,ए.आइ.आर. 1970 एस. सी. 1002 : अंबिका प्रसाद मिश्र वि. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. ए.आइ.आर. 1980 एस.सी. 1762: और निपटान निदेशक, एपी और अन्य बनाम एमआर अप्पाराव और अन्य, .ए.आइ.आर. 2002 एस.सी 1598 (न्यायालय का जोर)

32. डा. शुब्रमण्यम श्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालयच के फैसले को ध्यान मे रखते हुए. जो स्पष्ट है वह यह है मुकदमेबाजी के पहले दौर मे याचिकाकर्ता को दिनांक 20.07.2010 . 27.07.2010 और 18.08.2010 के परिपत्रो का लाभ लिया गया था . बजाय इसके कि बैंक को उन परिपत्रो के आलोक में याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने की आवश्यकता थी| इस प्रकार, मुकदमेबाजी के दुसरो दौर में, याचिकाकर्ता अब इससे पीछे नही हट सकता है और उक्त परिपत्रो को चुनौती नही दे सकता है क्योकि स्पष्ट रूप से न्यायिक निर्णय के सिध्दान्त लागु होंगे | पुर्वोक परिपत्रो को दी गयी चुनौती को खारिज किया जाता है |

33. जहा तक दिनांक 08.03.2011 के परिपत्र को दी गयी चुनौती का संबंध है, जैसा की पहले ऊपर देखा जा चुका है, यह बैंक का विशेषाधिकार है, क्योकि यह वाणिज्यिक इकाई है, उन कर्मचारीयो के अमेलन और भरती के उद्देश्य से परिपत्र जारी करने के लिये जिन्हे वह उचित समझे ता की वह बैंक कर्तव्यो और जिम्मेदारीयो को पुरा करने और अपना व्यवसाय जुटाने मे सक्षम हो| अन्यथा भी याचिका, मे कोई आधार नही दिया गया है कि दिनांक 08.03.2011 के परिपत्र को रद्द करने के इलावा यह संकेत देने के इलावा कि व्यवसाय लक्ष्य केवल विपणन और वसूली आधिकारियों के लिये निर्धारित किया गया था और अन्य कर्मचारियों के लिये नही फिर से यह बैंक का विशेषाधिकार है कि वह अपने किसी भी कर्मचारी के लिए लक्ष्य निर्धारित करे और यह एक नीतिगत निर्णय होने के नाते, यह न्यायालय बैंक के विशेषाधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होगा।

34. इस संबंध में, गोपीनाथ दास (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना उपयुक्त होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

उन्होंने कहा, 'नीतिगत फैसला सरकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि अलग-अलग कोणों से सभी बिंदुओं पर विचार करने के बाद वह कौन सी नीति अपना सकती है। सरकार द्वारा नीतिगत निर्णयों या विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में, जब तक कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं दिखाया जाता है, न्यायालयों के पास हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं होगा और न्यायालय ऐसे मामलों में कार्यपालिका के निर्णय के लिए अपने स्वयं के निर्णय को प्रतिस्थापित नहीं करेगा और न ही करना

चाहिए। सरकार के निर्णय के औचित्य का आकलन करने में, न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, भले ही सरकार से दूसरा दृष्टिकोण संभव हो।

न्यायालय को लगातार खुद को ध्यान में रखना चाहिए कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने मेट्रोपोलिस थिएटर कंपनी बनाम भारत संघ शकागो शहर (1912) 57 एल एड 730: मामले में क्या कहा था।

"सरकार की समस्याएं व्यावहारिक हैं और यदि उन्हें आवश्यकता नहीं है, तो किसी न किसी आवास, अतार्किक और अवैज्ञानिक को उचित ठहराया जा सकता है। लेकिन इस तरह की आलोचना भी जल्दबाजी में व्यक्त नहीं की जानी चाहिए। जो सबसे अच्छा है वह हमेशा समझ में नहीं आता है, किसी भी पसंद का ज्ञान विवादित या निंदित किया जा सकता है। केवल सरकार की गलतियां न्यायिक समीक्षा के दायरे में नहीं आतीं। (न्यायालय का जोर)

35. गोपीनाथ दास (उपरोक्त) के मामले में पूर्वोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को प्रतिपक्षी बैंक के नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है।

36. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। रिट याचिका त्रुटिपूर्ण मानी जाते हुए, एतद्द्वारा खारिज की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1470

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-बी संख्या 316/2023

सूर्य प्रकाश ...याचिकाकर्ता

बनाम

बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, गोंडा एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:
श्री आनंद पाल सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:
मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री सर्वेश कुमार तिवारी

सिविल विधि- भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226 - सिविल प्रक्रिया संहिता-1908- धारा 151 और 153 -आदेश 1 - नियम 10 - आदेश 22 -नियम 4 - मृत व्यक्ति (व्यक्तियों) के खिलाफ दायर किया गया मुकदमा या अपील, जिसके संबंध में वादी (व्यक्तियों) या अपीलकर्ता (अपीलकर्ताओं) को मुकदमा या अपील दायर करने से पहले जानकारी नहीं थी, वह गैर-कानूनी नहीं होगा - वाद या अपील केवल इस आधार पर खारिज नहीं की जाएगी कि वह मृत व्यक्ति (व्यक्तियों) के खिलाफ दायर की गई है और वादी (व्यक्तियों) या अपीलकर्ता (अपीलकर्ताओं) को मृतक के कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड

पर लाने की अनुमति दी जाएगी, जिन्हें अनजाने में पक्षकार बनाया गया था।

याचिका खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत वादों की सूची:</u>

1. गुरचरण सिंह बनाम सुरजीत सिंह एवं अन्य विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 7735/2010 में पारित, 02.11.2012 को निर्णयित, (2012) 13 एससीसी 530 में रिपोर्ट किया गया

2. बनवारी लाल (मृत), द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम बलबीर सिंह (2016) 1 एससीसी 607

3. पंकजभाई रमेशभाई ज़लावाडिया बनाम जेठाभाई कलाभाई ज़लावाडिया (मृतक), विधिक प्रतिनिधि और अन्य के माध्यम से (2017) 9 एससीसी 700

4. बैंक ऑफ कॉमर्स लिमिटेड बनाम प्रताब चंद्र घोष एआईआर 1946 एफसी 13

5. गोपालकृष्णय्या बनाम आदिवी लक्ष्मण राव एआईआर 1925 मैड 1210

6. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मनीषा मैती एआईआर 1965 कैल 459

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा पारित)

सुना।

वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने मुकदमा संख्या 1357/2020, कंप्यूटरीकृत मुकदमा संख्या 201854083000001357 (सूर्य पाल और अन्य बनाम श्याम नारायण और अन्य) के रूप में पंजीकृत अपील में विपक्षी संख्या 1-बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित दिनांक 15.03.2023 के आदेश को चुनौती दी है, जो उ0प्र0 चकबंदी और जोत अधिनियम 1953 (संक्षेप में अधिनियम 1953) की धारा 11 (1) के तहत पेश किया गया था, जिसमें चकबंदी अधिकारी बड़ागांव, जिला गोंडा द्वारा 1953 के अधिनियम की धारा 9 ए (2) के तहत मुकदमा संख्या 3792 में पारित दिनांक 23.01.1965 के आदेश को चुनौती दी गई थी।

वर्तमान याचिका के निस्तारण के लिए प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में यह है कि अपील मृत व्यक्तियों (17 व्यक्ति) को पक्षकार बनाकर दायर की गई थी। यह अपील, शपथ-पत्र के साथ विधिवत समर्थित विलंब के लिए क्षमा प्रार्थना पत्र के साथ, प्रत्यर्थी संख्या 1- बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, गोंडा के समक्ष प्रस्तुत की गई थी।

अपील प्रस्तुत होने के पश्चात विपक्षी संख्या 1 द्वारा नोटिस जारी किया गया। नोटिस तामील होने पर याचिकाकर्ता संख्या 1 सूर्य प्रकाश, राम केवल व राम रूप यादव ने इस आधार पर अपील खारिज करने का आवेदन दिया कि अपील मृत व्यक्तियों के विरुद्ध दाखिल की गई है।

अपील में त्रुटि का पता चलने पर, अपीलकर्ता-प्रत्यर्थी संख्या 2 से 6 ने अपील में प्रत्यर्थी(ओं) के कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए प्रतिस्थापन के लिए आवेदन प्रस्तुत किए। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मुकदमे के पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने और प्रकरण के तथ्यों पर ध्यान देने के बाद, दिनांक 15.03.2023 के आदेश के तहत अपील को खारिज करने के लिए आवेदन को खारिज कर दिया और प्रकरण को प्रतिस्थापन के लिए आवेदन पर सुनवाई के लिए पोस्ट कर दिया।

जैसा कि पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने कहा है, इस न्यायालय द्वारा प्रदत्त अंतरिम संरक्षण के कारण आज तक प्रतिस्थापन प्रार्थना पत्र का निस्तारण नहीं किया गया है।

न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित निर्णय प्रस्तुत किए :-

1- गुरचरण सिंह बनाम सुरजीत सिंह व अन्य विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 7735/2010 दिनांक 02.11.2012 को निर्णीत (2012) 13 एससीसी 530 में प्रतिवेदित।

2- बनवारी लाल (मृत) कानूनी प्रतिनिधि व अन्य बनाम बलबीर सिंह (2016) 1 एससीसी 607 में प्रतिवेदित

3- पंकजभाई रमेशभाई जलावडिया बनाम जेठाभाई कलाभाई जालवादिया (मृतक) के खिलाफ कानूनी प्रतिनिधि और अन्य के माध्यम से (2017) 9 एससीसी 700 में प्रतिवेदित।

गुरुचरण सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बैंक ऑफ कॉमर्स लिमिटेड बनाम प्रताप चंद्र घोष (एआईआर 1946 एफसी 13 में प्रतिवेदित)**, **गोपालकृष्णय्या बनाम अदिवी लक्ष्मण राव (एआईआर 1925 मैड 1210 में प्रतिवेदित), पश्चिम बंगाल राज्य बनाम मनीषा मैती (एआईआर 1965 सीएएल 459 में प्रतिवेदित)** के प्रकरण में पारित निर्णय और साथ ही **सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 16 के नियम 8 और 9** पर विचार करने के बाद निम्नानुसार टिप्पणी की:-

***"8.** ऊपर चर्चित प्राधिकारियों पर विचार करते हुए, आदेश 16 नियम 8 और 9 के उपरोक्त प्रावधान वहां लागू होंगे जहां विशेष अनुमति याचिका दाखिल करने के समय प्रत्यर्थी जीवित था और विशेष अनुमति याचिका दाखिल करने के बाद उसके कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने की मांग की जाती है, लेकिन वहां लागू नहीं होंगे जहां विशेष अनुमति याचिका दायर किए जाने के समय प्रत्यर्थी मर चुका था। जहां विशेष अनुमति याचिका दायर किए जाने के समय प्रत्यर्थी मर चुका था, न्यायालय न्याय के हित में विशेष अनुमति याचिका में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दे सकता है और संशोधन के लिए ऐसे आवेदन को दाखिल करने में देरी को माफ कर सकता है यदि देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया हो।*

__9. इसलिए, 2011 की आईए संख्या 2 को विशेष अनुमति याचिका में संशोधन के लिए आवेदन माना जाता है__ और चूंकि विशेष अनुमति याचिका में संशोधन के लिए आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को आईए संख्या 3 में संतोषजनक ढंग से स्पष्ट किया गया है, इसलिए देरी को माफ किया जाता है और न्याय के हित में, 2011 की आईए संख्या 2 और 3 को अनुमति दी जाती है। आईए संख्या 4 और 5 में प्रार्थना आधिकारिक अनुवाद दाखिल करने और मृतक के मृत्यु प्रमाण पत्र दाखिल करने से छूट के लिए है और इसे अनुमति दी जाती है। 2011 की आईए संख्या 6 प्रत्यर्थी 2, अजायब सिंह, जो प्रत्यर्थी 1 के अधिवक्ता प्रतीत होते हैं, के प्रोफॉर्मा को हटाने के लिए है और याचिकाकर्ता के जोखिम पर अनुमति दी जाती है। आईए का निस्तारण किया जाता है।"

पंकजभाई रमेशभाई जलावडिया (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बनवारी लाल (मृत) (पूर्वोक्त)** प्रकरण में पारित निर्णय और मृत व्यक्ति (व्यक्तियों) के खिलाफ मुकदमा या अपील दायर करने से संबंधित मुद्दे पर अन्य निर्णयों पर विचार करने के बाद, जैसा भी प्रकरण हो, निम्नानुसार टिप्पणी की : -

"6. इस अपील में निर्णय लिया जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थीगण में से किसी एक के विधिक प्रतिनिधियों को संहिता के आदेश 1 नियम 10 के अंतर्गत पक्षकार बनाया जा सकता है, जबकि ऐसे प्रत्यर्थी की मृत्यु वाद दायर किए जाने से पूर्व हो गई थी, विशेषकर तब जब मृतक के विधिक प्रतिनिधियों को संहिता के आदेश 22 नियम 4 के अंतर्गत अभिलेख पर लाने के लिए वादी द्वारा दायर प्रार्थना पत्र को पहले ही पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया गया था।

__"7.__ संहिता के आदेश 22 नियम 4 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिता का आदेश 22 नियम 4 केवल उस प्रकरण में लागू होता है, जहां कई प्रत्यर्थीगण में से एक या एकमात्र प्रत्यर्थी की मृत्यु मुकदमे के अस्तित्व के दौरान होती है। यदि प्रत्यर्थीगण में से एक मुकदमा दायर करने से पहले मर चुका है, तो ऐसे मृतक प्रत्यर्थीगण के कानूनी प्रतिनिधियों को संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत मुकदमे में रिकॉर्ड पर नहीं लाया जा सकता है। आगे बढ़ने से पहले, संहिता के आदेश 1 नियम 10 और धारा 151 और 153 के प्रावधानों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार हैं:

"10. गलत वादी के नाम पर वाद।-- *(1) जहां कोई वाद गलत व्यक्ति के नाम पर वादी के रूप में संस्थित किया गया है या जहां यह संदेह है कि यह सही वादी के नाम पर संस्थित*

किया गया है या नहीं, वहां न्यायालय वाद के किसी भी चरण पर, यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि वाद सद्भावपूर्ण भूल के कारण संस्थित किया गया है और विवाद में वास्तविक प्रकरण के निर्धारण के लिए ऐसा करना आवश्यक है, तो वह ऐसे किसी अन्य व्यक्ति को वादी के रूप में प्रतिस्थापित या जोड़ने का आदेश ऐसे नियमों पर दे सकता है, जो न्यायालय उचित समझे।

***(2) न्यायालय पक्षकारों को काट सकेगा या जोड़ सकेगा।**-- न्यायालय कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर, किसी भी पक्षकार के आवेदन पर या उसके बिना, तथा ऐसी शर्तों पर, जो न्यायालय को न्यायोचित प्रतीत हों, आदेश दे सकेगा कि अनुचित रूप से सम्मिलित किसी पक्षकार का नाम, चाहे वह वादी हो या प्रत्यर्थी, काट दिया जाए तथा ऐसे किसी व्यक्ति का नाम, जिसे सम्मिलित किया जाना चाहिए था, चाहे वह वादी हो या प्रत्यर्थी, या जिसकी न्यायालय के समक्ष उपस्थिति न्यायालय को वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों पर प्रभावी रूप से और पूर्ण रूप से न्यायनिर्णयन करने और उनका निस्तारण करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो, जोड़ा जाए।*

(3) किसी भी व्यक्ति को बिना किसी अनुबन्धकर्ता के वादकर्ता के रूप में या किसी निर्योग्यता के अधीन वादकर्ता की सहमति के बिना उसके अनुबन्धकर्ता के रूप में नहीं जोड़ा जाएगा।

***(4) जहां प्रत्यर्थी जोड़ा गया है, वहां वादपत्र संशोधित किया जाएगा.-** जहां प्रत्यर्थी जोड़ा गया है, वहां वादपत्र को, जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश न दे, ऐसी रीति से संशोधित किया जाएगा जैसा आवश्यक हो, और समन तथा वादपत्र की संशोधित प्रतियां नए प्रत्यर्थी को और यदि न्यायालय ठीक समझे तो मूल प्रत्यर्थी को तामील की जाएंगी।*

(5) भारतीय सीमा अधिनियम, 1877 (1877 का 15) की धारा 22 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रत्यर्थी के रूप में जोड़े गए किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही समन की तामील पर ही आरंभ हुई समझी जाएगी।

***"151. न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की व्यावृत्ति**- इस संहिता की कोई बात न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्ति को सीमित करने या अन्यथा प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी, जो न्याय के उद्देश्यों के लिए या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक हो सकते हैं।*

*"153. **संशोधन करने की सामान्य शक्ति**- न्यायालय किसी भी समय, और लागत या अन्यथा ऐसी शर्तों पर, जिन्हें वह ठीक समझे, किसी वाद की कार्यवाही में किसी दोष या त्रुटि को संशोधित कर सकता है; और ऐसी कार्यवाही द्वारा उठाए गए या उस पर निर्भर वास्तविक प्रश्न या मुद्दे को निर्धारित करने के प्रयोजन के लिए सभी आवश्यक संशोधन किए जाएंगे।"*

***8.** इस प्रकरण में, बिक्री प्रत्यर्थी 7 के पक्ष में की गई थी, और बिक्री विलेख की वैधता मुकदमे का विषय-वस्तु थी। संपति का खरीदार यानी प्रत्यर्थी 7, हालांकि मुकदमा दायर करने के समय मर चुका था, लेकिन उसे गलती से प्रत्यर्थीगण में से एक बना दिया गया था। अब जिन व्यक्तियों को संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत पक्षकार बनाया जाना है, वे मृतक प्रत्यर्थी 7 के कानूनी प्रतिनिधि हैं। इसलिए, इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि मृतक के कानूनी प्रतिनिधियों की उपस्थिति न्यायालय को मुकदमे में सभी प्रश्नों पर प्रभावी और पूरी तरह से निर्णय लेने और निस्तारण में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है। विवादित वास्तविक प्रकरण के निर्धारण के लिए मुकदमे में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। इसलिए, उन्हें सीमा अधिनियम की धारा 21 के तहत तर्क के अनुसार, निश्चित रूप से सीमा कानून के अधीन रिकॉर्ड पर लाने की आवश्यकता है।*

***9.** केवल इसलिए कि कोड के आदेश 22 नियम 4 के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर पहले आवेदन को 9-9-2009 को गैर-धारणीय मानते हुए खारिज कर दिया गया था, यह वादी को एक और आवेदन दायर करने से नहीं रोकेगा, जो कानून में अनुरक्षणीय है। 9-9-2009 के आदेश के आधार पर कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए आवेदन पर कोई निर्णय नहीं हुआ था। दूसरी ओर, कोड के आदेश 22 नियम 4 के तहत दायर पहले आवेदन को विचारण न्यायालय ने गैर-धारणीय मानते हुए खारिज कर दिया था, क्योंकि प्रत्यर्थी 7 की मृत्यु मुकदमा दायर करने से पहले हो गई थी और कोड का आदेश 22 नियम 4 केवल तभी लागू होता है जब मुकदमा लंबित रहने के दौरान किसी पक्ष की मृत्यु हो जाती है। अपीलकर्ता के लिए कानून में खुला एकमात्र रास्ता कोड के आदेश 1 नियम 10 के तहत मृतक प्रत्यर्थी 7 के कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए अभियोग के लिए आवेदन दायर करना था। इसलिए, संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत दायर आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश, दिनांक 9-9-2009, रेस जुडिकाटा के रूप में कार्य नहीं करेगा।*

10. *संहिता का आदेश 1 नियम 10 न्यायालय को कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्ति को पक्षकार के रूप में जोड़ने का अधिकार देता है, यदि वह व्यक्ति जिसकी न्यायालय में उपस्थिति न्यायालय को मुकदमे में शामिल सभी प्रश्नों पर प्रभावी ढंग से और पूरी तरह से निर्णय लेने और निस्तारण में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है। कार्यवाही की बहुलता से बचना भी उक्त प्रावधान के उद्देश्यों में से एक है। संहिता का आदेश 1 नियम 10 न्यायालय को मुकदमे में गलत व्यक्ति को सही व्यक्ति से प्रतिस्थापित करने का अधिकार देता है। यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि मुकदमा सद्भावपूर्ण गलती के कारण शुरू किया गया है, और यह भी कि विवाद में वास्तविक प्रकरण के निर्धारण के लिए मुकदमे में किसी पक्ष को प्रतिस्थापित करना आवश्यक है, तो वह ऐसा करने का निर्देश दे सकता है। जब न्यायालय पाता है कि मुकदमे में पक्षकार के रूप में शामिल किए जाने वाले व्यक्तियों की अनुपस्थिति में, मुकदमे में उठाए गए विवाद को प्रभावी ढंग से और पूरी तरह से सुलझाया नहीं जा सकता है, तो न्यायालय ऐसे व्यक्तियों को पक्षकार बनाकर न्याय करेगा। संहिता के आदेश 1 नियम 10(2) में न्यायालय को ऐसी स्थिति से निपटने के लिए व्यापक विवेक दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित पक्ष के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, यदि उसे मुकदमे में पक्षकार नहीं बनाया गया है, और जहां उक्त पक्ष को पक्षकार बनाना मुकदमे के निर्णय के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण है।*

11. *विजयकुमार मोतीलाल हीराखानवाला में , पीठ ने बहुमत से माना कि किसी पक्ष के कानूनी प्रतिनिधियों को संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत जोड़ा जा सकता है, लेकिन जिस तारीख को उन्हें पक्षकार बनाया गया था वह वह तारीख होगी जिस दिन उनके द्वारा या उनके खिलाफ मुकदमा शुरू किया गया था। उक्त प्रकरण में, इस न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर माना कि मुकदमा सीमा अधिनियम, 1908 की धारा 22 के अनुसार सीमा द्वारा वर्जित था। इस न्यायालय ने, हालांकि यह निष्कर्ष निकाला कि न्यायालय को संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत एक विशेष व्यक्ति को पक्षकार के रूप में शामिल करने की शक्ति प्राप्त है, इस प्रकरण में हस्तक्षेप नहीं किया क्योंकि इस न्यायालय ने पाया कि मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था। यह नोट करना प्रासंगिक है कि उक्त मुकदमा वर्ष 1958 का था। चूंकि उस समय सीमा अधिनियम, 1963 (अब लागू) अस्तित्व में नहीं था अब तक, सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 21(1) के प्रावधान न्यायालय को यह निर्देश देने*

का अधिकार देते हैं कि मुकदमा पहले की तारीख पर शुरू किया गया माना जाएगा, जहां नए वादी या प्रत्यर्थी को शामिल करने में चूक सद्भावना में की गई गलती के कारण हुई थी। इसलिए, इस प्रकरण में वादी के लिए मुकदमे की सुनवाई के दौरान मृतक प्रत्यर्थी 7 के कानूनी प्रतिनिधियों को शामिल न करने में अपनी ओर से "सद्भावना" साबित करना खुला है।

12. *यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि भगवान स्वरूप बनाम मूल चंद (1983) 2 एससीसी 132] में, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:*

"4. यह सच है कि मृतक प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों को समय पर पक्षकार बनाना अपीलकर्ताओं का कर्तव्य था। यह भी उतना ही सच है कि अपीलकर्ताओं ने उचित आवेदन प्रस्तुत करने में लापरवाही बरती। हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष पर सवाल नहीं उठाएंगे कि अपीलकर्ता 2, 3 और 4 मृतक प्रत्यर्थी 1 की मृत्यु के बारे में जानते थे। यह संयुक्त परिवार की संपत्ति के बंटवारे का मुकदमा है, इसलिए पक्षकार आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं और यह मानना उचित है कि कम से कम कुछ अपीलकर्ता मृतक प्रत्यर्थी 1 के अंतिम संस्कार में शामिल हुए होंगे, जैसा कि प्रत्यर्थी 2 की ओर से तर्क दिया गया है। इस तर्क में कुछ दम है कि जब आदेश 22 नियम 4 में दिए गए अनुसार एक विशिष्ट प्रावधान किया जाता है, तो आदेश 1 नियम 10 जैसे सामान्य प्रावधान का सहारा लेना उचित नहीं हो सकता है। लेकिन प्रक्रिया के नियम न्याय को आगे बढ़ाने के लिए बनाए गए हैं, न कि उसे बाधित करने के लिए। संग्राम सिंह बनाम चुनाव न्यायाधिकरण, एआईआर 1955 एससी 425 में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि प्रक्रिया संहिता न्याय को सुगम बनाने और उसके उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए बनाई गई है; यह दंड और दंड के लिए दंडात्मक अधिनियम नहीं है; यह लोगों को फंसाने के लिए नहीं बनाई गई है। कालीपद दास बनाम बिमल कृष्ण सेन गुप्ता, (1983) 1 एससीसी 14 में इसकी पुष्टि की गई।

5. विभाजन के लिए मुकदमे में, वादी और प्रत्यर्थी की स्थिति एक दूसरे से बदली जा सकती है। यह है कि प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष के साथ एक ही स्थिति अपनाता है। अन्य विशेषताएं जो ध्यान देने योग्य हैं, वे हैं कि अपील 1972 में कहीं दायर की गई थी। यह सुनवाई के लिए नहीं आई है और प्रकरण दूसरे प्रत्यर्थी के आवेदन पर ही बोर्ड पर आया है, जिसमें न्यायालय को सूचित किया गया है कि पहले प्रत्यर्थी की बहुत पहले मृत्यु हो गई थी और चूंकि उसके उत्तराधिकारियों

और कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित नहीं किया गया है, इसलिए अपील समाप्त हो गई है। इसके बाद प्रकरण की गति शुरू हुई। अपीलकर्ताओं ने प्रतिस्थापन के लिए आवेदन दिया। प्रकरण यहीं समाप्त नहीं हुआ। मृतक प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारियों ने फिर रिकॉर्ड में लाने के लिए आवेदन दिया। यदि आवेदन स्वीकार कर लिया गया होता, तो सभी पक्षों की उपस्थिति में अपील का निस्तारण किया जा सकता था। आवेदन स्वीकार करने में उच्च न्यायालय को जो कठिनाई हुई, वह बहुत सम्मान के साथ प्रकट करती है, एक अति तकनीकी दृष्टिकोण जिसे यदि अंत तक ले जाया गया तो न्याय की विफलता हो सकती है। मृतक प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने में अपीलकर्ताओं की विफलता के बारे में सबसे गंभीर शिकायत कौन कर सकता था? जाहिर है कि मृतक प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारी ही अपील के परिणाम में महत्वपूर्ण रूप से रुचि रखने वाले व्यक्ति थे। वे तर्क दे सकते थे कि उनके खिलाफ अपील समाप्त हो गई है और उनका हिस्सा अजेय हो गया है। यह उनका प्रकरण नहीं है। इसके विपरीत, वे मृतक प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारी और कानूनी प्रतिनिधि के रूप में पक्षकार बनना चाहते हैं। उन्हें रिकॉर्ड पर लाने में हुई देरी के बारे में बिल्कुल भी शिकायत नहीं थी। यह दूसरा प्रत्यर्थी है जो अपीलकर्ताओं और पहले प्रत्यर्थी दोनों से लड़ रहा है जो इस प्रक्रियात्मक चूक से तकनीकी लाभ प्राप्त करना चाहता है। यदि प्रवृत्ति प्रशासनिक कानून में कार्रवाई में निष्पक्षता को प्रोत्साहित करना है, तो यह न्यायिक दृष्टिकोण में और भी अधिक निहित होना चाहिए। इस तरह के आवेदनों को इस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि क्या पक्षों के बीच पर्याप्त न्याय किया जाता है या प्रक्रिया के तकनीकी नियमों को न्यायालय में पर्याप्त न्याय करने पर प्राथमिकता दी जाती है। निस्संदेह, कानून के अनुसार न्याय; न्याय को आगे बढ़ाने के लिए कानून का प्रशासन किया जाना चाहिए।

13. *इस न्यायालय ने करुप्पास्वामी बनाम सी. राममूर्ति, (1993) 4 एससीसी 41 में वादी को संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत उसके द्वारा दायर आवेदन को संशोधित करने की अनुमति दी है ताकि इसे संहिता की धारा 151 और 153 के प्रावधानों के तहत आवेदन बनाया जा सके। उक्त प्रकरण में भी मुकदमा एक मृत व्यक्ति के खिलाफ दायर किया गया था। इस न्यायालय ने आगे बढ़कर निष्कर्ष निकाला कि वादी ने सीमा अधिनियम की धारा 21(1) के तहत परिकल्पित सद्भावना दिखाई है और इसलिए कानूनी प्रतिनिधियों/*

उत्तराधिकारियों का अभियोग वाद प्रस्तुत करने की तिथि से ही होना चाहिए। उक्त प्रकरण में, यह इस प्रकार देखा गया: (एससीसी पृष्ठ 45, पैरा 4-5)

"4. उपधारा (1) के प्रावधान का तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि इसके जोड़ ने बहुत अंतर पैदा कर दिया है। यह भी स्पष्ट है कि प्रावधान नेकनीयती से की गई गलती के कारण हुई गलतियों को सुधारने की अनुमति देता है, लेकिन केवल तभी जब न्यायालय ऐसी गलती को सुधारने की अनुमति देता है। उस स्थिति में इसका प्रभाव उस तिथि से शुरू नहीं होगा जिस दिन इस उद्देश्य के लिए आवेदन किया गया था, या अनुमति की तिथि से, बल्कि मुकदमे की तिथि से, यह मानते हुए कि इसे आवेदन करने की तिथि से पहले की तिथि पर सही ढंग से संस्थित किया गया है। अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (1) का प्रावधान स्पष्ट रूप से अधिनियम के भाग III में कुछ अन्य प्रावधानों की भावना और विचार के अनुरूप है जैसे कि धारा 14 किसी भी मुकदमे के लिए सीमा अवधि की गणना करते समय अधिकार क्षेत्र के बिना न्यायालय में सद्भावपूर्वक कार्यवाही के समय का बहिष्कार प्रदान करती है, और धारा 17(1) धोखाधड़ी या गलती के बजाय धोखाधड़ी या गलती का पता चलने पर शुरू होने वाली एक अलग सीमा अवधि प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (1) के हितकारी प्रावधान को लागू करते समय यह कथन किया जाना चाहिए कि मुकदमे में मृत प्रत्यर्थी को शामिल करके सद्भावनापूर्वक गलती की गई थी और न्यायालय को सबूत के आधार पर संतुष्ट होना चाहिए कि प्रतिस्थापन या परिवर्धन द्वारा सही प्रत्यर्थी को शामिल करने का प्रस्ताव न्यायसंगत और उचित था, गलती सद्भावनापूर्वक हुई थी। न्यायालय की संतुष्टि ही मुकदमे में जान फूंकती है।

5. यह उल्लेखनीय है कि विचारण न्यायालय ने वादी-प्रत्यर्थी के आचरण के लिए किसी भी तरह की लापरवाही या अवज्ञा को जिम्मेदार नहीं ठहराया। बल्कि यह देखा गया कि वादी को प्रथम प्रत्यर्थी की मृत्यु की तारीख केवल आईए सं. 265/1975 के लिए दायर काउंटर से ही पता चल सकती थी। आम तौर पर, अगर उसे प्रत्यर्थी की मृत्यु की तारीख के बारे में पता होता, तो वह उसके उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के खिलाफ पहली बार मुकदमा दायर करता। विचारण न्यायालय ने यह भी कहा है कि वादी को ऐसी मृत्यु के बारे में जानकारी नहीं थी और इसीलिए उसने आदेश 22 नियम 4 सीपीसी के तहत आईए सं. 265/1975 दायर किया। उच्च न्यायालय ने भी यह निष्कर्ष

दर्ज किया है कि ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे पता चले कि वादी को प्रथम प्रत्यर्थी की मृत्यु के बारे में पता था और फिर भी वह इसके बारे में अच्छी तरह से जानते हुए भी एक मृत व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा दायर करने में लगा हुआ था। निष्कर्ष में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि चूंकि वादी-प्रत्यर्थी ने तुरंत कार्रवाई की थी, इसलिए यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उन्होंने सद्भावनापूर्वक काम किया था। इस प्रकार उच्च न्यायालय ने वादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (1) के प्रावधान को लागू करने का प्रकरण बनाया। इसके बाद , उच्च न्यायालय ने आईए संख्या 785/1975 को अनुमति देने में कोई कठिनाई नहीं पाई, जिसके तहत आईए संख्या 265/1975 दायर की गई थी और आईए संख्या 265/1975 को अनुमति देने में प्रत्यर्थी 1 के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के खिलाफ मुकदमा 14-11-1974 से शुरू करने का आदेश दिया, जिस तारीख को मूल रूप से शिकायत प्रस्तुत की गई थी।

(प्रभाव वर्द्धित)

14. *बनवारी लाल बनाम बलबीर सिंह, (2016) 1 एससीसी 607 में, प्रत्यर्थी 1 (जो पहली अपील में प्रत्यर्थी 1 था), की मृत्यु पहली अपील में निर्णय से 2 वर्ष पहले हो गई थी, लेकिन उसके कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया। जब प्रकरण दूसरी अपील में आया, तो प्रत्यर्थी 1 के कानूनी प्रतिनिधियों ने देरी की माफी और बहाली के लिए एक आवेदन दायर किया। हालांकि इस न्यायालय ने पाया कि आवेदन संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत दायर किया जाना चाहिए था क्योंकि मृत्यु न्यायालय के समक्ष प्रकरण के अस्तित्व के दौरान हुई थी और संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत आवेदन अनुरक्षणीय नहीं था, इस आधार पर आवेदन को अनुमति देने के लिए आगे बढ़ा था कि तकनीकी आधार पर आवेदक को मुकदमा न चलाना अन्यायपूर्ण होगा। इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी 1 के कानूनी प्रतिनिधियों को आवेदन को संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत दायर आवेदन में परिवर्तित करने की अनुमति दी।*

15. *प्रत्यर्थीगण द्वारा अपनाए गए मामलों में अर्थात जयलक्ष्मी जनार्दन वालावलकर बनाम लीलाचंद लक्ष्मीचंद कपासी, 1998 एससीसी ऑनलाइन बॉम 354: (1998) 3 महाराष्ट्र एलजे 618 और मधुकर रामचंद्र केनी बनाम वसंत जगन्नाथ पाटिल, 2013 एससीसी ऑनलाइन बॉम 374: (2013) 4 महाराष्ट्र एलजे 403 में, मृत्यु प्रकरण के लंबित रहने के दौरान*

हुई थी और परिणामस्वरूप वाद उपशमित हो गया। अरोड़ा एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम इंदुभूषण ओभान, (1997) 5 एससीसी 366 का प्रकरण भी लागू नहीं है क्योंकि यह उपशमित आदेश की अंतिमता से संबंधित है। उस संदर्भ में, न्यायालयों ने निष्कर्ष निकाला है कि यदि लंबित प्रकरण के दौरान मृत्यु होती है तो अपीलकर्ता-वादी के लिए एकमात्र रास्ता संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत आवेदन दायर करना है, न कि संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत या संहिता की धारा 151 के तहत।

16. *इस प्रकरण में, हालांकि विचारण न्यायालय ने कोड के आदेश 22 नियम 4 के तहत आवेदन को पहले ही समय पर बनाए रखने योग्य न मानते हुए सही तरीके से खारिज कर दिया था, हमारी सुविचारित राय में, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उस समय विचारण न्यायालय स्वयं कोड के आदेश 22 नियम 4 के तहत दायर उक्त आवेदन को आदेश 1 नियम 10 सीपीसी के तहत दायर आवेदन के रूप में मान सकता था, ताकि पक्षों के बीच न्याय हो सके। केवल इसलिए कि वादी के अधिवक्ता द्वारा प्रारंभिक चरण में कोड के आदेश 1 नियम 10 के रूप में सही प्रावधान का उल्लेख नहीं किया गया, पक्षों को परेशान नहीं किया जाना चाहिए। अब तक यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि आवेदन में प्रावधान का केवल गलत उल्लेख मुकदमे के किसी पक्ष को न्याय पाने से नहीं रोकेगा। अंततः, न्यायालयों का उद्देश्य न्याय करना है न कि तकनीकी पहलुओं के आधार पर आवेदनों पर निर्णय लेना। आदेश 1 नियम 10 सीपीसी के तहत प्रावधान मुकदमे के किसी भी चरण में पक्षों को हटाने या जोड़ने के न्यायालय के न्यायिक विवेक के बारे में बात करता है। यह किसी भी पक्ष को हटा सकता है जो अनुचित तरीके से शामिल है, यह किसी को भी वादी या प्रत्यर्थी के रूप में जोड़ सकता है यदि उसे लगता है कि ऐसा व्यक्ति एक आवश्यक या उचित पक्ष है। संहिता के आदेश 1 नियम 10(2) के तहत न्यायालय निश्चित रूप से कारण और निष्पक्षता के अनुसार कार्य करेगा न कि सनक और मनमानी के अनुसार।*

17. *संहिता के आदेश 1 नियम 10(2) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "सभी संबंधित प्रश्नों का निस्तारण करना" उदार और व्यापक व्याख्या के लिए संवेदनशील है, ताकि इसके विषय-वस्तु से संबंधित सभी प्रश्नों का न्यायनिर्णयन किया जा सके। संसद ने इस नियम को बनाते समय अपने विवेक से यह सोचा होगा कि वाद के पक्षकारों और तीसरे पक्षकारों के लिए समान सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एक बार विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय को*

तीसरे पक्षकारों सहित पक्षों को जोड़ने के विवेकपूर्ण विवेक के साथ पूर्वोक्त परिणाम सुनिश्चित करने की शक्ति दी गई है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि पक्षकार का मुकदमे के विषय-वस्तु में प्रत्यक्ष हित होना चाहिए। बिक्री विलेख को रद्द करने की मांग करने वाले मुकदमे में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह व्यक्ति जिसने संपत्ति खरीदी है और जिसके अधिकार मुकदमे में निर्णय के अनुसार प्रभावित होने की संभावना है, एक आवश्यक पक्ष है, और उसे जोड़ा जाना चाहिए । यदि ऐसे क्रेता की मृत्यु हो गई है, तो उसके कानूनी प्रतिनिधि आवश्यक पक्ष हैं।

18. इस प्रकरण में, चूंकि वाद दायर करने से पहले ही वाद संपत्ति के क्रेता यानी प्रत्यर्थी 7 की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए वाद प्रस्तुत करते समय उसके कानूनी प्रतिनिधियों को वाद में पक्षकार बनाया जाना चाहिए था। चूंकि वाद दायर करने के समय इस तथ्य के मद्देनजर अभियोग नहीं बनाया गया था कि वादी को क्रेता की मृत्यु के बारे में पता नहीं था, इसलिए उसे केवल इस तथ्य की जानकारी न होने के कारण वाद से बाहर नहीं किया जा सकता। पक्षों के बीच न्याय करने के लिए और चूंकि वाद संपत्ति के क्रेता के कानूनी प्रतिनिधि आवश्यक पक्ष हैं, इसलिए उन्हें संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत पक्षकार बनाया जाना चाहिए , क्योंकि संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत आवेदन स्वीकार्य नहीं था।

19. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह केवल तभी संभव है जब मुकदमे के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी की मृत्यु हो जाती है, तभी संहिता के आदेश 22 नियम 4 के प्रावधानों को लागू किया जा सकता है। चूंकि प्रत्यर्थीगण में से एक यानी प्रत्यर्थी 7 की मृत्यु मुकदमा दायर करने से पहले हो चुकी है, इसलिए मृतक प्रत्यर्थी 7 के कानूनी प्रतिनिधियों को संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत पक्षकार बनाने में कोई कानूनी बाधा नहीं है, इसका सीधा कारण यह है कि वादी किसी भी प्रकरण में इन कानूनी प्रतिनिधियों के खिलाफ उस तारीख को नया मुकदमा दायर कर सकता था, जिस दिन उसने उन्हें पक्षकार बनाने के लिए आवेदन किया था, बेशक सीमा अवधि के कानून के अधीन। आम तौर पर, अगर वादी को मुकदमा दायर करने के समय प्रत्यर्थीगण में से किसी की मृत्यु के बारे में पता होता, तो वह सबसे पहले उसके उत्तराधिकारियों या कानूनी प्रतिनिधियों के खिलाफ मुकदमा दायर करता। उच्च न्यायालय ने संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत वादी द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार करने में जो कठिनाई का

अनुभव किया, वह बहुत सम्मान के साथ, एक अति तकनीकी दृष्टिकोण को प्रकट करता है जिसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हो सकती है। चूंकि मृतक प्रत्यर्थी 7 के वारिस मुकदमे के परिणाम में महत्वपूर्ण रुचि रखने वाले व्यक्ति थे, इसलिए ऐसे आवेदनों को ध्यान में रखते हुए देखा जाना चाहिए कि अदालतें पक्षों के बीच पर्याप्त न्याय करने के लिए होती हैं और तकनीकी नियमों या प्रक्रियाओं को पर्याप्त न्याय करने पर वरीयता नहीं दी जानी चाहिए। निस्संदेह, कानून के अनुसार न्याय का मतलब केवल तकनीकी न्याय नहीं है, बल्कि इसका मतलब है कि न्याय को आगे बढ़ाने के लिए कानून का प्रशासन किया जाना चाहिए।

20. *उपरोक्त कथन की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, आदेश 1 नियम 10 के तहत आवेदन दाखिल करने पर कोई रोक नहीं है, तब भी जब संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत आवेदन को प्रकरण के तथ्यों के तहत बनाए रखने योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया था। ऐसे प्रकरण में मृतक व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकारियों को संहिता की धारा 151 के साथ संहिता के आदेश 1 नियम 10 के तहत पार्टियों की श्रृंखला में जोड़ा जा सकता है, जो संहिता के आदेश 7 नियम 6 और सीमा अधिनियम की धारा 21 के तहत परिकल्पित सीमा की दलील के अधीन है, जिसे परीक्षण के दौरान तय किया जाएगा।*

21. *उपरोक्त के मद्देनजर, उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय को खारिज किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय को मृतक प्रत्यर्थी 7 के कानूनी प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने और उन्हें रिकॉर्ड पर लाने का निर्देश दिया जाता है, जो कि कोड के आदेश 7 नियम 6 के तहत परिकल्पित सीमा अवधि की दलील के साथ-साथ सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 21 के तहत विचाराधीन है, जिसे विचारण के दौरान तय किया जाएगा।*

इस प्रकार, उपर्युक्त स्थापित पूर्वसर्ग के मद्देनजर, मृत व्यक्ति (व्यक्तियों) के विरुद्ध दायर किया गया वाद या अपील, जैसा भी प्रकरण हो, जिसके संबंध में वादी (वादी) या अपीलकर्ता (अपीलकर्ता), जैसा भी प्रकरण हो, वाद या अपील दायर करने से पहले अवगत नहीं थे, अनिर्धारित नहीं होगा।

उपर्युक्त कानून से यह स्पष्ट है कि किसी वाद या अपील को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि वह मृत व्यक्ति (व्यक्तियों) के विरुद्ध दायर किया गया है, तथा वादी (वादी) या अपीलकर्ता (अपीलकर्ता) को, जैसा भी प्रकरण हो, मृतक के कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकार्ड पर लाने की अनुमति

दी जा सकती है, जिन्हें अनजाने में इसमें शामिल कर लिया गया था।

उपर्युक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय वर्तमान याचिका पर विचार करने के लिए इच्छुक नहीं है।

तदनुसार, इसे **खारिज** किया जाता है।

पूर्व में दिया गया अंतरिम आदेश निरस्त माना जाएगा।

प्रत्यर्थी संख्या 1 को निर्देश दिया जाता है कि वह उपर्युक्त कानून के मद्देनजर उसके समक्ष लंबित प्रतिस्थापन के प्रार्थना पत्र पर शीघ्र विचार करे

(2023) 8 ILRA 1478

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 4651 वर्ष 2002

मुख्य कार्यकारी अधिकारी, उत्तर प्रदेश खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, लखनऊ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के अंतर्गत नियंत्रण प्राधिकारी/सहायक श्रम आयुक्त, लखनऊ एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

पंकज पटेल, आकांक्षा गुप्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

सिविल विधि - ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 - धारा 2(ई), 4 और 7(4) - ग्रेच्युटी का निर्धारण - कर्मचारी को समेकित मानदेय पर नियुक्त किया गया - सेवा समाप्ति के बाद संविदात्मक पुनः नियुक्ति - 1982 से 2013 तक निरंतर सेवा स्थापित - चेक साक्ष्य के आधार पर अंतिम प्राप्त वेतन 8,500/- रुपये सिद्ध - नियोक्ता साक्ष्य की जिरह या खंडन करने में विफल रहा - नियोक्ता की गैर-भागीदारी के कारण 9 वर्षों का विलंब - पर्याप्त साक्ष्य होने और पक्षों की सुनवाई होने पर रिमांड की आवश्यकता नहीं - कानूनी कहावत " *कॉमोडम एक्स इंजुरिया सुआ नीमो हैबेरे डेबेट* " लागू - नियोक्ता अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता।

अभिनिर्धारित : जहाँ याचिकाकर्ता-नियोक्ता, उचित सूचना के बावजूद, ग्रेच्युटी के दावे का पूरी तत्परता से प्रतिवाद करने में विफल रहा और दावेदार से जिरह करने से परहेज किया, वहाँ अंतिम आहरित वेतन के चेक प्रमाण सहित मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर आधारित नियंत्रण प्राधिकारी के निष्कर्षों को गलत नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में, रिमांड की प्रार्थना स्वीकार्य नहीं है क्योंकि इससे मुकदमेबाजी लंबी खिंचेगी और वादी को उसकी अपनी चूक के लिए पुरस्कृत करने के

समान होगा। कानूनी सिद्धांत "कोई भी व्यक्ति अपनी गलती का फायदा नहीं उठाएगा" पूरी तरह लागू होता है।

याचिका खारिज

<u>भरोसा किए गए:</u>

1. अरविंद कुमार जायसवाल बनाम देवेंद्र प्रसाद जायसवाल वरुण, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 146

2. नादकेरप्पा बनाम पिलम्मा, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 387

3. शिवकुमार बनाम शरणबप्पा, (2021) 11 एससीसी 277

4. कुशेश्वर प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2007) 11 एससीसी 447

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री पंकज पटेल के साथ-साथ उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उपदान भुगतान अधिनियम, 1972 के तहत नियंत्रक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 15.03.2021 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत दावे को स्वीकार किया गया और उस अवधि के लिए 216753/- रुपये का उपदान प्रदान किया गया जिसमें दावेदार के पति ने याचिकाकर्ता के साथ काम किया था।

3. वर्तमान मामले के न्यायनिर्णय के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति स्वर्गीय रामा को प्रारंभ में याचिकाकर्ता के संगठन में मिट्टी के बर्तन अनुभाग में मास्टर पॉटर के पद पर दिनांक 03.12.1982 के आदेश द्वारा 325/- रुपये प्रति माह के समेकित वेतन पर नियुक्त किया गया था। यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति की सेवाएं दिनांक 18.08.2000 के आदेश द्वारा समाप्त कर दी गईं। तत्पश्चात 26.05.2003 से उन्हें 1500/- रुपये प्रति माह के वेतन पर चौकीदार/पॉटर के पद पर संविदा आधार पर 05.11.2013 तक पुनः नियुक्त किया गया।

4. वर्तमान मामले में विवाद प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति को उपदान की राशि के भुगतान न किए जाने से संबंधित है, जिसके संबंध में उपदान भुगतान अधिनियम, 1972 के तहत नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष एक दावा दायर किया गया था। दावे में यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 2 का पति 03.12.1982 से अपनी सेवानिवृत्ति 05.11.2013 तक अर्थात 31 वर्षों की अवधि के लिए याचिकाकर्ताओं की निरंतर सेवा में था और उक्त अवधि के दौरान वह याचिकाकर्ता से वेतन प्राप्त कर रहा था और अंत में वह 12000/- रुपये प्रति माह प्राप्त कर रहा था, और इसलिए वह उपदान का हकदार था जिसे याचिकाकर्ता द्वारा अवैध रूप से और मनमाने ढंग से रोक लिया गया था।

5. याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए जिन्होंने उपस्थिति दर्ज कराई और प्रत्यर्थी संख्या 2 के दावे का विरोध करते हुए एक लिखित बयान दाखिल किया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह उचित रूप से प्रस्तुत किया गया है कि लिखित बयान दाखिल करने के बाद उनके अधिवक्ता ने कभी भी नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही में उपस्थित होकर भाग नहीं लिया।

6. उक्त आदेश में, नियंत्रक प्राधिकारी ने दर्ज किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति की नियुक्ति के संबंध में कोई विवाद नहीं है, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 2 के दावे को आंशिक रूप से इस हद तक स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति की सेवाएं 18.08.2000 को समाप्त कर दी गईं थीं और बाद में उन्हें 26.05.2003 से 05.11.2013 तक संविदा आधार पर पुनः नियुक्त किया गया था।

7. याचिकाकर्ता के तर्क को इस हद तक स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति ने 28 वर्ष 01 महीने और 24 दिन की सेवाएं प्रदान की थीं। प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति द्वारा आखिरी आहरित वेतन के संबंध में, याचिकाकर्ताओं ने लिखित बयान में कहा था कि वह प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दावा किए गए 12,000/- रुपये प्रति माह के बजाय केवल 4,000/- रुपये प्रति माह प्राप्त कर रहा था। इस संबंध में नियंत्रक प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर भरोसा किया है जहां याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 के पक्ष में एक चेक जारी किया गया था, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति को भुगतान किए गए मजदूरी के रूप में माना गया और यह स्वीकार किया गया कि वह 8500/- रुपये प्रति माह प्राप्त कर रहा था और परिणामस्वरूप उसे भुगतान की जाने वाली उपदान की राशि को उसी आधार पर निर्धारित किया।

8. वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने केवल उस वेतन की मात्रा पर आपत्ति जताई है, जिसके आधार पर नियंत्रक प्राधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2021 के माध्यम से ग्रेच्युटी की राशि प्रदान की गई है। उन्होंने आगे कहा कि अपने लिखित बयान में, याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति को केवल 4000/- रुपये प्रति माह मिल रहे थे, जबकि नियंत्रक प्राधिकारी ने अत्यंत अवैध और मनमाने तरीके से प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति के दावे को उनका मासिक वेतन 8500/- रुपये प्रति माह मानते हुए स्वीकार किया है। इस संबंध में यह ध्यान दिया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था और उनके द्वारा दस्तावेज भी प्रस्तुत किए गए थे, जिनमें चेक शामिल था जो दर्शाता था कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति वेतन के रूप में 8500/- रुपये प्रति माह प्राप्त कर रहे थे।

9. आदेश-पत्रक से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 का बयान दर्ज किया गया था और याचिकाकर्ता को उनका जिरह करने के लिए बार-बार अवसर दिए गए थे, लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा कोई जिरह नहीं की गई

और नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति वेतन के रूप में 8500/- रुपये प्रति माह प्राप्त कर रहे थे। यह ध्यान दिया जाता है कि उक्त निष्कर्ष रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर आधारित है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह विकृत है या इसमें कोई खामी है। यह आगे ध्यान दिया जाता है कि यह याचिकाकर्ताओं की गलती है कि वे लिखित बयान दाखिल करने के बाद कार्यवाही में भाग नहीं ले रहे थे और नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही 09 वर्षों की अवधि तक चलती रही। मात्र इसलिए कि लिखित बयान में वेतन की मात्रा के संबंध में दावे को चुनौती देने वाला अभिकथन किया गया है, उनका रुख निर्णायक और बाध्यकारी नहीं हो जाएगा जब तक कि इस संबंध में दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत न किया जाए। याचिकाकर्ता द्वारा नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष कर्मचारी को भुगतान किए गए वेतन की राशि के संबंध में अपने अभिकथन के समर्थन में कोई दस्तावेज साबित नहीं किए गए, जबकि कर्मचारी ने इस संबंध में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए थे, और नियंत्रक प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति द्वारा आहरित वेतन के संबंध में 8500/- रुपये प्रति माह का निष्कर्ष देने के लिए पर्याप्त कारण दिए गए हैं।

10. नियंत्रक प्राधिकारी ने उक्त मामले का निर्णय करते समय अपने आदेश को अपने समक्ष मौजूद साक्ष्य और दर्ज किए गए बयान तथा संबंधित पक्षों द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेजों पर आधारित किया है। याचिकाकर्ता के लिखित बयान पर विधिवत विचार किया गया है और प्रत्यर्थी संख्या 2 के पति को 8500/- रुपये प्रति माह प्राप्त होने का निष्कर्ष दर्ज करने के कारणों पर विधिवत चर्चा की गई है और यह ठोस सामग्री पर आधारित है जो कि कार्यवाही में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत चेक द्वारा भुगतान का साक्ष्य है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर कहा है कि मामले को नए सिरे से विचार के लिए वापस भेजा जाए क्योंकि आक्षेपित आदेश की सुनवाई से पहले याचिकाकर्ता को नहीं सुना गया था। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता लिखित निवेदन दाखिल करने के बाद उपस्थित नहीं हुए और याचिकाकर्ता की ओर से किसी प्रतिनिधित्व की अनुपस्थिति में मामले का निर्णय किया गया और इसलिए सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के लिए, न्याय के हित में मामले को वापस भेजा जाना चाहिए।

12. वापसी के संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में कानून सुस्थापित किया गया है।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अरविंद कुमार जायसवाल (मृतक) विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से बनाम देवेंद्र प्रसाद जायसवाल वरुण, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 146** के मामले में निम्नानुसार माना है:-

> *"वापसी का आदेश मुकदमेबाजी को लंबा और विलंबित करता है और इसलिए, इसे तब तक पारित नहीं*

किया जाना चाहिए जब तक कि अपीलीय न्यायालय यह न पाए कि पुनः विचारण आवश्यक है, या रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य मामले का निपटारा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, ऐसे कारणों से जैसे किसी पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर न मिलना, जहां विवाद का कोई वास्तविक विचारण नहीं हुआ हो या कार्यवाही का कोई पूर्ण या प्रभावी न्यायनिर्णयन न हुआ हो, और शिकायत करने वाले पक्ष को उस खाते पर भौतिक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा हो। जहां साक्ष्य पहले ही प्रस्तुत किए जा चुके हों और ऐसे साक्ष्य के मूल्यांकन पर निर्णय दिया जा सकता हो, वहां वापसी का आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए जिसमें मामले को निचली अदालत को वापस भेजा जाए, भले ही निचली अदालत ने मुद्दा(ओं) को तैयार करने में चूक की हो और/या किसी तथ्य के प्रश्न का निर्धारण करने में विफल रही हो, जो अपीलीय न्यायालय की राय में आवश्यक है। प्रथम अपीलीय न्यायालय, यदि आवश्यक हो, तो आदेश XLI के नियम 25 के अनुसार विचारण न्यायालय को किसी विशेष पहलू/मुद्दे पर साक्ष्य और निष्कर्ष दर्ज करने का निर्देश भी दे सकता है, जिसे फिर अपीलीय न्यायालय द्वारा मामले का निर्णय करने के लिए रिकॉर्ड पर लिया जा सकता है।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नादकेरप्पा (मृतक) बनाम पिल्लम्मा (मृतक), 2022 एससीसी ऑनलाइन SC 387** के मामले में निम्नानुसार माना है:-

"यह स्थापित कानून है कि वापसी का आदेश मामूली तौर पर पारित नहीं किया जा सकता। वापसी का आदेश केवल कार्यवाही को निचली अदालत या न्यायाधिकरण को वापस भेजने के उद्देश्य से भी पारित नहीं किया जा सकता। अपीलीय न्यायालय द्वारा मामले को गुण-दोष के आधार पर निपटाने का प्रयास किया जाना चाहिए। जहां दोनों पक्षों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं, वहां अपीलीय न्यायालय को मामले को निचली अदालत या न्यायाधिकरण को वापस भेजने के बजाय गुण-दोष के आधार पर अपील का निर्णय करना चाहिए।"

15. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **शिवकुमार और अन्य बनाम शरणबप्पा और अन्य, 2021 (11) एससीसी 277** के मामले में निम्नानुसार माना है:-

"25.2. नियम 23ए को सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा आदेश XLI सीपीसी में जोड़ा गया था। इस संशोधन से पहले, न्यायालयों द्वारा यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता था कि हालांकि नियम 23 के तहत, वापसी का आदेश केवल एक प्रारंभिक बिंदु पर वाद का निपटारा करने

वाली डिक्री को पलटने पर ही दिया जा सकता था, लेकिन अपीलीय न्यायालय के पास मामले को वापस भेजने की अंतर्निहित शक्ति थी जहां न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक समझा जाता था। कुछ उच्च न्यायालयों ने अपने संबंधित संशोधनों के माध्यम से समान प्रावधान किए थे। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा आदेश XLI में नियम 23ए को जोड़ना यह स्पष्ट करता है कि जब वाद का निपटारा एक प्रारंभिक बिंदु के अलावा अन्यथा किया गया हो और अपील में डिक्री को पलट दिया गया हो, तो अपीलीय न्यायालय के पास वापसी की शक्ति होगी, यदि पुनः विचारण आवश्यक समझा जाता है।

25.3. आदेश XLI के नियम 23 और 23ए में निहित वापसी के प्रावधानों की योजना की समझ आदेश XLI के नियम 24 में निहित प्रावधान के संदर्भ के बिना पूरी नहीं होती, जो अपीलीय न्यायालय को वापसी के बिना मामले का अंतिम निपटारा करने में सक्षम बनाता है यदि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पर्याप्त हों; इस तथ्य के बावजूद कि अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए आधार से पूरी तरह से भिन्न आधार पर आगे बढ़ता है।

25.4. आदेश XLI के नियम 23, 23ए और 24 का संयुक्त पठन वापसी की शक्तियों के दायरे के साथ-साथ सीमाओं को भी सामने लाता है कि जब उपलब्ध साक्ष्य मामले का निपटारा करने के लिए पर्याप्त हों, तो अपीलीय न्यायालय के लिए उचित मार्ग आदेश XLI सीपीसी के नियम 24 के आदेश का पालन करना और वाद का अंतिम निर्धारण करना है। केवल ऐसे मामलों में जहां चुनौती दी गई डिक्री को अपील में पलट दिया जाता है और पुनः विचारण आवश्यक समझा जाता है, अपीलीय न्यायालय मामले को वापस भेजने का मार्ग अपनाएगा। यह स्पष्ट रहता है कि वापसी का आदेश नियमित तरीके से पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि एक अनावश्यक वापसी का आदेश केवल न्याय के कारण की सेवा किए बिना मुकदमेबाजी के जीवन को लंबा करता है। केवल इस आधार पर वापसी का आदेश कि साक्ष्य के मूल्यांकन को छूने वाले बिंदुओं पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था, किसी दिए गए मामले में उचित नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रथम अपीलीय न्यायालय स्वयं तथ्यों में प्रवेश करने और साक्ष्य का मूल्यांकन करने का अधिकार रखता है। निःसंदेह, ऐसी कई परिस्थितियां हो सकती हैं जो वापसी के आदेश को उचित ठहराती हैं या जहां वापसी आवश्यक हो सकती है, जो किसी मामले के तथ्यों और दी गई परिस्थितियों के समूह पर निर्भर करता है।

25.4.1. अपीलांटों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मोहन कुमार (उपरोक्त) के मामले का निर्णय इस बात का एक उपयुक्त उदाहरण है कि

अपीलीय न्यायालय को कब वापसी की शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। उक्त मामले में, अपीलांट और उनकी माता ने सरकार और स्थानीय निकाय के खिलाफ प्रश्नगत भूमि के संबंध में स्वामित्व की घोषणा, स्थायी निषेधाज्ञा और कब्जा प्राप्त करने के लिए सिविल वाद दायर किया था। विचारण न्यायालय ने वाद को आंशिक रूप से डिक्री किया, जबकि यह माना कि वादी विवादित भूमि के मालिक थे जिस पर प्रत्यर्थियों द्वारा अतिक्रमण किया गया था और वे अतिक्रमण हटवाने के हकदार थे; और यह भी माना गया कि सरकार को भूमि का अधिग्रहण करना चाहिए और अपीलांट को भूमि का बाजार मूल्य देना चाहिए। विचारण न्यायालय के ऐसे भाग की डिक्री को प्रतिवादियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, लेकिन विचारण न्यायालय के निर्णय के उस भाग के खिलाफ जिसके परिणामस्वरूप अपीलांट के वैकल्पिक भूमि आवंटन के दावे को खारिज कर दिया गया था, अपीलांट ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की थी। उच्च न्यायालय ने न केवल अपीलांट द्वारा दायर की गई अपील को खारिज कर दिया, बल्कि इस निष्कर्ष के साथ पूरे वाद को खारिज कर दिया कि वादी-अपीलांट वाद की भूमि पर अपना स्वामित्व साबित करने में विफल रहा क्योंकि उसने अपने विक्रय पत्र के विक्रेता की परीक्षा नहीं की। दी गई परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि जब उच्च न्यायालय ने माना कि अपीलांट अपने विक्रेता की गैर-परीक्षा के कारण वाद की भूमि पर अपना स्वामित्व साबित करने में असमर्थ था, तो उच्च न्यायालय के लिए उचित मार्ग यह था कि वह मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दे, जिससे अपीलांट को पहले से प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के अतिरिक्त उचित साक्ष्य प्रस्तुत करके अपना स्वामित्व साबित करने का अवसर मिल सके। स्पष्ट रूप से, इस न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के लिए, पुनः विचारण का एक मामला बनता था, विशेष रूप से जब विचारण न्यायालय ने अन्यथा माना था कि अपीलांट विवादित भूमि का मालिक था और अतिक्रमण हटवाने के साथ-साथ भूमि का बाजार मूल्य प्राप्त करने का हकदार था। ऐसे मामले जहां किसी विशेष कारण से और विशेष रूप से इस कारण से कि एक पक्ष को पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर आवश्यक है, पुनः विचारण आवश्यक समझा जाता है, वे पूरी तरह से अलग स्थिति में होते हैं उन मामलों से जहां साक्ष्य पहले ही प्रस्तुत किए जा चुके

हों और साक्ष्य के मूल्यांकन पर निर्णय देना हो। यह भी स्पष्ट रहता है कि वापसी का आदेश केवल एक पक्ष को अपने मामले में कमी को पूरा करने की अनुमति देने के उद्देश्य से पारित नहीं किया जाना चाहिए।

25.5. यह अनिवार्य रूप से दोहराया जाता है कि वापसी का अवसर केवल तब उत्पन्न होगा जब विचारण न्यायालय के तथ्यात्मक निष्कर्षों को पलट दिया जाता है और अपीलीय न्यायालय द्वारा पुनः विचारण आवश्यक समझा जाता है।"

15. वर्तमान मामले में यह विचार करना उचित है कि याचिकाकर्ता स्वयं नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही में उपस्थित नहीं हो रहे थे। यह कानून के सिद्धांत में निहित है जो कानूनी सूत्र में पढ़ा जाता है जो इस प्रकार है: *"कमोडम एक्स इंजरिया सुआ नेमो हैबेरे डेबेट" ; (कोई भी पक्ष अपने स्वयं के गलत कार्य का अनुचित लाभ नहीं ले सकता)*।

16. उच्चतम न्यायालय ने **(2007) 11 एससीसी 447 (कुशेश्वर प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य)** में उक्त कानूनी सूत्र पर विचार किया और निम्नानुसार राय व्यक्त की: - *"यह कानून का एक सूत्र है, जो मान्यता प्राप्त और स्थापित है, कि कोई व्यक्ति अपने स्वयं के गलत कार्य का लाभ नहीं उठा सकता; और यह सूत्र, जो मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है, कानून और समता की अदालतों में पूरी तरह से मान्यता प्राप्त है, और वास्तव में, कानूनी प्रक्रिया की प्रत्येक शाखा से उदाहरण की अनुमति देता है।"*

17. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि किसी व्यक्ति को कानून की अनुकूल व्याख्या प्राप्त करने के लिए अपने स्वयं के गलत कार्य का अनुचित और अनुचित लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह एक सुदृढ़ सिद्धांत है कि जो किसी चीज को होने से रोकता है, वह अपने द्वारा उत्पन्न गैर-निष्पादन का लाभ नहीं उठा सकता। दूसरे शब्दों में कहें तो, *"एक गलत करने वाले को अपने स्वयं के गलत कार्य से लाभ कमाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।"* याचिकाकर्ता ने उपस्थिति दर्ज की थी और कार्यवाही में भाग लिया था और अपना लिखित बयान भी दाखिल किया था। उन्होंने उसके बाद भाग नहीं लिया। कर्मचारी के साक्ष्य दर्ज किए गए थे और जिरह के लिए कई अवसर प्रदान किए गए थे लेकिन उन्होंने उनका लाभ नहीं उठाया। लिखित बयान दाखिल करने के बाद कार्यवाही में भाग न लेने के लिए कोई ठोस कारण सामने नहीं आ रहा है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां नियोक्ता को कभी समन की तामील नहीं की गई थी या वह कर्मचारी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही से अवगत नहीं था, बल्कि प्रारंभ में वह उपस्थित हुआ और भाग लिया लेकिन बिना किसी कारण के उसके बाद भाग लेना बंद कर दिया।

18. वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भी विचार करते हुए यह न्यायालय इस विचारित राय का है कि किसी मामले की वापसी केवल एक पक्ष के मांगने पर नहीं दी जा सकती जब

तक कि वह यह प्रदर्शित करने में सक्षम न हो कि न्याय के हित में मामले को वापस भेजा जाना चाहिए। कार्यवाही नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष काफी समय से लंबित थी। निर्विवाद रूप से याचिकाकर्ता कार्यवाही से अवगत था क्योंकि उसने प्रारंभ में उसमें भाग लिया था और अपना लिखित बयान दाखिल किया था। वह वर्तमान परिस्थितियों में अपनी जानबूझकर की गई गैर-उपस्थिति को उचित नहीं ठहरा सकता, जहां उसका कोई न्यायसंगत ठोस कारण या तो मौजूद नहीं है या इस न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित नहीं किया जा सका। वर्तमान मामले में वापसी का आदेश "न्याय के हित" के विपरीत होगा। याचिकाकर्ता को किसी भी स्थिति में नियंत्रक प्राधिकारी के समक्ष मामले को तत्परता से न चलाने में अपनी स्वयं की लापरवाही और जानबूझकर की गई चूक का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

19. इस न्यायालय की राय में, उक्त कानूनी सिद्धांत इस मामले में भी पूरी शक्ति के साथ लागू होगा।

20. उपरोक्त के प्रकाश में, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के प्रयोग में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई खामी नहीं पाता है। तदनुसार, रिट याचिका **खारिज की जाती है**।

21. आज दाखिल किया गया अनुपूरक शपथ पत्र रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

(2023) 8 ILRA 1484

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार

रिट-सी संख्या 6190/2023

प्रवीण प्रताप सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

राहुल श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 3(3)(ए) - नियम 58 और 76, नियम, 2021 - धारा 3(3)(ए) सीआरपीसी के साथ पढ़ें । - नियम 58 के तहत जुर्माना केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा दोषसिद्धि पर लगाया जा सकता है - एडीएम (एफ एंड आर) सक्षम प्राधिकारी नहीं हैं - अधिकार क्षेत्र के बिना आदेश दिया गया।

अभिनिर्धारित : उत्तर प्रदेश उपखनिज (अनुदान) नियमावली, 2021 के अंतर्गत, नियम 3 के उल्लंघन पर नियम 58 के अंतर्गत जुर्माना केवल नियम 76 के अनुसार प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा ही लगाया जा सकता है। अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), जिन्होंने जुर्माना लगाने का आदेश पारित किया था, विधि के तहत ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं

हैं। अतः, ये आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं। तथापि, राज्य को विधि के अनुसार कार्यवाही करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है।

<u>चर्चा की गई वादविधि</u> :

1. धारा 3(3)(ए), सीआरपीसी, 1973

2. नियम 58 एवं नियम 76, उ.प्र. उपखनिज (अनुदान) नियमावली, 2021

याचिका स्वीकृत।

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल श्रीवास्तव और राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी को सुना गया।

2. चूंकि वर्तमान प्रकरण में अधिकार क्षेत्र से संबंधित कानूनी मुद्दा शामिल है, इसलिए इस प्रकरण का अंतिम निर्णय इस स्तर पर पक्षकारकारगण की सहमति से किया जाता है।

3. वर्तमान रिट याचिका उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 2021 (जिसे आगे नियम 2021 कहा गया है) के नियम 58 के अंतर्गत प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.7.2023 को रद्द करने के लिए प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता पर 7,66,500/- रुपये का जुर्माना लगाया गया है और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 04.07.2023 के आदेश को मंजूरी देते हुए दिनांक 24.6.2023 को आदेश पारित किया गया था, लेकिन अनुमोदन आदेश की प्रति याचिकाकर्ता को कभी भी नहीं दी गई।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता, जो महेश नारायण राजकुमार स्मृति सोसाइटी के अध्यक्ष हैं, विकास खंड बिछिया, ग्राम पंचायत कोरारी कला, जिला उन्नाव में स्थित गाटा संख्या 3286, 3290 और 3265 पर एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का निर्माण करा रहे हैं। भूमि को भरने या समतल करने के उद्देश्य से याचिकाकर्ता ने उसी भूमि या आस-पास की भूमि से मिट्टी का उपयोग किया था। इस संबंध में दिनांक 5.6.2023 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जो याचिकाकर्ता को 23.5.2023 को दिया गया था, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने जवाब प्रस्तुत किया था और उसके बाद विवादित आदेश पारित किया गया था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3-अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व), जिला उन्नाव द्वारा पारित दिनांक 4.7.2023 का आक्षेपित आदेश, नियम 2021 के नियम 58 के अंतर्गत आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं है। यह आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना पारित किया गया है, इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि नियम 2021 के अध्याय VII के अंतर्गत

नियम 58 'उल्लंघन, अपराध और दंड' का प्रावधान करता है। नियम 58 के अंतर्गत पारित आदेश याचिकाकर्ता पर लगाया गया दंड है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि नियम 2021 के नियम 76 के अनुसार, दंड/दंड का आदेश प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया जा सकता है, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 3 प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट नहीं है।

6. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह दंड नहीं है, बल्कि मिट्टी के अवैध खनन के लिए याचिकाकर्ता पर लगाया गया जुर्माना है, लेकिन वह इस बात पर विवाद करने में असमर्थ हैं कि आदेश नियम 2021 के नियम 58 के तहत पारित किया गया है और उन्होंने इस बात पर भी विवाद नहीं किया है कि इस तरह के आदेश प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए जा सकते हैं और प्रत्यर्थी संख्या 3 प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट नहीं है।

7. पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा प्रकरण पर लागू अभिलेख और नियमों का अवलोकन करने के पश्चात यह पाया गया कि जिन आदेशों को चुनौती दी गई है, वे नियम 2021 के नियम 76 के साथ पठित नियम 58 के अनुरूप नहीं हैं। सुविधा के लिए नियम 58 और नियम 76 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"2021 के नियमावली का नियम 58: जो कोई भी नियम 3 के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, उसे दोषसिद्धि पर किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जा सकता है, जिसकी अवधि पांच साल तक हो सकती है या जुर्माना जो 2 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर से कम नहीं होगा और जो क्षेत्र के प्रति हेक्टेयर पांच लाख रुपये तक हो सकता है, या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

2021 नियमावली का नियम 76: (1) कोई भी न्यायालय इन नियमों के तहत दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं लेगा, जब तक कि जिला अधिकारी या उसके द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा ऐसे अपराध के तथ्य की लिखित शिकायत न की गई हो।

(2) प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट से निम्नतर कोई भी न्यायालय इन नियमों के अधीन किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा।"

8. 2021 के नियम 58 के अनुसार, जुर्माना 2021 के नियम 3 के प्रावधानों का उल्लंघन करने पर लगाया जाना है, जिसका विशेष रूप से आरोपित आदेश में उल्लेख किया गया है और नियम 76 में प्रावधान है कि इसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया जाना है।

9. प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को धारा 3(3)(ए) दं0प्र0सं0 के तहत परिभाषित किया गया है । इसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"**3. संदर्भों का निर्माण.-**

.....

(3) जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, इस संहिता के प्रारंभ से पूर्व पारित किसी अधिनियम में ,-

(ए) प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को भेजा गया पत्र, प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के प्रति निर्देश माना जाएगा;"

10. उपरोक्त के मद्देनजर, प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को दं0प्र0सं0 1973 में परिभाषित किया गया है। यह निर्विवाद है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की न्यायालय नहीं है जो अकेले प्रकरण का संज्ञान ले सकती है और इसलिए 2021 नियमावली के नियम 58 के तहत उनके द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार के बिना है और रद्द किये जाने योग्य है।

11. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, रिट याचिका को स्वीकृत की जाती है और दिनांक 4.7.2023 और 24.6.2023 के आदेश रद्द किए जाते हैं।

12. इस स्तर पर, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने दलील दी है कि राज्य को याचिकाकर्ता के खिलाफ कानून के अनुसार कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कानून के अनुसार कार्यवाही करने की स्वतंत्रता हमेशा उपलब्ध है।

(2023) 8 ILRA 1486

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

रिट-सी संख्या 11568/2023

श्रीमती अकीदन ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अनिल कुमार आदित्य, श्री दिवाकर प्रसाद तिवारी, श्री रमेश चन्द्र तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री जयंत प्रकाश सिंह, श्री एचएन सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि - यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 34, 35, 210 और 223 - यूपी राजस्व संहिता, 2006 - धारा 35 (2) और 231 - म्यूटेशन कार्यवाही - बहाली आवेदन - निरस्त अधिनियम की प्रयोज्यता - उप प्रभागीय अधिकारी का क्षेत्राधिकार - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - मूल न्याय बनाम तकनीकी।

अभिनिर्धारितः :

1. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के अंतर्गत, 2005 में निर्णीत एक नामांतरण मामले के लिए शुरू की गई बहाली की कार्यवाही, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 के अनुसार, 1901 अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होती है, जो लंबित कार्यवाहियों या बहाली के माध्यम से पुनर्जीवित की गई कार्यवाहियों को मूल कार्यवाही की निरंतरता मानते हुए, बचाती है। धारा 231 में "अन्यथा" शब्द में बहाली की कार्यवाही शामिल है, और तहसीलदार का दिनांक 19.12.2022 का आदेश, जिसमें

नामांतरण मामले को बहाल किया गया था, 2006 संहिता के प्रावधानों का हवाला देने के बावजूद, 1901 अधिनियम के तहत वैध रूप से पारित किया गया था।

2. उप-विभागीय अधिकारी (एसडीओ) उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के अंतर्गत अपील स्वीकार करने के लिए सक्षम थे, क्योंकि 1901 अधिनियम की धारा 210 के अंतर्गत कलेक्टर की शक्तियाँ उप-विभागीय अधिकारी को 1901 अधिनियम की धारा 223 के अंतर्गत जारी अधिसूचना संख्या यूओ 877/आई/ (104)/75-आरए-1 दिनांक 24.01.1976 द्वारा प्रत्यायोजित की गई थीं। दाखिल -खारिज की कार्यवाही को चुनौती देने वाली रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत तब विचारणीय है जब क्षेत्राधिकार संबंधी सक्षमता या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के मुद्दे शामिल हों। दाखिल-खारिज की कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की होती है और इसमें स्वामित्व का निर्धारण नहीं होता, इसलिए इसका निर्णय किसी सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा ही किया जाना चाहिए।

रिट याचिका स्वीकृत।

<u>चर्चा किए गए वाद</u>:

1. श्रीमती कलावती बनाम राजस्व परिषद (2022) 4 एडीजे 578

2. माधव पांडे बनाम राजस्व परिषद (2002) 2 एडब्ल्यूसी 1311

3. श्रीमती हदीसुल निशा बनाम अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद (2021) 6 एडीजे 176

4. मेसर्स गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी एवं कराधान अधिकारी (एआईआर ऑनलाइन 2023 एससी 76)

5. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स (1998) 8 एससीसी 1

6. लक्ष्मी प्रसाद बनाम आयुक्त (न्यायिक), वाराणसी (2016) 11 एडीजे 18

7. एस.के. कश्यप बनाम राजस्थान राज्य (एआईआर 1971 एससी 1120)

8. आनंद कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 6 एडीजे 728

9. ईशा बीवी बनाम कर वसूली अधिकारी (एआईआर 1975 एससी 2135)

10 बीएस शेषगिरी सेट्टी बनाम कर्नाटक राज्य (2016) 2 एससीसी 123

11. पंजाब राज्य बनाम शामलाल मुरारी (1976) 1 एससीसी 719

12. जितेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2021) 0 सुप्रीम (एससी) 487

13. चरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019) 6 एडीजे 52

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिज़वी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ताओं श्री रमेश चंद्र तिवारी और श्री दिवाकर प्रसाद तिवारी और राज्य-प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम, प्रतिवादी संख्या 4 से 8 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री जयंत प्रकाश सिंह द्वारा सहायता प्राप्त श्री एचएन सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद (प्रतिवादी संख्या 2) और उप जिलाधिकारी, संभल (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा क्रमशः पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2023 और दिनांक 06.02.2023 को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट की मांग करते हुए दायर की गई है।

3. संक्षेप में मामले का तथ्यात्मक आव्यूह यह है कि स्वीकार्य रूप से, भूमि खाता संख्या 77, प्लॉट संख्या 34/0.059 हेक्टेयर, खाता संख्या 233 प्लॉट संख्या 173/0.146, खाता संख्या 235 प्लॉट संख्या 177/0.425 और खाता संख्या 236 प्लॉट संख्या 175ए/0.032 और प्लॉट संख्या 176/0.016, दो प्लॉट से कुल 0.048 और प्लॉट संख्या 175बी/0.028, 176बी/0.012 हेक्टेयर मोहल्ला चौधरी सराय, जिला संभल में स्थित कुल दो प्लाटों से 0.040 और गांव शेर खां सराय में स्थित खाता संख्या 81 प्लाट संख्या 208/5/1.967 और भवानी दास सराय, जिला संभल में स्थित खाता संख्या 43 प्लाट संख्या 34/0.623 (आगे प्लाट के रूप में संदर्भित) कल्लू उर्फ कल्लन, निवासी चौधरी सराय, संभल, जिला संभल के नाम पर दर्ज किये गए थे।

4. याची स्वर्गीय कल्लू उर्फ कल्लन की पत्नी है और वह प्रश्नगत प्लाटों पर निरंतर काबिज है। जबकि प्रतिवादी संख्या 4 से 7 स्वर्गीय कल्लू के भतीजे (भाई के पुत्र) हैं और प्रतिवादी संख्या 8 स्वर्गीय कल्लू की पुत्री है। उक्त कल्लू उर्फकल्लन की मृत्यु के पश्चात प्रतिवादी संख्या 4 से 8 (इसके बाद सामूहिक रूप से प्रतिवादी के रूप में संदर्भित) ने प्रश्नगत भूखंडों के संबंध में दाखिल खारिज के लिए यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 34/35 के तहत एक वाद कायम किया और इसे वर्ष 2005 में तहसीलदार संभल के समक्ष वाद संख्या 849, 850 और 851 के रूप में पंजीकृत किया गया। प्रतिवादियों द्वारा दाखिल खारिज के लिए उपरोक्त आवेदन प्रतिवादियों के पक्ष में पंजीकृत वसीयत विलेख दिनांक 17.08.1998 के आधार पर दायर किए गए थे। तहसीलदार संभल ने आदेश दिनांक 29.04.2005 द्वारा उपरोक्त दाखिल खारिज वादों को स्वीकार कर लिया और तदनुसार, स्वर्गीय कल्लू उर्फ कल्लन के नाम की जगह प्रतिवादियों के नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किए गए।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता अपने पति के जीवनकाल से ही लगातार विचाराधीन संपत्तियों के शांतिपूर्ण कब्जे में है और उसे वर्ष 2022 तक उक्त दाखिल खारिज आदेश दिनांक 29.04.2005 की कोई जानकारी नहीं थी। उसे

पहली बार उक्त दाखिल खारिज आदेश दिनांक 29.04.2005 के बारे में अपने अधिवक्ता के माध्यम से, निजी प्रतिवादियों द्वारा संस्थित धारा 31/32 के अन्तर्गत लंबित कार्यवाही (ज़हीर अहमद बनाम राज्य) से पता चला। जैसे ही उन्हें दिनांक 29.04.2005 के उपरोक्त दाखिल खारिज आदेश की जानकारी हुई, उन्होंने तुरंत इस आधार पर दिनांक 30.04.2022 को पुनर्बहाली के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया कि चूंकि तहसीलदार संभल के न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.04.2005 एकपक्षीय आदेश था और इसे कल्लू उर्फ कल्लन के कानूनी उत्तराधिकारियों को कोई नोटिस जारी किए बिना ही पारित कर दिया गया था, ऐसे में यह एक एकपक्षीय आदेश होने के नाते, वापस लिए जाने योग्य है। पुनर्बहाली के लिए उपरोक्त आवेदन दिनांक 30.04.2022 पर, तहसीलदार संभल ने निजी प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए। उक्त नोटिस के अनुसरण में, वर्तमान प्रतिवादी संख्या 4 से 8 तहसीलदार के न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उपरोक्त बहाली आवेदन के विरुद्ध अपनी आपत्ति दाखिल की।

6. रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, तहसीलदार सम्भल ने आदेश दिनांक 19.12.2022 द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर उक्त बहाली आवेदन को स्वीकार किया और पहले के दाखिल खारिज आदेश दिनांक 29.04.2005 को वापस ले लिया और मामले में साक्ष्य के लिए दिनांक 27.12.2022 की तारीख तय की और राजस्व रिकॉर्ड में उक्त आदेश के पृष्ठांकन का भी निर्देश दिया।

7. उपरोक्त आदेश दिनांक 19.12.2022 के विरुद्ध, वर्तमान प्रतिवादियों ने उप्र राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के अंतर्गत उप जिलाधिकारी, संभल (प्रतिवादी संख्या 3) के समक्ष अपील दायर की, जिसे अपील संख्या 15996 वर्ष 2022 (जहीर अहमद बनाम अकीदन) के रूप में मुख्यतः इस आधार पर पंजीकृत किया गया कि प्रतिवादी एक पंजीकृत वसीयत जिसे कि याचिकाकर्ता द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई, के आधार पर स्वर्गीय कल्लू उर्फ कल्लन के उत्तराधिकारी हैं, और इसके अतिरिक्त, उक्त बहाली आवेदन अत्यधिक विलंबित भी है क्योंकि इसे लगभग 17 वर्ष बीत जाने के बाद दायर किया गया है और बहाली आवेदन की अनुमति देते समय तहसीलदार द्वारा विलंब के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया है।

8. उप्र राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उप जिलाधिकारी ने आदेश दिनांक 06.02.2023 द्वारा उक्त अपील संख्या 15996 वर्ष 2022 को स्वीकार किया और तहसीलदार द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.12.2022 जिसके माध्यम से उपरोक्त बहाली आवेदन को अनुमति दी गई थी, को अपास्त कर दिया और आगे यह निर्देश दिया कि राजस्व अभिलेखों में उन प्रविष्टियों को बनाए रखा जाए, जो विद्वान तहसीलदार, सम्भल द्वारा पारित पिछले आदेश दिनांक 29.04.2005 के अनुसरण में की गई थीं।

9. अपील संख्या 15996 वर्ष 2022 में अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश

दिनांक 06.02.2023 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत विद्वान आयुक्त, मुरादाबाद मंडल के समक्ष मुख्यतः इस आधार पर एक पुनरीक्षण दायर किया, कि प्रतिवादियों द्वारा दायर अपील उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के अंतर्गत पोषणीय नहीं थी, और इसके अलावा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 के प्रावधानों के आलोक में उप जिलाधिकारी उक्त अपील का फैसला करने के लिए सक्षम नहीं थे, क्योंकि उक्त अपील पर उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 210 के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा ही विचार किया जा सकता था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विद्वान अपीलीय न्यायालय यह समझने में विफल रहा है कि देरी का प्रश्न केवल एक तकनीकी पहलू है, जबकि याचिकाकर्ता, विधवा होने के नाते स्वर्गीय कल्लू उर्फ कल्लन की वैध वारिस और उत्तराधिकारी है और विचाराधीन भूखंडों पर उनका वास्तविक दावा है, ऐसे में तकनीकी बातें महत्वपूर्ण न्याय के आड़े नहीं आनी चाहिए। याचिकाकर्ता ने वसीयत दिनांक 17.08.1998 जिसके आधार पर दाखिल खारिज की पूरी कार्यवाही शुरू की गई थी, की वास्तविकता पर भी विवाद किया।

10. विद्वान आयुक्त, मुरादाबाद मंडल (प्रतिवादी संख्या 2) ने आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2023 के माध्यम से उप जिलाधिकारी द्वारा पारित अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक 06.02.2023 को बरकरार रखा और प्रवेश चरण में ही उक्त संशोधन को खारिज कर दिया। दिनांक 06.02.2023 और दिनांक 15.03.2023 के उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

11. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने शुरू में ही रिट याचिका की पोषणीयता के सम्बन्ध में आपत्ति उठाई और प्रस्तुत किया कि दाखिल खारिज से संबंधित कार्यवाही में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका स्वीकार करने योग्य नहीं है। उन्होंने श्रीमती कलावती बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू और अन्य 2022 (4) एडीजे 578 के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश का आश्रय लिया। उन्होंने तर्क दिया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दाखिल खारिज कार्यवाही में पारित आदेश के खिलाफ तभी स्वीकार की जा सकती है जब आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर हो या आदेश में कुछ स्पष्ट क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि हो और इसके अलावा जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो।

12. राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम ने भी रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि चूंकि वर्तमान मामले में कार्यवाही, राजस्व अभिलेखों में दाखिल खारिज के लिए उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34 के तहत दायर आवेदन से उत्पन्न हुई है और उक्त कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

13. इसके विरोध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि तहसीलदार संभल द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.04.2005 एकपक्षीय आदेश है क्योंकि यह याचिकाकर्ता की पीठ पीछे पारित किया गया था जिससे उसे सुनवाई का अवसर नहीं मिला। उन्होंने आगे कहा कि चूंकि वर्तमान रिट याचिका में उप जिलाधिकारी (प्रतिवादी संख्या 3) के समक्ष उपर्युक्त अपील की कार्यवाही की पोषणीयता , साथ ही आयुक्त द्वारा पुनरीक्षण में पारित आदेश दिनांक 15.03.2023 को क्षेत्राधिकार संबंधी क्षमता के आधार पर चुनौती दी गई है, इसलिए प्रतिवादी अधिवक्ताओं द्वारा उठाई गई रिट याचिका की पोषणीयता संबंधी आपत्तियां संधारणीय नहीं हैं।

14. **2002 (2) एडब्ल्यूसी 1311 में प्रकाशित माधव पांडे और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य** के मामले में; इस न्यायालय ने माना है कि दाखिल खारिज कार्यवाही प्रकृति में संक्षिप्त है और संक्षिप्त कार्यवाही के खिलाफ रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विचारणीय नहीं है। उक्त निर्णय के पैरा 26 में, यह बहुत ही स्पष्ट रूप से निम्नानुसार माना गया है:

> *"...इस प्रश्न पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि क्या पुनरीक्षण न्यायालय ने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई त्रुटि की है। तर्क के लिए यह मानते हुए कि राजस्व बोर्ड द्वारा क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कुछ त्रुटि है, उक्त त्रुटि आदेश को क्षेत्राधिकार रहित नहीं बना देगी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, संक्षिप्त कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका पर तभी विचार किया जा सकता है जब क्षेत्राधिकार का अभाव हो। चूंकि यह क्षेत्राधिकार की कमी का मामला नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की उपरोक्त दलीलों के आधार पर आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"*

15. **2021 (6) एडीजे 176** में प्रकाशित **श्रीमती हदीसुल निशा बनाम अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद और अन्य** के मामले में; इस न्यायालय ने कुछ अपवाद निकाले हैं, जिसके अनुसार रिट याचिका संक्षिप्त कार्यवाही में पारित आदेशों के विरुद्ध भी पोषणीय होगी, भले ही उक्त आदेश को अपीलीय न्यायालय और राजस्व बोर्ड द्वारा पुष्ट/रद्द कर दिया गया हो। सुविधा के लिए, पैरा 19 जिसमें उक्त प्रस्ताव निर्धारित किया गया है, नीचे इंगित किया गया है:

> *"19. उपरोक्त निर्णयों में न्यायालयों ने दाखिल खारिज (म्यूटेशन) कार्यवाही से उत्पन्न रिटों को स्वीकार करने के लिए कुछ मानदंड निर्धारित किए हैं। जो अपवाद निकाले गए हैं वे बहुत कम हैं, उदाहरण के लिए:-*

i) यदि आदेश क्षेत्राधिकार से रहित है;

ii) यदि पक्षों के अधिकार और स्वामित्व पहले से ही सक्षम न्यायालय द्वारा तय किए जा चुके हैं, और म्यूटेशन न्यायालयों द्वारा उसमें बदलाव किया गया है;

iii) यदि म्यूटेशन कब्जे के आधार पर या साधारणतया किसी स्वामित्व विलेख के आधार पर नहीं, बल्कि प्रतिद्वंद्वी दावों के गुण-दोष में जाते हुए संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए पात्रता की बहस में प्रवेश करने के बाद निर्देशित किया गया है;

(iv) यदि ऐसे अधिकारों का सृजन किया गया है जो किसी कानून के वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध हैं, तथा प्रविष्टि स्वयं ही उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर याचिकाकर्ता को अधिकार प्रदान करती है;

v) जहां रिट याचिका में आक्षेपित आदेश धोखाधड़ी या तथ्यों के गलत प्रस्तुतीकरण या वादियों में से किसी एक द्वारा जाली दस्तावेजों के निर्माण के आधार पर पारित किए गए हों।

vi) जहां न्यायालयों ने मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया है, उदाहरण के लिए न्यायालयों ने बहाली आवेदनों आदि पर आदेश पारित किए हैं (विजय शंकर बनाम अपर आयुक्त; 2015 (33) एलसीडी 1073)"

16. **2022: एएचसी: 48201** में प्रकाशित **श्रीमती कलावती बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय द्वारा इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

17. रिट याचिका की पोषणीयता के प्रश्न पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मेसर्स गोदरेज सारा ली लिमिटेड बनाम आबकारी एवं कराधान अधिकारी-सह मूल्यांकन प्राधिकरण; एआईआर ऑनलाइन 2023 एससी 76** के मामले में, **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी राज्य एवं अन्य 1990 (8) एससीसी 1** के मामले का आश्रय लेते हुए विचार किया गया और यह माना गया:

"6. पिछली शताब्दी के अंत में, इस न्यायालय ने (1998) 8 एससीसी 1(व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई) में प्रकाशित निर्णय के पैराग्राफ 15 में उन अपवादों को रेखांकित किया, जिनके अस्तित्व से किसी रिट न्यायालय के लिए किसी रिट याचिका पर विचार करने का औचित्य सिद्ध हो सकता है, भले ही उसका दरवाजा खटखटाने वाले पक्षकार ने क़ानून द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक उपाय का लाभ न उठाया हो। यह इस प्रकार है:

(i) जहां रिट याचिका किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन की मांग करती है;

(ii) जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है;

(iii) जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से रहित है; या

(iv) जहां किसी कार्य की वैधता को चुनौती दी जाती है।"

18. रिट याचिका की पोषणीयता पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गयी दलीलों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय इस विचार का है कि चूंकि वर्तमान मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन और आक्षेपित आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी की अधिकारिता क्षमता का प्रश्न शामिल है, इसलिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रकाश में, रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियां टिकने योग्य नहीं हैं और तदनुसार खारिज की जाती हैं।

19. अब, मामले के गुण-दोष के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षण को खारिज करते समय, आयुक्त ने उनके समक्ष उठाए गए कानूनी प्रश्नों पर विचार नहीं किया और वसीयत की प्रमाणिकता के प्रश्न में चले गए, जो कि राजस्व न्यायालय की क्षमता से परे था।

20. उन्होंने आगे कहा कि विद्वान आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण में उठाया गया कानूनी मुद्दा यह था कि यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35 (2) के तहत उप जिलाधिकारी के समक्ष दायर अपील, यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 के प्रावधान के मद्देनजर बिल्कुल भी पोषणीय नहीं थी। उप जिलाधिकारी ने प्रतिवादियों द्वारा दायर उपरोक्त अपील संख्या 15996 वर्ष 2022 पर क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर विचार किया।

21. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान उप- जिलाधिकारी ने प्रतिवादियों द्वारा दायर उक्त अपील पर उचित विचार किया है क्योंकि यह संबंधित तहसीलदार द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.12.2022 के विरुद्ध था, जिन्होंने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34/35 के तहत आदेश पारित किया था और जिसके विरुद्ध अपील, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के अंतर्गत उप- जिलाधिकारी के समक्ष है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना पत्र दिनांक 30.04.2022, जैसा कि रिट याचिका की संलग्नक संख्या 3 में है, की ओर यह दिखाने के लिए आकर्षित किया है कि इसे भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 34 के तहत दायर किया गया था और संबंधित तहसीलदार द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.12.2022, जैसा कि रिट याचिका की संलग्नक संख्या 4 में है, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34/35 के तहत शक्ति के प्रयोग में पारित किया गया था। प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जिस समय तहसीलदार के समक्ष

पुनर्स्थापना प्रार्थना पत्र दायर किया गया था, उस समय कोई कार्यवाही लंबित नहीं थी और इस तरह उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231के प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि यह केवल लंबित कार्यवाही के संबंध में ही लागू होते है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान मामले में, म्यूटेशन केस का फैसला दिनांक 29.04.2005 को ही हो गया था और उस आदेश को अंतिम रूप मिल गया था क्योंकि इसे राजस्व रिकॉर्ड में शामिल कर लिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्स्थापना प्रार्थना पत्र बिल्कुल भी पोषणीय नहीं था क्योंकि यह पुराने अधिनियम अर्थात यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के प्रावधानों के तहत दायर किया गया था, जिसे यूपी राजस्व संहिता, 2006 जो दिनांक 11.02.2016 को लागू हुई थी, के लागू होने के बाद रद्द कर दिया गया था, और प्रतिवादियों ने उचित तौर पर यूपी राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधान के तहत दिनांक 23.12.2022 को उप जिलाधिकारी के समक्ष अपील दायर की थी और इस तरह उप जिलाधिकारी (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.02.2023 में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

22. राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम ने विद्वान उप जिलाधिकारी (प्रतिवादी संख्या 3) और विद्वान आयुक्त (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित आदेशों को उचित ठहराया है, क्योंकि वे पूर्णतः विधि के अनुरूप पारित किए गए हैं।

23. उपर्युक्त तथ्यात्मक आव्यूह के दृष्टिगत और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 के प्रावधान के आलोक में, एक सवाल उठता है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रार्थनापत्र दिनांक 30.04.2022 पर शुरू की गई पुनर्स्थापन की कार्यवाही, भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के प्रावधानों के तहत या उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006, जो कि दिनांक 11.02.2016 से लागू हुई थी, के प्रावधान के तहत की जानी थी?

24. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 का प्रावधान जो लंबित कार्यवाही पर उक्त 2006 की संहिता की प्रयोज्यता से संबंधित है। त्वरित संदर्भ के लिए, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 नीचे प्रस्तुत की जा रही है:

> *"लंबित कार्यवाहियों पर संहिता की प्रयोज्यता - (1) इस संहिता में अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई व्यवस्था के सिवाय, इस संहिता के प्रारंभ से ठीक पहले राज्य सरकार या किसी राजस्व न्यायालय के समक्ष लंबित सभी मामले, चाहे अपील, पुनरीक्षण, समीक्षा या अन्यथा के हों, उपयुक्त कानून के प्रावधानों के अनुसार तय किए जाएंगे, जो इस संहिता के पारित न होने पर उन पर लागू होते।*

(2) इस संहिता के प्रारंभ से ठीक पहले किसी भी सिविल न्यायालय में लंबित सभी मामले, जो इस संहिता के तहत मात्र किसी राजस्व न्यायालय द्वारा विचारणीय होते, ऐसे सिविल न्यायालय द्वारा ऐसे प्रारंभ की तारीख से पहले लागू कानून के अनुसार निपटाए जाएंगे।"

25. इस न्यायालय ने उपर्युक्त कानूनी मुद्दे पर संबोधित करने के लिए इस न्यायालय के एक प्रमुख अधिवक्ता श्री पंकज कुमार गुप्ता की सहायता आमंत्रित की।

26. श्री गुप्ता ने कहा कि विधानमंडल की मंशा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 की भाषा से बहुत स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने से ठीक पहले राज्य सरकार या किसी राजस्व न्यायालय के समक्ष लंबित सभी मामले; चाहे कोई अपील, पुनरीक्षण, समीक्षा या अन्यथा हो, उचित कानून के प्रावधानों के अनुसार तय किए जाएंगे, जो उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 पारित न होने की स्थिति में लागू होते। उन्होंने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 में प्रयुक्त 'अन्यथा' शब्द पर जोर दिया और कहा कि वर्तमान मामले में, तहसीलदार द्वारा आदेश दिनांक 19.12.2022 द्वारा म्यूटेशन मामले (केस संख्या 849/850/851 वर्ष 2005) की पुनर्स्थापना के बाद, उक्त कार्यवाही पुनर्जीवित हो गई और दिनांक 29.04.2005 की स्थिति में बहाल हो गई। उन्होंने दलील दी कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 में प्रयुक्त शब्द 'अन्यथा' बहाली, रिकॉल, द्वितीय अपील आदि की कार्यवाही को पूरी तरह से समाहित करता है। उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष परिपत्र संख्या 6101/12-एल(1)/2017 दिनांक 03.11.2020 प्रस्तुत किया। उक्त परिपत्र का पैरा 5 नीचे उद्धृत है:

".....30 प्र0 राजस्व संहिता, 2006 यथासंशोधित 2016 की धारा 231 (1) में प्राविधानित व्यवस्था के क्रम में अधीनस्थ राजस्व न्यायालयों में योजित होने वाले सभी राजस्व वादों का पंजीकरण किया जाय एवं अपील व पुनरीक्षण आदि के पंजीकरण व अन्य अग्रेतर कार्यवाही मूल वाद के सुसंगत अधिनियमों (यथा-उ.प्र.भू-राजस्व अधिनियम-1901, उ. प्र. जमीं. वि. अधि.-1950 एवं उ. प्र. राजस्व संहिता 2006 यथासंशोधित 2016 आदि) की संगत धाराओं में ही की जायँ एवं समस्त आदेश बार कोड युक्त आदेश-पत्रक पर ही पारित किए जाएं।"

27. श्री गुप्ता ने आगे कहा कि उपर्युक्त परिपत्र का पैरा 5 कुछ और नहीं बल्कि उत्तर

प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 का स्पष्टीकरण है।

28. इस न्यायालय ने **2016 (11) एडीजे 18** में प्रकाशित **लक्ष्मी प्रसाद बनाम आयुक्त (न्यायिक) वाराणसी क्षेत्र** और अन्य, के मामले में माना है कि अपील और पुनरीक्षण, कार्यवाही की निरंतरता है और इसलिए, निरस्त अधिनियम के तहत पारित किसी आदेश के खिलाफ कोई भी अपील या पुनरीक्षण, स्वयं निरस्त अधिनियम की निरंतरता में कार्यवाही के रूप में माना जाएगा।

त्वरित संदर्भ के लिए लक्ष्मी प्रसाद (सुप्रा) के मामले के पैरा संख्या 8 से 11 नीचे उद्धृत हैं:

> *".....8. इसलिए, जो प्रश्न विचारणीय है, वह उस प्रावधान के बारे में है जिसके तहत, यूपी भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत कार्यवाही में पारित आदेश को, राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने के बाद, चुनौती दी जा सकती है।*
>
> *9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यूपी भूमि राजस्व अधिनियम के निरस्त होने के बाद यूपी राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने से, कोई अपील या संशोधन अनिवार्य रूप से राजस्व संहिता, 2006 में निहित प्रावधान के अनुसार होगी, न कि निरस्त अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार।*
>
> *10. इस विवाद का निर्णय करने से, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 प्रासंगिक है जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:*
>
> *"धारा 231: लंबित कार्यवाहियों पर संहिता की प्रयोज्यता ।-(1) इस संहिता में अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित के सिवाय , इस संहिता के लागू होने से ठीक पहले राज्य सरकार या किसी राजस्व न्यायालय के समक्ष लंबित सभी मामले, चाहे वे अपील, पुनरीक्षण, समीक्षा या अन्यथा हों, समुचित कानून के उपबंधों के अनुसार निर्णित किये जाएंगे, जो उन पर लागू होते यदि यह संहिता लागू नहीं हुई होती।*
>
> *(2) इस संहिता के लागू होने से ठीक पहले किसी भी सिविल न्यायालय में लंबित सभी मामले, जो इस संहिता के तहत राजस्व न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय होते , ऐसे सिविल*

न्यायालय द्वारा ऐसे प्रारंभ की तारीख से पूर्व प्रभावी कानून के अनुसार निपटाए जाएंगे।"

11. ऊपर उद्धृत धारा 231 की उपधारा 1, मेरी सुविचारित राय में बिल्कुल स्पष्ट है। इसलिए, उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत किसी आवेदन पर कोई आदेश, उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही अपील योग्य और पुनरीक्षण योग्य है, और इसलिए, उत्तर प्रदेश राजस्व अधिनियम की धारा 210 और साथ ही धारा 219 के प्रावधान भी आकर्षित होते हैं, और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने के बाद भी इनका उपयोग किया जा सकता है।"

29. उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 बहुत स्पष्ट है। यह *"इस संहिता में अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए को छोड़कर"* शब्द से शुरू होती है जो लंबित कार्यवाही के लिए उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की प्रयोज्यता की सीमा को परिभाषित करती है। उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 की भाषा से स्पष्ट है कि पुराने अधिनियम, जिसे उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 द्वारा निरस्त कर दिया गया था, के अंतर्गत जो कार्यवाहियाँ राजस्व न्यायालयों में संस्थित की गयी थी, के संबंध में संपूर्ण संहिता, 2006 के अंतर्गत उपलब्ध उपचारों को बचा लिया गया है।

30. इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 में प्रयुक्त शब्द *"लंबित कार्यवाही"* का तात्पर्य इस संहिता के प्रारंभ होने के तुरंत पूर्व राज्य सरकार या किसी राजस्व न्यायालय में लंबित सभी मामलों से है और यह उन सभी मामलों को, जिनका समापन अभी नहीं हुआ है, सम्मिलित करने के स्पष्ट विधायी इरादे को दर्शाता है।

31. **एआईआर 1971 एससी 1120** में प्रकाशित **एसके कश्यप एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य** के मामले में; भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने *"लंबित"* शब्द को परिभाषित किया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 25 का प्रासंगिक अंश निम्नानुसार प्रस्तुत किया जाता है:

".....(25)-

.....सामान्यतः

'लंबित' शब्द का अर्थ होगा कि मामला समाप्त नहीं हुआ है और जिस न्यायालय ने इसका संज्ञान लिया है वह मुद्दे में मामले पर आदेश दे सकता है। परीक्षण यह है, कि क्या न्यायालय या न्यायाधिकरण, जहां इसे लंबित कहा गया है, के समक्ष

मामले पर कोई कार्यवाही की जा सकती है । जवाब यह है कि जब तक मामला समाप्त नहीं हो जाता है तब तक यह लंबित है .....।"

32. वर्तमान मामले में, एक बार जब तहसीलदार ने आदेश दिनांक 19.12.2022 द्वारा म्यूटेशन मामले की कार्यवाही को पुनर्स्थापित कर दिया, तो उक्त कार्यवाही पुनर्जीवित हो गई और दिनांक 29.04.2005 वाली स्थिति पर पहुँच गयी।

33. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी उपर्युक्त परिपत्र संख्या 6101/12-एल(1)/2017 दिनांक 03.11.2020 भी विधिक स्थिति को स्पष्ट करता है कि अपील या पुनरीक्षण आदि सहित सभी अनुवर्ती कार्यवाहियां उन अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए जिनमें उन्हें संस्थित किया गया था।

34. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 प्रावधान करती है कि लंबित मामलों की प्रकृति, जिन पर यह प्रावधान लागू होता है, अपील, पुनरीक्षण, समीक्षा या अन्यथा हैं।

35. उत्तर प्रदेश सामान्य खण्ड अधिनियम, 1904 की धारा 6 भी उक्त दृष्टिकोण का समर्थन करती है। त्वरित संदर्भ के लिए उत्तर प्रदेश सामान्य खण्ड अधिनियम, 1904 की धारा 6 के प्रावधान नीचे प्रस्तुत किए गए हैं:

*"**निरसन का प्रभाव**- जहां कोई (उत्तर प्रदेश) अधिनियम अब तक बनाए गए या इसके बाद बनाए जाने वाले किसी अधिनियम को निरस्त करता है, तब, जब तक कि कोई भिन्न आशय प्रकट न हो, निरसन नहीं करेगा-*

(क) किसी ऐसी चीज को पुनर्जीवित, जो उस समय लागू या विद्यमान नहीं थी जिस समय निरसन प्रभावी होता है; या

(ख) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम या उसके अधीन विधिवत् किए गए या प्रभावित हुए किसी कार्य के पिछले संचालन को प्रभावित; या

(ग) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम के अधीन अधिग्रहीत, अर्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या देयता को प्रभावित; या

(घ) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में उपगत किसी दंड, जब्ती या सजा को प्रभावित; या

(ङ) पूर्वोक्त किसी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, देयता, दंड, जब्ती या सजा के संबंध में निरसन अधिनियम के लागू होने से पहले प्रारंभ हुए किसी उपचार या किसी जांच या कानूनी कार्यवाही को प्रभावित।"

36. धारा 6 का उप-खंड (ङ) बहुत स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि किसी अधिनियम का निरसन, निरसन अधिनियम से पहले प्रारंभ किए गए किसी भी उपचार, जांच या कानूनी कार्यवाही पर असर नहीं डालेगा। ऐसा कोई भी उपाय लागू किया जा सकता है, और ऐसी कोई भी जांच या कानूनी कार्यवाही गठित और समाप्त की जा सकती है, और लगाया गया ऐसा कोई भी दंड, जब्ती या सजा इस तरह से माना जाएगा, मानो निरसन अधिनियम पारित नहीं हुआ हो। सीधे शब्दों में कहें तो, यदि 1901 के अधिनियम के तहत किसी कार्यवाही से कोई विधिक उपचार उत्पन्न होता है, तो ऐसी कानूनी कार्यवाही 1901 के अधिनियम द्वारा इस प्रकार शासित होगी जैसे कि 2006 की निरसन संहिता पारित नहीं हुई हो।

37. इस न्यायालय ने **आनंद कुमार सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य 2017 (6) एडीजे 728** के मामले में निम्नानुसार माना है:

"20. इस प्रकार, यदि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 पिछले अधिनियमों के तहत लंबित कार्यवाहियों को बचाती है, तो मेरी सुविचारित राय में, पिछले अधिनियमों के तहत अधीनस्थ राजस्व न्यायालयों के समक्ष संस्थित कार्यवाहियों के संबंध में पूरे अधिनियम के अन्तर्गत उपलब्ध उपचार भी बच जाएंगे।

21. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 230 और 231 के तहत प्रयोग की गयी भाषा से पता चलता है कि यह न केवल पिछले अधिनियमों के अन्तर्गत उस तारीख जिस दिन संहिता लागू हुई थी, पर लंबित कार्यवाहियां हैं जो बच गई हैं, बल्कि पिछले अधिनियमों के अन्य प्रावधान भी बच गए हैं, जिनमें न्यायिक उपचार वाले प्रावधान शामिल हैं, जैसे कि यूपी भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 210 और 219 के तहत उपलब्ध उपचार और यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 331 और 333 के तहत उपलब्ध उपचार।

38. इस प्रकार, यूपी राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 में निहित प्रावधानों के प्रकाश में और सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह

स्पष्ट है कि यूपी भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 210 के तहत प्रदान किए गए उपाय, यूपी राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने से पहले शुरू की गई कार्यवाहियों में, यूपी भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित आदेश के खिलाफ, व्यथित व्यक्ति को उपलब्ध होंगे, भले ही वे यूपी राजस्व संहिता, 2006 के लागू होने के बाद समाप्त हुई हों।

39. उपरोक्त के दृष्टिगत, जो स्थिति उभरती है वह यह है कि पुनर्स्थापन की कार्यवाही उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 231 में प्रयुक्त 'अन्यथा' शब्द के अंतर्गत आती है। इस प्रकार, पुराने अधिनियम यानी उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया पुनर्स्थापना प्रार्थनापत्र पूरी तरह से कानून के अनुसार था, और संबंधित तहसीलदार ने उसे उचित ही सुना था और आदेश दिनांक 19.12.2022 पारित किया था।

40. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने एक और मुद्दा उठाया है कि उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के तहत उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.02.2023 क्षेत्राधिकार से परे है क्योंकि वह उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 35(2) के प्रावधानों के तहत अपील पर विचार करने और फैसला करने हेतु सक्षम नहीं थे, जबकि उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 210 कलेक्टर को अपील पर विचार करने का अधिकार देती है।

41. उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 210 का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत है:

> *"**जिन न्यायालयों में अपील होती है** - [(1) इस अधिनियम के तहत अपील निम्नानुसार होगी:]*
>
> *(क) किसी सहायक अभिलेख अधिकारी द्वारा पारित आदेशों से रिकॉर्ड अधिकारी को;*
>
> *[(ख) (i) कलेक्टर या सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी या उप मण्डल के प्रभारी सहायक कलेक्टर द्वारा पारित आदेशों से कमिश्नर को।*
>
> *(ii) सहायक कलेक्टर द्वितीय श्रेणी या तहसीलदार द्वारा पारित आदेशों से कलेक्टर को।]*
>
> *(ग) [* * *]*
> *(2) [* * *]*
> *(3) [* * *]*
> *(4) [* * *]*
> *(5) [* * *]*
>
> *[(6) धारा 28, 33, [* * *], 39 या 40 के तहत पारित आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं होगी।]"*

42. राज्य के लिए उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अंशुल निगम ने याचिकाकर्ता के इस तर्क का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 223 के अनुसार, राज्य सरकार कलेक्टर की शक्तियों और कर्तव्यों को संबंधित क्षेत्र के सहायक कलेक्टर / उप मण्डल अधिकारी को सौंपने हेतु अधिकृत है। इस प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार ने अधिसूचना संख्या यू.ओ. 877/I/(104)/75-रा-1 दिनांक 24.01.1976 जारी की, जिसके द्वारा राज्य सरकार ने उप-मंडल अधिकारियों/सहायक कलेक्टरों को संबंधित तहसील/क्षेत्र में कलेक्टर के कर्तव्यों और शक्तियों का पालन करने के लिए अधिकृत किया है।

43. उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 223 इस प्रकार है:

> ***"कलेक्टर की शक्तियों के साथ सहायक कलेक्टर का विनियोग*** *- [राज्य सरकार] किसी भी प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टर को कलेक्टर की सभी या कोई भी शक्तियाँ प्रदान कर सकती है, और इस प्रकार प्रदत्त सभी शक्तियाँ जिले के कलेक्टर के नियंत्रण के अधीन प्रयोग की जाएंगी।"*

44. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना संख्या यू.ओ/ 877/I/(104)/75-रा-1 दिनांक 24.01.1976 को प्रस्तुत किया है। उक्त अधिसूचना का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत है:

> *"उ.प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 (1901 की उ.प्र. अधिनियम संख्या III) की धारा 223 के अन्तर्गत, राज्य सरकार ने उप मण्डल के प्रभारी प्रथम श्रेणी के सभी सहायक कलेक्टरों को, उन क्षेत्रों में जिनके संबंध में अधिसूचनाएं जारी की गई हैं, अधिनियम की धारा 210 के तहत कलेक्टर के कार्यों का निर्वहन करने के लिए सशक्त किया है। "*

45. उपर्युक्त स्थिति के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि उप जिलाधिकारी आदेश दिनांक 06.02.2023 को पारित करने हेतु सक्षम नहीं थे, टिकने योग्य नहीं है।

46. **चरण सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य 2019 (6) एडीजे 52** के मामले में, एक समान किंतु भिन्न प्रश्न को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया है। इस न्यायालय द्वारा तैयार किया गया प्रश्न इस प्रकार है:

> *"क्या जब संहिता की धारा 231 स्पष्ट रूप से कहती है कि केवल ऐसी कार्यवाहियां जो संहिता के प्रारंभ से पहले लंबित थीं, उन कार्यवाहियों में पारित कानून के प्रावधानों के अनुसार निर्णित की जाएंगी,*

वे पिछले अधिनियम यानी उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 या उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों द्वारा शासित होंगी।"

47. यद्यपि, वर्तमान मामले में विवाद न तो अपील से संबंधित है और न ही पुनरीक्षण से और इस मुद्दे तक सीमित है कि पुनर्स्थापन की कार्यवाही को लंबित या नई कार्यवाही माना जाएगा। इस प्रकार, वर्तमान मामले में शामिल प्रश्न, चरण सिंह (सुप्रा) के मामले में शामिल प्रश्न से भिन्न है।

48. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला प्रश्न यह है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने अपील का निर्णय मुद्दों को तैयार किए बिना किया है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राजस्व न्यायालय मैनुअल के पैरा 20 के तहत प्रदान किया गया है, जो इस प्रकार है:

*"**मुद्दों को तैयार करना**- (1) मुद्दे तब जन्म लेते हैं जब तथ्य या कानून के एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव की एक पक्ष द्वारा पुष्टि की जाती है और दूसरे द्वारा इंकार किया जाता है।*

(2) महत्वपूर्ण प्रस्ताव कानून या तथ्य के वे प्रस्ताव हैं जिन्हें एक वादी को मुकदमा करने का अधिकार दिखाने के लिए अभिकथित करना चाहिए या एक प्रतिवादी को अपना बचाव स्थापित करने के लिए अभिकथित करना चाहिए।

(3) एक पक्ष द्वारा स्वीकृत और दूसरे पक्ष द्वारा अस्वीकृत प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रस्ताव एक अलग मुद्दे के विषय का निर्माण करेगा।

(4) मुद्दे दो प्रकार के होते हैं (क) तथ्य के मुद्दे, और (ख) कानून के मुद्दे।

(5) वाद की प्रथम सुनवाई पर, न्यायालय वादपत्र और लिखित कथनों को, यदि कोई हो, पढ़ने के पश्चात, पक्षकारों की ऐसी परीक्षा करने के पश्चात जो आवश्यक प्रतीत हो, यह पता लगाएगा कि तथ्य या कानून की किन तात्विक प्रस्थापनाओं पर पक्षकारों में मतभेद है और तत्पश्चात् उन मुद्दों को तैयार करेगा और अभिलेखित करेगा, जिन पर मामले का सही निर्णय निर्भर होना प्रतीत होता है।

(6) इस नियम में कुछ भी, न्यायालय को उन मुद्दों को तैयार करने और अभिलेखित करने हेतु बाध्य नहीं करता है, जहां वाद की प्रथम सुनवाई पर प्रतिवादी कोई बचाव प्रस्तुत नहीं करता है।"

49. श्री पंकज कुमार गुप्ता, अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225-ए की ओर आकृष्ट किया है, जो संक्षिप्त कार्यवाही में प्रश्नों के निर्धारण से संबंधित है, जो यह प्रावधान करती है कि इस संहिता के अन्तर्गत किसी संक्षिप्त कार्यवाही में निर्धारण के लिए उठने वाले सभी प्रश्नों का निर्धारण निर्धारित तरीके से शपथ पत्र पर किया जाएगा।

50. त्वरित संदर्भ हेतु, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 225-ए निम्नानुसार उद्धृत की जा रही है:

> ***"225-ए संक्षिप्त कार्यवाही में प्रश्नों का निर्धारण-***
> *इस संहिता के अन्य उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, इस संहिता के अन्तर्गत किसी संक्षिप्त कार्यवाही में निर्धारण हेतु उठने वाले सभी प्रश्नों का निर्णय, निर्धारित तरीके से शपथपत्रों पर किया जाएगा:*
> *परन्तु यदि राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी को यह समाधान हो जाए कि किसी साक्षी, जिसने शपथपत्र दाखिल किया है, की प्रतिपरीक्षा आवश्यक है, तो वह ऐसी प्रतिपरीक्षा के लिए साक्षी को प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकता है।"*

51. दाखिल खारिज की कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति की कार्यवाही है और इस प्रकार संबंधित न्यायालय के लिए प्रश्न या मुद्दे तैयार करना आवश्यक नहीं है और इस प्रकार मुद्दे तैयार न करके, न्यायालय ने कोई ऐसी अवैधता नहीं की है, जो आदेश को अमान्य करती हो। कोई भी म्यूटेशन कार्यवाही पक्षकारों के स्वामित्व को निर्धारित नहीं करती है और उस उद्देश्य के लिए, याचिकाकर्ता के पास स्वामित्व के निर्धारण के लिए सक्षम न्यायालय से संपर्क करने का विकल्प हमेशा खुला रहता है, जैसा कि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 40-ए के तहत प्रावधान किया गया है।

52. **2021 0 सुप्रीम (एससी) 487** में प्रकाशित **जितेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य** के मामले में, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित को स्थापित किया है। सुविधा के लिए, पैराग्राफ 5, 6 और 6.1 को निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:

> *".....5. हमने याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री निशेष शर्मा को सुना है।*
> *यह विवादित नहीं है कि विवाद राजस्व अभिलेखों में दाखिल खारिज प्रविष्टि के संबंध में है। यहाँ याचिकाकर्ता ने श्रीमती अनंती बाई द्वारा निष्पादित कथित वसीयत दिनांक 20.05.1998 के आधार पर अपना नामांतरण*

करने हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया। यहां तक कि, याचिकाकर्ता के अनुसार भी, श्रीमती अनंती बाई की मृत्यु 27.08.2011 को हुई थी। रिकॉर्ड से, यह सामने आता है कि नायब तहसीलदार के समक्ष आवेदन दिनांक 9.8.2011 को, अर्थात, श्रीमती अनंती बाई की मृत्यु से पहले किया गया था। इसपर विवाद नहीं हो सकता है कि वसीयत के आधार पर अधिकार का दावा वसीयत के निष्पादक की मृत्यु के बाद ही किया जा सकता है। यहां तक कि वसीयत भी विवादित रही है। जैसा भी हो, कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, नामांतरण प्रविष्टि व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित प्रदान नहीं करती है और राजस्व रिकॉर्ड में नामांतरण प्रविष्टि केवल वित्तीय उद्देश्य के लिए होती है। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, यदि स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद है और विशेष रूप से जब वसीयत के आधार पर नामांतरण प्रविष्टि करने की मांग की जाती है, तो वह पक्ष जो वसीयत के आधार पर स्वामित्व/अधिकार का दावा कर रहा है, उसे उपयुक्त सिविल न्यायालय/ न्यायालय से संपर्क करना होगा और अपने अधिकारों को स्पष्ट करना होगा और उसके बाद ही सिविल न्यायालय के समक्ष निर्णय के आधार पर आवश्यक नामांतरण प्रविष्टि की जा सकती है।

6. 1997 से ही कानून बहुत स्पष्ट है। (1997) 7 एससीसी 137 में प्रकाशित बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह (डी) द्वारा एलआरएस के मामले में, इस न्यायालय के पास दाखिल खारिज के प्रभाव पर विचार करने का अवसर था और यह देखा गया और माना गया कि राजस्व अभिलेखों में संपत्ति का नामांतरण न तो संपत्ति के स्वामित्व को स्थापित करता है और न ही समाप्त करता है और न ही इसका स्वामित्व पर कोई अनुमानित मूल्य है। ऐसी प्रविष्टियां मात्र भूमि राजस्व एकत्र करने हेतु प्रासंगिक हैं। इसके पश्चात निर्णयों की श्रृंखला में भी ऐसे ही समान दृष्टिकोण व्यक्त किए गए हैं।

6.1 सूरज भान बनाम वित्तीय आयुक्त, 2007 6 एससीसी 186 के मामले में, इस न्यायालय ने देखा और माना है कि राजस्व रिकॉर्ड में कोई प्रविष्टि उस व्यक्ति को स्वामित्व प्रदान नहीं करती है, जिसका नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दिखाई देता है। राजस्व रिकॉर्ड या जमाबंदी में प्रविष्टियों का केवल "राजकोषीय उद्देश्य" होता है; अर्थात, भूमि राजस्व का भुगतान, और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है। आगे यह भी देखा गया है कि जहां तक संपत्ति के स्वामित्व का संबंध है, यह केवल एक सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा तय किया जा सकता है। सुमन वर्मा बनाम भारत संघ, (2004) 12 एससीसी 58; फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एससीसी 12; राजिंदर सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2008) 9 एससीसी 368; नगर निगम, औरंगाबाद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 16 एससीसी 689; टी. रवि बनाम बी. चिन्ना नरसिम्हा, (2017) 7 एससीसी 342; भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी, (2019) 3 एससीसी 191; प्रह्लाद प्रधान बनाम सोनू कुम्हार, (2019) 10 एससीसी 259; और अजीत कौर बनाम दर्शन सिंह, (2019) 13 एससीसी 70..... के मामलों में भी समान दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है।"

53. उपरोक्त के मद्देनजर, यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि यदि स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद है और विशेष रूप से जब वसीयत के आधार पर म्यूटेशन प्रविष्टि की मांग की जाती है, तो वसीयत के आधार पर स्वामित्व/अधिकार का दावा करने वाले पक्ष को उचित सिविल न्यायालय/न्यायालय से संपर्क करना होगा और अपने अधिकारों को स्पष्ट करना होगा और उसके बाद ही सिविल न्यायालय के समक्ष निर्णय के आधार पर आवश्यक म्यूटेशन प्रविष्टि की जा सकती है। राजस्व अभिलेखों में संपत्ति का म्यूटेशन न तो संपत्ति के स्वामित्व को स्थापित करता है और न ही समाप्त करता है और न ही स्वामित्व पर इसका कोई अनुमानित मूल्य होता है। ऐसी प्रविष्टियाँ केवल भू-राजस्व एकत्र करने के उद्देश्य हेतु प्रासंगिक हैं।

54. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संबंधित तहसीलदार ने आदेश दिनांक 19.12.2022 को पारित करते समय अपने

आदेश में उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34/35 को उद्धृत किया है और इस तरह यह माना जाएगा कि उन्होंने नयी संहिता यानी उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों के तहत आदेश पारित किया है।

55. इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया गौड़ मुद्दा यह है कि संबंधित तहसीलदार ने आदेश दिनांक 19.12.2022 को पारित करते समय उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34/35 को उद्धृत किया है और इस तरह यह माना जाएगा कि उन्होंने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों के तहत आदेश पारित किया है।

56. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवादी के अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क का यह कहते हुए खंडन किया है कि गलत धारा का उल्लेख करने से आदेश अमान्य नहीं होगा क्योंकि प्राधिकारी ने पुराने अधिनियम के तहत आवेदन पर विचार किया है, और इसलिए नए अधिनियम की धारा के उल्लेख से कार्यवाही की प्रकृति प्रभावित नहीं होगी।

57. ***ईशा बीवी एवं अन्य बनाम कर वसूली अधिकारी एवं अन्य एआईआर (1975) एससी, 2135*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कानून का प्रतिपादन किया है, कि गलत प्रावधान का हवाला देना पर्याप्त नहीं है, यदि वास्तव में कार्यवाही करने का आदेश किसी अन्य प्रावधान के तहत है। निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत है:

".....लेकिन, किसी उच्च न्यायालय या इस न्यायालय से निषेध रिट प्राप्त करने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए, किसी आवेदक को, उस अधिकारी या प्राधिकारी जिसके विरुद्ध शिकायत की गयी है, की ओर से, कार्यवाही करने के क्षेत्राधिकार की पूर्ण अनुपस्थिति का प्रदर्शन करना होगा। यह पर्याप्त नहीं है यदि किसी नोटिस या आदेश में किसी गलत धारा या कानूनी प्रावधान का हवाला दिया गया है, यदि कार्यवाही करने की शक्ति वास्तव में किसी अन्य प्रावधान के तहत उपलब्ध है। "

58. उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि मात्र एक प्रावधान का गलत उल्लेख संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को खराब नहीं कर सकता है, जहां अन्यथा क्षेत्राधिकार, उसी प्राधिकारी में निहित है।

59. इसलिए, यह तथ्य कि तहसीलदार ने राजस्व संहिता, 2006 की धारा 34/35 के तहत आदेश दिनांक 19.12.2022 पारित किया, उनके अधिकार को सिर्फ इस कारण से खत्म नहीं करेगा कि उन्होंने पुराने अधिनियम के प्रावधानों को धारित करने वाले आवेदन पर विचार किया है। अधिनियम की एक धारा का

उल्लेख करने से कार्यवाही की प्रकृति प्रभावित नहीं होगी।

60. विद्वान उप जिलाधिकारी ने अत्यधिक देरी का तकनीकी आधार लेकर अपील को स्वीकार करने में त्रुटि की है जो कि **बी.एस. शेषगिरी सेट्टी और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य (2016) 2 एससीसी 123 और पंजाब राज्य और अन्य बनाम शामलाल मुरारी और अन्य (1976) 1 एससीसी 719** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के दृष्टिगत उचित नहीं है, जिनमें यह देखा गया है कि न्यायालयों को मामले पर इस तरह से विचार और निर्णय करना चाहिए, कि तकनीकी कारणों से महत्वपूर्ण न्याय का बलिदान न हो जाए।

61. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि जब महत्वपूर्ण न्याय और तकनीकी पहलू एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हों, तो महत्वपूर्ण न्याय को रास्ता दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, न्यायालय का प्राथमिक कार्य गुण-दोष के आधार पर पक्षकारों के मध्य मामले का निर्णय करना है, जिससे कि उनकी शिकायतों का निपटारा हो सके।

62. विद्वान आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद (प्रतिवादी संख्या 2) ने भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के साथ-साथ स्थापित कानूनी स्थिति, जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी है, के आलोक में, मामले के उपर्युक्त पहलू पर विचार नहीं किया है और यांत्रिक तरीके से आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2023 पारित किया है। इसलिए, उप जिलाधिकारी, संभल (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 06.02.2023 और आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2023 कानूनन संधारणीय नहीं हैं और तदनुसार निरस्त किए जाते हैं।

63. उपर्युक्त वर्णित तथ्यों एवं कारणों के दृष्टिगत, मेरा मत है कि तहसीलदार सम्भल द्वारा पारित पुनर्स्थापना का आदेश दिनांक 19.12.2022 किसी भी अवैधानिकता से ग्रस्त नहीं है। सम्बन्धित तहसीलदार ने बहुत ही उचित ढंग से, पुनर्स्थापना हेतु आवेदन को, कार्यालय को यह निर्देश देते हुए स्वीकार किया है कि मामले को उसकी मूल संख्या पर बहाल किया जाए तथा पक्षकारों को निर्देश दिया है कि वे निर्धारित तिथि को न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य प्रस्तुत करें।

64. तहसीलदार, सम्भल, जिला सम्भल को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से **तीन माह** की अवधि के भीतर सम्बन्धित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 34/35 के उपबन्धों के अनुसार वाद संख्या 849/850/851 वर्ष 2005 पर विचार कर निर्णय देने के निर्देश के साथ, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है।

65. सम्बन्धित तहसीलदार के समक्ष लम्बित उपरोक्त दाखिल खारिज कार्यवाही के अन्तिम रूप से समाप्त होने तक, पक्षकारों को प्रश्नगत

भूखण्डों के सम्बन्ध में यथास्थिति बनाये रखने का निर्देश दिया जाता है।

66. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

67. यह न्यायालय श्री पंकज कुमार गुप्ता, अधिवक्ता द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य सहायता की सराहना करता है, जिन्होंने इस मामले की सुनवाई के दौरान इस न्यायालय को अपना पूर्ण सहयोग दिया।

(2023) 8 ILRA 1501

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

रिट-सी संख्या 16844 वर्ष 2000

गोरखपुर जिला नेत्र राहत सोसाइटी, नेत्र चिकित्सालय, गोरखपुर एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटी एवं चिट्स, गोरखपुर एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री शेष कुमार, श्री सपन कुमार सिंह, श्री शिव कुमार सिंह राजावत, श्री अशोक खरे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री अशोक त्रिवेदी

सिविल विधि - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 4-ए - उप-नियमों में पुनरीक्षण - केवल रजिस्ट्रार को सूचित करना आवश्यक है - रजिस्ट्रार गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं दे सकता - रजिस्ट्रार के पास बैठक, नोटिस, कोरम और बहुमत की वैधता की जांच करने की सीमित शक्ति है - याचिकाकर्ता (पूर्व संयुक्त सचिव) को उप-नियमों के तहत पुनरीक्षण लाने या प्रभावी करने का कोई अधिकार नहीं था - याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी बरकरार रखी गई - याचिका गलत है।

अभिनिर्धारित : सहायक रजिस्ट्रार को सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 4-ए के अंतर्गत सीमित अधिकार प्राप्त है - यह सत्यापित करने का कि पुनरीक्षण हेतु बैठक वैध रूप से बुलाई गई थी, गणपूर्ति हुई थी और प्रस्ताव अपेक्षित बहुमत से पारित हुआ था। वह पुनरीक्षण के गुण-दोष पर निर्णय नहीं दे सकता। हालाँकि, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता (पूर्व संयुक्त सचिव) को उप-नियमों के अंतर्गत बैठक बुलाने या पुनरीक्षण प्रस्तुत करने का कोई अधिकार नहीं था। संयुक्त सचिव के रूप में उनका पद उनकी सेवा समाप्ति के साथ ही समाप्त हो गया, जिसे इस न्यायालय ने बरकरार रखा है। इस प्रकार, उनके पास याचिका दायर करने का अधिकार नहीं था।

चर्चा की गई वाद विधि:

8.इला गोरखपुर जिला नेत्र राहत सोसाइटी, नेत्र चिकित्सालय, गोरखपुर एवं अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार फर्म सोसाइटी ए

1. अध्यक्ष, प्रबंधन समिति, श्री विमल नाथ दिगंबर जैन तीर्थ क्षेत्र बनाम उप.रजिस्ट्रार, 2011 (1) एडीजे 37 (एनओसी)

2. इलाहाबाद हाई स्कूल सोसाइटी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (4) एडीजे 887 (डीबी)

3. लियाकत मार्क्विस खान बनाम क्राइस्ट चर्च कॉलेज सोसाइटी, 2010 (8) एडीजे 465 (डीबी)

4. प्रबंध समिति, खालसा मिडिल स्कूल बनाम मोहिंदर कौर , (1993) 4 एससीसी 26 (सप्प)

याचिका वादव्यय के साथ खारिज कर दी गई।

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा पारित)

1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

2. यह याचिका उप रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, गोरखपुर द्वारा पारित रिट याचिका के आदेश दिनांक 25.02.2000 अनुलग्नक संख्या 18 को रद्द करने और प्रतिवादी संख्या 1, सहायक रजिस्ट्रार, फर्म को निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है।, सोसाइटीज एंड चिट्स, गोरखपुर को याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत उपनियमों में संशोधन को स्वीकार करने और उसे अपने कार्यालय में दाखिल करने और उसके अनुसार सभी कार्रवाई करने के लिए कहा गया है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि मूल रूप से उपरोक्त सोसायटी 04.11.1955 को पंजीकरण संख्या 283/1955-56 यानी रिट याचिका के अनुबंध संख्या 1 के साथ पंजीकृत की गई थी। याचिकाकर्ता संख्या 2 सोसायटी की आम सभा का सदस्य था और इसका संयुक्त सचिव भी था। सोसायटी का गठन नेत्र अस्पतालों की स्थापना, संचालन और प्रबंधन के उद्देश्य से किया गया है और इसने गोरखपुर शहर में एक नेत्र अस्पताल की स्थापना की है। सोसायटी को राज्य से कोई सहायता अनुदान प्राप्त नहीं होता है सरकार, सोसायटी की स्थापना सार्वजनिक हित चाहने वाले व्यक्तियों के एक समूह द्वारा की गई है, जिसमें निजी व्यक्ति और प्रासंगिक समय पर विभिन्न सार्वजनिक कार्यालय रखने वाले व्यक्ति भी शामिल हैं। एसोसिएशन का ज्ञापन दिनांक 27.07.1955 रिट याचिका के परिशिष्ट संख्या 2 के रूप में संलग्न है। सोसायटी का पंजीकरण समय-समय पर नवीनीकृत किया गया है और अंतिम बार 20.02.1996 को 10.10.1995 से पांच साल की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया है। नवीनीकरण का प्रमाण पत्र अनुलग्नक क्रमांक 3 के रूप में संलग्न है। एसोसिएशन के ज्ञापन और सोसायटी के उपनियमों को 1996 में संशोधित किया गया था और इसे संबंधित सहायक रजिस्ट्रार के कार्यालय में दायर किया गया है, जो इस रिट याचिका के साथ अनुबंध संख्या 4 के रूप में संलग्न है। उपनियमों के तहत कई अधिकारी समाज के पदेन थे। ऐसे अधिकारी न तो सोसायटी की सामान्य सभा/प्रबंधन समिति की बैठक में भाग ले रहे थे और न ही

सोसायटी एवं उसके द्वारा संचालित नेत्र चिकित्सालय के किसी भी कार्य में कोई रुचि ले रहे थे। ऐसे तथ्यों के कारण सोसायटी एवं उसके द्वारा संचालित नेत्र चिकित्सालय के सुचारु संचालन में बार-बार कठिनाई महसूस की जाने लगी।

4. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 22.07.1999 के एजेंडा नोटिस, जो कि रिट याचिका का अनुलग्नक-5 है, के माध्यम से 05.09.1999 को सोसायटी की आम सभा की बैठक बुलाई गई थी। साधारण सभा की बैठक में मद क्रमांक 4 पर यह निर्णय लिया गया कि सोसायटी के पदाधिकारियों का चुनाव साधारण सभा द्वारा किया जाए तथा उपनियम में संशोधन किया जाए। ऐसे उद्देश्य को क्रियान्वित करने के लिए समाज के कानून। यह रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 6 है।

5. आम सभा द्वारा लिए गए उस निर्णय के परिप्रेक्ष्य में दिनांक 06.09.1999 के एजेंडा नोटिस के माध्यम से कार्यकारी समिति की बैठक 22.09.1999 को बुलाई गई थी। एजेंडा नोटिस की सच्ची प्रति इस रिट याचिका के अनुबंध-7 में है। 22.09.1999 को आयोजित कार्यकारी समिति की बैठक में कार्यकारी समिति ने उपविधि संख्या 24(5) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उपविधि के खंड 25 और 29 के साथ पठित उपविधि में संशोधन के प्रस्ताव पर विचार किया। कानून कार्यकारी समिति ने उपनियमों में प्रस्तावित संशोधनों पर विचार किया और उन्हें मंजूरी दे दी और याचिकाकर्ता संख्या 2 संयुक्त सचिव को इस तरह के निर्णय के अनुसरण में आगे की कार्यवाही करने के लिए अधिकृत किया। कार्यकारी समिति की दिनांक 22.09.1999 की कार्यवाही की सत्य प्रति रिट याचिका के अनुबंध-8 में है। दिनांक 23.09.1999 के एक एजेंडा नोटिस के माध्यम से, उपनियमों में उपरोक्त संशोधनों पर विचार करने के लिए 08.10.1999 को आम सभा की बैठक बुलाई गई थी। दिनांक 23.09.1999 के एजेंडा नोटिस की प्रति याचिका के परिशिष्ट-9 के रूप में संलग्न है।

6. दिनांक 08.10.1999 को आयोजित सामान्य सभा की बैठक में प्रस्तावित संशोधनों पर विचार कर अनुमोदन किया गया तथा याचिकाकर्ता क्रमांक 2 को ऐसी कार्यवाही की पुष्टि हेतु सामान्य सभा की अगली बैठक बुलाने हेतु अधिकृत किया गया। सामान्य सभा की दिनांक 08.10.1999 की कार्यवाही की सत्य प्रतिलिपि याचिका के परिशिष्ट-10 के रूप में संलग्न है, के अनुसार आम सभा के निर्णय से आम सभा की बैठक दोबारा बुलाई गई और एजेंडा नोटिस दिनांक 29.10.1999 के माध्यम से 28.11.1999 को आयोजित की गई। दिनांक 29.10.1999 के एजेंडा नोटिस की सत्य प्रति संलग्नक 11 के रूप में संलग्न है। दिनांक 28.11.1999 को आयोजित सामान्य सभा की बैठक में उपविधि में संशोधन को मंजूरी दी गई तथा दिनांक 08.10.1999 को आयोजित सामान्य सभा की कार्यवाही की पुष्टि की गई। आम सभा की कार्यवाही अनुयानक-12 दिनांक 28.11.1999 परिशिष्ट अनुलग्नक-12 के रूप में संलग्न है। 2. उक्त तिथि को आम सभा द्वारा अनुमोदित संशोधनों को रिकॉर्ड पर

लाना आवश्यक है। कार्यकारी समिति और उसकी आम सभा द्वारा अनुमोदित उपनियमों में संशोधनों की सत्य प्रति अनुलग्नक-13 के रूप में संलग्न है।

7. उपरोक्त से संबंधित सभी प्रयोजन सहायक रजिस्ट्रार के कार्यालय में याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा नवंबर, 1999 के महीने में ही प्रस्तुत किए गए थे, जिन्हें सहायक रजिस्ट्रार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था। सहायक रजिस्ट्रार को संबोधित कवरिंग लेटर दिनांक 12.12.1999 के साथ कागजात फिर से प्रस्तुत किए गए, जो रिट याचिका के अनुलग्नक 14 के रूप में संलग्न है, लेकिन सहायक रजिस्ट्रार ने उस पर कोई कार्रवाई करने से इनकार कर दिया है। उपनियमों में संशोधन की मंजूरी के संबंध में सहायक रजिस्ट्रार के इनकार करने का कोई औचित्य मौजूद नहीं है, जिसे कार्यकारी समिति और सोसायटी की सामान्य सभा द्वारा अनुमोदित किया गया है।

8. बार-बार महसूस किया गया कि सभी पदेन पदाधिकारी जैसे जिलाधिकारी एवं सीडीओ आदि असमर्थ हैं किसी भी समय समाज के मामलों के लिए समर्पित करें। परिणामस्वरूप, सोसायटी का कामकाज बुरी तरह बाधित हो गया। अतः समाज के उपनियमों में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। यहां तक कि तत्कालीन डीएम ने भी खुले तौर पर कहा था कि उन्हें सोसायटी के अध्यक्ष के रूप में उनके कर्तव्यों से मुक्त किया जा सकता है क्योंकि वह आधिकारिक प्रतिबद्धताओं के कारण समय देने में असमर्थ थे। उक्त बैठक के कार्यवृत्त की एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-15 के रूप में संलग्न है। अंतिम प्रतिबद्धताओं के कारण उन्हें समाज के मामलों में प्रयास करने से रोकने के कारण पदेन पदाधिकारियों की समस्या और भी बढ़ गई। पदेन पदाधिकारी की इस व्यवस्था के फलस्वरूप समाज के अस्तित्व/पुष्टि का आपत्ति एवं उद्देश्य विफल हो रहा था। डीएम और अन्य पदेन पदाधिकारियों को अपने-अपने हिस्से में संशोधन के संबंध में सूचनाएं भेजी गई। उक्त पत्र रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 16 के रूप में संलग्न है। लेकिन जिलाधिकारी एवं अन्य पदेन पदाधिकारियों द्वारा उक्त पत्र का कोई जवाब नहीं भेजा गया।

9. सहायक रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसाइटीज एवं चिट्स, गोरखपुर, जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर के दबाव में हैं और निष्पक्ष तरीके से मामले का निर्णय करने में असमर्थ हैं। आगे उन्होंने उक्त विवाद पर अपने मन की बात पहले ही बता दी है. सहायक रजिस्ट्रार की ओर से निष्क्रियता के कारण, याचिकाकर्ताओं को सिविल विविध दाखिल करने के लिए मजबूर होना पड़ा। 2000 की रिट याचिका संख्या 712, प्रतिवादी संख्या 1 को एक विशिष्ट अवधि के भीतर सामान्य निकाय द्वारा अनुमोदित उप-कानूनों में संशोधनों को स्वीकार करने के लिए आदेश/निर्देश जारी करने की प्रार्थना के साथ और सामान्य निकाय द्वारा अनुमोदित संशोधित उप- कानूनों के आधार पर प्रश्नगत समाज से संबंधित सभी कार्रवाई करने के लिए प्रतिवादी नंबर 1 को एक आदेश और निर्देश जारी करना भी है।

10. उपरोक्त रिट याचिका का अंततः माननीय श्री न्यायमूर्ति आर. एस. द्वारा जैदी ने निर्णय दिनांक 07.01.2000 के माध्यम से निपटारा कर दिया। इसकी सत्य प्रति रिट याचिका के परिशिष्ट-17 के रूप में संलग्न है।

11. निर्णय दिनांक 07.01.2000 की प्रमाणित प्रति सहायक रजिस्ट्रार के समक्ष दाखिल की गई। उसके आधार पर कार्रवाई करते हुए उप रजिस्ट्रार ने दिनांक 25.02.2000 को एक आदेश पारित कर उप-कानूनों में संशोधन को खारिज कर दिया, जो रिट याचिका के अनुबंध-18 के रूप में संलग्न है।

12. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 4-ए के तहत, सोसायटी के नियमों में परिवर्तन के बारे में परिवर्तन के 30 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार को सूचित करना आवश्यक है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, नियमों में किए गए परिवर्तन के संबंध में ऐसी सूचना पहले ही दी जा चुकी है। सहायक रजिस्ट्रार को इस प्रकार अधिसूचित संशोधन को उनके द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। सहायक रजिस्ट्रार के पास अधिनियम के तहत सोसायटी के नियमों में संशोधन स्वीकार करने की कोई शक्ति नहीं है। उपविधि में संशोधन को अस्वीकार करने वाला अस्वीकृति आदेश पूर्णतः अनाधिकृत एवं क्षेत्राधिकार विहीन है। संशोधन के संबंध में सहायक रजिस्ट्रार को दी गई एकमात्र शक्ति सोसायटी के नाम या सोसायटी की वस्तुओं में परिवर्तन के संबंध में है। उपरोक्त के अलावा, सहायक रजिस्ट्रार को सोसायटी के उपनियमों/नियमों में संशोधन से संबंधित कोई अन्य शक्ति प्रदान नहीं की गई है।

13. सहायक रजिस्ट्रार को शक्ति प्रदान की गई है देखें कि संशोधन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किए गए हैं। वह अधिनियम के अनुसार प्रभावित परिवर्तन को रोक नहीं सकता है। मूल उपनियमों के तहत, जिला मजिस्ट्रेट पदेन अध्यक्ष था और सीडीओ सोसायटी का पदेन सचिव था। चूंकि दोनों अधिकारी सोसायटी के पदाधिकारी थे, इसलिए सहायक रजिस्ट्रार संशोधन के आधार पर कोई कार्रवाई नहीं कर रहे थे। चूंकि यह एक निजी सोसायटी है, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट और सीडीओ सोसायटी के संविधान को निर्देशित नहीं कर सकते। आक्षेपित आदेश दोनों अधिकारियों द्वारा प्रयोग किये गये प्रभाव का परिणाम है। आक्षेपित आदेश गलत है। समाज की सामान्य संस्था की शक्ति को किसी भी प्रकार से कम नहीं किया जा सकता।

14. उप रजिस्ट्रार ने यह मानने में गलती की थी कि याचिकाकर्ता नंबर 2 उस बैठक को बुलाने के लिए अधिकृत नहीं था जिसमें उपनियमों में संशोधन का निर्णय लिया गया था क्योंकि यह कई सदस्यों के अनुरोध पर बुलाई गई बैठक थी। सामान्य निकाय. याचिकाकर्ता संयुक्त सचिव का पद संभाल रहा था और आम सभा की मांग बैठक बुलाने के लिए बाध्य था। विवादित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। याचिकाकर्ताओं के पास कोई अन्य समान रूप से प्रभावी उपाय नहीं है, इसलिए इस रिट याचिका को प्राथमिकता दी गई है।

15. संवर्धित सभी हस्तावेज याचिका के साथ संलग्न किए गए हैं।

16. प्रतिवादी संख्या 1, सहायक रजिस्ट्रार फर्म्स, सोसायटी और चिट्स, गोरखपुर की और से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है कि सोसायटी बिना किसी कठिनाई के कानून के अनुसार चलती है। यह बात गलत है कि पदेन अधिकारियों के रहने से अस्पताल चलाने में परेशानी होती है. संतुक सचिव द्वारा सचिव के रूप में कार्य कर एजेंडा भेजने का कोई औचित्य नहीं था, इसलिए संयुक्त सचिव ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर काम किया, डॉ, मनोरमा सिंह अग्रवाल द्वारा जारी दिनांक 05.09.1999 का नोटिस अवैध था और उनके द्वारा अपने अधिकारों की अवहेलना करते हुए भेजा गया है। उन्हें बैठक बुलाने का कोई अधिकार नहीं था जब तक कि इसे अध्यक्ष और सचिव द्वारा अनुमोदित न किया गया हो, जिसके लिए उन्हें अधिकृत नहीं किया गया था। चूंकि कार्यवाही नियमावली के अनुरूप नहीं थी, इसलिए इसे दर्ज नहीं किया गया, विनियमन की संबंधित धाराओं के तहत कार्रवाई करने का अधिकार पदेन अध्यक्ष/सचिव में निहित है। इस संबंध में प्रतिवादी के कार्यालय द्वारा पत्र क्रमांक 3518 दिनांक 08.02.2000 द्वारा पर्याप्त जानकारी दी गई है। माननीय न्यायालय के आदेश दिनांक 07.01.2000 के अनुपालन में आदेश क्रमांक 2785/दिनांक 25.02.2000 को हॉ, मनोरमा सिंह गयपाल को अवगत करा दिया गया है। यह कहीं भी निर्धारित नहीं है कि यदि कोई संशोधन भेजा जाता है, तो उसे तीस दिनों के भीतर स्वचालित रूप से अनुमति माना जाएगा। याचिकाकर्ताओं को संस्था की व्यवस्थाओं से छेड़छाड़ करने का कोई अधिकार नहीं है. याचिकाकर्ता संख्या 2 केवल द्वारा संचालित अस्पताल का रखरखाव और संचालन कर सकता है संस्थान। याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा किया गया कृत्य केवल अपने निहित स्वार्थ को पूरा करने के लिए था ताकि वह संस्था द्वारा संचालित अस्पताल पर अपना दबदबा बना सके। सोसायटी के पदाधिकारियों/सदस्यों द्वारा ऐसा कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया गया है. यह कहना गलत है कि जिलाधिकारी व सीडीओ के प्रभाव में प्रतिवादी संख्या एक ने आदेश पारित कर दिया था, लेकिन चूंकि प्रस्तावित संशोधन न तो कार्यकारिणी में प्रस्तुत किया गया और न ही सामान्य सभा में, इसलिए प्रस्तावित संशोधन खारिज कर दिया गया. चूंकि याचिकाकर्ता संख्या 2 अस्पताल की चिकित्सा अधीक्षक थी और प्रावधान है कि अस्पताल अधीक्षक संयुक्त सचिव होगा, इसलिए वह केवल अस्पताल की व्यवस्था देख सकती है। उसे अनाधिकृत व्यक्ति को बढ़ाकर संस्था की व्यवस्थाओं में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं था। इसलिए याचिका खारिज की जाय।

17. श्री रईस अहमद, तत्कालीन सहायक रजिस्ट्रार, फर्म्स, सोसायटी और चिट्स, गोरखपुर ने एक पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया जिसमें उन्होंने जवाबी हलफनामे के पिछले संस्करण को दोहराया है और कहा है कि विवादित आदेश कानून के अनुसार पारित किया गया था। डॉ. मनोरमा सिंह द्वारा की

गयी बैठक को जिलाधिकारी ने रद्द कर दिया था. उन्होंने समिति की उपविधि भी संलग्न की है जिससे यह स्पष्ट है कि संयुक्त सचिव को समिति की उपविधि में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है।

18- प्रतिवादी संख्या 9 सीडीओ, गोरखपुर की ओर से श्री नन्द किशोर सिंह दुवारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें आरोपों का खण्डन किया गया और यह कहा गया है कि याची संख्या 2 चिकित्सा अधीक्षक, नेत्र चिकित्सालय, गोरखपुर के पद पर कर्मचारी है। उसका काम करने का तरीका मनमाना और संवेदनहीन है। उनके काम और आचरण के खिलाफ कई शिकायतें थीं। सीएमओ, गोरखपुर, जो सोसायटी के उपाध्यक्ष भी हैं, ने उनके खिलाफ जांच की। सभी दस्तावेज उसके पास थे लेकिन उसने इन्हें देने से इनकार कर दिया। सीडीओ/सचिव द्वारा प्रस्तुत याचिकाकर्ता संख्या 2 के कदाचार और दुर्व्यवहार के संबंध में एक रिपोर्ट परिशिष्ट संख्या सीए-1 के रूप में संलग्न की गई है। जब अधिकारियों ने समाज के उपनियमों के अनुसार कठोर कार्रवाई करना शुरू कर दिया, तो वह खुलकर सामने आई और समाज के लक्ष्य, वस्तु और हित के खिलाफ पूर्वाग्रहपूर्ण और कार्य करना शुरू कर दिया। उपनियमों के खंड-9 के अनुसार, सचिव अन्य सभी कार्यों को नियंत्रित और प्रबंधित करने के लिए सोसायटी का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा और केवल वह सोसायटी की ओर से कानूनी कार्रवाई शुरू/संचालित कर सकता है। याचिकाकर्ता नंबर 2 केवल एक कर्मचारी और पदेन संयुक्त सचिव है जो सोसायटी के लिए या उसकी ओर से कोई कानूनी कार्यवाही शुरू करने और संचालित करने के लिए अधिकृत नहीं है। सीडीओ, गोरखपुर/सचिव ने याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा किए गए कदाचार और अनियमितताओं के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर/ राष्ट्रपति को एक पत्र लिखा, जिसे परिशिष्ट संख्या सीए-2 के रूप में संलग्न किया गया है। कार्यकारिणी समिति ने याचिकाकर्ता क्रमांक 2 के विरुद्ध कार्यवाही हेतु जिलाधिकारी/ राष्ट्रपति को पत्र (अनुलगनक सीए-3) भी लिखा था । अध्यक्ष और सचिव ने जाँच शुरू की और एसडीएम सदर, गोरखपुर को प्रारम्भिक जाँच करने का निर्देश दिया गया कि कौन होता है कार्यकारी समिति का सदस्य बनें जो संलग्नक संख्या सीए-4 के रूप में संलग्न है। संबंधित एसडीएम ने प्रारंभिक जांच रिपोर्ट दिनांक 06.11.1999 यानी अनुलग्नक संख्या सीए-5 प्रस्तुत की और याचिकाकर्ता संख्या 2 को विभिन्न अनियमितताओं और कदाचार के लिए दोषी पाते हुए निलंबित करने की सिफारिश की। दिनांक 13.12.1999 की बैठक में कार्यकारी समिति ने याचिकाकर्ता संख्या 2 (अनुलग्नक सीए-6) को निलंबित करने की सिफारिश की। इसके बाद याचिकाकर्ता 2 को दिनांक 23.12.1999 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया जो अनुलग्नक क्रमांक CA7 है। जांच अधिकारी के रूप में सीएमओ ने याचिकाकर्ता को 16.02.2000 को आरोप पत्र दिया जो अनुलग्नक संख्या सीए-8 है। सीएमओ की रिपोर्ट अनुलग्नक संख्या सीए-9 है जिसमें उन्होंने याचिकाकर्ता संख्या 2 को सेवा से बर्खास्त करने की सिफारिश की है। इस संबंध में सचिव द्वारा जिला गोरखपुर को दिनांक 23.06.2000 को एक पत्र संलग्नक

संख्या सीए-10 लिखा गया था ताकि जांच अधिकारी की सिफारिशों पर विचार करने के लिए कार्यकारी समिति की बैठक बुलाई जा सके जो 07.07.2000 को आयोजित की गई थी। बैठक का कार्यवृत्त अनुलग्नक क्रमांक सीए-11 है। इस बैठक में सीएमओ की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक उप समिति का गठन किया गया जिसने 11.07.2000 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और निष्कर्ष दिया कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट सही थी और कार्यकारी समिति को याचिकाकर्ता संख्या 2 के खिलाफ उचित कार्रवाई करनी चाहिए।. यह अनुलग्नक संख्या सीए-12 है। दिनांक 17.07.2000 को जिलाधिकारी, गोरखपुर की अध्यक्षता में कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें कार्यकारिणी समिति ने जांच अधिकारी एवं उप समिति की रिपोर्ट पर विचार किया तथा सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि ऐसा करना समाज के हित में चिकित्सा अधीक्षक का पद, बैठक का विवरण अनुलग्नक संख्या सीए-13 के रूप में संलग्न है। दिनांक 17.07.2000 के संकल्प के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को 14.08.2000 को एक अंतिम नोटिस दिया गया जो अनुलग्नक संख्या सीए-14 है। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं ने कुछ काल्पनिक बैठकों से संबंधित कथित दस्तावेज गढ़े और गढ़े और समाज की संपूर्ण बुनियादी संरचना और मूलभूत विशेषताओं को बदलने की कोशिश की। उन्होंने प्रयास किया कि उक्त सोसायटी में कोई भी पदेन सदस्य पदाधिकारी के रूप में न रहे ताकि याचिकाकर्ता क्रमांक 2 के कुकर्मों पर कोई नियंत्रण न रह सके। भले ही यह मान लिया जाए कि ऐसी कोई बैठक आयोजित की गई थी, यह उपनियमों के खंड 25 के मद्देनजर कानून में मान्य नहीं है।

19. जवाबी हलफनामे में संदर्भित दस्तावेज उक्त हलफनामे में रिकॉर्ड पर हैं।

20. दो पूरक जवाबी हलफनामे दायर किए गए हैं, जिसमें कहा गया है कि रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 2, डॉ. मनोरमा सिंह अग्रवाल के पास रिट याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं है। और याचिकाकर्ता नंबर 2 की क्षमता तब समाप्त हो गई जब उसे जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा सोसायटी के पदेन अध्यक्ष के रूप में पारित आदेश 04.12.2004 के तहत अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक के रूप में सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था और वह सेवानिवृत्ति की आयु भी पार कर चुकी है। 02.07.2006 को चूंकि उनका जन्म 02.07.1946 को हुआ था। फिर भी कई नोटिस के बावजूद उन्होंने सरकारी बंगला खाली नहीं किया है. डॉ. मनोरमा सिंह अग्रवाल ने संयुक्त की हैसियत हो यह याचिका दायर की थी। सोसायटी की सचिव, इसलिए यह निरर्थक हो गई है क्योंकि सोसायटी हमेशा की तरह चल रही है, 02.07.2006 को उनकी सेवानिवृत्ति के बाद वर्तमान याचिका को आगे बढ़ाने या मुकदमा चलाने का उनके पास कोई कानूनी अधिकार नहीं है। उपनियमों के अनुसार वह अस्पताल की चिकित्सा अधीक्षक होने के नाते सोसायटी की संयुक्त सचिव थीं, लेकिन 04.12.2004 को सेवा से बर्खास्त होने के बाद उन्होंने सोसायटी के संयुक्त सचिव का दर्जा

खो दिया है। बर्खास्तगी आदेश को 2005 की रिट याचिका संख्या 28159 में चुनौती दी गई थी जिसमें कोई अंतरिम स्थगन आदेश नहीं दिया गया था और इसे दिनांक 17.08.2016 के फैसले के तहत योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया गया है। संशोधन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उपनियमों के तहत संयुक्त सचिव को ऐसे संशोधन लाने का अधिकार नहीं था और इससे भी अधिक इसे पदेन अध्यक्ष और सचिव की क्षमता में जिला मजिस्ट्रेट और सीडीओ द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था। उपरोक्त निर्णय, पंजीकरण प्रमाण पत्र, उपनियम, पंजीकरण नवीनीकरण प्रमाण पत्र, डॉ. मनोरमा सिंह की जन्मतिथि प्रमाण पत्र और सीडीओ/सोसाइटी के सचिव द्वारा जारी पत्र याचिका के साथ संलग्न किए गए हैं।

21. याचिकाकर्ता नंबर 2 ने प्रत्युत्तर हलफनामा, एक पूरक प्रत्युत्तर हलफनामा और दो पूरक हलफनामे दायर किए हैं जिनमें उसने याचिका के संस्करण को दोहराया है। न्यायालय की जानकारी में कोई नया तथ्य नहीं लाया गया है। याचिकाकर्ता नंबर 2 इस बात का विरोध नहीं कर सका कि ऐसा कोई प्रावधान है जिसके तहत एक संयुक्त सचिव एक संशोधन पेश कर सकता है और उसे अस्पताल अधीक्षक के पद से निलंबित या बर्खास्त नहीं किया गया है, क्योंकि उसकी आयु पूरी नहीं हुई है। सेवानिवृत्ति और उसकी समाप्ति को इस न्यायालय से बरकरार नहीं रखा गया है।

22. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अध्यक्ष, प्रबंधन समिति, श्री विमल नाथ दिगंबर जैन, तीर्थ क्षेत्र समिति, कंपिल, फर्रुखाबाद और अन्य बनाम उप. रजिस्ट्रार, फर्म सोसायटी और चिट्स, कानपुर मंडल, कानपुर और अन्य, 2011 (1) एडीजे 37 (एनओसी) के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि रजिस्ट्रार द्वारा संशोधन के पंजीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सोसायटी के नियमों में किए गए संशोधन की सूचना पर पंजीकृत उपनियमों में प्रभावी होता है। यदि ऐसी औपचारिकता पूरी हो जाती है, तो आगे कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं है। यदि कोई व्यक्ति उक्त उद्देश्य के लिए पारित प्रस्ताव पर विवाद करता है, 'तो उसके पास सिविल मुकदमा दायर करने का उपाय है। 23. इलाहाबाद हाई स्कूल सोसायटी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2011 (4) एडीजे 887 (डीबी) इस न्यायालय ने प्रभा शंकर मिश्रा और अन्य बनाम के यूपी राज्य और अन्य, 2009 (77) एएलआर 713 जिसमें कोर्ट ने यह माना गया है कि सोसायटी द्वारा नियमों या उपनियमों में किए गए किसी भी संशोधन के लिए एकमात्र आवश्यकता यह है कि इसकी सूचना रजिस्ट्रार को दी जाए और उक्त प्रावधान रजिस्ट्रार को सोसायटी के नियमों या विनियमन में उक्त संशोधन के संबंध में आपत्ति पर निर्णय लेने या निर्णय लेने की कोई शक्ति नहीं देता।

24. इसके अलावा, न्यायालय ने लियाकत मार्किवस खान बनाम क्राइस्ट चर्च कालेज सोसाइटी, कानपुर और अन्य, 2010 (8) एडीजे 465 (डीबी) का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने यह माना कि सोसायटी पंजीकरण अधिनियम,

1860 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 4-ए के लिए किसी भी निर्णय की आवश्यकता नहीं है। रजिस्ट्रार और उक्त प्रावधान के तहत एकमात्र आवश्यकता नियमों में संशोधन को रजिस्ट्रार के ध्यान में लाना था।

25. इस संबंध में कुछ और न्यायिक उदाहरण भी प्रासंगिक हैं जो अधिनियम की धारा 4-ए के संबंध में एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। प्रबंधक कमेटी, खालसा मिडिल स्कूल बनाम, मोहिंदर कौर, (1993) 4 एससीसी 26 (सुप्रा.) शीर्ष अदालत ने माना है कि अधिनियम की धारा 4-ए के तहत रजिस्ट्रार में निहित एकमात्र शक्ति इस तथ्य की जांच करना है कि क्या सोसायटी की बैठक वैध रूप से आयोजित की गई थी। अधिनियम के प्रावधानों और समाज के नियमों के अनुसार। इस पहलू का एकमात्र दायरा तथ्यात्मक सत्यापन करना हो सकता है कि क्या बैठक वैध रूप से बुलाई गई थी, उचित सूचना दी गई थी, कोरम पूरा किया गया था और इसे आवश्यक बहुमत से पारित किया गया था। इसके अलावा सहायक रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 4-ए के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए संशोधनों की योग्यता के सवाल पर नहीं जा सकते थे और न ही उस पर निर्णय दे सकते थे।

26. इलाहाबाद हाई स्कूल सोसाइटी (सुप्रा) में डिवीजन बेंच ने यह भी माना है कि अधिनियम की धारा 4-ए के तहत रजिस्ट्रार यह जांच कर सकता है कि सोसाइटी के नियमों में संशोधन के लिए बैठक वैध रूप से बुलाई गई थी या नहीं। लियाकत मार्विस खान में रजिस्ट्रार के पास यह जांच करने की शक्ति होगी कि उसे भेजे गए उपनियमों में संशोधन अधिनियम की धारा 4 के तहत रिकॉर्ड पर लिए गए पदाधिकारियों की सूची से हैं और नवीनीकरण के समय, यह जांचने के लिए कि क्या संशोधन ऐसे हैं कि नवीनीकरण किया जा सकता है देना होगा।

27. उपरोक्त न्यायिक उदाहरणों से यह पता चलता है कि रजिस्ट्रार मूक दर्शक नहीं है। कम से कम उसे यह देखना और जांचना होगा कि सोसायटी की बैठक वैध रूप से अधिनियम के प्रावधानों और सोसायटी के नियमों के अनुसार आयोजित की गई थी या नहीं। वह देखेगा कि बैठक वैध रूप से बुलाई गई थी, उचित सूचना दी गई थी, कोरम पूरा हुआ था और संशोधन आवश्यक बहुमत से पारित हुआ था या नहीं।

28. उपरोक्त चर्चा से यह स्थापित हो गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 को मुकदमा करने का कोई अधिकार नहीं था। उन्हें उपनियमों में संशोधन लाने का कोई अधिकार नहीं था। वह अब अस्पताल की चिकित्सा अधीक्षक नहीं हैं और उन्हें कानून के अनुसार निलंबित और बर्खास्त कर दिया गया था, जिसकी पुष्टि इस न्यायालय ने की है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि वह सोसायटी की आजीवन सदस्य है तब भी उसे उपनियमों में संशोधन पेश करने का कोई अधिकार नहीं था, इसलिए, प्रस्तावित संशोधन को रजिस्ट्रार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उसके पास इस याचिका पर मुकदमा चलाने, दायर करने और

बनाए रखने की कोई शक्ति या अधिकार नहीं है।

29. संपूर्ण चर्चा के बाद, इस न्यायालय का मानना है कि याचिका पूरी तरह से गलत है और खारिज किये जाने योग्य है।

30. तदनुसार, यह रिट याचिका जुर्माने सहित खारिज की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1509

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.07.2023

समक्ष

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

रिट-सी संख्या 20980/2023

रूकामे आलम ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री जफर अब्बास, श्री इम्तियाज हुसैन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री प्रदीप कुमार राय, श्री प्रज्योत राय, श्री राकेश कुमार वर्मा

अभिनिर्धारित - साक्ष्य दर्ज किए बिना या निर्धारित मुद्दों पर निर्णय लिए बिना विहित प्राधिकारी/उप-मंडल मजिस्ट्रेट द्वारा पारित मतों की पुनर्गणना का आदेश - उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनाव विवादों का निस्तारण) नियम, 1994 के नियम 4 का उल्लंघन करता है - अस्पष्ट और बेबुनियाद आरोपों पर पुनर्गणना का आदेश नहीं दिया जा सकता - मतपत्र की गोपनीयता सर्वोपरि है - सीपीसी के तहत मुकदमे जैसी प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए - चुनाव याचिका पर दो महीने के भीतर नए सिरे से निर्णय लेने के निर्देश के साथ आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया।

<u>संदर्भित प्रमुख वाद विधियाँ</u> :

1. भाभी बनाम शेओ गोविंद एआईआर 1975 एससी 2217

2. राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई एआईआर 1964 एससी 1249

3. राम आधार सिंह बनाम जिला जज, ग़ाज़ीपुर 1985 यूपीएलबीईसी 317

4. धनी प्रसाद बनाम एसडीओ 1974 आल एलजे 371

5. मो. मुस्तफा बनाम यूपी जिलाधिकारी 2007 (7) एडीजे 1

6. अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2004 (5) एडब्ल्यूसी 4088

7. धर्मावती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-सी संख्या 14662/2023

8. श्रीमती मनीता देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य रिट-सी संख्या 10442/2022

(माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जफर अब्बास और श्री इम्तियाज हुसैन और प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार राय और राज्य-प्रत्यर्थीगणों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री असीम मुखर्जी को सुना।

2. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा चुनाव याचिका संख्या T202113540205476/2021 (जावेद बनाम रूकमे आलम और अन्य) में विहित प्राधिकारी/उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, बिलारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.06.2023 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 13-सी के तहत दायर की गई है, जिसमें ग्राम लालपुर गंगवारी, ब्लॉक कुंदरकी, तहसील-बिलारी, मुरादाबाद में ग्राम पंचायत के वर्ष 2021 में हुए चुनाव में वोटों की पुनर्गणना करने का आदेश दिया गया था और और प्रत्यर्थी संख्या 2 को दिनांक 20.06.2023 के आदेश के अनुसरण में पुनर्गणना के लिए कोई अन्य कदम न उठाने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई है।

<u>संक्षिप्त तथ्य:</u>

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:-

i) याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 जावेद ने ग्राम पंचायत लालपुर गंगवारी में प्रधान पद का चुनाव लड़ा था। मतदान दिनांक 26.04.2021 को हुआ, जिसमें मतगणना के बाद याचिकाकर्ता को उपविजेता उम्मीदवार जावेद से 04 वोटों के अंतर से विजयी उम्मीदवार घोषित किया गया।

ii) 04 वोटों के अंतर से पराजित प्रत्यर्थी संख्या 3 ने दिनांक 01.07.2021 को उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947[1] (एतस्मिनपश्चात् "अधिनियम, 1947" के रूप में संदर्भित) की धारा 12 (ग) के तहत चुनाव याचिका दाखिल की, उसमें कहा गया कि मतगणना के समय, डॉ. मिंजर पुत्र अबरार, भूरा पुत्र यूसुफ और आलम पुत्र नन्हे ने याचिकाकर्ता के साथ मिलीभगत की तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 जावेद के पक्ष में डाले गये सात मत अवैध घोषित किये गये तथा एक मत अन्य श्रेणी में रखा गया। प्रत्यर्थी संख्या 3 जावेद द्वारा सहायक रिटर्निंग अधिकारी/ रिटर्निंग अधिकारी के समक्ष आपत्ति उठाए जाने के बावजूद कुछ नहीं हुआ।

iii) उपरोक्त चुनाव याचिका में, अन्य पक्षकारों को नोटिस जारी किए गए थे और दिनांक 19.05.2023 को अभियोजन के अभाव में उक्त चुनाव याचिका को विहित प्राधिकारी/तहसीलदार द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद दिनांक 26.05.2022 को प्रत्यर्थी संख्या 3 ने रिकॉल आवेदन दायर किया और आदेश दिनांक 01.07.2022 द्वारा, दिनांक 19.05.2022 के आदेश को रिकॉल किया गया और याचिकाकर्ता (चुनाव याचिका में प्रत्यर्थी) को अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष

1 ''अधिनियम, 1947''

लिखित बयान दाखिल करने का निर्देश देते हुए मामले को दिनांक 21.07.2022 के लिए तय किया गया।

iv) याचिकाकर्ता ने अपना लिखित बयान दिनांक 14.12.2022 को दाखिल किया था, जिस पर प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिनांक 06.02.2023 को प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया गया था, उसके बाद मामले को विरचित करने के लिए तारीख तय की गई थी। दिनांक 31.05.2022 को तहसीलदार बिलारी ने नौ मामले तय करके और साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर बंद कर दिया और मामले की अंतिम सुनवाई दिनांक 07.06.2023 को तय की।

v) बाद में, पक्षकारों को बयान और जिरह के लिए उपस्थित होने का अवसर प्रदान किए बिना, दिनांक 20.06.2023 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जिसमें वोटों की पुनर्गणना का निर्देश दिया गया है। इसीलिए वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

<u>प्रारंभिक आपत्ति:</u>

4. प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि मतों की पुनर्गणना के निर्देश देने वाला आदेश 20.06.2023 दिनांकित के विरूद्ध याचिकाकर्ता के पास अधिनियम, 1947 की धारा 12-सी (6) के तहत एक पुनरीक्षण दाखिल करने का वैधानिक उपाय था, इसलिए रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय रिट-सी संख्या 10442/2022 में पारित, दिनांक 13.04.2022 को निर्णीत, श्रीमती मनीता देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 8 अन्य मामले पर अवलम्ब लिया।

5. उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति का उत्तर देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***मोहम्मद मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश जिलाधिकारी, फूलपुर, आज़मगढ़ और अन्य 2007 (7) एडीजे 1*** मामले में इस न्यायालय के फैसले पर अवलम्ब लिया और कहा कि पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित मतों की पुनर्गणना के अंतरिम आदेश के विरूद्ध रिट याचिका सुनवाई योग्य है।

6. प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने मोहम्मद मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश जिलाधिकारी, फूलपुर, आज़मगढ़ और अन्य 2007 (7) एडीजे 1, और अबरार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2004 (5) एडब्ल्यूसी 4088 मामलों में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णयों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया और पाया कि वर्तमान मामले के तथ्य समान हैं, इसलिए प्रारंभिक आपत्ति को यह कहकर अस्वीकार किया जाता है कि विहित प्राधिकारी द्वारा पारित मतों की पुनर्गणना के आदेश के विरूद्ध कोई पुनरीक्षण नहीं है, इसलिए, वर्तमान रिट याचिका विचारणीय है।

<u>गुण-दोष के आधार पर प्रस्तुतीकरण:</u>

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि पुनर्मतगणना के आक्षेपित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि प्रत्येक चुनाव याचिका की सुनवाई सिविल प्रक्रिया संहिता,

1908 (एतस्मिनपश्चात "सी.पी.सी."[2] के रूप में संदर्भित) के तहत लागू प्रक्रिया का पालन करते हुए उप प्रभागीय अधिकारी द्वारा की जानी है। पीठासीन अधिकारी ने कानूनी प्रक्रिया का पालन, जिसे किया जाना चाहिए था, किये बिना चुनाव याचिका पर निर्णय लेने के लिए जल्दबाजी की।

8. विहित प्राधिकारी ने नौ मुद्दे तय किए हैं, हालांकि, बिना कोई साक्ष्य लिए साक्ष्य उपलब्ध कराने का अवसर बंद कर दिया है और मामले को अंतिम सुनवाई के लिए तय कर दिया है। यद्यपि मुद्दों को विरचित किया गया है, लेकिन इसके संबंध में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है और पक्षकारों को बयानों और जिरह के लिए उपस्थित होने का अवसर प्रदान किए बिना, जो सी.पी.सी. के प्रावधान के खिलाफ है, जिसका चुनाव याचिका पर निर्णय लेते समय पालन किया जाना चाहिए।

9. उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने मतगणना एजेंटों की मिलीभगत के संबंध में आपत्ति ली है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में डाले गए 7 मतपत्रों को अवैध घोषित किया गया है, लेकिन इस संबंध में आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है। चुनाव याचिका में केवल त्रुटिपूर्ण और मिथ्याजनित आरोप लगाए गए हैं, इसके समर्थन में कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है।

10. चुनाव याचिका (यहां प्रत्यर्थी संख्या 3) में याचिकाकर्ता द्वारा दी गई शिकायत और साक्ष्य के आधार पर विहित प्राधिकारी ने अभिलिखित किया कि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के बीच 4 मतों का अंतर है और पुनर्मतगणना का निर्देश देने वाला आक्षेपित आदेश पारित किया है, जिसे कानून की नजर में बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

11. उन्होंने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश प्रथम दृष्टया अवैध और मनमाना है और विवेक के प्रयोग न करने पर आधारित है। सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट ने वोटों की पुनर्गणना का आदेश पारित करके कानून की स्पष्ट गलती की है, खासकर तब जब चुनाव याचिकाकर्ता द्वारा शिकायत में लगाए गए आरोपों के संबंध में कोई विवरण या कोई विवरण प्रदान नहीं किया गया है। चुनाव याचिका में किया गया दावा बिल्कुल अस्पष्ट, आधारहीन, निराधार और निंदनीय था और इसमें उन भौतिक तथ्यों और विवरणों का अभाव था जो चुनाव याचिका में किसी भी राहत की मांग के लिए आवश्यक हैं। राम आधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश और अन्य 1985 एडब्ल्यूसी 246 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए उन्होंने कहा कि अधिनियम, 1947 के तहत चुनाव याचिका की सुनवाई करने वाले प्राधिकारी को मतपत्रों पर गौर करने या निरीक्षण का निर्देश देने की अनुमति दी जा सकती है, सिवाय इसके कि जब निम्नलिखित दो शर्तें सह-अस्तित्व में हों: -

"(1) चुनाव को रद्द करने की याचिका में वे आधार शामिल हों

---

2 "सी.पी.सी."

जिन पर प्रत्यर्थी के चुनाव पर सवाल उठाया जा रहा है और साथ ही उन परिस्थितियों का विवरण भी शामिल हो जो ऐसे आधार पर चुनाव पर सवाल उठाए जाने को उचित ठहराते हैं; और

(2) प्रथम दृष्टया, प्राधिकारी उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों के आधार पर संतुष्ट है कि ऐसे आधार के होने पर विश्वास करने का आधार है और पक्षकारों के बीच विवाद का निर्णय करने और पूर्ण न्याय करने के लिए ऐसा निरीक्षण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

12. रिट-सी संख्या 14662/2023 में पारित, दिनांक 01.05.2023 को निर्णीत ***धर्मवती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 13 अन्य*** मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया, और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखनी होगी और पुनर्मतगणना का आदेश पक्षकारों की पसंद के मामले के रूप में पारित नहीं किया जा सकता है और इसमें रखी गई सामग्री का अत्यंत आलोचनात्मक विश्लेषण और चुनावी विवादों पर निर्णय लेने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप होना आवश्यक है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दायर चुनाव याचिका की कार्यवाही के दौरान, नौ मुद्दे तय किए गए थे, हालांकि, आक्षेपित आदेश एक भी मुद्दे पर निर्णय किए बिना पारित किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि केवल चुनाव याचिका में निहित कथनों पर ही विचार किया गया है और चुनाव याचिका के प्रस्तर 8 और 9 में दिए गए विशिष्ट कथनों के संबंध में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है।

14. उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के साथ मिलीभगत के संबंध में पुनर्गणना एजेंटों के खिलाफ लगाए गए आरोप के संबंध में समीक्षा अधिकारी या सहायक समीक्षा अधिकारी के समक्ष कोई लिखित शिकायत नहीं है।

15. उपरोक्त तर्कों की संचयी ताकत के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि मतों की पुनर्गणना के लिए आदेश 20.06.2023 दिनांकित को इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए।

<u>प्रत्यर्थीगणों की ओर से प्रस्तुतीकरण:</u>

16. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा किये गए तर्कों का विरोध किया और कहा कि नौ मुद्दे विरचित किये गए हैं और प्रस्तर में दिए गए विशिष्ट कथनों का विश्लेषण करने के बाद चुनाव याचिका के क्रमांक 9 और 10 में यह सन्दर्भित किया गया था जिसमें उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता के पक्ष में डाले गए 7 वैध वोटों को मतगणना एजेंटों यानी डॉ. मिंजर पुत्र

अबरार, भूरा पुत्र यूसुफ और आलम पुत्र नन्हे की मिलीभगत से अवैध घोषित कर दिया गया था, पुनर्मतगणना का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया है, इसलिए उपरोक्त आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

17. अपने तर्क के समर्थन में, प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने ***पवन सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी/एसडीएम, कुंडा और अन्य 2014 एससीसी ऑनलाइन ऑल 15946, हरमाया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 3332, अतहर हुसैन बनाम राजदा बेगम और अन्य 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 3216, और अमर चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2019 (1) एडीजे 750*** मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर अवलम्ब लिया।

18. उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा उठाई गई आपत्ति पर विहित अधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया और उसे नजरअंदाज कर दिया गया। अभिवचनों एवं लिखित कथन के आधार पर दिनांक 31.05.2023 को पाँच वाद तय किये गये। इस प्रकार उपरोक्त दलीलों पर विचार करने के बाद, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। इसलिए, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, दुर्बलता या कमी नहीं पाई जाती है, इसलिए इस न्यायालय को किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

<u>न्यायालय का अवलोकन:</u>

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से, इस रिट याचिका पर प्रति शपथपत्र की मांग किए बिना इस स्तर पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा रहा है।

19. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

20. इस न्यायालय ने पाया कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम (चुनावी विवादों का निपटारा) नियमावली, 1994[3] के नियम 4 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अधिनियम और इन नियमों के प्रावधानों के अधीन, प्रत्येक चुनाव याचिका की सुनवाई यथासंभव उपखण्ड अधिकारी द्वारा मुकदमों की सुनवाई के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत लागू प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी।

21. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, चुनाव याचिका की सुनवाई उसी तरह की जानी चाहिए जैसे किसी सिविल मुकदमे की सुनवाई सिविल न्यायालय द्वारा की जाती है, यानी कहने का मतलब है कि पक्षकारों की दलीलों के अलावा, मुद्दों को विरचित करना होगा, दस्तावेजी साक्ष्य रखना होगा, गवाहों के बयान दर्ज करने होंगे, उनसे जिरह करनी होगी और उसके बाद, सभी मुद्दों पर अलग-अलग या संयुक्त रूप से निष्कर्ष दर्ज करने के बाद ही चुनाव याचिका पर फैसला किया जा सकता है।

---

3 "नियमावली, 1997"

अनुवादित

22. वर्तमान मामले में, नियम 4 में निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन किया गया है और इस तथ्य के बावजूद कि चुनाव याचिका के विचारण के दौरान 9 मुद्दे विरचित किए गए थे, और इनमें से किसी भी मुद्दे पर निर्णय नहीं लिया गया है और सीधे मतों की पुनर्गणना करने का आदेश पारित कर दिया गया है।

23. इस न्यायालय के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में यह सुस्थापित है कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखी जानी चाहिए और पुनर्मतगणना का आदेश पक्षकारों की पसंद के मामले के रूप में पारित नहीं किया जा सकता है और इसके लिए रखी गई सामग्री का बहुत ही महत्वपूर्ण विश्लेषण और चुनावी विवादों को तय करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार आवश्यक है।

24. भाभी बनाम शिओ गोविंद के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में धारा 100 (1)(डी), 101, 102, 92 और चुनाव संचालन नियमावली, 1963 के दायरे पर विचार करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने कुछ दिशानिर्देश प्रतिपादित किये हैं, जो अनिवार्य थे:-

> *(1) यह कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो पवित्र है और तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर इसका उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए;*
>
> *(2) यह कि निरीक्षण की अनुमति देने से पूर्व, निर्वाचित उम्मीदवार के खिलाफ लगाए गए आरोप स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए और भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित होने चाहिए;*
>
> *(3) यह कि पुनर्मतगणना के लिए लगाए गए आरोपों की सत्यता के संबंध में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर न्यायालय को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए;*
>
> *(4) यह कि न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि निरीक्षण के लिए प्रार्थना स्वीकार करने के लिए पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करना आवश्यक और अनिवार्य है;*
>
> *(5) यह कि न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए ताकि आवेदक को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से पूछताछ में शामिल होने में सक्षम बनाया जा सके; और*
>
> *(6) यह कि किसी दिए गए*

मामले के विशेष तथ्यों पर नमूना निरीक्षण का आदेश पुनर्मतगणना के लिए लगाए गए आरोपों की सत्यता के संबंध में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि को और अधिक आश्वासन देने के लिए दिया जा सकता है, न कि सामग्री निकालने के उद्देश्य से।"

25. एक चुनाव याचिका के निरीक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय धनी प्रसाद बनाम उपखण्ड अधिकारी 1974 ऑल एलजे 371 के मामले में इस न्यायालय में उ.प्र. पंचायत राज अधिनियम की धारा 12-ग के तहत अवधारित किया गया कि:-

"एक बार रिटर्निंग अधिकारी द्वारा वैध मत वाला मतपत्र स्वीकार कर लिया जाता है, तो लौटे हुए उम्मीदवार के पक्ष में यह माना जाता है कि मतपत्र में वैध वोट था। चुनाव अधिकरण रिटर्निंग अधिकारी के निर्णय में हस्तक्षेप करने का हकदार नहीं है, जब तक कि उसके समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जाता है कि रिटर्निंग अधिकारी उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम के नियम 21(ड) के प्रावधानों का पालन करने में विफल रहा, रिटर्निंग अधिकारी द्वारा मतपत्र की स्वीकृति या अस्वीकृति की शुद्धता पर तब तक सवाल नहीं उठाया जा सकता जब तक कि साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जाता है कि अधिकरण संतुष्ट है कि रिटर्निंग अधिकारी मतपत्रों की गणना में अधिनियम के प्रावधानों और नियमों का पालन करने में विफल रहे। चुनाव अधिकरण के पास केवल सामान्य आरोपों पर संपूर्ण मतपत्रों की पुनर्गणना या सामान्य सुरक्षा का आदेश देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। एक चुनाव याचिकाकर्ता को प्रथम दृष्टया मामला बनाने के लिए प्रमुख साक्ष्य बनाने की आवश्यकता होती है और अधिकरण को उसके सामने पेश किए गए साक्ष्य पर स्वयं को संतुष्ट करना होता है कि मतपत्रों के निरीक्षण या सामान्य जांच के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है। ऐसे किसी साक्ष्य या अधिकरण की संतुष्टि के अभाव में कानून के तहत मतपत्र के सामान्य निरीक्षण या जांच का कोई आदेश स्वीकार्य नहीं है।"

26. न्यायालय ने ***एआईआर 1964 एससी 1249: 1964 ऑल एलजे 569, राम सेवक***

यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई, एआईआर 1966 एससी 773, डॉ. जगजीत सिंह बनाम ज्ञानी करतार सिंह, (1969) 2 एससीसी 433: एआईआर 1970 एससी 276, जीतेन्द्र बहादुर सिंह बनाम कृष्ण बिहारी, और (1973) 3 एससीसी 330: एआईआर 1973 एससी 215, सुमित्रा देवी बनाम श्री शिव शंकर प्रसाद यादव मामलों में उच्चतम न्यायालय के पूर्व के निर्णयों पर अवलम्ब लिया।

27. राम आधार सिंह बनाम जिला न्यायाधीश, गाज़ीपुर 1985 के यूपीएलबीईसी 317: 1985 ऑल एलजे 615 मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय से यह मुद्दा अंततः सुलझ गया जिसमें इसे यूपीएलबीईसी के पृष्ठ 326 पर अवधारित किया गया है:-

> *"इससे पहले कि उक्त अधिनियम के तहत चुनाव की सुनवाई करने वाले किसी प्राधिकारी को मतपत्रों की जांच करने या सीधे निरीक्षण करने की अनुमति दी जा सके, निम्नलिखित दो शर्तों का सह-अस्तित्व होना चाहिए;*
>
> *(1) यह कि किसी चुनाव को रद्द करने की याचिका में वह आधार शामिल है जिस पर प्रत्यर्थी के चुनाव पर सवाल उठाया जा रहा है और साथ ही उन परिस्थितियों का सारांश भी शामिल है जो ऐसे आधार पर चुनाव पर सवाल उठाए जाने को उचित ठहराते हैं; और*
>
> *(2) यह कि प्राधिकारी, प्रथम दृष्टया उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों के आधार पर संतुष्ट है कि ऐसे आधार के अस्तित्व पर विश्वास करने का आधार है और पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए विवाद का निर्णय करने के लिए ऐसा निरीक्षण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"*

28. यह तय हो चुका है कि केवल इसके लिए और अस्पष्ट आरोप के आधार पर बिना यह बताए कि मतगणना में कोई विशेष अनियमितता हुई है, पुनर्मतगणना का आदेश पारित नहीं किया जा सकता, और साथ ही यह भी बताया गया है कि यह चुनाव परिणाम को किस प्रकार भौतिक रूप से प्रभावित करेगा। वर्तमान मामले में, चुनाव याचिका के निकाय में, वैध वोटों की अवैध अस्वीकृति के संबंध में अस्पष्ट दावे किए गए हैं जो या तो चुनाव याचिकाकर्ता की जांच में या अन्यथा उपलब्ध अभिलेख के आधार पर प्रमाणित नहीं हैं। पक्षकारों को साक्ष्य पेश करके उचित दलील देनी होगी कि विशेष अनियमितता या अवैधता से चुनाव का परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है। स्थापित कानूनी प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि एक नियम के रूप में, दलीलों पर आधारित राहत नहीं दी जानी चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर अवलम्ब लिया गया, वे वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

29. अधिक विशिष्ट होने के लिए, इस न्यायालय को लगता है कि यह सुस्थापित है कि मतपत्र की गोपनीयता बनाए रखना महत्वपूर्ण है जो पवित्र है और इसे तुच्छ, अस्पष्ट और अनिश्चित आरोपों पर उल्लंघन

करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और निरीक्षण की अनुमति देने से पहले, निर्वाचित उम्मीदवार के विरूद्ध लगाए गए आरोप स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए और भौतिक तथ्यों के पर्याप्त बयानों द्वारा समर्थित होने चाहिए (देखें, भाभी बनाम शिओ गोविंद और अन्य, एआईआर 1975 एससी 2217 और राम सेवक यादव बनाम हुसैन कामिल किदवई और अन्य, एआईआर 1964 एससी 1249)। न्यायालयों को प्रदत्त विवेक का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए कि चुनाव याचिकाकर्ता को चुनाव को शून्य घोषित करने के लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए घूम-घूम कर पूछताछ करने में सक्षम बनाया जा सके।

30. वर्तमान मामले में, विहित प्राधिकारी/तहसीलदार ने अभिलेख पर पर्याप्त आधार या साक्ष्य के बिना केवल घूम-घूम कर पूछताछ करने के आधार पर पुनर्मतगणना के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अस्पष्ट तर्कों पर आधारित हैं और चुनाव याचिकाकर्ता (यहां प्रत्यर्थी संख्या 3) द्वारा प्रस्तुत किसी भी महत्वपूर्ण सामग्री के बिना हैं; इसलिए, आक्षेपित आदेश अवैधता से ग्रस्त है और रद्द किये जाने योग्य है।

31. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.06.2023 को ***अपास्त*** किया जाता है।

32. हालाँकि, यह निर्देशित किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2, यानी विहित प्राधिकारी, दोनों पक्षों को सुनने के बाद, संबंधित अधिनियम और नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, दो महीने की अवधि के भीतर चुनाव याचिका पर इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से, किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन दिए बिना निर्णय ले सकता है।

33. तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ वर्तमान रिट याचिका को अनुमति प्रदान किया जाता है।

34. कार्यालय को इस आदेश की एक प्रति विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता को देने का निर्देश दिया जाता है, जो इस आदेश के अनुपालन के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2, यानी विहित प्राधिकारी/तहसीलदार, बिलारी को तुरंत सूचित करेंगे।

(2023) 8 ILRA 1516

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 30049 वर्ष 2016

के साथ

रिट सी संख्या 30052 वर्ष 2016

दिनेश पाल सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण, आगरा एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विजय कृष्ण अग्निहोत्री, श्री शिखर कौशल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री पीयूष भार्गव

सिविल विधि - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 4-के और 2-ए - संदर्भ - श्रम प्राधिकारियों की शक्तियां - अभिनिर्धारित, दिनांक 29.08.1990 की अधिसूचना के अनुसार, केवल उप श्रम आयुक्त, आगरा क्षेत्र ही संदर्भ देने के लिए सक्षम थे - सहायक श्रम आयुक्त द्वारा किए गए संदर्भ को अधिकार क्षेत्र के बिना माना गया - न्यायाधिकरण ने उस आधार पर संदर्भ को सही रूप से खारिज कर दिया।

अनुचित श्रम व्यवहार - स्थायी कामगार का दर्जा टालने के इरादे से लगातार अल्पकालिक नियुक्ति का दावा - ऐसी दलील संदर्भ के दायरे से परे है जो समाप्ति की वैधता तक सीमित थी - 5वीं अनुसूची की प्रविष्टि संख्या 10 को आकर्षित करने के लिए एक ही तरह से कई कामगारों को रोजगार देने को दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं - नियुक्ति पत्रों में स्पष्ट रूप से विशिष्ट तिथि पर स्वचालित समाप्ति निर्धारित की गई थी - माना गया कि महज अस्थायी रोजगार या कृत्रिम अवकाश 'अनुचित श्रम व्यवहार' को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं जब तक कि सामूहिक इरादा और निरंतरता स्थापित न हो। नजीर - *शंकर भीमराव कदम एवं अन्य बनाम टाटा मोटर्स लिमिटेड में बॉम्बे उच्च न्यायालय का फैसला* लागू नहीं - तथ्यों के आधार पर अलग - बाध्यकारी भी नहीं क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के प्रश्न को खुला रखते हुए विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी। निष्कर्ष - अधिकार क्षेत्र के बिना संदर्भ दिया गया - गुण-दोष के आधार पर भी अनुचित श्रम व्यवहार का दावा स्थापित नहीं - याचिका खारिज।

अभिनिर्धारित : सहायक श्रमायुक्त, जो कि अधिसूचना दिनांक 29.08.1990 के अनुसार सक्षम प्राधिकारी नहीं थे (केवल उप श्रमायुक्त अधिकृत थे) द्वारा उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4-के के तहत किया गया संदर्भ क्षेत्राधिकार के बाहर था - न्यायाधिकरण ने विवाद का निस्तारण करने से सही इनकार कर दिया। यह दावा कि निश्चित अवधि का रोजगार स्थायी स्थिति से इनकार करने के लिए एक छलावरण था, संदर्भ के दायरे से बाहर है, जो समाप्ति की वैधता तक सीमित था। श्रम न्यायालय/न्यायाधिकरण संदर्भ से परे नहीं जा सकता। यह साबित करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं थी कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की पांचवीं अनुसूची की मद संख्या 10 में परिभाषित अनुचित श्रम प्रथाओं को नियोक्ता द्वारा अपनाया गया था। केवल निश्चित अवधि के नियुक्ति पत्र जारी करने से अनुचित श्रम प्रथाओं को स्वचालित रूप से स्थापित नहीं किया जाता है जब तक कि सामूहिक साक्ष्य और निरंतरता द्वारा समर्थित न हो। *शंकर भीमराव कदम मामले* में बॉम्बे उच्च न्यायालय का निर्णय तथ्यात्मक रूप से अलग था और बाध्यकारी नहीं था, खासकर इसलिए क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के प्रश्न को खुला रखते

हुए इसके विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) खारिज कर दी थी । न्यायाधिकरण द्वारा संदर्भ को खारिज करने का निर्णय वैध और वैध पाया गया। रिट याचिका में कोई दम नहीं था और तदनुसार उसे खारिज कर दिया गया।

<u>संदर्भित महत्वपूर्ण वाद</u> :

1. मेसर्स हेंज इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण एवं अन्य, रिट-सी संख्या 52182/2011

2. शंकर भीमराव कदम बनाम टाटा मोटर्स लिमिटेड, रिट याचिका संख्या 5588/2017 (बॉम्बे हाईकोर्ट)

3. भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड (2014) 11 एससीसी 85

4. मुकुंद लिमिटेड बनाम मुकुंद स्टाफ एंड ऑफिसर्स एसोसिएशन, (2004) 10 एससीसी 46

5. टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य, (2014) 1 एससीसी 536

6. हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड बनाम औद्योगिक न्यायाधिकरण IV, न्यू आगरा, 2007 (115) एफएलआर 76

7. बजाज ऑटो लिमिटेड बनाम आरपी सावंत, 2000 (84) एफएलआर 524

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा पारित)

1. रिट-सी संख्या 30049/2016 में दलीलें सुनी गईं और 16.05.2023 को फैसला सुरक्षित रखा गया, जबकि रिट-सी संख्या 30052/2016 में दलीलें 18.05.2023 को सुनी गईं और उसी दिन फैसला सुरक्षित रखा गया। तथ्य यह है कि बाद में सुनी गई रिट याचिका में शामिल विवाद पहले सुनी गई रिट याचिका के समान था।

2. दोनों विद्वान अधिवक्ता संयुक्त रूप से इस बात पर सहमत हैं कि दोनों रिट याचिकाओं में बिल्कुल समान प्रश्न शामिल हैं और यहां तक कि दोनों विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए नोट्स और केस लॉ भी, उनके अनुसार, दोनों प्रकरण के विवाद को कवर करेंगे। इसलिए, दोनों रिट याचिकाओं पर एक ही निर्णय द्वारा निर्णय लिया जा रहा है। सुविधा के लिए, रिट-सी संख्या 30049/2016 को अग्रणी प्रकरण अभिनिर्धारित किया जा रहा है।

3. यह याचिका, औद्योगिक न्यायाधिकरण (4), उत्तर प्रदेश, आगरा के पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 05.05.2016 को नोटिस बोर्ड पर प्रकाशित दिनांक 10.09.2015 के आक्षेपित अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 को आदेश दिया गया है कि वह याचिकाकर्ता को क्लर्क ग्रेड-III के पद पर 50% बकाया वेतन के साथ बहाल करे और भविष्य में जब भी देय हो, कानून के अनुसार वेतन का भुगतान करे।

रिट याचिका

4. प्रकरण के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 3 (जिसे आगे कंपनी कहा जाएगा) ने याचिकाकर्ता को 01.06.1994 को अस्थायी क्लर्क ग्रेड-III के पद पर नियुक्त किया और याचिकाकर्ता के अनुसार, उसे 07.01.1995 तक, लगभग 221 दिनों की अवधि के लिए काम करने की अनुमति दी गई, जिसके बाद उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं। याचिकाकर्ता को उसी पद पर 16.06.1995 को फिर से नियुक्त किया गया और यह नियुक्ति 07.01.1996 को समाप्त हो गई, यानी उसे 206 दिनों की अवधि के लिए काम करने की अनुमति दी गई। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 08.02.2000 तक लगातार चार वर्षों तक उसी पैटर्न पर फिर से काम पर रखा गया, कार्यमुक्त किया गया और फिर से नियुक्त किया गया। याचिकाकर्ता का प्रकरण यह है कि सेवा में कृत्रिम विराम बनाए गए ताकि वह लगातार 240 दिन की नौकरी पूरी न कर सके और कंपनी का इरादा उसे उसके वैधानिक अधिकारों और लाभों से वंचित करना था। याचिकाकर्ता ने अपनी व्यस्तताओं का विवरण इस प्रकार दिया है:

"01.06.1994 से 07.01.1995 (221 दिन)
16.06.1995 से 07.01.1996 ((206 दिन)
14.04.1997 से 22.11.1997 तक (223 दिन)
08.07.1998 से 07.02.1999 (215 दिन)
08.07.1999 से 07.02.2000 (215 दिन)"

5. याचिकाकर्ता का प्रकरण यह है कि कंपनी इस तथ्य से अवगत थी कि यदि याचिकाकर्ता एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे कर लेता है, तो उसे एक स्थायी कर्मचारी का दर्जा प्राप्त होगा और कंपनी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जिसे आगे अधिनियम, 1947 कहा जाएगा) के प्रावधानों के अनुसार उसे सेवाओं में स्थायी करने के लिए बाध्य होगी।

6. याचिकाकर्ता का पूरा प्रकरण, रिट याचिका के अनुसार और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए विस्तृत तर्कों के अनुसार, यह है कि कंपनी ने धारा 2 (आरए) के तहत परिभाषित "अनुचित श्रम प्रथाओं" को अपनाया है, जिसका अर्थ है 5वीं अनुसूची में निर्दिष्ट कोई भी प्रथा। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया और वर्तमान प्रकरण में 5वीं अनुसूची में निहित प्रविष्टि संख्या 10 को आकर्षित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

> *"10. आकस्मिक या अस्थायी रूप से नियोजित करना और उन्हें वर्षों तक इसी रूप में बनाए रखना, जिसका उद्देश्य उन्हें स्थायी कामगारों की स्थिति और विशेषाधिकारों से वंचित करना है।"*

7. याचिकाकर्ता का प्रकरण यह है कि उसकी सेवाएं 08.02.2000 को समाप्त कर दी गई थी, जिसके बाद उसने अधिकारियों को शिकायत की लेकिन पुन: नियुक्ति/पुनर्नियोजन पाने के अपने प्रयास में असफल होने पर, प्रकरण यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत अधिकारियों के समक्ष उठाया गया और अंततः, प्रकरण औद्योगिक

न्यायाधिकरण, चतुर्थ, आगरा को भेजा गया जहां इसे 2006 के न्याय निर्णयन प्रकरण संख्या 2 के रूप में पंजीकृत किया गया। पक्षों के प्रकरण पर विचार करने के बाद, न्यायाधिकरण ने 10.09.2015 के विवादित निर्णय द्वारा न्याय निर्णयन प्रकरण को खारिज कर दिया।

8. याचिकाकर्ता का कहना है कि न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं दिया है, जबकि समान परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण संख्या 2/2000 के अंतर्गत आने वाले एक अन्य कर्मचारी, अर्थात् प्रभात कुमार को दिनांक 28.02.2011 के निर्णय के तहत बकाया वेतन और बकाया राशि के साथ बहाल किया गया था।

<u>जवाबी हलफनामे में बचाव</u>

9. प्रत्यर्थी कंपनी की ओर से एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है जिसमें यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता को काम की अनिवार्यताओं के कारण निश्चित अवधि और छोटी अवधि के लिए अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था, जब भी कंपनी को उसकी सेवाओं की आवश्यकता होती थी और तदनुसार, सेवाओं को समय पर विस्तार दिया जाता था। इसके अलावा बचाव पक्ष यह है कि याचिकाकर्ता ने कभी भी एक वर्ष या 240 दिन की निरंतर सेवा पूरी नहीं की और इसलिए वह किसी भी राहत का हकदार नहीं था।

10. प्रभात कुमार के प्रकरण पर आधारित तर्क के संबंध में, कंपनी का बचाव यह है कि न्याय निर्णयन प्रकरण संख्या 2/2000 में पारित अधिनिर्णय अवैध, विकृत और अधिकार क्षेत्र से बाहर था और इसे उच्च न्यायालय ने रिट-सी संख्या 52182/2011 (मेसर्स हेंज इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य) में पारित दिनांक 23.01.2017 के अपने निर्णय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया है कि किया गया संदर्भ दिनांक 29.08.1990 की अधिसूचना के विपरीत था जिसके तहत केवल उप श्रमायुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा को संदर्भ देने की शक्ति और क्षमता थी, जबकि प्रभात कुमार के प्रकरण में, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में भी, सहायक आयुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा द्वारा संदर्भ दिया गया था। प्रत्यर्थी का आगे का बचाव यह है कि इस न्यायालय ने, दिनांक 23.01.2017 के उपरोक्त आदेश द्वारा, अधिकारी की योग्यता से संबंधित ऐसी आपत्ति पर निर्धारित समय के भीतर विचार करने के लिए प्रकरण को न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया था और रिमांड आदेश के अनुसरण में औद्योगिक न्यायाधिकरण ने दिनांक 13.04.2017 के आदेश द्वारा संदर्भ को यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि सहायक श्रम आयुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा को प्रकरण को संदर्भित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।

<u>प्रत्युत्तर शपथपत्र</u>

11. याचिकाकर्ता द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियंत्रित करने वाले विभिन्न नियुक्ति पत्रों के साथ-साथ विस्तार पत्र भी संलग्न हैं और इस बात पर जोर दिया गया है

कि कंपनी ने याचिकाकर्ता की सेवाओं के साथ दुर्भावनापूर्ण तरीके से व्यवहार किया है और उसे बार-बार काम पर रखा और हटाया है ताकि वह अधिनियम के तहत लाभों से वंचित हो सके। रिट-सी संख्या 52182/2011 में इस न्यायालय के आदेश के संबंध में, यह दलील दी गई है कि उक्त आदेश केवल क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि के आधार पर पारित किया गया था और संबंधित कर्मचारी को विवाद के परिणाम के बाद फिर से उच्च न्यायालय जाने की अनुमति दी गई थी। हालांकि दलील नहीं दी गई, लेकिन सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रभात कुमार ने पहले ही इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 13.04.2017 के आदेश को चुनौती दी है और इस आशय की रिट याचिका लंबित है।

12. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिखर कौशल, राज्य-प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी कंपनी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पीयूष भार्गव को सुना है।

<u>याचिकाकर्ता का प्रकरण और तर्क</u>

13. संक्षेप में, श्री कौशल का तर्क यह है कि कंपनी की कार्रवाई स्पष्ट रूप से 1947 के अधिनियम की धारा 2 (आरए) के तहत परिभाषित "अनुचित श्रम प्रथाओं" के अर्थ और अर्थ के अंतर्गत आती है, क्योंकि याचिकाकर्ता को अल्प अवधि के लिए अस्थायी रूप से नियुक्त करने का उद्देश्य उसे स्थायी कर्मचारी की स्थिति और विशेषाधिकारों से वंचित करना था और न्यायाधिकरण ने इस पहलू पर विचार नहीं किया है, बल्कि केवल इस आधार पर न्यायाधिकरण के प्रकरण को खारिज कर दिया है कि याचिकाकर्ता को समय-समय पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था और उसने 1947 के अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए 240 दिन पूरे नहीं किए।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका संख्या 5588/2017 (शंकर भीमराव कदम एवं अन्य बनाम टाटा मोटर्स लिमिटेड) (जिसे आगे बॉम्बे उच्च न्यायालय का प्रकरण कहा जाएगा) से जुड़ी रिट याचिकाओं के समूह में बॉम्बे उच्च न्यायालय के 26.02.2022 के फैसले पर बहुत मजबूत भरोसा जताया है और तर्क दिया है कि उक्त प्रकरण में भी संबंधित याचिकाकर्ताओं की अल्पकालिक नियुक्ति को "अनुचित श्रम अभ्यास" अभिनिर्धारित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि बॉम्बे उच्च न्यायालय के प्रकरण में भी संबंधित कर्मचारियों को समान नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे, जिसमें दर्शाया गया था कि उन्हें 225 दिन, 236 दिन, 237 दिन, 238 दिन आदि के लिए नियुक्त किया गया था और टाटा मोटर्स लिमिटेड ने किसी भी कर्मचारी को 240 दिन पूरे करने की अनुमति नहीं दी थी और इसलिए, 1947 अधिनियम के प्रावधानों के व्यापक विश्लेषण के बाद, टाटा मोटर्स लिमिटेड की कार्रवाई की निंदा की गई और संबंधित याचिकाकर्ताओं को उनकी सेवाओं के बदले में मुआवजा दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 52 और 58 का हवाला दिया है, जिन्हें नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"52. मैंने इन प्रकरण में श्रम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए संपूर्ण मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन किया है और उसके विश्लेषण के बाद, मैं इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि सैकड़ों प्रकरण में, वर्तमान प्रत्यर्थी ने यह प्रस्तुत करके एक हास्यास्पद तस्वीर बनाई है कि अस्थायी कर्मचारियों को आवंटित कार्य केवल अधिकतम 7 महीने की सीमा तक ही सीमित था। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अस्थायी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए समर्पित विभाग ने स्पष्ट रूप से इन याचिकाकर्ताओं के रोजगार की अवधि पर कड़ी नजर रखी और बालू बापूजी शेलके जैसे प्रकरण में, जिन्होंने अपने पहले दौर में 232 दिन और अपने तीसरे दौर में 238 दिन काम किया था, उनकी सेवा अचानक रोक दी गई और उन्हें काम से हटा दिया गया। वह लगभग 240 दिनों के आंकड़े तक पहुंच गया था और 238 दिन पूरे करने के बाद उसे बाहर निकाल दिया गया। यह दर्शाता है कि प्रत्यर्थी-प्रबंधन ने यह साबित करने के इरादे से आंखों में धूल झोंकी और कागजी कार्रवाई की है कि किसी भी कर्मचारी ने 240 दिन पूरे नहीं किए हैं। यहां तक कि सुनील प्रहलाद के प्रकरण में भी खोमाने (पूर्वोक्त), इस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने अपने समक्ष प्रस्तुत समस्त साक्ष्यों का विश्लेषण करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला कि कंपनी ने स्पष्ट रूप से धारा 2 (ओओ)(बीबी) का दुरुपयोग किया है। मेरे और मेरे सम्मानित भाई सुनील (पूर्वोक्त) द्वारा बताए गए कारणों से, मैं पाता हूँ कि उक्त निष्कर्ष उचित था और इन सभी प्रकरण में धारा 2 (ओओ)(बीबी) लागू नहीं होगी। अन्यथा मानना धारा 2(ओओ)(बीबी) का मखौल उड़ाना होगा।

58. इन अस्थायी कर्मचारियों के अस्थायी नियोजन के विभिन्न दौरों से यह अनदेखा नहीं किया जा सकता कि एक बार काम से अलग होने के बाद वे अगले नियुक्ति आदेश की प्रतीक्षा करते थे। जैसी कि उम्मीद थी, उन्हें ऐसे नियुक्ति आदेश मिलते थे। वे न केवल नियुक्ति आदेश में उल्लिखित कार्यकाल पूरा होने तक बल्कि अस्थायी नियोजन के एक ही कार्यकाल में 225 दिनों से 238 दिनों के बीच की अवधि तक भी अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। ऐसे प्रकरण में किसी भी अस्थायी कर्मचारी को कभी भी नियुक्ति आदेश नहीं मिला कि कोई विशेष अस्थायी कर्मचारी 238 दिन या 236 दिन आदि काम करेगा। अधिकतम कार्यकाल 7 महीने के लिए नियुक्ति थी। महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड, नागपुर (पूर्वोक्त) में यह पैटर्न नहीं अपनाया गया था, क्योंकि इस प्रकरण में इस न्यायालय ने पाया कि कर्मचारी अपने काम से अलग होने के दौरान अन्य कारखानों में काम करते

थे और वास्तव में लगभग 9 से 23 साल बाद औद्योगिक न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।"

15. यह भी तर्क दिया गया है कि बॉम्बे उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.11.2022 के अपने आदेश द्वारा टाटा मोटर्स लिमिटेड द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करते हुए बरकरार रखा है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **भुवनेश कुमार द्विवेदी बनाम हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड: (2014) 11 एससीसी 85** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें पैराग्राफ 26.1, 28, 28.1 और 28.2 का विशेष संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

"26.1 सबसे पहले, यूपी स्टेट शुगर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम ओम प्रकाश उपाध्याय, (2002) 10 एससीसी 89 के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांत के प्रकाश में, यूपीआईडी अधिनियम के प्रावधान औद्योगिक विवाद (संशोधन और प्रकीर्ण प्रावधान) अधिनियम, 1956 की धारा 31 के प्रावधान के कारण आईडी अधिनियम के प्रावधान से अप्रभावित रहते हैं। इसलिए, वर्तमान प्रकरण में धारा 2 (ओओ) (बीबी) लागू नहीं होती है।

28. प्रत्यर्थी ने अपीलकर्ता के प्रति अपने आचरण को कम करने के लिए दावा किया है कि अपीलकर्ता को केवल अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया था, और उसकी सेवा को आईडी अधिनियम की धारा 2 (ओओ) (बीबी) के तहत स्वीकार्य तरीके से समाप्त कर दिया गया है। हालाँकि, हम निम्नलिखित कारणों से प्रत्यर्थी के इस तर्क को स्वीकार नहीं करेंगे: -

28.1 सबसे पहले, प्रत्यर्थी ने श्रम न्यायालय के समक्ष कोई भी ऐसा ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, जिससे यह साबित हो सके कि वह अनुबंध श्रम (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम, 1970 के तहत सभी आवश्यक मानदंडों को पूरा करता है, ताकि वह अनुबंध के आधार पर कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए पात्र हो सके, जिसमें लाइसेंस संख्या आदि शामिल हैं।

28.2 दूसरे, प्रत्यर्थी श्रम न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर कोई भी ऐसा ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका, जिससे यह पता चले कि अपीलकर्ता किसी विशेष परियोजना के लिए नियोजित था, जिसके पूरा होने पर उसके रोजगार अनुबंध का नवीनीकरण न करके उसकी सेवा समाप्त कर दी गई हो।"

16. विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त निर्णय के आधार पर तर्क दिया है कि कंपनी द्वारा यह बचाव किया गया कि याचिकाकर्ता को काम की अनिवार्यता के आधार पर नियुक्त किया गया था, जो उपरोक्त प्रकरण में भी लिया गया था,

हालांकि, इसे बॉम्बे उच्च न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय ने भी खारिज कर दिया था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि कंपनी का यह आरोप कि याचिकाकर्ता को हर साल फिर से काम पर रखा जाता था, क्योंकि उसकी सेवाएँ अस्थायी प्रकृति की थीं और यह एक नई नियुक्ति थी, गलत है क्योंकि याचिकाकर्ता का कर्मचारी कोड, बैज संख्या आदि कभी नहीं बदला गया था और इसलिए, यह नई नियुक्ति का प्रकरण नहीं था।

17. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि सहायक श्रम आयुक्त द्वारा किया गया संदर्भ बुरा नहीं था, क्योंकि उन्हें उप श्रम आयुक्त, आगर क्षेत्र, आगरा द्वारा शक्तियां सौंपी जा सकती थीं।

<u>प्रत्यर्थी-कंपनी के तर्क</u>

18. प्रत्यर्थी कंपनी के विद्वान अधिवक्ता सर पीयूष भार्गव ने रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया है और तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण ने इस तथ्य का पता लगाया है कि याचिकाकर्ता ने कभी भी 240 दिन काम नहीं किया और नियुक्ति निश्चित अवधि के लिए थी। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि नियुक्ति कार्य की अनिवार्यता पर आधारित थी और "अनुचित श्रम प्रथाओं" का तर्क न केवल तथ्यात्मक रूप से गलत है बल्कि संदर्भ के दायरे से भी बाहर है क्योंकि संदर्भ "अनुचित श्रम प्रथाओं" के बिंदु पर नहीं किया गया था, लेकिन औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा तय किया जाने वाला प्रश्न यह था कि क्या याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति कानून के अनुसार थी और यदि नहीं, तो याचिकाकर्ता किस राहत/मुआवजे का हकदार था। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता किसी राहत का दावा नहीं कर सकता क्योंकि क्षेत्राधिकार के अभाव में संदर्भ ही गलत था जैसा कि इस न्यायालय ने संबंधित अधिसूचना का विश्लेषण करने के बाद रिट-सी संख्या 52182/2011 में प्रभात कुमार के प्रकरण में पहले ही अभिनिर्धारित किया है और वर्तमान प्रकरण में भी बिल्कुल यही स्थिति है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता ने जितनी भी अवधि काम किया, उसे पारिश्रमिक का भुगतान किया गया और इसलिए कंपनी ने कोई गलत काम नहीं किया है। आगे तर्क यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा की गई 5वीं अनुसूची के खंड-10 द्वारा कवर किए गए "अनुचित श्रम प्रथाओं" के लिए, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि संबंधित कामगारों को बैडली , कैजुअल या अस्थायी के रूप में नियोजित किया गया था और उन्हें स्थायी कामगारों के दर्जे और विशेषाधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से वर्षों तक ऐसे ही रखा गया, हालांकि, वर्तमान प्रकरण में ऐसी कोई परिस्थिति मौजूद नहीं उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रत्येक नियुक्ति स्वतंत्र प्रकृति की थी और जब भी नियुक्ति पत्र के तहत निर्धारित शर्तों की समाप्ति के बाद सेवाएं स्वतः समाप्त हो गईं, तो याचिकाकर्ता ने कभी भी किसी कथित अधिकार के लिए आंदोलन नहीं किया और न ही प्राधिकारियों या न्यायालय के समक्ष कोई दावा किया, हालांकि नई नियुक्तियों में छह महीने और उससे अधिक का अंतराल था।

19. कथित प्रत्यायोजित शक्तियों पर याचिकाकर्ता के तर्क के संबंध में, श्री भार्गव ने तर्क दिया कि उप श्रम आयुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा स्वयं राज्य सरकार द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे और यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक प्रत्यायोजित व्यक्ति अपने ऊपर प्रत्यायोजित शक्तियों को आगे नहीं प्रत्यायोजित कर सकता है।

<u>प्रतिद्वंदी विवादों का विश्लेषण</u>

20. इस प्रकरण के कई पहलू हैं। एक पहलू सहायक श्रम आयुक्त द्वारा दिए गए संदर्भ की वैधता का है, जिस पहलू पर इस न्यायालय ने रिट-सी संख्या 52182/2011 में पारित अपने आदेश दिनांक 23.01.2017 में पहले ही विचार कर लिया है, जिसमें निम्नलिखित अधिसूचना और अनुसूची पर विचार किया गया था:-

"[263] श्रम अनुभाग-2, अधिसूचना संख्या 2513 (III) XXXVI-2-155 (SM)-90, दिनांक 29 अगस्त, 1990, जो कि उत्तर प्रदेश राजपत्र, अतिरिक्त, भाग खण्ड (खा), दिनांक 29 अगस्त, 1990, पृ. 2-3 में प्रकाशित हुआ, का अंग्रेजी अनुवाद

उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 28, 1947) की धारा 11-ए के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल यह निर्देश देते हैं कि उक्त अधिनियम की धारा 2-ए के तहत किसी व्यक्तिगत कामगार की बर्खास्तगी, छंटनी या सेवाओं की समाप्ति से संबंधित विवादों के संबंध में उक्त अधिनियम की धारा 4-के के तहत राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियां, नीचे दी गई अनुसूची के कॉलम 3 में उनके नाम के सामने उल्लिखित क्षेत्र के भीतर कॉलम 2 में उल्लिखित अधिकारियों द्वारा भी प्रयोग की जा सकेंगी:

अनुसूची

क्रमांक	*अधिकारी का नाम*	*अधिकारी क्षेत्र*
1.	*अतिरिक्त श्रम आयुक्त, मुख्यालय*	*संपूर्ण राज्य*
2.	*अपर/उप श्रम आयुक्त, कानपुर क्षेत्र, कानपुर*	*कानपुर (नगर), कानपुर (देहात), इटावा, फर्रुखाबाद और उन्नाव जिले*
3.	*उप श्रम आयुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा*	*आगरा, फिरोजाबाद, अलीगढ, एटा, मैनपुरी और मथुरा जिले*
4.	*उप श्रम आयुक्त, इलाहाबाद क्षेत्र, इलाहाबाद*	*इलाहबाद, प्रतापगढ़ और फ़तेहपुर जिले*
5.	*उपश्रमायुक्त, कुमाऊँ क्षेत्र, हलद्वानी (नैनीताल)*	*नैनीताल, अल्मोडा और पिथौरागढ जिले*
6.	*उप श्रम आयुक्त, गढ़वाल क्षेत्र, देहरादून*	*देहरादून, चमोली, गढ़वाल (पौड़ी), टेहरी गढ़वाल और उत्तर काशी जिले*
7.	*अपर/उप श्रम आयुक्त, गाजियाबाद क्षेत्र,*	*बुलंदशहर और गाजियाबाद जिले*

	गाजियाबाद	
8.	*उप श्रमायुक्त, गोरखपुर क्षेत्र, गोरखपुर*	*गोरखपुर, बस्ती, सिद्धार्थनगर, देवरिया , आज़मगढ़, मऊ और महराजगंज जिले*
9.	*उप श्रम आयुक्त, झांसी क्षेत्र, झांसी*	*झाँसी, ललितपुर, बांदा, हमीरपुर और जालुआँ जिले*
10.	*उप श्रम आयुक्त, बरेली क्षेत्र, बरेली*	*बरेली, बदायूँ , पीलीभीत और शाहजहाँपुर जिले*
11.	*उप श्रम आयुक्त, मेरठ क्षेत्र, मेरठ*	*मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और हरिद्वार जिले*
12.	*उप श्रम आयुक्त, मुरादाबाद क्षेत्र, मुरादाबाद*	*मुरादाबाद, रामपुर और बिजनोर जिले*
13.	*उप श्रमायुक्त, मिर्जापुर क्षेत्र, पिपरी*	*मिर्ज़ापुर और सोनभद्र जिले*
14.	*उप श्रम आयुक्त, फैजाबाद क्षेत्र, फैजाबाद*	*फैजाबाद, बहराइच, बाराबंकी,गोंडा और सुल्तानपुर जिले*
15.	*उप श्रम आयुक्त, लखनऊ क्षेत्र, लखनऊ*	*लखनऊ,हरदोई,खीरी,रायबरेली और सीतापुर जिले*
16.	*अपर/उप श्रम आयुक्त, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी*	*वाराणसी, ग़ाज़ीपुर, बलिया और जौनपुर जिले।*

21. इसलिए, यह स्पष्ट है कि यह उप श्रम आयुक्त, आगरा क्षेत्र, आगरा ही था जो संदर्भ देने के लिए सक्षम था और, इसलिए, सहायक श्रम आयुक्त द्वारा किया गया संदर्भ क्षेत्राधिकार के बिना पाया गया और भले ही प्रकरण उपरोक्त प्रभाव के आपत्ति से निपटने के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया गया था, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने प्रभात कुमार के प्रकरण में पारित अपने आदेश दिनांक 13.04.2017 द्वारा अभिनिर्धारित किया कि सहायक श्रम आयुक्त के पास संदर्भ देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था।

22. हालांकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 13.04.2017 के आदेश के खिलाफ प्रभात कुमार द्वारा दायर रिट याचिका अभी भी लंबित है, रिट याचिका के लंबित रहने मात्र से न्यायालय पर सहायक श्रम आयुक्त द्वारा किए गए संदर्भ की वैधता का प्रभाव नहीं पड़ता है और मैं प्रभात कुमार के प्रकरण में अपने फैसले में इस न्यायालय द्वारा या रिमांड के बाद न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए निर्णय से भिन्न दृष्टिकोण रखने के लिए इच्छुक नहीं हूं, क्योंकि न्यायालय के समक्ष संदर्भ के क्षेत्राधिकार से बाहर होने के उपरोक्त निष्कर्ष के विपरीत कोई राय बनाने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है।

23. मुझे यह भी पता चला कि कंपनी ने औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष दिनांक 02.01.2008 को दायर अपने लिखित बयान में एक विशिष्ट दलील दी थी कि श्री एसपी शुक्ला द्वारा सहायक श्रम आयुक्त, अलीगढ़ के रूप में किया गया संदर्भ अधिकार क्षेत्र और बिना किसी प्राधिकरण के था और इसलिए न्यायाधिकरण प्रकरण को आगे नहीं बढ़ा सकता था। तत्काल संदर्भ के लिए, उक्त

लिखित बयान के पैराग्राफ संख्या 24 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है :-

> *"24. यह संदर्भ श्री एसपी शुक्ला द्वारा डीएलसी, अलीगढ़ के रूप में जीओ 2513 दिनांक 29.08.1990 के तहत शक्तियों के प्रयोग में किया गया है, जबकि डीएलसी, अलीगढ़ उनमें से एक नहीं है और उक्त प्रयोग अधिकार क्षेत्र और बिना किसी प्राधिकरण के है और यह न्यायाधिकरण प्रकरण को आगे नहीं बढ़ा सकता है।*

24. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान प्रकरण में संदर्भ बनाने की शक्ति के संबंध में क्षेत्राधिकार संबंधी पहलू के संबंध में प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता की दलील का कड़ा विरोध किया है और उन्होंने इस संबंध में निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा जताया है:-

(i) एचआर शुगर फैक्ट्री बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1996 एससीसी ऑनलाइन सभी 793;

(ii) स्वदेशी पॉलीटेक्स लिमिटेड, श्रम न्यायालय, यूपी, 1992 एससीसी ऑनलाइन सभी 558;

(iii) लक्ष्मीबाई बनाम भगवंतबुआ , (2013) 4 एससीसी 97;

(iv) सरदार अमरजीत सिंह कालरा, बनाम। प्रमोद गुप्ता, (2003) 3 एससीसी 272।

25. उपर्युक्त अधिकारियों पर भरोसा करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम विवादों को शीघ्रता से हल करने के लिए है और परिधीय मुद्दों के निर्णय के लिए एक कर्मचारी को एक न्यायालय से दूसरी न्यायालय में घसीटने की प्रथा, अधिक महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय को टालना एक निंदनीय दृष्टिकोण होगा। यह भी तर्क दिया गया है कि नियोक्ता द्वारा प्रारंभिक आपत्तियां लेना एक फैशन बन गया है और वास्तविक विवादों पर निर्णय को वर्षों और कभी-कभी दशकों तक विलंबित करना अधिनियम, 1947 की भावना के विपरीत होगा और, इसलिए, संदर्भ की कथित अक्षमता के बारे में प्रत्यर्थी-कंपनी की दलील को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

26. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की उपरोक्त दलीलों पर विचार किया है, तथापि, मैं इसे इस साधारण कारण से स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हूं कि सहायक श्रम आयुक्त, आगरा की संदर्भ देने की क्षमता वर्तमान प्रकरण में महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से, जब यह पहले ही इस न्यायालय के समक्ष उठाया जा चुका है और रिट-सी संख्या 52182/2011 में पारित दिनांक 23.01.2017 के आदेश में निपटाया जा चुका है और उसके बाद, न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 13.04.2017 के आदेश में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उपरोक्त अधिकारी के पास संदर्भ देने का कोई अधिकार नहीं है।

27. इस याचिका में निर्णय केवल इसी बिन्दु पर समाप्त हो सकता है कि सहायक श्रम

आयुक्त को विवाद को संदर्भित करने का कोई अधिकार नहीं था, तथापि, चूंकि गुण-दोष पर बहस विस्तार से सुनी गई है और न्यायालय को लगता है कि इस पर विचार करना आवश्यक है, इसलिए मैं प्रकरण के अन्य पहलुओं पर भी दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करना चाहता हूं।

<u>संदर्भ का दायरा</u>

28. संदर्भ के अवलोकन से पता चलता है कि यह इस आशय का प्रकरण था कि क्या याचिकाकर्ता की सेवाओं की समाप्ति कानून के अनुसार थी और यदि नहीं, तो याचिकाकर्ता किस राहत/मुआवजे का हकदार था। प्रत्यर्थी-कंपनी द्वारा कथित रूप से अपनाई गई "अनुचित श्रम प्रथाओं" के संबंध में कोई संदर्भ नहीं दिया गया था।

29. इस संबंध में, प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने ***मुकुंद लिमिटेड बनाम मुकुंद स्टाफ एंड ऑफिसर्स एसोसिएशन, (2004) 10 एससीसी 46*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संदर्भ के आदेश द्वारा संदर्भित विवाद केवल अपीलकर्ता-कंपनी द्वारा नियोजित कामगारों के संबंध में है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि न्यायाधिकरण, संदर्भ का एक अंग होने के नाते, उन प्रकरण पर निर्णय नहीं ले सकता है जो संदर्भ के आदेश द्वारा वास्तव में संदर्भित विवाद के दायरे में नहीं आते हैं। वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण उन कर्मचारियों के वेतन के मुद्दों पर निर्णय नहीं ले सकता था जो अधिनियम के तहत कामगार नहीं हैं और न ही वह अपने अधिनिर्णय द्वारा ऐसे कर्मचारियों को कवर कर सकता था।

30. ***टेल्को कॉन्वॉय ड्राइवर्स मजदूर संघ और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1989) 3 एससीसी 271*** के प्रकरण पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें समान अनुपात निर्धारित किया गया है। ***मेसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य और अन्य, (2014) 1 एससीसी 536*** के प्रकरण में भी समान अनुपात निर्धारित किया गया है।

31. इसी प्रकार का दृष्टिकोण दिल्ली उच्च न्यायालय ने ***सिविल रिट संख्या 1109/1995, ईगल फैशन बनाम सचिव (श्रम) एवं अन्य*** के प्रकरण में निर्णय देते समय लिया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां रोजगार और समाप्ति का तथ्य ही विवाद में था, वहां रोजगार और उसकी समाप्ति को मानकर संदर्भ तैयार नहीं किया जा सकता था।

32. उपरोक्त निर्णयों पर इस न्यायालय ने रिट-सी संख्या 14416/1998 (मैलोयस इंडिया आगरा बनाम पीठासीन अधिकारी श्रम न्यायालय आगरा व अन्य) में पारित अपने दिनांक 14.03.2019 के निर्णय में भरोसा किया है।

33. ***राजेंद्र प्रसाद मिश्रा बनाम भारत संघ और अन्य (सिविल विविध रिट याचिका संख्या 5714/2009, दिनांक 03.02.2009 को निर्णीत)*** के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित

किया गया है कि संदर्भ का दायरा उठाई गई दलील की प्रकृति से भिन्न था और इसलिए यह मुख्य विवाद के लिए अप्रासंगिक था।

34. प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने ***के. मणिकम बनाम प्रबंधन, तमिलनाडु विद्युत बोर्ड और अन्य (रिट याचिका संख्या 21278 से 21280/2018, दिनांक 14.10.2022 को निर्णीत): 2023 एलएलआर 66*** के प्रकरण में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम, 1947 की धारा 2ए का दायरा केवल यह देखने तक सीमित है कि क्या बर्खास्तगी, सेवा समाप्ति या छंटनी न्यायसंगत और वैध है और इसका दायरा नियमितीकरण और स्थायी अवशोषण सहित अन्य पहलुओं को कवर नहीं करता है।

35. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने ***माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश बनाम अनिल कुमार मिश्रा और अन्य: (2005) 5 एससीसी 122*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि 240 दिनों का काम पूरा करना, उस कानून के तहत नियमितीकरण के अधिकार को लागू नहीं करता है। यह केवल सेवा की समाप्ति के समय नियोक्ता पर कुछ दायित्व लगाता है। उस सादृश्य को विस्तारित या विस्तृत रूप में आयात करना और लागू करना उचित नहीं है।

36. ***बी.के. शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 1976 श्रम औद्योगिक न्यायाधिकरण 1092*** के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर आगे भरोसा किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि केंद्रीय अधिनियम की धारा 2-ए के प्रावधानों के तहत एक व्यक्तिगत विवाद भी एक औद्योगिक विवाद अभिनिर्धारित किया जाता है और राज्य सरकार को न्यायनिर्णय के लिए एक व्यक्तिगत विवाद को भी संदर्भित करने का अधिकार है, लेकिन किसी व्यक्तिगत विवाद को श्रम न्यायालय में न्यायनिर्णय के लिए संदर्भित करने से पहले धारा 2-ए में निर्धारित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए। धारा 2-ए एक व्यक्तिगत कर्मचारी की बर्खास्तगी, बर्खास्तगी, छंटनी या सेवा समाप्ति से उत्पन्न विवाद पर विचार करती है और इसमें कर्मचारी या नियोक्ता के बीच कोई विवाद या मतभेद भी शामिल है जो ऐसी बर्खास्तगी, छंटनी या सेवा समाप्ति से जुड़ा हुआ है या उससे उत्पन्न हुआ है। यह धारा किसी व्यक्तिगत कर्मचारी के संबंध में अन्य सेवा शर्तों से संबंधित किसी विवाद पर विचार नहीं करती है। विधानमंडल का आशय यह था कि किसी व्यक्तिगत कर्मचारी की बर्खास्तगी, सेवामुक्ति या सेवा समाप्ति या उससे संबंधित किसी भी प्रकरण से उत्पन्न किसी भी विवाद को औद्योगिक विवाद अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए।

37. आगे ***बैज नाथ भट्टाचार्य बनाम श्रम न्यायालय, इलाहाबाद और अन्य (सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 16454/1985, 02.05.1994 को निर्णीत)*** के प्रकरण में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी कर्मचारी को किसी उद्योग में एक वर्ष की निरंतर सेवा पूरी करने के लिए

अभिनिर्धारित किया जाने से पहले यह तथ्य स्थापित किया जाना चाहिए कि वह कम से कम 12 कैलेंडर महीनों की अवधि के लिए नियोजित था और उसके बाद उसने उन कैलेंडर महीनों के दौरान वास्तव में कम से कम 240 दिन काम किया था। वर्तमान प्रकरण में, अपने स्वयं के प्रकरण के अनुसार, याचिकाकर्ता को 12 महीने की अवधि के लिए नियोजित नहीं किया गया है।

38. जहां तक अनुसूची-5 की प्रविष्टि 10 का संबंध है, प्रत्यर्थी-नियोक्ता ने हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड बनाम औद्योगिक न्यायाधिकरण IV, न्यू आगरा और अन्य: 2007 (115) FLR 76 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी कार्रवाई को अनुचित श्रम व्यवहार कहे जाने से पहले श्रम न्यायालय के लिए यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक होगा कि बदलियों , आकस्मिक और अस्थायी कामगारों को स्थायी कामगारों की स्थिति और विशेषाधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से वर्षों तक बदलियों , आकस्मिक या अस्थायी कामगारों के रूप में रखा गया था। इसमें न्यायिक चमक यह भी जोड़ी गई है कि ऐसे कामगारों की सेवा में कृत्रिम विराम नियोक्ता को अनुचित श्रम व्यवहार के आरोप से बचने की अनुमति नहीं देगा। हालांकि, यह कामगारों की सेवा की निरंतरता है जिस पर वर्षों तक नाराजगी जताई जाती है। इसके अलावा, इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि इस प्रथा को अनुचित श्रम प्रथा मानने के लिए यह पाया जाना चाहिए कि श्रमिक को स्थायी श्रमिक के दर्जे और विशेषाधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से आकस्मिक या अस्थायी आधार पर रखा गया था।

39. उपर्युक्त कानून के मद्देनजर, मुझे लगता है कि न्यायाधिकरण के समक्ष "अनुचित श्रम व्यवहार" का प्रकरण विचाराधीन नहीं था और यह संदर्भ के दायरे से बाहर था। भले ही प्रत्यर्थी-कंपनी की कार्रवाई का विश्लेषण कथित "अनुचित श्रम व्यवहार" के दृष्टिकोण से किया जाए, प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को जारी किए गए विभिन्न नियुक्ति पत्रों का उल्लेख किया है, जो सभी प्रकृति में एक जैसे हैं। नियुक्ति के ऐसे ही एक पत्र का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:-

"दिनांक 31.05.1994

डी-0145

श्री दिनेश पाल सिंह

श्री राम सिंह पुत्र

प्रिय महोदय,

हम आपको 01.06.1994 से इन नियमों और शर्तों पर अस्थायी क्लर्क III के रूप में अस्थायी रोजगार की पेशकश करने में प्रसन्न हैं :

1. आपको 105 रुपये प्रतिमाह की दर से भुगतान किया जाएगा तथा लागू दर पर महंगाई भत्ता भी दिया जाएगा।

2. आपकी सेवाएँ 07.07.1994 को स्वतः समाप्त हो जाएँगी। हालाँकि आपकी सेवाएँ इस तिथि से पहले भी बिना किसी सूचना या बिना कोई कारण बताए समाप्त की जा सकती हैं।

3. आप कंपनी के वर्तमान में लागू तथा समय-समय पर बदले गए

नियमों एवं विनियमों का पालन करेंगे।

यदि सेवा की ये शर्तें और नियम आपको स्वीकार्य हैं तो कृपया इस पत्र की प्रति पर हस्ताक्षर करके और उसे वापस करके इस अस्थायी नियुक्ति को अपनी स्वीकृति दर्शाएँ।"

40. यहां एक विस्तार पत्र का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाएं बढ़ाई गई थीं और इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"दिनांक: 05/07/1994

<u>प्रदर्श पत्र</u>

कर्मचारी क्रमांक: D0145 (13390)

श्री दिनेश पाल सिंह

पुत्र श्री राम सिंह

अलीगढ़

प्रिय महोदय,

हमारे दिनांक 31.05.1994 के पत्र के संदर्भ में हमें आपको यह सूचित करते हुए खुशी हो रही है कि हम आपकी अस्थायी सेवाओं को 07 अगस्त, 1994 तक बढ़ा रहे हैं , जिस तिथि से आपकी सेवाएँ स्वतः समाप्त हो जाएँगी। हालाँकि, आपकी सेवाएँ इस तिथि से पहले भी बिना किसी सूचना के समाप्त की जा सकती हैं।"

41. नियुक्ति पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि कंपनी ने याचिकाकर्ता को 01.06.1994 से अस्थायी रोजगार की पेशकश की थी, जिसमें स्पष्ट शर्त थी कि उसकी सेवाएं 07.7.1994 को स्वतः समाप्त हो जाएंगी। नियुक्ति पत्र में निम्नलिखित प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख था:-

"यदि सेवा की ये शर्तें और नियम आपको स्वीकार्य हैं तो कृपया इस पत्र की प्रति पर हस्ताक्षर करके और उसे वापस करके इस अस्थायी नियुक्ति को अपनी स्वीकृति दर्शाएँ।"

42. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने नियुक्ति की शर्तों को स्वीकार किया और अपनी सेवाएं भी बढ़ाईं। इसलिए, यह सवाल उठता है कि क्या इस तरह के नियुक्ति पत्र जारी करना , अपने आप में, अधिनियम, 1947 की 5वीं अनुसूची के खंड-10 के अनुसार "अनुचित श्रम व्यवहार" है। इस संबंध में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **बजाज ऑटो लिमिटेड, अकुर्दी, पुणे बनाम आर.पी. सावंत और अन्य: 2000 (84) एफएलआर 524** के प्रकरण में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि हर रोजगार जरूरी नहीं कि स्थायी प्रकृति का हो और यह आकस्मिक, बदली या अस्थायी भी हो सकता है। ऐसा कोई भी रोजगार अपने आप में अनुचित श्रम व्यवहार नहीं है। मद 6 को आकर्षित करने के लिए, ऐसे रोजगार को स्थायी कर्मचारियों की स्थिति और विशेषाधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से वर्षों तक जारी रहना चाहिए।

43. बंबई उच्च न्यायालय ने **बजाज ऑटो लिमिटेड (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में कहा है कि औद्योगिक कानून उद्योगों में होने वाली इन सामान्य और आम घटनाओं से कभी अनभिज्ञ

नहीं हो सकता। कोई भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि काम में अस्थायी मौसमी वृद्धि से स्थिति से निपटने के लिए अधिक अस्थायी कर्मचारियों की आवश्यकता होगी। हम इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हो सकते कि कम से कम अस्थायी अवधि के लिए बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलेगा और उनकी रोटी की समस्या हल हो जाएगी। और इसके अलावा, हम नियोक्ता को इन अस्थायी कर्मचारियों को उनकी ज़रूरतें पूरी होने के बाद और उनके लिए कोई काम उपलब्ध न होने पर स्थायी आधार पर जारी रखने के लिए कैसे मजबूर कर सकते हैं? अगर ऐसा होता, तो इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता क्योंकि कोई भी नियोक्ता कोई अस्थायी रोजगार नहीं देगा और वह बढ़े हुए ऑर्डर स्वीकार नहीं कर सकता और जो उसके पास है, उससे संतुष्ट रहेगा। समाज में एक तरह का ठहराव आ जाएगा। हमारे औद्योगिक पहिये धीमी गति से चलेंगे। ऐसी स्थिति के लंबे समय में बहुत गंभीर परिणाम होंगे। इसके अलावा, विधायिका इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं है कि हर उद्योग में मांग में वृद्धि या कमी का अपना मौसम होता है जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों की संख्या की आवश्यकता में वृद्धि या कमी होती है। इसलिए, यह मानना संभव नहीं है कि औद्योगिक गतिविधियों में प्रत्येक मौसमी वृद्धि के लिए अस्थायी रोजगार भी एक अनुचित श्रम व्यवहार है।

44. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रहा है कि यह "अनुचित श्रम व्यवहार" का प्रकरण था क्योंकि याचिकाकर्ता को दी गई नियुक्ति की प्रकृति और उसके द्वारा स्वीकार की गई नियुक्ति 5वीं अनुसूची के खंड-10 के अंतर्गत नहीं आती। इसके अलावा, उक्त प्रविष्टि सामूहिक प्रकृति की नियुक्ति की बात करती है न कि व्यक्तिगत प्रकृति की, जैसा कि "कर्मचारी" और "उन्हें" शब्दों के उपयोग से स्पष्ट है। इसलिए, विधानमंडल का इरादा यह है कि सभी कामगारों की नियुक्ति के संबंध में कंपनी की कार्रवाई की जांच की जानी चाहिए ताकि 5वीं अनुसूची के खंड-10 को लागू किया जा सके न कि व्यक्तिगत कामगार के प्रकरण को। भले ही एक विपरीत व्याख्या स्वीकार की जाती है कि एक ही कामगार "अनुचित श्रम व्यवहार" का आरोप लगा सकता है, इस प्रकरण में ऐसा कोई पहलू शामिल नहीं है।

<u>शंकर (पूर्वोक्त) प्रकरण में बॉम्बे उच्च न्यायालय का निर्णय बाध्यकारी मिसाल नहीं है।</u>

45. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा शंकर (पूर्वोक्त) के प्रकरण में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करना गलत पाया गया, क्योंकि बॉम्बे उच्च न्यायालय एक ऐसे प्रकरण पर विचार कर रहा था जिसमें दर्जनों कामगारों ने टाटा मोटर्स की कार्रवाई पर आपत्ति जताई थी और बॉम्बे उच्च न्यायालय ने ऐसे सभी कामगारों की नियुक्ति की प्रकृति पर विचार किया और राय बनाई, जिसकी चर्चा पहले ही ऊपर की जा चुकी है। इसके अलावा, कामगारों को जारी किए गए नियुक्ति पत्रों की प्रकृति वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता को जारी किए गए नियुक्ति पत्रों से काफी अलग

थी। वैसे भी, बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष प्रकरण में विशिष्ट समाप्ति आदेश पारित किए गए थे, जबकि प्रत्यर्थी-कंपनी का प्रकरण स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं नियुक्ति पत्रों में निर्धारित अवधि की समाप्ति के साथ समाप्त हो गई थीं और कोई समाप्ति पत्र जारी नहीं किया गया था जो "छंटनी" की परिभाषा के अंतर्गत आ सकता है।

46. जहां तक बॉम्बे उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि का संबंध है, मैंने टाटा मोटर्स लिमिटेड द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाओं पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 11.11.2022 के आदेश का अवलोकन किया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों में जब यह बताया गया कि याचिकाकर्ता की कंपनी (टाटा मोटर्स लिमिटेड) ने उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय के अनुसार भुगतान कर दिया है और कुछ कामगारों ने राशि स्वीकार करने से इनकार कर दिया है, कानून के प्रश्न को खुला रखते हुए, विशेष अनुमति याचिकाओं को इस अतिरिक्त टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया कि यदि किसी भी कामगार ने उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय के अनुसार राशि स्वीकार नहीं की है, तो याचिकाकर्ता संबंधित कामगारों को डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से इसका भुगतान करेंगे।

47. इसलिए, हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले में हस्तक्षेप नहीं किया, लेकिन उसने **विधि के सवाल** को खुला रखा और संबंधित कामगारों को उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश दिया। इसलिए, मैं बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले को उचित सम्मान के साथ बाध्यकारी मिसाल के रूप में नहीं लेना चाहता क्योंकि बॉम्बे उच्च न्यायालय का फैसला उसके सामने मौजूद तथ्यों पर आधारित था और वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता के लिए इससे कोई मदद नहीं मिलेगी, खासकर सर्वोच्च न्यायालय की इस टिप्पणी के मद्देनजर कि कानून के सवाल को खुला छोड़ दिया गया है।

48. इस स्तर पर 2 (ओओ) में निहित "छंटनी" की परिभाषा का संदर्भ भी लिया जा सकता है, जिसका अर्थ है किसी भी कारण से किसी कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति, अनुशासनात्मक कार्रवाई के रूप में दिए गए दंड के अलावा, लेकिन इसमें शामिल नहीं हैं- (ए) कर्मचारी की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति; या (बी) सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने पर कर्मचारी की सेवानिवृत्ति यदि नियोक्ता और संबंधित कर्मचारी के बीच रोजगार के अनुबंध में उस संबंध में कोई शर्त है; या (बीबी) नियोक्ता और संबंधित कर्मचारी के बीच रोजगार के अनुबंध की समाप्ति पर उसके नवीकरण न किए जाने या उसमें निहित उस संबंध में निर्धारित किसी शर्त के तहत ऐसे अनुबंध को समाप्त किए जाने के परिणामस्वरूप कर्मचारी की सेवा की समाप्ति। इसलिए, जब न्यायालय ने यह पाया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति/नियुक्ति की अवधि नियुक्ति पत्र और सेवा विस्तार पत्रों में निहित विशिष्ट शर्तों के अनुसार सह-अवधि थी, तो उसकी सेवाओं की स्वतः समाप्ति "छंटनी" के अर्थ में नहीं आएगी।

49. उपरोक्त सभी कारणों से, जहां संदर्भ को अक्षम और अधिकार क्षेत्र से बाहर पाया गया है और यह भी तथ्य है कि प्रत्यर्थी-कंपनी की कार्रवाई "अनुचित श्रम प्रथाओं" के बराबर नहीं है, मुझे औद्योगिक न्यायाधिकरण के फैसले में कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं लगती है।

50. तदनुसार, रिट याचिका विफल हो जाती है और **खारिज** की जाती है।

51. जहां तक संबंधित रिट-सी संख्या 30052/2016 का संबंध है, इसमें शामिल तथ्यात्मक और कानूनी बिंदु रिट-सी संख्या 30049/2016 में शामिल और उठाए गए बिंदुओं के समान हैं। अग्रणी प्रकरण के संबंध में इस फैसले में बताए गए सभी कारणों से, रिट-सी संख्या 30052/2016 भी विफल हो जाती है और तदनुसार **खारिज** की जाती है।

52. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

53. इस निर्णय को समाप्त करने से पहले, यह न्यायालय इस प्रकरण में अत्यंत कुशल तरीके से बहस करने के लिए दोनों विद्वान अधिवक्तागण की सराहना करता है।

(2023) 8 ILRA 1530

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.12.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

रिट-सी संख्या 32955 वर्ष 2022

छत्तीसगढ़ रेलवे कॉर्पोरेशन लिमिटेड

....याचिकाकर्ता

बनाम

सूक्ष्म एवं लघु उद्यम सुविधा परिषद एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री कमल कृष्ण रॉय, श्री आग्नेय सैल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सिविल विधि - सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (एमएसएमईडी अधिनियम, 2006) - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - भारतीय संविधान, 1950 - जहाँ सुविधा परिषद ने एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के अंतर्गत पंजीकृत आपूर्तिकर्ता द्वारा उठाए गए दावे पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है और अपने अधिकार क्षेत्र के अनुसार निर्णय दिया है, वहाँ ऐसा निर्णय प्रत्यक्षतः अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं है। ऐसे निर्णय को सामान्यतः मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 और एमएसएमईडी अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत चुनौती दी जानी चाहिए। अनिवार्य पूर्व-जमा शर्त के साथ वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व रिट अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने का आधार नहीं हो सकता, जब तक कि आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर न हो या मौलिक अधिकारों या प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन न करता हो।

ऐसी परिस्थितियों में रिट याचिका स्वीकार्य नहीं है।

<u>चर्चा की गई वाद विधियाँ</u> :

1. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार, मुंबई, (1998) 8 एससीसी 1

2. यूपी पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम सीजी पावर एंड इंडस्ट्रियल सॉल्यूशंस लिमिटेड, (2021) 6 एससीसी 15

3. दिल्ली दयालबाग हाउस बिल्डिंग सोसाइटी बनाम रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां, (2019) 4 एससीसी 429

4. राहुल सिंह बनाम भारत संघ, 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 3579

5. गुडइयर इंडिया लिमिटेड बनाम नॉर्टन इंटेक रबर्स (पी) लिमिटेड, (2012) 6 एससीसी 345

6. गुजरात राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण बनाम अस्का इक्विप्मेंट्स लिमिटेड, (2022) 1 एससीसी 61

7. तिरुपति स्टील्स बनाम शुभ इंडस्ट्रियल कंपोनेंट, (2022) 7 एससीसी 429

8. गुजरात राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड बनाम महाकाली फूड प्राइवेट लिमिटेड, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1492

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता के विरुद्ध दूसरे प्रतिवादी द्वारा दायर दावा याचिका संख्या 270/2020 में सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद, कानपुर (संक्षिप्त सुविधा परिषद के लिए) द्वारा पारित दिनांक 07.06.2022 के पंचाट को रद्द करने की मांग करती है और दावा याचिका संख्या 270/2020 की संपूर्ण कार्यवाही को शून्य घोषित किया जाए।

2. संक्षेप में रिट याचिका से उत्पन्न तथ्य इस प्रकार हैं:-

3. दूसरे प्रतिवादी ने खुद को सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (संक्षेप में एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के लिए) के प्रावधानों के अन्तर्गत एक वैध पंजीकरण संख्या यूपी50ई0002921 के साथ एक लघु उद्यम के रूप में उद्योग निदेशालय के साथ पंजीकृत होने का दावा किया, बकाया राशि के विलंबित भुगतान के संबंध में 35,03,998.03/- रुपये की वसूली के लिए सुविधा परिषद के समक्ष दावा याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ दावा किया गया है कि (i) कि रीच 2 और रीच 3 में विपक्षी पक्षकार (यानी यहां रिट याचिकाकर्ता) ने भू-तकनीकी जांच के कार्य के लिए निविदाएं आमंत्रित की हैं। (ii) जिसके अनुसार, दावेदार की प्रस्तुति स्वीकार कर ली गई और दोनों पक्षों ने मानक सामान्य नियमों और शर्तों के अधीन एक अनुबंध में सम्मिलित हुए हैं; (iii) कि मूल कार्य 25 पुल स्थलों पर भू-तकनीकी जांच करना था; (iv) कि भू-तकनीकी जांच के दायरे में पुल स्थलों पर मिट्टी और चट्टान की ड्रिलिंग, मिट्टी/चट्टान के नमूने एकत्र

करना, प्रयोगशाला में उनका परीक्षण करना, उसके बाद खरीदार (यहां याचिकाकर्ता) को विस्तृत रिपोर्ट तैयार करना और जमा करना सम्मिलित है; और (v) कि कार्य निर्देशों के अनुसार निष्पादित किया गया था और एक पूर्णता प्रमाण पत्र भी जारी किया गया था जिसमें दावेदारों का प्रदर्शन संतोषजनक पाया गया था, यह दावा करते हुए कि केवल आंशिक भुगतान किया गया था और शेष को बिना किसी कारण के रोक दिया गया था, और अन्य कंपनी द्वारा किए गए समान कार्य का पूरा भुगतान किया गया था, ब्याज के साथ शेष राशि की वसूली के लिए दावा याचिका दायर की गई थी।

4. दावा याचिका पर सुविधा परिषद ने 03.12.2020 को पैटीज़ को सुलह के लिए 20 दिन का समय दिया और उन्हें अपने संबंधित कागजात जमा करने के लिए कहा, इसके बाद पक्षकारों ने अपनी आपत्तियों/प्रतिआपत्तियों का आदान-प्रदान किया, सुविधा परिषद के समक्ष कार्यवाही की रखरखाव के संबंध में एक प्रारंभिक आपत्ति भी इस आधार पर ली गई थी कि पक्षकारों के बीच अनुबंध एक वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र प्रदान करता है, अनुबंध के खंड 63 और 64 के अन्तर्गत, जिसमें मध्यस्थता के माध्यम से विवाद का समाधान भी सम्मिलित है। इसलिए, दावेदारों के लिए एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों को लागू करने का कोई औचित्य नहीं था। यह भी दावा किया गया था कि एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18 के प्रावधान केवल किसी भी आपूर्ति के संबंध में देय राशि की वसूली के लिए लागू होंगे। आपूर्तिकर्ता द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं या सेवाओं की, लेकिन कार्य अनुबंध के अन्तर्गत बकाया राशि की वसूली के लिए नहीं, जिसके उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।

5. चूंकि कोई सुलह नहीं हो सकी, इसलिए सुलह कार्यवाही समाप्त कर दी गई और प्रकरण को मध्यस्थ कार्यवाही के लिए ले जाया गया।

6. मध्यस्थता कार्यवाही में दोनों पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 07.06.2022 को विवादित निर्णय पारित किया गया, फैसिलिटेशन काउंसिल के निर्णय पर प्रश्न उठाते हुए यह रिट याचिका दायर की गई है.

7. हमने याचिकाकर्ता के लिए श्री के.के. रॉय के साथ श्री आग्नेय सेल को सुना है।

8. प्रारम्भ में, हमें याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता से न्यायालय को संबोधित करने की आवश्यकता थी कि इस याचिका को इस आधार पर खारिज क्यों न किया जाए कि एक वैकल्पिक उपाय मौजूद है, क्योंकि याचिकाकर्ता सुविधा परिषद के निर्णय को चुनौती दे सकता है, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 19 के साथ पठित धारा 18(3) के प्रावधानों के आलोक में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अन्तर्गत उपाय का सहारा लें।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आग्नेय सेल ने प्रस्तुत किया कि वैकल्पिक वैधानिक उपाय का अस्तित्व सुविधा परिषद के

पंचाट के विरुद्ध चुनौती पर विचार करने के लिए रिट न्यायालय के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं है, विशेष रूप से जहां सुविधा परिषद के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, संदर्भ दर्ज करें और दूसरे प्रतिवादी के दावे पर निर्णय लें, उनके अनुसार, सुविधा परिषद के पास निम्नलिखित कारणों से दूसरे प्रतिवादी के दावे से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है:-

(i) खरीदार के विरुद्ध आपूर्तिकर्ता द्वारा एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के अध्याय V के अन्तर्गत दावा केवल उस बकाया राशि की वसूली के लिए बनाए रखा जा सकता है जो खरीदार द्वारा खरीदार को प्रदान की गई किसी भी सामान या सेवाओं की आपूर्ति के लिए आपूर्तिकर्ता को देय है। वर्तमान प्रकरण में, पक्षकारों के बीच अनुबंध अपनी प्रकृति से एक कार्य अनुबंध था और माल की आपूर्ति या सेवा प्रदान करने के संबंध में अनुबंध नहीं था, इसलिए दावा एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के अन्तर्गत पोषणीय नहीं था;

(ii) याचिकाकर्ता द्वारा की गई आपत्ति में यह विशेष रूप से कहा गया था कि आपूर्तिकर्ता (यानी यहां दूसरा प्रतिवादी) ने बड़ी मशीनें लगाई थीं जो अनुमेय नहीं थीं, इसलिए उसने अनुबंध का उल्लंघन किया, इससे उत्पन्न होने वाली शिकायतों के निवारण के लिए, मध्यस्थता खंड सहित अनुबंध में एक वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र उपलब्ध था। परिणामस्वरूप, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों को और अधिक लागू नहीं किया जा सकता था क्योंकि सुविधा परिषद को अनुबंध के उल्लंघन से उत्पन्न होने वाले प्रश्नों पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। उपरोक्त प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***राहुल सिंह बनाम भारत संघ और अन्य 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 3579*** में रिपोर्ट किए गए प्रकरण में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय पर विश्वास जताया।

10. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

11. अभिलेख के अवलोकन से स्पष्ट होगा कि मध्यस्थता कार्यवाही में सुविधा परिषद ने पंचाट लिखते समय सुविधा परिषद के अधिकार क्षेत्र के प्रश्न की जांच की थी, उक्त प्रकरण को प्रकरण संख्या 1 के रूप में संबोधित किया गया है, सुविधा परिषद ने ***राहुल सिंह बनाम भारत संघ (सुप्रा)*** प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर भी ध्यान दिया है, जिस पर याचिकाकर्ता ने विश्वास जताया है, सुविधा परिषद ने देखा कि आपूर्तिकर्ता और खरीदार के बीच अनुबंध एक सेवा अनुबंध की प्रकृति में था; दावेदार/आपूर्तिकर्ता एक पंजीकृत एमएसएमईडी है जो वास्तुकला और

इंजीनियरिंग गतिविधियों, परीक्षण और विश्लेषण आदि की सेवाएं प्रदान करता है; भुगतान में देरी हुई, इसलिए यह उसका अधिकार क्षेत्र है, सुविधा परिषद ने ***राहुल सिंह (सुप्रा)*** के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय को इस आधार पर अलग कर दिया कि पक्षकारों के बीच कोई अनुबंध समाप्त नहीं हुआ था और उस प्रकरण में रिट याचिकाकर्ता एक व्यक्ति था जिसकी निविदा विफलता के आधार पर खारिज कर दी गई थी अपनी ओर से निविदा लागत के साथ-साथ अग्रिम राशि भी जमा करने को कहा।

12. इससे पहले कि हम प्रस्तुत प्रस्तुतियों को संबोधित करने के लिए आगे बढ़ें, हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि हम पंचाट की खूबियों की जांच करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं जब तक कि हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते कि याचिका वैकल्पिक उपचार के आधार पर खारिज करने योग्य नहीं है। जो, माना जाता है, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 19 के साथ पठित मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अन्तर्गत उपलब्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं है, यह अच्छी तरह से तय है कि वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व रिट के लिए पूर्ण बाधा नहीं है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत न्यायालय को अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना, बल्कि एक स्व-लगाया गया प्रतिबंध है, लेकिन, आमतौर पर, निम्नलिखित तीन आकस्मिकताओं को छोड़कर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत याचिका पर विचार करते समय वाणिज्यिक मामलों में वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए:

(i) जहां किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई है;

(ii) जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ हो; या

(iii) जहां आदेश या कार्यवाही पूर्ण रूप से क्षेत्राधिकार के बिना है या किसी अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है।

(देखें : व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार, मुंबई और अन्य, (1998) 8 एससीसी 1; यूपी पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम सीजी पावर एंड इंडस्ट्रियल सॉल्यूशंस लिमिटेड और अन्य (2021) 6 एससीसी 15; और दिल्ली दयालबाग हाउस बिल्डिंग सोसाइटी बनाम रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां और अन्य, 2019 (4) एससीसी 429)।

13. प्रस्तुत प्रस्तुतियों के संदर्भ में, जो प्रकरण हमारे विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या फैसिलिटेशन काउंसिल द्वारा पारित पंचाट बिना अधिकार क्षेत्र के है, जिससे रिट याचिकाकर्ता इस न्यायालय की उपलब्ध शक्तियों का उपयोग करके सीधे संविधान का अनुच्छेद 226 पर प्रश्न उठा सके, **गुजरात राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड बनाम**

महाकाली फूड प्राइवेट लिमिटेड (यूनिट 2) और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन 1492 में, विधि के निम्नलिखित प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार के लिए आए, अर्थात्:

(i) क्या एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के अध्याय- V के प्रावधानों का मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों पर प्रभाव पड़ेगा?

(ii) क्या एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 17 के अन्तर्गत देय किसी भी राशि के संबंध में विवाद के किसी भी पक्ष को धारा 18 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद का संदर्भ देने से रोका जाएगा। उक्त अधिनियम, यदि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 7 में विचार के अनुसार पक्षकारों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता मौजूद था?

(iii) क्या सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद, स्वयं मध्यस्थता के लिए विवाद उठा सकती है और मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकती है, जब परिषद ने स्वयं एमएसएमईडी अधिनियम 2006 धारा 18 की उप-धारा (2) के अन्तर्गत मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 80 में निहित रोक को ध्यान में रखते हुए की सुलह कार्यवाही आयोजित की थी?

14. सर्वोच्च न्यायालय ने एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 और मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के सभी प्रासंगिक प्रावधानों की जांच करने के बाद, पैराग्राफ 34 में निम्नलिखित मुद्दों पर निर्णय लिया: -

(i) एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 का अध्याय- V मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के प्रावधानों को खत्म कर देगा।

(ii) एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 17 के अन्तर्गत देय किसी भी राशि के संबंध में विवाद के किसी भी पक्ष को सूक्ष्म और लघु उद्यम सुविधा परिषद का संदर्भ देने से नहीं रोका जाएगा, हालांकि पक्षकारों के बीच एक स्वतंत्र मध्यस्थता समझौता मौजूद है।

(iii) सुविधा परिषद, जिसने एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18(2) के अन्तर्गत सुलह कार्यवाही शुरू की थी, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 80 में

निहित रोक के बावजूद मध्यस्थ के रूप में कार्य करने की हकदार होगी।

(iv) एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18(3) के अन्तर्गत मध्यस्थ/मध्यस्थता न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करने वाली सुविधा परिषद/संस्थान/केंद्र के समक्ष कार्यवाही मध्यस्थता अधिनियम, 1996 द्वारा शासित होगी।

(v) एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18(3) के आधार पर एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करने वाली सुविधा परिषद/संस्थान/केंद्र धारा 16 के मध्यस्थता अधिनियम, 1996 को ध्यान में रखते हुए अपने अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ अन्य मुद्दों पर भी शासन करने में सक्षम होगी।

(vi) एक पक्षकार जो अनुबंध में प्रवेश की तिथि पर एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 2 (एन) में निहित परिभाषा के अनुसार 'आपूर्तिकर्ता' नहीं थी, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के अन्तर्गत 'आपूर्तिकर्ता' के रूप में कोई लाभ नहीं मांग सकती है। यदि बाद में कोई पंजीकरण प्राप्त किया जाता है, तो उसका प्रभाव संभावित रूप से होगा और पंजीकरण के बाद माल की आपूर्ति और सेवाएं प्रदान करने पर लागू होगा।

15. ऊपर देखे गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से, यह स्पष्ट है कि, सबसे पहले, आपूर्तिकर्ता और खरीदार के बीच अनुबंध में मध्यस्थता खंड के अस्तित्व के बावजूद, आपूर्तिकर्ता एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 18 के प्रावधानों को लागू कर सकता है और, दूसरी बात, यदि सुविधा परिषद के अधिकार क्षेत्र के संबंध में कोई विवाद उठाया जाता है, तो यह मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 16 को ध्यान में रखते हुए अपने अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ अन्य मुद्दों पर भी निर्णय लेने में सक्षम होगा।

16. वर्तमान प्रकरण में, इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के प्रावधानों का सहारा लेकर निर्णय को चुनौती देने का अधिकार था, बल्कि याचिकाकर्ता की ओर से तर्क यह है कि याचिकाकर्ता को वैकल्पिक उपाय में क्यों सम्मिलित किया जाना चाहिए, खासकर जब एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 19 के प्रावधानों के अनुसार आज्ञप्ति राशि के 75 प्रतिशत की पूर्व-जमा की कठिन शर्त लागू होती है और प्रश्न में अधिकार क्षेत्र के बिना पंचाट

पूर्व दृष्टया है.

17. In so far as the requirement of deposit of 75 percent of the awarded amount 17. जहां तक एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 19 के अन्तर्गत दी गई राशि का 75 प्रतिशत जमा करने की आवश्यकता का प्रश्न है, ***(गुडइयर इंडिया लिमिटेड बनाम नॉर्टन इंटेक रबर्स (पी) लिमिटेड (2012) 6 एससीसी 345; गुजरात राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण बनाम अस्का इक्विपमेंट्स लिमिटेड; (2022) 1 एससीसी 61; और तिरूपति स्टील्स बनाम शुभ इंडस्ट्रियल कंपोनेंट, (2022) 7 सेकंड 429)*** के प्रकरण में इसे अनिवार्य माना गया है। जहां तक सुविधा परिषद के अधिकार क्षेत्र का संबंध है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि आम तौर पर आगे बढ़ने के लिए किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण का अधिकार क्षेत्र वाद या दावा याचिका में दिए गए कथनों के आधार पर निर्धारित होता है। प्रत्यक्ष प्रकरण में, दावा याचिका में दिए गए कथन, प्रथम दृष्टया, सुविधा परिषद द्वारा जांच के लिए एक प्रकरण बनाते हैं। दिलचस्प बात यह है कि रिट याचिका में दूसरे प्रतिवादी (दावेदार/आपूर्तिकर्ता) के दावे को कोई विशेष चुनौती नहीं दी गई है कि वह एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के अन्तर्गत लघु उद्यम के रूप में उद्योग निदेशालय के साथ पंजीकृत है और उसे इसके रूप में यूपी50ई0002921 आवंटित किया गया है। पंजीकरण संख्या जो संदर्भ दाखिल करने की तिथि तक वैध थी। याचिका में चुनौती अनुबंध की प्रकृति को लेकर है, रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, अनुबंध माल की आपूर्ति या सेवाओं के प्रतिपादन के संबंध में नहीं था, बल्कि यह एक कार्य अनुबंध था और इस प्रकार, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 15, 16, 17 और 18 के दायरे से बाहर था। प्रकरण का यह पहलू निस्संदेह एक क्षेत्राधिकार संबंधी प्रकरण उठाता है लेकिन इस क्षेत्राधिकार संबंधी प्रकरण का निर्णय रिट याचिकाकर्ता के विरुद्ध मध्यस्थ द्वारा किया गया है। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 16 के अन्तर्गत मध्यस्थ को अपने अधिकार क्षेत्र के संबंध में उठाए गए प्रकरण पर निर्णय लेने का अधिकार है। इस पहलू की पुष्टि सर्वोच्च न्यायालय ने ***गुजरात राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड बनाम महाकाली फूड प्राइवेट लिमिटेड (यूनिट 2) और अन्य (सुप्रा)*** के प्रकरण में की है, जैसा कि हमने ऊपर देखा है। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि सुविधा परिषद को, प्रथम दृष्टया, दूसरे प्रतिवादी के दावे पर विचार करने और निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

18. उपरोक्त कारणों से, पंचाट की खूबियों में प्रवेश किए बिना, हम सुविधा परिषद के पंचाट के विरुद्ध सीधे याचिकाकर्ता की रिट याचिका पर विचार करने से अस्वीकार करते हैं, खासकर, जब याचिकाकर्ता अपने लिए उपलब्ध वैकल्पिक उपाय का लाभ उठा सकता था। इसलिए वैकल्पिक उपाय के आधार पर याचिका खारिज की जाती है।

19. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने पंचाट की योग्यता या सुविधा परिषद द्वारा अपने

अधिकार क्षेत्र के संबंध में लिए गए निर्णय पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

(2023) 8 ILRA 1535

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-सी संख्या 1000800 वर्ष 2000

आज़ाद अहमद खान ...याचिकाकर्ता

बनाम

आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

जेड जिलानी, अमर मणि तिवारी, नजम जफर, प्रदीप अग्रवाल, रफत सिद्दीकी, जेड जिलानी

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

एससी मिश्रा, मनीष मिश्रा

सिविल विधि - मुसलमान वक्फ वैधीकरण अधिनियम, 1913 - ईएसटी ड्यूटी अधिनियम, 1953 - धारा 12(1) का स्पष्टीकरण - सेटलर और रिश्तेदारों के पक्ष में ब्याज का आरक्षण - भारतीय आयकर अधिनियम (प्रासंगिक संदर्भ), आयकर रिटर्न में वक्फ संपत्ति का उपचार, वक्फ -अल - औलाद , तित्तम्मा (वक्फ विलेख में पुनरीक्षण), मुतवल्ली, संपत्ति का समर्पण, ईएसटी शुल्क देयता, ब्याज का आरक्षण वक्फ का वैध निर्माण, वक्फ इरादे की वास्तविकता, वक्फ संपत्ति का व्यक्तिगत उपयोग, ईएसटी शुल्क अधिनियम के तहत छूट, वक्फ वैधता, वक्फ के लाभार्थी

अभिनिर्धारितः -

मुसलमान वक्फ वैधीकरण अधिनियम, 1913 के तहत एक वैध *वक्फ- अल - औलाद* का निर्माण, सर्वशक्तिमान को संपत्ति का वास्तविक समर्पण और वाकिफ द्वारा स्वामित्व का विनिवेश अनिवार्य करता है। वर्तमान मामले में, वाकिफ ने आयकर रिटर्न में इसे शामिल करके और व्यक्तिगत ऋणों को चुकाने के लिए इसका कुछ हिस्सा बेचकर वक्फ संपत्ति को निजी संपत्ति के रूप में मानना जारी रखा, जिससे वक्फ बनाने का कोई वास्तविक इरादा प्रदर्शित नहीं हुआ। लाभार्थी के रूप में एक गैर-पारिवारिक सदस्य को शामिल करना वक्फ-अल - औलाद के स्वरूप को और अधिक पराजित करता है। ऐसा आचरण एक वैध वक्फ की आवश्यक कानूनी आवश्यकताओं को नकारता है। इसके अलावा, वाकिफ ने वक्फ विलेख में पुनरीक्षण करने के पूर्ण अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखे थे और अपने स्वयं के रखरखाव के लिए प्रावधान किए थे, जो कि ईएसटी ड्यूटी अधिनियम, 1953 की धारा 12 की क्षति के अंतर्गत आता है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ईएसटी शुल्क से छूट का दावा नहीं कर सकता। तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

<u>चर्चा की गई वाद विधि</u> :

1. छेदी लाल मिश्रा बनाम सिविल जज, लखनऊ; (2007) 4 एससीसी 632

2. ईएसटी ड्यूटी नियंत्रक बनाम बी बी निगुडकर; (1988) 170 आईटीआर 578 (बॉम्बे)

3. मोहम्मद अली मोहम्मद खान बनाम म. बिस्मिल्लाह बेगम; एआईआर 1930 पीसी 255

4. हामिद हुसैन बनाम ईएसटी ड्यूटी नियंत्रक; (1972) 83 आईटीआर 309 (आल)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा पारित)

1. वर्तमान रिट याचिका द्वारा याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 31.01.1989 के कर निर्धारण आदेश; दिनांक 16.09.1991 के आदेश जिसके द्वारा अपीलीय प्राधिकारी ने कर निर्धारण आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता की अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया था; तथा आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 30.11.1999 के आदेश जिसके द्वारा उसने याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया था, को चुनौती दे रहा है।

2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि गुलाम अहमद खान नामक व्यक्ति मेसर्स जनरल इंजीनियरिंग वर्क्स के नाम और शैली में एक इंजीनियरिंग वर्कशॉप चला रहा था। 25.08.1951 को, उनका दावा है कि उन्होंने मुसलमान वक्फ वैलिडेटिंग एक्ट, 1913 (जिसे आगे 1913 का एक्ट कहा जाएगा) के प्रावधानों के तहत एक रजिस्टर्ड डीड के जरिए वक्फ-अल-औलाद बनाया और अपना कारोबार वक्फ को हस्तांतरित कर दिया और इसके पहले मुतवल्ली बन गए। गुलाम अहमद खान निःसंतान थे और उनका दावा है कि उन्होंने अपने भतीजे सरदार अब्दुल्ला खान उर्फ आजाद अहमद खान, याचिकाकर्ता को अपने बेटे के रूप में गोद लिया था। वक्फ डीड की शर्तों के अनुसार, मेसर्स जनरल इंजीनियरिंग वर्क्स की कुल आय में से 100 रुपये की राशि ईश्वर पर खर्च की जानी थी और बाकी आय का उपयोग वक्फ गुलाम अहमद खान की उनके जीवनकाल में उनकी इच्छानुसार किया जाना था। गुलाम अहमद खान ने मूल वक्फ डीड का तिताम्मा करने और मेसर्स जनरल इंजीनियरिंग वर्क्स सहित वक्फ को सौंपी गई संपत्तियों को बेचने का अधिकार भी अपने पास सुरक्षित रखा। मुतवल्ली के उत्तराधिकार के संबंध में इसमें प्रावधान था कि श्रीमती हसीना खातून अगली मुतवल्ली होंगी और उनके निधन के बाद उनके बच्चे और उनके वंशज मुतवल्ली के रूप में उनके उत्तराधिकारी होंगे । यदि श्रीमती हसीना खातून निःसंतान मर जाती हैं तो इनाम अहमद खान, जो वक्फ गुलाम अहमद खान के भाई हैं और उनके बाद उनके बेटे आजाद अहमद खान और उनके वंशज वक्फ के मुतवल्ली के रूप में उत्तराधिकारी होंगे। वक्फ डीड के क्लॉज सी (जिम) के अनुसार गुलाम अहमद खान की मृत्यु के बाद 100 रुपये धर्मार्थ कार्यों पर खर्च होते रहने थे और वक्फ संपत्ति से बाकी आय में से 400 रुपये इनाम अहमद खान को श्रीमती की मदद के लिए दिए जाने थे । वक्फ संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए गुलाम अहमद खान को वक्फ संपत्ति का प्रबंधन करने का अधिकार दिया गया था और शेष राशि इनाम अहमद खान, आजाद अहमद खान और हसीना खातून के बीच विभाजित की जानी थी। यह एक

स्वीकृत तथ्य है कि वक्फ बनाने के बाद भी गुलाम अहमद खान ने अपने आयकर रिटर्न दाखिल करते समय वक्फ संपत्ति को अपनी निजी संपत्ति के रूप में उल्लेख करना जारी रखा। वक्फ गुलाम अहमद खान ने 22.01.1980 की तारीख के तितम्मा द्वारा मूल वक्फ-विलेख में संशोधन किया। तितम्मा द्वारा किए गए प्रासंगिक संशोधनों के अनुसार , वक्फ अब इनाम अहमद खान को कभी भी मुतवल्ली बनने से बाहर रखता है और उन्हें वक्फ संपत्ति से कोई भी लाभ प्राप्त करने से भी बेदखल कर दिया गया है। चूंकि, हसीना खातून निःसंतान मर गईं, इसलिए दो-तिहाई हिस्सा अब आजाद अहमद खान को मिलेगा और एक तिहाई का उपयोग धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए किया जाना था। तितम्मा में यह भी खुलासा किया गया है कि कार्यशाला की संपत्ति का एक हिस्सा किराए पर दिया गया था और कार्यशाला में पड़ी मशीनों को वाकिफ गुलाम अहमद खान के व्यक्तिगत ऋणों का भुगतान करने के लिए बेच दिया गया था।

3. गुलाम अहमद खान की 02.12.1980 को निःसंतान मृत्यु हो गई और संशोधित विलेख की शर्तों के अनुसार याचिकाकर्ता आज़ाद अहमद खान वक्फ के मुतवल्ली बन गए। याचिकाकर्ता ने वक्फ की संपत्तियों के संबंध में संपदा शुल्क अधिनियम, 1953 (जिसे आगे 1953 का अधिनियम कहा जाएगा) के तहत रिटर्न दाखिल किया और उस पर संपदा शुल्क का भुगतान करने से छूट का दावा किया। हालांकि, याचिकाकर्ता को 24.11.1988 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसमें संपदा शुल्क का भुगतान करने से उनके द्वारा दावा की गई छूट के लिए स्पष्टीकरण मांगा गया था। याचिकाकर्ता ने 29.12.1988 को अपना जवाब प्रस्तुत किया और उसी के आधार पर 31.01.1989 का मूल्यांकन आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता ने मूल्यांकन आदेश को संपदा शुल्क के अपीलीय नियंत्रक के समक्ष चुनौती दी, जिसने 16.09.1991 के अपने आदेश द्वारा मूल्यांकन आदेश को बरकरार रखा। इसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष अपील दायर की, जिसे दिनांक 30.11.1999 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप अग्रवाल ने न्यायाधिकरण के निर्णय और आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि न्यायाधिकरण ने यह मान कर गलती की है कि स्वर्गीय गुलाम अहमद खान द्वारा बनाया गया वक्फ वैध वक्फ नहीं था, क्योंकि उनका कभी भी वक्फ विलेख को प्रभावी करने का इरादा नहीं था। उन्होंने कहा कि यह एक स्थापित कानून है कि एक बार वक्फ बन जाने के बाद वक्फ संपत्तियों पर वक्फ का हक समाप्त हो जाता है। अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***छेदी लाल मिश्रा बनाम सिविल जज, लखनऊ' (2007) 4 एससीसी 632*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। चुनौती का दूसरा आधार यह है कि न्यायाधिकरण ने यह मान कर गलती की है कि 1953 के अधिनियम की धारा 5 और 12 वर्तमान प्रकरण में लागू हैं। उन्होंने कहा कि न्यायाधिकरण ने 1953 के अधिनियम की धारा 12(1) के स्पष्टीकरण की गलत व्याख्या

की है और गलत तरीके से अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि वाकिफ ने डीड को संशोधित करने का अधिकार खुद के लिए सुरक्षित रखा है, इसलिए यह जीवन भर के लिए संपत्ति में आरक्षण के बराबर है। जबकि स्पष्टीकरण के अनुसार हित का आरक्षण खुद बसने वाले के साथ-साथ उसके किसी भी रिश्तेदार के लिए भी होना चाहिए। जब तक हित वाकिफ और उसके किसी भी रिश्तेदार दोनों के लिए आरक्षित नहीं है, ऐसा आरक्षण बसने वाले की मृत्यु पर संपत्ति के हस्तांतरण के बराबर नहीं होगा। अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने **'संपदा शुल्क नियंत्रक बनाम बीबी निगुडकर'** के प्रकरण में बॉम्बे उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया, जिसे **(1988) 170 आईटीआर 578** के रूप में रिपोर्ट किया गया। उसी का प्रासंगिक पैराग्राफ पढ़ता है,

> *"... हमने धारा 12(1) के स्पष्टीकरण पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। हमारे विचार में, धारा 12(1) के स्पष्टीकरण में प्रयुक्त शब्द "और " को गुजरात और मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसार "या" के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है: किकाभाई समसुद्दीन बनाम सीईडी, [1969] 73 आईटीआर 241 (गुज) और सीईडी बनाम के.ए. कादर, [1974] 96 आईटीआर 289 (मद)। यह सच हो सकता है कि यदि सेटलर/मृतक के पक्ष में कोई आरक्षण था, तो धारा 12 की उपधारा (1) के प्रावधान लागू होते। हालाँकि, हमारे विचार से, स्पष्टीकरण ऐसी स्थिति को पूरा करने के लिए लागू किया गया है जहाँ आरक्षण सेटलर के साथ-साथ उसके रिश्तेदारों के लिए भी है और यह तर्क दिया जा सकता है कि आरक्षण सेटलर के लिए नहीं होने के कारण उपधारा (1) लागू नहीं होगी। कोई भी निर्णय जहाँ विपरीत दृष्टिकोण लिया गया हो, हमारे ध्यान में नहीं लाया गया है।"*

5. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री मनीष मिश्रा ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का विरोध किया। उन्होंने कहा कि अपीलीय न्यायाधिकरण के फैसले में कोई विकृति नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि गुलाम अहमद खान ने केवल कर देनदारियों से बचने के लिए वक्फ बनाया था। गुलाम अहमद खान ने वक्फ को प्रभावी बनाने का कभी इरादा नहीं किया क्योंकि वह अपने वार्षिक आयकर रिटर्न में वक्फ संपत्ति और मेसर्स जनरल इंजीनियरिंग वर्क्स से आय को शामिल करता रहा। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने वक्फ की वैधता पर भी सवाल उठाया और कहा कि वक्फनामा के अनुसार , यह 1913 के अधिनियम की धारा 3 (ए) के तहत बनाया गया एक वक्फ-अल - औलाद था। हालांकि, श्रीमती हसीना खातून को लाभार्थियों में से एक के रूप में शामिल करना, जिनका गुलाम अहमद खान के साथ कोई रक्त या पारिवारिक संबंध नहीं था, वक्फ -अल - औलाद के उद्देश्यों के खिलाफ है। उन्होंने आगे कहा कि गुलाम अहमद खान ने भी वक्फ संपत्ति को अपना निजी अभिनिर्धारित किया और वास्तव में इसे कभी भी वक्फ को नहीं सौंपा/समर्पित किया और

इसके बजाय न्यायालय से कोई अनुमति लिए बिना कुछ मशीनरी बेच दी। चूंकि गुलाम अहमद खान की ओर से ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया जो वैध वक्फ के निर्माण के बराबर हो, इसलिए विवादित आदेश में यह सही अभिनिर्धारित किया गया है कि वक्फ कभी बनाया ही नहीं गया और इसलिए यह याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

6. मैंने अधिवक्तागण की सहायता से अभिलेख का अवलोकन किया है तथा उनके तर्कों पर विचार किया है।

7. वक्फ-डीड के अनुसार, वक्फ- अल - औलाद 1913 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत बनाया गया था। 1913 के अधिनियम की धारा 3(ए) के अनुसार, वक्फ का निर्माण वक्फ के परिवार, बच्चों या वंशजों के पूर्ण या आंशिक रूप से भरण-पोषण और सहायता के लिए किया जा सकता है। वक्फ संपत्ति के उपयोग के लाभार्थियों में से एक के रूप में श्रीमती हसीना खातून को शामिल करना, उनके साथ वक्फ गुलाम अहमद खान के संबंध स्थापित किए बिना, वक्फ- अल - औलाद के सिद्धांतों के खिलाफ जाता है। इसके अलावा, इसमें कोई संदेह नहीं है कि वक्फ का निर्माण वक्फ संपत्ति से वक्फ को वंचित करता है और इसे सर्वशक्तिमान को समर्पित करता है, लेकिन, एक वैध वक्फ का गठन करने के लिए वक्फ संपत्ति का वास्तविक समर्पण/कब्जा होना चाहिए। जब वक्फ खुद वक्फ का पहला मुतवल्ली होता है, तो वास्तविक समर्पण/कब्जे की डिलीवरी स्थापित करना मुश्किल हो जाता है, और इस प्रकार, वक्फ संपत्ति के संबंध में उसका बाद का आचरण यह तय करने के लिए प्रासंगिक हो जाता है कि क्या वास्तव में वक्फ का समर्पण और निर्माण हुआ था। वर्तमान प्रकरण में मेसर्स जनरल इंजीनियरिंग वर्क्स को भगवान को समर्पित करने के बाद भी, वक्फ गुलाम अहमद खान ने अपने द्वारा दाखिल आयकर रिटर्न में इसे अपनी संपत्ति के रूप में दिखाना जारी रखा। उन्होंने उचित प्राधिकारी से आवश्यक अनुमति लिए बिना अपने व्यक्तिगत ऋणों का भुगतान करने के लिए वक्फ की कुछ संपत्ति भी बेच दी । इसके अलावा, रिकॉर्ड पर ऐसा कोई सबूत नहीं है जो साबित करे कि गुलाम अहमद खान ने कभी किसी धर्मार्थ उद्देश्य के लिए 100 रुपये खर्च किए हों। इस प्रकार, किसी भी वास्तविक समर्पण की अनुपस्थिति और उसके बाद वक्फ गुलाम अहमद खान द्वारा संपत्ति को अपनी निजी संपत्ति के रूप में मानना, नियम के अपवाद में आता है, एक बार वक्फ हमेशा वक्फ होता है, जिसे **छेदी लाल मिश्रा (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में उनके आधिपत्य द्वारा तैयार किया गया था, जिस पर याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने भरोसा किया था। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जिस पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा किया है, वह पैरा 7 में भी पढ़ा गया है:

> *"7. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को पढ़ने और उस पर विचार करने के बाद, हमें उसमें व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं दिखता। हमारे विचार में, वक्फ के निर्माण और निरंतरता से संबंधित कानून को*

*विद्वान न्यायाधीश ने अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए सही ढंग से समझाया है कि एक बार वक्फ बनने के बाद, वक्फ उन संपत्तियों पर अपने अधिकार से वंचित हो जाता है जो वक्फ के निर्माण के बाद सर्वशक्तिमान में निहित होती हैं। **यह निस्संदेह सच है कि किसी दिए गए प्रकरण में वक्फ के निर्माण पर सवाल उठाया जा सकता है यदि यह दिखाया जाता है कि वक्फ का वक्फ बनाने का कोई इरादा नहीं था, लेकिन उसने दायित्व से बचने के लिए ऐसा किया था?"*** (प्रभाव वर्द्धित)

8. मोहम्मद अली मोहम्मद खान बनाम माउंट बिस्मिल्लाह बेगम, एआईआर 1930 पीसी 255 के प्रकरण में प्रिवी काउंसिल ने अभिनिर्धारित किया है कि जब वक्फ संपत्ति को सर्वशक्तिमान को समर्पित करने का कोई इरादा नहीं है, बल्कि कुछ गुप्त उद्देश्य हैं, तो विलेख को वैध वक्फ नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा पढ़ता है,

"पूरे साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, उनके माननीय इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने वक्फ का कार्य निष्पादित किया, लेकिन संपत्ति के अपने स्वामित्व से खुद को अलग करने के किसी भी इरादे के बिना, और उसका वास्तविक इरादा दस्तावेज़ का उपयोग करना था, यदि यह किसी भी दावे के खिलाफ ढाल के रूप में आवश्यक हो, जो अपीलकर्ता के पास उस समय या किसी भी भविष्य में हो सकता है। इसलिए उनके माननीय इस राय के हैं कि इस अपील को अनुमति दी जानी चाहिए और अधीनस्थ न्यायाधीश के फैसले को बहाल किया जाना चाहिए और अपीलकर्ता को मुख्य न्यायालय और इस अपील में अपनी लागत मिलनी चाहिए। वे विनम्रतापूर्वक महामहिम को तदनुसार सलाह देंगे।"

9. वाकिफ गुलाम अहमद खान के कार्यों से पता चलता है कि उन्होंने हमेशा वक्फ संपत्ति को अपना निजी अभिनिर्धारित किया है, इसलिए, यह सही रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि संपत्ति का कोई वास्तविक समर्पण नहीं था और उनका वक्फ बनाने का कोई इरादा नहीं था और इस तरह विलेख को वैध वक्फ नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है ।

10. चुनौती का दूसरा आधार यह है कि अपीलीय न्यायाधिकरण ने 1953 के अधिनियम की धारा 12(1) के स्पष्टीकरण की गलत व्याख्या की है और याचिकाकर्ता के संपदा शुल्क का भुगतान करने से छूट के दावे को खारिज करने के लिए "और" शब्द को "या" के रूप में पढ़ा है, यह भी सही नहीं है क्योंकि वक्फ डीड को निष्पादित करते समय वक्फ गुलाम अहमद खान ने खुद, अपने भाई और याचिकाकर्ता के भरण-पोषण के लिए प्रावधान किए थे, जो खुद दावा करते हैं कि उन्हें वक्फ गुलाम अहमद खान ने बेटे के रूप में गोद

लिया है। इसलिए, **बी.बी. निगुडकर (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में निर्धारित शर्तें, जिस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने भरोसा किया है, पहले ही पूरी हो चुकी हैं। इसके अलावा, 1953 के अधिनियम की धारा 12 के तहत संपदा शुल्क का भुगतान करने से छूट का लाभ उठाने के लिए जो आवश्यक है वह यह है कि बंदोबस्त की गई संपत्ति में बंदोबस्तकर्ता द्वारा जीवन भर के लिए कोई ब्याज आरक्षित नहीं होना चाहिए। संदर्भ के लिए 1953 के अधिनियम की धारा 12 में लिखा है,

> *12. (1) मृतक द्वारा विलेख या किसी अन्य लिखत द्वारा किए गए किसी समझौते के अंतर्गत हस्तांतरित संपत्ति, जो वसीयत के रूप में प्रभावी नहीं होती है, जिसके तहत ऐसी संपत्ति में जीवन या मृत्यु के संदर्भ में निर्धारित किसी अन्य अवधि के लिए हित या तो स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से सेटलर के लिए आरक्षित है या जिसके द्वारा सेटलर ने किसी शक्ति के प्रयोग द्वारा अपने लिए यह अधिकार सुरक्षित रखा हो कि वह ऐसी संपत्ति में पूर्ण हित को स्वयं को वापस कर सके या पुनः दावा कर सके, सेटलर की मृत्यु पर हस्तांतरित हुई समझी जाएगी:*
>
> *परन्तु यह कि सम्पत्ति को सेटलर की मृत्यु पर केवल इस कारण हस्तांतरित नहीं अभिनिर्धारित किया जाएगा कि ऐसा कोई हित या अधिकार आरक्षित था, यदि ऐसे हित या अधिकार के समर्पण के माध्यम से सम्पत्ति का बाद में सेटलर को पूर्ण रूप से अपवर्जित करते हुए उपभोग किया जाता है और उसे उसकी मृत्यु से कम से कम दो वर्ष पूर्व तक संविदा या अन्यथा कोई लाभ नहीं मिलता है।*
>
> *स्पष्टीकरण . यदि कोई व्यवसाई स्वयं तथा अपने किसी रिश्तेदार (जैसा कि धारा 27 में परिभाषित है) के भरण-पोषण के लिए व्यवसाईकृत संपत्ति में कोई हित आरक्षित रखता है, तो इस धारा के अर्थ में वह स्वयं के लिए हित आरक्षित रखता हुआ समझा जाएगा।*
>
> *(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी व्यक्ति द्वारा संपत्ति का निस्तारण एक या एक से अधिक अन्य व्यक्तियों को उनके जीवनकाल के लिए और उनकी मृत्यु के पश्चात निस्तारणकर्ता को आजीवन और उसके पश्चात अन्य व्यक्तियों को किया जाता है और निस्तारणकर्ता की मृत्यु संपत्ति में उसके हित के कब्जे में हित बनने से पूर्व हो जाती है, वहां संपत्ति इस धारा के अर्थ में निस्तारणकर्ता की मृत्यु पर हस्तांतरित हुई नहीं समझी जाएगी।*

11. जैसा कि गुलाम अहमद खान ने वक्फ-डीड की शर्तों को संशोधित करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा था और उन्होंने वास्तव में अपनी मृत्यु से कम से कम एक वर्ष पहले तिताम्मा किया था, यह दर्शाता है कि उन्होंने वक्फ डीड के माध्यम

से इसे निपटाने के दौरान संपत्ति में आजीवन हित सुरक्षित रखा था। इस मुद्दे पर इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने पहले ही केंद्रीय प्रत्यक्ष कराधान बोर्ड द्वारा **हामिद हुसैन बनाम संपदा शुल्क नियंत्रक,(1972) 83 आईटीआर 309** के प्रकरण में एक संदर्भ में निर्णय लिया है; उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ में लिखा है,

17. जवाबदेह व्यक्ति की ओर से आगे यह तर्क दिया गया है कि मृतक का संपत्ति में कोई हित नहीं था, जो धारा 12 के प्रावधानों को आकर्षित कर सके। यह बताया गया है कि 1950 में मुतवल्ली का पद छोड़ने के बाद, उनके पास वक्फ संपत्ति में कोई हित नहीं बचा था। अब, धारा 12(1) उस संपत्ति की बात करती है जिसमें मृतक सेटलर ने जीवन या मृत्यु के संदर्भ में निर्धारित किसी अन्य अवधि के लिए निस्तारण के तहत पारित संपत्ति में खुद के लिए हित सुरक्षित रखा है। अंतिम संशोधन के अनुसार वक्फ डीड की शर्तों और नियमों का विश्लेषण करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि सेटलर ने कुछ निर्दिष्ट गृह संपत्तियों में निवास करने का अधिकार और वक्फ डीड की शर्तों, लाभार्थियों की सूची और उनके शेयरों की सीमा को संशोधित करने की शक्ति अपने पास रखी। क्या ये शर्तें संपत्ति को धारा 12 के दायरे में लाने के लिए पर्याप्त हैं? निस्तारण की शर्तों को संशोधित करने की शक्ति निम्नलिखित भाषा में व्यक्त की गई है:

> *7. (ई) भविष्य में भी, मैं, वाकिफ, अपने जीवनकाल के दौरान, इस वक्फ विलेख में संशोधन करने, परिवर्तन करने, रद्द करने और शर्तों को जोड़ने का अधिकार रखता हूँ, जैसा कि प्रचलित परिस्थितियों द्वारा आवश्यक हो, जिसका अधिकार मुझे वर्तमान में प्राप्त है; और मेरे जीवनकाल के दौरान मुझे विशेष रूप से अनुदानकर्ताओं के अधिकारों में संशोधन करने, उनमें किसी अजनबी को शामिल करने और किसी को बाहर करने और उनके शेयरों की राशि को बढ़ाने या घटाने की शक्ति होगी।*

18. इस खंड द्वारा सुरक्षित शक्ति को सबसे व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है । जबकि शायद यह वक्फ को रद्द करने की शक्ति तक विस्तारित नहीं है, यह सेटलर को एक विस्तृत क्षेत्र में यात्रा करने में सक्षम बनाता है, एक तरफ वर्तमान में प्राप्त हितों को कम करता है, और दूसरी दिशाओं में उन्हें बनाता या बढ़ाता है। जहाँ तक शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे व्यक्ति को शामिल करने के उद्देश्य से किया जाता है जो पहले से लाभार्थी

नहीं है, यह सेटलर को खुद को शामिल करने तक विस्तारित हो सकता है। खंड में शक्ति का व्यापक आयाम इस तरह के निष्कर्ष का समर्थन करता है। यदि ऐसा है, तो सेटलर ने लाभार्थियों या अनुदानकर्ताओं की सूची में खुद को शामिल करने के सरल उपकरण द्वारा जीवन भर के लिए वक्फ संपत्ति से लाभ उठाने का अधिकार सुरक्षित रखा है।

...

23. वर्तमान प्रकरण में, यह सच है कि सेटलर ने खुद को लाभार्थियों की सूची में शामिल नहीं किया था और जब तक वह ऐसा नहीं करता, तब तक वह अन्य लाभार्थियों द्वारा प्राप्त लाभों का हकदार नहीं था। लेकिन ऐसा करने की शक्ति पूरी तरह से उसके पास निहित थी। यह एक ऐसी शक्ति थी जिसका प्रयोग वह अपने पूर्ण विवेक से कर सकता था। हम उस प्रकरण के बीच बहुत कम अंतर देखते हैं, जहां सेटलर ने खुद को लाभार्थियों में शामिल किया और ट्रस्टियों के पूर्ण विवेक पर छोड़ दिया कि वे ट्रस्ट की आय का लाभ उसे दें और वर्तमान प्रकरण के बीच, जहां सेटलर ने अपने नाम को लाभार्थियों में शामिल करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा था, जिससे वह स्वचालित रूप से वक्फ संपत्ति की आय के लाभ का हकदार हो गया। लाभार्थियों में खुद को शामिल करने के लिए वक्फ विलेख में संशोधन करने की शक्ति सेटलर द्वारा खुद के लिए आरक्षित व्यापक शक्तियों का एक उदाहरण मात्र है। जैसा कि हमने कहा है कि खंड 7(ई) के तहत शक्तियों को सबसे व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है। जब तक वक्फ का चरित्र बना रहता है, तब तक सेटलर के लिए डीड की शर्तों और नियमों में कोई भी बदलाव करना और ऐसे बदलाव करना खुला रहता है जो सीधे तौर पर उसे लाभ पहुंचा सकते हैं । हमारा मानना है कि सेटलर ने वक्फ संपत्ति में जीवन भर के लिए हित सुरक्षित रखा है और इसलिए यह प्रकरण धारा 12 के दायरे में आता है। और इसका मतलब यह होगा, जैसा कि बॉम्बे उच्च न्यायालय ने खतीजाबाई मोहम्मद इब्राहिम बनाम एस्टेट ड्यूटी कंट्रोलर [[1959] 37 आईटीआर (ईडी) 53 (बॉम्बे)] में अभिनिर्धारित किया था, कि न केवल इस तरह से सुरक्षित हित बल्कि ऐसी पूरी संपत्ति को सेटलर की मृत्यु पर हस्तांतरित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए।

12. चूंकि वाकिफ गुलाम अहमद खान ने वक्फ विलेख में संशोधन करने का पूर्ण अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है और वक्फ संपत्ति से अपने भरण-पोषण के लिए प्रावधान किया है, इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि याचिकाकर्ता संपदा शुल्क

का भुगतान करने से छूट का दावा नहीं कर सकता है।

13. उपर्युक्त के आलोक में, यह रिट याचिका तदनुसार **खारिज** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1541

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 1001398 वर्ष 2002

श्री देवेश कुमार पूर्व वरिष्ठ पर्यवेक्षक मेसर्स टाटा इंजीनियरिंग एंड एल कंपनी लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

मेसर्स टाटा इंजीनियरिंग एंड लोकोमोटिव कंपनी लिमिटेड लखनऊ ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

एस बनर्जी, पुष्पिला बिष्ट, एसपी मिश्रा, सुरेश चंद्र तिवारी, विवेक मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, जेएन माथुर, मुदित अग्रवाल

अभिनिर्धारितः

श्रम आयुक्त का दिनांक 05.12.2000 का आदेश, जिसमें उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4(के) के अंतर्गत संदर्भ को खारिज किया गया - अवैध और मनमाना पाया गया - याचिकाकर्ता ने बर्खास्त किए जाने के बाद सुलह तंत्र का सहारा लिया था - सुलह अधिकारी ने विफलता रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बजाय गुण-दोष के आधार पर निष्कर्ष देकर अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया - संदर्भ को खारिज करने वाले विवादित आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन - कारण दर्ज करने की आवश्यकता अर्ध-न्यायिक प्रशासनिक कार्यों पर भी समान रूप से लागू होती है - आदेश रद्द - मामला नए सिरे से निर्णय लेने के लिए राज्य सरकार को वापस भेज दिया गया।

याचिका स्वीकार की गई।

प्रमुख अधिनियम/प्रावधान :

1. उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 2(जेड), 4(के), 6(एन)
2. भारत का संविधान - अनुच्छेद 14

चर्चा की गई वादविधि :

1. प्रेम कक्कड़ बनाम हरियाणा राज्य, (1976) 3 एससीसी 433

2. सीमेंस इंजीनियरिंग कंपनी बनाम भारत संघ, (1976) 2 एससीसी 981

3. एके क्रेपक बनाम भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262

4. आर बनाम उप औद्योगिक क्षति आयुक्त पूर्व पी. मूर, (1965) 1 क्यूबी 456

5. महोन बनाम एयर न्यूज़ीलैंड लिमिटेड, [1984 एसी 648] (माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक मिश्रा और प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री मुदित अग्रवाल और प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई शिकायत उप-श्रम आयुक्त, लखनऊ क्षेत्र, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 05.12.2000 के आदेश के संबंध में यह आदेश देते हुए कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4 (K) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवाद को श्रम न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए संदर्भित करना संभव नहीं।

3. वर्तमान मामले के संक्षेप में तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता सन 1993 से प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ पर्यवेक्षक के पद पर काम कर रहा था और उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2 (Z) के तहत प्रदत्त कर्मचारी की परिभाषा के अंतर्गत आने का दावा करता है।

4. याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि उसे दिनाँक 04.02.1998 को अवैधानिक और मनमाने ढंग से और 1947 के अधिनियम की धारा 6 (N) के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। अपनी बर्खास्तगी से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने दिनाँक 15.04.1998 को विहित प्राधिकारी/ समाधान समिति के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया था। उक्त आवेदन पर सुलह कार्यवाही शुरू की गई और मामला सुलह अधिकारी को भेज दिया गया।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि सुलह कार्यवाही में याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1 के बीच कोई समझौता नहीं हुआ और परिणामस्वरूप सहायक श्रम आयुक्त ने 26.06.1999 के आदेश के माध्यम से यह दर्ज किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ वित्तीय दुर्विनियोजन और अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही बरतने के संबंध में कई आरोप थे, जिसके परिणामस्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया और सुलह अधिकारी ने दर्ज किया कि ऐसा कोई आधार नहीं था जिसके आधार पर उसे सेवा में बहाल किया जा सके। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.06.1999 के उक्त आदेश को अनुपूरक प्रत्युत्तर हलफनामे में अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुलह अधिकारी की उक्त प्रतिवेदन उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 4(K) के अनुसार कार्यवाही के लिए राज्य सरकार

को भेजी गई थी, लेकिन दिनांक 05.12.2000 के आदेश के माध्यम से उप श्रमायुक्त, लखनऊ ने बहुत ही रहस्यमय तरीके से कहा है कि याचिकाकर्ता का मामला उप श्रमायुक्त, लखनऊ को संदर्भित करने के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उक्त आदेश अवैध और मनमाना है क्योंकि मामले को श्रम न्यायालय को निर्णय के लिए संदर्भित करने से इनकार करने के लिए कोई कारण नहीं बताए गए हैं। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता एक कामगार है और प्रत्यर्थी संख्या 1 एक औद्योगिक उपक्रम है और याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी से संबंधित मामला औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6(N) के प्रावधानों के अंतर्गत उचित तरीके से लिया गया है और परिणामस्वरूप जब यह देखा जाता है कि ऊपर बताए गए सभी तत्व पूरे हो गए हैं तो प्रत्यर्थियों के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है बजाय इसके कि वे मामले को श्रम न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए भेज दें। बार-बार अवसर दिए जाने के बावजूद राज्य ने कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया है। नियोक्ता, अर्थात् टाटा इंजीनियरिंग एंड लोकोमोटिव कंपनी लिमिटेड ने जवाबी हलफनामा दायर करके मामले का विरोध किया। 7. यह प्रस्तुत किया गया है कि 1947 के अधिनियम की धारा 4(K) के तहत शक्ति एक प्रशासनिक शक्ति है और सीमित न्यायिक जांच के अधीन है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता एक पर्यवेक्षक था और परिणामस्वरूप उसका दावा श्रम न्यायालय के समक्ष स्वीकार्य नहीं होगा क्योंकि वह कामगार की परिभाषा में नहीं आता है और इसलिए राज्य सरकार के दिनाँक29.08.1990 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, जिसमें मामले को श्रम न्यायालय को निर्णय के लिए संदर्भित करने से इंकार कर दिया गया था। अपने प्रस्तुतियों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **प्रेम कक्कड़ बनाम हरियाणा राज्य 1976 (3) एससीसी 433** के फैसले का अवलम्बन लिया है ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. याचिकाकर्ता ने खुद को कामगार होने का दावा किया है जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा दिनाँक 04.02.1998 को अवैध और मनमाने ढंग से सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था। उन्होंने 1947 के अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया और तदनुसार याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी संख्या 1 के बीच सुलह कार्यवाही शुरू की गई । समझौता अधिकारी ने विफलता प्रतिवेदन को अग्रेषित करने के बजाय, दिनांक 26.06.1999 को एक आदेश पारित किया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता किसी भी लाभ का हकदार नहीं था। प्रथम दृष्टया दिनांक 26.06.1999 का आदेश अवैध और मनमाना तथा अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

10. समझौता अधिकारी को केवल यह देखने का प्रयास करना है कि नियोक्ता और कर्मचारी के बीच विवाद सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाया जाए। यदि वह सफल होता है, तो उसी परिणाम के रूप में पक्षों के बीच समझौता हो जाता है और यदि पक्ष समझौते पर पहुंचने में

असमर्थ होते हैं, तो केवल उसके द्वारा विफलता प्रतिवेदन तैयार की जा सकती है और उसे राज्य सरकार/निर्धारित प्राधिकारी को भेजा जा सकता है।

11. 1947 के अधिनियम के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि नियोक्ता और कर्मचारी के बीच विवाद का निर्धारण करने के लिए उसे न्यायनिर्णयन की कोई शक्ति प्रदान करने वाला कोई प्रावधान नहीं है। वर्तमान मामले में उन्होंने दिनांक 26.06.1999 को एक आदेश पारित किया है, जिसमें कर्मचारी द्वारा किए गए दावे के गुण-दोषों पर गहनता से विचार किया गया है तथा यह निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता को कोई राहत प्रदान करने का कोई आधार नहीं बनता है। पक्षों के बीच विवाद को देखते हुए उनके द्वारा ऐसा आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

12. ऐसा आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है तथा सुलह अधिकारी को दिए गए अधिकार से अधिक है, इसलिए किसी भी कार्यवाही में इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

13. दिनाँक 05.12.2000 को उप श्रम आयुक्त, लखनऊ द्वारा मामले को न्यायनिर्णयन के लिए संदर्भित करने से इंकार करने वाला विवादित आदेश एक रहस्यमय आदेश है। इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवाद को श्रम न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए क्यों नहीं भेजा जा सकता है।

14. कहने की जरूरत नहीं कि उक्त आदेश ने याचिकाकर्ता को श्रम न्यायालय द्वारा इस विवाद का निर्णय करवाने के मूल्यवान अधिकारों से वंचित किया तथा मामले को संदर्भित करने से मना करने से याचिकाकर्ता को 1947 के अधिनियम के माध्यम से प्राप्त मूल्यवान अधिकारों से वंचित किया गया। मामले को निर्णय के लिए संदर्भित न करने के लिए पर्याप्त कारण बताना प्रत्यर्थियों के लिए आवश्यक था।

15. जब प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करते हुए पारित आदेश में कारण दर्ज किए जाते हैं, तो निस्संदेह अपीलीय या पर्यवेक्षी प्राधिकारी द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना आसान हो जाता है। लेकिन ऊपर उल्लिखित अन्य विचार, जो इस न्यायालय के समक्ष भी विचारणीय हैं, कि प्रशासनिक प्राधिकारी को अपने निर्णय के लिए कारण दर्ज करने चाहिए, कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। ये विचार दर्शाते हैं कि प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा कारणों को दर्ज करना एक लाभकारी उद्देश्य पूरा करता है, अर्थात्, यह मनमानी की संभावनाओं को समाप्त करता है तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता का एक मानदण्ड सुनिश्चित करता है। उक्त उद्देश्य सभी निर्णयों पर समान रूप से लागू होगा और इसका अनुप्रयोग उन निर्णयों तक सीमित नहीं हो सकता जो अपील, पुनरीक्षण या न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं। इसलिए, हमारी राय में, कारण दर्ज किए जाने की आवश्यकता अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरण के

निर्णयों को नियंत्रित करनी चाहिए, भले ही निर्णय अपील, पुनरीक्षण या न्यायिक समीक्षा के अधीन हो। हालांकि, यह जोड़ा जा सकता है कि, यह आवश्यक नहीं है कि कारण अदालत के निर्णय की तरह विस्तृत होने चाहिए। कारणों की सीमा और प्रकृति विशेष तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। जो आवश्यक है वह यह है कि कारण स्पष्ट और मुखर हों ताकि यह संकेत मिले कि प्राधिकरण ने विवाद के बिंदुओं पर उचित विचार किया है। कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता उस मामले में अधिक होती है जहां आदेश मूल चरण में पारित किया जाता है।

15. अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरण के निर्णय के लिए कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता के औचित्य पर विचार करने के बाद अब हम इस दायित्व को लागू करने के कानूनी आधार की जांच कर सकते हैं। इस पहलू पर विचार करते हुए डोनोमोर समिति ने टिप्पणी की कि यह तर्क दिया जा सकता है कि प्राकृतिक न्याय का एक तीसरा सिद्धांत है, अर्थात, एक पक्ष को निर्णय का कारण जानने का अधिकार है, चाहे वह न्यायिक हो या अर्ध-न्यायिक। समिति ने राय व्यक्त की कि "*कुछ मामले ऐसे हैं जहाँ निर्णय के लिए आधार देने से इनकार करना स्पष्ट रूप से अनुचित हो सकता है; और ऐसा तब भी हो सकता है, जब निर्णय अंतिम हो और निराश पक्ष के लिए अपील या अन्यथा कोई और कार्यवाही खुली न हो*" और "*जहाँ निराश पक्ष के लिए आगे की कार्यवाही खुली हो, यह प्राकृतिक न्याय के विपरीत है कि मंत्री या मंत्रिस्तरीय न्यायाधिकरण की चुप्पी उन्हें अवसर से वंचित करे*"। *(पृष्ठ 80) प्रो. एच.डब्ल्यू.आर. वेड ने भी यह विचार व्यक्त किया है कि "प्राकृतिक न्याय इसके लिए सबसे अच्छा नियम प्रदान कर सकता है, क्योंकि कारण बताना सामान्य व्यक्ति की न्याय की भावना के लिए आवश्यक है"। (देखें वेड, प्रशासनिक कानून, 6वां संस्करण, पृ. 548.)* ***सीमेंस इंजीनियरिंग कंपनी के मामले [(1976) 2 एस.सी.सी. 981: 1976 पूरक एस.सी.आर. 489]*** *में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया था और यह टिप्पणी की थी कि "किसी आदेश के समर्थन में कारण दिए जाने की आवश्यकता वाला नियम, द्वितीय पक्ष को सुने जाने के सिद्धांतों की तरह, प्राकृतिक न्याय का एक बुनियादी सिद्धांत है जिसे प्रत्येक अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया को सूचित करना चाहिए"।* यह निर्णय इस आधार पर आगे बढ़ता है कि प्राकृतिक न्याय के दो प्रसिद्ध सिद्धांत, अर्थात् (i) कि किसी भी व्यक्ति को अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए, और (ii) कि किसी व्यक्ति को सुनवाई के बिना न्याय नहीं किया जाना चाहिए, संपूर्ण नहीं हैं और इन दो सिद्धांतों के अतिरिक्त ऐसे नियम भी हो सकते हैं जो निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करना चाहते हैं और उन्हें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का हिस्सा माना जा सकता है। यह दृष्टिकोण माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **ए.के. क्राइपक बनाम भारत संघ [(1969) 2 एस.सी.सी. 262: (1970) 1 एस.सी.आर. 457]** (एस.सी.आर. पृ. 468-69: एस.सी.सी. पृ. 272, पैरा 20) में निर्धारित कानून के अनुरूप है, जिसमें यह माना गया है कि :

"प्राकृतिक न्याय की अवधारणा में हाल के वर्षों में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। पहले यह माना जाता था कि इसमें केवल दो नियम शामिल हैं अर्थात्:

(i) कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होगा (नीमो डेबेट एसे जुडेक्स प्रोप्रिया कॉसा), और (ii) किसी पक्ष के विरुद्ध उसे उचित सुनवाई का अवसर दिए बिना कोई निर्णय नहीं दिया जाएगा (ऑडी अल्टरम पार्टम)। इसके तुरंत बाद एक तीसरे नियम की परिकल्पना की गई और वह यह है कि अर्ध-न्यायिक जांच सद्भावनापूर्वक, बिना पक्षपात के और मनमाने ढंग से या अनुचित तरीके से नहीं की जानी चाहिए। लेकिन वर्षों के दौरान प्राकृतिक न्याय के नियमों में कई और सहायक नियम को जोड़ा गया है।"

16. अंग्रेजी न्यायालयों के निर्णयों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखी जा सकती है, जिसमें यह माना गया है कि प्राकृतिक न्याय की मांग है कि निर्णय सत्यापन योग्य मूल्य के कुछ साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए। (देखें: **आर. बनाम डिप्टी इंडस्ट्रियल इंजरी कमिश्नर एक्स पी. मूर [(1965) 1 क्यूबी 456: (1965) 1 इलाहाबाद ईआर 81]; महोन बनाम एयर न्यूजीलैंड लिमिटेड [1984 एसी 648: (1984) 3 इलाहाबाद ईआर 201])**

17. प्राकृतिक न्याय के नियमों के अंतर्गत उद्देश्य "न्याय की विफलता को रोकना" और "कार्रवाई में निष्पक्षता" सुनिश्चित करना है। जैसा कि पहले बताया गया है कि अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा अपने निर्णय के लिए कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता मनमानी की संभावनाओं को समाप्त करके और निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता की एक परिमाण सुनिश्चित करके इस उद्देश्य को प्राप्त करती है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विस्तृत क्षितिज को ध्यान में रखते हुए, हमारा मत है कि कारण दर्ज करने की आवश्यकता को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों में से एक माना जा सकता है जो प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करता है। प्राकृतिक न्याय के नियम मूर्त नियम नहीं हैं। उनके आवेदन की सीमा उस विशेष वैधानिक ढांचे पर निर्भर करती है जिसके तहत प्रशासनिक प्राधिकरण को अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया है। न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यों के प्रयोग सहित प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा किसी विशेष शक्ति के प्रयोग के संबंध में, विधानमंडल, उक्त शक्ति प्रदान करते समय, महसूस कर सकता है कि यह व्यापक जनहित में नहीं होगा कि प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के कारणों को आदेश में दर्ज किया जाए और पीड़ित पक्ष को सूचित किया जाए और वह ऐसी आवश्यकता से छूट दे सकता है। वह ऐसा उस प्रभाव के लिए एक स्पष्ट प्रावधान करके कर सकता है जैसा कि यू.एस.ए. के प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1946 और ऑस्ट्रेलिया के प्रशासनिक निर्णय (न्यायिक समीक्षा) अधिनियम, 1977 में निहित है जिसके द्वारा कुछ निर्दिष्ट अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को अधिनियमन के दायरे से बाहर रखा गया है। ऐसा अपवर्जन विषय-वस्तु की प्रकृति, योजना

तथा अधिनियम के उपबंधों के आवश्यक निहितार्थ से भी उत्पन्न हो सकता है। ऐसे उपबंध के अंतर्गत निहित जनहित, कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता द्वारा प्रदत्त हितकर उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण होगा। अतः, ऐसे मामले में उक्त आवश्यकता पर जोर नहीं दिया जा सकता।

18. यह देखा गया है कि कोई कारण न बताए जाने के कारण प्रत्यर्थियों ने अत्यंत अवैधानिक तथा मनमाने ढंग से तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए कार्य किया है।

19. उपरोक्त के आलोक में, दिनांक 05.12.2000 का आदेश रद्द किया जाता है। मामला राज्य सरकार को भेजा जाता है ताकि वह सुलह प्राधिकरण/सहायक श्रमायुक्त, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 26.06.1999 के आदेश से प्रभावित हुए बिना विधि के अनुसार नया आदेश पारित करे। यह देखते हुए कि मामला पिछले दो दशकों से अधिक समय से लंबित है, राज्य सरकार द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर उचित आदेश पारित किया जाए।

20. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 8 ILRA 1546

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.07.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-टैक्स संख्या 1265 वर्ष 2022

मैसर्स अभय ट्रेडर्स राजमार्ग कुठौंद, जालौन

...याचिकाकर्ता

बनाम

आयुक्त वाणिज्यिक कर, लखनऊ और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आलोक कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, श्री अंकुर अग्रवाल, श्री अंकुर अग्रवाल, श्री गोपाल वर्मा

(ए) कर विधि - उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 - धारा 74 - भुगतान न किए गए या कम भुगतान किए गए या गलत तरीके से वापस किए गए या धोखाधड़ी या किसी जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने के कारण गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का निर्धारण - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को केवल कारण बताओ नोटिस द्वारा पूरा किया जा सकता है - यदि इसमें आवश्यक सामग्री और प्रस्तावित जुर्माना शामिल है, भले ही इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख न किया गया हो - आवश्यकता पूरी हो सकती है यदि इसे नोटिस के पढ़ने से आसानी से समझा जा सकता है। (पैरा -10)

खरीद पर विवाद - नोटिस दिया गया - माल की आपूर्ति नहीं की गई - एंटरप्राइजेज एक फर्जी फर्म थी - याचिकाकर्ता को नोटिस का जवाब देने के लिए कहा गया - दावा - इनपुट टैक्स क्रेडिट, जिसके बारे में याचिकाकर्ता ने दावा किया था, फर्जी आपूर्ति के कारण गलत तरीके से दावा किया गया था - अदालत ने पूछा कि याचिकाकर्ता पर कर, जुर्माना और ब्याज क्यों नहीं लगाया गया। **(पैरा -2)**

अभिनिर्धारित:- याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस का जवाब दाखिल करने के विकल्प से वंचित कर दिया गया, क्योंकि इसमें मामले के आधार को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि माल की कोई वास्तविक आपूर्ति नहीं थी। कारण बताओ नोटिस को रद्द नहीं किया गया, लेकिन याचिकाकर्ता को इस तथ्य पर जवाब देने की अनुमति दी गई कि याचिकाकर्ता को वास्तव में माल की आपूर्ति की गई थी। **(पैरा-11,12)**

रिट याचिका का निस्तारित। (ई-7)

<u>उद्धृत वादों की सूची</u> :-

1. मेसर्स एनकेएएस सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, रिट याचिका (टी) संख्या 2444 वर्ष 2021

2. सेरा सेनेटरीवेयर लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, 2020 (40) जीएसटीएल 439 (गुज.)

3. गोरखा सुरक्षा सेवाएँ बनाम सरकार (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2014) 9 एससीसी 105

4. मेटल फोर्जिंग एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2003 (2) एससीसी 36

5. केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, चंडीगढ़ बनाम शीतल इंटरनेशनल, (2011) 1 एससीसी 109

6. दिलीप एन श्रॉफ बनाम जेसीआईटी, (2007) 6 एससीसी 329

7. खेम चंद बनाम भारत संघ एआईआर 1958 एससी 300

8. ओरिक्स फिशरीज पी. लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2010) 13 एससीसी 427

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आलोक कुमार, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान वकील श्री अंकुर अग्रवाल और प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान वकील श्री गोपाल वर्मा को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका में विवाद यह है कि वर्ष 2018-19 के लिए, याचिकाकर्ता-मैसर्स अभय ट्रेडर्स को 22.06.2022 को एक नोटिस दिया गया था, जिसमें दर्शाया गया था कि मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से चालान के माध्यम से की गई दो खरीद के संबंध में 12 जून,

2018 को विवरण संख्या 94 और 95, जिनकी कीमत 2,64,022/- रुपये और 8,00,088/- रुपये है, में पाया गया कि याचिकाकर्ता को मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से माल की कोई वास्तविक आपूर्ति नहीं हुई थी। यह भी पाया गया कि मेसर्स राघव इंटरप्राइजेज एक फर्जी फर्म थी। ऐसे में 22 जून 2022 को याचिकाकर्ता को नोटिस जारी कर जवाब मांगा गया कि याचिकाकर्ता पर टैक्स, जुर्माना और ब्याज क्यों न लगाया जाए। यह कहा गया था कि चूंकि याचिकाकर्ता ने फर्जी आपूर्ति की थी, इसलिए इनपुट टैक्स क्रेडिट, जिसका याचिकाकर्ता ने दावा किया था, गलत तरीके से दावा किया गया था।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि नोटिस स्वयं अस्पष्ट और कानून की दृष्टि से गलत थी, इसलिए इसे रद्द करते हुए किनारे कर दिया जाए। उन्होंने आगे कहा कि विशेष जांच शाखा की रिपोर्ट के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया कि मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से याचिकाकर्ता-मैसर्स अभय ट्रेडर्स को कोई माल की आपूर्ति नहीं की गई थी और इसलिए, निष्कर्ष ही गलत था। हालाँकि, विभाग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विशेष जांच शाखा द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट सही थी। इस आशय का एक नोटिस याचिकाकर्ता को भी दिया जाना था ताकि याचिकाकर्ता जवाब दे सकता कि वास्तव में, याचिकाकर्ता द्वारा मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से सामान खरीदा गया था और इसलिए, याचिकाकर्ता ने जिस इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा किया वह कानून के अनुरूप था।

4. अपनी बात को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आलोक कुमार ने 2021 के **डब्ल्यूपी (टी) नंबर 2444 (मैसर्स एनकास सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य और अन्य)** में पारित **06.10.2021** के झारखंड उच्च न्यायालय रांची के फैसले और आदेश पर भरोसा जताया है ।

5. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री अंकुर अग्रवाल और प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री गोपाल वर्मा ने अनिवार्य रूप से उत्तर प्रदेश माल और सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा -74 (इसके बाद इसे 'अधिनियम, 2017' कहा गया) पर भरोसा करते हुए अपनी दलीलें दीं। अधिनियम 2017 की धारा 74 (1) पर भरोसा करते हुए, उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने कहा कि उचित अधिकारी ने अभी तक कार्यवाही शुरू करने के लिए निष्कर्ष नहीं निकाला है। यदि केवल उचित अधिकारी को यह "प्रकट" होता है कि कर का भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या गलती से वापस कर दिया गया है या जहां इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत तरीके से लाभ उठाया गया है या धोखाधड़ी या किसी जानबूझकर बयान या तथ्य को दबाने के कारण उपयोग किया गया है, तो कार्यवाही शुरू हो सकती है।

6. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान वकील श्री अंकुर अग्रवाल ने प्रस्तुत किया कि तत्काल मामले में, जब उचित अधिकारी को यह पता चला कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत तरीके से लाभ उठाया गया था, तो

कार्यवाही सही ढंग से शुरू की गई थी। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि चुनौती केवल अधिनियम, 2017 की धारा 74 (1) के तहत एक नोटिस के लिए थी और इसलिए, याचिकाकर्ता के लिए उचित चरण में और उचित प्राधिकारी के समक्ष इसका उत्तर देना का रास्ता खुला था, और इसलिए यह रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी। प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान वकील ने **2020 (40) जीएसटीएल 439 (गुजरात) सेरा सेनेटरीवेयर लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य** में रिपोर्ट किए गए गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया। प्रतिवादी क्रमांक 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील से जब इस नोटिस का सामना किया गया कि नोटिस केवल इस आशय का था कि याचिकाकर्ता को जवाब देना था कि कितना कर, जुर्माना और कितना ब्याज लगाया जाना है, तो उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया कि जब नोटिस स्वयं इस तथ्य पर आधारित था कि याचिकाकर्ता को माल की आपूर्ति नहीं की गई थी और जब उस घटना का अभी तक किसी कार्यवाही द्वारा निष्कर्ष नहीं निकाला गया था, तो याचिकाकर्ता के लिए यह भी इस आशय का उत्तर देने के लिए खुला था कि मैसर्स राघव एंटरप्राइजेज ने वास्तव में माल की आपूर्ति की और लेन-देन की तारीख यानी 12.06.2018 को मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज एक फर्जी फर्म नहीं थी।

7. दोनों पक्षों को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, इस न्यायालय के लिए इस मुद्दे पर विचार करना उचित होगा कि क्या इस रिट याचिका के माध्यम से विवादित नोटिस को चुनौती दी जा सकती है, हालांकि जवाब दाखिल करने का उपाय उपलब्ध है। **(2014) 9 एससीसी 105** में रिपोर्ट किए गए **गोरखा सुरक्षा सेवा बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली); 2003 (2) एससीसी 36** में रिपोर्ट की गई **मेटल फोर्जिंग और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** मामले में और साथ ही **(2011) 1 एससीसी 109** में रिपोर्ट की गई **केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, चंडीगढ़ बनाम शीतल इंटरनेशनल** के मामले में में उचित कारण बताओ नोटिस के मुद्दे पर शीर्ष न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। ऊपर उल्लिखित फैसले में, शीर्ष अदालत ने कहा कि यह घिसा-पिटा कानून है कि जब तक कारण बताओ नोटिस में मामले की नींव नहीं रखी जाती है, तब तक इसे उचित कारण बताओ नोटिस नहीं माना जा सकता है, प्रासंगिक भाग और याचिकाकर्ता द्वारा किए गए स्पष्ट उल्लंघनों को बताए बिना, और किसी भी कारण को हटाए बिना एक प्रारूप में जारी किया गया नोटिस नहीं माना जा सकता है उचित कारण बताओ नोटिस की आवश्यकता को प्रतिस्थापित नहीं किया जाएगा। **गोरखा सिक्योरिटी सर्विसेज बनाम सरकार (एनसीटी ऑफ दिल्ली) (सुप्रा)** में शीर्ष न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ संख्या 21 और 22 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"21. हालाँकि, केंद्रीय मुद्दा, प्रस्तावित कार्रवाई को बताने की आवश्यकता से संबंधित है। कारण बताओ नोटिस जारी करने के पीछे मूल उद्देश्य नोटिस प्राप्तकर्ता को उसके खिलाफ स्थापित सटीक मामले को समझाना है, जिसे वह मिलना होगा। इसके लिए उसके द्वारा किए गए कथित उल्लंघनों और चूकों का

विवरण देने वाले आरोपों के बयान की आवश्यकता होगी ताकि उसे इसका खंडन करने का अवसर मिल सके। हमारे अनुसार एक और आवश्यकता, कार्रवाई की प्रकृति है जो इस तरह के उल्लंघन के लिए प्रस्तावित है। यह भी कहा जाना चाहिए ताकि नोटिस प्राप्तकर्ता यह बता सके कि दिए गए मामले में प्रस्तावित कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है, भले ही शिकायत की गई चूक/उल्लंघन को संतोषजनक ढंग से समझाया नहीं गया हो। जब काली सूची में डालने की बात आती है, तो यह आवश्यकता और भी अनिवार्य हो जाती है, यह देखते हुए कि यह सबसे कठोर संभव कार्रवाई है।

22. उच्च न्यायालय ने केवल यह कहा है कि कारण बताओ नोटिस का उद्देश्य मुख्य रूप से नोटिस प्राप्तकर्ता को उन आधारों को पूरा करने में सक्षम बनाना है जिन पर उसके खिलाफ कार्रवाई प्रस्तावित है। निस्संदेह, उच्च न्यायालय इस हद तक उचित है। हालाँकि, यह उल्लेख करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि यदि नोटिस प्राप्तकर्ता उन आधारों को संतोषजनक ढंग से पूरा नहीं करता है जिन पर कार्रवाई प्रस्तावित है तो परिणाम क्या होगा। अन्यथा कहें तो, हमारी राय है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कारण बताओ नोटिस को निम्नलिखित दो आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए:

i) बताई जाने वाली सामग्री/आधार, जिस पर विभाग के अनुसार कार्रवाई की आवश्यकता है;

ii) विशेष जुर्माना/कार्रवाई जो किया जाना प्रस्तावित है। यह दूसरी आवश्यकता है जिसे उच्च न्यायालय छोड़ने में विफल रहा है।

हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि भले ही कारण बताओ नोटिस में इसका विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन इसे पढ़ने से स्पष्ट रूप से और सुरक्षित रूप से पहचाना जा सकता है, यह इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगा।"

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2007) 6 एससीसी 329 में रिपोर्ट किए गए दिलीप एन श्रॉफ बनाम संयुक्त आयकर आयुक्त** के मामले में यह भी देखा है कि अधिनियम, 2017 की धारा 73/74 में अभिव्यक्ति "उचित अधिकारी प्रतीत होती है" एक आकस्मिक कार्य नहीं है, बल्कि उचित अधिकारी द्वारा मन के पूर्ण अनुप्रयोग को दिखाना चाहिए।

9. कारण बताओ कार्यवाही का उद्देश्य किसी व्यक्ति को प्रस्तावित आरोपों के खिलाफ अपनी आपत्ति करने का उचित अवसर देना है जैसा कि **खेम चंद बनाम भारत संघ AIR 1958 SC 300** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया था। इस निर्णय पर शीर्ष न्यायालय ने **(2010) 13 एससीसी 427** में रिपोर्ट किया गया **ओरिक्स फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ** पर भी विचार किया था। पैराग्राफ संख्या 24 से 27 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"24. इस न्यायालय ने पाया कि उपरोक्त विवाद में काफी तथ्य हैं। यह अच्छी तरह से

स्थापित है कि एक अर्धन्यायिक प्राधिकारी को अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते समय निष्पक्ष रूप से कार्य करना चाहिए और कारण बताओ कार्यवाही शुरू करते समय खुले दिमाग से कार्य करना चाहिए। कारण बताओ कार्यवाही का मतलब नोटिस में दर्शाए गए प्रस्तावित आरोपों के खिलाफ अपनी आपत्ति दर्ज कराने का उचित अवसर देने के लिए है।

25. कई क़ानूनों के संदर्भ में इस न्यायालय के समक्ष "आपत्ति करने का उचित अवसर" या "बचाव का उचित अवसर" जैसी अभिव्यक्तियाँ विचार के लिए आई हैं। खेम चंद बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने, निश्चित रूप से, सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में, वर्तमान मामले में भी लागू होने वाले कुछ सिद्धांतों को दोहराया।

26. एस.आर. दास, मुख्य न्यायाधीश ने खेम चंद में सर्वसम्मत संविधान पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि 'उचित अवसर' की अवधारणा में विभिन्न सुरक्षा उपाय शामिल हैं और उनमें से एक, विद्वान मुख्य न्यायाधीश के शब्दों में, इस प्रकार है:

"(a) अपने अपराध से इनकार करने और अपनी बेगुनाही साबित करने का एक अवसर, जो वह केवल तभी कर सकता है जब उसे बताया जाए कि उसके खिलाफ लगाए गए आरोप क्या हैं और वे आरोप जिन पर ऐसे आरोप आधारित हैं;"

27. इसमें कोई संदेह नहीं है कि कारण बताओ चरण में, जिस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही की गई है, उसे उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में बताया जाना चाहिए ताकि वह अपना बचाव कर सके और अपनी बेगुनाही साबित कर सके। यह स्पष्ट है कि उस स्तर पर, आरोप-पत्र जारी करने वाला प्राधिकारी, उसे आरोप बताने के बजाय, उसके कथित अपराध के निश्चित निष्कर्षों के साथ उसका सामना नहीं कर सकता है। यदि ऐसा किया जाता है, जैसा कि इस तत्काल मामले में किया गया है, तो कारण बताओ नोटिस द्वारा शुरू की गई पूरी कार्यवाही अनुचितता और पूर्वाग्रह से दूषित हो जाती है और बाद की कार्यवाही एक निष्क्रिय समारोह बन जाती है।"

10. इसलिए, ऊपर उल्लिखित फैसले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से, यह स्पष्ट है कि कारण बताओ नोटिस द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता केवल तभी पूरी की जा सकती है:

(I) कारण बताओ नोटिस में वह सामग्री/आधार शामिल होता है, जिसके लिए विभाग के अनुसार कार्रवाई आवश्यक है;

(II) विशेष जुर्माना/कार्रवाई जो किया जाना प्रस्तावित है। भले ही कारण बताओ नोटिस में इसका विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, **लेकिन इसे पढ़ने से यह स्पष्ट रूप से और सुरक्षित रूप से पहचाना जा सकता है कि यह इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगा।**

11. विवादित नोटिस के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इसमें आवश्यक विवरण और

आधार शामिल हैं, जो इसे जारी करने का आधार हैं। फिर भी, अधिनियम, 2017 की धारा 74 (1) के तहत जारी किए गए कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित आरोप पर जवाब मांगने के बजाय, याचिकाकर्ता को कर और जुर्माने के संबंध में जवाब देने का निर्देश दिया गया और यह कहा गया कि यदि कोई उत्तर नहीं दिया गया तो अधिनियम, 2017 की धारा 74(9) के तहत आदेश पारित किया जाएगा। इसलिए, नोटिस के पहले भाग में उल्लिखित तथ्यों के कारण विवादित नोटिस को क्षेत्राधिकार के बिना, स्पष्ट रूप से अवैध नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इसे रद्द करने का कोई आधार नहीं है।

12. इसलिए, पक्षों की दलीलों पर विचार करने के बाद, उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा किए गए विवाद और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद और शीर्ष अदालत द्वारा की गई सभी टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता को आक्षेपित कारण बताओ नोटिस का उत्तर दाखिल करने के उपाय से वंचित किया जाना चाहिए। क्योंकि नोटिस में मामले की नींव के बारे में विवरण शामिल था, यानी कि 12 जून, 2018 को मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज द्वारा याचिकाकर्ता को माल की कोई वास्तविक आपूर्ति नहीं की गई थी, हम कारण बताओ नोटिस को रद्द नहीं कर रहे हैं, बल्कि हम इसकी अनुमति दे रहे हैं कि याचिकाकर्ता को इस तथ्य के संबंध में भी जवाब देना होगा कि याचिकाकर्ता को माल वास्तव में मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से आपूर्ति की गई थी। 13. ऐसी परिस्थितियों में, इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है, जिससे याचिकाकर्ता को एक महीने के भीतर प्रासंगिक सामग्री के साथ विवादित नोटिस के खिलाफ अपना जवाब/आपत्ति दाखिल करने की अनुमति मिलती है। अपने जवाब में, याचिकाकर्ता विशेष रूप से इस तथ्य के संबंध में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए खुला होगा कि मेसर्स राघव एंटरप्राइजेज से माल की वास्तविक आपूर्ति हुई थी।

14. कहने की जरूरत नहीं है कि याचिकाकर्ता इस तथ्य के संबंध में उत्तर प्रस्तुत करने के लिए खुला था कि कराधान, जुर्माना और ब्याज की वसूली गलत तरीके से की जा रही थी।

15. इसके अलावा, हम निर्देश देते हैं कि विशेष जांच शाखा की रिपोर्ट को अंतिम रिपोर्ट नहीं माना जाएगा और यह मूल्यांकन प्राधिकारी के निर्णय के अधीन होगी। याचिकाकर्ता के जवाब, उसके द्वारा प्रस्तुत किए जा सकने वाले साक्ष्य और उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्यों पर विचार करने के बाद आदेश पारित किया जाएगा।
